Hindi
Visha
Kosh

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R
११
९५८९
मा० ९

विषय संख्या
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या
पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें। ६८८

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

R/1, HI58HI V.9
768

हिन्दी
विश्वकोष

(नवम भाग)

CHECKED 1973

ट

हिन्दी ... चोर
अक्षर ... है।
न्तरप्रयत्न ... प्रचलित था।
र वाह्यप्रयत्न ... अघोष
र्ममें दक्षिणसे ... ...क्षरमें)
जाता है ... इस प्रकार
अक्षरमें कुछ ... मुगल-सम्राटका तिल-
... टकसाल
इसके पर्याय ... २७ हैं—
... विनदा,
... गुजरात, जरा, भूति,
... विमला, कांति,
... और मरुत्।
... उज्ज्व... परम
... और तारड़ा, पञ्चप्राणयुक्त,
... चांदी और ... है।
... सिद्धि होती है।
... आटक, ...।
... पाटन, ...॥
... कालपी, ग्वा...।
... नागर, सरस्वती ॥"
... सम्बल, वर्णोद्धारतन्त्र)

इस मन्त्रको ध्यानपूर्वक दशवार जपनेसे अभीष्टसिद्धि होती है।

काव्यके प्रारम्भमें इसका विन्यास करनेसे खेद होता है।

ट (सं॰ क्ली॰) टल्-ड। १ करङ्क, नारियलका खोपड़ा। (पु॰) २ वामन। ३ पाद, चतुर्थांश, चौथाई भाग। ४ निःस्वन, शब्द।

टँकना (हिं॰ क्रि॰) १ कील आदि जड़ कर जोड़ा जाना। २ सीया जाना, सिलाईसे जुड़ना। ३ सी कर अँटकाया जाना। ४ रेतीका तेज होना। ५ अङ्कित होना, लिखा जाना, दर्ज किया जाना। ६ सिल, चक्की आदि रेहा जाना, कुटना।

टंका (हिं॰ पु॰) १ पुरानि समयकी एक तौल जो एक तोलेके समान मानी जाती थी। २ तांबेका एक पुराना सिक्का, टका। ३ एक प्रकारका गन्ना।

टँकाई (हिं॰ पु॰) १ टाँकनेकी क्रिया। २ टाँकनेकी मजदूरी।

टँकाना (हिं॰ क्रि॰) १ टाँकोंसे सिलवाना। २ मिला कर लगवाना। ३ खुरदुरा कराना, कुटाना। ४ सिला कर लगवाना।

टंकाना (हिं॰ क्रि॰) सिक्कोंको जाँच कराना।

टंकारना (हिं॰ क्रि॰) पतञ्चिका तान कर ध्वनि उत्पन्न

Vol. IX

करना, धनुषको डोरो खींच कर आवाज करना।

टंकी (हिं० स्त्री०) १ श्रीरागकी एक रागिणी। २ पानीका छोटासा कुंड जो दोवार उठा कर बनाया जाता है, चौबच्चा, टाँका। ३ (Tank) वह बरतन जिसमें ज्यादे पानी समाता हो, टब।

टंकोर (हिं० पु०) टंकार देखो।

टंकोरना (हिं० क्रि०) १ पतञ्चिका तान कर शब्द उत्पन्न करना, धनुषको डोरो खींच कर आवाज करना। २ ठोकर लगाना। ३ किसी वस्तुको जोरसे टकरानेके लिए तर्जनी वा मध्यमा ऊँगलीको कुण्डली बना कर उसकी नोकको अँगुठेसे दबा कर जोरसे छोड़ना।

टँकोरी (हिं० स्त्री०) वह छोटा तराजू जिससे सोना चाँदी आदि तौला जाता है, काँटा।

टँगड़ी (हिं० स्त्री०) घुटनेसे ले कर एँड़ी तकका भाग टाँग।

टँगना (हिं० क्रि०) १ लटकाना। २ फाँसी पर चढ़ना, फाँसी लटकना। ३ कपड़े आदि रक्खे जानेके लिये बंधी हुई रस्सी, अलगनी। ४ जुलाहोंकी उठौनी टाँगी जानेकी रस्सी।

टँगरी (हिं० स्त्री०) टंगड़ी देखो।

टँगा (हिं० पु०) मूंज।

टंटघंट (हिं० पु०) पूजा पाठका भारी आड़म्बर, मिथ्या आड़म्बर।

टंटा (हिं० पु०) १ प्रपंच, बखेड़ा, खटराग। २ उपद्रव, हलचल, दङ्गा फसाद। ३ झगड़ा, लड़ाई, कलह।

टंडर (अं० पु०) १ किसी दूसरेसे कुछ काम करने या कोई माल किसी नियत दर पर बेचने या खरीदनेका इकरारनामा। २ अदालतका वह आज्ञापत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य किसीके प्रति अपना देना अदालतमें दाखिल करे।

टंडल (हिं० पु०) मजदूरोंका जमादार या मेट।

टँड़िया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जो बाँहमें पहना जाता है। यह अनन्तके आकारका होता लेकिन उससे भारी और बिना घुंडीका होता है, टाँड़, बहुंटा।

टँडुलिया (हिं० स्त्री०) काँटेदार बन-चौलाई। वह साग और औषध दोनोंके काममें आती है।

टंडैल (हिं० पु०) टंडल दे ।

टंसरी (हिं० स्त्री०) एक ा।

क (हिं० स्त्री०) १ सि दृष्टि, गड़ी हुई नजर। २

ड़े तराजूका चौखूंटा प जिस पर लकड़ी आदि

ख कर तौला जाता है।

टकी (हिं० स्त्री०) सि दृष्टि, गड़ी हुई नजर।

ट कना देखो।

टोना (हिं० क्रि०) ट

ट से छू कर पता लगाना,

ोलना (हिं० क्रि०)

टव लना।

ट छूनेकी क्रिया।

हन (हिं० पु०) स

टक ी (सं० स्त्री०) काा एक प्राचीन वाद्ययन्त्र

टक त बाजा।

ि ढङ्गका एक प्र

(हिं० पु०) ेंट जो किसान विवाहादि

ट ेते हैं, मधवच, शादिया।

पर जमींद

के जोरसे एक दूसरेमें ठोकर

हिं० क्रि०

टकर सरसे मिल र कार्यसिद्धिकी आशासे कई

लग ाना, घूमना।

ाई ब

स्था प्रकारका वृत्त।

टकरी म, चटगाँव और बर्मामें होने-

टकसर ।

वाला १ (सं० टङ्कशाला शब्दका

टकसाल त होनेका कार्यालय, सिक्के

अपभ्रंश ना, वह स्थान जहां रुपये,

बनने य ।

पैसे आदि ारतवर्षमें सोने चाँदी और

अति प्रा होते आये हैं। नाना-

तांबे आदिके ओंके नामाङ्कित बहुत सिक्के

स्थानोंमें प्र कार, परिमाण, विशुद्धता

मिले हैं। ो देखनेसे सहजहो प्रतीत

आदि अ तिगण राजकीय टकसालों-

होता है ोंके बनवाते थे। अलेक-

में अपने ंग्रेजोंके अधिकार समय

सन्दरके ाहीं कि कितने प्रकारके

तक भ ण, आकार और गठनका

सिक्के या। मुद्रा देखो।

पारिप के भी सिक्कोंके बनानेका

र

अधिकार न था। राजकीय टकसालोंमें शिल्पिगण हाथसे एक एक सिक्का बनाते थे। कहना फिजूल है कि, प्राचीन हिन्दू राजाओंके समयके जितने भी सिक्के पाये गए हैं, उनका सोना या चाँदी अति विशुद्ध होने पर भी उनकी बनावट उतनी उमदा नहीं है क्योंकि वह हाथसे बनाया जाता था। सम्भवतः खूबसूरतीकी तरफ उनका लक्ष्य भी नहीं था, ऐसा मालूम पड़ता है।

अलेकसन्दरके आक्रमणके बाद पञ्जाब और अफगानिस्तानमें, उनके द्वारा स्थापित नगरोंके शासनकर्त्ता ग्रीक-अक्षरोंमें सिक्के प्रचलित करवाते थे। परवर्ती शासनकर्तागण ग्रीक और देशीय दोनों ही भाषायें व्यवहार करते थे।

मुगल सम्राटोंने सिक्कोंकी खूबसूरतीके विषयमें काफी उन्नति की थी। भारतवर्षसे लूटी हुई स्वर्णराशि दिल्ली और आगरेकी राजकीय टकसालोंमें मुसलमानी सिक्कोंमें परिणत हो कर देश देशमें प्रचलित हुई। कहना फजूल है कि, मुगल सम्राटोंके समयमें ही भारतवर्षके बहुविस्तृत स्थानमें दिल्लीकी टकसालके सिक्के प्रचलित हुए थे।

बादशाह अकबरके समयमें मुगल-साम्राज्यके ४२ नगरोंमें टकसालें थीं। उन टकसालोंमें जिन जिन स्थानोंके लिये जैसे जैसे सिक्के बनाए जाते थे, उनका नीचे उल्लेख किया जाता है।

१म। दिल्ली, बङ्गाल, गुजरातस्थ अहमदाबाद और काबुल, इन चार स्थानोंकी टकसालोंमें स्वर्ण रौप्य और ताम्र इन तीन प्रकारकी धातुओंके सिक्के बनते थे।

२य। इलहाबाद, आगरा, उज्जैन, सूरत, पटना, काश्मीर, लाहौर, मुलतान और ताण्डा इन दश स्थानोंकी टकसालोंमें सिर्फ चाँदी और ताँबेके सिक्के बनते थे।

३य। अजमेर, अयोध्या, अटक, अलवर, बदाऊं, बनारस, भाक्कर, बहिरा, पाटन, जौनपुर, जालन्धर, हरिद्वार, हिस्सार, फिरुजा, कालपी, ग्वालियर, गोरखपुर, कलानूर, लखनौ, माण्डू, नागर, सरहिन्द, शियालकोट, सरोंज, सहारनपुर, सारङ्गपुर, सम्भल, कन्नौज और रन्तम्गड़ (रणस्तम्भपुर)—इन उनतीस नगरोंकी टकसालोंमें ताँबेके सिक्के बनते थे।

इन टकसालोंमें जितने कर्मचारी, शिल्पी और मजदूर आदि रहते थे, उनके नाम और काम संक्षेपसे कहे जाते हैं।

१। दरोगा—टकसालके कार्याध्यक्ष स्वरूप प्रत्येक कार्यका परिदर्शन करनेवाला। सब विषयोंमें निपुण और तीक्ष्णदृष्टि तथा न्यायपर व्यक्ति ही ऐसे पद पर नियुक्त किये जाते थे।

२। सर्राफ—स्वर्णपरीक्षक, ये स्वर्ण-रौप्यादिकी विशुद्धताकी परीक्षा किया करते थे। इन पर सिक्केका उत्कर्षापकर्ष निर्भर करता था, इसलिए इस पद पर सुनिपुण और न्यायपर व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते थे।

३। आमिन—दरोगाका सहकारी।

४। मुशरिफ—दैनन्दिन व्ययका हिसाब रखनेवाला।

५। महाजन—सोना, चाँदी और ताँबा खरीद कर टकसालमें देनेवाला।

६। कोषाध्यक्ष—आय-व्यय और लाभका हिसाब रखनेवाला।

५वें (महाजन)-को छोड़ कर उपरोक्त सभी कर्मचारी आहदी अर्थात् १म श्रेणीके कर्मचारियोंमें गिने जाते थे।

७। तौला—सिक्केको बारीकीके साथ तौलनेवाला।

८। धातु गलानेवाला—मिश्र स्वर्ण, रौप्य और ताम्रको गला गला कर चद्दर बनानेवाला।

९। मिश्र स्वर्ण-रौप्यादिकी चकतियां बनानेवाला—सराफको इनकी बनाई हुई चकतियोंको अच्छा समझनेसे विशोधन करानेका अनुमति देता था। मिश्रित उन चकतियोंको सोडा और ईंटके चूरेमें कण्डोंकी आगमें जला कर शुद्ध किया जाता था।

१०। विशुद्ध धातु गलानेवाला—यह आदमी उपरोक्त विशोधित चकतियोंको गला कर चद्दर बनाता है।

११। जराब—चद्दरको काट कर सिक्केके आकार और मापका टुकड़े बनानेवाला।

१२। खोदकार—ईस्पात लोहे पर चित्र और अक्षर आदि खोद कर सिक्केके लिये ढाँचा बनानेवाला।

Stock Verification 2024

अकबरके समयमें दिल्ली-निवासी मौलाना अली अहमद नामक एक अति सुदक्ष खोदकार इस्पातका सांचा बनाता था।

१३। सिक्काची—यह व्यक्ति गोलाकार धातुखण्डको ले कर दो साँचोंके बीचमें रखता और दूसरा आदमी (पाट्‌क्चि) हथौड़ेसे उस पर चोट करके धातुखण्ड पर मुद्राङ्कित करता था।

१४ सब्बाक—विशुद्ध चाँदीको गोल चद्दर बनानेवाला।

१५। कुर्शकुब—यह व्यक्ति विशुद्ध चाँदीकी चद्दरको जला कर पीटता रहता था। जब तक उसमें सीसेकी गन्ध रहती, तब तक उसको बारबार पीटा जाता था।

१६। कसनिगीर—यह व्यक्ति सोने चाँदीकी विशुद्धताकी परीक्षा करता था और विशुद्ध न होने पर इच्छानुसार विशुद्ध करा लिया करता था।

१७। नियारिया—यह व्यक्ति स्वर्णादिकी खाक धो कर उसमेंसे स्वर्ण पृथक् करता था।

स्वर्ण-रौप्यादिको विशुद्ध करनेके लिए ताँबा, सीसा, गन्धक, सुहागा आदिको काममें लाया जाता था।

१८। मिश्रित चाँदीकी गाद गला कर चाँदी निकालनेवाला।

१९। पैकार— नगरस्थ स्वर्णकारोंसे धूल आदि खरीद कर उसमेंसे सोना चाँदी निकालनेवाला।

२०। निकोईवाला—पुराने तांबेके सिक्कोंका संग्रह कर उनको गलानेवाला।

२१। खकशो—टकसालमें झाड़ू देनेवाला। यह टकसालकी धूलको घर ले जा कर उसमेंसे सोना चाँदी निकालता था। इसमें उसकी खूब आमदनी होती थी।

अकबर बादशाहके समयमें अति विशुद्ध सोने चाँदीसे सिक्के बनते थे। इन्होंने उत्कृष्ट शिल्पियोंको नियुक्त कर सिक्कोंकी बनावटमें पहलेसे बहुत कुछ सुधार किया था।

अकबरकी टकसालोंमें २६ प्रकारके सोनेके सिक्के, ९ प्रकारके चाँदीके और ४ प्रकारके ताँबेके सिक्के बनते थे। उनमें कुछ गोल और कुछ चौखूंटे होते थे।

मुद्रा देखो।

सोने चाँदीसे सिक्के बन जाने पर उनका जो मूल्य बढ़ता था, उसमेंसे कुछ अंश कर्मचारियोंके वेतनमें खर्च होता था और बाकीमेंसे महाजनको कुछ दे कर सब राजकोषमें जमा किया जाता था।

ईसाकी १६वीं शताब्दीके मध्यवर्ती समय तक यूरोपमें सिक्केका विशेष उत्कर्ष साधित नहीं हुआ था। उस समय तक धातुकी चद्दरको काट छाँट कर तथा हथौड़ेसे चोट दे कर हाथसे ही सिक्के बनाये जाते थे। कहना फजूल है कि, इस तरहकी प्रणालीसे सिक्के ठीक गोल नहीं होते थे और न उनके दोनों तरफ समान दाब ही लगती थी। १५५७ ई०में एक फरासीसी खोदकारने स्क्रूके जरिये दाब कर छाप उतारनेकी तरकीब निकाली। १६६२ ई०में इङ्गलैण्डकी टकसालमें वाष्पीय यन्त्र द्वारा परिचालित एक बड़े हथौड़ेसे सिक्के बनाये जानेकी प्रथा उद्भावित हुई। यही अभी सर्वत्र प्रचलित है। इस समय जिस प्रणालीसे सिक्के बनाये जाते हैं, उसका संक्षेपमें वर्णन किया जाता है।

जिस सोने वा चाँदीसे सिक्के बनेंगे उनके थान टकसालमें आते ही पहले एक सुदक्ष स्वर्णपरीक्षक प्रत्येक थानकी परीक्षा कर उसकी विशुद्धता लिख लेते हैं। इसके बाद सोनेके थान मजबूत पात्रमें गलाये जाते हैं। सोना जब प्रखर उत्तापसे गल जाता है, तब उसमें यथोपयुक्त ताम्र मिला कर सोनेको निर्दिष्ट मिश्रित अवस्थामें परिणत किया जाता है। २२ भाग विशुद्ध स्वर्ण और २ भाग ताम्र मिला कर इंग्लैण्डके सिक्के बनाये जाते हैं। चाँदीके सिक्कोंमें २२२ भाग चाँदी और १८ भाग ताँबा डाला जाता है। यथोपयुक्त मिश्रण होने पर सोने वा चाँदीके आकार और परिमाणके भेदानुसार लोहेके साँचेमें ढालनेके नाना प्रकार थान बनाये जाते हैं। इन थानोंको वाष्पीय यन्त्र द्वारा परिचालित घूर्णमान इस्पातकी मजबूत चक्कीमें बार बार पेषित करके पतला किया जाता है। इन पत्तियोंको सर्वत्र समान करनेके लिए पुनः आगमें जला कर इस्पातकी जाँतेमेंसे खींचते हैं। कामके लायक पतली होने पर वे पत्तियाँ एक परीक्षकके पास भेजी जाती हैं। परीक्षक प्रत्येक पत्तीमेंसे एक एक टुकड़ा काट कर वजन करता है। यदि

किसीकी तौलमें ½ ग्रेनसे ज्यादा तारतम्य हो, तो पूरी पत्ती नाकाम हो जाती है।

इन पत्तियोंसे कैंचीसे गोल गोल चकतियां काटी जाती हैं। एक अद्भुत वाष्पीय यन्त्र द्वारा परिचालित छेनीके जरिये इस कामको प्रायः लड़कियें किया करती हैं। इस तरह एक लड़का प्रत्येक मिनटमें ६०।७० चकतियाँ काट सकते हैं। चकतियोंके कट जाने पर उनको फिर गलानेको अलग भेजा जाता है।

इसके बाद एक एक चकती तौली जाती है। यदि किसी तरह किसीका वजन कम हो, तो उनको अलग रख कर फिरसे गलाया जाता है। जिनका वजन ज्यादा होता है, उनको घस: कर ठीक कर लिया जाता है। इससे पहले प्रत्येक टुकड़ेको लोहे पर पटक कर बजाया जाता है; यदि किसीकी आवाज ठीक न हो, तो उसको निकाल दिया जाता है।

सिक्कोंके किनारोंको ऊँचा करनेके लिए पहले उनको यन्त्र द्वारा दो गोलाकार इस्पातमें रख कर चारों तरफ़से दाब दी जाती है; इससे किनारे बीचकी अपेक्षा मोटे हो जाते हैं और आकार भी ठीक गोल हो जाता है। इसके बाद आगमें दे कर नरम करनेसे ही वे सिक्के बनानेके योग्य हो जाते हैं। किन्तु उपरोक्त प्रणालीको सम्पादित करते करते वे [illegible] खण्ड प्रायः मैले हो जाया करते हैं। उस मैलको दूर करनेके लिए उनको गन्धकद्रावकमिश्रित खौलते हुए पानीमें छोड़ कर धो लिया जाता है। उन धौत खण्डोंको काठकी चूरीसे अच्छी तरह पोंछ कर सामान्य तापसे शुद्ध किया जाता है। इस प्रकारकी सावधानीके बिना सिक्कोंमें चमकीलापन नहीं आता।

अनन्तर उन टुकड़ोंको मुद्रित करनेके लिए मुद्रणगृहमें भेजा जाता है। एक बड़े भारी मजबूत यन्त्रके दोनों तरफके दोनों साँचे ठीक तरऊपर दृढ़बद्ध होते हैं। पहले नीचेके साँचेमें एक टुकड़ा रखा जाता है, फिर वाष्पीय तेजसे ऊपरका साँचा समस्त यन्त्रसहित आ कर उसको दाबता है; इससे दोनों ओर एक साथ छाप पड़ती है। किनारेके दाँत भी इसीके साथ बन जाते हैं। नीचेके साँचेके चारों तरफ वलयाकृति एक इस्पातकी मजबूत बेड़ी रहती है। जब ऊपरका साँचा आ कर गिरता है, तब वह भी चारों ओरसे दाब कर दाँत बना देती हैं। इस तरह एक एक करके सिक्के बनाये जाते हैं। कहना फजूल है कि, साँचेमें टुकड़ोंका धरना भी मशीनहीसे होता है। इसके बाद उन सिक्कोंको थैलियोंमें भरा जाता है, तथा उसमेंसे दो चार सिक्कोंकी परीक्षा की जाती है।

१६०१ ई०में इष्ट इण्डिया कम्पनी टकसालमें सिक्के बना कर भारतमें लायी थी। १६६०-६१ ई०में मद्राजमें एक टकसाल स्थापित हुई थी।

१७५९-६० ई०में इष्ट इण्डिया कम्पनीको टकसाल बनानेके लिए परवाना मिलने पर उसने कलकत्तेमें एक टकसाल बनाई थी। १७८० ई०में बङ्गालमें इतने तरहके सिक्के चलते थे और उनका मूल्य हर साल इतना बढ़ जाता था कि, सुदक्ष सर्राफोंके सिवा दूसरा कोई भी उनके मूल्यका निरूपण नहीं कर सकता था। इन सब कारणोंसे टकसालके अध्यक्षोंने सर्वत्र एकसे सिक्के चलानेका प्रस्ताव किया। एक तरहका रुपया (सिक्का) चलने लगा, बाकी सब गला दिये गये।

१७९२ ई०में गवर्नरजनरलने टकसालके अध्यक्षोंको आदेश दिया कि, शीघ्रतासे समस्त पुरातन मुद्राओंको नये सिक्कोंमें परिणत करनेके लिए पटना और मुर्शिदाबादमें भी टकसालें स्थापित की जाय।

इससे पहले मुसलमानी सिक्कों पर पुरी छाप नहीं उठती थी, क्योंकि सिक्केसे साँचे बड़े होते थे। उस पर मुद्रित अक्षरादि भी बहुत ऊँचे होते थे, इसलिए दुष्ट लोग मुहरके किनारेको घस कर वा खुरच कर सोना चाँदी निकाल लिया करते थे। इस तरहसे मुहरोंका वजन बहुत घट जाता था। अब इस चालाकीसे बचनेके लिए किनारेमें दाँत बनाये जाते हैं और छाप भी कम ऊँची कर दी गई है। इस तरहके सिक्कोंमें सब छाप बराबर पड़ती है और किनारियोंमें दाँत रहनेके कारण किसी तरफसे घिसे जानेसे मालूम पड़ जाता है।

उक्त वर्षके अगस्त महीनेमें गवर्नरजनरलके आदेशसे ढाका, पटना और मुर्शिदाबादमें भी कलकत्तेकी भाँति रुपये बनाने लगे। इन रुपयोंमें सनकी जगह सम्राट्के राजत्वका १९वां वर्ष मुद्रित होता था। यह रुपया

कम्पनीके अधिकृत सभी स्थानोंमें चलाने लगा।

१७९७ ई॰में ढाका और पटनाकी टकसालें बंद कर दी गई। इसके बाद मुर्शिदाबादकी टकसालभी उठ गई।

उस समय भी काशी, फरक्काबाद, बरेली, इलाहाबाद, गोरखपुर आदि नगरोंमें स्थानीय व्यवहारके लिए सिक्के बनते थे। किन्तु बहुत जगह टकसालके कर्मचारियोंके असद्व्यवहारसे सिक्केका मूल्य घटने लगा। गवर्मेण्ट यथासाध्य चेष्टा करने पर भी उसका निराकरण न कर सकी।

ईसाकी १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें ही कम्पनीके अधिकृत विस्तीर्ण प्रदेशमें एक तरहके सिक्के चलानेका प्रसङ्ग छिड़ा। कुछ भी हो, नवाधिकृत और करद राज्योंमें नये नये सिक्के चलने लगे।

पुराने सिक्कोंको गला कर नये सिक्के बनानेके लिए सागर, अजमेर आदि स्थानोंमें भी टकसालें स्थापित की गई थीं।

फिलहाल समग्र भारतवर्षमें सिक्का, फरक्काबादी, गोरखपुरी, बालाशाही आदि भिन्न भिन्न रुपयोंका अस्तित्व उठ कर सर्वत्र १८० ग्रेन (ट्रय) वजनका रुपया प्रचलित हुआ है। १८३५ ई॰में मद्राजकी टकसाल उठ गई और उसकी मशीनें आदि सब कलकत्ते और बम्बईकी टकसालमें पहुंचाई गईं। इसके बाद कलकत्ता और बम्बईकी टकसालमें ही समस्त भारतवर्षके लिए मुद्रा बनने लगी और अन्यान्य टकसालें फिजूल समझ कर उठा दी गईं। इस समय बम्बई और कलकत्तेमें ही रुपये-पैसे बनते हैं। दोनों जगहके रुपये आदि एक ही प्रकारके होते हैं।

इनके सिवा बहुतसे करद और मित्र राजाओंकी राजधानीमें टकसालें हैं। उन टकसालोंमें स्थानीय प्रदेशोंके लिए रुपये आदि बनते हैं।

२ प्रामाणिक वस्तु, असल चीज।

टकसाली (हिं॰ वि॰) १ टकसाल-सम्बन्धी, टकसालका। २ टकसालका बना हुआ, खरा, चोखा। ३ सर्व-सम्मत, माना हुआ। ४ परीक्षित, प्रामाणिक, जँचा हुआ, पक्का। (पु॰) ५ वह जो टकसालकी देख भाल करता हो, टकसालका मालिक।

टकहाई (हिं॰ वि॰) जो वेश्याओंमें खराब हो।

टका (हिं॰ पु॰) १ रुपया, चाँदीकी पुरानी मुद्रा। २ दो पैसेके बराबर ताँबेकी एक मुद्रा, अधन्ना, दो पैसे। ३ धन, द्रव्य, रुपया, पैसा। ४ तीन तोलेकी तौल, आधी छटाँकका मान। ५ सवा सेरके बराबरकी एक तौल जो गढ़वालमें प्रचलित है।

टकाई (हिं॰ वि॰) टकाही देखो।

टकाटकी (हिं॰ स्त्री॰) टकटकी देखो।

टकातोप (हिं॰ स्त्री॰) जहाजों पर रक्खी जानेवाली एक प्रकारकी तोप।

टकाना (हिं॰ क्रि॰) टँकाना देखो।

टकार (सं॰ पु॰) टस्वरूपे कारः। ट, ट स्वरूप अक्षर।

टकासी (हिं॰ स्त्री॰) १ दो पैसे प्रति रुपयेका सूद। २ हरएक मनुष्यसे टकेके हिसाबसे लिये जानेका चन्दा।

टकाही (हिं॰ वि॰) टकहाई देखो।

टकी (हिं॰ स्त्री॰) टकटकी देखो।

टकुआ (हिं॰ पु॰) १ चरखेमें लगा हुआ एक प्रकारका सूआ। इस पर सूत काता और लपेटा जाता है, तकला। २ चरखीमें लोहेका एक पुरजा जिससे बिनौला निकाली जाती है। ३ वह तागा जो छोटे तराजू या काँटेके पलड़ोंमें बंधा होता है।

टकुली (हिं॰ स्त्री॰) १ टाँकी, एक प्रकारका औजार जिसे पत्थर काटा जाता है। २ नक्काशी बनानेके काममें आनेवाला एक प्रकारका लोहेका औजार जो पेचकशकी तरह होता है। ३ एक पेड़का नाम।

टकैत (हिं॰ वि॰) जिसे रुपये पैसे हों, धनी।

टकोर (हिं॰ स्त्री॰) १ आघात, प्रहार, हलकी चोट। २ वह चोट जो नगाड़े पर पूजाके समय की जाती है। ३ नगाड़ेकी आवाज। ४ धनुषकी कसी हुई पतञ्चिका खींच वा तान कर छोड़नेका शब्द, धनुषकी डोरी खींचनेकी आवाज, टङ्कार। ५ दवा भरी हुई गरम पोटलीको किसी अङ्ग पर रह रह कर छुलानेकी क्रिया, सेंक। ६ खट्टी वस्तु खानेके कारण दाँतोंकी टीस, चमक। ७ तीक्ष्णता, तीतापन, चरपराहट।

टकोरना (हिं॰ क्रि॰) १ ठोकर लगाना। २ बजाना, चोट लगाना। ३ सेंकना।

टकोरा (हिं० पु०) नगाड़ेका आघात, डङ्केकी चोट।

टकोरी (हिं० स्त्री०) वह छोटा तराजू जिससे सोना आदि तौला जाता है, छोटा काँटा।

टक्क (सं० पु०) टक्-कक् पृषोदरादित्वात् उपधालोपश्च। देश-विशेष, एक देशका नाम।

टक्कदेश (सं० पु०) टक्कः टक्क इति नाम्ना ख्यातः देशः, कर्मधा०। पञ्जाबस्थ चन्द्रभागा और विपाशा नदीके मध्यवर्ती प्राचीन जनपद-विशेष। राजतरङ्गिणीमें टक्कदेशको गुर्जर (गुजरात) राज्यके अन्तर्गत लिखा है। टक्कजाति किसी समयमें अत्यन्त प्रतापशालिनी और सारे पञ्जाबमें राज्य करती थी। चीन-परिव्राजक युएनचुयाङ्गने टक्क राज्यका तथा उसके अधिपति मिहिरकुलका उल्लेख किया है। उनके लेखसे यह राज्य विपाशाके पश्चिमी किनारे पड़ता है। यहांकी जमीन उर्वरा थी। सोना, चाँदी, ताँबा और लोहा यथेष्ट मिलता था। जलवायु उष्ण था, साथ साथ तूफानका डर सदा बना रहता था। लोग बड़े कामकाजी तथा साहसी थे, इन लोगोंका पहनावा लाल रेशमी वस्त्र था। टक्ककी राजधानी शाकलसे १४।१५ ली अर्थात् ३ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित थी। युएनचुयाङ्गके लेखसे पता चलता है, कि उस समय टक्कमें बौद्धधर्मका उतना प्रभाव नहीं था। केवल १० सङ्घाराम थे। यहांके लोग अत्यन्त आतिथेय थे। यहां तक कि वे अतिथिशालामें आगन्तुकों और दीनहीन यात्रियोंकी सेवा शुश्रूषा किया करते थे।

टक्कदेशीय (सं० पु०) टक्कदेशे भवः इति छ। १ वास्तूकशाक, बथुआ नामका साग। (त्रि०) २ टक्कदेशोत्पन्न, टक्कदेशका।

टक्कर (हिं० स्त्री०) १ दो वस्तुओंके जोरसे एक दूसरेसे मिलना, ठोकर। २ लड़ाई, भिड़त, मुकाबिला। ३ किसी कड़ी वस्तु पर सिर पटकनेका आघात। ४ क्षति, हानि, नुकसान।

टक्कारिका—चन्देलराज भोजवर्माके अजयगढ़के शिलालेखमें लिखा हुआ एक प्राचीन नगर। उक्त लिपिके मतसे यह नगर कायस्थ-निवासभूत छत्तीस नगरोंमें सबसे प्रधान तथा वास्तव्य कायस्थोंके आदिपुरुष वास्तुका वासस्थान था।

टखना (हिं० पु०) पादग्रन्थ, पैरका गट्टा।

टगण (सं० पु०) मात्रावृत्तमें तेरह भेदात्मक गणविशेष, मात्रिक गणोंमेंसे एक। इसके आकार और अधिष्ठात्री देवताके विषयमें छन्दोग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है, यथा—(ऽऽऽ) १ शिव, (।।ऽऽ) २ शशी, (।ऽ।ऽ) ३ दिनपति, (ऽ।।ऽ) ४ सुरपति, (।।।ऽ) ५ शेष, (।ऽऽ।) ६ अहि, (ऽ।ऽ।) ७ सरोज, (।।ऽ।) ८ धाता, (ऽऽ।।) ९ कलि, (।।ऽ।।) १० चन्द्र (।ऽ।।।) ११ ध्रुव, (ऽ।।।।) १२ धर्म, (।।।।।।) १३ शालिकर।

टगर (सं० पु०) टः टङ्कणः क्षारविशेषः गर इव। १ टङ्कणक्षार, सोहागा। २ विलास, क्रीड़ा। ३ तगरका पेड़। (त्रि०) ४ केकराक्ष, ऐंचा, भेंगा।

टगरगोड़ा (हिं० पु०) लड़कोंका एक खेल। इसमें कुछ कौड़ियां चित्त करके जमा देते हैं फिर एक कौड़ीसे उन्हें मारते हैं।

टगरा (हिं० वि०) भेंगा, ऐंचा ताना।

टघरना (हिं० क्रि०) १ चित्तमें दया आदिका उत्पन्न होना, हृदयका पिघल जाना। २ घी, चरबी आदिका गर्मीके कारण द्रव होना, पिघलना।

टघराना (हिं० क्रि०) द्रव करना, पिघलाना।

टङ्क (सं० पु०) टक-घञ्। १ कोप, क्रोध, गुस्सा। २ कोष, खजाना। ३ खड्ग, तलवार। ४ ग्रावदारण पत्थर काटनेका औजार, टाँकी। (क्ली०) ५ जङ्घा, जाँघ। ६ परिमाणविशेष, एक तौल जो चार माशेकी होती है, कोई कोई इसे २४ रत्तीकी मानते हैं।

(पु०-क्ली०) ७ नीलकपित्थ, नीला कैथ, खटाई। ८ खनित्र, कुदाल। ९ दर्प, अभिमान। १० परशु कुल्हाड़ी, फरसा।

"दार्दितां चैव टंकौघैः खनित्रैश्च पुरी कृतम् ॥" (हरिवंश ९२ अ०) ११ राजाम्र, एक बड़ा आम।

"शीतं कषायं मधुरं टंकमारुतकृत् गुरुः ॥" (सुश्रुतसूत्र ४६)

१२ पर्वतका प्रान्तभाग। १३ पर्वतका उन्नत प्रदेश, पहाड़की चोटी। १४ विदीर्ण प्रस्तर भाग, पत्थरका कटा हुआ टुकड़ा। १५ रागविशेष, संपूर्ण जातिका एक राग। यह श्री, भैरव और कान्हड़ाके योगसे बना है। इसमें कोमल ऋषभ लगता है और इसका सरगम इस प्रकार है—

सा, ऋ, ग, म, प, ध, नि। (संगीततर०)
१६ म्यान। १७ कांटेदार पेड़। इसमें बेल या कैथके बराबर फल लगते हैं। १८ टङ्कणक्षार, सुहागा। १९ नियत मान वा बाट। इससे धातुको तौल कर टकसाल में सिक्के बनानेके लिये देते हैं। २० मुद्रा, सिक्का। २१ २१¼ रत्तीके बराबर मोतीको एक तौल। २२ घुटनेसे ले कर एंड़ी तकका अङ्ग, टाँग। २३ रजतमुद्रा। २४ पाषाणदारण।

टङ्क (तोङ्क)—१ राजपूतानेके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। इसका थोड़ा भाग तो राजपूतानेमें और थोड़ा मध्यभारत में पड़ता है। राजपूतानेमें केवल यही एक राज्य मुसलमान राजासे शासित होता है। यह राज्य परस्पर विच्छिन्न ६ विभागोंसे संगठित है, यथा—राजपूतानेके टङ्क, अलीगढ़-रामपुर तथा मध्य भारतके निम्भेर, पिरवा, चपरा और सिरोञ्ज है। यह अक्षा० २३° ५२′ से २६° २८′ उ० और देशा० ७४° १२′ से ७७° ५७′ पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल २५५३ वर्ग-मील है, जिनमेंसे १११४ राजपूतानेमें और १४३९ मध्य-भारतमें हैं। यहांका राजस्व प्रायः १२ लाख रुपये है। राज्यमें जहां तहां घनी झाड़ियोंसे ढके हुए छोटे छोटे पहाड़ देखे जाते हैं। चित्तौर नामक पहाड़ ही सबसे बड़ा है। इसकी ऊँचाई समुद्रपृष्ठसे लगभग १९८० फुट है। यों तो राज्यभरमें अनेक नदियाँ प्रवाहित हैं, पर बनास और पार्वती नदी ही सबसे बड़ी है। बाढ़के समयमें ये दो नदियां बहुत भीषणरूप धारण कर लेती हैं। १८७५ ई०में उक्त नदियोंमें जो बाढ़ आई थी उससे हजारों ग्राम तथा घर बह गये थे, बहुतोंको जान चली गई थी। इनके सिवा माशी, सोहद्र, गम्भीर, बेरच आदि भी कई एक छोटी नदियाँ बहती हैं। यहांका जलवायु शुष्क तथा स्वास्थ्यकर है।

टङ्कके अधिपति बोनर सम्प्रदायके पठान हैं। सम्राट् महम्मदशाह गाजीके राजत्वकालमें तालखाँ नामक कोई पठान अपनी वासभूमि केशरको छोड़ कर रोहिलखण्डके सैन्य विभागमें चले आये। इनके पुत्र हैयतखाँने मुरादाबादमें थोड़ी भूसम्पत्ति प्राप्त की। १७६८ ई०में हैयतके पुत्र टङ्कराज्यके स्थापनकर्त्ता विख्यात अमीरखाँने जन्मग्रहण किया।

अमीरने सबसे पहले थोड़ेसे अनुचरोंको ले कर सैनिकवृत्ति अवलम्बन की। क्रमशः जब इनकी शक्ति कुछ बढ़ी, तब १७९८ ई०में उन्होंने यशवन्तराव होलकरके सेनापति हो कर सिन्धिया, पेशवा और अंगरेजों के विरुद्ध लड़ाई ठान दी।

१८०६ ई०में होलकरने अमीरको टङ्क राज्य दे कर उनसे अपना पिण्ड छुड़ाया। इसके बाद अमीरखाँने परस्पर विवादमें प्रवृत्त जयपुर और जोधपुरके दोनों राजाओंकी क्रमशः सहायता दे कर दोनोंका राज्य तहस नहस कर डाला। उनकी दुर्दान्त सैन्यने दोनोंका राज्य लूटा। १८०९ ई०में उन्होंने ४० हजार अश्वारोही लेकर नागपुरकी ओर यात्रा की। रास्तेमें २५ हजार पिण्डारी उनके दलमें मिल गये। जब अंगरेज गवर्मेण्टने उनको इस कामसे मना किया, तब उनके सेनादलने राजपूताना लौट कर लूट मार मचा दी।

१८१७ ई०में मार्किस आफ हेष्टिंसने पिण्डारियोंको दमन करनेकी इच्छासे अमीरको होलकर-प्रदत्त राज्यमें स्थापित करनेकी विचारा और उन्हें सैन्यदलको लौटा देनेके लिये आदेश किया। प्रतिवाद करना निष्फल समझ कर अमीर सहमत हो गये। उनकी अधिकांश युद्धसामग्री वृटिश सरकारने खरीद ली। अलीगढ़, रामपुर विभाग और रामपुरदुर्ग उन्हें दे दिये गये। १८३४ ई०में अमीरकी मृत्यु हुई।

बाद उनके पुत्र वजीर महम्मदखाँ तथा उनके बाद वजीर महम्मदके पुत्र महम्मद अलीखाँ टङ्कके नवाब हुए। इन्होंने किसी सामन्त राजाके परिवारको अन्याय अत्याचारमें आश्रय दिया था, इसीसे अंगरेजने उन्हें राज्यच्युत कर उनके पुत्र महम्मद इब्राहिम अलीखाँको नवाबके पद पर अभिषिक्त किया। इनका पूरा नाम अमीन उद्-दौला वजीर उल् मुल्क नवाब सर हफीज महम्मद इब्राहीम अलीखाँ बहादुर सौलत जङ्ग जी०सी०एस०आई० जी०सी०आई०ई है। नवाबको कर नहीं देना पड़ता। इन्हें १७ तोपोंकी सलामी मिलती है। ये ८२ तोपें, २४७ गोलन्दाज सैन्य, ४४३ अश्वारोही और १०४६ पदातिक सैन्य रखते हैं।

इस राज्यमें ग्राम और शहर मिला कर कुल १२९४

लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः २७३२०१ है, जिनमेंसे सैकड़े ८२ अर्थात् २२५४३२ हिन्दू, सैकड़े १५ अर्थात् ४१०८० मुसलमान और ६६२३ जैन हैं। यहांके अधिकांश मुसलमान सुन्नी सम्प्रदायके हैं। इस राज्यमें ब्राह्मण, महाजन, चमार, पठान मीना, गुजर और शेख जातिके मनुष्य रहते हैं। राजपूताना परगनेके लोग साधारणतः हिन्दी, मारवाड़ी और उर्दू भाषा तथा मध्यभारतके लोग मालवी बोलते हैं। यहांके अधिकांश अधिवासी कृषक हैं। यहांके उत्पन्न शस्यमें गेहूं, बाजरा, चना और जुन्हरी है। कपास और अफीम भी यहां बहुत उपजाई जाती है।

इस राज्यके सम्पूर्ण भागमें सूतीका कपड़ा प्रस्तुत होता है। यहां जूट और शराबका कारखाना भी है।

इस राज्यसे अनाज, कपास, अफीम, चमड़े और सूती कपड़ेकी रफतनी होती और दूसरे दूसरे देशोंसे नमक, चीनी, चावल, तमाकू और लोहेकी आमदनी होती है। इस राज्यमें ४२ मील तक पक्की सड़क और ४७ मील तक कच्ची सड़क गई है। टङ्कसे जयपुर जानेकी सड़क ही सबसे प्रधान है।

नवाब और उनके सहकारी वजीरसे तथा एक सभासे विचारकार्य चलाया जाता है। उक्त सभामें केवल ४ सदस्य रहते हैं। ब्रिटिश गवर्मेण्टके नियमानुसार यहांका भी शासनकार्य चलता है। नवाबके सिवा और दूसरेको मृत्य दण्ड देनेका अधिकार नहीं है।

यहां ३ अस्पताल, ५ औषधालय और ६ सरकारी डाकघर हैं।

२ राजपूतानेके पूर्व टङ्क राज्यका सबसे बड़ा परगना। यह अक्षा० २५° ५२´ से २६° २८´ उ० और देशा० ७५° ३१ से ७६° १´ पू०में अवस्थित है। इसका भूपरिमाण ५७४ वर्गमील है। उत्तर-पश्चिमके अतिरिक्त इसके चारों ओर जयपुर राज्य है। यहांकी प्रधान नदी बनास और इसकी शाखा माशी तथा सोहद्र है। इसमें एक शहर और २५८ ग्राम लगते हैं। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ८५७६८ है। प्रवाद है, कि यह परगना पहले टोरी जिलेके अन्तर्गत था। १२वीं शताब्दीके मध्य सातूजी नामके एक चौहान राजपूतने इसे दखल किया। अकबरके समयमें जयपुरके मानसिंहने इस पर अपना अधिकार जमाया, किन्तु थोड़े समयके बादही यह रायसिंह शिशोदियके अधिकारमें आ गया। पीछे यह परगना १६८६ से १७०७ ई० तक हार राजपूतके अधीन रहा। जब यह जयपुरके सवाई जयसिंहके अधिकारभुक्त हुआ तब जयपुर, होलकर और सिन्धिया इसे पानेके लिए आपसमें लड़ने लगे। अन्तमें यह १८०४ ई०में ब्रिटिश गवर्मेण्टके हाथ लगा और उन्होंने फिर जयपुरके राजाको समर्पण किया। १८०६ ई०में राजाने यह परगना अमीरखाँको दे दिया। तभीसे यह उन्हींके उत्तराधिकारीके अधीन चला आ रहा है। यहांकी प्रधान उपज ज्वार, बाजरा, गेहूं, चना, तिल और कपास है। आय प्रायः तीन लाख रुपयेसे अधिककी है

३ राजपूतानेके अन्तर्गत उक्त टाङ्क राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २६° १०´ उ० और देशा० ७५° ४८´ पू० बनास नदीके दो मील दक्षिण और जयपुर शहरसे ६० मील तथा देवली छावनीसे ३६ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। नगरका आयतन बड़ा है तथा चारों ओर प्राचीरसे घिरा है। प्रवाद है, कि १६४३ ई०में भोला नामक किसी ब्राह्मणने इसे स्थापित किया था। इसके दक्षिण भूमगढ़ नामका किला और पूर्वमें अमरखाँकी छावनी है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ३८७५८ है, जिसमें सैकड़े ५३ मुसलमान और ४४से अधिक हिन्दू तथा कुछ दूसरी दूसरी जाति है। यहाँ दश सामान्य स्कूल तथा एक हाईस्कूल, एक कारागार और एक चिकित्सालय है।

टङ्कक (सं० पु०) टङ्कयति टक वञ्-संज्ञायां कन्। रजतमुद्रा, चाँदीका सिक्का रुपया।

टङ्कपति (सं० पु०) टङ्कस्य पतिः, ६-तत्। रूपकाध्यक्ष, टकसालका मालिक।

टङ्कशाला (सं० स्त्री०) टङ्कस्य शाला, ६-तत्। मुद्रागृह, टकसाल घर।

टङ्कटीक (सं० पु० टङ्क इव टीकते टीक-क। शिव, महादेव।

टङ्कण (सं० पु०) टक-ल्यु, पृषोदरादित्वात् णत्वं। १ क्षारविशेष, सुहागा। इसके पर्याय—पाचनक, मालती-

रज, लोहश्लेषण, रसशोधन, टङ्कणक्षार, टङ्कक्षार, रसाधिक, लोहद्रावी, रसघ्न, सुभग, रङ्गद, वर्त्तुल, कनकक्षार, मलिन, धातुवल्लभ, मालतीतोरसम्भव, द्रावी, द्रावक, लोहशुद्धिकारक और स्वर्णपाचक है। इसके गुण—कटु, उष्ण, कफ, स्थावरादि विष, काश और श्वासनाशक, अग्नि तथा वातपित्तनाशक और रूक्ष है। इसकी शोधन-प्रणाली वैद्यक ग्रन्थमें इस प्रकार लिखी है—अम्ल द्वारा भावना दे कर चूर्ण करनेसे यह सब कामोंमें प्रयोग किया जा सकता है।

"अम्लेन भावितं चूर्णं सर्वकार्येषु योजयेत्।" (वैद्यक)

पहले टङ्कण काञ्जिक अम्लमें डालते हैं, बाद अम्लसे निकाल कर एक दिन रौद्रमें भावना देनी पड़ती है, पीछे नरमूत्र गोमूत्रके साथ मिला कर एक दिन रख छोड़ते हैं। इसके बाद उसे जंबीरी नीबूके रसमें डाल कर और फिर उसमेंसे निकालते हैं, तब उसे नारियलके पात्रमें मिर्च चूर्ण मिला कर शीतल जलसे प्रक्षालन करते हैं। ऐसा करनेसे टङ्कण विशुद्ध होता है और सब कामोंमें इसका प्रयोग किया जा सकता है। यह अग्निकर, रूक्ष, कफनाशक, रोचन और लघु है। २ धातुकी चीजमें टाँका मार कर जोड़ लगानेका कार्य्य, टाँका लगानेका काम। ३ अश्वभेद, घोड़ेकी एक जाति।
"टंकणखरनखरखण्डितं हरितालपांशुलेन।" (कादम्बरी)

४ देशविशेष, एक देश जिसका नाम बृहत्संहितामें कोङ्कण आदिके साथ आया है। (बृहत्संहिता १४।१२)

टङ्कणादिवटी—वैद्यकोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—सुहागेका फूला, सोंठ, गन्धक, पारद, विष, मरिच, इनको बराबर बराबर चूर्ण कर मदारके रसमें घोंटना चाहिये ; फिर चनेके बराबर गोलियाँ बना कर सेवन करना चाहिये। यह शीघ्र अग्निदीप्तिकर है।

टङ्कनल (सं० पु०) आम्र, आम।

टङ्कपति (सं० पु०) टङ्कस्य पतिः, ६-तत्। टकसालका अधिपति।

टङ्कपाणि—उड़ीसाका एक ग्राम। यह भुवनेश्वर-मन्दिरके चारों ओरके ४५ पुण्यक्षेत्रोंमेंसे एक है तथा कुण्डलेश्वरके समीप पुरी जानेके रास्ते पर अवस्थित है। किसी किसीका मत है, कि क्षेत्रपरिक्रमके समय यात्रियोंको इस स्थानका भी दर्शन करना चाहिये।

टङ्कवत् (सं० पु०) टङ्क अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। पर्वतभेद, एक पहाड़ जिसका नाम वाल्मीकीय रामायणमें आया है। "टंकवन्तं शिखरिणं वन्दे प्रस्रवणं गिरिम्।"
(रामा० ३।५५।४४)

टङ्कविज्ञान (सं० क्ली०) टङ्कस्य विज्ञानं, ६-तत्। नानादेशीय और नानाकालीन टङ्क परिज्ञानार्थ विद्या, भिन्न भिन्न देशों और बहुत पुराने समयकी टङ्क जाननेकी विद्या। मुद्रा देखो।

टङ्कविशोधन (सं० क्ली०) टङ्कस्य विशोधनं, ६-तत्। मुद्राविशुद्धिसम्पादन, सिक्केको परिष्कार करनेकी क्रिया।

टङ्कशाला (सं० स्त्री०) टङ्कस्य शाला, ६-तत्। टकसाल।
टकसाल देखो।

टङ्का (सं० स्त्री०) टङ्क-अच-टाप्। १ जङ्घा, जाँघ। २ तारादेवी। "टंकारकारिणी टीका टंका टंकारिणी तथा।"
(तारासहस्रनाम)

३ रागिणीविशेष, सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी। यह त्रिषड्ज और आदि मूर्च्छनायुक्त होती है। सुवर्णवर्णा वियोगविधुरा रागिणी अपने घरमें आ कर नलिनीदलशय्यामें निद्रित कान्तको विषन्नचित्त देख कर गान करनेसे टङ्का संज्ञा होती है। हनुमत्के अनुसार इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि स।

टङ्कानक (सं० पु०) टङ्कं क्रोधं आनयति उद्दीपयति। टङ्क-अन्-णिच्-ण्वुल्। ब्रह्मदारु, सहतूत।

टङ्कार (सं० पु०) टं चित्त-विकृतिं करोति कृ-कर्मण्यण्। १ विस्मय। २ शिञ्जिनीध्वनि, ठन ठन शब्द जो किसी कसे हुए तार आदि पर उँगुली मारनेसे होता है। ३ धनुषकी कसी हुई पतञ्चिका खींच कर छोड़नेका शब्द, वह शब्द जो धनुषकी कसी हुई डोरी पर वाण रख कर खींचनेसे होता है।
"टंकारनृत्यत्कल्लोला टीकनीया महातटा।" (काशीख० २९।६६)

४ धातु पर आघात लगनेका शब्द, ठनाका, झनकार। ५ कीर्त्ति, प्रसिद्धि, नाम।

टङ्कारकारिणी (सं० स्त्री०) टङ्कारस्य कारिणी, कृ-णिनि-ङीप्। तारादेवी।

"टंकारकारिणी टीका टंका टंकारिणी तथा।"
(तारासहस्रनाम)

टङ्कारी (सं॰ स्त्री॰) टङ्कं ऋच्छति ऋ कर्मणि-अण् ततः ङीष्। वृक्षभेद, एक पेड़। इसकी पत्तियाँ लम्बोतरी होती हैं। फूलके भेदसे इसकी कई जातियां हैं। किसीमें लाल फूल, किसीमें गुलाबी और किसीमें सफेद फूल लगते हैं। जब फूल झड़ जाते तब छोटे छोटे फलोंके गुच्छे लगते हैं। इसके फलका गुण—वातश्लेष्म, शोथ और उदरव्यथानाशक, तिक्त, दीपन और लघु है।

टङ्किका (सं॰ स्त्री॰) यन्त्रविशेष, एक प्रकारका औजार जिससे पत्थर काटा जाता है, टाँकी, छेनी।

टङ्कित (सं॰ त्रि॰) टङ्क-क्त। १ उल्लिखित। २ बद्ध, जो सिया गया हो। ३ शब्दित, धनुषकी डोरीका शब्द किया हुआ।

"नाकृष्टं न च टंकितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः।" (उद्भट)

टङ्ग (सं॰ पु॰-क्ली॰) टङ्क पृषोदरादित्वात् साधुः। १ खनित्र, कुदाल। २ परशु, फरसा। ३ जङ्घा, जाँघ। ४ टङ्गन, सुहागा। ५ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तौल।

टङ्गण (सं॰ पु॰-क्ली॰) टङ्कण-पृषोदरादि॰ साधुः। टङ्कण, सुहागा।

टङ्गश्शेरी—त्रिवाङ्कुड़ राज्यके अन्तर्गत वृटिश शासनाधीन एक ग्राम। यह अक्षा॰ ८° ५४´ उ॰ और देशा॰ ७६° ३५ पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण ९८ एकड़ और लोकसंख्या प्रायः १७३२ है। यह पहले पोर्तुगीज और डचका वासस्थान था। आजकल यहां रोमन काथलिक रहते हैं।

टङ्गिनी (सं॰ स्त्री॰) टक-णिनि पृषोदरा॰ साधुः। वृक्षविशेष, पाठा।

टङ्गी—युक्तप्रदेशके पेशावर जिलेके अन्तर्गत चारसद्द तहसीलका एक शहर। यह अक्षा॰ ३४° १७´ उ॰ और देशा॰ ७१° ४२´ पू॰के मध्य पेशावर शहरसे २८ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८०९५ है। स्वात नामकी नदी शहरके पश्चिम हो कर प्रवाहित है। अधिवासी मुहम्मदजई पठान हैं।

टचटच (हिं॰ क्रि॰-वि॰) धांय धांय, धक धक।

टचनी (हिं॰ स्त्री॰) कसेरेका एक औजार जिससे वह बरतनोंमें नक्काशी करता है।

टटावली (हिं॰ स्त्री॰) टिटिहरी नामकी चिड़िया, कुररी।

टटिया (हिं॰ स्त्री॰) टट्टी देखो।

टटियाना (हिं॰ क्रि॰) सूख जाना, खुश्क हो कर अकड़ जाना।

टटीवा (हिं॰ पु॰) घिरनी, चक्कर।

टटीरी (हिं॰ स्त्री॰) टिटिहरी देखो।

टटुआ (हिं॰ पु॰) टट्टू देखो।

टटुई (हिं॰ स्त्री॰) मादा टट्टू।

टटोना (हिं॰ क्रि॰) टटोलना देखो।

टटोरना (हिं॰ क्रि॰) टटोलना देखो।

टटोल (हिं॰ स्त्री॰) गूढ़ स्पर्श, उंगलियोंसे छू कर मालूम करनेकी क्रिया।

टटोलना (हिं॰ क्रि॰) १ गूढ़ स्पर्श करना, उँगलियोंसे छू कर किसी चीजका अनुभव करना। २ किसी चीजका पता लगानेके लिये इधर उधर हाथ रखना। ३ बोल चालसेही किसीके हृदयके भावको थाह लेना। ४ परीक्षा करना, परखना, अजमाना।

टट्टनी (सं॰ स्त्री॰) टट्टेति शब्दं नयति नी-ड गौरा॰ ङीष्। ज्येष्ठी, छिपकली।

टट्टर (हिं॰ पु॰) बाँसकी फट्टियों आदिका बना हुआ पल्ला। यह ओट, रोक या रक्षाके लिये दरवाजे इत्यादिमें लगाया जाता है।

टट्टरी (सं॰ स्त्री॰) टट्टेति शब्दं राति रा-क गौरादि॰ ङीष्। १ पटहवाद्य, ढोलका शब्द। २ लम्बावाक्य, लंबी चौड़ी बात। ३ मिथ्या वाक्य, झूठी बात, चुहलबाजी, ठट्ठा।

टट्टा (हिं॰ पु॰) १ एक बाँसकी फट्टियोंका परदा, टट्टर। २ लकड़ीका पल्ला।

टट्टा—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सिन्धुप्रदेशमें कराची जिलेका उपविभाग। यह कराची, टट्टा, मिरपुर-सकरो और घोड़ावाड़ी तालुक ले कर संगठित हुआ है।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सिन्धुप्रदेशमें कराची जिलेके झीरक उपविभागका एक तालुक। यह अक्षा॰ २४° ३१ से २५° २७´ उ॰ और देशा॰ ६७° ३४´ से ६८° २४´ पू॰में अवस्थित है। क्षेत्रफल १२२२९ वर्गमील और लोक-

संख्या प्रायः ४१७४५ है। अधिवासियोंमें अधिकांश मुसलमान है। इस तालुकमें इसी नामका एक शहर और ३५ ग्राम लगते हैं। इसके उत्तरमें पार्वत्य भूमि और दक्षिणमें मलकाली पहाड़ है। यहां प्रधान उपज धान, ईख, गेहूं, जौ, बाजरा, ज्वार और तिल है।

३ सिन्धुप्रदेशमें कराची जिलेके अन्तर्गत उक्त टट्टा तालुकका प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° ४५′ उ० और देशा० ६७°५८′ पू० पर सिन्धु नदीके दाहिने किनारेसे ७ मील पश्चिम और कराचीसे ५० मील पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १०७८३ है।

पहले नगरको चारों दिशायें सिन्धु नदीके जलसे प्लावित होती थीं। अब भी बाढ़के बाद बहुतसी झील और खाडीमें जल रह जाता है और उस जलसे वायु दूषित हो कर ज्वर इत्यादि रोग उत्पादन करती है। इन्हीं सब कारणोंसे यहांका जलवायु अस्वास्थ्यकर है।

सिन्धु-पञ्जाब-दिल्ली-रेलवेके जङ्गशाही स्टेशनसे १२ मील दूर यह नगर पड़ता है। इसका मध्यवर्ती बहुत सुन्दर और सुगम है। यहां एक मुख्तियारका और तप्पादारका आफिस तथा एक थाना है। इसके सिवा सरकारी-विद्यालय, डाकघर, दातव्यऔषधालय और एक कारागार है। समीपवर्ती माकली पर्वत पर प्रसिद्ध कब्रिस्तान है और इसके समीप ही फौजदारी अदालत और डेपुटिकमिश्नरका बङ्गला है।

१८वीं शताब्दीके पहले टट्टा बहुजनाकीर्ण वाणिज्य शिल्पादियुक्त एक बड़ा नगर था। १६९९ ई०के पूर्व एक भीषण महामारीसे इसके प्रायः ८० हजार अधिवासियोंकी जान गई थी। १७४२ ई०में जब पारस्यके राजा नादिरशाह टट्टाप्रदेशको आये थे, तब वहां ४० हजार ताँती, २० हजार अन्यान्य शिल्पजीवी और ६० हजार दूसरे अधिवासी वास करते थे। किन्तु भारतीय नौसेनादलके कप्तान (Captain) जे उड अनुमान करते हैं, कि १८३७ ई०में टट्टाके अधिवासी १० हजारसे अधिक नहीं थे। टट्टाका वाणिज्य और शिल्प पहलेकी तुलनामें नाम मात्र है। अभी साधारण कपड़ा और छींट तैयार होती है, किन्तु मैनचेष्टरकी प्रतियोगितासे उसका भी धीरे धीरे ह्रास होता जा रहा है। आमदनीमें अनाज, घी, चीनी और रेशम तथा रफतनीमें कपास, रेशमी कपड़ा और चमड़ा प्रधान है।

टट्टा नगरमें बहुतसी प्राचीन कीर्तियाँ विद्यमान हैं, जिनमेंसे यहांका दुर्ग और जुम्मामसजिद प्रधान है। यह नगर अत्यन्त प्राचीन है। १५५५ ई०में पोर्त्तगीज उकैतोंने इस नगरको लूटा था। १५५१ ई०में अकबरने सिन्धुप्रदेश पर आक्रमणके समय इसे तहस नहस कर डाला था।

जब शाहजहान् जहान्गीरके निकटसे भागा था, तब उन्होंने टट्टाकी मसजिदमें उपासना की थी। इस कृतज्ञतामें उन्होंने ९ लाख रुपये खर्च करके वहां जुमामसजिद बनवाई थी। यहांके लोगोंने चन्दा संग्रह कर तथा गवर्मेण्टसे कुछ सहायता ले कर इस मसजिदकी मरम्मत की जिससे यह और भी अधिक सुन्दर दीख पड़ती है। टट्टाके निकट माकली पर्वत पर बहुविस्तीर्ण और प्राचीन विख्यात कब्रिस्तान है।

टट्टी (हिं० स्त्री०) १ टट्टर देखो। २ चिक, परदा, चिलमन। ३ आड़ रोक आदिके लिये खड़ी की जानेवाली पतली दीवार। ४ पाखाना। ५ बारातोंमें ले जानेका फुलवारीका तख़्ता। ६ अंगुर आदिकी बेलें चढ़ाई जानेके लिये बाँसकी फट्टियों आदिकी बनी हुई दीवार।

टट्टुर (सं० पु०) टट्टु, इत्यव्यक्तशब्दं राति रा·क भेरीका शब्द, तुरहीकी आवाज।

टट्टू (हिं० पु०) १ छोटे आकारका घोड़ा, टाँगन २ लिङ्गेन्द्रिय।

टठिया (हिं० स्त्री०) टाटी देखो।

टड़िया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जो बाँहमें पहना जाता है। यह अनन्तके आकारका होता है परन्तु उससे मोटा और बिना घुंडीका होता है।

टण (हिं० पु०) टना देखो।

टण्डुक (सं० पु०) पीतलोध्र।

टन (हिं० स्त्री०) वह शब्द जो धातुखण्ड पर आघात पड़नेसे उत्पन्न होता है, टनकार, झनकार।

टन (अं० पु०) अट्ठाईस मनके लगभगकी एक अंगरेजी तौल।

टनकना (हिं॰ क्रि॰) १ टन टन बजना। २ गरमी लगनेके कारण सिरमें दर्द होना ।

टनटन (हिं॰ स्त्री॰) घण्टा बजनेका शब्द ।

टनटनाना (हिं॰ क्रि॰) घण्टा बजाना !

टनमन (हिं॰ पु॰) तन्त्र मन्त्र, टोना, जादू ।

टनमना (हिं॰ वि॰) जिसकी चेष्टा तीव्र हो, जो सुस्त न हो, स्वस्थ, चङ्गा ।

टना (हिं॰ पु॰) १ योनि, भग । २ वह मांसका टुकड़ा जो स्त्रियोंकी योनिके बीचमें निकला रहता है ।

टनाटन (हिं॰ स्त्री॰) बराबर घण्टा बजनेका शब्द ।

टनी (हिं॰ स्त्री॰) टना देखो ।

टनेल (अं॰ स्त्री॰) जमीन या किसी पहाड़ आदिके नीचे हो कर गया हुआ रास्ता, सुरंग ।

टप (हिं॰ स्त्री॰) १ वह कपड़ेका परदा या ओहार जो जोड़ी, फिटन, टमटम या इसी प्रकारकी खुली गाड़ियोंमें लगा रहता है, कलंदरा । २ वह छतरी जो लट कानेवाले लंपके ऊपरमें लगी रहती है । (पु॰) ३ पानी रखनेका एक बड़ा बरतन जिसका आकार नाँदसा होता है । ४ डिबरीका घुमावदार पेच बनानेका औजार । (स्त्री॰) ५ किसी चीजके हठात् गिर जानेका शब्द । ६ बूँद बूँद टपकनेका शब्द ।

टपक (हिं॰ स्त्री॰) १ टपकनेका भाव । २ बूँद बूँद गिरनेका शब्द । ३ ठहर ठहर कर होनेवाला दर्द ।

टपकना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी तरलपदार्थका बिन्दुके रूपमें थोड़ा थोड़ा कर गिरना, चूना, रसना । २ पके हुए फलका आपसे आप गिरना । ३ ऊपरसे सहसा पतित होना, टूट पड़ना । ४ अधिकतासे कोई भाव प्रकट होना । ५ शीघ्र आकर्षित होना, ढल पड़ना, फिसलना । ६ स्त्रीका संभोगकी ओर प्रवृत्त होना । ७ घाव इत्यादिके कारण शरीरमें पीड़ा होना, चिलकना, टीस मारना । ८ युद्धमें आघात खा कर गिरना ।

टपका (हिं॰ पु॰) १ बूँद बूँद गिरनेका भाव । २ टपकी हुई वस्तु, रसाव । ३ पक कर आपसे आप गिरा हुआ फल । ४ वह पीड़ा जो ठहर ठहर उठती हो, टीस । ५ मवेशियोंके खुरका एक रोग, खुरपका ।

टपका टपकी (हिं॰ स्त्री॰) १ बूँदा बूँदी । २ किसी वस्तुको प्राप्त करनेके लिये मनुष्योंका एक पर एक टूटना । ३ एकके बाद दूसरेका मरना । (वि॰) ४ भूला भटका, एक आध, बहुत थोड़ा ।

टपकाना (हिं॰ क्रि॰) १ चुआना । २ अरक उतारना, चुआना ।

टपकाव (हिं॰ पु॰) टपकानेका भाव या क्रिया ।

टपना (हिं॰ क्रि॰) १ निराहार रहना, बिना खाये पीए पड़ा रहना । २ व्यर्थ किसी दूसरेकी आशमें बैठा रहना । ३ आच्छादित करना, ढाकना ।

टपनामा (हिं॰ पु॰) जहाज परका एक रजिस्टर। इसमें समुद्रयात्राके समय तूफान गर्मी आदिका लेखा रहता है ।

टपमाल (हिं॰ पु॰) जहाजों पर काममें आनेवाला एक बड़े लोहेका घन ।

टपाटप (हिं॰ क्रि॰ वि॰) १ बराबर टपटप शब्दके साथ । २ जल्दी जल्दी, झट झट ।

टपाना (हिं॰ क्रि॰) १ निराहार रहना, पड़ा रहने देना । २ निष्प्रयोजन बैठाए रखना ।

टप्पर (हिं॰ पु॰) छाजन, छप्पर ।

टप्पा (हिं॰ पु॰) १ गतियुक्त वस्तुके बीचमें भूमिका स्पर्श, उछल कर जाती हुई वस्तुका बीच बीचमें टिकान । २ उछाल, कूद, फाँद, फलांग । ३ नियत दूरी, मुकर्रर फासला । ४ वह विस्तृत भूमि जो दो स्थानोंके बीचमें पड़ती हो । ५ छोटा भूविभाग, परगनेका हिस्सा । ६ अन्तर, फर्क । ७ दूर दूरकी खराब सिलाई । ८ वह ठहराव जहां पालकी ले जानेवाले कहार बदले जाते हैं । ९ पालके जोरसे चलनेवाला बेड़ा । १० एक प्रकारका हुक या काँटा ।

टब (अं॰ पु॰ १ नाँदके आकारका एक खुला बरतन जो पानी रखनेके काममें आता है । २ छत या किसी दूसरे ऊंचे स्थान पर लटकाये जानेका लंप ।

टमकी (हिं॰ स्त्री॰) किसी प्रकारकी घोषणा करनेका एक छोटा नगाड़ा, डुगडुगिया ।

टमटम (अं॰ स्त्री॰) एक घोड़ेकी गाड़ी जिसे सवारी करनेवाला अपने हाथसे हाँकता है !

टमटी (हिं॰ स्त्री॰) एक बरतन ।

टमस (हिं० स्त्री०) टौंस नदी, तमसा ।

टमाटर (हिं० पु०) बैंगनका एक भेद । इसका फल गोलाई लिए हुए चिपटा और स्वाद खट्टा होता है, बिलायती भंटा ।

टमुकी (हिं० स्त्री०) टमकी देखो ।

टर (हिं० स्त्री०) १ कर्कश शब्द, कड़ुई बोली । २ मेढ़ककी बोली । ३ अभिमानयुक्त वचन, घमंडसे भरी बात । ४ हठ, जिद, अड़ । ५ क्षुद्र वचन, तुच्छ बात, बेमेल बात । ६ मुसलमानोंका एक मेला जो ईदके बाद लगता है ।

टरकना (हिं० क्रि०) चला जाना, लट जाना ।

टरकाना (हिं० क्रि०) १ स्थान परिवर्तन करना, हटाना, खिसकाना । २ टाल देना, धता बताना ।

टरकी (तु० पु०) एक प्रकारकी मुर्गी । इसकी चोंचके नीचे गलेमें मांसकी लाल झालर रहती है । इसका मांस बहुत स्वादिष्ट माना जाता है । कोई कोई इसे पेरू भी कहते हैं ।

टरगी (हिं० पु०) भारतवर्षके माँटगोमरी आदि स्थानोंमें होनेवाली एक प्रकारकी घास । इसे भैंसें बड़े चावसे खाती हैं । १२से १३ वर्ष रखने पर भी इसका स्वाद नहीं बदलता है । इसका दूसरा नाम वलवा या पलवन है ।

टरटराना (हिं० क्रि०) १ व्यर्थ बात बोलना, बकबक करना, २ टर टर करना ।

टर्रा (हिं० वि०) घमण्डसे बातें करना, सीधेसे न बोलना । २ धृष्ट, कटुवादी ।

टर्राना (हिं० क्रि०) घमण्डके साथ चिढ़ चिढ़ कर बोलना ।

टर्रापन (हिं० पु०) कटुवादिता, वह जो ऐंठ कर बातें करता हो ।

टर्र (हिं० पु०) १ वह जो चिढ़ कर बातें बोलता हो । २ मेढ़क, बेंग, दादुर । ३ घोड़ेकी पूंछके बालसे एक लकड़ीमें बंधा हुआ खिलौना । यह चमड़ेकी झिल्लीसे मढ़ा होता है ।

टलन (सं० क्ली०) टल भावे ल्युट् । विप्लव, खलन, विह्वल, परेशान ।

टलना (हिं० क्रि०) १ अपनी जगहसे सरकना, हटना । २ अनुपस्थित होना, किसी जगह पर न रहना । ३ चंगा होना, दूर होना, मिटना । ४ समय बढ़ना, मुलतवी होना । ५ अन्यथा होना, ठीक न ठहरना । ६ उल्लंघित होना, पूरा न किया जाना । ७ समय गुजरना, बीतना ।

टलित (सं० त्रि०) टल-क्त । विचलित, जो अधीर हो गया हो ।

टलस्टय (लियो)—रूसियाके सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक और समाज-संस्कारक । १८२८ ई० ता० २८ अगस्तको, यशनाया-पलियाना नामक स्थानमें, धनाढ्य पितामाताके घरमें इनका जन्म हुआ था । टलस्टयके पूर्व-वंशीयगण पहले जर्मनीमें रहते थे, पीछे पिटर-दी-ग्रेटके राजत्वकालमें वे रूसिया आये । इनके वंशमें, अधिकांश लोगोंने राज-कार्य करके ख्याति लाभ की है । जिस समय टलस्टयकी माताका देहान्त हुआ, उस समय इनकी अवस्था सात तीन वर्ष की थी । माताकी मृत्युके कुछ दिन बाद ही इनके पिताकी मृत्यु हो गई । बाल्यावस्थामें टलस्टयका मन पढ़ने-लिखनेकी ओर विशेष आकृष्ट न था । इन्हें किसीसे मिलना-जुलना भी पसन्द न था । बाल्य-जीवनमें वे सर्वदा इसी चिन्तामें मग्न रहते थे, कि कैसे लोग उन्हें 'अच्छा लड़का' समझें, कैसे वे यशस्वी हो सकें । परन्तु उनका चेहरा देखनेमें अच्छा न था, इसलिये लोगोंकी दृष्टि इन पर कम पड़ती थी । इसके लिये बालक टलस्टय बड़े दुःखित होते थे । बाल्यावस्थामें विद्यालयमें जा कर इन्होंने वहांकी कुत्सित आलापादि सुने और बालकोंमें जो दुर्नीतियां प्रचलित थीं, उसकी स्रोतमें इन्होंने अपनेको बहा दिया । टलस्टय शिकार खेलना बहुत पसन्द करते थे ।

ग्यारह वर्षकी अवस्थामें टलस्टयके लिये एक फरासीसी शिक्षक नियुक्त हुए । १८४० ई०में, जब इनकी उम्र १५ वर्षकी थी, ये कजानके विश्वविद्यालयमें प्रविष्ट हुए । उस समय रूसियाके संभ्रान्त वंशीयगण विश्वविद्यालयमें पढ़ने-लिखनेके लिये न जाते थे, बल्कि समाजमें मिल कर रहनेके गुण सीखनेके लिए जाते थे । टलस्टयकी १५ वर्षकी उम्रमें ही समाजके विभिन्न स्तरोंकी जटिल समस्याओंसे परिचित होनेका अवसर मिल

गया। उस समय कज़ानके समान मौजकी जगह रूसिया भरमें न थी। परन्तु सर्वदा भोज खाते और 'बल'-नाच देखते देखते इनको उससे नफरत हो गई। टलस्टय इस समय भीतर ही भीतर अपने लिये आदर्श नायिकाकी खोज कर रहे थे। इसी अवसर पर उन्हें फरासीसी उपन्यास-लेखक डूमा और यूजिनसूके उपन्यास पढ़ कर बड़ा आनन्द होता था। परन्तु इतने आनन्दमें भी उनके मनमें शान्ति न थी—उन्हें जीवनकी गभीरतम समस्याओंकी चिन्ता करनेका अभ्यास बाल्यावस्थासे हो पड़ गया था। इसी समयकी स्मृति पर टलस्टयने Boyhood और Youth नामक दो जीवन-स्मृतियां लिखी थीं। टलस्टयके जीवन पर फरासीसी विप्लवके अन्यतम सृष्टिकर्ता रूसोका प्रभाव पड़ चुका था—रूसोको ये देवताकी तरह भक्ति करते थे।

टलस्टयको इस बातकी हमेशा चिन्ता रहती थी, कि किस तरह साधारणकी दृष्टि आकर्षित की जाय। इसी उद्देश्यसे वे प्राच्यभाषा शिक्षाके विद्यालयमें प्रविष्ट हुए। किन्तु पहली बार वे 'पास' न हुए; दूसरी बार अरबी और तुर्की भाषामें पारदर्शिताके साथ उत्तीर्ण हुए। परन्तु इस अध्ययनसे उन्हें तृप्ति न हुई और इसी लिए १८४४ ई०में कानूनी विद्यालयमें वे भरती हो गये। वहां भी विशेष लाभ न हुआ। छात्रोंकी शिक्षाके लिए वहां कोई सुव्यवस्था न थी—जर्मनदेशीय अध्यापकगण छात्रोंकी शिक्षा पर विशेष ध्यान न रखते थे। अन्तमें विश्वविद्यालयकी उपाधि पानेके लिए, टलस्टय इतिहास, कानून और धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने लगे। धर्मके विषयमें इनका मत परिवर्तित हो गया। बाल्यकालमें वंशानुगतिक धर्म-विश्वासमें जो बालक बलीयान् था, वही अब पढ़-लिख कर एक तरहका नास्तिक हो गया! टलस्टय इतिहासको व्यर्थ ज्ञान समझते थे। वे कहा करते थे, "हजार वर्ष पहले क्या हुआ था, उनके जाननेसे क्या लाभ?" इसलिए टलस्टय इतिहासकी वक्तृता सुनने नहीं जाते थे—कालेजमें अनुपस्थित रहते थे और इसके लिए एक बार वे कालेजमें बन्दी भी किये गये थे। आखिरकार किसी तरह ये परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। १८४७ ई०में नाना कारणोंसे इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया; इन्होंने किसी ग्राम (देहात)-में जानेके लिए अनुमति मांगी। इस प्रकार टलस्टयकी विद्या-शिक्षा समाप्त हुई—वे कुछ उपाधि न पा सके। कालेजकी शिक्षा उनके मनको आकर्षित न कर सकी थी, इसीलिए उन्हें वहां व्यर्थकाम होना पड़ा था।

टलस्टयको शहरोंसे नफरत हो गई और वे अपने गाँवमें लौट आये। उन्हें आशा थी कि 'गांवके किसानोंके साथ मिल कर, उनमें शिक्षा और नव-संस्कारका प्रसार करेंगे। टलस्टय कज़ानके किसानोंकी दुर्दशाका विवरण बहुत सुन चुके थे—इसी लिए उनके दुःख दूर करनेके लिए उन्होंने कमर कस ली। १८४७ ई०में दुर्भिक्ष हुआ। प्रत्येक जिलेके आदमियोंने अनाज पानेकी उम्मेदसे जारके पास प्रार्थना-पत्र भेजे; टलस्टयने देखा, कि यह सैकड़ों हजारों मनुष्योंके जीवन-मरणका प्रश्न है, अब कार्य करनेका अवसर आया है। छ मास तक उन्होंने संस्कारके लिए नाना प्रकारके प्रयत्न किये। परन्तु अन्तमें विशेष कुछ नतीजा न निकलनेसे सेण्ट-पिटर्सबर्ग लौट आये और "Landlord's morning" नामक उपन्यास लिख कर उन्होंने उस युगकी अभिज्ञता प्रदर्शित की। इसके बाद फिर आमोद-प्रमोदमें फँस कर ये कर्जदार हो गये। आखिर १८५१ ई०में वे ककासस पहुँचे, जहाँ उनके भाई निकोलस फौजमें काम करते थे। यहाँ पर्वतके नीचे एक झोंपड़ी भाड़े पर ले कर रहने लगे और महीनेमें सिर्फ बारह शिलिङ् मात्र खर्च करने लगे।

इसके बाद भाई तथा उच्चपदस्थ आत्मीय-स्वजनोंके अनुरोधसे टलस्टय फौजमें भरती हो गये। सेना-विभागकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो, वे बदस्तूर सैनिकका काम करने लगे। परन्तु उनके मनकी गति दूसरी ओर थी; उन्होंने एक अच्छी पुस्तक लिखी और उसे रूसियाके एक प्रसिद्ध मासिकपत्रमें छपानेके लिए भेज दिया। सम्पादकने उसकी बहुत प्रशंसा की और अपने पत्रमें स्थान दिया। इस समय टलस्टय अपने घर जानेके लिए बड़े चञ्चल हो पड़े थे। परन्तु क्रिमियामें युद्ध छिड़ जानेसे उन्हें तुरकीसे युद्ध करनेके लिए क्रिमिया जाना पड़ा।

युद्धके बीचमें लगातार मृत्युओंका दृश्य देख कर

उनका अन्तर्निहित धर्मभाव जाग्रत हो गया। १८५५ ई०की एप्रिल मासमें वे अपने रोजनामचेमें भगवान्से प्रार्थना करनेकी बात लिख गये हैं। युद्धके भीषण दृश्यसे अपने मनको हटानेके लिए उन्होंने ग्रन्थरचनामें मन लगाया। इस सिकष्टिपोलके विषयमें उन्होंने जो तीन ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें एक तरफ जैसा वास्तव जीवनका सुन्दर चित्र है, दूसरी ओर वैसी ही प्रकृतिके सौन्दर्यका मधुर वर्णन है। युद्ध करना अन्याय है, इस बातको उन्होंने बड़े जोरके साथ लिखा था; जिसके लिए सम्राट् जारने उन्हें सेण्ट पिटर्सवर्गको लौट आनेकी आज्ञा दी थी। इसके बाद उन्होंने फिर युद्धक्षेत्रमें पदार्पण नहीं किया।

टलस्टय नये भावोंको ले कर देश लौटे। युद्धकी वीभत्सताको बातें याद करके उनका मन बड़ा खिन्न हुआ। परन्तु सेनासे, जो मृत्युकी अवहेलना कर वीरत्वके साथ अपना कर्तव्य पालन करती है, उनका प्रेम हो गया। स्वार्थपर सम्भ्रान्त वंशीयोंके चरित्रके साथ सैनिकोंकी तुलना करके, उन्होंने सैनिकोंमें ही श्रेष्ठता पाई। सेण्ट पिटर्सवर्गमें उनकी रचनाकी ख्याति पहलेसे ही थी। अब सभीने आदरके साथ उनकी अभ्यर्थना की। सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक टुर्गनिभने टलस्टयको छातीसे लगा लिया और निमन्त्रण-पूर्वक उन्हें अपने घर ले गये। समाजमें सर्वत्र उनका सम्मान होने लगा। टलस्टयने युद्धके जीवनका जो वर्णन अपने ग्रन्थमें दिया था, उस पर सभी मुग्ध हो गये थे। राजधानीके प्रधान प्रधान राजकर्मचारिगण भी टलस्टयको निमन्त्रण दे दे कर जिमाने लगे। इन आदर अभ्यर्थनाओंसे टलस्टयका साधु भाव जाता रहा। वे पुनः विलास और आनन्दके स्रोतमें बहने लगे। परन्तु इतने पर भी उन्हें शान्ति न मिली। वे सत्यपथके यात्री थे—मन उनका सर्वदा सत्यके अन्वेषणमें लगा रहता था। यही कारण था जो रूसियाकी राजधानीके साहित्यिकोंसे, जो सत्यकी अपेक्षा चिरानुगत प्रथाको ही अधिक सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे, उनका वन्धुत्व अधिक दिनों तक स्थायी न रहा। विशेषतः टुर्गनिभके साथ उनका मतभेद बहुत ही बढ़ गया। परन्तु स्टेट नामक एक कविसे उनकी आजीवन मित्रता निभी थी।

इस प्रकारसे टलस्टयकी पारिपार्श्विक अवस्थासे अश्रद्धा हो गई। उस समय रूसियाके सिंहासन पर २य अलेकसन्दर बैठे थे (१८५५ ई०)। सम्राट् (२य) अलेकसन्दरने जनसाधारणके हितके लिए टलस्टयको अधिकतर क्षमता देनेका प्रयास किया। इसमें सम्भ्रान्तवंशीय और उच्चपदस्थ व्यक्तियोंके वाधा उपस्थित करने पर भी, रूसियाके अधिकांश लोगोंने उनके मतका समर्थन किया। इस समय बहुतसे लेखकोंने जनसाधारणके लिए लेखनी धारण की थी। परन्तु टलस्टयके द्वारा साधारणके लिए जैसा प्रयत्न हुआ, वैसा और किसीसे भी न हुआ। उन्होंने Polikoushka नामक एक ग्रन्थमें दासभावापन्न कृषकोंकी सम्पूर्ण दुर्दशाका वर्णन बड़ी खूबीके साथ किया। उन्होंने कृषकोंकी उन्नतिके लिए उन्हें शिक्षित बनानेका संकल्प किया। किन्तु वे स्वयं शिक्षा-प्रणालीके विषयमें कुछ जानते न थे, इसलिए जर्मनीमें जा कर इस विषयकी शिक्षा प्राप्त करनेका निश्चय किया।

टलस्टय १८५७ से १८६१ ई०के भीतर इटली, जर्मनी, फ्रान्स आदि नाना देशोंमें घूम आये। १८६१ ई०में वे अपने ग्राममें पहुँचे। प्रथम ही उन्होंने अपनी विपुल सम्पत्तिके अधीन जितने दासभावापन्न कृषक थे, सबको मुक्त कर दिया। उनकी असाधारण वदान्यताको देख कर सभी विस्मित हुए। उनके इस महत् कार्यका अनुसरण कर रूसियाके सम्राट्ने वहाँके समस्त कृषकोंको स्वाधीनता दे दी। जर्मनीमें जिस प्रणालीके ग्राम्य विद्यालय हैं, टलस्टयने उसी प्रणालीको रूसियामें प्रवर्तन करना चाहा। किण्डर-गार्डन-प्रथाका अनुसरण कर उन्होंने यसनाया पलियानामें एक विद्यालय खोला। वे शिक्षाके विषयमें सम्पूर्ण स्वाधीनतावादी थे। इसलिए उनके विद्यालयमें छात्रोंके लिए कोई वेतन निर्दिष्ट नहीं हुआ, छात्र चाहे जिस समय आते और चले जाते थे तथा चाहे जिस विषयकी शिक्षा लेना चाहें ले सकते थे। उनके विद्यालयमें किसीको भी किसी प्रकारकी सजा न दी जाती थी। टलस्टय स्वयं चित्राङ्कनविद्या, सङ्गीत और वाइवेलका इतिहास पढ़ते थे। १८६२ ई०के अक्टोवर मासमें राजकीय परिदर्शकोंने उनके विद्यालयके विषयमें इस प्रकार अपना अभिमत प्रकट किया,—

"काउण्ट टलस्टयका कार्य विशेष यत्नके साथ उल्लेख-योग्य है। शिक्षा-विभागकी ओरसे उन्हें सहायता पहुंचाना उचित है। उनके सम्पूर्ण मतोंसे हमारा ऐक्य नहीं है, तथापि आशा की जा सकती है कि कुछ विषयोंमें वे अपना मत परिवर्तन करेंगे।" शेषोक्त वाक्यसे गवर्मेण्टने सहायता देना तो दूर रहा, उनके कार्योंमें विघ्न डालना शुरू कर दिया। टलस्टय भी नाना कारणोंसे क्लान्त हो गये थे, जिसका प्रधान कारण था लड़कोंकी विशेष उन्नति न होना। दो वर्ष चला कर, बादमें उन्होंने विद्यालय बन्द कर दिया।

इसके बाद ये समाज-तन्त्र-वादका प्रचार करने लगे। इनके मतसे जनसाधारण ही सब कुछ हैं—उच्चश्रेणीके लोगोंकी कोई जरूरत नहीं। उनका कहना था कि पढ़ने लिखनेसे ही मनुष्यका चरित्र-गठन होता हो, ऐसा नहीं है। इन्होंने साधारणके विषयमें लिखा था—कि साधारण लोगोंमें भी, उच्चश्रेणीकी अपेक्षा अधिकतर वलिष्ठ, स्वाधीन, न्यायपरायण, दयालु और प्रयोजनीय व्यक्ति पाये जाते हैं। वे हमारे विद्यालयमें आ कर शिक्षा लेवें, यह ठीक नहीं। हमको ही चाहिये कि हम उनके पास जा कर शिक्षा ग्रहण करें।' यह बात रूसोकी एमिलीमें प्रचारित वाणीके समान है।

इन कामोंके करनेके कारण टलस्टयकी लेखन-शक्ति घट गई। किन्तु विवाह होनेके बाद उनकी स्त्री, उन्हें लिखनेमें बहुत कुछ सहायता पहुंचाने लगीं। उन महीयसी महिलाके प्रयत्नसे टलस्टयका हृदय पुनः नूतन भावोंसे सञ्जीवित हुआ। इस नये उद्यमसे उन्होंने दो अपूर्व ग्रन्थ लिखे, (१) War and Peace, (२) Anna Karenina इन दो ग्रन्थोंने ही टलस्टयका नाम हमेशाके लिए अमर कर दिया है। इनकी जीवनी लिखनेवाले रोमी रोँलाका कहना है, कि इन दो ग्रन्थोंका प्रभाव आधुनिक युगके यूरोपीय साहित्यके सर्वत्र ही थोड़ा-बहुत पाया जाता है। १८६४ ई०में टलस्टयने अपने मित्र फेटको लिखा था—"मैं जिस काम (उपन्यास लिखना)-को इस समय कर रहा हूं उसमें कितने परिश्रमकी जरूरत है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। मैं जिनके चरित्रोंको खींच रहा हूं, उनके जीवनमें क्या क्या हो सकता है, उस विषयमें कितनी ही बातें सोच कर; उनमेंसे कुछ छाँट लेना बड़ा कठिन काम है।"

टलस्टय कृषिकार्य और सम्पत्तिकी व्यवस्थाके लिए तरह तरहके बन्दोवस्त करने लगे। विवाहके बाद उन्होंने इस विषयमें एक चिट्ठी लिखी थी, जिसमें इस विषयकी अपनी अभिज्ञता प्रकट की थी—"मैंने एक आविष्कार किया है, जो शीघ्र ही तुमसे कहूंगा। गुमास्ता, नायब, परिदर्शक आदि सिर्फ कृषिकार्यमें वाधा पहुँचाते हैं। उन सबको विदा कर दो। खुद दिनके दश बजे तक सोते रहो; उठ कर देखना, तुम्हारा कोई काम बिगड़ा नहीं है।"

१८६४ ई०में जब ये अपने मित्र फेटके घर थे, तब टुर्गेनिभके साथ इनका घोरतर विवाद हुआ था—यहां तक कि द्वन्द्वयुद्धकी नौबत आ चुकी थी। इसी बीचमें टलस्टयने अपनी साहित्य-साधनामें मन लगाया। इनके War and Peace नामक ग्रंथ एक महाकाव्य समझा जाता है। उसमें प्रिन्स ऐण्ड्रूके चरित्रमें ग्रन्थकारने मानो अपना ही चित्र खींच दिया है। इसी प्रकार Anna Karenina में Levin के चरित्रमें भी टलस्टय नजर आते हैं।

इन दिनों टलस्टयने फिर अध्ययन करना शुरू किया। ग्रीक्भाषाकी शिक्षामें ही ये अधिक समय देने लगे। दर्शनशास्त्रका अध्ययन करते करते ये शोपेनहरके गुणों पर मुग्ध हो गये और उनके ग्रंथोंका रूसी भाषामें अनुवाद कर डाला। १८७३ ई०में इनके दो पुत्र और मौसीका देहान्त हो गया। इस शोकके समय इन्होंने वाइवेल पढ़ा था और उससे कुछ सान्त्वना पाई थी। फिर मूल यहूदीसे वाइवेल पढ़नेके लिए ये हिब्रू भाषा सीखने लगे। इन शान्तिके दिनोंमें इन्होंने टुर्गेनिभसे पुनः मित्रता कर ली।

परन्तु इतना लिखने पर भी उन्हें आनन्द प्राप्त न हुआ। उन्होंने लिखा है (Conffessions 1879)—'मेरी उमर अब तक पचास तक नहीं पहुंची है—मैं प्रेम करता था—मुझ पर भी लोग प्रेम रखते थे। मेरे बाल-बच्चे अच्छे हैं; मेरी सम्पत्ति भी अच्छी है, सुयश

है, स्वास्थ्य अच्छा है, नैतिक और दैहिक शक्ति भी काफी है। मैं कृषकोंकी तरह बोना और काटना जानता हूं। दश घण्टे तक स्थिरचित्तसे काम करने पर भी मुझे क्लान्ति नहीं मालूम पड़ती। किन्तु सहसा मेरे जीवनकी गति रुक गई। मैं श्वास प्रश्वास ले सकता हूं, खा सकता हूं, सो सकता हूं, परन्तु यह तो जीवन नहीं है। मुझे अब किसी बातकी इच्छा नहीं है। इच्छा करनेकी भी कुछ नहीं है। और तो क्या, सत्य जाननेकी वासना भी नहीं है। मैं गह्वरके पास आ चुका हूं—मृत्युके सिवा, मेरे सामने और कुछ भी नहीं है। मैं इतना सुखी होने पर भी समझ रहा हूं, कि जीनेसे कोई लाभ नहीं है। न मालूम कौन मुझे मृत्युकी ओर खींचे लिये जा रहा है।"

इसके बाद एक दिन टलस्टय पर भगवान्की कृपा हुई। आप लिखते हैं—एक दिन (वसन्तऋतुमें) मैं अकेला जंगलमें बैठा हुआ पत्तोंकी मर्मर ध्वनि सुन रहा था—अपने जीवनके अन्तिम तीन वर्षके दुःखोंकी याद कर रहा था—भगवान्की अनुसन्धान, आनन्दसे हताशामें पतन इत्यादि बहुतसी बातोंको उधेड़बुन कर रहा था। सहसा मैंने देखा, कि जिस समय मैं भगवान् पर विश्वास करता हूं, उसी समय मालूम होता है कि मैं जीवित हूं। भगवान्का स्मरण करते ही हृदयमें आनन्दका स्रोत बह चला। चारों ओरके सम्पूर्ण पदार्थ सजीव-से दीखने लगे—सब सार्थक मालूम पड़ने लगे। परन्तु जिस मुहूर्तसे अविश्वासने हृदय पर अधिकार जमा लिया, उसी समयसे जीवनकी गति रुक गई। तो बतलाओ मैं क्या ढूंढ़ रहा हूं? भीतरसे न मालूम किसीने कहा—उसको ढूंढ़ रहे हो, जिसके बिना मनुष्य जी नहीं सकता। भगवान्को जानना और जीवित रहना, दोनों एकही बात है। क्योंकि भगवान् ही जीवन है। तबसे फिर मुझे अन्धकारमें नहीं जाना पड़ा।"

जीवनकी साधनामें आनन्द पानेके लिए इन्होंने ग्रीक चार्चकी सम्पूर्ण आचार-पद्धतिको अपनाना चाहा; परन्तु बाह्य आचारको ये युक्ति वा हृदय किसीसे भी न मान सके। विशेषतः उक्त धर्म-सम्प्रदाय दूसरे धर्म-सम्प्रदायोंसे परस्पर विवाद-विसम्बाद करता और युद्ध एवं प्राणदण्डका अनुमोदन करता था, इसलिए ये उससे बाहर निकल आये। इन्होंने ईसाके उपदेशमेंसे निम्नलिखित वाक्य ग्रहण किये—

(१) क्रोध न करना।
(२) व्यभिचार न करना।
(३) शपथ न करना।
(४) दुःख वा कष्टको आनेसे न रोकना।
(५) मनुष्यसे शत्रुता न करना।

और एक उपदेशमें उन्होंने उक्त वाक्योंका सार पाया यथा 'भगवान् और अपने पड़ोसियों पर उतना ही प्रेम करो, जितना तुम अपने पर करते हो।"

धर्म-जीवनमें उन्नति प्राप्त करनेके लिए स्वावलम्बी और सरल-स्वभावी होनेकी आवश्यकता समझ टलस्टय कृषकोंकी जीवनयात्रा-प्रणालीका अनुकरण करने लगे। बहुत सवेरे बिछौनेसे उठ कर ये खेतोंमें जाते और शस्यादि काटते और रोपते थे। अपने पहननेका जूता स्वयं बना सकें, इसके लिए उन्होंने चमारका काम भी सीखा। इस तरह सुबहसे शाम तक ये कठोर परिश्रम करते थे। सरलता तो इनके जीवनका व्रत हो गया। ये आहार-व्यवहारमें संयत हो गये—मांसाहार छोड़ कर निरामिषभोजी बन गये। यहाँ तक कि मादक-श्रेणी-भुक्त होनेके कारण उन्होंने तम्बाकू पीना भी छोड़ दिया।

परन्तु इतना करने पर भी वे अपनेको कृषकोंके समान न बना सके। टलस्टय इस बातको समझते थे, कि किसान दिन भर काम करनेके बाद अपनी छोटी-सी झोंपड़ीमें जा कर बहुत दुःख भोगते हैं, और वे शामको प्रासादमें जा कर आरामसे सोते हैं। टलस्टयने अब बन्धु-बान्धव वा लोक-समाजमें जाना आना प्रायः छोड़ दिया। "अर्थही अनर्थोंका मूल है" ऐसा समझ कर हमारे रामकृष्ण परमहंसकी तरह उन्होंने उसका स्पर्श करना छोड़ दिया।

१८८० ई०में लोकगणनाके समय गवर्मेण्ट टलस्टयकी सहायता पहुंचानेके लिए आमन्त्रण दिया। टलस्टयने देखा, इस मौके पर वे अनायास ही जनसाधारणकी अवस्थाका परिज्ञान कर सकते हैं,

इसलिए वे राजी हो गये। इसके बाद रूसियाके साधारण लोगोंकी जिस मर्मभेदी दरिद्रताको उन्होंने अपनी आँखोंसे देखा, उससे उनका हृदय बिलकुल पिघल गया। "हमें क्या करना चाहिए" शीर्षक पुस्तिकामें उन्होंने लोकगणनाके समयकी सम्पूर्ण अभिज्ञता प्रकट कर दी। अन्तमें एक दिन उन्होंने अपनी स्त्रीको अपने कमरेमें बुला कर कहा—"धनसम्पत्तिके अधिकारको मैं पाप समझता हूं। इसलिए मैंने अपने व्यक्तिगत अधिकारको छोड़ देनेका निश्चय किया है।" १८८८ ई०में इन्होंने अपनी सम्पत्ति स्त्री और पुत्रको दे दी। इससे उन्हें अपनी सम्पत्तिकी उन्नतिकी चिन्तासे छुट्टी मिल गई।

इसके बाद उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति किसानोंकी जीवनोन्नति करनेमें लगा दी। किसान लोग शराब पीना छोड़ दें और राष्ट्र द्वारा उन्हें अधिकार प्राप्त हो, इन विषयके अनेक ग्रन्थ भी लिखे।

१८९१-९२ ई०में जो भीषण दुर्भिक्ष हुआ था, उसमें टलस्टयने स्वयं तथा उनके परिवारके लोगोंने लगातार कार्य किया था।

रूसियाके प्रतिष्ठित ईसाई चार्च पर आक्रमण करनेके कारण धर्मसम्प्रदायने उन्हें पृथक् कर दिया था (१९०१ ई०की २२ फरवरीके आदेशानुसार) १९१० ई०के २० नवम्बरको निमोनिया रोगसे इनकी मृत्यु हो गई।

जगत्में टलस्टयने ही सबसे पहल Nonresistance वा अहिंस असहयोग नीतिका प्रचार किया था। महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धीके साथ इनका पत्रव्यवहार होता था। महात्मा गान्धीको ये श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे।

मोहनदास करमचन्द गान्धी देखो।

टलेमी (टलमी)—ग्रीकके एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्, गणितज्ञ और भौगोलिक पण्डित। इनका असली नाम था क्लडियस् टलेमियास्। ये १३८ ई०में मिसरमें प्रादुर्भूत हुए थे और सम्भवतः १६१ ई०में ये जीवित थे। इसके सिवा उनकी जीवनीके विषयमें विशेष कुछ मालूम नहीं हुआ है, किन्तु उनके द्वारा रचित ज्योतिष और भूगोलसंबन्धी अनेक पुस्तकें अब भी मौजूद हैं, जो बहुकाल पर्यन्त समग्र यूरोप और अरब आदि देशोंमें अभ्रान्त और सर्वोत्कृष्ट समझी गई हैं। इन्होंने ब्रह्माण्डके विषयमें जो मत प्रचार किया था, वह अभी तक 'टलेमीका मत' इस नामसे प्रसिद्ध है। इनके मतसे, पृथिवी ब्रह्माण्डके मध्यस्थलमें अवस्थित है तथा सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रसमन्वित ज्योतिष्कमण्डल २४ घण्टेमें एक बार पृथिवीके चारों तरफ आवर्तन करता है। टलेमीने ग्रहोंकी गतिके विषयमें एक नये मतका तथा चन्द्रका तुङ्गान्तरसंस्कारका (Evection) आविष्कार किया था। इनके मतमें विशेषत्व कुछ नहीं है, उसमें सिर्फ ज्योतिष्कोंकी प्रत्यक्ष गतिविधिको ही वैज्ञानिक-प्रणालीसे प्रमाणित करनेकी चेष्टा की गई है। इसमें सबसे भारी वस्तु मिट्टीका ही पहले अवस्थान बतलाया गया है; मिट्टीके ऊपर उससे कुछ हलका पदार्थ जल है, उसके बाद वायुराशिके स्तर और वायुराशिके बाद तेजोराशि है। तेज वा अग्निके बाद इथर नामक सूक्ष्म पदार्थ अनन्त स्थानमें व्याप्त है। इस इथरके भीतर वा बाहर बहुसंख्यक स्वच्छ स्तर-मण्डल पृथिवीके चारों तरफ बहुत दूरी पर उपर्युपरि अवस्थान करते हैं। इन स्तरोंमें एक एक ज्योतिष्क अवस्थित हैं जो स्तरके आवर्त्तनके साथ पृथिवीके चारों तरफ आवर्त्तित होते हैं। इन स्तरोंके भीतर चन्द्रमण्डलके अवस्थान-स्तरमें पृथिवी सर्वापेक्षा निकटवर्त्ती है, उसके बुध, शुक्र, सूर्य, मङ्गल, बृहस्पति, शनि और नक्षत्रोंका स्तरमण्डल यथाक्रमसे दूरवर्त्ती हैं। टलेमीके परवर्त्ती ज्योतिर्विदोंने क्रान्तिपात गतिकी व्याख्याके लिए घूर्णमान नवम मण्डलकी तथा दिवारात्रिकी ह्रास-वृद्धि समझानेके लिए दशम मण्डलकी कल्पना की है। यह दशम मण्डल ही २४ घण्टेमें पूर्वसे पश्चिमकी ओर एक बार आवर्त्तित होता है तथा अपनी गतिके द्वारा अन्यान्य मण्डलोंमें गति उत्पन्न करता है। इसको प्राइमम मोबिलि (Primum mobile) अर्थात् गतिका आदिकारण कहते हैं। किन्तु टलेमीमतावलम्बी ज्योतिर्विदोंने इन मण्डलोंकी कल्पना करके भी प्रत्यक्ष घटनाओंकी सूक्ष्म और विशद व्याख्या नहीं कर सके हैं। वे सूर्यगतिकी ह्रास-वृद्धि समझानेके लिए पृथिवीको सूर्याश्रित मण्डलके केन्द्रके पार्श्वमें अवस्थित बतलाते थे। सूर्य अपेक्षाकृत निकटवर्त्ती होने पर इसकी गति वृद्धि और दूरवर्त्ती होने पर गति ह्रास होती

है। ग्रहोंकी वक्र और विपरीत गतिको समझानेके लिए कहा जाता था कि, ये अपने अपने स्तरमें एक स्थिर बिन्दुके चारों तरफ वृत्तपथमें परिभ्रमण करते हैं तथा उसी अवस्थामें अपने आश्रय-स्तरमण्डलकी गतिके द्वारा पृथिवीके चारों तरफ भ्रमित होते हैं। स्तरस्थ वृत्तके भीतरके अर्द्धांशमें अवस्थित होने पर ग्रहकी गति एक तरफ और बाहरके अर्द्धांशमें अवस्थित होने पर दूसरी तरफ हुआ करती है। इस तरह नाना प्रकारके जटिल और दुर्बोध्य नियमोंकी कल्पना द्वारा ज्योतिष्कविषयक तत्त्वोंकी व्याख्या होने लगी। अन्तमें कोपार्निकस ने उक्त भ्रान्त सिद्धान्तोंका उच्छेद कर जगत्सम्बन्धी विशुद्ध मतका आविष्कार किया। अब तक जो टलेमीका मत अभ्रान्त समझा जाता रहा, वह अब भ्रान्त प्रमाणित हो गया।

टलेमीके फलित ज्योतिषसम्बन्धी ग्रन्थ भी सर्वत्र आदरके साथ गृहीत हुए थे।

ज्योतिषकी तरह, टलेमीके द्वारा प्रणीत भूगोल शास्त्र भी ईसाकी १५वीं शताब्दी तक सर्वोत्कृष्ट समझे जाते थे। इन्होंने पूर्व पूर्व भौगोलिकोंके मतका उत्कर्ष साधन और परिवर्तन कर तात्कालिक पृथिवीखण्डका विवरण २२ मानचित्रों सहित लिखा था। टलेमीने पश्चिमके केनारीद्वीपसे लगा पूर्वमें भारतवर्षके पूर्वस्थ श्याम, मलय और चीन तक तथा उत्तरमें नरवेसे लगा कर दक्षिणके निरक्षरेखा तक आविष्कृत किया था। इन्होंने अपने भूगोल शास्त्रको ८ अध्यायोंमें विभक्त करके क्रमशः पश्चिमसे पूर्व तक समस्त जनपदोंका वर्णन किया है। इसके सिवा प्रत्येक स्थानका अक्षान्तर और देशान्तर भी लिखा है। टलेमी केनारी द्वीपसे देशान्तरकी गणना करते हैं और निरक्षरेखाकी ओर भी १०° अंश दक्षिणमें स्थापित करते हैं। इनके अक्षांश और देशांश कहीं कहीं गलत हैं। ये अपने भूगोलको १८०° अर्थात् गोलार्द्ध बताते हैं, वास्तवमें वह १२०°से ज्यादा नहीं है।

टलेमी फिलाडेलफास्—टलेमी (सिटार)-के कनिष्ठ पुत्र; टलेमी इनकी उपाधि थी और फिलाडेलफास् अर्थात् भ्रातृप्रिय इनका नाम था। इन्होंने ईस्वीसे २८३ वर्ष पहले पितृसिंहासन पर बैठते ही अपने दो सहोदरोंकी हत्या की थी; इसीलिए लोगोंने इनको फिलाडेलफास् अर्थात् भ्रातृप्रिय यह विद्रुपात्मक उपाधि दी थी। पिताके सामने ही राजकार्यकी पर्यालोचना करते थे। किसीके मतसे, ईस्वीसे २८७ वर्ष पहले ये यौवराज्य पद पर अभिषिक्त हुए थे। ये वाणिज्य और विद्याके वास्तविक उत्साहदाता थे। इन्होंने भी दिओनिसियासको भारतपरिदर्शनार्थ भेजा था। भूमध्यस्थ और लोहित-सागरमें टलेमीकी सैकड़ों नावें बहती थीं। हरमोसबन्दर पर विपत्ति पड़नेके कारण बेरेनिस्में बन्दर स्थापित करनेके लिए इन्होंने एक फौज भेजी थी। वहां भारतीय वाणिज्य-पोत निरापदमें रहते थे। इस नवीन मार्गमें क्रमशः वाणिज्य वृद्धि होने लगी। अलेकसन्द्रिया नगरी भी उस समय समधिक श्रीसम्पन्न और प्रसिद्ध हो गई। इन्होंने अपने प्रधान ग्रन्थाध्यक्ष दिमित्रियास्के अनुरोधसे अरीस्तिया नामक एक यहूदी पण्डितको जेरुसालेम भेजा और वहांके प्रधान याजकको एक बाइबेलकी पोथी और १२ द्विभाषियोंके भेजनेके लिए अनुरोध किया। इन्हींके समयमें हिब्रु बाइबेल ग्रीकभाषामें अनुवादित हुआ था।

टलेमी फिलाडेलफास्ने वर्तमान सुयेज-नहरके निकटवर्ती आरसेनासे लगा कर नीलनदके पेलुसियाक शाखा तक एक नहर खुदवाई थी। ईस्वीसे २४६ वर्ष पहले इनकी मृत्यु हुई थी।

टलेमी यूयारगेटिस—टलेमी फिलाडेलफास्के पुत्र और उत्तराधिकारी। इन्होंने सिरिया और साइलेसियाकी बहुतसी जमीन अपने राज्यमें मिला ली थी। इनकी दिग्विजयके समय शत्रुओंने मौका पा कर इजिप्ट पर चढ़ाई कर दी थी, किन्तु इनके आ जानेसे यह विद्रोहाग्नि शीघ्र ही निर्वापित हो गई थी। अन्तियोककी पत्नी इनकी बहन थीं। बहनकी मृत्यु होने पर इन्होंने उसका बदला चुकानेके लिये अन्तियोकके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की थी। इन्होंने अपने सुशासनके प्रतापसे 'यूयारगेटिस' अर्थात् 'परोपकारी'की उपाधि पाई थी। ईस्वीसे २२१ वर्ष पहले इनके पुत्रने इनको जहर दे कर मार डाला था। इनके पुत्रका नाम था टलेमी फिलोपितृस् अर्थात् पितृहन्ता, इस दुर्वृत्तने पितामाता तथा अन्यान्य आत्मीयवर्गोंका विषप्रयोगसे विनाश कर पितृ-

Acc 768

सिंहासन अधिकार किया था। यहूदी जाति उनको अतिशय प्रिय हुई थी ; ईस्वीसे २०४ वर्ष पहले इनकी मृत्यु हुई।

मि० रेनिलके मतसे उपरोक्त टलेमी राजाओंके राजत्वकालमें मिसरवासियोंने पाटलीपुत्र (पटना) तक अभियान किया था।

टलेमी सोटार—प्रियदर्शीके अनुशासनपत्रमें इनका तुरमय नामसे वर्णन है। इनकी उपाधि सोटार अर्थात् पुररक्षक थी। साधारण लोग इनको लेगासका पुत्र कहते थे, किन्तु माकिदनीय लोग इनको फिलिप और मिण्डाका पुत्र समझते थे। वास्तवमें इनकी माताके जब ये पैदा हुए थे, तब इनके पिताने उनको लेगसको समर्पण कर दिया था।

टलेमी पहले महावीर अलेकसन्दरके एक सेनापति थे, इस कार्यमें इन्होंने बड़ी ख्याति लाभ की थी। अलेकसन्दरकी मृत्युके बाद इजिप्ट-राज्य टलेमीके हस्तगत हुआ ; उस समय इजिप्ट ग्रीकसाम्राज्यके अधीन रहने पर भी टलेमीने इसे स्वाधीन कर लिया। अलेकसन्दरने क्लिओमिनिसको इजिप्टका क्षत्रपति नियुक्त किया था। टलेमीने उसका विनाश कर राज्य अधिकार कर लिया। इनके पास बहुत धन था, उस अर्थके बलसे टलेमीने क्रमशः लिबिया और अरबका कुछ अंश अधिकार कर लिया।

ईस्वीसे ३२१ वर्ष पहले पारदिकासने इजिप्ट पर आक्रमण किया था, किन्तु वे कृतकार्य न हो सके थे। उनकी मृत्युके बाद टलेमी सिलो-सिरिया, फिनिकीया, जूदिया और साइप्रास-द्वीप अधिकार कर बैठे। अलेकसन्द्रियानगरमें इनकी राजधानी स्थापित हुई। यहां इन्होंने पोतवाहियोंके सुभीतेके लिए बन्दर पर एक बड़ा आलोकगृह बनवाया। यूरोपके समस्त वाणिज्यपदार्थ यहां हो कर एसियाके नानास्थानोंमें जाने लगे।

इसके बाद टलेमीने नीलनदसे एक बड़ी नहर खुदवाई, जो भूमध्यस्थ सागरसे मिली है। इस नहरकी लम्बाई ३६ मील, विस्तार १०० फुट और गहराई ३० फुट है।

टलेमीके समयमें अलेकसन्द्रियाकी सुख-समृद्धिकी ख्याति दिग्-दिगन्तमें व्याप्त थी। इनके समयमें पालेस्टाइनके यहूदी लोग उत्यक्त हो कर अलेकसन्द्रिया नगरमें जा बसे थे। टलेमी ग्रीक और मिसरदेशवासियोंको एक धर्मसूत्रमें बांधनेके लिये यत्नवान् हुए थे। इन्हींके अनुग्रहसे यहूदियोंने अलेकसन्द्रियानगरमें आइसिस और जुपिटर देवका मन्दिर बना सके थे।

ईस्वीसे २८३ वर्ष पहले टलेमीने इहलोक त्याग किया। ये जब तक जीवित रहे, तब तक राज्यकी उन्नतिके लिये इन्होंने बराबर प्रयत्न किये। ये विद्योत्साही और विज्ञानप्रिय कह कर प्रसिद्ध थे। एण्टिपेटारकी कन्या यूरिडिसके साथ इनका विवाह हुआ था ; उनके गर्भसे अनेक पुत्र होने पर भी ये अपने कनिष्ठ पुत्र टलेमी फिलाडेलफासको राज्य दे गये थे।

टल्ली (हिं० पु०) बाँसका एक भेद।

टवर्ग (सं० पु०) व्याकरणका संज्ञान्तर्गत तृतीय वर्ग, ट ठ ड ढ ण—इन पाँच वर्णोंका समूह।

टवाई (हिं० स्त्री०) व्यर्थ घूमना।

टस (हिं० स्त्री०) १ टसकनेका शब्द। २ कपड़े आदिके फटनेका शब्द, मसकनेकी आवाज।

टसक (हिं० स्त्री०) ठहर ठहर कर होनेवाला दर्द, टीस, चसक।

टसकना (हिं० क्रि०) १ किसी बड़ी वस्तुका स्थान परिवर्त्तन होना, हटना, खिसकना। २ ठहर ठहर कर पीड़ा होना, टीस मारना। ३ प्रभावित होना।

टसकाना (हिं० क्रि०) किसी भारी चीजको जगहसे हटाना, खिसकाना।

टसर (हिं० पु०) तसर देखो।

टहकन—पञ्जाबवासी एक हिन्दी कवि। इन्होंने पाण्डवोंकी यज्ञकथा संस्कृतसे हिन्दीमें अनुवाद की है।

टहना (हिं० पु०) पतली शाखा, पतली डाल।

टहनी (हिं० स्त्री०) पतली डाली।

टहरकट्टा (हिं० पु०) टकू या तकलेसे उतारा हुआ सूत लपेटनेका काठका टुकड़ा।

टहल (हिं० स्त्री०) १ शुश्रूषा, सेवा, खिदमत। २ नौकरी, चाकरी, कामधंधा।

टहलना (हिं० क्रि०) १ मंद गतिसे भ्रमण करना,

धीरे धीरे चलना। २ हवा खाना सैर करना। ३ पर लोक गमन करना, मर जाना।

टहलनी (हिं० स्त्री०) १ दासी, मजदूरनी, लौंडी। २ बत्ती उसकानेके लिये चिरागमें पड़ी हुई लकड़ी।

टहलाना (हिं० क्रि०) १ धीरे धीरे चलाना, घुमाना, फिराना। २ हवा खिलाना, सैर कराना। ३ हटा देना, दूर करना।

टहलुआ (हिं० पु०) सेवक, टहल करनेवाला, चाकर।

टहलुई (हिं० स्त्री०) १ दासी, लौंडी। २ चिरागकी बत्ती उसकानेकी लकड़ी।

टहलुवा (हिं० पु०) टहलुआ देखो।

टहलू (हिं० पु०) नौकर, चाकर, सेवक।

टहूका (हिं० पु०) १ पहेली। २ चमत्कार-पूर्ण उक्ति, चुटकुला।

टहोका (हिं० पु०) झटका, धक्का।

टा (सं० स्त्री०) टलति प्रलये भूकम्पादौ वा टल-डा-टाप्। पृथिवी।

टाइटिल पेज (अं० पु०) पुस्तकके ऊपरका पृष्ठ। इस पर पुस्तक और ग्रन्थकारका नाम कुछ बड़े अक्षरोंमें अंकित रहता है।

टाइप (अं० पु०) काँटिका अक्षर जो सीसेका बना होता है।

टाइप कास्टिंग मशीन (अं० स्त्री०) वह कल जिससे काँटिके अक्षर ढाले जाति हैं।

टाइप-मोल्ड (अं० पु०) वह साँचा जिसमें काँटिके अक्षर ढाले जाति हैं।

टाइप-राइटर (अं० पु०) एक कल। इसमें कागज रख कर टाइपकेसे अक्षर छाप सकते हैं।

टाइफायड ज्वर (अं० पु०) एक प्रकारका विषैला और प्राणनाशक ज्वर। ज्वर शब्दमें आन्त्रिक ज्वर देखो।

टाइफोन (अं० पु०) चीनके समुद्रमें तथा उसके आसपास बरसातके चार महीनोंमें आनेवाला तूफान।

टाइम (अं० पु०) काल, समय, वक्त।

टाइम-टेबुल (अं० पु०) १ भिन्न भिन्न कार्योंके लिये निश्चित समय लिखे रहनेका विवरणपत्र। २ रेल संबंधी कागज। इसमें रेल-गाड़ीके पहुंचने और छूटनेका समय लिखा रहता है।

टाइमपीस (अं० स्त्री०) घड़ीका एक भेद। यह बजती नहीं केवल सूइयोंके द्वारा समय बताती है।

टाई (अं० स्त्री०) अंगरेजी पहनावेमें कालरके ऊपर गाँठ दे कर बांधी जानेकी कपड़ेकी पट्टी।

टाउन (अं० पु०) शहर, कसबा।

टाउनड्यूटी (अं० स्त्री०) चुंगी, पौंटूटी।

टाउनहाल (अं० पु०) किसी नगरका सार्वजनिक भवन। इसमें नगरकी सफाई रोशनी आदिके प्रबंध-कर्त्ताओंकी सभाएं होती हैं।

टाँक (हिं० स्त्री०) १ चार माशेकी एक तौल। इसका प्रचार जौहरियोंमें है। २ लिखावट। ३ कलमकी नोक, लेखनीका डङ्क। ४ पचीस सेरके बराबरकी एक प्राचीन तौल। इससे धनुषकी शक्तिकी परीक्षा की जाती थी। प्राचीन समयमें इस तौलका बटखरा धनुषकी डोरीमें बाँध कर लटका दिया जाता था। जितने बटखरे बांधनेसे धनुषकी डोरी अपने पूरे खिंचाव पर पहुंच जाती थी, उस धनुषको उतनी ही टांकका समझते थे। ५ अन्दाज, जांच, आंक। ६ हिस्सेदारोंका हिस्सा, बखरा।

टाँकना (हिं० क्रि०) १ कील काँटे ठोंक कर एक वस्तुको दूसरी वस्तुसे मिलाना। २ सिलाईके द्वारा जोड़ना। ३ सिलाईके द्वारा एक वस्तुको दूसरे वस्तुसे अँटकाना। ४ कूटना, रेहना। ५ रेती तेज करना। ६ स्मरण रखनेके लिये कागज पर लिख लेना, दर्ज करना, चढ़ाना। ७ खाना, उड़ा जाना, चट कर जाना। ८ अनुचित रूपसे रुपया पैसा आदि ले लेना, मार लेना।

टाँकली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घिरनी जिससे जहाजका पाल लपेटा जाता है।

टाँका (हिं० पु०) १ जोड़ मिलानेवाली कील। २ सिलाईका अलग अलग भाग, डोभ। ३ सिलाई, सीवन। ४ चिप्पी, चकती। ५ वह सिलाई जो शरीर परके घाव या कटे हुए स्थान पर की जाती है। ६ धातुओंकी जोड़नेका मसाला। ७ लोहेकी कील, पत्थर काटनेकी चौड़ी छेनी। ८ हौज़, चहबच्चा। ९ पानी रखनेका बड़ा बरतन, कँडाल।

टाँकाटूक (हिं० वि०) जो तौलमें ठीक निकले, वजनमें पूरा पूरा।

टाँकी (हिं॰ स्त्री॰) १ पत्थर गढ़नेका यन्त्र। २ काट कर बनाया हुआ छेद। ३ एक प्रकारका फोड़ा। ४ गरमी या सूजाकका घाव। ५ आरीका दाँत, दाँता। ६ छोटा हौज़, चहबच्चा। ७ पानी रखनेका बड़ा बरतन, कण्डाल।

टाँकीबन्द (हिं॰ वि॰) जिसमें लगे हुए पत्थर दोनों ओर गड़नेवाली कीलोंके द्वारा एक दूसरेसे खूब जुड़े हों।

टाँग (हिं॰ स्त्री॰) १ जङ्घेकी जड़से ले कर एड़ी तकका अङ्ग या घुटनेसे ले कर एँड़ी तकका भाग। २ कुश्तीका एक पेंच। ३ चतुर्थांश, चौथाई भाग।

टाँगन (हिं॰ पु॰) कम ऊँचाईका घोड़ा, पहाड़ी टट्टू।

टाँगना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी वस्तुको दूसरी वस्तुसे इस प्रकार बांधना कि उसका सब भाग नीचेकी ओर लटकता रहे, लटकाना। २ फाँसी चढ़ाना, फाँसी लटकाना।

टाँगा (हिं॰ पु॰) १ बड़ी कुल्हाड़ी। २ घोड़े या बैलसे खींची जानेकी एक प्रकारकी गाड़ी। इसमें सवारी प्रायः पीछेकी ओर ही मुंह करके बैठती है। इस गाड़ीके इधर उधर उलटनेका भय भी बहुत कम रहता है, क्योंकि इसके नीचेका भाग जमीनसे सटा रहता है। यह प्रायः पहाड़ी रास्तोंके लिये बहुत लाभदायक होती है।

टाँगानोचन (हिं॰ स्त्री॰) खींच खसोट, खींचातानी।

टाँगुन (हिं॰ स्त्री॰) सावन भादोंमें तैयार होनेवाला एक प्रकारका अनाज। इसके दाने बहुत बारीक और पीले रङ्गके होते हैं। यह गरीब मनुष्योंके खानेके काममें आता है।

टाँच (हिं॰ स्त्री॰) १ दूसरेका काम बिगाड़नेवाली बात। २ टाँका, सिलाई, डोभ। वह टुकड़ा जो किसी फटे हुए कपड़े या और किसी वस्तुका छेद बन्द करनेके लिये टाँका जाय, चकती।

टाँचना (हिं॰ क्रि॰) १ टाँकना, सीना। २ काटना, छाँटना, छीलना।

टाँची (हिं॰ स्त्री॰) १ कपड़ेकी वह लम्बी पतली थैली जिसमें व्यापारी रुपये भर कर कमरमें बाँध लेते हैं, मियानी। २ भाँजी।

टाँठा (हिं॰ वि॰) १ कठोर, कड़ा। २ दृढ़, हृष्टपुष्ट, मजबूत।

टाँड (हिं॰ स्त्री॰) १ चीज असबाब रखनेका पाटन, परछत्ती। २ मचान। यह दो या चार खम्भोंके योगसे बनाया जाता है। ऊपरमें खाट या तख्ती बिछाई रहती है जिस पर बैठ कर गृहस्थ खेतकी रखवाली करते हैं। ३ एक प्रकारका गहना जिसे स्त्रियां बाहु पर पहनती हैं, टँड़िया। (पु॰) ४ समूह, ढेर, राशि। ५ समूह, पंक्ति। ६ घरोंकी पंक्ति। (स्त्री॰) ७ कंकरीली मट्टी। ८ गुल्ली पर डंडेकी चोट, टोला।

टाँड़ा (हिं॰ पु॰) १ बनजारोंके बैलों आदिका झुण्ड, बरदी। २ व्यापारियोंके मालकी चलान। ३ व्यापारियोंका झुण्ड। ४ परिवार कुटुम्ब। ५ गन्ने आदिकी फसलको नुकसान पहुंचानेवाला एक प्रकारका कीड़ा।

टाँयटाँय (हिं॰ स्त्री॰) १ अप्रिय शब्द, कड़ुई बोली, टेंटें। २ प्रलाप, बकवाद।

टाँस (हिं॰ स्त्री॰) हाथ या पैरके बहुत देर तक सिकुड़े रहनेके कारण नसोंका तनाव। इसमें यद्यपि बहुत पीड़ा होती है लेकिन वह बहुत कम काल तक ठहरती है।

टाकी—बङ्गालके चौबीस परगना जिलेके अन्तर्गत बसिरहाट उपविभागका एक शहर। यह अक्षा॰ २२′ ३५′ उ॰ और देशा॰ ८८′५५′ पू॰के मध्य यमुनाके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५०८९ है यहां सरकारी हाई-स्कूल, बालिका-विद्यालय और दातव्य-चिकित्सालय है। यह नगर स्वास्थ्यकर है। यहाँ मलेरियाका प्रकोप नहीं देखा जाता। यहाँके राजा वसन्तरायके वंशज हैं। स्वर्गीय कालीनाथ राय बारासातसे एक लम्बी-चौड़ी सड़क प्रस्तुत कर गये हैं। इस नगरमें अच्छे अच्छे गड़ुवे प्रस्तुत होते हैं। यह चावल व्यवसायका केन्द्रस्थल है। यहाँ १८६९ ई॰में म्युनिसपालिटी स्थापित हुई है।

टाकू (हिं॰ पु॰) टकुआ, तकला, टेकुरी।

टाङ्क (सं॰ क्ली॰) टङ्केन तद्रसेन निर्वृत्तं। मद्यविशेष, एक प्रकारकी शराब। यह शराब नील कैथके रससे तैयार होती है। इसके बारह भेद हैं—पानस, द्राक्ष, माधूक, खर्ज्जूर, ताल, ऐक्षव, माध्वीक, टाङ्क, मार्द्वीक, ऐरेय और नारिकेलज ये ग्यारह प्रकारके मद्य हैं। बारहवें प्रकारके मद्यका नाम सुरा है। पहले ग्यारह प्रकारके

मद्य पीनेसे प्रायश्चित्त किया जा सकता है, इसका प्रायश्चित्त तीन दिन उपवास मात्र है।

"द्राक्षेक्षुटंकखर्जूरपनसादेश्च यो रसः।
सद्योजातन्तु पीत्वा तं त्र्यहाच्छुध्येत् द्विजोत्तमः।"

(पुलस्त्य) मद्य देखो।

टाङ्कमाध्वीक (सं॰ क्ली॰) मद्यविशेष, एक प्रकारकी शराब। यह मद्य शतावरी, टङ्कमूलका रस और पद्ममधु द्वारा एकत्र कर बनाया जाता है।

"शतावरी टंकमूलं लक्ष्मणव्रह्ममेव च।
मधुना सह सन्धानात् टंकमाध्वीकमीरितं।" (तन्त्र)

टाङ्कर (सं॰ पु॰) टङ्कस्येदं टाङ्कं राति रा-क। स्वेच्छाचारी, रण्डीबाज।

टाङ्गाइल—१ पूर्वीय बङ्गालके मैमनसिंह जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा॰ २३° ५७´ से २४° ४८´ उ॰ और देशा॰ ८९°४०´ से ९०° १४´ पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण १०६१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ९७०२३९ है। इसके तीन ओर पुलिनमय भूभाग और शेष पूर्वकी ओर मधुपुर नामका जङ्गल है। इसमें टाङ्गाइल शहर तथा २०३० ग्राम लगते हैं। इसके समीप सुवर्णखाली नामक स्थानमें एक बड़ा बाजार है।

२ पूर्वीय बङ्गालके मैमनसिंह जिलेका एक शहर। यह अक्षा॰ २४°१५´ उ॰ और देशा॰ ८९°५७´ पू॰के मध्य यमुनाकी एक शाखा लोहजङ्गतीर पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १६६६६ है। यहां दो उच्चश्रेणीके विद्यालय है, जो स्थानीय लोगोंकी देख भालमें हैं। यह वाणिज्यका केन्द्रस्थल है। १८८७ ई॰में म्युनिसपालिटी स्थापित हुई।

टाट (हिं॰ पु॰) १ बिछाने, परदा डालने आदिके कामोंमें आनेवाला एक प्रकारका मोटा कपड़ा। यह सन या पटुएकी रस्सियोंका बुना होता है। २ बिरादरी, कुल। ३ वह बिछावन जिस पर साहुकार बैठते हैं, महाजनकी गद्दी। (वि॰) ४ कसा हुआ, जकड़ा हुआ।

टाटबाफीज़ूता (हिं॰ पु॰) कामदार बढ़िया जूता।

टाटर (हिं॰ पु॰) १ टट्टर, टट्टी। २ खोपड़ी, कपाल।

टाटरिक ऐसिड (अं॰ पु॰) इमलीका चुक, इमलीका सत।

टाटा—सिन्धुप्रदेशका एक नगर। यह १४८५ ई॰में सोमोयवंशके चौदहवें राजा जाम मन्दलसे स्थापित हुआ है। यह नगर सिन्धु नदीके किनारे समुद्रसे १३० कोस दूर पर्वतके ऊपर अवस्थित है। वर्षाकालमें इसके निकटवर्ती बहुतसे प्रदेश जलमग्न हो जाते हैं। यह द्वीपकी नाईं मालूम पड़ता है। यहांकी सड़कें अप्रशस्त और अपरिष्कार हैं। किन्तु यहांके मकान अच्छे अच्छे दीख पड़ते हैं। इसके चारों ओरकी जमीन उर्वरा है।

ठट्टा देखो।

टाटा (जमशेदजी)—भारतवर्षके गौरव-स्वरूप एक प्रधान बणिक्। ताता देखो।

टॉड (जेम्स् कर्नल) "राजस्थान" नामक प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थके लेखक और राजनीतिविद्। १७८२ ई॰, तारीख २० मार्चको इसलिङ्टन नामक स्थानमें इनका जन्म हुआ था। १७९८ ई॰में इनके चाचा मि॰ पार्टिक हिटलेने इन्हें इष्ट इण्डियन कम्पनीके अधीन कैडेटकी नौकरी लगा दी। १७९९ ई॰के मार्च महीनेमें, बङ्गालमें आ कर ये दूसरी यूरोपीय सेनामें शामिल हो गये। १८०१ ई॰में ये नौकरी ले कर दिल्ली गये और वहां उन्हें एक पुरानी नहरकी ज़रीब करनेका भार प्राप्त हुआ। १८०५ ई॰में ये सिन्धिया-राज्यमें ब्रिटिशदूतके सहकारी नियुक्त हुए। सन १८१२से १७ ई॰ तक ये सर्वदा प्रत्नतत्त्व-विषयक संवादादि संग्रह करते रहे। राजपूत जातिके साथ घनिष्टतासे मिल कर उनका जातीय इतिहास बनाना इनके जीवनका व्रत था। १८१५ ई॰में कर्नल टॉडने एक मानचित्र बना कर गवर्नर जनरलको दिया, जिसमें सबसे पहले उन्होंने 'मध्यभारत' शब्दका व्यवहार किया था और वहांके कुछ करदराज्योंको ले कर उक्त भौगोलिक अंशका दिग्दर्शन कराया था। इनके उपदेशानुसार मध्यभारतके करदराज्योंके साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थिर करनेके लिये एक एजेन्सी स्थापित की गई। टॉड साहबकी राजपूतानाके बहुतसे स्थानोंसे परिचय था। १८१७ ई॰में जब लार्ड हेष्टिंस् पिण्डारियोंके विरुद्ध युद्धयात्रा की थी, उस समय इन्होंने उनकी बहुत कुछ सहायता पहुंचाई थी। इन्होंने पिण्डारी-युद्धमें अपनी इच्छासे ब्रिटिश-शक्तिको संवाद देनेका भार ग्रहण किया था।

गवर्नर जनरलने इनके इस कार्यकी प्रशंसा की है।

१८१८ ई०में राजपूतानेके सामन्तगण ब्रिटिश-शक्तिके अधीन मित्रतापूर्वक रहनेको राजी हो गये और साथ ही टॉड साहब पश्चिम राजपूतानेके राजनीतिक दूत नियुक्त हो गये। ये राजपूतजातिके अत्यन्त विश्वासभाजन हो गये थे। कार्यभार ग्रहण करनेके बाद एक वर्षके भीतर इन्होंने वहां व्यवसायकी काफी उन्नति हो गई थी और करीब तीन सौ उजाड़ गाँव फिरसे बस गये थे। १८२५ ई०में जिस समय बिशप हिवार राजपूताना परिदर्शन करने आये थे, उस समय उन्होंने सुना था कि टॉड साहबने राजपूतानाकी जैसी उन्नति की है, वैसी और किसीने भी नहीं की। टॉड साहब राजपूत राजाओंको इतनी नेक नजरसे देखते थे, कि कलकत्तेकी गवर्मेण्ट समझती थी कि टॉड साहब शायद घूस लेते होंगे। इस प्रकारके हेतुहीन सन्देह किये जाने पर टॉड साहबने कार्य छोड़ दिया। पीछे गवर्मेण्टको मालूम हो गया कि टॉड साहब सचमुच ही राजपूतोंके हितैषी बन्धु थे वे घूस न लेते थे।

१८२३ ई०में टॉड साहब बम्बईसे इङ्गलैण्ड लौट गये। इनके जीवनका शेष भाग राजपूतानेमें संगृहीत ग्रन्थादि प्रकाशित करनेमें व्यय हुआ था। रॉयल एसियाटिक सोसाइटीमें इन्होंने राजपूतानेके विषयमें कई एक निबन्ध पढ़े थे और कुछ दिन उक्त सभाके लाइब्रेरियन नियुक्त थे।

१८२७ ई०में इन्होंने सिन्धियाके पुराने फरासीसी सेनापति काउण्ट डी० बयनके साथ मुलाकात की। १८३५ ई० तारीख १७ नवेम्बरको, ५३ वर्षकी उमरमें आपने लन्दनके डाक्टर क्लूटरबुककी कन्याका पाणिग्रहण किया। आपके एक कन्या और दो पुत्र थे।

टॉड साहबने रॉयल एसियाटिक सोसाइटीकी पत्रिकामें प्रत्नतत्त्व-विषयक अनेक निबन्ध प्रकाशित कराये थे। १८३३ ई०में भारतकी राजनीतिक विषयकी आलोचनाके लिए हाउस ऑव कॉमन्समें विचारार्थ जो बैठक हुई थी, उसमें मि० टॉडने पश्चिम भारतकी राजनीतिके विषयमें एक सुवृहत् मन्तव्य पेश किया था।

आपका नाम केवल "राजस्थान" ही अमर रक्खेगा। यद्यपि फिलहाल ऐतिहासिक दृष्टिसे आपके ग्रन्थमें बहुतसी भूलें निकल रही हैं तथापि आपकी लेखनशैली और उसकी धारा इस ग्रन्थको उपादेय बनाये रक्खेगी। १८३९ ई०में आपका "पश्चिम-भारत भ्रमण" नामक और एक ग्रन्थ लन्दनसे प्रकाशित हुआ है।

टाड़ (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जो भुजा पर पहना जाता है, टाँड़, बहुंटा।

टाडर (हिं० स्त्री०) एक पक्षीका नाम।

टाण्डा—१ युक्तप्रदेशके फैजाबाद जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २६°९´ से २६°४०´ उ० और देशा० ८२°२७´ से ८३°८´ पू० में अवस्थित है। इसका भूपरिमाण ३६५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २४९४१२ है। इस तहसीलमें तीन शहर और ७३५ ग्राम लगते हैं। तहसीलकी कुछ जमीन गोगरा (घर्घरा) नदीके किनारे रहनेके कारण तर और नीची है और फसल प्रायः नहीं लगती है। लेकिन ऊंची जमीन बहुत उर्वरा है और काफी अनाज उत्पन्न करती है। वहां झीलकी अपेक्षा कुएंसे जल सींचनेमें विशेष सुविधा है।

२ युक्तप्रदेशके फैजाबाद जिलेकी इसी नामकी तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २६°३४´ उ० और देशा० ८२°४०´ पू०के मध्य गोगरा नदी किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १९८५३ है। यह शहर अवध-रोहिलखण्ड-रेलवेके अकबरपुर स्टेशनसे १२ मील दूर पड़ता है। १८वीं शताब्दीके अन्त अवधके नवाब स्वादत अली खाँने इस नगरकी बहुत उन्नति की तथा कई एक राज्य-भवन बनाये। उस समय यह नगर तरह तरहके कपड़े बुननेका भारतवर्षमें एक प्रधान केन्द्र गिना जाता था। अमेरिकाके भीषण गृहयुद्धके समयसेही यहांका वाणिज्य कुछ हीन होता आया है। आज भी यहां ११००से अधिक करघे चलते हैं। जामदानी नामका मलमल कपड़ा यहांका प्रसिद्ध है। इस नगरमें केवल तीन विद्यालय हैं।

३ (ताँड़ा) पूर्वीय बङ्गालके मालदह जिलेका एक प्राचीन नगर। यह गौड़के निकट गङ्गाके दूसरे किनारे अवस्थित था। गौड़ नगरके ध्वंस होने पर कुछ काल तक यहां बङ्गालकी राजधानी थी। यह नगर कहाँ पर स्थापित हुआ था, इसका पूरा पता नहीं लगता है। शायद यह

स्थान पगला नदीगर्भमें विलीन हो गया है। अभी भी उस स्थानमें एक ग्राम टाण्डा या टाँड़ा नामसे पुकारा जाता है। बङ्गालके इतिहास-लेखक स्टुयर्ट साहबका कथन है कि गौड़ नगर जनशून्य होनेके ११ वर्ष पहले बङ्गालके शेष अफगान राजा सुलेमान शाह कररानीने १५६४ ई०में टाण्डा नगरमें बङ्गालकी राजधानी स्थापित की। मुगल-सम्राट् अकबरके समयमें टाण्डा नगर सुसमृद्ध और बङ्गालके नवाबोंका वासस्थान था। १६६० ई०में विद्रोही सुजाशाह औरङ्गजेबके सेनापति मीरजुमलाके भयसे राजमहलसे टाण्डा नगरको भाग आये थे और पीछे युद्धमें पराजित हुए। इसके बाद मुगलोंने राजमहल और ढाकामें बङ्गालकी राजधानी स्थापन की थी।

४ युक्तप्रदेशके रामपुर राज्यकी सुआर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८°५८' उ० और देशा० ७८°५७' पू०के मध्य मुरादाबादसे नैनीतालके पथ पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७९८३ है। यहाँ बञ्जार जातिका वास अधिक है। इस नगरमें एक चिकित्सालय और एक विद्यालय है।

टाण्डा-उरमार—पञ्जाबके होशियारपुर जिलेके अन्तर्गत दसुय तहसीलके शहर। ये दोनों शहर एक दूसरेसे आध मीलकी दूरी पर पड़ता है और अक्षा० ३१°४०' उ० और देशा० ७५°३८' पू०में अवस्थित है। दोनोंकी मिश्रित लोकसंख्या प्रायः १०२४७ है। यहाँ सखी सरवर नामक एक साधुका मठ है। १८६७ ई०में म्युनिसिपालिटी स्थापित हुई है। यहां म्युनिसिपल बोर्डके अधीन एक एङ्गलोवर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक सरकारी चिकित्सालय है।

टान (हिं० स्त्री०) १ विस्तृति, फैलाव, खिँचाव। २ खींचनेकी क्रिया, खींच। ३ साँपके दाँत लगनेका एक प्रकार। इसमें दाँत धँसता नहीं केवल छीलता या खरोंच डालता हुआ निकल जाता है। ४ सितारके परदे पर उँगलीको रख कर इस प्रकार खींचनेकी क्रिया जिससे मध्यके सभी स्वर निकल आवें। (पु०) ५ मचान, टाँड़।

टानना (हिं० क्रि०) खींचना, तानना।

टाप (हिं० स्त्री०) १ घोड़ेके पैरका निचला भाग। २ वह शब्द जो चलते समय घोड़ेके पैरोंसे होता है। ३ मछली पकड़नेका झाबा। यह बेंत या और किसी पेड़की लचीली टहनियोंका बना होता है। ४ मुरगियोंके बंद करनेका झाबा। ५ पलंगके पायेका तलभाग। यह भाग पृथ्वीसे लगा रहता और इसका घेरा उभरा रहता है।

टापड़ (हिं० पु०) ऊसर मैदान।

टापदार (हिं० वि०) जिसके ऊपर या नीचेका छोर कुछ फैला हुआ हो।

टापना (हिं० क्रि०) १ घोड़ोंका पैर पटकना। २ इधर उधर घूमा फिरना, टक्कर मारना। ३ निष्प्रयोजन इधर उधर फिरना। ४ कूदना, उछलना। ५ निराहार पड़ा रहना। ६ व्यर्थ प्रतीक्षा करना, व्यर्थ किसी दूसरेकी आशा करना। ७ पश्चात्ताप करना, पछताना, हाथ मलना।

टापर (हिं० पु०) टट आदिकी सवारी।

टापा (हिं० पु०) १ टप्पा, मैदान। २ वह विस्तृत भूमि जहां कोई चीज उगती न हो, उजाड़ मैदान। ३ कूद, फाँद, फलांग। ४ एक टोकरा जिससे कोई वस्तु ढांकी या बंद की जाय।

टापू (हिं० पु०) चारों ओरसे घिरा हुआ भूखंड, द्वीप।

टाबर (हिं० पु०) लड़का, बालक।

टाबू (हिं० पु०) रस्सीकी बनी हुई एक प्रकारकी जाली जो कटोरेके आकारकी होती है। काम करते समय बैलोंको चारे खानेसे टाँकने लिये यह उनके मुँह पर लगा दिया जाता है, जाबा।

टामन (हिं० पु०) तन्त्रविधि, टोटका।

टार (सं० पु०) टां पृथ्वीं ऋच्छति ऋ-अण्। १ तुरङ्ग, घोड़ा। २ लङ्ग, गाडू, लौंड़ा। ३ रङ्ग, वह मनुष्य जो स्त्री पुरुषका संयोग करा देता हो, कुटना, दलाल।

टार (हिं० पु०) १ राशि, ठेर, पुञ्ज। (स्त्री०) २ टाल टल।

टारन (हिं० पु०) १ टालने या सरकानेकी वस्तु। २ कोल्हूमें पड़ा हुआ लकड़ीका डंडा। इससे ईख चलाई या हिलाई जाती है।

टारपीडो (अं० पु०) पानीके भीतर हो कर चलानेवाला जंगी जहाज।

टाल (हिं० स्त्री०) १ भारी राशि, ऊँचा ढेर, गंज। २ लकड़ी, भुस आदिकी बड़ी दूकान। ३ बैलगाड़ीके पहि

येका किनारा। ४ टालनेका भाव। ५ झूठा वादा। ६ गाय, बैल, हाथि आदिके गलेमें बांधनेका एक घंटा। (पु०) ७ कुटना, दलाल।

टालटूल (हिं० स्त्री०) टालमटल देखो।

टालना (हिं० क्रि०) १ हटाना, खिसकाना, सरकाना। २ अनुपस्थित कर देना, भगा देना। ३ दूर करना, मिटाना। ४ नियत समयसे और आगेका समय ठहराना, मुलतवी करना। ५ समय व्यतीत करना, गुजारना। ६ उलंघन करना, न मानना। ७ किसी कार्यके संबन्धमें इस प्रकारकी बातें कहना जिसमें वह न करना पड़े। ८ किसी कार्यको पूरा करनेकी मिथ्या आशा देना, आज कलका झूठा वादा करना। ९ किसी मनुष्यको निराश करके लौटाना। १० पलटना, फेरना। ११ बचा जाना, तरह दे जाना।

टालमटाल (हिं० स्त्री०) टालमटूल देखो।

टालम-टाल (हिं० क्रि०-वि०) आधे आध, निस्फा निस्फ।

टालमटूल (हिं० पु०) बहाना।

टाला (हिं० वि०) अर्द्ध, आधा।

टाली (हिं० स्त्री०) १ वह घंटा जो गाय बैल आदिके गलेमें बांधी जाती है। २ तीन वर्षसे कामकी बछिया। ३ एक प्रकारका बाजा। ४ आधा रुपया, अठन्नी।

टाल्ही (हिं० पु०) पंजाबमें मिलनेवाला एक प्रकारका शीशम। इसकी लकड़ी इमारतों आदिके काममें आती है।

टासो (टरकुआटो)—यूरोपके नव-जागरणके युगके महाकवि। इटलीमें बारगामो नगरके किसी सम्भ्रान्त परिवारमें इनका जन्म हुआ था। इनके पिताने बहुत दिनों तक सालर्नोके राजाके सेक्रेटरीका काम किया था। इनकी माता नियोपलिटन भी सम्भ्रान्तवंशीयोंके साथ घनिष्ट सम्बन्धमें आवद्ध थीं। नेपलसके शासनकर्ताओंके साथ सालर्नोके राजाका विवाद उपस्थित होने पर वे सम्पत्ति-च्युत किये गये। टासोके पिता भी सालर्नोसे निर्वासित हुए थे। टासो उस समय छोटे बच्चे थे।

१५५२ ई०से टासो अपनी माताके साथ नेपलसमें रह कर जेसुईट नामक खृष्टीय सम्प्रदायके निकट विद्याभ्यास करने लगे। बाल्यावस्थामें ही टासोकी बुद्धिका विकाश और धर्म-भावोंकी प्रबलता देख कर सब उन पर मुग्ध हो गये। आठ वर्षकी उमरमें ही टासोका नाम प्रसिद्ध हो गया। इसके कुछ दिन बाद वे अपने निर्वासित पितासे मिलनेके लिए रोम नगरोमें पहुंचे। इनके पिताके दुःखका उस समय पारावार न था। १५५६ ई०में उन्हें सम्वाद मिला कि उनकी माताकी मृत्यु हो गई है। टासोके पिताने कहा, कि "सम्पत्ति पानेकी आशासे मामाने अपनी बहनको विष दे कर मार डाला है।" सचमुच ही टासोने कभी अपना माकी सम्पत्ति भोग न पाई थी।

१५५७ ई०में टासोके पिताने उरविनोके राज-दरबारमें काम करना स्वीकार कर लिया। टासो देखनेमें बहुत ही खूबसूरत थे—वे उरविनोकी राजकुमारी मेरियाके खेलने और पढ़ने-लिखनेके साथी हो गये। उस समय उरविनो विद्या, शिल्प और सौन्दर्य-चर्चाका एक केन्द्र बन गया था। इसलिए टासो कैशोर-जीवनमें विलासिता और काव्यसमालोचनाकी परिवेष्टनीमें परिवर्द्धित होने लगे।

१५६० ई०में जब इनके पिता भिनिसमें आये, तब वहां टासो सबके आदर और गौरवके पात्र हो गये। इनके पिताके हृदयमें कवि-भाव रहनेके कारण उन्हें बड़ा दुःख उठाना पड़ा था; इसलिए वे बालक टासोको उस मार्गसे विरत करनेके लिए यथासाध्य चेष्टा करने लगे। उन्होंने अपने पुत्र टासोको कानून पढ़ानेके लिए पदूया भेज दिया। परन्तु वहां उस युवकने व्यवहार-शास्त्रका अध्ययन छोड़ कर काव्य और दर्शन पढ़ना शुरू कर दिया।

१५६२ ई०के शेष भागमें टासोने "रिनल्डो" नामका एक काव्य लिखा। इस काव्यमें ऐसे सुन्दर भाव और छन्दका समावेश किया गया था, कि लोगोंने उन्हें उस युगका एक प्रसिद्ध कवि मान लिया और उनकी अभ्यर्थना की।

१५६५ ई०में टासोने फेवावार दुर्गमें प्रथम पदार्पण किया। यहां रह कर इन्होंने जैसा यश उपार्जन किया, वैसा वा उससे अधिक कष्ट भी पाया। एक तो वे विद्वान् समाजप्रिय सुन्दर युवक थे, दूसरे उनकी ख्याति चारों ओर फैल गई थी। इसलिए तदानीन्तन इटलीकी राज-

सभामें इनकी काफी खातिर तवज्जह हुई। लूक्रेजिया और लिओनारा नामकी दो राजकन्याएँ, जो अविवाहिता और टासोसे १० वर्ष उमरमें बड़ी थीं, उनकी हर एक तरहसे खातिरदारी करने लगी। टासो राजकुमारी लिओनाराके प्रेममें पड़ गये थे। उस प्रेमकी सुप्रसिद्ध कहानीकी स्मृति अब भी उनके काव्यालोकमें प्रकाशमान है। १५८५ से ७० ई० तक इनके जीवनका सर्वापेक्षा सुखमय समय था। १५६८ ई०में इनके पिताकी मृत्यु हो गई, जिससे इनका भावप्रवण हृदय शोकाकुल हुआ था।

१५७० ई०में ये कार्डिनाल महोदयके साथ पारी नगरीमें भ्रमण करने गये। ये बड़े निर्भीक और स्पष्टवक्ता थे, इसलिए कार्डिनालके साथ बनती थी। दूसरे वर्ष ये फ्रान्ससे फेरारा गये और वहाँ डिउकके अधीन कार्य करने लगी। परवर्ती चार वर्षोंमें इन्होंने ''आमिनिया'' और ''जारुसालेम-मुक्ति'' नामके दो ऊँचे ढंगके ग्रन्थ बनाये। "आमिनिया" किसानोंकी जीवनियोंके आधार पर नाटकके तौर पर लिखा गया था, किन्तु उसमें गीति कविताकी सुषमा और तदानीन्तन इटलीका भाव मौजूद था। परवर्ती दो सौ वर्ष तक जो भाव काव्य और नाटक इटलीमें लिखे गये थे, उसमेंसे अधिकांश ग्रन्थोंमें हमें ''आमिनिया''का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसलिए उसे हम टासोकी श्रेष्ठ और प्रयोजनीय रचना कह सकते हैं।

''जेरुसालेमो लिबाराट''का प्रभाव यूरोपीय साहित्य पर और भी अधिक पड़ा है। यह ग्रन्थ उस युगका महाकाव्य समझा जाता है। इस ग्रन्थके कारण ही इनका नाम वाल्मीकि, व्यास, होमर, भार्जिल आदिके साथ लिया जाता है। टासोने इकतीस वर्षकी उमरमें यह महाकाव्य समाप्त किया था। इस ग्रन्थकी समाप्तिके साथ ही उनके जीवनका सर्वोत्कृष्ट भाग व्यतीत हुआ था। इसके बाद इन्हें दुःखोंने घेर लिया। टासोने "जेरुसालेम" महाकाव्य स्वयं न छाप कर, इटलीके प्रधान प्रधान लोगोंके पास समालोचनार्थ भेज दिया। फिर क्या था; नाना मुनिके नाना मत! कोई कहने लगे कि और भी संयत बनानेकी जरूरत है, किसीने फरमाया कि अभी उसे और भी कवित्वमय बनाना चाहिए इत्यादि। टासोने भार्जिलके आदर्श पर इस महाकाव्यकी रचना की थी। उन्होंने किसीके कहनेसे कुछ परिवर्तन करना उचित न समझा। १५६५में इन्होंने "काव्यकी रीति" नामक जिस सन्दर्भकी रचना की थी, उसके अनुसार इन्हें भी चलना पड़ा।

इस महाकाव्यमें गडफ्रेको नायक बना कर उनके धर्मभावके प्रति हमारे मनको आकृष्ट करनेकी चेष्टा की जाने पर भी, यथार्थ नायकके रूपमें हम भावप्रवण रिनाल्डोको, विषम टानक्रेडको और वीरहृदय मुसलमानोंको ग्रहण करते हैं। सुन्दरी आर्मिदाने ईसाइयोंमें किस तरह विवादका बीज बोया और फिर वह कैसे विफल-मनोरथ हुई, इसी विषयको ले कर इस महाकाव्यकी रचना की गई है। अन्तमें आर्मिदा एक ईसाई वीर पर आसक्त हो गई और उसके प्रेममें पड़ कर उसने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। वीर-रमणी क्लोरिदाने किस तरह अपने प्रणयीके साथ युद्ध करते करते प्राण दिये और अन्तिम समयमें कैसे ईसाई धर्मको अपनाया, किस तरह आरमेनियाने दुःखोंका सामना किया, इत्यादि घटनाओंको पढ़ते पढ़ते पाषाण-हृदयोंकी आँखें भी भर आती हैं। ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें इस महाकाव्यमें नारीकी महिमा ऊँचे स्वरसे गायी गई। सत्रहवीं शताब्दीमें "जेरुसालेम" महाकाव्यके नायकोंके नाम यूरोपमें घर घर उच्चारित और समालोचित होते थे।

टासोके ग्रन्थोंके तदानीन्तन समालोचकगण उन्हें इतना तङ्ग करने लगे कि फिर वे क्लान्त और उन्माद-भावापन्न हो गये। "जेरुसालेम" महाकाव्यको उस समय तक उन्होंने छपाया नहीं था। इसी बीचमें वे फ्लोरेन्समें कार्य ग्रहण करनेके लिए बातचीत कर रहे थे। इससे फेराराके डिउक अत्यन्त क्रुद्ध हुए; उन्होंने सोचा इस समय यदि टासो फ्लोरेन्स जायँगे, तो "जेरुसालेम" महाकाव्य वहाँके शासनकर्त्ता मेडिसीके नाम समर्पित किया जायगा। परिणाम यह होगा कि आज तक फेराराके डिउकने जो उनका भरण-पोषण किया, उसका उन्हें कुछ प्रतिदान न मिलेगा। इसी बीचमें (१५७५-

७७ ई०में) टासोका स्वास्थ्य बहुत ही बिगड़ने लगा। राजसभाके लोग इनके विरुद्ध नाना प्रकारके षड़यन्त्र रचने लगे। इस समय टासो उन्मादप्राय हो गये थे। उन्हें सर्वदा ऐसा मालूम होता था, कि फेराराके डिउक शायद उनकी हत्या करेंगे। एक दिन ये किसानके वेषमें पैदल ही अपनी बहनके घर पहुंचे।

इसके कुछ दिन बाद फिर इन्हें फेरारा लौटनेकी आज्ञा मिली। परन्तु इनका रोग उपशम न हुआ। १५७८ ई०में ये फिर भाग गए। सेप्टेम्बर मासमें नाना देशोंमें घूमते हुए ये पैदल ही टूरिन नगरके तोरण पर जा पहुंचे। सेभायके डिउकने इनका बड़ा आदर सत्कार किया। इसके बाद टासो जहां जाने लगे, वहीं उनका सम्मान होने लगा। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें ये समाजसे नाराज हो गये और फेराराको लौटनेके लिए पत्रव्यवहार करने लगे। फेराराके डिउक जिस समय तीसरी बार अपना विवाह कर रहे थे, उस समय टासो फेरारा पहुंचे। परन्तु यहां वे, अपनेको अवहेलित समझ, इतना उपद्रव करने लगे कि सबने मिल कर एक उन्मादागारमें भेज दिया। १५७९ ई०के मार्चसे लगा कर १५८६ ई०की जुलाई मास तक इन्हें उस पागलखानेमें रहना पड़ा था।

कुछ महीने यहाँ रहनेके बाद ही, इन्हें बन्धुबान्धवोंके आने पर उनके साथ साक्षात् करने और पत्रव्यवहार करनेकी अनुमति मिल गई। इस समय ये नाना प्रकार की रचनाओंमें मशगुल थे। इन दिनों ये कविता अधिक न लिखते थे, किन्तु दार्शनिक आलोचनाका विषय लिखा करते थे। उन्मादागारमें भेज देने पर भी, इटालिके लोग इनकी रचनाकी कदर करते थे। १५८१ ई०में जेरुसालेम काव्यके सम्पूर्ण भाग छप कर प्रकाशित हो गये, परन्तु प्रकाशकोंने इनकी अनुमति न ली और न संशोधन करनेकी ही जरूरत समझी। एक वर्षके भीतर इस ग्रन्थके सात संस्करण निकल गये। १५८५ ई०में फ्लोरेन्सके दो विद्वान् "जेरुसालेम"में नाना प्रकारके दोष दिखाने लगे। किन्तु टासोने इन प्रतिवादोंका उत्तर ऐसे भद्रभावसे और संयत भाषामें दिया था उसे पढ़ कर हम उन्हें किसी तरह भी पागल नहीं समझ सकते। फलतः टासोकी पागलखानेमें अवस्थिति एक समस्याका विषय हो जाता है। हाँ, इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि टासोमें यथेष्ट विचार बुद्धि रहने पर, जनसमाजकी वे परवाह न करते थे। टासोने राजसभामें रह कर इतनी तकलीफ पाई थी, तो भी उन्होंने अपने दोनों भानजोंको पार्मा और मण्टुआके डिउककी नौकरी दिला दी।

१५८६ ई०में मण्टुआके डिउकके अनुरोधसे ये उन्मादागारसे छोड़ दिये गये। हजारों लोगोंने इनकी अभ्यर्थना की। इसके बाद ये कुछ दिन मण्टुआमें रहे और फिर नाना स्थानोंमें घूमने लगे। किसी भी जगह ये स्थिर न रह सकते थे। जहाँ जाते थे, वहीं इनका आदर होता था। परन्तु ये इस तरहका अत्याचार करते थे, कि घरके मालिकोंको इन्हें अन्यत्र भेज देनेके लिए बाध्य होना पड़ता था, इस तरह अन्तिम अवस्थामें प्रतिभाके वरपुत्र महाकवि इटलीके उपहास-पात्र हो गये।

१५९२ ई०में अष्टम क्लेमेण्टको पोपका पद मिला। क्लेमेण्ट और उनके भतीजे टासोका आदर बढ़ानेके लिए कृतसंकल्प हो गये। १५९४ ई०में उनके आमन्त्रणके अनुसार रोम पहुंचे। टासो रोममें कविसम्राट्का मुकुट ग्रहण करेंगे ऐसा प्रस्ताव हुआ। किन्तु पोपके भतीजेके बीमार हो जानेके कारण वैसा हो न सका। पोप साहबने टासोके लिए मुसहरेका बन्दोबस्त कर दिया और उनको पैत्रिक सम्पत्तिसे कुछ आय उन्हें प्राप्त हो, ऐसी व्यवस्था करा दी। टासोके दुःखाभिशप्त जीवनमें आनन्दका क्षीण प्रकाश दिखलाई दिया।

१५९५ ई०, तारीख २५ अप्रीलको सेण्ट ओनोफ्रिओमें टासोकी मृत्यु हुई। उस समय इनकी उमर ५१ वर्षकी थी, परन्तु इनकी अन्तके बीस वर्षोंकी रचनाओंमें विशेष कुछ प्रतिभा दृष्टिगोचर न हुई थी। टासोने अपने जीवनमें बड़े बड़े दुःख पाये थे। यही कारण है कि आज हम उनका उल्लेख करते हुए भी सहानुभूति और प्रीति प्रकट किया करते हैं।

टिंचर (अं० पु०) स्पिरिटके योगसे बना हुआ किसी औषधका सार।

टिंचर आयोडीन (अं० पु०) वह लोहेके सारका अर्क जो सूजन पर लगाया जाता है।

टिंचर ओपियाई (अं० पु०) अफीमका अर्क।

टिंचर कार्डिमम (अं० पु०) इलायचीका अर्क।

टिंचर स्टील (अं० पु०) फौलादके सारका अर्क।

टिंड (हिं० पु०) एक प्रकारकी बेल। इसमें ककड़ीके जैसे गोल गोल फल लगते हैं। फल तरकारीके काममें आता है।

टिंडा (हिं० पु०) टिंड देखो।

टिंडर (हिं० पु०) रहटमें लगी हुई हँडिया।

टिंडसी (हिं० स्त्री०) टिंड नामकी तरकारी।

टिंडी (हिं० स्त्री०) १ हलकी पकड़ कर दबानेवाली मुठिया। २ जाँता घुमानेका खूँटा।

टिक (हिं० पु०) टिक्कर, लिट्टा, पूआ।

टिकई (हिं० स्त्री०) वह गाय जिसके माथे पर सफेद टीका हो।

टिकट (अं० पु०) १ प्रमाणपत्रके रूपमें दिये जानेका कागजका टुकड़ा। यह किसी प्रकारका महसूल, भाड़ा, कर या फीस चुकानेवालेको दिया जाता है। २ अधिकारपत्र जिसके द्वारा मनुष्य कहीं आ जा सकता है। ३ किसी कार्यकर्त्ताओंके ऊपर लगाये जानेका कर, फीस या महसूल।

टिकटिक (हिं० स्त्री०) १ वह शब्द जो घोड़ोंको हाँकनेके लिए मुँहसे किया जाता है। २ घड़ीके बजनेका शब्द।

टिकटिकी (हिं० स्त्री०) १ लकड़ियोंका ढाँचा जो तीन लकड़ियोंको तिरछी करनेसे बनता है। इससे अपराधियोंके हाथ पैर बांध कर उनके शरीर पर बेंत या कोड़े लगाये जाते हैं। २ ऊंची तिपाई, टिकठी। ३ सारे भारतमें मिलनेवाली एक प्रकारकी चिड़िया। इसकी लम्बाई लगभग आठ नौ अंगुलकी होती है और इसका रंग भूरा और कुछ लाली लिए होता है। जाड़ेमें यह प्रायः जलाशयोंके किनारेकी झाड़ियोंमें घोंसला लगती है। यह एक बारमें चार अंडे देती है।

टिकठी (हिं० स्त्री०) १ टिकटिकी देखो। २ एक तरहकी ऊंची तिपाई। इस पर अपराधियोंको खड़ा करके उनके गलेमें फांसीका फंदा लगाया जाता है। ३ तीन ऊंचे पाए लगे हुए काठका आसन, तिपाई। ४ दो लकड़ियोंका बना हुआ ढाँचा जिस पर बुना हुआ कपड़ा फैलाया जाता है। यह कपड़ेकी चौड़ाईके समान फैल सकता है।

टिकड़ा (हिं० पु०) १ किसी वस्तुका चक्राकार खण्ड, चिपटा गोल टुकड़ा। २ एक तरहकी मामूली रोटी।

टिकड़ी (हिं० स्त्री०) छोटा टिकड़ा।

टिकना (हिं० क्रि०) १ ठहरना, डेरा करना, मुकाम करना। २ तलछटके रूपमें नीचे बैठ जाना। ३ स्थायी रहना, कुछ दिनों तक चलना। ४ स्थित रहना, ठहरना, इधर उधर न गिरना।

टिकली (हिं० स्त्री०) १ छोटी टिकिया। २ एक प्रकारकी टिकिया जो काँच या पन्नीकी बनी होती है। स्त्रियाँ शृंगार करनेके लिये इसे अपने ललाट पर चिपकाती हैं, सितारा, चमकी। ३ छोटा टीका, छोटी बेंदी। ४ एक प्रकारका औजार जिससे सूत काता जाता है।

टिकस (अं० पु०) कर, महसूल।

टिकाऊ (हिं० वि०) कुछ दिनों तक काम देनेवाला, टिकनेवाला।

टिकाना (हिं० स्त्री०) १ टिकने या ठहरनेका भाव। २ ठहरनेका स्थान, पड़ाव, चट्टी।

टिकाना (हिं० क्रि०) १ निवासस्थान देना, ठहराना। २ स्थित करना, अड़ाना, ठहराना।

टिकानी (हिं० स्त्री०) पैंजनी डाल कर रस्सीसे बांधी जानेकी छकड़ा गाड़ीकी लकड़िया।

टिकारी—गया जिलेके अन्तर्गत एक जमींदारी। यह अक्षा० २४° ५६´ उ० और देशा० ८४° ५०´ पू०के मध्य गया नगरीसे १५ मील उत्तर-पश्चिममें मुरहर नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६४३७ है। यहां म्युनिसपालिटी है। प्रति अधिवासीको ≡) तीन आनेके हिसाबसे टैक्स देना पड़ता है।

यहांके मट्टीका दुर्ग उल्लेखयोग्य है। शत्रुके आक्रमणसे नगरकी रक्षा करनेके लिये टिकारी-राजाओंने इस दुर्गको बनाया है। दुर्गप्राचीरकी मोरचामें तोप रखनेका स्थान और चारों ओर नाला कटी हुई है।

इतिहास।—यहांका राजवंश अत्यन्त अप्राचीन नहीं है। नादिरशाहके आक्रमणके बाद मुगल-शासनकी विशृङ्खलान्यन हो जाने पर वर्त्तमान राजवंशके पूर्व-

पुरुष धीरसिंहका प्रादुर्भाव हुआ। पहले वे केवल एक सामान्य जमींदार थे। उनके पुत्र सुन्दरसिंहने बङ्ग-बिहारके सूबादार अलीवर्दीखाँको महाराष्ट्रोंके विरुद्ध सहायता पहुंचाई थी तथा पटनाके विद्रोह दमनमें सफलता भी प्राप्त की थी। अतः सूबादारकी ओरसे इन्हें 'राजा'की उपाधि मिली। राजा सुन्दरसिंह एक साहसी वीर थे। उन्होंने सहजहीमें अपनी सम्पत्तिकी बहुत कुछ उन्नति कर डाली। थोड़े ही दिनोंके मध्य उन्होंने ओकड़ी, मनवत्, एकिल, भिलावर, दखनाहर, आङ्क्टी और पहारा तथा अमराध् और माहरे परगनेका अधिकांश अपने राज्यमें मिला लिया। इसके सिवा उन्होंने विहार और रामगढ़के नाना स्थानोंमें भी यथेष्ट सम्पत्ति पाई थी। अन्तमें उन्हींके एक जमादारने उनका प्राणनाश किया। सुन्दरके तीन पुत्र थे – बुनियादसिंह, फतेहसिंह और निहालसिंह। कोई कोई कहते हैं कि वे तीनों सुन्दरके भतीजे थे और उन्होंने केवल ज्येष्ठ बुनियादसिंहको दत्तकपुत्र ग्रहण किया था।

बुनियादसिंह शान्तिप्रिय थे। अङ्गरेजोंके साथ उनका अच्छा सद्भाव था। उन्होंने आनुगत्य स्वीकार कर अङ्गरेजोंको एक पत्र लिखा। वह पत्र नवाब मीरक़ासिमके हाथ लगा। पत्र पा कर क़ासिमअली बहुत बिगड़ा और उन्होंने बुनियादसिंह तथा उनके दोनों भाईको पटने बुलवा कर मार डाला। उक्त घटनासे कुछ पहले बुनियादसिंहके एक पुत्र हुआ था। क़ासिमअलीने उस छोटे बच्चेको मार डालनेके लिये एक आदमी भेजा। किन्तु रानीने पुत्रको बचानेके लिये उसे एक उपलेकी टोकरीमें रख कर बुनियादके प्रधान कर्मचारी दलीलसिंहके निकट भेज दिया। बक्सरकी लड़ाई तक दलीलने राजपुत्रकी बहुत सावधानीसे रक्षा की थी। इस राजकुमारका नाम मित्रजित्‌सिंह था। सेताबरायके शासनकालमें मित्रजित्‌सिंने अपनी समस्त सम्पत्ति ही खो डाली थी। अन्तमें लॉ साहब (Mr. Law) जब विहारके कलेक्टर हुए, तब मित्रजित्‌सिंहने पुनः अपनी पूर्व सम्पत्ति तथा दिल्ली दरबारसे 'महाराज'की उपाधि पाई। अंगरेज सरकार भी उन्हें 'महाराज' कहा करती थी। खरकदी जिलेके कोलहन नामक स्थानमें जब विद्रोह हुआ तब मित्रजित्‌ने ससैन्य अंगरेजोंकी रक्षा की थी। उन्होंने गयासे टिकारी तक जमनी नदीके ऊपर एक बड़ा पुल बनाया और धर्मशालामें एक बृहत् सरोवर खोदवाया था। उनके यत्नसे टिकारी-राज्यकी आय दुगनी बढ़ गई थी। १८४० ई०में वे परलोकको सिधारे।

उनके बड़े पुत्र हितनारायण ॥/) आने तथा छोटे पुत्र मोदनारायणसिंहने ।≡) आनेकी सम्पत्ति पाई। १८४५ ई०के १० नवम्बरमें हितनारायणको 'महाराज'की उपाधि तथा लार्ड हार्डिंजसे सनद मिली थी। ये देवद्विजभक्त और धार्मिक थे। वे अपनी सहधर्मिणी महारानी इन्द्रजित्‌कुमारी पर राज्यका भार सौंप कर आप पटनेमें गङ्गाके किनारे समय व्यतीत करने लगे। उसी स्थान पर १८६१ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

इन्द्रजित्‌कुमारीके सुशासनसे राज्यकी उन्नति चरम सीमा तक पहुँच गई थी। तथा प्रजा भी बहुत सुखसे रहती थी। उन्होंने पतिकी अनुमति ले कर अपने भतीजे रामकृष्णसिंहको दत्तकपुत्र ग्रहण किया और निहालसिंहके उत्तराधिकारियोंसे उनका भविष्यका दावा कायम रखनेके लिये एक पत्र लिखवा लिया था।

१८७० ई०में रामकृष्णसिंह उत्तराधिकारी हुए। इन्हें १८७३ ई० में 'महाराज'की उपाधि तथा बृटिश गवर्मेण्टसे २५००) रु० मूल्यकी खिलअत मिली। दूसरे वर्षमें उन्हें एक दूसरा अधिकार मिला, जिससे उनको आइन अदालतमें जानेकी आवश्यकता न रही, किन्तु १८७५ ई०में उनकी मृत्यु हो गई। वे फैजाबादके अन्तर्गत अयोध्या नामक स्थानमें तथा गया जिलेके धर्मशाला, नामक स्थानमें एक बड़ा मन्दिर निर्माण कर गये हैं।

मोदनारायणके भी कोई सन्तान न थी। उनकी मृत्युके बाद उनकी दो रानी अश्वमेधकुमारी और रानी शोणितकुमारीने अपने स्वामीकी सारी सम्पत्ति दो बराबर बराबर भागोंमें बाँट ली। शोणितकुमारीने अपने भतीजे प्रताप नारायणसिंहको दत्तकपुत्र बनाया। उनकी देखादेखी अश्वमेधकुमारीने भी एक दत्तकपुत्र ग्रहण किया। प्रतापने सारी पैतृक सम्पत्ति पर दावा

किया। अश्वमेधकुमारीके दत्तकपुत्रने भी मातृसम्पत्ति पर अपना अधिकार जमाया।

महाराणी इन्द्रजितकुमारीने रामेश्वर, द्वारका आदि तीर्थस्थानोंमें पर्यटन कर वृन्दावनधाममें १८७८ ई०को प्राणत्याग किया। उनके १८७७ ई०के इच्छापत्रके अनुसार उनकी पुत्रवधू महाराणी राजरूपकुमारी सारी सम्पत्तिकी अधिकारिणी हुई।

महाराणी इन्द्रजितकुमारीने दो तीन लाख रुपये खर्च करके पटने और वृन्दावनमें दो बड़े बड़े देवालय निर्माण किये हैं। उन्होंने सिपाही विद्रोहके समय अपने अधिकारभुक्त कलकत्ते जानेका पथस्थित भदुयाचकी निरापद रक्खा था। विधवा राजरूपकुमारीके भी कोई पुत्र न था। उनकी एकमात्र कन्या राधाकिशोरी उत्तराधिकारी हुईं। महाराणी राजरूपकुमारी अत्यन्त दानशीला थीं। उनके यत्नसे टिकारी-राज्यके नाना स्थानोंमें अतिथिशाला और विद्यालय स्थापित हुए हैं, जिनमें प्रति वर्ष तीस हजार रुपये देने पड़ते हैं।

१८८८ ई०में राधेश्वरी एक पुत्ररत्नको छोड़ इस लोकसे चल बसी। लड़केका नाम था महाराजकुमार गोपालशरणनारायण सिंह। इनकी नाबालगी तक टिकारी राज्यका ८ आना हिस्सा कोर्ट आफ वार्डके देख रेखमें रहा। १९०४ ई०में जब ये राजगद्दी पर बैठे, तब इन्होंने बहुत अच्छे अच्छे काम कर दिखलाये। चाकन्द महालमें जारु और जमु नहर काटी गई जिससे जमीन पहलेसे बहुत उर्वरा हो गई, साथ साथ एक लाख रुपयेकी आय भी बढ़ गई। यहांकी हैमन्तिक फसल ही प्रधान है।

इस राज्यकी आय लगभग तेरह लाख रुपयेकी है और गवर्मेण्टको लगभग दो लाख रुपये करमें देने पड़ते हैं।

२ गया जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २४°५६´ उ० और देशा० ८४°५०´ पू०के मध्य मुरहर नदीके किनारे गया शहरसे १६ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ६४३७ है। इस शहरकी आय ६७००) रु० और व्यय ६१००) रु० है।

टिकाव (हिं० पु०) १ स्थिति. ठहराव। २ स्थिरता। ३ यात्रियोंके ठहरनेका स्थान, पड़ाव।

टिकिया (हिं० स्त्री०) १ चक्राकार छोटी मोटी वस्तु गोल और चिपटा छोटा टुकड़ा। २ वह चिपटा गोल टुकड़ा जो कोयलेकी बुकनीको किसी लसीली चीजमें सान कर बनाया जाता है। यह चिलम परकी आग सुलगानेके काममें आती है। ३ एक प्रकारकी गोल चिपटी मिठाई। ४ बाहर सिरा निकला हुआ बरतनके सांचेका ऊपरी भाग। ५ रोटीका एक भेद, लिट्टी। ६ ललाट, माथा। ७ वह बिन्दी जो माथे पर लगाई जाती है। ८ वह चिह्न या खड़ीरेखा जो उँगलीमें चूना, रंग या और कोई वस्तु पोत कर बनाई जाती है। अनपढ़ लोगोंको जब रोजाना लेन देनकी वस्तुका हिसाब रखना होता है, तो वे इस प्रकारके चिह्न प्राय: दीवार पर बनाते हैं।

टिकुरा (हिं० पु०) भीटा, टीला।

टिकुरी (हिं० स्त्री०) सूत कातनेकी फिरकी, टिकली।

टिकुला (हिं० पु०) टिकोरा देखो।

टिकुली (हिं० स्त्री०) टिकलि देखो।

टिकैत (हिं० पु०) १ राजाका उत्तराधिकारी कुमार, युवराज। २ अधिष्ठाता, सरदार।

टिकैतराय—लखनऊके नवाब आसफउद्दौलाके दीवान। ये अत्यन्त विद्योत्साही और १७७७ से १७९७ ई० तक विद्यमान थे। हिन्दीके कवि सागर, गिरधर और बेणीकवि इन तीनों कवियोंने स्वीकार किया है कि, उन्हें टिकैतरायसे बहुत कुछ सहायता मिली है। इनके नामका बाराबंकीके पास एक नगर भी है जो टिकैतनगर कहलाता है।

टिकोर (हिं० स्त्री०) टकोर देखो।

टिक्कड़ (हिं० पु०) १ बड़ी टिकिया। २ सेंकी हुई रोटी, लिट्टी। ३ मालपूवा।

टिक्का (हिं० पु०) १ मूँगफलीके पौधेका एक रोग। २ स्मरण, सुध, याद। ३ उँगलीमें रंग आदि लगा कर बनाया हुआ खड़ा चिह्न।

टिक्की (हिं० स्त्री०) १ टिकिया। २ लिट्टी, बाटी। ३ बिन्दी। ४ गोल टीका। ५ ताशकी बूटी। ६ उँगलीमें गीला चूना या रंग आदि पोत कर दीवार पर बनाई हुई खड़ी रेखा या चिह्न।

टिखटिख (हिं० स्त्री०) टिकटिक देखो।

टिघलना (हिं॰ क्रि॰) पिघलना, गलना।

टिघलाना (हिं॰ क्रि॰) पिघलाना।

टिचन (अं॰ वि॰) १ प्रस्तुत, तैयार, ठीक। २ उद्यत, मुस्तैद।

टिटकारना (हिं॰ क्रि॰) टिक टिक शब्द करके किसी पशुको हाँकना।

टिटिभ (सं॰ पु॰) टिटीत्यव्यक्तशब्दं भणति भण-ड। पक्षिविशेष, टिटिहरी नामका पक्षी।

टिटिभक (सं॰ पु॰) टिटिभ स्वार्थे कन्। टिटिभ देखो।

टिटिल (सं॰ क्ली॰) संख्याविशेष, १०० नागवलका एक टिटिल माना गया है।

टिटिह (हिं॰ पु॰) एक पक्षीका नाम।

टिटिहरी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी छोटी चिड़िया जो प्रायः पानीके किनारेमें ही पायी जाती है। इसका मस्तक लाल, गरदन सफ़ेद, पर चितकबरे, पीठ खैरे रंगकी और चोंच काली होती है। इनकी बोली कड़ुई होती है। कहा जाता है कि रातको यह अपने दोनों पैर ऊपर करके चित सोती है क्योंकि उसे यह भय लगा रहता है कि शायद आकाश न टूट पड़े।

टिटिह्य (हिं॰ पु॰) टिटिह देखो।

टिटिहारोर (हिं॰ पु॰) १ चिल्लाहट, शोरगुल। २ क्रन्दन, रोना पीटना।

टिट्टिभ (सं॰ पु॰-स्त्री॰) टिट्टीत्यव्यक्तशब्दं भणति भण-ड। १ पक्षिविशेष, टिटिह पक्षी। इसके पर्याय-टिटिभक और टिट्टीक। द्विजोंके लिए इसकी मांस-भक्षण निषेध है। २ त्रयोदश मन्वन्तरीय इन्द्रशत्रु, दानवविशेष, तेरहवें मन्वन्तरके एक दैत्यका नाम जो इन्द्रका शत्रु था। भगवान्‌ने मायारूप धारण कर इसको मारा था। (गरुडपु॰ ८७ अ॰) ३ वरुणके सभारक्षक दानवविशेष, वरुणकी सभाकी रक्षा करनेवाला एक असुरका नाम। (भारत २।९।१५)

टिट्टिभक (सं॰ पु॰) टिट्टिभ स्वार्थे-कन्। टिट्टिभ, टिड्ड।

टिड्डा (हिं॰ पु॰) पंखयुक्त एक प्रकारका कीड़ा। इसकी लम्बाई लगभग चार पाँच अंगुलकी होती है। रंगके भेदसे यह कई प्रकारका होता है।

टिड्डी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका उड़नेवाला कीड़ा। यह दल बांध कर चलता है और रास्तेके पेड़ पौधों और फसलको बड़ी हानि पहुँचाता है। जिस समय यह दल बांध कर ऊपरसे उड़ता है उस समय आकाश लाल बादलको घटाके समान दीख पड़ता है। ये हजार डेढ़ हजार कोस तककी लम्बी यात्रा करती हैं। जहां ये जाती हैं वहांकी फसलको नष्ट करती जाती हैं। ये पहाड़की कंदरा तथा रेगिस्तानोंमें रहती और बालूमें अंडे पारती हैं। अफ्रिकाके उत्तरीय और एशियाके दक्षिणी भागोंमें ये कई बार जाती आती हैं इन्हींके उत्पातसे वहांकी फसल अच्छी तरह होने नहीं पाती है।

टिढ़बिंगा (हिं॰ वि॰) वक्र टेढ़ामेढ़ा।

टिण्टिनिका (सं॰ स्त्री॰) १ अम्बुशिरीषिका, जलशिरिसका पेड़, दाढौन। २ जलौका, जोंक।

टिण्डिश (सं॰ पु॰) वृक्षविशेष, टिंडा, डेंड़सी। इसके पर्याय—रोमशफल, तिन्दिश सुनिनिर्मित और तिण्डिश है। इसका गुण—रोचक, भेदक, पित्तश्लेष्मा, अश्मरीनाशक, सुशीतल, वातल, रूक्ष और मूत्रल है।

टिप (हिं॰ स्त्री॰) साँप काटनेका एक प्रकार।

टिपटिप (हिं॰ स्त्री॰) बूँद बूँद गिरनेका शब्द।

टिपवाना (हिं॰ क्रि॰) १ दबवाना, मिसवाना। २ धीरे धीरे प्रहार करवाना, पिटवाना।

टिपारा (हिं॰ पु॰) मुकुटके आकारकी एक टोपी। इसमें कलगीकी तरह तीन शाखाएँ एक सिरे पर और बगलमें निकली होती हैं।

टिपुर (हिं॰ पु॰) १ अभिमान, घमंड, गुमान, गुरूर। २ पाखण्ड, आडम्बर।

टिप्पणी (हिं॰ स्त्री॰) टिप्पनी देखो।

टिप्पन (सं॰ पु॰) १ व्याख्या, टीका। २ जन्मकुण्डली, जन्मपत्री।

टिप्पनी (सं॰ स्त्री॰) व्याख्या, टीका।

टिप्पी (हिं॰ स्त्री॰) १ वह चिह्न जो उँगलीमें रंग आदि पोत कर बनाया जाता है। २ ताशकी बूटी।

टिफिन (अं॰ स्त्री॰) अंगरेजोंका दोपहरका जलपान।

टिबरी (हिं॰ स्त्री॰) पहाड़ोंकी छोटी चोटी।

टिमटिमाना (हिं॰ क्रि॰) १ कम प्रकाश देना, मन्द

मन्द जलना। २ झिलमिलाना। ३ मरणासन्न होना, मरनेके निकट होना।

टिमाक (हिं॰ स्त्री॰) सिंगार, बनाव, ठसक।

टिर (हिं॰ स्त्री॰) टर देखो।

टिरफिस (हिं॰ स्त्री॰) प्रतिवाद, विरोध।

टिलटिलाना (हिं॰ क्रि॰) दस्त आना।

टिलवा (हिं॰ पु॰) १ गठीला और टेढ़ा मेढ़ा लकड़ीका टुकड़ा। २ नाटा आदमी। ३ चापलूस आदमी।

टिलेहू (हिं॰ पु॰) सुमात्रा, जावा आदि टापुओंमें मिलनेवाला एक प्रकारका नेवला। इसका सिर सूअरके जैसा और पूँछ बहुत छोटी होती है।

टिल्ला (हिं॰ पु॰) धक्का, टकोर, चोट।

टिल्लेनवीसी (हिं॰ स्त्री॰) १ निकृष्ट सेवा, नीच सेवा। २ व्यर्थका काम, निठल्ला काम। ३ हीला हवाली, बहाना।

टिसुआ (हिं॰ पु॰) आँसू।

टिहुकना (हिं॰ क्रि॰) १ ठिठकना। चौंकना।

टिहुनी (हिं॰ स्त्री॰) १ घुटना। २ कोहनी।

टी (सं॰ स्त्री॰) संयुक्त वर्ण।

टींड (हिं॰ पु॰) रहटमें बांधनेकी हँडिया।

टींडसी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी बेल। यह ककड़ीकी जातिकी होती और इसमें गोल फल लगते हैं। इन फलोंकी तरकारी बनती है।

टींड़ा (हिं॰ पु॰) वह खूँटा जिससे जाँता घुमाया जाता है।

टीक (हिं॰ स्त्री॰) १ एक प्रकारका सोनेका गहना जो गलेमें पहना जाता है। २ माथेमें पहननेका सोनेका एक गहना।

टीकन (हिं॰ पु॰) वह खम्भा जो किसी बोझको रोकनेके लिये नीचेसे लगाया जाय, टाँड़, खम्भा।

टीका (सं॰ स्त्री॰) टीक्यते गम्यते बुध्यते वानया टीक-घञर्थे क-टाप्, च। १ व्याख्याग्रन्थ, किसी वाक्य या पदका अर्थ स्पष्ट करनेवाला वाक्य।

टीका (हिं॰ पु॰) १ वह चिह्न जिसे गीले चन्दन, केसर आदिसे मस्तक बाहु आदि अङ्गों पर सांप्रदायिक सङ्केत वा शोभाके लिये लगाते हैं, तिलक। २ विवाह-सम्बन्ध स्थिर करनेकी एक रीति। इसमें कन्या-पक्षके लोग वरके माथेमें दही अक्षत आदिका टीका लगाते और कुछ द्रव्य उसके साथ देते हैं। ३ माथेका वह भाग जो दोनों भौंके बीचमें होता है। ४ श्रेष्ठ मनुष्य, शिरोमणि। ५ राजसिंहासन पर प्रतिष्ठा, राज्याभिषेक, गद्दी। ६ राजाका वह पुत्र जो उनके मरनेके बाद गद्दी पर बैठे, युवराज। ७ आधिपत्यका चिह्न, प्रधानताकी छाप। ८ वह भेंट जो आसामी राजाको देते हैं। ९ माथे पर पहननेका एक आभूषण। १० घोड़ोंके माथेका मध्य-भाग जहां भँवरी होती है। ११ चिह्न, दाग, धब्बा। १२ शीतला रोगसे बचानेके लिये उसके चेप या रसको ले कर किसीके शरीरमें सूइयोंसे चुभा कर प्रविष्ट करनेकी क्रिया। इसका व्यवहार विशेष कर शीतला रोगसे बचानेके लिये ही इस देशमें बहुत पहलेसे चला आ रहा है। मनुष्य और गौके शरीरसे शीतला रोगके कारण जो पीप वा रस निकलता है उसीको ले कर प्राचीन कालमें टीका लगाया जाता था। उसी पीप वा रसको बीज वा नीर कहते हैं। प्राचीन आर्य ऋषि लोग भी अच्छी तरह जानते थे, कि गो-नीरका टीका ही निरापद है। मनुष्यके नीर द्वारा टीका देना मानो शीतला रोगको बुलाना है। कई बार तो इससे कितनोंकी जानें चली गई हैं। गो-नीरके टीकेमें वह भय नहीं है। यद्यपि इससे भी मारे शरीरमें गो-वसन्तका रस मिल जाता है, मगर उसका प्रकोप मनुष्य-वसन्तके जैसा भीषण नहीं है। यहाँ तक कि शीतला रोग रोकनेकी जो इसमें शक्ति है वह मनुष्य-नीरसे किसी अंशमें कम नहीं है।

शीतलाके नीरको रक्तके साथ मिश्रित कराना ही टीका लगानेका उद्देश्य है। इसका सञ्चार कई प्रकारसे होता है। शरीरके किसी स्थानमें अस्त्र द्वारा क्षत करके उसमें वसन्त (शीतला)-का रस देना ही टीका लगाना हुआ। सचराचर बाहु और हाथमें ही टीका लगाया जाता है। चमड़ेको छेद करनेके लिये सूई वा तेज छुरी ही काममें आती है। संथाल आदि असभ्य लोग अस्त्रसे क्षत करनेके बदले आगसे शरीरमें ३।४ फफोले डाल कर उनके फूटने पर शीतलाका नीर प्रविष्ट करते हैं। फलतः

इससे टीका लगानेका फल कम नहीं होता वरं उससे अधिक ही होता है।

कुछ दिन पहले तक हम लोगोंके देशमें मनुष्य-नीर द्वारा टीका लगाया जाता था जिसे देशी टीका कहते थे। वर्त्तमान प्रणालीसे गो-नीर द्वारा जो टीका लगाया जाता है उसे अङ्गरेजी टीका कहते हैं। देशी टीकासे क्षत स्थान बहुत जल्द सूज जाता है, ज्वर वेगसे आता है। और कभी कभी सारे शरीरमें शीतला निकल आती है। देशी टीका लेनेसे जब तक टीका सूख न जाता, तब तक अपने परिवारके सभी लोग शुद्धाचारसे रहते हैं, निरामिष खाते हैं और कपड़ा नहीं पछारते हैं अर्थात् शीतला रोग होने पर जो सब नियम पालन करने पड़ते हैं वही सब इसमें भी करने पड़ते। मसूरिका देखो। यथार्थमें देशी टीका कृत्रिम वसन्तके सिवा और कुछ नहीं है। गो-नीरका टीका लेनेमें वे सब कठोर नियम पालन नहीं करने पड़ते।

अंगरेजी टीका- गो-वसन्त नामक स्वतन्त्र व्याधि शरीरमें संक्रामित हो जाती है। मसूरिकाके साथ यदि इसकी तुलना की जाय, तो इसकी मारात्मक शक्ति बहुत सामान्य और अल्प कष्टदायक है। सम्प्रति यही टीका इस देशमें प्रचलित हुआ है। गवर्मेंटने मनुष्य-नीर द्वारा टीका लगानेकी प्रथा उठा दी है और समस्त प्रधान प्रधान नगरोंमें गो-नीरद्वारा टीका लगानेका केन्द्र-स्थान स्थापित कर दिया है। इन सब स्थानोंसे अनेक शिक्षित लोग गाँवोंमें टीका लगानेके लिये भेजे जाते हैं। इसके लिये किसीको कुछ खर्चना नहीं पड़ता है। कलकत्तेमें साधारणतः बलिष्ठ गाय या बछड़ेका नीर लेकर प्रत्यक्ष भावसे टीका लगाया जाता है। अन्यान्य स्थानोंमें गवर्मेंट द्वारा सञ्चित नीर भेजा जाता है। कहना नहीं पड़ेगा कि टीका लगानेकी प्रथा दिनों दिन जितनी ही बढ़ती जा रही है उतनी ही शीतला रोगसे मृत-संख्या कमती जाती है।

अङ्गरेजीमें टीका लगानेको भेक्सिनेशन (Vaccination) कहते हैं। इसका अर्थ है भेक्सिनिया अर्थात् गो-वसन्तरोगको मनुष्यके शरीरमें संक्रामित करना। सबसे पहले जेनर (Jennar) नामक एक चिकित्सकने इस महोपकारी विषयको यूरोपमें निकाला। १७९८ ई०में इन्होंने परीक्षालब्ध निम्नलिखित कई एक विषय जन-साधारणमें प्रकाश किये—

१ गो-वसन्तरोगको मनुष्यके शरीरमें संक्रामित करनेसे उसे शीतला निकलनेका डर नहीं रहता। २ गौके शरीरमें वसन्तरोगके अलावा एक और प्रकारकी फुंसी निकलती है जो देखनेमें ठीक वसन्तकी तरह लगती है। अतः उसके नीरसे टीका लगानेसे शीतला रोग होनेका डर बना ही रहता है। ३ सुविधा देख कर सभी समय निपुण अस्त्रवैद्य द्वारा गो-नीरका टीका लगाया जा सकता है। ४ एक मनुष्यको गो-नीरका टीका दे कर उसके नीरसे दूसरेको और फिर उसके नीरसे तीसरेको इसी प्रकार बहुतसे लोगोंमें इसका सञ्चार कर सकते हैं। अन्तिम मनुष्यको भी उसका वैसा ही असर पड़ेगा जैसा पहलेको गो-नीरका टीका लेनेसे पड़ता है।

टीका लगाते समय निम्नलिखित थोड़े विषयों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। आस पासमें वसन्त रोगका प्रादुर्भाव न रहे तो छोटे छोटे दुर्बल बच्चोंको टीका लगानेकी जरूरत नहीं। पेटमें दर्द होता हो, अथवा किसी प्रकारका चर्मरोग हो या कर्णमूल, ग्रीवा और कुक्षिमें उत्ताप मालूम पड़ता हो, तो टीका लगाना उचित नहीं है। अकसर देखा जाता है, कि एक वर्षसे कम उमरके बच्चे ही विशेष कर शीतला रोगसे आक्रान्त होते हैं। इसलिये बच्चा यदि सुस्थ और सबल हो, तो खूब थोड़ी उमरमें ही टीका लगाना उचित है। डा० सिटन (Dr. Seaton)-का कहना है, कि बड़े बड़े नगरोंमें स्थूलकाय सबल शिशुको १।१½ महीनेमें ही टीका लगाना चाहिये। अपेक्षाकृत दुर्बल शिशुको २।३ महीनेमें एवं टीका लगानेका जब तक बिलकुल अनुपयुक्त न हो, तब तक सभी बच्चोंको ३ महीनेमें टीका लगाना कर्त्तव्य है।

सुस्थ और सबल बच्चेके उत्थित टीकेसे नीर ग्रहण करना उचित है। असली नीर कुछ घना रहता है। अपक्व टीकेके पतले नीरसे टीका लगाना अच्छा नहीं। अधिक उमरके बालक और बालिकाकी अपेक्षा कम उमरके बच्चेका ही नीर उत्कृष्ट है। विशेषतः काले,

घने, चिकने और परिष्कार चमड़े वाले बच्चेके शरीरमें ही सर्वोत्कृष्ट नीर पाया जाता है। साथ साथ वही नीर ले कर टीका लगाना ही प्रशस्त है। यदि उस तरहका बच्चा न पाया जाय तो अन्तमें रक्षित नीरसे ही टीका लगाना पड़ता है। लेकिन यह जरूरी है कि अच्छा नीर जब तक न मिले, तब तक टीका बन्द रखना ही उचित है। एक परिपक्व क्षतको कुछ चीर कर उससे जो रस निकलता है, उससे ५।६ मनुष्योंको टीका लगा सकते हैं और भविष्यमें ५।६ मनुष्योंको टीका लगानेके लिये हाथी दाँतकी बनी हुई सीकके मुँहमें रस लगा कर ही काम चल सकता है।

टीका किस तरहसे लगाया जाता है, अब उसका संक्षिप्त विवरण यहां दिया जाता है। बाहुका ऊपरी भाग ही टीका लगानेका उपयुक्त स्थान है। इस स्थानके चमड़ेको खींच कर उसे एक परिष्कार सुतीक्ष्ण बीजरक्षित छुरीके मुँहसे कुछ टेढ़ा करके चीर देते हैं। बाद चमड़ेको छोड़ देने पर वह नीर छिन्न स्थान पर रुक जाता है। फलतः चमड़ेमें बीज प्रवेश और शोषित कराना ही टीका लगानेका उद्देश्य है। एक स्थान पर टीका लगानेसे यदि वह न उठे, तो इस आशङ्काको दूर करनेके लिये प्रत्येक बाहु पर १ इञ्चकी दूरी पर कमसे कम तीन जगह टीका लगाना कर्त्तव्य है। सीकमें यदि नीर सूख गया हो, तो उसे पहले उष्ण जल वा वाष्पमें डाल कर सलाईके मुँह तक लगाये रहना चाहिये। बहुतेरे डाक्टर चमड़ेको समान्तर भावमें और थोड़े आड़े करके चीर देते हैं। कोई तो केवल दुअन्नी भर भागमें अनेक बार भेद कर ही उनमें नीर लगा देते हैं। फिर अनेक डाक्टर ऐसे भी हैं जो भिदे हुए स्थानके चमड़ेको आड़े करके काट डालते हैं। शेषोक्त प्रकारका टीका लगाना ही डा० सिटनके मतसे सर्वोत्कृष्ट है। अच्छी तरहसे टीका लगाये जाने पर वह स्थान २।३ दिनमें सूज जाता है। ३।४ दिनमें लाल और कठिन हो जाता है और ५।६ दिनमें इसके मध्यभाग पर कुछ सफेद फुंसी निकल आती हैं। इससे पीप निकलती है। आठवें दिनमें टीका ठीक अवस्था पर आ जाता है। नवें और दशवें दिनमें इसके चारों ओर लाल हो कर सूजन पड़ जाती है और ग्यारहवें दिनमें वह फुंसी और भी फैल जाती है, मगर मध्य भागकी सूजन कुछ कम जाती है। चारों ओरके फूले हुए स्थानका घेरा लगभग १ इञ्चसे ३ इञ्च तक हो जाता है। पीछे तेरहवें या चौदहवें दिनमें वह फोड़ा सूखने लगता है और एक सप्ताहके भीतर एक दम मर मिट जाता है। अर्थात् पचीस दिनसे ज्यादे फोड़ा रहने नहीं पाता है। पीछे वह स्थान गोल, आजीवन लोमशून्य कुछ निम्न और विन्दुमय वा सूक्ष्म छिद्रयुक्त रह जाता है।

टीका लेने पर प्रायःही चर्मकी रूक्षता, पाकयन्त्रकी विशृङ्खला और बगलकी शिराका फूलना आदि उपद्रव देखे जाते हैं। यद्यपि ये सब उपद्रव उतने कष्टकर नहीं हैं, तो भी शरीरमें एक प्रकारकी पीड़ा मालूम पड़ती है। टीकेके आनुसङ्गिक उपसर्गके लिये चिकित्साकी जरूरत नहीं पड़ती। कभी तो टीका बहुत समय तक रह जाता और कभी शीघ्रही सूख जाता है। जो टीका अच्छी तरहसे उठ कर नियमित रूपसे सूख जाय, वही वसन्तनिवारक है, अन्यथा उस टीकेका कोई फल नहीं।

प्रायः देखा जाता है, कि टीका कई जगह अधिकतर नहीं उठता है। इसके कई एक कारण हो सकते हैं। पहला टीका लगानेवाले विशेष अभिज्ञ नहीं हैं और उपयुक्त परिमाणसे नीरका प्रयोग नहीं करते; दूसरा नीरकी अनुपयोगिता, तीसरा यंत्र और सतर्कताका अभाव। इससे अनेक समय टीकाके निष्फल नहीं होने पर भी वह अभिप्रेत फलोत्पादन नहीं करता। चौथा बहुत पुराने नीरका व्यवहार।

डा० सिटन साहबने परीक्षा करके कहा है, कि पूर्णरूपसे टीका लेनेका फल असम्पूर्ण टीकेकी अपेक्षा २० गुण वसन्तनिवारक है और सबसे निकृष्ट टीका भी टीका नहीं लेनेकी अपेक्षा ४७ गुण वसन्तनिवारक है। और भी देखा गया है, कि टीका लेनेके बाद भी यदि शीतला रोग हो जाय, तो वह उतना मारात्मक नहीं होता तथा आरोग्य होने पर शरीरको उतना विकृत नहीं कर डालता।

एकबार टीका लिये जानेके बाद कितने दिन तक

इसकी शक्ति रहती है, वह आज तक स्थिर नहीं हुआ है। जो कुछ हो, जब देखा जाता है कि एक बार वसन्त-प्रपीड़ित व्यक्ति फिरसे भी वसन्तरोगाक्रान्त होते हैं, तो अन्तत: हर ७वें वर्षमें टीका लेना उचित है। टीकाके अच्छी तरह नहीं उगने पर फिर भी टीका लेना अच्छा है। कोई कोई डाक्टर तो हर तीसरे वर्षमें या उससे भी कम दिनमें टीका लेनेकी सलाह देते हैं।

टीकेका नीर लेना बहुत ही सावधानीका काम है। जिस बच्चेको शीतलासे नीर लिया जाय, वह यदि कोढ़ी हो अथवा उपदंश आदि रोगोंसे आक्रान्त हो, तो वही सब रोग हजारों बालकोंमें जिन्हें टीका लगाया जाता है, फैल जाते हैं। इसी कारण सबसे पहले लड़केके माता-पिताको कोई संक्रामक रोग है या नहीं भलीभाँति जाँच कर लेनी चाहिये। फिर कोई डाक्टर कहते हैं; कि टीका द्वारा व्याधि संक्रामित नहीं होती।

मनुष्य और गौके वसन्तरोगके विषयमें मतभेद है। डा० जेनर कहते हैं कि यह यथार्थमें एकही रोग है। परीक्षा करके देखा गया है, कि गौको मनुष्य-नीर द्वारा टीका लगानेसे उसे शीतला रोग हुआ है और पीछे उसकी शीतलाका नीर ले कर टीका लगानेसे प्रकृत गो-नीरकी नाईं फल हुआ है। अतः मनुष्य और गो दोनोंका शीतला रोग एक ही है। घोड़े आदि भी इस रोगसे आक्रान्त होते हैं। घोड़ेके नीरसे टीका लगाना भी गो-नीर सरीखा फलप्रद है। बेलुचिस्तानके ऊंटोंमें भी एक प्रकारका शीतला रोग व्याप्त है। लेकिन विशेषता यह है कि उस अवस्थामें जो इसका प्रतिपालन करते हैं वा दूध पीते हैं, वे अकस्मात् वसन्तरोगसे आक्रान्त नहीं होते। भारतवर्षमें टीकाका प्रचार अंगरेजी शासनकालमें हुआ है।

प्राचीन कालमें भारतवासी गो-नीर और मनुष्य-नीर दोनोंमेंसे किसी एकके द्वारा जैसी सुविधा देखते टीका लगाते थे। इसके विषयमें धन्वन्तरिने कहा है—

"धेनुस्तन्यमसूरिका नराणाञ्च मसूरिका।
तज्जलं बाहुमूलाच्च शस्त्रान्तेन गृहीतवान्॥
बाहुमूले च शस्त्राणि रक्तोत्पत्तिकराणि च।
तज्जलं रक्तमिलितं स्फोटकज्वरसम्भवम्॥"

(धन्वन्तरि कृत शाक्तेय ग्रन्थ)

धेनुके स्तनमें अथवा मनुष्यके बाहुमूलमें जो शीतला निकलती है, उसके रसको शस्त्रके अग्रभागमें ले कर बाहुमूलमें प्रविष्ट करना चाहिये। शस्त्रद्वारा बाहुमूलसे जो रक्त निकलेगा, उसके साथ वह रस मिल कर स्फोटकज्वर उत्पादन करता है।

१२ विवृति, अर्थका विवरण, व्याख्या।

टीकाकार (सं० पु०) टीकां करोति कृ-अण्। व्याख्याकार, वह जो किसी ग्रन्थका अर्थ लिखता हो।

टीटा (हिं० पु०) टना देखो।

टीण्डल—सुप्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक। १८२० ई०में आयर्लैण्डके कार्लो नगरके निकटवर्ती एक छोटेसे गाँवमें इनका जन्म हुआ था। टीण्डलके पितामाता अत्यन्त दरिद्र थे। दरिद्रताके कारण वे पुत्रको पढ़ानेमें असमर्थ थे। इसलिए थोड़ीसी अंग्रेजी पढ़ा कर उन्हें शिक्षा बन्द कर देनी पड़ी। गार्हस्थ्य अवस्थाकी अतीव शोचनीय देख कर, बहुत थोड़ी उम्रमें ही टीण्डल स्कूल छोड़ कर सेना-विभागमें किसी काम पर भरती हो गये।

जो जड़-विज्ञानके अत्यन्त गुह्य तत्त्वोंका आविष्कार करनेके लिए उत्पन्न हुए थे, उन्हें ये सब काम क्यों अच्छे लगने लगे? कुछ दिनों बाद इन्होंने वह काम छोड़ दिया और मञ्चेष्टरके एक कारखानेमें काम करते हुए यन्त्रादिका काम सीखने लगे। इस अवस्थामें उन्हें ज्यादा दिन न रहना पड़ा; कुछ ही दिनोंमें वे कल-कारखानेके काममें विशेष व्युत्पन्न हो गये और शीघ्र ही मञ्चेष्टरकी रेल्वे कम्पनीमें इञ्जीनियर नियुक्त हो गये। टीण्डल बड़े सम्मानके साथ तीन वर्ष तक इस कामको करते रहे। इस समय इनकी कार्यकुशलताके कारण मञ्चेष्टरकी रेल्वे कम्पनीको विशेष लाभ हुआ था। १८४७ ई०में हम्पसायरमें कुइनस्-उड-कालेज प्रतिष्ठित हुआ, कालेजके अधिकारियोंने टीण्डलका अतुलनीय बुद्धिप्राखर्य देख कर उन्हें उक्त कालेजका प्रोफेसर नियुक्त किया। कुइनस्-उड-कालेज ही टीण्डलका प्रथम उल्लेखनीय कार्यक्षेत्र है। यहीं प्रसिद्ध रसायनवित् फ्राङ्कलण्डके साथ टीण्डलकी मित्रता हुई थी और यहीं रह कर उन्होंने बड़े परिश्रमके साथ पदार्थविद्या-सम्बन्धी नाना अज्ञात सत्योंका आविष्कार कर जगत्में ख्याति पाई थी।

वर्ष भर अध्यापकीका कार्य करनेसे टीण्डलका ज्ञान और भी बढ़ गया। वे विज्ञानुशीलनकी इच्छासे जर्मनी चल दिये। प्रिय मित्र फैङ्कलैण्ड भी इनके साथ गये थे। दोनों मित्रोंने मारवर्ग विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध अध्यापकोंके पास कुछ दिन रह कर अध्ययन किया पीछे उन्होंने स्वाधीनभावसे वैज्ञानिक तत्त्वोंका अनुसन्धान और चिन्ता करनेका निश्चय किया। बूनसेन आदि प्रसिद्ध अध्यापकगण वैदेशिक छात्रयुगलकी प्रतिभाको देख कर विस्मित हुए थे; उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा था कि अल्पायास और अल्प समयमें दुरूह वैज्ञानिक विषयोंको सम्पूर्णतया सीख लेना, केवलमात्र आइरीस युवक टीण्डलके लिए ही सम्भवपर था। विश्वविद्यालयकी पढ़ाई समाप्त कर ये वार्लिनस्थ सुप्रसिद्ध मैगनस परीक्षागारमें स्वाधीनतापूर्वक नाना वैज्ञानिक गवेषणाओंके लिए नियुक्त हुए। इनके इस समयके अनुसन्धान और चिन्ताओंके फलसे ही इनके जीवनकी महती कीर्ति थी। इनके द्वारा आविष्कृत चुम्बक और आलोक-विज्ञानके सत्य आधुनिक विज्ञानकी अतुलनीय सम्पत्ति है, इस बातको सभी स्वीकार करते हैं।

१८५१ ई०में टीण्डल जर्मनीसे स्वदेशको लौट आये स्वदेशकी विज्ञान-मण्डलीमें ये विशेष आदरके साथ सम्मानित हुए थे और नाना वैज्ञानिक समाजोंसे इन्हें नाना सम्मानसूचक उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं। कुछ दिनोंमें ये सुप्रसिद्ध "रायल इनष्टिटिउसन"में जड़-विज्ञानके आचार्य पद पर नियुक्त हो गये और विख्यात वैज्ञानिक फैड़ाडके पदत्यागके बाद उनके स्थान पर तत्त्वावधायकताका कार्य करने लगे।

चार वर्ष तक इङ्गलैण्डमें उपर्युक्त कार्योंमें नियुक्त रह कर १८५६ ई०में ये सुइज़रलैण्ड चल दिये। सुइजरलैण्डके पार्वत्यप्रदेशस्थ वर्फकी गतिका निर्णय करना तथा कठिन तुषारराशिका तरल पदार्थवत् प्रवाहित होनेके यथार्थ कारणकी खोज करना, यही इनका उद्देश्य था। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हक्सली टीण्डलके साथ थे और भीषण जनहीन पार्वत्य प्रदेशमें वैज्ञानिक बन्धुके परिदर्शन-कार्यमें सहायता पहुँचाया करते थे। कुछ दिन परिदर्शनादि करनेके बाद टीण्डलने स्वदेश लौट कर तुषारराशिकी गतिके सम्बन्धमें एक सम्पूर्ण नूतन पुस्तक लिख डाली। इस पुस्तकमें गतिके सम्बन्धमें जितने भी कारण दिखलाये गये थे, आजकल वे सब विज्ञान-सम्मत माने जाते हैं।

१८७२ ई०में टीण्डल अमेरिका पहुंचे। विज्ञानानुरागी मार्कीनोंने प्रत्येक नगरमें इनकी विशेष अभ्यर्थना की थी। अमेरिका-भ्रमणके समय आप निश्चिन्त न थे; युक्तराज्यके प्रधान प्रधान नगरोंमें आपने विविध वैज्ञानिक विषयोंकी वक्तृताएँ दी थीं। इन वक्तृताओंमेंसे २५।३० तो लिपिबद्ध हैं और उनकी भाषा अत्यन्त सरल है। विज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति भी सहजमें वैज्ञानिक तत्त्वोंको समझ सकता है। टीण्डल केवल अपनी बुद्धिवृत्तिकी चरमोन्नति कर शान्त न होते थे; किन्तु जिससे विज्ञानानुरागी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति स्वाधीन चिन्ता और गवेषणा द्वारा विज्ञानकी पुष्टि कर सकें, उसके भी उपाय निकालते थे तथा दरिद्र वैज्ञानिकोंको हर एक विषयमें उत्साह देते थे। अमेरिकामें आपने वक्तृता द्वारा करीब साठ हजार रुपये कमाये, जिसमेंसे अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए कुछ छोड़ कर अवशिष्ट रुपयोंसे अमेरिकाके कलोम्बिया कालेजमें एक छात्र-वृत्तिकी स्थापना कर आये। अमेरिकामें स्वाधीन भावसे चिन्ता और वैज्ञानिक अनुसन्धान करनेवाले योग्य छात्रोंको अब भी यह वृत्ति दी जाती है।

अमेरिकासे स्वदेश लौट कर अध्यापक टीण्डल ताप-निवारणके विषयमें नाना प्रकार अनुसन्धान करनेमें नियुक्त हुए, और थोड़े ही दिनोंमें इस विषयमें अपना स्वाधीन मत प्रकट किया इससे उनकी ख्याति और भी बढ़ गई थी।

१८७६ ई०में ५६ वर्षकी अवस्थामें टीण्डलने लार्ड क्लाडहामिल्टनकी प्रथमा दुहिताका पाणिग्रहण किया। इनका दाम्पत्य-जीवन बड़े सुखसे बीता। ज्यादा उम्रमें विवाह करनेसे प्रायः गार्हस्थ्य शान्तिभङ्ग होनेका डर रहता है, किन्तु इनका शेष जीवन बड़े आनन्दसे बीता था। वृद्ध टीण्डलने करीब बीस बाईस वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखे हैं। इनका प्रत्येक ग्रन्थ सुन्दर और सरल है। सरल भाषामें ग्रन्थ लिखना, यह उनका एक प्रधान गुण

था और इस गुणके कारण ही साधारण पाठकोंके वे आदरणीय थे।

जराग्रस्त हो कर टीण्डलने शेष जीवनमें कुछ शारीरिक कष्ट पाया था। इनके बन्धुवर्ग और चिकित्सकोंने सोचा था, इस पीड़ासे अध्यापक टीण्डलको अब छुटकारा नहीं मिल सकता। परन्तु एक आकस्मिक कारणसे टीण्डलकी मृत्यु हो गई। कुछ दिनोंसे ये नाना प्रकारकी पीड़ाओंसे तकलीफ पा रहे थे; किन्तु चिकित्सकोंके परामर्शसे शारीरिक यन्त्रणादिके निवारणार्थ नियमित रूपसे "सलफेट आव मगनेशियम्" काममें लाते थे और अनिद्रा दूर करनेके लिए कभी कभी दो एक बूंद 'क्लोरल सीराप' पी लिया करते थे। एक दिन टीण्डलकी स्त्रीने भूलसे ज्यादा 'क्लोरल" पिला दी, जिससे उनकी मृत्यु हो गई।

बहुतोंका कहना है, कि टीण्डल ईश्वरको सत्ता पर विश्वास न करते थे और न उनकी ईसाई धर्म पर विशेष श्रद्धा ही थी। बाइबेलमें लिखित "मिराकल" आदिके विरुद्ध लेखनी चलानेसे पदरी लोग इन्हें ईसाई धर्मका विरोधी समझते थे। अक्सफोर्डकी डी॰ सी॰ एल॰ उपाधि ग्रहण करते समय टीण्डलकी आस्तिकताके विषयमें ज़िक्र उठा था; किन्तु कोई आपत्ति कार्यकारी न हुई। टीण्डलका कहना था कि "उच्छृङ्खल इच्छाओंका नीतिके बन्धनों द्वारा दमन करना मनुष्यका प्रधान कार्य है, एवं पाशवप्रवृत्तिको जो जितना दमन करेंगे, वे उतने ही आदर्श चारित्रके निकटस्थ होवेंगे।"

टीन (अं॰ पु॰) १ एक रासायनिक धातु। त्रपु देखो। २ लोहेकी पतली चद्दर जिस पर रांगेकी कलई की हुई रहती है। ३ लोहेकी पतली चद्दरका बना हुआ बरतन।

टीप (हिं॰ स्त्री॰) १ दबाव, दाब। २ हलका प्रहार। ३ गचकी पिटाई। ४ टंकार, ध्वनि, घोर शब्द। ५ जोरकी तान। ६ दूध और पानीका शीरा। ७ स्मरण रखनेके लिये किसी बातको टांक लेनेकी क्रिया, नोट। ८ दस्तावेज। ९ हुंडी, चेक। १० कम्पनी, सेनाका एक भाग। ११ गंजीफ़ेका एक खेल। १२ टिप्पन, कुंडली। १३ वह लकीर जो बिना पलस्तरकी दीवारमें ईंटोंके जोड़ोंमें मसाला दे कर नहलेसे बनाई जाती है। १४ हाथीके शरीर पर लेप करनेकी औषध। १५ महाजनका एक कागज। इस पर वे फसलके समय ब्याजके बदलेमें अनाज आदि देनेका इकरार लिखा लेते हैं।

टीपटाप (हिं॰ स्त्री॰) दिखावट, ठाठ बाट।

टीपन (हिं॰ स्त्री॰) गांठ, टांका, बखा।

टीपना (हिं॰ क्रि॰) १ चापना, मसकना। २ हलका प्रहार करना, धीरे धीरे ठोकना। ३ ऊँचे स्वरसे गाना, जोरकी तान देना। ४ अङ्कित कर लेना, दर्ज कर लेना, लिख लेना। ५ गंजीफेके खेलमें दो पत्तोंसे एक पत्ता जीतना।

टीपू शाह—आर्कटके एक प्रसिद्ध मुसलमान फकीर। इन्हींके नामानुसार मैसूरके शासनकर्त्ता प्रसिद्ध टीपू सुलतानका नामकरण हुआ था। टीपू सुलतानके पिता हैदरअली इनकी अत्यन्त भक्ति करते थे। अब भी टीपू शाहकी कब्र पर बहुतसे फकीर आया करते हैं। कर्णाटी भाषामें टीपू शब्दका अर्थ व्याघ्र होता है।

टीपू सुलतान—मैसूरके राजा हैदरअलीके पुत्र। १७४९ ई॰में इनका जन्म हुआ था। जिस समय खण्डेरावने मराठी सेनाकी सहायतासे हैदरअलीके विरुद्ध युद्धघोषणा की थी, जिस समय हैदरअली १०० अश्वारोहियोंके साथ गम्भीर रात्रिमें शत्रुके भयसे भाग गये थे, उस समय टीपूकी उम्र कुल ९ वर्षकी थी। हैदरअलीके परिवारवर्गके साथ टीपू भी महाराष्ट्रों द्वारा कैद किये गये थे। हैदरअलीके साथ निबटेरा हो जाने पर ये छूट गये थे। हैदरअली देखो।

जिस समय टीपूकी उम्र १७ वर्षकी थी, और हैदरके साथ अंग्रेजोंका घोर युद्ध चल रहा था, उस समय युवक टीपू साहब सेना सहित मद्राजके चारों तरफ लूट मचा रहे थे।

१७८०में अंग्रेजोंके हैदरअलीके विरुद्ध अस्त्रधारण करने पर हैदरअलीने टीपू सुलतानको ५००० पैदल और ६००० अश्वारोही सेनाके साथ कर्नल बेलीको रोकनेके लिए भेजा था। ६ सेप्टेम्बरको इन्होंने कर्नल बेली पर आक्रमण किया था, इनके आक्रमणसे भीत हो कर अंग्रेजसेनानायक हेक्टरने मनरोसे सहायता मांगी थी। उसके बाद हैदरअली जब महम्मदअलीको शासित

करनेके लिए आर्काटकी तरफ गये थे, उस समय टीपूने वन्दीवास अवरोध किया था। उस समय टीपूके रणनैपुण्य और कार्यकुशलताको देख कर अंग्रेजसेनानायक तक चमत्कृत हो गये थे। जिस दिन अंग्रेजसेनानायक आरनीकी तरफ गये, उस दिन हैदरने बहुतसी सेना दे कर टीपूको आरनी भेज दिया। आरनीमें हैदरका मुख्य अड्डा था। अंग्रेजसेनापति सर आयार कुटका इसीलिए आरनी पर विशेष लक्ष्य था। १७८२ ई०में २री जूनको सेनापतिने आरनीके पास शिविर स्थापित किया। इस समय मौका देख कर टीपू अंग्रेजी सेना पर गोला बरसाने लगे। अंग्रेजी फौज घबरा गई। उस दिन टीपूकी ही जय हुई। सर आयार कुटको मद्राजमें पृष्ठप्रदर्शन करनेके लिए वाध्य होना पड़ा। २० नवम्बरको कर्नल हम्बरष्टोनने पोनानीकी तरफ सेना चलाई। टीपूने फरासीसी-सेनानायक लालिके साथ ब्रटिशसेना पर आक्रमण किया था। इस समय वे सर्वदा ही रणक्षेत्रमें रहते थे।

७ दिसम्बरको वीरवर हैदरअलीने अपने तम्बूमें प्राणत्याग किया, उस समय चारों तरफ विपद् देख कर पूर्णिया और कृष्णराव नामक दोनों मन्त्रियोंने उनकी मृत्युसंवाद प्रकट नहीं होने दिया। हैदरके द्वितीय पुत्र अबदुल करीमको यह बात किसी तरह मालूम पड़ गई; वे दो सेनापतियोंकी सहायतासे पितृसिंहासन अधिकार करनेके लिए षड़यन्त्र रचने लगे। किन्तु विज्ञ मन्त्रियोंके कौशलसे शीघ्र ही षड़यन्त्र प्रकट हो गया दोनों मन्त्रियोंने यथासमय विश्वस्त अनुचरके जरिये टीपूको पिताका मृत्युसंवाद भेजा। टीपूको ११ तारीखको यह संवाद मिला था, देरी न कर शीघ्रही वे (१७८३ ई०की २री जनवरीको) पितृशिविरमें आ पहुँचे। उस समय तक भी सबको हैदरकी मृत्युका समाचार नहीं मालूम हुआ था। टीपूने शामको प्रधान प्रधान कर्मचारियोंको बुला कर एक सभा की। सभामें वे मलिन वेशमें साधारण एक गलीचे पर बैठे थे। उनकी अवस्था देख कर सभी लोग चौंक पड़े। शीघ्र ही सबको हैदरअलीका मृत्यु-संवाद मालूम हो गया। अमात्योंने टीपूको मसनद पर बैठानेके लिए अनुरोध किया; किन्तु सुचतुर टीपूने अतिशय पितृशोक प्रकट करके उस अनुरोधकी रक्षा करनेमें असमर्थता दिखाई दोनों सुचतुर मन्त्रियोंके कौशलसे टीपू सुलतान हो गये।

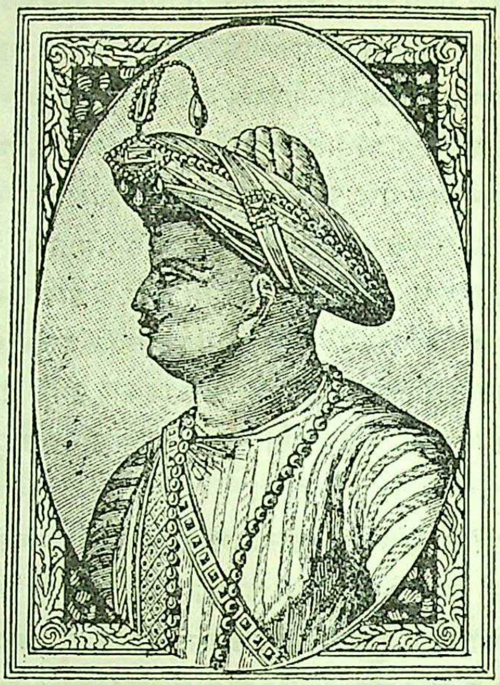

टीपू सुलतान।

हैदरअलीके मृत्युसंवादको सुन कर अंग्रेज लोग महिसुर-राज्य पर आक्रमण करनेके लिए अभिसन्धि करने लगे; किन्तु अंग्रेज-राजपुरुषोंके मतभेदके कारण उन्होंने मौका और सुभीता खो दिया। टीपूने सुलतान हो कर प्रथमतः युद्धविग्रहमें मन न दिया था; उन्होंने कर्णाटकसे अपना तमाम दलबल हटा लिया, पश्चिमकी तरफ सिर्फ एक दल फरासीसी सेना रही। हेष्टिंसने सर आयार कुटको फिर मद्राज भेजा, किन्तु वृद्धसेनापतिने रोग और पथकष्टके कारण मार्गमें ही लीलासंवरण की। फरासीसी-सेनानायक बूसी भारतमें आये और १० अप्रीलको उन्होंने कुड्डालूरमें फरासीसी सेनाका आधिपत्य ग्रहण किया। समय पर टीपूको सहायता पहुंचानेकी बात थी, उस समय अंग्रेजोंकी अवस्था बड़ी सङ्कटजनक थी। इसके थोड़े ही दिन बाद इंग्लैण्ड और फ्रान्समें एक सन्धि स्थापित हुई। बूसीने जो सेना टीपूके कार्यमें लगा रक्खी थी, अंग्रेजोंसे सन्धि हो जानेसे उसको हटा लिया।

उधर बम्बई गवर्मेण्टने टीपूके विरुद्ध जनरल स्याथूको भेज दिया था। मैसूर अधित्यकास्थित वेदनूर अंग्रेजोंके अधिकारमें हो गया था। टीपूने ९ अप्रीलको आ कर उस स्थानको घेर लिया। अंग्रेजोंने ५ महीने तक इसकी रक्षाके लिए कोशिश की आखिर रक्षाका कुछ उपाय न देख कर सन्धिपूर्वक आत्मसमर्पण करनेको वाध्य होना पड़ा। टीपूने पराजित अंग्रेजी सेनाको मैसूरके किलेमें कैद कर रक्खा।

वेदनूरसे प्राय: एक लाख सेना ले कर टीपू मङ्गलोरको तरफ बढ़े। यहां कर्नल कम्बेलके अधीन ७०० अंग्रेजी और २८०० देशीय सेना दुर्गकी रक्षा कर रही थी। २री अगस्त तक उन लोगोंने टीपूके प्रवल आक्रमण सहे थे। बादमें ३० जनवरी तक कोई युद्धविग्रह नहीं हुआ; किन्तु रसदके अभावसे उनको वाध्य हो कर तेलिचेरीको तरफ चला जाना पड़ा।

इधर अंग्रेज सेनानायक कर्नल फुलारटनने १३००० सेना ले कर दिन्दिगुल, पालघाटचेरी और कोयम्बातूर पर अधिकार कर लिया। अब वे भी महिसूर राजधानी पर आक्रमण करनेके लिए अग्रसर हुए। और एक दल सेना महिसूरके उत्तर-पूर्वांशस्थित कार्पाराज्यमें उपस्थित थी; टीपूके अत्याचारसे राज्यस्थित हिन्दू अधिवासिगण सुलतानके विरुद्ध हो गये थे। वे भी इस समय महिसूरके पूर्वतन राजाको वृटिशकी सहायतासे टीपूके हाथसे मुक्त करनेके लिए विशेष चेष्टा कर रहे थे। इस समयमें अंग्रेजोंके लिए बहुत कुछ सुभीता होने पर भी लार्ड माकार्टनि बड़े लाटकी बात न मान कर टीपूके साथ सन्धि स्थापन करनेको वाध्य हुए थे। मद्राजीमन्त्रिसभाने टीपूके पास दो कमिश्नरोंको भेजा किन्तु टीपूने तीन मास तक व्यर्थ उनको रोक रक्खा। इसके बाद उन्होंने अपने आदमीके साथ उनको मद्राज भेज दिया।

बड़े लाटने सन्धिके विषयमें विशेष आपत्ति की थी, उनका कहना था कि, यदि सन्धि करनी हो हो तो महिसूर राजधानीमें उपस्थित हो कर करनी होगी। किन्तु लार्ड माकार्टनिने अपनी इच्छानुसार टीपूके दूतके साथ फिर कमिश्नरोंको भेज दिया। मार्गमें सभी उनकी हँसी करने लगे, पद पद पर वे लाञ्छित होने लगे। मङ्गलूरमें उनके तम्बूके सामने दो फांसी-काठ स्थापित किये गये। अंग्रेजराजपुरुषोंने जो सोचा था, वही हुआ। उन दोनोंने बड़ी मुसीबतसे छिपी तौरसे एक अंग्रेजी जहाज पर चढ़ कर अपने प्राण बचाये।

१७८४ ई०में ११ मार्चको टीपूके एक अमात्य लिख गये हैं कि-"अंग्रेज कमिश्नरोंने अनावृत मस्तकसे खड़े हो कर सन्धिपत्र हाथमें लिए हुए २ घण्टे तक कितनी ही खुशामद की और मनोमुग्धकर बातें कह कर सन्धिपत्र पर सम्मति देनेके लिए अनुरोध किया था। पूना और हैद्राबादके वकीलोंने भी उस समय विशेष अनुनय विनय किया था, आखिर सुलतान सहमत हो गये थे।" इस सन्धिसे स्थिर हुआ था कि, परस्पर कोई विवाद विसम्वाद वा युद्धविग्रह न कर सकेंगे। सन्धिके अनुसार १८० अंग्रेज-राजपुरुषों, ९०० अंग्रेजों और १६०० देशीय सेनाने छुटकारा पाया। इन्होंके जरिये टीपूके अत्याचार, जनरल स्याथू और अन्यान्य अंग्रेज-सेनापतियोंकी हत्याकी बात मालूम पड़ी। सन्धि हुई तो सही, पर स्थायी नहीं हुई।

१७८५ ई०में अंग्रेजोंने बंगलोर और महाराष्ट्र राज्यकी रक्षाके लिए तीन दल पलटें भेजी; किन्तु नानाफ़ड़नवीसके प्रस्ताव अग्राह्य करने पर टीपू सुलतानका दोष प्रकट हो गया और यहींसे सन्धिभङ्गका सूत्रपात हुआ।

उधर नानाफ़ड़नवीस टीपूसे चौथ वसूल करनेके लिए अग्रसर हुए। निश्चय किया कि, यदि टीपू चौथ देनेमें असम्मत हों, तो अवश्य ही घोरतर युद्ध होगा। १७८४ ई०के जुलाई महीनेमें नाफ़नाड़नवीसने भीमानदीके किनारे यातगिर नामक स्थान पर निजामसे मुलाकात की। उनके साथ मित्रता स्थापन कर वे चुपचाप टीपूके विरुद्ध युद्ध करनेका आयोजन करने लगे। यह संवाद शीघ्र ही टीपूके कानों तक पहुंचा। टीपू शीघ्रही युद्धकी तैयारियां करके निजामसे बीजापुर प्रदेश मांग बैठे और निजामराज्यमें उनके द्वारा स्थापित परिमाणादि चलानेका आदेश दिया। इस असङ्गत प्रस्तावसे निजामने अपना अपमान समझा, किन्तु उस समय उनकी ऐसी क्षमता न थी कि,

टीपूके विरुद्ध अस्त्रधारण कर सकें, वरन उन्हें, नानाफड़नवीसके साथ जो उन्होंने अभिसन्धि की थी, वह भी छोड़ देनी पड़ी। टीपूने जब देखा कि, क्रमशः उनके सबविरुद्ध हुए जा रहे हैं, तब वे भी क्रमशः उत्तेजित होने लगे।

ये अपने राज्यके पश्चिमवासी हिन्दु और ईसाइयोंको मुसलमान धर्ममें दीक्षित करने लगे। कोड़गके हजारों अधिवासियोंको पकड़ कर इन्होंने उनको दासत्व शृङ्खलामें बद्ध किया; सभी भीत और चकित हुए। कोई भी इनके विरुद्ध कुछ बात कहनेके लिए साहसी नहीं हुआ। १७८५ ई०में टीपूने अपने राज्यके उत्तरप्रदेशों पर दृष्टि डाली; उनकी सेनाने बहुत दिनोंसे मराठोंसे युद्ध नहीं किया था; महाराष्ट्रराजकी सीमान्तस्थित बहुसंख्यक हिन्दू-प्रजा मुसलमान-धर्ममें दीक्षित हुई थी, इसलिए उनका सेनादल काफी बढ़ गया। इस समयमें धर्मत्यागकी अपेक्षा प्राणत्याग करना श्रेय समझ कर बहुतसे ब्राह्मणोंने आत्महत्या कर ली थी। इससे नानाफड़नवीस अत्यन्त विचलित हुए थे। उन्होंने देखा कि, निजामसे सहायता लेना वृथा है। टीपूने जिस तरहकी सेना संग्रह की है और वह भी फरासीसी सेनानायकके द्वारा शिक्षित हुई है, ऐसी दशामें उन पर आक्रमण करना सहज बात नहीं है। नानाफड़नवीसने अंग्रेजोंसे सहायता मांगी। किन्तु मङ्गलूरकी सन्धिके अनुसार वे मध्यस्थ रहनेके लिए बाध्य थे, इसलिए नानाफड़नवीसने साहाय्य-प्रार्थी हो कर यातगिरके पास निजाम और बरारके माधोजी भोंसलेसे मुलाकात की। यहां परस्परमें टीपूके विरुद्ध युद्धघोषणा और महिसूर-राज्य विभाग कर लेनेके लिए एक सन्धिपत्र स्थिर हुआ।

१७८६ ई०में टीपूने न मालूम क्या सोच कर उन लोगोंसे सन्धिकी प्रार्थना की। १७८७ ई०में सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किये गये। मराठोंका कुछ राज्य और आदनि वापिस मिले। टीपू भी ४५ लाख रुपये देनेके लिए राजी हुए जिसमें ३० लाख रुपये नगद और बाकीके रुपये एक वर्षमें देनेका निश्चय हुआ। टीपूने क्यों सहसा ऐसी सन्धि की थी, तत्कालीन किसी भी इतिहासमें इसका जिक्र नहीं है और न टीपू ही कुछ लिख गये हैं। किन्तु यह सन्धि ज्यादा दिन तक नहीं रही; निजामके साथ फिर उनका झगड़ा शुरू हो गया। १७८८ ई० तक निजाम और टीपू सुलतानमें परस्पर युद्ध चलता रहा था। उक्त वर्षके अन्तमें निजामके पास गण्टूर-सरकार समर्पण कर देनेके लिए बड़े लाटने कप्तान केनाओयेको भेजा। पहले कुछ युद्ध होनेकी सम्भावना हुई थी, किन्तु निजामने गण्टूर समर्पण करनेमें कुछ भी आपत्ति नहीं की। मसलिपत्तनकी सन्धिके अनुसार, हैदर और टीपूने निजामका जितना भूभाग अधिकृत किया था, निजामने उनके पुनरुद्धारके लिए अंग्रेज गवर्मेण्टसे सेना प्रार्थना की। इतनेसे भी सन्तुष्ट न हो कर उन्होंने टीपू सुलतानके पास स्वर्णाक्षरोंमें लिखित एक कुरान ग्रन्थ उपहार दे कर उनके पास एक दूत भेजा। दूतने जा कर कहा कि, दिन दिन अंग्रेज लोग क्षमताशील हुए जा रहे हैं, इससे आगे हम अपने धर्म और मानकी रक्षा भी न कर सकेंगे। अब परस्पर एकतासूत्रमें बद्ध हो कर धर्मरक्षाके लिए उनके विरुद्ध हम लोगोंको अस्त्रधारण करना चाहिये। सुचतुर टीपू सुलतान वैवाहिकसूत्रमें बद्ध हो कर मित्रता स्थापन करनेके लिए सम्मत हुए। किन्तु निजामने उनका यह प्रस्ताव अग्राह्य किया। वे नीच घरमें लड़की देनेके लिए राजी न हुए। अब फिर परस्पर घोर शत्रुता हो गई। टीपूने मसलिपत्तनकी सन्धिको नितान्त दोषावह ठहराया; क्योंकि उसमें टीपूका नाम और क्षमता स्वीकृत नहीं हुई थी। इधर इंग्लैण्डके राजपुरुषोंने निश्चय किया कि, भारतमें अंग्रेजोंकी शक्तिचालनाके विषयमें अपक्षपात रहनेकी जरूरत नहीं; इसलिए टीपू भी युद्धका आयोजन करने लगे।

मंगलूरकी सन्धिके अनुसार त्रिवाङ्कुरराज्य अंग्रेजोंके आश्रित है, ऐसा स्थिर हुआ। त्रिवाङ्कुर-राजने उस समय ओलन्दाजोंसे कोरङ्गनूर और आयाकोट नामके दो नगर खरीदे थे। टीपू उन दो नगरोंकी माँग बैठे; उन्होंने कहलवा भेजा कि, 'जब वे दोनों नगर हमारे आश्रित कोचीन-राजके अधिकारभुक्त हैं, तब ओलन्दाज लोग उसे किसी हालतमें भी बेच नहीं सकते। बड़े लाट कर्णवालिसने त्रिवाङ्कुरराजके पक्षका समर्थन करनेके लिए मद्राजके अंग्रेज-अध्यक्ष हालैण्ड साहबकी अनुमति दी,

किन्तु इस बातको न मान कर वे त्रिवाङ्कुर-राजसे रुपये माँग बैठे।

त्रिवाङ्कुर-राजने पर्वत और समुद्रके मध्यवर्ती अपने राज्यकी उत्तर सीमाका दुर्ग तुड़वा दिया। अब तक टीपू त्रिवाङ्कुर जय करनेके लिए विशेष प्रयत्न कर रहे थे, अब तक त्रिवाङ्कुरराज्य दुर्भेद्य था, किसी भी तरफ़से शत्रुके आनेका मार्ग नहीं था। अब मौका देख कर टीपूने सेना बढ़ाई।

१७८९ ई०के २८ दिसम्बरको इन्होंने त्रिवाङ्कुर पर आक्रमण किया। मद्राज-गवर्मेण्ट उसका कुछ भी प्रतिवाद न कर सकी। त्रिवाङ्कुरराज्य पर आक्रमण होनेका सम्वाद पा कर नानाफ़ड़नवीसने टीपूके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए १७९० ई०के मार्च मासमें अंग्रेजोंसे सन्धि कर ली। जुलाई मासमें निज़ामके साथ भी उसी अभिप्रायसे सन्धि हुई। बड़े लाट कर्नवालिसने मद्राजके सेनापति मेडोज पर सैन्य-परिचालनका भार दिया। १७९० ई०की २६वीं मईको १५००० सुदक्ष सेना ले कर अंग्रेज-सेनापति त्रिचिनापल्लीसे चल दिये। २१ जुलाईको सेनाने कोयम्बातुरमें उपस्थित हो कर कुछ दुर्ग पर कब्जा कर लिया। सेप्टेम्बरके भीतर ही भीतर पालघाटचेरी और दिन्दिगुल अंग्रेजोंके अधिकारमें आ गया। अब वह विपुलवाहिनी महिसूरकी सीमा पर उपस्थित हुई। टीपू सुलतान भी निश्चिन्त नहीं थे, उन्होंने विपुल विक्रमसे शत्रुकी गति रोक कर अंग्रेज-सेनापति कर्नल फ्लाइड पर आक्रमण किया। अंग्रेज-सेनापतिको पीठ दिखा कर भाग जाना पड़ा। यहाँ तो अंग्रेजी सेना टीपूका कुछ कर न सकी, पर उधर मलबार उपकूलमें कर्नल हारटलिने टीपूके सेनापति हुसेन-अलीको परास्त कर दिया।

उधर महाराष्ट्र-सैन्योंने बम्बईकी अंग्रेजी सेनाके साथ मिल करके टीपूके अन्य सेनापति बदरउल्-जमान् और कुतुब-उद्दीन्को पराजित कर धारवार दुर्ग अधिकार कर लिया, इधर निजाम सेनासहित कपालदुर्ग और बहादुरबन्द अधिकार करनेको अग्रसर हुए, इसी प्रकार चारों ओरसे आक्रान्त हो कर भी दृढ़प्रतिज्ञ टीपू किसी तरह विचलित नहीं हुए। वे अचल अटल साहससे नाना उपायोंका अवलम्बन कर शत्रुकी गतिको रोकने लगे। बड़े लाट कर्नवालिसने जब देखा कि, टीपू सहजमें वशीभूत नहीं होंगे और उनको वश करना भी सामान्य बात नहीं है, तब उन्होंने स्वयं ही युद्धक्षेत्रमें अवतरण किया। ये महिसूरके गिरिसङ्कट मुगलीघाट पार गये, वहाँसे उन्होंने कौशलसे बंगलूर यात्रा की। यहाँ टीपूके साथ घोरतर युद्ध होने लगे। १७९१ ई० २० मार्चको रातको शत्रुओंने अकस्मात् दुर्ग आक्रमण किया। निजामकी प्रायः १०००० सेना आ कर लार्ड कर्नवालिसके साथ मिल गई। बड़े लाटने उस महती सेनाके साथ श्रीरंगपत्तनकी तरफ यात्रा की। अंग्रेज-सेनापति अवरक्राम्बी उनके साथ देनेको अग्रसर हुए। इस विषम विपदके समय टीपूने जब देखा कि, महाशक्ति उनके विरुद्ध आ रही है जिसका प्रतिरोध करना उनकी हैसियतसे बाहर है, तब वे अपनी समस्त सेनाको एकत्र करके राजधानीके रक्षार्थ यत्नवान् हुए। १३ अप्रेलकी अरिकेरा नामक स्थानमें शत्रुओंके साथ भीषण वर्षण हुआ।

१३ अप्रेलकी रातको बड़े लाटने दुर्ग अधिकार करनेकी चेष्टा की। १४ अप्रेलको दुपहरके समय घोरतर युद्धके बाद टीपू पराजित हुए। किन्तु लार्ड कर्नवालिसको जयलाभसे विशेष कुछ लाभ नहीं हुआ। उनकी सेनाकी रसद निबट गई, इसलिए उन्हें पीछे लौटना पड़ा। इस समय मौका पा कर टीपूने उनकी मालगाड़ियाँ और भण्डार लूट लिया।

उस समय बड़े लाट बड़े सङ्कटमें पड़ गये। इस समय यदि अंग्रेज-सेनापति कप्तान लिट्ल, परशुरामराव द्वारा परिचालित महाराष्ट्र सेनाके साथ आ कर सहायता न करते, तो शायद उस अभियानसे वे लौट कर न आते। कुछ भी हो, दूसरी बारके युद्धसे भी कुछ फल नहीं हुआ। अबकी बार टीपूको चारों तरफसे आक्रमण करनेके अभिप्रायसे परशुरामराव और कप्तान लिट्लने बहुसंख्यक सेना ले कर उत्तर-पश्चिम, निजामने अपनी और अंग्रेजी सेना ले कर उत्तर-पूर्व तथा लार्ड कर्नवालिसने महाराष्ट्र और हरिपन्थके साथ मध्यभाग आक्रमण किया।

टीपू भी महोत्साहसे उनके प्रतिरोधमें विशेष यत्नवान् हुए। उन्होंने अपने प्रधान प्रधान सेनापतियोंको राज्य और सम्मानकी रक्षाके लिये उत्तेजित करके उपस्थित वीरव्रतमें नियुक्त किया।

इधर लार्ड कर्नवालिसने असीम साहससे नन्दीदुर्ग, सुवर्णदुर्ग, रायकोट आदि दुर्गोंको जय किया।

१७९२ ई०के जनवरी महीनेमें कर्नवालिस निजाम और महाराष्ट्रसेनाके साथ मिले और ५ फरवरीको श्रीरङ्गपत्तनमें उपस्थित हुए। ६ फरवरीको बम्बईके अंग्रेज सेनापति जनरल आबरक्रम्बीने आ कर उनका साथ दिया। इतने दिन बाद टीपू विचलित हुए, उनके पिताने कहा था "टीपू राज्यकी रक्षा न कर सकेगा।" अब वह बात इनको याद आई। इस समय टीपूने अपने एक मित्रसे कहा था कि, "हम अंग्रेजोंको देख कर नहीं डरते, पर हमारी होनहारको सोच कर हमें डर लगता है।"

२४ फरवरीको सुलतानने लैफ्टैनाण्ट चामारस् नामक एक वन्दी अंग्रेज-सेनापतिके जरिये सन्धिका प्रस्ताव करा कर लार्ड कर्नवालिसके पास भेजा। पहले बड़े लाट सन्धिके प्रस्ताव पर सहमत न हुए। अन्तमें कोड़गके राजाका सुभीता सोच कर सहमत हुए। कोड़गके राजाने जनरल आबरक्रम्बीको काफी सहायता दी थी। तथा वे टीपूकी प्रतिजिघांसा वृत्तिसे भी अत्यन्त डरते थे। कुछ भी हो, इस समय कोड़गके राजाके लिए ही सन्धि हुई। २६ तारीखको टीपूने अपने दो पुत्रोंको अंग्रेज-शिविरमें भेजा। अंग्रेज पक्षके सभी लोगोंने महासमादर और सम्मानके साथ सुलतानके पुत्रोंका अभिनन्दन किया। सन्धिपत्रके अनुसार टीपूके दोनों पुत्र अंग्रेज शिविरमें ही रहे। १८ मार्चको सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर हुए। टीपूने अपना आधा राज्य छोड़ दिया, जिसमेंसे मलवार, कोड़ग और बारमहल अंग्रेजोंके हिस्सेमें आया। इसके सिवा युद्धव्ययके हिसाबमें टीपूने ३३ लाख रुपया देना मंजूर किया, जिसमें आधा नगद और आधा एक वर्षके भीतर देनेका वायदा हुआ। निजाम और महाराष्ट्रोंने अपने अपने राज्यके निकटवर्ती भाग लिए।

इसके बाद ४।५ वर्ष तक विशेष कुछ गड़बड़ी नहीं हुई। टीपूने राज्यकी उन्नति और प्रजाकी सुखसमृद्धिके लिये अनेक प्रयत्न किया था। इस समय उन्होंने नाना देशोंसे बहुत अर्थ व्यय करके असंख्य फारसी, संस्कृत और दाक्षिणात्यकी स्थानीय भाषामें लिखित बहुत प्रकारकी हस्तलिपि संग्रह की थी।

१७९८ ई०में निजामके तथा महाराष्ट्रके सेनापतिगण गुप्तभावसे टीपूके साथ षड़यन्त्र करने लगे। टीपूने भी पूर्वोक्त सन्धिसे अपना अत्यन्त अपमान समझा था। अब तक वे मौका ढूंढ़ रहे थे; किन्तु अब उक्त सेनापतियोंकी प्ररोचनासे उत्तेजित हो गये।

अंग्रेजोंको इस षड़यन्त्रका हाल मालूम हो गया। १७९८ ई०के १७ मईको लार्ड मर्निंटन गवर्नर जनरल हो कर आये। टीपू सुलतानकी गतिविधि पर उनकी पहले दृष्टि पड़ी। उस समय यूरोपमें अंग्रेज और फरासियोंमें घोरतर युद्ध हो रहा था। इसलिये टीपू भारतमें आयी हुई फरासीसी सेनाको सहज ही हस्तगत करने लगे। फरासीसी कर्मचारिगण टीपूकी देशीय सेनाको अच्छी तरह युद्धकी शिक्षा देने लगे। टीपूने अपने नौ-सेनादलकी साहाय्यार्थ मरिचशहरमें फरासीसी शासनकर्ता जनरल मलारटिकको ३०,००० सेनाके लिये लिख भेजा। हैद्राबादमें फरासीसी सेनानायक मूसो रेमण्ड १५००० सेना ले कर ठहरे हुए थे, वे भी कार्यकालमें टीपूकी सहायता करनेको सहमत हुए। इधर सिन्धिया-राज्यमें फरासीसी वीर डो-बइन ४०,००० सेना और ४५० तोपें ले कर अपेक्षा कर रहे थे। वे भी जातीय गौरवकी रक्षार्थ अंग्रेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेके लिये उद्यत थे।

लार्ड मर्णिंटन्ने अंगरेजोंका विपद नजदीक आता देख मन्द्राजके प्रधान अंगरेज सेनापति लार्ड हारिसको हुक्म दिया कि वे बहुत जल्द सेनाको ले कर श्रीरङ्गपत्तनकी ओर रवाना हो जाय।

उस समय मन्द्राजमें केवल ८००० सेनायें थीं। वहांका कोषागार भी बिलकुल खाली था। अतः मन्द्राजके अफसरोंके इस समय टीपूसे युद्ध ठान देना उचित न समझा। किन्तु बड़े लाटने उन सबोंकी युक्ति न सुन

कर शीघ्र ही समरसज्जा करनेका आदेश दिया। इधर उन्होंने हैदरअलीके मन्त्री मासिर उल् मुल्कको (मीर आलमको) टीपुके विरुद्ध उत्तेजित किया।

इस समय महावीर नेपोलियन इजिप्टमें उपस्थित थे। कब भारतमें आ जाय, इसका कोई पता नहीं। ऐसे समयमें शीघ्र ही कार्योद्धार करनेके अभिप्रायसे बड़े लाटने अपने भाई कर्नल आर्थर वेलिस्लि (भावी डिउक आफ् वेलिंगटन)-को ३३ दल पदातिक और ३००० सिपाही दे कर मद्राज भेज दिया। आखिर टीपूके साथ एक मीमांसा करनेके लिये वे स्वयं मद्राज पहुंचे। कर्नल डोभटन बड़े लाटका पत्र पा कर पहलेहीसे टीपूके पास चले गये थे। इस पत्रमें यही लिखा गया था कि, जिससे फरासीसियोंसे टीपूका कुछ सम्बन्ध न रहे।

टीपूने कर्नलके साथ मुलाकात नहीं की। कहला भेजा कि, "अंग्रेजोंके साथ पहले जो सन्धि हुई है, वही यथेष्ट है। हम अंग्रेज गवर्मेण्टके हमेशा ही मित्र हैं।" इधर उन्होंने फरासीसी गवर्मेण्टको सेना भेजनेके लिए तथा अफगानके राजा जमानशाहको भारतमें आ कर धर्मयुद्धकी घोषणा करनेके लिए अनुरोध किया।

टीपूको ऐसा भरोसा था कि फरासीसीगण शीघ्र ही इजिप्ट जय करके भारतमें पदार्पण करेंगे और तो क्या नेपोलियनसे भी उनका पत्रव्यवहार चल रहा था। किसी तरह एक पत्र उनके शत्रुओंके हाथ पड़ गया। अंग्रेजोंने तुर्किस्तानके सुलतानसे पत्र लिखवा कर टीपूको होशियार हो जानेको कहा; किन्तु टीपूने उस पर भ्रूक्षेप भी न किया। १७९९ ई०, ११ फरवरीको २१००० अंग्रेजी सेना और १०,००० निजामकी सेना वेलूरसे चल दी। इधर पश्चिम उपकूलसे जनरल ष्टुयार्ट और हार्टलिके अधीन ६००० सैन्य अग्रसर हो रही थीं। १५ मार्चको जनरल हरिस् बंगलूर आ पहुंचे। १६ मार्चको कोड़गराज्यकी सीमा पर सदाशीर नामक स्थान पर घोरतर युद्ध हुआ। इस युद्धमें टीपूकी २००० सेना नष्ट हो गई।

अब सुलतान अपनी चुनी हुई सेना ले कर प्रबल पराक्रमसे शत्रुकी गतिरोधके लिए अग्रसर हुए। २७ मार्चको मालवली नामक स्थान पर टीपूकी सेना पराजित हो गई। इस पराजयसे टीपू भी भीत और भग्नोत्साह हो गये थे, पिताकी निदारुण वाणी मानो ज्वलन्त अक्षरोंमें उनके स्मृतिपट पर उदय होने लगी। वे तुरंत ही राजधानीको लौट आये। यहां आ कर सुना कि, उनके बहुतसे कर्मचारी उनके विरुद्ध षड़यन्त्र कर रहे हैं। इस समय वे और भी हताश हो गये। किसी किसीने उनसे पुनः अंग्रेजोंसे सन्धि करनेके लिए कहा। पहले तो वे सन्धि करनेके लिए कुछ कुछ राजी भी हुए थे, पर जब सुना कि, अंग्रेज-सेनापति हरिस सुशीला नामक कावेरी नदीके एक गुप्त टापूको पार कर चुके हैं और शीघ्र ही वे श्रीरङ्गपत्तन पर चढ़ाई करेंगे, तब उनके हृदयमें सन्धिके प्रस्तावने स्थान नहीं पाया। इधर लार्ड हरिसने—सेनाकी रसद निबटी जा रही है देख कर तुरंत ही श्रीरङ्गपत्तन पर धावा कर दिया। अंग्रेजोंने भारतवर्षमें ऐसा भीषण युद्ध कभी भी नहीं किया था। ६ अप्रैलसे युद्ध प्रारम्भ हुआ। तीसरे दिन टीपूने—न मालूम क्या सोच कर—सन्धिका प्रस्ताव कर भेजा। किन्तु अंग्रेज सेनापति हरिस २ करोड़ रुपये और आधा राज्य मांग बैठे। इसके प्रत्युत्तरमें टीपूने कहलवा भेजा कि—"इस घृणित प्रस्तावको स्वीकार करनेकी अपेक्षा वीरोंकी भांति मृत्यु ही वाञ्छनीय है। हम वीरके पुत्र हैं, वीरोंकी तरह अपनी सम्मान-रक्षा करना जानते हैं।" उस दिन इन्होंने अपने प्रधान प्रधान अमात्य और कर्मचारियोंको बुला कर कहा—"आज हम अपने जातीय सम्मान और धर्मकी रक्षार्थ आत्मविसर्जन करेंगे। जो इस कार्यसे डरते हों, वे अभी इस स्थानसे प्रस्थान करें।"

सुलतानके उत्साह भरे वचनोंसे सभी प्राणोंकी ममता छोड़ कर घोरतर युद्धमें प्रवृत्त हुए। अंग्रेजोंने भारतमें ऐसा भीषण युद्ध न देखा था और न सुना ही था। इस युद्धमें दोनों पक्षकी कितनी सेना नष्ट हुई, इसकी कोई शुमार नहीं। २री मईको दुर्ग तोड़नेकी तैयारियां हुईं। ३री मईको चार हजार सेना गड़खाईको पार कर दुर्गको तोड़ने लगी। टीपू सुलतान स्वयं वीरवेशमें

सज कर दुर्गकी रक्षा करने लगे। किन्तु टीपू पर विधाता ही उलटे थे, उनकी सब चेष्टायें व्यर्थ हुईं। अधिकांश दुर्गवासी सायंकालके प्रारम्भमें आत्मसमर्पण करने लगे। दुर्गमें प्रवेश कर शत्रुओंने देखा तो वीर टीपू सुलतानको अपने सम्मान और गौरवके रक्षार्थ रण-शय्या पर हमेशाके लिए सोते पाया। कोई कोई कहते हैं कि, जिस समय टीपू दुर्ग-रक्षार्थ स्वयं युद्ध कर रहे थे, उस समय पीछेसे किसी व्यक्तिने गुप्तभावसे उनको मार दिया था।

कुछ भी हो, अंग्रेज सेनापतिने वीरमदसे आज दुर्भेद्य श्रीरङ्गपत्तनके दुर्गमें प्रवेश किया। यथासमय महासमारोहसे मुसलमान-प्रथानुसार टीपू सुलतानकी मृत-देह समाधिस्थ की गई। वीरनादसे अंग्रेजोंकी तोपें टीपूके सम्मान और श्रीरङ्गपत्तनविजयकी घोषणा करने लगीं। साथ ही महिसूरसे क्षणस्थायी मुसलमान राजत्वका भी अन्त हुआ।

इस युद्धमें जयलाभ करके बड़े लाट मर्निंटन वेलिस्लि उपाधिसे विभूषित हुए। इसी नामसे ये भारत-इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। श्रीरङ्गपत्तनदुर्ग जय करके अंग्रेजोंने नगद २ करोड़ रुपये, ८२८ तोपें, ४२४००. पीतल और लोहेके गोले तथा ६५०० मन बारूद पाई थी।

लालबाग नामक उद्यानमें हैदरके समाधि-मन्दिरमें टीपूकी कब्र हुई। टीपू अत्यन्त अत्याचारी, चञ्चल और अस्थिर प्रकृति होने पर भी इनमें बहुतसे सद्गुण थे। ये नित्य नवीन पसंद करते थे। इनके प्रासादसे बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ, कुरानोंका अनुवाद और हिन्दुस्तान विशेषतः मुगल-साम्राज्यके इतिहास-मूलक बहुतसी हस्तलिपियाँ मिली हैं, जो कलकत्तेके पुस्तकालयमें सुरक्षित रक्खी गई हैं। वे देशीय शिल्प और पण्डितोंका विशेष समादर करते थे।

टीपू सिर्फ पुस्तक-संग्रह करके ही क्षान्त नहीं हुए थे। ये स्वयं भी विद्वान् थे इन्होंने फारसी भाषामें दो ग्रन्थ भी लिखे हैं—एकका नाम है "फरमान बनाम अलीराजा" और दूसरेका "फत-उल् मजाहिदीन।" इसके सिवा ये अपने जीवनकी बहुतसी घटनायें लिख गये हैं।

टीपूका परिवारवर्ग पहले वेलूरमें स्थानान्तरित हुआ था, किन्तु उससे ब्रिटिश गवर्मेण्टका सुभीता न हुआ, इसलिए सब कलकत्तेमें लाये गये। इस समय टीपूके घरानेके सभी लोग ब्रिटिश गवर्मेण्टकी वृत्ति पाते हैं और कलकत्तेके रसापगला वा टालीगञ्ज नामक स्थानमें रहते हैं।

टीबा (हिं० पु०) टीला, भीटा।

टीम (अं० स्त्री०) खेलनेवालोंका दल।

टीमटाम (हिं० स्त्री०) १ बनाव, सिंगार, सजावट। २ पाखंड, तड़क भड़क।

टीला (हिं० पु०) १ पृथ्वीका तलसे ऊँचा भाग, भीटा। २ मट्टी या बालूका ऊँचा ढेर। ३ छोटी पहाड़ी।

टीस (हिं० स्त्री०) ठहर ठहर कर होनेवाली पीड़ा, कसक चसक।

टीसना (हिं० क्रि०) ठहर ठहर कर दर्द उठना, कसक होना।

टुंगना (हिं० क्रि०) १ कुतरना, कोमल पत्तियोंको दांतसे काटना। २ कुतर कर चबाना।

टुंच (हिं० वि०) क्षुद्र, तुच्छ, टुच्चा।

टुंटा (हिं० वि०) जिसके हाथ न हो, लूला।

टुंड (हिं० पु०) १ छिन्न वृक्ष, वह पेड़ जिसकी डाल टहनी कट गई हो, ठूँठ। २ पत्तियोंसे रहित वृक्ष, बिना पत्तेका पेड़। ३ कटा हुआ हाथ, लूला। ४ एक प्रकारका प्रेत। प्रवाद है कि यह प्रेत घोड़े पर चढ़ कर अपना कटा हुआ सिर आगे रख कर रातको निकलता है।

टुंडा (हिं० वि०) १ ठूँठा, जिसमें डाल टहनी न हो। २ जिसके हाथ न हो, लूला, लुंजा। ३ एक सींगका बैल, डूँडा। (पु०) ४ वह मनुष्य जिसके हाथ कट गये हों, लूला आदमी। ५ एक सींगका बैल।

टुंडी (हिं० स्त्री०) १ मुश्क, भुजा, बाहुदंड। (वि०) २ लूली जिसे हाथ न हो।

टुइयाँ (हिं० स्त्री०) १ तोतेकी एक नीच जाति, सुग्गी। इसकी चोंच पीली और गरदन बैंगनी रंगकी होती है। (वि०) २ नाटा, बौना।

टुइल (अं० स्त्री०) एक तरहका सूती कपड़ा। यह

बहुत मुलायम होती है और इसके अच्छे अच्छे कुर्ते, कमीज इत्यादि बनते हैं।

टुक (हिं॰ वि॰) किञ्चित्, तनिक, ज़रा, थोड़ा।

टुकड़गदा (हिं॰ पु॰) १ घर घर रोटीका टुकड़ा मांगनेवाला आदमी, भिखारी। (वि॰) २ तुच्छ, नीच। ३ अत्यन्त निर्धन, बहुत गरीब, कंगाल।

टुकड़गदाई (हिं॰ पु॰) १ टुकड़गदा देखो (स्त्री॰) २ टुकड़ा मांगनेका काम।

टुकड़तोड़ (हिं॰ पु॰) पराश्रित मनुष्य, वह आदमी जो दूसरेका दिया हुआ टुकड़ा खा कर रहता है।

टुकड़ा (हिं॰ पु॰) १ खण्ड, छिन्न अंश, रेज़ा। २ चिह्न आदिके द्वारा विभक्त अंश, भाग, हिस्सा। ३ रोटीका टुकड़ा, ग्रास, कौर।

टुकड़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ खण्ड, छोटा टुकड़ा। २ कपड़ेका टुकड़ा, थान। ३ समुदाय, मंडली। ४ पशुपक्षियोंका दल, झुंड, जत्था। ५ सेनाका एक भाग।

टुकनी (हिं॰ स्त्री॰) टोकनी देखो।

टुकरी (हिं॰ स्त्री॰) १ एक कपड़ा जो मलमलकी तरहका होता है। २ टुकड़ी।

टुखलाना (हिं॰ क्रि॰) १ मुँहमें रख कर धीरे धीरे कूँचना, चुभलाना। २ जुगाली करना, पागर करना।

टुच्चा (हिं॰ वि॰) तुच्छ, नीच।

टुटका (हिं॰ पु॰) टोटका देखो।

टुटनी (हिं॰ स्त्री॰) झारीकी पतली नली, छोटी टोंटी।

टुटपुँजिया (हिं॰ वि॰) थोड़ी पूँजीका, कम औकातका।

टुटरूँ (हिं॰ पु॰) छोटी पंडुकी, छोटी फाख्ता।

टुटरूँटूँ (हिं॰ स्त्री॰; १ पंडुकीकी बोली। (वि॰) २ अकेला। ३ कमजोर, दुबला पतला।

टुटुका (हिं॰ स्त्री॰) चमड़ेसे मढ़ा हुआ एक बाजा।

टुड्डी (हिं॰ स्त्री॰) १ नाभि, ढोढ़ी। २ टुकड़ी, डली।

टुण्टुक (सं॰ पु॰) टुण्टु इत्यव्यक्तशब्दं कायति के-क। १ पक्षीविशेष, एक चिड़ियाका नाम। २ श्योनाकवृक्ष, सोनापाठा, आलू। ३ कृष्ण खदिरवृक्ष, काला खैरका पेड़। (स्त्री॰) ४ टङ्किनीवृक्ष (त्रि॰)। ५ अल्प, थोड़ा। ६ क्रूर, कठोर।

टुण्टुका (सं॰ स्त्री॰) १ टङ्किणीवृक्ष। २ पाठा।

टुनका (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका रोग। इसमें मूत्रस्राव अधिक होता और उसके साथ धातु भी गिरता है।

टुनकी (हिं॰ स्त्री॰) धानकी फसलको नुकसान करनेवाला एक परदार कीड़ा।

टुनगा (हिं॰ पु॰) डालका अग्रभाग टहनीका अगला हिस्सा।

टुनगी (हिं॰ स्त्री॰) टहनीका अगला भाग जिसकी पत्तियाँ छोटी और मुलायम होती है।

टुनाका (सं॰ स्त्री॰) तालमूली वृक्ष, मुसली।

टुन्ना (हिं॰ पु॰) फल लगनेका नाल।

टुम्मा (हिं॰ पु॰) वह रसीद जो रुपये पाने पर लिख दी जाती है।

टुर्रा (हिं॰ पु॰) कण, टुकड़ा, डली दाना।

टुलड़ा (हिं॰ पु॰) पूरबी बङ्गाल और आसाममें होनेवाला एक प्रकारका बंस।

टुसकना (हिं॰ क्रि॰) टसकना देखो।

टूँ (हिं॰ स्त्री॰) गुदमार्गसे वायु निकलनेका शब्द, पादनेकी आवाज।

टूँगना (हिं॰ क्रि॰) १ कोमल पत्तियोंको दांतसे काटना, कुतरना। २ कुतर कर चबाना।

टूँड़ (हिं॰ पु॰) १ मच्छड़, मक्खी, टिड्डे आदि कीड़ोंके मुंहके आगे निकली हुई दो पतली नलियां। ये बालकी तरह पतली होती हैं। वे इन्हें धँसा कर रक्त आदि चूसते हैं। २ वह पतला अवयव जो जौ, गेहूं, धान आदिकी बालमें दानोंके कोशके सिरे पर निकला रहता है, सींग, सांगुर।

टूँड़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ टूँड देखो। २ नाभि, ढोंढ़ी। ३ गाजर, मूली आदिकी नोक। ४ किसी वस्तुकी दूर तक निकली हुई नोक।

टूक (हिं॰ पु॰) खण्ड, टुकड़ा।

टूका हिं॰ पु॰) १ खण्ड, टुकड़ा। २ रोटीका टुकड़ा। ३ रोटीके चार भागोंमेंसे एक भाग। ४ भिक्षा, भीख।

टूट (हिं॰ स्त्री॰) १ टूट कर अलग हो गया हुआ अंश, खण्ड, टूटन। २ टूटनेका भाव। ३ भूलसे छूटा हुआ वह शब्द या वाक्य जो पीछेसे किनारे पर लिख दिया जाता है।

टूटना (हिं॰ क्रि॰) १ खण्डित होना, भग्न होना टुकड़े टुकड़े होना। २ किसी अङ्गके जोड़का उखड़ जाना। ३ चलते हुए कामका भङ्ग होना, सिलसिला बंद होना जारी न रहना। ४ झपटना, झुकना। ५ दल बांधकर आना, पिल पड़ना। ६ आक्रमण करना एकबारगी धावा करना। ७ अकस्मात् प्राप्त होना, हठात् कहींसे आ जाना। ८ पृथक् होना, अलग होना। ९ किसी स्थानका शत्रुके अधिकारमें जाना। १० क्षीण होना, दुबला पड़ना। ११ फलोंका एकत्र करना। १२ शरीरमें दर्द होना। १३ निर्धन होना, कंगाल होना। १४ बंद हो जाना। १५ हानि होना, टोटा या घाटा होना। १६ रुपयेकी बाकी पड़ना वसूल न होना।

टूटा (हिं॰ वि॰) १ भग्न खण्डित, टुकड़े किया हुआ। २ क्षीण, शिथिल कमजोर, दुबला। ३ धनहीन, दरिद्र, कंगाल।

टूनरोटी (हिं॰ स्त्री॰) चुंगी।

टूम (हिं॰ स्त्री॰) १ आभूषण, गहना। २ सुन्दर स्त्री, खूबसूरत औरत। ३ धनी स्त्री, मालदार औरत। ४ चालाक और चतुर मनुष्य। ५ धक्का झटका। ६ व्यङ्ग, ताना।

टूरनामेण्ट (अं॰ पु॰) इनाम मिलनेवाला एक खेल।

टूसा (हिं॰ पु॰) खण्ड, टुकड़ा।

टूसी (हिं॰ स्त्री॰) जो फूल अच्छी तरह खिला न हो, कली।

टें (हिं॰ स्त्री॰) तोतेकी बोली।

टेंकिका (हिं॰ स्त्री॰) तालका एक भेद।

टेंगड़ा (हिं॰ पु॰) टेंगरा देखो।

टेंगना (हिं॰ स्त्री॰) टेंगरा मछली।

टेंगर (हिं॰ स्त्री॰) टेंगरा हीकी तरहकी एक मछली। यह टेंगरासे कुछ बड़ी होती है।

टेंगरा (हिं॰ स्त्री॰) भारतवर्षके अनेक स्थानोंमें विशेष कर अवध, बिहार और बङ्गालके उत्तरके जलाशयोंमें पाई जानेवाली एक प्रकारकी मछली, (Macrones vittatus) इसकी गरदन शरीरके सब अङ्गोंसे बड़ी और पीछेकी पतली होती है। इसके शरीरमें सीहरा नहीं होता और मुंहके किनारे लम्बी मूंछें होती हैं। इस मछलीके कई भेद होते हैं। सबोंके शरीरमें तीन कांटे होते हैं, दो अगल बगलमें और एक पीठमें। जब यह क्रुद्ध हो कर मनुष्योंको बिंधती है तो बहुत देर तक वे दर्दसे बेचैन रहते हैं। सबसे बड़ी विलक्षणता इस मछलीमें यह है कि यह मुंहसे गुनगुनाहटके जैसा एक प्रकारका शब्द निकालती है। इनके आकार और आयतनमें बहुत विभिन्नता है। कोई कोई ४।५ इञ्च और कोई ८।१० इञ्च लम्बी होती है। मन्द्राजकी टेंगरा मछली काली किन्तु बङ्गालकी रुपयेके समान सफेद रङ्गकी होती है। इसका स्वाद बहुत बढ़िया होता है।

टेंघुना (हिं॰ पु॰) घुटना।

टेंघुनी (हिं॰ स्त्री॰) टेंघुना देखो।

टेंट (हिं॰ स्त्री॰) १ कमर पर पड़ी हुई धोतीकी मंडलाकार ऐंठन। इसमें मनुष्य कभी कभी रुपया पैसा भी रखते हैं। २ कपासकी ढोंढ़। ३ करील। ४ पशुओंके शरीर पर एक प्रकारका घाव। यह घाव देखनेमें तो सूखा मालूम पड़ता है, पर उसमेंसे समय समय पर रक्त बहा करता है।

टेंटड़ (हिं॰ पु॰) टेंटर देखो।

टेंटर (हिं॰ पु॰) आँखके डेले परका उभरा हुआ मांस जो रोग या चोटके कारण होता हो।

टेंटा (हिं॰ पु॰) एक बड़ा पक्षी। इसकी चोंच एक बिलस्तकी और पैर डेढ़ हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसके समूचे शरीरका वर्ण चितकबरा पर चोंच काली होती है।

टेंटार (हिं॰ पु॰) टेंटा देखो।

टेंटी (हिं॰ स्त्री॰) १ करील। २ करीलका फल, कचड़ा।

टेंटु (हिं॰ पु॰) श्योनाक, सोनापाठा।

टेंटुवा (हिं॰ पु॰) १ गला, घेंटू। २ अंगूठा।

टेंटें (हिं॰ स्त्री॰) १ तोतेकी बोली। २ व्यर्थकी बकवाद, हुज्जत।

टेंड (हिं॰ स्त्री॰) टिंड देखो।

टेउकी (हिं॰ स्त्री॰) १ वह वस्तु जो किसी वस्तुको लुढ़कने या गिरनेसे बचानेके लिये उसके नीचे लगी रहती है। २ तानेकी डांड़ीमें लगी हुई जुलाहोंकी एक लकड़ी।

यह उसमें इसलिये लगाई जाती है जिसमें ताना जमीन पर न गिरे।

टेक (हिं० स्त्री०) १ किसी भारी वस्तुको अड़ाए या टिकाए रखनेका खंभा, चाँड़, थम। २ सहारा, ओंठनेकी चीज। ३ आश्रय, अवलम्ब। ४ बैठनेका ऊँचा चबूतरा। ५ दृढ़संकल्प, अड़, हठ, जिद। ६ संस्कार, आदत, बान। ७ बार बार गाये जानेका गीतका पद, स्थायी। ८ छोटी पहाड़ी, ऊँचा टीला

टेकचन्द—सरहिन्दवासी एक हिन्दू कवि। इनके पिताका नाम बलराम था। इन्होंने उर्दू भाषामें 'गुलदस्ते इश्क' नामक ग्रन्थकी रचना की है। इस ग्रन्थमें आदिसे अन्त तक कामरूपका इतिहास भरा है। ये आलमगीरके समयमें विद्यमान थे।

टेकचन्द मुन्शी—एक हिन्दू कवि। इनका कविता-सम्बन्धीय नाम बहार था। क्षत्रिय होने पर भी इनकी बनाई हुई सभी किताबें उर्दूमें हैं। यों तो इन्होंने बहुतसी किताबें रची हैं, मगर फारसी मुहावरेकी किताब "बहार अंजाम" और "नवादिर-उल-मासदिर" मशहूर हैं। पहली किताब १७३८ ई०में और दूसरी १८५२ ई०में रची गई है। उक्त दो पुस्तकोंके सिवा ये "अबताल जरूरत" नामक एक और भी पुस्तक बना गये हैं।

टेकन (हिं० पु०) किसी भारी चीजको टिकाए रखनेके लिये उसके नीचेमें लगाई जानेवाली वस्तु, अटकन, रोक।

टेकना (हिं० क्रि०) १ सहारा लेना, आश्रय बनाना। २ ठहराना। ३ सहारेके लिये थामना। ४ हाथका सहारा लेना। ५ एक प्रकारका जंगली धान, चनाव।

टेकनी (हिं० स्त्री० टेकन देखो।

टेकर (हिं० पु०) १ टीला, ऊँचा धुस्स। २ छोटी पहाड़ी।

टेकरी (हिं० स्त्री०) टेकरा देखो।

टेकली (हिं० स्त्री०) वह यन्त्र जिससे कोई चीज उठाई या गिराई जाती है।

टेकान (हिं० पु०) १ टेक, चाँड़, थम। २ ऊँचा चबूतरा या खंभा। इस पर बोझा ढोनेवाला अपना बोझा अड़ कर कुछ काल तक आराम लेता है, धरम ढोहा।

टेकाना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तुको ले जानेमें सहारा देनेके लिये थामना। २ सहारा देनेके लिये थामना।

टेकानी (हिं० स्त्री०) वह लोहेकी कील जो पहियेको रोकनेके लिए लगी रहती है, किल्ली।

टेकी (हिं० पु०) १ प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला। २ दुराग्रही, हठी, जिद्दी।

टेकुआ (हिं० पु०) १ काते हुए सूतको लपेटनेका चरखेका तकला। २ वह वस्तु जिससे कोई चीज अड़ाई जाती है। ३ गाड़ीको ऊपर ठहराये रखनेकी एक लकड़ी। यह उसी समयमें काम आती है जब गाड़ीसे एक पहिया निकाल लिया जाता है।

टेकुरी (हिं० स्त्री०) १ वह सूआ जिसमें फिरकी लगी रहती है। इसके घूमनेसे फँसी हुई रूईका सूत कत कर लिपटता जाता है, सूत कातनेका तकला। २ रस्सी बटनेका तकला। ३ तागा खींचने और निकालनेका चमारोंका सुआ। ४ मूर्त्ति बनानेवालोंका एक औजार। इससे वे मूर्त्तिका तल साफ और चिकना करते हैं। ५ जुलाहोंकी एक फिरकी। यह बांसकी डाँड़ीके एक छोर पर लाह लगा कर बनाई जाती है और इसकी नोकमें रेशम फँसाया रहता है। ६ सोनारोंकी सलाई जो गोप नामका गहना बनानेके काममें आती है। इससे तार खींच कर फंदा दिया जाता है।

टेक्कली—मन्द्राजके गञ्जाम जिलान्तर्गत इसी नामकी जमींदारी तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० १८° ३०′ उ० और देशा० ८४° १४′ पू०, इच्छ रोडसे ५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। टेक्कली राज्यके प्राचीन अधिपति रघुनाथदेवके स्मारकमें कोई कोई इसे रघुनाथपुरम् भी कहते हैं। लोकसंख्या प्रायः ७५५७ है। वर्त्तमान सम्राट्के राज्याभिषेकको यादगारीमें यहां टाउनहाल बनाया गया है।

टेचिन (अं० पु०) एक प्रकारका काँटा। इसके एक ओर माथा और दूसरी ओर पेच और ढिबरी होती है।

टेढ़ (हिं० पु०) १ वक्रता, टेढ़ापन। २ नटखटी, ऐंठ, अकड़।

टेढ़विडंगा (हिं० वि०) वक्र, टेढ़ा, बेडौल।

टेढ़ा (हिं० वि०) १ वक्र, कुटिल, जो एक सीधमें न

गया हो। २ जो समानान्तर न गये हो, तिरछा। ३ कठिन, मुश्किल, पेचीला। ४ उद्धत, उग्र, उज्जड़।

टेढ़ाई (हिं॰ स्त्री॰) वक्रता, टेढ़ापन।

टेढ़ापन (हिं॰ पु॰) टेढाई देखो।

टेढ़े (हिं॰ क्रि॰-वि॰) पेचीला।

टेना (हिं॰ क्रि॰) १ तेज करनेके लिये रगड़ना। २ मुछके बालोंको खड़ा करनेके लिये ऐंठना।

टेनिस (अं॰ पु॰) गेंदका एक खेल।

टेनिसन (लॉर्ड अलफ्रेड)—१९वीं शताब्दीके सर्वश्रेष्ठ अंग्रेज कवि। १८०९ ई॰ ता॰ ६ अगस्तको लिनकल्न शायरके अन्तर्गत सोमार्सवी नामक स्थानमें आपका जन्म हुआ था। आप अपने पितामाताके १२ पुत्रपुत्रियोंमें चतुर्थ पुत्र थे। आपके पितामह जॉर्ज टेनिसनने, जो पार्ल्यामेण्टके सदस्य थे, अपने पुत्रको त्याग दिया था; इस कारण कविके पिताको अपने जीवनमें अपनी ही कोशिशसे धनोपार्जन करना पड़ा था। लिनकल्नशायरकी शस्यश्यामला भूमि, छोटी छोटी नदियों और वन, उपवन आदिकी प्राकृतिक शोभाको देखते देखते वचपनसे ही टेनिसनमें कवि-प्रतिभा जाग उठी थी। यही कारण है कि आपने वाल्यावस्थासे ही कविता बनाना प्रारम्भ कर दिया।

१८१५ ई॰को बड़े दिनकी छुट्टियोंके बाद आप लाउथके विद्यालयमें भरती हुए। इस विद्यालयमें पाँच वर्ष अध्ययन करनेके बाद आप सोमार्सवी लौट आये और अपने पिताके पास पढ़ने लगे। आपके पिता खृष्टीय धर्मसम्प्रदायके एक उच्चश्रेणीके पुरोहित थे—उनके मकानमें नाना प्रकारके ग्रन्थोंसे परिपूर्ण एक पाठागार था। यहां रहते समय बालक टेनिसनका साहित्यके साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था, कि कवि बायरनका मृत्यु संवाद सुन कर आप अत्यन्त दुःखित हुए थे। अपने वनमें जा कर एक काष्ठके ऊपर खोद दिया-'बायरन आज मर गये।" टेनिसनको पहलेसे ही साहित्य-चर्चाका शौक था। बारह वर्षकी उम्रमें आपने ६००० पंक्तियोंका एक महाकाव्य रचा था; चौदह वर्षकी अवस्थामें अमित्राक्षर छन्दमें एक नाटक लिखा था। ये दोनों ग्रन्थ आपने उस समय छपाये न थे। टेनिसन-परिवार ग्रीष्मऋतुमें समुद्रके किनारे रहता था, इस कारण कविको वाल्यकालसे ही समुद्रकी शोभा पसन्द थी। कवि एवं समालोचक मि॰ फिज जेरल्डने ठीक ही कहा है कि "आपकी कविकी स्वाभाविक प्रीति लिनकल्नशायरके प्राकृतिक सौन्दर्यसे ही प्राप्त हुई है।"

१८२७ ई॰में फ्रेडरिक, चार्लस् और अलफ्रेड इन तीनों टेनिसन भ्राताओंने मिल कर एक साथ "दो भाइयोंकी कवितावली" इस नामसे एक पुस्तक निकाली। चार्लस और अलफ्रेडकी कविताएँ अधिक होनेके कारण पुस्तकका नाम "दो भाइयोंकी कवितावली" रक्खा गया था इस पुस्तकको वेच कर इन्होंने बीस पौण्डका लाभ उठाया था। मिल्टनके विश्वविख्यात महाकाव्य "पराडाइस लष्ट"के वेचनेसे कुल ५ पौण्ड प्राप्त हुए थे, इसकी तुलनामें टेनिसनका लाभ बहुत ज्यादा है।

१८२८ ई॰की २० फरवरीको चार्लस और अलफ्रेड केम्ब्रिजके ट्रिनिटि कालेजसे प्रवेशिका परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। दोनों भाई जरा नाजुक प्रकृतिके थे, पहले ये किसीसे मित्रता न कर सके थे। किन्तु अब कुछ ही दिनोंमें इनकी कई एक प्रतिभासम्पन्न युवकोंसे मित्रता हो गई, जिनमें ट्रेञ्च, लॉर्ड हाफटन, जेम्स् स्पेडिं, डब्ल्यू॰ एइच॰ टमसन, एडवर्ड फिज् जेरल्ड आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्ति भी थे। १८२९ ई॰के जून मासमें "टिमबुक्टू" नामकी कविता पर टेनिसनको चान्सेलरका पदक प्राप्त हुआ था। इसी समय आपने कुछ गीति-कविताएँ लिखी थीं जो कि प्रशंसनीय हैं। १८३० ई॰में इनमेंसे कुछ कविताएँ प्रकाशित हुईं। कवि बायरनकी मृत्युके बाद छ वर्ष तक अंग्रेज जातिको काव्यरसका आस्वाद नहीं मिला था, अब इक्कीस वर्षके युवक कविके काव्यालोकसे परिचित हो लोग अपनेको धन्य समझने लगे। नवीन कविका कल्पनाका सुकुमार भाव, छन्दकी मधुर गति और चित्रकलाका अपूर्व समावेश देख कर सब समझ गये कि इङ्गलैण्डमें फिर एक प्रतिभावान् कविका अभ्युदय हुआ। तदानीन्तन सुप्रतिष्ठ कवि कोलरिजने आपकी कविताओंकी बहुत ही प्रशंसा की, साथ ही जहां जहां छन्दपतन हुआ था, उसका भी दिग्दर्शन करा दिया।

१८३० ई॰में टेनिसन और हलाम दोनों स्पेनिश

विद्रोही टोरीजोसके दलमें जा मिले, परन्तु किसी शत्रुसे भेंट न होनेके कारण पिरेनीसमें भ्रमण करने लगे। टेनिसनने इङ्गलैण्ड आ कर देखा कि उनके पिता रोगशय्या पर पड़े हैं। आपने केम्ब्रिज छोड़ दिया (फरवरी १८३१)। इसके कुछ दिन बाद ही आपके पिताका देहान्त हो गया।

आपके पिताके स्थान पर जो पुरोहित बन कर आये थे, उन्होंने टेनिसन-परिवारको छ वर्ष तक रेक्टरीमें ही रहने दिया। इस समय आर्थर हलम टेनिसनकी बहन पर आसक्त हो गये और उनके साथ विवाह सम्बन्ध भी पक्का हो गया। इसलिए आर्थर अकसर करके सोमार्सबीमें आया करते थे, आपका यह समय बड़े सुखसे व्यतीत हुआ था। इसके सिवा आप व्यायाममें भी शामिल हुआ करते थे। इसीलिए ब्रुकफिल्डने कहा था कि "तुम एक ही साथ हरकिउलिस और आपेलो दोनों बनना चाहते हो, सो हो नहीं सकता।" १८३१ ई०के बादसे आपकी एक आँखमें बीमारी हो गई। १८३० से ३२ ई० तक आपने जो कविताएँ बनाई थीं वे सब १८३२ ई०के अन्तमें प्रकाशित हुईं। चौबीस वर्षसे कम उम्रवाले युवक ऐसी सुन्दर कविताएं बहुत कमही बना सके हैं। आपकी ये कविताएँ अब इङ्गलैण्डमें घर घर पढ़ी जाती है—"The Lady of the Shalott," "The Dream of Fair Women," "Oenone," "The Lotos-Eaters," "The Palace of Art," "The Miller's Daughter" इत्यादि। ये कविताएं १८३० ई०की कविताओंकी अपेक्षा इतनी उन्नतश्रेणीकी हैं, कि तुलना करनेसे दोनों भिन्न भिन्न कवियोंकी रचना मालूम पड़ने लगती है। परन्तु तदानीन्तन सुप्रसिद्ध समालोचक-पत्रने आपकी कविताओंका बड़े तीव्र और कठोर भावसे उपहास किया था। यदि आप इस आक्रमणसे डर कर साहित्य-क्षेत्रसे अवसर ग्रहण करते, इङ्गलैण्डके जातीय साहित्यकी सचमुच ही अवनति होती, इसमें सन्देह नहीं।

१८३४ ई०में आपने "The Two Voices" लिखा और बन्धुके वियोगमें "In Memoriam" का मूलपात कर दिया। "Idylls of the King" भी इसी समय प्रारम्भ किया था। इस समय आप ह्रदके किनारे जाते और हार्टलीमें कोलरिजको देखा करते थे, पर उनके साथ बातचीत करनेका साहस न होता था। अब इनके मनकी अवस्था ऐसी हो गई कि इन्हें अपनी ख्याति, प्रतिपत्ति वा सामाजिक अवस्थाका कुछ भी ख्याल न रहा। १८३७ ई०में टेनिसन-परिवार रेक्टरीसे निकाल दिया गया और हाइ-बीच नामक स्थानमें पहुंचा।

१८४२ ई०में, दश वर्ष तक निस्तब्ध रहनेके बाद टेनिसनने दो खण्डोंमें अपनी कुछ कविताएँ प्रकाशित की। इसीमें Morte d' Arthur, Dora and other Idylls आदि कविताएं प्रकाशित हुई थीं। इनमें इंगलैण्डके गार्हस्थ्य-जीवनका चित्र बड़ी खूबीके साथ खींचा गया है। इसी समयसे आपका नाम विश्व-कवियोंमें गिना जाने लगा। इस बीचमें आप बहुत बीमार हो गये थे। १८४५ ई०में ऐतिहासिक हलमकी कोशिशसे इंगलैण्डके सुप्रसिद्ध प्रधानमन्त्री सर रबार्ट स् पीलने टेनिसनके लिए वार्षिक दो सौ पौण्डकी वृत्ति निर्द्धारित कर दी। १८४६ ई०में आपने "प्रिन्सेस" नामका एक काव्य बनाया। १८४७ ई०में इनका पुनः स्वास्थ्य बिगड़ गया। बीमारीकी हालतमें आपने कहा था—"तुम लोग मुझे पढ़नेसे भी रोकते हो, विचारनेके लिये भी मना करते हो, इससे तो मुझे जीनेसे रोक दो तो अच्छा।" डा० गुलीकी नव प्रणालीकी चिकित्सासे आप आरोग्य हो गये। इसके बाद "प्रिन्सेस" प्रकाशित हुआ। पीछेसे इसमें आपने कुछ परिवर्तन भी किया था।

१८५० ई० ता० १३ जूनको एमिलि सारा सेलउडके साथ आपका विवाह हो गया। इस समय आपकी उम्र ४१ और स्त्रीकी ३७ वर्षकी थी। इसके बाद आपके सुखके दिन आये। १८५० ई०में कवि वार्डसवार्थकी मृत्युके बाद १९ नवेम्बरको महारानी विक्टोरियाने आपको राजकविका सम्मान दिया। इसके बाद आप निर्जन-स्थानमें रहने लगे। लोग इनकी खबर लेनेके लिये आग्रहान्वित होते थे, किन्तु उन्हें विशेष हाल मालूम न होता था।

१८५९ ई०में आपने "Idylls of the King" का प्रथम भाग प्रकाशित किया। एक महीनेमें इसकी १० हजार प्रति बिक गई। १८७५ ई०में आपने "कुइन

मेरी" नामक एक नाटक प्रकाशित किया, सर हेनरी आरभिङ्गने इसका अभिनय किया था। १८७६ ई॰में 'हेरल्ड" और १८७८ ई॰में 'The Revenge" प्रकाशित हुआ। १८८३ ई॰में ग्लाडष्टोनके साथ आप भ्रमणको निकले। इसके बाद ग्लाडष्टोनने प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे आपको लार्डकी उपाधि दी। १८८४ ई॰में आपका ऐतिहासिक नाटक "Becket" प्रकाशित हुआ। १८९२ ई॰में 'अकबरका स्वप्न" नामक एक बहुत ही उमदा कविता प्रकाशित हुई। १८९२ ई॰ ता॰ ६ अक्टोबरकी रातको ८४ वर्षकी अवस्थामें आपकी मृत्यु हो गई।

टेनी (हिं॰ स्त्री॰) छोटी उँगली।

टेपारा (हिं॰ पु॰) टिपारा देखो।

टेबुल (अं॰ पु॰) मेज़।

टेम (हिं॰ स्त्री॰) १ दीपककी ज्योतिः, दिएकी लौ (पु॰) २ समय, वक्त।

टेमन (हिं॰ पु॰) साँपका एक भेद।

टेमा (हिं॰ पु॰) छोटी अंटिया जो कटे हुए चारेकी बनाई जाती है।

टेर (हिं॰ स्त्री॰) १ गानेमें ऊंचा स्वर, तान, टीप। २ पुकारनेकी आवाज, बुलाहट। ३ निर्वाह, गुजर।

टेर—मैनपुरी जिलेके एक कवि। ये १८३१ ई॰में जन्म ग्रहण किया था।

टेरक (सं॰ त्रि॰) केकर पृषोदरादित्वात् साधुः। वक्रचक्षु, ऐंचा, भेंगा। इसके पर्याय—वलिर, केकर और केदर है।

टेरना (हिं॰ क्रि॰) १ तान लगाना, जोरसे गाना। २ पुकारना, बुलाना। ३ पूरा करना, निबाहना। ४ व्यतीत करना, बिताना, गुजारना।

टेरवा (हिं॰ पु॰) हुक्केकी नली।

टेरा (हिं॰ पु॰) १ अंकोलका पेड़, ढेरा। २ वृक्षस्तम्भ, धड़, तना। ३ शाखा। वि॰) ४ ऐंचाताना, टेपरा।

टेराकोटा (अं॰ पु॰) १ पकी हुई मट्टीके जैसा रङ्ग, ईँटकोहिया रङ्ग। २ पकी हुई मट्टी। इससे मूर्तियां, इमारतोंमें लगानेके लिये बेलबूटे आदि बनते हैं।

टेरी (हिं॰ स्त्री॰) १ पतली शाखा, टहनी। २ वह सूत जिससे दरी बुनी जाती है। ३ एक पौधा। इसकी कलियां रङ्गने और चमड़ा सिझानेके काममें आती हैं। ३ बकमकी कली।

टेरो (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी सरसों, उलटी।

टेलिग्राफ़ (अं॰ पु॰) यह शब्द Tele और grapho इन दो ग्रीक शब्दोंसे उत्पन्न हुआ है; इसका मौलिक अर्थ है दूरलिपि। जिसमें किसी यन्त्रादिके द्वारा बहुत दूर तक इशारेसे संवाद आदि भेजे जाते हैं, उसको टेलिग्राफ़ (वा तार) कहते हैं। बहुत प्राचीनकालमें अग्निके द्वारा सङ्केतादि बहुत दूरवर्ती स्थान तक भेजे जाते थे। उसके बाद इस कामके लिये नाना प्रकारकी पताका, लालटेन, नीलीचिराग आदि दृश्यमान चिह्न तथा बन्दूककी आवाज, भेरीध्वनि, घड़ी और ढक्कावाद्य व्यवहृत होने लगा। जिस चिह्न द्वारा सङ्केत किया जाता था, उसका अर्थ पहलेसे ही दोनों पक्षवालोंको मालूम रहता था। इसलिए इन सङ्केतों द्वारा कुछ निर्दिष्ट संख्याके सिवा और कुछ अभिप्राय व्यक्त नहीं किया जा सकता। फिलहाल बिजलीके द्वारा ही सर्वत्र टेलिग्राफ़ कार्य सम्पन्न होता है, इसके द्वारा हर एक तरहका संवाद अतिशीघ्र बहुत दूर तक स्पष्टरूपसे भेजा जाता है। इसका विवरण ताडितवार्तावह शब्दमें देखो।

यद्यपि ताड़ितवार्तावहके द्वारा संवाद भेजनेके उपाय अति आधुनिक है, किन्तु सङ्केत द्वारा निर्दिष्ट संख्यक संक्षिप्त अभिप्राय दूरस्थानमें व्यक्त करनेकी प्रथा बहुत प्राचीन है। ईसाकी प्रायः ६ठी शताब्दीमें पहले शत्रुके आगमनको जतलानेके लिए उच्चस्थान पर अग्निके निशान देनेकी प्रथाका उल्लेख पाया जाता है। एस्किलस् द्वारा वर्णित आगामिम्ननके वृत्तान्तके पढ़नेसे मालूम होता है कि, ट्रय-नगरकी ध्वंससंवाद श्रेणीबद्ध अनलमाला द्वारा बहु दूरस्थ ग्रीसमें विज्ञापित हुआ था। यही टेलिग्राफ़ द्वारा संवाद-प्रेरणकी सर्वापेक्षा प्राचीनतम घटना है। स्काटलैण्डमें एक गुच्छे काठकी अग्निसे अंग्रेजोंके आनेकी आशङ्का, दोनोंकी जलनेसे यथार्थ आगमन और बराबर बराबर चार अग्नि जलनेसे शत्रुओंकी संख्या बहुत ज्यादा है—ऐसा मालूम होता था। रातको इस तरहकी अग्नि

बहुत दूरसे दिखाई देती थी और दिनको धुएंसे इशारे मालूम पड़ जाते थे। प्रज्वलित मशालको इधर उधर घुमा-फिरा कर अथवा एक बार छिपा कर और फिर दिखा कर इशारे किये जाते थे। पीछे सङ्केतके बदले मशाल आदिके द्वारा अक्षर निर्देश करनेकी प्रथा चली। १६८४ ई०में इंग्लैण्डके डाक्टर रबार्ट हुक(Dr. Robert Hooke)ने ऊंचे स्तंभादि पर बड़े बड़े अक्षरोंकी प्रतिकृति रख कर दूरसे संवाद भेजनेका एक तरीका निकाला। रातको अक्षरोंके बदले हुकने आलोक द्वारा सङ्केतज्ञापन करनेका तरीका निकाला। फलतः उन अक्षरोंको साधारण लोग समझ नहीं पाते थे। इसके प्रायः २० वर्ष बाद आमण्टनने (M. Amonton) फ्रान्समें हुककी भाँतिका एक उपाय उद्भावन किया। किन्तु पीछे इन दोनोंके कोई भी अधिक दिन तक नहीं ठहरे। १७९३ वा १७९४ ई०में मि० चापि (M. Chappe)ने जिस टेलिग्राफ़का आविष्कार किया था, वही उस समय फरासीसी गवर्नमेंण्ट द्वारा वहां प्रचलित हुआ था। इसका आकार एक वृहत् T की भाँतिका था। इसलिए कभी कभी लोग इसको टी-टेलिग्राफ भी कहा करते हैं। एक सीधी गड़ी हुई लकड़ीके छोर पर दूसरी एक आड़ी लकड़ीके दोनों छोरों पर दो लकड़ियाँ और लगी होती है इन लकड़ीके टुकड़ोंको रस्सीसे खींच कर नानारूप अवस्थाओंमें रक्खा जा सकता है। इस तरहसे प्रायः २५५ प्रकारके भिन्न भिन्न आकारों द्वारा २५५ प्रकारके इशारा किये जाते थे। इन इशारोंसे अक्षर वा अङ्क एक शब्द वा वाक्य सभी हो सकते थे। शब्द वा वाक्य पुस्तकोंमें लिखे रहते थे और सङ्केतानुसार संख्याके आधारसे उसका अर्थ लगाना पड़ता था। फरासीसी विप्लवके समय इस टेलिग्राफ़के द्वारा बहुत जगह संवाद भेजे जाते थे। दूरवीक्षणकी सहायतासे चिह्न आदि देखे जाते थे। किसी ष्टेशनसे एक तरहका चिह्न दिखाये जाने पर उसी समय परवर्ती ष्टेशनसे भी वही चिह्न दिखाया जाता था, उससे फिर अन्य स्थानमें— इसी तरह शीघ्र अति दूरवर्ती स्थानमें संवाद पहुंच जाय करता था।

मि० चापिके बाद मि० एजवर्थ (Edgeworth)-ने इंग्लैण्डमें इसी तरहका टेलिग्राफ़ आविष्कार किया। इसमें कुछ संख्याएं निर्दिष्ट थीं। प्रत्येक संख्याका पृथक् अर्थ पुस्तकमें लिखा रहता था जो आवश्यकतानुसार ढूंढ़ लेना पड़ता था।

मि० गेम्बलके टेलिग्राफ़में एक बड़े काठकी चौखटके छह प्रकोष्ठोंमें छह दरवाजे संयुक्त होते थे ये किवाड़ इच्छानुसार खोले और बन्द किये जा सकते थे। इनको नाना प्रकारसे खोलने और बन्द करनेको अवस्थाओंके द्वारा नाना प्रकारके सङ्केतोंसे अक्षरादि सूचित होते थे।

१७९६ ई०में पहले पहल इङ्गलण्डमें लण्डनसे डोवर तक टेलिग्राफ़ लाइन स्थापित हुई थी। यह टेलिग्राफ़ शेषोक्त टेलिग्राफ़का ईषत् रूपान्तर मात्र था। कहा जाता है कि, इसके द्वारा ७ मिनटमें डोवरसे लण्डनको संवाद भेजा जाता था। १८१६ ई० तक ऐसा टेलिग्राफ़ ही व्यवहृत होता था।

इसके बाद बहुतोंने नानारूप परिवर्तन वा उत्कर्ष-साधन करके नाना प्रकारकी तरकीबोंका निकालना शुरू किया। फरासीसी लोग इस समयमें एक खुंटो पर दो या तीन हत्ते लगा कर टेलिग्राफ़ करते थे।

पूर्वोक्त नाना प्रकारके सङ्केतोंका अनेक प्रकारसे परिवर्तन करके असंख्य प्रकारके टेलिग्राफ़ इङ्गलैण्ड और यूरोपमें प्रचलित हुए थे। इस प्रकारके सङ्केतादि दूरस्थ जहाजोंके साथ संवाद आदान-प्रदानमें अत्यन्त प्रयोजनीय था। बहुत समय इसकी आवश्यकता अति अपरिहार्य हो जाती थी। जहाजोंमें सङ्केत करनेके लिए प्रधानतः नाना वर्णोंकी भिन्न भिन्न आकारकी पताकाएं व्यवहृत हुआ करती थीं। स्थलभागके टेलिग्राफ़की तरह उसमें भी संख्या आदि निर्दिष्ट थी और अर्थ-पुस्तक द्वारा अर्थका निर्णय होता था। १७९८ ई०में इङ्गलैण्डीय नौ-सेना-विभागसे एक पुस्तक निकली। उसमें प्रायः ४०० वाक्य सङ्केत द्वारा प्रकट करनेकी तरकीबें लिखी थीं। किन्तु यदि कोई संवाद उक्त ४०० संख्यासे बाहर होता तो उस टेलिग्राफ़से कार्य नहीं चलता था। यह देख कर सर होम पपहम (Sir Hom Popham)-ने पताका द्वारा अक्षर स्थिर करनेकी प्रथा चलाई। इन्होंने नूतन सङ्केतोंका विवरण लिख कर एक पुस्तक कलकत्तेको भेजी। पीछे वह पुस्तक

लण्डनमें परिवर्द्धित और संस्कृत हो कर छपी थी।

कुछ भी हो, ऐसे टेलिग्राफ़ बहुत समय सहज और सुविधाजनक होने पर भी कभी कभी अस्पष्ट और अकर्मण्य हो जाता था। वायुराशि कुज्झटिकामय होनेसे दूरस्थ सङ्केत दीखता नहीं था। बहुत दूरके शब्द आदि भी सुनाई नहीं पड़ते थे। इसीसे दूरस्थ स्थानका घण्टा बजा कर तथा जल वा वायुपूर्ण नलसंयोग करके सङ्केत किये जाते थे। किन्तु ऐसा टेलिग्राफ़ बहुत समय असम्भव हो जाता था। आखिर ताड़ित अर्थात् बिजलीका आविष्कार और धातुके तारों द्वारा इसका अतिशीघ्र स्थानान्तरमें परिचालनव्यवहार आविष्कृत होने पर टेलिग्राफ़का युग परिवर्तन हुआ। फिलहाल सर्वत्र इसी तरीक़ेसे टेलिग्राफ़ होता है। बेतारके टेलिग्राफ़का भी आविष्कार हो गया है।

ताडितवार्तावह और बेतारका तार देखो।

टेलिग्राम (अं० पु०) वह संवाद जो तारके द्वारा भेजा जाता है।

टेलिफोन (अं० पु० यह शब्द ग्रीक टेलि=दूर और फोनो=श्रवण करना, इन दो शब्दोंसे उत्पन्न हुआ है। इसका अर्थ दूर-श्रवणयन्त्र है, अर्थात् जिसके द्वारा दूरसे सुना जाय वह यन्त्र।

दो बांस, कागज वा टीनके चोंगाका एक तरफसे कागज, चाम या धातुकी पत्ती द्वारा आच्छादित करके मध्यस्थलमें एक लम्बा सूत वा तार बाँध दें इस तरहके दो चोंगोंमेंसे एकमें बात करनेसे दूसरेमें वह हूबहू सुनाई पड़ती है। द्वितीय चोंगको कान पर रखना चाहिये। यह एक प्रकारका सरल टेलिफोन है। इससे थोड़ी दूर तककी बात सुनाई पड़ती है, पर ज्यादा होनेसे शब्द अस्पष्ट हो जाते हैं। इसका नासिकास्वर होता है। नीचे ताड़ितप्रवाह द्वारा जो टेलिफोन होता है, उसका संक्षेपमें वर्णन किया जाता है।

एक चुम्बकदण्डके ऊपर रेशमादि अपरिचालक सूत्रमण्डित तांबेका तार लपेट कर उस तारके दोनों छोर एक तरफ दो बन्धनी स्क्रूके साथ कसे होते हैं। पीछे वह तार लपेटा हुआ चुम्बक एक नलके बीचमें स्थापित होता है और उसके किनारे एक बहुत पतली लोहेकी पत्ती चुम्बकके अति निकट बद्ध रहती है। लोहेकी पत्ती काष्ठके चोंगके भीतर चारों तरफसे कसा होता है तथा उसके बीचमें चुम्बकके दूसरे तरफ खुला रहता है।

टेलिफोन द्वारा बातचीत करनेके लिए इस तरहके दो यन्त्रोंकी जरूरत होती है, एक कहनेका और दूसरा सुननेका। प्रथमतः उक्त दोनों नलोंको रेशमसमण्डित तांबेके तारसे संयुक्त करना होगा। एक चुम्बक पर लपेटे हुए तांबेके तारके एक छोरको उक्त बन्धनीके द्वारा एक लम्बे तारके साथ संयुक्त करके दूसरेको एक स्क्रूसे कस देना चाहिये। अन्य दो स्क्रूओंको या तो अन्य तार द्वारा परस्पर संयुक्त करें या प्रत्येकको क्षुद्र तार द्वारा पृथिवीके साथ संयुक्त कर दें। इनमेंसे एक चोंगेसे मुंह लगा कर बात कहनेसे अन्य व्यक्ति दूसरे चोंगेमें कान लगा कर हूबहू शब्द सुन सकता है। इसमें कण्ठस्वर अनेकांशमें क्षीण और ईषत् नासिकासुरकी भाँति हो जाने पर भी बहुत दूरसे पूर्वपरिचित स्वर मालूम हो सकता है और बात भी समझी जा सकती है। सागरमध्यस्थ तार द्वारा प्रायः ३०।७० मील तथा स्थलभागस्थ ऊपरके तार द्वारा प्रायः २०० मील तककी दूरीसे दो मनुष्य आपसमें बातचीत कर सकते हैं। यह वैज्ञानिक आविष्क्रिया अतीव आश्चर्यजनक है।

अब किस तरह दूरवर्ती नलमें प्रतिरूप शब्द उत्पन्न होता है, उसका विवरण लिखा जाता है। शब्द वायुराशिका कम्पन मात्र है। शब्द देखो। मुखसे निकली हुई शब्द-तरङ्ग चोंगाके मध्यस्थित वायुराशिको कम्पित करती है और उसके घात प्रतिघातसे तत्संलग्न सूक्ष्म लोहेकी पत्तियाँ भी स्पन्दित हुआ करती हैं। इस प्रकारका स्पन्दन लोहेकी पत्तियोंका एक बार आगे और एकबार पीछे हटनेके सिवा और कुछ नहीं है। यह स्पन्दन इतना द्रुत और अल्पदूरव्यापी है कि हम उसको देख नहीं सकते। कुछ भी हो इस तरहके स्पन्दनके कारण निकटस्थ चुम्बकदण्डकी शक्ति एक बार ह्रास और एक बार वृद्धि होती है तथा चुम्बकके चारों तरफको तार-कुण्डलीमें एक बार एक तरफ और एक बार दूसरी तरफ ताड़ित-स्रोत उत्पन्न होता है। चुम्बक देखो। यह ताड़ित-प्रवाह तार द्वारा दूरस्थ ष्टेशन पर पहुंचता है और

वहाँ चुम्बकदण्डके चारों तरफकी कुण्डलीमें प्रवाहित हो कर एक बार चुम्बककी शक्तिको ह्रास और एक बार वृद्धि करता है। इसलिए उसके पासकी लोहेकी पत्तियाँ एक बार अधिक और एक बार अल्प जोरसे आकृष्ट हो कर स्पन्दित होती रहती हैं, यह स्पन्दन क्षीण होने पर भी प्रथम नलकी पत्तियोंके स्पन्दनके हूबहू अनुरूप होनेसे क्षीणतर होता है, किन्तु अनुरूप शब्द उत्पन्न करता है।

बहुत समय सुभीतेके लिए चुम्बकके स्थान पर लौहदण्ड दिया जाता है और ताड़ितकोषके साथ संयुक्त करके उसको अस्थायी चुम्बकमें परिणत किया जाता है।

किसी तारमें अति क्षीण ताड़ितप्रवाहको पकड़नेके लिए टेलिफोन व्यवहृत होता है टेलिफोनके तारका ताड़ितप्रवाह साधारण ताड़ित-वार्त्तावहके तारके प्रवाहकी अपेक्षा बहुत थोड़ा होता है। किन्तु उतनेसे ही टेलिफोनमें श्रवण करने योग्य शब्द उत्पन्न होता है। इसलिए उस तारके पास टेलिफोनका तार रहनेसे उसमें विपरीत ताड़ितस्रोत उत्पन्न हो कर टक् टक् शब्द उत्पन्न होता है।

१८७६ ई०में मि० बेलने टेलिफोनका आविष्कार किया था। १८७७ ई०में जर्मन राज्यमें पहले पहल टेलिफोन प्रचलित हुआ था। फिलहाल टेलिफोनका बहुत प्रचार हो गया है। क्या विलायत और क्या हिन्दुस्तान, सर्वत्र बड़े बड़े नगरोंमें धनवान् लोग अपने अपने मकानोंमें टेलिफोन-यन्त्र लगवाते हैं। इसके जरिये बहुत आसानीसे शिक्षाके सिवा अन्य सभी संवाद भेजे जा सकते हैं। घर घर टेलिफोनसे बात कहनेके लिए एक मकानसे प्रत्येक मकान तक तार नहीं रखना पड़ता। सब मकानोंके टेलिफोनका तार एक साधारण टेलिफोन आफिसमें संयुक्त रहता है वहाँ पर इच्छानुसार कोई भी दो मकानोंके टेलिफोन द्वारा साक्षात् करनेके लिए संयुक्त हो सकता है। बड़े बड़े शहरोंमें इसी तरह टेलिफोनमें तार जोड़े जाते हैं।

टेली (हिं० पु०) आसाम, कछार, सिलहट और चटगांवमें होनेवाला मझले आकारका एक पेड़। इसकी लकड़ी लाल और मजबूत होती है।

टेव (हिं० स्त्री०) अभ्यास आदत, बान।

टेवकी (हिं० स्त्री०) १ नावका वह छोटा पाल जो सब पालोंसे ऊपरमें रहता है। २ बाँसकी वह लकड़ी जो दोनों छोरों पर कुछ दूर तक चिरी रहती है। जुलाहा डाँड़ीमें इसे इसलिए लगाते हैं कि तागा गिरने न पावे।

टेवा (हिं० पु०) १ जन्मपत्री, जन्मकुण्डली। २ लग्नपत्र। इसमें विवाहकी मिती दिन, घड़ी आदि लिखी रहती हैं। विवाहसे कुछ पहले नाई लड़कीके यहाँसे शकुनके साथ इस जन्मपत्रीको ले कर लड़केके पिताको देता है।

टेसू (हिं० पु०) १ पलाशका फूल, ढाकका फूल। २ पलाशका पेड़। ३ लड़कोंका एक उत्सव। इसमें छोटे छोटे लड़के विजयादशमीको तीन लकड़ी और मिट्टीका पुतला बना कर कुछ गाते हुए दरवाजे दरवाजे घूमते हैं। इसी तरह वे पाँच दिन तक घूमा करते हैं और लोगोंसे जो कुछ भिक्षा मिलती उससे वे मिठाई और लावा खरीदते हैं। अन्तिम दिन वे बोए हुए खेतों पर जाते और अनेक तरहके खेल कसरत इत्यादि करते हैं। बाद मिठाई लावा आपसमें बाँट कर शामको घर लौट आते हैं।

टेहरी-१ युक्तप्रदेशके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा० ३०° ३′ से ३१°१८′ उ० और देशा० ७७°४९′ से ७९°२४′ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४२०० वर्गमील है। इसके उत्तरमें पञ्जाबके राविन और बशहर राज्य तथा तिब्बत; पूर्व और दक्षिणमें गढ़वाल जिला तथा पश्चिममें देहरादून है। राज्यका अधिकांश गिरिजङ्गलसे आच्छादित है। ऊँचेसे ऊँचे पहाड़की ऊँचाई समुद्रपृष्ठसे २०००० फुटसे ले कर २३००० फुट तक है। राज्यमें गङ्गा और यमुना दोनों नदी प्रवाहित हैं। यहाँ गङ्गा भागीरथी नामसे प्रसिद्ध है। यह दक्षिण-पश्चिमसे ले कर दक्षिण-पूर्व होती हुई देवप्रयागके समीप अलकनन्दासे जा मिली है। बन्दरपूँछ पहाड़के पश्चिम हो कर यमुना नदी बहती है। यह दक्षिण पश्चिम होती हुई राज्यकी पूर्वीय सीमाको चली गई है। उक्त दो प्रसिद्ध नदियोंके उद्भवस्थानके समीप यमनोत्री और गङ्गोत्री प्रसिद्ध तीर्थस्थानोंमें गिनी जाती हैं।

यहाँके जङ्गलमें बाघ, चीता, भालू, हरिन तथा तरह तरहके भेंड़ें पाये जाते हैं। आबहवा गढ़वाल जिलेकी सी है।

गढ़वाल जिलेके इतिहासको ही इस राज्यका प्राचीन इतिहास कह सकते हैं। एक ही वंशके राजा दोनों देशके शासनकार्य चलाते थे। प्रद्युम्नशाह नामक अन्तिम राजा गोरखायुद्धमें काम आये। लेकिन १८१५ ई॰में नेपाल-युद्धके समाप्त होने पर उनके लड़के सुदर्शनशाहने बृटिशगवर्मेण्टसे वर्तमान टेहरी राज्य प्राप्त किया। सन् सत्तावनके गदरमें सुदर्शनशाहने अंगरेजोंकी खासी मदद दी थी। १८५९ ई॰में इनका देहान्त हुआ। बाद इनके दत्तकपुत्र भवानीशाह राज्यके अधिकारी हुए। इन्हें एक सनद तथा दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका अधिकार मिला था। १८७२ ई॰में इनके स्वर्गवास होने पर इनके लड़के प्रतापशाह १८८७ ई॰में सिंहासनारूढ़ हुए। बाद १८९४ ई॰में राजा कीर्तिशाहने टेहरीका सिंहासन सुशोभित किया। इन्होंने नेपालके महाराज जङ्गबहादुरकी पोतीको व्याहा था। ये K.C.S.I. उपाधिसे भूषित थे। वर्त्तमान राजाका नाम नरेन्द्रशाह है।

राज्यमें कुल २४५६ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी बड़ा नहीं है। लोकसंख्या प्रायः २९८८८५ है। सैकड़े ९८ हिन्दूकी संख्या है। राज्य भरमें केवल एक ही तहसील है।

धान और गेहूं यहाँकी प्रधान उपज है। राज्यके पश्चिम कुछ चाय भी उपजाई जाती है। यहाँसे देवदार, घी, धान और आलूकी रफ्तनी होती तथा दूसरे दूसरे देशोंसे चीनी, नमक, लोहे, पीतलके बरतन, दाल, मसाले और तेलकी आमदनी होती है।

राज्यमें केवल राजाकी ही पूरी क्षमता है। विचारकार्य वजीरके अधीन है। राजस्व आदिका मामला एक तहसीलदार और तीन डिपटी-कलेक्टरसे तै होता है। तृतीय श्रेणीके दो मजिष्ट्रेट देव-प्रयाग और कीर्तिनगरमें रहते हैं। द्वितीय श्रेणीकी सामान्य क्षमता-प्राप्त डिप्टी कलेक्टरके हाथ और प्रथम श्रेणीकी वजीर तथा एक मजिष्ट्रेटके हाथ है। मृत्युदण्ड केवल राजासे ही दिया जाता है। दीवानी मुकदमा डिपटी-कलेक्टरके इजलासमें पेश होता है। सभी मुकद्दमोंकी अपील राजा सुनते हैं। राज्यकी आय २७४०००) रु॰की है।

राजाको ११३ पदातिक सैन्य और २ तोपें रखनेका अधिकार है। राज्य भरमें केवल दो अस्पताल और एक कारागार है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा॰ ३०°२३´ उ॰ और देशा॰ ७८° ३२´ पू॰के मध्य भागीरथी तथा भिलिङ्ग नदीके सङ्गम स्थान पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ३३८७ है। यह शहर समुद्रपृष्ठसे २२७८ फुट ऊंचा है। यहां गर्मी बहुत पड़ती है। इस समय राजा शहरसे ८ मील दूर प्रतापनगरमें जा कर रहते हैं। अदालत चिकित्सालय और स्कूलके सिवा यहां अनेक मन्दिर तथा धर्मशालायें भी है।

टैभरनियर (जियान बैप्टिष्टा)—प्रसिद्ध यूरोपीय पर्यटक। ये मुगल-साम्राज्यके शेष युगमें भारत-भ्रमणके लिए आये थे। इनके भ्रमणवृत्तान्तसे उस युगके अनेक ऐतिहासिक तथ्य मालूम हो सकते हैं।

टैभरनियरका जन्म १६०५ ई॰में सौन्दर्यके अमर निकेतन पारिस नगरीमें हुआ था। इनके पिता एक फ्लेनिश शिल्पीके औरसजात थे और उन्होंने देशभ्रमणमें ही अपना जीवन बिताया था। टैभरनियरने भी पिताका आदर्श सामने रख कर पन्द्रह वर्षकी उम्रमें ही पितासे आज्ञा ले कर देश-भ्रमण प्रारम्भ कर दिया। प्रथमतः आपने यूरोपके भिन्न भिन्न स्थानोंमें परिभ्रमण किया और फिर दो फरासीसी संभ्रान्त व्यक्तियोंके अधीन काम करते हुए आप प्राच्यदेशकी तरफ चल दिये। १६३० ई॰के दिसम्बर महीनेसे आपका भ्रमण शुरू हुआ था। रीजमवर्ग, ड्रेसडेन, भियेना, कनस्तान्तिनोपल आदि स्थानोंमें भ्रमण करनेके बाद आपने उक्त फरासीसी सज्जनोंका साथ छोड़ दिया। पीछे एक्सिजिरोयम, ताब्रिज, इस्पाहन, बोगदाद, आलीपो और स्कारडारुन आदि स्थानोंमें घूमते हुए आप १६३३ ई॰में समुद्रके रास्ते रोम नगरीमें उपस्थित हुए। १६३८ ई॰में आप दूसरी बार भ्रमणके लिये निकले। इस बार आपने मार्शेलिससे ले कर स्कारडारुन तक भ्रमण किया। पीछे आप सिरिया पार हो कर इस्पाहान और फारसके

दक्षिण-पश्चिम प्रदेशोंमें घूमते हुए भारत आये।

आपका यह भ्रमण १६४३ ई०में समाप्त हुआ था। १६४३ ई०से १६४८ ई० तक तृतीय बार भ्रमणका समय है। इस बार आपने इस्पाहानसे ले कर जावा आदि पूर्व भारतीय द्वीपोंमें पर्यटन किया था। चतुर्थ और पञ्चम बारके भ्रमणका समय निर्णय करना कठिन है। सम्भवत: ये दोनों भ्रमण १६५१से १६५८ ई०के भीतर हुए होंगे। १६६३ ई०में इन्होंने छठो बार भ्रमण शुरू किया। सिरिया और अरबको मरुभूमि पार कर फारस होते हुए आप भारतवर्ष आये। १६६८ ई०में आप यूरोप पहुँच गये।

टैभरनियरने साधारणत: जवाहरातके व्यवसायी बन कर भ्रमण किया था। जिस समय आप भारतवर्ष आये थे उस समय भारतके गौरव तपनने प्राच्य आकाशमें उदित हो कर समग्र जगत्को आलोकित किया था। आपने भारतके प्राय: सभी प्रधान प्रधान नगरोंमें भ्रमण किया था। उस समय मुगल साम्राज्यके गौरव और बाणिज्य-व्यवसायकी उन्नतिके कारण भारतवर्षकी कैसी उन्नत दशा थी, इसका परिज्ञान आपके भ्रमणवृत्तान्तसे भली भांति हो जाता है। इसके सिवा आपके भ्रमणवृत्तान्तमें भारतके प्रधान प्रधान बन्दरों और मुगल-शासन-प्रणालीका विवरण भ मिलता है। फलत: आपके भ्रमणवृत्तान्तसे भारतके इतिहासको १७वीं शताब्दीको बहुतसी घटनाएं मालूम हो सकती है। टैभरनियर अन्तमें अवनोके बैरन नामसे अभिहित हुए थे। राजनीतिक परिवर्तनके कारण आपको बाध्य हो कर सुइज़रलैण्डमें रहना पड़ा था। वहां आप ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीके डिरेक्टर नियुक्त हुए थे।

आप रूसियाके भीतरसे भारतवर्ष तक एक मार्ग निकालनेके लिए (१६८८ ई०में) वार्लिनसे चल दिये। परन्तु (१६८९ ई०में) मस्को नगरमें आपका देहान्त हो गया। आपके भ्रमणवृत्तान्तके दो भाग १६७६-७७ ई०में और ३य खंड १६७९ ई०में प्रकाशित हुआ था।

टैसीटस् (कर्नेलियस्)—सुप्रसिद्ध रोमन ऐतिहासिक। आपके लिखे हुए इतिहासमें हो सबसे पहले जर्मनजातिका विवरण लिपिबद्ध हुआ है। आपके जीवनकालमें रोमके सिंहासन पर निम्नलिखित सम्राट् बैठे थे—नीरो, गैलबा, अटो, भिटेलियस, भेसपेसियन, टाइटस, डोमिसियन, नार्भा और ट्राजान।

आपके व्यक्तिगत जीवनके विषयमें, जिन्हें वे स्वयं लिख गये हैं तथा प्लिनीके साथ आपका जो पत्रव्यवहार हुआ था, उससे कुछ मालूम हो सकता है। टैसीटस जहां तक सम्भव हो सकता है, ईसासे ६१ वा ६२ वर्ष पहले उत्पन्न हुए थे। आप जूलियस ऐग्रिकोलाके जामाता थे। इससे मालूम होता है कि आप समाजके उच्च पदस्थ और सच्चरित्र व्यक्ति थे। आप अपने श्वशुरकी एक जीवनी लिख गये हैं।

९७ ई०में टैसीटसको कन्सालका पद प्राप्त हुआ था। ईसाकी ३री शताब्दीमें सम्राट् टैसीटस अपनेको ऐतिहासिक टैसीटसके वंशधर समझ कर गौरव अनुभव करते थे; उन्होंने आदेश दिया था कि प्रति वर्ष टैसीटसके ग्रन्थकी दश प्रतिलिपि करा कर साधारण पाठागारमें रक्खी जायँ।

प्लिनीने बड़ी श्रद्धाके साथ कई जगह टैसीटसका उल्लेख किया है। प्लिनीने एक पत्रमें, अपने जन्मस्थानके विद्यालयके विषयमें टैसीटससे उपदेश चाहा था। एक जगह प्लिनी टैसीटसको लिखते हैं—"मैं जानता हूं कि आपका नाम इतिहासमें अमर रहेगा। इसलिए मैं चाहता हूं कि उसमें मेरा भी नाम रहे।"

टैसीटसके ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है—(१) वक्ताओंका कथोपकथन (सम्भवत: ७६ वा ७७ ई०का) (२) ऐग्रिकोलाकी जीवनी, (३) जर्मनी (४) इतिहासमाला और (५) घटनावली।

आपके इतिहाससे रोमसाम्राज्यकी बहुतसी बातें मालूम हो सकती हैं।

टैया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी कौड़ी। इसकी पीठ साधारण कौड़ीसे कुछ चिपटी होती है। इसका रंग बिलकुल सफेद होता है। फेंकनेसे यह सदा चित पड़ती है इसी कारण जुएमें इसका व्यवहार होती है। इसका दूसरा नाम चित्ती है।

टैक्स (अं० पु० Tax) शुल्क, कार, महसूल।

टैन (हिं० स्त्री०) चमड़ा सिझानेके काममें आनेवाली एक प्रकारकी घास।

टोआ (हिं० पु०) गर्त्त, गड्ढा।

टोइयाँ (हिं० स्त्री०) तोतेकी एक जाति। इसकी चोंच पीली और कंठसे ले कर चोंच तक सारा भाग बैंगनी होता है, तोती।

टोई (हिं० स्त्री०) एक गिरहसे दूसरे गिरह तकका भाग, पोर।

टोंगा (हिं० पु०) टाँगा देखो।

टोंगू (हिं० पु०) फैलनेवाली एक झाड़ी। इसकी छालके रेशोंसे रस्सी बनाई जाती है, जिती, जक।

टोंचना (हिं० क्रि०) चुभाना, गड़ाना।

टोंट (हिं० स्त्री०) चोंच, ठोर।

टोंटा (हिं० पु०) १ वह वस्तु जिसका आकार चिड़ियोंकी चोंच जैसा हो। २ चोंचके आकारमें गड़े हुए काठके टुकड़े। ये डेढ़ दो हाथ लंबे होते हैं और दीवार परकी छाजनको सहारा देनेके लिये लगाए जाते हैं। ३ वह नली जो पानी आदि ढालनेके लिये बरतनमें लगी रहती है।

टोंटी (हिं० स्त्री०) १ झारीमें लगी हुई नली, तुलतुली। २ पशुओंका थूथन।

टोक (हिं० पु०) १ उच्चारण किया हुआ अक्षर। (स्त्री०) २ प्रश्न आदि द्वारा किसी कार्यमें बाधा, पूछ ताछ। ३ खराब दृष्टिका प्रभाव, नजर।

टोकना (हिं० क्रि०) १ प्रश्न आदि करके किसी कार्यमें बाधा डालना, बीचमें बोल उठना। २ बुरी दृष्टि डालना, नजर लगाना। ३ एक पहलवानको दूसरेसे लड़नेके लिये कहना, ललकारना।

टोकनी (हिं० स्त्री०) १ टोकरी, डलिया। २ पानी रखनेका छोटा बरतन ३ बटलोई, देगची।

टोकरा (हिं० पु०) खाँचा, डला, झाबा।

टोकरी (हिं० स्त्री०) १ छोटा डला, झाँपी, झपोली। बटलोई, देगची।

टोकवा (हिं० पु०) नटखट लड़का।

टोकसी (हिं० स्त्री०) नारियलकी आधी खोपड़ी।

टोका (हिं० पु०) उर्दकी फसलको हानि पहुँचानेवाला एक कीड़ा।

टोट (हिं० पु०) टोटा देखो।

टोटका (हिं० पु०) १ तान्त्रिक प्रयोग, यंत्र मंत्र टोना, लटका। २ वह काली हाँडी जो खेतमें फसलको नजरसे बचानेके लिये रखी जाती है।

टोटकेहाई (हिं० स्त्री०) जादू करनेवाली।

टोटल (अं० पु०) जमा, ठीक, जोड़।

टोटा (हिं० पु०) १ बाँसका खंड। २ मोमबत्तीका जलनेसे बचा हुआ टुकड़ा। ३ कारतूस। ४ एक प्रकारकी आतशबाजी। ५ घाटा, हानि, नुकसान। ६ अभाव, कमी।

टोडरमल—१ सम्राट् अकबरके स्वनामप्रसिद्ध राजस्वसचिव और अन्यतम सेनापति। इनका जन्म १५२३ ई०को अयोध्याके अन्तर्गत लाहरपुर नामक स्थानमें हुआ था। मासिर-उल-उमराके मतानुसार इनका जन्मस्थान लाहोरमें था। इनके पिताका नाम भगवतीदास था। इनकी थोड़ी अवस्थामें ही इनके पिताका देहान्त हुआ। माता अत्यन्त कष्टसे इनका पालन पोषण करने लगीं। पितृवियोगके कुछ समय बाद इन्होंने सम्राट्के निकट एक उपयुक्त कार्य पानेकी प्रार्थना की। सम्राट्ने इनके गुणग्रामसे संतुष्ट हो कर इन्हें एक मुहर्रिरके पद पर नियुक्त किया, परन्तु कार्यकौशलसे ये शीघ्रही उच्चपद पर प्रतिष्ठित हुए।

९७२ हिजरीमें जब सम्राट्ने खाँजमानके विरुद्ध युद्धयात्रा की तब टोडरमल सम्राट्के अधीन सैनिक विभागमें काम करते थे। सम्राट्के राजत्वके अठारहवें वर्ष अर्थात् १५७४ ई०में गुजरातके अधिकृत होने पर वहांके भूपरिमाण निर्द्धारण और आभ्यन्तरीण बन्दोबस्त करनेके लिये टोडरमल ही नियुक्त हुए। इसके दूसरे वर्षमें पटनाके विजयकालमें इन्होंने अद्भुत क्षमता दिखलाई थी और सम्राट्के आदेशानुसार ये मुनिमखाँके साथ वङ्गदेशको गये थे। इस समय वङ्गदेशमें दाउदखाँ विद्रोही हो उठे थे। उनको दमन करनेके लिये ही मुनिमखाँ और टोडरमल वहां भेजे गये। युद्धमें टोडरमलने असीम उत्साह और विक्रम दिखलाते हुए विजय प्राप्त की। इस युद्धमें सेनापति खाँ आलम मारे गये तथा मुनिमखाँका घोड़ा अत्यन्त भयभीत

हो कर उनको लिये हुए भाग चला। परन्तु टोडरमल इससे तनिक भी हतोत्साह न हुए, वरं आश्चर्य साहसके साथ शत्रुओंको पराजय किया। इसके बाद ये वङ्ग और उड़ीसाका राजस्व प्रबन्ध कर सम्राट्के दरबारमें जा पहुँचे। फिर भी इन्होंने खाँजहानके सहकारी रूपमें वङ्गदेशको जा कर पहलेकी नाईं दाउदखाँको पराजित किया। १५७५ ई०की ३री मार्चको मुगलमारीके युद्धमें भी टोडरमलने अपनी क्षमताका पूरा परिचय दिया था। जब टोडरमलने सुना कि दाउदने सम्राट् अकबरका शासन अग्राह्य कर हरिपुर नामक स्थानमें सैन्यावास स्थापन किया है, तो वे शीघ्र ही वर्द्धमानसे छित्तुआ परगनाको चल दिये। मुनीमखाँ यहां आ कर उनसे मिले। दाउदने इच्छा की थी कि सम्राट्की सेना जिससे उड़ीसा प्रवेश न कर सकें वैसा ही कार्य करना चाहिए, परन्तु इलियासखाँ लङ्गा नामक एक मुसलमानने सम्राट्-सैन्यको एक सहज रास्ता दिखला दिया था। इसी राहसे मुनीमखाँ गन्तव्य स्थानको जानेमें समर्थ हुए। लड़ाईमें दाउद पराजित हो कर भाग गया। टोडरमल उसका पीछा करते हुए भद्रकको जा पहुंचे। दाउद कटकके निकट सैन्य संग्रह करके फिर भी लड़नेके लिए प्रस्तुत हुए। जब टोडरमलको यह खबर मिली तो इन्होंने मुनीमखाँको शीघ्र ही उनसे मिलनेके लिए एक पत्र लिख भेजा। यथासमय मुनीम भी पहुंच गये। दोनोंकी सेना एकत्रित हो कर कटककी ओर आगे बढ़ी। यहां पर दाउदके साथ एक सन्धि हुई। १५७७ ई०में टोडरमल दूसरी बार गुजरातको भेजे गये। जब ये अहमदाबाद नामक स्थानमें वजीरखाँके साथ सम्राट्के कार्यका प्रबन्ध कर रहे थे, तब मुजफ्फर हुसेनकी उत्तेजनासे मीर-अली गुलाबी इनके विरुद्ध हो उठे। वजीरखाँ टोडरमलको दुर्गमें आश्रयग्रहण करनेका आदेश किया। किन्तु टोडरमलने इस आदेशके अनुसार काम न करके अहमदाबादसे १२ कोस दूर धोलकोया नामक स्थान पर जा कर विद्रोहीके परामर्शदाता और प्रधान सहायक मुजफ्फरको अच्छी तरह परास्त किया।

इसी वर्ष, सम्राट्ने टोडरमलको वजीरके पद पर नियुक्त किया। इस समयसे ये राजा टोडरमल नामसे सम्मानित होने लगे।

जब सम्राट्को मालूम हुआ कि मुजफ्फरकी मृत्यु हो गई है; परन्तु विद्रोहियोंने वङ्ग और बिहार पर अधिकार जमा लिया है तो उन्होंने टोडरमल और शादिकखाँको फतहपुर-सिकरीसे बिहारको प्रस्थान करनेके लिये एक पत्र लिख भेजा। मुहिब अली और महम्मद मसुमखाँ उनकी मदद देनेके लिये नियुक्त हुए। महम्मद मसुमखाँने ३००० सुशिक्षित अश्वारोही सैन्य ले कर टोडरमलकी मददमें गये लेकिन इनके मनमें विद्रोहाग्नि धधकती थी। राजाने यह जान कर मसुमखांको किसी तरह अपने अधीनमें रख लिया सही किन्तु यह सम्वाद इन्होंने सम्राट्को जना दिया।

वङ्गदेशके विद्रोहिगण मुङ्गेरके निकट एक किला स्थापन कर रहने लगे। राजा टोडरमलने अपने दुर्गमें विश्वासघातकताकी आशङ्का समझ कर प्रकाश्यभावसे युद्ध न करके मुङ्गेरके दुर्गमें आश्रय लिया। दुर्गके घेरे जानेके समय हुमायूं फरमिली और तरखानदिवाना नामक दो सेनापति विद्रोहियोंके साथ मिल गये। अधिक दिन अवरोध किये जाने पर दुर्गमें रसदका अभाव होने लगा। टोडरमल इससे तनिक भी शङ्कित न हो कर साहसके साथ दुर्गकी रक्षा करने लगे। शीघ्रही राज्यकी सहायताके लिये बहुतसी सेनाएँ आ पहुंची। विद्रोहिगण छिन्न भिन्न हो गये। मसुम-इ-काबुली दक्षिण बिहार और अरबबहादुर पटनाकी ओर भाग गये। टोडरमल और शादिकखाँ मसुमका पीछा करते हुए बिहार पहुंचे। मसुम एक लड़ाईमें पराजित हो कर उड़ीसाकी ओर भाग चले। इसी तरह टोडरमलने दक्षिण बिहारको दिल्ली साम्राज्यके अन्तर्गत कर लिया।

९९० हिजरीमें टोडरमल दीवानके पद पर नियुक्त हुए। इस वर्षमें इन्होंने राजस्वसम्बन्धमें एक नया नियम निकाला। इसी नये नियमके लिये राजा टोडरमलने ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस समय टोडरमलने मुद्रा सम्बन्धमें भी बहुत हेरफेर किया था। इन्होंने चार प्रकारकी मोहरें प्रचलित कीं। इन चार प्रकार-

की मोहरोंके मूल्य भी चार प्रकारके थे. जैसे – ४००) ३६०) ३५५) और ३५०) मूल्य। इस समय तीन प्रकारके रुपये भी प्रवर्त्तित हुए जिनका मूल्य क्रमशः ४०, ३९ और ३८) रखा गया था। पहले हिन्दू मोहर्रिर राजकीय हिसाब हिन्दी भाषामें लिखा करते थे। टोडरमलने नियम चलाया कि अबसे समस्त राजकार्य्य उर्दू भाषामें लिखे जाँयगे। तभीसे बाध्य हो कर अर्थोपार्जनके लिए हिन्दूगण उर्दू भाषा सीखने लगे। मुसलमान ऐतिहासिकोंने स्वीकार किया है—टोडरमलसे ही उर्दू भाषाकी बहुत कुछ उन्नति हुई है।

एक क्षत्रिय बहुत दिनोंसे टोडरमलको अत्यन्त घृणा-दृष्टिसे देखता आ रहा था, यहां तक कि उसने एक बार इन्हें मार डालनेकी भी चेष्टा की थी। १५८५ ई०को एकदिन रात्रिकालमें उसने टोडरमल पर अस्त्राघात किया। सौभाग्यवश उक्त आघातसे टोडरमलका कोई विशेष अनिष्ट न हुआ। वह नराधम उसी समय पकड़ा गया और मार डाला गया।

युसुफजाइयोंको दमन करनेके लिए राजा वीरबल भेजे गये थे। परन्तु वे उन्हें वशीभूत तो क्या करते आप स्वयं उन लोगोंसे मार डाले गये। वीरबलकी मृत्युकी प्रतिहिंसा लेने और युसुफजाइयोंको सम्पूर्णरूपसे वशीभूत करनेके लिये टोडरमल प्रधान सेनापति मानसिंहके साथ १५८८ ई०में भेजे गये। १५९० ई०में अकबर जब काश्मीरको पधारे थे, तब लाहोरकी रक्षाका भार राजा टोडरमल ही पर सौंपा गया था।

इस समय टोडरमल वृद्ध हो गये थे। तथा राजकीय कार्यके गुरुतर परिश्रमसे इनका शरीर क्रमशः दुर्बल होता जा रहा था। इसी लिए राजकार्यसे छुटकारा पा कर धर्मचर्चामें जीवनका अवशिष्ट काल बितानेके लिए इन्होंने सम्राट्से प्रार्थना की। लेकिन सम्राट्ने सम्मति तो दे दी, मगर बहुत अनिच्छासे। टोडरमल जब हरिद्वारमें रहते थे, तब सम्राट्ने इन्हें फिर बुला भेजा। टोडरकी आनेकी तनिक भी इच्छा न थी. किन्तु सम्राट्की आज्ञा पालन करनेके लिये ये आनेको बाध्य हुए। जो कुछ हो, इन्होंने ९९८ हिजरीमें गङ्गातीर पर प्राणत्याग किया।

राजा टोडरमलका चरित्र अत्यन्त महत् और उदार था। सम्राट् अकबरके शुभानुध्यायियोंमें टोडरमल ही प्रधान गिने जाते थे। इनकी कार्यदक्षताके प्रभावसे अकबरके राज्यमें बहुतसे सुनियम और सुशृङ्खला स्थापित हुई थीं। सम्राट्के प्रधान सभासदोंमें अबुलफजल और मानसिंह सरीखे राजा टोडरमलके नामसे कौन नहीं परिचित है? वे अपने गुणसे चार हजार सेनाओंके अधिपति हो गये थे। राजस्व-नियमके स्थापनके जैसा ये निपुण थे, वैसा इनका साहस भी असीम था।

अबुलफजल टोडरमलके कट्टर विद्वेषी थे। किन्तु जब वे सम्राट्के सामने टोडरमलकी शिकायत करते, तब सम्राट् उत्तर देते थे कि 'टोडरमल जैसे प्रभुभक्त और विश्वासी व्यक्तिको कदापि पृथक् नहीं कर सकते।' अन्तमें अबुलफजल भी राजा टोडरमलकी कार्यदक्षता, सत्यवादिता और साहसकी यथेष्ट प्रशंसा करने लगे थे एवं धर्मसम्बन्धमें अन्धविश्वासी कह कर उनकी निन्दा करते थे।

राजा टोडरमल एक कट्टर हिन्दू थे। वे प्रतिदिन नियमितरूपसे बहुतसी देवमूर्त्तियोंकी अर्चना करते तथा पूजादि किये बिना किसी कार्यमें हाथ नहीं डालते थे। सम्राट्के साथ पंजाब जाते समय एक दिन जल्दीमें उनकी एक देवमूर्त्ति कहीं गिर पड़ी; इस कारण उन्होंने कई दिन तक उपवास किया था, वे चिन्ताके मारे कुछ भी खाते पीते नहीं थे। अन्तमें सम्राट्ने अत्यन्त कष्टसे उनका मानसिक दुःख दूर किया।

पहले हिन्दूगण कर दिये बिना किसी तरहका धर्मानुष्ठान नहीं कर सकते थे। अकबरने राजा टोडरमलके आदेशसे उक्त कर तथा जिजिया कर सदाके लिये उठा दिया।

कर वसूल होनेका कोई निर्द्धारित नियम नहीं रहनेसे प्रजा और जमींदार दोनोंको अत्यन्त कष्ट झेलना पड़ता था। राजा टोडरमलकी सहायतासे अकबरने कृषि-विषयमें नये नियम निकाले। प्राचीन हिन्दूरीतिके अनुसार अकबरके राजस्व नियम बनाये गये थे। पहले भूमिका परिमाण निर्णय कर, बाद जमीनसे जितनी

फसल उत्पन्न होगी, उसके मूल्यका तीसरा भाग राजकर निर्द्धारित हुआ। पहले पहल प्रति वर्ष भूमिका परिमाण निर्णय करके उक्त रूपसे कर वसूल होने लगा। किन्तु इसमें प्रजाको बहुत कष्ट होता था; इसलिये अन्तमें दश वर्षके लिये प्रजाके साथ जमीन बन्दोबस्त कर दी गई। राजा टोडरमलको बहुत प्रयत्नसे इस तरहका नियम स्थापन करना पड़ा था। इस नियमसे प्रजाको यथेष्ट सुविधा होती थी। बङ्गदेशके प्रायः सभी कृषकोंके सामने राजा टोडरमलका नाम परिचित है। राजस्वके बन्दोबस्तके लिये ही उनका नाम चिरस्मरणीय है। वे क्षत्रियकुलके थे। कोई कोई भूलसे इन्हें पंजाबी कहा करते हैं, किन्तु अयोध्यामें इनका पूर्ववास था।

इन्होंने पारसी भाषामें भागवतपुराण अनुवाद किया था। नीति सम्बन्धमें भी इनकी बहुतसी कविताएँ देखनेमें आती हैं।

राजा टोडरमलका नाम कोई कोई 'तोदरमल' लिखा करते हैं। लेकिन टोडरानन्द नामक संस्कृत ग्रन्थमें 'टोडरमल्ल' नाम देखा जाता है। टोडरमलने इस बृहत् संस्कृत ग्रन्थकी रचना की है। यह ग्रन्थ तीन खण्डोंमें विभक्त है—धर्मशास्त्र, ज्योतिष और वैद्यक। धर्मशास्त्रखण्ड भी फिर आचार, काल और व्यवहार-निर्णय इन शाखाओंमें विभक्त।

२ सम्राट् शाहजहान्‌के एक सभासद। उस समय ये बहुत प्रसिद्ध थे।

टोडरमल पण्डित—दिगम्बर जैन-सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध विद्वान् और ग्रन्थकार। इनकी जाति खण्डेलवाल जैन और निवासस्थान जयपुर था। ये वि० सं० १८२४ तक विद्यमान थे। केवल ३२ ही वर्षकी अवस्थामें ये इतना काम कर गये थे कि, सुन कर आश्चर्य होता है। इनकी रचनासे जैन-समाजका तत्त्वज्ञानका रुका हुआ प्रवाह पुनः प्रवाहित होने लगा है। जहाँ कर्म-सिद्धान्तकी चर्चा करना केवल संस्कृत वा प्राकृतके विद्वानोंके हिस्सेमें था, वहाँ आपकी कृपासे साधारण हिन्दी जाननेवाले लोग भी कर्मतत्त्वोंके विद्वान् बनने लगे। सुना जाता है कि, जयपुर राज्यके दीवान अमरचन्दने इनकी ग्रन्थ-रचनाशैली देख कर इनके परिवारवर्गके निर्वाहका भार अपने ऊपर ले कर इनको "गोम्मटसार" नामक ग्रन्थकी हिन्दी टीका रचनेके लिए बाध्य किया था, दीवान अमरचन्दने इनको हर तरहसे निश्चिन्त कर दिया था। जैन दर्शनके ये असाधारण विद्वान् थे। इन्होंने प्रधान जैन ग्रन्थ गोम्मटसारकी विस्तृत टीका रची है, जो छप भी चुकी है, इसकी पृष्ठसंख्या लगभग ३००० है। इसके साथ ही लब्धिसार क्षपणसारकी टीका रची है, जिसकी श्लोकसंख्या ४५ हजार है। इन ग्रन्थोंमें जीव और कर्मसिद्धान्तका विस्तृत विवेचन है। इनका दूसरा ग्रन्थ त्रिलोकसारवचनिका है, इसमें जैनमतके अनुसार भूगोल और खगोलका वर्णन है। इसकी श्लोकसंख्या लगभग १०।१२ हजार होगी। तीसरा ग्रन्थ गुणभद्रस्वामिकृत संस्कृत आत्मानुशासनकी वचनिका (स्वतंत्र टीका) है। इसमें बहुत ही हृदयग्राही आध्यात्मिक उपदेश है। शेष दो ग्रन्थ अधूरे हैं—१ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय हिन्दी वचनिका और २ मोक्षमार्ग-प्रकाशक। इनमेंसे पहले ग्रन्थको तो पण्डित दौलतरामकाशलीवालने पूर्ण किया था, परन्तु दूसरा ग्रन्थ मोक्षमार्गप्रकाशक अधूरा ही है। यह ग्रन्थ छप चुका है, पृष्ठ ५०० हैं। यह ग्रन्थ उनका बिल्कुल स्वतन्त्र है। इसके पढ़नेसे मालूम होता है कि, यदि टोडरमल वृद्धावस्था तक जीते, तो जैनसाहित्यको अनेक अपूर्व रत्नोंसे अलङ्कृत कर जाते। इनके ग्रन्थोंकी भाषा जयपुरके बने हुए तमाम ग्रन्थोंसे सरल, शुद्ध और साफ है। इन्होंने ग्रन्थोंके मङ्गलाचरण आदिमें जो अपने पद्य दिये हैं, उनसे मालूम होता है कि, आप कविता भी अच्छी बना सकते थे।

टोडा (हिं० पु०) दीवारमें गड़ी हुई खूंटी जो बढ़ी हुई छाजनकी सहारा देनेके लिये लगाया जाता है, टोंटा।

टोडा—नीलगिरिकी एक पार्वत्य जाति। ये कुछ ऊँचे सींगवाली भैंस पालते और उनके दूधसे अपनी गुजर करते हैं। भैंसें ही इनकी सम्पत्ति वा जायदाद है। इनकी रहन-सहन साधारण किसानोंकी भाँति है, पर ये खेतीबारी करनेमें अपना अपमान समझते हैं।

इनकी स्त्रियोंका दैनिक कार्य तेल नमकसे रसोई बनाना और केश-विन्यास करना है। यूरोपियोंने आ कर इनमें व्यभिचारका प्रसार किया है; जैसा कि डा०

जे० शर्ट कहते हैं—"टोडा जाति दिनोदिन दुर्बल होती जाती है, जिसका कारण यूरोपीयों द्वारा प्रवर्तित कुत्सित व्याधि और अमितपान-प्रथा है।" सचमुच ही बहिर्जगत्के संस्पर्शसे इस जातिको उपदंश रोगने घेर लिया है। बहुतोंका कहना है, कि टोडारमणियोंका चरित्र अत्यन्त हीन है; परन्तु यह बात यूरोपियोंके आवासस्थानके निकटवर्ती ग्रामोंमें ही पाई जाती है, सर्वत्र नहीं।

वर्तमान समयमें टोडा लोग तामिल भाषा बोलते हैं। कोई कोई तामिल भाषा लिख भी सकते हैं। टोडा पुरुष साधारणतः हट्टेकट्टे, ऊँची नाकवाले और मझोले कदके होते हैं। ये लोग लोहेकी गरम सींकसे कन्धे पर नाना प्रकारके चिह्न बनाते हैं। इनका विश्वास है कि ऐसा करनेसे महिष दोहनकार्य अच्छी तरह किया जा सकता है। गर्भवती स्त्रियाँ पांचवें मासमें हाथकी कली पर चिह्न करती हैं। टोडा स्त्रियोंका सौन्दर्य बहुत थोड़े दिन रहता है। इसीलिए स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष अधिकतर सुन्दर होते हैं। स्त्री-पुरुष सब सफेद कपड़े पहनते हैं। ऋतुमती स्त्रियोंके शरीर पर एक प्रकारका चिह्न रहता है।

टोडाओंके वासस्थानका नाम 'माण्ड' है। माण्डमें छोटी छोटी मिट्टीकी कुटीर और गोशालाएँ रहती हैं। डा० रिभर्सका अनुमान है कि टोडा मलवारकी किसी जातिकी शाखा हो सकती है। परन्तु इस अनुमानकी कोई भित्ति नहीं है।

ये लोग महिषदलके साथ ग्रामसे ग्रामान्तरमें भ्रमण किया करते हैं। एक ग्रामकी शस्य-सम्पद जब निबट जाती है, तब इन्हें दूसरे ग्राममें जाना पड़ता है। महिषादि सम्पत्तिके ऊपर इनका निजस्व स्वत्व है; किन्तु जमीन तमाम ग्रामवासियोंके अधीन होती है, किसी एक व्यक्तिकी नहीं। जमीनको कोई बेच भी नहीं सकता।

टोडा लोग सामाजिक हिसाबसे दो भागोंमें विभक्त हैं - एक देवलया और दूसरे तारसेरजहल। इन दोनों श्रेणियोंमें परस्पर विवाह नहीं होता। पहली श्रेणीमें पैकी लोग हैं, जो ब्राह्मणोंके समान समझे जाते हैं। और दूसरी श्रेणीमें पैकान, कुट्टान, केन्न और टोड़ी नामकी चार शाखाएं हैं। कोई भी पैकी स्त्री तारसेरजहलके पास नहीं जा सकती; किन्तु तारसेरजहल स्त्रियाँ पैकियोंके पास जा सकती हैं। प्रथम रजोदर्शन होनेके बाद बालिकाओंका एक बलिष्ठ पुरुषसे संयोग कराया जाता है।

इनमें एक स्त्री कई पति ग्रहण कर सकती है। एक भाईकी स्त्रीके साथ अन्य भाई भी सहवास किया करते हैं। सन्तानका कौन पिता है, इस बातका निर्णय बड़ा कौतुकावह है। गर्भके सातवें मासमें एक उत्सव होता है, इसमें जो व्यक्ति गर्भवतीके हाथमें एक कृत्रिम धनुर्बाण देता है, वही गर्भस्थ सन्तानका पिता समझा जाता है। साधारणतः बड़ा भाई ही धनुर्बाण देता है। जब तक सब भाई एक साथ रहते हैं, तब तक सभी भाई बालकके पितृत्वका दावा रखते हैं; किन्तु जब एक ही स्त्रीके स्वामिगण विभिन्न वंशीय हो जाते हैं, तब धनुर्बाण प्रदान करनेवाला व्यक्ति, सिर्फ गर्भस्थ शिशुका ही नहीं बल्कि उसके बाद जितने भी बच्चे होंगे, सबका पिता माना जाता है। यदि समयान्तरमें अन्य कोई व्यक्ति गर्भिणीको धनुर्बाण प्रदान करे, तो वह व्यक्ति पिता समझा जायगा। टोडोंमें अब भी पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी संख्या कम है। इसलिए बहुतोंका अनुमान है कि ये लोग कन्याओंको सौरमें ही मार डालते हैं। जिस तरह दो भाई मिल कर एक स्त्रीके साथ विवाह कर सकते हैं, उसी तरह चाहें तो वे बहुतसी स्त्रियोंका भी पाणिग्रहण कर सकते हैं।

इनका नाच बड़े अद्भुत ढंगका है। स्त्रियाँ नाचमें शामिल नहीं होतीं। सात आठ पुरुष एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए गोल हो कर खड़े हो जाते हैं और फिर "ओ—हाऊ" "ओ—हाऊ" कह कर चिल्लाते और सब एक साथ तालसे पैर पटकते हुए घूमा करते हैं। यह इनका आनन्दोत्सव नहीं, बल्कि मृत्यूत्सव है। किसीके मरने पर ये मृत-व्यक्तिको ले कर एक गाँवसे दूसरे गाँव जाते हैं और प्रत्येक ग्राममें ऊपर लिखे अनुसार मुरदेको घेर कर ईश्वरका नाम लेते हैं। ग्रामकी प्रदक्षिणा समाप्त होने पर मुरदा गाँवमें लाया जाता है और सम्पूर्ण तैजस अलङ्कारादिके साथ घरमें ही

उसकी दग्धक्रिया होती है। फिलहाल इस प्रथामें कुछ परिवर्तन हो गया है। अब कुटुर और द्रव्यादि मुरदेके साथ भस्मीभूत नहीं की जाती, बल्कि उसके जलानेके लिये एक न्यारी कुटुर बनाई जाती है। सब मिल कर जो दो एक तैजसपत्र देते हैं, मात्र वही मुरदेके साथ जलाया जाता है। शवदाहके बाद युवक लोग मिल कर ८।१० महिषोंको मारते हैं और स्त्रियाँ सुर बाँध कर रोती हैं। इनमें स्त्रियाँ नाचती नहीं और पुरुष गाते नहीं। ये मांस-मछली कुछ नहीं खाते और इसीलिए मृत्यु-भोजके लिये उनका वध भी नहीं करते।

इस मृत्यूत्सवके सिवा इनमें और कोई भी उत्सव नहीं होता। और तो क्या, विवाहमें भी कोई उत्सव नहीं होता। पितामाता मिल कर निश्चय कर लेते हैं कि हम अपनी कन्याका ब्याह तुम्हारे पुत्रके साथ करेंगे। बस, इसके बाद किसी दिन कन्या स्वामीके घर जा कर रहने लगती है। इनमें लड़कीका ब्याह ३।४ वर्षकी उम्रमें और लड़केका ८।१० वर्षकी उम्रमें होता है।

टोडा भीम-राजपूतानेके जयपुर राज्यके अन्तर्गत एक सहर। यह अक्षा० २६° ५५´ उ० और देशा० ७६° ४८´ पू० के मध्य जयपुर शहरसे ६२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६६२८ है। शहरमें केवल ८ स्कूल हैं।

टोड़ी (हिं० स्त्री०) १ रागिणीका एक भेद। इसके गानेका समय १० दण्डसे १६ दण्ड तक है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स रे ग म प ध नि स स नि ध प म ग ग ग रे स। रे स नि स नि ध ध नि स रे ग रे स नि ध। प ग ग म ग रे ग रे स रे नि स नि ध स रे ग म प ध ध प। म ग म ग रे स नि स रे रे स नि ध ध ध नि स। हनुमत्‌के मतानुसार इसका स्वरग्राम यह है—म प ध नि स रे ग म अथवा स रे ग म प ध नि स। इसे सम्पूर्ण जातिकी रागिणी मानते हैं। इसमें शुद्ध मध्यम और तीव्र मध्यमके सिवा शेष सब स्वर कोमल होते हैं। यह भैरव रागकी स्त्री है। इसका रूप इस प्रकार है—हाथमें वीणा लिये हुए प्रियके विरहमें गाती है, शरीर पर सफेद वस्त्र है और आँख बहुत सुन्दर है। २ चार मात्राओंका एक ताल। इसमें २ आघात और २ खाली रहते हैं। इसका तबलेका बोल यों है—

+ ० ३ ० +
धिन्, धा, गेदिन, जिनता, गेदिन, धा।

+ ० ० ० +
अथवा धेड़ा, केटे नेड़ा केटे धा।

टोनहाई (हिं० स्त्री०) १ जादू चलानेवाली स्त्री, नजर लगानेवाली। २ जो स्त्री मन्त्र और झाड़ फूंक करती है।

टोनहाया (हिं० पु०) वह मनुष्य जो टोना करता हो, जादू करनेवाला आदमी।

टोना (हिं० पु०) १ मन्त्र तन्त्रका प्रयोग, जादू। २ विवाहके अवसरमें गाये जानेका एक गीत। ३ एक शिकारी चिड़िया।

टोनाहाई (हिं० स्त्री) टोनहाई देखो।

टोप (हिं० पु०) १ बड़ी टोपी, सिरका बड़ा पहरावा। २ शिरस्त्राण, लोहेकी वह टोपी जो लड़ाईके समय सिरकी रक्षाके लिये पहनी जाती है, खोद, कूंड। ३ खोल, गिलाफ। ४ अंगुश्ताना, उंगली पर पहिननेकी लोहे या पीतलकी एक टोपी। इसे दरजी लोग सीते समय एक उंगलीमें पहन लेते हैं।

टोपन (हिं० पु०) टोकरा।

टोपा (हिं० पु०) बड़ी टोपी।

टोपी (हिं० स्त्री०) १ मस्तक आच्छादन वस्तु, शिर परका पहरावा। २ राजमुकुट, ताज। ३ कोई गोल वस्तु जिसका आकार गोल और गहरा हो, कटोरी। ४ बन्दूकका पड़ाका। ५ शिकारी जानवरके मुंह पर चढ़ाई जानेकी थैली। ६ लिङ्गका अगला भाग, सुपारी।

टोपीदार (हिं० वि०) टोपी लगी हुई।

टोपीवाला (हिं० पु०) १ टोपी पहना हुआ आदमी। २ अहमदशाह और नादिरशाहकी सेनाके सिपाही। ये लाल टोपियां पहन कर भारतवर्ष आये थे और टोपीवाले कहलाते थे। ३ अंगरेज या यूरोपियन जो हट (hat) लगाते हैं।

टोर (हिं० स्त्री०) नमककी कलमोंको छान कर निकाल लेने पर बचा हुआ शोरेकी मट्टीका पानी। इसे फिर उबाल और छान कर शोरा निकाला जाता है।

टोरा (हिं॰ पु॰) वह तराजू जिससे जुलाहे सूत तौलते हैं।

टोरी (हिं॰ पु॰) अरहरका छिलके सहित खड़ा दाना जो तैयार की हुई दालमें रह जाती है।

टोल—१ चतुष्पाठी, संस्कृत विद्याशिक्षाका स्थान। यदि कोई जीवनकी उन्नति करनी चाहे तो सबसे पहले विद्याशिक्षाकी आवश्यकता है। जिस समाजके मनुष्य जितने ही शिक्षित हैं, वे उतनी ही संसार और आत्माकी उन्नति कर सकते हैं। एकमात्र विद्याशिक्षा ही सब प्रकारकी उन्नतिका मूल है। प्रत्येक सभ्य जातिके मनुष्योंमें विद्याशिक्षाकी व्यवस्था एक न एक प्रकारकी निर्धारित है। हम लोगोंके देशमें भी विद्याशिक्षाका स्थान टोल है। कबसे यह टोल-प्रथा प्रचलित हुई है, उसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु थोड़ी विवेचना कर देखनेसे स्पष्ट ही अनुमान किया जाता है, कि यह ब्रह्मचर्यका अंशमात्र है। जबसे हम लोगोंके देशमें ब्रह्मचर्यप्रथा बिलकुल अस्तमित हो गई है, तभीसे यह टोलप्रथा प्रवर्त्तित हो गई है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। ब्रह्मचर्यके अभावसे ही हम लोगोंके देशमें प्रकृत शिक्षा और उन्नतिका अभाव हो गया है।

पूर्व समयमें तीनों वर्णके बालक किस तरह गुरुगृहमें रह कर विद्यार्जन करते थे, इस विषयको स्थिर करनेमें ब्रह्मचर्यके विषयकी आलोचना करनी आवश्यक है।

भारतमें जब हिन्दूधर्मका पूर्ण विकाश तथा वर्णाश्रमविभाग था, तब गुरु और विद्यार्थी किस प्रकार परिचालित होते थे, उसीको देखना चाहिये।

तीनों वर्णके बालक उपनयनके बाद गुरुगृहमें आ कर रहते थे। उपनयनकाल ब्राह्मणका आठ, क्षत्रियका ग्यारह और वैश्यका बारह वर्ष निर्दिष्ट था। यथासमय बालकगण उपनीत हो कर पितामाता और आत्मीय स्वजनोंसे कुछ कुछ भिक्षा ले गुरुगृहमें जाते थे। गुरुगृहमें वे कौनसी शिक्षा प्राप्त करते थे तथा किस आदर्शसे उनका हृदय संगठित होता था, उसके विषयमें मनुने यों कहा है—

"उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यञ्च सन्ध्योपासनमेव च ॥" (मनु २।६९)

गुरु उपनयनके बाद शिष्यको सबसे पहले शौच, आचार, अग्निकार्य और सन्ध्योपासनाकी शिक्षा दें।

बालकका हृदय नवनीतकी नाईं सुकोमल है। लड़कपनसे वह जिस भावमें परिचालित किया जायगा, युवावस्थामें भी वह उसी भाव गठित होगा तथा उसीके अनुसार कार्य-प्रणाली जीवनके भावि-शुभाशुभ उत्पन्न करेगी। इसी अवस्थामें बालकको विशेष सावधानीसे विद्या शिक्षा देनी आवश्यक है। केवल बहुतसी पुस्तकोंको कण्ठस्थ कर लेनेका नाम विद्याशिक्षा नहीं है। जिस विद्याके पढ़नेसे मनुष्य देवभाव धारण कर लें और अशेष गुणराशिके आधार हो जावें वही प्रकृत विद्याशिक्षा है। गुरु लोग वही शिक्षा छात्रको देते थे। वे जानते थे, कि छात्रोंके अन्तःकरणको निर्मल नहीं करानेसे आन्तर और बाह्यविजयका पूर्ण प्रतिबिम्ब उस पर नहीं पड़ सकता और विशुद्ध सत्वका स्फूरण नहीं होनेसे उसमें ज्ञानात्मिका वृत्ति उत्पन्न नहीं हो सकती है। इसी कारण ज्ञानोपदेशके पहले मानसिक निर्मलता आवश्यक है। यह निर्मलता एकमात्र शौचके अधीन है। शौच भी दो तरहका है, बाह्य और आन्तर। मृदादि द्वारा बाह्यशौच और मानसिक मलशुद्धि आन्तर-शौच है। ये दोनों प्रकारके शौच सम्पन्न हो जानेसे हृदयमें ज्ञानज्योतिका विकाश होता है। इसी कारण आर्य ऋषिगण वेदाध्ययनके पहले ही शौचशिक्षा देते थे। अभी उस शिक्षाका कैसा दुर्दिन हो आया है। शिक्षक वा छात्र शौच किसे कहते हैं, वह भी नहीं जानते तथा जाननेकी कोशिश भी नहीं करते हैं। शौचशिक्षाके समाप्त होने पर आर्य ऋषिगण आचार शिक्षा देते थे। गुरुके प्रति शिष्यका कैसा व्यवहार होना चाहिये तथा इस अवस्थामें किस द्रव्यकी सेवा और किस विषयका परित्याग करना चाहिये इसी विषयकी शिक्षाका नाम आचारशिक्षा है।

ब्रह्मचारीको समावर्तनकाल तक निम्नोक्त विधि और निषेधका पालन करना चाहिये।

विधि। पहले इन्द्रियजय, प्रतिदिन जल, पुष्प, गोमय (गोबर), कुश, समिध आदि आहरण, सद् ब्राह्मणोंके घरसे माधुकरी वृत्तिके अनुसार भिक्षान्नसंग्रह, स्नान,

इस मतसे परिचय हुआ। आपका भी ऐसा ही मत था। १८५४ ई०में जब कि आप बीसवर्षके युवक थे, लीपजिक विश्वविद्यालयसे डाक्टरकी उपाधि प्राप्त हुई। इसके बाद आप अध्यापकपदकी आशासे गटेनबर्ग पहुँचे। वहाँ आपने स्वरचित दो कविताग्रन्थ प्रकाशित किये। इनमें भी जर्मनजातिकी एकताके लिए उत्तेजना दी गई थी। अनन्तर आप लीपज़िकके अध्यापक चुने गये और इसी कार्यमें आपने जीवन बिता दिया।

आपने अध्यापकके आसनसे ही जर्मनीके एकत्वसंसाधनरूप आदर्शका प्रचार किया था। १८६३ ई०में आपको बेडेन राज्यके अन्तर्गत फ्राइबार्ग-विश्वविद्यालयमें अतिरिक्त अध्यापकका पद मिला। स्लेजुइग-हलष्टाइनके युद्धके समय आपने अपना ऐसा मत प्रचारित किया था, कि उक्त दोनों राज्य प्रूशियामें मिला दिये जायं और जर्मनीके छोटे छोटे राज्योंका विलोप कर साम्राज्य संगठन किया जाय। इस पर आपके पिताने आपका मुंह तक देखना छोड़ दिया। जब कालेजके मालिक अष्ट्रीयाके साथ मिल गये, तब आप अध्यापकीसे इस्तीफा दे कर एक संवादपत्रका सम्पादन करने लगे।

१८६७ ई०में आपको पेल-विश्वविद्यालयमें अध्यापक नियुक्त हुए। पीछे आप हाइडेलबर्गमें अध्यापक हुए। वहां आपने फ्राङ्कोप्रूशियाके युद्धके समय छात्रोंको उत्साहित किया था। १८७१ ई०में आप जर्मन-रीकष्टग नामक महासभाके प्रतिनिधि निर्वाचित हुए और बहुत सम्मान पाया। १८७९ ई०में, लगातार अठारह वर्ष तक परिश्रम करनेके बाद आपने "उन्नीसवीं शताब्दीका जर्मन-इतिहास"का प्रथम खण्ड प्रकाशित किया। इसका पाँचवाँ खण्ड १८७४ ई०में निकला था। छठा खण्ड लिखते लिखते आप बीमार पड़ गये और १८९६ ई०के अप्रैल मासमें आपका देहान्त हो गया।

ट्राम (अं० स्त्री०) बड़े बड़े नगरोंमें एक प्रकारकी लम्बी गाड़ी जो लोहेकी बिछी हुई पटरी पर चलती है। इसका आविष्कार सबसे पहले इङ्गलैण्डमें १८६० ई०को हुआ था। अब यह भारतवर्ष तथा दूसरे दूसरे देशोंके बड़े नगरोंकी हर एक गलीमें चलने लगी है। यह बहुत कुछ रेलगाड़ीसे मिलती जुलती है। किन्तु दोनोंमें फर्क यही है, कि रेलगाड़ी वाष्प द्वारा चलती और ट्रामगाड़ी बिजलीके जोरसे चलाई जाती है। पहले इसमें घोड़े लगते थे, अब केवल बिजलीहीके द्वारा बहुत वेगसे अर्थात् घण्टेमें २०से २५ मीलके हिसाबसे चलती है। बिजली पहले डायनोमोमें बनती है। उसी डायनोमोमें विद्युत्‌की शक्ति कालमें लानेके लिये तार लगी रहती हैं। हरएक ट्रामके अगले कमरेमें ट्रोली रहती है। यही ट्रोली ऊपरके विद्युत्-तारमें लगी रहती है। बिजलीका धक्का लगनेहीसे गाड़ी आपसे आप चलने लगती है। इसमें किसी प्रकारकी कल नहीं है केवल विद्युत्‌के प्रवाहको सञ्चारण करनेके लिये गाड़ीके अगले कमरेमें एक चक्कासा बना रहता है। उसी चक्केको घुमानेसे गाड़ी विद्युत् शक्तिके धक्केसे चलती है। हरएक गाड़ीमें फर्स्ट और सेकेण्ड क्लासके दो डब्बे रहते हैं। हरएक डब्बेमें टिकट बाँटनेके लिये एक एक कर्मचारी रहता जिसे कनडक्टर (Conductor) कहते हैं। इनके सिवा गाड़ी चलानेके लिये एक ड्राइवर रहता है। रेलगाड़ीकी तरह इसका स्टेशन दूर दूरमें नहीं रहता है। जहां कई दश पांच आदमी एक जगह जुटे रहते उसी जगह पर ठहर जाती है। हरएक डब्बेमें पचास साठ आदमीसे कम नहीं बैठते हैं। इसमें कभी कभी जीवन नष्ट होनेका भी डर रहता है। बिजलीकी शक्ति अधिक पड़ने अथवा और दूसरे कारणोंसे इसमें आग लगते देखा गया है और जब विद्युत्‌का प्रवाह कुछ भी न रहता तथा तारमें लगी हुई ट्रोली उससे अलग हो जाती है, तो कभी कभी यह अपनी लाइनसे हट कर जमीन पर गिर जाती है। भारतवर्षमें यह प्रायः विद्युत्तारमें लगी हुई ट्रोली द्वाराही चलती है; किन्तु यूरोप आदि देशोंमें विद्युत्-प्रवाहकी जमीनके भीतर अथवा ऊपर हो कर एक नली चली गई है जिसे ओप्न कनड्ट (open conduit) कहते हैं। यह हरएक गाड़ीमें संयुक्त रहती है। एक शहरमें केवल एक ही ट्रामगाड़ी नहीं रहती वरन् प्रत्येक गली और सड़कके लिये कई एक निश्चित की हुई रहती हैं। जब ट्रामगाड़ी नहीं थी, तब बड़े बड़े शहरमें घूमने फिरने तथा कहीं

जाने आनेमें बहुत असुविधा होती थी और साथही साथ बहुत खर्च भी करने पड़ते थे; किन्तु जबसे इसका आविष्कार हो गया है, तबसे बहुत थोड़े खर्चमें अर्थात् छह सात पैसेमें ही क्या गरीब क्या अमीर सभी दो चार कोस तक आसानीसे चले जाते हैं। रेलगाड़ीकी नाईं इसमें कोई निश्चित समय नहीं रहता, वरन् हर एक सड़क और गलीमें जब और जिस स्थान पर इच्छा होती, उसी जगह इस पर चढ़ कर आनन्द लूटते हैं। आजकल यह भारतवर्षके बड़े बड़े देशोंमें चलने लगी है, यथा—मन्द्राज, राजपूताना, बरकल, चटग्राम, पञ्जाब, बम्बई प्रदेश, बम्बई शहर, बरमा, कलकत्ता, कानपुर, मध्यप्रदेश, चिङ्गलेपुत, कोचिन, धोलपुर, धोराजी, काठियावाड़, जयपुर, जोधपुर, करांची, कानाडा इत्यादि।

ट्रेडमार्क (अं० पु०) बने या भेजे हुए माल पर लगाये जानेका चिह्न, छाप।

ट्रेडिल मशीन (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी कल। इसको एकही आदमी पैरसे चलाता और हाथसे उसमें कागज रखता जाता है। इसमें फोटोकी तस्वीरें बहुत स्पष्ट और उत्तम छपती हैं और काम बहुत जल्दीसे होता जाता है।

ट्रेन (अं० स्त्री०) १ रेलगाड़ीमें लगी हुई गाड़ियोंकी पंक्ति। २ रेलगाड़ी।

ठ

ठ—संस्कृत और हिन्दी वर्णमालाका तेरहवाँ अक्षर, टवर्गका द्वितीय वर्ण। इसका उच्चारणस्थान मूर्द्धा है। अर्द्धमात्रा समयमें इस वर्णका उच्चारण होता है। इसके उच्चारणमें आभ्यन्तरप्रयत्न, जिह्वा-मध्य द्वारा मूर्द्धस्थान स्पर्श और वाह्यप्रयत्न, विवार, श्वास, अघोष और महाप्राण है। मातृकान्यासमें दक्षिण जानुमें न्यास करना होता है। इसकी लिखन-प्रणाली इस प्रकार है—"ठ"। इस ठकारमें सूर्य, चन्द्र और अग्नि सर्वदा अवस्थान करते हैं।

इस वर्णकी अधिष्ठात्री देवीका ध्यान करके इस वर्णका दश वार जप करनेसे साधक शीघ्र ही अभीष्ट लाभ कर सकता है। इसका ध्यान—

"ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
पूर्णचन्द्रप्रभां देवीं विकसत्पंकजेक्षणाम्॥
सुन्दरीं षोडशभुजां धर्मकामार्थमोक्षदाम्।
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥" (वर्णोद्धारतन्त्र)

यह देवी पूर्णचन्द्रकी भाँति प्रभासे युक्त, प्रस्फुटित पद्मकी तरह नयनोंवाली, सुन्दरी, षोड़शहस्ता और धर्म कामार्थ मोक्षदायिनी है।

कामधेनुतन्त्रमें इनका स्वरूप इस प्रकार लिखा है—यह मोक्षरूपिणी कुण्डली, पीतविद्युल्लताकार, त्रिगुणयुक्त, पञ्चदेवात्मक, पञ्चप्राणमय, त्रिविन्दु और त्रिशक्तियुक्त।

इसके ३१ वाचक शब्द हैं—शून्य, मञ्जरी, वीज, पर्णिनी, लाङ्गली, क्षया, वनज, नन्दन, जिह्वा, सुनन्द, धूर्णक, सुधा, वर्त्तुल, कुन्तल, वह्नि, अमृत, चन्द्रमण्डल, दक्षजा, अनूरुभाव, देवभक्ष, वृहद्ध्वनि, एकपाद, विभूति, ललाट, सर्वमित्रक, वृषघ्न, नलिनी, विष्णु, महेश, ग्रामणी और शशी। (नानातन्त्र) काव्यके प्रारम्भमें इसका प्रयोग करनेसे दुःख होता है। पद्यकी आदिमें इस शब्दका विन्यास करनेसे शोभा होती है। (वृत्त० र० टी०)

ठ (सं० पु०) ठ-पृषोदरादि० साधुः वा ठयते ठी बाहुलकात्-ड। १ शिव, महादेव। २ महाध्वनि। ३ चन्द्रमण्डल। ४ मण्डल। ५ शून्य। ६ लोकगोचर, इन्द्रियग्राह्य वस्तु।

ठंठ (हिं० वि०) जिसकी डाल और पत्तियाँ सूख कर या और किसी प्रकारसे गिर गई हों, ठूँठा, सूखा।

ठंठनाना (हिं० क्रि०) ठनठनाना देखो।

ठंठार (हिं० वि०) रिक्त, खाली, छूँछा।

ठंठी (हिं० स्त्री०) १ दाना पीटनेके बाद बालमें लगा हुआ अनाज। (वि०) २ जिससे बच्चा और दूध पानेकी सम्भावना न हो।

देवता, ऋषि और पितृतर्पण देवताओंकी पूजा, सन्ध्यावन्दन, सायंप्रातर्होम, वेदपाठ, गुरुके निकट सब प्रकारकी विनति, गुरुके प्रति पितृवत् भक्ति, गुरुका प्रसन्नतासाधन, गुरुजनके प्रति सम्मान।

निषेध--मधु, मांस, गन्ध, माल्य विविध रसाल द्रव्य, प्राणीहिंसा, सर्वाङ्गमें तैलमर्दन, दिनमें शयन, चर्मपादुका और छत्रव्यवहार, विषयाभिलास, क्रोध, लोभ, स्त्रीसङ्ग, नृत्य, गीत, वाद्य, अक्षादिक्रीड़ा (पासा), लोगोंके साथ वृथा कलह, दुर्वाक्य प्रयोग, दूसरे पर दोषारोपण, मिथ्याकथन, मन्द अभिप्राय, स्त्रियोंको अवलोकन वा आलिङ्गन, दूसरेका अनिष्टाचरण, चौरकर्म, एक बार दिनमें और एक बार रात्रिमें भोजन। उक्त विधि और निषेधात्मक व्रतनियम पालन कर ब्रह्मचारीको संयतेन्द्रिय हो कर वेदादि शास्त्र पढ़ना चाहिये। बालकके चित्तक्षेत्रको विद्याबीज बोनेका उपयोगी बनाना ही आचारका मुख्य प्रयोजन है।

प्राचीन कालमें जो ऋषि जितनी शिष्यसंख्या बढ़ाते थे वे उतने ही प्रधान गिने जाते थे। छात्रकी संख्याके अनुसार उनकी भी उपाधि रहती थी। उसी उपाधिसे वे कितने शिष्यको पढ़ाते हैं, यह साफ साफ मालूम हो जाता था। इसी लिये कण्वादि ऋषि कुलपति कहलाते थे—

'मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्।
अध्यापयति विप्रर्षिः स वै कुलपतिः स्मृतः॥" (मनु॰)

जो दश हजार मुनिको अन्नादि द्वारा पालन कर पढ़ाते थे, उन्हें कुलपतिकी उपाधि मिलती थी। उस समय प्रत्येक ऋषि अपने साध्यके अनुसार शिष्यको रखते और उन्हें पढ़ाते थे। जबसे नियमपूर्वक ब्रह्मचर्यकी प्रथा अदृश्य हो गई, किन्तु शिक्षाका भार पहलेकी नाईं ब्राह्मणोंके हाथमें ही रहा, तभीसे प्रकृत शिक्षाका लोप हो गया है। अभी उपनयनके बाद तीनों वर्णके बालक गुरुगृहमें जा कर अध्ययन समाप्त करके ही घरको लौट आने लगे हैं, अब कोई कठिन नियम कायम न रहा, अवनतिका सूत्रपात आरम्भ हो गया। इस समय अब केवल एक ही नियम रह गया है। अभी हम लोगोंके देशमें जो टोल-प्रणाली प्रवर्तित है, उसमें गुरु साध्यानुसार कई एक छात्रको आहारादि दे कर विद्या शिक्षा देते हैं, किन्तु पहलेकी नाईं आचारादिकी शिक्षा कुछ भी नहीं दी जाती है। आजकल विजातीय शिक्षाके प्राबल्यसे इस तरहकी प्रथा प्रायः लोपसी हो गई है। पहले ऐसा कोई ग्राम नहीं था, जहां २।४ टोल न रहे। अभी १०।१५ ग्रामोंमें अनुसन्धान करने पर एक आध टोल देखनेमें आता है, वह भी विकृतभावमें परिचालित है। वर्त्तमान समयमें टोलकी ऐसी दुरवस्था देख कर पहलेकी तरह जिससे यह प्रथा अब भी प्रचलित रहे, इसके लिये गवर्मेण्टसे अध्यापक और छात्रकी वृत्ति देनेकी व्यवस्था कर दी गई है। देशके धनी और ज्ञानियोंमें भी कोई कोई टोल स्थापन कर पहलेकी नाईं जिससे संस्कृत-शिक्षा प्रचलित हो, उसके लिये यत्नवान् हुए हैं। आजकल भारतवर्षके कई देशोंमें टोल संस्थापित हुआ है। किन्तु शिक्षाप्रणाली विजातीय नियमानुसार चलाई जाती है, पहलेकी नाईं कुछ भी नहीं है। हम लोगोंके देशमें जैसी शिक्षा-प्रणाली प्रचलित थी और जो कुछ रह भी गई है, उससे मालूम होता है, कि किसी दूसरी सभ्यजातिमें ऐसी प्रथा प्रचलित नहीं है। बिना अर्थकी सहायतासे कोई बालक शास्त्रवित् पण्डित् हो जावे, ऐसी प्रथा किसी जातिमें न थी और न है। हम लोगोंका धर्मबन्धन छिन्न हो जानेसे इस तरहका सुन्दर नियम विलुप्त हो गया है। धीरे धीरे ज्ञानियोंमें जिस तरह इस प्रणालीका आदर देखा जाता है, उससे बहुत जल्द इसकी उन्नति होनेकी सम्भावना है।

२ कुटीर, झोंपड़ी।

टोल (हिं॰ स्त्री॰) १ मण्डली, समूह, जत्था। (पु॰) २ सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसके गानेका समय २५ दण्डसे ले कर २८ दण्ड तक है।

टोल (अं॰ पु॰) सड़कका महसूल चुंगी।

टोला (हिं॰ पु॰) १ महल्ला, बड़ी बस्तीका एक भाग। २ उँगलीको मोड़ कर पीछे निकलती हुई हड्डीसे मारनेकी क्रिया, ठूँग। ३ पत्थर या ईंटका टुकड़ा, रोड़ा। ४ बेंत आदिकी चोटका पड़ा हुआ चिह्न। ५ बड़ी कौड़ी, कौड़ा, टग्घा। ६ गुल्ली पर डंडेकी चोट।

टोलिया (हिं० स्त्री०) टोली, छोटा महल्ला।

टोली (हिं० स्त्री०) १ बस्तीका छोटा भाग। २ समूह, झुण्ड, जत्था, मण्डली। ३ पत्थरकी चौकोर पटिया, सिल। ४ पूर्वीय हिमालय, सिकिम और आसाममें मिलनेवाला एक प्रकारका बाँस। यह बाँस कुछ कुछ पेड़ोंसे मिलता जुलता है। इसके बड़े बड़े मजबूत टोकरे बनते हैं। इससे अच्छी अच्छी चटाइयाँ भी बनाई जाती हैं। इसका दूसरा नाम नाल और पकौक है।

टोली-धनवा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास जो धानकी तरह होती है। इसके पत्ते बहुत नरम होते और इन्हें चावसे खाते हैं। कहीं कहीं गरीब मनुष्य इसके मवेशी दाने भी खाते हैं।

टोवा (हिं० पु०) पानीकी गहराई नापनेवाला माझी। यह हमेशा गलही पर बैठा रहता है।

टोह (हिं० स्त्री०) १ अन्वेषण, खोज, ढूँढ़, तलाश। २ देखभाल, खबर।

टोहना (हिं० क्रि०) अन्वेषण करना, तलाश करना, खोजना, पता लगाना।

टोहाटाई (हिं० स्त्री०) १ अन्वेषण, तलाश, ढूँढ़, छानबीन। २ देखभाल, खबर।

टोहिया (हिं० वि०) १ अन्वेषण करनेवाला, ढूँढ़नेवाला। २ जासूस, भेदिया।

टोही (हिं० वि०) अन्वेषण करनेवाला, ढूँढ़नेवाला, पता लगानेवाला।

टौंस (हिं० स्त्री०) एक नदी। तमसा देखो।

टौनहाल (हिं० पु०) टाउनहाल देखो।

ट्रङ्क (अं० पु०) लोहेका सफरी सन्दूक।

ट्रम्प (अं० पु०) ताशके खेलका एक रङ्ग। यह दूसरे रङ्गोंके बड़ेसे बड़े पत्तेको काटनेके लिये मान लिया जाता है, हुकुमका रङ्ग। २ ट्रम्पका खेल।

ट्राइटस्के—सुप्रसिद्ध जर्मन राजनीतिविद् और ऐतिहासिक। जिन चिन्ता वीरोंकी युक्ति, तर्क और उत्तेजनाके फलसे वर्तमान जर्मनजातिके हृदयमें विजिगीषा और रण-लिप्साका सञ्चार हुआ था, उनमें ट्राइट्स्केको अन्यतम समझना चाहिए। इतिहासके अध्यापक, प्रजा-सभाके प्रतिनिधि और संवादपत्रोंके लेखक बन कर आप दीर्घकाल तक जर्मनोंको जातीयता और उसके लिए दिग्विजय-साधनके अवश्य कर्तव्यताका प्रचार कर गये हैं।

१८३४ ई०में ड्रेसडेन नगरमें ट्राइट्स्केका जन्म हुआ था। बाल्यकालमें ही आपके चरित्रमें विशेषत्व लक्षित हुआ था। चार वर्षकी अवस्थामें विद्यारम्भके समय ही आपको ज्ञानार्जनकी क्षमताका यथेष्ट विकाश हुआ था। आठ वर्षकी उम्रमें आप विद्यालयमें भरती किये गये। थोड़े ही दिनोंमें आप सहपाठियोंमें सर्वश्रेष्ठ छात्र गिने जाने लगे। थोड़ी ही उम्रमें इन्हें रणरङ्गका शौक हो गया। आपने बड़े आग्रहसे ग्रीक भाषा सीखी। आप अपने पिताके युद्धवेशमें सज्जित हो कर होमर-वर्णित युद्धोंका पुनः पुनः अभिनय किया करते थे। बारह वर्षकी उमरमें आप ड्रेसडेनके उच्च विद्यालयमें प्रविष्ट हुए और शीघ्र ही सहपाठियोंमें प्रधान हो गये। सत्रह वर्षकी अवस्थामें आप योग्यताके साथ वहाँकी अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण हो गये। यहाँ पढ़ते समय ही आपके हृदयमें अपरिमेय देशभक्ति जाग्रत हो गई। विद्यालय छोड़ते समय पुरस्कार-वितरण-सभामें आपने स्वरचित एक कविता पढ़ी थी; जिसमें जातीय सम्मानकी रक्षाके लिए वैर-साधनद्वारा मनुष्यत्व प्राप्त करनेके लिए समग्र जर्मन जातिको प्रस्तुत रहनेके लिए उत्साहित किया था।

इसके बाद उच्चशिक्षा प्राप्त करनेके लिए पहले आप Bohn विश्वविद्यालयमें प्रविष्ट हुए और वहांके प्रसिद्ध इतिहास अध्यापक Dahlmann के साथ आपका विशेष परिचय हो गया। जर्मन-साम्राज्यकी प्रतिष्ठा उस समय भी भविष्यके गर्भमें थी। प्रसिद्ध जर्मन-राजनीतिज्ञ डह्लमान इनके गुरु थे। उन्होंने जर्मनोंकी एकताके सूत्रमें आबद्ध हो कर जातीय संगठनके लिए इन्हें उत्साहित किया। इस समय आपकी कर्णपीड़ा वृद्धिङ्गत थी, इस लिए अध्यापकोंकी बहुतसी वक्तृताएं आपके कर्णगोचर न हुईं। बोन् विश्वविद्यालयसे आप लीपजिकके विश्वविद्यालयमें गये। परन्तु कुछ दिन रह कर आप फिर बोन् लौट आये और व्यवहारशास्त्र, राष्ट्रीय इतिहास आदिका अध्ययन करने लगे। इसी समय आपको Rochon प्रणीत ग्रन्थके "राष्ट्रशक्तिका ही नामान्तर है"

करनेके लिये पुरोहित ब्राह्मणोंका भी अभाव नहीं था। नितान्त दुष्कर्मी व्यक्ति भी अपने परिवारवर्गसे अपने दुष्कर्मोंको छिपा रखता है, उनमेंसे किसीको भी अपनी तरह असत्पथावलम्बी नहीं बनना चाहता। किन्तु ठगोंमें ठीक इससे उलटी रीति थी। ये लोग बचपनेसे ही लड़कोंको नरहत्याकी शिक्षा देते थे। शुरूआतमें बालकगण चररूपमें घूमा करते थे। फिर उनको पथिकोंकी लाश दिखाई जाती थी। वे ठगोंके साथ निकलते थे और पथिकोंको भुलावा देने तथा अन्य कार्योंमें उनकी सहायता करते थे। अन्तमें जब ये योग्य हो जाते, तब इनके हाथमें जीविकानिर्वाहके लिए एकमात्र अवलंबन फाँसी दी जाती थी। इस कार्यमें दीक्षित करनेके समय एक उत्सव होता था और दीक्षा-गुरु कालीकी पूजा करके उसके कपाल पर दीक्षा-तिलक दे कर उसको कालीकी प्रसादी एक प्रकारका गुड़ खिला देते थे। प्रवाद है—इस प्रसादी गुड़की शक्ति अति भीषण थी, इसके खानेसे ही वह एक पक्का ठग हो जाता था।

ठग लोग इतनी चतुराई और निपुणताके साथ अपना काम बनाते थे कि, कभी वे पकड़े नहीं जाते थे। ये विचारकोंको प्रचुर उत्कोच देकर भाग जाया करते थे। मध्यभारतके अनेक स्थानोंमें, विशेषतः पश्चिमभारतमें अधिकांश सर्दार राजकर्मचारीसे सिर्फ इनके उपद्रवमें अपेक्षा करते थे, ऐसा नहीं, बल्कि उन्हें उनके चौर्य-लब्ध धनमेंसे हिस्सा तक नियमितरूपसे मिलता था। बहुत से तो आयका प्रकृष्ट पन्था समझ कर अपने राज्यमें इनकी रक्षा करते थे। इनके साथ एक शर्त्त रहती थी कि, ये उस प्रदेशके अन्दर नरहत्या न कर सकेंगे। इसलिये अन्य स्थानोंसे अर्थादि लाने पर कोई भी असन्तुष्ट नहीं होता था। जमींदार, महाजन, दूकानदार, मोदी आदि सभी अर्थलोभसे इनके पक्षपाती होते थे। ऐसी दशामें ठगोंको छाँट कर निकालना अत्यन्त कठिन कार्य था। अत्याचारके डरसे कोई भी इनसे कुछ कहता नहीं था। इस प्रकार भारतवर्षके विस्तीर्ण भूभाग पर यह नृशंस व्यवसाय बेखटक चल रहा था। आखिर अंग्रेजी शासनमें यह निवारित हुआ।

जिस तरह यह हत्याकाण्ड होता था, उसमें प्रतिवर्ष कितने लोग ठगोंके द्वारा मारे जाते थे, इसको कोई शुमार नहीं। कोई कोई कहते हैं कि, प्रायः १०००० आदमी प्रतिवर्ष ठगोंके द्वारा मारे जाते थे। यह संख्या अत्यन्त अधिक और अभावनीय मालूम पड़ने पर भी, जो प्रमाण मिल रहे हैं, उससे सत्य मालूम होती है।

१७९९ ई०में इस हत्याकाण्डका हाल अंग्रेज गवर्मेण्टके कर्णगोचर हुआ। १८१० ई०में दोआबके नाना स्थानोंके कूपोंमें ३० लाशें मिली थीं। १८३० ई०में कप्तान स्लीमान्के प्रयत्नसे गवर्मेण्टको मालूम हुआ कि, भारतवर्षका कोई भी स्थान ठगोंसे शून्य नहीं है। इस नृशंस आचारका दमन करनेके लिए गवर्मेण्टने एक नया विभाग खोला। इस ठग निवारक-विभागके कर्मचारिगण अपराधियोंको प्रलोभन दे कर ठगोंको खोज करके उनको पकड़ने लगे। क्या अंग्रेजी राज्य और क्या देशीय राज्य, सर्वत्र इस वीभत्स ठगोंके अत्याचारको निवारणके लिए बद्धपरिकर हो कर अंग्रेज-गवर्मेण्टने ९ वर्ष तक लगातार प्रयत्न किया था, जिसमें हैदराबाद, सागर और जबलपुरमें प्रायः २००० ठग पकड़े गये थे और उनका न्याय हुआ था। इनमेंसे १४६७ आदमी हत्याके अपराधमें अभियुक्त हुए; जिसमें ३८२ आदमियोंको प्राणदण्ड, ९०९को देशनिकाला, ७७को आजीवन कारावास, ६९२को निर्दिष्टकाल तक कारावास और १को छुटकारा हुआ था तथा ११ आदमी भाग गये थे, ३१ आदमी विचारकालमें ही मर गये थे और बाकी २५० आदमियोंने राजाकी तरफ गवाही दी थी।* फाँसीदार-ठगको फाँसी ही होती थी। उक्त दण्डितोंमेंसे किसी किसीने २०० तक नरहत्या की थी, यह स्वीकार किया था।

ठगोंको न्यायोपार्जित वृत्तिद्वारा जीविकानिर्वाह करनेको शिक्षा देनेके लिए जबलपुरके मध्य जेलखानेमें एक कार्यालय स्थापित हुआ; वहाँ पर ठगोंके बच्चों और युवकोंको ऊन और सूतके वस्त्र बुनने तथा तम्बू बनानेकी शिक्षा पाने लगी। १८६० ई०के भीतर भीतर ठगोंका अन्त हो गया, कहीं भी उनका नाम सुननेमें न

---

* Asiatic Journal, 1836.

जाता था। लार्ड बेण्टिंकके शासनकालमें भारतवर्षमें सतीदाहकी तरह यह भी एक भीषणकाण्ड दमित हुआ। ठग-निवारक-विभागके कर्मचारियोंको पुलिस और विचारक दोनों प्रकारकी ही क्षमता दी गई थी। कोई ठग अभियुक्त होने पर प्रकाश्य भावसे उसका विचार होता था। कहना फजूल है कि, उक्त विभागके कर्मचारियोंकी कार्यकुशलता, कठोररूपसे कर्तव्य-परायणता और तत्परताके कारण शीघ्र ही बहुतसे ठग पकड़े गये, तथा नाना स्थानोंमें बहुतायतसे लाशें मिलने लगी। इस तरहसे उक्त विभागने अविचल उत्साह, अदम्य साहस और अविश्रान्त अध्यवसायकी सहायतासे कठोर कानूनोंके द्वारा शीघ्र ही ठगोंका निवारण करके पथिकोंको निश्चिन्त कर दिया। गौरवके साथ ठग-विभागने अपना कार्य समाप्त करके अवसर ले लिया।

२ प्रतारक, धोखेबाज।

ठगण (सं० क्लि०) पाँच मात्राओंका एक गण। इसके ८ उपभेद हैं।

ठगना (हिं० क्रि०) १ छल और धूर्त्ततासे दूसरेका धन छीनना। २ धूर्त्तता करना, छल करना। ३ उचितसे ज्यादे कीमत लेना, सौदा बेचनेमें बेईमानी करना। ४ प्रतारित होना, धोखा खाना। ५ आश्चर्यमें स्तब्ध होना, चक्करमें आना, दंग रहना।

ठगनी (हिं० स्त्री०) १ ठगकी स्त्री। २ वह स्त्री जो दूसरेको भुलावेमें डाल कर उसका माल छीनती है। ३ धूर्त्त स्त्री। ४ कुटनी।

ठगपना (हिं० पु०) १ ठगनेका भाव या काम। २ धूर्त्तता, छल, चालाकी।

ठगमूरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी विषैली जड़ी बूटी। पूर्व समयमें ठग इसी जड़ीसे पथिकोंको बेहोश करके उसका धन लूट लेते थे।

ठगमोदक (हिं० पु०) ठगलड्डू।

ठगलाड़ू (हिं० पु०) नशीली या बेहोशी करनेवाली चीजकी बनी हुई मिठाई। पूर्व समय ठग इसी तरहके लड्डूको पासमें रखते थे। जब कोई पथिक मिलता तो वे किसी बहानेसे अपना लड्डू उसे खिला देते थे और थोड़ी देरके बाद जब वह निशासे बेहोश हो जाता था तो वे उसके पासके सब माल ले लेते थे।

ठगवाना (हिं० क्रि०) दूसरेसे धोखा दिलवाना।

ठगविद्या (हिं० स्त्री०) धूर्त्तता, धोखेबाजी, छल।

ठगाठगी (हिं० स्त्री०) धूर्त्तता, धोखेबाजी।

ठगिन (हिं० स्त्री०) १ वह औरत जो धोखा दे कर दूसरेका धन लूट लेती है। २ ठगकी स्त्री। ३ धूर्त्त स्त्री, चालबाज औरत।

ठगिनी (हिं० स्त्री०) ठगिन देखो।

ठगिया (हिं० पु०) ठग देखो।

ठगी (हिं० स्त्री०) १ ठगका काम। २ ठगनेका भाव। ३ धूर्त्तता, चालबाजी।

ठगौरी (हिं० स्त्री०) मोहित करनेका प्रयोग, वह शक्ति जिससे दूसरेका होश हवाश जाता रहता है।

ठट (हिं० पु०) १ समूह, पुंज, भीड़, पंक्ति। २ रचना, सजावट, बनाव।

ठटकीला (हिं० वि०) जिसमें चमक दमक हो, सजीला, तड़क भड़कवाला।

ठटना हिं० क्रि०) १ स्थिर करना, ठहराना। २ सजाना, तैयार करना। ३ आरम्भ करना, छेड़ना। ४ सुसज्जित होना, तैयार होना। ५ खड़ा रहना डटना, अड़ना।

ठटनि (हिं० स्त्री०) रचना, सजावट, बनाव।

ठटया (हिं० पु०) एक जंगली जानवरका नाम।

ठटरी (हिं० स्त्री०) १ अस्थिपंजर, हड्डियोंका ढाँचा। २ वह जाल जिसमें घास भूसा आदि रखा जाता है, खरिया खड़िया। ३ किसी पदार्थका ढाँचा। ४ वह रथी जिस पर मुरदा उठाया जाता है, अरथी।

ठट्ट (हिं० पु०) समूह, झुंड, भीड़।

ठट्ठी (हिं० स्त्री०) अस्थिपंजर, ठटरी।

ठट्ठई (हिं० स्त्री०) दिल्लगी, हँसी।

ठट्ठा (हिं० पु०) उपहास, हँसी।

ठठ (हिं० पु०) ठट देखो।

ठठरी (हिं० स्त्री०) ठटरी देखो।

ठठाना (हिं० क्रि०) १ आघात लगाना, ठोंकना, पीटना। २ अट्टहास करना, जोरसे हँसना।

ठठेरमंजारिका (हिं० स्त्री०) ठठेरेकी बिल्ली। यह बिल्ली रातदिन बरतन पीटे जानेसे न तो कुछ डरती और न किसी अच्छे शब्द पर मोहित होती है।

ठंड (हिं॰ स्त्री॰) ठंढ देखो।

ठंडक (हिं॰ स्त्री॰) ठंढक देखो।

ठंडा (हिं॰ वि॰) ठंढा देखो।

ठंढ (हिं॰ स्त्री॰) शीत, सरदी, जाड़ा।

ठंढई (हिं॰ स्त्री॰) ठंढाई देखो।

ठंढक (हिं॰ स्त्री॰) १ उष्णताका अभाव, शीत, सरदी। २ तापकी कमी, तरी। ३ तृप्ति, प्रसन्नता, तसल्ली। ४ किसी प्रकारके रोग या उपद्रवकी शान्ति।

ठंढा (हिं॰ वि॰) १ शीतल, सर्द। २ बुझा हुआ, बुता हुआ। ३ उद्गाररहित, शान्त। ४ जिसे कामोद्दीपन न होता हो, नामर्द, नपुंसक। ५ गम्भीर शान्त, धीर। ६ उदासीन, सुस्त, मन्द। विरोध न करनेवाला, जो अपनी शिकायत सुन कर भी कुछ नहीं बोलता हो। ८ तृप्त, प्रसन्न, खुश। ९ निश्चेष्ट, मृत, मरा हुआ। १० जिसमें चमक दमक न हो, जो भड़कीला न हो, बेरौनक।

ठंढाई (हिं॰ स्त्री॰) १ शरीरकी गरमी शान्त करनेवाली दवा। सौंफ इलायची, ककड़ी, खरबूजे आदिके बीज, गुलाबकी पखड़ी, गोलमिर्च आदिकी एकमें पीस कर ठंढाई बनाई जाती है। २ सिद्धि, भाँग

ठंढामुलम्मा (हिं॰ पु॰) विना तापके सोना चाँदी चढ़ानेकी रीति।

ठंढी (हिं॰ वि॰) ठंढा देखो।

ठक (हिं॰ स्त्री॰) १ ठोकनेका शब्द, वह आवाज जो एक वस्तु पर दूसरी वस्तुकी ठोकनेसे होता है। (वि॰) २ स्तब्ध, भौचक्का। (पु॰) ३ चण्डूबाजोंकी सलाई या सूजा। इसमें अफीमका किवाम लगा कर सेंकते हैं।

ठकठक (हिं॰ स्त्री॰) प्रपञ्च, बखेड़ा, झगड़ा, टंटा।

ठकठकाना (हिं॰ क्रि॰) १ खटखटाना। २ ठोंकना, पीटना।

ठकठकिया (हिं॰ वि॰) टंटा करनेवाला तकरार करनेवाला, हुज्जती।

ठकठौआ (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारकी करताल। २ वह जो करताल बजा कर दरवाजे दरवाजे भीख माँगता हो। ३ एक छोटी नख।

ठकार (सं॰ पु॰) ठ स्वरूपे कार। ठ स्वरूपवर्ण, 'ठ' अक्षर। "ठकारं चञ्चलापांगि।" (कामधेनुत॰)

ठकुर सुहाती (हिं॰ स्त्री॰) दूसरोंको प्रसन्नके लिये कही जानेवाली बात, खुशामद।

ठकुराइत (हिं॰ स्त्री॰) ठकुरायत देखो।

ठकुराइन (हिं॰ स्त्री॰) ठाकुरकी स्त्री, स्वामिनी, मालकिन। २ क्षत्रियकी स्त्री, क्षत्राणी। ३ नाइकी स्त्री, नाइन, नाउन।

ठकुराई (हिं॰ स्त्री॰) १ आधिपत्य, सरदारी, प्रधानता। २ ठाकुरका अधिकार। ३ राज्य रियासत। ४ उच्चता, महत्व, बड़प्पन।

ठकुरानी (हिं॰ स्त्री॰) १ सरदारकी स्त्री, जमींदारकी औरत। २ रानी। ३ अधीश्वरी, मालकिन। ४ क्षत्रियकी स्त्री, क्षत्राणी।

ठकुराय (हिं॰ पु॰) क्षत्रियोंकी एक जाति।

ठकुरायत (हिं॰ स्त्री॰) १ आधिपत्य, सरदारी: २ राज्य, रियासत।

ठकोरी (हिं॰ स्त्री॰) वह लकड़ी जिससे सहारा ली जाती है।

ठक्कर (हिं॰ स्त्री॰) टक्कर देखो।

ठक्कुर (सं॰ पु॰) १ देवप्रतिमा, देवताकी मूर्त्ति। २ ब्राह्मणोंकी एक उपाधि। ३ देवद्विजवत् पूजनीय व्यक्ति वह मनुष्य जिसका सम्मान देवता और ब्राह्मणके जैसा किया जाय। "सुदामनामगोपालः श्रीमान् सुन्दरठक्कुरः।" (अनन्तस॰)

ठग (हिं॰ पु॰) १ वह मनुष्य जो धोखा दे कर दूसरोंका धन हरण करता है, भुलवा दे कर लोगोंका माल छीननेवाला। डाकू और ठगमें बहुत फर्क है। डाकू जबरदस्ती दूसरेका माल हरण करता पर ठग अनेक प्रकारकी धूर्त्तता करके अपना काम निकाल लेता है। भारतवर्षमें इनका एक पृथक् संप्रदायसा हो गया था, किन्तु विलियम वेण्टिङ्कके समय यह सम्प्रदाय सदाके लिये लोप कर दिया गया। बहुप्राचीनकालसे ही ये भारतवर्षके सर्वत्र व्याप्त हुए थे। हिमालयसे कुमारिका तथा आसामसे गुजरात तक सभी स्थानोंके रास्तोंमें इन डकैतोंका वास था। अकबरके राजत्वकालमें प्रायः ५०० ठगोंको इटावेमें प्राणदण्ड हुआ था। दिल्ली और आगरेके रास्तेमें कोई अपरिचित व्यक्ति पास न आने पावे, इसके लिए पथिकोंको होशियार

कर दिया जाता था। ठगोंके दलमें हिन्दु मुसलमान दोनो ही रहते थे, हिन्दुओंकी उपास्यदेवी काली थी।

ठगोंमें प्रवाद है कि—ये दिल्लीके निकटस्थ प्रदेशवासी मुसलमान-धर्मावलम्बी सप्तजातिसे उत्पन्न हैं। कालक्रमसे ये मुसलमानधर्मको छोड़ कर कालिकादेवीकी उपासना करने लगे। इनकी प्रथम-उत्पत्तिके विषयमें वंशपरम्परागत ऐसा प्रवाद चला आ रहा है कि,—किसी समय एक दुर्धर्ष असुरके साथ कालिकादेवीका युद्ध हुआ। युद्धमें कालीने खङ्गाघातसे असुरके टुकड़े कर डाले। किन्तु असुर रक्तवीज था, इस लिए उसके भूतल-पतित प्रत्येक रक्तबिन्दुसे तुल्य वलशाली एक एक असुर उत्पन्न होने लगा। कालीने उन सब असुरोंको भी काट डाला; फिर उनके रक्तसे असंख्य दानव उत्पन्न होने लगे। अन्तमें कालीने सोचा कि, इस तरह जितने काटे जांयगे उतने ही अधिक दानवोंकी उत्पत्ति होगी। उन्होंने दो वीरोंकी सृष्टि करके उनको उत्तरीय-निर्मित फाँस प्रदान की। उन फाँसोंके जरिये दोनों वीर असुरोंको मारने लगे। इससे रक्त न गिरनेके कारण असुरोंका उत्पन्न होना बंद हो गया, धीरे धीरे समस्त असुर मारे गये। कालीदेवीने दोनो वीरों पर सन्तुष्ट हो कर वे फाँसें उन्हें ही दे दीं और पुत्रपौत्रादिक्रमसे उसीके जरिये जीविकानिर्वाह करेंगे—ऐसा वर दिया। उक्त दोनों वीर ही ठगोंके आदिपुरुष थे। प्रवादानुसार ठग लोग वंशानुक्रमसे नरहत्या-व्यवसायी हो गये और मध्यभारतसे लगा कर दाक्षिणात्यके कुछ दूर तक फैल गये। ये नाना स्थानोंमें भिन्न भिन्न सम्प्रदायमें निरीह प्रजाकी तरह कृषि आदि जीविका अवलम्बन करके रहते थे। किन्तु सर्वदा चारों तरफ इनके गुप्तचर रहते थे, जो कहां निराश्रय पथिक जा रहा है, इसकी खोज रखते थे। ठगोंमें एक साधारण सङ्केत था, जिससे वे परस्परको पहिचान लिया करते थे। बहुत समय ये लोग दल बाँध कर अल्पाधिक संख्यामें निकलते थे और छद्मवेशमें रह कर मौका देख पथिकोंका सब नाश करते थे। प्रथमतः ये लोग पथिकोंसे इस ढंगसे पेश आते थे कि, जिससे पथिक किसी भी तरह इनकी पहिचान नहीं सकते थे। पीछे मौका पाते ही असावधानी दशामें उन अभागोंको गलेमें फाँसी दे कर मार डालते थे। अनन्तर उसका सर्वस्व लूट कर उसकी लाशको ऐसी जगह गाड़ देते थे कि, उसका किसी तरह पता नहीं चल सकता था। जिन लोगोंको मारनेसे उनकी जल्दी खोज होनेकी सम्भावना नहीं वा जिनके न मिलनेसे लोग उनको भागा हुआ समझें, ऐसे लोग सहजहीमें ठगोंके चक्करमें पड़ कर जान खो बैठते थे। अवकाशप्राप्त सैनिक वा प्रभुका अर्थादिवाहक भृत्य या ठगोंके कवलमें पड़ते थे। किन्तु ठग लोग स्त्री, कवि, गङ्गाजलवाहक, धोबी, तेली, झाड़ूवाल, नट आदि नीच जातिवालोंको अथवा मजूर, फकीर और सिखोंको कभी नहीं मारते थे। इनकी एक प्रकार साङ्केतिक भाषा थी जिसे दूसरा कोई नहीं समझता था। दलके ठगोंमेंसे उपयोगितानुसार कोई नेता होता था, कोई राहगीरको भुलावा दे कर अभिप्रेत स्थानपर ले आता था, कोई गलेमें फाँसी लगा कर मारता था, कोई गुप्तचरका काम करता और कोई गड़हा खोद कर लाशको गाड़ता था। दक्ष और साहसी ठग लुण्ठित द्रव्यका अंश पाते थे।

ठगोंमें साधारण दस्युकी तरह सिर्फ दस्युवृत्तिके द्वारा ही पारस्परिक सम्बन्ध नहीं था। ये भलीभांति समाजसङ्गठन करके भिन्न भिन्न जातियोंके साथ एकत्र वास करते तथा पुरुषानुक्रमिक नरहत्या और चौर्य द्वारा जीविकानिर्वाह करते थे। इनका विश्वास था, कि इसमें उनको पाप नहीं लगता, वरन् नरहत्या-व्यवसाय ही उनका मूलकर्म है। इसलिये जो जितना निष्ठुराचरण करके निराश्रय पथिकोंको मारता था, वह उतना ही प्रशंसनीय और कालिकादेवीका प्रियपात्र समझा जाता था। वास्तवमें इन पाखण्डी नारकियोंके हृदयमें जरा भी धर्मभय वा अनुताप नहीं था। इसलिये इस तरहकी निर्दय भीषण नरहत्या करनेमें इनके हृदयमें तनिक चोट भी न लगती थी। किन्तु आश्चर्य है, ये नरपिशाच लोग भी इस तरहके वीभत्स कार्यके लिए निकलते समय अपनी उपास्यदेवी भवानीकी पूजा कर उनकी प्रीति और आशीसकी कामना करते थे। इस प्रकारके पैशाचिक कार्यमें भी अर्थलोभसे उनको प्रोत्साहित करने तथा कालीदेवीकी पूजा

ठटेरा (हिं० पु०) १ वह जो धातु पीट पीट कर बरतन बनाता है, कसेरा। २ ज्वार, बाजरेका डंठल।

ठठेरा—एक हिन्दूजाति। ताँबे और पीतलके बरतन बनाना तथा बेचना ही इन लोगोंकी उपजीविका है। कसेरा और ठठेरा दोनों एक ही श्रेणीके अन्तर्गत हैं। मि० नेसफिल्डका कहना है, कि कसेरा ताँबे, टीन और जस्ते आदिको गला कर तरह तरहके बरतन बनाते हैं और ठठेरा उन्हीं सब बरतनोंमें ओप चढ़ाते तथा बेल बूटे उखाड़ते हैं। किन्तु बहुतोंका मत है, कि ठठेरे लोग केवल असभ्य जातिके उपयुक्त टीन, रांगे आदिके गहना बनाते हैं। मिरजापुरके ठठेरा कहते हैं, कि उन लोगोंका आदिम वास बङ्गालमें था। लगभग तीन चार पुरुष हुए कि वे लोग शाहाबाद जिलेके नसीरगञ्जमें आ कर बस गये हैं। लखनऊके ठठेरे अपनेको क्षत्रिय-वंशोद्भव बतलाते हैं। उन लोगोंका कहना है, कि परशुरामने जब जगत्को क्षत्रियरहित कर डाला था, तभी उनमेंसे एक गर्भवती क्षत्रियाणीने कमण्डलु-ऋषिके यहां आश्रय लिया था। उसके गर्भसे जो सन्तान उत्पन्न हुई, वह ठठेरा कहलाने लगी। वे लोग अपना आदिम वास दक्षिणप्रदेशके रतनगढ़में बतलाते हैं। बनारसके ठठेरे यज्ञोपवीत पहनते और क्षत्रिय तथा वैश्यके बाद अपना ही स्थान समझते हैं।

इन लोगोंका विवाह सनातन धर्मावलम्बियोंसा होता है। विधवा-विवाहकी प्रथा भी जारी है। महावीर, पांच पीर, भगवती तथा काली इन लोगोंका उपास्य देवी हैं। ये लोग ब्राह्मण, राजपूत और हलवाईके यहां केवल पक्की रसोई खाते हैं और कच्ची उसी हालतमें खा सकते यदि उसीकी जातिमेंसे किसीने बनाई हो। मुजफ्फरनगर, फरुखाबाद, शाहजहान्पुर, इलाहाबाद, झाँसी, बनारस, मिरजापुर, बस्ती, आजमगढ़, गोण्डा, प्रतापगढ़ आदि देशोंमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं।

ठठेरी (हिं० स्त्री०) १ ठठेराकी स्त्री। २ ठठेरेका काम, बरतन बनानेका काम।

ठठोल (हिं० पु०) १ विनोदप्रिय, दिल्लगीबाज। २ उपहास, हँसी।

ठठोली (हिं० स्त्री०) उपहास, हँसी, दिल्लगी।

ठड़िया (हिं० पु०) एक प्रकारका नैचा जिसकी निगाली बिलकुल खड़ी होती है।

ठड्डा (हिं० पु०) १ रीढ़, पसली। २ पतङ्गमें लगी हुई खड़ी कमाची।

ठढ़िया (हिं० स्त्री०) काठकी ऊंची ओखली।

ठण्डीराम—हिन्दीके एक अच्छे कवि। इनकी कविता बड़ी ही सरस और भक्तिपूर्ण होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे दी जाती है—

"सतगुरु जारे जग जंजाल कृपा कर कर किए निहाल।
कंठी बांध कियो जिन सेवक नाम सुनायो श्रीगोपाल॥
ओंकारको तिलक बताओ नाम जपनको तुलसीमाल।
पूजाकी सब रीति बनाई एसे करिया करो त्रिकाल॥
तिमिर दूर कर ज्ञान दिखाओ घटमें दीपक दीनो बाल।
महानभावके पद बतलाए समय समयके सुन्दर ख्याल॥
सप्त सुरन और तीन ग्राम भलो राग रागिनी औ सुलतान।
ऐसे ठंडीराम गुरुस्वामी विष्णुदासकी करी प्रतिपाल॥"

ठन (हिं० स्त्री०) वह शब्द जो किसी धातु पर आघात पड़नेसे होता है।

ठनक (हिं० स्त्री०) १ मृदङ्ग इत्यादिका शब्द। २ ठहर ठहर कर होनेवाला दर्द, चसक, टीस।

ठनकना (हिं० क्रि०) १ ठन ठन शब्द करना। २ ठहर ठहर कर पीड़ा होना।

ठनका (हिं० पु०) १ धातु खण्ड आदि पर आघात पड़नेका शब्द। २ आघात, ठोकर। ३ ठहर ठहर कर होनेवाली पीड़ा।

ठनकाना (हिं० क्रि०) बजाना, शब्द निकालना।

ठनकार (हिं० पु०) धातुखण्डके बजानेका शब्द।

ठनगन (हिं० पु०) वह हठ जो पुरस्कार पानेवाले विवाह आदि मङ्गल अवसरों पर करते हैं।

ठनठन (हिं० क्रि०) धातुखण्डके बजानेका शब्द।

ठनठनगोपाल (हिं० पु०) १ वह वस्तु जिसके भीतर कुछ भी न हो, निःसार वस्तु। २ निर्धन मनुष्य, गरीब आदमी।

ठनठनाना (हिं० क्रि०) बजाना, आवाज निकालना।

ठनना (हिं० क्रि०) १ अनुष्ठित होना, समारम्भ होना, छिड़ना। २ निश्चित होना, स्थिर होना, पक्का होना।

२ प्रयुक्त होना, ठहरना, जमना। ४ उद्यत होना, मुस्तैद होना।

ठनमनना (हिं० क्रि०) ठनमनना देखो।

ठनाका (हिं० पु०) ठनकार, ठनठन शब्द।

टनाठन (हिं० क्रि०) झनकारके साथ।

ठपना (हिं० क्रि०) १ आरम्भ करना, छेड़ना। २ समाप्त करना, अच्छी तरहसे करना। ३ निश्चित करना, पक्का करना। ४ प्रयुक्त करना, लगाना, नियोजित करना। ५ ठनना। ६ मनमें दृढ़ होना। ७ स्थापित करना ठहराना। ८ स्थित होना, जमना। ९ लगना, प्रयुक्त होना।

ठप्पा (हिं० पु०) १ लकड़ी धातु मट्टी आदिका खण्ड। इस पर किसी प्रकारकी आकृति इस प्रकार खुदी रहती है कि उसे किसी वस्तु पर रख कर दबानेसे दूसरी वस्तु पर भी वही आकृति बन जाती है, साँचा। २ छापा। ३ वह साँचा जिससे गोटे पट्ठे पर बेल बूटे उभारे जाते हैं। ४ छाप, नक़्श। ५ एक प्रकारका चौड़ा नक्काशीदार गोटा।

ठमक (हिं० स्त्री०) १ रुकावट। २ चलनेमें हाव भाव, लचक।

ठमकना हिं० क्रि०)१ चलते चलते रुक जाना। २ लचकके साथ चलना।

ठमकाना (हिं० क्रि०) ठहराना, रोकना।

ठमकारना (हिं० क्रि०) ठमकाना।

ठरना (हिं० क्रि०) १ अत्यन्त शीत लगनेसे ठिठुरना। २ अत्यन्त ठण्ढ पड़ना।

ठर्रा हिं० पु०) १ मोटा सूत। २ वह बड़ी ईंट जो अच्छी तरह पकी न हो। ३ महुवेकी निकृष्ट शराब। ४ अंगियाका बन्द, तनी। ५ एक प्रकारका जूता। ६ भद्दा और बेडौल मोती।

टर्री (हिं० स्त्री०) १ धानके बीज जिनके अंकुर उठे हुए न हों। २ बिना अंकुर उठे हुए धानकी बोआई।

ठवनि (हिं० स्त्री०) एक स्थिति, बैठक। २ मुद्रा, आसन।

ठवर (हिं० पु०) ठौर देखो।

ठस (हिं० वि०) १ कठिन, ठोस, कड़ा। २ जिसके भीतरका भाग खाली न हो, भीतरसे भरा हुआ। ३ जिसकी बुनावट बहुत घनी हो, गाठा, गफ। ४ दृढ़, मजबूत। ५ गुरु, भारी। ६ निष्क्रिय, सुस्त मट्ठर। ७ जो कुछ खोटा होनेके कारण ठीक आवाज न दे। ८ सम्पन्न, धनाढ्य। ९ कृपण, कंजूस। १० हठी, जिद्दी।

ठसक (हिं० स्त्री०) १ अभिमानपूर्ण चेष्टा, नखरा। २ दर्प, गुमान, शान।

ठसकदार (हिं० वि०) १ घमण्डी, शान करनेवाला। २ जिसमें खूब तड़क भड़क हो।

ठसका (हिं० पु०) १ सूखी खाँसी। २ ठोकर, धक्का।

ठसाठस (हिं० क्रि०-वि०) अच्छी तरहसे परिपूर्ण किया हुआ, खूब कस कर भरा हुआ, खचाखच।

ठस्सा (हिं० पु०) १ छोटी रुखानी जो नक्काशी बनानेके काममें आती है। २ गर्वपूर्ण चेष्टा, नखरा। ३ अहङ्कार, घमण्ड, शान, गुमान। ४ ठाट बाट, वह जिसमें तड़क भड़क हो। ५ मुद्रा, आसन।

ठहक (हिं० स्त्री०) नगारे बजनेका शब्द।

ठहरा (हिं० क्रि०) घोड़ोंका बोलना। २ घण्टेका बजना, ठनठनाना।

ठहर (हिं० पु०) १ ठौर, स्थान, जगह। ३ वह स्थान जो रसोईके लिये मट्टीसे लीपा गया हो, चौका। ३ रोसई घरमें मट्टीकी लिपाई, पोताई।

ठहरना (हिं० क्रि०)१ गतिमें न होना, रुकना, थमना। २ विश्राम करना, कुछ काल तकके लिये आराम करना। ३ स्थित रहना, इधर उधर होना। ४ स्थिर रहना, टिका रहना। ५ बहुत दिन तक रहना, जल्दी खराब न होना, चलना। ६ क्षुब्ध जलको स्थिर होने देना, पानी आदिका हिलना डोलना बंद करना, थिराना। ७ प्रतीक्षा करना, आसरा देखना। ८ रुकना, थमना। ९ निश्चित होना, पक्का होना, ते पाना।

ठहराई (हिं० स्त्री०) १ स्थिर करानेकी क्रिया। २ स्थिर करानेकी मजदूरी। ३ अधिकार, कब्जा।

ठहराऊ (हिं० वि०) १ नियत समयके पहले नष्ट नहीं होना, ठहरनेवाला। २ दृढ़, मजबूत, टिकाऊ।

ठहराना (हिं० क्रि०) १ गति बंद करना, चलनेसे रोकना। २ विश्राम करना, टिकाना। ३ टिकाना,

गिरने न देना, अड़ाना। ४ स्थिर रखना, चलविचल न होने देना। ५ किसी कामको रोकना, बंद करना। ६ निश्चित करना, तै करना।

ठहराव (हिं० पु०) १ स्थिरता, ठहरनेका भाव। २ निर्धारण निश्चय, मुकर्ररो।

ठहरोनी (हिं० स्त्री०) वह प्रतिज्ञा जो विवाहमें लेन देनके विषयमें की जाती है।

ठहाका (हिं० पु०) अट्टहास, जोरकी हँसी।

ठाँ (हिं० पु०) १ बन्दूककी आवाज। २ ठाँव देखो।

ठाँई (हिं० स्त्री) १ स्थान, जगह। २ तईं। ३ समीप, निकट, पास।

ठाँउँ (हिं० स्त्री) ठाँई देखो। २ निकट, समीप, पास।

ठाँठ (हिं० वि०) १ नीरस, जिसका रस सूख गया हो। २ जो दूध न देती हो।

ठाँयँ (हिं० स्त्री०) १ स्थान, ठौर, जगह। २ निकट, पास। ३ वह शब्द जो बन्दूक छूटनेसे होता है।

ठाँव (हिं० पु०-स्त्री०) स्थान, जगह, ठिकाना। यह शब्द प्रायः पुलिङ्गमें ही व्यवहार होता है, परन्तु दिल्ली मेरठ आदि स्थानोंमें इसे स्त्रीलिङ्ग मानते हैं।

ठाँसना (हिं० क्रि०) १ बलपूर्वक प्रविष्ट करना, दबा कर घुसाना। २ जोरसे भरना। ३ ठन ठन शब्दके साथ खाँसना।

ठाकुर (हिं० पु०) १ देवमूर्त्ति, देवता। ईश्वर, परमेश्वर, भगवान्। ३ पूज्यव्यक्ति। अधिष्ठाता, नायक, सरदार। ५ जमींदार, गाँवका मालिक। ६ क्षत्रियोंकी उपाधि। ७ स्वामी, मालिक। ८ नाइयोंकी उपाधि, नापित।

ठाकुर—१ एक हिन्दू कवि। कोई तो इन्हें फतहपुर जिलेके असनी ग्रामका भाट बतलाते हैं और कोई बुन्देलखण्डके कायस्थ। १६४२ ई०में इनका जन्म हुआ था और ये मुहम्मद शाहके समय तक (१७१८ ई०) जीवित रहे। इनके विषयमें बुन्देलखण्डमें दन्तकहानी है कि बुन्देला लोग जब गोसाईं हिम्मती बहादूरको हत्या करनेके लिये छत्रपुरमें एकत्र हुए थे, तब ठाकुर कविने उन लोगोंके पास एक कविता लिख भेजी थी। जिसका पहला चरण यों था—"कहिबे सुनिबे को कछु न हिया" * इसके पानेके साथही वे लोग तुरंत तितर बितर हो गये। हिम्मती बहादुरको यह बात मालूम होने पर उन्होंने इनकी कविताकी खूब प्रशंसा की और इन्हें यथेष्ट पुरस्कार दे बिदा किया।

२ इस नामके और एक कवि हो गये हैं जो १७५० ई०में विद्यमान थे और जिन्होंने "ठाकुरशतक" तथा बिहारी सतसईकी टीका रची है।

ठाकुरगाँव—१ बङ्गालके अन्तर्गत दीनाजपुर जिलेका उत्तरीय उपविभाग। यह अक्षा० २५° ४०′ से २६° २३′ उ० और देशा० ८८° २′ से ८८° ३८′ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ११७१ वर्गमील है। उपविभागके दक्षिण बहुतसी नदियां बहती हैं। लोकसंख्या लगभग ५४३०८६ है। इसमें १८९० ग्राम लगते हैं। शहर एक भी नहीं है। कान्तनगरमें एक बढ़ियां मन्दिर है।

२ उक्त उपविभागका सदर। यह अक्षा० २६° ५′ उ० और देशा० ८८° २६′ पू० पर तंगन नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १६५८ है। यहां एक छोटा कारागार है जहां केवल १८ कैदी रखे जाते हैं।

ठाकुरदास—हिन्दीके ये अच्छे कवि हो गये हैं। इनके पिताका नाम खुमान सिंह था। ये जातिके कायस्थ थे और चरखारीमें रहते थे। सम्बत् १८९०में इनका जन्म और १९५५में देहान्त हुआ था। इनकी भक्तिपक्षकी कविता इतनी सुहावनी और सरस होती थी, कि चरखारी-नरेशने एक बार इन्हें यथेष्ट पारितोषिक दिया था। यों तो इनकी सभी कविताएँ एकसे एक बढ़ कर हैं, पर यहां केवल एक ही देते हैं—

"प्रभु जी अबकी बार उबारो।
दीननाथ दीनदुखभञ्जन है यह विरद बिहारो॥
अजामेल पै कृपा कीनी नाम लेत ही तारो।
ग्राह मार गज फन्द छुडायो वाको कियो बिस्तारो॥
खम्भ फोड हिरणाकुश मारो टूंक टूंक कर डारो।
गरभ परीक्षित रक्षा कीनी चक्र सुदर्शन चारो॥
दुखदारिद्र तुम हरो सुदामा मनमें कहा बिचारो।
ठाकुरदास दास चरणन कों याकों काहे बिसारो॥"

---

* पूरी कविता शिवसिंह सरोज नामक ग्रन्थके १२४ पृष्ठ में दी गई है।

ठाकुरद्वारा (हिं० पु०) १ देवालय देवस्थान। २ पुरुषोत्तमधाम, पुरीमें जगन्नाथका मन्दिर।

ठाकुरद्वारा—युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत इसी नामकी तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° १२′ उ० और देशा० ७८° ५२′ पू० पर मुरादाबाद शहरसे २७ मील उत्तरमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ६१११ है। यह शहर मुहम्मदशाहके शासन-कालमें (१७१८-४८ ई०) बसाया गया था। १८०५ ई०में पिण्डारी-नामक अमीरखाँने इसे लूटा था। यहां एक तहसीली, पुलिस स्टेशन, अस्पताल और American Methodist mission की एक शाखा है।

ठाकुरप्रसाद (हिं० पु०) १ नैवेद्य। २ भादों और आश्विनके मध्यमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

ठाकुरप्रसाद खत्री—हिन्दीके एक धुरंधर तथा निष्कपट विद्वान्। इनका जन्म सन् १८६५को काशीमें हुआ था। स्वनामधन्य बाबू विश्वेश्वरप्रसाद जो काशीके सरकारी कोषागारमें हेड क्लर्क रहे, इनके पिता थे। हिन्दी तथा फारसीमें इनकी अच्छी पैठ थी। अंग्रेजीमें इन्होंने १८८५ ई०में कलकत्ता युनिवर्सिटीकी इंट्रेंस परीक्षा पास की थी। इंट्रेंस होने पर भी अंगरेजीमें इनका पूरा दखल था। पिताके मरने पर कई पदों पर काम करने बाद ये पुलिशके कोषाध्यक्ष बना दिये गये। पुलिश-विभागमें इन्होंने कई वर्ष कार्य किए तथा कई अच्छे प्रशंसापत्र भी प्राप्त किये थे। अन्तमें इनकी रुचि इस ओरसे हट गई और ये अपना समय पढ़ने लिखनेमें व्यतीत करने लगी; 'लखनऊकी नवाबी' नामकी पुस्तक इन्हींकी लिखी हुई है। भूगर्भ विद्या, ज्योतिष और उत्तरध्रुवकी यात्राके लेख पर इन्हें काशी-नागरी-प्रचारिणी सभासे चाँदीके तीन पदक मिले थे।

कपड़े बुननेमें भी ये बड़े सिद्ध हस्त थे। इस विषय पर इन्होंने 'देशीय करघा' नामकी एक पुस्तक भी लिखी है। इन्होंने 'विनोदवाटिका' तथा 'जमींदार' नामका पत्र कुछ काल तकके लिए निकाला था। दिनों दिन कपड़ा सीनेकी मशीनोंका प्रचार बढ़ते देख ये उसके साधारण दोष दूर करनेके विषय पर 'जगत् व्यापारिक पदार्थ कोष' नामक एक उत्तम और उपयोगी ग्रन्थ लिख गये हैं। इसके लिए सरकारकी ओरसे इन्हें १०००० रु०की सहायता मिली थी।

ये बड़े मिलनसार, सरलचित्त और हंसमुख थे। हिन्दीमें व्यापार-सम्बन्धी पुस्तकोंको लिख कर ये इतने प्रसिद्ध हो गये हैं।

ठाकुरप्रसाद त्रिपाठी—संस्कृतके एक विद्वान्। रायबरेली जिलेके किशुनदासपुरमें इनका घर था। १८२२ ई०में इनका जन्म हुआ था। 'रसचन्द्रोदय' नामक संस्कृत ग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ है। इनके पास भाषा-साहित्यका अच्छा पुस्तकालय था।

ठाकुरप्रसाद त्रिवेदी—ये भी एक अच्छे विद्वान् थे। इनकी जन्मभूमि खीरी जिलेके अलीगञ्जमें थी। १८८३ ई०में ये विद्यमान थे। इन्होंने "चन्द्रशेखर" काव्यकी रचना की है।

ठाकुरप्रसाद मिश्र—अवध देशान्तर्गत पयासीके एक ब्राह्मण कवि। इनकी कविता बड़ी ओजस्विनी और सरस होती थी। ये महाराज मानसिंह अयोध्या-नरेशके यहाँ रहते थे। इनकी एक कविता नीचे दी जाती है।

"भाजे भुजदंडके प्रचंड चोट बाजे
बीर सुन्दरी समेत सेवैं मंदरकी कंदरी।
मुगल पठान सेख सैयद असेख धीर
आवत हजारन बजार कैसे चौधरी॥
पंडित प्रबीन कहै मानसिंह भूपति कमान पै
अरोपत यों तीखों तीर कैबरी।
सिंघके ससेटे गज बाजके लपेटे लवा
तैसे भूलै भूतल चकत्तनकी चौकरी॥"

ठाकुरबाड़ी (हिं० स्त्री०) देवालय, मन्दिर।

ठाकुरराम—हिन्दीके एक कवि।

ठाकुरवंश—कलकत्ताके विख्यात ब्राह्मणवंशसम्भूत सम्भ्रान्त पीराली गोष्ठी। ये अंगरेजोंसे यथेष्ट सम्मानित होते थे। इसमेंसे किसी किसीको अंगरेजोंसे 'महाराज'-की उपाधि मिली है। ये अपनेको भट्टनारायण-वंशके महात्मा द्वारिकानाथ ठाकुर, प्रसन्नकुमार ठाकुर, बतलाते हैं। इस वंशमें महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर, राजा शौरीन्द्रमोहन ठाकुर प्रभृतिने जन्मग्रहण किया है। पीराली देखो।

ठाकुरसेवा (हिं० स्त्री०) १ देवताका पूजन। २ किसी मन्दिरमें देवताके नामसे उत्सर्ग की हुई सम्पत्ति।

ठाकुरी (हिं० स्त्री०) स्वामित्व, आधिपत्य, ठकुराई।

ठाकुरीवंश—नेपालका एक पराक्रान्त राजवंश।

लिच्छविराज शिवदेवके राजत्वकालमें महासामन्त अंशुवर्मा आविर्भूत हुए। येही ठाकुरी-राजवंशके प्रथम पुरुष थे। अपने शौर्य्यवीर्य्यगुणसे ये विस्तीर्ण जनपदके अधीश्वर हुए। लिच्छविराजका प्राधान्य स्वीकार करने पर ये एक पराक्रान्त स्वाधीन राज हो गये थे। नेपालके पार्वतीय-वंशावलीके मतसे ३००० कलियुगाब्दमें अर्थात् ई० सनसे १०१ वर्ष पहले अंशुवर्मा राजगद्दी पर बैठे थे और उनके पहले विक्रमादित्य नेपाल जा कर वहाँ अपना सम्वत् चला आये थे। फ्लिट, होरन्लि प्रभृति प्रत्नतत्त्वविद्के मतानुसार अंशुवर्मा ६३८ ई०में राज्य करते थे*। किन्तु उक्त पार्वतीय-वंशावली और प्रत्नतत्त्वविद्का मत समीचीनके जैसा मालूम नहीं पड़ता है।

गोलमाढ़िटोल शिलालेखके अनुसार अंशुवर्मा और लिच्छविराज शिवदेव दोनों समसामयिक हैं। वह लेख ३१६ संख्यक् अनिर्द्दिष्ट सम्वत्में खुदा गया है। उक्त युरोपीय प्रत्नतत्त्वविदोंने उस अङ्कको गुप्त सम्वत्ज्ञापक और उसके बाद अंशुवर्मा प्रभृतिके शिलालेखमें जो अङ्क है उसे हर्ष-सम्वत्ज्ञापकके जैसा स्थिर किया है।

हर्षवर्द्धनके समय चीनपरिव्राजक युएनचुयाङ्गने नेपालकी यात्रा की थी। उन्होंने लिखा है, कि महाज्ञानी अंशुवर्मा उनके बहुत पहले इस लोकसे चल बसे हैं। पार्वतीयवंशावलीमें लिखा है, कि अंशुवर्माने ६८ वर्ष तक राज्य किया था, उनके राज्याभिषेकके पहले विक्रमादित्य नेपाल आ कर अपना सम्वत् प्रचलित कर गये हैं। फ्लीट् प्रभृति पुराविदोंने पार्वतीय वंशावलीके आधार पर उस विक्रमादित्यको हर्ष बतलाया है। जब उक्त वंशावलीके मतसे अंशुवर्माने ६८ वर्ष राज्य किया है और उनके पहले सम्वत् प्रचलित हुआ था तथा हर्षके समसामयिक चीन परिव्राजकके अनुसार उनके नेपाल जानेके पहले ही अंशुवर्माकी मृत्यु हो चुकी थी तो कब सम्भव है, कि हर्षदेवसे नेपालका सम्वत् प्रचार हुआ हो चीनपरिव्राजक युएनचुयाङ्ग ६३७ ई०को ५वीं फरवरीको नेपाल गये थे।* नेपालसे अंशुवर्माके समयके जो बहुतसे शिलालेख आविष्कृत हुए हैं, उनमें ३८ और ४५ अङ्क खुदे हुए हैं। यूरोपीय पुराविदोंने उन अङ्कोंको हर्ष-सम्वत्ज्ञापक माना है। डाक्टर बुह्लर और फ्लीट् साहबके मतसे ६०६-६०७† ई०में हर्ष-सम्वत् आरम्भ हुआ है। अतएव उनके मतसे अंशुवर्मा (६०६ + ३८)=६४५ ई०में विद्यमान थे, किन्तु चीनपरिव्राजकका वर्णनाके अनुसार ६३७ ई०के पहले ही अंशुवर्माकी मृत्यु हुई थी। ऐसी हालतमें अंशुवर्माके शिलालेख-वर्णित अङ्कोंको हर्ष-सम्वत्ज्ञापक नहीं मान सकते हैं।

पहले अंशुवर्माके समसामयिक शिवदेवका जो सम्वत् अङ्कित शिलालेख पाया गया है, वह शक-सम्वत्ज्ञापक है तथा अंशुवर्माके शिलालेखके अङ्कको गुप्तसम्वत्ज्ञापक मान भी लें तो कोई अत्युक्ति नहीं। ३१८ ई०में चन्द्रगुप्तने विक्रमादित्य गुप्तसम्वत् प्रचार किया है। उन्होंने नेपालके लिच्छवि-राजकन्या कुमारदेवीसे विवाह किया था। गुप्तराजवंश देखो। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि विवाह करके वे नेपालमें अपना सम्वत् प्रचार कर आये हों। १म शिवदेवके शिलालेखके अनुसार ३१६ (शक) सम्वत् अर्थात् ३९४ ई०में अंशुवर्माका पराक्रम नेपालमें बहुत चढ़ा बढ़ा था। उससे पहले ही (अर्थात् ३१८ + ३४ = ३५२ ई०के कुछ पहले) वे महाराजकी उपाधिसे भूषित हुए थे।

अंशुवर्माके बाद उस वंशमें कौन कौन राजा हुए उनका विशेष परिचय सामयिक शिलाफलकमें भी नहीं पाया जाता है। पार्वतीयवंशावलीके मतसे अंशुवर्माके बाद उनके पुत्र कृतवर्मा, कृतवर्माके बाद क्रमशः भीमार्जुन, नन्ददेव, वीरदेव, चन्द्रकेतुदेव, नरेन्द्रदेव, वरदेव, शङ्करदेव, वर्द्धमानदेव, गुणकामदेव, भोजदेव, लक्ष्मीकामदेव और जयकामदेवने राजा होते गये।

---

* Fleet's corpus Inscriptionum Indicarum, Vol iii. p 184 and Dr. Hoernle's Synchronistic Table in Journal of the Asiatic Society of Bengal for 1889 pt I.

* Cunningham's Ancient Geography of India, p. 555.

† Buhlter's Note on the twenty-three inscriqtions from Nepal, q 45 and fleet s Inscriptions of the Gupta king.

अन्तिम राजाके कोई पुत्र न रहनेके कारण उनकी मृत्युके बाद नवाकोटके ठाकुरीवंशीय भास्करदेव राज्यसिंहासन पर बैठे। उनके बाद यथाक्रम बलदेव, पद्मदेव, नागार्जुनदेव और शङ्करदेव राजा हुए। शङ्करदेवकी मृत्युके बाद अंशुवर्माके वंशीय और एक शाखाभुक्त वामदेव राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुए। उनके बाद पुत्रादिक्रमसे वामदेव, हर्षदेव, सदाशिवदेव, मानदेव, नरसिंहदेव, नन्ददेव, रुद्रदेव, मित्रदेव, अरिदेव, अभयमल्ल और आनन्दमल्ल राजा कहलाये। आनन्दमल्लके समयमें कर्णाटक-वंशीय नान्यदेवने नेपाल राज्य पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकारमें कर लिया। इसी समयसे ठाकुरीवंशका राज्य जाता रहा। अब भी नेपालके अनेक स्थानोंमें ठाकुरीवंशका वास है। उनकी अवस्था हीन होने पर भी वे अपनेको राजवंशीयके जैसा सम्मानित और गौरवान्वित समझते हैं।

ठाट (हिं० पु०) १ लकड़ी या बाँसकी फट्टियोंका बना हुआ परदा। २ ढाँचा, पंजर। ३ वेश, विन्यास शृङ्गार, रचना, सजावट। ४ आडम्बर, दिखावट, धूमधाम। ५ आराम, सुख, मज़ा। ६ प्रकार, शैली, ढब, तरीका। ७ आयोजन, सामान, तैयारी। ८ सामग्री, सामान। ९ युक्ति, उपाय। १० कुश्तीमें खड़े होनेका ढंग, पैतरा। ११ कबूतर या मुरगीका प्रसन्नतासे पर झाड़नेका ढंग। १२ सितारका तार। १३ समूह, झुंड। १४ वह मांसका पिण्ड जो बैल या साँड़की गरदनके ऊपर रहता है, कूबड़।

ठाटना (हिं० क्रि० १ निर्मित करना, संयोजित करना, बनाना। २ अनुष्ठान करना, ठानना। ३ सुसज्जित करना, सजाना, सँवारना।

ठाटबंदी (हिं० स्त्री०) छप्पर या परदे आदि बनानेका काम, ठाट, टट्टर।

ठाटबाट (हिं० पु०) १ सजावट, बनावट, सजधज। २ आडम्बर, दिखावट, तड़क भड़क।

ठाटर (हिं० पु०) १ ठाट, टट्टर, पट्टी। २ ठठरी, पंजर। ३ ढाँचा। ४ टट्टरकी छतरी जिस पर कबूतर आदि बैठते हैं। ५ शृङ्गार, सजावट, बनाव।

ठाठर—भविष्यब्रह्मखण्ड-वर्णित स्वर्गभूमिके मध्यभागमें काशीसे एक योजन पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। मुसलमानराजाके समय यहां बहुतसे ठठेरे या कसेरे रहते थे इसी कारण ग्रामका नाम ठाठर पड़ा है। यहांके राजा भूमिहार जातिके थे। गुलाबसिंह नामक एक मनुष्यने मुसलमानोंको भगा कर यहाँ पर कुछ काल तक राज्य किया था। यहांका कोटगढ़ उन्हींका बनाया हुआ है। उनके बाद गौतमगोत्रीय राजपूतोंने इसे अपने अधिकारमें लाया। अभी पूर्व समृद्धि लुप्त हो गई है। आजकल यहां केवल कृषकोंका वास है।

(ब्रह्मखं० ५७.२३७.२४६)

ठाठर (हिं० पु०) नदीका गहरा स्थान जहां बाँस या लग्गी न लगती हो।

ठाड़ा—काशीके पश्चिम नन्दा नदीके तीर पर अवस्थित एक ग्राम। यहाँ हिन्दू और मुसलमानोंमें घमसान लड़ाई हुई थी। (ब्रह्मखं० ५७।२३-२४)

ठाड़ा (हिं० पु०) खेतकी एक प्रकारकी जोताई।

ठाड़ेश्वरी—एक प्रकारके संन्यासी। ये दिनरात खड़े रहते हैं और इसी अवस्थामें भोजन इत्यादि सब काम करते हैं। सामनेमें किसी चीजका सहारा मिल जानेसे ही ये सो जाते हैं।

ठान (हिं० स्त्री०) १ अनुष्ठान, समारम्भ, कामका शुरू होना। २ कार्य शुरू किया हुआ काम। ३ दृढ़संकल्प, पक्का इरादा। ४ चेष्टा, अंदाज।

ठानना (हिं० क्रि०) १ अनुष्ठित करना, किसी कामको मुस्तैदीसे शुरू करना। २ स्थिर करना, दृढ़संकल्प करना, पक्का करना।

ठार (हिं० पु०) १ अत्यन्त शीत, गहरी सरदी। २ हिम, पाला।

ठाल (हिं० स्त्री०) १ जीविकाका अभाव, बेकारी। २ अवकाश, फुरसत।

ठाला (हिं० पु०) १ किसी प्रकारके रोजगारका न रहना। २ जीविकाका अभाव, रुपये पैसेकी कमी।

ठाली (हिं० वि०) १ रिक्त, खाली, बेकाम।

ठावँ (हिं० स्त्री०) ठांव देखो।

ठासा (हिं० पु०) लोहारोंका एक यन्त्र। इससे वे संकीर्ण स्थानमें लोहेकी कोर निकालते और उभारते हैं।

ठाहरूपक (हिं० पु०) सात मात्राओंका मृदंगका एक ताल। इसमें और आड़ा चौतालमें बहुत थोड़ा अन्तर है।

ठिँगना (हिं० वि०) कम ऊचाईका छोटे कदका, नाटा।

ठिक (हिं० स्त्री०) धातुकी चद्दरका कटा हुआ छोटा टुकड़ा जो केवल जोड़ लगानेके काममें आता है, चिकती।

ठिकरोर (हिं० स्त्री०) खपड़े ठीकरे आदिसे आच्छादित भूमि, वह जमीन जहां खपड़े ठीकरे आदि बहुतसे पड़े हों।

ठिकाई (हिं० स्त्री०) पालके जम कर ठीक ठीक बैठनेका भाव।

ठिकाना (हिं० पु०) १ स्थान, ठौर, जगह, पता। २ निवास-स्थान, ठहरनेकी जगह। ३ आश्रमस्थान, निर्वाह करनेका ठौर। ४ प्रमाण, ठीक। ५ प्रबन्ध, आयोजन, बंदोबस्त। ६ पारावार, अन्त, हद। (क्रि०) ७ स्थित करना, ठहराना, अड़ाना।

ठिठकना (हिं० क्रि०) १ गतिमें हठात् रुक जाना, एकदम ठहर जाना। २ स्तम्भित होना, न हिलना न डोलना।

ठिठरना (हिं० क्रि०) अधिक शीतसे संकुचित होना, जाड़ेसे अड़कना।

ठठुरना (हिं० क्रि०) ठिठरना देखो।

ठिनकना (हिं० क्रि०) १ छोटे छोटे लड़कोंका ठहर ठहर कर रोनेके जैसा शब्द निकालना। २ ठसकसे रोना, रोनेका नखरा करना।

ठिर (हिं० स्त्री०) कठिन शीत, गहरी सरदी।

ठिरना (हिं० क्रि०) अधिकशीतसे संकुचित होना, जाड़ेसे अकड़ना।

ठिलना (हिं० क्रि०) १ बलपूर्वक किसी ओर बढ़ाया जाना, ठेला जाना। बलपूर्वक बढ़ना, घुसना, धँसना।

ठिलिया (हिं० स्त्री०) गगरी, छोटा घड़ा।

ठिलुआ (हिं० वि०) निठल्ला, निकम्मा, बेकाम।

ठिल्ली (हिं० स्त्री०) ठिलिया देखो।

ठिहारी (हिं० स्त्री०) निश्चय ठहराव, इक़रार।

ठीक (हिं० वि०) १ प्रामाणिक, उचित, सच। २ उपयुक्त अच्छा, मुनासिब। ३ शुद्ध, सही। ४ जिसमें कुछ त्रुटि न हो, अच्छा, दुरुस्त। ५ अच्छी तरह बैठ जानेवाला, जो ढीला न हो। ६ नम्र, शिष्ट, सीधा। ७ निर्दिष्ट जिसमें कुछ फर्क न पड़े। निश्चित स्थिर, पक्का। (पु०) ८ दृढ़ बात, पक्की बात। १० स्थिर प्रबन्ध, पक्का आयोजन, बन्दोबस्त। ११ योग, जोड़, टोटल, मीज़ान।

ठीकठाक (हिं० पु०) १ निश्चित प्रबन्ध, बन्दोबस्त। २ जीविकाका प्रबन्ध, ठौर ठिकाना। ३ निश्चित, ठहराव। (वि०) ४ प्रस्तुत, बन कर तैयार।

ठीकड़ा (हिं० पु०) ठीकरा देखो।

ठीकरा (हिं० पु०) १ मट्टीके बरतनका टूटा फूटा टुकड़ा। २ जीर्ण पात्र, पुराना बरतन। ३ भिक्षापात्र, भीख माँगनेका बरतन।

ठीकरी (हिं० स्त्री०) १ मट्टीके बरतनका टूटा फूटा टुकड़ा। २ क्षुद्र वस्तु, निकम्मी चीज। ३ चिलम पर रखे जानेका मट्टीका तवा। ४ स्त्रियोंकी योनिका उभरा हुआ तल, उपस्थ।

ठीका (हिं० पु०) १ कुछ धन आदिके बदलेमें किसीके किसी कामको पूरा करनेका जिम्मा। २ किसी वस्तुका कुछ कालके लिये दूसरेके ऊपर इस शर्त पर सौंप देना कि वह उस वस्तुकी आमदनी वसूल करके और कुछ अपना मुनाफा काट कर बराबर मालिकको देता जाय, इजारा।

ठीकेदार (हिं० पु०) वह जो ठीका देता हो।

ठीठा (हिं० पु०) ठेंठा देखो।

ठीठी (हिं० स्त्री०) हँसीका शब्द।

ठीहँ (हिं० स्त्री०) हिनहिनाहटका शब्द।

ठीहा (हिं० पु०) १ लकड़ीका कुंदा जिसे लोहार, बढ़ई आदि जमीनमें गाड़ रखते हैं। इसका थोड़ासा भाग जमीनके ऊपर रहता है जिस पर वे वस्तुओंको रख कर पीटते तथा छीलते हैं। २ बढ़ैयोंका लकड़ी चीरनेका कुंदा। इसमें वे लकड़ीको कस कर खड़ा कर देति और चीरते हैं। ३ बैठनेका ऊंचा स्थान, वेदी, गद्दी। ४ सीमा, हद।

ठुंठ (हिं० पु०) १ शुष्क वृक्ष, सूखा हुआ पेड़। २ वह मनुष्य जिसका हाथ कटा हो, लूला।

ठुकना (हिं० क्रि०) १ आघात सहना, चोट देना, पिटना। २ चोटसे धँसना, गड़ना। ३ ताड़ित होना मार खाना। ४ परास्त होना, हारना। ५ घटा लगना, नुकसान होना। ६ पैरमें बेड़ी पहनना। ७ दाखिल होना।

ठुकराना (हिं० क्रि०) १ ठोकर मारना, लात मारना। २ खराब जान कर पैरसे हटाना।

ठुकवाना (हिं० क्रि०) १ किसी दूसरेसे ठोकनेका काम कराना। २ गड़वाना, धंसवाना। ३ प्रसंग करना।

ठुड्डी (हिं० स्त्री०) १ चिबुक, ठोड़ी। २ भूना हुआ दाना, ठोरीं।

ठुनठुन (हिं० पु०) १ धातुके टुकड़ोंके बजनेका शब्द। २ छोटे छोटे लड़कोंके ठहर ठहरके रोनेका शब्द।

ठुमक (हिं० वि०) नखरेबाजी, ठसक भरी।

ठुमुक ठुमुक (हिं० क्रि० वि०) छोटे छोटे बच्चोंकी जैसा फुदकते या रह रह कर कूदते हुए।

ठुमकना (हिं० क्रि०) १ कूदते हुए चलना। २ पैरमेंके घुंघुरू बजाते हुए चलना।

ठुमकारना (हिं० क्रि०) थपका देना, झटका देना।

ठुमकी (हिं० स्त्री०) १ थपका, झटका। २ रुकावट। ३ छोटी खरी पूरी। नाटी, छोटे डीलकी।

ठुमरी (हिं० स्त्री०) १ छोटासा गीत। इसमें चार मात्राका ताल लगता है, दो ताल और दो फाँक। इसकी बोली इस प्रकार है—

	+	०	१	०
(१)	घेघा,	किटि,	नेधा	किटि ::
(२)	तावाकि	सुन्	धा	थुन्ना ::
(३)	धाक्	धिन्	घेघा,	गेदिन ::
(४)	धागी,	धिनधिन्,	धागी,	धिन्धिन् ::

(संगीतरत्ना०)

२ गप, अफ़वाह।

ठुरियाना (हिं० क्रि०) सरदीसे ठिठुरना।

ठुर्रीं (हिं० स्त्री०) भूना हुआ दाना जो भूनने पर न खिले।

ठुसकना (हिं० क्रि०) ठुसकी मारना।

ठुसकी (हिं० स्त्री०) ठुस शब्द करके पादनेकी क्रिया।

ठुसना (हिं० क्रि०) १ कस कर भरा जाना। २ मुश्किलसे घुसना।

ठुसवाना (हिं० क्रि०) १ कस कर भरवाना। २ जोरसे घुसवाना।

ठुसाना (हिं० क्रि०) १ कस कर भरवाना। २ जोरसे घुसवाना। ३ अच्छी तरह खिलाना।

ठूँग (हिं० स्त्री०) १ चोंच, ठोर। २ चोंचका प्रहार। ३ टोला।

ठूँगा (हिं० पु०) ठूँग देखो।

ठूँठ (हिं० पु०) १ शुष्क वृक्ष, सूखा पेड़। २ कटा हुआ हाथ, ठुंड। ३ ज्वार, बाजरे, ईख आदिकी फसलको नष्ट करनेवाला एक कीड़ा।

ठूँठा (हिं० वि०) १ जिसमें पत्तियां और टहनियाँ न हों। २ कटे हुए हाथका, लूला।

ठूँठीं (हिं० स्त्री०) फसल काट लिये जाने पर खेतमें बची हुई खूंटी।

ठूँसना (हिं० क्रि०) ठूसना देखो।

ठूँसा (हिं० पु०) ठोसा देखो।

ठूनू (हिं० पु०) पटवोंकी टेढ़ी कील। इस पर वे गहने अँटका कर उन्हें गूंथते हैं।

ठूसना (हिं० क्रि०) १ अच्छी तरह भर देना। २ घुसेड़ना, जोरसे घुसाना। ३ पेट भर कर खाना।

ठेगना (हिं० वि०) जिसकी ऊंचाई कम हो, नाटा।

ठेंगा (हिं० पु०) १ अंगूठा। २ लिङ्गेन्द्रिय। ३ सोंटा, डंडा, गदका। ४ चुंगीका महसूल।

ठेंगुर (हिं० पु०) नटखट मवेशियोंके गलेमें बाँध दिये जानेका काठका लंबा कुंदा।

ठेंवा (हिं० पु०) ठेघा देखो।

ठेंठ (हिं० स्त्री०) ठेंठी देखो।

ठेंठी (हिं० स्त्री०) १ कानकी मैल। २ वह वस्तु जिससे कानका छेद बंद किया जाता है। ३ वह वस्तु जिससे शीशी बोतल आदिका मुंह बंद किया जाता है, काग।

ठेंपी (हिं० स्त्री०) ठेंठी देखो।

ठेक (हिं० स्त्री०) १ सहारा, ओंठगनेकी चीज। २ टेक, चाँड़। ३ वह वस्तु जिसके देनेसे ढीली वस्तु जकड़ कर बैठ जाय और तनिक भी हिलने डोलने न पावे, पच्चड़।

४ पेंदा, तला। ५ अनाज रखनेका टट्टियां आदिसे घिरा हुआ स्थान। ६ घोड़ोंकी एक चाल। ७ वह चकती जो टूटे फूटे बरतनमें लगी रहती है। ८ एक प्रकारकी मोटी महताबी। ९ छड़ी या लाठीकी सामी।

ठेकना (हिं० क्रि०) १ आश्रय लेना, सहारा लेना। २ टिकना, रहना ठहरना।

ठेकवा बाँस (हिं० पु०) बंगाल और आसाममें होनेवाला एक प्रकारका बाँस। यह छाजन तथा चटाई आदिके बनानेके काममें आता है।

ठेका (हिं० पु०) १ ओठगनेकी वस्तु, टेक। २ बैठक, अड्डा। ३ तबलेमें बाँयाँ। ४ कौवाली ताल। ५ ठोकर, धक्का। ६ ठीका देखो।

ठेकाई (हिं० स्त्री०) काले हाशियेकी छपाई।

ठेकी (हिं० पु०) सहारा, टेक।

ठेगनी (हिं० स्त्री०) वह लकड़ी जिससे सहारा ली जाती है।

ठेठ (हिं० वि०) १ निपट, बिल्कुल। २ शुद्ध, खालिस। निर्लिप्त, निर्मल, साफ। ४ साधारण बोली। ५ आरम्भ, शुरू।

ठेप (हिं० स्त्री०) १ अंटीमें समा जाने लायक सोने चांदीका बड़ा टुकड़ा। (पु०) २ दीपक, चिराग।

ठेपी (हिं० स्त्री०) वह वस्तु जिससे शीशी या बोतलका मुंह बंद किया जाता है, काग।

ठेलना (हिं० क्रि०) रेलना, ढकेलना।

ठेला (हिं० पु०) १ पार्श्वका आघात, टक्कर, धक्का। २ मनुष्यसे ढकेले जानेकी एक प्रवारकी गाड़ी। ३ छिछली नदियोंमें लग्गीके सहारे चलनेवाली नाव। ४ धक्कम धक्का, भीड़में एकके ऊपर एकका गिरना।

ठेलाठेल (हिं० स्त्री०) बहुतसे मनुष्योंका एकके ऊपर दूसरेका गिरना।

ठेस (हिं० स्त्री०) आघात, चोट ठोकर।

ठेसना (हिं० क्रि०) ठूसना देखो।

ठेसमठेस (हिं० क्रि०-वि०) बिना पालोंके जहाजोंका चलना।

ठेहरी (हिं० स्त्री०) दरवाजोंकी पल्लोंकी चूलमें गड़ी हुई छोटीसी लकड़ी।

ठेही (हिं० स्त्री०) मारी हुई ईख।

ठैकर (हिं० पु०) नीबूकी जातिका एक खट्टा फल। जब यह हल्दीके साथ उबाला जाता है तो एक प्रकारका हलका पीला रंग तैयार होता है।

ठैराई (हिं० स्त्री०) ठहराई देखो।

ठोंक (हिं० स्त्री०) १ प्रहार, आघात। २ दरीके सूत ठोंक कर ठस करनेकी लकड़ी।

ठोंकना (हिं० क्रि०) १ आघात पहुंचाना, प्रहार करना पीटना। २ ठोकर मारना, मारना पीटना। ३ गाड़ना। ४ पेश करना, दाखिल करना, दायर करना। ५ बेड़ियोंसे जकड़ना, काठमें डालना। ६ तबला बजाना। ७ लगाना, जड़ना। ८ खटखटाना, खटखट करना। ९ थपथपाना, हाथ मारना।

ठोंग (हिं० स्त्री०) १ चोंच। २ चोंचका प्रहार। ३ अंगुलीकी ठोकर, खटका।

ठोंगना (हिं० क्रि०) १ चोंचसे आघात पहुँचाना। २ अंगुलीसे ठोकर मारना।

ठोंठा (हिं० पु०) ज्वार, बाजरा और ईखको नुकसान पहुंचानेवाला एक कीड़ा।

ठोकचा (हिं० पु०) आमकी गुठलीका आवरण।

ठोकना (हिं० क्रि०) ठोंकना देखो।

ठोकर (हिं० स्त्री०) १ चलते समय किसी कड़ी वस्तुसे पैरोंमें चोट लगना, ठेस। २ रास्तेमें पड़ा हुआ उभरा पत्थर। ३ पैर या जूतेका भारी आघात। ४ कड़ा प्रहार, धक्का। जूतेके सामनेका भाग। ६ कुश्तीका एक पेच।

ठोकरी (हिं० स्त्री०) वह गाय जिसे बच्चा दिये कई महीने हो चुके हों। ऐसी गायका दूध गाढ़ा और मीठा होता है।

ठोकवा (हिं० पु०) ठेंकवा देखो।

ठोट (हिं० वि०) जड़, मूर्ख, गावदी।

ठोड़ी (हिं० स्त्री०) चिबुक, दाढ़ी, ठुड्डी।

ठोढ़ी (हिं० स्त्री०) ठोड़ी देखो।

ठोप (हिं० पु०) बिन्दु, बूंद।

ठोर (हिं० पु०) एक प्रकारकी मिठाई।

ठोला (हिं० पु०) १ रेशम फेरनेवालोंका एक औजार, यह लकड़ीकी चौकोर छोटी पटरीके रूपमें होता है। २ मनुष्य, आदमी।

ठोस (हिं० वि०) १ जिसका मध्य भाग खाली न हो, जो पोला या खोखला न हो। २ दृढ़, मजबूत। (पु०) ३ ईर्ष्या डाह, कुढ़न।

ठोसा (हिं० पु०) अंगूठा।

ठोका (हिं० पु०) पानी जमा होनेका गड्ढा। किसान इसी गड्ढेका पानी दौरीसे ऊपर उलीच कर जमीन सींचते हैं।

ठौर (हिं० पु०) स्थान, जगह, ठिकाना। २ अवसर, घात, दाव, मौका।

ड

ड—संस्कृत और हिन्दी वर्णमालाका तेरहवां व्यञ्जनवर्ण और टवर्गका तीसरा अक्षर। इसके उच्चारणमें आभ्यन्तर प्रयत्न जिह्वामध्य द्वारा मूर्द्धस्थान स्पर्श और वाह्यप्रयत्न संवार, नाद, घोष एवं अल्पप्राण लगता है। मातृकान्यासमें दक्षिणपादगुल्फमें न्यास होता है।

वर्णोद्धारतन्त्रमें इसकी लेखनप्रणाली इस प्रकार लिखी है—"ड"। इस अक्षरमें लक्ष्मी, सरस्वती और भवानी सर्वदा वास करती हैं। यह ब्रह्मरूप और महाशक्ति माता कहा गया है।

वर्णाभिधानतन्त्रमें इसके वाचक शब्द लिखे हैं; यथा—स्मृति, दारुक, निन्दिपिणी, योगिनी, प्रिय, कौमारी, शङ्कर, त्रास, त्रिवक्र, नदक, ध्वनि, दुरूह, जटिली, भीमा, द्विजिह्व, पृथिवी, सती, कोरगिरि, क्षमा, कान्ति, नाभि, लोचन।

इसका स्वरूप—यह सदा त्रिगुणयुक्त, पञ्च देवमय, पञ्च प्राणमय, त्रिशक्ति एवं त्रिविन्दुयुक्त, चतुर्ज्ञानमय, आत्मतत्त्वयुक्त और पीतविद्युल्लताकार है। (कामधेनुतन्त्र)
इसका ध्यान—

"जवासिन्दूरसंकाशां वराभयकरां पराम्।
त्रिनेत्रां वरदां नित्यां परमोक्षप्रदायिनीं॥
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्।"
(वर्णोद्धारतन्त्र)

इसका वर्ण जवा और सिन्दूरसदृश है। यह अभयप्रदायक, विनीत, वरदायक, नित्य और ब्रह्मरूप है। इसका ध्यान करके जप करनेसे साधक शीघ्र ही अभीष्ट प्राप्त कर सकता है। पद्यको आदिमें इसका विन्यास किया जाता है।

"ड: शोभा ढो विशोभा" (वृत्त० र० टी०)

ड (सं० पु०) डयति उड्डीयते भक्तानां हृदयाकाशे यः। डी बाहुलकात् ड। १ शिव, महादेव। २ शब्द, आवाज़। ३ त्रास, डर। ४ वाड़वाग्नि (स्त्री०) डाकिनी।

डंक (हिं० पु०) १ वह विषैला काँटा जो भिड, बिच्छू मधुमक्खी आदि कीड़ोंके पीछेमें रहता है। जब वे गुस्साते तो इसी काँटेको जीवोंके शरीरमें चुभा देते हैं। भिड़ मधुमक्खी आदि उड़नेवाले कीड़ेका काँटा नलीके रूपमें होता है। इसी हो कर विषकी गांठसे विष निकल कर चुभे हुए स्थानमें प्रवेश करता है। यह काँटा सिर्फ मादा कीड़ोंको होता है। २ निब, कलमकी जीभा। ३ वह स्थान जहां डंक मारा गया हो।

डंकदार (हिं० वि०) जिसके डंक हो, डंकवाला।

डंका (हिं० पु०) १ ताँबे या लोहेके बरतनों पर चमड़ा मढ़ कर बनाया हुआ एक प्रकारका बाजा। पूर्व समय यह लड़ाईके स्थानमें बजाया जाता था। २ वह नियत घाट जहां जहाज आ कर ठहरता है।

डंकिनी (हिं० स्त्री०) डाकिनी देखो।

डंकी (हिं० स्त्री०) १ कुश्तीका एक पेंच। मलखंभकी एक कसरत।

डंकुर (हिं० पु०) एक पुराना बाजा।

डंग (हिं० पु०) अधपका छुहारा।

डंगम (हिं० पु०) एक पेड़का नाम। यह दारजिलिङ्गके आसपास तथा खसियाकी पहाड़ियोंमें बहुत पाया जाता है। इसके पत्ते प्रति वर्ष जाड़ेकी मौसिममें झड़ जाते

हैं। इसकी लड़की वहुत मजबूत होती है।

डंगर (हिं० पु०) मवेशी, चौपाया।

डंगरी (हिं० स्त्री०) १ लम्बी ककड़ी, डाँगरी। एक प्रकारकी चुड़ैल, डाइन। २ पूर्वीय हिमालय, सिकिम, भूटानसे लगा कर चटगांव तक होनेवाला एक प्रकारका मोटा वेंत। इसमेंसे वहुत अच्छी अच्छी छड़ियां और डंडे निकालते हैं। इससे टोकरे भी बनाये जाते हैं।

डंगवारा (हिं० पु०) वह सहायता जो किसान लोग खेतकी जोताई वोआईमें एक दूसरेको देते हैं, हूंड़।

डंगूज्वर (अं० पु०) एक प्रकारका ज्वर। इसमें शरीर पर चकत्ते पड़ जाते हैं।

डंगोरी (हिं स्त्री०) एक पेड़। इसका काठ वहुत मजबूत और चमकदार होता है। यह आसाम और कछारमें वहुत उपजता है।

डंठल (हिं० पु०) छोटे पौधोंकी पेड़ी और शाखा।

डंठी (हिं० स्त्री०) डंठल।

डंड (हिं० पु०) १ लाठी, सोटा। २ वाहु दण्ड, वाहु। एक प्रकारका व्यायाम जो हाथ पैरके पंजोंके वल पट पड़ कर किया जाता है।

डँड़ (हिं० पु०) डण्ड देखो।

ठंडपेल (हिं० पु०) १ वह जो खूब दँड लगाता हो, कसरती, पहलवान्। २ वलवान् मनुष्य।

डंडल (हिं० स्त्री०) बंगाल और वरमामें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। यह लगभग १८ इंच लम्बी होती है। यह हमेशा पानीके ऊपर अपनी आँखें निकाल कर तैरती है।

डँडवारा (हिं० पु०) १ बहुत दूर तक विस्तृत खुली दीवार। २ दक्षिणकी वायु, दखिनैया।

डँडवारी (हिं० स्त्री०) किसी स्थानको घेरनेके उठाई जानेवाली कम ऊँची दीवार।

डँड़हरा (हिं० स्त्री०) बङ्गाल, मध्यभारत और वरमामें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। इसकी लम्बाई लगभग ३ इंच तक होती है।

डँडहरी (हिं० स्त्री०) आसाम, बङ्गाल और उड़ीसा और दक्षिण भारतकी नदियोंमें पाई जानेवाली एक प्रकारकी छोटी मछली।

डँड़हिया (हिं० पु०) बैलोंकी पीठ पर लदे हुए दो बोरोंको फसाए रखनेका एक डंडा।

डंडा (हिं० पु०) १ लकड़ी या बाँसका सीधा लम्बा टुकड़ा। २ लाठी, सोटा। ३ चारदीवारी, डाँड।

डंडाडोली (हिं० स्त्री०) छोटे छोटे लड़कोंका एक खेल।

डंडाल (हिं० पु०) दुन्दुभि, नगारा।

डँडिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी साड़ी जिसमें बेल बूटेकी लंबी लकीरें बना कर टाँकी गई हो। २ गेहूंके पौधेकी लम्बी सींक। (पु०) ३ वह जो कर वोसूल करता हो।

डँडियाना (हिं० क्रि०) दो कपड़ोंकी लंबाईके किनारोंको एकमें सीना।

डंडी (हिं० स्त्री०) १ छोटी पतली लम्बी लकड़ी। २ मुठिया, हत्था, दस्ता। ३ तराजूकी सीधी लकड़ी। इसीमें रस्सियां लटका कर पलड़े बन्धे रहते हैं। ४ पत्ता फूल या फल लगा हुआ लम्बा डंठल, नाल। ५ फूलके नीचेका लम्बा हिस्सा। ६ हरसिंगारका फूल। ७ पहाड़ों पर चलनेवाली एक प्रकारकी सवारी। यह डंडेमें बन्धी हुई झोलीकी आकारकी होती है, झप्पा। ८ लिङ्गेन्द्रिय। ९ वह सन्यासी जो दण्ड धारण करता हो। (वि०) १० जो एक दूसरेसे झगड़ा लगाता हो, चुगलखोर।

डँड़ीर (हिं० स्त्री०) सीधी रेखा।

डंड़ोरना (हिं० क्रि०) ढूंढ़ना, उलट पुलट कर खोजना।

डंडौत् (हिं० पु०) दण्डवत् देखो।

डंबेल (अं० पु०) १ कसरत करनेकी लोहे या लकड़ीकी गुल्ली, इसके दोनों सिरे लट्टूकी तरह गोल होते हैं। इसको हाथमें ले कर तानते हैं। २ इस प्रकारके लट्टूसे की जानेवाली कसरत।

डंवरुआ (हिं० पु०) वातका एक रोग, गठिया।

डंवरुआसाल (हिं० पु०) धातु या लकड़ीके दो टुकड़ोंको मिलानेके लिये एक प्रकारका जोड़। यह जोड़ बहुत दृढ़ होता और खींचनेसे भी नहीं उखड़ता है।

डंवाँडोल (हिं० वि०) चञ्चल घबराया हुआ।

डंस (हिं० पु०) १ जङ्गली मच्छर, डाँस। २ वह स्थान

जहां डंक चुभा हो या सांप आदि विषैले कीड़ोंका दाँत चुभा हो।

डंसना (हिं॰ क्रि॰) डसना देखो।

डक (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका पतला सफेद टाट। २ एक प्रकारका मोटा कपड़ा।

डकई (हिं॰ स्त्री॰) केलेकी एक जाति।

डकरा (हिं॰ पु॰) काली मट्टी।

डकराना (हिं॰ क्रि॰) बैल या भैंसेका बोलना।

डकार (सं॰ पु॰) डकारप्रत्ययः, ड स्वरूप वर्ण, ड अक्षर।

डकार (हिं॰ स्त्री॰) १ मुखसे निकला वायुका उद्गार। २ बाघ सिंह आदिको गरज, दहाड़, गुर्राहट।

डकारना (हिं॰ क्रि॰) १ डकार लेना। २ हजम करना, पचा जाना। ३ बाघ सिंह आदिका गरजना, दहड़ना।

डकिकि—उर्दूके एक प्रसिद्ध कवि। ये अमीर मनसूर सामानीके पुत्र द्वितीय अमीरनूहके दरबारमें रहते थे। उन्हींके अनुरोधसे इन्होंने 'शाहनामा' लिखना आरम्भ कर दिया था। लेकिन उसे समाप्त करनेके पहले ही ये अपने एक भृत्यके साथसे मार डाले गये। इनका रचना प्रायः ९८७ ई॰में साबित होता है।

डकैत (हिं॰ पु॰) बलपूर्वक दूसरेका माल छीननेवाला लुटेरा।

डकैती (हिं॰ पु॰) डकैतका काम, लूट मार, छापा।

डकौत (हिं॰ पु॰) वह जो सामुद्रिक, ज्योतिष आदिका ढोंग रचता हो, भड्डरी। इनकी एक पृथक् जाति है। ये अपनेको ब्राह्मण बतलाते हैं, पर ब्राह्मण इन्हें नीच समझते हैं।

डक्कारी (हिं॰ स्त्री॰) चाण्डालकी ढक्का, चाण्डालकी एक ढोल।

डग (हिं॰ पु॰) १ कदम, फाल। २ उतनी दूरी जितनी पर एक स्थानसे दूसरे कदम पड़े, पैंड़।

डगडगाना (हिं॰ क्रि॰) हिलना, काँपना डोलना।

डगडोर (हिं॰ वि॰) चलायमान, हिलनेवाला।

डगण (सं॰ पु॰) छन्दोग्रन्थोक्त पाँच भागोंमें विभक्त गण-विशेष। यथा (ऽऽ गज १) (।।ऽ रथ २) (।ऽ। अश्व ३) (ऽ।। पदाति ४) (।।।। पत्ति ५)

डगमगाना (हिं॰ क्रि॰) १ इधर उधर हिलना डोलना, थरथराना लड़खड़ाना। २ विचलित होना, किसी बात पर कायम न रहना।

डगर (हिं॰ स्त्री॰) मार्ग, रास्ता, पथ, पैंड़ा।

डगरा (हिं॰ पु॰) १ मार्ग, रास्ता। २ टोकरा, छिछला बरतन डालरा।

डगाना (हिं॰ क्रि॰) डिगाना देखो।

डग्गर (हिं॰ पु॰) १ एशिया और अफ्रिकाके बहुतसे भागोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका मांसाहारी पशु। यह रातको कभी कभी शिकारके लिये बाहर निकलता है और कुत्ते बकरोंके बच्चों आदिको उठा कर ले भागता है। इसके मुख्य दो भेद हैं, चित्तीवाला और धारीवाला। इसका पिछला भाग बहुत छोटा और आगेका भाग भारी होता है। कन्धे पर खड़े खड़े बाल होते हैं। इसके दाँत बहुत तेज होते हैं। कहा जाता है कि यह प्रायः कब्रमें गड़े हुए मुरदेको निकाल कर खाता है। २ एक प्रकारका दुबला घोड़ा, जिसके पैर बहुत लम्बे लम्बे होते हैं।

डग्गा (हिं॰ पु॰) दुबला पतला घोड़ा।

डङ्का (हिं॰ स्त्री॰) डमित्यव्यक्तशब्दं कायति कै-क-टाप्। १ दुन्दुभिध्वनि। यह बाजा मनुष्योंको सचेत करनेके लिये बजाया जाता है। २ टिकारा।

डङ्गरी (हिं॰ स्त्री॰) डं भयं गिरति नाशयति गॄ-अच् पृषो॰ साधुः गौरा॰ ङीष्। लताफल एक प्रकारकी ककड़ी। इसके पर्याय—डाङ्गरी, दीर्घबीरु, डङ्गरी, डङ्गारी, नामशुण्डी और गजदन्तफला है। इसका गुण शीतल, रुचिकारक, दाह, पित्त, अस्रदोष, अर्श, जाड्य और मूत्ररोधदोषनाशक, तर्पण और गौल्य है।

डट (हिं॰ पु॰) १ चिह्न, निशाना।

डटना (हिं॰ क्रि॰) १ स्थिर रहना, अड़ना। २ सम्बद्ध होना, छू जाना, भिड़ना।

डटाना (हिं॰ क्रि॰) १ सटाना, भिड़ाना। २ एक वस्तुको दूसरी वस्तु द्वारा आगेकी ओर ठेलना। ३ खड़ा करना, जमाना।

डटाई (हिं॰ स्त्री॰) १ डटानेका भाव। २ डटानेकी मजदूरी।

डट्टा (हिं॰ पु॰) १ हुक्केका नेचा, टेरुआ। २ गट्टा।

काग। ३ बड़ी मेख। ४ ठप्पा; जिससे छींट छापी जाती है, सांचा।

डड़ही (हिं॰ स्त्री॰) मछलीका एक भेद।

डढ़ा-रा (हिं॰ वि॰) १ जिसके डाढ़ें हों, दाँतवाला। २ जिसके डाढ़ी हो।

डढ़ियल (हिं॰ वि॰) डाढ़ीवाला, जिसके डाढ़ी बड़ी हो।

डण्डमत्स्य (सं॰ पु॰) मत्स्य विशेष, एक मछली।

डपट (हिं॰ स्त्री॰) १ डांट, झिड़की। २ तेज, दौड़, सरपट चाल।

डपटना (हिं॰ क्रि॰) १ कठोर स्वरसे बोलना, डाँटना। २ तेज दौड़ना।

डपोरसंख (हिं॰ पु॰) १ व्यर्थकी अपनी बड़ाई करनेवाला, डींग हाँकनेवाला। २ वह जो देखनेमें युवक हो पर उसकी बुद्धि बच्चोंकीसी जान पड़े।

डप्पू (हिं॰ वि॰) बहुत मोटा, बहुत बड़ा।

डफ (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका बड़ा बाजा। इस पर चमड़ा मढ़ा होता है और लकड़ीसे बजाया जाता है, डफला। २ लावनी बाजोंका बाजा; चङ्ग।

डफर (हिं॰ पु॰) जहाजका एक तरफका पाल।

डफला (हिं॰ पु॰) १ डफ नामका बाजा। २ जातिभेद। डाफला देखो।

डफली (हिं॰ स्त्री॰) छोटा डफ, खंजरी।

डफालची हिं॰ पु॰) डफाली देखो।

डफाली (पिं॰ पु॰) वह जो डफला बजाता हो। मुसलमानोंकी एक जाति डफला बजाती तथा चमड़ेसे मढ़े हुए बाजोंकी मरम्मत करती है।

डब (हिं॰ पु॰) १ थैला, जेब। २ वह चमड़ा जिससे कुप्पा बनाया जाता है।

डबकना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी धातुकी चद्दरको कटोरीके आकारका गहरा बनाना। २ पीड़ा देना, टीस मारना। ३ लँगड़ाना।

डबकौंहाँ (हिं॰ वि॰) आँसूसे छाया हुआ, डबडबाया हुआ।

डबडबाना (हिं॰ क्रि॰) अश्रुपूर्ण होना, आँखेंसे आँसू भर आना।

डबरा (हिं॰ पु॰) १ पानी जमा रहनेका लम्बा और कम गहराईका गड्ढा, कुण्ड, हौज। ४ खेत जोते जानेमें छूटा हुआ कोना।

डबरी (हिं॰ स्त्री॰) छोटा गड्ढा।

डबल (अं॰ वि॰) १ दोबार। दोहरा (पु॰) २ अंग्रेजी राज्यका पैसा।

डबलरोटी (अं॰ स्त्री॰) पावरोटी।

डबलविक (अं॰ वि॰) दोहरी बत्ती।

डबला (हिं॰ पु॰) कुल्हड़, मट्टीका पुरवा।

डबोना (हिं॰ क्रि॰) १ मग्न करना, बोरना डुबाना। २ नष्ट करना, बिगाड़ना।

डब्बा (हिं॰ पु॰) १ कोई ठोस या भुरभुरी चीजें रखी जानेका ढक्कनदार छोटा गहरा बरतन। २ रेलगाड़ीकी एक कोठरी।

डब्बू (हिं॰ पु॰) कटोरेके आकारका एक बरतन। इसमें डाँड़ी लगी रहती है और भोज इत्यादिमें यह कोई चीज परोसनेके काममें आता है।

डभका (हिं॰ पु॰) वह पानी जो कुएंसे तुरन्त निकाला गया हो।

डभकौरी (हिं॰ स्त्री॰) उदरकी पीठीकी बरी। यह बिना तले हुए कढ़ीमें डाल दी जाती है।

डम (सं॰ पु॰) डं नीचयोनित्वात् भीतिं माति-मा-क। वर्णसङ्कर जातिविशेष। ब्रह्मवैवर्तपुराणके मतसे इस जातिकी उत्पत्ति लेट और चाण्डालीसे हुई है। डोम देखो।

डमर (सं॰ क्ली॰) मृ-भावे अच् मरं पालनं डेन त्रासेन मरं पलायनं ३-तत्। १ भयसे पलायन, भगेड़। इसके पर्याय—शृगालिका, विद्रव और डिम्ब हैं। (पु॰) डेन भयेन मरो मृतिरिव यत्र, बहुव्री॰। २ परचक्रादि भय। ३ अस्त्र कलह, उपद्रव, हलचल। इसके पर्याय विप्लव, डिम्ब, विम्ब और डामर हैं।

डमरी (सं॰ पु॰) डमर-णिनि। छोटा डफ, खञ्जरी।

डमरु (सं॰ पु॰) डमित्यव्यक्तशब्दं ऋच्छति डम-ऋ-कु। मृगय्वादयश्च। उण् १।३८। इति सूत्रेण निपातनात् साधुः। १ वाद्यविशेष, एक बाजा। इसका आकार बीचमें पतला और दोनों सिरोंकी ओर बराबर चौड़ा होता जाता है। इसके दोनों सिरों पर चमड़ा मढ़ा होता है।

इसके बीचमें एक डोरी बन्धी रहती रहती है। डोरीके दोनों सिरों पर दो कौड़ियां दो हुई रहती है। बीचमें पकड़ कर जब यह हिलाया जाता है तो कौड़िया चमड़े पर पड़ती हैं और शब्द होता है। बन्दर भालू आदि के लिए मदारी इसे अपने साथ रखता है। यह बाजा शिवजीका बहुत प्रिय है।

शिवजीके हाथमें यह बाजा हमेशा रहता है।

"त्रिशूल-डमरुकरं।" (शिवध्यान) २ वह वस्तु जो बीचमें पतली हो और दोनों ओर बराबर चौड़ी होती गई हो। ३ ३२ लघु वर्णयुक्त एक प्रकारका दण्डक-वृत्त। ४ विस्मय, ताज्जुब।

डमरूका (सं० स्त्री०) डमरूक कन् स्त्रियां टाप्। तन्त्रोक्त मुद्राभेद, एक प्रकारका आसन।

डमरूमध्य (सं० पु०) डमरु इव मध्यः यस्य, बहुव्री०। योजक, जमीनका वह संकीर्ण भाग जो दो बड़े बड़े खण्डोंको मिलाता हो।

डमरूयन्त्र (हिं० पु०) एक प्रकारका यन्त्र। इसमें अर्क खींचे जाते और सिंगरफका पारा, कपूर, नौसादार आदि उड़ाये जाते हैं। यह दो घड़ोंका मुह मिलाने और कपड़मट्टी द्वारा बनता है। जोड़नेसे जिस वस्तुका अर्क चुआना होता है उसे पानीके साथ एक घड़ेमें रख देते हैं और तब दोनों घड़ोंका मुह जोड़ दिया जाता है। तब दोनों जुड़े हुए घड़े इस प्रकार अड़ा कर रखे जाते हैं कि एक घड़ा आंच पर और दूसरा ठण्डी जगह पर रहता है। गर्मी लगनेसे वस्तु मिश्रित जलका वाष्प उड़ कर दूसरे घडेमें जा टपकता है। वाष्पका जल ही उस वस्तुका अर्क है। जो घडा नीचे रहता है उसके पेंदेमें आँच लगती है और ऊपरके घड़ेके पेंदेको भींगा हुआ कपड़ा आदि रख कर ठण्ढा रखते हैं। जब नीचेके घड़ेमें गर्मी लगती है तो सिंगरसे पारा उड़ कर ऊपरके घड़ेके पेंदेमें जम जाता है।

डमसार—पूर्व बंगालका एक प्राचीन ग्राम।

(भ० ब्रह्मखं० १९।५२)

डम्फ—एक प्रकारका प्राचीन बाजा। यह लकड़ेसे गोल बड़े मेंड़रे पर चमड़ा मढ़ कर बनाया जाता है। युक्त-प्रदेशमें इसका व्यवहार अधिक है।

डम्बर (सं० पु०) डप-अरन्। १ समूह। २ आयोजन, आडम्बर, धूमधाम। 'अजायुद्धे ऋषिश्राद्धे प्रभाते मेघडम्बरः।" (चाणक्य) ३ धातृदत्त कुमारके एक अनुचरका नाम। "डम्बराडम्बरौ चैव ददौ धाता महात्मने।" (भा० ९।४७ अ०) ४ विस्तार। ५ विलास। ६ एक प्रकारका चँदोवा, चदरछत।

डयन (सं० क्ली०) डीयते आकाशमार्गे गम्यते अनेन डि करणे ल्युट्। १ कर्णीरथ, पालकी, डोली। २ नभोगति, उड़ान, उड़नेकी क्रिया।

डर (हिं० पु०) १ भय, भीति, त्रास, खौफ़। २ आशंका, अनिष्टकी भावना, अन्देशा।

डरना (हिं० क्रि०) १ भयभीत होना, खौफ़ करना। २ आशंका करना, अंदेशा करना।

डरपना (हिं० क्रि०) भयभीत होना, डरना।

डरपोक (हिं० वि०) भीरु, कायर, जो बहुत डर खाता हो।

डराना (हिं० क्रि०) भय भीत करना, डर दिखाना, खौफ़ दिलाना।

डरावना (हिं० वि०) भयानक, भयंकर।

डरावा (हिं० पु०) फलदार पेड़ोंमें बंधी हुई एक लकड़ी जो चिड़ियोंका उड़ानेके लिये लगी रहती है। इसमें एक लम्बी रस्सी बंधी होती है।

डरी (हिं० स्त्री०) डली देखो।

डरील (हिं० वि०) जिसमें शाखा हो, डारवाला, टहनीदार।

डल (हिं० पु०) १ खण्ड, अंश, टुकड़ा। (स्त्री०) २ झील। ३ काश्मीरकी एक झील।

डलई (हिं० स्त्री०) डलिया देखो।

डलना (हिं० क्रि०) डाला जाना, पड़ना।

डलवा (हिं० पु०) डला देखो।

डलवाना (हिं० क्रि०) डालनेका काम किसी दूसरेसे कराना।

डला (हिं० पु०) १ खण्ड, टुकड़ा। २ बाँस इत्यादिकी फट्टियोंका बनाया हुआ बरतन, दौरा, टोकरा।

डली (हिं० स्त्री०) खण्ड, छोटा टुकड़ा। २ सुपारी। ३ डलिया।

डलहौसी—इनका यथार्थ नाम जेम्स अण्ड्रु ब्रौन रामसे, दशम आर्ल और प्रथम मारक्विस् आफ डलहौसी (James Andre Brown Ramsay, tenth Earl and first marquis of Dalhousie)। १८१२ ई०को २२वीं अप्रीलको इनको जन्म हुआ था। ये हार्डिङ्गटनसायारस्थ कालस्टाउनके ब्रौनको उत्तराधिकारिणीके तृतीय पुत्र थे। इन्होंने पहले हरोर विद्यालयमें शिक्षा प्राप्त की थी, पीछे अक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके क्राइष्टचार्च कालेजमें अध्ययन करके १८३८ ई०में एम०ए० उपाधि लाभ किया था। अग्रज दो सहोदरोंकी मृत्यु होनेके कारण १८३२ ई०में ये लार्ड रामसे (Lord Ramsay) नामसे प्रसिद्ध हुए। इन्होंने ग्रेटहटेनकी मन्त्रिसभामें कुछ दिन कार्य किया था; पीछे ये भारतवर्षके गवर्नर जनरल (बड़ेलाट) नियुक्त हुए थे। इन्होंने १८४८ ई०को १२वीं जनवरीको कार्य-भार ग्रहण और १८५६ ई०को २८वीं फरवरीको कार्य परित्याग किया था।

१८४७ ई०के अन्तमें भाइकाउण्ट हार्डिञ्ज भारतवर्षसे चले जाने पर डलहौसीने आ कर भारतका शासनभार ग्रहण किया। जब ये इस देशमें आये थे, तब भारतराज्यमें किसी तरहकी विशृङ्खला नहीं थी। समस्त प्रदेशोंमें एक प्रकार सुखशान्ति विराजमान थी। किन्तु अकस्मात् मुलतानमें एक मेघका उदय हुआ। १८४४ ई०में सवनमलकी मृत्यु होनेसे उनके पुत्र मूलराज मुलतानके दीवान चुने गये। ये ३० लाख रुपये और नियमित कर प्रदान करेंगे, इस शर्त पर लाहोर-दरबारने इनको दीवान मनोनीत किया था। मूलराज अत्यन्त साहसी थे; वे अधीनताकी अपेक्षा मृत्युको श्रेयस्कर समझ कर गुपचुप स्वाधीन होनेका मौका ढूंढने लगे। इस समय लाहोर-दरबारमें बड़ी विशृङ्खला उपस्थित थी। प्रधान प्रधान सामन्तोंमें परस्पर वास्तविक एकता बिलकुल न थी। मूलराजने लाहोरको मञ्जूर किये हुए ३० लाख रुपये अथवा नियमित कर कुछ भी नहीं भेजा। इसका सन्तोषजनक उत्तर देनेके लिए प्रधान मन्त्री लालसिंहने मूलराजको लाहोर आनेके लिए आह्वान किया तथा यदि मूलराज सहजमें न आवें, तो उनको बलपूर्वक लानेके लिए एक दल सेना भी भेजी। इधर मूलराज भी निश्चिन्त न थे, वे विपत्तिकी आशङ्का जान कर पहलेहीसे तयार थे। लाहोरसे सेना आ कर उपस्थित होने पर मूलराजके साथ एक युद्ध हुआ।

युद्धमें मूलराजने विजय प्राप्त की। उनमें ब्रिटिश-गवर्मेण्टने मध्यस्थ हो कर दोनों पक्षमें एक सन्धि करा दी। सन्धिके नियम मूलराजको पसन्द न होनेसे उन्होंने रेसिडेण्टोंके पास मुलतानकी दीवानी छोड़ देनेकी इच्छा प्रकट की और साथ लिख दिया कि, दीवानी छोड़ देनेकी बात साधारणको मालूम न होने पावे। रेसिडेण्ट लारेन्स साहबने आपके अनुरोधकी रक्षा करेंगे ऐसा लिख भेजा।

१८४८ ई०की ६ठी मार्चको सर फ्रेडेरिक करी (Sir Frederic Currie) रेसिडेण्ट हो कर लाहोर आये। मूलराजका पदत्याग छिपा रखनेके लिये लारेन्सने उनसे कहा। किन्तु लारेन्सका प्रस्ताव उन्होंने ग्राह्य नहीं किया। नये रेसिडेण्टने मन्त्रिसभामें मूलराजका इस्तीफा पेश किया और मन्त्रिसभा द्वारा वह मञ्जूर हो गया।

खाँसिंहको दीवान नियुक्त कर मुलतान भेजा गया। उनके साथ अग्निउ (Agnew) और अण्डरसन् (Anderson) नामक दो अंग्रेज कर्मचारी भी गये। १८ अप्रीलको ये सेना सहित मुलतानके किलेके पास एड़गामें पहुंच गये। मूलराज वहां आये और उनके साथ साक्षात् करके दुर्ग अर्पण करनेके लिए राजी हो गये। दूसरे दिन सुबहके वक्त खाँसिंह और पूर्वकथित दो अंग्रेज-कर्मचारियोंने दो दल गुर्खा-सेनाके साथ दुर्गमें प्रवेश किया। जब ये दुर्गपरिखाके सेतुके ऊपरसे जा रहे थे, तब मूलराजके एक सैनिकने सहसा अग्रसर हो कर अगनिउ साहबको बरछा मार कर घोड़ेसे गिरा लिया और तरवारसे उन पर दो गहरी चोट कीं, किन्तु साहबको विनाश करनेके पहले ही वह परिखामें गिर गया। मूलराजने इस घटनामें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न कर अपने आवास आमखासकी ओर घोड़ा दौड़ा दिया। इसके बाद मूलराजके कुछ सैनिकोंने अण्डरसन पर धावा किया और उनको मुर्देकी तरह वहां छोड़ कर प्रस्थान किया। अगनिउने कुछ सुस्थ हो कर लाहोरमें

रेसिडेण्ट साहबको सब हाल लिख भेजा तथा मूलराजको उनको निर्दोषिता प्रमाण और दोषियोंको आबद्ध करनेके लिखा। मूलराजने जवाब दिया कि, "हम इस पत्रके अनुसार कार्य करनेमें सम्पूर्ण अक्षम हैं।"

मूलराजका प्रथम उद्देश्य कुछ भी हो, पर अब वे प्रकाश्यरूपसे विद्रोही हो गये। ता० १८ को मूलराजने अंग्रेजोंके यानवाहनादि सब छीन लिये। अंग्रेज-पक्षने भागनेका कोई उपाय न देख कर एडगामें ही आश्रय ग्रहण किया। उनको भरोसा था कि, ३।४ दिनमें ही लाहोरसे सेना आ कर उनकी रक्षा करेगी। किन्तु उनकी यह आशा मुकुलमें ही सूख गई। लाहोरके गोलन्दाजोंने युद्ध करना अस्वीकार किया। ता० २० को सायंकालके समय खाँसिंह, ८।१० सैनिक कुछ मुन्सी और अंग्रेजोंके कुछ नौकरों तथा कर्मचारियोंके सिवा अन्यान्य सभी लोगोंने अंग्रेजोंका पक्ष छोड़ दिया। उन लोगोंने जीवनकी कुछ आशा न देख कर मूलराजकी अधीनता स्वीकार करके सन्धिका प्रस्ताव किया। मूलराजने उनको चले जानेके लिये कहलवा भेजा, किन्तु उनकी सेना इतनी उत्तेजित थी कि, वह रक्तपातके सिवा किसी तरह भी सन्तुष्ट न थी। जब खाँसिंह आदि चले जा रहे थे, तब मुलतानके सैनिकगण घोर रवसे उन पर टूट पडे। खाँसिंहको कैद और अंग्रेज-कर्मचारियोंको मार डाला। मूलराजने सैनिकोंको पुरस्कार दिया।

रेसिडेण्ट साहबको दो दिन बाद विद्रोह-संवाद मालूम हुआ। उन्होंने पहले सोचा था कि, मूलराज इस विद्रोहमें शामिल नहीं हैं। इसलिये उन्होंने कुछ सैनिकोंको भेज दिया। ता० २३ को समस्त संवाद अवगत हो कर वे समझ गये कि, यह युद्ध सहजमें नहीं निबटेगा। लाहोर-दरबारकी सेनाने अंग्रेजोंके साथ विश्वासघातकता की है, यह संवाद पा कर रेसिडेण्ट कार्री साहब मुलतानमें अंग्रेजी सेना भेजनेके लिये राजी न हुए। किन्तु अङ्गरेजोंकी सहायताके बिना सिख-सर्दारगण मूलराजको किसी तरह भी वश न कर सकेंगे, इस धारणासे लाहोर-दरबारके अङ्गरेजी सेना भेजनेके लिये रेसिडेण्टको बार बार अनुरोध करने पर कार्री साहब अङ्गरेजी सेना भेजनेके लिये राजी हो गये। उन्होंने सिमलामें प्रधानसेनापति लार्ड गाफको इस आशयका एक पत्र भेजा कि—"ब्रिटिश-शासित भारतके सुनामकी रक्षा और राजनीतिक स्वार्थसाधनोद्देशसे लाहोर-दरबारकी सेनाके अभावमें भी जिससे अङ्गरेजी सेना मुलतानके दुर्ग और नगर पर अधिकार कर सके, ऐसी एक दल सेना शीघ्र ही भेज देना उचित है।" किन्तु लार्ड-गाफ्ने उस समय सेना न भेजी। मन्त्रिसभाधिष्ठित गवर्नरजनरल साहबकी भी यही राय थी। इसलिए युद्धयात्रामें विलम्ब हो गया।

इधर अग्‌निउ साहबने सुस्थ हो कर लाहोरका विद्रोह-संवाद और लेफ्टेनन्ट एडवर्ड्स् साहबको सहायतार्थ शीघ्र आनेके लिये लिख भेजा। एडवर्ड्स् साहब उस पत्रको पा कर अधीनस्थ सैन्य संग्रह करके मुलतानकी तरफ अग्रसर हुए। उन्होंने लिइआ नामक स्थानमें पहुँच कर शिविर स्थापित किया। इस स्थानमें एक पत्र पा कर उनके मनमें सिखोंकी विश्वस्तता पर सन्देह हुआ। इस समय उन्होंने सम्वाद पाया कि, मूलराज चन्द्रभागा नदी पार हो कर लिइआकी तरफ अग्रसर हो रहे हैं। एडवर्ड्स् साहबने उस समय सिन्धुनद पार हो कर गिरिङ्ग-दुर्गमें आश्रय लिया। इस स्थान पर सेनापति कर्टलैण्डने कुछ मुसलमान-सेनाके साथ आ कर उनका साथ दिया। क्रमशः अङ्गरेजोंकी सेना बढ़ने लगी।

बहवलपुरके नवाब शतद्रु नदी पार हो कर मुलतान आक्रमण करनेको उद्यत हुए। अङ्गरेजी सेनाने आ कर देरागाजीखाँ घेर लिया। मूलराजने जलालखाँ पर इस प्रदेशका शासन भार छोड दिया था। जलालके प्रधान शत्रु वराखाँने अङ्गरेजोंके साथ मिल कर जलाल पर आक्रमण किया। जलालखाँ पराजित हो कर भाग गये। देरागाजीखाँ अङ्गरेजोंके हस्तगत हो गया। इसके बाद केनेरी नामक स्थान पर युद्ध हुआ, उस युद्धमें भी अङ्गरेज पक्षने विजय पाई। किनेरीके युद्धके बाद बहुतसे सिख सर्दार अङ्गरेजोंका पक्ष ग्रहण करने लगे, मूलराजने अत्यन्त भीत हो कर दुर्गमें आश्रय लिया। एडवर्ड्स् पुनः पुनः विजय लाभ करनेके कारण अत्यन्त उत्साहके।

साथ मुलतान पर आक्रमण करनेको अग्रसर हुए। साम ग्रामके पास दोनों पक्षोंमें एक छोटा युद्ध हुआ। अङ्गरेजोंकी तरफ सेना बहुत ज्यादा थी। कुछ देर बाद मूलराजने युद्धस्थलसे प्रस्थान किया। उनके सैन्यसामन्तोंने भी उनके दृष्टान्तका अनुकरण किया। अङ्गरेज लोग उनका पीछा करते हुए मुलतान-दुर्गके पास तक पहुंचे। एडवर्ड्स् साहबने दुर्गको शीघ्र ही अवरोध करना चाहिये—इस आशयकी एक चिट्ठी रेसिडेण्टके पास भेजी। डलहौसी और मि० गाफ उस समय तक भी दुर्गको घेरनेके पक्षपाती न थे, किन्तु उनके पत्र पानेसे पहले ही रेसिडेण्ट साहब दुर्ग अवरोध करनेके लिये मुलतानको खबर दे चुके थे और तदनुसार प्रबन्ध भी कर चुके थे। इसलिए डलहौसीने रेसिडेण्टकी क्षमता और आज्ञाको अक्षुण्ण रखनेके लिये उनके प्रस्तावमें सम्मति दे दी। २४ जुलाईको दृढ़ उत्साहके साथ मुलतान दुर्ग अवरोध करनेके लिए सेनापति लुइसने युद्ध यात्रा की। बहावलपुरसे लेक साहबके अधीन ५७०० पयादे और १९०० अश्वारोही तथा राजा शेरसिंहके अधीन ९०९ पयादे और ३३८२ अश्वारोही सिख-सेना मुलतान अवरोधके लिए अग्रसर हुईं। कार्टलैण्ड, एडवर्ड्स्, लेक और शेरसिंहके अधीन बहुसंख्यक सेनाने मुलतान घेर लिया। मूलराज बहुत डर गये। उन्होंने बृटनेश्वरी और उनके मित्र महाराज दिलीपसिंहको आत्मसमर्पण करनेका विचार किया। किन्तु इसी समय एक नवीन घटनाने उनके विचारको सहसा पलट दिया। अङ्गरेज और दलीपसिंहके पक्षके सिखोंमें विद्रोहके लक्षण दिखाई दिये। हाजरादेशमें शेरसिंहके पिता छत्रसिंह विद्रोही हो गये। मूलराजके हृदयमें नूतन आशाका अङ्कुर उदित हुआ।

७ सेप्टेम्बरको दुर्ग पर आक्रमण किया गया। शेरसिंह अभी तक तलम्बा नामक स्थानमें ठहरे हुए थे। १४ सेप्टेम्बरको उन्होंने मुलतानमें अग्रसर हो कर उनका जयढक्का खालसाओंके नामसे बजनेके लिए आदेश दिया। यह संवाद सुन कर अंग्रेज सेनापतियोंने परामर्श करके टिब्बी नामक स्थानमें पीछे लौटनेका निश्चय किया, वहाँ पहुंच कर वे प्रधान-सेनापतिकी भेजी हुई सेनाकी बाट देखने लगे।

शेरसिंहने मूलराजका साथ देनेका प्रस्ताव करके उनके पास दूत भेजा, पर मूलराज शेरसिंहका पूरी तरह विश्वास न कर सके। उन्होंने शपथ खाई, पर तो भी मूलराजका सन्देह मूलसे दूर न हुआ। आखिर शेरसिंहने कहा कि उनकी सेनाको कुछ अग्रिम वेतन देनेसे वे हाजरादेशमें जा कर अपने पिताका साथ देंगे। मूलराजने यह मौका हाथसे न जाने दिया, शेरसिंहने अन्य प्रदेशमें जा कर नया सिखयुद्ध प्रज्वलित कर दिया।

अंग्रेजोंके अवरोध छोड़ कर चले जाने पर मूलराज निश्चिन्त नहीं हुए थे। वे समझते थे कि, अंग्रेज लोग पुनः द्विगुण उत्साह और अधिकतर बलके साथ दुर्ग पर आक्रमण करेंगे। इसलिए उन्होंने दुर्गकी मरम्मत कराई और सेना-संग्रह करनेकी कोशिश करने लगे। सिर्फ इतनेसे ही सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने काबुलके दोस्त-महम्मद और कन्दाहारके सर्दारोंसे सहायता देनेके लिए लिख भेजा।

इधर अंग्रेज लोग भी दुर्ग जय करनेके लिए तरह तरहकी तरकीबें सोच रहे थे। जिससे उनकी चेष्टा फलवती हो, इसके लिए वे काफी उपकरणोंका संग्रह भी कर रहे थे। क्रमशः बम्बई और बंगालसे कई दल सेना आ कर उपस्थित हुईं। अधिक समय नष्ट न कर अङ्गरेज सेनापतिने १७ दिसम्बरको पुनः दुर्ग पर आक्रमण करनेके लिए आदेश दिया। थोड़े ही आयाससे दुर्गके कई एक स्थान टूट जाने पर मूलराजने डर कर आत्मसमर्पणका प्रस्ताव किया। अङ्गरेज-सेनापतिने उनसे बिना शर्तके आत्मसमर्पण करनेके लिए कहा। किन्तु इससे राजी न हो कर मूलराज आत्मरक्षा करने लगे।

कुछ दिन बीत गये। किन्तु इससे क्या होता? बाहर असीम शत्रु खड़े थे; उनकी सेना बहुत थोड़ी थी। शत्रु दिन दिन विजय लाभ कर रहे हैं। वे उनको हटा नहीं सकते। क्रमशः उनका साहस क्षय होने लगा। उपायान्तर न देख कर १८४९ ई०के जनवरी महीनेमें मूलराजने आत्मसमर्पण किया। अङ्गरेजोंने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। लाहौरमें मूलराजका विचार हुआ; विचारमें वे दोषी प्रमाणित हुए और निर्वासित किये गये।

इधर छत्रसिंहका विद्रोहानल क्रमशः प्रज्वलित होने लगा। २४ अक्टोवरको पेशावरको समस्त सिखसेना विद्रोही हो गई। मेजर लारेन्स उनको दमन न कर सकनेके कारण प्राणभयसे कोहाट भाग गये। कोहाटके शासनकर्ता दोस्त महम्मदके भाई सुलतान महम्मद थे। उन्होंने पेशावर विभागके किसी स्थानके बदले मेजर लारेन्स, उनकी स्त्री और उनके सहकारी मि० वाउईको छत्रसिंहके हाथ बेच दिया। छत्रसिंह विद्रोही थे।

शेरसिंहने अङ्गरेजोंका पक्ष छोड़ दिया है इस संवादसे डलहौसी अत्यन्त भयभीत हो गये। उन्होंने सोचा कि सिक्खोंने एकत्र हो कर अंगरेजोंके विरुद्ध पुनः रणाङ्गनमें अवतीर्ण होनेका विचार किया है। यदि ऐसा ही हुआ, तो ब्रटिशगवर्मेण्ट पर बड़ी भारी विपद् आने वाली है। अङ्गरेजराज्यकी रक्षा करनी हो, तो अभीसे पूरी सावधानी रखनी चाहिये। ऐसा विचार कर वे उत्तरपश्चिम प्रदेशकी तरफ चल दिये और प्रधान सेनापति गाफ साहबको फिरोजपुरमें सैन्य समावेश करनेके लिए परामर्श दे गये। लार्ड गाफ अब उदासीन न रह सके, वे स्वयं युद्धमें व्याप्टत हुए और शीघ्र ही चन्द्रभागाकी तरफ उन्होंने एक दल सेना भेज दी। उक्त नदीके वाम तट पर प्रायः १२ मील दूर रामनगर नामक स्थानमें शेरसिंह ठहरे हुए थे। इस स्थानसे उनको हटानेके लिए चेष्टा की गई। युद्धमें शेरसिंहकी ही जय हुई। अङ्गरेज-पक्षके कर्नल हैवलक और क्रिउरटन निहत हुए। पीछे सर जोसेफ थैकवेल और लार्ड गाफ दोनोंने मिल कर शेरसिंहकी सेना पर आक्रमण किया, किन्तु उनकी विशेष कुछ क्षति नहीं कर सके।

१८४९ ई०को १२ जनवरीको लार्ड गाफ डिङ्गि नामक स्थान पर उपस्थित हुए, यहाँ आ कर उन्होंने देखा कि पास ही सिख-सेना ठहरी हुई है। शत्रुओंकी अवस्थाको अच्छी तरह जाननेके लिए उन्होंने रसूल नामक स्थानको जाना विचारा, इसी समय कुछ लोग खालसा ग्रामके सामने आ कर अंग्रेजों पर गोलियाँ बरसाने लगे। लार्ड गाफने उनको डरानेके लिए कुछ तोपें दाग कर आवाज करवाई, पर इससे कुछ फल न हुआ। सिखोंकी तरफसे असंख्य गोलियोंने आ कर उनका जवाब दिया। अब गाफ समझ गये कि विपक्षी लोग युद्ध करनेको तयार हैं। उन्होंने भी सैनिकोंको युद्धके लिए तयार होनेको आदेश दिया। इसके बाद ही वह प्रसिद्ध चिलियनवालाका युद्ध हुआ। १८४९ ई०को १३ जनवरीका दिन सिक्खोंका चिरस्मरणीय है। इस युद्धमें शेरसिंहको सेनाने जैसा असीम साहस, अमित तेज और प्रबल पराक्रम दिखलाया था, वह असाधारण है। वास्तवमें इस युद्धमें अङ्गरेजोंकी पराजय हुई थी। उस युद्धके बाद गाफकी सेना अत्यन्त निरुत्साहित हो गई। इस युद्धमें बुकक्, पेनिकुइक आदि कई एक सेनापति और प्रायः २४००० सेना मारी गई थी। सिखोंने अङ्गरेजोंसे ४ तोपें तथा ८ पताकाएं छीन ली थीं। युद्ध करते करते रात हो गई थी, रात्रिके शेषांशमें सिख लोग युद्धक्षेत्रको छोड़ कर चले गये थे, इसी लिए शायद अङ्गरेज ऐतिहासिकोंने इस युद्धका फल अमीमांसित बतलाया है। इसके बादसे ही शेरसिंहके अदृष्ट पर शनिकी दृष्टि पड़ी। २१ फरवरीको सिखसेना गुजरातमें उपस्थित हुई। लार्ड गाफने वहाँ जा कर उन पर आक्रमण किया। अङ्गरेजोंकी जय हुई। अङ्गरेजोंका अदृष्ट अति सुप्रसन्न था, इसीलिए वे इस युद्धमें जयलाभ करनेमें समर्थ हुए थे। बड़ेलाट डलहौसीने भी इस बातको माना है। उन्होंने लिखा है—'ईश्वरके अनुग्रहसे ही अङ्गरेजी सेना इस तरह जय प्राप्त करनेमें समर्थ हुई। २१ फरवरीको युद्ध भारतमें अङ्गरेजोंके युद्धके इतिहासमें चिरस्मरणीय है।" चिलियनवालके युद्धके उपरान्त डलहौसीने भयभीत हो कर इङ्गलैण्डसे सेना मंगाई थीं, किन्तु उस सेना आनेकेसे पहले ही गुजरातके युद्धमें लार्ड गाफने उनके प्रणष्ट गौरवका उद्धार कर दिया। शेरसिंह वितस्ताके उस पार भाग गये। उन्होंने पुनः युद्ध करनेका सङ्कल्प छोड़ दिया और पहले मेजर लारेन्सको जो कैद कर रक्खा था, उनके द्वारा वे अङ्गरेज-गवर्मेण्टकी अधीनता स्वीकार करनेका उपाय सोचने लगे।

इसके बाद, पञ्जाब-शासनके विषयमें क्या होना चाहिये, डलहौसीने पहले ही इसका निश्चय कर रक्खा था, सुतरां उसको प्रकट करनेमें ज़रा भी देर न लगी।

शीघ्र ही लाहोरको संवाद भेजा गया। महाराज रणजीत्सिंहके परिवारमें शोकध्वनि हो उठी। दलीपसिंहका सुख हमेशाके लिए डूब गया। डलहौसीने लाहोर दरबारको कहलवा भेजा कि, सिख-राजत्वका अन्त हो गया। दलीपसिंहकी उम्र उस समय सिर्फ ग्यारह वर्षकी थी। दरबारके सदस्योंने डलहौसीके प्रस्ताव पर कुछ आपत्ति नहीं की। दलीपसिंहको बिना अपराधके दण्ड हुआ, यह डलहौसीको जतलाने पर भी कोई लाभ होता था या नहीं सन्देह था। कुछ भी हो, एक सन्धिपत्र लिखा गया, जिस पर महाराज दलीपसिंहके हस्ताक्षर कराये गये (ई० सन् १८१९)। इस सन्धिपत्रमें निम्नलिखित ५ नियम लिखे थे—

(१) महाराज दलीपसिंहने पञ्जाबका स्वत्व हमेशाके लिये परित्याग किया।

(२) राजसम्पत्ति ब्रुटिशगवर्मेण्टके अधीन हुई।

(३) कोहिनूर इंग्लैण्डकी रानीके मस्तक पर सुशोभित हुआ।

(४) गवर्नर-जनरल जो स्थान मनोनीत करेंगे, वहीं दलीप रहेंगे।

(५) 'महाराज दलीपसिंह बहादुर' यह नाम उनका यावज्जीवन रहेगा, वे यथोचित मानके साथ व्यवहृत होंगे तथा ४ लाखसे ज्यादा और ५ लाखसे कम रुपये उन्हें भत्ताके मिला करेंगे।

२९ मार्चको लार्ड डलहौसीने निम्नलिखित आशयका एक घोषणापत्र प्रचारित किया—

"भारतगवर्मेण्टने पहले घोषणा की थी कि, गवर्मेण्टको अब अधिक राज्य-विजयकी इच्छा नहीं है और अब तक उस प्रतिश्रुत वाक्यकी रक्षा हुई थी। अब भी गवर्मेण्टको राज्य-अधिकारकी इच्छा नहीं है; किन्तु अपनी निरापदता और जिनका भार उन पर है, उनकी स्वार्थरक्षा करनेके लिए गवर्मेण्ट बाध्य है। इस उद्देश्यसे तथा बिना कारण युद्धविग्रहसे राज्यकी रक्षा करनेके लिए जिन लोगोंका उनके अधिपति शासन नहीं कर सकते, किसी प्रकारका दण्ड ही जिनको उत्पीड़नसे विरत वा भीत नहीं कर सकता और किसी प्रकारकी भी मित्रता जिनको शान्तिसे नहीं रख सकती, उनको सम्पूर्ण रूपसे अधीन करनेके लिए भारतके गवर्नर-जनरलको बाध्य होना पड़ा है। इसलिए गवर्नर-जनरल प्रचार करते हैं और इसके द्वारा घोषणा करते हैं कि, पञ्जाब-राजत्व हो गया, शेष महाराज दलीपसिंह बहादुरका अधीनस्थ समस्त प्रदेश अबसे भारत-साम्राज्यके अन्तर्गत हुआ।" पञ्जाब, सिख और सिखयुद्ध देखो।

चिलियनवाला-युद्धका संवाद इंग्लैण्ड पहुंचने पर कम्पनीके प्रायः सभी कर्मचारी सर चार्लस नेपियरको सेनापति बना कर भारत भेजनेके लिए डिरेक्टरोंसे पुनः पुनः अनुरोध करने लगे। डिरेक्टरोंने इच्छा न होते हुए भी उनको नियुक्त किया। किन्तु डलहौसी नेपियरको क्षमतासे बड़ी ईर्षा रखते थे। भारत आ जाने पर डलहौसी और नेपियर दोनोंमें मनोविकार होने लगा; एक वर्षके भीतर ही भीतर यह मनोमालिन्य अत्यन्त बद्धमूल हो गया। पञ्जाबमें इनका प्रकाश्य विवादका सूत्रपात हुआ। खाद्य पदार्थोंके खरीदनेमें अतिरिक्त भत्ता लगनेके कारण डलहौसीने सिपाहियोंका वेतन घटा दिया था। इससे पञ्जाबके सैनिकोंमें भावी विद्रोहकी सूचना हो रही थी। इस पर चार्लस नेपियरने गवर्नर-जनरल अथवा सुप्रिम कौन्सिलकी अनुमति बिना लिए गवर्मेण्टके नियम बंद कर दिये। डलहौसी उस समय समुद्रयात्रा कर रहे थे। इसके बाद विद्रोहकी आशङ्का देख नेपियरने ६६ संख्यक देशीय पदाति सैनिकोंको कर्मच्युत कर दिया। डलहौसीने पत्र द्वारा इस विषयमें असम्मति प्रकट की किन्तु प्रथमोक्त विषयको उन्होंने सहजमें नहीं छोड़ा, इस विषयमें मतामत प्रकट करके सेक्रेटरी द्वारा सेना-विभागके अडजूटान् जनरलको नियमानुसार पत्र भी भेज दिया। यह पत्र तीव्र तिरस्कारसे भरा हुआ था इस पत्रमें निम्नलिखित भाव अभिव्यक्त था,—'सेनापतिने जो पञ्जाबके कर्मचारियोंको आदेश दिया है, उससे मन्त्रि-सभाधिष्ठित गवर्नर-जनरल अत्यन्त दुःखित और असन्तुष्ट हुए हैं। भविष्यके लिए उनको सूचित किया जाता है कि, भारतके सैनिकोंके भत्ता वा वेतनके परिवर्तनके विषयमें कैसी भी अवस्था क्यों न हो—यदि वे कोई आदेश दें, तो गवर्नर-जनरल कभी भी उस पर सम्मति नहीं देंगे। इस विषयमें

आदेश देनेकी क्षमता एक मात्र सुप्रिम-गवर्मेण्टको ही प्राप्त है। वे इसमें किसी भी तरह क्षमता प्रकट नहीं कर सकते, इस पत्रके पानेके बाद सर चार्लस नेपियर इस्तीफ़ा दे कर १८५१ ई॰में इंग्लैण्ड चले गये।

पञ्जाबकी गड़बड़ी पूरी तरह शान्त हो भी न पाई थी कि, इतनेमें दूसरी ओर फिर रणदुन्दुभि बज उठी। ब्रह्मदेशके राजाके साथ जो सन्धि हुई थी, उसमें एक नियम था कि, ब्रटिश प्रजा ब्रह्मदेशके बंदरमें बेखटके वाणिज्य कर सकेंगे। डलहौसीके समय १८५१ ई॰में कुछ बणिकों और वाणिज्य-जहाजके अध्यक्षोंने कलकत्तेको एक आवेदनपत्र इस आशयका भेजा कि—रंगूनके शासनकर्ता अङ्गरेज बणिकों पर अत्यन्त अत्याचार कर रहे हैं, जिससे व्यवसायकी बड़ी भारी हानि हो रही है। क्षति-पूर्ति करानेके लिए नौ-सेनापति लैमबार्ट एक दल सेनासहित रंगून भेजे गये। गवर्नर जनरलने उनसे कह दिया कि, 'पहले आप रंगूनके शासन-कर्त्ताके पास जा कर समस्त विषयको संक्षेपसे कहें, यदि वे क्षति-पूर्ति न करें, तो आप वापिस चले आवें।' किन्तु मामला सहजमें तय हो जायगा, इसमें सन्देह था, इसलिए डलहौसीने लैमबार्टके साथ दोनों गवर्मेंटकी मित्रताकी रक्षाके लिए रंगूनके शासनकर्त्ताको कर्मच्युत करनेके लिए ब्रह्मदेशके राजाके नाम एक पत्र लिख दिया और सेनापतिको आज्ञा दी कि 'यदि रंगूनमें क्षतिपूर्त्ति न हो, तो इस पत्रको ब्रह्मके राजाके पास भेज देना।' नवम्बरके मासके अन्तमें वे रंगून पहुंचे, और २८ तारीखको उन्होंने कलकत्तेकी कौन्सिलको लिखा कि, 'रंगूनके शासनकर्त्ताके विरुद्ध जो अभियोग लगाया गया है, वास्तवमें वह अभियोग उसकी अपेक्षा बहुत गुरुतर है, इसलिए मैं उक्त शासनकर्त्तासे किसी विषयका उल्लेख न कर ब्रह्म-राजाके पास उस पत्रको भेजता हूं।' डलहौसीने सेनापतिके कार्यको पूरी तरहसे अनुमोदना की और कहा कि, स्थानीय शासनकर्त्ताके साथ वादानुवाद न करके लैम्बार्टने बुद्धिमत्ताका ही परिचय दिया है, किन्तु सहसा युद्ध न होने पावे, इस विषयमें उनको सावधान कर दिया गया। सम्भव है ब्रह्मके राजा पत्रका उत्तर न दें, अथवा अंग्रेजोंके प्रस्तावसे सहमत न हों, इसलिए गवर्नर-जनरलने यह निश्चय किया कि, जिससे इस अनिष्टको सहने वा सहसा युद्धमें व्यापृत न होना पड़े, उसके लिए मोलमेनकी जिन दो नदियोंसे ब्रह्मदेशमें वाणिज्यतरी जाती आती है, उन दो नदीको घेरना आवश्यक है। १८५२ ई॰को १ली जनवरीको आवासे उत्तर आया कि, रंगूनमें दूसरे शासन-कर्त्ता नियुक्त हुए हैं और उपयुक्त क्षतिपूर्तिके लिए उन पर आदेश है। नौ-सेनापतिने इस संवादसे अत्यन्त उत्साहित हो कर नवीन प्रतिनिधिसे समस्त विषयका उल्लेख करनेके लिए फिसाबोर्ण तथा अन्य २ कर्मचारियोंको भेजा। किन्तु उन्होंने जो सोचा था, कार्यमें उसका विपरीत हुआ। उन लोगोंने रंगून पहुंच कर वहांके शासनकर्त्तासे मुलाकात करनी चाही; उनको कहा गया कि, "शासनकर्त्ता सो रहे हैं, इस समय मुलाकात नहीं हो सकती।" अङ्गरेजोंने सम्भवतः इस प्रकारके उत्तरसे सन्तुष्ट न हो कर किसी प्रकारकी क्षमता प्रकट की होगी, और इसी लिए उन्हें अपमानित हो कर लोट आना पड़ा। इस अपमानका बदला लेनेके लिए ही लैमबार्टके आदेशानुसार फिसाबोर्नने आवा-राज्यका एक जहाज रोक लिया। इससे समरानल प्रज्वलित हो उठा। १० जनवरीको प्रकाश्य रूपसे शत्रुताचरणका प्रारम्भ हुआ। लैमबार्ट संवाद देनेके लिए कलकत्ते आ गये। डलहौसीने उस समय ब्रह्मराजको निम्नलिखित मर्मका एक पत्र लिखा:—

(१) ब्रह्मराज रंगूनके वर्तमान शासनकर्त्ताके कार्यका अनुमोदन नहीं करें और ब्रटिश-कर्मचारियों पर जो अत्याचार हुए हैं, उसके लिए दुःख प्रकट करें।

(२) दो कप्तानों पर अत्याचार और अङ्गरेज बणिकोंको अर्थ हानिके कारण आवाराज क्षतिपूर्ति स्वरूप गवर्मेण्टको १० लाख रुपये देवें।

(३) यान्दाबूकी सन्धिके अनुसार एक एजेण्ट रंगूनमें रहेंगे और ब्रह्मराज्यकी प्रजामात्र उनका यथोचित सम्मान करेगी।

(४) रंगूनके वर्त्तमान शासनकर्त्ताको स्थानान्तरित करना पड़ेगा। उपरोक्त नियमों पर सम्मति और १२ अप्रीलसे पहले उसके अनुसार कार्य न करनेसे युद्ध होगा।'

इस पत्रके आवा पहुंचने पर राजाने पत्रके अनुसार कार्य नहीं किया। दोनों पक्षमें युद्धकी तैयारियां होने लगीं। कलकत्तेसे सेनापति गडउइन २८ मार्चको रवाना हो कर २ अप्रेलको ईरावती नदीके किनारे नौसेनाके प्रधान अधिपति अष्टिनसे मिले। मद्राजसे और एक दल सेना अग्रसर हुई। गडउइनने शीघ्र ही मार्तावान पर आक्रमण करके उस पर कब्जा कर लिया। ११ अप्रेलको अंग्रेजी सेना रंगूनमें उतर कर अग्रसर होने लगी। उसने थोड़ी बहुत बाधाओंको अतिक्रम कर १७ मईको पागड़ा अधिकार कर लिया। पागड़ाके युद्धमें ब्रह्मवासियोंने काफी साहस दिखाया था। कुछ भी हो पुनः पुनः वर्जित हो कर भी ब्रह्मवासिगण भीत न हुए और २६ मईको मार्त्तावानके पुनरुद्धारके लिए कृतसङ्कल्प हो कर अमित तेजसे अंग्रेज सेना पर आक्रमण किया। यद्यपि इस युद्धमें भी वे जयलाभ न कर सके थे, पर तो भी उन लोगोंने यह प्रमाणित कर दिया था कि, वे सहजमें अंग्रेजोंके वशीभूत नहीं होंगे। इन लोगोंको डरानेके लिए राजधानी आवा अथवा अमरपुर पर आक्रमण करनेकी कल्पना हुई। कप्तान टारलेटन प्रोम तक जा कर अधिवासियोंका काफी नुकसान कर आये। इससे भी मग लोग नहीं डरे यह देख कर डलहौसी स्वयं २७ जुलाईको रंगून पहुंचे। दस दिन तक वहां ठहर कर उन्होंने अधिकतर सेना संग्रह करके विपुल आयोजनसे युद्धार्थ प्रस्तुत होनेके लिए परामर्श दिया। ९ अक्टोबरको अंग्रेज-चमू पुनः प्रोमकी तरफ उपनीत हुआ। ब्रह्मवासियोंने इस स्थानमें किसी तरहकी बाधा नहीं पहुंचाई। अंग्रेजी सेना क्रमशः जयलाभ करने लगी। उन लोगोंने पेगू अधिकार कर लिया। गड़उइन थोड़ीसी सेनाके साथ मेजर हिलको वहां छोड़ कर खुद रंगून चले आये। ब्रह्मवासियोंने कुछ दिन बाद पेगू अधिकार कर पागड़ा चढ़ाई कर ली। हिलने उनके आक्रमणमें बाधा देनेके लिए गडउइनसे सेना मांगी। सेनापति सहायताके लिए निकले। मार्गमें ब्रह्म सैन्यने कुछ दिन तक उनको रोक रक्खा। इतनेमें ब्रह्मवासी पेगूसे भाग गये। पेगू फिर अंग्रेजोंके हाथ पड़ा। २० दिसम्बरको डलहौसीने पेगू अधिकारका संवाद पाकर निम्नलिखित घोषणापत्र प्रचारित किया —

“ब्रह्मराजके कर्मचारियोंके द्वारा वृटिश प्रजाका जैसा अपमान और अनिष्ट हुआ है, आवा-दरबार उसकी क्षतिपूर्ति देनेमें अस्वीकृत होनेके कारण गवर्नर जनरलने अस्त्रबलसे उसको वसूल करना विचारा है। इसके लिए उपकूलस्थ दुर्ग और नगरों पर आक्रमण हुआ था; बहुत स्थानोंसे ब्रह्म-सेना भाग गई है और पेगू प्रदेश अंग्रेजोंके अधिकारमें पड़ा है। भारत-गवर्मेण्टके न्याय और उपयुक्त दावेको आवा-राजने अग्राह्य किया है, क्षतिपूर्तिके लिए उनको काफी मौका दिया गया था, पर उन्होंने तदनुसार कार्य नहीं किया। तथा उनके राज्यविनाशको निवारण करनेके लिए वे यथासमय वशीभूत नहीं हुए। अतएव गतविषयकी क्षतिपूर्ति और भविष्यकी शान्तिके लिए मन्त्रि-सभाधिष्ठित गवर्नर-जनरलने यह निश्चय किया है कि, आजसे पेगू प्रदेश-वृटिश गवर्मेण्टके अधिकारमें आया। इस प्रदेशमें ब्रह्म-सैन्य पहुंचने पर वह शीघ्र ही दूरीभूत होगी; विभिन्न विभागोंको शासन करनेके लिए शीघ्र ही अंग्रेज-कर्मचारी नियुक्त होंगे। मन्त्रिसभाविष्ठित गर्वनर-जनरल पेगूके अधिवासियोंको वृटिश-गवर्मेंटकी अधीनता स्वीकार करनेके लिए आदेश देते हैं। क्षतिपूर्ति होनेके बाद गवर्नर-जनरल ब्रह्मदेशमें और भी विजयकी इच्छा नहीं करते तथा दोनों राज्यकी शत्रुताका नाश चाहते हैं। किन्तु यदि ब्रह्मके राजा वृटिश-गवर्मेण्टके साथ अपनी पूर्व मित्रतासे संबंध न हों अथवा यदि अंग्रेजों द्वारा अधिकृत प्रदेशमें अशान्ति फैलावें, तो गवर्नर-जनरल अपनी क्षमताका पुनः प्रयोग करेंगे। उनका राज्य सम्पूर्ण रूपसे विध्वस्त तथा राजा और राजवंश निर्वासित होगा।”

ईरावती नदीका मुंह अंग्रेज सैनिकों द्वारा अवरुद्ध होनेसे खाद्य द्रव्यके अभावके कारण ब्रह्मराजधानीमें अकाल पड़ गया। वृद्ध राजा अत्यन्त अप्रिय हो उठे। उनके भाईने उनके पद पर बैठ कर अंग्रेजोंसे सन्धि करनेका प्रस्ताव कर भेजा। १८५३ ई०को ४ अप्रेलको वृटिश और ब्रह्म-कमिश्नरगण सन्धिके नियम अवधारित करनेके लिए प्रोम नगरमें एकत्र हुए। डलहौसीकी घोषणाके अनुसार हो राजप्रतिनिधियोंने सन्धिपत्र पर

हस्ताक्षर करना मंजूर किया, सिर्फ पेगूकी प्रान्तसीमा मिद नामका स्थान निर्दिष्ट न करके प्रोमके पासका कुछ नीचेके कोई स्थान निर्धारित करना चाहा। डलहौसीके पास आवेदन भेजा गया, वे सम्मत हो गये। आवाराज-प्रतिनिधियोंने कहा कि, जिस पर प्रदेश अर्पण करनेकी बात लिखी है, ऐसे सन्धिपत्रमें राजा हस्ताक्षर नहीं कर सकते। इस पर उनको चले जानेके लिए कहा गया; तथा पुनः प्रचण्डतर युद्ध होगा ऐसा अनुमान होने लगा। किन्तु ब्रह्मराजने सब कुछ स्वीकार करके डलहौसीके पास एक पत्रमें भेज दिया। डलहौसीने इस पत्रको ही सन्धिपत्रके रूपमें ग्रहण कर सन्तुष्ट हुए। १८५३ ई०की ३० जूनको साधारण विज्ञापन द्वारा सन्धिपत्र प्रचारित हुआ।

डलहौसी सार्वभौमक्षमताके अत्यन्त पक्षपाती थे। उन्होंने बृटिश-गवर्मेण्टको भारतका सर्वेसर्वा तथा भारतके छोटे छोटे राजोंको क्रमशः बृटिश-साम्राज्यमें शामिल करनेका निश्चय कर लिया था। इस उद्देश्यको कार्यमें परिणत करनेके लिए उन्होंने १८४९ ई०में सतारा राज्यको बृटिशशासनमें शामिल कर लिया। सताराका राजा अपुत्रक थे; किन्तु मृत्युके पहले उन्होंने शास्त्रानुसार एक पोष्यपुत्र ग्रहण किया था। नियमानुसार वह पोष्यपुत्र ही राज्यका उत्तराधिकारी था, किन्तु डलहौसीने कहा – "सतारा बृटिश-साम्राज्यका अधीन राज्य है, सताराके राजा बृटिश-गवर्मेण्टके बिना अनुमोदन किये पोष्यपुत्र ग्रहण नहीं कर सकते, करनेसे वह अग्राह्य हैं। बृटिश गवर्मेण्टकी अनुमति बिना ही पोष्यपुत्र ग्रहण किया गया है, इसलिए यह बालक राज्यका अधिकारी नहीं हो सकता। अतएव सताराके देशीय राजत्वका अन्त हुआ।

१८५२ ई०में करौलीके राजाकी मृत्यु हुई। इस राज्यको विलुप्त करनेके लिये डलहौसीकी इच्छा हुई; परन्तु डिरेक्टरोंने उनके इस प्रस्तावको मञ्जूर न किया। करौलीके राजाकी भी निःसन्तान अवस्थामें मृत्यु हुई थी और उन्होंने बिना डलहौसीकी आज्ञा लिये ही पोष्यपुत्र ग्रहण किया था। सताराकी तरह इस राज्यको भी डलहौसी ग्रास करना चाहा, पर यह मित्र राज्य था, नकि अधीन राज्य, इसलिये डिरेक्टरोंने करौली-राज्यका अस्तित्व लोप नहीं किया।

कुछ भी हो, डलहौसी देशीयराज्योंका ग्रास करनेसे निवृत्त न हुए, वे अवसर ढूढ़ने लगे। अबकी बार झाँसी राज्यमें सुभीता मिला। १८३५ ई० में झाँसीके राजा बाबा गङ्गाधरराव देवलोक सिधारे। इन्होंने मृत्युसे १ दिन पहले एक दत्तकपुत्र ग्रहण किया था। किन्तु डलहौसीने झाँसी-राज्य अङ्गरेज-साम्राज्य-भुक्त हुआ तथा राजनैतिक नियमके अनुसार उक्त साम्राज्य-भुक्त ही रहेगा, ऐसा निश्चय कर १८५४ ई०में निम्नलिखित मन्तव्य डिरेक्टरोंके पास भेजा—

'बृटिशगवर्मेण्टके करद और अधीन राज्य झाँसीके राजाने मृत्युके एक दिन पहले एक पोष्यपुत्र ग्रहण किया था। इस राज्यमें पहले जो एक घटना हुई थी, उसके अनुसार हमने निश्चय किया है कि, यह पोष्यपुत्र ग्रहण सङ्गत नहीं है—इसके द्वारा दत्तक पुत्रको राज्य शासनका अधिकार नहीं हो सकता तथा इस राज्यके राजाकी वा पूर्ववर्ती राजाओंकी सन्तानादि न होनेसे यह राज्य बृटिश-साम्राज्यमें शामिल किया जाता है। विधवा रानीने युक्ति दिखा कर डलहौसीके आदेशके विरुद्ध आवेदन किया। किन्तु उससे कुछ भी नतीजा न निकला, सताराकी भाँति झाँसीका नाम भी देशीय राज्यश्रेणीसे विलुप्त हो गया।

डलहौसीकी संयोजन नीतिको जब कर्तृपक्षियोंने द्वितीय बार अनुमोदन किया, तब उन्हें बड़ी खुशी हुई। अबकी बार उन्होंने महाराष्ट्र-प्रदेशका वृहत्तर राज्य विलुप्त कर दिया। नागपुरके राजा रघुजी भौंसलेकी १८५३ ई०के ११ दिसम्बरको मृत्यु हुई। उनका कोई पुत्र वा निकटसम्बन्धी नहीं था और न उन्होंने कोई दत्तकपुत्र ही ग्रहण किया था। इस राज्यको ग्रहण करते समय डलहौसीने निम्नलिखित मन्तव्य प्रकट किया था,—

'इस राज्यके (नागपुरके) राजा उत्तराधिकारी न रख कर मर गये, इसलिए यह राज्य पुनः बृटिशगवर्मेण्टके हस्तगत हुआ है, जो अधिकार हस्तगत हैं उसको हस्तान्तरित करना उचित नहीं, क्योंकि द्वितीय बार इस स्वत्वको छोड़ना न्याय और विचारानु-

सार ठीक नहीं तथा राजनीतिके अनुसार इस सत्वको छोड़ देना सर्वतोभावसे अविधेय है।

लार्ड डलहौसीने मानो देशीय राजाओंके प्रभुत्वको ग्रास करनेके लिए ही इस देशमें पदार्पण किया था वे सिर्फ इन राज्योंको ही बृटिशराज्यमें शामिल करके शान्त न हुए। उन्होंने हैदराबादके निजामको कुछ विभाग छोड़नेके लिए वाध्य किया तथा सुदूर दाक्षिणात्यके कर्णाट और तञ्जोर राज्यको बृटिश साम्राज्यमें शामिल कर लिया। उत्तराञ्चलमें पेशवा वाजीराव सिंहासनच्युत हो कर वार्षिक ८०,०००० रुपयेकी वृत्ति पा रहे थे। १८५३ ई०में उनकी मृत्यु होनेके कारण उनके पुत्र नानासाहबने उक्त वृत्तिके लिए प्रार्थना की, किन्तु डलहौसीने वृत्ति भी बंद कर दी।

इतने पर भी डलहौसीकी राज्य-पिपासा नहीं मिटी वे अन्तमें अयोध्या-राज्य ग्रास करनेको उत्सुक हुए। अबकी बार उन्होंने एक नयी चाल चली। १७६५ ई०में सुजाउद्दौलाने क्लाइवसे अयोध्याका पुनरधिकार पाया था। तभीसे उनके वंशधर उक्त राज्यका शासन करते आ रहे हैं। अंग्रेजोंके साथ मित्रताके कारण उनको किसी तरहके युद्धादिमें व्याप्त नहीं होना पड़ता था। अयोध्याके शासनकर्त्तागण क्रमशः अत्यन्त अकर्मण्य और प्रजापीड़क हो गये थे। भिन्न भिन्न गवर्नरजनरलोंने उनसे राज्यमें सुशृङ्खला स्थापित करनेके लिये पुनः पुनः अनुरोध किया था। अन्तमें लार्ड हार्डिञ्ज स्वयं अयोध्या जा कर वहांके शासनकर्त्ताको दो वर्षके भीतर अपने राज्यमें सुप्रवन्ध करनेके लिए विशेष रूपसे कह आये थे। उस समय वाजिद अली अयोध्याके शासनकर्त्ता थे। वे हार्डिञ्जके डरानेसे विचलित न हुए और न उन्होंने राज्यमें कोई सुप्रवन्ध ही किया। लार्ड डलहौसी गवर्नर जनरल हो कर आये। उन्होंने निर्दिष्ट व्यतीत समय होते ही तत्कालीन रेसिडेण्ट मि० स्लिमानको राज्य परिभ्रमणपूर्वक समस्त विषय भली भाँति जान कर जतलानेके लिए लिख भेजा। १८५२ ई०को स्लिमानने डलहौसीको लिखा कि, राज्यमें अत्याचारके कारण नवाब वाजिद अलीके विरुद्ध जैसा अभियोग उपस्थित हुआ है, उसका एक अक्षर भी अतिरञ्जित नहीं है—अभियोगकी मात्रा उससे भी ज्यादा है। प्रजासाधारण सभी साक्षात् रूपसे अंग्रेज गवर्मेण्ट द्वारा शासित होनेकी इच्छा करते हैं। इस विषयमें राजवंशीयोंकी इच्छा ही सबसे अधिक पायी जाती है।

डलहौसीकी यद्यपि उसी समय इस राज्यका अस्तित्व लोप करनेकी इच्छा थी, तथापि ब्रह्मदेशके साथ युद्ध और पारस्यराज्यके साथ शत्रुताकी आशङ्कासे वे अपने उद्देश्यके अनुसार कार्य न कर सके। इसी समय डलहौसीका भारत-शासनकाल निबटनेको हुआ। उन्होंने डिरेक्टरोंको लिख भेजा कि,—"यदि आप लोगोंकी इच्छा हो तो मैं और कुछ दिन भारतमें रह कर अयोध्याके विषयमें आप लोग जैसा सिद्धान्त निर्णीत करें उसको कार्यमें परिणत कर जाऊं।" डिरेक्टरोंने आनन्दके साथ इस प्रस्तावको मंजूर कर लिया और अयोध्या ग्रहणके पक्षपाती हो कर कार्यका पूर्ण भार डलहौसी पर सौंप दिया। पहले अयोध्याके साथ जो सन्धि हुई थी, उसका लोप करके अयोध्या बृटिश साम्राज्यमें शामिल कर ली गई। १८०१ और १८३७ ई०में अयोध्याके साथ अंग्रेजोंकी दो सन्धि हुई थीं। पूर्वसन्धिके अनुसार नवाब कर्मचारियोंके परामर्शानुसार राज्यकी श्रीवृद्धि करेंगे, इस शर्त्त पर अयोध्याका अर्द्धांश बृटिश-गवर्मेण्टको प्राप्त हुआ। दूसरी सन्धिका नियम यह था कि यदि सुनियमसे राज्य-शासन न हो, तो अंग्रेज-कर्मचारी उत्पीड़ित प्रदेशका शासन भार ग्रहण कर सुप्रवन्ध करेंगे तथा व्ययातिरिक्त अर्थ अयोध्याके राजकोषमें पहुंचेगा। सैन्य रक्षाके लिए वार्षिक १६,००,०००) रुपये अंग्रेज-गवर्मेण्टको देने पड़ेंगे, यह भी उक्त सन्धिमें लिखा था। किन्तु डिरेक्टरोंने इस अंशका अनुमोदन नहीं किया; क्योंकि सैन्य रक्षाके लिए नवाबने उनको राज्यका अर्द्धांश पहले ही दे दिया था। इस अंशके सिवा उक्त सन्धिके अन्य किसी भी अंशको डिरेक्टरोंने अग्राह्य नहीं किया था।

इस प्रकारका सन्धिपत्रके होते हुए भी बृटिशगवर्मेण्टने अयोध्याराज्य पर कब्जा कर लिया। डलहौसीने रेसिडेण्ट आउट्रामको निम्नलिखित आशयका एक पत्र लिखा, वादानुवादके समय सम्भव है, राजा अयोध्याके नवाब १८३७ ई०की सन्धिकी बात छेड़ेंगे। रेसिडे-

रेण्टको मालूम है कि, उक्त सन्धिपत्रका डिरेक्टरोंने अनुमोदन नहीं किया था। रेसिडेण्ट साहबको यह भी मालूम है कि, १८३७ ई०की सन्धिकी सैन्य-सम्बन्धि धारा कार्यमें परिणत न होगी यह राजाको सूचित किया गया था। परन्तु सन्धिपत्र सम्पूर्ण रूपसे अग्राह्य हुआ है यह बात उनसे नहीं कही गई। इस विषयको छिपा रखनेका फल अब अतिशय कष्टजनक और व्याकुलताव्यञ्जक मालूम पड़ेगा। १८४५ ई०में गवर्मेण्ट द्वारा पुस्तकमें यह विषय लिखा गया था कि अयोध्याके सुशासनके लिए १८३७ ई०की सन्धिके अनुसार वृटिशगवर्मेण्ट कार्य कर सकती है, यह बात उत्थापित होने पर राजाको मालूम हो जायगा कि, सन्धिपत्रको डिरेक्टरोंने अग्राह्य किया है। राजाको स्मरण करा देना पड़ेगा कि, १८३७ ई०की सन्धिके कोई कोई नियम रद्द कर दिये गये हैं, यह लखनऊ-दरबारको सूचित किया गया था। यह समझ लेना होगा कि, तत्कालीन कार्य-निर्वाह करनेके लिए उक्त सन्धिके साथ जिन जिन नियमोंका कोई सम्बन्ध न था, उनको किसीने व्यक्त नहीं किया। अमनोयोगके कारण कार्यमें ऐसी अवहेला हुई है इसके लिए मन्त्रिसभाधिष्ठित गवर्नर जनरल दुःख प्रकट करते हैं, रेसिडेण्ट साहब इसके प्रकट करनेमें स्वाधीन हैं।

डलहौसी १८३७ ई०की सन्धिको तोड़नेके लिए कूट राजनीति और क्षुद्रजनोचित उपाय अवलम्बन करनेमें जरा भी कुण्ठित न हुए। १८०१ ई०की सन्धी भी इसी तरहके किसी अन्याय उपायसे तोड़ दी गई। अयोध्या वृटिश-साम्राज्यभुक्त करनेका विचार स्थिर हो गया। वाजिद अलीको सम्मत करनेके लिए डलहौसी तरह तरहकी तरकीबें ढूढ़ने लगे। नवाबने किसी तरह भी उनके प्रस्तावको मंजूर न किया। लार्ड डलहौसीने साधारण घोषणाके द्वारा अयोध्या-राज्य विलुप्त किया। उन्होंने प्रकट किया कि, अयोध्याके प्रजाओंके प्रति कर्तव्य पालनके लिए तथा परमेश्वरके आशीर्वाद पर निर्भर कर हमने यह कार्य सम्पादन किया। इस जगह यह कह देना जरूरी है कि, अयोध्याको वृटिशसाम्राज्यमें शामिल करनेके लिए वहांकी किसी भी प्रजाने डलहौसीसे प्रार्थना नहीं की थी। पश्चात्तरमें बहुतसे लोग अंग्रेजोंको अन्याय आक्रमणकारी और राज्यलिप्सु रूपसे देखने लगे थे। इस तरह डलहौसीने अयोध्याके नवाबोंकी राजभक्ति पर जरा भी ध्यान न दे कर वरन् मिथ्या उपायसे अपनी मनस्कामना सिद्ध की थी।

कुछ भी हो लार्ड डलहौसीके सभी कार्य दोषावह नहीं थे, इनके द्वारा कुछ अच्छे काम भी हुए थे। इनके समयमें भारतके अनेक स्थानोंमें लौहवर्त्म प्रस्तुत होते थे। तथा जगह जगह वाष्पी यानोंका भी चलाना प्रारम्भ हो गया था। कलकत्तेसे पेशावर तक पक्की सड़क, जगह जगह पुल तथा ४००० मील तक वैद्युतिक तार बैठाये गये थे। इस समय गङ्गासे नहरें निकाली गई थीं, पञ्जाबकी नहरकी मरम्मत हुई थी और नाना स्थानोंमें नई नहरें खुदी थीं। इस कार्यके लिए इन्होंने पब्लिकवर्क्स विभागका नया बन्दोबस्त किया था। साधारणके उपकारार्थ इन्होंने और भी एक कार्य किया था। इस कार्यके लिये ये विशेष प्रशंसाभाजन हैं। इन्होंने, जिससे थोड़े खर्चसे पत्र द्वारा लोग परस्परका संवाद जान सकें, इसका नया बन्दोबस्त किया था। सिविल सर्विस विभाग और कारागारका संस्कार भी इन्हींके समयमें हुआ था। शिक्षाविभागकी उन्नति डलहौसीके समयका दूसरा एक सुफल है। व्यवस्थापक विभागका भी इन्होंने बहुत कुछ सुधार किया था। हिन्दू विधवाका पुनर्विवाह और धर्मपरित्यागके कारण कोई सम्पत्तिके अधिकारसे वञ्चित न होगा, इन दो विषयोंमें इन्होंने नई आईन बनाई थी।

इस तरह ८ वर्ष तक भारतवर्षका शासन कर लार्ड डलहौसी ४४ वर्षकी उम्रमें, १८५६ ई०की ६ठी मार्चको भारतसे चले गये। राजकार्यमें गुरुतर परिश्रमके कारण इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। ये स्वदेशमें जा कर ज्यादा दिन सुखशान्ति नहीं भोग पाये थे। इनकी अस्वस्थता दिनों दिन बढ़ने लगी। १८७० ई०के १८ दिसम्बरको इनकी जीवनलीला शेष हो गई।

लार्ड डलहौसी प्रखर बुद्धिसम्पन्न थे और उनकी दृष्टि सब तरफ रहती थी। इन्होंने कठोर रूपसे भारत शासन किया था। मालूम होता है कि, मानो देशीय राज्य विलुप्त करनेके लिए पहलेहीसे कृतसङ्कल्प हो कर

THE
Modern Buddhism.
and its
FOLLOWERS IN ORISSA
BY
Nagendra Nath Vasu. M.R.A.S.
with an introduction by
Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri M. A., C. I. E.

It has been conclusively proved in this book that Buddhism is neither dead nor driven out of India, but its pulse still beats with all the energy of life in Orissa. "Sankaracharyya drove away Buddhism from the soil of India" is proved to be absolutely false. The discoveries of 50000 crypto-Buddhists living in the jungle tracts of Orissa first announced in this book has taken the world of European scholars by surprise.

The book contains more than 250 pages. It is nicely printed and beautifully bound. **Price**—Rs. 3/-, for Students Rs. 2/-.

Dr. L. D. Burnett of the British Museum writes :—

"A more fascinating and erudite work I have not read for many years and I shall find it most valuable both in the study and in the lecture-room."

Dr. H. Kern, the great Buddhist scholar writes :—

"I need hardly to tell you that the subject matter is one that interests me highly, so that it will be a pleasure for me to read the book, which contains so much that is little known or not at all in Europe."

Sir. George A. Grierson, K. C. I. E. Author of Linguistic Survey of India writes :—

"I have found your chapter on the Revival of Buddhism most interesting. I think it a most important contribution towards the religious history of India. It should certainly be carefully studied by all who interest themselves in that subject."

A. Smith I. C. S. (retired) writes from 116 Banbury Road, Oxford—

"Your book is also of high value for the history of Buddhism and Indian religion generally. The account of later and modern Buddhism is novel and your constant citation of little known Sanskrit works gives t special authority."

ग्राहकोंसे निवेदन।

बहुतसे महाशय हमारे साथ पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर नहीं लिखते। ऐसे महाशयोंसे प्रार्थना है कि पत्र लिखते समय अपना ग्राहक श्रेणीका नम्बर अवश्य २ लिख दिया करें अन्यथा पत्रोत्तरकी आशा न करें।

२। हम आपके साहाय्यसे ही 'हिंदी विश्वकोष'के प्रकाशनका भार उठाने समर्थ हुये हैं। अतः आपसे प्रार्थना है कि कमसे कम दो ग्राहक बनानेकी कृपा करें।

निवेदक—
प्रबंधकर्त्ता—हिंदी-विश्वकोष कार्यालय,
९ विश्वकोष लेन, कांटापुकर, बागबाजार, कलकत्ता

आवश्यकीय सूचना

हिन्दी-विश्वकोषकी आज तक प्रतिमास ४ संख्या प्रकाशित होती थीं, परन्तु अब छ संख्या प्रतिमास प्रकाशित होंगी, तदनुसार ग्राहकोंकी सेवामें भी छ संख्या ही प्रतिमास भेजी जाया करेंगी। आशा है, कि छ संख्याकी वी॰ पी॰ छुड़ा कर कृतार्थ करेंगी।

निवेदक—
प्रबन्धकर्त्ता

ARCHÆOLOGICAL REPORT OF MAYURABHANJA.

BY

Nagendranath Vasu, Editor of "Visvakosha."

This work contains along with the results of the archæological and historical reserches conducted at the cost of the Chief of Mayurabhanja, a descriptive account of the rise and development of the various Hindu, Buddhist and Jaina sects. The discoveries of numerous cripto-Buddhists in Orissa, first announced in this book, has taken the world of European Scholars by surprise. Dr. Kern , Dr. Fleet, Dr. Oldenburg, Sir Grierson, Dr. Sylvain Levi, M. Emile Senart, Mr. Vincent Smith, Dr. Thomas of India Office and other European scholars have enthusiastically received the book and lavished high-flown praises upon it. Beautifully printed and gorgeously bound with more than 100 large plates of inscriptions, grants, ancient temples, ruins and figures of Hindu, Buddhist and Jaina Gods and Goddesses with their identification from the authoritative scriptures of various sects. Price Rs. 15/-, for students Rs. 10/-.

Dr. L. D. Burnett writes in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland, 1912. pp. 802-4.

"The body of the book comprises a series of report on the antiquities and history of a number of sites visited in the course of the survey, with an appendix containing text and facsimiles * * * Almost every form of Hindu religion has left its mark in Morbhanj * * * Undoubtedly the most interesting part of this interesting survey is the Chapter on Buddhism. * * * Pandit Nagendra Nath Vasu brings the history of Buddhism in Orissa down to the present day. He finds distinct traces of Mahayana cults among the Bathuri or Bauri tribe on whose ethnology he gives some valuable data. * * * In concluding this brief notice of this *veritable Ratnakar of learning*, we may add that it is illustrated by numerous plates."

Dr. J. F. Fleet, C. I. E. (the great antiquaran) writes from 8, Leopold Road, Ealing W. London.—

"I have read the book with much interest, and consider it a useful addition to our researches into the ancient and mediæval history of India"

20
2-29

सचित्र] हिन्दी [समानचित्र

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक
श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,
सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस,
तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित ।

*

नवम भाग

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. IX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS
BY
NAGENDRANATH VASU, Prâchyavidyâmahârnava,
Siddhânta-vâridhi, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintâmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Bangiya Sâhitya Parishad
and Kâyastha Patrikâ ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-
bhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by H. C. Mitra, at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta

1924.

बारह खण्डका मूल्य ६) रुपया, एक खण्डका मूल्य ॥) आना और डाक महसूल अलग ।

Expert-Opinion

Sir Gooroo Dass Banerjee,
Kt., M. A., D. L., Ph. D.,

The late Justice of the Calcutta High Court and Vice-Chancellor of the Calcutta University writes—

"I am glad to learn that you are publishing a Hindi edition of your great work, the Bengali Encyclopædia "Visvakosha." I had to consult it on several occasions, and I found in it much valuable and rare information. A Hindi edition of this monumental work will make all that useful information available for all India, and will, I am sure, meet with the same enthusiastic encouragement and support that the Bengali Visvakosha has received. (30. 11. 15.)

Babu Saradacharan Mitra, M A., B L. &c.,
The late Justice of the Calcutta High Court writes :—

"The "Viswakosha" or Encyclopædia in Bengali by Babu Nagendra Nath Vasu Práchyavidyamahárnava is an wonderful production. It contains an immense mass of correct information and is very valuable. The learned author is now issuing a Hindi Edition and the first volume is out. The Hindi Edition is enlarged and contains informations upto date. There should be no library without this."

The Hon'ble Sir Ashutosh Mukerjee,
Sarasvati C. S. I. &c. &c.,

The Justice of the Calcutta High Court, the late Vice-Chancellor of the Calcutta University, writes :—

"I have had occasion many a time to consult the Bengal Encyclopædia Visvakosha prepared by Babu Nagendranath Vasu. I have always entertained the highest opinion about its unique value, due chiefly to its accuracy and completeness. It is a truly monumental work, and I am delighted to learn that a Hindi version of it has been undertaken."

(9. 11. 15)

The Hon'ble Justice A. Chaudhuri,
M. A. LL. B.

of the Calcutta High Court, writes :—

"Your Encyclopædia Indica I constantly refer to in my work. I have always found it thoroughly accurate and very helpful. It is a wonder to me that the compilation, although made by you alone, is so complete. I am writing these few lines in admiration of the great work you have done. I wish the **Hindi** edition every success." (10. 9. 15.)

THE SOCIAL HISTORY OF
KAMARUPA.
Vol. I.

BY

Nagendra Nath Vasu
Prachyavidyamaharnava etc. etc.

A very interesting and readable account of a great social movement which shed a beam of light across the otherwise lurid clouds that envelop the history of Assam.

The book is divided into three chapters of which the first one is devoted to the prehistoric period. The first chapter consists of seven sections. The first section is the general remark upon Kamarupa's claims to historical recognition. The second section deals with the activities of the Phœnicians in Eastern India, their references in the Vedas, the difference between them and the Aryans, the geography of their times, their religion, arts, sciences and commerce and their identity with modern Koch.

The third section deals with the origin of the Mismi, Abors, Daflas and Miris. The fourth section deals with the origin of the Kiratas, Garos and Kacharis. The fourth section describes Usha and Anirudha, Bana and Saumar dynasty and Bànalinga. The sixth section deals with the Kimmerian influence in Kamarupa and the seventh section deals with the Assyrian (Mech) influence with their full history. The second chapter deals with the historical period and third with the rise of the Kayasthas in Kamarupa.

The book is worth reading and without it no research in ancient Indian history could be comvlete. The book is neatly bound, adequately indexed, clearly written with the support of the authority whose chapter and verse are quoted in their proper place, and on the whole carefully printed and nicely got up. The price Rs. 5|- only. To be had at 9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

इन्होंने भारतकी मृत्तिका पर पदार्पण किया था। अयोध्याको साक्षात्भावसे अधिकारभुक्त करनेके लिए इनका उन्नत हृदय घृणित हीनता अवलम्बन करनेमें तनिक भी विचलित नहीं हुआ था। इन्होंने बहुतसे सत्कार्योंका भी अनुष्ठान किया था, परन्तु वे असत्कार्यके अथाह पानीमें डूबे हुए हैं। एकच्छत्रशक्तिके विशेष पक्षपाती होनेके कारण उनका सुयश स्फूर्तिको प्राप्त न हो सका। कुछ भी हो, बहुतसे अंग्रेज ऐतिहासिकोंने इनको एक श्रेष्ठ राजनीतिकुशल बतलाया है। किन्तु भारतीयों पर इन्होंने विशेष अन्याय किया था और ये ही परवर्ती सिपाहीविद्रोह (गदर)-के मूल कारण थे, इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। डिरेक्टरोंका नाम ले कर अयोध्या पर अधिकार करते समय इन्होंने जो सत्यका अपलाप किया था, उससे इनकी सत्यनिष्ठा पर सन्देह होता है।

इनके समयमें कम्पनीकी शासनरीतिका एक प्रधान परिवर्तन हुआ था। १८५३ ई०के २० अगस्तको पार्लामेण्ट-सभामें स्थिरीकृत हुआ कि, जब तक पार्लामेण्ट कोई नवीन आदेश न दे, तब तक इंग्लैण्डेश्वरीको प्रजा और कम्पनीका अधिकृत राज्य इंग्लैण्डेश्वरीके प्रतिनिधिस्वरूप कम्पनीके ही शासनाधीन रहेगा। थोड़े ही दिनमें कुछ परिवर्तन होगा, इस आशासे कम्पनीके स्वत्वाधिकारियोंने डिरेक्टरोंकी संख्या घटा कर २४ की जगह १२ कर दिये। इन १२ डिरेक्टरोंमेंसे ६को राज्ञी चुनेंगी और ६ अधिकारियों द्वारा नियुक्त होंगे। इसके साथ ही और एक नियम हुआ कि, पहले डिरेक्टरगण विशेष विशेष व्यक्तियोंको भारतके असिस्टैण्ट सार्जन और सिविल सर्वेण्टके कार्यमें नियुक्त करते थे; अबसे ऐसा नियम हुआ कि साधारणकी प्रतियोगी परीक्षा द्वारा उक्त पद पर कर्मचारी नियुक्त होंगे। डलहौसीके समयमें ही लेफ्टनाण्ट गवर्नरके पदकी सृष्टि हुई।

डल्लक (सं० क्ली०) १ वंशादिनिर्मित पात्रविशेष, बाँस इत्यादिकी फट्टियोंका बना हुआ बरतन, डला, दौरा। किसी व्रतमें दौरेमें खाद्य पदार्थ, उपवीत और वस्त्र दे कर ब्राह्मणोंको दान देना चाहिए।

"त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं डल्लकं वस्त्रसंयुतं।
सभोज्यं सोपवीतञ्च सोपहारं मनोहरं॥" (ब्रह्मवै०पु)

२ काश्मीरके एक राजाका नाम।

"अलुण्ठयत् प्रजांनित्यं डल्लको नाम दैशिकः"

(राजतर० ७।१०१)

डल्लनाचार्य—निबन्ध-संग्रह नामधेय सुश्रुतके एक प्रसिद्ध टीकाकार। ये जातिके ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम भरत था।

डवँरू (हिं० पु०) डमरू देखो।

डवित्थ सं० पु०) १ काष्ठमय मृग, काठका बना हुआ मृग।

"डित्थः काष्ठमयो हस्ती डवित्थस्तन्मयो मृगः" (मुग्धव्या०)

२ द्रव्यवाचि संज्ञाभेद।

'द्रव्यशब्दाः एकव्यक्तिवाचिनो हरिहरडित्थडवित्थादयः।"

(साहित्यदर्पण)

डस (हिं० स्त्री०) १ मद्यविशेष, एक प्रकारकी शराब। २ पलड़े बँधे रहनेकी तराजूकी डोरी, जोती। ३ कपड़े आदिका वह किनारा जहाँ लम्बाई समाप्त हो, कोर।

डसन (हिं० स्त्री०) डसनेकी क्रिया या भाव। २ डसनेका ढंग।

डसना (हिं० क्रि०) १ साँप आदि विषैले कीड़ोंका काटना। २ डंक मारना।

डसवाना (हिं० क्रि०) डसाना देखो।

डसाना (हिं० क्रि०) दाँतसे कटवाना।

डहकना (हिं० क्रि०) १ छल करना, धोखा देना, ठगना। २ ललचाना। ३ बिलखना, विलाप करना। ४ विस्तृत करना फैलाना, छितराना। ५ गरजना, हुंकारना।

डहकाना (हिं० क्रि०) १ नष्ट करना, गँवाना। २ वञ्चित होना, ठगा जाना। ३ छल करना, धोखा देना।

डहडहा (हिं० वि०) १ लहलहाता हुआ, ताजा, हराभरा। २ प्रफुल्लित, प्रसन्न, आनन्दित। ३ टटका, ताजा तुरन्तका।

डहडहाना (हिं० क्रि०) १ लहलहाना, हराभरा होना। २ प्रसन्न होना, खुश होना।

डहडहाव (हिं० पु०) प्रफुल्लता, प्रसन्नता, ताजगी।

डहन (हिं० पु०) १ पङ्ख, पर, डैना। (स्त्री०) २ जलन, दाह।

डहना (हिं० क्रि०) १ भस्म होना, दग्ध होना, जलना। २ द्वेष करना, कुढ़ना, चिढ़ना। ३ सन्तप्त करना, दुःख पहुँचाना।

डहर (हिं० स्त्री०) १ पथ, मार्ग, रास्ता। ३ आकाशगङ्गा।

डहरना (हिं० क्रि०) भ्रमण करना, चलना, फिरना।

डहाला (सं० स्त्री०) डाहलभूमि, चेदिराज्यका दूसरा नाम। डाहल देखो।

डहु (सं० पु०) दहति तापयति सर्वशरीरं दह कु। मृगय्वादयश्च। उण् १।३८। इति सूत्रेण निपातनात् साधुः। १ वृक्षविशेष, लकुच, डड़हर। इसके पर्याय—लकुच और लिकुच है। इसका गुण—गुरु, त्रिदोष और शुक्रपुष्टिकारक है। लकुच देखो। २ बड़हर।

डहू (सं० पु०) पृषो० साधुः। डहु देखो।

डा (सं० स्त्री०) डी-ड स्त्रियां टाप्। डाकिनी, डाइन।

डा (हिं० पु०) सितारकी गतिका एक बोल।

डाइन (हिं० स्त्री०) १ भूतनी, राक्षसी, चुड़ैल। २ वह औरत जिसकी दृष्टि आदिके प्रभावसे बच्चे मर जाति हैं। ३ खराब और खौफनाक औरत।

डाइरेक्टर (अं० पु०) १ कार्य-संचालक, वह जो इन्तजाम करता हो। २ गति उत्पन्न करनेवाला मशीनका एक पुरजा।

डाइरेक्टरी (अं० स्त्री०) एक पुस्तक जिसमें किसी किसी नगर या देशके प्रधान प्रधान मनुष्योंकी सूची अक्षर क्रमसे हो।

डाई (अं० पु०) १ पासा। २ ठप्पा, साँचा। ३ रङ्ग।

डाईप्रेस (अं० स्त्री०) वह कल जिससे उभरे हुए अक्षर उठाये जाते हैं।

डाँक (हिं० स्त्री०) कागजकी तरह पतला ताँबे या चाँदीका पत्तर।

डाँगर (हिं० पु०) १ चौपाया, ढोर। २ एक नीच जातिका नाम। (वि०) ३ कृश, दुबला-पतला। ४ मूर्ख, जड़।

डाँगा (हिं० पु०) जहाजके मस्तूलमें आड़ी लगी हुई धरन जिस पर रस्सियाँ फैलाई जाती हैं।

डांट (हिं० स्त्री०) १ वश, दाब, दबाव। २ क्रोधका शब्द डपट, घुड़की।

डाँटना (हिं० क्रि०) क्रोधपूर्वक कर्कश स्वर कहना, डपटना।

डाँड़ (हिं० पु०) १ डण्डा, सीधी लकड़ी। २ गदका। ३ वह लम्बा डंडा जिससे नाव खेई जाती है, चप्पू। ४ अंकुशका हत्था। ५ रीढ़की हड्डी। ६ ऊंची उठी हुई सङ्कीर्ण जमीन जो बहुत दूर तक पतली रेखाकी तरह चली गई हो, ऊँची मेंड़। ७ कम ऊंचाईकी दीवार जो आड़ आदिके लिये उठाई जाती है। ८ ऊँचा स्थान, छोटा भीटा। ९ मेंड़। १० समुद्रका ढालुआँ रेतीला किनारा। ११ सीमा, हद। १२ जङ्गल कटा हुआ मैदान। १३ अर्थदण्ड, जुरमाना। १४ नुकसानका बदला, हरजाना। ३५ कट्टा, बाँस।

डाँड़ना (हिं० क्रि०) अर्थदण्ड देना, जुरमाना करना।

डाँड़र (हिं० पु०) बाजरेकी खूटी जो फसलके काट लिये जाने पर खेतमें रह जाती है।

डाँड़ा (हिं० पु०) १ डण्डा, छड़। २ गदका। २ बांसका लम्बा डण्डा जिससे नाव खेई जाती है। ३ सीमा, हद।

डाँडामेंड़ा (हिं० पु०) १ परस्पर अत्यन्त सामीप्य, लगाव। २ झगड़ा, टण्टा।

डाँड़ाशहेल (हिं० पु०) बङ्गालमें मिलनेवाला एक प्रकारका साँप।

डाँड़ी (हिं० स्त्री०) १ लम्बा पतला काठ। २ लम्बा हत्था। ३ पलड़े बन्धे रहनेकी तराजूकी सीधी लकड़ी। ४ पतली शाखा, टहनी। ५ फूल या फल लगा हुआ लम्बा डंठल। ६ वे चार सीधी लकड़ियाँ या डोरीकी लड़ें जो हिंडोलेमें लगी रहती हैं। ७ जुलाहोंकी चरखीकी थवनीमें डाली जानेकी लकड़ी। ८ पीतल लगा हुआ शहनाईकी लकड़ी। ९ वह आदमी जो डाँड़ खेता है। १० आलसी मनुष्य। ११ मर्यादा, इज्जत। १२ वह स्थान जहाँ चिड़ियाँ आ कर बैठा करती हैं। १३ फूलके नीचेका वह भाग जो लम्बा और पतला होता है। १४ पालकीके दोनों ओर निकले हुए लंबे डंडे। कहार इन्हींमें कंधा लगा कर चलते हैं। १५ पालकी। १६ पहाड़ी सवारी, झप्पान।

डाँबू (हिं० पु०) दलदलमें होनेवाला एक प्रकारका नरकट।

डाँवरा (हिं० स्त्री०) पुत्र, लड़का, बेटा।

डाँवरी (हिं॰ स्त्री॰) पुत्री, कन्या, बेटी।

डाँवरू (हिं॰ पु॰) बाघका बच्चा।

डाँवाडोल (हिं॰ वि॰) चञ्चल, विचलित।

डाँशपाहिड़ (हिं॰ पु॰) रुद्रतालके ग्यारह भेदोंमेंसे एक। इसमें ५ आघातके बाद १ शून्य होता है।

डाँस (हिं॰ पु॰) १ बड़ा मच्छड़, दंश। २ मवेशियोंको दुःख देनेवाली एक मक्खी।

डाँसर (हिं॰ पु॰) इमलीका बीज, चिआं।

डाक (हिं॰ स्त्री॰) १ वह स्थान जहाँ घोड़े गाड़ी आदि बदले जाते हैं। २ सरकारकी ओरसे चिट्ठियोंके आने जानेकी व्यवस्था। ३ चिट्ठीपत्री। ४ वमन, उलटी, कै।

डाक (अं॰ पु॰) १ समुद्रके किनारेका वह स्थान जहां जहाज आ कर ठहरता है। २ नीलामकी बोली।

डाक—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। इनका दूसरा नाम घाघ है। कृषिसम्बन्धीय इन्होंने बहुतसी कवितायें खड़ी बोलीमें लिखी हैं। उदाहरणार्थ एक नीचे दी जाती है—

"जो शुकरकी बादली रहै शनीचर छाय।
कहै डाक सुन डाकनी बिन बरसै कधीं न जाय॥ घाघ देखो।

डाकखाना (हिं॰ पु॰) वह स्थान जहां मनुष्य भिन्न भिन्न स्थानों पर भेजनेके लिये चिट्ठी पत्री आदि छोड़ते हैं। और जहांसे आई हुई चिट्ठियां लोगोंको बाँटी जाती है।

डाक-विभागकी प्रथा अत्यन्त आधुनिक नहीं है। पहले राजा अपने राजकीय कार्योंकी सुविधाके लिये डाक प्यादा रखते थे। वे संवादज्ञापक पत्रादि ले कर बहुत तेजीसे एक स्थानसे दूसरेको जाते और फिर वहाँसे दूसरा आदमी उन सब पत्रोंको ले कर दूसरी जगह जाता था। इसी तरह थोड़े ही समयमें बहुत दूर दूर देशोंमें संवाद पहुंचाये जाते थे। यहां तक कि भारतवर्षमें और अमेरिकाके मेक्सिकोवासी प्राचीन जातियोंमें भी इसी तरहसे संवादके आदान-प्रदानका नियम प्रचलित था। रोमसाम्राज्यकी समृद्धिके समय वहां भी अनेक तरहके डाकविभाग थे जिन्हें (Cursus publicus) कहते थे।

१५वीं शताब्दीकी फ्रान्समें डाक-विभाग स्थापित हुआ। १७वीं शताब्दीकी फ्रान्सके राजा १४वें लुईके समयमें उक्त विभागमें बहुत उन्नति हुई। १८वीं शताब्दीकी फरासीसी विप्लवके समय फ्रान्सके साधारण मनुष्योंमें भी डाक-प्रथा प्रचलित हो गई थी।

१५१६ ई॰में अष्ट्रियाके राजाके अनुरोधसे फ्रांज (Franz Von Thun) और टैक्सिस (Taxis) ने सार्वजनिक डाकविभाग स्थापन किया। पहले उन्होंने ब्रुसेल्स और भियानामें संवाद पहुँचानेके लिए बहुतसे डाकघर निर्माण किये। क्रमशः उन्हींके यत्नसे बहुत दूरस्थित नेपल्स और भिनिश तक डाकविभाग स्थापित हुआ था।

१६वीं शताब्दीमें शेरशाहके यत्नसे घोड़ेका डाक तथा दिल्लीश्वर अकबरके यत्नसे मुगल साम्राज्यके सभी स्थानोंमें थोड़े ही समयमें संवाद ले जानेके लिए डाक-विभाग स्थापित हुआ। काफीखाँ नामक एक मुसलमानने इतिहासमें लिखा है, बादशाह अकबरने जो सब नये नियम चलाये उनमेंसे 'डाकमेवड़ा' ही एक उल्लेखयोग्य है। स्थान स्थान पर उनका अड्डा था।"* अबुलफजलकी आइन-इ-अकबरीमें लिखा है, मेवड़ा मेवाटके अधिवासी थे। वे चलनेमें बड़े तेज थे। बहुत दूरसे थोड़े ही समयमें संवाद ला देते थे। उत्तम गुप्तचरोंमें भी उनकी गिनती थी।

इंगलैण्डके राजा १म चार्ल्सके समय ग्रेटब्रिटेनमें डाकविभाग स्थापित हुआ। बुद्धिमान पिटके मन्त्रित्वके समयमें डाककी अत्यावश्यकता अंगरेजोंने सम्यक् रूपसे उपलब्धि की। इसी समयसे डाककी उन्नति आरम्भ हुई।

१८वीं शताब्दीकी अमेरिकाके युक्तराज्यमें डाक प्रचलित हुआ।

डाकसे वाणिज्य व्यवसायियोंके अनेक उपकार होने पर भी पहले वणिक्गण इसकी प्रयोजनीयता उपलब्धि कर न सके।

१९वीं शताब्दीके मध्यभागसे डाक-विभागकी बहुत कुछ उन्नति की गई। पहले डाक-विभागसे राजा और राजपुरुषोंकी ही सुविधा थी। अब क्या राजा क्या प्रजा सभी एकसा उपकार पाते हैं। डाकके होनेसे वाणिज्यादिमें कैसा लाभ हुआ है वह वर्णनातीत है।

१८४० ई॰में राउलैण्ड-हिलने एक छटांक तौलकी

---

* Khafi Khan, I. p. 243.

दूरीकी चिट्ठी होने पर भी सिर्फ एक पेन्स खर्च दे कर भेजनेकी सम्मति अंगरेजोंसे ली। यूरोपके दूसरे दूसरे देशोंमें भी थोड़े ही समयमें सभीने राउलेण्ड-हिलका पक्ष अवलम्बन किया। भारतके अंगरेज शासनकर्त्ता बड़े लाट डलहौसीने यहाँ सबसे पहले सार्वजनिक डाक-विभाग स्थापन किया।

१८७० ई०में अष्ट्रियासे सबसे पहले पोष्टकार्ड प्रचलित हुआ। बाद वह भी बहुत थोड़े दिनोंमें ही जगत्के समस्त सभ्य देशोंमें चलाया गया।

पहले देश भेदके अनुसार डाकखर्च भी लगता था। १८७४ ई०में जबसे आन्तर्जातिक डाक-सम्मेलन (International Postal Union) स्थापित हुआ, तबसे विदेशकी चिट्ठी भेजनेमें खर्चकी जो गड़बड़ी थी वह जाती रही।

अभी सभी सुसभ्य देशोंके प्रधान प्रधान नगरों और ग्रामोंमें डाकघर स्थापित हो गया है। डाकसे सब लोगोंको समान सुविधा मिलने पर भी डाक विभाग देशके राजाके अधीन है।

डाकगाड़ी (हिं० स्त्री०) चिट्ठी पत्री ले जानेकी रेलगाड़ी इसका इन्तजाम सरकारकी ओरसे है। यह और गाड़ियोंसे तेज चलती है। अधिक महसूल ले कर इसमें आदमी भी बैठाये जाते हैं।

डाकघर (हिं० पु०) डाकखाना देखो।

डाकना (हिं० क्रि०) १ उलटी करना, कै करना। २ लांघना, फाँदना, कूदना।

डाकबंगला (हिं० पु०) एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेमें राजपुरुषों या भ्रमणकारियोंके सुविधार्थ और विश्रामार्थ घर। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके समयमें इस प्रकारके घर स्थान स्थान पर बने थे। रेल होनेके पहले इन्हीं स्थानों पर डाक ली जाती और बदली जाती थी।

डाकमुंशी (हिं० पु०) वह पुरुष जिसके हाथ डाकघरका इन्तजाम हो, पोस्टमास्टर।

डाकर (हिं० पु०) सूखे हुए तालाबोंकी चिटकी हुई मट्टी।

डाकव्यय (हिं० स्त्री०) डाकका खर्च, डाक महसूल।

डाका (हिं० पु०) किसीका धन छीननेका आक्रमण, बटमारी।

डाकाज़नी (हिं० स्त्री०) डकैती करनेका काम, बटमारी।

डाकिन (हिं० स्त्री०) डाकिनी देखो।

डाकिनी (सं० स्त्री०) डाय भयदानाय अकति व्रजति-डाय-अक-इनि वा डाकानां समूहः इति डाक इनि। खलादिभ्यइनिर्वक्तव्यः। पा ४।२।५१ वार्त्तिक। १ कालीके एक गणका नाम।

"सार्द्धञ्च डाकिनीनाञ्च विकटानां त्रिकोटिभिः।" (ब्रह्मपु०)

२ पिशाची, यह किसी मनुष्यकी देखनेसे ही उसका अनिष्ट करती है। ३ स्त्रीविशेष, डाइन। ४ शिव और पार्वतीका अनुचर। इसकी संहार-शक्तिका अंशविशेष कहा जाता है। यह मारण, वशीकरण प्रभृति कार्य्योंका तथा उनके मन्त्रका उपास्य देवता है।

"डाकिनी शाकिनी भूतप्रेतवेतालराक्षसाः।" (काशीख ३० अ०)

भोटदेशवासी अभी भी डाकिनीकी उपासना करते हैं।

डाकी (हिं० स्त्री०) १ उलटी, कै, वमन। (पु०) २ पेटू, बहुत खानेवाला।

डाकू (हिं० पु०) १ वह जो बलपूर्वक दूसरेका माल लूट लेता है, लुटेरा, बटमार। २ वह जो बहुत खाता हो, पेटू।

डाकेट (अं० पु०) किसी पत्रका सारांश, चिट्ठीका खुलासा।

डाकोत—एक ब्राह्मण जाति। ये लोग कहीं डाकोत कहीं भंड़री कहीं भड़ली, कहीं जोतगी, कहीं दिसन्ती, कहीं जोषी, कहीं शनिश्चरिया, कहीं ग्रहविप्र, कहीं ज्योतिषीजी, कहीं नक्षत्रजीवी और कहीं थावरिया कहलाते हैं। प्रवाद है कि, ब्राह्मणके वीर्य व भडरी नामकी एक शूद्राके संयोगसे जो सन्तान उत्पन्न हुई वह डाकोत वा भड़री कहलाई। आज कल जैसे अन्य ब्राह्मणगण मन्दिरोंके पुजारी हैं, तैसे ही ये डाकोत लोगभी शनिदेवके मन्दिरके पुजारी हैं।

यथार्थमें यह जाति डक्क ऋषिकी सन्तान है। महाभारतके अनुशासनपर्वमें लिखा है कि भृगुजीके गुणोंके समान च्यवन, वज्रशीर्ष, शुचि, शुक्र, वरेण्य और विभुसवन ये सात उनके पुत्र पैदा हुए। इन्हीं शुक्राचार्यके वंशमें डक्क ऋषि हो गये हैं और उन्हीं डक्कके वंशमें

डाकोत हैं। पहले ये लोग डका कहलाते थे, बाद डका डका कहातेकहाते डाकोत कहलाने लगे हैं।

डाकोर (हिं० पु०) विष्णु भगवान्, ठाकुर। यह शब्द सिर्फ गुजरातमें प्रयोग किया जाता है।

डाक्टर (अं० पु०) १ अध्यापक, विद्वान्, आचार्य। २ चिकित्सक, वैद्य, हकीम।

डाक्टरी (हिं० स्त्री०) १ चिकित्साशास्त्र, वैद्यक-विद्या। २ पाश्चात्य आयुर्वेद।

डाक्तर (हिं० पु०) डाक्टर देखो।

डागा (हिं० पु०)वह डंडा जिससे नगारा बजाया जाता है, चोब।

डागुर (हिं० पु०) जाटोंकी एक जाति।

डाङ्कृति (सं० स्त्री०) घण्टा और थालीका शब्द।

डाङ्करी (सं० स्त्री०) डङ्करी पृषोद० साधुः। दीर्घकर्कटी।

डाङ्गाग्राम—दरभङ्गाके अन्तर्गत करमशोणिसे ३ कोस उत्तरमें अवस्थित एक ग्राम। (भ० ब्रह्मखं० ४७।१६३)

डाट (हिं० स्त्री०) १ टेक, चाँड़। २ वह वस्तु जिससे कोई छेद बंद किया जाता है। ३ वह वस्तु जिससे बोतलका मुंह बंद किया जाता है, काग।

डाटना (हिं० क्रि०) १ एक पदार्थको दूसरे पदार्थ पर जोरसे दबाना। २ टेकना, चाँड़ लगाना। ३ छिद्र बंद करना, मुंह कसना। ४ कस कर भरना, अच्छी तरह घुसेड़ना। ५ तृप्ति भर खाना, कस कर खाना। ६ डटाना, भिड़ाना।

डाढ़ (हिं० स्त्री०) १ चौभड़, दाढ़। २ बट आदि वृक्षोंकी जटाएँ जो नीचेकी ओर लटकती रहती हैं, बरोह।

डाढ़ा (हिं० स्त्री०) १ दावानल, वनकी आग। २ आग। ३ ताप, दाह, जलन।

डाढ़ी (हिं० स्त्री०) १ चिबुक, ठुड्डी। २ चिबुक और गण्डस्थल परके लोम, दाढ़ी।

डाब (हिं० स्त्री०) १ डाभ नामकी घास। २ कच्चा नारियल। ३ परतला, तलवार लटकानेको चमड़े या मोटे कपड़ेकी चौड़ी पट्टी।

डाबक (हिं० वि०) डाभक देखो।

डाबर (हिं० पु०) १ नीची जमीन। २ गर्त, पोखरी, गड़ही, गड्ढा। ३ हाथ धोने और कुल्ली करनेका बरतन, चिलमची। ४ अपरिष्कार जल, मैला पानी। (वि०) ५ मटमैला, गदला।

डाबा (हिं० पु०) डब्बा देखो।

डाबी (हिं० स्त्री०) कटी हुई घास।

डाभ (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कुश। २ कुश। ३ आम्रमञ्जरी, आमका मौर। ४ कच्चा नारियल।

डाभक (हिं० वि०) ताजा, टटका।

डामचा (हिं० पु०) मचान, माचा।

डामर (सं० पु०) १ महादेवकथित तन्त्रशास्त्रविशेष। इन तन्त्रोंकी संख्या, इनके नाम और श्लोकसंख्या वाराहीतन्त्रमें इस प्रकार लिखी है, १ योगडामर—इसकी श्लोकसंख्या २३५३३ है। २ शिवडामर—इसकी श्लोकसंख्या ११००७ है। ३ दुर्गडामर—इसकी श्लोकसंख्या ११५०३ है। ४ सारस्वतडामर—इसकी श्लोकसंख्या ८८०६ है। ५ ब्रह्मडामर—इसकी श्लोकसंख्या ७१०५ है। गन्धर्वडामर-इसकी श्लोकसंख्या ६००६० है। वाराहीतन्त्र देखो। २ चमत्कार। ३ गर्व, आडम्बर, ठाटबाट।

"रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डिशिखण्डकडामरे।"

(गीतगोविन्द १२।२२)

४ कोटचक्रविशेष, दुर्गके शुभाशुभ जाननेके लिए बनाए जानेवाले चक्रोंमेंसे एक।

"पञ्चमो गिरिकोटश्च षष्ठः कोटश्च डामरः।" (समयामृत)

५ क्षेत्रपालविशेष, ४९ क्षेत्रपाल भैरवोंमेंसे एक। ६ धूम, हलचल।

डामर (हिं० पु०) १ साल वृक्षका गोंद, राल। २ एक प्रकारका गोंद। इसका पेड़ दक्षिणमें पश्चिमी घाटके पहाड़ों पर मिलता है। कहरुवा देखो।

३ छोटी मधुमक्खियोंके छत्तेसे निकलनेवाला एक प्रकारका लसीला राल। ४ इस तरहका राल बनानेवाली छोटी मधुमक्खी।

डामल (हिं० स्त्री०) १ जीवन पर्यन्त कारागार, जन्म भरके लिये कैद। २ 'देश निकाला'का दण्ड। भारतवर्षमें अंगरेजी सरकार उन अपराधियोंको अंडमन टापूमें भेजा करती है जो खूब भारी अपराध करते हैं। उसी दण्डको डामल कहते हैं।

डामाडोल (हिं० वि०) डांवांडोल देखो।

डायँडाय (हिं० क्रि०-वि०) व्यर्थ इधरसे उधर, व्यर्थ धूल छानते हुए।

डायन (हिं० स्त्री०) १ पिशाचिनी, डाकिनी। २ कुरूपा स्त्री, बदसूरत औरत।

डायनामो (अं० पु०) बिजली उत्पन्न करनेवाली एक प्रकारका छोटा एन्जिन।

डायमण्डकट (अं० पु०) हीरेकीसी काट, डामल काट।

डायमण्ड हारबर (Diamond Harbour)—१ बङ्गालके अन्तर्गत २४ परगने जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २१° ३१´ से २२° २१´ उ० और देशा० ८८° २´ से ८८° ३१´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १२८३ वर्गमील है, जिनमेंसे ८०७ वर्गमील तक सुन्दरवन व्याप्त है। इस उपविभागमें डायमण्ड-हारबर, देवीपुर, बाँकोपुर, काल्पी और मथुरापुर नामक ५ थाने हैं। ३ दीवानी और ३ फौजदारी अदालतमें विचारकार्य सम्पन्न होता है। विख्यात सागरद्वीप इसी उपविभागके अन्तर्गत है। १८६४ ई०के तूफानमें यहांके बहुतसे अधिवासियोंकी मृत्यु हुई थी। प्रायः ५६२५ अधिवासियोंमें केवल १४८८ मनुष्योंकी जान बची थी। १८६६ ई०के दुर्भिक्षमें भी बहुत लोग मरे थे। कलकत्तेसे डायमण्ड-हारबर तक रेलपथ हो जानेसे इसकी दुरवस्था बहुत कुछ जाती रही। अभी यहांकी लोकसंख्या प्रायः ४६०७४८ है। इसमें १५७५ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है।

२ बङ्गालके अन्तर्गत २४ परगने जिलेके डायमण्ड-हारबर उपविभागका प्रधान स्थान और एक विख्यात बन्दर। इसी स्थानके नामानुसार उपविभागका नाम पड़ा है। डायमण्ड-हारबर शब्दका अर्थ (डायमण्ड=हीरक, हारबर=बन्दर) उत्कृष्ट बन्दर है। यह अक्षा० २२° १०´ उ० और देशा० ८८° १२´ पू० पर भागीरथीके बायें किनारे अवस्थित है। पहले यहां इष्ट इण्डिया कम्पनीके जहाज रहते थे। अभी यहां एक टेलियाफ आफिस और कोट-घर है। जो जहाज नदी हो कर प्रतिदिन जाते हैं, बन्दरके मालिक उनमेंसे प्रत्येकका विवरण बोझ आदिकी तादाद कलकत्तेमें टेलिग्राफ द्वारा जताते हैं। कलकत्तेके टेलिग्राफ गजटमें वह प्रतिदिन प्रकाशित हो जाता है। जो कुछ हो, अभी यह समृद्धशाली स्थान हो गया है। प्राचीन चिह्नोंमेंसे एक कब्रिस्तान विद्यमान है। रेलपथके द्वारा यह कलकत्तेसे ३८ मील दूर है। यह रेलपथ कलकत्ते और साउथ इष्टर्ण बेङ्गल ष्टेट रेलपथके सोनापुर स्टेशनसे निकला है। यह कलकत्तेसे पैदल ३० मील और नदी द्वारा ४१ मील दूर पड़ता है।

डायरी (अं० स्त्री०) दिनचर्य्या, रोजनामचा।

डायल (अं० पु०) घड़ीका चेहरा, जहां अंक बने होते हैं और सूइयाँ घूमती हैं।

डायस (अं० पु०) किसी सभाका ऊंचा स्थान जहाँ सभापतिका आसन रखा जाता है।

डार (हिं० स्त्री०) १ डलिया, टोकरा। २ शाखा डाल। ३ एक प्रकारकी खूंटी जो फानूस जलानेके लिये दीवारमें लगाई जाती है।

डारना (हिं० क्रि०) डलना देखो।

डारियास (हिं० पु०) बाबून बन्दरकी एक जाति।

डाल (हिं० स्त्री०) १ शाखा, शाख। २ दीवारमें लगी हुई एक प्रकारकी खूंटी जो फानूस जलानेके लिये दीवारमें लगाई जाती है। ३ तलवारका फल। ४ मध्यभारत और मारवाड़में पहने जानेका एक प्रकारका गहना। ५ डलिया, चँगेरी। ६ डलियेमें सजा कर किसीके यहां भेजी जानेवाली खाने पीनेकी वस्तु। ७ विवाहके समय वरकी ओरसे वधूको दिये जानेका कपड़ा और गहना।

डालना (हिं० क्रि०) १ नीचे गिराना, छोड़ना, फेंकना। २ छोड़ना, ऊपरसे गिराना। ३ स्थित या मिश्रित करना रखना, मिलाना। ४ प्रविष्ट करना, भीतर घुसेड़ना। ५ परित्याग करना, सुधि न लेना, भुला देना। ६ चिह्नित करना, अङ्कित करना, लगाना। ७ विस्तृत कर रखना, फैलाना। ८ शरीर पर धारण करना, पहनना। ९ सौंपना, भार देना। १० गर्भपात करना, पेट गिराना। ११ उपयोग करना, लगाना। १२ वमन करना, करना। १३ स्त्रीको तरह रखना।

डालफिन (अं० पु०) एक प्रकारकी ह्वेल मछली।

डालर (अं० पु०) तीन रुपये दो आनेके बराबर अमेरिकाका एक सिक्का।

डाली (हिं० स्त्री०) १ टोकरा, चँगेरी। २ फूल फल या खाने पीनेकी वस्तु जो डलियामें सजा कर किसीके यहां भेजी जाय।

डावड़ा (हिं० पु०) १ पिठवन। २ डावरा देखो।

डावरा (हिं० पु०) पुत्र, बेटा।

डावरी (हिं० स्त्री०) कन्या, बेटी।

डाप (हिं० पु०) चमारोंका एक यन्त्र। इससे वह चमड़े के भीतरका रूख़ साफ़ करता है।

डासन (हिं० पु०) बिछावन, बिछौना, बिस्तर।

डासना (हिं० क्रि०) फैलाना, बिछाना।

डासनी (हिं० स्त्री०) चारपाई, पलंग, खाट।

डाह (हिं० स्त्री०) ईर्ष्या, द्वेष, जलन।

डाहना (हिं० क्रि०) दिक करना, सताना, जलाना।

डाहिर देशपति—सिन्धप्रदेशके एक हिन्दू राजा। समग्र सिन्धुदेश, मुलतान और सिन्धुकूलवर्ती बहुत दूर तकका प्रदेश इनके अधिकारमें था। इनके राजत्वसे पहले अरबी लोग सिन्धुप्रदेश पर आक्रमण कर लूट मचाते तथा स्त्रियों और बच्चोंको कैद कर ले जाते थे। डाहिरके राजत्वकालमें उनके राज्यके अन्तर्गत देवल बंदरमें अरबियोंका एक जहाज लूट गया था। अरबियोंके उसकी क्षतिपूर्तिके लिए दावा करने पर डाहिरने जवाब दिया—"देवल हमारे राज्यके अन्तर्गत नहीं है, इसलिए उसके लिए हम जिम्मेवार नहीं।" इस पर अरबियोंने पहले एकदल सेना भेजी, जो पराजित और निहत हो गई। इसके बाद ७११ ई०में बसोराके शासनकर्ताने बड़ी भारी सेनाके साथ अपने भतीजे महम्मद बेन् क़ासिमको डाहिरके विरुद्ध युद्धार्थ भेजा। बेन-क़ासिमने आ कर पहले ही देवल आक्रमण और अधिकार किया।

इसके बाद महम्मद बेन् क़ासिम द्वारा परिचालित विजयी अरबी सेना निरून (वर्तमान हैदराबाद) आदि नगरोंको जितनेके लिए उत्तरकी तरफ अग्रसर होने लगी। डाहिरने अपने ज्येष्ठ पुत्र जयसिंहको बहुसंख्यक सेनाके साथ भेजा। किन्तु इतनेमें पारस्यसे और भी २००० अश्वारोही सेनाने आ कर महम्मद बेन् क़ासिमका साथ दिया; इसलिए जयसिंहको बाध्य हो कर भागना पड़ा। महम्मद राजधानी आरोरकी तरफ अग्रसर होने लगे। अबकी बार डाहिरने समस्त सेना ले कर जी जानसे बेन-क़ासिमके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। उनकी तरफसे उस समय ५०,००० सेना युद्ध कर रही थी। बेन-क़ासिम एक सुदृढ़ स्थानमें आश्रय ले कर आत्मरक्षा करने लगे। बहुत दिन तक युद्ध हुआ। आखिर एक दिन डाहिर स्वयं हाथीके पीठ पर युद्ध करते करते विपक्षके तीरसे विद्ध हो गये। उनके हाथीने भी उस समय एक जलते हुए आगके गोलेसे आहत हो कर वेगसे निकटस्थ नदीमें प्रवेश किया। इस अतर्कित विपदमें समस्त सेना छिन्न भिन्न हो गई। इसके बाद राजाने घोड़े पर सवार हो कर अपनी सेनाको पुनः उत्साहित करने और सुशृङ्खलमें लानेकी बहुत चेष्टा की पर सब व्यर्थ हुई। वे स्वयं युद्ध करके मारे गये। मिहरान नदी ददाहावके मध्यवर्ती रावर दूर्गके पास यह युद्ध हुआ था। पराजित सेनाने भाग कर रावर दूर्गमें आश्रय लिया। डाहिरके पुत्र जयसिंह और विधवा रानी रानीबाईने दूर्गकी रक्षाके लिए जी-जानसे कोशिश करनेकी ठान ली। परन्तु डाहिरके विश्वस्त मन्त्रीने जयसिंहको उस दुर्गको छोड़ कर ब्राह्मणाबाद आश्रय लेनेका परामर्श दिया।

रावरका दुर्ग बेन क़ासिमके कब्जेमें आ गया। दुर्गवासी राजपूत-सेनाने जीवनकी आशा छोड़ कर शत्रुओं के बीच भीषण वेगसे प्रवेश किया और युद्ध करते करते प्राण त्याग किया। रानीने कई एक सन्तानों सहित अनलमें प्रवेश किया। विजयी मुसलमान-सेनाने दुर्गके अस्त्रधारी पुरुष मात्रको मार डाला और स्त्रियों तथा बालकोंको कैद कर लिया। इसके बाद महम्मद बेन् क़ासिमने ब्राह्मणाबाद जय किया। जयसिंह पहलेमें ही उसका रक्षणभार १६ सेनापतियोंको सुपुर्द करके हालोसर चले गये थे।

डाहिरकी दो कन्याओंने माताके साथ देहत्याग नहीं किया था। ये महम्मद बेन् क़ासिमके हाथ कैद हुईं। महम्मदने इन दोनोंका अलोकसामान्य सौन्दर्य देख कर खलीफाको उपहार देनेका विचार किया। दोनों खलीफाकी तात्कालिक राजधानी दामस्कास नगरमें खलीफा

वालिदके सामने लाई गईं। उनमेंसे बड़ीने करुण स्वरसे कहा—"धर्मावतार! हम आपके लायक नहीं हैं, महम्मदबेन् काशिमने पहले ही हमारा धर्म नाश कर डाला है।" खलीफा इस बातको सुन कर अत्यन्त क्रुद्ध हुए, उन्होंने सत्यासत्यका विचार बिना किये ही महम्मदबेनकासिमको चामकी थैलीमें भर लानेका आदेश दे दिया। उनका आदेश प्रतिपालित हुआ और यथासमय पर बेन-कासिमकी मृतदेह खलीफाके सामने लाई गई। राजकुमारीने पितृशत्रुकी मृतदेहको देख कर कहा—"इतने दिन बाद हमारी अभीष्टसिद्धि हुई। मैंने मिथ्या कह कर अपने कुलोच्छेदकारी इस दुर्वृत्तके प्राणनाश करवाये हैं।" इस तरह डाहिरकी कन्याओंने पितृनिधनकी प्रतिहिंसा साधन की।

डाहुक (हिं॰ पु॰) टिटिहरीके आकारका एक पक्षी। यह सदा जलाशयोंके निकट पाया जाता है।

डिंगल (हिं॰ वि॰) १ दूषित, घृणित नीच, अधम, पामर। (स्त्री॰) २ राजपूतानेकी एक भाषा। इसमें भाट और चारण काव्य तथा वंशावली आदि लिखते हैं।

डिंगसा (हिं॰ पु॰) खसिया पर्वत तथा चटगांव और बरमाकी पहाड़ियों पर होनेवाला एक प्रकारका पेड़। इससे एक प्रकारका उमदा गोंद या राल निकलती है। तारपीनका तेल भी इससे निकलता है।

डिंड़स (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी तरकारी।

डिड़सी (हिं॰ स्त्री॰) टिंडया टिंडसी नामकी तरकारी।

डिंडिभी (हिं॰ स्त्री॰) डिण्डिम देखो।

डिंभिया (हिं॰ वि॰) १ पाखण्डी, जो आडम्बर रचता हो। २ अभिमानी, घमंडी।

डिकामाली हिं॰ स्त्री॰) मध्यभारत तथा दक्षिणमें होनेवाला एक पेड़। इसमेंसे एक प्रकारका गोंद निकलता है। गोंद हींगके तरह मृगी रोगमें दिया जाता है। इससे घाव जल्दी सूखता है और मक्खियां बैठने नहीं पातीं।

डिक्की (हिं॰ स्त्री॰) १ सींगोंका धक्का। २ आक्रमण धावा, झपट।

डिक्टेशन (अं॰ पु॰) वह वाक्य जो लिखनेके लिए बोला जाय, इमला।

डिक्री (अं॰ स्त्री॰) १ आज्ञा, हुक्म। २ जीतकी आज्ञा।

डिक्शनरी (अं॰ स्त्री॰) शब्दकोष।

डिगना (हिं॰ क्रि॰) १ प्रतिज्ञा छोड़ना, अपनी बात पर कायम न रहना। २ स्थान परित्याग करना, जगह छोड़ना, हिलना, टलना।

डिगरी (अं॰ स्त्री॰) १ विश्वविद्यालयकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेकी उपाधि। २ समकोणका $\frac{१}{९०}$ भाग, अंश, कला। ३ न्यायालयका वह फैसला जिसके द्वारा लड़नेवाले पक्षोंमेंसे किसीको कोई हक मिलता है।

डिगरीदार (अं॰ पु॰) वह मनुष्य जिसके पक्षमें अदालतकी डिगरी हुई हो।

डिगवा (हिं॰ पु॰) एक पक्षीका नाम।

डिगाना (हिं॰ क्रि॰) १ जगहसे हटाना, खसकाना, सरकाना। २ विचलित करना, बात पर कायम न रहना।

डिग्गी (हिं॰ स्त्री॰) १ तालाब, पोखरा। २ हिम्मत, साहस।

डिङ्गर (सं॰ पु॰) डङ्गर पृषो॰ साधुः। १ डङ्गर, मोटा आदमी, मोटासा। २ धूर्त्त, बदमाश, ठग। ३ क्षेप, फेंकना। ४ वन, जंगल। ५ सेवक, दास, गुलाम।

डिङ्गि—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सिन्धु प्रदेशमें खैरपुर राज्यका एक दुर्ग। यह अक्षा॰ २६° ५२´ उ॰ और देशा॰ ६८° ४०´ पू॰में अवस्थित है। यहां जल बहुत मिलता है।

डिटेक्टिव (अं॰ पु॰) गुप्तचर, भेदिया, जासूस।

डिठार (हिं॰ वि॰) आँखवाला, जिसे सुझाई दे।

डिठोहरी (हिं॰ स्त्री॰) एक जङ्गली पेड़के फलका बीज। इसको तागेमें पिरोकर छोटे छोटे लड़कोंको पहनाते हैं। कहा जाता है कि इससे उन्हें दूसरेकी दृष्टि नहीं लगती है।

डिठौना (हिं॰ पु॰) काजलका टीका। स्त्रियाँ लड़कोंके मस्तक पर नजरसे बचानेके लिये वह लगा देती हैं।

डिडका (सं॰ स्त्री॰) यौवनकालजात रोगभेद, मुहाँसा।

"यौवने डिडकास्वेव विशेषाच्छर्दनं हितं।" (सुश्रु॰)

इस रोगमें वमन विशेष उपकारी है। धन्या, वच, लोध्र और कुष्ठ अथवा रोध्र, वच, सैन्धव और सर्षप एकत्र करके प्रलेप देनेसे यह रोग आरोग्य होता है।

डिड़ई (हिं॰ पु॰) अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

डिड़वा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका धान जो अगहनमें तैयार होता है।

डिडिमा सं॰ पु॰) प्रत्युद श्रेणीका पक्षी। प्रत्युद देखो।

डिण्डिम (सं॰ पु॰) डिण्डीति शब्दं माति मा-क। वाद्यभेद, प्राचीन कालका एक बाजा, डिमडिमी, डुगडुगिया। २ कृष्णपाकफल, करौंदा।

डिण्डिमेश्वरतीर्थ (सं॰ पु॰) शिवपुराणोक्त तीर्थविशेष।

डिण्डिर (सं॰ पु॰) हिण्डिर पृषो॰ साधुः। १ समुद्रफेन। २ पानीका झाग।

डिण्डिरमोदक (सं॰ क्ली॰) डिण्डिर इव मोदकः मोदिण्वुल्। १ गृञ्जन, गाजर। २ लहसुन।

डिण्डिश (सं॰ पु॰) डिण्डिक पृषोदरा॰ साधुः। डिण्डिशवृक्ष, टिंड या टिंडसी नामकी तरकारी। इसका गुण—रुचिकारक, भेदक और पित्तश्लेष्मनाशक, शीतल, वातल, रूक्ष, मूत्रल और अश्मरीनाशक है। (भावप्रकाश)

डितिका (सं॰ स्त्री॰) बालरोग।

डित्थ (सं॰ पु॰) १ काष्ठमय हस्ती, काठका बना हाथी।

"डित्थ काष्ठमयो हस्ती डवित्थस्तन्मयो मृगः।" (सुपद्मव्या॰)

२ एकव्यक्तिमात्र बोधक संज्ञाशब्दविशेष। ३ विशेष लक्षणयुक्त पुरुष।

"श्यामरूपो युवा विद्वान् सुन्दरः प्रियदर्शनः।
सर्वशास्त्रार्थवेत्ता च डित्थ इत्यभिधीयते॥"
(कलापव्या॰ टीका)

श्यामवर्ण, युवा, विद्वान्, सुन्दर, प्रियदर्शन और सर्वशास्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको डित्थ कहते हैं।

डिपटी (अं॰ पु॰) सहकारी, सहायक, नायब।

डिपाजिट (अं॰ पु॰) धरोहर, अमानत, तहवील।

डिपार्टमेण्ट (अं॰ पु॰) विभाग, मुहकमा, सरिश्ता।

डिपो (अं॰ स्त्री॰) भाण्डार, गुदाम, जखीरा।

डिप्लोमा (अं॰ पु॰) विद्यासम्बन्धिनी योग्यताका प्रमाणपत्र, सनद।

डिब्रूगढ़—१ आसामके अन्तर्गत लखिमपुर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा॰ २७° ७′ से २७° ५५′ उ॰ और देशा॰ ९४° ३०′ से ९६° ५′ पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण ३२५४ वर्गमील है। यह उपविभाग ब्रह्मपुत्र नदीके दोनों किनारे बसा हुआ है और इसके तीन ओर पहाड़ हैं। लोकसंख्या लगभग २८६५७२ है। इसमें १ शहर और ८८० ग्राम लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा॰ २७° २८′ उ॰ और देशा॰ ९४° ५५′ पू॰ डिब्रू नदीके बायें किनारे अवस्थित है। इसके चारों ओर पहाड़ हैं जिनका दृश्य देखने योग्य है। यहां उतना काफी अनाज नहीं उपजता है कि लोग अच्छी तरह गुजर कर सकें। शहरमें एक कारागार, गिर्जा, अस्पताल, मेडिकल स्कूल और एक हाई स्कूल है। १८७८ ई॰में यहां म्युनिसपालिटी भी स्थापित हो गई है।

डिबिया (हिं॰ स्त्री॰) छोटा संपुट, छोटा डिब्बा।

डिबिया टँगड़ी (हिं॰ स्त्री॰) कुश्तीका एक पेच। यह पेच उस समय किया जाता है जब विपक्षी कमर पर होता है और उसका दहना हाथ कमरमें लिपटा होता है। इसमें विपक्षीको दाहिने हाथसे जोड़का बायाँ हाथ कमरके पाससे दहने जाँघ तक खींचते हुए और बाएँ हाथसे लँगोट पकड़ते हुए बाएँ पैरसे भीतरी टाँग मार कर गिराते हैं।

डिबेंचर (अं॰ पु॰) १ ऋणस्वीकारपत्र। २ मालकी रफ्तनीके महसूलका रवन्ना, बहती।

डिब्बा (हिं॰ पु॰) १ छोटा संपुट, डिबिया। २ रेलगाड़ीका एक कमरा। ३ पसलीके दर्दकी बीमारी। यह बीमारी प्रायः छोटे छोटे बच्चोंको हुआ करती है।

डिम (सं॰ पु॰) डिम-क। दृश्यकाव्य रूप नाटकका एक भेद। इसमें माया, इन्द्रजाल, लड़ाई और क्रोध आदिका समावेश विशेष रूपसे होता है। यह रौद्ररसप्रधान होता है और इसमें चार अंक होते हैं। इसके नायक देवता, गन्धर्व, यक्ष, रक्ष या महोरग होते हैं। इसमें भूतों तथा पिशाचोंकी लीला दिखाई जाती है। शान्त, हास्य और शृङ्गार ये तीनों रस इसमें वर्जनीय हैं। अन्य तीनों रस प्रदीप्त होना आवश्यक है। (साहित्यद॰) नाटक देखो।

डिमडिमी (हिं॰ स्त्री॰) लकड़ीसे बजाए जानेका एक प्रकारका बाजा, डुग्गी।

डिमरेज (अं० पु०) १ वह हर्जा जो बन्दरगाहमें जहाजके ज्यादा ठहरनेसे लगता है। २ वह हर्जा जो स्टेशन पर आए हुए मालके अधिक दिन पड़े रहनेके कारण पानेवालेको देना पड़ता है।

डिमाई (अं० स्त्री०) कागजकी एक माप जो १८×२२ इंच होती है।

डिम्ब (सं० पु०) डिव-घञ्। १ भय, डर। २ कलल, गर्भाशयमें रज और वीर्य्यकी एक अवस्था। इसमें एक पतली झिल्लीसी बन जाती है और यह कललके बाद होती है। ३ फुफ्फुस, फेफड़ा। ४ डमर, भयसे पलायन, भगड़े। ५ भयध्वनि, हलचल। ६ अण्ड, अंडा। ७ प्लीहा, पिलही। ८ विप्लव, उपद्रव। ९ कीड़ेका छोटा बच्चा।

डिम्बक (सं० पु०) डिम्भक देखो।

डिम्बज (सं० पु०) डिम्बात् जायते डिम्ब-जन-ड। अण्डज, वह जिसकी उत्पत्ति अंडेसे हो।

डिम्बाहव (सं० क्ली०) डिम्बं भयध्वनियुक्तं आहवं, कर्मधा०। सामान्य युद्ध, ऐसी लड़ाई जिसमें राजा आदि सम्मिलित न हों।

‘डिम्बाहवहतानाञ्च विद्युता पार्थिवेन च।” (मनु ५।९५)

इस डिम्बाहवमें मरनेसे केवल एक दिनका अशौच होता है।

डिम्बिका (सं० स्त्री०) डिम्ब-ण्वुल्-टाप्। १ कामुकी, मदमाती स्त्री। २ जलविम्ब, जलकी परछाँई। ३ शोणाक वृक्ष, सोनापाठा।

डिम्भ (सं० पु०) डिभ-अच्। १ शिशु, बच्चा। २ मूर्ख।

डिम्भक (सं० पु०) डिम्भ स्वार्थे कन्। १ बालक। २ शाल्वदेशाधिपति ब्रह्मदत्तका पुत्र। हरिवंशमें इस प्रकार लिखा है—

शाल्वनगरमें ब्रह्मदत्त नामके एक परम दयालु नरपति थे। उनकी परम रूपवती और असामान्यगुणशालिनी दो भार्याएं थीं। ब्रह्मदत्तने पुत्रके लिए महिषीद्वयके साथ एकाग्रचित्तसे दश वर्ष तक महादेवकी आराधना की।

महादेवने इनकी आराधनासे प्रसन्न हो कर एक दिन रातको स्वप्नमें दर्शन दिये और कहा—“राजन्! तुम्हारी आराधनासे मुझे अत्यन्त प्रीति हुई है, अब तुम वर मांगो। राजाने उत्तर दिया—“भगवन्! दो रानियोंके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हों—यही मेरी प्रार्थना है।” भगवान् ‘तथास्तु’ कह कर अन्तर्हित हो गये और नरपतिकी निद्राभङ्ग हो गई।

कालक्रमसे रानियोंके गर्भसे शङ्करके प्रसादसे दो महावीर्य पुत्र उत्पन्न हुए। नृपतिने बड़ेका नाम रक्खा हंस और कनिष्ठका डिम्भक।

क्रमशः हंस और डिम्भकको तपश्चरणकी अभिलाषा हुई। दोनों जिनके अंशसे उत्पन्न हुए थे, उन्हीं शङ्करकी आराधनाके लिए हिमालयप्रस्थ पर जा कर तपस्या करने लगे। इनका मुख्य उद्देश्य था—वीर्य और अस्त्रबलमें वे सर्वप्रधान हों।

महादेव इनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर वहां उपस्थित हुए और उन्होंने वर मांगनेको कहा। दोनोंने कहा-“भगवन्! यदि आप सन्तुष्ट हुए हों, तो हमें यह वर दीजिये कि, देवता, असुर, राक्षस, गन्धर्व और दानवोंमेंसे कोई भी हमें परास्त न कर सके। दूसरी प्रार्थना यह है कि, रुद्रास्त्रसमुदय हम संगृहीत कर सकें। अन्यान्य जितने अस्त्र और कवच आदि है, उन पर हमारा अधिकार हो और हम लोग जब युद्धयात्रा करें, तब दो महाभूत हमारी सहायता करें।” महादेवने तथास्तु कह कर अङ्गीकार कर लिया तथा भूतप्रधान कुण्डोदर और विरूपाक्षको बुला कर कहा—‘वत्स विरूपाक्ष और कुण्डोदर! तुम भूतोंमें श्रेष्ठ हो। जब ये दोनों वीर युद्धयात्रा करेंगे, तब तुम दोनों इनकी सहायता करना।’

इस तरहसे ये महादेवका प्रसाद पा कर देव दानव आदिके अजेय हो गये।

एक दिन हंस और डिम्भक घोड़े पर सवार हो कर शिकार खेलने निकले। बहुतसे मृग, व्याघ्र और सिंहोंका संहार कर वे श्रान्त हो गये। पिपासा दूर करनेके लिये वे एक सरोवरके किनारे पहुंचे, वहां पर उन्होंने सरोवरमें स्नान कर पद्मके मृणाल और पत्र भोजन करके श्रान्ति दूर की। उस सरोवरके किनारे ब्राह्मणगण मध्याह्नकालोचित वेदगान कर रहे थे। इन्होंने उन ब्राह्मणोंसे कहा—“आप लोग इस यज्ञको समाप्त करके हमारे आलयको चलिये, हमारे पिता राजसूययज्ञमें प्रवृत्त हुए हैं, हम दिग्विजयके लिये निकले हैं,

त्रिभुवनमें हम लोगोंको पराजित कर सके ऐसा वीर कोई भी नहीं है, हमने महादेवसे समस्त अस्त्र ले लिये हैं, आप लोग निश्चय समझिये कि, कोई भी शत्रु हम दोनोंको पराजित न कर सकेगा।"

मुनियोंने उत्तर दिया—"राजन्! यदि ऐसा ही है, तो हम अवश्य ही शिष्य सहित आपके आलयको चलेंगे, किन्तु अभी हम इसी स्थानमें रहेंगे।" इसके वाद दोनों वीर सरोवरके उत्तर तीर पर गये, वहां शिष्योंके साथ भगवान् दुर्वासा वास करते थे। उनको ध्यानस्थ देख कर वीरद्वय विचारने लगे—'यह कषाय वस्त्रधारी सर्वश्रेष्ठ महाभूत कौन है? गृहस्थाश्रम छोड़ कर यह कौनसा आश्रम ग्रहण किया है। गृहस्थाश्रम ही तो धार्मिक और धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ है, गृहस्थ ही सर्वश्रेष्ठ है, गृहस्थ ही सब जीवोंका जीवन और माता है। जो मूढ़ ऐसे गृहस्थाश्रमको छोड़ कर अन्य आश्रम ग्रहण करता है वह तो उन्मत्त, विकृतरूप और महामूर्ख है। हमारी समझसे यह भण्ड तपस्वी सिर्फ ध्यानके छलसे लोगोंको धोखा देता होगा। ये जिस तरहके घोर मूढ़ विज्ञानसे आच्छन्न हैं, उससे मालूम होता है इन पर वलप्रयोग करना पड़ेगा। कौनसा मूर्ख इन दुर्मतियोंका उपदेष्टा है, यह भी नहीं मालूम पड़ता।' इस तरहकी चिन्ता करते हुए दोनों सहसा उस अतीन्द्रिय दुर्वासाके सामने उपस्थित हो कर क्रोधभावसे कहने लगे—"ब्राह्मण! हम देख रहे हैं, तुम्हें बिल्कुल हिताहितका ज्ञान नहीं है, तुम यह क्या कार्य कर रहे हो? तुमने जिसका आश्रय लिया है, वह कौनसा आश्रम है? तुमने गृहस्थाश्रमको छोड़ कर यह कौनसा आश्रम ग्रहण किया है? स्पष्ट ही मालूम पड़ता है कि, घोरतर दम्भ ही इसका मूल कारण है। हमें मालूम होता है कि, इन सबका नाश करोगे, सबको नरकमें डालोगे। तुम स्वयं नष्ट हुए हो, औरोंको भी नष्ट करनेमें प्रवृत्त हो; क्या कोई तुम पर शासन करनेवाला नहीं है? हम कहते हैं, सावधान होवो! यह सव छोड़ कर शीघ्र ही गृही बनो, पञ्चयज्ञका अनुष्ठान करो जिससे स्वर्ग प्राप्त कर सको, स्वर्ग ही मनुष्योंके लिये परम सुखास्पद है।"

दुर्वासाने इन वाक्योंको सुन उन पर ऐसी दृष्टि निक्षेप की कि, मानो दोनोंके प्राण तक जला दिये। मानो त्रिलोक भस्म हो गये। उन्होंने रोषारुणनेत्रोंसे नृपतिद्वयको कहा—"तुम्हारा शीघ्र ही निपात हो, निपात हो, तुम यहांसे शीघ्र ही दूर हो जाओ, विलम्ब मत करो। हम समस्त नृपतियोंको दग्ध कर सकते हैं, किन्तु हम यतिधर्मावलम्बी हैं, हम किसीका अनिष्ट नहीं करेंगे, भूतनाथ भगवान् ही तुम लोगोंको इसका फल चखावेंगे।" इतना कह कर वे वहांसे प्रस्थान करनेको उद्यत हुए। यह देख कर दोनों वीरोंने उनका हाथ पकड़ लिया और क्रूरबुद्धिसे उनकी कौपीन छिन्न कर डाली। यह देख कर अन्य यति सव भागने लगे। अनन्तर हंस और डिम्भकने कालप्रेरित हो कर महाक्रोधसे महर्षिके शिष्य, कमण्डलु, दारुमय द्विदल, दण्ड और पात्रसमूहको छिन्न छिन्न कर दिया। इसके वाद दुर्वासा अत्यन्त अपमानित हो कर श्रीकृष्णके पास पहुंचे और उनसे अपना सव हाल कह सुनाया। श्रीकृष्णने सव वृत्तान्त सुन कर कहा—"शीघ्र ही हम इसका प्रतिविधान करेंगे।"

इसके वाद हंस और डिम्भकने राजसूययज्ञके लिए श्रीकृष्णके पास दूत भेजा। श्रीकृष्णने इनके अत्यन्त औद्धत्यको देख कर शीघ्र ही युद्धार्थ इनका आह्वान किया।

मार्गमें दोनों दलोंमें घोर युद्ध हुआ। श्रीकृष्ण हंसके साथ और सात्यकि डिम्भकके साथ घोरतर युद्ध करने लगे। श्रीकृष्ण हंसको वहुत दूर ले गये। हंस रथसे उतर पड़े और कालीयह्रदमें जा कर श्रीकृष्णके साथ घोरतर युद्ध करने लगे। इधर डिम्भक, हंस श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया, यह सुन कर युद्ध छोड़ दिया और यमुनामें प्रवेशपूर्वक अपनी जिह्वा उत्पाटन करके प्राणत्याग किया। इस आत्महत्याके पापसे डिम्भक घोर नरकको गये थे। (हरिवंश २३५।३२०)

डिम्भचक्र (सं० क्ली०) डिम्भ इव चक्रं। मनुष्योंके शुभाशुभ निर्णय करनेका चक्र।

डिम्भज (सं० त्रि०) जिसकी उत्पत्ति अण्डेसे हो।

डिम्भा (सं० स्त्री०) डिम्भ-टाप्। अति शिशु, गोदका बच्चा।

डिल (हिं० पु०) १ गीली भूमिमें उगनेवाली एक प्रकारकी घास, मोथा। २ जनका लच्छा।

डिलिवरी (अं० स्त्री०) डाकखानोंमें आई हुई चिट्ठियों, पारसलों, मनीआर्डरोंका वितरण।

डिल्ला (सं० पु०) १ छन्दविशेष, एक प्रकारका वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें १६ मात्राएँ और अन्तमें भगण होता है। २ एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें दो सगण होते हैं।

डिल्ला (हिं० पु०) ककुस्थ, बैलोंके कंधे पर उठा हुआ कूबड़ा।

डिसमिस (अं० पु०) १ च्युत, बरखास्त। २ खारिज।

डिस्ट्रिब्युट करना (अं० क्रि०) छापेखानेमें कम्पोज किये हुए टाइपोंको केसोंमें अपने स्थान पर रख देना।

डिहरी (हिं० स्त्री०) १ ६००० गाँठोंका एक मान। इसके अनुसार कालीनोंका दाम लगाया जाता है। २ अनाज रखनेका कच्ची मट्टीका एक बड़ा बरतन।

डींग (हिं० स्त्री०) अभिमानकी बात, लम्बी चौड़ी बात, अपनी बड़ाईकी झूठी बात।

डीक (हिं० स्त्री०) मोतियाबिन्द, जाला।

डीग—मध्यभारतमें राजपूतानेके अन्तर्गत भरतपुर राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २७° २८´ उ० और देशा० ७७° २०´ पू० भरतपुरसे २० मील और मथुरासे २२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १५४०९ है। यहाँ एक दुर्ग है। यह नगर चारों ओर जलाभूमिसे घिरा है। इसलिये वर्षमें अधिकांश समयही शत्रुके लिये दुर्गम रहता है। अङ्गरेजोंके अधिकारमें आनेके पहले इसका दुर्ग अत्यन्त दुर्जय था। अब भी मथुरासे २४ मील पश्चिममें उसका भग्नावशेष विद्यमान है। उस दुर्गमें भग्नराजप्रासाद आज भी देखा जाता है। इसकी गठन-प्रणाली अत्यन्त दृढ़ और सुन्दर है तथा इसके स्तम्भ प्राचीरादि मनोहर और सूक्ष्म शिल्पकार्ययुक्त चित्रोंसे चित्रित हैं। यह नगर बहुत प्राचीन है। बहुतसे पुराणादिमें इसका उल्लेख है। १७७६ ई०में नजाफखाँने यह नगर जाटोंसे जीता था। किन्तु उनकी मृत्युके बाद यह नगर पुनः भरतपुरके राजाके हाथ लगा। १८०४ ई०के १३ नवम्बरको जब अंगरेजी सेनाने होलकरका अनुसरण कर उसे परास्त किया, तब उसकी बहुतसी सेनाने डीगके दुर्गमें आश्रय लिया था। जनरल फ्रेजर (General Fraser) से परिचालित अङ्गरेजी सेनाने डीगको घेर लिया। एक माससे अधिक घेरे जानेके बाद १८०४ ई०के २४ दिसम्बरको यहांका दुर्ग और नगर अङ्गरेजके अधिकारमें आ गया। डीग नगरका राजप्रासाद सौन्दर्य और शिल्पनैपुण्यके लिये विख्यात है। बुदनसिंहने यहाँका दुर्ग बनाया था। भरतपुर दुर्ग अधिकृत होने पर डीगका सुदृढ़ नगर-प्राचीर तोड़ डाला गया। भरतपुर देखो।

डीठ (हिं० स्त्री०) १ दृष्टि, नजर। २ देखनेकी शक्ति। ३ ज्ञान, सूझ।

डीठबन्ध (हिं० पु०) १ इन्द्रजाल, नजरबन्दी। २ इन्द्रजाल करनेवाला, जादूगर।

डीतर (सं० त्रि०) डी-क्विप् तत स्तरप्। अनुगामी, जो दूसरोंका जल्दीसे पीछा करता हो।

डीन (सं० क्ली०) डी-भावे क्त। १ पक्षियोंकी गति, उड़ान, ऊपर नीचे आदि इसके २६ भेद किये गये हैं। खगपति देखो। २ आगम शास्त्र।

"डामरं डमरं डीनं श्रुतं काली विलासकं।" (मुण्डमालात०)

डीनडीनक (सं० क्ली०) डीनेन सह डीनकं। पक्षियोंकी गति।

डीनावडीनक (सं० क्ली०) डीनेन सह अवडीनकं। पक्षियोंकी गति।

डीमडीम (हिं० पु०) १ अहङ्कार, ऐंठ, ठसक। २ आडम्बर, धूमधाम, ठाठबाट।

डील (हिं० पु०) १ शरीरका विस्तार, कद। २ शरीर, देह। ३ व्यक्ति, प्राणी, मनुष्य।

डीला (हिं० पु०) पश्चिमोत्तर भारतमें मिलनेवाला एक प्रकारका नरकट।

डीह (फा० पु०) १ आबादी, गाँव, बस्ती। २ भग्नावशेष, उजड़े हुए गाँवका टीला, खण्डहर। ३ ग्राम देवता।

डीहदारी (हिं० स्त्री०) जमींदारोंका एक तरहका हक। इसमें वे अपनी जमीन बेच सकते हैं। खरीदार उनको गाँवका कोई अंश देता है जिससे उनका निर्वाह हो।

डुक (हिं० पु०) घुँसा, मुक्का।

डुकिया (हिं० स्त्री०) डोकिया देखो।

डुकियाना (हिं० क्रि०) घुंसा लगाना, मुक्का जमाना।

डुगडुगाना (हिं० क्रि०) चमड़ेसे मढ़े हुये बाजेको लकड़ीसे बजाना।

डुगडुगी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका बाजा, डौंगी, डुग्गी।

डुग्गी (हिं० स्त्री०) डुगडुगी देखो।

डुङ्गरी (सं० स्त्री०) लौकी, कद्दू।

डुड़का (हिं० पु०) एक रोग जो प्रायः धानके पौधेमें हो हुआ करता है।

डुण्डु (सं० पु०) द्विमुख सर्प, दो मुँहवाला साँप।

डुण्डुभ (सं० पु०) डुण्डुः सन् भाति-ला-क। सर्पविशेष, पानीमें रहनेवाला साँप। इसमें बहुत कम विष होता है, डेड़हा साँप, ढोढ़ा साँप। इसका संस्कृत पर्याय-राजिल, दुण्डुभ, नागभृत् और डुण्डु है।

डुण्डुल (सं० पु०) डुण्ड् इति शब्दं लाति ला-क। क्षुद्रपेचक, छोटा उल्लू। पर्याय—क्षुद्रोलूक, शाकुनेय, पिङ्गल, वृक्षाश्रयी, बृहद्रावी, विशालाक्ष और भयङ्कर।

डुन्दुक (हिं० पु०) १ हरिणभेद, एक प्रकारका हरिण। २ पक्षिभेद, पानीमें रहनेवाला एक पक्षी।

डुप्ले—इनका असली नाम था फ्रान्सिस जोसेफ डुप्ले। भारतवर्षीय फरासीसी-अधिकारमें प्रसिद्ध शासनकर्ता और सेनापति। ये फरासी इष्टइण्डियन कम्पनीके अन्यतम डिरेक्टरके पुत्र थे।

थोड़ी ही उम्रमें डुप्लेने भारतीय फरासीसी अधिकारके प्रधान शहर पूंदिचेरीकी मन्त्रिसभाके प्रधान सदस्यका पद प्राप्त कर लिया। दश वर्ष इस पद पर कार्य करनेके उपरान्त १७३० ई०में ये चन्दननगरकी कोठीके अध्यक्ष नियुक्त हुए। इस कामको अत्यन्त दक्षताके साथ करनेसे शीघ्र ही ये कम्पनीके अध्यक्षोंके विश्वासभाजन हो गये। १७४२ ई०में ये शासनकर्ता नियुक्त हो कर पूंदिचेरी भेजे गये। डुप्ले अब तक फरासीसी इष्ट-इण्डिया कम्पनीकी वाणिज्यवृद्धिके लिए यथासाध्य चेष्टा करते आ रहे थे और इसमें इन्होंने काफी सफलता भी पाई थी। किन्तु इस पदको पा कर उनका मन दूसरी तरफ चला गया। ये स्वभावतः अतिशय उच्चाकांक्षी और अहङ्कारी, किन्तु असाधारण प्रतिभाशाली थे। पूंदिचेरीके शासनकर्त्ता हो कर ये प्राच्यभूमिमें फरासीसी अधिकार और फरासीसी प्रभाव बद्धमूल करनेके लिए कल्पना करने लगे। उस समय इस देशमें कई जगह वृटिश और ओलन्दाजोंकी भी कोठी बन गई थी तथा वाणिज्य व्यापारमें भी ये लोग खूब चढ़े बढ़े थे। डुप्लेने विचारा कि, वाणिज्यके विषयमें इनके साथ प्रतियोगिता करके वे कभी भी अपने उद्देश्यको कार्यमें परिणत न कर सकेंगे। इसलिए ये उपायान्तर अनुसन्धान करने लगे। उन्होंने अपने अभ्यस्त बुद्धिबल और नैपुण्यगुणके सहारे शीघ्र ही देशीय लोगोंकी रीति नीति जान ली और देशीय राज्योंकी राजनीतिके अन्तस्तलमें प्रवेश कर मनस्कामना सिद्ध करनेके लिए उपाय निकाल लिया।

इस समय मुगलसाम्राज्यका ध्वंस अवश्यभावी हो गया था। इनके अधीनस्थ सूबेदारगण अपने अपने अधिकृत प्रदेशोंका स्वाधीन भावसे शासन करते थे और नवाबगण भी सूबेदारोंके दृष्टान्तका अनुकरण करते थे। वास्तवमें उस समय मुगल-साम्राज्यमें सर्वत्र विशृङ्खला फैल गई थी। दुर्बल शासनकर्त्ता किसी बलवान् सूबेदारके आश्रयमें और सहायतासे अपनी स्वाधीनता प्रचारित करते थे। फरासीसी गवर्नर डुप्ले भी इस समय अपनी चिरपोषित आशा फलवती करनेके लिए सचेष्ट हुए। सौभाग्यवश उनकी सहधर्मिणीने इस विषयमें उनकी यथेष्ट सहायता पहुँचाई। स्त्रीकी सहायतासे डुप्लेने अपनी मनोरथ पूर्ण करनेका सहज और उत्तम सुयोग निकाला। उनकी स्त्रीने भारतवर्षमें ही जन्म लिया था एवं भारतमें ही प्रतिपालित और शिक्षित हुई थीं। बहुतसी भारतीय भाषा भी वे जानती थीं, इसलिए उन्होंने अपने स्वामी और अधिवासिवर्गका मनोभाव प्रकाशन और परामर्शका पथ सुगम कर दिया था। इस तरहसे अपनी सहधर्मिणीकी सहायतासे डुप्लेने फरासीसी राज्य और क्षमता वृद्धि करनेके उपायोंको गुप्त भावसे परिपुष्ट करने लगे।

१७४४ ई०में यूरोपमें फरासीसी और अंग्रेजोंमें समरानल प्रज्वलित हुआ, साथ ही इस देशमें भी दोनों कम्पनियोंमें मुठभेड़ हो गई। लाबोर्डोनिने फरासीसी रणपोतके अध्यक्ष हो कर भारतमें आये। वे भी फरासीसी

क्षमतावृद्धिके एकान्त पक्षपाती थे ; उन्होंने सोचा था कि, डुप्लेके साथ कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हो कर उद्देश्यको कार्यमें परिणत करेंगे। किन्तु पूँदिचेरी पहुँच कर वे निराश हो गये। पूँदिचेरी पहुँचने पर गवर्नर डुप्लेने उनकी अन्तःकरणसे अभ्यर्थना नहीं की। लाबोर्डोनिके प्रति उनकी ईर्षा हुई है, इस बातके लक्षण पहलेसे ही दिखाई देने लगे। डुप्ले आशङ्का करने लगे कि, यदि उन पर कभी विपत्ति पड़ेगी, तो लाबोर्डोनि उनका स्थान अधिकार कर लेंगे। उन्होंने देखा कि, युद्ध आदि उनको अधिकारसीमामें सङ्घटित नहीं होंगे ; पक्षान्तरमें लाबोर्डोनिको अनुकूल परामर्श और सैन्य तथा अपने प्रयत्नों द्वारा सहायता करनेके लिए कर्तृपक्षने उनको आदेश दिया है। लाबोर्डोनिको क्षमतासे ये अत्यन्त द्वेषपरतन्त्र हो उठे और क्रमशः उनके साथ शत्रुताचरण करने लगे। इस शत्रुभावने ही लाबोर्डोनि और डुप्लेका सर्वनाश किया तथा प्रतिकूल कार्योंके कारण भारतसे फरासीसी क्षमता विलुप्त हुई।

कुछ भी हो, लाबोर्डोनिने पूर्वसिद्धान्तानुसार १८ सेप्टेम्बरको मद्राजके दुर्ग पर चढ़ाई कर दी और २५ तारीखको दुर्ग अधिकार कर लिया। ४४ लाख रुपये देने पर ३ मास बाद फरासीसी सेना मद्राज परित्याग करेगी, इस नियम पर मद्राज दुर्गवासी अंग्रेजोंने लाबोर्डोनिके पास आत्मसमर्पण किया। किन्तु डुप्लेने इस सन्धि पर विशेष आपत्ति की। उनका कहना था कि, "मद्राज हमारे शासित प्रदेशके अन्तर्भुक्त है, इसलिए एकमात्र हम ही उस विषयकी मीमांसा कर सकते हैं।" इसी समय आर्काटके नवाबने डुप्लेके पास एक इस आशयका पत्र भेजा कि—"हमारे राज्यमें रह कर हमारी बिना अनुमतिके फरासीसियोंको मद्राज पर आक्रमण करनेका कोई भी हक नहीं था।" डुप्लेने नवाबको उत्तर दिया कि, "उक्त नगर हमारे हस्तगत होते ही हम आपको लौटा देंगे।" इसके बाद डुप्लेने लाबोर्डोनिको लिखा कि, "आप मद्राजके दुर्गमें स्थित व्यक्तियोंके साथ सन्धिके किसी नियम पर अपना मत न देवें ; क्योंकि उक्त विषय पूँदिचेरीके शासनकर्त्ताका ही विचार्य है। किन्तु इस पत्रके पहुंचनेके पहले ही दुर्ग लौटा देनेकी बात पक्की हो गई थी। लाबोर्डोनिको आत्ममर्यादाका ज्ञान यथेष्ट था, जिस नियमको उन्होंने स्वीकार किया था, उसको तोड़ना उन्होंने हीन जनोचित कार्य समझा। डुप्लेको नगर समर्पणके नियम स्थिर करनेकी क्षमता है, इस बातको वे मान न सके, पक्षान्तरमें उन्होंने डुप्लेको लिख भेजा कि, यह उनकी नितान्त दाम्भिकता और परस्परके कार्यकी प्रतिकूलताके सिवा और कुछ नहीं है। इससे डुप्ले क्रोधान्ध हो गये और लाबोर्डोनिको कारारुद्ध कर अपना प्रभुत्व प्रकट करनेकी चेष्टा करने लगे। पूँदिचेरी नगरमें उन्होंने एक षड़यन्त्र रचा ; पूँदीचेरीके फरासीसी अधिवासियों द्वारा एक इस आशयका आवेदनपत्र लिखवाया कि, 'अर्थ ले कर मद्राज नगर छोड़ देनेसे फरासीसियोंकी हानि होनेकी सम्भावना है।' लाबोर्डोनिने भी अपना यह दृढ़सङ्कल्प डुप्लेको जतलाया कि, हमारी सम्मतिके अनुसार प्रत्येक कार्य न होनेसे हम मद्राज नहीं छोड़ेंगे। इधर डुप्ले अपने उद्देश्यको कार्यमें परिणत करनेके लिये जब तक भलीभाँति प्रस्तुत न हो सकें, तब तक मद्राज जिससे अंग्रेजोंके हाथ न सौंपा जाय, उसके लिए विविध उपायोंका अवलम्बन करने लगे। इस समय फ्रान्ससे और भी कई एक जङ्गी जहाज आ पहुंचे। डुप्ले और लाबोर्डोनिने यदि मिल कर कार्य करते, तो वे अब तक अंग्रेजोंके समस्त स्थान अधिकृत कर सकते थे। अंग्रेजोंके सौभाग्यवश ही उस समय ये आपसी झगड़ेमें फँस गये।

कुछ दिन बाद डुप्ले लाबोर्डोनिके प्रस्तावानुसार कार्य करनेके लिए तैयार हुए। लाबोर्डोनने डुप्लेकी बात पर विश्वास करके मद्राज परित्याग किया।

उधर आर्काटके नवाब आनवारउद्दीनने अब तक मद्राज अपने हाथमें न आते देख, १०,००० सेनाके साथ अपने पुत्र महाफजखाँको वलपूर्वक उक्त नगर अधिकार करनेके लिए भेजा। डुप्लेने कूटनीतिका अवलम्बन कर उनसे सन्धिका प्रस्ताव किया। सन्धिके प्रस्तावको ले कर डुप्लेके जो दो दूत गये थे, उनको महाफजखाँने कैद कर लिया। डुप्ले इस पर अत्यन्त असन्तुष्ट और क्रुद्ध हुए। रणवाद्य बज उठा। फरासीसियोंकी बन्दूकोंसे

बहुतसी मुगलसेनाने प्राण खो दिये, अवशिष्ट सेना भी इतस्ततः भाग गई। महाफजने अपनी सेनाको एकत्र करके मैलापुर नामक स्थानमें शिविर स्थापित करनेका हुक्म दिया। इस स्थान पर वे सम्मुख और पश्चात् दोनों तरफसे फरासीसी सेना द्वारा आक्रान्त और पराजित हो कर भाग गये।

डुप्ले अब एक घृणित कार्यमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने मद्राजके विषयमें लाबोर्डोनेके साथ की हुई किसी भी प्रतिज्ञाका पालन नहीं किया। १७४६ ई०के ३० अक्टोबरको उन्होंने अङ्गरेजोंको सूचित किया कि उनकी समस्त सम्पत्ति फरासीसी-गवर्मेंटके खजानेमें शामिल कर ली गई और वे या तो युद्धके कैदियोंकी तरह रक्खे जांयगे या पूँदिचेरीको भेज दिये जायँगे। इसके बाद किसी किसीने भाग कर सेण्टडेभिड दुर्गमें आश्रय लिया; तथा अवशिष्ट लोगोंको पकड़ कर पूँदिचेरी भेज दिया गया। साथ ही मद्राजके अङ्गरेज शासनकर्त्ता कैद किये गये।

अब डुप्ले, अंग्रेजोंको उपकूल-प्रदेशसे सम्पूर्ण रूपसे दूरीभूत करनेके अभिप्रायसे सेण्टडेभिड-दुर्गको हस्तगत करनेकी चेष्टा करने लगे। डुप्लेने मद्राज अधिकार कर वहां पराडिस नामक एक सुइज़ारलैण्डवासीको शासनकर्त्ता नियुक्त किया। डुप्लेके आदेशानुसार डेभिड दुर्ग पर आक्रमण करनेके लिये ३०० यूरोपीय सेनाके साथ पराडिस पूँदिचेरीकी तरफ जा रहे थे, मार्गमें महाफजखाँने ३००० अश्वारोही और २००० पदातिक सेना ले कर उन पर आक्रमण किया। डुप्लेने खबर पाते ही वहां एक दल सेना भेज दी। वह फौज पराडिसको निरापद पुँदिचेरी ले आई। दिसम्बर मासमें बेरीके अधीन सेण्टडेभिड-दुर्ग अधिकार करनेके लिये कुछ सेना अग्रसर हुई। ८ दिसम्बरको वह फौज दुर्गके निकटवर्ती किसी स्थानको अधिकृत कर वहां विश्राम कर रही थी कि, इतनेमें महाफजखाँ और महम्मद अलीने सहसा आ कर उन पर आक्रमण किया, जिससे फरासीसी फौज डर कर भाग गई। इस सामरिक सज्जाके व्यर्थ होनेसे आकस्मिक आक्रमणसे दुर्ग अधिकार करनेके लिए डुप्लेने गुप्त रीतिसे ५०० सेना भेज दी। किन्तु इस बार भी डुप्लेकी आशा फलवती न हुई। डुप्ले इससे जरा भी भीत वा हताश न हुए। उन्होंने फिर विभिन्न उपाय अवलम्बन किये। उनके आदेशसे फरासीसी सेना मद्राजके निकटवर्ती नवाब-शासित प्रदेशोंको लूटने लगी। उन्होंने यह अच्छी तरह समझ लिया था—कि अङ्गरेजोंकी मित्रतासे विशेष कुछ लाभ नहीं—यह मालूम होते ही नवाब अङ्गरेजोंसे फिर कुछ सम्बन्ध न रक्खेंगे। बहुत थोड़े समयमें ही नवाबके साथ फरासीसियोंकी सन्धि हो गई। सेण्टडेभिड दुर्गसे पुनराहूत नवाब-सेनाके साथ महाफजखाँ पुंदिचेरीको भेजे गये। डुप्लेने नवाब-पुत्रकी अति समारोहसे अभ्यर्थना की। डुप्ले फिर डेभिडदुर्ग अधिकार करनेकी कल्पना करने लगे। १७४७ ई०की १९वीं फरवरीको नवाबकी सेना तथा फरासीसी सेनाके अध्यक्ष हो कर पराडिस अग्रसर हुए। सौभाग्य वशतः इस समय अङ्गरेजोंके सहायतार्थ बङ्गालसे एक रणपोत आ पहुंचा। फरासीसी सेनाका वार निष्फल हुआ, वह लौट आई। १७४८ ई०में ऐसी अफवाह सुनी गई कि, डुप्ले शीघ्र ही डेभिड़ दुर्ग पर पुनः आक्रमण करेंगे। इस समय अंग्रेज-शिविरमें एक विषम षड़यन्त्र प्रकाशित हुआ। डुप्ले स्वभावसिद्ध धूर्तताके साथ अंग्रेज-पक्षीय देशीय सेनाको फरासीसी पक्ष अवलम्बन करनेको प्रलोभित कर रहे थे। अंग्रेज गवर्नर इस विषयमें यथोचित सतर्क हुए। डुप्लेने बार बार पराजित होते हुए भी पुनः दुर्ग आक्रमण करनेके लिए सेना भेजी, किन्तु इस बार भी कृतकार्य न हो सके। २९ जुलाईको इङ्गलैण्डसे कुछ जङ्गी जहाजोंने आ कर सेण्टडेभिडदुर्गके पास लंगड़ डाल दिये। अंग्रेजोंके दलकी वृद्धि होते देख नवाब पुनः अंग्रेजोंसे मिल गये। अब अंग्रेजोंने साहसी हो कर मिलित सेना द्वारा पुँदिचेरी घेर लिया। किन्तु कुछ दिन बाद अंग्रेजी सेना अवरोध छोड़ कर डेभिड-दुर्गमें चली गई। अंग्रेजोंकी पराजयसे डुप्ले चारो तरफ फरासीसी प्रभाव घोषित करने लगे। उन्होंने देशीय राजन्यवर्गको, यहां तक कि मुगल-सम्राट्के पास भी अंग्रेजोंकी भीरुता लिख भेजी। इतने पर भी वे

शान्त न हुए। सहसा मद्राज हस्तच्युत न हो, इस बातकी भी वे पूरी कोशिश करने लगे। किन्तु इसी समय यूरोपमें अंग्रेज और फरासीसियोंकी सन्धि होनेके कारण यहां भी सन्धि हो गई। अंग्रेज मद्राजको पुनः प्राप्त हुए।

युद्धके समय डुप्लेने देखा कि, अति अल्पसंख्यक यूरोपीय सेना बहुसंख्यक देशीय सेनाको सहजमें ही पराजित कर सकती है। इससे उनकी राज्याधिकारकी लालसा और भी बढ़ गई। देशीय राजा उस समय परस्पर शत्रुताचरणमें व्याप्त थे। उनमेंसे एकका पक्ष ले कर डुप्ले फरासीसी क्षमताको विस्तृत करनेमें प्रवृत्त हुए। १७४१ ई०में चान्दसाहबने त्रिचिनपल्लीकी विधवा रानीको धोखेमें डाल कर उक्त नगर अधिकार कर लिया था। रघुजी भोंसलेने चान्दसाहबको उपयुक्त दण्ड देनेके लिए त्रिचिनपल्लीको घेर लिया। चान्दसाहबने अपनी स्त्री पुत्रोंको गुप्तभावसे डुप्लेके आश्रयमें रख कर रघुजीके सामने आत्मसमर्पण किया, रघुजीने उनको कैद करके सतारा भेज दिया। पहले कहा जा चुका है कि, आर्काटके नवाब आनवारउद्दीन् स्वार्थसिद्धिके लिए कभी अंग्रेजों और कभी फरासीसियोंका पक्ष अवलम्बन कर रहे थे। डुप्ले अब उसका बदला लेनेका मौका ढूंढ़ने लगे। मौका भी हाथ आया। जब चान्दसाहबकी स्त्री पुँदीचेरीमें थीं, तब डुप्लेकी स्त्रीने उनसे गाढ़ी मित्रता जोड़ ली थी। वे डुप्लेकी स्त्रीसे अपने स्वामीकी मुक्तिके प्रार्थना करने लगीं, डुप्लेने अपनी स्त्रीसे इस बातको सुन कर सोचा कि, चान्दसाहब आनवारके प्रतिद्वन्द्वी हैं और प्रजासाधारण आनवारकी अपेक्षा चान्दसाहबके अधिक वशमें हैं। चान्दसाहबका छुटकारा होनेसे सभी उनको नवाब रूपमें मानने लगेंगे और फरासीसी सेनाकी सहायतासे वे सिंहासन अधिकार कर सकेंगे। साथ ही फरासीसियोंका बल भी बढ़ जायगा। ऐसी कल्पना करके उन्होंने चान्दसाहबकी स्त्रीके द्वारा गुप्तरीतिसे ७ लाख रुपये रघुजीके पास भिजवा दिये; चान्दसाहब मुक्त हो कर पुंदिचेरीके तरफ चल दिये। इसी समय निजाम उल-मुल्कको मृत्यु होनेसे उनके सिंहासनको ले कर अत्यन्त गड़बड़ी होने लगी। उनके दौहित्र मजफरजङ्ग सिंहासनका दावा करते थे। उनको राज्य मिलनेकी कुछ भी सम्भावना न थी। किन्तु चान्दसाहबने आ कर उनका साथ दिया, और फरासीसी सेना उनका पृष्ठपोषण करती है यह बात भी उनसे कही। इससे मजफरको साहस हुआ, वे चान्दसाहबके साथ मिल कर आनवारके साथ युद्ध करने लगे। युद्धमें आनवार निहत हुए और उनके पुत्र महाफज कैद कर लिए गये। मजफर और चान्दसाहबने यथाक्रमसे सूबेदार और नवाबकी उपाधि ग्रहण कर आर्काटमें प्रवेश किया। इसके बाद वे पुँदिचेरी पहुंचे; डुप्लेने अपनी अभिसन्धि पूर्ण करनेके अभिप्रायसे विशेष यत्नके साथ उनकी अभ्यर्थना की। चान्दसाहबने पुंदिचेरीके निकटवर्ती ८१ गाँव फरासीसियोंको दिये। थोड़े ही दिन बाद डुप्लेने चान्दसाहब और मजफरको त्रिचिनपल्ली अवरोध करनेका परामर्श दिया। इस स्थानमें आनवारके पुत्र महम्मदअलीने आश्रय लिया था। चान्दसाहब त्रिचिनपल्ली न जा कर पहले तञ्जोर चले गये। इस मौके पर नाजिरजङ्ग (मजफरके प्रतिद्वन्द्वी) ने आ कर आर्काट अधिकार कर लिया। चान्दसाहब और मजफरको इस बातकी खबर भी न थी; डुप्लेने ही पहले उनको नाजिरजङ्गके आक्रमणका संवाद दिया। वे पुंदिचेरीकी तरफ अग्रसर हुए।

फरासीसियोंको चान्दसाहब और मजफरका पक्ष अवलम्बन करते देख अंग्रेजोंने भी महम्मदअली और नाजिरजङ्गका पक्ष अवम्बन करना शुरू कर दिया। नाजिरजङ्गकी बहुसंख्यक सेनाके साथ मजफर पर आक्रमण करनेके लिए आते देख डुप्लेने मजफर और चान्दकी सहायताके लिए कुछ फरासीसी सेना भेजी। किन्तु डुप्लेके साथ सैनिक विभागके कर्मचारियोंका उतना सद्भाव न था। किसी अप्रकाश्य कारणसे फरासीसी सेना युद्धक्षेत्रसे चल दी। मजफरके आत्मसमर्पण करने पर नाजिरजङ्गने उनको शृङ्खलाबद्ध किया, चान्दसाहबने साहसके साथ युद्ध करते करते अन्यत्र जा कर आश्रय लिया।

फरासीसी सेनाके बिना युद्ध किये युद्धक्षेत्र छोड़ कर चले आनेसे डुप्ले भविष्यत्में विपत्तिकी आशङ्का करने लगे। वे कौशलसे अपने प्रभावको अक्षुण्ण रखनेके

लिए यत्नवान् हुए। चर नियुक्त करके डुप्लेने जाना कि, नाजिरजङ्गकी सेना विद्रोह भावसे शून्य नहीं है। डुप्लेने नाजिरजङ्गके साथ सन्धि करेंगे ; ऐसा प्रस्ताव कर डुप्लेने उनके पास कुछ दूतोंको भेजा। डुप्लेने उन दूतोंसे नाजिरजङ्गकी सेना विद्रोही हो जाय, उस विषयमें चेष्टा करनेके लिए भी कह दिया। दूत भी तदनुरूप कार्य करके लौट आये।

नाजिरजङ्गके आदेशसे फरासीसियोंकी एक वाणिज्य-कुटी लूट ली गई थी। इसका बदला लेनेके लिए डुप्लेने १७५० ई०में मसलिपत्तन अधिकार करनेके लिए जल-पथसे एक दल सेना भेज दी। उसने वह स्थान अधिकृत कर लिया। महम्मद अली डर कर भाग गये। इस समय फरासीसियोंके प्रसिद्ध सेनापति बूसिने चान्दसाहबके साथ मिल कर गिञ्जी-दुर्ग हस्तगत कर लिया।

नाजिरजङ्गने फरासीसियोंकी कृतकार्यसे अत्यन्त भीत हो कर सन्धि करनेके लिए पुँदिचेरीको दो दूत भेज दिये। डुप्लेने निम्नलिखित प्रस्तावानुसार सन्धि करना मंजूर किया-"मजफरजङ्ग मुक्त किये जाय, चान्दसाहबको कर्णाटकी नवाब उपाधि मिले तथा मसलिपत्तन और उसके अधीन प्रदेशसमूह फरासीसियोंको दिये जांय।" नाजिरजङ्गने उक्त नियमोंमें आबद्ध होना स्वीकार नहीं किया। वे युद्धके लिये तैयार हुए। डुप्लेने उनके प्रधान सर्दारोंके साथ जो षड़यन्त्र रचा था, नाजिरजङ्गको उससे जरा भी वाकिफ़ न थे। डुप्लेने टोसे (Touche)को नाजिरजङ्गके साथ युद्ध करनेके लिए आदेश दिया। युद्धमें फरासीसी सेनाने विजय पाई, नाजिरजङ्ग मारे गये और मजफरजङ्गको सूबेदारकी उपाधि मिली। मजफरजङ्गने मसलिपत्तन और उसके अधीन प्रदेश-समूह फरासीसियोंको तथा २० लाख रुपये डुप्लेको दिये। इस समय और एक विपत्ति आ खड़ी हुई। मजफरने डुप्लेसे कहा—'नाजिरजङ्गके अधीन जो ३ सर्दार आपके साथ षड़यन्त्रमें लिप्त थे, वे दावा करते हैं कि उनको उनके अधिकृत प्रदेशके लिए कर माफ कर दिया जाय और नाजिरजङ्गका धन उनमें बाँट दिया जाय। डुप्लेने इस विषयमें मध्यस्थ हो कर अनेक वादानुवादके बाद एक सन्धि कर दी।

इसके बाद डुप्लेने अपनेको कृष्णा नदीके दक्षिणस्थ भूभागका मुगल-प्रतिनिधि बतलाया। उनके आदेशानुसार उक्त प्रदेशका समस्त कर डुप्लेके जरिये मुगल-सम्राट्के पास भेजा जाता था तथा पुँदिचेरीमें जो सिक्के बनते थे, उसके सिवा अन्य सिक्के कर्णाट प्रदेशमें नहीं चलते थे। १७५१ ई०में मजफरजङ्गके निहत होने पर डुप्ले सलावतजङ्गको सूबेदार मान कर उनका पक्ष समर्थन करने लगे। इस समय महम्मदअली त्रिचिनपल्लीमें ठहरे हुए थे। डुप्लेने फरासीसी सेनाके जरिये उनको हटानेके लिए चांदसाहबको परामर्श दिया। अंग्रेजोंने अभी तक किसीका भी पक्ष नहीं लिया था। फरासीसियोंके प्रभावसे ईर्षान्वित हो कर उन लोगोंने अली महम्मदका पक्ष ग्रहण किया। अबसे डुप्लेकी सेना प्रायः सभी युद्धमें पराजित होने लगी। चांदसाहब आखिर जानसे भी हाथ धो बैठे। चांदसाहबकी मृत्युके बाद डुप्लेने स्वयं नवाबकी उपाधि ग्रहण की। कुछ दिन बाद वे राजासाहबको नवाबकी तरह सन्मान करने लगे। किन्तु मुरतजाअलीने ८०००००) रुपये दे कर शीघ्र ही डुप्लेसे नवाबकी उपाधि ले ली। १७५२ ई०में अंग्रेजी सेनाने फरासीसियोंका गिञ्जि-दुर्ग आक्रमण किया, परन्तु पराजित हो कर उसे भागना पड़ा। इससे डुप्लेके हृदयमें यथेष्ट आशाका सञ्चार हुआ, पर बाहार नामक स्थानमें फरासीसीसेनाके विशेषरूपसे पराजित होनेसे डुप्लेका आशालता सूख गई। कुछ भी हो डुप्ले बिल्कुल ही निरुत्साहित नहीं हुए। उन्होंने देखा कि, यह युद्ध सहजमें नहीं निबटेगा; इसलिए वे सेना संग्रह करने लगे। १७५३ ई०में डुप्लेके दुर्भेद्य कौशलसे महाराष्ट्र और महिसुरकी सेनामें अंग्रेजोंका पक्ष छोड़ कर फरासीसियोंका साथ दिया। पुँदिचेरीमें रणवाद्य बज उठा। इस युद्धमें कभी फरासीसियों और कभी अंग्रेजोंकी जय होने लगी। १७५४ ई० तक इसी तरह युद्ध होता रहा।

इस तरहके युद्धविग्रहसे दाक्षिणात्यमें फरासीसियोंका प्रभाव और अधिकार बढ़ता तो जाता था, पर अधिक अर्थव्ययके कारण कम्पनीको विशेष कुछ लाभ नहीं हुआ। इसलिए ऊपरवाले डुप्लेको युद्ध बन्द करनेके

लिए पुनः पुनः आदेश दे रहे थे। यद्यपि डुप्लेका अभिप्राय दूसरा था, तथापि ऊपरवालोंके आदेशसे डर कर १७५४ ई०के प्रारम्भमें ही उन्होंने मद्राजको सन्धिका प्रस्ताव भेज दिया। मद्राज-गवर्मेण्टने भी सन्धिके प्रस्तावका अनुमोदन करके नियमादि स्थिर करनेके लिए प्रतिनिधि भेज दिया। दोनों पक्षके प्रतिनिधियोंने कुछ दिन वादानुवाद करके अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया।

फरासीसी इष्ट इण्डिया कम्पनीके डिरेक्टरगण डुप्लेसे अत्यन्त असन्तुष्ट थे। वे शान्ति चाहते थे उन लोगोंने डुप्लेको अनुपयुक्त समझ कर मि० गडिहो (M. Godeheu)को पुँदिचेरीका गवर्नर नियुक्त करके भेज दिया। गडेहोने १७५४ ई०को २री अगस्तको भारतमें आ कर डुप्लेसे शासनभार ग्रहण किया। इसके बाद दो महीने तक डुप्ले पुँदिचेरी नगरमें रहे थे। दो महीने तक उन्होंने अपनेको कर्णाटका नवाब समझ कर बड़े ठाट-बाटसे उमदा उमदा पोशाक पहन कर भ्रमण किया था।

कुछ भी हो, उन्होंने फ्रान्स जा कर यथोपयुक्त सम्मान नहीं पाया। इस देशमें रह कर फरासीसी राज्यके विस्तारके लिए उन्होंने अपनी निजी-सम्पत्ति भी खर्च की थी। फरासीसी गवर्मेण्टने उनकी कुछ भी वृत्ति नहीं दी; सिर्फ उनके महाजनोंके हाथसे रिहाई-नामा (Letter of protection) का प्रचार करा कर उनकी रक्षा की। इन्होंने अपने रुपये वसूल करनेके लिए न्यायालयका आश्रय लिया: किन्तु उसके फैसलेसे पहले ही इनका देहान्त हो गया।

डुप्ले अत्यन्त प्रतिभाशाली सुदक्ष राजनीतिकुशल शासनकर्त्ता थे। ये अत्यन्त उच्चाकांक्षी, अहङ्कारी और पराक्रमप्रिय व्यक्ति थे। चारित्रकी वास्तविक उन्नति पर इनका उतना ध्यान नहीं था। इन्होंने फरासीसी राज्य विस्तारके लिए सब तरहके उपायोंका अवलम्बन किया था। भारतमें फरासीसी अधिकारके साथ डुप्लेके नामका चिर-सम्बन्ध है।

डुबकी (हिं० स्त्री०) १ डुब्बी, गोता, बुड़की। २ एक प्रकारकी बिना तली बरी। यह पीठीकी बनी होती है। ३ एक प्रकारका बटेर।

डुबवाना (हिं० क्रि०) डुबानेका काम किसी दूसरेसे कराना।

डुबाना (हिं० क्रि०) १ मग्न करना, गोता देना, बोरना। २ नष्ट करना, सत्यानाश करना, बरबाद करना।

डुबाव (हिं० पु०) अथाह, डूबने भरकी गहराई।

डुबोना (हिं० क्रि०) डबोना देखो।

डुब्बी (हिं० स्त्री०) डुबकी देखो।

डुभकौरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बिना तली बरी। यह पीठीकी बनी होती है और इसीके झोलमें पकाई तथा डुबा कर रखी जाती है।

डुमई (हिं० स्त्री०) कछारमें होनेवाला एक प्रकारका चावल।

डुमरावँ—१ शाहाबाद जिलेके अन्तर्गत एक जमींदारी। प्रायः ७५८ वर्गमील क्षेत्रफल ले कर यह संगठित हुआ है।

यहां डुमरावँके राजवंश रहते हैं। वे पंमार नामक राजपूत कुलोद्भव हैं। उनके पूर्वपुरुष उज्जयिनी नगरमें वास करते थे, वहींसे आ कर वे मध्यभारतमें रहने लगे। महाराज सिन्धोलसिंहने सबसे पहले विहारमें वास किया। वे अपने पुत्र भोजसिंहको राज्य-शासनका भार सौंप गये। भोजसिंहके नामानुसार उनका अधिकृत जनपद भोजपुर नामसे विख्यात हुआ। कालचक्रसे यह राजवंश कई एक शाखा प्रशाखायोंमें विभक्त हो गया। उनमेंसे प्रधान वंश अपने पूर्वपुरुषकी राजधानी डुमरावँमें रहने लगी। एक शाखा बक्सर और दूसरी शाखा जगदीशपुरमें जा रहने लगीं।

इसी वंशमें राजा नारायणमल्ल उत्पन्न हुए। उन्होंने १६०५ ई०में सम्राट् जहाङ्गीरसे राजाकी उपाधि प्राप्त की। उनके बाद यथाक्रम वीरवरसाहि, रुद्रप्रतापसाहि, मान्धातासाहि, होबिलसाहि, छत्रधारीसिंह और विक्रमजित् सिंह राजशासन कर मुगल बादशाहोंके प्रीतिभाजन हुए थे। आलमगीर, फरुखशियर, महम्मदशाह और शाहआलम्से उक्त राजाओंने बहुतसी जागीर पाई थी।

१७६४ ई०के अक्टबर मासमें अयोध्याके नवाब सुजा

उद्दौलाके साथ अंगरेजोंका जो युद्ध छिड़ा था, उसमें जयप्रकाशसिंहने अङ्गरेज-सेनानायक हेक्टर मनरोको यथेष्ट सहायता दी थी।

इसी कृतज्ञतामें १८१६ ई०के १० मार्चको बड़े लाट मार्किस आँफ हेष्टिंसने जयप्रकाशसिंहको 'महाराजा बहादुर'को उपाधि दी।

जयप्रकाशके बाद उनके पोते जानकीप्रसादसिंहने बहुत कम अवस्थामें राज्य प्राप्त किया। किन्तु थोड़े दिन बाद ही उनकी मृत्यु हो जानेसे महेश्वरबक्ससिंह बहादुर १८४४ ई०में डुमरावँ राज-सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इन्होंने नेपाल-युद्ध तथा सिपाही विद्रोहके समय ब्रिटिश गवर्मेण्टको यथेष्ट सहायता की थी। जगदीशपुरमें इनके ज्ञाति कुमारसिंहके विद्रोही होने पर महाराज महेश्वरबक्सने थोड़े ही समयमें उन्हें पराजित और शासित किया था। इन्हीं कारणोंसे १८७२ ई०में ब्रिटिश गवर्मेण्टने उन्हें 'महाराज' तथा K. C. S. I. की उपाधि दी। उनके जीतेजी १८७५ ई०में राजकुमार राधाप्रसाद सिंहको भी "राजा"-की उपाधि मिली थी।

महाराज राधाप्रसादके यत्नसे भी डुमरावँ राज्य उच्च शिखर पर पहुँच गया था। १८८८ ई०में ये के. सी. आइ. इ. (K. C. I. E.) बनाये गये थे। इनका देहान्त १८९४ ई०में हुआ। इनके मरने पर उनकी स्त्री महारानी बेनीप्रसादकुँवरी उत्तराधिकारिणी हुई। इन्हें ब्रिटिश सरकारको चार लाखसे अधिक रुपये करमें देने पड़ते हैं।

२ शाहाबाद जिलेके अन्तर्गत बक्सर उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २५° ३३´ उ० और देशा० ८४° ९´ पू० पर कलकत्तेसे ४०० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १७२३६ है। यहाँ डुमरावँके राजाका राजप्रासाद और खेमा है।

डुमार—ब्रह्मखण्ड वर्णित भोजदेशके अन्तर्गत सिद्धाश्रमके दक्षिणभागमें अवस्थित एक नगर। (यह वर्त्तमान डुमरावँके जैसा अनुमान किया जाता है।) भविष्य ब्रह्मखण्डके मतसे यहां भूमिहार जातिके प्रबल पराक्रान्त उदयवन्तसिंहका राज्य था। उन्होंके वंशीय विक्रमसिंहने यहां एक दुर्ग निर्माण किया था।

(भ० ब्रह्म० ३१ अ०)

डुम्बुर (सं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष और उसका फल, गूलर। यह वृक्ष भारतवर्षमें तथा ब्रह्मदेशमें सब जगह पाया जाता है। हिमालयके निम्नस्थानसे ले कर आसामके पर्वतसमूह तक यह पेड़ समुद्रपृष्ठसे ४००० फुटकी ऊँचाई पर लगते देखा गया है।

भारतवर्षमें कई तरहके गूलर होते हैं। यद्यपि उनके पेड़ तथा फल एकसे दीख पड़ते, तो भी आकारमें बहुत प्रभेद है। किसी किसी जातिके गूलरके पत्ते और फल बहुत बड़े होते तथा पेड़ लताकी तरह होता है। फिर किसी जातिका पेड़ पीपल पेड़के जैसा सुदीर्घ और शाखाप्रशाखाविशिष्ट होता है। किन्तु इसका पेड़ जितना ही बड़ा होता जाता है उतना ही इसके पत्ते और फल छोटे होते जाते हैं।

गूलरमें फूल नहीं लगता। एकही दफा कोषसे गुच्छाका गुच्छा फल निकलता है। वृक्षके धड़से तथा शाखा प्रशाखाके सन्धिस्थानसे ही अधिकांश फल निकलता है। इस देशमें लोगोंका ऐसा विश्वास है कि गूलरका फूल देखनेसे राजा होता है। सच पूछिये तो गूलरका फूल देखनेमें आता ही नहीं।

उद्भिद्तत्त्वविद् पण्डित लोग गूलरको पीपल, बरगद पाकर आदि वृक्षोंके अन्तर्गत मानते हैं। सभीकी पेड़ी, डाल आदि काटनेसे दूधकी तरह सफेद एक प्रकारका गोंद निकलता है। इस गोंदसे रबरके जैसा पदार्थ उत्पन्न होता है। गूलरका गोंद कभी कभी घावके ऊपर मरहमकी तरह व्यवहृत होता है।

नीचे थोड़े प्रकारके विभिन्न जातीय गूलरका विषय दिया जाता है।

यज्ञ-डुम्बुर (Ficus glomerata)—साधारणतः होमकार्यमें इसकी शाखा काम आती है। इसी कारण इसका नाम यज्ञ-डुम्बुर पड़ा है। हिमालय प्रदेश, राजपूताना, मध्यभारत, बङ्गाल, दाक्षिणात्य, आसाम, ब्रह्मदेश आदि स्थानोंमें यह पेड़ पाया जाता है। चन्दामें इसके दूध अर्थात् गोंदसे एक प्रकारका रबर बनता है।

इस वृक्षसे कभी कभी लाख उत्पन्न होती है। बहेलिया इसके दूधसे पक्षी पकड़नेके लिये गोंद प्रस्तुत करता है।

लोहरडागामें यज्ञ-डुम्बुरकी छालको सिझा कर एक प्रकारका काला रंग तैयार होता है जिससे कपड़ा रंगाया जाता है। यज्ञडुम्बुरके पत्ते, मूल, छाल और फल सबके सब देशीय वैद्योंसे औषधरूपमें व्यवहृत होते हैं। वे इसकी छालको विरेचक औषध रूपमें तथा घाव आदि धोनेके काममें लाते हैं। बाघ तथा बिलाव आदिके काटने पर भी यह विषघ्न माना गया है।

इसका मूलतन्तु आमाशय रोगमें विशेष उपकारी है। बहुतेरे डाक्टरोंका मत है कि मूलतन्तुका रस बहुत तेजस्कर तथा बलकारी औषध है। अधिक काल तक व्यवहार करनेसे यह आश्चर्य फल देता है। पित्तके बढ़ने पर इसकी सूखी पत्तियोंको चूर कर मधुके साथ सेवन करें। आटकिनसन साहब (Atkinson)-ने लिखा है—इसके पत्तों पर चेचकके जैसा जो दाग उठ जाते हैं उन्हें दूधमें भिगो कर मधुके साथ सेवन करनेसे शीतला रोगमें उसका दाग शरीर पर नहीं पड़ता है। यह अनेक प्रकारके रजोरोग, मूत्ररोग, मेहघटित रोग और काशरोगमें अनेक तरहसे व्यवहृत होता है। अर्श और उदरामयरोगमें यज्ञ-डुम्बुरका दूध दिया जाता है। उस दूधमें यदि थोड़ा तिलतैल मिला दें, तो वह घावकी उत्तम मरहम बन जाता है। ताजा गूलरका रस धातुघटित औषधके अनुपानके रूपमें व्यवहृत होता है।

देवकार्यमें व्यवहृत होनेके कारण इस देशके कितने लोग यज्ञडुम्बुर नहीं खाते। इसका आकार साधारण गूलरकी अपेक्षा कुछ बड़ा, पर उतना सुस्वादु नहीं होता। वैशाखसे भाद्र तक फल लगते हैं। नीच श्रेणीके लोग कच्चे गूलरको तरकारीके साथ खाते हैं। पकने पर समूचा फल छाई सरीखा लाल हो जाता है। अजन्मा और दुर्दिनके समय बहुतसे लोग इसे खाते हैं।

बकरे भेंड़े गूलरको बड़े चावसे खाते हैं। इसके पत्ते हाथी आदिके खाद्य हैं।

गूलरकी लकड़ी अन्तःसारशून्य, लघु तथा जल्दी टूटनेवाली होती है। यदि इसे कुछ समयके लिए जलमें रख छोड़ें तो यह बहुत दिन तक ठहरती है। इसी कारण लोग इसे कुएंके चारों ओर रखते हैं और कहीं कहीं इसे बेड़ा तथा जल सींचनेके काममें लाते हैं।

काकडुम्बुर (Ficus hispida)—इसका पेड़ यज्ञडुम्बुरकी पेड़से कुछ छोटा होता है और भारतवर्षमें सब जगह तथा मलय, सिंहल, चीन आन्दामन द्वीप, अष्ट्रेलिया आदि स्थानोंमें मिलता है। भारतवर्षमें हिमालय पहाड़ पर यह पेड़ ३५०० फुट ऊंचे पर उगता है।

इसकी छालसे एक प्रकारकी रस्सी बनती है। फल, बीज और छाल वमनकारक तथा विरेचक है। इसके शुष्कफलचूर्णको जलमें सिद्ध कर बम्बई और कोङ्कण प्रदेशमें विदारिका आदिमें प्रलेप देते हैं। दुग्धवती गाय यदि कम दूध देने लगे, तो इसके खिलानेसे वह दूध देने लगती है। आयुर्वेदीयके मतसे यह दुग्धकर और गर्भस्थ व्रणके लिए हितकर है।

काकोडुम्बर देखो।

इसके पत्ते आदि पशुओंके खाद्यपदार्थ हैं। लकड़ी जलानेके सिवा और किसी काममें नहीं आती। चिड़ियाँ इसके बीजको अट्टालिकाकी दीवारों पर ले जा कर खाती हैं और जो बीज वहीं छोड़ देतीं उससे अट्टालिका पर पेड़ उग जाता है। यह पेड़ मकानका बहुत अनिष्ट करता है।

डुम्बुर (Ficus Roxburghii)—यह वृक्ष हिमालय प्रदेशसे ले कर भूटान, आसाम, श्रीहट्ट, चट्टग्राम तकके देशोंमें पाया जाता है। यह पेड़ ६००० फुट ऊँचे पर होता देखा गया है। पेड़ मझोले कदका होता है। इसका कच्चा फल तरकारीके साथ व्यवहृत होता है। पकने पर यह कोमल, लाल और सुगन्ध तथा मीठा होता है। बहुतसे लोग पक्का गूलर खाते हैं। पेड़के नीचे तथा शाखा प्रशाखाओंमें गुच्छाका गुच्छा फल लगता है। शतद्रु नदीके किनारे गूलरकी छालसे एक प्रकारकी मोटी रस्सी बनती है। इसकी लकड़ी किसी काममें नहीं आती। मवेशी इसके पत्तेको बहुत पसन्द करते हैं।

भूडुम्बुर (Ficus heterophylla)-इस जातिका गूलर लताके आकारमें पैदा होता है। यह भारतवर्ष और ब्रह्मदेशके उष्ण प्रदेशमें, चट्टग्राम, तेनासेरिम, सिंहल आदि स्थानोंमें नदीके किनारे उत्पन्न होता

है। स्थानभेदसे इसके कई भेद हो गये हैं। इसके पत्ते और मूल औषधमें व्यवहृत होते हैं। जड़की छाल बहुत कड़ुई होती है। उसका चूर्ण धनियाके साथ मिला कर सेवन करनेसे काश, कफ आदि हृद्रोग जाते रहते हैं।

गूलरके पुंपुष्प और स्त्रीपुष्पके अलग अलग कोष होते हैं। गर्भाधान कीड़ोंकी सहायतासे होता है। पुं ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों त्यों कीडोंकी उत्पत्ति होती जाती है। ये कीड़े पुंपरागको गर्भकोशमें ले जाते हैं। ये कीड़े किस प्रकार पराग ले जाते हैं, यह जाना नहीं जाता। लेकिन यह निश्चय है कि ले अवश्य जाते हैं और उसीसे गर्भाधान होता है तथा कोश बढ़ कर फलके रूपमें होते हैं। फल बिलकुल मांसल और मुलायम होता है। उसके ऊपर कड़ा छिलका नहीं होता, बहुत महीन झिल्ली होती है।

डुम्बुर—वङ्गदेशके चन्द्रद्वीप भूभागके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। भविष्यब्रह्मखण्डमें लिखा है—

एक दिन महादेव उमाके साथ आकाशमार्ग हो कर इन्द्रपुरको जा रहे थे। अकस्मात् चन्द्रद्वीप पर उनकी दृष्टि पड़ी। यहां वे भक्तोंका नृत्य देख कर विमोहित हो गये और डमरू उनके हाथसे नीचे गिर पड़ा। डमरूके गिरनेसे अपूर्व शब्द होने लगा। यह देख कर चन्द्रद्वीपके ब्राह्मण वेदविधिसे डमरूकी पूजा करने लगे। इस पर शिव-डमरूने संतुष्ट हो कर वर दिया। "यहाँके सभी मनुष्य धार्मिक, विद्वान्, ज्ञानी, धनी और निरोगी होंगे।" जिस स्थान पर डमरू गिरा था वही स्थान कालक्रमसे डुम्बरू या डुम्बुर नामसे मशहूर हो गया है। (भ० ब्रह्मख० १३ अ०)

डुम्बरपर्णी (सं० स्त्री०) दन्तीवृक्ष।

डुलि (सं० स्त्री०) दुलि पृषो० साधुः। १ कच्छपी, कमठी, कछुई। २ यानविशेष, वाहन, सवारी, असवारी।

डुलिका (सं० स्त्री०) डुलिरिव कायति कै-क। खञ्जनाकार पक्षिविशेष, खंजनकी जातिका एक पक्षी।

डुली (सं० स्त्री०) चिल्ली साग, लालपत्तीका बथुआ।

डँगर (हिं० पु०) १ खण्डहर, टीला। २ छोटी पहाड़ी।

डूंगरगढ़—मध्यप्रदेशके खैरागढ़ सामन्त राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २१° ११′ उ० और देशा० ८०° ४६′ पू०के मध्य बङ्गाल नागपुर रेलवे द्वारा बम्बईसे ६४७ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५८५६ है। यह शहर व्यापारका एक केन्द्र है। यहां एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, बालिका स्कूल और एक औषधालय है।

डूंगरपुर—१ राजपूतानेके दक्षिणका एक राज्य। यह अक्षा० २३° २०′ से २४° १′ उ० और देशा० ७३° २२′ से ७४° २३′ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १४४७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें मेवाड़ या उदयपुर, पूर्वमें बांसवाड़ा, दक्षिणमें रेवाकांठा एजेन्सीकी रियासतें—सूंथ व कडाणां और पश्चिममें महीकांठाके अन्तर्गत रियासत ईडर वा रेवाकांठाके अन्तर्गत लूनावाड़ा राज्य है।

राज्य विशेषकर अरावलीपर्वत-मालाकी शाखाओंसे आच्छादित है। लेकिन ऊंचाई सब जगह बहुत कम है। ऊंचासे ऊंचा शिखर समुद्रपृष्ठसे १८८१ फुट ऊँचा है। वर्षाकालमें यहांका दृश्य देखनेयोग्य है। जिधर ही दृष्टि डालिये उधर ही सब मखमली जमीन नजर आती है। जङ्गलकी छटा और ही निराली है। राज्यका दक्षिणी भाग कुछ समतल है और यही भाग बहुजनाकीर्ण तथा समृद्धिशाली है।

यहां ऐसी एक भी नदी नहीं है जो बारहों मास बहती हो। जितनी नदियाँ यहां हैं भी उनमें केवल दो ही प्रधान हैं, माही और सोम। माही नदी राज्यको पूर्वमें बांसवाड़ासे और दक्षिणमें सूंथसे पृथक् करती है। वर्षाऋतुमें ये दोनों नदियाँ बड़ी विशालाकार हो जाती हैं। मोरन नदी राज्यके मध्यमेंसे चक्कर खाती हुई वक्रगतिसे बहती है। इनके अलावा भादर, माजम और वातोक अन्य छोटी छोटी नदियाँ हैं। इस प्रान्तमें स्वाभाविक झील तो नहीं है, पर कृत्रिम तालाबोंकी भी कमी नहीं है। सबसे बड़ा तालाब गैपसागर राजधानीमें है। रेल रियासतके किसी भागसे हो कर नहीं गई है। राज्यान्तर्गतमें कोई पक्की सड़क भी नहीं है और जो एक दो हैं भी वे केवल एक ही दो मील तक

राजधानीसे वीरपुर कोठी तक गई है। शेष सभी मार्ग कच्चे हैं।

जिस प्रकार और प्रान्तोंमें घोड़ोंकी सवारी काममें लाई जाती है, उसी प्रकार इस प्रान्तमें बैलोंकी। पर यह सवारी भारतके अन्य प्रान्तोंमें हेय समझी जाती है। यहांका जलवायु अप्रेलसे जून तक गर्म और शुष्क, पर सितम्बर और अक्टूबर महीनेमें बहुत खराब रहता है। शीतकाल सबसे अच्छा समझा जाता है। यहाँ पर वार्षिक वृष्टिपातका औसत २७ इञ्च है।

इतिहास—डूंगरपुरके वर्तमान राजवंशका वर्णन करनेके पहले यह कह देना उचित होगा, कि इस वंशकी स्थापनाके पहले किस किस वंशका इस देश पर आधिपत्य रहा। ३री शताब्दीके पूर्व यह प्रान्त मौर्य साम्राज्यके अन्तर्गत था। बाद यह कुशनवंशके संस्थापक कनिष्कके हाथ लगा। इसी प्रकार कालक्रमसे यह क्षत्रप, गुप्त, हूण, वैस तथा परमारवंशके हस्तगत होता गया। अब वर्तमान डूंगरपुर राज्यकी स्थापनाके विषयमें कहते हैं, कि मेवाड़नरेशके दो पुत्र थे—माहुप और राहुप थे। बड़े पुत्र माहुपने ही वर्तमान राज्यकी स्थापना की। ये कुछ काल तक अहाड़में रहते थे, इस कारण उनके वंशज अहाड़ा कहलाये। डूंगरपुरमें यह कथा प्रसिद्ध है, कि महारावल वीरसिंहजीने डूंगरपुर राजधानीकी स्थापना की है। जहां पर आज कल डूंगरपुरकी राजधानी है, वहां पर पहले डूंगरिया नामके एक भीलका आधिपत्य था। वह भ्रष्टाचारी था। किसी एक अबलाका धर्म बचानेके लिये वीरसिंहने उसे मार डाला। बाद उसकी दो स्त्रियोंने वीरसिंहसे कहा, "इस स्थान पर आप अपनी राजधानी बना कर उसका नाम हमारे पतिके नाम पर ही रखना, और हमारा ही वंशज आपके उत्तराधिकारियोंको प्रथम राजतिलक किया करेगा।" तभीसे यह स्थान डूंगरपुर नामसे प्रसिद्ध हुआ है। बहुत दिनों तक तिलककी भी प्रथा उसी तरह जारी रही पर अब नहीं है।

वीरसिंहके बाद भसुण्डी राजसिंहासन पर बैठे। इन्होंने केवल एक वर्ष तक राज्य किया। इनके उत्तराधिकारी डूंगरसिंहजी हुए। दो ही वर्ष तक राजत्व करके आप १३६१ ई॰में परलोकको चल बसे। इनके उत्तराधिकारी करमसिंहने २३ वर्ष राज्य किया और इनके लड़के रावल कानड़देवने लगभग १३८३से १३९८ ई॰ तक राज्य किया। इन्होंने कानड़दा पोल बनवाई, जहां पर फिलहाल कोतवाली, खजाना और हिसाब दफ्तर हैं। बाद पातारावल राजसिंहासनारूढ़ हुए; इन्होंने १३९८ से १४११ ई॰तक राज्य भोग किया। इन्होंने एक तालाब खुदवाया, जो पातेला तालाब कहलाता है। इनके उत्तराधिकारी इनके लड़के गेपा रावलजी हुए। लोग इन्हें रावल गोपीनाथ भी कहते थे। इन्होंने अपने नाम पर गेप नामका तालाब बनवाया। यही तालाव राज्य भरमें सबसे बड़ा है। तालाबके एक किनारे पर 'उदयविलास' नामका एक नवीन राजप्रासाद सुशोभित है। इनका देहान्त १४४८ ई॰में हुआ था। बाद सोमदासजी राजतख्त पर बैठे। इनके समयमें महम्मद खिलजीने राजधानी पर धावा मारा। जब वे बहुत उत्पात मचाने लगे, तब सोमदासने दो लाख रुपये और २० घोड़े भेंटमें दे कर शत्रुसे पिण्ड छुड़ाया।

गङ्गा रावलको उत्तराधिकारी छोड़ आप १४८१ ई॰ में परलोकको सिधारे। गङ्गाने १४८२से ले कर १४९८ तक राज्य किया। बाद रावल उदयसिंहजी १म सिंहासनासीन हुए। इस समय मेवाड़के सिंहासन पर महाराणा संग्रामसिंहजी सुशोभित थे। इन्हींके समयमें बाबरने दिल्लीमें मुसलमानी साम्राज्यकी नींव डालनेका विचार किया। दोनोंमें घनघोर युद्ध चला। रावल उदयसिंह संग्रामसिंहके पक्षमें थे। रणस्थलमें कदम बढ़ानेके पहले इन्होंने राज्यको दो भागोंमें बाँट दिये, एक भागका नाम डूंगरपुर रखा और दूसरेका बांसवाड़ा। डूंगर ज्येष्ठपुत्र पृथ्वीराजको और बांसवाड़ा कनिष्ठपुत्र जगमलको सौंप दिया। रावल उदयसिंह खनवाकी लड़ाईमें खेत रहे।

रावल पृथ्वीराजजीके समयसे २०० वर्ष तक डूंगरपुरमें सुख-शान्ति विराजती रही। सन् १४४२ और १५५४ के बीचमें पृथ्वीराजका स्वर्गवास होने पर उनके लड़के आसकरणजी राजसिंहासन पर बैठे। इन्होंने अपने नाम पर 'आसपुर' नामका ग्राम बसाया। सोम

और माही नदीके सङ्गम पर वेणीश्वर महादेवका जो मन्दिर है, वह भी इन्हींका बनवाया हुआ है। इनके सिवा ये राजधानीमें चतुर्भुजजीका मन्दिर निर्माण कर गये हैं। कहते हैं कि लूटमें जो इन्हें ८४ मन सोना हाथ लगा था, उसीसे इन्होंने तूला-दान किया। सम्राट् अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ये उन्हें वार्षिक कर देने लगे।

इनके बाद सहसमलजी राजगद्दी पर सुशोभित हुए। इनके शासन-कालमें राज्य भरमें शान्ति विराजती रही। राज्य उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंचा हुआ था। १५८० ई०में इन्होंने सुरपुरमें गाङ्गली नदीके किनारे श्री माधवरायजीके विशाल मन्दिरका निर्माण कराया। १८ वर्ष राज्य कर चुकनेके बाद १६०४ ई०में आप इस लोकसे चल बसे। इनके उत्तराधिकारी कर्णसिंहजी हुए, जिन्होंने केवल पांच ही वर्ष तक राज्य किया। इनके समयमें कोई विशेष घटना न घटी। बाद १६११ ई०में पूंजाजीने डूंगरपुरकी गद्दी सुशोभित की। इन्होंने अपने नाम पर पूंजपुर स्थापित कर वहां "पूंजेरी" नामका एक बृहत् तालाब खुदवाया। मुगलसम्राट्ने इनको डेढ़ हजारीका मन्सब और माही मुरातब अता किया। पचीस वर्ष राज्य करनेके बाद १६५६ ई०में इनका देहान्त हुआ।

बाद महारावल गिरिधरजी राजसिंहासन पर आसीन हुए। इस समय मुगलसम्राट् औरङ्गजेब और मेवाड़के शासक राजसिंहजी थे। आपने दो लड़के छोड़ कर मानवलीला समाप्त की। बड़े लड़के जसवन्तजीने १६९० ई० तक राज्य किया। इनके छोटे भाई हरिसिंहजी या केशरीसिंहजी थे जिन्हें सावलीकी जागीर मिली। जसवन्तके भी दो लड़के थे, बड़े खुमानसिंहजी और छोटे फतहसिंहजी। बड़े खुमानसिंहजी राज्याधिकारी हुए और छोटे फतहसिंहजीको नांदलीका ठिकाना मिला। इनके समयका कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। इनके पांच लड़कोंमें रामसिंह बड़े थे। ये बड़े उद्दण्ड और हठकारी थे। किसी कारणवश पिताने इन्हें निर्वासनकी आज्ञा दी थी। किन्तु मरते समय वात्सल्यप्रेम उमड़ आया और युवराजको बुलवा मंगाया।

१७०० ई०में महारावल रामसिंहजी डूंगरपुरके सिंहासन पर आरूढ़ हुए। ये बड़े प्रतापी और तीव्र-स्वभावके निकले। इनके समयमें सारे राज्यमें सुख-शान्तिका साम्राज्य था। यहां तक कि इनके राज्यको 'राम-राज्य' कहते थे। १७२८ ई०के लगभग इनका स्वर्गवास हुआ। बाद शिवसिंहजी राज्यके उत्तराधिकारी हुए। ये भी योग्य पिताके योग्य पुत्र थे। विद्वानोंका आदर इनके समयमें यथेष्ट था, कारण, आप स्वयं विद्वान् और कवि थे। ये कट्टर धार्मिक भी रहे। यहां तक कि जरावस्थामें आप योगीके भेषमें जटा धारण किये रहने लगे थे। इन्होंने राज्यमें अच्छी अच्छी इमारतें बनवाईं। कहते हैं, कि गुमटा बाजार आप ही बनवा गये हैं। १७८४ ई०में इनका स्वर्गवास हुआ।

इनके पश्चात् महारावल वैरिशालजीने डूंगरपुरकी गद्दीको सुशोभित किया। इनकी महिषी भोरहातनजीने राजधानीमें एक मन्दिर बनवाया जिसमें मुरलीधरजीकी मूर्त्ति स्थापित की गई। अपने लड़के फ़तहसिंहजी पर राजकार्य सौंप आप १७८९ ई०में इस लोकसे चल बसे। फ़तहसिंह रातदिन नशेमें चूर रहते थे, राज्य-शासन उनके मन्त्री पेमजी चलाते थे। नशेके कारण आप एक बार बन्दी भी हो चुके थे। डूंगरपुर राज्यमें जहां एक समय सुख-शान्तिका साम्राज्य था, आज वहां आपत्तिका घनघोर गर्जन होने लगा। जहां तहां सभी स्वतन्त्र हो गये। इसी मौकेमें १८०५ ई०को महाराष्ट्रोंने भी राजधानी पर धावा मारा। शत्रुसे मुठभेड़ करनेका तो साहस फ़तहसिंहमें था नहीं, दो लाख रुपये दे कर उनसे अपना पिण्ड छुड़ा लिया।

१८०८ ई०में महारावल फ़तहसिंह पञ्चत्वको प्राप्त हुए। बाद जसवन्तसिंहजी राजगद्दी पर बैठे। इस समय सिन्धी पठानोंने डूंगरपुर राज्यमें प्रवेश कर उसे चारों ओरसे घेर लिया। दोनोंमें २० दिन तक घनघोर युद्ध होता रहा। अन्तमें 'घरका भेदिया लङ्का डाह'वाली कहावत चरितार्थ हुई। इनमेंसे किसी एक नीचने रातको राज-फाटक खोल दिया। जिससे अनेक योद्धा हताहत हुए। स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सभी शत्रुके शिकार बन चले। नगरमें हाहाकार मच गया। मकान लूटे और दग्ध

किये गये। बाद कई एक राजाओंकी सहायतासे शत्रुकी हार तो हुई सही, पर अगले तीन साल तक राज्यमें एक तरह अराजकता फैली रही। इन्होंने प्रतापगढ़के महारावल सावन्तसिंहके पौत्र दलपतसिंहको गोद लिया था और ज़ीतेजी राज्यका भार उन्हीं पर सुपुर्द भी कर दिया था। उचित उत्तराधिकारी न होनेके कारण फिर राज्यमें विप्लव उपस्थित हुआ। दिन दहाड़े डाके पड़ते थे और ठाकुर लोग आततायियोंको उत्तेजना देते थे। अन्तमें १८०२ ई०में जसवन्तसिंहको मासिक पेन्शन १२००) रु० दे कर वृन्दावन भेज दिया गया। इधर दलपतसिंहने भी विवश हो सावली ठाकुर साहबके पुत्र उदयसिंहजीको अपनी गोदमें ले डूँगरपुरका अधिकारी स्वीकार कर लिया। तभीसे सभी गड़बड़ी मर मिट गई।

१८५७ ई०में महारावल श्रीउदयसिंहजीने डूंगरपुर राजसिंहासनको सुशोभित किया। राजके सुधारकी ओर इन्होंने अटूट परिश्रम किया। इस समय भीलोंने फिर एक बार उत्पात मचाना शुरू कर दिया। अन्तमें उनकी पूरी हार हुई, कितनोंके तो सिर भी धड़से अलग कर दिये गये। १८७० ई०में एक भयङ्कर अकाल पड़ा। महारावल साहबने दुर्भिक्षके निवारण करनेका अच्छा प्रबन्ध किया। जगह जगह पर Relief-work खोले गये, हजारों तालाब, बावड़ी आदि खोदी गईं। १८७७ ई०में प्रथम दिल्ली-दरबारके उत्सव पर राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरियाकी ओरसे डूंगरपुर दरबारको एक झण्डा प्रदान हुआ। १८८० ई०में आपने तुलादान किया जिसमें लगभग १ लाख रुपये खर्च हुए। पहलेसे यहां शिक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं था। इन्होंने ही पहले पहल पाठशालाएं स्थापित कीं।

आपके बाद श्रीमान् महारावल साहब श्रीसरविजयसिंहजी बहादुर के. सी. आई. ई. राज्यके उत्तराधिकारी हुए। पितामहके मरते समय आपकी अवस्था केवल ११ वर्षकी थी। नाबालगी तक राज्य प्रबन्धके लिये मेवाड़की देखरेखमें चार मेम्बरोंकी कौन्सिल नियुक्त हुई और आप मेओ कालेज अजमेर पढ़नेके लिये भेजे गये। इनके समयमें भी प्रजाको दुर्भिक्षका सामना करना पड़ा था। ये बड़े विज्ञ, प्रतापी और प्रजावत्सल राजा थे। डूंगरपुर राज्यका जो शोचनीय अवस्थामें चला आ रहा था आपहीने संस्कार किया। धर्मकी ओर भी आपकी श्रद्धा कम न थी। सङ्गीतके भी आप अच्छे प्रेमी थे। प्रजाकी भलाईके लिये आप अच्छे अच्छे काम कर गये हैं। इस थोड़ीसी अवस्थामें आपका मेल जोल भारतके प्रायः सभी मुकुटधारी रईसोंके साथ खूब बढ़ गया था।

१९१२ ई०में सम्राट्के वार्षिक जन्मदिनके उत्सव पर आप 'के, सी, आई, ई' की उपाधिसे विभूषित हुए थे। १९१४ ई०के विश्वव्यापी युद्धमें आपने गवर्मेण्टके प्रति सच्ची भक्ति दिखलाई थी। सारे राज्यमें सुख-शान्ति स्थापित कर १९१८ ई०के १५ नवम्बरको आप इस लोकसे चल बसे। बाद इनके बड़े लड़के लक्ष्मणसिंहजी बहादुर राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। ये अभी नाबालिग हैं और मेओ-कालेज अजमेरमें शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। ये भी योग्य पिताके योग्य पुत्र जैसे मालूम होते हैं।

राज्यभरमें कुल ७७३ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः १८८२७२ है। अधिवासियोंमें अधिकतर भील हैं। इसके सिवा यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मुसलमान, बौहरे आदि भी रहते हैं। मुख्य धर्म जो राज्यमें प्रचलित है, वह वैदिक-हिन्दूधर्म है। इसके सिवा जैन और महम्मदी भी हैं। जैन भट्टारककी गद्दी भी है।

यहाँकी मुख्य उपज मकई, धान, मूंग, उरद, तिल, सरसों, गेहूं, चना और जौ है। पहले अफीमकी खेती जितनी ही अधिक होती थी, अब उतनी ही कम गई है।

वन-विभागकी ओर उतना ध्यान आकर्षित नहीं होता। पतरीली जमीन होनेके कारण उपयोगी वृक्ष बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। फलदार वृक्षोंमें महुआ और आम खूब होते हैं। राज्यभरमें लोहे और तांबेकी खानें हैं सही, पर उस ओर राजका कम ध्यान रहता है। बोड़ीगाममें एक नकली हीरेका पत्थर अच्छा होता है और बहुत पाया जाता है।

यह राज्य कृषिप्रधान देश है। सैकड़े पीछे ७६ खेतीवारी करके अपनी जीविकानिर्वाह करते हैं। कोई

कला-कौशल उल्लेखयोग्य नहीं है। पत्थर तथा काठ परकी खुदाईका काम प्रशंसनीय है। चाँदी सोनेके भी कई अच्छे कारीगर हैं।

यहांके नरेशोंकी उपाधि "रायरायां महाराजाधिराज महारावल श्री १०८ श्री……बहादुर" है। पन्द्रह तोपोंकी सलामी है और लाट साहबसे वापसीकी मुलाकात (Return Visit) होती है। राजाको राज्यके आभ्यन्तरिक प्रबन्धमें पूरा अधिकार है। 'राज्य श्री अमात्य-कार्यालय" दरबारके अधीन है। भिन्न भिन्न विभाग एक एक अध्यक्षकी देख रेखमें है। राजकार्यकी सुविधाके लिए स्वर्गीय महारावल विजयसिंहजी दो सभाएँ स्थापित कर गये हैं। पहली सभाका नाम "राजप्रबन्धकारिणी सभा" है। इसमें वह मुकदमा पेश किया जाता है, जो अमात्य-कार्यालयके अधिकारसे बहार रहता है। दूसरी सभा "राज-शासनसभा" कहलाती है। इसमें बड़े बड़े फौजदारी और दीवानी मुकदमें तथा दीवानी फौजदारीकी अपीलें सुनी जाती हैं। नवीन कानून भी इसी सभासे पास होता है। "राज-शासनसभा" में केवल मेम्बर ही नहीं बैठते, मगर कुछ असेसर भी बैठते हैं। राज्यकी आमदनी दो लाख रुपयेकी है, जिसमेंसे १७५००) रु· ब्रटिश गवर्नमेण्टको देने पड़ते हैं। डूंगरपुर राज्यमें अपना सिक्का नहीं चलता। सब जगह अंगरेजी सिक्केका ही चलन है। राजपूतानेके जैसा यहां भी जमीनके अनुसार मालगुजारी स्थिर की गई है।

राज्यमें विद्याकी उतनी उन्नति नहीं है, किन्तु पहलेसे आजकल कुछ बढ़ोतरी पर है। भील लोगोंके लिये खास एक स्कूल है। स्कूलके अतिरिक्त दो अस्पताल हैं। शहर सफाई आदिके लिये म्युनिसपालिटी भी स्थापित है।

२ उक्त राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २३° ५१′ उ० और देशा० ७३° ४३′ पू० उदयपुरसे ६६ मील दक्षिणमें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ६०९४ है। कहते हैं, कि १४वीं शताब्दीमें यह नगर महारावल वीरसिंहसे भील-सरदार डूंगरियाके नाम पर बसाया गया। १९वीं शताब्दीमें महाराष्ट्र-सेनाने शाहजाद खुदादादके अधीन इस नगरको अवरोध किया था। यहाँ एक अङ्गरेजी डाकघर, टेलिग्राफ आफिस, कारागार, अस्पताल और एङ्गलो वर्नाक्युलर स्कूल है।

डूंगरपुर राज्यकी वंश-तालिका।

मेवाड़ नरेश रणसिंह

क्षेमसिंह (रावल शाखा) (राणाशाखा)

सामन्तसिंह मेवाड़ तथा डूँगरपुरके राजा)
मेवाड़—(संवत् १२२८से १२३६)
डूँगरपुर—(संवत् १२३६से १२७७के पूर्व)

सोहड़देव (संवत् १२७७ से १२९१)

देवपालदेव (संवत् १२९१ से १३४३ के पूर्व)

वीरसिंहदेव (संवत् १३४३ से १३७९)

भसुण्डी (भरतुण्ड)

डूंगरसिंह

करमसिंह (करणसिंह)

कानरदेव

पाता रावल (प्रतापसिंह)

गोपा रावल (गोपीनाथ)

सोमदास

गाँगोरावल (गङ्गदेव)

उदयसिंह १म

पृथ्वीराज

आसकरण

सहसमल

कर्मसिंह

पूँजा रावल

गिरिधरलाल

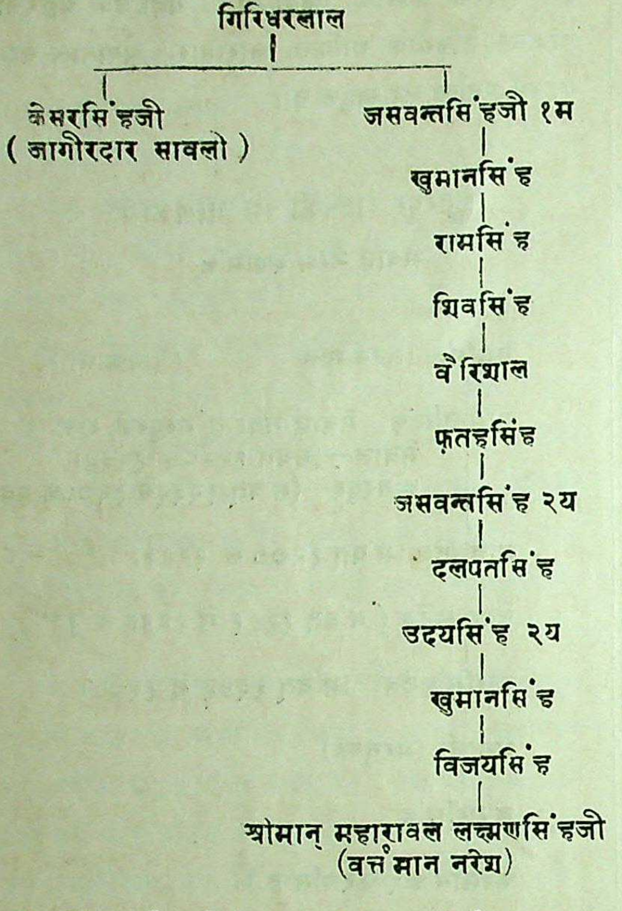

डूंगरसिंह—बीकानेरके एक राजा। इनके पिताका नाम लालसिंह था। ये पोष्यपुत्र हो कर बीकानेरके राजसिंहासन पर आये थे। इनकी नाबालगीमें मन्त्रिसभाके द्वारा राज्यका शासन चलाया जाता था। नाबालिगी दूर होने पर भी मन्त्रिसभाके ही अधीन राज्यशासनका इन्तजाम रहा। सन् १८७५ ई०में अमरसिंह नामक एक सामन्तने इनको विष देनेका प्रयत्न किया था। अतएव महाराजने उसे १२ वर्षके लिये कारागार भिजवा दिया। सन् १८७६ ई०में ये हरिद्वार और गयातीर्थ करने गये थे। वहाँसे लौटते समय प्रिंस आफ वेल्स (सम्राट् एडवर्ड)-से आगरेमें मिले थे। कर बढ़ा देनेके कारण सामन्त लोग इन पर बहुत असन्तुष्ट हो गये थे। अन्तमें लड़ाई छिड़ हो गई। गवर्नमेण्टकी सेना और महाराजको सेना दोनोंने बींदासर नामक दुर्ग पर आक्रमण किया। अन्तमें सामन्तोंने आत्मसमर्पण कर दिया।

डूँगरफल (हिं० पु०) बंदालका फल। यह बहुत कड़आ होता है और सरदीमें घोड़ोंको खिलाया जाता है।

डूँगरी (हिं० स्त्री०) छोटी पहाड़ी।

डूँगा (हिं० पु०) १चम्मच, चमचा। २ लकड़ीका नाव, डूँगा। ३ रस्सेका गोल लपेटा हुआ लच्छा।

डूँड़ा (हिं० वि०) जिसका सींग टूट गया हो।

डूक (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बीमारी जो पशुओंके फेफड़ोंमें होती है।

डूबना (हिं० क्रि०) १ मग्न होना गोता खाना। २ सूर्य या किसी तारेका छिप जाना। ३ सत्यानाश होना, चौपट होना। ४ बुड़ जाना, मारा जाना। ५ कन्याका दरिद्रके घरमें ब्याह होना। ६ चिन्तनमें मग्न होना, अच्छी तरह ध्यान लगाना। ७ लीन होना, लिप्त होना।

डूमा (हिं० पु०) रूसकी राजसभाका नाम।

डेंड़सी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको तरकारी जो ककड़ीकी तरह होती है।

डेग (हिं० पु०) देग देखो।

डेगची (हिं० स्त्री०) देगची देखो।

डेढ़ (हिं० वि०) सार्द्धैक, एक और आधा, जब किसी निर्दिष्टसंख्याके पूर्व इस शब्दका प्रयोग होता है, तब उस संख्याको एकाई मान कर उसके अर्द्धकको योग करनेका अभिप्राय होता है, जैसे डेढ़ सौ, डेढ़ हजार इत्यादि। लेकिन दहाईके आगेके स्थानोंको निर्दिष्ट करनेवाली संख्याओंके साथ ही इस शब्दका प्रयोग होता है, जैसे, सौ, हजार, लाख, करोड़ इत्यादि।

डेढ़खुम्मन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी गोल रूखानी।

डेढ़खम्मा (हिं० पु०) विना कुलफीका तंबाकू पीनेका नैचा।

डेढ़गोशी (हिं० पु०) एक बहुत छोटा और मजबूत जहाज।

डेढ़ा (हिं० वि०) १ डेढ़ गुना। २ एक प्रकारका पहाड़ा। इसमें प्रत्येक संख्याकी डेढ़गुनी संख्या बत लाई जाती है।

डेढ़ी (हिं० स्त्री०) किसी वस्तुका आधा और अधिक देना।

डेढ़िया (हिं० पु०) दारजिलिंग, सिक्किम और भूटा आदिमें मिलनेवाला एक प्रकारका वृक्ष। इसके पत्तों एक प्रकारकी सुगन्ध निकलती है।

डेनमार्क—यूरोपके उत्तरांशवर्त्ती एक छोटा राज्य। यह अक्षा० ५४° ३३′ से ५७° ४५′ उ० और देशा० ८४° ५४

से १२° ४७′ २५″ पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें स्कागारक उपसागर, पूर्वमें काटिगट और साउण्डप्रणाली तथा बाल्टिक सागर, दक्षिणमें जर्मनीके कई एक अंश एवं पश्चिममें जर्मनसागर या पश्चिम महासमुद्र है।

जिलण्ड, फिउनन्, लालाण्ड प्रभृति द्वीप, जटलाण्ड उपद्वीप और बाल्टिक-सागरस्थ वर्णहोलम द्वीप ले कर यह राज्य संगठित हुआ है। पहले स्लेसभिग होगष्टिन और लौयेनवर्ग नामक दो प्रदेश भी डेनमार्कके अन्तर्गत था। १८६६ ई०में जर्मनीके साथ युद्धमें डेनमार्कने उक्त दो प्रदेशको खो डाला। वर्तमान राज्यका परिमाणफल १६८५८ वर्गमील है। अधिवासियोंमें प्रायः सैकड़े २६ कृषिजीवी हैं और प्रायः ६४ शिल्प तथा वाणिज्य आदि द्वारा जीविकानिर्वाह करते हैं। लोकसंख्या प्रायः ३२००००० है।

इसका जटलण्ड उपद्वीप यूरोपखण्डके साथ संलग्न तथा उत्तर-दक्षिण तक विस्तृत है। इसकी लम्बाई उत्तर-दक्षिणमें प्रायः ३०० मील है और चौड़ाई पूर्व-पश्चिममें भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारकी है; किसी स्थानमें केवल ३० मील और कहीं १०० मील है। इसके उपकूल भागकी लम्बाई प्रायः ११०० मील है, किन्तु इस सुदीर्घ उपकूलका अधिकांश छिछला है और इसमें कई जगह टापू हो गया है। छोटा द्वीप और बालूका बांध रहनेसे वाणिज्यमें बहुत असुविधा होती है।

सभी द्वीपोंमें जिलण्ड बड़ा है। राजधानी कोपेनहेगेन इसी द्वीपमें अवस्थित है। इस द्वीपकी भूमि नीची और प्रायः समतल है तथा समुद्रपृष्ठसे कई फुट ऊंचा पर है। कहीं कहीं दो एक पहाड़ भी देखे जाते हैं, जिनकी ऊंचाई समुद्रपृष्ठसे ५०० फुटसे अधिक नहीं है। जिलण्ड और जटलण्डके बीच फिउनन द्वीप अवस्थित है। ललाण्ड, सीलाण्ड, फलष्टर, मोयेन आदि छोटे छोटे द्वीप फिउनन और जिलण्डके दक्षिणमें पड़ते हैं। इसकी प्रकृति तथा निकटवर्ती समुद्रकी कम गहराई देख कर अनुमान किया जाता है, कि बहुत पहले वे समस्त द्वीप पूर्वमें सुइडेन और पश्चिममें जटलण्ड तक विस्तृत एक बड़ा भूखण्ड था। कालक्रमसे पृथक् पृथक् हो कर वे कई एक छोटे छोटे द्वीपोंमें परिणत हो गये हैं।

डेनमार्ककी खाड़ी अर्थात् देशमें बहुतसी सागरशाखायें प्रविष्ट हैं। उत्तर भागमें लिमजोर्ड खाड़ी सबसे बड़ी है। १८२५ ई०में इसकी पश्चिम भाग टूट फूट जानेसे यह जर्मन सागरके साथ मिल गई है। डेनमार्कमें छोटी छोटी अनेक झील हैं, किन्तु एक भी ऊँचा पर्वत और बड़ी नदी नहीं है। यहां बहुतसी छोटी छोटी नदियां, छोटे छोटे पहाड़ और कृत्रिम खाड़ी हैं।

समुद्रके निकट रहनेसे डेनमार्कमें शीत ग्रीष्मका प्रकोप उतना अधिक नहीं है। वायु अनेक समय सरस और मनोरम रहती है। बड़े दिनके पहले तथा फाल्गुनके बाद शीतकी प्रखरता प्रायः नहीं रहती है। कभी कभी ग्रीष्मकालमें यहां बहुत गरमी पड़ती है। यहांकी जलवायुकी अवस्था अत्यन्त परिवर्तनशील है, वृष्टि तथा तूफान प्रायः आया करता है। राजधानी कोपेनहेगनका तापांश शीतकालमें ३२·८, वसन्त कालमें ४३·५, ग्रीष्मकालमें ६३·५ और शरत्कालमें ४८·३ फा० रहता है।

यहांकी भूमि उर्वरा है, इसीसे गेहूं, जौ, राई प्रभृति तरह तरहके अनाज उत्पन्न होते हैं। केवल जिलण्ड द्वीपमें फल शाक इत्यादि उपजते हैं। प्रतिवर्ष प्रायः २५००० से २८००० घोड़े विदेशमें भेजे जाते हैं। विशेषतः दूधके लिये ही यहांके लोग गाय भैंस आदि पालते हैं। खाड़ी और नदीमें मछली यथेष्ट मिलती है। कहीं कहीं मछली पकड़नेका नियत स्थान भी है, और इससे आमदनी बहुत होती है। नदीसे सीप भी निकाली जाती है, किन्तु यह राजाके अधीन है। जटलण्डके उत्तर भागमें काड नामकी एक प्रकारकी बड़ी मछली पाई जाती है, जिसकी चर्बीसे तेल इत्यादि तैयार होता है। तिमि मछली भी यहां मिलती है। डेनमार्कमें खान बहुत कम है। वर्णहोलम द्वीपमें पथरिया कोयला बहुत कम मिलता है। यहांका काष्ठ भी अच्छा नहीं होता है।

यहाँ कृषि और शिल्पकी अवस्था क्रमशः बढ़ती जाती है। शस्य, मक्खन, पनीर, नमकीला मांस, शराब बकरा, भेंड़ा, घोड़ा, गाय इत्यादि पशु, चमड़ा, चर्बी, रोआँ और तरह तरहकी मछली तथा काड और तिमि मछलीका तेल

इत्यादि विदेशमें भेजा जाता है। आमदनीमें सूती और रेशमी कपड़ा, लोहा, शराब, फल, चाय, तमाकू, कहवा और बोमबर्गा आदि प्रधान हैं।

डेनमार्कमें सैन्यसंख्या १२०,००० है, प्रयोजन पड़ने पर इसकी संख्या और भी अधिक बढ़ाई जाती है। ३७ युद्ध-जहाज और उनमें २२७ तोपें तथा १२७० सैन्य कर्मचारी रहते हैं।

डेनमार्कके रेलपथका परिमाण प्रायः २७०० मील टेलिग्राफतार ६६८८ मील है।

राज्यकी आय प्रायः ३२००००००० रु० है। डेनमार्कमें विद्याशिक्षाका अच्छा प्रबन्ध है। यहांका विश्वविद्यालय बहुत प्रसिद्ध है। ७ वर्षसे ले कर १४ वर्ष तकके लड़केको पढ़ानेके लिये उनके अभिभावक ही बाध्य किए जाते हैं। डेनमार्कके सभी विद्यालय राजाके अधीन हैं।

यहांके राजाओंको लुथारसंस्कृत ईसाई धर्म अवलम्बन करना पड़ता है। किन्तु प्रजा अपने इच्छानुसार किसी धर्मको ग्रहण कर सकती है। १५३६ ई०में लुथारका संस्कार डेनमार्कमें आरम्भ हुआ है। इस राज्यमें ८ बिशप हैं। बिशपोंको राजा स्वयं चुनते हैं। उन्हें शासनसम्बन्धमें कोई अधिकार नहीं है।

डेनमार्कके भिन्न भिन्न शहरों और नगरोंमें बहुतसे विचारालय हैं; किन्तु सबसे उच्च विचारालय कोपेनहेगन नगरमें अवस्थित है। कोर्ट आफ कनसिलियेसन (Court of Conciliation) नामक अदालतमें सबसे पहले अभियोग उपस्थित करना पड़ता है। छोटी अदालतमें अच्छी तरह विचार नहीं किये जाने पर बड़ी अदालतमें अपील की जाती है।

पहले इस राज्यमें वंशानुक्रमिक राज-नियोग प्रचलित नहीं था। १६६० ई०की तृतीय फ्रेडरिकके राजत्वकालमें राज्यशासनका अधिकार वंशानुगत हुआ। उसी समयसे राजा अपने इच्छानुसार राज्य करते आ रहे थे। किन्तु बहुतोंके असन्तुष्ट होने पर १८३१ ई०में जटलण्ड और द्वीपों पर शासन करनेके लिये प्रधान प्रधान मनुष्योंको ले कर एक सभा संगठित की गई। ऐसा होनेसे कार्यमें बहुत विशृङ्खला होने लगी। अन्तमें राजा सप्तम फ्रेडरिकसे डेनमार्कको वर्तमान शासनप्रणाली नियत कर दी गई। प्रजामेंसे प्रतिनिधि निर्वाचित और इन्हीं प्रतिनिधियोंने मन्त्रिसभामें आसन ग्रहण किया था। इस जातिकी सभा दो भागोंमें विभक्त है—Folkething and Landsthing। ये दोनों सभा बहुत कुछ बृटिश पार्लियामेंट House of Commons से मिलती जुलती है।

डेनमार्कमें राजाका शरीर बहुत पवित्र माना जाता है। अगर राज्यमें किसी तरहकी विशृङ्खला हो तो उसके लिये मन्त्रिगण ही दायी हैं।

राज्यके प्रधान मनुष्यको राजा काउण्ट तथा व्यारण ये दो प्रकारकी उपाधि देते हैं. किन्तु उपाधिहीन प्राचीन वंशीय व्यक्ति ही साधारणके निकट अधिकतर सम्मान पाते हैं। उपनिवेशमें शासन करनेके लिये राजाके अधीन शासनकर्त्ता नियुक्त होते हैं। राजाकी एक मन्त्रिसभा है। यह सभा राजा और उनके उत्तराधिकारी तथा ८ सभ्य द्वारा संगठित है।

यहांके अधिवासी अत्यन्त बलिष्ठ होते हैं। इनके शरीरका वर्ण परिष्कार, आँख नीलवर्ण और बाल बहुत हलका होता है। ये सहज ही किसी काममें नियुक्त नहीं होते। अगर इन लोगोंका स्वत्व कोई अधिकार भी कर ले, तोभी वे सहज ही उसे किसी प्रकारकी बाधा नहीं देते हैं। किन्तु ये अत्यन्त साहसी तथा स्वदेशकी रक्षाके लिये आत्मविसर्जन करनेमें तनिक भी नहीं हिचकते हैं। डेनमार्कके सभी श्रेणीके मनुष्य बहुत यत्नसे मृत मनुष्यकी कब्र रक्षा करते हैं। ये फूल बहुत पसन्द करते हैं। इनका सौन्दर्यज्ञान प्रशंसा करने योग्य है।

सिमरीगण (Cymri) ही डेनमार्कके आदिम निवासी हैं। इसके बाद अडिनके अधीन गथगण आ कर कुछ काल तक यहां रहने लगी। उस समय डेनमार्क छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था और अधिवासी जलमें चोरी डकैती कर अपनी जीविकानिर्वाह करते थे। अधिवासीगण बिनडर (Boender) और ट्रेल (Traelle) इन दो श्रेणियोंमें परिचित होते थे। ट्रेलश्रेणीके लोग कृषिकर्म तथा शिकार इत्यादि करके अपनी जीविकानिर्वाह करते थे। उस समय वहांकी स्त्रियां भी पुरुषोंकी नाईं काम करती थीं। रोम साम्राज्यके अवनतिके

समय ये इंगलैण्ड प्रभृति देशोंमें लूट मार करने लगे थे। ८२६ ई०में डेनमार्कके राजा हारोल्डक्लाक (Haroldklak) जर्मनदेशसे अनेक द्रव्य लूट लाये थे। इस समय उक्त राजा अन्सिगेरियससे ईसाई धर्ममें दीक्षित हुए। किन्तु प्रजा ईसाई धर्मको बहुत घृणा करती थी। १०४२ ई०में एसट्रिडसन डेनमार्कके राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। लेकिन गृहविवाद और बहिःशत्रुके आक्रमणसे डेनमार्क धीरे धीरे दुर्बल होता गया। तृतीय भलडेमरके शासनकालमें डेनमार्ककी जातीय विधिव्यवस्था संगृहीत हो कर प्रचारित हुई। १३७६ ई०में भलडेमरकी लड़की मारगारेट समस्त स्कान्दनाभियकी रानी हुईं; किन्तु १४१२ ई०में उनकी मृत्युके बाद एक सम्पूर्ण राज्य पुनः पृथक् पृथक् हो गया। पीछे क्रिष्टफर डेनमार्क पर शासन करने लगे। १४४८ ई०में प्रथम ईसाईने डेनमार्कका तथा १५२३ ई०में प्रथम फ्रेडरिकने निर्वाचनानुसार डेनमार्क और नरवे युक्तराज्यका सिंहासन अधिकार किया। १५८८ ई०में ४र्थ ईसाईने राजा हो कर डेनमार्कको अत्यन्त क्षमताशाली बना दिया। किन्तु उच्चवंशीयगणके प्रतिकूल आचरण करनेसे डेनमार्कका पूर्व गौरव जाता रहा। १६६० ई०में Arve-EnVold's Regiering's Akt के अनुसार राजाका अधिकार फिर बढ़ गया। इसके बाद प्रायः एक शताब्दी तक कृषकगण अत्यन्त अधीनता सह्य करने लगे। ७म ईसाईके समय डेनमार्क एक ऊँचे शिखर पर पहुंच गया था। इनके राजत्वकालमें मुद्रायन्त्रको स्वाधीनता दी गई तथा गवर्मेण्टका अप्रतिरुद्ध व्यवसाय बन्द हो गया। नेपोलियनके साथ मिल कर यूरोपीय दूसरे दूसरे राज्योंके विरुद्ध सर्वदा लड़ाई करनेसे डेनमार्क प्रायः दिवालिया हो गया था। १८०७ ई०में नेलसनने डेनमार्कवासीको सम्पूर्णरूपसे पराजित किया। इस युद्धके बाद भियेना सन्धिके अनुसार डेनमार्क राज्यसे नरवे सुइडेनके साथ मिला दिया गया। बहुत पहलेसे ही राज्य ले कर जर्मन और डेनमार्कमें शत्रुभाव चला आता था। इस कारण १८४८ ई०में दोनोंमें लड़ाई छिड़ गई। १८४९ ई०में डेनमार्ककी जीत होने पर दोनों राज्यमें सन्धि स्थापन की गई। डेनमार्ककी प्रजाने राजासे यथेष्ट स्वाधीनता प्राप्त की है और अभी सुखसे समय व्यतीत करती है। किन्तु डेनमार्कके अधीन छोटे छोटे राज्योंसे आज तक भी असन्तोष भाव दूर नहीं हुआ है।

१८५२ ई०की २८वीं जनवरीको डेनमार्क और जर्मनके बीच एक प्रकारकी सन्धि हो गई। शर्त यह ठहरी कि समय पड़ने पर एक दूसरेकी मदद करे और राज्यके सामान्य विषयोंमें एक दूसरेका अधिकार रहे। तदनुसार होलस्टीन (Holsteen) डेमार्कको वापिस मिला तथा प्रुसिया और अष्ट्रिया लन्दनसभामें भाग लेनेको राजी हुआ। १८५५ ई०की २री अक्तूबरको यहां नया नियम चलाया गया जिससे उक्त सन्धिका प्रतिपालन न कर राज्यमें बहुत हेरफेर हुआ। १८६३ ई०में ७म फ्रेडरिकके मरने पर ९म ईसाई राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इन्होंने जर्मनसे सम्बन्ध रख विपद्की भावी आशङ्का करते हुए १८५५ ई०के प्रचलित नियमोंको कानून बना दिया। अगष्टेनबार्गके ईसाईके लड़के फ्रेडरिक होलस्टीन और जर्मनकी सहायतासे अपनेको ड्यूक कह कर घोषणा कर दी। बाद दोनोंमें लड़ाई छिड़ गई जिसे १८६४ ई०का युद्ध कहते हैं। अन्तमें १८६६ ई०की एक सन्धि स्थापन की गई जिससे चेलिविग जिलेका उत्तरीय भाग पुनः डेनमार्कके हाथ आया। १८७२ ई०में करका विषय ले कर डेनमार्कमें खूब हलचल मचा था। प्रधान मन्त्री जे. बी. ष्ट्रूप ही इस हलचलके कारण थे। १८९४ ई०में इनके मन्त्रिपदसे चले जाने पर रिगसदग (Rigsdag) के प्रस्तावसे इसका अच्छी तरह निवटारा हो गया।

लगभग १८९९ ई०में डेनमार्क उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। इस समय यहां इतनी फौज थी कि किसीका डेनमार्क पर चढ़ाई करनेका साहस नहीं होता था। लेकिन उसी साल यहांके ४०००० दस्तकारोंके बागी हो जाने पर डेनमार्कको ५०००००० क्रोनका घाटा हुआ था। १९०६ ई०में बहुत दिन राज्य कर चुकनेके बाद राजा ईसाईकी मृत्यु हुई। इनके उत्तराधिकारी इनके लड़के ८म फ्रेडरिक हुए। १९१२ ई०की १४वीं मईको ८म फ्रेडरिककी मृत्यु होनेके बाद उनके पुत्र १०म ईसाई सिंहासनारूढ़ हुए।

डेपूटेशन (अं० पु०) प्रसिद्ध मनुष्योंकी मण्डली। ये किसी सभा संस्थाकी ओरसे सरकार, राजा महाराजा इत्यादिके पास किसी विषयमें प्रार्थनाके लिये जाते हैं।

डेरा (हिं० पु०) १ टिकान, ठहराव, पड़ाव। २ ठहरावका आयोजन, छावनी। ३ ठहरनेका स्थान, छावनी, कैम्प। ४ खेमा, तम्बू, शामियाना। ५ नाचने तथा गानेवालोंकी मण्डली। ६ निवास-स्थान, मकान, घर। ७ पञ्जाब, अवध, बंगाल तथा मध्यप्रदेश और मद्राजमें मिलनेवाला एक प्रकारका जंगली पेड़। इसकी छाल और जड़ साँप काटने पर पिलाई जाती है।

डेरा इस्माइलखाँ—१ उत्तर-पश्चिम सीमान्तप्रदेशका दक्षिणस्थ जिला। यह अक्षा० ३१° १५' से ३२° ३२' उ० और देशा० ७०° ५' से ७१° २२' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ३७८० वर्गमील है। इसके उत्तरमें बन्नू जिला, पूर्वमें झङ्ग और साहपुर, दक्षिणमें डेरागाजीखाँ और मुजफ्फरगढ़ तथा पश्चिममें सुलेमान पहाड़ है। यही जिला भारतकी अन्तिम सीमा है।

यहां दो गढ़ोंके भग्नावशेष देखे जाते हैं जिन्हें काफिरकोट कहते हैं। शायद ग्रीक लोगोंने ये गढ़ निर्माण किये थे। १४वीं शताब्दी तक इस देशका विशेष विवरण कुछ नहीं मिलता है। १५वीं शताब्दीके अन्तमें मालिक सोहरावके अधीन एक दल बलूची यहां आ कर रहने लगी। इस्माइलखाँ और फतेहखाँ नामक उनके दो पुत्रोंने अपने नाम पर दो नगर स्थापित किये। बलूचियोंको हूट जाति कहते थे। इस हूट जातिने ३०० वर्ष तक स्वाधीनभावसे राज्य किया। पीछे १७५० ई०में अहमदशाह दुरानीने उन्हें मार भगाया और देश अपने कब्जेमें कर लिया। १७९२ ई०में दुरानीके सिंहासन अधिकारी शाहजमान महम्मदखाँने एक अफगानको नवाबकी पदवी दे कर यहां भेजा। महम्मदखाँने देशको अधिकृत कर मनकेरा नामक स्थानमें राजधानी स्थापित की। उनके मरनेके बाद उनके नाबालिग नाती सेर महम्मदखाँ राज्य-सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इस समय रणजित्सिंह देश जीतनेमें लगे हुए थे। उनके मनकेरा अधिकार कर लेने पर सेर महम्मद डेरा इस्माइलखाँ भाग गये और वहां सिखराजाका करद हो कर उन्होंने पन्द्रह वर्ष तक राज्य किया। कर बाकी पड़ जानेके कारण १८३६ ई०में नवनेहालसिंहने यह देश अपने अधिकारमें कर लिया। नवाबकी खर्च वर्चके लिये राजस्वका कुछ अंश देनेका निश्चय कर दिया गया। आज भी उनके वंशधर उस अंशका भोग कर रहे हैं। सिख-शासनकालमें अपर डेराजात दीवान लक्खीमलके अधीन आ गया, पीछे इनके लड़के दौलतरायके हाथ लगा। १८४७ ई०में ब्रटिश गवर्मेण्टका इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ। गवर्नर एडवर्ड (पीछे सर हरबर्ट) जब लाहोर दरबारमें प्रतिनिधि स्वरूप बना कर भेजे गये थे, तब उन्होंने राजस्वका एक संक्षिप्त बन्दोबस्त कर दिया। दूसरे वर्ष डेरा इस्माइलखाँ तथा बन्नूके योद्धाओंने एलवर्डका मुलतान तक साथ दिया तथा पञ्जाब अधिकृतकालमें भी उनकी यथेष्ट सहायता की। पञ्जाब फतह किये जानेके साथ साथ डेरा इस्माइलखाँ भी अंगरेजोंके हाथ लगा। अंगरेजोंने इसे जिलेकी सदर कायम किया और बन्नूको भी उसके अन्तर्गत कर लिया। १८६१ ई०में बन्नू एक पृथक् कर्मचारीके हाथ सुपुर्द किया गया और लोह जिलेका दक्षिणस्थ आधा भाग डेरा इस्माइलखाँके साथ मिला दिया गया। १८५७ ई०में सिपाहीविद्रोहके समय यहां भी विद्रोहकी सूचना देखी गई थी, किन्तु डिपुटी कमिश्नर कर्नल कक्सने विद्रोह-अग्नि धधकनेके पहले ही उसे शान्त कर दिया। १८७१ ई०में पञ्जाबके लेफ्टेनण्ट गवर्नर सर हेनरी दुरन्द जब एक दिन टाङ्क शहरके तोरणद्वार हो कर हाथीकी पीठ पर चढ़े भीतर जा रहे थे, तब संयोगवश उन्हें तोरणसे धक्का लगा और औंधे मुंह वहांसे गिरे और पञ्चत्वको प्राप्त हुए। उनकी लाश डेरा इस्माइलखाँमें गाड़ी गई। उनकी मृत्यु होने पर जिला भरमें शोक फैल गया था। १९०१ ई०में युक्तप्रदेशके संगठनके समय भक्कर, लोह जिला तथा कुलाची तहसीलके बत्तीस ग्राम इस जिलेसे पृथक् कर लिये गये थे।

इस जिलेमें ३ शहर और ४०९ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः २४७८५७ है। यहां हिन्दू, मुसलमान, सिख, पठान, बलूची, जाट, चमार, धोबी और मल्लाह लोग वास करते हैं। खेतीकी अच्छी सुविधा नहीं है।

नहर द्वारा जमीन सींची जाती है। गेहूं, जौ, ज्वार, चीनी, तमाखू, जुन्हरी, मूंग, मसुर, अरहर आदि जिलेकी प्रधान उपज है। डेरा इस्माइलखाँ और खुरासानके साथ वर्षमें दोबार आमदनी और रफतनी होती है। चमड़े, नमक आदिकी आमदनी और गेहूं और बड़ी ज्वारकी रफ्तनी होती है।

शासन-कार्यकी सुविधाके लिये यह जिला तीन तालुकमें विभक्त है, डेरा इस्माइलखाँ, टाँक और कुलाची। हरएक तहसील एक एक तहसीलदार और नायब तहसीलदारके अधीन है। डिपुटी कमिश्नर तथा सहकारी कमिश्नर द्वारा विचारकार्य सम्पादन होता है। एक सहकारी कमिश्नरके अधीन पुलिसका इन्तजाम है। दीवानी कार्य डिष्ट्रिक्ट जज द्वारा चलाया जाता है जिनकी अदालत बन्नूमें है।

जिलेमें दो म्युनिसिपालिटी हैं, एक डेरा इस्माइलखाँमें और दूसरी कुलाचीमें। यहां ४ सेकेण्डरी, २५ प्राइमरी, ४ हाई और २८८ बालिका स्कूल हैं। इस विभागमें वार्षिक २३४०० रु० खर्च होते हैं। इसके सिवा यहां एक कारागार और एक अस्पताल है। जिलेमें ग्रीष्मका प्रकोप बहुत अधिक है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३१´ १८ से ३२´ ३२ उ० और देशा० ७०°३१´ से ७१´२२´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १६९८ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: १४४३३७ है। इसमें २५० ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० ३१´ ४९´ उ० और देशा० ७०° ५५´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ३१७३७ है। यह शहर सिन्धु नदीसे ४½ मील, लाहोरसे २०० मील तथा मुलतानसे १२० मील दूर पड़ता है। यह शहर १५वीं शताब्दीमें बलूचके प्रधान मलीक सोहराबके लड़के इस्माइलखाँसे स्थापित हुआ। उन्हींके नाम पर शहरका नामकरण हुआ है। यहां दो ऐङ्गलो हाईस्कूल, चिकित्सालय तथा औषधालय है। यहांसे अनाज, लकड़े और घीकी रफ्तनी तथा दूसरे दूसरे स्थानोंसे चमड़े, नमक आदिकी आमदनी होती है।

डेरा गाजीखाँ—१ पञ्जाबके अन्तर्गत मुलतान विभागका एक जिला। यह अक्षा० २८°२५´ से ३१° २०´ उ० और देशा० ६९° १९´ से ७०° ५४´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ५३०६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें डेरा इस्माइलखाँ, पूर्वमें सिन्धु नदी, दक्षिणमें उत्तर सिन्धुका प्रान्तसीमास्थ जिला और पश्चिममें सुलेमान पहाड़ है।

यह जिला बालुकामय निम्नभूमिसे समाच्छन्न है। एक ओरसे सुलेमान पहाड़ और दूसरी ओरसे सिन्धुका किनारा इसको घेरे हुए हैं। जिलेके पश्चिम भागमें गिरिमाला पहाड़की मालभूमिकी ओर विस्तृत है। जहां बहुतसे स्वाधीन बलूचिजातिके आश्रयस्थान हैं। पहाड़से अनेक जलस्रोत निकले हुए हैं सही, किन्तु सूखी जमीनमें जा कर वे शीघ्रही सूख जाते हैं। कहा और सङ्गर नदियोंमें बारहों महीने जल रहता है। अन्य नदियोंका जल जब सूख जाता है, तब बलूची लोग अपने अपने मवेशीको ले कर पहाड़ पर चराने जाते हैं। ग्रीष्मकालमें डेढ़ दोसौ हाथ जमीनके नीचे पानी मिलता है। पश्चिमकी ओर नदीके किनारे निर्जन मरुभूमि दृष्टिगोचर होती है। बीच बीचमें ३८८ फुट गहरा कुआं गवमेंण्टकी ओरसे बना दिया गया है, जिससे पथिकोंको जल मिल जाया करता है। पूर्वकी ओर सिन्धु नदीके जलसे जमीन कुछ कुछ उर्वरा हो गई है इसी कारण मनुष्योंका वास भी इस ओर अधिक है। लोकसंख्या प्राय: ४७११४० है। इसमें ५ शहर और ७१० ग्राम लगते हैं। अधिवासियोंमें प्रधानत: जाट, हिन्दू और भिन्न भिन्न श्रेणीके बलूची लोग हैं। इस अञ्चलमें खजूरके अनेक वृक्ष देखे जाते हैं। यहांका खजूर बहुत प्रसिद्ध है। यहांके जंगलमें जो लकड़ी मिलती हैं वे केवल जलानेके काम आती हैं। खेतीबारीकी सुविधाके लिए कई एक नहर काटी गई हैं। सङ्गर और जामपुर तहसीलका अंश कालापानी नामसे मशहूर है। दो नदियोंमें बारहों महीने काले रंगका पानी रहता है, इसीसे इस अंशको कालापानी कहते हैं।

यहांके सुलेमान पहाड़की प्रधान चोटीका नाम एकभाय है जो समुद्रपृष्ठसे ७४६२ फुट ऊँची है। इसके बाद ही गम्भारी नामक चोटी है। ग्रीष्मकालमें सुलेमान

पहाड़का ऊपरी भाग बहुत ठंडा रहता है। सुतरां यूरोपियनोंके लिये बहुत मनोरम है। यहां ८२ गिरिसङ्कट हैं जिनमेंसे सङ्गर, सखीसर्वार चाचर, कहा और मोरी प्रधान हैं।

सिन्धु नदीमें जब बाढ़ आती है, तो पूर्वांशका कोई कोई स्थान डूब जाता है। जो जो ग्राम जलप्लावित होते हैं, वहां दलदल जम जानेसे जमीन उर्वरा हो जाती है। कभी कभी सिन्धु नदमें भारी बाढ़ आ जाती है। १८३३ और १८४१ ई०में जब भीषण बाढ़ आई थी, तब सिन्धु नदीका जल २० फुट ऊपर उठ कर ६ कोस तककी जमीनको डूबाता हुआ शायद उपत्यका तक आ गया था। १८५६ ई०के प्लावनसे डेरा गाजीखाँका सेनानिवास बह गया था।

खनिजद्रव्योंमें यहांके पहाड़ पर लोहा, तांबा और शीशा मिलता है। अच्छे कोयले भी पाए जाते हैं। जिलेके दक्षिणभागमें फिटकरी निकाली जाती है। पहाड़ पर मुलतानी नामकी एक प्रकारकी मट्टी पाई जाती है जो औषध बनानेके काममें आती है और साबूनके बदले व्यवहृत होती है। यहां खार नामक एक प्रकारका पेड़ है जिसे जला कर सज्जी प्रस्तुत होती है। सिन्धुप्लावित भूमिमें मूंज नामकी काफी उगती है। जङ्गली पशुओंमें बाघ, हिरण, सूअर, गदहा और तरह तरहके पक्षी तथा कबूतर पाये जाते हैं।

इतिहास—पहले इस जिलेमें केवल हिन्दूजातिका वास तथा हिन्दूराजत्व था। जिलेके अनेक नगरोंमें आज भी हिन्दूराजाओंके कीर्त्तिकलाप वर्णित हुआ करते हैं। यहांके हिन्दू राजाओंमें वीरवर रसालूका नाम बहुत मशहूर है। रसालू देखो।

सङ्गर तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें मुसलमान आक्रमणकी पूर्ववर्ती प्राचीन कीर्त्तियोंके अनेक ध्वंसावशेष देखे जाते हैं। ७१२ ई०में मुलतानके साथ साथ यह जिला अरब-विजेता महम्मद बेन्कासिमके हाथ लगा। मुसलमान राजत्वकालमें इस जिलेकी आय राजपरिवारकी वृत्तिके रूपमें दी जाती थी। प्रायः १४५० ई०में तत्कालीन नवाबके आत्मीय लोदीवंशके नाहिरोंका प्रभाव बहुत बढ़ गया। वे किन और सीतपुर अञ्चलमें स्वाधीनभावसे राज्य करते थे। नाहोरवंशमें डेराजात विभागमें अपना आधिपत्य विस्तार किया था। किन्तु पश्चिमप्रान्तवासी पार्वतीय बलूची जातिके आक्रमणसे उनका अधिकार बहुत कुछ ह्रास हो गया। बलूचियोंमें मालिक सोहरब ही प्रधान थे। बाद सरदार हाजी खाँ बहुत बढ़ चढ़ गये। इनके पुत्र गाजीखाँने १५वीं शताब्दीमें अपने नाम पर शहर और जिलेका नाम रखा। तभीसे डेरागाजीखाँ नाम प्रचलित है। उक्त बलूची लोग मुलतानके राजाके अधीन सामन्तोंमें गिने जाते थे। क्रमशः वे अपने दलको मजबूत कर दो वर्षके बाद डेराजातके स्वाधीन राजा हो गये। इसी वंशके १८ राजाओंने डेराजात पर राज्य किया और उनके उत्तराधिकारियोंने हाजी और गाजीखाँकी उपाधि धारण की। अकबरके समयमें गाजीखाँके वंशने नाममात्र मुगल साम्राज्यकी अधीनता स्वीकार की। यद्यपि इन लोगोंका राज्य इस समय भी जागीरमें गिना जाता था और उन्हें कुछ कुछ कर भी देने पड़ते थे, तो भी एक तरहसे वे सम्पूर्ण स्वाधीनता भोग करते थे। दक्षिणांशमें नाहोरोंने १२वीं शताब्दी तक अपनी स्वाधीनता बचाये रखी थी। मुगलोंकी अवनतिके समय १७३९ ई०में सिन्धुनदीका पश्चिम कूलवर्त्ती प्रदेश नादिरशाह दुरानीके अधिकारमें आया। इस समय गाजीखाँ दुरानीकी अधीनता स्वीकार कर पैतृक अधिकार निर्विवादसे भोग करने लगे। उनकी मृत्युके बाद कोई उत्तराधिकारी नहीं रहनेसे यह जिला पुनः थोड़े समयके लिये नाममात्र मुलतानमें मिला दिया गया। इस समय कलहोरा राजाओंने इस जिलेको अपने अधिकारमें कर लिया, किन्तु १७७० ई०में महमूद गुजर नामक अहमदशाह दुरानीके अधीनस्थ एक शासनकर्त्ताने इसे उद्धार किया। उन्हींके यत्नसे इस जिलेमें कई जगह कुएँ और नहरें काटी गईं, जिससे कृषिकार्यकी अच्छी सुविधा हो गई है। दुरानी राजाओंके अधीन यहाँ कई एक व्यक्तियोंने यथाक्रम शासनकार्य किया। पीछे बलूची जातिके अन्तर्विद्रोहसे यह स्थान श्रीभ्रष्ट और उत्सन्न हो गया।

इस समय नहरें आदि बरबाद हो गई, कृषिकर्म उठ गया और प्रजा दुर्दशाग्रस्त हो गई। रणजित्‌सिंहके

अभ्युदयके समय यह जिला लाहौर दरबारके अधीन हुआ। १८१९ ई०में रणजित्‌सिंहने अपना आधिपत्य सिन्धुनद तक फैला लिया। यहां तक कि इस जिलेका दक्षिणीय भाग भी इनके हाथ आ गया। बहवलपुरके नवाब सादिक मुहम्मदखाँने लाहौर दरबारमें कुछ वार्षिक कर दे कर ये सब नवीन अधिकृत प्रदेश बतौर जागीरके ले लिये। १८२७ ई०में नवाबने इसके उत्तरीय भाग पर भी धावा मारा। १८३२ ई०में सारा जिला सुलतानके सावनमलके हाथ आ गया। द्वितीय सिख-युद्ध तक सावनमलके लड़के मूलराजका इस पर अधिकार रहा। बाद जब समूचा पञ्जाब वृटिश गवर्मेण्टके शासनाधीन हुआ, तब यह जिला भी उसीके साथ साथ वृटिशके दखलमें आ गया। जबसे यह जिला अङ्गरेजोंके अधीन आया है, तभीसे इसकी उन्नति दिन दूनी और रात चौगुनी होने लगी है।

जिलेकी चैती फसल गेहूं ही प्रधान है। इसके अलावा चना, पोस्त, तमाकू, धान, रूई और नीलकी उपज भी कम नहीं होती। यहां कम्बल, गलीचा, जीन तथा और दूसरे दूसरे प्रकारके पशमके कपड़े तैयार होते हैं। रेशमकी बुनावट भी यहांकी अच्छी होती है। यहां जो हाथी दाँतकी चूड़ियाँ बनती हैं, वह सब जिलोंसे बढ़ कर होती हैं। इस जिलेसे गेहूं, बाजरा, नील, अफीम, रूई, चमड़ा और तेलहन करांची और सुलतान भेजा जाता है तथा वहांसे गेहूं, चना, नमक, दलहन, चीनी, चमड़े और लोहेकी आमदनी होती है।

इस जिलेमें रेल नहीं गई है। लोग जहाज तथा नाव द्वारा वर्षाऋतुमें नदी पार होते हैं। २८ मील तक पक्की सड़क और ६६० मील तक कच्ची सड़क गई है। सखी सरवर नामकी पक्की सड़क ही सबसे बड़ी तथा मशहूर है। शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला चार तहसीलोंमें विभक्त किया गया है, डेरा गाजीखाँ, राजनपुर और सङ्गढ़। हरएक तहसील तहसीलदार और नायब तहसीलदारके अधीन है। डिपटी कमिश्नर फौजदारी मामलेका विचार करते हैं और डिष्ट्रिक्ट जज दीवानीका। इन दोनोंके ऊपर सुलतान सिविल डिविजनके डिविजनल जज हैं।

शिक्षा-विभागमें वार्षिक ३४०००) रु० व्यय होते हैं। स्कूलके सिवा यहां कोई एक अस्पताल और औषधालय भी हैं। जिलेमें पाँच शहर लगते हैं,—डेरा गाजीखाँ, दजल, नौसहरा, यमपुर, राजनपुर और मियनकोट।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २९°३४´ से ३०° ३१´ उ० और देशा० ७०°१०´ से ७०°५४´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १४५७ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १८३७४४ है। इसके पूर्वमें सिन्धु नद और पश्चिममें स्वाधीन राज्य है। यहां एकभाय और फोर्ट मुनरो नामक पर्वतशृङ्ग क्रमशः ७४६२ और ६३०० फुट समुद्रपृष्ठसे ऊँचे हैं। इसी तहसीलमें इसी नामका एक शहर और २१५ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० ३०° ३´ उ० और देशा० ७०° ४७´ पू० पर सिन्धु नदके किनारे पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २३७३१ है।

१४७५ ई०में गाजीखाँ मिरानी नामक किसी बलूचीने यह नगर स्थापित किया था। नगरके पूर्वमें कस्तूरी नामकी नहर है। जिसके दोनों बगल घने आम के जंगल हैं, बीच बीचमें अनेक घाट भी हैं। ग्रीष्मकालमें बहुतसे लोग यहां स्नान करने आते हैं। नगरके ऊपर एक बहुत ऊँचा बाँध है जो १८५८ ई०में बाढ़से नगरको बचानेके लिये तैयार किया गया है। पहले यहां गाजीखाँका उद्यान था। अभी वहां अदालत है और प्राचीन दुर्गमें तहसीलकी कचहरी और पुलिश कार्यालय है। इसके अलावा यहां टाउनहाल, विद्यालय, औषधालय, डाकघर आदि हैं, बीच बीचमें अनेक मसजिदें भी देखनेमें आती हैं। इनमेंसे गाजीखाँ, अबदुल जबार और चूताखाँकी मसजिद प्रसिद्ध है। सिखोंके आधिपत्यकालमें उक्त तीनों मसजिदें सिखोंके उपासना-गृहके रूपमें गिनी जाती थीं। यहां प्राचीन हिन्दू देवमन्दिर और दो मुसलमान साधुओंकी समाधियां हैं।

शहरसे नील, अफीम, खजूर, गेहूं, कपास, कंगनी, घी, चमड़े आदिकी रफतनी और दूसरे दूसरे देशोंसे चीनी, काबुलके तरह तरहके फल, विलायती कपड़े, धातु, नमक तथा गरम मशालेकी आमदनी होती है। किसी समय यहां रेशम और रूईका कारबार था, अब प्रायः नहींके बराबर है।

ग्रीष्मकालमें नहरके किनारे सप्ताहमें दो बार हाट लगती है। शान्तिरक्षाके लिये यहांके किलेमें एक दल अश्वारोही और दो दल पदातिक रहते हैं। १८६७ ई०में यहाँ म्युनिसपालिटी कायम हुई है। यहाँ ऐङ्गलो वर्नाक्यूलर हाई-स्कूल और एक अस्पताल है।

डेरा गोपीपुर· पञ्जाबके काङ्गड़ा जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३१' ४० से ३२' १३' उ० और देशा० ७५' ५५´ से ७६' ३२´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ५१५ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग १२५५३६ है। इसमें कुल १४५ ग्राम लगते हैं। यहाँकी आय लगभग दो लाख रुपयेकी है।

डेराजात—पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत एक कमिश्नरके अधीन एक विभाग। यह अक्षा० २८' ३०´ से ३४' १५´ उ० और देशा० ६८' १५´ से ७२' पू०में अवस्थित है। इसके अन्तर्गत डेरा इस्माइलखाँ, डेरा फतहखाँ और डेरा गाजीखाँ ये तीन जिले हैं। यह उपविभाग उत्तरमें शेख बुदिन पहाड़ और दक्षिणमें जामपुर शहर तक विस्तृत है। इसकी लम्बाई ३२५ मील और चौड़ाई ५० मील है। १८४९ ई०में यह विभाग अंगरेजोंके हाथमें आया। १५वीं शताब्दीमें यह विभाग बलूचके शासनाधीन था। मुलतानके लङ्गाधिपति सुलतान हुसेनने जब देखा कि सिन्धुप्रदेशका अधिकार उनके हाथमें अब रहनेको नहीं है, तब उन्होंने बलूच-सेनाओंको बुलाया और मलिक सोहराबको वे सब प्रदेश जागीरमें दे दिये। सोहराबके लड़के इस्माइल और फतेहखाँने अपने अपने नाम पर दो डेरा अर्थात् वासस्थान स्थापित किये। इधर हाजीखाँ जो बलूचके प्राचीन मिरानी वंशके प्रधान थे और लङ्गाके दरबारमें नौकरी करते थे, सुलतान हुसेनके पोते महमूदके शासनकालमें स्वतन्त्र हो गये। उन्होंने अपने लड़केके नाम पर एक शहर बसाया जिसका नाम डेरा गाजीखाँ रखा गया। १५२६ ई०में बाबरके उत्तरीय भारत पर चढ़ाईके समय मिरानीने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। बाबरके मरने पर उनके लड़के कामराननें, जो काबुलके शासक थे, डेराजात पर अपना अधिकार जमाया। फिर हुमायूंने इसका पूरा अधिकार मिरानीको दे दिया। १७३९ ई०में नादिरशाहने सिन्धका पश्चिमीय प्रदेश हस्तगत कर लिया और मिरानीका सारा स्वत्व जाता रहा। बाद कई एक राजाओंने इस पर एक एक कर आक्रमण किया सही, लेकिन कोई अधिक दिन तक ठहर न सके। कालक्रमसे हरबर्ट एडवर्डके यत्नसे यह विभाग १८४९ ई०में सदाके लिये अंगरेजोंके हाथमें आ गया।

डेरा नानक—पञ्जाबके गुरुदासपुर जिलेके अन्तर्गत बताला तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३२' २´ उ० और देशा० ७५' ७´ पू० पर रावी नदीके दक्षिण किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ५११८ है। यह गुरुदासपुर शहरसे २२ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

इस नगरके निकट दूसरी तरफ परेवाकी ग्राममें सिखोंके आदिगुरु नानक रहते थे और उसी ग्राममें उनकी मृत्यु भी हुई। उनके वंशधर बेदीगण बराबर उसी ग्राममें रहते थे, किन्तु जब वह ग्राम इरावती नदीसे कट गया, तब वे नदी पार कर गये और वहाँ उन्होंने एक नया नगर बसाया जिसका नाम अपने आदिपुरुष नानकके नाम पर डेरा-नानक रखा। तभीसे यह नगर सिखोंके निकट बहुत पवित्र माना जाता है। बाबा नानकके स्मरणार्थ यहाँ एक सुन्दर मन्दिर बनाया गया है जिसे दरबार साहब कहते हैं। शहरमें नानकके वंशधर ही प्रधान हैं।

एक समय यहां वाणिज्यव्यापार खूब जोर था। रेल हो जानेसे व्यवसाय कुछ कम गया है। तो भी यहांका शाल प्रस्तुत करनेका व्यवसाय आज भी प्रसिद्ध है। यहांसे कपास और चीनीकी रफतनी अधिक होती है। रावी नदीकी बाढ़से नगरके विशेष अनिष्ट होनेकी सम्भावना रहती थी, इसीसे वहाँ एक बाँध दे दिया गया है। इस पर भी मन्दिर और नगर भूगर्भशायी हो जानेकी आशङ्का सदा बनी रहती है।

यहां थाना, अंगरेजी और देशीभाषा सिखानेके विद्यालय, औषधालय आदि हैं। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपालिटी स्थापित हुई है।

डेरापुर—१ युक्तप्रदेशके कानपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २६' २०´ से २६' ३७´ उ० और देशा० ७८ ३४´ से ७९' ५५´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ३०

वर्गमील और लोकसंख्या लगभग १४८५८३ है। इसमें २७५ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है। इसके उत्तरमें रिन्द नदी और दक्षिणमें सेङ्गुर नदी प्रवाहित है।

२ डेरापुर जिलेका एक प्रधान नगर। यह सेङ्गुर नदीके बांये किनारे कानपुर शहरसे १७ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहां तहसीलकी कचहरी, प्रथम श्रेणीका थाना, विद्यालय, डाकघर आदि हैं। महाराष्ट्रोंके शासनकालमें (१७५६-१७६२ ई०को) इस प्रदेशके शासनकर्त्ता गोविन्दराय पण्डित यहां एक सुदृढ़ दुर्ग बना गये हैं। नगरमें अनेक प्राचीन मसजिद भी हैं।

डेरोली श्रीगौड़—श्रीगौड़ ब्राह्मणोंकी जातिका एक भेद। मालव प्रान्तमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। इनका आचार विचार साधारण है। शूद्रकन्याकी सन्तान होनेके कारण इनका पद नीचा है। कहते हैं, कि लक्ष्मीके शापसे ये लोग भिक्षुक हो गये हैं, इसलिए कर्म धर्मसे भी हीन हैं।

डेल (हिं० स्त्री०) १ रबीकी फसलके लिये जोती हुई जमीन। (पु०) २ लङ्कामें होनेवाला एक प्रकारका बड़ा और ऊँचा पेड़। इसकी लकड़ी मेज़ कुरसी आदि बनानेके काममें आती है। इसके बीज खाये जाते हैं और उनमेंसे एक प्रकारका तेल निकलता है जो दवा और जलानेके काममें आता है। ३ उल्लू पक्षी। ४ पत्थर मट्टी आदिका खंड, ढेला, रोड़ा।

डेल्टा (अं० पु०) वह तिकोनी जमीन जो नदियोंके मुहाने या सङ्गमस्थान पर उनके द्वारा लाए हुए कीचड़ और बालूके जमनेसे बनती है।

डेला (हिं० पु०) १ आँखका कोया। २ नटखट चौपायोंके गलेमें बाँधे जानेका काठ, ठेंगुर।

डेलिगेट (अं० पु०) प्रतिनिधि, ये किसी स्थानके निवासियोंकी ओरसे किसी सभामें अपनी सम्मति देनेके लिये भेजे जाते हैं।

डेलिया (हिं० पु०) लाल या पीले रंगका फूल देनेवाला एक प्रकारका पौधा।

डेवढ़ना (हिं० क्रि०) १ आँच पर रक्खी हुई रोटीका फूलना। २ कपड़ेका तह लगाना।

डेवढ़ा (हिं० वि०) १ आधा और अधिक, डेढ़गुना। (पु०) २ सङ्कीर्ण पथ, तंग रास्ता, जिसका एक किनारा ढाल हो। ३ कुछ उच्च स्वरका गान। ४ डेढ़गुनी संख्याका पहाड़ा।

डेस्क (अं० पु०) लिखनेके लिये छोटा ढालुआँ मेज़।

डेहरिया—काशी प्रदेशके पूर्वभागमें कर्मनाशा नदीके किनारे अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। भविष्यब्रह्मखण्डके मतसे यहाँ प्राचीन कालमें ताड़का राक्षसी रहती थी। उसकी मृत्यु रामचन्द्रके हाथसे हुई और इसी स्थान पर उसकी हड्डियाँ कालक्रमसे मट्टीमें मिल गईं।

(भ० ब्रह्म० ५८अ०)

डेहरी (हिं० स्त्री०) दहलीज, देहली।

डेहल (हिं० पु०) डेहरी देखो।

डेंगना (हिं० पु०) वह काठ जो नटखट चौपायोंके गलेमें बाँध दिया जाता है, ठेंगुर।

डैना (हिं० पु०) पक्ष, पंख, पर।

डैम (अं० पु०) सत्यानाशी, अभागा।

डैश (अं० पु०) अङ्गरेजी विराम-चिह्न। इसका प्रयोग कई उद्देश्योंसे किया जाता है। वाक्यके बीच डैश दे कर जब कोई वाक्य लिखा जाता है, तब उस वाक्यका व्याकरण संबन्ध प्रधान वाक्यसे नहीं होता। इसका चिह्न '—' यों है। जैसे, जो मनुष्य अच्छे पढ़े लिखे हैं—चाहे वे हिन्दू हों, चाहे मुसलमान हों, चाहे भंगी हों—सभी उनका आदर करते हैं।

डोंगर (हिं० पु०) पहाड़ी, टीला।

डोंगा (हिं० पु०) १ वह नाव जिसमें पाल नहीं रहता है। २ नाव।

डोंगी (हिं० स्त्री०) १ बिना पालकी छोटी नाव। २ छोटी नाव। ३ लोहारका वह पानीका बरतन जिसमें वे लोहा लाल करके बुझाते हैं।

डोंड़ा (हिं० पु०) १ बड़ी इलायची। २ कारतूस, टोटा।

डोंडी (हिं० स्त्री०) १ पोस्तेका फल जिसमेंसे अफीम निकलती है। २ उभरा मुंह, टोंटी। ३ छोटी नाव।

डोई (हिं० स्त्री०) काठकी बड़ी करछी। यह कड़ाहेमेंके दूध, घी, चाशनी आदि चलानेके काममें आता है।

डोक (हिं० पु०) पका हुआ छुहारा।

डोकर (हिं॰ पु॰) डोकरा देखो।

डोकरा (हिं॰ पु॰) अशक्त और वृद्ध मनुष्य, बुड्ढा आदमी।

डोकरी (हिं॰ स्त्री॰) वृद्धा स्त्री, बुड्ढी औरत।

डोका (हिं॰ पु॰) तेल आदि रखनेका काठका छोटा बरतन।

डोकिया (हिं॰ स्त्री॰) डोका देखो।

डोकी (हिं॰ स्त्री॰) डोका देखो।

डोज़ (अं॰ स्त्री॰) मात्रा, खुराक।

डोड़हथी (हिं॰ स्त्री॰) तलवार।

डोडहा (हिं॰ पु॰) वह साँप जो पानीमें रहती है।

डोड़ी (सं॰ स्त्री॰) क्षुपविशेष, एक प्रकारकी बेल। इसके पर्याय—जीवन्ती, शाकश्रेष्ठा, सुखालुका, बहुवल्ली, दीर्घपत्रा, सूक्ष्मपत्रा और जीवनी हैं। इसमें कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, कफ, वात, कण्ठामय, रक्तपित्त, दाहनाशक और रुचिकर गुण माना गया है। (राजनि॰)

डोड़ी (हिं॰ स्त्री॰) औषधके काममें आनेवाली एक प्रकारकी लता। इसका दूसरा नाम जीवन्ती है। यह मधुर, शीतल, नेत्रहितकर, त्रिदोषनाशक और वीर्यवर्द्धक मानी जाती है।

डोडो (अं॰ स्त्री॰) एक पूर्व समयकी चिड़िया। यह बत्तखके बराबर होती थी। इसका शरीर भारी और बेढङ्गा था। यह अपने बचावके लिये कुछ नहीं कर सकती क्योंकि यह अधिक उड़ नहीं सकती थी। १६८१ ई॰के जुलाई मास तक यह मारिशस टापूमें देखी गई थी। १८६६ ई॰में इसकी बहुतसी हड्डियाँ पाई गई थीं। यूरोपियनोंके बसने पर इस दीन पक्षीका समूल नाश हो गया।

डोब (हिं॰ पु॰) गोता, डुबकी।

डोबा (हिं॰ पु॰) डुबकी, गोता।

डोम—भारतवर्षकी एक अस्पृश्य और नीच जाति। ये कई एक स्थानोंमें विस्तृत तथा नाना श्रेणियोंमें विभक्त हैं। इनकी उत्पत्तिके विषयमें बहुतोंका मतभेद है। बिहारका मवैया डोम कहता है, कि एक दिन महादेव और पार्वतीने सब जातियोंको भोजन करनेके लिये निमन्त्रण किया था। डोमोंका आदिपुरुष सुपत भक्त सबसे पीछे निमन्त्रणस्थल पर पहुँच कर देखा, कि, अन्यान्य जातियोंका भोजन शेष हो गया है। उसे बहुत भूख लगी थी इसलिये उसने सभीका उच्छिष्ट भोजन एकत्र कर अपनी भूख तृप्त कर ली। उपस्थित मनुष्य इस घृणित कार्यसे उसकी खूब निन्दा करने लगे। अन्तमें वह जातिच्युत कर दिया गया। बिहारके किसी भिक्षोपजीवी डोमसे उसकी जातिकथा पूछी जाने पर वह अपनेको उच्छिष्ट भक्षक बतलाता है। परन्तु मध्य और पश्चिम बङ्गालके डोम अपना उत्पत्ति-विवरण कुछ दूसरा ही बतलाते हैं। ये कहते हैं, कि बागदी जातिकी लेट श्रेणीके पुरुषके औरस तथा चण्डाल जातिकी स्त्रीके गर्भसे कालुवीरका जन्म हुआ। डम देखो।

वही कालुवीर समस्त डोम श्रेणियोंका आदिपुरुष है। कालुवीरके प्राणवीर, मनवीर, बाणवीर और शाणवीर नामके चार पुत्रोंसे आङ्कुरिया, बिशभलिया, बाजुनिया और मघैया इन चार श्रेणियोंके डोम उत्पन्न हुए हैं। धकल देशिया अथवा तपसपुरिया डोम भी अपनेको कालुवीरके वंशज बतलाते हैं। ये दूसरेके मृत शरीरको एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुंचाते और चिता काटते हैं। इन डोमोंका प्रवाद है, कि महादेवने कालुवीरके एक पुत्रको गङ्गासे जल लाने भेजा था। गङ्गातट पर आ कर उसने देखा कि बहुतसे मनुष्य शवको जलानेके लिये वहां इकट्ठा हो रहे हैं। तब मृतव्यक्तिके आत्मीयसे रुपये ले कर उसने मट्टी खोद करके चिता प्रस्तुत कर दी। लौटने पर शिवजीने उसे इस तरह अभिशाप दिया 'तुम तथा तुम्हारे वंशधर बहुत काल तक मृतदेहका सत्कारादि करके कालयापन करेंगे।" डोमकी स्त्रियां धात्रीका काम कर 'धाय' नामसे पुकारी जाती हैं। इस श्रेणीके पुरुष मजदूरी कर अपनी जीविकानिर्वाह करते हैं। एक श्रेणीके डोम बाँस काट कर उसकी फट्टियोंसे सूप डले आदि बनाते हैं। इन्हें बाँसफोड़ कहते हैं। इसी श्रेणीका जो डोम छप्पर छानता है वह छपरिया कहलाता है।

डोमोंमें भिन्न भिन्न गोत्र हैं। इनमें ब्राह्मणोंके गोत्र ही अधिक प्रचलित हैं। साधारणतः डोमोंकी पांचवें पुरुषमें विवाह निषिद्ध है। बिहारके मघैया डोमोंमें

विवाहके लिये गोत्रका नियम अत्यन्त प्रबल है। (१) पिता, (२) पितामही, (३) प्रपितामही, (४) वृद्धप्रपितामही, (५) माता, (६) मातामही तथा (७) प्रमातामही ये जिस श्रेणीके होते हैं उस श्रेणीमें सर्वथा डोम विवाह नहीं करता है। बङ्गालके डोमोंमें केवल एक मूलकी स्त्री-पुरुषका विवाह नियम-विरुद्ध है। बाँकुड़ामें कमसे कम ३ पीढ़ीमें विवाह नहीं होता, परन्तु भैयादि रहने पर ५ पीढ़ीमें भी विवाह नहीं हो सकता है। २४ परगनावासीको कोई डोम सपिण्ड स्त्री ग्रहण नहीं करता।

यदि किसी दूसरी जातिका मनुष्य डोम होना चाहे तो वह पञ्चायतको निर्दिष्ट अर्थ और निकटवर्त्ती डोमोंको एक भोज दे कर डोम जातिमें मिल सकता है। जो मनुष्य डोम श्रेणीभुक्त होना चाहता है, उसे सिर मूड़वा कर पञ्चायतसे एक प्रकारकी दीक्षा ग्रहण करनी पड़ती है।

मध्य और पूर्व बङ्गालके डोम थोड़ी ही अवस्थामें अपनी लड़कीका विवाह कर देते हैं। १० वर्षसे अधिक उम्रकी कन्याका विवाह नहीं करनेसे समाजमें कन्याके पिताकी निन्दा होती है। इनमें कन्याका पण ५) रुपयेसे ले कर १०) रुपये तक है। ढाका जिलेके डोम विवाहकालमें आत्मीयस्वजनोंको आमन्त्रण करते हैं। निमन्त्रितगणके पहुंचने पर वरका पिता पुत्रको गोदमें ले कर मंडप पर बैठता तथा कन्याका पिता भी कन्याको ले कर वरके सामने बैठ जाता है। कन्याका पिता ७ पीढ़ीके तथा वरका पिता ३ पीढ़ीके नाम उच्चारण करता है। इसके बाद वे ईश्वरको इस विषयमें साक्षी रखते हैं और वरका पिता कन्याके पितासे यह जिज्ञासा करता है कि वह अपनी कन्याको परित्याग करता है या नहीं। कन्याके पितासे सम्मतिसूचक उत्तर पाने पर वर कन्याके कपालमें सिन्दूर देता है। इसी तरहसे विवाहक्रिया संपन्न होती है। २४ परगनेके डोम विवाहसमयमें विवाह-सभाके मध्यस्थल पर गङ्गाजलसे पूर्ण एक पात्र रखते हैं। इस पात्रके ऊपर वर और कन्याके हाथ रखाते हैं। धर्मपण्डितके मन्त्रादि पढ़ने पर अन्तमें वर और कन्या दोनोंकी माला परस्पर बदली जाती है। विवाहके पहले दुर्गा, महादेव, गणेश प्रभृति देवताओंकी अर्चना की जाती है।

डोमोंमें बहुविवाह और विधवा-विवाह निषिद्ध नहीं है। विधवाके साथ उसके स्वामीका कनिष्ठ भाई विवाह कर सकता है। वस्त्र और सिन्दूर दान ही सगाई विधवा-विवाहका अङ्ग है। मुर्शिदाबादके डोमोंमें पति-पत्नी परित्यागकी प्रथा प्रचलित है। परन्तु यह परित्याग पञ्चायतके सम्मतिक्रमसे होना आवश्यक है। पञ्चायतके 'जाओ' कहनेसे ही सब गड़बड़ी जाती रहती है। उत्तर भागलपुरमें स्वामी कुछ पयाल ले कर सबके सामने दो खण्ड कर देता है और इस तरह विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। मुङ्गेरमें २य स्वामी पञ्चायतको एक भोज देता और उसमें सूअर काटता है। जब कोई किसी स्त्रीका सतीत्व नष्ट करता है, तो वह उसके पूर्व स्वामीको ८) रुपये दे कर ही समाजमें मुक्ति पा लेता है।

डोमोंके पञ्चायतोंकी भिन्न भिन्न उपाधि हैं; यथा—सरदार, प्रधान, मञ्झान, मरार, गोरैत और कविराज। एक मनुष्यकी सन्तान ही उत्तराधिकारीक्रमसे पञ्चायत नाम प्राप्त करती है। प्रति पञ्चायतके अधीनमें एक एक छड़ीदार रहता है।

डोमोंमें धर्मकी शृङ्खला नहीं है। विभिन्न प्रदेशीय डोमोंकी धर्मप्रणालीकी समानता देखी नहीं जाती। इनके कोई ब्राह्मण पुरोहित नहीं रहनेके कारण इनका धर्मानुष्ठान भिन्न भिन्न स्थानोंमें विभिन्न आकृतिमें पलट गया है। भागिनेय ही विशेषकर पुरोहितका काम करता है। भागिनेय अथवा भागिनेयसम्पर्कीय किसी व्यक्तिके न रहने पर परिवारका कर्त्ता ही मन्त्रादि पाठ करता है। बङ्गालके बाँकुड़ा जिलेमें देघरिया तथा अन्यान्य जिलोंमें धर्मपण्डित नामसे अभिहित डोमोंसे पुरोहितका कार्य किया जाता है। इनका पद पुरुषानुक्रमिक है। अङ्गुलीमें ताँबेकी अँगूठीसे ये पहचाने जाते हैं। सन्थाल परगनेमें नापित ही पौरोहित्य करता है।

बाँकुड़ा और पश्चिम बङ्गालके बहुतसे डोम वैष्णव हैं। परन्तु राधा और कृष्णके अतिरिक्त धर्मराज भी इनके

प्रधान उपास्य हैं। ये दुर्गापूजाके समय ढाकपूजा किया करते हैं। मध्य बङ्गालके डोम एकान्त कालीभक्त हैं। पूर्व वङ्गके बहुतसे डोम शोभनभक्तको गुरुरूपसे पूजते हैं। इनमेंसे थोड़े ऐसे भी हैं जो महाराज हरिश्चन्द्रसे अपनी उत्पत्ति बतलाते हुए अपनेको हरिश्चन्द्री मानते हैं। उनका कहना है कि हरिश्चन्द्र जब अपना सर्वस्व विश्वामित्रको दान कर चुके थे, तब उन्होंने एक डोमके निकट दासत्व स्वीकार किया था। डोमके घरमें आ कर और उसके व्यवहारसे सन्तुष्ट हो कर उन्होंने समस्त जातिको अपने धर्ममें दीक्षित किया; तभीसे डोम वह धर्म प्रतिपालन करता आ रहा है।

पूर्व बङ्गालमें श्रावणिया पूजा डोमोंका प्रधान उत्सव है। यह उत्सव श्रावण मासमें किया जाता है। उस समय एक शूकर बलिदान कर एक पात्रमें उसका शोणित और दूसरेमें दुग्ध तथा तीसरेमें सुरा रख कर नारायणको उत्सर्ग किया जाता है। भाद्र कृष्णरात्रिमें भी इसी तरह वे एक दिन एक पात्र दुग्ध, चार पात्र सुरा, एक नारियल और गाँजा इत्यादि हरिरामको उत्सर्ग करनेके बाद शूकरको बलि दे कर उत्सव करते हैं। कुछ दिन पहले बङ्गालमें सर्वत्र एक ही प्रथा थी। सूर्य या चन्द्रग्रहणके समय प्रत्येक हिन्दू गृहस्थ द्वारके बाहरमें बहुतसी ताम्रमुद्राएँ रख देते थे जो डोमोंको ही मिला करती थीं। परन्तु आजकल ग्रहाचार्यने उन पर अपना स्वत्व जमा लिया है। रिसली साहबका अनुमान है, इस प्रथासे प्रतीत भी होता है कि डोम पहले अग्नि, जल, वायु प्रभृति भूतोपासक अनार्य जातियोंके पुरोहित थे।

बिहारके डोम भी महादेव, काली, गङ्गा प्रभृतिकी समय समय पर पूजा करते हैं। इनके अतिरिक्त श्यामसिंह, रक्तमाला, गोहिल, गोरैया, बन्दी, लोकेश्वर और दिहवार प्रभृति इनके अगण्य देवता हैं। इनमेंसे ये श्यामसिंहको अपना आदिपुरुष अनुमान करते हैं। श्यामसिंह ही इन लोगोंका प्रधान देवता हैं। दरभंगेके देवधा नामक स्थानमें इनका एक मन्दिर है। विवाह अथवा और किसी प्रकारके उत्सवमें डोम मट्टीकी पिण्डाकृति बहुतसी मूर्त्तियाँ निर्माण करके शूकरकी बलि देते हैं और उनकी उपासना करते हैं। ग्रामके बाहरमें एक घरमें अथवा वृक्षके नीचे पूजादिका कार्य किया जाता है। कहना नहीं पड़ेगा, कि इन देवताओंकी संख्या और उत्पत्ति-विवरण असंख्य है। जो डोम अपने कार्योंसे तथा मृत्यु या किसी दूसरे कारणसे प्रसिद्ध हो गया हैं, डोम लोग उसे ही ठाकुरके जैसा उपासना करते हैं। श्यामसिंह भी सम्भवतः इसी तरहसे ही उत्पन्न हुए होंगे। गयाके निकटस्थ मघैया डोम प्रसिद्ध डकैत हैं। जब कोई डकैतीके लिये बाहर निकलता है, तो पहले वह अपने मङ्गलके लिये सनसारी माई देवीकी पूजा कर लेता है। बहुतोंका अनुमान है कि यह देवी कालीके ही नामभेद मात्र है। परन्तु दूसरे इस देवीको पृथिवी बतलाते हैं। इस देवीकी उपासनाके लिये प्रतिमूर्त्तिका प्रयोजन नहीं पड़ता है। घरमें आध बिलस्त परिमित स्थान पर गोबरके जलसे एक मण्डली बनाई जाती और उपासक उस मण्डलीके सामने अपने घुटनेको टेक कर बैठता है। बाद दाहिने हाथमें डोमोंकी प्रसिद्ध कुल्हाड़ी ले कर उसके द्वारा बाईं बाहुमें एक जगह काटता है। बाद वह अंगुलीसे चार पाँच बुन्द लोहू ले कर मण्डलीके मध्य चिह्नित कर देता है, तथा मृदुस्वरसे देवीके निकट प्रार्थना करता है, कि आजकी रात्रि खूब अन्धकारमय हो, जिससे उसे प्रचुर धनचोरीमें हाथ लगे एवं वह अथवा उसका कोई अनुचर पकड़ा न जाय।

बहुतोंका विश्वास है कि डोम मृतदेहका न तो अग्निसत्कार करते और न उसे मट्टीमें गाड़ते ही हैं। वे निशियोगमें मृतदेहको खण्ड खण्ड करके पासकी नदीमें फेंक देते हैं। जो कुछ हो, यह भीषण धारणा अत्यन्त अमूलक है, सम्भवतः डोमोंको पहले रात्रियोगमें ही मृतसत्कार करनेमें बाध्य करानेसे ऐसा प्रवाद प्रचलित हुआ होगा। ढाका प्रदेशमें डोम मृतदेह नदीमें फेंक देते हैं, सम्भ्रान्त होने पर उसकी देह गाड़ दी जाती है। आजकल अधिकांश स्थानमें ही दाह करनेकी प्रथा प्रचलित हो गई है। मृतका सत्कार समाप्त होने पर वे स्नान कर एक एक करके लोहे, पत्थर और सूखे गोबरको स्पर्श कर शुद्ध हो जाते हैं, तथा

मृतकी प्रेतात्माके उद्देश्यसे अन्न और मद्य उत्सर्ग करते हैं। ८ दिन तक कोई मछली या मांस नहीं खाता है। १०वें दिन सूअरका मांस खा कर और मद्य पी कर उत्सव करते हैं। पश्चिम बङ्गाल और बिहार प्रदेशमें डोम प्रायः मृतका अग्निसत्कार ही करते हैं। लेकिन जो वसन्त प्रभृति रोगसे अथवा तीन वर्षसे कम अवस्थामें मरता है उसे गाड़ दिया जाता है। वहाँ स्थान स्थान पर ११वें १२वें या १३वें दिनमें मृतका श्राद्ध होता है।

समस्त हिन्दू डोमोंको अत्यन्त घृणा और भयसे देखते हैं। इनका आचार-व्यवहार तथा खाद्य प्रभृति ऐसा जघन्य है कि हिन्दू उनकी छाया स्पर्श करनेसे भी अपनेको अपवित्र समझते हैं। फिर भी उनका काम ऐसा नृशंस है जिससे मालूम पड़ता है कि वे दया-मायासे रहित हैं। इनका मद्यदोष और चरित्रदोष अत्यन्त प्रबल है। ये जो कुछ उपार्जन करते हैं उसे मद्य इत्यादिमें व्यय कर डालते हैं। भविष्यत्के लिए ये कुछ भी बचा कर न रखते। ऐसा प्रवाद है, कि ढाकाके किसी नवाबने जल्लादका काम करनेके लिये एक डोमको मंगाया था। ढाकाके डोम उसीके वंशज हैं। फाँसीदण्डाज्ञा कार्यमें परिणत करनेके लिये प्रायः प्रति जिलेमें एक डोम नियुक्त है। जब दण्डित मनुष्यको फाँसी दी जाती है तब वह डोम दुहाई महारानी या दुहाई जज साहब कह कर चिल्लाता है। वह सोचता है कि, ऐसा करनेसे ही वह पापसे मुक्त हो जायगा।

डोम श्मशानघाट बहुत साफ सुथरा रखता है। डोमोंकी सहायताके बिना काशीमें मृतदेह सत्कारमें विशेष असुविधा होती है। ये पहले चिता सजा देते और तब अग्नि, पयाल तथा काष्ठ प्रभृति ला देते हैं। इस कार्यके लिए वे मृतव्यक्तिके आत्मीयसे अवस्थानुसार कुछ द्रव्य लेते हैं। कलकत्ता प्रभृति स्थानोंके श्मशानघाटमें बहुतसे डोम नियुक्त हैं।

सभी डोम श्मशानघाटके कामोंमें लगे नहीं रहते, परन्तु मृतदेह सत्कारके पहले और पीछेका जो काम है उसे ये लोग अपना जातीय पेशा अवश्य मानते हैं। खाद्य सम्बन्धमें इन लोगोंमें कोई रोक टोक नहीं है। ये सूअर, घोड़े, कुत्ते, हंस, मूसे इत्यादिका मांस खाते हैं। किसी किसी देशके डोमोंमें गोमांस भी प्रचलित है।

डोम धोबीका छुआ हुआ द्रव्य नहीं खाता है। इस सम्बन्धमें एक गल्प इस तरह है—एक दिन डोमोंका आदिपुरुष सुपत भक्त अत्यन्त क्लान्त और क्षुधार्त्त हो दूर देशसे घरकी ओर आ रहा था। रास्तेमें उसने एक धोबीको गदहेकी पीठ पर बहुतसे कपड़े लाद कर ले जाते देखा तथा उससे कुछ खाद्यपदार्थ और थोड़ा जल मांगा। धोबीने उसे कुछ भी न दिया। इस पर दोनोंमें गालियोंकी बौछार होने लगी। अन्तमें उसने धोबीको मार कर भगा दिया और उसके गदहेको उसी जगह मार कर मांस खा लिया। क्षुधा निवृत्त होने पर गदहेकी हत्या पर उसे बहुत दुःख हुआ। धोबी ही इस पापका मूल है ऐसा सोच कर यह धोबी जातिको अत्यन्त घृणादृष्टिसे देखने लगा। उसी समयसे कोई डोम धोबीके घरमें अथवा उसका स्पर्श किया हुआ पदार्थ भक्षण नहीं करता है। वीरभूमवासी अङ्कुरिया तथा बिसमिलिया डोम न तो घोड़े पकड़ते और न कुत्ते ही मारते हैं। वे लोग गड़ासेमें काठका हत्था नहीं लगाते। उस देशके डोम कुत्तेको तो नहीं मारते मगर सारे शहरके डोम कुत्तेको मार कर अर्थ उपार्जन करते हैं।

सूप टोकरे प्रभृति प्रस्तुत करना ही डोमोंका जातिगत व्यवसाय है। किन्तु इन लोगोंमें अब बहुत ही कृषिकार्यमें लग गये हैं। इनके रैयती स्वत्व नहीं है; क्योंकि ये प्रायः स्थान परिवर्तन किया करते हैं। मानभूम जिलेके दक्षिणांशमें शिवोत्तर डोमोंका अधिकारभुक्त है। बजुनिया डोम विवाहकालमें बाजे बजाते हैं और स्त्रियां गानवाद्य किया करती हैं। किसी किसीके मतसे चौर्यवृत्ति ही चम्पारनके मघैया डोमोंका व्यवसाय है। इस श्रेणीके डोम अधिक दिन एक स्थान पर नहीं रहते। ये किसी छोटे ग्राममें रास्तेके निकट सिरकी बांधते और वहींसे चोरी करनेके लिये इधर उधर निकल पड़ते हैं। मघैया डोममें सबके सब चोर नहीं होते। गयावासी सवैया बाँस और कृषिकार्य द्वारा काल-क्षेपण करते हैं।

महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्रीजीका कहना है कि भारतवर्षसे बौद्धधर्म अब तक भी सम्पूर्ण रूपसे लुप्त नहीं हुआ है। भारतवर्षके भिन्न भिन्न स्थानोंमें डोम बौद्धधर्मके अस्तित्वका साक्षी देते हैं। वे यह भी कहते हैं कि डोम ब्राह्मणोंका प्रभुत्व स्वीकार नहीं करता। धर्मपुरोहित श्रेणीके डोमोंसे उनका धर्मानुष्ठान किया जाता है। बुद्धदेवका एक नाम धर्मराज है। सबसे पहले कालु डोमने धर्मराजका पौरोहित्य प्राप्त किया था। घनरामकी पुस्तकमें लिखा है कि गौड़ेश्वर धर्मपालने महामदको मन्त्रीके पद पर नियुक्त किया था। महामद रञ्जाको अत्यन्त घृणा करता था। किन्तु धर्मराज रञ्जाको बहुत चाहते थे। महामद अपने भाँजा रञ्जाके पुत्र लाउसेनको विविध उपायसे विनष्ट करनेकी चेष्टा करने लगा। परन्तु धर्मराजका प्रियपात्र होनेके कारण वह उसका कुछ भी अनिष्ट कर न सका। महामदकी सारी चेष्टा निष्फल होने पर उसने लाउसेनको युद्धके लिये कामरूप और उड़ीसा भेजा। धर्मराजके अनुग्रहसे लाउसेन प्रत्येक कार्यमें ही कृतकार्य हुआ। अन्तमें महामद अपना भ्रम समझ कर अपने भांजेको प्यार करने लगा। मद्य और शूकरका मांस खानेकी स्वाधीनता दे कर लाउसेनका प्रिय सेनापति कालु डोम धर्मराजका पुरोहित बनाया गया। धर्मपाल बौद्धधर्मावलम्बी थे। साधारण मनुष्योंकी सुविधाके लिये मालूम पड़ता है कि बौद्धधर्मसे धर्मराज पूजाकी सृष्टि धर्मपालके समयमें ही हुई है। वह पूजा आज भी प्रचलित है। डोम पक्व द्रव्यसे देवताकी अर्चना नहीं करते। डोम प्रायः सूअरके मांससे धर्मराजकी उपासना करते हैं। ध्यानके मन्त्र सुननेसे धर्मराज ही बुद्धदेव हैं, ऐसा प्रतीत होता है।

"यस्यान्तो नादिमध्ये न च कर चरणं नास्ति कायनिदानम्।
नाकारं नादिरूपं नास्ति जन्म क्षयस्य (?)
योगीन्द्रो ज्ञानगम्यो सकलजनहितं सर्वलोकैकनाथम्।
तत्वं तञ्च निरञ्जनं मरबरद पातु वः शून्यमूर्तिः ॥"

इस मन्त्रकी सम्यक् आलोचना करनेसे बुद्धदेवका रूप ही मनमें उदित हो आता है। शास्त्रीजीने और भी कहा है कि शूकरबलि और ध्यानके लिये धर्मराज पूजा बौद्ध धर्मानुगत नहीं है इसमें प्रायः सब कोई सन्देह कर सकते हैं। परन्तु बौद्धधर्मका इतिहास पढ़नेसे यह सन्देह जाता रहता है। भोटदेशीय तारानाथके पुस्तकमें लिखा है कि रामपालके राजत्व कालमें विरूप आविर्भूत हुए। वे धर्मपाल नामसे भी प्रसिद्ध थे। धर्मपालके शिष्यका नाम काल-विरूप और कालविरूपके प्रधान शिष्यका नाम विरूप-हेरुक था। ये त्रिपुराके राजा थे। ये आचार्य कालविरूपके निकट दीक्षित हुए, बाद सिद्धिलाभ करनेके लिये भविष्यवाणीके अनुसार इन्होंने डोम जातिकी पद्मावती नामकी किसी स्त्रीको शक्ति रूपसे ग्रहण किया। इस पर प्रजाने उन्हें राज्यसे निकाल दिया। राजा डोमनीके साथ जङ्गल जा कर व्रत रक्षा करने लगे और सिद्ध हो कर डोमराज या डोमाचार्य नामसे परिचित हुए। बाद एक दिन त्रिपुरा राज्यमें भारी उपद्रव उपस्थित होने पर ये विशेष अनुरुद्ध हो कर वहां गये। यहां आ कर वे धर्म नामक बौद्ध तान्त्रिक मत प्रचार करने लगे। बहुतसे इनके शिष्य हो गये। डोमाचार्यकी अद्भुत क्षमता देख कर राढ़देशके राजाने भी उनका शिष्यत्व स्वीकार किया और दूसरे दूसरे लोग भी इनका यथेष्ट आदर करने लगे। धर्म उपासनाने भी वृद्धि पाई। बौद्धधर्मके शेषकालमें धर्म उपासना प्रवर्तित हुई। धर्मराजकी अर्चना बौद्ध उपासनाकी तान्त्रिक आकृति है। इस उपासना-प्रणालीसे भङ्गी, डोम प्रभृति अन्त्यजोंमें आबद्ध है। बौद्धधर्मकी शेषावस्थामें बुद्ध और बोधिसत्वोंकी उपासना परित्यक्त तथा दिक्पाल और धर्मपाल प्रभृतिकी पूजा प्रचलित हो गई थी।*

बहुतोंके मतसे डोम भारतकी आदिनिवासी अनार्य जातिकी एक श्रेणी है। इनकी आकृति देखनेसे भी ये बहुत कुछ उन लोगोंसे मिलते जुलते हैं। मघैया डोमोंकी आकृति छोटी, वर्ण काला, बाल बड़े बड़े और आंख अनार्योंसी होती है। पूर्व बङ्गालके डोमोंके बाल काले और लम्बे होते हैं। किसीका मत है कि डोम द्राविड़ श्रेणीके अन्तर्गत है। परन्तु इस सम्बन्धमें

---

* Journal of the Asiatic Society of Bengal for 1895, p. 64.

पण्डितोंका एक मत नहीं है। जो कुछ हो, कई शताब्दीसे डोम अत्यन्त हीन और घृणित कार्य करके कालक्षेपण करते हैं।

पूर्वी डोमोंके आचार-व्यवहार तथा और सभी तरहके काम बङ्गालके डोमोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं, पर जिस तरह बङ्गालमें कई जगह मृतदेहको न जला कर उसे खण्ड कर फेंक देते हैं उस तरह इस देशमें नहीं है। यहांके डोम हिन्दूके जैसा मृतदेहको जलाते हैं, पर जिसकी अवस्था अच्छी नहीं है, वह नदीमें फेंक देता है। कुंवारेकी लाश चाहे वह धनी हो चाहे गरीब, नदीमें ही फेंकी जाती है। लेकिन गोरखपुरका मघैया डोम मृतदेहको जङ्गलमें छोड़ देता है। मृत कर्म तथा अशौच बङ्गालके डोमों सरीखा है। हिन्दूके जैसे काली, महादेव आदि भी इनके उपास्यदेवता हैं। पीपल वृक्षको भी ये लोग पवित्र मानते और उसके पत्ते आदि तोड़नेसे डरते हैं। हिमालय प्रदेशके कुमाऊंके डोम इन सब डोमोंको घृणादृष्टिसे देखते हैं। यहां तक कि इनमेंसे कोई यदि उसके घरमें प्रवेश कर जाये तो घरको पवित्र करनेके लिये वह गोबर आदिसे लीपता है। आदान-प्रदान तो किसी हालतसे हो ही नहीं सकता। वहांके कुछ डोम ऐसे हैं जो अच्छे अच्छे कपड़े बुनते तथा तरह तरहके बरतन और हुक्केकी पेंदी बनाते हैं।

यह जाति अस्पृश्य है, भ्रमसे यदि उससे स्पर्श हो जाय, तो स्नान कर १०८ बार गायत्री जप करनी पड़ती है। "स्पृष्ट्वा प्रमादतः स्नात्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत्।"

(मत्स्यसूक्ततं २९ पटल)

डोमकौआ (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा कौआ। इसका सारा शरीर काला होता है।

डोमतमौटा (हिं० पु०) एक पहाड़ी जाति। ये पीतल तांबेका काम करते हैं।

डोमनगढ़—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत गोरखपुर जिलेका एक प्राचीन दुर्ग। यह गोरखपुर नगरसे प्रायः १⅓ मील उत्तर-पश्चिम रोहिन और राप्ती दोनों नदियोंके सङ्गमस्थानके पास अवस्थित है। दुर्गका अवस्थान स्वभावतः दुर्गम है। इसके उत्तर-पश्चिम, पश्चिम और दक्षिण-पश्चिममें रोहिन नदी, दक्षिणमें राप्ती नदी, उत्तर-पूर्व, पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें कंकराहुआ नाला है। वर्षा कालमें यह प्रायः चारों ओरसे चहार-दीवारीकी नाईं घिरा रहता है। यद्यपि यह अभी टूटीफूटी अवस्थामें पड़ा है, तो भी यदि चाहें तो फिरसे इसे पूर्व सरीखा सुदृढ़ दुर्गमें ला सकते हैं। प्राचीन कालमें यह एक दुर्जय दुर्ग समझा जाता था, इसमें सन्देह नहीं। अभी दुर्गका केवल भग्नावशेष रह गया है। भग्नस्तूपके ऊपर बहुतसे अंगरेजोंके मकान बस गये हैं। अंगरेज लोग कभी कभी हवा बदलनेके लिये गोरखपुरसे वहां जाते हैं।

प्रवाद है कि डोमकट्टके राजाओंसे यह दुर्ग बनाया गया था, उसीके अनुसार इसका नाम डोमनगढ़ पड़ा है। सभीका विश्वास है, कि यह जाति क्षत्रियवंशोद्भव थी और शायद इन लोगोंने तत्पूर्ववर्त्ती डोम राजाओंको काट कर या मार कर राज्य प्राप्त किया होगा। डोमकट्ट नामसे ही ऐसा अनुमान किया जाता है। साधारण लोगोंका भी विश्वास है, कि डोमनगढ़ अर्थात् डोमोंका दुर्ग डोम राजाओंसे ही बनाया गया है। फिर किसीका यह भी अनुमान है कि डोम जातिके अधिपतियोंसे इस दुर्गका निर्माण हुआ है। सच पूछिये तो वे डोम थे नहीं और डोमोंने यहाँ राज्य भी नहीं किया। जो कुछ हो, डोमनगढ़ एक समय ऐसा चढ़ा बढ़ा था, कि प्रायः वर्त्तमान समस्त गोरखपुर और राप्ती नदीके किनारेसे ले कर बहुत दूर तक इसका राज्य फैला हुआ था। बहुतेरे यह भी कहते हैं, कि इस प्रदेशके आदिम अधिवासी डोम थे। आज भी डोमनगढ़, डोमरी, डोमरदार, डोमकैवा, डोमरा, डोमहाट, डोमरिया, डोमा, डोमाढ आदि अनेक स्थानोंके नाम प्राचीन डोम अधिवासियोंका परिचय देते हैं।

प्राचीन डोमनगढ़के भग्नस्तूपोंमें जो दो एक ईंटें पाई गई हैं उनका आकार चौखूंटा, बड़ा और मोटा है।*

डोमनी (हिं० स्त्री०) १ डोम जातिकी स्त्री। २ डोमकी स्त्री। ३ एक प्रकारकी नीच जातियोंकी स्त्री। ये

---

* Cunningham s Archæological Survey of India, vol. xxii, p. 65-67.

उत्सवों पर गाने बजानेका काम करती है। कहीं कहीं इस जातिकी स्त्रियां वेश्यावृत्ति भी करने लगी हैं।

डोमर—पूर्वीय बङ्गाल और आसामके रङ्गपुर जिलेके अन्तर्गत नीलफामारी उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २६° ६´ उ० और देशा० ८८° ५´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १८६८ है। यहां पटसनकी कई एक कलें हैं और दूर दूर देशोंमें इसकी रवानगी होती है।

डोमर—डोम जातिका एक भेद। इलाहाबाद विभागमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं।

डोमा (हिं० पु०) एक प्रकारका साँप।

डोमिन (हिं० स्त्री०) १ डोमजातिकी स्त्री। २ डोमनी देखो।

डोम्बर—कर्णाटक प्रदेशकी एक जाति। कोलाति देखो।

डोर (सं० क्ली०) दोष-रा-ड पृषो० साधुः। हस्त प्रभृतिका बन्धनसूत्र, डोरा, सूत। अनन्त प्रभृति व्रतमें यह धारण करना पड़ता है। हिन्दू स्त्रियां इसे बायें हाथमें और पुरुष दाहिने हाथमें पहनते हैं। व्रत देखो।

डोरक (सं० क्ली०) डोर-स्वार्थे कन्। डोर देखो।

"चतुर्दशसमायुक्तं कुंकुमाक्तं सुडोरकम्।" (अनन्तव्रतकथा)

डोरडा (सं० स्त्री०) डोरमिव डयते डी-ड गौरा० ङीष्। वृहती, बरहंटा।

डोरा (हिं० पु०) १ सूत तागा, धागा। २ धारी, लकीर। ३ आँखोंकी बहुत सूक्ष्म लाल नस। जब मनुष्य नशेको उमंगमें होता अथवा सो कर उठता है तो ये नसें दीख पड़ती हैं। ४ तलवारकी धार। ५ घी निकालने तथा कड़ाहमें दूध आदि चलानेकी करछी। ६ स्नेह-सूत्र, प्रेमका बन्धन। ७ अनुसन्धानसूत्र, सुराग। ८ काजल या सुरमेंकी रेखा। ९ नृत्यमें कण्ठकी गति। १० पोस्ते आदिका ढोंड़, डोडा।

डोरिया (हिं० पु०) १ एक प्रकारका सूती कपड़ा। इस तरहके कपड़ेमें मोटे सूतकी लम्बी धारियां बनी रहती हैं। २ हरे पैरवाला एक प्रकारका बगला। ज्यों ज्यों ऋतु बदलती जाती है त्यों त्यों इसका रंग भी बदलता जाता है। ३ एक नीच जाति। पूर्व समय यह जाति राजाओंके यहाँ शिकारी कुत्तोंकी रक्षाके लिए नियुक्त की जाती थी। ये कुत्तोंको शिकार पर सधाते थे।

डोरियाना (हिं० क्रि०) बन्धन लगा कर पशुओंको ले जाना, पशुओंको रस्सीमें बांध कर ले चलना।

डोरिहार (हिं० पु०) पटवा, वह जो रेशम या सूतमें गहने गूथता हो।

डोरिहार—एक प्रकारके शैव योगी। ये डोरी अर्थात् कार्पाससूत्रके वस्त्र पहनते हैं इसलिए ये डोरिहार कहलाते हैं।

डोरी (हिं० स्त्री०) १ रज्जु, रस्सी। २ तागा, सूता। ३ पाश, बन्धन, बांधनेकी डोरी। ४ कड़ाहमेंका दूध और चाशनी आदि चलानेका डाँड़ीदार कटोरा।

डोल (हिं० पु०) १ कुएंमेंसे पानी खींचनेका लोहेका गोल बरतन। २ झूला, पालना, हिंडोला। ३ शिविका, पालकी, डोली। (स्त्री०) ४ एक प्रकारकी काली मट्टी जो बहुत उपजाऊ होती है।

डोल—गुजरातके काठियावाड़के अन्तर्गत गोहेलवाड़का एक छोटा राज्य। यहांका राजस्व १५००) रु० है। जिसमेंसे २३७) बरोदाको और ५८) जूनागढ़को देने पड़ते हैं।

डोलक (सं० पु०) प्राचीन कालका एक बाजा जिससे ताल दिया जाता है।

डोलची (हिं० स्त्री०) छोटा डोल।

डोलडाल (हिं० पु०) १ घूमना फिरना। २ टट्टी जाना।

डोलना (हिं० क्रि०) १ गतिमें होना, हिलाना। २ टहलना, चलना, घूमना। ३ दूर होना, चला जाना, हटना। ४ दृढ़ न रहना, विचलित होना।

डोसरवा—गुजरातके दक्षिण काठियावाड़का एक छोटा राज्य। इसमें केवल एक ग्राम लगता है। राजस्व २२००) रु० है जिसमें १०३) बरोदाको और २३) जूनागढ़को कर स्वरूप देने पड़ते हैं।

डोला (हिं० पु०) १ शिविका, पालकी, डोली। २ झूलेमें दिये जानेका झोंका, पेंग।

डोलाना (हिं० क्रि०) १ गतिमें करना, हिलाना, चलाना। २ पृथक् करना, दूर करना, हटाना।

डोलायन्त्र (हिं० पु०) दोलायन्त्र देखो।

डोली (हिं० स्त्री०) शिविका, पालकी।

डोली करना (हिं० क्रि०) टालना, हटाना।

डोलू (हिं॰ स्त्री॰) १ हिमालयके काँगड़ा, नेपाल, सिक्किम आदि प्रदेशोंमें होनेवाली हिन्दी रेवंद चीनी। इसका दूसरा नाम पदमचल और चुकरी भी है। २ पूर्वीय बङ्गाल, आसाम और भूटानसे ले कर बरमा तकमें पाये जानेवाला एक प्रकारका बाँस। यह चोंगे और छाते बनानेके काममें विशेषकर आती है।

डौंड़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ डुगडुगिया, ढिंढोरा। २ घोषणा, मुनादी।

डौंरा (हिं॰ पु॰) खेतोंमें उगनेवाली एक प्रकारकी घास।

डौआ (हिं॰ पु॰) काठका चमचा।

डौल (हिं॰ पु॰) १ प्रारम्भिक रूप, ढाँचा, ठाट। २ रचना प्रकार, ढब, शैली। ३ भाँति, प्रकार, किस्म। ४ उपाय, तदबीर। ५ लक्षण, आयोजन, रंग ढंग, सामान। (स्त्री॰) ६ खेतोंकी मेंड़, डांड़।

डौलडाल (हिं॰ पु॰) युक्ति, प्रयत्न, उपाय।

डौलदार (हिं॰ वि॰) सुन्दर, खूबसूरत।

डौवर (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका पक्षी। इसका पर, छाती और पीठ सफेद, दुम काली और चोंच लाल होती है।

ड्योढ़ा (हिं॰ वि॰) १ आधा और अधिक, डेढ़गुना। (पु॰) २ सङ्कीर्ण पथ, तंग रास्ता। ३ गीतका ऊँचा स्वर। ४ डेढ़गुनी संख्याका पहाड़ा।

ड्योढ़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ फाटक, दरवाजा, चौखट। २ दरवाजेमें प्रवेश करते समय सबसे पहली बाहरी कमरा, पौरी।

ड्योढ़ीदार (हिं॰ पु॰) ड्योढ़ीवान देखो।

ड्योढ़ीवान (हिं॰ पु॰) द्वारपाल, दरबान।

ड्राइंग (अं॰ पु॰) लकीरोंसे चित्र या आकृति बनानेकी विद्या।

ड्राइवर (अं॰ पु॰) वह जो गाड़ी चलाता हो।

ड्राई प्रिन्टिङ्ग (अं॰ स्त्री॰) बिना भिगोए हुए छपाई। इस प्रकारकी छपाईसे कागजकी चमक ज्योंकी त्यों रह जाती है और छपाई भी साफ होती है।

ड्राफ्टसमैन (अं॰ पु॰) वह जो स्थूल मानचित्र प्रस्तुत करता हो, नकशा बनानेवाला।

ड्राम (अं॰ पु॰) तीन माशेके बराबर एक अंगरेजी मान। इससे पानी आदि द्रवपदार्थ नापा जाता है।

ड्रिल (अं॰ स्त्री॰) कवायद।

ड्रेक—कलकत्ताके एक अङ्गरेज शासनकर्त्ता। जिस समय (१७५६ ई॰में) सिराजने कलकत्ते पर आक्रमण किया था उस समय ये ईष्ट इण्डिया कम्पनीकी ओरसे कलकत्ताके शासनकर्त्ताके पद पर नियुक्त थे।

ड्रेस करना (हिं॰ क्रि॰) मरहम पट्टी करना।

ड्रेगून (अं॰ पु॰) सवार, सिपाही।

ढ

ढ—संस्कृत और हिन्दीवर्णमालाका चौदहवाँ अक्षर, टवर्गका चौथा वर्ण। इसका उच्चारणस्थान मूर्द्धा और उच्चारणकाल अर्द्धमात्रा है। इसके उच्चारणमें आभ्यन्तर प्रयत्न है—जिह्वामध्य द्वारा मूर्द्धाका स्पर्श, वाह्य प्रयत्न संवार, नाद, घोष और महाप्राण।

मातृकान्यासमें इसका दक्षिण पदाङ्गुलिके मूलमें न्यास होता है।

इसकी लिखन-प्रणाली इस प्रकार है—"ढ" इस वर्णमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर नित्य विराजते हैं। (वर्णोद्धारतन्त्र)

वर्णाभिधानमें इसके वाचक शब्द इस प्रकार लिखे हैं—ढक्का, निर्णय, शूर, यक्षेश, धनदेश्वर, अर्द्धनारीश्वर, तोय, ईश्वरी, त्रिशिखी, नव, दक्षपादाङ्गुलीमूल, सिद्धिदण्ड, विनायक. प्रहास, त्रिवेरा, ऋद्धि, निर्गुण, निर्धन, ध्वनि. विघ्नेश, पालिनी, तङ्कधारिणी, क्रोडपुच्छक, ऐलापुर, त्वगात्मा, विशाखा, श्री, मन और रति। (नानातन्त्र) इस अक्षरकी अधिष्ठात्री देवी परमाराध्या, पराकुण्डली, पञ्चदेवात्मक, पञ्चप्राणमय, त्रिगुण और आत्मादि सकल तत्त्वोंसे संयुक्त तथा विद्युल्लताकार है। (कामधेनुत॰) इसका ध्यान कर इस अक्षरके दश बार जपनेसे साधक

शीघ्र ही अभीष्ट लाभ कर सकता है। ध्यान—

> "रक्तोत्पलनिभां रम्यां रक्तपंकजलोचनाम्।
> अष्टादशभुजां भीमां महामोक्षप्रदायिनीम्॥
> एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मंत्रं दशधा जपेत्।"
> (वर्णोद्धारतन्त्र)

इनका वर्ण रक्तोत्पल सदृश और लोचन रक्तपद्मके तुल्य है, ये अष्टादशभुजा, भयङ्करी और परम मोक्ष-प्रदायिनी हैं। मात्रावृत्तमें इस वर्णका प्रथम विन्यास करनेसे विशोभा होती है। ड देखो।

ढ (सं० पु०) ढौकते श्रवणेन्द्रियं ढौक-ड। १ ढक्का, बड़ा ढोल। २ कुक्कुर, कुत्ता। ३ कुक्कुर-लाङ्गूल, कुत्तेकी पूँछ। ४ निर्गुण, परमेश्वर। ५ ध्वनि, नाद, शब्द। ६ सर्प, साँप।

ढँकन (हिं० पु०) ढक्कन देखो।

ढँकना (हिं० क्रि०) ढकना देखो।

ढँग (हिं० पु०) १ पद्धति, रीति, तौर, तरीका। २ प्रकार, भाँति, किस्म। ३ रचना, बनावट, गढ़न। ४ युक्ति, उपाय, तदबीर। ५ आचरण, व्यवहार। ६ पाखण्ड, बहाना, हीला। ७ लक्षण, आसार, आभास। ८ स्थिति, अवस्था, दशा।

ढंगउजाड़ (हिं० पु०) घोड़ोंकी दुमके नीचेकी एक भौंरी। इस तरहके घोड़े ऐबी समझे जाते हैं।

ढंगी (हिं० वि०) चतुर, चालाक, चालबाज़।

ढंढस (हिं० पु०) ढँढरच देखो।

ढंढार (हिं० वि०) अत्यन्त जीर्ण, बड़ा बुड्ढा।

ढँढोर (हिं० पु०) १ ज्वाला, लपट, लौ। २ वह बन्दर जिसका मुँह काला हो, लंगूर।

ढँढोरची (हिं० पु०) वह जो ढँढोरा फेरता हो, मुनादी फेरनेवाला।

ढँढोरा (हिं० पु०) १ वह ढोल जिससे घोषणा की जाती है, डुगडुगी, डौंड़ी। २ ढोल बजा कर की गई हुई घोषणा, मुनादी।

ढँढोरिया (हिं० पु०) वह जो डुगडुगी बजा कर घोषणा करता हो।

ढँपना (हिं० क्रि०) १ ढक जाना, आड़ हो जाना। (पु०) २ वह वस्तु जिससे कोई चीज ढांकी जाती है, ढक्कन।

ढकाई (हिं० वि०) १ ढाकेका। २ ढाकेकी ओर होनेवाला एक प्रकारका केला।

ढकना (हिं० पु०) ढक्कन, चपनी।

ढकनी (हिं० स्त्री०) १ ढाँकनेकी वस्तु, ढक्कन। २ एक प्रकारका गोदना। इसका आकार फूलसा होता है और हथेली पीछेकी ओर गोदी जाती है।

ढकपेडरू (हिं० पु०) एक चिड़ियाका नाम।

ढका (हिं० पु०) १ तीन सेरकी एक तौल। २ वह स्थान जहां जहाज आ कर ठहरता है।

ढकार (सं० पु०) ढ स्वरूपे कार प्रत्ययः। ढ स्वरूपवर्ण।

> "ढकारं प्रणमाम्यहम्।" (कामधेनुतन्त्र)

ढकेलना (हिं० क्रि०) १ धक्का दे कर गिराना। २ बल-पूर्वक हटाना, ढकेल कर सरकाना।

ढकेलाढकेली (हिं० स्त्री०) ठेलमठेला।

ढकोसना (हिं० क्रि०) बहुतसा पीना।

ढकोसला (हिं० पु०) आड़म्बर, पाखण्ड, मिथ्या, जाल।

ढक्क (सं० पु०) १ देशविशेष, एक देशका नाम ढाका। २ अभिलाषा, इच्छा।

ढक्कन (सं० पु०) वह वस्तु जिससे कोई चीज ढाँकी जाय।

ढक्का (सं० स्त्री०) ढक् इति गम्भीरशब्देन कायति कै-क टाप् च। १ वाद्यविशेष, बड़ा ढोल। इसके पर्याय—यशःपटह और विजयमर्द्दल है। इसके ऊपर पक्षियोंके पर इत्यादि लगे रहते हैं। २ नगारा, डंका।

ढक्कानादचलज्जला (सं० स्त्री०) ढक्काया नाद इव चलत् जलं यस्याः, बहुव्री०। गङ्गा। (काशीख०)

ढक्कारवा (सं० स्त्री०) ढक्काया रव इव रवो यस्याः, बहुव्री०। तारिणी देवी।

ढक्कारी (सं० स्त्री०) ढक् इति शब्दं करोति क-अण्, गौरा० ङीष्। तारिणी, तारादेवी।

> "ढक्कारवा च ढक्कारी ढक्कारवरवा ढका।"
> (तारासहस्रनामस्तोत्र)

ढक्की (हिं० स्त्री०) पहाड़की ढाल।

ढगण (सं० पु०) मात्रावृत्तमें त्रैमात्रिक प्रस्तावविशेष। एकमात्रिक गण जो तीन मात्राओंका होता है। इसके तीन भेद हैं,—(ऽ।) १ ध्वजा, (।ऽ) २ ताल, (।।। ३ ताण्डव।

ढङ्कण (सं० क्ली०) शैवाल, सिवार ।

ढचर (हिं० पु०) १ आयोजन और सामान । २ प्रपञ्च, टंटा, बखेड़ा । ३ आड़म्बर, झूठा आयोजन । ४ अत्यन्त जीर्ण तथा कृश, बहुत दुबला पतला और बूढ़ा ।

ढटींगड़ (हिं० पु०) १ बड़े डील डौल, ढींग । २ हृष्ट-पुष्ट, मोटाताजा ।

ढट्ठा (हिं० पु०) वह बड़ा मुरेठा जो सिर, डाढ़ी तथा कानों तकको भी ढाँक लेता हो ।

ढट्ठी (हिं० स्त्री०) १ कपड़ेकी वह पट्टी जिससे डाढ़ी बांधी जाती है । २ वह वस्तु जिससे कोई छेद बंद किया जाता है, डाट, ठेंपी ।

ढड्ढा (हिं० वि०) १ आवश्यकतासे अधिक, बहुत बड़ा । (पु०) २ ढाँचा । ३ आड़म्बर, झूठा ठाटबाट ।

ढड्ढी (हिं० स्त्री०) १ बुड्ढी स्त्री । २ प्रखरा स्त्री, बकबादिन औरत । ३ एक प्रकारकी चिड़िया जो मटमैले रंगकी होती है । और जिसकी चोंच पीली होती है । यह बहुत जोरसे शब्द करती है, चरखी ।

ढण्ढी (सं० स्त्री०) वाक्य भेद, एक प्रकारका वाक्य ।

"ढण्ढी वाक्यस्वरूपा च ढकाराक्षररूपिणी ।" (रुद्रया०)

ढप (हिं० पु०) १ क्रियाप्रणाली, रीति, तरीका । २ भाँति, प्रकार, तरह, किस्म । ३ रचनाप्रकार, बनावट, गढ़न । ४ युक्ति, उपाय, तदबीर । ६ प्रकृति, आदत ।

ढपना (हिं० पु०) ढक्कन, ढाकनेकी वस्तु ।

ढपरी (हिं० स्त्री०) चूड़ीवालोंकी अंगीठीका ढकना ।

ढप्पू (हिं० वि०) अत्यन्त दीर्घ, बहुत बड़ा ।

ढबैला (हिं० वि०) गदला, मटमैला ।

ढमढम (हिं० पु०) नगारे या ढोलका शब्द ।

ढयना (हिं० क्रि०) ध्वस्त होना, गिर पड़ना ।

ढरकना (हिं० क्रि०) १ ढलना, गिर कर बह जाना । २ नीचेकी ओर जाना ।

ढरका (हिं० पु०) १ आँखका एक रोग । इसमें आंखसे आंसू बाहा करता है । २ बाँसकी नुकीली नली । इससे चौपायोंको दवा पिलाई जाती है ।

ढरकी (हिं० स्त्री०) बानेका सूत फेंकनेका जुलाहोंका एक औजार । इसकी आकृति करतालसी होती है और भीतरसे पोली रहती है ।

ढरनि (हिं० स्त्री०) १ पतन, गिरनेकी क्रिया । २ स्पन्दन गति, हिलने डोलनेकी क्रिया । ३ चित्तकी प्रवृत्ति, झुकाव । ४ स्वाभाविक करुणा, दयाशीलता, सहज कृपालुता ।

ढरहरा (हिं० वि०) ढालू, ढालुवाँ ।

ढरारा (हिं० वि०) १ जो गिर कर बह जाता हो, ढरकनेवाला । २ जो थोड़े ही आघातसे सरक जाता हो, लुढकनेवाला । ३ शीघ्र प्रवृत्त होनेवाला, आकर्षित होनेवाला ।

ढर्रा (हिं० पु०) मार्ग, पथ, रास्ता । २ शैली, ढङ्ग, तरीका । ३ युक्ति, उपाय, तदबीर । ४ आचरण, पद्धति, चालचलन ।

ढलकना (हिं० क्रि०) १ ढलना, बह जाना । २ चक्कर खाते हुए सरकना, लुढकना ।

ढलका (हिं० पु०) आँखका एक रोग । इसमें आँखसे बराबर पानी बहा करता है ।

ढलकाना (हिं० क्रि०) १ बहाना, गिराना । २ लुढ़काना ।

ढलकी (हिं० स्त्री०) ढरकी देखो ।

ढलना (हिं० क्रि०) १ ढरकना, गिर कर बहना । २ व्यतीत होना, बीतना, गुजरना । ३ पानी या और किसी द्रव पदार्थका एक बरतनसे दूसरे बरतनमें डाला जाना । ४ साँचेमें ढाल कर बनाया जाना । ५ प्रसन्न होना, रीझना । ६ लुढ़कना । ७ लहराना । ८ प्रवृत्त होना, झुक जाना ।

ढलवाँ (हिं० वि०) जो साँचेमें डाल कर बनाया गया हो ।

ढलवाना (हिं० क्रि०) ढालनेका काम किसी दूसरेसे कराना ।

ढलाई (हिं० स्त्री०) १ ढालनेका काम । २ ढालनेकी मजदूरी ।

ढलाना (हिं० क्रि०) ढलवाना देखो ।

ढलुवाँ (हिं० वि०) ढलवां देखो ।

ढलैत (हिं० पु०) ढाल बाँधनेवाला, सिपाही !

ढहना (हिं० क्रि०)१ ध्वस्त होना, ढपना । २ नष्ट होना । मिट जाना ।

ढहवाना (हिं० क्रि०) ढहानेका काम किसी दूसरेसे कराना, गिरवाना ।

ढहाना (हिं॰ क्रि॰) ध्वस्त करना, गिराना।

ढाँक (हिं॰ पु॰) कुश्तीका एक पेच।

ढाँकना (हिं॰ क्रि॰) १ छिपाना, ओटमें करना। २ किसी वस्तुको इस प्रकार फैलाना जिससे उसके नीचेकी वस्तु छिप जाय।

ढाँचा (हिं॰ पु॰) १ किसी रचनाकी प्रारम्भिक अवस्था, ठाट, ठट्टर, डौल। २ पंजर, ठटरी। ३ रचना प्रकार, बनावट, गढ़न। ४ प्रकार, भाँति, तरह। ५ भिन्न भिन्न रूपोंसे एक दूसरेके साथ इस प्रकार जोड़े हुए लकड़ी आदिके बल्ले या छड़ जिससे उनके बीचमें कोई वस्तु जमाई या जड़ी जा सके। ६ चार लकड़ियोंका बना हुआ खडा चौखट। इसमें जुलाहे नचनी लटकाते हैं।

ढाँपना (हिं॰ क्रि॰) ढाँकना देखो।

ढाँस (हिं॰ स्त्री॰) सूखी खाँसी आने पर गलेमेंका शब्द।

ढाँसना हिं॰ क्रि॰) सूखी खाँसी खाँसना।

ढाई (हिं॰ वि॰) १ दोसे आधा अधिक। (स्त्री॰) २ कौड़ियोंसे खेले जानेका लड़कोंका एक खेल। ३ इस खेलमें रखी जानेकी कौड़ी।

ढाक (हिं॰ पु॰) १ पलाशका पेड़। २ वह बड़ा ढोल जो लड़ाईमें बजाया जाता है।

ढाका—१ कमिश्नरके अधीन पूर्व बङ्गालका एक विभाग। यह अक्षा॰ २१° ४९′ से २५° २६′ उ॰ और देशा॰ ८९° १८′ से ९१° १६′ पू॰में अवस्थित है। इसके उत्तरमें गारो पहाड़, पूर्वमें सुरमा, त्रिपुरा और मेघना, दक्षिणमें बङ्गोपसागर तथा पश्चिममें खुलना, यशोर, पावना, बगुड़ा, मधुमती और रङ्गपुर जिला है। लोकसंख्या प्रायः १०७९३९८८ और क्षेत्रफल १५९३७ है। अधिवासियोंमें अधिकांश मुसलमान हैं। इसके सिवा यहां हिन्दू, ईसाई और बौद्ध भी रहते हैं। इस उपविभागमें १७ शहर और २६९२८ ग्राम लगते हैं, जिनमेंसे ढाका और नारायणगञ्ज सबसे बड़े हैं। ढाका, मैमनसिंह, फरिदपुर और बाकरगञ्ज नामके चार जिला इस उपविभागके अन्तर्गत है। ब्रह्मपुत्र, पद्मा और मेघना यही तीन नदियाँ इस विभागमें जल देती हैं। पर इनका जल सुसङ्ग पहाड़ी तक नहीं पहुंच सकता। प्रसिद्ध 'मधुपुर जङ्गल' नामक भूभाग कुछ ऊंचा है। यह भूभाग मैमनसिंह और ढाका जिलेसे ले कर ढाका शहर तक विस्तृत है। वर्षा यद्यपि इस विभागमें कम होती है तो भी इस विभागको आज तक दुर्भिक्षका सामना न करना पड़ा है, कारण यहांकी जमीन बहुत ही उर्वरा है। विक्रमपुर और सोनारगाँवमें प्राचीन अट्टालिकाओंके भग्नावशेष देखे जाते हैं। कहते हैं, कि पहले यहां सेनवंश तथा मुसलमान राजाओंकी राजधानी थी।

२ पूर्व बङ्गालका एक जिला। यह अक्षा॰ २३° १४′ से २४° २०′ उ॰ और देशा॰ ८९° ४५′ से ९०° ५९′ पू॰में अवस्थित है। क्षेत्रफल २७८२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २६४९५२२ है। इसके उत्तरमें मैमनसिंह जिला, पूर्वमें त्रिपुरा, दक्षिण-पश्चिममें बाकरगञ्ज, फरिदपुर एवं पश्चिममें पावना जिलेका कुछ अंश है। इसकी सब दिशायें नदीसे सीमाबद्ध हैं, पूर्वमें मेघना दक्षिण-पश्चिममें पद्मा और पश्चिममें यमुना नदी नामक ब्रह्मपुत्र नदीकी प्रधान शाखा अवस्थित है। ढाका नगर इस जिलेका सदर है।

ढाका जिलेकी भूमि समतल है। धलेश्वरी इसी समतलमें पूर्वसे पश्चिमकी ओर प्रवाहित हो कर इसको दो भागोंमें विभक्त करती है। इन दोनों भागोंकी प्रकृतिमें बहुतसे विभेद है। उत्तर भाग फिर लाक्षा नदीसे दो भागोंमें विभक्त है। इन दोनों भागोंके पश्चिम दिशामें ढाका नगर अवस्थित है। इसकी भूमि बाढ़के जलकी अपेक्षा ऊँची है। स्थान स्थानमें कीचड़ है और उसके ऊपर गली हुई उद्भिज वस्तु भी देखी जाती हैं। लाक्षा नदीके दोनों किनारे ऊँचे तथा गभीर जलपूर्ण हैं। स्थान स्थानमें नदीतीरका दृश्य अत्यन्त मनोरम मालूम पड़ता है। ढाकासे प्रायः २० मील उत्तर मधुपुर जङ्गलमें छोटे छोटे पहाड़ अर्थात् टीले देखे जाते हैं। इन टीलोंकी ऊँचाई कहीं भी ३०।४० फुटसे अधिक नहीं है और ये प्रायः तृणगुल्म वा जङ्गलादिसे ढके हुए हैं। इस भूमिखण्डका अधिकांश अनुर्वर है तथा खूँखार, जंगली जन्तुसे भरा अरण्यमय है। सम्प्रति इस विभागमें कृषि विस्तारकी चेष्टा हो रही है। नगरके निकट झील और नहरोंके चारो तरफकी भूमि धान, सरसों और तिल आदि पैदा करनेके लिए उपयोगी है। ढाकाके पूर्वभागमें

ले कर धलेश्वरी और लाक्षा नदीके संगमस्थल तकको भूमि पङ्कमय और उर्वरा है। पूर्वोत्तर खण्ड लाक्षा और मेघना नदीका मध्यवर्त्ती तथा अधिकांश पङ्कमय है। अतएव पश्चिमस्थ खण्डकी अपेक्षा इसके कृषिकार्यकी अवस्था बहुत अच्छी है। इसके अनेक स्थान बाढ़से डूब जाते हैं। धलेश्वरी नदीका दक्षिणस्थ विभाग ही जिलेमें सबसे अधिक उर्वरा है। यह विस्तीर्ण समतल भूभाग वर्षाकालमें २ फुटसे १४ फुट पर्यन्त बाढ़के जलसे डूब जाता है। इस समय यह स्थान एक प्रशस्त ह्रदको नाईं दीखता है। वर्षाकालमें समस्त भूभाग हराभरा मालूम पड़ता है। बीच बीचमें कृत्रिम ऊंची भूमि पर ग्राम बसे हुए हैं। अधिवासिगण छोटी छोटी नावके द्वारा इन खेतोंके मध्य हो कर इधर उधर जाते आते हैं। अभी यहाँ स्थान स्थान पर पाट सन आदिकी खेती होती है।

इस जिलेमें नदियोंकी संख्या अधिक है। वर्ष भर जलपथ हो कर ही लोग अधिकांश स्थलमें जाते आते हैं। पद्मा, मेघना और यमुना इन तीन नदियोंके अतिरिक्त आरियालखाँ, कीर्त्तिनाशा, धलेश्वरी, बूढ़ीगङ्गा, लाक्षा, मेदीखाली और गाजीखाली नामक ७ नदियोंमें भी बड़ी बड़ी नावें आ जा सकती हैं। इनका अधिकांश गङ्गाका या ब्रह्मपुत्रकी शाखाका अथवा प्राचीन परित्यक्त नदीका गर्भ है। आज भी जिलेके दक्षिणखण्डमें समस्त नदियोंका गर्भ बाढ़के समय परिवर्त्तित हो जाता हैं। अपेक्षाकृत छोटी नदियोंमें ह्लिसामारी, बाँसी, तुराग, टुङ्गी, बालू और ब्रह्मपुत्रके प्राचीन स्रोत प्रधान हैं। इन नदियोंमें ज्वारका प्रभाव लक्षित होता है। ढाकाके निकटस्थ बूढ़ीगङ्गाकी ज्वार २ फुट पर्यन्त ऊपर उठती है। अनेक स्थानोंमें नदीके हट जानेसे विस्तीर्ण झील बन गई है। एक नदीसे दूसरी नदीमें जानेके लिये अनेक नहरें खोदी गई हैं। जिलेकी सभी नदियां उत्तर-पश्चिमसे दक्षिण-पूर्वकी ओर बहती हुई प्रान्तभागमें गङ्गा और मेघनाके सङ्गमस्थलके निकट उसके साथ मिल गई है।

कुछ जलज और जङ्गली उद्भिदको छोड़ कर यहां विशेष प्रकारके फल पुष्पादि उत्पन्न नहीं होते। जङ्गलोंके काष्ठादिसे भी आमदनी थोड़ीही होती है। चरागाह भी अधिक नहीं है। नदियोंसे प्रति वर्ष बहुतसी मछलियां पकड़ी जाती हैं।

ढाका बहुत दिनों तक मुसलमानोंकी राजधानी रहनेके कारण अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा इस समय यहां मुसलमान अधिवासियोंकी संख्या बहुत ज्यादा है। लोकसंख्या प्रायः २६४९५२२ है।

ढाका जिलेकी आबहवा और खेती आदिकी सुविधा होने तथा पाटका व्यवसाय खुल जानेसे यहांकी जनसंख्या क्रमशः बढ़ती जाती है। यहांके मुसलमान प्रायः अधिकांश सेख सम्प्रदायके हैं। सैयद, मुगल और पठानोंकी संख्या उसकी अपेक्षा बहुत थोड़ी है। हिन्दुओंमें ब्राह्मण, कायस्थ, वैद्य, बढ़ई अर्थात् सूत्रधर, तम्बोली, बनिया, ग्वाला, धोबी, नापित, कुम्हार, लोहार, मल्लाह, ताँती, सूंड़ी इत्यादि प्रधान हैं। चण्डाल और कोच जाति भी हिन्दू धर्म स्वीकार करती है। इनकी संख्या भी थोड़ी नहीं है। जातिभ्रष्ट अनेक हिन्दू वैष्णव-सम्प्रदायके कहे जाते हैं। इस सम्प्रदायकी लोकसंख्या कम नहीं है। अधिकांश नीच जातिके लोग पहले मुसलमान अथवा ईसाई धर्ममें दीक्षित हुये थे। अवशिष्ट लोग अपनेको निम्नश्रेणीके बतलाते हैं। ढाकाके ईसाई सम्प्रदायकी उत्पत्ति भिन्न प्रकारकी है। वे लोग पोर्तुगीज, आर्मेणीय, ग्रीक, यूरोपीय अथवा देशीय ईसाइयोंके वंशधर है। फिरङ्गी अर्थात् पोर्तुगीज ईसाई देशियोंके मिश्रणसे उत्पन्न है। ईसाई जिलेके अनेक स्थानोंमें छोटे छोटे दल बांध कर निवास करते हैं तथा कृषि आदिके द्वारा जीविकानिर्वाह करते हैं। ये लोग गोया नगरके प्रधान पादरी साहबको अपना प्रधान गुरु मानते हैं।

निम्नलिखित सात नगरोंमें ५ सहस्रसे अधिक मनुष्य निवास करते हैं। यथा १ ढाका, २ नारायणगञ्ज, मदनगञ्ज, ३ माणिकगञ्ज, ४ चरजजिरा, ५ शोणगढ़, ६ कमारगाँव तथा ७ नरिसा ये ही सात नगर हैं। उनमेंसे प्रथमोक्त तीन नगरोंमें म्युनिसपालिटी है। ढाका नगरमें जिलेका सदर है जो लाक्षा नदीके परस्पर विपरीत तीर पर अवस्थित है। नारायणगञ्ज और मदन-

गञ्ज वाणिज्यका प्रधान अड्डा है। शहरमें वास करना अधिवासियोंको पसन्द नहीं पड़ता कारण शिल्पादिका कोई कार्यालय नहीं है। उपरोक्त नगरोंमें कितनेको छोड़ कर निम्नलिखित स्थान भी उल्लेखयोग्य है। यथा सुवर्णग्राम, यहीं पूर्व बङ्गालकी सर्व प्रथम मुसलमानकी राजधानी थी, फिरङ्गीबाजार, पोर्तुगीजका आदि उपनिवेश, विक्रमपुर, साभार और दुरदुरिया। शेषोक्त दो स्थानोंमें कितने भग्न प्रासादादि देखे जाते हैं, लोग उनको भुंइयां और पाल राजाओंकी कीर्ति बतलाते हैं। इसके सिवा जिलेके अनेक स्थानोंमें प्राचीन हिन्दू और मुसलमान राजाओंकी अनेक कीर्तियां विद्यमान हैं। सम्प्रति कृषिकार्यकी विशेष उन्नति होने एवं कृषिजात द्रव्योंका मूल्य बढ़ जानेसे कृषकोंकी अवस्था बहुत अच्छी हो गई है। तिल, सरसों, कुसुमफूल, सन और पाट आदिकी खेती द्वारा अनेक कृषकोंकी अवस्था सुधर गई है। कहना नहीं पड़ेगा कि निर्दिष्ट वेतनभोगी कर्मचारी वा करग्राही तालुकदारोंकी इस उन्नतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

कृषि—बङ्गालके अन्यान्य स्थानोंकी नाईं यहां भी चावल ही लोगोंका प्रधान खाद्य है। चार तरहके धान विशेषकर पैदा होते हैं। १ आमन वा हैमन्तिक, २ आउश वा आशु धान, ३ बोरो धान तथा ४ ऊड़ीधान अर्थात् दलदल आदिमें आपसे आप होनेवाला धान। इनमेंसे हैमन्तिक वा आमनधान ही प्रधान है। ढाकामें जितना धान उत्पन्न होता उतनेसे इस जिलेका काम नहीं चलता है। दूसरे दूसरे स्थानोंसे चावलकी आमदनी होती है। उत्पन्न द्रव्योंमें ज्वार, बाजरा, जुन्हरी, अनेक तरहके उर्द, तिल, सरसों, रूई, सन, पटसन, कुसुमफूल, ऊख, पान, सुपारी और नारियल प्रभृति प्रधान हैं। फिलहाल रूईकी खेती बहुत कम गई है; पहले यहांकी रूई बहुत प्रसिद्ध थी, इसमें संदेह नहीं। उसी रूईसे संसारविख्यात ढाकेकी साड़ी बनती थी। इस समय तिल, सरसों, सन, पटसन, कुसुमफूल इत्यादि यहांसे दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते हैं। धानका खेत अधिकांश बाढ़के जलसे प्लावित हो जाता है। इसलिये उनमें सारकी आवश्यकता नहीं होती। रब्बीके खेतोंमें बहुत खाद देनी पड़ती है। समस्त जिलेके $\frac{१}{२}$ अंशमें हल चलता है। अच्छे धानके खेतोंमें धानके कट जाने पर एक दूसरी फसल उत्पन्न होती है।

ढाका जिलेमें अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़ प्रभृति दैवदुर्विपाक अधिक नहीं होते हैं। दैवदुर्घटनासे धानकी हानि बिलकुल नहीं होती। १७७७-७८ ई०में भयानक बाढ़ और उसके बाद भीषण दुर्भिक्ष हुआ था। १८६५ और १८७० ई०में अनावृष्टि होनेके कारण अन्न महँगा हो गया था। सम्प्रति कई एक वर्षोंसे विक्रमपुरमें दुर्भिक्षकी बातें प्रायः सुनी जाती हैं। अभी रेलपथ और जलपथसे अन्यान्य जिलोंके साथ संयोग हो जानेके कारण अन्तर्वाणिज्यकी वृद्धि हो रही है। तथा घोर दुर्भिक्षकी आशङ्का नष्ट हो रही है। ढाका जिलेमें बहुतसी बड़ी बड़ी नदियां रहनेके कारण साल भर प्रायः सभी स्थानोंमें जलपथसे जाने आनेकी सुविधा रहती है। ऐसा कोई स्थान नहीं है जो बड़ी नदीसे दूर हो। विशेषकर जाना आना और वाणिज्य व्यापारादि अधिकांश जलपथसे ही सम्पन्न होता है।

ढाका नगरके मध्य हो कर त्रिपुरा और चट्टग्राम तक जो पक्की सड़क गई है, वही सबसे प्रधान है। ढाकासे मैमनसिंह और नारायणगञ्ज तक एक दूसरी सड़क गई है, जिनमेंसे नारायणगञ्जकी सड़क हो कर बहुत वाणिज्य होता है। ढाकासे नारायणगञ्ज और मैमनसिंह तक रेललाइन गई है। शिल्पद्रव्योंमें यहांका सूती कपड़ा, शङ्ख और सोने तथा चाँदीके बने हुए तरह तरहके पदार्थ, मट्टीके बरतन और कपड़ेके ऊपर पालिश करनेका काम प्रधान है। पहले ढाकाके कपासके सूतकी बनी हुई अत्यन्त महीन तरह तरहकी मलमल वा मस्लिन जगत्में विख्यात थी। अब भी यूरोपमें अनेक उत्कृष्टसे उत्कृष्ट मशीनोंके रहते हुए भी ऐसी आश्चर्य्योत्पादक मलमल नहीं बनती। अभी उसकी खपत नहीं रहनेके कारण ढाकेका पूर्व गौरव जाता रहा। जो उक्त वस्त्रके लिये सूत कातते तथा जो ताँती उस भुवनविख्यात मलमलको बुनते थे, वे अब एक भी नहीं हैं। जिस कपाससे उसका सूता बनता था, बहुतोंका कहना है कि उसका भी लोप हो गया है। कहा

जाता है, कि मलमलके लिये चरखेका काता हुआ आध छटाक सूतका मूल्य ५०) रु०से कम नहीं था। आज भी दो एक ताँती कुछ शौकीन व्यक्तियोंके लिये पहलेसा मलमल थोड़ा बहुत बनाते हैं। अधिकांश ताँती तरह तरहके देशी वस्त्र बुनते हैं। इनमेंसे अनेक महाजनोंके निकट ऋणग्रस्त हैं, अत: महाजन उन्हींसे सब कपड़े ले कर वेचते हैं। सोने और चाँदीके अलङ्कार बनानेवाले तथा शङ्खवणिक्की अवस्था वैसी नहीं है। वे स्वाधीनभावसे अपने अपने कर्मशालेमें काम करते हैं और अपने द्रव्यको इच्छानुसार जहाँ तहाँ बेचा करते हैं। इसके सिवा यहाँ भिन्न भिन्न प्रकारके वाद्ययन्त्र, सोने चाँदीका फीता, हाथी दाँतके कई तरहके द्रव्य, चित्र, फूलदार साड़ी आदि बनती हैं।

ढाका एक बड़ा वाणिज्यका केन्द्र है। जलपथ हो कर ही इसका अधिकांश वाणिज्य होता है। अभी रेलपथसे भी इसका बहुत वाणिज्य चल रहा है। पहले यूरोपीय, यहूदी, मुसलमान, मारवाड़ी आदि जातिके वणिक् तथा देशी वणिक् यहाँ कपड़ेका कारबार बहुत करते थे। अभी उस व्यवसायका ह्रास हो गया है। नारायणगञ्ज और उसके निकट मदनगञ्ज समृद्धशाली नगर हैं। यहाँ वाणिज्य अधिक होता है। मुन्शीगञ्जमें प्रति वर्ष तीन सप्ताह तक मेला लगता है। उस मेलेमें भारतवर्षके नाना स्थानोंसे, यहाँ तक कि दिल्ली, अमृतसर, आराकान आदि दूर दूर देशोंसे भी वणिक् आते हैं।

इस जिलेमें विद्याकी उन्नतिके लिये विशेष चेष्टा हो रही है। ढाका शहर छोड़ कर अन्यान्य स्थानोंमें भी छापेखाने स्थापित हुये हैं और मासिक तथा साप्ताहिक पत्र निकलते हैं। पाठशाले आदिमें गवर्मेण्टसे सहायता मिलनेकी प्रथा प्रचलित हो जानेसे छात्रसंख्या बहुत बढ़ रही है। अङ्गरेजी स्कूल भी यहाँ बहुतसे हैं। ढाका नगरमें एक कालेज है। लड़कियोंको पढ़ानेके लिये यहाँ कई एक कन्या-पाठशालाएँ हैं। मुसलमानोंके लिये मदरसा है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला ढाका, नारायणगञ्ज, माणिकगञ्ज और मुन्शीगञ्ज इन चार उपविभागोंमें और फिर वे भी कुल १२ थानोंमें विभक्त हैं।

जलवायु। जिलेके चारों ओर बड़ी बड़ी नदियोंके रहनेसे ग्रीष्मकालमें यहाँकी जलवायु कुछ शीतल रहती है। वैशाखके अन्तसे आश्विन मास तक यहाँ वृष्टि होती रहती है। इस समय चारों ओरकी भूमि जलमग्न रहती है। वर्षाकालका अन्त भाग अप्रीतिकर रहता है। वार्षिक वृष्टिपात प्राय: ७'४ इञ्च और तापांश प्राय: ७८'८ फा० होता है। भूमिकम्प भी प्राय: हुआ करता है। १७६२ और १७७५ ई०के मई मासमें भीषण भूमिकम्प हुआ था।

सभी रोगोंमें ज्वर, गलगण्ड, आमाशय, अतिसार, वात,आँखका दुख होना इत्यादि साधारण हैं। प्लेग और वसन्त रोगसे भी कभी कभी बहुत मनुष्योंकी मृत्यु होती है। छोटे छोटे ग्रामवासियोंकी स्वास्थ्यरक्षाकी ओर किसीका भी ध्यान नहीं है। नवाब अबदुलगणि ढाका नगरके स्वास्थ्यकी उन्नतिके लिये अर्थसाहाय्य और स्वास्थ्यसमिति संगठन तथा परिष्कृत जल प्राप्तिका अच्छा बन्दोबस्त कर ढाकावासियोंका बहुत उपकार कर गये हैं। दातव्य-चिकित्सालयोंमें एक पगलागारद, मिटफोर्ड अस्पताल, अबदुलगणिप्रतिष्ठित एक सदाव्रत और १३ दूसरे दूसरे अस्पताल हैं।

इतिहास। अभी बङ्गाल कहनेसे जिस तरह राढ़, वरेन्द्र, वङ्ग, बागड़ी प्रभृति स्थानोंका बोध होता है, पहले उस तरह नहीं था। अभी जिसको ढाका विभाग कहते हैं, उसीका अधिकांश पहले वङ्ग नामसे प्रसिद्ध था। इस समय लोग जिसे पूर्व बङ्गाल कहते हैं, महाभारत और पौराणिक समयसे ले कर गौड़के सेनराजाओंके राजत्वकाल तक उसीको केवल वङ्ग कहते थे। वर्तमान ढाका जिलेका अधिकांश और फरीदपुर जिलेका कुछ अंश सेनराजाओंके समयमें विक्रमपुरनामसे मशहूर था; सेनराज विश्वरूपके ताम्रशासन द्वारा यह प्रमाणित होता है।*

ढाका नाम कबसे प्रचलित है, उसका स्थिर करना कठिन है। महाराज समुद्रगुप्तके इलाहाबादके शिलालेखमें लिखा है, कि उन्होंने डवाक और समतटको जय किया था। बंगालका दक्षिणांश समुद्रकूलवर्ती स्थान

---

* Journal of the Asiatic Society of Bengal for 1895.

पहले समतट नामसे प्रसिद्ध था। दोनों नामके आस पास रहनेसे वर्तमान ढाका ही पहले डवाक था, ऐसा अनुमान किया जाता है।

प्रवाद है, कि आदिशूर प्रभृतिके बहुत पहले यहाँ विक्रमादित्य नामक एक राजा राज्य करते थे, उन्होंके नामानुसार विक्रमपुरका नामकरण हुआ है।

भविष्य-ब्रह्मखण्डमें लिखा है—"यहाँ ढक्कावाद्य प्रिया महाकाली वास करती हैं, इसीसे देशीय मनुष्य इस स्थानको ढक्का (ढाका) कहा करते हैं। इसका दूसरा नाम जाङ्गीरपत्तन (१) (जहाँगोराबाद) है।

ढाका जिलेका प्राचीन इतिहास अन्धकारमय है। महाभारतके समय यहाँ क्षत्रिय-वीरगण राज्य करते थे। बंग देखो। बौद्धप्राधान्यके समय गौड़के दूसरे अंशमें बौद्धधर्मको सूचना होने पर भी यहां किसी समय बौद्धधर्म प्रबल था, उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं है। छठी शताब्दीमें काश्मीरराज वालादित्यने पूर्वसमुद्र तक जीत कर काश्मीरियोंके रहनेके लिये यहाँ कालम्बा नामक एक जनपद स्थापन किया (२)।

८वीं शताब्दीमें गौड़राज्य पालवंशीय-राजाओंके अधीन होने पर यहां भी उनके वंशीय कोई कोई स्वाधीनभावसे राज्य करते थे। दक्षिण प्रदेशके तिरुमलय शिलालेखमें लिखा है, कि जब (१०वीं शताब्दीमें) महाराज राजेन्द्रचोलने वङ्गराज्य पर आक्रमण किया, तब यहां गोविन्दचन्द्र नामक एक राजा राज्य करते थे। गौड शब्द देखो।

पाश्चात्यवैदिक-कुलपञ्जिकाके मतसे १००१ शकमें महाराज श्यामलवर्मा (पूर्व) वङ्गमें राज्य करते थे। उत्कलके विख्यात भुवनेश्वरमें अनन्तवासुदेवके मन्दिरमें भट्टभवदेवको एक प्रशस्ति है, जिसमें वङ्गाधिप हरिवर्मदेवका परिचय मिलता है। शायद ये १२वीं शताब्दीके किसी समय विद्यमान थे। सेनवंशीय राजाओंके समयमें दक्षिणराढ़, वङ्ग और वरेन्द्र इन्हीं तीन स्थानोंमें उन लोगोंको राजधानी थी। सेन-राजवंश देखो। महम्मद-इ-वख्तियारके ११९९ ई०में नदिया अधिकार करने पर महाराज लक्ष्मणसेनके पुत्र केशवसेन गौड़राज्य परित्याग कर विक्रमपुर भाग आये थे। उस समय यहाँ लक्ष्मणसेनके दूसरे पुत्र विश्वरूपसेन शासनकर्त्ता स्वरूप थे। ये भी मुसलमानोंके साथ युद्ध कर स्वाधीनभावसे राज्य करने लगे। उनके समयमें पूर्व बङ्गाल और समतट स्वाधीन था, मुसलमान उसे जीत न सके थे। उनके बाद सदासेनने (?) कुछ काल तक राज्य किया, इस समय सुवर्णग्राममें सेन राजाओंको राजधानी थी। तदनन्तर प्रबल पराक्रान्त सेनराज दनौजामाधवने बहुत दिनों तक राज्य किया। पीछे दिल्ली-सम्राट् बलवन तुघ्रिलखाँको दमन करनेके लिये गौड़राज्य पहुँचे। महाराज दनौजामाधवने जलपथसे सम्राट्को यथेष्ट सहायता की थी। मालूम पड़ता है कि उसी कारण लक्ष्मणावतीके सूबादार उन पर विरक्त हुए थे और जब बलवन लौट कर आया तब सुबादारोंने भी दनौजके ऊपर अत्याचार आरम्भ किया। राजा दनुजमर्दनने गौड़ परित्याग किया और चन्द्रद्वीपमें आ कर राजधानी स्थापन की। इस समय वर्त्तमान ढाका जिलेका अधिकांश मुसलमानोंके अधिकारमें आया। सुवर्णग्राम देखो। वर्त्तमान फरीदपुर और बाखरगञ्ज ले कर चन्द्रद्वीप राज्य स्थापित हुआ। दनुजमर्दनके वंशधरोंने बहुत समय तक चन्द्रद्वीपमें राज्य किया। चन्द्रद्वीप देखो। प्रायः १३३० ई०में जब ढाका जिला मुसलमानोंके हाथ आया, तब थोड़े समयके बाद ही वैद्यवंशीय बल्लाल नामक एक व्यक्तिने प्रबल हो कर विक्रमपुरका अधिकाँश अधिकार किया और वहाँ कुछ काल तक स्वाधीनभावसे राज्य किया था। उनके आदेशसे उनके शिक्षक गोपालभट्टने १३०० शक अर्थात् १३७८ ई०में 'बल्लालचरित' नामकी पुस्तक बनाई।

---

(१) "वृद्धगंगातटे वेदवर्षसाहस्रव्यत्यये।
स्थापितव्यश्च यवनैर्जांगिरं पत्तनं महत्॥
तत्र देवी महाकाली ढक्कावाद्यप्रिया सदाः।
गास्यन्ति पत्तनं ढक्कासंज्ञकं देशवासिनः।"
(भ० ब्रह्मखण्ड, ९ अ०)

(२) "यस्याद्यापि जयस्तम्भाः सन्ति ते पूर्ववारिधौ।
प्रभावांकेन वंकालां जित्वा येन व्यधीयत।
काश्मीरिकनिवासाय कालम्ब्याख्या जनाश्रयः॥"
(राजतर० ३।४८२)

उनके समयमें जो राजभवन और सरोवर वनाया गया, वह अभी वल्लालवाड़ी और वल्लालदीघी नामसे मशहूर है। प्रवाद-इस तरह है, वे वावा आदमनामक एक मुसलमान फकीरके साथ युद्ध करने लगे। युद्धयात्राकालके समय वे अपने परिवारवर्गसे इस तरह कह गये, "युद्धमें यदि मेरी मृत्यु हो जायगी, तो मेरा साथी कवूतर उड़ कर वहाँ पहुँच जायगा और तव तुम लोग भी अग्निकुण्डमें कूद कर प्राणत्याग करना।" इतना कह कर वे रणक्षेत्रमें गये और वहां वल्लालकी ही जय हुई। वे ज्यों ही एक सरोवरमें प्रवेश कर अपने रक्ताक्त कलेवरको साफ करने लगे त्यों ही अवकाश पा कर उनका कवूतर उड़ गया। इधर कवूतरको देख कर राजपरिवारवर्गने अग्निकुंडमें कूद कर अपना अपना प्राणत्याग किया। जव वल्लाल लौट कर आये, तव वे उस घटनाको देख अत्यन्त शोकातुर हुए और उन्होंने भी उसी जलते हुए अग्निकुण्डमें कूद कर प्राण छोड़ा। उनका विस्तृत राज्य भोग करनेके लिये अव कोई न वचा। ढाका जिला पुनः मुसलमानोंके हाथ आया। किसीके मतानुसार उस समय भी भावाल और शाभर प्रभृति स्थानोंमें हिन्दू जमीन्दारगण स्वाधीन भावसे राज्य करते थे। भावाल देखो।

१३३० ई०में महम्मद तुगलकने पूर्व वङ्गाल अपने अधिकारमें किया। इस समय वङ्गराज्य लक्ष्मणावती, सातगाँव और सोनारगाँव इन तीन भागोंमें विभक्त हुआ। ढाका सोनारगाँव विभागके अन्तर्गत था। १३३८ ई०में सोनारगाँवके शासनकर्त्ता तातार वहरमखाँकी मृत्यु होनेसे फकर-उद्दीन् सिंहासन पर वैठे और इन्होंने मुवारकशाह नामसे १० वर्षसे अधिक समय तक उक्त प्रदेशमें राज्य किया, १३५१ ई०में समसुद्दीन इलयासशाह तथा उनके पुत्र सिकन्दरशाहकी अप्रतिहत चेष्टासे समग्र वङ्गदेश एक राज्यभुक्त तथा ढाकाके निकटवर्त्ती सोनारगाँवमें राजधानी स्थापन की। सिकन्दरके पुत्र आजमशाहने दिल्लीकी अधीनता परित्याग की। राजाखाँके शासनकालके समय यह प्रदेश त्रिपुरा, आसाम और आराकानके राजाओंसे कई वार उत्पीड़ित हुआ था। १४४५ ई०में महम्मदशाहने पुनः समस्त वङ्गालको अपने अधिकारमें कर लिया। इस वंशके शासनकालमें ढाका, फरीदपुर और वाकरगञ्जके चारों ओरके प्रदेश जलालावाद और फतयावाद नामसे परिचित थे। १५३८ ई०में सेरशाहने वङ्गदेशपर शासन किया। उनके उत्तराधिकारी मुगलोंसे पराजित हुए। मुगल-सम्राट् अकवर द्वारा मध्यवङ्गसे भगाये जाने पर इन्होंने उड़ीसा और ढाकामें जा कर आश्रय ग्रहण किया। १६०५ ई०में इनके एक सर्दार उसमानखाँसे निम्नवङ्ग लूटा गया था। उन्होंने उक्त प्रदेशको १६१२ ई० तक अपने अधिकारमें रखा था। इस वर्ष पूर्ववङ्गके किसी स्थानमें मुगलोंके साथ युद्धमें वे मारे गये। इस समय इसलामखाँ वङ्गदेशके शासनकर्त्ता थे। इस युद्धके वाद उन्होंने राजमहलसे ढाकामें अपनी राजधानी स्थानान्तरित की। तवसे १६३९ ई० तक अन्तर्विद्रोह और वहिराक्रमणसे ढाका कई वार उत्पीड़ित हुआ था। इस समय आसामवासी और मगोंने यथाक्रम ढाकाका उत्तर और दक्षिण भू-भाग लूटा था। १६३९ ई०में सुलतान महम्मद सुजाने ढाका परित्याग कर पुनः राजमहलमें राजधानी स्थापन की। १६६० ई०में मीरजुमला जव राजप्रतिनिधि नियुक्त हुए, तव राजधानी फिर ढाकामें लाई गई। मीरजुमलाके शासनकालमें ही ढाका सवसे अधिक उन्नतिशिखर पर पहुँच गया था। मग और आराकानको वाधा देनेके लिये उन्होंने लाक्षा और धलेश्वरी नदीके सङ्गम पर वहुतसे दुर्ग निर्माण किये थे, जिनमेंसे हाजीगञ्ज और इदरकपुरके दुर्ग ही सवसे अधिक विख्यात हैं। इनके समयमें ढाकाके निकट वहुतसी सड़कें और पुल प्रस्तुत हुए। साइस्ताखाँके राजत्वकालमें इस नगरमें स्थापत्यविद्याकी वहुत उन्नति हुई थी। उन्होंने यहां वहुतसी मसजिदें वनाईं। इनके समयमें ईंटोंके घर वनानेके लिये एक नयी पद्धति आविष्कृत हुई, जिसे साइस्ताखानी कहते हैं। इस पद्धतिके दो एक घर अव भी ढाका नगरीमें देखे जाते हैं।

साइस्ताखाँने ढाका शहर तथा निकटवर्त्ती स्थानको उत्तरकी ओर टुङ्गी तक विस्तृत किया था। सम्राट् औरङ्गजेवके आदेशसे उन्होंने कुछ दिनके लिये अंग्रेज वणिकोंके ढाकास्थित एजण्टोंको शृङ्खलावद्ध कर रखा था। जव औरङ्गजेव सम्राट् हुए, तव वङ्गदेशका राजस्व वढ़ानेके लिये उन्होंने मुर्शिदकुलीखाँको वङ्गदेशका

दीवान बना कर भेजा। इस समय कुमार आजिम-उश्शान सम्राट्‌के आदेशसे वङ्गदेशको निजामतमें नियुक्त थे। मुर्शिदने ढाका जा कर सम्राट्‌पौत्रकी बहुतसी जागीर साम्राज्यके अन्तर्गत कर ली। इस पर आजिम-उश्शान अत्यन्त विरक्त हो कर मुर्शिदका प्राणनाश करनेके लिये षड़यन्त्रमें प्रवृत्त हुए। मुर्शिद असम साहससे षड़यन्त्रकारियोंके हाथसे छुटकारा पा कर मुर्शिदाबादमें जा कर रहने लगे। यह सब हाल जान कर सम्राट्‌ने अपने पौत्रको विहार भेज दिया और मुर्शिदकुलीखाँको नाजिम बनाया। फरुखसियरके राजत्वकालमें वे प्रकृत नाजिम हो गये। इस तरह १७०४ ई०में ढाकासे राजधानी उठा दी गई। पूर्व प्रदेशके शासनका भार एक नायब अर्थात् अधीन नाजिमके ऊपर सौंपा गया। १७१३ ई०में मिर्जा लताफउल्लाने त्रिपुरा राज्यको ढाका निजामतके अन्तर्गत किया। परवर्ती अधिकांश नायब ही अधीन कर्मचारी पर इसका भार सौंप कर मुर्शिदाबादमें जा बसे। ऐसा होनेसे अनेक कर्मचारी ढाका और निकटवर्ती स्थानोंके अधिवासियोंका सर्वस्व हरण कर आप धनी हो गये। १७६५ ई० तक ढाकावासियोंने इस तरहका अत्याचार सह्य किया। इस समय अंग्रेज कम्पनीने बङ्गालकी दीवानी पाई। तब इजरी और निजामत इन दो विभागोंमें ढाकाशासनका बन्दोबस्त हुआ। राजस्वसम्बन्धीय प्रथम विभागका कार्य मुर्शिदाबादके दीवान द्वारा चलाया जाता था। दीवानी और फौजदारी अभियोग आदि दूसरे विभागके अन्तर्गत थे। १७६९ ई०में दोनों विभागकी देखभाल करनेके लिये एक कर्मचारी नियुक्त हुए। १७७२ ई०से यही कर्मचारी कलेक्टर कहलाते आ रहे हैं। इसी वर्ष एक दीवानी आदालत और १७७४ ई०में एक कौन्सिल स्थापित हुई। नायब राजस्व वसूल तथा दीवानी अदालतमें विचार करते थे। उक्त कौन्सिलमें इनके कार्यका प्रतिवाद किया जा सकता था। १७८१ ई०में कौन्सिल उठ गई और राजकीय कार्य आदि चलानेके लिये मजिष्ट्रेट, कलेक्टर जज प्रभृति नियुक्त हुए।

पूर्व समयके जागीरदारोंने ढाका विभागका ¾ अंश अधिकार किया था। प्रधान जागीरको नवारा कहते थे। मग और आसामवासियोंके आक्रमणसे उपकूल प्रदेशकी रक्षा करनेके लिये नवाराकी आय खर्च होती थी। नवारा भी फिर कई एक तालुकोंमें विभक्त था। मल्लाह प्रभृति अपनी तनखाहके बदले इस तालुककी आय भोग करते थे। इस तरह नवाब प्रधान सेनापति आदिका खर्च चलानेके लिये सरकार अलि, आइसाम प्रभृति प्रदेश अवधारित किया था।

नवाब ढाकासे निम्नलिखित कर वसूल करते थे—

(१) पट्टा बदलनेके समय जमीन्दारोंसे एक प्रकारका कर।

(२) ईद तथा और दूसरे दूसरे मुख्य मुसलमान पर्वोंमें नवाबके निकट जितने उपहार भेजे जाते, उतनका खर्च जुटानेके लिये एक प्रकारका कर।

(३) विभागीय राजस्वके ऊपर सैकड़े कर।

(४) ढाकासे राजधानी दूसरी जगह ले जानेमें नायब द्वारा गृहीत जमीनके ऊपर एक प्रकारका स्थायी कर।

(५) महाराष्ट्रीय चौथ।

निम्नलिखित विषयोंसे सायर लिया जाता था।

(१) नौकाप्रस्तुत (जितने जलयान ढाका बन्दरमें आते अथवा वहाँसे दूसरी जगह जाते उनके ऊपर भी यह कर लगाया जाता था) (२) बजारमें बेचे जानेके द्रव्य (३) घास बेचना (४) जो बाजारमें बेचनेके लिये बाँस, पयाल आदि लाते थे। (५) जो युद्धसज्जा प्रस्तुत करते थे। (६) सिन्दूर प्रस्तुत। (७) पान बेचना। (८) साकसब्जी आदि बेचना (९) कागज बेचना। (१०) नगरमें जो व्यवसाय करते थे। (११) दूकानदार इत्यादि। (१२) बानर, भालू, साँपके खेल इत्यादि कामोंमें जो नियुक्त रहते थे। (१३) गायक। (१४) काष्ठविक्रय। (१५) वजन या तौलके निरीक्षक कर्मचारी भी सैकड़े ॥) आनेके हिसाबसे कर लेते थे।

मुगल सम्राटोंके अधीन ढाकाका राजस्व वसूल करनेमें कुल राजस्वके सैकड़े दश रुपयेसे अधिक खर्च नहीं होता था। कम्पनीके दीवानी ग्रहण करने पर ढाकाका राजस्व कुछ कम गया। श्रीहट्ट प्रभृति अन्यान्य स्थान ढाका विभागसे अलग कर दिये गये। किन्तु १७९३ ई०के चिरस्थायी बन्दोबस्तके समय बाखरगञ्ज

और फरीदपुर ढाका कमिश्नरीके साथ मिला दिये गये। १९०३-१९०४ ई०में ढाकासे ५२१००० रु० राजस्व वसूल हुआ है। ब्रिटिश गवर्मेण्टने सायर कर उठा कर शराब, अफीम इत्यादि मादक द्रव्योंके ऊपर कर रखा है।

ढाकामें ९८४३ जमीन्दारी चिरस्थायी बन्दोबस्तके अधीन हैं पीछे ४५० जमीन्दारी और उक्त बन्दोबस्तके अधीन हुईं और २१४ लाखराज जमीन हैं। इस जिलेके १३५० जमीन्दारियोंका स्वत्व गवर्मेण्टने बेच दिया है। निर्दिष्ट समय पर कर नहीं चुकानेसे गवर्मेण्ट चिरस्थायी प्रबन्धके अन्तर्गत सभी जमीन्दारीको प्रकाश्य नीलाममें बेच डालती थी। १२ जनवरी, २८ मार्च, २८ जून और २८ सितम्बर ढाका कलक्टरीमें कर जमा करनेका निर्धारित समय है। ढाका जरिपके समय बहुतसी लाखराज जमीन प्रकाशित हो पड़ी है। गवर्मेण्टने सबसे पहले इन्हींको अपनाया किन्तु बहुत समय तक गवर्मेण्टका कोई स्वत्व नहीं रहनेसे अथवा अन्य जमींदारीके अन्तर्गत हो जानेसे गवर्मेण्ट इन्हें छोड़नेको बाध्य हुई।

अङ्गरेजोंकी नाईं फरासीसी और ओलन्दाजोंने ढाकामें वाणिज्य-कोठियाँ खोलीं। किन्तु वे भी क्रमशः १७७८ और १७८१ ई०में अङ्गरेजोंके हाथ लगीं। मुसलमानोंके शासनकालमें ढाकेका वस्त्रव्यवसाय और साधारण वाणिज्य विशेष प्रसिद्ध था। ढाकेकी मलमलकी प्रशंसा सब जगह फैली हुई थी। किन्तु अंग्रेज-शासनमें यहांका व्यवसाय लोप हो गया है, मैंचेष्टरी महामन्त्रसे यहांके तांतियोंका कुल निर्मूल हो गया है। अंग्रेज-बणिकोंने ढाका अधिकार कर वहाँ व्यवसाय आरम्भ किया। किन्तु धीरे धीरे आय कम जानेसे १८१७ ई०में उनकी कोठियाँ उठा दी गईं।

अंग्रेज राजत्वकालकी ढाकामें उतनी अधिक राजकीय दुर्घटना न घटी; किन्तु १८५७ ई०का सिपाही-विद्रोह उल्लेखयोग्य है। ७३ नं० देशीय पदातिक सैन्य दो दलमें यहां रहती थी। मेरठके सिपाही विद्रोही हुए हैं, यह सम्वाद पा कर ढाकेके सिपाहियोंमें भी असन्तोषका चिह्न झलकने लगा। ब्रिटिश गवर्मेण्टने भावी अमङ्गल जान कर शहरकी रक्षाके लिये बहुतसी सेना भेजी। यूरोपीय और यूरेसियनने भी नगरकी रक्षाके लिये सैन्यदलमें अपना अपना नाम लिखाया। २६ नवम्बर तक कोई विशेष घटना न हुई। उस दिन ऐसा संवाद आया कि चट्टग्रामके सिपाही विद्रोही हो गये हैं। यह समाचार पा कर गवर्मेण्टने ढाकाके सिपाहियोंको अस्त्र छोड़ देनेके लिये कहा। दूसरे दिन प्रातःकालके ५ बजे सिपाहियोंको निरस्त्र करनेके लिये यूरोपीय सेना पहुंची। सबसे पहले कोषालयका पहरू निरस्त्र किया गया बाद नौ-सेनागणने लालबागकी ओर यात्रा की। कार्यकी प्रथम अवस्था देख कर मालूम पड़ता था, कि सिपाही सहजहीमें गवर्मेण्टके प्रस्तावको स्वीकार कर लेंगे, किन्तु लालबागमें पहुंच कर अंग्रेजोंने देखा, कि सिपाही सामना करनेके लिये प्रस्तुत हो गये हैं। अतः दोनों पक्षमें एक छोटी लड़ाई छिड़ गई। सिपाही पराजित हो कर भाग चले। इनमें से कई एक पकड़े गये और उन्हें फाँसी हो गई।

१५५८ ई०में सम्राट् अकबरके राजस्वसचिव टोडरमलने करग्रहणकी सुविधाके लिये बाजुहा और सोनारगाँव इन दो विभागोंमें ढाकाको विभक्त किया था। ढाका शहर प्रथम विभागके अन्तर्गत था तथा पूर्वकी ओर बारवकाबादसे श्रीहट्ट तक विस्तृत था। मुगल सम्राट्गण महल और सायर इन दो श्रेणियोंके राजस्व वसूल करते थे। जमीनकी मालगुजारी अदा करनेके लिये बाजुहा ३२ और सोनारगाँव ५२ परगनोंमें विभक्त हुआ था। प्रत्येक विभागसे यथाक्रम ९८७९२०) और २५८२८०) रु० वसूल होते थे। १७२२ ई०में वङ्गदेश १३ चकलोंमें परिवर्तित हुआ। सोनारगाँव, बाकरगञ्ज, बाजुहा विभागके कई अंश, त्रिपुरा, सुन्दरवन और नोआखाली फेणीनदी तक जहांगीरनगर (ढाका) विभागके अन्तर्गत थे। ये फिर २३६ परगनोंमें और कई एक जमींदारियोंमें विभक्त हुए। इस प्रदेशसे १९२८२९) रु० कर निर्द्धारित हुआ था।*

२ बङ्गालके अन्तर्गत ढाका जिलेका सदर उपविभाग।

---

* ढाकेका विस्तृत विवरण जाननेके लिये निम्नलिखित ग्रन्थ द्रष्टव्य Dr. Taylor's Topography of Dacca, D'oyley's Antiqnities of Dacca, Hunter's Statistical Account of Bengal, Vol. Vii.

यह अक्षा॰ २३° ३०′ से २४° २०′ उ॰ और देशा॰ ९०° से ९०° ४३′ पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण १२६६ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ८८१५१७ है। इसमें ढाका शहर तथा २६४७ ग्राम लगते हैं। यहाँ लालबाग, साभार, कपासिया और नवाबगञ्ज नामके ४ थाने हैं।

४ पूर्वीय बंगालके अन्तर्गत ढाका जिलेका सदर नगर। यह अक्षा॰ २३° ४३′ उ॰ और देशा॰ ९०° २४′ पू॰ पर बूढ़ीगङ्गा नदीके दहिने किनारे अवस्थित है। यही नगर जिलेमें सबसे बड़ा है। ढाका विभागके कमिश्नर साहब यहाँ वास करते हैं। ढाका म्युनिसपालिटीके अन्तर्गत स्थानका परिमाण प्रायः ८ वर्गमील है। लोकसंख्या प्रायः ९०५४२ है।

यह नगर नदीके उत्तरी किनारे प्रायः ४ मील तक लम्बा और नदी-किनारेसे उत्तरको ओर प्रायः १¼ मील चौड़ा है। दोलाई खाड़ीकी एक शाखाने इसे दो भागोंमें विभक्त किया है। नगरमें दो प्रधान सड़क हैं, एक पश्चिममें लालबाग प्रासादसे पूर्वमें दोलाई खाड़ी तक प्रायः २ मील और दूसरी नदीसे उत्तरको ओर प्राचीन दुर्ग तक गई है। दो राज-सड़क ही सबसे बड़ी हैं और उनके दोनों किनारे सुन्दर अट्टालिका और विपणि (दूकान)-श्रेणी-द्वारा सुशोभित हैं। शेष सड़कोंमेंसे अधिकांश छोटी और टेढ़ी हैं। नगरके पश्चिमप्रान्तमें चक अर्थात् बाजार पड़ता है। यूरोपीयगण नगरके मध्यभागमें नदी किनारे प्रायः ½ मील तकके स्थानमें वास करते हैं। आर्मेणीय और ग्रीक पल्लीमें बहुतसी बड़ी बड़ी अट्टालिकायें भग्नदशामें पड़ी हैं। देशीय लोगोंकी वासभूमि बहुत सङ्कीर्ण है। विशेष कर ताँती और शङ्खवणिक्के वासस्थानका सम्मुखभाग ६।७ हाथसे अधिक नहीं है, किन्तु उसकी लंबाई प्रायः ४० हाथ तक रहती है। इस तरह मकानका मध्यस्थान खुला है, केवल दो ही प्रान्तमें घर हैं।

१७वीं शताब्दीमें ढाकानगर बङ्गालके मुसलमान राजाओंकी राजधानी था। किन्तु अभी उसकी पूर्व समृद्धिका अधिक परिचय विद्यमान नहीं है। सम्राट् जहाँगीरके समयमें प्रतिष्ठित ढाकेका दुर्ग बहुत पहले लोप हो गया है। मुसलमान राजाओंके केवल दो चिह्न दीखाई पड़ते हैं—सुलतानमहम्मद सुजासे निर्मित कटरा और लालबागप्रासाद। ये दोनों अभी भी भग्नावस्थामें पड़े हैं। १७वीं शताब्दीकी बनी हुई अंगरेज और फ्रांसीसी कोठियाँ भी नदी-गर्भमें विलीन हो गई हैं।

बहुत समयसे ढाकाके चारों ओरके प्रदेशों पर मग और पोर्त्तगीज डकैत बहुत ऊधम मचाते थे। उन लोगोंके आक्रमणसे इस प्रदेशको बचानेके लिये १६१० ई॰में बङ्गालकी राजधानी ढाका नगरमें स्थापित हुई। १७०४ ई॰में मुर्शिदकुलीखाँ ढाकासे निज प्रतिष्ठित मुर्शिदाबादमें राजधानी उठा लाये। उसी समयसे ढाकाकी अवनति आरम्भ हुई। कहा जाता है, कि इसकी समृद्धिके समय ढाका नगर बहु जनाकीर्ण और नदीके किनारेसे उत्तरको ओर १५ मील तक विस्तृत था। अभी भी अरण्यके मध्य टुङ्गी ग्राममें बहुतसी अट्टालिकायें और मसजिद प्रभृतिका भग्नावशेष देखा जाता है। १८वीं शताब्दीमें ढाका नगरकी मलमल बहुत आदरके साथ यूरपखण्डमें बिकती थी। उस समय यहाँके हिन्दू ताँतियोंने वंशपरम्पराक्रमसे ढाका-मलमलका प्रभूत उत्कर्ष साधन किया था। सूक्ष्मतामें, बुनावटके ढंगमें, चिकनापनमें तथा परिष्कार परिच्छन्नतामें कोई भी इन लोगोंकी बराबरी नहीं कर सकते थे। ढाकेकी कपास भी उस समय महीन सूत निकालनेमें भूमण्डल पर अतुलनीय समझी जाती थी। १८वीं शताब्दीके अन्तमें इष्ट इण्डिया कम्पनी और देशीय सौदागर प्रति वर्ष प्रायः २५ लाख रुपयेकी ढाकेकी मलमल खरीदते थे। १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मैनचेष्टर-ताँतियोंकी सुलभ मलमलकी प्रतिद्वन्द्वितासे ढाकेकी मलमलकी खपत कमने लगी। अन्तमें १८१७ ई॰को इष्टइण्डिया कम्पनीकी कोठी उठ गई। यह ढाकाकी अवनतिका दूसरा कारण है। तभीसे इसकी उन्नतिकी कोई आशा न रही। केवल वस्त्रव्यवसाय ही ढाकेकी प्रधान आयका मूल था। अभी वह व्यवसाय यहाँसे लोप हो जाने पर अधिवासीगण धनहीन हो गये हैं। बहुतसे अधिवासी स्थान छोड़ कर दूसरी जगह जा बसे। अब भी ताँतियोंकी दुरवस्था और बहुतसे परित्यक्त गृहादि इसका विषमफल घोषणा करते हैं। १८०० ई॰में यहाँके अधिवासियोंकी संख्या दो लाखसे कम नहीं

थी, किन्तु १८६२ ई०में लोकसंख्या केवल ६९२१२ रह गई। १८८१ ई०में इनकी संख्या ७९०७६ थी। रेल तथा वाणिज्यकी वृद्धि हो जानेसे दिनों दिन यहाँकी लोकसंख्या कुछ कुछ बढ़ रही है। किन्तु फिर भी यह शहर कभी पूर्व-गौरव पा सकेगा, यह आशा दुराशा मात्र है। सम्प्रति ढाकेकी मलमलका थोड़ा बहुत आदर होता है। थोड़े ताँती धनकुबेरके उत्साहसे अत्यन्त सुन्दर और सूक्ष्म मलमल प्रस्तुत करते हैं। अब ढाकामें युनिवार्सिटि प्रतिष्ठित हुई है।

ढाका नगरका अवस्थान वाणिज्यके पक्षमें बहुत ही सुविधाजनक है। गङ्गा, यमुना और मेघना इन तीन बड़ी नदियोंसे यह अधिक दूर नहीं पड़ता है। मदनगञ्ज और नारायणगञ्जको ढाकेका बन्दर कह सकते हैं। इसका वाणिज्य पटना छोड़ कर बङ्गालके अन्यान्य सभी मध्यवर्त्ती नगरोंसे अधिक है। यहाँके प्रधान वाणिज्य-द्रव्य—चावल, पाट, तिल, सरसों, चमड़ा और वस्त्रादि हैं। ढाकाके माँझी बङ्गालके सभी माँझियोंमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं।

ढाका नगरकी जलवायु अत्यन्त खराब थी। वर्षाकालमें चारों ओर जलमग्न हो जानेसे अनेक रोग उत्पन्न होते थे। अभी विशुद्ध जलप्राप्तिकी सुविधा हो जानेसे ढाका पहलेसे स्वास्थ्यकर हो गया है। यहाँका सेन्ट्रल-कारागार पूर्वीय बङ्गालमें सबसे बड़ा है, जिसमें प्रायः ११८३ कैदी रखे जाते हैं। १८५८ ई०में मिटफोर्ड अस्पताल स्थापित हुआ। इसके सिवा यहाँ लेडी डफरिन जनाना अस्पताल और पागलखाना है।

ढाकादक्षिण—श्रीहट्ट जिलेके अन्तर्गत एक परगना। इस परगनेके मध्यमें ही स्वनामख्यात 'ढाकादक्षिण' ग्राम है। यह श्रीहट्टके मध्य एक प्रसिद्ध तीर्थस्थानमें गिना जाता है और गुप्तवृन्दावन नामसे मशहूर है। यह अक्षा० २४° ४८′ और देशा० ९२° १०′ पू०में अवस्थित है

यह ग्राम श्रीहट्ट शहरसे सात कोस दूर दक्षिण-पूर्व-कोनेमें अवस्थित है। शहरसे ढाकादक्षिण तक एक पक्की सड़क गई है। ढाकादक्षिण एक समृद्धशाली बड़ा ग्राम है। यहाँ कई हजार ब्राह्मण कायस्थ इत्यादि वास करते हैं।

यह ढाकादक्षिण श्रीचैतन्यदेवके पिता जगन्नाथमिश्रजीका जन्मस्थान और उनका पितालय है। उपेन्द्रमिश्रजीका वासभवन ही अभी वैष्णवतीर्थ रूपमें परिगणित हुआ है। प्रति वर्ष बहुतसे वैष्णव इस तीर्थको देखनेके लिये आते हैं।

प्रायः साढ़े चार सौ वर्षके प्राचीन चैतन्योदयावली तथा परवर्त्ती मनःसन्तोषिणी ग्रन्थोंमें इस तीर्थकी उत्पत्ति और माहात्म्य इस तरह लिखा है—

ढाका दक्षिणमें उपेन्द्रमिश्रके पुत्र जगन्नाथमिश्रका वास था। जगन्नाथ नवद्वीपमें पढ़ते थे। नवद्वीपके नीलाम्बर चक्रवर्त्तीकी लड़की शचीदेवीके साथ उनका विवाह हुआ। विवाहके बाद वे नवद्वीपमें रहने लगे। कुछ दिनके बाद वे सपरिवार पितृदर्शनके लिये यहाँ आये। यहीं शचीको गर्भ रहा, इसी गर्भकी सन्तान श्रीचैतन्यदेव थे। गर्भावस्थामें शचीको ले कर जगन्नाथ पुनः नवद्वीपको लौट आये। आनेके पहले शचीसे उनकी सासने अनुरोध किया था, कि पुत्र जन्म लेने पर उसे एक बार ढाकादक्षिणमें भेज देना।

यथासमय सासका अनुरोध शचीदेवीने अपने पुत्रसे कह सुनाया था, किन्तु गौराङ्ग संन्यासके पहले श्रीहट्टमें आ न सके। संन्यासके बाद १४३१ शकमें वे श्रीहट्टके ढाकादक्षिणमें आये।

पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थोंमें लिखा है, कि वृद्धाने अपने पौत्रके सामने अनेक तरहकी कथा-वार्त्ताके साथ अपने पारिवारिक सुख-दुःखकी बातें भी कही थीं। इस पर चैतन्यने उन्हें दो मूर्त्तियाँ दी, एक श्रीकृष्णमूर्त्ति और दूसरी अपनी। मूर्त्ति को दे कर चैतन्यदेव चले गये, किन्तु आश्चर्यका विषय था, कि उन दोनों मूर्त्तियोंके प्रभावसे वह ग्राम हरिभक्त हो गया—विरुद्धवादी कोई भी न रहा तथा इन दोनों मूर्त्तियोंके प्रभावसे मिश्रवंशका पारिवारिक अभाव जाता रहा। आज भी मूर्त्तिपूजाके सिवा मिश्रवंशको और कोई दूसरी जीविका नहीं है। उत्सव आदिके उपलक्षमें यहां जो आमदनी होती है, उसीसे एक वंश (१८ घर ब्राह्मण)-का भरण-पोषण होता है।

उपेन्द्रमिश्रका मकान जहाँ दोनों मूर्त्तियाँ विद्यमान हैं, अभी 'ठाकुरबाड़ी' नामसे प्रसिद्ध है। इस ठाकुर-

बाड़ीके सामने डाकघर, बाजार प्रभृति हैं। रथयात्रा तथा झूलनोत्सव यहाँ बहुत धूम-धामसे मनाया जाता है।

इसके सिवा ढाकादक्षिणमें प्रसिद्ध 'गोपेश्वरशिव' हैं। ठाकुरबाड़ीसे प्रायः दो कोश दूर कैलास नामक एक छोटे पहाड़के ऊपर शिवालय है। उक्त ग्रन्थमें लिखा है, कि चैतन्यदेव इन्हीं शिवको देखनेके लिये गये थे। कैलासके पास ही अग्निकुण्ड है।

ढाकापाटन (हिं० पु०) एक प्रकारका महीन कपड़ा जिसमें फूलके चिह्न दिये रहते हैं।

ढाकेवालपटेल (हिं० पु०) एक प्रकारकी पूरबी नाव। इसके ऊपर धूप तथा वर्षासे बचानेके लिये छप्पर दिये रहते हैं।

ढाटा (हिं० पु०) १ डाढ़ी बाँधनेकी कपड़ेकी पट्टी। २ वह बड़ा मुरेठा जिसका एक फेंट डाढ़ीसे ले कर गाल तक लपेटा रहता है। ३ कफनके सरकनेसे बचानेके लिये मुरदेका मुँह बाँधनेका कपड़ा।

ढाड़ (हिं० स्त्री०) १ चिंघाड़, चीख, गरज। २ चिल्लाहट।

ढाढ़स (हिं० पु०) १ धैर्य, आश्वासन, सान्त्वना, तसल्ली। २ दृढ़ता, साहस।

ढाढ़िन (हिं० स्त्री०) ढाढ़ीकी स्त्री।

ढाढ़ी (हिं० पु०) एक प्रकारकी नीच जाति। ये जन्मोत्सवके अवसर पर लोगोंके यहाँ जा कर बधाई आदिके गीत गाते हैं।

ढाढ़ीन (हिं० पु०) जलसिरिसका पेड़। यह जङ्गली सिरिससे कुछ छोटा होता है। इसका गुण—त्रिदोष, कफ, कुष्ठ और अतिसारनाशक है।

ढाना (हिं० क्रि०) १ ध्वस्त करना, ढहवाना। २ गिराना।

ढापना (हिं० क्रि०) ढापना देखो।

ढाबा (हिं० पु०) १ ओलती। २ जाल। ३ परछत्ती। ४ रोटीकी दूकान।

ढामक (हिं० पु०) ढोल नगारे आदिका शब्द, ढमढम।

ढामना (हिं० पु०) एक प्रकारका साँप।

ढामरा (सं० स्त्री०) हंसी, मादा हंस।

ढार (हिं० पु०) १ उतार, ढाल जमीन। २ पथ, मार्ग, रास्ता। ३ रचना, बनावट। (स्त्री०) ४ एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है। इसका आकार ढालसा होता है, बिरिया। ५ पछेली नामक गहना।

ढारस (हिं० पु०) ढाढ़स देखो।

ढाल (सं० पु०) ढाक-अच पृषो० साधुः। १ चर्मनिर्मित फलक, चमड़ेका एक प्रकारका अस्त्र। इससे तलवार, भाले आदिका वार रोका जाता है। यह थालीके आकार गोल होती और गैंडेके पुट्ठे, कछुएकी खोपड़ी, धातु आदि कई चीजोंकी बनती है। २ उतार, तिरछी जमीन। ३ प्रकार, तरीका, ढङ्ग।

ढालना (हिं० क्रि०) १ एक बरतनसे दूसरे बरतनमें गिराना, उंडेलना। २ मद्यपान करना, शराब पीना। ३ बिक्री करना, बेचना। ४ कम दाम पर माल बेंचना। ५ व्यङ्ग बोलना, ताना छोड़ना। ६ पिघली हुई धातु आदिको साँचेमें ढाल कर बनाना।

ढालवाँ (हिं० वि०) ढालदार, ढालू।

ढालिया (हिं० पु०) वह जो साँचेमें ढाल कर बरतन आदि बनाता हो, साँचिया, भरिया।

ढाली (सं० त्रि०) ढालमस्यास्ति ढाल-इनि। ढालविशिष्ट, ढालधारी, चर्मी।

ढालुआँ (हिं० वि०) ढालवां देखो।

ढालू (हिं० वि०) ढालवां देखो।

ढासना (हिं० पु०) १ सहारेकी वस्तु, टेक, उँढकन। २ तकिया, बालिश।

ढिँढोरना (हिं० क्रि०) १ अनुसन्धान करना, खोजना, तलाश करना।

ढिँढोरा (हिं० पु०) १ घोषणा करनेका ढोल, डुगडुगी। २ घोषणा, मुनादी।

ढिकचन (हिं० पु०) एक प्रकारका गन्ना।

ढिकुली (हिं० स्त्री०) ढेकुली देखो।

ढिग (हिं० क्रि० वि०) १ समीप, निकट, नजदीक। (स्त्री०) २ सामीप्य, पास। ३ तट, किनारा। ४ पाड़, कोर, हाशिया।

ढिठाई (हिं० स्त्री०) १ धृष्टता, चपलता, गुस्ताखी। २ निर्लज्जता। ३ अनुचित साहस।

ढिबरी (हिं० स्त्री) मट्टीका तेल जलानेकी डिबिया।

२ साँचेके पेंदेका भाग। ३ लोहेका चौड़ा टुकड़ा जो किसी कसे जानेवाले पेचके सिरे पर लगा रहता है इससे पेच बाहर नहीं निकलता है। ४ चमड़े या मूँजकी चकती। यह चरखेमें इसलिये लगाई जाती है, जिसमें तकला न घिसे।

ढिलढिला (हिं॰ वि॰) १ ढीला-ढाला। २ पानीकी तरह पतला।

ढिलाई (हिं॰ स्त्री॰) १ ढीला होनेका भाव। २ शिथिलता, आलस्य, सुस्ती। ३ ढीलनेकी क्रिया।

ढिलाना (हिं॰ क्रि॰) १ ढीलनेका काम किसी दूसरेसे कराना। २ ढीला करना।

ढिल्लड़ (हिं॰ वि॰) सट्टर, सुस्त।

ढिसरना (हिं॰ क्रि॰) १ प्रवृत्त होना, झुकना। २ फलोंका पकना आरंभ होना।

ढींढ (हिं॰ पु॰) १ बड़ा पेट। २ गर्भ।

ढींढस (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी तरकारी।

ढीट (हिं॰ स्त्री॰) रेखा, लकीर।

ढीठ (हिं॰ वि॰) जो बड़ोंके सामने संकोच न रखता हो, धृष्ट, बेअदब, शोख। २ भयरहित, जिसको डर न हो। ३ साहसी, हिम्मतवर।

ढीढ्यो (हिं॰ पु॰) ढीला देखो।

ढीमा (हिं॰ पु॰) पत्थर आदिका टुकड़ा, ढेला, ढोंका।

ढील (हिं॰ स्त्री॰) शिथिलता, सुस्ती, नामुस्तैद। २ बन्धन को ढीला करनेका भाव।

ढीलना (हिं॰ क्रि॰) १ तना न रखना, ढीला करना। २ बन्धनसे छुटकारा देना, छोड़ देना।

ढीला (हिं॰ वि॰) १ जो तना न हो। जो दृढतासे बंधा न हो। ३ जो खूब कड़ कर पकड़े हुए न हो। जिसमें जलका भाग अधिक हो गया हो, पनीला, बहुत गीला। ५ जो अपने संकल्पमें शिथिल हो। ६ शान्त, नरम, मन्द। ७ शिथिल, मन्द, सुस्त। ८ आलसी, सुस्त, सट्टर। ९ नंपुसक।

ढीलापन (हिं॰ पु॰) शिथिलता, ढीला होनेका भाव।

ढीह (हिं॰ पु॰) ऊँचा टीला।

ढुँढवाना (हिं॰ क्रि॰) अन्वेषण कराना, तलाश कराना।

ढुंढी (हिं॰ स्त्री॰) बाहु, बाँह।

ढुकना (हिं॰ क्रि॰) १ प्रवेश करना, घुसना। २ आक्रमण करना, टूट पड़ना। ३ घातमें छिपना।

ढुक्का (हिं॰ पु॰) ढूका देखो।

ढुण्टन (सं॰ क्लो॰) ढुण्ट-ल्युट्। अन्वेषण, खोज, तलाश।

ढुण्ढा (सं॰ स्त्री॰) एक राक्षसीका नाम। यह हिरण्यकशिपुकी बहिन थी। शिवजीसे वर पा कर यह अग्निमें भी नहीं जलती थी। जब हिरण्यकशिपु प्रह्लादको मारनेके अनेक उपाय करके हार गया तो उसने ढुण्ढाको साथ अग्निमें बैठ जानेके लिये कहा। श्रीरामचन्द्रकी कृपासे इसका परिणाम उलटा हो गया, प्रह्लाद तो न न जले, ढुण्ढा जल कर भस्म हो गई।

ढुण्ढि (सं॰ पु॰) ढुढ्यतेऽसौ ढुण्ढ-इन्। गणेश ये सब प्रकारकी सिद्धियां प्रदान करते हैं। काशीखण्डमें लिखा है—

> "अन्वेषणे ढुण्ढिरयं प्रथितोऽस्मिधातुः
> सर्वार्थढुण्ढिततया भव ढुण्ढिनामा।
> काशीप्रवेशमपि को लभतेऽत्र देही
> तोषं विना तव विनायक ढुण्ढिराज॥" (काशीख॰)

ढुण्ढि यह धातु जगत्में अन्वेषणार्थकरूपमें ही प्रचलित है सारे। विषय तुम्हारे अन्वेषित या ढूंढे हुए है, इसीसे तुम्हारा नाम ढुण्ढि है। तुम्हारे सन्तोषके विना कोई मनुष्य काशीमें प्रवेश नहीं कर सकता है, तुम मुझसे कुछ दक्षिण ढुण्ढिराजरूपमें विराजमान रह कर भक्तोंको अन्वेषण कर उन्हें समस्त अभिलषित पदार्थ प्रदान करते हो, इसी लिये ही तुम्हारा नाम ढुण्ढि पड़ा है। जो मनुष्य विविध प्रकारसे गन्धमाल्यादि द्वारा ढुण्ढिराजकी पूजा करता है, वह शिवजीका अनुचर हो कर काशीमें अवस्थान करता है। प्रतिचतुर्थीमें जो उसकी पूजा करता है, वह भी इस संसारका अभीष्ट प्राप्त करता है।

माघमासकी शुक्लाचतुर्थीमें नक्तव्रत करके जो मनुष्य ढुण्ढिगणेशकी पूजा करते, श्वेततिलके लड्डू बना कर भोग लगाते तथा जो तिलसे होम करते हैं, वे सब प्रकारकी बाधाओंसे रहित हो कर यथेष्ट सिद्धिलाभ करते है।
(काशीखण्ड ५७अ॰) काशी देखो।

२ जातकपद्धति नामक ज्योतिर्ग्रन्थकार। ३ मीमांसादिनिर्णय नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। ४ एक संस्कृत शास्त्रानुरागी राजा। इन्हींके उत्साहसे विश्वनाथभट्टने विख्यात "ढुण्ढिप्रताप" नामक एक वृहत् स्मृतिनिबन्ध प्रकाश किया है।

ढुण्ढिराज—एक विख्यात ज्योतिर्विद्। ये पार्थपुरवासी नृसिंहके पुत्र थे। इन्होंने वहुतसे ज्योतिःशास्त्रीय ग्रन्थ प्रणयन किये हैं, जिनमेंसे निम्नलिखित कई एक पाये जाते हैं—ऋणभङ्गाध्याय, कुण्डकल्पलता, ग्रहफलोत्पत्ति, ग्रहलाघवोदाहरण, जातककौस्तुभ, जातकाभरण, ताजिकभूषण, ताजिकाभरण पञ्चाङ्गफल, राजयोगाध्याय, शिष्टाध्याय, अनन्तरचित सुधारसकी सुधारसप्रसारिणी नामकी टीका, सुधारसकरणचतुष्क प्रभृति। इनके पुत्र गणेशने गणितमञ्जरीकी रचना की है। २ बौधायनीय चातुर्मास्य-प्रयोगरचयिता। ३ कावेरीस्तोत्र प्रणेता।

ढुण्ढिराज लल्ल—एक वैदिक पण्डित। इन्होंने मृतपत्नीकाधान, स्वर्गद्वारेष्टिसत्रप्रयोग तथा बौधायनीय हौत्र सामान्य नामके ग्रन्थ रचे हैं।

ढुण्ढिराज व्यासयज्वन्—एक महाराष्ट्र-पण्डित। इन्होंने १७१३ ई॰में शाहजीके अनुरोधसे शाहजिविलास नामक एक सङ्गीत पुस्तक और उसके बाद मुद्राराक्षस-टीका रचना की है।

ढुण्ढुभ (सं॰ पु॰) डुण्ढुभ, डेड़हा साँप।

ढुरना (हिं॰ क्रि॰) १ ढलना, टपकना, गिरकर बहना। २ इधर उधर डोलना, डगमगाना। ३ हिलना, डोलना। ४ लुढकना, फिसल पड़ना। ५ प्रवृत्त होना, झुकना। ६ प्रसन्न होना, खुश होना।

ढुरहुरी (हिं॰ स्त्री॰) १ फिसलनेकी क्रिया। २ पगडंडी, पतला रस्ता। ३ सोनेके गोल दानोंकी पङ्क्ति जो नथमें लगी रहती है।

ढुराना (हिं॰ क्रि॰) १ ढरकाना, टपकाना।। २ हिलाना डुलाना। ३ लुढ़कना।

ढुरुआ (हिं॰ पु॰) गोल मटर, केराव मटर।

ढुरी (हिं॰ स्त्री) पगडंडी, पतला रास्ता।

ढुलकना (हिं॰ क्रि॰) फिसलना, सरकना।

ढुलकाना (हिं॰ क्रि॰) लुढ़काना, सरकाना।

ढुलना (हिं॰ क्रि॰) १ गिर कर बहना २। लुढ़कना, फिसल पड़ना। ३ प्रवृत्त होना, झुकना। ४ प्रसन्न होना, खुश करना। ५ हिलना, डोलना।

ढुलवाई (हिं॰ स्त्री॰) १ ढोनेका काम। २ ढोनेकी मजदूरी।

ढुलवाना (हिं॰ क्रि॰) ढोनेका काम किसी दूसरेसे कराना।

ढुलाना (हिं॰ क्रि॰) १ ढालना, ढरकना। २ गिराना। ३ लुढ़काना, सरकाना। ४ प्रवृत्त करना, झुकाना। ५ प्रसन्न करना, खुश करना। ६ इधर उधर हिलाना, फहराना। ७ चलाना, फिराना। ८ ढोनेका काम कराना।

ढुलुआ (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी चीनी जो खजूरसे बनाई जाती है।

ढुवारा (हिं॰ पु॰) घुन नामका कीड़ा।

ढुँकना (हिं॰ क्रि॰) ढुकना देखो।

ढूंका (हिं॰ पु॰) किसी पदार्थको देखनेके लिये घातमें छिपनेका काम।

ढूँढ़ (हिं॰ स्त्री॰) अन्वेषण, खोज, तलाश।

ढूँढ़ना (हिं॰ क्रि॰) अन्वेषण करना, तलाश करना।

ढूँढला (हिं॰ स्त्री॰) ढुंढा नामकी राक्षसी।

ढूका (हिं॰ पु॰) डंठल, घास इत्यादिके बोझका एक मान। यह दश पूलेके बराबर माना गया है।

ढूढिया (हिं॰ पु॰) श्वेताम्बर जैनोंकी एक श्रेणी, ये मूर्तिपूजा नहीं करते और गृहस्थ धर्म ग्रन्थ पाठ करते समय और साधु हमेशा अपने मुँह पर पट्टी बांधे रहते हैं।

ढूसर (हिं॰ पु॰) बनियोंकी एक जाति। धूसर देखो।

ढूसा (हिं॰ पु॰) कुस्तीका एक पेच।

ढेंक (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी चिड़िया। जो सदा पानीके किनारे रहती है। इसकी चोंच और गरदन लम्बी होती है।

ढेंकली (हिं॰ स्त्री) १ एक औजार जिसके द्वारा सिंचाईके लिये कुएँसे पानी निकाला जाता है। इसमें एक आड़ी लकड़ी एक ऊंची खड़ी लकड़ीके ऊपर इस प्रकार टिकी रहती है कि उसके दोनों छोर क्रमशः नीचे ऊपर हो सकते हैं। २ एक प्रकारकी सिलाई। ३ एक प्रकारका

लकड़ीका औजार जिससे धान इत्यादि कूटा जाता है, धान-कुट्टी, ढेंकी। ४ एक प्रकारका यन्त्र जिसके द्वारा भभकेसे अर्क उतारा जाता है, वकतुण्डयन्त्र। ५ एक प्रकारकी क्रिया जो सिर नीचे और पैर ऊपर करके की जाती है, कलाबाजी। कलैया। ६ वकतुण्डयन्त्र, भभकेसे अर्क उतारनेका यन्त्र।

ढेंका (हिं० पु०) १ कोल्हुसेंका बाँस। यह जटाके सिरेसे कतरी तक लगा रहता है। २ बड़ा ढेंकी।

ढेंकिका (सं० स्त्री) एक प्रकारका नृत्य।

ढेंकिया (हिं० स्त्री०) डेढ़पटी चद्दर बनानेमें कपड़ेकी एक काट और सिलाई। इससे कपड़ेकी लम्बाई एक तिहाई घट जाती है और चौड़ाई उतनी ही बढ़ जाती है।

ढेंकी (हिं० स्त्री०) ढेंका देखो।

ढेंकुली (हिं० स्त्री०) ढेंकली देखो।

ढेंढ (हिं० पु०) १ काक, कौवा। २ मृत जन्तुओंका-मांस खानेवाली एक प्रकारकी नीच जाति। ३ मूर्ख, मूढ़, जड़। ४ कपास पोस्ते आदिका जोड़ा।

ढेंढर (हिं० पु०) रोग या चोटके कारण आँखके डेले परका उभरा हुआ मांस, टेंटर।

ढेंढवा (हिं० पु०) एक प्रकारका बन्दर जिसका मुँह काला होता है, लङ्गूर।

ढेंढा (हिं० पु०) ढेंढ देखो।

ढेंढी (हिं० स्त्री०) १ कपासका डोडा। २ पोस्तेका डोडा। ३ एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है, तरकी।

ढेंप (हिं० स्त्री) १ टहनीसे लगा हुआ फल या पत्तेके छोरका भाग। २ कुचाग्र, बोंड़ी।

ढेंपी (हिं० स्त्री०) ढेंढ देखो।

ढेकरी—प्राचीन डाकार्णव तन्त्रमें उल्लिखित एक स्थान। यह पहले कोचविहारके पूर्वांशमें था, किन्तु वर्तमानमें यह ग्वालपाड़ा और कामरूपका अंश समझा जाता है। मुगल-बादशाहोंके समयमें तथा इष्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकारके प्रारम्भमें यह 'सरकार ढेकरी' कहलाता था। ग्वालपाड़ा जिलेके अधीन गौरीपुर-राजकी जमींदारी अब भी 'ढेकरी'के नामसे प्रसिद्ध है।

ढेबरी (हिं० स्त्री०) ढिबरी देखो।

ढेममौज (हिं० स्त्री०) समुद्रकी ऊँची लहर।

ढेर (हिं० पु०) समूह, पुंज, टाल, गंज।

ढेरना (हिं० पु०) वह फिरकी जिससे सूत या रस्सी बटी जाती है।

ढेरा (हिं० पु०) १ सुतली बटनेकी फिरकी। २ लकड़ी या लोहेका घेरा जो मोटके मुँह पर लगा रहता है। ३ अङ्कोलका पेड़।

ढेराढींक (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली।

ढेरी (हिं० स्त्री०) ढेर, समूह, टाल।

ढेल (हिं० पु०) ढेला देखो।

ढेलवांस (हिं० स्त्री०) १ ढेला फेंकनेका रस्सीका एक फन्दा।

ढेला (हिं० पु०) ईंट, मट्टी इत्यादिका छोटा टुकड़ा। २ खण्ड, टुकड़ा। ३ धानका एक भेद।

ढेला चौथ (हिं० स्त्री०) भादों सुदी चौथ। कहा जाता है कि इस तिथिको चन्द्रमा देखनेसे कलंक लगता है। यदि इस दिन चन्द्रमा देखा जाय तो देखनेवालेको लोगोंसे कुछ गालियां सुन लेनी चाहिए। सिर्फ गालियां ही सुननेके लिये उस दिन लोगोंके घरमें ढेला फेंका जाता है।

ढेंकली (हिं० स्त्री) ढेंकली देखो

ढैंचा (हिं० पु०) एक प्रकारका पेड़ जो चकवँड़की तरह होता है। इसकी छालसे रस्सियां बनाई जाती हैं, जयन्ती।

ढैया (हिं० स्त्री०) १ ढाई सेरका एक बटखरा। २ ढाई गुनेका पहाड़। ३ शनैश्चरके एक राशि पर स्थिर रहनेका ढाई वर्षका काल।

ढोंकना (हिं० क्रि०) पीना, पी जाना।

ढोंका (हिं० पु०) १ पत्थर या और किसी कड़ी वस्तुका बड़ा अनगढ़ टुकड़ा। २ कोल्हूका बास। यह कोल्हूमें जाटके सिरेसे ले कर कोल्हू तक बँधा रहता है। ३ दो ढोली या चार सौ पान।

ढोंग (हिं० पु०) पाखण्ड, आडम्बर, ढकोसला।

ढोंगधतूर (हिं० पु०) धूर्तविद्या, धूर्त्तता, पाखण्ड।

ढोंगबाजी (हिं० स्त्री०) पाखण्ड, आडम्बर।

ढोंगी (हिं० वि०) पाखण्डी, जो झूठा आड़म्बर करता हो।

ढोंटा (हिं० पु०) ढोंटा देखो।

ढोंढ़ (हिं० पु०) १ कपास आदिका जोड़ा। २ कली।

ढोक (हिं० स्त्री०) १२ इंच लम्बाईकी एक मछली, ढेरी।

ढोका (हिं० पु०) ढोंका देखो।

ढोटा (हिं० पु०) १ पुत्र, बेटा। २ बालक, लड़का।

ढोटी (हिं० स्त्री) लड़की।

ढोढ मिश्र-प्राणकृष्णमिश्रके पुत्र और श्राद्धविवेकके रचयिता।

ढोना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तुको एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुँचाना। २ उठा ले जाना।

ढोर (हिं० पु०) चौपाया, मवेशी।

ढोरा (हिं० पु०) ढोर देखो।

ढोरी (हिं० स्त्री०) १ ढालनेका भाव। २ रट धुन ली।

ढोल (सं० पु०) कानका परदा।

ढोल (सं० पु०) ढक्का तदाकारं लाति ला-क पृषो० साधु:। १ वाद्ययन्त्रविशेष, एक प्रकारका बाजा, जिसके दोनों ओर चमड़ा मढ़ा होता है। रुद्रयामलमें इस वाद्यका नाम पाया जाता है। यह एक ग्राम्य वहिर्द्वारिक यन्त्र है; ढोलकसे कुछ बड़ा होता है। यह बाजा प्राय: गलेसे लटका कर एक तरफ हाथसे और एक तरफ लकड़ीसे बजाया जाता है। (यन्त्रकोष)

२ रागविशेष, एक रागिणीका नाम। यह ओड़व, बरारी और रेखवसे उत्पन्न होती है। (सङ्गीतत्व०)

ढोलक (सं० पु०) ढोल-स्वार्थे कन्। ढोलके आकारका यन्त्रविशेष, छोटी ढोलकी हिन्दीमें ढोलक शब्द स्त्रीलिङ्गमें व्यवहृत होता है।

ढोलकिया (हिं० पु०) वह जो ढोल बजाता है।

ढोलकी (हिं० स्त्री०) ढोलक देखो।

ढोलन (हिं० पु०) ढोलना देखो

ढोलना (हिं० पु०) १ एक प्रकारका जंतर। यह ढोलके आकारका होता और तागेमें पिरो कर गलेमें पहना जाता है। १ ढोलके आकारका एक बड़ा बेलन। यह सड़क परके कंकड़ पत्थर आदि पीटनेके काममें आता है। ३ बच्चोंका छोटा झूला, पालना। (क्रि०) ४ इधर उधर हिलाना।

ढोलनी (हिं० स्त्री०) बच्चोंका झूला, पालना।

ढोलपुर (धोलपुर) राजपूतानेके उत्तर पूर्व कोणका एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २६° २२´ से २६° ५७´ और देशा० ७७° १४´ से ७८° १७´ पू०में अवस्थित है। यह राज्य उत्तर-पूर्वसे दक्षिण पश्चिमकी ओर ७२ मील लम्बा और लगभग १६ मील चौड़ा है। इसके उत्तरमें आगरा, दक्षिणमें चम्बल नदी और पश्चिममें करौली तथा भरतपुर है। इसका प्रधान शहर ढोलपुर है। इस राज्यमें एक वृटिश गवर्मेण्टके प्रतिनिधि कर्मचारी (Political agent) रहते हैं। भूपरिमाण ११८७ वर्गमील है।

चम्बल नदी इस राज्यके दक्षिण-पश्चिमसे उत्तर-पूर्वमें १०० मील तक प्रवाहित है। ग्रीष्मकालमें इसकी चौड़ाई ३०० गज और वर्षाकालमें १००० गज रहती है। चम्बल नदीके समतलका आकस्मिक परिवर्तन हो जानेके कारण नदीके ऊपर हो कर जाने आनेमें डर लगता है। इस नदीको पार कर ग्वालियर जानेको कई एक घाट हैं। परन्तु उनमें राजघाट ही सबसे प्रसिद्ध है। इस राज्यके उत्तरमें बाणगङ्गा (अथवा उतनगाँ) नदी है। ढोलपुरमें पार्वती और मोर्क नामक इसकी दो शाखा नदी भी हैं। ग्रीष्म कालमें ये तीनों नदियां कई जगह सूख जाती हैं। यहांकी नदियां साधारणत: देशके समतलकी अपेक्षा बहुत निम्न हैं और इनका किनारा कहीं कहीं बड़े बड़े गड्ढोंसे परिपूर्ण है।

ढोलपुरकी चौड़ाईकी ओर एक लाल रेतीले पत्थरका छोटा पहाड़ है। अधिवासिगण इस पहाड़से पत्थर ले कर घर आदि बनाते हैं। बाहरमें रखनेसे यह पत्थर कठिन हो जाता है और गिरानेसे भी नहीं टूटता। चम्बलका रेलवे-पुल इसी पत्थरका बना हुआ है। नदीके किनारे अनेक गड्ढोंमें कङ्कड़ मिलते हैं। ढोलपुर शहरसे २१ मीलके मध्य चूनेके पत्थर देखे जाते हैं। पहाड़की निकट भूमि अनुर्वर है। उत्तर और उत्तर-पश्चिम भागको बालू और कीचडमिश्रित मट्टीमें फसल अच्छी होती है। राजाखेरा परगनेके निकटस्थ काली मट्टी हैमन्तिक शस्यके लिये अनुकूल है। बाजरा, ज्वार, जौ, गेहूं ढोलपुरके प्रधान उत्पन्न शस्य हैं। यहां रूई और धान भी होता है। कुएँ और तालावसे जल ले कर

जमीन सींची जाती है। कुएंमें प्रायः २५ फुट नीचे जल रहता है।

ढोलपुरके राजा ही इस समग्र भूखण्डके एकमात्र अधिकारी है। जमींदार अथवा तालुकदार कृषकोंसे कर वसूल कर राजकोषमें भेजते है। ग्रामके स्थापन कर्त्ताके वंशधर ही जमींदारश्रेणीभुक्त हैं। जब तक जमींदारगण राजाके साथ निर्द्धारित नियमोंका पालन करते हैं तभीतक वे जमीनका अधिकार भोग कर सकते हैं। परती जमीन तालाब आदि राजाके खास अधिकारमें हैं।

१८७६ ई०में राज्य एक बार मापा गया था। यहांकी लोग संख्या प्रायः २७०८७३ है। हिन्दू, मुसलमान ईसाई और जैनधर्मके माननेवाले बहुतसे लोग यहां रहते हैं। राजपूत, गुर्जर, काछी, मीना, जाट, बनियां, अहीर इत्यादि श्रेणीके लोग भी इस प्रदेशमें देखे जाते हैं। बारी और गिर्द तालुकके गुर्जरीगण पालतू पशुओंकी चोरी करते हैं। मीनागण कृषिजीवी हैं। वैष्णव धर्म ही ढोलपुर राज्यमें प्रबल है। इस राज्यमें चीनो, बारी, पुरणा और राजाखेरा नामके चार प्रधान शहर तथा ५३८ ग्राम लगते हैं। यहां हिन्दी पारसी अङ्गरेजी आदि सिखानेके लिये बहुतसे विद्यालय है।

ढोलपुर राज्यके बीच हो कर आगरेसे बम्बई तक ग्राण्डट्रङ्क रोड गई है। ढोलपुरसे राजखेरा होती हुई आगरा, ढोलपुरसे बारी और ढोलपुरसे कोलारी तथा बसेरी तक तीन अच्छी सडकें हैं। सिन्धिया ष्टेट रेलवे लाइन भी इस राज्यमें हो कर गई है।

राजस्वकार्यको सुविधाके लिये यह राज्य ५ तहसीलोंमें विभक्त है। यथा (१) गिर्द ढोलपुर, (२) बारी (३) बसेरी (४) कोलरी, (५) राजखेरा। उक्त तहसीलोंमें यथा क्रम ५, ७, २, ३ और २ तालुक हैं। सैन्यसे सहायता पानेके लिये ५५ ग्राम जागीर और ४४ ग्राम देवोत्तर उन्हें दिये गये हैं। जागीरदारोंके अत्याचार करने पर राजा उसका विचार करते हैं। प्रजाकी जीवन्मृत्युकी क्षमता राजाके हाथ है। राजकार्यमें सलाह देनेके लिये कौन्सिलमें ३ सदस्य रहते हैं। नाजिम पुलिस और विचार-विभागके प्रधान कर्त्ता हैं। किन्तु कौंसिलसे अनुमति लिये बिना वे किसीको भी ३ वर्षसे अधिक समय तक कैद नहीं कर सकते। इस राज्यमें बहुतसे थाने, फाड़ी, तथा प्रति ग्राममें एक एक चौकीदार है। वन-विभागका बन्दोबस्त तहसीलदारके हाथ है। ढोलपुरकी काराप्रथा वृटिश-साम्राज्यकी नाईं है।

देशका जलवायु साधारणतः स्वास्थ्यजनक है। चैत्र वैशाख और ज्येष्ठ मासमें अत्यन्त उष्ण वायु चलती है। वार्षिक वृष्टिपातका परिमाण २७ से ३० इञ्च है। इस राज्यमें ३ दातव्य चिकित्सालय हैं, जिनका खर्च राजकोषसे दिया जाता है।

१००४ ई०में तोमरवंशके राजा ढोलन-देव तलवार चम्बल और बाणगङ्गा नदीके मध्यवर्ती प्रदेश पर शासन करते थे। प्रवाद है, कि उन्हींके नामानुसार ढोलपुरके राजाने बाबरको कुछ काल तक बाधा दी थी। अकबरके समयमें ढोलपुर मुगल राज्यमें मिलाया गया। १६५८ ई०में ढोलपुरसे ३ मील पूर्व रञ्जयबुत्र नामक स्थानमें राज्यके कारण औरङ्गजेब मुरादके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए थे। औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद आजम और मुआजमके बीच ढोलपुरमें एक लड़ाई छिड़ी। नवीन सम्राट् मुआजमको विपदापन्न देख कर राजा कल्याणसिंहने ढोलपुरको अपने अधिकारमें कर लिया।

ढोलपुरके शासनकर्त्ता जाटवंशके हैं। इनके पूर्वपुरुष प्राचीन कालमें ग्वालियरके निकटवर्त्ती गोहद नामक एक ग्रामके जमींदार थे। प्राचीन वर्णनके अनुसार ढोलपुर कनोज-राज्यका एक अंश जैसा अनुमित होता हैं। सम्राट् अकबरने ढोलपुरको आगरा राज्यके अन्तर्गत किया था। जो कुछ हो, ढोलपुरके शासनकर्त्तागण अत्यन्त परिश्रमी और युद्धकुशल होनेके कारण धीरे धीरे उन्नति करने लगे। पेशवा बाजीरावके समयमें ये महाराष्ट्रीयके अधीन गोहदराज उपाधिसे भूषित हुए। १७६१ ई०की पानीपतके भीषण युद्धके बाद गोहदराजने ग्वालियरका अधिकार और अपनी स्वाधीनताप्रचार कर राणाकी उपाधि धारण की। १७७९ ई०में गोहदके महाराणा लकिन्दरसिंहके साथ अंगरेजोंकी इस शर्त पर सन्धि हुई, कि वृटिशगवर्मेण्ट महाराणाको महाराष्ट्रोंके विरुद्ध युद्ध करनेमें सैन्यसाहाय्य करेगी तथा जयपराजयके

फलभागी होगी। अंगरेजोंकी सहायतासे महाराणाका राज्य बहुत बढ़ गया था। किन्तु महाराणाने अपनी प्रतिज्ञा पूरी न की। इसी अपराधसे अंगरेज गवर्मेंटने उनके साथ मित्रता छोड़ दी और सुअवसर पा कर सिन्धिया ग्वालियर और गोहद अधिकार तथा महाराणाको बन्दी किया। १८०३ ई०में सिन्धियाके प्रतिनिधि शासनकर्त्ता अम्बजी इङ्गलियाने गोहद, ग्वालियर और अन्यान्य कई एक स्थान वृटिशगवर्मेंटको प्रदान किये। १८०४ ई०में वृटिश गवर्मेंटने महाराणा लकिन्दरके पुत्र किरातसिंहको गोहद और उसके अधीन देश लौटा दिये। किन्तु थोड़े समयके बाद वृटिश गवर्मेंटने महाराणा किरातसिंहसे गोहद प्रदेश ले कर सिन्धियाको दे दिया। महाराणाको क्षति पूर्त्तिके लिये वृटिश गवर्मेंटने उन्हें ढौलपुर, बर और रजकौर परगने अर्पण किये। इस प्रकार किरातसिंह ढौलपुरके महाराणा हुए। १८३६ ई०में किरातसिंहकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र भगवन्त सिंहने महाराणाकी उपाधि पाई। इन्होंने सिपाही विद्रोहके समय वृटिश गवर्मेंटकी यथेष्ट सहायता की थी। पुरस्कार स्वरूप इन्हें वृटिशगवर्मेंटसे के० सी० एस० आई० की उपाधि और १८६९ ई०में जी० सी० एस० आईकी उपाधि मिली थी। पटियालेके महाराजकी बहनके साथ इनका विवाह हुआ था। नेहाल सिंह नामक इनके एक पुत्र थे। १८७३ ई०में महाराणा भगवन्तसिंहकी मृत्युके बाद नेहालसिंह पितृपद पर अभिषिक्त हुए। ये आगरेमें प्रिन्स आफ वेल्सकी अभ्यर्थना-सभा तथा दिल्लीदरबारमें उपस्थित थे। १९०१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। बाद उनके लड़के रामसिंह राज्याधिकारी हुए। इनका जन्म १८८३ ई०में हुआ था। इनके मरने पर उदयभानसिंहने राजसिंहासन सुशोभित किया। फिरहाल यही वहांके महाराणा हैं। इनका पूरा नाम है—

एच एच रैस--उद्-दौला सिपाहदार उल मुल्क महाराजाधिराज श्रीसवाई महाराजराणा सर उदयभानसिंह लोकिन्द्र, बहादुर, दिलेरजङ्ग जयदेव, के, सी, एस, आई०।

ढौलपुरके महाराणाको १५ तोपोंकी सलामी है। इस राज्यमें १८३ अश्वारोही, ८८४ पदाति और ३२ तोपें हैं।

ढौलपुर राज्यमें सफेद और लाल रंगके रेतीले पत्थरसे स्तम्भ, गुम्बज, वंक्र और अन्यान्य आकारके झरोखे प्रस्तुत होते हैं। जो देखनेमें बहुत अच्छे लगते हैं। शिल्पकार्यके तारतम्यके अनुसार इसके मूल्यका ह्रास हुआ करता है। ढौलपुरमें पीतलका एक प्रकारका चित्रित और अलङ्कृत हुक्का बनता है, जिसे उस प्रान्तमें कल्ली कहते हैं। इस राज्यके काठके बने हुए खिलौना और दूसरे दूसरे द्रव्य भी अत्यन्त सुन्दर होते हैं। यहांका पालिश करनेका द्रव्य विशेष प्रसिद्ध है।

इसके दक्षिण-पश्चिमके जंगलोंमें शेर, चीता, भालू, सम्भर, लकड़बग्घा, हरिण, नीलगाय और जंगली सूअर आदि जानवर दिखलाई देते हैं। यहांसे रेतीला पत्थर, रुई, और घीकी रफ्तनी होती है। कपड़ा, नमक, चीनी चावल और तमाकू बाहरसे आती हैं। इस राज्यकी वार्षिक आय ७६००००) रु० है।

२ राजपूतानेके अन्तर्गत ढौलपुर राज्यकी राजधानी और शहर। यह अक्षा० २६°४२´ उ० और देशा० ७७°५३´ पू०में पड़ता है। यह आगरेसे बंबई तक ग्राण्डट्राङ्करोड पर आगरेसे ३४ मील दक्षिण तथा ग्वालियरसे ४० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: १८७१० है। ढौलपुरसे २ मील दक्षिणमें राजघाटके निकट चर्मण्वती नदीके ऊपर एक नौसेतु है, जो १ नवम्बरसे १५ जून तक रहता है। वर्षके अन्तमें उतारेकी नाव द्वारा नदीमें आते जाते हैं। आगरेसे ग्वालियर पर्यन्त सिन्धिया-स्टेट-रेलवे ढौलपुर हो कर गयी है। यह रेलपथ ढौलपुरसे ५ मील दूर सेतु हो कर चर्मण्वती नदी पार होता है।

कहते हैं, कि राजा ढोलनदेवने वर्त्तमान नगरके दक्षिणमें प्राचीन ढौलपुर नगर बसाया था। सम्राट् बाबरने १५२६ ई०में इसे अपने अधिकारमें किया था। उनके पुत्र हुमायूँ चर्मण्वती नदीके गर्भशायी होनेकी आशङ्कासे नगरको नदी तीरसे उठा कर और भी उत्तरमें ले गये। सम्राट् अकबरने यहां एक ऊंची और सुरक्षित सराय निर्माण की है। नगरका नूतन अंश तथा राजप्रासाद राणा किरातसिंहसे बनाया गया है। कार्तिक

मासमें १५ दिन तक यहाँ एक मेला लगता है, जिसमें बहुतसे मवेशी तथा दिल्ली, आगरा, कानपुर लखनऊ आदि स्थानोंके द्रव्य बिकने आते हैं। ढोलपुरसे ३ मील दक्षिण मुचुकुन्द ह्रदके समीप भी प्रतिवर्ष ज्येष्ठ और भाद्र मासमें दो मेला लगते हैं। इस समय बहुतसे लोग आ कर वहां स्नानादि करते हैं। यह ह्रद (झील) प्रायः १२५ बीघा चौड़ा और बहुत गहरा है। चारों ओरके पर्वतोंसे वृष्टिजल आ कर इस ह्रदमें जमा रहता है। इसके चारों ओर कमसे कम ११४ देवालय हैं। फाल्गुन मासमें ढोलपुरसे १४ मील उत्तर-पश्चिमके सनपी नगरमें भी एक बड़ा मेला लगता है। यहाँ कई एक विद्यालय और औषधालय हैं।

ढोलसमुद्र—बङ्गालके अन्तर्गत फरीदपुर जिलेकी एक झील। यह फरीदपुर शहरसे दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। वर्षाकालमें यह झील बढ़ कर नगरके मकानोंके पास तक फैल जाती है। शीतकालमें यह धीरे धीरे सङ्कुचित हो कर अन्तको ग्रीष्मकालमें एक या दो मील तक रह जाती है।

ढोला (हिं० पु०) १ एक प्रकारका छोटा सफेद कीड़ा जिसके पर नहीं होते हैं। इसकी लम्बाई आध अंगुल तककी होती है। यह प्रायः सड़ी हुई वस्तुओं तथा पौधोंके हरे डंठलों पर रहता है। २ सीमा, सूचित करनेका निशाना। ३ गोल मेहराब बनानेका ठाट, लदाव। ४ शरीर, देह। ५ प्रियतम, पति। ६ एक प्रकारका गीत। ७ मूर्ख मनुष्य, जड़।

ढोलिनी (हिं० स्त्री०) वह औरत जो ढोल बजाती है, डफालिन।

ढोलिया (हिं० पु०) वह पुरुष जो ढोल बजाता है।

ढोली (सं० त्रि० ढोल अस्त्यस्य इनि। जो ढोल बजाता है।

ढोली (हिं० स्त्री०) २०० पानोंकी गड्डी। २ परिहास, हँसी, दिल्लगी।

ढोव (हिं० पु०) भेंट, डाली, नजर।

ढौंचा (हिं० पु०) साढे चारका पहाड़ा।

ढौंसना (हिं० क्रि०) आनन्दध्वनि करना।

ढौकना (सं० क्ली०) ढौक-ल्युट्। १ गमन, जाना। २ उत्कोच, घूस, रिश्वत।

ढौकना (हिं० क्रि०) पीना।

ण

ण—संस्कृत और हिन्दी व्यञ्जनवर्णका पन्द्रहवां अक्षर और टवर्गका पांचवा वर्ण। इस वर्णका अर्द्धमात्राकालमें उच्चारण होता है। इसका उच्चारणस्थान मूर्द्धा है। इसके उच्चारणमें आभ्यन्तरिक प्रयत्न है—जिह्वा मध्य द्वारा मूर्द्धाका स्पर्श और नासिकामें यत्नविशेषका प्रभेद। वाह्यप्रयत्न—संवार, नाद, घोष, और अल्पप्राण है। इसकी लिखनप्रणाली इस प्रकार है—पहले एक आड़ी लकीर खींचे, फिर उसके नीचे क्रमशः बड़ी बड़ी तीन लकीरकी ऊपर नीचे खींच कर नीचे पहली लकीरसे एक तिरछी लकीर खींच दें, इसका आकार ऐसा हो जायगा—"ण"। इस अक्षरमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर सर्वदा अवस्थान करते हैं। मातृकान्यासमें इस वर्णका दक्षिण पादाङ्गुलमूलमें न्यास करना पड़ता है।

इसके पर्यायवाची शब्द—निर्गुण, रति, ज्ञान, जम्भल, पक्षिवाहन, जया, जम्भ, नरकजित्, निष्कल, योगिनीप्रिय, द्विमुख, कोटवी, श्रोत्र, समृद्धि, बोधनी, त्रिनेत्र, मानुषी, व्योम, दक्षपादाङ्गुलीमुख, माधव, शङ्खिनी, वीर और नारायण। (नानातन्त्र)

इसकी अधिष्ठात्री देवीका स्वरूप—ये परमकुण्डली, पीतविद्युल्लताकार, पञ्चदेवतामय, पञ्चप्राणमय, त्रिगुणयुक्त, आत्मा आदि तत्त्वयुक्त और महामोहप्रद है। (कामधेनुत०) इनका ध्यान कर इस मन्त्रका दश बार जप करनेसे साधक शीघ्र ही अभीष्ट प्राप्त कर सकता है।

इसका ध्यान—

"द्विभुजां वरदां रम्यां भक्ताभीष्टप्रदायिनीं ।
राजीवलोचनां नित्यां धर्मकामार्थमोक्षदां ॥
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥" (वर्णोद्धारत०)

ये द्विभुजा, वरदायिनी, पद्मलोचना, धर्म-अर्थ-काम मोक्षदायिनी हैं। ये सर्वदा भक्तोंको अभीष्ट प्रदान करती हैं। (त० र० टी०)

ण (सं० पु०) ण—खण्ड पृषो० साधुः। १ बिन्दुदेव, एक बुद्धका नाम। २ भूषण, गहना। ३ निर्णय। ४ शिवका एक नाम। ५ पानीका घर। ६ दान। ७ पिङ्गलमें एक गणका नाम। ८ ज्ञान। (एकाक्षरको०) (सं० त्रि०) ९ गुणरहित गुणशून्य।

णकार (सं० पु०) ण-स्वरूपे कारप्रत्ययः। ण स्वरूप वर्ण, णकार।

णगण—दो मात्राओंका एक मात्रिक गण।

णत्वविधान (सं० क्ली०) णत्वस्य विधानं, ६ तत्। णत्व-विषयकविधान। पाणिनिमें इसका विधान इस प्रकार लिखा है—

ऋ, ॠ, र और ष इन चार वर्णोंके बाद दन्त्य न रहे तो वह मूर्द्धन्य होता है। यदि स्वरवर्ण, कवर्ग, पवर्ग, य, व, ह और अनुस्वार व्यवधान रहे तो भी दन्त्य न मूर्द्धन्य होता है।

पदका अन्तस्थित दन्त्य न मूर्द्धन्य नहीं होता है तथा न भिन्न तवर्ग युक्त (त, थ, द, ध) एवं प और भ युक्त दन्त्य न मूर्द्धण्य नहीं होता है।

यदि एक पदमें ऋ, ॠ, और ष रहे और दूसरे पदमें दन्त्य न रहे तो न मूर्द्धन्य नहीं होता है।

यदि अन्य पदस्थित दन्त्य न 'विभक्ति स्थान पर हो अथवा विभक्ति युक्त हो या स्त्रीलिङ्गविहित ई प्रत्ययके साथ मिला हो, तो विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है। परन्तु युवन्, भगिनी, कामिनी, भामिनी, यामिनी, यूनी प्रभृतिका दन्त्य न मूर्द्धन्य नहीं होता है।

ओषधिवाचक और वृक्षवाचक शब्दके परस्थित वन शब्दका न विकल्पसे मूर्द्धण्य होता है; परन्तु, तिरिकाइ इरिका, हरिद्रा, तिमिरा, विदारी और कर्मार इन शब्दों के बाद वन शब्द रहनेसे मूर्द्धन्य नही होता है।

धानके पक जाने पर जिन समस्त उद्भिदोंका जीवन शेष हो जाता है उन्हें ओषधि कहते हैं। ओषधिवाचक शब्दमें यदि दो या तीन स्वर न हों तो नियम लागू नहीं है।

शर इक्षु, प्लक्ष, आम्र, और खदिर (खैर) इन शब्दोंके परस्थित वन शब्दका न सदा मूर्द्धण्य होता है।

प्र, निर, अन्तर, अग्र इन शब्दोंके परस्थित वन शब्दका न नित्य मूर्द्धण्य होता है। अन्य पदस्थित र प्रभृति परवर्त्ती पान शब्दका न विकल्पसे मूर्द्धण्य होता है।

प्र, पूर्व, अपर प्रभृति शब्दोंके परवर्ती अहन् शब्दका न नित्य मूर्द्धण्य होता है।

पर, पार, उत्तर, चन्द्र और नारा शब्दोंके परवर्ती अयन शब्दका न नित्य मूर्द्धण्य होता है।

अग्र और ग्राम शब्दोंके परवर्त्ती नी शब्दका न मूर्द्धण्य होता है।

शूर्पके परस्थित नखका न तथा प्र, द्रु, खर और वार्घ्री शब्दके परस्थित नसका न मूर्द्धण्य होता है।

गिरि, नदी, स्वर्णदी, गिरिनितम्ब, गिरिनख, गिरिनद, चक्रनदी, चक्रनितम्ब, तुर्यमान, माषोर्ण, आर्गयन इन समस्त शब्दोंके न विकल्पसे मूर्द्धण्य होता है।

प्र, परा, परि और निर, इन चार उपसर्गों तथा अन्तर शब्दके बाद यदि नद्, नम्, नश्, नह, नी, नु, नुद्, अन् और हन् ये सब धातु रहें, तो उनका मूर्द्धण्य होता है।

यदि हन् धातुका न म और व युक्त हो तो विकल्पसे मूर्द्धण्य होता है।

हन् धातुको ह के स्थानमें घ हो तो न मूर्द्धण्य नहीं होता है।

प्र, परा, परि और निर ये चार उपसर्ग और अन्तर शब्दके बाद निंस्, निक्ष् और निन्द् इन धातुओंके विकल्पमें मूर्द्धन्य होता है।

प्र प्रभृतिके बाद हिनु और मीनका न नित्य मूर्द्धण्य होता है।

प्र प्रभृतिके बाद लोट्की आनि विभक्तिका न सदा मूर्द्धण्य होता है।

प्र प्रभृतिके बाद गद्, पड्, दा, धा, हन्, नद्, पद्, दान्, दो, सो, दे धे, मा, या, द्रा, प्सा, वप्, वह्, शम्, चि और, दिह्, इन समस्त धातुओंके पूर्ववर्त्ती नि उपसर्गका न नित्य मूर्द्धण्य होता है।

धातुके पहले यदि प्र, परा, परि और निर् ये चार उपसर्ग अथवा अन्तर शब्द रहे तो कृत् प्रत्ययका न विकल्पसे मूर्द्धण्य होता है।

जिन धातुओंके प्रारम्भमें तो व्यञ्जन वर्ण हो और अन्तिमवर्णसे पहिले अ आ से भिन्न स्वर वर्ण हो, तो उनसे आये हुए कृत्प्रत्ययका नकार विकल्पसे मूर्धन्य 'ण' हो जाता है।

ण्यन्त धातुके उत्तर विहित कृत् प्रत्ययका न विकल्पसे मूर्द्धण्य होता है।

भा, भू, पू, कम, गम, प्याय, वेप और कम्प इन समस्त धातुओंको ण्यन्त करनेसे उनके उत्तर विहित कृत्में न मूर्द्धण्य नहीं होता है।

कृत् प्रत्ययका न व्यञ्जन वर्णमें मिला रहनेसे मूर्धन्य 'ण' नहीं होता है।

नश धातुका श मूर्द्धण्य होने पर ण मूर्द्धण्य होता है।

क्षुभ्नादिका न मूर्द्धण्य नहीं होता है।

णमोकारमन्त्र (सं॰ पु॰) जैनोंका महामन्त्रविशेष। जैनोंका प्रधान मन्त्र। इसमें पाँच पद, और अट्ठावन मात्रा पैंतीस अक्षर हैं, यथा-"णमो अरहन्ताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।" इस मन्त्रके आदिमें ॐ जोड़ कर १०८ बार जपनेसे विघ्न बाधाएँ दूर होती हैं। साधरणतः हृदयमें भूत, प्रेत आदिका भय सञ्चार होने पर इस महामन्त्रका नौ बार जप किया जाता है। अनेक जैनग्रन्थोंमें इसके माहात्म्यका वर्णन लिखा है। यह मन्त्र वेदोक्त गायत्री मन्त्रके तुल्य पूज्य है। इसके प्रत्येक अक्षरसे सैकड़ों मन्त्रोंकी उत्पत्ति हुई, जिनका वर्णन "णमोकारकल्प" नामक ग्रन्थमें किया गया है। "पुण्यास्रव" नामक जैनग्रन्थमें इसके माहात्म्यकी आठ कथाएं लिखी हैं। उनमेंसे एक कथा यहां संक्षेपसे लिखी जाती है—"किसी समय……… चक्रवर्ती छह खण्डोंको जीत कर सातवें खण्डको जय करनेके लिए समुद्र पार हो रहे थे। मार्गमें उनको पूर्वभवके शत्रु एक देवसे साक्षात् हो गया। देवके आक्रमण करते ही उन्होंने णमोकार मन्त्र जपना प्रारम्भ कर दिया, जिससे देव उनको स्पर्श तक न कर सका। कुछ देर बाद उनके चुप होने पर देवने धमकी दी कि, "यदि तू मन्त्रको लिख कर भेंट दे तो हम तुझे छोड़ देंगे, अन्यथा समुद्रमें बिना डुबोये नहीं छोड़ेंगे।" अनेक वादानुवादके पश्चात् चक्रवर्ती अपनी श्रद्धासे विचलित हो गये और उन्होंने उक्त मन्त्रको लिख कर भेंट दिया। देवकी अभिलाषा पूर्ण हुई, उसने चक्रवर्तीको समुद्रमें डुबो दिया।

णय (सं॰ पु॰) ब्रह्मलोकस्थित एक सरोवर।

"ण्यश्चार्णवो ब्रह्मलोके तृतीयस्यां।" (छान्दोग्य उ॰)

त

त—संस्कृत और हिन्दी वर्णमालाका सोलहवाँ अक्षर, तवर्गका प्रथम वर्ण। अर्द्धमात्राकालमें इसका उच्चारण होता है। इसके उच्चारणमें आभ्यन्तरिक प्रयत्न है—दन्तमूल द्वारा जिह्वाके अग्रभागका स्पर्श। वाह्यप्रयत्न—विवार, श्वास और अघोष है। इसके उच्चारणस्थान है—दन्त। मातृकान्यासमें इसका वामनितम्ब पर न्यास करना चाहिये। इसकी लिखनप्रणाली इस तरह है—"त"।

इस अक्षरमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर नित्य विराजित रहते हैं।

इसके वाचक शब्द पूतना, हरि, शुद्धि, शक्ति शुक्ति जटी, ध्वजी, वामस्फिच (वामनितम्ब), वामकटी, कामिनी, मध्यकर्णक, आषाढ़ी, तण्डतुम्भन, कामिका, पृष्ठपुच्छक, रत्नक, श्याममुखी, वाराही, मकर, अरुणा, सुगत, ऊर्ध्वमुख, ऊर्ध्वजानु, क्रोष्टुपुच्छक, गन्ध, विश्व, मरुत्, छत्र, अनुराधा, सौरक, जयन्ती, पुलक, भ्रान्ति, अनङ्ग, और मदनातुरा। (नानात०) यह स्वयं परमकुण्डली तथा पञ्चप्राणमय और पञ्चदेवात्मक है। यह वर्ण त्रिशक्तियुक्त तथा आत्मादि तत्त्वोपेत, त्रिविन्दुयुक्त और पीतविद्युत्की भाँति प्रभाविशिष्ट है। (कामधेनुत०)

इसका ध्यान कर इस वर्णका दश बार जप करनेसे शीघ्र ही अभीष्टकी सिद्धि होती है। ध्यान—

"चतुर्भुजां महाशान्तां महामोक्षप्रदायिनीम्।
सदा षोडशवर्षीयां रक्ताम्बरधरां पराम्॥
नानालंकारभूषां वा सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्।
एवं ध्यात्वा तकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥" (वर्णोद्धारत०)

इन वर्णाधिष्ठात्रीके चार हाथ हैं। ये परम मोक्ष प्रदान करती हैं। ये सर्वदा षोड़शवर्षीया रक्तवस्त्रपरिधायिनी और नानाभूषणद्वारा परिशोभिता हैं तथा साधकोंको समस्त सिद्धि प्रदान करती हैं।

इस वर्णका मात्रावृत्तमें प्रथक् प्रयोग करनेसे धन नष्ट होता है। (वृत्तर० टी०)

त (सं० पु०) तक-ड। १ चौर, चोर। २ अमृत। ३ पुच्छ, दुम। ४ क्रोड़, गोद। ५ म्लेच्छ। ६ गर्भ, हमल। ७ शठ। ८ रत्न। ९ सुगतदेव, बुद्ध। १० गौरववर्जित, वह जिसके अभिमान न हो। ११ क्रोष्टुपुच्छ, गीदरकी पूँछ। १२ तरण। १३ पुण्य। १४ नौका, नाव। १५ झूंठ।

तअज्जुब (अ० पु०) आश्चर्य, अचम्भा।

तअम्मुल (अ० पु०) १ सोच, फिक्र। २ विलम्ब, देर, अरसा। ३ धैर्य, सब्र।

तअल्लुक (अ० पु०) संबन्ध, इलाका।

तअल्लुकः (अ० पु०) वह जमींदारी जिसमें बहुतसे मौजे लगते हों, बड़ा इलाका।

तअल्लुकःदार (अ० पु०) १ इलाकेका मालिक। (स्त्री०) २ इलाकेदारका पद।

तअल्लुका (हिं० पु०) तअल्लुकः देखो।

तअल्लुकादार (हिं० पु०) तअल्लुकःदार देखो।

तअल्लुकेदार (हिं० पु०) तअल्लुकःदार देखो।

तअल्लुकेदारी (हिं० स्त्री०) तअल्लुकःदारीका पद।

तअस्सुब (अ० पु०) पक्षपात, तरफदारी।

तइक (हिं० पु०) मोची, चमार।

तइनात (हिं० पु०) तैनात देखो।

तइँ (प्रत्य०) १ से। २ प्रति, को, से।

तई (हिं० स्त्री०) कम गहराईकी कड़ाही। यह थालीसे मिलती जुलती है और इसमें कड़े लगे होते हैं।

तं (सं० स्त्री०) १ नौका, नाव। २ पवित्र, पुण्य।

तंग (फा० पु०) १ घोड़ोंकी पेटी, कसन। (वि०) २ दृढ़, मजबूत। ३ दुःखी, दिक, आजिज। ४ सङ्कुचित, सङ्कीर्ण, पतला, सकरा, सकेत।

तंगदस्त (फा० वि०) १ कृपण, कंजूस। २ दरिद्री, गरीब, कङ्गाल।

तंगदस्ती (फा० स्त्री०) १ कृपणता, कंजूसी। २ दरिद्रता, गरीबी।

तंगहाल (फा० वि०) १ निर्धन, गरीब। २ विपद्ग्रस्त, जो तकलीफमें पड़ा हो। ३ रोगग्रस्त, मरणासन्न, बीमार।

तंगा (हिं० पु०) १ एक पेड़का नाम। २ आध आना, डबल पैसा।

तंगी (फा० स्त्री०) १ सङ्कीर्णता, तंग होनेका भाव। २ दुःख, कष्ट, क्लेश। ३ निर्धनता, दरिद्रता। ४ न्यूनता, कमी।

तंजेब (फा० स्त्री०) एक प्रकारका सूक्ष्म और उमदा मलमल।

तंड (हिं० पु०) नृत्य, नाच।

तंडव (हिं० पु०) नृत्यविशेष, एक तरहका नाच।

तंत (हिं० पु०) १ तार लगा हुआ एक प्रकारका बाजा। २ क्रिया, काम। ३ तन्त्रशास्त्र। ४ प्रबल कामना, इच्छा। ५ अधीनता, परवशता, मातहती। (वि०) ६ जो वजनमें ठीक हो।

तंतु (हिं० पु०) तन्तु देखो।

तंदान (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा और बढ़िया अंगूर। यह कोटाके आस-पास होता है। इसको सुखा कर किसमिस बनाते हैं।

तंदुआ (हिं० पु०) ऊसर जमीनमें होनेवाली एक प्रकारकी घास जो बारहों मास उपजती है। यह मवेशीको खिलाया जाता है।

तंदुरुस्त (फा० वि०) स्वास्थ्य, नीरोग, चङ्गा।

तंदुरुस्ती (फा० स्त्री०) १ आरोग्यता, चङ्गा होनेका भाव। २ स्वास्थ्य।

तंदूर (फा० पु०) एक प्रकारका मट्टीका बहुत बड़ा; गोल और ऊंचा बरतन। इसकी बनावट अंगीठी, चूल्हे या भट्टी आदिकी तरह होती है। तेज आँच दी जाती है और जब यह अच्छी तरहसे गर्म हो जाता है तब उसकी दीवारों पर भीतरकी ओर मोटी मोटी रोटियाँ चिपका देते हैं, रोटियाँ थोड़ी देरमें सिक कर लाल हो जाती हैं।

तंदूरी (हिं० पु०) १ मालदहसे आनेवाला एक प्रकारका रेशम, यह अत्यन्त महीन और नर्म तथा लाल रङ्गका होता है। (वि०) २ तंदूर सम्बन्धी।

तंदेही (हिं० स्त्री०) १ परिश्रम, मेहनत। २ प्रयत्न, प्रयास, कोशिश। ३ आज्ञा, चेतावनी, ताकीद।

तंबा (हिं० पु०) एक प्रकारका पायजामा।

तंबाकू (हिं० पु०) तमाकू देखो।

तंबाकूगर (हिं० पु०) वह जो तमाकू बनाता हो।

तंबिया (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा तसला जो ताँबेका बना होता है।

तंबियाना (हिं० क्रि०) १ ताँबेके रंगका होना। २ ताँबेका स्वाद या गंध आ जाना।

तंबीह (अ० स्त्री०) १ शिक्षा, नसीहत। २ दण्ड, सजा।

तंबू (हिं० पु०) १ कपड़े आदिका बना हुआ घर, शामियाना, खेमा, डेरा। २ बांबकी तरहकी एक मछली।

तंबूर (फा० पु०) एक प्रकारका छोटा ढोल।

तंबूरची (फा० पु०) वह जो तंबूर बजाता हो।

तंबूरा (हिं० पु०) सितारकी तरहका एक बहुत प्राचीन बाजा। यह आलापचारीमें केवल सुरका सहारा देनेके लिये बजाया जाता है। कहा जाता है कि तम्बुरु गन्धर्वने इसे बनाया था इसीसे इसका नाम तंबूर पड़ा है।

तंबूरातोप (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बड़ी तोप।

तंबोरा (हिं० पु०) तमोरा देखो।

तंबोल (हिं० पु०) १ एक प्रकारका पेड़। इसके पत्ते लिसोड़ेके पत्तेसे होते हैं। २ बरातके समय वरको दिये जानेका टीका। ३ लगामकी रगड़के कारण घोड़ेके मुंहका खून।

तँबोलिन (हिं० स्त्री०) वह औरत जो पान बेचती है, बरइन।

तँबोलिया (हिं० स्त्री०) गङ्गा और यमुनामें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। इसका आकार पानसा होता है।

तँबोली (हिं० पु०) पान बेचनेवाला मनुष्य, बरई।

तंभन (हिं० पु०) स्तम्भन देखो।

तँवार (हिं० स्त्री०) १ वह चक्कर जो कभी कभी सिरमें आ जाता है, घुमटा, घुमेर। २ ज्वरांश, हरारत।

तँवारी (हिं० स्त्री०) तँवार देखो।

तंसु (सं० पु०) तमि-उन्। पुरुवंशीय नृपभेद, पुरुवंशके एक राजाका नाम। इन्होंने पौरवराज मतिनारके औरस तथा सरस्वतीके गर्भसे जन्मग्रहण किया था। राजा मतिनारके और तीन पुत्र थे। परन्तु तंसुने अपने वीर्यबलसे पुरुवंश उज्ज्वल तथा पृथ्वीपालन किया था। (भारत अ० ९४।१५)

तक (सं० त्रि०) तं गौरववर्जितं यथातथा कायति कै-क। १ निन्दित, दूषित, बुरा। २ सहनशील। ३ स्खलित।

तक (हिं॰ अव्य॰) १ किसी वस्तु या व्यापारकी सीमा अथवा अवधि सूचित करनेवाली एक विभक्ति; पर्यन्त। (स्त्री॰) २ तराजू। ३ तराजूका पल्ला।

तकड़ी (हिं॰ स्त्री॰) रेतीली जमीनमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। यह सालमें ६ या ७ बार हुआ करती है। घोड़े इसे बहुत चावसे खाते हैं। इसे कोई कोई चरमरा और हैन कहते हैं।

तकत् (सं॰ अव्य॰) तक वा अति। अत्यन्त अल्प, बहुत छोटा।

तकदमा (हिं॰ पु॰) अनुमान, अंदाज।

तकदीर (अ॰ स्त्री॰) प्रारब्ध, भाग्य, किस्मत।

तकदीरवर (हिं॰ वि॰) भाग्यवान्, जिसकी किस्मत अच्छी हो।

तकन (हिं॰ स्त्री॰) दृष्टि, नजर।

तकनकर—दाक्षिणात्य और बरारप्रदेशवासी एक भ्रमणशील जाति। ये तेलगूभाषामें बोलते हैं। पत्थर काट कर चक्की बनाना ही इनकी उपजीविका है। इसीलिए ये चक्कीवाले या चकहार भी कहलाते हैं। ये एक जगह ज्यादा दिन नहीं रहते, जगह जगह घूम. घूम कर चक्की बनाते फिरते हैं। इनके एक देवता हैं जिनका नाम है—सट्टाई। तकनकर लोग इनकी मूर्त्ति बनवा कर गलेमें पहनते हैं। यह मूर्ति हनूमानकी मूर्त्ति जैसी है। ये फूंसकी झोंपड़ियोंमें रहते हैं। इनमें विवाहके लिए उम्रका कोई निश्चय नहीं है, कि कब करेंगे। ये गोमांस नहीं खाते, पर मृतदेहको गाड़ते हैं।

तकना (हिं॰ क्रि॰) १ अवलोकन करना, देखना, निहारना। २ आश्रय लेना, पनाह लेना।

तकमील (अ॰ स्त्री॰) पूर्णता, पूरा होना।

तकरमल्ही (हिं॰ स्त्री॰) वह हँसिया जिसके द्वारा भेड़ोंके ऊपरसे ऊन काटा जाता है।

तकरार (अ॰ स्त्री॰) १ विवाद, हुज्जत। २ झगड़ा, टंटा। ३ धानका खेत जो फसल काटनेके बाद फिर खाद डाल कर जोता गया हो। ४ वह खेत जिसमें जो इत्यादि कई तरहके अनाज एक साथ बोए गये हों।

तकरी (सं॰ स्त्री) तं निन्दितं करोति कृ-ट् ङीप्। कुत्सितकारिणी स्त्री, खराब चलन वाली औरत।

तकरीर (अ॰ स्त्री॰) १ वार्त्तालाप, बात चीत। २ वक्तृता, भाषण।

तकरीब (अ॰ स्त्री॰) उत्सव, जलसा, भोज।

तकर्रुरी (अ॰ स्त्री॰) नियुक्ति, मुकर्रर, बहाल।

तकला (हिं॰ पु॰) १ सूत कातनेके चरखेमें लगी हुई लोहेकी सलाई, टेकुआ। २ सोनारोंकी वह सलाई जिससे वे सिकरी बनाते हैं। ३ रस्सा या रस्सी बनानेकी टिकुरी।

तकली (हिं॰ स्त्री) छोटा तकला, टेकुरी।

तकलीफ (अ॰ स्त्री) १ कष्ट, दुःख, क्लेश। २ विपत्ति, मुसीबत।

तकल्लुफ (अ॰ पु॰) शिष्टाचार, सम्मान, आदर।

तकवाना (हिं॰ क्रि॰) देखनेका काम किसी दूसरेसे कराना

तकवारा—पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत डेरा-इस्माइलखाँ जिलेका एक शहर। यह शहर कुछ ग्रामोंको ले कर बना है और डेरा-इस्माइलखाँसे २७ मील उत्तर-पश्चिममें, अक्षा॰ ३२°८´ उ॰ और देशा॰ ७०° ४०´ पू॰में अवस्थित है। यहां गन्दपूर और जाट जातिका निवास है। अधिवासियोंमें अधिकांश कृषिकार्य करते हैं। पर्वतके उपत्यका प्रदेशमें १२।१४ फुट खोदनेसे ही पानी निकल आता है। यहां रसद बहुत मिलती है।

तकवालवाल—पेशावर जिलेका एक ग्राम। यह ग्राम पेशावरसे खाईबार, जामरूड आदिके रास्तेमें, बुर्ज-इ-हरिसिंहसे १४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यहां बहुतसे प्राचीन बौद्धस्तूप भग्नावस्थामें पड़े हैं। एक स्तूपको वहांके लोग, तकवालवालकी 'देहरी' कहते हैं। ये स्तूप बहुत बड़े हैं। तकवाल-वालकी देहरीकी खुदाई हुई थी, उसमें दो पुरुषमूर्ति और एक स्त्रीमूर्तिका बड़ा भारी मस्तक निकला है। इनमेंसे एक मूर्ति बुद्धदेवकी है और एक किसी राजाकी बतलाई जाती है, स्त्री-मुखका आकार बड़ा विकट है।

तकसीम (अ॰ स्त्री॰) १ विभाग करनेकी क्रिया, बँटाई। २ भाग, हिस्सा।

तकसीर (अ॰ स्त्री॰) १ अपराध, दोष, कसूर। २ भ्रम, भूल, चूक।

तकाई (हिं॰ स्त्री॰) १ देखनेकी क्रिया या भाव। २ देखने

के बदलेमें दिये जानेका धन।

तक़ाज़ा (अ॰ पु॰) १ तगादा, माँगना। २ कोई ऐसा काम करनेके लिये कहना जिसके लिये वचन मिल चुका हो। ३ प्रेरणा, उत्तेजना।

तकान (हिं॰ स्त्री॰) थाकन देखो।

तकाना (हिं॰ क्रि॰) दिखाना, बतलाना।

तकार (सं॰ पु॰) त-स्वरूपे कार। तस्वरूप वर्ण, त अक्षर। "एव ध्यात्वा तकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्" (कामधेनु॰)

तकारा—बम्बई प्रदेशकी एक पत्थर काटनेवाली मुसलमान जाति। प्रवाद है कि, यह जाति शोलापुरकी धुन्धुफोड़ा अर्थात् पत्थर-काटनेवाली जातिसे उत्पन्न हुई है। तकार लोगोंका कहना है कि, सम्राट् औरङ्गजेबने उनको मुसलमान धर्ममें दीक्षित किया था। इनकी आकृति और पोशाक मुसलमानोंके समान है। ये परस्परमें हिन्दी तथा दूसरोंके साथ मराठी बोलते हैं। पुरुषगण मध्यमाकृति सुगठित और काले होते हैं। तथा मस्तक मुड़ाते और लम्बी या छोटी दाढ़ी रखते हैं। पहनावेमें ये धोती, जाकट और पगड़ी व्यवहार करते हैं। स्त्रियाँ मराठी कामिनियों जैसी पोशाक पहनती हैं। अभिप्राय यह है कि, ये गन्दे रहते हैं। खानसे पत्थर उठाना और उससे चक्की, मूर्ति आदि बनाना ही इनकी उपजीविका है। ये मितव्ययी और परिश्रमी होते हैं। काम न होने पर गरीब तकारा लोग जगह जगह चक्की खोदते फिरते हैं। इनमें जिनकी अवस्था कुछ अच्छी है वे घर बैठे लोगोंकी फरमाइशके अनुसार पत्थर दिया करते हैं। इस समय कामकी कमताईसे प्रायः सभी गरीब हो गये हैं और बहुतसे कृषि, मजदूरी, नौकरी आदि करने लगे हैं। ये सुन्नि सम्प्रदायके होते हुए भी शूकरमांस भक्षण करते हैं तथा सट्वाई और मरियाई देवताको मानते हैं। नियमानुसार सब नमाज भी नहीं पढ़ते। मुसलमानधर्माचरणमें सिर्फ सुन्नत पढ़ कर ही क्षान्त होते हैं। इनमें समाज-पति कोई नहीं है, ये काजीको मानते हैं। काजी ही इनके विवाह आदिमें रजिष्टरी और सामाजिक विवादकी मीमांसा करते हैं। ये लड़कोंको पाठशाला नहीं भेजते। धीरे धीरे इनकी संख्या घटती ही जाती है।

तकारी—बम्बई प्रदेशकी पत्थर काटनेवाली एक जाति। अहमदनगर जिलेके जामखेड़ा, कर्जटनगर आदि स्थानोंमें इनका वास है। सम्भवतः ये तेलिङ्गसे यहाँ आ कर बसे हैं। ये बलिष्ठ, कर्मठ और काले हैं। दूसरोंके साथ मराठी और आपसमें तैलङ्गी भाषामें बातचीत करते हैं। ये गाय और सूअर आदिके मांसके सिवा अन्य मांस खाते और शराब पीते हैं। पुरुषोंका पहनावा धोती, चादर, कुर्ता, जूता और मराठी पगड़ी है। स्त्रियां मराठी स्त्रियोंकी भाँति साड़ी और चोली पहनती हैं; पर काँच नहीं लगातीं। क्रियाकाण्ड और उत्सव आदिमें ये कुछ अच्छे और साफ कपड़े तथा उत्कृष्ट गहने पहना करते हैं। तकारीगण साधारणतः साफ-सुथरे, परिश्रमी, मिताचारी और आतिथिय होते हैं, इनमें बहुतसे गँठकटे भी होते हैं। स्त्रियाँ कडे और लकड़ी संग्रह तथा गृहस्थीका काम-काज करती हैं। पुरुषगण पत्थर काट चक्की बना कर जीविका-निर्वाह करते हैं। कोई कोई कृषि और मजदूरी भी करते हैं। ये भैरवोदेवी और खण्डवाकी प्रतिमूर्ति घरमें रख कर हर एक हिन्दू-त्योहारमें उनकी पूजा करते हैं। पूजा और विवाह आदिके समय उन्हींमेंसे एक पुरोहितका कार्य करता है। विवाहके समय कन्याका पिता वा कन्यापक्षीय कोई प्रौढ़ व्यक्ति वर और कन्याके वस्त्रमें गाँठ बाँध देता है। इनमें विधवा-विवाह और पुरुषोंका बहुविवाह प्रचलित है। ये धर्मानुष्ठानके समय वेद वा पुराणादि नहीं पढ़ते। अनेकांशमें ये कुनबियोंकी तरह सन्तानोंको पढ़ाते नहीं और न किसी नये व्यवसायमें ही प्रवृत्त करते हैं।

तकावी (अ॰ स्त्री॰) सरकार या जमींदारकी ओरसे गरीब गृहस्थोंको दिये जानेका धन। यह ऋणस्वरूप दी जाती और नियत समय पर सूद समेत वसूल की जाती है।

तकिया (फा॰ पु॰) १ कपड़ेका बना हुआ गोल या चौकोर थैला। इसको रुई इत्यादिसे भर कर सोनेके समय सिरके नीचे रखते हैं, बालिश। २ छज्जे, रोक या सहारेके लिये लगाई जानेकी पत्थरकी पटिया, मुतक्का। ३ विश्रामका स्थान, आराम करनेकी जगह। ४ आश्रय, सहारा आसरा। ५ शहरके बाहर या कब्रि-

स्तानके पासका स्थान। ऐसे स्थान पर प्रायः मुसलमान फकीर रहा करता है।

तकिया-कलाम (हिं॰ पु॰) सखुनतकिया देखो।

तकियादार (फा॰ पु॰) वह मुसलमान फकीर जो मज़ार पर रहता हो।

तकिल (सं॰ त्रि॰) तक-इलच्। मिथिलादयश्च। उण् १।५६। १ धूर्त, चालबाज। २ औषध, दवा।

तकिला (सं॰ स्त्री॰) तकिल-टाप्। औषध, दवा।

तकु (सं॰ स्त्री॰) तक-गतौ उन्। गतिशील, जानेवाला।

तकुआ (हिं॰ पु॰) १ देखनेवाला, ताकनेवाला। २ तकला देखो।

तक्क—जातिविशेष, एक जातिका नाम। तक्क लोग रावलपिण्डी विभागमें अक्षा॰ ३३° १७´ उ॰ और देशा॰ ७२° ४९´ १५´´ पू॰के मध्य शाहधेरी ग्रामके प्राचीनतम अधिवासी हैं। कनिङ्हमका कहना है, कि तक्क जातिके नामानुसार ही तक्षशिलाका नामकरण हुआ है। पूर्वकालमें समग्र सिन्धुसागरका दोआब इनके अधिकारमें था। पीछे ये पञ्जाबके पश्चिम प्रदेशसे गक्करों द्वारा भगाये जाने पर मध्यप्रदेशमें मद्र लोगोंके साथ एकत्र रहने लगे। तक्कोंके आचार-व्यवहारके विषयमें फिलस्ट्रेटस् और फाहियानने प्रायः एक ही बात लिखी है। दोनोंकी वर्णना पढ़नेसे मालूम होता है कि तक्क लोग किसी भी परदेशीकी तीन दिन तक सेवा शुश्रूषा करते थे। अलेकसन्दर जिस समय भारत पर आक्रमण करने आये थे उस समय तक्षशिलाके राजाने उनकी तीन दिन तक अतिथिके समान परिचर्या की थी। चीन-परिव्राजकका भी अच्छी तरह सम्मान किया गया था। इससे मालूम होता है कि ४०० ई॰से पहले भी तक्कवंशीय राजा तक्षशिला प्रदेशका शासन करते थे और अलेकसन्दरके भारतमें आनेसे पहले ही सिन्धुसागरका दोआब तक्कोंके हाथसे निकल गया था।

सिन्धुनदीके तटवर्ती आटक नगरमें अब भी तक्क जातिके लोग पाये जाते हैं। राजतरङ्गिणीके पढ़नेसे मालूम होता है कि राजा शङ्करवर्माने ९०० ई॰में तक्क देशको काश्मीरराज्यमें मिला लिया था। उस समय तक्क देश गुर्जरके उत्तर-पूर्व कोणमें था। अब भी इस प्रदेशमें वितस्तानदीके दोनों किनारे बहुतसे तक्कोंका वास है। काश्मीरके इतिहासलेखकोंका कहना है कि प्राचीनकालमें बहुतसे तक्क इस प्रदेशमें रहते थे। यादवोंने उन्हें इस स्थानसे दूर कर दिया था।

सिन्धु प्रदेशमें जिन तीन आदिम निवासियोंका उल्लेख पाया जाता है, उनमें एक तक्क जाति भी है। किसी यूरोपीय विद्वान्का कहना है कि तक्षशिला प्रदेशसे भगाये जाने पर तक्कोंमेंसे कोई कोई सिन्धु प्रदेशमें जा कर रहने लगे थे। ईसाकी १२वीं शताब्दीमें आषाढ़-दुर्ग तक्कराज छातके अधीन था। १४वीं शताब्दीमें शारंग तक्क मजफ्फर शाह नामके एक राजा गुजरातमें राज्य करते थे।

टॉड साहबके मतसे, तक्षक तक्कवंशके आदिपुरुष थे। इन्होंने नागवंशकी स्थापना की थी और हिन्दुओंका विश्वास है कि ये इच्छानुसार मनुष्यका आकार धारण कर सकते थे। तक्क लोग नागकी उपासना करते थे। तक्षशिलाके राजाके दो बड़े बड़े सर्प-विग्रह थे। कनिङ्हम लिखते हैं, कि काश्मीरके उपत्यका-प्रदेशमें पहले तक्क जातिका वास था। नागराज नील इस प्रदेशकी रक्षा करते थे। अधिवासिगण अत्यन्त सर्पोपासक थे। बौद्ध राजा कनिष्कने सर्पपूजा उठा दी थी, परन्तु ३य गोनर्दके समय यह फिर चल निकली।

जम्बू, रामनगर और कृष्णवार आदिके पार्वत्य-प्रदेशमें तक्कजातिका वास है। तक्कगण अनार्य वंशसम्भूत और राजपूतोंसे निकृष्ट हैं, इनकी सामाजिक मर्यादा जाटोंके समान है। भट्टिसरदार मङ्गलरावके पुत्रोंने सतिदा तक्कोंके साथ भोजन किया था, इसलिए वे जाटोंमें शामिल किये गये। तक्क लोगोंकी सामाजिक हीनताको देखते हुए इन्हें अनार्य ही कहना पड़ता है। ये प्राचीनतम तूराण-वंशीय और सम्भवतः तक्षशिला प्रदेशके आदिम अधिवासी हैं।

देहली और करनाल जिलोंमें बहुतसे तक्कोंका वास है। इनमें प्रायः एक तिहाई लोग इसलाम-धर्मावलम्बी हो गये हैं।

तक्कन् (सं॰ क्ली॰) तक-कनिन्। अपत्य, सन्तान।

तक्कोल (सं॰ पु॰) कक्कोल, एक प्रकारका पेड़।

तक्त (सं॰ क्ली॰) तक्षित, छिन्न।

तक्मन् (सं॰ पु॰) १ वसन्त नामक चर्मरोग। २ शीतलादेवी।

तक्मनाशन (सं॰ क्ली॰) वसन्त-नाशकारी, वह जिससे वसन्तरोग जाता रहता है।

तक्य (सं॰ त्रि॰) तकं ह्रासं अर्हति तक-यत्। तकिशसि चयति जनिभ्यो यद्वाच्यः। पा ६।४।६५ इति सूत्रस्य वार्त्तिकोक्त्या यत्। सहनीय सहने योग्य, वरदास्त करने काविल।

तक्र (सं॰ क्ली॰) तनक्ति सङ्कोचयति दुग्धं तन्च-रक्। रकायितश्चीति उण् २।१३। दधिविकार, चतुर्थांश जलके साथ मथा हुआ दही, मट्ठा, छाछ। मथित दधिमेंसे नवनीत निकाल लेने पर जो द्रवभाग अवशिष्ट रहता है उसको तक्र वा घोल कहते हैं। पर्याय—गोरसज, घोल, कालसेय, विलोडित, दन्ताहत, अरिष्ट, अम्ल, उदश्वित्, मथित और द्रव। (राजनि॰) भावप्रकाशमें लिखा है कि—तक्र पाँच प्रकारका है—घोल, मथित, तक्र, उदश्वित् और छच्छिका। विना पानी दिये मलाई सहित दहीको मथने से घोल बनता है। विना मलाईवाले दहीका पानीके साथ मथ कर जो मठा बनाया जाता है उसे मथित कहते हैं। दहीको चतुर्थांश जलके साथ फेंटनेसे तक्र, अर्द्धांश जलके साथ मथनेसे उदश्वित् और बहुत पानीके साथ मथ कर नवनीत निकाल लेनेसे उस मठाको छच्छिका कहते हैं। गुण—घोल वायु और पित्तनाशक है।

घोल देखो।

मथित—कफ और पित्तनाशक है। तक्र—मधुर और अम्लरसविशिष्ट, पीछे कषाय, लघु, उष्णवीर्य, अग्निदीप्तिकर, शुक्रवर्द्धक, प्रीतिजनक और वायुनाशक, गरल, शोथ, अतीसार, ग्रहणी, पाण्डु, अर्श, प्लीहा, गुल्म, अरुचि, विषमज्वर, तृष्णा, वमनप्रसेक, शूल, मेद, श्लेष्मा और वायुरोगके लिए हितकर है। तक्र लघु होनेसे धारक है, पर विपाकमें मधुर होनेसे पित्तप्रकोपक नहीं है। इसके कषायत्व, उष्णत्व, विकाशित्व और रूक्षत्वके द्वारा कफ नष्ट होता है।

तक्र सेवन करनेवालेको कोई क्लेश या रोग नहीं होता। विद्वानोंका कहना है कि जसे अमृतपान देवोंके लिए सुखावह है, वैसे ही मनुष्योंके लिए तक्र सुखावह है।

उदश्वित्—कफवर्द्धक, बलकारक और अत्यन्त श्रान्तिनाशक है।

छच्छिका—शीतवीर्य, लघु, कफनाशक तथा पित्त, श्रम, पिपासा और वायुनाशक है। यह लवणसंयुक्त होने पर अग्निदीप्तिकर भी है।

जिस तक्रमेंसे सम्पूर्ण घी निकाल लिया गया हो, वह अत्यन्त हितकर और लघु होता है। जिस तक्रमेंसे थोड़ा घी निकाला गया हो वह उससे कुछ गुरु, पुष्टकारक और कफनाशक है। जिसमेंसे घी बिलकुल हो नहीं निकाला गया हो, वह घन, गुरु, पुष्टिकारक और कफवर्द्धक है।

वायुप्रशान्तिके लिए सोंठ, नमक और अम्लरसयुक्त तक्र प्रशस्त है।

पित्तप्रशमनके लिए चीनी और मधुर रस मिला कर घोल सेवन करना चाहिये।

कफप्रशमनके लिए त्रिकटुयुक्त घोल हितकर है।

घोलमें हींग, जीरा और सेंधा नमक मिला कर पीनेसे सब तरहकी वायु प्रशमित होती है। यह घोल रुचिकारक, पुष्टिकर, बलप्रद, वस्तिगतशूलनाशक, अर्श और अतीसार रोगमें विशेष फलदायक है।

गुड़-मिश्रित घोल मूत्रकृच्छ्ररोगमें पीनेसे फायदा होता है।

अपक्व तक्र—कोष्ठगत, कफनाशक, पर कण्ठगत कफकी वृद्धि करता है।

पक्व तक्र—पीनस, श्वास और कासरोगके लिए हितकर है।

शीतकालमें, मन्दाग्नि, वायुरोग और अरुचिसे स्रोतोंके रुक जाने पर तक्र अमृतकी भाँति फलप्रद है।

क्षयरोगमें दुर्बल शरीरमें, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्त रोगमें तथा गरमियोंमें तक्र नहीं सेवन करना चाहिये। (भावप्र॰ तक्रवर्ग)

तक्रकूर्चिका (सं॰ स्त्री) तक्रजाता तक्रयोगेन उष्णदुग्धात् जाता कूर्चिका। फटा हुआ दूध, छेना। इसका गुण—मलमतावरोधक, वायुवृद्धिकर, रूक्ष तथा अत्यन्त गुरुपाक

है। इससे अच्छे अच्छे खाद्यद्रव्य प्रस्तुत होते हैं।

तक्रजननी (सं॰ स्त्री॰) मट्ठा, छाछ, मठा।

तक्रजन्म (सं॰ क्ली॰) दधि, दही।

तक्रपर्याया (सं॰ स्त्री॰) तक्राक्षुप।

तक्रपिण्ड (सं॰ पु॰) तक्रेण जातः पिण्डः। तक्रदुष्ट दुग्धपिण्ड, फटा हुआ दूध, छेना।

> “दुघ्ना तक्रेण वा दुष्टं दुग्धं बद्धं सुवाससा।
> द्रव्यभागेन हीनं यत् तक्रपिण्डः स उच्यते॥”

दही और मट्ठेसे दूध खराब होने पर उसे उत्तम कपड़ेमें बाँध देते हैं, बाद उससे सब पानी निकल जाने पर जो पिण्डके आकारका पदार्थ रह जाता है उसीको तक्रपिण्ड कहते हैं।

तक्रमेह (सं॰ पु॰) पुरुषोंका एक रोग। इसमें छाछसा सफेद मूत्र होता है और मट्ठेसी गन्ध आती है।

तक्रभक्षा (सं॰ स्त्री॰) तक्रा, एक प्रकारका क्षुप।

तक्रभिद् (सं॰ क्ली॰) कपित्थ, कैथ। (Feronia elephantum)

तक्रमांस (सं॰ क्ली॰) तक्रयोगेन पाचितं मांसं। तक्रसंयोगसे पक्वमांस, मांसका रसा, अखनी। तक्रमांसका विषय भावप्रकाशमें इस तरह लिखा है—किसी पात्रमें घीसे हींग और हल्दी भून लेते हैं। बाद बकरेके मांसको खण्ड खण्ड कर उसी घीमें भूननेके बाद उपयुक्त जल दे कर उसे धीमी आँचमें राँधा करते हैं। तदनन्तर जीरे इत्यादि मिश्रित मट्ठेमें मांसको डाल देते हैं। इसी तरहसे प्रस्तुत किये जानेको तक्रमांस कहते हैं। इसका गुण वायुनाशक, लघु, रुचिजनक, बलकारक, कफनाशक और कुछ पित्तवर्द्धक है। यह तक्रमांस समस्त खाद्यपदार्थोंका परिपाकजनक है।

तक्रवटक (सं॰ पु॰) पिष्टकविशेष, एक प्रकारका पीठा।

तक्रवामन (सं॰ पु॰) तक्रं वामयति वाम-णिच्-ल्यु। नागरङ्ग, नारंगी।

तक्रसन्धान (सं॰ पु॰) एक प्रकारकी कांजी। यह सौ टके भर मट्ठेमें एक टके भर सांभर नमक, राई और हल्दीका चूर्ण डाल कर बनाया जाता है। यह कांजी पन्द्रह दिन तक उसी अवस्थामें रहनेके बाद तैयार होती है। प्रतिदिन यह दो दो टंक सेवन करनेसे २१ दिनोंमें तापतिल्ली अच्छी हो जाती है।

तक्रसार (सं॰ पु॰) मक्खन।

तक्राट (सं॰ पु॰) तक्राय तक्रोत्पादनाय अटति अट्-अच्। मन्थनदण्ड, मथानी।

तक्रारिष्ट (सं॰ पु॰) तक्रेण प्रस्तुतः अरिष्टः। अरिष्ट औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—अजवायन, आँवला, हड़ और मिर्च प्रत्येकके ३ पल और पंचलवणके १ पलको एकत्र चूर्ण कर ८ सेर मट्ठेमें मिला कर चार दिन तक रखते हैं। इसीका नाम तक्रारिष्ट है। इसके सेवन करनेसे अग्निकी दीप्ति होती तथा शोथ, गुल्म प्रभृति रोग जाते रहते हैं। यह औषध प्रायः संग्रहणी रोगमें व्यवहार की जाती है। (चक्रदत्त)

तक्राह्वा (सं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका क्षुप।

तक्व (सं॰ त्रि॰) तक गतौ व। गमनशील, जल्दी जानेवाला।

तक्वन् (सं॰ त्रि॰) तक गतौ वनिप्। १ गतिशील, तेजीसे दौड़नेवाला। (पु॰) २ चौर, चोर।

तक्वी (सं॰ स्त्री॰) तक्वानां चोराणां वीः गतिः, ६-तत्। चोरोंकी गति, चोरोंका भगाना।

तक्ष (सं॰ पु॰) १ नृपतिविशेष, रामचन्द्रके भाई भरतके बड़े पुत्र।

“तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपतेः।” (भाग॰ ९।११।१२)

२ वृकके एक पुत्रका नाम। ३ पतला करनेकी क्रिया।

तक्षक (सं॰ पु॰) तक्षः-ण्वुल्। १ सर्पविशेष, अष्ट नागोंमेंसे एक।

> “अनन्तो वासुकिः पद्मो महापद्मोऽथ तक्षकः।” (भारत॰१)

पुराणके मतानुसार अष्ट नागोंमें शेष, वासुकि और तक्षक ये तीन प्रधान हैं। कश्यपके औरस और कद्रूके गर्भसे तक्षकका जन्म हुआ था। खाण्डवारण्यमें इसका आवास था। शृङ्गी नामक ऋषिकुमारके शापको सफल करनेके लिये तक्षकने राजा परीक्षित्को काटा था। इस कारण राजा जनमेजयने इस पर क्रुद्ध हो कर सर्पयज्ञका अनुष्ठान किया। तक्षकको यह खबर मिलते ही उसने इन्द्रकी शरण ली तथा वासुकिने महर्षि आस्तीकको सर्प-यज्ञ रोकानेके लिये भेजा। राजा जनमेजयने तक्षकको इन्द्रका शरणागत जान कर ऋत्वि

कोंसे कहा—यदि इन्द्र तक्षकको न छोड़ें, तो तक्षकको इन्द्रके साथ भस्म कोजिये।

होताने राजाको आज्ञा पा कर तक्षकका नाम ले कर अग्निमें आहुति दी। उसी समय तक्षकके साथ इन्द्र यज्ञानलकी ओर आकृष्ट होने लगे। इन्द्रने भयभीत हो कर तक्षकको छोड़ दिया और अपने स्थानको प्रस्थान किया। तक्षक भयविह्वल हो कर क्रमशः प्रज्वलित पावकशिखाके समीपवर्ती हुआ। इसी समय आस्तीकने महाराज जनमेजयसे 'सर्पयज्ञ निवारित हो' यह भिक्षा मांग कर इसकी रक्षा कर ली। (भारत आदि पर्व) परीक्षित, जनमेजय, आस्तीक देखो।

हिन्दुओंका विश्वास है कि, तक्षक इच्छानुसार मनुष्य शरीर धारण कर सकता था। कनिंहम जैसे विद्वानोंका कहना है कि तक्षगण तक्षककी सन्तान हैं। टॉड साहब कहते हैं कि राजा शालिवाहनने तक्षकवंशमें जन्मग्रहण किया था। नागा लोग भी अपनेको तक्षकके वंशधर बतलाते हैं।

यूरोपीय पुराविदोंका कहना है कि, प्राचीन हिन्दुओंने अनार्योंको तक्षक और नाग नामसे उल्लेख किया है। संस्कृत भाषामें तक्षक शब्द सिर्फ एक व्यक्तिके लिये ही प्रयुक्त नहीं हुआ है; खाण्डवदाहके समय अर्जुनने एक तक्षकको दग्ध किया था। तक्षक और नागवंशीय लोग वृक्ष और सर्पोपासक थे। शक जातिके विभिन्न वंश तक्षक और नाग नामसे परिचित होते थे।

कनिंहमका कहना है कि, सर्पोपासक तक्क और हिन्दुओं द्वारा वर्णित तक्षक जाति दोनोंका एक ही वंश था और पञ्जाबमें उनका वास था। पञ्जाबवासी तक्क अथवा तक्षकोंके साथ दिल्लीके पाण्डवोंका एक महायुद्ध हुआ था। उस युद्धमें परीक्षित्‌की मृत्यु हुई थी और तक्षकोंने जय प्राप्त की थी। इसकी ही महाभारतमें तक्षक-दंशनसे परीक्षित्‌की मृत्युरूपमें वर्णन किया गया है।

टॉड साहबके मतसे तक्षकवंश तुरकी जातिकी एक शाखा थी। ये पहले उत्तर-पश्चिम अंशमें वास करते थे। महाभारतीय युद्धके बादसे ये लोग क्रमशः भारतके नाना स्थान अधिकार करने लगे। इनका जातीय निदर्शन सर्प था इसलिये इनके वंशका नाम तक्षक हो गया। ईस्वीसे ६०० वर्ष पहले इस वंशने भारत पर आक्रमण किया था। मगध तक इनका अधिकार विस्तृत हुआ था। तक्षकवंशीय राजा १० पीढ़ी तक मगधके सिंहासन पर बैठे थे। इस राजवंशकी एक शाखाके नामानुसार ही नागपुरका नामकरण हुआ है। टॉड साहब कहते हैं कि, शेषनागका आक्रमण श्रीपार्श्वनाथ तीर्थङ्करके समसामयिक है। कहा जाता है कि, इस वंशके किसी किसी व्यक्तिने ब्राह्मण्यधर्म ग्रहण किया था, जिनका वंश अग्निकुलके नामसे प्रसिद्ध है।

तक्षकवंशीय राजा भारतके बहुत प्रदेशोंका शासनदण्ड परिचालन करते थे। गुर्जरमें भी कुछ समय तक तक्षकवंशीयोंने स्वाधीनतासे राज्य किया था।

भागलपुर जिलाके बहुत जगह तक्षक एक ग्राम्यदेवता है।

"मसूरं निम्बपत्रञ्च योऽत्ति मेषगते रवौ।
अतिरोषान्वितस्तस्य तक्षकः किं करिष्यति॥" (लिखित)

रविके मेषराशिमें गमन करने पर (अर्थात् वैशाख मासमें) जो मसूर और निम्बपत्र भक्षण करते हैं, तक्षक अत्यन्त क्रुद्ध हो कर भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। "तक्षकः किं करिष्यति"में तक्षक पद लक्षणा, अर्थात् वैशाख मासमें मसूर और निम्बपत्रका भक्षण सर्प-विषका नाशक है।

२ विश्वकर्मा। (शब्दर०) ३ द्रुमभेद। (हेम०) ४ शङ्करजातिविशेष, बढ़ई। सूचकके औरस और विप्रकन्याके गर्भसे इनकी उत्पत्ति हुई है। सूत्रधर देखो। ५ स्वनामप्रसिद्ध प्रसेनजित्‌के पुत्र। (भाग० ९।१२।८) ६ नागवायु। (त्रि०) ७ छेदक।

तक्षकीय (सं० त्रि०) तक्षा अस्त्यस्य नड़ादित्वात् छकुक्‌च। तक्षविशिष्ट, जिसमें साँप हो।

तक्षण (सं० क्ली०) तक्ष तनूकरणे भावे ल्युट्। १ कृशकरण, लकड़ीको साफ करनेका काम, रंदा करनेका काम।

"प्रोक्षणं संहतानाञ्च दारवाणाञ्च तक्षणं।" (मनु ५।११५)

२ बढ़ई। ३ लकड़ी पत्थर आदि गढ़ कर मूर्तियां बनाना।

तक्षणी (सं० स्त्री०) तक्ष्यतेऽनया तक्ष-करणे ल्युट्

टित्वात् ङीप्। वासीयन्त्र, बढ़इयोंका रंदा नामक एक औजार इससे वे लकड़ी छील कर साफ करते हैं।

तक्षन् (सं॰ पु॰) तक्ष-कनिन्। कनिन् युवृषितक्षिराजीति। उण् १।१५६। १ त्वष्टा, बढ़ई। २ विश्वकर्मा। ३ चित्रा नक्षत्र। (त्रि॰) ४ तक्षणकर्त्तृमात्र, जिससे काठ इत्यादि साफ किया जाता है।

तक्षशिल—तक्षशिलाके एक राजा। ग्रीक-ऐतिहासिकोंका कहना है कि ३२७ ई॰के पहले अलेकसन्दरके सिन्धु नदके किनारे तक पहुंचने पर उक्त राजाने अग्रसर हो कर अलेकसन्दरका साथ दिया था।

अलेकसन्दरने जब भारत पर आक्रमण किया था, तब पञ्जाब क्षुद्र राज्योंमें विभक्त था। ये राजगण प्रायः सर्वदा ही आपसी कलहमें प्रवृत्त रहते थे। इन राजाओंमें पुरु अधिक क्षमताशील थे। उनसे ईर्षा कर तक्षशिल अलेकसन्दरके साथ मिल गये थे।

तक्षशिला—देशविशेष, एक प्राचीन देशका नाम। भरतके पुत्र तक्षकी इस स्थान पर राजधानी थी। महाभारतके मतानुसार यह स्थान गान्धारके मध्य है। (भारत १।३।२२) जनमेजयने यहां सर्पयज्ञ किया था।

(भारत स्वर्गारोहण ५ अ॰)

इस नगरका भग्नावशेष अभी ६ वर्गमील भूमिके ऊपर फैला हुआ है। भग्नावशेषमें बहुतसे बौद्धमन्दिर और स्तूप देखे जाते हैं।

प्राचीन कालके तक्षवंशीयगण इस प्रदेश पर शासन करते थे। इसी वंशके नामानुसार तक्षशिला नाम पड़ा है। १ली शताब्दीके प्रारम्भमें तक्षशिला नगर अमन्द्र नामसे परिचित था।

तक्षशिलाकी जमीन बहुत उर्वरा है। यहां बहुतसी नदियां और सोते हैं। फल और पुष्प यहां बहुत उपजते हैं। अधिवासिगण अत्यन्त साहसी और सतेज हैं। पहले यहां अनेक सङ्घाराम (बौद्धमठ) थे, अभी उनका केवल भग्नावशेष देखा जाता है। बहुत थोड़े बौद्ध यहां वास करते हैं।

३२१ ई॰ सनके पहले अलेकसन्दर भारत आक्रमणके समय जब तक्षशिला आये थे, तब यहांके राजाने तीन दिन तक यथेष्ट आदरके साथ उनको अपने यहां रखा था। चीन-परिव्राजक भी यहाँ आये थे। उन्होंने भी तीन दिन तक इस राज्यमें यथेष्ट सम्मान पाया था। तीन दिन तक अभ्यागत व्यक्तिकी अभ्यर्थना करनेका नियम इस नगरमें प्रचलित था।

चीन-परिव्राजकके भ्रमणवृत्तान्त पढ़नेसे मालूम होता है, कि तक्षशिलावासी भारतके मध्यप्रदेशमें जो भाषा प्रचलित है वही भाषा बोलते थे। इन लोगोंमें नागरी अक्षर प्रचलित था।

तक्षशिलाका दृश्य अत्यन्त रमणीय है। राजधानीके उत्तर-पश्चिम भागमें नागराज एलापत्रका सरोवर है। इस सरोवरका जल अत्यन्त स्वच्छ है। तरह तरहके कमलके फूल सरोवरकी शोभाको बढ़ा रहे हैं। सरोवरके दक्षिण पूर्वमें अशोकनिर्मित गह्वर है। प्रवाद है, कि इस गह्वर (गुफा) के चारों ओर १०० पद तककी जमीन भूकम्पमें कभी कंपती नहीं है। शहरके उत्तरमें अशोकने एक स्तूप निर्माण किया था। पर्वके दिनमें नागरिकगण स्तूपको पुष्पादिसे आच्छादित और आलोकित करते थे।

पण्डितोंके मतानुसार तक्षवंशके राजाओंने वितस्ता नदीके किनारे तक्षशिला राज्य स्थापन कर बहुत दिनों तक स्वाधीनतासे वहां राज्य किया था। अलेकसन्दरके समयमें भी तक्षशिला स्वाधीन राज्य था। अलेकसन्दरने यहाँके राजाके साथ मित्रता की थी। महाराज अशोकके समय तक्षशिला उनके साम्राज्यभुक्त था। मौर्यवंशके राजाओंने कुछ काल तक यहाँ शासन किया था।

जब अशोक पञ्जाबके शासनकर्त्ता थे, तब तक्षशिला-नगरमें ही उनकी राजधानी थी। उनके पुत्र कुणाल यहां रहते थे। कनिंहमका कहना है, कि खृ॰ पू॰ शताब्दीके प्रारम्भमें तक्षशिला यूक्रेटाइडिस राज्यके अन्तर्गत था। १२६ ई॰ सन्के पहले अबर नामक शकगणने इस प्रदेशको अधिकार कर प्रायः एक शताब्दी तक यहाँ राज्य भोग किया था। बाद कूषाण-कुलोद्भव कनिष्क तलवारके बलसे इस प्रदेशके राजा हुए। इस समय उनके प्रतिनिधि शासनकर्त्तागण तक्षशिलामें राज्य करते थे। इन शासनकर्त्ताओंकी बहुतसी मुद्राए और उत्कीर्णलिपि शाहधेरी नगरमें मिली हैं। रवार्टस् साहबने जिस लिपिको पाया है, उसमें तक्षशिलाका नाम अङ्कित है।

ग्रीकका वर्णन पढ़नेसे मालूम पड़ता है, कि तक्षशिला नगरके चारों ओर ग्रीक शहरोंकी नाईं प्राचीर और शहरमें बहुतसी गलियाँ थीं। कार्टियसने नगरके एक सूर्यका मन्दिर, एक उद्यान और एक मनोहर सरोवरका उल्लेख किया है। उस समय नगरके बाहरमें भी एक बड़े बड़े स्तम्भोंसे घिरा हुआ मन्दिर था। ग्रीकके बाद बहुत काल तक तक्षशिलाका विवरण नहीं मिलता है। ४थी शताब्दीमें फाहियान इस राज्यमें आये थे। उन्होंने तक्षशिलाको चो-श-शि-लो कहा है। बुद्धदेवने इस स्थान पर अपना मस्तक किसी मनुष्यको दान दिया था। इसी कारण चीन-भ्रमणकारीने इस नगरका उक्त नाम रखा था। भारतीय बौद्धगण तक्षशिलाको तक्षशिर कहते हैं। ६३० ई०में युएन-चुयाङ्ग यहाँ आये थे। इस समय राजवंश विलुप्त तथा तक्षशिला काश्मीरके अधीन हो गया था। बौद्धमठकी संख्या कम नहीं थी; किन्तु थोड़े ही महायान मतावलम्बी उनमें वास करते थे।

इस नगरकी अवस्थितिके विषयमें बहुत मदभेद है। प्लिनी कहते हैं, कि प्राचीन तक्षशिला हस्तिना नगरसे ५५ मील दूरमें है। प्लिनीके वर्णनानुसार यह नगर सिन्धु नदसे दो दिनके रास्ते पर हार नदीके किनारे अवस्थित है। किन्तु चीनपरिव्राजकोंके भ्रमण-वृत्तान्तसे मालूम पड़ता है कि सिन्धु नदसे पूर्व दिशाकी ओर तीन दिन तक पैदल चलने पर इस नगरमें पहुँचते हैं। चीनकी लिपिके अनुसार कल-कसरैके निकटस्थ किसी स्थानमें तक्षशिला नगर था, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। जेनरल कनिंहम कहते हैं कि शाहधेरी प्राचीन तक्षशिला है। सभी प्राचीन लेखकोंने तक्षशिलाको धनाढ्य शहर बतलाया है।

तक्षशिलाकी प्रजा जब मगध-राज विन्दुसारके विरुद्ध विद्रोही हुई थी, तब विन्दुसारके आदेशानुसार सुसिमने आ कर यह नगर अवरोध किया था। किन्तु उनके अकृतकार्य होने पर अशोकके ऊपर इस कार्यका भार सौंपा गया। अशोकके आने पर तक्षशिलावासीने उनकी अधीनता स्वीकार की। महाराज अशोकके शासनकालमें तक्षशिलाकी आय २६ करोड़ रुपये की थी। शाहधेरी नगरका भग्नावशेष और स्तूपादि अभी भी इसके पूर्वगौरव और धनशालिताका पूर्ण परिचय दे रहे हैं।

तक्षशिलाका भग्नावशेष कई एक अंशोंमें विभक्त है, जो अभी भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं। ये दक्षिण-पश्चिमसे उत्तर-पूर्वमें विस्तृत हैं। दक्षिणकी ओर इनके नाम (१) वीर (२) हतियाल (३) शिर-कप-का-कोट (४) काछ कोट (५) बावरखाना और (६) शिर-सुख-का-कोट हैं। इस नगरके स्तूप, मठ इत्यादि अत्यन्त आश्चर्यजनक हैं। पञ्जावके अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा इस प्रदेशमें प्राचीन मुद्रा और पुराकीर्त्ति बहुत पायी जाती हैं। कच्छकोटके तब्रानलका निकटवर्ती स्थान बहुत उर्वरा है। ष्ट्रावो और प्लिनी दोनों कहते हैं, कि चारों ओर विस्तृत पर्वतके उपत्यका प्रदेश पर तक्षशिला अवस्थित है। शाहधेरी नगरकी अवस्थिति और इसके भग्नावशेषके साथ प्राचीन तक्षशिलाकी अवस्थिति और उसकी अट्टालिकाओंका सामञ्जस्य देखनेमें आता है। यहाँ जो शिलालेख पाया गया है, उसके पढ़नेसे भी यही प्रतीत होता है कि यही स्थान तक्षशिलाके नामसे प्रसिद्ध था। बौद्धग्रन्थमें लिखा है, कि बुद्धदेवने तक्षशिलाके अनेक आत्मोत्सर्गके कार्य किये थे, जिनका निदर्शन भी इस नगरमें पाया जाता है। इन्हीं सब कारणोंसे शाहधेरी नगर ही प्राचीन तक्षशिला है, ऐसा अनुमान किया जाता है।

यह पञ्जाब विभागके रावलपिण्डी जिलेके अक्षा० ३३° १७´ उ० और देशा० ७२° ४९´ पू०में अवस्थित है।

यह नगर अत्यन्त प्राचीन है। रामायणमें भी इसका उल्लेख है। यह नगर गन्धर्वोंकी राजधानी था। भरतने यह राज्य जय किया था। केकयभूपति युधाजित्ने इस राज्यको जीतनेके लिए जब रामचन्द्रजीसे अनुरोध किया, तब भरत गन्धर्वदेश अधिकार करनेके लिये भेजे गये। भरतने राज्यको जय कर अपने पुत्र तक्षको वहाँ स्थापन किया। रामायणमें तक्षशिलाको सिन्धुनदके उत्तरमें अवस्थित बतलाया है।

तक्षशिलादि (सं० पु०) तक्षशिला आदिर्यस्य, बहुव्री०। पाणिनिका गण। सोऽस्याभिजनः इस अर्थमें तक्षशिलाके उत्तर प्रथमान्त और षष्ठ्यन्तके उत्तर यथाक्रमसे अण् और घञ् होता है, तक्षशिला, वत्सोद्धरण, कैमेंदुर,

ग्रामणी, छगल, क्रोष्टुकर्ण, सिंहकर्ण, संकुचित, किन्नर, काण्डधार, पर्वत, अवसान, वर्वर और कंस ये ही तक्षशिलादिगण हैं। (पा ४।३।९३)

तक्षशिलावती (सं० स्त्री०) तक्षशिला विद्यते ऽस्याः तक्षशिला-मतुप्। मध्यादिभ्यश्च। पा ४।२।८६। वह जिसमें तक्षशिला हो।

तक्षा (सं० पु०) तक्षन् देखो।

तख़फ़ीफ़ (अ० स्त्री०) न्यूनता, कमी।

तख़मीनन् (अ० क्रि० वि०) अनुमानसे, अंदाजसे, अटकलसे।

तख़मीना (अ० पु०) अनुमान, अन्दाज।

तखरी (हिं० स्त्री०) तकड़ी देखो।

तख़लिया (अ० पु०) निर्जन स्थान, वह जगह जहां एक भी आदमी न हो।

तखीत (अ० स्त्री०) १ अन्वेषण, तलाशी, खोज। २ अनुसन्धान, जांच, तहकीकात।

तख्त (फा० पु०) १ वह आसन जिस पर राजा बैठते हैं सिंहासन। २ तख्तोंकी बनी हुई चौकी।

तख्त-इ-सुलेमान—१ काश्मीरका एक जिआरत। यह समुद्रपृष्ठसे ११२८५ फुट तथा चारों ओरके समतलसे हजार फुटसे ऊँचा है। यह अक्षा० ३१° ४१′ उ० और देशा० ७०° पू०पर श्रीनगरके पास ही अवस्थित है। इस पर्वतके शिखर पर चढ़ कर चारों ओर दृष्टिपात करनेसे सुन्दर उपत्यकाप्रदेश और उसके बाद तुषारमण्डित पर्वतश्रेणी देखी जाती है। पर्वतकी चोटी पर ज्येष्ठेश्वर देवका मन्दिर अवस्थित है, जो काश्मीरके मध्य सब मन्दिरोंसे प्राचीन है। प्रवाद है, कि अशोकके पुत्र जलोकने ईसाके ३२० वर्ष पहले यह मन्दिर बनवाया था। हिन्दूगण उस देवको शङ्कराचार्य कहते हैं। अभी यह एक मसजिदमें परिणत हो गया है।

२ पञ्जाब और अफगानिस्तानके मध्यवर्ती सुलेमान पर्वतकी सबसे ऊंची शाखा। इसकी दो चोटियाँ हैं, जिनमेंसे दक्षिणकी चोटी पर सुलेमनका तख़्त है। यह अत्यन्त ऊंची और दुरारोह है। दोनों चोटी क्रमशः ११३१७ और ११०७६ फुट ऊंची हैं। पर्वतकी चोटी पर चढ़नेसे चारों ओरका दृश्य अत्यन्त मनोहर लगता है। सबसे ऊंची चोटीसे प्रायः २ मील उत्तरमें पर्वतशीर्ष विस्तृत हो कर लगभग आध वर्गमील चौड़ी मालभूमिका आकार धारण किया है। पर्वतकी कई जगह तरुलताशून्य और प्रस्तरमय है। उक्त मालभूमि और मैदानमें दो सरोवर हैं, जो वर्षाकालमें जलसे भर जाते और शीतकाल तक जल रह जाता है।

तख्तपुर—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत विलासपुर जिलेकी विलासपुर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २२° ८′ उ० और देशा० ८१° ५४′ ३०″ पू० पर विलासपुर नगरसे २० मील पश्चिम विलासपुर और मण्डलके रास्ते पर अवस्थित है। रत्नपुरके राजा तख्तसिंहने लगभग १६८० ई०में यह नगर स्थापन किया था, उनके बनाये हुए राजप्रासाद और शिवमन्दिरके भग्नावशेष देखे जाते हैं। यहाँ भी विद्यालय और डाकघर हैं। सप्ताहमें एक बार बाजार लगता है। यहाँ सब जगह परिष्कृत जल पाया जाता है।

तख्तरवाँ (फा० पु०) १ वह तख्त जिस पर राजा सवार हो कर निकलते हैं, हवादार। २ उड़नखटोला। ३ वह तख्त या बड़ी चौकी जिस पर व्याह-शादियोंमें बारातके आगे रण्डियाँ या लौंडे नाचते हुए चलते हैं।

तख़्ताऊस (फा० पु०) शाहजहान्‌का बनाया हुआ एक प्रसिद्ध राजसिंहासन। इसके बनानेमें ६ करोड़ रुपये लगे थे। तख़्तके ऊपर एक जड़ाऊ मोरकी मूर्ति थी। १७३९ ई०में नादिरशाह इस तख़्तको लूट कर ले गया।

तख़्तनशीन (फा० वि०) सिंहासनारूढ़, जो राजगद्दी पर बैठा हो।

तख़्तपोश (फा० पु०) १ वह चादर जो तख़्त या चौकी पर बिछाई जाती है। २ चौकी, तख़्त।

तख़्तबन्दी (फा० स्त्री०) १ तख़्तोंकी बनी हुई दीवार। २ तख़्तोंकी दीवार बनानेकी क्रिया।

तख़्तसिंह—जोधपुरके एक राजा। आप अहमदनगरके राजा रायसिंहके प्रपौत्र थे। अहमदनगरके अधिपति राजा पृथ्वीसिंहने इनके पुत्र यशवन्तसिंहको दत्तकपुत्ररूपसे ग्रहण किया था। पृथ्वीसिंहके मरने पर तख़्तसिंह, यशवन्तके प्रतिनिधिस्वरूप अहमदनगरका शासन करने लगे। उधर मारवाड़के राजा मानसिंहकी मृत्यु होने पर वहांकी महारानी और सामन्तोंने इन्हींको जोधपुर

का राजा बनाया। जब तख़्तसिंह मारवाड़के राजा हो गये, तो अहमदनगरवालोंने बखेड़ा शुरू किया। आखिर इनके पुत्र भी छ वर्ष बाद जोधपुर चले आये। इनका गवर्मेण्टसे कई बातोंमें मतभेद था। इनके शासनकालमें प्रजा विशेष सुखी न थी। (राजस्थान)

तख़्ता (फा० पु०) १ लकड़ीका चीरा हुआ बड़ा पटरा, पल्ला। २ लकड़ीकी बड़ी चौकी, तख़्त। ३ मुर्देको श्मशान ले जानेकी लकड़ीकी बनी हुई ठटरी, अरथी, टिखटी। ४ कागजका ताव। ५ जमीनका अलग अलग टुकड़ा, कियारी।

तख़्तापुल (फा० पु०) किलेकी खंदक पर बनाये जानेका पटरोंका पुल। इच्छानुसार यह हटा भी लिया जाता है।

तख़्ती (फा० स्त्री०) १ छोटा तख़्ता। २ लिखनेकी पट्टी। ३ किसी चीजकी छोटी पटरी।

तगड़ा (हिं० वि०) १ बलवान्, मजबूत, सबल। २ अच्छा और बड़ा।

तगड़ी (हिं० स्त्री०) तागड़ी देखो।

तगण (सं० पु०) छन्दोग्रन्थप्रसिद्ध त्रिवर्णात्मक गणविशेष, छन्दःशास्त्रमें तीन वर्णोंका समूह। इसमें पहले दो गुरु और तब एक लघु (ऽऽ।) वर्ण होता है।

तगदमा (अ० पु०) अनुमान, अन्दाजा, तखमीना।

तगना (हिं० क्रि०) तागा जाना।

तगपहनी (हिं० स्त्री०) जुलाहोंका एक औजार। इससे वे टूटे हुए सूत जोड़ते हैं।

तगमा (हिं० पु०) तमगा देखो।

तगर (सं० पु०) तस्य क्रोड़स्य गरः, ६-तत्। १ नदीसमीपजात वृक्षविशेष, तगरमूल, एक प्रकारका वृक्ष जो काश्मीर, भूटान, अफगानिस्तान और कोङ्कण देशमें नदियोंके किनारे होता है। काश्मीरमें यह तरवट और कोङ्कणदेशमें पिण्डीतगर नामसे प्रसिद्ध है। इसके पर्यायवाची शब्द-कालानुशारिवा, वक्र, कुटिल, शठ, महोरग, नत, जिह्म, दीपन, तगरपादिक, विनम्र, कुञ्चित, षण्ढ, नहुष, दन्तहस्त, वर्हण, पिण्डीतगरक, पार्थिव, राजहर्षण, कालानुसारक, चक्र और दीन। गुण—शीतल, तिक्त, तथा दृष्टिदोष, विषदोष, भूतोन्माद, भय-नाशक और पथ्य। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे, तगर दो प्रकारका है जिनमेंसे पहलेका नाम है कालानुसार्या तगर। पर्याय-कुटिल और मधुर दूसरेका नाम है पिण्डतगर। पर्याय-दन्तहस्ती और वर्हिण। ये दोनों प्रकारके तगर उष्णवीर्य, मधुररस, स्निग्ध लघु तथा विष अपस्मार, शूल, अक्षिरोग और त्रिदोषनाशक है।

साधारणतः नदीके समीपवर्ती वृक्षको पादुक वा तगरपादुक (Patrocarpus Dalburjiodus) कहते हैं। यह ब्रह्मदेशमें सिटाङ्ग नदीके पूर्वांशमें शलून तथा यञ्जाइन, उञ्जानी और न्याटारण नदीके किनारे भी थोड़ा बहुत पाया जाता है। दूसरा पिण्डीतगर (Taberneamontana Coronaria) कोङ्कणदेशमें बहुतायतसे होता है। किसी किसीका कहना है कि, जब तगरका नामान्तर दन्तहस्त है, तो जलकचौड़ी नामक नदीमें उत्पन्न होनेवाला कचीजातीय कोठरमध्यकुञ्चित नीलपुष्प शाक तगरपादुक है, क्योंकि इसका काण्ड दण्डाकृति और पत्ते पादुकाकृति हैं। किन्तु विचार कर देखनेसे मालूम होगा कि, उक्त शाकके पुष्प नीलवर्ण और कोठरमध्य हैं। इसलिए उसको नीलबुह्ला कहना ही सङ्गत है।

२ तगरमूलजात गन्धद्रव्यविशेष, उक्त वृक्षकी जड़ जिसकी गिनती गन्धद्रव्योंमें होती है। इसको चबानेसे दाँतोंकी पीड़ा जाती रहती है। ३ मदनवृक्ष, मैनफल। ४ पुष्पवृक्षविशेष, तगरपुष्प, इसमें बहुतसी पखड़ियाँ होती हैं और यह देखनेमें सफेद है। पर्याय—सितपुष्प, कालपर्ण, कटच्छद। (शब्दा०) यह पुष्प नारायणकी पूजाके लिए प्रशस्त है। (भारत १३।१०४।८५)

तगर (हिं० पु०) एक तरहकी शहदकी मक्खी।

तगर—टलेमीके भूगोल और पेरिप्लस वर्णित भारतवर्षका एक प्राचीन नगर। यह प्रतिष्ठान नगरके पूर्व दश दिनके पथ पर अवस्थित तथा वस्त्रप्रस्तुत करनेके लिये प्रसिद्ध था। किन्तु अभी इसकी वर्तमान अवस्थाका पूरा पूरा निर्देश करना कठिन है। यह नगर एक समय शिलाहारके राजाओंकी राजधानी था। पण्डित भगवानलाल इन्द्रजी कहते हैं, पूना जिलेका वर्त्तमान जुन्नार नगर ही प्राचीन टलेमीवर्णित तगर है। इसका कारण बतलाते हुए उन्होंने कहा है कि जुन्नार नगरकी प्राचीन शिलालिपि

और मन्दिर गुहादि द्वारा ही यह बहुत प्राचीन है जैसा स्पष्ट अनुमान किया जाता है। फिर यह बहुत प्राचीन कालमें भी वाणिज्यका स्थान कह कर विख्यात तथा शिलाके राजभवनके निकट अवस्थित था। शिलाभवनके नामानुसार ऐसा अनुमान किया जाता है, कि यह शिलाहारके राजाओंका बना हुआ है। शिलाहारगण भी तगर नगरको अपना आदिम वासस्थान मानते हैं। पुनः यह जुन्नार नगरके लेनाद्रि, मानभाड़ और शिवनेर इन तीन पर्वतों अर्थात् त्रिगिरिका मध्यवर्त्ती है। सुतरां त्रिगिरि शब्दके अपभ्रंशसे तगर होना असम्भव नहीं है। इस मतके विपक्षमें यह आपत्ति उठ सकती है, कि जुन्नार नगर पैठान (प्रतिष्ठान) नगरसे १०० मील पश्चिममें अवस्थित है, किन्तु टलेमी और पेरिप्लस-लेखक ऊपरमें कहते हैं, कि तगर नगर प्रतिष्ठान (पैठान) से १० दिनके रास्ते पर पूर्वको ओर अवस्थित है। फिर भी सम्प्रति निजामको राजधानी हैदराबाद नगरमें १७वीं शताब्दीका एक शिलालेख मिला है। उस शिलालेखमें तगर नगरवासीके एक ब्राह्मणको भूमिदान करनेको कथा लिखी है। इससे फिर वर्त्तमान हैदराबाद प्राचीन तगर नगरके जैसा अनुमान किया जाता है। टलेमीका भूगोल और पेरिप्लसका निर्दिष्ट अवस्थान भी हैदराबादके निकट पड़ता है *।

तगरपादिक (सं० क्ली०) तगरस्य पादो मूलमस्त्यत्र इति ठन्। तगर।

तगरपादी (सं० स्त्री०) तगरः गन्धद्रव्यभेदः पादे मूलेऽस्याः जातित्वात् ङीष्। तगरवृक्ष।

तगला (हिं० पु०) १ तकला। २ दो हाथ लम्बी सरकंडेका एक छड़। जुलाहे इससे साँथी मिलाते हैं।

तगसा (हिं० पु०) एक प्रकारकी लकड़ी। पहाड़ी लोग इससे ऊनको कातनेसे पहले साफ करनेके लिये पीटते हैं।

तगाई (हिं० स्त्री०) १ सिलाईका काम। २ सिलाईका भाव। ३ सिलाईकी मजदूरी।

तगा-गौड़—गौड़ ब्राह्मणोंकी एक शाखा। ये विशेषतः मेरठ, बिजनौर, मुरादाबाद, सहारनपुर बुलन्दशहर आदि जिलोंमें पाये जाते हैं। इस जातिके विषयमें भिन्न भिन्न विद्वानोंका भिन्न भिन्न मत है किन्तु उनमें जो सङ्गत प्रतीत होता है। इसीका यहाँ वर्णन किया जाता है—पहले ये लोग गौड़-ब्राह्मण ही थे, पीछेसे कृषिकार्य करने और ब्राह्मणकर्म भूल जानेसे लोगोंने इन्हें यज्ञोपवीतका सङ्केत दिलाते हुए कहा—"आप लोगोंने नाममात्रको यज्ञोपवीत रूप 'तागा' पहन रक्खा है।" तबसे लोग इन्हें 'तगागौड़' कहने लगे।

महामहोपाध्याय पण्डित लक्ष्मण शास्त्री लिखते हैं कि "गौड़-ब्राह्मणोंका एक भेद 'तगा' भी है। इनका ऐसा नाम इसलिए पड़ा कि ये लोग नाममात्रको तागा अर्थात् जनेऊ पहनते हैं, पर काम किसानोंका करते हैं और ब्राह्मणोंके कर्मोंसे अनभिज्ञ हैं। ये लोग न तो शास्त्र ही पढ़ते हैं और न पण्डिताई ही करते हैं। अन्य जातियाँ इन्हें अन्य ब्राह्मणोंकी तरह नमस्कार नहीं करती, वरन् राजपूत और बनियोंकी तरह 'राम राम' कहती हैं।" मि० आरबन आई० सी० एस० अपनी रिपोर्टमें (पृष्ठ २२०) लिखते हैं, कि "सर्वसाधारण जनसमुदायकी सम्मति है कि तगा और भूमिहार ये दोनों या तो ब्रह्मवंशीय हैं अथवा ब्राह्मण या क्षत्रिय इन दो वर्णोंके बीचमेंसे कोई एक होंगे।"

इस जातिकी आभ्यन्तरिक अवस्था पर लक्ष्य देनेसे मालूम होता है कि इनमें क्षत्रिय समुदाय भी सम्मिलित है, जैसे—चौहान, बरगला, चण्डेल, वैस आदि। इसी प्रकार इनमें कुछ ब्राह्मण वंश भी सम्मिलित हैं, यथा—सनाढ्य, दीक्षित, गौड़, वशिष्ठ आदि। इसलिए तगामात्रको ब्राह्मण मानना भूल है, किन्तु ब्राह्मणोंको ब्राह्मण और क्षत्रियोंको क्षत्रिय मानना उचित है।

मि० सी० एस० डब्ल्यु० सी० तथा राजा लक्ष्मणसिंहने लिखा है, कि, "एक राजाके यहां यह नियम था कि जो कोई ब्राह्मण पत्नी-सहित उनके राज्यमें आते थे वे बहुत दानदक्षिणासे सम्मानित किये जाते थे। लोभवश एक अविवाहित ब्राह्मण एक वेश्याको अपनी स्त्री बना कर उनके राज्यमें आया और दानदक्षिणा ले कर चला गया। पीछेसे यह भेद खुला, तो राजाने वेश्याको उसकी स्त्री बना दी और उससे उत्पन्न हुई सन्तानको नाममात्र-

---

* Bombay Gazetteer, Vol XViii, part 2, p. 211.

को जनेऊ वा तागा पहना दिया। यही सन्तान कालान्तरमें तगा-ब्राह्मण कहाने लगी।" कनिङ्हम साहब लिखते हैं, कि गौड़-ब्राह्मण और गौड़-तागा-ब्राह्मण दोनोंका आदि स्थान उत्तर कौशल (गोंडा जिला) है, न कि बंगाल प्रान्तस्थ गौड़देश।

इन सब प्रमाणोंको देखते हुए यही स्थिर किया जा सकता है, कि ये गौड़-ब्राह्मण अवश्य हैं, पर अपने आचार व्यवहारमें कुछ गिरे हुए हैं।

तगाड़ा (हिं॰ पु॰) लोहेका छिछला बरतन। इसमें मजदूर मसाला या चूना रख कर जोड़ाई करनेवालोंके समीप ले जाता है।

तगादा (हिं॰ पु॰) तकाजा देखो।

तगाना (हिं॰ क्रि॰) तागनेका काम किसी दूसरेसे कराना।

तगार (हिं॰ स्त्री॰) १ वह गड्ढा जिसमें उखली गाड़ी जाती है। २ चूना, गारा इत्यादि ढोनेका लोहेका छिछला बरतन। ३ हलवाइयोंका मिठाई बनानेका मिट्टीका बरतन।

तगारी (हिं॰ स्त्री॰) तगार देखो।

तगियाना (हिं॰ क्रि॰) तागना देखो।

तगीर (हिं॰ पु॰) परिवर्त्तन, बदली।

तगीरी (हिं॰ स्त्री॰) तगीर देखो।

तघार (हिं॰ स्त्री॰) तगार देखो।

तघारी (हिं॰ स्त्री॰) तगार।

तङ्क (सं॰ पु॰) तक-अच्। १ पाषाणभेदनास्त्र, पत्थर काटनेको टाँकी। २ दुःख द्वारा जीवनधारण। ३ प्रिय विरहके लिये सन्ताप, वह दुःख जो किसी प्रियके वियोगसे हो। ४ भय, डर। ५ परिधेयवसन, पहननेका कपड़ा।

तङ्कन (सं॰ क्ली॰) तक भावे ल्युट्। कष्ट द्वारा जीवनधारण।

तङ्का—मुद्राविशेष, एक प्रकारका सिक्का। यह संस्कृत टङ्क शब्दसे उत्पन्न हुआ है। पहले भारतवर्ष, तुर्किस्तान प्रभृति देशोंमें तङ्का प्रचलित था। अभी भी तुर्किस्तानमें तङ्का या तङ्गा नामक मुद्रा प्रचलित है। मुसलमान राजाओंके समय १४वीं शताब्दीमें सोने और चाँदीका तङ्का ही व्यवहृत होता था। सम्प्रति तङ्का और टङ्काके बदले रुपया प्रचलित हुआ है। अभी रुपया जिस अर्थमें व्यवहृत होता है, एक समय तङ्का शब्द भी उसी अर्थमें प्रचलित था।

वर्द्धमान प्रभृति राजसरकारमें अवसरप्राप्त कर्मचारी, सैनिक, अध्यापक, सभापण्डित ब्राह्मणपण्डितको जो वृत्ति दी जाती है, उसे भी तङ्का कहते हैं।

तङ्गण (सं॰ पु॰) १ भोटदेशीय अश्व, भोट देशका घोड़ा। घोड़ा देखो।

२ समस्त प्रधान पुराणवर्णित एक प्राचीन जनपद। यह वर्त्तमान अफगानिस्तानके निकट अवस्थित है। आर्यावर्त्त देखो।

तचाना (हिं॰ क्रि॰) तप्त करना, जलाना, तपाना।

तच्छील (सं॰ त्रि॰) तत् शीलं यस्य, बहुव्री॰। तत्-स्वभावविशिष्ट, जो फलकी अपेक्षा न करके स्वभावके अनुसार काम करता है।

तज (हिं॰ पु॰) कोचीन, मलवार, पूर्व बंगाल, खासियाकी पहाड़ियों और ब्रह्मदेशमें होनेवाला एक प्रकारका सदाबहार पेड़। यह तमाल और दारचीनीकी जातिका मझोले आकारका होता है। यह सिर्फ भारतवर्षमें ही नहीं होता वरं चीन, सुमात्रा और जावा आदि स्थानोंमें भी होता है। वर्षाके बाद जहाँ कड़ी धूप पड़ती है वहाँ यह पेड़ बहुत जल्द बढ़ता है। कोई कोई इसे और दारचीनीके पेड़को एक ही मानता है, पर यथार्थमें यह उससे भिन्न है। इसी वृक्षका पत्ता तेजपत्ता और तज (लकड़ी) इसकी छाल है। इसमें सफेद सुगन्धित फूल लगते हैं। इसके फल करौंदेसे होते हैं। फलसे जो तेल निकलता है उससे इत्र तथा अर्क बनाया जाता है। यह वृक्ष प्रायः दो वर्ष तक जीवित रहता है। विशेष विवरण त्वच् शब्दमें देखो।

तज़किरा (अं॰ पु॰) चर्चा, ज़िक्र।

तजगरी (फा॰ स्त्री॰) रन्दा तेज करनेकी लोहेकी पटरी। यह दो अंगुल चौड़ी और लगभग डेढ़ बालिश्त लम्बी होती है।

तजना (हिं॰ क्रि॰) त्यागना, छोड़ना।

तजरबा (अ॰ पु॰) १ परीक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान, उपलब्ध ज्ञान, अनुभव। २ किसी चीजका ज्ञान प्राप्त करनेकी परीक्षा।

तजरबाकार (हिं॰ पु॰) वह जिसने अनुभव किया हो।

तजरबाकारी (हिं॰ स्त्री॰) अनुभव, तजरबा।

तजरुबा (हिं॰ पु॰) तजरबा देखो।

तजरुबाकार (हिं॰ पु॰) तजरबाकार देखो।

तजरुबाकारी (हिं॰ स्त्री॰) तजरबाकारी देखो।

तजवीज़ (अ॰ स्त्री॰) १ सम्मति, सलाह, राय। २ निर्णय फैसला। ३ प्रबन्ध, इन्तिजाम।

तजवीजसानी (अ॰ स्त्री॰) एक ही हाकिमके सामने होनेवाला पुनर्विचार।

तज्ज (सं॰ त्रि॰) ततो तस्मात् जायते जन्-ड। १ उसीसे उत्पन्न, उसीमें लगा हुआ। २ शीघ्र, हठात्, तुरन्त।

तज्जलान् (सं॰ त्रि॰) ततो जायते जन-ड, तस्मिन् लीयते ली-ड, तेन तज्जलेन अनिति अन्-क्विप्। उसीसे उत्पन्न, उसीमें लीन और उसीमें अवस्थित पदार्थविशेष, अर्थात् ब्रह्म। ब्रह्मसे यह जगत् उत्पन्न हुआ है और उसी पर रहता है, बाद अन्तमें उसीमें लीन हो जायगा।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत्।" (छन्दो॰)
'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति,
यत् प्रविशन्ति अभिसविशन्ति॥" (श्रुति)

जहांसे ये समस्त भूत जन्मते, जहांसे जीवन धारण करते और अन्तमें जहां लीन हो जाते हैं, वही ब्रह्म है।

"यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये॥" (स्मृति)

आदि सर्गकालमें जहांसे समस्त भूत उत्पन्न हुए हैं और युगक्षय होने पर जिसमें लीन हो जायगी, वही ब्रह्म है। ब्रह्म देखो।

तज्जी (सं॰ स्त्री॰) तं निन्दितं जवते जु-क्विप्, गौरा॰ ङीष्। हिङ्गुपत्रीवृक्ष।

तज्ज्ञ (सं॰ त्रि॰) १ तत्त्वज्ञ, जो तत्व जानता हो। २ ज्ञानी।

तञ्जोर (तञ्जावुर)—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत अङ्गरेज शासनाधीन एक जिला। यह अक्षा॰ ८° ४९′ से ११° २५′ उ॰ और देशा॰ ७८° ४७′ से ७९° ५२′ पू॰में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ३७१० वर्गमील है। इसके उत्तरमें कोलरुण नदी, त्रिचिनापल्ली और दक्षिण अर्काटसे इसको पृथक् करती है पूर्व और दक्षिण पूर्वमें बङ्गोपसागर दक्षिण-पश्चिममें मदुरा जिला और पश्चिमें पुदुकोट्ट राज्य तथा त्रिचिनापल्ली जिला अवस्थित है। तञ्जोर जिला दक्षिण कर्णाटका एक अंश है। तञ्जोर नगर जिलेका सदर है जो कावेरी नदीके दहिने किनारे पड़ता है।

यह जिला मन्द्राज प्रदेशका उपवनस्वरूप है। इसका उत्तर भाग बहुजनाकीर्ण तथा असंख्य नारियलके कुञ्जसे शोभित है। कावेरी नदीके विस्तीर्ण डेल्टेमें बहुत धान उपजता है। अनेक पयःप्रणाली इस खण्डको जालकी नाईं ढके रहती हैं। इन खाड़ियोंके द्वारा बड़ी आसानीसे शस्यक्षेत्र सींचे जा सकते हैं।

तञ्जोर नगरके दक्षिण-पश्चिमांश कुछ ऊँचा है, किन्तु समस्त जिलेके मध्य कहीं भी पहाड़ नहीं है। उपकूल भागमें बालुकास्तूप और उसके बादही सामान्य जङ्गल है। केवल कालीमीर अन्तरीपसे अद्रमपत्तन अन्तरीप तक एक विस्तीर्ण लवणाक्त जलाभूमि देखी जाती है। यहां अधिक पत्थर नहीं मिलते हैं।

दक्षिण भागमें उपकूलसे प्रायः आध मील दूर जमीनसे दो गज नीचेमें पत्थरका स्तर निकला है। यह पत्थर नरम होने पर भी घर बनानेमें उपयोगी है। नग्नपत्तनके दक्षिणमें मट्टीके नीचे सीप, शङ्ख और घोंघेका विस्तीर्ण स्तर खोदा हुआ है। इस स्तरके ऊपरी भागमें बहुत दिनोंसे सञ्चित कोमल मिट्टी पड़ी हुई है। इस तरह सीपके स्तरोंमेंसे कुछ अत्यन्त प्राचीन और कुछ आधुनिकके जैसा मालूम पड़ता है। यहांकी सब जमीन उर्वरा नहीं है, केवल जलसिञ्चनका अच्छा बन्दोबस्त रहनेसे ही शस्यादि यथेष्ट उपजते हैं। डेल्टाके सिवा ऊँची भूमिकी मट्टी लोहितवर्ण और कृष्णवर्णकी है जहां कपासकी फसल अच्छी होती है और कहीं कहीं बालुकामय हल्की मट्टी है। पीले रङ्गकी क्षार मट्टी भी देखी जाती, जो बहुत अनुर्वर होती है।

जिलेका उपकूल भाग प्रायः १४० मील है। उपकूल भागमें ऐसी भीषण तरङ्ग आती है कि जहाज इत्यादि वहाँ आसानीसे जा नहीं सकते।

चावल ही यहांके अधिवासियोंका प्रधान खाद्य है। कृत्रिम उपायसे जल सींचने पर धानकी फसल अच्छी

होती है। सुतरां डेल्टेकी समतल भूमिमें तथा ऊंची भूमिमें केवल बड़े बड़े तालाबके निम्नस्थानमेंही धानकी खेती होती हैं। प्रधानतः कार और पिशानम् नामक दो प्रकारके धान उपजाये जाते हैं। कार धान जेठ मासमें बोया जाता और कार्तिक मासमें काटा जाता है। पिशानम् धान आषाढ़में बोते और माघ मासमें काट लेते हैं।

रब्बी-फसल यहाँ बहुत कम होती है। चेना, बाजरा, कंगनी और उरद अधिक उपजते हैं। जिलेके पश्चिम भागमें ऊँची जमीन पर चेना और उर्द यथेष्ट होते हैं। डेल्टेमें जहाँ जल सींचनेकी सुविधा नहीं है इस तरहकी भूमिमें अथवा धानके खेतमें धान काटनेके बाद उक्त फसलकी खेती होती है।

तञ्जोरमें सागसब्जी बहुत मिलती है। गृहसंयुक्त उद्यान और नदीतीर प्रभृतिमें मूली, प्याज और आलू तथा तरह तरहके साग उत्पन्न होते हैं। धनियाँ, सौंफ आदि मसाले भी यहाँ बहुत होते हैं।

इस जिलेके डेल्टा विभागमें केला, पान, तमाकू, ईख इत्यादि यथेष्ट उपजती हैं। ऊँची भूमिमें सन और पटसन (पाट) भी देखे जाते हैं। घरके समीपकी परती जमीन तथा नदी किनारे ही प्रायः तमाकूकी खेती होती है। इसके सिवा जिलेके दक्षिण-पूर्व प्रान्तमें कालीमोर अन्तरीपके निकट बालू जमीनमें भी तमाकू उपजता है। तमाकूके पत्ते मोटे तथा उनकी गन्ध बहुत कड़ी होती हैं। ये प्रायः नास अथवा पानके साथ व्यवहृत होते हैं। यहाँ तमाकू ही प्रधान वाणिज्य-द्रव्य है। प्रतिवर्ष अधिक परिमाणमें तमाकू त्रिवाङ्कुर और ष्ट्रेटस्सेट्लमेण्ट प्रभृति स्थानोंमें भेजे जाते हैं। कपास भी यहाँ कुछ कुछ उपजती है। जिलेका दक्षिण पश्चिमांश छोड़ कर दूसरी सब जगह आम, नारियल, इत्यादिके वृक्ष बहुत सुगमतासे उपजते हैं। दक्षिण-पश्चिम भागमें पतरीली मट्टी रहनेसे वहाँ कोई अच्छे पेड़ नहीं उगते हैं।

अधिवासियोंमेंसे अर्द्धेक भू-सम्पत्ति शून्य तथा श्रमजीवी हैं। इनमेंसे प्रायः ३ अंश कृषिकार्यमें नियुक्त रहते हैं। ये प्रधानतः पल्लार तथा परिया जातिके हैं और किसी न किसी गृहस्थके खेतमें चिरस्थायी रूपसे काम करते हैं। शेष नीच श्रेणीके हिन्दू हैं और मरवर प्रभृति कावेरी नदीके दक्षिणस्थ प्रदेशसे इस जिलेमें आये हुए हैं।

डेल्टा भागमें जहाँ नदीकी बाढ़से जमीन डूब जाती है, वहाँ कीचड़ और रेतीली मिट्टी जम जाती है, जिससे उत्तम खादका काम निकलता है। किन्तु ऊँची भूमिमें तथा जहाँ खाड़ी इत्यादिसे जल सींचा जाता है, वहाँ खादका प्रयोजन पड़ता है। सचराचर उस तरहकी जमीन मवेशीका गोबर दे कर उर्वरा बनाई जाती है। इसके सिवा सड़ा पचा उद्भिज, खार, कूड़ाकरकट आदि सार रूपमें व्यवहृत होता है।

तञ्जोर जिलेमें स्वभावतः जल अधिक होता है। इसके अलावा अङ्गरेज अधिकारके पहलेसे ही अनेक खाड़ी रहनेके कारण खेतमें जल सींचनेकी और भी अच्छी सुविधा हो गई है। उत्तरी सीमामें प्रवाहित कोलरुण नदी बहुत छिछली रहनेसे इसका जल उतना अधिक काममें नहीं लाया जाता है।

इस जिलेमें बहुतसी नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त खाड़ी द्वारा भी जमीन भलीभाँति सींची जाती है। त्रिचिनापल्लीसे ८ मील पूर्वमें कावेरी नदी, तञ्जोर जिलेमें प्रवेश कर कई एक शाखा-प्रशाखाओंमें विभक्त हो कर उत्तरकी ओर चली गई है। इसी प्रदेशको कावेरी नदीका डेल्टा कहते हैं, यहाँ धान बहुत उपजता है। जिलेके पश्चिम भागमें कोलरुण और कावेरी नदी परस्पर अत्यन्त निकटवर्ती हैं। उस जगह कोलरुणका गर्भ कावेरी नदीके अपेक्षा प्रायः ८।१० फुट ऊँचा है। अतः बहुत कम संयोग पानेसे ही कावेरी नदीका सब जल कोलरुण नदीमें आ सकता है। इस आशङ्काको दूर करनेके लिये २री शताब्दीमें चोलवंशके किसी राजाने उस स्थान पर शाखा कावेरी नदीके किनारे एक बड़ा पक्का बाँध तैयार किया है, इसी कारण इसको तञ्जोरका उर्वरतारक्षक बाँध कहते हैं यह बाँध पत्थरका बना हुआ है। इसकी लम्बाई १०८० फुट चौड़ाई ४० से ६० फुट और ऊँचाई १५ से १८ फुट है। १८३६ ई०में कोलरुण शाखाके ऊपर एक आनिकट प्रस्तुत हुआ. इससे

कावेरीको शाखाका जल बहुत बढ़ जानेसे १८४५ ई०में कावेरीके ऊपर एक दूसरा आनिकट बनाया गया। यह कोलरुणके निकट ७५० गज तथा कावेरीके निकट ६५० गज लंबा है। शेषोक्त दो आनिकट द्वारा तञ्जोरमें जलागम सम्पूर्ण रूपसे आयत्ताधीन किया गया है। कोलरुणके ऊपर आनिकट हो जानेसे इसका जल बहुत कम जाता है। पहले जो जमीन इसके जलसे सींची जाती थी, अभी उतनी दूर तक इसका जल नहीं पहुंचता है। इसके प्रतिकारके लिये पूर्वमें आनिकटसे ७० मील नीचे एक दूसरा आनिकट बनाया गया है। इस समय कोलरुणसे दो खाड़ी काट कर एक आर्कट और दूसरी तञ्जोर नगर तक ले गये हैं। उत्तरी खालको उत्तर-रजनवायाखाल और दक्षिणी खालको दक्षिण-रजनवायाखाल कहते हैं। इसके सिवा और भी कई एक खाड़ी खोदी गई हैं। उक्त खाड़ियोंसे फिर शाखा प्रशाखा निकाल कर बहुविस्तीर्ण प्रदेशमें जल सींचा जाता है। जो कुछ हो, धीरे धीरे इस जिलेकी उन्नति हो रही है। कहना नहीं पड़ेगा, कि नदीद्वारा ही प्रायः ९० अंश शस्यक्षेत्रमें जल पहुंचाया जाता है। बहुत थोड़ी जमीन तालाब या वृष्टिजलके ऊपर निर्भर है।

तञ्जोरमें बाढ़, अनावृष्टि प्रभृति दैवदुर्विपाक प्रायः नहींके बराबर है। समुद्रके किनारे बालूका ऊंचा पहाड़ रहनेसे तूफानद्वारा उत्पन्न सागरतरङ्ग जिलेमें प्रवेश नहीं कर सकती है। पूर्व भागकी जमीन भी किनारेकी ओर ढालू रहनेसे नदी वा वर्षाका जल सहजहीमें निकल जाता है। सुतरां जल जमा हो कर देशको प्लावित नहीं करता है।

व्यवसाय-बाणिज्य—तञ्जोरमें सब जगह जाने-आनेको विशेष सुविधा है। दक्षिणभारतीय रेलपथको दो शाखायें इसके मध्य हो कर गई हैं। एक शाखा त्रिचिनापल्लीसे उपकूल होती हुए नग्नपत्तन नगर और दूसरी तञ्जोर नगरसे बहिर्गत हो कर मन्द्राजकी ओर चली गई है। जिलेके मध्य प्रायः १२२३ मील लम्बा, चौड़ा और नदी खाड़ी आदिके ऊपर सेतुयुक्त रास्ता है। एक ३२ मील लम्बी खाड़ी हो कर नाव इत्यादि जाती आती हैं। उन नावों पर विशेष कर वेदारण्यम् नामक स्थानका उत्पन्न लवण लादा जाता है।

शिल्पके मध्य तञ्जोरके भिन्न भिन्न धातुके तार, रेशमी कपड़ा, कार्पेट (गलीचा) तथा काठकी बनी हुई वस्तु प्रधान हैं। सूती कपड़ा और सूत, यूरोपसे कई तरहके धातु, स्ट्रेटस्सेट्‌लमेण्टस् और सिंहलद्वीपसे सुपारी प्रभृतिकी आमदनी होती है। रफ्तनी द्रव्योंमें चावल ही प्रधान है।

तञ्जोरमें वृष्टिपात करमण्डल-उपकूलके अन्यान्य स्थानोंकी नाईं सब वर्ष एकसा नहीं है। ज्यैष्ठ माससे दक्षिण-पश्चिम मौसम वायु आरम्भ हो कर भाद्र मास तक प्रबल रहती है। इस समय वर्षा बहुत कम होती है और जब कभी होती भी है तो दो घण्टेसे अधिक काल तक नहीं ठहरती। आश्विन वा कार्तिकसे पौष मास तक उत्तर पूर्व वायु बहती है। इस समय वृष्टि पहलेसे अधिक और बहुत देर तक रहती है। तब वार्षिक-वृष्टिपात क्रमशः १५ और २५ इंच होता है। प्रायः सब मासमें वृष्टि होती किन्तु भादोंसे अगहन मास तक ही सबसे अधिक होती है। चैतसे जेठ तकका समय ग्रीष्मकाल रहता है। तापांश फाल्गुनमें प्रायः ८२°, ग्रीष्मकालमें प्रायः १०४° तथा शीतकालमें ६४° तक हुआ करता है।

आँधी मेह आदि अक्सर होता रहता है। तूफानके समय नाव जहाज इत्यादि जिलेके दक्षिणस्थ पक्क उपसागरमें ठहरते हैं।

तञ्जोरमें कोई भी रोग क्यों न हो, देश भरमें फैलता नहीं है। पहले यहाँ पीलपा (पैर फूल जाना) रोगका बड़ा प्रादुर्भाव था, अभी यह कुम्भकोनम् तक फैल गया है। स्वास्थ्यकी ओर सभीकी दृष्टि आकर्षित होनेसे यह रोग प्रायः विलुप्त हो रहा है। ज्वर, वसन्त और हैजा रोग ही संक्रामक हो जाता है। जिले भरमें प्रायः ३८ औषधालय हैं। जिनमें अनेक लोग विना व्ययके चिकित्सित होते हैं। जिलेके मध्य ५ म्युनिसपालिटि हैं।

यहाँकी लोकसंख्या प्रायः २२४५०२८ है, जिनमेंसे हिन्दुओंकी संख्या अधिक है। अधिवासियोंमें वेलियर (मजूर), वेल्लनर (कृषक), परिया, ब्राह्मण, शेम्बड़वन (धीवर), इदैयर (मेषपालक), कम्मनर (कारीगर), कैकनार (ताँती), सतानी, (मिश्रजाति), शानच (पासी), सेठी

(बणिक्), अम्बट्टन् (नापित), वेन्नान (धोबी), कुशवन (कुम्हार), क्षत्रिय, कणक्कन (लेखक) प्रभृति प्रधान हैं। मुसलमानगण शेख, सैयद, मुगल पठान, आबर, गब्बर प्रभृति सम्प्रदायमें विभक्त हैं। इनके अलावा ईसाई और जैन तथा थोड़ी संख्यामें अन्यान्य जाति वास करती हैं।

तञ्जापुरी-माहात्म्यमें तञ्जावुर (तञ्जोर)की उत्पत्तिका विवरण इस तरह लिखा है—तञ्जान नामक एक राक्षस तञ्जावुरमें बहुत ऊधम मचाया करता था। अधिवासियोंको दुःखित देख विष्णुभगवान्ने इस राक्षसको वध किया। राक्षसने मरते समय विष्णुसे प्रार्थना की थी, कि यह नगर मेरे ही नामसे प्रसिद्ध हो। विष्णु भगवान्ने "वैसा ही होगा" ऐसा कह कर प्रस्थान किया। उसी राक्षसके नामसे संस्कृत नाम तञ्जापुर और तामिल तञ्जावुर पड़ा है।

बहुत पहलेसे ले कर १५०० ई० तक चोलराजाओंने यहाँ राज्य किया, किन्तु तञ्जावुर ठीक किस समय राजधानीके रूपमें परिणत हुआ था, उसका निर्णय करना कठिन है। चोलराजाओंने त्रिशिरापल्लीके निकट वरेयुर नामक स्थानमें तथा इसके ध्वंस होनेके बाद कुम्भघोणम्में राजधानी स्थापन की थी।

तञ्जावुरके बृहदीश्वर महादेवके मन्दिरमें उत्कीर्ण अनुशासनसे पता चलता है, कि राजा कुलोत्तुङ्गने यह अनुशासन प्रदान किया था। अतएव यह अनुमान किया जा सकता है, कि राजा कुलोत्तुङ्ग चोल अथवा उनके पिता तञ्जावुरमें राजधानी उठा लाये थे। शायद १०२३से १०८० ई०के किसी समय यह घटना हुई होगी।

डाक्टर बुरनेल साहबने चोलराजवंशकी जो तालिका प्रस्तुत की हैं, उससे मालूम होता है, कि द्वितीय कुलोत्तुङ्ग चोल ११२८ ई०में तञ्जावुर-सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उनके शासनकालसे ही तञ्जावुरके चोलराजवंशका अधःपतन आरम्भ हुआ था तथा चोलराजलक्ष्मी क्रमशः चञ्चला हो गईं।

तञ्जावुर-वुरुवारि-चरित नामक हस्तलिपिके पढ़नेसे मालूम होता है, कि चोलवंशीय शेष राजाका नाम वीरशेखर था। वे प्रभूत पराक्रमशाली थे। त्रिशिरापल्ली और मधुरापुरी इन्हींके समयमें तञ्जावुरमें मिलाये गये। मधुरापुरीके सिंहासनच्युत राजा चन्द्रशेखरने विजयनगरके राजासे सहायता प्रार्थना की। विजयनगराधिपति कृष्णरायने उनको मधुरापुरीमें पुनः स्थापन करनेके लिये कतियान-नाग नायक नामक सेनापतिके अधीन एक दल सैन्य भेजी। इधर वीरशेखर भी युद्धके लिये प्रस्तुत हुए। मधुरापुरीके निकट दोनों पक्षमें घमसान लड़ाई हुई, बाद तञ्जोरके राजाने अपना प्राण परित्याग किया। मधुरापुरी, त्रिशिरापल्ली और तञ्जावुर विजयनगरके अधीन हुए। १५३० ई०में अच्युतराय विजयनगरके सिंहासन पर बैठे। इनकी सालीके साथ सेवाप्पा नायकका विवाह हुआ। इस सम्बन्धके कारण उक्त वर्षमें अच्युतरायने सेवप्पा नायकको तञ्जावुर और त्रिशिरापल्लीके शासनकर्त्ता बना कर भेजा। उसीसे तञ्जावुरके नायक-राजवंशकी उत्पत्ति हुई। नायकराजगण पहले विजयनगरके अधीन ही राज्य करते थे। किन्तु १५६४ ई०में विजयपुरके राजासे विजयनगरके राजाओंका ध्वंस किये जाने पर उस समय १६६२ ई० तक उक्त राजाओंने स्वाधीनभावसे तञ्जावुरमें शासन किया था। इन राजाओंके समयमें अरुणतोङ्गा, पटुकोट्टै, कैलासबाई प्रभृति कई एक दुर्ग और देवमन्दिर निर्माण किये गये थे। नायकराजाओंके समय १६१२ ई०को पोर्त्तगीजोंने नम्मपत्तनमें तथा १६२० ई०में डिनमार्कके लोगोंने ट्रानकुइवर नामक स्थानमें निवासस्थान स्थापन किया।

जब नायकवंशके चौथे राजा विजयराघव तञ्जावुरके सिंहासन पर अभिषिक्त थे, तब मदुराके शोक्कनाथ नायकने तञ्जावुर पर आक्रमण करनेके छलसे राजकन्याका पाणिग्रहण करनेके लिये दूत भेजा। राजासे अग्राह्य किये जाने पर उन्होंने १६६० ई०में दलवाय वेङ्कटकृष्णप्पा नायकको तञ्जावुर जीतनेके लिये भेजा। सेनापति गोविन्द दीक्षितने उन्हें रोका, किन्तु दलवायने उन्हें पराजित कर तञ्जावुर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही वे राजभवनके समीप पहुंच गये। उस समय विजयराघव ध्यानमें निमग्न थे। ध्यान भङ्ग होनेके बाद जब उन्हें सब हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने अपने वीरपुत्रको बुला कर कहा, कि राजभवनकी सभी महि-

लाशोंको एक घरमें रख कर उसके चारों ओर बारूद संग्रह कर रखो और सङ्केत पाने पर उसमें आग लगा तुम तलवार हाथमें लिये युद्धके लिये बाहर रणभूमिमें निकल पड़ना। विजयराघव युद्ध करते करते मारे गये। इधर पुत्रने पिताका मृत्यु संवाद सुन कर अन्दर महलको बारूदमें आग लगा दी। तञ्जाबुर श्मशानभूमिमें परिणत हो गया। राजभवनके दक्षिण-पश्चिम-कोणमें यह दुर्घटना हुई थी। यह अंश अब भी उसी तरह भग्नावस्थामें रह कर पूर्व दुर्घटनाका स्मरण दिलाता है।

तञ्जाबुर जीते जाने पर शोक्यनाथनायकने एकस्तनपायी एलागिरिको वहाँका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। एलागिरि पहले शोक्यनाथके अधीनमें राज्य करने लगे; किन्तु कुछ कालके बाद उनके साथ मतान्तर हो जानेसे वे स्वाधीन हो गये। तञ्जाबुरका राजभवन बारूदसे उड़ाये जानेके पहले एक दाई विजयराघवके नाबालिग पुत्रको ले कर नग्नपत्तनमें भाग आई थी। वह बालकी किसी बनियेके घरमें भरणपोषण किया गया था। ५।७ वर्षके बाद विजयराघवके अन्यतम सेक्रेटरी वेनकन्ना नामक कोई नियोगी ब्राह्मण बालकका सन्धान पा कर स्वर्गीय राजाके कई एक आत्मीयवर्गोंकी सहायतासे उक्त बालक और दाईको साथ ले विजनगरको गये। जब विजापुरके सुलतानको पूरा ब्योरा मालूम हुआ, तब वे तञ्जाबुरके नायकोंके दुःखसे अत्यन्त दुःखित हो गये। इस समय शिवाजीके छोटे वैमात्र भाई एकोजी बिजापुरके सेनानायकके पद पर अधिष्ठित थे। एलागिरिको भगा कर विजयराघवके नाबालिग पुत्र सिंहमालदासको तञ्जाबुरके सिंहासन पर प्रतिष्ठित करनेके लिये विजापुरके सुलतानने एकोजीसे कहा। एकोजी जानते थे कि शोक्यनाथके साथ एलागिरिका विरोधभाव चल रहा है। अतएव उन्होंने शीघ्र ही आयमपट्टी नामक स्थानमें एलागिरिको पराजित कर सिंहमालदासको तञ्जाबुरके राजपद पर अभिषिक्त किया। वेनकन्नाने आशा की थी, कि सिंहमालके राजा होने पर उन्हें मन्त्रीका पद मिलेगा, किन्तु दाईके अनुरोधसे बनिया ही मन्त्री हुआ। इस पर वेनकन्ना नितान्त असन्तुष्ट हो कर एकोजीको राज्य ग्रहण करनेके लिये बारबार उसकाने लगा। पहले तो एकोजीने इस ओर तनिक भी ध्यान न दिया, किन्तु विजापुरके सुलतानका मृत्यु सम्वाद पा कर वे तञ्जाबुरको जीतनेकी इच्छासे ससैन्य पहुँच गये। वेनकन्नाने भी राजभवनमें सम्बाद दे दिया कि भारी विपत्ति आ पड़ी है। राजा इस घटनासे अत्यन्त भीत हो कर भाग चले। बिना खूनखराबीके तञ्जाबुर एकोजीके हाथ लगा। इस तरह तञ्जाबुरमें महाराष्ट्रीय राजवंश स्थापित हुआ। यह घटना शायद १६७४ ई०में हुई होगी।

एकोजीके अन्यतम पुत्र तकाजीके ५ लड़के थे। तकाजीकी मृत्युके बाद सबसे बड़े लड़के बाबासाहब राजसिंहासन पर बैठे। १७३६ ई०में उनकी मृत्यु होने पर उनकी स्त्री सुजानाबाई राज्यशासन करने लगीं। किन्तु कोहनजी-घाटगे नामक किसी सचिवने रूप नामकी किसी स्त्रीके पुत्रको एकोजीके २य पुत्र शरभोजीका उत्तराधिकारी कह कर स्थिर किया और किसी मुसलमान किलादारकी सहायतासे सुजानाबाईको राज्यसे भगा दिया। इस तरह वे रूपीके पुत्रके लिये सिंहासन-ग्रहण करनेमें समर्थ हुए। परन्तु अन्यान्य मन्त्रियोंने शीघ्र ही कोहनजीका यह षड़यन्त्र जान कर तकाजीके २य पुत्र शयाजीको राजपद पर अभिषिक्त किया। १७४० ई०में तकाजीके छोटे पुत्र प्रतापसिंह कई एक राजमन्त्रियोंकी सहायतासे शयाजीको भगा कर आप सिंहासन पर बैठे। १७४४ ई०में आर्काटके नवाबके साथ प्रतापसिंहकी दो बार लड़ाई छिड़ी। दोनों लड़ाइयोंमें पराजित हो कर प्रतापसिंहने नवाबको ७ लाख रुपयेका एक तमस्सुक लिख दिया।

१७४८ ई०में शयाजीने पुनः राज्य लौटानेके लिये सेण्टडेविड दुर्गके अंगरेज गवर्नरसे सहायता माँगी। प्रतापसिंहने आसन्नविपदको जान कर चुपकेसे अंगरेजोंके साथ इस शर्त पर सन्धि कर ली, कि यदि उन्हें राजपदसे च्युत न करें, तो वे देवकोट नामक दुर्ग तथा उपस्थित युद्धका आयोजन-व्ययस्वरूप ६ हजार पैगोडा (सिक्का) अंगरेजोंको और शयाजीके खर्चके लिये वार्षिक ४००० पैगोडा अर्थात् १४८००) रु० देंगे।

१७४८ ई०में प्रतापसिंहने चाँदसाहबके भयसे उन्हें ५८ लाख रुपयेकी एक दस्तावेज लिख दी। किन्तु कुछ

दिन बाद ही उन्होंने ३००० अश्वारोही और २००० पदातिक सैन्य मङ्कोजीके सेनापतित्वमें महम्मद अलीकी सहायताके लिये चाँदसाहबके विरुद्ध भेजी। महम्मद अलीने जयलाभ कर तञ्जावुरके राजाको पुरस्कारस्वरूप बकाया दश वर्षका पेशकश (नजर) छोड़ दिया और कोइलदी तथा लङ्गादु नामके दो प्रदेश भी दिये।

१७५३ ई०में प्रतापसिंहने मन्त्री शङ्कोजीके कुपरामर्शसे सेनापति मङ्कोजीको कार्यसे अलग कर दिया। मुरारिराव यह जान कर कोइलदी अधिकार कर तञ्जावुरकी ओर अग्रसर होने लगे। राजाने कोई उपाय न देख कर मङ्कोजीकी शरण ली। मङ्कोजीने महाराष्ट्रीय सेनापतिको मार भगाया।

१७५४ ई०में फरासीसी सेनानायकने तञ्जावुर राज्य लूट कर कोलरूणका बाँध काट दिया। प्रतापसिंहने अंगरेजोंकी सहायतासे पुनः कोलरूण नदीका बांध संस्कार कर लिया।

१७४९ ई०में प्रतापसिंहने चाँदसाहबको जो ५६ लाख रुपयेकी दस्तावेज लिख दी थी, वह फरासीसी गवर्नरके हाथ लगी। इस रुपयेको पानेके लिये फरासीसी गवर्नर काउण्ट लाली कई एक स्थान लूट कर तञ्जावुर दुर्गके सामने आ पहुँचे। इस समय उनकी बारूद और रसद कम गई। राहमें जाते समय प्रतापसिंहने उनका अनुसरण कर उन्हें राज्यसे बाहर निकाल भगाया।

महम्मद अली अंगरेजोंके साथ लड़ाईका खर्च चुकानेमें बहुत ऋणग्रस्त हो गये थे। उन्होंने नवाब हो कर ऋण-परिशोधकी कोई सुविधा न देखी। अन्तमें जब उन्हें मालूम पड़ा, कि प्रतापसिंह कई वर्षोंसे पेशकश नहीं देते हैं, तब उन्होंने सोचा, कि तञ्जावुरको खास अपने दखलमें लानेसे बहुत नगद रुपये मिल सकते हैं। यह सोच कर उन्होंने मन्द्राजके गवर्नरसे सहायता माँगी। उक्त प्रस्तावमें सहमत न हो कर उन्होंने राजाका बाकी पेशकश चूकानेके लिये कौंसिलके अन्यतम सदस्य जोसियाइ-डी-प्रेको भेजा। उन्होंने यह मीमांसा की, कि राजा प्रति वर्ष नवाबको ४ लाख रुपये पेशकश देंगे, बाकी पेशकश (२२ लाख रुपये) दो वर्षोंके मध्य पाँच दफेमें परिशोध करना होगा। यह सन्धि १७६२ ई०में हुई थी।

कावेरीके उत्तरी किनारे त्रिशिरापल्लीके निकट नेलूर नामक स्थानमें एक बाँध था। राजा प्रतापसिंहकी प्रार्थना और खर्चसे त्रिशिरापल्लीके शासनकर्त्ता महाशिजने उसे बनाया था। कभी उक्त शासनकर्त्ता और कभी राजाके खर्चसे उस बाँधकी मरम्मत होती रही। १७६४ ई०में उसका एक स्थान टूट गया। नवाबने उसकी मरम्मत न की और न तो राजाको ही उसे मरम्मत करनेकी अनुमति मिली। इस समय तुलजाजी तञ्जावुर (तञ्जोर)-के राजा थे। उन्होंने भयभीत हो कर अंगरेज गवर्नरकी सहायता ली। इस समयसे जब कभी बांधकी मरम्मत करनेका आवश्यक होता, तभी राजाको अंगरेजोंसे सहायता लेनी पड़ती थी।

इसके बाद हैदरअलीके तञ्जोर आक्रमण करने पर राजाने उन्हें प्रचुर धन दिया। १७६९ ई०में उनके साथ राजाकी एक सन्धि हुई। शिवगङ्गाके राजा ८ वर्ष पहले तञ्जोरकी जो सम्पत्ति ले गये थे, राजा तुलजाजीने १७७१ ई०में उसे पुनः अपने अधिकारमें किया। इस पर नवाब बहुत अप्रसन्न हुए। राजाके यहाँ दो वर्षका कर बाकी है, इसी छलसे तञ्जोर आक्रमण करनेमें वे कृतसङ्कल्प हुए। २३ सितम्बरको नवाबपुत्रने तञ्जोरका दुर्ग अवरोध किया, बाद २७ तारीखको राजाने बाध्य हो कर उनके साथ सन्धि कर ली। सन्धिपत्रमें यह शर्त रही, कि २ वर्षका बाकी पेशकश ८ लाख रुपये और युद्धव्यय-स्वरूप ३२॥ लाख रुपये नवाबको देवें और शिवगङ्गाके राजाकी जो सम्पत्ति ली गई है, उसे लौटा देवें; आर्णी, तिवानुर, इलाङ्गाद्य, और कैलदी छोड़ देने पड़ेंगे तथा उक्त ३२॥ लाख रुपये चुकानेके लिये मायावरम् और कुम्भवोणम् ये दोनों प्रदेश दो वर्षके लिये नवाबके अधिकारमें छोड़ देवें, राजा नवाबके मित्रके साथ मित्रता और शत्रुके साथ शत्रुता रखें। १७७१-७३ ई०का पेशकश फिर बाकी रह जानेसे नवाबने १७७३ ई०में अंगरेज गवर्नरके निकट तञ्जोरराज्यके विरुद्ध यह नालिश की, कि पेशकश खातेमें दश लाख रुपये बाकी रह गया है; राजा हैदरअली और महाराष्ट्रोंके साथ नवाब तथा अंगरेजोंके विरुद्धमें षड्यन्त्र कर रहे हैं। अंगरेज गवर्नरकी आज्ञासे सेनापति स्मिथने सित-

म्बर महीनेमें तञ्जोर आ कर राजा तुलजाजीको कैद कर लिया और नवाब तञ्जोरके खास अधिकारी हो गये।

डाइरेक्टरोंके निकट यह सम्वाद पहुंचने पर उन्होंने असन्तोष प्रकाश किया। वे बोले, कि १७६२ ई०की सन्धिके अनुसार अंगरेज गवर्मेण्ट तुलजाजीकी सहायता करनेमें बाध्य है। पेशकशके बाकी रह जानेसे राजाको कैद कर लेना मन्द्राज-गवर्नरने बहुत अन्याय किया है। उन्होंने पिगट साहबको मन्द्राजका गवर्नर नियुक्त कर यह आज्ञा दी, कि उन्हें तुलजाजीको सिंहासन पर पुनः अधिष्ठित करना होगा। राजा नवाबको वार्षिक ४ लाख रुपये पेशकश देंगे। मन्द्राज गवर्नरकी अनुमतिके अनुसार नवाबके साहाय्यार्थ राजा समय समय पर सैन्य-साहाय्य करेंगे और राजा अंगरेजके मित्र बने रहेंगे। एक दल अंगरेजी सेना तञ्जोरमें रह कर शान्ति रक्षा करेगी और उसका खर्च राजाको देना पड़ेगा। अंगरेजोंकी अनुमतिके बिना राजा किसीसे सन्धि-स्थापन नहीं कर सकते।

डाइरेक्टरोंके आदेशानुसार पिगट साहबने १७७६ ई०के ११ अप्रेलको तुलजाजीको तञ्जोरके सिंहासन पर अभिषिक्त किया। १२ अप्रेलको राजाने सन्धिपत्र पर अपना हस्ताक्षर किया। और अंगरेजी-सेनाके खर्चके लिये वार्षिक १४ लाख रुपये देनेको स्वीकार किया।

१७८१ ई०में हैदरअलीने तञ्जोरका दुर्ग छोड़ कर और सभी जगह ६ मास तक अपना अधिकार जमाये रखा था।

१७८७ ई०में तुलजाजीकी मृत्यु हुई। उन्होंने मरनेके पहले शरभोजी नामक किसी आत्मीय-पुत्रको दत्तक लिया था। किन्तु उनकी मृत्युके बाद उनके छोटे भाई दत्तक-शास्त्रसङ्गत नहीं है, यह अंग्रेजके निकट प्रमाण कर आप स्वयं राजा हो गये। तुलजाजीकी विधवा स्त्रीको वार्षिक ३ हजार और शरभोजीको ११ हजार पैगोडा (सिक्का) देना कबूल कर सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किया।

मन्द्राजमें रहते समय तुलजाजीकी विधवा स्त्रीने लार्ड कर्नवालिसके निकट दत्तकग्रहण शास्त्रसङ्गत है या नहीं इसका अनुसन्धान करनेके लिये आवेदन किया। बनारस (काशी) प्रभृति स्थानोंके पण्डितोंके मतानुसार देखा गया, कि दत्तकग्रहणमें कोई दोष नहीं है। डाइरेक्टरको यह बात मालूम होने पर, उन्होंने शरभोजीको राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त करनेका आदेश किया। मार्किस आफ वेलेसलीने १७९८ ई०में उक्त आदेशको कार्यमें परिणत किया।

राजकार्यमें शरभोजीकी अनभिज्ञता रहनेसे मन्द्राज-गवर्मेण्टने उनके बदले कुछ काल तक राज्यशासन किया था।

१७९९ ई०के २५ अक्तूबरमें जो सन्धि हुई, उसमें यह शर्त थी, कि वृटिशगवर्मेण्ट राजाके प्रतिनिधिस्वरूप तञ्जोर पर शासन करेगी। राजा दुर्गमें रह कर एक लाख पैगोडा और समस्त आयका ⅕ अंश मात्र पावेंगे। इस सन्धिके अनुसार तञ्जोर-दुर्गको छोड़ कर और सभी प्रदेश एक प्रकारसे वृटिशसाम्राज्यभुक्त हो गये थे। महाराष्ट्रवंशीय राजाओंने १२२ वर्ष तक यहां राज्य किया था।

शरभोजीके बाद उनके पुत्र २य शिवाजीने पितृपद पाया। शिवाजीने मरनेके पहले एक दत्तकपुत्र ग्रहण किया था। किन्तु मार्किस आफ डलहौसीने उस दत्तकको स्वीकार न कर १८५५ ई०में तञ्जावुर राज्यका अस्तित्व लोप कर दिया। राजपरिवारवर्गकी मासिक वृत्ति निर्द्धारित हुई थी।

अभी तञ्जोरकी पूर्वश्री जाती रही। दुर्ग कहीं कहीं टूट-फूट गया है। राजभवनकी भी अच्छी तरह मरम्मत नहीं होती है। रानियोंकी भूसम्पत्ति रिसीवरोंके हाथ लगी। इस सम्पत्तिकी वार्षिक आय १॥ लाख रुपये है। तञ्जोरका सरस्वती-भवन नामक पुस्तकालय सुरक्षित है। इस पुस्तकागारमें राजा शरभोजी बहुतसे हस्तलिखितग्रन्थ संग्रह कर गये हैं।

तञ्जोरमें वृहदेश्वर महादेवके मन्दिरके पश्चिम-उत्तर कोणमें सुब्रह्मण्य स्वामीका मन्दिर विशेष उल्लेखयोग्य है। इसकी गठन-प्रणाली बहुत अच्छी है। प्रसिद्ध मन्दिरके सामने जो प्रकाण्ड नन्दीकी मूर्ति है, उसके विषयमें एक प्रवाद सुना जाता है। नन्दीकी आकृति पहले बहुत छोटी थी। किसी समय उस मूर्तिकी इच्छा

हुई कि मैं शिवजीके आयतनसे बड़ी हो जाऊँ। यह सोच कर वह प्रतिदिन बढ़ने लगी। शिवजी भी नन्दी-से छोटे रहनेकी इच्छा न करते हुए दिनों दिन बढ़ने लगे। अर्चकगण यह देख कर बहुत संकटमें पड़ गये। अन्तमें उन्होंने नन्दीकी वृद्धि निवारण करनेके लिये नन्दीके पिछले भागमें एक बड़ी लोहेकी कील ठोंक दी उस दिनसे नन्दी और बढ़ न सकी। महादेव भी उसी अवस्थामें हैं। यह प्रवाद सत्य वा असत्य जो कुछ हो, किन्तु इस तरहका बड़ा मन्दिर, लिङ्ग और नन्दी-मूर्ति अन्यत्र देखनेमें नहीं आती।

हिन्दू राजाओंके शासनकालमें तञ्जोर सब प्रकारके शिल्प, वाद्ययन्त्र, स्वरविद्या, काव्यरचना और चित्रविद्याका केन्द्रस्वरूप था। अभी उक्त सभी विषय धीरे धीरे लोप होते जा रहे हैं। लेकिन अब भी तञ्जोरमें जो चित्र बनता है, वह अत्यन्त मनोहर दीख पड़ता है। हावभावमें यह कलकत्तेके आर्टिष्ट्‌ डिओंके चित्रकी अपेक्षा अनेक अंशमें श्रेष्ठ है।

२ मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत तञ्जोर जिलेका प्रधान उपविभाग और तालुक। यह अक्षा० १०° २६′ से १०° ५५′ उ० और देशा० ७८° ४७′ से १९° २२′ पू०में अवस्थित है। भू-परिमाण ६८८ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ४०७०३९ है। इसमें तञ्जोर, तिरुपदी, वल्लम और अयमपेतै नामके चार शहर तथा ३६२ ग्राम लगते हैं। दक्षिण भारतीय रेलपथ इस उपविभागके उत्तरमें प्रवेश कर तञ्जोर नगर होता हुआ पश्चिमको गया है। यहाँ सब अनाजोंसे धानकी फसल ही अच्छी होती है।

३ मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत तञ्जोर जिलेका प्रधान नगर और सदर। इसका प्रकृत नाम तञ्जावुर है। यह अक्षा० १०° ४७′ उ० और देशा० ७९° ८′ पू० पर दक्षिण भारतीय रेलपथके किनारे मन्द्राजसे २१८ मील और तुतीकोरिनसे २२६ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ५७८७० है, जिनमेंसे सैकड़े ८५ हिन्दू, ३६०० मुसलमान, ४७९६ ईसाई और १५४ जैन हैं।

यहाँ जिलेके जज, कलक्टर, मजिष्ट्रेट प्रभृति वास करते हैं। इस नगरमें म्युनिसपालिटी है।

यह नगर पहले दक्षिण प्रदेशके प्रबल पराक्रान्त हिन्दू-राजवंशकी राजधानी तथा राजनीति, धर्मनीति, विद्यानुशीलन प्रभृतिका केन्द्रस्थान था। यह स्थान प्राचीन हिन्दू राजाओंकी कीर्ति तथा पूर्वतन स्थापताके पुण्यका परिचायक है। यहांका मन्दिर भुवनविख्यात है और इसकी ऊँचाई १९० फुट है। इसके सिवा उस मन्दिरमें ही बहुतसे छोटे छोटे देवालय हैं। उनमेंसे किसी किसीकी गठनप्रणाली और निर्माणपारिपाट्य देखनेसे आश्चर्य खाना पड़ता है। मन्दिरकी देवमूर्ति वृष मूर्ति आदि भी विस्मयकर है।

तञ्जोरका भग्नावशिष्ट दुर्ग बहुत दूर तक फैला हुआ है। दुर्गके प्राचीरके अभ्यन्तर ही राजप्रासाद और नगर स्थापित है। राजप्रासादकी प्रकाण्ड अट्टालिकाओंमेंसे एकके ऊपर राजाओंका पुस्तकालय था। उसमें इतने संस्कृतग्रन्थ थे कि उतने और कहीं पाये नहीं जाते। मन्द्राजके सिभिलसर्भिसके भूतपूर्व डाक्टर वार्णेलने उन पुस्तकोंकी एक सूची बनाई है।

तञ्जोर नगर बारीक शिल्पकार्यके लिये विख्यात है। यहाँका रेशमी कार्पेट, नक्काशी करनेका पतला ताँबेका तार, तरह तरहके खिलौने इत्यादि अत्यन्त सुन्दर होते हैं। तञ्जोरसे ले कर पूर्वकी ओर समुद्र-किनारे नग्नपत्तन बन्दर तक तथा पश्चिममें त्रिचिनापल्ली तक रेलपथ द्वारा संयुक्त है।

तटंक (हिं० पु०) कर्णफूल, एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है।

तट (सं० क्ली०) तट-अच्। १ नदी प्रभृतिका कूल, किनारा, तीर। २ उच्चक्षेत्र, ऊँची जमीन। (पु०) ३ शिव। शिवको प्रधान देवता समझ कर उनका नाम तट रखा गया है। "नमस्तटाय तट्याय तटानां पतये नमः।"

(भारत १२.२८४।६६)

(त्रि०) ४ उच्छ्रित, उन्नत, उठा हुआ।

तटग (सं० पु०) तड़ाग पृषो० साधुः। १ तड़ाग, तालाब, सरोवर (त्रि०) तट गम-ड। २ तटगामी, तालाब पर जानेवाला।

तटस्थ (सं० त्रि०) तटे समीपे तिष्ठति स्था-क। १ समीपस्थित, समीप रहनेवाला। २ उदासीन व्यक्ति, निरपेक्ष,

जो किसीका पक्ष ग्रहण न करे। ३ तीरस्थ, किनारे पर रहनेवाला। ४ व्यस्त। ५ चमत्कृत, आश्चर्यान्वित विस्मित। (पु०) ६ लक्षणविशेष, किसी पदार्थका वह लक्षण जो उसके स्वरूपको नहीं वरन गुण और धर्मको ले कर कहा जाय। लक्षण देखो।

प्रत्येक वस्तु दो प्रकारके लक्षणों द्वारा समझी जा सकती है—एक स्वरूप-लक्षण और दूसरा तटस्थलक्षण।

किसी बातका अर्थ समझाते समय जिस विशेषणके कहनेसे विशेष कुछ मर्म न समझा जाय सिर्फ एक ही तरहका अर्थ समझ पड़े अर्थात् पहलेकी बातसे जिस अर्थका बोध हो दूसरी बार समझाने पर भी उतना ही समझ पड़े, उसको स्वरूपलक्षण विशेषण कहते हैं। एक उदाहरण दिया जाता है,—कलस और कुम्भ, इस जगह कुम्भ, कलसका स्वरूपलक्षण विशेषण हुआ, तथा कलस भी कुम्भका स्वरूपलक्षण विशेषण हो सकता है, कारण यहाँ कुम्भ शब्दके द्वारा कलसका वा कलस शब्दके द्वारा कुम्भका विशेष मर्म नहीं मालूम पड़ता। कुम्भ कहनेसे जितना ज्ञान होता है, कलस कहनेसे भी उतना ही समझ पड़ता है। कुछ विशेष ज्ञान नहीं होता। और भी एक दृष्टान्त दिया जाता है,—किसीने आपसे पूछा, "पोल क्या चीज है?" आपने कहा, "पोल शून्य पदार्थ है।" किन्तु इस शून्य शब्दसे पोलका कुछ मर्म नहीं मालूम हुआ। पोल कहनेसे पहले जितना ज्ञान हुआ था, शून्य कहनेसे भी उतना ही ज्ञान हुआ। अतएव शून्य शब्द पोलका स्वरूपलक्षण हुआ। यह तो हुआ स्वरूपलक्षणका वर्णन, अब तटस्थलक्षणका वर्णन किया जाता है। किसी अन्य वस्तुकी सहायतासे यदि अन्य किसी वस्तुका लक्ष्य किया जाय तो वैसे वाक्यको तटस्थलक्षण कहते हैं।

यह तटस्थलक्षण भी उक्त पोल वा शून्यके दृष्टान्तसे समझा जा सकता है।

आपसे किसीके यह पूछने पर कि, पोल वा शून्य पदार्थ क्या है, आपने उत्तर दिया कि, इस घरमें यहासे लगा कर भीत तक पोल वा शून्य है। यहां भीतकी सहायतासे शून्य पदार्थको समझाया गया, इसलिए यह वाक्य तटस्थलक्षण हुआ।

ब्रह्मको भी उक्त दोनों लक्षणोंसे समझाया जा सकता है। ब्रह्म चित्स्वरूप है, सत्स्वरूप है, अनन्तस्वरूप है इत्यादि कहनेसे उनका स्वरूपलक्षण प्रकट होता है, क्योंकि इसके द्वारा उसका विशेष कुछ ज्ञान नहीं हुआ। चित् कहनेसे जितना बोध होता है, सत् कहनेसे भी उतना ही ज्ञान होता है तथा ब्रह्म इत्यादि कहनेसे भी उतना ही बोध होता है। हाँ, जब यह कहा जाय कि, वे कर्त्ता हैं, हर्ता हैं और विधाता हैं तो कर्तृत्व, हर्तृत्व, विधातृत्वादि गुणोंकी सहायतासे उनका लक्ष्य किया गया, अतएव यह तटस्थलक्षण हुआ। क्योंकि कर्तृत्वशक्ति और पालयितृत्वादि शक्तियाँ प्राकृत पदार्थ अर्थात् प्रकृतिसे विकाशित होती हैं। इसलिए वह ब्रह्मका कोई गुण वा शक्ति नहीं है, वह तो ब्रह्मसे विभिन्न ही पदार्थ है। अतिरिक्त वा पृथक्भूत किसी वस्तुकी सहायतासे किसी वस्तुका प्रकाश किया जाय तो तटस्थलक्षण विशेषण हुआ करता है। स्वरूपलक्षण देखो।

तटाक (सं० पु०) तट-आकन् वा तटं अकति अक-अण्। तड़ाग, सरोवर, तालाब।

तटाघात (सं० पु०) तटे आघातः, ७-तत्। वप्रक्रीड़ा, पशुओंका अपने सींगों या दांतोंसे जमीन खोदना।

तटिनी (सं० स्त्री०) तटमस्त्यस्याः तट-इनि ततो ङीप्। नदी, सरिता, दरिया।

तटी (सं० स्त्री०) तट-अच्-ततो ङीष्। १ तीर, तट, किनारा। २ नदी, दरिया। ३ तराई, घाटी।

तट्य (सं० पु०) तटं उच्छ्रायं अर्हति तट-यत्। शिव, महादेव। "नमस्तटाय तट्याय।" (भार० १२।२८४।६६)

तड़ (हिं० पु०) १ पक्ष, तरफ। २ स्थल, जमीन। ३ वह शब्द जो थप्पड़ आदि मारने या कोई चीजके पटकनेसे उत्पन्न होता है। ४ लाभका आयोजन।

तड़क (हिं० स्त्री०) १ तड़कनेकी क्रिया। २ वह चिह्न जो तड़कनेके कारण किसी चीज पर पड़ जाता है। ३ स्वाद लेनेकी इच्छा, चाट। ४ धान, कड़ी।

तड़कना (हिं० क्रि०) १ चटकना, कड़कना। २ किसी चीजका सूखने आदिके कारण चट जाना। ३ उच्च स्वरसे शब्द करना, जोरकी आवाज करना। ४ चिढ़ना, झुंझलाना, बिगड़ना। ५ उछलना तड़पना, कूदना।

तड़का (हिं॰ पु॰) १ प्रभात, प्रातःकाल, सुबह। २ बघार, घी और कुछ मसाला गर्म करके दाल आदि तरकारियोंमें डालना।

तड़काना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी सूखी हुई चीजको फाड़ना २ उच्च शब्द करना, जोरसे आवाज करना। ३ किसीको क्रोध दिलाना।

तड़ग (सं॰ पु॰) तड़ाग पृषो॰ साधुः। तड़ाग, सरोवर।

तड़तड़ाना (हिं॰ क्रि॰) तड़ तड़ शब्द होना।

तड़तड़ाहट (हिं॰ स्त्री॰) तड़तड़ानेकी क्रिया।

तड़प (हिं॰ स्त्री॰) कूदनेकी क्रिया। २ चमक, भड़क।

तड़पदार (हिं॰ वि॰) भड़कीला, चमकीला, भड़कदार।

तड़पना (हिं॰ क्रि॰) १ व्याकुल होना, छटपटाना, तड़फड़ाना। २ घोर शब्द करना, चिल्लाना।

तड़पवाना (हिं॰ क्रि॰) कूदनेका काम किसी दूसरेसे कराना।

तड़पाना (हिं॰ क्रि॰) १ मानसिक या शारीरिक वेदना पहुंचा कर व्याकुल करना। २ किसीको गरजनेके लिए वाध्य करना।

तड़फड़ाना (हिं॰ क्रि॰ तड़पना देखो।

तड़फना (हिं॰ क्रि॰) तड़पना देखो।

तड़बंदी (हिं॰ स्त्री॰) समाज इत्यादिमें पृथक् पृथक् पक्ष बनना।

तड़ाक (सं॰ पु॰) तड्यते आहन्यते ऊर्मिभिः तड़-आक। पिनाकादयश्च। उण् ४।१५। तड़ाग, तालाब।

तड़ाक (हिं॰ पु॰) १ किसी पदार्थके फटनेका शब्द। (क्रि॰ वि॰) २ जल्दीसे, चटपट, तुरन्त।

तड़ाका (सं॰ स्त्री॰) तड़ाक स्त्रियां टाप्। १ नदी और समुद्रका तटभाग। २ आघात, चोट। ३ प्रभा, दीप्ति, चमक।

तड़ाका (हिं॰ पु॰) कारखाब बुननेवालोंका एक डंडा। इसकी लम्बाई प्रायः सवा गजकी होती है और यह लफेमें बंधा रहता है।

तड़ाग (सं॰ पु॰ तड़-आग। तडागादयश्च। इति निपातनात् साधुः। १ यन्त्रकूटक हरिण इत्यादि पकड़नेका फंदा। २ जलाशय विशेष पुष्कर, तालाब। इसके संस्कृत पर्याय—पद्माकर, तड़ाक, तटाक और तड़ग है। पाँच सौ धनुष गहरे पुष्करिणी, दीर्घिका तथा प्रशस्त भूभागमें रहनेवाले तथा बहुत दिनोंका जलाशयको तड़ाग कहते हैं। २४ अंगुलीका एक हाथ और चार हाथका एक धनुष माना गया है। एक सौ धनुष परिमित स्थानके जलाशयको पुष्करिणी कहते हैं, और पाँच सौ धनुष परिमित स्थानके जलाशयको तड़ाग कहते हैं।

"प्रशस्तभूमिभागस्थो बहु संवत्सरोषितः।
जलाशयस्तड़ागः स्यादित्याहुः शास्त्रकोविदः॥" (शब्दार्थचि॰)

"चतुर्विंशांगुलो हस्तो धनुस्तच्चतुरुत्तरं।
शतधन्वन्तरश्चैव तावत् पुष्करिणी शुभा॥
एतत् पञ्चगुणः प्रोक्त स्तड़ाग इति निर्णयः।" (वशिष्ठ)

इसके जलका गुण—वायुवर्द्धक, स्वादु, कषाय और कटुपाक तथा शिशिर और हिमकालमें अत्यन्त प्रशस्त है। (राजव॰) जो मनुष्य यथाविधिसे तड़ागोत्सर्ग करते हैं, वे एक कल्प ब्रह्मालयमें और उसके बाद दिव्ययुग स्वर्गमें वास करते हैं। उत्सर्गविधिका विशेषविवरण पुष्करिणी प्रतिष्ठा देखो।

कालविशेषमें तड़ागके जलका फल—

वर्षा और शरत्कालमें अवस्थित जल अग्निष्टोमयज्ञ सदृश, हेमन्त और शिशिरकालमें वाजपेय, वसन्तकालमें अश्वमेध और ग्रीष्मकालमें राजसूययज्ञ सदृश फलदायक है।

"प्रावृट्काले स्थितं तोयं अग्निष्टोमसमं स्मृतम्।
शरत्काले स्थितं तोयं यदुक्तफलदायकम्॥
वाजपेयफलसमं हेमन्तशिशिरस्थितम्।
अश्वमेधसमं प्राहुर्वसन्तसमयस्थितं॥
ग्रीष्मेऽपि तु स्थितं तोयं राजसूयफलाधिकम्॥"(पद्मपुराण)

जो तड़ागोत्सर्ग करते हैं। वे ही इस फलको पाते हैं। एक तड़ागोत्सर्ग करनेसे ही समस्त यज्ञका फल होता है।

तड़ागज (सं॰ पु॰) कालकीठ, एक प्रकारका कन्द, मनसारू।

तड़ातड़ (हिं॰ क्रि॰) तड़ तड़ शब्दके साथ।

तड़ाना (हिं॰ क्रि॰) ताड़नेका काम किसी दूसरेसे कराना।

तड़ावा (हिं॰ स्त्री॰) १ आडम्बर, ऊपरी तड़क-भड़क। २ धोखा, कपट, छल।

तड़ि (सं० पु०) तड़-आघाते तड़-इन्। १ आघात, चोट। (त्रि०) २ आघातकर्त्ता, चोट पहुँचानेवाला।

तड़ित् (सं० स्त्री०) ताड़यत्यभ्रं तड़-आघाते इति प्रत्ययः। ताडे णिलुकच्। उण् १।१००। विद्युत्, बिजली।

विद्युत् देखो।

तड़ित्कुमार (सं० पु०) जैनोंके एक देवता। ये भुवनपति देवगणमेंसे हैं।

तड़ित्पति (सं० पु०) मेघ, बादल।

तड़ित्प्रभा (सं० स्त्री०) तड़ितः प्रभेव प्रभा यस्याः बहुव्री०। १ कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम।

"केशयन्त्रीत्र त्रुटिनामा कोशनाऽथ तडित्प्रभा।"

(भारत शल्य ४६ अ०)

(त्रि०) २ विद्युत्सदृश दीप्तियुक्त, जिसमें बिजलीसी चमक हो।

तड़ित्वत् (सं० पु०) तड़ित् विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य वः, अपदान्तत्वात् तस्य न दः। १ मेघ, बादल। २ मुस्तक, नागरमोथा। (त्रि०) ३ तड़िद्विशिष्ट, विद्युत्युक्त।

तड़ित्वती (सं० त्रि०) तड़ित्वत् स्त्रियां ङीप्। तड़िद्युक्त, जिसमें बिजलीसी चमक हो।

तड़िद्गर्भ (सं० पु०) तड़ितो गर्भं यस्य, बहुव्री०। मेघ, बादल।

तड़िन्मय (सं० त्रि०) तड़िदात्मकः स्वरूपे तड़ित् मयट्। तड़ित् स्वरूप, बिजलीके सदृश।

तड़िया (हिं० स्त्री०) समुद्रके तटकी वायु।

तड़ी (हिं० स्त्री०) १ चपत, धौल। २ धोखा, छल। ३ बहाना, हीला।

तण्ड (सं० पु०) तड़ि-अच्। १ ऋषिविशेष, एक ऋषिका नाम। (स्त्री०) भावे अ। २ आहति, चोट, मार।

तण्डक (सं० पु०) तण्डते नृत्यति तण्ड-ण्वुल्। १ खञ्जनपक्षी। २ फेन। ३ समासबहुलवाक्य, वह वाक्य जिसमें बहुतसे समास हो। (क्ली०) ४ गृहदारुविशेष, गृहस्तम्भ, घरमें लगाये जानेका खम्भा। ५ तरुस्कन्ध, पेड़का तना। ६ परिष्कार, शुद्धि, सफाई। ७ बहुरूपी, बहुरूपिया। ८ रोग। (त्रि०) ९ मायाबहुल, मायावी। १० उपघातक, नाश करनेवाला।

तण्डि (सं० पु०) सत्ययुगके एक ऋषिका नाम। इन्होंने दश हजार वर्ष शिवजीकी आराधना की। बाद शिवजीने इनकी तपस्यासे संतुष्ट हो इन्हें दर्शन दे कर कहा था "मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ, तुम्हें मेरे प्रसादसे एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। वह पुत्र यशस्वी, तेजस्वी, दिव्यज्ञानसमन्वित, अमर और वेदका सूत्रकर्त्ता होगा।" शिवजीके वरसे तण्डिके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। तण्डिके पुत्रने ही यजुर्वेदीय ताण्डिन शाखाका कल्पसूत्र प्रणयन किया था। (भारत अनु० १६।१७ अ०)

तण्डु (सं० पु०) महादेवजीके द्वारपाल, नन्दिकेश्वर। 'नन्दी भृंगरिटस्तण्डु नन्दितौ नन्दिकेश्वरः।' (मल्लिनाथधृत को०)

तण्डुरीण (सं० पु०) तण्डा अस्त्यर्थे उरच् तत्र भवः खः। १ कीटमात्र, कीड़ा मकोड़ा। (क्ली०) तण्डुले भवः खः लस्य रः। २ तण्डुलोदक, चावलका पानी। (त्रि) ३ वर्वर, असभ्य, जङ्गली।

तण्डुल (सं० पु०-क्ली०) तण्ड्यते आहन्यते तड़-उलच्। सानसिवर्णसीति। उण् ४।१०७। १ निस्तुष धान, चावल। चावल देखो। २ वीड़ङ्ग, वायविड़ङ्ग। ३ तण्डुलीयशाक, चौलाईका साग। ४ प्राचीन कालकी हीरेकी एक तौल जो ८ सरसोंके बराबर होती है।

तण्डुल-जल (सं० पु०) तण्डुलोदक, चावलका पानी। यह वैद्यकमें बहुत हितकर बतलाया गया है। इसके प्रस्तुत करनेकी दो प्रणाली हैं—(१) चावलको कूट कर अठगुने जलमें पका कर छान लिया जाता है, यह उत्कृष्ट तण्डुल-जल है। (२) चावलको थोड़ी देर तक भिगो कर छान लिया जाता है, यह साधारण तण्डुलजल है।

तण्डुलपरीक्षा (सं० स्त्री०) तण्डुलेन परीक्षा, ३-तत्। दिव्यविशेष, नौ प्रकारके दिव्योंमेंसे एक। वीरमित्रोदयमें लिखा है कि किसी चीजकी चोरी होने पर विचारक इस दिव्यका प्रयोग करें। इसका विधान—चावलको अच्छी तरह धो कर उसे देवताके स्नानके जलमें एक नवीन मट्टीके पात्रमें भिगो कर एक रात तक रख देना चाहिये। दूसरे दिन विचारक शुचि हो कर नियमपूर्वक आसन पर बैठें। बाद जिसके ऊपर सन्देह हो उसे स्नान करा कर पूर्वकी ओर बैठावे। तब एक भोजपत्रके ऊपर अथवा उसके अभावमें पीपलके पत्तेके ऊपर निम्नलिखित मन्त्र लिख डालें।

> "आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापोहृदयं यमश्च।
> अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्येधर्मोहि जानाति नरस्य वृत्तं॥"

इसके बाद वह पत्र उसके मस्तक पर रख वह चावल उसे चबानेके लिये देवें। यदि उसने यथार्थमें चोरी या अपराध किया होगा तो उसका शरीर काँपने लगेगा और तालू सूख जायगा तथा उसे चबा कर भोजपत्र या पीपलके पत्ते पर थूक फेंकनेसे वह लोहूके जैसा लाल दीख पड़ेगा। अन्तमें उसे ही दोषी समझ कर अपराधके अनुसार दण्ड देवें।

तण्डुला (सं॰ स्त्री॰) तण्ड-उलच् ततष्टाप्। १ विड़ङ्ग, वायविड़ङ्ग। २ महासमङ्गावृक्ष, ककही नामका पेड़।

तण्डुलाम्बु (सं॰ क्ली॰) तण्डुलक्षालितं अम्बुः, मध्यपदलो॰। तण्डुलोदक, चावलका पानी। इसके संस्कृत पर्याय—जोष्ठाम्बु, तण्डुलोदक और तण्डुलोत्थ है। पल परिमित चावलको अठगुने जलमें डाल देवें। बाद उसे पका कर ग्रहण करें। इस प्रकारका जल विशेष हितकर है।

तण्डुलिकाश्रम (सं॰ पु॰ क्ली॰) तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। जो मनुष्य इस तीर्थमें जाता है वह इस संसारमें कष्ट नहीं पाता और अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

> "जम्बूमार्गादपावृत्य गच्छेत्तण्डुलिकाश्रमं।
> न दुर्गतिमवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति॥"

(भारत वन॰ ८२ अ॰)

तण्डुलिया (हिं॰ स्त्री॰) चौलाई, चौराई।

तण्डुली (सं॰ स्त्री॰) तण्डुल-ङीष्। १ यवतिक्ता लता। २ शशाण्डुली कर्कटी, एक प्रकारकी ककड़ी। ३ तण्डुलीयशाक, चौलाईका साग।

तण्डुलीक (सं॰ पु॰) तण्डुलीव कायति कै-क। तण्डुलीयशाक, चौलाईका साग।

तण्डुलीय (सं॰ पु॰) तण्डुलाय-तद्भक्षणाय हितः तण्डुल-छ। विभाषाहविरपूपादिभ्यः। पा ५।१।४। पत्रशाकविशेष, चौलाईका साग। इसके संस्कृत पर्याय—अल्पमारिष, तण्डुलीक, तण्डुल, भण्डीर, तण्डुली, तण्डुलीयक, ग्रन्थिल, बहुवीर्य मेघनाद, घनस्वन, सुशाक, पथ्यशाक, स्फुर्जथु, स्वनिताह्वय, वीर और तण्डुलनामा है। (Amaranthus polygonoides) इसका गुण—शिशिर, मधुर, विष, पित्त, दाह और भ्रमनाशक, रुचिकारक, दीपन और पथ्य है। इसके पत्तेका गुण—हिम, अर्श, पित्तरक्त और विषकाशनाशक, ग्राहक, मधुर, दाह और शोषनाशक तथा रुचिकारक है। भावप्रकाशके मतसे इसके पर्याय—काण्डेर, तण्डुलेरक, भण्डीर, तण्डुली, वीर, विषघ्न और अल्पमारिष है। इसका गुण—लघु, शीतवीर्य, रूक्ष, पित्तघ्न, कफनाशक, रक्तदोषापहारक, मलमूत्रनिःसारक, रुचिजनक, अग्निप्रदीपक और विषनाशक है। (भावप्रकाश)

एक दूसरे प्रकारका भी तण्डुलीय होता है जिसे पानीय तण्डुलीय कहते हैं और कोई कोई इसे जलतण्डुलीयकच्छट नामसे भी पुकारते हैं। इसका गुण—तिक्त, रक्त, पित्तघ्न, वायुनाशक और लघु है। (भावप्र॰)

तण्डुलीयक (सं॰ पु॰) १ तण्डुलीयशाक, चौलाईका साग। २ विड़ङ्ग, वायविड़ङ्ग।

तण्डुलीयकमूल (सं॰ क्ली॰) तण्डुलीयकस्य मूलं, ६-तत्। तण्डुलीयशाकका मूल, चौलाई सागकी जड़। इसका गुण—उष्ण, श्लेष्मानाशक, रजोरोधकर, रक्तपित्त और प्रदरनाशक है। (आत्रेयसंहिता॰)

तण्डुलीयिका (सं॰ स्त्री॰) तण्डुलीय स्वार्थे कन् स्त्रियां टाप् कापि अत इत्वं। विड़ङ्ग, वायविड़ङ्ग।

तण्डुलु (सं॰ पु॰) तण्डुल पृषो॰ उत्वे साधुः। विड़ङ्ग, वायविड़ङ्ग।

तण्डुलेर (सं॰ पु॰) तण्डुल बाहुलकात् स्वार्थे ढ्र। तण्डुलीयशाक, चौलाईका साग।

तण्डुलेरक (सं॰ पु॰) तण्डुलेर स्वार्थे कन्। तण्डुलीयशाक, चौलाईका साग।

तण्डुलोत्थ (सं॰ क्ली॰) तण्डुलात् उत्तिष्ठति उत्-स्था-कः। तण्डुलाम्बु, चावलका पानी। तण्डुलाम्बु देखो।

तण्डुलोदक (सं॰ क्ली॰) तण्डुलस्य उदकं, ६-तत्। तण्डुलक्षालित जल, चावलका धोया हुआ पानी।

तण्डुलौघ (सं॰ पु॰) तण्डुलानामोघः, ६-तत्। १ तण्डुलराशि, चावलका ढेर। २ एक प्रकारका बाँस।

तण्डेश्वर (सं॰ पु॰) ६२ शिवभक्तोंमेंसे एक प्रधान भक्त। तण्डि देखो।

तत् (सं॰ अव्य॰) १ हेतु, लिये। यह शब्द हेत्वर्थमें व्यवहृत होता है। (त्रि॰) तन-क्विप्। २ विस्तारक, फैलानेवाला। (क्ली॰) ३ ब्रह्मका नामविशेष, ब्रह्म या परमात्माका एक नाम।

"ओं तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता पुरा।" (गीता १७।२३)

ओं तत् सत् ब्रह्माके ये ही तीन प्रकारके नाम हैं। इसी त्रिविध नामसे पहले ब्राह्मण, वेद और यज्ञकी सृष्टि हुई थी, इसी लिये ब्रह्मवादियोंके विधानोक्त यज्ञ-दान और तप ओंकारपूर्वक उदाहृत हुआ करते हैं। (त्रि॰) ४ वुद्धिस्थ। ५ परामर्शविशेष। यह शब्द वह और वे शब्दके बदले व्यवहृत होता है।

यत् और तत् शब्दके साथ नित्य सम्बन्ध है। यत् शब्द प्रयोग करनेसे ही तत् शब्दका प्रयोग करना पड़ता है। किन्तु तत् शब्द यदि प्रसिद्ध अर्थमें व्यवहृत हो, तो यत् शब्दका प्रयोग नहीं करनेसे भी काम चल सकता है।

तत (सं॰ क्ली॰) तनोति तन-तन्। तनिमृंभ्यां किच्च। उण् ७।८८। १ वीणादि वाद्ययन्त्र, एक प्रकारका बाजा जिसमें बजानेके लिये तार लगे हों। यह सारङ्गी, सितार, वीना, एकतारा, बेहला आदिके जैसा होता है। इसके दो भेद हैं।—एक जो सिर्फ अंगुली या मिजराव आदिसे बजाया जाता है उसे अंगुलितयंत्र कहते और दूसरा जो कमानीकी सहायतासे बजाया जाता है उसे धनुःयन्त्र कहते हैं। (संगीतरत्नाकर) (त्रि॰) तन-क्त। २ विस्तारित, फैला हुआ। ३ व्याप्त। (क्ली॰) ४ वायु, हवा। ५ सन्धान। ६ पिता, बाप। ७ पुत्र, बेटा।

ततक (सं॰ पु॰) जैनमतानुसार द्वितीय पृथिवीके ग्यारह इन्द्रकोंमेंसे पहला इन्द्रक। (त्रिलोकसार, १५५)

ततताथेई (हिं॰ स्त्री॰) नृत्यका शब्द, नाचके बोल।

ततत्व (सं॰ क्ली॰) सङ्गीतशास्त्रको अल्पमात्रा।

ततनुष्टि (सं॰ पु॰) ततं धर्मसन्ततिं नुदति वष्टि कामयते कामान् नुद-ड, वश-क्तिच्। धर्मसन्ततिनोदक, धर्मसन्ततिकामुक।

ततपत्री (सं॰ स्त्री॰) ततं विस्तृतं पत्रं यस्याः, बहुव्री॰। कदलीवृक्ष, केलेका पेड़।

ततबीर (हिं॰ स्त्री॰) तदबीर देखो।

ततम (सं॰ त्रि॰) तेषां मध्ये निर्द्धारितो योऽसौ तद् डतमच्। वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्। पा ५।३।९३। बहुतोंमेंसे वे या वह।

ततर (सं॰ त्रि॰) तयोर्मध्ये निर्द्धारितो योऽसौ तद् डतरच्। किंयत्तदो निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्। पा ५।३।९२। दोमेंसे वह, दोमेंसे कोई एक।

ततरी (हिं॰ स्त्री॰) एक फलदार पेड़।

ततस् (सं॰ अव्य॰) तद्-तसिल्। तद् शब्दका उत्तर सभी विभक्तियोंमें तसिल् होता है। जैसे—अनन्तर, तन्निमित्त, इस कारण, वहां, उक्त स्थानमें, तो, तत्कृति क। प्रथमादिके अर्थमें तसिल् प्रत्यय होने पर उन्हीं अर्थोंमें व्यवहृत होता है।

ततःप्रभृति (सं॰ अव्य॰) तदवधि, तभीसे।

ततस्ततः (सं॰ अव्य॰) ततः ततः वाप्सायां द्वित्वं। उसके बाद।

ततस्तम (सं॰ अव्य॰) हेतुभूतानां बहूनां मध्ये एकस्यातिशये ततः तमप्। बहुतोंमेंसे एकका उत्कर्ष।

ततस्तरां (सं॰ अव्य॰) हेतुभूतयो र्द्वयोर्मध्ये एकस्यातिशये ततः तरप्। दोमेंसे एकका उत्कर्ष।

ततस्त्य (सं॰ त्रि॰) ततस्तत्र भवः ततः त्यप्। तत्र भव, तत्रत्य, तदागत, तज्जात, तत् सम्बन्धी।

ततहड़ा (हिं॰ पु॰) मट्टीका एक बरतन। देहातके रहनेवाले इस तरहके बरतनमें नहानेका पानी गरम करते हैं।

ततामह (सं॰ पु॰) ततस्य पितुः पिता पितरि तत डामहः। पितामह, दादा।

ततारना (हिं॰ क्रि॰) १ उष्ण जलसे धोना। २ धार दे कर धोना।

तति (सं॰ स्त्री॰) तन-क्तिन्। १ श्रेणी, पंक्ति, ताँता। २ समूह, झुण्ड। ३ विस्तार। (त्रि॰) तत् परिमाणं येषां तत् डति। ४ तत् परिमाण, उतना।

ततिथी (सं॰ स्त्री॰) तावतीनां पूरणी तावत् डट्, तिथुडागमः ङीप् वेदे अवशब्दलोपः। तावतका पूरणीभूत, वह जो सबका पूरक हो।

ततिधा (सं॰ अव्य॰) ततः प्रकारे तति-धाच्। तत प्रकार, उस तरहसे।

ततुरि (सं० त्रि०) तुर्व हिंसायां किं द्वित्वं पृषोदरादित्वात् साधुः। १ हिंसक, हिंसा करनेवाला। २ तारक, तारनेवाला।

तत्तृपि—तातृपि देखो।

ततैया (हिं० स्त्री०) १ बर्रे, भिड़, हड्डा। २ जवा मिर्च जो बहुत कड़ुई होती है। (वि०) ३ तेज, फुरतीला। ४ बुद्धिमान्, चालाक।

तत्कर (सं० त्रि०) तत् करोति तत्-कृञ: ट। तत्पदार्थकारक।

तत्काल (सं० पु०) स चासौ कालश्चेति, कर्मधा०। १ वर्तमानकाल। २ उसी समय, तुरन्त, फौरन। (त्रि०) स कालो यस्य, बहुव्री०। ३ तत्कालवृत्ति।

तत्कालधी (सं० त्रि०) तस्मिन् काले कार्यकाले धी उपस्थिता बुद्धिर्यस्य, बहुव्री०। प्रत्युत्पन्नमति, उपस्थित बुद्धि।

तत्काललवण (सं० क्ली०) विट्लवण।

तत्कालसंक्रान्त (सं० त्रि०) तस्मिन काले संक्रान्त, ७-तत्। जो उस समय हुआ हो।

तत्कालसम्भूत (सं० त्रि०) तस्मिन् काले सम्भूतः, ७-तत्। जो उस समय उत्पन्न हुआ हो।

तत्कालीन (सं० त्रि०) उसी समयका।

तत्क्रिय (सं० त्रि०) वेतनं विना स्वभावतः सा क्रिया कर्म यस्य, बहुव्री०। कर्मकरणशील, जो बिना कुछ लिये भार ढोता हो।

तत्क्षण (सं० पु०) स चासौ क्षणः कालः, कर्मधा०। सद्य, उसी समय, तत्काल।

तत्प्रतिमान (सं० क्ली०) जैनमतानुसार मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान इन लौकिक मानके छः भेदोंमेंसे एक। तुरङ्ग अर्थात् घोड़े आदिके मूल्यको तत्प्रतिमान कहते हैं। (त्रि० सा०)

तत्तुल्य (सं० त्रि०) तत्सदृश, उसके समान।

तत्तोथंबो (हिं० पु०) १ दमदिलासा, बहलावा। २ झगड़ा शान्त करना, बीच बचाव।

तत्त्व (सं० क्ली०) तनोति सर्वमिदं तन-क्विप् तुक्च पृषो०, साधुः। तस्य भावः तत्-त्व। १ यथार्थता, वास्तविकता, असलियत। २ स्वरूप। ३ ब्रह्म। (अमर) ४ अनारोपित स्वरूप परमात्मा "सर्वं खल्विदं ब्रह्मैवेदं स" (श्रुति) यह समस्त जगत् ब्रह्ममय है; जो कुछ भी है वह सब ब्रह्म ही है। ५ विलम्बित वाद्यादि। ६ चेतः। ७ वस्तु। ८ पंचभूत। ९ सारवस्तु, सारांश। १० सांख्योक्त प्रकृति आदि, जगत्का मूल कारण। सत्व, रजः और तमः।

इस परिदृश्यमान जगत्रूप कार्यको देख कर इसके कारणका भी अनुमान होता है। वस्तुके बिना किसी भी वस्तुकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। जैसे मनुष्यके सींग होना असम्भव है, वैसे ही असत् अर्थात् अवस्तुसे कुछ उत्पन्न होना असम्भव है। क्योंकि प्रत्येक वस्तुका ही एक न एक उपादानकारण है, यह सतःप्रसिद्ध है। जैसे—मिट्टीसे घड़ाकी और सूतसे कपड़ेकी उत्पत्ति इत्यादि। अतएव यह मानना पड़ेगा कि इस जगत्का मूल कोई तत्त्व है, वह तत्त्व प्रथमतः प्रकृति और पुरुष है।

आदिकारणसे क्रमशः कार्यपरम्पराकी उत्पत्ति हुई है, इसलिए सांख्यशास्त्रवित् विद्वानोंने आदिकारणको ही प्रकृति बतलाया है। कारणका कारण और उस कारणका पुनः अन्य कारण, इस प्रकारकी यदि कारणपरम्परा हो, तो भी एक स्थान पर जा कर कारणका अन्त होगा। प्रकृति उस आदिकारणको संज्ञामात्र है। इस प्रकृतिसे समस्त तत्त्व आविर्भूत हुए हैं। प्रकृतिमें उत्तम, मध्यम और अधम अर्थात् सुख, दुःख और मोह ये तीन गुण पाये जाते हैं। इसलिए प्रकृतिसे उत्पन्न तत्त्वोंमें भी उक्त गुण देखनेमें आते हैं, इसी लिए जगत्को सुख, दुःख और मोहमय कहा गया है।

तत्त्व पदार्थ गुण होना असम्भव है, कारण गुणसे पदार्थ वा तत्त्वकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। किन्तु सत्व, रजः और तमः ये तीन गुण-द्रव्य नहीं बल्कि पदार्थ द्रव्य हैं।

सत्व, रज और तमोगुणात्मिका प्रकृति, महत् (बुद्धितत्त्व), अहङ्कार, मन, चक्षुः, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, क्षिति, अप्, तेजः, वायु, आकाश और पुरुष ये २५ तत्त्व हैं।

ये पच्चीस तत्त्व ही जगत्के मूल कारण हैं। इन तत्त्वोंसे जगत्की उत्पत्ति हुई है। जब इस जगत्का नाश होगा, तब उक्त समस्त तत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जांयगे। फिर सृष्टिके प्रारम्भमें प्रकृतिसे तत्त्वसमूह उत्पन्न होंगे।

प्रकृतिसे इसी तरहसे तत्त्व उत्पन्न हुआ करते हैं। पहले प्रकृतिसे महत्तत्त्व (बुद्धितत्त्व) उत्पन्न होता है, पीछे महत्तत्त्व अहङ्कारतत्त्व, अहङ्कारतत्त्वसे एकादश इन्द्रिय (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ) और मन और पञ्चतन्मात्रतत्त्व, पञ्चतन्मात्रतत्त्वसे पञ्चमहाभूततत्त्वकी (पृथ्वी जल आदि) उत्पत्ति होती है; इसी तरह सृष्टिके विलोपकालमें पञ्चमहाभूत पञ्चतन्मात्रमें, पञ्चतन्मात्र और एकादश इन्द्रिय अहङ्कारमें, अहङ्कारमहत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है। उस समय सिर्फ प्रकृति और पुरुष बाकी रहते हैं।

(सांख्यद० १।६१)

पातञ्जलदर्शनके मतसे तत्त्व छब्बीस हैं—पच्चीस तो सांख्यवाले और छब्बीसवाँ ईश्वर भी तत्त्व है। सांख्यके पुरुषसे योगके ईश्वरमें विशेषता इतनी ही है कि योगका ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक आदिसे पृथक् माना गया है। मायावादी वेदान्तिकोंके मतसे ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थ तत्त्व है, उसके सिवा और कुछ भी तत्त्व नहीं है, सिर्फ मायाकल्पित है। सब ही ब्रह्ममय है, जो कुछ दीखता है, वह सब ब्रह्म है, इसलिए एकमात्र ब्रह्म ही परमार्थ तत्त्व है, ब्रह्मातिरिक्त अन्य तत्त्वान्तर नहीं है।

माया परब्रह्मकी शक्तिस्वरूप है। ब्रह्म मायावच्छिन्न होते ही जगत् उत्पन्न होता है। किन्तु स्थलान्तरमें वे नित्य मुक्तस्वभाव कहे गये हैं।

वैदान्तिकगण एक उपमा दे कर इन दो परस्पर विरुद्ध वाक्योंका सामञ्जस्य किया करते हैं। जैसे वृक्षश्रेणीके अभ्यन्तरसे उसके अन्तरालस्थ महान् आकाशको देखनेसे वह खण्ड खण्ड दीखता है, किन्तु वास्तवमें आकाश खण्डित नहीं होता, उसी तरह ब्रह्म मायावच्छिन्न होने पर भी वास्तवमें अवच्छिन्न नहीं होते। वे स्वभावतः पूर्ण और मुक्तस्वरूप हैं तथा उसी रूपमें रहते हैं।

वेदान्तके मतसे परब्रह्म निर्गुण, निर्विकार और चिन्मयस्वरूप है। जगत् यदि भ्रम ही है, तो उनको जो जगत्कर्त्ता, सर्वनियन्ता इत्यादि कहा गया है, वह भी सत्य नहीं, आरोपमात्र है। वास्तविक स्वरूप नहीं है। जीव वास्तविक परब्रह्मके सिवा और कुछ नहीं है, अयमात्मा, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि इत्यादि वाक्योंमें ब्रह्म ही एक तत्त्व है, तदतिरिक्त अन्य कोई भी तत्त्व नहीं है। विस्तृत विवरण ब्रह्म और प्रकृति शब्दमें देखो।

चतुस्तत्त्व—तेजः अप् पृथिवी और आत्मा। पञ्चतत्त्व—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। षट्तत्त्व—क्षिति, अप्, तेज, मरुत्, व्योम और परमात्मा।

सप्ततत्त्व—पञ्चमहाभूत, जीव और परमात्मा। नवतत्त्व—पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, नभः वायु, ज्योति, अप् और क्षिति। एकादशतत्त्व—श्रोत्र, त्वक्, जिह्वा, चक्षु, नासिका, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ और मन।

त्रयोदशतत्त्व—नभः, वायु, ज्योति, अप्, क्षिति, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, घ्राण, जिह्वा, मन, जीवात्मा और परमात्मा। षोड़शतत्त्व—पञ्चभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, मन, रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श। सप्तदशतत्त्व—षोड़शतत्त्व और आत्मा।

शून्यवादी बौद्धोंके मतसे शून्य ही एकमात्र जगत्का तत्त्वभाव अर्थात् जिसका अस्तित्व अनुभूत होता है, उसका शेषफल अभाव वा विनाश है। वह विनाश वस्तुमात्रका स्वधर्म वा स्वभाव है। शून्यवादियोंका मनोभाव यह है कि, वस्तुकी आदिमें उत्पत्तिसे पहले शून्य वा अभाव ही तत्त्व है, शेषमें भी शून्य वा अभाव है। मध्यमें जो किञ्चित् स्थायित्व पाया जाता है, विचार कर देखनेसे वह भी अभाव वा शून्य है। शून्यतत्त्ववादियोंके मतसे, मृत्युके बाद शून्यके सिवा और कुछ भी नहीं रहता। अतएव मरनेसे ही मुक्ति होती है। शून्य ही तत्त्व है, शून्य ही सार है, यह मूढ़बुद्धि कुतार्किकोंका प्रलाप है; शून्यवादी नास्तिकबुद्धि मोहवशतः ऐसी कल्पना करते हैं, जिसको प्रमाणित नहीं कर सकते।

चार्वाक्मतसे क्षिति, अप्, तेज और मरुत्, ये चार तत्त्व हैं, ये ही जगत्के कारण हैं। इन चार भूतोंसे ही स्थावरजङ्गमात्मक परिदृश्यमान जगत्की उत्पति हुई है।

इन चार तत्त्वोंके सिवा पाँचवाँ तत्त्व नहीं है। (चार्वाक)

द्वैतवादी पूर्णप्रज्ञाचार्यके मतसे तत्त्व दो प्रकारका है—एक स्वतन्त्र और दूसरा अस्वतन्त्र। रामनुजीके मतसे चित्, अचित् और ईश्वर ये तीन तत्त्व हैं।

पाशुपतशास्त्रवित् नकुलीशाचार्य शैवोंके मतसे पति, पशु और पाश, ये तीन तत्त्व हैं।

ज्योतिषमें तत्त्वका विषय इस प्रकार लिखा है—तत्त्व पाँच प्रकारका है—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इनके गुण—अस्थि, मांस, नख, त्वक्, लोम ये ५ पृथिवीके गुण हैं। शुक्र, शोणित, मज्जा, मल, मूत्र, ये ५ जलतत्त्वके गुण हैं। निद्रा, क्षुधा, तृष्णा, क्लान्ति, आलस्य, ये ५ तेजस्तत्त्वके गुण हैं। धारण, चालन, क्षेपण, सङ्कोचन और प्रसारण ये ५ वायुतत्त्वके गुण हैं। काम, क्रोध, मोह, लज्जा और लोभ ये आकाशतत्त्वके गुण हैं। आकाशसे वायुकी, वायुसे अग्निकी, अग्निसे जलकी और जलसे पृथिवीकी उत्पत्ति हुई है। पृथिवी जलमें, जल रविमें और रवि वायुमें लय होता है। इन पाँच तत्त्वोंसे सम्पूर्ण सृष्टि हुई है। पृथिवीतत्त्वके ५ गुण हैं। जलके चार गुण हैं। तेजके तीन गुण हैं। वायुके दो और आकाशमें एक गुण है। पृथिवी गन्धतन्मात्र है। जल रसतन्मात्र, अग्नि रूपतन्मात्र, वायु स्पर्शतन्मात्र और आकाश शब्दतन्मात्र है। ये पाँच पञ्चतत्त्वके गुण हैं।

तत्त्वोंकी प्रकृतियाँ—पृथिवीतत्त्व कठिन, जल शीतल, अग्नि उष्ण, वायु चर और स्थिर है।

तत्त्वोंके स्थान—पृथ्वीतत्त्वका स्थान है नाभिका उपरिदेश, जलतत्त्वका स्थान है मस्तिष्क, अग्नितत्त्वका स्थान है पित्त, वायुतत्त्वका स्थान है नाभिदेश और आकाशतत्त्वका स्थान है मस्तक।

तत्त्वोंके द्वार—पृथ्वीतत्त्वका द्वार है मुख, जलतत्त्वका द्वार है लिङ्ग, अग्निको द्वार हैं नेत्र, वायुके द्वार हैं नासिकाके दोनों छिद्र और आकाशके द्वार हैं दोनों कान।

तत्त्वद्वारोंकी क्रियाएँ—पृथ्वीतत्त्वद्वारकी क्रिया है भोजन, जलद्वारकी क्रिया है वमन, अग्निद्वारकी क्रिया है दृष्टि, वायु द्वारकी क्रिया है आघ्राण और आकाशद्वारकी क्रिया है शब्द।

तत्त्वोंके गुण—पृथ्वीतत्त्वका गुण है भय, जलका लोभ, अग्निका लज्जा, वायुका सन्तोष और आकाशका गुण है दुःख।

एक एक तत्त्वमें पञ्चतत्त्वका उदयचक्र—

पृथ्वी	आकाश	वायु	अग्नि	जल
जल	पृथ्वी	आकाश	वायु	अग्नि
अग्नि	जल	पृथ्वी	आकाश	वायु
वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी	आकाश
आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी

बहुतोंको मालूम है कि, श्वास-प्रश्वास दिन-रात दोनों नासारन्ध्रोंमें समानरूपसे बहता है, किन्तु वह भ्रममात्र है। श्वास-प्रश्वास ज्वार भाटाकी तरह चन्द्रसूर्य और अन्यान्य ग्रहादिके आकर्षणसे तथा तिथिके अनुसार यथा नियम इड़ा, पिङ्गला अर्थात् वाम किम्वा दक्षिण नासापुटमें प्रथमतः सूर्योदयके समय उदित होता है। पीछे एक एक नासिकामें ढाई दण्ड (अंग्रेजी एक घण्टा) तक स्थिर रह कर दोनों नासारन्ध्रोंमें २४ बार सङ्क्रमित हुआ करता है। इस ढाई दण्ड समयमें जब किसी नासिकामें श्वास-प्रश्वास बहता है, उस समय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच तत्त्वोंका उदय होता है। पृथ्वीतत्त्व उदय हो कर ५० पल (२० मिनट) तक ठहरता है; इसी तरह जलतत्त्व ४० पल (१६ मिनट), अग्नितत्त्व ३० पल (१२ मिनट), वायुतत्त्व २० पल (८ मिनट) और आकाशतत्त्व १० पल (४ मिनट), उदय हो कर अवस्थिति करता है।

प्रत्येक नासापुटमें वायु बहनेके समय पञ्चतत्त्वका उदय हुआ करता है। पञ्चतत्त्वका विवरण निम्नलिखित उपायसे जाना जा सकता है। पहले तत्त्वको संख्याका निरूपण, दूसरे श्वासका सन्धान, तीसरे ज्वरका चिह्न, चौथे वायुकी गति, पाँचवें वर्ण, छठे तत्त्वका उपदेशस्थान, सातवें साधुसे उपदेशग्रहण और आठवें गतिका लक्षण जानना चाहिये। प्रातःकालमें यत्न-पूर्वक वृद्धाङ्गुलि द्वारा दोनों नासापुट धारण कर तत्त्वादिका ज्ञान करना चाहिये।

पृथ्वीतत्त्वका लक्षण—नासारन्ध्रके मध्यस्थलसे अन्य किसी पार्श्वसे न लग कर श्वास चलेगा। यह श्वास द्वादशाङ्गुल पर्यन्त निकलता है। उस समय गलेमें

मधुर रसकी उत्पत्ति और मनमें सिर्फ पीतवर्णके विषयों की चिन्ता होगी। किसी प्रकरणके करने पर पीतवर्णका दर्शन होगा। उत्तम दर्पणमें निःश्वास त्यागनेसे चतुष्कोण और पीतवर्ण दिखलाई देगा। जानुदेशमें इसकी स्थिति ढाई दण्ड समयके भीतर ५० पल समय तक इस अवस्थामें स्थित रहेगा। इस प्रकारका कार्य होने पर उसको पृथ्वीतत्त्व समझें। रविग्रहके आकर्षणसे वाम नासिकामें पृथ्वीतत्त्वका उदय होता है तथा दक्षिण नासिकाके वहनकालमें जब पृथ्वीतत्त्वका उदय होता है, तब बुधग्रह उसका अधिपति होता है। पृथ्वीतत्त्वके नक्षत्र—२३ धनिष्ठा, २७ रेवती, १८ ज्येष्ठा, १७ अनुराधा, २२ श्रवणा, अभिजित्, २१ उत्तराषाढ़ा।

जलतत्त्वका लक्षण—इसकी गति अधोगामी अर्थात् नासिकापुटके निम्नभागमें छूट कर श्वास चलेगा। श्वासका परिमाण १६ अङ्गुल होगा। उस समय गलेमें कषाय रसका अनुभव होता है, दर्पण पर निःश्वास त्यागनेसे वह अर्द्धचक्राकृत और सफेद दीखेगा। हृदयमें श्वेतवर्ण उदित होगा। किसी प्रकरणके होने पर श्वेतवर्ण दृष्टिगोचर होगा। पादान्तमें इसकी स्थिति भी ढाई दण्डके मध्य ४० पल समय होगी। इन कार्योंको जलतत्त्वका लक्षण समझना चाहिये। दक्षिण-नासिकाके वहनकालमें शनिग्रह और वाम-नासिकाके वहनकालमें चन्द्र इस तत्त्वका अधिपति होता है। इसतत्त्वके नक्षत्रोंके नाम—२० पूर्वाषाढ़ा, ९ अश्लेषा, १९ मूला, ६ आर्द्रा, ४ रोहिणी, २६ उत्तरभाद्रपद, २४ शतभिषा।

अग्नितत्त्वका लक्षण—इसकी गति ऊर्ध्वगामी अर्थात् नासिकापुटके उपरिभागमें लग कर श्वास चलता है। प्रश्वासका परिमाण ४ अङ्गुल है। गलेमें तिक्त रसका उद्भव होता है। दर्पण पर निःश्वास त्यागनेसे वह त्रिकोणाकार और लाल दीखेगा। ढाई दण्डके मध्य ३० पल तक उसी प्रकारसे स्थिति रहेगी तथा मनमें रक्तवर्णका उदय होगा और प्रकरण करनेसे रक्तवर्ण दिखलाई देगा। स्कन्धदेशमें इसकी स्थिति है। दक्षिण-नासिका वहनकालमें मङ्गल ग्रह और वाम नासिका-वहनकालमें शुक्र ग्रह इसका अधिपति होता है। इस तत्त्वके नक्षत्रोंके नाम—२ भरणी, ३ कृत्तिका, ८ पुष्या, १० मघा, ११ पूर्वफल्गुनी, २५ पूर्वभाद्रपद, १५ स्वाति।

वायुतत्त्वका लक्षण—इसमें श्वास तीर्यक्गामी अर्थात् नासापुटमें तिरछी तरहसे किनारोंमें लग कर चलता है। इस वायुका परिमाण ८ अङ्गुल है। उस समय गलेमें अम्ल रसकी उत्पत्ति होती है; दर्पणमें श्वास निक्षेप करनेसे वह गोलाकृति और श्यामवर्ण किम्वा नीलवर्ण दीखता है। नाभिमूलमें इसकी स्थिति है। दक्षिण नासिका-वहनके समय राहु ग्रह और वामनासिका वहनके समय बृहस्पति अधिपति होता है। इस तत्त्वमें ये नक्षत्र होते हैं—१६ विशाखा, १२ उत्तरफल्गुनी १३ हस्ता, १४ चित्रा, ७ पुनर्वसु, १ अश्विनी, ५ मृगशिरा।

आकाशतत्त्वका लक्षण—इसमें नासापुटके सर्वस्थानसे वायु निकलती है। सर्वगामी होनेसे इसके परिमाणका निर्णय नहीं किया जा सकता। गलेमें कटु-रसका उद्भव होता है। दर्पण पर निःश्वास छोड़नेसे वह विन्दु विन्दु नाना वर्णोंका दीखता है तथा मिश्रितवर्ण मालूम पड़ता है। इसकी स्थिति ढाई दण्डकालके भीतर १० पल मात्रकी है। यह तत्त्व सर्वकार्यमें निष्फल है। इसलिये इस तत्त्वके वहनकालमें कोई भी कार्य न करना चाहिये, करनेसे वह काम सिद्ध नहीं होता।

पृथ्वीतत्त्वके अधिष्ठात्री देवता ब्रह्मा, जलतत्त्वके विष्णु, अग्नितत्त्वके रुद्र, वायुतत्त्वके ईश्वर और आकाशतत्त्वके सदाशिव है।

पृथ्वी अथवा जलतत्त्वके समय प्रश्न होनेसे कर्मका शुभ फल होता है। वह्नितत्त्वके समय प्रश्न होने पर शुभाशुभ मिश्रफल होता है। वायु वा आकाशतत्त्वके समय प्रश्न होने पर हानि और मृत्यु कर फल होता है।

अग्नितत्त्वके उदयकालमें मारणादि कार्य करना चाहिये। जलतत्त्व-वहनकालमें शान्तिकार्य, वायुतत्त्वमें उच्चाटन, पृथ्वीतत्त्वमें स्तम्भनादि कार्य और आकाशतत्त्वके समय कोई भी कार्य न करना चाहिये। पृथ्वीतत्त्वके समय स्थिरकार्य और जलतत्त्वके समय चर कार्य करें।

जलतत्त्व पश्चिम, दिशाका अधिपति है, पृथ्वीतत्त्व पूर्वदिशाका, अग्नितत्त्व दक्षिणदिशाका, वायुतत्त्व उत्तरदिशाका और आकाशतत्त्व ऊर्द्ध, अधः और मध्यस्थलका तथा अग्नि, ईशान, वायु, नैऋत दिशाका अधिपति है।

THE
Modern Buddhism.
and its
FOLLOWERS IN ORISSA

BY

Nagendra Nath Vasu. M.R.A.S.

with an introduction by

Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri M. A., C. I. E.

It has been conclusively proved in this book that Buddhism is neither dead nor driven out of India, but its pulse still beats with all the energy of life in Orissa. "Sankaracharyya drove away Buddhism from the soil of India" is proved to be absolutely false. The discoveries of 50000 crypto-Buddhists living in the jungle tracts of Orissa first announced in this book has taken the world of European scholars by surprise.

The book contains more than 250 pages. It is nicely printed and beautifully bound. **Price**—Rs. 3/-, for students Rs. 2/-.

Dr. L. D. Burnett of the British Museum writes :—

"A more fascinating and erudite work I have not read for many years and I shall find it most valuable both in the study and in the lecture-room."

Dr. H. Kern, the great Buddhist scholar writes :—

"I need hardly to tell you that the subject matter is one that interests me highly, so that it will be a pleasure for me to read the book, which contains so much that is little known or not at all in Europe."

Sir. George A. Grierson, K. C. I. E. Author of Linguistic Survey of India writes :—

"I have found your chapter on the Revival of Buddhism most interesting. I think it a most important contribution towards the religious history of India. It should certainly be carefully studied by all who interest themselves in that subject."

A. Smith I. C. S. (retired) writes from 116 Banbury Road, Oxford—

"Your book is also of high value for the history of Buddhism and Indian religion generally. The account of later and modern Buddhism is novel and your constant citation of little known Sanskrit works gives t special authority."

ग्राहकोंसे निवेदन।

बहुतसे महाशय हमारे साथ पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर नहीं लिखते। ऐसे महाशयोंसे प्रार्थना है कि पत्र लिखते समय अपना ग्राहक श्रेणीका नम्बर अवश्य २ लिख दिया करें अन्यथा पत्रोत्तरकी आशा न करें।

२। हम आपके साहाय्यसे ही 'हिंदी विश्वकोष'के प्रकाशनका भार उठाने समर्थ हुये हैं। अतः आपसे प्रार्थना है कि कमसे कम दो ग्राहक बनानेकी कृपा करें।

निवेदक—
प्रबंधकर्त्ता—हिंदी-विश्वकोष कार्यालय,
९ विश्वकोष लेन, कांटापुकर, बागबाजार, कलकत्ता

आवश्यकीय सूचना

हिन्दी-विश्वकोषको आज तक प्रतिमास ४ संख्या प्रकाशित होती थीं, परन्तु अब छ संख्या प्रतिमास प्रकाशित होंगी, तदनुसार ग्राहकोंकी सेवामें भी छ संख्या हो प्रतिमास भेजी जाया करेंगी। आशा है, कि छ संख्याकी वी॰ पी॰ छुड़ा कर कृतार्थ करेंगे।

निवेदक—
प्रबन्धकर्त्ता

ARCHÆOLOGICAL REPORT OF
MAYURABHANJA.

BY

Nagendranath Vasu, Editor of "Visvakosha."

This work contains along with the results of the archæological and historical reserches conducted at the cost of the Chief of Mayurabhanja, a descriptive account of the rise and development of the various Hindu, Buddhist and Jaina sects. The discoveries of numerous cripto-Buddhists in Orissa, first announced in this book, has taken the world of European Scholars by surprise. Dr. Kern, Dr. Fleet, Dr. Oldenburg, Sir Grierson, Dr. Sylvain Levi, M. Emile Senart, Mr. Vincent Smith, Dr. Thomas of India Office and other European scholars have enthusiastically received the book and lavished high-flown praises upon it. Beautifully printed and gorgeously bound with more than 100 large plates of inscriptions, grants, ancient temples, ruins and figures of Hindu, Buddhist and Jaina Gods and Goddesses with their identification from the authoritative scriptures of various sects. Price Rs. 15/-, for students Rs. 10/-.

Dr. L. D. Burnett writes in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland, 1912. pp. 802-4.

"The body of the book comprises a series of report on the antiquities and history of a number of sites visited in the course of the survey, with an appendix containing text and facsimiles * * * Almost every form of Hindu religion has left its mark in Morbhanj * * * Undoubtedly the most interesting part of this interesting survey is the Chapter on Buddhism. * * * Pandit Nagendra Nath Vasu brings the history of Buddhism in Orissa down to the present day. He finds distinct traces of Mahayana cults among the Bathuri or Bauri tribe on whose ethnology he gives some valuable data. * * * In concluding this brief notice of this *veritable Ratnakar of learning*, we may add that it is illustrated by numerous plates."

0220

Dr. J. F. Fleet, C. I. E. (the great antiquaran) writes from 8, Leopold Road, Ealing W. London.—

x-2-29

"I have read the book with much interest, and consider it a useful addition to our researches into the ancient and mediæval history of India"

१०८४

नवम भाग] [१२१—२०४ खण्ड

सचित्र] हिन्दी [समानचित्र

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस,

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

नवम भाग

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. IX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava.

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Banglya Sâhitya Parishad
and Kâyastha Patrikâ ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by H. C. Mitra, at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

1924.

बारह खण्डका मूल्य ६) रुपया, एक खण्डका मूल्य ॥) आना और डाक महसूल अलग।

Expert-Opinion

Sir Gooroo Dass Banerjee,
Kt., M. A., D. L., Ph. D.,

The late Justice of the Calcutta High Court and Vice-Chancellor of the Calcutta University writes—

"I am glad to learn that you are publishing a Hindi edition of your great work, the Bengali Encyclopædia "Visvakosha." I had to consult it on several occasions, and I found in it much valuable and rare information. A Hindi edition of this monumental work will make all that useful information available for all India, and will, I am sure, meet with the same enthusiastic encouragement and support that the Bengali Visvakosha has received. (30. 11. 15.)

Babu Saradacharan Mitra, M A., B L. &c.,
The late Justice of the Calcutta High Court writes :—

"The "Viswakosha" or Encyclopædia in Bengali by Babu Nagendra Nath Vasu Práchyavidyamahárnava is an wonderful production. It contains an immense mass of correct information and is very valuable. The learned author is now issuing a Hindi Edition and the first volume is out. The Hindi Edition is enlarged and contains informations upto date. There should be no library without this."

The Hon'ble Sir Ashutosh Mukerjee,
.Sarasvati C. S. I. &c. &c.,

The Justice of the Calcutta High Court, the late Vice-Chancellor of the Calcutta University, writes :—

"I have had occasion many a time to consult the Bengal Encyclopædia Visvakosha prepared by Babu Nagendranath Vasu. I have always entertained the highest opinion about its unique value, due chiefly to its accuracy and completeness. It is a truly monumental work, and I am delighted to learn that a Hindi version of it has been undertaken."

(9. 11. 15)

The Hon'ble Justice A. Chaudhuri,
M. A. LL. B.

of the Calcutta High Court, writes :—

"Your Encyclopædia Indica I constantly refer to in my work. I have always found it thoroughly accurate and very helpful. It is a wonder to me that the compilation, although made by you alone, is so complete. I am writing these few lines in admiration of the great work you have done. I wish the **Hindi** edition every success." (10. 9. 15.)

THE SOCIAL HISTORY OF
KAMARUPA.
Vol. I.

BY

Nagendra Nath Vasu
Prachyavidyamaharnava etc. etc.

A very interesting and readable account of a great social movement which shed a beam of light across the otherwise lurid clouds that envelop the history of Assam.

The book is divided into three chapters of which the first one is devoted to the prehistoric period. The first chapter consists of seven sections. The first section is the general remark upon Kamarupa's claims to historical recognition. The second section deals with the activities of the Phœnicians in Eastern India, their references in the Vedas, the difference between them and the Aryans, the geography of their times, their religion, arts, sciences and commerce and their identity with modern Koch.

The third section deals with the origin of the Mismi, Abors, Daflas and Miris. The fourth section deals with the origin of the Kiratas, Garos and Kacharis. The fourth section describes Usha and Anirudha, Bana and Saumar dynasty and Bànalinga. The sixth section deals with the Kimmerian influence in Kamarupa and the seventh section deals with the Assyrian (Mech) influence with their full history. The second chapter deals with the historical period and third with the rise of the Kayasthas in Kamarupa.

The book is worth reading and without it no research in ancient Indian history could be complete. The book is neatly bound, adequately indexed, clearly written with the support of the authority whose chapter and verse are quoted in their proper place, and on the whole carefully printed and nicely got up. The price Rs. 5|- only. To be had at 9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

पञ्चतत्त्वका उदय और अवस्थान जाननेका उपाय—६ घंटेसे ७ घंटा तक वाम नासिकामें वायु चलेगी, उस समय पृथ्वीतत्त्वका उदय हो कर ५० पल (२० मिनट) तक उसकी स्थिति होगी। इसके बाद जलतत्त्वका उदय और ४० पल (१६ मिनट) तक उसकी स्थिति होगी, फिर अग्नितत्त्वका उदय और ३० पल (१२ मिनट स्थिति, वायुतत्त्वका उदय और २० पल (८ मिनट) स्थिति, आकाशतत्त्वका उदय और १० पल (४ मिनट) उसकी स्थिति होगी। वामनासापुटमें वायुकी स्थिति-काल, तत्त्वका उदय और स्थितिका उदाहरण—

घंटा	मिनट	तत्त्व	ग्रह
६	२०	पृथ्वी	बृहस्पति
६	३६	जल	शुक्र
६	४८	अग्नि	बुध
६	५६	वायु	चन्द्र
७	०	आकाश	०

दक्षिण नासपुटमें वायुके स्थितिकालमें तत्त्वका उदय—

घंटा	मिनट	तत्त्व	ग्रह
७	२०	पृथ्वी	रवि
७	३६	जल	शनि
७	४८	अग्नि	मङ्गल
७	५६	वायु	राहु
८	०	आकाश	०

इस नियमके अनुसार किस समय किस तत्त्वका उदय होगा, यह जाना जा सकता है।

जैनमतानुसार—तत्त्व सात हैं,—१ जीव, २ अजीव, ३ आस्रव, ४ बन्ध, ५ संवर, ६ निर्जरा और ७ मोक्ष। इन सात तत्त्वोंके संशय, विपरीत अनध्यवसायरहित यथार्थ ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

विस्तृत विवरणके लिए जैनधर्म शब्द (भाग ८, पृ० ४५३ ४६१) देखो।

तत्त्वज्ञ (सं० त्रि०) तत्त्वं जानाति तत्त्व-ज्ञा-क। १ तत्त्वज्ञानी, जिसके ईश्वर-विषयक ज्ञान उत्पन्न हुआ हो, ब्रह्मज्ञानी। इस जगत्में सभी वस्तुएं दुःखमय हैं, ऐसा जान कर जिसने तत्त्व (ब्रह्म) को समझ लिया है, वही तत्त्वज्ञ है। तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिए समाधिकी आवश्यकता है। जीवन्मुक्त देखो।

२ दर्शनशास्त्रका ज्ञाता, दर्शन जानेवाला, दार्शनिक।

तत्त्वज्ञान (सं० क्ली०) तत्त्वस्य ब्रह्मतत्त्वस्य ज्ञानं, ६-तत्। ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान। नैयायिकोंके मतसे प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान, इन षोड़श पदार्थके ज्ञानको तत्त्वज्ञान कहते हैं। (गौतमसू० १) इनका स्वरूप जान लेनेसे जीव अपवर्ग लाभ कर सकता है। जब तक इन षोड़श पदार्थोंका तत्त्वज्ञान नहीं होगा तब तक अपवर्ग नहीं हो सकता। न्याय देखो।

सांख्य और पातञ्जलके मतसे प्रकृति और पुरुषका भेदज्ञान ही तत्त्वज्ञान है। पुरुष जब निरन्तर दुःखमें अभिभूत हो कर प्रकृतिके तत्त्वानुसन्धानमें प्रवृत्त होगा, तब वह अपनेको इस प्रकारके ज्ञानसे पृथक् करनेको चेष्टा करेगा कि—'सुख' दुःख और मोहमयी प्रकृतिको मायामें अभिभूत नहीं होना चाहिये, मैं पुरुष निर्गुण, निर्लेप, सच्चिदानन्दमय हूं, प्रकृतिने मुझे अब तक विमोहित कर रक्खा था, अब सावधान होना उचित है!" प्रकृति और पुरुषके इस प्रकारके भेदज्ञानका नाम तत्त्वज्ञान है। प्रत्येक पुरुष (जीवात्मा) को कभी न कभी एक बार तत्त्वज्ञान अवश्य ही होता है वा होगा। जब तक यह तत्त्वज्ञान न होगा, तब तक प्रकृतिसे पुरुष जुदा न हो सकेगा। प्रकृति पुरुषको यह ज्ञान उत्पन्न करा कर निवृत्त हो जाती है। सांख्य देखो।

वेदान्तमतसे अभिभूत हो कर वस्तुका स्वरूप नहीं जान पाता। रज्जुमें सर्पकी तरह ब्रह्ममें परिदृश्यमान जगत् अवलोकन करता है। जगत्में जो कुछ दिखलाई देता है, सब ब्रह्म है, किन्तु अविद्याभिभूत जीव जगत्में ब्रह्मको न देख कर घट, पट, मठ आदि देखा करता है। जब तक अविद्याका नाश न होगा, तब तक जीवको ब्रह्मका स्वरूप किसी तरह भी मालूम न होगा।

अविद्याका नाश होते ही जगत् नहीं दीखेगा, फिर वह जगत् ही को ब्रह्म देखने लगेगा। पहले जिसको विचित्र समझता था, उसे ही फिर वह ब्रह्म समझने लगेगा, "त्वं अहं" तुम-हमका भेद न रहेगा, सभी अहंपदवाच्य हो जायंगे। इस प्रकारके ज्ञानको तत्त्वज्ञान कहते हैं।

जीव ब्रह्मसाक्षात्कार होते ही ब्रह्म हो जाता है, आत्मज्ञ संसारदुःखको अतिक्रम करता है, इत्यादि श्रुतिवाक्योंके प्रमाणसे और तदनुकूल युक्तियोंसे स्थिर होता है कि, तत्त्वज्ञानके सिवा जीवके लिए दुःखातीत होनेका और कोई उपाय नहीं है। ब्रह्म ही मैं हूं, इत्याकार असन्दिग्ध अनुभवका नाम है तत्त्वज्ञान. इस तत्त्वज्ञानके प्रधान उपाय श्रवण, मनन और निदिध्यासन उसके सहायकमात्र हैं। शास्त्रकथा सुननेसे ही श्रवण होता है ऐसा नहीं। गुरुके मुखसे शास्त्रीय उपदेश सुनना, हृदयमें उसका विचारित अर्थ धारण करना, साक्षात् अथवा परम्परासे ब्रह्म ही समस्तशास्त्रका तात्पर्य है, इस विषयमें विश्वास, इन सबके एकत्र होने पर तब कहीं वह श्रवण कहलाता है। इनके बिना श्रवण नहीं होता। इसका एक लौकिक दृष्टान्त दिया जाता है।

कल्पना कीजिये, आपके घरमें जा कर हमने आपके नौकरसे कहा, “एक ग्लास पानी लाओ।” परन्तु वह पानी नहीं लाया। पीछे हमने दुःखित हो कर आपसे कहा “आपके नौकरने हमारी बात नहीं सुनी।” अब देखना चाहिये कि सचमुच ही क्या नौकरने हमारी बात नहीं सुनी या “एक ग्लास पानी ला” ये शब्द उसके कानमें प्रविष्ट ही नहीं हुए अथवा प्रविष्ट हुए थे, उसने सुना था पर ध्यान नहीं दिया या उसके अनुसार कार्य नहीं किया।

अतएव ऊपरका सुनना सुनना नहीं है। सैकड़ों मनुष्य वेदान्त अध्ययन करते हैं, ‘तत्त्वमसि’ वाक्य भी सुनते हैं और उसका अर्थ भी आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं, फिर भी उनको तत्त्वज्ञानका उदय नहीं होता। संसारमें ऐसे भी बहुत मनुष्य हैं, जो बिना वेदान्त अध्ययन किये और ‘तत्त्वमसि’ वाक्यको बिना सुने ही तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। शास्त्रमें कहा गया है कि, कपिल, वामदेव आदि जन्मसे ही तत्त्वज्ञानी थे, अतएव श्रवणके लिये तत्त्वज्ञान वा तत्त्वज्ञान श्रवणका कार्य है, यह बात कैसे मानी जा सकती है? आचार्यदेव शङ्कर कहते हैं, इसके प्रत्युत्तरमें हमारा यह कहना है, कि चित्तकी अनिर्मलता और जन्मान्तरीय पाप आदि प्रतिबन्धकोंसे श्रवण-फल तत्त्वज्ञान अवरुद्ध रहता है। उसमें उसकी कारणताका अभाव नहीं होता। जैसे अग्निका संयोग होने पर भी मणिमन्त्रादि प्रतिबन्धकके कारण दाह-कार्य अवरुद्ध रहता है, उसी प्रकार श्रवणफल तत्त्वज्ञान नाना प्रतिबन्धकों द्वारा अवरुद्ध रहता है। प्रतिबन्धकका क्षय होते ही उसका उदय होता है। कपिल आदिका ऐसा ही हुआ था। उनके पूर्वजन्मके श्रवणने इस जन्ममें प्रतिबन्धक शून्य हो कर तत्त्वज्ञान उत्पन्न किया था, इस लिये इस जन्ममें उनको श्रवण-मननादि नहीं करना पड़ा था। अतएव श्रवण ही तत्त्वज्ञानका प्रधान कारण है, मनन और निदिध्यासन उसके सहकारी हैं। ‘तत्त्वमसि’ इस महावाक्यके श्रवण करनेसे, उसके अर्थमें जो अविश्वास और असम्भव बोध आदि जो कार्य होते हैं, वे कार्य मनन द्वारा निवारित होते हैं। मननके बाद भी यदि स्पष्ट रूपसे ‘मैं ब्रह्म हूं और कुछ नहीं’, ऐसा अनुभव न हो, तो निदिध्यासनकी जरूरत पड़ती है। निदिध्यासनसे सिद्धि प्राप्त कर लेनेसे ही यह अनुभव स्थिरतर होता है, अन्यथा करनेसे तत्त्वज्ञान नहीं होता।

कोई कोई आचार्य कहते हैं कि निदिध्यासन ही तत्त्वज्ञानका मूल कारण है, श्रवण और मनन उसके सहायक मात्र हैं। अपने ब्रह्मभावका अपरोक्ष ज्ञानमें आरूढ़ होना ही तत्त्वज्ञान है। जैसे मरु-मरीचिकामें जलकी भ्रान्ति होती है, उसी तरह ब्रह्ममें दृश्यकी भ्रान्ति होती है। इसलिए दृश्यप्रपञ्च मिथ्या और ब्रह्म ही सत्य है। पहले यह ज्ञान-अर्जन भी दृढ़ करना पड़ता है. बादमें मैं ही ज्ञान हूं और उसके अवलम्बन शरीर, मन और इन्द्रियां सभी भ्रान्तिविशेषका विलास है, इसलिये मैं ही ज्ञान और ज्ञानका अवलम्बन हूं, समस्त ही ब्रह्म है, रज्जु सर्पकी भाँति यह मिथ्याज्ञान जब अविचाल्य होता है, तब अपने आप “अहं” अर्थात् “मैं” यह ज्ञान इन्द्रिय और मन आदिको त्याग कर ब्रह्ममें जा मिलता है। अहंज्ञानके ब्रह्मावगाही होते ही तत्त्वज्ञान हुआ है, ऐसी अवधारणा करनी चाहिये। ऐसा तत्त्वज्ञान होते ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। तत्त्वज्ञान ही जीवके उद्धारका एकमात्र उपाय है, ऐसा तत्त्वज्ञान होने पर उसको आत्मज्ञान वा ब्रह्मज्ञान कहा जा सकता है। यह तत्त्वज्ञान सात्विक, राजसिक और तामसिक मनो-

वृत्तिके अतीत है, इसलिये गुणातीत भी है। जब जिसको सुख-दुःख समझते हों, वह अवस्था उस सुख-दुःखके अतीत है। (वेदान्त०)

जैनमतानुसार—सात तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञानपूर्वक जब शरीर, आत्मा अपनेको कर्मादि बाह्य पदार्थोंसे भिन्न समझ कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्ररूप मोक्षमार्गका अवलंबन करती है, तब उसके उस ज्ञानको तत्त्वज्ञान कहते हैं। यह तत्त्वज्ञान तीन प्रकारका होता है, १ उपशम सम्यक्त्व २ क्षायिकोपशम सम्यक्त्व और ३ क्षायिकसम्यक्त्व। इनमेंसे पहलेके दो हो कर छूट भी जाते हैं, परन्तु जिस जीवको क्षायिक सम्यक्त्व वा अक्षय-तत्त्वज्ञान हो जाता है, वह अवश्य ही मोक्षप्राप्त करता है। विशेष विवरण जैनधर्म शब्द (भाग ८, पृष्ठ ४७१—४७३) में देखो।

तत्त्वज्ञानार्थदर्शन (सं० क्ली०) तत्त्वज्ञानस्य अहं ब्रह्मास्मीति साक्षात्कारस्य अर्थः तस्य दर्शनं, ६-तत्। तत्त्वज्ञानके लिये आलोचन और मोक्षके लिये तत्त्वज्ञानके साधन, मैं ही ब्रह्म हूं ऐसे साक्षात्कारका प्रयोजन अविद्या और उसका कार्य निखिल दुःखनिवृत्तिरूप और परम आनन्द प्राप्तिरूप मोक्ष है। उसकी आलोचना ही तत्त्वज्ञानार्थदर्शन है।

तत्त्वज्ञानी (सं० पु०) तत्त्वस्य ज्ञानमस्यास्ति ज्ञान-इनि। १ जिससे ब्रह्म, आत्मा और सृष्टि आदिके सम्बन्धका यथार्थ ज्ञान हो। तत्त्वज्ञ देखो। २ दार्शनिक।

तत्त्वतः (सं० अव्य०) तत्त्व-तसिल्। यथार्थ रूपसे, वस्तुत, वास्तविक।

तत्त्वता (सं० स्त्री०) तत्त्व भावे तल् स्त्रियां टाप्। १ यथार्थता, वास्तविकता। तत्त्व होनेका भाव या गुण।

तत्त्वदर्श (सं० त्रि०) १ जिसने तत्त्व दर्शन किया है, जिसके तत्त्वज्ञान उत्पन्न हुआ हो। (पु०) २ सावर्णि मन्वन्तरके एक ऋषिका नाम।

तत्त्वदर्शिता (सं० स्त्री०) तत्त्वदर्शिनो भावः तत्त्वदर्शिन् तल् स्त्रियां टाप्। वह जो दर्शन शास्त्र जानता हो तत्त्वज्ञता।

तत्त्वदर्शी (सं० पु०) तत्त्वं पश्यति तत्त्व-दृश-णिनि। १ तत्त्वज्ञानी, वह जो तत्त्व जानता हो। २ रैवतक मनुके एक पुत्रका नाम।

तत्त्वदीपन (सं० क्ली०) तत्त्वालोक, तत्त्वज्ञानकी आभा।

तत्त्वदृष्टि (सं० स्त्री०) वह दृष्टि जो तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेमें सहायक हो, ज्ञानचक्षु, दिव्यदृष्टि।

तत्त्वनिरूपण (सं० क्ली०) तत्त्वस्य निरूपणं ६-तत्। १ स्वरूपधारण, ईश्वर-निरूपण, ब्रह्म-निर्णय। २ जैनमतानुसार—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध आदि सप्त तत्त्वोंका निरूपण।

तत्त्वनिर्णय (सं० पु०) तत्त्वस्य निर्णयः ६-तत्। तत्त्वनिरूपण देखो।

तत्त्वन्यास (सं० पु०) तन्त्रोक्त विष्णुपूजाङ्गन्यासविशेष तन्त्रके अनुसार विष्णुपूजामें एक अङ्गन्यास। इस न्यासके विषयमें तन्त्रसारमें इस प्रकार लिखा है। पहले पूजा विधिके अनुसार पूजादि कर सिद्धिलाभके लिये साधकका यह न्यास करना चाहिए।

"नमः परायेत्युच्चार्य ततस्तत्त्वात्मने नमः।" (गौतमीयत०)

पहले नमः पराय और इसके बाद तत्त्वात्मने नमः यह वाक्य प्रयोग करना पड़ेगा :

मं नमः पराय जीवतत्त्वात्मने नमः भं नमः पराय प्राणतत्त्वात्मने नमः एतद्द्वयं सर्वगात्रे।
ततो हृदयमध्ये तत्त्वत्रयञ्च विन्यसेत्।
वं नमः पराय मतितत्त्वात्मने नमः फं नमः पराय अहंकारतत्त्वात्मने नमः पं नमः पराय मनस्तत्त्वात्मने नमः एतत्त्रयं हृदि।
नं नमः पराय शब्दतत्त्वात्मने नमः मस्तके।
धं नमः पराय स्पर्श तत्त्वात्मने नमः मुखे।
दं नमः पराय रूपतत्त्वात्मने नमः हृदि।
थं नमः पराय रसतत्त्वात्मने नमः गुह्येथ।
तं नमः पराय गन्धतत्त्वात्मने नमः पादयोः।
णं नमः पराय श्रोत्रतत्त्वात्मने नमः श्रोत्रयोः।
ढं नमः पराय त्वक्तत्त्वात्मने नमः त्वयि।
डं नमः पराय चक्षुस्तत्त्वात्मने नमः चक्षुषोः।
ठं नमः जिह्वातत्त्वात्मने नमः जिह्वायां।
टं नमः पराय घ्राणतत्त्वात्मने नमः घ्राणयोः।
ं नमः वाक्तत्त्वात्मने नमः वाचि।
झं नमः पराय पाणितत्त्वात्मने नमः पाण्योः।
जं नमः पराय पादतत्त्वात्मने नमः पादयोः।
छं नमः पराय पायुतत्त्वात्मने नमः गुह्ये।

चं नमः पराय उपस्थतत्त्वात्मने नमः लिंगे ।
ङं नमः पराय आकाशतत्त्वात्मने नमः मूर्ध्नि ।
घं नमः पराय वायुतत्त्वात्मने नमः मुखे ।
गं नमः पराय तेजस्तत्त्वात्मने नमः ।
खं नमः पराय जलतत्त्वात्मने नमः लिंगे ।
कं नमः पराय पृथिवीतत्त्वात्मने नमः पादयोः ।

इत्याच्युतीकृततनुर्विदधीत तत्त्वान्यासं मपूर्वकपराक्षरनत्युपेतं । भूमपराय च तदाह्वयमात्मने च नत्यन्तमुद्धरतु तत्त्वमनुक्रमेण ॥

सकलवपुषि जीवं प्राणमायोज्य मध्ये
न्यस्तुमतिमहंकारतत्त्वं मनश्च ।
कमुखहृदयगुह्यंघ्रिष्वथोशब्दपूर्वं
गुणगणमथकर्णादिस्थितं श्रोत्रपूर्वं ॥
वागादीन्द्रियवर्गमात्मनि नमेदाकाशपूर्वं गणं ।
मूर्द्धास्ये हृदये शिरे चरणयो हृतपुण्डरीकं हृदि ।

शं नमः पराय हृत्पुण्डरीकतत्त्वात्मने नमः हृदि ।
हं नमः पराय द्वादश-कलाव्याप्त-सूर्यमण्डलतत्त्वात्मने नमः हृदि ।
सं नमः पराय षोडशकलाव्याप्तसोममण्डलतत्त्वात्मने नमः हृदि ।
रं नमः पराय दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलतत्त्वात्मने नमः हृदि ।
षं नमः पराय परमेष्ठितत्त्वात्मने वासुदेवाय नमः मस्तके ।
मं नमः पराय पुरुषतत्त्वात्मने संकर्षणाय नमः मुखे ।
लं नमः पराय विश्वतत्त्वात्मने प्रद्युम्नाय नमः हृदि ।
वं नमः पराय निवृत्तितत्त्वात्मनेऽनिरुद्धाय नमः लिंगे ।
लं नमः पराय सर्वतत्त्वात्मने नारायणाय नमः पादयो ।
क्षं नमः पराय कोपतत्त्वात्मने नृसिंहाय नमः सर्वगात्रे ।
एवं तत्त्वानि विन्यस्य प्राणायामं समाचरेत् । (तन्त्रसार)

इस प्रकार उक्त मन्त्र द्वारा सर्वाङ्गमें न्यास कर प्राणायाम करना चाहिये । यथानियमसे तत्त्वन्यास करने पर समस्त सिद्धि लाभ होती है और वह मनुष्य विष्णुको स्वरूपता प्राप्त करता है ।

तत्त्वप्रकाश (सं० पु०) तत्त्वस्य प्रकाशः, ६ तत् । तत्त्वदीपन, तत्त्वज्ञानको आभा ।

तत्त्वबोधिनी (सं० स्त्री०) वह जिसके द्वारा तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता हो ।

तत्त्वभाव (सं० पु०) प्रकृति, स्वभाव ।

तत्त्वभाषी (सं० त्रि०) तत्त्वं भाषते भाष णिनि । यथार्थवादी, जो स्पष्टरूपसे यथार्थ बात कहता हो ।

तत्त्वमङ्गलम्—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत कोचिन राज्यके चित्तुर जिलेका एक शहर । यह अक्षा० १०° ४१′ उ० और देशा० ७६° ४२′ पू०में अवस्थित है । यहाँ एक मुन्सफी अदालत है । इसका क्षेत्रफल प्राय: ५३ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: ६२२२ है ।

तत्त्वरश्मि (सं० पु०) तन्त्रके अनुसार स्त्री-देवताका बीज, वधूबीज ।

तत्त्वरायर—१७वीं शताब्दीके एक विख्यात तामिल शैव संन्यासी । इन्होंने तामिल भाषामें बहुतसे ग्रन्थ लिखे हैं ।

तत्त्ववत् (सं० त्रि०) तत्त्वं विद्यतेऽस्य तत्त्व-मतुप् । तत्त्वविशिष्ट, तत्त्वज्ञानसे भरा हुआ ।

तत्त्ववाद (सं० पु०) दर्शनशास्त्रसम्बन्धी विचार ।

तत्त्ववादी (सं० पु०) तत्त्वं वदति, वद-णिनि । १ यथार्थवादी, वह जो स्पष्टरूपसे यथार्थ बात कहता हो । २ वह जो तत्त्ववादका ज्ञाता और समर्थक हो ।

तत्त्वविद् (सं० पु०) १ तत्त्ववेत्ता । २ परमेश्वर ।

तत्त्वविद्या (सं० स्त्री०) दर्शनशास्त्र ।

तत्त्ववेत्ता—एक कविका नाम । ये १६२३ ई०में हुए थे ।

तत्त्ववेत्ता (सं० पु०) १ तत्त्वज्ञानी, वह जिसे तत्त्वका ज्ञान हो । २ दार्शनिक, दर्शनशास्त्रका ज्ञाता, फिलासफर ।

तत्त्वशास्त्र (सं० पु०) दर्शनशास्त्र ।

तत्त्वश्रद्धान (सं० क्लो०) जिस वस्तुका जो स्वरूप है उसका उसी तरहसे श्रद्धान करना । जैन शास्त्रानुसार सम्यग्दृष्टिके यह होता है ।

तत्त्वसञ्चय (सं० पु०) बौद्धशास्त्रका एक भेद ।

तत्त्वार्थश्रद्धान—(सं० क्लो०) तत्त्वश्रद्धान देखो ।

तत्त्वार्थसूत्र (सं० क्लो०) जैनधर्मका मूलतत्त्व प्रकाशक सूत्रग्रन्थविशेष । यह ग्रन्थ संस्कृत भाषामें लिखा हुआ है इसमें प्रायः समस्त ही जैनधर्मकी ज्ञातव्य बातोंका उल्लेख है । आचार्य श्रीउमास्वामीने इसे बनाया है । दिगम्बर श्वेतांबर दोनों संप्रदायवाले कुछ परिवर्तनके साथ समानभावसे इसे मानते हैं । इसके सूत्रोंका पाठ करनेसे एक उपवास करनेका फल मिलता है । बहुतसे जैनी इसका प्रतिदिन पाठ करना अपना कर्तव्य समझते हैं,

जो लोग पढ़ना नहीं जानते वे भी इसको दूसरोंसे सुननेमें पुण्य समझते हैं।

इस ग्रन्थमें दश अध्याय हैं। उनमें पहिले अध्यायमें नय प्रमाण और निक्षेपका वर्णन है। दूसरे अध्यायमें जीवके औपशमिक आदि ५३ भाव, उसके त्रस स्थावर संसारी मुक्त आदि भेद, संमूर्छन आदि जन्मप्रकार और योनि आदिका विस्तृत वर्णन है। तीसरे अध्यायमें अधोलोक, नरकावास और मध्यलोकके समुद्र द्वीप पर्वत नदी आदिका वर्णन है। चौथेमें ऊर्ध्वलोक-स्वर्ग ज्योतिश्चक्र उनके विमान, आयु, ज्ञान प्रभृतिका वर्णन है पांचवें अध्यायमें जीव, पुद्गल, धर्म (द्रव्यविशेष) अधर्म द्रव्य, आकाश और काल इन छहद्रव्योंका वैज्ञानिक ढङ्गसे वर्णन है। छठेमें जीवके साथ मन वचन कायकी क्रियासे ज्ञानावरणादि कर्मोंका किस प्रकार आश्रय (आगमन) होता है, कौन काम करनेसे क्या फल होता है इत्यादि बातोंका विस्तार है। सातवेंमें मुनि और श्रावकके आचारका वर्णन है। आठवेंमें ज्ञानावरणादि कर्मोंकी स्थिति, प्रकृति अनुभाग और प्रदेशोंका कथन है। नवमेंमें कर्मोंको नष्ट करदेनेमें कारण गुप्ति समिति अनुप्रेक्षा परीषहजय ध्यान आदिका वर्णन है और दशवेंमें मोक्षतत्त्वका विशेष व्याख्यान है। जैनधर्म और उमास्वाति देखो।

तत्त्वानुसन्धान (सं० क्ली०) तत्त्वस्य अनुसन्धानं, ६-तत्। प्रकृत अवस्थाका अन्वेषण।

तत्त्वानुसन्धायी (सं० त्रि०) तत्त्व अनु-सं-धा-णिनि। जो तत्त्वानुसन्धान करता हो।

तत्त्वावधान (सं० क्ली०) तत्त्वस्य अवधानं, ६-तत्। निरीक्षण, जाँच पड़ताल, देखरेख।

तत्त्वावधायक (सं० पु०) तत्त्वस्य अवधायकः, ६-तत्। तत्त्वावधानकारी, निरीक्षक; वह जो देखरेख करता हो।

तत्त्वावधारक (सं० पु०) तत्त्वस्य अवधारकः, ६-तत्। स्वरूपपरिज्ञाता, वह जो किसी विषयका तत्त्वनिरूपण करता हो।

तत्त्वावधारण (सं० क्ली०) तत्त्वस्य अवधारणं, ६-तत्। तत्त्वनिर्णय, यथार्थ बोध।

तत्त्वावबोध (सं० पु०) तत्त्वस्य अवबोधः, ६-तत्। तत्त्वज्ञान। तत्त्वज्ञान देखो।

तत्पत्री (सं० स्त्री०) तत्पत्रं यस्याः, बहुव्री०। १ हिङ्गुपत्री, वंशपत्री नामकी घास। २ कदली वृक्ष, केलेका पेड़।

तत्पद (सं० क्ली०) तदिति पदं, कर्मधा०। १ विष्णुका परम पद, निर्वाण।

"तत्त्वमसि श्वेतकेतो इत्यादिवाक्यस्थं तत्सत्यं स आत्मादि" (श्रुति) हे श्वेतकेतो! वही सत्य है. वही आत्मा एकमात्र सत्य है. इसीलिये उस आत्माको तत्पद समझना चाहिये। "तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः।" आह्निकतत्त्व) २ अश्वत्थवृक्ष।

तत्पदलक्षणार्थ (सं० पु०) तत्पदस्य लक्षणोऽर्थः, ६-तत्। चित्स्वरूप ब्रह्म।

तत्पदवाच्य (सं० त्रि०) तत्पदस्य वाच्यः, ६-तत्। ब्रह्म, श्रुतिप्रतिपाद्य एकमात्र ब्रह्म ही तत्पदवाच्य है।

तत्पदवाच्यार्थ (सं० पु०) तत्पदवाच्यस्य अर्थः ६-तत्। ब्रह्मके वाच्यार्थमें अज्ञानादिसमूह उपस्थित सर्वज्ञत्व प्रभृति विशिष्टचैतन्य और अनुपहितचैतन्य ये तीन तत्पदवाच्यके अर्थ हैं।

तत्पदार्थ (सं० पु०) तत्पदस्य तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य अर्थः, ६-तत्। जगत्कारण परमात्मा, सृष्टिकर्त्ता। ब्रह्म ही एकमात्र जगत्का कारण है। ब्रह्म देखो।

तत्पदाविध (सं० त्रि०) तत्पदस्य तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य अविधा यत्र, बहुव्री०। तत्पदवाच्य, ब्रह्म।

तत्पर (सं० त्रि०) तत् परमं उत्तमं यस्य, बहुव्री०। १ तद्गत, उससे सम्बन्ध रखनेवाला। २ तदासक्त, उसमें लगा हुआ। तस्मात् परं, ५-तत्। ३ सन्नद्ध, उद्यत, जो कोई काम करनेके लिये तैयार हो। ४ निविष्ट, यत्नवान्। ५ निपुण, दक्ष। ६ सतर्क, चतुर, होशियार। (पु०) ७ एक निमेषका तीसवाँ भाग।

तत्परता (सं० स्त्री०) तत्पर-तल्-टाप्। १ सचेष्टता, मुस्तैदी। २ दक्षता, निपुणता। ३ यत्न, आग्रह। ४ सतर्कता, होशियारी।

तत्परायण (सं० त्रि०) तदेव परं अयनं, यस्य, बहुव्री०। १ तदासक्त, उसमें लगा हुआ। २ तत्प्रधान, उसमें श्रेष्ठ।

तत्पुरुष (सं० पु०) १ समासविशेष, एक प्रकारका समास। इस समासमें उत्तरपदकी प्रधानता होती है,

अर्थात् दो पदोंमें समास हो कर जो यह बनता है उसका लिङ्ग प्रभृति होता है। प्रधानतः यह समास ६ भागोंमें विभक्त है—द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी तत्पुरुष। द्वितीयादि विभक्तिके अन्तका उत्तर द्वितीयादि तत्पुरुष होता है। समास देखो। २ रुद्र भेद, एक रुद्रका नाम। ३ ईश्वर, परमेश्वर। ४ मत्स्यपुराणके अनुसार एक कल्पका नाम।

तत्पूर्व (सं० त्रि०) स एव पूर्वः, कर्मधा०। सर्व प्रथम, सबसे पहला।

तत्प्रकार (सं० त्रि०) उसी तरह।

तत्प्रतिरूपक व्यवहार (सं० पु०) जैनियोंके मतसे एक अतिचार। यह विक्रेय शुद्ध पदार्थोंमें खोटे पदार्थोंको मिलान करनेसे होता है।

तत्फल (सं० पु०) तनोति तन-क्विप् तत् फलं यस्य, बहुव्री० वा तत् विस्तृतं फलति फल-अच्। १ कुवलय, नीलकमल। २ कुष्ठ नामक औषधविशेष; कूट नामकी दवा। ३ चोर नामक सुगन्धि द्रव्य। ४ रोहिषतृण (क्ली०) तस्य फलं, ६-तत्। ५ उसका फल।

तत्र (सं० अव्य०) तत् त्रल्। वहाँ, उस स्थान पर उस जगह।

तत्रक (हिं० पु०) यूरोप, अरब, फारससे ले कर पूर्वमें अफगानिस्तानतक होनेवाला एक प्रकारका पेड़। यह कुछ कुछ अनार पेड़सा मिलता जुलता है। इसके पत्र नीमके पत्तोंकी तरह कटावदार और कुछ ललाई लिये होते हैं। इसके बीजको समाक कहते हैं और ये बाजारमें बिकते हैं। हकीमी दवामें इसके बीज बहुत उपयोगी हैं। एक प्रकारका रंग इसके पत्तोंसे बनाया जाता है। इसके डंठल और पत्ते चमड़े सिझानेके काममें आते हैं। हिन्दुस्तानमें चमड़ेके बड़े बड़े कारखानोंमें इसके पत्ते सिसिलीसे मंगाये जाते हैं।

तत्रत्य (सं० त्रि०) तत्र भवः अव्ययात् त्यप्। तत्स्थानस्थ, उस स्थान पर उत्पन्न।

तत्रभवत् (सं० त्रि०) पूज्यार्थं तत्र भवान् नित्यसः वा सुप्सुपेति समासः। पूज्य, मान्य प्रशंसनीय श्रेष्ठ। अत्रभवान् देखो।

तत्रस्थ (सं० त्रि०) तत्र तिष्ठति स्था-क। तत्रस्थित, उस स्थानका, उस जगह पर।

तत्रापि (सं० अव्य) तथापि, तोभी।

तत्संक्रान्त (सं० त्रि०) तस्य संक्रान्तः, ६-तत्। तदीय। उसका, उससे सम्बन्ध रखनेवाला।

तत्सदृश (सं० त्रि०) तस्य सदृशः, ६-तत्। तथाविध, उसके समान।

तत्सम (सं० पु०) भाषामें व्यवहृत होनेवाला संस्कृतका एक शब्द।

तत्समानन्तर (सं० अव्य) तदनन्तर, उसके बाद।

तत्साधुकारी (सं० त्रि०) तत्साधु यथा तथा करोति तत्-साधु-कृ-णिनि। जो उसके प्रति उत्तम व्यवहार करता हो।

तत्स्थ (सं० त्रि०) तत्र तिष्ठति तत्-स्था-क। वहाँ पर अवस्थित।

तत्स्थलाभिषिक्त (सं० त्रि०) तस्य स्थले अभिषिक्तः, ६ और ७-तत्। उसका प्रतिनिधि, जो दूसरोंका स्थानापन्न हो कर काम करता हो।

तत्स्वरूप (सं० त्रि०) तस्य स्वरूपः ६-तत्। उसके समान, उसीके जैसा।

तथा (सं० अव्य०) तेन प्रकारेण तद्-थाल्। १ इसी तरह, ऐसे ही। २ और, व। ३ अभ्युपगम, निकट, समीप। (पु०) ४ पूर्व प्रतिवचन, पहलेकी कही हुई बात। ५ सत्य। ६ सीमा, हद। ७ निश्चय। ८ समानता।

तथाकार (सं० अव्य०) किसी प्रकारसे करके।

तथागत (सं० पु०) तथा सत्यं गतं ज्ञानं यस्य, बहुव्री० यथा न पुनरावृत्तिर्भवति तथा तेन प्रकारेण गतः। १ गौतमबुद्ध, सुगत। पूर्व पूर्व बुद्धोंकी तरह आगमन हुआ था, इसलिए इनका नाम तथागत हुआ। बुद्ध देखो। (त्रि०) तथा तेन प्रकारेण आगतः ३-तत्। २ उसी प्रकार एवं उसी रूपमें आये हुए। (भारत ३।७७।५)

तथागतगर्भ (सं० पु०) बौद्धके एक शास्त्रका नाम।

तथागतगुणज्ञानचित्यविषयावतारनिर्देश (सं० पु०) बौद्धके एक शास्त्रका नाम।

तथागतगुप्त (सं० पु०) एक बौद्ध राजा।

तथागतगुह्यक (सं० पु०) नेपाली बौद्धोंके ९ प्रधान शास्त्रोंमेंसे एक।

तथागतभद्र—नागार्जुनके एक प्रधान शिष्य।

तथागुण (सं॰ त्रि॰) तद्रूपगुणसम्पन्न, वैसा ही गुणवान्।

तथाच (सं॰ अव्य॰) तथा च च, च, इति, द्वन्द्व॰। तत्रापि, तौ भी।

तथाता (सं॰ स्त्री॰) तथा भावे तल्-टाप्। तथात्व, उस तरह।

तथात्व (सं॰ क्ली॰) तथा भावे त्व। तथाभूतत्व, उस तरह।

तथापि (सं॰ अव्य॰) तथा च अपि च, द्वन्द्व। तत्रापि, तो भी, तिस पर भी, तब भी।

तथाभावी (सं॰ त्रि॰) तत्स्वभावसम्पन्न, उसी स्वभावका।

तथाभूत (सं॰ त्रि॰) तेन प्रकारेण भूतः भू-कर्त्तरि क्त। उसी प्रकारसे सम्पन्न, उसी तरहसे भया हुआ।

तथामुख (सं॰ त्रि॰) उसी ओर मुख घुमा कर। उसी ओर मुंह रख कर।

तथाराज (सं॰ पु॰) तथेति राजते राज-टच्। बुद्ध।

तथारूप (सं॰ त्रि॰) तदनुरूप, उसी प्रकार।

तथारूपी—तथारूप देखो।

तथाविध (सं॰ त्रि॰) तथा विधा यस्य, बहुव्री॰। तादृश, उसी प्रकार।

तथाविधेय (सं॰ त्रि॰) उसी प्रकार कर्त्तव्य, जो उसी तरह किया जाय।

तथाव्रत (सं॰ त्रि॰) उसी तरह व्रतपरायण।

तथास्तु (अव्य॰) वैसाही हो।

तथास्वर (सं॰ त्रि॰) उसी तरह उच्चारण किया हुआ।

तथाहि (सं॰ अव्य॰) तथा च हि च, द्वन्द्वः। १ निदर्शन, दिखलानेकी क्रिया। २ प्रसिद्ध, ख्याति। ३ समर्थन।

तथैव (सं॰ अव्य॰) तथाच एव च, द्वन्द्वः। तद्वत्, उसी तरह, वैसाही।

तथैवच (सं॰ अव्य॰) तथा च एव च चच, द्वन्द्वः। उसी प्रकारसे हो।

तथ्य (सं॰ क्ली॰) तथा साधु तथा यत्। (तत्र साधुः। पा ४।४।९८) १ सत्य, यथार्थता, सचाई। (त्रि॰) २ तद्युक्त।

तथ्यज्ञान (सं॰ क्ली॰) तथ्यस्य ज्ञानं, ६-तत्। यथार्थ ज्ञान, प्रकृत ज्ञान। तत्त्वज्ञान देखो।

तथ्यबोध (सं॰ पु॰) तथ्यस्य बोधः ६-तत्। तथ्यज्ञान, प्रकृत ज्ञान। ज्ञान देखो।

तथ्यभाषी (सं॰ त्रि॰) तथ्यं भाषते भाष-णिनि। यथार्थवादी, साफ और सच्ची बात कहनेवाला।

तथ्यवादी (सं॰ त्रि) तथ्यं वदति वद-णिनि।

तथ्यभाषी देखो।

तथ्यानुसन्धान (सं॰ क्ली॰) तथ्यस्य अनुसन्धानं, ६-तत्। प्रकृत अवस्थाका अनुसन्धान।

तद् (सं॰ त्रि॰) तत् आदि तिच्च। १ बुद्धिस्थ परामर्श विशेष, वह। इसका प्रयोग यौगिक शब्दोंके आरम्भमें होता है। तत् देखो।

तदंश (सं॰ पु॰) तस्य अंशः, ६-तत्। उसका भाग या हिस्सा।

तदतिरिक्त (सं॰ त्रि॰) तस्य अतिरिक्त, ६-तत्। उसके अतिरिक्त, उसके सिवा।

तदधिक (सं॰ त्रि॰) तदतिरिक्त, उसके अलावा।

तदन्त (सं॰ त्रि॰) १ इसी प्रकारसे समाप्त होना। (पु॰ क्ली॰) २ अभिप्राय, मतलब।

तदनन्तर (सं॰ क्ली॰) उसके पीछे, इसके उपरान्त।

तदन्तर (सं॰ क्ली॰) तस्य अनन्तर ६-तत्। उसके बाद, उसके पीछे।

तदन्न (सं॰ त्रि॰) तदेव अन्नं यस्य, बहुव्री॰। जिस तरह जाग्रत अवस्थामें अन्नादि भोजनशील उसी तरह स्वप्नमें भी।

तदनु (सं॰ क्रि॰ वि॰) १ एक उसी प्रकार, उसी तरह। २ उसके बाद, तदनन्तर।

तदनुरूप (सं॰ त्रि॰) तस्य अनुरूप, ६-तत्। तद्रूप। उसीके जैसा।

तदनुसार (सं॰ पु॰) तस्य अनुसार; ६-तत्। उसके अनुकूल, उसके मुताबिक।

तदनुसारी (सं॰ त्रि॰) तदनुसरति अनु सृ-णिनि। तदनुयायी, उसीके अनुसार चलनेवाला।

तदन्य (सं॰ त्रि॰) तस्मादन्यः ५-तत्। तद्भिन्न, उससे अलग।

तदन्यबाधितार्थप्रसङ्ग (सं॰ पु॰) तदन्यः बाधितार्थस्य प्रसङ्गः। प्रमाणबाधित अर्थका प्रसङ्गरूप तर्कभेद, नव्य न्यायमें तर्कके पांच प्रकारोंमेंसे एक। पांच प्रकारके तर्कोंके नाम—आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रक, अन-

वस्था और प्रमाणबाधितार्थप्रसङ्ग। तर्क देखो।

तदपि (सं० अव्य०) तथापि, तोभी।

तदबीर (अ० स्त्री०) युक्ति उपाय, तरकीब।

तदभिन्न (सं० त्रि०) तस्मादभिन्नः, ५-तत्। तत्स्वरूप, उसीके समान, उसीके जैसा।

तदर्थ (सं० त्रि०)) १ तत्प्रयोजनक, उसके लिये। २ तदभिधेय। ३ तत्प्रयोजन, तन्निमित्त, तज्जन्य।

तदर्पण (सं० क्ली०) तस्य तस्मिन् निक्षिप्तस्य अर्पणं ६-तत्। उस वस्तुका प्रत्यर्पण, उस पदार्थका देना।

तदर्ह (सं० त्रि०) तद्योग्य, उसके लिये।

तदवधि (सं० क्ली०) सः अवधि यस्मिन् तत्, बहुव्री०।

तदवस्थ (सं० त्रि०) सा अवस्था यस्य बहुव्री०। जो उसी अवस्थामें हो, जिसकी पहली अवस्था कुछ भी नहीं घटी हो।

तदा (सं० अव्य०) तस्मिन् काले तद्-दा। उस समय, तिस समय, तब।

तदाकार (सं० त्रि०) १ तद्रूप, उसी आकारका, वैसा ही। २ तन्मय, तल्लीन, लगा हुआ।

तदात्मा (सं० पु०) १ तत्स्वरूप, उसके ऐसा। २ तद्भिन्न, उसीके सदृश।

तदात्व (सं० क्ली०) तदा इत्यस्य भावः तदा-त्व। तत्काल, वर्तमान समय।

तदानीं (अ० अव्य०) तस्मिन् काले तद्-दानीं। तदो दा च। पा ६।३।१९। उसी समय, तब।

तदानीन्तन (सं० त्रि०) तत्र भव इति ट्युल्, ल्युट्, च। तदातन, उस समयका।

तदाप्रभृति (सं० त्रि०) तदा तत्कालः प्रभृतिरादिर्यस्य, बहुव्री०। उसी समयसे।

तदामुख (सं० त्रि०) तदा मुखं यस्य बहुव्री०। आरंभ, शुरू।

तदायुक्तक (सं० पु०) तस्मिन् आयुक्तः, ७-तत् स्वार्थे कन्। राजपरिषद्विशेष, राजाकी एक सभा।

तदारुक (अ० पु०) १ किसी खोई हुई चीज अथवा अपराधीका अन्वेषण। २ प्रबन्ध बन्दोबस्त, पेशबन्दी। ३ दण्ड, सजा।

तदित् (सं० त्रि०) तदेति इन् क्विप्, तुक्। तद्विषयक स्तोत्र।

तदितर्थ (सं० त्रि०) तदित् तदेवार्थः प्रयोजनं यस्य, बहुव्री०। तद्विषयक स्तोत्र, उस संबन्धी स्तुति। जिसका प्रयोजन है। "वयुमू त्वा तदिदर्था इन्द्र" (ऋक् ८।२।१६) 'यद्विषयकं स्तोत्र तदित् तदेवार्थः प्रयोजनं येषां तादृशा।' (सायण)

तदीय (सं० त्रि०) १ तत्सम्बन्धी, उसका, उससे सम्बन्ध रखनेवाला।

तदुपरान्त (सं० अव्य०) उसके पीछे, उसके बाद।

तदुपरि (सं० त्रि०) तत् उपरि। उसके ऊपर।

तदेक (सं० त्रि०) स एव एकः प्रधानं यस्य, बहुव्री०। तत्स्वरूप, उसके सदृश।

तदेकात्मा (सं० त्रि०) स एव एकः आत्मा आत्मस्वरूपः यस्य, बहुव्री०। उसीके जैसा, उसीके समान।

तदोकस (सं० त्रि०) वही स्थान, वहां।

तदोजस् (सं० त्रि०) सर्वबलस्वरूप, उसीके जैसा बलवान्।

तद्गज (सं० त्रि०) तत् गजः, २-तत्। १ तदासक्त, उसके अन्तर्गत। २ उससे सम्बन्ध रखनेवाला।

तद्गुण (सं० त्रि०) तस्य गुण इव गुणोऽस्य, बहुव्री०। १ तत्तुल्य गुणयुक्त, उसीके समान गुणवान्। २ अर्थालङ्कारविशेष, एक अर्थालङ्कार। जहाँ अपना गुण त्याग करके समीपवर्त्ती किसी दूसरे उत्तम पदार्थका गुण ग्रहण किया जाता है, वहाँ यह अलङ्कार हुआ करता है। (पु०) तस्य गुणः, ६-तत्। ३ उसका गुण। ४ प्रधान विशेषण।

तद्गुणसंविज्ञान (सं० पु०) तत्र बहुव्रीहौ गुणस्य गुणीभूतस्य विशेषणस्य संविज्ञानं सम्यक्ज्ञानं यत्र, बहुव्री०। समासविशेष, एक समास। बहुव्रीहि समासके दो भेद हैं—तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान। बहुव्रीहि समास करने पर समस्यमान पदार्थ जहाँ समासवाच्यमें रहता है, उसको तद्गुणसंविज्ञान कहते हैं। यथा—'त्रीणि लोचनानि यस्य स त्रिलोचनः शिवः।" यहाँ पर समास वाच्यमें अर्थात् शिवके तीन नेत्र हैं ऐसा जान कर इसका नाम तद्गुणसंविज्ञान पड़ा है। समास देखो।

तद्दण्ड (सं० त्रि०) तत्दण्डं, कर्मधा०। वह दण्ड, वह काल, तब।

तद्दिन (सं० क्ली०) तत् दिनं, कर्मधा०। वह दिन, उस वक्त।

तद्दिनम् (सं० अव्य०) १ दिन मध्य, दिनमें। २ प्रतिदिन, रोज रोज।

तद्धन (सं० त्रि०) तदेव व्ययेनाहीनं धनं यस्य, बहुव्री०। १ कृपण, कंजूस। (क्ली०) तत् धनं, कर्मधा०। २ वह धन या दौलत। तस्य धनं ६-तत्। ३ उसका धन।

तद्धर्म (सं० त्रि०) स धर्म यस्य, बहुव्री०। तथाभूत धर्मयुक्त, उसीके ऐसा धर्मात्मा।

तद्धित (सं० त्रि०) तस्मै हितं, ४-तत्। १ उसकी भलाई। (पु० क्ली०) २ व्याकरणोक्त प्रत्ययविशेष, व्याकरणमें एक प्रकारका प्रत्यय। इसे संज्ञाके अन्तमें लगा कर शब्द बनाते हैं। यह प्रत्यय पाँच प्रकारके शब्द बनानेके काममें आता है। यथा—अपत्यवाचक, कर्तृवाचक, भाववाचक, ऊनवाचक और गुणवाचक। अपत्यवाचक वह है जिससे अपत्यता या अनुयायित्वका बोध हो। इसमें या तो संज्ञाके पहले स्वरको वृद्धि कर दी जाती है अथवा उसके अन्तमें 'ई' प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। कर्तृवाचक वह है जिससे किसी क्रियाके कर्त्ता होनेका बोध हो। इसमें प्रायः वाला या हारा प्रत्यय लगाया जाता है। भाववाचक वह है जिससे भावका बोध हो। इसमें आई, ई, त्व, ता, पन, पा, वट, हट आदि प्रत्यय लगते हैं। ऊनवाचक वह है जिसमें किसी प्रकारको न्यूनता या लघुता आदिका बोध हो। इसमें संज्ञाके अन्तमें 'क,' 'इया' आदि लगाये जाते हैं और 'आ' 'ई'में बदल दिया जाता है। गुणवाचक वह है जिससे गुणका बोध हो। इसमें संज्ञाके अन्तमें आ, इक, इत, ई, ईला, एला, लू, वर्त्त, वान, दायक, कारक आदि प्रत्यय लगाये जाते हैं।

२ इसी तरहके प्रत्यय लगा कर बना हुआ शब्द।

तद्बल (सं० पु०) तस्मिन् लक्ष्ये एव बलं यस्य, बहुव्री०। वाणविशेष, एक प्रकारका वाण।

तद्भव (सं० पु०) संस्कृतके शब्दका अपभ्रंशरूप। जैसे हस्तका हाथ।

तद्भाव (सं० पु०) तस्य भावः, ६-तत्। १ उसका असाधारण धर्म। यथा घटमें घटत्व, गोमें गोत्व। तस्मिन् भावः, ७-तत। २ विषयकी चिंता।

तद्भावापन्न (सं० त्रि०) तद्भावं आपन्नं, २-तत्। तदवस्थ, जो उसी अवस्थामें हो, जिसकी पहली अवस्था कुछ भी बदली न हो।

तद्भिन्न (सं० त्रि०) तस्मात् भिन्नः, ५-तत्। तद्व्यतिरिक्त, उसके सिवा।

तद्यपि (सं० अव्य०) तथापि, तोभी।

तद्राज (सं० पु०) तस्य राजा, ६-तत्। उसका राजा।

तद्रूप (सं० त्रि०) तत् रूपं कर्मधा०। सदृश, समान, वैसा ही।

तद्रूपता (सं० स्त्री०) सादृश्य, समानता।

तद्वत् (सं० अव्य०) तेन तुल्यं वा तया तुल्या सा चेत् क्रिया इत्यर्थे वति। १ तत्सदृश क्रियायुक्त, उसीके समान जिसकी क्रिया हो। २ तत्सदृश, उसीके जैसा, ज्यों का त्यों। (त्रि०) तद् अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। ३ तत्तुल्य, उसकी नाईं।

तद्वत्ता (सं० स्त्री०) तद्वतो भावः तद्वत्-तल्-टाप्। तद्विशिष्ट, सदृशता, समानता।

तद्वश (सं० त्रि०) तत्काम।

तद्वा—तद्वत् देखो।

तद्वाचक (सं० त्रि०) तदर्थक।

तद्विध (सं० त्रि०) सा विधा प्रकारो यस्य, बहुव्री०। तथाविध, उसी तरह।

तद्व्यतिरिक्त (सं० त्रि०) तस्मात् व्यतिरिक्तः, ५-तत्। तद्भिन्न, उसके सिवा।

तन (सं० पु०) १ धन। २ वंशज, सन्तान।

तन (हिं० पु०) १ शरीर, देह। २ स्त्रीको मूत्रेन्द्रिय, भग, योनि।

तनक (सं० पु०) वेतनक।

तनक (हिं० पु०) एक रागिणीका नाम। इसे कोई कोई मेघरागकी रागिणी मानते हैं।

तनकपुर—अल्मोड़ा जिलेकी चम्पावत तहसीलका व्यवसायप्रधान एक ग्राम। यह अक्षा० २९° ४′ उ० और देशा० ८०° ७ पू० पर हिमालयकी तलहटीमें सारदा नदीके निकट बसा हुआ है। लोकसंख्या लगभग ६९२ है। यह तिब्बतके व्यापारियोंका प्रधान व्यापारस्थान है। भूटानवासी यहां सुहागा और ऊन ला कर बेचते हैं और कपड़ा चीनी खरीद ले जाते हैं।

तनक़ीह (अ० स्त्री०) अन्वेषण, जाँच, खोज। २ न्यायालयमें उपस्थित अभियोगमेंसे विवादास्पद बातोंको ढूँढ़ निकालना।

तनख़ाह (फा० स्त्री०) वेतन, तलब।

तनख़ाहदार (फा० पु०) वेतनभोगी, तलब पानेवाला नौकर।

तनख़्वाह (हिं० स्त्री०) तनखाह देखो।

तनज़ेब (फा० स्त्री०) एक प्रकारका सूक्ष्म और सुन्दर सूती कपड़ा।

तनज़्ज़ुल (अ० पु०) अवनति, घटाव।

तनज़्ज़ुली (फा० स्त्री०) अवनति, घटाव।

तनतना (हिं० पु०) १ रोबदाब, हुकूमत। २ क्रोध, गुस्सा।

तनतनाना (हिं० क्रि०) १ रोबदाब दिखलाना। २ क्रोध करना।

तनदिही (हिं० स्त्री०) तंदेही देखो।

तनधर (हिं० पु०) तनुधारी देखो।

तनना (हिं० क्रि०) १ झटके, खिंचाव वा खुश्कीसे किसी पदार्थका विस्तार बढ़ना। २ जोरसे खिंचना। ३ अकड़ कर खड़ा होना। ४ अभिमानसे ऐंठना।

तनपात (हिं० पु०) तनुपात देखो।

तनपोषक (हिं० वि०) स्वार्थी, खुदगरजी।

तनबाल (सं० पु०) १ जनपदविशेष, एक प्राचीन देशका नाम। २ उस देशके निवासी।

तनमय (हिं० वि०) तन्मय देखो।

तनमानसा (सं० स्त्री०) ज्ञानकी सात भूमिकाओंमें तीसरी भूमिका।

तनय (सं० पु०) तनोति विंस्तारयति कुलं तन-कयन्। बलिमलितनिभ्य: कयन्। उण् ४।९९। १ पुत्र, बेटा। २ जन्मलग्नसे पाँचवा स्थान।

तनय—चन्द्रवंशी राजा कुशके पुत्र।

तनया (सं० स्त्री०) तनय-टाप्। १ कन्या, बेटी। २ चक्रकुल्यालता, पिठवन लता। ३ घृतकुमारी, घीकुवार, ग्वारपाठा। ४ कृष्णतुलसी।

तनयित्नु (सं० पु०) तन शब्दे तन-इत्नु पृषोदरा० साधुः। १ अशनि, बिजली, वज्र। २ मेघ, बादल।

तनराग (हिं० पु०) तनुराग देखो।

तनवाना—ताननेका काम दूसरोंसे कराना, तनाना।

तनवाल (हिं० पु०) वैश्योंकी एक जाति।

तनस् (सं० पु०) तनोति वंश तन-असुन्। पौत्रादि।

तनसल (हिं० पु०) स्फटिक, बिल्लौर।

तनसीख़ (अ० स्त्री०) अस्वीकार करना, रद्द करना।

तनसुख (हिं० पु०) एक प्रकारका उमदा फूलदार कपड़ा।

तनहा (फा० वि०) एकाकी, अकेला।

तनहाई (फा० स्त्री०) १ तनहा होनेकी दशा। २ एकान्त, वह स्थान जहाँ और कोई न हो।

तना (सं० स्त्री०) तन-अच् टाप्। धन, दौलत।

तना (फा० पु०) १ पेड़का धड़, मंदल। (क्रि० वि०) २ ओर, तरफ।

तनाई (हिं० स्त्री०) तनाव देखो।

तनाज़ा (अ० पु०) १ प्रपंच, झगड़ा, टंटा। २ शत्रुता, वैर।

तनादि (सं० पु०) धातुपाठोक्त धातुगणविशेष।

तनाना (हिं० क्रि०) ताननेके काममें किसी दूसरेको लगाना।

तनाव (हिं० पु०) १ तननेका भाव या क्रिया। २ धोबीके कपड़े सुखानेकी रस्सी। ३ रज्जु, रस्सी, डोरी।

तनावल—उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेशके अन्तर्गत हज़ार जिलाके अधीन एक पार्वत्य जनस्थान है। यह अक्षा० ३४° १५′ तथा ३४° २३′ उ० और देशा० ७२° ५२′ तथा ७३° १०′ पू०में सिन्धु नदीके पूर्व किनारे पर अवस्थित है। उत्तर-पश्चिमकी ओर सिरान नदी बहती है। अकबरके शासनान्त कालमें यूसफजायके निवासी पठानोंने तनावलको जीता था और अब भी इस प्रदेशके किसी किसी भागमें अफगानोंका निवासस्थान देखा जाता है। दुरानियोंके समयमें यह कुछ दिनोंके लिये नाममात्र ही काश्मीरके अधीन था। तनावलके निवासी ही इस प्रदेशके प्रकृत-शासनकर्त्ता हैं। ये मुगलोंकी शाखान्तर्भुक्त हैं। तनावल-निवासी पुलाल और हिन्दवाल—दो श्रेणीमें विभक्त हैं तथा वर्त्तमान तनावल स्टेट हिन्दवाल तनावलियोंके वासस्थान और उनके अधिकृत स्थानोंसे गठित है।

इस प्रदेशका क्षेत्रफल लगभग २०४ वर्गमील तथा जनसंख्या प्रायः ३१६२२ है। इसके उत्तरमें कृष्ण पर्वत, पश्चिममें सिन्धु नद, दक्षिणमें हरिपुर तथा अबोटाबाद तहसील और पूर्वमें हजार जिलाका मानसेर-तहसील अवस्थित है। इस प्रदेशका थोड़ा भाग चम्बाके शासनकर्त्ता नवाब सर महम्मद अकरम खाँ, के० सी० एस० आई० महोदयके और थोड़ा भाग फुलराके खाँ आता महम्मद खाँके अधीन है। ये दोनों हिन्दवाल संप्रदायके तनावली हैं। महम्मद अकरम खाँने १८६८ ईस्वीमें नवाबकी उपाधि पाई थी। सिपाही-विद्रोहके समयमें इनके पिताने अंग्रेजोंका यथेष्ट उपकार किया था और इन्होंने भी १८६८ ई०में हजाराधिकारके समय अत्यन्त साहस तथा प्रगाढ़ भक्तिका परिचय दिया था। इसीलिये अंग्रेजोंने इन्हें नवाबकी उपाधि दी। इन्हें १८७१ ई०में सी० एस० आई० और १८८८ ई०में के० सी० एस० आईकी उपाधि मिली इन्होंने हजार जिलाके अन्तर्गत हरिपुर तहसीलका ९०००) की जागीर उपभोग कर रहे हैं।

तनिक (हिं० वि०) १ थोड़ा, कम। २ छोटा।

तनिका (सं० स्त्री०) तन्यते धातूनामनेकार्थत्वात वध्यतेऽनया करणे इन् संज्ञायां कन् कापि अत इत्वं। बन्धन-रज्जु, कोई चीज बाँधी जानेकी रस्सी।

तनिमन् (सं० पु०) तनोर्भावः तनु-इमनिच। १ तनुत्व, कृशता, दुर्बलता, दुबलापन। २ यकृत्, उदररोग प्लीहा।

तनिया (हिं० स्त्री०) १ लंगोट, लँगोटी। २ कछनी, जाँघिया। ३ चोली।

तनिष्ठ (सं० त्रि०) अयमनयो रतिशयेन तनुः वा अयमेषामतिशयेन तनुः तनु-इष्ठन्। क्षुद्र, जो बहुत दुबला पतला छोटा या कमजोर हो।

तनी (हिं० स्त्री०) बन्धन, बन्द।

तनीयस् (सं० स्त्री०) बहूनां मध्येऽयमतिशयेन। अल्प, छोटा।

तनु (सं० स्त्री०) तन-उ। १ शरीर, देह। २ त्वच्, चमड़ा। ३ स्त्री, औरत। ४ केंचुली। (त्रि०) ५ कृश, दुबलापतला। ६ अल्प, थोड़ा। ७ विरल, सुन्दर, बढ़िया। ८ कोमल, नाजुक। ९ योगशास्त्रोक्त अस्मित् आदि क्लेश। "अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणां" (पातञ्जल० साधन० ४)

अविद्या ही समस्त दुःखोंका मूल है, अनात्मामें आत्माभिमानका नाम ही अविद्या है। एक अविद्यासे ही अस्मितादि चतुर्विध क्लेशोंकी उत्पत्ति होती है। ये अस्मितादि क्लेश चार प्रकारके हैं—प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार। जो क्लेश चित्तभूमिमें रह कर भी अपने सहकारी उद्बोधकके बिना अपना कार्य कर नहीं सकता, उसको प्रसुप्त कहा जा सकता है। जैसे बाल्यावस्थामें बालकोंका चित्त वासनारूपमें अवस्थित हो कर भी सहकारी उद्बोधकके अभावके कारण उसको व्यक्त नहीं कर सकता। जो क्लेश अपनी प्रतिपक्षीकी चिन्ताके द्वारा स्वकार्यशक्तिके शिथिल होने पर वासनास्वरूप चित्तमें रहता है, किन्तु प्रभूत कार्यारम्भक सामग्रीके अभावसे स्वकार्य प्रारम्भ करनेमें असमर्थ होता है, उसको तनु कहते हैं। जैसे योगियोंके चित्तमें वासना रहती अवश्य है, पर वह उपयुक्त सामग्रीके अभावसे किसी तरहका कार्य करके नहीं दिखा सकती। जो क्लेश अन्य प्रबल क्लेशके आक्रमणसे पराभूत होता है, उसको विच्छिन्न कहते हैं। जो क्लेश सहकारीका सन्निधानमात्र अपना कार्य सम्पादन करता है, उसको उदार कहते हैं। (स्त्री०) १० ज्योतिषोक्त लग्नका स्थान। (जातकालंकार)

तनुक (सं० क्ली०) तनु स्वार्थे कन्। १ शरीर, देह। २ धातकीपुष्प, धवका फूल। ३ विभीतकवृक्ष, तिनिशका पेड़। ४ त्वच्, दारचीनी।

तनुकूप (सं० पु०) रोमकूप।

तनुक्षीर (सं० पु०) तनु अल्पं क्षीरं निर्यासो यस्य, बहुव्री०। आम्रातकवृक्ष, आमड़ेका पेड़।

तनुगृह (सं० क्ली०) ज्योतिषोक्त गृहभेद, ज्योतिषके अनुसार एक प्रकारका घर।

तनुच्छद (सं० पु०) तनुं देहं छादयति छादेघः ह्रस्वश्च। छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य। पा ६।४।९६। कवच, बखतर।

तनुच्छाय (सं० पु०) तन्वी छाया यस्य, बहुव्री०। १ जालवर्बूरक वृक्ष, जाल बबूलका पेड़। (स्त्री०-क्ली०) २ शरीरच्छाया, शरीरकी परछाहीं। (त्रि०) ३ अल्पछाया-

युक्त, जिसमें थोड़ी छाया हो। (स्त्री०) तन्वी छाया, कर्मधा०। ४ अल्पछाया।

तनुज (सं० पु०) तनोर्देहात् जायते जन-ड। १ पुत्र बेटा। २ जन्मकुण्डलीमें लग्नसे पाँचवा स्थान।

तनुजा (सं० स्त्री०) तनुज स्त्रियां टाप्। कन्या, बेटी।

तनुता (सं० स्त्री०) तनु भावे तल् टाप्। १ तनुत्व, कृशता, दुर्बलता, दुबलापन। २ लघुता, छोटाई

तनुत्यज् (सं० त्रि०) तनुं त्यजति त्यज-क्विप्। तनुत्यागकारी, जो शरीर छोड़ता हो।

तनुत्याग (सं० पु०) तनूनां त्यागः, ६-तत्। देहत्याग।

तनुत्र (सं० क्ली०) तनुं त्रायते त्रा-क। वर्म, कवच, बखतर।

तनुत्रवत् (सं० त्रि०) तनुत्रं विद्यते अस्य तनुत्र-मतुप्। तनुत्रधारी, कवच धारण करनेवाला।

तनुत्राण (सं० क्ली०) तनुस्त्रायतेऽनेन त्रै करणे ल्युट्। वह चीज जिससे शरीरकी रक्षा हो। कवच, बखतर।

तनुत्वच् (सं० स्त्री०) तन्वी त्वक् वल्कलं यस्याः, बहुव्री०। १ क्षुद्राग्निमन्थवृक्ष, छोटी अरणी। (त्रि०) २ सूक्ष्मत्वग्युक्त, जिसकी छाल पतली हो।

तनुधारी (सं० त्रि०) शरीरधारी, शरीर धारण करनेवाला।

तनुपत्र (सं० पु०) तनूनि कृशानि पत्राणि यस्य, बहुव्री०। १ इङ्गुदीवृक्ष, गोंदनी या गोंदीका पेड़। (त्रि०) २ अल्पपत्रयुक्त वृक्षमात्र, जिसमें बहुत कम पत्ते हों।

तनुपात (सं० पु०) मृत्यु, मौत।

तनुबीज (सं० पु०) १ राजबेर। (त्रि०) २ जिसके बीज छोटे हों।

तनुभव (सं० पु०) तनोर्भवति भू-अच्, ५-तत्। १ पुत्र, बेटा। (स्त्री०) २ कन्या, बेटी, लड़की।

तनुभस्त्रा (सं० स्त्री०) तनोः शरीरस्य भस्त्रेव। नासिका, नाक।

तनुभाव (सं० पु०) दुबला।

तनुभूमि (सं० स्त्री०) बौद्धश्रावकोंके जीवनकी एक अवस्था।

तनुभृत् (सं० त्रि०) तनुं बिभर्ति भृ-क्विप्। देहधारी, शरीर धारण करनेवाला।

तनुमध्या (सं० स्त्री०) तनु कृशं मध्यं यस्याः, बहुव्री०। १ कृशमध्या, जिसकी कमर पतली हो। २ एक वर्णवृत्तका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें एक तगण एक यगण होता है। इसको चौरस भी कहते हैं। ३ जिसका बीचका भाग पतला हो।

तनुरस (सं० पु०) तनोर्देहस्य रस इव। घर्म, पसीना।

तनुराग (सं० पु०) एक प्रकारका सुगन्धित उबटन, जो केसर, कस्तूरी, चन्दन, कपूर, अगर आदिको मिला कर बनाया जाता है।

तनुरुह् (सं० पु०) तनौ तन्वां वा रोहति रुह-क्विप्। लोम, शरीर परके बाल, रोंगटे।

तनुरुह (सं० क्ली०) तनौ तन्वां वा रोहति रुह-क। लोम, रोम, रोआँ।

तनुल (सं० त्रि०) तन-उलच्। विस्तृत, फैला हुआ।

तनुवात (सं० पु०) तनुः क्षीणः वातः यत्र, बहुव्री०। १ नरकविशेष, एक नरकका नाम। (त्रि०) २ अल्प वायुयुक्त स्थान, वह स्थान जहाँ हवा बहुत ही कम हो।

तनुवार (सं० क्ली०) तनुं देहं वृणोति वृ-अण्, उपपदस०। कवच, बखतर।

तनुवीज (सं० पु०) तनूनि कृशानि वीजानि यस्य, बहुव्री०। १ राजबदर, राज बेर। (त्रि०) २ स्वल्पबीजयुक्त, जिसके बीज बहुत छोटे हों।

तनुव्रण (सं० पु०) तनुः क्षुद्रः व्रणो यत्र, बहुव्री०। वल्मीकरोग।

तनुस् (सं० क्ली०) तनोति तन-उसि। शरीर, देह।

तनुसञ्चारिणी (सं० स्त्री०) तनु अल्पं यथा तथा सञ्चरति सम्-चर-णिनि-ङीप्। युवती स्त्री, जवान औरत।

तनुसर (सं० पु०) तनोः सरति तनु-सृ-अच्, ५-तत्। स्वेद, पसीना।

तनुह्रद (सं० पु०) तनोर्ह्रद इव। पायु, मलद्वार, गुदा।

तनू (सं० पु०) तनोति कुलं तन-ऊ। १ पुत्र, बेटा, लड़का। २ शरीर, देह। ३ प्रजापति। ४ गो, गाय। ५ अप, जल, पानी।

तनूकरण (सं० क्ली०) अतनुं तनुं करणं अभूततद्भावे च्वि। अल्पीकरण, छोटा करना।

तनूकू—मद्रास प्रदेशके कृष्णा जिलाके अन्तर्गत एक

तालुक। यह अक्षा० १६° ३५′ तथा १६° ५८७ उ० और देशा० ८१° २३′ तथा ८१° ५०′ पू०में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ३७१ वर्गमील तथा जनसंख्या लगभग २३८७५८ है। इसमें १७४ गाँव हैं। यहांकी जमीन उपजाऊ है। गोदावरी नदीके जलसे यहाँकी जमीन सींची जाती है। चावल यहाँ प्रधानतया उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त गन्ना और रोगनदार बीज भी (बाखर) पैदा होता है।

तनूकृ—अतनुं तनुं करोति तनु अभूततद्भावे च्वि कृञोऽनु प्रयोगः। अल्पीकरण, छोटा बनाना।

तनूकृत् (सं० त्रि०) तनु-कृ-क्विप्। पुत्ररूपशरीरकारी।

तनूकृत (सं० त्रि०) तनू-कृ-कर्मणि क्त। १ तष्ट, छीला हुआ।

तनूकृथ (सं० पु०) पुत्रके लिये स्तुति।

तनूज (सं० पु०) तन्वाः देहात् जायते जन्-ड। पुत्र, बेटा।

तनूजनि (सं० पु०) तन्वाः जनिः, ५-तत्। १ पुत्र, बेटा। (स्त्री०) २ कन्या, बेटी।

तनूजन्मन् (सं० पु०) तन्वाः जन्म, ५ तत्। पुत्र, बेटा। (स्त्री०) २ कन्या, बेटी।

तनूजा (सं० स्त्री०) तनूज-टाप्। कन्या, बेटी।

तनूजाङ्ग (सं० क्ली०) पक्ष, पंख, पर।

तनूतल (सं० पु०) परिमाणभेद, एक व्याम।

तनूत्यज् (सं० त्रि०) शरीरत्यक्ता, शरीर छोड़नेवाला।

तनूदूषि (सं० त्रि०) शरीरदूषण, शरीरका नाश करनेवाला।

तनूदेवता (सं० पु०) अग्निमूर्तिभेद, अग्निकी एक मूर्तिका नाम।

तनूदेश (सं० पु०) अङ्गप्रत्यङ्ग, शरीरका हरएक अंग।

तनूद्भव (सं० पु०) तनोरुद्भवति उद्-भू-अच्, ५-तत् १ पुत्र, बेटा। (स्त्री०) २ कन्या, बेटी।

तनून (सं० क्ली०) तन्वा ऊनं। वायु, हवा।

तनूनप (सं० क्ली०) तन्वा ऊनं क्षयं पाति पा-क। घृत, घी। घी शरीरको मजबूत बनाता है इसलिये इसका नाम तनूनप पड़ा है।

तनूनपात् (सं० पु०) तनूं न पातयति पत-णिच्-क्विप्। नभ्राण्नपात। पा ६।३।७५। इति निपातनात् न लोपः वा तनूनपं घृतं अत्ति-अद-क्विप्। १ अग्नि, आग। २ प्रजापतिके पौत्र। ३ चित्रकवृक्ष, चीता। (क्ली०) ४ घृत, घी। ५ मक्खन। ६ अग्न्यङ्ग्यक प्रयाजभेद।

तनूनप्तृ (सं० पु०) तनोति तनूः परमात्मा तस्य नप्ता पौत्र, ६-तत। वायु, तनू ही परमात्मा है, परमात्मासे आकाश उत्पन्न हुआ है, आकाशसे वायु, इसीलिए वायु परमात्माके पौत्र हैं। श्रुति और वेदान्तदर्शनके मतसे पहले परमात्मासे निखिल जगत्का उपादान आकाश उत्पन्न हुआ तथा आकाशसे वायु प्रभृति निकली है।

तनूपा (सं० पु०) तनूं पाति पा-क्विप्। १ जठराग्नि। इसके द्वारा खाया हुआ अन्न पच जाता है और इसका सारांश रक्त मांसादिरूपमें शरीरमें परिणत हो कर देहको पोषण करता है, इसीलिये जठराग्निका नाम तनूपा पड़ा है। २ देहपालकमात्र, वह जो केवल शरीरका पालन करता है।

तनूपान (सं० त्रि०) शरीरपालक, अङ्गरक्षक, जो शरीरको रक्षा करता है।

तनूपावन् (सं० त्रि०) तनू वा जीवनरक्षाकारी, शरीर या प्राणकी रक्षा करनेवाला।

तनूपृष्ठ (सं० पु०) सोमयागका एक भेद।

सोमयाग देखो।

तनूबल (सं० क्ली०) शरीरबल, ताकत, जोर।

तनूर (अ० पु०) तंदूर देखो।

तनूरुह (सं० क्ली०) तन्वां रोहति रुह-क। १ लोम, रोम, रोआँ। २ पक्षियोंका पर, पंख। ३ पुत्र, बेटा, लड़का। ४ गरुत् (हेम)

तनूरुहाङ्कुर (सं० क्ली०) लोम, रोआँ।

तनूर्ज (सं० पु०) उत्तममनुके पुत्र एक राजा।

(हरिवं० ७ अ०)

तनूवशिन् (सं० पु०) अग्नि, आग।

तनूशुभ्र (सं० त्रि०) शरीरभूषक, शरीरकी शोभा बढ़ानेवाला।

तनूहविस् (सं० क्ली०) वैदिक तनूरूप हविः। वेदमन्त्रद्वारा संस्कृत घी इत्यादि हवन करनेकी वस्तु।

तनूह्रद—तनुह्रद देखो।

तनेना (हिं॰ वि॰) वक्र, टेढ़ा, तिरछा।

तनैना (हिं॰ पु॰) तनेना देखो।

तनैला (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका छोटा पेड़। इसके फूल सुगन्धित और सुफेद होते हैं।

तन्ति (सं॰ स्त्री॰) तन-कर्मणि क्तिच् वेदे न दीर्घः न लोपाभावश्च। १ दीर्घप्रसारिता रज्जु, बहुत लम्बी रस्सी। २ गोमाता, गौ, गाय। ३ विस्तार, फैलाव।

तन्तिपाल (सं॰ पु॰) तन्तिं गोमातरं पालयति पालि-अण्। १ गोमातृपालक, गौकी रक्षा करनेवाला। २ सहदेव, विराटगृहमें सहदेव गुप्तावस्थानके समयमें इसी नामसे परिचित हुए थे। (भारत विराट १० अ॰)

तन्तु (सं॰ पु॰) तन्यते विस्तीर्य्यते तन्-तुन्। सित निगमीति। उण् १।७०। १ सूत्र, सूत, तागा। २ ग्राह। ३ सन्तान, बाल बच्चे। ४ ताँत। तांत देखो। ५ विस्तार, फैलाव। ६ यज्ञकी परम्परा। ७ वंशपरम्परा। ८ मकड़ीका जाला।

तन्तुक (सं॰ पु॰) तन्तुरिव कायति कै-क वा संज्ञायां कन्। १ सर्षप, सरसों। २ वनशूकर, जङ्गली सूअर। ३ स्नायुरोग। ४ जलजन्तु। ५ सन्तति। ६ सूत्र, सूत। ७ मण्डलीसर्पभेद। (स्त्री॰) ८ नाड़ी।

तन्तुकाष्ठ (सं॰ क्ली॰) तन्तुसमन्वितं काष्ठं, मध्यपदलो॰। तन्तुयुक्तकाष्ठ, जुलाहोंकी एक लकड़ी जिसे तूली कहते हैं।

तन्तुकी (सं॰ स्त्री॰) तन्तुक स्त्रियां ङीप्। १ नाड़ी। २ शिरा। ३ नाड़ीशाकभेद। ४ राजिका, राई।

तन्तुकीट (सं॰ पु॰) तन्तूत्पादकः कीट, मध्यपदलो॰। १ कीटविशेष, मकड़ी। २ रेशमका कीड़ा।

तन्तुजाल (सं॰ पु॰) नसोंका समूह।

तन्तुण (सं॰ पु॰) तन बाहुलकात् तुनन् निपातनात् णत्वं दन्त्यनकारान्त इत्येके। ग्राह।

तन्तुनाग (सं॰ पु॰) तन्तुर्नाग इव। ग्राह, मगर।

तन्तुनाभ (सं॰ पु॰) तन्तुर्नाभौ यस्य, बहुव्री॰, अच् समासान्तः। लूता, मकड़ी।

तन्तुनिर्यास (सं॰ पु॰) तन्तुवत् निर्य्यासो यस्य, बहुव्री॰। तालवृक्ष, तालका पेड़।

तन्तुपर्वन् (सं॰ क्ली॰) तन्तोः यज्ञोपवीतसूत्रस्य दानरूपं पर्व यत्र, बहुव्री॰। चान्द्रश्रावण पौर्णमासी, श्रावण मासकी पूर्णिमा। इस तिथिमें भगवान् वामनदेवको यज्ञोपवीत दान देना चाहिये।

इस तिथिमें नक्षत्र प्रभृति विरुद्ध होने पर भी यज्ञोपवीत दान अवश्य कर्तव्य है। इस पूर्णिमामें मङ्गलके लिये हाथमें राखी बाँधी जाती है। इसका विषय निर्णयसिन्धुमें इस प्रकार लिखा है;—श्रावणी पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान कर देवता और ऋषियोंका तर्पण करना चाहिये। बाद अपराह्णसमयमें राखीकी पोटलीको सिद्धार्थ और अक्षतसे अर्पित कर उसमें सुवर्ण संयुक्त कर देना पड़ता है। उसके बाद पुरोहित निम्नलिखित मन्त्र द्वारा राखी बाँधते हैं।

मन्त्र—"येन बद्धो बलिराजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वामपि बध्नामि रक्षे मा ले मा चल॥"

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रत्येकको उचित है कि इस तिथिमें यथाशक्ति ब्राह्मणोंको दान दे कर राखी हाथमें धारण करें। रक्षाबन्धन देखो।

तन्तुभ (सं॰ पु॰) तन्तुरिव भाति भा-क। १ सर्षप, सरसों। २ वत्स, बछड़ा।

तन्तुमत् (सं॰ पु॰) तन्तुः विद्यतेऽस्य तन्तु-मतुप्। अग्नि, आग।

तन्तुमती (सं॰ स्त्री॰) तन्तुमत् स्त्रियां ङीष्। मुरारिकी माता।

तन्तुर (सं॰ क्ली॰ तन्तु रस्त्यस्य कुञ्जादित्वात् तन्तु-र। मृणाल, भसींड़, कमलकी जड़।

तन्तुल (सं॰ क्ली॰) तन्तु-र रस्य ल वा तन्तु-लच्। मृणाल, कमलकी जड़।

तन्तुवादक (सं॰ पु॰) तन्त्री, बीन आदि तारके बाजे बजानेवाला।

तन्तुवान् (सं॰ त्रि॰) बुननेकी क्रिया।

तन्तुवाप (सं॰ पु॰) तन्तुन् वपति वप-अण्। १ तन्तुवाय, ताँती। तन्तुवाय देखो।

तन्तुवाय (सं॰ पु॰) तन्तुन् वयति विस्तारयति वे-अण्। १ लूता, मकड़ी। २ नवशाखके अन्तर्गत जातिविशेष, ताँती। नवशाख देखो।

वस्त्रवयनोपजीवी मनुष्यमात्रकी ही तन्तुवाय (ताँती)

कहते हैं, सुतरां जिन्होंने केवल यही व्यवसाय अवलम्बन किया है, वे सबके सब नवशाखके अन्तर्गत तन्तुवाय जातिके नहीं हैं। भिन्न भिन्न जातियोंके एक व्यवसाय अवलम्बन करनेके कारण यह साधारण वृत्तिबोधक नाम रखा गया है। बहुतोंका कहना है कि तन्तुवाय शिवदास या धामदासके वंशधर हैं। किसी समय नाचते समय शिवजीके शरीरसे एक बूँद पसीना गिरा। उस पसीनेसे तुरंत ही शिवदास उत्पन्न हुआ। पसीनेसे पैदा होनेके कारण इसका नाम धामदास पड़ा। इसके बाद शिवजीने एक कुश ले कर धामदासके लिये कुशवती नामकी एक कन्या सृष्टि की। यह कुशवती धामदासकी स्त्री हुई। शिवदासके चार पुत्र बलराम, उद्धव, पुरन्दर और मधुकर हुए। इन चारोंसे चार सम्प्रदायके तन्तुवाय निकले। जातिकौमुदीके मतसे मणिबन्ध पुरुष और मणिकाकी स्त्रीसे तन्तुवायकी उत्पत्ति हुई है। परशुरामकी जातिमालाके मतानुसार—

"तैलिकात् मणिकन्यायां तन्त्रवायस्य सम्भवः।"

तैलीके औरस और मणिकाकी लड़कीके गर्भसे तन्तुवायका जन्म हुआ है। रुद्रयामलोक्त जातिमालाके मतानुसार—

"मणिबन्ध्यात् खानिकार्यां तन्तुवायश्च जग्मिवान्।
तन्तुन् दत्वा मुनिश्रेष्ठे तन्त्रवायमवाप्तवान्॥
मणिबन्ध्यां तन्त्रवायात् गोपजीवस्य सम्भवः।"

मणिबन्धके औरस और खानिकारि-कन्याके गर्भसे तन्तुवायने जन्मग्रहण किया है। इसने किसी मुनिवरको तन्तु दिया था इसलिये इसका नाम तन्तुवाय पड़ा है। तन्तुवायके औरस और मणिबन्ध-कन्याके गर्भसे गोपजीवका जन्म हुआ।

मनुसंहिताके मतानुसार—

"नृपायां वैश्यसंसर्गादायोगव इति स्मृतः।
तन्तुवायो भवन्त्येव वसुकांस्योपजीविनः।
शीलकाः केचित्तत्रैव जीवनं वस्त्रनिर्मितौ॥"

क्षत्रियाणीके गर्भ और वैश्यके औरससे आयोगवकी उत्पत्ति हुई। तन्तुवाय भी इसी तरह उत्पन्न हुआ है। इसकी जीविका वस्त्रनिर्माण करना है। फिर बहुतोंका मत है कि विश्वकर्माके औरस और शापभ्रष्टा घृताचीके गर्भसे आठ पुत्र उत्पन्न हुए। विश्वकर्माने उन आठों पुत्रको भिन्न भिन्न शिल्पशास्त्रोंमें शिक्षा दी। उन्होंसे आठ जातिके शिल्पकार उत्पन्न हुए। उन आठोंमें तन्तुवाय भी एक है।

बङ्गालके तन्तुवाय निम्नलिखित सम्प्रदायमें विभक्त हैं। यथा—आश्विना या आसिनतांती, फिर ये भी वर्द्धमानी, वर्णकुल, मध्यकुल, मान्दारण और उत्तरकूल इन पाँच श्रेणियोंमें विभक्त हैं, बलरामी, वङ्ग, बड़ाभागिया या झंपानिया, वारेन्द्र, छोटा भागिया या कायत, ताँती कातुर, कोरा, चोर, मधुकरी, मगन, मड़ियाली, नोर, पात्र, पुरन्दरी, पूर्वकुल, राढ़ी और उद्धवी।

बिहारके तन्तुवाय वैश्वर, बनौधिया, चामार, जैश्वर, कहार, कनौजिया, तिहुतिहा और उत्तरा श्रेणियोंके हैं।

उड़ीसाके तन्तुवाय मातिवंश ताँती, गाला ताँती और ईसी ताँती इन कई एक श्रेणियोंमें विभक्त हैं।

बङ्गालके ताँतियोंकी उपाधि बराट, बसाक, भड़, भद्र, बौ, बिट, चन्द, दुगरी, दलाल, दास, दत्त, दे, गुँइ, प्रामाणिक, हंसी, याचनदार, कर, लु, मण्डल, मेष, मुखिम, नन्दी, पाल, साधु, सर्दार, रक्षित और शील है।

विहारमें इसकी उपाधि दास, महतो, माँझी, मरात्त और मारिक है।

बङ्गालके ताँती निम्नलिखित गोत्रोंमें विभक्त हैं—अगस्त्य ऋषि, अलदासी, अलम्यान, अत्रिऋषि, बड़ऋषि, वात्स्य, भरद्वाज, विश्वामित्र, ब्रह्माऋषि, गर्गऋषि, गौतम, जनऋषि, काश्यप, कुल्यऋषि, मधुकुल्य, पराशर, शाण्डिल्य, सावर्ण और व्यास। विहारमें इसके चामरतानी, हिन्दुहा, काश्यप प्रभृति गोत्र हैं।

पश्चिम बङ्गालमें आश्विना ताँती ही सबसे अधिक है। इनका कहना है कि आश्विन ताँती ही मूल जाति हैं, इन्हींसे दूसरे दूसरे तन्तुवाय उत्पन्न हुए हैं। ये भिन्न भिन्न स्थानके नामानुसार ५ विभिन्न शाखाओंमें विभक्त हैं। आश्विन ताँतीमें एक विशेष लक्षण यह है कि इनकी स्त्रियाँ कभी नाकमें नथनी नहीं पहनतीं।

ढाकाके ताँती बड़ाभागिया या झम्पनिया और छोटा भागिया या कायतियां इन दो दलोंमें विभक्त हैं। बड़ा

भागिया या झम्पनिया ताँती पाल्कीमें बैठ कर विवाह करते, इसलिये ये झम्पनिया कहलाये। शेषोक्त ताँती पहले कायस्थ थे, बाद वस्त्रवयनवृत्ति अवलम्बन करनेके कारण ये जातिच्युत किये गये।

इनमेंसे पहला या बड़ा भागिया शाखा ही बहुत दूर तक विस्तृत है। इनमें बहुतोंकी उपाधि वसाक है। पहले जब कोई सम्भ्रान्त तन्तुवाय वस्त्र बुनना छोड़ कर कपड़ेका व्यवसाय आरम्भ करता था तब उसे यह उपाधि दी जाती थी। ईष्ट इण्डिया कम्पनीकी कोठीमें जितने तन्तुवाय नियुक्त थे उनकी उपाधि वंशानुक्रमिक आज तक भी चली आती है। यथा—याचनदार या मूल्यनिरूपक, मूखिम, परिदर्शक, दलाल और सर्दार (एक दल कारीगरका सर्दार)।

ढाकाके मग बाजारमें मगी श्रेणी नामक एक दल जातिभ्रष्ट तन्तुवाय वास करते हैं। पतित होने पर भी इनका आचार व्यवहार शूद्र तन्तुवायोंके जैसा है।

डाक्टर वाइजने लिखा है कि छोटा भागिया अर्थात् कायेत ताँती पहले सोनार थे, बाद अपना व्यवसाय छोड़ कर इन्होंने कपड़े बुननेका व्यवसाय आरम्भ किया। अभी वे भी वसाकके साथ खाते पीते हैं। वसाक भी उन्हें सामाजिक मर्यादा प्रत्यर्पण करते हैं।

कुछ धनी कायेत ताँती अपनेको कायस्थ बतलाते हैं। ये ढाकामें रहते हैं। इनमेंसे बहुत महाजनी या नक्कासी वृत्ति द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करते हैं।

पूर्व बङ्गालमें वङ्गताँती नामक एक दूसरी श्रेणीके ताँती बसते हैं। ये नागरिक ताँतियोंसे सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। ये कहते हैं कि ये ही इस देशके आदिम ताँती हैं तथा सम्राट् जहाँगीरके पहलेसे ही देशोंमें कपड़ा बुन कर देते आ रहे थे। जो कुछ हो वसाक ताँती इन्हें अपनेसे श्रेष्ठ मानते हैं। ढाकासे २० मील उत्तर धामराई नामक नगरमें प्रायः २५० घर ताँती वास करते हैं। ढाकाके ताँती विवाहके समयमें लाल वस्त्र पहनते हैं, किन्तु वङ्ग ताँती शुक्ल वस्त्र धारण करते हैं।

पहले इसी धामराई नगरमें ही सुविख्यात सूक्ष्म सूत प्रस्तुत होते थे। स्त्रियाँ चरखेमें हाथसे महीन सूत तैयार करती थीं। उनके हस्तनिर्मित सूक्ष्म सूतकी प्रशंसा करते हुए किसीने कहा है कि एक कातनेवालेका प्रस्तुत उत्कृष्ट ८८ गज सूते तोलमें एक रत्तीसे भी कम हुए थे। अभी एक रत्ती बढ़िया महीनसे महीन सूता ७० गजसे अधिक नहीं होता है। इससे साबित होता है कि या तो स्त्रियाँ पहलेकी नाईं सूता कात नहीं सकती अथवा कपास ही मोटी हो गई है। आजकल उनका यह व्यवसाय विलुप्त हो गया है।

विहारके ताँतियोंको तँतवा कहते हैं। ये प्रधानतः दो सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं—कनौजिया और त्रिहुतिया।

मालूम पड़ता है कि विहारके चमार ताँती और कहार ताँती चमार और कहार जातिसे उत्पन्न हुए हैं। शायद कोई चमार और कहार वस्त्रवयनवृत्ति अवलम्बन करके क्रमशः ताँती हो गये हों। उड़ीसेके मातिवंश ताँती मोटा कपड़ा बुनते हैं। इनमेंसे बहुत आजकल वस्त्रवयन वृत्ति छोड़ कर पाठशालाके शिक्षक हो गये हैं। शाला ताँती सूक्ष्म वस्त्र और हंसी ताँती अनेक तरहके रंगीन वस्त्र प्रस्तुत करते हैं।

ढाकेमें अनेक हिन्दुस्थानी या मुंगेरिया ताँती वास करते हैं। इनमेंसे अनेक बाहरमें प्यादा, मोटिया, मजदूर तथा पंखा खींचनेका काम करते और घरमें वस्त्रवयन और कृषिकार्य भी किया करते हैं। ये दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं—कनौजिया और त्रिहुतिया। कनौजियेकी ही संख्या अधिक है। समाजमें इन्होंने अधिक उन्नति की है। त्रिहुतिया पाल्की-वाहक, गायक, वाद्यकर, सहीस, माँझी प्रभृति निकृष्ट कार्य करते हैं।

बङ्गालके तन्तुवाय नवशाखके अन्तर्भुक्त हैं। इसलिए इनके विवाहादि दूसरी दूसरी नवशाख जातिकी नाईं हैं। पश्चिम बङ्गालमें कहीं पर कोई कोई पण ले कर कन्याका विवाह करते हैं। कन्यादान करना ही समाजमें सर्वत्र सम्मानसूचक और यशस्कर है। अभी दूसरी उच्च श्रेणीके हिन्दूकी नाईं कन्याकर्त्ताको भी वरकी विद्या, बुद्धि और ऐश्वर्यानुसार पण दे कर कन्यादान करना पड़ता है।

विहारके ताँतियोंमें विधवा विवाह और परित्यक्ता स्त्रीकी सगाईकी प्रथा प्रचलित है। जब कोई स्त्री स्वजातीय किसी पुरुषके साथ संभोग करती है तो एक

प्रायश्चित्त ले कर उसे फिर जातिमें मिला लेते हैं, किन्तु भिन्न जातिके साथ संभोग करने पर वह सदाके लिये छोड़ दी जाती है। इस जातिकी यदि कोई स्त्री स्वजातीय किसी पुरुषके उपपत्नीके रूपमें रहे और यदि उसके गर्भसे सन्तान उत्पन्न हो तो पहले वे दोनों समाजमें नहीं लिये जाते. बाद गाँवके मुखियोंको एकत्र कर भोज देने तथा कुछ अर्थ प्रदान करनेके बाद फिर वह स्त्री और उसकी सन्तान समाजमें ग्रहण की जाती है।

बङ्गालके प्रायः सब ताँती वैष्णव हैं और वे खड़दहवासी गोस्वामियोंके शिष्य हैं। दाढ़ी रखना ये समाजमें निषिद्ध समझते हैं; जो कुछ हो, आजकल अधिकांश युवक ही इस कुसंस्कारमें लगे रहते हैं। पूर्व बङ्गालके ताँतियोंमें कोई पञ्चायत या समाजपति नहीं है। सबसे अधिक ऐश्वर्यशाली मनुष्य अपने समाजके अन्यान्य निर्धन ताँतियोंके ऊपर अपना प्रभुत्व जमाते और कलहादिकी मीमांसा कर देते हैं। व्यवसायसंक्रान्त विषय बड़े बड़े दल और दलपतियोंके द्वारा निर्द्धारित होते हैं।

बङ्गालमें सब जगह तन्तुवायगण भाद्रमासमें श्रीकृष्णकी जन्माष्टमीके उपलक्षमें उत्सव मनाया करते हैं। विशेषतः ढाकेके तन्तुवाय (ताँती) इस उपलक्षमें बहुत रुपये खर्च करते हैं। पहले जब ढाकेमें नवाब थे, तब उनके सैन्यदल और वाद्यकरगण इस उपलक्षमें योग देते थे। यद्यपि उनकी चमक दमक आजकल बहुत कम गई है तो भी पूर्व बङ्गालमें ढाकेका जन्माष्टमी उत्सव सबसे प्रधान है। यह उत्सव ढाकेमें दो अंशमें किया जाता है। वहाँके ताँती बहुत दिनोंसे ताँतीबाजार और नवाबपुर नामक नगरके दो छोटे गाँवोंमें रहते आये हैं। इन दो गाँवोंसे नन्दोत्सवके दिन एक एक जुलूस बाहर निकलती है। १८५३ ई०में इन दो दलोंमें परस्पर विरोध हो जानेके कारण आपसमें लड़ाई झगड़ा आरम्भ हो गया। १८५५ ई०को गवर्मेण्टने भविष्यमें इस तरहका दंगा फसाद रोकनेके लिये एक नियम बनाया कि एक ही दिनमें दो दल बाहर नहीं निकल सकते तथा एक एक वर्षके क्रमसे एक एक दल पहले दिनमें और दूसरा दल दूसरे दिनमें जुलूस निकाल सकता है। ताँतीबाजारके तन्तुवाय कृष्णकी मुरलीमोहन मूर्त्तिकी और नवाबपुरके तन्तुवाय ठाकुर लक्ष्मीनारायण शालग्रामकी पूजा करते हैं। उत्सव बाहर होनेके समय आगे एक श्वेत हाथी और पीछे नवाबप्रदत्त पञ्जा अर्थात् मुहर्रम समयकी प्रतिमूर्त्ति रहती है। इसके बाद चतुर्दोलमें बहुतसी देवमूर्त्तियाँ रख और आप गाड़ी इत्यादि पर चढ़ अनेक तरहके नाच गान करते हुए, कवि प्रभृति कौतुकजनक गीत गाते हुए तथा अङ्गभङ्गी द्वारा मनुष्योंको हँसाते हुए बाहर निकलते हैं। आसपासके ग्रामोंसे असंख्य मनुष्य यह उत्सव देखनेके लिये ढाका नगरको आते हैं।

बङ्ग ताँती बहुत समारोहके साथ कामदेवकी पूजा करते हैं। बङ्गालके तन्तुवाय साधारणतः तथा झंपनियाके ताँती बिलकुल ही इस उत्सवको नहीं मनाते हैं। परन्तु भावाल, कामरूप और उसके आसपासके स्थानोंमें आज तक भी यह पूजा प्रचलित है। मदनचतुर्दशी अर्थात् चैत्रकृष्ण चतुर्दशीके दिन यह उत्सव किया जाता है। पहले यह उत्सव सात दिनों तक होता था। बङ्ग ताँती जन्माष्टमीका उत्सव करते हैं सही, किन्तु वह उससे बहुत भिन्न है। दो लड़कोंको कृष्ण और नन्दगोप बना कर उन्हें बहुमूल्य आभूषण इत्यादिसे सजा धूम धामके साथ गाते बजाते बाहर निकलते हैं। समस्त तन्तुवायगण पहले कुलदेवता विश्वकर्माकी पूजा करते बाद कपड़ा बुननेके उनके जितने यन्त्र हैं उनकी पूजा करते हैं। विश्वकर्माकी पूजा मूर्त्ति बना कर नहीं की जाती है। अन्यान्य शिल्पकारोंकी नाईं यन्त्रादिमें ही विश्वकर्माका अधिष्ठान जान कर पूजा की जाती है। पश्चिम बङ्गालके भी प्रायः समस्त ताँती वैष्णव हैं और शिव, दुर्गा, काली इत्यादिकी पूजा किया करते हैं, किन्तु उनके सामने छागकी बलि नहीं देते हैं।

बिहारमें बहुत थोड़े ताँती वैष्णव देखनेमें आते हैं। अधिकांश ही शक्ति-उपासक हैं। कनौजिया ताँती महामायाके रूपमें दुर्गाकी उपासना करते हैं। बङ्गालवासी बिहारी ताँती दुर्गा पूजा करते हैं, कालीपूजाके दिन उनके सामने छागकी बलि और मधुकुमार नामक उनके पूर्वपुरुषके नामसे एक खस्सीकी बलि देते हैं। बहुतसे तिहुतिया ताँती काली, दुर्गा, महादेव प्रभृतिकी उपासना

करते हैं, किन्तु अधिकांश ही बुद्धराम नामक त्रिहुतवासी किसी मोची (चमार)-के प्रवर्त्तित धर्मको मानते हैं। इस बुद्धराम मोचीका मत बहुत कुछ नानकशाहके मतसे मिलता जुलता है। उसके मतावलम्बी ताँती जातिभेद नहीं मानते है. किन्तु धर्माचरणके अनेक तरहसे बाह्य अनुष्ठान किया करते हैं। बिहारके बन्दी, गोरैया धर्मराज प्रभृति जिन देवताओंकी पूजा करते हैं उन्हें छोड़ ताँती सैसियार, कारुवर आदि अपने पूर्वपुरुषोंकी पूजा करते हैं। श्रावण मासके शनि और मङ्गलवारको उनके उद्देश्यसे मेष बलिदान कर प्रेतपुरुषोंको प्रसन्न करते हैं। इस काममें पुरोहितका प्रयोजन नहीं पड़ता है। पुरुष ही स्वयं इस कार्यको करते हैं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि बङ्गालके तन्तुवाय नवशाखके अन्तर्गत हैं, सुतरां उनके पुरोहित ब्राह्मण ही उनका पोरोहित्य करते हैं। कहना नहीं पड़ेगा कि तन्तुवायोंकी याजकता करानेके लिये वे दो चार विशुद्ध ब्राह्मणोंके निकट हेय होने पर भी ब्राह्मणसमाजमें कुलीन ब्राह्मणोंके समान गिने जाते हैं।

बिहारमें कई जगह ताँतियोंके पुरोहित नहीं हैं और जहाँ हैं भी वहाँ वे नीच ब्राह्मणोंमें गिने जाते हैं। बहुत जगह जहाँ ताँतियोंके पुरोहित नहीं हैं, वहाँ इन्हीं लोगोंमेंसे कोई एक पुरोहित बन जाता है और कभी कभी उनका भांजा ही पुरोहितका काम करता है। इस तरहके अनार्य कामोंसे साबित होता है कि बिहारके ताँती नीच जातिके हैं और नीच जातिसे क्रमशः हिन्दूधर्म ग्रहण करते हुए समाजमें प्रवेश होते हैं। उक्त श्रेणीके हिन्दुओंका अनुकरणसे बिहारके ताँती भी तेरह दिनों तक अशौच मानते हैं। जो कुछ हो कितने ही पवित्र वे क्यों न रहें तोभी हिन्दूसमाज तथा कोई सद्ब्राह्मण इनके हाथका जल ग्रहण नहीं करते हैं।

कौन ताँती उच्च और कौन नीच श्रेणीका है इसका पता उनके व्यवहृत मण्ड (लेई) द्वारा ही चलता है। उच्च श्रेणीके तन्तुवाय कपड़ा बुननेके समय लावेकी लेई व्यवहार करता है। ये अनाजकी लेईको अपवित्र और उच्छिष्ट समझते हैं, परन्तु निम्नश्रेणीके ताँती अनाजकी लेई व्यवहार करते इसीसे इन्हें मेड़ी ताँती कहते हैं। बङ्गालके ताँती खाने पीनेके विषयमें अन्यान्य नवशाख जातिके जैसे हैं। ये समाजमें न शराब पीते हैं और न मांस खाते हैं। परन्तु बिहारके ताँती सदा मद्यमांस व्यवहारमें लाते हैं। शराब पीनेके पहले ये दो चार बुन्द अपने इष्टदेवता काली या महादेवके नामसे पृथ्वी पर गिरा कर तब पीते हैं।

पहले ही कहा जा चुका है कि कपड़ा बुनना ही तन्तुवायकी उपजीविका है। इन लोगोंका यह व्यवसाय बहुत दिनोंसे चला आ रहा है। किन्तु विलायती कपड़ा कुछ सस्ता हो जानेके कारण आज कल इनका व्यवसाय विलुप्त हो गया है। बहुतसे ताँतियोंने वाध्य हो कर अपना व्यवसाय छोड़ दिया है और वाणिज्य, कृषि प्रभृतिमें लग गये हैं। आश्विना और मड़ियालियोंके प्रायः ⅓ अंशने कृषिकार्य अवलम्बन किया है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि जिन्होंने अपनी वृत्ति परित्याग कर अन्यान्य व्यवसाय अवलम्बन किया है, उनकी अवस्था यथार्थमें उन्नत हो गई है, परन्तु जो पुरुषानुक्रमिक वस्त्रवयनवृत्ति अनुसरण करते आये हैं, उनकी उन्नतिकी बात तो दूर रहे, क्रमशः दुर्दशा ही बढ़ती जा रही है। इस व्यवसायसे वे केवल पेट ही पोषते, कुछ सञ्चय नहीं कर सकते हैं। इस विषयमें एक प्रवाद इस तरह है—शिवजीके शिवदासको सृष्टि कर उसे वस्त्र बुननेका आदेश किया। इस पर शिवदासने उनसे सूत, तन्तु इत्यादि मांगा। तब शिवजीने एक असुरको मार कर उसकी आँखोंसे कपासकी गोटी सृष्टि की। उस गोटीसे कपासका बीज उत्पन्न हुआ। बाद उस बीजसे कपास वृक्ष और क्रमशः उससे रुई तैयार हुई, और विश्वकर्माने आ कर एक चरखा प्रस्तुत किया। दुर्गाजीने स्वयं सूता कात दिया, परन्तु वे बोलीं कि पहला वस्त्र उन्हें ही देना पड़ेगा। इसके बाद विश्वकर्माने तन्तु निर्माण किया और देवताओंने आ कर उसे पृथक् पृथक अङ्गमें अधिष्ठान किया। शिवदासने प्रथम वस्त्र बुन कर गौरीको प्रदान किया। गौरी जब प्रसन्न हो कर शिवदासको वर देनेको राजी हुई तो शिवदासने कहा कि मुझे यही वर दीजिए कि मैं एक वस्त्र बुन कर छह मास तक उससे घर बैठे जीविकानिर्वाह करूं। गौरीने भी

उसे वैसा ही वर दिया। इधर इन्द्रादि देवताओंने जब सुना कि शिवदासको केवल एक वस्त्र बुननेसे ही छह मास तकको जीविका प्रतिपालन करनेका वर मिला है तो उन्होंने सोचा कि ऐसा होनेसे समस्त मनुष्योंको वस्त्र नहीं मिलेंगे, ऐसी हालतमें अब उपाय वह करना नितान्त आवश्यक है जिससे वह शिवदास अनेक वस्त्र प्रस्तुत कर सके ऐसा सोच कर उन्होंने सरस्वतीको शिवदासकी स्त्री कुशावतीके पास भेजा। सरस्वती कुशावतीके कण्ठ पर जा बैठीं। इतनेमें जब शिवदास वर ले कर घरको लौटा तो कुशावतीने उससे पूछा "आपने कौनसा वर लिया है?" शिवदासने आद्योपान्त समस्त विवरण कह सुनाया। कुशावती सरस्वतीकी प्ररोचनासे बोली, "आह! आपने यह क्या वर लिया है? यदि एक वस्त्र बुन कर छह मास तक बैठे खायंगे तो बालबच्चे किस तरह इस कार्यको सीखेंगे, प्रतिदिन कपड़ा बुननेसे ही पुत्रगण कर्मिष्ठ हो सकेंगे। इसलिये आप अभी जा कर वर लौटा दीजिये और इस बातकी उनसे प्रार्थना कीजिये कि मैं प्रतिदिन कपड़ा बूनूंगा और प्रतिदिन खाऊँगा।" शिवदास स्त्रीकी बुद्धिकी प्रशंसा करते हुए उसी समय गौरीके पास गया और उक्त वर लौटा कर पुनः घर आया। उसी दिनसे वह कपड़ा बुनने लगा और उसे प्रति दिन बेच कर खाने लगा। देवताओंकी इच्छा पूरी हुई। इस तरह बुद्धिमान् तन्तुवायोंकी सुबुद्धि आदि पुरुषने स्वीय महा बुद्धिमत्ताका परिचय दे कर अपनेको तथा अपने वंशधरोंको कर्मकुशल और परिश्रमी होनेमें बाध्य किया। आज भी अज्ञ तन्तुवायगण अपनी दुरवस्था देख कर इस उपाख्यानको कहते हुए अपने आदिपुरुषोंको दोषी ठहराते हैं।

यह गल्प यथार्थमें सत्य हो वा न हो, लेकिन साधारण मनुष्योंका दृढ़ विश्वास है कि ताँतियोंकी बुद्धि उनके उपाख्यान-वर्णित आदि पुरुषसे अधिक पृथक् नहीं है। ताँतीकी निर्बुद्धि और भीरुताका अर्थ पारिभाषिकसा हो गया है, और इसी पर ये निरीह, दुर्बल, भीरु, उद्यमशून्य और थोड़ेहीमें सन्तुष्टचित्त हो जाते हैं। समस्त दिन परिश्रम करके अत्यन्त कष्टसे दिन व्यतीत करने पर भी ये संतुष्ट रहते हैं। बलवान्का अत्याचार ये शान्तभावसे सहन करते तथा क्षमता रहने पर भी किसीके विरुद्ध ये हाथ न उठाते हैं। इनकी निर्बुद्धिता हो या न हो तोभी ताँती कहनेसे ही ये निर्बोध और कापुरुष समझे जाते हैं। मनुष्योंका यह विश्वास इतना प्रबल है कि इनकी निर्बुद्धिताके विषयमें इस तरहके कई एक गल्प प्रचलित हो गये हैं। कोई ताँती घासके जंगलमें बाढ़के भ्रमसे तैर रहा है, उधर कोई ताँती पृथ्वी पर गिरी हुई रोटीको जीर्ण चन्द्रमाके भ्रमसे देख रहा है, कोई ताँती लावाके बन्धनमें बंधा हुआ है, और बाजी या दलपति आ कर उसके मुंहसे खड़का ढक्कन आँखसे बन्धन और कानसे रूई खोल कर अपनी अगाध बुद्धिका विकाश करते हुए स्तम्भ काट कर हाथ बाहर निकालनेका उपाय बतला रहा है तथा उसी समय दूसरी बार आँखमें झपकी, मुंहमें खड़ और कानमें रूईं डाल देता है यह जान कर कि शायद सुतीक्ष्ण बुद्धि बाहर न निकल जाय। इधर कोई ताँती दूध देनेवाली गायको एक मास तक न दुह कर पिठ्याइके दिन एक ही बारमें उसके एक मासका दूध जब दूहनेके लिये जाता और उतना दूध नहीं पाता है तो गायकी पीठ पर बैठी हुई मक्खीको चोरचोर समझ कर मारनेमें गायकी ही हत्या कर डालता है और वह मक्खी जब उड़ कर उसके भाईके ऊपर जा बैठती है तो उसका भाई उसे बतला देता है कि मक्खी यहाँ है, मक्खीको मारनेमें वह अपने भाईको ही धराशायी कर देता है। उधर कोई ताँती लोभसे कष्ट पा रहा है और कोई अभिमानमें चूर है। कहीं ताँती दलबलके साथ मेड़कसे लड़नेके लिये जा रहा है। इस तरहके सैकड़ों गल्प अत्यन्त रञ्जित भावसे उन्हें ग्लानि करते हैं। ये सब गल्प तन्तुवायोंकी निर्बुद्धिताके परिचायक हों या न हों, रचयिताकी विद्वेषबुद्धि, परनिन्दाप्रियता और तन्तुवायोंके ऊपर बद्धमूल वैर स्पष्ट प्रकाश करते हैं।

जो कुछ हो, आज कल बहुतसे तन्तुवाय-युवक अपनी प्रखर बुद्धिमत्ताका परिचय देते हुए राज्यकार्यमें प्रविष्ट हो रहे हैं। ये जिस तरह तीक्ष्ण बुद्धि, सर्वकार्य-कुशलता, उद्यमशीलता प्रभृति द्वारा बहुतोंको परास्त कर रहे हैं, उससे अब कोई उन्हें निर्बोध कहनेका

साहस नहीं कर सकते हैं। मुसलमान जोला ताँती निर्वोधके आदर्श हैं।

तन्तुवायोंमें एक विशेष पार्थक्य है। उत्तरकुल सम्प्रदाय केवल कपासके सूतेसे वस्त्र प्रस्तुत करते हैं, मड़याली ताँती केवल तसरका वस्त्र बनाते कभी सूतेसे कपड़ा नहीं बुनते हैं और आश्विना ताँती दोनों तरहके वस्त्र प्रस्तुत करते हैं।

ढाकाके ताँती पहले जगत्विख्यात उत्कृष्ट कपास वस्त्र प्रस्तुत कर प्रचुर धन उपार्जन करते थे। अभी उस तरहका कपड़ा कहीं दिखनेमें नहीं आता है। उनके सौभाग्यके समय जो अच्छे अच्छे वस्त्र बनते थे डाक्टर वाइज (Dr. Wise) ने उनके ५ प्रकारको तालिका दी है, यथा, – मलमल–इसमें पहले प्रकारका अर्थात् सबसे अच्छे अब्रवान, तञ्जेब और देशीय कपासके सूतेका बना हुआ मलमल है। दूसरे प्रकारका शावनाम, खासा, झूना, गङ्गाजल और तेरिन्दस है। तीसरे प्रकारका मसलिन जो सबसे मोटा होता है, इसका साधारण नाम वफता है।

२। डोरिया—अर्थात् मोटे सूतको लम्बी धारीदार मलमल, यथा—राजकोट, ढाकान, पादशाहीदार, बूटीदार, कागजी और खिलापाट।

३। चारखाश—चारखाना मलमल, यथा—नन्दनशाही, अनारदाश, कबूतरखोपी, शाकुट्टा, बच्छादार और कुण्डीदार।

४। जमदानी—अर्थात् छोटे छोटे बूटेदार मलमल। पहले यूरोपीय वणिक् इसे नयनसुख कहते थे। बूटेके आकार, लता, फूल इत्यादिकी प्रतिमूर्ति तथा उसके वर्णभेदसे जमदानीका नामभेद हुआ है, उनमेंसे शाह वर्णावूटि, चोवन्द, मेल, तेलचा और धुवलीजाल साधारण है।

५। कसीदा या चिकण–मलमलकी लाल, नाले, हल्दी और बैंगनी रङ्गमें रङ्गा कर उसके ऊपर तसर इत्यादिका फूल छपा रहता है। इस प्रकारके कपड़ेमें कटा डरमी, नौवाड़ी, यह्दी आजिजुल्ला और समुद्रलहर प्रधान है।

तन्तुवायदण्ड (सं॰ पु॰) तन्तुवायस्य दण्डः, ६ तत्। कपड़े बुननेका यन्त्र, करघा।

तन्तुविग्रहा (सं॰ स्त्री॰) तन्तुभिः निर्मितो विग्रहो यस्याः, बहुव्री॰। कदलीवृक्ष, केलेका पेड़।

तन्तुशाला (सं॰ स्त्री॰) तन्तुवयनार्थं या शाला। तन्तुवयनगृह, वह स्थान जहाँ कपड़ा बुना जाता है।

तन्तुसन्तत (सं॰ त्रि॰) तन्तुभिः सन्ततं व्याप्तं, ३-तत्। स्यूतवस्त्र, सिया हुआ कपड़ा। इसके पर्याय –ऊत, उत और स्युत है।

तन्तुसन्तति (सं॰ स्त्री॰) तन्तूनां सन्ततिः ६-तत्। वयन, बुननेकी क्रिया।

तन्तुसार (सं॰ पु॰) तन्तुः एव सारो यस्य, बहुव्री॰। गुवाकवृक्ष, सुपारीका पेड़।

तन्त्र (सं॰ क्ली॰) तनोति तन्यते वा तन्-ष्ट्रन् वा तन्त्रि कुटुम्ब धारणे घञ्। १ कुटुम्बकृत्य, कुटुम्बके भरण और पोषण आदिका कार्य। २ वेदकी एक शाखा। ३ सिद्धान्त, मीमांसा, विचार। ४ दृढ़ प्रमाण, पक्का सबूत। ५ परिच्छद, वस्त्र, कपड़ा। ६ औषध, दवा। ७ झाड़नमन्त्र, झाड़ने फूँकनेका मन्त्र। ८ प्रधान। ९ कार्य, काम। १० कारण। ११ उपाय। १२ राजसमभिव्याहारी लोक, राजकर्मचारी। १३ सैन्य, सेना। १४ अधिकार। १५ राज्य। १६ स्वराज्यचिन्ता, राज्यका प्रबन्ध। १७ इतिकर्तव्यता, धर्म, फर्ज। १८ सूत, दूत। १९ तन्तुवाय, ताँती। २० तन्तु, ताँत। २१ पद, कार्य करनेका स्थान। २२ समूह, ढेर। २३ वस्त्रवयनकी सामग्री, कपड़े बुननेकी सामग्री। २४ आह्लाद, प्रसन्नता, आनन्द। २५ राज्यशासन। २६ राज्यका समृद्धिसम्पादन, वह कार्य जिससे राज्यकी उन्नति हो। १७ गृह, घर। २८ धन, सम्पत्ति, दौलत। २९ अधीनता, परवश्यता। ३० चर्मनिर्मित सूक्ष्म रज्जु, चमड़ेकी पतली रस्सी। ३१ दल, संप्रदाय। ३२ उद्देश्य। ३३ कुल, खानदान। ३४ शपथ, कसम। ३५ अधीन। ३६ उभयार्थ प्रयोजक। ३७ विधिके अन्तमें अङ्ग समुदाय। ३८ शिवोक्त शास्त्रभेद, एक शास्त्र, जो शिवके मुखसे कहा गया है। ✓ यह शास्त्र प्रधानतः आगम, यामल और तन्त्र इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। वाराहीतन्त्रके मतसे—

"सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां यथार्चनम् ।
साधनंचैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च ॥
षट्कर्मसाधनंचैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः ।
सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद्विदुर्बुधाः ॥"

सृष्टि, प्रलय, देवताओंकी पूजा, सबका साधन, पुरश्चरण, षटकर्म साधन और चतुर्विध ध्यानयोग, इन सात प्रकारके लक्षणोंके रहने पर उसको आगम कहा जा सकता है।

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मन्त्रनिर्णय एव च ।
देवतानाञ्च संस्थानं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम् ॥
तथैवाश्रमधर्मश्च विप्रसंस्थानमेव च ।
संस्थानञ्चैव भूतानां यन्त्राणाञ्चैव निर्णयः ॥
उत्पत्तिर्विबुधानाञ्च तरुणां कल्पसंज्ञितम् ।
संस्थानं ज्योतिषाञ्चैव पुराणाख्यानमेव च ॥
कोषस्य कथनञ्चैव व्रतानां परिभाषणम् ।
शौचाशौचस्य चाख्यानं नरकाणाञ्च वर्णनम् ॥
हरचक्रस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम् ।
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च ॥
व्यवहारः कथ्यते च तथा चाध्यात्मवर्णनम् ।
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तन्त्रमित्यभिधीयते ॥"

सृष्टि, प्रलय, मंत्रनिर्णय, देवताओंका संस्थान, तीर्थवर्णन, आश्रमधर्म, विप्रसंस्थान, भूतादिका संस्थान, यंत्रनिर्णय, विबुधगणको उत्पत्ति, कल्पवर्णन, ज्योतिष-संस्थान, पुराणाख्यान, कोषकथन, व्रतकथा, शौचाशौचवर्णन, स्त्री-पुरुषका लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार और आध्यात्मिक विषयको वर्णना इत्यादि लक्षणोंके रहने पर उसको तंत्र कहा जा सकता है।

"सृष्टिश्च ज्योतिषाख्यानं नित्यकृत्यप्रदीपनम् ।
क्रमसूत्रं वर्णभेदो जातिभेदस्तथैव च ॥
युगधर्मश्च संख्यातो यामलस्याष्टलक्षणम् ।"

सृष्टितत्त्व, ज्योतिष-वर्णन, नित्यकृत्य, कल्पसूत्र, वर्णभेद, जातिभेद और युगधर्म, ये आठ यामलके लक्षण है।

वाराहीतंत्रके मतसे समस्त तंत्रके श्लोक देवलोक, ब्रह्मलोक और पाताललोकमें ८ लाख तथा भारतमें १ लाख मात्र हैं। इनमें—

"आगमं त्रिविधं प्रोक्तं चतुर्थमैश्वरं स्मृतम् ॥
कल्पश्चतुर्विधः प्रोक्तः आगमो डामरस्तथा ।
यामलश्च तथा तन्त्रं तेषां भेदाः पृथक् पृथक् ॥"

आगम तीन प्रकारका है, चौथा ईश्वर है। कल्प भी चार प्रकारका है—आगम, डामर, यामल और तंत्र। महाविश्वसारतंत्रमें लिखा है—

"चतुःषष्टिश्च तन्त्राणि यामलादीनि पार्वति ।
सफलानीह वाराहे विष्णुक्रान्तासु भूमिषु ॥
कल्पभेदेन तन्त्राणि कथितानि च यानि च ।
पाषण्डमोहनार्थैव विफलानीह सुन्दरि ॥"

यामल आदिको ले कर ६४ तंत्र विष्णुक्रान्ता भूमि पर फलदायक हैं। कल्पभेदसे जो तंत्र कहे गये हैं, वे पाषण्ड मोहनके लिए हैं, उनसे कुछ फल नहीं होता।

श्रेष्ठता। महानिर्वाण तंत्रमें महादेवने कहा है—

"कलिकल्मषदीनानां द्विजातीनां सुरेश्वरि ।
मेध्यामेधविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा ।
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत् ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं मयोच्यते ।
विना ह्यागममार्गेन कलौ नास्ति गतिः प्रिये ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे ।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः॥" २।७०।

कलिके दोषसे दीन ब्राह्मण क्षत्रियादिके पवित्र और अपवित्रका विचार न रहेगा। इसलिए वेदविहित कर्म द्वारा वे किस तरह सिद्धिलाभ करेंगे? ऐसी अवस्थामें स्मृतिसंहितादिके द्वारा भी मानवोंके इष्टकी सिद्धि नहीं होगी। प्रिये! मैं सत्य ही कहता हूं कि, कलियुगमें आगममार्गके सिवा और कोई गति नहीं है। शिवे! मैंने वेद, स्मृति और पुराणादिमें कहा है कि, कलियुगमें साधक तन्त्रोक्तविधान द्वारा देवोंकी पूजा करेंगे।

"कलावागममुल्लङ्घ्य योऽन्यमार्गे प्रवर्तते ।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः ॥"

कलिकालमें जो आगम (तन्त्र) उल्लङ्घन करके अन्य मार्ग अवलम्बन करेगा सचमुच ही उसकी सद्गति नहीं होगी।

"निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव ।
सत्यादौ सफला आसन् कलौ ते मृतका इव ॥

पाञ्चालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रियसमन्विताः।
अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः॥
अन्यमन्त्रैः कृतं कर्म बन्ध्यास्त्रीसंगमो यथा।
न तत्र फलसिद्धिः स्यात् श्रम एव हि केवलम्॥
कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः॥
कलौ तन्त्रादिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः।
शस्ताः कर्मेषु सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु॥"

अब वैदिक मन्त्र विषहीन सर्पके समान वीर्यहीन हो गये हैं। सत्य, त्रेता और द्वापरयुगमें उक्त मन्त्र सफल होते थे, अब मृत्यु तुल्य हो गये हैं। जिस तरह प्राचीर पर चित्रित पुत्तलिका इन्द्रियसम्पन्न होने पर भी स्वकार्य-साधनमें असमर्थ है, उसी प्रकार कलियुगके अन्यान्य मन्त्र भी शक्तिहीन हैं। वन्ध्यास्त्रीसे जैसे पुत्रफलकी उत्पत्ति नहीं होती उसी प्रकार अन्य मन्त्र द्वारा कार्य करनेसे फलसिद्धि नहीं होती, केवल वृथा श्रम मात्र होता है। कलिकालमें अन्य शास्त्रोक्त विधिद्वारा जो व्यक्ति सिद्धिलाभ करनेकी इच्छा करता है, वह निर्बोध तृष्णातुर हो कर गङ्गाके किनारे कूप खोदना चाहता है। कलियुगमें तन्त्रोक्त मन्त्र शीघ्र फलप्रद है, वह जप, यज्ञ आदि सभी कार्योंमें प्रशस्त है।

इसी लिए रघुनन्दन आदि स्मार्तोंने तन्त्रग्रन्थको प्रामाणिक माना है।

गुह्यशास्त्र। क्या हिन्दू और क्या बौद्ध दोनों ही सम्प्रदायोंमें तन्त्र अति गुह्यतत्त्व (Mystic doctrine) समझा जाता है। यथार्थ दीक्षित और अभिषिक्तके सिवा किसीके सामने यह शास्त्र प्रकट नहीं करना चाहिये। कुलार्णवतन्त्रमें लिखा है कि, धन देना, स्त्री देना, अपने प्राण तक देना पर यह गुह्यशास्त्र अन्य किसीके सामने प्रकट न करना।*

आगमतत्त्वविलासमें निम्नलिखित कुछ तन्त्रोंका उल्लेख हैं—

१ स्वतन्त्रतन्त्र, २ फेत्कारीतन्त्र, ३ उत्तरतन्त्र, ४ नीलतन्त्र, ५ वीरतन्त्र, ६ कुमारीतन्त्र, ७ कालीतन्त्र, ८ नारायणीतन्त्र, ९ तारिणीतन्त्र, १० बालातन्त्र, ११ समयाचारतन्त्र, १२ भैरवतन्त्र, १३ भैरवीतन्त्र, १४ त्रिपुरातन्त्र, १५ वामकेश्वरतन्त्र, १६ कुक्कुटेश्वरतन्त्र, १७ मातृकातन्त्र, १८ सनत्कुमारतन्त्र, १९ विशुद्धेश्वरतन्त्र, २० सम्मोहनतन्त्र, २१ गौतमीयतन्त्र, २२ बृहत्गौतमीयतन्त्र, २३ भूतभैरवतन्त्र, २४ चामुण्डातन्त्र, २५ पिङ्गलातन्त्र, २६ वाराहीतन्त्र, २७ मुण्डमालातन्त्र, २८ योगिनीतन्त्र, २९ मालिनीविजयतन्त्र, ३० स्वच्छन्दभैरव, ३१ महातन्त्र, ३२ शक्तितन्त्र, ३३ चिन्तामणितन्त्र, ३४ उन्मत्तभैरवतन्त्र, ३५ त्रैलोक्यसारतन्त्र, ३६ विश्वसारतन्त्र, ३७ तन्त्रामृत, ३८ महाफेत्कारीतन्त्र, ३९ वारवीयतन्त्र, ४० तोड़लतन्त्र, ४१ मालिनीतन्त्र, ४२ ललितातन्त्र, ४३ त्रिशक्तितन्त्र, ४४ राजराजेश्वरीतन्त्र, ४५ महामोहस्वरोत्तरतन्त्र, ४६ गवाक्षतन्त्र, ४७ गान्धर्वतन्त्र, ४८ त्रैलोक्यमोहनतन्त्र, ४९ हंसपारमेश्वर ५० हंसमाहेश्वर, ५१ कामधेनुतन्त्र, ५२ वर्णविलासतन्त्र, ५३ मायातन्त्र, ५४ मन्त्रराज, ५५ कुब्जिकातन्त्र, ५६ विज्ञानलतिका, ५७ लिङ्गागम, ५८ कालोत्तर, ५९ ब्रह्मजामल, ६० आदिजामल, ६१ रुद्रजामल, ६२ बृहज्जामल, ६३ सिद्धजामल और ६४ कल्पसूत्र।

इनके सिवा और भी कुछ तान्त्रिक ग्रन्थोंके नाम पाये जाते हैं। यथा—१ मत्स्यसूक्त, २ कुलसूक्त, ३ कामराज, ४ शिवागम, ५ उड्डीश, ६ कुलोड्डीश, ७ वीरभद्रोड्डीश, ८ भूतडामर, ९ डामर, १० यक्षडामर, ११ कुलसर्वस्व, १२ कालिकाकुलसर्वस्व, १३ कुलचूड़ामणि, १४ दिव्य, १५ कुलसार, १६ कुलार्णव, १७ कुलामृत, १८ कुलावली, १९ कालीकुलार्णव, २० कुलप्रकाश, २१ वाशिष्ठ, २२ सिद्धसारस्वत, २३ योगिनीहृदय, २४ कालीहृदय, २५ मातृकार्णव, २६ योगिनीजालकुरक, २७ लक्ष्मीकुलार्णव, २८ तारार्णव, २९ चन्द्रपीठ, ३० मेरुतन्त्र, ३१ चतुःशती, ३२ तत्त्वबोध, ३३ महोग्र, ३४ स्वच्छन्दसारसंग्रह, ३५ ताराप्रदीप, ३६ सङ्केतचन्द्रोदय, ३७ षट्त्रिंशतत्त्वक, ३८ लक्ष्यनिर्णय, ३९ त्रिपुरार्णव, ४० विष्णुधर्मोत्तर, ४१ मन्त्रदर्पण, ४२ वैष्णवामृत, ४३ मानसोल्लास, ४४ पूजाप्रदीप, ४५ भक्तिमञ्जरी, ४६ भुवनेश्वरी, ४७ पारिजात, ४८ प्रयोगसार, ४९ कामरत्न, ५० क्रियासार, ५१ आगमदीपिका, ५२ भावचूड़ामणि, ५३ तन्त्रचूड़ामणि, ५४ बृहत्श्रीक्रम, ५५ श्रीक्रम, ५६ सिद्धान्त-

---

* कुलाचारपूजाके प्रकरणमें प्रमाण देखना चाहिये।

शेखर, ५७ गणेशविमर्शिनी, ५८ मंत्रमुक्तावली, ५९ तत्त्वकौमुदी, ६० तन्त्रकौमुदी, ६१ मन्त्रतन्त्रप्रकाश, ६२ रामार्चनचन्द्रिका, ६३ शारदातिलक, ६४ ज्ञानार्णव, ६५ सारसमुच्चय, ६६ कल्पद्रुम, ६७ ज्ञानमाला, ६८ पुरश्चरणचन्द्रिका, ६९ आगमोत्तर, ७० तत्त्वसागर, ७१ सारसंग्रह, ७२ देवप्रकाशिनी, ७३ तन्त्रार्णव ७४ क्रमदीपिका, ७५ तारारहस्य, ७६ श्यामारहस्य, ७७ तन्त्ररत्न, ७८ तन्त्रप्रदीप, ७९ ताराविलास, ८० विश्वमातृका, ८१ प्रपञ्चसार, ८२ तन्त्रसार और रत्नावली। इनके अलावा महासिद्धिसारस्वतमें सिद्धेश्वर, नित्यतन्त्र, देव्यागम, निबन्धतन्त्र, राधातंत्र कामाख्यातन्त्र, महाकालतन्त्र, यन्त्रचिन्तामणि, कालीविलास और महाचीनतन्त्रका उल्लेख है।

उपरोक्त तन्त्रोंको छोड़ कर और भी कुछ तंत्र तान्त्रिक ग्रन्थ प्रचलित हैं। यथा—आचारसारप्रकरण, आचारसारतन्त्र, आगमचन्द्रिका, आगमसार, अन्नदाकल्प, ब्रह्मज्ञानमहातन्त्र, ब्रह्मज्ञानतन्त्र, ब्रह्माण्डतन्त्र, चिन्तामणितन्त्र, दक्षिणाकल्प, गौरीकाञ्चलिकातंत्र, गायत्रीतंत्र, ब्राह्मणोल्लास, ग्रहयामलतंत्र, ईशानसंहिता, जपरहस्य, ज्ञानानन्दतरङ्गिणी, ज्ञानतंत्र, कैवल्यतंत्र, ज्ञानसङ्कलिनीतंत्र, कौलिकार्चनदीपिका, क्रमचन्द्रिका, कुमारीकवचोल्लास, लिङ्गार्चनतंत्र, निर्वाणतंत्र, महानिर्वाणतंत्र, बृहन्निर्वाणतंत्र, वरदातंत्र, मातृकाभेदतंत्र, निगमकल्पद्रुम, निगमतत्त्वसार, निरुत्तरतंत्र, पिच्छिलातंत्र, पीठनिर्णय, पुरश्चरणविवेक, पुरश्चरणरसोल्लास, शक्तिसङ्गमतंत्र, सरस्वतीतंत्र, शिवसंहिता, श्रीतत्त्वबोधिनी, स्वरोदय, श्यामाकल्पलता, श्यामार्चनचन्द्रिका, श्यामाप्रदीप, ताराप्रदीप, शाक्तानन्दतरङ्गिणी, तत्त्वानन्दतरङ्गिणी, त्रिपुरासारसमुच्चय, वर्णभैरव, वर्णोद्धारतंत्र, बीजचिन्तामणि, मणितंत्र, योगिनीहृदयदीपिका, यामल इत्यादि।

वाराहीतन्त्रमें तन्त्रोंके नाम और उनकी श्लोक संख्या इस प्रकार लिखी है—

तंत्रका नाम।	श्लोकसंख्या
मुक्तक	६०५०
शारदा	१६०२५
प्रपञ्च (१म)	१२३००
प्रपञ्च (२य)	८०२७०
प्रपञ्च (३य)	५३१०
नाम	श्लोकसंख्या
कपिल	६०८०
योग	१३३११
कल्प	५०९०
कपिञ्जल	२८०१२०
अमृतशुद्धि	५००५
वीरागम	६६०६
सिद्धसम्बरण	५००६
योगडामर	२३५३३
शिवडामर	११००७
दुर्गाडामर	११५०३
सारस्वत	९९०५
ब्रह्मडामर	७१०५
गान्धर्वडामर	६००६०
आदियामल	३५३००
ब्रह्मयामल	२२१००
विष्णुयामल	२४०२०
रुद्रयामल	६४६५
गणेशयामल	१०३२३
आदित्ययामल	१२०००
नीलपताका	५०००
वामकेश्वर	२५
मृत्युञ्जयतन्त्र	१३२२०
योगार्णव	८३०७
मायातन्त्र	११०००
दक्षिणामूर्त्ति	५५५०
कालिका	११०१
कामेश्वरीतन्त्र	३०००
तन्त्रराज	९०९०
हरगौरीतन्त्र (१म)	२२०२०
हरगौरीतन्त्र (२य)	१२०००
तन्त्रनिर्णय	२८
कुब्जिकातन्त्र (१म)	१०००७
कुब्जिकातन्त्र (२य)	६०००
कुब्जिकातन्त्र (३य)	३०००
कात्यायनी तन्त्र	२४२००

नाम	श्लोकसंख्या
प्रत्यङ्गिरातन्त्र	८८००
महालक्ष्मीतन्त्र	५५०५
देवीतन्त्र	१२०००
त्रिपुरार्णव	८८०६
सरस्वतीतन्त्र	२२०५
आद्यातन्त्र	२२८१५
योगिनीतन्त्र (१म)	२२५३२
योगिनीतन्त्र (२य)	६३०३
वाराहीतन्त्र	„
गवाक्षतन्त्र	६५१५
नारायणीतन्त्र	५०२०३
मृड़ानीतन्त्र (१म)	४४८०
मृड़ानीतन्त्र (२य)	३०००
मृड़ानीतन्त्र (३य)	३३०

वाराहीतन्त्रमें लिखा है—इनके सिवा बौद्ध और कापिलोक्त अनेक उपतन्त्र हैं। जैमिनि, वसिष्ठ, कपिल, नारद, गर्ग, पुलस्त, भार्गव, सिद्ध, याज्ञवल्क्य भृगु, शुक्र, बृहस्पति आदि मुनियोंने बहुतसे उपतन्त्र रचे थे, उनकी गिनती नहीं हो सकती।

हिन्दुओंके तन्त्र जिस प्रकार शिवोक्त है, बौद्धोंके तन्त्र भी उसी प्रकार बुद्ध द्वारा वर्णित हैं। बौद्धोंके तन्त्र भी संस्कृत भाषामें रचे गये हैं। बौद्धतन्त्रोंमें ये तन्त्र ही प्रधान है —१ प्रमोदमहायुग, २ परमार्थसेवा, ३ पिण्डोक्रम, ४ सम्पुटोद्भव, ५ हेवज्र, ६ बुद्धकपाल, ७ सम्बरतन्त्र वा सम्बरोदय, ८ वाराहीतन्त्र वा वाराहीकल्प, ९ योगाम्बर, १० डाकिनीजाल, ११ शुक्लयमारि, १२ कृष्णयमारि, १३ पीतयमारि, १४ रक्तयमारि, १५ श्यामयमारि, १६ क्रियासंग्रह १७ क्रियाकन्द, १८ क्रियासागर, १९ क्रियाकल्पद्रुम, २० क्रियार्णव, २१ अभिधानोत्तर, २२ क्रियासमुच्चय, २३ साधनमाला, २४ साधनसमुच्चय. २५ साधनसंग्रह, २६ साधनरत्न, २७ साधनपरीक्षा, २८ साधनकल्पलता, २९ तत्त्वज्ञान, ३० ज्ञानसिद्धि, ३१ गुह्यसिद्धि, ३२ उद्यान, ३३ नागार्जुन, ३४ ३४ योगपीठ, ३५ पीठावतार, ३६ कालवीरतन्त्र वा चण्डरोषण, ३७ वज्रवीर, ३८ वज्रसत्व, ३९ मरीचि, ४० तारा, ४१ वज्रधातु, ४२ विमलप्रभा, ४३ मणिकर्णिका, ४४ त्रैलोक्यविजय, ४५ सम्पूट ४६ मर्मकालिका, ४७ कुरुकुल्ला, ४८ भूतडामर, ४९ कालचक्र, ५० योगिनी, ५१ योगिनीसञ्चार, ५२ योगिनीजाल, ५३ योगाम्बरपीठ, ५४ उड्डामर, ५५ वसुन्धरासाधन, ५६ नैरात्म, ४७ डाकार्णव, ५८ क्रियासार. ५९ यमान्तक, ६० मञ्जुश्री, ६१ तन्त्रसमुच्चय, ६२ क्रियावसन्त, ६३ हयग्रीव, ६४ सङ्कीर्ण, ६५ नामसङ्गीति, ६६ अमृतकर्णिकानामसङ्गीति, ६७ गूढ़ोत्पादनामसङ्गीति, ६८ मायाजाल, ६९ ज्ञानोदय, ७० बसन्ततिलक, ७१ निष्पन्नयोगांबर, और ७२ महाकालतन्त्र।

इनके सिवा हिन्दुओंके तान्त्रिककवचकी भाँति नेपाली बौद्धोंमें भी असंख्य धारणीसंग्रह है। बौद्धतन्त्रोंमें बहुतोंका चीन और तिब्बती भाषामें अनुवाद हो गया है। तिब्बतमें तन्त्र ऋटगयुदके नामसे प्रसिद्ध हैं, ऋटग.युद ७८ भागोंमें विभक्त हैं। इनमें २६४० स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। उनमें प्रधानत: बौद्धोंके गुह्य क्रियाकाण्ड, उपदेश, स्तव, कवच, मन्त्र और पूजाविधिका वर्णन है। शिवोक्त तन्त्र शाक्त, शैव और वैष्णवके भेदसे तीन प्रकारके हैं। तान्त्रिक गण स्वसंप्रदायभुक्त तन्त्रके अनुसार हो चला करते हैं।

Comp उत्पत्ति। तन्त्रशास्त्रकी उत्पत्ति कबसे हुई है, इसका निर्णय नहीं हो सकता। प्राचीन स्मृतिसंहितामें चौदह विद्याओंका उल्लेख है, किन्तु उनमें तन्त्र गृहीत नहीं हुआ है। इसके सिवा किसी महापुराणमें भी तन्त्रशास्त्रका उल्लेख नहीं है, इत्यादि कारणोंसे तन्त्र शास्त्रको प्राचीनतम आर्यशास्त्र नहीं माना जा सकता। तन्त्रोक्त मारणोच्चाटन-वशीकरणादि आभिचारिक क्रियाका प्रसङ्ग अथर्वसंहितामें पाया जाता है सही किन्तु तन्त्रके अन्यान्य प्रधान लक्षण नहीं मिलते। ऐसी दशामें तन्त्रको हम अथर्वसंहितामूलमें नहीं कह सकते। अथर्ववेदीय नृसिंहतापनीयोपनिषद्‌में सबसे पहले तन्त्रका लक्षण देखनेमें आता है। इस उपनिषद्‌में मन्त्रराज-नरसिंह-अनुष्टुभ प्रसङ्गमें तान्त्रिक मालामन्त्रका स्पष्ट आभास सूचित हुआ है। शङ्कराचार्यने भी जब उक्त उपनिषद्‌के भाष्यकी रचना की है तब निःसन्देह वह ईसाकी ७वीं शताब्दीसे भी पहलेका है। हिन्दुओंके

अनुकरणसे बौद्धतन्त्रोंकी रचना हुई है। ईसाकी ८ वीं शताब्दीसे ११ वीं शताब्दीके भीतर बहुतसे बौद्धतन्त्रोंका तिब्बतीय भाषामें अनुवाद हुआ था। ऐसी दशामें मूल बौद्धतन्त्र ईसाकी ७वीं शताब्दीके पहले और उनके आदर्श हिन्दू-तन्त्र बौद्धतन्त्रसे भी पहले प्रकाशित हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। श्रीमद्भागवतमें ४र्थ स्कन्धके २य अध्यायमें लिखा है—दक्षयज्ञमें शिवनिन्दा सुन कर नन्दीके शिवनिन्दक दक्ष और उसके समर्थनकारी ब्राह्मणोंको अभिसम्पात करने पर भृगुने भी इस प्रकार अभिशाप दिया था—

"भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः।
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः॥
नष्टशौचा मूढ़धियो जटाभस्मास्थिधारिणः।
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम्॥
ब्रह्म च ब्राह्मणं चैव यद् यूयं परिनिन्दथ।
सेतुं विवरणं पुंसामत पाषण्डमाश्रिताः॥"

जो महादेवका व्रत धारण करेंगे और जो उनके अनुवर्ती होंगे, वे सत्शास्त्रके प्रतिकूलाचारी और पाखण्डी नामसे प्रसिद्ध हों। शौचाचारहीन और मूढ़बुद्धि व्यक्ति ही जटाभस्मधारी हो कर उस शिवदीक्षामें प्रवेश करें, जहाँ सुरासव ही देववत् आदरणीय है, तुम लोगोंने शास्त्रोंके मर्यादास्वरूप ब्रह्म, देव और ब्राह्मणोंकी निन्दा की है, इसलिये तुम लोगोंको पाषण्डाश्रित कहा है।

पद्मपुराणके पाषण्डोत्पत्ति अध्यायमें लिखा है—लोगोंको भ्रष्ट करनेके लिये ही शिवकी दुहाई दे कर पाखण्डियोंने अपना मत प्रकट किया है। उक्त भागवत और पद्मपुराणमें जिस तरह पाषण्डीमतका उल्लेख किया गया है, तन्त्रमें वही शिवोक्त उपदेश कहा गया है। गौड़ीय वैष्णववर्गके ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम होता है कि, चैतन्यदेवने भी तान्त्रिकोंको पाषण्डीके नामसे सम्बोधन किया है। ऐसा होनेसे भागवत और पद्मपुराणके रचनाकालमें जो तान्त्रिक मत प्रचारित हुआ था, वह एक तरहसे ग्रहण किया जा सकता है। चीन-परिव्राजक फाहियान और यूयेनचुयाङ्गने भारतमें आ कर यहाँके अनेक संप्रदायोंका विवरण लिखा है, किन्तु तांत्रिकोंके विषयमें कुछ नहीं लिखा है। ई० ८वीं शताब्दीमें भोटदेशमें बौद्धतंत्र अनुवादित हुए थे। किन्तु ई० ७वीं शताब्दीमें यूयेनचुयाङ्गने नानाप्रकारके बौद्ध शास्त्रोंका उल्लेख करने पर भी तन्त्रशास्त्रका कोई उल्लेख नहीं किया। जब ८वीं शताब्दीमें मूल ग्रन्थका अनुवाद हुआ है, तब मानना पड़ेगा कि, मूलतंत्र अवश्य ही उससे पहले रचे गये हैं। हाँ, यह हो सकता है, कि उस समय उनकी प्रसिद्धि नहीं हुई होगी अथवा साधारणने उसको विशुद्ध मत मान कर ग्रहण नहीं किया होगा। दाक्षिणात्यमें बहुतोंका विश्वास है कि अद्वैतवादी शङ्कराचार्यने ही तांत्रिक मतका प्रचार किया था और इसी कारण वे मायावादी नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु शङ्कराचार्यको हम तन्त्रमतका प्रचारक किसी हालतमें भी नहीं मान सकते। शंकराचार्य देखो।

दक्षिणाचार-तंत्रराजमें लिखा है—गौड़, केरल और काश्मीर इन तीनों देशके लोग ही विशुद्ध शाक्त हैं। किन्तु हम गौड़देशको ही प्रधानशाक्त वा तांत्रिकोंकी जन्मभूमि मान सकते हैं। तांत्रिकोंमें शैव, वैष्णव और शाक्त ये तीन संप्रदायभेद रहने पर भी कार्यतः सभी शाक्त हैं। बौद्ध तांत्रिकोंको भी हम इस हिसाबसे शाक्त कहनेको वाध्य हैं। शाक्त देखो।

बङ्गालमें जिस प्रकार शाक्तोंका प्राधान्य है, भारतमें और कहीं भी वैसा नहीं है। जिस समय बौद्धधर्म हीनप्रभ होता आ रहा था, उस समय गौड़में तांत्रिक धर्मका प्रचार हुआ था। इस समय जितने भी शिवोक्त तंत्र पाये जाते हैं, उनकी रचनाप्रणालीकी पर्यालोचना करनेसे सहजमें ही धारण होती है कि, वे गौड़देशमें रचे गये थे। तंत्रमें जैसी पृथक् वर्णमाला गृहीत हुई है, वह भी संपूर्ण गौड़ वा वङ्गदेशमें प्रचलित थी। वरदातंत्र वर्णोद्धारतंत्र आदि तंत्रोंमें वर्णमालाकी जैसी लिखनप्रणाली लिखी है, उसे भी हम वङ्गला अक्षरके सिवा अन्य कोई लिपि नहीं मान सकते। तंत्रोक्त लिपि अब सिर्फ बङ्गालमें ही प्रचलित है। इस लिपिको हजार या बारह सौ वर्षसे ज्यादा पुरानी नहीं कह सकते। इसलिये अब इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि, उक्त प्रकारकी लिपिके तंत्र भी उसके बाद रचे गये हैं। भोटदेशमें अतिशका नाम बहुत प्रसिद्ध

है। ये बङ्गाली थे, ईसाकी ११वीं शताब्दीमें इन्होंने तिब्बतमें जा कर तांत्रिक धर्मका प्रचार किया था। यह सम्भव नहीं कि, इनसे भी पहले किसी वङ्गवासीने जा कर वहां धर्म प्रचार किया होगा। अतएव सम्भव है कि वङ्ग वा गौड़से ही नेपाल, भूटान, चीन आदि दूर देशोंमें तान्त्रिक धर्म विस्तृत हुआ था;

गुजराती भाषामें लिखे हुए 'आगमप्रकाश'में लिखा है हिन्दू राजाओंके राज्यकालमें बङ्गालियोंने गुजरात, डभोई, पावागढ़, अहमदाबाद, पाटन आदि स्थानोंमें आ कर कालिकामूर्त्ति स्थापित की थीं। बहुतसे हिन्दू राजा और प्रधान प्रधान व्यक्तियोंने उनकी मंत्रदीक्षा ग्रहण की थी। (आगमप्र० १२) वास्तवमें देखा जाय तो फिलहाल जो बङ्गाल आदि देशोंमें मंत्रगुरुका प्रचलन है वह भी तांत्रिकोंके प्राधान्य कालमें प्रचलित हुआ था। ऐसा मंत्रगुरुका नियम पहले न था। बङ्गाली तांत्रिकोंने ही इस प्रथाका प्रथम प्रचार किया था। उनकी देखा-देखी भारतके नाना स्थानों वा नाना संप्रदायोंमें इस प्रकारके मंत्रगुरुकी प्रथा चल पड़ी है।

सभी तंत्र प्राचीन नहीं माने जा सकते। त्यागिनीतंत्रमें कोचराजवंशके प्रतिष्ठाता विश्वसिंहका परिचय दिया गया है। विश्वसारतंत्रमें नित्यानन्दकी जन्मकथाका वर्णन किया गया है। इसलिए ऐसे तंत्र ईसाकी १५वीं शताब्दीसे बादके हैं, इसमें सन्देह ही क्या? बङ्गालमें महानिर्वाणतंत्रका सर्वत्र आदर होता है, किन्तु बहुत जगह किम्बदन्ती है कि, महात्मा राममोहन रायके गुरुने इस ग्रन्थकी रचना की थी। शक्तिरत्नाकरमें वृहन्निर्वाणतंत्रका उल्लेख है। किन्तु नितान्त आधुनिक प्राणतोषिणीके सिवा अन्य किसी प्राचीन वा आधुनिक तंत्रसंग्रहमें महानिर्वाणतंत्रका नामोल्लेख न रहनेसे इसका आधुनिकत्व ही प्रतिपन्न होता है। और मेरुतन्त्रमें लंड्रज, अंग्रेज इत्यादि शब्दो द्वारा यही प्रमाणित होता है कि, भारतमें अंग्रेजोंके आगमनके बाद उक्त तन्त्रोंकी रचना हुई है।

प्रतिपाद्य विषय। तंत्रोंमें प्रातःस्मरण, स्नानविधि, त्रिपुण्ड्र धारण, भूशुद्धि, भूतशुद्धि, प्राणायाम, संध्या, जप, पुरश्चरण, कराङ्गन्यास, अन्तरमातृका, वहिर्मातृका, चित्रान्यास, नामादिविद्या, नित्यादिविद्या, मूलविद्या, तत्त्वन्यास, द्वारपूजा, तर्पण, दशविद्यान्यास, पात्रनिर्णय, नित्यपूजा, सूर्यार्घ्य, तीर्थसंस्कार, गुर्वादिपूजन, दीक्षा, पूर्णाभिषेक, प्रायश्चित्त, निम्बपुष्पपूजा, दमनकपूजा, वसन्तपूजा, श्रीचक्रपूजा, दीक्षाकाल, दीक्षाभेद, सर्वतोभद्रादिचक्रनिर्णय, यंत्रनिरूपण, पुन्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, नवयोनि, कौलश्राद्ध, मंत्रशोधन, मन्त्रोद्धार, नामपारायण, तत्त्वपारायण, पञ्चाङ्गन्यास, महाषोढ़ान्यास, महान्यास, सम्मोहनन्यास, सौभाग्यवर्द्धनन्यास, अन्त्येष्टिक्रिया, विविधमुद्रा, अवधूतादिनिर्णय आदि नाना विषयोंका वर्णन किया गया है।

मनुके टीकाकार कुल्लूकभट्टने लिखा है—

"वैदिकी तान्त्रिकीश्चैव द्विविधा श्रुतिकीर्तिता:।"

वैदिकी और तान्त्रिकी इन दो श्रुतियोंका निर्देश है। इसलिए कुल्लूकभट्टके मतसे, तन्त्रको भी श्रुति कहा जा सकता है। आदियामलके मतसे—

"आगतः शिववक्त्रेभ्यो गतोपि गिरिजालये।
मग्न तस्य हृदम्भोजे तस्मादागम उच्यते॥"

हे दुर्गे! शिवके मुखसे निकल कर तुम्हारे हृदयपद्ममें मग्न हुआ है, इसीलिए इसको आगम कहते हैं।

कुलार्णवके मतसे—

"कृते श्रुत्युक्त आचारस्त्रेतायां स्मृतिसम्भव:।
द्वापरे तु पुराणोक्तं कलौ आगमकेवलम्॥"

विष्णुयामलमें वर्णित है—

"आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधी:।
नहि देवाः प्रसीदन्ति कलौ चान्यविधानत:॥"

बुद्धिमान् मनुष्य कलिकालमें आगमोक्त व्यवस्थाके अनुसार ही पूजा करेंगे; अन्य नियमसे पूजा करनेसे देवगण प्रसन्न नहीं होते।

रुद्रयामलके मतसे—

"पञ्चमन्त्रैर्भवेद्दीक्षास्त्वागमोक्त शृणु प्रिये।
यां कृत्वा कलिकाले च सर्वाभीष्टं लभेन्नरः॥"

आगमोक्त पञ्चमंत्र द्वारा दीक्षा लेवें, इसके लेनेसे मनुष्यको कलिकालमें सर्व अभीष्टकी सिद्धि होगी।

दीक्षा। तंत्रोंके मतसे, सबसे पहले दीक्षा ग्रहण करके पीछे तांत्रिक कार्योंमें हाथ डालना चाहिये, बिना

दीक्षाके तान्त्रिककार्यमें अधिकार नहीं है।

गौतमीयतंत्रमें लिखा है—

"द्विजानामनुपनीतानां स्वधर्माध्ययनादिषु।
यथाधिकारो नास्तीह सन्ध्योपासनकर्मसु॥
तथाह्यदीक्षितानान्तु मंत्रतंत्रार्चनादिषु।
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्कृतम्॥"

जैसे द्विजातियोंको उपनयन बिना हुए अध्ययन और सन्ध्यापूजा आदि स्वकर्ममें अधिकार नहीं होता, उसी तरह अदीक्षित व्यक्तियोंको मंत्रतंत्र और पूजादि कर्ममें अधिकार नहीं होता। इसी लिए शिवसंस्कृत होना आवश्यक है। उक्त तंत्रके ७वें अध्यायमें लिखा है—

"ददाति दिव्यतांवंचेत् क्षिणुयात् पापसन्ततिं।
तेन दीक्षेति विख्याता मुनिभिस्तंत्रपारगैः॥
यां विना नैव सिद्धिः स्यान्मंत्रो वर्षशतैरपि॥"

दिव्यता देती और पापसन्तति नाश करती है, इस लिए तंत्रपारग मुनि द्वारा यह दीक्षा नामसे प्रसिद्ध है। इसके बिना सौ वर्ष मंत्र पढ़नेसे भी सिद्धि नहीं होती।

दीक्षा लेनेके लिए सद्गुरुकी आवश्यकता है। दीक्षागुरुका लक्षण इस प्रकार है—

"शान्तो दान्तः कुलीनश्च शुद्धान्तःकरणः सदा।
पंचतत्त्वार्चको यस्तु सद्गुरुः स प्रकीर्तितः॥
सिद्धोऽसाविति चेत् ख्यातो बहुभिः शिष्यपालकः।
चमत्कारी दैवशक्त्या सद्गुरुः कथितः प्रिये॥
अश्रुतं सम्मतं वाक्यं व्यक्ति साधु मनोहरम्।
तन्त्रं मन्त्रं समं व्यक्ति य एव सद्गुरुश्च सः॥
सदा यः शिष्यबोधेन हिताय च समाकुलः।
निग्रहानुग्रहे शक्तः सद्गुरुर्गीयते बुधैः॥
परमार्थे सदा दृष्टिः परमार्थं प्रकीर्तितम्।
गुरुपादाम्बुजे भक्तिर्यस्यैव सद्गुरुः स्मृतः॥"

(कामाख्यातन्त्र ४र्थ)

शान्त, दान्त, कुलीन, शुद्धान्तःकरण, पञ्चतत्त्वके पूजक, सिद्ध, प्रसिद्ध, बहुशिष्यपालनकारी, चमत्कारी, दैवशक्तिसम्पन्न, साधु, मनोहर, अश्रुत और तंत्रसम्मत वाक्यवादी, तंत्रमंत्रको जो समभावसे जानते हों, शिष्यबोधमें जो सर्वदा ही हित करते रहते हों, निग्रहानुग्रहमें समर्थ हों, सदा परमार्थमें दृष्टि रखते हों और जो सदा परमार्थ तत्त्व कीर्तन करते रहते हों, गुरुके पादपद्ममें जिनकी अचल भक्ति हो, उन्हींको सद्गुरु समझना चाहिये। इसलिए सभी प्रधान तंत्रोंमें लिखा है—

"अज्ञानं तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
नेत्रमुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥"

अज्ञानरूप तिमिररोगसे जो अन्ध हुआ है, ज्ञानरूप अञ्जनकी शलाकाके द्वारा जो उसकी अन्धता नष्ट कर ज्ञाननेत्रको खोल सकते हैं, ऐसे श्रीगुरुको नमस्कार है।

जैसे गुरु हैं, वैसे शिष्यकी जरूरत है। गौतमीयतंत्रमें लिखा है—

"शिष्यः कुलीनः शुद्धात्मा पुरुषार्थपरायणः।
अधीतवेदकुशलः पितृमातृहिते रतः॥
धर्मविद्धर्मकर्ता च गुरु-शुश्रूषणे रतः।
सदा शास्त्रार्थतत्त्वज्ञो दृढदेहो दृढाशयः॥
हितैषी प्राणिनां नित्यं परलोकार्थकर्मकृत।
वाङ्मनःकायवसुभिर्गुरुशुश्रूषणे रतः॥
अनित्यकर्मणस्त्यागी नित्यानुष्ठानतत्परः।
जितेन्द्रियो जितालस्यो जितमोहविमत्सरः॥
गुरुवद्गुरुपुत्रेषु तत्कलत्रादिषु भक्तिमान्।
एवंविधो भवेच्छिष्यस्त्वितरो गुरुदुःखदः॥
वर्षैकेण भवेद्योग्यो विप्रः सर्वगुणान्वितः।
वर्षद्वये तु राजन्यो वैश्यस्तु वत्सरैस्त्रिभिः॥
चतुर्भिर्वत्सरैः शूद्रः कथिता शिष्ययोग्यता।
यदा शिष्यो भवेद् योग्यः कृपया सद्गुरुस्तदा॥
कृपया परया सम्यग् दीक्षाया विधिमाचरेत्।" (५ अध्याय)

शिष्य कुलीन, शुद्धान्तःकरण, पुरुषार्थपर, वेदपाठमें निपुण, पितामाताके मङ्गलमें तत्पर, धर्मज्ञ, धार्मिक, गुरुसेवामें अनुरक्त, सर्वदा तंत्रशास्त्रका यथार्थ मर्मज्ञ, दृढ़काय और दृढ़चित्त, प्राणियोंका सर्वदा मङ्गलकारी, परलोकमें मङ्गलके लिए कर्मकारी, कायमनोवाक्यसे यावज्जीवन गुरुसेवामें निरत, अनित्य कर्मत्यागकारी, सर्वदा तंत्रानुष्ठानमें तत्पर, जितेन्द्रिय, आलस्यजयकारी, मोह और मत्सरको जीतनेवाले, गुरुपुत्र और गुरुके परिवारवर्गकी गुरुके समान भक्ति करनेवाला, ऐसा शिष्य होना चाहिये; अन्य प्रकार शिष्य गुरुके लिए दुःखदायक है। सर्वगुणान्वित ब्राह्मण एक वर्षमें, क्षत्रिय दो वर्षमें

वैश्य तीन वर्षमें और शूद्र चार वर्षमें शिष्य होनेके उपयुक्त होता है। शिष्य उपयुक्त होने पर सद्गुरुको चाहिये कि, उससे कृपापूर्वक सम्पूर्ण दीक्षाकी विधियोंका पालन करावें।

उक्त लक्षणाक्रान्त होने पर भी सबसे दीक्षा लेनेकी विधि नहीं है। योगिनीतन्त्रमें लिखा है—

"पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयात् तथा मातामहस्य च।
सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रितस्य च॥"

पिता, मातामह, सहोदर वा अपनी अपेक्षा छोटी उम्रवालेसे तथा शत्रुपक्षवालोंसे मंत्र ग्रहण न करना चाहिये।

कामाख्यातंत्रके मतसे—

"अन्धं खञ्जं तथा रुग्नं स्वल्पज्ञानयुतं पुनः।
सामान्यकौलं वरदे वर्जयेन्मतिमान् सदा॥
उदासीनं विशेषेण वर्जयेत् सिद्धिकामुकः।
उदासीनमुखाद्दीक्षा बन्ध्या नारी यथा प्रिये॥
अज्ञानाद् यदि वा मोहादुदासीनन्तु पामरः।
अभिषिक्तो भवेद् देवि विघ्नस्तस्य पदे पदे।
सर्वं हि विफलं तस्य नरकं याति चान्तिमे।" (८अ०)

मतिमान् सिद्धिकामुक व्यक्तिको चाहिये कि, वह अन्धा, लूला, रुग्न, अल्पज्ञानी, सामान्य कौल, विशेषतः उदासीनको परित्याग कर दे। क्योंकि बन्ध्या नारी जैसी है, उदासीनके पास दीक्षा लेना भी वैसा ही है। यदि बिना जाने किम्वा मोहसे उदासीनसे दीक्षा ले ली हो, तो उसको पदपदमें विघ्न हुआ करते हैं। उसके सभी कार्य विफल हैं। अन्तको वह नरक जाता है।

गणेशविमर्षिणीतंत्रके मतसे—

"यतेर्दीक्षा पितुर्दीक्षा दीक्षा च वनवासिनः।
विविक्ताश्रमिणो दीक्षा न सा कल्याणदायिका॥"

यति, पिता, वनवासी और गृहस्थाश्रम परित्यागीसे दीक्षा लेना मङ्गलजनक नहीं है।

रुद्रयामलमें लिखा है—

"न पत्नीं दीक्षयेद् भर्त्ता न पिता दीक्षयेत् सुताम्।
न पुत्रश्च तथा भ्राता भ्रातरं न च दीक्षयेत्॥
सिद्धमन्त्रो यदि पतिस्तदा पत्नीं स दीक्षयेत्।
शक्तित्वेन वरारोहे न च सा पुत्रिका भवेत्॥"

पति पत्नीको, पिता कन्या वा पुत्रको, भ्राता भाईको दीक्षा न देवें। पति सिद्धमंत्र होने पर पत्नीको दीक्षित कर सकते हैं; क्योंकि उनके शक्तित्वके कारण वह कन्या नहीं समझी जाती।

गणेशविमर्षिणीके मतसे—

"प्रमादाद्वा तथाज्ञानात् पितुर्दीक्षां समाचरन्।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनर्दीक्षां समाचरेत्॥"

प्रमाद वश वा अज्ञान वश यदि पितासे दीक्षा ली जाय, तो प्रायश्चित्त करके पुनः दीक्षा लेनी पड़ती है।

कृष्णानन्दने तंत्रसारमें लिखा है--

"वैष्णवे वैष्णवो ग्राह्यः शैवे शैवं च शक्तिके।
शैवः शाक्तोऽपि सर्वत्र दीक्षास्वामी न संशयः॥"

वैष्णवका वैष्णव तथा शैवका शैव और शाक्त ग्राह्य है। शैव और शाक्त सर्वत्र ही दीक्षागुरु हो सकते हैं।

देशभेदसे भी गुरुओंमें तारतम्य होता है। बृहत्गौतमीयतंत्रके मतसे—

"पाश्चात्या गुरवो मुख्या दाक्षिणात्याश्च मध्यमाः।
गौडदेशोद्भवा न्यूना कामरूपोद्भवास्तथा।
कलिंगाद्याश्च ये प्रोक्ता अधमास्ते द्विजाः स्मृताः॥"

पाश्चात्य वैदिक गुरु प्रधान, दाक्षिणात्यमें मध्यम, गौड़ और कामरूपोंके ब्राह्मणगण उनकी अपेक्षा न्यून, कलिङ्गादि अधम हैं।

विद्याधराचार्यधृत जामलवचनके मतसे—

"मध्यदेशे कुरुक्षेत्रं लाटकोंकणसम्भवाः।
अन्तर्वेदिप्रतिष्ठाना अवन्ताश्च गुरूत्तमाः॥
गौड़ा शाल्वोद्भवा सौरा मागधा केरलास्तथा।
कोशलाश्च दशार्णाश्च गुरवः सप्त मध्यमाः॥
कर्णाट-नर्मदा-रेवा-कच्छतीरोद्भवास्तथा।
कलिंगाश्च कम्बलाश्च काम्बोजाश्चाधमा मताः॥"

मध्यदेशमें कुरुक्षेत्र, लाट, कोङ्कण, अन्तर्वेदि, प्रतिष्ठान और अवन्ति, इन स्थानोंके गुरु उत्तम वा श्रेष्ठ, गौड़, शाल्व, सौर, मगध, केरल, कोशल, दशार्ण, इन सात स्थानोंके गुरु मध्यम तथा कर्णाट, नर्मदा, रेवा और कच्छतीरवासी, कलिङ्ग, कम्बल और काम्बोजवासी गुरु अधम होते हैं।

तांत्रिक दीक्षा वा मंत्रगुरु ग्रहण करनेमें स्त्री शूद्र

सभीको समान अधिकार है। गौतमीयतंत्रके प्रारम्भमें ही लिखा है—

"सर्ववर्णाधिकारश्च नारीणां योग्य एव च ॥"

कङ्कालमालिनीतंत्रके मतसे—

"शूद्राणां प्रणवं देवि चतुर्दशस्वरं प्रिये ।
नादबिन्दुसमायुक्तं स्त्रीणां चैव वरानने ॥
मनौ स्वाहा च या देवि शूद्रोच्चार्या न संशयः ।
होमकार्ये महेशानि शूद्रः स्वाहां न चोच्चरेत् ॥
मन्त्रोप्यूहो नास्ति शूद्रे विषबीजं विना प्रिये ॥"

हे देवि! शूद्र और स्त्रियोंका प्रणव बीजमंत्र नादविन्दुसमायुक्त चतुर्दशस्वर हैं। शूद्रको मनमें भी स्वाहा उच्चारण न करना चाहिये। होम-कार्यमें भी शूद्र स्वाहा उच्चारण न करे। विषबीजके सिवा शूद्रको और कोई भी मंत्र न उच्चारण करना चाहिये।

नीलतंत्रके मतसे दीक्षाकाल इस प्रकार है—

'कृष्णपक्षस्य चाष्टम्यां शुभे लग्ने शुभेऽहनि ।
पूर्वभाद्रपदायुक्ते मित्रतारादिसंयुते ॥
अथवा ह्यनुराधायां रेवत्यां वा प्रशस्यते ।
जानीयाच्छोभनं कालं चन्द्रार्कग्रहणं प्रति ॥
इषे मासि विशेषेण कार्तिके च विशेषतः ।
महाष्टम्यां विशेषेण धर्मकामार्थसिद्धये ॥
रोहिणी श्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् ।
पुष्या शतभिषा चैव दीक्षानक्षत्रमुच्यते ॥"

कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथि, शुभ लग्न और शुभ दिनमें मित्रतारादियुक्त पूर्वभाद्रपद, अनुराधा वा रेवती नक्षत्रमें चन्द्रग्रहणके समय, आश्विन, वा कार्तिक मासमें दीक्षा लेना प्रशस्त है। विशेषतः धर्म-अर्थ-कामकी सिद्धिके लिए महाष्टमी अत्यन्त प्रशस्त है। रोहिणी, श्रवणा, आर्द्रा, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी, पुष्या, और शतभिषा ये दीक्षानक्षत्र समझे जाते हैं।

मतभेदसे दीक्षागुरुमें भी भेद होता है। नीलतन्त्रके मतसे—"विष्णुर्विष्णुमतस्थानां सौरः सौरविदां मतः ।
गाणपत्यस्तु देवेशि गणदीक्षाप्रवर्तकः ।
शैवः शाक्तश्च सर्वत्र दीक्षास्वामी न संशयः ॥"

वैष्णवोंके गुरु विष्णुमन्त्रोपासक, सौरमतावलम्बियोंके गुरु सौर और गाणपत्योंके गुरु गणदीक्षाप्रवर्तक होंगे। शैव और शाक्त सर्वत्र ही दीक्षा-गुरु हो सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

उक्त पाँच सम्प्रदायोंमें भी विभिन्न देवमूर्ति और असंख्य बीज हैं, उन बीजोंके अनुसार ही इष्टदेवकी पूजा और ध्यान आदि हुआ करते हैं। बीज देखो।

तान्त्रिकगण उपासना और बीजमंत्रके भेदसे नाना शाखाओं और सम्प्रदायोंमें विभक्त होने पर भी किसी किसी तंत्रमें ब्राह्मणमात्रको ही शाक्त कहा गया है।

"सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः ।
आदिदेवी च गायत्री उपासकविमोक्षदा ॥"

सभी द्विज शाक्त, शैव वा वैष्णव नहीं हैं, क्योंकि उपासककी मुक्तिदात्री आदि देवी गायत्री (सबकी आराध्य) है।

आचारभेद। तांत्रिकगण पाँच प्रकारके आचारोंमें विभक्त हैं। कुलार्णवतन्त्रके मतसे—

"सर्वेभ्यश्चोत्तमा वेदा वेदेभ्यो वैष्णवं महत् ।
वैष्णवादुत्तमं शैवं शैवाद्दक्षिणमुत्तमम् ॥
दक्षिणान्मुत्तमं वामं वामात् सिद्धान्तमुत्तमम् ।
सिद्धान्तादुत्तमं कौलं कौलात् परतरं नहि ॥"

सबसे वेदाचार श्रेष्ठ है, वेदाचारसे वैष्णवाचार महत् है, वैष्णवाचारसे शैवाचार उत्कृष्ट है, शैवाचारसे दक्षिणाचार उत्तम है, दक्षिणाचारसे वामाचार श्रेष्ठ है, वामाचारसे सिद्धान्ताचार उत्तम है और सिद्धान्ताचारकी अपेक्षा कौलाचार उत्तम है। कौलाचारके बाद और कोई नहीं है।

वेदाचार—प्राणतोषिणीधृत नित्यानन्दतंत्रके मतसे—

"वेदाचारं प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वांगसुन्दरि ।
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय गुरुं नत्वा स्वनामभिः ॥
आनन्दनाथ शब्दान्तैः पूजयेदथ साधकः ।
सहस्राराम्बुजे ध्यात्वा उपचारैस्तु पंचभिः ॥
प्रजप्य वाग्भवबीजं चिन्तयेत् परमां कलाम् ।"

सर्वाङ्गसुन्दरि! वेदाचारका वर्णन करता हूं, तुम सुनो। साधकको चाहिये कि, वह ब्राह्म मुहूर्तमें उठे और गुरुके नामके अन्तमें आनन्दनाथ बोल कर उनको प्रणाम करे। फिर सहस्रदलपद्ममें ध्यान करके पञ्च उपचारसे पूजा करे और वाग्भवबीज जप करके परम कलाशक्तिका ध्यान करे।

वैष्णवाचार—"वेदाचारक्रमेणैव सदा नियमतत्परः ।
मैथुनं तत्कथालापं कदाचिन्नैव कारयेत् ॥
हिंसां निन्दां च कौटिल्यं वर्जयेन्मांसभोजनम् ।
रात्रौ मालां च यन्त्रं च स्पृशेन्नैव कदाचन ॥"

वेदाचारकी विधिके अनुसार सर्वदा नियमतत्पर होना चाहिये। मैथुन वा उसका कथाप्रसङ्ग भी कभी न करना चाहिये, हिंसा, निन्दा, कुटिलता और मांस भोजन परित्याग करना चाहिये। रातको कभी माला वा यन्त्र न छूना चाहिये।

शैवाचार—"वेदाचारक्रमेणैव शैवे शाक्ते व्यवस्थितम् ।
तद्विशेषं महादेवि ! केवलं पशुघातनम् ॥"

शैव और शाक्तोंके लिए जैसे वेदाचारकी व्यवस्था दी गई है, इनके लिए भी वैसी ही है। शैवाचारमें विशेषता इतनी ही है कि, इसमें केवल पशुहत्याकी व्यवस्था है।

दक्षिणाचार—"वेदाचारक्रमेणैव पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
स्वीकृत्य विजयां रात्रौ जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥"

वेदाचारके क्रमानुसार आद्याशक्तिकी पूजा करें और रातको विजया ग्रहण करके एकाग्रचित्तसे जप करें।

वामाचार—"पञ्चतत्त्वं खपुष्पं च पूजयेत् कुलयोषितम् ।
वामाचारो भवेत्तत्र वामा भूत्वा यजेत् पराम् ॥"
(आचारभेदत॰)

पञ्चतत्त्व अथवा पञ्चमकार, खपुष्प अर्थात् रजस्वलाके रजः और कुलस्त्रीकी पूजा करें। ऐसा करनेसे वामाचार होता है। इसमें स्वयं वामा हो कर पराशक्तिकी पूजा करें।

सिद्धान्ताचार—"शुद्धाशुद्धं भवेत् शुद्धं शोधनादेव पार्वति ।
एतदेव महेशानि सिद्धान्ताचारलक्षणम् ॥"

पार्वति! शुद्ध क्या अशुद्ध वस्तुओंके शोधन करनेसे शुद्ध हुआ करता है। सिद्धान्ताचारका लक्षण निम्न प्रकार है। समयाचारतन्त्रमें सिद्धान्ताचारियोंके विषयमें लिखा है—"देवपूजारतो नित्यं तथा विष्णुपरो दिवा ।
नक्तं द्रव्यादिकं सर्वं यथालाभेन चोत्तमम् ॥
विधिवत् क्रियते भक्त्या स सर्वं च फलं लभेत् ॥"

जो सर्वदा देवपूजामें निरत है, दिनमें विष्णुपरायण हो कर रातको यथासाध्य और भक्तिभावसे यथाविधि मद्यदान और मद्यपान करता है, वह समस्त फलोंका लाभ करता है।

कौलाचार—"दिक्कालनियमो नास्ति तिथ्यादिनियमो न च ।
नियमो नास्ति देवेशि महामन्त्रस्य साधने ॥
क्वचित् शिष्टः क्वचित् भ्रष्टः क्वचित् भूतपिशाचवत् ।
नानावेशधरा कौलाः विचरन्ति महीतले ॥
कर्दमे चन्दनेऽभिन्नं मित्रे शत्रौ तथा प्रिये ।
श्मशाने भवने देवि तथैव कांचने तृणे ।
न भेदो यस्य देवेशि स कौलः परिकीर्तितः ॥"
(नित्यातन्त्र)

दिक्कालका नियम नहीं है, तिथ्यादिका भी नियम नहीं है, देवेशि! महामन्त्रसाधनका भी नियम नहीं है। कभी शिष्ट कभी भ्रष्ट और कभी भूतपिशाचके समान, इस तरह नाना वेशधारी कौल महीतल पर विचरण करते हैं। प्रिये! कर्दम और चन्दनमें, मित्र और शत्रुमें, श्मशान और गृहमें, स्वर्ण और तृणमें जिनको भेदज्ञान नहीं उन्हें ही कौल कहा जा सकता है।

यद्यपि नित्यातंत्र और कुलार्णवमें सात प्रकारके आचारोंका उल्लेख है, तथापि प्रधानतः दक्षिणाचार और वामाचार ये दो प्रकारके आचार ही देखनेमें आते हैं। दक्षिणाचारतंत्रराजमें लिखा है—

"दक्षिणाचारतन्त्रोक्तं कर्मतच्छुद्धवैदिकम् ।"

दक्षिणाचारतंत्रमें जिस प्रकारकी कर्मपद्धति विहित हुई है, वही शुद्ध वैदिक है।

वास्तवमें दक्षिणाचारी लोग वेदोक्त विधिके अनुसार अर्थात् पशुभावसे भगवतीकी अर्चना किया करते हैं। वे वामाचारियोंकी तरह मद्य-मांस व्यवहार वा शक्तिसाधनादि नहीं करते। दक्षिणाचारतंत्रके मतसे रक्त-माँसादि रहित सात्विक वलि देना ही ब्राह्मणोंके लिए विधेय है। दाक्षिणात्यमें बहुतसे दक्षिणाचारी रहते हैं। कामाख्यातंत्रमें (४र्थ पटल) पशुभावका विषय इस प्रकार लिखा है—

"पंचतत्त्वं न गृह्णाति तत्र निन्दां करोति न ।
शिवेन गदितं यत्तु तत्सत्यमिति भावयन् ॥
निन्दायाः पातकं वेत्ति पाशवः स प्रकीर्तितः ।

तस्याचारं वदाम्याशु शृणु संशयनाशकम्।
हविष्यं भक्षयेन्नित्यं ताम्बूलं न स्पृशेदपि।
ऋतुस्नातां विना नारीं कामभावे नहि स्पृशेत्।
परस्त्रियं कामभावो दृष्ट्वा संगं समुत्सृजेत्।
संत्यजेन्मत्स्यमांसानि पशवो नित्यमेव च।
गन्धमाल्यानि वस्त्राणि चीराणि प्रभजेन्न च।
देवालये सदा तिष्ठेदाहारार्थं गृहं व्रजेत्।
कन्यापुत्रादिवात्सल्यं कुर्यान्नित्यः समाकुलः।
ऐश्वर्यं प्रार्थयेन्नैव यद्यस्ति तत्तु न त्यजेत्।
सदादानं समाकुर्याद् यदि सन्ति धनानि च।
कार्यद्रोहान् क्षिपेत् सर्वानहंकारादिकांस्ततः।
विशेषेण महादेवि! क्रोधं संवर्जयेदपि।
कदाचिद्दीक्षयेन्नैव पशवः परमेश्वरि।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नान्यथा वचनं मम।
अज्ञानाद् यदि वा लोभान्मन्त्रदानं करोति च।
सत्यं सत्यं महादेवि देवीशापं प्रजायते।
इत्यादि बहुधाचारा क्वचिद्ब्रूमः पशोर्मतिः।
तथापि च न मोक्षः स्यात् सिद्धिश्चैव कदाचन।
यदि चंक्रमणे शक्त खड्गधारे सदा नरः।
पश्वाचारं सदा कुर्यात् किन्तु सिद्धिर्न जायते।
जम्बूद्वीपे कलौ देवि ब्राह्मणो हि कदाचन।
पशुर्नस्यात् पशुर्नस्यात् पशुर्नस्यात् शिवाज्ञया॥"

जो पञ्चतत्त्व ग्रहण नहीं करते और न उसकी निन्दा ही करते हैं, जो शिवोक्त कथाको सत्य मानते हैं और पापकार्यको निन्दनीय समझते हैं, वे ही पशु नामसे प्रसिद्ध हैं। तुम्हारे सन्देहको दूर करनेके लिए मैं उनका आचार कहता हूं, सो सुनो। जो प्रतिदिन हविष्य आहार करते हैं, ताम्बूल नहीं छूते, ऋतुस्नाता अपनी स्त्रीके सिवा अन्य किसीको भी कामभावसे नहीं देखते, परस्त्रीके कामभावको देख कर उसका साथ त्याग देते हैं, मत्स्य-मांस कभी भी ग्रहण नहीं करते, गन्धमाल्य वस्त्र और चीर नहीं लेते, सर्वदा देवालयमें रहते हैं, और आहारके लिए घर जाते हैं. पुत्रकन्याओंको अति स्नेहदृष्टिसे देखते हैं, ऐश्वर्यको नहीं चाहते वा जो है उसको भी त्याग नहीं करते, धन होने पर सर्वदा दरिद्रोंको दान देते हैं, कभी कार्पण्य, द्रोह और अहङ्कारादि प्रकट नहीं करते, विशेषतः जो अपना क्रोध वर्जन करते हैं, परमेश्वरि! ऐसे पशुओंको दीक्षा न देनी चाहिये। सत्य कहता हूं, मेरा कहना कभी अन्यथा न होगा। अज्ञान वा भ्रमसे पशुको मंत्र देनेसे, सच-मुच ही देवीके शापका भागी होना पड़ेगा। इस तरहके बहुप्रकार आचारोंको पशु कहते हैं। इनको कभी मोक्ष वा सिद्धि नहीं होती। पश्वाचार कितना ही क्यों न करे, किसी तरह भी सिद्धि नहीं होती। हे देवि! शिवकी आज्ञा है कि, इस जम्बू द्वीपमें ब्राह्मण कभी पशु न होंगे।

बङ्गालमें तांत्रिक कहनेसे प्रधानतः वामाचारियोंका ही बोध होता है। किसीके मतसे ये वेदविरुद्ध विपरीत आचरण करनेके कारण वामाचारीके नामसे मशहूर हैं। बङ्गालके तांत्रिकोंमें वामाचार और दक्षिणाचार दोनों ही आचार मिश्रित देखनेमें आते हैं। किन्तु असली तांत्रिकगण इस बातको नहीं मानते।

वामकेश्वरतंत्रके ५१वें पटलमें लिखा है—

"आचारो द्विविधो देवि वामदक्षिणभेदतः।
जन्ममात्रं दक्षिणं हि अभिषेकेन वामकम्॥"

देवि! वामाचार और दक्षिणाचारके भेदसे आचार दो प्रकारका है। जन्ममात्रमें दक्षिण और अभिषेक होने पर वामाचारी होता है।

भाव। उक्त सात आचार निर्दिष्ट होने पर भी तंत्रमें प्रधानतः तीन भावोंका विषय वर्णित है। यथा-पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव। वामकेश्वरतंत्रके मतसे-

"जन्ममात्रं पशुभावं वर्षषोड़शकावधि।
ततश्च वीरभावस्तु यावत् पञ्चाशतो भवेत्।
द्वितीयांशे वीरभावस्तृतीयो दिव्यभावकः।
एवं भावत्रयेणैव भावमैक्यं भवेत् प्रिये।
ऐक्यज्ञानात् कुलाचारो येन देवमयो भवेत्।
भावोहि मानसो धर्मो मनसैव सदाभ्यसेत्॥"

जन्मकालसे सोलह वर्ष तक पशुभाव, इसके बाद द्वितीयांशमें पचास वर्ष तक वीरभाव, उसके बाद तृतीयांशमें दिव्यभाव होता है। इन भावत्रयसे भावऐक्य होता है। ऐक्यज्ञानसे कुलाचार होता है, इस कुलाचारके द्वारा ही मानव देवमय हुआ करता है। भाव ही मानस धर्म है, मन ही मन सर्वदा उसका अभ्यास करना

उचित है। कुब्जिकातंत्रके ७वें पटलमें लिखा है—

"भावश्च त्रिविधो देवि दिव्यवीरपशुक्रमात् ।
विश्वञ्च देवतारूपं भावयेत् कुलसुन्दरि ।
स्त्रीमयञ्च जगत् सर्वं पुरुषं शिवरूपिनम् ।
अभेदे चिन्तयेद् यस्तु स एव देवतात्मकः ।
नित्यस्नानं नित्यदानं त्रिसन्ध्यञ्च जपार्चनम् ।
निर्मलं वसनं देवि परिधानं समाचरेत् ।
वेदशास्त्रे दृढ़ज्ञानं गुरौ देवे तथैव च ।
मन्त्रे चैव दृढज्ञानं पितृदेवार्चनं तथा ।
वलिवश्यं तथा श्राद्धं नित्यकार्यं शुचिस्मिते ।
शत्रुं मित्रसमं देवि चिन्तयेत्तु महेश्वरि ।
अन्नञ्चैव महेशानि सर्वेषां परिवर्जयेत् ।
गुरोरन्नं महेशानि भोक्तव्यं सर्वसिद्धये ।
कदर्यञ्च महेशानि निष्ठुरं परिवर्जयेत् ।
सत्यञ्च कथयेद् देवि न मिथ्या च कदाचन ।
केवलं दिव्यभावेन पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥"

भाव तीन प्रकारके हैं—दिव्य, वीर और पशु! हे कुलसुन्दरि! यह विश्व देवतारूप है, समस्त जगत् स्त्रीमय और पुरुष शिव है, इस प्रकार अभेदभावसे जो चिन्ता करता है, वह देवतात्मक वा दिव्य है। उसको चाहिये कि, वह नित्यस्नान, नित्यदान, त्रिसन्ध्या जपपूजा, निर्मल वसन परिधान, वेदशास्त्र, गुरु और देवतामें दृढ़ज्ञान, मंत्र और पितृदेवपूजामें अटल विश्वास, वलिदान, श्राद्ध और नित्यकार्य, शत्रुमित्रमें समज्ञान, सबका अन्नपरित्याग, सर्वसिद्धिके लिए गुरुका अन्नभोजन, कदर्य और निष्ठुरताचरण त्याग तथा दिव्यभावसे सर्वदा परमेश्वरीकी पूजा करे। उसको सर्वदा सत्य बोलना चाहिये, कभी झूट न बोले। पिच्छिलातंत्रके १०वें पटलमें लिखा है—

"दिव्यवीरोमहाभावावधमः पशुभावकः ।
वैष्णवः पशुभावेन पूजयेत् परमेश्वरि ॥
शक्तिमन्त्रे वरारोहे पशुभावो भयानकः ।
दिव्यैर्वीरैर्महेशानि जायते सिद्धिरुत्तमा ॥
दिव्ये वीरे न भेदोऽस्ति भेदो वीरो महोद्धतः ।
दिव्यवीरौ प्रवक्ष्यामि सर्वभावोत्तमौ मतौ ।
विना शक्तिं न पूजास्ति मत्स्यमांसं विना प्रिये ।
मुद्राञ्च मैथुनञ्चापि विनानैव प्रपूजयेत् ॥
स्त्रीभगं पूजनाधारः स्वर्णरूप्यात्मकः कुशः ।
अभावे सर्वद्रव्याणामनुकल्पः कलौ युगे ।
अथवा परमेशानि मानसं सर्वमाचरेत् ॥
स्नातन्तु मानसं प्रोक्तं वैदिको मानसः सदा ।
यत्र भुक्त्वा महापूजा मानसं भोजनन्तु तत् ॥
स्वकीयां परकीयां वा मानसन्तु रमेत् स्त्रियं ।
मानसं मद्यमांसादि स्वीकुर्याद् साधकोत्तमः ॥
स्वयम्भूकुसुमं तद्वन्मानसं समुपाचरेत् ।
मानसं भगरोमादिमानसं भगपूजनम् ॥
सर्वन्तु मानसं कुर्यात्तेन सिद्ध्यति साधकः ।
न कलौ प्रकृताचारः संशयात्मनि नैव सः ।
मानसेनैव भावेन सर्वसिद्धिमुपालभेत् ॥"

दिव्य और वीर ये दो महाभाव हैं, पशुभाव अधम है। वैष्णवको पशुभावसे पूजा करनी चाहिये। शक्तिमंत्रमें पशुभाव भीतिजनक है। दिव्य और वीरभावमें प्रभेद नहीं है। वीरभाव अति उद्धत है। सर्वभावोंमें श्रेष्ठतम और दिव्य वीरभावका विषय कहा जाता है। शक्ति वा मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुनके विना पूजा नहीं की जाती। स्त्री-भग पूजाका आधार है—स्वर्ण और रौप्यात्मक कुश। कलियुगमें सर्वद्रव्यके अभावमें अनुकल्प है अथवा मन ही मन सब कार्य करनेका मार्ग है। मानसस्नान, सर्वदा मानस वैदिककाण्ड जहाँ महापूजाभोग वहीं मानसभोजन और मन ही मन स्वकीया वा परकीया नारीसे रमण करें। साधकश्रेष्ठ मन ही मन मद्यमांसादि ग्रहण करें और तद्रूप स्वयम्भूकुसुम भी उपाचार दें, तथा मन ही मन भग-रोम आदिकी चिन्ता और भग-पूजा करें। इस प्रकारसे मन ही मनमें सब कार्य करना चाहिये। कलिकालमें निश्चय ही वास्तविक आचार नहीं है। इस प्रकारसे मानसभावोंके द्वारा ही सर्वसिद्धि प्राप्त होती है।

पशुभावका लक्षण इससे पहले ही लिखा जा चुका है। रुद्रयामलमें (उत्तरखण्डमें) लिखा है।

"दुर्गापूजां विष्णुपूजां शिवपूजाञ्च नित्यशः ।
अवश्यं हि यः करोति स पशुरुत्तमः स्मृतः ॥
केवलं शिवपूजां च यः करोति च साधकः ।

पशूनां मध्यतः श्रीमान् शिवया सह चोत्तमः ॥
केवलं वैष्णवो धीरः पशूनां मध्यमः स्मृतः ।
भूतानां देवतानां च सेवां कुर्वन्ति सर्वदा ॥
पशूनांमधमाः प्रोक्ता नरकास्था न संशयः ।
त्वत्सेवां मम सेवां च ब्रह्मविष्ण्वादिसेवनम् ।
कृत्वान्यसर्वभूतानां नायिकानां महाप्रभो ।
यक्षिणीनां भूतिनीनां ततः सेवां शुभप्रदाम् ॥
यः पशु ब्रह्मकृष्णादि सेवांच कुरुते सदा ।
तथा श्रीतारकब्रह्मसेवां ये वा नरोत्तमाः ॥
तेषामसाध्याभूतादि देवता सर्वकामदा ।
वर्जयेत् पशुमार्गेण विष्णुसेवापरो जनः ॥"

जो प्रति दिन दुर्गापूजा, विष्णुपूजा और शिवपूजा अवश्य करता है वही पशु उत्तम है। पशुओंमें जो शक्तिसह शिवपूजा करता है अथवा जो व्यक्ति धीर और केवल वैष्णव है, उसको मध्यम तथा पशुओंमें जो भूतादि उपदेवताकी सर्वदा सेवा करता है, उसको अधम कहते हैं। अधम निश्चय नरकस्थ होता है। जो पशु आपकी, मेरी और विष्णु आदिकी सेवा करके बादमें सर्वभूत, नायिका, यक्षिणी, भूतिनी आदिकी सेवा करता है, उसको भी शुभप्रद समझें। और जो पशु ब्रह्म कृष्णादि और तारकब्रह्मकी सेवा करता है, भूतादि देवताकी सेवा उसके लिए कामदाती है, सुतरां साधनयोग्य नहीं। वैष्णवको पशुमार्गसे भूतादिकी सेवा छोड़ देनी चाहिये। रुद्रयामलके मतसे—

"पशुभावस्थितो मन्त्री सिद्धिमेकामवाप्नुयात् ।
यदि पूर्वापरस्थां च महाकौलिकदेवताम् ॥
कुलमार्गस्थितो मन्त्री सिद्धिमाप्नोति निश्चितं ॥
यदि विद्याः प्रसीदन्ति वीरभावं तदालभेत् ।
वीरभावप्रसादेन दिव्यभावमवाप्नुयात् ।
दिव्यभावं वीरभावं ये गृह्णन्ति नरोत्तमाः ।
वांछाकल्पद्रुमलता पतयस्ते न संशयः ॥"

यदि पूर्वापर पशुभावसे रह कर महाकौलिक देवताका मन्त्रग्रहणकारी केवल सिद्धि लाभ करे, तो कुलमार्गस्थ मंत्रग्रहणकारी निश्चय सिद्धि लाभ करेगा। महाविद्याके प्रसन्न होने पर वीरभाव प्राप्त होता है। वीरभावके प्रसादसे दिव्यभावकी प्राप्ति होती है। जो नरवर दिव्य और वीरभाव ग्रहण करता है, वह निःसन्देह वाञ्छाकल्पतरुलताका अधिपति है अर्थात् वह चाहे सो कर सकता है।

अभिषेक। तान्त्रिक कार्यादिका प्रकृत साधन करनेके लिए पहले अभिषिक्त होना ही पड़ता है, अभिषेक बिना हुए चक्र पूजा वा साधनमें अधिकार नहीं होता। निरुत्तरतंत्रमें (१०वे पटलेमें) लिखा है—

"अभिषिक्तो भवेत् वीरो अभिषिक्ता च कौलिकी ।
एवंच वीरशक्तिंच वीरचक्रे नियोजयेत् ॥
नाभिषिक्तो वसेच्चक्रे नाभिषिक्ता च कौलिकी ।
वसेच्च रौरवं याति सत्यं सत्यं न संशयः ॥"

वीर और कुलस्त्री दोनों ही अभिषिक्त हों, ऐसे वीर और शक्तिको चक्रमें नियुक्त करें जो अभिषिक्त नहीं हुआ हो, ऐसे पुरुष और कुलस्त्रीको चक्र पर नहीं बैठने देना चाहिये। यदि बैठे तो वह सच-मुच ही नरकको जायगा।

अभिषेक साधारणतः पट्टाभिषेक या पूर्णाभिषेक नामसे प्रसिद्ध है। यथाविधि दीक्षित हो कर जो गुरुका उपदेश, सङ्केत और तांत्रिक परिभाषा समझ कर उसके अनुसार काम करनेमें समर्थ, सैकड़ों बार पञ्चमकारको सेवा करके भी जो विचलित नहीं होते, उनको पूर्णाभिषिक्त कहा जा सकता है। इस प्रकार पूर्णाभिषिक्त आचार्यपद पर अभिषिक्त होनेकी क्रियाका नाम पट्टाभिषेक है। कुलार्णवतंत्रमें लिखा है—

"गुरूपदिष्टमार्गेण बोधं कुर्याद्विचक्षणः ।
पाशमुक्तक्षणाक्लिष्य परानन्दमयो भवेत् ॥
बोधविद्धा शिवः साक्षान्न पुनर्जन्मतां व्रजेत् ।
एषा तीव्रतरा दीक्षा भवबन्धविमोचनी ॥
सञ्जीवमीनयुक्तेन सुरया पूरितेन च ।
अयं सिद्धाभिषेकस्य आचार्यस्यास्य पावति ॥
पूर्णाभिषेकहीना ये मृतास्च कुलनायिके ।
सिद्धा पूर्णाभिषेकेन शिवसायुज्य माप्नुयात् ॥
तेन मुक्तिं व्रजन्तीति शाम्भवी वाक्यमब्रवीत् ।"

दीक्षित विचक्षण व्यक्तिके गुरुके उपदिष्ट मार्ग पर विचरण करके सम्पूर्ण ज्ञान लाभ करने पर वह भवबन्धन और क्लेशसे मुक्त हो कर परानन्दमय हो जाता

है। मत्स्यमद्यादियुक्त इस कठोर दीक्षामें जीव भवबन्धनसे विमुक्त होता है। हे कुलनायिके! जिनका पूर्णाभिषेक नहीं हुआ है, उनको मृत समझना चाहिये। पूर्णाभिषेकके द्वारा सिद्ध शिवसायुज्य लाभ करता है। स्वयं शिवने कहा है कि, इस पूर्णाभिषेकके द्वारा निश्चय ही मुक्ति होती है।

पूर्णाभिषेकका विधान महानिर्वाणतंत्रमें इस प्रकार लिखा है—"विधानमेतत् परमं गुप्तमासीद्युगत्रये।

गुप्तभावेन कुर्वन्तो नरामोक्षं ययु: पुरा॥
प्रबले कलिकाले तु प्रकाशे कुलवर्त्मन:।
नक्तं वा दिवसे कुर्यात् स प्रकाशाभिषेचनम्॥
नाभिषेकं विना कौल: केवलं मद्यसेवनात्।
पूर्णाभिषिक्त: कौल: स्याच्चक्राधीशं कुलार्चक:।
तत्राभिषेकपूर्वाह्णे सर्वविघ्नोपशान्तये॥
यथाशक्त्युपचारेण विघ्नेश: पूजयेद् गुरु:।
गुरुश्चेन्नाधिकारीस्यात् शुभपूर्णाभिषेचने।
तदाभिषिक्तकौलेन तत्सर्वं साधयेत् प्रिये॥
खान्तार्णं विन्दुसंयुक्तं वीजमस्य प्रकीर्त्तितम्।
गणकोऽस्य ऋषिच्छन्दो नीर्वृद्विघ्नस्तु देवता॥
कर्त्तव्यकर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगिता
षड्दीर्घयुक्तमूलेन षडंगानि समाचरेत्॥
प्राणायामं तत: कृत्वा ध्यायेत् गणपतिं शिवे।
सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं।
खड्गपाशांकुशेष्टान्यरुकरविलसद्वारुणीपूर्णकुम्भं।
वालेन्दूद्दीप्तमौलीं करिपतिवदनं वीजपूराद्रगण्डम्॥
भोगीन्द्रा बद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्रांगरागम्।
ध्यात्वैवं मानसे विष्टा पीठशक्तिं प्रपूजयेत्॥
तीव्रा च ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी।
उग्रा तेजस्वती सत्या मध्ये विघ्नविनाशिनी॥
पूर्वादितोऽर्चयित्त्वैता: पूजयेत् कमलासनं।
पुनर्ध्यात्वा गणध्यानं पञ्चतत्वोपचारकै:॥
अभ्यर्च्य च चतुर्दिक्षु गणेशं गणनायकं।
गणनाथं गणक्रीडं यजेत् कौलीनसत्तम:।
एकदण्डं वक्रतुण्डं लम्बोदरगजाननौ।
महोदरश्च विकटं धूम्राभं विघ्ननाशनम्॥
ततो ब्राह्मीमुखा: शक्तीर्दिक्पालांश्च प्रपूजयेत्।
तेषामस्त्राणि संपूज्य विघ्नराजं विसर्जयेत्॥
एवं संपूज्य विघ्नेशमधिवासनमाचरेत्।
भोजयेच्च पञ्चतत्त्वैर्ब्रह्मज्ञान् कुलसाधकान्॥
तत: परदिने स्नात: कृतनित्योदितक्रिय:।
आजन्मकृतपापानां क्षयार्थं तिलकाञ्चनम्॥
उत्सृजेत् कौलतृप्त्यर्थं भोज्यैकैकमपि प्रिये।
अर्घ्यं दत्वा दिनेशाय ब्रह्मविष्णुनवग्रहान्॥
अर्चयित्वा मातृगणान् वसुधारां प्रकल्पयेत्।
कर्मणोभ्युदयार्थाय वृद्धिश्राद्धं समाचरेत्॥
ततो गत्वा गुरो: पार्श्वं प्रणम्य प्रार्थयेदिदं।
एहि नाम कुलाचार नलिनीकुलवल्लभ॥
त्वत्पादाम्भोरुहच्छायां देहि मूर्द्ध्नि कृपानिधे।
आज्ञां देहि महाभाग शुभपूर्णाभिषेचने॥
निर्विघ्नं कर्मण: सिद्धिमुपैमि त्वत्प्रसादत:।
शिवशक्त्याज्ञया वत्स कुरु पूर्णाभिषेचनम्॥
मनोरथमयी सिद्धिर्जायतां शिवशासनात्।
इत्थमाज्ञां गुरो: प्राप्य सर्वोपद्रवशान्तये॥
आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यावाप्त्यै संकल्पमाचरेत्।
ततस्तु कृतसंकल्पो वस्त्रालंकारभूषणै:॥
कारणै: शुद्धिसहितैरभ्यर्च्य वृणुयाद् गुरुं।
गुरुर्मनोहरे गेहे गैरिकादिविचित्रिते॥
चित्रध्वजपताकाभि: फलपुष्पेण शोभिते।
किंकिनीजालमालाभिश्चन्द्रातपविभूषिते॥
घृतप्रदीपावलिभिस्तमोलेशविवर्जिते।
कर्पूरसहितैर्धूपैर्यक्षधूपै: सुवासिते॥
व्यजनैश्चामरैर्बर्हैर्दर्पणाद्यैरलंकृते:।
सार्द्धहस्तमितां वेदीमुच्चकेश्चतुरांगुलां॥
रचयेन्मृण्मयीं तत्र चूर्णैरक्षतसम्भवै:।
पीतरक्तासितश्वेतश्यामलै: सुमनोहरै:॥
मण्डलं सर्वतोभद्रं विदध्यात् श्रीगुरुस्तत:।
स्व स्व कल्पोक्तविधिना कुर्यादर्चा विधिक्रियां॥
कृत्वा पूर्वोक्तविधिना पंचतत्त्वानि शोधयेत्।
संशोध्य पंचतत्त्वानि पूर्वकल्पितमण्डले॥
स्वर्णं वा राजतं ताम्रं मृण्मयं घटमेव वा।
क्षालितं चन्द्रबीजेन दध्यक्षतविचर्चितम्॥
स्थापयेद् ब्रह्मबीजेन सिन्दूरेणांकयेत् श्रिया।

क्षकाराद्यैरकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुविभूषितैः ॥
मूलमंत्रप्रजापेन पूरयेत् कारणेन तं ।
अथवा तीर्थतोयेन शुद्धेन पायसापि वा ॥
नवरत्नं सुवर्णं वा घटमध्ये विनिःक्षिपेत् ।
पनसोडुम्बराश्वत्थवकुलाम्रसमुद्भवम् ॥
पल्लवं तन्मुखे दद्याद्वाग्भवेन कृपानिधिः ।
शरावं मार्तिकञ्चापि फलाक्षतसमन्वितं ॥
रमां मायां समुच्चार्य स्थापयेत् पल्लवोपरि ।
वध्नीयाद्वस्त्रयुग्मेन ग्रीवां तस्य वरानने ॥
शक्तौ रक्तं शिवे विष्णौ श्वेतवासः प्रकीर्तितं ।
स्थां स्थीं मायां रमां स्मृत्वा स्थिरीकृत्य घटान्तरे ॥
निःक्षिप्य पंचतत्त्वानि नवपात्रापि विन्यसेत् ।
राजतं शक्तिपात्रं स्याद् गुरुपात्रं हिरण्मयम् ॥
श्रीपात्रस्तु महाशंखं ताम्रान्यन्यानि कल्पयेत् ।
पाषाणदारुलौहानां पात्राणि परिवर्जयेत ॥
शक्त्या प्रकल्पयेत् पात्रं महादेव्या प्रपूजने ।
पात्राणां स्थापनं कृत्वा गुरुन् देवीं प्रतर्पयेत् ॥
ततस्त्वमृतसम्पूर्णघटमभ्यर्चयेत् सुधीः ।
दर्शयित्वा धूपदीपौ सर्वभूतवलिं हरेत् ॥
प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यात्वा वाद्यमहेश्वरीम् ।
स्वशक्त्या पूजयेदिष्टां वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥
होमन्तु कृत्वा निष्पाद्य कुमारीशक्तिसाधनं ।
पुष्पचन्दनवासोभिरर्चयेत् स गुरुः शिवे ॥
अनुगृह्णन्तु कौल मे शिष्यं प्रतिकुलव्रताः ।
पूर्णाभिषेकसंस्कारे भवद्भिरनुमन्यताम् ॥
एवं पृच्छति चक्रेशे ते ब्रूयुर्गुरुमादरात् ।
महामायाप्रसादेन प्रभावात् परमात्मनः ॥
शिष्यो भवति पूर्णस्ते परतत्त्वपरायणः ।
शिष्येण च गुरुर्देवीमर्चयित्वार्चिते घटे ॥
कामं मायां रमां जप्त्वा चालयेद् घटमुत्तमम् ।
उत्तिष्ठ ब्रह्म कलसमुत्तराभिमुखं गुरुः ॥
मन्त्रैरेतैर्वक्ष्यमाणैरभिषिञ्चेत् कृपान्वितः ।
शुभपूर्णाभिषेकस्य सदाशिव ऋषिः स्मृतः ॥
छन्दोऽनुष्टुप् देवताद्या प्रणवं वीजमीरितं ।
शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ॥"

सत्य, त्रेता और द्वापर युगमें इस पूर्णाभिषेकका विधान सातिशय शुभ था। उस समय शुभभावसे इसका अनुष्ठान करके मानवोंने मोक्ष लाभ किया है। बादमें जब कलिका प्रभाव बढ़ जायगा, तब कुलाचारी लोग रात या दिनको प्रकाश्यभावसे अभिषेक करेंगे। अभिषेकके बिना सिर्फ मद्य सेवन करनेसे ही कौल नहीं होते; जिनका पूर्णाभिषेक हुआ है, वे ही कुलार्चक चक्राधीश्वर और कौल हो सकते हैं। अभिषेकके पहले दिन गुरुको सर्व विघ्नोंकी शान्तिके लिए यथाशक्ति उपचार द्वारा विघ्नराजको पूजा करनी चाहिये। यदि गुरु शुभ पूर्णाभिषेकमें अधिकारी न हों, तो पूर्णाभिषेकमें अभिषिक्त कौल द्वारा उक्त संस्कारका साधन करना चाहिये।

'ख'—इस वर्णके अन्तिम वर्णमें चन्द्रविन्दु जोड़नेसे (गँ) गणपतिका वीज होगा। उस गणपति मंत्रके ऋषि गणक, छन्दः, नीवृत् और देवता विघ्न हैं; कर्तव्य कर्मके विघ्नोंकी शान्तिके लिए विनियोग कीर्तन करना होगा *। छह दीर्घस्वरयुक्त मूलमंत्रके द्वारा षड़ङ्गन्यास (१) करना चाहिये। अनन्तर प्राणायाम करके (२) गणपतिका ध्यान करना पड़ता है।

जो सिन्दूरके समान रक्तवर्ण हैं, जो नयनत्रयविशिष्ट हैं, जिनका जठर स्थूलतर है, जो चार वाहुओंमें शङ्ख, पाश, अङ्कुश और वरको धारण किये हुए हैं, जो विशाल शुण्डद्वारा वारुणीपूर्ण कुम्भ धारण करते हैं, नूतन शशिकलाके द्वारा जिनका मस्तक शोभायमान

---

* ऋष्यादिन्यास, यथा—अस्य गणपति वीजमन्त्रस्य गणक ऋषिः नीवृच्छन्दो विघ्नो देवता कर्तव्यस्य पूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः। शिरसि गणकाय ऋषये नमः। मुखे नीवृच्छन्दसे नमः। हृदये विघ्नाय देवतायै नमः। कर्तव्यस्य शुभपूर्णाभिषेककर्मणो विघ्नशान्त्यर्थे विनियोगः।

(१) अंगुष्ठ आदि षड़ंगन्यास, यथा—गामंगुष्ठाभ्यां नमः। गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। गूं मध्यमाभ्यां वषट्। गैम् अनामिकाभ्यां हूम्। गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। गः करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। हृदयादि षड़ंगन्यास, यथा—गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं कवचाय हूम्। गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। गः करतल पृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

(२) 'गँ'—इस वीजमन्त्रको पढ़ कर प्राणायाम करना पड़ता है।

है, जिनका मुखमण्डल गजराजके सदृश है, जिनके गण्डद्वय सर्वदा मदस्रावसे भीग गये हैं, जिनका शरीर सर्पराज द्वारा विभूषित है, जो रक्तवस्त्र और रक्त अङ्गराग धारण करते हैं, ऐसे देव गणपतिको भजना करनी चाहिये।

इस प्रकारका ध्यान करके मानस उपचार द्वारा (प्रणव उच्चारणपूर्वक चतुर्थी विभक्त्यन्त नाम उच्चारण करके 'नमः' यह शब्द अन्तमें लगा कर गन्ध पुष्पादि द्वारा) पूजा कर पीठ शक्तियोंकी पूजा करना चाहिये। तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजस्वती और सत्या, इन आठ पीठशक्तियोंकी पूर्वादिक्रमसे पूजा करके मध्यदेशमें विघ्नविनाशिनीकी पूजा करनी चाहिये। तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजस्वती और सत्या इन आठ पीठशक्तियोंकी पूर्वादिक्रमसे पूजा करके मध्यदेशमें विघ्नविनाशिनीकी पूजा करनी चाहिये। (३) बादमें (प्रणवपाठपूर्वक 'नमः' पदान्त नाम उच्चारण करके) कमलासनकी पूजा करनी पड़ती है। कौलिकश्रेष्ठकी पुनः ध्यान करके मंत्रशोधित पञ्चतत्त्वरूप उपचार द्वारा गणेशकी पूजा करनी पड़ती है। इसके उपरान्त उनके चतुर्दिक् गणेश, गणनायक, गणनाथ, गणक्रीड़, एकदन्त, रक्ततुण्ड, लम्बोदर, महोदर, विकट, धूम्राभ, विघ्ननाशन, गजानन, इनकी पूजा करनी चाहिये।

अनन्तर ब्राह्मी आदि अष्टशक्ति और इन्द्र आदि दश दिक्पालोंकी पूजा करके दिक्पालोंके अस्त्रसमुदायकी पूजा (विघ्नराज क्षमस्व इस वाक्यके द्वारा) पूर्वक विघ्नराजकी विसर्जन करें।

इस प्रकारसे विघ्नराजकी पूजा करके अधिवास करें और पञ्चतत्त्वके द्वारा ब्रह्मज्ञ कुलसाधकोंको भोजन करावें।

दूसरे दिन स्नानपूर्वक नित्यक्रिया समाधान करके जन्मसे किये हुए पापपुञ्जके क्षयके लिये तिलकाञ्चन उत्सर्ग करें (४)। प्रिये! उसके बाद कौलोंकी तृप्तिके लिये एक भोज्य उत्सर्ग करना चाहिये (५)। पीछे सूर्यको अर्घ्य प्रदानपूर्वक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नवग्रह और मातृगणोंकी पूजा करके वसुधारा देनी चाहिये। फिर कर्मके अभ्युदयकी कामनाके लिये वृद्धिश्राद्ध करें।

अनन्तर गुरुके पास जा कर प्रणतिपूर्वक प्रार्थना करें कि, 'नाथ! आप कौलिकरूप पद्मवनके वल्लभ हैं। कृपानिधे! अब मेरे मस्तक पर अपने चरण-कमलकी छाया प्रदान करें। महाभाग! मेरे शुभपूर्णाभिषेकके विषयमें आप आज्ञा प्रदान करें। मैं आपके प्रसादसे निर्विघ्न कार्यसिद्धि कर सकूं।"

"वत्स! शिवशक्तिके आज्ञानुसार पूर्णाभिषेकसे अभिषिक्त होओ। महेश्वरके आदेशानुसार तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होवे।" शिष्य गुरुसे इस प्रकारकी आज्ञा ले कर सर्वोपद्रवोंकी शान्तिके लिये तथा आयु, लक्ष्मी, बल और आरोग्य लाभके लिये सङ्कल्प करे *।

इस प्रकारसे कृतसङ्कल्प हो कर वस्त्र, अलङ्कार, भूषण और शुद्धिके साथ कारण द्वारा गुरुकी अर्चना कर वरण करे †।

---

(३) पूर्व दिशामें—एते गन्धपुष्पे ओं तीव्रायै नमः। अग्नि दिशामें—एते गन्धपुष्पे ओं ज्वालिन्यै नमः। दक्षिण दिशामें—ओं नन्दायै नमः। नैऋत दिशामें—ओं भोगदायै नमः। पश्चिम दिशामें—ओं कामरूपिण्यै नमः। वायु दिशामें—ओं उग्रायै नमः। उत्तर दिशामें—ओं तेजस्वत्यै नमः। ईशान दिशामें—ओं सत्यायै नमः। मध्यमें—ओं विघ्नविनाशिन्यै नमः।

(४) एते गन्धपुष्पे ओं कमलासनाय नमः।

(५) एते गन्धपुष्पे ओं गणेशाय नमः। एते गन्धपुष्पे ओं गणनायकाय नमः इत्यादि।

* ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवारे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदी अमुकशाखाध्यायी कुमारिकाखण्डान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामवासी श्रीअमुक देवशर्मा निःशेषोपद्रवशान्तिकामं आयुर्लक्ष्मीबलारोग्यकामश्च शुभपूर्णाभिषेचनमहं करिष्ये। इस वाक्यको कह कर संकल्प करना चाहिये।

† ओं तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकवारे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः अमुकवेदी अमुकशाखाध्यायी कुमारिकाखण्डान्तर्गतामुकप्रदेशीयामुकग्रामवासी श्रीअमुक देवशर्मणः अमुक गोत्रं अमुक प्रवरं अमुकवेदीनं अमुकशाखाध्यायिनं कुमारिकाखण्डान्तर्गत-अमुक-प्रदेशीय-अमुकग्रामनिवासिनं श्रीमंतममुकानन्दनाथं गुरुत्वेन भवन्तं

गुरु गैरिकादि द्वारा चित्रित मनोहर गृहमें उपवेशन करें। वह गृह मनोहर ध्वजा पताका द्वारा और फल पल्लवादि द्वारा सुशोभित तथा किङ्किनी अर्थात् क्षुद्र घण्टिकासमूहकी मालासे विभूषित चन्द्रातप द्वारा वह घर अलंकृत होना चाहिये। इस जगह इस तरह घृतप्रदीप जलाने होंगे कि, जिससे कहीं भी अन्धकारका लेशमात्र न रहे। वह स्थान कर्पूरसहित शालनिर्याससे निर्मित धूपके द्वारा सुवासित और पंखा, तालवृन्त, चामर, मयूरपुच्छ, दर्पणादि द्वारा सुसज्जित होना चाहिये।

गुरुको चाहिये कि, इस घरके भीतर चार अङ्गुलि उच्च और सार्द्ध हस्त परिमित मृण्मय वेदीकी रचना करें। पीछे पीत, रक्त, कृष्ण, श्वेत, श्यामल, इन पाँच वर्णोंके अक्षत-चूर्ण द्वारा सुमनोहर सर्वतोभद्र मण्डल बनावें। फिर स्व स्व कल्पोक्त विधानानुसार मानसपूजा पर्यन्त समस्त कार्य सम्पन्न करके मंत्र द्वारा पंचतत्त्व शोधन करें।

पंचतत्त्व शोधनके बाद पूर्वकल्पित सर्वतोभद्र मण्डलके ऊपर सुवर्णनिर्मित, रजतनिर्मित, ताम्रनिर्मित अथवा मृत्तिकानिर्मित घट ला कर ‘फट्’ इस मंत्रके द्वारा उस घटका प्रक्षालन करें। उस पर दधि और अक्षत विलेपनपूर्वक प्रणव उच्चारण करके उसको उस मण्डलमें स्थापित करें। पीछे ‘श्री” यह बीजमंत्र पढ़ कर सिन्दूर द्वारा उसको लिख दें। अनन्तर चन्द्रबिन्दु-विभूषित ‘क्ष’ से ‘अ’ पर्यन्त पञ्चाशत् वर्णोंके साथ मूलमंत्र तीन बार जप करके कारण द्वारा उस घटको भर दें अथवा तीर्थजल द्वारा वा विशुद्ध हो तो सलिल द्वारा घट पूर्ण करके उस घटमें नवरत्न व सुवर्ण निक्षेप करें। तत्पश्चात् कृपानिधि गुरु ‘ऐँ’ यह बीजमंत्र उच्चारण कर कलसके मुँह पर कटहर, उदुम्बर, अश्वत्थ, वकुल और आम्र, इन पाँच प्रकारके वृक्षोंके पत्ते रक्खें। पीछे ‘श्रीं ह्रीं” यह मंत्र उच्चारण करके आतप-तण्डुल और फलसमन्वित सुवर्णमय, रजतमय, ताम्रमय वा मृण्मय शराव (सरवा)-को पत्तोंके ऊपर रक्खें। वरानने! वस्त्रयुगल द्वारा उस घटका ग्रीवाबन्धन करना चाहिये। शिवे! शक्तिमंत्रमें रक्तवस्त्र और विष्णुमंत्रमें श्वेतवस्त्र ही प्रशस्त है। इसके उपरान्त ‘ह्याँ स्थाँ क्रौँ ग्रौँ स्थिरीभव’ इस मंत्रको पढ़ कर स्थिरीकृत अन्य घट पर पञ्चतत्त्व स्थापन करके नवपात्रका विन्यास करना चाहिये।

शक्तिपात्र रजतनिर्मित, गुरुपात्र सुवर्णनिर्मित, श्रीपात्र महाशङ्खविरचित और अन्य समस्त पात्र ताम्रनिर्मित होने चाहिये। महादेवीकी पूजाके समय पाषाणनिर्मित पात्र, काष्ठनिर्मित पात्र वा लौहनिर्मित पात्रको छोड़ कर शक्तिके अनुसार अन्य पदार्थके पात्रोंका व्यवहार करें। पात्रसंस्थापन करके गुरुओंको भगवती (और आनन्दभैरवादि)-का तर्पण करें। तत्पश्चात् ज्ञानी व्यक्ति अमृतपूर्ण घटकी पूजा करें। फिर धूप, दीप प्रदर्शनपूर्वक पूर्वोक्त मंत्र बोल कर सर्वभूत बलि प्रदान करें। अनन्तर पीठ-देवताओंकी पूजा करके षड़ङ्गन्यास करें। पीछे प्राणायाम करके महेश्वरीका ध्यान और आवाहनपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार अभीष्ट देवताकी पूजा करें, किसी तरह भी वित्तशाठ्य नहीं करना चाहिये। शिवे! सद्गुरुको चाहिये कि वे होम तक समस्त कार्य सम्पन्न करके पुष्प चन्दन और वस्त्र द्वारा कुमारियों और शक्ति-साधकोंको अर्चित करें।

“हे कुलव्रत कौलगण! आप लोग मेरे शिष्य पर अनुग्रह प्रकट करें। इस पूर्णाभिषेक-संस्कारमें आप लोग अनुमति प्रदान करें।” चक्रेश्वरके ऐसा प्रश्न करने पर कौलगण समादरपूर्वक कहेंगे कि, “महामायाके प्रसाद और परमात्माके प्रभावसे आपके शिष्य परमतत्त्व-परायण और श्रेष्ठ हों।

तदनन्तर गुरु शिष्यके द्वारा देवी भगवतीकी पूजा करा कर अर्चित घट पर ‘क्लीं क्रौँ ग्रौँ” यह मन्त्र जप कर उस निर्मल घटकी चालना करें। फिर यह मन्त्र पढें कि, हे ब्रह्म कलस तुम सिद्धिदाता हो और देवतास्वरूप उत्थान करते हो। मेरा शिष्य तुम्हारे जल और पल्लवसे सिक्त हो कर ब्रह्मनिरत होवे।

गुरु इस मंत्र द्वारा कलस सञ्चालित करके कृपायुक्त हृदयसे, उत्तरकी तरफ मुँह करके शिष्यको अभिषिक्त

वस्त्रालंकारादिभिरहं वृणे। इस प्रकार संकल्प पाठ करके गुरुको वरण करना चाहिए।

करें और यह मंत्र पढ़ते रहें कि, शुभपूर्णाभिषेकमें ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप्, वीज प्रणव, शुभ पूर्णाभिषेकार्थ विनियोग कीर्तन करना होगा * ।

इसके बाद यह अभिषेक-मंत्र पढ़ें—

"गुरवस्त्वाभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
दुर्गा लक्ष्मी भवान्यस्त्वाममभिषिंचन्तु मातरः ॥
षोड़शी तारिणी नित्या स्वाहा महिषमर्दिनी ।
एतास्त्वाममभिषिंचन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥
जयदुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती ।
एतास्त्वाममभिषिंचन्तु वगला वरदा शिवा ॥
नारसिंही च वाराही वैष्णवी वनमालिनी ।
इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वाममभिषिंचन्तु शक्तयः ॥
भैरवी भद्रकाली च तुष्टिः पुष्टिरुमा क्षमा ।
श्रद्धा कांतिर्दया शांतिरभिषिंचन्तु ते सदा ॥
महाकाली महालक्ष्मीर्महानीलसरस्वती ।
उग्रचण्डा प्रचण्डा च अभिषिंचन्तु सर्वदा ॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा ।
रामो भार्गवरामस्त्वाममभिषिंचन्तु वारिणा ॥
असितोंगरुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तभयंकरः ।
कपाली भीषणश्चत्वाममभिषिंचन्तु वारिणा ॥
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्तामहोग्रात्वाममभिषिंचन्तु सर्वदा ॥
इन्द्रोग्निः शमनो रक्षो वरुणः पवनस्तथा ।
धनदश्च महेशानः सिंचन्तु मां दिगीश्वराः ॥
रविः सोमो मंगलश्च बुधो जीवः शितः शनिः ।
राहुः केतुः सनक्षत्रा अभिषिंचन्तु ते ग्रहा ॥
नक्षत्रं करणं योगो वाराः पक्षौ दिनानि च ।
ऋतुर्मासोहायनस्त्वाममभिषिंचन्तु सर्वदा ॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ।
समुद्रास्त्वाभिषिंचन्तु मन्त्रपूतेन वारिणा ॥
गंगा सूर्यसुता रेवा चन्द्रभागा सरस्वती ।
सरयुर्गण्डकी कुंडी श्वेतगंगा च कौशिकी ॥
अनन्ताद्या महानागाः सुपर्णाद्या पतत्रिणः ।
तरवः कल्पवृक्षाद्याः सिंचन्तु त्वां दिगीश्वराः ॥
पातालभूतलव्योमचारिणः क्षेमचारिणः ।
पूर्णाभिषेकसन्तुष्टा अभिषिञ्चन्तु पाथसा ॥
दौर्भाग्यं दुर्यशोरोगा दौर्मनस्यं तथा शुचः ।
विनश्यन्त्वभिषेकेण कालीवीजेन ताडिताः ॥
भूतः प्रेतः पिशाश्च ग्रहा ये रिष्टकारिणः ।
विद्रुतास्ते विनश्यन्तु रमावीजेन ताड़िताः ॥
अभिचारकृता दोषा वैरिमन्त्रोद्भवाश्च ये ।
मनोवाक्कायजा दोषा विनश्यन्त्वभिषेचनात् ॥
नश्यन्तु विपदः सर्वा सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।
अभिषेकेन पूर्णेन पूर्णाः संतु मनोरथाः ॥
इत्येकाधिकविंशत्या मंत्रैः संसिक्तसाधकम् ।
यशोर्मुखा ऽधमंत्रं पुनः संश्रावयेद् गुरुः ॥
पूर्वोक्तनाम्ना संबोध्य ज्ञापयन् शक्तिसाधकान् ।
दद्यादानन्दनाथान्तमाख्यानं कौलिको गुरुः ॥
श्रुतमन्त्रगुरोर्यन्त्रे संपूज्य निजदेवताम् ।
पञ्चतत्त्वोपचारेण गुरुमभ्यर्चयेत्ततः ॥
गोभूहिरण्यवासांसि नानालंकरणानि च ।
गुरवे दक्षिणां दत्वा यजेत् कौलान् शिवात्मकाम् ॥
कतकौलार्चनो धीरः शांतोऽतिविनयान्वितः ।
श्रीगुरोश्चरणौ स्पृष्ट्वा भक्त्या नत्वेदमर्थयेत् ॥
श्रीनाथ जगतां नाथ मन्नाथ करुणानिधे ।
परामृतप्रदानेन पूरयास्मन्मनोरथम् ॥
आज्ञां मे दीयतां कौलाः प्रत्यक्षशिवरूपिणः ।
सच्छिष्याय विनीताय ददामि परमामृतम् ॥
चक्रेशपरमेशान कौलपंकजभास्कर ।
कृतार्थं कुरु सत्शिष्यं देह्यमुष्मै कुलामृतम् ॥
आज्ञामादाय कौलीशं परमामृतपूरितम् ।
सशुद्धिकं पानपात्रं शिष्यहस्ते समर्पयेत् ॥
हृद्याकृष्य गुरुर्देवीं स्रुवसंलग्नभस्मना ।
स्वस्य शिष्यस्य कौलानां कूर्चे च तिलकं न्यसेत् ।
ततः प्रसादतत्त्वानि कौलेभ्यः परिवेशयन् ।
चक्रानुष्ठानविधिना विदध्यात् पानभोजनम् ॥

---

* मन्त्र, यथा—"एषां शुभपूर्णाभिषेकमन्त्राणां सदाशिव ऋषिरनुष्टुप् छन्द आद्याकाली देवता ओं वीजं शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः । शिरसि सदाशिवाय नमः । मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नमः । हृदये आद्यायै कालिकायै देवतायै नमः । गुह्ये ओं वीजाय नमः । शुभपूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः ।" ऐसा ऋषिन्यास करना चाहिये ।

इति ते कथितं देवि शुभपूर्णाभिषेचनम्।
ब्रह्मज्ञानैकजननं शिवत्वफलसाधनम्॥
नवरात्रं सप्तरात्रं पंचरात्रं त्रिरात्रकम्।
अथवाप्येकरात्रं च कुर्यात् पूर्णाभिषेचनम्॥
संस्कारेऽस्मिन् कुलेशानि पंचकल्पाः प्रकीर्तिताः।
नवरात्र विधातव्यं सर्वतोभद्रमण्डलम्॥
नवनाभं सप्तरात्रे पंचाब्जं पंचरात्रके।
त्रिरात्रे वैकरात्रे च पद्ममष्टदलं प्रिये॥
मण्डले सर्वतोभद्रे नवनाभेऽपि साधकैः।
स्थापनीया नव घटाः पंचाब्जे पंचसंख्यकाः॥
नलिनेऽष्टदले देवि घटस्त्वेकः प्रकीर्तितः।
अंगावरणदेवांश्च केशरादिषु पूजयेत्॥
पूर्णाभिषेकसिद्धानां कौलानां निर्मलात्मनाम्।
दर्शनात् स्पर्शनात् घ्राणात् द्रव्यशुद्धिर्विधीयते॥"

गुरु तुमको अभिषिक्त करें। ब्राह्मी, विष्णु और महेश्वर तुमको अभिषिक्त करें। दुर्गा, लक्ष्मी, भवानी ये मातायें तुम्हें अभिषिक्त करें। षोडशी, तारिणी, नित्या, स्वाहा, महिषमर्दिनी, ये तुमको मंत्रपूत: सलिल द्वारा अभिषिक्त करें। जयदुर्गा, विशालाक्षी, ब्रह्माणी, सरस्वती, वगला, वरदा, शिवा, ये तुमको अभिषिक्त करें। नारसिंही, वाराही, वैष्णवी, वनमालिनी, इन्द्राणी, वारुणी, रौद्री, ये समस्त शक्तियाँ तुम्हें अभिषिक्त करें। भैरवी, भद्रकाली, तुष्टि, पुष्टि, उमा, क्षमा, श्रद्धा, कान्ति, दया, शान्ति, ये सर्वदा तुम्हें अभिषिक्त करें। महाकाली, महालक्ष्मी, महानीलसरस्वती, उग्रचण्डा, प्रचण्डा ये सर्वदा तुमको सलिल द्वारा अभिषिक्त करें। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम, ये सर्वदा तुम्हें सलिल द्वारा अभिषिक्त करें। असिताङ्ग, रुरु, चक्र, क्रोधोन्मत्त, भयङ्कर, कपाली, भीषण, ये सलिलसे तुम्हें अभिषिक्त करें। काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिन, विप्रचण्डा, महोग्रा, ये तुमको अभिषिक्त करें। इन्द्र, अग्नि, पितृपति, नैर्ऋत, वरुण, मरुत्, कुवेर, ईशान, ये अष्टदिक्पाल तुम्हें अभिषिक्त करें। रवि, सोम, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, ये ग्रह और नक्षत्र तुमको अभिषिक्त करें। अश्विनी आदि नक्षत्र, वव आदि करण, विष्कम्भ आदि योग, रवि आदि वार, शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, वसन्त आदि छह ऋतुएं वैशाख आदि बारह मास, उत्तरायण, दक्षिणायण, ये सर्वदा तुम्हें अभिषिक्त करें। लवण-समुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, दधिसमुद्र, दुग्धसमुद्र, और जल-समुद्र, ये समस्त समुद्रमंत्रपूत सलिल द्वारा तुम्हें अभिषिक्त करें। गङ्गा, यमुना, रेवा, चन्द्रभागा, सरस्वती, सरयू, गण्डकी, कुन्ती, श्वेतगङ्गा, कौशिकी, ये मंत्रपूत: जल द्वारा तुम्हें अभिषिक्त करें। अनन्त, वासुकि, पद्म आदि महानाग, गरुड़ आदि पक्षी, कल्पवृक्ष आदि वृक्ष, और पर्वत तुम्हें अभिषिक्त करें। पातालचारी, भूतलचारी और व्योमचारी जीव तुम्हारा मङ्गल करें तथा वे पूर्णाभिषेक दर्शन करके परितुष्ट हो तुम्हें सलिल द्वारा अभिषिक्त करें। पूर्णाभिषेक तथा परब्रह्मके तेज द्वारा तुम्हारा दुर्भाग्य, अयश, रोग, दौर्मनस्य और शोक समुदाय विध्वस्त होवे।

अलक्ष्मी, कालकर्णी, डाकिनी, योगिनी, ये अभिषेक और कालीबीजके द्वारा ताड़ित हो कर विनष्ट होवें। भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह तथा और और समस्त अनिष्टकारीगण रमाबीज द्वारा ताड़ित हो कर नष्ट हो जावें। अभिचार जनित दोष, वैरमंत्रसे उत्पन्न दोष, मानसिक दोष, वाचनिक दोष कायिक दोष, ये सब तुम्हारे अभिषेकके द्वारा ध्वस्त होवें। तुम्हारी समस्त विपत्तियाँ दूर होवें। तुम्हारी समस्त सम्पद स्थिरतर होवें। इस पूर्णाभिषेकके द्वारा तुम्हारे समस्त मनोरथ पूर्ण होवें।

इन इक्कीस मंत्रोंसे साधकको अभिषिक्त होना चाहिये। यदि शिष्य पशुके पास दीक्षित हुआ हो, गुरुको चाहिये कि, उसे पुन: वही मंत्र सुनावें। अनन्तर कौलिक गुरु शक्तिसाधकोंको सूचना देते हुए पूर्वनाम ग्रहणपूर्वक शिष्यको सम्बोधन करके आनन्दनाथान्त नाम प्रदान करें। शिष्यको चाहिये कि, वह गुरुसे मंत्र सुन कर पञ्चतत्त्वोपचार द्वारा मंत्रमें अपने अभीष्ट देवताकी पूजा करके गुरु-पूजा करें।

इसके बाद गुरुको गाभी, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, पेयद्रव्य, अलङ्कार इन सबको दक्षिणा दे कर साक्षात् शिवस्वरूप कौलोंकी पूजा करनी चाहिये। पीछे ज्ञानी व्यक्ति कौलिकोंकी अर्चना करके शान्त और अति विनीत हो

भक्तिके साथ श्रीगुरुको चरण छू कर नमस्कार करें और प्रार्थना करें कि, श्रीनाथ आप जगत्के नाथ हैं, मेरे नाथ और करुणानिधि हैं। आप परमामृत प्रदान कर मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिए। गुरु कौलोंसे यह कहेंगे—कौलगण! आप प्रत्यक्ष शिवरूपी हैं। आप आज्ञा देवें जिससे मैं इस विनयसम्पन्न सत्शिष्यको परमामृत प्रदान कर सकूं। कौल यह कहेंगे—चक्रेश्वर! आप साक्षात् परमेश्वर हैं, आप कौलरूप पद्मवनके लिए भास्करस्वरूप हैं। आप इस सत्शिष्यको चरितार्थ करें। इसको कुलामृत देवें।

तदनन्तर गुरु कौलोंकी अनुमति ले कर शुद्धिके साथ परमामृत-पूरित पानपात्र शिष्यके हाथ पर रक्खें। बादमें गुरुको चाहिये कि, देवी भगवतीको हृदयमें धारण कर स्तवसंलग्न भस्मके द्वारा अपने शिष्य और कौलोंके ललाट पर तिलक लगा दें। पश्चात् प्रसादतत्त्व समुदाय कौलोंको परिवेशन करके चक्रानुष्ठानके विधानानुसार पान और भोजन करें। यह मैंने तुमसे शुभ-पूर्णाभिषेक कहा। इससे ब्रह्मज्ञान और शिवत्व प्राप्त होता है।

नवरात्रि, सप्तरात्रि, पञ्चरात्रि, त्रिरात्रि अथवा एकरात्रि पूर्णाभिषेक करना चाहिये। कुलेश्वरि! इस संस्कारमें पाँच कल्प हैं। यदि नवरात्रि अभिषेक करना हो, तो सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करनी चाहिये। प्रिये! सप्तरात्रि अभिषेकमें नवनाभमण्डल, पञ्चरात्रि अभिषेकमें पञ्चाब्जमण्डल, त्रिरात्रि और एकरात्रि अभिषेकमें अष्टदलपद्मकी रचना करनी चाहिये। साधकोंको उचित है कि, वे सर्वतोभद्रमण्डल और नभमण्डल पर ९ घट तथा पञ्चाब्जमण्डल पर ५ घट स्थापन करें। अष्टदलपद्ममें सिर्फ एक घट स्थापना करना पड़ता है। इस पद्मके केशरादि अङ्गदेवता और आवरण-देवताओंको पूजा करनी पड़ती है। जो पूर्णाभिषेकसे अभिषिक्त कौल हैं, जो निर्मलहृदय है, उनका दर्शन, स्पर्शन वा घ्राण द्वारा द्रव्यशुद्धि हुआ करती है।

साधक और साधिका। तांत्रिक साधक और साधिकाके लक्षणोंका भी तंत्रोंमें वर्णन है। निरुत्तरतंत्रके (११वें पटलमें) मतसे—

“आत्मनो ज्ञानमात्रेण तत्त्वज्ञानं भवेत् प्रिये।
तत्त्वज्ञानी भवेद् योगी स योगी त्रिविधः स्मृतः॥
निरालम्बश्च सालम्बो भक्तश्च परमेश्वरि।
भक्तोपि वीरभावेन साधयेत् कुलसाधनम्॥
शक्तिमात्रं यजेद्योगी भक्तो यो परायणः।
अभिषेकेन देवेशि भैरवो जायते भुवि॥
अवधूतो भवेद्वीरो दिव्यश्च कुलसुन्दरि।
श्मशानागमनिष्ठश्च कुलयोषित्परायणः॥
कुलशास्त्रार्थसंवक्ता वलिदानरतः सदा।
निर्द्वन्द्वो निरहंकारो निर्लोभो निर्भयः शुचिः॥
गुरुदेवरतः शान्तो घृणालज्जाविवर्जितः।
रक्तचन्दनलिप्तांगो रक्तकौपीनभूषणः॥
उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः।
कुलाचाररतो वीरः पंडितः कुलधर्मिता॥
कुलसंकेतसंवेत्ता कुलशास्त्रविशारदः।
महाबलो महाबुद्धिः महासाहसिकः शुचिः॥
नित्यकर्मणि निष्ठातो दम्भहिंसाविवर्जितः।
परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा॥
वीरमासनमासीनः पितृभूमिगतः शुचिः।
सर्वदानन्दहृदयः कुमारीपूजने रतः।
एवं यदि भवेद्वीरस्तदेव हीनजां यजेत्॥
दिव्योऽपि वीरभावेन साधयेत् कुलसाधनम्।
कुलञ्च सर्वजातीनां पूजनीयं कुलार्चने॥
श्मशाने निर्जने रम्ये त्रिप्रान्ते शून्यमण्डले।
ग्रामे पातालके वापि साधयेत् कुलसाधनम्॥”

प्रिये! आत्माको स्वरूप ज्ञान होते ही तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्वज्ञानी योगी हो सकते हैं, वे योगी तीन प्रकारके होते हैं—निरालम्ब, सालम्ब और भक्त। भक्तकोभी वीरभावसे कुलसाधन करना चाहिये। योगपरायण भक्तयोगीको शक्तिमात्रकी पूजा करना उचित है। देवेशि! अभिषेकके द्वारा इस संसारमें भैरव तथा दिव्य और वीराचारी अवधूत हुआ करता है। श्मशानागममें निष्ठावान् कुलस्त्रीपरायण, कुलशास्त्रार्थ जो अच्छी तरह कर सकता हो, नित्य वलिदानमें रत, द्वन्द्वहीन, अहङ्कारहीन, निर्लोभ, निर्भय, शुद्ध, गुरु और देवतासे अनुरक्त, शान्त, घृणालज्जारहित, जिसके अङ्गों पर रक्तचन्दन लिप्त हो, रक्तवर्णकी कौपीन धारण करनेवाला,

उदारचित्त, सब समय वैष्णवाचारमें तत्पर, कुलाचाररत, वीराचारी, कुलमार्गमें पण्डित, कुलसंकेतका वेत्ता, कुलशास्त्रमें विशारद, महाधनवान्, बुद्धिमान्, अतिसाहसी, शुद्धाचारी, नित्यकर्मनिष्ठ, दम्भ और हिंसावर्जित, परनिन्दासहिष्णु, सर्वदा परोपकारमें रत, वीरासनमें समासीन, पितृभूमिगत, सर्वदा ही आनन्दित और कुमारीपूजनमें रत, ऐसा होने पर वीर तान्त्रिकसाधनमें हीनजा यजन करें। दिव्य और वीर भावसे कुलसाधन करें। कुलपूजामें सभी जातिकी कुलस्त्री पूजनीय हैं। श्मशानमें, निर्जन वा रमणीय स्थानमें, त्रिमातापथ और शून्य मण्डलमें, ग्राम वा सुरङ्गके भीतर कुलपूजा करनी चाहिये।

साधिकाके लक्षण--

"निर्लोभा कामनाहीना निर्लज्जा दम्भवर्जिता।
शिवसमागता साध्वी स्वेच्छया विपरीतगा॥
चतुर्वर्णोद्भवा रम्भा प्रशस्ता कुलपूजने।
चतुर्वर्णोद्भवानां च पुरश्चर्या विधीयते॥
वर्णशंकरतो जाता हीनजा परिकीर्त्तिता।
लज्जा लांछितभाला या सा साक्षाद् भुवनेश्वरी॥
नानाजात्युद्भवानां च सा दीक्षा कुलपूजने।
ब्राह्मणो हीनजां देवीं मनसा वा प्रपूजयेत्॥
अज्ञात्वा कौलिकीं देवीं पशुवत् परिपूजयेत्॥
पशुवत् पूजयेद्वीरो दीक्षितां वाप्यदीक्षिताम्।
शक्तिमात्रं यजेद्वीरः प्राणयोगमनाः स्मरेत्॥
हीनजाते तु संयुक्ता दीक्षिताश्चैव सर्वदा।
शांकरी शक्तिका वापि वैष्णवी वाप्यवैष्णवी।
सर्वदा साधने योज्या साधकानाम् कुलार्चने॥"

(निरु० ११ प०)

जिस स्त्रीको लोभ नहीं, कामना नहीं, लज्जा नहीं, दम्भ नहीं, जिस साध्वीने शिव* सङ्ग किया है, जो स्त्री अपनी इच्छासे विपरीत रमण करती है, ऐसी चारों ही वर्णोंकी स्त्रियां कुलपूजाके लिए प्रशस्त हैं। चारों वर्णोंकी कुलस्त्रियोंके लिए पुरश्चरणका विधान है। वर्णसङ्करसे उत्पन्न नारी हीनजा नामसे प्रसिद्ध है। जिसके मुखमण्डल पर लज्जाकी आभा हो, वह साक्षात् भुवनेश्वरी है। इस प्रकारकी नाना जातिकी स्त्रियोंको कुलपूजामें दीक्षित किया जा सकता है। ब्राह्मण हीनजातीया देवीको मन ही मन पूजा करेगा। कौलिकीदेवी मालूम न होने पर पशुवत् अर्चना करेगा। वीराचारी दीक्षिता वा अदीक्षिता स्त्रीकी पशुवत् पूजा करेंगे अथवा प्राणयोगमना हो कर शक्तिमात्रका स्मरण करेंगे। हीनजा मात्र ही सर्वदा दीक्षिता हैं। शैवा वा शाक्तरमणी, वैष्णवी अथवा अवैष्णवी साधिकाओंको कुलसाधनमें योग्य समझना चाहिये।

संकेत। तान्त्रिक उपासक मात्रको ही सङ्केतका जानना विशेष आवश्यकीय है, नहीं तो कुलपूजामें उनका बिल्कुल अधिकार नहीं अथवा चक्रके मध्य वह स्थान पानेके योग्य नहीं होता। निरुत्तरतन्त्रमें लिखा है—

"क्रमसंकेतकं चैव पूजासंकेतमेव च।
मन्त्रसंकेतकं चैव यंत्रसंकेतकस्तथा॥
लिखनं मंत्रयंत्राणां संकेतं गुरुमार्गतः।
संकेतज्ञं विना वीरं यदि चक्रे नियोजयेत्॥
निष्फलं पूजनं देवि दुःखं तस्य पदे पदे।
संकेतहीनो यो वीरो नाभिषेकी गुरुः क्रमात्॥
कुलभ्रष्टः स पापिष्ठस्तं त्यजेद्वीरचक्रके।"

(निरु० १० प०)

क्रमसङ्केत, पूजासङ्केत, मन्त्रसङ्केत, यन्त्रसङ्केत, गुरुसे मंत्र और यन्त्र लिखनेका सङ्केत, इन सङ्केतोंको जिसने नहीं जाना है, उसको चक्रमें नियुक्त करनेसे पूजा निष्फल होती और पद पदमें उसको दुःख हुआ करता, है। जो वीर सङ्केत नहीं जानता अथवा जो गुरुके क्रमानुसार अभिषिक्त नहीं है, वह कुलभ्रष्ट और पापिष्ठ है, उसको वीरचक्रमें परित्याग करना चाहिये।

क्रमसङ्केत—स्वपुष्प, स्वयंभूपुष्प, कुण्डोद्भव, गोलोद्भव, वज्रपुष्प, उल्लास, प्रौढ़ इत्यादि।

तन्त्रमें उक्त तान्त्रिक शब्दोंके अर्थका निर्णय किया गया है। बहुतसे साङ्केतिक शब्द ऐसे भी हैं जिनका

---

* "अष्टोत्तरशतं देवि तद्योगं सुरतो जपेत्।
प्रणम्य मनसा देवीं चुंबनं मनसा स्मरेत्॥
सुंदरीं नागरीं दृष्ट्वा 'एवं' संचिंतयेन्नरः।
स एव कालिकापुत्रः सदाशिव इहापरः॥" (निरु० ११ प०)

अर्थ अभिषिक्त गुरुके सिवा और कोई नहीं बता सकता।

स्वयम्भू कुसुम प्रथम ऋतुमतीका रजः है। यथा—

"हरसम्पर्कहीनायालतायाः काममन्दिरे।
जातं कुसुममादौ यन्महादेव्यै निवेदयेत् ॥
स्वयम्भू कुसुमं देवि रक्तचंदनसंज्ञितम् ।
तथा त्रिशूलपुष्पं च वज्रपुष्पं वरानने ॥
अनुकल्पं लोहितात्तचंदनं हरवल्लभम् ।"

(मुण्डमालातंत्र २प०)

हर अर्थात् पुरुषके संस्रवके बिना लता अर्थात् स्त्रीको योनिसे जो कुसुम अर्थात् रजः निकलता है, उसीको स्वयम्भू कुसुम वा रक्तचन्दन कहा जा सकता है। इसके अभावमें महादेवीको त्रिशूलपुष्प और वज्रपुष्प (चण्डालिनका रजः) चढ़ाना चाहिये। इसका अनुकल्प शिवप्रिय लोहिताक्त चन्दन है।

कुण्डोद्भव अर्थात् सधवा स्त्रीका रजः। यथा—

"जीवद्भर्तृकनारीणां पञ्चमं कारयेत् प्रिये।
तस्या भगस्य यद्द्रव्यं तत्कुण्डोद्भवमुच्यते ॥"

(समयाचारतन्त्र २य प०)

गोलोद्भव अर्थात् विधवा स्त्रीका रज। यथा—

"मृतभर्तृकनारीणां पंचमं चैव कारयेत्।
तस्या भगस्य यद्द्रव्यं तत् गोलोद्भवमुच्यते ॥"

कुलार्णवके मतसे—

"तत्त्वत्रयं स्यादारम्भः कथितं कुलनायिके।
कथितस्तरुणोल्लासे ह्यरुणं मुखमंबिके ॥
यौवनं मनसः सम्यगुल्लासः कथितः प्रिये।
स्खलनं दृङ्मनोवाचां प्रौढ इत्यभिधीयते ॥"

तत्त्वत्रयको आरम्भ, अरुण मुखको तरुण उल्लास, यौवनको मनका महोल्लास, दृष्टि मन और वचनको स्खलनको प्रौढ कहते हैं।

पूजा-सङ्केत—तंत्रसारमें इस प्रकार उद्धृत है—

"द्रव्याणां यावती संख्या पात्राणां द्रव्यसंहतिः।
हाटकं राजतं ताम्रं मारकतमृतादिना ॥
उपचारविधाने तद् द्रव्यमाहुर्मनीषिणः।
आसने पंचपुष्पानि स्वागते षट्चतुःपलम् ॥
जलं श्यामाकदूर्वा च विष्णुक्रान्तामिरीरितम्।
पाद्येचार्घ्ये जलं तावत् गन्धपुष्पाक्षतं जवा ॥
दूर्वास्तिलाश्च चत्वारः कुशाग्रः श्वेतसर्षपाः।
जातीफललवंगक-कक्कोलाश्च षट्पलम् ॥
प्रोक्तमाचमनं कांस्ये मधुपर्कः घृतं मधुः ॥
दध्ना सह पलैकन्तु शुद्धं वारि तथा च मे।
परिमाणन्तु पंचाशत् पलं स्नानार्थसंभवः ॥
निर्मलेनोदकेनाथ सर्वत्र परिपूर्णता।
मलिनं गर्हितं सर्वं त्यजेत् पूजाविधौ हरेः ॥
वितस्तिमात्रादधिकं वासो युग्मन्तु नूतनम्।
स्वर्णाद्याभरणान्येवं मुक्तारत्नयुतानि च ॥
चन्दनागुरुकर्पूरपंकं गन्धफलावधि।
नानाविधानि पुष्पाणि पंचाशदधिकानि च ॥
कांस्यादि निर्मिते पात्रे धूपो गुग्गुलुकर्षभाक्।
सप्तवर्त्यास्तु संयुक्तो दीपस्याच्चतुरंगुलः ॥
यावद् भक्ष भवेत् पुंसस्तावद्दद्याज्जनार्दने।
नैवेद्यं विविधं वस्तुभक्ष्यादिकचतुर्विधम् ॥
कर्पूरादियुता वर्ति सा च कार्पासनिर्मिता।
सप्तवर्त्यास्तु संयुक्तो दीपस्याच्चतुरंगुलः ॥
शिलापिष्टं चन्दनाद्यां सप्तधा वर्त्तयेन्नरः।
कार्यं ताम्रादिपात्रे तत् प्रीतये हरिमेधसः ॥
दूर्वाक्षतप्रमाणं च विज्ञेयन्तु शताधिकम्।
उत्तमोऽयं विधिः प्रोक्ते विभवे मति सर्वदा ॥
एषामभावे सर्वेषां यथाशक्त्या तु पूजयेत्।
अनुकल्पं विवर्जेच्च द्रव्याणां विभवे सति ॥"

द्रव्यकी जितनी संख्या है, पात्रकी भी उतनी ही संख्या समझनी चाहिये। उपचार द्रव्य कहनेसे सुवर्ण, रजत, ताम्र और कांस्य इन चारका बोध होता है। पञ्चविध पुष्पसे आसन, षट्पुष्पसे स्वागत, चार पल जलमें पाद्य, श्यामाक (विष्णुक्रान्ता), अपराजिता, गन्धपुष्प, आतप-तण्डुल, दूर्वा, तिल, कुशाग्र, श्वेतसर्षप, जायफल, लवङ्ग और कक्कोल, इनका अर्घ्य, षट्पल जलमें आचमन, कांस्यपात्रमें घृत, मधु और दधिसे मधुपर्क, एक पल विशुद्ध जलमें आचमन, ५० पल विशुद्ध जलमें स्नान, वितस्तिमात्रासे अधिक दो नये कपड़ोंसे वसन, मुक्ता और रत्नादियुक्त स्वर्णादि द्वारा आभरण, चन्दन, अगुरु और कर्पूरसे गन्ध, ५० प्रकारसे अधिक फलोंसे पुष्प,

कांस्यादिपात्रमें धूना और गुग्गुलसे धूप, तथा सप्तवर्तीयुक्त दीप द्वारा धूप बनती है। जितने द्रव्यके भक्षण करनेसे एक पुरुषका पेट भरता है, उतनेसे नैवेद्य बनता है। (इस नैवेद्यमें नानाप्रकारके पदार्थ मिलाये जाते हैं, खाद्य-वस्तु ४ प्रकारसे कम न होनी चाहिये)। कार्पासादि सूत्रके द्वारा ४ अङ्गुल परिमित ७ वर्त्ति बना कर उसमें कर्पूर संयुक्त कर जला देनेसे दीप और ७ बार प्रदक्षिणा करके प्रणाम करनेसे उसको वन्दना समझना चाहिये। (विष्णुप्रीतिके लिए ताम्रादि पात्रमें यह कार्य करना चाहिये।)

दूर्वाक्षत कहनेसे एकसौसे अधिक दूर्वा और अक्षत लेना चाहिये। धनशाली व्यक्तिके लिए यही उत्तम विधि है। इस विधिके अनुसार जो पूजा करता है, वह समस्त भोगोंको भोग कर आखिर हरिपुरको गमन करता है। विभवहीन व्यक्ति यथाशक्ति उपचार द्वारा पूजा कर सकता है। यह अनुकल्प धनवानोंके लिए नहीं है। धनवान् व्यक्तिके ऐसा करने पर वह निष्फल होता है।

मन्त्रसङ्केत—अर्थात् वीज। जैसे भुवनेश्वरी वीज।

"नकुलीशोऽग्निमारूढो वामनेत्रार्द्धचन्द्रवान्॥"

नकुलीश शब्दसे 'ह्', अग्नि शब्दसे 'र्', वामनेत्र शब्दसे 'ई' और अर्द्धचन्द्र शब्दसे 'ँ'-इन सबसे "ह्रीँ" मन्त्रका उद्धार हुआ।

कालीवीज, यथा—

'वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिविन्दुसमन्वितम्।"

वर्गाद्य शब्दसे 'क्', वह्नि शब्दसे 'र्' रति शब्दसे 'ई' और बिन्दु शब्दसे 'ँ'—इनसे "क्रीँ" इस मन्त्रका उद्धार हुआ। इस साङ्केतिक पदसमूहको मन्त्रसङ्केत कहते हैं। वीज शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

इस प्रकारसे किस तरहका चक्र होनेसे उसको कौनसा यन्त्र कहते हैं, वह किस रीतिसे बनाया जाता है, इन सब सङ्केतोंके जाननेको यन्त्रसङ्केत कहते हैं। यन्त्रशब्द देखो।

वीराचार-पूजा। तन्त्रमें वीराचार-पूजा एक प्रधान अङ्ग है। कुकलास-दीपिकाके तृतीय पटलमें लिखा है—

"आदौ दीपनी देवेशि वक्तव्या वीरपूजिते।
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥
सर्वेषामेव देवानां दीपनीया प्रकीर्तिता।
अनायत्तं विना विद्या न सिद्ध्यति कदाचन॥
विना पूजां विना ध्यानं विनाचारं महेश्वरि।
साधको ज्ञानमात्रेण भवेन्मुक्तो महानघः॥
तत्कुले नैव दारिद्रं तद्गोत्रे नास्त्यपंडितः।
प्राणं देयात् धनं देयात् कुलं देयात् स्त्रियोऽपि च॥
एनां विद्यां महेशानि न दद्यात् यस्य कस्यचित्।
काली वीजत्रयं कूर्चयुगलं तदनन्तरम्॥
लज्जावीजद्वयं देवि दक्षिणे कालिके तथा।
पुनस्तान्येव वीजानि वह्निकान्तावधिर्मनुः॥
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक्छन्द उदाहृतम्।
दक्षिणा कालिका प्रोक्ता देवता तन्त्रगोपिता॥
वीजशक्ति च देवेशि कूर्चं लज्जां क्रमात् प्रिये॥
अंगन्यासकरन्यासौ मायया परिकीर्तितौ॥
करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं दिगम्बरीम्।
चतुर्भुजां महादेवीं मुण्डमालाविभूषितां॥
सद्यःकृत्यशिरः खड्गवामोर्द्धाधःकराम्बुजाम्।
अभयं वरदञ्चैव दक्षिणाधोर्द्धपाणिकाम्॥
महामेघप्रभां श्यामां करकंकालकान्विताम्।
कण्ठावशक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्॥
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
शवरूप-महादेव-हृदयोपरिसंस्थिताम्।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुरां॥
एवं ध्यात्वा प्रयत्नेन मद्यैर्मांसैश्च भक्तितः॥
रक्तपुष्पै रक्तपद्मै रक्ताम्बरसमन्वितैः।
संपूज्य यत्नतो मन्त्री परिवारान् समर्चयेत्॥
पीठपुजां ततो देवि आधारशक्तिपूर्वकम्।
प्रकृतिं कमठञ्चैव शेषं पृथ्वीं तथैव च॥
सुधाम्बुधिं मणिद्वीपं चिन्तामणिगृहं तथा।
श्मशानं पारिजातञ्च तन्मूले मणिवेदिकाम्॥
तस्योपरि मणेः पीठं न्यसेत् साधकसत्तमः।
चतुर्दिक्षु मुनीन् देवान् शिवांश्च नरमुण्डकान्॥
धर्माद्यधर्मादींश्चैव ओं ह्रीं ज्ञानात्मने नमः।
केशरेषु च पूर्वादिष्विच्छा ज्ञानाक्रिया तथा॥
कामिनी कामदा चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च।
श्रिया नन्दा महेशानि मध्ये चैव मनोन्मनी॥

कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम्।
विप्रचित्तां महेशानि बहिः षट्कोणकेषु थः॥
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां न्यसेत् पत्रत्रिकोणके।
मात्रां मुद्रां सिताञ्चैव न्यसेच्चान्यत्रिकोणके॥
सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यः शुचिस्मिताः।
दिगम्बरा हसन्मुख्यः स्वस्ववाहनभूषिताः।
एवं ध्यात्वा प्रयत्नेन पूजयेदष्टपत्रके॥
ब्राह्मीं नारायणीञ्चैव तथा माहेश्वरीं प्रिये।
अपराजितां च कौमारीं वाराहीमर्चयेद्बुधः॥
नारसिंहीं प्रपूज्यैव ततो दक्षिणतो यजेत्।
महाकालं यजेत् देवि विपरीतरतान्तरे॥
दिगम्बरं मुक्तकेशं चण्डवेशं प्रयत्नतः।
एवं संपूज्य यत्नेन यजेत् मन्त्रमनन्यधीः॥
विना मद्यं विना मांसं यदि देवीं प्रपूजयेत्।
देवता शापमाप्नोति मृतो नरकमश्नुते॥”

वीराचार पूजामें पहले दीपनी आवश्यक है जिसके जाननेसे मनुष्य जीवन्मुक्त होता है इसीलिये समस्त देवताओंके लिए दीपनी कही गई है, इस विद्याके बिना आयत्त हुए कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। साधक पूजा, ध्यान और आचारके बिना एकमात्र ज्ञान द्वारा मुक्त होता है तथा जो मुक्त होता है उसके कुलमें कोई दरिद्र वा मूर्ख नहीं रहता। प्राण, धन, कुल और तो क्या स्त्री भी दान की जा सकती है, किन्तु यह मन्त्र हर एकको नहीं देना चाहिये। कालीके वीजद्वय, उसके बाद कुर्च वीजद्वय और लज्जावीजद्वय, देवी दक्षिणकालिका, पुनः ये ही वीज होंगे। इसके ऋषि भैरव, छन्द उष्णिक् और देवी दक्षिणाकालिका हैं।

इसके वीज कुर्च और लज्जाशक्ति हैं, अङ्गन्यास और करन्यास मायावीज द्वारा करके देवीका ध्यान करना पड़ता है।

कराल-वदना, घोरा, मुक्तकेशी, दिगम्बरा, चतुर्भुजा इत्यादि रूपमें कालीका ध्यान करके मद्य, मांस, रक्तपुष्प और रक्तपद्म द्वारा तथा रक्त वस्त्रान्वित हो कर भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये।

उसके बाद परिवारपूजा, फिर पीठ-पूजा की जाती है। प्रकृति, कमठ, शेष, पृथ्वी, सुधाम्बुधि, मणिद्वीप, चिन्तामणिगृह, श्मशान, पारिजात, इनको जड़में मणिवेदिका बनावें। उसमें साधकश्रेष्ठ मणिपीठ न्यस्त करें। चारों ओर मुनि, देवता, शिव, नरमुण्ड, धर्माधर्मादिको 'ॐ क्रीँ ज्ञानात्मने नमः' इतना कह कर स्थापन न्यस्त करें।

पीछे साधक काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचित्ता, इन सबको बहिःषट्कोणोंमें न्यस्त करें।

उग्र, उग्रप्रभा और दीप्ताको पत्रत्रिकोणमें तथा मात्रा, मुद्रा और मिता को अन्य त्रिकोणमें न्यस्त करें।

बादमें "सर्वाः श्यामा असिकरा" इत्यादि मन्त्रद्वारा ध्यान करके अष्टपत्रसे भक्तिपूर्वक पूजा करें।

तदुपरान्त साधक ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, अपराजिता, कौमारी और वराहीकी पूजा करें। पीछे नारसिंहीकी पूजा करके फिर याग करें। विपरीतरतान्तरमें महाकाल याग करें। साधकको चाहिये, कि अनन्यचित्त हो कर चण्डवेश, मुक्तकेश और दिगम्बरको यत्नपूर्वक पूजा करें। मद्य और मांसके व्यतीत यदि देवीकी पूजा की जाय, तो देवता शापग्रस्त होते हैं और पूजाकारी व्यक्ति अन्तमें नरक जाता है।

“विना परक्रिया देवि जपेत् यदि तु साधकः।
शतकोटिजपेनैव तस्य सिद्धिर्न जायते॥
स्त्रियो गति स्त्रियो प्राणाः स्त्रियः सिद्धिर्न संशयः।
नारीणां स्मरणे काली स्मारिता स्यान्न संशयः॥
कण्ठे कण्ठं मुखे वक्त्रं वक्षोजं चोरसि प्रिये।
तस्यै कुलरसं देवि पाययित्वा यथोचितम्॥
स्वयं पीत्वा जपेन्मन्त्रं सिद्धिर्भवति नान्यथा।”

साधक परस्त्रीके बिना यदि जप करें तो शत कोटि जप करने पर भी उसको सिद्धि प्राप्त न होगी। क्योंकि इसमें स्त्रीही एकमात्र गति है, स्त्री ही एकमात्र प्राण है, स्त्री ही एकमात्र सिद्धि है, इसमें जरा भी संशय नहीं। नारीके स्मरणसे कालीका स्मरण करना होता है। कण्ठसे कण्ठ, मुखसे मुख, उरुस्थलसे वक्षोज, इस तरह उसको कुलरस पिला कर और खुद पी कर यथोचित जप करें।

इस प्रकारसे जप करने पर सिद्धि होती है, अन्यथा होने पर सिद्धि नहीं होती।

इसमें अनधिकारी कौन है ?

"एतस्य च प्रयोगेन ग्लानिर्यस्य प्रजायते।
कालिकामन्त्रवर्गेषु नाधिकारी स उच्यते॥"

ऊपर जो कहा गया है, उस पर जिसको ग्लानि उपस्थित हो, वह वीराचारपूजामें अनधिकारी है।

पुरश्चरण—

"लक्षमात्रजपेनैव पुरश्चरणमुच्यते ।
क्षत्रियाणां द्विलक्षं स्यात् वैश्यानां त्रिलक्षकम् ॥
शूद्राणान्तु चतुर्लक्षं पुरश्चरणमुच्यते ।
लक्षमात्रं जपेद्देवि हविष्याशी दिवाशुचिः ॥
रात्रौ निशीथे तावच्च पीत्वा कुलरसं प्रिये ।
कुलनारीगणोपेतो जपेन्मंत्रमनन्यधीः ॥
एवमुक्तविधानेन दशांशं होममाचरेत् ।
तद्दशांशं तर्पणं च तद्दशांशाभिषेचनम् ॥
तद्दशांशं विप्रभोज्यं कीर्त्तितं परमेश्वरि ।
पुष्पिणीमकरन्देन होमतर्पणमाचरेत् ॥
एवं प्रयोगमात्रेण सिद्धो भवति नान्यथा ।
वाक्सिद्धिं लभते देवि कवित्वं निर्मलं प्रिये ॥
धनेनापि कुवेरस्यात् विद्यया स्यात् वृहस्पतिः ।
आकल्पोजीवनो भूत्वा अन्ते मुक्तिमवाप्नुयात् ॥"

लक्षमात्र जप ही इसका पुरश्चरण है, किन्तु क्षत्रियके लिये दो लाख, वैश्योंके लिए तीन लाख और शूद्रोंके लिए चार लाख जपका पुरश्चरण होता है। शुचिपूर्वक हविष्याशी हो निशीथरात्रमें कुलरस पी कर तथा कुलनारीयुक्त हो अनन्यचित्तसे इस मन्त्रका जप करें। इस तरहसे जपकार्यको पूरा करके विधानानुसार दशांश होम, दशांश तर्पण और दशांश अभिषेक करें, बादमें दशांश ब्राह्मण-भोजन करावें। पुष्पिणी-मकरन्द द्वारा होम तथा तर्पण करें। इस प्रकारसे प्रयोग किया जाय तो सिद्धि होती है, अन्यथा होने पर नहीं। वाक्सिद्धि तथा निर्मल कवित्वशक्ति लाभ होती है, अर्थमें कुवेरके समान, विद्यामें वृहस्पति तुल्य और जीवन कल्पान्त पर्यन्त स्थायी होता है। अन्तमें वह मुक्ति लाभ करता है।

"प्रयोगारम्भकाले च सुरा दुग्धमयी भवेत् ।
लोहितं वा भवेद्देवि मांसं पुष्पमयं भवेत् ॥
सुरापात्रं भवेत शून्यं मांसपात्रं विशेषतः ।
कलाकलान्तरश्चैव पुष्पं पुष्पान्तरं भवेत् ॥
नवनीतं मांसतुल्यं मांसं पुष्पं भवेत् प्रिये ।
एवं ज्ञात्वा साधकेन्द्रो जायते च क्रमेण तु ॥"

इसके प्रयोगारम्भकालमें सुरा हो दुग्धतुल्य और मांस पुष्पस्वरूप है। सुरा और मांसपात्र बादमें शून्य हो जायँगे। उसमें बाकी कुछ न बचेगा। इसमें नवनीत मांसतुल्य है। साधकश्रेष्ठको इस प्रकार जान कर कार्य करना उचित है।

"सौवर्णं राजतञ्चैव तथा मौक्तिकमेव च ।
विद्रुमं पद्मरागं च तथैव वरवर्णिनि ॥
प्रोक्तं मालाचतुष्कं च समभागेन मालिकां ।
ग्रथयेत् पट्टसूत्रेण पुष्पिणी गृहवर्त्तिनी ॥
लोहितेन वरारोहे सर्पाकारां सुशोभनाम् ।
स्नापयेत् पंचगव्येन मकरन्देण पार्वति ॥
तारं माया कूर्चयुग्मं माले माले पदं तथा ।
वह्नि कान्तां समुच्चार्यशतं जप्ताभिमन्त्रयेत् ॥
स्नापयेत् पीठमध्येतु शून्यागारे वरानने ।
ततस्तां मालिकां देवि गृहीत्वा यत्नतः सुधीः ॥
ज्ञात्वा सिद्धिस्तु निकटे महोत्सवमथाचरेत् ।
षोडशाब्दां सुयुवतीं समानीय प्रयत्नतः ॥
तामुद्वर्त्त्य स्वयं वन्धैः स्नापयेत् शुद्धवारिणा ।
दिव्यालंकारशोभाभिर्दिव्यपुष्पैः सुगन्धिभिः ॥
पूजयित्वा च मिष्टान्नै र्भोजयेत्तां वराननाम् ।
आसवं पाययेत् यत्नात् निश्चयं तन्मयं पिवेत् ॥
ततो मन्त्री रमयेत्तां रतिमिच्छति सा यदा ।
तस्या हस्ते ततो मालां दत्वा तां याचयेद्बुधः ॥
नीत्वा मालां तया दत्तां ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
तदा जपेदर्द्धरात्रौ साक्षात् भवति नान्यथा ॥"

सुवर्ण, रौप्य, मौक्तिक, विद्रुम और पद्मराग, इनकी माला पट्टसूत्रसे गूंथ कर उससे गृहवर्तिनी पुष्पिणी स्त्रीको ग्रथित करें। बादमें पञ्चगव्य और मकरन्द द्वारा स्नान करावें। इसके बाद वह्निकान्ता (स्वाहा) उच्चारण कर अभिमन्त्रण करना और पीठके मध्य मालिकाको स्नान

कराना चाहिये। इस प्रकारके आचरण करनेसे सिद्धिको निकटवर्ती समझें और महोत्सव करें। षोड़शवर्षीया युवतीको यत्नपूर्वक ला कर शुद्ध जल और गन्ध द्वारा स्वयं उसको स्नान करावें। फिर दिव्य अलङ्कार, सुगन्ध पुष्प और मिष्टान्नादि द्वारा पूजा करके तन्मय हो कर उसको आसव पिलावें और स्वयं भी पीवें। उस समय यदि वह षोड़शी युवती रतिके लिये प्रार्थना करे, तो उसके साथ रमण करें, तथा उसके हाथमें माला देवें। पीछे उस मालाको उससे वापस ले कर ब्राह्मण-भोजन करावें। इसके बाद आधी रातको जप करनेसे निश्चय साक्षात् होगा, इसमें अन्यथा नहीं।

"तत्रापि प्रत्ययो नोचेत् कलामध्ये विशेद्बुधः।
पर्य्यंकस्य चतुःपार्श्वे पट्टसूत्रं मनोरमम्॥
वद्धा द्वाविंशतिं ग्रन्थिं रमांपूटितमूलकैः।
निविश्यैव स्वरक्षार्थं पाञ्चालीं सैन्धवीं तथा॥
वक्ष्यमाणक्रमेणैव वस्त्रोपरि निधापयेत्।
षोडशाब्दां परलतां गणिकां च विशेषतः॥
समानीयप्रयत्नेन दिव्यपुष्पैर्निवेदयेत्॥
भोजयेत् मिष्टभोज्यानि क्षौमकं परिधापयेत्।
लेपयेत् दिव्यगन्धेन भूषणैर्भूषयेत् स्वयम्।
रमयेत् परया भक्त्या साधकः सिद्धिहेतवे॥
जपस्यार्द्धजपेनैव सिद्धिर्भवति नान्यथा।
विना मद्यं महेशानि न सिध्यति कदाचन॥
तस्मादादौ प्रयत्नेन पीत्वा तां पाययेद्बुधः।"

पूर्वोक्त प्रकारसे यदि ज्ञानोत्पत्ति अर्थात् सिद्धि न हो तो इस प्रकारसे करने पर सिद्धि होगी —

साधक कलाके बीच निवेशित हों, फिर पर्य्यङ्कके चारो ओर मनोहर पट्टसूत्रसे रमापुटित मूलक द्वारा बाईस गाँठे बाँध कर अपनी रक्षाके लिये वक्ष्यमाणके नियमानुसार पांचाली और सैन्धवी वस्त्रके ऊपर स्थापित करें। बादमें साधक यत्नके साथ षोड़शी परलता वा गणिकाको ला कर उसको दिव्य पुष्प देवें और मिष्ट भोजन खिलावें, क्षौमवस्त्र पहनावें तथा दिव्य गन्ध और भूषण द्वारा विभूषित करें। साधक सिद्धिके लिये परा भक्तिके द्वारा उसके साथ रमण करें। इस तरहसे सब कार्य्य कर चुकनेके बाद जपका अर्द्धभाग जपनेसे ही सिद्धि होती है। किन्तु इसमें मद्यके बिना कभी भी सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिये पहले यत्न पूर्वक स्वयं मद्य पान करके और उसको पिला कर पीछे जप करना चाहिये।

"तत्रापि प्रत्ययो नोचेत् चरुहोमं प्रकल्पयेत्।
निशीथे निर्भयो देवि श्मशाने प्रान्तरे तथा॥
गन्धैः स्नानादिकं कृत्वा पादशौचादिपूर्वकम्।
घटमारोपयेत्तत्र सौवर्णं राजतं तथा॥
ताम्रं वा तन्महेशानि विभवानुक्रमेण तु।
कल्पयित्वा निशाभागे पूजयेत् परमेश्वरीम्॥
उपचारैर्यथाशक्ति वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
देवीपूजां वाधायैव पिष्टन्तु परिदापयेत्।
चरौ निधाय यत्नेन चतुःपिष्टकवर्त्तुलम्।
ततश्चरुं पाचयेत्तु कुण्डमध्ये तु पूजयेत्॥
रक्तां घनां वलाकाञ्च नीलां कालीं कलावतीं।
द्वारेषु पूजयेन्मन्त्री लोकपालान् प्रयत्नतः॥
ग्रहान् संपूजयेन्मन्त्री चतुष्कोणक्रमेण तु।
हविर्द्वारा हुनेन्मन्त्री यथाशक्त्या ततश्चरुम्॥
श्रावयेत् मूलमन्त्रेण मधुना सिद्धिहेतवे।
हुत्वा संच्छादयेन्मन्त्री ततो दक्षिणकालिकाम्॥
धूपदीपैश्च नैवेद्यैः प्रदक्षिणमथाचरेत्।
पिष्टवर्त्तुलसंख्यातं सुवर्णादि प्रजायते॥
एकेनैव प्रयोगेण यदि सिद्धिर्भवेत्प्रिये।
तथा होमो द्वितीयेन रौप्यं वापि सुरेश्वरि॥
तृतीयेन भवेत्ताम्रं लौहं तुर्य्येण च स्मृतम्।
एषामन्यतमां ज्ञात्वा साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्॥
सिद्धायां कालिकायाञ्च नेन्द्रं दुर्लभमुच्यते।
गुरुमूलमिदं सर्वं तस्मादादौ समर्चयेत्॥
तस्य प्रसादमात्रेण सिद्धो भवति नान्यथा।"

पूर्वोक्त प्रकारसे यदि सिद्धि न हो, तो साधकको चरु-होम करना चाहिये। साधक श्मशान वा प्रान्तरमें जा कर निशीथ समयमें वहाँ स्नान करें। अनन्तर पाद-शौचादि पूर्वक विभवानुसार सुवर्ण, रजत वा ताम्रमय घट स्थापन करके पूजा करें। देवी-पूजाके उपचारके विषयमें कृपणता न करनी चाहिये। यथाशक्ति देवी पूजा करके पिष्टक बनावें। वर्त्तुलाकार चतुःपिष्टकको

यत्नपूर्वक चरुमें रख कर चरुपाक करें और कुण्डके मध्य पूजा करें। साधकको उचित है कि, रक्ता, घना, बलाका, नीला, काली, कलावती और द्वारसमूहके लोकपालोंको पूजा करें। पीछे चतुष्कोणके क्रमसे ग्रहोंको पूजा तथा यथाशक्ति हविर्द्वारा प्रक्षेप करें। मूलमन्त्र और मधुके द्वारा होम तथा दीप, धूप, नैवेद्य आदिके द्वारा पूजा करके प्रदक्षिणा देनी चाहिये। बादमें पिष्ट वर्तुल संख्याके अनुसार सुवर्णादि उत्पन्न होते हैं। एक प्रयोगसे यदि सिद्धि हो तो होम करना पड़ेगा। द्वितीय द्वारा रौप्य, तृतीयसे ताम्र और चतुर्थसे लौह होता है। इनमें अन्यतम होने पर उत्तम सिद्धि साधनी चाहिये।

इस प्रकारसे कालिका सिद्ध होने पर इन्द्रत्व भी दुर्लभ नहीं है।

ये सभी सिद्धि गुरुमूलक हैं, गुरुके बिना किसी तरह भी सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिये सबसे पहले गुरुको अर्चना करें। गुरुके साधक पर प्रसन्न होते ही सिद्धि होती है। अन्यथा नहीं।

> "तत्रापि प्रत्ययो नो चेत् प्रदक्षिणमथाचरेत्।
> अमावास्यादिने चैव निशीथे गतसाध्वसः॥
> श्मशाने प्रान्तरे वापि गत्वा देवीं प्रपूजयेत्।
> मद्यमांसोपचारैश्च धूपदीपै र्मनोरमैः॥
> नैवेद्यैः सामिषान्नैश्च तथैव वरवर्णिनि।
> द्रव्यैर्लोहितवस्त्रेण स्वर्णाभरणभूषितैः॥
> जपन्मूलं क्रोधरुद्धं प्रदक्षिणमथाचरेत्।
> प्रणमेद्दण्डवद्भूमावनिशं गिरिसम्भवे॥
> निशायामुत्तमं यावन्निशाशेषं महेश्वरि।
> यदि भीतिर्भवेत्तस्य तदा दृढतरे भवेत्॥
> दन्तादन्तिविधायैव मनसैव मनुस्मरेत्।
> अवश्यं श्रूयते शब्दः शिखा च दृश्यते स्थले॥
> यदि तत्र भवेद् देवि शब्दो गुणगुणो भवेत्।
> ततः परलतासक्तः पुनः कार्यं तथैव च॥
> तदा भवति चार्वंगि दैववाणी सुशोभना।
> सिद्धिमावश्यकं ज्ञात्वा महोत्सवमथाचरेत्॥"

इससे भी यदि सिद्धि न हो, तो प्रदक्षिण आचरण करना चाहिये। साधकको चाहिये कि, वे अमावास्याके दिन निशीथ रात्रिको भयरहित हो कर श्मशान अथवा प्रान्तरमें जा कर वहाँ देवीको मद्य, मांस, धूप, दीप और मनोरम उपचार, सामिषान्न, रक्तवस्त्र और स्वर्णाभरणादि द्वारा पूजा करें। बादमें मूलमन्त्रका जप और दण्डवत् हो कर प्रदक्षिण करें।

जब तक निशा शेष न हो, तब तक हो जपादिका करना प्रशस्त है। यदि साधकको उस समय भय उपस्थित हो तो उस समय उनको खूब दृढ और दन्तादन्ति हो कर मन ही मन स्मरण करना चाहिये। उस समय अवश्य ही शब्द सुनाई पड़ेगा और उस स्थान पर शिखा दिखाई देगी। यदि वहाँ गुन्गुन् शब्द हो, तो परलतासे आसक्त हो कर पुनः कार्य आरम्भ करें और उनके बाद यदि सुशोभना दैववाणी हो तो सिद्धिको उपस्थित जान कर महोत्सव करें।

> "तथापि प्रत्ययो नोचेत् भगयागमथाचरेत्।
> कामिनीं युवतीं यत्नात् पुष्पिताश्च विशेषतः॥
> तामानीय प्रयत्नेन स्वंच भूषणमाचरेत्।
> तामुद्वर्त्य स्वयंगन्धै र्भूषणैर्वसनैस्तथा॥
> मिष्टान्नैर्भोजयित्वा च भक्त्या परमया शिवे।
> तां विवस्त्रां विधायैव स्थापयेत्कर्ध्वतल्पगे॥
> ततः पूजां विधायैव नानासंभारसंयुतैः।
> तत्रैव रमयेत् यन्त्रं रक्तचन्दनयावकैः॥
> भगनामां भगप्राणां भगदेहां भगस्तनीं।
> पूजयेदष्टपत्रेषु मध्ये देवीं प्रपूजयेत्॥
> रक्तगन्धै रक्तमाल्यै रक्तवस्त्रैर्मनोरमैः।
> पूजयेत् भक्तितो मन्त्री देवीदर्शनकाम्यया॥
> एतस्मिन् समये देवि रतिमिच्छति सा यदा।
> लतान्तु रमयेद्देवि यावद्धोमं करोति न॥
> पुष्पिणीमकरन्देन ततो होमं समाचरेत्।
> ओं नमस्ते भगमालायै भगरूपधरे शुभे॥
> भगरूपे महाभागे भोगमोक्षैकदायिनि।
> भगवत्याः प्रसादेन मम सिद्धिर्भविष्यति॥
> अवश्यं कथयेत् कान्ता नात्र कार्या विचारणा।
> इति ते कथितं देवि गुह्याद्गुह्यतरं परं॥
> प्रकाशात् कार्यहानिः स्यात् तस्मात् यत्नेन गोपयेत्।"

इससे भी सिद्धि न हो तो साधकको भगयाग करना

चाहिये। साधकको उचित है कि एक युवती पुष्पिणी कामिनीको यत्नपूर्वक ला कर स्वयं उसको गन्धादि द्वारा भूषित करें। उसको मिष्टान्न भोजन करा कर तथा विवस्त्रा (नंगी) करके अर्द्धतल्प पर स्थापन करें। पीछे रक्त चन्दन और अलक्तक द्वारा यन्त्र बनावें और नाना उपकरणोंसे पूजा करें। भगयागमें भग ही नाम है, भग ही प्राण हैं, भग ही देह है और भग ही स्तन हैं, अष्टपत्रके मध्य देवीकी पूजा करें। पूजा करते समय रक्तगन्ध, रक्तवस्त्र, रक्तमाल्य आदि प्रदान करें। देवीके दर्शनकी कामना करके इस प्रकारसे पूजा करें। उस समय यदि वह रतिके लिए प्रार्थना करे, तो जब तक होम न होवे तब तक लतामें रत रहना चाहिये। पीछे पुष्पिणी-मकरन्द द्वारा होम करें। ओं भगमालायै नमः, तुम भगरूपधारिणी हो, तुम महाभागा हो, तुम्हीं एकमात्र मोक्षदायिनी हो, इत्यादि कह कर प्रणाम करें। 'तुम्हारे अनुग्रहसे मुझे सिद्धि प्राप्त हो, इस प्रकारका आचरण करनेसे सिद्धि होती है। यह अत्यन्त गुह्यतम है। कोई इसको प्रकट कर दे, तो कार्यमें हानि होती है। इसलिए इसको सब तरहसे गुप्त रखना चाहिये।

''अत्राशक्तो महेशानि कलावतीं समाचरेत्।
कुंकुमं चन्दनं चन्द्रं एकीकृत्य तु पेषयेत्॥
जपेत् सहस्रं देवेशि देवीञ्चैव प्रपूजयेत्।
कामिनी पूजयेत् भक्त्या तस्या मूर्ध्वनि कारयेत्॥
तिलकं वश्यमात्रेण स्वयं शिरसि धारयेत्।
रमा वाणीर्भवानी च सर्व सम्मोहिनी तथा॥
ङेयुता परमेशानि वह्निकान्तावधिर्मनुः।
अनेन शतजपेन तिलकं मूर्ध्नि कारयेत्॥
कलांच पूजयेद्यत्नान् नानाभरणभूषिताम्।
पाययेत् सा स्वयं यत्नात् स्वयं पीत्वा च यत्नतः॥
जायते देववाणी च ततो देवीं न संशयः।
एवं भूत्वा वरारोहे ततो यत्नं समाचरेत्॥
अथवा देवदेवेशि नग्नीभूय विचक्षणः।
नग्नां परलतां पश्यन् जपेत् मन्त्रमनन्यधीः॥
यामोत्तरं समारभ्य यामद्वयमतन्द्रितः।
मद्यमांसोपचारैश्च पूजयित्वेष्टदेवताम्॥
रक्षार्थंखड्गपाणिस्तु स्वपार्श्वेऽपि नियोजयेत्।
गणनाथं क्षेत्रपालं वटुकं योगिनीं तथा॥
वलिभिः सामिषान्नैश्च यजेत् परमसुन्दरि।
घृतप्रदीपं प्रज्वाल्य ततो देवीं समर्चयेत्॥
ततः सहस्रं जपतो देवतादर्शनं भवेत्।
अथवा नियमीभूत्वा भूतलिप्यादिसंपुटम्॥
जपेत् प्रतिदिनं देवि सहस्रं सिद्धिहेतवे।''

यदि पूर्वोक्त कार्यमें साधक अशक्त हों, तो उन्हें कलावती आचरण करना चाहिये। कुङ्कुम, चन्दन और चन्द्र (कर्पूर) को एकत्र करके पेषित करें तथा सहस्र जप करके देवीकी पूजा करें। अनन्तर कामिनी-पूजा करें। ङेयुता इत्यादि मंत्र सौ बार जप कर उसके मस्तक पर तिलक लगा दें और खुद भी तिलक लगावें। यत्नपूर्वक नाना आभरणसे भूषित कलाकी पूजा करें। पीछे यत्नपूर्वक मद्य पी कर उसको भी पिलावें और उस समय देववाणी होने पर और भी यत्नके साथ जपादि आचरण करें। अथवा उस समय साधक स्वयं नग्न हो कर तथा उसको नंगी करके, उसे देखते हुए अनन्यचित्तसे जप करें।

यामोत्तरमें प्रारम्भ करके यामद्वय अतन्द्रितभावसे मद्य और मांस आदि उपचार द्वारा इष्टदेवीकी पूजा करें। आत्मरक्षाके लिए खड्गधारी होना तथा पार्श्वमें रक्षा करना जरूरी है।

तत्पश्चात् गणनाथ, क्षेत्रपाल, वटुक और योगिनी, इनका सामिषान्न द्वारा याग करें तथा घृतप्रदीप प्रज्वलित करके देवीकी अर्चना करें। इस प्रकारसे हजार जप करने पर देवताके दर्शन होते हैं। अथवा नियमी हो कर भूतलिप्यादि संपुट प्रतिदिन हजार जप करें। इससे भी सिद्धि होती है।

''दिवारात्रौ संस्मरणं हविष्याशनमेव च।
कुमारीं पूजयेत् यत्नात् नानाभरणसंयुताम्॥
मासे पूर्णे वरारोहे निशीथे गतसाध्वसः।
महापूजां प्रकुर्वीत लतामण्डलमध्यगः॥
मद्यै मांसैश्च विविधैरन्यैश्च विविधैस्तथा।
संपूज्य विधिवद्भक्त्या सर्वदा तिमिरालये॥
सहस्रजपमात्रेण सिद्धिर्भवति नान्यथा।
साक्षादायाति सा देवी सत्यं सत्यं न संशयः॥
साक्षात् याति वरारोहे भवेदिन्दुसमोनरः।

अञ्जनं पादुकासिद्धिः खड्गसिद्धिर्वरानने ॥
अजरामरता देवी कामिनी सिद्धिहेतवे ।
तथा मधुमती सिद्धिर्जायते नात्र संशयः ।
देवचेटी शतशतं तस्य वश्या भवन्ति हि ।
स्वर्गे मर्त्ते च पाताले स यत्र गन्तुमिच्छति ॥
तत्रैव चेटिका सर्वा नयन्ति नात्र संशयः ।
रंभा वा घृताची वा यदि जप्यति साधकः ॥
तदैव याति सा देवी नात्र कार्या विचारणा ।
इच्छामृत्युर्भवेद्देवि किमन्यत् कथयामि ते ॥"

अथवा साधक हविष्याशी हो कर दिवारात्र इष्टदेवीका स्मरण करें और नानाआभरणोंसे भूषित कुमारीकी पूजा करें। इस प्रकार एक मास करके, मासके पूर्ण दिनमें निशीथके समय निर्भयतासे लतामण्डलके मध्यगत हो कर महापूजा करें। मद्य मांस आदि विविध उपचारों द्वारा विधिवत् पूजा करें, सहस्र जप करें, इसमें निश्चय ही सिद्धि होगी। सिद्धि प्राप्त होनेके बाद देवीका साक्षात् होगा। इस तरहसे पादुकासिद्धि, खड्गसिद्धि, मधुमती आदिकी सिद्धि निश्चयसे होगी। जिनको सिद्धि प्राप्त होती है सैकड़ों चेटिका देवता आदि उनके वशीभूत हो जाती हैं तथा स्वर्ग मर्त्य और पातालमें जहाँ जानेकी इच्छा हो, उसी जगह चेटिकाएँ उन्हें ले जाती हैं। साधक यदि रम्भा, घृताची आदिका जप करें, तो स्वयं वे उपस्थित होंगी और उनकी इच्छामृत्यु होगी।

"अथवा गणिकां गत्वा पूजयेत् भक्तिभावतः ।
तया सह जपेन्मन्त्रं पिवेदनिशमासवम् ॥
निवेद्य परया भक्त्या पाययेत्तां प्रयत्नतः ।
एवं ज्ञात्वा विधानन्तु मासमेकं वरानने ॥
प्रत्यहं होमयेद्विद्वान् नित्यं स्याद्विप्रभोजनम् ।
मासपूर्णे साधकेन्द्रो निशीथे च लतायुतः ॥
साक्षात् पूजाक्रमेणैव पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
महातिमिरमध्यस्थो जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥
तत्क्षणात् जायते सिद्धि सत्यं देवि वदामि ते ।"

अथवा साधक गणिकाके पास जा कर भक्तिपूर्वक पूजा करें। उसके साथ हजार बार मंत्र जपें और अत्यन्त उत्साह पूर्वक उसको शराब पिला कर खुद भी पीवें। इस तरहसे एक मास तक अनुष्ठान करें। प्रति दिन होम और ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। मास पूर्ण होने पर साधक निशीथ रात्रिमें लतायुक्त हो कर साक्षात् पूजाक्रम द्वारा परमेश्वरीको पूजा करें और महातिमिरमें अनन्यचित्तसे मन्त्र जपें। ऐसा करनेसे साक्षात् सिद्धि होगी।

"अथवापि वरारोहे प्रयोगविधिमाचरेत् ।
नरमुण्डं समानीय मार्जारस्यापि पार्वति ॥
गोमुण्डं साद्रमानीय भूमौ निःक्षिप्य यत्नतः ।
ततः पीठं समारोप्य देवीं ध्यात्वा तु साधकः ॥
पूजयेदर्द्धरात्रादौ आसवादि समन्वितः ।
जपेत्तु परया भक्त्या सहस्रावधिसाधकः ॥
ततः साक्षात् भवेद्देवि नात्र कार्या विचारणा ॥"

अथवा साधकको चाहिये कि, प्रयोग-विधिका अनुष्ठान करें। साधक नरमुण्ड, मार्जार-मुण्ड और गोमुण्डको यत्नपूर्वक ला कर भूमि पर निःक्षेप करें। उस पर पीठ आरोपण करके देवीका ध्यान और अर्द्धरात्रिके समय पूजा करें और आसवादि युक्त हो कर भक्तिके साथ सहस्र जप करें। इतनेहीसे देवी साक्षात् दर्शन देवेंगी और साधक भी सिद्धि लाभ करेंगे।

"अथवा वनितां रम्यां गत्वा देवेशि यत्नतः ।
पीत्वा तदधरं सम्यक् कर्पूरेण तु पूरयेत् ॥
तद्योनौ कुंकुमञ्चैव तत्कर्णे क्षौद्रमेव च ।
ततो भुक्त्वा तु तां कान्तां तन्मन्त्रं परमेश्वरि ॥
तत् कुंकुमञ्च तत्क्षौद्रमेकीकृत्य प्रयत्नतः ।
तदेव तिलकं कृत्वा निशीथे गतसाध्वसः ॥
सहस्रन्तु जपेत् मन्त्री ततः साक्षात् भवेत्तदा ।"

अथवा साधक रमने योग्य स्त्रीमें रत हो उसके अधरामृतको पान कर पीछे कर्पूर पूर्ण करें। योनि पर कुङ्कुम और कर्णमें क्षौद्र प्रदान करें। पीछे यत्नके साथ उन कुङ्कुम आदिको एकत्र कर उससे तिलक करें। तिलक लगाकर निशीथ रात्रिमें निर्भय हो हजार बार जप करें। ऐसा करनेसे देवी साक्षात् होंगी।

"अथवापि शरीरोत्थरुधिरेण वरानने ।
यन्त्रं निर्माय यत्नेन तत्र देवीं समर्चयेत् ॥
मद्यमांसोपचारैश्च अर्कपुष्पैर्वरानने ।
सहस्रजपमात्रेण सिद्धो भवति नान्यथा ॥"

अथवा साधक अपने शरीरसे उत्थित रुधिरके द्वारा यन्त्र बना कर मद्य और मांस उपचार तथा अर्कपुष्प द्वारा देवीको पूजा करें, फिर अनन्यचित्त हो कर हजार जप करें। इससे साधकको सिद्धि हो जायगी।

"अथवा परमेशानि गंगातीरे वसेत् सुधी।
उपवासद्वयं कृत्वा कुर्यात् स्नानमतन्द्रितः॥
ततो देवीं समभ्यर्च्य धूपदीपैर्मनोरमैः।
हविष्यान्नेश्च नैवेद्यैः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥
भुक्त्वा पीत्वा स्त्रिया सार्द्धं निशीथे गतसाध्वसः।
जपेत् सहस्रं देवेशि ततः सिद्धिर्वरानने॥"

अथवा साधक गङ्गाके किनारे जा कर दो उपवास करें, फिर अतन्द्रितभावसे स्नान करें तथा धूप, दीप, हविष्यान्न और नैवेद्य द्वारा पूजा करके स्वयं हविष्यान्न भोजन करें।

भोजन और पान करके स्त्रीके साथ निशीथरात्रिमें निर्भय हो सहस्र जप करें। इससे साधकको सिद्धि होगी।

"अथवा वटमूलस्थो दिग्वासामुक्तकेशवान्।
लताभिर्वेष्टितोभूत्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः॥
ततः साक्षात् भवेद्देवि नात्र कार्या विचारणा।"

पूर्वोक्त उपायसे यदि सिद्धिलाभ न हो तो साधक नग्न और मुक्तकेश हो वटवृक्षके तले लता द्वारा वेष्टित हो कर अनन्यचित्तसे मन्त्र जपें। इसीसे निश्चय ही देवीका साक्षात्कार होगा।

"एतेनापि प्रयोगेन यदि साक्षान्नजायते।
ततो देवि! प्रवक्ष्यामि उपायं परमाद्भुतम्॥
एकेनैव प्रयोगेण यदि साक्षान्नजायते।
द्वितीयं चापि कुर्वीत तृतीयं वाथवा प्रिये॥
तृतीयेन नचेत् सिद्धि स्तत्रोपायं वदामि ते।
वस्त्रे शुक्ले तथा रक्ते पीते वा नीलवाससि॥
पुत्तलीं रचयेद्देव्याः सर्वावयवसुन्दरीम्।
पूजयेत् क्रोधरूपेण रक्तवस्त्रैर्मनोहरैः॥
तत्र देवीं जपेत् यन्त्रे समभ्यर्च्य सहस्रकम्।
रक्तचन्दनबीजेन तत्र कल्पितमालया॥
ततः शाल्मलीकाष्ठेन निम्बकाष्ठेन वा प्रिये।
वह्निं प्रज्वाल्य यत्नेन तत्र वह्निं प्रपूजयेत्॥
ततः पुत्तलिका भाले लिखेत् मन्त्रं वरानने।
सिन्दूरपुत्तलीं देवि ततो वह्नौ तु तापयेत्॥
ताड़येत् मूलमंत्रेण मूलमंत्रेण रक्षयेत्।
क्षालयेत् शुद्धदुग्धेन अथवा दधिवारिणा॥
ततो हुंकारं प्रजपेत् सहस्रं परमेश्वरि।
ततः साक्षात् भवेद्देवि नात्र कार्या विचारणा॥"

पहले जितने भी उपाय कहे गये हैं, उनसे यदि देवीके साक्षात् न हो, तो साधकोंके हितार्थ और भी एक परम अद्भुत उपाय कहा जाता है। यदि एक प्रयोगके द्वारा सिद्धि न हो, तो द्वितीय और तृतीय उपाय जानना चाहिये।

पहले शुक्ल, रक्त, नील और पीत वस्त्रसे सम्पूर्ण अवयवसम्पन्न एक पुत्तलिका बनावें। मनोहर रक्तवस्त्र द्वारा क्रोधरूपसे उस मूर्तिकी पूजा करें। उसके बाद यन्त्रमें रक्तचन्दन लिखित बीजमन्त्र द्वारा अभ्यर्चना करके सहस्र जप करें। तत्पश्चात् शाल्मलीकाष्ठ वा निम्बकाष्ठके द्वारा अग्नि जलावें और पूजा करें। अनन्तर पुत्तलिकाके कपाल पर मन्त्र लिखें और सिन्दूरकी पुत्तलिकाको अग्निमें तपावें। मूलमन्त्र द्वारा ताड़न और रक्षा करें। बादमें दुग्ध अथवा दधि वा जल द्वारा क्षालित करें। पीछे सहस्रबार हुङ्कार मन्त्रका जप करें। इससे निश्चय ही देवीके साक्षात् दर्शन होंगे, इसमें सन्देह नहीं।

"अथवा ताड़येत् देवि! नारसिंहेन पार्वति!।
हविष्याशी दिवा भूत्वा ब्रह्मचारिसमो नरः॥
रात्रौ ताम्बूलपूरास्यो लतामण्डलमध्यगः।
नारसिंहेन देवेशि पुटितन्तु मनुं जपेत्॥
ततो लक्षजपेनैव साक्षात् भवति नान्यथा।
अवश्यं जायते साक्षात् ममैव वचनं यथा॥"

अथवा नारसिंह मन्त्र द्वारा देवीको ताड़ित करें, दिनमें हविष्याशी हो कर ब्रह्मचारीके समान होवें। रात्रिको ताम्बूल चर्वण करके लतामण्डल मध्यवर्ती हो नारसिंह मन्त्र पुटित कर जप करें। इस प्रकार १ लाख बार जप करनेसे देवी साक्षात् दर्शन देती हैं। इसमें बिन्दुमात्र भी सन्देह नहीं।

"अथवापि वरारोहे नौकालौहेन पार्वति।
शूलं निर्माय यत्नेन पटे देवीन्तु कल्पयेत्॥

तां पूजयेत् प्रयत्नेन रक्तचन्दनपुष्पकैः।
पूजयित्वा प्रयत्नेन तस्यांगे पीठदेवताम् ॥
आवाह्य विधिवद्भक्त्या जपेन्मंत्रमनन्यधीः।
शूलं संपूजयेद्यत्नात्तीक्ष्णं परमदुर्लभम् ॥
ओं महाशूलं नमस्तुभ्यं सर्वदैत्यान्तकारिणे।
अस्त्रद्वयं समुच्चार्य ततः शूलेन वक्षसि।
उद्यमे नैव सा काली आयाति च न संशयः।
अवश्यं जायते साक्षात् ममैव वचनं यथा ॥"

पूर्वोल्लिखित उपायसे यदि देवीका साक्षात् न हो, तो नौका-लौह द्वारा शूल बनावें और उसमें यत्नपूर्वक देवीकी कल्पना करें। रक्तचन्दन और रक्तपुष्प द्वारा भक्तिके साथ उनकी और पीठ-देवताओंकी पूजा करें। पीछे विधिपूर्वक अनन्यचित्तसे मन्त्र जपें। अनन्तर शूलकी पूजा करें "ॐ महाशूल" इस मन्त्रके द्वारा प्रणाम करें। इस प्रकारके प्रयोगसे काली निश्चय दर्शन देंगी।

"अथवा कालिकाबीजं शतं संलिख्य यत्नतः।
पूर्वपत्रे कुंकुमेन मन्त्रं स्वर्णशलाकया ॥
विलिख्य भुवि देवेशि तत्र कान्तां समानयेत्।
तद्गात्रे पूजयेद्देवीः नानाभरणसंयुताम् ॥
निशीथे तु जपेन्मन्त्रमेकांते कांतया सह।
जपेन्मंत्रं सहस्रंतु ततः साक्षात् भवेद्ध्रुवम् ॥
इति ते कथितं देवि गुह्याद्गुह्यतरं परम्।
अप्रकाश्यमिदं देवि गोपयेत् मातृजारवत् ॥"

पूर्व कथित उपायसे साक्षात् न होने पर कुङ्कुम और स्वर्णशलाकाके द्वारा सौ कालिकाबीज लिखे। लिख कर उस पर कान्ता बुला कर बैठावें और उसके शरीरमें देवीकी पूजा करें। निर्जन स्थानमें निशीथरात्रिको कान्ताके साथ अनन्यचित्त हो कर हजार मन्त्र जप करें। ऐसा करनेसे निश्चयसे ही देवीका साक्षात् होगा। यह अतिशय गुह्यतम और अप्रकाश्य है; यह मन्त्र मातृजारवत् गोपनीय है।

"श्मशानकालिकायास्तु कलायामुपवेशनम्।
कलास्थाने महेशानि कुमारीयाग उच्यते ॥
अष्टवर्षातु या बाला द्वादशाधो महेश्वरि।
स्थापयेत्तु चतुःपार्श्वे मिष्टभोजनभोजिता ॥
पूजयेत् परया भक्त्या स्वं भुंजीत साधकः।
पाययेत् आसवं यत्नात् स्वयंचापि पिबेत्ततः ॥
सकारंच मकारंच लकारेण समन्वितम्।
जपेदष्टोत्तरशतं तासां कर्णे पृथक् पृथक् ॥
तमभ्यर्च प्रयत्नेन कृत्वा वक्षसि साधकः।
अंगन्याससयुतं देवि जपेन्मत्रमनन्यधीः ॥
एतस्मिन् समये देवी रतिमिच्छति सा यदा।
तदा तां रमयेत् मन्त्री पीड़ा न जायते यथा ॥
शनैरधरपानं च शनैर्वक्षोजमर्दनम्।
शनैर्गुदनिवेशं च शनैरालिंगनं प्रिये ॥
यद्यत्र जायते पीड़ा तदा सिद्धिर्विनाशिनी।
एवं प्रयोगेतु काली साक्षात् भवति नान्यथा ॥
इति ते कथितं देवि गुह्यात् गुह्यतरं परम्।
भक्तिहीनं क्रियाहीनं विधिहीनंच यद्भवेत् ॥
तदासिद्धि विलम्बेन निष्फलं नैव जायते।
अविश्वासो न कर्तव्यं आलस्यं नैव पार्वति ॥
सर्वेषां मन्त्रवर्याणां सारमुद्धृत्य पार्वति।
दुग्धमध्ये यथा सर्पि काष्ठ मध्ये यथा नलः ॥
तथा समुद्धृतः सारो देवि नास्त्यत्र संशयः।
स्वयं सिद्धाहि ते मन्त्राः सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥
इति ते कथितं देवि गोपनीयं प्रयत्नतः।"

यह तन्त्रशास्त्र अत्यन्त गुह्यतम है, विशेषतः गुरुके उपदेशके बिना इसकी कोई भी प्रक्रिया नहीं जानी जा सकती। इसलिये इसका विस्तृत वृत्तान्त लिखना दुःसाध्य है।

इस प्रकारका वीराचार पूजा और सिद्धि-प्रक्रियायें और भी बहुत तरहकी हैं, जिनकी संख्या नहीं हो सकती। इन प्रक्रियाओंको करने पर भी किसी किसीको सिद्धि होनेमें विलम्ब होता है। किसी किसीको तो जन्म भर तक सिद्धि नहीं होती। इसका कारण यह है, कि कोई भक्तिहीन, कोई क्रियाहीन और कोई विधिहीन हो कर पूजा करते हैं। सद्गुरुके उपदेशानुसार विधिपूर्वक अनुष्ठान करने पर शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

इसका गुह्यतम वृत्तान्त सद्गुरुके बिना दूसरा कोई भी नहीं बता सकता। इसलिये इसको पढ़नेसे हृदयमें नाना तरहके भाव उदित होते हैं। किन्तु वास्तविक तत्त्वार्थ निरूपण गुरूपदेशके बिना किसी तरह भी नहीं हो सकता।

पञ्चमकार तन्त्रका प्रधान अङ्ग है।

"मकारपंचकं देवि देवानामपि दुर्लभम्।
मद्यैर्मांसैस्तथा मत्स्यैर्मुद्राभिर्मैथुनैरपि॥
स्त्रीभिः सार्द्धं महासाधुरर्चयेत् जगदम्बिका।
अन्यथा च महानिन्दा गीयते पण्डितैः सुरैः॥
कायेन मनसा वाचा तस्मात्तत्त्वो परो भवेत्।
कालिका तारिणी दीक्षां गृहीत्वा मद्यसेवनम्॥
न करोति नरोयस्तु स कलौ पतितो भवेत्।
वैदिके तांत्रिके चैव जपहोमवहिष्कृतः॥
अब्राह्मण सएवोक्तः स एव हस्तिमूर्खकः।
शुनीमूत्रसमं तस्य तर्पणं यत् पितृष्वपि॥
कालीतारामनुप्राप्य वीराचारं करोति न।
शूद्रत्वं तच्छरीरेण प्राप्नुयात् स न चान्यथा॥
या सुरा सर्वकार्येषु कथिता भुवि मुक्तिदा।
तस्या नाम भवेद् देवि तीर्थपानं सुदुर्लभम्॥
शूद्राणां भक्षयोग्याणां यन्मांसं देवनिर्मितम्।
वेदमंत्रेण विधिवत् प्रोक्तो सा शुद्धिरुत्तमा॥
भोक्ष्यं योग्याश्च कथिता ये ये मत्स्यावरानने।
ते रहस्ये मया प्रोक्तो मीनाः सिद्धिप्रदायकाः॥
पृथुका तंडुला भ्रष्टा गोधूमचणकादयः।
तस्य नाम भवेद्देवि मुद्रा मुक्तिप्रदायिनी॥
भगलिंगस्य योगेन मैथुनं यद् भवेत् प्रिये।
तस्य नाम भवेद्देवि पंचमं परिकीर्तितम्॥
प्रथमस्तु भवेत् मद्यं मांसं चव द्वितीयकम्।
मत्स्यंचैव तृतीयं स्यात् मुद्राश्चैव चतुर्थिका॥
पंचमं पंचमं विद्यात् पंचैते नामतः स्मृताः।"

पञ्चमकार तन्त्रके प्राणस्वरूप हैं। पञ्चमकारके बिना तान्त्रिकको किसी भी कार्यमें अधिकार नहीं है। पञ्चमकार देवताओंके लिए भी दुर्लभ हैं, मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारोंसे जगदम्बिकाकी पूजा की जाती है। इसके बिना कोई कार्य भी सिद्धि नहीं होता और तन्त्रवित् पण्डितगण निन्दा करते हैं। काली वा ताराका मन्त्र ग्रहण करके जो मद्य सेवन नहीं करता, वह कलिमें पतित होता है, तान्त्रिक जप, होम आदि कार्योंमें अनधिकारी होता है तथा वह व्यक्ति अब्राह्मण और हस्तिमूर्ख कहलाता है। उस व्यक्तिका पितृ-तर्पण कुत्तेके मूत्रके सदृश है। जो व्यक्ति काली और ताराका मन्त्र पा कर वीराचार नहीं करता, वह शूद्रत्वको प्राप्त होता है। सुरा सभी कार्योंमें उक्त है तथा पृथिवी पर येही एकमात्र मुक्तिदायिनी है। इस सुराका नाम ही तीर्थ और पान है।

वैदिक आदि ग्रन्थोंमें जिन मांसोंको भक्ष्य कहा गया है, वे ही मांस विशुद्ध हैं। रहस्यमें जिन मीनोंको भक्ष्ययोग्य कहा है, वे मत्स्य सिद्धिप्रदायक हैं। पृथुक, तण्डुल भ्रष्ट, गोधूम, चणक आदिको मुद्रा कहते हैं, यह मुद्रा मुक्तिप्रदायिनी है। भग और लिङ्गके योगसे मैथुन होता है। यह मैथुन ही पञ्चम है। मकारोंमें प्रथम मद्य द्वितीय मांस, तृतीय मत्स्य चतुर्थ मुद्रा, पञ्चम मैथुन है, ये ५ द्रव्य ही पञ्चमकार हैं।

पञ्चमकारका अर्थ—

"मायामलादि शमनात् मोक्षमार्गनिरूपणात्।
अष्टदुःखादिविरहान्मत्स्येति परिकीर्तितम्॥
मांगल्यजननाद्देवी सम्विदानन्ददानतः।
सर्वदेवप्रियत्वाच्च मांस इत्यभिधीयते॥
पंचमं देवि सर्वेषु मम प्राणप्रियं भवेत्।
पंचमेन विना देवि चण्डीमन्त्रं कथं जपेत्॥
यदि पंचमकारेषु भ्रान्तिं चेत् कुरुते प्रिये।
तस्य सिद्धिः कथं देवि चण्डीमन्त्रं कथं जपेत्।
आनन्दं परमं ब्रह्म मकारास्तस्य सूचकाः॥"

जिससे माया और मलादिका प्रशमन, मोक्षमार्गका निरूपण और आठ प्रकारके दुःखोंका अभाव होता है, उसका नाम मत्स्य है। माङ्गल्यजनन, सम्विदोंको आनन्ददायक और सब देवताओंका प्रिय होनेसे इसका नाम मांस पड़ा है। पञ्चमकार सब कार्योंमें मेरे प्राणोंके समान प्रिय हैं। पञ्चमकारके बिना चण्डीमन्त्रका जप कैसे हो सकता है? इसलिए उसके लिए सिद्धि भी असम्भव हैं। आनन्द ही परम ब्रह्म है और पञ्चमकार उसका सूचक है।

"सुमनः सेवितत्वाच्च राजत्वात् सर्वदा प्रिये।
आनन्दजननाद्देवि सुरेति परिकीर्तिता॥
मुदं कुर्वंति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च।
तस्मान्मुद्रा इति ख्याता दर्शिता व्याकुलेश्वरी।"

उत्तम पुरुष इसका सेवन करते हैं तथा राजत्व और आनन्द-जननका यह कारण है, इसलिए इसका नाम सुरा है। इससे देवताओंका मन आनन्दित और द्रवीभूत होता है तथा इसके देखनेसे परमेश्वरी भी व्याकुल होती हैं, इसलिए इसका नाम मुद्रा है।

पञ्चमकारका फल महानिर्वाणतन्त्रके ११वें पटलमें इस प्रकार कहा है—

"अष्टैश्वर्यं परं मोक्षं मद्यपानेन शैलजे।
मांसभक्षणमात्रेण साक्षान्नारायणो भवेत्॥
मत्स्यभक्षणमात्रेण काली प्रत्यक्षतामियात्।
मुद्रासेवनमात्रेन भूपुरो विष्णुरूपधृक्॥
मैथुनेन महायोगी मम तुल्यो न संशयः॥"

मद्यपान करनेसे अष्टैश्वर्य और परामोक्ष तथा मांसके भक्षणमात्रसे साक्षात् नारायणत्व लाभ होता है। मत्स्य भक्षण करते समय ही कालीका दर्शन होता है। मुद्राके सेवन मात्रसे विष्णुरूप प्राप्त होता है। मैथुन द्वारा मेरे (शिवके) तुल्य होता है, इसमें संशय नहीं।

पञ्चमकारके दानका फल—

"द्रव्यं मधुः तथा मत्स्यं मांसं मुद्रा च मैथुनम्।
मकारपञ्चसंयुक्तं पुजयेत् भैरवेश्वरम्॥
कन्याकोटिप्रदानस्य हेमभारशतानि च।
फलमाप्नोति देवेशि कौलिके विंदुदानतः॥
पृथिवीं हेमसम्पूर्णां दत्वा यत्फलमाप्नुयात्।
तत्पुण्यं कौलिके दत्वा तृतीयं प्रथमायुतम्॥
द्वितीयं प्रथमायुक्तं यो दद्यात् कुलयोगिने।
तृप्यन्ति मातरः सर्वाः योगिन्यो भैरवादयः॥
अश्वमेधादिकं पुण्यमन्नदानान्महर्षीणाम्।
तत्फलं लभते देवि कौलिके दत्तमुद्रया॥
गवां कोटिप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः।
तत्पुण्यं लभते देवि पंचमस्य प्रदानतः॥
पंचमेन विना द्रव्यं यः कुर्यात् साधकाधमः।
तत्सर्वं निष्फलं देवि सत्यं सत्यं न संशयः॥
चाण्डाली चर्मकारी च मातंगी मांसकारिणी।
मद्यकर्त्री च रजकी क्षौरकी धनवल्लभा॥
अष्टैताः कुलयोगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदायकाः॥"

मधु, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारोंसे भैरवेश्वरकी पूजा करें। कोटि कन्या दान करनेसे तथा भूमि और एक बोझ सोना दान करनेसे जो फल होता है, कौलिक कार्यमें इसकी एक बूंद दान करनेसे उतना ही पुण्य होता है। सुवर्ण संयुक्त पृथिवी दान देनेसे जो फल होता है, प्रथमयुक्त तृतीय द्रव्य वा प्रथमयुक्त द्वितीय द्रव्य दान देनेसे भी वही फल होता है। माताएँ, योगिनी और भैरवादि सभी इससे तृप्त होती हैं। कोटि गो-दान करनेसे जो पुण्य होता है, पञ्चमकार प्रदान करनेसे भी मनुष्यको उतना ही पुण्य होता है। जो साधकाधम पञ्चमकारको छोड़ कर अन्य द्रव्य कल्पित करता है उसका सब कुछ निष्फल है। इसको अत्यन्त सत्य मानो।

चाण्डाली, चर्मकारी, मातङ्गी, मत्स्यकारिणी मद्यकर्त्री, रजकी, क्षौरकी और धनवल्लभा, ये आठ स्त्रियाँ कुलयोगिनी हैं; ये ही समस्त सिद्धियोंकी देनेवाली हैं।

पञ्चमकारका विषय वर्णित हुआ, किन्तु पञ्चमकारका शोधन किया जाता है।

"संशोधनमनाचर्य स्त्रीषु मद्येषु साधकः।
आचर्यः सिद्धिहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति सुन्दरी॥"

जो साधक पञ्चमकारका शोधन बिना किये मद्यादि व्यवहार करता है, उसके कार्यमें हानि होती है और उस पर देवी भी क्रुद्ध होती है तथा वह कभी भी सिद्धि लाभ नहीं कर पाता।

पंचतत्त्व।—तान्त्रिकके लिए प्रत्येक कार्यमें जिस प्रकार पञ्चमकारसाध्य हैं उसी प्रकार समस्त कार्योंमें पञ्चतत्त्वकी भी आवश्यकता है।

"पूजयेत् बहुयत्नेन पंचतत्त्वेन कौलिकः।
एवं कृत्वा लभेत् सिद्धिं नान्यस्य दृष्टिगोचरे॥
शैवे शाक्ते गाणपत्ये सौरे चान्द्रे सुलोचने।
तत्त्वज्ञानमिदं प्रोक्तं वैष्णवे शृणु यत्नतः॥
गुरुतत्त्वं मन्त्रतत्त्वं मनस्तत्त्वं सुरेश्वरि।
देवतत्त्वं ध्यानतत्त्वं पंचतत्त्वं वरानने॥"

कौलिककी चाहिये कि, अति यत्नसे पञ्चतत्त्व द्वारा पूजा करें। ऐसा करनेसे ही सिद्धि प्राप्त होगी। शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, इन सभी सम्प्रदायोंके लिए पञ्चतत्त्वका जानना जरूरी है। गुरुतत्त्व, मन्त्रतत्त्व, मन-

स्तत्त्व, देवतत्त्व और ध्यानतत्त्व ये पाँच तत्त्व हैं।

मांसादि शोधन—

"वक्ष्येहं प मेशानि मांसादेः शोधनं प्रिये।
पूर्ववत् मण्डलं कृत्वा पूजयेत् मण्डलोपरि॥
आधारशक्तिं कूर्मंच अनन्तः पृथिवीं तथा।
तन्मध्ये स्थापयेत् मांसं मत्स्यं मुद्रांच पार्वति॥
हुँ वीजेन संमन्त्रय फट् कारैः प्रोक्षणं चरेत्।
वारुणेन च धेन्वादिं दर्शयेत् साधकोत्तमः॥
ततो मायां वधूश्चैव श्रीवीजं क्रमशो जपेत्।
शुद्धिमन्त्रं पठद्भक्त्या मूलमन्त्रं समुच्चरन्॥
पवित्रं कुरु देवेशि मांसं मत्स्यं कुलेश्वरि।
मुद्रां शस्योद्भवां दिव्यां पूजार्थं कुलनायिके॥
ततो हुँफट् वारुणञ्च तस्योपरि जपेत् प्रिये।
मूलमंत्रंच तन्मध्ये दशधा जपनश्चरेत्॥"

मांसादिका शोधन करना हो, तो पहलेकी तरह मण्डल बना कर उस पर आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त और पृथिवीको पूजा करें तथा उस मण्डलके बीच मत्स्य, मांस और मुद्रा स्थापित करें। पीछे 'हुँ' इस वीज-मन्त्रको संमन्त्रित करके 'फट्' इस मन्त्रके द्वारा प्रोक्षण करें तथा धेनु आदि मुद्रा दिखावें। उसके बाद माया-वीज, वधूवीज और श्रीवीजका क्रमशः जप करें। पीछे मूलमन्त्र उच्चारण करके भक्तिपूर्वक 'पवित्रं कुरु देवेशि" इस शुद्धिमन्त्रको पढ़ें और 'हुँ फट्' यह मन्त्र उसके ऊपर और मूलमन्त्र उसके भीतर जपें। इस प्रकारसे मत्स्य, मुद्रा और मांस शोधित होता है।

मद्यादि शोधन—

अपनी बाईं तरफ षट्कोणान्तर्गत त्रिकोण बिन्दु लिख कर वृत्तचतुरस्र विधानपूर्वक सामान्यार्घ्योदकके द्वारा अभ्युक्षित करके उस पर "आधारशक्तिभ्यो नमः" इस मन्त्रके द्वारा पूजा करें।

"नमः" इस मन्त्रके द्वारा आधारपात्रको प्रक्षालित करके उसे मण्डलके ऊपर रक्खें और "मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः" इस मन्त्रके द्वारा पूजा करके "फट्" इस मन्त्रके द्वारा कलस प्रक्षालित करें। रक्तवस्त्र और माल्यादिसे विभूषित कर आधारके ऊपर देवी मान कर उसको संस्थापित करें। उसके बाद "मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः" इस मन्त्रके द्वारा आधारकी पूजा करके "अं अर्कमण्डलाय दशकलात्मने नमः" इस मन्त्रसे कलस और "ॐ सोममण्डलाय षोड़शकलात्मने नमः" इस मन्त्रसे पूजा करें। तदनन्तर 'फट्' इस मन्त्रसे दर्भ द्वारा सन्ताड़ित करके "हुँ" इस मन्त्रसे अवगुण्ठित करें। पीछे मूलमन्त्र वीक्षण करें। अनन्तर अभ्युक्षण करके मूलमन्त्र द्वारा तीन बार गन्ध ग्रहण करें। "ॐ" इस मन्त्रसे कुम्भमें पुष्प निक्षेप करें। "ह्सौः" इस मन्त्रसे त्रिकोण अङ्कित करें। "ह्सौः ह्सौः नमः" इस मन्त्रसे पूजा करके "द्रूं क्रीं परमस्वामिनि परमाकाशशून्यवाहिनि चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणि पात्रं विश विश स्वाहा" इस मन्त्रसे घट पकड़ें और दश बार जप करें। "ऐं क्लीं क्रीं आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै धीमहि। तन्नोऽर्द्धनारीश्वरः प्रचोदयात्" इस मन्त्रको पात्रके ऊपर जपें। इससे शापविमोचन होता है।

अन्य शापविमोचनमन्त्र—

"अन्यच्च शृणु देवेशि यथा पानादिकर्मणि।
दोषो न जायते देवि तान् वै मंत्रान् शृणुष्व मे॥
एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥
सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम्॥

पूर्वोक्त तीन मन्त्रों द्वारा सुराको अभिमन्त्रित करके कालिकाको प्रदान करें उसके बाद स्वयं भोजन करें। देवीका घट थाम कर इस मन्त्रको तीन बार जपें—"ॐ वाँ वीँ वूँ वैँ वौँ वः ब्रह्मशाप-विमोचितायै सुधादेव्यै नमः।' इसके जपनेसे ब्रह्मशाप विमोचित होता है।

शुक्रशाप-विमोचन—

"ॐ शाँ शीँ शूँ शैँ शौँ शः शुक्र शापाद्विमोचितायै सुधादेव्यै नमः" इस मन्त्रको दश बार जपनेसे शुक्रका शाप विमोचित होता है।

कृष्णशाप-विमोचन—

"ऐँ क्रीँ स्रौँ क्राँ क्रीँ क्रूँ क्रैँ क्रौँ क्रः कृष्णशापं विमोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा" इस मन्त्रको दश बार जपनेसे कृष्णशाप विमोचित होता है।

द्रव्यशुद्धि —

“ॐ हंसः शुचिसद्वसुरन्तरीक्षसद्धोता वेदिसदतिथिर्दूरोणसत्। नृसद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्।” इस मन्त्रको द्रव्यके ऊपर तीन बार पढ़ें। उसके बाद द्रव्यमें आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी का इस मन्त्रके द्वारा ध्यान करें।

पहले पञ्चमकारका विषय वर्णित हुआ है, बहुतोंके मनमें धारणा हो सकती है, कि पञ्चमकारका सेवन पुण्यप्रद है, किन्तु शोधन और साधनके बिना मद्य पान करनेका निषेध है। इसी लिए कुलार्णवतन्त्रमें पञ्चमकार का विषय निम्नलिखित रूपसे वर्णित हुआ है—

“बहवः कौलिकं धर्मं मिथ्याज्ञान विडम्बकाः।
सुबुद्ध्या कल्पयन्तीत्थं पारम्पर्यविमोहिताः॥
मद्यपानेन मनुजा यदि सिद्धिं लभत वै।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गच्छन्तु पामराः॥
मांसभक्षणमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत्।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्यभाजो भवन्ति हि॥
स्त्रीसम्भोगेन देवेशि यदि मोक्षं भजन्ति वै।
सर्वेऽपि जन्तवो लोके मुक्ताः स्युः स्त्रीनिषेवनात्॥
वृथा पानन्तु देवेशि सुरापानं तदुच्यते।
यन्महापातकं देवि वेदादिषु निरूपितम्॥
अनाघ्रेयमनालोच्यमस्पृश्यञ्चाप्यपेयकम्।
मद्यं मांसं पशूनान्तु कौलिकानां महाफलम्॥
अमेध्यानि द्विजातीनां मद्यान्येकादशैव तु।
द्वादशाख्यं महामद्यं सर्वेषामधमं स्मृतम्॥
सुरा वै मलमन्नानां पापात्मा मलमुच्यते।
तस्मात् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥
सुरादर्शनमात्रेण कुर्यात् सूर्यावलोकनम्।
तत्समाघ्राणमात्रेण प्राणायामत्रयं चरेत्॥
आजानुभ्यां भवेत् मग्नो जले चोपवसेदहः।
ऊर्ध्वं नाभेस्त्रिरात्रन्तु मद्यस्य स्पर्शने विधिः॥
सुरापाने ऽज्ञानकृते ज्वलन्तीं तां विनिक्षिपेत्।
मुखे तथा विनिक्षिप्ते ततः शुद्धिमवाप्नुयात्॥
मत्स्यमांसादिदोषस्य प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः।
अविधानेन यो हन्यात् आत्मार्थं प्राणिनः प्रिये॥
निवसेन्नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः।
सम्मितानि दुराचारस्तिर्यग्योनिषु जायते॥
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादिताष्टौ च घातकाः॥
धनेन च क्रेता हन्ति खादिता चोपभोगतः।
घातको घातबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो वधः॥
मांससन्दर्शनं कृत्वा सूर्यदर्शनमाचरेत्।
तस्मादविधिना मांसं मद्यञ्च नाचरेत् क्वचित्॥
विधिवत् सेव्यते देवि परमार्थं प्रसीदति।”

(कुलार्णवतन्त्र)

बहुतसे मनुष्य मिथ्याज्ञानके द्वारा विड़म्बित हो कर मद्यादि पान करनेसे पुण्य होता है, ऐसी कल्पना किया करते हैं। यह उनका महाभ्रम है। मद्य पीनेसे ही यदि सिद्धि होती, तो शराबी पामर भी सिद्धि लाभ कर लेते। मांस भक्षण करनेसे ही यदि पुण्य होता, तो सभी मांसभक्षी मनुष्य पुण्यवान् हो सकते हैं। स्त्री-सम्भोगसे ही यदि मुक्ति होती, तो सभी लम्पटी अनायास मुक्त हो जाते। किन्तु ऐसा नहीं है, वृथा मद्य पीना तो शराबखोरोंका शराब पीना है। वेद आदिमें शराब पीनेके जैसे दोष लिखे हैं, वृथा मद्य पान करनेसे वे सब महापाप लगते हैं। यह शराब अस्पृश्य, अनाघ्रेय और अपेय हैं। केवल कौलिक कार्यमें फलप्रद है।

सभी प्रकारका मद्य द्विजोंके लिये अपेय है। अन्नका मल ही मद्य है, इसलिये द्विजोंको कभी भी शराब न पीनी चाहिये। यदि किसी तरह शराबको देख लें, तो सूर्यका दर्शन करना उचित है। दैववश यदि सुराको सूंघ लें, तो उन्हें प्राणायाममन्त्रत्रयका आचरण करना पड़ेगा। घुटनों पानीमें खड़े हो कर एक दिन उपवास करनेसे शराब सूंघनेका पाप नष्ट होता है। दैववश यदि मद्यका स्पर्श हो जाय, तो नाभि पर्यन्त जलमें खड़े हो कर तीन दिन उपवास करनेसे उसका पाप जाता रहता है। कोई यदि अज्ञानसे सुरा पान कर लें, तो वे अग्नि प्रज्वलित करके स्वयं उसमें निक्षिप्त होवें। ऐसा करनेसे अज्ञानकृत सुरापानका पाप नष्ट होता है। मत्स्य और मांसादिका प्रायश्चित्त भी इसी भाँति है। अविधानसे अपनी प्रीतिके लिए जो लोग मत्स्य और मांसादिका हनन करते हैं, वे हतपशुके रोमकी संख्याके अनुसार घोर नरकमें वास करते हैं तथा

फिर तिर्यक् योनिमें जन्म लेते हैं। इस प्रकारको पशु-हत्यामें घातक अनुमोदक, विश्वसिता, निहन्ता, खरीदने वाले, बेचनेवाले, संस्कर्ता, उपहर्ता और खानेवाले ये सभी पापके भागी होते हैं। इसलिये मांसके देखते ही सूर्यका दर्शन करना चाहिये। किन्तु विधिवत् अर्थात् सद्गुरुके उपदेशानुसार पञ्चमकार सेवन करनेसे परमार्थतत्त्व लाभ होता है; अन्यथा सभी निष्फल और विशेष पापजनक है। अतएव तान्त्रिकोंको कोई भी कार्य अपनी इच्छाके अनुसार न करना चाहिये।

शुद्ध शक्तिका फल—

"साधिता च जगद्धात्री यद्यद्वदति पार्वति ।
तत्सर्वं सत्यतां याति सत्यं सत्यं न संशयः ॥"

नारी शोधिता होने पर जगद्धात्रीके तुल्य होती है और वह नारी जो कहे वही सत्य होता है, इसमें अणुमात्र भी संशय नहीं।

शक्तिशोधन —

"इदानीं कथयिष्यामि नारीणां शोधनं प्रिये ।
अग्रे वा दक्षिणे वापि संस्थाप्य मण्डलोपरि ॥
भाले च मण्डलं कुर्यात् त्रपुरं सिन्दूरेण च ।
नयने कज्जलं दद्यात् मूलमन्त्रं जपेत् सुधीः ॥
अन्यैश्च विविधैर्द्रव्यैर्भावयेत् शाक्तमन्त्रतः ।
ताम्बूलं वदने दद्यादिष्टमूर्तिं विभाव्य च ॥
ततः षड़ंगमन्त्रैश्च षड़ंगन्यासमाचरेत् ।
मातृकार्णं ततोन्यस्य ऋष्यादिन्यासमाचरेत् ॥
मूलेन व्यापकं कृत्वा मूर्द्ध्नि मूलं शतं जपेत् ।
हृदये कामवीजञ्च वधूवीजञ्च संजपेत् ॥
नाभौ श्री गुह्यदेशे च सर्ववीजञ्च पार्वति ।
मौलौ च वाग्भवं कामं कुण्डलीं कुलकुण्डलीम् ॥
शक्तिबीजं जपेन्मंत्री सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
वामे मायां श्रावयेच्च कर्णेचैव महेश्वरी ॥
एवं क्रमेण देवेशि नारी शुद्धिः प्रजायते ।"

नारीशुद्धि करनी हो, तो नारीको ला कर उसे अग्रभागमें वा दक्षिणमें मण्डलके ऊपर स्थापित करें। कपाल पर सिन्दूर द्वारा त्रैपुरमण्डल करें। नयनोंमें काजल लगा दें। फिर साधक मूल मन्त्र जपें। अन्य विविध द्रव्य द्वारा शक्तिमन्त्रसे उसको सम्बोधन करें। मुखमें ताम्बूल देवें और इष्टमन्त्रका ध्यान कर षड़ङ्गमन्त्र द्वारा षड़ङ्गन्यास करें। बादमें मातृकान्यास करके ऋष्यादिन्यास करें। मूल द्वारा व्यापक करके मस्तक पर सौ बार मूलमन्त्रका जप करें। हृदयमें कामबीज और बधूबीज; नाभिमें श्रीबीज, गुह्यदेशमें सर्वबीज, मौलिमें कामबीज और कुण्डलीमें कुलकुण्डली शक्तिबीजका जप करें। वाममें माया और कर्णमें महेश्वरी श्रवण करावें। उक्त रूप अनुष्ठान करनेसे नारीशुद्धि होती है।

"सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥
अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम् ।
वृषारूढ़ं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ॥
कपालखट्वांगधरं घंटाडमरुवादिनम् ॥
पाशांकुशधरं देवं गदामूषलधारणम् ।
खड्गखेटकपट्टीशमुद्गरं शूलदण्डधृक् ॥
विचित्रं खेटकं मुण्डं वरदाभयपाणिनम् ।
लोहितं देवदेवेशं भावयेत् साधकोत्तमः ॥"

इस मन्त्रसे ध्यान करके "हसक्षमलवरयुं आनन्दभैरवाय वषट्" इस मन्त्रके द्वारा आनन्दभैरवका तीन बार पूजा करें। पीछे आनन्दभैरवीका ध्यान करें।

"भावयेच्च सुधां देवीं चन्द्रकोट्यायुतप्रभा ।
हिमकुन्देन्दुधवलां पंचवक्त्रां त्रिलोचनाम् ॥
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम् ।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीम् ॥"

इस प्रकारसे आनन्दभैरवीका ध्यान करके "हसक्षमलवरयीं सुधादेव्यै वषट्" इस मन्त्रसे पुजा करें तथा द्रव्यमें शक्तिचक्र लिख कर क्रमानुसार "हं लं क्ष" लिखें।

ऐसा करनेसे शिव और शक्तिका योग होता है, इस लिये द्रव्यमें अमृतत्वकी चिन्ता कर धेनुमुद्रा द्वारा अमृती करें। "वं" इस वरुणबीजको तथा मूलमन्त्रको आठ बार जप कर देवतास्वरूप उस द्रव्यका ध्यान करें।

इस तरहसे द्रव्यशुद्धि होती है।

"एतत्तु कारणं देवि सुरसंघनिषेवितम् ।
अतएव तस्यानाम सुरेति भुवनत्रये ॥
अस्याः गन्धः केशवस्तु तेन गन्धेन कौलिकः ।
पूजयेच्च परां देवीं कालिकां दक्षिणां शिवाम् ॥"

देव इसका सेवन करते हैं, इसलिये इसका नाम सुरा है। इस सुराकी गन्ध ही केशव है, उस गन्धके द्वारा कौलिक-परा कालिका देवीकी पूजा करें।

मांसशोधन—'ॐ प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगोन भीमः कुचरोग विष्ठा यस्योरुषु त्रिषु विक्रमे धियन्ति भुवनानि विश्वा।" इस मंत्रसे मांस शोधित होता है।

मत्स्यशुद्धि—"ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततं। ॐ तद्विप्रासो विपन्य वोजागृवां सः समिन्धते विष्णोर्यत् परमं पदं" इस मंत्रके द्वारा मत्स्य शुद्धि करें।

मुद्राशुद्धि—"ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंसतु आसिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते।

"गर्भं देहि सिनीवाली गर्भं देहि सरस्वती।
गर्भं ते अस्विनौ देवा वाधत्तां पुष्करस्रजौ॥"

इस मंत्रके द्वारा मुद्राशुद्धि करें। पहले जो विधान कहे गये हैं, उनसे पंचमकार शोधित होते हैं। किन्तु पंचमकार शोधित करनेके लिये सिद्ध गुरुकी जरूरत है। विना सिद्ध गुरुके कोई भी साधक इसको अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकता, यदि करेगा, तो उससे फलकी प्राप्ति न होगी।

चक्रानुष्ठान—सिद्धतान्त्रिकगण चक्रानुष्ठान किया करते हैं। यह अति गुह्य व्यापार है। निशीथरात्रिमें इसका अनुष्ठान करना पड़ता है।

वीरचक्र—'वीरचक्रं प्रवक्ष्यामि येन सिध्यन्ति साधकाः।
अनया पूजया देवि देहसिद्धिः प्रजायते॥
शक्ते यो न समग्रादि यत्प्रशस्तं निवेदयेत्।
भूचराणां खेचराणां तत्तन्मांसः सुसाधय॥
मुद्रा सर्वाणि धान्यानि युक्तानि परमेश्वरि।
श्वेतपीतं च पुष्पाणि रक्तानि च विशेषतः॥
अष्टवीरं च षड्वीरं नववीरं तथा प्रिये।
कल्पयेत् वीरपन्थिश्च यथालब्धाश्च सुन्दरी॥
वीरेभ्यो दक्षिणां दद्यात् आचार्याय विशेषतः।
असंख्यपातकश्चैव ब्रह्महत्यादिपातकम्॥
नाशयेत् तत्क्षणात् देवि वीरचक्रप्रभावतः।
दक्षिणाविधिहीनं च तच्चक्रं निष्फलं भवेत्॥"

उस वीरचक्रका विषय कहा जाता है, कि जिसकी पूजाके प्रभावसे साधक शीघ्र ही सिद्धि लाभ करते हैं। इसमें समर्थ होने पर समस्त द्रव्य न दे कर सिर्फ प्रशस्त द्रव्य निवेदन करना चाहिये।

भूचर और खेचर आदिका मांस ही उत्तम सिद्धिप्रद है। सभी प्रकारके धान्यको मुद्रा कहते हैं। श्वेत, पीत और रक्तपुष्प लाना चाहिये। षड्वीर, अष्टवीर वा नववीर इनमेंसे जो प्राप्त हो, उसको कल्पना करें। इस प्रकारकी कल्पना करनेसे वीरचक्र होता है आचार्यको दक्षिणा दे कर पीछे वीरको दक्षिणा देवें। असंख्य पातक और ब्रह्महत्यादि पातक वीरचक्रके प्रभावसे तत्क्षण दूर हो जाते हैं। चक्र यदि विधि और दक्षिणाहीन न हो तो वह निष्फल है।

राजचक्र—"चतुर्वर्णा कुमार्यश्च स्वरूपा सुमनोहरा।
यामिनी योगिनीचैव रजकी श्वपची तथा॥
कैवर्तकसमुत्पन्ना पंचशक्ति रुदाहृता।
एता प्रशस्ता सकला साधकेन नियोजिता॥
अर्पयेत् मधुमद्यंच शुद्धिच्छागलसम्भवा।
धर्मार्थकाममोक्षार्थी राजचक्रं विधीयते॥
षष्टिवर्षसहस्राणि देवलोके महीयते।"

अतिशय रूपवती सुमनोहरा चतुर्वर्णा कुमारी—ऐसी यामिनी, योगिनी, रजकी, चाण्डाली और कैवर्ती—ये पञ्चशक्ति हैं, ये पञ्चकन्या साधक द्वारा नियोजित होने पर प्रशस्ता होती है। पश्चात् मधु, मद्य और मांस अर्पण करें, इस प्रकारसे राजचक्र होता है। इस राजचक्रके प्रभावसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति तथा देवलोकमें षष्टि सहस्र वर्ष वास होता है।

देवचक्र—"देवचक्रं प्रवक्ष्यामि यत्सुरैः क्रियते सदा।
शक्तयस्तत्र वक्ष्यामि दिव्यरूपा मनोरमा॥
राजवेश्या नागरी च गुप्तवेश्या तथा प्रिये।
देववेश्या ब्रह्मवेश्या शक्तयः पंचदेवता॥
राजसेवापरा राजवेश्या गुप्ता च कौलजा।
देववेश्या नृत्यकारा ब्रह्मवेश्या च तीर्थगा॥
नागरी कस्यचित् कन्या रम्भाकामरजस्वला।
पंचैता शक्तया देवि देवचक्रे नियोजयेत्॥"

देवचक्रका विषय कहा जाता है—देवता सर्वदा देवचक्रका अनुष्ठान किया करते हैं। इस देवचक्रमें

राजवेश्या, नागरी, गुप्तवेश्या, देववेश्या और ब्रह्मवेश्या ये पञ्चवेश्या ही पञ्चशक्ति हैं। राजसेवापरायणा राजवेश्या, कौलजा गुप्तवेश्या, नृत्यकारिणी देववेश्या, तीर्थगामिनी ब्रह्मवेश्या और कोई भी रजस्वला कन्या नागरी कहलाती है, ये पाँचों वेश्या हैं इनको देवचक्रमें नियोजित करें।

"राजचक्रे राजदं स्यात् महाचक्रे समृद्धिदम्।
देवचक्रे च सौभाग्यं वीरचक्रं च मोक्षदम्॥"

राजचक्रका अनुष्ठान करनेसे राज्यलाभ, महाचक्रसे समृद्धि, देवचक्रसे सौभाग्य और वीरचक्रसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। (रुद्रयामल)

"पञ्चचक्रे प्रशस्ता यास्ताः शृणुष्व वरानने।
चक्रं चविधं प्रोक्तं तत्र शक्तिं प्रपूजयेत्॥
राजचक्रं महाचक्रं देवचक्रं तृतीयकम्।
वीरचक्रं चतुर्थं च पशुचक्रं च पंचमम्॥"

पञ्चचक्रमें जो प्रशस्त हैं, उनका विषय कहा जाता है चक्र पाँच प्रकारके हैं, उनसे शक्तिकी पूजा करें। राजचक्र, महाचक्र, देवचक्र, वीरचक्र और पशुचक्र ये चक्र हैं।

"पञ्चचक्रे यजेद्दिव्यो वीरश्च कुलसुन्दरि।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च पंचचक्रे प्रपूजयेत्॥
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वीरचक्रेण पूजयेत्।
योगिभिः पूज्यते देवि सर्वचक्रेषु कामिनी॥
माता च भगिनी चैव दुहिता च स्नुषा तथा।
गुरुपत्नी च पंचैता राजचक्रे प्रपूजयेत्॥
गौड़ी वाप्यथवा माध्वी सुरा शस्ता कुलेश्वरी।
शुद्धिश्चागोद्भवा शस्ता तृतीया वेदसम्भवा॥
मुद्रा गोधूमजा शस्ता स्वयम्भूकुसुमस्तथा।
कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं अनुकल्पं नियोजयेत्॥"

वीर पञ्चचक्रसे याग करें। ब्रह्मचारी और गृहस्थ भी पञ्चचक्रसे पूजा कर सकते हैं। योगिगण सभी चक्रसे कामिनी पूजा कर सकते हैं। माता, भगिनी, पुत्री पुत्रवधू, गुरुपत्नी, इन पाँचोंको राजचक्रमें पूजा करनी चाहिये। गौरी, माध्वी, सुरा, मुद्रा, स्वयम्भूकुसुम, कुण्डगोलोद्भव द्रव्य, इन सबका अनुकल्पमें प्रयोग किया जाता है।

"रक्तचन्दनं तथाश्वेतमनुकल्पं च चन्दनम्।
वस्त्रालंकारभूषाद्यैर्गन्धमाल्यानुलेपनम्॥
पूजयेत् परयाभक्त्या देवताभ्यो निवेदयेत्।
भक्ष्यं नानाविधं द्रव्यं नानावस्त्रसमन्वितम्॥
आसवं शुद्धिसंयुक्तं ताभ्यो दद्यात् पुनः पुनः।
प्रणमेत् प्रजपेन्मत्रं दृष्ट्वा ताश्च सहस्रकम्॥
अंगं नैव स्पृशेत्तासां स्पृशेच्च नरकं व्रजेत्।
मधुमत्ता सदा तास्तु न स्वपन्ति सुसम्पदः॥
तत्तदैव भवेत् सर्वं सत्यं सत्यं न संशयः।
षष्टिवर्षसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते॥"

रक्तचन्दन और अनुकल्पसे श्वेतचन्दनको वस्त्र, अलङ्कार आदिके द्वारा भूषित करें तथा परमभक्तिके साथ उसे देवताको सेवामें उपस्थित करें। नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ, चित्र-विचित्र वस्त्र आदि तथा आसव शुद्धि करके उन्हें पुनः पुनः प्रदान करें। प्रणाम करके उनकी ओर अवलोकन पूर्वक हजार जप करें। उनका अङ्ग स्पर्श न करें यदि स्पर्श करेंगे, तो रौरव नरकको जाना पड़ेगा। वे मधुमत्तागण उसको शाप नहीं देते तथा वे षष्टि सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्गलोकमें वास करते हैं।

"माता भग्नी स्नुषा कन्या वीरपत्नी कुलेश्वरी।
महाशक्ति यजेदेताः पंचशक्ति पुनः पुनः॥
द्रव्यदाने तु संपूज्या न शक्तौ शिवयोजनम्।
योजयेत् सिद्धिहानिं स्यात् रौरवं नरकं व्रजेत्॥
महाव्याधिर्भवेद्देवि धनहानिं प्रजायते।
सदैव दुःखमाप्नोति सर्वं तस्य विनश्यति॥
आद्यंच गौड़िकं प्रोक्तं द्वितीयं कुक्कुटोद्भवम्।
तृतीयं रोहितं प्रोक्तं चतुर्थं माससम्भवं॥
करबीरोद्भवं पुष्पं चंदनं रक्तचंदनम्।
पूजयेत् परया भक्त्या शिवलोके महीयते॥
षष्टिवर्षसहस्राणि तत्र देवीं प्रपूजयेत्।
अष्टम्यांच चतुर्दश्यां अमायांच कुजे ऽहनि॥
राजचक्रे महाचक्रे भक्त्या शक्तिः प्रपूजयेत।
शुक्लपक्षे गुरोर्वारे चतुर्थ-सप्तमी तिथौ॥
महाचक्रे यजेत् भक्त्या सर्वकामार्थं सिद्धये।"

माता, भगिनी, पुत्रवधू, कन्या और वीरपत्नी ये कुलेश्वरी और पञ्चशक्ति हैं चक्रमें बार बार इनकी पूजा की जाती है। द्रव्यसे इनकी पूजा करें, इन शक्तियोंमें कभी

भी लिङ्ग योजन न करना चाहिये। योजन करनेसे सिद्धिहानि, रौरव नामक नरकमें वास, महाव्याधि, धनहानि, सर्वदा दुःखभोग और सर्वनाश होता है। प्रथम गौड़ी, द्वितीय कुक्कुटोद्भव, तृतीय रोहित, चतुर्थ मासजात, करवीरपुष्प, चन्दन और रक्तचन्दन ; इन सबसे देवीको सभक्ति पूजा करनेसे शिवलोकको गमन होता है। वहाँ भक्त साठ हजार वर्ष तक देवीकी पूजा किया करता है। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या अथवा मङ्गलवारको राजचक्र नामक महाचक्रसे भक्तिपूर्वक पञ्चशक्तिकी पूजा करें। सम्पूर्ण कामना और अर्थसिद्धिके लिए शुक्लपक्षमें बृहस्पतिवारके चतुर्थी वा सप्तमी तिथिमें महाचक्रसे भक्तिपूर्वक याग करें।

माता, भगिनी आदि जिन पञ्चमहाशक्तियोंका विषय लिखा गया है, उन पाँचों शब्दोंको पारिभाषिक समझना चाहिये। निरुत्तरतन्त्रके १०वें पटलमें लिखा है—

"भूमीन्द्रकन्यका माता दुहिता रजकीसुता।
श्वपची च स्वसा ज्ञेया कापाली च स्नुषा स्मृता ॥
योगिनी निजशक्तिः स्यात् पञ्चकन्याः प्रकीर्तिताः।"

माता कहनेसे राजकन्या, दुहिता कहनेसे रजकीकी कन्या, स्वसा कहनेसे चण्डाली, स्नुषा कहनेसे कापाली तथा अपनी शक्तिको योगिनी समझना चाहिये— ये पाँच पञ्चकन्या कहलाती हैं।

"देवचक्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व वरवर्णिनि।
विदग्धा सर्वजातीनां पञ्चकन्याः प्रकीर्तिताः ॥
गौडिकं फलजं रम्यं द्वितीयं पक्षिसंभवम्।
तृतीयं शालमत्स्यन्तु चतुर्थं धान्यसंभवम् ॥
सुगन्धि गन्धपुष्पं च देवचक्रे नियोजयेत्।
देवचक्रे यजेत् शक्तिं देवलोके महीयते ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि देवकन्याः प्रपूजयेत्।
पंजकन्यां यजेच्चक्रे नातिरिक्तां कदाचन ॥
लोभाद्वा कामतो वापि छलाद्वा वरवर्णिनि।
यदि स्यात् संगमस्तासां रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
अष्टम्यांच चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि।
पितृभूमिं समागम्य वीरचक्रे प्रपूजयेत् ॥
दिव्यवीरान्वितो मन्त्री यजेत् शक्तिः वलियसीम्।"

देवचक्रका विषय कहा जाता है—सर्वजातिकी पाँच विदग्धा कन्या, फलज रम्य गौड़िक, द्वितीय पक्षिसम्भव, तृतीय शालिमत्स्य, चतुर्थ धान्यसम्भव और सुगन्धि गन्धपुष्प इनके द्वारा देवचक्रमें शक्तिपूजा करनी चाहिये। देवचक्रमें याग करनेसे देवलोककी गति होती है। पञ्चकन्या चक्रमें याग करें, कभी भी इसके अतिरिक्त याग न करें। लोभवश अथवा छल वा कामके वशीभूत हो यदि कोई इनके साथ सङ्गम करे, तो वह रौरव नरकमें जाता है। दोनों पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको पितृभूमिमें जा कर वीरचक्रमें पूजा करनी चाहिये।

"सिद्धमन्त्री भवेत् वीरो नवीरो मद्यपानतः।
अभिषिक्तो भवेत् वीरो अभिषिक्ता च कौलिकी ॥
एवंच वीरशक्तिं च वीरचक्रे नियोजयेत्।
नाभिषिक्तो वसेच्चक्रे नाभिषिक्ता च कौलिकी ॥
वसेच्च रौरवं याति सत्यं सत्यं न संशयः।
एवं क्रमं विना देवि वीरचक्रे वसेत् यदि ॥
सिद्धिहानिं सिद्धिहानिं रौरवं नरकं व्रजेत्।
सर्वमद्यं सर्वशुद्धिं सर्वमीनं कुलेश्वरि ॥
सर्वमुद्रां सर्वपुष्पं स्वयम्भूकुसुमन्तथा।
कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं नानारससमन्वितम् ॥
प्रदद्यात् साधको श्रेष्ठो वीरचक्रे पुनः पुनः।
स्वशक्तिं पूजयेत्तत्र तदुच्छिष्टं पिबेत् प्रिये ॥
सव्यंच ज्येष्ठतो प्राश्य कनिष्ठाय निवेदयेत्।
एकासने न भुञ्जीत भोजनं नैकभाजने ॥
परस्पर्शमुखस्पर्शं न कर्तव्यं कदाचन।
एवं क्रमेण दवेशि वीरचक्रं समाचरेत् ॥
आनीय हीनजां देवीं शक्तिमन्त्रेण शोधयेत्।
संशोध्य हीनजां पूजां वीरशक्तिं निवेदयेत् ॥
मधुमत्ताय वीराय यो दद्यात् हीनजां सुताम्।
वक्त्रकोटिसहस्रेण तस्य पुण्यं न पद्यते ॥
वीराय शक्तिदानन्तु वीरचक्रे विधीयते।
चक्रभिन्ने चरेत् दानं गौरवं नरकं व्रजेत् ॥
घातयेद् गोपयेद्वापि न निन्देन्न निरीक्षयेत्।
कामं क्रोधंच मात्सर्यं विकारं लोभमेव च ॥
कुत्सा निन्दा दुरालापं गोपयेदष्टकं प्रिये।
मंत्रं मुद्रामक्षमालां योनिं च वीरसंगमम् ॥
मंडलंच घटं पीठं सिद्धिद्रव्यानि गोपयेत्।

पण्डितं वीरसंतानं क्षेत्रं देवींच योगिनीं ॥
कुलाचारं गुरुदूतीं मनसापि न निन्दयेत् ।
मातृयोनिं पशुक्रीडां नग्नां स्त्रीमुन्नतस्तनीं ॥
कांतेन क्षोभितां कांतां कामतो नावलोकयेत् ।
देवीं गुरुं सुधां विद्यां श्रेष्ठां शक्तिं क्रियात्मजां ॥
योगिनीं भैरवीतत्त्वं अष्टतत्व प्रपूजयेत् ।
विमाता दुहिता भग्नी स्नुषा पत्नी च पंचमी ॥
पशुचक्रे यजेद्धीमान् पशुवत्तोषणं चरेत् ।
गंधपुष्पंच माल्यंच वस्त्राद्याभरणानि च ॥
सिन्दूरागुरुकस्तूरीं नानापुष्पाणि सुन्दरि ।
भक्ष्यं नानाविधं द्रव्यं फलं नानाविधं प्रिये ॥
एतद्द्रव्यगणं यस्तु भक्त्या ताभ्यो निवेदयेत् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि क्षितौ राजा भवेद्ध्रुवम् ॥
वीरचक्रे मन्त्रसिद्धिर्भवत्येव न संशयः ।
अमावस्यां चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥
श्मशानेन गते नार्चेत् सूचितं न प्रकाशितम् ।"

मन्त्रसिद्ध होनेसे ही वीर होता है, मद्य बिना पीये वीर नहीं होता। यथाविधि अभिषिक्त होने पर वीर और यथाविधि अभिषिक्त होने पर कौलिकी होती है। वीरचक्रमें इस प्रकारसे वीर और शक्तिको नियुक्त किया जाता है।

वीर और कौलिकीको अभिषिक्त बिना हुए चक्र पर बैठ कर याग न करना चाहिये। यदि करें, तो उन्हें रौरव नामक नरकमें जाना पड़ेगा। इस क्रमके सिवा वीरचक्र पर कभी भी न बैठना चाहिये। इस क्रमके बिना वीरचक्र पर बैठनेसे पद पदमें उसकी सिद्धिहानि होती है और रौरव नरकको जाना पड़ता है। सब तरहको शराव, मत्स्य, मुद्रा, पुष्प, स्वयम्भूकुसुम, कुण्डगोलोद्भवद्रव्य, ये सब चीजें साधकको पुनः पुनः वीरचक्र पर चढ़ानी चाहिये तथा अपनी शक्तिकी पूजा करनी चाहिये। भक्ष्य द्रव्य ज्येष्ठादि क्रमसे कनिष्ठको निवेदन करें। परस्पर स्पर्श न करें। एक आसन पर और एक पात्रमें भोजन न करें। होनजा देवीको ला कर शक्तिमन्त्र द्वारा शोधित करें। वीर होनजाकी पूजा और उनका शोधन करके शक्ति निवेदन करें। मधुसक्त वीरको जो होनजा कन्या प्रदान करेगा उसको इतना पुण्य होता है कि, वह कोटि मुखसे भी नहीं गाया जा सकता।

वीरचक्रका आचरण करनेके लिए वीरको शक्तिदान करना पड़ता है। वीरचक्रके बिना यदि शक्तिदान किया जाय, तो दाता रौरव नरकको जाता है। यह कार्य अत्यन्त गुप्तभावसे करना चाहिये। अर्थात् काम, क्रोध, मात्सर्य, विकार, लोभ, कुत्सा, निन्दा, दुरालाप, इन आठोंको गुप्त रक्खें।

मन्त्र, मुद्रा, अक्षरमाला, योनि, वीरसङ्गम, मण्डल, घट, पीठ और सिद्धिद्रव्य, इन सबको गुप्त रखें। पण्डित वीर, सन्तान, क्षेत्र, देवी, योगिनी, कुलाचार और गुरुदूती इनको मनमें भी निन्दा न करें।

मातृयोनि, पशुक्रीड़ा, नग्ना स्त्री, उन्नत स्तनी, कान्त क्षोभिता और कान्ता, इनको कामभावसे अवलोकन न करें। देवी, गुरु, सुधा, विद्या, श्रेष्ठशक्ति, योगिनी, भैरवीतत्त्व और अष्टतत्त्वकी पूजा करें।

पशुचक्र—माता, दुहिता, भगिनी, पुत्रवधू और पत्नी, ये पाँच शक्तियाँ समन्विता हो कर पशुचक्रमें याग करेंगी। इसमें पशुवत् तुष्टि आचरण करें। गन्ध, पुष्प, माल्य, वस्त्रादि आभरण, सिन्दूर अगुरु, कस्तूरी, नाना प्रकारके पुष्प और फल ये सब द्रव्य भक्तिपूर्वक उनको अर्पण करें। इस तरह पशुचक्रमें याग करनेवाला साठ हजार वर्ष तक पृथिवी पर राजा होता है। वीरचक्रमें मन्त्रसिद्ध अवश्य होगी, इसमें सन्देह नहीं। दोनों पक्षकी अमावस्या और चतुर्दशीको श्मशानमें जा कर ऐसा आचरण करें। कभी भी किसीसे प्रकट न करें।

"न निंदेत् न हसेत् वापि चक्रमध्ये मदाकुलान् ।
एतच्चक्रगतां वार्तां वहिर्नैव प्रकाशयेत् ॥
तेभ्यो भोजनं कुर्वीत नाहितंच समाचरेत् ।
भक्त्या संरक्षयेदेतान् गोपयेच्च प्रयत्नतः ॥"

चक्रमें मदिरासक्त व्यक्तियोंको देख कर हास्य और निन्दा न करें। इस चक्रको बात बाहरमें प्रकट न करें। उनके पास बैठ कर भोजन करें और अहित आचरणसे विरत रहें। भक्तिपूर्वक उनकी रक्षा करें और यत्नपूर्वक ये सब वृत्तान्त गुप्त रक्खें। (प्राणतोषिणी)

वीरसाधन—"पुरश्चरणसंपन्नो वीरसिद्धिं समाचरेत् ।
सम्यक्परिश्रमेणापि नैव सिद्धिं समास्थिता ॥
जायते तत्र कर्तव्या साधकै वीरसाधना ।
पुत्रदारनधस्नेहलोभमोहविवर्जितः ॥
मन्त्रं वा साधयिष्यामि देहं वा पातयाम्यहम् ।
प्रतिज्ञामीदृशीं कृत्वा वलिद्रव्याणि चिन्तयेत् ॥
यस्य मन्त्रस्य यद्द्रव्यं तत्तद्रव्यञ्च साधकैः ।
शवलक्षणं देवेशि शृणु पर्वतनन्दिनि ॥
सर्वेषां जीवहीनानां जन्तूनां वीरसाधने ।
ब्राह्मणो गोमयं त्यक्त्वा साधयेत् वीरसाधनम् ॥
महाशवाः प्रशस्ताः स्युः प्रधाने वीरसाधने ।
ब्राह्मणस्तु स्त्रियां त्यक्त्वा साधयेद्वीरसाधनम् ॥
क्षुद्राः प्रयोगकर्तृणां प्रशस्ताः सर्वसिद्धये ।
ऊर्द्धं द्विवर्षात् यदि वा पंचधा तरुणं यदि ॥
सप्तमाष्टममासीयं गर्भदं यदि वा शवम् ।
चांडालं चाभिभूतं च शीघ्रं सिद्धिफलप्रदम् ॥
यष्टिप्रभृतिभिर्विद्धं अन्यं वा विजने मृतम् ।
शवमानीय कर्तव्यं ना हरेत् स्वेच्छया मृतम् ॥
स्त्रीरमणपतितश्चास्पृश्यं वर्जं हि तत्शवम् ।
कुष्ठादिरोगसंयुक्तं वृद्धभिन्नं शवं हरेत् ॥
न दुर्भिक्षं मृतं वापि न पर्युषितमेव वा ।
स्त्रीजनसदृशं रूपं सर्वदा परिवर्जयेत् ॥……
शून्यागारे नदीतीरे विल्वमूले चतुष्पथे ।
श्मशाने वा विशेषेण नीत्वा चोद्धृत्य भूषयेत् ॥
शून्यागारे अरण्ये वा नीत्वा चैव विभूषयेत् ।
संस्थाप्य कुशशय्यायां पुरुषं दिव्यरूपिणम् ॥
आनीय स्थापयेदादौ न्यासजालं समाचरेत् ।
पीठमंत्रं समालिख्य गंधपुष्पादिभिस्ततः ॥
अभ्यर्च्य चासनं दत्वा रक्षां मंत्रेण कारयेत् ।
ततः शवास्ये बिधिवत् देवताध्ययनं चरेत् ॥
भुवनेशी फडन्ताःस्थ्यः कथिता मानवोत्तमाः ।
ततः शवं क्षालयित्वा स्थापयेच्च प्रयत्नतः ॥
यदि यत्नेनन तिष्ठेत् भैरव्याच्च भयं भवेत् ।
एलालसावंगकर्पूरजातिखदिरर्द्रकैः ॥
ताम्बूलं तन्मुखे दद्यात् शवं कुर्यादधोमुखम् ।
स्थापयित्वा च तत्पृष्ठे चंदनेन विलेपयेत् ॥
बाहुमूलादिकट्यन्तं चतुरस्रं विधाय च ।
मध्ये पद्मं चतुर्द्वारं दलाष्टकसमन्वितम् ॥
ततश्चैलेयमजिनं कम्बलान्तरितं न्यसेत् ।
पूजाद्रव्यं सन्निधौ च दूरे चोत्तरसाधकम् ॥
संस्थाप्य शवमभ्यर्च्य तत्र चारोहणं भवेत् ।
कुशान् पदतले दत्वा शवकेशान् प्रसार्य च ॥
दृढं निवध्य झुटिकां तत्र देवस्वरूपिणम् ।
तस्य देहं सुसंपूज्य पठेदुत्थाय सम्मुखे ॥
ओं भीमभीरुभयाभावभव्यलोचनभावुकः ।
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप ॥
इति पादतले तस्य त्रिकोणयन्त्रमालिखेत् ॥"

साधक पुरश्चरण सिद्ध हो कर वीरसिद्धि वा शवसाधना करें। सम्यक् परिश्रमके बिना सिद्धि नहीं होती, ऐसा स्थिर करके साधक वीरसाधनामें प्रवृत्त होवें। वीरसाधन करना हो तो पुत्र, दारा और धनादिसे स्नेह, मोह, लोभ आदि त्याग दें। मन्त्रका साधन अथवा शरीरपतन दोमें एक होगा, ऐसी प्रतिज्ञा कर साधनमें प्रवृत्त होवें और वलिद्रव्य आहरण करें। जिस जिस मन्त्रमें जिस जिस द्रव्यकी आवश्यकता हो, साधक उन्हीं द्रव्योंका आहरण करें।

इस वीरसाधनका प्रधान उपकरण शव है, जिसका विषय पहले कहते हैं। सभी जीवहीन जन्तुके शव वीरसाधनके उपयुक्त हैं किन्तु शवोंमें कुछ (शवसाधनमें) प्रशस्त भी हैं। ब्राह्मणको गोमय त्याग कर शवसाधन करना चाहिये। प्रधान वीरसाधनमें महाशव ही एकमात्र प्रशस्त है। इस वीरसाधनमें स्त्रीत्याग करके साधना करनी होगी। प्रयोगकर्त्ताओंके लिए क्षुद्र ही प्रशस्त, और सकल सिद्धिका निमित्त है। दो वर्षसे ऊपर पञ्चम वर्ष पर्यन्त अथवा तरुण और सप्तम वा अष्टम मासीय गर्भज चण्डालका शव ही प्रशस्त है। ऐसे शवद्वारा आराधना करनेसे शीघ्र फल होता है।

यष्टि आदिके द्वारा अर्थात् जो चण्डाल यष्टि, शूल, खड्ग वा वज्रके आघातसे किंवा सर्पदंशनसे मरा है। अथवा पानीमें डूब कर वा सम्मुखयुद्धमें पलायन पराङ्मुख हो कर मरा है, वह यदि सुन्दरकान्तिविशिष्ट

शौर्यवान् और तरुणवयस्क हो, तो शवसाधनार्थ उसको लाना चाहिये।*

स्त्री-रमण द्वारा पतित और कुष्ठादि महापातक रोगग्रस्त शवका परित्याग करना उचित है। स्वेच्छापूर्वक मरे हुए व्यक्तिका और वृद्धका शव ग्रहण न करना चाहिये। दुर्भिक्षसे मरे हुए व्यक्तिका शव अथवा बासी मुर्दा भी शवसाधनके लिए अनुपयुक्त है। स्त्रियों जैसे रूपवालेका शव भी वर्जनीय है।

नाना प्रकारके साधनोंमें शवसाधन वीराचारियोंका एक प्रधान साधन है; इसलिए इसका स्थान विशेष होना आवश्यक है। शून्य गृहमें, नदीतीर पर, पर्वत पर, निर्जन स्थानमें, विल्ववृक्षके तले अथवा श्मशान वा उसके समीपवर्ती वनस्थलमें साधना करनी चाहिये। अष्टमी वा चतुर्दशी अथवा कृष्णपक्षीय मङ्गलवारको द्विप्रहर-रात्रि हो शवसाधनाका उपयुक्त समय है। श्मशानादि स्थलमें शवको ला कर कुश-शय्या पर स्थापन करें और फिर न्यास करना प्रारम्भ करें। पीठमन्त्र लिख कर गन्ध पुष्पादिके द्वारा अर्चना करें। पीछे आसन-प्रदान कर मन्त्र द्वारा रक्षा करें। उसके बाद शवके मुख पर विधिपूर्वक देवताओंका आप्यायन (तुष्टि) आवरण डालें। 'भूवनेशी' और अन्तमें 'फट' का प्रयोग करें उसके बाद शवको प्रक्षालित करके यत्नपूर्वक स्थापित करें और किसी प्रकारसे भीत न होवें, यत्नसे भी यदि स्थापित न हो, तो एला, लवङ्ग, कर्पूर, जातीफल, खदिर और आर्द्रक द्वारा शवको अधोमुख करें तथा उसके मुखमें ताम्बूल देवें। उसके पीठ पर रख कर चन्दन विलेपित करें। बादमें मूलको आदि करके कटीदेश तक चतुरस्र मण्डल कर बीचमें चतुर्द्वारयुक्त अष्टदल पद्म बनावें। उसके बाद चैलेय, अजिन, कम्बलास्तरित करके न्यास करें और निकटमें पूजा-द्रव्य रख देवें। कुछ दूरी पर एक उत्तर साधकको रखना चाहिये। शवको संस्थापन करके अर्चना करें और उस पर आरोहण करें। कुछ कुशोंको उसके पैरोंके नीचे डाल देना चाहिये। शवके केशोंको प्रसारित करके उसकी चोटी बाँध देवें। उसके शरीरको देवस्वरूप मान कर पूजें और बादमें उत्थित हो कर 'भीम-भीरु-भयाभाव', इस मन्त्रका पाठ करें। उसके पैरोंके तले त्रिकोणयन्त्र लिखना चाहिये।

"तेनोत्थातुं न शक्नोति शवश्च निश्चलो भवेत्।
उपविश्य पुनस्तत्र बाहू निःसार्य पादयोः॥
हस्तयो कुशमास्तीर्य पादो तत्र निधापयेत्।
ओष्ठौ तु संपुटी कृत्वा स्थिरचित्त स्थिरेन्द्रियः॥
सदा देवीं हृदि ध्यात्वा मौनीजपमथाचरेत्।
चलासनात् भयं नास्ति भये जाते भयेत्तुतम्॥
यत्प्रार्थयसि देवेशि दातव्यं कुंजरादिकम्।
दिनान्तरे च दास्यामि स्वनाम कथयस्व मे॥
इत्युक्त्वा संस्कृतेनैव निर्भयस्तु पुनर्जपेत्।
ततश्चेन्मधुरं वक्ति वक्तव्यं लीलया नरै॥
ततः सत्यं कारयित्वा वरन्तु प्रार्थयेन्नरः।
यदि सत्यं न कुर्याच्च वरं वा न प्रयच्छति॥
तदा पुनर्जपेद्धीमान् एकाग्रयतमानसः।
सत्ये कृते वरं लब्धा संत्यजेत्तु जपादिकम्॥
फलं जातमिदं ज्ञात्वा छुटिकां मोचयत्ततः।
शवं प्रक्षाल्य संस्थाप्य मोचयेत् पादबन्धनम्॥
पादचक्रं मोचयित्वा पूजाद्रव्यं जले क्षिपेत्।
शवं जले च गर्ते वा निःक्षिप्य स्नानमाचरेत्॥
ततश्च स्वगृहं गत्वा वलिं दत्वा दिनान्तरे।
पूजयित्वा ततो देवीं याचितोहं वलिप्रियम्॥
तेन गृह्णन्तु सर्वे च मया दत्तमिदं वलिम्।
परेऽह्नि नित्यमाचार्यः पञ्चगव्यं पिबेत्ततः॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्तत्र पंचविंशतिसंख्यकान्।
सप्तपंचविहीनं वा क्रमाच्चैव दशावधि॥
ततः स्नात्वा च भुक्त्वा च निवसेदुत्तमे स्थले।
यदि न स्यात् विप्रभोज्यं तदा निधनितां व्रजेत्॥
तेन चेन्निधनं नस्यात् तदा दवी प्रकुप्यति।
त्रिरात्रं वा षड्रात्रं वा नवरात्रं च गोपयेत्॥
स्त्री-शय्या यदि गच्छेत्तु तदा व्याधिं विनिर्दिशेत्।

---

* "यष्टिविद्धं शूलविद्धं खड्गविद्धं पयोमृतम्।
वज्रविद्धं सर्पदष्टं चांडालंचाभिभूतकम्॥
तरुणं सुन्दरं शूरं रणे नष्टं समुज्वलम्।
पलायनविशून्यं च सम्मुखे रणवर्तिनम्॥"
(तन्त्रसारधृत भावचूड़ामणि)

गीतं श्रुत्वा च वधिरो निश्चक्षु नृत्यदर्शनात् ॥
यदि वक्ति दिवा वाक्य तदास्य मूकतां व्रजेत् ।
पंचदश दिनं यावत् देहे देवस्य संस्थितिः ॥
ना स्वीकुर्यात् गन्धपुष्पे वहिर्याति यदा भवेत् ।
तदा वस्त्रं परित्यज्य गृह्णीयाद्वसनान्तरम् ॥
गोब्राह्मणविनिन्दांच न कुर्य्याच्च कदाचन ।
देवगोब्राह्मणादींश्च संस्पृशेत् प्रत्यहं शुचिः ॥
प्रातर्नित्यक्रियान्ते च विल्वपत्रोदकं पिवेत् ।
ततः स्नात्वा च गंगायां प्राप्ते षोडशवासरे ॥
स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य तर्पणान्ते नमः प्रदम् ।
एवं शतत्रयादूर्द्ध्वं देवं वै तर्पयेज्जले ॥
स्नानतर्पणशून्यन्तु नश्यादेवस्य तर्पणम् ।
इत्यनेन विधानेन सिद्धिं प्राप्नोति साधकः ॥
इति भुक्त्वा वरान् भोगान् अन्ते याति हरेः पदम् ॥"

पैरों तले त्रिकोणयन्त्र लिखनेके बाद उत्थान करनेको शक्त होवें और शव भी निश्चल होवेगा । पुनः उस पर उपवेशन करके पाद द्वारा दोनों बाहुओंको निकालें और उस पर कुश बिछा कर पैरोंको स्थापित करें । ओठोंको संपुट करके स्थिरचित्त और स्थिरेन्द्रिय होवें । इस प्रकार अनन्यचित्तसे हृदयमें देवीका ध्यान कर जप करें । इस प्रकारके अनुष्ठान करनेसे यदि आसन चञ्चल होवे, तो डरना न चाहिये । भय होने पर उसकी पूजा करें और कहें कि "हे देवेशि ! तुम जो चाहती हो, दिनके अन्त होने पर उसे मैं तुम्हें वही दूंगा । तुम अपना नाम प्रकट करो ।" संस्कृतमें उसको यह बात कह कर निर्भयतासे पुनः जप करें । उसके बाद यदि वह मधुरवाक्य न कहें, तो साधकको उचित है कि, सत्य करा कर उनसे वर-प्रार्थना करें । यदि वह सत्य न करें वा वर न दें, तो साधक पुनः अनन्यचित्तसे जप करना शुरू कर दें । पुनः ऐसा होने पर जब वह सत्य करें और वर दें, उसके बाद उस वरको ले कर साधक जप करना छोड़ दें । उसके बाद फल प्राप्त हो गया—ऐसा समझ कर चोटी खोल दें । पीछे शवको प्रक्षालित करके संस्थापन पूर्वक पादबन्धन मोचन करावें और पादचक्र मोचन करा कर पूजा-द्रव्यको जलमें निक्षेप करें । उसके बाद शवको पानी वा गड्ढेमें फेंक कर स्नान करके घरको लौट जांय ।

दिनके अन्तमें साधक देवीकी पूजा करके वलिप्रदान करें और प्रार्थना करें कि—हे देवि ! मेरे द्वारा प्रदत्त वलिको ग्रहण कीजिये । दूसरे दिन पञ्चगव्य पान कर पचीस ब्राह्मणोंको जिमावें । तदनन्तर स्नान और भोजन करके उत्तम स्थानमें वास करें । साधक यदि ब्राह्मणभोजन न करावें तो वह निर्धन होता है और यदि निर्धन भी न हो तो देवी उस पर कुपित होती हैं । ३ दिन, ६ दिन वा ७ दिन तक इसको गुप्त रखना चाहिये । साधक यदि स्त्रीकी शय्या पर गमन करें, तो उसको व्याधि होती है तथा गीत सुननेसे बहरा, नाच देखनेसे अन्धा और दिनको बोलनेसे गूंगा होता है । इस प्रकारसे पन्द्रह दिन बिताने चाहिये । क्यों कि पन्द्रह दिन तक शरीरमें देवताका संस्थान रहता है । इन पन्द्रह दिनोंमें गन्दे वस्त्रोंका व्यवहार न करना चाहिये । बाहर जाना हो तो वस्त्र बदल कर जावें । गऊ और ब्राह्मणको कभी निन्दा न करें । देवता, गऊ और ब्राह्मणका प्रतिदिन स्पर्श करें । प्रातःकालमें नित्य-क्रिया करनेके उपरान्त विल्वपत्रोदक पान करें । पश्चात् १६वें दिन गङ्गा-स्नान कर स्वाहान्त मूल उच्चारणपूर्वक तर्पण करें और तर्पण कर चुकने पर नमः पद-प्रयोग करें ।

इस प्रकारसे तीन सौसे ऊर्द्ध जलमें देवतर्पण करें । स्नान करके ऐसा तर्पण न करनेसे, देवतर्पण न होगा । साधकको ऐसा आचरण करने पर अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होगी । इस तरह सिद्धिलाभ करनेसे इस संसारमें विविध भोग और अन्तमें स्वर्गमें गमन होता है । (नीलतन्त्र)

तन्त्रके मतसे सृष्टितत्त्व—

"निराकारं निर्गुणंच स्तुतिनिन्दाविवर्जितम् ।
सुनित्यं सर्वकर्त्तारं वर्णातीतं सुनिश्चलम् ॥
संज्ञाविरहितं शान्तं किमाकारं प्रतिष्ठितं ।
तस्मादुत्पत्तिर्देवेश किमाकारेण जायते ॥

शंकर उवाच —

शृणु देवि परं तत्त्वं वर्णातीतां च वैखरीं ।
गुणालयां गुणातीतां स्तुतिनिन्दादिवर्जिताम् ॥
आकाररहितां नित्यां रोगशोकादिवर्जिताम् ।

पूजायोगं च देवेशि स्वयमुत्पत्तिकारणम् ॥
येन रूपेण ब्रह्माण्डा जायन्ते शृणु तत् शिवे ।
आकाशाज्जायते वायुर्वायोरुत्पद्यते रविः ॥
रवेरुत्पद्यते तोयं तोयादुत्पद्यते मही ।
पंचभूतेषु ब्रह्माण्डा भवेयुः पर्वतात्मजे ॥
ब्रह्माण्डस्थापनार्थाय कूर्मपृष्ठे ह्यनन्तकः ।
तन्मूर्ध्नि वायुराकारा ब्रह्माण्डा बहवः स्थिताः ॥
कारण्य वारिमध्येतु कूर्मश्चरति नित्यशः ।
अहमेव त्रिशूलेन पालयामि पुनः पुनः ॥"

हे देवेश ! निराकार, निर्गुण, स्तुतिनिन्दाविवर्जित, वर्णातीत, सुनिश्चल, संज्ञाविरहित यह किस आकारमें प्रतिष्ठित है और कहाँसे इसकी उत्पत्ति हुई है तथा उत्पत्ति हुई तो किस आकारमें हुई ? यह सब कह कर मेरा संशय दूर कीजिये। महादेवने पार्वतीके प्रश्नके उत्तरमें कहा—हे पार्वति ! श्रेष्ठतत्त्व का मैं वर्णन करता हूं और जिस तरहसे इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई है, उसकी कथा भी कहता हूं, तुम ध्यान दे कर सुनो।

गुणालया, गुणातीता, स्तुति और निन्दाविवर्जिता, आकाररहिता, नित्या, रोगशोकविवर्जिता शक्ति स्वयं ही उत्पत्तिका कारण है, उसके बाद जिस तरह ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई है, वह कहता हूं। पहले आकाशसे वायु, वायुसे रवि, रविसे जल, जलसे मही वा पृथिवी उत्पन्न हुई है। ये पाँच पञ्चभूत हैं, इन्हीं पञ्चभूतोंसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई है। कूर्म पृष्ठ पर ब्रह्माण्ड संस्थापित है तथा अनन्तके मस्तक पर वालुकाकार अनेक ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं। कारण-वारिमें कूर्म विचरण करते हैं, मैं त्रिशूल द्वारा पुनः पुनः पालन करता हूं।

'श्रीचण्डिकोवाच ।
कथं वा लभते जन्म कथं मृत्युर्भवेत् प्रभो ।
तत्प्रकारं महादेव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥
श्रीशंकर उवाच ।
इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते ।
जीवस्तृणजलौकेव देहाद्देहान्तरं व्रजेत् ॥
संप्राप्य चोत्तमं देहं देहं त्यजति पूर्वकम् ।
इति श्रुत्वा च सा चण्डी पप्रच्छ परमेश्वरम् ॥
श्रीचंडिकोवाच ।
प्राप्तंचोत्तरदेहस्तु पिंडदानादिकं कथम् ।
शिव उवाच ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मायादेहं तदेवहि ।
मायादेहं परमेशानि वायुरूपेन चान्यथा ॥
वायुरूपो यतो देह आकाशस्थो निराश्रयः ।
ततश्च पिण्डदानेन वायुः स्थिरतरो भवेत् ॥
प्रथमे मस्तकं देवि जायते च क्रमावधि ।
ततो यमपुरं गत्वा धर्माधर्मादिकं च यत् ॥
तद्भुक्त्वा चापरे किंचित् यदा कर्म न विद्यते ।
तदाज्ञया तदा जीवः प्रययौ ब्रह्मशासनम् ॥
तस्मात् कर्मानुसारेण यदिस्याद्दुर्लभां तनुम् ।
महाविद्यां भाग्यवशात् यदि प्राप्नोसि सद्गुरुम् ॥
तत्त्वज्ञानं महेशानि यदि भाग्यवशाल्लभेत् ।
तदेव परमं मोक्षं यावद्ब्रह्माण्डं तिष्ठति ॥
ब्राह्मणस्य महामोक्षं सायुज्यं क्षत्रियस्य च ।
सारूप्यं चोरुजातस्य शूद्रस्य सहलौकिकम् ॥
महाविद्याप्रसादेन पुनरागमनं नहि ।
बृहत्ब्रह्मांड नाशे तु सर्वमोक्षं यदा शिव ॥
तदा सर्वस्य निर्वाणं भवत्येव न संशयः ।
श्रीचंडिकोवाच ।
बृहत्ब्रह्माण्डवाह्ये तु किं पुनः परमेश्वर ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥
शिव उवाच ।
ब्रह्माण्डस्य वाह्य देहो ब्रह्माण्डो बहवः स्थिताः ।
अनन्तस्य प्रमाणन्तु किं वक्तुं शक्यते मया ॥
स एव निर्मितं सर्वं सैव सर्वं महेश्वरि ।"

मनुष्य कैसे तो जन्म लेते हैं और कैसे उनकी मृत्यु होती है इस विषयकी सुननेकी मेरी बड़ी इच्छा हुई है। हे शिव ! आप इसका यथार्थ विवरण कहिये। महादेव पार्वतीसे कहने लगे—"हे शिवे ! मनुष्य इस जगत्में जो कर्म करते हैं, अर्थात् पाप और पुण्यका जैसा अनुष्ठान करते हैं, उन्हीं कर्मोंके अनुसार परलोकमें स्वर्ग नरकादि भोग करते हैं। जोंक जैसे तृणसे तृणान्तरको गमन करती है, उसी प्रकार जीव भी देहसे देहान्तरको गमन करता रहता है। जैसे जोंक एक तृणका बिना आश्रय लिये पहला तृण नहीं छोड़ सकती, उसी प्रकार जीव भी

एक शरीरका विना आश्रय लिए पहिला शरीर नहीं त्यागता।" पार्वतीने महादेवकी इस बातको सुन कर कहा—"यदि जीव दूसरी एक देहको ग्रहण विना किये पूर्वदेहको नहीं छोड़ते, तो मृत व्यक्तिका पिण्डादि ग्रहण कैसे होता है? आप अनुग्रहपूर्वक मेरे इस संशयको भी दूर कीजिये।" महादेव बोले—हे शिवे! मृत्युके समय मायादेह होती है, मायारूप देह वायुस्वरूप है, यह मायादेह आकाशस्थित हो कर निराश्रय भावसे रहती है। जब तक पिण्डदान नहीं दिया जाता, तब तक वह इसी तरह निराश्रय रहती है।

उसके बाद मृत व्यक्तिको पिण्डदान दिये जाने पर वह वायु स्थिर होती है और क्रमसे मस्तक उत्पन्न हो कर अन्यान्य अवयव सब उत्पन्न होते हैं। पीछे यमपुरको जा कर पाप और पुण्य जो कुछ होता है, उसको भोगता है। पाप और पुण्य रहनेसे स्वर्ग और नरक भोगता है। उनका भोग हो जाने पर जब कोई कर्म बाकी नहीं रह जाते, तब जीव यमकी आज्ञाके अनुसार ब्रह्मशासनको गमन करता है। पीछे कर्मानुसार उत्तमा आदि तनु लाभ करता है।

किन्तु यदि कोई भाग्यक्रमसे सद्गुरु, महाविद्या वा तत्त्वज्ञान प्राप्त कर ले, तो वह जब तक इस ब्रह्माण्डमें रहता है, तब तक मोक्ष लाभ करता है। इनमें ब्राह्मण महामोक्ष, क्षत्रिय सायुज्य, वैश्य सारूप्य और शूद्र सालोक्य पाते हैं। महाविद्याके प्रभावसे पुनरागमन नहीं होता। हे शिवे! जिस समय इस वृहत् ब्रह्माण्डका नाश होगा, उस समय सभी जीव मुक्त होवेंगे। इस ब्रह्माण्डको वाह्य-देह और ब्रह्माण्ड अनेक हैं, ब्रह्माण्ड भी अनन्त हैं। इस अनन्तका प्रमाण कहनेको क्या कोई समर्थ है?

"प्रकृत्या जायते पुंसां प्रकृत्या सृज्यते जगत्।
तोयात्तुबुद्बुदं देवि यथातोये विलीयते॥
प्रकृत्या जायते सर्वं प्रकृत्या सृज्यते जगत्।
तोयात्तुबुद्बुदं देवि यथा तोये विलीयते॥
तस्मात् प्रकृतियोगेन जायते नान्यथा क्वचित्।
ब्रह्मा विष्णु शिवो देवि प्रकृत्या जायते ध्रुवम्॥
तथा प्रलयकालेतु प्रकृत्या लुप्यते पुनः।"

(निर्वाणतन्त्र)

प्रकृतिसे ही समस्त पुरुष जन्मग्रहण करते हैं, प्रकृतिसे ही जगत्की उत्पत्ति है। जैसे जलसे बुद्बुदे होते और फिर विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रकृतिसे ही सब उत्पन्न होते और उसीसे लय हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर प्रकृतिसे ही उत्पन्न हुए हैं तथा प्रकृतिमें ही लीन हो जायगे। प्रलयकालके उपस्थित होने पर यह ब्रह्माण्ड प्रकृतिमें ही विलुप्त हो जायगा।

तान्त्रिकतत्त्व—

"स्त्रीरूपां वा स्मरेत्देवी पुंरूपां वा स्मरेत् प्रिये।
स्मरेद्वा निष्कलं ब्रह्म सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥
नेयं योषिन्न च पुमान् न षण्डो न जडः स्मृतः।
तथापि कल्पवल्लीवत् स्त्रीशब्देन च युज्यते॥
साधकानां हितार्थाय अरूपा रूपधारिणी।"

वह सच्चिदानन्दरूपिणी देवी चाहे स्त्रीरूपमें हो वा पुरुषरूपमें और चाहे निष्कल ब्रह्मभावमें ही हो-उनका स्मरण करना चाहिये। वास्तवमें वह न तो स्त्री हैं, न पुरुष और न षण्ड अथवा जड़ ही हैं। तथापि कल्पलता जैसे स्त्रीवाचक है, उसी तरह उनमें भी स्त्री शब्दका प्रयोग करना चाहिये। उनका रूप नहीं है, वह साधकोंके मङ्गलके लिए रूपधारिणी हैं।

प्रपञ्चसारमें लिखा है—

"तामेतां कुण्डलील्येके सन्तो हृदयनां विदुः।
सा रौति सततं देवी भृंगीसंगीतकध्वनिम्॥"

वह महाशक्ति कुलकुण्डलिनी योगीन्द्रोंके हृदयको आश्रय कर रहती हैं, तथा वह ही जीवके मूलाधारमें निरत हो भ्रमरसङ्गीतवत् गुन् गुन् ध्वनि करती हैं।

सारदातिलकमें कहा गया है—

"योगिणां हृदयाम्भोजे नृत्यन्ती नृत्यमञ्जसा।
आधारे सर्वभूतानां स्फुरन्ती विद्युदाकृतिः॥
शंखावर्तक्रमात्देवी सर्वमावृत्य तिष्ठति।
कुंडलीभूतसर्पाणामंगश्रियमुपेयुषी॥
सर्ववेदमयी देवी सर्वमन्त्रमयी शिवा।
सर्वतत्त्वमयी साक्षात् सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरा विभुः।
त्रिधामजननी देवी शब्दब्रह्मस्वरूपिणी॥"

वे योगियोंके हृदयकमलमें अपना अपना रूप प्रकाश कर अपने आनन्दमें नृत्य करती हैं। सर्वभूत-

के आधार और विद्युत्‌के आधार पर स्फूर्ति पाती हैं, वे साढ़े त्रिवलयाकारमें सबका आश्रय ले कर अवस्थान करती हैं। वह देवी कुण्डलीभूत सर्पोंकी अङ्गधारिणी, सर्ववेदमयी, सर्वमन्त्रमयी, सर्वतत्त्वमयी, सूक्ष्मसे सूक्ष्म, त्रिलोकजननी और शब्दब्रह्मस्वरूपिणी हैं।

कुलार्णवमें लिखा है—

"यः शिवः सर्वगः सूक्ष्मो निष्कलश्चोन्मनाऽव्ययः।
व्योमाकारोह्यजोऽनन्तः स कथं पूज्यते प्रिये॥
अतएव गुरुः साक्षाद् गुरुजपः समाश्रितः।
भक्त्या संपूजयेत्‌देवि! भुक्तिं मुक्तिं प्रयच्छति॥
शिवोऽहमाकृतिर्देवि! नरदृग्गोचरा नहि।
तस्मात् श्रीगुरुरूपेण शिष्यान् रक्षामि सर्वदा।
मनुष्यचर्मणा नद्धः साक्षात् परशिवः स्वयं॥
स्वशिष्यानुग्रहार्थाय गूढ़ं पर्यटति क्षितौ॥
सद्भक्तरक्षणार्थाय निरहंकारमाकृतिः।
शिवः कृपानिधिर्लोके संसारीवहिचेष्टितः॥"

जो शिव अर्थात् ईश्वर सर्वग, निष्कल, उन्मना, अव्यय, व्योमाकार, अज और अनन्त हैं, उनकी कैसे पूजा की जायगी? इसीलिए परमगुरु स्वयं शिवने मानवगुरुरूपका आश्रय लिया है। देवि! उन परमगुरुकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे साधक मोक्ष प्राप्त करता है। देवि! यद्यपि मैं स्थूलरूप ग्रहण कर इस शिवमूर्तिमें हूं, किन्तु यह तेजोमय मूर्ति मनुष्यके नयनगोचर होनेके योग्य नहीं; इसलिए नरलोकमें गुरुरूप अवलम्बन कर मैं शिष्यकुलकी सर्वदा रक्षा करता हूं। मनुष्यचर्मसे आवृत हो कर साक्षात् परमशिव सुशिष्यवर्ग पर अनुग्रह करनेके लिए गूढ़रूपसे पृथिवी पर भ्रमण करते हैं।

इसीलिए तान्त्रिक गुरुओंका इतना आदर देखनेमें आता है और सबसे पहले उनकी पूजा होती है।

तन्त्रके मतसे कन्या पुरुषका जन्मवृत्तान्त।

"कथं वा जायते पुत्रः शुक्रस्य कुत्र वा स्थितिः।
पद्ममध्ये गते शुक्रे सन्ततिस्तेन जायते॥
पुरुषस्य च यच्छुक्रं शुक्रं वा चाधिकं भवेत्।
तदा कन्या भवेत्‌देवि विपरीतात् पुमान् भवेत्॥
उभयोस्तुल्यशुक्रेन क्लीवं भवति निश्चितम्।"

(मातृकाभेदतन्त्र)

स्त्री और पुरुषके सहयोगसे पुत्र-कन्यादिकी उत्पत्ति होती है। पुरुषके सहवाससे स्त्रीके गर्भ-पद्ममें शुक्र अवस्थित होता है, इस प्रकारसे पुरुषका वीर्य अधिक होने पर कन्या, स्त्रीका रज अधिक होने पर पुत्र तथा रज और वीर्य समान होने पर क्लीव (नपुंसक)-की उत्पत्ति होती है।

इस मतका आयुर्वेद आदिसे विरोध पाया जाता है।

बृहत्ब्रह्माण्डतत्त्व। महानिर्वाणतन्त्रमें बृहत्‌ब्रह्माण्डका स्वरूप इस प्रकार निरूपित हुआ है—

पहले मेरुपर्वत है, यहाँ समस्त देवताओंका वास है, इसके मध्यदेशमें महाघोरा नदी प्रवाहित है। इस सुमेरुके ऊर्द्धदेशमें सत्यलोक और अधोभागमें रसातल है। इस तरह मेरुके मध्य चौदह लोक और सात पाताल विद्यमान हैं। उसके ऊर्द्धमें ब्रह्मपद्म है। उस चतुर्दशदल पद्मके नीचेके बीजकोषमें मनोहर वलयाकार सप्तसमुद्रवेष्टित क्षितिचक्र अवस्थित है। उस क्षितिचक्रके बीचमें चतुष्कोण और मनोहर जम्बूद्वीप है, जिसके चारों तरफ नीलाचल, मन्दर, चन्द्रशेखर, हिमालय, सुवेल, मलय और भस्माचल पर्वत हैं। इन सब पर्वतोंकी शिखरोंसे तृणगुल्मलताकीर्ण नाना प्रकारके पर्वत निकले हैं।

उक्त पद्मके ऊर्द्धभागमें षड़्पत्र और चतुर्द्वारभूषित भौम नामका एक पद्म है, उसके बीचके राजकोषमें मनोहर सिन्दूरवर्ण भुवर्लोक है। यहाँ लक्ष्मी सरस्वतीके सहित विष्णु वास करते हैं। इसीका अपर नाम वैकुण्ठ है। वैकुण्ठके दक्षिणमें गोलोक है, यहां राधिकादेवी और द्विभुज मुरलीधर श्रीकृष्ण अवस्थान करते हैं। इसके भीतर और बाहर ज्योतिर्मण्डल है; यहाँ इन्द्रादि देवता रहते हैं।

बीजकोषके बाहर जलमण्डल है। वहाँ गङ्गादि नदी प्रवाहित हैं। इस पद्मके ऊर्द्धदेशमें दशपत्र नीलवर्ण व्योमरूप और जलयुक्त दुर्लभ महापद्म है, जिसका अपर नाम है स्वर्लोक। यहीं रुद्रालय है और भद्रकाली आदि वास करती हैं। इस पद्मके ऊर्द्धदेशमें द्वादशपत्रशोभित शोनवर्ण पद्मसुन्दर है, जो महर्लोक कहलाता है। यहाँ ईश्वरकी बाईं ओर महाविद्या अवस्थान करती है। इस मह

लोकका माहात्म्य गोलोकसे भी सौगुना है। इसके ऊपर षोड़शपत्रयुक्त मोहान्धकारनाशक निर्मल पद्म है जो यमलोक कहलाता है। यहाँ बाईं ओर गौरी और दाहिनी ओर सदाशिव विराजमान हैं। इस पद्मके ऊपर पत्रद्वयसमन्वित ज्ञानपद्म है, जो तपोलोक कहलाता है। यहाँ शिवकी बाईं ओर सदानन्दरूपिणी सिद्धकाली अवस्थान करती हैं।

"तपोलोकं गोलोकस्य चतुर्लक्षगुणं शिवे ।
ब्रह्मलोकेषु ये देवा वैकुंठे ये सुरादयः ॥
तपसापि न लभ्येत तपोलोकमतः शिवे ।
तपोलोकसमा नास्ति लोकमध्ये सुलोचने ।
सालोक्यं महर्लोकं स्यात् सारूप्यं जनलोकके ॥
सायुज्यं तपोलोकेषु निर्वाणं हि तदूर्ध्वगे ॥
अतो ब्रह्मादयो देवास्तपोलोकार्थिनः सदा ।
तस्य लोकस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥"

तपोलोक गोलोककी अपेक्षा चार लाख गुना प्रधान है। ब्रह्मलोक और वैकुण्ठस्थित देवगण भी तपस्याके द्वारा इस भवलोकको नहीं पाते। इस तपोलोकके समान दूसरा कोई लोक नहीं है। महर्लोकमें सालोक्य, जनलोकमें सारूप्य और इस तपोलोकमें सायुज्यलाभ होता है। इसके बाद ही निर्वाण है। ब्रह्मादि सभी देवता इस तपोलोककी प्रार्थना करते हैं। इस लोकका माहात्म्य करनेमें मैं समर्थ नहीं हूं।

"किमाकारन्तु ब्रह्माण्डं तन्मे ब्रूहि महेश्वर ।
सृष्टिप्रकारं तन्मध्ये किमाकारं हि तत्त्ववित् ॥

शंकर उवाच—

जन्तोराकारं ब्रह्माण्डं नानाविग्रहं पार्वति ॥
ब्रह्माण्डं विग्रहं प्रोक्तं स्थूलक्षुद्रादिकं हि तत् ।
मेरुः पर्वतस्तन्मध्ये तथा सप्तकुलाचलाः ॥
मूलादिमस्तकान्तं वै सुमेरुर्नाम पर्वतः ।
स्थितं मेरोरधोभागेद्व्यंगुल्याश्चोर्धदेशतः ॥
भूर्लोकादि महेशानि सप्तस्वर्गक्रमेण हि ।
द्व्यंगुल्याः सप्तपातालास्तिष्ठन्ति परमेश्वरि ॥
सत्यलोके निराकारा महाज्योतिःस्वरूपिणी ।
माययाच्छादितात्मानं चनकाकाररूपिणी ॥
हस्तपादादिरहिता चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।
मायावल्कलसंत्यज्या द्विधा भिन्ना यदोन्मुखी ।
शिवशक्तिविभागेन जायते सृष्टिकल्पना ।
प्रथमे जायते पुत्रो ब्रह्मसंज्ञो हि पार्वति ॥"

ब्रह्माण्डका आकार कैसा है और सृष्टि किस तरह होती है? पार्वतीने महादेवसे ऐसा प्रश्न किया। उत्तरमें महादेवने कहा—"हे पार्वति! नाना विग्रहविशिष्ट जन्तुका आकार ही ब्रह्माण्ड है तथा स्थूल-सूक्ष्मादि विग्रह ही ब्रह्माण्ड कहलाता है। उसमें मेरुपर्वत और सप्तकुलाचल (महेन्द्र, मलय, सह्य. शुक्तिमान, ऋक्षपर्वत, विन्ध्य, पारियात्र-ये ७ कुलपर्वत हैं) मूल आदिसे ले कर मस्तक पर्यन्त सुमेरु पर्वत है। मेरुके ऊर्ध्वदेशमें भूर्लोकादि सप्तस्वर्ग, और अधोभागमें सप्त पाताल हैं। सत्यलोकमें आकाररहित महाज्योतिःस्वरूपिणी महाशक्ति मायाके द्वारा आत्माको आच्छादित कर रखा है। यह महाशक्ति चनकाकाररूपिणी तथा हस्तपदादिरहिता और चन्द्र-सूर्याग्निस्वरूपिणी हैं। यह महाशक्ति मायारूप वल्कलका परित्याग कर स्वयं अपनेको दो भागोंमें विभक्त करती हैं। उस समय शिव और शक्ति विभागसे पहले सृष्टिकी कल्पना होती है तथा उसी समय प्रथम पुत्र होता है जिसका नाम है ब्रह्मा।

"शृणु पुत्र महावीर विवाहं कुरु यत्नतः ।
एतच्छ्रुत्वा ततो ब्रह्मा उवाच सादरं प्रिये ॥
त्वां विना जननी नास्ति शक्तिं मे देहि सुन्दरीम् ।
तच्छ्रुत्वा जगतां माता स्वदेहान्मोहिनीं ददौ ॥
द्वितीया सा महाविद्या सावित्री परमा कला ।
अस्याः संगं समासाद्य वेदविस्तारणं कुरु ॥
अनायासं सृष्टिकर्ता भव त्वं महीमण्डले ॥"

इस प्रकार ब्रह्माके उत्पन्न होने पर महाशक्तिने उनसे कहा—"हे महावीर! तुम विवाह करो।" ब्रह्माने शक्तिको इसके उत्तरमें कहा—"आपके सिवा मेरी और कोई भी जननी नहीं है, मैं विवाह न करूंगा। आप मुझे शक्ति प्रदान करें।" इस पर महाशक्तिने अपने शरीरसे मोहिनीशक्ति उत्पन्न कर ब्रह्माको दी और कहा—"यह शक्ति द्वितीय महाविद्या और परमकला हैं, उसका नाम है सावित्री। तुम इसका सङ्ग करके वेदविस्तार करो। इस महीमण्डल पर तुम अनायास ही सृष्टिकर्ता होओगे।"

"द्वितीये जायते पुत्रो विष्णुः सत्वगुणाश्रयः ।
शृणु पुत्र महावीर ! विवाहं कुरु यत्नतः ॥
तव दर्शणमात्रेण निष्कामी जायते पुंमान ।
कथं करोमि हे मातः मोहिनीं देहि मे शिवे ॥
देहाच्छक्तिञ्च निर्गत्य ददौ तस्मै च कालिका ।
श्रीवैष्णवीं महाविद्यां श्रीविद्यां परमेश्वरीम् ॥
तामाश्रित्य महाविष्णुः पालयत्यखिलं जगत् ।
तृतीये जायते पुत्रो महायोगी सदाशिवः ॥
तं दृष्ट्वा सा महाकाली तुष्टियुक्ताभवन् मुदा ।
शृणु पुत्र महायोगिन् मद्वाक्यं हृदये कुरु ॥
त्वां विना पुरुषो कोवा मां विना कापि मोहिनी ।
अतस्त्वं परमानन्द विवाहं कुरु मे शिव ॥
शिव उवाच—
यदुक्तं मयि हे मातस्त्वां विना नास्ति मोहिनीं ।
सत्यमेतज्जगन्मातः मां विना पुरुषो न च ।
अस्मिन् देहे संस्थिते च न करोमि विवाहकम् ।
कुरु देहान्तरं मातः करुणा यदि वर्त्तते ।
तत्क्षणे सा महाकाली ददौ भुवनसुन्दरीम् ॥
तामाश्रित्य महायोगी संहरत्यखिलं जगत् ।
शम्भोरष्टविभागश्च शक्तिश्चाष्टविधा भवेत् ॥
कालिकाद्या महाविद्या ह्यनेन परमेश्वरि ।
इति ते कथितं कान्ते यथा ब्रह्मनिरूपणम् ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन विद्योत्पत्तिर्यथा प्रिये ॥"

उनके बाद द्वितीय पुत्र हुये। जिनका नाम विष्णु है ; ये अत्यन्त सत्वगुणप्रधान हैं। इन विष्णुके उत्पन्न होने पर महामायाने उनसे कहा—"हे पुत्र ! तुम विवाह करो, क्योंकि तुम्हारे दर्शनमात्रसे लोग निष्कामी होंगे।' विष्णुने उत्तर दिया— 'हे मातः ! कैसे मैं विवाह करूं ? आप मुझे मोहिनीशक्ति प्रदान करें।" इस पर महाकालीने अपने शरीरसे शक्ति निकाल कर उनको दी और कहा—"इस शक्तिका नाम वैष्णवी और श्रीविद्या है। तुम इस शक्तिका आश्रय ले कर जगत्का पालन करना।" विष्णु इसमें प्रवृत्त हुए। पश्चात् तृतीय पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका नाम था सदाशिव, ये महायोगी थे। इनको देख कर महाकाली अत्यन्त प्रफुल्लित हुईं। उन्होंने सदाशिवसे कहा—"हे पुत्र ! मैं तुमसे जो कुछ कहती हूं, तुम उसका अनुष्ठान करो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पुरुष नहीं है और न मेरे सिवा अन्य कोई स्त्री ही है, इसलिए तुम मेरे साथ विवाह करो।" महादेवने उत्तर दिया— 'हे मात ! आपके सिवा अन्य स्त्री अथवा मेरे सिवा अन्य पुरुष नहीं, यह सत्य है; किन्तु जब तक आपकी यह देह रहेगी, तब तक मैं आपसे विवाह न कर सकूंगा। यदि मुझ पर आपकी करुणा है, तो आप इस देहको छोड़ कर अन्य शरीर धारण कीजिये।" इस पर महाशक्तिने भुवनसुन्दरीका रूप धारण किया। भुवनसुन्दरी और महाशक्ति एक ही हैं। महायोगी शिवने इन भुवनसुन्दरीका आश्रय ले कर अखिल जगत्का संहार किया। शिवके ८ विभाग हैं, महाशक्ति भी काली, तारा आदिके भेदसे आठ भागोंमें विभक्त हैं। हे पार्वति ! इसीको ब्रह्मका स्वरूप समझो। यह अत्यन्त गोपनीय है।

"श्रीचण्डिकोवाच ।
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं नाथ परं ब्रह्मनिरूपणम् ।
इदानिं श्रोतुमिच्छामि क्षितौ सृष्टिर्यता भवेत् ॥
श्रीशिव उवाच ।
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यथा सृष्टिः प्रजायते ।
सत्यलोके महाकाली महारुद्रेण संयुता ॥
चनकाकृतिविस्तारा चन्द्रसूर्यादिरूपिका ।
अनादिरूपसंयुक्ता तदंशा जीवसंज्ञकाः ।
ज्वलदग्नेर्यथा देवी स्फुरन्ति विस्फुलिंगकाः ।
तस्याश्च्युतं परं ब्रह्म यदा भूमौ पतत्यपि ॥
तदैव सहसा देवि शक्त्यायुक्तो भवत्यपि ।
स्थावरादिषु कीटेषु पशुपक्षिषु शैलजे ।
चतुरशीतिलक्षं वै जन्म चाप्नोति सोऽव्ययः ।
ततो लभेत् परेशानि मनुष्यां दुर्लभां तनुम् ॥
यतो मानुषदेहस्तु धर्माधर्माधिपश्च सः ।
ततोऽपि लभते जन्म पुनर्मृत्युमवाप्नुयात् ॥
जायन्ते च मृयन्ते च कर्मपाशनियन्त्रिताः ।
चतुरशीतिसहस्रेषु नानायोनिषु शैलजे ॥"

हे देवदेव ! तुम्हारे प्रसादसे मुझे परब्रह्मतत्त्व ज्ञात हुआ, अब इस क्षितितलमें किस प्रकार सृष्टि होती है यह जानना चाहती हूं। महादेवने कहा—हे देवि !

सत्यलोकमें महाकाली महारुद्र द्वारा संपुटित हुईं। यह महाकाली चन्द्रसूर्याग्नि रूपविशिष्टा, अनादि रूपसंयुक्ता और चनककी भाँति आकृतिविशिष्टा हैं। समस्त जीव इन महाकालीके अंशमात्र हैं। जिस तरह ज्वलदग्निके विस्फुलिङ्ग स्फुरित होते हैं, किन्तु वे अग्निसे भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार जीव भी महाकालीसे भिन्न नहीं उनके अंशमात्र हैं। महाकालीसे जिस समय परब्रह्मच्युत हो कर भूमि पर पड़े, हे देव! उसी समय वे शक्तियुक्त हुए। स्थावरादि कीट और पशुपक्षि आदि चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लिया, उसके बाद दुर्लभ मनुष्यत्व प्राप्त किया. यह मनुष्य-शरीर ही धर्म और अधर्मका आकर है। इस धर्माधर्मके द्वारा मनुष्य एक बार जन्म ले कर फिर मरता है। इस तरह मानव-समूह कर्मपाश द्वारा नियन्त्रित हो कर नाना प्रकारकी योनियोंमें परिभ्रमण करता है।

तन्त्रके मतसे तत्त्वज्ञान—

पञ्चभूत, एक एक भूतके पाँच पाँच करके २५ गुण हैं। अस्थि, मांस, नख, त्वक्, लोम, ये ५ पृथिवीके गुण हैं। शुक्र, शोणित, मज्जा, मल और मूत्र, ये ५ जलके गुण हैं, निद्रा, क्षुधा, तृष्णा, क्लान्ति और आलस्य ये पाँच तेजके गुण हैं। धारण, चालन, क्षेपण, सङ्कोच और प्रसव, ये ५ वायुके गुण हैं। काम, क्रोध, मोह लज्जा और लोभ, ये ५ आकाशके गुण हैं। समुदायमें पञ्चभूतके २५ गुण हैं। यह पञ्चभूत—मही जलमें, जल रविमें, रवि वायुमें और वायु आकाशमें विलीन होती है।

इन पञ्चतत्त्वके बाद भी तत्त्व है—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, ये पाँच इन्द्रियें और मन साधन इन्द्रिय है। यह ब्रह्माण्डलक्षण देहके मध्य व्यवस्थित है, तथा सप्तधातु, आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ये भी शरीरके मध्य अवस्थित हैं। शुक्र, शोणित, मज्जा, मेद, मांस, अस्थि और त्वक् ये सप्तधातु हैं।

शरीर ही आत्मा है, अन्तरात्मा है। मन और परमात्मा शून्यमय है, इस परमात्मामें ही मन विलीन होता है।

रक्तधातु माता शुक्रधातु पिता और शून्यधातु प्राण, इन्हींसे गर्भ पिण्डकी उत्पत्ति होती है।

अव्यक्तसे प्राण, प्राणसे मन और मनसे वाक्यकी उत्पत्ति होती है तथा मन वाक्यके साथ विलीन होता है। सूर्य, चन्द्र, वायु और मन, ये कहां अवस्थान करते हैं? तालुमूलमें चन्द्र, नाभिमूलमें दिवाकर, सूर्यके आगे वायु और चन्द्रके आगे मन तथा सूर्यके आगे चित्त और चन्द्रके आगे जीवन अवस्थित है। किस स्थानमें शक्ति शिव अवस्थान करते हैं? काल कहाँ रहता है और जरा क्यों आती है?

पातालमें शक्ति अवस्थित है, ब्रह्माण्डमें शिव वास करते हैं, अन्तरीक्षमें कालकी अवस्थिति है और इस कालसे ही जराकी उत्पत्ति होती है। कौन तो आहारकी आकाङ्क्षा करता है और कौन पानभोजनादि करता है तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति किसकी होती है और कौन प्रतिबुद्ध होता है?

प्राण आहारकी आकाङ्क्षा करते हैं, हुताशन पानभोजनादि करता है तथा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिमें वायु ही प्रतिबुद्ध होती है।

कौन तो कर्म करता है, कौन पातकमें लिप्त होता है तथा पापका आचरण करनेवाला कौन है और पापोंसे मुक्त कौन होता है? मन पाप-कार्य करता है, मन ही पापमें लिप्त होता है। मन ही तन्मना हो कर पुण्य और पाप उपार्जन करता है। जीव किस प्रकारसे शिव होता है। भ्रान्तियुक्त होने पर उसको जीव कहते हैं, वह जब भ्रान्तिमुक्त हो जाता है, तब उसे शिव कहते हैं। तामस व्यक्ति इस तीर्थके लिये इसी तरह भ्रमण करते रहते हैं। अज्ञानान्ध हो कर आत्मतीर्थसे वाकिफ़ नहीं होते। आत्मतीर्थके विना जाने कैसे मोक्ष हो सकता है?

वेद भी वेद नहीं हैं, अर्थात् ४ वेदोंको वेद नहीं कहा जा सकता, सनातन ब्रह्म ही वेद हैं। चार वेद और समस्त शास्त्रोंके अध्ययन करके योगी उनका सार संग्रह करते हैं, किन्तु पण्डितगण तक्र पीया करते हैं। तप तपस्या नहीं है, ब्रह्मचर्य ही तपस्या है; जो ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ऊर्द्धरेता होते हैं, वे ही तपस्वी हैं।

होम आदि भी होम नहीं हैं, ब्रह्माग्निमें प्राणोंका समर्पण करना ही होम है, मोक्ष लाभ करनेके लिए पाप पुण्य दोनोंका ही त्याग करना पड़ता है।

जब तक ज्ञान न उत्पन्न हो, तब तक वर्णविभाग रहता है, ज्ञान उत्पन्न होने पर फिर वर्णादि विभाग नहीं रहते। चञ्चलचित्तमें शक्ति अवस्थान करती है और स्थिरचित्तमें शिव। स्थिरचित्त हो सकने पर ही देहधारी होने पर भी सिद्धि होती है। (ज्ञानसंकलिनीतन्त्र)

शूद्र-लिखित पटलादिका पढ़ना निषेध है।—

"विप्रो वा क्षत्रियो वापि वैश्यो वा नगनन्दिनी।
पतयन्नरके घोरे शूद्रस्य लिखनात् प्रिये॥
तस्मात्तु शूद्रलिखितं पटलं न जपेत् सुधीः।
शूद्रेण लिखितं देवि पटलं यस्तु पठ्यते॥
यं यं नरकमाप्नोति तं तं प्राप्नोति मानवः।"

ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य यदि शूद्रके द्वारा लिखित पठलादि पढ़ें तो उसको घोर नरकमें जाना पड़ता है। इसलिए शूद्र-लिखित स्तव-कवच आदि नहीं पढ़ना चाहिये।

तन्त्रोंमें इस प्रकारकी अनेक बातें जानने योग्य हैं। वास्तवमें इस समय भारतवर्षमें सर्वत्र विशेषतः बङ्गालमें—जो क्रियाकाण्ड और पूजापद्धति प्रचलित है, वे सभी तान्त्रिक हैं। मन्त्र, बीज, गायत्री न्यास, मुद्रा, दुर्गा, तारा आदि शब्द द्रष्टव्य हैं।

हिन्दूतन्त्रोंका विषय पहले जैसा लिखा गया है, बौद्ध तन्त्रोंमें भी उसी तरहका विवरण देखनेमें आता है। हिन्दू तन्त्रोक्त शिव-दुर्गा आदिके नाम ही मानो वज्रसत्व, वज्रडाकिनी आदि नामोंमें रूपान्तरित हुए हैं। बौद्धतंत्रोंमें भी चण्डी, तारा, वाराही, महाविद्या, योगिनी, डाकिनी, भैरव, भैरवी आदिकी उपासना प्रचलित है। शिवोक्त तंत्रोंमें जिस तरह अद्भुत अद्भुत देवमूर्तियोंकी कल्पना की गई है, बौद्धतंत्रोंमें भी उसी प्रकार हेरुकादि देवदेवीकी मूर्त्तियोंका वर्णन पाया जाता है।

बौद्धतंत्रके मतसे वज्रसत्व और वज्रताराकी पूजा ही प्रधान है। हिन्दू तांत्रिकगण जिस तरह दक्षिणावर्तके क्रमसे न्यास करते हैं, बौद्धतांत्रिकगण वामावर्त्तसे उसी तरह न्यास किया करते हैं।

"वामावर्त्तविवर्तेन पूजान्यासप्रदक्षिणम्।
योहि जानाति तत्त्वज्ञस्तस्येदं चक्रदर्शनम्॥"

(अभिधानोत्तरहृदय, ३ पटल)

बौद्ध तांत्रिकोंका भी कहना है, कि साधनका कोई नियम नहीं, जब इच्छा हो हर एक अवस्थामें साधन करना चाहिये।

"न तिथिं न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते।
शुचिनां वाप्यशुचिर्वा न शौचन्नोदकक्रिया॥
कालवेलाविनिर्मुक्तं शौचाचरं विवर्जयेत्।
तन्त्रमन्त्रप्रयोगज्ञः सर्वसत्वार्थतत्परः॥
गिरिगह्वरकुञ्जेषु नदीतीरेषु संगमे।
महोदधितटे रम्ये एकवृक्षे शिवालये॥
मातृगृहे श्मशाने वा उद्याने विविधोत्तमे।
विहारचैत्यालयेन गृहे वाथ चतुष्पथे॥
साधयेत् साधको योगं सर्वकामफलप्रदम्।"

(अभिधानोत्तर)

बौद्धतांत्रिक भी मालामंत्र, मातृका, कवच, हृदयादिको अतिगुह्य मानते हैं। बौद्धतंत्रोंमें उन गुह्य विषयोंको अधिकारीके सिवा अन्य किसीके पास प्रकट करनेका भी निषेध है।

"आचारयोगिनीतन्त्राः योगतन्त्राश्च विस्तराः।
क्रियाभेदक्रमेणैव सर्वतन्त्रेष्वभिज्ञया॥
आगमैः सिद्धिशास्त्राणि स्वतन्त्रैर्जातकैस्तथा।
अनुत्तरपदा वाचः प्रज्ञापारमितादयः॥
वाह्यशास्त्रपरिज्ञानमाचारविविधोत्तमम्।
योगभावनया युक्तं नैष्ठिकं पदविन्यसेत्॥
सर्वाहारविहारन्तु निर्विशंकेन चेतसा।
शताक्षरेण सर्वेषां मन्त्राणां दृढभावना॥
मालामन्त्रं योगनित्यं सर्वकामार्थसाधनम्।
उत्तमे वापि चोत्तरं योगिनीजालसम्बरम्॥
मंत्रोद्धारश्च कवचो हृदये हृदयेन तु।
लिपिमण्डलविन्यासं वीरयोगिनीतद्भवम्॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां उत्तमो मातृकोत्तमम्।
गुह्याद्गुह्यतरं रम्यं सर्वज्ञानसमुच्चयं॥
आलयः सर्वधर्माणां मातृकाख्यजपाद्भवा।
एतत्तत्त्वन्न कथयन् सिद्धिहानिर्भविष्यति।
भावनैषाञ्च परमाकाशसिद्धिरनुत्तमा।
भावयेत् जन्मजन्मानि वज्रसत्वत्वमाप्नुयात्।
अप्रकाश्यमिदं सर्वं गोपनीयं प्रयत्नतः॥"

(अभिधानोत्तर ४ प०)

बुद्धमत प्रतिपाद्य बौद्धशास्त्रोंमें पञ्चमकारकी निन्दा है और उनको ग्रहण करनेका निषेध है। किन्तु बौद्धतान्त्रिक उसमें अन्यथा किया करते हैं। पञ्चमकारकी सेवा बौद्धतंत्रका एक प्रधान अङ्ग है। जिस मद्य और मांसको ग्रहण करना बौद्धशास्त्रोंमें विशेषरूपसे निषिद्ध बतलाया गया है, बौद्धतंत्रोंमें उसीकी सुख्याति पाई जाती है।

"नित्यं महामांसभोजी मदिराश्रवघूर्णितम्।"
"………महामांसं पीत्वा मद्यं प्रिया सह।
स्वच्छचित्तो मृतांगारे भावयेत्वीरनायकम्।"
(अभिधान० ४ प०)

बौद्धतंत्रोंमें पशु और वीर, इन दो भावोंका उल्लेख है। जो वास्तविक सिद्धतांत्रिक हैं, बौद्धतंत्रोंमें उन्हींको वीरनायक कहा गया है। बौद्धतांत्रिकगण भी इस जगत्‌को वामोद्भव मानते हैं। बौद्धतंत्रोंमें चक्रपूजा, वीरयाग, भगपूजा आदिका विषय भी वर्णित है। वर्तमानके सात्विक बौद्धगण प्रायः जातिभेदको नहीं मानते, किन्तु बौद्धतांत्रिकगण चतुर्वर्णका विशेषरूपसे विचार करते हैं। (क्रियासंग्रहपञ्जिका १म अ० द्रष्टव्य है।)

तांत्रिकविषयने जिस तरह भारतीय हिन्दुओंका हृदय अधिकार किया है, उसी प्रकार बौद्धतांत्रिकविषय भी तिब्बत और चीनके बहुसंख्यक बौद्धोंमें पर्यवसित हुआ है। पद्मकर्प नामके तिब्बतवासी एक लामाने (ई० को १६वीं शताब्दीमें) कहा है—"जो यथार्थ तंत्रतत्त्वसे वाकिफ़ नहीं है, वह मोक्षमार्गमें राहभूले पथिककी भाँति है, इसमें सन्देह नहीं। वह भगवान् वज्रसत्वके निर्दिष्ट मार्ग बहुत दूर विचरण करता है।'*

तन्त्रक (सं० क्ली०) तन्त्रात् सूत्रवापात् अचिराहृतं तंत्रकन्। तंत्रादचिरापहृते। पा ५।२।७०। नूतन वस्त्र, नया कपड़ा।

तन्त्रकाष्ठ (सं० क्ली०) तंत्रस्थं काष्ठं। तंत्रस्थित काष्ठभेद, तांतमेंकी एक लकड़ी।

तन्त्रणा (सं० क्ली०) शासन या प्रबन्ध आदि करनेका काम।

तन्त्रता (सं० स्त्री०) तंत्रस्य भावः तंत्र-तल-टाप्। कई कार्योंके उद्देश्यसे कोई एक कार्य करना, कोई ऐसा कार्य करना जिससे अनेक उद्देश्य सिद्ध हों।

जिस तरह शास्त्रानुसारसे स्नान किये विना कोई काम करना निषिद्ध है, परन्तु एक ही आदमी पूजा, तर्पण और होम कर सकता है।

'अस्नात्वा नाचरेत् कर्म जपहोमादि किंचन॥" (दक्ष)

इस शास्त्रीय वचनानुसारसे उसके प्रत्येक कार्यके बाद स्नान करना आवश्यक जान पड़ता है। उसके लिये तंत्रता स्वीकार कर समस्त कर्मोद्देशसे एक बार स्नान करनेसे काम चल सकता है। प्रत्येक कार्यके बाद स्नान करनेका कोई प्रयोजन नहीं।

यदि किसीने अनेक ब्राह्मणहत्या की हों, तो उस ब्रह्महत्या पापनाशके लिये एक एक प्रायश्चित्त न करके सर्वोद्देशसे एक प्रायश्चित्त कर लेनेसे ही समस्त ब्रह्महत्याका पाप नाश हो जाता है। (स्मृति)

तन्त्रधारक (सं० पु०) तंत्रं तंत्रज्ञापकपद्धतिग्रन्थं धारयति धारि-ण्वुल्। पुस्तकधारक, यज्ञ आदि कार्योंमें वह मनुष्य जो कर्मकाण्ड आदिकी पुस्तक ले कर याज्ञिक आदिके साथ बैठता हो। याज्ञिक कैसा ही पारदर्शी क्यों न हो तो भी तंत्रधारकके विना पूजा यज्ञ प्रभृतिका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। पूजादिमें एक पूजा करनेके लिये बैठे और दूसरेको चाहिये कि हाथमें पुस्तक ले कर उसके अनुसार पढ़ाते जांय।

"एकस्तत्र नियुक्तस्यादपरस्तंत्रधारकः।" (स्मृति)

तन्त्रयुक्ति (सं० स्त्री०) त्रायते शरीरमनेन तंत्रं चिकित्सितं तस्य युक्तयः, ६-तत्। सुश्रुतोक्त ३२ प्रकारकी युक्ति। इनकी सहायतासे किसी वाक्यका अर्थ आदि निकालने या समझनेमें सहायता ली जाती है। ३२ युक्तियोंके नाम—अधिकरण, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, प्रदेश, अतिदेश, अपवर्ग, वाक्यशेष, अर्थापत्ति, विपर्यय, प्रसंग, एकान्त, अनेकान्त, पूर्वपक्ष, निर्णय, अनुमत, विधान, अनागतावेक्षण, अतिक्रान्तावेक्षण, संशय, व्याख्यान, स्वसंज्ञा, निर्वाचन, निदर्शन, नियोग, विकल्प, समुच्चय, उह्य, उद्देश, निर्देश, उपदेश और अपदेश। इन ३२ प्रकारकी तन्त्रयुक्तियोंसे वाक्य और अर्थ योजित होते हैं। जहाँ पर असम्बन्ध वाक्य रहता है, वहां उस

---

* E. Schlagintsweit's Buddhism in Tibet, p. 49.

असम्बन्ध वाक्यको सम्बद्ध कर ग्रहण किया जाता है। असद्वादिप्रयुक्त वाक्यका प्रतिषेध और स्ववाक्यसिद्धि तन्त्रयुक्ति द्वारा होती है।

जहाँ पर वाक्यका अर्थ स्पष्ट नहीं है तथा वे कुछ जटिल मालूम पड़ते वहाँ इस तन्त्रयुक्तिद्वारा वाक्यका अर्थ सरल और स्पष्ट किया जा सकता है।

१ अधिकरण—इस शब्दका अर्थ अध्याय या अधिकार है। यथा दीर्घञ्जीवितीय अध्याय।

२ योग. इस शब्दका अर्थ अन्वय है। यथा—वायु, पित्त और कफ यथाक्रमसे शीतल, उष्ण और सौम्यगुणविशिष्ट है, यहां पर वायु शीतल, पित्त उष्ण और कफ सौम्यगुणविशिष्ट है, इसी तरह अन्वय समझना पड़ेगा।

३ हेत्वर्थ—एक अर्थ दूसरेका साधक होनेसे उसको हेत्वर्थ कहते हैं। यथा पित्त और रक्तकी चिकित्साकी समानता है। इस वाक्य द्वारा यह भी जाना जाता है कि पित्तके प्रकोप होनेसे रक्तके प्रकोपकी भी सम्भावना कर चिकित्सा करनी पड़ती है।

४ पदार्थ—पदार्थ शब्दका अर्थ अभिधेयार्थ है, लक्ष्यार्थ या व्यङ्गार्थ नहीं है। जिस तरह श्वासमें और अधोगत रक्तपित्तमें विरेचन नहीं देना चाहिये। यहाँ पर विरेचन शब्दमें त्रिवृत् प्रभृति विरेचनवर्गोक्त योग ही समझना चाहिये न कि एरण्ड (रेंडी)-का तेल। क्योंकि विरेचनवर्गमें एरण्ड तेलका उल्लेख नहीं है।

५ प्रदेश—जो हो गया है वही होगा, इस तरहकी सम्भावनाको प्रदेश कहते हैं। यथा चन्द्रकी राजयक्ष्मा चरकोक्त विधिमें प्रशमित हुई थी, इसीलिये दूसरेकी भी राजयक्ष्मा इसी विधिमें प्रशमित होगी।

६ उद्देश—संक्षेप कथनको उद्देश कहते हैं। यथा स्वादु, अम्ल और लवण वायुनाश करना है, यही यहाँ पर संक्षेपमें कहा गया है, इसीलिये इसका नाम उद्देश है

७ निर्देश—उदाहरण दे कर विस्तारपूर्वक कथनको निर्देश कहते हैं।

८ वाक्यशेष—वाक्यमें जब कोई बात असमाप्त रहती है तो उसे वाक्यशेष कहते हैं। यथा बाह्य वायुके साथ आभ्यन्तर वायुकी समानता है, यहां पर बाह्य वायु और आभ्यन्तर वायु एक नहीं है, यह वाक्य असमाप्त है।

९ प्रयोजन विमान स्थान देखो।

१० अपदेश कारण निर्देश करके कार्य करनेको अपदेश कहते हैं। यथा जल पीनेसे शरीरमें जल सञ्चय होता है, इसी लिये जलोदरकी वृद्धि होती है, परन्तु जल नहीं पीनेसे जलोदरकी वृद्धि हो ही नहीं सकती।

११ उपदेश—कर्त्तव्याकर्त्तव्यके निर्देशको उपदेश कहते हैं।

१२ अतिदेश—प्रकृत अर्थके अतिरिक्त निर्देशको अतिदेश कहते हैं। यथा हिक्काश्वासी तृष्णार्थी होने पर दशमूल या देवदारुका क्वाथ या मदिरा सेवन करे कि सन्निपात ज्वरमें रोगीका श्वास और तृष्णाकी अधिकता रहती है। इसलिये सन्निपात ज्वरमें दशमूल और मदीरेको संयुक्त कर सेवन कर सकते हैं। यहां पर साङ्केतिक चिह्न सबके अन्तर्गत वाक्यको ही अतिरिक्त निर्देश कहते हैं।

१३ अर्थापत्ति—प्रकृत अर्थके साथ विपरीत अर्थके बोधकको अर्थापत्ति कहते हैं। यथा प्रदर और शुक्रशैथिल्यकी चिकित्सा एक ही है, इसलिये जो प्रदरमें अपथ्य है वही शुक्रशैथिल्यमें अपथ्य माना जा सकता है।

१४ निर्णय—प्रश्नके उत्तरका नाम ही निर्णय है।

१५ प्रसङ्ग—प्रसङ्ग शब्दका अर्थ प्रसङ्गक्रमसे अर्थान्तर निर्देश है।

१६ एकान्त निर्देश करनेको एकान्त कहते हैं। यथा उष्मा (गरमी)के विना ज्वर नहीं होता, यहाँ पर यदि कहा जाय कि किसी किसी ज्वरमें गरमी नहीं रहती है तो एकान्त निर्देश नहीं होता।

१७ अनेकान्त—अनेकान्त शब्दका अर्थ हो भी सकता और कभी कभी नहीं भी हो सकता है।

१८ अपवर्ग—जो निहमके बहिर्भूत है, उसे छोड़ कर नियम निर्देश करनेको अपवर्ग कहते हैं। यथा दाड़िम्ब (अनार) और आँवलाके सिवा समस्त प्रकारके अम्ल ही पित्तकर होते हैं।

१९ विपर्य्यय—विपरीत अर्थके ग्रहणको विपर्य्यय कहते हैं। यथा स्वादु, अम्ल और लवण वायु नाश करता है, इसलिये कटु, तिक्त और कषाय वायु प्रकोप करता है।

२० पूर्वपक्ष—इस शब्दका अर्थ प्रश्न है।

२१ विधान—इसका अर्थ पर्यायक्रमसे निर्देश है। यथा उदररोग ८ प्रकारका निर्देश कर पीछे पर्यायक्रमसे ८ प्रकारकी चिकित्सा भी बतलाई गई है।

२२ अनुमत—परमतका प्रतिषेध नहीं करनेको अनुमत कहते हैं। यथा किसी किसीके मतसे वस्ति चिकित्साका एकमात्र उपकरण है।

२३ व्याख्यान—इस शब्दका अर्थ व्याख्या करना है।

२४ संशय—इस शब्दका अर्थ यह अथवा वह, इस तरह संदेहसूचक है।

२५ अतीतावेक्षण—पूर्वोक्तके पुनः उल्लेख करनेको अतीतावेक्षण कहते हैं। यथा सूत्रस्थानकी विधि शोणितीय अध्यायमें रक्तपित्त रोगके कई एक गूढ़ तत्त्व हैं।

२६ अनागतावेक्षण वक्ष्यमाणके वर्तमान उल्लेखको अनागतावेक्षण कहते हैं। यथा ज्वर-परिच्छेदमें कहा गया है कि वमन विरेचनका विषय कल्पस्थानमें देखो।

२७ स्वसंज्ञा—जो संज्ञा किसी दूसरे शास्त्रमें व्यवहार नहीं होती उसे स्वसंज्ञा कहते हैं। यथा चतुष्पद शब्दका अर्थ आयुर्वेदमें वैद्य, रोगी, परिचारक और औषध है।

२८ उह्य—जो वाक्यमें नहीं रह कर भी समझमें आ जाता है, उसे उह्य कहते हैं। यथा दोष दोषान्तर द्वारा आवृत रहने पर रोगका निर्णय करना कठिन होता है, यहाँ पर यही बात छिपी है कि केवल वायुका लक्षण देख कर वायुकी चिकित्सा करनेसे कभी कभी भ्रान्त भी होना पड़ता है।

२९ समुच्चय—समुच्चय शब्द इत्यादि बोधक है। यथा दाड़िम प्रभृति अम्लफल है। यहाँ पर आँवले इत्यादिको भी अम्ल समझना चाहिये।

३० निदर्शन—निदर्शन शब्दका अर्थ उपमा है। यथा जलसे मृत्पिण्ड जिस तरह प्रक्लिन्न हो जाता है, मूंग और उर्दसे व्रण भी उसी तरह प्रक्लिन्न होता है।

३१ निर्वचन—किसी बातका निश्चय करके कहनेको निर्वचन कहते हैं। यथा कुष्ठनाशक द्रव्योंमें खदिर (खैर) ही प्रधान है।

३२ सन्नियोग—इस वाक्यका अर्थ शासनवाक्य है। जैसे माता भोजी बनो या कम खाओ।

३३ विकल्पन—यह अर्थ बोधक है। यथा बहुत या थोड़े या अप्राप्त कालमें या समयके बीत जाने पर भोजन करनेका नाम विषमासन है।

३४ प्रत्युच्चार—शिष्यकी बुद्धिकी तीक्ष्णता, मध्यता और निकृष्टताके भेदसे या किसी दूसरे कारणसे एकही अध्याय एक ही विषयके भिन्न भिन्न प्रकारसे दो तीन बार कहनेको प्रत्युच्चार कहते हैं।

३५ सम्भव—इस शब्दका अर्थ उत्पत्तिका कारण है। यथा दोषका प्रकोप रोगका कारण है।

३६ उद्धार—सूत्रके अनुवर्तिको उद्धार कहते हैं। यथा कटु कहनेसे मरिचादि, तिक्त कहनेसे नीम आदिको समझना चाहिये। यह तन्त्रयुक्ति प्रत्येक कार्यमें प्रयोजनीय है। (सुश्रुत ४अ०)

तन्त्रवाय (सं० पु०) तन्त्रं वपति वप-अण्। १ तन्तुवाय, ताँती। २ लूता, मकड़ी।

तन्त्रवाय (सं० पु०) तन्त्रं वयति वे-अण्। १ तन्तुवाय, ताँती। यह सङ्कर जाति है। मणिबन्धके औरस और मणिकारीके गर्भसे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है। इस जातिकी उत्पत्तिके विषयमें पराशरके साथ भगवान् मनुका मतभेद देखा जाता है। मनुके मतसे क्षत्रियाणीके गर्भ तथा वैश्यके औरससे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है। २ लूता, मकड़ी। आधारे घञ्। ३ तन्त्र, ताँत।

तन्त्रसंस्था (सं० स्त्री०) तन्त्रस्य संस्था, ६-तत्। राज्यशासनप्रणाली।

तन्त्रसंस्थिति (सं० स्त्री०) तन्त्रस्य संस्थितिः, ६-तत्। राज्यशासनप्रणाली।

तन्त्रस्कन्द (सं० पु०) ज्योतिषशास्त्रका एक अंग। इसमें गणितके द्वारा ग्रहोंकी गति आदिका निरूपण होता है, गणितज्योतिष।

तन्त्रहोम (सं० पु०) तन्त्रेण होमः, ३-तत् तन्त्रशास्त्रके मतसे अनुष्ठित होम, वह होम जो तन्त्रशास्त्रके मतसे हो। होम देखो।

तन्द्रा (सं० स्त्री०) तन्द्रि भावे अ-टाप्। अल्पनिद्रा, थोड़ी नींद।

तन्त्रायिन् (सं० पु०) तन्त्रे कालचक्रे एति गच्छति णिनि। कालचक्रगामी सूर्यादि।

तन्त्रि (सं० स्त्री०) तन्त्र-इ । १ तन्त्री, वीणा सितार आदि बाजोंमें लगा हुआ तार । २ तन्द्रा, उँघाई ऊँघ ।

तन्त्रिका (सं० स्त्री०) तन्त्री एवं स्वार्थे कन् पूर्व ह्रस्वश्च । १ गुडुची, गुरुच । २ तन्त्र, ताँत ।

तन्त्रिज—तन्त्रि देखो ।

तन्त्रित (सं० त्रि०) तन्त्रा तन्द्रा जाता अस्य तारकादित्वादितच् । आलस्ययुक्त, आलसी ।

तन्त्रिन्—तन्त्रिन् देखो ।

तन्त्रिपात—तंत्रिपाल देखो ।

तन्त्रिपालक (सं० पु०) जयद्रथ राजा । (शब्दमाला)

तन्त्री (सं० स्त्री०) तन्त्रयति मोहयति लोकान् तंत्र-ङीप् । १ वीणागुण, बीन सितार आदि बाजोंमें लगा हुआ तार । २ गुडुची, गुरुच । ३ देहशिरा, शरीरकी नस । ४ नाड़ी । ५ नदीभेद, एक नदीका नाम । ६ युवतीभेद, एक जवान औरत । ७ रज्जु, रस्सी । ८ वह बाजा जिसमें बजानेके लिये तार लगे हों । ९ कर्णपालीगत रोगविशेष । १० सैंहली पिप्पली । (पु०) ११ बाजा बजानेवाला । १२ गवैया, वह जो गाता हो । (त्रि०) १३ आलस्ययुक्त, आलसी । १४ अधीन ।

तन्त्रीमुख (सं० पु०) हस्तका अवस्थानभेद, हाथकी एक मुद्रा ।

तन्त्वग्र (सं० क्ली०) तन्तूनां अग्रं, ६-तत् । सूतका अग्रभाग, सूतका अगला हिस्सा ।

तथ्यो (सं० अव्य०) स्वीकार, अङ्गीकार, मंजूरी ।

तन्दो—हैद्राबाद जिलेका एक उपविभाग । इसमें गुनी, बदीन, तन्दोबागो, डेरा महावत ये चार तालुका लगते हैं ।

तन्दो अलाहियर—१ हैद्राबाद जिलेका एक तालुक । यह अक्षा० २५°७´ और २५° ४९´ उ० और देशा० ६८° ३५´ और ६९° २´ पू० पर अवस्थित है । जनसंख्या ८७९९०-के लगभग है । इसमें २ शहर और १०७ ग्राम लगते हैं । बाजरा और तमाकू यहाँ प्रधानतया उपजते हैं । क्षेत्रफल प्रायः ६९० वर्गमील है ।

२ उक्त तालुकका शहर । यह जोधपुर-बीकानेर रेलवेकी हैद्राबाद बलोत्तरा शाखा पर अक्षा० २५°२७´ उ० और देशा० ६८°४६´ पू० में अवस्थित है । लोकसंख्या ४३२४ के लगभग है । यहाँ चीनी, आव्री, रेशम, कपड़ा, रूई और तेलका व्यवसाय चलता है । यह १७९० ईस्वीके लगभग तालपुर राज्यके प्रथम राजपुत्रने बसाया था । यहाँका किला देखने लायक है । १८५६ ईस्वीमें म्युनिसपलिटी स्थापित हुई थी । यहाँ तीन लड़कोंके स्कूल, एक लड़कियोंकी पाठशाला, एक रूईकी जीन, एक कपास ओटनेका पेच और एक अस्पताल है ।

तन्दो आदम—(आदमजी) तन्दो हैद्राबाद जिलेके तन्दो अलाहियर तालुकका एक शहर । यह अक्षा० २५°४६´ उ० और देशा० ६८°४२´ पू० पर अवस्थित है । यहाँ हो कर नार्थ वेष्टर्न रेलपथ गया है । इसको सन् १८०० ई०में आदमखाँ मरीने अपने नाम पर बसाया था । जनसंख्या ८६६४ है । रेशम, रूई, तेल, चीनी और घीका अल्प व्यापार होता है । यहाँ १८६० ई०में म्युनिसपलिटीकी स्थापना हुई थी । यहाँ तीन रूईके जीन, पाँच स्कूल और एक अस्पताल है ।

तन्दोबागो—हैद्राबाद जिलेका एक तालुक । यह अक्षा० २४°३५´ और २५°२´ उ० और देशा० ६८°४६´ एवं ६९° २२´ पू०के बीच अवस्थित है । लोकसंख्या ७४८७६के लगभग है । इसमें १४१ ग्राम लगते हैं । नहरोंके पानीसे जमीन सींची जाती है और चावल, रूई, ईख और यव अधिक उत्पन्न होते हैं । इसका क्षेत्रफल प्रायः ६९७ वर्गमील है

तन्दो मस्तीखाँ—बम्बईके अन्तर्गत खैरपुर राज्यका एक शहर । यह अक्षा० २७°२६´ उ० और देशा० ६८°४२ पू० पर खैरपुर शहरसे १३ मील दक्षिणमें अवस्थित है । हैदराबादसे रोहरी तककी प्रधान सड़क इसी शहरसे हो कर गई है । लोकसंख्या प्रायः ६४६५ है । १८०३ ई०में वादेरो मस्तीखाँने यह शहर बसाया था । कोटिसरका भग्नावशेष अब भी शहरके दक्षिणमें देखा जाता है । कहते हैं, कि एक समय वहाँ बहुत मनुष्योंका वास था । पश्चिममें शाहजरी पीर फजलनङ्गी और शेख मकैंकी मसजिदें हैं ।

तन्दो महम्मदखाँ—बम्बईके हैदराबाद जिलेके अन्तर्गत गुनी तालुकका सदर । यह अक्षां २५°८´ उ० और देशा० ६८°३५´ पर फूलेली नहरके दाहिने किनारे तथा हैदराबाद शहरसे २१ मील दक्षिणमें अवस्थित है । लोकसंख्या लग-

भाग ४६३५ है। सहायक कलक्टरके रहनेके कारण यहाँ छोटी आदालत तथा कई एक सरकारी मकान हैं। १८५६ ई०में यहाँ म्युनिसपालिटी स्थापित हुई है। दूसरे दूसरे देशोंसे चावल तथा दूसरे प्रकारके अनाज, रेशम, धातु, तमाकू, रंग, जीनके कपड़े और औषधकी आमदनी तथा यहाँसे ज्वार, बाजरे, चावल, तथा तमाकूकी रफतनी होती है। शहरमें ताँबे, लोहे तथा मट्टीके बरतन, रेशम, कम्बल, सूता, कपड़े, जूते, देशी शराब तथा लकड़ीकी अच्छी अच्छी चीजें प्रस्तुत होती हैं। प्रवाद है कि, मीर मुहम्मद-तालपुर शाहजादोंने इस शहरको बसाया था, जिनकी मृत्यु १८१३ ई०में हुई। यहाँ एक औषधालय और तीन स्कूल हैं।

तन्द्र (सं० क्ली०) तन्द्र-घञ्। पंक्तिच्छन्दः, एक प्रकारका छन्द।

तन्द्रयु (सं० त्रि०) तन्द्रां आलस्यं याति या-कु पृषो० साधुः। आलस्ययुक्त, आलसी।

तन्द्रवाप (सं०पु०) तन्त्रवाप पृषो० साधुः। तन्त्रवाय, ताँती। तन्त्रवाय देखो।

तन्द्रवाय (सं० पु०) तन्त्रवाय पृषो० साधुः। तन्त्रवाय देखो।

तन्द्रा (सं० स्त्री०) तत् द्रातीति तत् द्रा-क, वा तन्द्र अवसादे तन्द्र-घञ्, ततष्टाप्। १ निद्राविश, उँघाई, ऊँघ। २ आलस्य, सुस्ती। इसका संस्कृत पर्याय –प्रमीला, तन्द्री, तन्द्रि, तन्द्रिका और विषयाज्ञान है।

इसमें मनुष्यकी व्याकुलता बहुत होती, इन्द्रियोंका ज्ञान नहीं रह जाता, मुखसे वचन नहीं निकल सकता तथा बार बार जँभाई आती रहती है। यही तन्द्राका प्रकृष्ट लक्षण है। चरकसंहितामें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है। मधुर, स्निग्ध, गुरु और अम्लसेवन, चिन्तन, भय शोक और व्याध्यानुषङ्ग (रोगाक्रान्त)के लिये कफ वायु प्रेरित होकर हृदयको आश्रय करके हृदयस्थित ज्ञानको आच्छादन करती है, उससे तन्द्रा उपस्थित होती है। इस तन्द्राके उपस्थित होने पर हृदयमें व्याकुलीभाव, वाक्य, चेष्टा और इन्द्रियोंकी गुरुता, मन और बुद्धिकी अप्रसन्नता उत्पन्न होती है। निद्रा और तन्द्रा इन दोनोंमें प्रभेद यह है कि निद्रामें जागरित होनेसे क्लान्ति मालम पड़ती और तन्द्रामें जागरित होनेसे भ्रान्ति मालूम पड़ती है। कफनाशक वस्तु और कटुतिक्त भक्षण अथवा व्यायाम और रक्तमोक्षण करनेसे तन्द्रा दूर होती है।

तन्द्रा सुखकी भार्या, निन्द्रा कन्या और प्रीति भगिनी है। (शब्दार्थचि०)

तन्द्रालु (सं० त्रि०) तन्द्रा-आलुच्। स्पृहि गृहीति। पा ३।२।५८। आलस्ययुक्त, आलसी।

तन्द्रि (सं० स्त्री०) तदिसौत्री धातु क्रिन्। वडकहृयश्चउण् ४।६६। अल्पनिद्रा, उँघाई, ऊँघ।

तन्द्रिकसन्निपात (सं० पु०) एक प्रकारका सन्निपातज्वर। इसमें उँघाई अधिक आती, ज्वर वेगसे चढ़ जाता, प्यास अधिक लगती जीभ काली हो कर खुरखुरी हो जाती, दम फूल जाता, दस्त अधिक होता, जलन नहीं होती और कानमें दर्द रहता है। यह ज्वर सिर्फ २५ दिन तक रहता है।

तन्द्रिका (सं० स्त्री०) तन्द्रिरेव स्वार्थे कन् टाप् च। तन्द्रि, अल्पनिद्रा, उँघाई, ऊँघ।

तन्द्रिज (सं० पु०) यदुवंशीय कनवक राजाके पुत्र।
(हरिवंश ६५ अ०)

तन्द्रित—तन्त्रित देखो।

तन्द्रिता (सं० स्त्री०) तन्द्रिणो भावः तन्द्रि-तल्-टाप्। निद्रालुता, आलस्य।

तन्द्रिपाल (सं० पु०) यदुवंशीय कनवक राजाके एक पुत्रका नाम।

तन्द्री (सं० स्त्री०) तन्द्रि-ङीष्। १ तन्द्रा, ऊघ। २ भृकुटी, भौंह।

तन्न (सं० अव्य०) तत्-न। वह नहीं।

तन्ना (हिं० पु०) १ बुनाईमें तानेका सूत जो लम्बाईमें ताना जाता है। २ ऐसा पदार्थ जिस पर कोई चीज तानी जाती है।

तन्नि (सं० स्त्री०) तन्नयति नी बाहुलकात् डि। १ चक्रकुल्या, पिठवन। २ काश्मीरकी चन्द्रतुल्या नदीका नाम।

तन्निबन्धन (सं० क्ली०) तत् निबन्धनं, कर्मधा०। उसीलिये।

तन्निमित्त—तदर्थ, उसके लिये।

तन्नी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बँकुसी। इससे

लोहेका मैल खुरचते हैं। २ एक प्रकारका रस्सी जो जहाजके मस्तूलकी जड़में बंधा रहता है। इसकी सहायतासे पाल आदि चढ़ाते हैं। ३ तराजूमें जोतीको रस्सी, जोती। (पु०) ४ व्यापारी जहाजका एक अफसर जिसके हाथ व्यापार सम्बन्धी कार्योंका इन्तजाम रहता है। ५ तरनी देखो।

तन्मतता (सं० स्त्री०) तस्य मतं, ६-तत्, तन्मत-तल्-टाप्। उसी तरह, वैसा ही।

तन्मध्य (सं० क्ली०) तस्य मध्यं, ६-तत्। उसमें।

तन्मध्यस्थ (सं० त्रि०) तन्मध्ये तिष्ठति स्था-क। तन्मध्यवर्त्ती, उसके मध्यका, उसमेंके।

तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण (सं० क्ली०) जैनशास्त्रानुसार ब्रह्मचर्य-व्रतका एक अतिचारदोष। ब्रह्मचारी अथवा स्वदारसन्तोष-व्रतवाले श्रावकको परस्त्रियोंके मनोहर अंगोंको न देखना चाहिये। यदि वह ऐसा करे तो उसे उक्त दोष लगता है। जैनधर्म देखो।

तन्मय (सं० त्रि०) तदात्मकं तद्-मयट्। दत्तचित्त, तदासक्त चित्त, लवलीन, लीन, लगा हुआ।

तन्मयता (सं० स्त्री०) लिप्तता, एकाग्रता, लीनता।

तन्मयासक्ति (सं० स्त्री०) भगवान्‌में दत्तचित्त हो जाना।

तन्मात्र (सं० क्ली०) तदेव एवार्थे मात्रच् वा सा मात्रा यस्य, बहुव्री०। सांख्यमतानुसार सूक्ष्म अमिश्र पञ्चभूत; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। सत्त्व, रज और तमोगुणात्मिका प्रकृतियोंसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। महत्तत्त्वका अपर पर्याय है—बुद्धितत्त्व।

उस त्रिगुणात्मक महत्तत्त्वसे त्रिगुणान्वित अहङ्कार उत्पन्न होता है। यह अहङ्कार भी तीन प्रकारका है—सात्विक अहङ्कार, राजस अहङ्कार और तामस अहङ्कार।

राजस अहङ्कारके साथ सात्विक अहङ्कारमेंसे एकादश इन्द्रियाँ तथा तामस अहङ्कार और राजस अहङ्कारके संयोगसे पञ्चतन्मात्रकी उत्पत्ति होती है और अल्प सात्विक सम्बन्ध होनेसे उसका लिङ्ग उत्पन्न होता है। लिङ्ग अर्थात् अनुद्भूत स्वभाव वाह्येन्द्रियके अग्राह्य मोहादि लिङ्ग।

शब्दादि पञ्चतन्मात्र योगिग्राह्य हैं, वे मात्राएँ जिनमें इस व्युत्पत्तिके अनुसार तन्मात्र शब्द निष्पन्न हुए हैं, अर्थात् जो स्वयं अवयवशून्य पर समस्त पदार्थोंके अवयव हैं, उनको तन्मात्र कहते हैं। वे तन्मात्र, ५ हैं—शब्द-तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्ध-तन्मात्र।

इन पाँच तन्मात्रोंसे क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और क्षिति ये पाँच महाभूत उत्पन्न होते हैं। इन आकाशादि पञ्च महाभूतोंमें उत्तरोत्तर एक एक तन्मात्रकी क्रमशः वृद्धि होती है। जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसके गुणोंको पाता है, इस न्यायके अनुसार शब्द तन्मात्रसे शब्दगुण आकाश, शब्द-तन्मात्रसंयुक्त स्पर्श-तन्मात्रसे शब्द स्पर्श-गुण वायु, शब्दस्पर्श-तन्मात्र संयुक्त रूपतन्मात्रसे शब्द-स्पर्श रूप गुण तेज, शब्दस्पर्शरूप-तन्मात्र-युक्त रसतन्मात्रसे शब्द, स्पर्श, रूप और रसगुण अप् तथा शब्द, स्पर्श, रूप और रसतन्मात्रके साथ गन्धतन्मात्रसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-गुण पृथिवी उत्पन्न हुआ करती है।

शब्द स्पर्शादि पाँच तन्मात्र स्थूलताको प्राप्त हो कर यथाक्रमसे विशिष्ट भावापन्न होते हैं।

ये पञ्चतन्मात्र सुखदुःख और मोहात्मक अहङ्कारसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिए कहना होगा कि, इन पाँच तन्मात्रके सुख-दुःख और मोह ये तीन धर्म हैं अर्थात् शब्द तन्मात्र आदि क्रमशः सुख-दुःख और मोहादि रूप धर्म-विशिष्ट होनेके कारण अनुभवयोग्य होते हैं। अतएव इस जगह समझना होगा कि, जो अविशिष्ट भावापन्न पञ्चतन्मात्रका सूक्ष्मत्व हेतु है, उसका सुख दुःखादि रूप द्वारा विशेषरूपसे अनुभव नहीं किया जा सकता। जैसे—किसी सुललित शब्दका सुन कर सुख और विकृत शब्द सुन कर दुःखका अनुभव होता है, तथा यदि वह सुललित और विकृत शब्द अति सूक्ष्मभावसे होता तो, सुननेमें नहीं आता, सुतरां उसमें सुख वा दुःख कुछ भी नहीं होता। महत्, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र इन सात इन्द्रियाँ और भूतके कारणत्वके कारण दर्शनविदोंने इनको प्रकृति कहा है। गीतामें मनको शामिल करके ८ प्रकृति कही गई हैं। (गीता ७।४)

मूल प्रकृतिमें कोई कारण नहीं है, इसलिए उसको प्रकृति कहना दार्शनिकोंका अभिप्रेत है।

परन्तु महत् अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र. इन सातोंको प्रकृतिका कार्य समझना चाहिये।

प्रकृति स्वयं ही कारण है, इसका पृथक् कोई कारण नहीं है। महत्, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र, ये सभी कार्य हैं। (सांख्यद०)

विशेष विवरण प्रकृति शब्दमें देखो।

तन्मात्रता (सं० स्त्री०) तन्मात्रस्य भावः तन्मात्र-तल् टाप्। तन्मात्रत्व। तन्मात्र देखो।

तन्मात्रिक (सं० त्रि०) तन्मात्र सम्बन्धीय।

तन्यता—तन्यतु देखो।

तन्यतु (सं० पु०) तनोति विस्तारयति तन-यतुच्। १ वायु, हवा। २ रात्रि, रात। ३ वाद्य-सङ्गीतयन्त्रविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा। ४ गर्जन, गरजना। ५ अशनि, वज्र, बिजली। ६ पर्जन्य, गरजता हुआ बादल।

तन्वु (सं० त्रि०) तन-ल्युन्। १ अनादेश, उपदेशका अभाव। (पु०) २ वायु, हवा।

तन्वि—काश्मीरकी चन्द्रकुल्या नदीका एक नाम।

तन्वी (सं० स्त्री०) तनु-ङीप्। १ कृशाङ्गी, वह स्त्री जिसके अङ्ग कृश और कोमल हों। २ शालपर्णी। ३ श्रीकृष्णकी एक स्त्रीका नाम। (हरिवंश १३८ अ०) ४ छन्दोविशेष, एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें २४ वर्ण रहते हैं तथा १।४।५।१२।१३।१६।२३ और २४ अक्षर गुरु होता है। तथा ५वें, १२वें और २४वें अक्षर पर विराम लेना पड़ता है।

तप (सं० पु०) तप-अच्। १ ग्रीष्म, ज्यैष्ठ और आषाढ़-मास। २ तपस्या। ३ ज्वर, बुखार।

तप आचार (सं० पु०) तपका आचरण करना, उसकी प्रभावना करना, आदि सब तप आचारके ही भेद हैं। तपस् देखो।

तपःकर (सं० त्रि०) तपः करोति कृ-ट। १ तपस्याकारी, जो तपस्या करता है। (पु०) २ तपस्विमत्स्य, तपसी मछली।

तपःकृश (सं० त्रि०) तपसा कृशं, ३-तत्। तपसे क्षीण।

तपःक्लेशसह (सं० त्रि०) तपसः क्लेशं सहते सह-अच्। इन्द्रिय संयमादिकारक तपस्वी, जो तपस्यासे होनेवाले कष्टको सहन कर सकता है।

तपःप्रभाव (सं० पु०) तपसः प्रभावः, ६-तत्। तपस्याका प्रभाव।

तपःशील (सं० त्रि०) तपः एव शीलं स्वभावो यस्य, बहुव्री०। तपस्यापरायण, तपस्यामें लीन।

तपःसाध्य (हिं० पु०) तपसा साध्यः, ३-तत्। तपस्या द्वारा साधनीय, तपस्यासे साधन करने योग्य।

तपःसिद्ध (सं० त्रि०) तपसा सिद्धः, ३-तत्। तपस्या द्वारा सिद्ध, जिसने तपस्या करके सिद्धि लाभ की है।

तपकना (हिं० क्रि०) १ उछलना, धड़कना। २ टपकना देखो।

तपचाक (हिं० पु०) एक प्रकारका तुर्की घोड़ा।

तपड़ी (हिं० स्त्री०) १ ढूह, छोटा टीला। २ जाड़ेके अन्तमें होनेवाला एक प्रकारका फल। पकने पर यह पीलापन लिये लाल रंगका हो जाता है।

तपती (सं० स्त्री०) १ सूर्यकी कन्या। यह सूर्यकी पत्नी छायाके गर्भसे उत्पन्न हुई थीं, बहुत रूपवती थीं। कुरुवंशीय क्षत्र-राजपुत्र संवरण सूर्यके अच्छे भक्त थे। उनकी शुश्रूषासे तुष्ट हो कर सूर्यदेवने तपतीको उन्हींके साथ विवाह कर दिया था। (भारत १.१७१अ०) २ नदीविशेष, एक नदीका नाम। यह नदी दाक्षिणात्य-प्रदेशमें सह्याद्रि पर्वतसे निकल कर पश्चिममुखमें अरब समुद्रमें गिरी हैं। यह नदी कोङ्कण देशकी उत्तरीय सीमा है। तापी देखो।

तपन (सं० पु०) तपतीति तप कर्त्तरि ल्यु। १ सूर्य। २ भल्लातक वृक्ष, भिलावेंका पेड़। ३ अर्कवृक्ष, मदार, आक। ४ ग्रीष्मकाल, गरमीका समय। ५ अग्न्यादिमें दाहयुक्त नरकविशेष, एक प्रकारका नरक जिसमें जाते ही शरीर जल जाता है। ६ क्षुद्राग्निमन्थ वृक्ष, अरनीका पेड़। ७ सूर्यकान्तमणि, सूरजमुखी। ८ साहित्यदर्पणोक्त स्त्रियोंके योवन कालमें सत्वजात अलङ्कारभेद, वह क्रिया या हाव भाव आदि जो नायकके वियोगमें नायिका करती है। ९ अग्निभेद, एक प्रकारकी अग्नि। (पु०) १० शिव, महादेव। ११ ताप, जलन, दाह, आँच। १२ धूप।

१३ जैनशास्त्रानुसार विद्युत्प्रभ नामक गजदन्तके नवकूटोंमेंसे एक। (त्रिलोकसार ७४०, ९४८ गाथा)

तपनक (सं० पु०) शालिधान्य भेद, एक प्रकारका धान।

तपनकर (सं॰ पु॰) तपनस्य करः, ६-तत् । रश्मि, सूर्यकी किरण ।

तपनच्छद (सं॰ पु॰) तपनः अतिरूक्षः छदो यस्य, बहुव्रो॰ । आदित्यपत्रवृक्ष, मदारका पेड़ ।

तपनतनय (सं॰ पु॰ तपनस्य तनयः, ६-तत् । सूर्यके पुत्र यम, कर्ण, शनि, सुग्रीव आदि ।

तपनतनया (सं॰ स्त्री॰) तपनतनय-टाप् । १ शमीवृक्ष । सूर्यको कन्या यमुना, तपती प्रभृति ।

तपनमणि (सं॰ पु॰) तपनः सूर्यः तत् प्रियो मणिः । सूर्यकान्तमणि ।

तपनांशु (सं॰ पु॰) तपनस्य अंशुः, ६-तत् । रश्मि, सूर्यकी किरण ।

तपना (सं॰ स्त्री॰) क्षुद्राग्निमन्थ ।

तपना (हिं॰ क्रि॰) १ तप्त होना, गरम होना । २ सन्तप्त होना, कष्ट सहना, मुसीबत झेलना । ३ गरमी फैलाना । प्रबलता दिखलाना, रोब दिखलाना ।

तपनात्मज (सं॰ पु॰) १ यम, कर्ण प्रभृति । (स्त्री॰) तपनस्य आत्मजा, ६-तत् । २ सूर्यको कन्या, गोदावरी नदी, यमुना, तपती प्रभृति ।

तपनी (सं॰ स्त्री॰) तप्यते पापमनया तप-ल्युट्-ङीष् । १ गोदावरी नदी । २ पाठा, एक लता, पाढ़ ।

तपनीय (सं॰ क्ली॰) तप-अनीयर् । १ स्वर्ण, सोना । २ कनकधुस्तूर, धतूरा । ३ वह जो उत्तप्त करनेका उपयुक्त हो, वह जो तापनेके काबिल हो ।

४ जैनशास्त्रानुसार सौधर्मादि चार स्वर्गोंके अड़तीस इंद्रकविमानोंमेंसे एक । (त्रिलोकसार ४६५ गाथा)

४ (पु॰) ५ शालिधान्य भेद ।

तपनीयक (सं॰ क्ली॰) तपनीय स्वार्थे कन् । सुवर्ण, सोना ।

तपनेष्ट (सं॰ क्ली॰) तपनस्य सूर्यस्य इष्टं, ६-तत् । ताम्र, ताँबा ।

तपनेष्टा (सं॰ स्त्री॰) शमीभेद, एक प्रकारका शमीवृक्ष ।

तपनोपल (सं॰ पु॰) तपन इति नाम्ना ख्यातः य उपलः । सूर्यकान्तमणि ।

तपन्तक (सं॰ पु॰) महाराज उदयनके विदूषक वसन्तका पुत्र, नरवाहनदत्तका बन्धु ।

तपभूमि (हिं॰ स्त्री॰) तपोभूमि देखो ।

तपराशि (हिं॰ पु॰) तपोराशि देखो ।

तपलोक (सं॰ पु॰) तपोलोक देखो ।

तपवाना (हिं॰ क्रि॰) १ गरम करवाना, किसो दूसरेको तपानेके काममें प्रवृत्त करना । २ अनावश्यक व्यय करना, बिना प्रयोजनका खर्च कराना ।

तपविनय (सं॰ पु॰) तपस्वी पुरुषोंको विनय करना ।

तपवृद्ध (हिं॰ त्रि॰) तपोवृद्ध देखो ।

तपश्चरण (सं॰ क्ली॰) तपसः चरणं । तपश्चर्य्या, तपस्या ।

तपश्चर्या (सं॰ स्त्री॰) तपसः चर्या, ६-तत् । व्रतचर्या, तप, तपस्या ।

तपस् (सं॰ क्ली॰) तप-असुन् । १ वह जिसके द्वारा मन निर्मल हो, शरीरको कष्ट देनेवाले वे व्रत और नियम जो चित्तको शुद्ध और विषयोंसे निवृत्त करनेके लिये किये जाँय, तपस्या । २ आलोचनात्मक ईश्वरज्ञानविशेष । ३ क्षुत्पिपासा, क्षुधा और तृष्णा, भूख, प्यास । ४ मौनादि व्रत । ५ शरीर वा इन्द्रियको वशमें रखनेका धर्म । ६ शास्त्रानुसार शरीर, इन्द्रिय और मनका शोधन । ७ कष्टसे किये जानेवाला चान्द्रायण प्राजापत्यादि प्रायश्चित्त । ८ शास्त्रविहित तप्तशिलारोहणादि । ९ वानप्रस्थावलम्बीका असाधारण धर्म ।

तपके तीन भेद हैं—शारीरिक, वाचिक और मानसिक ।

देवताओंका पूजन, बड़ोंका आदर सत्कार, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदि शारीरिक तपके अन्तर्गत हैं ।

सत्य और प्रिय बोलना, वेदशास्त्र पढ़ना आदि वाचिक तप हैं ।

मौनावलम्बन, आत्मनिग्रह आदि मानसिक तप हैं ।

ये तप फिर तीन प्रकारके हैं—सात्विक, राजसिक और तामसिक ।

जो फलकी आकाङ्क्षासे परिशून्य हो कर परम श्रद्धासे उक्त तीनों प्रकारकी तपस्याका अनुष्ठान करता है, वही सात्विक तप है । जो मनुष्य-समाजमें सत्कार, सम्मान और पूजादि लाभके लिये उक्त तीनों प्रकारकी तपस्याका अनुष्ठान करते हैं, उसी पारत्रिकफलशून्य तपस्याको राजस तप कहते हैं और अत्यन्त दुराग्रहद्वारा दूसरेकी

उत्पादनके लिये आत्माको यथेष्ट पीड़ा पहुँचा कर जो तपस्या की जाती है, उसे तामस तप कहते हैं। (गीता) पातञ्जलदर्शनमें तपस्याको क्रियायोग बतला कर वर्णित है।

शास्त्रान्तरोपदिष्ट चान्द्रायण प्रभृति तपस्यासे चित्तकी शुद्धि होती और मनकी एकाग्रता उत्पन्न होती है।

तपस्यासे मनुष्य अभीष्ट फल पाते हैं। तपस्यासे पाप क्षीण होता है और मनुष्य स्वर्गको जाते और वहाँ यश पाते हैं। इस लोकमें और परलोकमें मनुष्योंका जो कुछ अभिलषित रहता है, वह एक तपस्यासे ही प्राप्त होता है।

इस जगत्में तपःसिद्ध मनुष्योंसे कुछ भी असाध्य नहीं है। मनुके मतानुसार ब्राह्मणोंका एकमात्र ज्ञान ही तप है। ब्राह्मणोंको केवल वही काम करना चाहिये जिससे ज्ञान उपार्जन हो। रक्षा करनी ही क्षत्रियोंका तप है। क्षत्रियोंको उचित है कि वे ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी विशेष यत्नसे रक्षा करें। रक्षा ही उनकी एकमात्र तपस्या है। वैश्योंकी वार्त्ता ही (कृषि वाणिज्य प्रभृति) एकमात्र तपस्या है। शूद्रोंके लिये पहले तीन वर्णोंकी सेवा ही तप है।

"ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तपः शूद्रस्य सेवनम्॥"
(मनु ११।५६)

सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ प्रधानतः कलियुगमें दान ही प्रधान है। (मनु १।४६)

ब्राह्मणोंके विधिपूर्वक वेदाध्ययन ही तपस्या है। (मनु २।१६६) तपःसिद्ध ब्राह्मण तपस्या द्वारा त्रिभुवनका अवलोकन कर सकते हैं। १० माघ मास, माघका महीना। ११ नियम। १२ धर्म। १३ ज्योतिषोक्त लग्नस्थानसे नवम स्थान, ज्योतिषमें लग्नसे नवाँ स्थान। १४ तपोलोक। यह लोक जनलोकसे ऊपर और अत्यन्त तेजोमय है।

जो वासुदेवमें अत्यन्त भक्तिपरायण हैं और जो अपना समस्त कर्म परम गुरु श्रीकृष्णमें अर्पण करते जो तपस्यासे श्रीकृष्णको सन्तुष्ट रखते और जिनकी सब अभिलाषा परित्यक्त हो गई है, वे ही इसलोकमें वास करते हैं और जो शिलोञ्छ वृत्ति द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करते, जो ग्रीष्मकालमें अत्यन्त कठोर पञ्चाग्निसाध्य तपस्या करते और जो वर्षाकालमें स्थण्डिलशायी, हेमन्त और शिशिर कालमें जलमें अवस्थान कर तपस्या करते हैं वे ही इस लोकके अधिकारी हैं।

जो चातुर्मास्य व्रत प्रभृतिके अत्यन्त कठोर नियम पालन करते और ईश्वरमें सदा लीन रहते, वे ही निर्भयसे इस लोकमें वास करते हैं। (पद्मपुराण) १४ अग्नि, आग।

तपस (सं० पु०) तप्-असच्। १ सूर्य। २ चन्द्रमा। ३ पक्षी।

तपसा (हिं० स्त्री०) १ तपस्या, तप। २ तापती नदीका दूसरा नाम। यह बैतूलके पहाड़से निकल कर खम्भातकी खाड़ीमें गिरती है।

तपसाली (हिं० पु०) तपस्वी।

तपसी (हिं० पु०) तपस्या करनेवाला, तपस्वी।

तपसी मछली (हिं० स्त्री०) बंगालकी खाड़ीमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। इसकी लम्बाई लगभग एक बालिश्तकी होती है। अंडे देनेके लिये यह वैशाख या जेठ मासमें नदियोंमें चली जाती है।

तपसीराम—हिन्दीके एक कवि। ये जातिके कायस्थ थे। सारन जिलेके मुबारकपुर ग्राममें इनका घर था।

तपसीमूर्ति (सं० पु०) बारहवें मन्वन्तरके चौथे सावर्णिके सप्तर्षियोंमेंसे एक। (हरिवंश ७अ०)

तपस्तक्ष (सं० पु०) तपः तपस्यां तक्षति तनूकरोति तक्ष-अण्। इन्द्र।

तपस्पति (सं० पु०) तपसां पतिः, ६-तत्। हरि, विष्णु।

तपस्य (सं० पु०) तपसि साधुः यत्। १ फाल्गुन मास, फागुनका महीना। २ अर्जुन, अर्जुनका एक नाम फाल्गुन था, इसीलिये तपस्य भी अर्जुनका नाम हुआ है। (क्ली०) ३ कुन्दपुष्प। ४ तपश्चरण, तपस्या। ५ तापस मनुके दश पुत्रोंमेंसे एक। (हरिवंश ७।२४)

तपस्या (सं० स्त्री०) तपश्चरति तपस-क्यङ्। कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरौ। पा ३।१।१५। ततो अ, ततः टाप्। १ व्रतचर्या, तप। इसके संस्कृत पर्याय—व्रतादान, परिचर्या, नियमस्थिति और व्रतचर्या। तपस् देखो। २ फाल्गुनमास, फागुनका महीना।

तपस्यामत्स्य (सं० पुं०-स्त्री०) मत्स्यभेद, तपसी मछली। इसके पर्याय—तपःकार, चेष्टक और चेष्ट।

तपस्वत् (सं० त्रि०) तपस् मतुप् मस्य व। तपस्वी।

तपस्विता (सं० स्त्री०) तपस्विनो भावः तपस्विन्-तल्-टाप्। तपस्वित्व, तपस्वी होनेकी अवस्था।

तपस्विन् (सं० त्रि०) तपो विद्यतेऽस्य तपस्-विनि। तपःसहस्राभ्यां विनीनी। पा ५।२।१०२। १ तपोयुक्त, तपस्या करनेवाला। इसके पर्याय तापस, पारिकाङ्क्षी, पारकाङ्क्षी और तपोधन है।

स्वाध्यायरूप तप, समयरूप तप तथा मनके साथ इन्द्रियोंका एकाग्रतारूप तप, इन तीन प्रकारके तपस्याविशिष्टको तपस्वी कहते हैं। विधिपूर्वक वेदादि अध्ययनके समय यथाशास्त्र नियमादि पालन और मनके साथ इन्द्रियोंको एकाग्रता अर्थात् स्थिरत्व सम्पादन नहीं करनेसे तपस्वी नहीं कहला सकता है।

जिनके वशित्व, नियमित्व और वैदिकत्व ये तीन गुण विद्यमान हैं, वे ही प्रकृत तपस्वी हैं। जिन्होंने संसार-आश्रम परित्याग कर अरण्य वास किया है और वहाँ तन-मनसे देवताकी आराधना करते हैं, वे भी तपस्वी कहलाते हैं।

इस संसारमें मनुष्य दुर्निवार इन्द्रियसुखमें आसक्त हो कर कभी न कभी अवसन्न हो जाते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और मानसिक क्लेशसे संसारको असार समझ कर तपस्याके लिये यत्नशील हो जाते तथा वे कायमनोवाक्यसे पवित्र, अहङ्कारपरिशून्य और संसारमें निर्लिप्त हो कर भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके तपस्याका अनुष्ठान किया करते हैं।

प्राणियोंके प्रति दया करनेसे उनमें अनुराग उत्पन्न हो सकता है; इसलिये प्राणियों पर उपेक्षा दर्शाना तपस्वियोंको उचित है। शुभकर्मका अनुष्ठान करके यदि उन्हें दुःख भोग करना पड़े तो वे विरत नहीं होते। तपस्वी अहिंसा, सत्यवाक्य, भूतानुकम्पा, क्षमा और सावधानता अवलम्बन किया करते हैं।

वे अवहितचित्तसे समस्त प्राणियोंके प्रति समान दृष्टिसे देखते हैं। दूसरेकी अनिष्टचिन्ता, असम्भव स्पृहा और भविष्य या भूत विषयके अनुष्ठानसे सर्वदा विरत रहते हैं। वे कठिन यत्नसे तपस्याके फल ज्ञानार्जनमें प्रविष्ट होते हैं। उनके वेदवाक्यानुशीलनके प्रभावसे ज्ञान प्रवर्त्तित होते रहते हैं। वे अविचलितचित्तसे हिंसा, अपवाद, शठता, परुषता, क्रूरतापरिशून्य और परिमित सत्यवाक्य प्रयोग किया करते हैं। तपस्वी संसारके भयसे भीत हो कर राजसिक और तामसिक कार्य परित्याग करके संसारकी यन्त्रणा अर्थात् जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिके फंदेसे विमुक्त होते हैं। वे वीतस्पृह, परिग्रहपरिशून्य, निर्जनविहारी, अल्पाहारनिरत और जितेन्द्रिय होते हैं। जो तपस्याके प्रभावसे समस्त क्लेशको निवारण कर योगानुष्ठानमें एकान्त अनुराग दिखलाते हैं, वे निश्चय ही अपने वशीकृत चित्तके प्रभावसे परमगति पानेमें समर्थ होते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य पहले बुद्धिवृत्तिको निगृहीत कर पीछे उसी धीशक्तिके प्रभावसे मनको तथा मनःप्रभावमें शब्दादि इन्द्रियविषय समूहको निगृहीत करते हैं। जितेन्द्रिय हो कर चित्तको वशीभूत करनेसे सब इन्द्रियाँ प्रसन्न हो बुद्धितत्त्वमें लीन हो जाती हैं। इन्द्रियोंके साथ मनकी एकता सम्पादित होनेसे ही तपस्याका फल ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता तथा उसी समय मनमें ब्रह्मभाव आ जाता है।

तपस्वीगण विशुद्धवृत्ति अवलम्बन कर तण्डुलकण, सुपक्वमाष, शाक, उष्णजल, पक्वयवचूर्ण, शक्तु, और फलमूल प्रभृति भिक्षालब्धद्रव्य भक्षण करके जीवनधारण करते हैं।

तपस्याका कार्य आरम्भ होनेसे उन्हें व्याघात करना कर्त्तव्य नहीं है। अग्निकी नाईं क्रमशः उनको उत्तेजना करना ही विधेय है। ऐसा होनेसे धीरे धीरे सूर्यकी नाईं तपस्याका फल ब्रह्मज्ञान प्रकाशित हुआ करता है। ज्ञानानुगत अज्ञान, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंमें ही मनुष्यको अभिभूत करता और बुद्धिवृत्तिके अनुगत ज्ञान और अज्ञान द्वारा उपहत (नष्ट) हुआ करता है। मनुष्य जब तक अवस्थात्रयातीत परमात्माको उन तीन अवस्थायुक्त कह कर समझते हैं, तब तक उन्हें कुछ भी समझमें नहीं आ सकता। फिर जब तपस्याके प्रभावसे पृथक्त्व और अपृथक्त्वका विषय समझमें आ जाता है, तब उनकी स्पृहा सदाके लिये दूर

हो जाती है तथा उस समय तपस्वी तपस्याके प्रभावसे जरा और मृत्युको पराजय कर परमब्रह्मके अधिकारी होते हैं। विशेष विवरण योगिन् शब्दमें देखो। २ अनुकम्पाके योग्य, दया करने योग्य। ३ दीन, दुखिया। ४ तपस्यामत्स्य, तपसी मछली। ५ घृतकरञ्जवृक्ष, घीकुआर। ६ नारद। ७ चौथे मन्वन्तरके कश्यपात्मज ऋषिका नाम। तापसोमूर्ति देखो। ८ भागवतके अनुसार बारहवें मन्वन्तरके सप्तर्षि। तपोमूर्ति देखो। ९ हिङ्गुपत्र। १० दमनकवृक्ष दौनेका पेड़।

तपस्विनी (सं० स्त्री०) तपस्विन् स्त्रियां ङीप्। १ तपोयुक्ता, तपस्या करनेवाली स्त्री। २ जटामांसी। ३ कटुरोहिणी, कुटकी। ४ महाश्रावणिका, बड़ी गोरखमुण्डी। ५ दीना, दुःखिता, दीन और दुखिया स्त्री। ६ पतिव्रता, सती स्त्री। ७ वह स्त्री जो अपने पतिकी मृत्यु पर केवल अपनी सन्तानके पालन करनेके लिये सती न हो और कष्टपूर्वक अपना जीवन बितावे। ८ तपस्वीकी स्त्री। ९ मुण्डीरी, गोरखमुण्डी। १० जिङ्गिणी, जिगिनका पेड़।

तपस्विपत्र (सं० पु०) तपस्विप्रियं पत्रं यस्य, बहुव्री०। दमनकवृक्ष, दौनेका पेड़।

तपा (सं० पु०) १ ग्रीष्म ऋतु। २ माघ मास।

तपाक (फा० पु०) १ आवेश, जोश। २ वेग, तेजी।

तपागच्छ (सं० पु०) श्वेताम्बर जैन साधुओंका एक संघ। जैनसम्प्रदाय देखो।

तपात्यय (सं० पु०) तपस्य ग्रीष्मस्य अत्ययो यत्र, बहुव्री०। १ वर्षाकाल, बरसात। तपस्य अत्ययः, ६-तत्। ग्रीष्मावसान, गरमी ऋतुकी समाप्ति।

तपानल (सं० पु०) तपसे उत्पन्न तेज।

तपाना (हिं० क्रि०) १ तप्त करना, गरम करना। २ दुःख देना, क्लेश देना।

तपान्त (सं० पु०) तपस्य अन्तो यत्र, बहुव्री०। १ ग्रीष्मकाल। तपस्य अन्तः, ६-तत्। २ ग्रीष्मावसान, गरम ऋतुका अन्त।

तपाव (हिं० पु०) ताप, गरमाहट।

तपावन्तत (हिं० पु०) तपस्वी, तपसी।

तपित (सं० त्रि०) तप-दाहे क्त। तप्त, उष्ण, गरम।

तपित (सं० पु०) जैनशास्त्रानुसार बालुकाप्रभा नामक तीसरी नरकभूमिमें नारकियोंके रहनेके जो बिलस्थान है उनमें ९ इन्द्रकबिल कहे जाते हैं। तपित दूसरे इन्द्रकबिलका नाम है।

तपिया (हिं० पु०) मध्यभारत, बङ्गाल तथा आसाममें होनेवाला एक प्रकारका वृक्ष। इसके छिलके और पत्ते दवाके काममें आते हैं। इसका दूसरा नाम बिरमी है।

तपिश (फा० स्त्री०) तपन, गरमी, आँच।

तपिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन तप्ता तप्तृ-इष्ठन् तृणोलोपः। १ अत्यन्त तापक, अधिक गरम। २ अत्यन्त तप्त, अधिक तपा हुआ।

तपिष्णु (सं० त्रि०) तप-इष्णुच्। तपकारी, जलन देनेवाला।

तपी (हिं० पु०) १ तापस, तपस्वी, ऋषि। २ सूर्य।

तपीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन तप्ता तप्तृ-ईयसुन् तृणोलोपः। १ अत्यन्त तापकारी, अधिक गरमी देनेवाला। २ अत्यन्त तपस्याकारक, कठिन तप करनेवाला।

तपु (सं० त्रि०) तप-उन्। १ तापक, ताप उत्पन्न करनेवाला। २ तापयुक्त, जिसमें अधिक गरमी हो। ३ तप्त, उष्ण, गरम। (पु०) ४ अग्नि, आग। ५ रवि, सूर्य। ६ शत्रु, दुश्मन।

तपुरग्र (सं० त्रि०) अग्रभाग उष्णतायुक्त, जिसका अगला भाग बहुत गरम हो।

तपुर्जम्भ (सं० पु०) अग्नि, आग।

तपुर्मूर्द्धन् (सं० पु०) जिसका मस्तक उत्तप्त हो, अग्नि।

तपुवर्ध (सं० त्रि०) उत्तप्त अस्त्रयुक्त, गरम हथियार।

तपुषि (सं० त्रि०) तप-उसिन् वेदे नकारस्य-इत्। तापक, गरम करनेवाला।

तपुषी (सं० स्त्री०) तपुषि स्त्रियां ङीप्। क्रोध, गुस्सा।

तपुष्पा (सं० त्रि०) ज्वालासे रक्षा, आगसे बचाना।

तपुस् (सं० पु०) तपति तापयति वा तप-उसि। अर्तिपृवपीति। उण् २।११८। १ रवि, सूर्य। २ अग्नि, आग। ३ तापयुक्त, वह जिसमें अधिक गरमी हो। ४ तपन, जलन, आँच। (क्ली०) ५ तपनशील, तपानेवाला।

तपोज (सं० त्रि०) तपसः तपस्यातः अग्नेर्वा जायते जन-ड। १ तपस्याजात, जो तपस्यासे उत्पन्न हुआ हो। २ अग्निजात, जो अग्निसे उत्पन्न हुआ हो।

तपोजा (सं० स्त्री०) तपोज-टाप्। जल, पानी। तपस्याको अग्निसे अप् (जल) उत्पन्न होता है। पहले अग्निसे धूम, धूमसे अभ्र (मेघ) और मेघसे वृष्टि होती है। इसीलिये वृष्टि तपस्यासे उत्पन्न होनेके कारण इसका नाम तपोजा हुआ है।

तपोड़ी (हिं० स्त्री०) काठका एक बरतन।

तपोद (सं० पु०) मगधका एक तीर्थ।

तपोदान (सं० क्ली०) तप इव दानं यत्र, बहुव्री०। तीर्थभेद, पुण्य-तीर्थोंमें तपोदान एक प्रधान तीर्थ माना गया है। (भारत १३।५२ अ०) तीर्थ देखो।

तपोधन (सं० त्रि०) तपोधनं यस्य, बहुव्री०। १ तपोरत, तपस्वी। तपोधन मन, वाक्य और काय द्वारा जो कुछ पाप करते, वे तपस्यासे नाश हो जाते हैं। (क्ली०) २ तप एव धनं, कर्मधा०। २ तपोरूप धन, तपस्या ही जिसका एक मात्र धन हो। तपः धनं मूल्यं यस्य। ३ तपस्या द्वारा पाने योग्य स्वर्गादि। ४ दमनकवृक्ष, दौनेका पेड़।

तपोधन—गुजराती ब्राह्मणोंकी जातिका एक भेद। ताप्ती नदीके तीरवर्ती देशोंमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। प्राचीन कालमें इस वंशके लोग बड़े तपस्वी थे, यहाँ तक कि तपस्याको ही अपना सर्वस्व समझते थे और लौकिक धनकी इच्छा न रख करके तपरूपी धनको एकत्रित करनेवाले थे। इसी कारण इन्हें तपोधनकी उपाधि मिली थी। आज कल ये नाम मात्रके तपोधन रह गये हैं।

तपोधना (सं० स्त्री०) तपोधन-टाप्। मुण्डीरीवृक्ष, गोरखमुण्डी।

तपोधर्म (सं० पु०) तपः एव धर्मो यस्य, बहुव्री०। १ तपस्या ही जिसका धर्म है, तपस्वी। तपसो धर्मः, ६-तत्। २ तपस्याका धर्म। ३ ग्रीष्मकालका धर्म।

तपोधृत (सं० पु०) तपसि धृतः सन्तोषो यस्य, बहुव्री०। १ तपोरत, तपस्वी। २ सप्तर्षिभेद, बारहवें मन्वन्तर चौथे सावर्णिके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषि।

तपोनिधि (सं० पु०) तप एव निधिः धनं यस्य, बहुव्री०। तपोनिष्ठ, तपस्वी।

तपोनिष्ठ (सं० पु०) तपसि निष्ठा यस्य, बहुव्री०। तपोरत, तपस्वी।

तपोभूमि (सं० स्त्री०) तप करनेका स्थान, तपोवन।

तपोभृत् (सं० त्रि०) तपो बिभर्त्ति तपः भृ-क्विप् तुक् च। तपोधारक, जो तपस्या धारण करते हैं।

तपोमय (सं० पु०) तपः प्रचुरः तपः स्रष्टव्यपदार्थालोचनं तदात्मको वा तपस् मयट्। १ तपः प्रचुर, यथेष्ट तपस्या। २ परमेश्वर।

तपोमयी (सं० स्त्री०) तपोमय-ङीप्। तपस्वरूपा, वह जिसने यथेष्ट तपस्या की हो।

तपोमूर्ति (सं० पु०) तपः आलोचनभेद एव मूर्तिर्यस्य वा तपःप्रधाना मूर्तिर्यस्य, बहुव्री०। १ परमेश्वर। २ तपस्वी। ३ सप्तर्षिभेद, बारहवें मन्वन्तरके चौथे सावर्णिके सप्तर्षियोंमेंसे एक। (हरिवंश ७ अ०) तपसोमूर्ति देखो।

तपोमूल (सं० पु०) तपो मूलं यस्य, बहुव्री०। १ तपस्याके लिये स्वर्गादि। २ तामस मनुके एक पुत्रका नाम। तपस्य देखो।

तपोयुक्त (सं० त्रि०) तपसा युक्त, ३-तत्। तपस्या द्वारा युक्त, तपस्यासे भरपूर।

तपोरति (सं० त्रि०) तपसि रतिर्यस्य, बहुव्री०। तपः परायण, जो तपस्यामें लीन हो। (पु०) २ तामस मनुके एक पुत्रका नाम। तपस्या देखो।

तपोरवि (सं० पु०) तपसा रविरिव। १ वह जो सूर्यके सदृश तेजवन्त हो। २ बारहवें मन्वन्तरके चौथे सावर्णिके समयमें सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषिका नाम।

तपोराशि (सं० पु०) महामुनि, बहुत बड़ा तपस्वी।

तपोलोक (सं० पु०) तपोनाम लोकः, मध्यपदलो० कर्मधा०। ऊर्ध्वस्थित लोकविशेष, ऊपरके सात लोकोंमेंसे छठाँ लोक। यह लोक जनलोकसे चार करोड़ योजन ऊपरमें अवस्थित है।

"चतुःकोटिप्रमाणं तु तपोलोकोऽस्ति भूतलात्।" (काशीख० २४।२०)

भू प्रभृति सात लोक ब्रह्मासे उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माके दोनों पैरसे भूलोक, नाभिसे भुवर्लोक, हृदयसे स्वर्लोक, वक्षःस्थलसे महर्लोक, गलेसे जनलोक, दोनों स्तनसे तपोलोक और मस्तकसे सत्यलोक उत्पन्न हुआ है। (भागवत २।५।३८-९) विशेष विवरण सप्तलोकमें देखो।

तपोवट (सं० पु०) तपसो वट-इव। ब्रह्मावर्त्त देश।

तपोवन (सं० क्लो०) तपसो वनं, ६-तत्। १ तापससेव्य वनविशेष, मुनियोंका आश्रयस्थान, वह एकान्त स्थान जहाँ मुनिगण कुटो बना कर तपस्या करते हैं। २ इसी नामका एक तीर्थ, वृन्दावनस्थित एक वन। यहाँ गोपकन्या कात्यायनो-व्रत करते हैं। इसके पासही चीरघाट है। (भक्तमाल) वृन्दावन देखो।

तपोबल (सं० क्लो०) तपसः बलं, ६-तत्। तपस्याका बल, तपस्याका प्रभाव।

तपोवृद्ध (सं० त्रि०) तपसा वृद्धः, ३-तत्। तपोज्येष्ठ, जो तपस्या द्वारा श्रेष्ठ हो।

तपोद्युति (सं० पु०) १ सप्तर्षिभेद, तपसोमूर्तिका एक नाम। २ तामस मनुके एक पुत्रका नाम।

तपस्य देखो।

तपौनी (हिं० स्त्री०) १ ठगोंकी एक रसम। जब वे मुसाफिरोंको लूट मार कर उनका माल घर ले जाते हैं तब यह रसम की जाती है। इसमें वे मिल कर देवीकी पूजा करते और उन्हें गुड़ चढ़ा कर उसीका प्रसाद आपसमें बाँटते हैं।

तप्त (सं० त्रि०) तप-क्त। १ दग्ध, तपा हुआ, जलता हुआ। २ तापयुक्त, जिसमें अधिक गरमी हो। ३ दुःखित, पीड़ित।

तप्तक (सं० क्लो०) १ रौप्य, चाँदी। २ स्वर्णमाक्षिक।

तप्तकाञ्चन (सं० क्लो०) तप्तं यत् काञ्चनं, कर्मधा०। अग्निसंयोगसे विमल काञ्चन, आगसे साफ किया हुआ सोना।

तप्तकुण्ड (सं० पु०) प्राकृतिक उष्ण जलधारा, गरम पानीका सोता। पहाड़ों या मैदानोंमें कहीं कहीं गरम पानीके सोते मिलते हैं। इसका कारण यह है कि या तो पानी बहुत अधिक गहराईसे या भूगर्भके मध्यकी अग्निसे तप्त चट्टानों परसे होता हुआ आता है। ऐसे जलमें खनिज पदार्थ मिले रहनेके कारण इसमें स्नान करनेसे प्रायः रोग जाता रहता है। ऐसे गरम जलके सोते यूरोप और अमेरिकामें बहुत पाये जाते हैं। दूर दूरके मनुष्य उन्हें देखने तथा उनका जल पीनेके लिए वहाँ आते हैं और बहुतसे मनुष्य रोगसे छुटकारा पानेके लिये महीनों उनके किनारे रह जाते हैं। जल जितना ही गरम होगा उसमें उतना ही गुण अधिक होता है।

तप्तकुम्भ (सं० पु०) तप्तः कुम्भो यत्र, बहुव्री०। नरकभेद, एक भयानक नरकका नाम। इसके चारों ओर गरम कड़ाहे हैं जिनमें लोहेका चूर्ण और तेल सदा खौलता रहता है। उन्हीं कड़ाहोंमें दुराचारियोंको मस्तक नीचेकी ओर करके यमके दूत फेंक दिया करते और गिद्ध उनके नेत्र, अस्थि इत्यादि उखाड़ उखाड़ उनमें डाल देते हैं। जब उनमें उनका प्रत्येक अङ्ग गल जाता है तो यमके दूत उसे करछी या चमचेसे घोंटते हैं।

इस तरह आवर्त्तयुक्त महातैलमें दुष्कर्मकारी मनुष्य उन्मथित होते हुए अनेक प्रकारकी यन्त्रणा पाते हैं। (मार्कण्डेयपुराण) नरक देखो।

तप्तकृच्छ्र (सं० पु०-क्लो०) तप्तेन जलदुग्धादिना आचरितं कृच्छ्रं यत्र वा तप्तने आचरितं। द्वादशाहसाध्य व्रतविशेष, बारह दिनोंमें समाप्त होनेवाला एक प्रकारका व्रत। इस व्रतमें व्रत करनेवालेको पहले तीन दिन तक प्रति दिन तीन पल उष्ण दूध, तब तीन दिन तक प्रतिदिन एक पल घी, बाद तीन दिन तक नित्य ६ पल उष्ण जल और अन्तमें तीन दिन तक तप्त वायु सेवन करना पड़ता है। दूध गरम किये जाने पर जो उष्णवाष्प निकलता है वही तप्तवायु मानी गई है।

यह व्रत करनेसे द्विजोंके सब प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रायश्चित्तविवेकके मतसे यह व्रत चार दिनोंमें भी किया जा सकता है। पहले तीन दिन यथाक्रमसे दूध, घी और जल सेवन करना चाहिए और चौथे दिन उपवास करना चाहिये। इसको चतुरहसाध्य तप्तकृच्छ्र कहते हैं। प्रायश्चित्त देखो।

तप्तखल्ल (सं० पु०) औषध कूटनेका गरम किया हुआ खल।

तप्तजला (सं० स्त्री०) तप्तं जलं यस्याः, बहुव्री०। जैनशास्त्रानुसार सीतानदीके दक्षिण तट पर देवारण्य वेदीसे आगे उक्त नामकी एक विभङ्ग नदी है। इसका जल गरम है इसीलिये यह नाम पड़ा है।

तप्तपाषाणकुण्ड (सं० पु०) तप्तानां पाषाणानां कुण्डमिव। नरकविशेष, एक नरकका नाम।

तप्तबालुक (सं० पु०) तप्त बालुका यत्र, बहुव्री०। १ नरकविशेष, एक नरकका नाम। नरक देखो। (त्रि०) २ उत्तप्त बालुकामय, गरम किया हुआ बालू।

तप्तमाष (सं० पु०) तप्तं माषमितं सुवर्णादिकं यत्र, बहुव्री०। परीक्षाविशेष, प्राचीन कालकी एक प्रकारकी परीक्षा। यह परीक्षा किसी मनुष्यको अपराधी या निरपराधी साबित करनेके लिये की जाती थी। इसमें लोहे या ताँबेके बरतनमें बीस पल तेल और घी डाल कर उसे अग्निद्वारा उत्तप्त करते थे। बाद उसमें एक माषा सोना छोड़ कर अपराधीको उसे बाहर निकालनेके लिये कहा जाता था। यदि उसकी अंगुलीमें छाले आदि न पड़ते तो वह सच्चा समझा जाता था। (बृहस्पति)

इसका दूसरा विधान भी इस तरह है—

सोने, चांदी, ताँबे, लोहे और मट्टीके बरतनको भली भाँति परिष्कार कर अग्नि पर रख छोड़ते थे बाद उनमें गायका घी या तेल डालते थे। इसके बाद विचारक धर्मका आवाहन और पूजादि करके निम्नलिखित मन्त्र द्वारा अग्निको शुद्ध करते थे।

"ओं परं पवित्रममृतं घृतत्वं यज्ञकर्मसु।
दह पावक पापं त्वं हिमशीतशुचै भव॥"

बाद जिस मनुष्यकी परीक्षा करनी होती उसे उपवास करना पड़ता और तब स्नान कर आर्द्रवस्त्रयुक्त हो प्रतिज्ञापत्र मस्तक पर रख कर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना पड़ता था—

'ओं त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरति पावक।
साक्षिमत् पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यं करे मम॥"

यह मन्त्र पढ़ कर उस खौलते हुएमेंसे तप्तमाष निकालने पर यदि परीक्षार्थीकी उँगलीमें छाले आदि न पड़ते तो वह सच्चा समझा जाता था। (दिव्यतत्त्व) दिव्य देखो।

तप्तमुद्रा (सं० स्त्री०) तप्ता अग्निसन्तप्ता मुद्रा, कर्मधा०। शरीर पर धारणोपयोगी अग्निसन्तप्त भगवान्‌का आयुधादि चिह्न, द्वारकाके शंखचक्रादिके छापे। वैष्णव लोग इसे तपा कर अपनी भुजा तथा दूसरे अङ्गों पर दाग लेते हैं। यह धार्मिक चिह्न होता है और वैष्णव लोग इसे मुक्तिदायक मानते हैं। मुद्रा देखो।

तप्तरहस् (सं० क्ली०) तप्तं रहः, कर्मधा० अच् समासान्त। १ वह्नि, आग। २ तप्तवत् निर्जनस्थान, वह एकान्त स्थान जहाँ पर कोई दूसरा मनुष्य जा नहीं सकता।

तप्तराजतैल (सं० क्ली०) आयुर्वेदोक्त तैलविशेष, एक तरहका दवाईका तेल।

प्रस्तुत-प्रणाली—सरसोंका तेल ४ सेर, मदार सहिञ्जन, धतूरा, वासक, सम्हालू, दशमूल, करञ्ज, बला प्रत्येकका रस ६४ सेर कल्कार्थ पीपल, बला, सोंठ, पीपलमूल, चीतेकी जड़, कटफल, धतूरेके बीज, चव्य, जीरा, सोंया, पुनर्णवा, हलदी, देवदारु, ईशलाङ्गला, शुष्क मूला, कुड़, दुरालभा, कालाजीरा, सिजका गोंद, मदारका गोंद, जयपालमूल, नागदौना, विड़ंग, सैन्धव, यवक्षार, रक्तचन्दन, सहिञ्जनकी जड़, उत्पल, मिर्च, जेठीमधु, रास्ना, काकड़ासींगी, कण्टकारी और वरुणकी छाल, प्रत्येकका दो तोला। इस प्रकारसे यह तैल बनता है। शिरःपीड़ामें यह औषध विशेष फलप्रद है। तथा नेत्रशूल, कर्णशूल, तेरह तरहका सन्निपात, वातश्लेष्मा, गलग्रह, सब तरहका शोथ, ज्वर, पिलही, श्लेष्मारोग, ये सब रोग उपशान्त होते हैं।

यह तेल और एक प्रकारका होता है। प्रस्तुतप्रणाली-कटुतैल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, क्वाथके लिये धतूरा (पूतिका), डहरकरञ्ज, झिण्टी, जयन्ती, सँभालू, शिरीष, हिज्जल और सहिंजन मिलित दशमूल, प्रत्येक २ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कार्थ मदनफल, त्रिकटु, कुड़, काला जीरा, सोंठ, कटफल, वरुण-छाल, मोथा, हिज्जल, बेलगरी, हरिताल, जवापुष्प, विष, मनःशिला, काकड़ासींगी, रक्तचन्दन, सहिञ्जनकी छाल, अजमायन और बैंचीकी जड़, प्रत्येकका दो तोला। इससे शिरःशूल, नेत्रशूल, कर्णशूल, ज्वर, दाह, स्वेद, कामला, पाण्डु और तेरह तरहका सन्निपात नष्ट होता है।

शिरःशूलमें यह तैल विशेष फलप्रद है। (भैषज्यरत्नावली)

तप्तरूपक (सं० क्ली०) तप्तं वह्निशोधितं रूपकं रूप्यं कर्मधा०। विशुद्ध रौप्य, तपाई हुई और साफ चाँदी।

तप्तलोमश (सं० पु०) काशीश, एक प्रकारकी धातु, कसीस।

तप्तलोह (सं० पु०) नरकविशेष, एक नरकका नाम।

तप्तशूर्मिकुण्ड (सं० पु०) तप्ता अग्निमयी शूर्मि लौहप्रतिमूर्तिर्यत्र तथाविधं कुण्डं यत्र, बहुव्री०। नरकविशेष, एक नरकका नाम।

तप्तशूर्मी (सं॰ पु॰) तप्ता शूर्मी यत्र, बहुव्री॰। नरक-विशेष, एक नरक। यदि पुरुष अगम्या स्त्रीके साथ और स्त्री अगम्य पुरुषोंके साथ सम्भोग करे ते वे इस नरकमें भेजे जाते हैं।

इस नरकमें पुरुष तप्त लोहेकी नारीको आलिङ्गन कर और नारी तप्तलोहेके पुरुषको आलिङ्गन कर अनेक प्रकारकी यन्त्रणा पाते हैं। (भागवत ५।२६।२०) नरक देखो।

तप्तसुराकुण्ड (सं॰ क्ली॰) तप्तायाः सुरायः कुण्डमिव। नरकविशेष, पुराणानुसार एक नरकका नाम। नरक देखो।

तप्तान्न (सं॰ क्ली॰) तप्तं अन्नं, कर्मधा॰। तप्त अन्न, गरम भात।

तप्ताम्भ (सं॰ क्ली॰) उष्ण सलिल, गरम जल।

तप्तायनी (सं॰ स्त्री॰) तप्तेन अय्यतेऽत्र अय-ल्युट् ङीप्। भूमिभेद, वह भूमि जो दीन दुःखियोंको बहुत सता कर प्राप्त की जाय।

तप्पा—मध्यभारतके भोपाल एजेन्सीकी ठाकुरात या रियासत।

तप्या (सं॰ पु॰) तप-यत्। १ शिव, महादेव। (त्रि॰) २ तपनीय, जो तपने या तपाने योग्य हो।

तप्यतु (सं॰ त्रि॰) तप-यतुन्। तापके सूर्यादि।

तफ़ज्जल हुसेनखाँ—फर्रुखाबादके ब्रटिश राजद्रोही नवाब। ये मुजफ्फरजङ्गके उत्तराधिकारी तथा पौत्र थे। १८५७ ई॰के गदरमें इन्होंने बासठ अंग्रेज, उनकी स्त्री तथा बच्चोंको कतल कर डाला था। अन्तमें ये पकड़े गये और दोष प्रमाणित होने पर फाँसीकी आज्ञा दी गई। लेकिन अवध जिलेके कमिश्नर मेजर वेरी इन्हें पहले ही प्राण-दान दे चुके थे, इस कारण गवर्नर-जनरलने प्राणदण्ड न दे कर ब्रटिश राज्यसे बाहर निकाल देनेका विचार किया। नवाबने मक्का जानेकी इच्छा प्रकट की। अन्तमें १८५९ ई॰को २३वीं॰ मईको जंजीर डाल कर इन्हें मक्का भेजवा दिया। जाते समय केवल अपनी सन्तानसे ही मुलाकात कर लेनेकी इन्हें आज्ञा मिली थी।

तफ़रीक़ (अ॰ स्त्री॰) १ भिन्नता, जुदाई। २ वियोग, घटाना, बाकी निकलना। ३ अन्तर, फरक। ४ भाग, बँटवारा, बाँट।

तफ़रीह (अ॰ स्त्री॰) १ प्रसन्नता, खुशी फरहत। २ हँसी, ठट्ठा, दिल्लगी। ३ सैर, हवाखोरी। ४ ताज़ापन, ताजगी।

तफ़सील (अ॰ स्त्री॰) १ विस्तृत वर्णन, लम्बा चौड़ा ब्योरा। २ सूची, फर्द, फेहरिस्त। ३ विवरण, कैफियत। ४ टीका, तशरीह।

तफ़ावत (अ॰ पु॰) १ अन्तर, फर्क। २ दूरी, फ़ासिला।

तब (हिं॰ अव्य॰) १ उस समय, उस वक्त। २ इस कारण, इसलिये।

तबक़ (अ॰ पु॰) १ लोक, तल। २ परियोंकी नमाज़। मुसलमान स्त्रियाँ परियोंकी बाधासे बचनेके लिये यह नमाज़ पढ़ती हैं। ३ घोड़ोंका एक रोग। इसमें उनके शरीर पर सूजन हो जाती है। ४ शरीर पर एक प्रकार-का दाग जो रक्तविकारके कारण हो जाया करता है, चकत्ता। ५ तल, तह, परत। ६ चौड़ी और कम गह-राईकी थाली।

तबकगर (अ॰ पु॰) सोने चाँदी आदिके तबक़ या पत्तर बनानेवाला, तबकिया।

तबक़फाड़ (अ॰ पु॰) कुश्तीका एक पेंच।

तबक़ा (अ॰ पु॰) १ विभाग, खंड। २ तह, परत। ३ लोक, तल। ४ मनुष्योंका झुण्ड। ५ पद, स्थान, दर्जा।

तबकिया (अ॰ पु॰) तबकगार देखो।

तबकिया हरताल (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी हरताल। इसके टुकड़ोंमें तबक या परत होते हैं।

तबदील (अ॰ वि॰) परिवर्त्तित, बदला हुआ।

तबदीली (अ॰ स्त्री॰) परिवर्त्तित होनेकी क्रिया, बदली।

तबद्दल (अ॰ पु॰) तबदीली देखो।

तबर (फा॰ पु॰) १ कुल्हाड़ी, टाँगी। २ लड़ाईका एक हथियार जो कुल्हाड़ीसा होता है।

तबर (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी पाल जो मस्तूलके सबसे ऊपरी भागमें लगाई जाती है।

तबरदार (फा॰ पु॰) वह जो कुल्हाड़ी या तबर चलाता है।

तबरदारी (फा॰ स्त्री॰) तबर, कुल्हाड़ी या फरसे चलानेका काम।

तबरी—तबरिस्तानके एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथा 'तारीख तबारी' के रचयिता। इनकी इच्छा तो और अधिक थी, लेकिन मित्रोंके आग्रहसे केवल ३०००० कागजके तख्तोंमें ही इन्होंने साधारण इतिहास समाप्त की थी। ९२२ ई०में इनका देहान्त हुआ।

तबल (फा० पु०) १ बड़ा ढोल। २ नगारा, डंका।

तबलची (अ० पु०) छोटा तबला बजानेवाला, तबलिया।

तबला (अ० पु०) ताल देनेका काठका एक प्रकारका बाजा। यह काठ खोखला और लम्बोतरा होता है। इस पर गोल चमड़ा मढ़ा रहता है। लोहचून, झावें, लोई, सरेस, मँगरेले और तेलको मिला कर एक प्रकारकी स्याही बनाई जाती है और इसीकी गोल टिकिया तबलेके ऊपर अच्छी तरह जमा कर चिकने पत्थरसे घोंटी जाती है। इसी स्याही पर आघात पड़नेसे तबलेमेंसे आवाज निकलती है। मढ़ा हुआ चमड़ा कुँडमेंसे चमड़ेके फीते द्वारा मजबूतीसे जकड़ा रहता है और इसमें काठकी गुल्लियाँ भी रख दी जाती हैं। इन्हीं गुल्लियोंकी सहायतासे तबलेका स्वर समय पड़ने पर चढ़ाया और उतारा जाता है। यह बाजा अकेला नहीं बजाया जाता, इसी तरहके और दूसरे बाजे डुग्गीके साथ बजाया जाता है। वातावरण अधिक ठंढा हो जानेके कारण भी तबला आपसे आप उतर जाता है और अधिक गरमीके कारण आपसे आप चढ़ जाता है।

तबलिया (अ० पु०) तबला बजानेवाला, तबलची।

तबाक़ (अ० पु०) बड़ा थाल, परात।

तबाबत (अ० स्त्री०) चिकित्सा, इलाज।

तबाशीर (हिं० पु०) बंशलोचन।

तबाह (फा० वि०) नष्ट, बरबाद, चौपट।

तबाही (फा० स्त्री०) अधःपतन, नाश, बरबादी।

तबिअत (हिं० स्त्री०) तबीयत देखो।

तबीअत (अ० स्त्री०) १ चित्त, मन, जी। २ बुद्धि, समझ, भाव।

तबीअतदार (अ० वि०) १ समझदार, अक्लमन्द। २ भावुक, रसज्ञ, रसिक।

तबीअतदारी (अ० स्त्री०) १ समझदारी, होशियारी। २ भावुकता, रसज्ञता।

तबीब (अ० पु०) वैद्य, चिकीम।

तभ (सं० पु०) छाग, बकरा।

तभी (हिं० अव्य०) १ उसी समय, उसी वक्त। २ इसी कारण, इसी वजहसे।

तमंचा (फा० पु०) १ छोटी बन्दूक, पिस्तौल। २ एक प्रकारका लम्बा पत्थर। यह दरवाजोंकी मजबूतीके लिये बगलमें लगाया जाता है।

तम (सं० क्ली०) ताम्यत्यनेन तम करणे संज्ञायां घञर्थे घ। १ अन्धकार, अँधेरा। २ पादाग्र, पैरका अगला भाग। ३ तमोगुण। ४ राहु। (पु०) ५ तमालवृक्ष। ६ बराह, सूअर। ७ पाप। ८ अज्ञान। ९ कालिख, कालिमा, श्यामता। १० नरक। ११ मोह। १२ सांख्यके अनुसार अविद्या। १३ प्रकृतिका तीसरा गुण। १४ राहु। १५ क्रोध, गुस्सा।

तमअ (अ० स्त्री०) १ लालच, लोभ। २ चाह, इच्छा।

तमक (सं० पु०) ताम्यत्यत्र तम-वुन्। श्वासरोगभेद। इसमें दम फूलनेके साथ साथ बहुत प्यास लगती है, पसीना आता है, जी मिचलता है और गलेमें घरघराहट होती है। मेघाच्छन्नके दिन इसका प्रकोप अधिक होता है।

तमकना (हिं० क्रि०) क्रोधका आवेश दिखलाना, गुस्साके मारे उछल पड़ना।

तमकप्रभा (सं० स्त्री०) जैनशास्त्रानुसार अधोलोकमें सात भूमि हैं उनमें यह छठी भूमिका नाम है। इसमें घोर अन्धकार है और छठा नरक भी यहीं है।

तमकश्वास (सं० पु०) एक प्रकारका दमा। इसमें कंठ रुक जाता है और घरघराहट होती है। यह बहुत खतरनाक बीमारी है। इसमें रोगीको प्राणका डर रहता है।

तमका (सं० स्त्री०) १ तमाल वृक्ष। (Phyllanthus Emblica) २ भूम्यामलकी, भुइँ आँवला।

३ जैनशास्त्रानुसार धूमप्रभा नामक पांचवी नरक पृथ्वीमें पाँच इन्द्रकविल है। उनमेंसे एक विलका नाम है।

तमकी (सं० स्त्री०) जैनशास्त्रानुसार चतुर्थ नरकभूमिके सात इन्द्रविलोंमें एक।

तमकोही—युक्तप्रदेशके बस्ती तथा गोरखपुर जिलेका एक प्रतिष्ठित राज्य। युक्तप्रदेशान्तर्गत गोरखपुर तथा बस्ती जिलोंमें २३९, बिहारप्रान्तके सारन जिलेमें ४ और

गयामें ४२ गाँव इस राज्यके हैं। राजाको उपर्युक्त २७६ गाँवोंकी मालगुजारी १२७७८६) रुपये वार्षिक सरकारमें देनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त दरभंगा तथा मुजफ्फरपुरके जिलोंमें भी ८४ गाँव लगते हैं। इस प्रकार इस राज्यके कुल गाँवोंकी संख्या ४६० है, उक्त ८४ गाँवोंकी वर्तमान राजा साहबके स्वर्गवासी पिताजीने मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत सुरसण्ड-नरेश राजा रघुनन्दन सिंहजीसे प्राप्त किया था।

तमकोही-नरेश भूमिहार ब्राह्मण हैं। काशी-राजवंशके साथ आपका घनिष्ट सम्बन्ध है। इनके पूर्वज पहले बिहार-उड़ीसा प्रदेशान्तर्गत जिला सारनमें हुसेपुरके अधिपति थे। मुगल साम्राज्यमें इनके पूर्वज राजा कल्याणशाही सबसे अधिक प्रभावशाली हुए। फलतः तत्कालीन दिल्ली-बादशाहने उन्हें राजाकी उपाधि दी और साथ ही एक डंका, एक पताका तथा एक मनसबदार मत्स्याकृति मुकुट (माहीमरातिब) भी दिया था।

राजा कल्याणशाहीके छठे वंशधर राजा गन्धर्वशाही उपनाम हमीरशाहीने दिल्ली-अधिपति महम्मदशाहका विशेष उपकार किया था। अतः उपर्युक्त अधिपतिने इन्हें पुरस्कारस्वरूप एक उपाधिविशेष एवं सिंहाङ्कित पदक प्रदान किया। राजा हमीरशाहीके तृतीय वंशधर राजा फतहशाहीने अपने कनिष्ठ भ्राताके साथ मनोमालिन्य होनेके कारण अपनी प्राचीन राजधानी हुसेपुरको छोड़ दिया और गोरखपुर जिलान्तर्गत तमकोही नामक ग्राममें एक नई राजधानी स्थापित की। राजा खड़गबहादुरशाहीने अपने राजत्वकालमें ब्रिटिश गवर्मेंटसे भी अपनी वंशपरम्परागत "राजा" उपाधिको सम्मानित कराया। इन्होंने अपने नाना टिकारी-नरेशसे विशेष स्थावर सम्पत्ति प्राप्त कर तमकोही राज्यकी आय बढ़ायी थी।

वर्तमान राजा इन्द्रजित्प्रताप बहादुर शाहीके स्वर्गीय पिता राजा शत्रुजित्प्रताप बहादुर शाहीने मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत सुरसण्ड-अधिपति राजा रघुनन्दनसिंहकी पौत्रीसे विवाह किया और उनसे प्रचुर स्थावर सम्पत्ति प्राप्त कर राज्यकी आयको और भी बढ़ा दिया।

सन् १८९८ ई०के अक्टुबर मासमें राजा शत्रुजित्प्रताप बहादुर शाहीके स्वर्गवास होनेपर उनके सुयोग्य पुत्र वर्तमान राजा इन्द्रजित् प्रताप बहादुरशाही राज्याधिकारी हुए। आप बड़े सुविज्ञ, उन्नतिशील, नवयुवक पुरुष हैं। आपने लखनऊ कालविन ताल्लुकदार स्कूलमें तथा अपने घर पर अनुभवी पण्डितों और गवर्मेंटके उच्च कर्मचारियोंसे शिक्षा प्राप्त की है।

उक्त राजा साहब उर्दू, हिन्दी, संस्कृत तथा अंगेरेजी भाषामें निपुण होते हुए, अश्वारोहण तथा क्रिकेट आदिमें भी भली भाँति कुशल हैं। आप १९११ ई०के दिल्ली-दरबारमें सम्मिलित थे और उस समय आपको वहाँसे सम्मानास्पद एक रौप्यपदक भी मिला था। दीन तथा असहायोंके प्रति आपकी दयादृष्टि सर्वदा रहती है। प्रजावात्सल्य आपमें पूर्णरूपसे विद्यमान है। राज्यशासनमें राजा साहबकी मनोयोगिता एवं प्रजाकी आर्थिक अवस्थाकी उन्नतिमें दत्तचित्तता विशेषरूपसे श्लाघनीय है। आपने गृहशिल्पके प्रचारार्थ अपने राज्यमें कई कारखाने खोल रखे हैं।

विगत यूरोपीय महायुद्धमें वर्तमान राजा साहबने गवर्मेंटको विविध प्रकारसे यथेष्ट सहायता कर राजभक्तिका पूर्णरूपसे परिचय दिया था। फलतः युद्धपरिषद्से आपको पुरस्कारस्वरूप एक सनद, तथा प्रान्तीय सरकारसे सम्मानसूचक एक तलवार भी मिली थी। आइनसभाके आप सदस्य भी हैं।

राजा साहबका निवासस्थान तमकोहीमें है। यहाँ एक प्रकाण्ड राज-प्रासाद एवं वृहत् अट्टालिकायें, एक उच्च मन्दिर, सुरक्षित दुर्ग, तथा चारों ओर फसीलें हैं। राज-प्रासादके समीप ही दक्षिण ओर लक्खीबागमें एक सुमनोहर और सुसज्जित बंगला है जिसमें उच्च कोटिके भारतीय और यूरोपीय अतिथि निवास किया करते हैं।

तमकोहीमें एक पोष्ट आफिस, तारघर, मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल जिसमें अंगरेजीकी भी शिक्षा दी जाती है, अपर तथा लोअर प्रायमरी स्कूल, ज्योतिष और व्याकरण शिक्षा देनेका संस्कृत पाठशाला, एक साधारण पुस्तकालय तथा एक दातव्य चिकित्सालय भी है। उक्त राजा साहबने एक नील, एवं चीनीका एक तथा दो और कृषि-विभागके फार्म खोल कर अपनी प्रजाओंका विशेष उपकार किया है। तमकोहीमें प्रति वर्ष

आश्विन विजयादशमीके अवसर पर एक भारी मेला लगता है जिसमें पशुप्रदर्शनी भी कराई जाती है। राजा साहब अपने हाथसे उन कृषकोंको जिनके पशु उत्तम तथा पुष्ट होते हैं उचित पुरस्कार दे कर प्रजामण्डलको उत्साहित करते हैं।

तमग़ा (तु० पु०) पदक, तगमा।

तमगुन (हिं० पु०) तमोगुण देखो।

तमङ्ग (सं० पु०) मञ्चस्थान।

तमङ्गक (सं० पु०) इन्द्रकोष, मञ्चक; मचान।

तमचर (हिं० पु०) १ राक्षस, निशाचर। २ उल्लू, उलूक।

तमत (सं० त्रि०) तम काङ्क्षायाँ अतच्। तृषित, प्यासा।

तमतमाना (हिं० क्रि०) १ अधिक गरमी अथवा क्रोधके कारण चेहरा लाल हो जाना। २ चमकना, दमकना।

तमतमाहट (हिं० स्त्री०) तमतमानेका भाव।

तमता (सं० स्त्री०) १ तमका भाव। २ अन्धकार, अंधेरा।

तमप्रभ (सं०पु०) तम इव प्रभा अस्मिन् बहुव्री०। नरकभेद, एक नरकका नाम।

तमरंग (हिं० पु०) एक प्रकारका नीबू।

तमर (सं० क्ली०) तमं राति रा-क। १ वङ्ग, रांगा। २ शीषधातु, शीशा।

तमर (हिं० पु०) अन्धकार, अंधेरा।

तमरसेरि—मन्द्राज प्रदेशके मालवा विभागका एक गिरिपथ। यह अक्षा० ११° २८′ ३०″ और ११° ३०′ ४५″ पू० तथा देशा० ७६° ४′ ३०″ और ७६° ५′ १५″ पू० के मध्य अवस्थित है। कालिकटसे महिसुर तकका रास्ता पश्चिमघाट पर्वतके ऊपर हो कर तमसेरिको और चला गया है। कहवे आदिको रफ्तनीके लिये यह पथ विशेरूषप से व्यवहृत होता है।

१७७३ ई०में कालिकटकी यात्राके समय हैदर अली तथा मालवा पर चढ़ाई करनेके लिये सुलतान टीपू इसी पथसे गये थे।

तमराज (सं० पु०) तम इव राजते राजा टच्। शर्कराविशेष, एक प्रकारकी खाँड़। इसका दूसरा नाम शालक है। इसका गुण—ज्वर, दाह, रक्तपित्त और पित्तनाशक हैं (राजव०)

तमला—एक नदी। यह वर्द्धमान जिलेके उखराग्रामके पश्चिममें सेरगड़ परगनासे निकल दक्षिण-पूर्वकी ओर बहती हुई भोटरा ग्राम तक जा कर दामोदरमें गिरी है।

तमलुक—वङ्गदेशके मेदिनीपुर जिलेका एक उप विभाग। यह अक्षा० २१° ५४′ और २२° ३१′ उ० एवं देशा० ८७° ३८′ और ८८° ११′ पू०में अवस्थित है। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई इत्यादिका वास है। हिन्दुओंकी संख्या सबसे अधिक है। इस उपविभागमें तमलुक, पाँशकुड़ा, मसलन्दपुर, सुताहाटा और नन्दिग्राम इन पाँच स्थानोंमें ५ पुलिसथाना है। १८८४ ई०को इसमें ४ फौजदारी, २ दीवानी अदालत और १४७ पुलिसकर्मचारी तथा १३८० चौकीदार नियुक्त हुआ था।

इस उपविभागमें ११ बड़े बड़े जमींदार हैं। तमलुक शहर और केलोमाल ग्राम सबसे प्रसिद्ध स्थान है। पहले तमलुकमें हिजलीके कलक्टरके अधीन नमकको आढ़त थी।

पूर्व समयमें यहाँ बौद्धोंका एक विख्यात शहर और पूर्वदेशीय वाणिज्यका केन्द्रस्थल था। बहुत दिन हुए, तमलुकसे बौद्धधर्मके सभी नदर्शन हो विलुप्त हो गये हैं, किन्तु अब भी तमलुकका कोई कोई हिन्दू-परिवार बौद्धोंकी नाईं मृतदेहको जमीनमें गाड़ता है। राजपूतकुलोद्भव मयूरवंश पहले तमलुकमें राज्य करते थे। मयूरध्वज, ताम्रध्वज, हंसध्वज, गरुड़ध्वज, और विद्याधरराय तमलुकके इन पाँच राजाओंके नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। तमलुकके ४८वें राजा केशवराय कर नहीं देनेके कारण १६४५ ई०में मुगल सम्राट्से राज्यच्युत हुए और १६५४ ई० तक हरिरायने राज्यशासन किया। हरिरायकी मृत्युके बाद उनके भाई और लड़केमें सिंहासनके लिये विवाद उपस्थित हुआ। बाद राज्य दो भागोंमें विभक्त किया गया। १७०१ ई०में हरिरायके भाईका वंशलोप होने पर पुनः तमलुक राज्य एकत्र हो कर नारायणराय और उनके उत्तराधिकारियोंके हाथ लगा। १७५७ ई०में मिर्जा दीदार-बेगने बलपूर्वक सिंहासन हस्तगत कर १७६६ ई० तक अपने अधिकारमें रक्खा। उक्त ई०में गवर्मेण्टके आदेशसे तमलुक पुनः सिंहासन-

च्युत राजाकी स्त्री सन्तोषप्रिया तथा कृष्णप्रियाके अधिकारमें आया। रानी संतोषप्रियाके दत्तक और कृष्णप्रियाके गर्भजात पुत्र थे। उन्होंने क्रमशः राज्यका ।≈ तथा ॥- आना अंश पाया। १७८५ ई०में ॥/) आनेके हिस्सेदार आनन्दनारायणराय ।≈) आनेके हिस्सेदार शिवनारायणरायके विरुद्ध एक दीवानी मुकदमा चला कर उनकी सब सम्पत्तिके अधिकारी हो गये। आनन्दनारायणने अपुत्रक अवस्थामें प्राणत्याग किया। उनकी दोनों स्त्रीने लक्ष्मीनारायणराय और रुद्रनारायणराय नामक दो दत्तकपुत्र ग्रहण किये। इन्होंने सारी सम्पत्ति आपसमें बाँट ली। किन्तु दोनों भाइयोंमें परस्पर विरोध हो जानेसे धीरे धीरे दोनोंकी सम्पत्ति जाती रही।

तमलुक परगनेमें कई एक बाँध हैं; इसी कारण बाढ़से देश बह नहीं जाते गङ्गा और रूपनारायणके निकट तमलुक अवस्थित है। इसीसे इस प्रदेशके उत्पन्नद्रव्य बहुत आसानीसे दूसरे दूसरे स्थानोंमें भेजे जा सकते हैं। चावल, नारियल, सहतूत और तरह तरहकी साक सब्जी इस परगनेका वाणिज्यद्रव्य है। यहाँ चिरस्थायी बन्दोबस्त प्रचलित है।

तमलुकके अनेक अधिवासी पूर्व समयमें नमक तैयार कर जीविकानिर्वाह करते थे। यहाँका नमकका व्यवसाय बहुत प्रसिद्ध हो गया था। जबसे यह प्रदेश गवर्मेण्टके अधीन आया, तबसे यहाँका उक्त व्यवसाय नष्ट हो गया है। अभी तमलुकवासी नमक तैयार नहीं कर सकते हैं। इस कारण अनेक दरिद्र लोग बहुत कष्ट पाते हैं।

तमलुक गङ्गाके मुहानेके निकट अवस्थित है। ४थीसे १२वीं शताब्दी तक विभिन्न देशोंसे वाणिज्यके जहाज आया करते थे।

गङ्गाके पश्चिम मुहानेके निकटस्थ तमलुकके अधिवासियोंको दमलिप्त वा तमलिप्त कहते हैं।

तमलुक अत्यन्त समृद्धिशाली देश था, यह अनेक ग्रन्थोंमें भी लिखा है। रत्नाकर नामक तमलुकका एक शहर था। इस नामका अस्तित्व क्रमशः लोप होता जा रहा है। रत्नाकर नामसे ही प्राचीन तमलुककी धनशालिताका यथेष्ट परिचय पाया जाता है।

इस उपविभागका भूपरिमाण ६५३ वर्गमील है। इसमें १५२२ ग्राम लगते हैं। १८५१ ई०के नवम्बर मासमें तमलुक उपविभागमें परिणत हुआ है। यहाँ ६१५ एकड़ जमीन जागीर है। लोकसंख्या प्रायः ५८३२३८ है।

२ उक्त तमलुक उपविभागका सदर। यह अक्षा० २२° १८′ उ० और देशा० ८७° ५६′ पू० पर मेदिनीपुर जिलेके दक्षिण-पुर्व अंशमें रूपनारायण नदीके ऊपर अवस्थित है। तमलुक शहरमें म्युनिसपालिटिका अच्छा बन्दोबस्त है। यहाँ विभिन्न धर्मावलम्बी लोग वास करते हैं, हिन्दूकी संख्या सबसे अधिक है। तमलुक शहर मेदिनीपुर जिलेका प्रधान वाणिज्यकेन्द्र है।

आधुनिक इतिहासमें तमलुक बौद्धोंका एक बन्दर कह कर वर्णित हुआ है। ५वीं शताब्दीके पूर्वभागमें प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक फाहियान इसी स्थानसे सामुद्रिक जहाज पर चढ़ कर सिंहल देश गये थे। इसके २५० वर्ष पीछे युएनचुयाङ्ग तमलुकमें आये थे। उन्होंने भी तमलुकको बौद्धधर्मका लीलाक्षेत्रके जैसा उल्लेख किया था। उनका भ्रमण-पुस्तक पढ़नेसे मालूम होता है, कि यहाँ बहुतसे बौद्धमठ और बौद्ध-संन्यासी तथा महाराज अशोकका बनाया हुआ २५० फुट ऊंचा एक स्तम्भ था। बौद्धधर्मकी अवनतिके बाद भी यह स्थान सामुद्रिक वाणिज्यका आगारके जैसा वर्णित है। बहुतसे धनी वणिक् और जहाजाधिकारी इस बन्दरमें वास करते थे। नील, सहतूत, पशम और वङ्ग तथा उड़ीसेके बहुमूल्य द्रव्यादि प्राचीन तमलुक नगरसे विदेशको भेजे जाते थे। पहले नगरके पास ही समुद्र बहता था। समुद्रके बहुत दूर हट जाने पर भी वाणिज्यकी विशेष क्षति नहीं हुई है। ६३५ ई०में युएनचुयाङ्गने इस नगरके समीप ही समुद्रको बहते देखा था, किन्तु अभी समुद्र नगरसे ६० मील दूर हट गया है। गङ्गाके मुहाने पर मट्टीका स्तर बढ़ जानेसे तमलुक अभी गङ्गासे दूरमें पड़ता है। कृषकगण कूप और पुष्करिणी खोदते समय १०से २० फुटके मध्य बहुतसी सामुद्रिक सीप पाते हैं।

प्राचीन मयूरवंशके शासनकालमें खाई और दृढ़

प्राचीर द्वारा वेष्टित ८ मील भूमिके ऊपर राजभवन बनाया गया था। वर्तमान कैवर्त राजाओंके प्रासादके पश्चिम भागमें उक्त मयूरवंशके राजभवनका ध्वंशावशेष देखा जाता है, उसका और दूसरा चिह्न कुछ भी नहीं है। कैवर्त राजप्रासाद रूपनारायण नदीके किनारे ३० एकड़ जमीनके ऊपर अवस्थित है।

तमलुककी वर्गभीमा (काली) देवीका मन्दिर सबसे प्रसिद्ध है। इस मन्दिरके निर्माणके विषयमें बहुत सी कहानियाँ हैं। उनमेंसे केवल एक कहानी पर तमलुकके अधिकांश अधिवासी विश्वास करते हैं-मयूरवंशके राजा गरुड़ध्वजके आदेशसे एक धीवर दिन प्रति राजाके खानेके लिये शोल मछली लाया करता था। एक दिन अनेक चेष्टा करने पर भी उसे शोल मछली न मिली। इस पर राजाने क्रोधित हो कर उसे मृत्यु-दण्डकी आज्ञा दी। वह दरिद्र धीवर किसी उपायसे कारागारसे निकल कर जङ्गलमें भाग गया। वहाँ भीमादेवीने उसके सामने उपस्थित हो कर दुःखका कारण पूछा। धीवरने आदिसे अन्त तक सब बातें कह सुनाईं। वर्गभीमाने बहुतसी मछलियाँ पकड़ कर उससे कहा कि तुम इन्हें अच्छी तरह सुखा कर रखो। बाद उन्होंने एक कुएको दिखला कर यह जता दिया, कि इसका जल उन सुखी हुई मछलियों पर डालनेसे वे फिर जी जाँयगी। धीवर देवीके अनुग्रहसे उक्त उपाय द्वारा प्रतिदिन राजाको मछली देने लगा। प्रति दिन धीवर मछली ला कर देता है, यह देख राजा बहुत चमत्कृत हो गये और किस उपायसे वह रोज रोज मछली लाता है, यह जाननेके लिये उन्होंने धीवरसे पूछा। पहले तो वह इस गुप्त रहस्यको प्रकाश करनेमें असहमत हुआ, किन्तु पीछे राजाके भयसे उसने उस मृतसंजीवक कूपकी कथा कह सुनाई। भीमादेवी धीवरके प्रति अनुग्रह कर उसीके घरमें विराज करती थीं, किन्तु कुएँका विषय प्रकाश हो जाने पर वे बहुत गुस्सा कर उसके घरसे अन्तर्हित हो गईं और पत्थरकी मूर्ति धारण कर कुएंके मुंहके निकट बैठ गईं। धीवरने राजाको वह कुआँ दिखला दिया। राजा कुएँके निकट जा न सके, उन्होंने उसी पत्थरकी मूर्तिके ऊपर एक मन्दिर बनवा दिया। वही मन्दिर वर्तमान वर्गभीमाका मन्दिर है। कहते हैं, कि इस कुएँमें कोई द्रव्य फेंकनेसे वह सोना हो जाता है। देवीका मन्दिर रूपनारायण नदीके किनारे प्रतिष्ठित है। ब्रह्मपुराणमें लिखा है, कि विश्वकर्माने आ कर इस मन्दिरको बनाया था। ताम्रलिप्त देखो।

फिर भी तमलुकके वर्तमान कैवर्त्तवंशीय राजाओंका कहना है, कि उनके आदि पुरुषने इस मन्दिरका निर्माण किया है। दूसरे वृत्तान्तसे हम लोगोंको पता चलता है, कि धनपति नामक कोई प्रसिद्ध वणिक रूपनारायण नदी हो कर जाते समय तमलुक बन्दरमें उतरे थे। यहां उन्होंने एक मनुष्यको एक सोनेका कलस ले जाते हुए देखा। कथाप्रसङ्गसे उन्हें मालूम पड़ा कि निकटवर्त्ती एक झरनेके जलसे पीतलका बरतन सोना हो जाता है। उस मनुष्यने उन्हें वह झरना दिखला दिया। धनपतिने तमलुक-बाजारका समस्त पीतल खरीद कर उन्हें सोनेमें परिणत किया और सिंहलके अधिवासियोंके निकट बेंच कर यथेष्ट लाभ उठाया। उन्होंने लौट कर तमलुकमें उक्त मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिरका शिल्पनैपुण्य अत्यन्त विस्मयजनक है। मन्दिर त्रिरावृत प्राचीरसे घिरा है जो देखनेमें बहुत सुन्दर लगता है। प्राचीर ६० फुट ऊँचा है और पत्तनके ऊपर इसकी चौड़ाई ८ फुट है। इस मन्दिरमें कहीं कहीं ऐसे प्रकाण्ड पत्थर लगाये गये हैं, जिन्हें देख कर चमत्कृत होना पड़ता है। आधुनिक यन्त्रादिकी बिना सहायताके इतने ऊँचे पर किस तरह ये प्रकाण्ड पत्थरखण्ड उठा कर रखे गये थे उस ओर ध्यान देनेसे तमलुकवासीको असंख्य धन्यवाद दिये बिना रहा नहीं जाता। मन्दिरके शिखर पर विष्णुचक्र दीख पड़ता है। मन्दिर ४ अंशोंमें विभक्त है, (१) बड़ा देवालय (यहाँ देवीमूर्त्ति स्थापित है), (२) जगमोहन, (३) यज्ञमण्डप, (४) नाटमन्दिर। मन्दिरके बाहरमें दरवाजेसे ले कर साधारण पथ तक बहुतसी सीढ़ियाँ हैं और सीढ़ीके दोनों बगल दो खम्भे हैं। मन्दिरके अधिकृत स्थानोंमें बाहरकी ओर एक केलिकदम्बका वृक्ष है। प्रवाद है, कि इस वृक्षकी कृपासे वन्ध्या नारी भी सन्तान पाती हैं। स्त्रीगण वृक्षका अनुग्रह लाभ करनेके लिये अपने बालसे पतली रस्सी बना कर उसमें-

ईंट बाँध देतीं और वृक्षको शाखामें लटका देतीं हैं।

वर्गभीमादेवीसे सभी अत्यन्त भय करते हैं। देवीका क्रोध बहुत प्रचण्ड है। १८वीं शताब्दीमें महाराष्ट्रीयगण वङ्गदेशको लूटते लूटते जब तमलुकको पहुँचे थे, तब देवीके भयसे उन्होंने वहाँ कोई अत्याचार न किया। उन्होंने बहुत धूमधामसे देवीकी अर्चना की। मन्दिरके निकट रूपनारायण नदीका वेग मन्द है, किन्तु कुछ दूर जा कर इसका वेग बहुत तीव्र हो गया है। अधिवासियोंका कहना है, कि रूपनारायण नदी देवीके भयसे डर कर ही मन्दिरके निकट धीरे धीरे बहने लगी है। अनेक बार नदी बढ़ कर मन्दिरके समीप तक पहुँच गई थी। एक बार मन्दिरसे केवल ५ गजका ही फर्क था। जलके आघातसे मन्दिर नष्ट हो जायगा इस आशङ्कासे पुरोहितगण भागने लगे। किन्तु नदीका जल कुछ दूर और बढ़ कर पीछे हट गया। मन्दिर निरापदसे रहा।

तमलुकमें विष्णुका एक मन्दिर है। प्रवाद है, युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञका घोड़ा जब तमलुकमें आया, तब यहाँके मयूरवंशीय राजा ताम्रध्वज उसे पकड़ा। अतएव अश्वरक्षक सेनाके अधिपति अर्जुनके साथ उनकी गहरी मुठभेड़ हुई। लड़ाईमें ताम्रध्वजकी जीत हुई और वे कृष्णके साथ अर्जुनको बाँध कर लाये। कृष्ण स्वयं विष्णु थे, इस कारण कृष्ण और अर्जुनको एक साथ बँधे हुए देख ताम्रध्वजके पिताने अपने लड़केका तिरस्कार तथा कृष्णसे सविनय निवेदन किया। सर्वदा कृष्ण और अर्जुनसे दर्शन होता रहे, इस आशासे उन्होंने एक मन्दिर बनवाया और उसमें कृष्ण तथा अर्जुनकी प्रतिमूर्त्ति स्थापन करनेकी आज्ञा दी। इन दोनों प्रतिमूर्त्तियोंका नाम जिष्णु और नारायण हैं। प्रायः ५।६ सौ वर्ष व्यतीत हुए, स्थानीय नदीने इस मन्दिरको आत्मसात् कर लिया है, किन्तु दोनों प्रतिमूर्त्तियोंकी रक्षा की गई थी। बाद गोपजातीय किसी स्त्रीने एक मन्दिर निर्माण कर उसमें उक्त मूर्त्तियाँ स्थापित कीं। मन्दिरकी आकृति और निर्माणकौशल वर्गभीमा देवीके मन्दिर सरीखा है।

तमलुक अत्यन्त प्राचीन शहर है। इसका संस्कृत नाम ताम्रलिप्त है। महाभारतमें भी ताम्रलिप्तका उल्लेख देखा जाता है। दशकुमारचरित, वृहत्कथा प्रभृति ग्रन्थोंमें ताम्रलिप्त वङ्गदेशका प्रधान बन्दरके जैसा वर्णित है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम पड़ता है, कि वङ्गोपसागर और भारत महासागर द्वीपावलीके साथ ताम्रलिप्तका यथेष्ट वाणिज्य चलता था और समुद्रसे केवल ८ मीलकी दूरी पर यह शहर अवस्थित रहा। ताम्रलिप्तसे बौद्धधर्म अन्तर्हित होने पर यह हिन्दूधर्मका तीर्थ क्षेत्र हो गया है। किसी किसीने तमसा लिप्तः अर्थात् पाप-कलङ्कित, इन दो शब्दोंसे ताम्रलिप्तकी व्युत्पत्ति निर्द्धारित की है, इससे जाना जाता है कि पूर्वकालकी इस स्थानमें धर्मनियम उतना प्रतिपालित नहीं होता था। जो कुछ हो, ताम्रलिप्तके उत्पत्ति सम्बन्धमें एक कहानी इस तरह प्रचलित है—विष्णु जब कल्कि अवतारमें दैत्योंको विनाश करते करते बहुत क्लान्त हो गये, तब उनके शरीरसे ताम्रलिप्तमें पसीना गिरा। देवधर्म द्वारा लिप्त हो जानेसे यह स्थान पवित्र क्षेत्रमें परिणत हो गया और इसका नाम ताम्रलिप्त पड़ा। संस्कृतके ग्रन्थोंमें लिखा है, कि भारतवर्षके दक्षिणदिक्स्थ ताम्रलिप्त तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे विमुक्त होते हैं। फिर भी कहा है, कि जब महादेवने दक्षका बध किया, तब ब्रह्महत्या पापके कारण उनके हाथसे दक्षका छिन्न मस्तक परिभ्रष्ट न हुआ। दूसरा कोई उपाय न देख उन्होंने देवताओंकी शरण ली। देवगणने उन्हें पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें पर्यटन करनेकी सलाह दी। महादेव ताम्रलिप्त छोड़ कर और दूसरे दूसरे तीर्थोंसे हो आये, किन्तु उनका अभीष्ट सिद्ध न हुआ। उनके हाथमें दक्षका मस्तक चर्मलिप्त अवस्थामें रह गया। तब वे हिमालय पर्वत पर तपस्या करने लगे। इस समय विष्णु भगवान्ने उनके सामने उपस्थित हो कर ताम्रलिप्तमें जानेके लिये उनसे कहा। उनके कथनानुसार शिवजीने ताम्रलिप्तमें जा वर्गभीमा और जिष्णु-नारायणके मध्यवर्त्ती जलाशयमें स्नान किया। स्नान करनेके बाद ही उनके हाथसे दक्षका मस्तक नीचे गिर पड़ा, इसी कारण इस स्थानको कपालमोचन कहते हैं और यह एक प्रधान तीर्थक्षेत्रमें गिना जाता है। कालक्रमसे यह स्थान नदी गर्भस्थ हो गया है। अब भी

बहुतसे यात्री, पहले जहाँ विष्णुमन्दिर अवस्थित था उसी स्थान पर वारुणी पर्वमें स्नान करते हैं।

ताम्रलिप्तके सबसे प्राचीन राजा क्षत्रिय तथा मयूरवंशीय थे। उनका ऐतिहासिक सिलसिलेवार विवरण नहीं मिलता है। किन्तु वहाँके प्रधान पाँच राजाओंके विषयमें बहुतसी बातें सुनी जाती हैं। मयूरवंशके शेष राजाका नाम निःशङ्कनारायण था। इन्होंने निःसन्तान अवस्थामें प्राणत्याग किया। इनकी मृत्युके बाद कालु भुइँया नामक किसी सर्दारने ताम्रलिप्तका सिंहासन अधिकार किया। ये कालु भुइँया ताम्रलिप्तके कैवर्त्त राजवंशके आदिपुरुष हैं। पाश्चात्य लेखकोंका विश्वास है, कि कैवर्त्तगण आदिम निवासी भुँइयाकी सन्तति हैं और इन्होंने परवर्त्तिकालमें हिन्दूधर्म ग्रहण किया है।

वृटिश गवर्मेण्टके अधीन इस शहरमें फौजदारी और दीवानी अदालत स्थापित हुई हैं। यहाँ एक थाना, एक दातव्य औषधालय और एक अंगरेजी विद्यालय है। लोकसंख्या प्राय: ८०८५ है। ताम्रलिप्त, मेदिनीपुर और मयनागढ़ प्रभृति शब्द देखो।

तमलेट (हिं॰ पु॰) १ एक प्रकारका टीन या लोहेका बरतन। २ फौजी सिपाहियोंका लोटा।

तमस् (सं॰ क्ली॰) ताम्यत्यनेन तम-असुन्। सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८। १ प्रकृतिका एक गुण। २ अन्धकार, अँधेरा। ३ अज्ञानका अन्धकार।

तमस (सं॰ पु॰) तम-असच्। अत्यविचमितमीति। उण्। ३।११७। १ कूप, कुआं। २ अन्धकार, अँधेरा। (क्ली॰) ३ नगर। ४ अज्ञानका अन्धकार। ५ पाप। ६ तमसा नदी।

तमसा (सं॰ स्त्री॰) तम इव जलमस्त्यस्याः तमस्-अच्-टाप्। नदीविशेष, एक नदीका नाम। यह एक तीर्थस्थान माना गया है। जिसका नाम स्मरण करनेसे समस्त पाप नाश होते हैं। उसीका नाम तमसा है।

"यस्याः स्मरणात् ताम्यति पापं सा तामसा।" (जयमंगल)

श्रीरामचन्द्रजीने वन जाते समय इसी नदीके किनारे प्रथम रात्रि व्यतीत की थी। सुमन्त्रने रामचन्द्रजीको इसी नदीके किनारे तक पहुंचा दिया था बाद दूसरे दिन सवेरे वे अयोध्याको लौट आए। (रामा॰ २।४५ अ॰)

वामनपुराणके मतानुसार शोन, नर्मदा सुरसा, मन्दाकिनी, तमसा, करतोया प्रभृति नदियाँ अत्यन्त वेगवती हैं और ये विन्ध्यपर्वतसे निकली हैं।

(वामनपु॰ १६ अ॰)

इस नदीका जल अत्यन्त पवित्र, पापविनाशक है तथा देवता और पैत्रादि कार्यमें लानेसे यह असीम फलप्रद है। यह नदी जगत्की मातृस्वरूपा और महासागरकी पत्नी है। (वामनपु॰)

मार्कण्डेय पुराणमें इसकी उत्पत्ति दूसरे प्रकारसे ही लिखी है। (मार्कं॰ ५८।२२-५२) इसका वर्त्तमान नाम तोनस है।

तमसा—युक्तप्रदेशके गढ़वाल राज्य और देहरादून जिलेकी एक नदी। यह अक्षा॰ ३१° ५´ उ॰ और देशा॰ ७८° ४०´ पू॰ पर यमुना नदीके उत्पत्तिस्थानके निकटवर्त्ती यमुनाके उत्तरी अंशमें अवस्थित है। समुद्रतलसे १२७८४ फुट ऊंचे स्थानसे यह नदी गिरती है। उत्पत्तिस्थानसे कुछ दूर तक इसकी चौड़ाई २१ फुटसे अधिक नहीं है और गहराई भी घुटने तक है। ३० मील तक यह पश्चिमकी ओर बहती है। कहीं कहीं इसमें कई एक सोते भी हैं। ३० मील जानेके बाद यह रूपी नदीसे मिल गई है। उस जगह इसकी चौड़ाई १२० फुट है। फिर १८ मीलके बाद यह पावर नदीके साथ मिलती है। उस स्थानसे उक्त मिली हुई नदियाँ जौनसर, बवार तथा जुब्बल और सिरमुर राज्यके सीमारूपमें प्रवाहित हैं। इस जगह तमसा नदी बहुतसे ऊंचे नीचे चूर्ण प्रस्तरमय गह्वरके मध्य होकर प्राय: ठीक दक्षिणकी ओर चली गई है। कुछ दूर आगे बढ़कर यह शलवी नदीके साथ मिलती है, बाद अक्षा॰ ३०° ३´ उ॰ और देशा॰ ७७° ५२´ पू॰के मध्य यमुनामें जा गिरी है।

तमसाकी लम्बाई प्राय: १०० मील होगी। यमुनाके साथ सङ्गमस्थान पर यह यमुनासे कुछ बड़ी दीख पड़ती है। सुतरां यही प्रधान रूपमें गिनी जा सकती है।

उत्पत्तिस्थानसे यह नदी २६ मील दूर बायें किनारे होती हुई जब्बलपुरसे इलाहाबादके रास्ते तक चली गई है। इलाहाबादसे मिर्जापुर जाते समय तमसाके मुहानेसे १२ मील दूरमें इस नदीको पार करना पड़ता है। इस

नदीके ऊपर इष्ट इण्डिया रेलपथका एक पुल है। ग्रीष्मकालकी इस नदीमें कहीं कहीं नाव जाती आती हैं। जलका वेग बहुत तेज है। कभी कभी ज्वार अथवा बाढ़ भी आ जाती है, उस समय २४।२५ फुट ऊपर तक जल चढ़ जाता है। इस नदीका जल ६५ फुट तक ऊपर उठता हुआ देखा गया है।

सतनी, बेहावा, मोहन, बेलुन, मेवती तथा अन्यान्य बहुतसी छोटी छोटी नदियाँ तमसाके साथ मिल गई हैं। देहरादूनमें महेशपुर तथा इलाहाबादके रामनगरके निकट यह नदी प्रवाहित है। महाकवि भवभूतिने उत्तरचरितमें इस नदीका उल्लेख किया है। उक्त ग्रन्थमें यह नदी तथा मुरला सीताकी सखीके रूपमें वर्णित हुई हैं।

तमसाकृत (सं॰ त्रि॰) तमसाच्छन्न, अन्धकारसे घिरा हुआ।

तमस्क (सं॰ त्रि॰) तमस्-कन्। तमःस्वरूप।

तमस्कान्त (सं॰ पु॰) तमसः क्रान्तः, ६-तत्। कस्कादि॰ विसर्गस्य सः। तमःसमूह, अन्धकारसमूह, अँधेरा।

तमस्तति (सं॰ स्त्री॰) तमसां ततिः, ६-तत्। तमिस्र, अन्धकार।

तमस्वत् (सं॰ त्रि॰) तमस् अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। तमोयुक्त, अन्धकारमय, अँधेरा।

तमस्वती (सं॰ स्त्री॰) तमस्वत्-ङीप्। १ रात्रि, रात। २ हरिद्रा, हल्दी।

तमस्विन् (सं॰ त्रि॰) तमोऽस्तीति तमस्-विनि सान्तत्वात् मत्वर्थे विसर्गः। तमोयुक्त, अँधेरा।

तमस्विनी (सं॰ स्त्री॰) तमस्विन्-ङीप्। १ रात्रि, रात। २ हरिद्रा, हल्दी।

तमस्सुक (अ॰ पु॰) ऋणपत्र, दस्तावेज, लेख।

तमहंडी (हिं॰ स्त्री॰) ताँबेका बना हुआ एक प्रकारका बरतन जो हाँड़ीके आकारका होता है।

तमहर (हिं॰ पु॰) तमोहर देखो।

तमहीद (अ॰ स्त्री॰) भूमिका, दीबाचा।

तमाँचा (हिं॰ पु॰) तमाचा देखो।

तमा (सं॰ स्त्री॰) १ भूधात्री, भुईआँवला। २ काकोली। ३ रात्रि, रजनी रात। ४ तमालवृक्ष।

तमाई (हिं॰ स्त्री॰) खेत जोतनेके पहले उसमेंकी घास आदि साफ करनेकी क्रिया।

तमाकू—१ एक प्रकारका पौधा। लोग मदकताके लिए इसके पत्ते, डंठल, फूल आदि सबहीका व्यवहार करते हैं। भारतवर्षके सिवा और भी पृथिवीके सर्वत्र इसको सुखा कर, अग्निसंयोगसे इसका धूम्रपान किया जाता है। इस तरहके धूम्रपानके लिए तीन उपाय अवलम्बित होते हैं।

(१) चुरट—डंठलोंको अलग करके तमाकूके पत्तोंके छोटे छोटे टुकड़े कर डालना और फिर उनको तमाकूके पत्तेमें ही भर कर साधारणतः उंगलीके बराबर लम्बा करना।

(२) चूरा—अथवा तमाकूके चूर्णको पाइपमें रख कर उसका धूँआँ पीना।

(३) बीड़ी—कागज वा अन्य वृक्षकी पत्तियों पर तमाकूके चूरेको रख कर चुरटकी तरह लपेट लेना। भारतमें शेषोक्त बीड़ीके अलावा और भी तीन तरहसे तमाकूका सेवन होता है।

(१)—सूखी तमाकूका पत्तीको चूनेके साथ रगड़ कर गाल या जीभके तले ठोड़ीमें रख देना।

(२) जर्दा—तमाकूकी पत्तियोंको कुचल कर उसमें दारचीनी, लवङ्ग, सौंफ, इलायची आदि मसाले मिलाना और फिर उसको पानके साथ खाना। उड़िष्यावासी स्त्रीपुरुष और बङ्गालकी स्त्रियोंमें इसका व्यवहार अधिक है। आजकल बनारस आदिका बना हुआ जर्दाका भी काफी प्रचार हो गया है। इसे प्रायः सर्वत्र और सभी लोग खाते हैं।

बङ्गाली लोगोंको साधारणतः सोरा मिला कर बनाई हुई तमाकू ही अधिक प्रिय है। ये तमाकूके सूखे पत्तेको 'दोक्ता' कहते हैं। इसके सिवा भारतमें अथवा यों कहो कि पृथिवीके प्रायः सभी स्थानोंमें पत्तियोंका चूरा बना कर (वा सड़ा कर) 'नस्य' रूपमें उसका व्यवहार किया जाता है। नस्य वा सूँघनी तमाकू नाना प्रकारकी होती है।

तमाकू सिर्फ नशेकी ही चीज है, ऐसा नहीं, इससे बहुतसी औषधियाँ भी बनती हैं।

यूरोपीय उद्भिद् तत्त्वानुसार तमाकू निकोटियाना (Nicotiana) श्रेणीके अन्तर्गत है। फ्रान्समें पहले पहल निम्स्‌ नगरनिवासी जियानिको (Gean Nieot of

Nismes)ने तमाकूकी आमदनी की थी। उन्हींके नामानुसार इस श्रेणीके उद्भिद्का नाम पड़ा है। निकोटियाना-श्रेणीमें कई एक प्रकारकी तमाकूके सिवा अन्य कोई भी उद्भिद् गृहीत नहीं होता। वन्य और कृषिलब्ध समस्त तमाकूओंमें आज तक ५० प्रकारके तमाकूके पेड़ोंका विवरण प्रकाशित हुआ है। इन ५० प्रकारके पेड़ोंमेंसे ४८ प्रकारका आदिस्थान अमेरिका है, अवशिष्ट २ प्रकारके पेड़ोंमेंसे एक प्रकारका पेड़ अष्ट्रेलियामें और एक प्रकारका नये क्यालिडोनिय द्वीपमें पाया जाता है। उक्त ४८ प्रकारके तमाकूके पेड़ोंमेंसे विशेषत: इस देशमें निकोटियाना टाबाकम् (N. tabacum) और निकोटियाना राष्टिका(N.rastica) इन दो श्रेणियोंका प्रचलन अधिक है। देश और जमीनके भेदसे तथा कृषिकी प्रकृतिके भेदसे इनके नाना प्रकारके सामान्य विभाग देखनेमें आते हैं, जिनमें अधिकांश ही व्यवसायके स्थान और जन्मस्थानके नामसे परिचित हैं। भार्जियाना, मेरिलैण्ड, केण्टाकि, लाटाकिया, हाभाना, मानिला, सिराज आदि एसिया, यूरोप और अमेरिकाकी प्रसिद्ध तमाकू एक निकोटियाना टाबाकमसे ही उत्पन्न हुई हैं। प्रसिद्ध तुर्की तमाकू निकोटियाना राष्टिकासे उत्पन्न है।

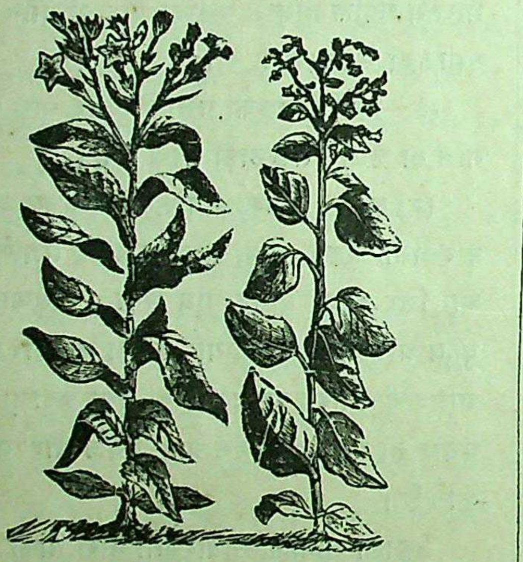

१। साधारण तमाकूका पेड़। २। तुर्की तमाकूका पेड़।

निकोटियाना राष्ट्रिका वा तुर्की तमाकू साधारणत: यूरोपमें पूर्वभारतकी तमाकू (Turkish or East Indian tobacco) के नामसे तथा बङ्गाल, बिहार और युक्तप्रदेशमें विलायती वा कलकत्तेकी तमाकूके नामसे प्रसिद्ध है। पञ्जाबमें कलाहारी तमाकू वा कान्दाहारी कक्कर नामसे प्रसिद्ध है।

निकोटियाना टाबाकम् वा साधारण तमाकू अमेरिका वा भार्जियानाकी तमाकू कहलाती है।

भिन्न भिन्न देशोंमें तमाकूके नाम इस प्रकार हैं—

युक्तप्रदेशमें	तमाकू तम्बाकू, बज्जरभाङ्ग।
बङ्गालमें	तामाक्, दोक्ता, तामाकू।
सिन्ध, गुजरात और राजपुतानामें	तमाकू।
बम्बई प्रदेशमें	तम्बाखू।
उड़िष्यामें	धूम्रपतड़ (धूम्रपत्र)
संस्कृतमें	कलञ्ज।
" (गठित)	धूम्रपत्र, ताम्रकूट।
तामिलमें	पोगई-इलाई।
तेलगूमें	पोगाकू, धूम्रपत्रमु।
काश्मीरमें	सवन् पाण्डव।
कर्णाटकमें	होगेसप्पू।
मलयमें	पुकाइला, पुकालो, ताम्राको।
ब्रह्मदेशमें	से, साक, साकपिन।
सिंहलमें	दिङ्गाजहा, दिंकोला।
पारस्यमें	तम्बाकू।
अरबमें	तुतन, बज्जरभाङ्ग।
तुरुष्कमें	तुतन, दोखन।
बालि वा यवद्वीपमें	ताम्राको।
चीनदेशमें	सियांइयेन, हेयनसाई, तान्या।
जापानमें	टाबाको।
इटलीमें	टैबाक्को।
लैटिनमें	टाबाकम्।
रूस, जर्मन, डेनमार्क और फ्रान्समें	टाबाक।
हलैण्डमें	टोबाक।
पर्तुगाल, स्पेन और इंगलैण्डमें	टोबाको।
मेक्सिको देशमें	कोयाऊरियेट।

तमाकूका पेड़ सीधा होता है। इसके पत्ते काण्डाश्रयी, वृन्तहीन और कोणाकार होते हैं तथा काण्डकी तरह बिलकुल जड़से ही उगते हैं। काण्डके ऊपर क्षुद्र कोमल लोमवत् कांटे होते हैं। पत्तोंमें आवरक पत्त

हरे और पञ्चकोणी होते हैं। इसका पेड़ बहुत कोमल होता है। वास्तवमें यह वृक्ष किस देशका स्वभाव जात है, इसका अभी तक निश्चय नहीं हुआ। हाँ, इतना तो निश्चय हो चुका है कि मध्य वा दक्षिण अमेरिकाके किसी न किसी स्थानसे यह पृथिवी भरमें फैल गया है। कोई कोई कहते हैं, कि विषुवरेखा और उसका निकटवर्ती स्थान ही इसकी आदि जन्मभूमि है। इस समय यह पृथिवीके प्रायः सभी उष्णप्रधान और नातिशीतोष्ण देशोंमें यथेष्ट उत्पन्न होता है।

विलायती वा तुर्की (Turkish) तमाकू मेक्सिको वा कालिफोर्नियाके स्वभावजात पौधे हैं। उद्भिद्तत्त्वानुसार यह, भार्जिनियाकी तमाकूसे बहुत कुछ स्वतन्त्र है। इस जातिकी तमाकू सबसे पहले इंग्लैण्डमें लाई गई थी, इसलिए इसको विलायती तमाकू कहते हैं। सर वालटर राले इस तम्बाकूको पसन्द करते थे।

पञ्जाबके, वन-विभागके परिदर्शक डा० ष्टयार्ट (१८६५ ई०में) ने सबसे पहले यह आविष्कार किया था, कि उत्तरभारतमें इस जातिकी तमाकूकी खेती होती है। उन्होंने लाहोर, मुलतान, होशियारपुर, दिल्ली, आदि स्थानोंमें अन्यान्य प्रकारकी तमाकूकी तरह इस श्रेणीकी तमाकूकी भी बहुत खेती होते दिखलाई थी। ईरावती प्रदेशके उत्तरांशमें पाङ्गि नामक स्थानमें, चन्द्रभागाकी अववाहिकामें, कृष्णगङ्गाके किनारे, खागान प्रदेशमें, यहाँ तक कि लुदाक प्रदेशमें १०५०० फुट ऊँचाई पर भी इसकी खेती होती है। बङ्गालमें, कोचविहार, रङ्गपुर, श्रीहट्ट, कछाड़, मनीपुर, आसाम आदि स्थानोंमें भी इसकी खेती होती है। दक्षिणदेशमें गोदावरी जिलेकी "लङ्का तमाकू" इसी जातिकी तमाकूसे उत्पन्न है। यह अन्य प्रकारकी तमाकूकी अपेक्षा कड़ी होनेके कारण, तमाकूके व्यवसायी लोग ग्राहकोंकी रुचिके अनुसार इसको दूसरी तमाकूके साथ मिलाया करते हैं। तमाकूसे इसके पौधे मजबूत है और अधिकतासे उत्पन्न होते हैं। इसकी खेती करनेमें भी परिश्रम कम लगता है और इसकी मिलावटसे जो तमाकू बनती है, उससे पैसा भी ज्यादा आता है। पञ्जाबमें इसके पत्ते तोड़ कर गड्डी बाँध रखते हैं। इससे थोड़ी बहुत सूँघनी (नस्य) बनती है, पर कोई इसे सुरती बना कर खाता नहीं। इसमें गुड़ (सीरा) मिला कर पीनी तमाकू नहीं बनती किन्तु चुरटके लिए इसका अधिक प्रचलन है। इस तमाकूकी चुरटमें कुछ मीठापन होनेसे मि० बेडेन पाउवेलने अनुमान किया था कि इसमें कुछ मधुका अंश है। इसको युक्तप्रदेशमें कान्दाहारी, विलायती और चिलासी तमाकू कहते हैं। इन नामोंसे अनुमान होता है, कि भारतमें यह पहले पहल उक्त देशोंसे आई थी।

अमेरिका वा भार्जिनियाकी तमाकू ही साधारणतः सब देशोंमें मिलती है। भारतवर्षमें तमाकूकी खेती यथेष्ट होने पर भी आजकल अनुसन्धानसे देखा गया है, कि भारतवर्षके वन्यप्रदेशमें इस जातिकी तमाकू अर्द्धवन्यभावसे यथेष्ट उपजती है। किन्तु इस तरह इस देशमें तुर्की वा विलायती तमाकू होते कहीं भी नहीं देखी गयी है। डा० वाटका कहना है, कि कलकत्तेके निकटस्थ २४ परगनेके मध्यवर्ती स्थानोंमें, गाँवोंके भीतर, सड़कके किनारे, बाँसके निविड़ जङ्गलोंमें और गीले स्थान पर इस श्रेणीके तमाकूके पौधे अपने आप पैदा होते हैं। बहुत पुरानी दीवालों पर तथा हुगली और गङ्गाके बालुकामय द्वीपोंमें भी यह अपने आप पैदा होता है। जिस टापूमें यह पौधा होता है, वहाँ दूसरा कोई भी स्वभावजात तृणगुल्मादि नहीं ऊग सकते, परन्तु इतनी बात जरूरत है कि ये खेतवाले तमाकूके पौधोंकी तरह परिपुष्ट नहीं होते। ये वर्षाके अन्तमें होते हैं, और चैत वैशाखमें इन पर फूल लगते हैं। डा० वाटने जिस जातिके वन्यवृक्षकी तमाकूके पौधेकी वन्य अवस्था बतलाई है, वह क्या चीज है, यह हम ठीक नहीं कह सकते। डाक्टरने इसकी बहुलताके विषयमें जैसा विवरण लिखा है, उससे मालूम होता है, कि गाँवके लोग इसे जरूर जानते और अवश्य ही किसी सरे नामसे पुकारते होंगे। परन्तु हम बहुत कोशिश करने पर भी उसके विषयमें कुछ निर्णय नहीं कर सके हैं। कोई कहते हैं, कि उक्त डाक्टरने जिस पौधेका उल्लेख किया है, वह "निकोटिया टोबैकम' नहीं, उक्त जातीय "निकोटियाना प्लाम्बग्निफोलिया" है, परन्तु डाक्टरने इस बातको अस्वीकार किया है।

तमाकूका इतिहास।—१४७२ ई०में यूरोपियोंमें तमाकू प्रथम प्रचलित हुई थी। कोलम्बस्‌ने दलबदलसहित पश्चिम भारतीय द्वीपपुंजमें पहुंच कर इस चीज पर लक्ष्य दिया था। उन्होंने किस द्वीपमें इसे पहले देखा था, इसमें भी बहुत गड़बड़ है। कोई तो यह कहते हैं, उसका पौधा क्यूबामें उन्होंने स्वयं देखा था और कोई ऐसा कहते हैं, उन्होंने जिन लोगोंको अमेरिका भेजा था, उन्होंने गुयानाहनी द्वीपमें (सनसैलभेडरमें) उपस्थित हो कर इस वस्तुको देखा था। उन लोगोंने उस देशके आदमीको एक पत्तोंके गुच्छेको जला कर उसका धुआँ पीते देखा था। उस देशके लोग इस पौधेको "कोहिबा" और जलते हुए गुच्छेको 'टोबाको' कहते थे। कोलम्बसकी द्वितीय यात्रामें (१४७४—७६ ई०में) स्पेनदेशके संन्यासी रोमैनो भी साथ थे, उनका कहना है, कि सन-डोमिङ्गो द्वीपके लोग "गुइयोजा" वा "कोहवा" नामक एक प्रकारके वृक्षके पत्तोंको लपेट कर 'टोबाको' नामकी नली द्वारा धूम्रपान करते थे। उनके विवरणसे उक्त देशमें नस्य-ग्रहणका विषय भी मालूम पड़ता है। १५३५ ई०को सन-डोमिङ्गोके शासनकर्त्ता द्वारा लिखित गञ्जालो फार्नाण्डेज डि आभिडो अपनी पुस्तकमें इस 'टोबाको' नामक धूम्रपानकी नलीकी ऐसी वर्णना कर गये हैं। यह देखनेमें ठीक अंग्रेजी अक्षर V जैसी होती थी। इसमें तमाकू भरनी नहीं पड़ती थी। आग पर पत्तेको देते थे, उससे धुआं निकलता रहता था, उस धुएंके ऊपर उस नलीके नीचेका भाग पकड़े रहते थे और ऊपरके दोनों मुंह दोनों नासारन्ध्रोंमें लगा कर उससे धुंआ खींचा करते थे। उक्त ग्रन्थसे यह भी पता चलता है, कि सनडोमिङ्गोके लोग भेषजगुणके कारण इसका बड़ा आदर करते थे। १५०२ ई०में स्पेनके लोगोंने दक्षिण-अमेरिकाके उपकूलवासियोंमें तमाकू चबानेकी प्रथा सबसे पहले देखी थी। पहले पहल अमेरिकामें जितने भी पर्यटक गये थे, उन सबके विवरणोंमें ऐसा लिखा है, कि अमेरिकामें इसका तीन तरहसे व्यवहार होता था, किन्तु टाइममानका कहना है, कि दक्षिण अमेरिकाके लोग धूम्रपान करते ही न थे, सिर्फ सुँघनी (नस्य) सूँघते और तमाकू चबाते थे तथा लाप्लाटर, उरुगोआ और पारागोआ इन तीन देशोंमें तमाकूका किसी प्रकार भी व्यवहार न होता था। उत्तर अमेरिकाके पानामा-योजकसे कनाड़ा, कालिफनिया, पश्चिम भारतीय द्वीप-पुञ्ज आदि समस्त स्थानोंमें धूम्रपानका अधिकतासे प्रचार था। इसका भी प्रमाण मिलता है कि अति प्राचीन कालसे ही यह धूम्रपानकी प्रथा उक्तदेशोंमें प्रचलित थी। उक्त 'टोबाको' नामकी नलियों पर अति सूक्ष्म, सुदृश्य और मनोहर शिल्पकार्य हैं, यह भी थोड़े दिनोंका उद्भावित नहीं है। मेक्सिको देशकी अजतेक जातिकी कब्रों तथा अमेरिकाके युक्तराज्यकी स्तूपराशियोंमेंसे उक्त प्रकारके शिल्पकार्यविशिष्ट नल आविष्कृत हुए हैं। इन पर कुछ ऐसे जीवोंकी भी आकृति है, जो उत्तर अमेरिकामें नहीं पाये जाते।

अमेरिकाके नाना स्थानोंमें इसके भिन्न भिन्न नाम प्रचलित हैं। मेक्सिको देशमें इसके नाम पितम (Petum) वा पिटन् (Petun) है। इस शब्दसे ही एक श्रेणीकी तमाकूका नाम 'पिटुनिया' (Petunia) हुआ है। 'येट्ल्' (yetl) नाम भी मेक्सिकोके किसी किसी भागमें सुनाई, देता है। पेरूमें इसको 'स्यरी' (Sary) कहते हैं।

यूरोपमें सबसे पहले १५६० ई०में तमाकू पहुंची थी। द्वितीय फिलिपके समयमें फ्रान्सिस्को फार्नाण्डेज, मेक्सिकोके अन्यान्य स्थान आविष्कार करने गये थे, वे ही तमाकूके पत्ते यूरोपको लेते गये थे। स्पेनमें कई वर्ष तक धूम्रपान प्रचलित होने पर भी तमाकूका विशेष आदर नहीं हुआ। अन्तमें पोर्तुगालसे ही इसका विशेष प्रचार हुआ। जियाँनिको (Gean nicot) नामके एक फरासीसी दूत इस समय पोर्तुगीजके दरबारमें रहते थे। उन्होंने एक ओलन्दाजसे तमाकूके बीज ले कर लिसबन नगरमें अपने उद्यानमें बो दिये। तमाकूके भेषज-गुणसे अपने आदमियोंके अनेक रोग नष्ट होते देख वे आश्चर्यान्वित और प्रलोभित हुए। १५६१ ई०में उन्होंने इसे फ्रान्सके राजाके पास भेजा। फ्रान्सकी रानीने इसके गुण सुन कर इसका विशेष आदर किया जिससे इसकी कृषिने बहुत जल्द उन्नतिलाभ की। उस समय इसको नाना प्रकार पवित्र नाम दिये गये थे, जैसे-"हावाना साङ्कटा"

(पवित्र गुल्म), "हार्बा पैनिसिया" "हार्बा डिलारेइन" "हार्ब भि एल आम्बस्याडिउर" (दूत-गुल्म) इत्यादि। पोर्तुगालसे कार्डिनाल साण्टाक्रोश इसे इटलीमें ले गये, वहाँ इसका नाम उनके नामानुसार "आर्बा साण्टाक्रोश" पड़ गया। इटलीसे इसका क्रमशः उत्तर-यूरोपमें विस्तार हो गया।

१५८४ ई॰में सर वाल्टार रालेने भार्जियानामें कप्तान राल्फ लेन नामक किसी व्यक्तिके अधीन एक उपनिवेश स्थापित किया। वहाँ औपनिवेशिकोंने इसकी खेती की। १५८६ ई॰में कप्तान साहबने इसे पहले पहल इंग्लैण्ड भेजा। उस समय तमाकू पर २ पेन्स शुल्क लगता था, किन्तु १७ वर्ष बाद प्रथम जेम्सने १६०३ ई॰में इसको बढ़ा कर ६ शिलिङ्ग १० पेन्स कर दिया।

कुछ दिनों तक यूरोपमें इसका प्रचार खूब आदरके साथ होता रहा, सभी विचारते थे कि इसका भेषज-गुण अति आश्चर्य फलप्रद है, मानसिक पीड़ाकी यह एक तरहसे अव्यर्थ महौषध है। अन्तमें कुछ दिन पीछे यह भ्रम दूर हो गया। उस समय सम्राट्, राजा और पोपोंको इसका व्यवहार घटानेके लिए अति निष्ठुर दण्डकी व्यवस्था करनी पड़ी थी। तुर्किस्तानमें धूमपायियोंके लिए ओष्ठाधर-छेदन और नस्यग्राहकोंके लिए नासाच्छेदनकी व्यवस्था हुई। किसी किसी जगह तो प्राणदण्ड तक होता था। इतने पर भी तमाकूका व्यवहार घटा नहीं। अन्तमें यह प्रायः प्रत्येककी व्यवहार्य वस्तु हो गई। विदेशी तमाकूका आमदनीमहसूल बहुत ही बढ़ गया था, आखिर १६६० ई॰में वह भी उठा दिया गया। १८३० ई॰को आयर्लैण्डमें भी महसूल उठा दिया गया और १८८६ ई॰में कुछ बंधे हुए नियमोंके अनुसार इंग्लैण्ड और स्काटलैण्डमें शस्यरूपसे तमाकूकी खेती करनेके कानून बन गये।

भारतमें तमाकू—यूरोपियोंके मतसे अकबर बादशाहके राजत्वके बाद पोर्तुगीज लोग १६०५ ई॰में इसे भारतमें लाये थे। बहुतसे ऐसा भी कहते हैं, कि अमेरिका आविष्कारके बहुत पहले एशिया और भारतमें धूम्रपान प्रचलित था; परन्तु आज तक इसका कोई प्रमाण नहीं मिला है। यूरोपियोंका कहना है, कि संस्कृत ग्रन्थमें इसका कुछ उल्लेख नहीं मिलता तथा एशिया और भारतमें सर्वत्र इसका वैदेशिक नाम होनेसे और भी विश्वास होता है, कि यह इस देशमें कहीं भी ई॰को १७ वीं शताब्दीसे पहले परिचित न थी। किन्तु सिद्धान्तसारावली नामक वैद्यक ग्रन्थोक्त "कलञ्ज" शब्दका अर्थ "तमाकू" है, इस बातको सब मानते हैं। "कलञ्जम वेष्टन"-का अर्थ चुरट ही अनुमित होता है। कलञ्ज देखो। इसके सिवा इयूल और वार्नेलदेशीय शब्दके इतिहासमें १६०४ ई॰में लिखित आसाद-वेगके विवरणसे भी तमाकूकी बात जाहिर होती है।

आसादवेग लिखते हैं—"बीजापुरमें मैंने तम्बाकू देखी। भारतवर्षमें अन्यत्र कहीं भी इसका पौधा नहीं पाया। मैंने कुछ साथमें ले आया और जवाहरातकी एक नली बनवाई। अकबर बादशाह मेरे उपहारोंको पा कर बड़े सन्तुष्ट और विस्मित हुए। उन्होंने कहा—'इतने थोड़े समयमें आपने इतनी अचम्भेकी चीजें कैसे इकट्ठी की?' इसी समय डालीमें धूम्रपानकी नली और अन्यान्य चीजोंको देख कर उन्होंने पूछा, कि 'यह क्या है और आपने कहाँसे प्राप्त की है?'

नवाब खाँ आजमने उत्तर दिया—इसका नाम है तम्बाकू; यह मक्का और मदीनेमें विशेषरूपसे व्यवहृत होती है। हकीम साहब आपकी दवाके लिए इसे लाये हैं। बादशाहने उसे देखभाल कर, मुझे उसके बनानेके लिए कहा। वे धूम्रपान करने लगे। उस समय चिकित्सक उन्हें तमाकू पीनेके लिए निषेध करने लगे। मेरे पास तमाकू कुछ ज्यादा थी, मैंने अमीर-उमरावोंके पास भी कुछ कुछ तम्बाकू भेज दी। सेवन करके सभीने और पानेकी इच्छा प्रकट की। इस तरह तम्बाकूका व्यवहार प्रचलित हुआ। इसके बाद सौदागरोंने इसका रोजगार करना शुरू कर दिया। मगर बादशाहने इसके पीनेका अभ्यास न डाला।"

भारतमें भी इसके कुछ दिन बाद यूरोप जैसी घटना हुई। अकबरके समयमें तमाकूका व्यवहार प्रचलित हुआ था यही ठीक है, किन्तु जहाँगीरने इसकी अनिष्टकारिता समझ कर इसके व्यवहारको बन्द करनेके लिए ऐसा आदेश दिया था कि—"तमाकूके पीनेसे युवकोंका

मन और स्वास्थ्य नाना प्रकारके दोषोंसे दूषित हो रहा है, इसलिए कोई भी इसे न पीवे।" ईरान देशमें जहाँगीरके भाई शाह अब्बासने भी इसी समय तमाकू बंद करनेका आदेश दिया था। जहाँगीरने तमाकू पीनेवालोंके लिए "तशीर' (उलटे गधे पर सवार होनेका) दण्ड जारी किया था।

सिख, ओहवी और कईएक श्रेणीके हिन्दू, और जैनी धर्महामिकर होनेके कारण तम्बाकू नहीं पीते। मुसलमान लोग पहले इससे बहुत घृणा करते थे, किन्तु दिन दिन वह लोप होती गई। वर्तमान समयमें भारतके प्रायः सभी स्थानोंमें तमाकूकी खेती एक मुख्य चीज हो गई है। विहारमें तमाकूकी प्रियता इतनी बढ़ गई है, कि उस पर कहावतें भी बन गई हैं—

"जो खाय न खाय तमाकू पीये।
सो नर बेटवा कैसे जीये॥"

भारतवर्षकी तमाकू अमेरिका वा विलायती तमाकूकी तरह व्यवसायसे उतनी आदरणीय नहीं है। हाँ, १८२८ ई०में गवर्मेण्टकी तरफसे इसके लिए कोशिश की गई थी। कप्तान बासिल हॉलने इस विषयमें कलकत्तेकी एग्रिहार्टिकल्‌चरैल सोसाइटीमें जैसा उपदेश दिया था, उसके अनुसार उन लोगोंने मेरिलैण्ड और भार्जिनिया तमाकूके बीजसे खेती करके जो तमाकू पैदा की थी, वह विलायतमें बड़े आदरके साथ गृहीत हुई। विलायती बणिकोंका कहना है, कि भारतीय तमाकूमें इतनी उमदा तमाकू उन्होंने और कभी भी नहीं देखी। यह तमाकू विलायतमें १ पौण्ड ६ शिलिं ८ पेन्सके हिसाबसे बिकी थी; किन्तु इसके बाद अहमदाबादसे एक बार तमाकू विलायतको भेजी गई थी, उसका इतना आदर नहीं हुआ। उसके पत्ते ज्यादा सूखे और छोटे थे। हिन्दुस्तानकी तमाकूमें धूल-रेत ज्यादा होता है, इसलिए विदेशोंमें व्यवसायके लिए भारतकी तमाकू बणिकोंसे आदर नहीं पाती।

तमाकूकी खेती—१८८८-८९ ई०में स्थिर हुआ कि देशीय राज्योंको छोड़ कर ब्रटिश-अधिकारमें प्रायः लाख बीघा जमीनमें तमाकूकी खेती और उससे करोड़ मनके करीब तमाकू उत्पन्न होती है। भारतमें मन्द्राज, गोदावरी कृष्णा, कोयम्बातुर, त्रिहुत, (बंगालमें) रङ्गपुर, (बम्बईमें) खेड़ा और अहमदाबादमें तमाकूकी खेती अधिकतासे होती है। प्रसिद्ध "लङ्का तमाकू" गोदावरी और कृष्णा जिलेमें तथा त्रिचिनापल्ली-चुरटकी तमाकू कोयम्बातुर और मदुरा जिलेमें उत्पन्न होती है।

युक्तप्रदेश—यहाँ प्रायः १२३८८४ बीघा जमीन पर तमाकू उत्पन्न होती है। फरक्काबाद और बुलन्दशहरमें ही तमाकू ज्यादा होती है। इस प्रदेशमें कहीं दो और कहीं तीन बार तमाकूकी फसल होती है।

पहली फसल (श्रावणसे खेती शुरू होनेके कारण) "श्रावणी" नामसे प्रसिद्ध है। दूसरी फसल (जेठ अषाढ़में फसल काटी जाती है, इसलिए) "असाढ़ी" नामसे मशहूर है। "श्रावणी" फसल कट जानेके बाद उसकी जड़ जो खेतोंमें रह जाती है, उससे दूसरी साल वैशाखमें और एक फसल मिलती है, जिसे 'रतून' फसल कहते हैं। 'रतून' फसल अच्छी नहीं होती। इलाहाबादके पश्चिमाञ्चलमें फसल जड़के पाससे काटी जाती है और उसके पूर्वाञ्चलमें एक एक पत्ते तोड़ लिये जाते हैं। इस देशमें विहारकी पूसा कोठीसे पहले भी गाजीपुरमें तमाकूकी एक कोठी बनी थी। वहाँ जितनी तमाकू हुई थी, वह इंगलैण्ड और अष्ट्रेलियामें नमूनेकी तौर पर भेजी गई थी। उस समय यह ॥) सेरके हिसाबसे बिकी थी।

इससे साबित होता है, कि हिन्दुस्तानी तमाकूकी खेती यत्नपूर्वक की जाने पर, वह अमेरिकाकी तमाकूसे किसी अंशमें हीन नहीं समझी जा सकती।

अयोध्या—यहाँ प्रायः ४०१२२ बीघा जमीनमें तमाकूकी खेती होती है। सीतापुर और खेरी जिलेमें तमाकूकी खेती कुछ अधिकतासे होती है।

पञ्जाब—यहाँ १८५६९८ बीघामें तमाकूकी कृषि होती है। जालन्धर, सियालकोट और लाहोर जिलेमें इसकी फसल ज्यादा है। इस प्रान्तमें विशेषतः लाहोर जिलेमें, निकोटियाना राष्टिका वा कान्दाहारी वा कक्कर तमाकू ही ज्यादा होती है। लाहोरी कक्कर और शिकारपुरी कक्कर ज्यादा प्रसिद्ध है। इसकी पत्तियाँ छोटी और गोल होती हैं। इसके सिवा यहाँ और भी

कई तरहकी मशहूर तमाकू पैदा होती है।

बोग्दादी तमाकूकी फसल खूब अच्छी और ज्यादा होती है; कारण किसान लोग बोनेके लिए इसके बीज ज्यादा काममें लाते और पसन्द करते हैं। सम्भवत: इसके बीज सबसे पहले बोग्दादसे ही भारतमें लाये गये थे, इसी लिए इसका नाम ऐसा पड़ा है।

नोकी—इसकी पत्तियाँ खूब लम्बी और नोकदार होती है, इसलिए इसका नाम "नोकी" पड़ा है। यह देशी और "नोकी" के भेदसे दो प्रकारकी है।

सामली—यह लाहौर, अमृतसर और सियालकोटमें होती है। इसकी सिर्फ पत्तियाँ ही व्यवहृत होती हैं, डंठल किसी काममें नहीं आते।

पूर्वी—पहले बङ्गालसे इस जातिका तम्बाकूके बीज ला कर लाहौरकी तरफ इसकी खेती की गई थी, इसलिए इसका नाम पूर्वी पड़ा है। इसकी खेतीमें यहाँ कुछ ज्यादा खर्च पड़ता है। यहाँके लोग इसे पानके साथ खाया करते हैं। धनिक लोग इसको पीते भी हैं।

बेंगनी—इसकी पत्तियाँ देखनेमें बेंगनकी पत्तियोंसे मिलती-जुलती होती है, इस कारण इसका नाम बेंगनी पड़ा है। उस देशमें इसीका प्रचार ज्यादा है।

सुरती—सूरतसे बीज ला कर इसकी पहले पहल खेती की गई थी, इसलिए इसका नाम सूरती पड़ गया। यह तिक्त और कड़ी होती है। करनाल जिलेमें देशी तमाकू, खेतीके गुण और पत्तोंके आकारानुसार तीन तरहकी उत्पन्न होती है—बुगड़ी, सुरनाली और खजूरी। डेरा-इस्माइलखाँ जिलेमें दो प्रकारकी तमाकूकी पैदायश है—भिन्धार और गारोबा। गारोबा अति निकृष्ट तमाकू है। यहाँके लोग इसे कान्दाहारी तमाकूके साथ मिला कर पीनी तमाकू बनाते है। गारोबा तमाकूमें स्वाद और गन्धकी विशेषता कुछ भी नहीं है।

सिन्ध—खरीफ फसलके बाद इस देशमें तमाकूकी खेती होती है। यहाँ तमाकूकी पहली फसलको नेहरी कहते हैं। एक मास बाद दूसरी फसल कटती है, जो बाउटी या "बाझरा" कहलाती है। शिकारपुरी तमाकू इस देशमें उमदा समझी जाती है। इसके सिवा खट्टी मीठी और सिन्धी ये तीन तरहकी तमाकू यहाँ होती है।

खट्टी—यह तिक्त और अम्ल आस्वादविशिष्ट है।

मीठी—इसका स्वाद मीठेपनको लिए होता है।

सिन्धी—अति निकृष्ट है।

मध्यभारत—ग्वालियरके अन्तर्गत भेलसा नामक स्थानकी तमाकू बहुत उमदा होती है। बङ्गालमें यह भेलसाके नामसे प्रसिद्ध है। राजपूतानाके अन्तर्गत आमेरकी तरफ भी एक प्रकारकी उत्कृष्ट तमाकू पैदा होती है जिसे 'आमेरी' कहते हैं।

बङ्गाल।—इस देशमें यथेष्ट तम्बाकू होती है। तमाकूकी खेतीके लिए इस देशमें कितनी जमीन लगी हुई है, इसका निर्णय नहीं हुआ। क्योंकि, यहाँ तमाकूकी उत्पत्ति अधिकतासे होने पर भी देशकी कृषिमें उसकी गिनती नहीं है। रङ्गपुर, त्रिहुत, पूर्णिया दरभङ्गा, २४ परगना, दुयार, चट्टग्राम पहाड़ और कोचबिहार जिलेमें और जगहसे तमाकूकी खेती ज्यादा होती है तथा सब स्थानोंके उत्पन्न द्रव्यसे ही व्यवसाय चलता है। अन्यान्य स्थानोंकी तमाकू वहींके लोगोंके व्यवहारमें खतम हो जाती है। जो किसान तमाकूकी खेती करनेका निश्चय करता है, वह उसके लिए प्रायः अपने घर वा गोष्ठके पासकी जमीन चुनता है। बारासातकी तरफ जहाँ नीलकी खेती बंद हो गई है, उन जमीनों पर तमाकूकी खेती अच्छी होती है। श्रावण, भाद्र और आश्विन मासमें, तमाकूके पौधे ५।६ इञ्चके होने पर उन्हें दूसरी जमीनमें गाड़ते हैं तथा माघसे चैत्र मास तक पत्ते तोड़ लिए जाते हैं। रङ्गपुर और ककाड़की तमाकू समस्त पूर्वभारत और ब्रह्मदेशमें जाती है। रङ्गपुरकी जमीन और आब-हवा तमाकूके लिए बहुत ही उपयोगी है। राजपुरुषोंका अनुमान है, कि कुछ दिन बाद यहाँकी तमाकू और भी उमदा हो कर बहुतसे देशोंमें विस्तृत होगी। तमाकूकी रक्षा करनेकी व्यवस्था अच्छी होने पर इस विषयमें आशाके अनुसार फल मिल सकता है।

१८६७ ई०में रङ्गपुरके एक व्यक्तिने अपने यत्नसे प्रस्तुत तमाकू पैरिसकी प्रदर्शनीमें भेज कर पदक पुरस्कार

पाया था। रङ्गपुरकी तमाकू देशीय लोगोंको बहुत प्रिय है। उक्त जिलेमें इसकी खेती आज कल धान या सनकी समकक्ष हो गई है। प्रति वर्ष ४०।५० मग आ कर सब तमाकू खरीदते और कलकत्ते, नारायणगञ्ज, चट्टग्राम और ब्रह्मदेशको भेजते हैं। इसका अधिकांश ही ब्रह्म और कलकत्तेमें 'वर्माचुरट' बनानेके लिए व्यवहृत होता है। यहाँ प्रति बीघेमें लगभग ३।४ मन तमाकू उत्पन्न होती है और ६) ७) रुपये मन बिकती है। मग लोग ब्रह्ममें चुरटके लिए तमाकू छाँट कर लेते हैं। खूब चौड़े, मोटे और मीठे-कड़े पत्ते वे ७) मनके भावसे भी खरीद लेते हैं। यहाँ सबसे उमदा तमाकूके पत्ते हाथीके कानके समान होते हैं और "हाथीकान" नामसे ही उनकी प्रसिद्धि है। मग लोग इस तमाकूको ही अधिक पसंद करते हैं। कोचबिहारकी तमाकू भी बहुत उमदा होती है। २४ परगना और नदीयामें जितनी तमाकू पैदा होती है, वह स्थानीय लोगोंके काममें ही आती है। बारासत, बनगाँव और रानाघाटमें जो तमाकू पैदा होती है, उसमेंसे कुछ रफ्तनी भी होती है।

गोबरडाँगाके निकटवर्ती गाइघाटा थानेसे ३।४ मील दूरी पर यमुनाके पश्चिम किनारे हिङ्गली ग्राममें जो तमाकू होती है, वही बङ्गालमें 'हिङ्गली' नामसे सर्वापेक्षा प्रसिद्ध और उत्कृष्ट समझी जाती है। रानाघाट और बारासतकी तम्बाकू भी हिङ्गलीके नामसे चलती है। असली हिङ्गली ग्राममें उत्पन्न तमाकू परिमाणमें थोड़ी होती है। सुना गया है, कि हिङ्गली ग्राममें २।३ बीघा मात्र जमीनमें इसकी खेती होती है। हिङ्गली-तमाकू ५) से ८) मन तक बिकती है।

आसाममें—तमाकू बहुत कम पैदा होती है, किन्तु यहाँके मिशमी और अरब जातिके स्त्री-पुरुष मात्र ही तमाकूके प्रेमी हैं। वे प्रायः बिना हुक्केके निकलते ही नहीं। यहाँ बङ्गालसे तमाकू आती है। पार्वत्यजातियाँ अपने कामके लायक थोड़ी तमाकू बोते हैं। कुकी लोग हुक्केकी लकड़ीको चबा कर नशा करना पसन्द करते हैं।

बिहारमें—गङ्गानदीके उत्तरकूलमें तमाकूकी खेती होती है। यहाँ तीन प्रकारकी तमाकू पैदा होती है—देशी वा बड़की, बिलायती वा कलकतिया और जेठुआ। जेठुआ तमाकूकी पूस माघमें बोते और बरसातमें काटते हैं। दरभङ्गामें ही तमाकूकी खेती ज्यादा है। तिरहुत और हाजपुरकी तमाकूकी ही इस प्रदेशमें अच्छी समझी जाती है। इसके पत्ते खूब बड़े होते हैं। सम्भवतः यही तमाकू कलकत्तेकी तरफ 'मोतिहारी तमाकूके नामसे प्रसिद्ध है।

इस देशमें प्रति बीघामें लगभग ६।७ मन तमाकू पैदा होती है। किन्तु सर्वोत्कृष्ट तमाकूका मूल्य ५) मनसे अधिक नहीं होता। इधरकी तमाकू ही नेपाल, गोरखपुरमें रेल और नावोंसे युक्तप्रदेशके अन्यान्य स्थानोंमें पहुंचती है। किसी किसी जमीन पर पहली फसलमें २० मन और दूसरी फसलमें १५ मन तक उत्पन्न होती है। किसी किसी जमीन पर ३।४ बार भी फसल होती है। यहाँ तिरहुतके अन्तर्गत पूसा नामक स्थानमें अंग्रेजोंने नीलकी कोठीकी तरह तमाकूकी कोठी बनाई है। उनकी खेती बहुत अच्छी होती है।

बम्बई—इस प्रदेशमें प्रायः १०१४६१ बीघेमें तमाकू पैदा होती है। खेड़ा और खानदेशकी तरफ ही तमाकूकी खेती ज्यादा है। खेड़ा और बेलगाँव जिलेमें शस्यरूपमें इसकी आबादी है। गुजरातमें एक तरहकी उमदा तमाकू होती है, जो युक्तप्रदेशको भेजी जाती है। पारस्यदेशीय शिराजी और अमेरिकाकी हाभाना, मेरीलैण्ड आदि तमाकू इस देशमें पैदा होती है।

भड़ौंच जिलेमें इनकी आबादी ज्यादा है। यहाँकी तमाकू अधिकतर मरिचशहर और बोरबों द्वीपमें भेजी जाती है।

मन्द्राज—इस प्रान्तमें २६३५८० बीघा जमीन पर तमाकूकी फसल होती है, जिसमें कृष्णा जिलेमें ही इसकी खेती ज्यादा है।

गोदावरी जिलेकी 'लङ्कातमाकू'के सिव दिन्दिगुल और त्रिचिनापल्लीकी तमाकूने भी इंग्लण्डमें ख्याति लाभ की है। इससे चुरट बहुत उमदा बनती है।

इस देशके अंग्रेजोंको शेषोक्त दो प्रकारकी तमाकू ही ज्यादा पसन्द है। दिन्दिगुल-तमाकूका व्यवहार बहुत ज्यादा है। मसलीपत्तनकी तमाकू नस्यके लिए प्रसिद्ध है। यहाँकी नास पृथिवी भरमें प्रचलित है।

मन्द्राजमें भी हाभाना, मेरीलैण्ड, भार्जियाना, मानिला, सिराजी आदि उत्कृष्ट तमाकूकी खेती बहुत अच्छी होती है। इस जिलेमें इन विदेशी तमाकूओंके द्वारा वर्षमें प्रायः ५½ लाख रुपयेकी आय होती है।

गोदावरीके मध्यस्थ सीतानगरम् नामक द्वीपकी लङ्का-तमाकू सबसे उत्कृष्ट होती है।

आराकान—साण्डुवे नामक स्थानकी तमाकू उत्कृष्ट है। लण्डनमें भी इसकी कीमत ६ या ७ पेन्स फी-पोण्ड है। इसमें एक श्रेणी सर्वोत्कृष्ट है, जो मार्तावान-तमाकू कहलाती है, इस तमाकूके पीनेसे ठीक मेरीलैण्डका स्वाद और हाभानाकी खुशबू मिलती है। इससे पीनी-तमाकू और चुरुट दोनों ही उमदा बनते हैं।

सिंहल—काण्डी, जाफना, नेगाम्बो, चिल्ल और मटबा नामक स्थानमें तमाकूकी खेती ज्यादा होती है। जफनाकी तमाकू त्रिवाङ्कुर आदि स्थानों तक पहुंचती है। यहाँ तमाकूकी खेती खास गवर्मेण्ट द्वारा होती है।

पारस्य—यहाँकी “सिराजी” तमाकू अति उत्कृष्ट और सर्वत्र आदृत है। इसकी मृदु सुगन्धि बड़ी सुहावनी है। इसके डंठल और पत्तोंकी नसें फेंक दी जाती हैं। इस देशमें और एक प्रकारकी निकृष्ट तमाकू उत्पन्न होती है, जिसकी पैदावारी खुरासान प्रदेशमें ही अधिक है। शायद इस खुरासानी तमाकूके बीजसे ही बङ्गालमें ‘खर्सान’ तमाकूकी उत्पत्ति हुई है।

चीन—इस देशमें सम्भवतः पहले पहल पश्चिमसे ही तमाकू आई थी। किन्तु इस समय चीनके अधिकांश स्थानोंमें तमाकूकी खेती होने लगी है। यहाँ जितनी भी तमाकू होती है, उनमें निकोटियाना फ्रटिओकोना और निकोटियाना राष्टिका ही प्रधान है। यहाँसे रूस-राज्यमें चुरुटके लिए तमाकूकी रफ़नी होती है। आज कल कलकत्तेकी तरफ “ब्राईस आई” नामसे जिस सूत्रवत् छेदित तमाकूका प्रचार अधिकतासे हुआ है, चीनमें यही तमाकू उस तरह सूत्रकाररूपसे छेदी जाती है। इसके साथ सेंकी और ‘पवड़ी’ भी कुछ कुछ मिलाई जाती है, कभी कभी इसे अफीमके पानीमें भी भिगोते हैं।

जापान—इस देशके अपने काम-लायक ही तमाकूकी खेती करते हैं। नागासिक, सिरण्डे, सासमा आदि स्थानोंमें तमाकू उत्पन्न होती है। सासमाकी तमाकू सबसे उमदा और खुशबूदार, किन्तु बहुत कड़ी होती है। जापानी लोग बहुत अच्छी तरह और कौशलसे इसकी खेती करते हैं। जो किसी भी तमाकूका व्यवहार नहीं कर सकते, उन्हें भी जापानी-तमाकू व्यवहार करनेमें तकलीफ नहीं होती।

फिलिपाइन द्वीपपुञ्ज—जगत्प्रसिद्ध मानिला-तमाकू इन्हीं द्वीपोंमें पैदा होती है। इस तमाकूसे चुरुट बहुत उमदा बनते हैं। यहाँकी गवर्मेण्टने चुरुटका रोजगार अपने ही हाथमें रक्खा है। एक तमाकूके रोजगारसे ही इस देशमें यथेष्ट लाभ होता है और इससे यहाँके बहुतसे लोगोंका जीविकानिर्वाह होता है।

पहले बङ्गालकी तमाकूके विषयमें जो कुछ कह चुके हैं, उसके अलावा वहाँ सूरती भेलसा और आराकानी-तमाकूकी भी बहुत कुछ आबादी है। सूरत और भेलसाकी तमाकू कलकत्तेके निकटवर्ती स्थानोंमें ही अच्छी होती है। चन्दननगरके पास सिङ्गुरमें आराकानी-तमाकू और जगहसे अच्छी होती है। चुनारकी तमाकू गङ्गाके तीरवर्ती स्थानोंमें पैदा होती है। बङ्गालकी तमाकुओंमें सबसे उमदा और प्रसिद्ध हिङ्गली है, उससे कुछ उतरती हुई भेलसा-तमाकू है। भेलसा-तमाकूमें काफी खाद और राख देनी पड़ती है। भुरसुट परगनेमें एक प्रकारकी निकृष्ट तमाकू होती है, जो ‘भुरसुटी’ नामसे मशहूर है। इसकी गन्ध और स्वाद अच्छा नहीं, किन्तु गुण यह है कि यह जलती बहुत कम है। एक चिलम तमाकू सुलगा कर एक आदमी उसे शायद तीन घण्टेमें भी न निबटा सकेगा। किसान लोग इसका ज्यादा व्यवहार करते हैं। खर्सान तमाकू भी गरीबोंमें अधिक प्रचलित है।

तमाकूका व्यवहार—बङ्गालमें “गुड़ुक” नस्य, “दोक्ता” वा सुरती तथा चुरुट, सभी तरहसे तमाकू व्यवहृत होती है। ‘गुड़ुक” (या पीनी तमाकू)-का ही ज्यादा व्यवहार है। तमाकूके पत्तोंके छोटे छोटे टुकड़े बना कर गुड़ (सीरा) और पानीके साथ ओखलीमें कूटनेसे पिण्डीसी बन जाती है, सामान्यतः इसे ही “गुड़ुक” वा पीनी तमाकू कहते हैं। इसके बाद इसे मीठी, स्वादिष्ट

और सुगन्धित बनानेके लिये उसमें सड़े केले, अतर तथा अन्यान्य मसाले डालते हैं।

'गुड़ुक' वा पीनी तमाकूमें खमीरा ही विशेष प्रसिद्ध है। बहुत उमदा तमाकूके पत्तोंके साथ गुलकन्द (मिसरी और गुलाबकी पखड़ीसे बनता है), सेवका मुरब्बा, पानका सूखा हुआ चूरा, मुश्कवाल (चन्दनकी भाँति सुगन्धवाली लकड़ी), चन्दन, इलायची, केवड़ेका इत्र, कोकनवर (सुमिष्ट फलविशेष) और अमलतासका चूर्ण मिला कर फिर उसे सड़ा कर खमीरा-तमाकू बनायी जाती है। सस्तीसे सस्ती खमीरा-तमाकू रुपयेमें ऽ७ सेर तक बिकती है। असली खमीरा-तमाकू हण्डेमें भर कर बिना वजनके बिकती है। पञ्जाब, दिल्ली, लखनऊ आदि स्थानोंमें खमीरा-तमाकू बनती है। खमीराके साथ सफेद तमाकूके पत्ते मिला कर दूसरी तमाकू बनती है।

बिहारकी तरफ खमीरा बनानेके लिए जटामांसी, छरिला, सुगन्धवाला और सुगन्धकोकिल नामक गन्धद्रव्य मिलाते हैं। लखनऊमें "बादशाही" तमाकू खमीराके अन्तर्गत है। यह अति उपादेय वस्तु है।

पीनी-तमाकू बहुत जगह अच्छी बनती है। पञ्जाबकी खमीरा और लखनऊकी बादशाही-तमाकूके सिवा चुनार, चण्डालगढ़, गया आदिकी तमाकू भी बहुत उमदा होती है। बङ्गालमें विष्णुपुर और आनरपुरकी पीनी-तमाकू अति उत्कृष्ट समझी जाती है। कलकत्तेमें विष्णुपुर, आनरपुर, गया, चण्डालगढ़की तमाकू ही ज्यादा बिकती है। इनके साथ ग्राहकोंकी रुचिके अनुसार खमीरा-तमाकू भी मिलाई जाती है। विष्णुपुरकी सर्वोत्कृष्ट पीनी-तमाकू कलकत्तेमें ॥) सेर बिकती है। हिङ्गलीमें इसको "पियानी" वा पिइनी कहते हैं। तमाकू पीनेके लिये हुक्का, नली आदिकी आवश्यकता होती है।

नस्य वा नास।—मसलीपत्तनकी नास जगत्प्रसिद्ध और जगत्व्याप्त है। यह बोतल भर कर बेची जाती है और खूब सरस और खुशबूदार होती है। इसके सिवा काशी, उड़िसा और पञ्जाब प्रान्तमें भी सूँघनी बनती है। काशीकी नास सुगन्धयुक्त और प्रसिद्ध पर बहुत कड़ी होती है। पञ्जाबमें नीकी और बिहारमें मोतिहारी नास बनती है। कर्णाटक प्रदेशमें पीनी तमाकू नहीं चलती, सूँघनीका ही अधिक प्रचलन है। इस देशमें हिन्दू लोग, हुक्का क्या चीज है यह भी नहीं जानते। मुसलमानोंके हुक्केमें तमाकू पीना हिन्दुओंके लिये जातिनाशका कारण समझा जाता है किन्तु नस्यसेवन अति आदरणीय है। यहूदी, आर्मनी और अरबके व्यवसायी लोग मसलीपत्तनकी नास ले कर नाना स्थानोंमें फिरते हैं। मसलीपत्तनकी नस्यप्रस्तुतप्रणाली बहुत ही सहज है। जितनी पत्तियोंकी नास बनानी हो, उसके डण्ठल और नसें निकाल कर आधीको घाममें सुखा दें और सूख जाने पर उसका चूरा बना लें। बची हुई आधी तमाकूको नमकके पानीमें उबाल लें। उबालनेके बाद जो पानी बचे, उसमें नयी तमाकू भी उबाली जा सकती है। ऐसा करते रहनेसे पानी क्रमशः तमाकूके अर्कसे गाढ़ा होता रहता है। अन्तमें पानी जब गुड़की तरहका हो जाता है तब उसको ठण्डा किया जाता है। फिर उसमें थोड़ीसी ब्राण्डी (विलायती शराब) मिला कर पूर्वोक्त तमाकूका चूरा डाल दिया जाता है। छह दिन तक यह सड़ता रहता है। पीछे वह नस्य बोतलमें भर कर बेचा जाता है।

चुरट—त्रिशिरापल्ली, ब्रह्मदेश आदि स्थानोंमें चुरटके कारखाने हैं। इन स्थानोंसे अपने नामसे मशहूर हर तरहके चुरटोंकी विलायतके लिए रफ़तनी होती है। इसके सिवा सभी जगह देशी चुरट बनते हैं। मानिला, हाभाना, लङ्का और यवद्वीपकी तमाकूके चुरट भी विदेशको जाते हैं।

बीडी—यह शाल या बादाम आदिके पत्तोंमें तमाकूका चुरा लपेट कर बनाई जाती है। गरीब लोग इसे चुरटकी तरह सुलगा कर पीते हैं। यह ब्राह्मणोंके सिवा अन्य लोगोंके लिए बड़ी प्रिय वस्तु है।

'खैनी' वा 'सूखा'—पश्चिममें विशेषतः बिहारमें इसका ज्यादा प्रचार है। तमाकूके सूखे पत्तोंको 'खैनी' कहते हैं। बंगालमें इसे 'दोक्ता' कहते हैं। लोग इसको चबा कर खाते हैं।

सूखा—तमाकूके पत्तेको चूनाके साथ रगड़ कर गोली सी बना लेते हैं और जीभके तले रख कर इसका रस चूसा करते हैं।

सुरती—तमाकूमें कस्तूरी चन्दन आदि मशाले डाल कर उसे कूटें और मटरकी बराबर गोलियाँ बना लें। यह पानके साथ खायी जाती है। काशीकी सुरती उमदा होती है।

विशेषता—तमाकूके पत्तोंसे एक प्रकारका निर्यास निकलता है, जो विषाक्त है। हुक्केकी नलीमें उक्त तैल और तमाकूके पत्ते व्यवहृत होते हैं। देशीय वैद्योंके मतसे तमाकू संक्रामक तथा विषघ्न है।

हुक्केके पानीसे विष-फोड़े आदिका विष और सूजन जाती रहती है। हुक्केकी लकड़ीसे जो तैलवत् स्नेहद्रव्य निकलता है, उससे नसका घाव और रतौंधी अच्छी हो जाती है। कोषप्रदाह रोगमें नास, चूना और सुलतानी चम्पकवृक्षकी छालका चूरा तीनोंको एक साथ मिला कर प्रलेप देनेसे रोग आरोग्य होता है। डा० लिथका कहना है, कि धनुष्टङ्कारमें मेरुदण्ड पर तमाकूकी पुल्टिश देनेसे फायदा पड़ता है। ज्यादा नास सूंघनेसे अजीर्णता, ज्यादा चुरुट पीनेसे शरीरयन्त्रमें दुर्बलता, यकृत्में कार्यह्रास, पाकयन्त्रमें कार्यहानि इत्यादि होती है; कभी कभी लकवा जैसा आक्षेप भी होता है। तमाकूके उबाले हुए पानीसे सेकने पर धनुष्टङ्कारका आक्षेप घट जाता है। तमाकूका डण्ठल लड़कोंके गुह्य देशमें लगानेसे मृदु विरेचन होता है। एक तरफका पोता बढ़नेसे उस पर तमाकूका पत्ता बाँध देनेसे सूजन और दर्द जाता रहता है, पर सिर और देह घूमती तथा कै होती है। ष्ट्रीकनाइन विषमें तमाकूका पानी प्रतिषेधकका काम करता है। चूनेमें तमाकूके पत्तोंका चूरा मिला कर प्लीहा (पिलही)के ऊपर उसका प्रलेप देनेसे फायदा होता है। मसूढ़े फूलने पर तमाक दबा रखनेसे आराम पड़ता है।

इसके अलावा यदि तमाकू-सेवनका अनभ्यास हो तो इससे उद्गार, वमन, दस्त और खाँसी हो जाती है; सहसा लकवा भी हो सकता है। तमाकू चबानेसे जितना अनिष्ट होता है, उतना तमाकू पीनेसे नहीं होता तथा नस्य लेनेमें उससे भी कम अनिष्ट होता है। नास सूँघनेसे श्लेष्मावृद्धि, घ्राणशक्तिकी तीक्ष्णताका नाश, अग्निमान्द्य और स्वादका परिवर्तन हो जाता है।

तमाकूमें दो प्रकारका तैल और एक प्रकारका क्षार है। इन तीन चीजोंसे ही उक्त कार्य होते हैं। एक प्रकारका तैल उद्वायु है। पानीमें तमाकू उबालनेसे, पानीके ऊपर यह तैल तैरने लगता है। इसमें ही तमाकूका गन्ध और ग्राहित्व (थोड़ा नशा लानेवाला)-गुण रहता है। यह उत्ताप लगनेसे वायुमें मिल जाता है। तमाकू पीते समय धुएंके साथ यह ही शरीरमें जा कर अपना क्रम प्रकाश करता रहता है।

दूसरे प्रकारका तैल तमाकू जलते समय चूता रहता है। इसका स्वाद कड़ुआ होता है। यह विषाक्त द्रव्य है। इसकी एक ही बूँदसे बिल्लीकी दम निकल जाती है। भिनिगार या सिरकासे इस तैलको शोधित कर लेनेसे इसका जहर जाता रहता है।

तमाकूका क्षार—थोड़ासा गन्ध द्रावक मिला कर, ईषत् अम्लजलमें तमाकूको भिगो दें, फिर उसमें कलीका चूना डाल कर उसे चुआवें ऐसा करनेसे एक प्रकारका वर्णहीन तैलवत् उद्वायु क्षार मिलेगा। यह जलसे भारी और अति विषाक्त होता है। इसकी एक बूँदसे कुत्ता मर जाता है। इसकी गन्ध इतनी तीव्र है, कि एक घरमें यदि इसकी एक बूँद हवाके साथ मिल जाय तो वहाँ श्वास लेना भी कष्टकर हो जाता है। सूखे तमाकूके पत्तेमें यह क्षार २से ८ भाग तक रहता है। 'खैनी' खाने वाले उसके साथ चूना मिला कर खाते हैं, इसलिए उनके शरीरमें इस द्रव्यकी अनिष्टकारिता बहुत ज्यादा होती है।

हुक्केमें पानी रहनेके कारण हुक्केसे तमाकू पीने पर उक्त विषाक्त द्रव्य शरीरके अन्दर अल्प परिमाणमें प्रविष्ट होते हैं। धुएँके साथ, नलीके भीतरसे आनेके समय, उसका कुछ अंश नलीमें और कुछ पानीमें रह जाता है। नलीदार हुक्केकी नली बड़ी होनेके कारण उससे विषाक्त द्रव्य और भी कम पेटमें जाते हैं। चुरुट पीनेसे यह सुभीता नहीं होता। नस्य बनाते समय तमाकूका क्षार और तैल-भाग बहुत कुछ नष्ट हो जाता है, इस कारण चुरुटकी अपेक्षा वह कम अनिष्टकर है। पृथिवी पर ८० करोड़से अधिक लोग तमाकू पीते हैं। ग्राही-द्रव्यके सेवनसे शरीर और मन कुछ उत्तेजित और अवसादशून्य होता है,

इसीलिए सब तरहके ग्राहीद्रव्योंमें अल्पानिष्टकर तमाकूका इतना प्रचार हुआ है ।

फिलहाल परीक्षा करनेसे मालूम हुआ है, कि तमाकू पीनेवालोंके फुस्फुसयन्त्र (फेफड़े) बहुत शीघ्र दुर्बल हो जाते हैं । कीटभुक् उद्भिद् देखो ।

तमाचा (फा० पु०) थप्पड़, झापड़ ।

तमाचारी (सं० पु०) राक्षस, दैत्य, निशाचर ।

तमादी (अ० स्त्री०) १ अवधि व्यतीत होना, समय गुजर जाना । २ ऐसे समयका बीत जाना जिसके अन्दर अदालतमें किसी दावेकी सुनवाई हो सकती हो

तमाम (अ० वि०) १ सम्पूर्ण, पूरा, सारा, बिलकुल । २ समाप्त, खतम ।

तमामी (फा० स्त्री०) एक प्रकारका देशी रेशमी कपड़ा । इस पर कलाबत्तूकी धारियाँ होती हैं ।

तमारि (हिं० पु०) सूर्य, दिनकर ।

तमाल (सं० पु०-क्ली०) ताम्यति कांक्षति तम कालन् । तमिविशि विडीति । उण् १।११७। १ पत्रक, तेजपात । (पु०) २ वृक्षविशेष, तमालका पेड़ । पर्याय—कालस्कन्ध, तापिच्छ, नीलताल, तमालक, नीलध्वज, कालताल, महाबल । (Xanthocymus pictorius) यह वृक्ष देखनेमें बड़ा ही मनोरम है । २०से २७।२८ फुट पर्यन्त इसकी ऊँचाई है । भारतमें बहुत जगह यह वृक्ष होता है । तमालका फूल बड़ा और सफेद होता है । वैशाख मासमें फूल लगा करते हैं । तमालका फल भी खूब सुन्दर है, देखते ही खानेको जी चाहता है । इसका आकार कमला-नींबू जैसा है ; ऊपरी हिस्सा बेरकी तरह चिकना और पीला है । किन्तु यह फल तीव्र अम्लरसयुक्त है । इसका छिलका सबसे ज्यादा खट्टा है । कोमल अंश (जहाँ बीज होते हैं) कुछ कम खट्टा है । किन्तु इस अंशको खानेसे भी किसी किसीके दाँत दो दिन तक खट्टे रहते हैं । इतना खट्टापन होने पर भी तमालफलमें एक प्रकारका सुस्वाद है । सावन भादोंमें यह पकता है, तब शृगाल इस फलको बहुत खाते हैं । तमालफलका आचार सुखाद्य नहीं है ।

वैद्यकके अनुसार इसके गुण—मधुर, बल्य, वृष्य, शैत्य, गुरु, कफ, पित्त, तृष्णा, दाह और श्रमशान्तिकर । (राजनि०)

इस वृक्षका सार गुरु और कृष्णवर्ण तथा ऊपरकी छाल मलिनाभ है । पत्ते तेजपत्तेकी आकृतिके होते हैं । इसकी छाया अन्धकारमय और चञ्चल है । इसके पर्यायवाची नीलताल, कालताल और नीलध्वज इन शब्दोंसे इसमें नीलवर्णका तालसदृश वृक्षका भ्रम होता है । इसके फलमें भी तालतरु जैसा सार है और फल ताड़की आकृतिके हैं ; इसलिए नीलतालको कालताल कहते हैं । तमालदल पर्युषित नहीं होते । (योगिनीतन्त्र)

३ तिलकवृक्ष, तिलकका पेड़ । ४ खड्गभेद, एक तरहकी तलवार । ५ वरुणवृक्ष । ६ कृष्णखदिर, काले खैरका पेड़ । ७ वंशत्वक्, बाँसकी छाल । ८ एक तरहका सदाबहार पेड़ जो हिमालय तथा दक्षिण भारतमें होता है । इसमेंसे एक प्रकारका गोंद निकलता है जो घटिया रेवंद चीनीकी भाँतिका होता है । इसको मन्होला और डमबेल भी कहते हैं । इसकी छालसे एक प्रकारका उमदा पीला रंग निकलता है । इस वृक्षमें पौषके महीनेमें एक तरहका फल लगता है, जिसे लोग यों ही अथवा दाल आदिमें इमलीकी तरह डाल कर खाते हैं । यह औषधके काममें भी आता है । लोग इसका सिरका बनाते तथा सुखा कर भी रखते हैं । ९ स्थलपद्म । १० कृष्णतिल । ११ श्वेतसुनिषण्णकशाक । १२ त्वक्, दारचीनी ।

तमालक (सं० क्ली०) तमाल-पत्रवत् वर्णेन कायति कै-क । १ सुनिषण्णशाक, सुसना साग । तमालमिव स्वार्थे-कन् । २ पत्रक, तेजपात । ३ स्थलपद्म, जमीनमें होनेवाला एक प्रकारका कमल । (पु०) ४ तमालवृक्ष । तमाल देखो । ५ बाँसकी छाल ।

तमालका [की] (सं० स्त्री०) भूधात्री, भुईं आँवला ।

तमालच्छद (सं० क्ली०) तेजपत्र, तेजपात ।

तमालपत्र (सं० क्ली०) १ तेजपत्र, तेजपात । २ त्वक्, दारचीनी । ३ तिलक ।

तमालपत्रचन्दनगन्ध (सं० पु०) बुद्धभेद ।

तमालिका (सं० स्त्री०) तमालाः सन्त्यत्र तमाल-ठन् । १ ताम्रलिप्त प्रदेश, तमलुक । २ ताम्रवल्ली नामकी लता । ३ भूम्यामलकी, भुईं आँवला ।

तमालिनी (सं० स्त्री०) तमालो तमालवर्णोऽस्त्यस्याः इति इनि ङीप । १ ताम्रलिप्त देशका एक नाम । २ भूम्यामलकी, भुइँ आँवला ।

तमाली (सं० स्त्री०) तम-कालन् गौरा० ङीप । १ चित्रकूटमें होनेवाली ताम्रवल्ली नामकी लता । २ मञ्जिष्ठा, मजीठ । ३ वरुणवृक्ष ।

तमाशबीन (हिं० पु०) १ तमाशा देखनेवाला, सैलानी । २ वेश्यागामी, रंडीबाज ।

तमाशबीनी (हिं० स्त्री०) वेश्यागामी, रण्डीबाजी ।

तमाशा (फा० पु०) १ चित्तको प्रसन्न करनेवाला दृश्य । २ अद्भुत व्यापार, अनोखी बात ।

तमाशाई (अ० पु०) वह जो तमाशा देखता हो ।

तमाह्वय (सं० क्ली०) तालीशपत्र ।

तमि (सं० पु०) ताम्यति ग्लायतेऽत्र तम-इन् । सर्वधातुभ्यो इन् । उण् ४।११७ । १ रात्रि, रात । २ मोह । ३ हरिद्रा, हलदी ।

तमिन् (सं० त्रि०) तम-घि-नुण् । शमित्यष्टाभ्योघिनुण् । पा ३।२।१४१ । अन्धकारयुक्त, अँधेरा ।

तमिनाथ (सं० पु०) तमीनां नाथः, ६ तत् । निशानाथ, चन्द्रमा ।

तमिषीचि (सं० स्त्री०) तमिं मोहं सिञ्चति सिच-इन् संज्ञायां षत्वं पृषो० दीर्घः । १ अप्सरोभेद, एक अप्सराका नाम । (अथर्व २।२।५) (त्रि०) २ बलवान्, ताकतवर ।

तमिस्र (सं० क्ली०) तमोऽस्त्यत्र । ज्योत्स्ना तमिस्रेति । पा ५।२।११४ । इति निपातनात् साधुः वा तमिस्रा अस्त्यामस्य अच् । १ अन्धकार, अँधेरा । २ क्रोध, गुस्सा । ३ नरकविशेष, एक नरकका नाम । (भागवत ४।७।४४)

तमिस्रपक्ष (सं० पु०) तमिस्रं अन्धकारं तत्प्रधानो पक्षः, मध्यपदलो० । कृष्णपक्ष, जिस मासका कृष्णपक्ष अँधेरा हो ।

तमिस्रा (सं० स्त्री०) तमो बहुत्वमस्ति अस्यां । ज्योत्स्ना तमिस्रेति पा ५।२।११४ । इति निपातनात् साधुः । १ अन्धकार रात्रि, अँधेरी रात । २ दर्शरात्रि, अमावस्या तिथिकी रात । ३ तमस्तति, अन्धकार राशि । ४ हरिद्रा, हलदी ।

तमी (सं० स्त्री०) तमि-ङीष् । १ रात्रि, रात । २ हरिद्रा, हलदी ।

तमीचर (सं० पु०) निशाचर, दैत्य, दनुज ।

तमीज़ (अ० स्त्री०) १ विवेक, भले बुरेका विचार । २ पहचान, चिह्न । ३ ज्ञान, बुद्धि । ४ अदब, कायदा ।

तमीपति (सं० पु०) चन्द्रमा, निशाकर ।

तमीश (सं० पु०) चन्द्रमा ।

तमुष्टुहीय (सं० क्ली०) तमुष्टुहि इत्यादिकार्चमधिकृत्य प्रवृत्तः इतिच्छ । सूक्तभेद, एक सूक्तका नाम ।

तमेरु (सं० त्रि०) ताम्यति तम-एरु । ग्लानियुक्त, जिसे लज्जा हो ।

तमोगा (सं० त्रि०) १ अन्धकारमें जानेवाला । (पु०) २ शुष्णका नामान्तर ।

तमोगु (सं० पु०) राहु ।

तमोगुण (सं० पु०) तमसः गुणः, ६-तत् । प्रकृतिका तृतीय गुण । इस गुणका प्राधान्य होनेसे मनुष्य क्रोधमें आ कर खराबसे खराब काम करते हैं । तमस् देखो ।

तमोगुणी (सं० त्रि०) जिसकी वृत्तिमें तमोगुण हो ।

तमोघ्न (सं० पु०) तमोऽन्धकारं वा मोहं अज्ञानं हन्ति हन-टक् । १ सूर्य । २ वह्नि, आग । ३ चन्द्रमा । ४ बुद्ध । ५ विष्णु । ६ शिव, महादेव । ७ ज्ञान । ८ दीप, दीआ, चिराग । ९ बौद्धमतके नियमादि । (त्रि०) १० तमोनाशक, जिससे अँधेरा दूर हो ।

तमोज्योतिस् (सं० पु०) तमसि ज्योतिर्यस्य, बहुव्री० । खद्योत, जुगनू ।

तमोदर्शन (सं० क्ली०) पैत्तिक ज्वर, वह ज्वर जो पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न हो ।

तमोनुद् (सं० त्रि०) तमोऽज्ञानं अन्धकारं वा नुदति नुद-क्विप् । १ अग्नि, आग । २ सूर्य । ३ चन्द्रमा । ४ दीप, दीआ, चिराग । ५ तमोनाशक, जिससे अँधेरा दूर हो ।

तमोनुद (सं० पु०) तमोनुदति नुद-क । इगुपधज्ञेति । पा ३।१।१३५ । १ अग्नि, आग । २ चन्द्रमा । ३ ईश्वर, प्रकृतिप्रेरक । (त्रि०) ४ अन्धकारनाशक । ५ अज्ञाननाशक ।

तमोऽन्तकृत् (सं० पु०) तमसोऽन्तं करोति कृ-क्विप् । १ वह जो समस्त अज्ञान विनाश करता हो । २ वह जिससे समस्त अन्धकार दूर होता है ।

तमोऽन्त्य (सं० क्ली०) ग्रहणभेद, दश तरहसे ग्रहण हो सकता है, उनमेंसे तमोऽन्त्य एक है।

तमोऽपह (सं० पु०) तमोऽन्धकारं अपहन्ति अप-हन-ड। अपे क्लेशतमसोः। पा ३।२।५०। १ सूर्य। २ चन्द्र। ३ अग्नि। ४ ज्ञान। (त्रि०) ५ तमोनाशक, जिससे अँधेरा दूर हो। ६ मोहनाशक।

तमोभिद् (सं० पु०) तमस्तिमिरं भिनत्ति नाशयति भिद्-क्विप्। १ खद्योत, जुगनू। (त्रि०) २ तमोभेदक, जिससे अँधेरा दूर हो।

तमोभिद (सं० पु०) तमोभिद् देखो।

तमोभूत (सं० त्रि०) १ अन्धकारकृत, अँधेरा किया हुआ। २ अज्ञ, अज्ञानी, जड़, मूर्ख, नादान।

तमोमणि (सं० पु०) तमसि अन्धकारे मणिरिव। १ खद्योत, जुगनू। २ गोमेदक मणि।

तमोमय (सं० त्रि०) तम आत्मकं तमः प्रचुरं वा तमस्-मयट्। १ अन्धकारात्मक, अँधेरासे घिरा हुआ। २ अज्ञानावृत, अज्ञानी, मूर्ख। ३ तमोगुणयुक्त। (पु०) ४ राहु।

तमोरि (सं० पु०) सूर्य।

तमोलिन (हिं० स्त्री०) तँबोलिन।

तमोलिप्ती (सं० स्त्री०) तमसा लिप्यते लिप-क्त निपातनात् ङीप्। जनपदविशेष, एक मुल्कका नाम। इसके पर्याय—तामलिप्त, वेलाकुल, तमालिका, दामलिप्त, तमालिनी, स्तम्बपू और विष्णुगृह है। तमलुक देखो।

तमोली (हिं० पु०) तँबोली देखो।

तमोविकार (सं० पु०) तमसैव विकारो यत्र, बहुव्री। १ रोग। तमसो विकार, ६-तत्। २ तमोगुणका विकार, निद्रा और आलस्य आदि। तमस् देखो। ३ तमिस्रा, रात्रि, रात।

तमोवृध् (सं० त्रि०) तमसि वा तमसा वर्द्धते वृध्-क्विप्। १ अँधेरी रातमें घूमनेवाला राक्षस। २ अज्ञान वृद्ध, भारी नादान।

तमोव्रण (सं० पु०) वल्मीक।

तमोहन् (सं० त्रि०) तमोहन्ति हन-क्विप्। १ अज्ञाननाशक। २ अन्धकारनाशक, सूर्य, चन्द्र प्रभृति।

तमोहर (सं० त्रि०) तमो हरति हृ-अ। १ अज्ञाननाशक। २ अन्धकारनाशक, जिससे अँधेरा दूर हो। (पु०) ३ सूर्य। ४ चन्द्रमा।

तमोहरि (सं० पु०) तमसो हरिः, ६-तत्। १ सूर्य। २ चन्द्रमा। ३ अग्नि। ४ ज्ञान।

तम्पा (सं० स्त्री०) तम्बति गच्छति तब-अच पृषो० साधुः। सोरभेयो गाभी, अच्छी गाय।

तम्बा (सं० स्त्री०) तम्बति तम्ब-अच्-टाप्। गाभी, गाय।

तम्बिका (सं० स्त्री०) तम्ब ण्वुल्-टाप् कापि अत इत्वं। गाभी, गाय।

तम्बीर (सं० पु०) तम्ब-ईरन्। योगभेद, ज्योतिषका एक योग। योग देखो।

तम्बौर—१ अयोध्याके सीतापुर जिलेकी बिसवन तहसीलका परगना। इसके उत्तरमें खेरी जिला, पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिममें कुन्द्रि, बिसवन और लाहरपुर परगना है। भूपरिमाण १८० वर्गमील है। इस परगनेमें बहुतसी नदियां बहती हैं। उत्तरमें दहावर नदी तथा पश्चिममें घर्घर, चौका और कई एक छोटी छोटी नदियाँ, मध्यदेशको विच्छिन्न करती हैं। इस परगनेमें सब जगह एक प्रकारकी गीली मट्टी पाई जाती है। इस कारण खेतमें जल सींचनेका प्रयोजन नहीं पड़ता है। वर्षाकालमें परगनेका प्रायः सभी ग्राम जलप्लावित हो जाते हैं। चौका और दहावर नदी अक्सर प्रवाहपथ बदला करती हैं। ये दोनों नदियाँ जिस ग्राम हो कर बहती हैं, प्रति वर्ष उस ग्रामकी बहुत क्षति होती है।

तम्बौर परगनेके कुर्मी और मुराव गृहस्थ कृषिकार्यमें बड़े सुदक्ष और अभिज्ञ हैं।

इस परगनेमें १६६ ग्राम लगते हैं। इसमें ८० तालुक हैं, जिनमेंसे ४३ गौड़ राजपूतोंके अधिकारभुक्त हैं। ८६ ग्राम जमीन्दारी हैं, इनमें भी ४०के अधिकारी गौड़ राजपूत हैं।

तम्बौर परगनेमें सोरा तैयार होता है। एक सड़क इस परगने हो कर सीतापुरसे मल्लापुर तक चली गई है।

२ उक्त सीतापुर जिलेकी बिसवन तहसीलका एक शहर। यह मल्लापुरसे ६ मील पश्चिम तथा सीतापुर शहरसे ३५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। ७८० वर्षसे अधिक समय हुए, ताम्बूलीने यह नगर स्थापन किया

था, उन्हींके नामानुसार इसका 'तम्बौर' नाम हुआ है।

अहमदाबाद ग्राम तम्बौर नगरके मध्यमें है। यह अभी कुर्मी-पंचायतके हस्तगत है। इस शहरमें एक स्कूल, बाजार, महादेवका मन्दिर और एक महात्माकी कब्र है। वहाँका ईंटका बना हुआ प्राणसरोवर धीरे धीरे बरबाद होता जा रहा है। पहले इस शहरमें एक दुर्ग था।

तम्र (सं॰ त्रि॰) ताम्यत्यनेन तम करणे र। ग्लानिसाधन, जिसे लज्जा उत्पन्न हो।

तय (अ॰ वि॰) १ समाप्त, पूरा किया हुआ। २ निश्चित, स्थिर, मुकर्रर। ३ निर्णीत, फैसल।

तर (सं॰ पु॰) तॄ-भावे अप्। ऋदोरप्। पा ३।३।५७। १ तरण, पार करनेकी क्रिया। २ कृशानु, अग्नि। ३ वृक्ष। ४ प्रत्ययविशेष, एक प्रत्ययका नाम, दोमें एकका उत्कर्ष या अपकर्ष समझे जानेसे गुणवाचक शब्दके बाद तर प्रत्यय आता है। ५ पथ, रास्ता। ६ गति, चाल। ७ नावकी उतराई। ८ सन्तरण।

तर (फा॰ वि॰) १ आर्द्र, भीगा हुआ, गीला। २ शीतल, ठण्ढा। ३ हरा, जो सूखा न हो। ४ मालदार, भरा पूरा।

तरक (हिं॰ स्त्री॰) १ तडक देखो। (पु॰) २ विचार, सोच विचार, उधेड़बुन, ऊहापोह। ३ तर्क, उक्ति, चतुराईका वचन। ४ पृष्ठ वा पन्ना समाप्त होने पर उसके नीचे किनारेकी ओर लिखा हुआ अक्षर वा शब्द। यह शब्द आगेके पृष्ठके आरम्भका अक्षर वा शब्द सूचित करनेके लिए लिखा जाता है। ५ व्यतिक्रम, भूलचूक।

तरकना (हिं॰ क्रि॰) कूदना, झपटना, उछलना।

तरकश (फा॰ पु॰) तूणीर, तीर रखनेका चोंगा।

तरकस (हिं॰ पु॰) तरकश देखो।

तरकसी (फा॰ स्त्री॰) क्षुद्रतूणीर, छोटा तरकश।

तरका (हिं॰ पु॰) तडका देखो।

तरकारी (फा॰ स्त्री॰) १ वह पौधा जिसकी पत्ती, जड़, डंठल, फल, फूल आदि पका कर खानेके काममें आते हैं। २ शाक, भाजी। ३ खानेयोग्य मांस।

तरकी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका गहना जिसे स्त्रियाँ कानमें पहनती हैं। इस गहनेका जो भाग कानके भीतर रहता है वह ताड़के पत्तेको गोल लपेट कर बनाया जाता है। इसीसे यह शब्द 'ताड़' से निकला हुआ प्रतीत होता है। संस्कृत शब्द 'ताडङ्क' से भी यही सूचित होता है। कहीं कहीं इसे तालपत्र भी कहते हैं। इस गहनेका व्यवहार छोटी जातिकी स्त्रियोंमें अधिक होता है।

तरकीब (अ॰ स्त्री॰) १ संयोग, मिलान, मेल। २ युक्ति, उपाय, ढंग। ३ रचनाप्रणाली, शैली, तरीका। ४ बनावट, रचना।

तरकीहार—एक प्रकारकी नीच हिन्दू जाति। ये लोग विशेष कर ताड़के पत्तोंसे 'तरकी' नामका गहना जिसे नीच जातिकी स्त्रियाँ पहनती हैं, बनाते हैं। इसीसे इनका नाम तरकीहार पड़ा है। मुजफ्फरपुरमें जो तरकीहार हैं वे अपनेको वैश्य राजपूत और गोरखपुरमें ब्राह्मण बतलाते हैं। लेकिन ब्राह्मण वा राजपूत होनेका इनका कोई प्रमाण नहीं मिलता है। जो कुछ हो, अवश्य ये लोग हिन्दू हैं इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि मर्दुमशुमारीमें भी इन्हें हिन्दू ही बतलाया है।

ये लोग पाँचसे ले कर ग्यारह वर्षकी अवस्थामें लड़कीका विवाह करते हैं। इनमेंसे यदि कोई पहली स्त्रीके रहते दूसरा विवाह करना चाहे, तो जब तक पञ्चायत सलाह नहीं देती तब तक वह विवाह नहीं कर सकता है। विधवाविवाह भी इस जातिमें प्रचलित है। सरवरिया वंशके तिवारी ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। इनका प्रधान व्यवसाय 'तरकी' बनना है। कभी कभी ये लोग सिन्दूर और टिकुली ले कर भी मेलेमें बेचने जाते हैं। इस जातिके लोग शराब पीते, भेंड़, बकरे तथा हरिणमांस खाते हैं। ब्राह्मण केवल इनके हाथका जल ही पीते हैं और कुछ नहीं।

तरकुला (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है, तरकी।

तरकुली (हिं॰ स्त्री॰) कानका एक गहना, तरकी।

तरक्की (अ॰ स्त्री॰) वृद्धि, उन्नति, बढ़ती।

तरक्ष (सं॰ पु॰) तरक्षु पृषोदरादुलोपः। तरक्षु देखो।

तरक्षु (सं॰ पु॰) तरं बलं मार्गं वा क्षिणोति क्षिण-डु।

व्याघ्रविशेष, लकड़बग्घा, चरग। पर्याय—तर्क्षु, मृगादन और तरक्षुक। (शब्दर०)

यह मांसाशी हिंस्रजन्तु है। इसका आकार बाघके समान और सर्वाङ्ग रेखादि द्वारा चित्रित होनेसे, इसको हायना (Hyæna Striata) भी कहते हैं। यह कुत्ते-से कुछ बड़ा होता है, इसके शरीरका चमड़ा पिङ्गल-वर्ण लोमोंसे ढका है तथा स्कन्ध कपिश रेखान्वित और पीठ पर केशरकी तरह दीर्घलोम हैं। इसके सामनेका पैर पीछेसे कुछ बड़े और पूंछ छोटी होती हैं। पेटकी धारियाँ सुस्पष्ट होती हैं; पीठका रंग घोर होनेके कारण वहाँकी तिरछी धारियाँ स्पष्ट नहीं दीखती।

इनकी दोनों डाढ़ें (दाँत) अत्यन्त सबल और दृढ़ हैं और तो क्या यह उनसे हड्डी तकको कतर सकता है। ये भारतवर्ष, सिंहल, अफ्रीका, अरब, आदि स्थानोंमें रहते हैं। ये घने जङ्गलोंमें रहना पसन्द करते हैं। विरल गुल्मपूर्ण पर्वतकी गुहा, नदीतीरस्थ वनके प्रान्त आदि स्थानोंमें ही इनका वास है। दिनको पर्वतकी गुहा वा जङ्गलके गड्ढोंमें सोते हैं तथा सन्ध्याके बाद श्मशानमें, लोकालयके किनारे वा प्रान्तरमें आहारकी खोजमें निकलते हैं। ये मुर्दे खाते और उनकी हड्डी चबाना पसन्द करते हैं। कुत्ता, बिल्ली, गाय, बकरी इत्यादिको पाते ही पकड़ ले जाते हैं।

इसकी गर्जनसे एक प्रकारका विकट शब्द होता है, कुत्ते भी उसे सुनते ही उसीकी ओर भागते हैं, इसी मौके पर यह कुत्तोंको पकड़ता है। स्वभावतः यह डरपोक होता है। यह मनुष्य पर प्रायः आक्रमण नहीं करता। समतल स्थानमें ये उतनी तेजीसे नहीं दौड़ सकते, किन्तु पार्वत्य-स्थानमें इसकी दौड़ देखनेसे विस्मित होना पड़ता है। बचपनसे पालनेसे यह हिलता है, पर ज्यादा उत्तेजित करने वा छेड़नेसे यह भयानक हो जाता है। नाना स्थानोंमें नाना प्रकारके तरक्षु देखनेमें आते हैं। उन सभीका स्वभाव प्रायः एकसा है।

इसके गुह्यद्वारके नीचेकी थैलीका चमड़ा सिकुड़ी हुई है, इसलिये पहले ग्रीकके लोग इसको उभय लिङ्ग समझते थे। प्लिनि, इलियम आदि प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंने लिखा है, कि यह एक वर्ष तक पुलिङ्ग रहता है, दूसरी साल स्त्रीलिङ्ग हो जाता है। इस प्रकारके और भी बहुतसे अलीक उपाख्यान हैं, जिनसे ग्रीक-ऐन्द्रजालिक-गण इसकी हड्डी, चमड़ा, लोमादि, जादू आदि विषयोंमें आश्चर्यशक्तियुक्त जान कर आदरके साथ रक्खा करते थे।

तरक्षुक (सं० पु०) तरक्षु स्वार्थे कन्। तरक्षु देखो।

तरखा (हिं० स्त्री०) तीव्रप्रवाह, तेज प्रवाह।

तरखान (हिं० पु०) बढ़ई, वह जो लकड़ीका काम करता हो।

तरगुलिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका छिछला बरतन जिसमें अक्षत रखा जाता है।

तरङ्ग (सं० पु०) तरति प्लवते इति तॄ-अङ्गच्। तरत्यादिभ्यश्च। उण् १।११९। ऊर्मि, लहर, हिलोर। वायु द्वारा नदी इत्यादिका जल उछाले जाने पर वह तिर्यक्‌रूपमें बहने लगता है, इस प्रकारकी गतिका नाम तरङ्ग है। एकमात्र वायु ही तरङ्गका कारण है। इसके पर्याय—भङ्ग, ऊर्मि, ऊर्मी, वीचि, वीची, हल्ली, विलि, लहरि, लहरी, जललता, भृङ्गि, उत्कलिका और ऊर्मिका है। २ वस्त्र, कपड़ा। ३ अश्व प्रभृतिका समुत्फाल, घोड़े आदिकी फलाँग या उछाल। ४ चित्तकी उमङ्ग, मनकी मौज। ५ एक प्रकारकी चूड़ी जो हाथमें पहनी जाती है। ६ स्वरलहरी, सङ्गीतमें स्वरोंका चढाव उतार।

तरङ्गक (सं० पु०) तरङ्ग-स्वार्थे कन्। १ पानीकी लहर, हिलोर। २ सङ्गीतमें स्वरोंका चढाव उतार।

तरङ्गभीरु (सं० पु०) तरङ्गेन भीरुः, ३-तत्। चतुर्दश मनुका पुत्रभेद, चौदहवें मनुके एक पुत्रका नाम।

तरङ्गवती (सं० स्त्री०) तरङ्गिणी, नदी।

तरङ्गालि (सं० स्त्री०) नदी।

तरङ्गिणी (सं० स्त्री०) तरङ्गिन् स्त्रियां ङीप्। नदी, सरित्।

तरङ्गित (सं० त्रि०) तरङ्गः सञ्जातोऽस्य तारकादित्वादितच्। १ जाततरङ्ग, हिलोर मारता हुआ, लहराता हुआ। २ चञ्चल, चपल। ३ भङ्गिविशिष्ट।

तरङ्गिन् (सं० त्रि०) तरङ्गोऽस्त्यस्य तरङ्ग इनि। १ तरङ्गयुक्त, जिसमें लहर हो। २ आनन्दी, मनमौजी।

तरचखी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा। यह सजावटके लिये उद्यानमें लगाया जाता है।

तरछट (हिं० स्त्री०) तलछट देखो।

तरछा (हिं० पु०) वह स्थान जहाँ तेली गोबर जमा करता है।

तरज (हिं० पु०) तर्ज़ देखो।

तरजना (हिं० क्रि०) १ ताड़न करना, डाँटना, डपटना। २ उचित-अनुचित कहना, बिगड़ना।

तरजनी (हिं० स्त्री०) १ तर्जनी, अँगुठेके पासकी उँगली। २ भय, डर।

तरजुमा (अ० पु०) भाषान्तर, अनुवाद, उल्था।

तरट (सं० पु०) चक्रमर्द वृक्ष, चकवँड़।

तरण (सं० पु०) तीर्यते अनेन तॄ करणे ल्युट्। १ प्लव, पानी पर तैरनेवाला तख्ता, बेड़ा। २ स्वर्ग (क्ली०) भावे ल्युट्। ३ प्लवनपूर्वक देशान्तर गमन, बेड़ा पर चढ़ कर दूसरा देश जाना। ४ पारगमन, नदी आदिकी पार करनेका काम। ५ निस्तार, उद्धार। ६ सन्तरण।

तरणतारण—१ पञ्जाबके अमृतसर जिलेके दक्षिण-भागमें अवस्थित एक तहसील। यह अक्षा० ३१°१०´ तथा ३१°४०´ और देशा० ७४°३३´ तथा ७५°१७´ पू०में अवस्थित है। इस तहसीलमें सब जगह बड़े बड़े मैदान हैं और इसके अधिकांश स्थलमें ही खेती होती है। क्षेत्रफल ५९७ वर्गमील है। इसमें शहर और ग्राम मिला कर कुल ३४० लगते हैं। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई इत्यादि विभिन्न धर्मावलम्बियोंका वास है। मुसलमानोंकी संख्या सबसे अधिक है। लोकसंख्या प्रायः ३२५५७६ है।

इस तहसीलमें गेहूं, जौ, ज्वार, उर्द, धान, जुन्हरी ईख, रुई तथा तरह तरहकी साक सब्जी उत्पन्न होती हैं। यहाँकी वार्षिक आय प्रायः २९३८७०) रु०की है। इस तहसीलमें एक फौजदारी और दो दीवानी अदालत हैं। एक तहसीलदार और एक मुन्सिफ विचारकार्य करते हैं। यहाँ ४ थाने हैं, जिनमें बहुतसे कान्सटेब्ल और चौकीदार रहते हैं।

२ उक्त तहसीलका प्रधान शहर। यह अक्षा० ३१° २७´ उ० और देशा० ७४°५६´ पू० पर अमृतसर शहरसे १२ मील दक्षिणमें शतद्रु और विपासा नदीके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। इस शहरमें म्युनिसपालिटीका बन्दोबस्त है। हिन्दू, मुसलमान, सिख प्रभृति धर्मावलम्बी मनुष्य यहाँ वास करते हैं।

गुरु रामदासजीके पुत्र गुरु अर्जुनजीने यह नगर स्थापित किया है। इसके सिवा वे नगरके मध्य एक सुन्दर तालाब और उसके बगलमें एक सिख-धर्ममन्दिर निर्माण कर गये हैं। प्रवाद है कि जो कुष्ठरोगी तैर कर यह तालाब पार हो सके, वह उसी समय आरोग्य हो जाता है। इसी कारण शहरका नाम तरणतारण रखा गया है। तालाबके पार्श्वस्थित मन्दिरके प्रति महाराज रणजित्‌सिंहकी अगाध भक्ति थी। उन्होंने बहुत रुपये खर्च करके मन्दिरको अलङ्कृत तथा इसका उपरी भाग ताँबेसे मढ़वा दिया था। उक्त सरोवरके दोनों किनारे नवनिहालसिंहके बनाये हुए ऊँचे स्तम्भ विद्यमान हैं। यह शहर सम्भाकी राजधानी कह कर प्रसिद्ध है। तथा बारि दुआबका मध्यस्थल भी है। इस स्थानको इतिहासमें सिखोंका दुर्ग बतलाया है। अब भी यहाँसे ब्रटिश गवर्मेण्ट बहुत सैन्य संग्रह करती है।

अमृतसरके साथ इस शहरका वाणिज्यसम्बन्ध है। यहाँ लोहेके अच्छे अच्छे बरतन तैयार होते हैं।

यहाँसे थोड़ी ही दूर पर बारि-दुआबकी सोब्राउन शाखा है। इस शाखासे एक नाला हो कर तरणतारणके सरोवरमें जल गिरता है। यह नाला झींदके राजासे बनाया गया है। शहरमें विचारालय, पुलिस, थाना, सराय, चिकित्सालय, डाकघर और विद्यालय है। अमृतसर और लाहोरविभागके दरिद्र कुष्ठ रोगियोंके लिये जो कुष्ठाश्रम प्रतिष्ठित हुआ है, वह शहरके बाहरमें पड़ता है। शहरके समीप भी बहुतसे कुष्ठरोगियोंका वास है। यहाँके अधिवासियोंका कहना है, कि गुरु अर्जुनजी इन लोगोंके आदिपुरुष हैं।

तरणि (सं० पु०) तीर्यत्यनेन तॄ-अनि। अर्त्ति सृ-धृ धमीति। उण् २।१०२। १ सूर्य। २ भेलक, बेड़ा। ३ अर्कवृक्ष, मदारका पेड़। ४ किरण, रोशनी। ५ ताम्र, ताँबा। (स्त्री०) ६ नौका, नाव। ७ घृतकुमारी, घीकुंवार, ग्वारपाठा। ८ कण्टकसेवती। (त्रि०) ९ तारक, उद्धार करनेवाला। १० शीघ्रगन्ता, जल्दी जानेवाला। ११ जो शत्रुको उत्तीर्ण कर वर्तमान हो।

तरणिकुमार (सं० पु०) तरणिसुत देखो।

तरणिजा (सं० स्त्री०) १ सूर्यकी कन्या, यमुना। २ छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें एक नगण और एक गुरु होता है।

तरणि-तनय (सं० पु०) तरणेः सूर्यस्य तनयः ६-तत्। सूर्यके पुत्र, यम, शनि, कर्ण।

तरणितनुजा (सं० स्त्री०) सूर्यकी कन्या, यमुना।

तरणिधन्य (सं० पु०) शिव, महादेव।

तरणिपेटक (सं० पु०) तरणिः पेटक इव। काष्ठाम्बुवाहिनी, काठका वह पात्र जिससे नावका पानी बाहर फेंका जाता है।

तरणिपोत (सं० पु०) तरणिः पोत इव। तरणिपेटक देखो।

तरणिमणि (सं० पु०) तरणिप्रियः मणिः। सूर्यप्रिय माणिक्य।

तरणिरत्न (सं० क्ली०) तरणेः सूर्यस्तत् प्रियं रत्नं, मध्यपदलो० कर्मधा०। पद्मराग मणि।

तरणिसुत (सं० पु०) तरणितनय देखो।

तरणी (सं० स्त्री०) तरणि ङीष्। १ नौका, नाव। २ पद्मचारिणी लता, स्थलकमलिनी। ३ घृतकुमारी घीकुआर, ग्वारपाठा। ४ ह्रस्वदन्तीवृक्ष।

तरणीसेन (सं० पु०) विभीषणके पुत्र और रामजीके एक भक्तका नाम। विभीषणके कहनेसे रामचन्द्रजीने इसे लड़ाईमें मारा था। (कृत्तिवासीरामा) वाल्मिकी रामायणमें इस तरणिसेनकी कथाका कुछ भी उल्लेख नहीं है।

तरणीय (सं० त्रि०) तॄ-अनीयर्। तरणयोग्य, पार होने काबिल।

तरणीवल्ली (सं० स्त्री०) कण्टकशतपत्रीपुष्पवृक्ष, एक प्रकारका गुलाबका पौधा

तरण्ड (सं० पु०-क्ली०) तरति प्लवते तॄ बाहुलकात् अण्डच्। १ मछली मारनेकी डोरीमें बँधी हुई छोटी लकड़ी। २ प्लव, नाव खेनेका डाँड़ा। ३ नौका, नाव। ४ कुम्भतुम्बी, केलेके पत्तेका बेड़ा। ५ देशविशेष, एक देशका नाम।

तरण्डक (सं० क्ली०) तरण्ड संज्ञायां कन्। १ तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। तीर्थ देखो। २ बड़िशसूत्रबद्ध लघुकाष्ठभेद, मछली मारनेकी डोरीमें बँधी हुई छोटी लकड़ी।

तरण्डपादा (सं० स्त्री०) तरण्डः प्लवनशीलः पादः प्रायेन तुरीयांशो यस्याः, बहुव्री०। नौका, नाव।

तरण्डी (सं० स्त्री०) तरत्यनया तरण्ड गौरा० ङीष्। नौका, नाव।

तरतम (सं० त्रि०) तरेति तमेति प्रत्ययार्थो बध्यतया अस्त्यत्र अच्। न्यूनाधिक, थोड़ा-बहुत।

तरतीब (अ० स्त्री०) क्रम, सिलसिला।

तरत्सम (सं० त्रि०) तरत् समित्यादि ऋचः सन्त्यत्र। इति अच्। पावमान सूक्तान्तर्गत एक सूक्तका नाम।
तरत्समन्दीय देखो।

तरत्समन्दीय (सं० क्ली०) पावमान सूक्तान्तर्गत एक सूक्तका नाम। मनुष्य यदि अप्रतिग्राह्य अर्थादि ग्रहण करे अथवा विगर्हित (निषिद्ध) अन्न भक्षण करे तो यह सूक्त तीन दिन जप करनेसे वह पापसे विमुक्त हो जाता है।

"प्रतिगृह्य। प्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम्।
जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात्॥"

(मनु ११।२५४)

तरद् (सं० स्त्री०) तरत्यनेन तॄ बाहुलकाददि। १ प्लव, बेड़ा। तॄ कर्त्तरि अदि। २ कारण्डवपक्षी, एक प्रकारका बतक।

तरदी (सं० स्त्री०) तरेण तरणेन दीयते खण्ड्यते दो खण्डने घञर्थे क गौरा० ङीष्। कण्टकयुक्त वृक्ष, एक प्रकारका कटीला पेड़। इसके संस्कृत पर्याय-तारदी, तीव्रा, खर्बुरा और रक्तबीजका है। इसका गुण तिक्त, मधुर, गुरु, बल्य और कफनाशक है।

तरदीद (अ० स्त्री०) १ काटने या रद करनेकी क्रिया, मंसूखी। २ प्रत्युत्तर, खंडन।

तरद्दुद (अ० पु०) चिन्ता, फिक्र, सोच।

तरहटी (सं० स्त्री०) पक्वान्नभेद, एक प्रकारका पकवान। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—घी और दहीके साथ माड़े हुए बतासा मिला कर गोली बनाते हैं। बाद घीमें धीमी आँचसे उसे पका कर कपूर और मिर्चका चूर्ण मिला देनेसे तरहटी प्रस्तुत होती है। इसका गुण बलद, पुष्टिकर, हृद्य, पित्त और वायुनाशक, स्निग्ध तथा कफकारक है।

तरद्वेषस् (सं० पु०) शत्रुके आक्रमणकारी, इन्द्र।

तरनतार (हिं० पु०) निस्तार, मोक्ष, मुक्ति।

तरनतारन (हिं० पु०) १ मोक्ष, उद्धार। २ वह जो भवसागरसे पार करता हो।

तरना (हिं० क्रि०) १ पार करना। २ मुक्त होना, सद्गति प्राप्त करना।

तरनाग (हिं० पु०) एक पक्षीका नाम।

तरनाल (हिं० पु०) पालकी लोहेकी वरनमें बाँधनेका रस्सा।

तरनि (हिं० स्त्री०) तरणि देखो।

तरनिजा (हिं० स्त्री०) तरणिजा देखो।

तरनी (हिं० स्त्री०) १ नौका, नाव। २ मिठाईका थाल या खोंचा रखनेका छोटा मोढ़ा।

तरन्त (सं० पु०) तरतीति तॄ-झच्। तॄभूवहिवसीति। उण् ३।१२८। १ समुद्र। २ प्लव, बेड़ा। ३ भेक, मेढ़क। ४ राक्षस। ५ पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

तरन्ती (सं० स्त्री०) तरन्त गौरा० ङीष्। नौका, नाव।

तरन्तुक (सं० क्ली०) कुरुक्षेत्रस्थ स्थानभेद, कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक स्थानका नाम।

तरपण्य (सं० क्ली०) तॄ-भावे अप् तरस्तरणं तस्य पण्यं। आतर, उतराई, नदी पार जानेका महसूल।

तरपत (हिं० पु०) १ सुविधा, सुबीता। २ आराम, चैन, सुख।

तरपन (हिं० पु०) तर्पण देखो।

तरपना (हिं० क्रि०) तड़पना देखो।

तरपर (हिं० क्रि०) १ नीचे ऊपर। २ क्रमानुगत, एकके पीछे दूसरा।

तरपू (हिं० पु०) मलवार और पश्चिमघाटके पहाड़ोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़।

तरफ़ (अ० स्त्री०) १ दिशा, ओर। २ पार्श्व, किनारा, बगल। ३ पक्ष, पासदारी।

तरफ़—बङ्गालके चट्टग्राम विभागका एक प्रधान जमीन-विभाग। इस विभागसे अधिक राजस्व वसूल होता है। १७६४ ई०में गवर्मेण्ट कौंसिलने इस विभागके जमींदारोंका स्वत्व स्थिर कर दिया। जमींदारोंका अधिकृत महाल माप करके बन्दोबस्त किया गया। १७६४ ई०की जरीबके अनुसार ही १७९० ई०को तरफमें दशसाला बन्दोबस्त हुआ और बाद १७९६ ई०में यही दशसाला बन्दोबस्त चिरस्थायी बन्दोबस्तमें परिणत हो गया। १७६४ ई०में जिस जमीनका बन्दोबस्त हुआ था, केवल उसी जमीनका खजाना स्वत्व गवर्मेण्टने छोड़ दिया। किन्तु तरफदारगण उस बन्दोबस्तके अलावा बहुतसी जमीन अपने अधिकारमें करने लगे। चट्टग्राममें गवर्मेण्टपक्षीय बन्दोबस्तकारी रिकेटस् साहबने इस अधिकारको चोरी अधिकारके जैसा वर्णन किया है।

रिकेटस् साहब जरीब द्वारा बहुतसी जमीन निकाल कर उसके ऊपर कर निर्द्धारित किया। १७९० ई०में महालकी संख्या ३३८१ थी किन्तु १८४८ ई०के बन्दोबस्तके बाद इसकी संख्या ३३२० तथा १८१५ ई०में ३३७८ हो गई। उस समय ४४३,१३७) रु० राजस्व वसूल होते देखा गया है। किन्तु बहुत जमीन नदीके किनारे रहने अथवा और दूसरे दूसरे कारणोंसे राजस्व कम गया है।

तरफका आयतन छोटा है। यह एक थानाके अधीन भिन्न भिन्न मौजे अथवा एक ही मौजेके विभिन्न स्थानोंमें छोटे छोटे अंशोंमें विभक्त है। तरफकी ऐसी अवस्थिति और आकृतिके विषयमें बहुतोंकी भिन्न भिन्न धारणा है। कोई कोई कहते हैं, कि हुमायुं और शेरशाहके बराबर आक्रमणके कारण गौड़अधिवासीगण श्रीहट्ट और चट्टग्रामके जङ्गलमय प्रदेशमें आ कर वास करने लगे। बङ्गदेशके सूबेदार अथवा उनके करद जमींदारोंकी अधीनता स्वीकार न करके ये पहले खुसवास अवस्थामें रहते थे। ये ही खुसवासगण चट्टग्राममें तरफदार नामसे परिचित हैं। गौड़ अधिवासी भिन्न भिन्न दलमें चट्टग्राम आये थे। यहाँ विस्तर जमीन देख कर वे अपने इच्छानुसार एक एक स्थानमें वास करने लगे। प्रत्येक अधिनायकने अपने वशीभूत लोगोंके लिये कितनी जमीन तो अधिकार कर ली। बचा खुचा भूभाग चट्टग्राम कौंसिलकी घोषणाके अनुसार १६६५ से १७६० ई०के अन्दर बहुतसे विदेशियोंके अधिकारमें आ गया। जरीबके समय जो सब जमीन अधिनायकके अधीन थी, गवर्मेण्टने उसकी गिनती तरफमें कर ली। किसी दूसरी

कल्पनासे इस लोगोंको पता चलता है, कि एक व्यक्तिके अनेक उत्तराधिकारी थे। उन उत्तराधिकारियोंने जमीन आपसमें विभक्त कर ली। कालक्रमसे एक एक महाजनने अनेक अधिकारियोंका अंश खरीद किया। १७६४ ई०में एक एक महाजनका अधिकृत विभाग उसीके नाम पर तरफरूपमें गिना जाने लगा। तरफकी उत्पत्तिके विषयमें तीसरा मत भी प्रचलित है। १७६४ ई०में बन्दोबस्तकर्मचारियोंकी कार्यमें पारदर्शिताके कारण पुरस्कारस्वरूप बहुतसी जमीन मिली थी। उस जमीनको उन्होंने एक एक महालके अन्तर्गत कर लिया। यही महाल अन्तमें तरफ नामसे प्रसिद्ध हो गया है, चट्टग्राममें कानूनगो नामके अनेक तरफ हैं।

कलेक्टरीके हिसाबसे चट्टग्राममें ३३७८ संख्यक तरफ देखे जाते हैं। जिलेके मध्यभागमें ही तरफकी संख्या अधिक है। उत्तरांशमें फटिकचरी थानाके अधीन इसकी संख्या कुछ कम है।

तरफ़दार (अ० वि०) पक्षपाती, समर्थक, हिमायती।

तरफ़दारी (अ० स्त्री०) पक्षपात।

तरफराना (हिं० क्रि०) तरफड़ाना देखो।

तरब (हिं० पु०) सारङ्गीके तार। ये तांतके नीचे एक विशेष ढङ्गसे लगे रहते हैं।

तरबगञ्ज—युक्तप्रदेशके गोण्डा जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २६´ ४६´ और २७´ १०´ उ० तथा देशा० ८१´ ३३´ और ८१´ १८´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ६२७ वर्गमील तथा लोकसंख्या ३६४८८३ है। यहाँ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई प्रभृति वास करते हैं। हिन्दूकी संख्या सबसे अधिक है। नवाबगञ्ज, दिगसिर, महादेव, गुआरि ये चार परगने तरबगञ्ज तहसीलके अन्तर्गत हैं। इसमें ५४६ ग्राम तथा नवाबगञ्ज, कोलोनेलगञ्ज नामके शहर लगते हैं। इस विभागकी वार्षिक आय प्रायः ४६०००० है। १८८५ ई०को इस तहसीलमें १ दीवानी, २ फौजदारी अदालत, ४ थाने, ८० पुलिस कर्मचारी और ८४१ चौकीदार थे।

तर-बतर (फा० वि०) आर्द्र, भीगा हुआ।

तरबहना (हिं० पु०) ठाकुरजीको स्नान करानेका एक बरतन जो तांबे या पीतलका होता है।

तरबालिका (सं० स्त्री०) करपालिका पृषो० साधुः। खड्गभेद, एक प्रकारका कटार। खड्ग देखो।

तरबूज़, तर्बुज (फा० पु०) फलविशेष, एक प्रकारका फल जो लौकी या कुम्हड़ेकी तरह गोलाकार और बड़ा होता है। इस फलके भीतर पानीका अंश अधिक है। संस्कृत पर्याय—तरम्बुज, कालिन्दक, कृष्णबीज और फलवर्तुल। हिन्दीमें इसे कलौंदा कहते हैं। गुण—शीतल, मलरोधक, मधुररस, मधुर पाक, गुरु, विष्टम्भि, अभिष्यन्दकारक तथा दृष्टिशक्ति, शुक्र और पित्तनाशक। पके फलके गुण—पित्तवृद्धिकर, उष्ण, क्षार तथा कफ और वायुनाशक। इसके पत्ते तिक्त और रक्तस्थापक हैं। (पथ्यापथ्यवि०) ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाकी अर्द्ध रात्रिके समय महाकाली तृष्णातुरा हो कर पितृकाननमें भ्रमण करती हैं, ऐसा समझ कर ब्राह्मण जो उनके उद्देश्यसे तरबूज चढ़ाते हैं, उससे हरप्रिया महाकाली परितुष्ट हो कर वर देती हैं तथा चढ़ानेवाला चिरायुः होता है। इसलिए ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाके दिन आधीरातके समय महाकालीको तरबूज चढ़ाना उचित है।

(उत्तरकामाख्यातन्त्र)

प्राचीन महाद्वीपके प्रायः सभी देशोंमें तरबूज पाया जाता है। उष्णप्रधान देशोंमें ही इसकी ज्यादा उपज है। गुजरातीमें इसको तरबूच, तुरबूच और तरमूज और संस्कृतमें तरम्बुज कहते हैं। फारसीमें इसकी दिलपसन्द और कचरेहन तथा अंग्रेजीमें वाटर-मेलन कहते हैं। (Citrullus Cucurbita.)

तरबूजके पत्ते गोल और बीचमें कुछ गहरे से होते हैं। फल गोल और बड़ा होता है। इसका छिलका चिकना, घोर सब्ज और चित्रितवत् होता है। पके तरबूजका खाद्यांश पीत, पाटल अथवा रक्तवर्ण है और कच्चेका मध्यभाग सफेद। सब तरबूजके बीज एकसे नहीं होते; किसीके लाल और किसीके काले नीले आदि होते हैं। तरबूज फूटकी जातिका है, पर इसमें जल बहुत ज्यादा होता है।

भारतमें प्रायः सर्वत्र ही तरबूजकी खेती होती है। उत्तरांशमें यह कुछ अधिक उत्पन्न होता है। स्थानीय अधिवासी और यूरोपीय लोग इसे खूब पसन्द करते

हैं। पौष और माघ मासमें इसकी खेती होती है या ग्रीष्मकालके प्रारम्भमें ही यह उत्पन्न होता है। असमयमें वृष्टि अथवा ओले पड़नेसे इसकी फसल मारी जाती है। युक्तप्रदेशमें कालिन्द नामक एक तरहका तरबूज मिलता है, जो जेठके महीनेमें ईखके खेतमें बोया जाता और कार्तिकमें पकता है। ग्रेट-ब्रिटनमें तरबूजकी खेती खूब कम होती है पर वहाँ वालोंको यह प्रिय बहुत है। दक्षिण अफ्रीकाका तरबूज साधारण तरबूजसे कुछ निराला होता है। अफ्रीकामें यह सर्वत्र पाया जाता है। चीनदेशमें भी तरबूज होता है। चीन लोग उस तरबूजको ज्यादा खाते हैं, जिसका मध्यांश लाल हो। यूरोपीय, स्पेनीय, इम्पेरियल और केरोलिना लोग तरबूजको सर्वोत्कृष्ट फल कहते हैं। वैशाख और ज्येष्ठ मासमें वङ्गदेशके हर एक बाजार वा हाटमें असंख्य तरबूज बिका करते हैं।

लिनियसका कहना है, कि तरबूज इटली देशके दक्षिणांशसे पृथिवीके अन्यत्र प्रचारित हुआ है। किन्तु सेरिञ्जके मतसे, यह भारतवर्ष और अफ्रीकाका फल है। लिभिंष्टोनका विवरण पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि अफ्रीकाकी बहुतसी जमीन तरबूजोंसे छा जाती है; वहाँके असभ्य अधिवासी तथा जङ्गली जानवर इसे खाया करते हैं। जिन स्थानोंमें ग्रीष्मके प्रारम्भमें अत्यन्त शीतलतासम्पादक शाक-सब्जी नहीं होती, वहाँ तरबूज आदि फल बहुत होते हैं। बहुत प्राचीनकालसे ही अफ्रीका और एशियामें तरबूजका प्रचलन चला आ रहा है। यह किस देशमें सबसे पहले उपजा था, इसका निर्णय करना असम्भव है। भारतके बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंमें तरबूजका उल्लेख मिलता है। ग्रेटब्रिटनमें १६वीं शताब्दीसे पहले तरबूज नहीं मिलता था और यह भी आज तक निर्णीत नहीं हुआ, कि पहले पहल किस देशसे इसकी आमदनी हुई। प्राचीन इजिप्टवासियोंके चित्र देखनेसे मालूम होता है, कि वे तरबूजकी खेती करते थे। यूरोपवालोंका कहना है, कि १०वीं शताब्दीसे पहले चीनदेशमें तरबूज न था। कुछ भी हो, संक्षेपतः उष्णप्रधान देशसे ही इसकी उत्पत्ति है, इसमें सन्देह नहीं।

तरबूजके बीजसे एक प्रकारका पांशुवर्ण और साफ तेल बनता है। यह जलानेके काममें आता है। कहीं कहींके लोग इस तेलसे खानेकी चीज भी बनाते हैं।

शैत्यसम्पादक औषध बनानेके लिए तरबूजके बीजोंका प्रयोग किया जाता है। तरबूजके बीज विक्रयार्थ तैयार रहते हैं तथा इसकी खपत भी काफी होती है। इसके गुण—मूत्रोत्पादक, शीतलकारक और बलकर। बम्बई-विभागमें ही इसका अधिक प्रचलन है। तरबूजका जल पीनेसे तृष्णा और मस्तिष्क-ज्वरमें पचन निवारित होता है। डा० एन्सलीने इसकी व्यवस्था देकर यथेष्ट फल पाया था।

तरबूजके बीज दबे हुए और चपटे होते हैं, पर सबकी आकृति एकसी नहीं होती। बीजोंको सुखा कर रखनेसे उनकी मिगी खाई जा सकती है।

युक्तप्रदेश विशेषतः अयोध्याकी बहुतसी जमीनोंमें तरबूज उत्पन्न होते हैं। बीकानेरमें स्वभावतः बिना बोये बहुत तरबूज पैदा होते हैं। यहाँ तरबूजकी संख्या इतनी ज्यादा है, कि सालमें कई महीने तो यही लोगोंका प्रधान खाद्य हो जाता है। दुर्भिक्ष पड़ने पर लोग तरबूज़से तथा उस जातीय फलके बीजोंसे एक तरहका आटा बना कर जीवन रक्षा करते हैं। युक्तप्रदेशमें जैसा स्वादिष्ट तरबूज होता है, वैसा भारतवर्षमें और कहीं भी नहीं होता। इस तरबूजकी सर्वत्र प्रसिद्धि है। गर्मियोंमें लोग इसका शरबत बना कर पीया करते हैं।

पतली विष्ठा तरबूज़की जमीनमें साररूपमें व्यवहृत होता है।

तरबूजिया (हिं० वि०) जिसका रंग तरबूजके छिलकेके रंगसा हो, गहरा हरा।

तरमाची (हिं० स्त्री०) तरवाची देखो।

तरमाना (सं० पु०) तर-शानच्। वह चीज जिसके द्वारा नदी इत्यादि पार होता हो, नाव इत्यादि।

तरमानी (हिं० स्त्री०) वह तरी जो जोती हुई भूमिमें आती है।

तरमाली—पासी जातिकी एक श्रेणी। पासीके जैसा ये लोग भी ताड़के पेड़से ताड़ी चुआते हैं। ये केवल फैजाबादमें ही पाये जाते हैं जहाँ इनकी संख्य नितान्त कम है।

तरमीम (अ० स्त्री०) संशोधन, दुरुस्ती।

तरब्बुज (सं० क्लो०) तरं तरलं अम्बुवत् जायते यत्र जन बहुलवचनात् ड। तरबूज देखो।

तरल (सं० पु०) तृ-कलच। वृषादिभ्यश्चित्। उण, १।१०८। इति कल प्रत्ययश्चित्। १ हारके बीचका मणि। २ हार। ३ तल, पेंदा। (त्रि०) ४ चंपल चञ्चल, । ५ कामुक, इच्छुक। ६ विस्तीर्ण, फैला हुआ। ७ भास्वर, चमकीला। ८ मध्यशून्यद्रव्य, खोखला, पोला। ९ द्रवीभूत पदार्थ, पानीकी तरह बहनेवाला। (पु०) १० जनपदविशेष, एक देशका नाम। ११ उस देशका रहनेवाला। १२ क्षणभङ्गुर, अनित्य। १३ हीरकरत्न. होरा। १४ लौह, लोहा। १५ घोटक, घोड़ा। १६ मद्य· विशेष, एक प्रकारकी शराब। १७ मधुमक्खी।

तरलता (सं० स्त्री०) तरल भावे तल् स्त्रियां टाप्। १ तरलत्व। २ चञ्चलता।

तरलनयन (सं० पु०) छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें चार नगण होते हैं।

तरलनयनी (सं० स्त्री०) तरलं नयनं यस्याः, बहुव्रो०। १ चञ्चलाक्षि, चंचल आँख। २ छन्दोभेद, एक प्रकारका छन्द।

तरलभाव (सं० पु०) १ पतलापन। २ चञ्चलता· चपलता।

तरललोचन (सं० त्रि०) तरलं लोचनं यस्य, बहुव्रो०। १ चञ्चल नेत्र, जिसकी आँखें चञ्चल हों। (क्लो०) तरलं लोचनं, कर्मधा०। २ चञ्चलनेत्र, चलायमान आँख।

तरललोचना (सं० स्त्री०) तरलं लोचनं यस्याः, बहुव्रो०। चञ्चलनयना स्त्री, वह औरत जिसकी आँखें चञ्चल हों।

तरला (सं० स्त्री०) तरल-टाप्। १ यवागू, जौका माँड़। २ सुरा, मदिरा, शराब। ३ काञ्जिक। ४ मधुमक्षिका, शहदकी मक्खी।

तरला (हिं० पु०) छाजनके नीचेका बाँस।

तरलाई (हिं० स्त्री०) १ चञ्चलता, चपलता। २ द्रवत्व।

तरलित (सं० त्रि०) तरलमस्य सञ्जातं तारकादित्वादितच्, यद्वा तरल इव चरति तरलं करोति तरल·क्विप् णिच्-क्त। कम्पित, काँपता हुआ, थर थराता हुआ। इसके संस्कृत पर्याय—प्रेङ्खोलित, लुलित, प्रेङ्खित, द्रुत चलित, कम्पित, धूत, वेल्लित और आन्दोलित है।

तरवट (सं० क्लो०) वृक्षभेद, एक पेड़का नाम। (Cassia auriculata)

तरवड़ी (हिं० स्त्री०) छोटी तराजूका पलड़ा।

तरवन (हिं० पु०) १ एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है, तरकी। २ कर्णफूल।

तरवर (हिं० पु०) १ बड़ा वृक्ष। २ मध्यभारत और दक्षिण· में होनेवाला एक प्रकारका बड़ा पेड़। इसके छिलकेसे चमड़ा सिझाया जाता है।

तरवाँची (हिं० स्त्री०) जुएके नीचेकी लकड़ी. मचेरी।

तरवाई सिवाई (हिं० स्त्री०) पहाड़ और घाटी, ऊँची जमीन और नीची जमीन।

तरवाना (हिं० क्रि०) १ बैलोंका लँगड़ाना। २ तारनेको प्रेरणा करना।

तरवारि (सं० पु०) तरं समागतविपक्षवलं वारयति वृ·णिच् इन्। खड्गभेद, तलवार। खड्ग देखो।

तरस् (सं० क्लो०) तृ-असुन्। १ बल। २ वेग। ३ तीर तट। ४ वानर। ५ रोग।

तरस (सं० क्लो०) तृ बाहुलकात् असच्। १ मांस। २ दया, करुणा, रहम। (त्रि०) तरस् अस्त्यर्थे अच्। ३ वेगयुक्त, तेज।

तरसत् (सं० पु०·स्त्री०) तरस इव आचरति तरस्·क्विपः शतृ। मृगभेद, एक प्रकारका हिरण।

तरसना (हिं० क्रि०) अभावका दुःख सहना।

तरसान (सं० पु०) तरत्यनेन तृ-आनच् सुट् च। नौका नाव।

तरसाना (हिं० क्रि०) १ अभावका दुःख देना। २ व्यर्थ ललचाना।

तरस्थान (सं० क्लो०) तराय अवतरणाय यत् स्थानं तरस्य स्थानं वा। १ घट्ट, घाट। २ वह स्थान जहां उतराई ली जाती है।

तरस्वत् (सं० त्रि०) तरोबलं वेगो वा अस्त्यस्येति मतुप् मस्य वः। १ शूर, वीर, बहादुर। २ वेगयुक्त, तेज। ३ चतुर्थ मनुके एक पुत्रका नाम।

तरस्विन् (सं० त्रि०) तरो वेगः बलं वास्त्यस्य तरस्

विनि। असु मायामेधास्रजो विनिः। पा ५।२।१२१। १ वेगयुक्त, तेज। २ शूर, वीर, बहादुर। (पु०) ३ गरुड़। ४ वायु।

तरह (अ० स्त्री०) १ प्रकार, भाँति, किस्म। २ रचना-प्रकार, ढाँचा, बनावट। ३ प्रणाली, रीति, तर्ज़। ४ युक्ति, उपाय। ५ अवस्था, हाल, दशा।

तरहटी (हिं० स्त्री०) १ नीची भूमि। २ पहाड़की तराई।

तरहदार (फा० वि०) १ जिसकी बनावट अच्छी हो। २ शौकीन, सजधजवाला।

तरहदारी (फा० स्त्री०) सजधजका ढब।

तरहा (हिं० पु०) १ एक हाथकी माप जो प्रायः कुआँ खोदनेमें आती है। २ एक कपड़ा। इस पर मट्टी फैला कर कड़ा ढालनेका साँचा बनाया जाता है।

तरहुवान—युक्तप्रदेशमें बाँदा जिलेका एक प्राचीन शहर। यह बाँदा नगरसे ४२ मील पूर्वमें पयोष्णी नदीके निकट अवस्थित है। यह शहर धीरे धीरे ध्वंस होता जा रहा है। यहाँ एक दुर्ग है, वह भी ध्वंसावस्थामें पड़ा है। कहा जाता है, कि प्रायः २८० वर्ष पहले पन्नाके राजा वसन्तरायने इस दुर्गका निर्माण किया था। इस दुर्गमें १ मील लम्बा एक सुरङ्ग था। सुरङ्ग हो कर पहले लोग जाते आते थे। अभी यह रास्ता सम्पूर्णरूपसे बंद कर दिया गया है। ६ हिन्दूमन्दिर और ५ मसजिदें शहरमें विद्यमान हैं। राजा वसन्तरायके बाद रहिमखाँने नवाब-की उपाधि तथा तरहुवान राज्य प्राप्त कर यहाँ मुसलमान उपनिवेश स्थापन किया था। पेशवा रघुभाईके पुत्र अमृतराव यहाँ वास करते थे। १८०३ ई०में वृटिशगवर्मेण्टने उन्हें तथा उनके पुत्रको वार्षिक ७०००००) रु० की वृत्ति स्वीकार की और वे तरहुवानमें रहने लगे; यहाँ उन्होंने एक छोटी जागीर भी पाई थी। अमृतराव-के पुत्र विनायकरावकी मृत्यु होने पर वृटिश-गवर्मेण्टने उक्त वृत्ति बंद कर दी। इस पर उनके दो दत्तक पुत्र नारायणराव तथा मधुराव विद्रोही सिपाहियोंके साथ मिल गये। नारायणरावने १८६० ई०को बन्दी अवस्थामें प्राणत्याग किया। मधुरावका दोष क्षमा कर वृटिश-गवर्मेण्टने उन्हें ३०००) रु०की वृत्ति स्वीकार की।

इस शहरमें एक विद्यालय और एक बाजार है। यहाँके पथ, घाट प्रभृतिको परिष्कार रखने तथा पुलिसका खर्च चलानेके लिये एक प्रकारका गृह-कर वसूल किया जाता है।

तरहैल (हिं० वि०) १ अधीन। २ पराजित, जीता हुआ।

तराँव—बुन्देलखण्डमें पोलिटिकल एजेण्टके अधीन एक चौबे जागीर। भूपरिमाण २६ वर्ग मील है। १८१७ ई०में कालिञ्जरके रामकृष्ण चौबेका राज्य ५ भागोंमें विभक्त हुआ जिनमेंसे तराँव उनके चौथे पुत्र गजाधरके लड़के गयाप्रसाद चौबेके हाथ लगा। वर्त्तमान जागीरदारका नाम चौबे ब्रजगोपाल है। यहाँकी लोकसंख्या प्रायः ३१७८ है। इसमें कुल १३ ग्राम लगते हैं। राजस्व १००००) रु०का है।

तराई (हिं० स्त्री०) १ पहाड़के नीचेका वह मैदान जहाँ तरी रहती है, पहाड़के नीचेकी भूमि। २ पहाड़की घाटी। ३ मूँजके मुट्ठे जो छाजनमें खपड़ोंके नीचे दिए जाते हैं।

तराई—१ हिमालय पहाड़के नीचेकी भूमि या उपत्यका। यह सब जगह एकसी नहीं है, किसी जगह १० और किसी जगह ३० मील चौड़ी देखी गई है। यह एक प्रकाण्ड वनभूमि है। अयोध्यासे आसाम तक यह हिमालयके मेखलारूपमें विस्तृत है। इस वन-भागमें शाल और शीशमके वृक्ष बहुत पाये जाते हैं। कोफी और कोसी नदीमें बहा कर उक्त काष्ठ अन्यत्र लाये जाते हैं।

नेपालकी तराईको मोरङ्ग कहते हैं। तराईकी मट्टीमें बालू, कंकड़ और पत्थर मिले रहते हैं। पर्वतके निकटवर्त्ती भूभागमें बड़े बड़े पत्थर देखे गये हैं। सिकिम पर्वतसे २० मील दक्षिण तककी जमीन कंकड़मय है।

इस प्रदेशमें आयुल नामक एक प्रकारका रोग देखा जाता है। वर्षमें ८।१० मास तक यह व्याधि अत्यन्त प्रबल रहती है। इस समय कोई भी तराई-भूमि अतिक्रम नहीं कर सकता है। यह तराई खासी पहाड़के उत्तरमें ब्रह्मपुत्र नदी तक ६० मील विस्तृत है। यहाँ बहुतसे अच्छे अच्छे पेड़ पाये जाते हैं। अप्रेलके अन्तसे नवम्बर तक यदि कोई यूरोपीय इस प्रदेशमें किसी समय निद्रावस्थामें रहे तो वह निश्चय ही मृत्युमुखमें पतित होगा। सितम्बरमासमें तापमानयन्त्रमें पारा ७७°से ८०° और नवम्बरमें ७५°से ७७° पर्यन्त उठता है। नेपाल राज्यके अधीन

तराई-भूमिमें बहुत वृक्ष लगते हैं, जिनसे नेपाल राज्यको यथेष्ट आमदनी होती है। व्यवसायीगण इस प्रदेशसे बहुमूल्य वृक्ष, गजदन्त तथा कई तरहके चमड़े बूढ़ो-गण्डक हो कर कलकत्तेमें लाते हैं। १८१५ ई०में युद्धके बाद नेपालके राजाने कुमायूं और अन्य कई एक पार्वत्य प्रदेशोंके साथ साथ तराईके भी कई एक अंश वृटिश गवर्मेण्टको दिये हैं। नेपाली लोग अयोध्या और बरेलीके उत्तर अंगरेजाधिकृत प्रदेशको लूटते थे। लॉर्ड मिण्टोके नेपाल-दरबारमें यह बात सूचित करने पर भी कोई फल न निकला। लॉर्ड मयराके शासन-कालमें नेपालियोंका अत्याचार और भी बढ़ जानेसे उन्होंने इस विषयका प्रतिविधान करनेकी इच्छा की। उनके आदेशसे भूट्वाल नगर अधिकृत हुआ। उस समय नेपाल दरबारमें दो पक्ष थे। अमरसिंह दूसरे पक्षके युद्धमें शामिल थे, किन्तु दूसरे पक्षने सन्धि करनेकी राय दी। जो कुछ हो नेपाल गवर्मेण्टने अंगरेज गवर्मेण्टके विरुद्ध लड़ाई ठान दी। युद्धमें अंगरेजोंकी जीत हुई। नेपालीगण सन्धि करनेकी चेष्टा करने लगे। बामसाने नेपाल-पक्षसे अंगरेजपक्षीय गार्डनर साहबको खबर दी, कि नेपालदरबार काली नदीका पश्चिम अंश-स्थित भूभाग अंगरेज गवर्मेण्टको देनेमें प्रस्तुत हैं, किन्तु वे तराईप्रदेश छोड़ नहीं सकते, गार्डनरने इसके जवाबमें कहला भेजा, कि बिना तराई-प्रदेशको लिये वृटिश-गवर्मेण्ट सन्धि करनेमें राजी न होगी। इस पर बामसाने कहा, कि पार्वत्यप्रदेशमें केवल तराई ही नेपाल राज्यकी लाभजनक सम्पत्ति है, इसको छोड़ देनेसे पावर्त्य प्रदेशमें उनकी बहुत क्षति होती है। अंगरेज गवर्मेण्ट यदि इस प्रदेशको अधिकारमें लानेकी एकान्त चेष्टा करती, तो नेपालमें पुनः समरानल प्रज्वलित हो उठता। पहले जो लड़ाई हुई थी, उसमें नेपालके सब मनुष्योंने योग न दिया था। किन्तु जब यह मालूम हो जाता कि तराईके लिये लड़ाई होती है, तो नेपालके छोटेसे बड़े सभी व्यक्ति ईर्षा और अन्तर्कलह परित्याग कर अंगरेजोंके विरुद्ध तलवार धारण करनेमें तनिक भी विलम्ब न करते। ऐसा होनेसे फल क्या होता, वह कहा नहीं जा सकता है। वृटिश गवर्मेण्टको भी मालूम हो गया, कि गोरखाली सैन्यसामन्तगण सभी एकस्वरसे तराई छोड़ देनेका प्रतिकूल मत देते हैं। गार्डनर साहबने कहा कि गवर्नर जेनरल इस विषयमें विचार करेंगे। तराई-प्रदेश कुछ काल तक अंगरेजके अधिकारमें था। उस समय उन्होंने देखा, कि इस प्रदेशको जलवायु अत्यन्त अहितकर है पर अधिवासियोंको सम्पूर्ण आयत्ताधीन रखना भी कष्टकर है। इस कारण इस प्रदेशको अधिकारमें लानेकी गवर्नर जेनरलकी वैसी इच्छा न थी। किन्तु विपक्षियोंको भय दिखानेके लिये उन्होंने सैन्य सजानेका आदेश दिया। इधर गोरखालोगण बरगर्गा (मकवानपुर), विजपुर, महोतरी सबोतरी (मोरङ्ग) तथा पर्वतके नीचेकी भूमि छोड़ कर तराईके अवशिष्ट अंश वृटिश गवर्मेण्टको अर्पण करनेमें स्वीकृत हुए। २री दिसम्बरको गजराजमिश्रने अंगरेजपक्षीय कर्नल व्राडसके साथ सन्धि-नियम स्थिर किया। इस सन्धिके अनुसार अंगरेज गवर्मेण्टने काली नदीके पश्चिम भागमें पार्वत्यप्रदेश और मेचीका पूर्वीय प्रदेश पाया। १५ दिनके मध्य नेपाल-राजाको सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ेगा, यह स्थिर किया गया। किन्तु इसी बीच अमरसिंह दूसरे पक्षके दरबारमें प्रधान हो गये, अतः सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर न हुआ। दोनों पक्षमें पुनः नवीन उत्साहके साथ युद्धका आयोजन होने लगा। एक सामान्य लड़ाईके बाद दोनों पक्षने सन्धिपत्र पर स्वाक्षर किया। २री दिसम्बरको गुरु गजराजमिश्रने सन्धिकी जो शर्तें निश्चित की थीं, प्रायः वही शर्तें कायम रही, किन्तु अंगरेज गवर्मेण्टने तराईके जो अंश पाये थे, उनका अधिकांश नेपाल दरबारको लौटा दिया गया। अयोध्याके प्रान्तवर्त्ती तराईका अंश अयोध्याके नवाबको तथा मेची और चिस्ता नदीका मध्यवर्ती छोटा अंश सिकिमके राजाको मिला।

शारदा नदीके समीपवर्त्ती तराईभूमि जङ्गलसे परि पूर्ण है। इस प्रदेशमें आज तक कोई उपयुक्त फस नहीं हुई है। शीतकालमें कई मास इस प्रदेशके प्रान्त में मवेशी इत्यादि घास खाते हैं। किन्तु यहाँ बाघ डर हमेशा बना रहता है। पहरूके रहते भी आ असंख्य गाय भैंस इत्यादिका प्राणनाश कर डालते हैं

दिनके समयमें भी बाघ गृहपालित पशुओं पर आक्रमण करनेमें डरते नहीं। स्थानीय बाघ इतने भयानक होते हैं कि मवेशी चरानेवालेको इन्हें बाधा देनेका साहस नहीं होता। इस प्रदेशमें बहुतसी झील और दलदल हैं, जो तरह तरहकी घासोंसे आच्छादित हैं। जिस दलदलमें घास इत्यादि बहुत तथा घनी रहती है, उस स्थानमें गैंड़ा पाया जाता है।

२ युक्तप्रदेशके नैनीताल जिलेके अन्तर्गत वृटिश गवर्मेण्टके अधीन एक जिला। यह अक्षा० २८° ४५´ और २८° २६´ ३० तथा देशा० ७८° ५´ और ८०° ५´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ७७६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ११८४२२ है। इसमें कुल ४०४ ग्राम लगते हैं। इसके उत्तरमें कुमायूँ जिला पूर्वमें नेपाल और पिलिभित जिला, दक्षिणमें बरेली, मुरादाबाद और रामपुर राज्य तथा पश्चिममें बिजनोर है। जिलेका प्रधान शहर काशीपुर है, किन्तु ग्रीष्मकालमें जिलेके कर्तृपक्षीय यूरोपीय कर्मचारी नैनीतालमें आ कर रहते हैं। वैशाखके अन्तसे कार्तिक मास तक नैनीताल तराईके प्रधान शहरमें परिणत होता है।

तराई जिला हिमालयके नीचे पूर्व और पश्चिमकी ओर प्रायः ९० मील विस्तृत है। इसकी चौड़ाई लगभग १२ मील होगी। कुमायूँके जनशून्य वनप्रदेशमें बहुतसे सोते हैं। इन सोतोंका जल भिन्न भिन्न दिशाओंसे एकत्र हो कर नदीके रूपमें तराई जिलेके सब स्थानोंमें प्रवाहित होता है। इस जिलेके दक्षिण-पूर्व कोणमें प्रति मीलमें १२ फुट ढालू है। उक्त नदियोंका किनारा असमान है तथा नदीगर्भस्थ स्तर भी कीचड़मय है। तृणमय प्रान्तरके ऊपर हो कर ये नदियाँ बहती हैं। निम्नस्थ पहाड़प्रदेशसे जो नदियाँ निकली हैं, उनमेंसे सनिह नदी शारदा नदीके साथ मिलती है। इस जिलेकी देवहा नदी ही सबसे बड़ी है। पिलिभितके निकटवर्त्ती स्थानको छोड़ कर इस नदीमें नाव आती जाती हैं। सुखी नदी वर्षाकालके बाद ही सूख जाती है। किचहा नदीका ज्वार बहुत प्रबल है। कोसी नदी काशीपुर परगनेमें बहती है। किचहा और कोसी नदीके उत्पत्तिस्थानमें पह, भकरा, भौर और दबका नदी भिन्न भिन्न दिशाओंमें चली गई हैं। सब नदियाँ अन्तको रामगङ्गामें गिरी हैं।

हाथी, बाघ, भालू, चिताबाघ, सूअर, तरह तरहके हरिण इत्यादि जङ्गली जन्तु इस जिलेमें बहुत देखे जाते हैं।

बहुत प्राचीन कालसे तराई जिला नेपालराज्यके पार्वत्यप्रदेशके अधीन था। रोहिलाओंने कई बार अधिवासियोंको अत्यन्त कष्ट दिया था। सम्राट् अकबरके राजत्वकालमें इस प्रदेशकी आय ९ लाख रुपयेकी थी और यह ८४ कोस तक विस्तृत समझा जाता था। इसीसे तराईको उस समय नौलखिया और चौरासी मील कहते थे। १७४४ ई०में इसका कर ४ लाख तथा रोहिलाओंके समयमें २ लाख रुपयेमें परिणत हुआ था। जब बरबाइक और मेवातीगण चौथ वसूल करने लगे, तब यह स्थान डकैतों तथा भगोड़ोंका आश्रयस्थान हो गया। अन्तर्कलहसे पार्वत्य राज्यकी अवनति होने पर काशीपुरके शासनकर्त्ता सुअवसर देख कर विद्रोही हो गये और अन्तमें उन्होंने अयोध्याके नवाबको तराईप्रदेश समर्पण किया। १८०२ ई०में रोहिलखण्ड अंगरेजोंके हाथ लगा, तब नन्दरामके भतीजा शिवलाल इस राज्यके इजारदार (ठेकेदार) थे। तराईका आम्रकुञ्ज, कूप इत्यादि देखनेसे मालूम पड़ता है, कि यह प्रदेश एक समय समुन्नत था। वृटिश गवर्मेण्टके अधीनमें इस प्रदेशकी अधिक उन्नति हुई है। पहले पहल गवर्मेण्टने इस प्रदेशके प्रति विशेष ध्यान न दिया था। १८५१ ई०से तराई प्रदेशमें बाँध और जल सींचनेका अच्छा प्रबन्ध कर दिया गया है। १८६१ ई०में तराई जिलेकी सृष्टि हुई है तथा १८७० ई०में कुमायूँ विभागके अन्तर्भुक्त हो जानेसे इसने आश्चर्य उत्कर्ष लाभ किया है।

थारू और भूक्सा लोग इस प्रदेशमें सर्वदा वास करते हैं। दूसरे दूसरे अधिवासी कभी कभी तराई छोड़ कर अन्यत्र चले जाते हैं। थारू और भूक्सा अपनेको राजपूत वंशोद्भव बतलाते हैं। यहाँ एक प्रकारका संक्रामक रोग होता है। इस रोगसे आक्रान्त होने पर मरनेका डर सदैव बना रहता है। किन्तु यह संक्रामक रोग थारू और भूक्साका कोई अनिष्ट कर नहीं सकता है। इन

लोगोंका कहना है, कि लगातार सूअर और हरिनका मांस खानेके कारण वे इस रोगसे उद्धार पाते हैं। ज्वर और अन्त्ररोगसे भी यहाँ बहुत लोग मरते हैं। आबादी अधिक होनेके कारण यहाँके अधिवासियोंकी संख्या बहुत बढ़ गई है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन प्रभृति धर्मावलम्बी मनुष्य इस प्रदेशमें वास करते हैं। ब्राह्मण, कायस्थ, राजपूत, बनिया, गोसाईं, चमार, कुर्मी, कहार, माली, लोध गड़ेरी, लोहार, अहीर, भङ्गी, नाई, जाट और धोबी इत्यादिकी संख्या अधिक है।

इस जिलेमें काशीपुर और यशपुर नामके दो प्रधान शहर लगते हैं। इन्हीं दो स्थानोंमें लोकसंख्या सब जगहसे ज्यादे हैं।

इस जिलेकी जमीन बहुत उर्वरा है। थोड़े परिश्रमसे ही अच्छी फसल उपजती है। इस स्थानका प्रधान अन्न धान है। जौ, गेहूं, बाजरा, जुन्हरी, उरद, सरसों, तीसी, ईख, रूई, तमाकू, तरबूज, अदरक, हलदी, मिर्च, पटसन इत्यादि उत्पन्न होते हैं। इस प्रदेशकी भूमि और वायु आर्द्र है, सुतरां, अनावृष्टिके कारण उत्पन्न द्रव्योंकी विशेष क्षति नहीं होती है। किन्तु १८६८ ई०के दुर्भिक्षसे तराई जिलेके किसी किसी ग्रामवासियोंको अत्यन्त कष्ट भोगना पड़ा था।

रोहिलखण्डके जमींदारों तथा बञ्जारोंके अनेक पशु तराईप्रान्तरमें विचरण करते हैं।

शारदा नदीसे ले कर पूर्व और पश्चिमकी ओर एक रास्ता है, जो परगनेके चारों ओर गया है। राजपुर परगना हो कर मुरादाबाद और नैनीतालका रास्ता २१ मील विस्तृत है। बरेली और नैनीतालका रास्ता १३ मील लम्बा है। मुरादाबाद और रानीखेटका रास्ता रामनगर तक चला गया है। रोहिलखण्ड और कुमायूं रेलपथ तराई जिलेके मध्य बरेली, नैनीताल रास्ताके साथ समान्तर भावमें अवस्थित है।

तराई जिलेमें एक सुपरिण्टेण्डेण्ट, उनके सहकारी और रुद्रपुरके तहसीलदार दीवानी विचार करते हैं। इन लोगोंका फौजदारी विचार करनेका भी अधिकार है। कुमायूँके कमिश्नरके निकट इनके विचारकी अपील हो सकती है। राजपुर, गदारपुर और रुद्रपुरमें एक देशीय विशिष्ट मजिष्ट्रेट रहते हैं। यह जिला काशीपुर, राजपुर, गदारपुर, रुद्रपुर, किलपुरी, नानकमाता और बिलहरी नामक परगनोंमें विभक्त है। काशीपुर और नानकमाता छोड़ कर और किसी परगनेकी जमीनमें मालिकान स्वत्व नहीं है। गवर्मेण्ट ही सभी जमीनके अधिकारी हैं। इस जिलेमें पशु चुरानेका मुकदमा ही अधिक चलता है। पहले मेवाती, गुर्जर और अहीरगण इस काममें अत्यन्त लिप्त थे। इस जिलेमें ७ पुलिस ष्टेशन और बहुतसे विद्यालय हैं। इस जिलेकी अनेक स्त्रियाँ पढ़ी लिखी हैं।

२ दार्जिलिङ्ग जिलेका एक उपविभाग। क्षेत्रफल २७१ वर्गमील है। इसमें ७३७ ग्राम लगते हैं, जिनमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध प्रभृति वास करते हैं। इस विभागका प्रधान शहर शिलिगुड़ी है। यह स्थान हिमालय पहाड़के नीचे अवस्थित है। शिलिगुड़ीमें उत्तरबङ्ग ष्टेट रेलवे और दार्जिलिङ्ग हिमालय-रेलवेकी अन्तिम सीमा है। इस विभागमें ४३ चायके बगीचे हैं।

जब यह प्रदेश वृटिश साम्राज्यभुक्त हुआ, तब उन्होंने इस प्रदेशका उत्तरांश दार्जिलिङ्ग और दक्षिणांश पुर्नियाकी कलेक्टरीभुक्त करनेकी इच्छा की, किन्तु दक्षिण प्रदेशवासीने पुर्निया कलक्टरीके अधीन होनेमें असन्तोष दिखलाया, बाद समस्त तराई विभाग दार्जिलिङ्गके अधीन कर दिया गया। लेकिन इसके पहले पुर्नियाके कलक्टरने तराईके निम्नस्थानवासी राजवंशी और मुसलमानोंके साथ तीन वर्षके लिये जमीनका कर निर्द्धारण किया था। पहले तराईसे निम्नलिखित प्रकारका राजस्व वसूल किया जाता था, (१) मेच और धिमालोंसे दा-कर, (२) निम्नतराईके बङ्गाली अधिवासियोंसे जमीनका कर, (३) तराईके निकटवर्ती बङ्गदेशके भूभागसे आगत गृहपालित पशुके विचरणके लिये पशुपालकोंसे शुल्क, (४) वनमें उत्पन्नद्रव्योंकी आय, (५) बाजारका शुल्क, (६) अर्थदण्ड, (७) गायकोंके ऊपर एक प्रकारका कर, (८) आबकारी आय। पहले दो प्रकारके करको चौधरी वसूल करते थे। इन्हें फौजदारी और दीवानी विचारका भी अधिकार था।

तराई प्रदेशमें ५४४ जोतें थीं और प्रायः १८५०२

रुपये राजस्वमें वसूल होते थे। प्रति वर्षके अन्तमें जोतदार लोग चौधरीसे अपनी जोतका अधिकार स्वत्व पाते थे। किन्तु प्रकृतपक्षमें जोतदारोंका एक प्रकारका पुरुषानुक्रमिक स्वत्व था।

ब्रिटिश गवर्मेण्टके प्रथम शासनकालमें चौधरीके हाथसे दीवानी और फौजदारीका अधिकार ले लिया गया, और बोर्ड ऑफ रेभिन्यूसे ऐसा कहा गया कि वे सैकड़े १०) रु० कमीशन या दस्तूरी पावेंगे।

१८५० ई०में तराईका आबादी अंश १० वर्षके लिये पुनः बन्दोबस्त किया गया। यह बदोबस्त केवल जोतदारोंके साथ था। अङ्गरेज गवर्मेण्टने ५८५ जोतके ऊपर २०७३८) रु० कर स्थिर किया। कर निर्द्धारित होनेके समय गवर्मेण्टने जमीनकी बिना नापे अंदाजन कर अदा करनेकी आज्ञा दी।

तराजू (फा० स्त्री०) तौलनेका यन्त्र, तुला, तखरी।

तराण—मध्यभारतके इन्दौर राज्यके अन्तर्गत मेहदीपुर जिलेके एक परगनेका सदर। यह अक्षा० २३° २० उ० और देशा० ७६° ५' पू०के मध्य तथा इन्दौर शहरसे ४४ मील और उज्जैन भूपालरेलवेके तराण स्टेशनसे ८ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ४४९० है। अकबरके समयमें यह मालवाके सूबा सारङ्गपुर सरकारके महालका सदर था और नौगाँव नामसे पुकारा जाता था। पीछे इसका नाम बदल कर नौगाम तराण हो गया। आस पासके बड़े बड़े सुन्दर वृक्ष तथा अनेक भग्नस्तूप देखनेसे मालूम पड़ता है, कि एक समय यह स्थान उन्नत दशामें था। अभी प्राचीन कीर्त्तियोंमेंसे केवल मुसलमानी किलेका भग्नांश रह गया है। यह शहर १८वीं शताब्दीमें होलकरके अधीन था। अहल्याबाईका बनाया हुआ यहाँ एक तिलभाण्डारेश्वरका मन्दिर है। कहते हैं कि शहरके आस पास जो सुन्दर पेड़ देखे जाते हैं वे बाईजीके ही लगाये हुए हैं। अहल्याबाईने अपनी लड़की मुक्ताबाईको फान्सेवंशके यशवन्तरावके साथ व्याहा था और यौतुकमें उन्हें तराण शहर दे दिया। १८४९ ई० तक यह शहर उन्हींके वंशधरोंके अधिकारमें रहा। पीछे राजा भाव फान्सेका चरित्र दूषित हो जानेके कारण तराणा उनसे छीन लिया गया। १९०२ ई०में यहाँ म्युनिसपालिटी स्थापित हुई है। यहाँ स्टेटका डाकघर, एक पुलिस स्टेशन, एक स्कूल और एक औषधालय है।

तराना (फा० पु०) १ एक प्रकारका गाना। इसका बोल इस प्रकारका होता है—दिर दिर ता दि आ ना रे ते टो म् ता ना ना दे रे ता दा रे दा नि ता ना ना दे र ना ता ना ना दे रे ना ता ना ना ता ना तोम् दे र ता रे दानी। तराना प्रत्येक रागका हो सकता है। इसमें कभी कभी सरगम और तबलेके बोल भी मिला दिये जाते हैं। २ बढ़ियाँ गीत।

तरानाम्बु (सं० पु०) तराय तरणाय अम्बुरिव, अतिगम्भीरत्वात्। नौकाविशेष, एक प्रकारकी नाव। इसके पर्याय होड़, वहन, बार्वट और वहित्र हैं।

तरापा (हिं० पु०) जलमें तैरती हुई शहतीर, बेड़ा।

तराबोर (फा० वि०) आर्द्र, खूब भींगा हुआ।

तरमल (हिं० पु०) १ छाजनमें खपरैलके नीचे दिये जानेके मूँजके मुठे। २ जुएके नीचेकी लकड़ी।

तरामीरा (हिं० पु०) उत्तरीय भारतमें होनेवाला सरसोंकी तरहका एक पौधा। इसके बीज जाड़ेकी फसलके साथ बोए जाते हैं और उनसे एक प्रकारका तेल निकलता है। मवेशी इसके पत्ते बड़े चावसे खाते हैं।

तरारा (हिं० पु०) १ उछाल, छलांग। २ किसी वस्तु पर लगातार गिरनेकी पानीकी धार।

तरालु (सं० पु०) तराय तरणाय अलति पर्याप्नोति अल-उण्। नौकाविशेष, एक प्रकारकी नाव।

तरावट (फा० स्त्री०) १ गीलापन, नमी। २ शीतलता, ठण्डक। ३ वह आहार जिससे शरीरकी गरमी शान्त होती है। ४ स्निग्धभोजन।

तराश (फा० स्त्री०) काटनेका तरीका, काट। २ बनावट, रचना प्रकार।

तराशखराश (फा० स्त्री०) बनावट, काट छाँट।

तराशना (फा० क्रि०) कतरना, काटना।

तरिंदा (हिं० पु०) समुद्रमें किसी स्थान पर लङ्गरके द्वारा बाँधे जानेका एक पीपा।

तरि (सं० स्त्री०) तरत्यनया तॄ-इ। अच् इः। उण् ४।१३८। १ नौका, नाव। २ वस्त्रादिपिटक, कपड़ोंका पेटारा। ३ कपड़ेका छोर, दामन।

तरिक (सं० पु०) तराय तरणाय हितः तॄ-ठन्। १ प्लव, बेड़ा। तरे तरणार्थं देयशुल्कग्रहणे अधिकृत इति-ठन्। २ नावको उतराई लेनेवाला। ३ मल्लाह, केवट, माँझी।

तरिका (सं० स्त्री०) तरिक-टाप्। नौका, नाव।

तरिकिन् (सं० पु०) तरिक-इनि। नाविक, माँझी।

तरिकेरी—१ महिसुर राज्यके कदूर जिलेका उत्तरीय तालुक। यह अक्षा० १३° ३०′ और १३° ५४′ उ० तथा देशा० ७५° ३५′ और ७६° ८′ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७८४७२ और क्षेत्रफल ४६८ वर्गमील है। इसमें २ शहर और २३६ ग्राम लगते हैं। तालुकके दक्षिण-पश्चिममें बाबाबुदन पहाड़ और उत्तरमें उबरानी पहाड़ है। आजमपुरके समीप सोनेका कारखाना है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १३° ४३′ उ० और देशा० ७५° ४९′ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १०१६४ है। इसके उत्तर-पूर्वमें काटूर नामका एक स्थान है, वहीं प्राचीन शहर था और जो १२वीं शताब्दीमें हयशालसे स्थापित हुआ था। १४वीं शताब्दीमें विजयनगरके राजाने इसे हस्तगत कर अपने एक प्रधानके हाथ सौंप दिया। पीछे उनके परिवारसे भी बिजापुरके सुलतानने छीन लिया। अन्तमें मुगलोंने इस पर अपना पूरा अधिकार जमा कर इसे बासवपत्तनके सरदारोंको अर्पण कर दिया, जिन्होंने १६५९ ई०में तरिकेरीका दुर्ग और शहर स्थापित किया। १७६१ ई०में यह हैदरअलीके अधिकारमें था। रेलके हो जानेसे पहलेसे आजकल इसकी अवस्था बहुत कुछ सुधर गई है। १८७० ई०में यहाँ म्युनिसपालिटी स्थापित हुई। शहरकी आय लगभग ८८००) रु०की है।

तरिणी (सं० स्त्री०) तरस्तरणं कृत्यत्वेनास्त्यस्याः इति इनि ङीप् च। नौका, नाव।

तरित (सं० त्रि०) उत्तीर्ण, पार किया हुआ।

तरिता (सं० स्त्री०) तरस्तरणं कृत्यत्वेनास्त्यस्याः तारकादित्वात् इतच्-टाप्। १ तर्जनी उँगली। २ गञ्जन, गाँजा। ३ रसोन, लशुन।

तरित्र (सं० क्ली०) तरत्यनेन तॄ-इत्र। तरणसाधन नौकादि, पार होने योग्य नाव इत्यादि।

तरिया—दिनाजपुर जिलेमें बड़गाँव परगनाके मध्य एक प्रसिद्ध ग्राम।

तरिरथ (सं० पु०) तरेः रथइव परिचालनात्। अरित्र, बल्ला जिससे नाव खेते हैं, डाँड़।

तरिवन (हिं० पु०) १ एक प्रकारका गहना जिसे स्त्रियाँ कानमें पहनती हैं, तरकी। २ कर्णफूल।

तरी (सं० स्त्री०) तरत्यनया तॄ-ई। अवितॄस्तृ-तन्त्रिभ्य ईः। उण् ३।१५८। १ नौका, नाव। २ गदा। ३ वस्त्रपेटक, कपड़ा रखनेका पिटारा, पेटी। ४ धूम, धुआँ। ५ द्रोणी, डोंगी। ६ कपड़ेका छोर, दामन।

तरी (फा० स्त्री०) १ आर्द्रता, गीलापन। २ शीतलता, ठंढक। ३ नीची भूमि जहाँ बरसातका पानी बहुत दिनों तक जमा रहता है, कछार। ४ तराई, तरहटी।

तरीक़ा (अ० पु०) १ रीति, प्रकार, ढब। २ चाल, व्यवहार। ३ युक्ति, उपाय।

तरीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन तरीता ईयसुन्-तृणो लोपः। अतिशय तारक, बहुत तारनेवाला।

तरीष (सं० पु०) तॄ-ईषण्। कॄतॄभ्यामीषण्। उण् ३।१५८। १ शुष्क गोमय, सूखा गोबर। २ नौका, नाव। ३ पानीमें बहनेवाला तख्ता, बेड़ा। ४ व्यवसाय। ५ समुद्र। ६ समर्थ। ७ स्वर्ग।

तरीषन् (सं० पु०) तॄ-छन्दसि ईष नकारस्य नेत्वं। तरण, पार होनेकी क्रिया।

तरीषी (सं० स्त्री०) तरीष संज्ञायां ङीष्। इन्द्रकी कन्या।

तरु (सं० पु०) तरति समुद्रादिकमनेनेति तॄ-उ। भृमृशीतॄचरीति। उण् १।७१। वृक्ष, गाछ, पेड़। (त्रि०) २ तारक, उद्धार करनेवाला। (पु०) ३ एक प्रकारका चीड़। इसके पेड़ खासिया पहाड़ों, चटगाँव और बरमामें पाये जाते हैं। इसका गोंद सबसे अच्छा होता है। तारपीनका तेल भी इससे बहुत अच्छा निकलता है।

तरुआ (हिं० पु०) उबाले हुए धानका चावल।

तरुकूणि (सं० पु०) तरौ वृक्षे कूणयति कूण-इन्। पक्षि विशेष, एक प्रकारकी चिड़िया।

तरुक्ष (सं० त्रि०) तॄ-बाहुलकात् उक्षन्। १ याग और

घोड़े इत्यादिको रक्षा करनेवाला। २ जो गाय घोड़े आदिको पालनेमें नियुक्त हो।

तरुखण्ड (सं॰ पु॰) तरूणां समूहः। भिक्षादिभ्योऽण्। पा ४।२।३८। इति सूत्रस्य काशिकायां वृक्षादिभ्यः खण्डः। वृक्षसमूह, बहुतसे पेड़ोंकी संख्या।

तरुज (सं॰ त्रि॰) तरु-जन-ड। १ वृक्षज, जो पेड़से उत्पन्न हो। (पु॰) २ श्वेतखदिर, सफेद कत्था।

तरुजीवन (सं॰ क्ली॰) तरोर्जीवनं, ६-तत्। वृक्षमूल, पेड़की जड़।

तरुण (सं॰ क्ली॰) तृ-उनन्। ओरश्च लो वा। उण् ३।५४। १ कुब्जपुष्प, कूजाका फूल, मोतिया। २ स्थूलजीरक, बड़ा जीरा। ३ एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़। (त्रि॰) ४ युवा, जवान। ५ नूतन, नया।

तरुणक (सं॰ पु॰) तरुण-कन्। १ तरुण। २ तरुण दधि, पाँच दिनका दही।

तरुणज्वर (सं॰ पु॰) तरुणश्चासौ ज्वरश्चेति, कर्मधा॰। नवज्वर, वह ज्वर जो सात दिनका हो गया हो।

तरुणतरणि (सं॰ पु॰) तरुणसूर्य देखो।

तरुणदधि (सं॰ क्ली॰) तरुणं तरुणलक्षणोक्तं दधिः, कर्मधा॰। पाँच दिनका दही। यह दही बहुत अहितकर है। दही पाँच दिनसे अधिकका हो जानेसे वह तरुणदधि कहलाता है।

तरुणदारु (सं॰ पु॰) वृद्धदारकवृक्ष, विधारका पेड़।

तरुणपीतिका (सं॰ स्त्री॰) मनःशिला, मैनसिल।

तरुणप्रभसूरि—ये चन्द्र लोद्भव जिनकुशलके शिष्य थे। इन्होंने जिनकुशलसेही दीक्षा और आचार्यपद प्राप्त किया था। जिनपद्म और जिनलब्धिने इनसे सूरिमन्त्र पाया था। इन्होंने १४११ सम्वत्में श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रविवरण नामक पुस्तककी रचना की थी।

तरुणसूर्य (सं॰ पु॰) दोपहरका सूर्य।

तरुणाभास (सं॰ पु॰) कर्कटी, ककड़ी।

तरुणास्थि (सं॰ स्त्री॰) पतली लचीली हड्डी।

तरुणी (सं॰ स्त्री॰) तरुणः गौरादित्वात् ङीष्। १ युवती स्त्री, जवान औरत। १६ वर्षसे लेकर ३२ वर्ष तककी स्त्रीको तरुणी कहते हैं।

तरुणी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे शक्तिका ह्रास होता है। इसके पर्याय—युवती, तलुनी, युवति, यूनी, दिक्करी धनिका और धनीका है। २ घृतकुमारी, घीकुआर, ग्वारपाठा। ३ दन्तीवृक्ष, जमालगोटा। ४ चीड़ा नामक गन्धद्रव्य। ५ पुष्पविशेष, कूजाका फूल, मोतिया। इसके पर्याय—सेवती, महा, कुमारी, गन्धाढ्या, चारुकेशरा, भृङ्गेष्टा, रामतरुणी, सुदला, बहुपत्रिका और भृङ्गवल्लभा है। गुण—शिशिर, स्निग्ध, पित्त, दाह, ज्वरमुखपाक, तृष्णा और विच्छर्दिनाशक तथा मधुर है। इसके एक फूलसे पूजा करनेमें उतना ही फल होता है जितना कि एक हजार अशोकके फूलसे होता है। ६ स्थूलकृष्णजीरक, एक प्रकारका बड़ा काला जीरा। ७ मेघरागकी एक रागिणी।

तरुणीकटाक्षमाल (सं॰ पु॰) तरुणीनां कटाक्षाणां माला यत्र, बहुव्री॰। तिलकपुष्प वृक्ष।

तरुतुलिका (सं॰ स्त्री॰) तरुस्थिता तुलिका चित्रशलाका इव वा तरौ वृक्षे तोलयति दोलयति वा तुल-ण्वुल् टापि अत इत्वं पृषो॰ साधुः। चमगादर।

तरुतूलिका (सं॰ स्त्री॰) तरुतुलिका देखो।

तरुतृ (सं॰ त्रि॰) तॄ-तृच्। ग्रसितस्कभितततरुतृतरूतृवरुत्रिति। पा ७।२।३४। इति सूत्रेण निपातनात् सिद्धं। तारक, उद्धार करनेवाला।

तरुत्र (सं॰ त्रि॰) तॄ-बाहु॰ उत्र। तारक, तारनेवाले।

तरुदूलिका—तरुतूलिका देखो।

तरुनख (सं॰ पु॰) तरोर्नख इव। कण्टक, काँटा।

तरुनापा (हिं॰ पु॰) युवावस्था, जवानी।

तरुपङ्क्ति (सं॰ स्त्री॰) तरूणां पङ्क्ति, ६-तत्। वृक्षश्रेणी, पेड़ोंकी कतार।

तरुभूज (सं॰ पु॰) तरुं भुङ्क्ते भुज-क्विप्। बन्दाक, बांदा। वृक्ष पर जन्मनेसे यह उसको शीघ्र ही नष्ट कर डालता है।

तरुमालिनी (सं॰ स्त्री॰) भूम्यामलकी, भुइँआँवला।

तरुमूल (सं॰ क्ली॰) तरूणां-मूलं, ६-तत्। वृक्षमूल, पेड़की जड़।

तरुमृग (सं॰ पु॰ स्त्री॰) तरौ तिष्ठन् मृग इव, मध्यपदलो॰। शाखामृग, वानर।

तरुराग (सं॰ क्ली॰) तरूणां रागो रक्तिमाभा यस्मात्, बहुव्री॰। किशलय, नया कोमल पत्ता।

तरुराज (सं० पु०) तरूणां राजा, ६-तत् अत्युच्चत्वात् समासे टच्। १ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। २ पारिजात-पुष्पवृक्ष, कल्पवृक्ष। यह वृक्ष नरलोकमें पूजित होता है और देवलोकमें पाया जाता है। (त्रि०) ३ तरुश्रेष्ठ-मात्र, वृक्षोंमें सबसे बड़ा।

तरुरुहा (सं० स्त्री०) तरौ रोहति रुह-क-टाप्। १ बन्दाक, बाँदा। (त्रि०) २ वृक्षरोहिमात्र।

तरुरोहिणी (सं० स्त्री०) बन्दाक, बाँदा।

तरुवल्ली (सं० स्त्री०) तरुषु वल्लीव। जतुकालता, पनड़ी।

तरुवा—मध्यप्रदेशके चाँदा जिलेका एक ह्रद। सेगाँवसे १४ मील पूर्वमें चिमूर पहाड़से यह ह्रद निकला है। इसकी गहराई बहुत है।

अनेक पुत्राभिलाषिणी स्त्रियाँ इस ह्रदके निकट आ कर अर्चनादि करती हैं। पीड़ित मनुष्य भी आरोग्यता लाभ करनेकी आशासे यहाँ आते हैं।

मध्यप्रदेशीय लोगोंका विश्वास है, कि देवताओंकी इच्छासे यह ह्रद उत्पन्न हुआ है।

इस ह्रदके एक ओर एक कृत्रिम बाँध है—

प्रवाद है, कि बहुत वर्ष पहले गोली लोग वर और कन्याको ले कर बहुत समारोहके साथ चिमूर पहाड़ हो कर जा रहे थे। राहमें उनमेंसे बहुतोंको प्यास लगी, किन्तु जल कहीं न मिला। हठात् एक अस्सी वर्षसे अधिक उम्रवाला वृद्ध मनुष्य उन लोगोंके सामने आ पहुंचा। उनके जलकष्टका विवरण सुनाने पर बूढ़ेने जवाब दिया, कि वर और कन्याके जमीन खोदने पर एक झरनेकी उत्पत्ति होगी और उसी झरनेके जलसे वे अपनी प्यास निवृत्त कर सकते हैं। वृद्धके उपदेशानुसार वर और वधूने ज्यों ही जमीन खोदी, त्यों ही एक सोता निकल कर ह्रद (झील)-के रूपमें परिणत हो गया। इस ह्रदके किनारे एक ताड़का पेड़ उत्पन्न हुआ। वह पेड़ प्रति दिन दिनके समय ऊपर उठता, किन्तु सन्ध्याके समय मट्टीके नीचे चला जाता था। एक दिन बहुत सबेरे कोई यात्री उस पेड़ पर बैठा था। वह हठात् वृक्षके साथ आकाशको चला गया और वहाँ सूर्य-किरणसे दग्ध हो गया, तथा वृक्ष भी उसी समय चूर चूर हो धूलमें मिल गया। वृक्षके बदले उस स्थान पर ह्रदकी अधिष्ठात्री देवी तारोवा देवीकी प्रतिमूर्त्ति देखी गई। दूसरा प्रवाद यह भी है, कि पहले यात्री लोग कार्यके अन्तमें अपनी नाव ह्रदमें रख कर जाते थे। कालक्रमसे कोई दुष्ट मनुष्य नावको उस जगह न रख कर अपने साथ ले गया। किन्तु वह नाव उसी समय अदृश्य हो गई। उसी दिनसे नाव उस ह्रदमें नहीं मिली।

इस ह्रदमें ढोलकी नाईं शब्द सुना जाता है। वृद्ध मनुष्योंका कहना है कि ज्वार भाटाके समय ह्रदमें स्वर्ण-चूड़शोभित एक मन्दिर देखा जाता है।

तरुविटप (सं० पु०) तरूणां विटपः, ६-तत्। वृक्षशाखा, पेड़की डाली।

तरुविलासिनी (सं० स्त्री०) तरौविलासिनीव। नव-मल्लिका, चमेली।

तरुश (सं० त्रि०) तरुः अस्त्यत्र तरु-श। तरुयुक्त, वृक्षसे घिरा हुआ।

तरुशायी (सं० त्रि०) तरौ तरुकोटरे शाखायां वा शेते शी णिनि। १ पक्षी, चिड़िया।

तरुष् (सं० क्ली०) तरुष्यति हिनस्त्यत्र तरुष आधारे क्विप्। युद्ध, लड़ाई।

तरुष (सं० त्रि०) तृ-उषन्। तारक, उद्धार करनेवाला।

तरुषण्डा (सं० पु०) वृक्षश्रेणी, वृक्षकी कतार।

तरुस् (सं० त्रि०) तृ-उसि। तारक।

तरुसार (सं० पु०) तरोः सारः, ६-तत्। १ कर्पूर, कपूर। २ वृक्षका सार, गोंद।

तरुस्थ (सं० त्रि०) तरौ तिष्ठति तरु-स्था-क। वृक्षस्थित, जो पेड़ पर टिका हो।

तरुस्था (सं० स्त्री०) तरुस्थ-टाप्। बन्दाक, बाँदा।

तरूट (सं० पु०) तरोः उट इव। पद्ममूल, कमलकी जड़, मुरार, भसींड़।

तरूणक—तरुणक देखो।

तरूषस् (सं० त्रि०) तृ-उषस्। १ तरणकुशल, जो पानीमें तैरना जानता हो। २ आपदुद्धारक, जो विपत्तिसे बचाता हो।

तरेंदा (हिं० पु०) १ पानीमें तैरता हुआ काठ, बेड़ा। २ तैरनेवाली वस्तु।

तरेटी (हिं० स्त्री०) वह जमीन जो पहाड़के नीचे रहती है। तराई, घाटी।

तरेड़ा (हिं० पु०) तरेरा देखो।

तरेरना (हिं० क्रि०) दृष्टि कुपित करना, आँखके इशारे-से असन्तोष जाहिर करना।

तरैनी (हिं० स्त्री०) हरिस और हलको एकमें सटाये रखनेका पत्थर।

तरैला (हिं० पु०) किसी स्त्रीका वह पुत्र जो उसके दूसरे पतिसे जन्मा हो।

तरैली (हिं० स्त्री०) तरैनी देखो।

तरोंच (हिं० स्त्री०) १ कंधीके नीचेकी लकड़ी। २ तरौंछी देखो।

तरोंड़ा (हिं० पु०) फसलका वह परिमित अन्न जो हल-वाहे आदि मजदूरोंको देनेके लिये निकाल दिया जाता है।

तरोई (हिं० स्त्री०) तुरई देखो।

तरोता (हिं० पु०) मध्यभारत और दक्षिण भारतमें होनेवाला एक प्रकारका लम्बा पेड़। इसके छिलके चमड़ा सिझानेके काममें आता है।, इसका दूसरा नाम तरवर है।

तरोली - मथुरा जिलेके अन्तर्गत छाता तहसीलका एक छोटा ग्राम। यह अक्षा० २७' ४०' ४६" उ० और देशा० ७७' ३७' ४५" पू०में अवस्थित है। कृषिकार्यके लिये यह ग्राम उल्लेखयोग्य है। इस स्थानका राधागोविन्द-देवका मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है। प्रति वर्ष कार्त्तिक मासमें त्रयोदशीसे पूर्णिमा पर्यन्त उक्त मन्दिरके निकट एक मेला लगता है।

तरौंछी (हिं० स्त्री०) १ हत्थेमें नीचेकी ओर लगी हुई लकड़ी। २ बैल गाड़ीमें सुजावाके नीचे लगी हुई एक लकड़ी।

तरौंटा (हिं० पु०) चक्कीके नीचेका पत्थर।

तरौंता (हिं० पु०) छाजनमें ठाटके नीचे दिये जानेकी लकड़ी।

तरौच – सिमला पहाड़के अन्तर्गत और पञ्जाब गवर्मेण्टके अधीन एक देशीय राज्य। यह अक्षा० ३०' ५५' और ३१' ३' उ० तथा देशा० ७७' ३७' और ७७' ५१' पू०में अवस्थित है। इस राज्यका क्षेत्रफल ६७ वर्गमील है। थोड़े मुसलमान छोड़ कर इस प्रदेशके सभी अधिवासी हिन्दू हैं। तरौच पहले सरमौके राज्यके अन्तर्गत था। अंगरेजोंके हाथ आनेके समय ठाकुर करमसिंह तरौचके शासनकर्त्ता थे। किन्तु वार्द्धक्यप्रयुक्त वे कोई कार्य नहीं कर सकते थे। उनके भाई झीवू समस्त राजकार्य चलाते थे। १८१९ ई०में करमसिंहकी मृत्युके बाद झीवूको एक सनद मिली, जिससे उनके तथा उनके उत्तराधिकारीके हाथ तरौच राज्यका शासनभार अर्पण किया गया। १८८५ ई०में ठाकुर केदारसिंह तरौचके राजा थे। केदार-सिंहके मृत्युके बाद ठाकुर शम्भूसिंह राजा हुए।

इस राज्यकी आय प्रायः ६०००) रु० है। राजाको ८० सैन्य रखनेका अधिकार है।

तरौना (हिं० पु०) १ एक प्रकारका गहना जिसे स्त्रियाँ कानमें पहनती हैं, तरकी। २ कर्णफूल नामका गहना। ३ मिठाईका खोंचा रखनेका मोढ़ा।

तर्क (सं० पु०) तर्क भावे अच्। १ व्यभिचारशङ्का-निवर्तक ऊहभेद, अर्थात् अविज्ञात अर्थके विषयमें युक्तिक कारण द्वारा तर्कविशेष, वह तर्क जो शास्त्रके अविरोधी और सन्दिग्ध पूर्वपक्षको निरास कर उत्तरपक्ष-में व्यवस्थापनपूर्वक शास्त्रार्थमें निश्चयताका अवधारण करता है। २ आकांक्षा, चाह। ३ व्याप्यके आरोपसे कारण व्यापकका प्रसञ्जन। ४ आगमका अविरोधी न्याय। ५ आगमार्थ परीक्षा। ६ मीमांसारूप विचार वा शास्त्रार्थ। ७ मानस ज्ञानभेद। ८ अपनी बुद्धिके अनुसार तर्क (विचार) मात्र। (वेदान्तप्र०)

जो भाव अचिन्तनीय हैं, किसी हालतमें भी जिनका विषय चिन्तामें नहीं आ सकता, उन विषयोंका कभी भी तर्क द्वारा निर्णय न करें। क्योंकि अप्रतिष्ठित तर्क द्वारा कभी भी गम्भीर अर्थका निश्चय नहीं हो सकता।

इस प्रकारका तर्क करनेसे अप्रतिष्ठादोष लगता है। तर्कमें अप्रतिष्ठा दोष होने पर, वह निराकृत होता है; वह तर्क ग्रहणीय नहीं। तर्क बिना किये शास्त्र-मीमांसा न करें ऐसी विधि है; किन्तु वह तर्क श्रुतके न होना चाहिये। धर्मशास्त्रसे एक मत हो कर तर्क

करें। इस प्रकारके तर्कसे ही यथार्थ ज्ञान होता है। इसीलिए वेदान्तदर्शनमें तर्कका विषय इस प्रकार लिखा है—"तर्का प्रतिष्ठानादित्यादि"। (वेदान्तसूत्र)

जो वस्तु शास्त्रगम्य है, तर्कमात्रका अवलम्बन कर उस वस्तुके विरुद्ध उद्यम नहीं करना चाहिये। कारण, पुरुष शास्त्रावलम्बनके बिना बुद्धिमात्रसे जितने भी तर्कोंका उद्भावन करता है, उन तर्कोंकी प्रतिष्ठा नहीं होती, क्योंकि कल्पनामें कोई अङ्कुश (नियामक) नहीं होता। जो जहाँ तक समझता है, वह वहीं तक कल्पना करता है। अनुसन्धान करनेसे देखा जाता है, कि एक विद्वान्ने बहुत यत्नसे एक तर्क छेड़ा, अन्य विद्वान्ने उसी समय उसको मिथ्या बता दिया और उनसे भी अधिक विद्वान्ने उनके तर्कको भी मिथ्या सिद्ध कर दिया। मानवबुद्धि विचित्र है, इसी लिए प्रतिष्ठित तर्क असम्भव है। जब कि मानवबुद्धि ही अनवस्थित है, एक प्रकार नहीं, तब उससे उत्पन्न तर्क भी अनवस्थित होगा, एक प्रकारका नहीं। इसी लिए तर्क अप्रतिष्ठादोषसे दूषित है अर्थात् स्थिरतर तर्क नहीं होता। अतएव तर्क अविश्वास्य है। तर्कका विश्वास करके शास्त्रार्थ निर्णय करना अन्याय्य है। मान लो, प्रसिद्ध कपिल देव सर्वज्ञ थे, इस कारण उनका तर्क प्रतिष्ठित था, ऐसा कहनेसे भी कहेंगे कि, वह भी अप्रतिष्ठित था अर्थात् वह बात भी तर्कमें अन्यरूप हो जाती है। कपिल सर्वज्ञ थे और गौतम असर्वज्ञ, इस विषयमें क्या प्रमाण हैं? कपिल, कणाद, गौतम, ये सभी ख्यातनामा हैं, सभी महात्मा और सर्वविदित हैं, परन्तु तो भी इनके मतमें परस्पर विरोध पाया जाता है।

कपिलके मतमें कणाद और गौतमकी आपत्ति है तथा कणाद और गौतमके मतमें कपिलकी आपत्ति है। यदि कहोगे, कि हम ऐसे एक तर्कका अनुमान करेंगे, जिसमें प्रतिष्ठा-दोष नहीं आवेगा। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि, अप्रतिष्ठित तर्क है ही नहीं। एक न एक प्रतिष्ठित तर्क है, यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा। हाँ, ऐसा कह सकते हो कि, किसी किसी तर्कको अप्रतिष्ठितत्व देख कर तर्कमात्रमें अप्रतिष्ठितत्वकी कल्पना करनेसे व्यवहार उच्छेदकी आपत्ति हो सकती है, सभी तर्क यदि मिथ्या हैं, तो लोगोंका प्रवृत्ति-निवृत्ति व्यवहार किस तरह होगा?

हम देखते हैं, कि प्रत्येक व्यक्ति भविष्यमें सुख दुःखको प्राप्ति और परिहारके लिए सर्वदा चेष्टमान है; वह चेष्टा भी तर्कमूलक है।

तर्कका दूसरा नाम है कल्पना, तर्कमें सत्यता न होती तो उसका व्यवहार न रहता, अब तक वह उच्छिन्न हो जाता। श्रुतिके अर्थमें सन्देह होने पर वाक्यवृत्तिनिरूपणरूप तर्कके द्वारा उसके तात्पर्य अर्थका निर्णय होता है। भगवान् मनुने भी ऐसा ही कहा है—

जो धर्मशुद्धिकी इच्छा रखते हैं, उन्हें प्रत्यक्ष अनुमान (तर्क) और विविधशास्त्रका उत्तमरूपसे ज्ञान रखना चाहिए। जो पुरुष वेदशास्त्रके अविरोध तर्कका अवलम्बन कर ऋषिसेवित धर्मविधिकी खोज करते हैं, उन्हें ही धर्मका वास्तविक रहस्य मालूम पड़ता है। अप्रतिष्ठित तर्कको शोभा दोष नहीं है। जिस तर्कमें दोष हैं, उसे छोड़ देना चाहिये, निर्दोष तर्क ग्रहणीय है। पूर्वपुरुष मूढ़ थे, इसलिए हमको भी मूढ़ होना पड़ेगा, ऐसा कोई नियम नहीं। एक तर्कमें दोष देख कर समस्त तर्कोंमें दोष बतलाना बड़ा अन्याय है।

सम्यक्ज्ञान एक ही प्रकारका होता है, नाना प्रकारका नहीं। मेरे एक तरहका और तुम्हें दूसरी तरहका हो, ऐसा भी नहीं; क्योंकि सम्यक्ज्ञान वस्तुके अधीन है, न कि मनुष्यके। जैसे—अग्नि उष्ण है। अग्नि उष्ण है यह ज्ञान एक ही भाँतिका अर्थात् सब समय और सब पुरुषोंके लिए एकसा है। इसलिए सम्यक्ज्ञानमें मतामत (तर्क)-का होना असम्भव है। तर्क बुद्धिसे उत्पन्न है। इसलिए वह नाना व्यक्तियोंका नाना प्रकार है तथा विरुद्ध तर्कजनित ज्ञान भी विभिन्न और परस्पर विरुद्ध होते हैं, किन्तु सम्यक्ज्ञान एक ही प्रकारका होता है। किसी हालतमें भी विभिन्न नहीं होता।

एक तार्किकने तर्कबलसे कहा कि यही सम्यक्ज्ञान है और दूसरेने उसका खण्डन कर कहा कि नहीं, वह सम्यक्ज्ञान नहीं, यह सम्यक्ज्ञान है। अतएव जो एक प्रकारका नहीं, वह अस्थिर तर्कसे उत्पन्न है, ऐसा ज्ञान किस तरह सम्यक् हो सकता है।

इसलिए तर्क द्वारा यह मीमांसित नहीं होता। दुरूह विषयमें तर्क छोड़ कर शास्त्रका अनुसरण करना उचित है। शास्त्र समझनेके लिए भी तर्ककी जरूरत है, किन्तु वह तर्क शास्त्रानुकूल है; शास्त्रसे प्रतिकूल तर्क जो प्रतिषिद्ध हुआ है। शास्त्र आदि किसी भी विषयके जाननेमें तर्क ही एकमात्र कारण है। तर्कके विना किसी भी विषयका वास्तविक तत्त्वार्थ मालूम नहीं होता। यह तर्क शास्त्रानुयायी होना चाहिये, ऐसा न होनेसे उसे कुतर्कवाद आदि कहते हैं। इस प्रकारके कुतर्कवादियोंसे किसी तरहका भी तर्क न करना चाहिये तथा करनेसे भी कोई फल नहीं होगा। (वेदा तद०)

गौतमसूत्रमें तर्कका विवरण इस तरह लिखा है
'अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः।'

(गौतमसूत्र १।४०)

व्याप्यका आरोपप्रयुक्त व्यापकका आरोप ही तर्कपदार्थ है अर्थात् धूमादिका आरोप करके व्यापक है। व्यापक वह्नि आदिका जो आरोप होता है, उसीको तर्क कहते हैं।

'आरोप'का अर्थ है अयथार्थ ज्ञान। सूत्रमें 'कारणोपपत्तितः' इन शब्दोंसे व्याप्यका आरोपप्रयुक्त' यह अर्थ तथा 'ऊह' शब्दसे व्यापकका आरोप ऐसा अर्थ हुआ है।

'तर्क द्वारा क्या फल होता है?' शिष्यने जब गोतमदेवसे यह प्रश्न किया, तब महर्षिने उत्तर दिया-'किसी पदार्थमें विशेष संशय होने पर तर्क करना चाहिये, तर्कसे संशयकी निवृत्ति हो कर यथार्थ पक्षका निर्णय हो जायगा।'

इसलिये तर्क पदार्थनिर्णयमें विशेष प्रयोजनीय है। तर्कके विना कभी भी एकतरका निश्चय नहीं होता। जैसे जलसे उत्थित वाष्पको देख कर बहुतोंको 'वाष्प है या धुआँ' ऐसा सन्देह हुआ करता है। अनन्तर यह यदि धुआँ हो, तो जलमें अग्नि हो सकती है, किन्तु वस्तुतः जलमें अग्नि नहीं होती, तो वाष्पका निकलना कैसे सम्भव हो सकता है, अतएव यह धूम नहीं है। इस प्रकारकी आपत्ति जिसको उपस्थित होती है, उसको इस तर्कके द्वारा 'यह धुआँ नहीं, वाष्प है' ऐसा निश्चय होता है। दूरसे एक वृक्षके काण्डको देख कर उससे मनुष्यका भ्रम हुआ, पीछे 'यदि यह मनुष्य है, तो हाथ पैर जरूर होते' ऐसा तर्क उदित होने पर यह वास्तवमें मनुष्य नहीं है, ऐसा स्थिर होता है। सौगत नामके बौद्ध कहा करते हैं, कि यह दृश्यमान विचित्र पदार्थ-समूह विज्ञानमय ज्ञानस्वरूप है, अर्थात् सोते समय जैसे बाघ, हाथी, मनुष्य आदि दीख पड़ते हैं किन्तु असलमें वे कुछ भी नहीं हैं, केवल रूप हैं, उसी प्रकार जाग्रत्-अवस्थामें पृथिवी, जल, मनुष्य आदि जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे पदार्थ भी ज्ञानस्वरूप हैं, ज्ञानके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

इसमें नैयायिकोंका कहना है, कि सोते समय जो पदार्थ अनुभूत होते हैं, जग जाने पर वे पदार्थ मिथ्या अर्थात् मनःकल्पित मात्र मालूम पड़ते हैं; इसलिए स्वाप्निकपदार्थ ज्ञानस्वरूप होने पर भी जाग्रत् अवस्थामें जो नाना प्रकारके पदार्थ दीख रहे हैं वे कभी भी ज्ञानमय नहीं, ज्ञानसे भिन्न हैं। इस प्रकार दोनोंके वाक्य सुन कर, हम जो पदार्थ-समूह देख रहे हैं, यह ज्ञानस्वरूप है या ज्ञानके अतिरिक्त, यह संशय अवश्य ही उपस्थित होता है। बादमें दृश्यमान चराचर पृथिवी, जल, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पदार्थ यदि ज्ञानस्वरूप हों, ज्ञानसे भिन्न न हों, तो हम प्रतिदिन पृथिवीको पृथिवी, जलको जल, मनुष्यको मनुष्य नहीं समझ सकते थे तथा पृथिवीको पृथिवी और जलको जल इत्यादि रूपमें हमको जैसा ज्ञान हो रहा, वैसा औरोंको भी होता है, वास्तवमें बाह्यपदार्थ स्वाप्निकज्ञानकी भाँति ज्ञानरूप होते तो पृथिवीको पृथिवी, जलको जल इत्यादि एक रूपसे समस्त व्यक्तियोंके अनुभावका विषय नहीं होता। जब देखते हैं, कि स्वप्नावस्थामें सबका ज्ञान एकसा नहीं होता, इस प्रकारका तर्क उदित होने पर दृश्यमान पदार्थसमूह ज्ञानस्वरूप नहीं ज्ञानसे पृथक् है, अवश्य ही ऐसी अवधारणा होती है। इन तर्कोंके विना असंशयरूपसे कभी भी एकतरकी अवधारणा नहीं होती। इसलिए पदार्थनिर्णयमें तर्क बहुत आवश्यक है। प्राणीमात्रको तर्क हुआ करता है, किन्तु विशेष परिचय न होनेसे उसको तर्क नहीं समझते

न्यायशास्त्रमें तर्कपदार्थका विस्तृतरूपसे प्रकाश होने-

से न्यायशास्त्रको तर्कशास्त्र भी कहते हैं। तर्क पहले संशय, फिर तर्क और अन्तमें निर्णय—इन तीन अंशोंमें परिसमाप्त होता है।

उक्त तर्कमें कोई पदार्थ आपाद्य वा आपादक (अर्थात् व्याप्यव्यापकभाव) नहीं होता। क्योंकि जलाशय यदि धूमविशिष्ट होता, तो पटविशिष्ट भी होता, इस प्रकारकी आपत्ति कभी भी सम्भव नहीं तथा यह यदि मनुष्य होता, तो शृङ्गविशिष्ट होता, ऐसी आपत्ति कोई नहीं करता। इसी लिए व्याप्यका आरोपयुक्त व्यापकका आरोप कहा गया है, अर्थात् व्यापक पदार्थमें ही आपत्ति हुआ करती है। उक्त स्थानमें धूमका व्यापक पट नहीं है और न मनुष्यत्वका व्यापक शृङ्ग है इसलिए उनकी वह आपत्ति नहीं हुई। उक्त आपत्तिके पक्षमें आपाद्यका अभाव निश्चय होने पर यह ज्ञान उत्पन्न होता है। इसलिए जलाशय यदि धूमविशिष्ट होता तो द्रव्य होता, ऐसी आपत्ति नहीं होती। कारण, जलाशयमें द्रव्यत्वका अभाव नहीं, किन्तु द्रव्यत्वका निश्चय ही है। यह तर्क ५ प्रकारका है—आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रक, अनवस्था और बाधितार्थ प्रसङ्ग।

इनमें जो आपत्ति स्वमें स्व अपेक्षणीय होने पर होती है, उसका नाम है आत्माश्रय, अर्थात् आपत्तिमें आत्माकी (अपनी) अपेक्षा करती है इसलिए इस आपत्तिका नाम आत्माश्रय है।

जिसके अभावसे जो वस्तु सम्भव नहीं होती, उसकी अपेक्षा कहते हैं, अपेक्षा भी उत्पत्ति, स्थिति और ज्ञप्तिके भेदसे तीन प्रकारका है। यथा—वृक्ष उपजनेमें बीज और पुत्रादिकी उत्पत्तिमें पिता माता, वस्त्रादि बनानेमें ताँत सूत आदिकी अपेक्षा होती है, तथा किसी पदार्थके संस्थापनकी आवश्यकता होने पर अधिकरणकी अपेक्षा चाहिये, किसी पदार्थकी ज्ञप्ति अर्थात् अभिव्यक्ति (ज्ञान) आवश्यक होने पर इन्द्रियादि अपेक्षित होती है, इसलिए उत्पत्ति, स्थिति और ज्ञप्तिके भेदसे आक्षेप तीन प्रकारका होनेसे आत्माश्रय भी तीन प्रकारका है। वस्तुतः जिस आपत्तिमें स्वमें स्वजन्य आपादक होता है, वही आपत्ति प्रथम आत्माश्रय है, जैसे-एक वृक्षको देख कर 'यह वृक्ष इस वृक्षसे उपजा है या नहीं' ऐसा सन्देह होने पर यह वृक्ष यदि इस वृक्षसे उत्पन्न होता, तो इस वृक्षका अनधिकरण कालके उत्तरक्षणमें उत्पन्न न होता अर्थात् इस वृक्षके उत्पन्न होनेके पहले भी यह वृक्षा होता, क्योंकि जो वस्तु जिस पदार्थसे उत्पन्न होती है, उस वस्तुसे पहले वह पदार्थ अवश्य ही रहता है। अपनी उत्पत्तिसे पहले आप कभी भी नहीं रहते। इसलिए यह वृक्ष इस वृक्षसे उत्पन्न नहीं है। अन्य जिस आपत्तिमें स्वमें स्ववृत्तित्व आपादक होता है। उस आपत्तिका नाम भी आत्माश्रय है। जिस प्रकार इस पृथिवी पर पर्वत आदि स्थित हैं, उसी प्रकार इस पृथिवीके उपरिस्थित हो कर यह पृथिवी है या नहीं? ऐसा संशय होने पर यदि यह पृथिवी इस पृथिवीके ऊपर स्थित होती तो इस पृथिवीसे यह पृथिवी भिन्न होती, क्योंकि अधिकरणसे आधेय पृथक् होता है, यह सब जगह देखा गया है। अधिकरण और आधेय एक ही व्यक्ति हो, ऐसा किसीने भी नहीं देखा।

यह आपत्ति द्वितीय आत्माश्रय है। जिस आपत्तिमें स्वप्रत्यक्षसे स्वमात्र अपेक्षणीय अथवा स्वमें स्वज्ञानस्वरूप आपादक होता है, वह आपत्ति तृतीय आत्माश्रय है। यथा—इस घटका प्रत्यक्ष यदि इस घटमात्रसे उत्पन्न होता, तो घटकी उत्पत्तिके बाद सब समय इसका प्रत्यक्ष होता. जब कि इस घटका प्रत्यक्ष कारण यह घट मात्र है और वह घट सर्वदा ही है। कारणके बिना कार्य क्यों नहीं होगा, अथवा यह घट यदि एतद्घट ज्ञानरूप हो, तो यह घट ज्ञान सामग्रीसे उत्पन्न होता, कारण जो ज्ञानरूप होता है, वह ज्ञान सामग्रीसे अवश्य ही उत्पन्न होता है। सामग्री शब्दसे उस कारण समूहका बोध होता है, जिससे कार्य हुआ करते हैं।

स्वमें स्वापेक्ष अपेक्षणीय होने पर जो अनिष्टकी आपत्ति होती है, उसको अन्योन्याश्रय कहते हैं। फलतः जिस आपत्तिमें स्वजन्य जन्यत्व, सुवृत्ति वृत्तित्व, स्वज्ञान ज्ञानमयत्व, इनमेंसे कोई भी एक आपादक हो, वही अन्योन्याश्रय है। यथा—यह वृक्ष यदि इस वृक्षजात फलजन्य होता. तो यह वृक्षजात फल इस वृक्षके पैदा होनेसे पहले अवश्य ही होता, क्योंकि कारण कार्य

पहले अवश्यही रहता है। किन्तु जैसे यह वृक्ष उस वृक्षका पूर्ववर्ती नहीं होता, उसी तरह इस वृक्षसे उत्पन्न फल भी इस वृक्षका पूर्ववर्ती नहीं होता, इसलिए यह वृक्ष इस वृक्षजात फलजन्य नहीं है। इसी तरह यह घट यदि इस घटमें स्थित होता, तो यह घट इस घटसे भिन्न होता तथा यह घट यदि इस घटज्ञानके स्वरूप हो, तो यह घट ज्ञान सामग्रीसे जन्य होता। और जिस पदार्थको स्वीकार किया उस तरहके पदार्थमें असीम आपत्ति धाराकी कल्पनाके कारण अनिष्ट प्रसङ्ग होता है, इस अनवस्था दोष और उक्त अनवस्थादोषके भयसे किसी एक पदार्थकी सीमा स्वीकार करना पड़ता है। यथा—अविभज्य परमाणुको निरवयव न मान कर उसको सावयव मानना होता है तथा उक्त अवयवमें पुनः अवयवकी कल्पना आवश्यक है। इस प्रकार अनन्त अवयवकी कल्पना करने पर सर्षप और सुमेरुके समान परिमाणापत्ति हो सकती है। कारण जो वस्तु जिसकी अपेक्षा अधिक संख्यक अवयवों द्वारा संगठित है, वह वस्तु उसकी अपेक्षा महत् परिमाणविशिष्ट है। तथा जो द्रव्य जिस वस्तुकी अपेक्षा अल्पसंख्यक अवयवों द्वारा संगठित है, वह वस्तु उसकी अपेक्षा क्षुद्र है।

अतएव इस जगह जैसे पार्वतीय परमाणुके अवयव अनन्त हैं, उसी प्रकार सर्षपीय परमाणुके अवयव भी अनन्त हैं, दोनोंके न्यूनाधिक्यका निश्चय करना साध्यातीत है। इस तरह दोनोंको अनन्त अवयवविशिष्ट मानना पड़ता है। सुतरां दोनोंमें परिमाणगत कोई वैलक्षण्य न होनेसे दोनोंमें ही समान परिणामकी आपत्ति हो सकती है। इस अनवस्थाभयसे परमाणुको निरवयव कहना होगा तथा जैसे विचारालयमें अपराधी है या निरपराधी, यह निश्चय करनेके लिए गवाहकी जरूरत है, उसी प्रकार गवाह देनेवाला उस घटनास्थल पर था या नहीं, इस तरहकी आपत्तिसे यदि गवाहकी गवाही मंजूर की जाय, तो उक्त गवाहके लिए गवाहीकी जरूरत है, इस तरह असंख्य साक्षीकी आवश्यकता होती है। सुतरां किसी तरह भी विचारके निष्पन्न होनेकी सम्भावना नहीं, इस स्थानमें भी ऐसे अनवस्थादोषके भयसे केवल एक साक्षी प्रचलित है, अथवा वस्तुमात्र ही किसी न किसी शरीरी द्वारा सृष्ट है, अतः निराकार जगदीश्वर द्वारा उसकी सृष्टि नहीं हो सकती, इस प्रकारकी शङ्का खड़ी कर यदि उनमें भी शरीरकी कल्पना करें, तो जगदीश्वरके शरीरकी सृष्टिके लिए पृथक् एक शरीरी जगदीश्वरकी कल्पना करनी पड़ेगी और उनके शरीरकी सृष्टिके लिए भी पुनः पृथक् शरीरी परमेश्वरकी कल्पना करनी पड़ेगी, इस तरह अनन्त, कोटी कोटी साकार जगदीश्वरकी कल्पना करने पर भी किसी हालतमें सृष्टिकार्यका निर्वाह नहीं हो सकता। इसलिए दार्शनिकोंने एकमात्र जगत्स्रष्टा माना है। अथवा यह ससागरा पृथिवी शून्यमें अपने शक्तिबलसे है या अन्य किसी सुवृहत् साकार आधार पर है, इस प्रकार सन्देहाक्रान्त हो कर यदि पृथिवीका कोई साकार आधार मान लेवें, तो उस आधार-वस्तुकी स्थितिके लिए पुनः और एक साकार आधारकी कल्पना करनी पड़ेगी।

इस प्रकारसे उसके भी आधारकी कल्पना करनी पड़ेगी, पर तो भी यह निर्णय नहीं होगा कि, पृथिवी किसके आधार पर है। इस प्रकारके अनवस्थादोषके कारण ज्योतिर्विदोंने पृथिवीका कोई साकार आधारान्तर नहीं माना, पृथिवी अपनी शक्तिके बलसे सर्वदा आकाशमें विद्यमान है, ऐसा वे स्वीकार करते हैं।

आत्माश्रय आदि जो चार आपत्तियोंका उल्लेख किया गया है, उनके सिवा अन्य आपत्तियोंका नाम है प्रमाणवाधितार्थप्रसङ्ग।

यह प्रमाणवाधितार्थप्रसङ्ग दो प्रकारका है—एक व्याप्तिनिर्णायक और दूसरा विषयपरिशोधक। व्याप्तिनिर्णायक उसे कहते हैं, जिस तर्कके द्वारा व्याप्तिकी निश्चयता हो, जैसे धूममें वह्निकी व्याप्तिका निश्चय होने पर, उस धूमके द्वारा वह्निकी अनुमिति हुआ करती है। किन्तु जब तक धूममें वह्निके व्यभिचारका सन्देह रहे, तब तक व्याप्तिका निश्चय नहीं होता।

इसलिए तर्क द्वारा व्यभिचार सन्देह (वह्नि अर्थात् अभावाधिकरणमें धूमकी विद्यमानताका अभाव)-को दूर करना आवश्यक है, जैसे—धूम वह्निव्यभिचारी है या नहीं ऐसा सन्देह होने पर धूम यदि वह्नि व्यभिचारी हो, तो वह्निसे उत्पन्न नहीं होता। कारण जो जिससे

उत्पन्न होता है, वह उसका व्यभिचारी नहीं होता, ऐसा नियम है। ऐसी आपत्ति करनेसे धूमसे वह्नि-व्यभिचारका सन्देह निवृत्ति हो कर वह्निकी व्याप्तिका निर्णय होता है। इसलिए यह तर्क व्याप्तिनिर्णायक है। जिस तर्कके द्वारा व्याप्तिसे भिन्न विषयका अवधारण हो, उसका नाम है विषयपरिशोधक। जैसे—पर्वत यदि वह्निका अभावविशिष्ट हो, तो धूमका भी अभावविशिष्ट हो सकता है। इस तर्कसे पर्वतमें वह्निका सन्देह नष्ट हो कर वह्निके रूपके विषयका अवधारण होता है इसलिए इस तर्कका नाम विषयपरिशोधक है। (गौतमसूत्र)

करणे घञ्। ८ न्यायशास्त्र, तर्कशास्त्रका नामान्तर। इस शास्त्रमें तर्कका विषय विशेषरूपसे वर्णित हुआ है, इसलिए इसका नाम तर्कशास्त्र है। न्यायशास्त्र चार भागोंमें विभक्त है—प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शाब्दज। इनमें अनुमानखण्डमें ही तर्कका आधिक्य है, इसलिए उसको ही तर्क कहते हैं, किन्तु इन चारों खण्डोंमें तर्कप्रणाली विशेषरूपसे अवलम्बित हुई है। नवद्वीपके गदाधर भट्टाचार्य आदि महामहोपाध्यायगण तर्कशास्त्रकी विशेष उन्नति कर गये हैं। न्याय देखो।

१० मीमांसाशास्त्र। तर्कसे शास्त्रकी मीमांसा होती है, इसलिए मीमांसाका नाम भी तर्क है।

तर्कक (सं० त्रि०) तर्केण आकाङ्क्षया कायति प्रकाशते के-क। १ याचक, माँगनेवाला। तर्कयति तर्क-ण्वुल्। २ तर्ककारक, तर्क करनेवाला।

तर्ककारिन् (सं० त्रि०) तर्कं करोति कृ-णिनि। तर्ककारक, तर्क करनेवाला।

तर्कग्रन्थ (सं० पु०) तर्काधिकृतः ग्रन्थः, मध्यपदलो०। तर्कप्रधान ग्रन्थ।

तर्कज्वाला (सं० स्त्री०) १ वह पदार्थ जिसमें उत्तेजित करनेकी क्रिया हो। २ बौद्धशास्त्रभेद।

तर्कण (सं० क्ली०) चिन्तन, तर्क करनेकी क्रिया।

तर्कणा (सं० स्त्री०) १ विवेचना, विचार। २ युक्ति, उपाय।

तर्कणीय (सं० त्रि०) चिन्तनीय, विचार करने योग्य।

तर्कना (हिं० स्त्री०) १ तर्कणा देखो। २ तर्क करना।

तर्कमुद्रा (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त मुद्राविशेष, तन्त्रकी एक मुद्रा। मुद्रा देखो।

तर्कवागीश (सं० पु०) तर्कशास्त्रवेत्ता, वह जो तर्कशास्त्र अच्छी तरह जानता हो।

तर्कवितर्क (सं० पु०) १ विवेचना, सोच विचार। २ वाद-विवाद, बहस।

तर्कविद्या (सं० स्त्री०) तर्करूपा या विद्या तर्कस्य विद्या वा। न्यायविद्या, युक्तिविद्या। गौतमप्रणीत प्रमाण प्रमेय प्रभृति सोलह पदार्थरूप विद्या और कणादोक्त छह पदार्थरूप विद्या, आन्वीक्षिकी विद्या।

तर्कश (फा० पु०) तूणीर, भाथा, तीर रखनेका चोंगा।

तर्कशास्त्र (सं० क्ली०) तर्करूपं शास्त्रं मध्यपदलो०। १ न्यायशास्त्र। २ वह शास्त्र जिसमें ठीक तर्क वा विवेचना करनेके नियम आदि निरूपित हों।

तर्कसी (फा० स्त्री०) छोटा तरकश।

तर्काभास (सं० पु०) तर्कस्य आभासः, ६ तत्। कुतर्क, ऐसा तर्क जो ठीक न हो।

तर्कारी (सं० स्त्री०) तर्कं ऋच्छति ऋट-अण्। कर्मण्यण्। पा ३।२।१। ङीप् च। १ जयन्तीवृक्ष, जैंतका पेड़। पर्याय-वैजयन्ती, विजया, जया, जयन्ती। (Sesbania Aegyptiaca or Æschynomene Sesban) इसको युक्तप्रान्तमें—जैंत, बिहारमें—सन्तरी वा सेवरी, उड़िष्यामें वज जन्ति, बङ्गालमें जयन्ती वा धनिया, गुजरातमें—बायसिंगनि, महाराष्ट्रमें—सेवरी, बम्बईमें—जेंत वा जनजन, द्राविड़में—चम्पई वा करुमसेम्बाई तथा तेलगूमें—सइमिण्डा वा समिण्डा कहते हैं।

भारतमें सर्वत्र ही यह वृक्ष होता है; और तो क्या, हिमालयके चार हजार फुट ऊँचाई पर भी इसका वृक्ष देखनेमें आता है। हाँ दक्षिणदेशमें कुछ अधिक होता है। कृष्णा और वेणवा नदीके किनारे, जो जो स्थान बाढ़ आनेसे डूब जाते हैं, उन उन स्थानों पर इसके एक एक वृक्ष २० फुट ऊँचे होते हैं। इसकी लकड़ी नरम होती है। इससे माचे वगैरह भी बनते हैं। इसकी छालसे रस्सी बन सकती है।

इसके पत्ते और बीज बड़े फायदेमन्द हैं। पूयसञ्चय निवारणार्थ इसके पत्तोंकी पुल्टिश दी जाती है। और कोरण्ड वा वातरोगकी सूजनमें इसका प्रयोग किया जाय, तो सूजन घट जाती है। हकीमीग्रन्थके मतसे

इसके बीज तेजस्कर रजोनिःसारक और सङ्कोचक, उदरामयनाशक, अधिक रजोस्रावनिवारक और प्लीहावृद्धि-ह्रासकारक है। बहुतसे हिन्दू खुजली, फुन्सी आदिमें इसको मलहम बना कर लगाते हैं। पञ्जाबमें इसके बीज बट कर मैदाके साथ उसे खाज पर लगाते हैं। मराठोंका विश्वास है, कि इसके बीजको देखते ही बिच्छू-काटनेका दर्द जाता रहता है। ढाकेमें बहुतसे लोग इसके ताजे पत्तोंको बट कर १ छटाक तक खाते हैं जिससे उनका कृमिरोग अच्छा हो जाता है। जयन्ती देखो।

२ गणिकारिका, गनियारका पेड़। (भावप्र०) गणिकारिका देखो। ३ देवताड़वृक्ष, रामबाँस। ४ अग्निमन्थ, अरनोका पेड़। ५ क्षुद्राग्निमन्थ, गनियारका पेड़। ६ जीमूत, नागरमोथा। ७ शिंशपावृक्ष शीशमका पेड़। ८ वनकर्कटी, बनककड़ी।

तर्किण (सं० पु०) चक्रमर्द वृक्ष, चकवँड़, पंवार।

तर्कित (सं० त्रि०) तर्क-क्त। १ विचारित, सोचा हुआ। २ आलोचित, विचार किया हुआ। ३ सम्भावित, अनुमान किया हुआ। ४ अनुमित, विचारा हुआ, अंदाजा हुआ।

तर्किन् (सं० त्रि०) तर्कयति तर्क-णिनि। तर्ककारक मीमांसा करनेवाला।

तर्किल (सं० पु०) तर्क-इलच्। तर्किण देखो।

तर्कीब (हिं० स्त्री०) तरकीब देखो।

तर्कु (सं० स्त्री०) कृत-उ निपातनात् साधुः। सूत्रनिर्माणयन्त्र, तकला, टेकुआ। इसके पर्याय—कपालनालिका, तर्कुटी और सूत्रला है। (हारावली)

तर्कुक (सं० क्ली०) तर्कु स्वार्थे कन्। तर्कु देखो।

तर्कुट (सं० क्ली०) तर्कयति सूत्रोत्पादकतया शोभते तर्क-उटन्। कर्त्तन, कातना।

तर्कुटी (सं० स्त्री०) तर्कुट स्त्रियां गौरा० ङीष्। तर्कु, तकला, टेकुआ।

तर्कुपिण्ड (सं० पु०) तर्कुस्थितः पिण्डः, मध्यपदलो०। तकलेकी फिरकी। इसके पर्याय—वर्त्तिनी, तर्कपीठी, वर्त्तुला है।

तर्कुपीठी (सं० स्त्री०) तर्कुस्थिता पीठी। तर्कुपिण्ड, तकलेकी फिरकी।

तर्कुल (हिं० पु०) १ ताड़का पेड़। २ ताड़का फल।

तर्कुलासक (सं० पु०) तर्कुं लासयति लस्-णिच्-ण्वुल्। तर्कुचालकयन्त्र, चरखा।

तर्कुशाण (सं० पु०) तर्कोः शाणः, ६-तत्। सानक, वह छोटा पत्थर जिससे तकलेको फिरकी पर सान चढ़ाई जाती है।

तर्क्य (सं० त्रि०) विचार्य, जिस पर कुछ सोच-विचार करना आवश्यक हो।

तर्क्षु (सं० पु०) तरक्षुः पृषो० साधुः। तरक्षु, तेंदुआ या चीता।

तर्क्ष्य (सं० पु०) दृक्ष यत् बाहुलकात् गुणः। यवक्षार, जवाखार नमक।

तर्खान—प्राचीन तुरकी भाषाकी एक सम्भ्रमसूचक उपाधि। तर्खान कहनेसे उनका बोध होता है, जो उच्चवंशोत्पन्न हैं और जिनको किसी तरहका विशेष कर न देना पड़ता हो। प्राचीन तुरष्कभाषामें लिखित बहुतसे दस्तावेजोंमें तुर्ख शब्दका उल्लेख देखनेमें आता है। इसका अर्थ आश्रयलिपि और सम्भ्रान्तवंशज्ञापक लिपि है। तूरानीके अभिधानमें इसका अर्थ 'उच्च पदवी' लिखा है। नरषखि और तबरि लोग तर्खानकी जगह तर्खुन लिखते हैं किसी विशेष व्यक्तिका बोध करानेके लिए वे इस शब्दका प्रयोग करते हैं। चङ्गेजखाँको मारनेके लिए प्रेष्टार जन्ने जो इन्तजाम किया था, बट और कसलकको मालूम होते ही उन्होंने चङ्गेजसे कह दिया। उनके परामर्शसे जीवनकी रक्षा होनेसे चङ्गेजने दोनोंको तर्खानकी उपाधि प्रदान की। इनकी सन्तानसन्तति भी तर्खान-उपाधिसे विभूषित हैं। खुरासान और तुर्किस्तानमें इनका वास है।

भारतवर्षमें सिन्धुदेशकी तरफ तर्खानवंश देखनेमें आता है। कहा जाता है, कि तैमूरने यह उपाधि दी थी। तुकतमिशखान् जब तैमूर पर आक्रमण करनेके लिए अग्रसर हुए थे, उस समय अघुनखाँके प्रपौत्र एकु तैमूरने भीमपराक्रमसे उनकी गति रोक कर युद्धक्षेत्रमें प्राणत्याग दिये। तैमूर अपनी आँखोंसे उनके वीरत्वको देख कर अतीव विस्मित हुए। उन्होंने एकुतैमुरके

आत्मीयवर्गको 'तर्खान'की उपाधि दी। तभीसे सिन्धुदेशमें तर्खानवंशकी उत्पत्ति हुई है।

परगना प्रदेशमें भी तर्खानवंशियोंका वास है। ७०३ ई०में वहाँके तर्खानोंने अत्यन्त समारोहके साथ फारसके सुलतानकी अभ्यर्थना की थी। कास्पीय सागरके पश्चिममें खजरके खाकनोंमें कर्मचारीविशेषको तुर्खान कहते हैं।

भारतमें तर्खान-वंशके लोग इस समय नसरपुर और ठट्टामें रहते हैं।

१५२१ ई०से सिन्धुदेशमें अर्घुनवंशियोंका आधिपत्य देखनेमें आता है। १५५४ ई०में इस वंशके शाह हुसेनको अपुत्रक दशामें मृत्यु होने पर तर्खानवंशने अर्घुनवंशका स्थानाधिकार किया। किन्तु ये कुछ ही दिन वहाँ राज्य करनेमें समर्थ हुए थे। १५८२ ई०में बादशाह अकबरने मिर्जा जानीबेगको परास्त कर सिन्धुदेश मुगल-साम्राज्यमें मिला लिया था।

तर्ज़ (अ० स्त्री०) १ प्रकार, तरह, किस्म। २ रीति शैली, ढंग, ढब। ३ रचनाप्रकार, बनावट।

तर्जन (सं० क्ली०) तर्ज भावे ल्युट्। १ तिरस्कार, फटकार। २ अवज्ञापूर्वक निर्देशकरण, घृणा करनेका कार्य। ३ भयप्रदर्शन, धमकानेका कार्य। ४ आस्फालन, ताड़न, मार, फटकार। ५ क्रोध, गुस्सा।

तर्जना (हिं० क्रि०) डाटना, धमकाना, डपटना।

तर्जनी (सं० स्त्री०) तर्जत्यनया तर्ज करणे ल्युट्, ततः स्त्रियां ङीप्। अङ्गुष्ठसमीपाङ्गुली, अँगुठेके पासकी उँगली। इसके दूसरा पर्याय प्रदेशिनी है।

तर्जनीमुद्रा (सं० स्त्री०) तन्त्रोक्त मुद्राभेद, तन्त्रकी एक मुद्रा। इसमें बायें हाथकी मुट्ठी बाँध तर्जनी और मध्यमाको फैलाते हैं।

तर्जिक (सं० पु०) तर्ज स्तर्जनमस्त्यत्र तर्ज-ठन्। देशविशेष, एक देशका प्राचीन नाम, तायिकदेश।

तर्जित (सं० त्रि०) तर्ज-क्त। भर्त्सित, अपमानित, अनादर किया हुआ।

तर्जुमा (अ० पु०) अनुवाद, भाषान्तर, उल्था।

तर्ण (सं० पु०) तर्णोति तृणादिकं भक्षयति तृण अच्। १ वत्स, बछड़ा। २ शालिधान्यविशेष, एक प्रकारका धान।

तर्णक (सं० पु०) तर्ण एव स्वार्थे कन्। १ सद्योजातवत्स, तुरतका जन्मा गायका बछड़ा। २ शिशु, बच्चा।

तर्णि (सं० पु०) तरत्याकाशं पद्धतिं तृ-नि। १ सूर्य। २ प्लव, बेड़ा।

तर्त्तरीक (सं० क्ली०) तीर्यत्यनेन तृ-ईक। फर्फरीकादयश्च। उण् ४।२०। इति निपातनात् साधुः। १ नौका, नाव। कर्त्तरि-ईक। (त्रि०) २ पारग, पार करनेवाला।

तर्त्तव्य (सं० त्रि०) तृ-तव्य। तरणीय, पार होने योग्य।

तर्दू (सं० स्त्री०) तरति प्लवते तृ-ऊ दुकागमश्च। नोदुकूच। उण् १।३१। दारुहस्तक, लकड़ीका हत्था।

तर्द्मन् (सं० पु०) तृद वा मनिन्। १ छिद्र, स्थान, सुराख। २ तर्दन प्रदेश।

तर्पण (सं० क्ली०) तृप-प्रीणने भावे ल्युट्। १ तृप्ति, प्रीणन, सन्तोष होनेकी क्रिया। २ यज्ञकाष्ठ। तृप्यन्ति पितरो येन तृप-करणे ल्युट्। ३ आहारविशेष। ४ नेत्रतर्पणानुष्ठान। ५ जलदान दे कर देवर्षि, पितृ, मनुष्य आदिको तृप्त वा परितुष्ट करनेका कार्य। यह तर्पण पञ्च महायज्ञके अन्तर्गत महायज्ञका भेद है।

तर्पण दो प्रकारका है—प्रधान तर्पण और अङ्गतर्पण। शातातपने प्रधान तर्पणका वर्णन इस प्रकारसे किया है,—

स्नातक द्विजगण शुचि हो कर प्रतिदिन देव, ऋषि और पितरोंका यथाक्रमसे तर्पण करें तथा विधवा स्त्रियाँ कुशतिलोदक द्वारा भर्ता और श्वशुरादिके नाम गोत्रका उल्लेख कर प्रतिदिन तर्पण करें।*

इनके मतसे अङ्गतर्पण इस प्रकार है—

स्नान तीन प्रकारका है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य, तर्पण उसका अङ्ग है। प्रात्यहिक प्रातः और मध्याह्न सम्बन्धी स्नान नित्य है। ग्रहणादिके निमित्तसे जो स्नान किया जाता है, उसे नैमित्तिक कहते हैं।

---

* "तर्पणन्तु शुचिः कुर्यात् प्रस्यहं स्नातको द्विजः।
देवेभ्यश्च ऋषिभ्यश्च पितृभ्यश्च यथाक्रमम्॥
तर्पणं प्रत्यहं कार्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः।
तत् पितुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम्॥"
(आह्निकतत्त्व)

गङ्गा आदि तीर्थोंमें जो स्नान किया जाता है, वह काम्य-स्नान है। चाण्डालादिके स्पर्श, श्मश्रुकर्म, अश्रुपात, मैथुन, छर्दन और अस्पृश्य स्पर्श करनेसे जो स्नान करते हैं, वह भी नैमित्तिक स्नान है। किन्तु ऐसे नैमित्तिक स्नानमें तर्पणादि जलक्रिया नहीं की जाती। पूर्वोक्त नित्य, नैमित्तिक और काम्यस्नान करनेसे ही तर्पण करना आवश्यकीय है। जो पुत्र नास्तिकताके कारण प्रतिदिन पितरोंका तर्पण नहीं करता, पितृगण जलार्थी हो कर उसकी देहके रुधिरको पीते हैं। अतएव अति यत्नपूर्वक प्रतिदिन तर्पण करें। स्नान करके तर्पण करना उचित है। इस नियमके अनुसार यदि किसी दिन शारीरिक असुस्थताके कारण प्रातः, मध्याह्न स्नान न किया जाय, तो क्या उस दिन तर्पण करना निषिद्ध है? परन्तु वचनान्तरमें "तर्पणं प्रत्यहं कार्यं" इत्यादि वचन द्वारा तर्पणकी नित्यता प्रतीत होती है।

"नास्तिक्यभावात् यश्चापि न तर्पयति वै सुतः।
पिबन्ति देहरुधिरं पितरो वै जलार्थिनः॥"

(योगी याज्ञवल्क्य)

तर्पणकी नित्यताके कारण "शुचि हो कर तर्पण करें" इस वचनके अनुसार प्रधान तर्पण मध्याह्न और संध्याके बाद करना उचित है। क्योंकि पञ्चयज्ञान्तर्गत तर्पण मध्याह्नकालमें कहा गया है।

यदि प्रातःस्नान तर्पण करके मध्याह्नस्नान न कर सकें, तो भी प्रधान तर्पण करना विधेय है या नहीं? इसके उत्तरमें शातातपने लिखा है, कि प्रातःस्नानाङ्ग तर्पण करनेसे ही प्रसङ्गाधीन पञ्च यज्ञान्तर्गत प्रधान तर्पणको भी सिद्धि होती है। मनुने कहा है-द्विजगण स्नान करके जल द्वारा पितरोंको जो तर्पण करते हैं, उसी तर्पणके द्वारा ही उन्हें समस्त पितृयज्ञ क्रियाका फल प्राप्त होता है।

"यदेव तर्पयत्यद्भिः पितॄन् स्नात्वा द्विजोत्तमः।
तेनैव सर्वमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम्॥" (मनु)

मनुके मतसे—रात्रिके शेष चार दण्डसे आगामी रात्रिके प्रथम चार दण्डके भीतर स्नान करें, अर्थात् प्रातः और मध्याह्न स्नानका उल्लेख न रहनेके कारण अरुणोदय कालीन तर्पण द्वारा भी पितृयज्ञ तर्पणकी सिद्धि होती है। अरुणोदयके समय स्नान करनेसे सामवेदियोंको सन्ध्याङ्ग तर्पणके बाद पितृतर्पण करना चाहिये। पीछे मध्याह्नस्नान करने पर मध्याह्न सन्ध्याङ्ग तर्पण करके पितृतर्पण करना चाहिये। प्रातःस्नान न करनेसे सूर्योदयके बाद जो स्नान होता है, उसको अहःस्नान कहते हैं, इसलिये पितृतर्पण मध्याह्न सन्ध्याके बाद करें।

प्रातःकालमें स्नान और तर्पण करके यदि अहःस्नान न किया जाय, तो मध्याह्नकालमें प्रधान तर्पण नहीं करना पड़ता। कारण—अरुणोदय तर्पणसे ही प्रधान तर्पणको सिद्धि होती है। चन्द्रसूर्य ग्रहण और अर्द्धोदय आदि योगोंमें स्नान करनेसे केवल तर्पण करना पड़ता है।

शरीर असुस्थ होने पर यदि प्रातः और मध्याह्नस्नान न किया जाय, तो मध्याह्नसन्ध्याङ्ग तर्पणके बाद प्रधान तर्पण करना पड़ता है। किसी कारणसे जो व्यक्ति एक दिन प्रातः और मध्याह्नसन्ध्या कर अहःस्नान करता है, उसको मध्याह्नस्नानान्तर तर्पण करना चाहिये। सन्ध्यादि करके यदि तीर्थादिमें स्नान किया जाय तो भी स्नानके बाद तर्पण करना चाहिये।

जिस जलाशयका जल समस्त प्राणियोंके लिये उत्सर्गीकृत नहीं हुआ है और अभोज्य है अर्थात् म्लेच्छादि द्वारा खानित कूप पुष्करिणी आदिका जल और निपानज जलसे तर्पण न करना चाहिये। (कूपके पास गाय भैंस आदिके पीनेके लिये रचित जलाशयको निपान कहते हैं।)

"यन्न सर्वाय चोत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम्।
तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव पितृकर्मणि॥" (आह्निकतत्त्व)

वृष्टिके जलसे तर्पण न करना चाहिये। शूद्र और मेघ आदिके जलसे स्नान, आचमन, दान, देव और पितृतर्पण न करें। जो अज्ञ व्यक्ति वर्षा होते समय वृष्टिजल मिश्रित जलसे तर्पण करता है, उसको निश्चयसे घोर नरकमें जाना पड़ता है। ईंटके बने हुए स्थान पर बैठ कर पितृतर्पण न करना चाहिये।

"नेष्टकाचिते स्थाने पितॄंस्तर्पयेत्।" (शङ्खलिखित)

आर्द्र वस्त्र हो कर तर्पण करना हो तो जलमें रह कर ही तर्पण करना चाहिये। आर्द्रवस्त्र परित्याग करने पर तीर पर बैठ कर तर्पण करें। किन्तु तीर्थ-

में शुष्कवस्त्र पहन कर तर्पण करना हो, तो एक पैर जलमें और एक पैर स्थल पर रख कर तर्पण करें। जलमें उतर कर तर्पण करना हो तो नाभिमात्र जलमें रहें। स्थल पर तर्पण करनेके नियम कुछ विशेष है, यदि कोई उद्धृत जल द्वारा तर्पण करें तो उसमें तिल मिला लेवें। यदि तिलमिश्रित न किया जा सके, तो विचक्षण व्यक्ति को चाहिये कि, वह वामहस्तके द्वारा तिल ग्रहण करें।

तिलतर्पण करना हो तो अङ्गुष्ठ और अनामिका द्वारा वामहस्तसे तिल ग्रहण करें और पात्रस्थ करके पितरोंका तर्पण करें।

जो व्यक्ति तिलको रोमसंस्थ करके पितरोंका तर्पण करते हैं, पितृगण उस तर्पणके द्वारा तर्पित न हो कर उनका रुधिर और मल द्वारा तर्पित होते हैं।

> "रोमसंस्थान् तिलान् कृत्वा यस्तु सन्तर्पयेत् पितॄन्।
> पितरस्तर्पितास्तेन रुधिरेण मलेन च॥" (आह्निकतत्त्व)

वाम करमें जहाँ रोम न हों, वहीं तिल रखना चाहिये। किसी शुद्ध पात्रमें तिल रख कर तर्पण करना उचित है, ऐसा करनेसे लोमसे मिलनेकी सम्भावना नहीं। व्यवहार भी इसी तरहका देखनेमें आता है। विज्ञगण ताम्रनिर्मित तिलधानीको वामहस्तके मणिबन्धसे संयुक्त करके तर्पण किया करते हैं। तिलके बिना शुद्ध जलसे भी तर्पण हो सकता है। किन्तु तिलतर्पण अधिक फलदायक है।

कुश, रौप्य वा स्वर्णाङ्गुरीय दाहिने हाथकी अनामिकामें पहननी चाहिये। एक हाथसे तर्पण करना निषिद्ध है। यव और त्रिपत्र द्वारा देवतर्पण, तिल और कुशमोटक द्वारा पितृतर्पण करना विधेय है। तिलके अभावमें सुवर्ण और रजतयुक्त करके जल देवें। उसके अभावमें दर्भयुक्त जल द्वारा तर्पण करें। इसके सिवा अन्य प्रकारसे तर्पण न करें। तिलके अभावमें क्रमशः प्रतिनिधि कहे गये हैं। इससे ही स्पष्ट प्रतीयमान होता होता है, कि तिलयुक्त तर्पण ही प्रशस्त है। रविवार, शुक्रवार, द्वादशी और अमावस्यानिमित्तक श्राद्धके सिवा अन्य श्राद्धके दिन, सप्तमी, जन्मतिथि और संक्रान्तिमें तिल तर्पण न करें। किन्तु अयन और विषुवसंक्रान्ति, ग्रहणकाल, युगादि, प्रेतपक्ष (महालया) अमावास्यासे पहलेकी प्रतिपदासे (महालया अमावास्या तक प्रेतपक्ष कहलाता है) और गङ्गादि तीर्थमें सब दिन तिल तर्पण किया जा सकता है। दाहान्तमें और प्रेतके उद्देश्यसे निषिद्ध दिनको भी तिलतर्पण करें। ऐसी दशामें किसी दिन भी तिलतर्पण निषिद्ध नहीं है।

सौवर्ण, ताम्र वा रौप्यमय अथवा खड्गनिर्मित पात्रसे पितरोंका तर्पण करनेसे सब कुछ अक्षय होता है।

सुवर्णादिके पात्रके बिना अथवा तिल और दर्भके बिना तर्पणोदक पितरोंके लिये तृप्तिकर नहीं होता। किन्तु ऐसा समग्र द्रव्यके अभावमें समझें। सौवर्ण आदि पात्रमें सुवर्ण द्वारा उदक पितृतीर्थको स्पर्श करके देना पड़ता है।

जलसे तर्पण करना हो तो पात्रमेंसे जल ले कर अन्य शुद्ध पात्रमें वा जलसे भरे हुए गड्ढेमें निक्षेप करें, वहिःशून्य स्थानमें परित्याग न करें। तर्पणका जल जलपात्रसे एक बिलस्त ऊँचेसे छोड़ना चाहिये।

उपवीती हो कर देवोंका, निवीती हो कर मनुष्योंका और प्राचीनावीति हो कर पितरोंका तर्पण किया जाता है। तर्पण करते समय वामहस्त बहुतर कुशयुक्त करें और दक्षिणहस्त कुशपत्रद्वय निर्मित पवित्रयुक्त करें। किन्तु गृहियोंके लिये प्रतिदिन इन द्रव्योंका संग्रह कर कार्य करना अत्यन्त कठिन है; इसी लिए शास्त्रकारोंने एक सहज उपाय निर्धारित किया है। दहिने हाथकी तर्जनीमें रजत और अनामिकामें सुवर्ण धारण करें, ऐसा करनेसे ही कुशादि धारण करनेका कार्य हो जायगा।

> "तर्जन्या रजतं धार्यं स्वर्णं धार्यमनामया।
> कुशकार्यकरं यस्मान्नतु वन्याः कुशाः कुशाः॥" (आह्निकतत्त्व)

सामगगणको चाहिये कि वे सनकादि दिव्यमनुष्यका तर्पण प्रत्यङ्मुख हो कर करें। सामगीतर लोग उदङ्मुख हो कर तर्पण करें। देवगण पूर्व, पितृगण दक्षिण, मनुष्यगण प्रतीची और असुरगण उत्तर दिशाको भजना किया करते हैं, इसलिए तर्पणादि कार्य भी उक्त दिशाओंकी तरफ मुँह करके करने चाहिये। देवोंकी प्रीतिके लिए तीन बार जलतर्पण करें और ऋषियोंके लिए एक बार। पिता, पितामह, प्रपितामह, मातामह,

प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह, माता, पितामही और प्रपितामही, इनको तीन बार पितृतीर्थ द्वारा तर्पण करें। किन्तु माताके अनुरोधसे मातामही, प्रमातामही और वृद्धप्रमातामहीको एक बार तर्पण करना चाहिये।

इन बारह व्यक्तियोंमेंसे जो जीवित हों, उनको छोड़ कर उनसे ऊँचे पुरुषको ग्रहण कर बारह संख्या पूर्ण करें। संन्यासी और पतित व्यक्तिके लिए भी ऐसा ही विधान समझें।

तदनन्तर विमाता, ज्येष्ठ भ्राता, पितृव्य, मातुल आदिका तर्पण करें। बान्धवोंके तर्पणके बाद सुहृदोंका तर्पण करें। सुहृद् यदि असवर्ण हों तो भी उनका तर्पण किया जा सकता है।

ब्राह्मणको, असवर्ण होने पर भी भीष्माष्टमीमें भीष्मका तर्पण करना आवश्यक है। ब्राह्मण आदि जो वर्ण भीष्माष्टमीमें भीष्मको जल नहीं चढ़ाते, उनका एक वर्षमें कमाया हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है।

"ब्राह्मणाद्यास्तु ये वर्णा दद्युर्भीष्माय नो जलम्।
सम्वत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम॥"
(आह्निकतत्त्व)

पहले देवतर्पण, फिर मनुष्यतर्पण, पश्चात् मरीच्यादि ऋषितर्पण, उसके बाद अग्निष्वात्तादि पितरोंका तर्पण, अनन्तर चतुर्दश यमतर्पण करके पितरोंका तर्पण करें। पीछे रामतर्पण करें।

इन समस्त तर्पणोंमें अशक्त होने पर शङ्खमुनिलिखित संक्षिप्त तर्पण करें। इस संक्षिप्त तर्पणसे समस्त तर्पण सिद्ध होंगे।

स्त्री और शूद्र तर्पणमन्त्र ब्राह्मणके द्वारा पाठ करा कर खुद 'नमः नमः' उच्चारण करके जल चढ़ावें। किन्तु पित्रादिका नामोल्लेखपूर्वक जो वाक्य कहे जाते हैं, उन्हें स्त्री और शूद्र कहेंगे। अनुपनीत और जीवत्पितृक व्यक्ति प्रेततर्पणके सिवा अन्य तर्पण नहीं कर सकते।

तर्पण करनेसे पहले स्नानवस्त्रको निचोड़ना न चाहिये। याज्ञवल्क्यने कहा है, जो तर्पणसे पहले स्नानवस्त्र निचोड़ते हैं, उनके पितृगण महर्षियोंके साथ निराश हो कर चले जाते हैं।

तर्पण प्रयोग—पहले जो समय कहा गया है, उस समयके अनुसार प्राचीनावीती और दक्षिणमुख हो कर कृताञ्जलि पूर्वक—

"ओं कुरुक्षेत्रं गया गंगा प्रभास पुष्कराणि च।
तीर्थान्येतानि पुण्यानि तर्पणकाले भवन्त्विह॥"

यह मन्त्र पढ़ कर तीर्थ आवाहन करें। पीछे पूर्वमुख उपवीती हो कर देवतर्पण करें। "ॐ ब्रह्मास्तृप्यतां, ॐ विष्णुस्तृप्यतां ओं रुद्रस्तृप्यतां, ॐ प्रजापतिस्तृप्यतां" ब्रह्मादि प्रत्येक देवताको त्रिपत्रके साथ देवतीर्थ द्वारा एक एक अञ्जलि जलप्रदान करें। इस प्रकारसे देवतर्पण करके—

"ओं देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसोऽसुराः।
क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरवो जह्मगा खगाः॥
विद्याधरा जलाधारास्तथैवाकाशगामिनः।
निराहाराश्च ये जीवाः पापे धर्मे रताश्च ये॥
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया।"

यह मन्त्र पढ़ कर देवतीर्थके द्वारा एक अञ्जलि जल प्रदान करें। बादमें पश्चिममुख निवीती हो कर—

"ओं सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा॥
सर्वेते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा।"

यह मन्त्र दो बार पढ़ कर प्रजापतितीर्थके द्वारा दो अञ्जलि जल प्रदान करें। उसके बाद पूर्वमुख उपवीती हो कर "ॐ मरीचिस्तृप्यतां, ॐ अत्रिस्तृप्यतां, ॐ अङ्गिरास्तृप्यतां, पुलस्त्यस्तृप्यतां, ॐ पुलहस्तृप्यतां, ॐ क्रतुस्तृप्यतां ॐ प्रचेतास्तृप्यतां ॐ वशिष्ठस्तृप्यतां ॐ भृगुस्तृप्यतां, ॐ नारदस्तृप्यतां" यह कह कर मरीचिसे नारद पर्यन्त यथाक्रमसे प्रत्येकको देवतीर्थ द्वारा एक एक अञ्जलि जल चढ़ावें।

उसके उपरान्त दक्षिणमुख प्राचीनावीती हो कर ॐ अग्निष्वात्ता पितरस्तृप्यन्तामितत् सतिलोदकं तेभ्यः स्वधा, ॐ सौम्याः, ॐ हविष्मन्तः, ॐ उष्मपाः, ॐ सुकालिनः, ॐ बर्हिषदः, ॐ आज्यपाः इनको पितृतीर्थ द्वारा सतिल एक एक अञ्जलि जल देवें। पीछे—

"ओं यमाय धर्मराजाय मृतवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥
औडुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥"

इस मन्त्रको तीन बार पढ़ कर पितृतीर्थ द्वारा तीन अञ्जलि जल चढ़ावें। यदि समर्थ हो, तो चतुर्दश यमोंको प्रत्येकका नामोल्लेख कर तीन तीन अञ्जलि जल प्रदान करें।

उसके उपरान्त तर्पण समाप्तिपर्यन्त दक्षिणमुख प्राचीनावीती हो कर पितृतीर्थके द्वारा तिलतर्पण करें, कृताञ्जलि हो कर—

"ओं आगच्छन्तु मे पितर इमं गृह्णन्त्वपोऽञ्जलिं।"

इस मन्त्रको पढ़ कर पितरोंका आवाहन करें। पीछे "विष्णुरों अमुकगोत्रः पिता अमुकदेवशर्मा तृप्यतामेतत् सतिलोदकं तस्मै स्वधा।" यह वाक्य तीन बार कह कर तीन अञ्जलि जल पितरोंको चढ़ावें। इस तरह पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहको भी सतिल तीन अञ्जलि जल देवें।

"विष्णुरों अमुकगोत्रा माता अमुकी देवी तृप्यतामेतत् सतिलोदकं तस्यै स्वधा।" इस प्रकार कह कर सतिल तीन अञ्जलि जल देवें।

तत्पश्चात् पितामही और प्रपितामहीको भी इस तरहसे तीन अञ्जलि जल प्रदान करें। मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही, विमाता, पितृव्य, मातुल और भ्राता आदि सभीको एक एक अञ्जलि जल देवें।

पितृतर्पण समाप्त कर भीष्माष्टमीमें भीष्मका तर्पण करना विधेय है। भीष्माष्टमीके अलावा भीष्मके तर्पण करनेकी जरूरत नहीं।

भीष्मतर्पण—

"ओं वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृतिप्रवराय च।
अपुत्राय ददाम्येतत् सलिलं भीष्मवर्मणे॥"

इस मन्त्रको पढ़ कर एक अञ्जलि जल चढ़ावें।

"ओं भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियां॥"

इस मन्त्रके द्वारा भीष्मको नमस्कार करें। अनन्तर—

"ओं अग्निदग्धाश्च ये जीवाः येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यांतु परां गतिं॥"

इस मन्त्रको पढ़ कर एक अञ्जलि जल देवें।

"ओं ये बान्धवाबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिलां यांतु ये चास्मत्तोयकांक्षिणः॥"

इस मन्त्रको पढ़ कर एक अञ्जलि जल देवें। तदनन्तर—

"ओं आब्रह्मभुवनाल्लोका देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यंतु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनां।
मया दत्तेन तोयेन तृप्यंतु भुवनत्रयम्॥"

इस मन्त्रसे तीन अञ्जलि जल दे कर

"ओं आब्रह्मस्तम्बपर्यंतं जगत्तृप्यतु।"

इस मन्त्रसे तीन अञ्जलि जल चढ़ावें। तदुपरान्त—

"ओं ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः।
ते तृप्यंतु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्॥"

इस मन्त्रसे स्नानवस्त्र निचोड़ कर भूमि पर एक बार जल छोड़ना चाहिये।

"ओं पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयंते सर्वदेवताः॥"

इस मन्त्रसे पिताके चरणोंको नमस्कार करें। प्रतिदिन तर्पण करनेमें अशक्त होने पर—

"ओं आब्रह्मस्तम्बपर्यंतं जगत्तृप्यतु।"

इस मन्त्रसे तीन बार जलाञ्जलि दे कर तर्पण सम्पन्न किया जा सकता है।

संक्षेपमें तर्पणके मन्त्रान्तर—

"आब्रह्मस्तम्ब पर्यंतं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु सर्वे पितरो मातृमातामहादयः॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनां।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्॥"

शूद्र और यजुर्वेदियोंको तर्पणकालमें "तृप्यतु" शब्दका प्रयोग करें, जैसे—"ब्रह्मा तृप्यतु" "सनकश्च सनन्दश्च" इस मन्त्रको उत्तरमुखी हो, पढ़ कर दो अञ्जलि जल चढ़ावें।

"कुरुक्षेत्रं गया गंगा प्रभास-पुष्कराणि च।
तीर्थान्येतानि पुण्यानि तर्पणकाले भवन्त्विह॥"

इस मन्त्रके द्वारा पहले तीर्थ-आवाहन करना चाहिये।

शूद्रगण भीष्म-तर्पण करके पितृतर्पण करें। और सब नियम सामवेदियोंके समान हैं।

ऋग्वेदियोंका तर्पण यजुर्वेदियों जैसा है, सिर्फ अग्निष्वात्तादि पितरोंका तर्पण तीन बार करना पड़ता है। जन्माष्टमी तिथिमें सिर्फ जलसे ही पितरोंका तर्पण किया जाय, तो सौ वर्षके गया-श्राद्धका फल होता है।

(आह्निकतत्त्व)

तन्त्रके मतसे तर्पण तीन प्रकारका है—१ आन्तर, २ मानस और ३ बाह्य। सोम, अर्क और अनलके संघट्टसे स्खलित जो परम अमृत, उस दिव्य अमृतसे परम देवताका जो तर्पण किया जाता है, उसको आन्तर-तर्पण कहते हैं। आत्माको तन्मय कर अर्थात् जिन देवताका तर्पण करें, उस देवताके स्वरूपमें लीन हो कर जो तर्पण किया जाता है, उसका नाम है मानस-तर्पण। विशुद्ध स्थानमें बैठ कर तर्पण प्रारम्भ करना चाहिये। पहले गुरुका तर्पण कर पीछे मूलदेवीका तर्पण करें। पहले बीजद्वय ग्रहण करें, पश्चात् विद्या और हुतभुग्दयिता (स्वाहा) युक्त करके मूलदेवीका नाम ले कर "तर्पयामि नमः" इस पदका प्रयोग करें।

कुलवारि द्वारा देवता, अग्नि और ऋषियोंका तर्पण करें। तर्पणके आदिमें "तृप्यतां" इस पदका प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकारसे विष्णु, रुद्र, प्रजापति, ऋषिगण, पितृगण और भैरवोंका तर्पण करें। तर्पणके प्रारम्भमें 'त्रिपुर पूर्व' इस पदका प्रयोग करना आवश्यकीय है।* (त्रि०) ६ नेत्रपूरण।

तर्पणघाट—दिनाजपुर जिलेके सरहद परगनेके अधीन एक पल्लिग्राम। परगनेमें यही ग्राम सबसे मशहूर है और करतोया नदीके किनारे अवस्थित है। इसके पास ही अनेक गुफा और शालके वन हैं। प्रतिवर्ष चैत्र वा वैशाख मासमें यहाँ एक भारी मेला लगता है जिसमें प्रायः ४।५ हजार मनुष्य इकट्ठे होते हैं।

तर्पणमन्त्र (सं० क्ली०) 'क्रियामञ्जरी' नामक जैनग्रन्थमें उल्लिखित एक मन्त्र।

तर्पणी (सं० स्त्री०) तृप णिच् करणे ल्युट् ङीप्। १ गुरुस्कन्दवृक्ष, खिरनीका पेड़। २ गङ्गा। (त्रि०) ३ प्रीतिदायिनी, तृप्ति देनेवाली।

तर्पणीय (सं० त्रि०) तृप्तिके योग्य।

तर्पणेच्छु (सं० पु०) तर्पणं इच्छति इष-उ निपातनात् साधुः। १ भीष्म। (त्रि०) २ तर्पणाकांक्षी, जो तर्पण करनेमें इच्छुक हो।

तर्पयितव्य (सं० त्रि०) तृप-णिच्-तव्य। तृप्तिके योग्य।

तर्पिणी (सं० स्त्री०) तर्पयति प्रीणयति तृप-णिच-णिनि, ततो ङीप्। पद्मचारिणी लता, स्थल कमलिनी।

तर्पित (सं० त्रि०) तृप-णिच्-क्त। प्रीणित, सन्तुष्ट किया हुआ।

तर्पिन् (सं० त्रि०) तृप-णिच्-णिनि। १ प्रीणयिता, सन्तुष्ट करनेवाला। २ तर्पण करनेवाला।

तर्पिली (सं० स्त्री०) तृप् इल गौरा० ङीष्। पद्मचकारिणी। कहीं कहीं तल्पिली ऐसा भी पाठ देखा जाता है जिसका अर्थ भी यही है। तर्पिली कपिलकादि०। रस्य ल, तल्पिली। स्वार्थे कन्। तर्पिलिका, तल्पिलिका।

तर्बूज (हिं० पु०) तरबूज देखो।

---

* "तर्पणञ्च त्रिधा प्रोक्तं साम्प्रतं तच्छृणुष्व मे।
सोमार्कानलसंघट्टात् स्खलितं यत्परामृतम्॥
तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत् परदेवतां।
आन्तरं तर्पणं ह्येतन्मानसं शृणु साम्प्रतम्॥
आत्मानं तन्मयम् कृत्वा सदा सन्तर्पितात्मवान्।
सर्वदा सर्वकार्येषु सन्तुष्ट स्थिरमानसः॥
उपविष्टः शुचौ देशे ततस्तर्पणमारभेत्।
तर्पयित्वा गुरूनादौ मूलदेवीञ्च तर्पयेत्।
बीजद्वयं ततोविद्या हुतभुग्दयिता तथा।
ततो देव्याः स्वनामांते तर्पयामि नमः पदं॥
देवानग्नीनृषींश्चैव तर्पयेत् कुलवारिणा।
तर्पणादौ प्रयुञ्जीत तृप्यताम् वृद्ध भैरव॥
तथैव परमेशानि विष्णुं रुद्रं प्रजापतिं।
एवं ऋषीन् प्रतर्प्याथ पितॄनपि च भैरवान्॥
तृप्यतां सुन्दरीमाता पिता भैरव तृप्यताम्।
आदौ त्रिपुरपूर्वं च तर्पणे विनियोजयेत्॥"

(गन्धर्वतन्त्र)

तर्मन् (सं॰ क्ली॰) तरति तॄ-मनिन्। सर्वधातुभ्यो मनिन्। उण् ४।११४। यूपाग्र, यज्ञके काठका अगला भाग।

तर्य (सं॰ पु॰) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

तर्वट (सं॰ पु॰) तर्वति द्रुतं गच्छति तर्व बाहुलकात् अटन्। १ वत्सर, वर्ष। २ चक्रमर्द, चकवँड़, पँवार।

तर्रा (हिं॰ पु॰) चाबुकका फीता।

तर्राना (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका गाना। तराना देखो।

तर्री (हिं॰ स्त्री॰) प्रत्येक ऋतुमें होनेवाली एक प्रकारकी घास।

तर्ष (सं॰ पु॰) तृष तृष्णायां भावे घञ्। १ अभिलाष इच्छा। २ तृष्णा, चाह। ३ प्लव, बेड़ा। ४ समुद्र। ५ सूर्य।

तर्षण (सं॰ क्ली॰) तृष भावे ल्युट्। १ पिपासा, तृष्णा प्यास। २ अभिलाष, इच्छा।

तर्षित (सं॰ त्रि॰) तर्षोऽस्य जातः। तर्ष तारका॰ इतच्। १ तृषित प्यासा। २ जाताभिलाष, वाञ्छित, चाहा हुआ।

तर्षुल (सं॰ त्रि॰) तृष-उलच्। तृष्णायुक्त, जिसे प्यास लगी हो।

तर्षावत् (सं॰ त्रि॰) तृषावत् वेदे पृषो॰ साधुः। तृषित, प्यासा।

तर्हन् (सं॰ पु॰) अनिष्ट करना, बुराई करनेकी क्रिया।

तर्हि (सं॰ अव्य॰) तद्-र्हिल्। उस समय, तब।

तल (सं॰ पु॰-क्ली॰) तलति तल-अच्। १ अधोभाग, पेंदा, तला। २ पाताल। ३ पृष्ठदेश, किसी वस्तुका बाहरी फैलाव। ४ मूलदेश, वह स्थान जो किसी वस्तुके नीचे पड़ता हो। ५ हथेली। ६ पैरका तलवा। ७ मध्यदेश। ८ स्वरूप, स्वभाव। ९ कानन, जङ्गल। १० गर्त, गड्ढा। ११ ज्याघातवारण, चमड़ेका बल्ला जो धनुषकी डोरीकी रगड़से बचनेके लिये बाईं बाँहमें पहना जाता है। १२ घरकी छत, पाटन। १३ कार्यबीज। १४ थप्पड़, तमाचा। १५ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। १६ खड्गादिमुष्टि, तलवार इत्यादिका मूठ। १७ सव्य हस्त द्वारा तन्त्रीवादन, बाएँ हाथसे वीणा बजानेकी क्रिया। १८ गोधा, गोह। १९ कलाई, पहुँचा। २० नरकविशेष, एक नरकका नाम। इस नरकमें व्यभिचारी, हत्याकारी इत्यादि वास करते हैं। २१ आधार, सहारा। २२ महादेव। २३ बालिश्त, बित्ता। २४ जलके नीचेकी भूमि। २५ वक्ष, छाती।

तलक (सं॰ क्ली॰) तलेन गभीरगर्त्तेन कायति कै-क। १ पुष्करिणी, ताल, पोखरा। २ फलविशेष, एक फलका नाम।

तलकर (सं॰ पु॰) १ एक प्रकारका कर या लगान। यह कर मुर्शिदाबाद जिलेमें प्रचलित है। सूखे तालाबोंकी जमीनके स्वत्वको तलकर कहते हैं।

२ मुर्शिदाबाद जिलेके एक बिलका नाम। इस जिलेमें जितने बिल हैं सबसे यही बिल बड़ा है। बहरमपुरसे कई मील पश्चिमकी ओर जानेसे ही यह बिल देखा जाता है।

तलकाड़—१ महिसुर राज्यमें महिसुर जिलेके अन्तर्गत एक तालुक।

२ उक्त तालुकका प्राचीन नगर। यह अक्षा॰ १२° ११´ उ॰ और देशा॰ ७७° २´ पू॰ पर महिसुर शहरसे २८ मील दक्षिण-पूर्वमें कावेरी नदीके किनारे अवस्थित है। पूर्व समयमें यह नगर तलकाडू, तल्काड़, तथा तालकाड़ नामसे भी प्रसिद्ध था। लोकसंख्या प्रायः ३८५७ है।

इस नगरमें कावेरी नदीके एक किनारे बहुतसे शैवमन्दिर देखे जाते हैं। उक्त मन्दिरोंका सर्वांश बालूसे ढका हुआ है। कावेरी नदीके दूसरे किनारे जो मन्दिर विद्यमान है, उसके विषयमें निम्नलिखित दन्तकथाएँ प्रसिद्ध हैं। किसी समय एक भिक्षुक महादेवकी अर्चनाके लिये तलकाड़में आये हुए थे। यहाँ आ कर वे बड़े ही असमञ्जसमें पड़ गये। असंख्य शिवमन्दिर देख कर वे सोचने लगे, कि यदि सब मन्दिरमें पूजा की जाय तो पूजाके जितने उपकरण उनके पास सञ्चित हैं, उतनेसे कुछ भी नहीं हो सकता, अथवा सब मन्दिरमें पूजा किये बिना भी नहीं बनता, क्यों कि यदि वे किसी मन्दिरमें अर्चना न करें, तो उस मन्दिरकी देवमूर्त्ति असन्तुष्ट हो जाँयगी। ऐसा सोचते सोचते अन्तमें उन्होंने संगृहीत अर्थसे उरद खरीदा। वे एक एक उरद प्रति मन्दिरमें उत्सर्ग करने लगे। किन्तु आश्चर्य है कि जब एक मन्दिरमें उपासना बाकी रह गई, तब सब उरद

खर्च हो गया। इस पर वह भिक्षुक बहुत ही चिन्तित हो पड़े। जिस मूर्तिकी पूजा न हुई, उन्हें वे नदीके दूसरे किनारे उठा ले गये, इस ख्यालसे कि दूसरी दूसरी मूर्त्तियाँ उन पर अपनी प्रधानता कर न सकें।

प्राचीन तलकाड़ नगरकी अट्टालिकामें बालूसे ढंकी हुई हैं। यह बालूराशि छोटे पहाड़की नाईं प्रायः १ मील लम्बी है। प्रतिवर्ष १० फुटके हिसाबसे यह बालुराशि बढ़ती जा रही है। उक्त बालुकास्तूपसे ३० मन्दिर लोप हो गये हैं। उक्त मन्दिरोंमेंसे दोके शिखर अब भी दीख पड़ते हैं। किसी किसी पर्वोपलक्षमें कीर्तिनारायणके मन्दिरकी बालुकाराशि कुछ कुछ अलग की जाती है। इस नगरके प्रायः सभी अंश बालुकामय है। वर्तमान अवस्था देखनेसे अनुमान करते हैं, कि शेष अंश भी शीघ्र ही बालुकाच्छादित हो जायगा। स्थानीय लोगोंका कहना है, कि इस नगरकी अन्तिम रानीने यह स्थान बालूमें परिणत होगा ऐसा शाप दे कर कावेरी नदीमें अपना प्राणत्याग किया था।

तलकाड़के अधिवासियोंमें प्रायः सभी हिन्दू हैं। १८६८ ई० तक तलकाड़ नर्सीपुर तालुकका प्रधान शहर था। संस्कृत भाषामें तलकाड़को दलवन कहते हैं। दलवनपुर नामसे भी इसका उल्लेख देखा जाता है।

तलकाड़का प्राचीन इतिहास नहीं मिलता और अगर मिलता भी है तो २८८ ई०से उक्त ई०में गङ्गवंशीय हरिवर्माने तलकाड़में अपनी राजधानी स्थापन की। ६ठी शताब्दीमें इस वंशके किसी दूसरे राजाने तलकाड़का दुर्गादि संस्कार किया। ८वीं शताब्दीके अन्तमें चोल-राजगण यहाँ शासन करते थे। यह शहर चेर वंशीय राजाओंके अधीन भी कुछ काल तक था। १०वीं शताब्दीको यहाँ हयसाल बल्लाल वंशकी राजधानी थी। १६वीं शताब्दीमें पुनः गङ्गवंशकी जयपताका इस नगरमें फहरने लगी। शिवसमुद्रके पराक्रमसे ही यह स्थान फिरसे गङ्गवंशके हाथ लगा था। किन्तु इस वंशके तीनसे अधिक राजा तलकाड़में राज्य न कर सके। बाद यह विजयनगरके किसी करदराजाके अधीन आ गया। अन्तमें १६३४ ई०को महिसुरके हिन्दूराजाने युद्धमें विजयी हो कर तलकाड़ पर अधिकार कर लिया। १८९८ ई०में यहाँ म्युनिसपालिटी स्थापित हुई है।

तलकावेरी—कावेरी नदीका उत्पत्तिस्थल। यह कुर्ग प्रदेशमें पश्चिमघाट पर्वतके ब्रह्मगिरि अंशमें अक्षा० १२°२१´ १०´´ उ० और देशा० ७५°३४´१०´´ पू०में अवस्थित है। यहां एक देवमन्दिर है। अनेक हिन्दूयात्री प्रतिवर्ष यहाँ आते हैं। कार्तिक अथवा अगहन महीनेमें मलमास पर्वोपलक्षमें बहुतसे लोग स्नान करनेको यहाँ आते हैं। इस समय कुर्गके प्रत्येक परिवार स्नान करनेके लिये एक एक प्रतिनिधि भेजते हैं। प्रतिवर्ष मन्दिरमें गवर्मेण्टका प्रायः २३२०) रु० खर्च होता है।

तलकी (हिं० स्त्री०) पञ्जाब, अवध बंगाल, मध्यप्रदेश तथा मन्द्राजमें मिलनेवाला एक पेड़का नाम। इसका काठ लाल और कुछ कुछ भूरा होता है और खेतीके सामान इत्यादि बनाने तथा मकानोंमें लगानेके काममें आता है।

तलकोट (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम।

तलकोन—मन्द्राजके कड़ापा जिलेके अन्तर्गत वायलपाड़ तालुकका एक मन्दिर, जलप्रपात और उपत्यका। यह अक्षा० १३°४७´ उ० और देशा० ७९°१४´पू०के मध्य पालकोंड पहाड़ पर अवस्थित है। इसके आस पासमें धान और ईखकी खेती होती है। समूचा पहाड़ घने जङ्गलसे आच्छादित है जिसमें कई तरहके हरिन और सूअर पाये जाते हैं। मन्दिर भी उसीके बीच अवस्थित है। एक ओर जलप्रपात कलकल शब्द करता हुआ बह रहा है। इसके पास ही दो विशाल आमके दरख्त हैं जिन्हें लोग राम और लक्ष्मण नामसे पुकारते हैं। ऊपर जानेकी जितनी राहें गई हैं सभी सङ्कीर्ण हैं और हमेशा जंगली जानवरोंका डर बना रहता है। जलप्रपात ७० या ८० फुट नीचे जमीन पर गिरता है। कहते हैं, कि इस जलप्रपातमें स्नान करनेसे सभी पाप जाते रहते हैं।

शिवरात्रिके उपलक्षमें अनेक यात्री दूर दूर देशोंसे यहाँ आते हैं। यात्रियोंमें विशेष कर स्त्रियोंकी संख्या ही अधिक रहती है। प्रवाद है, कि इस प्रपातमें स्नान कर उक्त मन्दिरमें पूजा करनेसे बन्ध्या भी पुत्रवती होती हैं तथा जिनको केवल लड़की ही होती है, वे भी

यहाँके प्रभावसे पुत्र प्रसव करती हैं। सचमुच यहांका दृश्य देखने योग्य है।

तलगङ्ग—१ पञ्जाबके अटक जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३२´ ३४´ और ३३´ १२´ उ० तथा देशा० ७१´ ४८´ और ७२´ ३२´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ११९८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८२५९४ है। इसमें ८६ ग्राम लगते हैं। लवणके पर्वतसे यह तहसील कहीं कहीं विच्छिन्न हो गई है। मुसलमान, हिन्दू, सिख, ईसाई प्रभृति इस स्थानमें वास करते हैं। मुसलमानोंकी संख्या सबसे अधिक है।

गेहूँ, जौ, बाजरा, ज्वार, [illegible]हरी, उरद और रूई यहाँके प्रधान उत्पन्नद्रव्य है।

राजस्व एक लाख रुपयेसे अधिक है। इस तहसीलमें एक दीवानी, एक फौजदारी विचारालय और २ थाने हैं। एक तालुकादार सब प्रकारके विचारकार्य करते हैं।

२ पञ्जाबके अटक जिलेके अधीन तलगङ्ग तहसीलका प्रधान शहर। यह अक्षा० ३२´ ५५´ उ० और देशा० ७२´ २८´ पर पू० झेलम नगरसे ८० मील उत्तर-पश्चिम कोणमें अवस्थित है। इस शहरमें म्युनिसपालटीका बन्दोबस्त है। लोकसंख्या प्रायः ६७०५ है, जिनमें मुसलमानोंको संख्या सबसे अधिक है।

१६२५ ई०के प्रारम्भमें किसी अवान सर्दारने यह नगर स्थापन किया, तभीसे इसी शहरमें स्थानीय राजकार्य चलाया जाता है। सिखके राजत्वकालमें तथा ब्रटिश शासनकालमें भी इस स्थानसे विचारालयादि स्थानान्तरित न हुए। यह शहर एक मालभूमिके ऊपर बसा हुआ है। कई एक गुहा हो कर नगरका जल निकास होता है।

तलगङ्गके निकटवर्त्ती स्थानमें भिन्न भिन्न प्रकारके अनाज उत्पन्न होते हैं। यहाँका व्यवसाय बहुत विस्तृत है। यहां एक प्रकारका जूता तैयार होता है। जूतेमें सुनहरी जड़ाउका काम किया हुआ रहता है, जो दूसरे दूसरे प्रदेशोंमें भेजे जाते हैं। पञ्जाबकी स्त्रियां इस जूतेको काममें लाती हैं।

सिख-आधिपत्यके समय सरदार जिस दुर्गमें रहते थे, वह मट्टीका बना हुआ है। अभी इस दुर्गमें पुलिस और तहसीलकी कचहरी है।

अङ्गरेजके शासनकालसे बहुत दिनों तक इस स्थानमें एक सैन्यावास था। किन्तु १८८२ ई०में वह यहाँसे उठा दिया गया।

शहरमें एक स्कूल और एक दातव्य औषधालय है।

तलगू (हिं० स्त्री०) तैलङ्ग देशको भाषा।

तलघरा (हिं० पु०) तहखाना।

तलघाट—मन्द्राज विभागके सालेम जिलेका दक्षिणांश। पहले यह प्रदेश कोङ्गु देशके अन्तर्गत था। कोंगुवंशीय वा गङ्गराजगण चेलराजाओंके पहले इस प्रदेशमें शासन करते थे।

५वीं शताब्दीमें कोङ्गुवंशीय राजाओंने दुर्ग तक तथा ८वीं शताब्दीमें तुङ्गभद्रा नदीतीरस्थ हरिहर तक अपना राज्य फैलाया था। ८९४ ई०में ये लोग चोलवंशसे अधिकारच्युत किये गये। ११वीं शताब्दीके मध्य चोलराजाओंके अधीन कई एक सामन्त प्रबल हो उठे। इनमेंसे हयशाल वंशीय किसी सामन्तने १०८० ई०में सालेम प्रदेश पर अधिकार किया। १३१० ई०में यह प्रदेश मुसलमानोंके हाथ लगा। कुछ कालके बाद यह विजयनगर राज्यमें मिला लिया गया। १६वीं शताब्दीके अन्तको इस प्रदेशमें नायकोंका आधिपत्य रहा। १७९९ ई०में श्रीरङ्गपत्तनके अवरोधके बाद यह प्रदेश सदाके लिये ब्रटिश राज्यके अन्तर्भुक्त किया गया।

तलचेरी—मन्द्राज विभागके अन्तर्गत मलवार जिलेके कोत्तयम् तालुकका एक शहर और बन्दर। यह अक्षा० ११´ ४५´ उ० और देशा० ७५´ २९´ पू०के मध्य कालिकट शहरसे २४ मील और मन्द्राजसे रेल द्वारा ४५७ मील पर अवस्थित है। इस शहरमें म्युनिसपालिटिका प्रबन्ध है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई प्रभृति भिन्न भिन्न धर्मके लोग इस शहरमें वास करते हैं। हिन्दूको संख्या सबसे अधिक है। इस नगरको तेल्लिचेरी और तलचेरी भी कहते हैं।

तलचेरी मलबार विभागका एक उपविभाग है। इस स्थानमें उत्तर मलबार जिलेकी अदालत, कारागार

शुल्क कार्यालय, गवर्मेंटके अन्यान्य कार्यालय तथा बहुतसे वाणिज्य कार्यालय हैं। शहर स्वास्थ्यकर और देखनेमें सुश्री है। यह वृक्षमय पहाड़के ऊपर बसा हुआ है। पहाड़ समुद्र तक फैला हुआ है। निकटवर्ती स्थान ले कर शहरका भूपरिमाण ५ वर्गमील है। एक समय इसके चारों ओर एक दृढ़ मट्टीका प्राचीर शोभा देता था। नगरके उत्तरमें तलचेरी दुर्ग है, जो आज तक भी सुदृढ़ भावमें विद्यमान है। यह दुर्ग अभी कारागार-रूपमें व्यवहृत होता है। दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पश्चिम भागमें दो समचतुर्भुज आकार मैदान हैं। दक्षिण-पूर्व मैदानमें एक अश्वारोही योद्धा देखा जाता है। उत्तरकी ओर एक दूसरा मैदान है, जो दुर्गसे १५० गजकी दूरीमें एक दृढ़ प्राचीर दुर्गकी अव्यवहित सीमाकी रक्षा करता है। इस प्राचीरमें कहीं कहीं बन्दूक छोड़नेका छेद था।

कहवा, इलायची और चन्दनकाष्ठ इस स्थानसे दूसरे दूसरे स्थानोंमें भेजे जाते हैं। यहाँकी रफ्तनी आमदनीसे दुगनी है।

वार्षिक वृष्टिपात प्राय १२४·३४ इञ्च है।

१६८३ ई०में इष्ट इण्डिया कम्पनीने मिर्च और इलायचीका व्यवसाय करनेके लिये यहाँ एक वाणिज्य-कोठी खोली थी। १७०८से १७६१ ई० तक कई बार कम्पनीको चेराकलके राजा तथा स्थानीय दूसरे दूसरे जमींदारोंसे तलचेरी और उसके समीपमें बहुतसी जमीन मिली थी। उन्हें जमींदारोंमें शुल्क वसूल तथा विचारादि करनेका अधिकार भी दिया गया था। हैदरअलीने कम्पनीकी बहुतसी अधिकृत जमीन हस्तगत कर ली। १७६६ ई०में इस कोठीने रेसिडेन्सीका आकार धारण किया। १७८० ई०से १७८२ तक यह प्रदेश हैदर अलीके सेनापति सरदारखाँसे अवरुद्ध अवस्थामें था। बम्बईसे सेनाने आ कर इसे उद्धार किया। महिसुरयुद्धमें अङ्गरेजी सेना तलचेरीसे घाट पर्वत पार हुई थी। लड़ाईके बाद इस स्थानमें उत्तर मलबारके सुपरिण्टेण्डेण्टका कार्यालय और प्रादेशिक शासन-सभा स्थापित हुई। लोकसंख्या प्रायः २७८८३ है।

तलकट (हिं० स्त्री०) किसी पदार्थके नीचे बैठी हुई तलौंछ, गाद।

तलताल (सं० पु०) तलेन करतलेन ताड्यते ताड़ कर्मणि घञ् डस्य लः। करतल द्वारा वादनीय वाद्यभेद, हथेलीसे बजानेका एक प्रकारका बाजा।

तलत्र (सं० क्लो०) तलं त्रायते त्रै-क। चमड़ेका बना हुआ दस्ताना।

तलत्राण (सं० क्लो) तलं करतलं त्रायते त्रै-करणे ल्युट्। करतलरक्षक, चमड़ेका बना हुआ दस्ताना।

तलध्वनि (सं० पु०) तलस्य ध्वनिः, ६-तत्। करतलका शब्द।

तलना (हिं० क्रि०) कड़कड़ाते हुए घी और तेलमें डाल कर पकाना।

तलपट (हिं० वि०) नाश, बरबाद, चौपट।

तलप्रहार (सं० पु०) तलेन प्रहारः, ३-तत्। तमाचा, थप्पड़।

तलफ़ (अ० वि०) नष्ट, बर्बाद।

तलफना (हिं० क्रि०) १ बेचैन होना, छटपटाना। २ व्याकुल होना, विकल होना।

तलफ़ी (फा० स्त्री०) १ खराबी, बरबादी। २ हानि।

तलब (अ० स्त्री०) १ अन्वेषण, खोज, तलाश। २ तृष्णा, चाह, इच्छा। ३ आवश्यकता, माँग। ४ बुलावा, बुलाहट। ५ तनखाह, वेतन।

तलबगार (फा० वि०) चाहनेवाला, माँगनेवाला।

तलबाना (फा० पु०) १ एक प्रकारका खरचा। यह गवाहोंको तलब करनेके लिये टिकटके रूपमें अदालतमें दाखिल किया जाता है। २ समय पर मालगुजारी नहीं देनेके कारण दण्डके रूपमें जमींदारकी ओरसे लिये जानेका खरचा।

तलबी (अ० स्त्री०) १ बुलाहट। २ माँग।

तलबेली (हिं० स्त्री०) उत्कण्ठा, छटपटी, बेचैनी।

तलभेद (सं० पु०) तलस्य भेदः, ६-तत्। वह जिसके पैंदेमें छेद हो गया हो।

तलमल (सं० पु०) तलकट, तरौंछ, गाद।

तलमलाहट (हिं० स्त्री०) व्याकुलता, बेचैनी।

तलमीन (सं० पु०) तले जलनिम्ने स्थितो मीनः। जलनिम्नस्थित मत्स्य, झींगा मछली।

तलम्ब—पञ्जाबके मुलतान जिलेके अन्तर्गत कबीरवाल तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३०°३१′ उ० और देशा० ७५°१५′ पू०के मध्य मुलतान शहरसे ५२ मील उत्तर-पूर्वमें तथा चन्द्रभागा नदीके बायें किनारेसे २ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। शहरमें म्युनिसपालिटी है। लोकसंख्या प्रायः २५२६ है।

शहरसे १ मील दक्षिणमें एक प्राचीन दुर्ग था। उस दुर्गकी ईंटोंसे तलम्बके कई एक राजभवन बनाये गये हैं। दुर्गकी ईंट प्राचीन मुलतानकी अट्टालिकाकी ईंटसी हैं। बहुतोंका मत है, कि अलेकसन्दर इसी स्थान पर चन्द्रभागा उत्तीर्ण हुए थे और यहाँ उन्होंने मल्लियोंको पराजित कर इस प्रदेश पर अधिकार जमाया था। यह प्रदेश एक बार महमुदके भी हाथ लगा था। तैमूरने भारतवर्षमें आ कर तलम्बको लूटा तथा अधिवासियोंकी हत्या की. किन्तु दुर्ग नष्ट नहीं किया।

तलम्बमें अनेक ध्वंसावशेष देखे जाते हैं। कहा जाता है, कि महमुद लङ्गके समय (१५१०-१५२५)-में चन्द्रभागा नदीकी गति परिवर्त्तित हो कर यह स्थान परित्यक्त हो गया है। यहाँका विस्तीर्ण ध्वंसावशेष एक नगर सरीखा दीख पड़ता है; जो दक्षिणकी ओर ऊँचे दुर्गसे सुरक्षित है। बहिर्भागका मट्टीका प्राचीर २०० फुट मोटा और २० फुट ऊँचा है। इस प्राचीरके ऊपर प्रायः समान ऊँचाईका एक दूसरा प्राचीर देखनेमें आता है। पहले दोनोंका सम्मुखभाग बड़ी बड़ी ईंटोंसे समाच्छादित था।

वर्त्तमान तलम्ब ग्राममें एक पुलिस, एक डाकघर, एक स्कूल, एक चिकित्सालय और एक सराय है। ये सब एक अट्टालिकाके मध्य अवस्थित है।

शहरसे प्रायः ½ मील दक्षिण-पश्चिममें एक छावनी स्थान और एक सुन्दर कूप है।

तलयुद्ध (सं० क्ली०) तलस्य चपेटस्य आघातेन युद्धं। चपेटाघात द्वारा युद्ध, मुक्का-मुक्कीसे लड़ाई करनेकी क्रिया।

तललोक (सं० पु०) तलस्थो लोकः, मध्यपदलो०। पाताल।

तलव (सं० त्रि०) तलं हस्तादि तलं वाति निहन्ति वा-क। तलवाद्यकारक।

तलवकार (सं० पु०) १ सामवेदकी एक शाखा। २ एक उपनिषद्का नाम।

तलवा (हिं० पु०) पैरके नीचेका भाग।

तलवा—भागलपुर जिलेकी एक छोटी नदी। पहले यह नदी बहुत बड़ी थी। स्थान स्थान पर इसका प्राचीन गर्भ देखा जाता है जिसकी चौड़ाई लगभग १५से २० चेनकी है। देखनेसे मालूम पड़ता है कि अभी जिस स्थानसे तिलजूगामें जल आता है, पहले उसी स्थानसे इस नदीमें जल आता था। वर्षा ऋतुके बाद यह नदी कहीं कहीं सूख जाती है। नदीगर्भस्थ शुष्क स्थानमें फसल उपजाई जाती है। मट्टी पंकसे आच्छादित रहनेके कारण फसल भी खूब लगती है। यह नदी निःशङ्कपुरकूरा परगनेके पश्चिमकी ओर प्रवाहित है। वर्षा कालमें सोनबर्षा और बैजनाथपुर तक बोझसे भरी हुई नावें आती जाती है। यह नदी पर्वान और लोरनके साथ मिली है।

तलवार (हिं० स्त्री०) १ खड्ग, कृपाण। असि, खड्ग देखो। २ सोडा तैयार करनेके लिये जिस हँसियेसे गुल्मादि कतरे जाते हैं, उसे भी तलवार कहते हैं।

तलवारण (सं० क्ली०) तले बाहुतले वारयति वारि ल्युट्। १ ज्याघात वारणार्थ हस्ततलबद्ध चर्मभेद, वह कवच जो धनुषकी डोरीके आघातसे बचनेके लिये हाथके तले बाँधा जाता है। २ खड्ग, तलवार। ३ म्यान।

तलसान—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागमें झालावारका एक छोटा राज्य, इसमें ७ छोटे छोटे ग्राम लगते हैं। भूपरिमाण ४३ वर्गमील है और राज्यकी आय प्रायः १०५००) रुपये की है जिनमेंसे १०५२) रुपये वृटिश सरकारको और जूनागढ़के नवाबको देने पड़ते हैं। लोकसंख्या प्रायः १६८१ है। यहाँके राजा झालाराजपूत वंशोद्भव हैं।

बम्बई-बरोदा और मध्यभारतीय रेलपथकी बढ़वान शाखाके लखतर ष्टेसनसे ११ मील दक्षिणपूर्वमें तलसान ग्राम अवस्थित है। प्रतिकनागके मन्दिरके लिये यह ग्राम विशेष प्रसिद्ध है। काठियावाड़में सर्पपूजाके जो सब निदर्शन पाये जाते उनमेंसे यह एक है।

तलसारक (सं० क्ली०) तले सारो बलं यस्य, बहुव्री० कप्। घोटकका वक्षस्थलबन्धन रज्जु, वह रस्सी जो घोड़ेकी छातीमें बँधी रहती है। इसके संस्कृत पर्याय—वक्त्रपट्ट और तलिका है। किसी किसी पण्डितके मतसे इसका अर्थ घोटकका अन्नभोजनपात्र है अर्थात् वह बरतन जिसमें घोड़ेको खानेके लिये अनाज दिया जाता है।

तलस्थित (सं० त्रि०) तले स्थितः, ७-तत्। जो नीचे रहता है।

तलहटी (हिं० स्त्री०) पहाड़की तराई, घाटी।

तलहारि—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलेके अन्तर्गत एक स्थान। राजिममें जगपालका जो उत्कीर्ण लेख मिला है, उसके पढ़नेसे जाना जाता है, कि रत्नदेवके राजत्वकालमें जगपालने यह स्थान जय किया था। फिर ८६६ सम्वत्के रत्नपुर शासनमें लिखा है, कि तलहारिसे आजल्लदेव वार्षिक कर वसूल करते थे।

तलहृदय (सं० क्ली०) तलस्य हृदयमिव। पदतलका मध्यभाग तलवा।

तला (सं० स्त्री०) तल स्त्रियां टाप्। गोधा, चमड़ेका बना जो धनुषकी डोरीकी रगड़से बचनेके लिये बाईं बाँहमें पहना जाता है।

तला (हिं० पु०) १ किसी वस्तुके नीचेकी सतह, पेंदा। २ जूतेके नीचेका चमड़ा।

तलाई (हिं० स्त्री०) छोटा ताल, तलैया, बावली।

तलाक़ (अ० पु०) पति-पत्नीका विधान पूर्वक सम्बन्ध त्याग।

तलाची (सं० स्त्री०) तलमञ्चति अन्च क्विप् स्त्रियां ङीष्। नलनिर्मित कट, बेंत या बाँसकी फट्ठियोंकी बनी हुई चटाई।

तलाज—बम्बई विभागके अन्तर्गत काठियावाड़के भवनगर राज्यका नगर। यह अक्षा० २१° २१' १५" उ० और देशा० ७२° ४' ३०" पू० पर भवनगरसे ३१ मील दक्षिणमें अवस्थित है। नगर चारों ओर दीवारोंसे घिरा हुआ है। इसका दृश्य एक छोटा दुरारोह सूक्ष्म पर्वत सरीखा है। यह समुद्रपृष्ठसे ४०० फुट ऊँचा है। इसके पासके एक पहाड़के ऊपर एक हिन्दू-मन्दिर और एक सुन्दर तालाब है। उस तालाबका जल अत्यन्त निर्मल है। पहाड़में कहीं कहीं कन्दरा भी है; पहले डकैत इन्हीं कन्दराओंमें छिप कर रहते थे। १८२३ ई० तक भी उनमें डकैतोंका रहना देखा गया था।

तलाजिया—गुजराती ब्राह्मण संप्रदायका एक भेद। भवनगरसे ३१ मील दक्षिण तलाज नामका एक ग्राम है। वहींसे इन लोगोंका निकास हुआ है, इसलिये ये तलाजिया नामसे प्रसिद्ध हैं। आज कल ये लोग विशेष रूपसे दुकानदारीसे गुजारा करते हैं। नासिक, बम्बई, अम्बसर और सुरत आदि जिलोंमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। ब्राह्मणकर्मकी अपेक्षा वैश्यकर्ममें इनकी प्रवृत्ति विशेष देखी जाती है।

तलाड़ु—तामिल भाषामें लिखे हुए बहुतसे पद्य। इनमें देवताओंकी शैशवावस्था वर्णित है। प्रतिवर्ष निर्दिष्ट पर्वके दिनमें मन्द्राजके दक्षिणांशवासी बहुतसी छोटी छोटी देवमूर्तियोंको हिंडोले पर झुला झुला कर यह पद्य गाते हैं। इनमें बहुतसे पद्य अश्लील और बहुतसे केवल शब्दाडंबर परिपूर्ण है। इनमें एक पद्यका नाम चप्पड़ है जिसकी भाषा अत्यन्त मधुर है। मन्द्राजकी स्त्रियाँ छोटे छोटे बच्चेको सुलानेके लिये यह पद्य गाया करती हैं।

तलातल (सं० क्ली०) नास्ति तलं यस्येति अतलं तलादपि अतलं। पातालभेद, सात पातालोंमेंसे एक पतालका नाम। यहाँ मयदानव शिवसे रक्षित हो कर वास करते हैं। (भागवत) पाताल देखो।

तलाभिघात (सं० पु०) तलेन अभिघातः, ३-तत्। करतल द्वारा प्रहार, तमाचा, थप्पड़।

तलामणि (सं० पु०) प्रवाल, मूँगा।

तलाश (तु० स्त्री०) १ अन्वेषण, खोज, ढूंढ ढांढ। २ २ आवश्यकता, चाह, माँग।

तलाशा (सं० स्त्री०) वृक्षभेद, एक पेड़का नाम।

तलाशी (फा० स्त्री०) चीज-वस्तु आदिकी देख भाल।

तलाह्व (सं० क्ली०) तालीशपत्र देखो।

तलिका (सं० स्त्री०) तलं वक्षस्थलतलं बन्धनस्थानत्वेनास्त्यस्य तल ठन्। तलसारक, वह रस्सी जिससे घोड़ेकी छाती बँधी रहती है।

तलित् (सं० स्त्री०) तड़ित् डस्य-ल। विद्युत्, बिजली।

तलित (सं० क्ली०) तलतारकां इतच्। भृष्टमांस, तला हुआ मांस। शुद्ध मांस जिस तरह प्रस्तुत किया जाता है उसी तरह मांसको अच्छी तरह सिद्ध कर उसे घीमें भुन लेते हैं इसीको तलित कहते हैं। इसके गुण— बल, मेधा, अग्नि, मांस, ओजोधातु और शुक्रवृद्धिकारक, तृप्तिजनक, लघु, स्निग्ध, रुचिकर और शरीरपुष्टिकर है।

तलिन् (सं० त्रि०) तला अस्यास्ति इनि। गोधायुक्त, जिसमें चमड़ेका बन्धा लगा हो।

तलिन (सं० क्ली०) तल्यते शयनार्थं मन्यतेऽत्र तल-इनन्। तलि पुलिभ्यां च। उण् २।५३। १ शय्या, सेज, पलङ्ग। (त्रि०) २ विरल, अलग अलग। ३ स्तोक, थोड़ा, कम। ४ स्वच्छ, शुद्ध, साफ। ५ दुर्बल, दुबला।

तलिपरम्ब—१ मन्द्राज विभागमें मलबार जिलेका एक शहर।

२ मलबार जिलेमें चिराकल तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १२° ३′ उ० और देशा० ६५° २२′ पू० पर कननूरसे १५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी मनुष्य वास करते हैं। हिन्दूकी संख्या सबसे अधिक है। यहाँ सब मजिष्ट्रेट, डिष्ट्रिक्ट मुन्सिफकी अदालत और एक मन्दिर है। मन्दिरकी छत पीतलसे मढ़ी हुई है। इसके पास ही रैतीले पहाड़ पर बहुतसी कन्दरायें खुदी हुई हैं जो देखनेमें अत्यन्त मनोरम और आश्चर्यजनक लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ७८४९ है।

तलिम (सं० क्ली०) तल बाहुलकात् इमन्। १ कुट्टिम, छत, पाटन। २ शय्या, पलङ्ग। ३ खड्ग। ४ वितानक, चँदवा। ५ चन्द्रहास।

तलिया (हिं० स्त्री०) समुद्रकी थाह।

तली (हिं० स्त्री०) १ तल, पेंदी। २ तलछट, तलौंछ।

तलीक्ष (सं० पु०) प्रत्यङ्गभेद, शरीरका कोई अङ्ग।

तलुन (सं० पु०) तरति वेगेन गच्छति तॄ-उनन्। रोरश्चलोवा। उण् ३।५४। रस्य लत्व। १ वायु, हवा। २ युवा पुरुष।

तलुनी (सं० स्त्री०) तलुन-ङीष्। तरुणी, युवती स्त्री।

तले (हिं० क्रि०-वि०) नीचे।

तलेक्षण (सं० पु०) तले अधोभागे ईक्षणं यस्य, बहुव्री०। शूकर, सूअर।

तलेटी (हिं० स्त्री०) १ पेंदी। २ तलहटी, तराई, घाटी।

तलैङ्ग—पेगुके अधिवासियोंका साधारण नाम। मगगण इन्हें तलैङ्ग और श्यामवासीगण सिङ्ग-मोन कहा करते हैं। इनमेंसे अनेक इरावती नदीके डेल्टेमें वास करते हैं। पेगु, मार्त्तावान, मौलमेन और श्यामराष्ट्रके अधिवासी मोन नामसे मशहूर हैं। यह नाम इन लोगोंमें आपसमें चलता है।

पेगुयानकी भाषा मोन अथवा तलैङ्ग है। इस भाषाके अक्षर भारतीय अक्षरमूलक है। पाली अक्षरके साथ यह बहुत कुछ मिलता जुलता है। बौद्धग्रन्थ इसी अक्षरमें लिखे हुए मिलते हैं। मग और श्यामवासी यह भाषा समझ नहीं सकते। तलैङ्ग शब्द सम्भवतः तैलङ्ग शब्दका अपभ्रंश है।

तलैचा (हिं० पु०) इमारतका वह भाग जो मेहराबसे ऊपर और छतसे नीचे रहता है।

तलैया (हिं० स्त्री०) छोटा ताल।

तलोदरी (सं० स्त्री०) तलं निम्नमुदरं यस्याः, बहुव्री० ततः ङीष्। भार्या, स्त्री।

तलोदा (सं० स्त्री०) तले उदकं यस्याः बहुव्री०, उदकशब्दस्य उदादेशः। नदी, दरिया।

तलोदा—१ बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २१° ३०′ और २२° २′ उ० तथा देशा० ७३° ५८′ और ७४° ३२′ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ११७७ वर्गमील है। इस उपविभागमें इसी नामका एक शहर और १९२ ग्राम लगते हैं। छिखली और काठी नामके दो छोटे देशीराज्य इसके अधीन है। लोकसंख्या प्रायः ३३८८१ है, जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या सबसे अधिक है। बहुतसे मुसलमान तथा अन्यान्य धर्मके लोग भी यहाँ वास करते हैं।

स्थानीय नैसर्गिक दृश्योंमेंसे सातपुरा पहाड़श्रेणीका दृश्य अत्यन्त मनोहर है। यह पहाड़ पूर्वसे पश्चिमकी ओर विस्तृत है। पहाड़के नीचे एक बड़ी वनभूमि

देखी जाती है। इस वनप्रदेशमें तरह तरहके पशु रहते हैं।

तलोदाकी मट्टी काली है और उसमें उद्भिद् आदिका सार मिश्रित है। जिस स्थानमें खेती होती है, वहाँका जलवायु खराब नहीं है। सातपुरा पहाड़के नीचे आस पासके ग्रामोंमें मलेरिया रोग अत्यन्त प्रबल है। यहाँ ज्वर और प्लीहा रोग अक्सर हुआ करता है। अप्रेल और मई मास छोड़ कर यूरोपीयगण इस स्थानमें निर्भयसे नहीं रह सकते हैं। वार्षिक वृष्टिपात प्रायः ३० इञ्च है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २१° ३४' उ० और देशा० ७४° १३' पू० धूलियासे ६२ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६५८२ है। हिन्दू, मुसलमान, जैन, पारसी प्रभृति अधिवासी यहाँ देखे जाते हैं। हिन्दूकी संख्या सबसे ज्यादे है। खान्देश जिलेमें तलोदाके वृक्षका व्यवसाय विशेष प्रसिद्ध है। भिन्न भिन्न स्थानोंसे बहादुरी काठ यहाँ ला कर बेचा जाता है। रोशाघास, तेल और अनाजका व्यवसाय भी यहाँ कम नहीं है। खान्देशकी सर्वोत्कृष्ट काठकी गाड़ी इसी स्थानमें बनाई जाती है। हरएक गाड़ीका मूल्य ४०। ४५) रु० रहता है। इस शहरमें म्युनिसपालिटि है। इस शहरमें एक डाकघर, स्कूल और दातव्य औषधालय है।

तलौंछ (हिं० स्त्री०) किसी द्रव पदार्थकी वह मैल जो नीचे जम जाती है, तलछट।

तल्क (सं० क्ली०) तल बाहुलकात् कन्। वन, जङ्गल।

तल्ख (फा० वि०) १ कटु, कड़ुवा। २ जिसका स्वाद खराब हो, बदमजा।

तल्खी (फा० स्त्री०) कड़ुवाहट, कड़वापन।

तल्प (सं० पु०-क्ली०) तल्य-ते शयनार्थं गम्यते तल-प। खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्पतल्पाः। उण् ३।२८। १ शय्या, पलंग। २ अट्टालिका, अटारी। ३ दारा, स्त्री।

तल्पक (सं० पु०) तल्प-कन्। शय्यासंस्कारक भृत्य, वह नौकर जो पलंग या खाटको सजा कर रखता है।

तल्पकीट (सं० पु०) तल्पे शय्यायां जातं कीटः। कीटविशेष, खटमल।

तल्पगिरि (सं० पु०) दाक्षिणात्यके तिरुपतिके समीप जो विष्णुके नामसे उत्सर्ग किया हुआ एक पहाड़।

तल्पज (सं० त्रि०) तल्प-जन-ड। क्षेत्रज पुत्र।

तल्पन (सं० क्ली०) तल्प इव आचरति तल्प-क्विप् ल्युट्। १ करिपृष्ठ, हाथीकी पीठ। २ पृष्ठास्थिका मांस, मेरुदण्डका मांस।

तल्पशीवन् (सं० त्रि०) शय्याशायी, जो सदा पलंग पर पड़ा रहता है।

तल्पेशय तल्पशीवन् देखो।

तल्प्य (सं० पु०) तल्पे भव तल्प-यत्। १ रुद्रभेद, एक रुद्रका नाम। २ शय्यासाधु।

तल्ल (सं० क्ली०) तस्मिन् लीयते ली-ड। १ बिल, गड्ढा। (पु०) २ जलाधारविशेष, ताल, पोखरा। ३ (त्रि०) उसमें लीन, उसमें लगा हुआ।

तल्लज (सं० पु०) तत् प्रसिद्धं यथा तथा लजति लज-अच्। प्रशस्तिवाचक, आदरसूचक शब्द।

तल्लह (सं० पु०) कुक्कुर, कुत्ता।

तल्ला (सं० पु०) १ सामीप्य, ढीग, पास। २ तलेकी परत, अस्तर, भितल्ला।

तल्लिका (सं० स्त्री०) तस्मिन् लीयते ली-ड संज्ञायां कन् कापि अत इत्वं। कुञ्चिका, कुञ्जी, ताली।

तल्ली (सं० स्त्री०) तत्प्रसिद्धं यथा तथा लसति लस-ड-स्त्रियां ङीष्। १ तरुणी, युवती। २ नौका, नाव। ३ वरुणकी स्त्री।

तल्ली (हिं० स्त्री०) १ जूतेका तला। २ नीचेकी तलछट।

तल्लुआ (हिं० पु०) एक प्रकारका कपड़ा, महमूदी, तुकरी, सल्लम।

तल्व (सं० क्ली०) सुगन्धिद्रव्यके घर्षणसे उत्पन्न सौरभ, वह सुगन्ध जो सुगन्धित पदार्थोंको रगड़नेसे उत्पन्न हो।

तल्वकार (सं० पु०) सामवेदकी एक शाखा।

तव (सं० त्रि०) युष्मद् शब्दकी षष्ठीका एक वचन। तुम्हारा।

तवक (सं० त्रि०) तव-क। तुम्हारा।

तवक्षीर (सं० क्ली०) तु-अच् तवं क्षीरमिति, कर्मधा०। १ क्षीरजल, तवाखीर, तीखुर। इसके गुण-मधुर शिशिर, दाह, पित्त, क्षय, कास, कफ, श्वास और अस्रदोषनाशक है। २ गन्धपत्री, कनकचूर।

तवक्षीरी (सं० स्त्री०) तवक्षीर-ङीष्। गन्धपत्रा, कनकचूर। इसकी जड़से एक प्रकारका तीखुर बनता है। अबीर इसी तीखुरसे बनता है।

तवज्जह (अ० स्त्री०) १ ध्यान, रुख। २ कृपादृष्टि।

तवनी (हिं० स्त्री०) छोटा तवा।

तवर (सं० क्ली०) निर्दिष्ट उच्च संख्या, कोई इष्ट बड़ी राशि।

तवरक (हिं० पु०) समुद्र और नदियोंके तट पर होनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसमें इमलीके जैसे फल लगते हैं जिन्हें खानेसे गाय भैंस इत्यादि अधिक दूध देती हैं।

तवराज (सं० पु०) तु-अच् तवः पूर्णः सन् राजते राज-अच्। यवासशर्करा, तुरंजबीन।

तवराजोद्भवखण्ड (सं० पु०) तवराजादुद्भवति उत्-भू-अच्, तवराजोद्भवः यः खण्डः, कर्मधा०। यवासशर्कराका खण्ड, तुरंजबीनका टुकड़ा। इसके संस्कृत पर्याय-सुधामोदकज, खण्डजोद्भवज, सितिमोदक, अमृतसारज और सिद्धखण्ड है। इसके गुण—दाह, ताप, तृष्णा, मोह, मूर्च्छा और श्वासनाशक, इन्द्रियोंका तर्पणकारी, शीतल और सदा मधुररस है।

तवर्ग (सं० पु०) त, थ, द, ध, न, ये पाँच तवर्ग हैं।

तवर्गीय (सं० पु०) तवर्गे भवः वर्गान्तत्वात् छ। तवर्गसे उत्पन्न वर्ण, तवर्गका अक्षर।

तवर्णोद्भूत् (सं० पु०) शरट।

तवस् (सं० त्रि०) तु-असुन्। १ वृद्ध, बुड्ढा। २ महत्, बड़ा। (क्ली०) ३ बल, ताकत।

तवस्य (सं० क्ली०) तवसे बलाय हितं तवस्-यत्। बलसाधन।

तवस्वत् (सं० त्रि०) तवोऽस्त्यस्य मतुप् मस्य वः सान्तत्वात् मत्वर्थे न विसर्गः। बलयुक्त, ताकतवर।

तवा (हिं० पु०) १ रोटी सेंकनेका एक छिछला, गोल लोहेका बरतन। २ खपड़ेका गोल ठीकरा। इसे चिलम पर रख कर तमाखू पीते हैं। ३ एक प्रकारकी लाल मट्टी।

तवाक्कुल मुन्शी—शाहनामा और शमशेर खानीके रचयिता। उक्त दो किताबें १६५२ ई०में बनाई गई थीं। फिर १८१० ई०में सम्राट् द्वितीय शाह अकबरके समय उनका अनुवाद किसी दूसरे कविसे उर्दूमें हुआ था।

तवाखीर (हिं० पु०) बंशलोचन।

तवागा (सं० त्रि०) तवसा बलेन गीयते गै कर्मणि क्विप् पृषो० साधुः। प्रवृद्ध बलयुक्त, जिसे खूब ताकत हो।

तवाज़ा (अ० स्त्री०) १ आवभगत, आदर, मान। २ आतिथ्य, मेहमानदारी, दावत।

तवाना (फा० वि०) बली, मोटा ताजा।

तवाना (हिं० क्रि०) किसी दूसरेसे गरम कराना।

तवायफ़ (अ० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

तवायफ—वेश्याकी एक जाति। गन्धर्व, कञ्चन, कश्मीरी, पतुरिया, रामजानी, बकसरिया, कसबी, भडुआ, हुरकिया, कबूतरी मिरासी, मोरशीकार, नायिका, गौनहारिन, व्रजवासी और नेगपात्र ये सब तवायफ जातिके ही अन्तर्गत हैं। इनमेंसे पात्र, रामजानी और गन्धर्व ये तीनों हिन्दू स्त्रियाँ हैं। पात्रकी उत्पत्तिके विषयमें प्रवाद है, कि कुमायूंके राजाके यहाँ दो दासी कन्यायें थीं जिनमेंसे एक तो राजपूतसे ब्याही गई थी और दूसरी पहाड़ी क्षत्रियसे। जो पहाड़ी क्षत्रियसे ब्याही गई थी, वही पात्र कहलाई। आजकलकी पात्र या पतुरिया उसीके वंशकी मानी जाती है। महादेव, कल्लू पीर और मेरां इनके उपास्य देवता हैं। जो लड़कियाँ जन्म लेती हैं, उन्हें बचपनसे ही नाचना गाना सिखाया जाता है, बाद वे पीपल वृक्षसे विवाह कर वेश्यावृत्ति अवलम्बन करती हैं।

नौरंगी, मिरासी, गौनहारिन, डोमिन और आकाशकामनी ये सब मुसलमान स्त्रियां हैं। पात्रके जैसा ये लाग भी अपनी लड़कीका विवाह नहीं करती। किन्तु इनका लड़का जब विवाहके योग्य होता है, तब वे एक निम्नश्रेणीकी हिन्दू वा मुसलमान लड़कीको खरीद कर उसीके साथ उसका विवाह कर देती है। इस प्रकारसे ब्याही हुई स्त्रियां वेश्या-वृत्ति नहीं करती वरं वे विवाहोपलक्षमें तथा और किसी दूसरे त्यौहारमें गृहस्थके यहां नाच गान कर अपना गुजारा करती हैं।

जब कोई हिन्दूस्त्री इस समाजमें आना चाहती है, तब पहले उसे इस्लाम धर्ममें दीक्षित होना पड़ता है। विशेष कर हिन्दू विधवा वा भगोड़ी स्त्रियाँ ही तवायफ

हुआ करती हैं। इस जातिमें ऐसी रस्म है, कि लड़की जब बारह तेरह वर्षकी होती, तब वह किसी धनी यारके यहाँ बेची जाती है, इस रस्मको 'सिर ढकाई' कहते हैं। लड़की जब यारके घरसे लौट आती है, तब अपने जात भाईको एक भोज देना पड़ता है। मिस्सी नामकी एक दूसरी रस्म है जिसमें वे अपने दाँतोंमें मिस्सी लगाना आरम्भ करती हैं। इसके बाद नथुनी जिसे वे बचपनसे ही पहने आती हैं, उतार फेंकती हैं, इस रिवाजको 'नथनी उतारन' कहते हैं। आज कल भारतवर्षके प्रायः सब जिलोंमें तवायफ पाई जाती है। कभी कभी ये लोग महफिलमें जा कर नाचती गाती हैं।

तवारा (हिं० पु०) जलन, ताप, दाह।

तवारीख़ (अ० स्त्री०) इतिहास।

तवालत (अ० स्त्री०) १ दीर्घत्व, लम्बाई। २ आधिक्य, अधिकता, अधिकाई। ३ झंझट, बखेड़ा।

तविपुला (सं० स्त्री०) विपुला छन्दोभेद, विपुला नामका छन्द। चार अक्षरोंका तगण होने पर यह छन्द होता है।

तविषम् (सं० त्रि०) अत्यन्त बलवान्।

तविष (सं० पु०) तव-टिषच्। १ स्वर्ग। २ समुद्र। ३ व्यवसाय। ४ शक्ति। ५ स्वर्ण, सोना। (त्रि०) ६ वृद्ध, बुड्ढा। ७ महत्, बड़ा। ८ बलवान्, ताकतवर।

तविषी (सं० स्त्री०) तविष संज्ञायां ङीष्। १ भूमि, जमीन। २ नदी, दरिया। ३ देवकन्या। ४ बल।

तविषीमत् (सं० त्रि०) तविषी अस्त्यस्य मतुप। दीप्तियुक्त, चमक दमक।

तविषीयु (सं० त्रि०) तविषीय-उ। बलप्रयोगकारी।

तविषीवत् (सं० त्रि०) साहसी।

तविष्या (सं० स्त्री०) बल, शक्ति, ताकत।

तव्य—१ वेदान्तभेद। (त्रि०) तव-यत्। २ शक्तिशाली, बलवान्, ताकतवर।

तशख़ीस (अ० स्त्री०) १ निश्चय, ठहराव। २ रोगका निदान।

तशरीफ़ (अ० स्त्री०) महत्व, इज्जत, बुजुर्गी।

तश्त (फा० पु०) १ एक प्रकारका छिछला बरतन जिसका आकार थालीसा होता है। २ परात, लगन। ३ पाखानोंमें रखे जानेका ताँबेका बड़ा बरतन, गमला।

तश्तरी (फा० स्त्री०) रिकाबी।

तष्ट (सं० त्रि०) तक्ष-क्त। १ तनूकृत, छीला हुआ। २ द्विधाकृत, पीस कर दो दलोंमें किया हुआ। ३ ताड़ित, पीटा हुआ। ४ गुणित, गुणा किया हुआ।

तष्टा (सं० पु०) १ विश्वकर्मा। २ छील छाल कर गढ़नेवाला। ३ छीलनेवाला। ४ एक आदित्यका नाम।

त्वष्टा (फा० पु०) ताँबेकी एक छोटी तश्तरी। इसका व्यवहार ठाकुर पूजनके समय मूर्त्तियोंको स्नान करानेके लिये होता है।

तष्टि (सं० स्त्री०) तक्ष-क्तिच्। तक्षण, रंदा करनेका काम।

तष्टृ (सं० पु०) तक्ष-तृ-पृषोदरा० कलोपे साधुः। १ सूत्रधर, बढ़ई। २ विश्वकर्मा। ३ आदित्यभेद, एक आदित्यका नाम।

तस (हिं० वि०) तैसा, वैसा।

तसकीन (अ० स्त्री०) दिलासा, तसल्ली।

तसकुरघान—अफगान-तुर्किस्तानका एक शहर। यह अक्षा० ३६° ४२´ उ० और देशा० ६७° ४१´ पू० पर समुद्रपृष्ठसे १४८५ फुट ऊँचे पर अवस्थित है। यह शहर अपने प्रदेशमें सबसे विस्तृत और समृद्ध है तथा मध्य एशिया और काबुलका वाणिज्य-केन्द्र है। इसमें ४००० घर लगते हैं, उजबेग और ताजिककी ही संख्या सबसे अधिक है। यहाँ प्रायः जितनी सड़कें हैं, सभी १० या १२ फुट चौडी हैं। तारीफ तो इस बातकी है, कि वे सबके सब बिलकुल सीधी चली गई है, टेढापन कहीं भी नहीं है। समूचा शहरमें तसकुरघान नदीसे जल जाता है। काफी पानी नहीं मिलनेके कारण अच्छी जमीन रहते भी उपज बहुत कम होती है। फल, मेवे आदि ही अधिक पाये जाते हैं।

तसगर (हिं० पु०) जुलाहोंके तानेकी एक लकड़ी जो नौलखीके पास रहती है।

तसदीक़ (अ० स्त्री०) १ सचाई। २ समर्थन, पुष्टि, सचाईका निश्चय। ३ साक्ष्य, गवाही।

तसद्दुक़ (अ० पु०) १ निछावर, सदक़ा। २ बलिप्रदान, कुरबानी।

तसनीफ़ (अ० स्त्री०) ग्रन्थकी रचना।

तसबीह (अ० स्त्री०) जयमाला, सुमिरनी।

तसमा (फा० पु०) चमड़ेकी धज्जी जो कुछ चौड़ी और डोरीकी आकारकी लम्बी होती है, चमड़ेका चौड़ा फीता।

तसर (सं० पु०) तनोतीति तन-सरन् किच्च। १ सूत्रवेष्टन, जुलाहोंकी ढरकी। २ एक प्रकारका कीड़ा।

तसर—कौषेय-सूत्रविशेष, एक तरहका कड़ा और मोटा रेशम। बङ्गालके अन्तर्गत छोटा नागपुर प्रदेश, बालेश्वर, मयूरभञ्ज, केंवझड़ आदि स्थानोंमें, बाँकुड़ा, वीरभूम, मेदनीपुर जिलेके जङ्गलोंमें तथा बङ्गालके अन्यान्य स्थानोंमें शाल, पियाल, हरीतकी, विभीतकी आमलकी, कुसुम, मौल, बदरी आदि वृक्षों पर तसरके कीड़े पालते हैं। इन्हीं कीड़ोंसे तसर पैदा होता है। यह कहना फिजूल है, कि तसर रेशमका ही एक भेद है।

रेशम देखो।

ऊपर जिन स्थानोंके नाम लिखे गये हैं, उन प्रदेशोंके जङ्गलोंमें तसर अपने आप ही उत्पन्न होता है। इसकी खेती भी होती है। तसरकी खेती रेशम जैसी नहीं है। रेशम उत्पन्न करनेके लिए जैसे तूतियाके पत्ते खिला कर रेशमके कीड़ोंको पालते है और यत्नपूर्वक उनको घरमें ही रख कर, घरमें ही गुटिका उत्पन्न कराते हैं, तसरके उक्त प्रदेशोंमें वैसा नहीं करते। चाँईबासा, हजारीबाग, लोहारडागा आदि स्थानोंमें तसर उत्पादनकारियोंकी तसरकी खेती ऐसी यत्नसाध्य नहीं है। इनकी जङ्गलोंमें आपसे आप होनेवाले कीड़ोंकी सिर्फ चिड़ियों और चींटियोंसे बचानेके सिवा और कुछ भी नहीं करना पड़ता।

तसरकी उत्पत्ति—पहलेसे कुछ पके हुये बीज वा कोशोंका संग्रह कर रखते हैं और यथासमय उनमेंसे कीड़े निकलने पर उनको पासके जङ्गलमें छोड़ देते हैं। वहां वे अपने अपने जोड़े ढूंढ़ लेते हैं। शीघ्र ही मादा कीड़े वृक्षके पत्तों पर छोटे छोटे चपटे, सरसों जैसे अण्डे देने लगते हैं। ये अण्डे कुछ चिपकने होनेसे पत्ते पर खूब चिपट जाते हैं। एक एक कीड़ा ३।४ दिनमें २००से २५० तक अण्डे देता है। एक बारगी सब अण्डे दे देने पर इनके जीवन-कार्यका अन्त हो जाता है अण्डे देनेके ३।४ दिन बाद ही ये मर जाते हैं। नर कीड़े शीघ्र मर जाते हैं। तब सिर्फ अण्डे ही भविष्यत् तसर-कीटवंशके वंशरक्षक रह जाते हैं।

इन अण्डोंसे १०।१२ दिनके भीतर छोटे छोटे लट जैसे कीड़े निकलते हैं और पत्तों पर रेंगते फिरते हैं। इस समय ये कीड़े बड़े ही पेटुक होते हैं। लगातार कोमल पत्तोंको खा खा कर जल्दी जल्दी बढ़ते रहते हैं। इस समय ये ३।४ बार खोली या कलेवर बदलते रहते हैं। खोली बदलते समय कुछ देरके लिए ये आहारविहार छोड़ कर चुपचाप पड़े रहते हैं। इस तरह १०।१५ दिनमें ये अपनी पूरी बाढ़को पहुंच जाते हैं। उस समय इनका आकार ३।४ इञ्चसे ५।६ इञ्च तक होता है। ये कीड़े मटमैले, नीले, पीले, भूरे, लाल आदि नाना रंगोंसे चित्रविचित्र होते हैं। इनकी आँखें उज्ज्वल और पैर छोटे छोटे होते हैं।

अंडे फूटनेके बादसे अब तक इनके शत्रुओंकी कमी नहीं रहती। प्रथमतः क्षुद्र अवस्थामें चीटियाँ इनकी परम शत्रु हैं। चील, कोए और अन्यान्य बनचर पक्षी, गिलहरी, सांप आदि मौका लगते ही इनको खा जाते हैं। इसलिए पालनेवालोंको इस समय बड़ी सावधानीसे इनकी रक्षा करनी पड़ती है। रक्षकगण तीरधनु, कंकड़ बाँस आदिसे उक्त जानवरोंको मार कर भगा देते हैं।

जो लोग इनकी रक्षाके लिए नियुक्त होते हैं, वे कठोर ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर जङ्गलमें ही रहते हैं। उनका विश्वास है, कि ऐसा न करनेसे कीड़े मर जाते है। अतएव वे जङ्गलमें झोंपड़ी बना कर २।३ मास तक व्रतपरायण हो शुद्धाचारसे रहते हैं। मल-मूत्र त्यागनेके बाद ही ये स्नान करते हैं और प्रतिदिन हविष्यान्न भक्षण कर तृणशय्या पर सोते हैं। जब तक कीड़े पूरी बाढ़को नहीं पहुँचते, तब तक ये स्त्रीपुत्रादिका मुखावलोकन नहीं करते। इनकी और भी एक ऐसा ही विश्वास जम गया है, कि रक्षा करते समय वहाँसे यदि व्याघ्रका गमन हो, तो कीड़ोंमें उत्पादिका शक्ति बढ़ जाती है। इसीलिए व्याघ्रके गमन करने पर रक्षकगण अधिक लाभकी आशा करते हैं। सन्थाल, कोल, कुरमी आदि जातियाँ ही प्रधानतः तसर पैदा करनेका काम

करती हैं। फिलहाल बहुतसे अंग्रेज वणिकोंकी भी इस तरफ दृष्टि पड़ी है।

कीड़े पूर्णावयवको प्राप्त होने पर कोश बनानेके लिए व्यग्र होते हैं। उस समय ये वृक्षकी छोटी छोटी डालियों पर मुंहसे निकली हुई लारसे वृन्त बनाते हैं। यह लार ही बादमें सूख कर मजबूत तसर वा सूतके रूपमें परिणत हो जाती है। वृन्त बन जाने पर सूत निकालते हुए घूम घूम कर ये अपने लिए एक कोष बना लेते हैं और उसीमें बन्द हो जाते हैं। इन कोशोंका आकृति कुछ लंबेपनको लिए गोल अंडेके समान है। कीटको जातिके अनुसार कोश भी छोटे बड़े कई प्रकारके होते हैं। बड़ेसे बड़ा कोश २। २½ इञ्च तक लम्बा होता है।

कोशके अंदर ३।४ दिन तक लगातार सूत निकाल कर, ये कीड़े चुपचाप सोते रहते हैं। इस अवस्थामें ये खाना पीना सब छोड़ कर मुरदेकी तरह निष्पन्द और निश्चेष्ट हो जाते हैं। किन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है, कि दो तीन मास तक इस तरह पड़े रहने पर भी इनकी मृत्यु नहीं होती। इस अवस्थामें कोशको चीर कर इनको बाहर निकालनेसे, ये पिङ्गलवर्ण मांसपिण्डवत् मालूम पड़ते हैं, किन्तु शीघ्र ही ये हिल-डुल कर सजीवताका प्रमाण दिखाते हैं। इस तरह असमयमें इनकी निद्राभङ्ग करनेसे ये ज्यादा देर तक जीते नहीं, शीघ्र ही मर जाते हैं। समय पर ये अपने आप कोशको काट कर खूबसूरत प्रजापतिके रूपमें बाहर निकलते हैं।

कोश सम्पूर्ण बन जाने पर रक्षकगण उनको उठानेके लिए तयार रहते हैं। उन्हें अपनी अभिज्ञतासे, कब कोश पकता और फोड़नेके लायक होता है, इसका ज्ञान हो जाता है। इस समय कोषमण्डित तरुराजिसङ्कुल वनभूमि पर्याप्त फलशोभित फलोद्यानके समान शोभायमान रहती है। जब कोष फोड़ कर दो-एक कीड़ा भागनेकी तैयारी करता है, तब रक्षकगण उन्हें इकट्ठा कर घर ले आते हैं। कीड़े जीवित रहनेसे कोश काट कर भाग जांयगे, इस भयसे वे कीड़ोंको क्षारके साथ गरम पानीमें उबाल कर मार डालते हैं। जिन कोशोंको उबाला नहीं जाता, वे 'एंश्रो' नामसे प्रसिद्ध हैं। इनका तसर सबसे अच्छा होता है। इनको 'मूदल' भी कहते हैं। यह कोश बहुत कड़ा होता है, जोरसे दाबने पर भी दबता नहीं। इससे नीचेदर्जेके कोशोंको डाबा, बगुई, जाडुई आदि कहते हैं। जिन कोशोंको काट कर कीड़े स्वतः निकल जाते हैं, उनको रामकटा, आम, पेते, चोड़र, धूके, तथा फूकी कहते हैं। जो कोश परिपक्क होनेसे पहले ही असमयमें फोड़े वा उबाले जाते हैं, वे बहुत कोमल होते हैं, उनको सहज ही दाब कर चपटा किया जा सकता है। यह किसी कामके नहीं होते और खूब कम दाममें बिकते हैं। कटे हुए कोश बिल्कुल ही नष्ट नहीं हो जाते। कीड़े कोशके डंठलके पास सूत ठेल कर बाहर निकल जाते हैं। अतः उनसे भी सूत पाया जाता है। चींटी, चूहे आदिके काटने पर कोश नाकाम हो जाते हैं। आषाढ़ श्रावणमें आमपेते, भाद्रमें मूदल, आश्विनमें मूगा, कात्तिकमें डाबा, अगहनमें बगुई, पौष और माघमें जाडुई कोश उत्पन्न होते हैं।

कोशोंके संग्रह किये जानेके उपरान्त उत्कर्षके अनुसार उनमेंसे चुन चुन कर पृथक् पृथक् ढेरी लगाते हैं। बादमें उनको बाजारमें बेचते हैं। चांईबासा, सिंहभूम, मानभूम आदि जिले और धलभूम, शिखरभूम, तुङ्गभूम आदि स्थानोंके व्यापारी लोग जंगल-वासियोंसे उन कोशोंको खरीद लेते हैं। वे फिर उनको बाँकुड़ा, विष्णुपुर, मेदिनीपुर, मानकर, सोनामुखी, राजग्राम आदि स्थानोंसे आये हुए व्यवसायियोंको वा उनके थोक माल लेनेवालोंको बेच देते हैं। ये दलाल वा पैकारी लोग अधिक लाभकी आशासे बहुधा गाँव गाँवमें घूम घूम कर कोश संग्रह किया करते हैं। किन्तु अधिकांश कोश निकटस्थ हाटोंमें बिकते हैं। तसर-कोशोंके संग्रहके समय उन हाटोंमें पूर्वोक्त स्थानोंसे बहुतसे व्यापारियोंका समागम होता है। चाँईबासाके अन्तर्गत हलुदपुकुर नामकी हाटमें तथा बउड़ागुड़ा नामक स्थानमें इन कोशोंको बड़ी भारी खरीद बिक्री होती है। विक्रयके लिए हाटोंमें उनकी अलग अलग ढेरी लगा दी जाती है। खरीददार अपनी इच्छानुसार एक एक ढेरीसे मुठी भर भर उनकी परीक्षा करते हैं। इसकी चाख वा चाखती

करना कहते हैं। इस जाँचसे जैसा उत्कर्ष वा अपकर्ष होता है, तमाम ढेरी वैसी ही समझी जाती है। पीछे एक एक ढेरीकी कीमत ठहराई जाती है। कहना फिजूल है, कि इस तरह तसरके छोटे बड़े आदि आकार, अक्षुण्णता, पुष्टता आदि गुणोंके अनुसार कीमतमें कमी बेशी हुआ करती है। बहुधा ये अरण्यवासी तसरविक्रेता धूर्त्त दलाल और पैकारियोंके चंगुलमें फंस कर धोखा खाते हैं।

संख्याके अनुसार ही इनका मूल्य निर्द्धारित होता है। तौल कर बेचनेकी रिवाज नहीं है। पैकारी वा दलाल लोग फुटकर खरीदते समय गण्डे आदिके भावसे खरीदा करते हैं। बड़ी बड़ी हाटोंमें जब बहुसंख्यक कोशोंकी खरीदबिक्री होती है, तब गिनना मुश्किल हो जाता है। इस समय कूत वा अनुमानसे एक एक ढेरीकी संख्या निर्णीत होती है। किन्तु अधिक संख्या होने पर भी प्रायः गिन लेना ही अच्छा समझा जाता है। संख्या स्थिर होने पर उनका मूल्य ठहराया जाता है। तसरकी उपज अच्छी न होने पर उत्कृष्ट कोशोंकी कीमत फी काहन (काहनकी संख्या १२८० इ०) १२)से ७) तक, मध्यम प्रकारके कोशोंकी ७) से ५) तक तथा निकृष्ट प्रकारके कोशोंकी कीमत लगभग ५) से ३) रु० तक होती है। और उपज अच्छी होने पर उत्कृष्ट कोशका भाव ७) से ६) रुपया, मध्यमका ७) से ५) रुपया और निकृष्टका भाव ४) से २) रुपये तक हुआ करते हैं। वर्षा, शरत्, हेमन्त और शीतऋतुमें ही तसरके कोशोंकी उत्पत्ति होती है। वसन्त और ग्रीष्मऋतुमें जब सूर्यका तेज अत्यन्त प्रखर होता है, तब ये कोशके भीतर सोते रहते हैं।

खरीददार लोग उन कोशोंको खरीद खरीद कर बाँकुड़ा और उसके अन्तर्गत राजग्राम, सोनामुखी, विष्णुपुर, जयपुर, तथा वर्द्धमानमें मानकर और हुगली जिलेमें बदनगञ्ज, श्यामबाजार, कृष्णगञ्ज आदि स्थानोंमें भेजा करते हैं। उपर्युक्त स्थानोंमें कोशोंसे तसरका सूत बनता है। यह सूत कुछ तो स्थानीय जुलाहे लोग खरीद लेते हैं और सफेद वा नाना रङ्गोंमें रङ्ग कर तरह तरहके कपड़े बनाते हैं तथा बाकीका कलकत्ता और अन्यान्य प्रधान प्रधान नगरोंको रवाना होता है।

मुर्शिदाबाद और उसके निकटवर्ती बहरमपुर तथा मालदह आदि स्थानोंमें भी कुछ कुछ तसर पैदा होता है। परन्तु इन स्थानोंमें तसरकी अपेक्षा रेशमकी अधिक उपज है।

कोशसे सूत निकालनेके लिए पहले उनको क्षारके पानीमें उबाला जाता है। इससे कोश कोमल हो जाते हैं और सहजमें सूत निकलता है तथा सूतका मैल भी कुछ कुछ निकल जानेसे सूत साफ हो जाता है। अनन्तर समस्त कोशोंके शीतल और परिष्कृत होने पर उन्हें पुनः पुनः धो कर उनके डंठल और ऊपरका अपरिष्कृत अंश फेक दिया जाता है। पीछे एक पात्रमें थोड़ा पानी रख कर उसमें ४ ५ वा उससे ज्यादे कोश छोड़ देते हैं, और उनके छोरोंको एकत्र कर एक साथ सबका सूत चरखी पर लपेट लेते हैं। यह काम अकसर करके औरतें ही किया करती हैं। सूत निकालनेके लिये इससे उमदा और कोई यन्त्र व्यवहृत नहीं होता। तमाम सूत निकलनेके बाद कोशके भीतरसे कृष्णाभ रक्तवर्ण मांसपिण्डवत् मृत तसर-कीट निकलता है। नीच जातिके लोग उसको तसरलड्डू कहते और उपादेय समझ कर खा जाते हैं। तसर कातनेवाले उनको रख देते हैं और नीच लोगोंको बेच देते हैं।

कोशोंकी पुष्टता और आकारके अनुसार उनके सूतमें भी कमीबेशी होती है। उत्कृष्ट कोशोंमें १०।१२से ही १ तोला सूत निकलता है। कोश निकृष्ट होने पर उसके अनुसार कोशोंकी संख्या भी बढ़ जाती है। तसरका सूत बहुत उमदा होनेसे रुपयेमें ८।१० तोला और निकृष्ट होने पर १२।१३ तोला तक मिलता है।

कोशोंके डंठल और सूत निकल जाने पर बाकीका जो भीतरी अंश बच रहता है, वह और छिन्न तसर सूत्रादि भी नष्ट नहीं होते। इनसे एक प्रकारका मोटा सूत बनता है। औरतें इनको कोमल बना कर अच्छी रेशमकी भाँति—रुईकी तरह उतन उतन कर चरखीसे इनका सूत बनाती है। इस सूतसे करधनी और एक तरहका खूब मोटा कपड़ा बनता है। बङ्गालमें इस कपड़ेको केटिया, मटका इत्यादि कहते हैं। बहुतसे लोग इसको पवित्र और मजबूत समझ कर देवपूजा और व्रतो-

प्रवासके समय पहना करते हैं। तसरका स्वाभाविक रङ्ग गेहुँआँ होता है। इसको कुसुमी, पीले आदि नाना रङ्गोंमें रङ्ग कर उससे उत्कृष्ट धोती साड़ी, दुपट्टे आदि बनाते हैं। बिना रंगे हुए सादे तसरके सूतसे दीर्घकालस्थायी और खूबसूरत चिकना कपड़ा बनता है। विशुद्ध तसरके थान तथा तसरकी तानी और सूतकी भरनी दे कर नाना प्रकारके मजबूत कपड़े बनाये जाते हैं। इससे कोट अंगरखा आदि अच्छे बनते हैं। इसके एक गज कपड़ेकी कीमत २) २॥) तक होती है। बाँकुड़ा, विष्णुपुर, मालदह, मुर्शिदाबाद, भागलपुर आदि स्थानोंमें उमदा उमदा तसरके कपड़े बनते हैं। तसरके कपड़े मजबूत और स्वास्थ्यकर होनेसे साधारण लोग कहा करते हैं, कि—

"पहने तसर और खावे घी,
पैसा बचे और उमदा जी।"

उत्कृष्ट तसरकी धोती, साड़ी इत्यादि पट्टवस्त्रसे बुरी नहीं बल्कि मजबूत होती है।

तसरका सूत पानीमें जल्दी सड़ता नहीं और बराबरके कपासके सूतकी अपेक्षा बहुत मजबूत होता है। इसलिये इससे मछली पकड़नेका डोरा भी बनाया जाता है। बंगालमें गाँवोंके रहनेवाले लोग इसे और भी मजबूत बनानेके लिये सिर्फ पानीमें भिगो कर कच्चे कोशोंसे भी सूत निकालते हैं। बहुतसे लोग जीवहत्याके भयसे भी कच्चे कोशोंसे सूत निकालते हैं। इस तरहसे निकाला जानेवाला सूत बहुत उमदा और मजबूत होता हैं, पर वस्त्रादिके लिये सूत निकालनेमें इतनी मेहनत करना लोग पसन्द नहीं करते और अनायास ही हजारों-लाखों कीड़ोंको उबाल कर अपना रोजगार चलाते हैं। तसर-कीट आदिका विस्तृत विवरण और उनके प्रकृतितत्त्व आदि रेशम शब्दमें देखो।

तसला (फा० पु०) लोहे, पीतल, तांबे आदिका एक प्रकारका गहरा बरतन।

तसली (हिं० स्त्री०) छोटा तसला।

तसलीम (अ० स्त्री०) १ प्रणाम, सलाम। २ किसी बातकी स्वीकृति, हामी।

तसल्ली (अ० स्त्री०) १ आश्वासन, सान्त्वना, ढाढ़स। २ धैर्य, धीरज।

तसवीर (अ० स्त्री०) १ चित्र, नकशा। (वि०) २ मनोहर, खूबसूरत।

तसू (हिं० पु०) लम्बाईकी एक माप जो १$\frac{३}{८}$ इञ्चके लगभग मानी गई है।

तस्कर (सं० पु०) तद् करोति कृ-अच् सुट् दलोपश्च। १ चौर, चोर। २ पक्वशाक, एक प्रकारका साग। ३ मदनवृक्ष, मैनफल। ४ चोरनामक गन्धद्रव्य। ५ श्रवण, कान। ६ एक प्रकारके लम्बे और सफेद केतु। इनकी संख्या ५१ है और ये बुधके पुत्र माने गये हैं। (बृहत्संहिता)

तस्करता (सं० स्त्री०) तस्करस्य भाव तस्कर-तल् स्त्रियां टाप्। चौर्य, चोरका काम, चोरी।

तस्करस्नायु (सं० पु०) तस्करस्य स्नायुरिव नाड़िका यस्याः, बहुव्री०। काकनासालता, कौवाठोंठी।

तस्करी (सं० स्त्री०) तस्कर तद्-कृतचौर्यान्यर्थे-ट, टित्वात् ङीप्। १ वह स्त्री जो चोर हो। २ चोरकी स्त्री। ३ चोरका काम, चोरी। ४ काकनासालता, कौवाठोंठी। ५ ग्रन्थिपर्ण, गठिवन। ६ श्वेतलज्जालुका।

तस्तुव (सं० क्ली०) चैत्रावपघ्न नामकी औषध।

तस्थिवन् (सं० त्रि०) स्था-क्वसु। स्थित, ठहरा हुआ।

तस्थु (सं० त्रि०) स्था-कु द्वित्वञ्च। स्थावर, एक ही स्थान पर रहनेवाला।

तस्थुस (सं० पु०) स्था-कुसि द्वित्वञ्च। मानव, मनुष्य।

तस्मात् (सं० अव्य०) इसलिये।

तस्य (सं० पु०) उसका।

तस्सू (हिं० पु०) तसू देखो।

तहँ—तहाँ देखो।

तह (फा० स्त्री०) १ मोटाईका फैलाव, परत। २ तल, पेंदा। ३ तल, थाह। ४ झिल्ली, महीन पटल।

तहकीक (अ० स्त्री०) १ सत्य, असलियत। २ अनुसन्धान, खोज। ३ जिज्ञासा, पूछताछ।

तहकीकात (अ० स्त्री०) अन्वेषण, अनुसन्धान, जाँच।

तहखाना (फा० पु०) तलगृह, जमीनके नीचेकी कोठरी, भुइँहरा।

तहज़ीब (अ० स्त्री०) सभ्यता, शिष्टता।

तहदरज़ (फा० वि०) बिलकुल नया, जिसका व्यवहार न हुआ हो।

तहनिशाँ (फा० पु०) लोहे पर सोने चाँदीकी पच्चीकारी।

तहपेच (फा० पु०) पगड़ीके नीचेका कपड़ा।

तहबाज़ारी (फा० स्त्री०) सट्टीमें सौदा बेचनेवालोंसे लिये जानेका महसूल।

तहमत (फा० पु०) वह कपड़ा जो कमरमें लपेटा जाता है, लुंगी।

तहरी (हिं० स्त्री०) १ पेठेकी बरी और चावलकी खिचड़ी। २ मटरकी खिचड़ी। ३ कालीन बुननेवालोंकी ढरकी।

तहरीर (अ० स्त्री०) १ लिखावट, लेख। २ लेखशैली। ३ लिखी हुई बात, लिखा हुआ मज़मून। ४ लेखबद्ध प्रमाण। ५ लिखनेकी मजदूरी, लिखाई।

तहरीरी (फा० वि०) लेखबद्ध, लिखा हुआ।

तहलका (अ० पु०) १ मृत्यु, मौत। २ नाश, बरबादी। ३ विप्लव, धूम, हलचल।

तहलील—अरबदेशकी स्त्रियोंका एक प्रकारका कर्कश शब्द। जिह्वा और कण्ठकी गतिके एकत्र संयोगसे यह शब्द निकला है। यह शब्द निकालते समय वे मुंह पर बहुत तेजीसे हाथ फेरती हैं। तहलील सुननेसे ही अरब अथवा कुर्द लोग जोशमें आ कर ज्ञानरहित हो जाते हैं।

कजेरुन और बुसहरके मध्यवर्ती देशोंकी अरबी स्त्रियाँ किसी अपरिचित व्यक्तिकी अभ्यर्थनाके समय यह शब्द उच्चारण करती हैं। यह उनका आमोदज्ञापक निदर्शन है। मृत व्यक्तिके लिये शोक प्रगट करते समय भी यह शब्द व्यवहृत होता है।

तहवील (अ० स्त्री०) १ सुपुर्दगी। २ धरोहर, अमानत। ३ जमा, खजाना।

तहवीलदार (अ० पु०) वह मनुष्य जिसके जिम्मे रुपयेका हिसाब रहता है, खजानची।

तहसनहस (हिं० वि०) नष्ट भ्रष्ट, बरबाद।

तहसील (अ० स्त्री०) १ चंदा, उगाही, वसूली। २ जमीनकी वार्षिक आय। ३ तहसीलदारकी कचहरी, मालकी छोटी कचहरी।

तहसील—राजस्व वसूलकी सुबिधाके लिये एक एक प्रदेश भिन्न भिन्न भागोंमें विभक्त किया जाता है। इसके प्रत्येक भागको तहसील कहते हैं। हर एक तहसीलमें एक तहसीलदार रहता है और वही वहाँका मुख्य मुख्य काम करता है।

तहसीलका कर संग्रह करना ही तहसीलदारका प्रधान कार्य है। पञ्जाबके तहसीलदारोंके हाथ दीवानी और फौजदारी विचारकी क्षमता है। इन्हें मजिस्ट्रेट-कासा अधिकार रहता है।

तहसीलदारके कार्यालयको भी कभी कभी तहसील कहते हैं।

गवर्मेण्टकी नाईं जमींदारोंके अधीन भी बहुतसी तहसीलें हैं। जमींदारीका परगना अनेक तहसीलों और डीहोंमें विभक्त रहता है।

तहसीलदार (हिं० पु०) १ किसी परगने या तालुकका प्रधान कर वसूल करनेवाला। फारसी तहसीलदार और अरबी तहसील शब्दसे हिन्दी तहसीलदार शब्द उत्पन्न हुआ है। मुसलमानोंके राजत्वकालमें इस शब्दकी सृष्टि हुई है। बाद अंगरेज गवर्मेण्ट भी इस शब्दका व्यवहार करती आ रही है। २ जमींदारोंसे सरकारी मालगुजारी वसूल करनेका अफसर। यह मालके छोटे मुकदमोंका फैसला भी करता है।

तहसीलदारी (अ० पु०) १ मालगुजारी वसूल करनेका काम, तहसीलदारका काम। २ तहसीलदारका पद।

तहसीलना (अ० क्रि०) वसूल करना, उगाहना।

तहाँ (हिं० अव्य०) उस स्थान पर, वहाँ।

तहाना (हिं० क्रि०) लपेटना, तह करना।

तहोबाला (फा० त्रि०) क्रमभग्न, ऊपर नीचे, उलट पुलट।

ता (सं० पु०) विशेषण और संज्ञा शब्दोंके आगे लगाये जानेका एक भाववाचक प्रत्यय।

ता (फा० अव्य०) पर्यन्त।

ताई (हिं० स्त्री०) १ ताप, ज्वर। २ वह बुखार जो जाड़ा दे कर आता हो, जूड़ी। ३ मालपूआ, जलेबी आदि बनानेकी एक प्रकारकी छिछली कराही। ४ बापके बड़े भाईकी स्त्री, जेठी, चाची।

ताईद (अ० स्त्री०) १ पक्षपात, तरफदारी। २ समर्थन, पुष्टि।

ताईं (हिं० अव्य०) १ पर्यन्त, तक। २ निकट, समीप। ३ समक्ष, प्रति। ४ लिये, वास्ते, विषयमें।

ताऊ (हिं० पु०) बालकके पिताका बड़ा भाई, बड़ा चाचा।

ताऊन (अ० पु०) एक प्रकारका संक्रामक रोग। इसमें रोगीको गिलटी निकलती और बुखार आता है।

ताऊस (अ० पु०) १ मयूर, मोर। २ एक प्रकारका बाजा जो सारङ्गी और सितारसे मिलता जुलता है। इस पर मोरका चित्र बना रहता है।

ताऊसी (अ० वि०) १ मोरकासा, मोरके रङ्गका। २ गहरा बैंगनी।

ताओई—(ताओचि नामसे प्रसिद्ध) चीनदेशका एक प्राचीन धर्ममत और सम्प्रदाय ई०से ६०३ वर्ष पहले लेओकाङ् नामके एक दार्शनिकने जन्मग्रहण किया था, वे ही इस मत और सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। उनकी जीवनी अद्भुत और अलौकिक उपाख्यानोंसे भरी हुई है। उनके बाल बहुत ही सफेद थे, इसलिए वे 'लाओचि' अर्थात् 'शुभ्रकेश' के नामसे प्रसिद्ध थे।

पहले लाओचि चू-वंशीय एक चीन-सम्राट्के पुस्तकालयके अध्यक्ष थे। इस कार्यसे उन्हें नाना शास्त्र परिदर्शनमें विशेष सुभीता हुआ था। धीरे धीरे उनके पाण्डित्यकी चर्चा नाना स्थानोंमें फैल गई। चीन-सम्राट्ने उनको मान्दारिन्का पद दे दिया। कुछ दिन बाद वे तिब्बतमें जा कर एक लामाके पास धर्मोपदेश सीखने लगे। इस शिक्षाके बलसे ही उन्होंने ताओई वा ताओची अर्थात् अमरपुत्र नामक सम्प्रदायका प्रवर्त्तन किया था। इन्होंने अनेक ग्रन्थ रचे हैं, जिनमें ताओई ग्रन्थ ही प्रधान है। ताओई मत बहुत अंशोंमें ग्रीक-विद्वान् एपिकिउरसके मतका अनुयायी और कुछ चार्वाक-मतके समान है।

इस मतमें—उग्रस्वभावसुलभ दुष्ट कामनाओंको छोड़ कर दुर्दम इन्द्रियोंको वशीभूत करना ही मनुष्यका प्रधान धर्म और उद्देश्य बतलाया है। आत्मा और मनको-जैसे बने—हर एक तरहसे सर्वदा सुखी रखनेकी चेष्टा करना कर्तव्य बतलाया है। और यह भी बताया है, कि कभी भी कुचिन्ता और शोकरूपी चूहेको मनमें स्थान न देना चाहिये।

लाओचिके मतका उनके शिष्योंने बहुत कुछ परिवर्तन कर डाला। उन्होंने देखा कि, भयावह मृत्यु काल स्मृति-पथ पर आरूढ़ होने पर मन चञ्चल होता और सुख दूर भाग जाता है। इसलिए उन लोगोंने स्थिर किया कि, ऐसा एक अमृतरस बनाना चाहिये जिसके पीनेसे अमरत्व प्राप्त हो, फिर रोग, शोक, जरा और मृत्यु स्पर्श भी न कर सके। इस उद्देशसे वे रसायनशास्त्र अध्ययनमें प्रवृत्त हुए। अमृतरस पी कर अमर हो जाँयगे, इस आशासे सैकड़ों लोग उनका मत ग्रहण करने लगे। क्या धनी और क्या गरीब, क्या स्त्री और क्या पुरुष, सभी अभिनव नीतिशिक्षामें व्यग्र हो गये। इस तरह थोड़े ही दिनोंमें ताओची सम्प्रदाय अत्यन्त प्रबल हो गया। चीनमें सर्वत्र ही इन्द्रजाल, प्रेताधिष्ठान, भविष्यद्वाणी इत्यादिका प्रसार होने लगा। बहुतसे चीन-सम्राटोंने भी ताओचियोंके आपातमनोरम वचनों पर मुग्ध हो कर उन्हें आश्रय दान दिया था। ताओचियोंने भी लोगोंको भक्ति आकर्षित करनेके लिए नाना स्थानोंमें देवमन्दिर और देवमूर्त्तियाँ स्थापित कर पूजा, होम, बलि इत्यादि करना प्रारम्भ कर दिया। इस देशके तन्त्रशास्त्रोंमें जो चीनाचारक्रमका उल्लेख है, ताओचियोंका क्रिया-काण्ड प्रायः उससे मिलता जुलता है। इस देशके लोगोंका विश्वास है, कि तन्त्रोक्त चीनाचार चीनदेशसे इस देशमें प्रचारित हुआ है। सम्भव है, कि चीनके ताओचियोंने जिस मतका प्रचार किया है; वही इस देशमें चीनाचारके नामसे प्रचलित हुआ हो।

ताओचियोंमें बहुतोंको पिशाचसिद्ध देखा जाता है।

इस समय ताओचि लोग शूकर, पक्षी और मत्स्यसे उपास्य देवताकी पूजा किया करते हैं। बहुतसे तो अब दैवज्ञ कहलाते हैं।

बहुत दिनोंसे चीनके विद्वान् और बुद्धिमान व्यक्ति ताओचि-धर्मकी असारता प्रतिपादन करते आये हैं, किन्तु तो भी बहुतसे चीनवासी कुसंस्कारको छोड़ कर ताओई धर्मका परित्याग नहीं कर सके हैं।

ताओचियोंके प्रधान धर्माध्यक्ष, चीनके किसी प्रधान मान्दरिनकी अपेक्षा भी अधिक सुख-सम्पद्का भोग करते हैं। कियाङ्गसी प्रदेशके प्रधान नगरमें धर्माध्यक्षका प्रासाद है, देवता समझ कर उनके श्रीचरणके दर्शन अथवा उनका उपदेश सुननेके लिए बहुत दूर-देशान्तरोंसे

सैकड़ों लोग धर्माधातकी सेवामें उपस्थित हुआ करते हैं।

ताँत (हिं॰ स्त्री॰) १ चमड़े या नसोंकी बनी हुई डोरी। २ धनुषकी डोरी। ३ सूत, डोरी। ४ सारंगी आदिका तार। ५ जुलाहोंका रांच।

ताँतड़ी (हिं॰ स्त्री॰) ताँत।

ताँतवा (हिं॰ पु॰) आँत उतरनेका रोग।

ताँता (हिं॰ पु॰) श्रेणी, पंक्ति, कतार।

ताँतिपाड़ा—१ बीरभूम जिलेमें हरिपुर परगनेका एक छोटा ग्राम। यह नगरसे कई मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहाँ बहुतसे ताँती रहते हैं। जो तसरके कपड़े तथा सूती तैयार करते हैं। इस गाँवके पूर्व और पश्चिमकी ओर प्रायः ३००।४०० गज विस्तृत पत्थरका एक प्रसिद्ध बाँध है और इससे भी एक मील दक्षिणमें वक्रेश्वर नामक कई एक गरम सोते प्रवाहित हैं। बक्रेश्वर देखो।

२ मालदह जिलेके भट्टिया गोपालपुर परगनेका एक छोटा ग्राम। यह महानन्दा नदीके समीप ही अवस्थित है। यहाँ बहुतसे मनुष्य वास करते हैं। इसी कारण यह परगनेमें विशेष प्रसिद्ध है।

ताँतिया (हिं॰ वि॰) जो ताँतकी तरह दुबला हो।

ताँतिया तोपी (तात्या टोपी)—सिपाहीविद्रोहके नायक प्रसिद्ध नानासाहबके प्रधान मन्त्री और पृष्ठपोषक। सिपाही-विद्रोह (सन् ५७का गदर)-के इतिहासमें नानासाहबने जैसी प्रसिद्धि लाभ की है, ताँतिया तोपीकी प्रसिद्धि भी उनसे कुछ कम नहीं है। कानपुरके विद्रोहमें ताँतियाने जैसे साहस और वीरत्वका परिचय दिया था, उससे उस समयके सेनापति उइण्डहाम, कलिन आदि बहुतसे अंग्रेज भीत और चकित हो गये थे। इन्हींके उत्तेजित करने पर ग्वालियरकी बड़ी फौजने सिन्धियाका पक्ष छोड़ कर विद्रोह किया था और चर्खारीराजको विशेषरूपसे विपद्ग्रस्त कर दिया था। अंग्रेजी सेना आ कर यदि राजाकी सहायता न करती तो शायद उस समय चर्खारीराज्यका अस्तित्व ही मिट जाता। जिस समय झाँसीकी रानी अपने पार्श्वमित्र द्वारा परित्यक्त हो कर तथा अंग्रेज-सेनापतिके प्रबल आक्रमणसे अत्यन्त विपद्ग्रस्त हुई थीं, ताँतिया तोपी उस समय सेना सहित रानीकी सहायताके लिए उपस्थित हुए थे। रानीके साथ ब्रुटिश-सेनाका जितनी दफा युद्ध हुआ था इन्होंने प्रत्येक युद्धमें रानीकी यथेष्ट सहायता की थी। कालपी अंग्रेजोंके हाथ पड़नेके बाद गोपालपुरमें जा कर इन्होंने रानीसे भेंट की और ग्वालियर अधिकार किया। यहाँ इन्होंने बहुत धन एकत्रित किया था। अंग्रेजी सेनाने आ कर जब ग्वालियर अधिकार कर लिया और झाँसीकी वीर रानी जब शत्रुकी गोलीसे मारी गईं, तब ताँतिया एक तरहसे निरुत्साह हो गये। परन्तु साथमें बहुत सेना और अर्थबल होनेसे ये नानासाहबका नाम ले कर दाक्षिणात्यवासियोंको उत्तेजित करनेमें अग्रसर हुए। ब्रुटिश-गवर्मेण्ट भी इससे बहुत डर गई थी। बड़े लाटके आदेशानुसार सेनापति नेपियर ताँतियाको पकड़नेके लिए अग्रसर हुए। तांत्याने राव साहबके साथ चर्मण्वती नदीको पार कर राजपूतानामें प्रवेश किया। उनकी इच्छा थी, कि राजपूत राजाओंको उत्तेजित कर अंग्रेजोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा करें। किन्तु राजपूतानामें दो एक जगह विद्रोहके चिह्न दीखने पर भी तांत्याका अभिप्राय सिद्ध न हुआ। जयपुरको इन्होंने चर भेजे थे, वहाँसे विशेष सहायता पानेका सुभीता हुआ था, पर बात प्रकट हो जानेसे नसीराबादसे रवार्ट साहब दो हजार सेनाके साथ तांत्याकी गतिरोध करनेके लिए आ पहुंचे। तात्या अपनी फौजके साथ नर्मदा नदी पार होनेके अभिप्रायसे टोंकके भीतरसे धावित हुए। उस समय चम्बल नदीका पानी इतना बढ़ा हुआ था, कि उनकी सेनाको उसे पार करनेकी हिम्मत न हुई। इसके लिए वे पश्चिमकी तरफ बुन्दीगिरि पार हुए। उस समय राजपूतानेकी सभी नदियाँ उद्वेलित हुई थीं। इतने पर भी रवार्ट साहबने उनका पीछा करना छोड़ा नहीं। भीलवाड़ीके पास रवार्टको एक बार तांत्याकी सेना दीख पड़ी थी, किन्तु शीघ्र ही वह आँखोंके ओझल हो गई। बनास नदीके किनारे पर पहुँच कर रवार्ट तात्या पर आक्रमण करनेके लिए तैयारियाँ करने लगे। वहाँ तांत्या तोपी भी निश्चित न थे, वे सेनाको होशियार करके स्वयं पासके देवालयमें पूजाके लिए चले गये। आधी रातको आ कर उन्होंने सुना कि, शत्रु, लोग बहुत ही पास आ गये हैं। इस पर उन्होंने शीघ्र ही रण-भेरी

बजानेका आदेश दिया। पदातिकगण सभी थक गये थे, उन लोगोंने तांत्याका आदेश ग्राह्य नहीं किया। अश्वारोही और गोलन्दाज सब तैयार हो गये। दूसरे दिन एक छोटा युद्ध हुआ। किन्तु दुर्भाग्यवश तांत्याकी सेनाको पीठ दिखाना पड़ी। धीरे धीरे तात्या चम्बल नदीको पार हो कर झालरा पाटनकी तरफ बढ़ने लगे।

झालरापाटन एक प्रसिद्ध देशीय राज्यकी राजधानी है। तांत्याने अनायास ही उक्त राजधानी पर अधिकार कर अधिवासियोंसे करस्वरूप ६ लाख रुपये वसूल कर लिये। इसके सिवा राजकोषसे भी इनको प्रायः ४ लाख रुपयेकी चीजें और ३० तोपें मिली थीं। यहाँ उन्होंने बहुत थोड़े समयके भीतर बहुतसी नई सेना बना ली।

अब तात्यातोपी सैन्यबल और अर्थबलसे विशेष बलीयान् हो गये। इन्दोर पर उनका लक्ष्य गया। महाराष्ट्र मात्र ही नानासाहबको पेशवा मानते थे। तात्याको विश्वास था, कि इन्दोर अधिकार कर लेनेसे तथा नानासाहबका नाम घोषित होने पर होलकर-राज्यके सम्पूर्ण लोग आ कर उनकी सहायता करेंगे। किन्तु उनके सेनापतियोंमें परस्पर वैमनस्य होनेसे उनका यह उद्देश्य सिद्ध न हुआ। तांत्यातोपी पर आक्रमण करनेके लिए लखार्ट, होप और मेजर जनरल माइकेल सेना सहित राजगढ़में उपस्थित हुए। ताँतिया कौशली और बुद्धिमान् होने पर भी वैसे साहसी न थे, युद्धके समय वे प्रायः रणक्षेत्रमें उपस्थित न होते थे, इसी दोषके कारण उनकी सेना उनको कायर समझ कर घृणाकी दृष्टिसे देखती थी। इसी दोषसे विपुल सेना और सहायक होते हुए भी वे बार बार अंग्रेजोंसे पराजित होते आये थे। और अबकी बार भी वे इसी दोषके कारण पराजित हो गये। उनकी सेना तितर बितर हो गई। कुछ दिन ताँतिया जंगलोंमें घूमते रहे। अन्तमें उन्होंने अपनी सेनाके दो विभाग कर दिये, एक दल रावसाहबके अधीन उत्तरकी तरफ भेज दिया और एक दलको वे अपने साथ ले कर दक्षिणकी ओर चल दिये।

तांत्यातोपी नर्मदा नदीको पार हो कर दाक्षिणात्यकी तरफ अग्रसर हो रहे हैं, यह सुन कर बम्बईके गवर्नर भीत और चकित हुए। जिससे ताँतिया नर्मदा नदी पार न हो सकें, इसके लिए विशेष बन्दोबस्त किया गया था। ताँतिया अन्य किसी भी तरफ जानेका मौका न देख कर पश्चिमकी ओर आ कर कार्गुन नामक स्थानमें पहुंच गये। इधर मेजर सादर्लण्ड उनकी गति रोकनेके लिए भिलवन आ पहुँचे। ताँतिया देरी न कर नर्मदाकी तरफ अग्रसर हुए। छोटा उदयपुर नामक स्थानमें पहुँचते ही ब्रिगेडियर पार्कने आ कर उनकी सेनाको परास्त कर दिया। इससे ताँतिया भग्नहृदय हो कर बाँसवाड़ाके घने जंगलको लौटने लगे। उन्हें अब यह उम्मेद न थी, कि वे फिर ब्रिटिशगवर्मेण्टके विरुद्ध अस्त्र चलावेंगे। किन्तु अकस्मात् आशाका क्षीण-आलोक दिखलाई दिया। संवाद मिला कि, कुमार फिरोजशाह अयोध्यासे आ रहे हैं; इन्होंने उनका साथ दिया। वे जिस जालमें फँसे थे, अब उस जालको तोड़नेके लिए उन्होंने एक बार शेष मस्तक उठाया। प्रतापगढ़के गिरिसङ्कटकी भेट कर उन्होंने मेजर रोकको ससैन्य परास्त किया। कर्नल बेनसनने मालवामें यह संवाद पा कर जोरापुरमें ताँतियाकी सेना पर आक्रमण पूर्वक ६ हाथी छीन लिये।

ताँतिया इन्द्रगढ़ नामक स्थानमें आ कर फिरोजशाहके साथ मिल गये। इस समय दोनों पक्षोंकी बुरी हालत हो गई थी, किन्तु दोनों दलोंके मिल जाने पर कुछ कुछ आशाका सञ्चार हुआ। वे द्रुतवेगसे मालवामें हो कर राजपूतानाके उत्तरांशको धावित हुए। इधर कर्नल हलमेसने नसीराबादसे २४ घण्टेके भीतर २६ कोस रास्ता पार कर शीकर नामक स्थानमें विद्रोहियों पर आक्रमण किया। इस आकस्मिक आक्रमणसे ताँतिया अत्यन्त विचलित हुए। उन्होंने भग्नोत्साह हो कर कुछ अनुचरोंके साथ चम्बल नदी पार करते हुए सिरञ्जके निकटवर्ती निविड़ जंगलमें प्रवेश किया। जंगलमें मानसिंहके साथ उनकी मुलाकात हो गई। मानसिंह सिन्धियाके अधीन एक सामन्त राजा थे, सिन्धियाने उनकी समस्त सम्पत्ति छीन ली थी। इसी लिए वे दस्युवृत्ति कर जंगलमें ही जीवन यापन करते थे। ताँतियाके साथ उनका पूर्व परिचय था। उन्होंने तांत्यातोपीको आदरके साथ आश्रय दिया।

इधर सेनापति नेपियरने मेजर मिडको मानसिंह

और तांत्यातोपीके पकड़नेके लिए भेज दिया। १८५९ ई०को ८वीं मार्चको मेजर मिडने, जिस गाँवमें मानसिंह रहते थे उस गाँवके ठाकुरको पत्र दिया। उसमें मानसिंहके लिए लिखा गया, कि यदि वे स्वयं आ कर पकड़ाई देंगे, तो उनके लिए बहुत सुभीता होगा। अन्तमें मानसिंहको कहा गया, कि उनको ब्रटिश-शिविरमें रक्खा जायगा, सिन्धिया उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकेंगे, प्रत्युतः उनके सुखस्वच्छन्दताके लिए अङ्गरेज सेनापति विशेष कोशिश करेंगे। मानसिंह अंग्रेज-सेनापतिके पास जा कर मिले। किन्तु तब भी तांत्यातोपीको कुछ सन्देह न हुआ। उन्होंने मानसिंहको कहलवा भेजा, कि वे यहीं रहें या फिरोजशाहके साथ फिर जा मिलें। मानसिंहने उत्तर दिया कि, "मैं तीन दिनके भीतर आ कर आपसे मुलाकात करूंगा।" ब्रटिश सेनापति जानते थे कि मानसिंहके सिवा और किसीको भी ताकत नहीं कि तांत्या तोपीको पकड़ लावे। इसलिए नाना प्रकारका लोभ दे कर मानसिंह पर यह भार सौंपा गया। ७ अप्रीलको शामके बाद मानसिंहने तांत्यासे जा कर भेंट की और कहा—"मिड साहब आप पर सदय हुए हैं।" उस समय भी ताँतियाने पूछा, कि यहाँ रहें या फिरोजशाहके पास जाँय। किन्तु 'कल इसका जवाब दूंगा' इतना कह कर मानसिंह चल दिये। उसी रातको दो पहरके समय मानसिंहने कुछ सिपाहियोंके साथ आ कर देखा, कि तांत्या तोपी गहरी नींदमें सो रहे हैं। विश्वासघातक मानसिंह उसी अवस्थामें उनको कैद कर मिड साहबके शिविरमें ले गये। पीछे तांत्यातोपी सीकरीको भेजा गया। विचारमें तांत्यातोपी दोषी ठहराये गये। विचारके समय तांत्यातोपीने जवाब दिया था कि—"अपने प्रभुके आदेशसे इतने दिन युद्ध किया है; मैंने कभी भी किसी अंग्रेज पुरुष, स्त्री वा बालकको हत्या नहीं की।" १८५९ ई०, १८ अप्रीलको उनके प्राणदण्डका दिन स्थिर हुआ। मृत्युसे पहले तांत्यातोपीने यह बात कही थी—"मैं अपने लिए जरा भी दुःखित नहीं हूं परन्तु मेरा परिवारवर्गको कष्ट न पहुँचना चाहिये।"

नानासाहब, सिपाहीविद्रोह, झाँसीकी रानी आदि शब्दोंमें अन्यान्य विवरण देखो।

ताँतियाभील, (तांत्याभील)—एक प्रसिद्ध भील-दस्यु वा डाकू। मध्यप्रदेशमें नीमार जिलेके अन्तर्गत घाटकेरीके निकट विरदा नामका एक ग्राम है; यहाँ हिन्दू भीलोंके बीच कई एक घर गोपोंके भी वास हैं। इसी वंशमें (१८४२ ई०में) कृषिजीवी भाऊसिंहके औरससे ताँतियाका जन्म हुआ था।

बाल्यावस्थामें ही इसकी माताका देहान्त हो गया। विद्याशिक्षाके असद्भावके कारण ज्ञानमार्जित नहीं हो सका था, किन्तु उसमें उनके सद्गुण, असाधारण बुद्धि और न्यायपरता अवश्य थी।

बचपनसे ही ताँतिया अस्त्र-शस्त्रसे खेलना ज्यादा पसन्द करता था। उसमें शारीरिक सामर्थ्य भी कम न थी। एक दिन एक भैंसा क्षिप्त अवस्थामें गाँवके अन्दर घुस आया, ग्रामका कोई भी उसको पकड़ न सका। किन्तु ताँतियाने खेल समझ कर उसके दोनों सींग इस तरहसे पकड़ कर नवा दिये कि, फिर वह भैंसा किसी तरह भी अपना मस्तक उठा न सका और घर्राता हुआ जमीन पर गिर पड़ा।

तभीसे लोगोंको ताँतियाके पराक्रमका परिचय मिलने लगा। जिस ग्राममें भाऊसिंह रहता था, वहाँ उसकी कुछ सम्पत्ति न थी।

ग्रामसे कुछ दूरी पर पोखार नामक गाँवमें उसकी कुछ जमीन थी। शिव पटेल नामक एक व्यक्तिके साझेमें वह खेती करता था। ताँतियाकी उम्र जब ३० वर्षकी हुई, तब उसके पिता भाऊसिंहकी मृत्यु हो गई। पिताकी मृत्युके बाद उस शिव पटेलने ताँतियाको उस जमीनसे दूर कर दिया। इस पर ताँतियाने शिव पटेलके नाम अदालतमें नालिश ठोंक दी; किन्तु अर्थाभावसे वह मुकदमेमें हार गया।

ताँतियाने मुकदमेमें हार कर शिव पटेलको उत्तम-मध्यम कुछ शिक्षायें दीं। इस अन्याय अत्याचारके कारण उसे एक वर्षकी कैद हुई।

यह उसका प्रथम कारागार दर्शन है। नागपुर सेंट्रल जेलमें बड़े कष्टसे एक वर्ष बिताया।

ताँतिया जेलसे लौट तो आया पर गाँवके कुछ लोगोंके षड़यन्त्रसे उसे फिर तीन महीनेके लिए जेल जाना पड़ा।

जेलसे छुटकारा पा कर अबकी बार वह अंग्रेजी राज्यमें न रह कर होलकर राज्यमें शिवा नामक ग्राममें रहने लगा।

इस समय फिर वह पूर्वोक्त षड़यन्त्रकारियोंके षड़यन्त्रमें पड़ गया। इस षड़यन्त्र और जेलके कठोर व्यवहारने ही ताँतियाको डाकू बना दिया, उसके दस्युवृत्ति ग्रहण करनेमें यही प्रधान कारण था। षड़यन्त्रका हाल मालूम पड़ते ही ताँतियाने वह ग्राम छोड़ दिया और एक जगहसे दूसरी जगह, एक जङ्गलसे दूसरे जङ्गलमें घूम फिर कर एक वर्ष काट दिया ; इस समय जीविका निर्वाहके लिए उसको कुछ कुछ चोरी और डकैती भी करनी पड़ती थी।

खड़ोजाग्राममें बिजनिया नामका ताँतियाका एक विश्वस्त मित्र था, उससे ताँतियाको षड़यन्त्रके विषयकी बहुत कुछ खोज मिला करती थी। ताँतिया हिम्मत पटेल आदि कुछ षड़यन्त्रकारियोंके षड़यन्त्रसे पुलिसके द्वारा फिर पकड़ा गया।

उसके साथ बिजनिया और दौलिया ये दोनों भी पकड़े गये। इस हाजत-घरमें ताँतियाके अनुचर भील-कैदी १० थे, वे हाजत-घरसे सेंध काट कर निकल आये और पहरेवालेको कह कर चल दिये।

ताँतिया अपने दल-बलके साथ जेलसे निकल कर ६ घण्टा लगातार चला, ३० कोस चल कर सब निरापद हुए और गलेकी लोहेकी बनी हँसुली आदि तोड़ डालीं। जिन लोगोंने ताँतियाके विरुद्ध षड़यन्त्र रचा था, समय पा कर अब उनको वह उपयुक्त सजा देने लगा। इसी तरह ताँतिया कंजूसका माल लूट कर गरीबोंको बाँटता था, जो अन्नके अभावसे भूखा मारा फिरता था, उसे ताँतिया बहुत रुपये देता था। कंजूस वा दुर्दान्तके लिये तो ताँतिया यमके समान था।

जिस जिस आदमीने ताँतियाके विरुद्ध षड़यन्त्र किया था और उसको पुलिसके हाथ पकड़वा दिया था, उन सबको उसने विशेषरूपसे दण्ड दिया। उनके घर द्वार जला दिये, धन लूट कर गरीबोंको बाँट दिया। पुलिसने इसको पकड़नेके लिए बड़ी बड़ी कोशिशें कीं, पर सब व्यर्थ हुईं। पुलिस जब सैकड़ों बार कोशिश करके इसे पकड़ न सकी, तब अनन्योपाय हो कर उसको पकड़नेके होलकर-राजसे सहायता माँगनी पड़ी। होलकर-राज भी ब्रटिश-पुलिसके साथ एकमत हो कर उसके अनुसन्धानमें प्रवृत्त हुए।

ताँतियाको पकड़नेके लिये पुलिस जितना प्रयत्न करने लगी, उतना ही उसका पकड़ना उनके लिये कठिन होने लगा। इस समय सिर्फ भील ही ताँतियाके दलमें न थे, कोरकू और बनजारोंमेंसे भी बहुतसे आ कर उसके दलको बढ़ाने लगे।

ताँतियाको न पकड़ सकनेका प्रधान कारण यह था, कि वह दरिद्रोंका पिता और विपन्नका एकमात्र आश्रयदाता था। ताँतिया जिस ग्राममें लूट करता, उसी गाँवके दरिद्रोंको सबके सामने समान भावसे बटवारा कर देता था।

बालक, ब्राह्मण और स्त्री, ये तीन तो ताँतियाके लिये विशेषरूपसे दोषी होने पर भी वह उनका किसी तरह अनिष्ट न करता था।

जिन गुणोंके कारण उस प्रदेशकी दरिद्र प्रजामण्डली ताँतियाको विशेषरूपसे आदर करती थी, वे गुण उसने डाकू होनेके बाद नहीं सीखे थे। बचपनसे ही उसके हृदयपट पर उन गुणोंका अक्स पड़ा हुआ था।

ताँतियाको पकड़नेके लिये गवर्मेण्ट राशि राशि अर्थ व्यय करने लगी, होलकर महाराजके बहुतसे विश्वस्त कर्मचारी और सुदक्ष पुलिस, कोई भी कृतकार्य न हो सके। ताँतिया इसी तरह कभी अङ्गरेजी राज्यमें और कभी होलकर राज्यमें जा कर दुष्टोंका दमन करने लगा।

इसी समय ताँतियाका दाहिना हाथ दौलिया पकड़ा गया और हमेशाके लिये उसे कालेपानीकी सजा हुई। ताँतियाने बहुत डकैती करके न मालूम क्या सोच कर कुछ दिनोंके लिये सौम्यमूर्त्ति धारण कर ली।

ताँतियाने इन ५ वर्षोंमें इतनी डकैतियाँ की थीं, कि जिसका वर्णन असम्भव है। उसके द्वारा यथाक्रमसे बड़ी बड़ी ४०० प्रसिद्ध डकैतियाँ हुई थीं। कभी पुलिसके सामने और कभी पुलिसको प्रसारित करके ये डकैतियाँ की गई थीं। उस समय ताँतियाने कुछ पुलिस-कर्मचारियोंकी नाक काट ली थी। इस समय ताँतियाको

उम्र ४५ वर्षकी थी, इस तरह असमयमें बहुत परिश्रम, शारीरिक अनेक अत्याचार आदिसे उसका शरीर कुछ दुर्बल हो गया तथा लगातार ११ वर्ष तक पुलिस, पल्टन, मालगुजार आदिके साथ युद्ध कर और हजारों घर जला कर वह बहुत ही क्लान्त हो गया। अब दस्युपति ताँतिया इन सबको छोड़ कर गवर्मेण्टसे क्षमा पानेके उपाय सोचने लगा। इसके लिये आखिर उसे बहुतोंके साथ मित्रता करनी पड़ी। उसकी तरफसे गवर्मेण्टको दो एक बात कहनेके लिये बहुतोंको उसने रुपये भी दिये।

पहले इसकी हिम्मत यहाँ तक बढी हुई थी, कि जब उसे गरीबोंके कष्ट निवारण करनेकी इच्छा होती और सहजमें कहींसे द्रव्य-संग्रहका उपाय न देखता, तब चलती गाड़ीमें चढ कर बाहुबलसे गाड़ीका दरवाजा खोल डालता था। इस तरह जी० आई० पी० रेल गाड़ीमें चढ कर चावल, गेहूं, चना आदिके बोरे नीचे डाल देता और बादमें उस गाड़ीसे उतर कर उन चीजोंसे गरीबोंका अभाव दूर करता था। किन्तु अब उस शक्तिका ह्रास हो गया, दृष्टिशक्ति भी घट गई वह तेज, वह उद्यम अब उसमें कुछ भी नहीं रहा!

ताँतियाने मेजर ईश्वरीप्रसाद सी० आई० ई०से-अङ्गरेजोंसे क्षमा मांगनेके लिये मित्रता की। ईश्वरीप्रसादने एक दिन ताँतियाको निमन्त्रण दिया। ताँतिया जब इनके मकान पर निमन्त्रण रक्षाके लिये उपस्थित हुआ, तब इन्हींके षड़यन्त्रसे पुलिसके द्वारा पकड़ा गया। इस पर ताँतियाके अनुचर पुलिससे बहुत कुछ लड़े, पर किसी तरह भी कृतकार्य न हो सके।

“ताँतिया पकड़ा गया है” इस संवादको पा कर अङ्गरेज गवर्मेण्टके आनन्दकी सीमा न रही! पुलिस-कर्मचारी मात्र ही अपने कष्टका लाघव समझ कर आनन्दसे नाचने लगे। ईश्वरीप्रसादने ताँतियाको विचारार्थ अङ्गरेजोंके पास भेज दिया। किन्तु बहुतसे लोग सन्देह करने लगे, कि वह असली ताँतिया है या और कोई। अन्तमें अनेक प्रमाणों द्वारा निर्णय हो गया कि, वही असली ताँतिया है।

अब ताँतियाका विचार होने लगा। ताँतियाके विरुद्ध हजारों अभियोग उपस्थित हुए। ताँतियाके विचारके दिन अदालत लोगोंकी भीड़से ठसाठस भर गई। ताँतियाको जो कुछ पूछा गया, उसने सबका सत्य स्वीकार किया था। ताँतियाके लिए फाँसीका हुक्म हुआ।

ताँतियाको मजबूतीसे बाँध कर जब्बलपुरकी जेलके भीतर पहुँचाया गया। बहुतसे लोग ताँतियाके लिये रोने लगे। ताँतिया राजदण्डसे दण्डित हो हमेशाके लिये इस लोकसे विदा हो गया।

ताँती (हिं० स्त्री०) १ पंक्ति, कतार। २ बालबच्चे, औलाद। (पु०) ३ जुलाहा।

ताँबा (हिं० पु०) ताम्र देखो।

ताँबी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका ताँबेका छोटा बरतन जिसका मुँह चौड़ा रहता है। २ ताँबेकी करछी।

ताँबेकारी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका लाल रङ्ग।

ताँबेल (पु०) कच्छप, कछुआ।

ताँवर (हिं० स्त्री०) १ ताप, ज्वर, हरारत। २ जूड़ी। ३ मूर्च्छा, पछाड़।

ताँवरी (हिं० स्त्री०) ताँवर देखो।

ताक़ (अ० पु०) १ चीज वस्तु रखनेके लिये दीवारमें बना हुआ गड्ढा, आला, ताखा। (वि०) २ विषम, जो संख्यामें बराबर न हो। ३ अद्वितीय, अनुपम।

ताक (हिं० स्त्री०) १ अवलोकन, ताकनेकी क्रिया। २ अनुसन्धान, खोज, तलाश। ३ किसी अवसरकी प्रतीक्षा, घात, दाँव। ४ स्थिरदृष्टि, टकटकी।

ताकजुफ्त (फा० पु०) एक प्रकारका जुआ। इसमें एक खिलाड़ी मुट्ठीके भीतर कुछ कौड़ियाँ वा इसी प्रकारकी दूसरी वस्तुएँ ले कर दूसरेको पूछता है कि वस्तुओंकी संख्या सम है या विषम। यदि उत्तरदाता ठीक बतला देता है, तो वह जीत जाता है।

ताकझाँक (हिं० स्त्री०) १ कुछ प्रयत्नपूर्वक दृष्टिपात, ठहर ठहर कर बारबार देखनेकी क्रिया। २ छिप कर देखनेकी क्रिया। ३ निरीक्षण, देखभाल। ४ अन्वेषण, तलाश, खोज।

ताक़त (अ० स्त्री०) बल, शक्ति, जोर। २ सामर्थ्य।

ताक़तवर (फा० वि०) १ बलवान्, बलिष्ठ। २ सामर्थ्यवान्, जिसे बल हो।

ताकना (हिं० क्रि०) १ विचारना, चाहना, सोचना। २ एकदृष्टिसे देखना, टकटकी लगाना। ३ ताड़ना, लखना। ४ पहलेसे देख कर स्थिर करना, तजवीज करना। ५ दृष्टि रखना, रखवाली करना।

ताकरीलिपि—बामियानसे यमुना नदीके किनारे तकके प्रदेशमें जो जो अक्षर प्रचलित हैं, उनका नाम है ताकरी। ताकरी अक्षर नागरी लिपिके समान नहीं, बल्कि नागरीका रूपभेद हो सकता है। सम्भवतः तक्षक वा ताकोंने इन अक्षरोंका पहले पहल प्रचलन किया है, इसीलिये उनके नामानुसार इसका ताकरी नाम पडा है। सिन्धु नदीके पश्चिमकी तरफ और शतद्रु नदीके पूर्वभागमें तथा काश्मीर और काङ्गडाके ब्राह्मणोंमें इस लिपिका प्रचलन है। काश्मीर और काङ्गडाके शिलालेखों और सिक्कोंमें यही अक्षर देखनेमें आते हैं। काश्मीरका राजतरङ्गिणी नामक ग्रन्थ भी तकारी लिपिमें लिखा गया है। युसुफजाह और सिमलाके बीच २६ स्थानोंमें यह लिपि दीख पडती है। इसमें कोई कोई स्थान ताकरी मुण्डे और लुण्डे नामसे परिचित है।

इस लिपिमें विशेषता इतनी है, कि स्वरवर्ण व्यञ्जनके साथ कभी भी संयुक्त नहीं होता, पृथक् लिखना पडता है। इस लिपिके संख्याबोधक अक्षर हालके प्रचलित अक्षरोंके समान हैं। यह सहजमें लिखी जा सकती है। इसमें सिर्फ 'अ' व्यञ्जनवर्णके साथ संयुक्त किया जाता है।

ताकारी—सतारा तासगाँवके रास्तेके दक्षिणमें अवस्थित एक गण्डग्राम। यह पेंठ नामक स्थानसे १० मील उत्तर-पूर्व तथा कराड़से १६ मील दक्षिण-पश्चिममें पड़ता है। सताराके रास्तेसे प्रायः १ मील उत्तरमें एक छोटा पहाड़ देखनेमें आता है जो दक्षिण-पूर्वकी ओर विस्तृत है। इस पहाड़में एक आश्चर्य रमणीय गुहा है। इसी गुहाके लिये ताकारी ग्राम बहुत मशहूर हो गया है। प्रायः $\frac{१}{२}$ मील पहाड़के ऊपर कुछ दूर जानेसे उक्त गुहाके पास पहुंच जाते हैं। गुहाके पश्चिम दिशाकी पार्वतीय भूमि प्रायः २० गज पर्यन्त समतल है। कमलभैरवीका श्वेतवर्ण मन्द्रिर दक्षिण-पूर्व कोणमें प्रतिष्ठित है। उक्त गुहा ४० फुट लम्बी और ३० फुट गहरी है। इसके मध्य एक आयताकार सरोवर है, जिसका जल बहुत परिष्कार और स्वास्थ्यजनक है। पूर्वकी ओर जल तक बहुतसी सीढ़ियाँ आ गई हैं। तालाब देखनेमें बहुत सुन्दर लगता है। इसका परिमाण ११´×१३ है। गुहाके पश्चिम दिशामें एक महादेवका मन्दिर है, जिसमें शिवलिङ्ग स्थापित हैं। मन्दिर आधुनिकसा प्रतीत होता है। इसका परिमाण २५×१० फुट है। आयताकार, नलाकार और अष्टकोणाकार इन तीन प्रकारके ६ फुट ऊँचे स्तम्भोंसे मन्दिरका दालान सुरक्षित है। इसकी छत प्रस्तरमय है। जिस कोठरीमें शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है, वह समचतुर्भुजाकार है। मन्दिरके शिखर पर एक कलस दीख पड़ता है। कहा जाता है, कि बेलगाँवके अधीन त्रिकोड़ीके निकटवर्ती चन्दरके रामरख भगवन्तने १७३० ई०में यह मन्दिर निर्माण किया है। माघ मासकी कृष्ण चतुर्दशीमें यहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है। शुक्लपक्षके रात्रिकालमें कमल-भैरवीकी प्रतिमूर्त्तिको पालकी पर चढ़ा कर यात्रा कराते हैं।

ताकि (फा० अव्य०) इसलिये कि, जिससें।

ताकीद (अ० स्त्री०) किसीको सावधान करके दी हुई आज्ञा वा अनुरोध।

ताकोली (हिं० स्त्री०) एक पौधेका नाम।

ताक्षक (सं० त्रि०) तक्षक सम्बन्धीय।

ताक्षण्य (सं० पु०-स्त्री०) तक्ष्णोऽपत्यं तक्षन्-ण्य तक्ष्णो अपत्यं। तक्षका अपत्य, बढ़ईकी सन्तान।

ताक्षशिल (सं० त्रि०) तक्षशिलोऽभिजनोऽस्य तक्षशिल-अण्। तक्षशिलाजात, जो तक्षशिला नगरीमें उत्पन्न हुआ हो, या जो तक्षशिला नगरीसे आया हो।

ताक्ष्ण (सं० पु०-स्त्री०) तक्ष्णोऽपत्यं तक्षन्-अण्। शिवादिभ्योऽण्। पा ४।१।११२। तक्षकका अपत्य, बढईकी सन्तान।

ताखी (अ० वि०) जिसकी दोनों आँखें भिन्न भिन्न रङ्ग या ढङ्गकी हों।

ताग (हिं० पु०) तागा देखो।

तागड़ (हिं० स्त्री०) तख्तोंकी बनी हुई एक प्रकारकी सीढ़ी जो जहाजों पर चढ़नेके लिये लगी रहती है।

तागड़ी (हिं० स्त्री०) १ कमरमें पहननेका एक गहना, करधनी, कांची। २ कटिसूत्र, कमरमें पहननेका रंगीन डोरा।

तागना (हिं० क्रि०) सुईमें तागा डाल कर सिलाई करना।

तागपहनी (हिं० स्त्री०) एक पतली लकड़ी। इसका एक सिरा नोकदार और दूसरा चिपटा होता है।

तागपाट (हिं० पु०) रेशमके तागेमें सोनेके तीन जंतर डाल कर बनाया हुआ एक प्रकारका गहना। यह केवल विवाहमें काम आता है।

तागा (हिं० पु०) १ सूत, डोरा, धागा। २ प्रति मनुष्यके हिसाबसे लगनेवाला एक कर।

ताङ्क—१ युक्तप्रदेशके अन्तर्गत डेरा इस्माइलखाँ जिलेका उपविभाग और तहसील। यह अक्षा० ३२° और ३२°३०´ उ० तथा देशा० ७०°४´ और ७०°४३´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ५७२ वर्गमील है। इसके पश्चिममें वजोरिस्तान पड़ता है। यह तहसील पहले एक प्रकारकी स्वाधीन थी। यहाँके नवाब दौलत खेल वंशके कतिखेल सम्प्रदायभुक्त थे। अन्तिम नवाबका नाम शाह नवाजखाँ था, जिनकी मृत्यु १८८२ ई०में हुई। पीछे उनके लड़के सरवारखाँ नवाब बने। ये बड़े शूरवीर निकले। उन्होंने अपना सारा समय राज्यको सुधारने तथा अपनी जातिको उन्नत बनानेमें लगा दिया था। सिख लोगोंने जब डेरा इस्माइलखाँ हस्तगत कर लिया, तब सरवारखाँको उनकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और वे वार्षिक १२०००) रु० उन्हें देनेको राजी हुए। सिखकी गोटी जब धीरे धीरे जमने लगी, तब वार्षिक कर बढ़ा कर ४००००) रु० कर दिया गया। सरवारखाँके मरने पर उनके लड़के अलादादखाँ राज्याधिकारी हुए। इस समय सिखका एक लाख रुपया पावना उनके यहाँ हो गया था। अलादाद खाँमें ऐसी शक्ति नहीं थी कि उक्त ऋणका परिशोध करें, अतः वे पहाड़ोंपर भाग कर महशूदकी शरणमें पहुँचे। अन्तमें यह तहसील सिख सरदार नवनिहालसिंहको जागीरके रूपमें दे दी गई। कुछ काल तक यह तहसील मालिक फतेहखाँ तिवानाके अधीन थी, पीछे सिख सरदार दीवान लक्खीमलके लड़के दौलत रायने इस पर अपना अधिकार जमाया। १८४६ ई०में अलदादके लड़के शाह नवाजखाँने अंगरेज प्रतिनिधि एडवर्डकी शरण ली। दयापरवश एडवर्डने (पीछे सर हरबर्ट) उन्हें ताङ्कका शासक बना दिया साथ साथ पूरी स्वाधीनता भी दे दी। किन्तु ऐसी स्थिति सदा एकसी न रही। यहाँकी जनसंख्या लगभग ४८४६७ है। इसमें एक शहर और ७८ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३२° १३´ उ० और देशा० ७०°२२´ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ४४०२ है। यह शहर ताङ्कके प्रथम नवाब कतलखाँसे बसाया गया है। समूचा शहर मट्टीकी दीवारसे घिरा हुआ है। दीवारकी ऊँचाई १२ फुट और चौड़ाई ७ फुट है। बीच बीचमें दो एक फाटक भी लगे हुए हैं, लेकिन वे सब अभी भग्नावस्थामें पड़े हैं। यहाँ भग्न मट्टीका दुर्ग भी देखनेमें आता है। शहरसे अनाज, कपड़े, तमाकू तथा और दूसरी दूसरी चीजोंकी रफतनी होती है। पञ्जाबके प्रतिनिधि सर हेनरी दुरन्दकी इसी शहरमें मृत्यु हुई थी।

ताच्छीलिक (सं० पु०) तच्छीलार्थे विहितः ठञ्। तच्छीलार्थ विहित-प्रत्यय।

ताच्छील्य (सं० क्ली०) तत्शीलं यस्य तस्य भावः ष्यञ्। तच्छीलता, किसी कामको लगातार करनेकी क्रिया।

ताज (अ० पु०) १ राजमुकुट, बादशाहकी टोपी। २ कलगी, तुर्रा। ३ मोर, मुर्गा आदि चिड़ियोंके सिर परकी चोटी, शिखा। ४ दीवारकी कंगनी या छज्जा। ५ मकानके सिरे पर शोभाके लिये बनाई जानेकी बुर्जी। ६ गंजीफेके एक रंगका नाम। ७ आगरेका ताजमहल।

ताज—मुसलमान जातिकी एक स्त्री कवि। इनके वंश, स्थान इत्यादिका कोई ठीक पता नहीं लगा। शिवसिंह सरोजमें इनका सम्बत् १६५२ कहा गया है और मुन्शी देवीप्रसादने सम्बत् १७०० के लगभग इनका समय बतलाया है। इनकी सभी कविताएँ सरस और मनोहर हैं। श्रीकृष्णचन्द्रजीकी भक्तिमें भी ये खूब रंगी थीं। इसका परिचय इनकी कवितासे ही झलकता है। जान पड़ता है, कि ये पञ्जाबके तरफकी होंगी, क्योंकि इनकी भाषा पञ्जाबी और खड़ी बोली मिश्रित थी। यों तो इनके बनाये हुए अनेक छन्द विद्यमान हैं पर उदाहरणार्थ यहाँ एकही दिया जाता है—

"छैल जो छबीला सब रंगमें रंगीला
बडा चित्तका अड़ीला कहूं देवतोंसे न्यारा है।
भाल गले सोहै नाक मोती सेत सोहैं कान
मोहै मन कुण्डल मुकुट सीस धारा है॥
दुष्ट जन मारे सतजन रखवारे ताज
चित हित वारे प्रेम प्रीति कर वारा है।
नन्दजूका प्यारा जिन कंसको पछारा
वह वृन्दावनवारा कृष्ण साहब हमारा है॥"

ताजक (फा॰ पु॰) १ ईरानोंकी एक जाति। बुखाराके खानाते और बदकसानमें ये अधिक देखे जाते हैं। इनमेंसे बहुतसे खोकन्द, खिवा, चीनतातार और अफगानिस्तानमें रहते हैं।

ताजक शब्दकी उत्पत्तिका निर्णय करना अतीव कठिन है। उजबक, हजारा, अफगान, ब्रहुई और तुर्कशासित प्रदेशोंमें जो लोग स्थायीरूपसे रहते हैं, साधारणतः ताजक शब्द उन्हींके लिए प्रयोग किया जाता है। समस्त प्रदेशोंमें तुरकी, पुस्तु, ब्रहुई और वेलुचि भाषा व्यवहृत होती है, मतलब यह कि फारसी भी प्रचलित है। अफगानिस्तान और तुर्किस्तानमें जिन अधिवासियोंकी जातिगत भाषा फारसी है, वे ताजक और पारसिवन इन दोनों नामोंसे परिचित हैं। पारस्य देशमें ताजक और इलियत ये दो विपरीत अर्थबोधक संज्ञाएँ प्रचलित हैं। वहाँ सर्वत्र ही ताजकसे शहरवालोंका बोध न हो कर कृषकोंका बोध होता है। बुखारमें यह जाति सर्त, अफगानिस्तानमें देहान और वेलुचिस्तानमें देहवारके नामसे प्रसिद्ध है। काबुल नदीके निकटवर्ती ईरानी लोगोंको काबुली कहते हैं। सिस्तानके अधिकांस लोग ताजक है। ये फूसकी झोंपड़ियोंमें रहते और मत्स्य तथा पक्षी पकड़ कर जीवनधारण करते हैं। तुर्क आक्रमणके पहलेसे ही बदकसानमें ताजकोंका वास था। यहाँके ईरानी पर्वत, उपत्यका और उद्यान-परिवेष्टित पल्लीमें वास करते हैं। बदकसानके ताजक चित्रलके लोगोंकी तरह खूबसूरत नहीं होते। इनकी पोशाक उजबकों जैसी है।

बुखाराके ताजक लोग स्मरणातीत कालसे वहाँ रहते आये हैं। ये पहले अन्य धर्मावलम्बी थे। हिजराकी पहली शताब्दीके शेषभागमें इनको जबरन मुसलमान बनाया गया था। बुखाराके ताजक लम्बे और खूबसूरत तथा उनकी आँखें और बाल भी स्याह काले हैं। ये बड़े डरपोक, लोभी, मिथ्यावादी और विश्वासघातक होते हैं।

कोई कोई कहते हैं, कि 'ताज' शब्दसे 'ताजक' शब्दकी उत्पत्ति हुई है। ताज शब्दका अर्थ है—अग्नि-पूजकका मुकुट। किन्तु ताजक लोग उक्त व्याख्याको नहीं मानते।

ताजक लोग ज्यादातर खेतीबारी और रोजगारमें ही लगे रहते हैं; सभ्यता और शिक्षाकी आलोचनासे भी ये उदासीन नहीं हैं। इन्हीं लोगोंके प्रयत्नसे मध्य-एशियाका बुखारा सभ्यता और उन्नतिका केन्द्रस्थल हो गया है। बहुत दिनोंसे ये मानसिक उन्नतिके लिए सचेष्ट हैं और असभ्य विजेताओं द्वारा प्रपीड़ित होने पर भी ये उनको सभ्यताकी शिक्षा देते रहे हैं। मध्य-एशियाके अधिकांश महत् व्यक्ति ताजकवंशके हैं। बुखारा और खिवाके प्रधान प्रधान व्यक्ति सब ताजक हैं।

ताजक और सर्त लोगोंमें शरीर-गत बहुत वैषम्य देखनेमें आता है। भम्बेरी साहबका कहना है कि पारसिक क्रीतदासियोंके साथ सर्त पुरुषोंके विवाहकी प्रथा प्रचलित रहनेके कारण सर्त लोगोंकी आकृति खर्व हो गई है।

मध्य एशियाके बालक-वृद्धवनिता सभी कविता और किस्से पढ़ना पसन्द करते हैं। यहाँका साहित्य भी वैदेशिक अलङ्कारोंसे भरा हुआ है। स्थानीय मुल्ला ईसानोंने बहुतसे धार्मिक ग्रन्थ लिखे हैं। किन्तु सभी दुर्बोध हैं—साधारण लोग उन पुस्तकोंको बिलकुल ही नहीं समझ पाते। ताजकोंके पुस्तक लिखित सभी दृष्टान्त विदेशीय साँचेमें ढले हुए हैं।

उजबक, तुर्क और खिरविज लोग अत्यन्त सङ्गीत-प्रिय हैं। गाते समय ये लोग मृदु रागिणीकी पकड़ रखते हैं। उजबकोंकी कविताओंका मूलभाव अरबी अथवा फारसीसे लिया गया है, ऐसा जान पड़ता है। इनमें अपूर्वत्व तो बिरली ही कवितामें पाया जाता है।

तातार लोग वीरत्व-गाथा रचना और उसकी गाना खूब पसन्द करते हैं।

२ यवनाचार्यका बनाया हुआ ज्योतिषका एक ग्रन्थ। पहले यह ग्रन्थ अरबी और फारसीमें था। बाद राजा समरसिंह, नीलकण्ठ आदिसे यह संस्कृतमें बनाया गया। ताजिक देखो।

ताज़गी (फा० स्त्री०) १ शुष्कताका अभाव, हरापन, ताजापन। २ प्रफुल्लता, स्वस्थता। ३ नयापन।

ताजत् (सं० त्रि०) तन्‌ज सङ्कोचे आदित्वदिर्नलोपौ। शीघ्र।

ताजदार (फा० वि०) १ ताजके आकारका। (पु०) २ ताज पहननेवाला बादशाह।

ताजद्रुङ्ग (वै० पु०) कोविदारवृक्ष, कचनारका पेड़।

ताजन (फा० पु०) चाबुक, कोड़ा।

ताजना (हिं० पु०) ताजन देखो।

ताजपराकाठि—बम्बई विभागके बोउड़ और गधार अञ्चलवासी एक जाति।

ताजपुर—१ दरभङ्गा जिलेका एक उपविभाग। यह पहले त्रिहुतके अन्तर्गत था। १८७५ ई०को १ली जनवरीसे दरभङ्गा, मधुवनी और ताजपुर इन तीन महकुमेको ले कर दरभङ्गा जिला संगठित हुआ है। १८६७ ई०को इस स्थानमें प्रथम महकुमा स्थापित हुआ था। यह अक्षा० २५°२८'१५" और २६°२' उ० तथा देशा० ८५°३'६" और ८६°४' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ७६४ वर्गमील है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, कोल प्रभृति यहाँ वास करते हैं। हिन्दूकी संख्या सबसे अधिक है।

ताजपुर महकुमेमें ३ थाना, एक दीवानी और फौजदारी अदालतें हैं।

२ उक्त ताजपुर महकुमेका प्रधान शहर। यह अक्षा० २५°५१'३२" उ० और देशा० ८५°४३' पू०के मध्य मुजफ्फरपुरसे २४ मील दूर दलसिङ्गसरायके रास्ते पर अवस्थित है। यहाँ एक स्कूल, दातव्य औषधालय और विचारालय है। शहरके नीचे वलन नदी प्रवाहित है।

ताजपुर—पुर्णिया जिलेका एक परगना। इस परगनेमें धान, तिल, सरसों, आलू इत्यादि बहुत उपजते हैं।

परगनेके किसी किसी स्थानमें ४½ से ७½ हाथका कट्ठा चलता है। साधारणतः ४ से ५ हाथका कट्ठा ही विशेष प्रचलित है। प्रजाको प्रति बीघेमें एक रुपया मालगुजारी देनी पड़ती है।

इस परगनेमें ४४ जमींदारी लगती हैं। यहाँका कर प्रायः ६८८४२ रु० है।

ताजपुर—१ दिनाजपुर जिलेका एक परगना। यह जिलेके दक्षिण पश्चिम कोणमें अवस्थित है। इस प्रदेशकी जमीन समतल नहीं है, कहीं ऊँची और कहीं नीची है तथा दक्षिण-पश्चिमकी ओर ढालू है। यह प्रदेश समुद्रपृष्ठसे १५० फुट ऊँचा है। थोड़े परिश्रमसे ही खेतमें अच्छी फसल उपजती है। कहीं कहीं घासकी जमीन और जलाभूमि है। वर्षाकालमें परगनेकी सभी नदियोंका जल बहुत बढ़ जाता है जिससे सब ग्राम जलमय हो जाता है।

धान, ईख, तिल सरसों, उरद इत्यादि यहाँके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं। ग्रामके निकटस्थ जमीनमें तमाकू बहुत उपजता है। पहले यहाँ बहुतसी नीलकी जमीन थी।

ताजपुर परगनेके सभी स्थानोंमें मछली पाई जाती है। धीवर मछली पकड़ कर राइगञ्ज और निकटवर्ती बाजारमें बेचते हैं।

१८७४ ई०के दुर्भिक्षकालमें दुर्भिक्ष-प्रपीड़ित मनुष्योंके थोड़े खर्चसे परगनेमें कई एक राहें तैयार हो गई हैं।

यहाँकी जमीन कुछ कुछ धूसरवर्ण तथा बालू मिली हुई कीचड़सी है।

इस परगनेका जलवायु स्वास्थ्यकर नहीं है। वर्षाके बाद ही ज्वरका प्रकोप आरम्भ होता है, जिससे अनेक लोगोंकी मृत्यु हो जाती है। ग्रीष्मकालमें दिनके समय अत्यन्त गरमी और रातके समय ठण्ढा मालूम पड़ती है। बहुत दिनों तक ज्वरके रह जानेसे वात-रोग हो जाता है। अतीसार और कुष्ठ रोगका प्रकोप भी यहाँ कम नहीं है।

२ दिनाजपुर जिलेके विजयनगर परगनेके अधीन एक ग्राम। यह ग्राम अत्यन्त आधुनिक नहीं है। मुसलमानों समयमें यह स्थान विशेष प्रसिद्ध था। उस समय ताजपुर एक प्रधान सैन्यावासके रूपमें गिना जाता था

और पुर्णियां तथा दिनाजपुरके सीमान्त प्रदेशमें अवस्थित था। अभी इस स्थानका नाम सरकार ताजपुर रखा गया है। ताजपुरके पूर्वभागमें ही प्रथम मुसलमान-राजधानी देवकोट नगर है। कङ्कलोंने विद्रोही हो कर ताजपुरमें दिल्लीकी वृटिश सेनाके साथ कई एक युद्ध किये। १७७० ई०में अंग्रेज गवर्मेण्टके अधीनमें ताजपुर जिलका संस्कार किया गया। पहले यहाँ एक जजी थी, जो १७८५ ई०में यहाँसे उठा दी गई है। नगरसे ताजपुर तक एक सड़क चली गई है।

ताजपुर—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलेके अन्तर्गत धामपुर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° १०´ उ० और देशा० ७८° २८´ पू० पर बिजनौर शहरसे २७ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५०१५ है। तगावंशीय परिवारका वास होनेके कारण यह शहर प्रसिद्ध है। उक्त वंशके बहुतोंने ईसाईधर्म अवलम्बन किया है। १८वीं शताब्दीमें यह राज्य तगा-वंशीय राजाओंके हाथ लगा था। १८५७ ई०के सिपाही विद्रोहके समय यहाँके राजा बागी न हुए थे। वर्त्तमान राजा राष्ट्रीय व्यवस्थापक-सभाके सदस्य हैं। यहाँ एक औषधालय और दो स्कूल हैं।

ताजपोशी (फा० स्त्री०) वह उत्सव जो राजमुकुट धारण करने या राजसिंहासन पर बैठनेके समय किया जाता है।

ताजबावड़ी—एक प्रसिद्ध तालाब। इस बावड़ीका दूसरा नाम ताजकारी भी है। बम्बई विभागके बिजापुर शहरसे पश्चिम और नगरके मक्काद्वारसे १०० गज पूर्व वाणिज्य-केन्द्रके समीपमें अवस्थित है। इसके दक्षिणमें मृगया वन है और प्रवेश-द्वार पर एक प्रकाण्ड मेहराब है जिसका दृश्य देखते ही बनता है।

१६२० ई०में ताजरानीके सम्मानार्थ इब्राहिम रोजाके स्थपति मालिक सन्दलने यह विख्यात बावड़ी खोदवाई थी। इसके विषयमें दन्तकहानी इस प्रकार प्रचलित है—मालिक सन्दल सुलतान महमूदके अन्यतम मन्त्री थे। सुलतान स्त्रियोंकी खूबसूरतीकी खूब तारीफ करते थे। एक दिन सुलतानने रुम्बाको दरबारमें लानेके लिये मालिक सन्दलसे कहा। हुक्म पाते ही मालिक भौचक्का सा रह गया। उन्हें मालूम पड़ा, कि शायद उन्होंने राजाका कोई अनिष्ट किया है जिससे उन पर अभियोग चलाया जायगा। रुम्बाको सुलतानके सामने लानेमें उन्हें भावी विपद्की आशङ्का हुई। इस विपद्से बचनेके लिये वे पहले ही अपनी निर्दोषिताके अनेक प्रमाण संग्रह कर रुम्बाको लाने चल दिये। जब वे बहुतसी रमणियोंके साथ रुम्बको ले कर दरबारमें पहुँचे तब उन्हें मालूम पड़ा कि उन्हें मृत्य दण्डकी आज्ञा हुई है। इस पर मालिकने फौरन अपने पूर्वसंगृहीत प्रमाणोंको राजाके सामने पेश किया। सुलतानने जब देखा कि मालिकके प्रति बहुत अन्याय विचार किया गया है, तब वे बहुत लज्जित हुए। बाद सुलतानने मालिकसे कहा, कि तुम्हारा जो जी चाहे सो माँगो। इस पर मालिकने बहुत विनीत स्वरसे कहा, 'यदि आप मुझ पर खुश हैं, तो अपना नाम चिरस्मरणीय रखनेके लिये मैं एक कीर्ति स्थापन करना चाहता हूँ।' मालिकका अभीष्ट सिद्ध करनेके लिये सुलतानने उपयुक्त धन दे दिया। उसी धनसे ताजबावड़ी खोदवाई गई। बावड़ीकी गहराई ५२ फुट है।

ताजबीबी (फा० स्त्री०) शाहजहान्की अत्यन्त प्यारी और प्रसिद्ध बेगम मुमताजमहल। इसीके लिये आगरेमें ताजमहल नामका मकबरा बनाया गया।

ताजमहल (अ० पु०) आगरा शहरमें यमुनाके किनारे पर स्थित जगत्प्रसिद्ध समाधि-मन्दिर। स्थानीय लोग इसे रोजा वा ताजबीबीको रोजा कहते हैं। पृथिवीके सात आश्चर्यजनक पदार्थोंमें इसकी भी गिनती होती है।

बादशाह शाहजहान्ने अपनी प्रियतमा पत्नी मुमताजमहलके स्मरणार्थ यह सुरम्य हर्म्य बनवाया था। मुमताजका यथार्थ नाम था अर्जमन्द-बानू बेगम वा नवाब आलियाबेगम। शाहजहान् इनको अपने प्राणोंसे भी ज्यादा प्यार करते थे। एकदिन बेगमने स्वप्न देखा कि, उनके गर्भस्थ बालक रोता है। उन्होंने बादशाहको बुला कर कहा, "प्रियतम! मैं गर्भस्थ बालकका रोना सुन रही हूं। ऐसा रोना कभी किसीने नहीं सुना। मुझे निश्चय मालूम होता है कि मैं अब बचूंगी नहीं। किन्तु आपसे मेरी इतनी प्रार्थना है, कि मेरी मृत्यु के बाद आप किसीका पाणिग्रहण न करें। आप मेरे पुत्रोंको ही राज्याधिकारी

बनावें। और एक प्रार्थना है, आपने कहा था, कि मेरी कब्रके ऊपर एक हर्म्य बनवा देंगे। आपका यह वायदा भी पूरा होना चाहिये।" बेगमकी बात सच्ची निकली, प्रसव होनेके बाद, १६३१ ई०में उनकी मृत्यु हो गई। शाहजहान्ने भी प्रियतमाके अन्तिम अनुरोधकी रक्षा की। उन्होंने फिर अन्य किसी भी रमणीका पाणिग्रहण न किया अथवा ऐसा समझें, कि फिर उनके कोई सन्तान होनेकी बात नहीं सुननेमें आई।

प्रियतमा-पत्नीकी मृत्युके बाद ही शाहजहान्ने ताजमहल बनवाना शुरू कर दिया। ऐसा सुना जाता है कि, उस समय भारतवर्षमें देशी और विदेशी जितने भी मुख्य मुख्य शिल्पी और स्थपति मौजूद थे, सभीने इस महाकार्यमें साथ दिया था।

यमुनाके किनारे प्रसिद्ध अकबराबाद (वर्तमान आगरा) नगरमें ताजमहल बनना शुरू हो गया। प्रसिद्ध भ्रमणकारी टाभर्नियरने इस अनुपम अट्टालिकाको प्रारम्भ और सम्पूर्ण होते देखा है। उस समय वर्तमान कालकी अपेक्षा मालमसाला और मजदूरी हदसे ज्यादा सस्ती होने पर भी ३१७४८०२४) रुपये व्यय और लगातार ३० वर्ष परिश्रम करनेके बाद यह महाकार्य समाप्त हुआ था।

यह महल १८ फुट ऊँचे और ३१३ फुट श्वेतमर्मर-मण्डित ठीक चतुरस्र चबूतरे पर प्रतिष्ठित है। इसके चारो कोने १३३ फुट ऊँचे अत्यन्त रमणीय भारतभरमें अतुलनीय चार मीनारोंसे सुशोभित हैं। उक्त सफेद संगमर्मरके चबूतरेके बीचमें १८६ फुट चतुरस्र भूमि पर जगत्-प्रसिद्ध समाधि-मन्दिर अवस्थित है। ठीक बीचमें ५८ फुट विस्तृत और ८० फुट ऊँची एक प्रधान गुम्बज है। इस गुम्बजके भीतर लदाव पर सफेद संगमर्मरकी जालियाँ लगी हुई हैं। ऐसी खूबसूरत और शिल्प-नैपुण्य-मय जालियाँ वा यवनिका संसार भरमें और कहीं भी नहीं हैं। इस गुम्बजके भीतर ठीक बीचमें बेगम मुमताजमहलकी कब्र और उसके बगलमें बादशाह शाहजहान्की कब्र है।

इस महागृहके प्रत्येक कोने पर गुम्बजकी आकृतिके २६ फुट ८ इञ्च आयतनके दुमंजले गृह बने हैं। इसमेंसे गृहान्तरमें जाने आनेके लिए बहुतसे मार्ग और दलान हैं। इस गृहके प्रत्येक लदावके ऊपर, भीतर और बाह अति उज्ज्वल सफेद संगमर्मरकी जालियाँ लगी हुई हैं, जिनमेंसे काफी प्रकाश पहुँचता है। अकबरकी मृत्युके बाद मुगल लोग शिल्पनैपुण्यका कितना आदर करते थे, इस गृहकी कारीगरी देखनेसे उसका काफी परिचय मिल सकता है। सारांश यह है, कि नाना प्रकार और नाना वर्णके मूल्यवान् मणि-प्रस्तरादि द्वारा कितनी खूबसूरती, कितना मनोहर और कितना स्वाभाविक शिल्पनैपुण्य दिखलाया जा सकता है, इसमें उसकी पराकाष्ठा दिखलायी गई है। इसमें नाना प्रकारके बहुमूल्य लाल, सबज आदि रंग बिरंगे पत्थरोंके टुकड़े जड़ कर बेल बूटोंका ऐसा उमदा काम बना है, कि जिसको देख कर चित्रका भ्रम होता है। यहाँ तक कि एक गुलाबकी प्रत्येक पखड़ीमें जितने प्रकारका रंग, जैसा आकार हो सकता है, वहाँ उन उन रंगोंके पत्थर लगाये गये हैं। ज्यादा क्या कहें, मानो वे प्रकृतिके साँचेमें ही ढाले गये हैं, ऐसे मालूम पड़ता है। ऐसा अपूर्व मनोहर शिल्पनैपुण्य संसारमें क्या और भी कहीं है? ताजमहलमें जहाँ जाओगे, जहाँ देखोगे, वहीं ऐसी मनोमुग्धकर तसवीर तुम्हारे नेत्रपथको पथिक होगी कि, जिसे तुम जनम भर भूल नहीं सकते। ज्यादा दिन नहीं हुए भारतवासी जिस असाधारण शिल्पनैपुण्य और भास्करकार्य (पच्चीकारी, नक्काशी आदि) में अपना पाण्डित्य दिखला गये हैं, उसकी तुलना और कहाँ है! ताजमहल ही उसकी तुलना है! चित्रकरकी तुलिका, कविकी कल्पना और भावुककी भावना भी ताजमहलकी तसवीर उतारनेमें असमर्थ है। जिसने इसे अपनी आँखोंसे देखा है, उसीने समझा है, वही पिघला है, उसीके हृदयने इसका स्पर्श किया है। इस सामान्य लेखनीके द्वारा ताजमहलका खींचना तो दूर रहा, उसका वर्णन करना भी असम्भव है।

बहुत दिनकी बात नहीं है, ठगोंको दमन कार्य वाले प्रसिद्ध कर्नल स्लीमन सस्त्रीक एक बार इस अनुपम भारतीय कीर्तिको देखने गये थे। वे स्वयं तो मुग्ध हुए ही थे, जब उन्होंने अपनी प्रणयिनीके

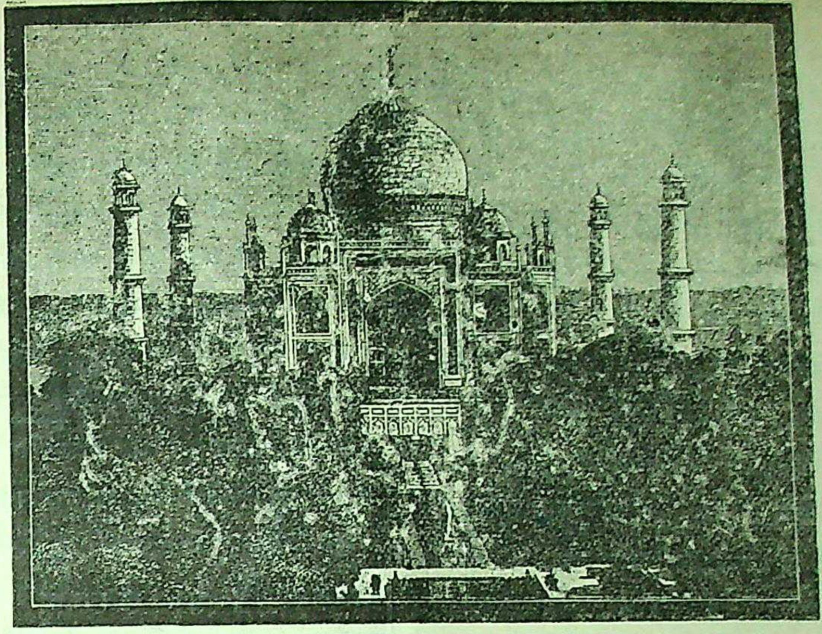

ताजमहल।

पूछा कि—'कहो कैसा देखा ?'—तब उनकी स्त्रीके मुँहसे यही निकला कि—"अगर मेरे ऊपर भी ऐसा ही मक़बरा बने, तो मैं कल मरनेको तैयार हूं।" वास्तवमें जिस स्त्रीने एक बार ताजमहल देखा है, उसकी हृदयमें इस तरहके भावका उदय हुआ है।

ताजमहलके दोनों बगलमें तीन गुम्बजोंवाली सफेद सङ्गमर्मरकी दो मसजिदें हैं। दाहिनी तरफकी मसजिदको साधारण लोग जवाब कहते हैं, इसमें उपासनादि नहीं होती। इसकी गुमटी पर पीतलके गोला, अर्द्धचन्द्र और कीलक दिखलाई देते हैं।

ताजमहलका कौनसा अंश कब बना है, यह भी यहाँके शिलालेखों द्वारा विदित हो सकता है। मसजिदके सामने पश्चिम दिशाके लदावकी रोक पर शाहजहान्के राज्यका १०वां वर्ष और १०४६ हिजरा खुदा हुआ है। ताजमहलके भीतर प्रवेशपथके बाईं ओर १०४८ हिजरा और फाटकके सामने १०५७ हिजरा (अर्थात् १६४८ ई०) खुदा हुआ है। यह अन्तिम अङ्क ही ताजमहल पूरा होनेका समय है। इसी तरह मुमताज-महलकी कब्रके ऊपर १०४० हिजरा और शाहजहान्की कब्र पर १०७६ हिजरा खुदा हुआ है। इन दोनों कब्रोंके ऊपर ही हू-बहू वैसी ही दो कब्रें ऊपर बनी हुई हैं। यथार्थ कब्रें नीचे हैं। प्रवेशद्वारसे घुसते ही सामने नीचे जानेके लिये सोपानश्रेणी हैं। मालूम होता है, ऊपरकी कब्रें लोगोंके देखनेके लिये चबूतरेके बराबर (ऊँचाईके समान) बनाई गई हैं, तथा इससे भीतरकी शोभा भी अपूर्व हो गई है। भीतर जानेसे यह मालूम होता है, कि मानो ये ही (ऊपरकी) असली कब्रें हैं। पहले जहाँ जहाँ तारीख खुद हुई हैं, उन सभी लदावों पर तुघरा लिपिमें कुरानके उपदेशपूर्ण सुरा लिखे हुए हैं। इसी तरह फाटकके सामने "पवित्र और सरल हृदय! चिरशान्तिमय स्वर्गीय उद्यानमें आओ!" इत्यादि वाक्य लिखे हैं।

ताज़ा (फा० वि०) १ जो सूखा न हो, हराभरा। २ जो डालसे तोड़ कर तुरन्त लाया गया हो। ३ जो श्रान्त न हो, स्वस्थ, प्रफुल्ल। ४ सद्यःप्रस्तुत, हालका बना हुआ। ५ जिसको व्यवहारमें लानेके लिये तुरन्त निकाला हो।

ताज़िक (सं० क्ली०) एक ज्योतिषका ग्रन्थ। यवनाचार्यकृत जातकविषयक ग्रन्थ जो फारसी और अरबी भाषामें लिखा हुआ था। राजा समरसिंह, नीलकण्ठ आदिने इसे संस्कृत भाषामें अनुवादित किया था।

संस्कृत ताजिक ग्रन्थमें निम्नलिखित विषयोंका वर्णन मिलता है—

प्रधान बारह राशियोंमें मेष आदि चार चार राशिएँ यथाक्रमसे पित्त, वायु, सम और कफस्वभावो हैं अर्थात् मेष, सिंह और धनु: इनका पित्तस्वभाव, मकर, वृष और कन्या इन तीनोंका वायुस्वभाव है; मिथुन, तुला और कुम्भ इन तीनोंका समस्वभाव (वायु, पित्त और कफको समता) तथा कर्कट, वृश्चिक और मीन इन तीन राशियोंका कफस्वभाव है।

मेषसे लगा कर चार चार राशि क्रमसे क्षत्रियादि चार वर्ण हैं, अर्थात् मेष, सिंह और धनु ये तीन राशियाँ क्षत्रियवर्ण; वृष, कन्या मकर ये तीन वैश्यवर्ण; मिथुन, तुला और कुम्भ ये तीन शूद्रवर्ण तथा कर्कट, वृश्चिक और मीन इनका ब्राह्मणवर्ण है। इस प्रकार राशियोंका स्वरूप और वर्ण जान कर ज्योतिःशास्त्रको गणना करनी चाहिये, इसीलिये पहले राशिका स्वरूप कहा गया है।

वर्षका शुभाशुभ फल जाननेके लिये वर्षप्रवेश-समय निर्णय— जन्म-समयमें रवि जिस राशिके जितने अंशादिमें अवस्थिति करता है, पुनः जिस समय वह उसी राशिके उतने ही अंशादिमें आगमन करता है, वही समय वर्षप्रवेश-समय है।

रविस्फुटका स्थिर करके भी वर्षप्रवेश-समयका निर्णय किया जा सकता है। बादमें वर्षप्रवेशमें तिथ्यानयन, वर्षप्रवेशमें योगानयन, वर्षप्रवेश ग्रहस्फुटानयन, चन्द्रस्फुटानयन, प्राङ्नत और पश्चान्नतदण्डानयन ; तथा लग्नखण्डा, लग्नकुण्डली और भावकुण्डली, पञ्चवर्गीकाम्नचक्र, उच्च-नीच कथन, लग्नखण्डाचक्र, बलनिरूपण, द्वादशवर्गविवरण, क्षेत्रचक्र, होराचक्र, चतुर्थांशचक्र, पञ्चमांशचक्र, षष्ठांशचक्र, सप्तांशचक्र, अष्टमांशचक्र, नवांशचक्र, दशमांशचक्र, एकादशांशचक्र, द्वादशांशचक्र, भावचिन्ता, वर्षाधिपानयन ग्रहका स्वरूप, दृष्टि-प्रकरण, दृष्टिसाधन, मैत्रीभाव, नक्तयोग, वर्षप्रवेश, दशानिरूपण, मासप्रवेशानयन, अन्तर्दशानयन, वर्षारिष्ट, विचारारिष्टभङ्ग, भावविचार, धनभाव, सहजभाव, चतुर्थभाव, पञ्चमभाव, षष्ठभाव, सप्तमभाव, अष्टमभाव, नवमभाव, दशमभाव, एकादशभाव, द्वादशभाव और रवि आदि दशाका विषय विशेषरूपसे वर्णित है।

और भी कई एक विषयोंका वर्णन है, जिनके नाम संस्कृत नहीं जान पड़ते ; अरबी वा फारसीसे लिये गये हैं। नीचे उनके नाम दिये जाते हैं—

हद्दाविवरण, मुन्थानयन, इक्कवालयोग, इन्थिहायोग, इत्थशालयोग, इशराफ योग, नक्तयोग, जमया योग, मनूर्त योग, कम्बूल योग, गैरिकम्बूलयोग, खल्लासरयोग, रद्दायोग, दुकालिकुत्थ योग, दुपोत्था दवीत्थयोग, तम्बीत्थयोग, कुत्थयोग और दुरत्थयोग ये षोड़श योग, सहम नाम, सहम ५० प्रकार, सहमसाधन, सहमदल और मुन्थाभावफल।

ताज़िया (अ० पु०) मृत-व्यक्तिके लिए विलाप करना तथा शोक प्रकट करना। मुहर्रमके समय मुसलमान लोग सामान्य उपकरणसे हुसेन और हासनको कब्र बना कर जो बाहर निकला करते हैं, उसीको भारतवर्षमें ताजिया कहते हैं। यह बाँसको कमचियों पर रङ्ग बिरङ्गे कागज, पन्नी वगैरह चिपका कर बनाया जाता है और आकारमें मकबरे (मण्डप) जैसा होता है।

फारस देशमें मुहर्रमके दिनोंमें अलौकिक वर्णनायुक्त अनेक नाटकादि रचे जाते हैं, जिनको वहांके लोग ताजिया कहते हैं।

अमेरिकामें भी ताजिया शब्द प्रचलित है। इस देशसे जो मजदूर लोग अमेरिकाके भिन्न भिन्न स्थानोंमें गये हैं, वे वहाँ ताजिया शब्दका व्यवहार किया करते हैं। मुहर्रम ही इन मजदूरोंका प्रधान पर्व है, हिन्दू मजदूर भी मुहर्रमको प्रधान पर्व मानने लगे हैं।

१८८४ ई०में त्रिनिदादके किसी एक शहरके भीतरसे ताजिया ले कर जानेकी मुमानियत हुई ; जिससे आखिर एक भीषणतम घटना हुई थी।

मुहर्रमके समय बहुतसे मुसलमान ताजिया बनाते हैं ; बहुतसे फकीर और दूसरे लोग तरह तरहकी पोशाकें पहन पहन कर छाती पर हाथ पीटते पीटते ताजियाके पीछे पीछे जाया करते हैं। बहुतसे मराठो सर्दारोंको ताजिया बनाते देखा गया है। परन्तु वे

ब्राह्मण वंशीय नहीं हैं। ब्राह्मण सर्दार ताजिया नहीं बनाते।

भारतवर्षमें जूनागढ़ आदिकी तरफ ताजियाको ले कर हिन्दू और मुसलमानोंमें परस्पर बड़ी भारी लड़ाई हुआ करती है। मुहर्रम देखो।

ताज़ी (फा॰ वि॰) १ अरब सम्बन्धी, अरबका। (पु॰) २ अरबका घोड़ा। ३ शिकारी कुत्ता। (स्त्री॰) ४ अरबकी भाषा।

ताज़ीम (अ॰ स्त्री॰) सम्मान प्रदर्शन, झुक कर सलाम करना इत्यादि।

ताज़ीमीसरदार (फा॰ पु॰) बड़ा सरदार जिनके आने पर राजा या बादशाह उठ कर खड़े हो जाते हैं।

ताटक (सं॰ पु॰) १ आभूषणविशेष, एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है, करनफूल, तरकी। २ छप्पयके २४वें भेदका नाम। ३ छन्दविशेष, एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १६ और १४के विरामसे ३० मात्राएँ होती हैं और अन्तमें मगण होता है।

ताटङ्क (सं॰ पु॰) ताड्यते ताड़ पृषो॰ डस्य टः तथा भूतोऽङ्कं चिह्नं यस्य, बहुव्रो॰। कर्णाभरणविशेष, कानमें पहननेका एक गहना, करनफूल, तरकी।

ताटस्थ्य (सं॰ क्ली॰) तटस्थस्य भावः ष्यञ्। १ औदासीन्य, उदासीनता। २ नैकट्य, वह जो समीपमें है।

ताड़ (सं॰ पु॰) चुरादि॰ तड़ भावे अच्। १ ताड़न, प्रहार, चोट, आघात। २ गुणन। कर्मणि अच्। ३ शब्द, ध्वनि, धमाका। ४ मुष्टिपरिमित तृणादि, घास, अनाजके डंठल आदिकी अँटिया जो मुट्ठीमें आ जाय, जुट्टी। ५ पर्वत, पहाड़। ६ हस्तका अलङ्कारविशेष, हाथका एक गहना। ७ मूर्ति-निर्माण विद्यामें मूर्तिके ऊपरी भागका नाम। ८ तालवृक्ष, शाखारहित एक बड़ा पेड़। यह पेड़ खंभेके रूपमें ऊपरकी ओर बढ़ता चला जाता है। इसके केवल सिरे पर ही पत्ते होते हैं। ये पत्ते चिपटे मजबूत डण्ठलोंमें चारों ओर इस प्रकार फैले रहते हैं जैसे पक्षियोंके पर। इसकी लकड़ीकी भीतरी बनावट सूतके ठोस लच्छोंकी तरह होती है। ऊपर गिरे हुए पत्तोंके डंठलोंके मूल रह जानेके कारण छाल खुरदुरी दिखाई पड़ती है। इसके संस्कृत पर्याय—तालद्रुम, पत्री, दीर्घस्कन्ध, ध्वजद्रुम, तृणराज, मधुरस, मदाढ्य, दीर्घपादप, चिरायुः, तरुराज, दीर्घपत्र, गुच्छपत्र, आसवद्रु, लेख्यपत्र और महोन्नत हैं।

भारतके नाना स्थानोंमें बरमा, सिंहल, सुमात्रा, जावा आदि द्वीपोंमें, तथा फारसकी खाड़ीके तटस्थ प्रदेशोंमें ताड़के पेड़ बहुत पाये जाते हैं। बङ्गालमें तालाबके किनारे ही इसके पेड़ देखे जाते हैं। इसकी ऊँचाई लगभग ७६० फुटकी होती है और मोटाई ५½ फुटसे अधिककी नहीं होती।

तामिल भाषामें ताल-विलास नामक एक ग्रन्थ है जिसमें ताल-पेड़के ८०१ प्रकारके गुणोंका परिचय वर्णित है, इस वृक्षका प्रत्येक भाग किसी न किसी काममें आता ही है।

पुराना ताड़का पेड़ ही अधिक काममें आता है। यह जितना पुराना होता जायगा उतना ही यह कड़ा और काले रङ्गका होता जाता है।

इसकी खड़ी लकड़ी मकानोंमें लगती है। लकड़ी खोखली करके एक प्रकारकी छोटी नाव भी बनाई जाती है। सिंहलके जफना नामक नगरका ताड़का पेड़ बहुत प्रसिद्ध था। अनेक प्रकारके द्रव्य प्रस्तुत होनेके कारण इसकी लकड़ी दूर दूर देशोंमें भेजी जाती थी। डाक्टर ह्वाइटने परीक्षा करके यह देखा था कि ताड़की लकड़ी सालकी लकड़ीसे किसी अंशमें निकृष्ट नहीं है।

इसके पत्तेके डंठलोंके रेशेसे मजबूत रस्से तैयार होते हैं और मत्स्यजीवीगण उनसे एक प्रकारका सुन्दर जाल बनाते हैं। पत्तोंसे पंखे बनते हैं और छप्पर छाए जाते हैं। दक्षिणके देशोंमें बहुत जगह कागजके बदले इसके पत्तेको ही लिखने पढ़नेके काममें लाते हैं। इससे बहुत आसानीसे दियासलाईके बकस तैयार होते हैं और खर्च भी कम पड़ता है। प्राचीन कालमें ताल-पत्र पर ग्रन्थ लिखे जाते थे।

ताल-वृक्षके रससे प्रधानतः सिरका, ताड़ी और मद्य प्रस्तुत होता है।

ताड़का रस तेजस्कर, श्लेष्मानाशक तथा ताज़ी अवस्थामें अत्यन्त मधुर होता है। यदि प्रतिदिन प्रातःकाल नियमपूर्वक इसका रस पीया जाय, तो वह शरीरमें

जुल्लाबसा काम करता है। प्रदाहिक रोग तथा शोथमें भी यह बहुत उपकारी है। इसके फूलोंके कच्चे अंकुरोंको पोंछनेसे बहुतसा नशीला रस निकलता है जिसे ताडी कहते हैं। ताडी देखो।

ताडीका पुलटिस फोड़े या घावके लिए अत्यन्त उपकारी है। ताजा ताडके रसको मैदामें मिला कर थोडी आँच देनेसे उससे जो फेन निकलने लगता है, वही पुलटिस है। पके हुए ताडकी मज्जा चर्मरोगमें बहुत उपकारी है। शरीरका कोई अङ्ग क्षत होने पर सिंहलके चिकित्सक लोहू रोकनेके लिये उसके ऊपर ताडकी आँठीके रेशे चिपका देते हैं।

जिस रससे तुरन्त फेन बाहर निकला है उसे खानेसे मूत्रकृच्छ्ररोग जाता रहता है। यह शोथमें भी बहुत उपकारी है।

ताडकी गरीके जलसे वमन और वमनोद्रेक चङ्गा होता है।

ताड़के ताजा रससे बढ़िया गुड़ और चीनी तैयार होती है। चीनी देखो। ताड़ीको चुआनेसे अरक या शराब बनती है। मद्य देखो।

चैतके महीनेमें इसमें फूल लगते हैं और वैशाखमें फल जो भादोंमें खूब पक जाते हैं। एक एक फलमें कमसे कम तीन तीन आँठी रहती है, छोटे फलमें दो भी पाई जाती है। कच्ची अवस्थामें फलोंके भीतर गरी रहती है जो खानेके योग्य होती है। इस अवस्थामें इसके भीतर जल रहता है। ज्यों ज्यों फल पकता जाता है त्यों त्यों जल कड़ा होता जाता है। अन्तमें उस आँठीके मध्य गरी होती है जो खानेमें मिष्ट, मुखप्रिय तथा नारियलकी गरीके सदृश इसमें अनेक गुण हैं।

पहले ही कहा जा चुका है कि ताड़की लकड़ीसे अनेक प्रकारकी गृहसामग्री प्रस्तुत होती है। उसी तरह इसका रस भी भोजन इत्यादिके अलावा और दूसरे दूसरे कामोंमें व्यवहृत होता है। डिम्बके पानीमें ताड़का रस डाल कर यदि उसमें शंख या सीपका चूर्ण मिला दिया जाय तो सुन्दर पालिश तैयार होती है और मेज पर इसका लेप देनेसे यह बहुत चमकने लगता है।

ताड़में अनेक गुण रहनेके कारण इसे पवित्र वृक्षोंमें गिनते हैं। कोई कोई इसे ही कल्पद्रुमसा समझते हैं।

वैद्यकके मतसे इसके गुण—मधुर, शीतल, पित्त, दाह और श्रमनाशक है। इसके रसका गुण—कफ, पित्त, दाह और शोथनाशक तथा मत्तताकारक है। फलका गुण—पक्का ताड़ दुर्जर, मूत्र, तन्द्रा, अभिष्यन्द, शुक्र, पित्त, रक्त और कफवृद्धिकर होता है। (भावप्रकाश) राजवल्लभके मतसे इसके गुण वात, कृमि, कुष्ठ, तथा रक्त पित्तनाशक, वृंहण, वृष्य और स्वादु हैं।

ताड़की गरीका गुण—मूत्रकर, मिष्ट, वातपित्तनाशक और गुरु है। ताड़की अस्थिमज्जाका गुण—मधुर, मूत्रल, शीतल और गुरु है। ताड़के जलका गुण पित्तनाशक, शुक्र और स्तन्यवृद्धिकर तथा गुरु हैं। नूतन ताड़ीका गुण—मदकर, कफ, पित्त, दाह और शोथनाशक है, खट्टा हो जानेसे यह वातनाशक और पित्तवृद्धिकर होती है। ताड़के कोपलका गुण—स्वादु, तिक्त, कषाय, मूत्ररोगनाशक, बल, प्राण और शुक्रवृद्धिकर है। ताड़की तरुण मज्जाका गुण सारक, लघु, श्लेष्मल, वात और पित्तनाशक है। ताड़की जटाका गुण—रुक्ष और क्षयरोगनाशक है। (राजवल्लभ) ९ कृष्णताल, तमालका पेड़। १० हिन्ताल। ११ कण्टकताल।

ताड़क (सं० त्रि०) ताड़-कन्। १ प्रहारकारी, ताड़न करनेवाला। (क्ली०) २ वृहद्दारकबीज, बधारका बीज।

ताड़कजङ्गल—ताड़का देखो।

ताड़का (सं० स्त्री०) १ राक्षसीभेद, एक राक्षसीका नाम, इसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कथा है कि सुकेतु नामक किसी पराक्रमशाली यक्षने सन्तानके लिये ब्रह्माके उद्देशसे कठोर तपस्या की। ब्रह्माने उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर उसे एक वर दिया जिससे उन्हें ताड़का नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। ब्रह्माके वरसे ताड़काको हजार हाथियोंका बल था। यह जम्भनन्दन सुन्दकी ब्याही थी। जब अगस्त्य ऋषिने किसी बात पर क्रुद्ध हो कर सुन्दको मार डाला, तब यह अपने पुत्र मारीचको ले कर अगस्त्य ऋषिको खाने दौड़ी। ऋषिके शापसे माता और पुत्र दोनों घोर राक्षस हो गये। इसी समयसे यह राक्षसी अगस्त्यजीका तपोवन नाश करने लगी और उसे उन्होंने

प्राणियोंसे शून्य कर दिया। वह अरण्य ताड़काजङ्गल नामसे प्रसिद्ध है। यह और इसका पुत्र दोनों ब्राह्मणको देखनेसे ही उनके प्रति अत्यन्त अत्याचार करते थे तथा यज्ञीय वह्निके धुएँको आकाशमें फैलता देख ये दलबलके साथ वहाँ पहुँच जाते और अनेक तरहका ऊधम मचाया करते थे। इनके इस अत्याचारसे कोई भी यज्ञ करनेका साहस नहीं करता। इसी प्रकार ताड़का उस जंगलमें रह कर अपना दिन बिताने लगी। बाद विश्वामित्रने इनका दमन करनेके लिए दशरथजीकी शरण ली और उन्हें सब वृत्तान्त कह कर वे रामचन्द्र और लक्ष्मणको अपने साथ उस तपोवनमें लाए। रास्तेमें ही विश्वामित्रके आदेशसे रामचन्द्रजीने इसे मार गिराया और मारीचको वाण द्वारा बहुत दूर फेंक दिया। ताड़काको मारनेके समय रामचन्द्रने विश्वामित्रसे कहा था, "प्रभो ! यह स्त्री है, अतः किस प्रकार इसका वध करूं।" इस पर विश्वामित्रने कहा, ''यह स्त्री नहीं है, जो स्त्री वीरके समान युद्ध करती है, जिसने स्त्रियोंके योग्य लज्जा और कोमलताका त्याग कर दिया है, वैसी स्त्रीको मारनेसे स्त्रीवधका प्रायश्चित्त नहीं होता।' (रामायण १।२५-२६ स०)। २ देवदाली, एल लता।

ताड़काफल (सं० क्ली०) तारकेव नक्षत्रमिव फलमस्य, बहुव्री०। बृहदेला, बड़ी इलायची।

ताड़कायन (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। (भारत आनु० ४ अ०)

ताड़कारि (सं० पु०) ताड़कायाः अरि, ६-तत्। ताड़काके शत्रु, श्रीरामचन्द्र।

ताड़केय (सं० पु०) ताड़कायाः अपत्यं ठक्। ताड़काका पुत्र, मारीच।

ताड़घ (सं० पु०) तालं हन्ति हन-टक्। पाणिघताड़घौ शिल्पिनि। पा ३।२।५५। कशाघात, बेंत या कोड़ा मारनेवाला, जल्लाद।

ताड़घात (सं० पु०) ताड़ं हन्ति हन्-अण्। वह जो हथौड़े आदिसे पीट कर काम करता हो।

ताडङ्क (सं० पु०) ताड़ अङ्कः चिह्नं यस्य वा तालं अङ्क्यते लक्ष्यते अङ्क-घञ् लस्य ड़त्वं शकवन्ध्वादित्वात् साधुः। १ कर्णाभरणविशेष, कानमें पहननेका एक प्रकारका गहना, करनफूल। इसके संस्कृत पर्याय—कर्णदर्पण, ताटङ्क, कर्णिका, तालपत्र, ताड़पत्र और कर्णमुकुर है। २ हस्ताभरणविशेष, हाथमें पहननेका एक गहना।

ताड़न (सं० क्ली०) ताड़ि भावे ल्युट्। १ आघात, प्रहार, मार। २ दीक्षाङ्गविषयमें दीक्षणीय मन्त्रसंस्कारविशेष। इसमें मन्त्रोंके वर्णोंको चन्दनसे लिख कर प्रत्येक मन्त्रको वायुबीज द्वारा पढ़ कर मारते हैं। (शारदाति०) ३ गुणन। ४ शासन, दण्ड, सजा ५ डाँट डपट, घुड़की।

ताड़ना (सं० स्त्री०) ताड़न-टाप। १ प्रहार मार। २ भर्त्सना, डाँट डपट। ३ शासन, दण्ड। ४ उत्पीड़न, कष्ट, तकलीफ़।

ताड़ना (हिं० क्रि०) १ दण्ड देना, मारना पीटना। २ शासित करना, डाँटना डपटना। ३ किसी बातको लक्षणसे समझ लेना, झाँपना, लख लेना। ४ मारपीट कर भगाना, हाँकना, हटा देना।

ताड़नी (हिं० स्त्री०) ताड़न स्त्रियां ङीप्। अश्वताड़नयष्टि, कोड़ा, चाबूक।

ताड़नीय (सं० त्रि०) ताड़-अनीयर्। शासनयोग्य, दण्ड देने योग्य, सजा देने काबिल।

ताड़पत्र (सं० क्ली०) तालस्य पत्रमिव लस्य ड़। कर्णभूषणविशेष, कानका एक गहना।

ताड़पत्रि—मन्द्राज प्रदेशके बेलारी जिलेके अधीन एक शहर। १५वीं शताब्दीमें यह शहर स्थापित हुआ है। यहाँ राम और चित्तरायके दो मन्दिर हैं। दोनों मन्दिर अच्छे अच्छे शिल्पकार्योंसे खचित हैं जो देखनेमें बहुत अच्छे लगते हैं।

ताड़बाज (हिं० वि०) ताड़नेवाला, समझ जानेवाला।

ताड़यितृ (सं० त्रि०) ताड़-तृच्। ताड़नकारी, मारनेवाला।

ताड़ाग (सं० त्रि०) तड़ागे भवः अण्। तड़ागभव जल, तालावका पानी। गुण—वायुवर्द्धक, स्वादु, कषाय और कटु पाक। हेमन्तकालमें तड़ागका जल बहुत हितकर है।

ताड़ि (सं० स्त्री०) ताड़यति पत्रैः शोभते तड़-णिच-इन्। १ वृक्षविशेष, एक प्रकारका पेड। ताडी देखो। २ तालरस।

ताड़ित (सं० त्रि०) तड़-णिच्-क्त। १ आहत २ तिरस्कृत। ३ उत्पीड़ित। ४ दूरीकृत। ५ दण्डित। ६ विद्ध। (क्ली०) तड़ित् भावार्थे अण्। ७ विद्युत् बिजली। ताड़ितकी उत्पत्तिका विषय सिद्धान्तशिरोमणिमें इस प्रकार लिखा है—समुद्रमें वड़वाग्नि है, जलभरनिमग्न इस वड़वाग्निसे धूमराशि उत्थित होती है और वह धूमराशि आकाशमें वायुद्वारा नीत हो कर चारों तरफ फैल जाती है। पीछे द्युमणि किरण द्वारा प्रदीप्त होने पर स्फुलिङ्ग निकलते हैं, इन्हीं स्फुलिङ्गोंको ताड़ित वा बिजली कहते हैं। ये अनुकूल और प्रतिकूल वायुके आघातसे उद्भ्रान्त हो कर पार्थिवांशके साथ मिश्रित होते हैं, बादमें अकस्मात् वैद्युत तेजः निकलता है, यह प्रायः अकालवर्षणसे हुआ करता है। यह तीन प्रकारका है-पार्थिव, आप्य और तैजस। जिसमें पृथिवीका अंश अधिक हो वह पार्थिव, जिसमें जलीय अंश अधिक हो वह आप्य और जिसमें तेजका भाग अधिक हो वह तैजस कहलाता है।

विशेषपरिचय-यूरोपीय विज्ञानमें ताड़ितका परिचय इस प्रकार दिया गया है—अम्बर (Amber) नामक पदार्थको घर्षण करनेसे, वह छोटे छोटे पंख, तृण आदिको आकर्षित करने लगता है। बहुत दिनोंसे लोग अम्बरके इस गुणको जानते थे। अम्बरके ग्रीक नामसे अङ्गरेजी Electricity शब्दकी उत्पत्ति हुई है। संस्कृत प्राचीन ग्रन्थोंमें तृणमणि और अम्बरको एक ही पदार्थ बतलाया गया है। डाक्टर गिलवार्टने तीन सौ पचास वर्ष पहले, अन्यान्य पदार्थोंमेंभी अवस्थाभेदसे इस तरहकी आकर्षण-शक्तिका आविष्कार किया था।

डेढ़ सौ वर्ष पहले ताड़ितके विषयमें मनुष्य जातिका ज्ञान सङ्कीर्ण और सीमाबद्ध था। वास्तवमें देखा जाय तो सुप्रसिद्ध आमेरिक बेञ्जामिन फ्रांकलिन और अंग्रेज कावेण्डिस्के समयसे ही ताड़ित-विज्ञानकी सृष्टि हुई है। पीछे ताड़ितकी इतनी उन्नति हुई कि अब उसने विज्ञानका शीर्षस्थान लाभ कर लिया है। वर्तमानमें यह कहना अत्युक्ति न होगा कि, मनुष्य-समाजकी स्थिति और उन्नतिके लिए ताड़ितशक्ति ही प्रधान अवलम्बन है। सभ्यतम मनुष्य जातिका व्यवसाय, वाणिज्य, राजनीति इत्यादि सब कुछ ताड़ितराशिकी विविध प्रक्रियाके ऊपर प्रतिष्ठित है।

यूरोप और अमेरिकाके प्रधान प्रधान मनस्वियोंके द्वारा ताड़ितके विषयमें विविध आविष्क्रियाओंका साधन और ताड़ितविज्ञानकी विविध उन्नति सम्पादित हुई है। इस छोटेसे निबन्धमें सबका उल्लेख करना असम्भव है। किन्तु कुछ लोगोंका उल्लेख न करनेसे निबन्ध अधूरा रह जायगा। फ्राङ्कलिन और कावेण्डिसके बाद आँपियार, माइकेल फाराडे, लार्ड केनविल (सर विलियम टोमसम), क्लार्क मक्सवेल और हार्टजके नाम ताड़ितविज्ञानके इतिहासमें समधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें आँपियार फरासी, हार्टज जर्मन तथा और सब अंग्रेज थे। इङ्गलैण्डके लिये यह बड़े गौरवका विषय है।

वर्तमान समयमें ताड़ितशक्ति विविध विधानानुसार मनुष्य और मनुष्य-समाजका भृत्यभावसे उपकार कर रही है। कितने विषयोंमें कितने उपायोंसे ताड़ित शक्तिका व्यवहारिक प्रयोग हो रहा है, उसकी शुमार नहीं। वर्तमान निबन्धमें ताड़ितशक्तिकी वैज्ञानिक आलोचना की जायगी। ताड़ितके व्यवहारिक प्रयोगके लिए स्वतन्त्र निबन्धकी आवश्यकता है। ग्रेहमबेल, एडिसन आदि जगत्‌विख्यात व्यक्तियोंने जिन कौशलोंसे विविध यन्त्रोंका उद्भावन कर ताड़ित शक्तिको मनुष्योंके कार्यसाधनमें नियोजित किया है, इस निबन्धमें उन सबकी आलोचनाको ही स्थान मिलेगा या नहीं सन्देह है।

ताड़ित एक जड़पदार्थ अथवा जड़ पदार्थका एक प्रकार धर्ममात्र है, अथवा शक्तिका किस तरहका भेद मात्र है, इसका अभी तक निःसंशय निरूपण नहीं हुआ है। आज तक भी इस विषय पर विविध तर्क वितर्क चल रहे हैं। फिल हाल हम उस वितण्डाक्षेत्रमें प्रवेश नहीं करना चाहते। उस विषयमें आधुनिक वैज्ञानिकोंके मत अन्तमें कहेंगे।

ताड़ित किसको कहते हैं?—ताड़ित कहनेसे हम क्या समझते हैं, पहले यही बतलाना आवश्यक है। एक काँचके डण्डेको रेशमी रूमाल पर घिस कर छोटे छोटे कागजके टुकड़ोंके ऊपर रखनेसे मालूम होगा कि कागजके टुकड़े उछल उछल कर काँचके डण्डे पर लग रहे हैं।

लाक्षादण्डको फलालैन पर घिस कर अथवा रबरकी कंघी बालों पर घिस कागजोंके टुकड़ोंके ऊपर थामनेसे भी ऐसा होता है। काँच, लाक्षादण्ड वा कंघीके उस प्रकारके घर्षणके फलसे किसी प्रकारकी विकृति नहीं होती। घसनेसे पहले कागज देखनेमें जैसा था, बादमें भी ठीक वैसा ही रहता है; किन्तु न मालूम उसमें एक नूतन क्षमता वा धर्म कहाँसे आ जाता है। यह नवाविर्भूत आकर्षणशक्तिविशिष्ट काँच-दण्ड और लाक्षादण्डको ताड़ित-धर्मान्वित कहा जा सकता है। इस नूतन आविर्भूत धर्मका नाम है ताड़ित-धर्म।

ताडित-विकाशके उपाय—काँच, रेशम और लाख पर पशम घर्षण करनेसे बहुत आसानीसे ताड़ितधर्मका विकाश होता है। साधारणतः विभिन्न प्रकृतिसम्पन्न किसी भी दो पदार्थोंको परस्पर घिसनेसे न्यूनाधिक मात्रामें ताड़ितका विकाश हुआ करता है अथवा घर्षणका भी प्रयोजन नहीं होता। इटली-निवासी वोल्टाने पहले पहल देखा था कि दो धातु-द्रव्योंके परस्पर संस्पर्श होनेसे ही दोनोंमें ताड़ितधर्मविकाश होता है। हाँ इसमें विकाशकी मात्रा सर्वत्र समान नहीं होती है। यह ठीक है साधारणतः यह नियम निर्दिष्ट किया जा सकता है, कि दो विभिन्न रासायनिक प्रकृतिसम्पन्न द्रव्योंको परस्पर छुआ देनेसे दोनों ही ताड़ितधर्माक्रान्त होते हैं। स्पर्श ही जहाँ ताड़ित-विकाशके लिए यथेष्ट है, वहाँ दो द्रव्योंको घसनेसे विशेष फल होगा, यह निश्चित है।

स्पर्श और घर्षणके सिवा अन्य नाना कारणोंसे ताड़ितका विकाश होते देखा जाता है। आघात प्रयोग और तापप्रयोगमें ताड़ितका विकाश देखनेमें आता है। बहुतसे जीव-शरीरोंमें ताड़ितका विकाश होता है। वे आत्मरक्षाके लिए उस ताड़ितका व्यवहार करते हैं। जलमें वाष्प होते समय ताड़ितका विकाश होता है। इसके अलावा जो ताड़ितप्रवाह उत्पन्न करनेके उपाय हैं, उनका उल्लेख आगे किया जायगा।

ताडित-निरूपणका उपाय—ताड़ितका विकाश हुआ है या नहीं, इसके समझनेके लिए विविध उपाय है। एक सोलाके टुकड़े पर एक सूतको लम्बित करके थामनेसे ही संक्षेपमें ताड़ित-निरूपणका उमदा उपाय होता है। कोई भी ताड़िताक्रान्त पदार्थ उसके पास आते ही, सोलाका टुकड़ा उसकी तरफ आकृष्ट होगा। एक काँचकी बोतलमें डाट कस कर, उसकी डाटमें सुराख कर उसमें एक पीतलकी सींक पिरो देवें। सींकका एक छोर बोतलके भीतर और एक बाहर रहना चाहिये। जो छोर भीतर रहे, उस पर दो सूक्ष्म हलकी सोने वा तामेकी पत्तियाँ लपेट देवें। इस यन्त्रको ताड़ित-निरूपक वा तड़िद्वीक्षणयन्त्र कहा जा सकता है। काँच वा लाख या अन्य कोई पदार्थमें ताड़ितका विकाश होने पर उस पदार्थको बोतलके बाहरकी सींकके छोर पर थामनेसे ही अन्य प्रान्तस्थ दोनों पत्तियां अलग अलग हो जायंगी। दोनों पत्तियोंमें परस्पर विकर्षण होगा। इस विकर्षणका विषय पीछे और भी विशेषरूपसे कहा जायगा।

ताड़ित दो प्रकारका है। जिस तरह रेशम पर काँच घिस कर उस काँचको तड़िद्वीक्षणके पास थामनेसे पत्तियाँ अलग अलग हो जाती हैं, उसी तरह फलालैन वा पशम पर लाख घिस कर उस लाखको तड़िद्वीक्षणके पास थामनेसे भी पत्तियाँ अलग अलग हो जाती हैं, अर्थात् काँच और लाख दोनोंमें ही ताड़ितधर्मके विकाशका प्रमाण मिलता है। किन्तु ऐसी अवस्थामें यदि काँच और लाख दोनोंको एक साथ यन्त्रके पास थामा जाय, तो पत्तियोंको उस तरह अलग अलग होते नहीं देखा जाता। काँच और लाख दोनोंमें ताड़ितके विकाश हुए हैं, किन्तु अब परस्पर विरुद्ध धर्माक्रान्त हो जाते हैं। पृथक् भावसे दोनों जो कार्य करते हैं, एकत्र होनेसे परस्पर उस कार्यमें प्रतिकूलता करते हैं। सूतमें काँच और लाखके टुकड़ोंको बाँध देनेसे मालूम होगा कि, दोनों आकर्षित हो रहे हैं। दो काँचके टुकड़ोंको रेशम पर घस कर टाँग देनेसे देखेंगे कि, दोनोंमें आकर्षण न हो कर विकर्षण हो रहा है। और लाखके दो टुकड़ोंको पशम पर घस कर सूतसे लम्बित करनेसे दोनोंमें परस्पर विकर्षण होते देखेंगे। अतएव मालूम होता है कि—

(१) काँचका ताडित काँचके ताडितको विकर्षित करता वा धक्का देता है।

(२) लाखका ताडित लाखके ताड़ितको विकर्षित करता वा धक्का देता है।

(२) काँचका ताड़ित लाखके ताड़ितको आकर्षित करता वा खींचता है।

इन सबको देख कर सिद्धान्त किया जाता है कि काँचका ताड़ित और लाखका ताड़ित परस्पर विरुद्ध वा विपरीत धर्मयुक्त है। काँचके ताड़ितको धन-ताड़ित और लाखके ताड़ितको ऋण-ताड़ित कहनेकी प्रथा चल गई है।

बीजगणितमें धन राशिके साथ ऋण-राशिका जो सम्बन्ध है, पावनेके साथ देनेका जो सम्बन्ध है, प्रवेशके साथ निर्गमका जैसा सम्बन्ध है, धन-ताड़ितके साथ ऋण-ताड़ितका भी ठीक वैसा ही सम्बन्ध है। दान और ग्रहणके एक साथ होते रहनेसे जिस तरह दान भी अधिक नहीं होता और ग्रहण भी अधिक नहीं होता, अग्रवर्ती हो कर पीछे लौटनेसे जैसे आगे वा पीछे किसी ओर भी ज्यादा चलना नहीं होता, उसी तरह धन-ताड़ितसे ऋणताड़ितका योग होनेसे अर्थात् धन-ताड़ितके पास ऋण-ताड़ित ले जानेसे दोनोंमें स्वतन्त्र फल भली भाँति नहीं दीखता।

दश रुपये कर्ज हो जाना और दश रुपये किसी पर पावने रखना जिस तरह एक ही बात है, उसी तरह धन-ताड़ितका कुछ बढ़ जाना और ऋण-ताड़ितका कुछ घट जाना समान है। किसी वस्तुमें धन-ताड़ितका आविर्भाव हुआ है, यह कहना और उसमें ऋण-ताड़ितका तिरोभाव हुआ है, यह कहना बराबर ही है। दोनोंमें इसके सिवा अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है। इतना याद रखना चाहिये, कि धन-ताड़ित 'क' से 'ख' में गया, अथवा ऋण-ताड़ित 'ख' से 'क'में गया, दोनों वाक्य ही ठीक समानार्थवाची हैं।

और एक बात है;—काँचके ताड़ितको ऋण न कह कर धन कहनेके लिए कोई युक्ति नहीं है। दो प्रकारके ताड़ितोंमें एकको धन और दूसरेको ऋण कहनेसे ही काम चल सकता है। काँचके ताड़ितको धन और गाला वा लाहके ताड़ितको ऋण कहनेकी सिर्फ प्रथा चल गई है।

परिचालक और अपरिचालक पदार्थ—ताड़िताक्रान्त किसी पदार्थको सूखे रेशमी डोरेमें लपेट कर सूखी बालूमें बहुत दिन तक रखा जा सकता है, उसका ताड़ित-धर्म लुप्त नहीं होता। किन्तु डोरा यदि भीगा हुआ हो वा वायु आर्द्र हो अथवा हाथसे वा किसी धातुद्रव्यसे उसका स्पर्श हो गया हो, तो शीघ्र ताड़ित धर्मका लोप हो जाता है। सूखा डोरा और आर्द्र वायु अपरिचालक है तथा भीगा डोरा, आर्द्र वायु, मनुष्यका शरीर और धातु-पदार्थ ताड़ितके परिचालक हैं। अपरिचालकके भीतरसे ताड़ित अन्यत्र नहीं जा सकाता; किन्तु परिचालक पदार्थ ताड़ितके गमनमें बाधा नहीं देता। कांच, लाख आदि अपरिचालक पदार्थ पर जहाँ घर्षण होता है, ताड़ित ठीक वहीं आबद्ध रहता है। धातु पदार्थमें ताड़ित एक जगह विकाशित होने पर वह तुरंत ही सर्वत्र फैल जाता है। इस कारण धातुपदार्थ द्वारा ताड़ितको रोका नहीं जा सकता। धातुपदार्थके ताड़ित सञ्चित और आबद्ध कर रखने पर उसको शुष्क वायुमें शुष्क रेशमी सूतीसे खींच कर वा काँच आदि अपरिचालक पदार्थसे बने हुए डंडेके ऊपर बैठा कर रक्खा जा सकता है। वायु अधिक आर्द्र होने पर काँच आदि पर पानी और मैल होता है, फिर उस परसे ढकता हुआ ताड़ित अन्यत्र चला जाता है। काँच, लाह, रेशम, पशम, वायु, रूई, सूखी लकड़ी, सोला, कोयला, गन्धक, तैल आदि पदार्थ अपरिचालक हैं। धातुपदार्थ मात्र ही साधारणतः उत्तम परिचालक होते हैं। मनुष्यका शरीर भी परिचालक है। किसी द्रव्यमें ताड़ित रहनेसे स्पर्श मात्रसे वह ताड़ित अन्यत्र चला जाता है।

परिचालकका धर्म।—परिचालक पदार्थके अभ्यन्तर-देशमें ताड़ितकी क्रियाका प्रकाश नहीं होता। साधारणतः हलके पदार्थोंके पास ताड़ित सञ्चित होनेसे वे पदार्थ ताड़ितकी तरफ आकृष्ट होते हैं। कहीं कहीं अग्निके स्फुलिङ्ग आदि ताड़ितकी अन्यरूप क्रियाएँ भी देखनेमें आती हैं। आकर्षण, विकर्षण, अग्निस्फुलिङ्गकी उत्पत्ति आदि ताड़ितमें विविध क्रियाएँ देख कर ताड़ितका विकाश और अस्तित्व समझमें आ जाता है। किन्तु किसी धातुमय द्रव्यके भीतर ऐसी कोई भी क्रिया प्रकट नहीं होती, अर्थात् एक टीनके बकस वा लोहेके पिंजरेके भीतर हलका पदार्थ वा तड़िद्वीक्षणयन्त्र आदि रखनेसे बकस वा

पिंजरेके बाहर प्रभूत परिमाणसे ताड़ितका संचय होने पर भी उस हलके पदार्थ पर वा तड़िद्वीक्षणयन्त्र पर उसका जरा भी प्रभाव नहीं पड़ता। माइकेल फाराडेने एक बड़े भारी काठके बकसको बारीक राँगेकी पत्तियोंसे जड़ कर यन्त्रके जरिये उसमें प्रभूत ताड़ितका सञ्चय किया और स्वयं तड़िद्वीक्षणादि ले कर उसके भीतर घुस गये। बकसके बाहरसे बड़े अग्निस्फुलिङ्ग इधर उधरको विक्षिप्त हो रहे थे, किन्तु बकसके भीतर उन्हें कुछ भी मालूम न हुआ।

गणितशास्त्रानुसार देखा जाता है, कि जिस प्रदेशमें ताड़ितकी कोई क्रिया नहीं है, वहाँ ताड़ितका अस्तित्व भी नहीं है। धातुद्रव्यके भीतर जैसे बिजलीकी क्रिया नहीं होती, उसी तरह उसके भीतर बिजली भी सञ्चित नहीं रहती। ठोस या पोली कैसी भी क्यों न हो, किसी भी धातुकी चीजमें बिजली सञ्चित करनेसे समस्त ताड़ित वा बिजली उसके ऊपर आ जाती है। उसके भीतर जरा भी नहीं रह जाती। किसी ताड़ित विशिष्ट द्रव्यको बकस या पिंजरे जैसे पोले धातुमय पदार्थके भीतर घुसेड़ देनेसे स्पर्श मात्रसे समग्र ताड़ित उस बकस या पिंजरेके ऊपर आ जाता है। उस समय उस द्रव्यको निकाल कर तड़िद्वीक्षण द्वारा उसकी परीक्षा करनेसे मालूम होगा कि, उसमें जरा भी बिजली नहीं रही है।

एक पिंजरे या लोहेके जालके भीतर रहनेसे वज्राघातकी कुछ आशङ्का नहीं रहती।

अपरिचालक पदार्थके भीतर सर्वत्र ताड़ितक्रियाकी स्फूर्ति होती है तथा उसके ऊपर और भीतर सर्वत्र ही ताड़ित सञ्चित हो सकता है।

परिचालक पदार्थमें सिवा ऊपरके अन्यत्र कहीं भी बिजली नहीं रहती। और ऊपर भी सर्वत्र समान परिमाणसे नहीं रहती। एक लोहेके गोले पर सर्वत्र समान भावसे बिजली मौजूद रहती है। किन्तु धातुमय द्रव्यका उपरिभाग ऊँचा नीचा होने पर सब जगह समान बिजली नहीं होती। जो जमीन जितनी ऊँची होगी, वहाँ उतनी ही ज्यादा बिजली ठहरेगी और नीची जमीन पर उतनी ही कम। इस प्रकार जहाँ जहाँ नोकसी निकली रहेगी वहाँ वहाँ बिजली कुछ ज्यादा जमती है; अन्यत्र उससे कुछ कम ठहरती है।

परिचालकके भीतर जो ताड़ितकी क्रिया प्रकट नहीं होती, ठीक उसी धर्मके फलसे ऐसा होता है, यह गणितशास्त्रकी सहायतासे प्रमाणित हो सकता है। किसी निर्दिष्ट आकारके धातुमय पदार्थके उपरिभागके किसी अंश पर ताड़ित जमनेसे भीतरमें ताड़ितकी क्रिया प्रकट नहीं होती, इसकी गणितकी सहायतासे गणना हो सकती है। गणितप्रयोग वर्तमान निबन्धसे बहिर्भूत है।

परिचालक और अपरिचालकमें प्रभेद।—परिचालकके भीतर बिजली बलप्रयोग नहीं करती; पर अपरिचालकके भीतर बिजलीका बल प्रयुक्त होता है। दो ताड़ितयुक्त पदार्थ वायुके मध्य रहनेसे दोनोंमें या तो आकर्षण या विकर्षण होते देखा जाता है। दोमेंसे एकको पिंजरे या बकसमें भर देनेसे फिर आकर्षण वा विकर्षण कुछ भी उस बकसकी धातुको भेद कर नहीं जाता। पिंजरा वा बकस मानो मिट्टी छू कर रहता है। ऐसी हालतमें भीतरकी बिजली और बाहरकी बिजली परस्पर सम्पूर्ण पृथक् और स्वाधीनभावसे रहती है। परिचालक पदार्थ ताड़ितबलके सञ्चालनमें असमर्थ हैं, किन्तु अपरिचालक पदार्थ इसमें पटु हैं। दोनोंका यह प्रभेद इस प्रकारसे कुछ कुछ समझा जा सकता है। इस्पात, काँच, मट्टी, पत्थर, रबर आदि कठिन द्रव्योंको खींचा, तोड़ा और टेढ़ा किया जा सकता है, किन्तु जल, तैल, गुड़, कीचड़ इत्यादि तरल द्रव्योंको इस तरह खींचा, तोड़ा और टेढ़ा नहीं किया जा सकता। काँचको दोनों हाथोंसे पकड़ कर खींचा जा सकता है, काँच उस खींचनेमें यथेष्ट बाधा पहुँचाता है। थोडासा कीचड ले कर खींचनेसे कीचड़ इतनी कम बाधा पहुँचाता है कि, खींचन ही नहीं पड़ती। जल इससे भी ज्यादा है। बिजलीके लिए अपरिचालक पदार्थ कठिन द्रव्यके समान है और परिचालक पदार्थ जल वा कीचड़के समान। अपरिचालकके भीतर बिजलीकी खींचन पड़ती है और धक्का भी लगता है, परिचालकके भीतर न तो खींचन पड़ती है और न धक्का ही लगता है। कठिन मट्टीका उपरिभाग ऊँचा नीचा वा असमान हो सकता है, किन्तु तरल जलका उपरिभाग समतल ही होता है, ऊँचा नीचा नहीं। जलके भीतर यतसामान्य दाबकी कमीवेशी होते

हो जल अपने आप हट कर दाबको सर्वत्र समान कर लेता है, परन्तु कठिन पदार्थके भीतर विभिन्नस्थलोंमें विभिन्न मात्रासे दाब देनेसे कठिन पदार्थ टेढ़ा या नत्र जाता है। जलकी तरह बहता ढरकता नहीं। इसी तरह अपरिचालक पर ऊपर या भीतर विभिन्नस्थलोंमें ताड़ितको विभिन्न मात्राओंमें दाब पड सकती है, उस दाबसे ताडितको एक जगहसे दूसरी जगह ढकेल देना चाहता है। किन्तु ताडित अपरिचालकको भेद कर सहजमें नहीं जा सकता। परिचालकके भीतर ताड़ितकी दाबमें थोड़ी बहुत घट बढ़ होनेसे ही उसी समय थोड़ीसी बिजली पानीकी तरह ढरक जाती है, परिचालक उसमें कुछ भी बाधा नहीं देता। अतएव परिचालकके भीतर ताडितकी दाबकी कुछ कमीबेशी नहीं होती; सर्वत्र समान दाब होनेसे न खींचन पडती है और न धक्का ही लगता है।

पानीके दावके साथ बिजलीके जो गुणोंकी तुलना की गई है, उसको अब हम उद्वृति (potential) शब्दसे व्यवहार करेंगे। कठिन पदार्थके विभिन्न स्थलों पर दाबकी कमीबेशी हो सकती है, तरलपदार्थके विभिन्न स्थानोंमें दाबकी थोड़ी बहुत कमीबेशी होनेसे तरलपदार्थ हट कर दाबको बराबर कर लेता है। अपरिचालकके भीतर ताड़ितकी उद्वृति विभिन्न स्थान पर विभिन्न परिमाणसे हो सकती है। परिचालकके अन्दर ताड़ितकी उद्वृति सर्वत्र समान होगी; जरा भी कमीबेशी होनेसे ताड़ित कुछ हट कर उद्वृतिको समान कर लेगा। परिचालक और अपरिचालक दोनोंका ही स्वभाव वैसा है। दोनोंमें ताड़ितकी जो क्रियाएं देखनेमें आती हैं, वे सभी इस विभिन्न स्वभावसे उत्पन्न हैं। परिचालकके भीतर उद्वृति सर्वत्र समान होती है, इस कारण परिचालकके भीतर बहिस्थ ताड़ितका कोई खिंचाव वा धक्का प्रकट नहीं होता। अतएव परिचालकके किसी स्थान पर जरासी बिजलीका सञ्चार करने मात्रसे समस्त ताड़ित केवल ऊपर ही फैल जाता है और वह इस तरह फैल जाता है जिससे परिचालक भरमें उसकी उद्वृति समान होती है, अर्थात् परिचालकके भीतर किसी जगह खिंचाव वा धक्का नहीं पाया जाता। जैसे पानी जहाँ ज्यादा दाब है, वहाँसे, जहाँ कम दाब है, वहाँ जानेकी कोशिश करता है, उसी तरह बिजली भी जहाँ उद्वृति अधिक है, वहाँसे, जहाँ उद्वृति कम है, वहाँ जानेकी चेष्टा करती है। बीचमें यदि अपरिचालकका व्यवधान हो तो सिर्फ चेष्टा मात्र ही कर रह जाती है, बिजली एक स्थानसे अन्यत्र नहीं जाने पाती बीचमें सिर्फ खिंचाव पड़ जाता है। और यदि अपरिचालकका व्यवधान हो तो बिजली सहज ही ढरक कर जाती है, दोनों जगह उद्वृति समान हो जाती है, खिंचाव नहीं पड़ता।

परिचालक और अपरिचालकका इस स्वाभाविक प्रभेदको याद रखनेसे ताड़ित-घटित प्रायः सभी क्रियाओंको एक प्रकारसे समझा जा सकता है। मान लो, कि एक पीतलके गोलेमें धन-ताड़ित सञ्चित करके उसको डोरीमें बाँध कर टाँग दिया गया। उसके चारों ओर सिर्फ अपरिचालक वायु विद्यमान है। पासमें उद्वृति अधिक है, जितनी दूर जाओगे उद्वृति उतनी ही घटती जायगी। और एक छोटे गोलेमें धन-ताड़ित ले कर उसे उसके पास थामनेसे वह क्रमशः दूर जाना चाहेगा। क्योंकि यह धन-ताड़ित, जिधर जानेसे उद्वृति घटती है उसी तरफ जाना चाहता है। धन-ताड़ितके साथ ऋण-ताड़ितके प्रभेदको याद करनेसे ही समझ सकते हैं, कि उस प्रदेशमें ऋण-ताड़ितयुक्त एक छोटा गोला रखनेसे वह क्रमशः दूरसे पास आवेगा। धन-ताड़ित जहां उद्वृति अधिक है, वहाँसे जहां कम है, उसी तरफ जाता है। ऋण-ताडित जहाँ कम है, वहाँसे जहाँ अधिक है, उसी तरफ जाता है। धन-ताडित धन-ताडितको धक्का मारता है, ऋण-ताड़ित भी ऋण-ताड़ितको ठेल देता है, किन्तु धन-ताड़ित ऋण-ताडितको खींचता है।

ताड़ितका परिमाण।—तडिद्वीक्षणयन्त्र ताड़ितके अस्तित्व निरूपणार्थ व्यवहृत होता है। ताड़ित किस जातिका है, इसका भी सहजमें निर्णय किया जा सकता है। उपस्थित ताड़ितमें जब यन्त्रकी दोनों पत्तियां अलग अलग हो जाय, तब कांचके ताड़ितको पास ले जाने पर यदि पृथकत्व और भी बढ़ जाय तो समझना चाहिये कि उपस्थित ताड़ित धन ताड़ित है। और यदि पृथकत्व

घट जाय, तो उसे ऋण-ताडित समझना चाहिये। धन और ऋण दोनोंके अलग-अलग रखनेसे यदि पत्तियां जरा भी अलग अलग न हों, तो समझें कि धन और ऋण दोनोंका परिमाण समान है। कुछ पृथक्त्वको देख कर ताडितका परिमाण भी स्थूलतः निर्णीत हो सकता है। सूक्ष्मभावसे ताडित-परिमाणको प्रणालियोंका उल्लेख करना अनावश्यक है। यहीं तक याद रखना चाहिये कि, यन्त्र द्वारा ताडितकी जाति और परिमाण दोनोंका ही निर्णय किया जा सकता है।

ताड़ितकी अनश्वरता।—इसी तरह यन्त्र द्वारा परिमाण और परीक्षा करके देखा गया है कि, ताड़ितका ध्वंस नहीं है। विजली एक स्थानसे दूसरे स्थानको एक आधारसे अन्य आधारमें जा सकती है, इसकी कणिकामात्रका भी ध्वंस नहीं होता। साधारणतः बिजली जो बहुत देर तक एकत्र आवद्ध नहीं रक्खी जा सकती, उसका प्रधान कारण पार्श्ववर्ती पदार्थका आंशिक परिचालकत्व ही है। विजली वायुपथसे तथा धूलिकणा जलकणा आदिको आश्रय कर धीरे धीरे परिचालित हो कर एक द्रव्यके ऊपरसे अन्य द्रव्यके ऊपर जाया करती है, किन्तु उसका ध्वंस नहीं होता। लॉर्ड केलविनने काँचका पोला वर्तुल वायुशून्य करके उसके भीतर वर्षों तक ताड़ितयुक्त पदार्थको आवद्ध कर रक्खा था, बहुत वर्षोंमें भी ताडितके परिमाणका ह्रास नहीं हुआ था।

अर्थात् दश भाग धन-ताड़ितमें पांच भाग धन-ताड़ित मिलानेसे सर्वत्र और सर्वदा ठीक पन्द्रह भाग धन-ताडित पाया जाता है। मिलाते समय परिमाण घटता नहीं। दश भाग ऋण-ताडितमें पाँच भाग ऋण-ताडित मिलानेसे सर्वत्र पन्द्रह भाग ऋण-ताडित होता है। और दश भाग धनमें आठ भाग ऋण मिलानेसे दो भाग धन होता है। दश भाग धनमें दश भाग ऋण मिलानेसे धन वा ऋण किसीका भी अस्तित्व नहीं रहता। इस हालतमें भी कहना पड़ेगा, कि धन और ऋणमें योग हुआ है। उनका ध्वंस वा नाश हुआ है, ऐसा कहना भूल है।

ताड़ितका संक्रमण थोड़ेसे धन ताड़ितके पास एक पीतलकी कोई चीज सूतकी सहायतासे थामी। पूर्वोक्त नियमानुसार धन-ताड़ितकी पासमें उद्वृति अधिक और दूरमें उद्वृति कम होती है; अतएव इस धातुद्रव्यका जो पार्श्व धन-ताड़ितके सम्मुखस्थ और निकटस्थ है, वहाँ उद्वृति अधिक तथा जो पार्श्व पीछे और दूरी पर स्थित है, वहाँ उद्वृति कम होती है। उक्त वस्तुको वहाँ लानेसे पहले उसके ऊपर किसी स्थानमें ताड़ितका चिह्नमात्र न था; किन्तु जब देखोगे कि, सामनेके भागमें ऋण-ताड़ित और पश्चाद्भागमें धनताड़ितका आविर्भाव हुआ है अर्थात् परिचालक धातुद्रव्यके स्वभावक्रमसे किञ्चित् धनताड़ित, जहाँ उद्वृति अधिक थी, वहाँसे, जहाँ उद्वृति कम है, वहाँ चला गया है, निकटसे दूर और सामनेसे पीछे गया है। और थोड़ासा ऋण ताड़ित विपरीत दिशाको अर्थात् दूरसे पासमें, पश्चात्से सामने गया है। नापनेसे देखेंगे कि, नूतन आविर्भूत धन-ताड़ितका परिमाण ठीक ऋण-ताड़ितके समान है। पहले मानो उस धातुके भीतर शून्य परिमित ताड़ित प्रच्छन्नभावसे निहित था; अब वही शून्य परिमित ताड़ित किञ्चित् धन और उतने ही ऋणसे विश्लिष्ट हो कर विभिन्न दिशाको हट गया है। इसीको ताड़ितका संक्रमण कहते हैं।

यह कहना बाहुल्य मात्र है कि, परिचालकके स्वभावधर्मसे ऐसा होता है। अपरिचालक पदार्थसे ऐसा नहीं होता; क्योंकि उसके दोनों पार्श्वमें उद्वृति समान न होनेसे भी ताड़ितमें गति नहीं होगी। और परिचालकके दोनों पार्श्वमें उद्वृति असमान होनेसे ही कुछ धन-ताड़ित अपने आप हट कर पश्चात् भागकी उद्वृतिको जरा बढा देता है। थोड़ासा ऋण-ताड़ित अपने आप हट कर सामनेकी उद्वृति घटा देता है। इससे उसके विभिन्न अंशमें उद्वृति असमान नहीं रह सकती, सर्वत्र उद्वृति समान हो जाती है। उस समय उसके भीतर ताड़ितका खिचाव नहीं रहता अर्थात् ताड़ितकी क्रियामें स्फूर्ति नहीं रहती।

इस संक्रमणके समय जितने धन और ठीक उतने ही ऋणका विकाश होनेसे समग्र ताड़ितका परिमाण पहले जितना था अब भी उतना ही रहता है। ताड़ित-

का जैसे ध्वंस नहीं है, वैसे ही सृष्टि भी नहीं है। एक जगहसे कुछ धन ताड़ितको हटा कर एकत्र सञ्चित करनेसे अन्यत्र किसी न किसी जगह ठीक उतने ही ऋण-का आविर्भाव और विकाश होता है। योगफल शून्य ही रहता है। माइकेल फराडे इस मतके प्रतिष्ठाता है।

एक टीनके या अन्य किसी धातुके बकसको भूमिसे अलग कर अर्थात् अपरिचालक द्रव्यमें परिवृत करके उसके भीतर एक धन ताड़ितयुक्त गोला लटका दो। बकसके बाहरके हिस्से पर धन ताड़ित और भीतरके हिस्सेमें ऋण-ताड़ितका विकाश होगा। उल्लिखित संक्रमण ही इसका कारण है। बकसके बाहरी हिस्सेको छूनेसे वहाँका धन ताड़ित तत्क्षणात् शरीरके मध्यसे चला जाता है। अभ्यन्तरमें गोलाका धन और बकसके भीतरी हिस्सेमें ऋण-ताड़ित वर्तमान रहता है। तड़िद्वीक्षण द्वारा बाहरमें कहीं भी कोई ताड़ितक्रिया देखनेमें नहीं आती; भीतरके गोलेको सहसा बाहर निकाल लेनेसे ऋण-ताड़ित भी साथ ही साथ बकसके अन्तःपृष्ठसे बाहरके पृष्ठमें आ कर पड़ता है और तड़िद्वीक्षणसे पकड़ा जाता है। और गोलेका यदि निकालनेसे पहले बकसके गात्रसे स्पर्श कराया जाय, तो बाहर निकालनेके बाद गोला अथवा बकसमें कहीं भी किसी ताड़ितका लेशमात्र नहीं मिलता। प्रमाणित हुआ कि, गोलामें जितना धन था, बकसके भीतर भी उतना ही ऋणका आविर्भाव हुआ था; नहीं तो दोनोंका योगफल शून्य नहीं होता।

जिस कोठरीके भीतर मैं बैठा हूं, उसको एक बृहत् परिचालक बकसके समान समझ सकता हूं। कोठरीके भीतर किसी जगह कुछ धन-ताड़ित रखनेसे कोठरीके भीतर दीवारों पर ठीक उतने ही ऋण-ताड़ितका आविर्भाव होगा अर्थात् चारो ओरकी दीवार, नीचेकी जमीन और ऊपरकी छत पर सर्वत्र थोड़ा बहुत ऋण-ताड़ितका विकाश होगा, सबको एकत्र करनेसे ठीक अभ्यन्तरस्थ धन-ताड़ितके साथ परिमाणमें सामान होगा, जरा भी कम वा ज्यादा न होगा।

कोठरीके भीतर न झुला कर यदि खुले मैदानमें धन-ताड़ितयुक्त एक गोला लटकाया जाय, तो उसके चारो ओर जहाँ जहाँ परिचालककी पीठ है, वहां वहां कुछ कुछ ऋण-ताड़ितका विकाश होगा। नीचे मैदानमें जमीन पर कुछ दूरवर्ती वृक्ष वा पहाड़ पर किञ्चित् उपरिस्थ आकाशमें एक मेघ होनेसे उसके गात्रमें भी यत्किञ्चित् ऋण-ताड़ितका आविर्भाव होगा। किन्तु यदि जगतमें जहाँ जितना ऋण-ताड़ितका ऐसा आविर्भाव हुआ है, उसको एकत्र संग्रह कर रक्खा जाय, तो उसकी समष्टि उस सूत्रलम्बित गोलेके पृष्ठदेशवर्ती धन-ताड़ितकी अपेक्षा जरा भी कमती या बढ़ती न होगी।

ऊपर जो टीनके बकसका उल्लेख किया गया है, उसके भीतर धन-ताड़ित ले जानेसे बाहरके हिस्सेमें धन और भीतरी हिस्सेमें ऋण-ताड़ितका आविर्भाव होता है। किन्तु बकसके भीतर यदि रेशम पर काँच घसा जाय, तो काँचमें धन-ताड़ितका विकाश होता है, किन्तु बकसके बाहरी हिस्सेमें किसी भी ताड़ितका चिह्न नहीं मिलता। कांचमें जैसे धनका विकाश होता है, वैसे ही रेशममें साथ साथ ऋणका विकाश होता है। काँचमें जितना धन उत्पन्न होता है रेशममें ठीक उतना ही ऋण उत्पन्न होनेसे बाहर कोई फल नहीं होता।

ताड़ितकी प्रकृति।—पहले ही कह चुके हैं, कि ताड़ित पदार्थ क्या, शक्ति है या धर्म, इसका अभी तक कुछ निर्णय नहीं हुआ। ताड़ितके स्वरूपनिर्णयमें प्रवृत्त होने पर इस बातको याद रखनी चाहिये। ताड़ित कोई भी पदार्थ क्यों न हो, जगत्में उसकी नूतन सृष्टि वा ध्वंस नहीं है। शुद्ध धन वा शुद्ध ऋण-ताड़ितका हम किसी तरह भी सञ्चय नहीं कर सकते। कुछ धन ताड़ित किसी जगह किसी उपायसे सञ्चित होने पर ठीक उतना ही ऋण-ताड़ित साथ ही साथ किसी न किसी जगह आविर्भूत होगा। और इसी तरह कुछ धनका किसी स्थानमें लोप होनेसे ठीक उतने ही ऋणका अन्यत्र कहीं लोप होगा। योगफल समान ही रहेगा। धन-ताड़ित सिर्फ समपरिमाण ऋण ताड़ितसे पृथक होता है। पानी जिस तरह दाब पहुंचता है, बिजली उसी तरह उद्धृति उत्पन्न करती है। धन-ताड़ितके जितने पासमें जाओगे, उतनी ही उद्धृति अधिक

होगी और ऋण-ताड़ितके जितने पासमें जाओगी उद्धृति उतनी ही कम होगी। धन अधिक उद्धृतियुक्त स्थानसे दूर जानेकी और ऋण उससे विपरीत दिशाको जानेकी चेष्टा करता है। धन जब एक तरफ चले, तो समझना चाहिये कि ऋण भी विपरीत दिशाको जा रहा है। अपरिचालक प्रदेशमें उद्धृतिकी कमीवेशी हो सकती है, क्यों कि अपरिचालकके भीतरसे बिजली सहजमें जा नहीं सकती। परिचालकके भीतर उद्धृति सर्वत्र समान होती है, क्योंकि वहां धन और ऋण बिना बाधाके चल फिर कर उद्धृतिको समान कर लेते हैं। सर्वत्र उद्धृतिको समान करते समय धन-ताड़ितकी गति ऋणकी तरफ अथवा ऋणकी गति धनकी तरफ होती है। फल स्वरूप दोनोंका सम्मिलन वा योग होता है, अर्थात् कुछ धन और उतने ही ऋणका तिरोभाव होता है।

ताड़ित ग्रहणकी क्षमता।—साधारणतः दो धातु-द्रव्योंको ताड़ितयुक्त करके दोनोंको छुआ देनेसे सम्पूर्ण ताड़ितको दोनों बाँट लेते हैं। तात्पर्य यह है, कि जो बड़ा होता है, उसमें ही ताड़ितका अंश अधिक पड़ता है। द्रव्यके आयतन और आकारको देख कर, किसके हिस्सेमें कितना पड़ेगा, इसकी गणना की जा सकती है।

किसी द्रव्यमें कुछ धन-ताड़ित देने पर उसकी उद्धृति जरूर पड़ती है; ताड़ित जितना ज्यादा दिया जायगा, उद्धृति उतनी ही बढ़ जायगी। और छोटी वस्तुमें जरासी बिजली देखनेसे जितनी उद्धृति पड़ती है, एक बड़ा वस्तुमें उतनी देनेसे उद्धृति उतनी नहीं पड़ती। एक थालीमें और एक ग्लासमें समान जल ढालनेसे, ग्लासके पानीमें उच्चता और वाष्प जितनी होती है, उतनी थालीके पानीमें नहीं होती, ऐसा ही इसका हिसाब है। आकृति और परिमाण मालूम रहने पर, कितनी बिजलीसे कितनी उद्धृति बढ़ती है, यह कहा जा सकता है। दो चीजोंको छुआ देनेसे जिसमें उद्धृति अधिक है, वहाँसे जिसमें कम है, उसमें थोड़ासा धन-ताड़ित चला जाता है। इसलिए समग्र ताड़ित दोनों चीजोंमें बँट जाने पर दोनोंकी उद्धृति समान हो जाता है।

अन्यान्य द्रव्योंकी तुलनामें पृथिवीका आकार इतना बड़ा है कि अन्य द्रव्योंसे पृथिवीमें ताड़ितके जाने आनेमें पृथिवीकी उद्धृतिकी जरा भी क्षति-वृद्धि नहीं होती। इसीलिए किसी ताड़ितयुक्त द्रव्यका भूमिसे स्पर्श होने पर उसकी प्रायः तमाम बिजली पृथिवीमें चली जाती है; पृथिवीके हिस्सेमें प्रायः सब पड़ता है। परन्तु तो भी पृथिवीकी उद्धृतिका जरा भी व्यतिक्रम नहीं होता। महासागरमें कितना ही पानी गिरता है और कितना ही निकलता है, पर तो भी उसमें कुछ घटती बढ़ती नहीं होती, उसकी मर्यादा समान ही रहती है, इसका हिसाब भी प्रायः वैसा ही है।

पृथिवीकी उद्धृतिकी सहजमें ह्रास वृद्धि नहीं होती, इसीलिए अन्यान्य ताड़ितयुक्त पदार्थोंकी उद्धृतिको पृथिवीके साथ मिला कर परिमाण निर्णय करनेकी प्रथा है। पर्वतकी उच्चता नापनी हो तो वह सागरपृष्ठसे कितना ऊँचा है, और समुद्रकी गभीरता नापनी हो तो वह कितना नीचा है, यही देखा जाता है, इसी तरह किसी स्थानमें ताड़ितकी उद्धृतिका निश्चय करनेके लिए वह पृथिवीसे कितनी ज्यादा वा कम है, इसी बातका निर्णय किया जाता है।

पानी जैसे ऊँचेसे अपने आप नीचेको जाता है, ताप जिस तरह गरम जगहसे शीतल स्थानको जाता है, धन-ताड़ित भी उसी तरह जहाँ उद्धृति ज्यादा है, वहाँसे जहाँ कम हो, वहाँ जाना चाहता है। इसलिए किसी जगह ताड़ित सञ्चित करना हो, तो उद्धृति जितनी कम हो, उतना ही सुभीता है। पानीको जैसे ऊँची जगहमें न रख कर नीची जगहमें रखनेसे सुभीता पड़ता है, गिरनेका डर नहीं रहता; इसे भी कुछ कुछ वैसा ही समझें। इसीलिए ऐसे स्थानमें और ऐसे उपायसे धन-ताड़ित सञ्चित कर रखना चाहिये कि, जहाँ उद्धृति खूब ज्यादा न हो। अन्यथा ताड़ितके निकल जानेकी आशङ्का रहेगी।

लीडेन-जार।—एक टीनकी चद्दर पर कुछ धन-ताड़ित सञ्चित कर रक्खें। और एक टीनकी चद्दरको जमीनसे लगा कर उसके सामने समान्तराल करके रक्खो। इस चद्दरकी जो पीठ पहली-चद्दरके सामने है, उस पीठ पर ऋण-ताड़ित संक्रमणवशतः आविभूत होता है। पहली चद्दरमें जितना धन होगा, इसमें उतना ही ऋण

रहेगा। यदि सिर्फ धन ताड़ित हो उसमें यथेष्ट उद्धृति होती, पासमें ऋण होनेसे उसकी उद्धृति उतनी नहीं हो सकती।

दूसरी चद्दरको जितने पासमें रक्खा जायगा, उद्धृति उतनी ही कम होगी। इसलिए ऐसे स्थल पर पहली चद्दर पर बहुत धन-ताड़ित सञ्चित कर रखने पर भी उसकी उद्धृति ऊँचेकी नहीं चढ़ती। ताड़ित सञ्चित कर रखनेकी जरूरत पड़ने पर ऐसा उपायका अवलम्बन करना उचित है। एक काँचकी बोतलके भीतर और बाहर जस्ताके वरक चिपटा देनेसे, वह ताड़ित पकड़ रखनेका उमदा यन्त्र बन जाता है। ऐसे यन्त्रको लीडिन-जार कहते हैं। ऐसे ही कुछ लीडिन-जारोंको बराबर बराबर सजा कर सबके भीतर और बाहरके हिस्सेको धातु द्वारा जोक दो, इस तरह बैटरी बन जायगी। उसमें काफी बिजली सञ्चित की जा सकती और बहुत देर तक रक्खी जा सकती है। बाहरका हिस्सा जमीनको छुए रहता है; भीतर जितना धन होता है, बाहर उतना ही ऋण सञ्चित रहता है। मतलब यह है कि धन अपने सहचर ऋणके पास रहे, तो दोनों दोनोंको बाँध रखते हैं, अन्यत्र नहीं जाने देते। और दूर रहनेसे दोनों ही अन्यत्र जानेकी कोशिश करते रहते हैं।

योंतो जहाँ भी ताड़ित है, वहीं ऐसे लीडिन-जारकी भी सृष्टि होती है। किसी चीज पर कुछ धन ताड़ित रहनेसे ही अन्य किसी चीज पर दीवाल या जमीन पर उसका सहवर्ती ऋण-ताड़ित अवश्य ही रहेगा। इसके सिवा कुछ धनके सामने कुछ ऋण रख कर बीचमें अपरिचालकका व्यवधान देनेसे लीडिन-जारकी सृष्टि होती है। बात यह है, कि वह व्यवधान जितना कम होगा, धन और ऋण जितने पास पास होंगे, उस लीडिन जारकी कार्यकारिता, अर्थात् दोनों ताड़ितकी स्थितिशीलता उतनी ही अधिक होगी। वायवीय-व्यवधानकी अपेक्षा काँच आदिके द्रव्योंका व्यवधान उस स्थितिशीलताके अधिक अनुकूल होता है।

ताड़ितका सञ्चालन—पुनः पुनः उल्लिखित हुआ है, कि धनताड़ित जहाँ उद्धृति अधिक है, वहाँसे जहाँ उद्धृति कम है, उसी तरफ तथा उसका सहवर्ती ऋण-ताड़ित उलटी तरफको जानेकी चेष्टा करता है। बीचमें अपरिचालक रहनेसे सहजमें परस्पर मिल नहीं सकते, परिचालक रहनेसे उसी समय मिल जाते हैं। ताड़ितका यह सञ्चालन या गतायात साधारणतः तीन प्राणालियोंसे होता है।

(१) बीचमें परिचालकका व्यवधान होनेसे दोनों ताड़ित उसी समय मिल जाते हैं। एक ताँबे या पीतल अथवा किसी भी धातुके डण्डे, तार या जञ्जीरसे धन-ताड़ित और ऋण-ताड़ितको परस्पर छुआ देनेसे, दोनों ही उस धातु-द्रव्यके द्वारा विपरीत दिशाको धावित होते हैं। उस धातुमें क्षणिक प्रवाहका सञ्चार होता है। दोनों ताड़ितोंका मिल जाना प्रवाहका फल है। मिल जानेसे सर्वत्र उद्धृति समान हो जाती है और प्रवाह बन्द हो जाता है। ताड़ित-प्रवाहके विशेष धर्मकी बात पीछे कहेंगे। मामूली तौरसे यह याद रखना चाहिये कि उद्धृति समीकरणकी चेष्टासे ही परिचालकमें ऐसे क्षणिक प्रवाहकी उत्पत्ति होती है। जिसके भीतरसे प्रवाह चलता है, वह उत्तप्त होता है।

(२) धन और ऋण-ताड़ितके मध्य काँच, वायु आदि अपरिचालक व्यवधान होनेसे दोनोंका मिलना सहजमें नहीं होता। धनके निकटवर्ती प्रदेशमें उद्धृति अधिक और ऋणके निकटस्थ प्रदेशमें उद्धृति कम रह जाती है। किन्तु इस उद्धृति-वैषम्यके फलसे धन हमेशा ऋणकी तरफ और ऋण धनकी तरफ जानेकी चेष्टा करता है। जिन दो पृष्ठों पर दोनों ताड़ित सञ्चित होते हैं, वे परस्पर आकृष्ट होते हैं और यदि रोका न जाय तो अग्रसर हो कर आखिर तक एक दूसरेको छूते हैं। दोनोंके मध्यवर्ती प्रदेशमें एक खिंचावसा पड़ जाता है। इस उद्धृतिके वैषम्यको क्रमशः बढ़ानेसे वह खिंचाव आखिर तक इतना बढ़ जाता है कि फिर मध्यवर्ती अपरिचालक भी दोनों ताड़ितको पृथक् नहीं रख सकता। इस्पात या रबरका तार बहुत कुछ खिंचावको सह लेता है, किन्तु ज्यादा खिंचाव पड़ने पर टूट भी जाता है। इसी प्रकार बीचका परिचालक भी आखिर तक टूट जाता है। परिचालकको तोड़ कर ताड़ित मानो अपनी रास्ता कर लेता है और उस रास्तासे दोनों

ताड़ितका सम्मिलन होता है। सम्मिलनके बाद फिर उद्वृतिमें वैषम्य नहीं रहता, और न अपरिचालकके बीचमें खिचाव ही रहता है।

इस तरह अपरिचालक छिन्न हो कर दोनों ताड़ितका मेल होने पर त्रिविध उत्पात होते हैं। अपरिचालक यदि वायवीय द्रव्य हो, तो वह सहसा इतना उत्तप्त और प्रसारित होता है, कि उसमेंसे अग्निस्फुलिङ्ग निकलती और शब्द होने लगता है। काँच, कागज, लकड़ी वा कठिन पदार्थमें होनेसे वह टूट या फट जाता है। बीचमें बारूदकी तरहका दाह्य पदार्थ होनेसे वह जलने लगता है। कोई जीव-शरीर हो तो उसमें प्रचण्ड आघात लगता है।

ताड़ितमें स्फुलिङ्ग, आनुषङ्गिक शब्द और आघात आदि इसी तरह हुआ करते हैं।

बड़े बड़े ताड़ित-यन्त्रोंकी सहायतासे ये सब खेल आसानीसे दिखाये जाते हैं। आलोक, शब्द, आदि उत्पन्न करके विविध कौशलसे तरह तरहके तमाशे दिखाये जा सकते हैं। लीडेन जारकी बैटरीमें बहुत ताड़ित सञ्चित करके उस ताड़ितसे ऐसे सञ्चालन द्वारा नाना प्रकारके आश्चर्यजनक कार्य किये जा सकते हैं। बहुतसे लोगोंको एक दूसरेका हाथ थमा कर खड़ा करके, एक लीडेन-जारके ताड़ितसे आघात करनेसे सबका शरीर काँप उठता है।

बड़े बड़े कांचके नलोंमें थोड़ी थोड़ी अक्सिजन, हाइड्रोजन आदि विविध वायु भर कर, उसमें इस तरह ताड़ित सञ्चालित करनेसे नाना प्रकारके विचित्र वर्णोंके आलोकोंका विकाश होता है। इन आलोकोंका विकाश अत्यन्त मनोहर होता है। विचित्र आकारके नल बना कर नाना प्रकारके उमदा उमदा खेल-तमाशे दिखाये जा सकते हैं। ऐसे नलको गैसलरका (Geissler) नल कहते हैं।

वज्र विद्युत्के साथ ताडित-यन्त्रमें उत्पन्न अग्निस्फुलिङ्ग और उसके आनुषङ्गिक कार्योंका सादृश्य देख कर बेञ्जामिन् फ्राङ्कलिनने अनुमान किया है कि दोनों ही एक ही कारणसे उत्पन्न होते हैं। उन्होंने पतङ्ग उडा कर उसमें मेघस्थ ताडितका संक्रमण कराया था, वह ताडित पतङ्गसे लगी हुए भीगी सूतके द्वारा आ कर उनकी अंगुलियोंमें स्फुलिङ्ग देने लगा था। अन्यान्य परीक्षाओं द्वारा उन्होंने मेघके ताडित और यन्त्रके ताडितमें एकता प्रमाणित की थी। वास्तवमें विद्युत् ताडितका बृहत् स्फुलिङ्ग मात्र है और वज्रध्वनि तदानुषङ्गिक वायुका आकस्मिक उत्ताप और प्रसारजनित शब्द मात्र है।

लार्ड केलविन द्वारा आविष्कृत उद्वृतिमान यन्त्रकी सहायतासे देखा गया है कि जमीनके ऊपर वायुमण्डलमें प्रायः सर्वत्र ताड़ितका थोड़ा बहुत खिचाव है। वायुरहित मेघ प्रायः सर्वदा ही ताड़ितयुक्त रहता है। पानीसे भापका होना और वायुके साथ घर्षण ही शायद इस ताड़ित-विकाशका कारण है। क्षुद्र क्षुद्र अदृश्य जलकणा जब जम कर बृहत्तर जल-कणाका आकार धारण करते और मेघकी सृष्टि करते हैं, उस समय उस ताड़ितका परिमाण थोड़ा होने पर भी उसकी उद्वृति बहुत ज्यादा हो जाती है। जमीन पर वा पार्श्ववर्ती मेघमें पहलेसे ताड़ित न होने पर भी पूर्वोक्त नियमानुसार विपरीत ताड़ितका संक्रमण होता है। उद्वृतिका वैषम्य और ताड़ितका खिचाव बहुत ज्यादा हो जाने पर मध्यस्थ वायुराशिको छिन्न करके उनमें प्रकाण्ड ताड़ित-स्फुलिङ्गकी उत्पत्ति होती है, साथ ही गर्जन आदि भी होती है।

(३) सहवर्ती विपरीत ताड़ित यदि अत्यन्त दूर हो, तो ताड़ितके लिए मध्यस्थ व्यवधानको भेद कर उसके साथ मिलना कठिन हो जाता है। किन्तु ऐसी हालतमें भी किसी एक चीजके ऊपर इच्छानुसार ताड़ितका सञ्चय नहीं किया जा सकता। पृष्ठदेश पर जहाँ जहाँ ऊँचा, कुब्ज, सूच्यग्र स्थान वर्तमान है, अधिकांश बिजली उन्हीं स्थानोंमें आ कर जमती है और चारो ओरकी बिजली उसको धक्का देती रहती है। इस तरहके धक्के देते रहनेसे बिजली उन स्थानोंसे वायु-पथसे निकलना चाहती है। वायुके भी अपरिचालक अंश नष्ट हो जाते हैं। वायुका हर एक कणा उस सञ्चित ताडितमेंसे कुछ कुछ ग्रहण करता तथा विकृष्ट और विच्छिन्न हो कर जहाँ उद्वृति कम है, वहाँसे चलता रहता है। इसी प्रकारसे वायुमें प्रवाह उत्पन्न होता और वायुपथसे वायु-

कणाका अवलम्बन ले कर धीरे धीरे ताड़ित निकलता रहता है।

किसी नुकीले पदार्थमें ताड़ित सञ्चित करने पर उस ताड़ितको रोकना कठिन हो जाता है। नुकीले स्थानमें ताड़ित जमता है और चारो तरफसे धक्का पा कर वायुपथसे निकल जाता है। वायुमें जो प्रवाह उत्पन्न होता है, उसको कौशलसे प्रत्यक्ष दिखाया जा सकता है। इसके सिवा सूचीके मुँहके पास वायुमें नाना प्रकारके आलोकोंका विकाश होता है। अँधेरे घरमें ताड़ित-यन्त्र चलानेसे सूचीके मुँह पर ऐसे आलोकोंका विकाश देखने में आता है।

वज्रपातकी आशङ्का-निवारणार्थ मकानके बगलमें सूक्ष्माग्र धातुदण्ड गाड़ रखनेकी प्रथा है। ऊपरमेघमें ताड़ित सञ्चित होने पर नीचे जमीन पर भी उसके सहवर्ती विपरीत ताड़ितका संक्रमण होता है। वह ताड़ित जमीन पर आबद्ध न रह कर धातुदण्डके सूक्ष्म अग्रभावसे क्रमशः निकल जाता है। एक साथ ज्यादा ताड़ित भूपृष्ठ पर आबद्ध वा सञ्चित न हो सकनेके कारण, वज्रपात अर्थात् सञ्चित ताड़ितके खिचावसे वायुराशिमेंसे आकस्मिक भेदजनित स्फुलिङ्ग निकलनेकी आशङ्का नहीं रहती।

फिलहाल ताड़ित-स्फुलिङ्गके विषयमें नये नये विविध तत्त्वोंका आविष्कार हुआ है। उनसे मालूम होता है, कि इस तरहके धातु-दण्ड द्वारा सम्यक् फलप्राप्तिकी सम्भावना कम है। वज्रपातकी आशङ्काको निर्मूल करनेके लिये मकानको लोहे या ताँबेके जालसे ढक देनेके सिवा अन्य उपाय नहीं है।

ताड़ितयन्त्र—पर्याप्त परिमाणमें ताड़ित उत्पादन और सञ्चय करनेके लिए विविध यन्त्रोंका आविष्कार हुआ है। अल्प मात्रामें ताड़ितकी आवश्यकता होने पर सहजमें मिल सकता है। एक तश्तरीमें थोड़ीसी लाख गला कर रक्खो। और दूसरी एक तश्तरीको काँच वा अन्य अपरिचालक दण्डके हत्थेसे थामो। पहली रकाबीकी लाख पर फलालेन वा बिल्लीका चमड़ा दो-चार बार घिसनेसे उसमें कुछ ऋण-ताड़ितका विकाश होगा। दूसरी रकाबीको इस ताड़ितके सामने लाओ और उँगलीसे उसे एक बार छू दो। अब इस रकाबीमें भी कुछ धन-ताड़ित संक्रमित और आविर्भूत देखोगे। वास्तवमें पहलीके ऋण और दूसरीके धनमें कुछ वायुभाव और व्यवधान रहनेसे एक प्रकार लीडन-जारकी सृष्टि हो जाती है। अब हत्थेको पकड़ कर दूसरी तश्तरीको अलग कर दो और सञ्चित धन-ताड़ितका यथेच्छ व्यवहार करो। इस तरहके यन्त्रको ताड़िद्वहयन्त्र कह सकते हैं इसका अंग्रेजी नाम है Electro-phorus.

प्रचुर परिमाणमें ताड़ितोत्पादनके लिए नाना प्रकारके बड़े बड़े यन्त्र हैं। ये यन्त्र साधारणतः दो श्रेणीके होते हैं। प्रथम श्रेणीमें घर्षण द्वारा काँच वा अन्य द्रव्य पर ताड़ित उत्पन्न होता है। उस ताड़ितको फिर बड़े बड़े ताड़िताधारमें किसी तरह सञ्चालित और सञ्चित किया जाता है। इस श्रेणीमें रामसडेनका (Ramsden) यन्त्र ही प्रसिद्ध है। इनमें ताड़ित शक्तिका अत्यन्त अपचय होता है, यही दोष है। जितनी महनत की जाती है, उसका अधिकांश वृथा नष्ट हो जाता है, उतना फल नहीं मिलता।

दूसरी श्रेणीके यन्त्र कुछ कुछ ताड़िद्वहयन्त्रसे मिलते जुलते हैं। मान लो कि, दो बड़े बड़े 'क' और 'ख' ताड़ितके आधारस्वरूप विद्यमान हैं। शुरूसे ही 'क' में थोड़ा धन और 'ख' में थोड़ा ऋण सञ्चित है। और एक तृतीय क्षुद्र द्रव्य 'ग' को लो। 'ग' को 'क, के पास पकड़ और एक बार जमीनसे छुआओ। 'ग' में किञ्चित् ऋणका संक्रमण होगा। 'ग' को अब हटा कर 'ख, को छू दो; 'ग' का प्राय सम्पूर्ण ऋण 'ख' में चला जायगा। क्योंकि 'ग' छोटा और 'ख' बड़ा है, 'ख' में ऋणका परिमाण बढ़ गया। फिर 'ख' को 'ग के सामने रख कर भूमि स्पर्श कराओ। अबकी बार 'ग' में धन संक्रान्त होगा। 'ग' को 'क' के पास ले जा कर 'क' को छू दो। प्रायः सम्पूर्ण धन 'क' में चला जायगा। अबकी बार 'क' में धनकी मात्रा बढ़ गई। इसी तरह मध्यवर्ती 'ग' को एक बार 'क' की तरफ और एक बार 'ग' की तरफ ले जानेसे तथा बीच बीचमें भूमिस्पर्शकी व्यवस्था करनेसे 'क' में क्रमशः धन और 'ख' में क्रमशः ऋणकी मात्रा बढ़ जायगी। दोनों ताड़ितका थोड़ा थोड़ा अंश ले कर प्रार

करनेसे शेष तक दोनोंका प्रचुर सञ्चय हो सकता है।

इस श्रेणीके यन्त्रोंमें शक्तिका अधिक अपव्यय नहीं होता, तथा एक छोटेसे यन्त्रमें इतनी बिजली सञ्चित की जा सकती है कि, जिसके खिंचावसे 'क' और 'ख' दोनोंके मध्य वायुपथमें कई इञ्च वा कई फुट लम्बे स्फुलिङ्ग आसानीसे निकल सकते हैं।

होलट्ज् (Holtz), वस् (Voss) विम्हरस्ट्स (Wimhurst) आदिके बनाये हुए ताड़ितयन्त्र इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं। आजकल इन्हीं यन्त्रोंका आदर होता है।

ताड़ित-प्रवाह ।—एक ताड़ितयन्त्रके ताड़िताधारमें कुछ ताड़ितका सञ्चय करके एक ताँबेके तारसे उस ताड़िताधारको जमीनसे छुआ देनेसे उसी समय सम्पूर्ण ताड़ित उस तारके जरिये जमीनमें चला जाता है। इस तरह ताड़िताधारकी उद्वृति भूमिकी उद्वृतिके समान हो जाती है, इसीका नाम है ताड़ित-प्रवाह। यह प्रवाह क्षणमात्र ठहरता है। प्रवाहके कारण तार कुछ गरम हो जाता है। प्रवाहको यदि स्थायी बनाना चाहो तो यन्त्रके कार्यको बन्द न करके लगातार ताड़ित उत्पन्न करते रहो। एक तरफ जैसे ताड़ित आधारसे निकल कर तारके जरिये चलता रहेगा, दूसरी ओर उसी तरह नवीन ताड़ित आधारमें सञ्चित होता रहेगा। इस तरह जब तक चाहो ताड़ितका प्रवाह तारमें चलाया जा सकता है। तार क्रमशः उत्तप्त हो जाता है। तारके पास यदि एक चुम्बककी कील रक्खी जाय, तो वह अपने स्थानसे थोड़ासा हट जायगा।

लीडेन-जारके दोनों तरफ धातुदण्ड वा तार जोड़ देनेसे दण्ड और तारमें ताड़ितप्रवाह चलता है। क्षणमें सञ्चित ताड़ित बाहर निकल जाता है। धन ताड़ित एक पृष्ठसे एक ही ओर जाता है, ऋण-ताड़ित अन्य पृष्ठसे अन्य दिशाको जाता है। इस स्थलमें भी ताड़ित-प्रवाह क्षणस्थायी होता है। प्रवाहको स्थायी बनानेके लिए एक तल (पृष्ठ) ताड़ितयन्त्रके साथ और दूसरा तल भूमिके साथ संयुक्त करके अविरत यन्त्रको चलाते रहना चाहिये।

स्पष्ट देखनेमें आता है, कि परिचालक पदार्थकी उद्वृतिको समान करनेके लिए इस प्रवाहकी उत्पत्ति होती है। जब तक जोरसे वा नूतन ताड़ित उत्पन्न करके परिचालक पदार्थके दोनों अंशोंकी उद्वृतिको असमान रक्खा जाता है, तभी तक ताड़ितका स्रोत एक अंशसे अन्यत्र चलता रहेगा। उद्वृतिके समान होते ही स्रोत भी बन्द हो जाता है।

ताड़ित-यन्त्रके द्वारा ताड़ितका जो स्रोत उत्पन्न होता है, उसमें प्रवाहित ताड़ितका परिमाण अधिक नहीं होता। ताड़ितमें प्रवल स्रोत बहानेके अन्य उपाय भी हैं।

साधारणतः ताड़ितका प्रवाह कहनेसे धन-ताड़ितके प्रवाहका ही बोध होता है। किन्तु इस बातका हमेशा ख्याल रक्खो कि, ताड़ित 'क' से 'ख' की तरफ बहता है. ऐसा कहनेसे धनताड़ित 'क' से 'ख' की तरफ और साथ ही ऋण-ताड़ित 'ख' से 'क' की तरफ प्रवाहित होता है. ऐसा समझो।

ताड़ितयन्त्रके बिना ताड़ितस्रोत उत्पन्न करनेके लिए तीन प्रधान उपाय हैं—

(१) एक टुकड़ा ताँबा और एक टुकड़ा दस्ता, दोनोंके छोरोंके मिला कर अन्य दो प्रान्तोंको मण्डूक वा शल्कहीन मत्स्यकी देहसे छुआनेसे उनका निर्जीव शरीर भी उछलने लगता है। गलवनी (Galbani) ने इस घटनाका आविष्कार किया था। दो विभिन्न धातुके स्पर्शमात्रसे दोनोंमें ताड़ितका आविर्भाव होता है। एकमें धन और दूसरोमें ऋण आविर्भूत होता हैं। वोलटा (Volta) इस घटनाके आविष्कर्त्ता थे। थोड़ासा पानीमें जरासा नमक वा कई बिन्दु द्रावक डाल कर उसमें एक ताँबे और एक जस्तेके टुकड़ेको आंशिकभावसे डुबो दो तथा एक तारके द्वारा ताँबेके साथ बाहरमें जस्तेको संलग्न कर दो। बाहरमें ताँबेसे जस्तेकी तरफ तार द्वारा ताड़ितका (अर्थात् धन-ताड़ितका) स्रोत चलेगा। पानीके भीतर जस्तेसे ताँबेकी तरफ स्रोत चलेगा। जब तक दोनों धातुएँ पानीके भीतर डूबी रहेंगी, तब तक यह ताड़ित-स्रोत बहता रहेगा। डुबे हुए जस्तेका धीरे धीरे क्षय हो जायगा।

इस तरह ताड़ितका कोष (Cell) तैयार होता है। कोषके अन्दर साधारणतः गन्धकद्रावक पानीमें मिला

कर व्यवहृत होता है। इस गन्धकद्रावकमें एक जस्तेका और एक अन्य धातुका टुकड़ा पड़ा रहता है। यह द्वितीय धातु विभिन्न कोषोंमें विभिन्न होती है। इसमें ताँबा, प्लाटिनम्, पारद तथा जमा हुआ कोयला तक व्यवहृत होता है। इस धातुदण्डको तार द्वारा जस्तेके साथ जोड़ देनेसे उस तारसे ताड़ितका स्रोत बहता है। जस्ता क्रमशः गन्धकद्रावकके साथ रासायनिक मिश्रणसे मिल कर क्षयको प्राप्त होता है। इस रासायनिक प्रक्रियासे हाइड्रोजन वायु उद्धृति हो कर ताँबे या तद्विध अन्य किसी भी धातुके कोषमें रहती हैं, उसके गात्रमें उत्पन्न होती और ताड़ितप्रवाहका क्रमशः क्षीण करती है। इस लिए इस हाइड्रोजन वायुको जला देनेकी जरूरत पड़ती है। प्लाटिनम् अथवा कोयलाको इसी लिए एक मिट्टीके भाँड़में नाइट्रिक एसिड (यवक्षारद्रावक) द्वारा भिगो रखनेकी रीति है। उक्त द्रावक हाइड्रोजन वायुको जला देती है।

ताडितप्रवाहके लिए विविध कोष प्रचलित हैं। दानियेलके कोषमें ताँबा और जस्ता, प्रोवके कोषमें प्लाटिनम् और जस्ता, बुनसेनके कोषमें कोयला और जस्ता व्यवहृत होता है। दानियालका कोष औरोंसे कुछ कमजोर होता है। क्षीणप्रवाह उत्पादनके लिए उसका व्यवहार किया जाता है। हाइड्रोजन जलानेके लिए नाइट्रिकके बदले बाईक्रोसिक एसिड आदिका भी व्यवहार होता है

बाहरमें ताडित-स्रोतका प्रतिबन्धक अधिक होने पर कुछ कोषोंको बराबर बराबर सजा कर एकका ताँबा दूसरेका जस्ता, इस तरह क्रमसे संलग्न करके बैटरी बनानी चाहिये। बाहरमें प्रतिबन्धक अधिक न होने पर एक कोष ही दश कोषका काम देता है, क्योंकि कोषोंमें भी कुछ कुछ प्रतिबन्धक क्षमता मौजूद है। संख्या बढ़ानेसे प्रतिबन्धक भी बढ़ेगी।

ताडितयन्त्रसे ताडितस्रोत उत्पन्न करनेसे उस ताडितका परिमाण अधिक नहीं होता, किन्तु उसमें उद्धृति बहुत ज्यादा होती है। कोषसे जो प्रवाह उत्पन्न होता है, उसकी उद्धृति उसके सामने बहुत कम है, किन्तु प्रवाहगत ताड़ितका परिमाण अधिक होता है। यन्त्रजात प्रवाहकी ऊँचे स्थानसे पतनशील सवेग क्षीण जलधाराके साथ और कोषजात प्रवाहकी प्रायः समभूमि पर धीरे प्रवहमान विशाल नदीके स्रोतके साथ तुलना हो सकती है। यन्त्रका प्रवाह मानो नायाग्राका जलप्रवाह है और कोषका प्रवाह मानो भागीरथीका स्रोत।

(२) एक ताँबे और एक लोहेके तारके दोनों छोरोंको जोड़ कर यदि एक सन्धिस्थलमें उत्ताप और दूसरेको ठण्डा रक्खा जाय, तो दोनों तारोंमें ताड़ित-प्रवाह चलने लगता है। कोषज प्रवाह रासायनिक शक्ति भी ऐसी हालतमें प्रवाह-तापसे उत्पन्न होती है।

इस प्रवाहकी उद्धृति बहुत कम होती है; हाँ, दोनों सन्धियोंके बीचमें उष्णताका यत्सामान्य इतरविशेष होनेसे ही थोड़ा बहुत प्रवाह दीख पड़ता है। ताँबे और लोहेके बदले अन्य दो धातु विशेषतः एण्टिमनि (रसाञ्जन) और बिसमथका व्यवहार किया जा सकता है। दोनों सन्धियोंमें उष्णताके सामान्य तारतम्यसे यह ताड़ितप्रवाह उत्पन्न होता है, इसलिए यह प्रवाह उष्णताके आविष्कारके लिए व्यवहृत होता है। जहाँ उष्णता इतनी कम हो कि जो साधारण पारदघटित तापमान-यन्त्रसे भी पकड़ी नहीं जा सकती, वहाँ भी इस उपायसे वह पकड़ाई देती है। चन्द्र और नक्षत्रके आलोकके उत्तापको लानेके लिए इस यन्त्रका व्यवहार होता है।

(३) आजकल प्रायः विविधकार्योंमें अत्युच्च उद्धृतियुक्त पर परिमाणमें भी प्रबल, ताड़ितप्रवाहका प्रयोग किया जाता है। यन्त्रज, कोषज वा तापज प्रवाहसे भी ये काम नहीं होते। डाइनामो नामक यन्त्र द्वारा इन उग्र प्रबल प्रवाहोंकी उत्पत्ति होती है। एक चुम्बकके पास ताँबेका तार घुमाते रहनेसे उसमें भी ताड़ितप्रवाह उत्पन्न होता है। डाइनामोके विषयमें विशेष विवरण पीछे दिया जायगा।

ताड़ित-प्रवाह बहनेके नियम।—ताडितप्रवाह अपरिचालक पदार्थमेंसे नहीं बह सकता और इसीलिए इसमें ताडित स्फुलिङ्ग आदिके तमाशे अच्छी तरह नहीं दिखाए जा सकते। इसकी उद्धृति यन्त्रज ताडितकी अपेक्षा बहुत कम है। हाँ; यह परिचालक मात्रके भीतरसे अनायास हो जा सकता है। सब धातुओंमें परिचालकता समान नहीं होती। जिसमें परिचालकता कम है, वह

में प्रवाह-प्रतिबन्धकी क्षमता अधिक है। धातुओंमें सबसे ज्यादा परिचालकता चाँदीमें होती है, उससे नीचे ताँबेमें। प्लाटिनम्, लोहा, सीसा आदिमें परिचालकता कम और प्रतिबन्धकता अधिक है। जिसमें प्रतिबन्धकता अधिक है, उसमेंसे ताड़ित-प्रवाह चलता तो है पर जल्दी नहीं जा सकता। अधिक समयमें थोड़ा ताड़ित प्रवाहित होता है। और जिसमें प्रतिबन्धकता कम है, उनमेंसे थोड़ा समयमें अधिक ताड़ित प्रवाहित होता है। इसके सिवा जो तार जितना लम्बा होगा, उसकी प्रतिबन्धकता भी उतनी ही अधिक होगी; जो जितना मोटा होगा, उसकी प्रतिबन्धकता उतनी ही कम होगी। ताँबेके मोटे और छोटे तारमें अथवा स्थूल दण्डमें प्रतिबन्धकता बहुत कम होती है।

ताड़ितप्रवाह कोषसे निकल कर परिचालक रास्तासे चलता है। बीचमें दो चार मार्ग मिलने पर थोड़ा बहुत सबमें जाता है। जिस मार्गमें प्रतिबन्धकता अधिक है, उस मार्गमें प्रवाह क्षीण हो जाता है; और जिस मार्गमें प्रतिबन्धकता कम है, उसमें प्रबल हो जाता है। और मार्ग जहाँ पर जा कर एकत्र होते हैं, ताड़ित-प्रवाह भी वहाँ जा कर मिलता है। इस विषयमें नदीके साथ ताड़ित-प्रवाहका पूरा सादृश्य है।

प्रवाहके धर्म।—प्रवाहके विविध धर्मोंमेंसे तीन ही प्रधान और हम लोगोंके बहुत काममें आते हैं—

(१) जिस धातुके भीतर प्रवाह चलता है, वह गरम हो जाती है। कोषके भीतर कितने जस्तेका क्षय हुआ, वह देख कर कुल कितना ताप उत्पन्न हुआ, इसका हिसाब लगाया जा सकता है। प्रवाहके मार्गमें जहाँ प्रतिबन्धकता अधिक है, वहाँ ताप भी अधिक उत्पन्न होता है। प्लाटिनम् धातुमें परिचालकता कम है, प्लाटिनम्के पतले तारमें प्रवाह चलानेसे वह तापसे उद्दीप्त हो जाता है। काँचके वर्त्तुलके भीतर प्लाटिनम् या कोयलेका बारीक तार लगा कर साधारण ताड़ित-प्रदीप (बिजली-बत्ती) बनाये जाते हैं। उस तारमें प्रवाह चलनेसे वह उत्तप्त हो कर प्रकाश देने लगता है। यदि कोयलेका तार दिया जाय तो, वर्त्तुलको वायुशून्य कर देना चाहिये; नहीं तो कोयलेका तार जल जायगा।

राजपथ, मकान आदि आलोकित करनेके लिए दो-एक कोषसे काम नहीं चलता। बहुसंख्यक कोषोंको पंक्ति बार लगा कर उस बैटरीसे प्रवाह लिया जाता है। बाहरमें जो तार रहता है, उसको एक जगहसे काट कर दो कोयलेके टुकड़े लगा दिये जाते हैं। दोनों मुखोंके बीचमें सामान्य वायुके स्तरका व्यवधान रहता है। प्रबल प्रवाह उस वायुस्तरको भेद कर चलता रहता है। कोयलेका टुकड़ा और मध्यगत वायुस्तर उत्तप्त और प्रदीप्त हो कर तेज रोशनी देता है।

आजकल ऐसे स्थल पर डाइनामो-जनित प्रवाह व्यवहृत होता है। एक छोटासा डाइनामो बहुतसे कोषोंका काम देता है।

(२) ताड़ितप्रवाहके मार्गमें थोड़ासा पानी रक्खो, अर्थात् कोषके दोनों प्रान्तोंसे आये हुए दोनों तारोंका मुँह पानीमें डूबो दो। पानीमें दो-चार बुँद गन्धक-द्रावक छोड़ दो। प्रवाह जितना चलेगा, पानी उतना ही विश्लिष्ट होता जायगा। जो तार जस्तेसे मिला हुआ है, उसके मुँह पर हाइड्रोजन और जो ताँबे या प्लाटिनम्से संलग्न है, उसमें अम्लजन उद्गत होगा। जलके सिवा अन्य पदार्थमें भी इस तरहका विश्लेषण हो सकता है।

साधारणतः द्रावक पदार्थ, क्षार पदार्थ तथा द्रावक और क्षारके समवायसे उत्पन्न लावणिक पदार्थ मात्र ही यदि तरल अवस्थामें हों तो ताड़ित प्रवाहके द्वारा उनमें रासायनिक विश्लेषण हुआ करता है। किसी किसी वायवीय और कठिन पदार्थमें भी विश्लेषण होता है, यह विशेष लक्षित हुआ है। लावणिक पदार्थका एक भाग धातुमय और अन्य भाग उपधातुमय (Non-metallic) होता है, धातुभाग जस्तेसे संलग्न तारके मुखमें और उपधातु भाग ताम्रलग्न तारके मुखमें सञ्चित होता है। बहुतसे मूल पदार्थ जो अन्य रासायनिक उपायसे यौगिकके भीतरसे बाहर निकाला नहीं जा सका है, वह इस उपायसे विश्लेषित और आविष्कृत हुआ है। १९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें सर हम्फ्री डेभीने इसी तरह पटासियम् (पत्रक), सोडियम (सर्जिक), कालसियम् (खटिक)

आदि कुछ नवीन धातुओंका आविष्कार किया था। फरासीसी मोयासाँ साहबने फ्लुरिन् (दीपक) नामक अत्युग्र वायवीय उपधातुको इस उपायसे यौगिक पदार्थमेंसे निकाला है।

ताड़ित-प्रवाह धातुज द्रव्यको विश्लिष्ट करके धातु भागको पृथक् कर सकता है, इसलिए आजकल कलईके काममें ताड़ितप्रवाह व्यवहृत होता है। किसी पदार्थ पर चाँदी, सोना, ताँबा आदि धातुकी बारीकीसे चढ़ा देनेका नाम कलई वा गिल्टी है। इन धातुओंसे घटित लावणिक पदार्थको पानीमें गला कर उसमें ताड़ितप्रवाह चालित करो। जिस पदार्थ पर कलई चढ़ानी हो, उसको जस्तेसे लगी हुए तारमें हिलगा कर उस द्रवमें डुबो दो। शीघ्र ही उस पदार्थ पर धातुमय सूक्ष्म आवरण जम जायगा किसी पदार्थ पर जरा मोटा आवरण चढ़ा कर उससे ढाँचेका काम लिया जा सकता है।

(३) जिस तारसे ताड़ित-प्रवाह चल रहा हो, उसको एक चुम्बककी कीलके ऊपर समान्तराल भावसे थामनेसे कील उसी वक्त घूम कर तारके साथ खड़े होनेकी कोशिश करेगी। चुम्बकका काँटा स्वभावतः उत्तर-दक्षिणमें रहता है, तारको उसके पास (उत्तर-दक्षिणमें) पकड़नेसे काँटा घूम जाता है। पृथिवीका चौम्बक-बल काँटेको उत्तर-दक्षिणमें रखना चाहता है और ताड़ित-प्रवाह उसे पूर्व-पश्चिममें रखना चाहता है। तार-वाहित प्रवाह यदि दक्षिणसे उत्तरकी तरफ हो और काँटा तारके नीचे हो, तो काँटेका उत्तरवर्ती मुख बाईं ओर (वा पश्चिमकी तरफ) घूम जाता है एवं दक्षिणवर्ती मुख दाहिने (पूर्वकी ओर) घूम जाता है। एकके उलटनेसे सब उलट जाते हैं।

ताड़ित-प्रवाहमें चुम्बक-शलाकाको इस प्रकार घुमानेकी शक्ति होनेसे टेलिग्राफ वा ताड़ित-वार्तावहकी सृष्टि हुई है। कलकत्तेमें ताड़ितकोष है और दिल्लीमें काँटा। कलकत्तेके कोषसे तार निकल कर दिल्ली चला गया और वहाँ चुंबककी कीलके पाससे घूम कर कलकत्तेको लौट आया। प्रवाह कलकत्तेसे तारके जरिये दिल्ली चला गया, वहाँ कीलको घूमा कर फिर कलकत्तेके कोषमें वापस आ गया। लौटते समय तारके रास्तेसे न आ कर जमीनके रास्तेसे भी आ सकता है। भूमिपथमें परिचालकता भी अधिक है और खर्च भी कम है। इस तरह कलकत्तेमें बैठ कर इच्छानुसार दिल्लीमें चुंबकका काँटा घुमाया जा सकता है। चुंबकके काँटेको घुमानेसे ही सङ्केत हो जाता है। कीलको पाँच तरहसे घुमा कर पाँच तरहका सङ्केत भेजनेके लिए विविध कौशल प्रचलित हैं। आज कल इस देशमें टेलिग्राफ-स्टेशनोंमें मोर्सकी पद्धति पर सङ्केत किये जाते हैं। उसमें चुम्बकसे संलग्न एक हथौड़ी खट् खट् करके नाना प्रकारके शब्द करती है, अथवा एक कागज पर आँक बना देती है। उक्त शब्दोंको सुन कर वा आँक देख कर सङ्केत निरूपित होते हैं। टेलिग्राफ-विद्या अब एक प्रकाण्ड और स्वतन्त्र विद्या हो गई है। स्थानाभावके कारण इस निबन्धमें उसका विशेष विवरण नहीं देना चाहते। ताडितवार्त्तावह शब्दमें विशेष विवरण देखो।

तार द्वारा प्रवाह पल भरमें बहुत दूर चला जाता है। प्रवाह कितने समयमें कितनी दूर जाता है, इसका कोई निर्दिष्ट हिसाब नहीं है। वस्तुतः ताड़ित-प्रवाहमें किसी तरहका निर्दिष्ट वेग नहीं है। आजकल महासागरके भीतरसे, एक महादेशसे दूसरे महादेशको सङ्केत भेजे जाते हैं। इन तारोंमें प्रतिबन्धकता इतनी ज्यादा है, कि ताड़ित-प्रवाह उसमें अत्यन्त क्षीण हो जाता है। इतना क्षीण हो जाता है, कि चुम्बकका काँटा भी सहजमें नहीं हिल सकता। एक ष्टेशनमें तार-कोषसे संलग्न करने पर तारमें सिर्फ एक ताडितका धक्का लगता है। वह धक्का फिर दूरवर्ती ष्टेशनमें पहुँचता है, इसमें भी कुछ समय लगता है। इस धक्केके पहुँचने पर सङ्केत मालूम पड़ता है ऐसे स्थल पर सुचारुरूपसे सङ्केत पानेके लिए पहले बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था। ग्लासगोके अध्यापक सर विलियम टमसनकी प्रतिभाने समस्तविघ्न बाधाओंको पराजित कर उनके नामको जगद्विख्यात कर दिया। इन्हीं टमसनकी इस समय लॉर्ड केलविनके नामसे प्रसिद्धि है।

ताड़ितप्रवाहको नापनेका तरीका।—प्रति सेकेण्डमें तारसे कितनी बिजली जाती है, इसका निश्चय कर प्रवाहका परिमाण निर्धारित होता है। दोनों उपायों

यही परिमाण सहज है। जलवा अन्य तरलपदार्थ कितने समयमें कितना विश्लेषित होता है, इसको देख कर प्रवाहके प्रावल्य वा क्षीणताको निर्णय हो सकता है। अथवा चुम्बककी कील कितनी घूम गई, इसको देख कर प्रवाहका परिमाण हो सकता है। प्रवाह जितना प्रबल होगा चुम्बकके लिए उसका प्रयुक्त बल भी उतना ही अधिक होगा। प्रवाह यदि नितान्त क्षीण हो, तो तारको उस कील पर कई बार फिरा लेना चाहिये। जितने फेरा लोंगे, प्रवाहका बल भी उतना ही बढ़ जायगा। चुम्बककी कीलको बकसमें लटका कर बकसके चारो तरफ तार लेपिटनेसे ताड़ित-प्रवाहके नापनेका यन्त्र बन जाता है। इसका अंग्रेजी नाम है Galvanometer.

ताड़ित-प्रवाहमें चुम्बकत्व ।– ताड़ितप्रवाह चुम्बकके काँटेको घुमा देता है। वस्तुतः ताड़ितप्रवाह स्वयं ही सर्वांशमें चुम्बकधर्मयुक्त है। एक चुम्बकके चारो पार्श्वके प्रदेशमें जो जो घटनाएँ होती हैं, ताड़ितप्रवाहके पार्श्वस्थ प्रदेशमें भी हूबहू वैसी ही घटनाएँ होती हैं। तारकी एक अंगुठी तैयार करके उसमें प्रवाह चलाते ही, वह चुम्बकरूपमें परिणत हो जाती है। एक बड़ा इस्पातके चुम्बकके पार्श्वमें लोहा रखनेसे वह चुम्बकधर्म पाता है, चुम्बककी कील रखनेसे, वह एक निर्दिष्ट दिशामें लम्बी तौरसे ठहरती है। इसी तरह ताड़ित-प्रवाहके समीप भी लोहा चुम्बकत्व पाता है; चुम्बक-शलाका निर्दिष्ट दिशामें ठहरती है। छोटा लोहेका टुकड़ा उसकी तरफ आकृष्ट होता है।

इस्पातको प्रबल चुम्बकके पास ज्यादा देर तक रखने वा चुम्बकसे घसने पर इस्पात स्थायी चुम्बक बन जाता है। इसी तरह इस्पात पर ताड़ितवाही तार लपेट देनेसे भी वह स्थायी चुम्बक हो जाता है। लोहे पर तार लपेटनेसे जब तक प्रवाह रहता है, तभी तक उसमें चुम्बकत्व रहता है। वास्तवमें आजकल स्थायी वा अस्थायी चुम्बक तैयार करनेके लिए ताड़ितका प्रवाह ही व्यवहृत होता है। प्रबलप्रवाहकी सहायतासे आसानीसे क्षमताशाली चुम्बक बनता है।

एक लकड़ीकी रूल पर थोड़ा भना हुआ तार लपेट कर रूलको निकाल लेनेसे जो लपेटा हुआ तार रह जाता है, उसको अंग्रेजीमें Sobnoid कहते हैं। हिन्दीमें उसे कुण्डली कह सकते हैं। तारकी एक लम्बी कुण्डलीमें विद्युत्प्रवाह चलनेसे वह सर्वांशमें चुम्बक-शलाकाके अनुरूप होती है। उसका एक छोर स्वतः ही उत्तरकी तरफ और दूसरा दक्षिणकी ओर रहता है। दो चुम्बकोंमें परस्पर जैसे आकर्षण-विकर्षण आदि होता है, कुण्डली और चुम्बकमें वा दो कुण्डलियोंमें भी उसी तरह आकर्षण-विकर्षण आदि जारी रहता है। अथवा कुण्डलीकी बात जाने दीजिये, जरासे तारको एक फेर लपेट कर (सिर्फ अंगूठीके समान करके) उसमें ताड़ित-स्रोत चलानेसे, वह भी चुम्बक-धर्माक्रान्त इस्पातकी रकाबीकी तरह काम करती है। उसका एक पार्श्व उत्तरवर्ती और दूसरा पार्श्व दक्षिणवर्ती होना चाहता है। इसी तरह दो अंगूठाको परस्पर सम्मुखीन करनेसे दोनोंमें आकर्षण वा विकर्षण होता है। प्रवाह यदि दोनोंमें एक तरफ चले, तो आकर्षण और विपरीत दिशामें चले तो विकर्षण होता है। फरासीसी विद्वान् आँपियरने पहले पहल उच्च गणितके प्रयोगसे यह आकर्षणादि घटनाकी गणना की थी। फिलहाल फराडे और मक्सवेल द्वारा प्रदर्शित पद्धतिमें ये गणनाएं और भी सहजमें सम्पादित होती हैं।

ताड़ितका एञ्जिन।—चुम्बकके पार्श्व प्रदेशको चौम्बक प्रदेश कहेंगे। उक्त प्रदेशमें लोहा रखनेसे उसमें चुम्बकत्व आ जाता है। चौम्बक प्रदेशका प्रधान लक्षण ही यह है, कि वहाँ और और चुम्बकोंको यदृच्छाक्रमसे रक्खा नहीं जा सकता। उस दूसरे चुम्बकको चाहे जिस तरह रक्खो, छोड़तेके साथ ही वह घूम कर एक निर्दिष्टरूप अवस्थानको ग्रहण करेगा। वहांसे बलपूर्वक हटाने पर भी, वह पुनः वहीं पहुंच जायगा। ताड़ित-प्रवाहके चारों पार्श्वका प्रदेश भी चौम्बक-प्रदेश है। वहां भी चुम्बक वा अन्य ताड़ितप्रवाहको यदृच्छाक्रमसे हर एक जगह नहीं रख सकते। रखनेसे वह घूम कर पुनः अपने निर्दिष्ट स्थानको ग्रहण कर लेता है। इसी तरह इस चौम्बक प्रदेशमें चुम्बक और ताड़ित-प्रवाह अपने आप गतिहीन हो जाता है। गति प्रधानतः घूर्णन-गति होती है। कौशलक्रमसे ताड़ित-

प्रवाहका पुनः पुनः दिक्-परिवर्तन करके इस गतिको घूर्णनमें परिणत किया जा सकता है। प्रबल ताड़ित-प्रवाह तारके कुछ अंशोंमें प्रवाहित हो कर शक्तिशाली चौम्बक-प्रदेशकी सृष्टि करता है। उस प्रदेशमें तारके अन्य अंश इस तरह सजे हुए रहते हैं, कि उसमें प्रवाह प्रवाहित होते ही वह तेजीसे घूमने लगता है। उसके साथ बड़े बड़े चक्रोंको जोड़ देनेसे, वे भी घूमा करते हैं। साधारण वाष्पीय एञ्जिनसे जो कार्य होते हैं, इस तरहके ताड़ितके एञ्जिनसे भी वे कार्य हो सकते हैं। वाष्पीय एञ्जिनका कार्य तापसे उत्पन्न होता है जो कोयले जलानेसे होता है। बिजलीके एञ्जिनका कार्य भी ताड़ितशक्तिसे उत्पन्न होता है और वह कोषके मध्य गन्धकद्रावक द्वारा जस्ता जलानेसे मिलता है। गन्धकद्रावकके साथ जस्तेका सम्मिलन, साधारण दाहन-क्रियासे मूलतः अभिन्न नहीं है। कोयलेकी अपेक्षा जस्तेमें खर्च ज्यादा पड़ता है, इसलिये ताड़ितका एञ्जिन वाष्पीय एञ्जिनका स्थान ग्रहण नहीं कर सका है।

ताड़ित-प्रवाहकेसाथ चुम्बकका सम्बन्ध।—चुम्बकके साथ ताड़ित-प्रवाहके इस साधर्म्यको देख कर दोनोंकी प्रकृतिगत अभिन्नताकी बात सहजहीमें मनमें जगह पाती है। चुम्बकके अन्दर लोहेके प्रत्येक अणुके चारों तरफ ताड़ितप्रवाह घूम रहा है। अनुमान करनेसे दोनोंमें यह सादृश्य खूब मिलता है। विविध युक्तियाँ इस अनुमानका समर्थन करती हैं। वस्तुतः लोहमात्रका (चाहे उसमें चुम्बक हो, चाहे न हो) प्रत्येक अणु ताड़ितका एक एक क्षुद्र आवर्तस्वरूप है। गोला जैसे एक अक्षरेखाके चारों तरफ घूमता है, पृथिवी, जैसे अपनी अक्षरेखाके ऊपर आवर्तन करती है, प्रत्येक आणविक ताड़ितआवर्त भी उसी तरह एक एक अक्षका अवलम्बन कर उसके चारों तरफ हमेशा घूम रहा है। साधारण लौह-पिण्डमें यह अक्षरेखाएं इतस्ततः विभिन्न दिशाओंमें विक्षिप्त होती हैं, परन्तु चुम्बकमें ये अक्षरेखाएँ प्रधानतः एक ही दिशामें रहती हैं। सिर्फ चुम्बकके भीतर ही नहीं, बाहर चौम्बक प्रदेशमें भी ये आवर्त विद्यमान रहते हैं। हम जिसको शून्य कहा करते हैं, वास्तवमें वह शून्य नहीं है। कोई एक अदृश्य सामग्री समग्र शून्यप्रदेशमें व्याप्त है। चुम्बकके चारों तरफ इस अदृश्य सर्वदेशव्यापी पदार्थमें भी ताड़ितके क्षुद्र आवर्त विद्यमान हैं। वहाँ लोहेको ले जानेसे वे आवर्त लोहेमें आ कर, उसमें चुम्बकत्वकी उत्पत्ति करते हैं, अर्थात् उन आवर्तोंके वेगसे लोहेकी आणविक अक्षरेखाएँ निर्दिष्ट दिशाको घूम जाती हैं।

ताड़ित-प्रवाहका संक्रमण।—ऊपर कह चुके हैं, कि चौम्बक प्रदेशमें ताड़ितप्रवाहको इच्छानुसार नहीं रक्खा जा सकता। वह अपनेसे ही एक निर्दिष्ट अवस्थानको ग्रहण कर लेता है। वह अपने आप जिस तरफ जाना चाहे, उस तरफ उसे बे-रोकटोक जाने दो। देखोगे—प्रवाह चलते चलते कुछ क्षीण हुआ। मानो प्रवाह जिस तरफ चलता था, उससे विपरीत दिशामें दूसरा एक प्रवाह उत्पत्ति हुई और उसने पूर्वतन प्रवाहको क्षीण और दुर्बल कर दिया। प्रवाह जिस तरफ जाना चाहे, उस तरफ उसे मत जाने दो, बलपूर्वक उसे उलटी तरफ लौटा ले चलो। देखोगे—प्रवाह और भी कुछ प्रबल हो चला है। मानो दूसरे एक नये प्रवाहने उत्पन्न हो कर उसके प्रवाहको बढ़ा दिया है। चौम्बक प्रदेशमें गतिके प्रभावसे इसी प्रकार ताड़ितप्रवाह कभी क्षीण और कभी प्रबल होता रहता है; अथवा इस छोर पर वा उस छोर पर नवीन प्रवाह उत्पन्न हो कर वर्तमान प्रवाहको घटाता या बढ़ाता है। चौम्बक प्रदेशमें गतिके प्रभावसे इस नवीन प्रवाहकी सृष्टिका नाम है—ताड़ितप्रवाहका संक्रमण। माइकेल फाराडेने इसका आविष्कार किया है। जो तार वा परिचालक द्रव्य चौम्बक प्रदेशमें घूम रहा है, उसमें ताड़ितप्रवाह बिलकुल न होने पर भी उक्त गतिके प्रभावसे नवीन प्रवाहका आविर्भाव होता है। वह जब तक चलता है, प्रवाह भी तभी तक रहता है; गति बन्द होने पर प्रवाह भी बन्द हो जाता है। तारको चुम्बकके पाससे ले जानेसे जो फल होता है, चुम्बकको दूरसे तारके पास लाने पर भी ठीक वही फल होता है। ताड़ित-प्रवाह सब विषयोंमें चुम्बकके समान है; इसलिए तारके पास सहसा एक प्रवाह उपस्थित करनेसे भी ठीक वैसा ही फल होगा। गतिके प्रभावसे नये प्रवाहका आविर्भाव

होता है; नवाविर्भूत प्रवाह ऐसी दिशामें बहता है, जिससे वह उस गतिको बाधा पहुँचाता रहता है। इस हिसाबको याद रखनेसे, किस तरफ प्रवाह जमेगा, इस बातका सहजमें निश्चय किया जा सकता है। जैसे सहसा घोड़ा चलनेसे सवार पीछेको झुक जाता है और खड़े होने पर सामने झुक जाता है, यह भी कुछ कुछ वैसा ही है। ताड़ितप्रवाहको सहसा किसी तार पर चलानेसे भीतरसे एक बाधासी पड़ता है, सहसा प्रवाहमान स्रोतको रोकना चाहो तो वह रुकता नहीं बल्कि क्षणभरके लिए प्रबलतर हो जाता है, उसमें भी यही कारण है। यह साधारण नियम है, कि चौम्बक प्रदेशमें एक तारको घुमानेसे ही उसमें प्रवाहका आविर्भाव वा संक्रमण होगा। चौम्बक प्रदेशमें किसी न किसी चुम्बकका अथवा तदनुरूप ताडितप्रवाहका प्रभाव विद्यमान है। यह प्रभाव सर्वत्र समान होता है, ऐसा नियम नहीं; कहीं ज्यादा और कहीं कम होता है। अधिक प्रवाहके स्थानसे कम प्रवाहके स्थान पर अथवा कम प्रवाहके स्थानसे अधिक प्रवाहके स्थान पर किसी भी परिचालकको ले जा सकते हैं, उसीमें एक तरफ (छोर पर) ताडितप्रवाह उत्पन्न होगा। प्रवाह जब तक चलता रहेगा, उसकी स्थिति भी तभी तक रहेगी। यदि दोनों जगहका प्रभाव समान हो, तो सम्भव है प्रवाह उत्पन्न न हो। परिचालक जितनी तेजीसे एक स्थानसे अन्य स्थानमें ले जायगा, उत्पन्न प्रवाह भी उतना ही प्रबल और पुष्ट होगा। वस्तुतः ताँबेके तारको कई बार ऐंठ कर अति वेगसे चौम्बक प्रदेशमें चलाने वा घुमानेसे, अत्यन्त प्रबल ताडितप्रवाह मिल सकता है। व्यवस्थापूर्वक इस प्रकारसे ताडितप्रवाह उत्पन्न करनेसे उग्रता और उद्धृतिके विषयमें वह ताडितयन्त्रोत्पन्न प्रवाहके समान होता है।

अकसर करके रूम्कर्फकी कुण्डली (Roomkorff's Coil) नामक एक तरहका यन्त्र व्यवहृत होता है, उसमें ताड़ितप्रवाहकी उद्धृति इतनी ज्यादा होती है, कि वह प्रवाह अनायास ही अपरिचालक वायुको भेदकर चला जाता है। २।१० इञ्च लम्बा ताड़ित-स्फुलिङ्ग एक छोटीसी कुण्डलीके द्वारा भी मिल सकता है। बड़े भारी कोष वा बैटरीसे १/४ इञ्चका स्फुलिङ्ग भी नहीं निकलता। वायवीय पदार्थमें ताड़ित-स्फुलिङ्गके चलनेसे जो तमाशे होते हैं, वे सब ही इस यन्त्रकी सहायतासे सुचारु रूपसे दिखाये जा सकते हैं। गासलरके नलकी बात पहले कह चुके हैं। उसके भीतर विविध वायवीय पदार्थ अल्प परिमाणमें रहते हैं। उसमें ताड़ितप्रवाह चलनेसे विविध वर्णके विचित्र आलोकोंका विकाश होता है। क्रूक्स् साहबने काँचके नलके भीतरसे वायुको प्रायः सम्पूर्णरूपसे निकाल कर, कुण्डली द्वारा ताड़ितप्रवाह चला कर नाना प्रकारके आश्चर्यजनक तमाशे दिखाये थे। क्रूक्सके नलके भीतर वायु करीब करीब होता ही नहीं, ऐसा भी कहा जा सकता है। कुछ अणु इधर उधर दौड़ा करते हैं। ये ही अणु ताड़ित वहन करके इतस्ततः दौड़ते हैं। नलके भीतर एक डली खड़ियामिट्टी हीरेका टुकड़ा आदि विविध पदार्थ रखनेसे ये अणु उन पर धक्का दे कर विचित्र उज्ज्वल आलोकका विकाश करते हैं। क्रूक्स्-नलके ये कार्य अत्यन्त सुन्दर और मनोहर होते हैं।

रूमकर्फकी कुण्डलीमें जो उग्र ताड़ितप्रवाह उत्पन्न होता है, वह एक ही तरफकी अविच्छेद स्रोतमें नहीं बहता। रह रह कर और थम थम कर बहता है। १ मिनटके अन्दर २०।३० बार अथवा २००।४०० बार ठहरता और बहता है। इन विच्छेदोंकी संख्याको यदि किसी तरह दहाई और सैकड़ेको पार कर लाख और करोड़में चढ़ाया जाय तथा साथ ही प्रवाहकी उग्रता और उद्धृतिको खूब ऊँचे पर चढाया जाय, तो क्रूक्स्-नलको यन्त्रके साथ संलग्न रखनेकी भी आवश्यकता नहीं रहती। यन्त्रके पार्श्वमें किसी स्थान पर नलको रखनेसे उसका अन्तर्देश उज्ज्वल हो उठता है, बीचमें मनुष्यका व्यवधान रहनेसे उग्र ताड़ितप्रवाह उसको भेद कर चला जाता है और दूरस्थ नलको उद्दीप्त करता है। आश्चर्यका विषय है, कि जिसका शरीर भेद कर जाता है, उसे कुछ भी मालूम नहीं पड़ता। साधारण रूमकर्फके यन्त्रका वा साधारण डाक्टरीका बैटरीका धक्का मनुष्यशरीर सह नहीं सकता, किन्तु इस प्रत्युग्रताड़ितप्रवाहके धक्के—सेकेण्डमें सौ लाख बार प्रचण्ड उग्रताके साथ—देह भेद करने पर भी कोई व्याघात नहीं होता। तीस वर्ष

हुए होंगे, इटलीके युवक निकोला तेसलाने इस अद्भुत घटनाका आविष्कार कर लोगोंको आँखोंमें चकाचौंध लगा दिया है।

डाइनामो।—चोम्बक प्रदेशमें ताँबेके तारको तेजोसे घुमाने पर पुष्ट और उग्र ताड़ितस्रोत उत्पन्न होता है। पुष्टका अर्थ परिमाणमें अधिक और उग्रका अर्थ उद्वृत्तिमें ऊँचा होता है। क्लार्क, साइमेनस, ग्राम, एडिसन आदिके बने हुए विविध प्रकारके डाइनामो आजकल विविध कार्योंमें व्यवहृत होते हैं। चौंबक प्रदेश विभिन्न तरहसे प्रस्तुत होता है। कहीं कहीं बड़े बड़े प्रतापशाली इस्पातके चुम्बक व्यवहृत होते हैं। कहीं कहीं बैटरीसे ताड़ितप्रवाहको बृहत् लौह पिण्ड पर लपेट कर, उस लोहेको पराक्रान्त चुंबकरूपमें परिणत किया जाता है। क्षेत्रविशेषमें तार घुमा कर जो प्रवाह उत्पन्न हो रहा है, उसोका कुछ अंश वा अधिकांश वा पूरा लौहपिण्ड पर लपेट कर चुम्बक बनाया जाता है। प्रवाह क्रमशः पूर्व होता है, चुंबकका प्रभाव भो उतना हो बढ़ता है। प्रवाह और चुंबक दोनों हो क्रमशः प्रबल हो कर एक दूसरेको और भो प्रवल कर देते हैं।

नगरके राजपथोंको आलोकित करनेके लिए, ट्राम-गाड़ो चलानेके लिए तथा अन्यान्य बड़े बड़े कार्योंके सम्पादन करनेके लिए डाइनामोओंसे ताड़ितप्रवाह उत्पन्न किया जाता है। इन डाइनामोओंके तारोंको वेगसे घुमानेके लिए वाष्पीय एञ्जिनको जरूरत पड़तो है। छोटे छोटे डाइनामो हाथसे घुमाये जा सकते हैं। जिस डाइनामोमें इस्पातके स्थायी चुंबक द्वारा चौंबक प्रदेश उत्पन्न किया जाता है, उसको डाइनामो न कह कर बल्कि माग्नेटो यन्त्र कहते हैं। डाक्टरो बैटरो छोटा माग्नेटो मात्र है। एक इस्पातके चुंबकके पास तार घुमानेसे जो प्रवाह उत्पन्न होता है, वही रोगोके शरीरमें चालित होता है। इस बैटरोका प्रवाह इक-तरफा नहीं होता; एक बार इस तरफ, एक बार उस तरफ चलता है। प्रवाहको इक तरफा और अवच्छिन्न करनेके लिए किसी किसो डाइनामोमें विशेष विशेष कौशल हैं।

एक फेर वा कई फेर लपेटा हुआ तार चौंबक प्रदेशमें घुमानेसे, उसमें काफो प्रवाह वा स्रोत उत्पन्न हो जाता है। जराके धातुमय पिण्डको सहसा चोम्बक प्रदेशमें ठेल देनेसे उसमें काफो प्रवाह पैदा नहीं होता है। सिर्फ उसके ऊपरसे थोडोसो बिजली हट जाती है। उसके ऊपर एक बिजलीका धक्कासा लगता है। यह धक्का उसका गात्र भेद कर जितना भोतर प्रवेश करता है, उतना हो चोण हो जाता है और उसके प्रवेशका वेग जल्दो घट जाता है। और यदि एक धक्केके बदले पुनः पुनः सेकेण्डमें हजार बार या लाख बार, एक दफा इस तरफ और एक दफा उस तरफ धक्का लगे, तो वे धक्के प्रवेश करनेमें असमर्थ होते हैं। कुछ प्रवेश करनेके पहले हो वे नष्ट हो जाते वा उत्ताप रूपमें परिणत हो जाते हैं।

ताड़ितप्रवाहका आन्दोलन वा स्पन्दन—डाक्टरो बैटरीमें, बहुतसे डाइनामोमें, रूमकार्फके वा तेसलाके यन्त्रोंमें ताड़ितका इक तरफा स्रोत नहीं बहता; एक बार इस छोरको ओर एक बार उस छोरको ओर बहता है। वास्तवमें प्रवाह आन्दोलित वा स्पन्दित होता रहता है। अबतक सबको धारणा थो, कि ताड़ितका एक एक स्फुलिङ्ग एक एक धक्का मात्र है। प्रत्येक स्फुलिङ्गके साथ एक एक धन-ताड़ित एक तरफ और एक ऋण ताड़ित दूसरी तरफ सहसा चला जाता है। किन्तु फिलहाल निश्चित हुआ है, कि यह एक स्फुलिङ्ग सिर्फ धक्का नहीं, बल्कि यह भो एक आन्दोलन मात्र है। लोडेन जार वा ताड़ितयन्त्रमें 'क'से 'ख' की तरफ एक पृष्ठसे अन्य पृष्ठ पर थोड़ा धन-ताड़ित सहसा वायुभेद कर चला गया, जिससे स्फुलिङ्ग उत्पन्न हुआ; एक क्षणिक आकस्मिक उग्र प्रवाह उत्पन्न हुआ। ऐसा अब तक विश्वास था। किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। धक्का एक बार इधरसे उधर और उधरसे इधर, इसी तरह पुनः पुनः जाता आता रहता है। प्रवाह जा कर फिर लौट आता है। एक स्फुलिङ्ग क्षणिक घटना है; उसका स्थितिकाल एक सेकेण्डका लक्षाधिक भाग मात्र है। किन्तु उस क्षण भरके भीतर सौ लाख धक्के इधर उधर लग जाते हैं। बहुत बार ताड़ित-प्रवाहके इतस्ततः स्पन्दन वा आन्दोलनका समष्टिफल एक स्फुलिङ्ग है। एक स्फुलिङ्गके दर्पणगत प्रतिबिम्बको दर्पणके वेगसे घूर्णन द्वारा विस्फारित करने

प्रतिबिम्ब कटा हुआ सा जान पड़ता है। स्फुलिङ्गके मध्य ताड़ितका आन्दोलन ही इस प्रकार दीखानेका कारण है।

ताड़ितकी तरंगे।—परिचालकके विभिन्न अंशोंमें ताड़ितकी उद्भूति विभिन्न नहीं हो सकती। परिचालकका यही धर्म है। इस स्वधर्मके प्रभावसे परिचालकमें ताड़ितप्रवाह पैदा होता है। प्रवाहके फलसे परिचालक गरम हो जाता है और उसका पार्श्ववर्ती समग्र प्रदेश चौम्बक-धर्माक्रान्त होता है। प्रवाह सिर्फ परिचालकके भीतर ही जाता हो, ऐसा नहीं। हाँ, अपरिचालकके भीतर प्रवाह सहजमें जाता नहीं; जब जाता है, तब एक उग्र प्रचण्ड धक्का दे कर अपरिचालकको फाड़ कर जाता है। धक्का भी एक तरफ नहीं लगता; एक धक्का लगनेसे ही साधारणतः कुछ देर तक उसका इतस्ततः आन्दोलन चलता है। इस आन्दोलनके रहते हुए स्फुलिङ्गका अन्तर्द्धान और सर्वत्र उद्भूति समान हो जाती है। परिचालक और अपरिचालकमें यही प्रभेद है। परिचालकके भीतरसे ही प्रवाह जाता है, ऐसा सब समय नहीं कहा जा सकता। परिचालक सिर्फ प्रवाहका रास्ता दिखला देता है। ताड़ित-स्रोत उसके ऊपरसे चलता है। शरीरके भीतर घुसनेकी कोशिश करता है और घुसनेके बाद तापरूपमें परिणत होता है। प्रवाह जिस रास्तेसे चलता है, उसके चारों तरफ चौम्बक प्रदेश है। चारों तरफका प्रदेश बिल्कुल वायुशून्य होने पर भी उसका चुम्बकत्व नष्ट नहीं होता। अनुमान होता है, कि शून्य स्थानमें भी ऐसे पदार्थ विद्यमान हैं जिनसे उक्त चुम्बकत्व मौजूद रहता है। वास्तवमें जिस स्थानको शून्य कहते हैं, वह बिल्कुल शून्य नहीं है। आलोकविज्ञान कहता है, कि शून्य स्थानमें भी पदार्थविशेष ओतप्रोत भावसे व्याप्त है। उक्त पदार्थको अंग्रेजीमें ईथर कहते हैं; हिन्दीमें आकाश वा आसमान कहेंगे। यहां आकाशका अर्थ शून्य नहीं, बल्कि शून्यव्यापी पदार्थविशेष है। यह ईथर वा आकाश सूक्ष्म, अदृश्य और अनुभवसे अतीत होने पर भी अत्यन्त कठिन स्थितिस्थापक पदार्थ वायुकण और लोष्ट्रखण्डसे लगा कर ग्रह नक्षत्र तक इसके भीतरसे बिना बाधाके चले जाते हैं, आश्चर्य है, तो भी काठिन्यविषयमें इस्पात भी इससे पराजित होता है। यह आकाश जड़पदार्थोंके अणुओंके इतस्ततः कम्पन और आन्दोलनजात धक्कोंकी लहरोंको वहन करता है। ये तरङ्गे आकाशके भीतरसे सेकेण्डमें एक लाख छियासी मील तक चलती हैं।

सम्भवतः ताड़ितप्रवाह ही चतुःपार्श्वस्थ आकाशमें इस चौम्बकधर्मको देता है। माइकेल फाराडेने, चुम्बकके साथ आलोकके कुछ सम्बन्धोंका आविष्कार किया था। आलोक आकाशका स्पन्दन मात्र है। इस स्पन्दनकी निर्दिष्ट एक दिशा है। चौम्बक प्रदेश इस स्पन्दनकी दिशाको घुमा सकता है। इससे तथा अन्यान्य कारणोंसे यह अनुमित होता है, कि चौम्बकधर्म आकाशका ही धर्म है।

चौम्बक-धर्म यदि आकाशका ही धर्म हो, तो जिस स्थानमें ताड़ितप्रवाह इकतरफा न बह कर बार बार आन्दोलित हो रहा है, वहाँ इस आकाशमें भी एक आन्दोलन उपस्थित होगा। जड़-पदार्थके अणुओंके कम्पनसे तरङ्गें उत्पन्न हो कर जैसे चारों ओर आकाशमें व्याप्त होतीं और आलोक उत्पन्न करती हैं, ताड़ितका आन्दोलनसे उसी प्रकार तरङ्गें उत्पन्न हो कर चारों ओर आकाशमें प्रसारित होती हैं। इन तरङ्गोंको ताड़ितोर्मि वा चौम्बकोर्मि कह सकते हैं। वस्तुतः किसी स्थान पर ताड़ितकी एक तरङ्ग उत्पन्न होने पर उसके साथ चुम्बकत्वकी भी तरङ्गें उत्पन्न होती हैं, दोनों सहवर्ती वा सहचरी हैं, क्योंकि जहाँ ताड़ितका प्रवाह होता है, उसके पार्श्वमें ही चुम्बकत्वका आविर्भाव होता है। ताड़ितके प्रवाहकी तुलना स्रोतके साथ और चुम्बककी तुलना आवर्त वा घुर्णीके साथ हो सकती है। तथा इस प्रवाहके साथ घुर्णीका अविच्छेद्य सम्बन्ध देखनेमें आता है। मनस्वी क्लार्क मक्सवेलके मनमें ऐसा प्रश्न उपस्थित हुआ कि जिस आकाशमें आलोक विकशित होता है, उसी आकाशमें ताड़ितकी तरङ्गें क्यों न चलेंगी? यदि ऐसा ही हो अर्थात् यदि एक आकाश दोनों प्रकारकी लहरोंको वहन करे, तो आलोक और ताड़ितकी तरङ्गें दोनों ही एक ही वेगसे आकाशपथ पर धावित होंगी। विविध युक्तियों द्वारा मक्सवेलने अपने मतका समर्थन किया था।

ताड़ितका स्फुलिङ्ग सिर्फ कम्पन वा आन्दोलन मात्र है, यह—कई वर्ष हुए—स्थिर हो गया है। किन्तु मक्सवेलने इस बातका सिर्फ अनुमान ही किया था, कि इस आन्दोलनके फलसे चारों ओर आकाशमें ताड़ितकी तरङ्गें उत्पन्न हो सकती हैं। वे उन उर्मिओंके अस्तित्वको प्रत्यक्ष नहीं कर सके थे। जर्मनके विद्वान् हार्टज (Hertz) ने १८८७ ई०के शेष भागमें आकाशवाही ताड़ितोर्मिके अस्तित्वको प्रत्यक्ष दिखलाया था। तभीसे ताड़ितोर्मि एक प्रकारसे चर्मचक्षुके गोचर होती है। तरङ्गोंकी लम्बाईका भी निश्चय हो गया है। सेकण्डमें कितनी तरङ्गें होती हैं, इसकी गणना हो गई है। देखा गया है, कि ताड़ितोर्मि भी ठीक आलोकोर्मिकी भाँति एक लाख छियासी हजार मील वेगसे आकाशपथमें चारों तरफ धावित होती है। ताड़ितोर्मि सर्वांशमें आलोकोर्मिके ही अनुरूप, सदृश और सजातीय है। मक्सवेलका अनुमान और भविष्यवाणी ज्योंकी त्यों फलीभूत हुई है। वर्तमान शताब्दीमें जिन वैज्ञानिक तथ्योंका आविष्कार हुआ है, उनमें यही आविष्कार शायद सर्वप्रधान है।

ताड़ितकी लहरें और आलोककी तरङ्गें सर्वांशमें समधर्मा हैं। आलोककी रश्मि जैसे प्रतिफलित वक्रीकृत वा विवर्त्तित और विस्फारित होती है, ताड़ितकी रश्मि भी ठीक उसी तरहका आचरण करती है। आलोकके स्पन्दनकी जैसी निर्दिष्ट दिशा है, ताड़ितोर्मिके स्पन्दनकी भी वैसी ही निर्दिष्ट दिशा है। ताड़ितोर्मियोंकी प्रकृतिके विषयमें आज कल विविध गवेषणाएँ चल रही हैं। हमारे देशके अध्यापक सर जगदीशचन्द्र वसु सम्प्रति इस विषयमें नवीन तथ्य निकाल कर यशस्वी हुए हैं।

दोनों उर्मियोंमें अन्य प्रभेद नहीं है, विभेद सिर्फ लम्बाईको ले कर है। वर्णभेदसे आलोकोर्मिमें भी छोटे बड़ेका भेद होता है। साधारणतः चक्षुके गोचर आलोककी तरङ्गें अति क्षुद्र होती हैं, एक इञ्चका लक्षभाग वा दश लक्षभागके हिसाबसे उनके दैर्घ्यका नाप होता है। ताड़ितकी तरङ्गें खूब बड़ी होती हैं। आकाशमार्गमें २ या १० हाथसे लगा कर २ या १० मील तककी लम्बी तरङ्गें देखी गई हैं। उपयुक्त यन्त्रके क्षुद्र घनान्दोलित प्रवाहोत्पादनके द्वारा एक इञ्च आध इञ्च तक ताड़ितोर्मि उत्पन्न हुई हैं। अणुप्रमाण यन्त्रकी सृष्टि होनेसे तापादिकी सहायताके बिना आलोकसृष्टि भी सम्भवपर होगी।

मक्सवेल और हार्टजकी गवेषणाके फलसे यह स्थिर हुआ कि, आलोक ताड़ितकी ही छोटी छोटी तरङ्गें हैं तथा आलोकविकाश ताड़ित-विज्ञानकी ही शाखा है।

ताड़ितका स्वरूप।—ताड़ितका स्वरूप अब कुछ समझा जा सकता है। आकाश सर्वत्र व्याप्त है, धातुपदार्थके भीतर आकाश मानो तरल है, अपरिचालकके भीतर और शून्यदेशमें आकाश मानो कठिन है, कठिन पदार्थके भीतरसे धक्का सञ्चारित होता है, तरलके भीतर नहीं होता। कठिनमें खिचाव पड़ता है, तरलमें नहीं। इस्पात वा काठके साथ कीचड़ वा मोमकी तुलना करनेसे ही समझ सकेंगे। उद्धृतिके वैषम्यसे आकाशमें खिचाव पड़ता है। खिचावसे आकाशके दाहिनी ओर हट जाने पर यदि धन-ताड़ितका आविर्भाव हो, तो बाईं तरफ हटने पर ऋण ताड़ितका आविर्भाव होगा। दाहिनी तरफ जरासा हटनेसे साथ साथ आकाश बाईं ओर भी जरासा हटता है। धन-ताड़ितके साथ साथ ऋण-ताड़ितका भी विकाश होता है। अपरिचालकके भीतर खिचाव होता है, परिचालकके भीतर नहीं होता। इसीलिए अपरिचालकसे परिचालकमें प्रवेश करते ही एक परिवर्तन अनुभूत होता है। इसलिए धातुमय दार्थके गात्रके सिवा अन्यत्र ताड़ितका विकाश नहीं मालूम पड़ता। धातुके भीतर यत्सामान्य आकाश [illegible] ही तरल आकाशमें स्रोत उत्पन्न होता है; जब तक खिचाव रहता है, तब तक स्रोत रहता है। इस स्रोतकी तरल जलस्रोतके साथ तुलना हो सकती है। अपरिचालकके भीतर कठिन आकाशमें थोड़े खिचावसे प्रवाह उत्पन्न नहीं होता, अधिक खिचावसे आकाश फट जाता है। अपरिचालकका खिचाव इस्पातके खिचावके साथ तुलनीय है। आकाशके फट जाने पर उत्ताप, आलोक, स्फुलिङ्ग आदिका विकाश होता है। कठिन आकाश स्थितिस्थापक पदार्थ है; खिचावसे फटनेके बाद [illegible]

या स्पन्दित होता रहता है। यही स्पन्दन चारों ओर आकाशमें ऊर्मि उत्पन्न करके आकाश द्वारा दस गुने विपुल वेगसे प्रवाहित होता है। अपरिचालक भेद कर धक्के पर धक्का और ऊर्मि पर ऊर्मि सञ्चारित करता है; परिचालक भेद नहीं सकता, क्योंकि परिचालक धक्का देनेमें अक्षम है, धक्का पाते ही तरल आकाश हट कर लुढ़क जाता है। धक्का उसके ऊपर लग कर लौटता और प्रतिफलित होता है। यदि जरासा घुस जाय, तो कुछ दूर जाते जाते ही तरल पदार्थके घर्षणसे तापरूपमें परिणत हो जाता है। ताड़ितका प्रवाह चारों ओरके आकाशमें क्षुद्र क्षुद्र घूर्णी वा आवर्त्त उत्पन्न करता है, वह प्रदेश चौम्बक प्रदेशमें परिणत होता है। उस प्रदेशमें लोहा रखनेसे, उसके अणुओंको घेर कर आकाशका आवर्त्त घूमता रहता है। अणु भी शायद निर्दिष्ट दिशामें अक्षरेखा पर घूमने लगते हैं। सिर्फ लोहा ही नहीं, अन्यान्य जड़-पदार्थके अणुओंमें भी यह आवर्त्तोत्पादन और घूर्णन आरम्भ होता है। फारादेने दिखाया है, कि पदार्थ मात्र ही थोड़ा बहुत चुम्बकत्व पा सकता है। ताड़ितकी तरङ्गें बड़ी बड़ी हों तो वे साधारण अपरिचालक पदार्थको भेद करचली जाती हैं, साधारण परिचालकके ऊपरसे प्रतिफलित होती और लौट आती हैं। इसी लिए अब तक उनका अस्तित्व मालूम नहीं हो सका था। छोटी छोटी तरङ्गें परिचालक धातुपदार्थके ऊपर पड़ कर कुछ प्रतिफलित होती, और कुछ भीतर घुस कर उत्ताप उत्पन्न करती हैं; इसी लिए त्वगिन्द्रिय, तापमानयन्त्र आदिके द्वारा उसका अनुभव होता है। उन्हींमेंसे छोटी छोटी कुछ तरङ्गें चक्षुके स्नायविक यन्त्रमें गृहीत हो कर दृष्टिविधान करती हैं। परिचालकके भीतरसे ताड़ितकी वा आलोककी तरङ्गें नहीं जा सकती। धातुपदार्थ मात्र इसी लिए आलोकके लिए स्वच्छताहीन है।

रोण्टगेन द्वारा आविष्कृत रश्मि।—१८९६ ई०के प्रारम्भमें अस्त्रिय-अध्यापक रोण्टगेन (Rontgen) ने एक नये रहस्यका आविष्कार किया है। ऊपर जिस क्रूक्स नलकी बात कही गई है, उसका अभ्यन्तर भाग प्रायः वायुशून्य होता है, वायवीय पदार्थके कुछ अणु ताड़ितको वहन कर दौड़ते हैं और पदार्थविशेषमें प्रतिहत होने पर विचित्र आलोक उत्पन्न होता है। रोण्टगेनने दिखाया है, कि क्रूक्स्‌ नलके भीतरसे एक प्रकारकी रश्मि निकलती है, जो आलोकरश्मि वा ताड़ित-रश्मिसे सम्पूर्ण भिन्न प्रकृतिकी है। यह रश्मि बिना बाधाके काष्ठ तथा काले कागज आदि अस्वच्छ पदार्थोंको भेद कर जा सकती है। धातुओंमें आलुमिनियमको सहजमें भेद सकती है, शीसेको नहीं भेद सकती। काँचके भीतरसे भी सहजमें नहीं जा सकती। नलके बाहर अदृश्य रश्मियाँ सरलरेखाके क्रमसे चलती हैं। बाहरमें फोटोग्राफिके लिए बना हुआ कागज वा काँच थामनेसे हमारे चिरपरिचित आलोककी तरह दाग पड़ता है। विशेष विशेष पदार्थ पर पड़नेसे उसको उद्दीप्त और उज्ज्वल करती है। रास्तेमें यदि जस्ते या काँचकी भाँतिकी कोई चीज थामी जाय, तो उसकी छाया पड़ती है। मनुष्य-शरीरका अस्थिकङ्काल इस रश्मिके लिए अस्वच्छ है, पर मांसपेशी आदि अंश स्वच्छ हैं इसलिए रश्मिके मार्गमें मनुष्यके खड़े होने पर उसके कङ्काल भागकी छाया पड़ती है और फोटोग्राफि वा आलोकजनन द्वारा उस कङ्कालकी छाया स्पष्ट देखनेमें आती है। हड्डीके भीतर किसी स्थानके टूट जाने पर, कहीं कुछ व्याधि होने वा जस्तेकी गोली घुसने पर, इस नवीन फोटोग्राफसे वह सहजमें पकड़ा जा सकता है।

क्रूक्स्-नलके सिवा अन्य उपायसे भी इस रश्मिके उत्पादनकी चेष्टा कुछ सफल हुई है। इस रश्मिके आविष्कारसे पृथिवीकी वैज्ञानिक मण्डली चकित हो गई थी। प्रति सप्ताह वा प्रतिदिन इसके विषयमें नवीन तथ्य निकल रहे हैं। वास्तवमें रोण्टगेनने एक नये जगत्‌का आविष्कार किया है। ताड़ित रश्मिके साथ इसका निर्णीत होने पर शायद पदार्थविज्ञानमें युगान्तर उपस्थित होगा।

उपसंहार।—डेढ़ सौ वर्षसे पहले ताड़ित कौतुककी सामग्री थी। किन्तु आज मनुष्यकी सभ्यता इसी पर प्रतिष्ठित है। १८९६ ई०में रोण्टगेनकी रश्मिका आविष्कार हुआ है। १९९६ ई०में विज्ञानकी क्या अवस्था होगी, वह कल्पनाके भी अगोचर है।

ताड़ितपदार्थ (सं० पु०) ताड़ित रूपः यः पदार्थः कर्मधा०। दो वस्तुओंको रगड़से निकला हुआ ज्योतिर्मय पदार्थ।

ताड़ितपरिचालक (सं० पु०) ताड़ितस्य परिचालकः ६-तत्। (The conductor of electricity) वे वस्तु जिनसे ताड़ित पदार्थ एक स्थानसे दूसरे स्थानको जल्दोसे पहुंचाया जाता है।

ताड़ितवार्त्ता (सं० स्त्री०) तारको खबर।

ताड़ितवार्त्तावह देखो।

ताड़ितवार्त्तावह (सं० पु०) ताड़ित एव वार्तावहः कर्मधा०। ताड़ित-बलके द्वारा शीघ्र संवाद प्रेरण करनेका यन्त्र, वह यन्त्र जिसके द्वारा बिजलोको सहायतासे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर समाचार भेजा जाता है तारके जरियेसे खबर-भेजनेको कल, टेलिग्राफ (Teligraph), तार। जिस यन्त्रसे ताड़ित अर्थात् बिजलोको तरह शीघ्र सम्बाद आवे वा पहुंचे, उसका नाम 'ताड़ितवार्त्तावह' वा Electric telegraph है।

पूर्वकालमें किस प्रकारके सङ्केतादि द्वारा दूरवर्ती स्थान पर संवादादि भेजे जाते थे, इसका कुछ कुछ वर्णन "टेलिग्राफ" शब्दमें लिखा जा चुका है। फलतः वे हो सङ्केत, समुद्रके मध्य एवं समय समय पर आवश्यक होने पर स्थल भागमें, ताड़ितके आविष्कारके बाद विज्ञानके बलसे सर्वोत्कृष्ट वार्तावहके रूपमें सर्वत्र नियोजित हुए हैं। बिजलोके जरिये बहुदूरवर्ती प्रदेशोंमें भो, इतनो सरलता एवं शीघ्रतासे संवाद भेजा जाता है, कि जिसको देख कर आश्चर्य होता है। विज्ञानके चरमोत्कर्षसे ताड़ितको यह उपयोगिता अब भूमण्डलस्थ समस्त सभ्यदेशोंमें सम्यक्रूपसे सद्व्यवहारमें आने लगो है तथा सन्धि, विग्रह, व्यवसाय वाणिज्य आदिका प्रभूत उपकार कर रहो है। सभ्यसमाजमें प्रतिदिन काम आने वाला यह महोपकारो व्यापार किस प्रकारसे आविष्कृत हुआ और इसको कार्यप्रणाली कैसो है, इसका स्थूल मर्म्म यहां लिखा जाता है।

ताड़ित अत्यद्भुत द्रुतगतिके आविष्कारके बाद हो उसके द्वारा दूरवर्ती स्थानमें सङ्केत करनेका उपाय उद्भावित हुआ। १७४७ ई०में विशप् वाट्सन् साहबने इस विषयको बहुतर परोक्षा को थो। इन्होंने ६०० फुट लम्बे तारसे एक लोडेन-जार (Leyden-jar) बिजलोको मुक्त किया था। १७५७ ई०में स्काटस् मेगाजिन (Scots' Magazine) नामको पत्रिकामें, बिजलोसे दूरवर्ती स्थान पर किस तरह अक्षर भेजे जा सकते हैं, इसका एक सहज उपाय प्रकाशित हुआ था। परन्तु वह कभो कार्यमें परिणत नहीं हुआ। १७७४ ई०में जेनेभा नगरमें २४ अक्षरोंके लिए २४ तारोंमें एक एक पिथबाल इलेक्ट्रोनोस्कोप (Pith-ball electroscope) जोड़ कर टेलिग्राफ बनाया गया। इसो वर्ष जर्मनोमें रिउसर (Reussur) साहबने पिथ-बॉलके बदले सोनेको दो पत्तियाँ और उन पर अक्षर लिख कर, उसके द्वार अक्षर प्रकट किये। ये सब टेलिग्राफ घर्षण-जनित ताड़ित (Frictional electricity)-के द्वारा उत्पन्न होते थे। इसमें कभो कभो परेशानोसे सङ्केत पहुंचते थे, और कभो कभो परिश्रम व्यर्थ भो जाता था। अन्तमें बल्टा साहबने प्रवाह-ताड़ित (Current electricity) का आविष्कार किया। यह ताड़ित सहजमें और सुविधासे तारके भोतरसे स्थानान्तरको भेजा जा सकता है और उसमें इसको शक्तिका भो तादृश अपचय नहीं होता।

प्रवाह-ताड़ितके द्वारा कैसे संवाद भेजा जा सकता है, इस विषयको अनेक परोक्षाएं हुईं। १८११ ई०में मिउनिकवासो सोमरिङ् साहब (Sommering) ने ३५ पृथक् पृथक् तारोंके साथ ३५ जलपात्र संयुक्त कर, पात्रस्थ जलके विश्लेषण-द्वारा सङ्केत ज्ञापन करनेका प्रस्ताव किया। १८२० ई०में आँपियर (Ampire) साहबने जलपात्रके बदले २५ कम्पासोंके काँटोंके हलनचलनके द्वारा अक्षर प्रकट किये। बादमें १८३२ ई०में मि० बैरन स्किलिङ् (Baran Schilling)-ने रूस-राज्यमें सिर्फ एक कम्पासको सूचिकाके परिदोलन द्वारा अक्षर प्रकट करके टेलिग्राफ बना डाला।

१८३३ ई०में, वेबर (Weber) और गस (Gauss) साहबने दो तारोंके द्वारा ९००० फुटको दूरो पर एक छोटो चुम्बकशलकामें संलग्न दर्पणके आन्दोलनसे सङ्केतोंका परिचालन किया था। यह यन्त्र टमसन-

साहबके वर्तमान दर्पण-ताड़ितमान-यन्त्र (Mirror-galvanometer)के समान था।

उपरोक्त वैज्ञानिकोंके अनुरोध करने पर मिउनिक वासी अध्यापक मि० ष्टाइन-हिल (Mr.Stein Heel)-ने इस विषयमें बहुत परीक्षाएं कीं और यथेष्ट उन्नति भी की। बहुत परिश्रमके बाद आपने १८३७ ई०में एक टेलिग्राफ बनाया और उसी वर्ष उसे Gottengen Academy of Sciences सभामें सबको दिखाया। इन्होंने सबसे पहले ताड़ितप्रवाहके प्रत्यवर्तनके लिए दूसरा तार न रख कर एक ही तारके दो छोरोंको दो ष्टेशनोंमें जमीनमें गाड़ कर एक ही तारसे संवाद भेजनेकी प्रथाका आविष्कार किया था। इस समय दो कम्पासके कांटोंके हलन जनित दो मूल सङ्केतोंके संमिश्रणसे सम्पूर्ण वर्णमाला प्रकट की जाने लगी ये दोनों काँटे, एक धन और दूसरी ऋणताड़ितप्रवाह द्वारा, एक ही तरफ झुक जाते थे। कभी काँटेकी गति को देख कर और कभी काँटेसे एक कागज पर विन्दु अङ्कित कर अक्षर सूचित होते थे। विन्दु अक्षरके लिए कांटेके अग्रभागमें सूची वा मसी-पूर्ण सूक्ष्म नल रहता था। काँटे क्रमशः हट जाते थे और उनसे विन्दुओंकी दो श्रेणी अङ्कित हो जाती थीं। स्थायी चुम्बकसे उत्पन्न ताड़ितके द्वारा यह ताड़ितवार्ता सम्पन्न होती थी।

एक लौह-दण्डके ऊपर अपरिचालक सूत्रादि मण्डित ताँबेका तार लपेट कर उस कुण्डलीमें ताड़ित-स्रोत प्रवाहित करनेसे, उस लोहेमें चुम्बकत्व आ जाता है, और ताड़ित-स्रोत बन्द होते ही उसका चुम्बकत्व नष्ट हो जाता है। ऐसे ताड़ितीय चुम्बकके आकर्षणसे आकृष्ट करके, एक घण्टा पर चोट मार कर सङ्केत करनेकी प्रथा उद्भावित हुई। यही मोर्स साहबके टेलिग्राफका मूल सूत्र है। हुइटष्टीन साहबने इस उपायसे घण्टा बजा कर टेलिग्राफ करनेसे पहले, वहांके कर्मचारीको सतर्क करनेका उपाय निकाला था।

१८३७ ई०में सर्व प्रथम तीन देशोंमें टेलिग्राफ व्यवसाय रूपमें संस्थापित हुआ। मिउनिकमें ष्टाइनहिल साहबका, अमेरिकामें मोर्स साहबका और इंग्लैण्डमें हुइटष्टोन और कूक साहबका टेलिग्राफ प्रचलित हुआ। इंग्लैण्डमें लण्डन-बर्मिङ्हम और ग्रेटवेष्टर्न रेलवेमें सबसे पहले टेलिग्राफ लगा था। इन टेलिग्राफोंके तारोंको अपरिचालक पदार्थसे मण्डित कर मट्टीके नीचे गाड़ा जाता था, परन्तु पीछे इसमें खर्च अधिक होनेसे काठकी खूंटियों पर लगाया गया। एक काँटेके यन्त्रमें एक तार और दो काँटोंके यन्त्रमें दो तार लगा कर टेलिग्राफका व्यवहार होने लगा। इसके बाद हुइटष्टोन साहबने इसकी बहुत कुछ उन्नति की थी।

अब ताड़ितवार्तावह वा टेलिग्राफ-यन्त्रके भूततत्त्व, उसकी गठन और कार्य-प्रणालीका विवरण लिखा जाता है।

ताड़ितकोष वा बैटरी—सम्प्रति जितने भी प्रकारके टेलिग्राफ प्रचलित हैं, सब प्रवाह-ताड़ित द्वारा सम्पन्न होते हैं। चौम्बकीय ताड़ितको टेलिग्राफमें नियोजित करनेके लिए बहुत कोशिश की गई थी, पर उसमें खर्च अधिक पड़ने तथा दिक्कत होनेके कारण उसका व्यवहार नहीं हो सका।

ताड़ित-वार्तावहके लिए अब नाना देशोंमें नाना प्रकारके ताड़ित-कोष प्रचलित हैं। कुछ समय पहले डानियल साहबका ताड़ितकोष व्यवहृत होता था। अब अधिकांश स्थानोंमें उसके बदले 'बाइक्रमेट बैटरी' काममें आती है। इस देशमें, टेलिग्राफ आफिसोंमें मिनोटोका (Minotto's) ताड़ितकोष व्यवहृत होता है।

तार—टेलिग्राफका तार साधारणतः लौह-निर्मित और जस्ते द्वारा मण्डित होता है। कहीं कहीं विशेष सुभीतेके लिए ताँबेका तार भी व्यवहृत होता है। यह तार काष्ठ वा धातुके स्तम्भों पर लगी हुई चीनामट्टीकी अपरिचालक टोपियोंमें बांध कर ले जाना पड़ता है। ये टोपियां इतनी सफाईसे बनाई जाती हैं कि वर्षा होने पर भी इसका कुछ अंश बना रहता है और इसलिए ताड़ितप्रवाह तारसे निकल कर स्तम्भोंमें नहीं जाता। आजकल प्रायः सभी स्थानोंमें खंभों पर तार जाता है; कहीं कहीं, जहां बाहरमें विपदकी आशङ्का अधिक है, जमीनके भीतरसे तार लगा है। इस तार पर गुटापार्चा, कुचुक, रबर आदि अपरिचालक वस्तुएं चढ़ी रहती हैं

और उसे नलके भीतरसे ले जाते हैं। ऐसे तारमें ताड़ितका अपचय तो कम होता है, पर यह द्रुत सङ्केत ज्ञापनके लिए उतना उपयोगी नहीं है।

ताड़ितवार्तावहके पूर्व पूर्व आविष्कर्ताओंका विश्वास था कि ताड़ितप्रवाहके प्रत्यावर्तनके लिए एक दूसरे तारके बिना काम नहीं चल सकता। पूर्वोक्त स्टाइनहिल साहबने, एक दिन रेल पथका लोहवर्त्म लाइनके ताड़ितवाही तारका काम दे सकता है या नहीं, इस बातकी जाँच करते हुए आविष्कार कर डाला कि पृथिवी ही ताड़ित-प्रत्यावर्तनके लिए तारका काम कर सकती है। दो स्टेशनोंमें तारके दोनों छोरोंको जमीनमें गाड़ देनेसे, दूसरे तारका काम निकल आता है। ऐसा होने पर भी तारमें जैसा वास्तविक ताड़ितस्रोत लौट आता है, वैसा पृथिवीसे नहीं आता। पृथिवी तारके दोनों छोरोंसे विभिन्न प्रकारका ताड़ित शोषण करती है, इसलिए तारमें ताड़ितका प्रवाह अव्याहत रहता है। जमीनमें तार अच्छी तरह गड़ जाना जरूरी है नहीं तो वह कामयाब नहीं होता। तारके एक छोरमें बड़ी ताँबेकी पत्ती लगा कर उसे साधारणतः पुष्करिणी वा कूपादिमें गाड़ देना चाहिये। बड़े बड़े शहरोंमें गैस या पानीके नलोंमें तारका मुंह लगा देनेसे ही काम चल जाता है। स्थानविशेषमें वज्राघात-निवारक तार वा पत्तीके साथ जोड़ दिया जाय तो कोई हर्ज नहीं। तात्पर्य यह कि तारका छोर जो जमीनमें गाड़ा जाता है, वह सर्वदा आर्द्र रहना चाहिये, कभी सूखना न चाहिये।

ताड़ितवार्तावहके मूल उपादान ३ हैं—१ दोनों स्थानोंके बीचमें धातुमय तारका संयोग और ताड़ित-प्रवाह-उत्पादक एक यन्त्र, २ एक स्टेशनसे दूसरे स्टेशनको संवाद भेजनेका यन्त्र और ३ संवाद ग्रहण करनेका यन्त्र। जिन कौशलोंसे ये कार्य, विशेषतः शेषोक्त दो कार्य सम्पन्न होते हैं, वे बहुत प्रकारके हैं, जिनमें काँटेका टेलिग्राफ, डायल-टेलिग्राफ और प्रिंटिं टेलिग्राफ वा मुद्रणवार्ता ये तीन प्रधान हैं।

कम्पासके काँटेका टेलिग्राफ प्रधानतः एक तड़ित्-प्रवाहमान यन्त्र (Galvanometer) के सिवा और कुछ भी नहीं है। एक अपरिचालक पदार्थमण्डित तारकी कुण्डलीमें ऊर्द्ध्वाधोभावसे एक चुम्बक-शलाका लम्बित रहती है और उस चुम्बक-शलाकाके साथ तारका एक काँटा संलग्न रहता है। यह शेषोक्त काँटा ही यन्त्रके बाहर दृष्टिगोचर होता है। तार द्वारा विभिन्न प्रकारका ताड़ितप्रवाह उस कुण्डलीमें प्रवाहित होने पर चुम्बक शलाका दो विभिन्न दिशाओंमें हिलती रहती है। इसीसे सङ्केत समझाया जाता है। प्रेरक इच्छानुसार धन वा ऋण-ताड़ित प्रवाहित कर उस काँटेको दाहिने वा बायें हिला सकता है।

डायल टेलिग्राफमें एक डायल वा गोलाकृति कागज पर २४ अक्षर लिखे रहते हैं। केन्द्रस्थलमें एक काँटा लगा रहता है, जो ताड़ितीय चुम्बककी सहायतासे दूरवर्ती स्टेशनसे इच्छानुसार घुमाया जा सकता है। यह काँटा जिस अक्षरका निर्देश करता है, वह प्रेरित अक्षर है, ऐसा समझा जाता है। ऐसे टेलिग्राफोंमें बहुत समय नष्ट होता है और यन्त्रादि अत्यन्त कुटिल होनेसे शीघ्र ही विशृङ्खल हो जाते हैं। अव्यवसायीगण अपने अपने कामके लिए ऐसा टेलिग्राफ कभी कभी व्यवहारमें लाते हैं, अन्यथा इसका व्यवहार नहींके बराबर होता है।

मोर्ससटेलीग्राफ – यह टेलिग्राफ़ सम्प्रति बहुत प्रचलित है। मोर्सस टेलिग्राफ़का प्रधान अङ्ग एक लौह दण्ड और ताड़ितप्रवाहके गमनकालमें उसका अस्थायीरूपमें चुम्बकधर्म-प्राप्ति है। नीचे इसकी कार्य-प्रणाली संक्षेपसे लिखी जाती है।

लौहनिर्मित एक ताड़ितीय चुम्बक पर, अपरिचालक पदार्थमें डुबोया हुआ (अर्थात् अपरिचालक पदार्थसे मढ़ा हुआ) ताँबेका तार लिपटा रहता है। इस तारका एक छोर जमीनमें और एक छोर लाइनके तारके साथ लगा होता है। उक्त चुम्बकके ऊपर, एक लौह-दण्ड इस प्रकार लगा रहता है कि जिससे वह मध्यस्थानके अवस्थानके ऊपर आन्दोलित होता रहता है। एक छोटेसे स्प्रिङ्के सहारे वह डंडा चुम्बकसे विच्छिन्न हो कर अवस्थान करता है। चुम्बककी विपरीत दिशामें, डंडेके छोर पर एक पेन्सिल वा सुई लगी रहती है। उस सुई वा पेन्सिलके बहुत ही पासमें सटा हुआ, पर उससे अलग एक कागजका पतली फीता रहता है इस

THE

Modern Buddhism.

and its

FOLLOWERS IN ORISSA

BY

Nagendra Nath Vasu. M.R.A.S.

with an introduction by

Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri M. A., C. I. E.

It has been conclusively proved in this book that Buddhism is neither dead nor driven out of India, but its pulse still beats with all the energy of life in Orissa. "Sankaracharyya drove away Buddhism from the soil of India" is proved to be absolutely false. The discoveries of 50000 crypto-Buddhists living in the jungle tracts of Orissa first announced in this book has taken the world of European scholars by surprise.

The book contains more than 250 pages. It is nicely printed and beautifully bound. **Price**—Rs. 3/-, for students Rs. 2/-.

Dr. L. D. Burnett of the British Museum writes :—

"A more fascinating and erudite work I have not read for many years and I shall find it most valuable both in the study and in the lecture-room."

Dr. H. Kern, the great Buddhist scholar writes :—

"I need hardly to tell you that the subject matter is one that interests me highly, so that it will be a pleasure for me to read the book, which contains so much that is little known or not at all in Europe."

Sir. George A. Grierson, K. C. I. E. Author of Linguistic Survey of India writes :—

"I have found your chapter on the Revival of Buddhism most interesting. I think it a most important contribution towards the religious history of India. It should certainly be carefully studied by all who interest themselves in that subject."

A. Smith I. C. S. (retired) writes from 116 Banbury Road, Oxford—

"Your book is also of high value for the history of Buddhism and Indian religion generally. The account of later and modern Buddhism is novel and your constant citation of little known Sanskrit works gives it special authority."

ग्राहकोंसे निवेदन।

बहुतसे महाशय हमारे साथ पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर नहीं लिखते। ऐसे महाशयोंसे प्रार्थना है कि पत्र लिखते समय अपना ग्राहक श्रेणीका नम्बर अवश्य २ लिख दिया करें अन्यथा पत्रोत्तरकी आशा न करें।

२। हम आपके साहाय्यसे ही 'हिंदी विश्वकोष'के प्रकाशनका भार उठाने समर्थ ये हैं। अतः आपसे प्रार्थना है कि कमसे कम दो ग्राहक बनानेकी कृपा करें।

निवेदक—

प्रबंधकर्त्ता—हिंदी-विश्वकोष कार्यालय,

९ विश्वकोष लेन, कांटापुकर, बागबाजार, कलकत्ता

आवश्यकीय सूचना

हिन्दी-विश्वकोषकी आज तक प्रतिमास ४ संख्या प्रकाशित होती थीं, परन्तु अब छ संख्या प्रतिमास प्रकाशित होंगी, तदनुसार ग्राहकोंकी सेवामें भी छ संख्या ही प्रतिमास भेजी जाया करेंगी। आशा है, कि छ संख्याकी वी॰ पी॰ छुड़ा कर कृतार्थ करेंगे।

निवेदक—
प्रबन्धकर्त्ता

RCHÆOLOGICL REPORT OF
MAYURABHANJA.

BY

Nagendranath Vasu, Editor of "Visvakosha."

This work contains along with the results of the archæological and historical reserches conducted at the cost of the Chief of Mayurabhanja, a descriptive account of the rise and development of the various Hindu, Buddhist and Jaina sects. The discoveries of numerous cripto-Buddhists in Orissa, first announced in this book, has taken the world of European Scholars by surprise. Dr. Kern, Dr. Fleet, Dr. Oldenburg, Sir Grierson, Dr. Sylvain Levi, M. Emile Senart, Mr. Vincent Smith, Dr. Thomas of India Office and other European scholars have enthusiastically received the book and lavished high-flown praises upon it. Beautifully printed and gorgeously bound with more than 100 large plates of inscriptions, grants, ancient temples, ruins and figures of Hindu, Buddhist and Jaina Gods and Goddesses with their identification from the authoritative scriptures of various sects. Price Rs. 15/-, for students Rs. 10/-.

Dr. L. D. Burnett writes in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland, 1912. pp. 802-4.

"The body of the book comprises a series of report on the antiquities and history of a number of sites visited in the course of the survey, with an appendix containing text and facsimiles * * * Almost every form of Hindu religion has left its mark in Morbhanj * * * Undoubtedly the most interesting part of this interesting survey is the Chapter on Buddhism. * * * Pandit Nagendra Nath Vasu brings the history of Buddhism in Orissa down to the present day. He finds distinct traces of Mahayana cults among the Bathuri or Bauri tribe on whose ethnology he gives some valuable data. * * * In concluding this brief notice of this *veritable Ratnakar of learning*, we may add that it is illustrated by numerous plates."

Dr. J. F. Fleet, C. I. E. (the great antiquaran) writes from 8. Leopold Road, Ealing W. London.—

"I have read the book with much interest, and consider it a useful addition to our researches into the ancient and mediæval history of India"

१६६५
१०-७०

हिन्दी
विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक
श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,
सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस,
तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित ।

*

नवम भाग

THE
ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. IX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS
BY
NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava.
Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.
Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Bangiya Sâhitya Parishad and Kâyastha Patrikâ ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society
Member of the Philological Committee, Asiatic Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by P. C. *Bose*, at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta

1924.

बारह खण्डका मूल्य ६) रुपया, एक खण्डका मूल्य ॥; आना और डाक महसूल अलग ।

Expert-Opinion

Sir Gooroo Dass Banerjee,
Kt., M. A., D. L., Ph. D.,

The late Justice of the Calcutta High Court and Vice-Chancellor of the Calcutta University writes—

"I am glad to learn that you are publishing a Hindi edition of your great work, the Bengali Encyclopædia "Visvakosha." I had to consult it on several occasions, and I found in it much valuable and rare information. A Hindi edition of this monumental work will make all that useful information available for all India, and will, I am sure, meet with the same enthusiastic encouragement and support that the Bengali Visvakosha has received. (30. 11. 15.)

Babu Saradacharan Mitra, M A., B L. &c.,
The late Justice of the Calcutta High Court writes :—

"The "Viswakosha" or Encyclopædia in Bengali by Babu Nagendra Nath Vasu Práchyavidyamahárnava is an wonderful production. It contains an immense mass of correct information and is very valuable. The learned author is now issuing a Hindi Edition and the first volume is out. The Hindi Edition is enlarged and contains informations upto date. There should be no library without this."

The Hon'ble Sir Ashutosh Mukerjee,
Sarasvati C. S. I. &c. &c.,

The Justice of the Calcutta High Court, the late Vice-Chancellor of the Calcutta University, writes :—

"I have had occasion many a time to consult the Bengal Encyclopædia Visvakosha prepared by Babu Nagendranath Vasu. I have always entertained the highest opinion about its unique value, due chiefly to its accuracy and completeness. It is a truly monumental work, and I am delighted to learn that a Hindi version of it has been undertaken."
(9. 11. 15)

The Hon'ble Justice A. Chaudhuri,
M. A. LL. B.

of the Calcutta High Court, writes :—

"Your Encyclopædia Indica I constantly refer to in my work. I have always found it thoroughly accurate and very helpful. It is a wonder to me that the compilation, although made by you alone, is so complete. I am writing these few lines in admiration of the great work you have done. I wish the **Hindi** edition every success." (10. 9. 15.)

THE SOCIAL HISTORY OF
KAMARUPA.
Vol. I.

BY

Nagendra Nath Vasu
Prachyavidyamaharnava etc. etc.

A very interesting and readable account of a great social movement which shed a beam of light across the otherwise lurid clouds that envelop the history of Assam.

The book is divided into three chapters of which the first one is devoted to the prehistoric period. The first chapter consists of seven sections. The first section is the general remark upon Kamarupa's claims to historical recognition. The second section deals with the activities of the Phœnicians in Eastern India, their references in the Vedas, the difference between them and the Aryans, the geography of their times, their religion, arts, sciences and commerce and their identity with modern Koch.

The third section deals with the origin of the Mismi, Abors, Daflas and Miris. The fourth section deals with the origin of the Kiratas, Garos and Kacharis. The fourth section describes Usha and Anirudha, Bana and Saumar dynasty and Bànalinga. The sixth section deals with the Kimmerian influence in Kamarupa and the seventh section deals with the Assyrian (Mech) influence with their full history. The second chapter deals with the historical period and third with the rise of the Kayasthas in Kamarupa.

The book is worth reading and without it no research in ancient Indian history could be complete. The book is neatly bound, adequately indexed, clearly written with the support of the [illegible] whose chapter and verse are quoted in their proper place, and on the whole carefully printed and nicely got up. The price Rs. 5/- only. To be [illegible] at 9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

यन्त्रको इण्डिकेटर वा रिसिभर (Indicator or Receiver) (अर्थात् संवाद निर्देश वा ग्रहण करनेका यन्त्र) कहते हैं।

लाइनके तारसे ताड़ितप्रवाह ज्यों ही उस ताड़ितीय चुम्बककी तार-कुण्डलीमें हो कर जाता है, त्यों ही इसका लौह चुम्बकरूपमें परिणत हो जाता है और सम्मिलित लौह-दण्डको आकर्षित करता है। उस लौहदण्डका एक छोर नीचेको आकृष्ट होने पर दूसरा छोर जिसमें पेन्सिल वा सुई लगी होती है, ऊपरको उठ जाती है और फिर वह सुई या पेन्सिल कागजसे लग जाती है। इस प्रकार जब तक ताड़ितप्रवाह प्रवाहित होता रहता है, तब तक सुई या पेन्सिल कागजसे सटी रहती है और ताड़ितप्रवाहके बन्द होते ही 'स्प्रिङ्'के जोरसे वह अलग हो जाती है। ताड़ित-स्रोतको कम वा अधिक समय तक प्रवाहित कर, संवाददाता इच्छानुसार कम वा अधिक समय तक पेन्सिल वा सुईका मुंह कागजसे सटाये रख सकता है। उपरोक्त कागजका फीता एक छोटे पहिये पर लिपटा रहता है और वह हाथसे वा घड़ीकी भांति किसी यन्त्रके द्वारा समानरूपसे खींचा जाता है; सुतरां पेन्सिल वा सुई क्षणमात्र वा कुछ अधिक समय तक, कागजके फीते पर सटी रहनेसे उस कागज पर क्रमशः बिन्दु (·) वा रेखा (—) अङ्कित हो जाती है। कहीं कहीं पेन्सिल वा सुईके बदले स्याहीका बारीक नल व्यवहृत होती है। इससे चिह्न भी स्पष्ट होता है और अपेक्षाकृत क्षीणतर ताड़ित-प्रवाहसे काम चल जाता है। इन बिन्दु और रेखाओंके विन्याससे समस्त अक्षरोंका विन्यास हो जाता है। नीचे मोर्स साहबके टेलिग्राफ़की वर्णमाला लिखी जाती है:—

A . —
B — . . .
C — . — .
D — . .
E .
F . . — .
G — — .
H . . . .
I . .
J . — — —
K — . —
L . — . .
M — —

N — .
O — — —
P . — — .
Q — — . —
R . — .
S . . .
T —
U . . —
V[illegible] . . —
[illegible] —
X[illegible] . —
Y — . — —
Z — — . .

1 . — — — —
2 . . — — —
3 . . . — —
4 . . . . —
5 . . . . .
6 — . . . .
7 — — . . .
8 — — — . .
9 — — — — .
0 — — — — .
Understood . . — .

दो अक्षरोंके बीचमें एक "डैस" वा रेखाके बराबर जगह खाली छोड़ दी जाती है और दो शब्दोंके बीचमें उससे प्रायः दूना स्थान खाली रक्खा जाता है। एक कांटेके यन्त्रमें ऐसा चिह्न कांटेके बाईं तरफ तथा ऐसा चिह्न दाहिनी ओर झुका हुआ मालूम पड़ता है। फलतः, ये यथाक्रमसे मोर्स साहबके बिन्दु और रेखाके समान हो जान पड़ते हैं। अंग्रेजी वर्णमालाकी तरह उपर्युक्त चिह्नों द्वारा हिन्दीके अ, आ, क, ख आदि भी सूचित किये जा सकते हैं।

संवाद भेजनेका यन्त्र वा मोर्स साहबकी चाबी (Morse's key)—यह यन्त्र एक लकड़ीकी छोटी पटिया पर बना है।

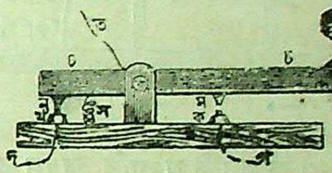

इसके ऊपर 'थ' अवस्थानमें निबद्ध 'ट' 'ट' धातुमय दण्ड अवस्थित है। इसका 'न' प्रान्त 'म' क्षुद्र स्प्रिङ्से सर्वदा 'द' तारके साथ लगे हुए 'प' नामक एक धातुखण्डमें संलग्न रहता है, और अपर प्रान्त 'म' ऊपरको उठ जाता है। 'ड' लाइनका तार 'ट ट' दण्डके साथ संलग्न है। 'क' धातुखण्ड 'ग' तारके द्वारा ताड़ितकोषके एक मेरुके साथ संलग्न है। 'थ' धातुपिण्ड 'द' तारके द्वारा इण्डिकेट वा निर्देशक यन्त्रके साथ संयुक्त है। 'ह' चीनामट्टी वा अन्य कोई अपरिचालक पदार्थ निर्मित छोटा हैण्डल (हत्था) है। इस चित्रमें संवाद-ग्रहणके समय इसकी जैसी अवस्था रहती है, वही दिखलाई गई है। दूसरी स्टेशनसे ताड़ितप्रवाह लाइनके 'ड' तारसे हो कर आता और 'ट ट' दण्डमें प्रविष्ट होता है; फिर वहांसे प्रान्तमें हो कर 'न' 'द' तारके द्वारा संवाद-निर्देशक यन्त्रकी तार-कुण्डली परिभ्रमण करता हुआ भूमिमें प्रवेश करता है। निर्देशक यन्त्रमेंसे जाते समय वहां सङ्केत ज्ञापित हो जाता है। संवाद भेजते समय, संवाददाता ज्यों ही हैण्डलको दाब कर 'क' के साथ ताड़ितकोषका संयोग करता है, त्यों ही उसका दूसरा छोर 'थ' से अलग हो जाता है। फिर ताड़ितकोषसे ताड़ितप्रवाह अपने आप 'ट ट' दण्ड और 'ड'

तारकी लाइनके द्वारा दूसरी स्टेसन पर पहुंच जाता है। इस प्रकारसे संवाददाता इच्छानुसार हैण्डलको कम वा अधिक समय तक दाब कर, तार द्वारा कम वा अधिक समय तक ताड़ितप्रवाहको प्रवाहित रख सकता है और दूसरी स्टेशन पर बिन्दु वा रेखा अङ्कित कर सकता है। दो स्टेशनोंका परस्पर किस प्रकारसे सम्बन्ध रहता है, इस बातको समझानेके लिए नीचे एक मामूली चित्र दिया जाता है।

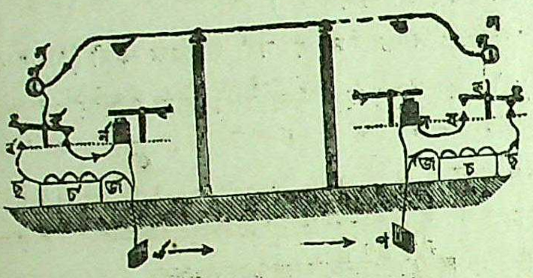

इस चित्रमें दो स्टेशनोंके यन्त्रादि हूबहू बना दिये गये हैं और बीचमें दो तारके खंभे भी लगे हुए हैं। 'च' और 'च॑' ताड़ितकोष हैं, 'क' और 'क॑' ये दो संवाद देनेके यन्त्र (Key वा चाबी) हैं, 'न' और 'न॑' संवाद ग्रहण करनेके यन्त्र (वा निर्देशक) हैं, 'ग' और 'ग॑' ताड़ितमान यन्त्र हैं तथा 'त' और 'त॑' लाइनका तार है। 'च' और 'च॑' इन दो ताड़ितकोषोंका एक एक प्रान्त 'छ' और 'छ॑' स्थानीय संवाद देनेके यन्त्रमें तथा अपर प्रान्त 'ज' और 'ज॑' भूगर्भके साथ संयुक्त हैं; चित्रमें दाहिनी ओरकी स्टेशनसे बाईं तरफ़की स्टेशनमें संवाद आ रहा है, और बाईं ओरकी स्टेशनमें वह संवाद-निर्देशक यन्त्रमें ज्ञापित हो रहा है। ताड़ितस्रोत 'च' ताड़ितकोषमेंसे निकल कर 'क' चाबीमें और 'ग' ताड़ितमान यन्त्रमें होता हुआ लाइनके तारमें प्रवेश कर रहा है; और दूसरी स्टेशन पर पहुँच कर वहांके 'ग॑' ताड़ितमान यन्त्रमें होता हुआ 'क॑' चाबीमें प्रवेश कर रहा है। 'क॑' चाबी 'न॑' निर्देशक-यन्त्रमें संलग्न होनेके कारण ताड़ितप्रवाह वहां जा कर संवाद ज्ञापन कर रहा है और अन्तमें वह 'ज॑' स्थानसे भूगर्भमें प्रवेश कर रहा है। ताड़ितमान यन्त्र मात्रसे इतना ही मालूम होता रहता है कि ताड़ितप्रवाह जा रहा है या नहीं। इस तरह एकही तारसे संवाद भेजना और ग्रहण करना दोनों काम होते हैं।

टेलिग्राफ़-कार्यालयमें और भी कुछ यन्त्र रहते हैं, नीचे उनका वर्णन लिखा जाता है।

रिले (Relay)—यह यन्त्र प्रायः निर्देशक-यन्त्रके समान ही है, पर यह उसकी अपेक्षा अनेकांशोंमें सूक्ष्म और अपेक्षाकृत क्षीणतर ताड़ितप्रवाह द्वारा परिचालित हो सकता है। तारका ताड़ितप्रवाह स्वभावतः क्षीण है, जिसमें अधिक दूर गमन करते करते नाना कारणोंसे और भी क्षीणतर हो जाता है; सुतरां वह निर्देशक यन्त्रको तेजीके साथ परिचालित नहीं कर सकता और न उससे कागज पर अच्छी तरह दाग ही पड़ता है। इसी लिए प्रत्येक स्टेशन पर केवल स्थानीय निर्देशक यन्त्रमें प्रेरित संवादके मुद्रणके लिए एक पृथक् ताड़ित कोष रहता है। इस ताड़ितकोषके दो मेरुओंमेंसे एक साक्षात्‌रूपसे निर्देशक यन्त्रके साथ संलग्न है; दूसरा तारके द्वारा 'ज' रिलेयन्त्रके 'न' स्थानके साथ संलग्न है।

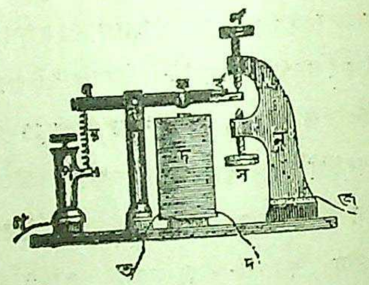

निर्देशक-यन्त्रके ताड़ितीय चुम्बकको तार-कुण्डलीका दूसरा छोर 'ग' तार-द्वारा 'प व़' होता हुआ 'ब' दण्डके साथ जा मिला है। रिलेमें स्थित 'द' तार कुण्डलीका एक छोर लाइनमें जा मिला है और दूसरा जमीनमें गड़ा है। अब ज्यों ही लाइनके तारसे ताड़ितस्रोत रिलेमें स्थित ताड़ितीय चुम्बकके 'द' तार-कुण्डलीमें हो कर जमीनमें जाता है, त्यों ही वह ताड़ितीय चुम्बक 'ब' दण्डको आकर्षण करता है और उसका 'ब' प्रान्त 'प' के साथ संयुक्त हो जाता है। सुतरां स्थानीय ताड़ितकोषके दोनों मेरुओंके संयुक्त होने पर, उसका प्रबल ताड़ितप्रवाह बिना बाधाके 'ज,न,क,ब,व़,ग' मार्ग निर्देशक यन्त्र हो कर गमन करता है और उसे कार्यकारी बनाता है; और ज्यों ही लाइनके तारमें ताड़ितप्रवाह बन्द हो जाता है, त्यों ही 'व़' स्प्रिङ्के जोरसे 'ब' ऊपर

की उठ जाती है, सुतरां निर्देशक यन्त्रमें ताड़ितप्रवाह छिन्न होता है। इसी प्रकार प्रत्येक बार जैसे रिले यन्त्रमें हो कर ताड़ितप्रवाह गमन करता है, निर्देशक यन्त्रमें भी हूबहू इसी प्रणालीसे प्रबलतर ताड़ितप्रवाह गमन करता है और सङ्केतोंका स्पष्टतया निर्देश करता है।

वर्तमानताड़ितवार्तावह—टेलिग्राफ कार्यालयमें, कर्मचारीगण इतनी क्षिप्रतरके साथ अभ्रान्तरूपसे संवाद भेजते और ग्रहण करते हैं, कि जिसको देख कर आश्चर्य होने लगता है। एक सुदक्ष कर्मचारी प्रत्येक मिनटमें ३०। ४० शब्द प्रेरण और ग्रहण कर सकता है। सुनिपुण कर्मचारी संवाद ग्रहण करते समय कागजकी तरफ आँख उठा कर देखता भी नहीं, वह मात्र निर्देशक-यन्त्रके ताड़ितीय चुम्बकके साथ लौहदण्डके आघात-जनित शब्दसे ही सङ्केत समझ लेता है। इसी परसे अमेरिकावालोंने एक प्रकारका नया टेलिग्राफ आविष्कृत किया, जिसमें रिले-यन्त्र जैसा एक यन्त्र रहता है। ताड़ितप्रवाह ज्यों ही तार द्वारा उसमें प्रवेश करता है, त्यों ही इसका ताड़ितीय चुम्बक एक छोटी हथौड़ीको आकर्षित करता है। चुम्बक पर इस हथौड़ीके पड़ते ही 'टक, शब्द होता है और प्रवाह बन्द होते ही स्प्रिङ्गके जोरसे हथौड़ी ऊपरको उठ जाती है। इस प्रकारसे ताड़ितस्रोतको अल्प वा अधिक समय तक प्रवाहित रख कर, शब्दके ह्रस्व और दीर्घताका तारतम्य प्रकट किया जा सकता है। यह ह्रस्व और दीर्घ शब्द क्रमसे मोर्सके बिन्दु और रेखाके समान है। समयकी किफायत और प्रणाली सहज होनेके कारण फिलहाल सर्वत्र यही टेलिग्राफ प्रचलित हो गया है।

जिस स्टेशन पर संवाद भेजा जाता है, उस स्टेशनके कर्मचारियोंको सावधान करनेके लिए और एक यन्त्र व्यवहृत होता है, जिसे हम ताड़ितीय घण्टी कह सकते हैं। इसका गठनप्रणाली इस प्रकार है, एक लड़कीकी पटिया पर एक चुंबक लगा रहता है, जिसके एक छोर पर स्प्रिङ् द्वारा आबद्ध एक धातुकी पत्ती और उस पर एक छोटी हथौड़ी तथा उस हथौड़ीके पार्श्वमें एक घण्टी लगी होती है। यह हथौड़ी स्प्रिङ्के जोरसे घंटा, और चुम्बकसे पृथक् रहती है। ताड़ितीय चुम्बककी तारकुण्डलीका एक छोर हथौड़ीके साथ संयुक्त रहता है। लाइनके साथ इस यन्त्रको जोड़ देने पर, ज्यों ही ताड़ितप्रवाह उस हथौड़ीमें हो कर तारकुण्डलीमें प्रवेश करता और दूसरी ओरसे निकल जाता है, त्यों ही चुम्बककी शक्तिसे हथौड़ी आकर्षित हो कर घण्टी पर पड़ती है। परन्तु हथौड़ीके आकर्षित होते ही ताड़ितप्रवाह खण्डित हो जाता है और इसीलिए वह (आकृष्ट होनेसे) स्प्रिङ्के जोरसे अलग हो जाती है हट कर पूर्वावस्थाको प्राप्त होते ही फिर उसमें ताड़ितप्रवाह संयुक्त होता है, और वह पुनः घण्टी पर पड़ती है। इस प्रकारसे जब तक ताड़ितप्रवाह चलता रहता है, तब तक घण्टी बजती रहती है। कर्मचारी उस शब्दको सुन कर यन्त्रके पास आता है और कौशलसे ताड़ितस्रोतको उस यन्त्रसे हटा कर सीधा निर्देशक-यन्त्रमें जाने देता है।

कभी कभी झञ्झा मेघ आदिसे तारस्थ स्वाभाविक-ताड़ित विश्लिष्ट हो जाता है और संवाद देने-लेनेमें बड़ी दिक्कत होती है। यहां तक कि भयावह उपद्रव भी होने लगते हैं। इस दैव उपद्रवके निराकरणके लिए, लाइनका तार एक ताड़ित-परिचालक यन्त्रके साथ जुड़ा रहता है। लाइनके तारसे, ताड़ितप्रवाह सीधा टेलिग्राफके यन्त्रोंमें नहीं जाता, बल्कि इस यन्त्रमें हो कर जाता है। इसका गठन-प्रणाली इस प्रकार है,—आरीके समान दाँतवाली दो ताँबेकी पत्तियां लम्बाईमें आस-पास इस तरह लगी रहती हैं कि जो एक दूसरेका स्पर्श नहीं करती। इनमेंसे एक तो लाइनके तारके साथ और एक भूगर्भके साथ संयुक्त रहती है। मेघादिकी प्रणोदन-शक्तिके कारण ज्यों ही तारमें ताड़ित सञ्चित होता है, त्यों ही उस आरीके नुकीले दाँतोंमें हो कर वह भूमिमें प्रविष्ट हो जाता है; और फिर विपद्की आशङ्का नहीं रहती। दाँत एक दूसरेसे सटे न रहनेके कारण तारका ताड़ितस्रोत भूमिमें नहीं जाता, सुतरां वार्तावहकी कुछ क्षति नहीं होती; सिर्फ मेघादि-द्वारा उपचीयमान ताड़ित ही नष्ट होता है।

दो प्रधान स्टेशनोंके बीचमें उससे अधिक स्टेशन हों तो उनमें हो कर किस प्रकारसे संवाद आगे जाता है, सो दिखलाते हैं।

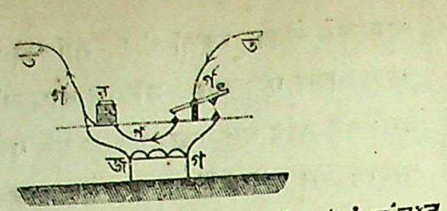

'ज ग' ताड़ितकोष है। इसका एक मेरु 'ग' संवाद देनेके यन्त्र की पटियासे और दूसरा मेरु 'ड″' लाइनके तारके साथ जुड़ा हुआ है। ताड़ितप्रवाह 'ड′' लाइनके तारमें हो कर संवाद भेजनेके यन्त्रमें प्रवेश कर रहा है और वहांसे 'ग' की तरफ निर्देशक-यन्त्रमें हो कर 'ड″' लाइनके तारमें जा रहा है। इस प्रकारसे गमन करते समय वहां निर्देशक-यन्त्रमें संवाद सूचित होता है, इसमें समय भी कम लगता है। ताड़ितप्रवाह अव्याहतभावसे उसी समय (खटकानेके साथ ही) निर्दिष्ट स्थान वा स्टेशन पर जा कर वहां संवाद ज्ञापन करता है। इस प्रकार एक स्टेशनसे दूसरी स्टेशनको संवाद भेजते समय, मध्यवर्ती स्टेशनोंमें भी वह संवाद ज्ञापित होता है।

यदि एक स्टेशनसे दूसरी स्टेशन बहुत दूर हो, तो प्रबल ताड़ितकोषका व्यवहार करने पर भी, प्रवाह गमन करते करते क्षीण हो जाता है। इसलिए दूरवर्ती स्टेशनोंके बीचमें एक स्टेशनका होना आवश्यक है। इस मध्यवर्ती स्टेशनके यन्त्रादि किस प्रकारसे विन्यस्त रहते हैं, सो लिखा जाता है।

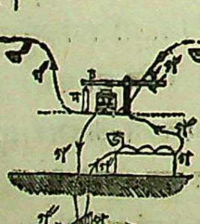

'ज' ताड़ितकोष है। इसका एक मेरु 'ग' 'ठ ठ' दण्डसे लगा हुआ है, और दूसरा मेरु 'ज' जमीनमें गड़ा है। 'म' ताड़ितीय चुंबक है; इसकी तार-कुण्डलीका एक छोर लाइनके तारसे लगा है और दूसरा छोर जमीनमें गड़ा हुआ है। 'द' धातुमय दण्ड है, जो दूसरी तरफ 'ड′' लाइनके तारके साथ संयुक्त है। 'ठ ठ' दण्ड साधारणतः स्प्रिङ्गके जोरसे 'द' से पृथक् रहता है। ताड़ितप्रवाह 'ड′' लाइनके तारसे 'म' ताड़ितीय चुंबककी कुण्डलीमें घूमता हुआ जमीनमें प्रवेश करता है, परन्तु उस समय 'ठ ठ' दण्डका 'ठ' प्रान्त चुंबकके आकर्षणसे आकृष्ट होता है और इस प्रकार 'ठ' 'द' के संयुक्त होने पर 'ज' ताड़ितकोषसे नवीन और प्रबलतर ताड़ितप्रवाह 'ठ ठ' और 'द' दण्डमें हो कर 'ग ग' की ओर 'ड″' लाइनके तारमें प्रवाहित होता है। और 'ड′' तारमें ताड़ितस्रोत बन्द होते ही 'द' और 'ठ' पृथक् हो जाते हैं और इस कारण 'ड″' तारमें भी ताड़ितप्रवाह बन्द हो जाता है। 'ड′' तारमें जब तक ताड़ितप्रवाह रहता है, तब तक 'ड″' तारमें भी मध्यवर्ती स्टेशनके ताड़ितकोषसे प्रबल ताड़ितस्रोत प्रवाहित होता है; और इसीलिए दूर गमनवशतः प्रवाहकी क्षीणता-जन्य कोई हानि नहीं होती।

यहाँ तक, साधारणतः आजकल जो टेलिग्राफ सर्वत्र प्रचलित है, उसीका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। वर्तमान समयमें इसके सिवा और भी अनेक प्रकारके ताड़ितवार्तावह आविष्कृत हुए हैं और हो रहे हैं; जिनमेंसे कुछ टेलिग्राफोंका विवरण नीचे लिखा जाता है।

Telediagraph वा तसवीरें उतारनेका टेलिग्राफ—टेलिग्राफसे संवाद जाता है और फोटोग्राफसे फोटो उतरती है, यह बात सभी जानते हैं; पर टेलिग्राफसे फोटो उतरती है और फोटोग्राफसे संवाद भेजा जाता हो, यह बात किसीके भी मगज़में न आई होगी। परन्तु विज्ञानने वे असम्भावनीय बातें भी सिद्ध करके दिखा दीं।

टेलिग्राफकी सहायतासे जिस यन्त्रके द्वारा तसवीर उतारी जाती है, उस यन्त्रका नाम Telediagraph है। इसमें खर्च भी अधिक नहीं पड़ता और न इसमें कुछ जटिलता ही है। इसके जरिये विलायतके बहुतसे संवादपत्रों और पुलिस-कर्मचारियोंने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। सैकड़ों मीलकी दूरी पर किसी राज्यमें सहसा कोई विप्लव उपस्थित हो, तो तुरंत ही उसके नेताओंका चित्र प्रकाशित हो कर चारों तरफ फैल जाता है; जनसाधारण आश्चर्यमें डूब कर धन्य धन्य कहने लगते हैं। यह "टेलिडियाग्राफ" क्रमशः व्यवसाय-वाणिज्यका अङ्ग होता जा रहा है।

इसके आविष्कारक मि॰ अर्नेष्ट ए॰ हुमेल (Mr. Ernest A; Hummel, of St. Paul minnesota) हैं।

आप एक घड़ी बनानेवाले कारीगर थे। तरुण अवस्थामें ही आपने इस अद्भुत वस्तुका आविष्कार किया था। आपने पहले पहल १८७५ ई०के मई मासमें इसका मूल्य सत्य रख कर कार्य प्रारम्भ किया था।

इस समय आप अपने मातापितासे मिलनेके लिये जर्मनी गये थे और वहां किसी संवादपत्रमें एक तसवीर देख कर आप इसके आविष्कारके सत्यमें उपनीत हो गये। इसके बाद १८९८ ई०के जनवरी महीनेमें आपने 'New York Herald' आफिसमें इसकी परीक्षा करनी शुरू कर दी। उक्त कार्यालयके दो कमरे आपने अपने लिये खाली करा लिए, जिनमेंसे एकमें टेलिग्राफ़ भेजनेकी मशीन (Transmitter) और दूसरेमें टेलिग्राफ़ लेनेकी मशीन (Receiver) रख कर चित्रोंके आदान-प्रदानके विषयमें परीक्षा करने लगे। पहले पहल आपने आफिसके चारों ओर आठ मील लम्बा तार लगा कर कार्य प्रारम्भ कर दिया और उसमें किन किन चीजोंकी कमी है, उसकी खोज करने लगे।

इस प्रकारसे एक वर्ष खोज करनेके बाद आपने इतनी उन्नति कर ली कि सन् १८९९में, १९ अप्रैलको आपने New York Herald आफिससे Chicago Times Herald, The St. lones Retonlico, The Boston Herald और The Philadelphia Inquirer इन आफिसोंमें फोटो भेजे। एक ही समयमें, एक ही तार-द्वारा एक ही उक्त फोटो आफिसोंमें पहुंचनेसे शीघ्र ही आपकी कीर्त्ति चारों ओर फैल गई।

आचार्य मोर्सने जो टेलिग्राफ चलाया है, उसमें बिन्दु और रेखाका अनुवाद करना पड़ता है, किन्तु हुमेल साहबने ऐसी तरकीब निकाली कि उन्हीं बिन्दु और रेखाओंके द्वारा वहां तसवीर खींच कर तैयार हो जाती है।

टेलिग्राफमें जैसे पृथिवीको एक Conductor बना कर सिर्फ एक तारसे एक (Complete circuit) पूर्ण वेष्टन बनाया जाता है, उसी प्रकार Telediagraph-में भी एक स्थानसे बिन्दु और रेखा भेजी जाती है। यह पहले कानोंसे सुना जाता था। पीछे परीक्षा द्वारा आविष्कृत हुआ कि भेजनेवाली मशीनके जरिये बिन्दु वा रेखा जैसे भी चिह्न भेजे जाते हैं, वे सब ज्योंके त्यों लेनेवाली मशीनके नीचे एक पतला कागज रख देनेसे उसमें भी अङ्कित हो जाते हैं। इसी प्रणाली पर हुमलके आविष्कारका भित्ति प्रतिष्ठित है।

दोनों यन्त्र एक ही प्रणालीसे बने हैं और तार-द्वारा संयुक्त हैं। प्रत्येक यन्त्रमें एक एक cylinder है, जिसकी लम्बाई आठ इञ्च है और घड़ीके पूर्जेके समान एक प्रकारके यन्त्र (Clock work)से, एक ही प्रकारसे घुमाया जा सकता है। प्रत्येक सिलण्डरके ऊपर एक पतला प्लाटीनामका काँटा (Stylns वा needle) है, जिसका आकार टेलिग्राफकी चाबीके अग्रभागके समान है। इसके सिवा तसवीर उतारनेके लिए और भी कई चीजोंकी आवश्यकता होती है। जैसे—८ इञ्च लम्बी और ६ इञ्च चौड़ी एक पत्ती, तथा इसी नापका एक Carbon manifold copying paper (पोष्ट आफिस आदिमें काम आनेवाला निला कागज) इत्यादि।

अब भेजनेकी तरकीब लिखी जाती है। जिसकी तसवीर भेजनी हो, उसका फोटो परसे उक्त टीनकी पत्ती पर उसकी एक तसवीर खींचनी चाहिये; किन्तु तसवीरके चारों ओर एक एक इञ्च स्थान खाली छोड़ देना चाहिये, कलम वा कूँचीसे तसवीर खींचन चाहिए, परन्तु लेख्य-पदार्थ स्याहीकी अपेक्षा घना और non conductor of electricity होना चाहिये। 'सुरसार' से पिघलाया हुआ चपड़ासे स्याहीका काम लिया जा सकता है।

उक्त पत्तीको, जिस पर चपड़ेकी स्याहीसे तसवीर खींची गई है, सिलण्डर पर लपेट कर प्रेरितव्य स्थान पर संवाद भेजनेके साथ ही वहां तसवीर तैयार हो जाती है. उस समय ग्राहक यन्त्रके सिलण्डर पर दो कागज चढ़े रहते हैं। (जिनमें एक 'कारबोन-पेपर होता है) और उनके ऊपर काँटा तथा Stylus लगाया जाता है। जब दोनों स्टेशनोंका प्रवाह (Current) जोड़ा जाता है और दोनों सिलण्डर अपनी अपनी मशीनकी सहायता से, समभावसे घूमने लगते हैं तथा प्रेरक यन्त्रका काँटा जब पत्तीके चपडेके ऊपरसे जाता है, तब चपड़ाके nonconductor होनेसे ग्राहक यन्त्रमें वैद्युतिक प्रवाह न

पहुँचनेके कारण ग्राहक यन्त्रका काँटा कागज पर जोरसे लग कर चिह्न बना देता है। प्रेरक यन्त्रमें जैसी भी तसवीर लगी रहती है, ग्राहक यन्त्रके कागज पर हूबहू वैसे ही चिह्न वा रेखाएँ आदि खींच जाती हैं। पत्तीके जिन स्थानोंमें चपड़ा नहीं रहता, उन स्थानों पर काँटेके लगते ही वैद्युतिक प्रवाह चालित होता है और तत्क्षणात् ग्राहक यन्त्रका काँटा कागजसे अलग हो कर ऊपरको चढ़ जाता है; फिर उस कागज पर किसी तरहका दाग नहीं पड़ता। इस प्रकार सिलण्डर एक बार घूम कर कुछ देर ठहरता है और कुछ बाईं ओर हट कर फिर घूमने लगता है। क्रमशः रेखाओंके पार्श्वमें रेखाये बनती जाती हैं और २० वा ३० मिनटमें एक चित्र बन कर तैयार हो जाता है। इसके बाद कागज खोल कर चित्रकारको दिया जाता है और वह उसे देख भाल कर जहां जो कुछ कमी रह जाती है, उसे सुधार देता है; फिर वह चित्र प्रकाश-योग्य हो जाता है। सिरके बाल पके हों, तो लिख दिया जाता है। उसके अनुसार चित्रकर आलोक और छाया डाल कर उसे सुधार देता है। एक ही मशीनसे उसी समय वही तसवीर भिन्न भिन्न दूरवर्ती स्थानों पर भेजी जा सकती है।

यह स्थिर हो चुका है कि, बिजली एक सेकेण्डमें ४००००० मील दौड़ सकती है। अतएव यह कहा जा सकता है, कि चाहे कितनी भी दूर क्यों न हो इसका भी प्रवाह तत्क्षणात् पहुंच जाता है। फिलहाल इस यन्त्रको "New York Herald"ने अपने ही कब्जेमें रक्खा है।

हिउ साहबका प्रिण्टिङ्ग् टेलिग्राफ (Hughe's printing-telegraph— इसके द्वारा दूरवर्ती स्टेशन पर अंग्रेजी अक्षरोंमें छपा हुआ संवाद पहुंचता है। इसके यन्त्रादि बहुत ही जटिल हैं; इसलिए सुनिपुण कर्मचारी ही इसका व्यवहार कर सकते हैं। फिलहाल इसकी और भी उन्नति हो गई है।

काउपर साहबका राइटिङ्ग् टेलिग्राफ (Cowper's Writing telegraph—इस अद्भुत यन्त्रके द्वारा, एक स्टेशन पर संवाददाता जो कुछ भी लिखेगा, वह तत्क्षणात् दूसरी स्टेशन पर लिख जायगा। इसकी अब काफी तरक्की हो गई है।

सामुद्रिकतार—जो तार समुद्रमें हो कर जाते हैं, वह बहुत मजबूत होते हैं और उस पर नाना प्रकारके अपरिचालक पदार्थ चढ़े रहते हैं। सामुद्रिक तारकी गठन-प्रणाली इस प्रकार है,—पाँच या सात विशुद्ध तांबेके तारोंको एक साथ ऐंठ कर, उसके ऊपर अपरिचालक कोई पदार्थ मढ़ा जाता है; फिर उस पर गुटापार्चा कुचुक आदि पदार्थ ४।५ बार चढ़ाये जाते हैं। अन्तमें उसे लोहेके तार और अलकतरेमें डुबोये हुए सन आदिके द्वारा वेष्टित किया जाता है। इस प्रकारसे मध्यस्थित तारके सुरक्षित हो जाने पर, फिर उसे धूना तारपिन तेल, अलकतरे आदिसे परिपूर्ण उत्तप्त कड़ाहेमें डुबो लिया जाता है।

बे-तारका तार—(Wireless Telegraph) इस टेलिग्राफमें तारकी आवश्यकता नहीं, बिना तारके ही खबर पहुँच जाती है। केवल दोनों स्थानों पर दो विद्युत्यन्त्र होते हैं, जिनकी सहायतासे एक स्थानका संवाद दूसरे स्थान तक बिना तारकी सहायताके ही पहुंच जाता है। विशेष विवरणके लिये "बे-तारका तार" देखो।

ताड़ित वियोजन (सं० क्लो०) ताड़ितस्य वियोजनं ६-तत्। (Electrical repulsion) जो ताड़ित पदार्थोंके गुण द्वारा छोटी वस्तु काँच या लाहसे अलग हो जाय, उसे ताड़ित-वियोजन कहते हैं।

ताड़िताकर्षण (सं० क्लो०) ताड़ितस्य आकर्षणं ६-तत्। (Electrical attraction) वह वस्तु जो ताड़ित पदार्थोंके गुण द्वारा काँच या लाहके साथ मिल जाती है उसे ताड़िताकर्षण कहते हैं।

ताड़ितापरिचालक (सं० पु०) ताड़ितस्य अपरिचालकः ६-तत्। (non-conductor of electricity) वह वस्तु जिससे ताड़ित पदार्थोंका सञ्चालन निवारण किया जाय।

ताड़ितालोक—ताड़ितका आलोक, बिजलीका प्रकाश।

ताड़ी (सं० स्त्री०) ताड़ि ङीष्। ताड़का पेड़। इसका पर्याय—ताड़ि, ताली और तालि है। २ आभरणविशेष, एक प्रकारका गहना।

ताड़ी (हिं० स्त्री०) मादकशक्ति विशिष्ट ताड़का रस, वह नशीला रस जो ताड़के फूलते हुए डंठलोंमेंसे निक

लता है। प्रधानतः ताड़के रसको ताड़ी कहा जाने पर भी ईख, खजूर, नीम, मैरेय, नारियल आदि वृक्षसे जो रस निकलता है, जिसके पीनेसे नशा होता है, उसको भी साधारणतः ताड़ी कहते हैं।

भारतमें ताड़ीका व्यवहार कुछ नया नहीं है। कुलार्णवतन्त्रमें ताड़िकाके नामसे ताड़ीका उल्लेख पाया जाता है। गन्धर्वतन्त्रके १५वें पटलमें इक्षुरस, बदरीरस, जम्बूरस, खर्जूररस, नारिकेल और द्राक्षारससे मादक-द्रव्य बनानेका विधान है। मद्य देखो।

भारतवर्षमें अब भी जगह जगह नशेके लिये ताड़, खजूर, नारियल, मैरेय, आदिकी ताड़ी व्यवहृत होती है। ताड़ीमें मादकताशक्ति होने पर भी, ताड़ी और मद्यमें बहुत पार्थक्य है। स्वभावतः वा कृत्रिम उपायसे ताड़ आदिके वृक्षसे जो रस निकलता है; उसको धूप या तापसे फेनयुक्त करके तेजस्कर किया जाता है, इसीका नाम ताड़ी है और उसे सड़ा चुआ कर जो पानीय बनाया जाता है. उसको मद्य कहते हैं।

भारतमें जिन जिन वृक्षोंसे जैसे जैसे ताड़ी संगृहीत होती है, नीचे उन सबकी प्रणाली लिखी जाती है।

ताड़-वृक्षके ऊर्द्धभागमें जो कच्ची कच्ची पुष्पित शाखा वा फूलते हुए डंठल निकलते हैं, उनके सिरेको अच्छी तरह छील कर रस निकलनेके स्थानमें एक आधारपात्र बाँध दिया जाता है। अकसर करके लोग रोज सुबह उसे खोल कर उसका रस दूसरे पात्रमें ढाल कर ले जाते हैं और पूर्ववत् डंठलोंको छील कर पात्र बाँध देते हैं। इस तरह जब तक उन डंठलोंका मूल तक न कट जांय तब तक वे छीले जाते हैं। साधारणतः आश्विनसे वैसाख मास तक ताड़-वृक्ष काट कर रस निकाला जाता है। भारतमें सर्वत्र ही ताड़से रस निकाला जाता है, जिसमें दाक्षिणात्यमें कुछ अधिक। ताड़ देखो।

अकसर करके पासी लोग रसमें थोड़ीसी पुरानी काञ्जी वा फेनयुक्त ताड़ी मिला देते हैं, जिससे उस रसमें मादकताशक्ति बहुत जल्द बढ़ जाती है।

ताड़का रस वा ताड़ी साधारण लोगोंको नशा करनेका सहज उपाय है। इससे गवर्मेण्टने आबकारीमें हानि होते देख, एक बार बंबई गवर्मेण्टने खजूर और ताड़वृक्षोंको काट डालनेका आदेश दिया था।* उसके अनुसार एक सूरत जिलेमें ही प्रायः लाखसे ज्यादा वृक्ष काटे गये थे। किन्तु रक्तबीजका झाड़ क्या सहजमें निर्मूल हो सकता है? कुछ दिन बाद ही प्रायः पचास हजार वृक्ष फिर पैदा हो गये। कुछ भी हो, अब गवर्मेण्ट ताड़ और खजूरके पेड़को निर्मूल करना नहीं चाहती, बल्कि इससे जो ताड़ी बना कर बेचते हैं, गवर्मेण्ट उनसे कुछ कुछ कर वसूल करती है।

भारत और सिंहलके रोटीवाले प्रायः सर्वत्र ही पांउरोटी बनानेके लिए ताड़ी व्यवहार करते हैं। इससे सिर्का भी बनाते हैं।

भावप्रकाशके मतसे-ताड़का ताजा रस अत्यन्त मादक, खट्टा होने पर पित्तजनक और वायुदोषनाशक है।

खजूर।—देशी खजूर पिण्ड खजूर आदि नाना प्रकारके खजूरवृक्षके डंठलोंको छील काट कर जो रस निकाला जाता है, उससे भी ताड़ी बनती है। खजूररस सूर्योदयसे पहले और प्रातःकालमें खूब मीठा और मादकतारहित रहता है, किन्तु जितना दिन चढ़ता रहता है, उतना ही उसमें झाग बढ़ता और ताड़ी रूपमें परिणत होता रहता है। दिन चढ़े बाद उस फेनयुक्त खजूर रसको पीनेसे नशा होता है।

मैरेय (मरि) (Caryota urens)—इसकी ताड़ी मन्द्राज प्रदेशोंमें अधिक प्रचलित है। इसके १५ से २४ वर्ष तकके पेड़से मन्द्राजी लोग रस निकाला करते हैं। ग्रीष्मऋतुमें ही इससे अधिक रस निकलता है। एक एक पेड़से २४ घण्टेमें एक मनसे भी ज्यादा रस प्राप्त होता है। पेड़को काट देने पर भी एक महीने तक रस निकलता रहता है। ताजा रस खानेमें बहुत मीठा लगता है, किन्तु थोड़ी देर तक रखनेसे उसमें झाग आ जाता है और वह तीव्रमादकताशक्तिविशिष्ट ताड़ीमें परिणत हो जाता है। दक्षिणमें ब्राह्मणके सिवा अन्य जातिके अधिकांश लोग इस ताड़ीको व्यवहारमें लाते हैं। इसको चुआनेसे मैरेय (Gin) बनता है।

नारियल।- जैसे ताड़-वृक्षके फूलते हुए डंठलोंको छील कर उसमेंसे रस निकालते हैं, उसी तरह नारिकेल

---

* Bombay Gazetteer, Vol. 11 p. 36.

वृक्षके अग्रभागको—जहांसे शाखाएँ निकलती हैं उससे नीचेके भागको काट छील कर रस निकाला जाता है। आर्यावर्त्तमें नारियलके पेड़से रस निकालनेकी प्रथा अधिक प्रचलित न होने पर भी दाक्षिणात्यमें यथेष्ट प्रचलित है। बंबई प्रदेशके लोग दो तरहसे नारियलके पेड़की रक्षा करते हैं, एक फल पानेके लिए और दूसरे रसके लिए। जिस पेड़से रस निकाला जाता है, उस समय उस पर फल नहीं लगते हैं। बम्बई प्रदेशमें सानार लोग नारियलका रस निकालते हैं। इसके लिए उन्हें पेड़ पीछे १) से ३) रु० तक कर देना पड़ता है। ताड़ वा खजूर रसकी अपेक्षा नारियलका रस अति शीघ्र ही झाग दे कर ताड़ीरूपमें परिणत हो जाता है। इसलिए जो गुड़ बनाना चाहते हैं, वे ताजा रस ले कर शीघ्र ही आग पर चढ़ा देते हैं। नारियलकी ताड़ी साधारणतः नीरा नामसे प्रसिद्ध है। भारतवर्षके सिवा भारत महासागरीय द्वीपोंमें भी नीरा व्यवहृत होता है।

नारिकेल देखो।

नीम।—किसी किसी निंबवृक्षके काण्डसे भी दो तीन जगहसे रस निकलता है। कोई कोई इस रसको नीमकी ताड़ी कहते हैं। रस निकलनेसे कुछ पहिलेसे ही जहांसे रस निकलेगा, वहाँ एक तरहका चूँ चूँ शब्द होता रहता है। शब्द सुनते ही लोग समझ लेते हैं कि, पेड़में रस हुआ है, शीघ्र निकलेगा, उस समय वहाँ एक पात्र लगा देते हैं। उसमें बहुत थोड़ा बूंद बूंद रस टपकता रहता है। नीमके पेड़से जैसे स्वभावतः रस निकलता है, उसी तरह कृत्रिम उपायसे भी किसी किसी स्थानसे रस निकाला जा सकता है। कृत्रिम उपायसे रस निकालना हो तो पेड़के उस स्थानका—जहांसे शाखाएं निकलती हैं—प्रायः अधा हिस्सा काट कर उसके नीचे पात्र रख देना चाहिये। स्वभावतः जैसा स्वच्छ और वर्णहीन रस निकलता है, कृत्रिम उपायसे वैसा वा उसका एकतृतीयांश रस भी नहीं निकलता। मन्द्राज प्रदेशमें कोई कोई नीमकी ताड़ीसे तेज शराब बना कर पीया करते हैं।

ताड़ल (सं० पु०) ताड़यति तड़ णिच्-उल्। ताड़क, ताड़न करने वाला।

ताड्य (सं० त्रि०) १ ताड़न योग्य, ताड़नेके योग्य। २ डाँटने डपटने लायक। ३ दण्ड्य, सजा देनेके काबिल।

ताड्यमान (सं० त्रि०) तड़-णिच्-शानच्। १ वाद्यमान, जिसपर प्रहार पड़ता हो, जो पीटा जाता हो। २ जो डाँटा जाता हो। (पु०) ३ ढक्का, ढोल।

ताण्ड (सं० क्ली०) तण्डिना मुनिना कृतं अण्। नृत्यशास्त्र।

ताण्डव (सं० क्ली०) तण्डिना मुनिना कृतं ताण्डि नृत्यशास्त्रं तदस्यास्तीति वा तण्डुना नन्दिना प्रोक्तं तण्डु अण्। १ नृत्य, नाच। २ पुरुषका नृत्य। पुरुषोंके नृत्यको ताण्डव और स्त्रियोंके नृत्यको लास्य कहते हैं। यह नृत्य शिवको अत्यन्त प्रिय है, इसी लिये कोई कोई कहते हैं, कि इस नृत्यका प्रवर्तक नन्दी है। किसी किसीके अनुसार तण्डु नामक ऋषिने पहले पहल इसकी शिक्षा दी, इसीसे इसका नाम ताण्डव पड़ा है। ३ उद्धत नृत्य, वह नाच जिसमें बहुत उछल कूद हो। ४ शिवका नृत्य। ५ तृण विशेष एक प्रकारकी घास।

ताण्डवतालिक (सं० पु०) ताण्डवे शिवनृत्यकाले यस्तालः स कार्यतयास्त्यस्येति ठन्। शिवजीके द्वाररक्षक नन्दी।

ताण्डवप्रिय (सं० पु०) ताण्डवं प्रियं यस्य बहुव्री। १ महादेव। (त्रि०) २ नृत्यप्रिय मात्र, जिसको नाच बहुत प्रिय हो।

ताण्डवित (सं० त्रि०) ताण्डव कृतौ क्त कर्मणि क्त। नर्त्तित, नाच किया हुआ।

ताण्डवी (सं० पु०) संगीतमें चौदह तालोंमेंसे एक।

ताण्डि (सं० क्ली) ताण्डेन मुनिना कृतं ताण्ड-इञ्। नृत्यशास्त्र।

ताण्डिन् (सं० पु०) ताण्ड्येन प्रोक्तं अधीयते इति इनि यलोपः। तण्डिमुनिपुत्र ताण्डप्रोक्त शाखाध्यायी, सामवेदकी ताण्ड्य शाखाका अध्ययन करनेवाला। २ यजुर्वेदका एक कल्पसूत्रकार।

ताण्डिन (सं० पु०) ताण्डिन् अण्, इनो न टिलोपः। मुनिभेद, तण्डिमुनिके पुत्रका नाम। इन्होंने यजुर्वेदका कल्पसूत्र प्रणयन किया है। तण्डि देखो।

ताण्डी (सं० स्त्री०) ताण्ड्य स्त्रियाँ ङीष्, यलोपः। तण्डि मुनिकी स्त्रीके वंशज।

ताण्ड्य (सं॰ पु॰) तण्डिमुनेरपत्यं गर्गादि यञ्। १ तण्डि मुनिके वंशज। २ सामवेदके एक ब्राह्मणका नाम।

तात (सं॰ पु॰) तनोति विस्तारयति गोत्रादिकं तन्-क्त दीर्घश्च (युतनिभ्यां दीर्घश्च उण्। ३।९०) अनुदात्तेति तनेर्ण लोपः। १ पिता। २ स्नेहास्पद अल्पवयस्कके प्रति सम्बोधनमें व्यवहृत शब्द, प्यारका एक शब्द या संबोधन जो भाई बन्धु, इष्ट मित्र विशेषतः अपनेसे छोटेके लिये व्यवहृत होता है। ३ अनुकम्पा, दया। (त्रि॰) ४ पूज्य, आदरयोग्य।

तातगु (सं॰ पु॰) तातस्य पितुरिव गौ र्वाचक शब्दो यत्र बहुव्री। १ पितृव्य, चाचा। (त्रि॰) २ जनकहित, पिताकी भलाई करनेवाला।

तातजनयित्री (सं॰ स्त्री॰) तातश्च जनयत्री च। पिता और माता। यह शब्द नित्य द्विवचनान्त है।

ताततुल्य (सं॰ त्रि॰) तातस्य पितुस्तुल्यः ६-तत्। पिताके तुल्य, जो पिताके समान हो। इसका पर्याय—पितृसम, मनोजवस्, मनोजव, पितृसन्निभ और तातल है।

तातन (सं॰ पु॰) तातं प्रशस्तं यथा तथा नृत्यति तात नृत् ड। खञ्जन पक्षी, खिड़रिच।

तातरी (हिं॰ स्त्री॰) एक पेड़का नाम।

तातल (सं॰ पु॰) तातं लाति ला-क पृषो॰ पस्य तः। १ रोग। २ पाक, पक्वता। ३ लौहकूट, लोहेका काँटा। ४ पितृतुल्य सम्बन्धी। ५ मनोजव, मनके समान जिसका वेग हो, अतिवेगवान्। (त्रि॰) ६ तप्तमात्र, गरम।

ताता (जमशेदजी)—भारतवर्षके गौरव-स्वरूप एक प्रधान वणिक्। इन्होंने हमारे देशके व्यवसाय-वाणिज्यमें देशीयोंकी प्रतिष्ठा स्थापित की है। आज, इनके द्वारा स्थापित जमशेदपुरका लोहेका कारखाना देख कर पृथिवीके प्रायः सभी व्यवसायी आश्चर्य करते हैं।

१८३९ ई॰में बड़ौदा राज्यके अन्तर्गत नाभ्सारीमें इनका जन्म हुआ था। जिस समय मुसलमानोंके अत्याचारोंसे घबड़ा कर पारसी लोग भारतमें आये थे, उस समय नाभसारी पारसी-समाजका एक प्रधान केन्द्र हो गया था। जमशेदजी ताताने पारसी जातिमें ही जन्म लिया था। बाल्यावस्थामें जमशेदजीने नाभ्सारीमें ही प्रारम्भिक शिक्षा पाई थी और वहीं धर्मग्रन्थोंका पढ़ना सीखा था। उस समय ये शिकार खेलना बहुत पसन्द करते थे। अङ्क शास्त्रमें इन्होंने विशेष व्युत्पत्ति लाभ की थी। इसके बाद १८५२ ई॰में ये उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिए बम्बई भेजे गये; उस वक्त इनकी उमर १० वर्षकी थी।

बम्बई पहुँच कर ताताने मानो नयी दुनियामें पैर रक्खा। वहां चारों ओर ताता जातिके लोग नाना कार्योंमें मशगूल थे; नयी नयी चिन्ताओं और नये नये कार्यों की विचित्र धारा प्रवाहित हो रही थी। जमशेदजी बम्बई आ कर एलफिन्स्टन स्कूलमें भरती हुए। १८५८ ई॰में इनका विद्याभ्यास समाप्त हुआ। छात्र-जीवनमें ये विशेष कोई कृतित्व नहीं दिखा सके थे।

जमशेदजीके पिता एक मामूली रोजगार करते थे। चीनदेशके साथ उनका वाणिज्य चलता था। ताता कालेजसे निकल कर पिताके साथ व्यवसायमें लग गये। अफीमका रोजगार उस समय पारसियोंके हाथमें ही था; अन्य लोग इस व्यवसाय को कम समझते थे। विशेषतः उस समय चीनमें चीजोंकी आमदनी रफ्तनीका विशेष सुभीता न था। ताताने पिताके पास रह कर कुछ काम सीखा और फिर वे होङ्कोङ् भेजे गये वहां अफीमके रोजगारको इन्होंने भली भांति सीख लिया, जिससे इनकी वाणिज्य-बुद्धि खुल गई।

इसके कुछ दिन बाद ही, अमेरिकामें अन्तर्विप्लव होनेके कारण वहाँसे रुईकी रफ्तनी बन्द हो गई, फिर क्या था; बम्बई नगर रुईके व्यवसायका केन्द्र हो गया। ताता कम्पनीने प्रसिद्ध प्रेमचन्द रायचन्दके साथ मिल कर रुईका व्यवसाय प्रारम्भ कर दिया। ताता लन्दन जा कर रुईके व्यवसाय पर्यवेक्षण करने लगे। १८६५ ई॰में अमेरिकाका युद्ध सहसा समाप्त हो गया, जिससे ताताको कुछ क्षतिग्रस्त होना पड़ा। लन्दनमें जमशेदजीने जो रुई बेचनेके लिए शाखाएँ खोली थीं, उन्हें बेच कर वे भारत लौट आये। बम्बईमें जो उनका कारोबार था, वह किसी तरह कायम रहा।

ताताकम्पनी धीरे धीरे इस क्षतिकी पूर्तिके लिए

कोशिश करने लगे। इसके कुछ दिन बाद ही अबिसिनियाके राजा फिओडरके साथ भारत गवर्मेण्टका युद्ध शुरू हो गया। अन्यान्य कम्पनियोंके साथ साथ ताता कम्पनीको भी सैनिकोंको रसद पहुचानेका ठेका मिल गया। इस ठेकेमें ताताको कुछ फायदा हुआ था। इसके बाद जमशेदजीने कुछ हिस्सेदारोंके साझेमें एक तेलकी मिल खरीद ली, पीछे वह कपड़ेकी मिल बना दी गई इस मिलमें सूत भी बनता था। उन दिनों उस प्रान्तमें कुछ ७। ८ मिलें थीं; इस लिए उन्हें खूब लाभ होने लगा। इस मौके पर केशोजी नायक नामके एक दलालने बहुत ज्यादा कीमत दे कर उनसे मिल खरीद ली। थोड़े दिनकी अभिज्ञतासे ताता समझ गये, कि बम्बईमें कपड़ेकी मिल खोल कर खूब लाभ उठाया जा सकता है। उन्होंने स्वयं एक मिल चलानेका निश्चय किया, परन्तु अच्छी तरह बिना समझे वे किसी काममें हाथ न डालते थे इस लिए उन्होंने पहले इंग्लैण्ड को मिलोंकी कार्य-प्रणाली देख आना आवश्यकीय समझा। तदनुसार ये बम्बईसे मैनचेष्टरकी तरफ चल दिये।

इंग्लैण्डसे लौट आनेके बाद ताता विचारने लगे, कि भारतमें किस जगह कपड़ेकी मिल खोलनेसे विशेष सफलता प्राप्त हो सकती है। अन्तमें, नागपुरमें मिल खोलनेका निश्चय किया। ताताका यह अभिमत था, कि जिस प्रान्तमें खूब रुई पैदा होती हो, वहीं कपड़ेकी मिल खोलनी चाहिए। नागपुरमें रेल-लाईन होनेके कारण माल भेजने वा मंगानेमें भी किसी तरहकी अड़चन न पड़ती थी।

१८७६ ई०में मिल बन कर तैयार हुई और १८७७ ई०को १ ली जनवरीको वह चालू हो गई। इस दिन महारानी विक्टोरिया भारतकी सम्राज्ञी हुई थीं; इस लिए ताताने अपनी मिलका नाम रक्खा 'एम्प्रेस् मिल'। पहले पहले मिलके चलानेमें इन्हें बड़ी दिक्कतें झेलनी पड़ी थीं, परन्तु उनके मैनेजर बिजनजी दादाभाई बहुत योग्य और समझदार व्यक्ति थे; इसलिए धीरे धीरे सब दिक्कतें दूर हो गईं।

"एम्प्रेस मिल" स्थापित करनेके बाद, ताता उसे अच्छी तरह चलानेकी व्यवस्था करने लगे। इस व्यवस्था विधानसे इनकी प्रतिभाका परिचय मिला। ये चिर-प्रचलित रीतिका अन्ध-अनुसरण करना पसन्द न करते थे। इन्होंने पृथिवीके नाना सभ्यदेशोंमें परिभ्रमण कर वहांकी मिलोंकी क्रिया-पद्धतिका पर्यवेक्षण करके जो कुछ सीखा था, उसे भारतमें प्रचलित करनेकी पूरी चेष्टा की थी। सबसे पहले इन्होंने देखा, कि मिलको अच्छी तरह चलानेके लिए उसकी मशीन बहुत अच्छी होनी चाहिए। इसलिए उन्होंने पुरानी चीजोंके बदले बहुतसी नई चीजें खरीदीं। जिन मशीनोंसे थोड़े समयमें बहुत माल तैयार हो सके, ऐसी मशीनें मंगाईं। हमारे देशमें उस समय ऐसी अच्छी मशीनें नहीं थीं। मिल-वाले अपेक्षाकृत कम कीमतकी मशीनोंसे काम चलाते थे। आखिर ताताके दृष्टान्तका अनुसरण कर अन्य मिल-वालोंने भी अच्छी मशीनें मंगा लीं। इसके बाद, अच्छी मशीनोंसे बने हुए अच्छे मालोंकी खपत किस स्थानसे हो सकती है, इस बातका पता लगानेके लिए ताताने चारों तरफ आदमी भेजे। स्थान ठीक होने पर, वहां किस तरह कम खर्चमें माल पहुँचे, इस बातका बन्दोबस्त करने लगे। इसके सिवा आपने मिलके पास ही कपासकी खेतीका इन्तजाम किया और अन्यान्य स्थानोंसे भी किफायतसे रुई मंगानेका बन्दोवस्त किया। ताता इस बातको जानते थे कि मिलको अच्छी तरह चलानेके लिए छोटी-बड़ी सभी बातोंमें पूरा पूरा ध्यान दिया जाता है।

इस प्रकारकी कोशिशसे कुछ ही वर्षोंमें मिल बड़े जोरशोरसे चलने लगी—लाभ भी काफी होने लगा। कर्मचारियोंको उत्साहित करनेके लिए ताताने कुछ पुरस्कार भी नियत किये और वार्षिक-लाभमेंसे उन्हें कुछ अंश भी देना प्रारम्भ कर दिया। इससे कर्मचारीगण मिलकी उन्नतिके लिए जी तोड़ कर परिश्रम करने लगे। जो कर्मचारी काम करते करते विकलाङ्ग वा वृद्ध हो जाते थे, उन्हें पेन्शन भी दे दी जाती थी। इसके अलावा कर्मचारियोंको और भी बहुतसे आराम थे। इसलिए वे अन्य मिलोंमें न जाते थे।

'एम्प्रेस मिल' में, ताताने उस समय शिक्षानवीश रख कर काम सिखानेका बन्दोवस्त किया था। शिक्षित

युवकोंको वे अच्छे वेतन पर नियुक्त करके उन्हें काम सिखाते थे और फिर उनमेंसे अच्छे आदमियोंको चुन कर उन्हें मिलका काम देते थे। इस तरह बहुतसे युवकोंको आपकी मिलमें काम मिला करता था और बहुतसे व्यवसाय सीख कर देशकी समृद्धि वृद्धि करते थे।

उक्त मिलको दश वर्ष तक चलानेके बाद, ताताने विचारा कि अब इस देशमें अच्छी चीजोंके बनानेका समय आया है, इसलिए ऐसी मशीनें मंगानी चाहिए जिनसे खूब महीन धोती बन सकें। इसके लिए आपने दूसरी मिल खोलनेका निश्चय किया। भाग्यसे उस समय 'धरमसी मिल'का नीलाम हो रहा था, ताताने १२॥ लाख दे कर उसे खरीद लिया। 'धरमसी मिल' उस जमानेमें सबसे बड़ी मिल थी। पचास लाख रुपये लगा कर मिल फिरसे चलाई गई। लोगोंने समझा ताताने बहुत सस्ते दामोंमें मिल ले ली; किन्तु वह उनका कोरा भ्रम था। इस मिलमें ताता पूरे ठगाये गये थे। मिलके कल-पूर्जे बिलकुल रद्दी थे, जिनकी मरम्मत कराते कराते दश वर्ष बीत गये। दश वर्ष बाद मिल चालू हुई। इसमें ताताको प्रचुर अर्थ व्यय करना पड़ा था। परन्तु रुपयोंकी अपेक्षा ताताके धैर्यका ही अधिक प्रयोजन था। 'धरमसी मिल' को फिर चलाना ताताके जीवनकी एक अक्षय कीर्ति है। आपके अध्यवसायको देख कर लोग चकित हो गये थे। दूसरा मिल-वाला होता तो कभीका बेच कर छुट्टी करता। परन्तु ताता हटनेवाले न थे। दश वर्षकी अक्लान्त चेष्टाके बाद उन्होंने असम्भवको सम्भव कर दिखाया। वही टूटी धरमसी मिल अब लाभके रुपये घरमें लाने लगी। इस मिलका आपने नाम रक्खा "स्वदेशी मिल"। अब भी "स्वदेशी मिल" अच्छी अवस्थामें चल रही है।

ताताकी दोनों मिलें अच्छी तरहसे चलने लगीं। पर तो भी उन्हें सन्तोष न हुआ। वे उन्नतिके नये नये मार्गोंके आविष्कार करनेमें सर्वदा व्यस्त रहते थे। उन्होंने देखा, भारतमें कपासकी खेती जिस ढंगसे की जाती है, वह अच्छी नहीं है। मिश्रमें आप कपासकी खेती देख आये थे। आपने सोचा, भारतके लोग भी शिक्षाप्राप्त होने पर वैसा उपाय अवलम्बन करेंगे। इस पर आपने एक छोटीसी पुस्तक भी लिखी, किन्तु उस समय आपकी बात पर किसीने भी ध्यान न दिया। परन्तु इस समय गवर्मेण्ट तक ताता कम्पनीकी रुईके विषयमें आप्त (Authority) मानती है।

इस समय विलायती जहाजवालोंने बम्बईके मालका भाड़ा बहुत ही ज्यादा कर दिया। मिलके मालिकोंको यह व्यवहार बहुत ही बुरा लगा, पर वे कुछ कर न सके। आखिर ताता जापान गये और वहांकी जहाज-कम्पनीसे बन्दोबस्त कर आये। बम्बई लौट कर आपने तमाम मिल-वालोंका एक संगठन किया, जिसमें सबने जापानी जहाजमें माल भेजनेके लिए अङ्गीकारपत्र लिख दिया। विलायती कम्पनियाँ ताताकी कार्रवाई देख कर हंसी उड़ाने लगीं। कुछ दिन बाद उनकी हँसीने विषादका रूप धारण किया। सब जहाजवालोंका रोजगार मिट्टी हो गया। परिणाम यह हुआ कि दोनोंमें प्रतिद्वन्द्विता होने लगी। पहले जिस चीजका महसूल १३) रु०से १८) रु० तक था, उसका अब २) रु० मात्र रह गया। पी० एण्ड ओ० कम्पनीने १) ही रुपया महसूल कर दिया। दोनों दलोंमें भीषण संग्राम चलने लगा। ताताने सबको समझाया कि "सावधान रहना, लोभमें आ कर कोई अङ्गीकारपत्रको भङ्ग न करना। याद रखना, जापानी कम्पनी यदि एक बार भी परास्त हो गई, तो फिर विलायती कम्पनियोंके फन्देमें पड़ना पड़ेगा।" परन्तु मानता कौन था-लोभ बुरी बला थी। बहुतसे व्यापारियोंने अङ्गीकारपत्रकी शर्त तोड़ दी। परन्तु विलायती कम्पनियोंको भी खूब शिक्षा मिल गई। उन्होंने फिर भाड़ा बढ़ानेका नाम भी न लिया, बल्कि पहलेसे कुछ कम ही रक्खा।

ताताने अन्यान्य धनिकोंकी तरह धनको ही जीवनका ध्रुवतारा न बनाया था। उनके जीवनमें सुख वा विलासिताके लिए तनिक भी स्थान न था। तात्पर्य यह, कि ताता धनका सद्व्यवहार करना जानते थे। आप अर्थ द्वारा किस तरह देशका हित हो, सर्वदा इसी चिन्तामें रहते थे। साधारण मनुष्योंकी तरह आपका जीवन निरर्थक नहीं था। कुछ कामोंकी कल्पना तो आपके मनमें सर्वदा जाग्रत रहती थी और उन कामोंकी

सम्पन्न करनेके लिए आप सर्वदा सचेष्ट रहते थे। दोनों मिलोंको कम्पनीके हाथ सौंप कर जब आप निश्चिन्त हुए, तब आपने अपना मन दूसरी तरफ लगाया।

भारतके प्रतिभावान् छात्र जिससे विलायत जा कर आधुनिक वैज्ञानिक प्रणालीसे शिक्षा प्राप्त कर सकें, इसके लिए आपने दो छात्रवृत्तियाँ स्थापित कीं। (१८९२ ई०) पहले आपने ये वृत्तियाँ सिर्फ पारसी छात्रोंके लिए ही नियुक्त की थीं, किन्तु दो वर्ष बाद ही यह नियम उठा दिया गया। अब भारतका हर एक योग्य छात्र इस वृत्तिको प्राप्त कर विलायत जा सकता है। इस वृत्तिसे आज तक ३८ छात्र विलायतसे पढ़ कर आये हैं, जिनमें २३ छात्र पारसी हैं। विलायतसे लौट आनेके बाद यह रुपया मय ब्याजके वापस कर देना पड़ता है। ब्याज उसकी आमदनीके अनुसार लगाई जाती है।

ताताके जीवनका और एक उद्देश्य था, एक वैज्ञानिक गवेषणागारकी स्थापना करना। ताता इस बातको भली भाँति जानते थे कि विज्ञान ही सर्व प्रकार शिल्प वाणिज्यकी उन्नतिका मूल है। इसी खयालसे उन्होंने सबसे पहले एक शिक्षित व्यक्तिको यूरोप और अमेरिका भेज कर आवश्यकीय संवादोंका संग्रह किया और अनेक विशेषज्ञोंके साथ इस विषयकी आलोचना एवं परामर्श किया। इसके बाद आप, भारतवर्षमें कैसा विज्ञानागार होना चाहिये, सम्प्रति उसमें किस किस विषयकी शिक्षा दी जानी चाहिए इत्यादि विषयोंका अनुसन्धान करने लगे। अन्तमें निर्णय हुआ, कि तीन लाख रुपयेका फण्ड हो जानेसे उसका तमाम खर्च निर्वाह हो सकता है और उसमेंसे जो बाकी रुपये बचेंगे, उसकी ब्याजसे उसका वार्षिक खर्च चल सकता है।

१८९८ ई०में जब लार्ड कर्जन बम्बई पधारे, तब इस विज्ञानशालाकी बात कही गई। १८९९ ई०में तीन बार विवेचना करनेके बाद गवर्नमेण्टने इस विज्ञानागारके खोलनेकी अनुमति दे दी। बैंगलोरमें इसकी नींव खुदी। महिसुरके विद्योत्साही महाराज बहादुर तथा गवर्मेण्टने इसके प्रतिष्ठानमें यथेष्ट सहायता की। परन्तु अत्यन्त दुःखका विषय है, कि ताता इस कालेजको अपने सामने चलते न देख सके। १९१० ई०में इस विज्ञान-मन्दिरका उद्घाटन हुआ। इसका नाम रक्खा गया "The Indian Institute of Research" अर्थात् भारतीय गवेषणा-समिति। इस विज्ञानमन्दिरमें निम्नलिखित तीन विषयोंकी शिक्षा दी जाती है,—

(१) विज्ञान और शिल्पविज्ञान।
(२) आयुर्वेद
(३) दर्शन और शिक्षा।

इस विज्ञान-मन्दिरसे संलग्न पुस्तकागार, जादूघर और वैज्ञानिक परीक्षागार भी हैं।

ताताके अन्यान्य कार्योंसे भले ही सब परिचित न हों, पर उनके प्रसिद्ध लोहेके कारखानेके विषयमें सभी जानकारी रखते हैं। यह कारखाना उनकी अक्षय कीर्ति है और भारतवर्षमें एक अभिनव उद्योग है। हमारे देशमें बहुत प्राचीनकालसे लोहेका व्यवहार होता आया है। परन्तु वर्तमान वैज्ञानिक प्रणालीसे लोहा बनानेकी प्रथा यहाँ प्रचलित न थी। सम्भव है, किसी जमानेमें वैज्ञानिक उपायसे यहाँ भी लोहा, इस्पात आदि बनता था, किन्तु अन्यान्य विद्याओंकी तरह यह विद्या भी इस देशसे लुप्त हो चुकी थी। ताताकी बहुत दिनोंसे इच्छा थी, कि आधुनिक वैज्ञानिक उपायसे भारतमें भी लोहा बनानेकी चेष्टा होनी चाहिए। सुना जाता है, पहले भारतमें अच्छा लोहा ज्यादा नहीं मिलता था। अतएव अब यहाँ एक लोहेका कारखाना खुलना चाहिये, इस उद्देश्यसे भूतत्त्वविदोंने धीरे धीरे लोहेकी खान और पहाड़ोंका अनुसन्धान करना शुरू कर दिया। ताता इनकी नये नये आविष्कारोंकी खोज रखते थे। बहुत अर्थ व्यय करके आपने भी भूतत्त्वविदोंको नियुक्त किया और उनसे लोहेकी खानोंकी खोज कराने लगे। अनुसन्धानसे मालूम हुआ कि भारतमें बहुत लोहा है और यहाँ अनायास ही लोहेका कारखाना खोला जा सकता है। करीब तीस वर्षके अनुसन्धान और प्रयत्नके फलस्वरूप मध्यप्रदेशमें कारखानेके लायक एक जमीन पाई गयी। उस स्थानका नाम है साकची। यह हवड़ासे १५५ मीलकी दूरी पर तातानगर (पहले इसका नाम 'कालीमट्टी' था)-स्टेशनके पास ही है। तातानगर उतर कर

साकचीको जाते हैं; ष्टेशनसे दो मील चलना पड़ता है।

परन्तु खेद है कि ताता इस कारखानेको तैयार न देख सके। १९०४ ई०में आपकी मृत्यु हो गई। उस समय कारखानेका काम चालू नहीं हुआ था। हां, उनके दोनों सुपुत्रोंने पिताके प्रयत्नको व्यर्थ नहीं जाने दिया; पुत्रोंने उनके सभी उद्योगोंको सार्थक कर दिखाया है।

ताताको बगीचेका बड़ा शौक था। उन्होंने देश देशके पौधे ला कर अपने बागमें लगाये थे। धनिक होने पर भी आप बड़े मितव्ययी और मद्यपानके बड़े विरोधी थे। मद्य-प्रचारको रोकनेवाले नेताओंको आप काफ़ी आर्थिक सहायता दिया करते थे।

राजनीतिक विषयोंमें साधारणतः आप किसी प्रकारका मन्तव्य जाहिर नहीं करते थे। इस विषयमें चुपचाप काम करते रहना ही आप युक्तिसङ्गत समझते थे।

६५ वर्षकी अवस्थामें ताताकी मृत्यु हुई थी। मृत्युके कई मास पहले आपको हृद्-रोग हुआ था। डाक्टरों और हितैषियोंकी सलाहसे, १९०४ ई०के जनवरी मासमें चिकित्साके लिये आप यूरोप गये थे। इसी साल मार्चके महीनेमें आपकी स्त्रीका देहान्त हो गया। १९वीं मई को जर्मनीके नाहिम शहरमें आपकी भी मानवलीला समाप्त हो गई। मृत्युके समय आपके पुत्र दोराब ताता और ज्ञाति-भाई रतन ताता आपके पास थे।

आप नामके भूखे न थे। काम करना ही आपके जीवनका उद्देश्य था। आप चाहते तो बहुतसी उपाधियोंसे विभूषित हो सकते थे; किन्तु ऐसा विचार आपके हृदयमें कभी नहीं हुआ। परन्तु 'ताता-कम्पनी" आपके नामको अमर बनाये रक्खेगी, इसमें सन्देह नहीं।

'ताता-कम्पनी' और उसका कारखाना–जमशेदजी ताताके उद्योगसे १९०५ ई०में इस कम्पनीकी प्रतिष्ठा हुई और १९०७ ई०में इसका कार्य आरम्भ हुआ था।

गत युद्धके समय इस कम्पनी वा कारखानाने नाना प्रकारसे गवर्मेण्टको माल दे कर सहायता पहुंचाई है। इसके लिये भारतके गवर्नर-जनरल स्वयं जाकर कम्पनीको धन्यवाद दे आये हैं।

ताता-कम्पनीकी कार्यावली अत्यन्त चमत्कार है। इस कम्पनीने अपने प्रतिष्ठाताके नामानुसार (उनके स्मरणार्थ) शहरका नाम जमशेदपुर कर दिया है। जमशेदपुर अच्छा शहर है, यहांके मकानात, बाजार, थाना, चिकित्सालय, विद्यालय आदि सब ताता द्वारा प्रतिष्ठित हैं। तातानगर देखो।

इस कम्पनीके अधीन चिकित्सा और स्वास्थ्य-विभाग है। शिक्षा-विस्तारके लिये कम्पनीने चार विद्यालय खोल रक्खे हैं। कम्पनीके कर्मचारियोंके आमोद-प्रमोदके लिए भी अच्छा इन्तजाम है। यहाँ दो इन्स्टिटिउट और उनके साथ दो लाइब्रेरियां हैं। हर एक कर्मचारी शुल्क दे कर उसका सदस्य बन सकता है। इसके सिवा मद्राजी, बङ्गाली और मारवाड़ियोंके भिन्न नाट्य-समाज हैं।

ताताके कारखानेमें एक बृहत् विद्युतागार है। जिसे 'पावर-हाउस' (Power House) कहते हैं। भारतवर्षमें इतने बड़े विद्युतागार बहुत कम हैं। इसके भीतर इतना भीषण शब्द होता है, कि प्रवेश करनेसे कान बहरे-से हो जाते हैं। तमाम कारखानेका काम इसी विद्युतागार पर निर्भर है। कारखानेके भीतर सर्वत्र रेल-लाइन हैं; भारी चीजें रेल पर लाद कर एक जगहसे दूसरी जगह पहुंचाई जाती हैं। खींचनेके लिए एञ्जिन भी बहुतसे हैं। ये सब कम्पनीकी सम्पत्तियां हैं। कारखानेमें सर्वत्र बिजली-बत्ती और टेलिफोनका प्रबन्ध है। कर्मचारियोंकी पिपासा-निवृत्तिके लिए बर्फ और सोडा-वाटरका भी इन्तजाम है; इसके लिए उन्हें पैसे नहीं देने पड़ते।

ताताका लोहेका कारखाना बहुत उत्कृष्ट समझा जाता है। इसका माल अमेरिका, जापान, चीन, अष्ट्रेलिया, न्यूजिलैण्ड, फ्रान्स, अफरीका और इटलीको जाता है। पृथिवीके प्रायः सभी बड़े बड़े नगरोंमें ताताके कार्यालय (आफिस) हैं। भारतमें अन्यत्र कहीं भी ऐसा लोहेका कारखाना नहीं है।

ताता-कम्पनीकी और एक अक्षय कीर्ति—'हाइड्रो इलेक्ट्रिक पावर सप्लाइ कम्पनी' है। यह पृथिवीमें एक उल्लेखयोग्य वैज्ञानिक व्यापार है। १९११ ई० में लार्ड

सोडेनहमके हाथसे पश्चिम-घाटके लोनड्ना नामक स्थान में इसकी स्थापना हुई थी। यहां पानीको रोक कर ह्रद बनाया गया है। यहाँ चेरापुञ्जीसे भी ज्यादा वर्षा होती है। पृथिवी भरमें चेरापुञ्जीमें ही सबसे अधिक वर्षा होती है, ऐसा हमें मालूम है। परन्तु यहां ३१ दिनमें जितनी वर्षा होती है, चेरापुञ्जीमें उतनी वर्षा ४१५ मासमें होती है। इस ह्रदका पानी खण्डाला उपत्यकासे खापोलीमें १७४० फुट नीचे जा कर गिरता है। इस जल-प्रवाहसे बिजली उत्पन्न होती है और वह बिजली ताँबेके तारके भीतरसे बम्बई पहुंचती है। इस 'पावर-हाउस'की शक्ति १००००० घोड़ेके बराबर है, पृथिवी भरमें इसका द्वितीय स्थान है।

ताताथेई (हिं० स्त्री०) १ नृत्यमें एक प्रकारका बोल। २ नाचनेमें पैरके गिरने आदिका अनुकरण शब्द।

तातानगर (जमशेदपुर)-बिहार-उड़ीसा-प्रदेशके अन्तर्गत सिंहभूम जिलेका एक नगर। यह बङ्गाल-नागपुर रेलवे लाइन पर हबड़ेसे १५५ मील पश्चिम तथा जमशेदपुर रेलवे-स्टेशनसे तीन मील उत्तरमें अवस्थित है। यहाँ ताताका बहुत विस्तीर्ण कारखाना है। आजसे लगभग १५ वर्ष पहले यहां घोर जङ्गल था। रात-दिन बाघ-भालू और चीते आदि वन्य पशु क्रीड़ा क्रिया करते थे। इस स्थानका नाम पहले "साकची" था। गत महायुद्धमें ताता-कम्पनीने लोहा-इस्पात आदि दे कर सरकारकी सहायता की थी। उसीके पुरस्कारमें भारतके भूतपूर्व वायसराय लार्ड चेम्सफोर्डने इसका नाम, स्वर्गीय देशभक्त श्रीमान् जमशेदजी नसरवानजी ताताकी स्मृति-रक्षाके लिये, 'साकची' नामसे 'जमशेदपुर' और रेलवे-ष्टेशनका 'कालीमाटी'से 'तातानगर' कर दिया। ताता देखो।

जो स्थान पहले घनघोर जङ्गलसे परिपूर्ण था, आज वही नए ढङ्गका लक्ष्मीका लीलास्थल-स्वरूप एक सुन्दर नगरमें परिणत हो गया है। लोकसंख्या प्राय: ८० हजार है। यहांका दृश्य देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रकृति-माता इस नवजात नगरशिशुको अपनी गोदमें खेला रही है। इसके पश्चिममें खड़खाई नामकी नदी और कारखानेसे लगभग १½ मील उत्तरमें स्वर्णरेखा नामकी नदी बहती है। खड़खाई नदीको पार करनेमें यथेष्ट सुविधा नहीं, वरन् खतरेका खौफ है। उस पारके निवासी मजदूर वर्षा ऋतुमें रेलवे-पुल द्वारा, जो इस पर बना हुआ है, नदी पार करते हैं। सुवर्णरेखाका दृश्य बहुत मनोरम है। इसके दोनों तट पर हरे भरे वृक्ष हैं, जिनसे इसकी नैसर्गिक शोभा बहुत बढ़ गई है।

यह नगर गत तीन चार वर्षोंसे जिलेका एक सब-डिवीजन बन गया है। पम्प-हाउस (Pump House) के निकट नदीकी धारा एक पक्के बाँधसे बाँध दी गई है। जब नदीमें अधिक जल होता है, तब इस बाँधके ऊपरसे निकल जाता है। बाँधके पश्चिम ओर जल जमा रहता है और वही जल बिजलीकी शक्तिसे खींच कर ४८ इञ्च व्यासवाले नल (Pipe) द्वारा, कारखानेके पास एक सुबृहत् तालाबमें पहुंचाया जाता है। शहरमें दो जल-भण्डार (Water Reservoirs) हैं, एक कदमामें और दूसरा नगरके उत्तरी भाग (Northern Town) में। नगरके भिन्न भिन्न विभाग L. Town, G. Town, H. Town, आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। नगरमें जितनी सड़कें गई हैं, सभी पक्की हैं और जिनके दोनों बगलमें अच्छे अच्छे पौधे लगे हुए हैं। दृश्य दर्शनीय है।

यहाँका जल-वायु साधारणत: उत्तम तथा शुष्क है। यहां प्रत्येक ऋतु अपना-अपना पूरा प्रभाव दिखाती है। कारखानेमें हजारों टन कोयला प्रतिदिन स्वाहा होता है और कारखाने भी दिनोंदिन बढ़ रहे हैं। इन कारणोंसे जल-वायुमें कुछ दोष अवश्य आने लगे हैं। यहां दातव्य चिकित्सालय, मिसेज पेरिन-मेमोरियल हाई स्कूल (Mrs. Perin Memorial High School) मिडिल स्कूल, बालिका स्कूल, टेकनिकल इंस्टीटयूट (Technical Institute) रात्रि-औद्योगिक विद्यालय (Night Technical School) हैं। बिहार-उड़ीसा प्रान्तमें जितने हाई-स्कूल हैं, उनमेंसे यही एक ऐसा स्कूल है जिसमें विज्ञान (Science) की शिक्षाका भी प्रबन्ध है, इसके सिवा स्वर्गीय लोकमान्य तिलक महाराजका स्मारक-स्वरूप एक पुस्तकालय है।

यहांका नगर-प्रबन्ध प्रशंसनीय है। कम्पनी इस कार्यके लिये भी जी खोल कर व्यय करती है। नगर प्रबन्धके लिए बोर्ड आफ वर्क्स (Board of works) नामकी एक संस्था है। यह ठीक म्युनिसिपालिटी सी है। दिनों दिन शहरकी उन्नति हो रही है।

विशेष विवरण ताता शब्दमें देखो।

तातार (फा० पु०) मध्य एशियाकी उच्चप्रदेश-वासी एक जाति। ये मुगल-शाखाके अन्तर्गत हैं। भारत, चीन और फारसके उत्तरमें, जापानके पश्चिममें, कास्पियन सागर और कृष्णसागरके पूर्वमें तथा हिमानी महासागरके दक्षिणमें जितने विस्तीर्ण भूभाग हैं, वहांके अधिवासी यूरोपियोंके निकट तातार नामसे परिचित हैं। पहले केवल मुगलजाति ही तातार नामसे प्रसिद्ध थी, लेकिन जङ्गिसखाँके अभ्युदयके बाद मुगल शासनाधीन समस्त जाति ही तातार कहलाने लगी है। इस समय मध्य एशियास्थ मुगल शासनाधीन भूभाग तातारी तथा उनकी भाषा भी, तातारी नामसे मशहूर हो गई है। अभी हिमालयके सीमान्तवर्ती तिब्बतके भोट, यारकन्द, खुतन और बुखारीके तुर्क तथा चीनकी माञ्चु जातिके लोग अपनेको तातारवंशके बतलाते हैं।

बहुतोंके मतसे तातार जाति तुर्क, मुगल और माञ्चु प्रधानतः इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं।

काश्मीरके उत्तर लद्दाख प्रदेशमें भी अनेक तातारोंका वास है। तातार जातिके परिवारमें प्रति व्यक्तिका द्वितीय पुत्र लामा तथा तृतीय पुत्र टोलाका पद पाता है, ये दोनों विवाह नहीं कर सकते, आजीवन ब्रह्मचर्य अवलम्बन पूर्वक रहते हैं।

पूर्व समयमें किम्ब्रिया, केल्ट और गलजातिने यूरोपके उत्तरी भाग पर अधिकार किया था, वे भी तातार देश होते हुए वहां गये थे। गथ, हूण, सुइदिस्, भान्दाल और फ्राङ्क जाति भी इसी तातारवंशकी हैं।

तातारी भाषा बोलनेमें दो भाव प्रकट होते हैं। एशियाकी भ्रमणशील हूण जाति जो भाषा व्यवहार करती है, वह एक है। यह तुराणीय नामसे भी प्रसिद्ध है। फिर मध्य एशियामें जिस भाषाके साथ तुरुष्क भाषाका अधिक सादृश्य देखा जाता है, उसे भी तातारी कहते हैं।

२ मध्य एशियाका एक देश। हिन्दुस्तान और फारसके उत्तर कास्पियन सागरसे ले कर चीनके उत्तर प्रान्त तक तातार देश कहलाता है।

तातारी (फा० वि०) १ तातार देश सम्बन्धी, तातार देशका। (पु०) १ तातार देशका निवासी।

ताति (सं० पु०) ताय-क्तिच्। १ पुत्र, बेटा। ताय भावे क्तिन्। (स्त्री) २ वृद्धि, उन्नति, तरक्की।

तातील (अ० स्त्री०) छुट्टीका दिन, छुट्टी।

तात्कालिक (सं० त्रि०) तस्मिन् काले भवः तत्काल-ठञ्। आपदादिपूर्वपदात् कालान्तात्। पा ४।२।११६, अस्य सूत्रस्य वार्त्तिकोक्त्या ठञ्। तत्कालीन, उसी समयका।

महागुरु निपातमें बारह दिनका अशौच होता है। किन्तु ग्यारहवें दिन अशौच होते भी श्राद्धादि कार्य किये जाते हैं, उस समय अर्थात् श्राद्धकालीन कर्त्ताकी तात्कालिक शुद्धि हुआ करती है।

तात्काल्य (सं० क्ली०) तत्कालता, वह जो उसी समयका हो।

तात्पर्य (सं० क्ली०) तत्परस्य भावः तत्पर ष्यञ्। १ वक्ताकी इच्छा, वह भाव जो किसी वाक्यको कह कर कहनेवाला प्रकट करना चाहता हो। २ अभिप्राय। ३ तत्परता।

"आकांक्षा वक्तुरिच्छा तु तात्पर्य्यं परिकीर्त्तितं।" (भाषाप०)

वक्ताकी इच्छा ही आकाङ्क्षा है और वही तात्पर्य है। इसी तात्पर्यके अनुसार अर्थ मालूम हुआ करता है। एक उदाहरणसे ही इसका अर्थ स्पष्ट हो जायगा। 'गंगायां घोषः' इस वाक्यका अर्थ गङ्गाके किनारे घोष (अहीर) वास करता है, तात्पर्यके अनुसार ही इस तरहका अर्थ लगाया गया है। यदि तात्पर्य स्वीकार न किया जाय, तो गङ्गामें मछली इत्यादिका रहना सम्भव है। "गङ्गायां" अर्थात् गङ्गाके किनारे ऐसा अर्थ लक्षणाशक्तिके द्वारा प्रकाशित होता है, किन्तु "गङ्गायां" इस पदसे गङ्गामें और "घोष" पदमें मत्स्यादिकी लक्षणा नहीं हो सकती, अर्थात् "गङ्गायां घोषः" ऐसा कहनेसे गङ्गामें मछली इत्यादि रहती है, ऐसा अर्थ हो ही नहीं सकता; क्योंकि यहां पर बोलनेवालेका ऐसा अभिप्राय नहीं है। गङ्गाके किनारे घोष (अहीर) वास करता है, यही बोलनेवालेका

प्रकृत अभिप्राय है। इस तरहके अभिप्रायका नाम ही तात्पर्य है। इसी तरह सब जगह वक्ताके तात्पर्यानुसार ही अर्थ लगाया जाता है और दूसरा उदाहरण लीजिये, जैसे 'काशी गङ्गा पर बसी है' इस वाक्यका शब्दार्थ काशी गङ्गाके जलके ऊपर बसी है, ऐसा होगा। लेकिन कहनेवालेका तात्पर्य यह है कि काशी गङ्गाके किनारे बसी है।

तात्पर्यक (सं॰ त्रि॰) १ भावोद्दीपक, अर्थबोधक। २ तत्पर, उद्यत, मुस्तैद।

तात्य (सं॰ त्रि॰) तद् छान्दसत्व: दकारस्य आत्वं। तत्कालीन, उसी समयका।

तात्विक (सं॰ त्रि॰) १ तत्त्वसम्बन्धी। २ तत्त्वज्ञानयुक्त। ३ यथार्थ।

तात्स्तोम्य (सं॰ क्ली॰) उसी तरहकी स्तुति।

तात्स्थ (सं॰ क्ली॰) उसमें स्थित, उसमें रक्खा हुआ।

तात्स्थ्य (सं॰ पु॰) १ किसीके बीचमें रहनेका भाव। २ एक व्यञ्जनात्मक उपाधि। इसमें जिस वस्तुका कहना होता है, उस वस्तुमें रहनेवाली वस्तुका ग्रहण होता है। यथा—यदि कहा जाय कि 'सारा घर गया है' तो इसका 'घरके सब लोग गए हैं' इसके सिवा दूसरा अर्थ नहीं हो सकता।

ताथाभाव्य (सं॰ त्रि॰) स्वरितके परे जिसका उदात्त उच्चारण हो।

ताथेई (हिं॰ स्त्री॰) तताथेई देखो।

तादर्थिक (सं॰ त्रि॰) उसी तरह।

तादर्थ्य (सं॰ क्ली॰) तदर्थस्य भाव: तदर्थ-ष्यञ्। गुणवचनब्राह्मणादिभ्य: कर्मणि च। पा ५।१२८। १ तन्निमित्त, उसके लिये। २ तदर्थता, उसके वास्ते।

तादात्म्य (सं॰ क्ली॰) तदात्मनो भाव: तदात्मन्-ष्यञ्। तत्स्वरूपता, एक वस्तुका मिल कर दूसरी वस्तुके रूपमें हो जाना।

तादाद (अ॰ स्त्री) संख्या, गिनती, शुमार।

तादीला (अव्य॰) तदानीं पृषो॰ साधु:। तदानीं, उसी समय।

तादुरी (सं॰ स्त्री॰) मेंढ़कका एक नाम।

तादृक्ष (सं॰ त्रि॰) स इव दृश्यते तद् दृश्-क्स, सर्वनाम टेरात्वं। उसी तरह, उसीके जैसा।

तादृग्विध (सं॰ त्रि॰) ता-दृशी विधा यस्य बहुव्री॰। उसी तरह।

तादृश् (सं॰ त्रि॰) स इव दृश्यतेऽसौ तद्-दृश-क्विन्। त्यादादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च। पा ३।२।६०। सर्वनाम टेरात्वं। उसीके समान, वैसा।

तादृश (सं॰ त्रि॰) स इव दृश्यते तद्-दृश-कञ्। तत्तुल्य, उसीके जैसा।

तादृशी (सं॰ स्त्री॰) तादृश-ङीष्। तत्तुल्या, उसीके समान, वैसी।

ताद्धर्म्य (सं॰ क्ली॰) एकधर्म, एक नियमता।

ताधा (हिं॰ स्त्री॰) तताथेई देखो।

तान (सं॰ पु॰) तन-घञ्। १ विस्तार, फैलाव, खींच। २ ज्ञानका विषय। ३ गानाङ्गभेद, गानेका एक अङ्ग। अनुलोम विलोम गतिसे गमन और मूर्च्छनादि द्वारा किसी रागको अच्छी तरहसे खींचनेका नाम तान है। सङ्गीतदामोदरके मतसे स्वरोंसे उत्पन्न तान ४९ हैं। इन ४९ तानोंसे भी ८३०० कूट तानें निकली हैं।

किन्तु बङ्गला सङ्गीतरत्नाकरमें तानके चार भेद लिखे हैं; यथा—अरचक, घातक, सातक, और सुरातक। जिस तानमें अनुलोम या विलोममें एक सुर दो बार प्रयुक्त होता हो उसे अरचक कहते हैं। जिसमें अनुलोममें एक बार और विलोममें एक बार प्रयुक्त होता है, वह घातक है; तीन बार व्यवहृत होनेसे सातक और चार बार व्यवहृत होनेसे सुरातक कहलाती है।

एक सुरमें	१ तान।
दो सुरमें	२ तान।
तीन सुरमें	६ तान।
चार सुरमें	२४ तान।
पांच सुरमें	१२० तान।
छः सुरमें	७२० तान।
सात सुरमें	५०४० तान।
समग्र	५९१३ तान।

(संगीतरत्ना॰)

४ कम्बलका ताना। ५ भाटेका हलड़ा, लहर, तरङ्ग।

६ पलङ्ग या हौदेमें मजबूतीके लिए लगाई जानेकी लोहेकी छड़। ७ एक पेड़का नाम।

तानतरङ्ग (सं० स्त्री०) अलापचारी, लयकी लहर।

तानतरङ्ग—हिन्दीके एक अच्छे कवि। इनकी प्रायः सभी कविताएँ सराहनीय हैं; उदाहरणार्थ एक नीचे दी जाती है—

"अब हो डारि देरे इंडुरिया कन्हैया मेरे पचरंग पाटकी।
हाहा खाति तेरे पइयां परति हौं
यह लालच मोहि मथुरानगर हाटकी॥
मेरे संगकी दूर निकस गई हो कीनी इह घाटकी।
तानतरंग प्रभु झगरो ठान्यो हँसत लुगाई बाटकी।"

तानना (हिं० क्रि०) १ जोरसे खींचना, बढ़ाना। २ बलपूर्वक विस्तीर्ण करना, जोरसे बढ़ा कर पसारना। 'तानना' और 'खींचना'में फर्क इतना ही है, कि ताननेमें वस्तुका स्थान नहीं बदलता, लेकिन 'खींचना' किसी वस्तुको इस प्रकार बढ़ानेको भी कहते हैं, जिसमें वह अपना स्थान बदलती है। जैसे, खूँटेसे बंधी हुईको तानना, गाड़ी खींचना, पङ्खा खींचना। ३ छाजनकी तरह ऊपर किसी प्रकारका परदा लगाना। ४ कारागार भेजना। ५ किसीके विरुद्ध कोई चिट्ठी-पत्री या दरखास्त आदि भेजना। ६ किसी पदार्थको एक ऊँचे स्थानसे दूसरे ऊँचे स्थान तक ले जाकर बांधना। ७ प्रहारके लिये अस्त्र उठाना।

तानपूरा (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा जो सितारके आकारका होता है। यह गायककी सुर बाँधनेमें बड़ा सहायता देता है। इसमें चार तार होते हैं जिनमेंसे दो लोहेके और दो पीतलके रहते हैं। सुरबांधनेका क्रम-

पि	लो	लो	पि
से	स	स	प

तानव (सं० क्ली०) तनोर्भावः तनु-अण्। इगन्ताच्च लघुपूर्वात्। पा ५।१।१३१। शरीरकी तनुता, शरीरकी दुर्बलता।

तानवर—हिन्दीके एक अच्छे कवि। इनकी सारी कविताएँ उत्कृष्ट, सानुप्रास और जोरदार होती थीं। यों तो ये अनेक कविताएँ बना गये हैं, पर यहाँ एक ही उद्धृत की जाती है—

"धर्मसों नीच पाप, पापसों नीच क्रोध, क्रोधसों नीच लोभ
लोभसों नीच मोहमद, मदसों नीच मत्सर कहाइया।
स्वर्गसों नीच मृत्युलोक, मृत्युलोकमें नीच दुष्ट
शिरतें नीच पांव, राजसों नीच प्रजा पाइया॥
ब्राह्मणसों नीच क्षत्री, क्षत्रीसों नीच वैश्य, वैश्यसों नीच शूद्र
धनीसों नीच निर्धन, वेदसों नीच शास्त्र भाइया॥
देवसों नीच राक्षस, समुद्रसों नीच नदीनद कहत
कवि तानवर सगुनीसों नीच निरगुनी पाइया॥"

तानवरस—हिन्दीके एक कवि। इनकी कविता सरल तथा प्रशंसनीय होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"देवनमें प्रथम ब्रह्म मासनमें प्रथम वैसाख कार्तिक
रितुनमें प्रथम वसन्त दिवसमें प्रथम आदितसो कीजिये।
वेदमें प्रथम सामवेद पुराण प्रथम श्रीभागवत
शास्त्र प्रथम व्याकरण रागमें प्रथम भैरव सो लिख लीजिये॥
सुर प्रथम खरज द्वीप प्रथम जम्बूद्वीप नक्षत्र प्रथम अश्वनी
रास प्रथम मेष कहि दीजिये॥
फल प्रथम अरथ गुण प्रथम रजोगुण तत्त्व प्रथम आकाश
कहत कवि तानवरस सुधा प्रथम पीजिये॥"

तानव्य (सं० पु० स्त्री०) तनोरपत्यं गर्गादित्वात् यञ्। तनुके वंशज।

तानव्यायनी (सं० स्त्री०) तनोरपत्यं स्त्री तनु लोहितादित्वात् ष्फ, षित्वात् ङीष्। तनुजकी वंशज स्त्री।

तानसेन—भारतवर्षके एक अद्वितीय गायक। अबुलफजलका कहना है कि, हजार वर्षके भीतर ऐसे गायक देखनेमें नहीं आये। पहले ये एक कट्टर हिन्दू थे। वृन्दावनमें जा कर हरिदास गोस्वामीके शिष्य बने थे। भाटके बघेलाराज रामचन्द्रने इनके सङ्गीतगुण पर मुग्ध हो कर इनको अपनी सभामें रक्खा था। प्रवाद है कि उन्होंने तानसेनके गायन पर खुश हो कर इनको करीब एक करोड़ रुपये दिये थे।

तानसेनकी ख्याति बहुत थोड़े समयमें ही भारत भरमें फैल गई थी। इस समय इब्राहिम सूरने इनको आगरे बुलानेके लिए बहुत कोशिश की थी, पर वे बुला नहीं सके थे। बादशाह अकबर भी तानसेनकी अपूर्व सङ्गीत-शक्तिका परिचय पा कर इनको दिल्ली बुलानेके

लिये व्यग्र हुए। उन्होंने तानसेनको आगरे ले आनेके लिये जलाल उद्दीनकुर्चीको भेजा। राजा रामचन्द्रको अकबरको आज्ञा उल्लङ्घन करनेका साहस न हुआ। उन्होंने रोते रोते तानसेनको विदा किया। तानसेनने जिस दिन पहले पहल दरबारमें उपस्थित हो कर गाना सुनाया, उसी दिन बादशाहने उनको दो लाख रुपये इनाममें दिये।

प्रवाद इस प्रकार है—पहले तानसेन दिल्लीश्वरके साथ मुलाकात नहीं करना चाहते थे। उनके पास पहुंचने पर भी ये कुछ गाते नहीं थे। बादशाह प्रायः छिप कर इनका गाना सुना करते थे। आखिर एक दिन अकबरने तानसेनके पास अपनी लड़की भेज दी। बादशाहजादीके रूपने तानसेनको मोहित कर लिया। शाहजादी भी तानसेन पर लट्टू हो गई। अकबरने दोनोंका विवाह कर दिया। तबसे तानसेन मुसलमान और अकबरके सभासद हो गये। पहले ये स्व-रचित जितने भी गीत गाते थे, उसमें उनके प्रतिपालक रामचन्द्रके नामका स्वस्तिप्रकाश वा भनिता होता था। उन गीतोंको सहज-दृष्टिसे देखनेसे मालूम होता है कि उनमें रघुपति रामचन्द्रकी महिमा गायी गई है। परन्तु अकबरके आश्रित होनेके बाद ये भनितामें अकबर वा 'तानसेनपति अकबर' का नाम देते थे।

तानसेन एक सङ्गीतसाधक व्यक्ति थे। साधकका भाव उनके हृदयसे कभी भी दूरीभूत नहीं हुआ। ये वेदान्तिक भावसे ब्रह्मको जगत्के साथ एकाकार समझते थे। योंतो इनके बनाए हुए अनेक गीत मिलते हैं, पर यहां केवल एक ही गीत उद्धृत किया जाता है—

"प्यारे! तुही ब्रह्म तुही विष्णु तुही शेष तुही महेश।
तुही आदि तुही अनादि तुही अनाथ तुही गणेश॥
जल स्थल मरुत व्योम तुही अकार तुही सोम।
तुही उकार तुही मकार निरोङ्कार तुही धनेश।
तुही वेद तुही पुराण तुही हदीश तुही कुरान,
तुही ध्यान तुही ज्ञान तुही त्रिभुवनेश।
तानसेन कहे बैन तुही देन तुही रमण।
तुही धर पलथुन तुही वरुण तुही दिनेश॥"

मुसलमान-धर्ममें दीक्षित होनेके बाद ये मियाँ तानसेनके नामसे प्रसिद्ध हुए थे।

तानसेनकी मृत्युके विषयमें भी एक अपूर्व उपाख्यान सुननेमें आता है। तानसेन अकबरके अत्यन्त प्रियपात्र हो गये थे, इसलिए बहुतसे लोग उनसे ईर्षा करते थे। बहुतसे उस्ताद सङ्गीत-संग्राममें परास्त हो कर उनको मारनेका षड़यन्त्र कर रहे थे। परन्तु उसमें वे कृतकार्य न हो सके। इसके बाद उन लोगोंने निश्चय किया कि, दीपक राग गानेसे गायक जल जाता है, इसलिए तानसेनसे दीपक राग गवानेसे ही हम लोगोंकी अभीष्टसिद्धि हो सकती है। एक दिन अकबर जब दरबारमें पहुंचे, तब उस्तादोंने दीपकका प्रसङ्ग छेड़ा। बादशाहने उन लोगोंसे दीपक गानेके लिए अनुरोध किया। उस्तादोंने कहा—'हम लोग दीपक नहीं जानते, दीपक गाना तो मियां तानसेन ही जानते हैं।' अकबरने तानसेनको दीपक गानेके लिए आदेश दिया। गायकचूड़ामणि तानसेनने बादशाहके पास आ कर कहा—"यदि आप मुझे चाहते हैं, तो दीपक गानेका आदेश न दें।" किन्तु दीपक सुननेके लिए बादशाहका कुतूहल बहुत बढ़ गया था। उन्होंने तानसेनकी बात पर ध्यान न दिया। तब तानसेन क्या करते? उन्होंने अपनी कन्याको मल्लार गानेके लिए कहा और खुद दीपक गाने लगे। उनका विश्वास था कि, मल्लारके गुणसे दीपकानल कुछ प्रशमित होगा। तानसेनकी कन्या मल्लार गाने लगी, किन्तु पिताके मरनेकी आशङ्कासे उसका स्वर विकृत हो गया।* तानसेन भी दीपक राग गाते गाते अपने ही दाहनसे आप दग्ध हो गये। कहा जाता है कि, उनके स्वरके प्रभावसे सभास्थ निर्वापित दीप उठे थे। किन्तु उनके जीवन-प्रदीपके साथ साथ वह दीपावली भी निर्वापित हो गई थी।

तानसेनकी कब्र उन्हीके आदिलीलाक्षेत्र ग्वालियरमें स्थापित हुई। अब भी वहाँ इनकी कब्र देखनेके लिये बहुत दूर दूरसे नर्तकी और गायक आया करते हैं। इनकी कब्रके ऊपर एक वृक्ष अब भी मौजूद है। बहुतोंका विश्वास है कि, उस वृक्षकी पत्ती खानेसे क स्वर परिष्कार और गीतशक्तिकी वृद्धि होती है। इसलिए बहुतसे गायक और नर्तकी वहां जा कर उसकी पत्तियां चबाते हैं। ग्वालियर देखो।

---

* इस विकृत मल्लारका ही मियां मल्लार नाम पड़ गया है।

तानसेन सिर्फ एक अद्वितीय गायक हो थे, ऐसा नहीं; वे बहुतसी नवीन नवीन राग-रागिणी भी बना गये हैं। आशावरी, जोगिया और दरबारी-कनाड़ा ये राग इन्हीके चलाये हुए हैं। आइन-इ अकबरी और 'पादशा-नामा'में यथाक्रमसे तानतरङ्ग और विलास नामक इनके दो पुत्रोंका उल्लेख पाया जाता है। दोनों भी प्रसिद्ध गायक थे। प्रसिद्ध गायक सूरतसेन इन्हींके वंशधर थे। इनके वंशज प्यारसेनने कानूनयन्त्रका संस्कार किया था।

तानसेनके शिष्य भी प्रसिद्ध गायक हो गये हैं, जिनमें चाँदखाँ और सूरजखाँका नाम हो प्रसिद्ध है।

ताना (हिं० पु०) १ कपड़ेकी बुनावटमें वह सूत जो लम्बाईके बल होता है। २ दरी या कालीन बुननेका करघा।

ताना (हिं० क्रि०) १ तप्त करना, तपाना, गरम करना। २ पिघलाना। ३ गरम कर परीक्षा करना। ४ परीक्षा-करना, जाँचना।

ताना (अ० पु०) आक्षेप वाक्य, व्यंग्य, बोली ठोली।

ताना बाना (हिं० पु०) कपड़ेकी बुनावटमें लम्बाई और चौड़ाईके बल फैलाए हुए सूत।

तानारीरी (हिं० स्त्री०) साधारण गाना, आलाप, राग।

तानाशाह (फा० पु०) अब्बुलहसन बादशाहका दूसरा नाम।

तानी (हिं० स्त्री०) कपड़ेकी बुनावटमें वह सूत जो लम्बाईके बल हो।

तानीयक (सं० पु०) यावनाल वृक्ष, भुट्टेका पौधा।

तानुकी—एक प्रसिद्ध अरबी कवि। इनका दूसरा नाम अबूल-आला था। ये तानूक वंशके थे। इनकी बनाई हुई कविताएँ प्रशंसनीय हैं।

तानूनपात (सं० त्रि०) अग्नि सम्बन्धीय।

तानूनप्त्र (सं० क्ली०) तनूनप्ता देवता अस्य अण्। वायुके लिये दिया जानेवाला दधि मिश्रित घृत, वह दही मिला हुआ घी जो वायुको चढ़ाया जाता है।

तानूर (सं० पु०) तन बाहुलकात् उरण्। जलावर्त्त, पानीका भँवर। २ वायुका भँवर। ३ बहुवारवृक्ष, बहु-आर लसोरा।

तान्त (सं० त्रि०) तम-क्त। १ म्लान, बिलकुल सूखा हुआ। २ क्लान्त, थका हुआ।

तान्तव (सं० क्ली०) तन्तोर्विकारः अञ्। १ वस्त्र, कपड़ा। (त्रि०) २ तन्तुनिर्मित, जिसमें तन्तु वा तार हो, जिसमेंसे तार वा तन्तु निकल सके।

तान्तवता (सं० स्त्री०) तान्तव-तल् टाप्। कठिन द्रव्यका विशेष धर्म। जिस गुणके रहनेसे कुछ पदार्थोंको खींच कर तन्तु अर्थात् तार बनाया जा सकता है, उसका नाम तान्तवता है। आघातसहित गुणके साथ तान्तवता गुणका कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

जिससे पतली पत्ती बनती है, उसीसे पतला तार बनता होगा ऐसा कोई नियम नहीं। लोहेका तार जैसा बारीक होती है. पत्ती उतनी बारीक नहीं होती। रांगा और सीसेकी पीट कर अच्छी पत्ती बनाई जा सकती है, पर उनकी खींच कर तार नहीं बनाया जा सकता। प्लाटिनम्, चांदी, तांबा, सोना, जस्ता रांगा, सीसा इनमेंसे पूर्ववर्त्ती धातुओंकी अपेक्षा परवर्त्ती धातुओंमें क्रमशः यह गुण थोड़ा पाया जाता है। वस्तुतः प्लाटिनम् अर्थात् सित-काञ्चन नामक धातुमें तान्तवता गुण सबसे ज्यादा है। किसी किसीने इसका इतना बारीक तार बनाया है कि जिसका व्यास एक इञ्चके एक लाख भागमें तीन भाग मात्र है।

तान्तव्य (सं० पु० स्त्री०) तन्तोः सन्तानस्य अपत्यं गर्गा यञ्। तन्तुका अपत्य, जुलाहेकी सन्तान।

तान्तव्यायनी (सं० स्त्री०) तन्तोरपत्यं स्त्री ष्फ षित्वात् ङीष्। तन्तुकी अपत्य स्त्री।

तान्तुवायि (सं० पु० स्त्री०) तन्तुवायस्य अपत्यं तन्तुवाय-इञ्। तन्तुवायका अपत्य, ताँतीका वंशज।

तान्तुवाय्य (सं० पु० स्त्री०) तन्तुवायस्य अपत्यं तन्तुवाय-ण्य। सेनान्तलक्षणकारिभ्यश्च। पा ४।१।१५२। तन्तुवायके अपत्य; ताँतीके वंशज।

तान्त्र (सं० क्ली०) १ तन्त्रविशिष्ट, वह जिसमें तार लगे हों। २ तन्त्रशास्त्र सम्बन्धीय।

तान्त्रिक (सं० त्रि०) तन्त्रं सिद्धान्तमधीते वेद वा तन्त्र-उक्थादित्वात् ठक्। १ ज्ञातसिद्धान्त, जो सिद्धान्त जानता हो। २ शास्त्राभिज्ञ, जो शास्त्र जानता हो।

३ तन्त्रशास्त्रवेत्ता, जो तन्त्र-शास्त्र जानता हो। मारण, मोहन, उच्चाटन आदिका प्रयोग करनेवाला। ४ तन्त्र सम्बन्धी। (पु०) ५ सन्निपात-रोगविशेष, एक प्रकारका सन्निपात, जिस सन्निपातमें अत्यन्त उँघाई और उससे अधिक प्यास लगती हो, अतिसार, अत्यन्त श्वास, कास, गात्र वेदना हो शरीर अधिक गरम और गला सूख जाता हो, नाकका अगला भाग शीतल हो जाता हो, जीभमें काली पड़ जाती हो, थकावट मालूम पड़ती हो तथा श्रवण-शक्तिका ह्रास और दाह उत्पन्न होता हो उसे तान्त्रिक सन्निपात कहते हैं।

तान्त्रिकी (सं० स्त्री०) तान्त्रिक-ङीप्। १ तन्त्र-सम्बन्धीया। श्रुतिप्रमाणक धर्म दो प्रकारका है, वैदिक और तान्त्रिक। तन्त्र देखो।

तान्दन (सं० पु०) वायु, हवा।

तान्दूर (सं० क्ली०) तन्दुरेण पाकयन्त्रभेदेन निर्वृत्तं अण्। तन्दुरपक्व-मांसभेद, अङ्गारसे परिपूर्ण गड्ढेमें अलग अलग शुद्ध मांससे आच्छादन कर उसे तन्दुर-यन्त्र-द्वारा पाक करनेसे तान्दुर मांस प्रस्तुत होता है।

तान्व (सं० पु०) तन्वाः प्राणाधिष्ठितत्वात् प्राणवत्या अयं अञ्, संज्ञा पूर्वकविधेरनित्यत्वात् वेदे न गुणः। १ तनुज, पुत्र, बेटा। २ ऋषिभेद, तनु नामक ऋषिके वंशज। तनु दशा पवित्रवस्त्रं तस्येदं अण्। ३ दशा-पवित्र-वस्त्र-सम्बन्धी स्वार्थे अण्। ४ दशावस्त्र।

तान्वङ्ग (सं० पु०) तन्वङ्ग ऋषिके वंशज।

ताप (सं० पु०) तप-घञ्। १ क्लेशजनक उष्णादि स्पर्श-जन्य सन्ताप। २ कृच्छ्र, दुःख। ३ उष्णता, आँच, लपट। ४ ज्वर, बुखार। ५ यातना, मानसिक कष्ट, हृदयका दुःख। ६ आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख। दुःख देखो।

ताप (Heat)—प्रकृति-कार्यमें सामञ्जस्य-स्थापनके लिए विशेष उपयोगी एक प्राकृतिक शक्ति, जिसका प्रभाव पदार्थोंके पिघलने, भाप बनने आदि व्यापारोंमें पड़ता है, उष्णता, गरमी, तेज। इसके द्वारा आंधी-तूफान आदि सैकड़ों आश्चर्यजनक भयानक घटनाएं होती हैं। इसके न होनेसे विशेष परीक्षाके द्वारा रसायनशास्त्रकी आलोचना नहीं की जा सकती। यथार्थमें ताप, पदार्थोंके संश्लेषण, विश्लेषण अवस्थान्तर वा रूपान्तर-प्राप्ति आदि क्रियाओंका एक प्रधानतम साधक है।

ऐसी कोई रासायनिक क्रिया नहीं, जिसमें तापका विनियोग, उद्भव या लोप नहीं होता हो। इसके मूल-तत्व और यथायोग्य विनियोग-प्रणालीको भलीभाँति जान लेनेसे संसारमें सैकड़ों अद्भुत और महोपकारी कार्योंका सम्पादन किया जा सकता है। वाष्पीय-शकट, वाष्पीय-यान (रेल, जहाज) और तापमानयन्त्र आदि इसीके निदर्शन-स्वरूप हैं। क्या प्राणि-राज्य और क्या जड़-राज्य-तापकी महोपकारिता सर्वत्र ही विशेषतासे देखनेमें आती है।

तापके न होनेसे प्राणियों और उद्भिजोंका जन्म, परिवर्द्धन और पचन कुछ भी न होता। ताप विशेष उपकारी है, किन्तु इसका लक्षण क्या है? ताप अदृश्य है; प्रदीपको जलता देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि वह उत्तप्त है। ताप भारविहीन है; किसी वस्तुका शीतकालमें जितना भार है, ग्रीष्मकालमें भी उतना ही भार रहता है। ताप-द्वारा भारमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। फिर भी उसकी सत्ताकी उपलब्धि होती है। वह सत्ता स्पर्शग्राह्य और प्रक्रमानुमेय है। ताप जब किसी पदार्थसे संक्रामित होता है, तब पदार्थ उसे शोषण करता है. और उससे उसका अवस्थान्तर या रूपान्तर होता है। उस समय तापका प्रक्रम देखा जा सकता है और उसी समय विस्तारण, तरलीकरण और वाष्पीकरण प्रभृति क्रियाओंकी उपलब्धि होती है।

ताप समस्त पदार्थों अल्प वा अधिक मात्रामें वर्तमान रहता है। यहाँ तक कि तुषारपिण्ड जो अत्यन्त शीतल है उसमें भी ताप है। कारण तापमानयन्त्र-द्वारा यह निर्द्धारित हो चुका है कि शीतप्रधान देशोंका तुषार ग्रीष्मकालमें जितना रहता है, शीतकालमें उसकी अपेक्षा अधिक शीतल हो जाता है।

तापकी गति सीधी रेखाके रूपमें और आलोककी तरह एक वस्तुसे दूसरी वस्तुमें प्रतिफलित एवं संक्रामित होता है। कोई कोई पदार्थ इसे आत्मसात् वा शोषित करते हैं, किसी किसी वस्तु-द्वारा यह प्रतिफलित भी होता है और किसी किसी वस्तु-द्वारा परिचालित प्रा

रित और विकीरित होता है। सभी स्थलोंमें ताप प्रत्यक्षग्राह्य और परिमेय है। कई पदार्थ तापका शोषण करते हैं, किन्तु उत्तप्त नहीं होते अथवा उनका उत्तप्त होना देखनेमें नहीं आता। ऐसे स्थलोंमें ताप गूढ़, अनिन्द्रियग्राह्य वा अनुमित-ग्राह्य कहलाता है।

अतएव ताप दो प्रकारका है—प्रत्यक्षग्राह्य (Sensible) और अनुमितग्राह्य (latent)

तापका लक्षण—जिसके किसी वस्तुमें रहनेसे वह वस्तु उष्ण मालूम पड़े, उसीका नाम ताप है।

तापकी प्रकृति (Nature of heat)—अनेक विज्ञानविद् विद्वान् इस विषयमें नाना प्रकारके मत प्रकाशित कर गये हैं, किन्तु उन सबमें एक भी सर्वाङ्ग सुन्दर रूपसे गृहीत नहीं हो सका। किन्तु यह स्थिर है कि ताप, आलोक और तड़िल्, ये तीनों एक पदार्थ हैं—एक ही पदार्थके रूपान्तर मात्र हैं।

इन तीनोंका उपादान पदार्थ इथर (Ether) है जो अणुओंके परस्पर अवान्तर प्रदेशमें परिव्याप्त हो कर अवस्थान करता है।

प्राचीन विद्वानोंका कहना है कि, जिसका उष्णस्पर्श है, उसका नाम तेज है। पुरातन यूरोपीय विद्वान् इसे एक प्रकारका अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ समझते थे; किन्तु नये विद्वानोंका मत है कि ताप कोई स्वतन्त्र वा भिन्न पदार्थ नहीं है।

उन्होंने प्रमाणित किया है कि जड़ात्मक अणुओंका कम्पन ही ताप है। उनके मतसे जड़ पदार्थोंके परमाणु-समूह इथर या आकाश नामक एक प्रकारके विश्वव्यापी सूक्ष्म पदार्थसे परिवेष्टित हैं, उन्हींके आन्दोलनसे (जड़ द्रव्योंके समस्त अणु आन्दोलित होनेसे) ताप उत्पन्न होता है।

कुछ भी हो, तापके विषयमें यही दो प्रधान मत प्रचलित हैं, जिनमें शेषोक्त मत ही सर्वत्र परिगृहीत हुआ है।

१—ताप एक सूक्ष्मतम तरल पदार्थ इथर (Ether) है। यह सब जगह और समस्त वस्तुओंके सहयोगमें अवस्थान करने एवं प्रयोजनवश पुनः उन सबसे अलग हो जानेमें समर्थ है। इस प्रकार सहयोग और विच्छेदसे तापकी प्रसारण पृथक् आदि क्रियाएँ लक्षित कर सकती हैं।

२—ताप अणुओंके कम्पनसे उत्पन्न होता है। जिस समय किसी पदार्थके समस्त अणु कम्पित होते रहते हैं, उस समय उसे स्पर्श करनेसे वह कम्पन हमारी नसोंमें आकर आघात करती है और इसीसे हमें उष्ण-स्पर्शानुभव होता है; वह कम्पन सिर्फ शुद्ध अणुओंमें ही अवस्थान करता हो, ऐसा नहीं, वह समस्त अणुओंके अवान्तर प्रदेशस्थित इथरमें भी विद्यमान रहती है। यही (शेषोक्त) मत इस समय विशेष युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है। कारण इस संसारमें जो कुछ पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, यथार्थमें वे सभी अनवच्छिन्न गतिशील हैं।

वस्तुतः यथार्थ स्थिति किसीकी भी नहीं है; यह स्थितिशील है, ऐसा किसीके विषयमें नहीं कहा जा सकता। तो भी वह गति किसी किसी स्थलमें प्रत्यक्ष और किसी किसी स्थलमें अनुमित होती है। वह गति भी बलका अन्यरूप मात्र है। वही बल फिर आत्मगत वा अन्यलभ्य हो सकता है। कुछ भी हो, उस गति वा बलसे ताप उत्पन्न होता है। पदार्थोंके परस्पर सङ्घर्षणसे तापकी उत्पत्ति होती है। जिन अणुओंसे वह पदार्थ बना है, उनके चलने वा परस्पर सङ्घर्षणसे तापकी उत्पत्ति होती है। आघात करनेसे वस्तुमें उष्णता आ जाती है; अतः जितना अधिक बल प्रयोग किया जायगा, उतना ही अधिक ताप उत्पन्न होगा। वाष्पीय शकट या वाष्पीय यान इसके निदर्शनस्वरूप हैं। जब वही ताप अवस्थान्तरको प्राप्त होता है, अर्थात् जब उसे पुनः किसी प्रकारकी गतिसमुत्पादनमें प्रवृत्त किया जाता है, तब वह तिरोहित हो जाता है।

तापके उत्पत्ति-स्थान (Sources of heat)—यहां तापके उत्पत्ति-स्थानका वर्णन किया जाता है। जितने तापप्रभव पदार्थ हैं, उनमें सूर्य एक प्रधानतम है। सूर्यका ताप पृथ्वी पर पड़ता है एवं उसके सम्पूर्ण कार्य वहाँ दिखाई देते हैं। ग्रीष्मकालमें अधिक तापका अनुभव होता है, उस समय उद्भिज्जोंकी परिवर्धनादि ताप-क्रियाएं लक्षित होती हैं। ताप पृथ्वी पर पतित हो कर पृथ्वीको उत्तप्त करता है, पृथ्वीके समस्त पदार्थ उत्तप्त

होते हैं, किन्तु वह पृथ्वीके आभ्यन्तरमें केवल दो चार हाथ ही प्रवेश करता है, यह जानकर अनेक लोग ग्रीष्मकालमें मिट्टीके भीतर घर बना कर रहते हैं। रेलगाड़ीके रास्तेमें रेल (लाइन) का जहां परस्पर संयोग होता है, उस स्थलमें ग्रीष्मकालमें अधिक तापके समय परिसरण होगा, यह जान कर जरा जरा अन्तर रक्खा गया है। इस समय नाना प्रकारके फल परिपक्व होते हैं। इस समय तापके आधिक्य होनेसे परिशोषण क्रियाके विशेष लक्षण देखनेमें आते हैं। नहर, तालाव आदि सब सूख जाते हैं।

सूर्यको छोड़ कर संघर्षण (friction), पेषण, संघटन (percussion) रासायनिक क्रिया आदि भी तापप्रभव हैं। तड़ित् और दहन, ये भी रासायनिक क्रियाकी अन्यपरिणति मात्र हैं। इनसे भी तापकी उत्पत्ति होती है।

संघर्षण—वस्तुओंमें परस्पर संघर्षण होनेसे तापकी उत्पत्ति होती है। काष्ठ काष्ठमें संघर्षण होनेसे ताप उत्पन्न होता है। कांचकी शीशीकी डाट लगा कर रस्सीसे उसका गला घर्षण करनेसे वह स्थान उत्तप्त हो कर प्रसारित होता है और डाट खुल जाती है। बरफ़ पर बरफ़ घिसनेसे वह गल जाती है। डेभि साहबने परीक्षा करके देखा है कि रेल (पटरी)-के ऊपर पहियोंके घर्षणसे अग्निस्फुलिङ्ग निकलते हैं। घर्षणसे ताप उत्पन्न न हो, इसीलिए रेलगाड़ीमें चर्बी व्यवहृत होती है। इसीसे मशीनके समस्त कल-पुरजे भलीभांति यथायोग्य स्थानमें सजाये जाते हैं।

संघट्टन—संघर्षण और पेषण इन दोनोंकी एकताको संघट्टन कहते हैं। चकमक पत्थरको परस्पर ठोंकने और घिसनेसे अग्नि उत्पन्न होती है। लुहारके हतौड़ेसे लोहा पीटते समय लोहा उत्तप्त हो जाता है।

रासायनिक क्रिया—वस्तुओंके परस्पर मिलित होनेसे जो नूतन प्रकार वस्तुकी सृष्टि होती है, उसे रासायनिक क्रिया कहते हैं। कभी कभी इससे अग्न्युत्पात भी होता है, जो प्रायः देखनेमें नहीं आता। चूनेमें पानी डालनेसे और जलमें गन्धकद्रावक देनेसे ताप उद्गत होता है। पानीमें पोटाश डालनेसे वह जलने लगता है। प्रदीप जलना आदि भी रासायनिक क्रियाके उदाहरण हैं।

ऊपर कहा गया है कि ताप दो प्रकारका होता है - एक प्रत्यक्षग्राह्य और दूसरा गूढ़ या अनुमतिग्राह्य। प्रत्यक्षग्राह्य ताप प्रायः स्पर्शशक्ति-द्वारा अनुभूत होता है। विशेष विवेचनापूर्वक देखा जाय तो स्पर्शबोध हम लोगोंका एक प्रकारका तापमानयन्त्र है। जब हम कोई उष्ण वस्तु स्पर्श करते हैं, तब हमें उष्णस्पर्शानुभव होता है। इसी तरह जब हम एक तुषारपिण्ड पर हाथ देते हैं, तब हमें शीतलस्पर्शानुभव होता है, किन्तु वह कितना उष्ण या कितना शीतल है, यह निश्चय नहीं कर सकते। निश्चय न कर सकनेके कारण तापके वैलक्षण्य और ह्रासवृद्धि आदिके बारेमें भी कुछ स्थिर नहीं कर सकते; इसलिए तापमानयन्त्रकी सृष्टि हुई है। इन्द्रियों द्वारा सामान्यतः जो कुछ स्थिर किया जाता है, वह यथार्थ ही हो, यह सम्भव नहीं। क्योंकि यदि किसी गृहस्थके एक धातुकी, एक काष्ठकी और एक सूतकी इस तरह तीन चीज हो और उनमेंसे प्रत्येकका यदि क्रमानुसार स्पर्श किया जाय, तो हमें तीन विभिन्न प्रकारका स्पर्शानुभव होगा। यदि गृहस्थित वायु उष्ण हो, तो वस्त्र उष्ण, काष्ठ उष्णतर और धातुका पदार्थ उष्णतम मालूम पड़ेगा, किन्तु उसी वायुके शीतल होनेसे इसके विपरीत, अर्थात् धातुका पदार्थ शीतलतम, काष्ठ शीतलतर और वस्त्र शीतल प्रतीत होगा। वस्तुतः हमारी स्पर्शशक्ति बिलकुल अनिश्चित है।

कोई एक पथिक किसी पर्वतसे उतर रहा है और दूसरा उसी पर्वत पर चढ़ रहा है; उतरनेवाला तो जितना नीचे उतरता है, उतना ही उष्णताका अनुभव करता है और चढ़नेवाला क्रमशः शीतका ही अनुभव करता है; इन दोनोंमेंसे कोई भी उष्णता और शीतलताकी उपलब्धि विशेष रूपसे नहीं कर पाता। और तो क्या; कभी कभी ग्रीष्मकालमें किसी किसी दिन शीतानुभव होता है और शीतकालमें कभी कभी गरम मालूम पड़ती है। इन विलक्षणताओंको सूक्ष्मरूपसे जाननेके लिए स्पर्श-शक्तिके ऊपर किसी प्रकार विश्वास नहीं किया जा सकता। कोई कोई तापको एक सूक्ष्म तरल पदार्थ कहते हैं, किन्तु यह तरल पदार्थकी तरह सेरके

हिसाबसे तौला नहीं जा सकता। फलतः साक्षात् सम्बन्धसे तापको किसी प्रकार भी मापा नहीं जा सकता, किन्तु हम पदार्थोंके ऊपर नाना प्रकारके परिमाण करके तापके परिमाण निर्द्धारणमें समर्थ होते हैं।

तापमान देखो।

उष्णता और शीतलता—उष्णता और शीतलतामें कोई विशेष प्रभेद नहीं है। एक वस्तुके साथ तुलनामें जो वस्तु उष्ण बोध होती है, अन्य एक वस्तुकी तुलनामें वही फिर शीतल ज्ञात होती है। एक हाथ अति उष्ण जलमें और दूसरा हाथ बरफके पानीमें डुबो रखनेके बाद दोनों हाथोंको गुनगुने पानीमें डुबो देनेसे, जो हाथ उष्ण जलमें निमज्जित हुआ उसे शीतल, और जो हाथ हिमजलमें निमज्जित हुआ, उसे उष्णताका अनुभव होता है।

तापके कारणसे जड़ वस्तुका प्रसारण—तापके कारण द्रव्यके परमाणु एक दूसरेको दूरीभूत करते हैं। इसी लिए तापके समागमसे द्रव्यादि प्रसारित होते हैं। उत्तप्त होनेसे कठिन द्रव्यकी अपेक्षा तरल द्रव्य और तरल द्रव्यकी अपेक्षा वाष्पीय द्रव्य अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होते हैं। इसी तरह उत्तप्त होनेसे कठिन द्रव्य द्रव और द्रव-द्रव्य वाष्प हो जाते हैं। सभी कठिन द्रव्य उत्तप्त होनेसे प्रसारित होते हैं, इसीलिए रेलकी पटरी बनाते समय उनके बीचमें थोड़ी थोड़ी खाँप छोड़ दी जाती है।

यन्त्र-द्वारा परीक्षा करके देखा गया है कि, जो शीतल लौहदण्ड किसी छिद्रमें अनायास प्रविष्ट होता है, वह उत्तप्त होने पर उसमें प्रवेश नहीं कर सकता। जो कठिन पदार्थ तापके समागमसे विश्लिष्ट नहीं होते, उत्तप्त करनेसे वे ही क्रमशः कोमल हो जाते हैं और अन्तमें तरल हो जाते हैं। कठिन द्रव्योंकी तरह द्रव-द्रव्य भी उत्तप्त होनेसे प्रसारित होते हैं।

इसीलिये जलपूर्ण पात्रमें ताप देनेसे जल उच्छ्वसित होता है। वायवीय सभी वस्तुएँ ताप लगनेसे अतिशय प्रसारित होती हैं। यदि किसी वायुपूर्ण चर्ममशकका मुँह बन्द कर उसमें ताप दिया जाय, तो वह अपने आप फूल उठती है।

समान भागमें ताप प्राप्त होने पर भी सम्पूर्ण प्रकारके कठिन और तरल द्रव्य समान परिणाममें प्रसारित नहीं होते, किन्तु समस्त वायवीय द्रव्य समान ताप प्राप्त होने पर प्रायः समान परिमाणमें ही विस्तृत होते हैं।

तापका फल—इस विषयमें पहले ही कहा गया है कि घन तरल वा वाष्पीय सभी पदार्थ तापसे प्रसारित और शीतसे सङ्कुचित होते हैं। यह प्रसरण घन पदार्थोंमें कम, तरल पदार्थोंमें कुछ अधिक और वाष्पीय पदार्थोंमें सबसे अधिक लक्षित होता है, अर्थात् पदार्थोंके समस्त अणु जितने शिथिलबद्ध होंगे, प्रसारण भी उतना ही अधिक लक्षित होगा। सब पदार्थ एक प्रकारके तापसे एकरूपमें प्रसारित नहीं होते।

घन पदार्थोंका प्रसरण इतना अल्प है, कि उसे हम देख कर समझ नहीं सकते। हाँ, सूक्ष्मरूपसे परिमाण करनेसे वह जाना जा सकता है।

लोहेका घेरा उत्तप्त किये बिना पहियेमें नहीं पहनाया जा सकता। इसका अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं, कि उत्तापसे उसका आयतन बढ़ जाता है। किन्तु वह वृद्धि इतनी अल्प है कि सूक्ष्म दृष्टिके भी अगोचर है। काँच सहसा उत्तप्त या शीतल होनेसे तड़क जाता है, क्योंकि वह अपरिचालक है। उसके सम्पूर्ण भागोंमें ताप समभाव और शीघ्रतासे परिचालित नहीं होता।

इसलिए जिस स्थलका ताप अपेक्षाकृत अधिक हो जाता है, वह स्थल कुछ अधिक प्रसारित होनेकी चेष्टा करता है। इस प्रकार असम प्रसरणके कारण वह काँच चटक जाता है। किसी वस्तुके अत्यन्त उत्तप्त होने पर शीतल होते समय उसके सङ्कोचनसे जो बल उत्पादित होता है, वह अत्यन्त अधिक है। इसके लिए एक उदाहरण देना ही यथेष्ट होगा।

पैरी नगरमें किसी घरकी भीत फट कर बाहरकी ओर फूल उठी थी, लौहदण्ड द्वारा घर वेष्टित किया गया। इसके बाद लोहेके दण्ड गरम किये गये, खूब उत्तप्त हो जाने पर दण्ड स्क्रूसे अच्छी तरह कस दिये गये। ये दण्ड जिस समय क्रमसे शीतल हो कर सङ्कुचित होने लगे, तो उनके साथ भीत भी संकुचित हो गई।

तरल पदार्थोंका प्रसरण हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं। यह दो प्रकारका है—यथार्थ (real) और प्रत्यक्ष

(apparent)। किसी भी तापक्रमयन्त्रके वर्तुलाकार भागमें ताप देनेसे पारा नलमें चढ़ने लगेगा ; जितना चढ़ना देखेंगे, उतना ही उसका प्रत्यक्ष प्रसरण है। कारण तापसे पारद जिस तरह प्रसारित हुवा, उसी तरह वर्तुलाकार भाग भी ईषत् प्रसारित हुवा, इसलिए वर्तुलाकार भागमें अब पारदको पूर्वापेक्षा अधिक स्थान पूर्ण करना पड़ा, किन्तु यदि वर्तुलाकार भाग अपनी पूर्वावस्थामें ही रहता तो पारद नलके और भी ऊपर चढ़ता और वही पारदका यथार्थ प्रसरण कहलाता। इस तरह तरल पदार्थ किसी भी पात्रमें क्यों न रहे, तापसे तरल पदार्थके साथ उस पात्रका भी कुछ प्रसरण होता है। अतएव तरल पदार्थोंके प्रसरणमें हम लोग केवल प्रत्यक्ष प्रसरण ही देख पाते हैं।

तरल पदार्थोंका प्रसरण समस्त पदार्थोंके प्रसरणकी अपेक्षा अल्प नियमानुयायी है ; तापक्रम जितना ही वाष्पीभाव-बिन्दुके समीपवर्ती होता है, उतना ही उसके नियमका व्यतिक्रम भी बढ़ने लगता है।

घन और तरल उभय प्रकारके कितने ही पदार्थोंमें प्रसरण-नियमका वैपरीत्य लक्षित होता है। गन्धक और किसी किसी मिश्रधातुके गलानेसे वह घनीभूत होनेके समय सङ्कुचित न हो कर प्रसारित होती है। जिस धातुसे छापनेके अक्षर बनते हैं, सांचेमें ढालनेके बाद शीतल होते समय वह अल्प प्रसारित हो कर अक्षरका अग्रभाग सुस्पष्ट रूपसे विभिन्न कर देती है।

तापके अंश लिख कर प्रकाश करने हों तो उनकी संख्याके दाहनी ओर कुछ ऊपरमें एक छोटी बिन्दी लगा देनी चाहिए। और शतांशिक, फारेनहीट अथवा रिमर जिस प्रणालीके अंश हों, उसके नामका आदि अक्षर लिखना चाहिये ; जैसे २७° श, ६०° फा, १२° रि अर्थात् शतांशिकके २७, फारेनहीटके ६० और रिउमरके १२ अंश। शून्यसे नीचेका कोई अंश हो तो ऋण-चिह्न देना चाहिए ; जैसे—१५° श० अर्थात् शतांशिक तापमानके शून्यसे १५ अंश नीचे।

तरल पदार्थोंमें जल ही इसका उदाहरण-स्थल है। शतांशिक तापक्रमके ४० अंश पर्यन्त जल शीतसे संकुचित होता है। किन्तु जलका तापक्रम इसके नीचे जितना कम होता जाता है, उतना ही जल प्रसारित होता है। कारण ४° श०में जल गाढ़तम अर्थात् संकोचनकी चरम सीमाको प्राप्त होता है। फिर चाहे इसे उत्तप्त करें या शीतल, यह प्रसारित ही होगा। जलमें यदि यह वैपरीत्य न होता, तो शीतप्रधान देशोंमें, शीतकालमें जो नद नदी ह्रद आदि तुषारावृत रहते हैं, उन सब तलेका जल जब तक बरफ न हो जाता तब तक ऊपरके जलका बरफ होना असम्भव होता। तलस्थ जलके बरफ हो जानेसे कोई जलचर ही जीवित न रहता। किन्तु ४° श०में जल गाढ़तम होनेसे बरफ, जिसका तापक्रम ०° श है। जलकी अपेक्षा लघु होनेके कारण उसके ऊपर तैरता रहता है और बरफ अपरिचालक है, इसके ऊपर रहनेसे बाहरका शीत निम्नस्थ जलमें प्रवेश नहीं करता। उस जलका तापक्रम ४०° श रहता है और उसी जलमें मत्स्य एवं अन्यान्य जलचर जीवन धारण करते हैं।

वाष्पीय पदार्थोंका प्रसरण अन्य पदार्थोंके प्रसरणकी अपेक्षा अधिक नियमानुयायी है और समस्त वाष्पीय पदार्थोंमें प्रायः समभावसे होता है। यह प्रसरण तरल पदार्थोंके प्रसरणकी अपेक्षा १२ गुण अधिक होता है। वाष्पीय पदार्थोंके प्रसरणसे मानव-जीवनको सैकड़ों लाभ पहुंचते हैं। केवल मानव-जीवन ही क्यों, ऐसा कोई जीवन ही नहीं जो इसके अभावसे नष्ट नहीं होता हो।

जिसके अभावसे हम मुहूर्त मात्र भी जी नहीं सकते, उस वायुसे आच्छन्न रहने पर भी हम उसके ही अभावसे मर जाते। हम जो वायु निःश्वास द्वारा त्याग करते हैं, वह यदि प्रसरण गुणके कारण तत्क्षणात् ऊर्ध्वगति न होती और उसके बदले यदि परिष्कार वायु न पाते, वही परित्यक्त वायु हमें फिर ग्रहण करनी पड़ती, तो उसके द्वारा हमारे जीवनका संहार हो जाता। मृदु मलयानिल वायुसे ले कर प्रचण्ड तूफान तक, सभी वायुगतियोंका यही एक मात्र कारण है। इसके सिवा इस वायुगतिके न होनेसे मेघ जहां उठते, वहीं अर्थात् समुद्रके ऊपर ही रह जाते, पृथ्वीके प्रायः समस्त देशोंमें अनावृष्टि होती, कृषिकार्य न चलता, इत्यादि अशेष-विध अमंगल होते। किन्तु तापके प्रसरण-बलसे पूर्वोक्त किसी भी प्रकारके अमङ्गल नहीं होते।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि जब ताप किसी पदार्थमें गूढ़ भावसे रहता है; तो उस समय क्या वह ताप नहीं कहलाता? हाँ, उस समय भी वह ताप कहलाता है; क्योंकि वहाँ पूर्वमें उसका अस्तित्व लक्षित हुआ है और पश्चात् भी उसका अस्तित्व दिखलाई देता है। अतएव अवस्था-विशेषमें दृष्टिगोचर न होने पर भी अनुमान किया जा सकता है कि वहां पर ताप वर्तमान है।

कोई एक गोला ऊपर फेंका गया, वह नीचे न गिर कर किसी छत पर या किसी उच्च भूमि पर रह गया, उसका पतन उस आधार संयोगसे न हुआ, तो क्या यह कहा जायगा कि उसकी पतनशक्ति नष्ट हो गई? नहीं, कारण आधार-शून्य होते ही वह गोला अपने आप जमीन पर गिरेगा। क्षण भरके लिये उस आधारभूमिने उस गोलेकी पतनशक्तिका प्रतिरोध किया था, तुल्यबलविरोधिताके कारण वह शक्ति उस समय प्रत्यक्षीभूत नहीं हुई थी। इसी तरह ताप भी समयाविशेषमें गूढ़ भावसे रहता है; वस्तु ऊष्ण हुई है, यह मालूम नहीं होता अर्थात् तापका कोई कार्य ही वहां दृष्टिगोचर नहीं होता, किन्तु अवस्थान्तरमें वह भली भांति लक्षित होता है।

ताप वस्तुओंकी अवस्थाओंका परिवर्तन करता है। पदार्थ जो घन, तरल और वाष्पीय इन तीन अवस्थाओंमें देखा जाता है, उनका कारण ताप ही है।

पदार्थ तापके संक्रमणसे घनसे तरल, तरलसे वाष्पीय तथा तापके अपसरणसे वाष्पीयसे तरल और तरलसे घन अवस्थामें परिणत होते हैं। बरफ़, जल और जलीय वाष्प एक ही उपादानसे बने हैं, केवल तापभेदसे तीन अवस्थाओंमें परिणत हुए हैं।

लोहा इतना कठिन है, किन्तु ताप देनेसे वह भी गल जाता है; उससे भी अधिक ताप देनेसे वाष्प रूपमें परिणत हो जाता है।

समस्त पदार्थोंको हम अवस्थात्रयमें परिणत नहीं कर सकते। किन्तु हम नहीं कर सकते, इसलिए होता ही न हो, ऐसा नहीं वायु और हाइड्रोजन कभी अवस्थान्तरमें परिणत नहीं हुआ, अलकोहल कभी जमाया नहीं गया। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यथेष्ट ताप अपसृत किया जाय तो यह उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। अङ्गार तथा किसी किसी धातुके पदार्थ साधारण अग्निमें नहीं गलते, किन्तु तड़िताग्निमें कोई भी पदार्थ क्यों न हो, वह गल कर वाष्प हो जायगा।

ताप सभी वस्तुओंका एक रूपसे परिवर्तन करता है, अर्थात् यथेष्ट उत्तप्त की जाने पर समस्त वस्तुएं वाष्पीभूत और यथेष्ट ताप अपसृत कर सकने पर समस्त वस्तुएं घनीभूत हो जाती हैं।

तरल पदार्थ दो प्रकारसे वाष्पीभूत होते हैं। साधारण तापक्रमसे भी उद्गमशील तरल पदार्थ अनावृत अवस्थामें ऊपरके भागसे धीरे धीरे वाष्पाकारमें परिणत होते हैं और तापक्रमकी वृद्धिके साथ उस वाष्पीभावकी वृद्धि होती है। इसी कारण कोई पात्र जलपूर्ण कर अनावृत रखनेसे वह क्रमशः कम हो कर निःशेषित हो जाता है एवं जलाशयादि ग्रीष्मकालमें शुष्क प्राय हो जाते हैं। यही कारण है कि गीला वस्त्र हवामें रखनेसे शुष्क हो जाता है। इस वाष्पीय भावका नाम उत्शोषण (Evaporation) है। तापके संयोगसे किसी पदार्थका समस्त भाग जब वाष्पाकारमें परिणमनशील होता है और जब नीचेसे वाष्प त्वरित उद्गत होने लगता है, तब जो वाष्पीभाव होता है, उसका नाम स्फुटन है। इसे हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं, किन्तु पूर्वोक्त उत्शोषण हर-वक़्त देखनेमें नहीं आता। ऊपर कहा जा चुका है कि, तरल पदार्थके वाष्पीभावमें परिणत होनेके लिए हर वक़्त समान ताप नहीं लगता, भू-वायुका पेषण अल्प होनेसे अल्प ताप और अधिक होनेसे अधिक ताप लगता है। जहाँ भू-वायुका पेषण नहीं है, वहाँ जल और अलकोहल आदि किसी किसी तरल प्रदार्थके लिए बिलकुल तापकी जरूरत नहीं होती। एक जलपूर्ण पात्रको वायु-निष्काशक यन्त्रमें रख कर उसके भीतरी भागका शून्य कर जलनेसे जल अपने आप खौलने तो लगता है, पर जल उत्तप्त नहीं होता, वरन् शीतल होता रहता है। साधारणतया १००° ताप क्रमसे जल खौलता है, किन्तु उच्च उच्च पर्वतोंके ऊपर, जहाँ भू-वायुका पेषण अपेक्षाकृत अल्प होता है, वहां ८०° या ८५° में ही पानी उबलने लगता है।

इसके सिवा तापके और भी अनेक फल हैं। ताप रासायनिक संयोग और वियोगका एक प्रधान उत्तेजक है। तड़ित् चुम्बकाकर्षणके सम्बन्धमें तापके फल पीछे लिखे जायेंगे।

तापके कारण जड़वस्तुओंकी अवस्थान्तरोत्पत्ति—उत्तापसे कठिन द्रव्य द्रव होते हैं। काष्ठ, कागज और पशम प्रभृति द्रव्योंको द्रव नहीं किया जा सकता। उष्ण करनेसे इनके समस्त उपादान पृथक् हो जाते हैं। बहुतोंकी धारणा है कि अङ्गारादि कतिपय द्रव्य गलाये नहीं जा सकते। किन्तु यह सिद्धान्त युक्तियुक्त नहीं मालूम पड़ता। अङ्गार कोमल अवस्थामें परिणत किया गया है; सम्भव है कि कालान्तरमें यह द्रवीभूत भी किया जा सकेगा। द्रव्यमात्र एक एक निर्दिष्ट परिमाणकी उष्णतामें द्रव होते हैं। ०° श (अथवा ३२° फा० परिमाण) उष्णतामें बर्फ गल कर पानी हो जाता है। भूतलस्थ सभी द्रव्यों पर वायुराशिका दबाव है। सागरपृष्ठकी वायुराशिका दबाव प्रायः ३० इञ्चके समान है। ३० इञ्च दबाव और ०° श उष्णतासे बर्फ गल जाता है, किन्तु अधिक दबाव होनेसे समधिक उष्णताके बिना नहीं गलता।

द्रवमाण वस्तुमें कितना ही ताप क्यों न दिया जाय उसकी उष्णता किसी तरह भी नहीं बढ़ती।

और भी देखनेमें आता है कि, द्रवमाण द्रव्य तथा उससे उत्पन्न द्रव्यकी उष्णता समान होती है। ०° श, अथवा ३२° फा परिमित उष्ण होने पर बर्फमें कितना भी ताप क्यों न दिया जाय, उसके तापकी वृद्धि नहीं होती। किन्तु इसी तापके प्रभावसे बर्फ द्रव हो जाता है। द्रवमाण बर्फसे जो जल उत्पन्न होता है, उसकी भी उष्णता ०° श अथवा ३२° फा होती है।

अतएव यह निश्चित है कि ०° श बर्फको ०° श जलमें परिणत करनेके लिए कुछ तेज अन्तर्हित होता है। यही अन्तर्हित तेज जलके अन्तर्गत अप्रत्यक्ष प्रच्छन्न या गूढ़ तेज कहलाता है। ८०° श प्रमाण उष्ण एक सेर जलके साथ ०° श प्रमाण उष्ण एक सेर जल मिलानेसे ४०° श प्रमाणका दो सेर जल प्रस्तुत होता है।

किन्तु ८०° प्रमाण उष्ण एक सेर जलमें ०° श प्रमाण एक सेर तुषार-चूर्ण मिला देनेसे ०° श प्रमाण उष्ण दो सेर जल होता है। इस तरह निश्चय होता है कि ०° श प्रमाण एक सेर बर्फ गल कर ०° श प्रमाण एक सेर जल होनेमें जो तेज अन्तर्हित होता है, उसके द्वारा एक सेर जलकी उष्णता ८०° अंश बढ़ाई जा सकती है। अन्यान्य कठिन द्रव्योंके द्रव होते समय भी ऐसा ही हुआ करता है। किन्तु समस्त द्रव द्रव्योंके अन्तर्गत अप्रत्यक्ष प्रच्छन्न तेजका परिमाण समान नहीं होता।

०° श परिमाण उष्ण होने पर जिस प्रकार बर्फ गलकर उसका पानी हो जाता है. उसी तरह ०° परिमाण शीतल होनेसे पानी जम कर बर्फ हो जाता है। बर्फके द्रव होते समय जितना तेज अन्तर्हित होता है, जल जमते समय ठीक उतना ही तेज विनिर्गत होता है।

तात्पर्य यह है कि जितनी उष्णतासे कोई वस्तु द्रव होती है. ठीक उतनी ही उष्णतासे तदुत्पन्न द्रव द्रव्य पुनः घनीभूत होता है। और गलते समय जिस परिमाणमें तेज अन्तर्हित होता है, जमते समय भी उतना ही तेज निर्गत होता है। इसीलिए शीतप्रधान देशोंमें जब दारुण शीतके प्रभावसे जलाशयादिका जल जम कर बर्फ होने लगता है. उस समय उस हिममय जलके अन्तर्गत छिपा गूढ़ तेज प्रकाशित हो कर दुरन्त शीतका पराक्रम कुछ खर्व कर देता है।

द्रवीभूत होनेसे द्रव्यादिके आयतनकी वृद्धि होती है। १०० घन इञ्च गन्धकको गलानेसे वह १०५ घन इञ्च होता है, किन्तु बर्फ द्रव होनेसे संकुचित एवं जल जमने पर प्रसारित होता है। अन्यान्य तरल द्रव्य जमने पर भारी होते हैं, किन्तु जल जम कर बर्फ होने पर हलका हो जाता है, इसीलिए वह जलमें तैरती है। जल जमते समय विस्तृत होता है, इसीसे शीतप्रधान देशीय नद, नदी, ह्रद, समुद्र आदिका जल जम कर बर्फ होने पर वह ऊपर तैरा करता है एवं निम्नमें ४०° श प्रमाण उष्ण जल रहनेसे मत्स्यादि जलचर जीवगण जलके अभावसे मरते नहीं। जल जम कर जब बर्फ होता है, तब उसकी आयतन वृद्धिके कारण प्रसारणशक्तिकी भी आश्चर्यजनक वृद्धि होती है। यदि किसी जलपूर्ण लोहेकी बोतलका मुख बन्द करके किसी अतिशय शीतल पदार्थके भीतर कुछ क्षणके लिए रक्खा जाय, तो

उससे उसके भीतरका जल बर्फमें परिणत हो जायगा एवं बर्फ होते समय उसके प्रसारणका बल इस तरह प्रबल हो उठेगा कि वह लौहमय पात्र फट जायगा। शीतप्रधान देशोंमें, रात्रिकालमें शीतके प्रभावसे जल-प्रणालीका जल जम जानेसे कभी कभी नल फट जाते हैं।

पर्वतोंके ऊपर जो वृष्टिका जल गिरता है, उसका कुछ अंश छिद्रादिमें प्रविष्ट होता है। पीछे शीत द्वारा जब वह तुषाररूपमें परिणत होता है, तब प्रसारणके कारण प्रस्तरखण्ड विदीर्ण हो जाते हैं।

कठिन द्रव्य उत्तप्त होनेसे वाष्प होते हैं। कागज, काष्ठ प्रभृति कितने ही कठिन द्रव्योंको जैसे गलाया नहीं जा सकता, उसी प्रकार मेद और नारिकेल-तैल प्रभृति कतिपय तरल द्रव्योंको भी वाष्पीय रूपमें परिणत नहीं किया जा सकता; उत्तापके कारण इनके उपादान पृथक् अथवा भिन्न प्रकारसे संयुक्त होते हैं। कर्पूर आयदीन (अरुणक) प्रभृति कतिपय कठिन द्रव्य द्रव न हो कर एक दम वाष्प हो जाते हैं। सभी वाष्पीय द्रव्य अधिकांश वर्णहीन और स्वच्छ होते हैं। केवल आयदीन प्रभृति कुछ द्रव्योंका वाष्प वर्ण-विशिष्ट होता है। वाष्प और वायुमें कोई विशेष प्रभेद नहीं है। वाष्पकी वायव्यता नैमित्तिक और वायुकी स्वाभाविक होती है।

जो पदार्थ स्वभावतः तरल होते हैं, उनके परिणामसे जो वायुवत् द्रव्य उत्पन्न होता है, उसे वाष्प कहते हैं। वायवीय वस्तुओंकी तरह वाष्प भी स्थिति-स्थापक हैं। उष्णता और दबावके तारतम्यानुसार वायवीय द्रव्योंमें आयतन-वृद्धिका जैसा तापतम्य है, वाष्प-समूहका भी ठीक वैसा ही तारतम्य हुआ करता है।

शतांशिकके एक अंश परिमाणमें उष्णताकी वृद्धि होनेसे वायवीय और वाष्पीय वस्तुओंका आयतन $\frac{१}{२७३}$, वा ·००३६६५ परिमाणमें वर्द्धित होता है, अर्थात् १ घन इञ्च या १ घन फुट किसी वायु या वाष्पकी उष्णता यदि १ अंश बढ़ाई जाय, तो उसका आयतन २$\frac{१}{२७३}$ या १·००३६६५ घन इञ्च या घनफुट प्रमाण होगा। इस तरह २७३ अंश प्रमाण तापकी वृद्धि होनेसे ताप दुगुना हो जायगा।

जिस तरह कठिन द्रव्योंके द्रव करनेमें समान उत्ताप प्रयोग नहीं होता, उसी तरह द्रव द्रव्योंके वाष्प करनेमें भी समान उत्तापकी आवश्यकता नहीं होती। भिन्न भिन्न द्रव द्रव्य भिन्न भिन्न उष्णतासे वाष्पाकार धारण करते हैं। सुरासार, जल, तार्पीनतैल और पारा इन द्रव द्रव्योंको खौलानेके लिये यथाक्रमसे फारनहीटके २७३°, २१२°· ३१६° और ६६०° अंश परिमित गरम करना चाहिए।

एक जातिकी कठिन वस्तुएं जिस तरह एक प्रकारकी उष्णतामें द्रव होती हैं उसी तरह एक जातिकी द्रव वस्तुएं भी समान परिमाणमें उष्ण होनेसे उबलने लगती हैं। जैसे—सब देशों और सब समयोंमें १००° श वा ३२०° फा प्रमाण उष्ण होनेसे पानी खौलने लगता है।

पहले लिखा जा चुका है, कि भूतलस्थ सभी पदार्थ पर वायु-राशिका दबाव है। उस दबावका अतिक्रम बिना किये द्रव द्रव्य कभी खौल नहीं सकते। वास्तवमें जब किसी द्रव द्रव्य सम्भूत वाष्पकी प्रसारण-शक्ति वायु-राशिके दबावके समान होती है, तभी वह खौलता है।

जब वायुराशिका दाब ३० इञ्च पारदके समान होता है, केवल उसी समय फारनहीटके २१२° अंशमें जल उबल उठेगा। दाबके न्यूनाधिक होनेसे स्फुटन-बिन्दुका (Boiling point) भी न्यूनाधिक्य होता है।

पर्वतोंके ऊपर वायुराशिका दबाव अपेक्षाकृत अल्प होनेसे वहां अपेक्षाकृत अल्प उत्तापसे जल खौलाया जा सकता है।

परीक्षाके द्वारा निरूपित हुआ है कि जितना ऊंचा चढ़ा जायगा, उतना ही प्रति ५३० फुटमें स्फुटनबिन्दु फारनहीटका १ अंश कम होता जायगा। पर्वतोंकी उच्चता नापनेका यही एक उपाय है।

वायुनिष्काशन-यन्त्रके आवरण-पात्रके भीतर एक जलपूर्ण पात्र रख कर वायु निकाल देनेसे पात्रस्थित जल ७०° फा परिमित उष्णतासे भी जोरसे खौलने लगता है। फलतः ऐसा कोई नियम नहीं कि उष्ण होनेसे जल उबलता है या उबलनेसे जल गरम होता है।

द्रव द्रव्य जब खौलने लगते हैं, तो उन्हें कितना ही उत्तप्त क्यों न किया जाय, किसी तरह भी उनकी उष्णताकी

वृद्धि नहीं होगी। और भी देखा जाता है कि द्रव्यमाण कठिन द्रव्य और उनसे उत्पन्न द्रव द्रव्योंकी उष्णता जिस तरह बिलकुल अभिन्न है, खौलते हुए द्रव्य और उनसे उत्पन्न वाष्पकी उष्णता भी ठीक उसी तरह समान है। विशुद्ध जल २१२° फा उष्ण होनेसे उबल उठता है एवं एक बार खौल उठने पर भी जितना उत्ताप दिया जाय, उसके द्वारा उष्णताकी कुछ भी वृद्धि नहीं होती। और खौलते जलसे जो वाष्प उत्पन्न होता है उसकी उष्णता भी ठीक २१२° फा रहती है। अतएव यही प्रतीत होता है कि कठिन द्रव्यके द्रव होते समय जिस तरह किञ्चित् परिमाणमें तेज अप्रत्यक्ष रहता है, उसी तरह द्रव द्रव्यके वाष्प होते समय भी तेजका कियदंश प्रच्छन्न रह जाता है। जिस परिमाणमें ताप देनेसे १ दण्डमें तुषारहिम जल खौल उठता है, उसी परिमाणमें फिर ५½ दण्ड काल उत्तप्त न होनेसे वह वाष्प नहीं होता, अर्थात् हिम जलको ३२° फारनहीटसे २१२° फा प्रमाण उष्ण करनेमें जितने तापका प्रयोग करना पड़ता है, २१२° का प्रमाण उष्ण जलको वाष्पमें परिणत करनेके लिये उसकी अपेक्षा ५·४ गुणा अधिक ताप प्रयोग करनेकी आवश्यकता होती है। अतएव जलीय वाष्पके अप्रत्यक्ष गूढ़ तापका परिमाण प्रायः १८०° ५·४=८७२° फा हुआ। ०° श एक सेर जलके साथ १००° श एक सेर जल मिश्रित करनेसे ५०° श प्रमाण उष्ण दो सेर जल प्रस्तुत होता है किन्तु १००° श एक सेर जलीय वाष्पको शीतल जलके मध्यस्थित किसी नलके द्वारा परिचालित कर १००° श एक सेर जल उत्पादन करनेसे इतना तेज निकलता है कि उसके द्वारा ५·४ सेर जल १° शसे १००° तक उष्ण होता है। सुतरां जलीय वाष्पका अप्रत्यक्ष तेज परिमाण हुवा १०० ५·४=५४०° श या ५७२ फा।

और भी देखा जाता है कि जलके वाष्प, होने पर जो तेज अन्तर्हित होता है, वही तेज जलीय वाष्पके घनीभूत हो कर जल होनेमें पुनः प्रकाशित होता है।

जो द्रव्य जलमें द्रवीभूत हो कर रहते हैं, जलके बर्फ या वाष्प होने पर उन सबकी नियुक्ति हो जाती है। बर्फके द्रव या वाष्पके घनीभूत होनेसे जो जल पैदा होता है, वह इसीलिये विशुद्ध है। वृष्टिका जल भी इसी कारणसे शुद्ध है। अधिकांश विशुद्ध जल प्रस्तुत करनेके लिये जलाशयादिका जल ले कर उसे उत्ताप-द्वारा वाष्प बनाते हैं और उस वाष्पको घनीभूत करके पुनः जल बनाया जाता है। इस तरह जो जल तैयार होता है, उसे तापका जल कहते हैं।

द्रव द्रव्यके ऊपरी भागसे सर्वदा ही वाष्प उत्थित हुवा करता है। यह सभी जानते हैं कि, नदी ह्रद सरोवरादिके पृष्ठदेशसे नित्य ही वाष्प उत्थित होता है। दावकी न्यूनाधिकतासे वायुनिःसरणमें भी न्यूनाधिक्य हुवा करता है। जलादिके ऊपर वाष्प-राशिका दबाव जितना अल्प होता है, उतना ही वाष्प निःसरण अधिक हुवा करता है। वायु-निष्काशन-यन्त्रमें किञ्चित् इथर नामक तरल द्रव्य रख कर वायु-निष्काशन करनेसे वाष्प इतनी जोरसे निकलने लगता है कि फिर वह शीघ्र ही उबल उठता है। फलतः वाष्प-परिणामशील द्रव-द्रव्यमात्र ही वायुविहीन स्थलमें पहुंचते ही उसी समय वाष्परूपमें परिणत हो जाता है।

यूडिकलोन, इथर आदि शीघ्र वाष्प-परिणामशील वस्तुओंके स्पर्शसे शरीर शीतल होता है; इसका कारण यही है कि ये वस्तुएँ वाष्प होते समय शरीरसे तेज ग्रहण करती हैं। वृष्टिके बाद वायु शीतल हो जाती है, क्योंकि वर्षाके समस्त जलकण भूमि और वायुसे तेज ले कर वाष्प होते हैं। ग्रीष्मऋतुमें सुराहीमें जल रखनेसे वह साधारण जलकी अपेक्षा अधिक शीतल हो जाता है। इसका कारण यही है कि जलकण सुराहीके छिद्रोंमें प्रवेश करते हैं और बाहर निकल कर वाष्प-रूपमें परिणत होते समय भीतरके जलसे तेज खींच लेते हैं। इसी लिए जल शीतल हो जाता है। सुराहीका जल हवामें रखनेसे और भी अधिक शीतल होता है। धनाढ्य व्यक्तियोंके मकानोंमें पंखा और पानीसे भीगी हुई खसखसके द्वारा जो तरावट की जाती है, उसका कारण वाष्प होते समय जल-विन्दुओं द्वारा तेज ग्रहण किया जाना ही है।

ताप-संचालन—परिचालन, परिवाहन और विकिरण तीन प्रकारसे एक स्थानका ताप दूसरे स्थानमें लाया जा सकता है। इस बातको तो सभी जानते हैं कि लोहेके डण्डेका एक किनारा आगमें रखनेसे क्रमशः दूसरा किनारा भी उत्तप्त हो उठता है।

जिस गुणके कारण जड़-द्रव्यके परमाणु इस प्रकारसे ताप-संचालन करते हैं, उसका नाम परिचालकता है। और जिस क्रियाके द्वारा इस तरहसे एक कणसे दूसरे कणमें ताप संचालित होता है, उसका नाम परिचालन है। उन वस्तुओंको, जो ताप-परिचालन कर सकती हैं, ताप-परिचालक कहा जाता है।

सब द्रव्योंकी परिचालकता एकसी नहीं होती। वाष्प और द्रव-द्रव्योंकी अपेक्षा कठिन वस्तुएँ अधिक ताप-परिचालक हैं और कठिन वस्तुओंमें भी धातुद्रव्योंकी परिचालन-शक्ति सबसे अधिक है। चांदी, तांबा, सोना, पीतल, रांग, लोहा, फौलाद, सीसा और प्लाटिनम् ये कुछ द्रव्य विशेष परिचालक हैं। इनमें भी अगलोंकी अपेक्षा पिछलोंकी परिचालन-शक्ति कुछ कम है। धातुद्रव्योंकी अपेक्षा पत्थर और कांचकी परिचालक शक्ति बहुत कम है, तथा कोयला काठ, बर्फ, बालू इत्यादि द्रव्योंकी परिचालक शक्ति और भी कम है। किसी बड़े लोहेके डण्डेके एक प्रान्तमें अग्नि प्रयुक्त होनेसे दूसरा प्रान्त इतना उत्तप्त हो उठता है कि स्पर्श नहीं किया जा सकता; किन्तु किसी प्रज्वलित लकड़ी जिस ओर जलती है उसी ओर अग्निके पार्श्वमें हाथ देनेसे भी कुछ नहीं होता। इसी तरह कोयलेका एक भाग अग्निमय हो उठने पर भी अन्य भाग द्वारा वह सहजमें ही पकड़ा जा सकता है। कांचका एक भाग अग्निमें गल कर द्रव होने पर भी दूसरा भाग जरा भी उत्तप्त नहीं होता।

रुई, रेशम आदि द्रव्योंकी परिचालक शक्ति इतनी कम है कि यदि इन्हें अपरिचालक कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी। जिन वस्तुओंकी परिचालक शक्ति कम है, उनके द्वारा ही पहननेके कपड़े बनाने चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे शीतकालमें शरीरका तेज निकल कर बाहर नहीं जा सकता और ग्रीष्मकालमें बाहरका तेज शरीरमें प्रवेश नहीं कर सकता। कम्बलमें बर्फ लपेट रखनेसे वह जल्दी गलता नहीं, कम्बलकी दुर्बल परिचालकता ही इसमें कारण है।

ताप-परिवाहन—तरल और वायवीय द्रव्योंके भीतर हो कर तेज परिचालित नहीं होता, यही कारण है जो किसी जलपूर्ण पात्रके ऊपरी भागमें ताप प्रयोग करनेसे नीचेका जल कुछ भी उष्ण नहीं होता।

हाँ, किसी बरतनमें जल रख कर उसके नीचे आग देनेसे जो सारा जल गरम हो जाता है, उसका दूसरा कारण है। तापके संयोगसे पहले नीचेका जल गरम होता है। गरम होनेसे हलका होता है और इसीलिये वह ऊपर उठता है। इस प्रकार नीचेका हलका जल ऊपर आनेसे ऊपरका शीतल और भारी जल नीचे जाता है और कुछ ही क्षणमें गरम हो कर फिर ऊपर आता है। इसी प्रकार ऊर्द्ध्व-प्रवाह और अधः-प्रवाह द्वारा बर्तनका समस्त जल उष्ण हो जाता है। तरल द्रव्योंमें जिस गुणके होनेसे ऊर्द्ध्व और अधः-प्रवाह द्वारा उनके परमाणु-समूह ताप प्रवाहित करते हैं, उसका नाम है परिवाहकता। इस तरहके ताप-सञ्चालित होनेको परिवाहन कहते हैं।

द्रव द्रव्योंकी अपेक्षा वायवीय द्रव्योंकी परिवाहक शक्ति अधिक प्रबल है। वायु अथवा वायुवत् वस्तु-परिपूर्ण किसी पात्रके नीचे आग जलानेसे ऊपर कहे अनुसार ऊर्द्ध्व और अधः-प्रवाहके कारण उसके भीतरकी वायु क्षणकालमें ही अतिशय उष्ण हो उठती है और इसीलिये अंगीठीसे धूममय उष्ण वायु ऊपर उठती है तथा चारों ओरसे शीतल वायु आ कर उसका स्थान पूर्ण कर देती है। यही वायु फिर अंगीठीके अग्नि-स्पर्शसे उष्ण हो कर ऊर्द्धगामी होती है और फिर चारों ओरसे वायु आकर उसका स्थान अधिकार करती है। फलतः किसी स्थानकी वायुके किसी भी कारणसे उष्ण हो कर ऊर्द्धगामी होने पर ही चारों ओरसे वायु आकर उसका स्थान अधिकार करती है। इसी कारण बाहरकी वायु सूर्य्य-रश्मिके स्पर्शसे उष्ण होती है। रवि-किरणों द्वारा बाहरकी वायुके उष्ण हो कर ऊर्द्धगामी होने पर उसका स्थान पूर्ण करनेके लिए गृह आदिसे शीतल वायु प्रवाहित होती है और ऊर्द्ध्व देशसे उष्ण वायु गृहमें प्रवेश करती है। इस प्रकार कुछ काल तक भीतरसे बाहर और बाहरसे भीतर वायु-प्रवाह प्रवाहित होते रहनेसे अन्तमें बाहर और भीतरकी वायु समान उष्ण हो जाती है। इसलिए ग्रीष्मकालके मध्याह्न समयमें मकानके दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द रखनी

चाहिए। यह परिवाहन ही समस्त वायु-प्रवाहोंका एक प्रधान कारण है। वाणिज्य-वायु, मौसुमी वायु आदि सभी वायुप्रवाह इसी तरह उत्पन्न होते हैं।

ताप-विकिरण—यदि किसी धातुद्रव्यके ऊपर कोई उत्तप्त अयःपिण्ड रक्खा जाय, तो उसके तापका कुछ अंश आधार-द्रव्य द्वारा परिचालित होता है, कुछ अंश चारों ओर स्थित वायु द्वारा प्रवाहित होता है तथा अवशिष्ट अंश किरणरूपमें चारों ओर निक्षिप्त हो कर पार्श्ववर्ती द्रव्यादि द्वारा परिगृहीत होता है। इस कारण वह अयःपिण्ड क्रमशः शीतल हो कर चारों ओरकी वायुके समान उष्ण हो जाता है। जिस क्रियाके द्वारा द्रव्यादिका तेज किरणाकारमें चतुर्दिक् विकीर्ण होता है, उसे विकिरण कह सकते हैं। अग्निके सामने खड़े होनेसे उसकी तैजस किरणोंके शरीर पर पड़ने तथा शरीर द्वारा परिशोधित होनेसे उष्णताकी उपलब्धि होती है। सूर्यका तेज किरणके रूपमें आ कर पृथ्वी पर पतित होता है, परिचालित या परिवाहित हो कर नहीं आता।

सूर्यकी किरणें वायुराशिमें हो कर पृथिवी पर पतित होती हैं, किन्तु उनके द्वारा वायुराशिकी उष्णताकी वृद्धि वैसी नहीं होती। पृथ्वीके ऊपरसे तेज प्रतिफलित-परिचालित और परिवाहित हो कर उसे उष्ण करता है, इसीलिए वायुमण्डलका अधोदेश मात्र ही उष्ण है; उदूर्ध्व प्रदेश अतिशय शीतल है। सब वस्तुओंकी विकिरणशक्ति समान नहीं होती। कालिखकी विकिरण-शक्ति सबसे अधिक है। इसीलिए किसी द्रव्यके ऊपरी भागमें कालिख पोत देनेसे उसकी विकिरणशक्ति अधिक प्रबल हो जाती है। परीक्षा द्वारा निरूपित हुआ है कि जो द्रव्य जिस परिमाणमें तेज परिशोषण करता है उसकी विकिरण-शक्ति भी ठीक उसी परिमाणमें प्रबल होती है। तैजस किरणें उज्ज्वल और चिकने धातु-द्रव्यके ऊपर पतित होते ही प्रतिफलित हो जाती हैं। इसी कारण उनके द्वारा तेज परिशोषित नहीं होता, सुतरां उनकी विकीरणशक्ति भी नितान्त अल्प होती है। ऐसा नहीं है कि अतिशय उत्तप्त होने पर द्रव्योंसे तेज विकीर्ण नहीं होता। गरम हों या ठण्डे, समस्त द्रव्य, सदैव तेज विकीर्ण करते हैं। बर्फ जो इतना शीतल है, वह यदि ठोस पारे या ऐसी ही किसी बर्फसे ठण्डी वस्तुके निकट रख दिया जाय तो उससे भी इतना तेज निकलता है कि उस हिममय पारेकी उष्णताकी वृद्धि होती है। जो वस्तु जितना तेज विकीर्ण करती है, उसके ऊपर अन्यान्य पदार्थोंसे यदि ठीक उसी परिमाणका तेज विकीर्ण हो कर पतित हो तो उसकी उष्णतामें किसी प्रकारका परिवर्तन घटित नहीं होता, इसके अन्यथा होनेसे ही न्यूनाधिक्य होता है। समस्त तप्त पदार्थ तेज विकिरण करनेके बाद शीतल हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि चारों ओरके पदार्थोंसे उत्तप्त द्रव्य जिस परिमाणमें तेजकी किरणें पाते हैं, उसकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें तेज उनके द्वारा चारों ओर विक्षिप्त होता है।

यहां पर विवेचना कर देखनेसे प्रतीत होगा कि केवल उष्ण पदार्थोंके स्पर्शसे ही द्रव्य उत्तप्त नहीं होते, वरन् गरम वस्तुओंसे दूर रक्खे जाने पर भी ठण्डे पदार्थ गरम हो जाते हैं; गरम पदार्थोंके तेज, परिवाहन करनेसे पदार्थ गरम हो जाते हैं। गरम पदार्थोंके तेजका परिचालन वा परिवाहन करनेसे पदार्थ जिस तरह उष्ण हो जाते हैं, उनके द्वारा निक्षिप्त तैजस-किरणका शोषण करके भी उसी तरह उष्ण हो सकते हैं। शीतल पदार्थोंके स्पर्शसे उष्ण द्रव्य जिस तरह शीतल होते हैं तेज-विकिरण द्वारा भी वैसाही होता है।

यह विकिरण-शक्ति ओसकी उत्पत्तिका प्रधान कारण है। रात्रिमें धरातलकी समस्त वस्तुओंके वायुमण्डलकी अपेक्षा अधिक शीतल होनेसे वायुके भीतरका कुछ अंश घनीभूत हो कर शिशिर विन्दुओंके रूपमें पदार्थोंके ऊपरी भागमें बिखर जाता है। वाष्पीय वस्तुओंके सम्बन्धमें अब तक जो कुछ लिखा गया है, विवेचना कर देखनेसे उससे जाना जायगा कि दिनमें सूर्य-किरणों द्वारा धरापृष्ठके उत्तप्त हो जानेसे वायुमें जितना वाष्प रह सकता है, रात्रिकालमें तेज विकीर्ण कर पृथ्वीके अधिक शीतल हो जाने पर उसके ऊपरकी वायुमें उतना ही वाष्प रहे, यह किसी प्रकार सम्भव नहीं। उष्णताका जितना ही ह्रास होता है, वायुमण्डलमें उतना ही कम वाष्प रह सकता है, अर्थात् उतने ही अल्प वाष्प द्वारा वायुराशि

परिषिक्त होती है। सुतरां वायु दिनमें जो भाप रहती है, रातमें शीतल होनेसे यदि वह परिषिक्त हो उठे तो शीतल द्रव्यके स्पर्श मात्रसे ही उसके भीतरके वाष्पका कुछ अंश घनीभूत हो कर ओसके रूपमें परिणत हो जाता है। वायुमें जितने अधिक परिमाणमें वाष्प रहता है, उतने ही अल्प परिमाणमें शीतल होते ही ओस उत्पन्न होती है। यही कारण है कि ग्रीष्मकालमें दिनमें वायुमण्डल अत्यन्त उत्पन्न होता है। किन्तु रात्रिमें उतना ठण्डा नहीं होता, इसीलिए वायुका वाष्प ओसके रूपमें परिणत नहीं होता।

जिन वस्तुओंकी विकिरण-शक्ति अधिक प्रबल होती है, वे सब रात्रिकालमें अधिक शीतल हो जाती हैं; इसी कारण उन सब वस्तुओंमें अधिक ओस इकट्ठी होती है। सभी धातुओंकी विकिरण शक्ति अत्यन्त अल्प है, इसीलिए उनमें विशेष ओस नहीं ठहरती, किन्तु मिट्टी, काँच, बालू, पेड़ोंके पत्ते, ऊन प्रभृति द्रव्योंकी विकिरण-शक्ति अधिक होनेके कारण उनके ऊपर प्रचुर परिमाणमें ओस सञ्चित होता है।

तापके उत्पत्तिस्थान—समस्त जड़ द्रव्योंके परस्पर संघर्षणसे ताप उत्पन्न होता है। प्राचीन कालमें आर्य लोग अरणि-घर्षण द्वारा अग्नि उत्पन्न करते थे। असभ्य लोग दो काठोंको आपसमें घिस कर आग जलाते हैं। घिसनेसे दियासलाई जल उठती है। चकमक पत्थर और इस्पातमें परस्पर चोट करनेसे आगकी चिनगारियां निकलती हैं। बर्फ यद्यपि इतना शीतल है। तथापि घर्षण करनेसे उष्ण हो जाता है।

संकोचन—जिस तरह तापके निकल जानेसे वस्तु सिकुड़ जाती है, उसी तरह वस्तुके सिकुड़ने पर ताप निकलता है। सङ्कोचनसे आयतनका जितना ही ह्रास होगा, उष्णताकी भी उतनी ही वृद्धि होगी। वारि-घटित पेषण-यन्त्र द्वारा किसी ठोस वस्तुके ऊपर दबाव डालनेसे वह आकुञ्चित और उत्तप्त होता है। जल और तैल संकुचित होनेसे गरम होते हैं।

आघात—यह सभी जानते हैं कि आघात-प्राप्त होनेसे समस्त जड़ द्रव्य उष्ण होते हैं। निहाईके ऊपर सीसेका एक टुकड़ा रख, उस पर हतौड़ेकी चोट करनेसे सीसेके परमाणु विकम्पित हो कर उत्तप्त हो जाते हैं। कभी कभी वेगसे जानेवाली बन्दूककी गोलीके किसी कठिन पदार्थ पर पतित होने पर भी आग उत्पन्न होती है। पतनशील वस्तुके भूतल पर पतित होनेसे उसकी दृश्यमान गतिके रुक जाने पर अदृश्यमान आणविक गति या ताप उत्पन्न होता है।

पदार्थशास्त्रके विद्वानोंने परीक्षाके द्वारा यह प्रमाणित किया है कि कोई एक सेर भारी पदार्थ १३९२ फुटसे अथवा १३९२ सेर भारी पदार्थके १ फुट ऊँचेसे गिरनेमें जो वेग प्राप्त होता है, उसके तिरोहित होने पर इतना ताप उत्पन्न होता है कि उसके द्वारा १ सेर जलकी उष्णता शतांशिक तापमानकी १° बढ़ाई जा सकती है।

रासायनिक संयोग—लकड़ी आदिसे जो अग्नि प्राप्त होती है, उसमें जलनेवाले पदार्थके साथ वायुमें रहनेवाले अक्सिजनका रासायनिक संयोग ही इसका कारण है। दीपक आदिसे जो प्रकाश निकलता है, वह भी तैल आदिके अङ्गारके सहित वायुके अक्सिजनके संयोग होनेसे उत्पन्न होता है। हम जो आगकी लपट देखते हैं वह केवल अत्यन्त गरम वाष्प है। वाष्प या वायवीय द्रव्य अधिक उत्तप्त होनेसे अग्नि शिखाके समान ही दिखाई देते हैं।

तड़ित्—बिजलीसे भी ताप उत्पन्न होता है। वज्रकी अग्नि भी इसी बिजलीकी आगका रूपान्तर मात्र है।

जीवदेह—जीवका शरीर भी तापका एक उत्पत्ति-स्थान है। हमारे शरीरकी उष्णता चारों ओरकी वायुके समान नहीं है। क्या अरब देशका बालुकामय मरुप्रदेश और क्या तुषारमण्डित सुमेरु-शिखरके निकटवर्ती प्रान्त, सब जगह मनुष्य-शरीरकी उष्णता फारेनहीटके ९८ अंश होगी।

भूगर्भ—ज्वालामुखी पहाड़ोंसे निकली अग्नि और झरनोंके जलकी उष्णता देख कर विदित होता है कि पृथ्वीका भीतरी भाग अग्निमय पदार्थोंसे परिपूर्ण है। सूर्य्यके उत्तापसे तो सिर्फ दो तीन फुट ऊपरकी मिट्टी रात्रिकी अपेक्षा दिनमें अधिक उष्ण हो जाती है। ग्रीष्मकालमें शीतकालकी अपेक्षा कुछ अधिक दूर नीचे तक पृथ्वी उष्ण विदित होती है। जो हो ६०, ७० या १००

फुटसे अधिक नीचे सूर्यरश्मिका प्रभाव अनुभव नहीं होता। फ्रान्स देशकी राजधानी पेरिस नगरके मान-मन्दिरके ५८ फुट नीचे एक तापमानयन्त्र लगा है। जाड़ा गर्मी, रात, दिन कभी भी उसके भीतरके पारेका चढ़ाव उतार नहीं देखा जाता। भूपृष्ठके सभी स्थानोंमें कुछ दूर नीचे एक ऐसा स्थान है जहां रात, दिन, जाड़ा गर्मी, कभी भी उष्णतामें घटती बढ़ती नहीं होती। उस स्थलके उर्द्ध्व भागमें सौर और अधोभागमें पार्थिव तेजका प्रादुर्भाव देखा जाता है। इसे चिर-समोष्णस्थल कहते हैं, इस चिर-समोष्णस्थलकी उष्णता सब जगह एकसी नहीं है। मानचित्रमें समोष्णरेखामें जो उष्णता है, उसके निम्नस्थ चिर-समोष्णस्थलमें भी वही उष्णता देखी जाती है। चिर-समोष्णस्थलसे जितना नीचे जाया जाय, उतने ही औसतन प्रति ६० फुटमें १° फारनहीटके हिसाबसे उष्णताकी वृद्धि होगी। इसीसे जाना जाता है कि पृथ्वीकी सतहसे कुछ नीचे तापका इतना प्रादुर्भाव है कि वहां पर ले जाने पर लोहा गल कर पानीकी तरह हो सकता है।

सूर्य—जिन सब तेजोंका अब तक वर्णन किया है, सौर तेजके सामने ये नितान्त तुच्छ ज्ञात होते हैं। सूर्य्य ही तापका आदि कारण है। उसीसे हम ताप और प्रकाश पाते हैं। किन्तु सूर्य्यने ताप और प्रकाश कहांसे पाया, यह हम नहीं जानते। ताप और प्रकाश सम्बन्धी जितने व्यापार हैं, सब सूर्य्य हीसे सम्पादित होते हैं। दीप-शिखा और ईंधनकी आगमें भी सूर्य्य ही प्रकाशमान है। दावाग्नि, वज्राग्नि और बिजलीकी अग्नि इन सबमें भगवान् भास्कर ही विराजमान हैं। उन्होंने ही सागरको जलका शरीर और वायुको वाष्पीय आकार प्रदान किया है। वे ही समुद्रके जलको वाष्प रूपमें परिणत कर मेघ उत्पन्न करते हैं। उन्होंने नवपल्लवोंसे तरुलताओंको सुशोभित किया है। वे ही तेजके रूपमें प्रकट हो कर पुनः तेज-रूपमें अन्तर्ध्यान होते हैं। उन्हींके आगमन और गमनकालमें समस्त प्राकृतिक व्यापार सम्पादित होते हैं।

अनुमितिग्राह्य ताप—जो ताप स्पर्शशक्ति या तापमानयन्त्र किसीसे लक्षित नहीं होता और उसकी सत्ताकी उपलब्धि होती है, उसीका नाम गूढ़ वा अनुमितिग्राह्य ताप है। तापसे अनेक पदार्थ गल जाते हैं। यह देखा जाता है जब तक पदार्थोंके गलनेका कार्य सम्पूर्ण रूपसे समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उनका तापक्रम स्थिर और समभावसे रहता है। ताप दिया जाता है किन्तु तापमानमें उसका कोई लक्षण ही नहीं देखा जाता, इसका कारण क्या है? समस्त पदार्थ गलते समय कुछ ताप शोषण करते हैं, किन्तु वह ताप जाता कहां है, और वह लक्षित ही क्यों नहीं होता? वह ताप उस पदार्थको तरल अवस्थामें रखनेमें पर्य्यवसित रह जाता है। जब पदार्थ तरल हो जाता है, तो उस तापको उस कार्यके करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। सुतरां तापमान प्रत्यक्ष किया जा सकता है। इसकी पहली अवस्थामें अर्थात् पदार्थके तरल होते समय ताप अलक्षित रहता है, किन्तु यदि वह न होता तो उस पदार्थको तरल अवस्थामें रखनेमें और कौन समर्थ हो? इस प्रकार अनुमान करनेसे उसकी सत्ताकी उपलब्धि होती है, जान कर उसे अनुमितग्राह्य ताप कहा जाता है। यह और भी स्पष्ट किया जा सकता है। देखा जाता है कि यदि आध सेर जल जिसका तापक्रम ८०° और आध सेर जल जिसका तापक्रम ०° है, उन्हें एकत्रित किया जाय तो इनके मिश्रणका तापक्रम ४०° होता है। किन्तु यदि आधसेर चूर्णित बर्फके साथ जिसका तापक्रम ०° है और आधसेर जल जिसका तापक्रम ८०° हो, मिलाया जाय तो बर्फ गल जायगा। इस मिश्रणसे जो एकसेर जल प्रस्तुत होगा, उसका तापक्रम ०° ही होगा। यहां ०° का आधसेर बर्फ अपने तापक्रमसे अर्थात् ०° से कुछ भी अधिक नहीं बढ़ा, तब वह ८०° ताप गया कहां? वह बर्फके जल बनानेमें लग गया। सुतरां समान परिमाणके बर्फके समान तापक्रमको जलमें परिणत करनेके लिए जितना ताप आवश्यक होता है, वह उतने ही परिमाण जलको ८०° तक उष्ण कर देता है। तापका यही परिमाण गूढ़ या अनुमितिग्राह्य ताप कहलाता है। बर्फके गलते समय जितना ताप लगता है उतना ही अधिक समय उसे गलानेमें लगता है क्योंकि जब तक बर्फसे तापका वह परिमाण बाहर न निकल जायगा तब तक वह जम नहीं सकता।

आपेक्षिक ताप—एक ही तापक्रमके दो विभिन्न पदार्थोंको एकसे पात्रमें समान दूरी पर रख, एक साथ एक ही आगका एकसा ताप दो तो उन दोनों पदार्थोंके तापक्रममें अन्तर देखा जायगा। पारद और जल इसी तरह रखनेसे देखेंगे कि जलकी अपेक्षा पारद अधिक उत्तप्त हो जाता है।

पारेको ०° तापक्रमसे किसी निर्दिष्ट तापक्रम तक उठानेके लिए जितना ताप लगता है, उतनेसे नहीं होगा; अर्थात् पारा और पानीको समान तापक्रम तक उष्ण करनेमें पारेकी अपेक्षा जलके लिये अधिक ताप आवश्यक होगा। इसी तरह यदि समान परिमाणका पारा और पानी १००°से शीतल करना शुरू किया जाय तो पारेके बराबर शीतल होनेमें पानीको अधिक समय लगेगा। ठीक इसी तरह जल पारदके समान उष्ण होनेमें जितना अधिक ताप लेगा, उसके बराबर शीतल होनेमें उतना ही अधिक ताप त्याग भी देगा।

जब एक तापक्रमके एक पदार्थके साथ दूसरे पदार्थका मिश्रण किया जाय और दोनोंका परिमाण एक ही हो, तो उनके तापक्रममें विशेष अन्तर पड़ जाता है। यदि १००° तापक्रमका आधसेर पारद ०° तापक्रमके आधसेर पानीमें मिलाया जाय तो मिश्रणका तापक्रम करीब ३° होगा, अर्थात् पारदका तापक्रम ९७° कम हो कर पानीका तापक्रम केवल ३° बढ़ेगा। सुतरां बराबर तौलके पानी और पारेको बराबर तापक्रम तक उठानेमें पानीके लिए पारेकी अपेक्षा ३२ गुणा ताप अधिक प्रयोग करना पड़ेगा।

इसी तरह यदि अन्यान्य वस्तुओंको जलके साथ तुलना की जाय तो सब वस्तुओंमें ही तापक्रमकी यह विषमता लक्षित होगी। किसी पदार्थके तापक्रमको ०°से १° तक बढ़ानेमें वह पदार्थ जितना ताप शोषण करेगा और उसी अवस्थाके उतने ही जलको उसी तापक्रममें लानेके लिए जल जो ताप शोषण करेगा, उन विभिन्न तापोंकी तुलना करनेसे जो हाथ आयगा वही उस पदार्थका आपेक्षिक ताप है। अर्थात् सीसेका आपेक्षिक ताप जाननेके लिए समान परिमाणका जल और सीसा लो, उस सीसेको ०° से १° तापक्रममें लानेके लिये जितना ताप आवश्यक होता है, उस तापसे जलका तापक्रम जितना बढ़ता है, उस तापसे जलका ०°·०३१४ तापक्रम होगा। सुतरां सीसेका आपेक्षिक ताप तुलनामें ०°·०३१४ हुवा। आधा सेर जलका तापक्रम ०° से १° पर्य्यन्त बढ़ानेमें जितना ताप आवश्यक होता है, उसे वैज्ञानिक लोग तापाङ्क (Thermal unit) कहते हैं। यही आपेक्षिक तापका नाप है।

ठोस और तरल पदार्थोंका आपेक्षिक ताप जाननेके लिए तीन प्रकारके उपाय काममें लाए जाते हैं-बरफका गलन, मिश्रण और शीतलीकरण। अन्तिम प्रणाली समयके द्वारा जाना जाता है; अर्थात् किसी एक विशेष तापमें आ कर पदार्थोंके शीतल होनेमें जिसके जितना समय लगता है, उसी समयकी घट-बढ़के अनुसार विभिन्न पदार्थोंके आपेक्षिक तापका निरूपण किया जाता है।

आधसेर बर्फ गलानेके लिए ८०° तापाङ्कोंकी जरूरत होती है। यदि किसी पदार्थका कोई एक निर्दिष्ट तापक्रम, मान लो १००°में लाकर एकदम तुषारके ऊपर रक्खा जाय, तो देखा जायगा कि वह शीतल हो कर १००°से ०°के तापक्रममें आनेमें कुछ बर्फ गला कर पानी बना देता है। उस पानीका वजन और उस पदार्थका वजन ठण्डा होते होते जितना तापाङ्क नीचे गिर पडेगा, उसकी संख्या देख कर उस पदार्थके आपेक्षिक तापका निरूपण सहज ही किया जा सकता है। इसे सहजहीमें जाननेके लिए सुप्रसिद्ध विद्वान् लाप्लसने तापमिति (Calorimeter) नामक एक यन्त्र प्रस्तुत किया है। इस यन्त्रमें धातुके तीन बकस एकके भीतर एक लगे रहते हैं। प्रथम द्वितीयके बीचकी जगह बर्फसे भर दी जाती है और तीसरे बकसके भीतर जिस पदार्थका आपेक्षिक ताप जानना होता है, उसे रक्खा जाता है। प्रत्येक बकसमें ढक्कन लगा दिया जाता है। प्रथम और द्वितीय बकसके बीचकी जगहमें जो बर्फ रहता है, वह द्वितीय और तृतीय बकसके अन्दर रक्खे बर्फके साथ बाहरी तापका सम्बन्ध अलग कर देता है, वहां पर केवल तीसरे बकसका ही ताप पहुँच सकता है और किसी तापके वहां पहुंचनेका रास्ता नहीं; सुतरां उस तापसे बरफ गल कर जितना जल होगा उसे जल द्वारा कौशलपूर्वक निकाल कर तौल

डालनेसे ही आपेक्षिक ताप निकाला जा सकता है।

ताप-विषयक निबन्ध एक तौर पर शेष हो गया। विज्ञानका यह भाग अत्यन्त विशद है। ताप, तड़ित् और प्रकाश इनके द्वारा दिनोंदिन कितने आविष्कार होते हैं, उनका वर्णन दुःसाध्य है। इसो तापसे मेघ, वर्षा, आंधो, ओस और बर्फको उत्पत्ति है।

तापक (सं॰ पु॰) तापयतीति तप्-णिच् ण्वुल्। १ तापकारक, ताप उत्पन्न करनेवाला। २ ज्वर, बुखार। ३ रजोगुण। एकमात्र रजोगुण हो तापका प्रतिकारण है। ताप या दुःख हो रजोगुणका धर्म है।

दुःख और रजोगुण देखो।

तापतिल्ली (हिं॰ स्त्री॰) ज्वरयुक्त प्लीहा-रोग, पिलहो बढ़नेकी बीमारी।

तापती (सं॰ स्त्री॰) १ सूर्यकी कन्या तापी। तापी देखो। २ एक नदी। यह सातपुरा पहाड़से निकल कर पश्चिम और प्रवाहित हो खंभातको खाड़ीमें जा मिली है।

तापत्य (सं॰ पु॰ स्त्री॰) तपत्याः सूर्यकन्यायाः अपत्यं क्षत्रियत्वात् ण्य। तपतीके वंशज कुरु।

तपती और तापी देखो।

तापत्रय (सं॰ क्ली॰) तापानां त्रयः, ६ तत्। त्रिविध दुःख, तीन प्रकारका ताप, जैसे—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।

तापदुःख (सं॰ क्ली॰) तापरूपं दुःखं। दुःखभेद। पातञ्जलदर्शनमें इस दुःखका विषय इस प्रकार लिखा है

कर्मोंके पुण्यापुण्यके अनुसार सुख और दुःख हुआ करता है। पुण्यकर्मके फलसे उत्कृष्ट जाति, चिरायु और विषयभोगादि फल सुखप्रद होते हैं तथा पापकर्मके प्रभावसे परितापादि दुःख-भोग रूप फल मिलता है। अतएव सुख और दुःखभोग कर्मफलानुसार हुआ करता है। जन-साधारण उक्त दो प्रकारके फल भोग करते हैं, किन्तु योगिगण सुख-दुःखादि भोगरूप सभो कर्मफलोंको दुःख मानते हैं। क्लेशादिका ज्ञान हो जानेसे जिन्हें विवेक उत्पन्न हो गया हैं, वे भोग साधक सभो द्रव्योंको विषयुक्त सुस्वादु अन्नके जैसा प्रतिकूल समझते हैं। योगिगण दुःखके लेशमात्रसे हो उद्विग्न हो जाते हैं। जिस तरह कोमलसे कोमल ऊनके डोरेके स्पर्शसे आंखोंको म-तो पीड़ा होती है, उसो तरह अल्प दुःखके अनुभवसे भी विवेकोको अत्यन्त कष्ट मालूम पड़ता है; क्योंकि सभो विषयोंका उपभोग करनेसे परिणाममें संस्कारवशतः दुःख भुगतना पड़ता है। मनुष्य जितना विषय भोग करता है, उससे भो अधिक भोग-लालसा बढ़ती है। किन्तु विषयभोगके समय किसो विषयके नहीं मिलने पर जो दुःख होता है, उसे कोई परिहार नहीं कर सकता; वरन् दुःखान्तर उपस्थित हुआ करता है। सुतरां विषयभोगमें कुछ भो सुखको सम्भावना नहीं है। सुखसाधक सामग्रोके उपस्थित होने पर उसके विरोधोके प्रति द्वेष उत्पन्न होता है और सुखानुभवके समय भो तापरूप दुःख पहुंचता है। उस समय तो सुख मिलता है और जब अनभिमत द्रव्य उपस्थित होता है, तब दुःख हुआ करता है। इस प्रकार पुनःपुनः सुख और दुःखकी उत्पत्ति होतो है। अतएव सभोको दुःखमय समझ कर विवेकशाली मुनि लोग विषयभोगादिका परित्याग करते हैं। सुखानुभवके समय भो तापदुःख उपस्थित होता है, क्योंकि सुखसाधक सामग्रोके उपस्थित होने पर भो उसके विरोधोके प्रति द्वेष रहता है। अतः तापदुःख, संस्कार दुःख और परिणाम दुःख इन तीन प्रकारके दुःखों द्वारा सत्व, रज और तम इन तीन गुणकी वृत्तिका स्वरूप देखा जाता है। अतएव किसी प्रकारका विषयभोग क्यों न हो, उससे दुःखके सिवा सुखकी सम्भावना नहीं है। विशेष विवरण दुःखमें देखो।

तापन (सं॰ क्ली॰) तप-णिच् भावे ल्युट्। १ तापकरण। (पु॰) कर्त्तरि ल्यु। २ सूर्य। ३ कामदेवके पांच वाणोंमेंसे एक वाण। ४ सूर्यकान्त मणि। ५ अर्कवृक्ष, मदार। ६ आनद्ध यन्त्र, ढोल नामका बाजा। (त्रि॰) ७ तापक, ताप देनेवाला। (क्ली॰) ८ नरकविशेष, एक नरकका नाम। ९ तन्त्रमें एक प्रकारका प्रयोग। इससे शत्रुको पोड़ा होती है।

तापना (हिं॰ क्रि॰) १ अग्निकी गरमीसे अपनेको गरम करना। २ शरीर गरम करनेके लिये जलाना, फूंकना। ३ नष्ट करना, बरबाद करना।

तापनी (सं॰ क्ली॰) १ उपनिषद्भेद, एक उपनिषद्का नाम। २ स्वर्णमय, वह जो सोनेका बना हो। स्वर्णका

विकारः अण । ३ निष्क परिमाण सुवर्ण । (वि०) ४ तापयोग्य, गरमहोनेके काबिल ।

तापमान-यन्त्र—यन्त्रविशेष, एक यन्त्र जिसे अंग्रेजोंमें थर्मामीटर (Thermometer) कहते हैं। जिस यन्त्रके द्वारा उष्णताका निरूपण किया जाता है, उसका नाम तापमान यन्त्र है। साधारणतः जिस तापमानका व्यवहार होता है, वह कन्द संयुक्त केवल एक कांचकी नली है, जिसके कन्द और नलका कुछ भाग पारदसे भरा रहता है। उष्णताकी ह्रासवृद्धि होनेके कारण यन्त्रके भीतरका पारा संकुचित और विस्तृत हुआ करता है। द्रवमान तुषार या हिमजलमें डालनेसे पारा जिस अङ्क तक नीचे गिर जाता है, उसे द्रवणाङ्क कहते हैं और खौलते हुए पानीमें अथवा उससे निकले भापमें डालनेसे जिस अङ्क तक पारा चढ़ जाता है उसे फुटनाङ्क (Boiling point) कहते हैं।

इन दो अङ्कोंके बीचकी जगहको कोई १८०, कोई १०० और कोई ८० के बराबर भाग कर उष्णताके अंश-चिन्होंको अङ्कित करते हैं।

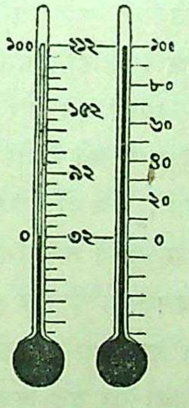

इङ्गलैण्डमें प्रथमोक्त तापमान प्रचलित है। फारनहीट नामक एक ओलनदाज विद्वान्ने इसका आविष्कार किया था, इसीलिये यह फारनहीटका तापमान कहलाता है। फारनहीटका द्रवणाङ्क ३२, फुटनाङ्क २१२, और इन दोनों अङ्कोंके भीतरका स्थान १८० समान अंशोंमें विभक्त है। द्रवणाङ्कके ३२ अंश नीचे शून्य है।

फ्रान्स देशमें दूसरी तरहका तापमान प्रचलित है। इसका द्रवणाङ्क ०° और फुटनाङ्क १००° तथा इन दो अङ्कोंके बीचका स्थान १०० समान अंशोंमें विभक्त है। तीसरी तरहका तापमान रूसराज्यमें प्रचलित है। रिउमर नामक एक व्यक्तिने इसका पहले पहल प्रचार किया इसका द्रवणाङ्क ०° और फुटनाङ्क ८०° है और इन दो अङ्कोंके बीचका स्थान ८० सम भागोंमें विभक्त है। अतएव देखा जाता है कि जिस उष्णताके कारण हिमजल खौलने लगता है, उसीके १८०, १०० अथवा ८० समभागोंके एक भागसे प्रत्येक स्वरूपकी उष्णताका परिमाण प्रकाशित होता है।

हिमजल जितना गरम होनेसे उबलने लगता है उतना ही गरम होनेसे फारनहीट, शतांशिक और रिउमर इन तीनों तापमान-यन्त्रोंमें पारा यथाक्रम—३२, ० और ० से २१२, १०० और ८० चिह्न तक उठेगा। उष्णताके अंश लिखते समय संख्याके दक्षिण ओर अंशके तनिक ऊपर एक छोटा शून्य देते हैं और शतांशिक फारनहीट या रिउमर जिस प्रणालीके अंश हों उसके नामका प्रथम अक्षर लिखा जाता है।

यथा—२७° श, ६०° फा, १२° रि; अर्थात् शतांशिकके २७, फारनहीटके ६० और रिउमरके १२ अंश। शून्यके नीचेका कोई अंश लिखना हो तो उसके आगे ऋण चिह्न देते हैं। यथा—१५° श; अर्थात् शतांशिक तापमानके शून्यसे १५ अंश नीचे।

तापमानके विषयमें विशेषरूपसे लिखनेके पहले तापका एक प्रधान गुण वर्णन करना बहुत जरूरी है। तापके उस गुणका नाम प्रसारण (Expansian) है। तापके लगनेसे समस्त वस्तुएँ प्रसारित होती हैं। वस्तुओंके परमाणु विलग होनेसे वस्तुका प्रसरण होता है। घन, तरल और वाष्पीय ये तीनों पदार्थ तापके इस गुणके वशमें हैं जिनमें वाष्प, सबसे अधिक तरल उसकी अपेक्षा कम और घन सबकी अपेक्षा अल्प वशवर्ती है। दूध तरल पदार्थ है। किसी एक कड़ाहीमें दूध रख कर उत्ताप देनेसे वह उफन उठता है।

कड़ाही घन पदार्थ है सुतरां उत्ताप लगनेसे उसका प्रसरण लक्षित नहीं होता। दूध तरल है इससे उसका प्रसरण खूब दिखाई देता है। किसी मशकमें दश आना भर हवा ले कर गरम करनेसे, मशक हवासे परिपूर्ण हो कर सब तरफसे फूल उठेगी, किन्तु यह प्रसरणका

नियम सर्वत्र एकसा नहीं होता। जलके सम्बन्धमें इस नियमका उल्लङ्घन देखा जाता है, जो आगे दिखाया जायगा। जो हो इसी प्रसारण गुणके आधार पर तापमान-यन्त्रकी सृष्टि हुई। यह तापमान कई पदार्थोंका हो सकता है, जिनमें पारद, वायु और सुरासार (Alcohal) सबसे अच्छे हैं। इन तीनोंकी निर्माणविधि एकसी है। पारेका तापमान सर्वत्र प्रसिद्ध है, इसलिये उसीका वर्णन करना चाहिये, पहले यह बतलाया जाय कि यह किस तरह बनाया जाता है। एक काँचका नल जिसके बीचमें ऊपरसे नीचे तक बालके बराबर एक छेद रहता है। इस नलका एक भाग खुला रहता है और दूसरा भाग कुछ प्रसारित हो कर एक गोलाकार वर्तुलके अनुरूप होता है। इस नलका मुंह खुला होनेसे बाहरकी हवा उसमें प्रवेश कर सकती है। नलीके मध्यभागमें भी वायु है, नलीका वर्तुलाकार भाग अग्निमें उत्तप्त करनेसे नलीके भीतरकी वायु गरम हो कर प्रसारित होती है; अधिक स्थान घेरनेके कारण नलीके भीतर नहीं रह सकती। ऊपरका मुँह खुला है, इसी रास्ते बाहर निकल आती है। इस तरह नलीके भीतरकी हवा ठण्ढी होनेके पहले ही उसे एक पारेसे भरे पात्रमें डुबाओ। नलीके भीतरकी हवाके शीतल होते ही वायु संकुचित होनेसे नलके भीतरका स्थान शून्य (खाली) हो जाता है। उस समय बाहरकी हवाके पेषणसे उस पात्रके पारेका कुछ भाग शून्यस्थलको पूर्ण करते करते नलीके वर्तुलाकार भागमें जा कर पड़ता है। इसके बाद नलीका वहाँसे निकाल कर पूर्ववत् वर्तुलाकार भाग और नलीका सारा हिस्सा आगमें गरम करो। पारा गरम होने लगेगा और क्रमशः उबल कर जब वाष्पाकार धारण करेगा, तब सारी नलीमें घिर जायगा और वायुके बचे हुए भागको वहाँसे निकाल बाहर कर देगा। तब उस नलीके भीतर और उसके वर्तुलाकार भागमें पारद वाष्पको छोड़ कर कुछ नहीं रहता। उक्त नलीका खुला भाग पुनः पारद पूर्ण पात्रमें निमज्जित करो। इस समय उस नलीमें वायु नहीं है; समस्त भाग केवल पारद-वाष्पसे परिपूर्ण है। वह वाष्प क्रमशः शीतल और संकुचित हो कर तरल पारदके रूपमें परिणत हो कर नलीका कुछ भाग शून्य कर देता है। तब बाहरकी हवाके पेषणके कारण उसे बर्त्तनका पारा क्रमशः नलीमें बढ़ने लगता है। और नली एवं उसका वर्तुलाकार भाग पारदसे पूर्ण हो जाता है। पारद अभी सम्पूर्ण शीतल नहीं हुवा। ऐसी अवस्थामें ऊपर कहा हुआ नलीका खुला भाग अग्निमें गला कर बढ़ाओ, जिससे उसमें और वायु प्रवेश न कर सके; इसके बाद नलीके सम्पूर्ण रूपसे शीतल हो जाने पर देखा जायगा कि केवल वह वर्तुलाकार भाग और नलीका थोड़ासा हिस्सा पारेसे पूर्ण है, बाकी हिस्सा शून्य हो गया।

इसे ले कर अब एक तुषारपूर्ण पात्रमें डुबाओ पहले पहल तुषार जरा गलने लगता है। तुषारके अत्यन्त शीतल होनेसे पारा संकुचित हो कर नलीके निम्न भागमें गिरता है। प्रायः १५ मिनट रखनेके बाद जब पारा नीचे नहीं गिरता, तब उस जगह एक रेखा खींचो। जब कभी यह पारद द्रवमाण तुषार या ऐसे ही किसी दूसरे शीतल पदार्थोंमें डुबाया जायगा, वह इस रेखाके नीचे कभी नहीं गिरेगा। इसके बाद इस तापमान नलीको उबलते हुए पानीके पात्रमें डुबा कर १५ मिनिट तक रहने दो, इसमें पारा जितना ऊपर उठेगा, उस चरम सीमामें एक और रेखा अङ्कित करो। जलको कितनी ही आग क्यों न दी जाय, पारा उससे ऊपर कभी न उठेगा। अब दो रेखाएं मिलीं। पहली द्रवमाण तुषारके संसर्गसे नीचे गिरे पारेकी अवनति की चरम सीमा बतलाती है और दूसरी, खौलते पानीमें डालनेसे नलीके ऊपर पारेके उत्थानकी चरम सीमा व्यक्त करती है। यहां पर यह कह देना जरूरी है कि खौलते हुए पानीका ताप सब समय एक सा नहीं रहता। वायुमण्डलके पेषण (दवाव)के कारण उसमें घटती बढ़ती होती है। जो हो मोटी तौर पर यहां यह मान लिया गया कि वह एकसा रहता है। अब यह जाना गया कि ये दो रेखाएँ दो चरम सीमाएं जतलाती हैं। प्रथम रेखा जलका घनीभाव या तुषाराकार बतानेवाली और दूसरी वाष्पीभाव बतानेवाली है। इन दोनोंके बीचका भाग एक सौ बराबर हिस्सोंमें विभक्त करनेसे शतबोधक शतांशिक तापमान होगा। पहली रेखाकी पास

एक शून्यबिन्दु, दूसरी रेखाके पास १०० एकसौका अङ्क लिखा जाता है। नलीके ऊपर अङ्क लिखनेके लिए उसे मोम लगा कर चारों ओरसे ढक दो। इसके बाद प्रथम रेखासे द्वितीय अर्थात् अन्तिम रेखा तक ठीक जगह पर सुईसे अङ्क दे कर सारी नली हाइड्रोफ्लूरिक (Hydro-fluoric) एसिड् (तेजाब)-में डुबाओ। कुछ देर बाद निकाल कर मोम पोंछ देने पर देखा जायगा कि (उस तेजाबके साथ, काँचका एक विशेष गुण होनेके कारण, उसके सहयोगसे) कांचके सभी अङ्कित स्थानोंमें चत हो गये हैं। उपरोक्त नलीका वर्तुलाकार भाग नीचेकी ओर रखनेसे शून्यके ऊपर एकके बाद एक अङ्क तापकी क्रमशः उन्नतिका बोध कराते हैं; सुतरां उपरोक्त रेखाओंके बीचकी किसी रेखाके ऊपरकी रेखा अपेक्षाकृत अधिक ताप प्रकाश करती है।

सबसे पहले यही शतांशिक तापमान-यन्त्र व्यवहारमें लाया गया। अत्यन्त सुविधाजनक होनेके कारण यह आजकल सर्वत्र प्रचलित है। स्वीडन देश-वासी एक वैज्ञानिकने इसे निर्माण किया है। उनका नाम सेलिसयस (Celsius) था। इन्होंने सन् १६७० ई०में जन्म लिया और सन् १७५६ में इनकी मृत्यु हुई।

फारनहीट (Fahrenheit) नामक एक प्रुसिया देश-वासी वैज्ञानिकने एक दूसरा तापमान-यन्त्र बनाया। यही तापमान इङ्गलैण्डमें अधिक व्यवहारमें लाया जाता है। यह सेल्सियसके तापमानसे भिन्न है। यह तापमान घनीभावबोधिका और वाष्पीभावबोधिका रेखा तक १८० समभागोंमें विभक्त है। इस यन्त्रके वाष्पीभाव-बिन्दुमें २१२ और घनीभाव-बिन्दुमें ३२का अङ्क लिखा रहता है। शून्यबिन्दु घनीभाव-बिन्दुके ३२ अंश नीचे रहता है। कारण, उनके मतमें नमक और तुषार साथ मिलानेसे निम्नतम तापक्रम उत्पन्न करते हैं इसीलिये उन्होंने वहां पर शून्य बिन्दु निर्धारित किया। इन दो तापमानोंको छोड़ कर एक और तापमान है; उसका नाम है रिउमर (Reaumer); रिउमर नामक किसी रासायनिकने इसका निर्माण किया। यह जर्मनीके उत्तरमें व्यवहृत होता है। यह वाष्पीभाव-बोधिकासे घनीभाव-बोधिका रेखा तक ८० अंशोंमें विभक्त है। प्रयोजनके अनुसार इन तीनों प्रकारके तापमान-यन्त्रोंकी दीर्घतामें घटबढ़ की जा सकती है और घनीभाव-बिन्दु उसके मध्यस्थलमें कभी १०के भेदसे और कभी ५के भेदसे अङ्कित किया जाता है तथा तापांश प्रकाश करते समय परस्परके अंकोंके ऊपर एक बिन्दु दिया जाता है। जैसे इंगलैण्डमें ग्रीष्मकालका तापक्रम ३५°।

फारिनहीट तापमानके साथ सेलसियस वा रिउमर तापमानकी तुलना किंवा सेलसियस या रिउमर तापमानके साथ फारिनहीटकी तुलना करनी हो तो इस प्रकार करनी चाहिये :—

(फारिनहीट फ, सेलसियस स, रिउमर र,) घनीभाव-बिन्दुसे वाष्पीभाव तक फ १८० स १०० और र ८० अंशोंमें विभक्त हैं; सुतरां १८०° फ = १००°स = ८०°र। प्रत्येकमें २० का भाग दे कर निकला—

$$९^\circ \text{फ} = ५^\circ \text{स} = ४^\circ \text{र}$$

$$\text{सुतरां } १^\circ \text{फ} = \frac{५}{९}\text{स} = \frac{४}{९}\text{ र}$$

$$\text{और } १^\circ \text{ स} = \frac{९}{५}^\circ \text{ फ} = \frac{४}{५}^\circ \text{र}$$

$$\text{सुतरां } १^\circ \text{फ} = \frac{५}{९}^\circ \text{स} = \frac{४}{९}^\circ \text{ र}$$

$$\text{और } १^\circ \text{स} = \frac{९}{५}^\circ \text{फ} = \frac{४}{५}^\circ \text{ र}$$

$$\text{तथा } १^\circ \text{र} = \frac{९}{४}^\circ \text{ फ} = \frac{५}{४}^\circ \text{ स}$$

अब इनके द्वारा किसी एक तापमानके अङ्क देनेसे और दो तापमानोंके अंश सहज ही प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके तीन नियम नीचे दिखलाए जाते हैं।

यह याद रखना चाहिये कि फके ३२° = र और सके ०°, सुतरां फको र या समें परिणत करनेके लिए पहले ३२ घटाना होगा।

प्रथम नियम। फको स या रके मतानुसार करनेकी प्रणाली इस प्रकार है :—

फ = ३२
—
स = ९ × ५

फ = ३२
—
र = ९×४

फको समें परिणत करनेके लिये फ के अङ्कसे प्रथम ३२ घटा कर बाकीको $\frac{५}{९}$ से = गुणा करो; यथा—

$$२१२^\circ \text{फ} = (२१२ - ३२)\ \frac{५}{९} = १८० + \frac{५}{९} = १००^\circ \text{स}$$

फको रमें बदलनेके लिए फके अङ्कसे ३२ घटाओ, जो बाकी बचे उसे $\frac{४}{९}$ से गुना करो।

$२१२^\circ फ = (२१२ - ३२)\frac{४}{९} = १८० \times \frac{४}{९} = ८० र.$

दूसरा नियम। सको फ या रमें परिणत करना हो तो—

$फ = \frac{स}{५} \times ९ + ३२.$

$र = \frac{स}{५} \times ४.$

तीसरा नियम। रको स या फमें बदलना हो तो—

$स = \frac{र}{४} + ५$

$फ = \frac{र}{४} \times ९ + ३२.$

रको समें लानेके लिये $\frac{५}{४}$ से गुणा किया जाता है;

यथा— $८०^\circ र = ८०^\circ \times \frac{५}{४} = १००^\circ स$।

रको फ बनानेके लिए $\frac{९}{४}$ के साथ गुणा करो और गुणनफलमें ३२ जोड़ दो।

यथा-$८०^\circ र = ८० + \frac{९}{४} = १८० + ३२ = २१२^\circ फ$।

पारदको छोड़ कर स्पिरिट और वायुके भी तापमान हुआ करते हैं। एक स्पिरिटका तापमान (Alcohol-thermometer) अत्यन्त निम्नतम ताप बता देता है क्योंकि अलकोहल कभी जमता नहीं। लेकिन पारा घनीभूतविन्दुके ४० अंश नीचे जम जाता है। इसलिए इससे भी नीचेका तापक्रम जाननेके लिए अलकोहल ही काममें लाया जाता है। पर इस प्रकारके तापमानसे अधिकतर तापक्रम नहीं जाना जाता; क्योंकि शतांशिक तापमानके ७८° अंश गर्मी लगते ही अलकोहल उबलने लगता है। तापक्रमकी विशेष बारीकियाँ जाननेके लिये वायुका तापमान काममें लाया जाता है। इसे तय्यार करनेके लिए तापमानका वर्तुलाकार भाग और दण्डाकार भागका कुछ अंश वायुसे पूर्ण करनेके बाद नलका बाकी हिस्सा किसी तरल पदार्थके द्वारा पूर्ण कर दिया जाता है। नलीका मुख उस पदार्थमें मज्जित रहता है। उसी तरल पदार्थका प्रसरण और सङ्कोचन ही तापमानकी ह्रासवृद्धिका बोध कराता है। अवश्य ही जब यह तापमान व्यवहारमें पाया जाता है, तब इसका वर्तुलाकार भाग ऊपरकी ओर रहता है। वायुके तापमान कई प्रकारके होते हैं, किन्तु उनकी निर्माण-विधि अत्यन्त सूक्ष्म और अवयव अतिशय दीर्घ होते हैं; इसलिए वे साधारण व्यवहारमें नहीं आते। किन्तु यदि अच्छी तरह बना सकें, तो और तापमानोंकी अपेक्षा सूक्ष्मतम रूपसे तापक्रम जाना जा सकता है।

इनको छोड़ कर एक भेदसूचक तापमान-यन्त्र होता है। किसी एक जगहके तापक्रममें और उसके निकटवर्ती स्थानके तापक्रममें कितना अन्तर है, यह जाननेके लिए इसका व्यवहार होता है।

दो वर्तुलाकार नलियाँ वायु-द्वारा पूर्ण और नीचेके हिस्सेमें एक वक्र नली-द्वारा जुड़ी रहती हैं। यह वक्र नली किसी रंगीन तरल पदार्थसे पूर्ण रहती है। नीचेकी इस वक्र नलीका तरल पदार्थ दोनों ओर एक समतलमें रहता है। अब यदि एक ओरका वर्तुलाकार मुख दूसरी ओरके वर्तुलाकार मुखकी अपेक्षा अधिक उत्तप्त हो तो उस ओरकी वायुके विस्तारके कारण पेषण अधिकतर होगा; सुतरां एक ओरकी नलीका तरल पदार्थ उस पेषणके कारण दूसरेमें चढ़ जायगा और इसी तरह यदि दूसरी ओर अधिक उत्तप्त हो तो प्रथम नलीमें यही क्रिया देखनेमें आयेगी। सचमुच इस तरहके यन्त्र-द्वारा तापक्रमका सूक्ष्मसे सूक्ष्म भेद जाना जा सकता है।

यद्यपि पारेका तापमानयन्त्र अच्छी तरह और जहां तक उत्कृष्ट हो सके वहाँ तक उत्कृष्टताके साथ बनाया जाता है, तथापि समय समय पर उसमें भी संशोधनकी आवश्यकता होती है।

१। शून्यविन्दु-परिवर्तन—घनीभावबिन्दु भी महीनेमें शून्यविन्दुसे ½°-उठ जाता है। सभी तापमानोंकी विशेषतः आपात-निर्मित समस्त तापमानोंकी यही दशा है। इसका कारण यह है कि तापमानयन्त्रमें पारद भर देनेके बाद वर्तुलाकार भाग सहसा शीतल हो कर संकुचित होता है, किन्तु वहीं संकोचनकी चरमसीमा नहीं हो जाती, उस समय भी थोड़ा थोड़ा संकुचित होता रहता है एवं इसीलिए उसका पारद नलमें उठता जाता है। किन्तु यह संकोचनशक्ति क्रमशः कम होती जाती है। और इसीलिए आपात-निर्मित तापमानोंमें यह विशेषरूपसे लक्षित होता है। सुतरां तापमानमें तापक्रम पहले जहां तक निर्धारित था, उसकी अपेक्षा तनिक ऊपर ऊपर उठने लगेगा। इस दोषके

हटानेके लिए बीच बीचमें तापमान द्रवमाण तुषारमें निमग्न किया जाता है। हर एक बार तापांश कितना हुवा यह याद रखनेसे क्रमशः उन भिन्न भिन्न परीक्षाओं द्वारा परस्पर कितना भेद हुवा यह जाना जायगा अर्थात् यदि शून्यविन्दू ३° तापांश ऊपर उठ जाय तो तापक्रममें ३° घटा कर संशोधन कर लेना होगा।

२। इसके सिवाय और भी सामयिक परिवर्तन हुवा करते हैं। जिनका कारण तापमानयंत्रका उत्तप्त हो कर सहसा शीतल हो जाना है। इसीलिए किसी तापमानयन्त्रका वाष्पीभाव-विन्दु निर्दिष्ट करनेके पहले ही उसका घनीभावविन्दु निश्चय कर लेना उचित है, नहीं तो गणनामें अवश्य भूल होगी।

आजकल तापमानयंत्र द्वारा आंधी पानी इत्यादि कितने विषय बताये जाते हैं। उनका वर्णन करना दुःसाध्य है। ज्वर आने पर वह दुःसाध्य है या सुसाध्य, इसका निर्णय भी तापमानसे होता है और भी असंख्य उपकार हो रहे हैं। ताप देखो।

तापत्रिष्णु (सं० त्रि०) ताप-इष्णुच्। १ तापनीय, तापने योग्य। २ यन्त्रणादायक, जिससे दुःख हो।

तापश्चित (सं० क्ली० तपसि चीयते चि-क्त स्वार्थे अण्। १ यज्ञभेद, एक यज्ञका नाम। यज्ञ देखो। २ यज्ञाग्निभेद, यज्ञकी अग्नि।

तापस (सं० त्रि०) तपःशीलमस्य तपस्-ण। छत्रादिभ्यो णः। पा ४।४।६२। १ तपस्वी, तपस्या करनेवाला। (पु०) २ दमनकवृक्ष दौना नामका पौधा। (क्ली०) ३ तमाल पत्र, तेजपत्ता। ४ दाक्षिणात्यके अन्तर्गत एक पौराणिक जनपद। टलेमीने इसका Tabassi नामसे उल्लेख किया है। अनुमान किया जाता है कि इसकी वर्त्तमान अवस्थिति खानदेशमें है। (पु०) ५ वक पक्षी, बगला ६ इक्षुविशेष, एक प्रकारकी ईख। (सुश्रुत १।४५)

तापसक (सं० पु०) तापस अल्पार्थे कन्। सामान्य योगी, छोटा तपस्वी, वह तपस्वी जिसकी तपस्या थोड़ी हो।

तापसज (सं० क्ली०) तापसात् जायते जन-ड। तेजपत्ता

तापसतरु (सं० पु०) तापसप्रियस्तरुः मध्यपदलोपिकर्मधा०। इङ्गुदी वृक्ष, हिंगोट वृक्ष, इंगुआका पेड़। तपस्वी लोग वनमें इंगुदीका तेल ही काममें लाते थे। इसीसे इनका नाम पड़ा है।

तापसद्रुम (सं० पु०) तापसप्रियः द्रुमः। इङ्गुदी वृक्ष, इंगुआका पेड़।

तापसद्रुमसन्निभा (सं० स्त्री०) तापसद्रुमेण सन्निभा तुल्या ३-तत्। गर्भदात्री क्षुप, सफेद भटकटैया।

तापसपत्री (सं० स्त्री०) तापसप्रियं पत्रं यस्या बहुव्री० जातित्वात् ङीष्। दमनकवृक्ष, दौना नामक पौधा।

तापसप्रिय (सं० पु०) तापसानां प्रियः, ६-तत्। १ वृक्षविशेष, चिरौंजीका पेड़। २ इङ्गुदी वृक्ष, इंगुआका पेड़। (त्रि०) ३ तापस प्रियमात्र, जो तपस्वियोंका प्रिय हो।

तापसप्रिया (सं० स्त्री०) तापसानां प्रिया, ६-तत्। द्राक्षा, दाख, मुनक्का। द्राक्षा देखो।

तापसवृक्ष (सं० पु) तापसतरु देखो।

तापसा (सं० स्त्री०) द्राक्षा, दाख।

तापसी (सं० स्त्री०) १ तपस्या करनेवाली स्त्री। २ तपस्वीकी स्त्री।

तापसेक्षु (सं० पु०) इक्षुविशेष, एक प्रकारकी ईख।

ताप सेष्ट (सं० पु०) तापसप्रिय देखो।

तापसेष्टा (सं० स्त्री०) तापसप्रिया देखो।

तापस्य (सं० क्ली०) तापसस्य धर्मं ष्यञ्। तापसधर्म, तपस्वियोंका कर्त्तव्य। वानप्रस्थका हितकर धर्म ही तापस्य है। तापस्य ही मोक्षका एकमात्र साधन है। पहले राजर्षिगण इस धर्मको अंतमें ग्रहण करते थे।

तापस्वेद (सं० पु०) तापने स्वेदः ३-तत्। स्वेदक्रियाविशेष; गरम बालू, नमक, वस्त्र, हाथ, आगकी आँच आदिसे सेंक कर पसीना निकालनेकी क्रिया।

तापहर (सं० त्रि०) तापं हरति हृ-ट। तापनाशक, बुखारको दूर करनेवाला।

तापहरी (सं० स्त्री०) तापहर स्त्रियां ङीप्। व्यञ्जन विशेष, एक प्रकारका पकवान। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—उरदकी बरी और धोए हुए चावलको हल्दीके साथ घीमें तलते हैं। तल जाने पर उसमें उतना ही जल डाल कर उबालते हैं। अच्छी तरहसे बल जाने पर उसमें अदरख और हींग डालते हैं। इस तरह जो द्रव्य प्रस्तुत होता है, उसे ताहरी या तापहरी कहते हैं। गुण—बलकारक, शुक्रवर्द्धक, कफकारक, शरीरकी उप-

चयकारक, तृप्तिजनक, रुचिकर और गुरु। इसके सिवा इसकी उपादान सामग्रीमें जो जो गुण हैं, इसमें भी वे ही गुण पाये जाते हैं। (भावप्रकाश) (त्रि०) २ तापहारिणी मात्र जिससे ताप दूर हो।

तापा (हिं० पु०) १ मछली मारनेका तख्ता। २ मुरगीका दरबा।

तापायन (सं० पु०) वाजसनेयी शाखाका एक भेद।

तापिक (सं० त्रि०) तापे तापकाले भवं ठञ्। ग्रीष्मभव जलादि, जो गरमीसे उत्पन्न होता हो।

तापिच्छ (सं० पु० तापिनं छादयति छद-ड पृषोदरा० साधुः। तापिञ्ज देखो।

तापिञ्छ (सं० पु०) तापिनं छदति आच्छादयति छद-ड पृषोदरा० साधुः। १ तमालवृक्ष। (क्ली) २ तापिञ्छ पुष्प, एक प्रकारका फूल।

तापिञ्ज (सं० क्ली०) तापिनं जयति जि-ड। १ धातुमाक्षिक, सोना मक्खी। (पु०) २ तमालवृक्ष।

तापित (सं० त्रि) तप-णिच्-क्त। १ तापयुक्त, जो तपाया गया हो। २ दुःखित पीड़ित।

तापिन् (सं० त्रि०) तापयति ताप-णिनि। १ तापक, ताप देनेवाला। तप-णिनि। २ तापयुक्त, जिसमें ताप हो। (पु०) ३ बुद्धदेव।

तापी (सं० स्त्री०) तापयति तप-णिच् अच् गौरादित्वात् ङीष्। नदीभेद, एक प्रकारकी नदी जो पश्चिमवाहिनी और विन्ध्याचलसे आविर्भूत होती है, तापती नदी। (मत्स्यपु० ११३) २७ विष्णुपुराणके मतसे यह नदी सह्यपादोद्भवा है। (विष्णुपु० २।३।११)

इस नदीका जल गाढ़ा, शीतल, पित्तघ्न, कफकृत्, वातदोषहर, हृद्य, कण्डु और कुष्ठनाशक है।

(हारित ७ अ०)

स्कन्दपुराणके तापीखण्डमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—

जगत्प्रसिद्ध सोमवंशमें सम्बरण नामके एक राजा थे। वरुणने अगस्त्य मुनिके शापसे सम्बरणरूपमें जन्म ग्रहण किया। उक्त राजाने कठोर तपसाधन करके सूर्यकन्या तापीको भार्यारूपमें ग्रहण किया। ये तापी अशेष पापदहनी और अत्यन्त रूपलावण्यसम्पन्न थीं।

तपती देखो।

तापीके नाम। तापीके इक्कीस नाम हैं—सत्या, सत्योद्भवा, श्यामा, कपिला, कापिला, अम्बिका, तापनी, तपनी, तपना, हार्दा, नासिकोद्भवा, सावित्री, सहस्रकरा, सनका, अमृतस्यन्दना, सुषुम्ना, सूक्ष्मरमणी, सर्पा, सर्पीविषापहा, तिग्मतिग्मरया (?), तारा और ताम्र।

माहात्म्य।—जो तापीमें स्नान करते हैं, वे समस्त पापोंसे विमुक्त होते हैं और जो इसका नामोच्चारण करते हैं, उनका पाप दूर होता है।

आषाढ़ मासमें तापीमें स्नान करनेका फल।—बारह महीनोंमें कोई भी मास आषाढ़मासके समान नहीं, क्योंकि इस मासमें जगत्पति श्रीविष्णु लक्ष्मीके साथ अनन्तशय्या पर शयन करते हैं तथा इस मासमें विश्वकर्माने भूतोंकी सृष्टि की है। (तापीखं० १।२१।२२)

आषाढ़ मासमें तापीमें स्नान करनेसे सब तरहके पापोंसे छुटकारा मिलता है। प्रयाग जा कर माघ मासमें बारह बार स्नान करके जो पुण्यलाभ किया जाता है, आषाढ़ मासमें इस तापीमें एक बार स्नान करनेसे उससे भी अधिक पुण्यलाभ होता है।

यदि कोई मनुष्य कपटता करके इसमें स्नान करे, तो भी तापीके माहात्म्यानुसार उसके शतजन्मार्जित पाप ध्वंस होते हैं। यदि बालत्ववशतः आषाढ़ मासमें तापीमें क्रीड़ा करते हुए स्नान करे, तो उसको भी देवालय, वापी, कूप, तड़ाग आदि बनवानेका पुण्य होता है। यदि कोई व्यक्ति किसी द्रव्यकी कामना करके इसमें स्नान करे, तो वह समस्त पापोंसे मुक्त हो कर अश्वमेधका फल लाभ करता है।

जो जानके वा बिना जाने आषाढ़ मासमें स्नान करते हैं, वे समस्त पापोंसे मुक्त हो कर सनातन ब्रह्मपद पाते हैं। (तापीखं ३।३०)

तापीकी मिट्टी शरीर पर लपेट कर अन्यत्र स्नान करनेसे जन्मान्तर-कृत पातक निश्चय ही ध्वंस होते हैं।

आषाढ़ मासमें तापीके किनारे जो दीपदान देते हैं, वे सहस्र कोटि कुलका उद्धार करते हैं। (तापीख० ३।४)

कुरुक्षेत्रमें प्रभूत सुवर्णदान करनेसे जो पुण्य होता है, इस तापीतट पर केवल दीपदान देनेसे वही पुण्य हुआ करता है।

कुरुक्षेत्र, काशी, नर्मदा आदिमें स्नान करनेसे जितना पुण्य होता है, आषाढ़ मासमें तपतीमें निमिषार्द्ध स्नान करनेसे उतना ही फल होता है।

(तापीख॰ ३।५०)

तापी नदीके दोनों तट पर १०८ महालिङ्ग विद्यमान हैं, तापीखण्डमें उनका माहात्म्य वर्णित है। तपनमें तपनेश; धर्मक्षेत्रमें धर्मेश, गोकर्णमें सिद्धनाथ, पार्वतीवनमें महेश, च्यवनक्षेत्रमें सुजातीश्वर, निष्कलङ्क मुनिके क्षेत्रमें पञ्चशिखके लिङ्ग, पुरूरवाके क्षेत्रमें नरवाहन लिङ्ग, बालक्षेत्रमें बाल, श्रावणक्षेत्रके कक्कोलासङ्गममें क्रीड़ालिङ्ग, पाञ्चालमुनिके क्षेत्रमें पुण्डरीकेश्वर जैमिनि क्षेत्रमें हरिश्चन्द्रेश्वर, गाधिक्षेत्रमें भरतेश, वैरोचनक्षेत्रमें विरोचनेश्वर, कङ्कोलकूट और गाधीश्वर वह्निक्षेत्रमें अर्बुद, नलेश्वर, धुन्धुमारेश्वर, कर्कोटक, पद्मकोषेश्वर और हयग्रीव महालिङ्ग, खद्योतनाख्यक्षेत्रमें कार्तवीर्याख्यलिङ्ग, कुम्भक्षेत्रमें श्रीकण्ठ और सुकण्ठ, भृगुक्षेत्रमें चन्द्रचूड़, पाशुपतक्षेत्रमें उग्र, तारकक्षेत्रमें तारेश, शशिभूषणक्षेत्रमें हंस, वशिष्ठक्षेत्रमें मुचुकुन्देश्वर और कुन्तलक लिङ्ग; बुधेशमें बिमलेश्वर, कुशमुनिके क्षेत्रमें कमल और नीलकण्ठ, अरुन्धतीवनमें शान्तेश, कुञ्जर, रोचक, पुष्कर, लक्ष्मेश, दुर्वारेश्वर, जामदग्न्येश और आशाप्रद्योतनेश्वर। पूर्वमें वामनेश, सुन्दरमें सुन्दरेश, राघवक्षेत्रमें रामेश, नन्दनमें मृकण्डेश, शरभङ्ग मुनिके क्षेत्रमें उज्ज्वलेश्वर, युग्मक्षेत्रमें महालिङ्ग, परमुक्तिमें सुरेश्वर लिङ्ग और अभयाशक्ति, नान्दिकक्षेत्रमें नन्देश, नारदक्षेत्रमें ज्वालेश्वर, ब्रह्मक्षेत्रमें सिद्धेश्वर, प्रकाशके ऊपर मतङ्गक्षेत्रमें गङ्गेश्वर, अर्जुनक्षेत्रमें अर्जुनेश, यौधिष्ठिरक्षेत्रमें श्रीकरेश्वर, अम्बिकाक्षेत्रमें अम्बेश, कृष्णाश्रिवक्षेत्रमें कल्मषापह, पञ्चमुखक्षेत्रमें आमर्दकेश्वर, कपिलक्षेत्रमें सिंहेश्वर और व्याघ्रेश्वर; चतुर्भुजक्षेत्रमें चतुर्भुजेश्वर, बृहन्नदीके किनारे मन्त्रेश्वर और भूतेश्वर, गौतमक्षेत्रमें गौतमेश्वर, नारदक्षेत्रमें गलितेश, इस स्थान पर रत्नसरित्तीरमें श्रीकण्ठके क्षेत्रमें रक्षेश्वर लिङ्ग और षोड़शी शक्ति; वरुणक्षेत्रमें प्राचेतस और वासवेश; भीमकक्षेत्रमें भीमेश्वर, करङ्कपावन क्षेत्रमें करङ्केश्वर, खञ्जन मुनिके क्षेत्रमें खञ्जनेश्वर और बल्वकेश; काश्यपके क्षेत्रमें काश्यपेश, भैरवी क्षेत्रमें भैरव, मोक्षेश्वर, भैरवी शक्ति, धूतपाप और कामपालेश्वर; मन्त्रिक्षेत्रमें मन्त्रेश्वर और परतीश्वर, नीलाम्बरक्षेत्रमें कोटीश्वर, अजपालीश्वर और एकवीरा शक्ति, राघवक्षेत्रमें रुद्र और दण्डपाणि; अम्बरीषके क्षेत्रमें अम्बरीषेश्वर अथवा अश्विनीकुमारक्षेत्रमें महातीर्थ और कातरीश्वर लिङ्ग, गङ्गाक्षेत्रमें गुप्तेश्वर वा गुप्तेश्वर, लोमशके क्षेत्रमें लोकेश्वर, तपतीनदीकी उत्तरवेदीमें विश्वेश्वर और कापालिक लिङ्ग; पूर्वोक्त क्षेत्रमें सुरेश्वर, नारदेश, कामलेश, सम्बरणेश्वर और तपती स्थापित तपनेश लिङ्ग; कुरुक्षेत्रमें कौरव नामक महालिङ्ग, सोमक्षेत्रमें सोमेश, जनकेश्वर और मोक्षेश्वर, कुमुदाक्षेत्रमें अटव्येश्वर, राघवक्षेत्रमें रामेश्वर, पिण्डेश्वर, दर्भावतीपति; जरत्कुमारमुनिके क्षेत्रमें और तपतीसङ्गममें तीन नागेश्वर, इस प्रकार कुल १०८ लिङ्गस्थान हैं। श्राद्ध समय इन १०८ लिङ्गोंके नामका पाठ करें। पाठ करनेसे सत्यलोकमें पितृगण सुधारस-द्वारा तृप्त होते हैं; अपुत्रक पुत्र, निर्धनी धन और मोक्षार्थी मोक्ष प्राप्त करते हैं। तापीनदीमें स्नान करके पाठ करनेसे पृथिवीके सम्पूर्ण तीर्थोंका फल होता है। इसके सिवा तापीखण्डमें और भी एक प्रधान तीर्थका उल्लेख है।

गोलानदी—यह नदी कूर्मपृष्ठसे विनिःसृत हुई है, इसमें स्नानादि करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

तापीके किनारे गोलानदीके जलमें स्नान करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता और उसके सात जन्म तक कुष्ठ नहीं होता।

अक्षमालातीर्थ—तपतीके विभवको देख कर महात्मा गौतमके हाथसे अक्षमाला गिर गई थी, तभीसे यह स्थान अक्षमालातीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। यह एक प्रधान तीर्थ है। इसमें जो मनुष्य पिण्डदान और स्नानादि करता है, उसको निरामय पद और पितरोंको अक्षयातृप्ति होती है। इस तीर्थमें सङ्गमेश्वर नामक गुप्त त्र्यम्बक लिङ्ग हैं, जिनकी पूजा करनेसे समस्त मनोरथोंकी सिद्धि होती है।

गजतीर्थ—तपतीके उत्तरकूलमें जहां गौतमीके साथ तापीका सङ्गम हुआ है, उस जगह यह तीर्थ है। यह तीर्थ मनुष्योंके लिये समस्त पापोंका नाशक है।

जो तापीसागरसङ्गममें सस्त्रीक स्नान करके जरत्कन्य को देखते हैं, उनका किसी समय भी वियोग नहीं होता और जो प्रसङ्गक्रम वा दैववश यहां आ कर स्नान करते हैं, वे निरापद होते और पितरोंका तर्पणादि करनेसे वे अक्षय होते हैं। (स्कन्दपुराण तापीख०)

यह तापीकी पौराणिक कथा है। अब यह नदी तपता वा ताप्ती नामसे प्रसिद्ध है। यह दाक्षिणात्यके पश्चिमांशका एक प्रधान नदी है।

मध्यप्रदेशके बेतूल जिलेमें (अक्षा० २१° ४८′ उ० और देशा० ७८° २५′ पू० में) इसकी उत्पत्ति है। मूलताई नगरमें (अक्षा० २१° ४६′ २६″ उ० और देशा० ७८° १८′ ५६″ पू०में) एक पवित्र तीर्थ है। बहुतोंका मत है, कि इसीसे तापतीनदीकी उत्पत्ति हुई है।

पहले मूलताई नगरसे सुजला सुफला भूमिके ऊपर प्रबलवेगसे इसने सातपुरा पहाड़की दो शाखाएं भेदी हैं इसकी बाईं ओर मेवाड़स्थ चिकलदा पहाड़ और दहिनी ओर कालीभीत-गिरिमाला है। प्रायः १५० मील तक तापतीनदीकी उपत्यका पर तुङ्ग गिरिशृङ्ग चला गया है। इसी प्रकार सातपुरा पहाड़से नीचेकी ओर आ कर उसने सुगभीर और प्रायः ७५ से १०० हाथ तक विस्तृत स्रोतस्वतीका आकार धारण किया है। किन्तु किसी किसी स्थान पर पानी इतना कम है, कि ग्रीष्मऋतुमें अनायास ही पैदल पार हो सकते हैं। इसमें दोनों किनारे ऊँचे होने पर भी टापू नहीं है। केवल मुहानेके सिवा सर्वत्र ही दोनों तीरके भाग ढालू और नाना प्रकारके वृक्षतृणगुल्मलताकीर्ण हैं।

इसके बाद तापती खानदेशकी ऊंची भूमि पर गई है। यहां पूर्वांश समुद्रपृष्ठसे ७०० से ७५० फुट ऊँचा होगा। यहाँसे यह क्रमशः निम्नमुखी हो कर जहां मालभूमि सूरत जिलेसे खानदेशको पृथक् करती है, वहां आ पहुंची है। यहां तापतीनदीसे बहुतसी शाखाएँ निकली हैं, जिनमें बाईं ओर पूर्णा, बाघुर, गिरना, बोरी पांजड़ा और शिवा तथा दहिनी ओर सूकी, अनेर, अरुणावती, गोमई (गोमती) और बलहा प्रधान हैं। खानदेशमें पहले १६ मील तक समतल और कृषिक्षेत्रके ऊपरसे प्रवाहित हुई है, किन्तु शेष २० मील तक दोनों किनारे अत्युच्च गिरिशृङ्गवेष्टित निविड़ जङ्गल है। इस अंशमें लोकालय नहीं है, बीच बीचमें कहीं दो एक घर अरण्यवासी भीलजातिकी झोंपड़ियां दीख पड़ती हैं।

यहां तापी पाषाणके घातप्रतिघातसे प्रबल स्रोताकार धारण कर बहुत कम चौड़ी जगहसे गिर रही है। इस सङ्कीर्ण पथका नाम है 'हरनफाल'। इसके बाद ही गुजरातका विस्तृत प्रान्तर पारम्भ हुआ है। उक्त अंशमें तापती नदी कहीं खूब चौड़ी और कहीं बहुत कम चौड़ी हो कर गिरि, दरी और निर्जन वनराजि भेदती हुई प्रायः ५० मील तक चली गई है। दाङ्ग नामक जङ्गलको पार कर यह नदी पश्चिममुखी हो कर सूरत जिलेमें पहुंची है।

यहां राजपीपलाके पहाड़को छोड़ कर और कोई भी पर्वत तापतीके मुखमें पतित नहीं हुआ। यहांसे ७० मील चल कर तापती सागरमें जा मिली है। इसके मध्य कहीं तो साधारण उर्वरा और कहीं कहीं समधिक शस्यशाली कृषिक्षेत्र दृष्टिगोचर होता है। अमरोलीसे ले कर सूरत तक तापीका एक बड़ा भारी घुमाव है। स्थलपथमें अमरोलीसे सूरत एक कोसकी दूरी पर है। किन्तु जलपथसे जानेसे प्रायः ५।६ कोस घूमना पड़ेगा। सूरतसे दक्षिण पश्चिममुखी प्रायः ४ मील तक जा कर खूब चौड़ी हो गई है और सागरमें जा मिली है।

तापतीकी लम्बाई ४५० मील है और प्रायः तीस हजार वर्गमील स्थानके ऊपरसे प्रवाहित होने पर भी सब जगह नाव जा आ नहीं सकती और तो क्या इसके, मुहानेसे १७ मील ऊपर तक ज्वार चढ़ने पर जगह जगह पैदल पार हुआ जा सकता है। मुहानेके पास बहुत रेती और टापू हैं, इसीलिए पोतादि सब समय निरापद नहीं हैं। सूरत बन्दरमें जो जहाज आ कर लगते हैं, वे इसी नदीसे जाते हैं।

आश्विनसे चैत्र मास तक यहां निर्विघ्नतया जहाज आदि लङ्गड़ डाल कर रह सकते हैं, किन्तु इसके बाद फिर निरापद नहीं है। मुहानेके पास बीच बीचमें छोटे छोटे टापूसे दीख पड़ते हैं, जिन पर वृक्षश्रेणी भी दिखलाई देती है; किन्तु स्रोतके समय इनमेंसे बहुतसे डूब जाते हैं।

सब जगह सुविधानुसार ज्वार-भाटा नहीं होता। भड़ौंचसे सागरसङ्गम तक ज्वार-भाटा ठीक होता है।

इस नदीमें रेती बहुत जमती है, इसलिए इसकी गतिका परिवर्तन देखनेमें आता है तथा बाढ़के वक्त किनारेको डुबो कर निकटवर्ती ग्राम नगर आदि प्लावित करती है। पहले दश बीस वर्ष बाद कभी कभी भयानक बाढ़ आती थी, जिससे सूरत और निकटवर्ती नगर वा ग्रामोंके कितने ही प्राणियोंकी मृत्यु होती थी तथा इतनी चीजें नष्ट होती थी कि जिसका कोई शुमार नहीं। इस समय पहलेकी तरह बाढ़ नहीं आती, इसीसे खैर है। किन्तु रेती बराबर जमा करती है। बड़े बड़े इञ्जिनियरोंने नाना कौशल किये, पर इसको रोक न सके।

तापतीके मुहाने पर सुवेली नामका एक विध्वस्त बन्दर दीख पड़ता है। किसी समय यूरोपीय वणिकोंके बहुतर बाणिज्यपोत वहां पहुंचा करते थे। अंग्रेज और पुर्तगीजोंमें यहां घोरतर युद्ध हुआ था; किन्तु अब सुवेलीको बन्दर नहीं कहा जा सकता। रेती जम कर यहां नदीका स्रोत बन्द हो जानेसे यह प्राचीन बन्दर परित्यक्त हुआ है।

तापती नदीके दोनों किनारों पर जैसे हिन्दू तीर्थोंकी भरमार है, उसी तरह प्राचीन बौद्धक्षेत्रोंका भी अभाव नहीं है। प्रसिद्ध अजन्ता (अजण्ट) गुहा तापतीके दक्षिण-तट पर अवस्थित है। इसके किनारे बाघ नामक स्थानमें छोटेसे पहाड़ पर बौद्धों द्वारा खोदित तीन गुहाएं हैं।

प्रति बारह वर्षके अन्तमें तापतीके तीरवर्ती बोड़न नामक ग्राममें मेला हुआ करता है, जिसमें हजारों यात्रियोंका समागम होता है। इस समय तापतीके किनारे सूरतसे दो मील दूरी पर गुप्तेश्वर और अश्विनीकुमार तीर्थ ही सर्वप्रधान हैं। अब भी सैकड़ों हिन्दू उक्त तीर्थमें जाते हैं। स्कन्दपुराणके तापीखण्डमें ६५ और ६६वें अध्यायमें अश्विनीकुमार और गुप्तेश्वरका माहात्म्य वर्णित है। अब भी बहुतसे लोग गुप्तेश्वरमें शवदाह करने आते हैं बहुतोंका विश्वास है, कि यहां तापतीके साथ गङ्गा आ मिली है।

तापती नदीके मुहानेके पास वारिताप्य नामक एक तीर्थ है, जिसका वर्त्तमान नाम वारियाव है। कहा जाता है, कि यहां तपतीने तपतेश लिङ्गकी स्थापना और तपस्या की थी। इसके पश्चिममें कुछ दूरी पर एक कुरुक्षेत्र है।

तापीखण्डके मतसे—इस पुण्यक्षेत्रमें तपतीके पुत्र कुरुने कठोर तपस्या की थी, इस कारण इसका नाम कुरुक्षेत्र पड़ गया है। (तापीखं० ६८ अ०)

तापी-सागरसङ्गम भी एक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहांसे कुछ दूरी पर नाविकोंके सुभीतेके लिए एक बहुत ऊंचा पक्का बत्ती-घर बना हुआ है। समुद्रमें प्रायः आठ कोस दूरीसे इसका उजाला दिखलाई देता है।

२ सूर्यकी एक कन्या। ३ यमुना नदी।

तापीज (सं० पु०) माक्षिकधातु, सोना मक्खी।

तापीसमुद्भव (सं० त्रि०) १ जो तापी नदीके किनारे या उसके आस पासमें उत्पन्न हो। (क्ली) २ अग्निप्रस्तर, एक प्रकारका खनिज पदार्थ। ३ मणिभेद, एक मणिका नाम।

तापेन्द्र (सं० पु०) सूर्य।

तापेश्वर (सं० पु०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

ताप्य (सं० क्ली०) तापि हितं ताप-यत्। धातुमाक्षिक, सोनामक्खी।

ताप्यक (सं० क्ली०) ताप्यमिव स्वार्थे कन्। धातु माक्षिक, सोनामक्खी।

ताप्युत्थसंज्ञक (सं० क्ली०) ताप्युत्था संज्ञा यस्य बहुव्री० कप्। धातुमक्षिक, सोनामक्खी।

ताफ्ता (फा० पु०) एक प्रकारका चमकदार रेशमी कपड़ा।

ताब (फा० स्त्री०) १ ताप, गरमी। २ चमक, आभा। ३ सामर्थ्य, शक्ति, मजाल। ४ धैर्य, हिम्मत, साहस।

ताबड़तोड़ (हिं० क्रि०-वि०) अखण्डित क्रमसे, लगातार, बराबर।

ताबा (हिं० वि०) ताबे देखो।

ताबूत (अ० पु०) वह सन्दूक जिसमें मृतदेह रख कर गाड़नेके लिये ले जाते हैं।

ताबे (अ० वि०) १ वशीभूत, अधीन, मातहत। २ आज्ञानुवर्त्ती, हुक्मका पाबन्द।

तावेदार (अ० वि०) आज्ञाकारी, टहल करनेवाला।

तावेदारी (फा० स्त्री०) १ सेवकाई, नौकरी। २ सेवा, टहल।

ताम (सं० पु०) ताम्यतेऽनेन तम करणे घञ्। १ भीषण, डरावना, भयङ्कर। २ दोष, विकार। ३ मनोविकार, व्याकुलता, बेचैनी। ४ दुःख, क्लेश, कष्ट। ५ ग्लानि, लज्जा। ६ पाप।

ताम (हिं० पु०) १ क्रोध, गुस्सा। २ अन्धकार, अंधेरा।

तामजान (हिं० पु०) एक प्रकारकी छोटी खुली पालकी।

तामड़ा (हिं० वि०) १ जिसका रंग तांबेसा हो। (पु०) २ जर्द रंगका एक प्रकारका पत्थर। ३ एक तरहका कागज। ४ खल्वाट मस्तक गंजेकी खोपड़ी।

तामर (सं० क्ली०) तामं ग्लानिं राति रा-क। १ जल, पानी। २ घृत, घी।

तामरस (सं० क्ली०) तामरे जले सस्तीति सस-ड। १ पद्म, कमल। ताम्यतेऽनेन रसति इति रसं कर्मधा०। २ स्वर्ण, सोना। ३ ताम्र, तांबा। ४ धुस्तूर, धतूरा। ५ सारस। ६ छन्दोभेद, एक छन्दका नाम। इसमें बारह अक्षर होते हैं। ५।८।११।१२ वां वर्ण गुरु रहता है।

तामरसी (सं० स्त्री०) तामरस-ङीप्। पद्मिनी।

तामलकी (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भू-आँवला।

तामलिप्त (सं० पु०) देशभेद, एक देशका नाम।

तामलिप्तक (सं० पु०) तामलिप्त स्वार्थे कन्। तमलुक देश।

तामलूक (हिं०पु०) ताम्रलिप्त देखो।

तामस (सं० पु०) तमस्तमोगुणः प्रधानत्वेनास्त्यस्येति अण्। १ सर्प, सांप। २ खल, दुष्ट। ३ उलूक, उल्लू। ४ चतुर्थ मनु, मन्वन्तरमें विष्णुके अवतार हरि; इन्द्र त्रिशिख, देवता वैधृतिगण, ज्योतिर्धाम आदि सप्तर्षि, वृषख्याति नरादि मनुके पुत्रगण। (भाग० ८.२४ अ०) ५ क्रोध, गुस्सा। ६ अन्धकार, अंधेरा। ७ अज्ञान, मोह। ८ एक शस्त्रका नाम।

(वि०) ९ तमोगुणयुक्त, जिसमें तमोगुण हो। १० तमप्रधानगुणक, जिसका तमोगुण प्रधान हो। तमोऽधिकृत्य प्रवृत्तं अण। ११ तमोगुणाधिकार द्वारा प्रवृत्त शास्त्रविशेष तामसशास्त्रका विषय पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

पाशुपत नामक शैवशास्त्र, कणादोक्त महत् वैशेषिक शास्त्र, गौतमोक्त न्यायशास्त्र, कपिलोक्त सांख्य, जैमिनि-कथित मीमांसा, वृहस्पतिकथित चार्वाकशास्त्र, बुद्धरूपी विष्णु-कथित बौद्धशास्त्र, शङ्कराचार्य-कथित मायावाद-युक्त वेदान्तशास्त्र, ये सभी तामसशास्त्र हैं। इनके श्रवण करनेसे ज्ञानियोंका भी पातित्य होता है। इन तामस-शास्त्रोंमें वेदका यथार्थ अर्थ तिरोहित हुआ है और इसमें कर्ममात्र ही त्याज्य है, जीवात्मा परमात्मामें ऐक्य प्रतिपादित हुआ है। ब्रह्मका श्रेष्ठरूप निर्गुणरूपमें दर्शित हुआ है। जगत्‌के नाशके लिए कलियुगमें इन शास्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है।

कूर्मपुराणमें लिखा है, कि तामस तन्त्रका विषय है। इस जगत्‌में श्रुति और स्मृतिके विरुद्ध जो शास्त्र हैं, वे सभी तामस हैं। कराल, भैरव, यामल, वाम—ये सभी तामसशास्त्र हैं।

अष्टादश पुराणोंमें छह सात्विक, छह राजस और छह तामस हैं। जिनमें मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द ये छह तामसपुराणोंमें शिवका माहात्म्य विशेषरूपसे कीर्तित हुआ है।

विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म, वराह ये छह सात्विकपुराण हैं। इन सात्विकपुराणोंमें विष्णुका माहात्म्य कहा गया है।

ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, ब्राह्म ये छह राजसपुराण हैं। इनमें ब्रह्माका माहात्म्य वर्णित है। (मत्स्यपु०)

कणाद, गौतम, शक्ति, उपमन्यु, जैमिनि, दुर्वासा, मृकण्डु, वृहस्पति, शुक्राचार्य, जमदग्नि, ये सब तामस मुनि थे। गौतम, वार्हस्पत्य, सामुद्र, यम, शङ्ख, औशनस ये तामस स्मृतियां हैं।

मनुष्योंकी स्वभावसे ही तीन प्रकारकी श्रद्धा होती है—सात्विकी, राजसी और तामसी। जो लोग भूत और प्रेतादि पर श्रद्धा रखते और उनकी उपासना करते हैं, उनकी तामसी श्रद्धा समझनी चाहिये।

इसके सिवा आहार, यज्ञ, तप, दान आदि जगत्‌के सम्पूर्ण कार्य ही तीन प्रकारके होते हैं। अर्थपञ्चक तथा

विरसताप्राप्त (जिसका असली स्वाद बिगड़ गया हो), पूतिमत्, पर्युसित, उच्छिष्टादि अमेध्य आहार तामस आहार और यह आहार ही तामस लोगोंके लिये प्रिय है।

अति दुराग्रह द्वारा दूसरेके उत्पादनके लिए आत्मामें नाना प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न करके जो तप किया जाता है, उसे तामसतप कहते हैं और ऐसा तप तामसप्रकृतिके लोग ही करते हैं।

देश-काल-पात्रादिका विचार न कर, किसी भी देश या काल अथवा पात्रमें असत्कार और अवज्ञताके साथ जो दान दिया जाता है, उसको तामसदान कहते हैं।

भविष्यत्‌का अशुभफल, शक्तिक्षय, अर्थक्षय और परिजनादिका क्षय तथा प्राणिहिंसा और आत्मसामर्थ्यादिकी पर्यालोचना न करके अज्ञान वा अविवेकतावश जो क्रिया अनुष्ठित होती है, उसके तामसकी क्रिया कहते हैं।

जो व्यक्ति अत्यन्त असमाहित है अर्थात् किसी भी कार्यमें विशेषरूपसे मन नहीं लगता, जिसकी बुद्धि अत्यन्त असंस्कृत है, जो निपुणताके साथ विचार न कर सकनेके कारण प्रकृतिवश कोई प्रवृत्ति मनमें उदित हो और उसके अनुसार काम कर डालता हो, जो ज्ञान-पर्यालोचनाके द्वारा कुछ भी परिमार्जित नहीं हुआ हो, सदुपदेश द्वारा जिसको किसी तरहसे समझाया नहीं जा सकता, अन्तःसारविहीन, मायावी, जो अन्तःकरणके भावको छिपा कर बाहरमें अन्यरूप व्यवहार करता है और परवृत्तिको बिगाड़नेमें तत्पर है, चिन्ता आदि करनेमें आलसी है, सर्वदा अवसन्न और दीर्घसूत्री है, ऐसे कर्त्ताको तामसकर्त्ता कहते हैं।

जो मनसे अधर्मको धर्म और अकर्तव्य विषयको कर्तव्य समझता है, ऐसे विपरीत भावप्रकाशक मनको तामसमन कहते हैं।

जिस व्यक्तिके किसी विशेष धारणाके द्वारा सर्वदा ही मनमें शोक, भय, स्वप्न, विषाद, मत्तता आदि उदित हुआ करती है, उस दुर्मेधा व्यक्तिकी धारणाको तामसधृति कहते हैं।

निद्रा, आलस्य और प्रमादके द्वारा जो सुख उत्पन्न होता है, जो आत्मामें वर्तमान और परिणाममें मोहके सिवा और कुछ भी उत्पन्न नहीं करता, उस सुखका नाम तामस सुख है। (गीता) पौरोहित्य, याचन, देवल्य (शूद्रादि द्वारा प्रतिष्ठित विग्रहादिकी नित्यपूजा), ग्रामयाजन, विष्णुसेवापराध, विष्णुनामापराध, असत्प्रतिग्रह, आभिचार, पशुजीवादि हनन, पातक, उपपातक, अतिपाप, महापाप, अनुपातक, लोभ, मोह, अहङ्कार, काम, क्रोध ये समस्त तामसकर्म हैं। (पद्मपु० उ० ख०)

तामसऋत्विक् और तामसद्रव्य द्वारा तामसभाव अवलम्बन कर जो यज्ञ किया जाता है, उसका नाम तामस यज्ञ है। इस प्रकारके तामस यज्ञ, तामस दान और तामस तपस्या द्वारा नरकमें जन्म होता है।

तमोगुण प्रकृतिके तीन गुणोंमेंसे एक है। जिस गुणके द्वारा तम अर्थात् ग्लानि उत्पन्न हो, उसको तम अर्थात् आवरक गुण कहते हैं, इसलिए तमोगुण मोहका कारण है। सत्व, रज और तम ये तीन गुण परस्पर जड़ित हैं; जब एक गुणका प्राधान्य होता है, तभी उसको उस गुणोंके नामसे पुकार सकते हैं। तम, रज और सत्त्व भिन्न भिन्न नहीं रह सकते। हां, जब सत्व और रजको पराजित कर अपना धर्म प्रकट करता रहता है, तभी उसको तम कहा जा सकता है। किन्तु पराभूत भावमें सत्व और रज उसमें विद्यमान रहेंगे। तम तमोगुण, इस गुण शब्दमें वैशेषिकोक्त गुणपदार्थ नहीं है, इसको द्रव्य पदार्थ समझना चाहिये।

सत्त्व, रज और तम ये गुणत्रय अक्षुब्धभावसे अवस्थान करने पर अव्यक्त कहलाते हैं। ये गुणत्रय सर्वकार्यव्यापी, अविनाशी और स्थिर होते हैं। जब ये गुण क्षुभित होते हैं, तब पञ्चभूतात्मक नवद्वारयुक्त पुररूपमें परिणत हुआ करते हैं। उक्त पुरके मध्य इन्द्रियां अवस्थान कर जीवको विषयवासनामें प्रवृत्त करती हैं। मन उस पुरमें रह कर विषयोंको अभिव्यक्त कर देता हैं, बुद्धि उस पुरकी कर्त्री है। लोग भ्रान्तिपूर्वक उस पुरको जीवात्मा कहते हैं। किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है, जीव उस पुरमें रह कर सिर्फ सुख और दुःखका भोग करता है। गुणत्रय एक दूसरेका आश्रय ले कर अवस्थान करते

हैं। यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि जिस स्थान पर उनमेंसे किसी एकका आधिक्य होता है, वहाँ दूसरोंकी हीनता लक्षित होती है। सत्व और रज हीन होने पर तमोगुण प्रकाशित होता हैं। इसी तरह तमः हीन होने पर रज और रज हीन होने पर सत्व प्रकट होता है। तमोगुण अ-प्रकाशात्मक है, उसको मोह कह सकते हैं।

इस तमोगुणके प्राबल्यसे मनुष्यकी अधर्ममें प्रवृत्ति हुआ करती है। तमोगुणके कार्य ये हैं—मोह, अज्ञानता अत्याग, अनिश्चयता, स्वप्न स्तम्भ भय, लोभ, शोक, सत्कार्यदूषण, अस्मृति, अफलता, नास्तिकता, दुश्चरित्रता, सदसद्विवेकराहित्य, इन्द्रियवर्गको अपरिस्फुटता, निकृष्ट धर्म प्रवृत्ति, अकार्यमें कार्यज्ञान, अज्ञानमें ज्ञानाभिमान, अमित्रता, कार्यमें अप्रवृत्ति, अश्रद्धा, वृथा चिन्ता, असरलता, कुबुद्धि, अक्षमता, अजितेन्द्रियता, दूसरोंका अपवाद, अभिमान, क्रोध, असहिष्णुता, मत्सरता, नीचकर्ममें अनुराग, असुखकर कार्यका अनुष्ठान, अपात्रमें दान। जो उक्त कार्योंका अनुष्ठान करते हैं, उनको तामसप्रकृतिका मनुष्य समझना चाहिये। तामसप्रकृतिके लोग जन्मान्तरमें स्थावर, राक्षस, सर्प, कृमि, कीट, पक्षी, विविध चतुष्पद जन्तु होते हैं। जो सर्वदा निकृष्ट कार्य करते रहते हैं, उनको तमोगुणके प्राधान्यसे तामस प्रकृतिका कहना चाहिये। सत्व, रज और तम ये तीनों गुण सर्वदा प्राणियोंके शरीरमें अविच्छिन्नरूपसे रहते हैं। इसलिए उनको कभी भी पृथक् रूपमें नहीं देखा सकते। उक्त तीनों गुण एक दूसरे पर अनुरक्त हो कर परस्परको आश्रय किया करते हैं; सत्वगुण सत्वसे, तमोगुण तमसे, रजोगुण सत्व और तमसे किसी समय भी तिरोहित नहीं होता। उक्त गुणत्रय परस्पर मिल कर सांसारिक समस्त कार्य करते हैं। केवल जन्मान्तरीण पापपुण्यके कारण प्राणियोंकी देहमें इनका तारतम्य देखनेमें आता है। स्थावरसमुदायमें तमोगुणका आधिक्य विद्यमान है; किन्तु वे रज और तमोगुणसे विरहित नहीं हैं। जागतिक प्रत्येक पदार्थमें तम विद्यमान है न्यूनाधिक्य भावसे रहनेके कारण किसी द्रव्यका नाम सात्विक और किसीका राजसिक वा तामस हुआ है, अध्यवसाय, बुद्धि धर्म ज्ञान विराग, ऐश्वर्य ये सात्विक और इसके विपरीत तामस है। (सांख्यका०)

विषादका नाम है मोह, विषादका स्वरूप ही तमोगुण है, जब कभी इस गुणका आविर्भाव होता है, तभी विषण्णता आ उपस्थित होती है। जब तमोगुण प्रकाशित होता है, उस समय वह रज और सत्वको पराजित कर अपनी वृत्ति प्रकाशित किया करता है।

सत्वगुण लघुप्रकाशक और इष्ट है। रज उपष्टम्भक और चञ्चल है तथा तमोगुण गुरु-वरणक है। गुण परस्पर विरोधी होते हैं, किन्तु विरोधी होने पर भी स्वयं सुन्द और उपसुन्दवत् विनष्ट नहीं होते। जिस प्रकार वर्ति और तैल परस्पर-विरुद्ध होने पर भी एकत्र मिलित हो कर परस्पर अर्थ प्रकट किया करते हैं तथा वायु, पित्त और श्लेष्मा परस्पर विरोधी होने पर भी एकत्र मिल कर शरीर-धारणरूप कार्य करते हैं, उसी प्रकार ये गुणत्रय परस्पर विरोधी होने पर भी एकत्र मिलित हो कर परस्परकी वृत्ति अर्थात् सुख, दुःख और मोह प्रकट करते रहते हैं। तम अर्थात् अविद्याके आठ भेद हैं—अव्यक्त महद्, अहङ्कार और पञ्च तन्मात्र। ये आठ प्रकारके तम अज्ञान हैं। (सांख्यका० ४८)

नैयायिक विद्वानोंका कहना है कि आलोकका अभाव ही तम है। प्रभाकरोंके मतसे रूपके दर्शनका अभाव ही तम है।

विशेष विवरणके लिये 'प्रकृति' शब्द देखो।

(पु०) तमसो राहोरपत्यं अण्। १० राहुसुत तामसकीलक। ११ शिवका एक अनुचर।

तामसकीलक (सं० पु०) तामसः राहुसुतः कीलकइव। राहुसुत केतुभेद। तामसकीलक आदि संज्ञाविशिष्ट राहुसुत केतु तैंतीस प्रकारके हैं। वर्ण, स्थान और आकारादिके द्वारा सूर्यमण्डलमें उनका लक्ष्य करके फल निर्णय किया जाता है। वे यदि सूर्यमण्डलगत हों, तो अमङ्गल होता है, चन्द्रमण्डलगत होने पर शुभफल; तथा यदि चन्द्रमण्डलमें वे काक, कबन्ध वा प्रहरणरूपमें प्रकट हों, तो अमङ्गलदायक होते हैं। उक्त केतुओंके उदयसे सब कुछ विरूप हो जाता है जल मलिन और आकाश धूलिसमाच्छन्न होता है। प्रचण्डवायु चला करती है।

चारों तरफ अनिष्टराशि उपस्थित होती है। उक्त राहुसूतोंमेंसे यदि शिखी और कीलकादिरूप-विशिष्ट राहुका दर्शन हो, तो पूर्ववत् फल होगा। सूर्यविम्बस्थ केतु जहां जहां दिखलाई देंगे, वहां वहांके राजाओंका अमङ्गल होगा। सूर्यमण्डलमें यदि दण्डाकृति केतुसंस्थान दिखलाई दे, तो नरपतिकी मृत्यु और कवन्धसंस्थान दीख पड़े, तो व्याधिका भय होता है। ध्वांक्षाकार दीखनेसे चोरीका भय तथा कीलकाकार दीखने पर दुर्भिक्ष होता है। (वृहत्संहिता ३ अ०) केतु देखो।

तामसध्यान (सं० क्लो०) वटुकभैरवका ध्येयरूप भेद। वटुकभैरवका ध्यान तीन प्रकारका है—सात्विक, राजस और तामस। (तन्त्रसा०)

तामसमद्य (सं० क्लो०) कई बारकी खींची हुई शराब।

तामसवाण (सं० पु०) एक शस्त्रका नाम।

तामससन्यासी (सं० त्रि०) जो गार्हस्थ्य धर्मको छोड़ मोक्षकी कामनाके लिये वनमें घूम घूम कर तपस्या करते हैं, वे ही तामससन्यासी कहलाते हैं।

तामसिक (सं० त्रि०) तमसा तमोगुणेन निर्वृत्तं तामस-ठञ्। तमोगुणका कार्य। तामस देखो।

तामसी (सं० स्त्री०) तमोऽन्धकारप्राधान्येन अस्ति अस्यां तमस-अण्, स्त्रियाँ ङीष्। १ अन्धकारबहुला रात्रि, अन्धेरी रात। २ महाकाली। ३ जटामांसी, बालछड़। ४ तमोगुणयुक्ता, वह जिसमें तमोगुण हो। ५ एक प्रकारकी मायाविद्या। शिवजीने निकुम्भिला यज्ञसे प्रसन्न हो कर इसे मेघनादको दिया था। इस विद्याके प्रभावसे मेघनाद अदृश्य हो कर युद्ध करता था। (रामा०)

तामालेय (सं० त्रि०) तमाल संख्यादि० ठञ्। तमाल वृक्षके पासका भाग।

तामिल—दक्षिणापथकी दक्षिणप्रान्तवासी एक विस्तीर्ण जाति और उनकी भाषा।

तामिल शब्दका संस्कृतरूप द्राविड़ है। मनुसंहिता, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें, द्राविड़ नामक जनपद और वहांके अधिवासियोंका द्राविड़ नामसे उल्लेख है। द्राविड़ शब्दका मागधी-(पालि)-रूप दमिलो * है। तामिल भाषामें 'द' की जगह 'त' होता है, इस तरहसे 'तमिल' वा 'तमिर' रूप हो गया है। पूर्वनियमानुसार द्राविड़ शब्द पालि भाषामें दमिलो तथा उससे तामिर वा तामिल हुआ है। शङ्कराचार्यके शारीरकभाष्यमें द्रमिल शब्दका उल्लेख है। इस द्रमिल शब्दका तामिल व्याकरणके अनुसार 'तिरमिड़' रूप होता है। किसीके मतसे इस तिरमिड़ शब्दसे भी तामिल शब्दकी उत्पत्ति हो सकती है।

प्रसिद्ध पाश्चात्यपदार्थवित् मि० प्लिनिने ईसाकी १ली शताब्दीमें इस तामिल देशका तरपिना (Tropina) नामसे उल्लेख किया है तथा तत्पूर्ववर्ती भूवृत्तान्तमूलक पिटिञ्जरकी तालिकामें दमिरिक (Damirice) नामसे इसका उल्लेख मिलता है।

नामकरण।—जैनोंके शत्रुञ्जयमाहात्म्य (७।१)-में लिखा है—

> 'इतश्च वृषभस्वामिसूनुर्द्रविड इत्यभूत्।
> यन्नाम द्रविडो देशः पप्रथे बहुशस्यभूः॥"

यहां आदिनाथ ऋषभदेवके द्रविड़ नामक एक पुत्र हुए थे, जिनके नामसे बहुशस्यशाली यह द्रविड़ देश प्रसिद्ध हुआ है। किन्तु महाभारत, हरिवंश आदिके मतसे द्राविड़ नामक जातिके वासके कारण इस जनपदका द्रविड़ वा द्राविड़ नाम पड़ा है। मनुसंहिता आदिके मतसे द्राविड़ जाति पहले क्षत्रिय थी। वेद तथा ब्राह्मणके दर्शन न होनेके कारण वे वृषलत्वको प्राप्त हुए थे। (मनु १०।४४)

इसके सिवा आदिपर्वमें लिखा है, कि विश्वामित्र जब वशिष्ठकी कामधेनु नन्दिनीको ले गये, उस समय नन्दिनीके प्रस्रावसे द्राविड़ोंकी उत्पत्ति हुई।

> "असृजत् पह्लवान् पुच्छात् प्रस्रावाद्द्राविडांछकान्।"
> (आदि २।१७५।३)

इधर जैनोंके शत्रुञ्जयमाहात्म्यमें लिखा है, ऋषभके पुत्र द्रविड़की सन्तान ही द्राविड़ नामसे प्रसिद्ध हुई थी। (शत्रुञ्जयमा० ७।२)

जनपदका अवस्थान—महाभारतके निम्नलिखित श्लोकोंके

---

* महावंश, २१वां परिच्छेद।

† ईसाकी ७म शताब्दीमें चीन-परिव्राजक युएनचुयंग द्राविड़ देशमें आये थे। उन्होंने इस स्थानका 'चि-मो-लो' (Chi-molo) नामसे उल्लेख किया है, जिसका इस देशका 'दिमल' वा दिमर' होता है।

पढ़नेसे मालूम होता है कि प्राचीन द्राविड़ वा तामिल देश सागरके किनारे था ।

"द्विजातिमुख्येषु धनं विसृज्य गोदावरीं सागरगामगच्छत् ।
ततो विपाप्माद्रविडेषु राजन् समुद्रमासाद्य च लोकपुण्यम् ॥'
(वन ११८।४

'आर्चितः प्रययौ भूयोः दक्षिण सलिलार्णवम् ।
तत्रापि द्राविडैरान्ध्रै रौद्रैर्माहिषिकैरपि ॥" (अश्व०८३।११)

मि॰ काल्डवेलने द्राविड़ीय व्याकरणमें लिखा है—समस्त कर्णाटक अथवा पूर्व और पश्चिम घाटके नीचे, पुलिकाटसे लगा कर कुमारिका अन्तरीप तक तथा उत्तरमें वङ्गोपसागरके उपकूल तक तामिल भाषा प्रचलित है। भाषाके आधारसे तो दाक्षिणात्यके समस्त दक्षिणांशको ही द्राविड़ वा तामिल देश कह सकते हैं। इस समय तामिल देशका रकबा करीब ६०००० वर्गमील होगा।

जातितत्व।—पाश्चात्य पुरातत्त्वविदोंने तामिल, तैलङ्ग, कनाड़ी, मलयाली, तुलू, तोड़ा, कोटा, गोण्ड और कन्ध इन श्रेणियोंको द्राविड़ीय जाति वा उनकी शाखा माना है। किन्तु वज्रसूची उपनिषदमें उक्त जातियोंको द्राविड़ कहा गया है, जैसे—

"आन्ध्राः कर्णाटकाश्चैव गुर्जरा द्राविडांस्तथा ।
महाराष्ट्रा इति ख्याताः पञ्चैते द्रविडा स्मृताः ॥"
(वज्रसू ५६)

आन्ध्र, कर्णाटक, गुर्जर, द्राविड़ और महाराष्ट्र इन पांचोंको एक साथ पञ्चद्राविड़ कहते हैं। द्राविड़ देखो।

पुरातत्त्ववेत्ताओंने तामिलोंको आर्य नहीं माना है। उनका खयाल है, कि यह भारतकी प्राचीनतम अनार्य जातिसे उत्पन्न हुई एक जाति है। रामचन्द्र जिस कपिसेनाको ले कर राक्षसराज रावणके साथ युद्ध करने गये थे, उस सेनाके सभी लोग प्राचीन द्राविड़ वा तामिल जातिसे उत्पन्न थे। वे उस समय बहुत असभ्य थे और उनकी भाषा आर्यजातिके लिये अबोध्य थी, इसलिये वाल्मीकिने उनका वानर नामसे उल्लेख किया है। किन्तु जैन-रामायण (वा पद्मपुराण)-में उक्त सेनाको आर्य और सुसभ्य मनुष्यादि बतलाया है। इसका विस्तृत विवरण जैन-पद्मपुराणके २य परिच्छेद में देखो। वास्तवमें वे वानर न थे।

तामिल शब्दको देख कर काल्डवेल आदि किसी किसी भाषाविद्ने स्थिर किया है, कि दाक्षिणात्यमें आर्य उपनिवेशसे पहले तामिल लोग कुछ कुछ सभ्य हुए थे। उस समय भी उनके राजा थे, राजगण दुर्भेद्य गढ़में रहते और छोटे छोटे भूभागका राज्य करते थे। उत्सवमें बन्दी वा गायकगण गायन करते थे। ताड़पत्र पर लेखनीसे लिखनेके अक्षर थे। वे एक ईश्वर मानते थे। जिसको 'क' अर्थात् राजा कहते थे। उनके सम्मानार्थ वे 'कोइल्' अर्थात् मन्दिर बनवाते थे। वे टीन, सीसा और जस्ताके सिवा अन्यान्य समस्त धातुओंके विषयको जानते थे। वे सौसे लगा कर हजार तक गिन सकते थे। औषध, कुञ्ज, ग्राम, छोटा नगर, नाव, छोटे-मोटे समुद्रयान भी थे। हां, उनका कोई बड़ा शहर वा राजधानी नहीं थी। उन्हें अन्यान्य समस्त ग्रहोंके नाम मालूम होने पर भी वे बुध और शनिग्रहका नाम नहीं जानते थे। तीर, धनुष, तलवार और फरसा ये उनके युद्धास्त्र थे। युद्ध और कृषिकार्यमें उनको बड़ा आनन्द आता था। वे एक तरहका कपड़ा बुनना और रंगना जानते थे तथा मिट्टीका पात्र व्यवहार करते थे। किन्तु उनमें लिखने-पढ़नेकी चर्चा न थी। दर्शनशास्त्रकी बात तो दूर रही, व्याकरणका भी कोई नियम नहीं बना सके थे। महात्मा अगस्त्यसे इनमें विद्याशिक्षाका स्रोत बहा है।

अब वह दिन चले गये। आर्य-संस्पर्शसे उनमें आर्य भावोंका सञ्चार हो गया है, किन्तु वाह्यदृश्यमें वह आर्येतरभाव अभी तक बिल्कुल दूर नहीं हुआ है। इस समय जहां रुपया है, वहीं तामिल हैं; जहां बड़ा घर मिलता है वहीं तामिल घुस पड़ते हैं। इनमें पूर्वतन कुसंस्कार बहुत कुछ दूर हो गये हैं। इस समय सभी कट्टर हिन्दू होने पर भी समाजके बाधा-विघ्नोंको परवा न कर उच्च शिक्षा तथा उन्नतिके पथमें अग्रसर हो रहे हैं।

धर्म।—पूर्वकालमें तामिल लोग भूत-प्रेतोंकी पूजा करते थे। अब भी दक्षिणकी तरफ नीच लोग भूतकी पूजामें आसक्त हैं। उनके मतसे जिन मनुष्योंकी अपघातसे वा अकस्मात् मृत्यु होती है, वे ही भूत हो कर मनुष्यका अनिष्ट करते हैं। ये भूत अत्यन्त शक्तिशाली क्रूर हैं और मौका पाते ही गरदन आ दबाते हैं। सभी बलि

दानका खून और ताण्डवनृत्य पसन्द करते हैं। इनमें कोई बकरा, कोई सूअरके बच्चे और कोई मुरगासे सन्तुष्ट होते हैं। और कोई कोई तो बिना शराब मिले सन्तुष्ट ही नहीं होते। बहुतसे निम्न-श्रेणीके तामिलोंका विश्वास है, कि भूतसे ही दुःस्वप्न होते हैं। एक प्रकारका भूत है जो सोते समय गरदन आ दबाता है।

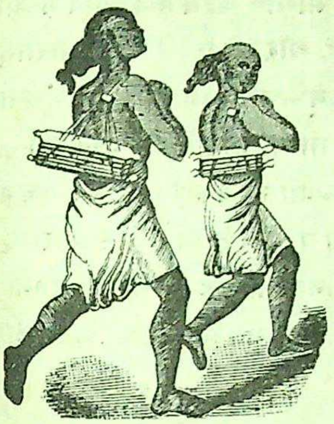

तामिल छात्र।

किसीको रोग होने पर अब भी निम्न श्रेणियोंमें ओझा बुलाये जाते हैं। वे सिर पर पगड़ी, गलेमें माला, हाथमें कड़े और बांहमें टँड़िया पहन कर आते और साथमें घण्टीदार धनुष लाते हैं। वह बड़े जोरसे चिल्ला कर कूदते हुए मन्त्र पढ़ता और उस धनुषको बजाता रहता है। इससे ओझाके शरीरमें भूतावेश होता है। फिर वह रोगकी व्यवस्था करता है। भूत-पूजा नीचोंका धर्म होने पर भी उच्च-श्रेणीके लोगोंमें इसका प्रचार अब बिल्कुल नहीं रहा है।

बहुतोंका विश्वास है, कि दाक्षिणात्यमें ब्राह्मण-प्राधान्य स्थापित होनेसे पहले, बहुत समय तक यहाँ जैनधर्मका प्राबल्य था। पहले ही लिखा जा चुका है, कि जैन-ग्रन्थ शत्रुञ्जय-माहात्म्यके मतसे आदि तीर्थङ्कर श्रीऋषभदेवके पुत्रके नामानुसार द्रविड़ नाम हुआ है। और उन्हींके अपत्यगण द्राविड़ नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। उपर्युक्त पौराणिक कथासे स्पष्ट जान पड़ता है, कि किसी समय तामिल देशमें जैनोंका सर्वाधिक प्राबल्य था।

ईसाकी ७वीं शताब्दीमें जब चीन-परिव्राजक यूयेन-चूयांग इस देशमें आये थे, उस समय भी उन्होंने निर्ग्रन्थ वा दिगम्बर-जैनोंका प्राधान्य देखा था। जैनोंके समयमें द्राविड़की यथेष्ट उन्नति हुई है। अब भी द्राविड़के नाना स्थानोंमें प्रभूत जैन कीर्तियाँ प्राचीन जैन समृद्धिका विशेष परिचय दे रही हैं। यहांके प्राचीन जैनधर्मावलम्बियोंको असभ्य, अनार्य वा म्लेच्छ नहीं कहा जा सकता; वे अवश्य ही सुसभ्य और आर्य थे। किसी किसी भाषाविद्का अनुमान है, कि सुप्रसिद्ध कुमारिल भट्टने आन्ध्र-द्राविड़ शब्दसे जिस द्राविड़भाषाका उल्लेख किया है, वह उन्हींके समकालीन जैनोंमें व्यवहृत तामिल भाषा है।

पाण्ड्यराज सुन्दरपाण्ड्य परम शैव थे। उन्हींके समयमें तामिल-भूमि पर शैवोंका प्राधान्य और जैनधर्मकी अवनतिका सूत्रपात हुआ। शङ्कराचार्यके दौरदौरेसे यहां जैनधर्मका प्रभाव एकबारगी हीनप्रभ हो गया था।

तामिलोंमें बहुत दिनों तक शैवधर्म प्रबल था. इस समय शिवोपासकगण स्मार्त कहलाते हैं। रामानुजके प्रयत्नसे वैष्णवधर्मका प्राधान्य स्थापित हुआ। तामिलोंमें अब दो श्रेणीके वैष्णव दीख पड़ते हैं, एकका नाम तेङ्गल वा दक्षिणवेदी है और दूसरेका बड़गल वा उत्तर वेदी।

इस समय उत्तर-भारतमें जैसे पहलेकी तरह वेदका प्रचलन नहीं रहा है, वैसा द्राविड़में अभी तक नहीं हुआ; तामिलमें अब भी वेदका यथेष्ट आदर है। और तो क्या, द्राविड़का ऐसा कोई मन्दिर नहीं, जहां प्रति दिन वेद न पढ़ा जाता हो। तामिल ब्राह्मण समस्त धर्मकर्ममें वेदपाठहीको एक प्रधान अङ्ग समझते हैं। ब्राह्मणगण अब भी यथासाध्य शास्त्रको मान कर चलते हैं। यहां वर्णविचारकी प्रथा भी शिथिल नहीं हुई है। अब भी ऐसे बहुत स्थान हैं, जहांके ब्राह्मण शूद्रको स्पर्श करनेमें अपने धर्मनाशकी आशङ्का करते हैं। ऐसे भी बहुतसे ब्राह्मण-ग्राम हैं, जहां शूद्रोंको प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

मुसलमानोंके आधिपत्यकालमें बहुत थोड़े तामिलोंने ही इस्लामधर्म माना था। उनकी सन्तान सन्ततियोंमेंसे बहुतोंने ईसाकी १६वीं शताब्दीमें फ्रान्सिस, जेसियरके प्रयत्नसे ईसाई धर्म मान लिया था। इस समय तामिलोंमें फीसदी १ ईसाई निकलेगा।

भाषा और साहित्य—भारतमें जितनी भी वर्णमालाएँ हैं, उनमें तामिल-वर्णमाला असम्पूर्ण है। डा॰ बुर्नलके मतसे, तामिल-वर्णमाला वत्तेलुत्तु नामक एक प्राचीन वर्णमालासे ही उद्भावित है और अति प्राचीनकालमें फिनीक वणिकोंसे ली गई है। किन्तु इस विषयमें हमारा मतभेद है। वर्णमाला देखो।

इस भाषामें अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, (दीर्घ) ए, ओ, (दीर्घ) ओ, ऐ, और औ ये बारह स्वर तथा क, च, ट, त, प, र, ङ, ञ, ण, न, म, स, य, र, ल, व, ड़, ल ये १८ व्यञ्जन वर्ण हैं।

इस भाषामें क, ख, ग, घ इन चार अक्षरोंका उच्चारण एकसा है; च, छ, ज, झ, इन चारोंका, ट, ठ, ड, ढ, इन चारोंका, त, थ, द, ध, इन चारोंका तथा प, फ, ब, भ, इन चारों वर्णका उच्चारण एकसा है। अर्थात् 'क'के रहने पर उससे ख, ग, घ, इन तीनों अक्षरोंका काम चल जाता है। इसके सिवा श, ष, स, ह, ं, ः, ये वर्ण तो बिल्कुल हैं ही नहीं। संस्कृतभाषामें जैसे बहुसंख्यक युक्तव्यञ्जन हुआ करते हैं, तामिल भाषामें वैसे नहीं होते। सिर्फ ण्ट, न्त, न्न, म्म, क्क, च्च, क्ष ऐसे और ट्क, ट्प, र्क, र्च, र्प य्य, ल्ल, व्व, न्र ये युक्तव्यञ्जन देखनेमें आते हैं। तीन व्यञ्जनोंका योग सिर्फ 'र्ड' और 'र्न्ध' है। संस्कृतकी तरह समस्त व्यञ्जन न होनेसे तामिल भाषामें जब कोई संस्कृत शब्द लिखा जाता है, तब उसका रूपान्तर हो जाता है। जैसे संस्कृतका कृष्ण शब्द तामिल लिपिमें किरुट्टिनन् वा 'किट्टिनन्' लिखा जायगा।

यूरोपीय भाषाविदोंने स्थिर किया है, कि तामिल भाषा संस्कृतमूलक नहीं है। यदि संस्कृतमूलक होती, तो इसमें इतने थोड़े अक्षर वा असम्पूर्ण वर्णमाला नहीं रहती। कोई कोई प्राकृतमूलक द्राविड़ी भाषाको ही तामिल समझ कर उसको संस्कृतमूलक बतानेको तैयार हैं। आधुनिक तामिल भाषामें बहुतसे संस्कृत शब्दोंका प्रयोग होने पर भी, तामिल भाषामें लिखित जितने भी प्राचीनतम शिलालेख और ग्रन्थ मिले हैं, उनमें संस्कृतका प्रभाव बिल्कुल नहीं दीखता। इन कारणोंसे मूल तामिलको संस्कृतमूलक कहना सङ्गत नहीं।

तामिल भाषा भी नितान्त अप्राचीन नहीं है। शायद श्रीरामचन्द्रने भी यहां वर्तमान तामिल भाषाके प्राचीन स्वर सुने होंगे। बाइबिलके प्राचीन भागमें हिरमके जहाजमें सलोमानके पास मयूर ले जानेका प्रसङ्ग है। बाइबिलमें उस जगह मयूरका जो नाम* लिखा गया है, वह तामिलभाषा-मूलक है। इसके अलावा ग्रीक भाषामें धान्य आदि भारतके बहुत प्रयोजनीय द्रव्यादिके जो नाम लिखे गये हैं, और जो पहले पहल भारतसे ही यूरोपमें पहुंचे हैं, उनके अधिकांश नाम हम संस्कृतभाषामें नहीं पाते, किन्तु तामिलभाषामें वे मिलते हैं।

तामिलभाषा दो प्रकारकी है। एकका नाम शेन-दमिर अर्थात् प्राचीन तामिल और दूसरीका कोड़ुन्दमिर अर्थात् आधुनिक तामिल। दोनोंमें इतना पार्थक्य है, कि दोनोंको यदि भिन्न भिन्न भाषा कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

जैनोंके प्रयत्नसे ही तामिलभाषाका उत्कर्ष हुआ है। आर्य ब्राह्मणगण उक्त दोनों ही भाषामें संस्कृत शब्द मिला देते हैं। द्राविड़के ब्राह्मण कहा करते हैं, कि महर्षि अगस्त्यने ही विन्ध्याद्रि लङ्घन कर दाक्षिणात्यमें संस्कृत-सभ्यता और संस्कृत-साहित्यका प्रसार किया था। द्राविड़ और मलवारके लोगोंका विश्वास है, कि अगस्त्य अब भी जीवित हैं और मलयाचलके अन्तर्वर्ती अगस्त्याद्रिमें रहते हैं। अब भी कुमारिका अन्तरीपके निकट अगस्त्येश्वरके नामसे वे पूजे जाते हैं। कोई कोई द्राविड़ पण्डित कहते हैं, कि सुन्दर पाण्ड्यके समयमें ही अगस्त्यने आ कर तामिल-वर्णमाला और तामिल-व्याकरणका प्रचार किया था। ऐसी दशामें पाण्ड्यराजके समसामयिक अगस्त्यको हम पुराण-वर्णित अगस्त्य नहीं समझ सकते। सम्भवतः ये अगस्त्य-नामधारी और ही कोई व्यक्ति थे। तामिलोंका यह भी कहना है, कि अगस्त्यने ही उनके पूर्वपुरुषोंको पहले पहल चिकित्सा-शास्त्र, रसायन, इन्द्रजाल आदिकी शिक्षा दी थी। और तो क्या, बहुतसे आधुनिक ग्रन्थ भी अगस्त्यके नामसे चल गये हैं।

---

* बाइबिलमें मयूरका 'टूकि' नाम लिखा है, यह शब्द तामिल 'टागै' वा 'टूगै' शब्दसे गृहीत है।

जैनोंके उद्योगसे तामिलभाषाके साहित्यकी समधिक उन्नति हुई है। श्रवणबेलगोलाके शिलालेख और जैन ग्रन्थोंके पढ़नेसे मालूम होता है, कि अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामीने बहुत दिनों तक द्राविड़ देशमें वास किया था, मौर्यराज चन्द्रगुप्त यहाँ उनके शिष्य हुए थे। चन्द्रगुप्त देखो। यदि ऐसा ही है, तो मानना पड़ेगा, कि पहलेसे ही जैनियोंका यहां विस्तार हो गया था। जितने भी प्राचीन तामिल ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें अधिकांश जैन हैं। बहुतोंका अनुमान है, कि तामिल भाषाके जितनी भी प्राचीन हस्तलिपियोंका आविष्कार हुआ है, उनमें जैनग्रन्थ ही सबसे अधिक प्राचीन हैं। कुमारिल और शङ्कराचार्यके आविर्भावके बादसे ही द्राविड़में जैन प्रभावका ह्रास होने लगा और जैनोंकी संख्या भी बहुत घट गई। ऐसी दशामें तामिल-जैनसाहित्यकी उन्नति और अवनति उनसे पहले ही माननी पड़ेगी।

तामिल भाषामें कवि तिरुवल्लूर-रचित कुरल ग्रन्थ ही सर्वप्रधान है। ईसाकी ८वीं शताब्दीसे पहले यह ग्रन्थ रचा गया था। कविके निम्न श्रेणीकी परिया जातिमें जन्म लेने पर भी, उनका ग्रन्थ सर्वत्र आदृत होता है। प्रसिद्ध विदूषी औवैयार (आवियार) तरुवल्लूवरकी भगिनी थीं। इनकी कविताने भी द्राविड़-समाजमें विशेष आदर पाया है। कम्बनकी तामिल रामायणमें कविकी कवित्वशक्तिका यथेष्ट परिचय मिलता है। सुन्दरपाण्ड्य तामिल भाषामें कई शिव-स्तोत्र लिख गये हैं, तामिल शैवगण उनको तामिल-वेद मानते हैं। ऐसा ही ४००० श्लोकोंका एक विष्णुस्तोत्र भी है, वह भी वैष्णवोंके लिए वेदस्वरूप है।

तामिल भाषामें रचित जैनकाव्योंमें १५००० श्लोकात्मक "चिन्तामणि" नामक ग्रन्थ ही विशेष उल्लेखयोग्य है। इस ग्रन्थकी रचना-प्रणाली, शब्दयोजना और वर्ण-माधुर्य कम्बनकी रामायणकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं।

तामिस्र (सं० पु०) तमिस्रा तमस्तति रस्तास्य अण्। १ नरकविशेष, एक नरकका नाम। इस नरकमें सदा घोर अन्धकार बना रहता है, जो दूसरोंको ठग कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, वे ही इस नरकके अधिकारी हैं; उन्हें इस नरकमें अधिक यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। (भागवत ५।२६) तमिस्रया साध्य अण्। २ द्वेष। ३ अविद्याविशेष, एक अविद्याका नाम। भोगकी इच्छा-पूर्तिमें बाधा पड़नेसे जो क्रोध उत्पन्न होता है उसे तामिस्र कहते हैं। ४ क्रोध, गुस्सा।

तामी (हिं० स्त्री०) १ ताँबेका तसला। २ एक प्रकारका बरतन जिससे द्रव पदार्थ मापा जाता है।

तामील (अ० स्त्री०) आज्ञाका पालन।

तामु (सं० त्रि०) तम-उण्। स्तोता, स्तुति करनेवाला।

तामेसरी (हिं० स्त्री०) गेरूके योगसे बनाये जानेका एक प्रकारका तामड़ा रंग।

ताम्बुली (सं० स्त्री०) ताम्बुली पृषो० साधुः। ताम्बूल, पान।

ताम्बूल (सं० क्ली०) तम-उलच् बुगागमो दीर्घश्च। खजिपिञ्जादिभ्य उरोलचौ। उण् ४।९०। १ पर्णनागवल्ली दल, पान। पर्याय—ताम्बूलवल्ली, ताम्बुली, नागिनी और नागवल्लरी।

स्वनाम-प्रसिद्ध लताविशेषके पत्तेको ताम्बूल वा पान (Piper Beetle) कहते हैं। पान शब्द संस्कृतके पर्ण शब्दका अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है-पत्ता। पान भारतवर्षमें सर्वत्र मिलता है, पर ज्यादा उत्तरमें नहीं होता।

पानके विभिन्न नाम—

हिन्दीमें	पान।
बङ्गलामें	पान।
बम्बईमें	पान, विलिटेले।
मराठीमें	विड़ेचा-पान।
गुजरातीमें	पान, नागरवेल।
तामिलमें	वेत्तिलाई।
तेलगूमें	तमालपाकू, नागवल्ली।
कनाड़ीमें	विलेटेले।
मलयमें	वेत्ता, वित्तिला।
ब्रह्ममें	कुनियोई, कानिनेत्।
सिंहलमें	बलात।
अरबीमें	तान्बोल।
फारसीमें	तान्बोल, बर्ग-ए-ताँबोल।

पान उष्णदेशमें सीली जमीन पर होता है। भारत,

सिंहल, और ब्रह्ममें पत्तेके लिए इसकी खेती होती है। बहुतोंका अनुमान है कि यवद्वीप पानका आदि वासस्थान है, वहींसे यह सर्वत्र फैल गया है।

पानीके खेती बड़ी कष्टसाध्य है। इसके खेतमें ताप और रसका परिमाण बराबर समान रहना जरूरी है। किसानको हमेशा देख-भाल रखनी पड़ती है। स्थान-भेदसे इसकी खेतीमें कुछ कुछ पार्थक्य है। मन्द्राजके कोइम्बातुर जिलेमें पानकी खेती काफी होती है, वहां जमीनको काम लायक बनानेके बाद उसमें दो फुट चौड़ा नाला खोद कर मेंड़ बना देते हैं, जिसका आकार ठीक पानीकी हिलोर या लहर जैसा हो जाता है। भाद्रमासमें इन मेंड़ोंके किनारे मौलसिरीके बीज बोये जाते हैं और आश्विनमास तक उसकी जड़में पानी भी दिया जाता है। उसके बाद दो वर्षके पुराने पानके पौधोंको उपाट कर उनकी एक एक गांठसे एक एक टुकड़ा बनाते हैं प्रत्येक मौलसिरीके नीचे दो टुकड़े गाड़ देते हैं। प्रथम १५ दिन तक एक दिन अन्तर पानी देते हैं। पीछे सप्ताहमें एक बार पानी दिया जाता है और इसी तरह तीन महीने बीत जाते हैं। उसके बाद माघमासके प्रारम्भमें गोबर, राख इत्यादिकी खाद देते रहते हैं। नालेके ऊपर जमी हुई मिट्टीको उठा कर खादके ऊपर देते हैं। इसके बाद पानकी लताओंको उक्त मौलसिरीके पौधोंसे बाँध देते हैं। एक वर्ष तक इसी तरह लताकी वृद्धिके साथ साथ किसानको उसे बाँधना पड़ता है। एक वर्षके बाद लता अपनेसे ही उस पर लिपट कर चढ़ सकती है। असाढ़-सावनमें फिर खाद देनी पड़ती है। प्रथम वर्षके बादसे ही प्रतिदिन जड़के पासके पत्ते टूटते रहते हैं। इस तरह १६ महीने तक पत्ते तोड़े जा सकते हैं।

बहुत अच्छे खेतमें बीघा पीछे हर महीने ५ कौणि पान होते हैं। १०० पत्तोंका १ कत्तूस (गुच्छा) होता है, २५ कत्तूसमें पालागि और ८० पालागिमें १ कौणि होती है। प्रति पालागि ।)के भावसे बिकती है। इस तरह प्रति बीघेमें हर महीने २०)के पान होते हैं और १६ महीनेमें ३२०) रुपयेकी फसल होती है। पानकी खेतीमें जैसा परिश्रम पड़ता है, वैसा लाभ भी काफी होता है। तो भी लोग इसकी खेती उतनी नहीं करते।

मध्यभारत—मन्द्राजकी अपेक्षा इस प्रदेशमें पानका आदर अधिक है। इसलिए इसकी खेतीमें भी लोगोंका आग्रह ज्यादा पाया जाता है। इस देशमें जो लोग पानकी खेती करते हैं, वे 'बरे' नामसे प्रसिद्ध हैं। पानके खेतको यहां बरोजा कहते हैं। कहीं कहीं 'पानका टण्डा' भी कहते हैं। पानकी लता बड़ी कोमल होती है और बहुत कम उत्ताप वा आलोकसे नष्ट वा दूषित हो जाती है। यदि अच्छी तरह देख-भाल रक्खी जाय तो लाभमें दो वर्षका परिश्रमफल मिलता है। पानका खेत बाँस और टट्टियोंसे इस तरह ढक दिया जाता है, कि जिससे फिर पानों पर धूप और जोरकी हवा न लगे। पानकी लताओंको ढकनेके लिए और लपेट कर चढ़ानेके लिए बड़े बड़े पत्तोंवाला अरुणवृक्ष बोया जाता है। यहाँ पानका बरोजा बहुत बड़ा होता है और खेत हमेशाके लिए रहते हैं, तथा जितने भी किसान हैं, सभी कई एक बरोजाकी जमीन बाँट लेते हैं। यहां बरोजाके भीतर बहुत तरी रहनेसे गरमियोंमें व्याघ्र आदि जानवर आ छिपते हैं। यहां भी २ वर्ष तक पानकी खेती होती है। प्रथम वर्षको उटक और द्वितीय वर्षको करवा कहते हैं। पहली फसलकी ही कीमत ज्यादा होती है। नीमार जिलेकी खेतीमें कुछ फरक है। यहां एक बार खेती करनेसे १०।१२ वर्ष तक फसल होती है। यहांकी खेती मन्द्राजकी तरह होती है। मौलसरीके बदले यहां 'सरवा' वा जयन्तीवृक्ष लगाते हैं। खेतके चारों ओर 'पाङ्रा' या मदारकी खूँटियां गाड़ कर बाड़ी लगा देते हैं। जयन्तीवृक्षके सूख जाने पर गुग्गुलके पेड़ लगा देते हैं। दश बारह वर्ष बाद ये बरोजा बदल डालते हैं। अन्यान्य स्थानोंसे यहाँकी खेती परिश्रम और अड़चनें कम पड़ती हैं।

बंगाल—बङ्गालमें जो लोग पानकी खेती करते हैं, वे 'बारई' कहलाते हैं। ये 'तामली' या ताम्बूली जातिसे पृथक् और निम्नश्रेणीके होते हैं। पानके खेतको यहाँ 'बरज' कहते हैं। बरज देखनेमें अच्छा होता है। यहाँ वर्द्धमान नामक स्थानमें तथा गङ्गाके निकटवर्ती

स्थानमें इसकी खेती अधिक होती है। उलुबेड़ियाके निकटवर्ती बाटूल ग्रामके पान सबसे उमदा होते हैं, इसलिए यहींकी खेतीकी तरकीब लिखी जाती है। बङ्गालमें तीन प्रकारके पान होते हैं—'साँची', वा खासा, कपूरकाठी और देशी वा बङ्गला। कपूर काठी पान खानेमें मीठा और कपूँरगन्धविशिष्ट होता है। इसकी खेती बहुत कम होती है; खेती ज्यादा होने पर भी यह कम उपजता है।

पानका बरज किसी तालाब वा नहरके निकटवर्ती ऊँचे स्थान पर होना चाहिए। इसके लिये चिकनी मिट्टी ही अच्छी है। बरजमें घास आदि नहीं होने देना चाहिये, होने पर जड़से उखाड़ देना चाहिए। मिट्टीको १ या १॥ फुट तक फाड़से कर चारों तरफ नाले खोद दें और ऊँची बाड़ बना दें। नये बरजमें तालाबका पङ्क देना पड़ता है। मिट्टीके डलोंको फोड़ कर पंक्तिबार कमाँचियाँ गाड़ देनी पड़ती हैं। उन कमाँचियोंके पास ही नागरवेल (पान)की एक एक गाँठ गाड़ देवें; कमाँचियाँ ४।५ हाथ ऊँची होनी चाहिए। बरजके ऊपर चारों तरफ सनकटी छा दी जाती है। टट्टियाँकी मजबूत करनेके लिए बीच बीचमें बाँसके खूँटे गाड़ दिये जाते हैं। 'गींज' अर्थात् जो कमाँचियां गड़ी जाती हैं, उनकी एक पंक्ति १८ इञ्च और एक पंक्ति १७ इञ्च अन्तरमें होती है तथा १८ इञ्चकी पंक्तिके आमने सामने दो 'गींजों'का अग्रभाग खींच कर एकत्र बाँध देते हैं। पानकी गांठ २७ इञ्च दूरकी कमंची (गींज)के नीचे गाड़ते हैं। एक एक गाँठ एक हाथ या एक फुट लम्बी काटी जाती है। इसे तिरछी गाड़ कर खजूरके पत्तोंसे ढक देते हैं। जेठसे लगा कर कातिक तक रोपणकार्य चल सकता है। लताके उत्पन्न होते ही उक्त कमचियोंके साथ मूंजसे उसको बाँध देते हैं। पीछे बरजके ऊपर तक पहुंचने पर उसको नीचेकी तरफ झुका देते हैं। बीच बीचमें तालाबका पङ्क और पौधों आदिको सड़ा-सुखा कर जड़में देते हैं। इस तरह प्रत्येक बार मिट्टी देते देते 'बरज' विलक्षण ऊँचा हो जाता है। वाँटुल ग्राममें एक एक पुराने बरजकी जमीन इकमंजिले मकानके बराबर ऊंची हो गई है। गोबरका चूरा, तालाबके कीचड़का चूरा, सरसोंकी खली आदि पानके लिये बहुत उमदा खाद है। अंडीकी खली लताओंको नष्ट कर देती है। बरजमें मैला पानी न देना चाहिये। बरजमें पानीका जमना भी अनिष्टकर है। पानकी लतामें निम्नलिखित दोष लग जाते हैं—

१। दाग लगना—पानके पत्तों पर काले काले दाग लगना। यह दाग क्रमशः आयतनमें बढ़ता रहता है और पत्ते नष्ट हो जाते हैं।

२। पानके डण्ठलोंका काला होना और अन्तमें पत्ते झर जाना।

३। मुरझाना-पत्तोंका क्रमशः सूख कर मुरझा जाना।

४। पत्तोंके किनारे लाल हो जाना।

५। पत्तेके किनारोंका मुड़ जाना।

ये रोग सिर्फ पत्तोंमें लगते हैं।

६। अङ्गारी—यह संक्रामक पीड़ा है, यह लताकी गाँठमें होता है, जिससे लता क्रमशः काली हो कर सूख जाती है। जिस लतामें अङ्गारी रोग लग जाय और उससे यदि अन्य लताका सम्पर्क हो, तो उसमें भी यह रोग लग जाता है। इस रोगके होने पर उस लताको वहाँसे तुरन्त उखाड़ देना चाहिये और जड़की कुछ मिट्टी भी निकाल कर फेंक देनी चाहिये।

७। 'गान्दी' वा 'गांदी'—लतामें गान्दी रोग लगने पर उसकी जड़ लाल हो जाती है और अन्तमें सूख जाती है।

उक्त रोगोंमें लहसुनका रस मिट्टीके साथ मिला कर उस मिट्टीको लताकी जड़में देना चाहिये; इससे लाभ होता है।

उड़िष्या-यहां भी बङ्गालकी तरह खेती होती है। एक एक लतासे ५०।६० वर्ष तक पत्ते तोड़े जा सकते हैं। इस तरह उड़िष्यामें बीघा पीछे खर्च बाद दे कर सालमें, ४००) से ४५०) रुपये तक लाभ होता है।

बम्बई—यहां पानकी खेतीका उतना आदर नहीं होता। अहमदनगरमें पानके पत्ते ३ वर्षसे पहले नहीं तोड़े जाते। यहांकी खेती मन्द्राज जैसी है। ८ दिन अन्तर दे कर पत्ते तोड़े जाते हैं।

पूनामें पानके खेतको पानमाला कहते हैं। यहां

खेतीका काम कुएंके पानीसे होता है। धारवाड़के पान आवादकी वस्तु है। यह खुली जमीनमें होता है, ऊपर मचान नहीं बांधा जाता। ३ बीघेमें प्रायः १ हजार बेलें लगाई जाती हैं। एक आवादी ३ से ७ वर्ष तक रहती है।

कनाड़ाके पान आम्रवृक्षके नीचे बोये जाते हैं। तीन वर्ष बाद पत्ते तोड़ते हैं। थाना जिलेमें यह पथरीली, दलदली और गीली जमीनके सिवा और सब जगह होता है। यहां १ फुट या १॥ फुट गहरे गड्ढे खोदते और पौष मासमें उनको पानीसे भर देते हैं। पानीके सूख जाने पर (मिट्टी कुछ कुछ गीली रहती है) एक एक गड्ढेमें एक एक हाथ लम्बे चार चार डण्ठल गाड़ देते हैं; फिर उगने पर उनको कमांचियोंसे बांध देते हैं। इन गड्ढोंमें प्रायः एक एक पाव सरसोंकी खली भी देनी पड़ती है। एक मास बाद फिर प्रत्येक गड्ढेमें एक एक पाव खली डाली जाती है। लताके बढ़ने पर इसका बन्धन खोल दिया जाता है, जिससे वह जमीन पर लेटने लगती है। इसके बाद फिर खली डालते हैं और जड़में राख-मिट्टी देते हैं। फिर लताकी गांठोंसे डालियां निकल कर बढ़ने लगती हैं। और एक प्रकारकी खेती होती है, जिसमें लताको जमीन पर न लिटा कर माँचे पर चढ़ा देते हैं। एक वर्ष बाद पत्ते तोड़ते रहते हैं। कोलावा जिलेमें मछलीकी खाद देते और ताड़पत्र ढकते हैं। पूना, सतारा और घाटपर्वतमें उत्कृष्ट पान होते हैं।

संयुक्त प्रदेश—बुन्देलखण्डमें अच्छे पान होते हैं। पर यहाँ पानकी खेती बहुत कम होती है।

ब्रह्मदेश—यहां करेनजातिके लोग ऊंचे स्थान पर बड़े बड़े जङ्गली पेड़ोंके नीचे पानकी खेती करते हैं। उक्त पेड़ोंकी नीचेकी डालियां काट दी जाती हैं। पनबेल वृक्षके काण्ड पर चारों तरफ फैलती और लम्बे लम्बे पत्ते फैलाती है। यह देखनेमें बड़ी मनोहर लगती है। युवकगण पानके वृक्ष पर चढ़ना बड़े कौशलसे सीखते हैं। शायद इसलिये इसका नाम "कड़ी" पड़ गया है। 'मघई' नामक एक प्रकारका पान होता है, जो बहुत ही सुस्वादु होता है तथा 'मीठा नामका पान भी खानेमें बहुत उमदा लगता है।

वैद्यकके मतसे पानके गुण—विशदगुणयुक्त, रुचिकारक, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कषाय तिक्त, कटुरस, सारक, वशीकरणक्षम, क्षारयुक्त, रक्तपित्तजनक, लघु, बलकारक तथा कफ, मुखगत दुर्गन्धमल, वायु और श्रान्तिनाशक है।

भोजनके बाद सुपारी, कपूर, कस्तूरी, लवङ्ग, जायफल अथवा मुखके लिए निर्मलत्वजनक कटु तिक्त और कषाय संयुक्त फलके सुगन्धद्रव्यके साथ ताम्बूल खाना चाहिये।

रात्रिको, निद्रावसान होने पर, स्नानके बाद, भोजनके बाद, वमनके बाद और परिश्रम कर चुकने पर, पण्डितसभा और राजसभामें ताम्बूल खाना अच्छा है।

(राजवल्लभ)

किसीके मतसे—ताम्बूल तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, अत्यन्त रुचिकारक, सारक, क्षारसंयुक्त, तिक्त, कटुरस, कामोद्दीपक, रक्तपित्तजनक, लघु, वश्यताजनक, कफघ्न, मुखकी दुर्गन्ध और मलका नाशक, वातघ्न, श्रमापहारक, मुखमें निर्मलता और सुगन्ध लानेवाला, कान्तिजनक, अङ्गसौष्ठवकारक, हनु और दन्तगत मलनाशक, रसनेन्द्रियका शोधक तथा मुखस्राव और गलरोगका विनाशक है।

नूतन ताम्बूल ईषत् कषाययुक्त, मधुररस, गुरु और कफकारक तथा प्रायः पत्रकसदृश है। पत्रशाकमें जो जो गुण होते हैं, नूतन ताम्बूलपत्रमें भी वे वे गुण मौजूद रहते हैं। जितने भी पान बङ्गालमें पैदा होते हैं, वे अत्यन्त कटुरस, सारक, पाचक, पित्तवर्द्धक, उष्णवीर्य और कफनाशक हैं।

पुराने पान कटुरसविहीन, लघु, कोमलतर और पाण्डुवर्ण होते हैं; ये अत्यन्त गुणदायक हैं। अन्यान्य पान इसकी अपेक्षा हीनगुणविशिष्ट हैं। पानमें सुपारी कत्था और चूना लगा कर खानेसे कफ, पित्त और वायु नष्ट होती है, मन प्रफुल्ल होता है, मुख निर्मल और सुगन्धित होता है तथा कान्ति और अङ्गके सौन्दर्यकी वृद्धि होती है।

प्रातःकालमें ताम्बूल खावें तो सुपारी अधिक, दोपहरके समय कत्था अधिक तथा रात्रिको चूना अधिक मिलाना चाहिए।

ताम्बूलके अग्रभागमें परमायु, मूलभागमें यश और मध्यदेशमें लक्ष्मी अवस्थान करती है। इसलिए ताम्बूलके अग्रभाग, मूलभाग, और मध्यदेशको छोड़ कर बाकीका भाग खाना चाहिये । (राजनिर्घण्ट)

ताम्बूलके मूलदेशके खानेसे व्याधि, अग्रभागके खानेसे पापसञ्चय, चूर्ण पान खानेसे परमायुका ह्रास और ताम्बूलकी शिरा खानेसे बुद्धि नष्ट हो जाती है।

(राजवल्लभ)

पान, सुपारी आदिके खाने पर पहले जो रस बनता है; वह विषोपम, दूसरी बार जो रस बनता है, वह भेदक और दुर्जर तथा तीसरी बार जो रस बनता है, वह अमृतके समान गुणदायक और रसायन है। अतएव ताम्बूलका वही रस पान करने योग्य है, जो तीसरी बारके चबानेसे निकलता है। ज्यादा पान खाना भी हानिकारक है। दस्तके बाद तथा भूख लगने पर पान न खाना चाहिए। हदसे ज्यादा पान खानेवालेका शरीर, दृष्टि, केश, दांत, अग्नि, कान, वर्ण और बलका क्षय होता है तथा अन्तमें पित्त और वायुकी वृद्धि हो जाया करती है।

दाँतोंकी कमजोरी और चक्षुरोग, विषरोग, मूर्च्छारोग, मदात्यय, क्षय और रक्तपित्त, इनमेंसे कोई भी एक रोग होने पर पान न खाना चाहिए। (भावप्रकाश)

विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और तपस्वियोंके लिए पान खाना निषिद्ध है। इन लोगोंके लिए पान गोमांस तुल्य है। (ब्रह्मवै०)

बिना सुपारीके पान नहीं खाना चाहिये। यदि कोई सुपारीके बिना पान खावे तो जब तक वह गङ्गा गमन न करेगा, तब तक उसे चाण्डालके घर जन्म लेना पड़ेगा (कर्मलोचन)

भोजनके बाद कुल्ला करके पान खाना चाहिए। विद्वान् लोग देवता और ब्राह्मणोंको बिना दिये ताम्बूल नहीं खाते।

वैद्यगण पानके भेषजगुणके बड़े पक्षपाती हैं। नाना प्रकारकी औषधोंके अनुपानमें पानका रस काम आता है।

सुश्रुतके मतसे—पान सुगन्धित, वायुनिःसारक, धारक और उत्तेजक है। इसके सेवन करनेसे निःश्वासमें सुगन्ध आती है, स्वर साफ होता है और मुखके दोष नष्ट होते हैं।

पानका डंठल यदि बच्चोंके गुह्यदेशमें प्रयोग किया जाय, तो उनकी कोष्टबद्धता नष्ट होती है। पानके पत्ते को भिगो कर कनपटियों पर रखनेसे सिरका दर्द जाता रहता है। गाल और गलेके सूजने पर उस पर पानका पत्ता बांधनेसे कुछ फायदा पड़ता है। स्तनोंमें कठिन पीड़ा वा सूज जाने पर उन पर पानके पत्ते बांध देने चाहिये इससे पीड़ा शांत होती है। फोड़े पर पान बांधनेसे घाव दूषित नहीं होता और आराम पड़ता है। पानके साथ चूना, सुपारी, कत्था और अन्यान्य मसाले मिला कर खाना भारतकी सभी जातियोंमें प्रचलित है। यह आगन्तुकको अभ्यर्थना करनेके लिए अति प्रिय और उपादेय उपहाररूपमें दिया जाता है। नित्य भोजनके उपरान्त भी लोग पान खाया करते हैं। यह परिपाक-कार्यमें सहायता पहुंचाता है। अम्लरोगीके लिए ज्यादा पान खाना अच्छा है। पानका रस गरम करके, कानमें डालनेसे कानका पीब और आंखमें डालनेसे नाना प्रकारके चक्षुरोग तथा मधु या चासनीके साथ चाटनेसे बच्चोंकी बैठी हुई खांसी जाती रहती है। हिष्टिरिया (बेहोशी) रोगमें दूधके साथ पानका रस सेवन करनेसे उपकार होता है। इसकी जड़ जहरीली होती है। स्त्री यदि पानकी जड़को बट कर खाने, तो उसकी गर्भग्रहणकी शक्ति जन्म भरके लिए नष्ट हो जाती है। वैद्यगण पानके रसके साथ कपासकी जड़ बट कर हीरकचूर्णको औषधके लिए शोधित करते हैं। पानका फल मधु वा चासनीके साथ खानेसे खांसी जाती रहती है। खारी जमीन पर रहनेवालोंको पान खाना फायदेमंद है।

ताजे पानको पानीमें चुआनेसे कुछ पीले रंगका दो तरहका तेल बनता है; एक तो जलसे भारी होता है और दूसरा हलका। दोनोंमें ही पानकी सुगन्ध होती हैं।

इथरके साथ पानका पत्ता गलानेसे आराकिन नामका एक तरहका क्षार निकलता है; इससे कोकेनकी भांतिका लवण बनाया जाता है।

ताम्बूलकरङ्क (सं० पु०) ताम्बूलस्य करङ्कः ६-तत्।

ताम्बूलपात्र, पान रखनेका बरतन, बट्टा। इसका दूसरा नाम स्थली है।

ताम्बूलद (सं॰ त्रि॰) ताम्बूलं ददाति दा-क। ताम्बूलदाता, जो पान लगा कर अपने मालिकको देता है। इसका पर्याय — वागुलिक है।

ताम्बूलदायक (सं॰ पु॰) ताम्बूल-दा-ण्वुल्। ताम्बूलदाता, वह नौकर जो पान इत्यादि लगानेमें नियुक्त किया जाता है।

ताम्बूलधर (सं॰ पु॰) वह नौकर जो पान लेकर खड़ा रहता है।

ताम्बूलनियम (सं॰ पु॰) पान, सुपारी, लवंग इलायची आदि खानेका नियम।

ताम्बूलपत्र (सं॰ पु॰) ताम्बूलमिव पत्रमस्य। १ पिण्डालु, अरुआ नामकी लता। इसके पत्ते पानके जैसे होते हैं। (क्ली॰) २ पानका पत्ता।

ताम्बूलपात्र (सं॰ क्ली॰) ताम्बूलस्य पात्रं, ६-तत्। ताम्बूलकरङ्क, पान रखनेका बरतन, बट्टा, पानदान।

ताम्बूलपेटिका (सं॰ स्त्री॰) ताम्बूलस्य पेटिका ६-तत्। ताम्बूलपात्र देखो।

ताम्बूलवीटिका (सं॰ स्त्री॰) पानका बीड़ा, बीड़ी।

ताम्बूलराग (सं॰ पु॰) ताम्बूलकृतो रागः मध्यलो॰ कर्मधा॰। १ पानकी पीक। २ मसूर।

ताम्बूलवल्लिका (सं॰ स्त्री॰) ताम्बूल, पान।

ताम्बूलवल्ली (सं॰ स्त्री॰) ताम्बूललता, पानकी बेल। इसका संस्कृत पर्याय—ताम्बूली, नागवल्लिका, वर्णलता, सप्तशिरा, सप्तलता, फणिवल्ली, भुजगलता, भक्षपत्रा, ताम्बूलवल्लिका, पर्णवल्ली, ताम्बूलिदिवाभीष्टा, नागिनी और नागवल्लरी। (भावप्रकाश)

ताम्बूलवाहक (सं॰ पु॰) राजभृत्यविशेष, पान खिलानेवाला नौकर।

ताम्बूलाधिकार (सं॰ पु॰) वह नौकर जिसके हाथ पानका इन्तजाम हो।

ताम्बूलिक (सं॰ त्रि॰) ताम्बूलं तद्रचनं शिल्पमस्य ताम्बूल-ठन्। १ पान बेचनेवाला, तमोली। २ तमोली जाति।

ताम्बूलिन् (सं॰ त्रि॰) ताम्बूलं पण्यतया अस्त्यस्य इनि। ताम्बूलविक्रेता, पान बेचनेवाला, तमोली।

ताम्बूली (सं॰ स्त्री॰) ताम्बूल-गौरा॰ ङीष्। २ ताम्बूलवल्ली, पानकी बेल।

ताम्बूली—साधारणतः तंबोली या तमोली नामसे प्रसिद्ध एक जाति। बङ्गाल, बिहार और उड़ीसामें इनका काफी सम्भ्रम है। ये मूलतः ताम्बूल व्यवसायी होनेके कारण इस नामसे अभिहित हुए हैं। इस जातिको भी मिश्र जाति कहा गया है। बंगालमें इनको ताम्ली वा तामुली तथा ताम्बूल-वणिक कहते हैं।

बिहारके ताम्बूलियोंमें गोत्रभेद नहीं है। इनमें हमेशासे चले आये नियमके अनुसार विवाह आदि सम्बन्ध होते हैं। 'धियानिया' सम्पर्कको पकड़ कर ६ पीढ़ी तक और "टेयाडी" सम्पर्क पकड़ कर १४ पीढ़ी तक विवाह सम्बन्ध नहीं होता।

बङ्गाल और उड़ीसामें ब्राह्मणगोत्रके अनुसार इनके नाना विभाग है। कुलमानानुसार भी इनमें विभाग हैं। समानगोत्र और समान कुलमें विवाह नहीं होता, सपिण्ड वा समानोदक होने पर भी नहीं होता। सगोत्रीय किन्तु भिन्न कुलके होने पर, वा समोपाधि किन्तु भिन्न गोत्रीय होने पर विवाह करनेमें बाधा नहीं।

बङ्गालके ताम्बूली पांच थाकोंमें विभक्त हैं, जैसे—सप्तग्रामी वा कुशदही, अष्टग्रामी वा कटकी, चौदहग्रामी, बियालीसग्रामी और वर्द्धमानी। सप्तग्रामियोंका कहना है, कि वे उत्तरभारतसे आ कर पहले पहल सप्तग्राममें बसे थे, वहां उनके चौदह सौ घर हैं। किसी मुसलमान नवाबके इनकी किसी स्त्री पर अत्याचार करनेके कारण ये सप्तग्रामको छोड़ कर कुशदहमें आ कर रहने लगे। बिआलीस ग्रामियोंका भी अपने आदि इतिहासके सम्बन्धमें ऐसा ही कहना है। ये बङ्गालमें सप्तग्रामियोंके पीछे आये हैं परन्तु संख्या इन्हींकी अधिक हैं। चौदहग्रामियोंका फिलहाल ज्यादा सम्मान नहीं है। बिआलीसग्रामी थाकके षष्ठीवरसिंह, वर्द्धमानी थाकके श्रीमन्त पालकी एक कन्याके साथ विवाह करनेके कारण, पिताके द्वारा घरसे निकाले गये थे और श्वशुरके साथ हुगली जिलेके बोंइची नामक ग्राममें आ कर रहने लगे थे। ये

ही चौदहग्रामी थाकके प्रवर्तक हैं। इन्होंने अपने धनके प्रभावसे निकटवर्ती चौदहग्रामोंके तांबूलियोंको अपनी श्रेणीमें मिला कर इस थाककी स्थापना की थी। इस घटनाके कुछ प्रमाण भी मिलते हैं बोंइचीमें एक देव-मन्दिरके पस्तरखण्ड पर लिखे हुए विवरणसे मालूम होता है, कि षष्ठीबरके पुत्र गोकुलने शक-सं० १५०४ (१५८२ ई०)-में इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी। इससे यह सहज ही कहा जा सकता है, कि चौदहग्रामी थाकका प्रवर्तन इससे और भी ५० वर्ष पहले हुआ था। वर्द्धमानी थाक चौदहग्रामीसे पहले प्रवर्तित हुआ था। वीरभूम और वर्द्धमानमें इस थाकके लोग ही अधिक हैं। अष्टग्रामियोंका कहना है, कि पहले सप्तग्रामियोंके समकालमें वे भी उत्तरभारतसे आ कर पहले उड़ीसामें बसे थे और इसीलिए वे अपनेको अन्य थाकोंसे कुछ हीन समझते हैं। इनमें कई एक थाकोंके काश्यप, कुरम, पराशर, शाण्डिल्य और व्यास गोत्र हैं।

विहारी तांबूलियोंमें प्रधानतः आदि वासस्थानके भेदसे कई एक श्रेणियां हैं,—मगहिया, तिरहुतिया, कनौजिया, भोजपुरिया, कुरम, करन, सूर्यद्विज आदि।

बङ्गालके ताम्बूलियोंमें चौधरी, चैल, दत्त, दे, सूर, पाल, पान्ति, रक्षित, सेन और सिंह, ये उपाधियाँ हैं। विहारमें भकत, खिल्लीवाला, नागवंशी और पैटी उपाधियाँ हैं।

विहार।—इनमें बाल्यविवाह प्रचलित है, तथा लड़कीवालेको दहेज देना पड़ता है। वंश-मर्यादाके अनुसार दहेजमें कमी-वेशी होती है। हरिद्राक्त वस्त्र वा पीतवर्णके रेशमी वस्त्र अथवा पट्टवस्त्र इनके वैवाहिक वसन हैं। ये नवशाख श्रेणीके अन्तर्गत हैं; किन्तु विधवाएं ब्राह्मण कायस्थोंकी विधवाओंके समान आचरण करती हैं। बङ्गाल और उड़ीसामें विधवाओंका पुनर्विवाह नहीं होता। विहारमें विधवाओंका दूसरा विवाह हो जाता है। विधवाके लिए कनिष्ठ देवरके साथ विवाह करना ही प्रशंसाजनक है। धरेजा होने पर भी वे इसको कुमारी-विवाहसे कुछ हीन नहीं समझते। पंचायतकी अनुमति ले कर स्त्रीको त्याग सकते हैं। परित्यक्ता स्त्री फिर विवाह नहीं कर सकती।

बङ्गाली ताम्बूली साधारणतः वैष्णव होते हैं। इनमें ब्राह्मण-श्रेणी पृथक् वा पतित नहीं है तथा शैवदेवता और चन्द्रसूर्यकी ये पूजा करते हैं। विहारमें बन्दी और नरसिंह नामके ग्राम्यदेवता हैं; गेहूंके पिष्टक, मिष्टान्न, केले और दही आदिसे उनकी पूजा होती है। अन्यान्य श्रमजीवी वणिक्जातियोंकी तरह इनमें भी कोई कोई—विश्वकर्मामें यन्त्रपूजाकी तरह—वैशाखी पूर्णिमामें चूनादान, पान, सरौता और कतरनी आदिकी पूजा किया करते हैं। इनमें ३० दिनका अशौच होता है।

ताम्बूलकी खेती करना और पान बेचना इनका आदि-व्यवसाय है। उत्तरभारतमें अब भी अधिकांश तमोली पान बेचनेहीका काम करते हैं, किन्तु बङ्गालके तमोलियोंने प्रायः जातीय व्यवसाय छोड़ दिया है, दुकानदारी, अनाजका रोजगार और चूना आदि बेचनेका काम करते हैं। बहुतसे लोग दफ्तरोंमें केरानीका काम करते हैं और बहुतसे जमींदारोंके यहां गुमास्तेका काम करते हैं। इसके सिवा बहुतोंने उच्चतर जीविकाका अवलम्बन कर लिया है। जो कृषिकार्य करते हैं, वे स्वयं हल नहीं चलाते। सत्शूद्रके विषयमें जो पौराणिक वा स्मार्त्त विधियाँ मिलती हैं, उनमें किसीने तेलीको और किसीने तमोलीको शुद्ध जाति माना है। पराशरके मतसे तेली और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे ताम्बूली सत्शूद्र हैं। बङ्गालमें अधिकांश स्थानमें ताम्बूली वैश्याचार मानते हैं। ये पंगास, गोर्चा, ईटा आदि शल्कहीन मत्स्य नहीं खाते।

पूनाके तंबोलियोंने पेशवाओंके समयमें सतारा और अहमदनगरसे आ कर वहां पानका व्यवसाय किया था। ये मराठी कुनबियोंके साथ आहार-व्यवहार करते हैं, आदान-प्रदान भी होता है। इनमें महाराष्ट्रीय उपाधियां प्रचलित हैं। समोपाधि व्यक्तियोंमें परस्पर आदान-प्रदान नहीं होता। ये कत्था चुना सुपारी और पान बेचते हैं। इनकी स्त्रियां रोजगारमें शामिल नहीं होतीं। लड़कोंको पढ़ाया नहीं जाता। इनमें कुछ मुसलमान भी हैं, जो यथार्थमें कुनबी थे; औरङ्गजेबके प्रभावसे मुसलमान हो गये हैं। ये आपसमें हिन्दी और दूसरोंके साथ मराठी बोलते हैं। इनकी पोशाक मराठों जैसी

है, ये पानका रोजगार करते हैं। इनकी स्त्रियां अब भी अनेक हिन्दू क्रियाकलापोंका अनुष्ठान किया करती हैं। ये अपनी ही श्रेणीमें आदान प्रदान करते हैं। धारवारके हिन्दू ताम्बूली खत्री और अत्यन्त शराब पीनेवाले हैं। दाक्षिणात्यमें सभी स्थानोंके मुसलमान तम्बोली हानिफी सम्प्रदायके सुन्नी मुसलमान और सर्वत्र एकसे आचारके हैं। मुसलमान तंबोली पान खरीद कर लाते और दूकान पर बैठ कर बेचते हैं।

ताम्र (सं० क्ली०) तम्यति आकाङ्क्षति तम रक् दीर्घश्च। अमितम्यादीर्घश्च। उण् २।१६। १. तैजस धातुभेद, तांबा। पर्याय—ताम्रक, शुल्व, म्लेच्छमुख, द्व्यष्ट, वरिष्ठ, उडुम्बर, द्विष्ट, उदम्बर, उदुम्बर, तपनेष्ट, अम्बक, अरविन्द, रविलोह, रविप्रिय, रक्त, नैपालिक, रक्तधातु, सुनिपित्तल, अर्क, सूर्याङ्ग और लोहितायस। (शब्दरत्ना०)

हिन्दी और बङ्गला	तांबा, तामा।
गुजराती	ताम्बा, ताम्बु।
कर्णाटक और मराठी	ताम्र।
तामिल	शेंबु, सेम्बू।
तेलगू और मलय	रागि, ताम्रमू।
भूटान	जङ्गत, नीलठोकर।
पञ्जाबी	नील टुसिया।
अरबी	नीहस।
फारसी और तुर्की	मिस।
बरमा	केयानी।
चीन	चिटुङ, टुङ, चिकिन।
दिनेमार	कोबार।
फरासीसी	कुइभर।
ओलन्दाज (हॉलैण्ड) सुइडेन	कोपर।
जर्मनी	कूपर।
इटली	रामे।
लैटिन	किउप्राम।
पोलैण्ड	मियेज।
पुर्तगीज, स्पेन	केमबर।
रूस	क्रोन्सनयजेड्, जेड़।

पुराणोंमें इसकी उत्पत्तिका विवरण इस प्रकार लिखा है—पूर्वकालमें गुड़ाकेश नामक एक महासुरने ताम्रका रूप धारण कर विष्णुकी आराधना की। विष्णुके सन्तुष्ट होने पर उस असुरने विष्णुके चक्रसे मरनेकी कामना की। विष्णुने भक्तकी वासनाको पूर्ण करनेके लिए वैशाख मासकी शुक्लद्वादशीके दिन उसको चक्रद्वारा मार डाला। उस असुरको विष्णुलोक प्राप्त हुआ। पीछे उसके मांससे ताम्र, रक्तसे सुवर्ण, अस्थिसे रौप्य आदि तथा उन सबके मलसे अन्यान्य धातुएं उत्पन्न हुईं।
(वराहपु०)

मतान्तरमें ऐसा भी है, कि कार्तिकेयका जो शुक्र पृथिवी पर गिरा था, उससे ताम्रकी उत्पत्ति हुई। (विप्रकाश)

ताम्र धातु जिस आकारमें साधारणतः बाजारोंमें देखनेमें आती है, खानसे ठीक वैसी ही नहीं निकलती। अन्यान्य धातुओंकी तरह खानमें भी यह अधिकतासे विशुद्ध अवस्थामें नहीं मिलती।

फिलहाल मालूम हुआ है, कि भारतके उपद्वीपांशोंमें ही तांबेकी खानें अधिक हैं। सिंहभूम जिला तथा धलभूम राज्यमें तांबेकी अधिकताके कारण वहां खनिके कामके लिए कितने ही बार कितने ही वणिक्‌दलोंका संगठन हुआ है; किन्तु किसीको भी सफलता नहीं हुई। हजारीबागमें बरागण्डा नामक स्थानमें तांबेकी खान दिखलाई दी है और चिह्नसे यह भी मालूम हुआ है, कि वहाँ पहले भी खदानका काम होता था। फिलहाल उन खदानोंके चलानेकी व्यवस्था हुई थी। राजपूतानेमें देशीय राज्योंमें कुछ तांबेकी खानें हैं, अंग्रेजोंके अधिकृत अजमेरमें कुछ अंग्रेज-वणिकोंने खोदनेका काम जारी किया था; पर फिलहाल वह भी बन्द है। कुमायूं और गढ़वाल जिलेमें तांबेकी खानें होने पर भी उनकी अजमेर जैसी दुर्दशा हो गई है। दार्जिलिङ्गके बीच जींगड़ी नामक स्थानकी आकरमें एक खदानका काम चल रहा है। पश्चिम-द्वारमें जितनी खानें हैं, उन्हें नेपाली लोग चलाते हैं। मन्द्राजमें कर्नूल और नेल्लूर जिलेमें खानका काम चल रहा है।

भारतमें तांबेकी खानोंके विषयमें नवीन कुछ जानने योग्य विवरण नहीं है। पहले भारतमें देशीय लोग ही

अधिकतर तांबा निकालते थे, किन्तु उन लोगोंने भी क्रमशः इस कामको छोड़ रहे हैं। नेल्लूर, सिंहभूम, हजारीबाग आदि स्थानोंमें तांबेकी पुरानी खानोंको देखनेसे मालूम होता है, कि किसी समय इस कामके लिए काफी आदमी मेहनत करते थे। भारतमें तांबेकी खानका काम चलानेके लिए अंग्रेज-वणिकोंका बहुत बार संगठन हुआ था, किन्तु कोई भी चिरस्थायी न हो सका। इस देशमें तांबेके आकरके काममें वे किसी तरह भी अपना बन्दोवस्त न कर सके। इसीलिए अंग्रेजोंने यह अनुमान किया है, कि इस विषयमें देशीय लोगोंके बिना मन लगाये उन्नति नहीं हो सकती।

भारतमें यह अक्साइड, एक प्रकार सल्फिउरेट, एक प्रकार सालफ़ेट, कार्बनेट, आर्सेनेट और फस्फेट अवस्थामें मिलता है। शिखावती, रामगढ़ आदि स्थानोंमें सलफिउरेट तांबेकी खान है। अजमेरमें कार्बनेट तांबा मिलता है। यहांकी लोहेकी खदानसे भी कार्बनेट तांबा निकलता है। नेल्लूर और अङ्गूलमें सिलिकेट तांबेकी खान है, किन्तु वह निकालने लायक स्थान नहीं है। नजीबाद, नागपुर, धनपुर और जयपुर राज्यमें भी तांबेकी खादनें हैं। कच्छमें तांबेकी खानका काम चल रहा है।

पञ्जाबकी प्रदर्शनीमें गुड़गांवसे पाइराइटिस् ताँबेका एक टुकड़ा आया था। हिस्सार जिलेसे बहुत उमदा ताँबा आया था। कांगड़ा जिलेमें कुलूके पास मणिकर्ण और पिलाङ्से पाइराइटि् नामका ताँबा और स्पितिसे नीले रंगका कार्बनेट तांबा भी आया था। काश्मीरमें ताँबा मिलता तो है, पर वहां उसका रोजगार नहीं चलता। कुमायूं, गढ़वाल, सिक्किम, नेपाल आदि स्थानोंमें तांबेकी खानें हैं; देशीय लोग ही उनका थोड़ा बहुत काम चलाते हैं। कुमायूंमें सिंघाना नामक स्थानमें तथा पापुली, प्रिन्सलपानी, मार्बुगेट्टी, केराई, बेलरसिरा, रोई टीमाकेट्टी, दोविरि और धनपुरमें ताँबेकी खानें हैं। बैजनाथके पास देवघरमें भी तांबेके आकार देखनेमें आते हैं। दो फुट खोदनेसे ही वहां ताँबा मिलता है। राजमहलके बांधली कुल्ला नामक स्थानसे कोयलेकी खानके मजदूरोंको बुला कर एक बार परीक्षाकी गई थी, उसमें फी सदी ३० भाग उमदा ताँबा और २५ भाग जलसे विकृत ताँबा सहज ही मिला था। नेपालके पार्वत्यप्रदेशमें लोहे और तांबेकी खानें यथेष्ट हैं। यहांका तांबा इतना उमदा होता है, कि किसी समय विलायती तांबेसे भी इसका हजार गुणा आदर था। सिंहभूममें तथा मेदनीपुरके पश्चिममें ८० मीलसे अधिक स्थानमें तांबेकी खदानें हैं। १३८ पौण्ड वजनके तीन ताम्रपत्र यहां बने थे जिससे ताँबेके सिक्के बखूबी बन सकते थे। यह ताँबा भी विलायती ताँबेसे अच्छा होता था। १७९७ ई०में कालहस्ती, वेङ्कटगिरि, नेल्लूर और बङ्गपाडूमें तांबेकी खानें निकली हैं। कर्णूलसे २० मील पूर्वमें गुन्निग्राम है, उससे २ मीलकी दूरी पर ताँबेकी खदान है। लम्बेइद्वीपका तांबा बहुत उमदा होता है। मरगुई द्वीपपुञ्जके बहुतसे द्वीपोंमें धूसरवर्णके आकर देखे जाते हैं। इनमें फी सदी आधा उत्कृष्ट ताम्र तथा आधा अञ्जन, लोहा और गन्धक मिलता है। अट्टिरान, सलविन और चेदुवाद्वीपमें हरे रंगका कार्बनेट तांबा मिलता है। आसाममें शिवसागरसे ३० मील दूरी पर अच्छा तांबा पाया जाता है।

श्यानराज्यमें तथा कालेन, माइयो और सगैङ नामक स्थानमें उत्कृष्ट मैलकाइट तांबा निकलता है।

सगैङ् नामक स्थानमें पहले चीना लोग खानोंका काम चलाते थे। तिमुर द्वीपमें भी ताँबा मिलता है। जापानके उपद्वीपोंमें बहुतायतसे ताँबा उत्पन्न होता है। पृथिवी पर अन्य किसी भी स्थानमें ऐसा बढ़िया तांबा नहीं मिलता। जापानके लोग इसको साफ करके एक इञ्च मोटे एक फुट लम्बे टुकड़े बना कर बेचा करते हैं। इससे कुछ खराब ताँबा ईंटके आकारमें बिकता है। यहांके ताँबेके आकरमें खादके साथ स्वर्ण भी मिलता है। ओलन्दाज लोग चीनसे यह तांबा प्रति वर्ष दो हजार टन रफ़्तनी करते हैं। चीनमें एक प्रकारका निकल मिला हुआ सफेद ताँबा मिलता है। यह केवल चीनमें ही निकलता है। इससे थाली, रकाबी आदिके ढक्कन, बत्तीदान और प्याले बनते हैं। नूतन अवस्थामें यह प्रायः चाँदीकी तरह चमकता है।

१८०२ ई०में अष्ट्रेलिया द्वीपमें भी तांबेकी खानोंका

आविष्कार हुआ है। काश्मीरमें जान्स्कार नदीके किनारे अति उत्कृष्ट तांबा मिलता है, जिसमें थोड़ा अंश चांदीका भी मिला रहता है।

तांबेका इतिहास।—अति पुराकालसे ही तांबा मनुष्योंका परिचित हुआ है, यहाँ तक कि लोहेके आविष्कारसे पहले भी तांबेके शस्त्र आदि बनते थे। आदिम जाति लोहेसे पहले इसका व्यवहार करती थी। शायद यह होगा कि अन्यान्य धातुओंके खानसे निकाल कर व्यवहारिक धातुरूपमें प्रस्तुत करना पड़ता है; किन्तु इसके लिए वह नियम नहीं, क्योंकि खानसे ही व्यवहारोपयोगी अवस्थामें निकलता है। यह अत्यन्त आघातको सहनेवाला है और इससे तार भी बनता है।

रोमकोंको यह काइप्रास् (साइप्रास्) द्वीपसे पहले पहल मिला था, इसलिए इसको पहले 'कइप्रियाम्' कहते थे, क्रमशः बिगड़ते बिगड़ते उसीका किउ-प्राम् (कु-प्राम वा कपर) रूप हो गया है।

खानमें तांबा नाना अवस्थाओंमें मिलता है, जैसे - अकसाइड, क्लोराइड, कार्बनेट, फस्फेट, सालफेट, आर्सेनेट, सिलिकेट, भानाडेट, साल्फाइड और व्यवहारिक धातु। प्रकृतिमें प्रायः सर्वत्र और सब पदार्थोंमें थोड़ा-बहुत तांबा है। समुद्रके लवण आदिमें भी तांबेके अंश हैं, अतः यह मानना पड़ेगा कि समुद्रके जलमें भी तांबा है। उच्च श्रेणीके जीव-शरीरमें भी तांबा है। आटा पूला, घास, मांस, अण्डा, पनीर आदि सभी चीजोंमें तांबा है। जब रक्तमें भी तांबेकी सत्ता है, यकृत् और मूत्रयन्त्रमें तांबेकी सत्ता शरीरके अन्यान्य अंशोंकी अपेक्षा बहुत ज्यादा है। ऊपर जितने तरहके तांबोंका वर्णन किया है, उनमें सभी प्रकारके तांबोंसे व्यवहारिक तांबा नहीं मिलता।

खदानके भीतर आकर ताम्रके साथ व्यवहारिकी तांबा सर्वदा ही मिलता है,—कहीं पतला, कहीं छोटे छोटे नुकीले टुकड़ेके रूपमें और कहीं बड़ी बड़ी ईंटों (Solid blocks)के आकारमें मिलता है। अमेरिकाके सुपिरियरह्रदके किनारेकी खानमें व्यवहारिक धातु ही अधिक पायी जाती है। यहां एक एक थानका वजन ५०० टन तक होता है। उत्तर-अमेरिकामें तांबेसे फी सदी २ अंश चाँदी निकलती है। यह चांदी एक टुकड़े ताँबेके साथ भली भांति मिश्रित रहती है और कहीं कहीं ताँबेके साथ चूर्णवत् वा सूत्रवत् अवस्थामें पायी जाती है।

आकर-ताम्रमें नाना वर्णव्यत्यय देखनेमें आते हैं; ये ही ताँबे सल्फाइड अवस्थापन्न हैं।

१। धूसर ताँबा (Grey sulphide of copper)—इंग्लैण्डमें यह कर्नवाल नामक स्थानमें सर्वदा मिलता है।

२। बैंगनी ताँबा (purple copper;—ताँबा और फेरिक सलफाइड (Cuprous and Ferric sulphides) विभिन्न अनुपातसे मिश्रित होने पर इस खनिजकी उत्पत्ति होती है। यह तीन प्रकारका होता है, एकमें फी सदी ७० भाग, दूसरेमें ६० भाग और तीसरेमें फी सदी ५६ भाग असली ताँबा रहता है। कर्नवाल, सुइडेन और उत्तर-अमेरिकामें यह बहुतायसे मिलता है।

३। पाइराइटिस् वा पीला ताँबा (Copper pyrites or yellow copper)—इस श्रेणीका तांबा अधिक मिलता है। इसमें फी सदी ३४.४ अंश तांबा होता है। कर्नवाल, डिभनसायर, सुइडेन, किउवा द्वीप, दक्षिण-अमेरिका और यूनाइटेड ष्टेटस्‌में बहुत जगह ऐसा तांबा मिलता है। कर्नवालकी खानमें हर साल यह एक लाख पचास हजारसे ३० हजार टन तक उत्पन्न होता है। इससे व्यवहारिक ताँबा प्रायः १२ हजार टन बनता है।

४। फह्‌लर वा असली भूरा ताँबा (Fahlore or true grey copper)—इसमें बहुतसी धातुएं मिश्रित रहती हैं, जिनमें प्रोटोसलफाइड ताँबा (Proto-sulphide of copper), आर्सेनिक, रसाञ्जन, जस्ता, लोहा, चाँदी और पारा ही अधिक हैं; फी सदी ३०से ४८ अंश विशुद्ध ताँबा निकलता है। पारा फी सदी २से १५ अंश तक रहता है। चांदी जितनी कम होती है, विशु ताँबेका परिमाण उतना ही ज्यादा होता है। गन्धक और रसाञ्जनके मिश्रणसे इसकी और भी एक श्रेणी उत्पन्न होती है, जिसको 'बुर्नोनाइट' (Sulphantimonite of copper) कहते हैं।

५ अटाकमाइट (Atacamite)—यह पेरू और चिली देशमें मिलता है। इसको Oxychloride of copper भी कहते हैं।

६। क्रिसोकोल्ला (Chrysocolla)—उक्त देशमें ताँबेकी खदानोंमें यह मिलता है। इसको Silicare of coppe कहते हैं। इन दो धातुओंसे भी ताँबा पृथक् किया जा सकता है।

ताँबेमें तड़ित-परिचालन-शक्ति चांदीके सिवा अन्यान्य धातुओंकी अपेक्षा बहुत ज्यादा है, इसीलिए इसके तारकी सहायतासे ताड़ितवार्त्ता वा तार भेजा जाता है।

ताँबा प्रायः सभी प्रकारकी मौलिक धातुओंके साथ मिला रहता है, जिसका अधिकांश औषध आदिमें व्यवहार होता है। नाइट्रोम्यिउरेटिक एसिड और आमोनियाके संयोगसे ताँबा गलता है। कलोरइन गैसके संयोगसे ताँबा जल सकता है।

ताँबेसे नित्य काममें आने लायक और कुछ मिश्रित धातुएं बनती हैं; जैसे पीतल—पीतल देखो। मुञ्जकी धातु (Muntz's Metal) प्रिन्सकी धातु (Prince's metal), मोसैयिक स्वर्ण (Mosaic gold), मन्न्हिम स्वर्ण (Mannheim gold) नकल ब्रोञ्ज (Immitation bronze), सिमिलर (Similor), टोम्बाक Tombac), और कांसा (Bele metal)।

ताँबेका अणविक गुरुत्व ३१·७५ है, आपेक्षिक तापसे १००° के मध्य ०·०८५१५ अवस्थाभेदसे आपेक्षिक गुरुत्वमें विभिन्न होती है। शुद्ध ताँबेका आपेक्षिक गुरुत्व ८·००० है।

ताँबेका स्वाद कसैला है, इसमें ग्राहिता गुण है। ताँबेको ज्यादा देर तक हाथमें रखनेसे भी जी घूमने लगता है। यह चाँदीसे कड़ा और अत्यन्त घातसह है। पीट कर इसका इतना बारीक वरक बनाया जा सकता है, कि वह हवामें उड़ने लगता है। इससे तार भी बहुत महीन बनता है। ०·०७८ इञ्च मोटे तार पर ३०२·२६ पौण्ड वजन लटकाने पर भी वह टूटता नहीं। सर्दी या हवामें रखनेसे इस पर जङ्ग लग जाती है जिसे ताँबेका कलङ्क कहते हैं। यह कलङ्क विषाक्त होता है। ताँबेमें टीन मिला कर उसको और भी घातसह बनाया जा सकता है, किन्तु उससे इसकी भङ्ग-प्रवणता बढ़ती है। फी सदी ५ भाग टीन मिलानेसे यह ललाईको लिए पीला, कठिन, घन और ध्वनि कर हो जाता है। तथा जङ्ग नहीं लगती। अतः टीनके मिलानेसे ताँबेके द्वारा और भी अधिक कार्य होता है। ५ भागसे अधिक जितनी टीन मिलेगी, उतनी ही उसकी भङ्ग-प्रवणता बढ़ेगी।

१। Speculum metal—ताँबेके साथ ⅓ अंश टीन मिलानेसे जो धातु बनती है, उसमें आलोक प्रतिक्षेप करनेकी शक्ति बढ़ती है; इसलिए इसको स्पेकुलम् धातु कहते हैं। प्लिनिका कहना है, कि पहले इस धातुसे दर्पण बनते थे। हमारे देशमें भी काँसेके दर्पण बनते दीख पड़ते हैं। वर्तमानमें बहुत जगह पूजा, विवाह आदि कार्योंमें काँसेका टुकड़ा (मलिन होने पर भी) दर्पणकी तरह काममें लाया जाता है।

२। Muntz's metal—जहाज और बड़ी बड़ी नावोंके नीचे यह धातु व्यवहृत होती है। १८३२ ई॰में मि॰ जी॰ एफ॰ मुञ्जको इसका पेटेण्ट दिया गया था। ६० भाग ताँबे और ४० भाग जस्तेसे यह धातु बनती है। ढाल कर इसकी बड़ी बड़ी चद्दरें बनाई जाती हैं। चद्दरोंके बन जाने पर उनको गन्धक-द्रावकसे धो दिया जाता है। यह देखनेमें पीली होती है, निखालिश ताँबेकी चद्दरकी अपेक्षा इस धातुकी चद्दरसे उद्देश्य अच्छी तरह साधित होता है। ताँबेकी अपेक्षा इससे तला मढ़नेमें कम खर्च पड़ता है, किन्तु युद्धके जहाजोंके लिए अब भी इसका व्यवहार नहीं होता।

३। Prince's metal—८० भाग ताँबेके साथ २० भाग जस्ता, टीन और सीसा मिला कर यह धातु बनाई जाती है। इससे ब्रोञ्ज धातुकी तरहके रंगकी कलईकी जा सकती है। ८५·५ भाग ताँबा और ११·५ भाग जस्ता मिला लेनेसे इस धातु पर छैनी चला कर मूर्त्ति बनाई जा सकती है। इसका रंग घोर लाल होता है।

४। Mosaic gold—बहुत ठण्डे स्थान पर समभागके जस्ते और ताँबेको मिला कर गलाया जाता है। उस गलित द्रव्यको खूब घोंटा जाता है, घोंटते समय फिर उसमें थोड़ा जस्ता मिलाया जाता है। घोंटते घोंटते

अन्तमें उसका रंग बदल कर बिलकुल सफेद हो जाता है। उसके बाद ठण्ढा होने पर उसका रंग सुनहरी हो जाता है। इसीको Mosaic gold कहते हैं।

५। Mannheim gold—यह धातु भी प्रिन्सेस् धातुके समान है, पर उपादानके भागोंमें कुछ तारतम्य होता है।

६। Tombac—८४·५ भाग ताँबा और १५·५ भाग जस्ता मिला कर वह धातु बनाई जाती है। यह कहना अत्युक्ति नहीं, कि इसके समान घातसह धातु और दूसरी नहीं है। इसका तार भी बहुत महीन और बढ़िया बनता है।

७। Immitation bronze—ये दो वस्तुएं भी प्रिन्सेस् धातुके समान हैं। भागोंमें इतना तारतम्य है। कि इसमें ६६ भाग ताँबा पड़ता है और ३२ भाग जस्ता। इसका रंग साफ पीला है; इससे मूर्त्तियां बना करती हैं।

८। काँसा (Bell-metal or bronze) कांस्य देखो।

टोम्बक धातुको पीट कर उससे ८२६०० इञ्च पतली चद्दर बनाई जा सकती है। इस तरहकी पतली चद्दरको "ओलन्दाजी धातु" (Dutch metal) कहते हैं। ब्रोञ्जरंग और ब्रोञ्ज-चूर्ण भी इसी ओलन्दाजी धातुको बिरोजा और पानीके साथ पीस कर बनाया जाता है; कहीं कहीं तेलके साथ भी पीस लेते हैं।

ताँबा अति पवित्र धातु होनेके कारण, हमारे देशमें देवपूजाके सम्पूर्ण बरतन आदि इसीसे बनते हैं, जैसे—ताम्रकुण्ड, घट, घटी, पुष्पपात्र, जलशङ्ख आदि। तांबेके पुष्पपात्रमें नाना प्रकारके नक्शे खुदे हुए होते हैं। हिन्दुओंका विश्वास है, कि कलिकालमें तांबेके पात्र पर रख कर भोजन करनेका निषेध है, किन्तु मुसलमान लोग प्रायः हमेशा तांबेका बरतना काममें लाते हैं। वे हंडा, डेगची, रकाबी वगैरह सभी बरतनों पर कलई चढ़वा लेते हैं। तंबाकू रखनेके लिए वे बड़े बड़े तांबेके हंडे काममें लाते हैं।

आयुर्वेद, ऐलोपाथिक, होमिओपाथिक, हकीमी और अवधौतिक चिकित्सा-प्रणालीमें नाना तरहसे औषधके लिए तांबेका व्यवहार होता है।

जो ताँबा जवापुष्पकी तरह लाल, स्निग्ध और कोमल है, जो आघातसे नष्ट नहीं होता और जिसमें लोहा वा सीसा मिला नहीं रहता, वही ताँबा उत्तम है और मारणके लिए उपयोगी है।

जो ताँबा काला, रूखा, अत्यन्त स्वच्छ वा सफेद और आघातसे नष्ट हो जाता है; तथा जिसमें लोहा और सीसा मिला होता है, वह ताँबा दूषित है। ऐसा तांबा मारणके लिए सम्पूर्ण अनुपयोगी है।

ताँबेकी शोधनविधि—ताँबेका बहुत बारीक पत्र बना कर उसे आगमें जलावें। पीछे उसे ज्वलन्त अङ्गारवत् तप्त अवस्थामें तैल, तक्र, कांजी, गोमूत्र और कुलथीका क्वाथ, इन सब द्रव्योंमेंसे प्रत्येकमें तीन तीन बार डुबाने पर ताँबा विशुद्ध होता है।

अशोधित ताम्र विषसे भी ज्यादा अनिष्टकर है; क्योंकि विषमें तो सिर्फ एक ही प्रकारका दोष है और बिना शोधे हुए ताँबेमें ८ प्रकारके दोष भरे हैं। अशोधित ताँबेके सेवन करनेसे भ्रम, के, दस्त, पसीना, उत्क्लेद, मूर्च्छा, दाह और अरुचि उत्पन्न होती है। यह अष्टदोषयुक्त ताँबा ही एक मात्र विष है।

ताम्रकी मारणविधि—तांबेकी पतली पतली पत्तियोंको आगमें जलावें, फिर तीन दिन अम्लमें डुबो कर खरलमें डालें और उसमें चतुर्थांश पारद डाल कर अम्लके द्वारा एक प्रहर तक घोंटे। पीछे खरलसे निकाल लें। फिर दूना गन्धक अम्ल द्वारा पीस कर उन ताम्रपत्रोंको लेप कर गोलकाकृति करें तथा स्वरस (अदरख), हिलमोचिका वा पुनर्णवा पीस कर कल्क बनावें। उस कल्कके द्वारा उक्त गोलकके ऊपर दो अंगुल परिमित लेप दें। उसके बाद उस गोलकको एक पात्रमें स्थापन कर और बालुका द्वारा उस पात्रको भर कर उसका मुंह एक सरवेसे ढक दें। फिर मिट्टी, नमक और पानी एक साथ मिला कर पात्र और सरवेके बीचकी संधको बन्द कर दें। पीछे चूल्हे पर चढ़ा कर चार प्रहर पर्यन्त अग्निके उत्तापमें पकावें। अग्निके उत्तापको क्रमशः बढ़ाते रहना चाहिये। इस तरह पाक करके, शीतल होने पर, गोलकको निकाल कर जिमींकन्दके (ओलके) रसमें एक प्रहर तक घोंटें और फिर उसे ओलके भीतर भर दें।

उसके बाद उस जिमींकन्दके चारों तरफ एक अङ्गुल मोटी मिट्टी थोप कर गजपुटसे उसका पाक करें। इस तरह ताम्र मारित होता है। यह मारित ताम्र वमन, विरेचन, भ्रम, क्लम, अरुचि, विदाह, स्वेद और उत्क्लेद-को कभी भी नहीं होने देता।

मारित ताम्रके गुण—यह कषाय, मधुर, तिक्त, अम्लरस, कटुविपाक, सारक, पित्तनाशक, कफापहारक, वीर्य, व्रणरोपक, लघु, लेखनगुणयुक्त, किञ्चित् वृंहण तथा पाण्डु, उदर, अर्श, ज्वर, कुष्ठ, कास, श्वास, क्षय, पीनस, अम्लपित्त, शोथ, क्रमि और शूलको नाश करनेवाला है।

असम्यक् मारित ताम्रके सेवन करनेसे दाह, स्वेद, अरुचि, मूर्च्छा, क्लेद, विरेचन, वमन और भ्रम उपस्थित होता है। (भावप्र०)

रसेन्द्रसारसंग्रहके मतसे तांबेमें आठ प्रकारके दोष हैं। इसलिए ताम्रका शोधन करना आवश्यक है।

ताम्रशोधन—लवङ्ग और अकवनके दूधसे ताँबेकी पत्तीको लेप कर, आगमें जला कर सम्हालूके पत्तेके रसमें छोड़ देनेसे ताम्रका शोधन होता है।

मतान्तरमें ऐसा भी है, कि गोमूत्रमें ताम्रपत्र डाल कर एक प्रहर तक खूब तेज आग पर पाक करनेसे ताँबा संशोधित होता है।

ताम्रपाक—दूने गन्धकके साथ पारेको घृतकुमारीके रसमें घोंट कर ताँबेकी पत्ती पर पोतें, फिर उसको लवणयन्त्रमें चार पहर तक पकावें, शीतल होने पर उसका चूर्ण बना कर सब रोगोंमें प्रयोग करें। तांबेके पत्र पर जम्बीरी नीबूका रस, सेंधा नमक और गन्धकका लेप दे कर भस्म होने तक उसका पुटपाक करें। इस तरह ताम्रपाक होता है।

किसीके मतसे—ताँबेकी पत्तीको लवण, क्षार और जम्बीरीके रसमें एक दिन घोंट कर उन पर सिज और अकवनका दूध पोत कर बार बार जलावें और सम्हालूके रसमें निक्षिप्त करें। पीछे समभाग पारद, दूध, घी और गन्धक मिला कर तीन बार पुटपाक करनेसे भस्म हो जायगी; पञ्चामृतमें तीन पुट देवें।

शोधित ताम्रके गुण—अनुपान विशेषके साथ सेवन करनेसे क्षय, कुष्ठ, पाण्डु, शूल, मेद, अर्श और वातरोग नष्ट होता है। एक रत्तीसे दो रत्ती तककी मात्रा वर्ष भर सेवन करनेसे मेद, मृत्यु और जरा नष्ट हो जाती है।

शोधित ताम्र उष्णता, विषदोष, यकृत्, प्लीहा, उदरी, क्रमि, शूल, आमवात, ग्रहणी, अर्श और अम्लपित्त आदि नष्ट करता है। (रसेन्द्रसा०)

ताँबा अम्लके संयोगसे शुद्ध होता है। 'ताम्रमम्लेन शुद्धति' (मनु०

ताम्रके पात्रमें भोजन न करना चाहिये। देवपूजा आदिमें ताम्रके पात्र ही प्रशस्त हैं, देवपूजामें ताम्र-निर्मित पात्र ही व्यवहृत होते हैं।

२ कुष्ठभेद, एक तरहका कोढ़। ३ रक्तवर्ण, लाल रंग। ४ द्वीपभेद, एक द्वीपका नाम। (भारत २।३१।६५)

ताम्र—महिषासुरका एक प्रसिद्ध सेनापति। यह दानव इन्द्रयमादि देवोंके साथ घोरतर युद्ध करनेके बाद अन्तमें देवोंके हाथसे निहत हुआ था।

(देवीभा० ५९ स्कन्ध)

ताम्रक (सं० क्लो०) ताम्रस्वार्थे कन्। ताम्र, ताँबा। ताम्र देखो।

ताम्रकण्टक (सं० पु०) १ निर्यासप्रधान कण्टक वृक्ष विशेष, एक प्रकारका पेड़। २ रक्तखदिर वृक्ष, लाल खैरका पेड़।

ताम्रकर्णी (सं० स्त्री०) ताम्रवर्णौ कर्णौ यस्याः बहुव्रो० स्त्रियां ङीष्। १ पश्चिमदिक्‌हस्तीकी पत्नी, पश्चिमके दिग्गजकी पत्नी, अञ्जना। २ तमेरा, वह, जो तांबेका बरतन बनाता हो।

ताम्रकार (सं० पु०-स्त्री०) ताम्रं करोति ताम्रधातुभिः पात्रादिकं निर्म्मीति कृ-अण्। वर्णसङ्कर जातिविशेष। इसके संस्कृत पर्याय—ताम्रिक, शौल्विक और ताम्रकुट्टक। इस जातिके विषयमें अनेक मतभेद हैं। किसीके मतसे आयोगव (बढ़ई) के औरस और विप्राके गर्भसे इस जातिकी उत्पत्ति है।

"आयोगवेन विप्रायां जातास्ताम्रोपजीविनः॥"

शूद्रके औरस और वैश्याके गर्भसे आयोगव जाति उत्पन्न हुई हैं। यह ताम्रकार (तमेरा) जाति कंसकार (कसेरो) जातिके अन्तर्गत है और फिर किसीके मतसे

यह जाति वैश्या और ब्राह्मणके संभोगसे उत्पन्न हुई है। किसी तीसरेका मतानुसार विश्वकर्माके औरस और शूद्रके गर्भसे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है। ये तांबेके बरतन बना कर अपनी जीविका निर्वाह करती हैं।

कांस्यकार देखो।

ताम्रकिलि (सं॰ पु॰) लोहितवर्णका कीटविशेष, बीरबहुटी नामका कीड़ा।

ताम्रकुट्ट (सं॰ पु॰-स्त्री॰) ताम्रं कुट्टयति कुट्ट-अण्। १ ताम्रकार, तमेरा। ताम्रकार देखो। २ तमाकूका पेड़।

ताम्रकुट्टक (सं॰ पु॰) ताम्रं कुट्टयति कुट्ट-ण्वुल्।

ताम्रकार देखो।

ताम्रकुण्ड (सं॰ क्ली॰) कुण-ड ताम्रमयं कुण्डं। ताम्रमय जलाधार पात्रभेद, ताँबेका बना हुआ एक प्रकारका बरतन। इसमें पूजाके समय जल गिराया जाता है।

ताम्रकूट (सं॰ पु॰ स्त्री॰) ताम्रस्य कूटमिव। क्षुपविशेष तमाकू। तन्त्रके मतसे सम्बिदा, कालकूट ताम्रकूट, धुस्तुर (धतूरा), अहिफेन (अफीम), खर्ज्जूररस, तारिका (ताड़ी), और तरिता (भांग, गांजा) ये आठ प्रकारके सिद्धद्रव्य हैं।

ताम्रक्रमि (सं॰ पु॰) ताम्रवर्णः, क्रमिः कीटः मध्यलो॰। इन्द्रगोपकीट, बीरबहुटी नामका कीड़ा।

ताम्रगर्भ (सं॰ क्ली॰) ताम्रगर्भ-इव उत्पत्तिस्थानं यस्य बहुव्री॰। तुत्थ, तूतिया। यह ताँबेसे उत्पन्न होता है।

तुत्थ देखो।

ताम्रचक्षु (सं॰ पु॰) ताम्रचक्षुषी यस्य बहुव्री॰। लाल नेत्रवाला, कपोत, कबूतर।

ताम्रचूड़ (सं॰ पु॰-स्त्री॰) ताम्रा रक्त-चूड़ा यस्य बहुव्री॰। १ कुक्कुट, मुरगा। मुरगा भीत हो कर 'कूकरू कू' शब्द करता है। रातमें यदि वह उक्त शब्द छोड़ कर दूसरे तरहका शब्द करे तो भय होता है। किन्तु रात्रिके अवसान होने पर स्वस्थ चन्द्रचूड़ तारस्वरमें स्वाभाविक शब्द करनेसे राजाका राज्य और देशकी वृद्धि होती है।

(वृहत्सं॰ ८६।२४) कुक्कुट देखो।

२ कुक्कुरद्रुम, कुकरौंधा नामका पौधा। ३ कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

"सुभगा लम्बिनी लम्बा ताम्रचूड़ा विकासिनी"।

(भारत ४७ अ॰

(त्रि॰) ४ रक्त शिखायुक्त, जिसकी चोटी लाल हो।

ताम्रचूड़भैरव (सं॰ पु॰) भैरवभेद।

ताम्रजाक्ष (सं॰ पु॰) सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश १६२ अ॰)

ताम्रतनु (सं॰ त्रि॰) जिसके शरीरका रंग तांबेके जैसा हो।

ताम्रतुण्ड (सं॰ पु॰) एक प्रकारका बन्दर। इसके मुखका रंग ताम्रवर्ण होता है।

ताम्रत्रपुज (सं॰ पु॰) ताम्रञ्च त्रपु च ताभ्यां जायते जन ड। कांस्य, कांसा।

ताम्रत्व (सं॰ क्ली॰) ताम्रस्य भावः ताम्र-त्व। ताम्रका भाव, रक्तवर्ण।

ताम्रदुग्धा (सं॰ स्त्री॰) ताम्रं रक्तं दुग्धं क्षीरं रसो यस्याः बहुव्री॰। गोरक्षदुग्धा, गोरखदुद्धी, अमरसंजीवनी।

ताम्रद्रु (सं॰ पु॰?) रक्तचन्दन।

ताम्रद्वीप (सं॰ पु॰-क्ली॰) दक्षिणदेशस्थित द्वीपविशेष। दक्षिणदिक् विजयके समय सहदेवने यह द्वीप जय किया था। ताम्रपर्णी देखो।

ताम्रधातु (सं॰ पु॰) ताम्र, ताँबा। ताम्र देखो।

ताम्रधूम्र (सं॰ त्रि॰) कृष्ण और रक्तवर्ण, समेड़ा, लाल रंग।

ताम्रध्वज (सं॰ पु॰) रत्ननगरके राजा मयूरध्वजके पुत्र। इन्होंने युद्धमें अर्जुन और श्रीकृष्णको पराजय किया था।

ताम्रलिप्त और मयूरध्वज देखो।

ताम्रपक्षा (सं॰ स्त्री॰) सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णकी एक कन्याका नाम। (हरिवंश १६२ अ॰)

ताम्रपक्षी (सं॰ पु॰) श्रीकृष्णके एक पुत्रका नाम।

ताम्रपट्ट (सं॰ क्ली॰) ताम्रनिर्मितं पट्टं मध्यलो॰, कर्मधा॰। ताम्रमय लेखनपत्रभेद, ताम्रशासन। पूर्वकालमें राजा धर्मविद् ब्राह्मणोंको ताम्रपत्रमें भूमिका परिमाणादि समस्त विवरण लिख कर स्वमुद्रा चिह्नित करके प्रदान करते थे, ब्राह्मण पुरुषानुक्रमसे वह भूमि भोग करते थे। इसके बाद कोई भी अन्य राजा उस भूमिका कर नहीं लेते थे। इस तरहको भूमिदान करनेको

अपेक्षा परदत्त भूमिकी रक्षा करना अत्यन्त पुण्यजनक है। भारतवर्षके सब स्थानोंसे ही इस तरहके सैकड़ों ताम्रशासन आविष्कृत हुए हैं। इससे भारतीय राजाओंकी वंशावली और इतिहास बहुत कुछ स्थिर होता है।

ताम्रपत्र (सं० पु०) ताम्रं रक्तं पत्रं यस्य बहुव्री०। १ जीवशाक, एक प्रकारका साग। २ रक्तवर्ण पत्रवृक्षमात्र, एक प्रकारका पेड़ जिसके पत्ते लाल होते हैं। कर्मधा०। ३ ताम्रमय लेखनपत्र, तांबेकी चद्दरका टुकड़ा। ४ रक्तदल नव पल्लव, लालरङ्गकी नयी पत्तियाँ।

ताम्रपत्रक (सं० पु०) ताम्रपत्र देखो

ताम्रपर्ण—सिंहल द्वीपका नामान्तर (Taprobane)। सिंहल देखो।

ताम्रपर्णी—मन्द्राजके अन्तर्गत तिन्नेवेल्लि जिलेकी एक नदी। इसका स्थानीय नाम "परुनै" है। टलेमी और पेरिप्लुस इसका उल्लेख कर गये हैं। यह पश्चिमघाट पर्वतसे निकल कर दक्षिण-पूर्वकी ओर बहती हुई शर्मदेवी तक चली गई है। फिर वहाँसे उत्तर-पूर्वकी ओर होती हुई तिन्नेवेलिसे पालमकोटा तक और वहाँसे फिर कभी दक्षिणकी ओर कभी पूर्वकी ओर होती हुई बङ्गोपसागरमें जा गिरी है।

जहाँसे यह नदी निकली है, वहाँ चित्तार आदि इसकी अनेक उपनदियाँ है। ताम्रपर्णीकी लम्बाई ७० मीलके लगभग है। इस नदीसे तिन्नेवेलि जिलेकी प्रायः १८५००० बीघा जमीन सींची जाती है। जलसञ्चारकी सुविधाके लिये इसमें आठ पुल दिये गये हैं। इनमेंसे सात तो हिन्दूराजाओंके समयके हैं और आठवां जो श्रीवैकुण्ठम् नामक स्थानमें है उसे ब्रटिश गवर्मेण्टने १८८६ ई०में बनाया है। यह पुल समुद्रपृष्ठसे ३७'४० फुट ऊंचा है। जब नदीमें बाढ़ अधिक आ जाती है, तब ये सब पुल डूब जाते हैं। इसके किनारेका कोलकेई नामक स्थान अभी समुद्रतीरसे ५ मील हट गया है। किन्तु टलेमीका वर्णन पढ़नेसे मालूम पड़ता है कि वह स्थान समुद्रवर्त्ती एक बन्दर था। अभी वह ग्रामके रूपमें परिणत हो गया है। तामिल भाषामें कालकेईका अर्थ सेना-दल वा सेना-शिविर हैं। कयाल नामक एक दूसरा छोटा ग्राम है, जो समुद्रके किनारेसे दो मीलकी दूरी पर अवस्थित है। मार्कपोलो इसी कयालको कयेल बतला गये हैं।

रामायण, महाभारत तथा सभी मुख्य पुराणोंमें इस नदीका उल्लेख है। प्रियदर्शी अशोकके १३वें अनुशासनमें इस नदीका जो उल्लेख है, उसमें लिखा है, कि दक्षिणमें चोड़गण और पाण्ड्यगण तम्बपन्नी (ताम्रपर्णी) तक राज्य करते थे, उस समय वहाँ बौद्धधर्मका प्रभाव जोरोंसे फैला हुआ था।

जहाँसे यह नदी निकली है, वहीं ताम्रपर्णी नामकी एक और नदी है जो पश्चिमकी ओर बहती हुई त्रिवाङ्कुर राज्यमें प्रवेश करती है।

२ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत बेलगाम जिलेकी एक छोटी नदी। यह सिद्धिहल नामक स्थानमें घाटप्रभा नदीसे आ मिली है।

३ सिंहल द्वीपकी एक नगरी। इस नगरीके कारण समूचे सिंहलका ताम्रपर्ण नाम पड़ा है। ४ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ५ सरोवर, तालाब, बावली।

ताम्रपर्णीय (सं० पु०) सिंहलद्वीपवासी बौद्ध।

ताम्रपल्लव (सं० पु०) ताम्राणि पल्लवानि यस्य बहुव्री०। अशोकवृक्ष। इसके संस्कृत पर्याय—हेमपुष्प, वञ्जुल कङ्केलि, पिण्डपुष्प, गन्धपुष्प और नट। (भावप्रकाश)

ताम्रपाकी (सं० पु०) पच्यते इति पाकः पच्-घञ्, ताम्रः रक्तवर्णः पाकः परिणतिरस्त्यस्य इति इनि। गर्दभाण्ड वृक्ष, पाकरका पेड़।

ताम्रपात्र (सं० क्ली०) ताम्रनिर्मितं पात्रं कर्मधा०। ताम्रमय पात्र, तांबेका बरतन। ताम्रपात्रमें तर्पण करना प्रशस्त है। किसी देवकार्यमें ताम्रपात्रमें ही सङ्कल्प करना पड़ता है। ताम्रपात्रमें भोजन करना निषिद्ध है। ताम्रपात्रमें मधु और दुग्ध रखनेसे वह मद्यतुल्य हो जाता है।

"नारिकेलजलं कांस्ये तामूपात्रे स्थितं मधु।
गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना॥"
(स्मृतिसागर)

ताम्रपात्रमें घृत रखना प्रशस्त है। ताम्रपात्रमें दधि और मांस दूषणीय है, किन्तु द्रव्यान्तरयुक्त मांस और घृतयुक्त दधि दूषणीय नहीं है। ताम्रका पात्र प्रशस्त है। ताम्रपात्रके अभावमें मृत्पात्र ही हितकर है।

"जलपात्रन्तु ताम्रस्य तदभावे मृतोहितम् ।" (भावप्र०)

२ ताम्रशासन, ताँबेको चद्दरका एक टुकड़ा जिस पर प्राचीनकालमें अक्षर खुदवा कर भूमि इत्यादिका दानपत्र लिखते थे ।

"ताम्रपात्रे कुलं लेख्य शासनानि बहूनि च ।
एतेभ्यो दत्तवान् पूर्व्वं कलौ बल्लालसेनकः ।"
(हरिमिश्रकारिका)

ताम्रपादी (सं० स्त्री०) हंसपदी लता, लाल रंगका लज्जालु ।

ताम्रपुष्प (सं० पु०) ताम्रवर्णं पुष्पं यस्य बहुव्री० । रक्तकाञ्चन पुष्पवृक्ष, लालफूलका कचनार । इसके संस्कृत पर्याय—कोविदार, चमरिक, कुद्दाल, युगपत्रक, कुण्डली, स्वल्पक और स्वल्पकेशरी । २ भूमिचम्पक । (त्रि०) ३ रक्तपुष्पयुक्त मात्र, जिसमें लाल फूल लगते हों । (क्ली) ताम्रं पुष्पं कर्मधा० । ४ रक्तपुष्प, लाल फूल ।

ताम्रपुष्पिका (सं० स्त्री०) ताम्रवर्णं पुष्पं यस्याः बहुव्री० । कप्, टापि अतइत्वं । रक्तत्रिवृत्, लालफूलका निसोथ ।

ताम्रपुष्पी (सं० स्त्री०) ताम्रं पुष्पं यस्याः बहुव्री० स्त्रियां ङीष् । २ धातकीपुष्प, धवका पेड़ । पर्याय—धातु, पुष्पी, कुञ्जरा, सुभिक्षा, बहुपुष्पी और वह्निज्वाला ।
(भावप्र०)

२ पाटलावृक्ष, पाढरका पेड़ । ३ नागरङ्ग वृक्ष, नारङ्गीका पेड़ । ४ श्यामात्रिवित् ।

ताम्रप्रयोग—औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा । इसकी प्रस्तुतप्रणाली ८ तोले परिमित ताम्रपत्रको दग्ध कर यथाक्रमसे आकन्दके गोंद सम्हालू रस, गोक्षुरके रस और सोजके गोंदसे तीन बार प्रक्षिप्त कर उसे शोधन करना पड़ता है । बाद पारा ४ तोला और गन्धक ८ तोला इन दोनोंकी कज्जली करते हैं और कज्जलीके अर्द्धभागको जम्बीरी नीबूके रसमें डुबो कर उसे पूर्वोक्त ताम्रपात्र लिप्त करते हैं । बाद अन्धमूषामें रुद्ध कर ५ पुट देना चाहिये ।

इसे प्रतिदिन २ रत्ती मधु और घृतके साथ सेवन करना चाहिये । इससे सब प्रकारके भगन्दर और क्षत नाश हो जाते हैं । (भैषज्यरत्ना० भगन्दराधिकार)

ताम्रफल (सं० पु०) ताम्रं रक्तवर्णं फलं यस्य बहुव्री० । १ अङ्कोठ वृक्ष, टेरा, ढेरा । (त्रि०) २ रक्तफलयुक्त वृक्षमात्र, जिसमें लाल फल लगते हों । (क्ली०) ताम्रं फलं कर्मधा० । ३ रक्त फल ।

ताम्रफलक (सं० क्ली०) ताम्रनिर्म्मितं फलकं मध्यलो० कर्मधा० । ताम्रनिर्म्मित पट्ट, ताँबेको चद्दरका एक टुकड़ा । ताम्रपट्ट देखो ।

ताम्रमुख (सं० त्रि०) ताम्रं मुखं यस्य बहुव्री० । अरुण-बदन, जिसका मुख लाल हो ।

ताम्रमूला (सं० स्त्री०) ताम्रं मूलं यस्याः बहुव्री० अजादेराकृतिगणत्वात् टाप् । १ दुरालभा, जवासा, धमासा । २ लज्जालु, छुईमुई । ३ कच्छुरा वृक्ष, किवाँच, कौंच । ४ मञ्जिष्ठा, मजीठ । ५ रक्तमूलक वृक्षमात्र, वह वृक्ष जिसकी जड़ लाल हो । (क्ली) ताम्रं मूलं कर्मधा० । ५ रक्तमूल, लाल जड़ ।

ताम्रमृग (सं० पु०) ताम्रः रक्तवर्णः मृगः कर्मधा० । लोहितवर्ण हरिण, लाल रंगका हिरन ।

ताम्रयोग (सं० पु०) ताम्रस्य योगः, ६-तत् । चक्रदत्तोक्त औषधविशेष एक देशी दवा । प्रस्तुत-प्रणाली—पारद १ मासा और १ मासा गन्धक, इनका यथाविधि शोधन और मर्दन करके कज्जली बनावें, पीछे उस कज्जलीको एक दृढ़ और नूतन मृत्पात्रमें रख कर, उसमें चौलाईकी जड़का चूर्ण २ मासा डालें, बादमें उसको १५ मासे कण्टकवेध-योग्य नेपालदेशीय ताम्रपत्रको अमरोलीके रसमें शोधित करके पात्रस्थ औषध पर ढक दें तथा लेई बना कर ताम्रपत्रको मृत्तिका पात्रके साथ इस तरह जोड़ दें कि जिससे उसको भेद कर नीचे बालू आदि न घुसने पावे । फिर उस पात्रको बालूसे भर देवें । तत्पश्चात् उस पात्रके नीचे एक घण्टे तक आग जलावें, फिर पात्रको उतार लें ।

शीतल होने पर पात्रके उपरिस्थित बालूको निकाल लें और निम्नस्थ ताम्रपात्र, कज्जली आदिको उठा कर एकत्र खलमें घोंट लें ।

उक्त पेषितचूर्ण १ रत्ती, त्रिफलाचूर्ण, त्रिकटुचूर्ण और विड़ङ्गचूर्ण एक एक रत्ती, इनको एकत्र मिला कर घी और मधुके साथ चाट कर ऊपरसे ठण्ढा पानी पीना चाहिये । उक्त द्रव्योंको १ रत्तीसे ले कर १२ रत्ती

तक क्रमशः एक एक रत्ती बढ़ाना चाहिये। पीछे १२ दिनके बादसे एक एक रत्ती घटा कर सेवन करें। उक्त औषधके साथ त्रिफला और त्रिकटुचूर्णकी मात्रा भी एक एक रत्ती बढ़ाई जाती है। परन्तु विड़ङ्गकी मात्रा बराबर एकसी रखनी चाहिये। यदि रोगीको कोष्टबद्धता हो और उसमें विरेचन आवश्यक समझें, तो विड़ङ्गचूर्ण २ रत्ती देवें; इससे कोठा साफ हो जायगा। यह ताम्रयोग ग्रहणीरोगकी एक उत्तम औषध है। इससे अम्लपित्त, क्षय और शूलरोग विनष्ट होता है, बल और वर्णकी वृद्धि हो कर अग्निकी वृद्धि होती है।

(चक्रदत्त ग्रहण्यधिकार)

ताम्ररसायनी (सं॰ स्त्री॰) ताम्रस्य रक्तनिर्यासस्य अयनी, ६-तत्। गोरक्षदुग्ध, एक प्रकारका पेड़ जिसका रस दूधसा सफेद होता है।

ताम्रलिप्त—एक अति प्राचीन जनपद। महाभारत भीष्म पर्व (९।७६), हरिवंश, ब्रह्माण्डपुराण, अथर्व परिशिष्ट आदि पौराणिक ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख है। शब्दरत्नावली त्रिकाण्डशेष और हेमचन्द्रके अभिधानचिन्तामणिमें इसके कई एक पर्याय दिये गये हैं—

तमोलिप्ति, ताम्रलिप्त, वेलाकुल, तमालिका, ताम्रलिप्ता, दामलिप्त, तमालिनी, विष्णुगृह।

जैमिनिभारतमें रत्नगर और बङ्गकवि काशीदासके महाभारतमें रत्नावतीपुर नामसे इसका उल्लेख है। इसका स्थानीय एक प्राचीन नाम रत्नाकर भी है। वर्त्तमान नाम तमोलुक, तमलुक वा तामलुक है।

पाश्चात्य भौगोलिक टलेमीने ताम्रलितिस् (Tamlites) एवं महावंश और दाथवंशकारने ताम्रलित्ति नामसे इस स्थानका उल्लेख किया है। दोनों ही शब्द संस्कृतसे उत्पन्न हैं।

ग्रीक-दूत मेगस्थिनिसने गङ्गाके उस पार तालुक्ति (Taluctae) नामकी एक जातिका उल्लेख किया है। अनुवादक मैक्रिण्डल साहबके मतसे वह शब्द ताम्रलिप्तवासियोंका निर्देशक हैं।*

ताम्रलिप्तकी नामोत्पत्तिके विषयमें बहुतसे बहुतसी बातें कहते हैं; पर अभी तक उसका कोई निर्णय नहीं हुआ, कि क्यों यह नाम पड़ा। तमलुक देखो। दिग्विजयप्रकाशमें नामके विषयमें एक अद्भुत उपाख्यान दिया गया है, उसे यहां हम उद्धृत करते हैं—

जिस समय वृन्दावनमें वासुदेव रासलीला कर रहे थे, उस समय उनकी इच्छासे चन्द्र सूर्यका स्तम्भन हुआ था। पीछे सूर्यदेवने सारथिसे कहा—'मैं भारतमें दिन करूंगा, तुम उदयाचलसे शीघ्र आओ।" सारथिके रश्मि ले कर उत्थित होने पर उस पर ज्योत्स्ना पड़ी, फिर अरुण दूरीभूत हो कर समुद्रप्रान्तमें लिप्त हो गया; जिस स्थानमें लिप्त हुए थे, वह स्थान ताम्रलिप्तके नामसे प्रसिद्ध हुआ।† बादमें रासलीलाका अवसान होने पर दिवाकरने अरुणका उद्धार किया और वह स्थान धनधान्यवान् हो गया।

प्राचीन और आधुनिक अवस्थान।—महाभारतके पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह जनपद समुद्रके किनारे और कलिङ्गके बगलमें था। पालि महावंशके पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि ईसाके जन्मसे ३०७ वर्ष पहलेसे ही ताम्रलिप्त नगर समुद्रलवर्ती एक बन्दरके नामसे प्रसिद्ध था। उस समय सिंहलके राजाने उक्त बन्दरमें जहाज पर आरोहण किया था। इस बंदरसे ही बौद्धोंके आराध्य बोधिद्रुम सिंहलद्वीपको भेजे गये थे, जिनके लिए समुद्रके किनारे खड़े हो कर सम्राट् धर्माशोकने विलाप किया था‡। दाथवंशमें लिखा है, कि दन्तकुमार और हेममाला इस प्राचीन बंदरसे जलयान द्वारा बुद्धदन्त सिंहलमें ले गये थे। बृहत्कथाका उपाख्यान पढ़नेसे यह मालूम होता है, कि सैकड़ों वणिक् यहां जहाज पर चढ़ते थे। ईसाकी ५वीं शताब्दीमें चीन-परिव्राजक फा-हियान् दो वर्ष तक यहां रहे थे और बौद्धधर्मग्रन्थादिकी प्रतिलिपि ले कर समुद्रपथसे सिंहल गये थे।§ उनके भी दो सौ

---

* Indian Antiquary, Vol. VI, p. 389 N.

† ज्योत्स्नापतितकिरणैर्दूरीभूतो हि चारुणः।
समुद्रप्रान्तभूमौ च निमग्नश्चातिमोहितः॥ ५६॥
अरुणाख्य सारथेश्च क्षेपनात् नृपशेखर।
ताम्रलिप्तमतो लोके गायन्ति पूर्ववासिनः॥ ५७॥"

(दिग्विजयप्रकाश)

‡ महावंश ११वां और १९वां परिच्छेद।

S. Beal's Fa Hian.

वर्ष बाद चीन-परिव्राजक यूएनचुआंगने यहांसे जहाज पर आरोहण किया था, किन्तु उस समय नगरसे सागर-स्रोत दूर हट गया था। *

पाण्डवविजय नामक संस्कृत भौगोलिक ग्रन्थमें लिखा है—

"ताम्रलिप्तदेशयक्षे भागीरथ्यास्तटे नृप ।
त्रियोजनपरिमितो गावो यत्र च भूरिशः ॥"

भागीरथीके तट पर उत्तरभागमें तीन योजन परिमित ताम्रलिप्त देश है, जहं बहुत गायें हैं।

इससे ज्ञात होता है, कि किसी समय गङ्गाकी किसी शाखाके निकट ताम्रलिप्त नगर अवस्थित था।

दो सौ वर्षसे पहलेके लिखे हुए दिग्विजयप्रकाशमें लिखा है—

"मण्डलघट्टदक्षिणे च हैजलस्य च ह्युत्तरे ।
ताम्रलिप्तप्रदेशश्च बणिकस्य निवासभूः ॥
द्वादशयोजनैर्युक्तः रूपानद्याः समीपतः ॥"

मण्डलघाटके दक्षिण और हिजलीके उत्तरमें बणिकोंकी वासभूमि ताम्रलिप्त प्रदेश १२ योजन विस्तृत और रूपा अर्थात् रूपनारायण नदीके निकट अवस्थित है।

दिग्विजयप्रकाशके पढ़नेसे मालूम होता है, कि उस समय ताम्रलिप्त नगर समुद्रकूलसे बहुत दूर था। हां यह कहा जा सकता है कि कभी कभी बाढका पानी वहां तक आ जाया करता था।

इस समय ताम्रलिप्त नगर समुद्रके किनारे नहीं, बल्कि समुद्रसे तीस कोसकी दूरी पर अवस्थित है। तमलुक शब्दमें वर्तमान अवस्थाका वर्णन देखो।

पुरातत्त्व-ताम्रलिप्त अति प्राचीन जनपद है। वेद, उपनिषद् अथवा रामायणमें इसका कोई उल्लेख न रहने पर भी महाभारत एवं प्रधान प्रधान सभी पुराणोंमें इसका उल्लेख पाया जाता है। रामायणमें ताम्रलिप्तके निकटवर्ती जनपदका उल्लेख है, किन्तु इस प्रसिद्ध स्थानका कुछ उल्लेख न रहनेके कारण अनुमान किया जाता है, कि उस समय यह स्थान समुद्रके गर्भमें होगा और महाभारतके समय वहांसे समुद्र हट जानेसे वह जनपदके रूपमें परिणत हुआ होगा। कोई कोई लिखते हैं, कि उस समय यह स्थान कलिङ्गराज्यके अन्तर्गत था। परन्तु—

"कालिंगस्ताम्रलिप्तश्च पत्तनाधिपतिस्तथा।"

(भारत आदि १८६।३१)

महाभारतके इस वचनके अनुसार यही प्रतीत होता है कि कलिङ्ग और ताम्रलिप्त विभिन्न राजाके अधीन भिन्न भिन्न देश थे। द्रोणपर्वमें लिखा है, कि यहां क्षत्रिय राजा भी परशुरामके निशित शराघातसे निहत हुए थे। (भारत द्रोण ७०।११)

सभापर्वमें ऐसा लिखा है, कि राजसूययज्ञके भीमसेनने यहांके राजाओंको पराजित कर वसूल किया था।

(सभाप० ९ अ०)

कुरुक्षेत्रके महासमरमें यहांके वीरोंने दुर्योधनका पक्ष लिया था। उनको म्लेच्छ कहा गया है।

(द्रोणप० ११८।१५)

उपर्युक्त विवरणके पढ़नेसे यही मालूम होता है, कि महाभारतके समय यहां म्लेच्छोंका राज्य था। जैमिनीय आश्वमेधिक पर्वमें लिखा है—

जिस समय मयूरध्वजके पुत्र ताम्रध्वज पिताके अश्वमेधीय मुक्त अश्वकी रक्षामें थे, उस समय अर्जुनका घोटक उनके घोड़ेके पास आया। ताम्रध्वजके सेनापति बहुलध्वजने उस घोटकके ललाटस्थ पत्रको पढ़ कर ताम्रध्वजसे उसका हाल कहा। शीघ्र ही श्रीकृष्ण गरुड़व्यूहकी रचना करके अश्वके उद्धारके लिए अग्रसर हुए। अर्जुन, अनुशाल्व, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, हंसध्वज, सात्यकि, यौवनाश्व, बभ्रुवाहन, आदि महायोद्धा भी उनके साथ थे। ताम्रध्वजके साथ इनका घोरतर युद्ध हुआ। महावीर ताम्रध्वजने एक एक करके सबको परास्त कर दिया, औरकी तो बात क्या, श्रीकृष्ण और अर्जुन भी मूर्च्छित हो गये। मणिपुरमें यह घटना हुई थी। दैवयोगसे मयूरध्वजका यज्ञीय अश्व और उसके साथ अर्जुनका घोड़ा भी रत्नपुर (ताम्रलिप्त)की तरफ दौड़ा। ताम्रध्वज भी कृष्णार्जुनको मूर्च्छित अवस्थामें छोड़ कर घोड़ेके पीछे दौड़ते हुए अपने पिताकी राजधानीमें उपस्थित हुए। उन्होंने पितासे सब हाल कह सुनाया। मयूरध्वज

---

* Beal's Records of the Western World.

पुत्रके मुंहसे कृष्णार्जुनके अपमानकी बात सुन कर नितान्त दुःखित हुए। उन्होंने पुत्रको बहुत कुछ कहा सुना और भर्त्सना की। उधर मूर्च्छा छुट जाने पर श्रीकृष्ण वृद्ध ब्राह्मणके वेशमें और अर्जुन बालकके वेशमें मयूरध्वजके पास पहुंचे। वहां पहुंच कर श्रीकृष्णने छलनापूर्वक मयूरध्वजसे कहा, कि 'आपके एक पुत्रको सिंहने पकड़ लिया है; यदि राजा उसे अपना आधा शरीर प्रदान करें, तो आपके पुत्रको छोड़ सकता है।' धार्मिकप्रवर मयूरध्वज इस पर राजी हो गये। सहधर्मिणी कुमुद्वती और पुत्र ताम्रध्वज दोनों ही अपना अपना शरीर उत्सर्ग करनेके लिए अग्रसर हुए थे। किन्तु राजाने उनको बहुत समझा-बुझा कर अपना शरीर द्विखण्ड करनेके लिए आदेश दिया। भार्या और पुत्र दोनोंने मिल कर आरीसे राजाका मस्तक विदीर्ण कर डाला। उस समय साधुचेता मयूरध्वजने सबको सम्बोधन करके कहा था—"अन्यके उपकारके लिए जिनका शरीर और अर्थ है, वे ही यथार्थमें मनुष्य हैं। जो शरीर वा जो अर्थ दूसरेके उपकारमें नहीं आता, उसकी दशा सर्वदा शोचनीय रहती है।"

वासुदेव मयूरध्वजके निःस्वार्थ आत्मोत्सर्गसे अत्यन्त मुग्ध हुए; उन्होंने अपने असली रूपमें दर्शन दिये। नर-नारायणका रूप देख कर मयूरध्वजने अपनेको कृतकृत्य समझा। अन्तमें वे धन-जन-राज सबको त्याग कर श्रीकृष्णके शरणापन्न हुए। (१)

तमलुकमें अब भी ऐसा प्रवाद प्रचलित है कि, परमवैष्णव राजा मयूरध्वजने सर्वदा नर-नारायणरूपी कृष्णार्जुनके सहवासमें रहने और उन्हें देखनेके उद्देशसे एक बड़ा भारी मन्दिर बनवा कर उसमें दोनोंकी मूर्तियां स्थापित की थीं जो अब भी जिष्णुनारायणके नामसे प्रसिद्ध हैं। बहुत दिन हुये, वह प्राचीन मन्दिर रूपनारायणके गर्भशायी हो गया है। इस समय वे मूर्त्तियां एक दूसरे मन्दिरमें रक्खी हैं। वर्तमान मन्दिर चार पाँच सौ वर्षसे ज्यादा प्राचीन नहीं होगा।

ताम्रलिप्तमाहात्म्यमें लिखा है—तमोलिप्त तीर्थ श्रीकृष्णका अतिप्रिय स्थान है। श्रीकृष्णने स्वयं अर्जुनसे कहा है कि, "हे अर्जुन! तमोलिप्तसे प्यारा स्थान मेरा दूसरा नहीं है। लक्ष्मी जैसे मेरे वक्षस्थलको नहीं छोड़ सकती, वैसे ही मैं भी तमोलिप्तको नहीं छोड़ सकता। हे कौन्तेय! तुम निश्चय समझना, काल कालमें और युग युगमें सब कुछ छोड़ सकता हूं पर तमोलिप्तको कभी भी नहीं छोड़ सकता।"

वर्तमानमें जिष्णुनारायणका मन्दिर, वर्गभीमा देवी और कपालमोचनतीर्थ अधिक प्रसिद्ध है। ताम्रलिप्तमाहात्म्यमें लिखा है—कपालमोचनतीर्थमें स्नान करनेसे जिष्णुनारायण और वर्गभीमाके दर्शन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। इस तरहके बहुतसे माहात्म्यसूचक विवरण उक्त माहात्म्यग्रन्थमें वर्णित है।

जैनग्रन्थमें भी ताम्रलिप्तका उल्लेख है। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेनस्वामीने स्वरचित आदिपुराणमें ताम्रलिप्त नगरका उल्लेख किया है।

इस प्रकार बहुत समयसे हिन्दू, बौद्ध और जैनोंमें प्रसिद्ध होने पर भी बहुत दिनोंसे ताम्रलिप्तकी पुरानी महासमृद्धि जाती रही है। अब वहाँ वैसे बन्दर नहीं रहे। हिन्दू तीर्थयात्री इसे तीर्थ समझ कर यात्राके लिए नहीं आते।

ताम्रलिप्तकी पूर्व समृद्धि क्यों और कैसे विलुप्त हुई, इस विषयमें दिग्विजयप्रकाश नामक संस्कृत भौगोलिक ग्रन्थमें एक उपाख्यान लिखा है, जो नीचे लिखा जाता है।

कायस्थवंशमें परशुधार नामक एक अङ्कशास्त्रविशारद राजा उत्पन्न हुए थे जो ताम्रलिप्त और काशजोशाका शासन करते थे। उन्होंने बहुत दूरदेशोंसे वैदिक ब्राह्मणोंको बुला कर भीमादेवीके प्रासादमें याग कराया था। दैववश किसी ब्राह्मणने आकर इनसे १०० भर चांदी मांगी। राजा परशुधारने पूछा—"आप कहांसे आये हैं और क्यों धन मांग रहे हैं?" ब्राह्मणने उत्तर दिया—'भागीरथीके उत्तरमें कौशिकीनदीके किनारे माड़वपुरका मैं रहनेवाला हूं और सनाढ्यगोत्रमें मेरा जन्म है। मुझे तीन विवाह करने होंगे। यदि तुम अपने यज्ञको

---

(१) जैमिनिभारत ४१से ४६ अध्याय। बंगला काशीवासी महाभारतमें भी यह गल्प है, किन्तु मूल भारतमें इसका नामोनिशान नहीं हैं।

शाङ्क करना चाहो, तो इसी समय मुझे एक लाख मुद्रा दे दे।" राजाने ब्राह्मणकी असङ्गत बातको सुन कर उन्हें 'दूर दूर' कर निकाल बाहर किया। ब्राह्मणने राजाको शाप दिया कि, "तू निर्वंश हो जा और आजसे ताम्रलिप्तकी शस्यशाली भूमि समुद्रके जलसे प्लावित होती रहे। यह स्थान क्षारभूमिमें परिणत होवे। यहांके अधिवासी क्रियाहीन, श्लीपद तथा वृद्धरोगमें दुःख पावें। कोई भी यहां सुखी न होवे। कलिके ४५०० वर्ष बीतने पर यहां म्लेच्छोंका आधिपत्य होगा और भीमादेवी भी अपने धामको चली जायगी।" (दिग्विजयप्रकाश, १०१-१०३)

इस समय कलिको प्रारम्भ हुए करीब ५०२२ वर्ष हुए हैं। यदि दिग्विजय प्रकाशकी बात ठीक है, तो मानना पड़ेगा कि ५२२ वर्ष हुए भीमादेवी अन्तर्हित हो गईं हैं, अब सिर्फ उनकी मूर्तिमात्र पड़ी है!

यहां कैवर्त्त जातिका ही अधिक वास है। ब्राह्मण और कायस्थ यहां बहुत ही कम रहते हैं। यहांके ब्राह्मण भी हीनावस्थामें पड़े हैं। शायद इसीलिए दिग्विजयप्रकाशके ताम्रलिप्त-विवरणमें ऐसा लिखा है—

"प्रायो भानकविप्राश्च बभूवः पतिताः द्विजाः।
कैवर्तसदृशाः प्रायाः कृषिकर्मरताः सदा॥"

वर्गभीमाके मन्दिरके ऊपर म्लेच्छोंका लक्ष्य था, यह बात वहांके बादशाही पत्रोंके देखनेसे मालूम होती है।

पूर्वकालके ताम्रलिप्तके राजाओंका धारावाहिक विवरण नहीं मिलता। बहुत दिन हुए, यहांके प्राचीनतम राजवंशका नाश हो गया है। वर्तमान राजवंशके पुत्रादिक्रमिक धारावाहिक तालिका इस प्रकार है—

१ विद्याधर राय
२ नीलकण्ठ राय
३ जगदीश राय
४ चन्द्रशेखर राय
५ वीरकिशोर राय
६ गोविन्ददेव राय
७ यादवेन्द्र राय
८ हरिदेव राय
९ विश्वेश्वर राय
१० नृसिंह राय
११ शम्भूचन्द्र राय
१२ दीपचन्द्र राय
१३ दिव्यसिंह राय
१४ वीरभद्र राय
१५ लक्ष्मणसेन राय
१६ रामचन्द्र राय
१७ पद्मलोचन राय
१८ कृष्णचन्द्र राय
१९ गोलोकनारायण
२० बलिनारायण
२१ कौशिकनारायण
२२ अजितनारायण राय
२३ कृष्णकिशोर राय
२४ चन्द्रार्क राय
२५ मौञ्जीकिशोर राय
२६ इन्द्रमणि राय
२७ सुधन्वा राय
२८ मृगया देवी (सुधन्वाकी भगिनी और कुमार जमिनभञ्जकी स्त्री)
२९ भानुराय (मृगयाके पुत्र)
३० लक्ष्मीनारायण राय
३१ चन्द्रादेवी (लक्ष्मीकी कन्या और राजा निःशङ्क रायकी स्त्री)
३२ कालूभूंयां राय
३३ धाङ्गभूंयां राय
३४ मुरारिभूंयां राय
३५ हरवावभूंयां राय
३६ भाङ्गरभूंयां राय (शक सं० १३२५ में मृत्यु)

३६वें राजा भाङ्गडभूंयाके बादके पुत्रादिक्रमसे प्रत्येक राजाका राज्यकाल लिखा जाता है।

नाम		राज्यकाल (शक संवत)
३७ धिताइ राय		१३२६—१३७०
३८ जगन्नाथभूंयां राव		१३७१—१४१७
३९ यदुनाथ भूंयां राय		१४१४—१४४२
४० रामभूंयां राय *		१४४३—१४८१
४१ श्रीमन्त राय		१४८२—१५३४
४२ त्रिलोचन राय		… …
४३ हरिराय		(अनुमानसे) १५७०
४४ रामराय (हरिके पुत्र) ॥/)॥		१५७१—१६१८
४५ गम्भीरराय (मनोहरके पुत्र ।/)॥		
४६ नरनारायण (रामके पुत्र) ॥/)॥		१६१९—१६५५
४७ प्रतापनारायण (गम्भीरके पुत्र) ।/॥		
४८ कृपानारायण	(नरनारायणकी दोनों स्त्रियोंके पुत्र)	१६५६-१६८०
४९ कमलनारायण		

शकसं० १६७४में कृपानारायणकी मृत्यु होने पर कमलनारायण सम्पूर्ण राज्यके अधिकारी हो गये थे। शकसं० १६८०में नबाब मसनदी महम्मदखाँके अनुग्रहसे मिर्जा देदार अलीबेगने समस्त सम्पत्ति पर दखल कर लिया। उसी वर्ष कमलनारायणकी मृत्यु हो गई।

---

* इनके दो पुत्र थे, श्रीमन्त और त्रिलोचन। श्रीमन्तके ७ पुत्र थे। श्रीमन्तकी मृत्युके बाद उनके छोटे भाई त्रिलोचनको।) ज्येष्ठपुत्र केशवको ।/) और बकीके छह पुत्रोंको /)॥के हिसाबसे हिस्सा मिला था।

राज-प्रासादके हातेके भीतर अब भी देदार अलीवेगकी कब्र मौजूद है। तमलुक देखो।

राजा लक्ष्मीनारायण और रुद्रनारायणमें परस्पर विवाद होनेके कारण प्रजाने कर न दिया और इसलिये जमींदारी नीलाम पर चढ़ गई। आधा अंश तो सुलतानगाछाके मधुसूदन मुखोपाध्यायने खरीद लिया और आधा अंश कलकत्तेके छातूबाबूने। छातूबाबूका अंश बिकने पर उसे महिषादलके राजाने खरीद लिया।

१८५५ ई०में राजा लक्ष्मीनारायणकी मृत्यु हो गई। उनके दो पुत्र थे उपेन्द्र और नरेन्द्र। उपेन्द्रके कोई सन्तान न थी। १८८८ ई०में नरेन्द्रनारायणकी भी मृत्यु हो गई।

ताम्रलिप्तक (सं० पु०) ताम्रलिप्त-स्वार्थे कन्। देशविशेष, एक देशका नाम।

ताम्रलिप्तिका (सं० स्त्री०) ताम्रलिप्त देखो।

ताम्रलिप्ती (सं० स्त्री०) नगरीविशेष, एक नगरका नाम।

ताम्रवर्ण (सं० पु०) ताम्रस्येव वर्णो यस्य बहुव्री। १ पवित्रादतृण, एक प्रकारकी घास। २ रक्तवर्ण, लाल रङ्ग। ३ भारतवर्षीय द्वीपभेद, सिंहल द्वीप, सीलोन। ४ वैद्यकके अनुसार मनुष्यके शरीर परकी चौथी त्वचाका नाम।

ताम्रवर्णा (सं० स्त्री०) ताम्रस्येव वर्णं यस्याः बहुव्री। ओड्र पुष्प, अड़हुल, गुड़हरका पेड़।

ताम्रवल्ली (सं० स्त्री०) ताम्रवर्णा वल्ली मध्यलो० कर्मधा०। १ मञ्जिष्ठा, मजीठ। २ चित्रकूट देशीया लता, एक लता जो चित्रकूट प्रदेशमें होती है। इसका संस्कृत पर्याय-ताम्रा, ताली, तमाली, तमालिका, सूक्ष्मवल्ली, सुलोमा, शोधनी और तालिका है। इसका गुण—कषाय, कफदोष, मुख और कण्ठोत्थ दोषनाशक तथा श्लेष्मा वृद्धिकारक है।

ताम्रवीज (सं० पु०) ताम्रं वीजं यस्य वहुव्री०। १ कुलत्थ, कुलथी। (त्रि०) २ रक्तवीजक वृक्षमात्र, वह वृक्ष जिसके फल लाल होते हों। (क्ली०) ताम्रं रक्तं वीजं कर्मधा०। ३ रक्तवर्ण वीज, लाल वीज।

ताम्रवृक्ष (सं० पु०) १ रक्तचन्दन वृक्ष। २ कुलत्थ, कुलथी। ३ रक्तवर्णके वृक्ष, लाल रङ्गका पेड़।

ताम्रवृन्त (सं० पु०) ताम्रं वृन्तं यस्य वहुव्री। १ कुलत्थी, कुलथी। (त्रि०) २ रक्तवृन्तक वृक्षमात्र, लाल कुलथी-का गाछ। (क्ली०) रक्तं वृन्तं कर्मधा०। ३ रक्तवृन्त, लाल कुलथी।

ताम्रशाटीय (सं० पु०) ताम्रवर्ण परिच्छदधारी बौद्ध संप्रदाय भेद, तांबे रङ्गका कपड़ा पहनने वाला बौद्धका एक संप्रदाय।

ताम्रशासन (सं० क्ली०) ताम्रपट्टे लिखितं शासनं। ताम्रपट्टमें राजनिर्दिष्ट अनुशासन, तांबेकी चद्दरमें खुदवाया हुआ राजानुशासन। ताम्रपट्ट देखो।

ताम्रशिखिन् (सं० पु० स्त्री०) ताम्रवर्णा शिखा चूड़ा अस्त्यस्य इति इनि। कुक्कुट, मुरगा। (त्रि०) ताम्र शिखायुक्त, जिसकी चोटी लाल हो।

ताम्रसार (सं० क्ली०) ताम्रवत् रक्तवर्णः सारो यस्य वहुव्री०। १ रक्तचन्दन, लालचन्दन। (त्रि०) २ रक्तसारक वृक्ष मात्र, जिसका रस लाल हो। (पु०) रक्तः सारः कर्मधा०। ३ रक्तसार, लाल रस।

ताम्रसारक (सं० क्ली०) ताम्रसार-स्वार्थे कन्। १ रक्त चन्दन। (पु०) रक्तवर्णः सारो यस्य इति रूप्। २ रक्त खदिर, लाल खैर।

ताम्रसारिक (सं० पु०) ताम्रः सारोऽस्त्यस्य ठन्। १ रक्तखदिर, लाल खैर। २ रक्तचन्दन।

ताम्रा (सं० स्त्री०) ताम्र-टाप्। १ सैंहली, सिंहली पीपल। २ ताम्रवल्लीलता। ३ गुञ्जा, घुँघची नामकी लता। ४ दक्षप्रजापतिकी कन्या। यह कश्यपकी अन्यतमा पत्नी थीं। इससे ५ कन्यायें उत्पन्न हुई थीं जिनके नाम ये हैं—शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका। (गरुड़पुराण)

ताम्राक् (सं० पु०) उपद्वीपभेद, एक उपद्वीपका नाम।

ताम्राक्ष (सं० पु०-स्त्री०) ताम्रे रक्ताभे अक्षिणी यस्य वहुव्री०, अक्षिन् अच्। १ कोकिल, कोयल। (त्रि०) २ ताम्रनयन, जिसकी आँखें लाल हों।

"तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतं।
ववन्धामर्ष ताम्राक्षः पशुं रसनया यथा॥"

(भागवत० १।७।३३)

ताम्राख्य (सं० पु०) ताम्रमिति आख्या यस्य वहुव्री०। उपद्वीपभेद, ताम्रद्वीप।

ताम्राभ (सं० क्ली०) ताम्रमय आभाइव आभा यस्य बहुव्री०। १ रक्तचन्दन। (त्रि०) ताम्रा आभा यस्य। २ रक्तवर्ण आभायुक्त जिसमें लाल रङ्गकी कान्ति हो।

ताम्रायण (सं० पु०) याज्ञवल्क्यके एक शिष्यका नाम।

ताम्रायणि (सं० पु०) एक शुक्लयजुर्वेदी ऋषि। ये याज्ञवल्क्यके शिष्य थे।

ताम्रारि (सं० पु०) ताम्रवर्ण शत्रुभेद।

ताम्रारुण (सं० क्ली०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। इस तीर्थमें स्नानदानादि करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल होता है और अन्तमें ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

"ताम्रारुणं समासाद्य ब्रह्मचारी समाहितः।
अश्वमेधमवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति॥" (भा० ३।८४अ०)

ताम्रार्द्ध (सं० क्ली०) कांस्य, कांसा। काँसेमें आधा ताँबेका भाग है।

ताम्रावती (सं० स्त्री०) ताम्रमाधेयत्वेनास्त्यस्य ताम्र मतुप् मस्य व, संज्ञायां दीर्घः। नदीभेद, एक नदीका नाम।

"ताम्रवती वेत्रवती नद्यस्तिस्रोऽथ कौशिकी॥"
(भारत वनप० २२१ अ०)

ताम्राश्म (सं० पु०) ताम्रं अश्म कर्मधा०। पद्मराग मणि।

ताम्रिक (सं० पु०) ताम्रं तत्पात्रादिनिर्माणं कार्यत्वेनास्त्यस्य ताम्र-ठन्। १ कंसकार, कसेरा। (त्रि०) २ ताम्रनिर्मित, जो ताँबेका बना हो।

ताम्रिका (सं० स्त्री०) ताम्रक-टाप्। १ गुञ्जा, घुँघची २ वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा।

ताम्रिमन् (सं० पु०) ताम्रस्य भावः ताम्र-इमनिच्। वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च। पा ५।१।१२३। ताम्रका भाव।

ताम्री (सं० स्त्री०) ताम्रस्य विकारः इति अण्, ततो ङीप्। १ वाद्यविशेष, एक प्रकारका बाजा। इसके पर्याय—मानरन्ध्रा, विकारिका। २ भारतवर्षीय प्राचीन घटिकायन्त्र, प्राचीन कालकी एक प्रकारकी धर्मघड़ी। यह समय जाननेके लिये व्यवहृत होती थी। आजकल 'क्लाक' और 'वाच' का प्रचार हो जाने पर भी बहुत जगह घटिकायन्त्र काममें लाया जाता है।

ताम्रेश्वर (सं० पु०) ताम्रभस्म, ताँबेकी राख।

ताम्रोपजीविन् (सं० त्रि०) ताम्रेण उपजीवति, ताम्र-उप-जीव-णिनि। जो ताम्र द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, कांस्यकार, कसेरा।

ताम्रौष्ठ (सं० पु०) ताम्र इव ओष्ठे यस्य बहुव्री०। जिसके अधर और ओष्ठ रक्तवर्ण हों। समास करने पर अकारके बाद ओष्ठ शब्द रहनेसे ओष्ठका अकार विकल्पसे लोप होता है। ताम्र ओष्ठ ताम्रोष्ठ, ताम्रौष्ठ, यहां पर एक जगह अकारका लोप हुआ है और दूसरी जगह अकारका लोप न हो कर अ-ओकारमें वृद्धि हो कर औकार हो गया है। (पाणिनि)

ताम्र्य (सं० क्ली०) ताम्रस्य भावः ताम्र-ष्यञ्। ताम्रका भाव।

तायन (सं० क्ली०) ताय भावे ल्युट्। १ वृद्धि, बढ़ती। २ उत्तम गति, अच्छी चाल।

तायना (हिं० क्रि०) तपाना, गरम करना।

तायफ़ा (फा० स्त्री०) १ नाचने गानेवाली वेश्याओं और समाजियोंकी मण्डली। २ वेश्या, रंडी।

ताया (हिं० पु०) पिताके बड़े भाई, बड़ा चाचा।

तायिक (सं० पु०) ताये पालने सुश्रुरिति ठञ्। देशविशेष, एक देशका नाम।

तायु (सं० पु०) ताय-उन्। चौर, चोर।

तार (सं० क्ली०) तार्यते विस्तार्यते तॄ-णिच्, अच्। १ रौप्य, रूपा, चाँदी। (पु०) तारयति स्वजापकान् संसारसमुद्रात् तॄ-णिच्-अच्। २ प्रणव, ब्रह्मबीज, ओंकार मन्त्र।

"तारयेद् यद्भवाम्भोधेस्त्वज्जपासक्तमानसं।
ततस्तार इति ख्यातो यस्तं ब्रह्मा व्यलोकयेत्॥" (काशी ७२अ०)

जो यह मन्त्र जप करते हैं, वे भव संसारसे उत्तीर्ण होते हैं। ३ वानरविशेष, एक बन्दरका नाम। ये रामचन्द्रजीके सेनापति थे। बृहस्पतिके अंशसे इनका जन्म हुआ था। (रामा० १।१७ अ०) ४ शुद्धमौक्तिक, शुद्ध मोती। ५ मुक्ता विशुद्धि, शुद्ध मुक्ता। ६ देवीप्रणव, कूर्चबीज। ७ तारण, उद्धार, निस्तार। ८ शिव। शिवजीने त्रिजगत्का उद्धार किया था। इसीसे उनका नाम तार पड़ा है। ९ नक्षत्र, तारा। १० अध्ययनरूप प्रथम गौण सिद्धिभेद, साङ्ख्यके मतानुसार गौण

सिद्धिका एक भेद। विधिपूर्वक गुरुमुखसे वेदाध्ययन कर उससे जो सिद्धि लाभ हो, उसका नाम तारसिद्धि है। यह गौणसिद्धि है। (तत्त्वकौमु०) ११ विष्णु। १२ उच्च शब्द, जोरकी आवाज। (त्रि०) १३ उच्चशब्दयुक्त। १४ स्फुरितकिरण, जिसमेंसे किरणें फटी हों। १५ निर्मल, स्वच्छ। (क्लो०) १६ तीर, किनारा। १७ उच्चैः स्वर। १८ नेत्र-कनीनिका, आँखकी पुतली। १९ प्रणव (ओं, ओं ह्रीं)। (तन्त्र)

२० अठारह अक्षरोंका एक वर्णवृत्त। २१ धातुओंका सूत, तपी धातुको पीट और खींच कर बनाया हुआ तागा। २२ धातुका वह तार या डोरी जिसके द्वारा बिजलीकी सहायतासे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर समाचार भेजा जाता है। ताडित-वार्त्तावह देखो। २३ वह जो तारसे आती है। खबर। २४ तन्तु, सूत, सूत, तागा। २५ सुतड़ी। २६ अखण्ड परम्परा, सिलसिला। २७ ब्योंत, व्यवस्था, सुबीता। २८ कार्य सिद्धिका योग, युक्ति, उपाय, ढव। २९ कर्पूर, कपूर।

तारक (सं० क्लो०) तारेण कनीनिकया कायति कै-क। १ चक्षु, आंख। (पु०) स्वार्थे कन्। २ नक्षत्र, तारा। (स्त्री०) ३ चक्षुकी कनीनिका आँखकी पुतली। तारयति दैत्यान् तृ-णिच्-ण्वुल। ४ द्वादश मन्वन्तरीय इन्द्रशत्रु, असुरविशेष, बारहवें मन्वन्तरके इन्द्रके शत्रु, एक असुरका नाम। इसने जब इन्द्रको बहुत सताया तब नारायणने नपुंसकरूप धारण करके इसका नाश किया। (रुद्रपु० ८७।५१) ५ अपर असुरभेद, तारकासुर। ६ कर्ण, कान। ७ भेलक, भिलावाँ। ८ छन्दोभेद, एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें १८ अक्षर होते हैं।

तारकजित् (सं० पु०) तारकं तारकासुरं जयति जि-क्विप् तुगागमश्च। कार्त्तिकेय, इन्होंने तारकासुरका नाश कर इन्द्रको स्वर्गके सिंहासन पर स्थापित किया था। तारक और कार्त्तिकेय देखो।

तारकटोड़ी—रागविशेष, एक रागका नाम। इसमें ऋषभ और कोमल स्वर लगते हैं और पञ्चम वर्जित होता है।

तारकतीर्थ (सं० क्लो०) तारकं तीर्थं कर्मधा०। तीर्थभेद, गया तीर्थ। यहां पिण्डदान करनेसे पुरखे तर जाते हैं।

तारकब्रह्म (सं० क्लो०) तारकं संसारसागरपारकारकं ब्रह्म कर्मधा०। राम षड़क्षरमन्त्र, रामतारक मन्त्र 'ॐ रामाय नमः'। पञ्चक्रोशी काशीमें मृत्यु होनेसे महादेव स्वयं इस मन्त्रको मनुष्यके कानमें पढ़ते हैं तथा वह मृत मनुष्य षड़क्षरमन्त्रके प्रभावसे मोक्ष पाता है।

यह षड़क्षर मन्त्र सब मन्त्रोंसे श्रेष्ठ है, इस मन्त्र द्वारा जो भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं, निश्चय ही उनकी मुक्ति होती है। इस मन्त्रके प्रभावसे सब दुःख जाते रहते हैं तथा यह मन्त्र पापियोंके लिये भी मोक्षप्रद है। प्रतिदिन यह मन्त्र जप करनेसे समस्त पाप विनष्ट होते हैं।

तारकमानी (हिं० स्त्री०) धनुषके आकारका एक प्रकारका यन्त्र। इसमें डोरीकी जगह लोहेका तार लगा रहता है। यह नगीने काटनेके काममें आता है।

तारकश (हिं० पु०) वह जो धातुका तार खींचता हो।

तारकशी (हिं० स्त्री०) तार खींचनेका काम।

तारका (सं० स्त्री०) १ नक्षत्र, तारा,। २ कनीनिका, आँखकी पुतली। ३ इन्द्रवारुणी लता। ४ नाराच नामक छन्दका नाम। ५ बालिकी स्त्री। ६ मुक्ता, मोती। ७ देवताड़ वृक्ष, रामबाँस।

तारकाक्ष (सं० पु०) असुरविशेष, एक असुरका नाम। यह तारकासुरका बड़ा लड़का था। यह देवताओंसे युद्धमें पराजित हो कर कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक अपने दो छोटे भाइयोंके साथ अत्यन्त घोर तपस्या करने लगा। इसकी तपस्यासे संतुष्ट हो कर जब ब्रह्माजी वर देनेको उद्यत हुए, तब इसने प्रार्थना की, "परमेश ! सभीसे पूज्य हो कर पुरत्रयमें वास करें, सिर्फ यही वर हम चाहते हैं।" बाद ब्रह्माके वरसे इन्होंने तीन पुर पाये। वर देते समय ब्रह्माने कह दिया था, कि ये लोग तीनों पुर पर आरोहण कर कुमार्गसे त्रिभुवनका पर्यटन करते हुए एक हजार वर्षके अन्तमें केवल एक बार आपसमें मिलेंगे। उस समय यदि कोई एक बाणसे उस पुरत्रयको भेद कर सके, तो इन लोगोंकी मृत्यु होगी। उस पुरत्रयका निर्माता मयदानव था। उनमेंसे एक सोनेका, दूसरा चाँदीका और तीसरा लोहेका बना था। वह पुरत्रय यथाक्रमसे स्वर्लोक, अन्तरीक्ष लोक और मर्त्य-

लोक माना जाता था। तारकाक्ष स्वर्णनिर्मित पुरका अधिकारी था।

इस समय तारकाक्षके हरि नामक प्रबल पराक्रान्त एक पुत्रने कठोर तपस्या करके प्रजापति ब्रह्मासे एक वरके लिये प्रार्थना की, "मैं अपने पुरमें एक तालाब प्रस्तुत करना चाहता हूं। उस तालाबके जलमें जितने अस्त्र-निहत वीरगण निक्षेप किये जाँय, वे आपके प्रसादसे पुनर्जीवित और समधिक बलशाली हो जावें।" 'ऐसा ही होगा" यह कह कर ब्रह्माजी चल दिये। क्रमशः ये अत्यन्त बल दर्पित हो तीनों लोकमें बहुत ऊधम मचाने लगे। देवताओंने इन असुरोंसे अनेक प्रकारकी यन्त्रणाएँ पाकर शिवजीकी शरण ली। शिवजीने उसी समय देवताओंका आधा बल ग्रहण कर त्रिपुरको भेदते हुए उन्हें मार डाला। (भारत कर्ण ३५ अ०) त्रिपुर देखो।

तारकाख्य (सं० पु०) तारकइति आख्या यस्य बहुव्री०। तारकाक्ष। तारकाक्ष देखो।

तारकान्तक (सं० पु०) अन्तयति इति अन्तकः तारकस्य अन्तकः, ६-तत्। कार्तिकेय।

तारकादि (सं० पु०) तारक आदिर्यस्य। पाणिन्युक्त गणविशेष, सञ्जात अर्थमें तारकादिके बाद इतच् प्रत्यय होता है। तारका, पुष्प, कर्णक, मञ्जरी, ऋजीष, क्षण, सूत्र, मूत्र, निष्क्रमण, पुरीष, उच्चार, प्रचार, विचार, कुड्नल, कण्टक, मुसल, मुकुल, कुसुम, कुतूहल, स्तवक, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, धेनुष्या, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र, पुलक, अङ्गारक, वर्णक, द्रोह, दोह, सुख, दुःख, उत्कण्ठा, भव, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरङ्ग, तिलक, चन्द्रक, अन्धकार, गर्व, मुकुर, हर्ष, उत्कर्षण, कुवलय, गर्ध, क्षुध. सीमन्त, ज्वर, गर, रोग, रोमाञ्च, पण्डा, कज्जल, तृष्, कोरक, कल्लोल, स्थपुट, दल, कञ्चुक, शृङ्गार, अङ्कुर, शैवाल, वकुल, श्वभ्र, आराल, कलङ्क, कर्दम, कन्दल, मूर्च्छा, अङ्गार, हस्तक, प्रतिविम्ब, विघ्न, तन्त्र, प्रत्यय, दीक्षा और गर्ज ये तारकादिगण हैं।

तारकामय (सं० पु०) शिव, महादेव।

तारकायण (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश २६ अ०)

तारकारि (सं० पु०) तारकासुरके शत्रु।

तारकासुर (सं० पु०) असुर विशेष, एक असुरका नाम। इसका विवरण शिवपुराणमें इस तरह लिखा है—

यह असुर तार नामक असुरका पुत्र था। देवताओंको जीतनेके लिये तारकाने एक हजार वर्ष तक घोर तपस्या की, किन्तु तपस्याका फल कुछ न हुआ। तब इसके मस्तकसे एक बहुत प्रचण्ड तेज निकला। उस तेजसे देवतागण दग्ध होने लगे, यहां तक कि इन्द्र सिंहासन परसे खिँचने लगे। इससे इन्द्रादि देवगण अत्यन्त भयभीत हुए, और इसका उपाय सोचने लगे। उस समय मालूम पड़ता था कि अकालमें यह ब्रह्माण्ड लोप हो जायगा। ब्रह्माण्डकी रक्षा करनेके लिये सब देवगण ब्रह्माके निकट पहुँचे और प्रणाम कर उनसे तारकाका तपोवृत्तान्त निवेदन किया। देवताओंकी प्रार्थना पर ब्रह्मा तारकाके समीप वर देनेके लिये उपस्थित हुए और उससे वर माँगनेके लिये कहा।

तारकासुर ब्रह्माका यह वचन सुन कर बोला, भगवन्! जब आप प्रसन्न हैं तब कोई चीज असाध्य नहीं है, आप मुझे दो वर दीजिये। पहला तो यह कि मेरे समान संसारमें कोई बलवान् न हो, दूसरा यह कि यदि मैं मारा जाऊँ तो उसीके हाथसे जो शिवसे उत्पन्न हो।" 'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी स्वस्थानको चले गये।

वर पा कर तारक भी अपने घरको लौट आया। सब असुरोंने मिलकर उसे राजगद्दी पर अभिषिक्त किया और चारों ओर यह आज्ञा प्रचार कर दी कि इस जगत्में अब किसीका भी शासन प्रचलित नहीं होगा। तारक राजपद पर अभिषिक्त हो कर घोर अन्याय करने लगा, विशेष कर देवताओंको अत्यन्त कष्ट पहुँचाने लगा। तब देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किम्पुरुष प्रभृति सबके सब अत्यन्त दुःखित हुए।

इन्द्रादि देवगण निगृहीत हो कर उसे सन्तुष्ट करनेके लिये प्रधान प्रधान रत्न प्रदान करने लगे।

इन्द्र उच्चैःश्रवा अश्व, धर्म रत्नदण्ड, ऋषि कामधुक् धेनु और समुद्र सब रत्न उसे देने लगे।

सूर्य डरके मारे तारकपुरमें प्रखर रूपसे अपनी किरण नहीं दे सकते थे, चन्द्रमा भी पूर्णभावसे दोनों पक्षमें

उदय होते थे, वायु अनुकूल हो कर सर्वदा मन्द मन्द बहती थी। तीनों भुवन तारककी आज्ञाके अधीन हो गये थे। देवगण उसकी सेवा करते थे। जितने ऋषि थे, वे उसके दूतका काम करते थे। देवताओंके हव्यको तारकासुर ही ग्रहण करता था।

अन्तमें जब देवगण इस दुःखको सह न सके, तब एक दिन सब कोई मिल कर ब्रह्माके पास गये और अपना अपना दुखड़ा रोया। ब्रह्माने कहा "शिवके पुत्रके अतिरिक्त तारकको और कोई मार नहीं सकता। हिमालयके शिखर पर शिवजी तपस्याकर रहे हैं और पार्वती दो सखियोंके साथ उनकी परिचर्य्या कर रही हैं। तुम लोग जा कर ऐसा उपाय रचो कि उनका संयोग शिवके साथ हो जाय। शिवजीके पुत्रके विना तारकको मारनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है।

इन्द्रादि देवगण रतिके साथ कन्दर्पको लेकर शिवजीका तप भङ्ग करनेके लिए हिमालय पहाड़ पर उपस्थित हुए। कन्दर्पके वहां पहुँचने पर वसन्त पूर्णभावसे विराज करने लगा। शिवजी अकालमें वसन्तका आविर्भाव देख कर तपश्चर्य्यामें तन-मनसे लग गये।

इस समय पार्वती पुष्पके आभरणसे भूषित हो कर शिवपूजाके निमित्त महादेवके समीप पहुँचीं।

कन्दर्पके प्रभावसे पार्वती विकृत भावापन्न हो गईं। महादेवको भी चित्तविकृति उपस्थित हुई।

इस समय महादेव क्षणकाल विचार कर बोले 'क्या! ईश्वर हो कर दूसरेकी स्त्रीका अङ्ग स्पर्श करना मुझे उचित है? जब मेरे ही चित्तमें ऐसी विकृति जाग उठेगी तो क्या क्षुद्र मनुष्य दुष्कर्म नहीं कर सकते!" ऐसा सोच कर वे फिर तपश्चर्य्यामें नियुक्त हो गये।

शिवजी आसनवद्ध हो कर भी चित्त स्थिर न कर सके। अनुसन्धान करके इसका कारण देखा कि कन्दर्प रतिके साथ उनका तप भङ्ग करनेके लिये पास हीमें खड़ा है। इसे देख कर शिवजीने ऐसी क्रोधभरी दृष्टि उसकी ओर डाली कि कन्दर्प उनके नेत्रोंसे निकली हुई अग्निसे उसी समय ढेर हो गया।

मदन (कन्दर्प) के भस्म हो जाने पर शिवजीने वह स्थान छोड़ दिया। पार्वती भी अपने रूपकी निन्दा करती हुई स्वस्थानको लौटीं। बाद पार्वतीजी शिवजीको पति बनानेके लिये घोर तपस्यामें प्रवृत्त हुईं। बहुत दिन तपस्या करनेके बाद पार्वतीने महादेवको पतिरूपमें पाया। अन्तमें शिवके साथ पार्वतीका विवाह हो गया। विवाह हो जानेके बाद जब शिवजीके पार्वतीसे कोई पुत्र न हुआ, तब देवगण फिर भी घबरा उठे। महादेव और पार्वती क्रीड़ामें आसक्त थे, इस कारण उनके पास कोई जा नहीं सकते थे। इधर तारकासुर दिनोंदिन अधिक ऊधम मचाने लगा, देवगण लाचार हो किंकर्त्तव्यविमूढ़की नाईं रहने लगे। बाद अग्नि कपोतका रूप धारण करके महादेवके पास उपस्थित हुई। शिवजीने ज्योंही कपोतरूप धारी अग्निको देखा, त्योंही उसे कहा, "हे कपटरूपधारी कपोत, तुम कौन हो? तुम्हीं हमारे वीर्यको धारण करो।" इतना कह कर उन्होंने वीर्यको अग्निके ऊपर डाल दिया। उसी वीर्यसे कार्त्तिकेय उत्पन्न हुए। कार्त्तिकेय देखो।

कार्त्तिकके उत्पन्न होने पर देवताओंने उन्हें अपना सेनापति बनाकर तारकासुरको मारनेके लिए शोणितपुर भेजा।

इस पुरमें तारकासुरके साथ घमसान युद्ध हुआ, दश दिन तक बराबर लड़ाई होती रही। उसके बाद तारकासुरकी सैन्य क्षीण होने लगी, बाद कार्त्तिकके कठिन शरसे तारकासुर मारा गया।

(शिवपु० १०-२०अ० और देवीभागवत)

तारकित (सं० क्ली०) तारका सञ्जाता अस्य तारकादित्वात् इतच्। नक्षत्रयुक्त, वह जो तारोंसे शोभित हो।

तारकिन् (सं० त्रि०) तारकाः सन्त्यत्र इनि। तारकायुक्त, तारोंसे भरा।

तारकिनी (सं० स्त्री०) तारकिन् ङीप्। नक्षत्रयुक्त रात्रि, तारोंसे परिपूर्ण रात।

तारकूट (हिं० पु०) एक प्रकारकी धातु जो चाँदी और पीतलके योगसे बनी है।

तारकेश्वर (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, लोहा, बङ्ग, अभ्रक, जवासा, जवक्षार, गोखरूके बीज और हड़, इन सबको बराबर लेकर घिसते हैं; बाद फिर पेठेके पानी, पञ्चमूल

के काढ़े और गोखरूके रसकी भावना देकर उसे घोंटते और दो दो रत्तोकी गोलियाँ बना लेते हैं। इन गोलियों की शहदके साथ खाना चाहिये। इसका पथ्य बकरोका दूध, चोनी और ईखका रस है। इस औषधके सेवनसे बहुमूत्र रोग दूर हो जाता है। (भैषज्यरत्ना०)

सरा तरीका—रससिन्दूर, लोहा, बङ्ग, अभ्रक इन सबको बराबर लेकर मधुके साथ एक दिन तक घिसते हैं और बाद एक मापसे परिमित गोलियां बनाते हैं। इसका अनुपान मधुसंयुक्त पक्व यज्ञडुम्बरका चूर्ण है। इसके सेवन करनेसे बहुमूत्र रोग जाता रहता है

(भैषज्यरत्नावली प्रमेहाधिकार)

तारकेश्वर—हुगली जिलेके अन्तर्गत एक पुण्यस्थान। यह अक्षा० २२° ५३´ उ० और देशा० ८८° ४´ पू०में अवस्थित है। तारकेश्वरके लिङ्ग और उनके मन्दिरके लिये यह स्थान अत्यन्त प्रसिद्ध है।

कालीघाटमें नकुलेश्वरकी जिस तरह उत्पत्ति हुई है, बहुतोंका कहना है कि तारकेश्वरकी उत्पत्ति भी उसी तरह है। किसी प्राचीन पुराण अथवा तन्त्रमें इसका विवरण नहीं रहनेके कारण यह आधुनिक प्रतीत होता है। तब भी यह दो तीन सौ वर्षसे पहलेका है। भविष्य ब्रह्म-खण्ड (७।५८) में इस लिङ्गका उल्लेख है।

तारकेश्वर राढवासियोंके परम भक्तिके देवता है। उनके निकट सैकड़ों दुःसाध्यरोगियोंने आरोग्य लाभ किया है। बहुतसे राढवासी अब भी बाबा तारकनाथके नामसे डरते हैं। शिवरात्रि और चड़क-संक्रान्तिके दिन यहां बहुत उत्सव होता है, जिसमें लगभग ५०।६० हजार यात्री एकत्र होते हैं। तारकेश्वरमें बहुत आमदनी होती है, जिसे वहांके महन्त उपभोग करते हैं।

पहले तारकेश्वर जाते समय बहुतसे मनुष्य दुर्दान्त-डकैतोंसे आक्रमण किये जाते थे। इस यात्रामें यात्रियोंको कितना कष्ट झेलना पड़ता था; वह अकथनीय है। अभी तारकेश्वरके पास रेल-स्टेशन हो जानेसे उनका कष्ट और भय सदाके लिये जाता रहा। इससे तारकेश्वरके यात्रियोंकी संख्या भी बढ़ गई है।

तारकोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद् भेद, एक प्रकारका उपनिषद्।

तारक्षिति (सं० पु०) तारा उच्चा क्षिति यत्र। देश भेद, एक देश जो पश्चिममें १८।१९।२० नक्षत्रोंमें अवस्थित है। यहां म्लेच्छोंका निवास है।

तारघर (हिं० पु०) वह स्थान जहांसे तारकी खबर भेजी जाती है।

तारघाट (हिं० पु०) कार्यसिद्धिका योग, व्यवस्था, आयोजन।

तारचरबी (हिं० पु०) चीन, जापान आदि देशोंमें होनेवाला मोमचीना नामका पेड़। इसके फलमें तीन बीज-कोश होते हैं। ये चरबीसे भरे रहते है। चीन और जापानमें मोमबत्तियां इसी पेड़की चरबीसे बनती हैं। इनके बीजोंसे भी एक प्रकारका पीला तेल निकलता है, जो दवा और रोगनके काममें आता है।

तारज (सं० पु० क्ली०) धातव द्रव्यभेद।

तारटी (सं० स्त्री०) तारदी देखो।

तारण (सं० पु०) तारत्यनेन ल्यु। १ तेलक, तेली। कर्त्तरि ल्यु। २ विष्णु। (त्रि०) ३ तारयिता, तारनेवाला, उद्धार करनेवाला। भावे ल्युट्। (क्ली०) ४ तारण कारण, पार उतारनेकी क्रिया। ५ उद्धारण, निस्तार। ६ षष्टि संवत्सरका अष्टादश वर्ष भेद, साठ संवत्सरोंमेंसे अठारहवां वर्ष। इस तारणवर्षमें अत्यन्त वृष्टि होती है, जिससे धान्य इत्यादि दूसरे दूसरे अनाज नष्ट हो जाते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

चतुर्थ हुताश नामक तृतीय वर्षका नाम तारण है, इसमें अत्यन्त वृष्टि होती है। (वृहत्सं० ८।३५)

षष्टि-सम्वत्सर देखो।

तारणि (सं० स्त्री०) तार्य्यतेऽनया तॄ-णिच्, अनि। नौका, नाव।

तारणी (सं० स्त्री०) तारणि ङीप्। कश्यपकी एक पत्नी जो याज और उपयाजकी माता कही जाती है।

तारणेय (सं० पु०) तारण्यः अपत्यं ढक्। तारणीके वंशज।

तारतण्डुल (सं० पु०) तारं सुक्तेव शुभ्रस्तुण्डुलो यस्य। धवल यावनाल, सफेद ज्वार।

तारतम्य (सं० क्ली०) १ तरतमयोर्भावः तरतम-ष्यञ्। १ न्यूनाधिक्य, एक दूसरेसे कमी बेशीका हिसाब। २

उत्तरोत्तर न्यूनाधिक्यके अनुसार व्यवस्था, कमोबेशोके हिसाबसे सिलसिला। ३ गुण, परिमाण आदिका परस्पर मिलान।

तारतम्यबोध (सं० पु०) कई वस्तुओंमें भले बुरे आदिकी पहचान।

तारतार (सं० क्लो०) तारयतीति तारं तत्प्रकारः प्रकारे द्वित्वं। सांख्यशास्त्रोक्त गौण तृतीय सिद्धिभेद, सांख्यके अनुसार गौणकी तीसरी सिद्धि। आगमके अविरोधी न्यायद्वारा अर्थात् युक्तियुक्त तर्कद्वारा आगमके अर्थकी परीक्षा कर संशय और पूर्वपक्ष निराकरणद्वारा उत्तरपक्षका व्यवस्थापन करना ही मनन समझा गया है, इससे जो सिद्धि लाभ होती है, उसीका नाम तारतार है। यह गौणसिद्धि है। सिद्धि देखो।

तारतार (हिं० वि०) जिसकी धज्जियां अलग अलग हो गई हों, टुकड़ा टुकड़ा, उधड़ा हुआ।

तारतोड़ (हिं० पु०) कपड़े पर किया हुआ सुईका एक तरहका काम, कारचोबी।

तारदी (सं० स्त्री०) तरदी एव स्वार्थे अण्-ततो ङीष्। तरदी वृक्ष, एक प्रकारका कांटेदार पेड़।

तारन (हिं० पु०) १ छतकी ढाल, छाजनकी ढाल। २ छप्परका वह बांस जो कड़ियोंके नीचे रहता है। ३ तारण देखो।

तारना (हिं० क्रि०) १ पार लगाना। २ उद्धार करना, मुक्त करना, निस्तार करना।

तारनाथ (सं० पु०) तारानाथ देखो।

तारनाद (सं० पु०) ताराः नादः कर्मधा०। उच्चनाद, जोरकी आवाज़।

तारपरम—मृदङ्ग पर जो परम बजते हैं, आलाप बजाते समय छेड़के संयोगसे तारमें भी वे सब परम बजाये जाते हैं। सितार आदि यन्त्रों पर एक प्रकारकी प्रणालीसे राग आदिका आलाप बजाया जाता है, उसमें तालकी नितान्त आवश्यकता होती है। उस प्रणालीके वादनको तारपरम कहते हैं।

तारपानि—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने भागीरथी लीलाकी रचना की है।

तारपीन (हिं० पु०) एक प्रकारका तेल जो चीड़के पेड़से निकलता है। जमीनसे दो हाथ ऊपर चीड़के पेड़में एक खोखला गड्ढा काट कर बनाया जाता है और उसे नीचेकी ओर कुछ गहरा बना दिया जाता है। इसी गड्ढे में चीड़का पसेव निकल कर गोंदके रूपमें जमा होता है, जिसे गन्दाबिरोजा कहते हैं। इस गोंदसे भवका द्वारा जो तेल निकाल लिया जाता है, वही तारपीनका तेल कहलाता है। यह औषधके काममें आता है। दर्दके लिये यह रामबाण है।

तारपुष्प (सं० पु०) तारं रजतमिव पुष्पं यस्य। कुन्दवृक्ष, कुन्दका पेड़।

तारबर्क़ी (पु०) वह तार जिससे बिजलीकी शक्ति द्वारा समाचार पहुंचाया जाता है।

तारमाक्षिक (सं० क्लो०) तारं रूप्यमिव माक्षिकं। उपधातुभेद, रूपमक्खी नामकी एक उपधातु। उपधातु ७ हैं, जिनमें तारमाक्षिक चाँदीकी उपधातु है, यह धातु चाँदीके समान गुणवाली है। इसमें कुछ चांदी मिली रहनेके कारण इसको तारमाक्षिक कहते हैं। चाँदीकी अपेक्षा अप्रधानता होनेके कारण इसमें गुण भी कुछ कम हैं। तारमाक्षिकमें सिर्फ चाँदीका गुण ही नहीं, बल्कि अन्यान्य द्रव्योंके मिश्रित रहनेसे अन्य गुण भी मौजूद हैं। विशुद्ध तारमाक्षिक किञ्चित् तिक्तसंयुक्त मधुररस, मधुर विपाक, शुक्रवर्द्धक, रसायन, चक्षुके लिये हितकारक, क्षय, कण्डू और त्रिदोषनाशक है। अविशुद्ध तारमाक्षिक अविशुद्ध स्वर्णमाक्षिककी तरह मन्दाग्निजनक, अतिशय बलनाशक, विष्टम्भी, नेत्ररोग, कुष्ठरोग, गण्डमाला और व्रणरोगोत्पादक है। इसलिये तारमाक्षिकका शोधन बहुत जरूरी है। कर्कोटक, मेषशृङ्गी और जम्बीरी नीबूके रसद्वारा तीन दिन कड़ी धूपमें भावना देनेसे तारमाक्षिक विशुद्ध होता है।

तारमाक्षिकका मारना—कुलथीके क्वाथके साथ पीस कर तेल, मठा, अथवा बकरीके मूतसे पुटपाक करने पर तारमाक्षिक मारित होता है। (भावप्र०) मतान्तरमें ऐसा भी है—सूरण या जिमीकन्दके भीतर माक्षिक रख कर मूत, काँजी, तेल, गोदुग्ध, कदलीरस, कुलथीका क्वाथ और कोदों धानका क्वाथ, इनका स्वेद दे कर चार, अम्लवर्ग, पञ्चलवण, तेल और घीके साथ तीन बार पुट देनेसे

यह विशुद्ध होता है। जम्बीरी नीबूके रस द्वारा स्वेद दे कर मेषशृङ्गी और कदलीरसमें एक दिन पाक करने से भी तारमाक्षिक विशुद्ध होता है।

तारमूल (सं॰ क्ली॰) स्थानभेद, एक स्थानका नाम ।

तारयितृ (सं॰ त्रि॰) उद्धार करनेवाला, तारनेवाला ।

तारल (सं॰ क्ली॰) तरल एव अण् । १ तरल । २ सन्तुष्ट ।

तारल्य (सं॰ क्ली॰) तरल वस्तुका धर्म, कठिन और तरल पदार्थमें प्रभेद। कठिन द्रव्योंके समस्त अणु सहज ही सञ्चालित नहीं होते ; सोना, चाँदी, तांबा, लोहा, पत्थर, ईंट आदि द्रव्योंके अणु एक ओरसे दूसरी ओर नहीं ले जाये जा सकते, किन्तु जल इत्यादि तरल द्रव्यों के अणु थोड़ा बलप्रयोग करने पर सञ्चालित होते हैं और उनके एक ओरके कण सहज ही दूसरी ओर ले जाये जा सकते हैं।

जिस गुणसे जलादि द्रव्योंके अणु सहजहीमें संचालित और प्रवाहित होते हैं, उसे तारल्य कहते हैं। यही गुण होनेके कारण जल आदि पदार्थोंको तरल पदार्थ कहा जाता है।

समस्त द्रव पदार्थोंमें यह गुण दिखाई देता है, परन्तु सबमें समान परिमाणमें नहीं होता।

इथर नामक द्रव पदार्थ अतिशय तरल है। घी, शहद, गुड़ प्रभृति द्रव्योंका तारल्यगुण अत्यन्त अल्प है ; इसीसे ये समय समय पर कठिन भाव धारण कर लेते हैं।

आणविक आकर्षण और आणविक विकर्षणके तारतम्यसे समस्त जड़ पदार्थ कभी कठिन, कभी तरल और कभी वाष्पीय आकार प्राप्त करते हैं। आणविक विकर्षणकी अपेक्षा आणविक आकर्षण अधिक होनेसे कठिनताका सञ्चार होता है। दोनोंका पराक्रम प्रायः समान होनेसे तारल्यकी उत्पत्ति होती है। और आकर्षणकी अपेक्षा विकर्षण अधिक बलशाली हो तो समस्त पदार्थ वाष्पाकार धारण करेंगे। उष्णताकी जितनी वृद्धि होगी विकर्षणका बल भी उतना ही बढ़ेगा। इसीलिये तापके प्रभावसे जिन वस्तुओंके उपादान विभिन्न नहीं होते, उत्तप्त होनेसे वे ही द्रव्य कठिनसे तरल और तरलसे वाष्प हो जाते हैं।

कठिन वस्तुओंके परमाणु आणविक आकर्षण गुणसे जिस तरह दृढ़तया आबद्ध रहते हैं, तरल और वाष्पीय पदार्थोंके परमाणु वैसे नहीं होते।

कठिन वस्तुके परमाणु निविड़ सन्निवेशके कारण सहज हीमें अलग नहीं होते, किन्तु तरल और वाष्पीय द्रव्योंके परमाणु सहज हीमें थोड़े विनिवेशसे ही संचालित हो जाते हैं। कठिन (ठोस) पदार्थोंमें हर एकको एक निर्दिष्ट आकृति होती है, किन्तु तरल और वाष्पीय पदार्थोंकी कोई निर्दिष्ट आकृति नहीं है। इन्हें जैसे बर्तनमें रक्खा जायगा, इनकी वैसी ही आकृति हो जायगी।

तरल और वाष्पीय द्रव्योंका प्रभेद —जिस प्रकार तरल द्रव्योंके परमाणु सहज ही संचालित होते हैं, उसी प्रकार वायवीय द्रव्योंके अणु भी थोड़े ही बलप्रयोगसे संचालित होते हैं ; किन्तु वाष्पीय द्रव्य जिस प्रकार दबाव पड़नेसे संकुचित होते हैं, तरल पदार्थ वैसे नहीं होते। जैसे समस्त वाष्पीय द्रव्य आकुञ्चनीय होते हैं, वैसे समस्त तरल पदार्थ दुराकुञ्चनीय हैं। परन्तु यह नहीं कि तरल पदार्थ बिलकुल ही आकुञ्चनीय नहीं। पदार्थविद् विद्वानोंने परीक्षाद्वारा स्थिर किया है कि अधिक बलप्रयोग करनेसे सभी तरल पदार्थ कुछ कुछ आकुञ्चित होते हैं। फी इञ्च साढ़े सात सेर दबाव देनेसे दश लाख भाग जलके आयतनमें पाँच भाग कम हो जाता है, और दबाव हटा लेने पर जल या जलवत् सभी पदार्थ पुनः प्रसारित हो कर अपने पूर्व आयतनको प्राप्त हो जाते हैं। अतएव यह स्वीकार करना होगा कि सभी तरल वस्तुएँ स्थितिस्थापक गुणसम्पन्न हैं।

तरल पदार्थोंमें चाप-संचालनका नियम—तरल वस्तुके एक अंशमें चाप प्रयोग करनेसे वह सब ओर समभागसे संचालित होता है। ईसवीकी सत्रहवीं सदीके मध्यभागमें पास्कल नामक एक फरासीसी विद्वान्ने तरल पदार्थोंमें चाप संचालनके नियमका आविष्कार किया ; इसी लिए यह नियम पास्कलका नियम नामसे प्रसिद्ध है।

जलादिके एक ओर चाप प्रयोग करनेसे वह उसके सभी ओर सम भावसे संचालित होता है। यह विशेष परीक्षा द्वारा देखा गया है।

एक पिचकारीके सदृश बहुतसे छिद्रोंवाला यंत्र जलमें भर कर उसका अर्गल बलपूर्वक यदि भीतर डाला जाय, तो उसके समस्त छिद्रोंसे जल बाहर निकलता है। यदि चारों ओर चाप संचालित न होता तो सभी छिद्रोंसे जल न निकलता।

जलादिके एक अंशमें चाप प्रयोग करनेसे यह चाप उसके सर्वांशमें संचालित हो कर चाप युक्त अंशके साथ समायतनसम्पन्न अंशोंके ऊपर समपरिमाणमें और लम्बभावसे कार्य करता है तरल पदार्थके एक अंशमें दिया गया चापसर्वांशमें संचालित होता है। यह भी पूर्वोक्त परीक्षाद्वारा प्रतिपादित हुवा हैं।

तरल पदार्थोंका उत्क्षेपक चाप (दबाव)—तरल पदार्थोंके ऊपरसे नीचेकी ओर चाप द्वारा जिस प्रकार नीचेके अणु आक्रान्त होते हैं उसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर चाप द्वारा ऊपरके अणु उद्भासित होते हैं। नीचेके स्तरोंका ऊपरके स्तरों पर अवक्षेपक चाप और ऊपरके स्तरोंका नीचेके स्तरों पर उत्क्षेपक चाप समान होता है। यह निम्नलिखित परीक्षा द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। किसी जलपूर्ण पात्रमें दोनों ओर खुली एक नली डुबानेसे देखा जायगा, पात्रमें जितना ऊंचा जल है उतना ही ऊँचा पानी नलीमें भी उठता है, किन्तु इसी नलीके नीचेका मुंह उसीके समान एक टुकड़ा कांच या अभ्रक द्वारा आवद्ध कर थोड़ेसे सूत द्वारा वह कांच या अभ्रक बाँधके धीरे धीरे जलमें डुबाया जाय तो देखा जायगा, सूत छोड़ देने पर भी नली डुबेगी नहीं और जलके चापसे उद्भासित हो उठेगी। अब यदि नलीके भीतर पानी डाला जाय तो देखा जायगा, नलीके भीतरका जल ज्योंही बाहरके जलकी अपेक्षा ऊंचा होगा त्योंही नली डूब जायगी। सुतरां देखा जाता है कि नीचेकी ओर लगी हुवा कांच जिस नलसे उद्भासित होता है वह उसके समायत और उसके पृष्ठदेशसे वहिर्भाग तक जल जितना उन्नत है उतने ही उन्नत जलके समान होता है अर्थात् उसके ऊपरसे नीचेकी जो चाप है वही चाप नीचेसे ऊपरको भी है अर्थात् जलके मध्यस्थित किसी अणुके ऊपर उत्क्षेपक और अवक्षेपक चाप बराबर है।

साम्यअवस्थामें तरल वस्तुओंकी पृष्ठदेश सर्वत्र समतल रहती है।

कठिन पदार्थका ऊपरी भाग कहीं ऊंचा कहीं नीचा हो सकता है। किन्तु तरल द्रव्योंकी सतह सर्वत्र समान ऊंची होती है। कठिन अवस्थामें आणविक आकर्षण गुणके कारण द्रव्यके परमाणु परस्पर दृढ़रूपसे आकृष्ट रहते हैं। इसीलिए किसी द्रव्यका कोई अंशविशेष किञ्चित् ऊंचा होने पर भी मध्याकर्षण द्वारा विच्छिन्न होकर पतित नहीं होता, किन्तु तरल अवस्थामें आणविक आकर्षण वैसा प्रबल नहीं होता। इससे तरल वस्तुके परमाणु सहज ही विचलित और प्रवाहित होकर समतलभाव धारण करते हैं।

किसी तरल वस्तुका यदि कोई भाग किञ्चित् उन्नत हो उठे तो पृथ्वीके मध्याकर्षणसे उसे पुनः निपतित होना पड़ता है। वास्तवमें तरल पदार्थोंकी सतह स्वभावतः सम उच्च होती है। जलके ऊंचे नीचे होनेका कारण सभीको विदित है।

जिस तरह धरापृष्ठ पर कहीं ऊंचे पर्वतशिखर, कहीं गभीर गह्वर दिखाई देते हैं। सागर पृष्ठमें वैसा नहीं दिखाई देता। यदि कभी किसी कारणसे कहीं पर समुद्रका जल किंचित् ऊचा उठ जाता है तो उस कारणके हटते ही वहांका जल समभाव धारण कर लेता है। यद्यपि महासमुद्रके जिस भाग पर दृष्टि डाली जाय वही समतल मालूम देता है तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उसका समग्र पृष्ठदेश दर्पणकी तरह समतल है। उसकी सतहका प्रत्येक विन्दु पृथ्वीके केन्द्रके साथ तुलनामें समतलभावसे अवस्थित है, किन्तु भूपृष्ठकी जलराशिका आकार गोलेकी सतहकी तरह गोल है। इस तरह जहां बहुत दूर पर्यन्त जल व्याप्त है उसकी समस्त सतहका दर्पणाकार समतल होना सम्भव नहीं।

२ तरलता, द्रवत्व। ३ पतलापन।

तारबाई-हैदराबाद राज्यके वरङ्गल जिलेका एक तालुक। इसमें कुल १५५ ग्राम लगते हैं। राजस्व २७८००) रु०के लगभग है। तालुकका अधिकांश जङ्गलमें आच्छादित है।

तारवाँयु (सं० पु०) तारः वायु कर्मधा०। अत्युच्च शब्द-युक्त वायु, बहुत जोरसे बहनेवाली हवा।

तारविमला (सं० स्त्री०) तारं रूप्यमिव विमला। उपधातु विशेष, रूपामक्खी नामकी उपधातु।

तारशुद्धिकर (सं० क्ली०) तारस्य रजतः शुद्धिं करोति कृ-ट। सोसक, सोसा। इससे चांदीका मैल साफ किया जाता है।

तारसार (सं० पु०) उपनिषद्भेद, एक उपनिषद्का नाम।

तारहार (सं० पु०) तारनिर्मितो हारः मध्यलो० कर्मधा०। स्थूल मुक्ताहार।

तारा (सं० स्त्री०) तारयति संसारार्णवात् भक्तान् तॄ-णिच् अच् टाप्। १ बौद्धोंकी एक देवी। २ वानरराज वालीकी पत्नी और सुदन वानरकी कन्या। रामचन्द्रने सप्तताल भेद कर वालीका वध किया था। वालीके मारे जानेके उपरान्त श्रीरामचन्द्रके आदेशसे ताराने सुग्रीवको अपना पति बना लिया। इनके पुत्रका नाम अङ्गद था। (रामायण) प्रातःकाल उठ कर इनका नाम स्मरण करनेसे वह दिन मङ्गलमय होता है।

"अहल्या द्रौपदी कुन्ती तारा मन्दोदरी तथा।
पञ्चकन्या स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनं॥"

किन्तु प्रातःकालमें इनके नाम स्मरणका नियम रघुनन्दनके आह्निकतत्त्वमें नहीं है।

३ अश्विनी आदि नक्षत्र। जैसे—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्या, अश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती, ये २७ प्रधान तारा हैं। खगोल देखो।

अधिपति—अश्विनीके अधिपति अश्विनी। भरणीके यम, कृत्तिकाके दहन, रोहिणीके कमलज, मृगशिराके शशि, आर्द्राके शूलभृत्, पुनर्वसुके अदिति, पुष्याके जीव, अश्लेषाके फणि, मघाके पितृगण, पूर्वफाल्गुनीकी योनि, उत्तरफाल्गुनीकी अर्यमा, हस्ताके दिनकृत्, चित्राके त्वष्टा, स्वातिके पवन, विशाखाकी अग्नि, अनुराधाके मित्र, ज्येष्ठाके शक्र, मूलाके निर्ऋति, पूर्वाषाढ़ाका तोय, उत्तराषाढ़ाके विश्वविरिञ्चि, श्रवणाके हरि, धनिष्ठाके वसु, शतभिषाके वरुण, पूर्वभाद्रपदके अजैकपाद, उत्तरभाद्रपदके अहिर्बुध्न और रेवतीका अधिपति पुष्मानक्षत्र है।

नाम—आर्द्रा, पुष्या, धनिष्ठा, शतभिषा, श्रवणा, रोहिणी, उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तरभाद्रपद इनका नाम है ऊर्द्ध्वमुख; तथा मूला, अश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा और पूर्वभाद्रपद इनका नाम अधोमुख; एवं अश्विनी, रेवती, हस्ता, चित्रा, स्वाति, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, मृगशिरा और अनुराधा इन नक्षत्रोंका नाम तिर्यङ्मुख तारा है।

जाति—अश्विनी और शतभिषा नक्षत्र अश्वजातीय हैं, रेवती और भरणी हस्ती, कृत्तिका अजा, रोहिणी और मृगशिरा सर्प; आर्द्रा, हस्ता और स्वाति व्याघ्र; पुनर्वसु मेष; पुष्या, अश्लेषा और मघा इन्दुर, पूर्वफाल्गुनी और चित्रा महिष; विशाखा और अनुराधा हरिण; ज्येष्ठा कुक्कुर; मूला और श्रवणा वानर; पूर्वाषाढ़ा नकुल जातीय तथा धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद सिंह जातीय हैं।

मृगशिरा, हस्ता, स्वाति, श्रवणा, पुष्या, रेवती, अनुराधा अश्विनी और पुनर्वसु नक्षत्रमें जन्मग्रहण करने पर देवगण होता है, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, पूर्वफाल्गुनी, पूर्वषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी भरणी और आर्द्रामें नरगण तथा ज्येष्ठा, मूला, अश्लेषा, कृत्तिका, शतभिषा, चित्रा, मघा, धनिष्ठा और विशाखामें जन्म लेनेसे राक्षसगण होता है।

किसी शुभकार्यके करनेके पहले उसके लिए चन्द्र और ताराशुद्धिका देखना जरूरी है। विशेषतः शुक्लपक्षमें चन्द्रशुद्धि और कृष्णपक्षमें ताराशुद्धि न देख कर कार्य करनेसे नाना प्रकारके अमङ्गल होते हैं।

ताराशुद्धि। यथा—जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मित्र और अतिमित्र ये ९ तारा हैं; इनमें जन्म, विपत्, प्रत्यरि और वध वर्जनीय हैं, इनके सिवा अन्य समस्त तारे शुभकर होते हैं।

जन्मतारामें विवाद, श्राद्ध, भैषज्य, यात्रा और क्षौरकर्म निषिद्ध हैं।

निषिद्ध तारेमें यात्रा करनेसे बन्धन, कृषिकार्यमें शस्यनाश, औषध सेवनमें मरण, गृहारम्भमें गृहदाह, क्षौरकार्यमें रोगोत्पत्ति, श्राद्धमें अर्थनाश, विवादमें बुद्धिनष्ट और युद्धमें भय होता है।

जन्मतारासे गणना की जाती है। चन्द्र और तारा-शुद्धि होने पर अन्य समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं।*

विशेष विवरणके लिए नक्षत्र शब्द देखो।

४ दश महाविद्याओंमेंसे पहली विद्या।

'काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्या सिद्धविद्याः प्रकीर्तिता॥"

(तन्त्रसार)

काली, तारा, षोड़शी, भुवनेश्वरी, भैरवी छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातङ्गी और कमला, ये दश महाविद्याएं हैं।

सतीने दक्षयज्ञमें जानेके लिए महादेवसे बारंबार अनुमति मांगी थी, किन्तु महादेवने किसी तरह भी उन्हें जानेकी अनुमति न दी। इस पर सतीने धीरे धीरे महादेवको डरानेके लिए उक्त दशरूप धारण किये थे। पीछे महादेवने भयभीत हो कर उन्हें दक्षालयमें जानेकी अनुमति दी थी। दशमहाविद्या देखो।

प्रथमा तारा ही और द्वितीया महाविद्या, (श्लोकमें "काली तारा महाविद्या" है) ऐसा नहीं; काली और तारा दोनों ही आद्या महाविद्या हैं। कालिकासे ही ताराकी उत्पत्ति है। कहा है, कौषिकीने कृष्णवर्ण हो कर कालिकाका रूप धारण किया था, कालिका सर्वमयी हैं। तारा विश्वमयी धरित्रीरूपिणी और सर्वसिद्धिदायिनी हैं। साधकको यदि तारामन्त्रादिका ज्ञान हो तो वह शीघ्र ही मुक्ति लाभ करता है। उसको अनर्गल कविता कहनेकी शक्ति हो जाती है और वह सर्वशास्त्रमें पाण्डित्य लाभ कर धनपति हो जाता है।

५ वृहस्पतिकी स्त्री। एक दिन अङ्गिरातनय चन्द्र ताराके अलोकसामान्य रूपको देख कर उन्हें हरण कर ले गये। वृहस्पतिको मालूम होते ही उन्होंने देवताओंसे कहा। देवताओंने ऋषियोंके साथ मिल कर चन्द्रसे तारा मांगी। परन्तु दुर्बुद्धि सोमदेवने ताराको लौटाया नहीं। इस पर देवाचार्य वृहस्पति अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। शुक्राचार्य इनके पश्चात्वर्ती हुए। महातेजा रुद्र पहले वृहस्पतिके पिता अङ्गिराके शिष्य थे, वे भी गुरु-पुत्रके स्नेहके कारण वृहस्पतिके पृष्ठपोषक हुए। महात्मा रुद्रदेव, जिस ब्रह्मशिव नामक परमास्त्रका प्रयोग दैत्यों पर किया गया था और उससे दैत्योंकी यशोराशि विनष्ट हुई थी, उसी अतिभीषण आजगव शरासनको धारण कर युद्धके लिए प्रवृत्त हुए। ताराके लिए इस युद्धका प्रारम्भ हुआ था, इसलिए यह तारकामय नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस देव-दानव-समरमें अनेक लोगोंका क्षय होने लगा। आखिर देवोंने अनन्योपाय हो कर ब्रह्माकी शरण ली। देवोंकी प्रार्थनासे लोकपितामह ब्रह्मा स्वयं समरभूमि पर आये। उन्होंने शुक्राचार्य और शङ्कर रुद्रदेवको सान्त्वना दे कर युद्धसे निवृत्त होनेका आदेश दिया और ताराको चन्द्रसे ले कर वृहस्पतिको अर्पण किया। उस समय ताराको अन्तःसत्वा देख कर वृहस्पतिने कहा—"तुम मेरे क्षेत्रमें अन्यजनित गर्भ धारण न कर सकोगी।" ताराने उसी समय गर्भस्थ पुत्र दस्युहन्तमको प्रसव कर शरस्तम्ब पर फेंक दिया। सद्यःप्रसूत कुमार शरस्तम्ब पर गिर कर ज्वलन्त पावककी तरह दीप्यमान हो गया, उसकी शरीर-कान्तिसे देवगण मानो तिरस्कृत होने लगे। देवोंने संशयापन्न हो पूछा—"देवि! सत्य कहना यह पुत्र सोमदेवका है या वृहस्पतिका?" किन्तु ताराने कुछ उत्तर न दिया। इस पर सद्योजात दस्य हन्तम अपनी

---

* "जन्मसम्पत्विपत्क्षेमप्रत्यरिः साधकोवधः।
मित्रं परममित्रंच नवताराः प्रकीर्तिताः॥
सर्वमंगलकर्माणि त्रिषु जन्मसु कारयेत्।
विवादश्राद्धभैषज्ययात्राक्षौरादिविवर्जयेत्॥
यात्रायां पथिबन्धनं कृषिविधौ सर्वस्य नाशो भवेत्॥
भैषज्ये मरणं तथा मुनिमतं दाहो गृहारम्भणे।
क्षौरे रोगसमागमो हुविधः श्राद्धेऽर्थनाशस्तदा।
वादे बुद्धिविनाशं युधि भयप्राप्तोत्ययं जन्मभे॥
पापाख्यातु त्रिविधा पंचचतुर्दशविंशतिस्त्रिषुता।
सिद्धिफलावृद्धिकरी विनाशसंज्ञाक्रमात् कथिता॥
ताराचन्द्रबले प्राप्ते दोषाश्चान्ये भवन्ति ये।
ते सर्वे विलयं यान्ति सिंहं दृष्ट्वा गजा इव॥"

(श्रीपतिसमुच्चय)

माताको शाप देनेके लिए तैयार हुआ, तब ब्रह्माने उसको निषेध कर तारासे पुनः पूछा—"तारे ! तुम सच सच कह दो यह पुत्र किसका है ?" ताराने हाथ जोड़कर कहा—"यह महात्मा कुमार दस्युहन्तम भगवान् सोमदेवका पुत्र है।" यह सुन कर प्रजापति सोमदेवने अपने पुत्र को ग्रहण किया और उसका नाम वुध रक्खा। यह वुध अब भी गगनाङ्गनमें चन्द्रको प्रतिकूल दिशामें उदित होता है।

सोमदेव इस पापसे सहसा राजयक्ष्मारोगसे आक्रान्त हो दिन दिन क्षीणमण्डल होने लगे। अन्तमें चन्द्रने इसको शान्तिके निमित्त अपने पिताकी शरण ली। महातपा अत्रिने इनके पापकी शान्ति कर दी। पीछे चन्द्र पापमुक्त हो कर पूर्ववत् दीप्तिशाली और पूर्णमण्डल हो गये।

६ अक्षिमध्य चक्षुका तारा, आंखकी पुतली। पर्याय—कनीनिका, तारका और बिम्बिनी।

७ बुद्ध अमोघसिद्धकी स्त्री। ८ जैनशक्तिविशेष।

ताराकूट (सं० क्लो०) ताराणां कूटं, ६-तत्। ताराविषयक कूटभेद, फलित ज्योतिषमें वरकन्याके शुभाशुभ फलको सूचित करनेवाला एक कूट। इसका विचार विवाह स्थिर करनेके पहले किया जाता है।
विवाह और नक्षत्र देखो।

ताराच (सं० पु०) दैत्य भेद, एक दैत्यका नाम।
तारकाक्ष देखो।

तारागञ्ज—रङ्गपुर जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यहां धान, पाट और तमाकूका व्यवसाय अधिक होता है।

तारागढ़—१ अजमेरके मैरवाराके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २६°२६'२०" और देशा० ७४°४०'१४" पू०में अवस्थित है। अजमेरकी ओर शैलशृङ्ग जिधर ढालू हो गया है, उधर ही यह दुर्ग अवस्थित है। इसके चारों ओर दुर्भेद्य प्राचीर हैं। पूर्व समयके सभी राजगण इसी दुर्भेद्य दुर्गमें रहते थे। राथोर और चौहानके साथ जब लड़ाई छिड़ी थी, तब १२१० ई०में जहां सैयद हुसेनने प्राणत्याग किया था, वहाँ तुङ्गशृङ्गके ऊपर उनकी भी एक सुन्दर मसजिद बनी है। अभी नसीराबादके अंगरेज सैनिक लोग यहां वायुसेवनको आते हैं।

२ पञ्जाबके नालगढ़ राज्यके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० ३१° १०' उ० और देशा० ७६° ५०' पू०के मध्य शतद्रुनदीके बायें किनारे अवस्थित है। १८१४-१५ ई०में युद्धके समय गोरखा सेनाने इस दुर्गमें आश्रय लेकर अंगरेजोंके विरुद्ध युद्ध किया था।

ताराग्रह (सं० पु०) मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन पाँच ग्रहोंका समूह।

ताराचक्र (सं० क्लो०) ताराणां चक्रं, ६-तत्। तन्त्रोक्त चक्रभेद। इस चक्रद्वारा दीक्षणीय मन्त्रका शुभाशुभ जाना जाता है। नक्षत्र और दीक्षा देखो।

ताराचमन (सं० क्लो०) तारायाः आचमनं, ६-तत्। तारापूजाविषयक आचमन। तारापूजामें यह आचमन करना पड़ता है। तारा देखो।

ताराचरण व्यास—हिन्दीके एक अच्छे ग्रन्थकार। ये १८८८ ई०के लगभग विद्यमान थे। इन्होंने नाथानन्दप्रकाशिका नामक ग्रन्थ रचा है।

ताराज (सं० स्त्री०) एक वैराज। (ऋक् प्राति' १७।४)

ताराज (फा० पु०) १ लूट पाट। २ नाश, बरबादी।

तारात्मकनक्षत्र (सं० पु०) तारोंका समूह जो आकाशमें क्रान्तिवृत्तके उत्तर और दक्षिणकी ओर रहता है। इस समूहमें अश्विनी भरणी आदि हैं।

तारादेवी (सं० स्त्री०) १ एक महाविद्या। तारा देखो। २ हिमालयका गहरा और अन्धकारमय गूढ़स्थान तथा भीषण दृश्यका एक गिरिशृङ्ग जो शिमलाके निकट विद्यमान है। ३ जैनोंकी एक शासनदेवी।

ताराधिप (सं० पु०) ताराणां अधिपः, ६-तत्। १ चन्द्र, चन्द्रमा। तारायाः अधिपः। २ शिव, महादेव। ३ बृहस्पति। ४ बालि और सुग्रीव। ५ नक्षत्राधिप, अश्वि, यम प्रभृति नक्षत्रोंके अधिपति। तारा देखो।

ताराधीश (सं० पु०) तारायाः अधीशः, ६-तत्।
ताराधिप देखो।

तारानगर—बरद प्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।
(भ० ब्रह्मख० १९।४०)

तारानाथ (सं० पु०) ताराणां नाथः। १ चन्द्र, चन्द्रमा। २ तिब्बतके एक सुप्रसिद्ध बौद्धपण्डित। इन्होंने १७वीं शताब्दीमें एक बौद्धधर्मका इतिहास रचा है। भारतीय पुराविद्गण इनका यथेष्ट आदर करते हैं।

तारानाथ तर्कवाचस्पति—एक प्रसिद्ध बङ्गाली विद्वान्। १८१२ ई०में वर्द्धमान जिलेके कालना ग्राममें इनका जन्म हुआ था। बचपनसे ही इनको पढ़नेका बहुत शौक था। थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने संस्कृतमें अच्छी व्युत्पत्ति लाभ की और 'तर्कवाचस्पति' उपाधिसे विभूषित हो गये। फिर काशी जा कर इन्होंने वेदान्तशास्त्रका अध्ययन किया। अध्ययन कर चुकने पर इन्होंने अपने ग्राममें चतुष्पाठी खोल दी और नेपालसे सीसमकी लकड़ी मंगा कर उसका रोजगार करने लगे। किन्तु दुर्भाग्यवश इसमें घाटा हो गया और ये कर्जदार हो गये।

संस्कृत-कालेजमें ये व्याकरणके अध्यापक नियुक्त हुए। कालेजके अध्यक्षने इन्हें प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ छपा कर प्रचार करनेकी सलाह दी। इन्होंने काउएल साहबकी सलाहसे ग्रन्थ-प्रकाशन कार्य प्रारम्भ कर दिया और कर्ज चुका कर निश्चिन्त हुए। इसके बाद इन्होंने शब्दकल्पद्रुमके तुलनाका "वाचस्पत्य' नामक एक वृहत् अभिधान सङ्कलित किया। इस कोषके प्रकाशनमें करीब १२ वर्ष समय और ८००००) रुपये व्यय हुए थे। इसके सिवा इन्होंने शब्दस्तोम-महानिधि (कोष), तत्त्वकौमुदी-टीका, पाणिनिकी सरल टीका, धातुरूपादर्श आदि बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ लिखे हैं।

तारापथ (सं० पु०) ताराणां पन्थाः ६-तत्, अच् समासान्तः। आकाश।

तारापीड़ (सं० पु०) ताराणां आपीड़ः भूषणमिव, ६-तत्। १ चन्द्र, चन्द्रमा। २ चन्द्रावलोकके एक पुत्रका नाम। ये अयोध्याके राजा थे। इनके पुत्रका नाम चन्द्रगिरि था। ३ काश्मीरके एक विख्यात राजा। काश्मीर देखो।

तारापुर—१ बम्बई प्रदेशके खम्बात राज्यका एक नगर। यह खम्बात नगरसे ५ कोस उत्तरमें अवस्थित है।

२ थाना जिलेका एक बन्दर। यह अक्षा० १९°५०´ उ० और देशा० ७२°४२´३०″ पू० पर पड़ता है। यह खाड़ीके दक्षिण बैसर स्टेशनसे ३ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। खाड़ीके उत्तरमें यह तारापुर छिवनी नामसे मशहूर है। यहां लाखसे अधिक रुपयेका कारोबार होता है।

तारापुर चिनचनी—बम्बईके थाना जिलेके अन्तर्गत माहिम और दाहानू तालुकका एक प्राचीन शहर। यह अक्षा० १९°५२´ उ० और देशा० ७२°४१´ पू० के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ७०५१ है; जिनमेंसे अधिकांश पारसी और बानी हैं। पारसी-विजेता विकाजी मेहरजीका १८२० ई०का बनाया हुआ यहाँ एक मन्दिर है। यहां चावल, नमक, गुड़, मट्टीके तेल तथा लोहेकी आमदनी तथा धान, मकई और लकड़ीकी रफ़तनी होती है।

ताराप्रमाण (सं० क्ली०) ताराणां प्रमाणं, ६-तत्। अश्विनी प्रभृति नक्षत्रकी स्वरूप-निरूपक संख्या। वृहत्संहितामें इस संख्याके विषयमें इस प्रकार लिखा है—शिखि ३, गुण ३, रस ६, इन्द्रिय ५, अनल ३, शशी १, विषय ५, गुण ३, ऋतु ६, पञ्च ५, वसु ८, पक्ष २, एक १, चन्द्र १, भूत १४, अर्णव ४, अग्नि ३, रुद्र ११, अग्नि ८, दहन ३, शत १०० तथा द्वात्रिंशत् ३२, यह तारका-प्रमाण है। अश्विनी आदि नक्षत्रोंके साथ पूर्व लिखित तारासंयुक्त हैं। इनका फल तारोंकी संख्याके अनुसार हुआ करता है। (वृहत्संहिता ९ अ०)

ताराबाई—१ महाराष्ट्रनायक राजारामकी ज्येष्ठ पत्नी और भारतप्रसिद्ध शिवाजीकी पुत्रवधू।

१७०० ई०में सिंहगढ़में राजारामकी मृत्यु हुई। बादशाह औरङ्गजेबने सिंहगढ़ घेर लिया। राजारामकी ज्येष्ठा महिषी ताराबाईने इस समय शोक, लज्जा और भयको जलाञ्जलि दे कर अपने धर्म, देश और पतिराज्यकी रक्षाके लिए अस्त्रधारण किया। इस समय बहुतसे मराठोंने औरङ्गजेबका पक्ष अवलम्बन किया था, किन्तु रानी ताराबाईकी सुमधुर भर्त्सना और उत्साहवाक्योंसे बहुतसे महाराष्ट्र-वीरोंने उत्तेजित हो कर पुनः ताराबाईका साथ दिया था।

पहले ताराबाईने रामचन्द्र पन्थ अमात्य, शङ्करजी नारायण सचिव और धनजी यादवकी सहातासे १० वर्षके बालक (२य) शिवाजीको सिंहासन पर बिठाया और छोटी सपत्नी राजसबाईको कैद कर रक्खा।

१७०० ई०से १७०३ ई० तक औरङ्गजेबने सिंहगढ़ अवरोध कर अन्तमें अधिकार कर लिया। गढ़का नाम बदल कर 'बकसिन्दबक्सी' (अर्थात् ईश्वरका दान) नाम रक्खा गया।

१७०५ ई०में मुगलबादशाह सेनासहित पूना छोड़

कर बीजापुरकी तरफ चल दिये। मुगल-सेना पूना छोड़ कर आगे बढ़ी ही थी, कि इतनेमें ताराबाईने शङ्करजी नारायणको सिंहगढ़ अधिकार करनेके लिए आदेश दिया। शीघ्र ही शङ्करजी सिंहगढ़ और बादमें कोल्हापुरस्थ पनहाला अधिकार कर बैठे। इससे औरङ्गजेब बहुत ही दुःखित हुए थे।

काफिखाँके 'मुन्तखबुललुबाब' नामके फारसी इतिहासमें लिखा है कि, इस समय ताराबाई महाराष्ट्र-सेनाका हृदय अधिकार कर महोत्साह और महादर्पसे मुगल-अधिकृत प्रदेश लूटने लगीं। औरङ्गजेब बहुत कोशिश करने पर भी इनका कुछ बिगाड़ न सके। मुगल-बादशाह युद्धोद्योग, अवरोध और प्रतिविधानके जितने उपाय करने लगे, ताराबाईको प्ररोचनासे महाराष्ट्रोंके बलवीर्यका ह्रास न हो कर उतनी ही वृद्धि होने लगी। बादशाह जिस तरह सैन्य सामन्त और अमीर उमरावोंके साथ महासमारोहसे दाक्षिणात्यमें अवस्थान कर रहे थे, उसी तरह महाराष्ट्र-सेनानायकगण भी जब जहाँ उपस्थित होते, वहीं गजवाजि शिविर और पुत्रपरिजनोंको ले कर महा आनन्दसे समय बिताते थे। उनका साहस खूब ही बढ़ गया था। नये जीते हुए स्थानमेंसे एक एक परगना एक एकने बाँट लिया। मुगल बादशाहके नियमका अनुसरण कर उन परगनोंमें एक एक शूबेदार, कमाइसदार और रहादार आदि कर्मचारी नियुक्त हुए। (१)

महाराष्ट्रोंके पुनरभ्युदयसे औरङ्गजेब विचलित हो गये थे। विशेषतः सिंहगढ़के हस्तच्युत हो जाने पर उनको उस दुःखसे कुछ दिन तक पीड़ित होना पड़ा था। कुछ स्वस्थ होते ही उन्होंने सम्भाजीके पुत्र साहूको जुलफिकार खाँके साथ सिंहगढ़ जय करनेके लिए भेजा। जुलफिकारने साहूकी मारफत महाराष्ट्र सामन्तोंके पास एक पत्र लिखवा कर भिजवाया कि, "साहू ही महाराष्ट्र सिंहासनके यथार्थ उत्तराधिकारी हैं; महाराष्ट्र मात्रको उनकी सहायता करनी चाहिये।" रसदके अभावसे सिंहगढ़ जुलफिकारके हाथ आया, पर उनकी भी यही दशा हुई। शङ्करजीने पुनः सिंहगढ़ अधिकार कर लिया।

१७०७ ई०में सिन्दखेड़के यादव और किन्नरखेड़के सिन्दियाकी कन्याके साथ महासमारोहसे साहूका विवाह हो गया। नाना यौतुकोंके साथ औरङ्गजेबने साहूको शिवाजीकी प्रसिद्ध भवानी असि और अफजलखाँकी तलवार उपहारमें दी। इसी साल औरङ्गजेबकी मृत्यु हुई।

ताराबाई पर महाराष्ट्र मात्रकी भक्ति श्रद्धा थी। मुगल-सेनाके चले जाने पर ताराबाई पूना अधिकार करनेके लिए तैयारियां करने लगीं। धनजी यादवने पूनामें मुगल-सेनापति लोदीखाँको परास्त कर चाकन अधिकार कर लिया, किन्तु थोड़े दिन बाद ही धनजी साहूके साथ मिल गये। अब साहूका बल बहुत कुछ बढ़ गया।

महाराष्ट्रोंमें जिन लोगोंने साहूके विरुद्ध आचरण किया, उनको वे मरवाने लगे। उस समय शङ्करजी नारायणने ताराबाईकी तरफसे पुरन्दर-दुर्ग अधिकार किया था। साहूने उनको पुरन्दर छोड़ देनेके लिए आदेश दिया, किन्तु शङ्करजीने उनके आदेश पर कुछ भी ध्यान न दिया इस पर, साहूने शिवाजीकी प्रथम राजधानी (राजगढ़) छीन ली। शङ्करजीने ताराबाईके सामने प्रतिज्ञा की थी, कि जब तक उनके घटमें प्राण रहेंगे, तब तक वे उनका (ताराबाईका) साथ न छोड़ेंगे अब उन्होंने प्रतिज्ञा भङ्गकी अपेक्षा मृत्युको सहस्र गुना श्रेय समझ कर जलसमाधि अवलम्बनपूर्वक अपने प्राण त्याग दिये।

ताराबाई शङ्करजीकी मृत्यु से अत्यन्त दुःखित हुई थीं। इस समय बहुतोंने उनका साथ छोड़ कर साहूका पक्ष ग्रहण किया था।

१७१२ ई०के प्रारम्भमें ताराबाईके पुत्र शिवाजीकी वसन्तरोगसे मृत्यु हुई। इससे ताराबाई अपनी राजकीय क्षमता खो बैठीं। अब उन्हींकी सपत्नी राजसबाईके पुत्र सम्भाजीने उनका स्थान अधिकार कर लिया। अब ताराबाई और उनकी पुत्रवधू भवानीबाई दोनों ही बंदी हुईं। इस समय भवानीबाई गर्भवती थीं, यथासमय उनके एक पुत्र हुआ। ताराबाईने बहुत सावधानीसे उसको छिपा रक्खा, किन्तु इस समय वीरमहिला ताराबाईके कष्टकी सीमा नहीं थी।

१७४९ ई०में साहूकी मृत्यु हुई। अब तक ताराबाई

---

(१) Elliot's Muhammadan Historians, Vol. vii, p. 373—375

ने जिसको छिपी तौरसे पाला था, अब वही उनका प्यारा पौत्र रामराजका उत्तराधिकारी हुआ। पेशवा बालाजीने साहुको (मृत्युसे पहले) लिखा था कि, "ताराबाईका पौत्र राजा होने पर भी राज्यशासन मेरे ही हाथ रहेगा तथा जिससे शिवाजीके वंशीयोंका नाम उज्ज्वल रहे, मैं उस पर विशेष लक्ष्य रक्खूंगा।"

इस समय ताराबाईकी उम्र ७० वर्षकी थी। इस वृद्धावस्थामें भी उनकी पहलेकी चेष्टाओं और बुद्धिवृत्तिका जरा भी ह्रास नहीं हुआ था। रघुजीके ऊपर रामराजका भार दे कर बालाजी पूना चले आये। अबसे पूना ही महाराष्ट्र-साम्राज्यकी राजधानी हुई, रामराज नाममात्रके लिए सताराके राजा थे, उनमें शक्ति कुछ भी नहीं थी। इस समय बालाजी ही सर्वप्रधान थे। किन्तु ताराबाईकी प्रकृति ऐसी नहीं थी कि, वे किसीकी अधीनतामें रहें। बालाजी भी ताराबाईकी उतनी परवाह नहीं करते थे। अब ताराबाई-बालाजीके हाथसे राजशक्ति ले कर स्वयं परिचालन करनेके लिए चेष्टित हुईं।

ताराबाईने पन्थसचिवको अनुरोधपूर्वक कहलवा भेजा कि, "मैं सिंहगढ़में पतिकी समाधि दर्शन करने जाऊँगी, उस समय आप मुझको साम्राज्यकी नेत्रीरूपमें प्रचार करनेकी चेष्टा करें।" बालाजी इस संवादको पा कर कुछ विचलित हुए थे। उन्होंने ताराबाईको हाथमें रखनेके लिए कहला भेजा कि, "आप जैसी सदाशया बुद्धिमती और उच्चप्रकृतिकी रमणी दूसरी नहीं है; आप अधिकांश स्थान पर राजशक्ति परिचालन कर सकें, उसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु हमें जो राजा साहुसे क्षमता प्राप्त हुई है, उसको रामराज जिससे स्वीकार कर लें, इसकी कोशिश आप अवश्यही करेंगी।"

महाराष्ट्र-सामन्तगण बालाजीकी कूटनीति समझ गये। इस समय प्रधान पद पानेके लिए उनमें बहुत झगड़ा होने लगा। इसी बीचमें बालाजीने भीतर ही भीतर महाशत्रुता आरम्भ कर दी। रामराज सतारा-दुर्गमें कैद कर लिये गये। ताराबाईने कोल्हापुर जा कर आश्रय लिया। कुछ दिन बालाजीने उनके विरुद्ध एक दल सेना भेज दी, किन्तु उससे कुछ हुआ नहीं।

ताराबाई बालाजीका सर्वनाश करनेके लिए चारों तरफसे महाराष्ट्रोंको उत्तेजित करने लगी। पेशवा बालाजीने विचारा कि, ताराबाईके प्रति अनिष्ट आचरण करनेसे कोई फल नहीं निकलेगा। उन्होंने ताराबाईको कहला भेजा कि, आप साम्राज्यमें गुणमें मानमें और उम्रमें सर्वप्रधान हैं; आपके विरुद्ध आचरण करना हमको उचित नहीं। आप पूना आ कर प्रधानशक्ति ग्रहण कीजिये।

१७५७ ई०में ताराबाई इस प्रकार पूना बुलाई गईं। रामराज भी कुछ दिनोंके लिए मुक्त हुए, किन्तु रामराज ताराबाईकी इच्छाके विरुद्ध कार्य करने लगे। इससे ताराबाई रामराज पर अत्यन्त असन्तुष्ट हो गईं, उन्होंने दामाजी गायकवाड़ और रघुजी भोंसलेकी सहायतासे रामराजको कैद कर लिया और स्वयं सर्वेसर्वा हो गईं। बालाजी युद्धके लिए निजामराज्यमें गये थे, उनके लौटते ही ताराबाईको सम्पूर्ण अधिकारोंसे हाथ धोना पड़ा। मानसिक कष्टसे कुछ दिन बाद ताराबाईका स्वर्गवास हो गया।

२ बेदनूरकी प्रसिद्ध वीरबाला। बेदनूरके सोलङ्की-राज राव सुरतानकी कन्या थीं। अनहलवाड़के प्रसिद्ध वल्लहवंशमें सुरतानका जन्म हुआ था।

सुरतानके पूर्वपुरुषोंने कुछ समय तक तोड़थोड़ामें राज्य किया था। लयला नामका एक अफगानके सुरतानको वहांसे भगा कर उक्त राज्य अधिकार कर लेने पर सुरतानने बेदनूर आ कर आश्रय लिया था।

जिस समय पिताका भाग्य-परिवर्तन हुआ था, उस समय ताराबाई किशोरी थीं; वसन भूषण इन्हें अच्छे नहीं लगते थे, ये सर्वदा तलवारसे खेला करती थीं और घोड़े पर चढ़ कर बाणप्रयोग किया करती थीं। वीरबाला सर्वदा वीरवेशमें रहना पसन्द करती थीं। देखते देखते वीरबालाके कमनीय अङ्गोंमें यौवन भाव दिखलाई दिये। इनके रूप, गुण, बाणविद्या और अद्भुत तलवार फिरानेकी चर्चा शीघ्र ही राजपूतानेके वीर-समाजमें फैल गई। मेवाड़के राणा रायमलके तृतीय पुत्र जयमलने ताराबाईके साथ विवाह करनेके लिए प्रार्थना की। वीरबालाने जयमलको कहलवा भेजा, कि "जो थोड़ाका उद्धार करेंगे, ताराबाई उन्हींको

होगी।" जयमलने थोड़ा उद्धार करनेकी प्रतीक्षा की, किन्तु उनकी प्रतिज्ञा पूर्ण न होनेसे पिताके कराल कवलमें पड़ कर उन्हें अपनी जानसे हाथ धोना पड़ा। जयमलके भाई पृथ्वीराज माड़वारमें निर्वासित थे। थोड़े दिनमें उन्होंने महावीरत्व प्रकट कर गड़वार राज्य उद्धार किया, जिससे पिताने उनको क्षमा प्रदान की।

अब वीरवर पृथ्वीराज भाईकी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेको अग्रसर हुए। शत्रु मित्र सभी पृथ्वीराजके वीरत्वकी प्रशंसा करते थे। उस प्रशंसासे ताराबाईके श्रवणकुहर परितृप्त हुए। इधर पृथ्वीराजने ताराबाईके साथ विवाह करनेका प्रस्ताव किया। पिताके आदेशसे ताराबाईने पृथ्वीराजको पतिरूपमें वरण करनेके लिए सम्मति दे दी; किन्तु विवाहके समय इन्होंने कहा था कि, "यदि पृथ्वीराज थोड़ा उद्धार न करें, तो वे राजपूत ही नहीं हैं।" इस बातको पृथ्वीराज कभी न भूले थे।

मुहर्रमके दिन आये। थोड़ाके सभी मुसलमान उत्सवमें उन्मत्त थे। महासमारोहसे ताजिया निकल रहा था। दम्पती पचास चुने हुए अश्वारोहियोंके साथ थोड़ामें उपस्थित हुए। नगरके कुछ दूर पर सेनाको छोड़ कर पृथ्वीराज, ताराबाई और सेनगढ़के सामन्तोंने नगरमें प्रवेश किया। ताजियाके साथ अफगानके नायक भी सजधजके साथ जा रहे थे। वे बोल उठे—"ये नये तीन जने कौन हैं?" इतना कहनेके साथ ही पृथ्वीराजके बरछा और ताराबाईके तीरने मुसलमान-सर्दारको भूतलशायी कर दिया। उपस्थित सभी लोग अकस्मात् भीत और त्रस्त हो गये। वे क्या करेंगे, इस बातका निश्चय भी न कर पाये थे कि इतनेमें तीनों जने नगरके तोरणद्वारके पास पहुंच गये। वहां एक विराट्काय हस्तीने उनके गन्तव्य पथमें बाधा पहुंचाई, वीरबाला ताराबाईने तलवारसे उसका मस्तक काट कर जानेका मार्ग साफ कर दिया।

थोड़ी ही देरमें राजपूत-सेनाने अफगानों पर आक्रमण किया। अफगान-सेना तितर बितर हो गई। थोड़े ही आयाससे थोड़ेका उद्धार हो गया। इसके बाद पृथ्वीराज मालवेश्वरको बन्दी करके पिताके पास ले गये। इसके कुछ दिन बाद ही महावीर पृथ्वीराजका नवीन जीवनमुकुल इस प्रकारसे छिन्न हुआ—

जिस समय पृथ्वीराज अपने उद्धत भाई संग्रको शासित करनेके लिए श्रीनगरकी तरफ अग्रसर हो रहे थे, उस समय सिरोहीके सामन्तकी पत्नी अर्थात् उनकी स्नेहमयी भगिनीका एक पत्र मिला। इस पत्रसे उन्हें सामन्त प्रभुराव द्वारा उनकी भगिनीकी अशेष लाञ्छनाका हाल मालूम हुआ। भगिनीके कष्टको सुन उनका हृदय अधीर हो उठा। वे शीघ्र ही सिरोही पहुंचे और प्रासादकी प्राचीर उलंघ कर शाणित असि हाथमें लिए भगिनीपतिके शयनकक्षमें घुस गये। श्यालककी भीममूर्ति देख कर प्रभुरावके आत्माराम उड़ गये, उन्होंने स्त्री और शालकसे क्षमा-प्रार्थना की। यहां पृथ्वीराज चार पांच रोज रह कर चल दिये। आते समय प्रभुरावने इनको मार्गमें खानेके लिए कुछ लड्डू रख दिये। कमलमीरमें पहुंच कर पृथ्वीराजने उनमेंसे एक लड्डू खाया। मातादेवीके मन्दिरके पास पहुंचते पहुंचते उनका शरीर अवसन्न हो गया। उन्होंने अपना अन्तिम काल उपस्थित जान ताराबाईको संवाद दिया; किन्तु अन्त समय उनकी प्रणयिनीसे मुलाकात न हो पाई।

पतिकी अकालमृत्युका संवाद पा कर ताराबाईने चितारोहण किया। अब भी राजबाड़ेमें बहुतसे लोग वीरबाला ताराबाई और वीरवर पृथ्वीराजकी वीरगाथा और प्रणयकथा गाया करते हैं।

ताराबेगम—सम्राट् अकबरकी एक स्त्री। आगरेमें इनके ४० बीघेका एक उद्यान था, जो भग्नावस्थामें पड़ा है।

ताराभ (सं॰ पु॰) नारद।

ताराभूषा (सं॰ स्त्री॰) तारा भूषा भूषणं यस्याः, बहुव्री॰। रात्रि, रात।

ताराभ्र (सं॰ पु॰) तारः निर्मलः अभ्रो मेघइव शुभ्रत्वात्। कर्पूर, कपूर।

तारामण्डल (सं॰ क्ली॰) ताराणां मौक्तिकानां मण्डलं यत्र। १ ईश्वरमण्डलभेद, एक प्रकारका देवमन्दिर। ताराणां मण्डलं ६-तत्। २ नक्षत्रमण्डल, नक्षत्रोंका समूह या घेरा। ३ एक प्रकारकी आतशबाजी।

तारामण्डूरगुड़ (सं॰ पु॰) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—शुद्ध मण्डूर ८ पल, गोमूत्र १८ पल, गुड़ ८ पलमें विड़ङ्ग, चितामूल, चई, त्रिफला,

त्रिकटु प्रत्येकका १ पल डाल कर मृदुअग्निसे धीरे धीरे पाक करते हैं। सबकी पिण्डी हो जाने पर उसे स्निग्ध भाण्डमें रखते हैं। भोजन करनेके बाद १ तोला सेवन करनेका विधान है। इससे पित्तशूल, कामला, पाण्डु रोग, शोथ, मन्दाग्नि, अर्श, ग्रहणी, गुल्मोदर प्रभृति रोग जाते रहते हैं। (भैषज्यरत्ना० शूलाधि०)

तारामयी (सं० स्त्री०) तारायाः स्वरूपा स्वरूपे मयट्। तारास्वरूप।

तारामृग (सं० पु०) तारारूपः मृगः मृगशिरः। मृगशिरा नक्षत्र।

तारायण (सं० पु०) आकाश।

तारारि (सं० पु०) ताराणां अरिः, ६-तत्। विट्माक्षिक नामकी उपधातु।

तारावती—१ राजा चन्द्रशेखरकी पत्नी। आर्यावर्तके अन्तर्गत भोगवती नगरीमें इक्ष्वाकुवंशीय ककुत्स्थ नामके एक राजा थे। भर्गदेवकी कन्या मनोन्माथिनीके साथ उन्होंने विवाह किया था। इनके क्रमशः १०० पुत्र हुए। किन्तु कन्या एक भी न होनेसे ककुत्स्थकी पत्नीने कन्याकी इच्छासे चण्डिकाकी आराधना की। तीन वर्ष बाद चण्डिकाने सन्तुष्ट हो कर उनको स्वप्नमें यह वर दिया कि "स्त्रीलक्षणसम्पन्ना सार्वभौम राजाकी स्त्री और नक्षत्रमालायुक्त तुम्हारे एक कन्या होगी।" यथासमय मनोन्माथिनीके असामान्य सुन्दरी एक कन्या हुई। देवताके वरसे इस कन्यामें स्वाभाविक ताराका चिह्न था, इसलिए पिताने उसका नाम तारावती रक्खा। तारावतीका यौवनकाल उपस्थित देख उनके पिताने वैशाखमासके प्रारम्भमें वृद्धचन्द्र और शुभदिनको स्वयंवर-सभा करके चारों दिशाओंको दूत भेजे। इस संवादको पा कर सभी राजा सभामें उपस्थित हुए, पौष्यतनय चन्द्रशेखरराज भी नानाअलङ्कारोंसे विभूषित हो कर स्वयंवरसभामें पधारे।

तारावतीने स्वयंवरका वृत्तान्त सुन कर चण्डिकाके मन्दिरमें जा देवी कालिकाकी आराधना की। चण्डिकाने खुश हो कर कहा—'चन्द्रशेखर नामके महेश्वरावतार पौष्यतनय मनोहर रूपवान् है। उन्हींको तुम वरमाला देना।' तारावतीने कालिकाके आदेशानुसार सभामें जा कर चन्द्रशेखरको ही वरमाला प्रदान की।

अनन्तर चन्द्रशेखर अपनी पत्नी तारावतीको ले कर राजधानीको लौटे। ककुत्स्थकी चित्राङ्गदा नामकी दूसरी एक कन्या भी जो रूपमें तारावतीके समान थी, स्वयं दासियोंकी अधीश्वरी बन कर बड़ी बहनके साथ आई थीं। इनका उर्वशीके गर्भसे जन्म हुआ था। बाल्यकालमें एक दिन महर्षि अष्टावक्रको व्यङ्ग करनेसे, उनके शापसे ये तारावतीकी दासी हुई थीं। महाराज चन्द्रशेखरने दृषद्वती नदीके किनारे करवीरपुर नामका एक नगर बसाया था और वहीं वे बहुत दिन सुखसे रहते थे। एक दिन तारावती दृषद्वती नदीमें स्नान कर रही थीं, इतनेमें एक कपोत नामक ऋषिकी इन पर दृष्टि पड़ी और वे इन पर आसक्त हो गये। ये ऋषि प्राणिवधकी आशङ्कासे कपोत-शरीर धारण कर विचरण कर रहे थे, इसलिए इनका नाम कपोत ऋषि पड़ा गया था।

कपोतने अत्यन्त कामातुर हो कर इनसे विषयभोगकी इच्छा प्रगट की। तारावती डर गईं और मुनिको प्रणाम कर कहने लगीं "मैं चन्द्रशेखरकी पत्नी हूं, मेरा नाम है तारावती, मैं किस तरह सतीत्वधर्मको छोड़ सकती हूं?" महर्षिने कहा-"डरो मत, मैं तुम्हारे द्वारा सर्वलक्षणसम्पन्न महाबलशाली पुत्रद्वय उत्पन्न करूंगा, यदि तुम मेरी बात न मानोगी, तो मैं शाप द्वारा तुम दोनोंको भस्म कर दूंगा।" तारावतीने उत्तर दिया--"आप कुछ देर ठहर जायें।' इतना कह कर तारावती घरको चली गई और अपनी बहनसे कहने लगी--'तुम मेरे समान रूपवती हो तुम्हारे सिवा अब मुझे इस विपत्तिसे अन्य कोई भी उद्धार नहीं कर सकता।" चित्राङ्गदा कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही, पीछे तारावतीके आदेशानुसार मुनिके पास चल दीं।

चित्राङ्गदाके अनूढ़ावस्थामें ही मुनिके औरससे सुवर्चा और तुम्बुरु नामक दो पुत्र हुए। इस तरह चित्राङ्गदा कपोत मुनिके पास रहने लगीं। और एक दिन तारावती उक्त दृषद्वती नदीमें स्नान कर रही थीं। इसी समय उक्त मुनिने चित्राङ्गदासे पूछा—"यह अलोकसामान्या सुन्दरी कौन है?" चित्राङ्गदाने डरते हुए उत्तर दिया—"ये राजा चन्द्रशेखरकी पत्नी और मेरी बड़ी बहन तारावती हैं। पुनः इस नदीमें स्नान करनेको आई

हैं, आप इनको क्षमा कीजिए।" कपोतको सब भेद मालूम पड़ गया। वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए; तारावतीके पास जा कर कहने लगे—"तारावती! तूने मुझे धोखा दिया है, उसका फल भोग। मेरे शापसे वीभत्सवेशधारी विरूप धनहीन नरकपाल कोई लोभी वृद्ध सहसा तुझे ग्रहण करेगा और एक वर्षके भीतर तेरे गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न होंगे।" इस पर तारावतीने कहा कि 'यदि मैं सच्ची सती हूं और मेरी माताने यदि मुझे चण्डिकाकी आराधना करके प्राप्त किया हो, तो निश्चय समझें, देवताके सिवा कोई भी मेरा स्पर्श न कर सकेगा।'

इतना कह कर तारावती अपने घरको लौट गईं और राजा चन्द्रशेखरसे मुनिके शापका हाल कह सुनाया। राजा चन्द्रशेखर इस वृत्तान्तको सुननेके बाद सर्वदा तारावतीके पास रहने लगे। एक दिन कुछ देरके लिए चन्द्रशेखर पास न थे, तारावती उन्नतचित्तसे चन्द्रशेखरके ध्यानमें नियुक्त थीं। इसी समय महादेवने पार्वतीसे कहा—"हे पार्वती, तुम इस तारावतीके शरीरमें प्रविष्ट होओ, मैं उस पर उपगत हो कर मुनिका शाप मोचन करूं। तारावती तुम्हारा ही अंश है। इसके गर्भसे भृङ्गी और महाकाल उत्पन्न हो कर तुम्हें शापसे मुक्त करेंगे।" पीछे पार्वतीने तारावतीके शरीरमें प्रवेश किया। महादेवने तारावतीको मुग्ध करके अस्थिमाल्यधारी वीभत्सवेश दुर्गन्धदेह जराजीर्ण और अति विरूप शरीर धारण कर तारावतीसे सम्भोग किया।

उसी समय तारावतीके गर्भसे बानरमुख दो पुत्र उत्पन्न हुए। पुत्र उत्पन्न होते ही पार्वती तारावतीकी देहसे निकल आईं।

जब मोह दूर हुआ, तब तारावती सामने वीभत्सवेशधारी महादेव और सद्योजात वानरमुख दो पुत्रोंको देख कर अत्यन्त विमर्ष हुईं और अपनेको भ्रष्ट समझ कर नाना रूप विलाप करने लगीं। इतनेमें चन्द्रशेखर भी वहाँ आ पहुंचे, वे भी तारावतीको इस अवस्थामें देख कर अत्यन्त दुःखित चित्तसे विलाप करने लगे। इसी समय आकाशवाणी हुई—"राजन्! तारावती पर किसी तरहका सन्देह न करें। सचमुच महादेव ही भार्याके पास आये थे, ये दोनों महादेवके ही पुत्र हैं। आप इनकी रक्षा करें। इसका पूरा वृत्तान्त नारदसे मालूम पड़ेगा।" एक दिन नारदने चन्द्रशेखरके घर उपस्थित हो कर तारावती और चन्द्रशेखरसे कहा—"राजन्! महादेवने सावित्रीके शापने पार्वतीको इस देहमें प्रविष्ट करा कर उस पर उपभोग किया था, आप इसको भ्रष्ट न समझें। आप स्वयं भी महादेव हैं और तारावती भी साक्षात् पार्वती हैं; अब आप अपनेमें शिवत्वका अनुभव करें।"

नारदकी इस बातको सुन कर, चन्द्रशेखर अपनेमें शिवत्वका और तारावती अपनेमें साक्षात् पार्वतीका अनुभव करने लगीं। पूर्वकालमें विष्णुमायाने अपनेको दो मनुष्य योनिमें मुग्ध किया था। इसी कारण मनुष्य शरीर द्वारा अपने शिवत्वका अनुभव नहीं कर सके थे। इस तरह उनका सन्देह दूर हो गया। तारावतीके गर्भसे उत्पन्न चन्द्रशेखरके तीन पुत्र हुए—बड़ा उपरिचर, मझला दमन और छोटा अलर्क। तारावतीके गर्भसे वेताल और भैरव महादेवके सद्योजात दो पुत्र थे। इस तरह कुल ५ पुत्र थे। पीछे पति-पत्नी दोनों मनुष्यदेह छोड़ कर शिव और गौरीमें मिल गये। (कालिकापु० ४८-५३ अ०) २ काञ्चनपुरके राजा धर्मध्वजकी पत्नी।

तारावर्ष (सं० क्ली०) तारापतन, ताराओंका गिरना।

तारावली (सं० स्त्री०) मणिभद्र यक्षकी कन्या।

ताराषोढा (सं० स्त्री०) तारायाः षोढ़ा, ६-तत्। तारापूजाङ्ग षोढ़ान्यासभेद।

तारास्थान—एक सुरका नाम।

तारिक (सं० क्ली०) तॄ-णिच्-ठन्। अतइनिठनौ। पा ५।२।११५। तारणमूल्य, नदी आदि पार उतारनेका भाड़ा या महसूल, उतराई।

> "गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः।
> ब्राह्मणा लिंगिनश्चैव दाप्यास्तारिकं तरे॥" (मनु ८।४०७)

गर्भिणी स्त्री, भिक्षु, वानप्रस्थाश्रमी मुनि, ब्राह्मण, लिङ्गी और ब्रह्मचारी इन सबसे तरपण्य (महसूल) नहीं लेना चाहिये।

तारिका (सं० स्त्री०) ताड़िका डस्य र। तालरसजात मद्यभेद, ताड़ी नामक मद्य।

तारिणी (सं॰ स्त्री॰) तारिन्-ङीप्। १ बौद्धोंकी एक देवी। इसके पर्याय—तारा, महाश्री, ओंकार, स्वाहा, श्री, मनोरमा, जया, अनन्ता, शिवा, लोकेश्वरात्मजा, खपुरवासिनी, भद्रा, वैश्या, नीलसरस्वती, शङ्खिनी, महातारा, वसुधारा धनदा, त्रिलोचना और लोचना। २ द्वितीया महाविद्या। महोग्रा, तारा, उग्रा, वज्रा, काली, सरस्वती, कामेश्वरी और चामुण्डा ये आठ तारिणी हैं। इनकी आराधना करनेसे मनुष्य कवित्व, पाण्डित्य और धन पाते हैं तथा राजसभामें और विवाह प्रभृति सब कामोंमें जय लाभ करते हैं।

३ उद्धारिणी, उद्धार करनेवाली।

तारिन् (सं॰ त्रि॰) तारयति तॄ णिच्-णिनि। तारक, उद्धार करनेवाला।

तारी (हिं॰ स्त्री॰) १ एक प्रकारकी चिड़िया। २ समाधि, ध्यान।

तारीक (फा॰ वि॰) १ स्याह, काला। २ धुँधला, अँधेरा।

तारीकी (फा॰ स्त्री॰) १ स्याही। २ अन्धकार।

तारीख (अ॰ स्त्री॰) १ महीनेका हरएक दिन। २ वह तिथि जिसमें पूर्वकालके किसी वर्षमें कोई विशेष घटना हुई हो। ३ नियत तिथि। ४ इतिहास, तवारीख।

तारीफ (अ॰ स्त्री॰) १ लक्षण, परिभाषा। २ विवरण, वर्णन। ३ प्रशंसा, श्लाघा, बखान। ४ प्रशंसाकी बात, सिफ़त।

तारुक्षायणि (सं॰ पु॰) तारुक्षके वंशज।

तारुक्ष्य (सं॰ पु॰) तरुक्षस्य ऋषेरपत्यं पुमान्; तरुक्षगर्गादित्वात् यञ्। तरुक्ष ऋषिके वंशज।

तारुक्ष्यायणी (सं॰ स्त्री॰) तरुक्षस्य ऋषेरपत्यं स्त्री तरुक्षष्फ। सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः। पा ४।१।१८। तरुक्ष ऋषिकी अपत्य स्त्री।

तारुण (सं॰ पु॰-स्त्री॰) तरुणस्य अपत्यं उत्सादित्वात् अञ्। १ तरुण ऋषिके वंशज। (त्रि॰) स्त्रियां ङीप्। २ तरुण, छोटी उम्रका।

तारुण्य (सं॰ क्ली॰) तरुणस्य भावः तरुणब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। यौवन, जवानी।

तारेय (सं॰ पु॰) तारायाः अपत्यं तारा-ठक्। १ वालिके पुत्र अङ्गद। २ बृहस्पतिकी स्त्री ताराके पुत्र बुध।

तार्कव (सं॰ त्रि॰) तार्कोर्विकारः तर्कोरवयव इति वा तर्कु-अण्। कोपधाच्च। पा ४।३।१३७। तर्कु या टेकुआका विकार।

तार्किक (सं॰ त्रि॰) तर्कं वेत्ति तर्कशास्त्रमधीते वा तर्क-ठक्। १ तर्कशास्त्रवेत्ता, तर्कशास्त्रका जाननेवाला। २ तर्कशास्त्राध्ययनकारी, तर्कशास्त्रका पढ़नेवाला। तर्कशास्त्रके छः भेद हैं—वैशेषिक, औलुक्य, बार्हस्पत्य, नास्तिक, लोकायतिक (बौद्धभेद) और चार्वाक। जो इन सब शास्त्रोंको पढ़ते हों या अच्छी तरह जानते हों वे ही तार्किक हैं। तर्क देखो

तार्क्ष (सं॰ पु॰) तृक्ष एव अण्। १ कश्यप ऋषि। २ विनताके गर्भसे उत्पन्न कश्यपका पुत्र गरुड़।

तार्क्षज (सं॰ क्ली॰) रसाञ्जन।

तार्क्षाक (सं॰ पु॰-स्त्री॰) तृक्षाकस्य अपत्यं तृक्षाक-अण्। शिवादिभ्योऽण्। पा ४।१।११२। तृक्षाकके वंशज।

तार्क्षी (सं॰ स्त्री॰) तार्क्ष-गौरा॰ ङीष्। पातालगरुड़ लता, छिरेंटी, छिरिहटा।

तार्क्ष्य (सं॰ पु॰) तार्क्षस्य अपत्यं तार्क्ष-ष्यञ् (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५।१ तृक्षमुनिके गोत्रज। २ गरुड़ाग्रज अरुण, गरुड़के बड़े भाई अरुण। ३ गरुड़। ४ अश्व, घोड़ा। ५ सर्प, साँप। ६ शालवृक्ष ७ स्वर्ण, सोना। ८ अश्वकर्ण वृक्ष, एक प्रकारका शालवृक्ष। ९ स्यन्दन, रथ। १० पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम। ११ विहगमात्र, एक प्रकारका पक्षी। १२ क्षत्रियविशेष। १३ महादेव। (क्ली॰) १४ रसाञ्जन।

तार्क्ष्यकेतन (सं॰ पु॰) तार्क्ष्यः केतनः यस्य, बहुव्री॰। गरुड़ध्वज, विष्णु।

तार्क्ष्यज (सं॰ क्ली॰) तार्क्ष्ये पर्वते जायते जन-ड। रसाञ्जन, रसोत।

तार्क्ष्यध्वज (सं॰ पु॰) तार्क्ष्यो ध्वजोऽस्य, बहुव्री॰। गरुड़ध्वज, विष्णु।

तार्क्ष्यनायक (सं॰ पु॰) तार्क्ष्याणां सर्पाणां नायकः प्रापकः, ६-तत्। गरुड़। इसने अपनी माताके दासत्वकालमें सर्पोंको वहन किया था।

तार्क्ष्यनाशक (सं॰ पु॰) तार्क्ष्याणां सर्पाणां नाशकः, ६-तत्। सर्पनाशक गरुड़।

तार्क्ष्यप्रसव (सं० पु०) अश्वकर्णवृक्ष, एक प्रकारका शालवृक्ष। (राजनि०)

तार्क्ष्यशैल (सं० क्लो०) रसाञ्जन, रसोत।

तार्क्ष्यसामन् (सं० क्लो०) सामभेद। (लाट्यायन १।६।१६)

तार्क्ष्यायण (सं० पु०-स्त्री०) तृक्षस्य ऋषेरपत्यं युवा गर्गादित्वात् यञ, यूनि फक्। तृक्षऋषिके युवा अपत्य।

तार्क्ष्यायणी (सं० स्त्री०) तृक्षस्य गोत्रापत्यं स्त्री तृक्ष-लोहितादित्वात् ष्फ। तृक्ष ऋषिकी वंशज स्त्री।

तार्क्ष्यी (सं० स्त्री०) वनलताविशेष, एक वनलताका नाम।

तार्ण (सं० त्रि०) तृणस्य इदं शिवादित्वात्-अण्। १ तृण सम्बन्धी, जो घाससे बना हो। २ तृणजन्य वह्नि, घाससे उत्पन्न अग्नि। तृणात् तद्विक्रयात् स्थानादागतः शुण्डिकादि० अण्। ३ तृणविक्रयरूप अर्थ स्थानजात कर, वह कर या महसूल जो घास पर लगाया जाता है।

तार्णक (सं० त्रि०) तृणानि सन्त्यस्मिन् छण, कुक्, च तोर्णकोयास्तस्मिन् भवः विल्वकादित्वात् छ मात्रस्य लुक्। तृणयुक्त देशभेद, वह स्थान जहां घास बहुत होती हो।

तार्णकर्ण (सं० पु०-स्त्री०) तृणकर्णस्य ऋषेरपत्यं शिवादित्वात् अण्। तृणकर्ण ऋषिके वंशज।

तार्णविन्दवीय (सं० त्रि०) तृणविन्दुः देवता अस्य तृणविन्दु-छ। छ च। पा ४।२।२८। तृणविन्दुके उद्देशसे जो दिया जाय।

तार्णायन (सं० पु०-स्त्री०) तृणस्य ऋषेर्गोत्रापत्यं नड़ादित्वात् फक्। तृण नामक ऋषिके वंशज।

तार्त्तीय (सं० त्रि०) तृतीय एव स्वार्थे अण्। तृतीय पादन्यास।

तार्त्तीयसवन (सं० त्रि०) तृतीय सवन सम्बन्धीय।

तार्त्तीयाह्निक (सं० त्रि०) तृतीय दिन सम्बन्धीय, जो तीसरे दिन होता हो।

तार्त्तीयिक (सं० त्रि०) तृतीय एव स्वार्थे ईकक्। तृतीय, तीसरा।

तार्प्य (सं० क्लो०) तृप-ण्यत्। तृपा नामक लताजात वस्त्रभेद, तृपा नामक लतासे बना हुआ वस्त्र। इसका व्यवहार वैदिक कालमें होता था।

तार्य (सं० त्रि०) तर-कर्मणि ण्यत्। १ तरणीय, पार होने योग्य। तरे तरणे देयं यत्र्। २ तरणार्थ देय शुल्क, नदी आदि पार उतारनेका भाड़ा, उतराई।

तार्ष्टांघ (सं० पु०) वृक्षभेद, एक पेड़का नाम।

ताल (सं० पु०) तल एव-अण्। १ करतल, हथेली। ताड्यते तड़-कर्मणि अच् ड़स्य ल। (क्लो०) २ हरिताल, हरताल। ३ तालीशपत्र, तेजपत्तेकी जातिका एक पेड़। ४ दुर्गाके सिंहासनका नाम। ५ करतलध्वनि, ताली। ६ वह शब्द जो अपने जंघे या बाहु पर जोरसे हथेली मारनेसे उत्पन्न होता है। ७ हाथियोंके कान फटफटानेका शब्द। ८ लम्बाईकी एक माप, बित्ता। ९ ताला। १० मजीरा या झांझ नामका बाजा। ११ चश्मेके पत्थर या कांचका एक पल्ला। १२ विल्वफल, वेल। १३ तलवारकी मूठ। १४ एक नरक। १५ महादेव। १६ वृक्षविशेष, ताड़का पेड़। ताड़शब्द देखो। १७ पिङ्गलमें ढगणके दूसरे भेदका नाम जो एक गुरु और एक लघुका होता है—ऽ।

१८ गीतके काल और क्रियाका परिमाण नाचने और गानेमें उसके काल और क्रियाका परिमाण जो बीच बीचमें हाथ पर ठोंक कर सूचित किया जाता है। यह स्वर इतने समय तक गाया जाता है, इस काल तक विलम्बित होता है, इस काल तक द्रुत है, इत्यादि विषयों तथा अंगुलियोंके आकुञ्चन और प्रसारण आदिके द्वारा गीत और नृत्यादि विषयके काल और क्रियाके परिमाणका नाम ही ताल है। गाने और बजानेमें उसके काल और क्रियाके परिमाणविशेषको ताल कहते हैं। क्रियाके द्वारा अखण्ड दण्डायमान कालके छन्दोनुयायिक परिमाणविशेषका नाम भी ताल है।

महादेव और पार्वतीके नाचनेसे तालकी उत्पत्ति हुई है। महादेवने ताण्डव और पार्वतीने लास्य नृत्य किया था। ताण्डवका 'ता' और लास्यका 'ल' इन दो अक्षरोंसे "ताल" शब्दकी उत्पत्ति हुई है।

(मधुसूदन, अमरटीकायां भरत)

गीत, वाद्य और नृत्य, ये तीनों ताल द्वारा प्रतिष्ठित हुए हैं। इसके दो भेद है—मार्गताल और देशी ताल। भरतमुनिके मतानुसार मार्गताल ६० प्रकारका है;

यथा—१ चच्चत्पुट, २ चाचपुट, ३ षट्पितापुत्रक, ४ उत्घट्टक, ५ सन्निपात, ६ कङ्कण, ७ कोकिलारव, ८ राजकोलाहल, ९ रङ्गविद्याधर, १० शचीप्रिय, ११ पार्वतीलोचन, १२ राजचूड़ामणि, १३ जयश्री, १४ वादिकाकुल, १५ कन्दर्प, १६ नलकुवर, १७ दर्पण, १८ रतिलीन, १९ मोक्षपति, २० श्रीरङ्ग, २१ सिंहविक्रम, २२ दीपक, २३ मल्लिकामोदक, २४ गजलील, चर्चरी, २६ कुहक, २७ विजयानन्द, २८ वीरविक्रम, २९ टेङ्किक ३० रङ्गाभरण, ३१ श्रीकीर्त्ति, ३२ वनमाली ३३ चतुर्मुख, ३४ सिंहनन्दन, ३५ नन्दीश, ३६ चन्द्रबिम्ब ३७ द्वितीयक, ३८ जयमङ्गल, ३९ गन्धर्व, ४० मकरन्द, ४१ त्रिभङ्गि, ४२ रतिताल, ४३ वसन्त, ४४ जगज्झम्प, ४५ गारुगि, ४६ कविशेखर, ४७ घोष, ४८ हरवल्लभ, ४९ भैरव, ५० गतप्रत्यागत, ५१ मल्लताली, ५२ भैरवमस्तक, ५३ सरस्वतीकण्ठाभरण, ५४ क्रीड़ा, ५५ निःसारु, ५६ मुक्तावली, ५७ रङ्गराज, ५८ भरतानन्द, ५९ आदितालक और ६० सम्पर्केष्टाक इसी प्रकार १२० देशी ताल बताये गये हैं। भिन्न भिन्न मतके प्राचीन ग्रन्थोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके तालोंके नाम और संख्याओंमें भी पार्थक्य पाया जाता है। इन तालोंमें से आजकल बहुत ही थोड़े प्रचलित हैं। किन्तु उनमें मात्रा आदिके नियम नहीं मिलते। उनके नाम और मात्राका विवरण नीचे अकारादिक्रमसे दिया जाता है।

चिह्नोंका परिचय इस प्रकार है—ह्रस्वमात्राका चिह्न (।), दीर्घमात्राका चिह्न (॥), प्लुतका चिह्न (⦀), द्रुतका चिह्न (˘), अनुद्रुतका चिह्न (+), विरामचिह्न (,), विभिन्नताका चिह्न १।२ इत्यादि।

अट्टताली—१। (˘ । ।)—२। (˘ ˘ । ।)

अनङ्गताल—१। (। ॥ । । । ॥)—२। (। ˘ । । ॥)

अन्तरक्रीड़ा—(˘ ˘ ˘)

अभङ्ग—१॥ (॥ ⦀)—२। (। । । ॥)

अभिनन्द—(। । ˘ ˘ ॥)

अर्जुनताल—(˘ । ˘ । ˘ ˘ ˘ । ˘ ।)

अष्टताली—(× × ˘ ।)

असम (कङ्काल)—(। ॥ ॥)

आड़ खेमटा—यह अब भी प्रचलित है, इसमें १२ मात्राएं होती हैं। किसी किसीके मतसे, यह ताल साड़े तेरह मात्राओंका होता है, इसमें तीन थपकी लगा कर एक बार विराम होता है।

ठेका—

+ ।   ।   ।   १ ।   ।
धागे   त्रेकेटे   घेने   धागे   धागे

।   ० ।   ।   ।   १ ।
तेने   ताके   त्रेकेटे   घेने   धागे

।   ।
धागे   घेने ::

आड़ा चौताला—यह वर्तमानमें प्रचलित है। इसमें ७ मात्राएं होती हैं; चार ताल और तीन खाली।

ठेका—

+ ।   १ ।   ० ।   १ ।   ० ।   १ ।   ० ।
धागे   धादा   दिस्ता   कत्ति   नाधा   त्रेकेट् धा   दिस्ता ::

इसका दूसरा नाम छोटा चौताला है।

आड़ा ठेका—यह ताल प्रचलित है इसमें ९ मात्राएं हैं; तीन ताल और एक खाली छोड़ना पड़ता है।

ठेका—

+ ।   । +   १ ।   ० ।   । +   । +
धिधि   ताधि   धिधा   तिति   ताधि   धि धा ::

आदिताल—(।)

इसमें एक लघुताल होता है।

इड़ावान्—(˘ । ˘ ˘ ।)

उत्सव—(। ⦀)

उदीक्षण—(। । ॥)

उद्घट्ट—(॥ ॥ ॥)

उद्दण्ड—१। (˘ ˘ ।)—२। (˘ , ।)

एकताली वा एकतालिका—

१। रामा (˘), २। चन्द्रिका (।, ॥), ३। प्रसिद्धा (। ˘ ।), ४। विपुला—(× ˘, ।), ५। (˘ ·), ६। (× ˘ ˘ ˘ ।), ७। (˘ ॥)

प्रचलित एकतालमें ६ दीर्घ मात्राएं पाई जाती हैं। यह बारह मात्राका ताल है। कोई कोई इसको तीन और कोई चार पदोंमें विभक्त करते हैं। जो तीन पदोंमें विभक्त करते हैं, वे कहते हैं कि इसमें खाली ताल नहीं है; और जो चार पदोंमें विभक्त करते हैं, वे इसमें खाली है, ऐसा बतलाते हैं।

ठेका—

+ ।   ।   ।   ।   १ ।   ।   ।   ।
(·) धिन् धिन् धा धा, तिन् ता कत् ते.
१ ।   ।   ।   ।
धागे नागे धिन धा ::

+ ।   ।   ।   १ ।   ।   ।   ० ।   ।
(२) धिन् धिन् धा धा, थुन् ना, कत् ते
।   १ ।   ।   ।
धागे त्रेकेटे धिन् धा ::

कोई इसमें बारह मात्राओंको जगह ६ ही मात्राएं बतलाते हैं, सो एक ही बात है।

कङ्कण—(॥ ॥। । ॥। ।)

कङ्काल—१। पूर्ण (ँ ँ ँ ँ ॥) मतान्तरमें—(ँ ँ ँ ँ । ॥), २। खण्ड (ँ ँ ॥ ॥) मतान्तरमें (ँ ँ ॥), ३। सम (॥ ॥ ।), ४। असम (। ॥ ॥)

कन्दताल—१। (॥ । ॥ ँ ँ ॥ ॥), २। (। ँ ँ)

कन्दर्प—१। (ँ ँ ॥। ॥ ।)-२। ँ ँ)

कन्दुक—१। (। । । । ॥), २ (ँ ँ,)

करण—(॥)

करणयति—(ँ ँ ँ ँ)

कलध्वनि—(। । ॥। ॥ ।)

कल्याण—(+ + +)

कव्वाली—यह ताल अब भी प्रचलित है।

कव्वाली-श्रेणीके गायक प्रायः इस तालका व्यवहार करते हैं, इसलिए इसका नाम कव्वाली पड़ गया है। यह तिताली और द्रुततिताली नामसे परिचित है। द्रुततिताली (जलदतिताल), श्लथतिताली (धीमा तिताला), मध्यमान और आड़ा ठेका ये सभी एक जातिके हैं; सिर्फ द्रुतविलम्बित बजानेसे एक ही बोलसे उक्त सभी वाद्य साधे जा सकते हैं। मध्यमानको दूना द्रुत करनेसे कव्वाली, मध्यमान और द्रुत कव्वालीसे विलम्बित होनेसे जलदतिताल और मध्यमान विलम्बित होनेसे धीमा तिताला हो सकता है। मध्यमानको कुछ आड़ा बजानेसे आड़ा ठेकाका बोल हो सकता है; इसका ताल चार मात्राओंका है और एक खाली पड़ता है।

ठेका—

१+   ।   । १   ।
(१) धा धिन् दिन्त, तेत् धागे त्रेकेटे दिन
। ०   ।   । १   ।
ता धिन् तिन् ता, कत् तागे त्रेकेटे दिन ::

।+   ।   १ ।
(२) धा धिन् धिन् धा, ता धिन् धिन् ता,
। ०   ।   । १
ता तिन् तिन् ता ना धिन् धिन् ता ::

;+   । १
(३) धा धिन् धा, ना धिन् धा,
। ०   । १
तिन् तिन् ता, ना धिन् धा ::

तीसरा ठेका द्रुत बजाते समय और सितारके साथ अधिक बजाया जाता है।

कहरवा—यह ताल वर्तमानमें प्रचलित है। इसमें दोताल और पांच मात्राएं हैं। ठेका—

+।   ।ँ   १।   ।
धिधि कत् नाक् दिन ::

काश्मीरी खेमटा—वर्तमानमें प्रचलित है। ठेका—

+ ँ   ०   ँ
धिक्ना धा तिता ::

कीर्तिताल—१। (। ॥। ॥ । ॥।), २। (। ॥। ॥ । ॥)

कुड्क—(ँ ँ । ।)

कुण्डनाचि—(ँ ॥, ँ ॥, ँ ँ ँ ँ ।, ॥)

कुण्डल—१। (ँ ँ । ।), २। (ँ । । । । ।ँ ॥ ँ ।)

कुविन्दक—(। ँ ँ ॥ ॥।)

कुमुद—१। (। ँ । ॥), २। (। ॥)

कुम्भताल—(× , । × ँ, ॥)

कोकिलप्रिय—(। । ॥।)

क्रीड़ाताल (ँ ँ,)

खण्ड—(कङ्काल)—(ँ ँ ॥ ॥); २। (ँ ॥)

खण्डताल—(ँ ँ ॥ +)

खयरा—प्रचलित है। कोई कोई इसको खरता भी कहते हैं। ठेका—

+ ।   ।   । १   ।   ।
धाक् धिधा धिधि धाक् तित् ::

खामसा—प्रचलित है; ठेका—

+ ०   ०   ०
।   ।   ।   ।   ।   ।   ।
धा केटे नाक दित् थूना केटे ताक थुन्ना ::

खेमटा—प्रचलित है। इसमें ६ मात्राएं हैं, किसीके मतसे चार भी हैं। ठेका—

+ . १ ˘ . १ ˘
। । । । ।
(१) धाटे घे, नाते ने, ताटे घे, ना घेने : :

× १ १
। । । ।
(२) धागेधि नातिन् नाक्धि नातिन् : :

गज—(।।।।)

जगधम्प—(॥ ° ˘ ˘ ,)

गजलील—(।।।।,)

गारुगि—(˘ ˘ ˘ ,)

गार्ग—(˘ ˘ ˘ ˘ ,)

गौरी—(।।।।।)

घटकर्कट—(॥॥॥।॥॥॥।।॥ ˘ ˘ ˘ ॥।।॥॥।
।।॥ ˘ ˘ ˘ ˘ ˘ ,।,।,।,)

चच्चत्पुट—(॥॥।॥।)

चच्चरी—१ (˘˘ ,। ˘˘ ,। ˘˘ ,। ˘˘ , ˘˘ ।)
२। (˘˘ , ˘˘ , ˘ , ˘˘ , ˘ , ˘˘ , ˘˘ , ˘˘ ,)

चण्डताल—(˘ ˘ ˘ ˘ ।।)

चतुरस्र—(॥। ˘ ॥)

चतुर्थताल—(।। ˘)

चतुर्मुख—(।॥।॥)

चतुस्ताल—प्रचलित है—१। (॥ ˘),२। (˘ ।)

चन्द्रकला—१। (।।।,)—२। (॥॥॥।॥।॥॥।)

चन्द्रक्रीड़—(+।)

चन्द्रताल—(।।॥॥॥॥ । ˘ ˘ ˘ ,)

चन्द्रिका (एकताली)—(,॥)

चाचपुट—(॥।।॥)

चित्रताल—(। ´)

चौताल—अब भी प्रचलित है। इसमें ६ दीर्घ मात्राएं हैं, जिनमें १।३।५।६ इन चार पदोंमें आघात और २।४में खाली लगता है। चौतालके पद दो मात्रावाले होते हैं, इसमें चार आघात लगते हैं, इसीलिए इसका नाम चौताल पड़ा है। यथा—

।+ । ।०। ।१ । ।०
(१) धा धा धिन्ता कत् तेटे, ते टे ता
।१ । ।१ ।
तेटे कता गेदि घिना : :

।+ । ।० । ।१ । ।० ।
(२) धा गे, दिन् ता कत् तागे दिन ता,
।१ । ।१ ।
तेटे कता गेदि घिनि : :

छोटा चौताल—प्रचलित है। इसमें ७ मात्राएं होती हैं, जिसमें ४ आघात और ३ खाली होती हैं। इसको आड़ा चौताला भी कहते हैं।

जगझम्प—(।॥ ˘)

जगणमञ्च—(।॥।)

जनक—१। (।।।।॥॥॥।॥॥)—२। (।॥॥॥॥
॥॥)

जयताल—१। (।॥।।। ˘ ॥।), २। (।॥।), ३।
।।। ˘ ˘ ˘ ।।।)

जयमङ्गल—१। (।।॥॥॥), २। ॥॥॥॥)

जयश्री—१। (।॥।।॥), २। ॥।॥।॥)

जलद तिताला—वर्तमानमें प्रचलित है। यही द्रुत-त्रिताली नामसे प्रसिद्ध है। किसी किसीके मतसे यह कव्वालीसे किञ्चित् विलम्बित है। कव्वाली देखो।

झम्पताल—१। (˘˘, ।), २। (˘ ,), ३। (˘, +), ४। वर्तमानमें प्रचलित झँपताल—(॥॥।,॥॥,) इसमें चार पद और दश मात्राएं होती है। बोल—

+ १
। । । ।
धा गे धा गे दिन्
० १
। । । ।
ता के धा के दिन् : :

टङ्क—(॥ । ॥ +)

ठुमरी—वर्तमानमें प्रचलित चार ह्रस्वमात्राका ताल। इसमें दो आघात और दो खाली होती हैं। बोल—

+ ० १ ०
। । । ।
(१) धेधा, किटि, नेधा, किटि, : :
(२) ताताकि, धून धा, थुना : :
(३) धाक् धिन धेधा गेदिन : :
(४) धागे धिनधिन धागे धिनधिन : :

ढेङ्किका—(॥ । । ।)

तिश्रोट—वर्तमानमें प्रचलित चार पदोंवाला एक ताल। इसमें ३ आघात और १ खाली लगता है। प्रथम और तृतीय पदमें तीन तथा द्वितीय और चतुर्थ पदमें चार मात्राएं होती हैं। कभी कभी दो साई और चार ह्रस्वमात्राएं भी व्यवहृत होती हैं। बोल—

+ १
। । । । । । ।
धिन धा त्रेकेटे धिन धिन धा त्रेकेटे

० १
। । । । ।
तिन ता त्रेकेटे धिन धिन धा त्रेकेटे ::

तुरगलील वा तुरङ्गलील—१। (, ˝,), २। (˝ । । । ॥ ।)

तृतीयताल—१। (˝ ,)—२। (। ,)

तेवरा—वर्तमानमें प्रचलित है। यह तीव्र ताल है। इसमें ३ पद और ७ मात्राएं होती हैं। प्रथम और द्वितीय पदमें दो दो मात्राएं और तीसरे पदमें तीन मात्राएं हैं। बोल—

+ १ १
। । । । । ।
धा धिनि नाक धागे नागे धिनि नाक ::

तोम्बुली—(। । ,)

त्रिपुट—(˝ ˝ ।)

त्रिभङ्गी—इसका प्रचलन प्रायः जैनोंमें अधिक पाया जाता है; पूजाके अष्टकादिमें ऐसे तालका व्यवहार होते हैं।—१। (। । ॥ ॥), २। (॥ । । ॥)

त्रिभिन्न—१। (। ॥ ॥ ।), २। (। ॥ ˝)

त्रास—(। । ˝ ˝ । ।)

दर्पण—(˝ ˝ ॥)

दीपक—१। (˝ । ॥ ˝ । ॥), २। (˝ ˝ । । ॥ ॥)

दुर्वल— ˝ ˝ । ।)

दोवहार—यह अब भी प्रचलित और १२ मात्राओंका ताल है। इसमें तीन खाली और सम् द्विमात्रा काल स्थायी होता है। बोल—

+ ० १ १
। । । ।
धा धिन्नाक तेरेकेटे गेदे घिनि

१ १ १
। । । ।
खिटिताक धिनताक धूमाकिटि थुनथुन

१ १ १
। । ।
नाकदित् धाधा घिटिताक ::

द्रुतत्रिताली—वर्तमानमें प्रचलित ८ दीर्घ मात्राओंका ताल। कोई कोई इसको कव्वाली कहते हैं और कोई कोई यह बतलाते हैं, कि कव्वालीसे किञ्चित् विलम्बित है। कव्वालीका बिवरण देखो।

द्वन्द—(। । ॥ ॥ ॥ । ॥)

द्वितीय—(˝ ॥)

धत्ता—(। । ˝ । ॥)

धामार—प्रचलित है।—(। । , ॥ , ॥ ,)

धीमा तिताला—वर्तमानमें प्रचलित है। यह १६ दीर्घ मात्राओंका ताल है, इसका दूसरा नाम है मध्य-त्रिताली।

नन्दन—१। (॥ ।), २। (। । ˝ ॥)

नन्दिवर्द्धन—(॥ । । ॥ ।)

नान्दी—१। (। ˝ ˝ । । ॥ ॥)—२। (। । ॥)

निःशङ्क—(। ॥ ॥। ॥ ॥ ।)

निःशङ्कलील—(॥ ॥ ॥ ॥ ।)

निःसारुक—१। (॥ ,), २। (। , ।)

नृप—(। ˝ ।)

पञ्चताली—( )

पञ्चम—(ˊ ˝)

पञ्चम सवारी—प्रचलित है।—(। , । , ॥ , ॥ , ॥ , ॥ , ॥ , ॥ ,)

पञ्चाघात—(॥ ॥ । , । ॥ ,)

पठताल—वर्तमानमें प्रचलित दो मात्राका ताल।

परिक्रम—(˝ ॥ ॥ ॥)

पार्वतीनेत्र—(। । ˝ ˝ । । । ॥ ॥ ॥ । ।)

पार्वतीलोचन—(॥ ॥ ॥ । ॥। ॥ ॥ ˝)

पूर्ण (कङ्काल)—१। (˝ ॥ ।)—२। (˝ ˝ ˝ । ॥)

पोस्ता—प्रचलित है।—(। ˝ , ॥ × ,)

प्रतापशेखर—(॥ । ,)

प्रतिताल—१। (। ˝)—२। (॥ ˝)

प्रतिमण्ठ—१। (‖ ‖)—२। (‖ ‖)—३। (‖ ‖ ‖ ‖ | |)

प्रत्यङ्ग—(‖ ‖ ‖ | |)

प्रसिद्धा—(एकताली)—(| ˙ |)

फ़ीरदस्त—यह ७ दीर्घमात्राओंका ताल अब भी प्रचलित है।

बङ्गदीपक—(‖ | | ‖ ‖ |)

बङ्गभारण—(‖ ‖ | | ⦀)

बङ्गोद्योत—(‖ ‖ ‖ | ⦀)

वनमाली—१। (˘˘ ˘ | | ‖)—२। (| ˘˘˘˘ ‖

वर्णताल—(‖ | ˘˘ ‖ |)

वर्णभिन्न—(˘˘ | ‖)

वर्णभीरु—(| | | | ˘ |)

वर्णमण्ठिका—१। (‖ ˘˘ | ˘˘)—२। (| ˘ | ˘˘)

वर्णयति—१। (| | ˘˘)—२। (| | ⦀ ⦀)

वर्णलील—(˘˘ | ‖)

वर्द्धन—(˘˘ | ⦀)

वर्द्धमान—(˘ | ‖)

वसन्त—१। (| | | ‖ ‖ ‖)—२। (‖ ‖ ‖)

विजय—१। (‖ ‖ ‖ |)—२। (⦀ | ⦀)

विजयानन्द—(| | ‖ ‖ ‖)

विद्याधर—(⦀ ‖)

विन्दुमाली—(‖ ˘˘˘˘ ‖)

विपुला (एकताली)—(× ˙, |)

विलोकित—(‖ ˘˘ ⦀)

विषम—(˘˘′ , ˘˘˘˘)

वीरपञ्च—वर्तमानमें प्रचलित है। इसमें ८ ह्रस्व मात्राएं व्यवहृत होती है। वीरपंचम देखो।

वीरविक्रम—(| ˘ ‖)

ब्रह्मताल—१। (| | ˘ | ′ |)—२। (| | | ⦀)—३। (| ˙ | ˘˘ | ˘)—४। वर्तमानमें प्रचलित चौदह मात्राओंका ताल। ब्रह्मताल देखो।

ब्रह्मयोग—वर्तमानमें प्रचलित १८ मात्राओंका ताल। ब्रह्मयोग देखो।

भग्नताल—(′˘˘′′ | | |)

भृङ्गताल—(‖ | ‖)

मकरन्द—१। (˘ | | |)—

मण्ठ—१। (‖ | | ˚, ˚,)—२। | | | ‖ | |

मण्ठक—१। (| | ‖ | | | |,)—२। (⦀ | ˘ | ‖ ⦀ ‖ ⦀)

मण्ठिका—१। (, ˘ | ⦀)—२। ; (, |)—३। (′, ⦀ ⦀ | |)

मदनताल—(˘ ‖)

मध्यमान—वर्तमानमें प्रचलित ८ दीर्घ मात्राओंका ताल। मध्यमान देखो।

मलयताल—(‖ | ‖)

मल्लताल—(| | | | ˙)

मल्लिकामोद—(| | ˙˙˙)

महासन्नि—(˙˙˙ | | ˙ | | | | | | |)

मिश्रताल—(˙˙˙, ˙˚, ˙˙˙ | ‖ ‖ ˘˙ ‖ ‖ ‖)

मिश्रवर्ण—(˙˙, ˙˙, ˙˙, ⦀ ‖ ˙˙ | ‖ ‖)

मुकुन्द—१। (| ˙˙ ‖), २। (| |)

मुद्रितमण्ठ—(‖ | | | | | |)

मोच्चपति—(१६ दीर्घ, ३२ ह्रस्व और ६४ अर्द्ध-मात्राएं सिलसिलेवार न्यस्त होती हैं)

मोहनताल—प्रचलित है। यह १२ मात्राका ताल है। मोहनताल देखो।

यत्—(| ˙, | |, | ˙, |, |)।—वर्तमानमें प्रचलित है। यत् देखो।

यतिताल—(| ˘; |)

यतिलग्न—(˙˘ |)

यतिशेखर—(˙˙ | | | ˙ | ˙ | ˙)

रङ्गताल—(˙˙˙ ‖)

रङ्गप्रदीपक—(‖ ‖ | ‖ ⦀)

रङ्गलोल—(| ‖ ˙˙)

रङ्गाभरण—(‖ ‖ | | | ⦀)

रतिताल (| ‖)

रतिलील—१। (| | ‖ ‖), २। (‖ ˙˙˙˙˘˘˙˙)

रागवर्द्धन—(˘, ⦀)

राजकोलाहल—(˘ ⦀ | ⦀ | ‖)

राजचूड़ामणि—१। (˙ | | ‖), २। (˙ | | | ˙˘ | ‖)

राजझङ्कार—(‖ | ‖ ˙)

राजताल—(‖ ⦀ ˙ ‖ | | ⦀)

राजनारायण—(˘, | ‖ | ‖)

राजमार्त्तण्ड—(॥ । ˘)

राजमृगाङ्क (˘ । ॥)

राजविद्याधर—(। ॥ ˘ ˘)

राजशोषक—(॥ ॥ ⫼ ⫼)

रामा (एकताली)—(˘)

रायवङ्कोल—(॥ । ॥ ˘ ˘)

रासक—(।)

रासताल—वर्त्तमानमें प्रचलित है। यह १२ मात्राओंका ताल है। रसताल देखो।

रुद्रताल—वर्त्तमानमें प्रचलित १६ मात्राओंका ताल। रुद्रताल देखो।

रूपक १ (। ।)—२। यह ७ मात्राका ताल अब भी प्रचलित है। रूपक देखो।

लक्ष्मीताल—१ (˘ ˘ । × × ˘ ˘ ˘ । + × ˘, ˘ ˘ । × , । ,)—२ (˘ ˘, ⫼ ⫼)—३। वर्त्तमानमें प्रचलित १८ मात्राओंका ताल। लक्ष्मीताल देखो।

लक्ष्मीश (˘, । ⫼)

लघु—(। । । ⫼)

लघुचच्चरी—(˘ । ×, ˘ ˘ । ×, । ×, ˘ ˘ । ×, ˘ ˘ । ×, ˘ । ×, ˘ । ×)

लघुशेखर—१। (। , २। (। ।)

लयताल—(॥ । ⫼ । । ॥ ⫼ ˘ ˘ ˘ ,)

ललित—(। ॥)

ललितप्रिय—(। । ॥ । ॥)

लीलाताल—(˘ । ⫼)

शम (कङ्काल)—(॥ ॥ ।)

शरभलीलक—१। (। ˘ ।), २। (˘ ˘ ˘ ˘ । ।), ३। यह ताल अब भी प्रचलित है। शरभलीलक देखो।

शार्ङ्गदेव—(˘ ˘ ॥ ⫼ ॥ ॥ ।)

शिवताल—(। ॥)

श्रीकान्ति—(॥ ॥ । ।)

श्रीकीर्ति—(॥ ॥ । ।)

श्रीनन्दन—(॥ । । ⫼)

श्रीरङ्ग—१। (। । ॥ । ⫼), २। (। । ॥ । । । ⫼)

श्लर्यावताला—दूसरा नाम धीमा तीताला है। धीमा तिताला का विवरण देखो।

षट्ताल—( )

षट्पितापुत्रक—१। (॥ । । । ॥ ॥ । । । ⫼), २। (⫼ ॥ ॥ ॥ ⫼)

सन्निताल—(˘ ˘ ˘ । । ˘ ˘)

सन्निपात—१। (⫼), २। (॥)

सम १। (। ˘ ˘ ,), २। (। ; ˘ ˘ ˘ ˘)

सम्पर्कष्टोक—१। (⫼ ॥ ॥ ॥ ⫼), २। (⫼ ॥ ॥ ॥)

सरस्वतीकण्ठाभरण—(॥ ॥ । । ˘ ˘)

सारङ्ग—(˘ ˘ ˘ ˘)

सारस—। ˘ ˘ ˘ । ।)

सिंह—(। ˘ ˘ ˘ ˘)

सिंहनन्दन—(॥ ॥ । ⫼ । ॥ ˘ ˘ ॥ ॥ । ⫼ । ⫼ ॥ । । । । । ।)

सिंहनाद—(। ⫼ ˘ ˘ ⫼)

सिंहविक्रम—१। (॥ ॥ । । । ⫼ । ॥ ॥), २। (। । ॥ ॥ ⫼ । ॥ ॥)

सिंहविक्रीड़ित—१। (। । ⫼ । ॥ । । ॥ । ⫼), २। (। । ⫼ । ॥ ॥ । । ⫼ ॥ ⫼ ॥ । ।)

सिंहलील—(। ˘ ˘ ˘)

सुरफाक्ता—(। । , । , । । ,) यह ताल वर्त्तमानमें प्रचलित है। सुरफाक्ता देखो।

हंस—(। । ॥ ,)

हंसनाद—(। ॥ ˘ ˘ ⫼)

हंसलील—(। । ,) (संगीतरत्ना०)

पूर्वोक्त तालोंमेंसे वर्त्तमानमें प्रचलित तालोंकी संख्या बहुत कम है। प्रसिद्ध तालोंके लक्षण उन्हीं शब्दोंमें देखना चाहिये। बोल साधनेकी प्रणाली देखनेके लिये बोल शब्द देखो।

तालक (सं० क्ली०) तालमिव स्वार्थे कन्। १ हरिताल, पर्याय—ताल, आल, माल, शैलुष, पिञ्जक, रोमहरण, हरितालक। तालक दो प्रकारका है—पत्र-हरिताल और पिण्ड-हरिताल। दोनोंमें पत्र-हरिताल ही श्रेष्ठ गुणयुक्त है, पिण्ड-हरिताल उससे कुछ अल्प गुणयुक्त है। पत्र-हरिताल सुवर्ण वर्ण तुल्य, भारबहुल, स्निग्ध, अभ्रकी भाँति स्तरसमन्वित, श्रेष्ठ गुणदायक और रसायन है। पिण्डहरिताल पिण्ड-सदृश, स्तरहीन, स्वल्प, सत्व और अल्प गुणयुक्त, लघु तथा रजोनाशक है।

THE
Modern Buddhism.
and its
FOLLOWERS IN ORISSA
BY
Nagendra Nath Vasu, M.R.A.S.
with an introduction by
Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri M. A., C. I. E.

It has been conclusively proved in this book that Buddhism is neither dead nor driven out of India, but its pulse still beats with all the energy of life in Orissa. "Sankaracharyya drove away Buddhism from the soil of India" is proved to be absolutely false. The discoveries of 50000 crypto-Buddhists living in the jungle tracts of Orissa first announced in this book has taken the world of European scholars by surprise.

The book contains more than 250 pages. It is nicely printed and beautifully bound. **Price**—Rs. 3/-, for students Rs. 2/-.

Dr. L. D. Burnett of the British Museum writes :—

"A more fascinating and erudite work I have not read for many years and I shall find it most valuable both in the study and in the lecture-room."

Dr. H. Kern, the great Buddhist scholar writes :—

"I need hardly to tell you that the subject matter is one that interests me highly, so that it will be a pleasure for me to read the book, which contains so much that is little known or not at all in Europe."

Sir. George A. Grierson, K. C. I. E. Author of Linguistic Survey of India writes :—

"I have found your chapter on the Revival of Buddhism most interesting. I think it a most important contribution towards the religious history of India. It should certainly be carefully studied by all who interest themselves in that subject."

A. Smith I. C. S. (retired) writes from 116 Banbury Road, Oxford—

"Your book is also of high value for the history of Buddhism and Indian religion generally. The account of later and modern Buddhism is novel and your constant citation of little known Sanskrit works gives it special authority."

ग्राहकोंसे निवेदन।

बहुतसे महाशय हमारे साथ पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर नहीं लिखते। ऐसे महाशयोंसे प्रार्थना है कि पत्र लिखते समय अपना ग्राहक श्रेणीका नम्बर अवश्य २ लिख दिया करें अन्यथा पत्रोत्तरकी आशा न करें।

२। हम आपके साहाय्यसे ही 'हिंदी विश्वकोष'के प्रकाशनका भार उठाने समर्थ हुये हैं। अतः आपसे प्रार्थना है कि कमसे कम दो ग्राहक बनानेकी कृपा करें।

निवेदक—
प्रबंधकर्त्ता—हिंदी-विश्वकोष कार्यालय,
९ विश्वकोष लेन, कांटापुकर, बागबाजार, कलकत्ता

आवश्यकीय सूचना

हिन्दी-विश्वकोषको आज तक प्रतिमास ४ संख्या प्रकाशित होती थीं, परन्तु अब छ संख्या प्रतिमास प्रकाशित होंगी, तदनुसार ग्राहकोंकी सेवामें भी छ संख्या ही प्रतिमास भेजी जाया करेंगी। आशा है, कि छ संख्याकी वी० पी० छुड़ा कर कृतार्थ करेंगे।

निवेदक—
प्रबन्धकर्त्ता

ARCHÆOLOGICAL REPORT OF
MAYURABHANJA.
BY
Nagendranath Vasu, Editor of "Visvakosha."

This work contains along with the results of the archæological and historical reserches conducted at the cost of the Chief of Mayurabhanja, a descriptive account of the rise and development of the various Hindu, Buddhist and Jaina sects. The discoveries of numerous cripto-Buddhists in Orissa, first announced in this book, has taken the world of European Scholars by surprise. Dr. Kern, Dr. Fleet, Dr. Oldenburg, Sir Grierson, Dr. Sylvain Levi, M. Emile Senart, Mr. Vincent Smith, Dr. Thomas of India Office and other European scholars have enthusiastically received the book and lavished high-flown praises upon it. Beautifully printed and gorgeously bound with more than 100 large plates of inscriptions, grants, ancient temples, ruins and figures of Hindu, Buddhist and Jaina Gods and Goddesses with their identification from the authoritative scriptures of various sects. Price Rs. 15/-, for students Rs. 10/-.

Dr. L. D. Burnett writes in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland, 1912. pp. 802-4.

"The body of the book comprises a series of report on the antiquities and history of a number of sites visited in the course of the survey, with an appendix containing text and facsimiles * * * Almost every form of Hindu religion has left its mark in Morbhanj * * * Undoubtedly the most interesting part of this interesting survey is the Chapter on Buddhism. * * * Pandit Nagendra Nath Vasu brings the history of Buddhism in Orissa down to the present day. He finds distinct traces of Mahayana cults among the Bathuri or Bauri tribe on whose ethnology he gives some valuable data. * * * In concluding this brief notice of this *veritable Ratnakar of learning,* we may add that it is illustrated by numerous plates."

Dr. J. F. Fleet, C. I. E. (the great antiquaran) writes from 8, Leopold Road, Ealing W. London,—

"I have read the book with much interest, and consider it a useful addition to our researches into the ancient and mediæval history of India"

१०-८८०

हिन्दी
विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस,

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

*

नवम भाग

THE
ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. IX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava.

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnākara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Bangiya Sāhitya Parishad
and Kāyastha Patrikā ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-
bhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by P. C. *Bose*, at the Visvakosha Press
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

1924.

बारह खण्डका मूल्य ६) रुपया, एक खण्डका मूल्य ॥) आना और डाक महसूल अलग।

Expert-Opinion

Sir Gooroo Dass Banerjee,

Kt., M. A., D. L., Ph. D.,

The late Justice of the Calcutta High Court and Vice-Chancellor of the Calcutta University writes—

"I am glad to learn that you are publishing a Hindi edition of your great work, the Bengali Encyclopædia "Visvakosha." I had to consult it on several occasions, and I found in it much valuable and rare information. A Hindi edition of this monumental work will make all that useful information available for all India, and will, I am sure, meet with the same enthusiastic encouragement and support that the Bengali Visvakosha has received. (30. 11. 15.)

Babu Saradacharan Mitra, M A., B L. &c.,

The late Justice of the Calcutta High Court writes :—

"The "Viswakosha" or Encyclopædia in Bengali by Babu Nagendra Nath Vasu Práchyavidyamahárnava is an wonderful production. It contains an immense mass of correct information and is very valuable. The learned author is now issuing a Hindi Edition and the first volume is out. The Hindi Edition is enlarged and contains informations upto date. There should be no library without this."

The Hon'ble Sir Ashutosh Mukerjee,

Sarasvati C. S. I. &c. &c.,

The Justice of the Calcutta High Court, the late Vice-Chancellor of the Calcutta University, writes :—

"I have had occasion many a time to consult the Bengal Encyclopædia Visvakosha prepared by Babu Nagendranath Vasu. I have always entertained the highest opinion about its unique value, due chiefly to its accuracy and completeness. It is a truly monumental work, and I am delighted to learn that a Hindi version of it has been undertaken."

(9. 11. 15)

The Hon'ble Justice A. Chaudhuri,

M. A. LL. B.

of the Calcutta High Court, writes :—

"Your Encyclopædia Indica I constantly refer to in my work. I have always found it thoroughly accurate and very helpful. It is a wonder to me that the compilation, although made by you alone, is so complete. I am writing these few lines in admiration of the great work you have done. I wish the **Hindi** edition every success." (10. 9. 15.)

THE SOCIAL HISTORY OF

KAMARUPA.

Vol. I.

BY

Nagendra Nath Vasu

Prachyavidyamaharnava etc. etc.

A very interesting and readable account of a great social movement which shed a beam of light across the otherwise lurid clouds that envelop the history of Assam.

The book is divided into three chapters of which the first one is devoted to the prehistoric period. The first chapter consists of seven sections. The first section is the general remark upon Kamarupa's claims to historical recognition. The second section deals with the activities of the Phœnicians in Eastern India, their references in the Vedas, the difference between them and the Aryans, the geography of their times, their religion, arts, sciences and commerce and their identity with modern Koch.

The third section deals with the origin of the Mismi, Abors, Daflas and Miris. The fourth section deals with the origin of the Kiratas, Garos and Kacharis. The fourth section describes Usha and Anirudha, Bana and Saumar dynasty and Bànalinga. The sixth section deals with the Kimmerian influence in Kamarupa and the seventh section deals with the Assyrian (Mech) influence with their full history. The second chapter deals with the historical period and third with the rise of the Kayasthas in Kamarupa.

The book is worth reading and without it no research in ancient Indian history could be complete. The book is neatly bound, adequately indexed, clearly written with the support of the authority whose chapter and verse are quoted in their proper place, and on the whole carefully printed and nicely got up. The price Rs. 5|- only. To be had at 9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

शोधित तालक कटु, कषाय रस, स्निग्ध, उष्णवीर्य तथा विष, कण्डु, कुष्ठ, मुखरोग, रक्तदोष, कफ, पित्त, और कण्ठव्रण-नाशक है। अशोधित वा भलीभाँति नहीं मारा हुआ तालक सेवन करनेसे शरीरका लावण्य नष्ट होता है तथा बहुविध सन्ताप, आक्षेप, कफ, वायु-वृद्धि और कुष्ठरोग उत्पन्न होता है। (भावप्र०)

अशुद्ध हरिताल आयुनाशक, कफ वायु और मेहकर है। अशुद्ध तालक ताप, स्फोट और अङ्ग सङ्कोचन करता है, इसलिए शोधन अति आवश्यक है।

तालकशोधन—कुष्माण्डके रसमें, चूनाके जलमें और तैलमें पाककर शोधन करनेसे तालक दोषहीन होता है। खण्ड खण्ड १० भाग तालकको १ भाग सुहागेके साथ मिला कर जम्बीरी नीबूके रसमें एक बार तथा काञ्जिमें बार बार धोवें फिर चौहरे कपड़ेमें बांध कर दोलायन्त्रमें एक दिन पाक करें। पीछे काञ्जि, कुष्माण्डके रस और शिमूलके क्वाथमें एक एक दिन स्वेद देनेसे तालक विशुद्ध होता है।

प्रकारान्तर—हरितालके टुकड़े कर कपड़ेमें बाँधें, फिर कुष्माण्डके रसमें तैल और त्रिफलाके क्वाथमें एक पहर तक दोलायन्त्रमें पाक करनेसे तालक शोधित होता है।

विशुद्ध हरितालको चूनेके पानी और अपामार्ग-मूलके क्षार-जलमें माड़ कर ऊपर और नीचे यवक्षार-चूर्ण देवें उसे हंड़ेमें रख कर शरवा ढक दें फिर कुष्माण्डसे उसे भर दें। उसके बाद मुह बंद करके चार पहर तक पाक करें। यह हरिताल कुष्ठ आदि रोगनाशक है।

शोधित तालकके गुण—यह कटु, स्निग्ध, कषायरस, विसर्प, कुष्ठ, मृत्यु और जराहरक, देहशोधक, कान्ति, वीर्य और ओज वर्द्धक है।

हरितालमारण—हरितालको आमरूलके और कागजी नीबूके रसमें तथा चूनेके पानीमें बारह पहर तक भावना दे कर धोवें, फिर दूने शाल्मलीके क्षारमें रख कर कवचीयन्त्रमें बालूसे उर्द्ध्वदेश पूर्ण करके १२ पहर तक पाकावें और ठण्डा होने पर उसका चूर्ण बना लें। इसकी एक रत्तीकी मात्रा बना कर सेवन करनेसे कुष्ठ, श्लीपद आदि रोग आरोग्य हो जाते हैं। (रसेन्द्रसारसं०)

तालमिव कायति कै-क। २ द्वारकपाट, रोधनयन्त्र, ताला। ३ तुवरिका, गोपीचन्दन। स्वार्थे क। ४ तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

तालकट (सं० पु०) देशभेद। बृहत्संहिताके अनुसार दक्षिणका एक देश जो १२।१३।१४ नक्षत्रमें पड़ता है।
तालिकोट देखो।

तालकन्द (सं० क्ली०) तालस्येव कन्दमस्य। तालमूली, मूसली।

तालकरीर (सं० पु०) तालाङ्कुर, ताड़का कोपल।

तालकाभ (सं० पु०) तालकस्य हरितालस्य आभाइव आभायस्य बहुव्री०। हरिद्वर्ण, हल्दीका रंग, पीला रंग। (त्रि०) २ हरिद्वर्णयुक्त, जिसका रंग पीला हो।

तालकी (सं० स्त्री०) तालकस्य इयं अण्-ङीप्। तालज मद्यभेद, तालरस, ताड़ी।

तालकूटा (हिं० पु०) वह जो झांझ बजा कर भजन इत्यादि गाता हो।

तालकेतु (सं० पु०) तालस्तालचिह्नितः केतुरस्य। १ भीष्म। २ वह जिसको पताका पर ताड़के पेड़का चिह्न हो। ३ बलराम।

तालकेश्वर (सं० पु०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत-प्रणाली—कोंहड़ेका रस, त्रिफलाका जल, तिल-तेल, घृतकुमारीको रस और कांजी इन सबसे भावना देनी होती है। पीछे २ माषा गन्धक और २ माषा पारेकी कज्जली बना कर पहलेकी कज्जलीमें मिला देते हैं। बाद इसमें २ माषा हरिताल मिलाकर बकरीके दूध, नीबूके रस तथा घृतकुमारीके रससे यथाक्रम तीन दिन भावना देते हैं। इसके अनन्तर उसे शुष्क और चक्राकार करके हण्डीमें पलाशके क्षारके भीतर रख कर १२ प्रहर तक पाक करते हैं। ठंढा हो जाने पर उसे उतार लेते हैं। इसकी दो दो रत्तीकी गोली बना कर सेवन करनेसे कुष्ठ, वात, रक्त और व्रणरोग जाता रहता है।

दूसरा तरीका—थोड़ी हरितालको चकुन्दे और शरपुङ्खके पत्तोंके रसमें घोट कर सुखा लेते हैं। बाद उसे पलाशके क्षारसे भरे हुए बरतनमें रख कर पुटपाक देते हैं। बरतनमें हरितालके नीचे और ऊपर दोनों ही तरफ क्षार रहे। बाद दिन रात पाक करनेसे हरितालभस्म

हो जायेगी। जब उसका वर्ण सफेद हो जाय और अग्निमें देनेसे धुंआ निकलने लगे, तब जानना चाहिये कि हरिताल भस्म हो गई है। इस प्रकार प्रस्तुत की हुई औषधका सेवन करनेसे कुष्ठादि रोग दब जाते हैं। इसकी मात्रा १ जौ है। इसके अनुपानमें मसूर, चने और मूंगकी दाल पथ्य है।

रसेन्द्रसारके मतसे—हरिताल, पारा, गन्धक, लौह, अभ्रके समभागको मधुमें घोंट कर १ माषेकी गोली बनाते हैं। अनुपान एक तोला पक्का यज्ञडुम्बुर और मधु है। यज्ञडुम्बुरके अभावमें केवल मधुसे ही काम चल सकता है। इस औषधसे बहुमूत्र रोग बातकी बातमें प्रशमित हो जाता है।

तालक्रोश (सं० पु०) वृक्षभेद, एक पेड़का नाम।

तालक्षीर (सं० पु०) तालजातं क्षीरमिव शुभ्रत्वात्। शर्करा भेद, खजूर या ताड़की चीनी।

तालक्षीरक (सं० क्ली०) तालक्षीर स्वार्थे कन्। ताड़की चीनी।

तालगर्भ (सं० पु०) तालस्य गर्भः ६-तत्। तालमज्जा, ताड़का गूदा या पशेव। तलवारमें यदि तालमज्जाका पानी दिया जाय तो उससे हाथीकी सूड़ छेदी जा सकती है।

तालगुण्डा—महिसुरके शिमोगजिलेके अन्तर्गत शिकारपुर तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा० १४° २५' उ० और देशा० ७५° १५' पू० बेलगामीसे २ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १००५ है। प्रवाद है, कि ३री शताब्दीमें कदम्बके राजा मुकनने इसे स्थापित किया था। उस समय तालगुण्डामें एक भी ब्राह्मण न रहनेके कारण उन्होंने १२००० ब्राह्मणोंको दक्षिणसे ला कर यहाँ बसाया था। फिलहाल इसकी लोकसंख्या पहलेसे बहुत घट गई है। अनेक शिलालिपियोंमें इस ग्रामका उल्लेख देखा गया है।

तालग्राम—युक्तप्रदेशके फर्रुखाबाद जिलेकी छिब्रामी तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २७° २' उ० और देशा० ७९° ३८' पू०में फतेगढ़से २४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ५४५७ है। अकबरके समयमें यह परगने भरमें एक मशहूर शहर था। आजकल यह उतनी उन्नतदशामें नहीं है। शहरमें कुल दो विद्यालय हैं।

तालघाट—दक्षिणप्रदेशमें बम्बईसे नासिक जानेके रास्ते पर अवस्थित एक प्रधान गिरिपथ। यह समुद्रसे १९१२ फुट ऊंचा है। यह अक्षा० १९° १४' उ० और देशा० ७३° ३३' पू०में अवस्थित है।

तालङ्क (सं० पु०) तालङ्क इस्य लः। भूषणविशेष, एक प्रकारका गहना।

तालचर (सं० पु०) १ देशभेद, एक देशका नाम। २ उस देशके रहनेवाले। ३ तालचर देशके राजा।

तालचेर-उड़ीसाके देशीय राजाके अधीन एक करद राज्य। यह अक्षा० २०° ५२' से २१° १८' उ० और देशा० ८४° ५४' से ८५° १६' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ३९९ वर्गमील है। इस राज्यके उत्तरमें पाललहरा, पूर्वमें धेंकानल तथा दक्षिण और पश्चिममें अङ्गुल राज्य है। लोकसंख्या प्रायः ६०४३२ है। यहां कोयले और लोहेकी खानें हैं। जिस जगह ब्राह्मणी नदी पाललहरा और धेंकानलसे तालचेर राज्यको पृथक् करती है, उस जगह नदीके किनारे चूना पाया जाता है। इस नदीकी बालू धोनेसे स्वर्णरेणु संगृहीत होता है।

इस राज्यके मध्य ब्राह्मणी नदीके किनारे अवस्थित तालचेर नगर ही प्रधान है।

तालचेरके राजगण कहते हैं, कि ५०० वर्ष व्यतीत हुए अयोध्या-पतिके एक पुत्रने यहां आ कर असभ्य अधिवासियोंको भगा राज्य स्थापन किया था। वर्त्तमान राजा उन्हींके वंशधर हैं। अङ्गुल-विद्रोहके समय वहांके राजाने ब्रटिश गवर्मेण्टको सहायता दे कर 'महेन्द्र बहादुर'की उपाधि प्राप्त की है।

१८७४ ई०की २१वीं मईको राजा रामचन्द्र वीरवर हरिचन्दनने ब्रटिशगवर्मेण्टसे पुरुषानुक्रमिक राजाकी उपाधि पाई है। राज्यकी आमदनी ६५०००) रु०की है। राजाको ब्रटिशगवर्मेण्टको १०४०) रु० देने पड़ते हैं। राजाकी प्रायः नौ सौ सेना हैं। इस राज्यमें, एक मिडिल वर्नेक्युलर तथा दो अपर प्राइमरी स्कूल और एक दातव्य चिकित्सालय है।

तालजङ्घ (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ उस देशका

निवासी। ३ एक यदुवंशी राजा। इनके पुत्रोंने राजा सगरके पिता असितको राज्यच्युत किया था।

तालजटा (सं० स्त्री०) तालस्य जटेव, ६-तत्। तालवृक्ष-का जटाकार पदार्थ विशेष, ताड़के पेड़की जटा।

तालदण्डा—उड़ीसाकी एक नहर। इसकी लम्बाई ३२ मीलकी है। यह कटक शहरसे महानदीकी प्रधान शाखामें मिल गई है। नौकाके जाने आने तथा खेतों-में पानी सींचनेके लिये यह नहर काटी गई है।

तालध्वज (सं० पु०) तालो ध्वजो यस्य, बहुव्रो०। १ बल-राम। २ पर्वतविशेष, एक पहाड़का नाम। ३ वह जिसकी पताका पर ताड़के पेड़का चिह्न हो।

तालध्वजा (सं० स्त्री०) तालस्तालवृक्षेव ध्वजश्चिह्नं यस्या, बहुव्रो०। पुरीविशेष, एक नगरका नाम।

तालनवमी (सं० स्त्री०) तालोपहारा नवमी। १ भाद्र शुक्लानवमी, भादों सुदी नौमीको तालनवमी कहते हैं।

“मासि भाद्रपदे यास्यान्नवमी बहुलेतरा।
तस्यां संपूज्य वै दुर्गामश्वमेधफलं लभेत्॥”

भाद्र मासकी शुक्ल-नवमीको दुर्गाकी पूजा करनेसे अश्वमेधका फल होता है।

२ व्रतविशेष, एक व्रतका नाम। भाद्र शुक्ला नवमी-को सौभाग्यकी कामना करके स्त्रियां ताल या ताड़का उपहार दे कर इस व्रतका अनुष्ठान किया करती हैं, इस लिए इसका नाम तालनवमी पड़ा है। यह व्रत ९ वर्ष तक किया जाता है। इसमें आरब्ध वर्षसे ले कर नवम वर्ष तक प्रतिष्ठा की जाती है।

व्रतप्रयोग—पहले दिन संयत हो कर रहें, व्रतके दिन प्रातःकालमें नित्यक्रियादि सम्पन्न करके स्वस्ति-वाचन पूर्वक संकल्प करें,—“ओविष्णुर्नमोऽद्य भाद्रे मासि शुक्लपक्षे नवम्यान्तिथावारभ्य अमुक गोत्रा श्री-अमुकी देवी सौभाग्य-सौन्दर्य-पुत्र-पौत्रादि-नित्यधन-धान्य-विवर्द्धनेऽलौकिक-महासुख-परलोकाधिकरणक-परम-गति प्राप्तिकामा नववर्षपर्यन्तं तालनवमी व्रत-महं करिष्ये।” इस प्रकारसे संकल्प कर सूर्यादि पञ्च देवताकी पूजा करें। पीछे ताड़पत्रसे गौरीका आवा-हन कर षोड़शोपचारसे पूजा करें और नवयुक्त नैवेद्य प्रदान करें। “नमो गौर्यै नमः” इस मन्त्रसे तीन बार पुष्पाञ्जलि दे कर प्रणाम करें। तत्पश्चात् एक फल हाथमें ले कर व्रतकी कथा सुननी चाहिये। व्रतकथा इस प्रकार है—

रुक्मिणी उवाच—

केनोपायेन भगवन्नारी दुःखं न विन्दति।
सौभाग्यमर्थसौन्दर्यं पुत्रपौत्रादिकं लभेत्॥
इहलोके महत्सौख्यं परलोके परां गतिं।
तन्मे कथय तत्त्वेन सद्भावो यदि ते मयि॥

श्रीकृष्ण उवाच—

शृणु देवि महाभागे सौभाग्यं येन जायते।
पुत्रपौत्रादिकं नित्यं धनधान्यविवर्द्धनं॥
इहलोके महत्सौख्यं परलोके परां गतिं।
तालनवमीव्रतं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतं॥
कुरु देवि प्रयत्नेन सर्वकामसमृद्धिदं।
भाद्रे मासि सिते पक्षे नवमी या शुभा भवेत्॥
तस्यामारभ्य कर्तव्य नव वर्षाणि सुव्रते।
कृत्वा च तद्व्रतं देवी त्यजेत्तालस्य भक्षणं॥
तालस्य व्यजनाद्वायुर्नकर्तव्यः कदाचन।
अष्टम्यां नियमीभूत्वा प्रातरुत्थाय सत्वरं॥
स्नानं कृत्वा नवम्याश्च व्रतसंकल्पमाचरेत्।
तालपल्लवमारोप्य तत्र गौरीं प्रपूजयेत्॥
पाद्यादिभिः समभ्यर्च्य नैवेद्यं नवतालकं।
सम्पूर्णे नवमे वर्षे प्रतिष्ठामाचरेत् ततः॥
फलानि नवदत्वा च तालस्य डल्लकोत्तमे।
पिण्डखर्जूरजाती च एला चैव हरीतकी॥
नारिकेलं तथा पूगं रम्भा पक्वफलान्वितं।
तत्र मुख्यं प्रदातव्यं तालस्य फलमुत्तमं॥
वस्त्रेणाच्छाद्य दद्यात्तु डल्लकं दक्षिणान्वितं।
प्रतिष्ठार्थं प्रदातव्यं कांचनं रजतं तथा॥
व्रताहनि तु भुंजीत निरामिषं सतालकं।
एवं कृते न सन्देहः पूर्वोक्तञ्च फलं लभेत्।
कथितं तव यत्नेन कुरुष्व व्रतमुत्तमं॥

रुक्मिणी उवाच—

व्रतं केन कृतं देव मर्त्यलोके प्रकाशितम्।
तन्मे कथय तत्त्वेन व्रतमेतत् सुदुर्लभम्॥

श्रीकृष्ण उवाच—

रम्ये तु यमुनाकूले कंसस्य तालवृन्दके।

धेनुकस्य पुरं गत्वा मया दृष्टं सुशोभने ॥
तत्र गौरी शची मेधा सावित्री चापरापरा ।
देवीमारोप्य तत्रैव तालस्य पल्लवे शुभे ॥
काचिद्ध्यानपरा तत्र जपस्तुतिपरायणा ।
तास्तु दृष्ट्वा मया पृष्टं व्रतं कस्येदमुत्तमं ॥
किं फलं किं स्वरूपं च तन्मे कथयत स्त्रियः ॥

स्त्रिय ऊचुः—

यस्येदं यत्फलं चास्य शृणु वीर सुरोत्तम ।
इदं व्रतं चाम्बिकाया त्रिषु लोकेषु विश्रुतं ॥
तालनवमीति विख्यातं धनधान्यविवर्द्धनं ।
सौभाग्यमथ सौन्दर्यं पुत्रपौत्रादिकं ततः ॥
इहैव कुशलं सर्वमन्ते गौरीपदप्रदं ।
विधानं शृणु धर्मज्ञ येनेदं क्रियते व्रतं ॥
अष्टम्यां नियमीभूत्वा नवम्यां व्रतमारभेत् ।
भाद्रे मासि सिते पक्षे तालस्य पल्लवे शुभे ॥
गौरीमारोप्य यत्नेन विधानेन प्रपूजयेत् ।
फलं तालस्य नवकं दत्वा नैवेद्यमुत्तमम् ॥
पाद्यादिभिः समभ्यर्च्य गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।
निरामिषं व्रतान्ते च कर्तव्यं तालभक्षणं ॥
नव वर्षव्रतं कृत्वा प्रतिष्ठां कारयेत्ततः ।
व्रताचार्याय दातव्यं काञ्चनं रौप्यमुत्तमं ॥
डल्लकं शोभनं दत्वा व्रतशांगं भवेत्ततः ।
इत्येतत् कथितं भद्र व्रतानां व्रतमुत्तमं ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

ताभिः कृतं मया दृष्टं सत्यं सत्यं व्रतं शुभे ।
तस्मात् कुरु प्रयत्नेन सौभाग्यवर्द्धनं शुभे ॥
इति श्रुत्वा ततो देव्या व्रतं कृत्वा यथाविधि ।
रुक्मिण्या कृष्णपरया सौभाग्यं लब्धमुत्तमम् ॥
या नारी च प्रयत्नेन करोति व्रतमुत्तमम् ।
सा सर्वफलमाप्नोति इहलोके परत्र च ॥"

इति भविष्ये तालनवमीव्रत कथा समाप्ता ।

इस कथाको सुन कर भोज्य उत्सर्ग करें; पीछे ब्राह्मणोंको भोजन करा कर स्वयं भोजन करें। इस तरह ८ वर्ष बीत जाने पर प्रतिष्ठा करावें। व्रतप्रतिष्ठा देखो। प्रतिष्ठाके वर्ष प्रतिष्ठाविधिके अनुसार होमादि पर्यन्त करके तालडल्लक उत्सर्ग करना चाहिये।

तालके उलेको वस्त्रसे ढक कर "नमोऽद्येत्यादि श्री अमुकी देवी श्रीगौरीप्रतिकामा इमं नवफलयुक्तं सवस्त्रं तालडल्लकं श्रीविष्णुदैवतं यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददे" इस प्रकारसे डल्लक उत्सर्ग करके दक्षिणान्त करें।

"अद्येत्यादि कृतैतत् तालनवमीव्रतकर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनं श्रीविष्णुदैवतं यथासम्भव गोत्रनाम्ने ब्राह्मणाहं ददे" इस तरह दक्षिणान्त करें। पीछे ब्राह्मणोंको भोजनद्वारा परितृप्त करके स्वयं भोजन करें। जिन्होंने इस व्रतका अनुष्ठान किया है, उन्हें ताल भक्षण और तालवृन्तद्वारा वायुसेवन वर्जन करना चाहिये। इस व्रतमें ८ प्रकारके फल चढ़ाने पड़ते हैं, जैसे-पिण्डखर्जूर, जातिफल, एला, हरितकी, नारिकेल, पूग, रम्भा, पक्वफल और ताल।

भविष्यपुराणमें इसका और एक प्रकारान्तर हैं; उसमें विशेषता इतनी ही है, कि उक्त व्रतमें नारायण और लक्ष्मीकी पूजा करनी पड़ती है। कथा इस प्रकार है:-

"मेरुपृष्ठे सुखासीनं कृष्णं कमलया सह ।
उवाच मधुरं वाक्यं स्मितपूर्वं मुदाम्बिका ॥
शृणु मे वचनं देव स्त्रीणां सौभाग्यकारणम् ।
केन वा सुभगा आसीत् केन वा दुर्भगा भवेत् ॥
किं कृतेन विमुच्येत किं कृतेन फलं शुभे ।
तन्मे ब्रुहि सुरश्रेष्ठ नारीणां कारणं ध्रुवं ॥

श्रीमगवानुवाच—

पूर्वं हि मम भार्ये द्वे सत्यभामा च रुक्मिणी ।
रुक्मिणी सुभगा साध्वी सत्यभामा च दुर्भगा ॥
तस्याः कर्मविपाकेन सौभाग्यमन्यथा गतं ।
केनचित् वाक्यदोषेण सत्यभामा च दुर्भगा ॥
दुःखार्त्ता शोकसन्तप्ता रुदती बहुशो मुहुः ।
कियत्काले च सम्पन्ने व्रजन्ती च तपोवने ॥
अरण्ये विजने गत्वा कस्मिन्मुनिवराश्रमे ।
रुदित्वा च विधानेन सर्वंदुःख न्यवेदयत् ॥
तच्छ्रुत्वा तु मुनिश्रेष्ठः प्रोवाच रुदतीं शुभां ।
भव्ये पुत्रिणि मारोदीः सौभाग्यं ते भविष्यति ॥

सत्यभामोवाच—

दुःखं मे बहुशस्तात ! शरीरं दुर्भगं कथं ।

कथ्यतां मुनिशार्दूल स्वामि सौभाग्यकारणं ॥

मुनिरुवाच—

भाद्रे मासि सिते पक्षे नवमी या तिथिर्भवेत् ।
तस्यां नारायणं लक्ष्मीं पूजयेच्च विधानतः ॥

सत्यभामोवाच—

विधानं कीदृशं तस्य किं दानं किंच तर्पणं ।
तन्मे ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ कारणं किं तदुच्यते ॥

मुनिरुवाच —

स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा घटं तत्र निवेशयेत् ।
तत्र नारायणं लक्ष्मीं गन्धपुष्पादिनार्चयेत् ॥
नैवेद्येन सदा भक्त्या पूजयेत् भक्तवत्सलां ।
तालेन पूजयेत् देवीं ताले नैवविनिर्मितं ॥
तस्यै तत् पिष्टकं दत्वा ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य विप्रहस्ते समर्पितं ॥
स्वस्तीति ब्राह्मणो ब्रुयात् व्रतं सांगं समाचरेत् ।
एवं क्रमेण साध्वीतिः कर्तव्यमतियत्नतः ॥
नवमं वत्सरं यावत् मासि भाद्रपदे तथा ।
पुत्रपौत्रैः परिवृता सौभाग्यमतुलं भवेत् ॥
धनधान्यसमृद्धिंच अवैधव्यं च नित्यशः ।
अभीष्टफलमाप्नोति नवमीव्रतकारणात् ॥
संपूर्णे तु व्रते भूते प्रतिष्ठां तदनन्तरं ।
विप्राय दक्षिणा देया सुभोज्यं च विधानतः ॥
एवं कुरु सदा विज्ञे शृणु भाषणमुत्तमं ।
तथा चक्रे च सा साध्वी मुनेर्वचनगौरवात् ॥
व्रते संपूर्णतां याते केशवस्तामुपागतः ।
असौभाग्येन यद्दुःखं तत्ते सर्वं विनश्यतु ॥
सौभाग्यमतुलं प्राप्य यथा गौरीहरस्य च ।
शचीव पुरहूतस्य रती च मदनस्य च ॥
यथा नारायणे लक्ष्मीस्तथात्वं भव शोभने ।
इति तस्मै वरं दत्वा गृहीत्वा तां पुरं ययौ ॥
इदं या कुरुते साध्वी व्रतं सा सुभगा भवेत् ।
एवं व्रतंच या नारी कुरुते धर्मतत्परा ॥
तस्याश्च भवने लक्ष्मीश्चंचला निश्चला भवेत् ।
जन्मान्तरे भवेत् साध्वी अवैधव्यं सदा पुनः ॥
श्वशुरस्य सुभगा साध्वी पुत्रपौत्रान्विताभवेत् ।
धनधान्यसमृद्धिंच ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥"

इति भविष्यपुराणोक्त तालनवमीव्रतकथा समाप्ता ॥

इस तालनवमीव्रतके प्रभावसे स्त्रियोंको इहलोकमें समस्त प्रकारके सुख, परलोकमें स्वर्ग और जन्मजन्मान्तरमें अवैधव्य प्राप्त होता है। उनके घरमें लक्ष्मी निश्चला हो कर रहती है।

तालपत्र (सं० क्लो०) तालस्य पत्रमिव। १ कर्णभूषणभेद, एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है। तालस्य, पत्रं ६-तत्। २ तालवृक्षका पत्र, ताड़का पत्ता। तालपत्र द्वारा वायु सेवन करनेके गुण—रूक्ष, ईषत् उष्ण, वातशान्तिकर, निद्राकारक, प्रीतिकारक शोषरोग और विकारनाशक, दाह, पित्त, श्रम और ग्लानिनाशक है। तालपत्रको भिंगा कर वायु सेवन करनेसे वायु वृद्धि होती है। (हारीत ५म०)

तालपत्रिका (सं० स्त्री०) तालपत्री स्वार्थे-कन्-टाप ह्रस्वश्च। मुषली, तालमूली, मूसली।

तालपत्री (सं० स्त्री०) तालस्य पत्रमिव पत्रं यस्याः बहुव्री०। मूषिकपर्णी, मूसाकानी बूटी।

तालपर्ण (सं० क्ली०) तालः पत्रमस्य। मूरा नामक गन्धद्रव्य, कपूरकचूरी।

तालपर्णी (सं० स्त्री०) तालस्य पर्णमिव पर्णमस्याः। १ मधुरिका, सौंफ। २ कपूरकचूरी। ३ तालमूली, मूसली। ४ सोआ, सोया नामक साग।

तालपुष्प (सं० क्ली०) तालखण्ड, ताड़के पेड़की जटा।

तालपुष्पक (सं० पु०) १ प्रपौण्डरीक, पुण्डरिया। २ तालवृक्ष, कुसुम, ताड़की जटा।

तालपूर—सिन्धुदेशके अन्तिम स्वाधीन अमीरोंकी वंशगत उपाधि। सिन्धुदेशमें यार महम्मदके शासनकालमें शाहबादखाँके पुत्र मीर बहरमखाँने कलहोड़ियोंकी उन्नतिके लिये अनेक कष्टसाध्य कार्य किये थे। तालपूरोंमें इन्हींका नाम सबसे पहले देखा जाता है। ये लोग बलोची मुसलमानोंकी एक शाखा हैं। गुलामशाहके राजत्वकालमें मीर बहरम तालपूर बहुत प्रसिद्ध हो गये थे। किन्तु जब सरफराजखाँ सिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने मीर बहरम और उनके लड़केको गुप्त तौरसे मरवा डाला। १७७७ ई०में कलहोरावंशीय गुलाम नबीके साथ मीर बहरमके अन्यतम पुत्र मीरविजय तालपूरका

एक घमसान युद्ध छिड़ा। इस युद्धमें मीरविजयकी ही जीत हुई। युद्धके बाद गुलाम नबीके भाई अबदुल नबीखाँ सिन्धुदेशके राजा हुए और मीरविजय उनके मन्त्री बने। १७८१ ई०में मीरविजयने शिकारपुरके समीप सिन्धु आक्रमणकारी कन्धार सेनाको परास्त किया। इनका पराक्रम और क्षमता देख कर अबदुल नबी बहुत जल उठे और उन्होंने मीरविजयको मरवा डाला। १७८८ ई०में यह घटना हुई थी। नारकी अबदुल नबीने भयभीत हो कर मीरराज्य छोड़ खिलातमें जा कर आश्रय लिया। मीरविजयके पुत्र अबदुलखाँ तालपूरने मीर फतरखाँके साथ मित्रता करके सिन्धुके शून्य-सिंहासनको हथिया लिया। अबदुल नबीने फिरसे सिन्धुराजको पानेके लिए बहुत कोशिश की तथा जहां तक हो सका अपनी चाल लगाई, पर कोई फल न हुआ। पीछे उसने बहुत हीनवृत्ति द्वारा अबदुल खाँ तालपूरको मरवा भी डाला, तो भी उसका उद्देश्य सिद्ध न हुआ। मीर फतेअलीखाँने उसे पुनः सिन्धु देशसे निकाल भगाया। फते अलीखाँने सचेष्ट हो कर कन्धारके शासनकर्त्ता जमालशाहसे एक सनदपत्र ग्रहण किया, जिसमें सिन्धुराज्यका शासनभार तालपूर लोगोंके हाथ आया, ऐसा लिखा था। फतह अलीखाँसे ही तालपूरवंशके लोग उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गये थे।

१७८३ ई०में मीर फतेअलीखाँ सिन्धुके सिंहासन पर बैठे। उनके पुत्र मीर फरीखाँ शाहबन्दरमें और मीरसाहबखाँ रोहरी प्रदेशमें शासन करने लगे।

तालपूरवंश साधारणतः ३ शाखाओंमें विभक्त है, (१) हैदराबाद (या शाहदादपुर), (२) मीरपुर, (३) खैरपुर (या सोहरवानी)। पहली शाखा मध्यसिन्धु प्रदेशोंमें, दूसरी मीरपुरमें और तीसरी खैरपुरमें बास करती थी। हैदराबादसे कुछ दूर जूदवाड़ नामक स्थानमें तालपूरवंशीय अधिक संख्यामें रहते थे। हैदराबादके तालपूर लोगोंकी सभी शाखाएं श्रद्धा और सम्मान की निगाहसे देखती थीं। उनकी सलाह लिये विना कोई तालपूर-शासनकर्त्ता किसी गुरुतर काममें हाथ नहीं डाल सकते थे।

१७९९ ई०में तालपूरवंशीय मीरोंके साथ वाणिज्य कार्यका बन्दोबस्त करनेके लिये एक अंगरेज दूत वहां गया, लेकिन कोई फल न निकला, मीरोंने जब कराचीके अंगरेज दूतको शहर छोड़ देनेको कहा, तब वे उसी समय शहर छोड़ चले गये। १८०९ ई०में तालपूरोंके साथ अंगरेजोंकी एक सन्धि हुई। धीरे धीरे अंगरेज लोग अपनी गोटी जमाने लगे।

काबुलमें जब लड़ाई छिड़ी थी, तब अमीरोंने अंगरेजोंकी अच्छी सहायता न की थी। इसी विश्वासघातकताके कारण बृटिशगवर्मेण्ट सिन्धुराज्यको हस्तगत करनेके लिए अग्रसर हुई। इस समय तालपुर लोगोंमें गृहविवाद जोरोंसे चल रहा था। उन्होंने अन्तमें अंगरेजोंके साथ इस शर्त पर सन्धि कर ली, कि वे उन्हें वार्षिक कर दिया करेंगे। किन्तु चार्ल्स नेपियरने देशको अच्छी तरह अपने दखलमें लानेकी इच्छा रखते हुए नये नियमोंसे सन्धि करनेका प्रस्ताव पेश किया। अन्तमें गृहकलहमें नियुक्त हीनमति तालपूर लोगोंके साथ बृटिशगवर्मेण्टकी लड़ाई छिड़ ही गई। युद्धमें तालपूर लोग हार गये और उनके राज्यशासनका अस्तित्व सदाके लिये जाता रहा।

तालपूरोंका कहना है, कि हसीमके पुत्र मीर हमजा उनके आदिपुरुष हैं। ये लोग अरब-जातीय बलोची शाखासे उत्पन्न हुए हैं। इनके मीर शाहदादखाँ नामक एक दूसरे आदिपुरुष थे, जिन्होंने अपने चाचासे मनोमालिन्य हो जानेके कारण कलहोरा-राज मियाँ सहलकी अधीन नौकरी की थी और सियाधर्मका अवलम्बन किया था। उनके साथ अनेक बलोची सिन्धुदेशमें आये थे। आतिथेयता और अभ्यागतकी अभ्यर्थनाके लिए तो तालपूरवंशीय राजा बड़े प्रसिद्ध थे, किन्तु वे इतने पढ़े लिखे न थे। खैरपुरके तालपूरगण अपनी सेनाको यथेष्ट जागीर देते थे। ये लोग बड़े मितव्ययी थे, किन्तु घोड़े तथा अस्त्र शस्त्र खरीदते समय मितव्ययताकी ओर ध्यान नहीं देते थे। शिकार खेलनेमें भी इनका प्रचुर अर्थ खर्च होता था।

तालपूर मीरगण बहुमूल्य लुङ्गी तथा कश्मीरी शाल पहनते थे। सिन्धुदेशमें आज कल जैसी टोपीका व्यवहार है, वे लोग उसी तरहकी टोपी पहनते थे। इनकी

तलवार और कटिबन्धका कुछ अंश स्वर्णखचित होता था।

राजकार्यके लिये ये लोग अधीन बलोच सामन्तोंको जागीर देते थे। शरीर-रक्षकके सिवा इनके पास दूसरी सेना हर वक्त मौजूद नहीं रहती थी। युद्धके समय प्रत्येक पदातिक सैनिकको हर रोज =) आना और अश्वारोहीको ।) आना तनखाह मिलती थी। यद्यपि तालपुरी मीरोंके सञ्चित सेना नहीं थी, तो भी युद्धके समय वे बातकी बातमें प्रायः ५०००० सेना जुटा लेते थे।

कर संग्रहका नियम जमींदारी सरीखा था। राजकर विशेषतः फसलसे चुकाया जाता था, जो बंटाई कहती थी। कहीं कहीं जमीनके $\frac{१}{३}$, $\frac{२}{५}$ अथवा $\frac{३}{५}$ अंशका मूल्य स्थानीय अर्थ राजकरस्वरूप निर्दिष्ट था। इस करको वे महशूल कहते थे। खेतमें जल सींचनेके लिये एक प्रकारका कर लगता था। इसके सिवा गृहस्थों पर जिजिया कर भी प्रचलित था। परती जमीनका थोड़े करमें बन्दोवस्त कर दिया जाता था। खजूरके पेड़ पर भी एक प्रकारका कर था। इनके अधीन कितने जमींदार भी थे, जिनकी मीरोंके यहां खूब खातिर होती थी। जमींदार लोग मालकानों, जमींदारी और राजखर्च ये तीन प्रकारके लापी उपजके अनुसार वसूल करते थे। आमदनी और रफ्तनीके ऊपर भी कर निर्दिष्ट था। बाजारमें जितनी वस्तु बेची जाती थीं, उनका तराजू कर देना पड़ता था। बिना लाइसेन्सके कोई मादक द्रव्य तैयार नहीं कर सकता था। धोबी, ताँती और दूकानदारोंकों थोड़ा थोड़ा कर लगता था। मीर लोग अपने कर्मचारियोंको यथेष्ट इनाम और जागीर देते थे।

तालपूरोंके शासनकालमें करदार, कोतवाल और अन्यान्य कर्मचारिगण फौजदारी विचार करते थे। कभी कभी मीरगण स्वयं इसका फैसला कर देते थे। भिन्न भिन्न अपराधोंमें हस्तपदच्छेदन, बेत्राघात, बन्धन और अर्थदण्ड आदिकी सजा थी। मृत्युदण्ड प्रायः देखनेमें न आता था। हत्याकारी उसी हालतमें सब दण्डोंसे छुटकारा पाता था, जब वह मृतव्यक्तिके कुटुम्बोंको धन दे कर सन्तुष्ट कर देता था। अभियुक्त व्यक्ति अपनेको निर्दोष बतलाने पर भी जब तक वह अग्नि वा जलपरीक्षा द्वारा साक्षात् प्रमाण न देता था तब तक वह उसकी मुक्ति नहीं होती थी। अभियुक्त व्यक्ति जलके नीचे रक्खा जाता था। एक मनुष्य धनुषमें तीर लगा कर अपनी कूवत भर उसे फेंकता था। दूसरा आदमी उस तीरको लानेके लिए भेजा जाता था। जब तक वह लौट कर वहां न आ जाता था, तब तक यदि अभियुक्त व्यक्ति जलके नीचे रह जाता, तो निर्दोष समझा जाता था। यदि वह तीर लानेके पहले ही जलमेंसे अपना सिर उठा लेता तो वह दोषी ठहराया जाता था। अग्निपरीक्षा इससे भी कठिन थी। ७ हाथ लम्बा एक गड्ढा बना कर उसे लकड़ीसे भर देते थे। पीछे उसमें आग लगा कर अभियुक्त व्यक्तिको केलेके पत्तंसे हाथ पैर बांध उसी गड्ढेमें छोड़ देता था। बाद उसे एक छोरसे लेकर दूसरे छोर तक जाना पड़ता था। इसमें यदि वह बच जाता तो सभी उसे निर्दोष समझते थे। इन जल और अग्नि परीक्षाका नाम चर और टुबी था। कैदियोंके लिये उपयुक्त जेल नहीं था। दिनके समय पहरू लोग उन्हें भीख मांगनेके लिये शहरमें घुमाते थे। राजसरकारसे उन्हें भोजन नहीं मिलता था। रातको उन्हें शृङ्खलाबद्ध अवस्थामें अथवा हथकड़ी पहना कर रखते थे। दीवानी विचार फौजदारी विचारकोंके ही हाथ था। उस समय दीवानी मामलेमें बहुत रुपये खर्च होते थे, इसी कारण दीवानी मुकदमेकी संख्या प्रायः नहींके बराबर थी।

इतिहासमें तालपूरोंकी मुद्राका कलदार नामसे उल्लेख है।

तालप्रलम्ब (सं॰ क्ली॰) तालवृक्षे प्रलम्बते प्र-लम्ब-अच्। ताड़की जटा।

तालबन्द (हिं॰ पु॰) वह हिसाब जिसमें आमदनीकी हर एक मद दिखलाई गई हो।

तालबहत—युक्त-प्रदेशके ललितपुर जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा॰ २५° ३´ उ॰ और देशा॰ ७८° २६´ पू॰में ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे और कानपुर-सागरके पथ पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५६८३ है। यहां एक बहुत बड़ा ह्रद या ताल है, उसीके नामसे इस नगरका नामकरण हुआ है। एक

समय यह स्थान विशेष समृद्धिशाली था। भग्नदुर्ग, पहाड़के चारों ओर सुशोभित दुर्भेद्यदुर्ग प्राचीर, प्रासाद और अट्टालिकाएं प्राचीन समृद्धिका विलक्षण परिचय देती हैं। सर हिउ रोजने १८५७ ई०में यहांका प्राचीन दुर्ग धूलमें मिला डाला। नगरकी आय प्रायः ६००) रु० है। यहां अनेक प्रकारके अन्न और कपासका व्यवसाय चलता है। पुलिसका खर्च निभानेके लिये प्रत्येक गृहस्थसे कुछ कुछ कर लिया जाता हैं। यहां एक प्रकारका कम्बल तैयार होता है।

तालबैताल (हिं० पु०) दो देवता या यक्ष। प्रवाद है कि राजा विक्रमादित्यने इन्हें सिद्ध किया था और ये बराबर उनकी सेवामें रहते थे।

तालभृत् (सं० पु०) तालं बिभर्ति ध्वजरूपेण भृ-क्विप्। बलराम।

तालमखाना—(हिं० पु०) गीली या सीड़ जमीन पर होनेवाला एक पौधा। यह औषधके काममें आता है।

संस्कृत	अतिच्छत्रा।
कर्णाटकी	कालवङ्कबीज।
तामिल	निर्मली।
बम्बई मन्द्राज	तालमखाना, कोलशुण्डा।
सन्थाल	गोकुल जनम।

यह एक तरहका छोटा कण्टकवृक्ष है। यह भारतमें सर्वत्र विशेषतः पानी या दलदलोंके निकट होता है। इसके बीज, जड़, पेड़ सभी दवाईके काममें आते हैं। यह कण्टकारी, गोखरू आदिकी जातिका है। मुसलमानी और आर्यवैद्यशास्त्रमें इसका बहुत व्यवहार देखनेमें आता है। इसके शैत्य और मूत्रकारक गुण अति प्रसिद्ध हैं। मूत्रकृच्छ्र, उदरी वात और लिङ्गसम्बन्धी रोगोंमें इसका व्यवहार किया जाता है। इसके बीज कामवर्द्धक हैं। इसकी जड़का उबाला हुआ पानी आधा आध चम्मच दिनमें दो बार पीनेसे मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोगमें फायदा पहुंचता है। मलवार प्रदेशमें चिकित्सकसे बिना परामर्श लिए ही लोग उक्त रोगोंमें इसका व्यवहार करते हैं। यूरोपीय डाक्टरोंने भी फिलहाल इसकी परीक्षा की और निम्न प्रकार गुण बतलाए हैं।

बीज—स्निग्धकारक, मूत्रकारक, बलकारक और लिङ्गदोष-प्रशमनक है।

मूल—स्निग्धकारक, तिक्त, मूत्रकारक और बलकारक है।

पत्र—स्निग्धकारक और मूत्रकारक हैं।

बम्बई प्रदेशमें इसके बीजोंका रोजगार होता है।

पर्याय—कोकिलाक्ष, काकेक्षु, इक्षुर, भिक्षु, काण्डेक्षु, इक्षुगन्धा, शृङ्खली, शूरक, शृगालघण्टी, वज्रास्थि, शृङ्खला, वनकण्टक, वज्र तिक्षुर, शुक्लपुष्प, छत्रक और अतिच्छत्र। अतिच्छत्र देखो।

तालमर्दक (सं० पु०) वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा।

तालमूलिका (सं० स्त्री०) तालमूली देखो।

तालमूलिका (सं० स्त्री०) तालमूली स्वार्थे कन् टाप् ह्रस्वश्च। तालमूली, मूसली।

तालमूली (सं० स्त्री०) तालस्य मूलमिव मूलमस्याः, बहुव्री०। स्वनामख्यात क्षुपविशेष, मूसली। संस्कृत पर्याय—तालिका, तालमूलिका, अर्शोघ्नी, मूषली, ताली, खलिनी, सुवहा, तालपत्रिका, गोधापदी, हेमपुष्पी भूताली और दीर्घकान्दिका। गुण—शीत, मधुर, वृष्य, पुष्टि, बल और कफप्रद, पिच्छिल, पित्त, दाह और श्रमहारक है। इसके दो भेद हैं, श्वेत और कृष्ण। श्वेत अल्पगुणयुक्त और कृष्ण रसायन होता है। श्वेत तालमूली सफेद मूसली और कृष्ण तालमूली काली मूसलीके नामसे मशहूर है। गुण—मधुर, रम्य, वृष्य, उष्णवीर्य और बृंहण, गुरु, तिक्त, रसायन तथा गुदजरोगानिलनाशक है। (भावप्रकाश)

तालमेल (हिं० पु०) १ तालसुरका मिलान। २ उपयुक्त योजना, मिलान, मेल जोल। ३ अनुकूल संयोग, अच्छा मौका।

तालयन्त्र (सं० क्ली०) मत्स्यतालुवत् द्वादशाङ्गुल परिमित यन्त्रभेद, बारह ऊंगलीका एक यन्त्र जिसका आकार मछलीके तालूसा होता है। कान, नाक और नाड़ीके शल्य निकालनेके लिये यह यन्त्र व्यवहृत होता है।

तालरस (सं० पु०) ताड़के पेड़का मद्य, ताड़ी।

तालरेचनक (सं० पु०) तालेन रेचयति रिच्-णिच्-ण्वु स्वार्थे-कन्। नट।

ताललक्षण (सं० पु०) तालो लक्षणं ध्वजो यस्य बहुव्री०। तालध्वज, बलराम।

ताललक्ष्मन् (सं० पु०) ताल एव लक्ष्म चिह्नं यस्य। बलराम।

तालवन (सं० क्ली०) १ वृन्दावनमें स्थित ताड़ बहुल एक वन। यह तालवन बारह वनोंमेंसे एक है। यह मधुवनके पास अवस्थित है। बलरामने यहां धेनुकका बध किया था। धेनुकबधसे पहले यह वन जीवजन्तुओंके लिए अगम्य था, उसके बादसे यह पुण्यतीर्थ समझा जाने लगा। (वृन्दावनलीलामृत, भक्तमाल)

यह तालवन गोवर्द्धन पर्वतसे उत्तरकी ओर यमुनाके किनारे पर अवस्थित है। यहांकी भूमि समतल, स्निग्ध, प्रशस्त और कुशसमाकीर्ण तथा ताड़के वृक्षोंसे भरी हुई है। इस वनमें मनुष्योंका जाना नहीं होता, यह अत्यन्त दुष्प्रवेश्य है। इस वनकी मिट्टी काली है, उससे कंकड़ पत्थरोंका सम्बन्ध ही नहीं है। इस वनमें नरमांसलोलुप गर्दभरूपधारी अति दुर्दमनीय प्रभूत बलशाली धेनुक नामका एक दैत्य रहता था। एक दिन कृष्ण और बलदेव कालियदमन करके इस वनमें पहुँचे। धेनुक दैत्यने इन पर आक्रमण किया, इस पर बलदेवने उसके पैर पकड़ कर घुमाना शुरू किया और अन्तमें एक ताड़के वृक्ष पर फेंक दिया; जिससे उसकी मृत्यु हो गई। धेनुकके आत्मीयवर्गके साथ निहत होने पर तालवन निरुपद्रव हुआ और तभीसे यह तीर्थमें परिणत हो गया। (हरिवंश ६९ अ०)

२ तालकान, वह जङ्गल जिसमें अधिकतर ताड़के ही पेड़ हों।

तालवाही (सं० त्रि०) वह बाजा जिससे ताल दिया जाता है।

तालवृन्त (सं० क्ली०) ताले करतले वृन्तं बन्धनमस्य तालस्येव वृन्तमस्य वा, बहुव्री०। १ व्यजन, ताड़के पत्तेका पंखा। २ एक प्रकारका सोम।

तालवेचनक (सं० पु०) तालस्य वेचनं पृथक् करणं संस्थानेन नियमनं यत्र कप्। नट।

तालव्य (सं० त्रि०) तालोर्जातं तालु-यत् (शरीरावयवत्वात् यत्। पा ५।१।६) तालुजात, तालुसे उच्चारण किया जानेवाला वर्ण। इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य और श ये वर्ण तालुसे उच्चारण किये जाते हैं।

तालशस्य (सं० क्ली०) तालास्थिमज्जा, ताड़के फलके भीतरका गूदा।

तालसत्व (सं० क्ली०) हरितालभस्म, हरतालकी भस्म।

तालमांस (हिं० पु०) ताड़के फलके भीतरका गूदा। यह खानेके काममें आता है।

तालस्कन्ध (सं० पु०) एक अस्त्र। इसका विवरण वाल्मीकि रामायणमें आया है।

ताला (हिं० पु०) कपाट अवरुद्ध करनेका यन्त्र, जन्दरा, कुलफ।

ताला-कुंजी (हिं० स्त्री०) १. किवाड़, संदूक आदि बंद करनेका यन्त्र। २ लड़कोंका एक खेल।

तालाख्या (सं० स्त्री०) तालं तत्पत्रमिव आख्यायते आख्याक वा तालं आख्या यस्याः। मुरा नामक गन्धद्रव्य, कपूर। कचूरी।

तालाङ्क (सं० पु०) तालस्तालचिह्नितः अङ्कः ध्वजो यस्य, बहुव्री०। १ बलदेव। २ करपत्र। ३ शाकभेद, एक प्रकारका साग। ४ महालक्षणसम्पन्न पुरुष, शुभ लक्षणवान् मनुष्य। ५ पुस्तक। ६ हर, महादेव।

तालाङ्कुर (सं० क्ली०) १ तालास्थि शस्य, ताड़के फलके भीतरका गूदा। २ मनःशिला, मैनसिल।

तालादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त गणविशेष, पाणिनिके एक गणका नाम।

तालाब (हिं० पु०) जलाशय, सरोवर, पोखरा।

तालावचर (सं० पु०) तालेन अवचरति नृत्यति अव-चर-अच। नट।

तालि (सं० स्त्री०) तालयति प्रतिष्ठत्यनया तल-णिच-इन्। सर्व्वधातुभ्यो इन्। उण् ४।११७। भूम्यामलकी, भुंई आँवला। २ अवणावरोध। ३ आघात, चोट।

तालिक (सं० पु०) तलेन करतलेन निर्वृत्तः तल-ठक्। तेन निर्वृत्तं। पा ५।१।७९। १ प्रसारिताङ्गुलिपाणि, फैली हुई हथेली। इसके पर्याय—चपेट, प्रतल, तल, प्रहस्त और ताल। २ तालपत्र या कागजका पुलिंदा। ३ चपत, तमाचा। ४ नत्थी या तागा जिससे भिन्न भिन्न विषयोंके तालपत्र या कागज बंधे हों।

तालिकट--तालकट देखो।

तालिका (सं० स्त्री०) तालिक स्त्रियां टाप्। १ चपेट, चपत, तमाचा। २ तालमूली, मूसली। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ४ ताली, कुंजी। ५ तालपत्र या कागजका पुलिंदा। ६ सूची, फिहरिस्त।

तालिकोट—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत बीजापुर जिलेके मुद्देबिहाल उपविभागका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १६° २८´ उ० और देशा० ७६° १९´ पू०में कलाड़गी नगरसे ६० मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। १५६५ ई०की २५वीं जनवरीको इस नगरसे प्रायः ३० मील दूर कृष्णा नदीके दाहिने किनारे विजयनगरके राजा रामराज और उनके तीन भाइयोंके साथ निजामशाही, कुतुबशाही और आदिलशाही राज्यके मुसलमानोंका युद्ध हुआ था। इस युद्धमें बीजापुरका हिन्दू राज्य बिलकुल नष्ट हो गया। निजामशाहीने विजयी हो कर तालिकोट अधिकार किया। महाराष्ट्रके अभ्युदयके समय इस जगह बड़े बड़े मकान मन्दिर इत्यादि बनाये गये थे।

तालित (सं० क्ली०) ताड्यते यत् तड़-णिच्-क्त डस्य लत्वं। १ वाद्यभाण्ड, एक प्रकारका बाजा। २ रञ्जित वस्त्र, रंगा हुआ कपड़ा। ३ गुण, रस्सी, डोरी।

तालिन् (सं० पु०) तलेनर्षिणा प्रोक्तं अधीयते शौनकादि० णिनि। १ तलोक्ताध्येता, वह जो तलऋषिका कहा हुआ अध्ययन करता है। (त्रि०) ताली वाद्यत्वेनास्त्यस्य इनि। दत्तताल। २ (पु०) ३ शिव, महादेव।

"वैष्णवी पणवी ताली खली कालंकटः कटः।"
(भारत अनु० १७ अ०)

तालिब (अ० पु०) वह जो अन्वेषण करता हो, तलाश करनेवाला।

तालिबअली—बिलग्राम-वासी एक कवि। रस पक्षकी इन्होंने अनेक कविताएं रची हैं। ये १८०३ ई०में विद्यमान थे।

तालिबइल्म (अ० पु०) विद्यार्थी, छात्र।

तालिबशाह—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म १७६८ ई०में और मृत्यु १८०० ई०में हुई थी। इनकी कविता खड़ी बोली मिश्रित है।

तालियामार (हिं० पु०) पानी काटनेवाला जहाज या नावका अगला भाग।

तालिश (सं० पु०) तलतीति तल-गतौ इश-णित्। इशः कप्यपि बडिल्यस्तलेस्तु णित्। उण् १।३२९। पर्वत, पहाड़।

ताली (सं० स्त्री०) तालेन तन्निर्यासेन निर्वृत्ता अण्। १ ताड़ी। तल-ण्यन्तात् अच् ङीष्। २ वृक्षभेद, एक प्रकारका पेड़। ३ भूम्यामलकी, भूआंवला। ४ तालमूली, मुसली। ५ अरहर। ६ तालीशपत्राख्य वृक्ष, एक प्रकारका छोटा ताड़ जो बंगाल और बरमामें होता है। ७ तालोद्घाटनयन्त्र, कुंजी। ८ ताम्रवल्लीलता। ९ छन्दोभेद, एक वर्णवृत्त। १० मेहराबके बीचोबीचका पत्थर या ईंट।

ताली (हिं० स्त्री०) १ करतलध्वनि। २ छोटा ताल, तलैया। ३ पांवके मध्य उंगलीका पोर। ४ चाबी।

तालीका (अ० पु०) १ मकानकी कुर्की। २ वह फिहरिस्त जो कुर्क किए हुए असबाबके लिये बनाई जाती है।

तालीपत्र (सं० क्ली०) ताल्या इव पत्रमस्य। तालीशपत्र।

तालीम (अ० स्त्री०) शिक्षा, उपदेश।

तालीयक (सं० पु०-क्ली०) करताल।

तालीश (सं० क्ली०) तालीव रोगान् श्यति शो-ड। स्वनामख्यात वृक्षविशेष।

तालीशपत्र (सं० क्ली०) तालीशं रोगनाशकं पत्रं यस्य। भूम्यामलकी, भूआंवला। यह तमाल या तेजपत्तेकी जातिका होता है और हिमालय पर सिन्धुसे सतलज और सिकिम तक बहुत होता है। इसके संस्कृत पर्याय—शुकोदर, धात्रीपत्र, अर्कवेध, करिपत्र, करिच्छद, नील, नीलाम्बर, ताल, तालीपत्र, तमाह्वय और तालीशपत्रक। इसका गुण—तिक्त, उष्ण, मधुर, कफ, वात, कास, हिक्का, क्षय, श्वास और छर्दिदोष, गुल्म, आम और अग्निमान्द्यनाशक तथा लघु और अरुचिकर है। इसके पत्ते तेजपत्तेसे लम्बे होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत खरी होती है।

तालीशपत्री (सं० स्त्री०) तालीशपत्र।

तालीशाद्यमोदक (सं० पु०) चक्रदत्तोक्त मोदकभेद, चक्रदत्तके मतानुसार एक प्रकारका मोदक। इसकी प्रस्तुतप्रणाली--तालीशपत्र १ तोला, मिर्च २ तोला, सोंठ ३ तोला, पीपल ४ तोला, वंशलोचन ५ तोला, दारचीनी ॥ (आधा) तोला, इलायची ॥ (आधा) तोला,

चीनी ॥ (आधा) सेर, इन सबको मिला कर मोदक प्रस्तुत करना पड़ता है। चीनीके समान जलमें सबको यथाविधानसे पाक करनेके बाद गोली प्रस्तुत करते हैं जो मोदककी अपेक्षा कुछ छोटी होनी चाहिये। इसके सेवन करनेसे कास, श्वास, अरुचि और प्लीहा इत्यादि समस्त रोग जाते रहते हैं।

तालु (सं० क्ली०) तरन्त्यनेन वर्णा इति तृ ञुण रस्य लश्च। ञोरश्च लः। उण् १।५। जिह्वेन्द्रियके अधिष्ठानका स्थान, मुंहके भीतरकी ऊपरी छत जो ऊपरके दांतोंकी पंक्तिसे लगा कर कौवा (घांटी) तक होती है, तालू। पर्याय—काकुद, तालुक।

मुंहसे तालू निर्भिन्न हुआ है, उसमें जिह्वा उत्पन्न हुई है। इसमें नाना प्रकारके रस उत्पन्न होते हैं, जीभ उनको ग्रहण करती है।

विराट् पुरुषका तालू निर्भिन्न अर्थात् पृथकरूपसे उत्पन्न होने पर लोकपाल वरुण अपने अंशोंमें जिह्वाके साथ अधिदेवतास्वरूप उसमें प्रविष्ट हुए। (भाग० ३।६।४१)

तालुगत रोग होने पर उसका प्रतीकार सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—गलशुण्डिकारोगमें अंगूठे और दूसरी उंगलीकी सटा कर गलशुण्डिकाको खींचें और जीभके ऊपर रख कर उसे मण्डलाग्र शस्त्र द्वारा छेद दें; इसको अल्पांश वा पूर्णांशमें नहीं छेदें और न खींचें, किन्तु एकांशको छोड़ कर तीन अंश छेदें। अत्यन्त छेदन करनेसे छेदनके कारण मृत्यु हो सकती है; हीनच्छेद होनेसे शोफ, लालास्राव, निद्रा, भ्रम और तमोदृष्टि ये सब उपद्रव होते हैं। इसलिये दृष्टकर्मा और चिकित्सा-विशारद वैद्योंको चाहिये, कि गलशुण्डी रोगमें छेदन करके नीचे लिखी प्रक्रिया करें। मरिच, अतिविषा, पाठा, वच, कुड़ और शोनत्वच, इनका क्वाथ वा चूर्ण मधु और सैन्धव लवणके साथ प्रतिसारणमें प्रयोग करें। वच, अतिविषा, पाठा, रास्ना, कुटकी और नीम इनका क्वाथ कवलग्रहमें प्रयोजनीय है। इङ्गुदी, दन्ती, सरल काष्ठ, देवदारु और अपामार्ग,-इनको पीस कर बत्ती बनावें और सुबह शाम उसका धूम्रपान करें। इसमें क्षारयुक्त मूंगका जूस खाना चाहिये।

अध्रुकूप, तुण्डिकेरी, मंसङ्घात और तालुपुप्पुटरोगमें रोगके अनुसार शस्त्रकार्य करें। तालुपाक रोगमें पित्त-नाशक क्रिया करनी चाहिए। तालुशोफमें स्नेह, स्वेद, और वायुशान्तिकर क्रिया करें।

(सुश्रुत चिकित्सितस्थान २२ अ०)

तालुक (सं० क्ली०) ताल स्वार्थे कन्। १ तालू। २ तालूका एक प्रकारका रोग।

तालुकण्टक (सं० पु०-क्ली०) एक रोग जो बच्चोंके तालूमें होता है। इसमें तालूमें कांटेसे पड़ जाते हैं और तालू धँस जाता है। इसमें बच्चोंको पतले दस्त भी आते हैं।

तालुकदारी ग्राम—कई एक ग्राम। वंशानुक्रमिक बन्दोबस्तके अनुसार उक्त ग्रामोंका राजस्व गवर्मेण्ट तथा तालुकदार आपसमें बांट लेते हैं और तालुकदारको ग्रामके शासन तथा व्यवस्थाके सम्बन्धमें कई एक निर्दिष्ट काय करने पड़ते हैं। जब कभी तालुकदारगण अपने कर्त्तव्य कार्योंसे मुख मोड़ते हैं, तब गवर्मेण्ट उनके हाथसे अधिकार छीन लेती हैं; किन्तु राजस्वका हिस्सा देती हैं। इन समस्त ग्रामोंको तालुकदारी ग्राम कहते हैं। राजपूत, कोलि और कुशवती मुसलमानोंमें ही इस तरहकी तालुकदारी देखी जाती है।

तालुका (सं० स्त्री०) तालूकी दो नाड़ी।

तालुक्ष्य (सं० पु०-स्त्री०) तलुक्षर्षेर्गोत्रापत्यं यञ्। १ तलुक्ष ऋषिके गोत्रज। (स्त्री०) लोहितादित्वात् ष्फ षित्वात् ङीष्। २ तालुक्ष्यायणी।

तालुजिह्व (सं० पु०) तालु एव जिह्वा यस्य, बहुव्री०। १ कुम्भीर, घड़ियाल। इसके जीभ नहीं होती। यह तालूसे ही रसास्वादन करता है; इसीसे कुम्भीरका नाम तालुजिह्व पड़ा है। २ आलजिह्व, गलेका कौवा (uvula)।

तालुन (सं० त्रि०) तलुनस्यापत्यं तलुन-अञ्। उत्सादिभ्योऽञ्। पा ४।१।८६। तलुन सम्बन्धीय।

तालुपाक (सं० पु०) सुश्रुतोक्त तालुगत रोगभेद, एक तालूकी बीमारीका नाम। इस रोगका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है; तालुगत रोग ८ प्रकारका है, जैसे—गलशुण्डिका, तुण्डिकेरी, अध्रुष, मांसकच्छप, अर्बुद, मांससङ्घात, तालुपुप्पुट, तालुशोष और तालुपाक।

श्लेष्मा और रक्तद्वारा तालुमूलमें वायुपूर्ण वस्तिकी तरह (स्फीत मशककी भाँति) दीर्घ उन्नत शोफ उत्पन्न

होता है तथा उससे पिपासा, श्वास और काश होता है; इसको गलशुण्डीरोग कहते हैं। सूज जाना, मोटा घाव होना, वेदना, दाह और पक जाना ये सब तुण्डीकेरीके लक्षण हैं। तालूमें सूजन, स्तब्धभाव (भारीपनका होना) और ललाई होनेसे उस रोगको अध्रुष समझें। यह रोग रक्तके द्वारा होता है। इसमें अत्यन्त ज्वर होता है, तालुदेश कछुवेकी तरह ऊँचा हो जाता है। वेदना घटती और सूजन बढ़ती रहनेसे उसको कच्छपी रोग कहते हैं। यह श्लेष्माके द्वारा उत्पन्न होता है। तालुमें पद्माकार शोफ होने पर उसको रक्तजन्य अर्बुद कहते हैं। अर्बुदका लक्षण पहले लिखा जा चुका है। तालुके भीतर श्लेष्मा द्वारा मांस दूषित हो कर वेदनाहीन जो सूजन होती है, उसको मांससंघात कहते हैं। तालुदेशमें वेदनाहीन स्थायी और बेरकी तरहकी जो सूजन होती है, वह कफभेदजन्य पुप्पुटरोग है। वातपित्तके कारण तालुके सूख और फट जाने पर, तथा उससे तालुश्वास होने पर, उसे तालुशोष कहते हैं। पित्तके द्वारा तालूका पक जाना यह तालुपाकका लक्षण है।

तालुपात (सं॰ पु॰) एक रोग जो छोटे बच्चोंके तालुमें होता है।

तालुपीड़क (सं॰ पु॰) तालुपात रोग।

तालुपुप्पुट (सं॰ पु॰) तालुगत रोगभेद, तालुमें होनेवाला एक रोग।

तालुयन्त्र (सं॰ क्ली॰) बारह उँगलीका एक यन्त्र जो मछलीके तालुसा होता है। तालयन्त्र देखो।

तालुर—तालूर देखो।

तालुविद्रधि (सं॰ पु॰) तालुगत शोथविशेष। त्रिदोषके कारण तालुमें दाहरोग मिल जानेसे यह रोग उत्पन्न होता है।

तालुविशोषण (सं॰ क्ली॰) तालुका सूख जाना।

तालुशोष (सं॰ पु॰) सुश्रुतोक्त तालुगत रोगभेद, एक रोग जिसमें तालू सूख जाता है और उसमें फटकर घावसे हो जाते हैं।

तालू (हिं॰ पु॰) १ तालू देखो। २ खोपड़ीके नीचेका भाग, दिमाग। ३ घोड़ोंका एक ऐब।

तालूफाड़ (हिं॰ पु॰) हाथियोंका एक रोग। इसमें हाथीके तालुमें घाव हो जाता है।

तालूर (सं॰ पु॰) तालयति तल-णिच् बाहुलकात् ऊर आवर्त्त, जलका भंवर।

तालूषक (सं॰ क्ली॰) तल-वा उषक। तालू।

तालेवर (हिं॰ वि॰) धनाढ्य, धनी।

तालेश्वर नदी—जशोर जिलेकी एक नदी। यह नरेन्द्रपुरके निकट अठारा-बांकाकी शाखा नदी चित्रासे निकल है और तालेश्वर ग्रामके निकट भैरव नदीमें मिली है। इसकी लम्बाई लगभग ५ मील होगी। वर्षाऋतुमें इसकी चौड़ाई करीब ५० गजकी हो जाती है। छोटी छोटी नावें इसमें सब दिन आती जाती हैं।

ताल्प (सं॰ त्रि॰) तल्पके वंशज।

ताल्लुक (हिं॰ पु॰) तअल्लुक देखो।

ताल्वर्बुद (सं॰ पु॰) रोगविशेष, एक रोग। इसके होनेसे तालूमें एक कमलके आकारका बड़ासा अङ्कुर या काँटा सा निकल आता है। इसमें बहुत पीड़ा होती है।

ताव (हिं॰ पु॰) १ वह गरमी जो किसी वस्तुको तपाने या पकानेके लिये पहुँचाया जाय। २ अधिकारयुक्त क्रोधका आवेश, घमण्ड लिए हुए गुस्सेको झोंक। ३ अहङ्कारका आवेश। ४ तत्काल होनेकी आवश्यकता। ५ कागजका एक तख्ता।

तावक (सं॰ त्रि॰) तव इदं युष्मद्-अण्, एकवचने तवकादेशः। त्वत् सम्बन्धनीय, तेरा, तुम्हारा।

तावकीन (सं॰ त्रि॰) तव इदं युष्मद् खञ्। युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्। पा ४।३।१। एकवचने तवकादेश। त्वदीय, तुम्हारा।

तावत् (अव्य॰ तत्परिमाणमस्य तत् डावतु। १ साकल्य। २ अवधि। ३ मान। ४ अवधारण, निश्चय। ५ प्रशंसा। ६ पक्षान्तर। ७ संग्राम। ८ अधिकार। ९ तदा, तब तक। १० वाक्यालङ्कार। (त्रि॰) तत्परिमाणमस्य तद् वतुप्। ११ परिमाणविशिष्ट, उतने परिमाणका।

तावत् शब्द क्रियाका विशेषण होनेसे वह क्लीवलिङ्ग होता है।

तावत्क (सं॰ त्रि॰) तावता क्रीतः संख्यात्वात् कन्। उतनी कीमतमें खरीदा हुआ।

तावत्कृत्वस् (सं॰ त्रि॰) तावत्कृत्व इति वक्तव्यात् क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्। उतना संख्या, उतना अंक।

तावतिक (सं० त्रि०) तावत् क इट्। वतोरिड् वा। पा ५।१२।३। उतनेमें खरीदा हुआ।

तावतिथ (सं० त्रि०) तावतो पूरणः डट्, वा "वतोरिथुक्" इति सूत्रेण इतुक्। तावत्का पूरण।

तावन्मात्र (सं० त्रि०) तावदेव तावत्-मात्रच्। वरवन्तात स्वार्थे द्वयसज् मात्रचौ बहुलं। पा ५।२।३७। उतना ही परिमाण, उतनेका।

तावबन्द (हिं० पु०) एक प्रकारकी औषध जिसके प्रयोगसे चांदीका खोटापन तपाने पर भी प्रकाश न हो।

तावभाव (हिं० पु०) परिस्थिति, मौका।

तावर (सं० क्लो०) धनुर्गुण, धनुषको डोरी।

तावरी (हिं० स्त्री०) १ जलन, ताप। २ धूप, घाम। ३ ज्वर, बुखार। ४ मूर्च्छा।

तावान (फा० पु०) दण्ड, डाँड़।

तावि—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़का एक छोटा राज्य।

ताविष (सं० पु०) तश्यते गम्यते सत्कमिभिरत्र तव गौत्रधातुः तव-टिषच्। तवेर्णिद्वा। उण् १।४८। १ स्वर्ग। २ समुद्र।

ताविषी (सं० स्त्री०) तवति सौन्दर्यं गच्छति तव-टिषच् स्त्रियां ङीप्। १ देवकन्या। २ नदी। ३ पृथिवी।

तावीज (अ० पु०) १ यन्त्र, मन्त्र या कवच। यह सोने, चाँदी, ताँबे आदिके चौकोर या आठ पहल संपुटके भीतर रख कर गलेमें या बांह पर पहना जाता है। इससे रोग, दुःख या अपदेवताकी दृष्टि दूर होती है। पहले यूरोपमें भी तावीज पहननेकी प्रथा थी। भिउटेरोनमीके ११वें अध्यायके १८वें पदमें इस विषयका आभास पाया जाता है; उसमें लिखा है— 'Therefore shall ye lay up these my words in your heart, in your soul and bind them for a sign upon your hand that they maybe as frontlets between your eyes" हिन्दुओंमें राजाग्नि चौर भयनिवारणके लिये, रोग शोक दुःख कष्ट ह्रास करनेके लिये और ग्रहदोष शान्तिके लिये अनेक देवदेवी तथा ग्रहदेवताके कवच धारण करनेकी प्रथा प्रचलित है।

२ अलङ्कारविशेष। यह सोना या चाँदीका बना कर हाथमें पहना जाता है।

तावीष (सं० पु०) ताविष पृषो० दीर्घः। १ स्वर्ग। २ समुद्र। ३ काञ्चन, सोना।

तावीषी (सं० स्त्री०) ताविषी पृषो० दीर्घः। १ चन्द्रकन्या। २ इन्द्रकन्या।

तावुरि (पु०) वृषराशि।

ताश (हिं० पु०) १ खेलनेके लिये मोटे कागजका चौखूंटा टुकड़ा जिस पर रंगोंकी बूटियाँ या तसवीरें बनी रहती है, खेलनेका पत्ता। (Playing card)

इसके एक जोड़ेमें बावन पत्ते होते हैं जो चार रंगोंमें विभक्त रहते हैं। रंगोंके नाम हुक्म, चिड़ी, पान और ईंट हैं। एक एक रंगके तेरह तेरह पत्ते होते हैं। इस प्रकार चारों रङ्गके पत्ते मिला कर बावन होते है। प्रत्येक रंगके तेरह पत्तोंमेंसे एकसे दश तक तो बूटियां होती हैं जिन्हे क्रमशः इक्का, दुक्की (या दुड़ी), तिक्की, चौकी, पञ्जी, छक्का, सत्ता, अट्ठा, नहला और दहला कहते हैं; शेष तीन पत्तियोंमें क्रमशः गुलाम, बीबी और बादशाहकी तसवीरें होती हैं।

इन बावन ताशोंको ले कर अनेक प्रकारके खेल खेले जाते हैं, जिनमें साधारण या रंगमार खेल सबसे प्रसिद्ध है। इस खेलमें विशेष कर दो ही मनुष्य खेलते हैं। खेलनेके समय पहले ताशको अच्छी तरह फेरफार कर पांच पांच ताश पहली बार बाँटते हैं। इस खेलमें किसी रंगकी अधिक बूटियोंवाला पत्ता उसी रंगकी कम बूटियोंवाले पत्तेको मार सकता है। इसी प्रकार दहलेको गुलाम मार सकता है और गुलामको बीबी, बीबीको बादशाह और बादशाहको इक्का। रंगमारमें एक्का सबसे श्रेष्ठ माना जाता है और वह सब पत्तोंको मार सकता है। इसी प्रकार रंगसे मार कर जब हाथके पाँचों ताश खर्च हो जाते हैं, तब फिर पाँच पाँच ताश बांट लेते हैं। इसी क्रमसे बावनों ताशके बंट जाने पर खेलनेवाले अपने अपने जीते हुए ताशोंको उठा कर रंग लगाते हैं। अब खेल फिर पहले जैसा शुरू होता है। अन्तमें जिसके पास अधिक ताशके पत्ते आ जाते हैं, उसीकी जीत समझी जाती है। 'कोटपीस' नामक एक दूसरा खेल है। इसमें चार मनुष्य एक साथ खेलते हैं। दो दो मनुष्यका जोड़ा या गोइयाँ होता है। दाहिनी ओरसे चार

चार ताश पहली बार बाँटे जाते हैं। पहले जिसको ताशके पत्ते दिये जाते हैं, वह उन्हें ले कर जिस रंगके पत्तोंको बलवान् या अधिक देखता है, वही रंग बोलता है। सब पत्तोंके बट जाने पर वे पहले रंगमार जैसा खेल खेलते हैं। लेकिन खेलते समय दूसरेके पास उस रंगका पत्ता न रहे तो रंगसे मार सकता है! 'रंग'की दुक्की 'बदरंग'के एक्काको भी मार सकती है। इस प्रकार जब हाथके सब पत्ते खतम हो जाते हैं, तब जिसके पास जीते हुए ताशके अधिक पत्ते रहते हैं, वही जीतता है। 'गेम' नामका एक तीसरा खेल है। यह भी 'कोर्ट-फीस' की तरह खेला जाता है। फर्क इतना ही है, कि 'कोर्टफीस'में चार मनुष्य खेलते हैं, लेकिन इसमें छः। तीन तीन आदमीका जोड़ा या गोइयाँ होता है। इसमें चारो रंगकी दुक्की अलग रख दी जाती हैं। शेष अड़तालीस ताश छहोंके बीच आठ आठ करके बांट देते हैं। इसमें 'हाथ' बोलनेके लिये कहा जाता है अर्थात् कितनी बार वह स्वयं वा अपने जोड़से ताश काट सकता है। पांचसे ले कर सात हाथ बोल सकते हैं। जब हाथमें ऐसे ऐसे पत्ते आ जांय कि उनसे लगातार आठ बार काट सके, दूसरा एक बार भी काट न सके, तब वैसी हालतमें 'गेम' बोला जाता है। छहों खेलनेवालोंको जब बराबर बराबर ताशके पत्ते मिल जाते हैं, तब वे क्रमसे 'हाथ' बोलते हैं; कोई पाँच, कोई छः और कोई सात। जो जिस तरहका अपना ताश देखता है, बोल उठता है। जिसकी संख्या अधिक रहती है, पहले वही 'रंग' बोलता है। बाद 'रंगमार' जैसा खेल शुरू होता है। जो जितना हाथ बोलता है, उतना जीत लेने पर उस अङ्कको कागज पर लिख लेता है अथवा उसकी याददास्त रखी जाती है। अगर वह उतना हाथ न जीत लेता तो उसे 'पेनैलटी' लगती है अर्थात् उसके विरुद्ध पक्षका उससे दूना हाथ होता है। इसी प्रकार खेलते खेलते जिसके बावन हाथ पहले होते हैं, उसीकी जीत होती है; तब एक गेम कहलाता है। यदि हाथ बोलते समय 'गेम' कहा जाय और जीत न सके, तो दूसरेका दो 'गेम' होना साबित होता है। ताश खेलते समय खिलाड़ीको अपने ताश इस तरह छिपाये रखना चाहिये कि दूसरा कोई उसके ताशको देख न सके। ऐसा नहीं करनेसे उसकी पोल खुल जाती है और अन्तमें हार भी उसीकी होती है।

'गुलाम चोर' नामका एक और खेल है। इस खेलका जैसा नाम है, वैसी इसकी करनी भी है। इसमें चार खिलाड़ी रहते हैं, उपर्युक्त खेलों जैसा जोड़ा नहीं रहता। सभी एक दूसरेके विपक्ष रहते हैं। खेलके प्रारम्भमें बावन पत्तोंमेंसे किसी एक पत्तेको चुरा रखते हैं। पीछे सब पत्ते आपसमें बाँटे जाते हैं। बाद हरएक खिलाड़ी अपने पासके पत्तोंका जोड़ा लगा कर अर्थात् चिड़ीकी दुक्कीके साथ हुक्मकी दुक्की, तिक्कीके साथ तिक्की; इत्यादि इसी प्रकार पानके साथ ईंटकी बूटियोंके संख्यानुसार पत्तोंका जोड़ा लगा कर अलग रखते हैं। अब बचे हुए पत्तोंको वे अपने अपने सामने इस तरह पकड़े रहते हैं कि कोई दूसरा उसे देख न सके। बाद एक खिलाड़ी दूसरेके हाथसे पत्ता खींच कर, अगर उसके पास उसका जोड़ा रहता है, तो उसीके साथ मिला कर अलग रख देता है, या नहीं तो अपने हाथके पत्तोंमें ही उसे उलट पुलट कर दूसरेको खींचने कहता है। इस प्रकार खेलते खेलते सब पत्तोंका जोड़ा लग जाता है, केवल एक ही पत्ता जिसका जोड़ा चुरा कर रखा गया है, बच जाता है। जिसके हाथमें वह पत्ता रह जाता है, वह चोर समझा जाता है। इसीको 'गुलाम चोर' कहते हैं। इसके सिवा और भी ताशके कई खेल हैं जिनका विस्तारके भयसे उल्लेख नहीं किया गया।

ताशका खेल पहले पहल किस देशमें निकला, इसका ठीक पता नहीं है। कोई मिस्र देशको, कोई बाबिलोनियाको, कोई अरबको और कोई भारतवर्षको इसका आदि स्थान बतलाते हैं। फिर बहुतोंका कहना है कि फ्रान्सके राजा ६ठे चार्लस वायुरोगग्रस्त थे। उन्हींके जी बहलानेके लिये ताशके खेलकी सृष्टि हुई। सेक्सपियरमें ताशके खेलका उल्लेख है। अभी जो 'ग्रेट मुगल' मार्काका ताश मिलता है, वह पहले पहल यूरोपसे इस देशमें लाया गया था। साहब, बीबी, गुलामकी तसवीरोंसे भारतवासीको उतना खुश न देख कर, उसके बदले तरह तरहकी देवदेवियोंकी तसवीरें ही गई हैं। फिलहाल बेलजियमसे जो 'कदम्बकेली' नामका

ताश आता है, उसमें कृष्णलीलाकी ही अधिक तसवीरें हैं।

इस खेलकी उत्पत्ति किस देशमें और किस समयमें हुई, इसका पता हमलोगोंको इसीसे लग जायगा, कि विलायतमें रायेल एशियाटिक सोसाइटी नामकी एक लाइब्रेरी है जहां हजार वर्ष पहलेका एक जोड़ा ताश मिलता है। किन्तु वह ताश एक हजार वर्ष पहलेका है, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। भारतवर्षके जिस ब्राह्मणसे यह ताश खरीदा गया था, उसने कहा था, कि यह हजार वर्ष पहलेका है।

सर विलियम जोन्स लिख गये हैं, कि भारतवर्षमें चतुराजी नामक एक खेल बहुत दिनोंसे प्रचलित है। आईन इ-अकबरीमें अबुलफजलने कहा है,—"प्राचीन ऋषियोंने स्थिर किया था, कि ताशके कुल बारह रंग हों, और बरह रंगोंके बारह बारह ताश हों; पर वे प्रत्येक रंगके भिन्न भिन्न बारह राजा नहीं मानते थे।"

अकबरके समयमें भारतवर्षमें जो ताश प्रचलित थे, उनके रंगोंके नाम भिन्न थे; जैसे, (१) अश्वपति—यह सबसे प्रधान रंग था। ताशके ऊपर दिल्लीके बादशाह अकबरकी तसवीर घोड़े पर बनी रहती थी। उनके हाथमें छत्र और पताका शोभित थी। बाद दहलासे ले कर एक्का तकके पत्ते घोड़ेकी तसवीर पर चित्रित थे। (२) गजपति-इसमें ताशके पहले पत्ते पर उड़ीसाके राजाकी तसवीर हाथी पर बनी होती थी। उनके वजीरकी तसवीर भी उसी तरह थी। बूटियोंवाले ताश हाथी पर छपे रहते थे। (३) नरपति—इसमें बीजापुरके राजा सिंहासन पर बैठे थे, पास ही उनके वजीरकी भी तसवीर थी, और सब ताश पदाति सैन्यके चित्रोंसे चित्रित रहते थे। (४) गढ़पति-गढ़के ऊपर सिंहासन पर बैठे हुए राजाकी तसवीर और गढ़के ऊपर वजीरकी तसवीर रहती थी। (५) धनपति—राज सिंहासन पर बैठे हैं, सामने अर्थराशि है और बगलमें वजीर बैठ कर राजकोषका हिसाब कर रहे हैं; शेष पत्तों पर सोने और चाँदीसे भरे हुए घड़ोंकी तसवीरें रहती थीं। (६) दलपति—वर्मावृतके राजा सिंहासन पर बैठे हुए हैं और चारों ओरसे वहांके लोग उन्हें घेरे हैं। शेष ताशमें सिर्फ वर्मावृतके पुरुषोंके ही चित्र थे। (७) नौपति—राजा जहाजके ऊपर सिंहासन पर बैठे हैं और चौकी पर वजीर। फुटकर ताशोंमें नावकी तसवीरें रहती थीं। (८) स्त्रीपति-प्रथम ताशमें सिंहासनके उपर रानी और दूसरेमें वजीरकी स्त्री चौकी पर बैठी रहती थीं। दूसरे दूसरे ताशोंमें भी स्त्रीकी तसवीरें थी। (९) देवपति—पहले ताशमें इन्द्र सिंहासनके ऊपर और दूसरेमें उनके मन्त्री चौकी पर बैठे रहते थे। शेष ताश देवताओंकी तसवीरोंसे चित्रित रहते थे। (१० असुरपति-दाऊदके पुत्र सुलेमान सिंहासन पर और वजीर चौकी पर बैठे रहते थे; और सब ताशोंमें दैत्योंकी तसवीरें रहती थीं। (११) वनपति—पहले ताशमें पशुराज सिंहका और दूसरेमें चीताका चित्र और शेष दश ताशोंमें जङ्गली पशुओंकी प्रतिमूर्ति रहती थी। (१२) अहिपति—मकरके ऊपर सर्पराज और सर्पके ऊपर वजीर बैठा रहते थे। दूसरे दूसरे ताशोंमें सर्पोंके चित्र रहते थे।

प्रथम छः रंगोंके ताशोंको "विशवर" अर्थात् विशबल या "अधिकबल" और शेष छःको "कमबर" अर्थात् कमबल या "अल्पबल" कहते थे।

बादशाह अकबरने ताशोंमें और भी कई प्रकारके परिवर्तन किये थे, जैसे—धनपति धनदान कर रहे हैं, वजीर भण्डारकी खबर ले रहे हैं। शेष दश ताशोंमें राजकोषमें नियुक्त प्रतिमूर्तियां थीं यथा—जौहरी, धातु गलानेवाला, रुपया मुहर आदि काटनेवाला, वजन करनेवाला, छाप देनेवाला, मुहर गिननेवाला, 'मान' नामक मुद्रा गिननेवाला, पोद्दार तथा धातु पीटनेवाला रहता था। एक और प्रकारके ताशमें बादशाह अकबरने भूमिदाता राजाओंकी तसवीरें दी हैं। उनके सामने फरमान, दानपत्र, दफ्तरके कागजात रखे हुए हैं; नीचे वजीर बैठे हैं और सामने दफ्तर है। अन्यान्य खुचरा ताशोंमें राजस्व सम्बन्धीय कर्मचारियोंके चित्र हैं, यथा—कागजी, कागज पर रूल खींचनेवाला, दफ्तरके कागज पर लिखनेवाला, कागज पर सुनहरी रुपहरी काम करनेवाला, नकशा खींचनेवाला, सोनेके जल और नील रंगसे रेखा खींचनेवाला, फरमान लिखनेवाला, खाता बांधनेवाला तथा रंगरेज। फिर एक प्रकारके ताशमें अकबर

बादशाहने शिल्पकार्यकी राजाओंकी खूब भड़कीली तसवीरें दी हैं; वे रेशम और रेशमके कपड़ोंका निरीक्षण कर रहे हैं। खुचरा ताशोंमें भार ढोनेवाले जन्तुओंको प्रतिमूर्त्तियां हैं। फिर एक प्रकारके ताशमें वंशोराज सिंहासन पर बैठ कर गान सुन रहे हैं। वजीर गायक और वादकोंकी तदवीर कर रहे हैं। अवशिष्ट ताशोंमें गायक और वादकोंकी प्रतिमूर्त्तियाँ चित्रित हैं। और एक प्रकारका ताश है जिसमें रौप्यराज रौप्यमुद्रा वितरण कर रहे हैं। वजोर दानका तदारुक कर रहे हैं शेष ताशोंमें रौप्यमुद्रायन्त्रके कर्मचारियोंकी तसवीरें हैं। एक दूसरे प्रकारके ताशमें असिराज तलवार चला रहे हैं। वजोर आयुधागारका तदारुक कर रहे हैं। अन्य दश ताशोंमें आयुधागारके कर्मचारियोंकी प्रतिमूर्तियां चित्रित हैं। ताजपति—राजा राजचिह्न प्रदान कर रहे हैं, वजोरको पोढ़ा दिया है, पोढ़ेमें भो राजचिह्न है। क्रोतदासपति-राजा हाथो पर और वजोर बैलगाड़ी पर जा रहे हैं। अन्यान्य ताशोंमें कोई भृत्य तो बैठा हुआ है, कोई शराब पो रहा है, कोई गान कर रहा है और कोई देवताको उपासनामें हो मस्त है। आईन-इ-अकबरोमें लिखा है, कि बादशाह अकबर जिस ताशसे खेलते थे, उसमें बारह रंग थे और १४४ पत्ते रहते थे। अबुल फजलने उन सब ताशोंको भारतवर्षसे हो प्राप्त किया था। वे सब ताश यदि भारतवर्षके न होते, तो उनमें भारतोय नाम नहों रहता। पहले हर एक रङ्गके केवल बारह हो पत्ते होते थे। 'गुलाम' तो पाश्चात्य देशोंकी नई सृष्टि है। आजकल जो ताश खेले जाते हैं, वे यूरोपसे हो आते हैं।

दशावतार ताश देखो।

ताशा (अ० पु०) एक प्रकारका बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा हुआ रहता है। इसे गलेमें लटका कर दो पतली लकड़ियोंसे बजाते है।

ताष्ट्र (सं० वि०) तष्टृ-ष्ण। विश्वकर्माका बनाया हुआ।

तासला (हिं० पु०) भालुओंके गलेको वह रस्सी जिसे पकड़ कर कलन्दर उसे नचाते हैं।

तासोर (अ० स्त्री०) प्रभाव, गुण, असर।

तासुन (सं० पु०) तस वाहुलकात् उनण्। १ शणवृक्ष, सनका पेड़। तस्येदं अण्। २ तत्सम्बन्धो।

तासुनो (सं० स्त्री०) तासुन स्त्रियां ङोप्। शणनिर्मित मेखला, सनको डोरी।

तास्कर्य (सं० क्लो०) तस्करस्य भावः तस्कर-ष्यञ्। तस्करता, चोरी।

तासयन्द्र (सं० क्लो०) सामभेद।

ताहम (फा० अव्य०) तोभो, तिसपर भो, फिर भो।

ताहोरपुर—१ बङ्गालका एक विख्यात परगना। यह दिनाजपुर जिलेमें अवस्थित है। इसका परिमाण लगभग ७६२ वर्गबोघा है। यह परगना केवल एक जमोंदारो है।

२ राजसाहो जिलेके अन्तर्गत एक विख्यात जमांदारो। यहाँके जमोंदारने बङ्गदेशमें विशेष ख्याति प्राप्त की है और गवर्मेंटसे उन्हें उपाधि भो मिलो हैं। जमोंदार वारेन्द्र श्रेणोके भादुड़ोग्रामोण ब्राह्मण हैं।

ति (सं० अव्य०) इति वेदे। पृषो० साधुः। इति शब्दार्थ।

तिक (सं० पु०) तिक्-क। ऋषि भेद, एक ऋषिका नाम।

तिककितवादि (सं० पु०) पाणिनिका एक गण। तिककितव, वङ्खरभण्डोरथ, उपकलमक, फलकनरक, वकनख-गुदपरिणद्ध उब्जककुभ, कलङ्कशान्तमुख, उत्तरशलङ्कट, कृष्णाजिनकृष्णसुन्दर, भ्रष्टककपिष्ठल और अग्निवेशदशेरुक ये शब्द तिककितवादिगण-भुक्त हैं।

तिकड़ो (हिं० स्त्री०) १ वह जिसमें कड़ियां हों। २ तोन तोन रस्सियोंको एक साथ लेकर चारपाई आदिको बुनावट।

तिकादि (सं० पु०) पाणिनिका एक गण। अपत्य अर्थमें तिकादि शब्दके बाद फिञ् होता हैं। तिक, कितव, संज्ञा, वाला, शिखा, उरस्, शाट्य, सैन्धव, यमुन्द, रूप्य, ग्राम्य, नोल, अमित्र, गोकक्ष, कुरु, देवरथ, तैतिल, औरस, कौरव्य, भौरिकि, मौलिकि, चौपत, चैटयत, शोकयत, चैतयत, ध्यानवत्, चन्द्रमस, शुभ, गङ्गा, वरेण्य, सुयामन्, आरब्ध, वाह्यक, खल्प, वृष, लोमक, उदन्य और यज्ञ इन शब्दको लेकर तिकादिगण बना है।

तिकानो (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको तिकोनो लकड़ी जो पहियेके बाहर धुरोके पास पहियेको रोकनेके लिये लगो होती है।

तिकीय (सं॰ त्रि॰) तिक-छ। उत्करादिभ्यश्छः। पा ४।२।९०) तिकके सन्निहित देशादि, तिकके पासका देश।

तिकुरा (हिं॰ पु॰) फसलकी तीन बराबर राशि, जिनमेंसे एक राशि जमींदार लेते हैं।

तिकोना (हिं॰ वि॰) १ त्रिकोणयुक्त, जिसमें तीन कोने हों। (पु॰) २ एक नमकीन पकवान।

तिकोनिया (हिं॰ वि॰) तिकोना देखो।

तिक्की (हिं॰ स्त्री॰) तीन बूटीदार ताशका पत्ता।

तिक्त (सं॰ पु॰) तेजयति तिज बाहुलकात् कर्त्तरि क्त। १ रसभेद; छः रसोंमेंसे एक तीता रस। (क्ली॰) २ पर्पटकौषधि, पित्तपापड़ा। ३ सुगन्ध। ४ कूटजवृक्ष। ५ वरुण वृक्ष। इन सब वृक्षोंमें तीता रस अधिक रहनेके कारण इनकी गिनती तिक्तमेंकी गई हैं। (त्रि॰) तिक्त रसयुक्त, तीता रसवाला। ७ तिक्तरसवत्, तीतारसके समान।

इस रसके विषयमें सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि इन पञ्चभूतोंमें उत्तरोत्तर एक एक करके बढ़ कर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच गुण उत्पन्न होते हैं। अतएव रस जलीय गुणसे निकला है। एक दूसरेसे संसर्ग रखता है, आनुकूल्य है और एक दूसरेसे मिल कर सब भूतोंके सब अंशोंमें मिला है। लेकिन वह उत्कृष्ट और अपकृष्टके भेदसे ग्रहण किया जाता है।

जलीय गुणसम्भूत वह रस तथा और सब भूतोंके साथ मिल कर निदग्ध हो जानेसे ६ प्रकारोंमें विभक्त हो जाता है। वे ही छः रस हैं, जिनके नाम क्रमशः मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय है। विशेष विवरण रसमें देखो। वायव्य और आकाश गुणके अधिक रहनेसे तिक्त रस उत्पन्न होता है। किसी किसी पण्डितका कहना है, कि जगत्का अग्निसोमीयत्व प्रयुक्त रस दो प्रकारका है—आग्नेय और सौम्य। मधुर, तिक्त और कषाय सौम्य हैं एवं कटु, अम्ल और लवण आग्नेय। कटु, तिक्त और कषाय लघु हैं। सौम्यका अर्थ शीतल है।

जिस रससे गलेमें ज्वाला, मुखमें वैरस्य, अन्नमें रुचि और हर्ष हो, उसे तिक्त रस कहते हैं।

तिक्तरस छेदन, रुचि, दीप्ति और शोधनकर एवं कण्डु, कोष्ठ, तृष्णा, मूर्च्छा और ज्वरशान्तिकारक, स्तन्यशोषक एवं विष्ठा, मूत्र, क्लेद, मेद, वसा और पूयशोषणकर है। ऐसा गुणविशिष्ट होने पर भी अधिक मात्रामें सेवन करनेसे शरीर स्पन्दरहित हो जाता, चांटनेकी शक्ति घट जाती, हाथ पावोंमें आक्षेप होता तथा शिरःशूल, भ्रम, तोद, भेद, छेद और मुखमें वैरस्य उत्पन्न होता है। अमलतास गुरुच, मजीठ कनेर, हल्दी, इन्द्रयव दारुहल्दी, वरुणवृक्ष, गोखरू, सप्तपर्ण, वृहती, भटकटैया, मूषिकपर्णी, निसोथ, घोषालता, कर्कोटक, कारवेल्लक (करेला), वार्त्ताकु, करीर, करवीर, मालती, शङ्खहुली, अपामार्ग, वच्चा, अशोक, कुटकी, जयन्ती, ब्राह्मी, पुनर्णवा, वृश्चिकाली और ज्योतिष्मती लता आदि तिक्त वर्गके अन्तर्गत हैं। इनमें पटोल और वार्त्ताकु उत्कृष्ट है। (सुश्रुत सूत्र॰ ४२ अ॰)

तिक्तक (सं॰ पु॰) तिक्तेन तिक्तरसेन कायति कै-क वा तिक्त संज्ञायां कन्। १ पटोल, परवल। २ चिरतिक्त, चिरायता। ३ कृष्णखदिर, कालाखैर। ४ इङ्गुदीवृक्ष। ५ तिक्त रस, तीता रस। ६ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। ७ कुटज वृक्ष, कुरैया। (त्रि॰) तिक्तरसयुक्त, जिसका रस तीता हो।

तिक्तकन्दिका (सं॰ स्त्री॰) तिक्तरसप्रधानः कन्दो मूलं सोऽस्त्यस्य तिक्तकन्द-कन्-टाप्, इत्वं। गन्धपत्रा, बनकचूर, बनाशट।

तिक्तका (सं॰ स्त्री॰) तिक्तेन रसेन कायति कै-क-टाप्। कटुतुम्बी, कड़ुआ कद्दू। इसके संस्कृत पर्याय-इक्ष्वाकु, कुटुतुम्बी, तुम्बा और महाफला हैं। इसके गुण—शीतवीर्य, हृदयग्राही, तिक्तरस, कटुविपाक तथा पित्त, कास, विष, वायु और पित्तज्वरनाशक। (भावप्र॰) २ काकजङ्घा, चकसेनी। ३ करञ्जलता, कंजा। ४ चुञ्चुशाक।

तिक्तकाण्ड (सं॰ पु॰) भूनिम्ब, चिरायता।

तिक्तकाण्डरुहा (सं॰ स्त्री॰) कटुका, कुटकी।

तिक्तकोषातकी (सं॰ स्त्री॰) तिक्तघोषा, कड़ुई तरोई।

तिक्तगन्धा (सं॰ स्त्री॰) तिक्तः गन्धो यस्या, बहुव्री॰। १ वराहक्रान्ता, वराहीकन्द। २ राजिका, सफेद सरसों।

तिक्तगन्धिका (सं० स्त्री०) तिक्तगन्धा देखो।

तिक्तगुञ्जा (सं० स्त्री०) गुञ्जेव तिक्ता राजदन्तादित्वात् पूर्वनिपातः। करञ्जकंजा, करंजुआ। इसके पर्याय—क्षुद्ररसा, रसघा और विड़पर्कटी।

तिक्तघृत (सं० क्ली०) सुश्रुतोक्त घृतभेद, सुश्रुतके अनुसार कई तिक्त औषधियोंके योगसे बना हुआ एक घृत। इसके प्रस्तुतप्रणाली - त्रिफला, पटोल, निम्ब, वासक, कटुकी, दुरालभा, त्रायमाणा और पर्पट प्रत्येकका दो दो पल जलमें डलवाते हैं। जब जलका चौथा भाग रह जाय तो नीचे उतार लेते है। त्रायमाणा, मूथा, इन्द्रयव, चन्दन, भूनिम्ब और पिप्पली प्रत्येकका आध तोला ले कर उक्त क्वाथमें पीसते हैं। उसी चूर्णके साथ प्रस्थ परिमित घृत पाक करना चाहिये। इससे कुष्ठ, विषमज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, शोफ, पाण्डु, विसर्प और षण्डता रोग जाते रहते हैं। (सुश्रुत चिकि० ९ अ०)

तिक्ततण्डुला (सं० स्त्री०) तिक्तस्तण्डुलोऽन्तः अस्यं यस्याः। पिप्पली, पीपर। इसके पर्याय—चपला, शौण्डी, वैदेही, मागधी, कणा, कृष्णोपकुल्या, मगधी और कोल हैं। (वैद्यकरत्नमाला)

तिक्तता (सं० स्त्री०) तिक्तस्य भावः तिक्त-तल्-टाप्। तिक्तरस, तिताई।

तिक्ततुण्डी (सं० स्त्री०) तिक्ततुम्बी पृषोदरादित्वात् साधुः। कुटुतुम्बीलता, कड़ुई तरोईकी लता।

तिक्ततुम्बी (सं० स्त्री०) तिक्ता तुम्बी। कड़ुआ कद्दू, तितलौकी।

तिक्तदुग्धा (सं० स्त्री०) तिक्तं दुग्धं निर्यासो यस्याः। १ क्षीरिणीवृक्ष, खिरनी। २ अजशृङ्गी, मेढ़ासिंघी।

तिक्तधातु (सं० पु०) तिक्तः तिक्तरसप्रधानो धातुः। पित्त।

तिक्तपत्र (सं० पु०) तिक्तानि पत्राणि यस्य। १ कर्कोटक, ककौड़ा, खेखसा। (त्रि०) २ तिक्तपत्रक वृक्षमात्र, वह वृक्ष जिसकी पत्ती कड़ुई हो। (क्ली०) ३ तिक्तं पत्रं। कड़ुई पत्ती।

तिक्तपर्णिका (सं० स्त्री०) गोरक्षकर्कटी, कचरी, पेहँटा।

तिक्तपर्णी (सं० स्त्री०) गोरक्षकर्कटी, कचरी।

तिक्तपर्वा (सं० स्त्री०) तिक्तं पर्वग्रन्थि र्यस्याः, बहुव्री०। १ दूर्वा, दूब। २ हिलमोची, हुलहुल। ३ गुड़ुची, गुर्च, गिलोय। ४ यष्टिमधुलता, जेठीमधु, मुलेठी।

तिक्तपुष्पा (सं० स्त्री०) तिक्तानि पुष्पाणि यस्याः। १ पाठा। (त्रि०) २ तिक्तपुष्प वृक्षमात्र, वह पेड़ जिसमें कड़ुए फूल लगते हैं। (क्ली०) ३ तिक्त फूल, कड़ुआ फूल।

तिक्तफल (सं० पु०) तिक्तानि फलानि अस्य। १ कतक वृक्ष, रीठा। (त्रि०) २ तिक्तफलक वृक्षमात्र, वह पेड़ जिसमें कड़ुए फल लगते हैं। ३ तिक्त फल, कड़ुआ फल।

तिक्तफला (सं० स्त्री०) तिक्तानि फलानि यस्याः। १ यवतिक्ता लता, भटकटैया। २ वार्त्ताकी, कचरी। ३ षड्भुजा, खरबूजा।

तिक्तभद्रक (सं० पु०) तिक्तस्तिक्तरसप्रधानो भद्रकः ततः स्वार्थे कन्। पटोल, परवल।

तिक्तमरिच (सं० पु०) तिक्तो मरिच इव। कतक वृक्ष, रीठा।

तिक्तयवा (सं० स्त्री०) तिक्तः यव इन्द्रयव रसोऽस्त्यत्र अच्। १ शङ्खिनी। २ यवतिक्ता लता।

तिक्तरसा (सं० स्त्री०) तिक्तः रसो यस्याः। ब्राह्मीशाक।

तिक्तरोहिणिका (सं० स्त्री०) तिक्तरोहिणी स्वार्थे कन्-टाप पूर्वह्रस्वश्च। कटुका, कुटकी।

तिक्तरोहिणी (सं० स्त्री०) तिक्ता सती रोहति रुह-णिनि ङीप्। कटुका, कुटकी।

तिक्तला (सं० स्त्री०) शङ्खिनी।

तिक्तवर्ग (सं० पु०) तिक्तानां वर्गः, ६-तत्। तिक्तरसात्मक द्रव्य समूह।

तिक्तवल्ली (सं० स्त्री०) तिक्ता वल्ली। १ मूर्वालता, मुर्रा, मरोरफली। २ तिक्तलता मात्र, कड़ुई बेल।

तिक्तबीजा (सं० स्त्री०) तिक्तं बीजं यस्याः। कटुतुम्बी, कड़ुआ कद्दू, तितलौकी।

तिक्तशाक (सं० पु०) तिक्तः शाको यस्य। १ खदिरवृक्ष, खैरका पेड़। २ वरुणद्रुम, वरुणवृक्ष। ३ पत्रसुन्दर वृक्ष। (क्ली०) ४ एक प्रकारका कड़ुआ साग।

तिक्तशाकतरु (सं० पु०) श्वेतप्रसूनक वृक्ष।

तिक्तशाकद्रु (सं० पु०) वरुणवृक्ष।

तिक्तसार (सं० पु०) तिक्तः सारो निर्यासोऽस्य। १ खदिर, खैर। २ विटखदिर वृक्ष। (क्ली०) ३ दीर्घरोहिषक तृण, रोहिस नामकी घास। ३ तिक्तसारक वृक्षमात्र, वह

पेड़ जिसका रस तीता हो। ४ तिक्तसार, कडुआ रस।

तिक्ता (सं० स्त्री०) तिक्तस्तिक्तरसोऽस्त्यस्याः अच् ततष्टाप्। १ कटुरोहिणी कुटकी। पर्याय—कट्वी, कटुका, तिक्ता, कृष्णभेदा, कटुम्भरा, अशोका, मत्स्यशकला, चक्राङ्गी, शकुलादनी, मत्स्यपित्ता, काण्डरुहा, रोहिणी और कटुरोहिणी है। २ पाठा। ३ यवतिक्ता लता। ४ षड्भुजा, खरबूजा। ५ छिक्कनी, नकछिकनी। ६ लता कस्तूरी।

तिक्ताख्या (सं० स्त्री०) तिक्तेति आख्या यस्या। कटुतुम्बी। कडुआ कद्दू, तितलौकी।

तिक्ताङ्गा (सं० स्त्री०) तिक्तं अङ्गं यस्याः। पातालगरुड़ीलता, छिरेंटा।

तिक्तामृता (सं० स्त्री०) लताभेद, एक प्रकारकी बेल। (Menispermum glabrum)

तिक्ताह्वया (सं० स्त्री०) तिक्तेति आह्वयो यस्याः। कटुतुम्बी, तितलौकी।

तिक्तिका (सं० स्त्री०) तिक्त स्वार्थे कन् टाप् अतइत्वं। १ कटुतुम्बी, तितलौकी। २ काकमाची। ३ कटुका, कुटकी।

तिक्तिरी—आर्य लोगोंका एक प्राचीन दुनला वाद्ययन्त्र। यह देखनेमें बहुत कुछ यूरोपीय बगपाइप (Bagpipe) यन्त्रकी तरह था; आजकल तुवड़ीके नामसे प्रख्यात है। आहितुण्डिक लोग इसका व्यवहार करते हैं। इसका दूसरा नाम पूगी है। इस यन्त्रके निम्नभागमें छिद्रयुक्त दो नल परस्पर बराबर संयुक्त रहते हैं और ऊपरके भागमें एक कडुवे कटुतुम्बी संयोजित रहती है। यही वायुकोष है, इसका ऊपरी भाग नलाकार और कुछ वक्र रहता है। इसीमें एक छिद्र रहता है। तिक्ततुम्बी होनेके कारण इसका नाम तिक्तिरी हो गया है।

यूरोपीय संगीतइतिहासके लेखक हिल साहबने Travels in Siberia साइबेरिया-भ्रमण नामक ग्रन्थमें तित्ति (Titty) नामसे इसका उल्लेख किया है और यूरोपके Bag pipe के साथ तुलना की है। किन्तु आधुनिक तिक्तिरी और बग-पाइपमें यही अन्तर है कि बगपाइपका वायुकोष चर्मनिर्मित होता है। प्राचीन कालमें ऋषिगण कभी कभी तिक्त कद्दूके अभावमें मृगचर्म द्वारा यह यन्त्र तयार करते थे, सुतरां आधुनिक बगपाइप उस समयकी तिक्तिरीके समान कहा जा सकता है। यह कभी कभी नाकसे बजाया जाता है इसीसे इसका दूसरा नाम नासावंशी भी है। इसके एक नलमें एक उंगली अन्तर दे कर और दूसरेमें ५ छिद्र होते हैं। नलके सबसे नीचेके दो छिद्र मोम द्वारा बन्द रहते हैं; ये ऊपरवाले नलके दोनों तरफ होते हैं। दूसरे नलीके पांच छेदोंमेंसे दूसरा और चौथा खुला रहता है और तीन मोम द्वारा बन्द रहते हैं। प्रथम नलके सात सुर बजाये जाते हैं, दूसरा नल केवल सुर योगके लिये बजाया जाता है। यह द्विनलयन्त्र प्रायः पृथ्वीके समस्त प्रधान देशोंमें अति प्राचीन कालसे व्यवहारमें लाया जाता है। कोइम्बटूर सोनेरट (Coimbotour Sonnerat)के भोएजेज् ऐण्ड इण्डेस ओरियन्टल्स (Voyages and Indes Orientales) नामक ग्रन्थमें यह Tourte नामसे वर्णित है। हिल साहबने लिखा है कि उन्होंने यह यन्त्र मङ्गोलियाके सीमान्तमें देखा था। ओस्ली साहब (Sir William Ously) पारस्यमें ऐसा एक यन्त्र देखा था; वहां यह "नेइ अम्बाना" (Nei Ambana) नामसे प्रसिद्ध है। मिश्रके प्राचीन "जुकारा" (Zouggarah) एवं आधुनिक "आर्गूल" और जुम्मारा (Jummarah) यन्त्र इसी तरहका होता है। दो विभिन्न प्रकारके नल और बिना तुम्बीका 'थाम' नामक एक यन्त्र है, बाइबिलमें 'सामफोनिया' नामके एक ऐसे ही यन्त्रका उल्लेख है, वही यन्त्र आधुनिक इटलीके "जामपोना" (Zampogna) और हिब्रूके 'माग्रेपा'की तरह है।

तिख (हिं० वि०) जो तीन बार जोता गया हो।

तिखरा (हिं० वि०) तिख देखो।

तिखाई (हिं० स्त्री०) तीक्ष्णता, तीखापन, तेजी।

तिखूंटा (हिं० वि०) त्रिकोणयुक्त, जिसमें तीन कोने हों, तिकोना।

तिगना (हिं० क्रि०) दृष्टि डालना, देखना।

तिगर—सिन्धु प्रदेशके अन्तर्गत शिकारपुर जिलेके मेहेर उपविभागके अन्तर्गत एक तालुक। इसका भूपरिमाण ३०१ वर्गमील है

तिगरिया—उड़ीसाके करद राज्योंमेंसे एक छोटा राज्य।

यह अक्षा० २०° २४ से ३०° ३२´ उ० और देशा० ८५° २६´ से ८५° ३५´ पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें धेंकानल राज्य, पूर्वमें आठगढ़ राज्य, पश्चिममें बड़म्बा राज्य और दक्षिणमें महानदी है। करद राज्योंमें यह सबसे छोटा होने पर भी यहां बहुत मनुष्योंका वास है। भूपरिमाण ४६ वर्गमील और लोकसंख्या प्राय: २२६२५ है। हिन्दुओंकी संख्या सबसे अधिक है। यहां पार्वतीय और जङ्गली अंश छोड़ कर और सब जगह अच्छी फसल होती है। मोटा चावल, तमाकू, रुई, ईख और तेलहन सरसों आदि यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य हैं। प्राय: ४०० वर्ष पहले सुरतुङ्ग नामक किसी उत्तर-भारतीय मनुष्यने जगन्नाथतीर्थसे लौटते समय यहां आ कर इस देशके असभ्य आदिम निवासियोंको भगा राज्य स्थापन किया। ये ही वर्तमान राजवंशके आदिपुरुष हैं। पहले यहां तीन गढ़ थे, उन्हीं तीन गढ़ोंसे इसका नाम तिगड़िया वा तिगरिया हुआ है। महाराष्ट्रके अभ्युदयके समय इस राज्यके कई अंश पार्श्ववर्ती राजाओंने अधिकार कर लिये थे। इसमें कुल १०२ ग्राम लगते हैं। राज्यकी आय १८,०००) और राजस्व ८८२) रु० है। इसकी सैन्य संख्या ३०० है। राज्यमें १२ स्कूल हैं। अबसे कुछ पहिले यहांके राजा वनमाली क्षत्रियवर चम्पतसिंह महापात्र थे।

तिगित (सं० त्रि०) निशित, चोखा, तेज।

तिगुना (हिं० वि०) तीन बार अधिक, तीन गुना।

तिगुचना (हिं० क्रि०) तिगुना देखो।

तिग्म (सं० क्ली०) तेजयति उत्तेजयति तिज-मक्। युजिरुजितिजांकुश्च। उण् १।१४२। १ वज्र। २ पिप्पली। ३ पुरुवंशीय एक क्षत्रिय। (मत्स्यपु० ५०।८४) ये राजा तिमि नामसे प्रसिद्ध हैं। तिमि देखो। (त्रि०) ४ तीक्ष्ण, तेज। ५ तीक्ष्णस्पर्शयुक्त।

तिग्मकर (सं० पु०) तिग्मः करः किरणो राजग्राह्यो वा यस्य। १ सूर्य। २ उच्चराजग्राह्य नृप, एक मशहूर राजा। तिग्मः करः कर्मधा०। ३ प्रखर किरण, तेज प्रकाश।

तिग्मकेतु (सं० पु०) ध्रुववंशीय वत्सरके औरस और सुवीथीके गर्भसे उत्पन्न एक पुत्रका नाम।
(भागवत० ४।१३।१२)

तिग्मजम्भ (सं० त्रि०) तीक्ष्णमुख, जिसका मुंह तेज हो।

तिग्मता (सं० स्त्री०) तिग्मस्य भावः तिग्मभावे तल् टाप्। तीक्ष्णता।

तिग्मतेजस् (सं० त्रि०) तिग्मं तेजः यस्य। तीक्ष्ण तेजयुक्त, अत्यन्त तेज।

तिग्मदीधिति (सं० पु०) तिग्मा दीधितिर्यस्य, बहुव्री०। तिग्मांशु, सूर्य।

तिग्मभृष्टि (सं० त्रि०) तिग्मा भृष्टिर्यस्य. बहुव्री। तीक्ष्ण तेजयुक्त, अत्यन्त तेज।

तिग्ममन्यु (सं० त्रि०) तिग्मः मन्युर्यस्य। १ उग्रक्रोधक, जिसे बहुत गुस्सा हो। (पु०) २ महादेव, शिव।
(भारत १३।१७।४६)

तिग्मरश्मि (सं० पु०) तिग्मा रश्मयो यस्य। १ सूर्य। (त्रि०) २ प्रखररश्मिक, जिसकी किरण बहुत तेज हो। (क्ली०) ३ प्रखर रश्मि, तेज किरण।

तिग्मरुच (सं० त्रि०) तिग्मा रुक यस्य। तिग्मरुचि, तेज कान्ति।

तिग्मवत् (सं० त्रि०) तीक्ष्णयुक्त, अत्यन्त तेज।

तिग्मशृङ्ग (सं० त्रि०) तीक्ष्णशृङ्ग, तेज सींगोंवाला।

तिग्मशोचिस् (सं० त्रि०) तिग्मं शोचिः यस्य। तीक्ष्णज्वाल, तेज लपट, तेज आंच।

तिग्महेति (सं० त्रि०) तिग्मा स्तीक्ष्णा हेतयोर्यस्य, बहुव्री०। तीक्ष्णज्वाल, तेज आगकी शिखा, तेज लौ।

तिग्मांशु (सं० पु०) तिग्मा अंशवो यस्य। १ सूर्य। (त्रि०) २ प्रखर किरणयुक्त, जिसकी किरण तेज हो। (क्ली०) ३ प्रखर किरण, तेज प्रकाश।

तिग्मात्मन् (सं० पु०) उर्वके पुत्र, एक राजकुमार।

तिग्मानीक (सं० त्रि०) तिग्मं तीक्ष्णं अनीकं यस्य। तीक्ष्ण मुख, तेज मुंहवाला।

तिग्मायुध (सं० त्रि०) तिग्मं तीक्ष्णं आयुधं यस्य। तीक्ष्णायुध, तेज हथियार।

तग्मेषु (सं० त्रि०) तीक्ष्णवाण, तेज तीर।

तिङ्गुद (सं० पु०) इङ्गुदी वृक्ष।

तिजरा (हिं० पु०) वह बुखार जो तीसरे दिन आता हो, तिजारी।

तिजवाँसा (हिं० पु०) किसी स्त्रीके तीन महीनेका गर्भ होने पर उसके कुटुम्बसे किये जानेका उत्सव।

तिजारत (अ० स्त्री०) वाणिज्य, व्यापार, रोजगार।

तिजारा—राजपूतानाके अन्तर्गत अलवार राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २७°५६´ उ० और देशा० ७६°५१´ पू० अलवार नगरसे ३० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७७८४ है। इस स्थानसे राजपूताना मालवा रेलवेका खेरताल स्टेशन बहुत समीप है। कहा जाता है, कि तेजपाल नामक जादों राजपूत इस शहरके प्रतिष्ठाता हैं। कृषिकार्य, वस्त्र बुनना तथा कागज प्रस्तुत करना यहाँके अधिवासियोंकी प्रधान उपजीविका है। यह शहर मेवात राज्यकी प्राचीन राजधानी है। यहां म्युनिस्पालिटिका बन्दोवस्त है। शहरके दक्षिणमें भरतरी नामक प्रसिद्ध पठान-समाधि विद्यमान है, जो उत्तरी भारतवर्षके सभी समाधियोंसे बड़ी है। कहा जाता है, कि यहाँके पूर्व शासनकर्त्ता सिकन्दर लोदीके भाई अलाउद्दीन आलमखाँने इसे निर्माण किया है। यहां डाकघर स्कूल और अस्पताल है।

२ इसी राज्यके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित एक तहसील। इसमें कुल १८८ ग्राम लगते हैं। यहाँकी लोकसंख्या प्रायः ६६८२६ है, जिनमें एक तिहाई मेयो हैं। मुगलोंके शासनकालमें यह स्थान आगरा प्रदेशका सरकार या जिला था। १७६३ ई०में यह तहसील जाटोंके प्रधान सूरजमलके अधीन आई। इसके बाद १७६५ ई०में सिख डकैतोंने इस तहसीलमें लूट-मार मचायी, तथा जाटोंको भगा कर इसे अपने अधिकारमें कर लिया, किन्तु १७८६ ई०में यह पुनः भरतपुरके जाटोंके अधिकारभुक्त हुआ। भरतपुरके प्रधान गवर्मेण्टके विरुद्ध हो जानेसे उनका राज्य छीन कर अलवारको अर्पण किया गया। १८२६ ई०में महाराज बन्नीसिंहने इस तहसीलको बलवन्तसिंह पर सौंपा। बलवन्त सिंहने निःसन्तान अवस्थामें प्राणत्याग किया, बाद १८४५ ई०में यह अलवार राज्यमें मिला दिया गया।

तिजारी (हिं० स्त्री०) वह बुखार जो हर तीसरे दिन जाड़ा दे कर आता है!

तिजिन (सं० पु०) तिज-इनच्, किच्च। चन्द्रमा।

तिजिल (सं० पु०) तेजयति तीक्ष्णीकरोति, तिज-इलच्। तिजगुपादिभ्यः कित्। उण् १।५७। १ चन्द्रमा। २ राक्षस।

तिड़ी (हिं० स्त्री०) तीन बूटियोंका ताशका पत्ता।

तिग्टी (सं० स्त्री०) विवृत्, निशोथ।

तिण्डिवनम्—१ मन्द्राजके आरकट जिलेका उपविभाग। इसमें तिण्डिवनम्, तिरुवन्नमलय और विल्लुपुरम नामके तीन तालुक लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक तालुक। यह अक्षा० १२°२´ से १२° २८´ उ० तथा देशा० ७९° १३´ से ८०° पू०के मध्य बङ्गालकी खाड़ीके किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ८१६ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ३१६०१८ है। इसमें एक शहर और ४७३ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १२° १५´ उ० और देशा० ७९°३०´ पू०में अवस्थित है। इसका शुद्ध नाम तिन्त्रिणिवनम् है, जिसका अर्थ इमलीका जङ्गल होता है। यहां इमलीके बहुतसे वन देखनेमें आते हैं। लोकसंख्या प्रायः ११३७३ है।

तितउ (सं० पु०) तन्यन्ते भृष्टयवा अत्रेति तन-डउ। तनोतेडउः सन्वच्च। उण् ५।५२। १ चालनी, चलनी, छलनी। २ छत्र, छाता।

तितर बितर (हिं० वि०) जो एकत्र न हो, छितराया हुआ, बिखरा हुआ।

तितरोखी (हिं० स्त्री०) एक छोटी चिड़िया।

तितली (हिं० स्त्री०) १ एक उड़नेवाला सुन्दर कीड़ा या फतिंगा। यह कीड़ा बगीचोंमें फूलों पर बैठता हुआ दिखाई पड़ता है और फूलोंके पराग और रस आदि पी कर जीवन निर्वाह करता है। इसका विशेष विवरण प्रजापति शब्दमें देखो। २ गेहूं आदिके खेतोंमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। यह हाथ सवा हाथ तक बढ़ती है। इसकी पत्तियाँ बहुत पतली पतली होती हैं। पत्तियां और बीज दवाके काममें आते हैं।

तितलौआ (हिं० पु०) कड़ुवा कद्दू, तितलौकी।

तितारा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका बाजा जो सितारसे मिलता जुलता है। २ फसलकी तीसरी बारकी सिंचाई। (वि०) ३ जिसमें तीन तार हों।

तितिंबा (अ० पु०) १ ढकोसला। २ शेष। ३ परिशिष्ट, उपसंहार।

तितिक्ष (सं० त्रि०) तित-स्वार्थे सन्-अच्वा। १ शीतो-

ष्णादि द्वन्द्वसहनशील, जो सरदी गरमी समान भावसे सह्य कर सकता हो। (पु०) २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम। तस्य गोत्रापत्यं गर्गादित्वात् यञ्। तैतिक्ष्य, इसी गोत्रके युवा वंशज।

तितिक्षा (सं० स्त्री०) तितिक्ष-अ-टाप्। १ क्षमा, क्षान्ति। २ शीतोष्णादि द्वन्द्वसहन, सरदी गरमी आदि सहनेकी सामर्थ्य।

शीतोष्णादि सहनेका नाम तितिक्षा है; मुमुक्षुको पहले शम, दम और उपरति साधन कर पीछे तितिक्षाका साधन करना चाहिए। शम, दमको साधे विना तितिक्षा साधी नहीं जा सकती।

अप्रतीकार पूर्वक चिन्ता और विलाप-रहित हो कर सब प्रकारके दुःखोंका सहना ही तितिक्षा है। जब तितिक्षा साधी जाती हैं, तब सुखसे हृदय न तो प्रफुल्लित होता और न दुःखसे सन्तप्त ही होता है। तब सुख दुःख और मोह अन्तःकरणको किसी तरहसे क्षुब्ध नहीं कर सकता।

तितिक्षित (सं० त्रि०) तितिक्षा सञ्जाता अस्य तारकादित्वात् इतच्। क्षान्त, सहिष्णु।

तितिक्षु (सं० त्रि०) तितिक्ष-उ। सनाशंसभिक्षउः। पा ३।२।१६८। १ क्षमाशील, क्षान्त, सहिष्णु। (पु०) २ पुरुवंशीय एक राजा। ये महामनाके पुत्र थे।

तितिभ (सं० पु०) तितीति शब्देन भणति भण-ड। इन्द्रगोपकीट, खद्योत, जुगनू।

तितिम्मा (अ० पु०) १ अवशिष्ट अंश, बचा हुआ भाग। २ परिशिष्ट, उपसंहार।

तितिर (सं० पु०-स्त्री०) तित्तिरि पृषोदरादित्वात् साधुः। तित्तिरि पक्षी, तीतर नामकी चिड़िया।

तितिल (सं० क्ली०) तिलति स्निह्यति तिल बाहुलकात् क द्वित्वञ्च। १ नन्दक, नाद नामका मट्टीका बरतन। २ तिलपिप्पट, एक प्रकारका पकवान। ३ ज्योतिषमें सात करणोंमेंसे एक।

तितीर्षा (सं० स्त्री०) १ तैरनेकी इच्छा। २ तरजानेकी इच्छा।

तितीर्षु (सं० त्रि०) १ जो तैरनेकी इच्छा करता हो। २ जो तरने या उद्धार पानेकी इच्छा करता हो।

तितुमीर—चौबीस-परगना जिलेके बादुड़िया थानाके अन्तर्गत हैदरपुर ग्राममें तितुमीरका घर था। १८वीं शताब्दीके शेष भागमें इसका जन्म हुआ था। उस समय भी अंगरेजोंका प्रभुत्व बङ्गालमें उतना अटल न था। चोर डकैतोंके उपद्रवसे लोग तङ्गमें आ गये थे।

बचपनसे ही तितु अपने धर्मके प्रति श्रद्धावान् था। अपने धर्म पर इसका जैसा अनुराग था, अपने सम्प्रदायके ऊपर भी उतनी ही ममता थी।

१८२९ ई०में यह मक्का तीर्थको गया। वहां वाहाबि सम्प्रदायके नायक सैयद अहमदके साथ इसकी जान पहचान हो गई। उक्त सैयदसे दीक्षित हो कर तितु अपने देशको लौटा और अपने नये मतका प्रचार करनेके लिये इच्छुक हुआ। उस समय बङ्गालके मुसलमानोंका आचार व्यवहार प्रायः हिन्दुओंसा था। तितुने उन्हें सत्यधर्मकी शिक्षा देनेकी चेष्टा की, देशस्थ सभी मुसलमानोंको अपने धर्ममें लानेके लिये इसने एक भी कसर उठा न रखी। किन्तु सम्भ्रान्त मुसलमानोंमेंसे कोई भी इसका मतानुवर्ती न हुआ। थोड़ेसे मुसलमान इसके उपदेश-वाक्यसे आकृष्ट हुए। इसने अपने शिष्योंसे दाढ़ी बढ़ानेको कहा। इसका उपदेश था, कि वे पर्वोपलक्षमें वा पुत्रकन्याके विवाहमें नाच गान न करें, सूद पर रुपये न लगावें, काछ दे कर धोती न पहनें इत्यादि। धीरे धीरे लोग इसके उपदेशसे ऐसे आकृष्ट हो गये कि रात दिन वे अपना काम धन्धा छोड़ कर इसीके पास बैठे रहते थे, बाल बच्चे तथा गृहस्थीकी ओर कुछ भी ध्यान न देते थे। वहांके राजाको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने इस बातकी घोषणा कर दी कि कोई भी अपना कार्य नष्ट कर तथा बाल बच्चोंकी अवहेला करते हुए धर्मोपदेश नहीं सुन सकता। जो इस आज्ञाका उलङ्घन करेगा, उसे उचित दण्ड दिया जायगा। राजाने सबोंको यह कह कर डरा दिया, कि उन्हें दाढ़ी पीछे सवा रुपये कर देना होगा। तितुमीरको यह बात मालूम पड़ने पर वह आग-बबूला हो गया और विधर्मी हिन्दूओंको बलप्रयोग द्वारा अपने मतमें लाने लगा। १८३१ ई०में इसने दल बांध कर राजाका घर लूट लिया और बलात् उनकी लड़कीकी आबरू बरबाद कर दी।

बाद इसने और दूसरे दूसरे देशों पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। कार्तिकी पूर्णिमाका दिन था, पूंड़ा नामक ग्राममें बड़ी धूमधामसे एक उत्सव होनेवाला था। तितुमीरका आगमन सुन कर सब कोई तितर बितर हो गये और डरसे जहां तहां जा छिपे। वहां पहुंच कर तितुमीरने एक गोहत्या कर डाली। यह देख पुजारीसे रहा न गया, उसने तुरंत देवीके हाथसे खड्ग ले कर हत्याकारी मुसलमानोंको खण्ड खण्ड कर दिया। पीछे बहुतोंसे घेरे जाने पर आप भी मारे गये। इस समय वहांके जमींदार तथा ग्रामवासी भी तितुमीर पर टूट पड़े। बचावका कोई रास्ता न देख तितुमीरने अपने बचे खुचे अनुचरोंको लौट जानेका हुक्म दे दिया। जाते समय इसने देव-मन्दिरमें गोमांस लटकवा दिया और दो ब्राह्मणोंके मुंहमें भी बलपूर्वक ठूंस दिया।

बारासातके ज्वाइण्ट मजिष्ट्रेटको यह बात मालूम होने पर उन्होंने वहांके दरोगाको तितुमीरके विरुद्ध भेजा। दरोगा जातिके ब्राह्मण थे। उन्होंने लगभग डेढ़ सौ बरकन्दाज और बहुतसे चौकीदारोंको साथ ले तितुमीर पर चढ़ाई कर दी। तितुमीरके पास भी ५००।६०० सौ हथियारबन्द थे। आखिर दोनोंमें मुठभेड़ हो ही गई। दरोगा साहब बहुतसे अनुचरोंके साथ मारे गये। इस जीत पर तितुका साहस और भी बढ़ गया। उसने अपनेको भारतका अद्वितीय अधीश्वर समझ कर तमाम घोषणा कर दी और सबको सूचना दे दी कि जो उसे आधिपत्य न मानेगा और तदनुसार कर न भेजेगा, उसका सिर धड़से अलग कर दिया जायगा। यहां तक कि उसने बांसका एक किला भी बना लिया था। उसी किलेके भीतर तितुके अनुचर लोग रहते थे और उनका दरबार भी उसी जगह लगता था।

इस समय इसकी तूती तमाममें बोलने लगी। लोग डरसे देश छोड़ कर भागने लगे। कुछ तो टाकीमें और कुछ गोबरडांगामें रहने लगे। किन्तु वहां भी उन्हें तनिक भी चैन न थी। गोबरडांगाके जमींदारने कलकत्तेसे दो सौ हबसी, दो तीन सौ लाठीबाज तथा कुछ हाथी तितुके विरुद्ध भेजे। फलतः तितु गोबरडांगामें अपना प्रभुत्व जमा न सका और बाध्य हो कर उसे लौटना पड़ा।

बाद मोल्लाहाटी कोठीके मेनेजर डेविस साहबने भी इसमें जमीन्दारका साथ दिया। सबने मिल कर तितु पर चढ़ाई कर दी। दोनों पक्षके बहुतसे लोग लड़ाईमें मारे गये। कितनोंने गोरबा गोबिन्दपुरमें जा कर आश्रय लिया। तितुको जब मालुम पड़ा कि शत्रुके कितने ही लोग उक्त ग्राममें जा छिपे हैं, तब उसने वहां धावा मारा। दोनों पक्षमें इच्छामती नदीके किनारे घमसान युद्ध हुआ। तितुके अधिकांश लोग मारे गये और कुछ नदीमें डूब मरे। लोहूसे नदीका जल लाल हो गया, तितुमीर किसी प्रकार प्राण ले कर भागा। इस लड़ाईमें तितु इतना विपद्ग्रस्त हुआ था, कि उसे जीवित देख उसके अनुचर लोग उसे ईश्वरप्रेरित समझने लगे थे। इतना होने पर भी तितुके इने गिने अनुचरोंका साहस तनिक भी घटा न था।

उधर कदम्बगाछी थानाके दरोगाके मारे जाने पर वहांके ज्वाइण्ट मजिष्ट्रेट निश्चेष्ट हो न बैठे थे। वे गवर्मेण्टको इस बातकी सूचना देकर उपयुक्त सैन्यदल संग्रह कर रहे थे। गवर्मेण्टने सोचा था, कि तितुके थोड़ेसे अस्त्र शस्त्र विहीन मनुष्योंके लिये अधिक सैन्यदलकी जरूरत नहीं। इसलिए उन्होंने पुनः कुछ चौकीदार, बरकन्दाज-कुछ अनियमित सेना और ४ गोरा अश्वारोही तितुके विरुद्ध भेजे। वे आकर तितुका बाल बांका भी न कर सके, बल्कि एक अङ्गरेज अश्वारोही और कुछ सिपाही मारे गए। इस समय तितुमीरका दल खूब बढ़ा चढ़ा था, तथा दिनोंदिन इसकी ओर भी पुष्टि होती जाती थी। जो कुछ हो, काल ही मनुष्यको उन्नत बनाता है और काल ही उसे गड्ढेमें गिराता है। तितुमीरकी भी वही हालत हुई। उसकी बादशाही सदा एक सी न रही, शीघ्र ही उसका दर्प चूर्ण हो गया और अन्तमें अधःपतनको प्राप्त हुआ।

१८३१ ई०की १८वीं नवम्बरके सवेरे लेफ्टेनेण्ट ष्टुआर्ड द्वारा परिचालित एक दल अङ्गरेजी सेना, एक दल देशीय पदातिक और कुछ गोलन्दाज सेना पूर्वप्रेरित सेनाके साथ मिल गई और सबोंने मिल कर तितुमीरके बांसके किलेको चारों ओरसे घेर लिया। विद्रोहियोंकी धर्मोन्मत्तताने उन्हें इतना उत्साहित कर दिया था, कि

से तनिक भी भीत वा विचलित न हो कर इस सुशिक्षित अङ्गरेजी सेनाके साथ भिड़ गये। पहले दिन उन्होंने जितनी भी अङ्गरेजी सेना नष्ट की थी उनके मृतशरीर बांसके किलेके बाहर जयचिह्नस्वरूपमें रख दिया था।

तितुमीरके बहुसंख्यक लोगोंको मार डालनेकी लेफ्टेनेण्टको जरा भी इच्छा न थी। इस कारण उन्होंने तितुमीरको आत्मसमर्पण करनेके लिये कहला भेजा। किन्तु तितुमीरने उनके दूतको ही मार डाला। सेनापतिने विद्रोहियोंको डरानेके लिये खाली तोपकी आवाज की। इसके पहले ही बांसके किलाके चारों कोनों पर चार कमानें रख दी गयी थीं। अब उनसे खाली आवाज होता देख मुसलमानोंने समझा, कि यथार्थमें फकीर ही उनके सब गोले निगल रहे हैं, जिससे खाली आवाज मात्र निकलती है। इस पर वे सबके सब एक स्वरसे चिल्ला उठे, 'हजरतने गोला खा डाला'। यह कहते हुए वे एकबारगी अङ्गरेजी सेना पर टूट पड़े। तब सेनापतिने वाध्य हो कर गोला चलानेका हुक्म दिया। इसका फल यह हुआ, कि बांसका किला तहस नहस हो गया और तितुमीर तथा उसके कितने ही अनुचर जहांके तहां मर गये। बचे खुचे अनुचर कैद कर लिये गये। बहुतसे जान ले कर भाग गये। किन्तु अङ्गरेजी सेनाने इन हतभाग्योंका पीछा कर पशुपक्षियोंकी तरह उनक शिकार किया। कोई तो प्राणभयसे बांसके बनमें और कोई आमके वनमें जा छिपे थे। अनुसरणकारी अङ्गरेजी सेनाने उन्हें उसी अवस्थामें मार गिराया। इस प्रकार ४।५ सौ निरक्षर लोगोंकी जीवलीला समाप्त हुई।

तित्तिर (सं० पु०) तित्ति इति शब्दं राति ददाति रा-क। १ तीतर नामका पक्षी। २ तितली नामकी घास।

तित्तिरि (सं० पु०) तित्ति इति शब्दं रौति रु-डि। पक्षी भेद, तीतर चिड़िया। संस्कृत पर्याय—तैत्तिर-याजुषोदर, तित्तिर, कपिञ्जल, लघुमांस, खरकोण, चित्रपक्ष, तितिर और वसन्तगौर। इसके मांसके गुण--रूक्ष, लघु, वीर्य बलप्रद, कषाय, मधुर, शीत और त्रिदोष शमन। यह कृष्ण और गौरवर्णका होता है। काले तीतरको कृष्णतित्तिरि और चित्र विचित्र तित्तिरिको गौरतित्तिरि कहते हैं। कृष्णतीतर बलकारक, धारक, एवं हिक्का, त्रिदोष, श्वास, कास और ज्वरनाशक है। गौर तीतरमें उससे कुछ अधिक गुण हैं। (भावप्रकाश)

२ यजुर्वेदकी एक शाखाका नाम। ३ नागविशेष, एक सर्पका नाम। ४ यास्क मुनिके एक शिष्य। इन्होंने तीतर पक्षी बन कर याज्ञवल्क्यके उगले हुए यजुर्वेदको चुगा था। भागवतमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—यजुर्वेदसंहिताके जाननेवाले वैशम्पायनके शिष्यों का नाम अध्वर्यु था, और ब्रह्महत्याजनित पापक्षय साधन करने तथा अपने गुरुके अनुष्ठेय व्रतका आचरण करनेसे उनका दूसरा नाम चरक पड़ा। उस व्रताचरणके समय याज्ञवल्क्य नामक उनके एक दूसरे शिष्यने कहा, 'भगवन्! इन अल्पसार शिष्योंके आचरित व्रतद्वारा आपका क्या होगा? मैं इससे सुदुश्चर व्रताचरण करके आपको पापसे विमुक्त करूंगा।" यह सुन कर उनके गुरु वैशम्पायन क्रोधसे अधीर हो उठे और बोले 'याज्ञवल्क्य! तुम मेरे शिष्य हो कर ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हो; इसलिये तुमने जो कुछ मुझसे सीखा है उसे परित्याग कर दो और यहांसे दूर हो जाओ।" तब देवरातके पुत्र याज्ञवल्क्य पढ़े हुए यजुर्वेदको वमन कर वहाँसे चले आये। इसके बाद मुनियोंने उस उगले हुए यजुर्गणको देखा और उन्हें पानेके लिए तीतर पक्षी बन कर उस यजुर्वेदको चुग लिया। तभीसे उस रमणीय यजुःशाखाका नाम तैत्तिरीय हुआ है।

(भागवत० १२।६।५४-५८)

तित्तिरिक (सं० पु०) तित्तिरि स्वार्थे कन्। तित्तिरि देखो।

तित्तिरीक (सं० क्ली०) तित्तिरैः पक्षदाहेन जातं तित्तिरि-बाहुलकात् ईक। एक प्रकारका अञ्जन जो तीतर पक्षीके पंखके जलानेसे तैयार किया जाता है।

तिथ (सं० पु०) तेजयति तिज-थक्। -तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः। उण् २।१२। १ अग्नि। २ काम, कामदेव। ३ काल। ४ प्रावृट्-काल, वर्षाका समय।

तिथि (सं० पु०-स्त्री०) अततीति अत-सातत्यगमने अत-इथिन्। १ पन्द्रह चन्द्रकलाओंकी क्रियारूप प्रतिपदा आदि तिथियां। २ अमावास्यासे ले कर पूर्णिमा तक और पूर्णिमासे ले कर अमावास्या तकको चन्द्रमाकी कलाओंको तिथि कहते हैं। (तिथितत्त्व) जो काल विशेष

क्षीयमान वा वर्द्धमान चन्द्रकलाका विस्तार करता है, उस कालविशेषका नाम ही तिथि है। आधारस्वरूपा महामाया जो देहियोंकी देहधारिणी हो कर अवस्थित हैं तथा जो चन्द्रमण्डलके षोड़शभाग परिमित चन्द्रकी देहधारिणी अमा और महाकला नामसे प्रसिद्ध नित्य और क्षयोदयरहित हैं, उनका नाम भी तिथि है। ऐसी तिथियां दो भागोंमें विभक्त हैं—शुक्ला और कृष्णा। अमावस्याके बाद प्रतिपदासे पूर्णिमा तक और पौर्णमासीके बाद प्रतिपदासे अमावस्या तक पन्द्रह पन्द्रह दिनोंका एक एक पक्ष होता है। इस प्रकार-भेदसे चन्द्रकी ह्रास-वृद्धि हुआ करती है। स्मार्त्त भट्टाचार्यने इस प्रकार लिखा है—"वृद्धिकारः शुक्लः कृष्णश्चन्द्रक्षयात्मकः" अर्थात् जिन पन्द्रह दिनोंमें चन्द्रकी वृद्धि होती है, उस पक्षको शुक्ल कहते हैं और जिन पन्द्रह दिनोंमें चन्द्रका ह्रास होता है, उसको कृष्णपक्ष कहते हैं। चन्द्रमासमें पहले शुक्लपक्ष और पीछे कृष्णपक्ष व्यवहृत होता है। सभी तिथियां प्रायः ३० दण्ड परिमित हैं। सूर्यमण्डलसे विनिःसृत हो कर चन्द्र जो त्रिंशद्भागात्मक राशिके द्वादश भाग तक गमन करता है, वही एक एक तिथि है, राशिका परिमाण १५० दण्ड है, सुतरां उसके ३० भागके १२ भागमें ही ६० दण्ड हुए, इस तरह ६० दण्ड ही एक एक तिथिका परिमाण है। जिसका नाम अमा है और जो क्षयोदयवर्जित, ध्रुव, षोड़शीकला है, वह काल ही समान्यतः तिथि है।

वृद्धिक्षययुक्त पञ्चदशकलारूप जो कालविभाग हैं, वेही पन्द्रह तिथियां हैं। वह्नि आदि पन्द्रह देवता उक्त पन्द्रह कलाओंको क्रमसे पान करते हैं। जैसे—वह्नि देवता प्रथम कलाको पान करते हैं, इसलिए उनका नाम प्रथम है एवं तदुक्त कालविशेषका नाम ही प्रतिपद् है।

इसी प्रकार द्वितीया आदिके विषयमें समझना चाहिये। इस तरह कलाएं जब पीत होती हैं, तब कृष्णपक्ष होता है। और तदनुसार प्रथम कला, द्वितीय कला होती है एवं तदुक्त काल ही प्रतिपदा द्वितीया इत्यादि कहलाता है। इस प्रकारसे जब समस्त कलाएं चन्द्रमण्डलकी पूर्ण करती हैं, तब उस समयका नाम शुक्लपक्ष होता है।

चन्द्रकी प्रथम कलाको अग्नि, द्वितीय कलाको रवि, तृतीयको विश्वदेव, चतुर्थको सलिलाधिप, पञ्चमको वषट्कार, षष्ठको वासव, सप्तमको ऋषिमण्डल, अष्टमको अजैकपाद, नवमको यम, दशमको वायु, एकादशको उमा, द्वादशको पितृसकल, त्रयोदशको कुवेर, चतुर्दशको पशुपति और पञ्चदश कलाको प्रजापति पान करते हैं। समस्त कलाएं जब पीत हो जाती हैं, तब चन्द्रमण्डल बिलकुल दिखाई नहीं देता। जो षोड़श कलाएं सर्वदा जलमें प्रविष्ट होती हैं तथा अमामें सोम औषधिको प्राप्त होती हैं तथा औषधिगत और अम्बुगत होने पर उनको गो पान करती हैं, वह गोसम्भूत क्षीरसमूह अमृतस्वरूप है, द्विजाति द्वारा मन्त्रपूत हो कर यज्ञीय अग्निमें हुत होता है, उससे चन्द्रमा पुनः वृद्धिको प्राप्त होता है। इस तरह दिनों दिन वृद्धिप्राप्त हो कर पूर्णिमामें वह पूर्णताको प्राप्त करता है।

सिद्धान्तशिरोमणिके मतसे चन्द्र सूर्यसे विनिःसृत हो कर पूर्वकी ओर गमन करता है।

अमावस्याके दिन शीघ्रगामी चन्द्र सूर्यमण्डलके अधःप्रदेशमें और मध्यगामी सूर्य चन्द्रमण्डलके ऊर्द्ध्व प्रदेशमें रहता है। सूर्यकी सम्पूर्ण किरणें चन्द्रके उपरिभागमें पड़ती हैं, निम्न वा पार्श्व किसी भी तरफसे नहीं निकल सकतीं। चन्द्रके उपरिभागमें पतित हो कर उसी तरह अवस्थित रहती हैं, इस तरह चन्द्र और सूर्यके गतिविशेषके कारण तथा सूर्यरश्मियोंके सम्पूर्ण अभिभूत होनेके कारण चन्द्रमण्डल जरा भी दिखाई नहीं देता। पीछे चन्द्र शीघ्रगतिके द्वारा सूर्यसे विनिःसृत हो कर पूर्वदिशाको गमन करता है अर्थात् त्रिंशत्-अंश-युक्त राशिमें द्वादश अंश द्वारा सूर्यका उल्लङ्घन कर गमन करता है। अतएव उस समय चन्द्रके पञ्चदश भागोंमेंसे प्रथम भाग दर्शनयोग्य होता है। सूर्यकी किरणें उस प्रथम भागमेंसे निकलती हैं, इसीलिए चन्द्रकी उस प्रथम कलाको सब देख नहीं पाते और उसी कलाको प्रथम कला कहते हैं। उक्त कलानिष्पत्ति परिमित कालकी ही नाम तिथि है। द्वितीया आदिमें भी इसी तरह समझ लेना चाहिये।

चन्द्र और सूर्यकी गतिके द्वारा जिस समय कालका

परिच्छेद होता है, उस समय चन्द्र और सूर्यके गति-विशेषका आश्रय करके तिथिका स्वरूप-निर्णय करना चाहिये। समग्र नक्षत्र बारह राशियोंका भोग करते हैं, ३० अंशोंमें राशिका भाग होता है। सूर्यसे निकल कर चन्द्र जब तक त्रिंशत्-भागात्मक राशिके द्वादश भागमें गमन करता है, तब तक चन्द्रमातिथि अर्थात् शुक्लपक्ष है। (विष्णुधर्मोत्तर) चन्द्र नित्य राशिचक्रके मध्य १३अंश १० कला ३४ विकला ५२ अनुकला पश्चिम-दिशासे पूर्वदिशाको गमन करता है। सूर्य प्रतिदिन पश्चिम दिशासे पूर्व दिशाको ५८ कला ८ विकला गमन करता है। इस तरहसे चन्द्र सूर्यसे दिन दिन १२ अंश ११ कला ४७ विकला गमन करने पर एक एक तिथि होती है। यह मध्यगति द्वारा संघटित होता है। किन्तु चन्द्र और सूर्यकी शीघ्रगति और मन्दगतिके अनुसार इसका व्यतिक्रम भी हुआ करता है। स्फुटगणना द्वारा ज्योतिर्विद् विद्वानोंने स्थिर किया है, कि चन्द्रके सूर्यसे द्वादश अंश गमन करने पर एक एक तिथि होती है। इस प्रकारसे ३६० अंश गमन करने पर प्रतिपद आदि ३० तिथियाँ हुआ करती हैं। जब चन्द्रमें वृद्धि और क्षय होता रहता है, तब उसे शुक्ल और कृष्णपक्ष कहते हैं। शुक्लाष्टमीके दिन चन्द्र सूर्यसे ९० अंश पूर्वांशमें अवस्थित रहता है, इस कारण उस दिन अर्द्धचन्द्र दिखलाई देता है।

चन्द्र स्वयं तेजोमय नहीं है, सूर्यरश्मि द्वारा चन्द्रमें प्रकाश होता है; इसलिए चन्द्रमण्डलके एक ओरका हिस्सा लगातार १५ दिन तक दीप्तिमान् और दूसरी तरफका हिस्सा नियत तिमिरावृत रहता है।

"तरणिकिरणसंगादेष पीयूषपिण्डो
दिनकरदिशिचन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्च कांति।
तदितरदिशि वालाकुन्तलश्यामलश्रीः
घटइव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थः॥" (ज्योतिष)

चन्द्रके जो अंश सूर्यकी ओर होते हैं, वे ही अंश सूर्यकी किरण पा कर प्रकाशित होते हैं। इसके सिवा चन्द्रके अन्य अंश वाला स्त्रीके केशोंके समान श्यामवर्ण हैं। जैसे धूपमें रक्खे हुए घड़ेका एक हिस्सा अपनी छायासे आच्छन्न रहता है, उसी तरह इसको भी समझें। हम चन्द्रमण्डलके जिस अर्द्धांशको देख रहे हैं, वह अर्द्धांश जब सूर्य-किरण द्वारा सर्वतोभावसे प्रकाशित होता है, तब उसे पूर्णचन्द्र कहते हैं और उसी दिन पूर्णिमा तिथि होती है। उस उज्ज्वल अंशकी न्यूनाधिकताके अनुसार चन्द्रकलाकी ह्रासवृद्धि होती है, इसलिये तिथि भी प्रतिपदा आदि नामोंसे पुकारी जाती है। अमावस्याके बाद शुक्ल-द्वितियामें चन्द्र पश्चिमदिशामें उदित होता है तथा उक्त तिथिसे चन्द्रमण्डलका पश्चिमांश सूर्य-किरण द्वारा क्रमशः एक एक कला प्रतिदिन बढ़ता है और अन्तमें पूर्णिमाके दिन पूर्णचन्द्र हो कर प्रकाशित होता है। और जब कृष्णपक्ष प्रारम्भ होता है, तो प्रतिदिन चन्द्रमण्डलके दृश्य अंशसे एक एक कलाका ह्रास हो कर अमावस्याके दिन चन्द्र सम्पूर्णरूपसे अदृश्य हो जाता है।

शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे ले कर पूर्णिमा तक चन्द्र क्रमशः सूर्यसे दूरगामी होता है, एवं तदनुसार चन्द्रमण्डलका प्रदीप्त अंश पृथिवीके समीपवर्ती हो कर प्रकाशित होता रहता है। शुक्लपक्षमें प्रतिपदासे ले कर पूर्णिमा तक चन्द्र अपने वृत्त वा पथमें १८० अंश भ्रमण करता है; इतने समय तक चन्द्र सूर्यसे (पृथिवीके सम्बन्धसे) पश्चिममें अवस्थित रहता है और कृष्णपक्षमें पूर्वकी ओर अवस्थित होता है। इस तरह चन्द्र जितना जितना सूर्यके पास पहुंचता जाता है, उतना ही पृथिवीके लोगोंको उसमेंसे एक एक कला घटती दिखलाई देती है। अन्तमें अमावस्याके दिन इसके समस्त प्रदीप्त अंश पृथिवीसे विपरीत दिशाकी ओर हो जाते हैं और तिमिरावृत अंश पृथिवीके सामने आ जाते हैं।

तिथियोंकी व्यवस्था।—जो प्रतिपदा त्रिसन्ध्याव्यापिनी होती है, वही प्रतिपदा ग्राह्य है; इसमें युग्मादरता अर्थात् दो तिथियोंका पूज्यत्व नहीं है। केवल त्रिसन्ध्याव्यापिनी तिथि पूज्य है। यह सर्वत्र ही होगी, सिर्फ हरिवासरमें इसके भेद होते हैं। कृष्णपक्षीय प्रतिपदा अमावस्यायुक्त होने पर आदरणीय है। परन्तु उपवासके लिये ऐसी व्यवस्था नहीं अर्थात प्रतिपदाके दिन उपवास करना हो तो कृष्णा-द्वितीयायुक्त प्रतिपदाको उपवास करना चाहिये।

कार्तिकमासकी शुक्लपक्षीय प्रतिपदाके दिन बलिराजकी पूजा की जाती है। उक्त तिथिमें जो बलिराजकी पूजा करता है, उसे अशेषविध सुख होता है; पूजा करके रात्रि-जागरण करना पड़ता है। इस प्रतिपदाका नाम द्यूतप्रतिपद् है।

कार्तिकमासके प्रथम दिन अर्थात् शुक्लपक्षीय प्रतिपदाकी हरगौरीने द्यूतक्रीड़ा की थी, इसलिए उक्त तिथिको द्यूतप्रतिपदा कहते हैं। इस क्रीड़ामें शङ्कर पराजित हुए थे और शङ्करीने विजय पाई थी, इसलिए शिव दुःखी और दुर्गा सुखी हुई थीं। वर्तमान समयमें भी उक्त दिवसमें लोग जूआ खेला करते हैं। उसमें राजाकी जय और पराजय होती है, सम्वत्सर उसको सुख और दुःख होता है। संवत्का फलाफल जाननेके लिए उक्त तिथिमें द्यूतक्रीड़ा विधेय है। उक्त तिथिमें यदि गङ्गास्नान और दान किया जाय, तो शतगुण पुण्य होता है।

"स्नानं दानं शतगुणं कार्त्तिकेऽस्यातिथौ भवेत् ॥" (तिथित०)

यदि अग्रहायण मासकी कृष्णपक्षीय प्रतिपदा रोहिणी नक्षत्रयुक्त हो और उस समय यदि गङ्गास्नान किया जाय, तो शतसूर्यग्रहण कालीन गङ्गास्नानका फल प्राप्त हो। उक्त तिथिमें कुष्माण्ड-भक्षण, तैलमर्दन और क्षौरकर्म नहीं कराना चाहिये।

द्वितीया—जो द्वितीया प्रतिपद्युक्त हो, वह ग्राह्य है; यह नियम शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंके लिये है। किन्तु कोई कोई परयुक्तको ही ग्राह्य बतलाते हैं।

उपवास-तिथिमें जो तिथियां आती हैं, उनमें परयुक्त और पूर्वयुक्त इस प्रकार दो प्रभेद हैं, जैसे द्वितीया, एकादशी, अष्टमी, त्रयोदशी और अमावस्या, उपवास-विधिमें परयुक्त ग्राह्य नहीं हैं। कृष्णपक्षीय तिथियोंके लिये उक्त नियम लागू है, शुक्लपक्षके लिए नहीं।

शुक्लपक्षीय एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, द्वितीया, चतुर्दशी त्रयोदशी और अमावस्या, इनका उपवास शेषको पकड़ कर करें। (विष्णुरहस्य)

आषाढ़मासकी शुक्लपक्षीय पुष्यानक्षत्रयुक्त द्वितीयाको जगन्नाथदेवकी रथयात्रा हुआ करती है, इसलिए उस दिन यात्रा-महोत्सव और ब्राह्मण भोजन करावें। यदि नक्षत्रयुक्त न भी हो, तो भी उक्त तिथिके माहात्म्यके कारण उक्त कर्म करना उचित है। इससे भगवान्को अत्यन्त प्रीति होती है।

यमद्वितीया—कार्तिकमासकी शुक्लपक्षीय द्वितीयाको भ्रातृद्वितीया कहते हैं। इस दिन बहिनोंको भाइयोंकी पूजा करनी चाहिये।

यम-द्वितीयामें यम और यमुनाकी पूजा की जाती है। यत्नपूर्वक उस दिन बहनके हाथका भोजन करें, बहनका दिया हुआ दान प्रतिग्रह करें एवं बहनको दान देवें।

अपरपक्षके बादकी शुक्लद्वितीया, कोजागरके बादकी कृष्णद्वितीया, चैत्रकी और कार्तिककी पूर्णमासीके बादकी कृष्णद्वितीया, इन सबका तृतीयाके साथ युग्मादर है। अतः उक्त दिन अनध्यायके हैं।

यमद्वितीयाके दिन यात्रा नहीं करनी चाहिये, यात्रा करनेसे मृत्यु होती है। इस तिथिमें बृहती (बड़ी हड़) खाना मना है।

तृतीया—रम्भाव्रतके सिवा दैव और पैत्रकर्ममें चतुर्थीयुक्त तृतीया ग्राह्य है। ज्यैष्ठमासकी शुक्लपक्षीय तृतीयामें रम्भाव्रत हुआ करता है। वैशाखमासकी शुक्लपक्षीय तृतीयामें कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र हों, तो विशेष फल होता है।

इस दिन स्नान और दानादि करनेसे उसका अक्षय फल होता है, इसीलिए उसका नाम अक्षय-तृतीया पड़ा है। उस दिन जलदान करनेसे महापुण्य होता है तथा विष्णुको चन्दनाक्त देखनेसे विष्णुलोकमें वास होता है।

यह सत्ययुगकी प्रथम तिथि है। वैशाखकी शुक्ला-तृतीयामें भगवान्ने यवकी सृष्टि कर सत्ययुगकी सृष्टि की थी, इसलिये यवसे विष्णुकी अर्चना और होम करें एवं ब्राह्मणको यवान्नका भोजन करावें। उक्त तिथिमें गङ्गा ब्रह्मलोकसे पृथिवी पर उतरी थी, इसलिए शङ्कर, गङ्गा, हिमालय, कैलाश और सगर नृपतिकी पूजा करें। उस दिन जो श्रद्धासे गङ्गास्नान और तपहोमादि करता है, उसका अनन्तकाल पर्यन्त स्वर्गवास होता है। इस तृतीयामें युग्मादर नहीं है। तृतीया तिथिमें मांस और पटोल खानेका सर्वथा निषेध है।

चतुर्थी—चतुर्थी और पञ्चमी संयुक्त ग्राह्य होने पर एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, अमावस्या और चतुर्थी, इनमें

शेषको पकड़ कर उपवास करना पड़ता है। किन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराणान्तर्गत गणेशव्रतमें तृतीयायुक्त चतुर्थी ग्राह्य है।

सोमवारमें अमावस्या, रविवारमें सप्तमी और मङ्गलवारमें चतुर्थी पड़ने पर वे तिथियां अक्षया होती हैं अर्थात् उन दिनोंमें गङ्गास्नानादि करनेसे अक्षय तिथिका फल होता है। त्रयोदशी, चतुर्थी, सप्तमी और द्वादशी इन तिथियोंमें प्रदोषमें अध्ययन न करना चाहिए। हेमाद्रिके मतसे प्रदोषका शब्दार्थ प्रहर है। भाद्रमासके कृष्ण और शुक्ल दोनों ही पक्षकी चतुर्थीका नाम नष्टचन्द्र है। इस चन्द्रमाका कभी दर्शन न करना चाहिये। अकस्मात् दर्शन हो जाने पर शान्तिकी व्यवस्था करनी पड़ती है। माघमासकी शुक्लपक्षीय चतुर्थीमें गौरीपूजा की जाती है उस दिन मूली खाना और चौरकर्म कराना निषिद्ध है।

पञ्चमी -- जो पञ्चमी चतुर्थी और चतुर्थीके चन्द्रसे युक्त हो, वही ग्राह्य है ; पर युक्त ग्राह्य नहीं।

'चतुर्थी संयुक्ता कार्या पंचमी परया नतु" (हारीत)

पञ्चमीके समस्त कार्य चतुर्थी संयुक्त होने पर करें, पर युक्त ग्राह्य नहीं है। कृष्णपक्षमें पञ्चमी पूर्वविद्ध ग्राह्य होनेसे, शुक्ल पक्षमें परविद्ध ग्रहणीय है; यदि पञ्चमी पूर्व दिवसके पूर्वाह्नमें चतुर्थीयुक्त हो और बादके दिन पूर्वाह्नमें षष्ठीयुक्त हो, तो पूर्वदिन उपवासादि देवकार्य करने चाहिये। पूर्वाह्नमें चतर्थीयुक्त पञ्चमी यदि न हो और दूसरे दिन पूर्वाह्नमें मूहूर्तके भीतर यदि कमसे कम पञ्चमी आ जाय, तो पूर्वाह्नके अनुरोधसे दूसरे दिन पूजा करनी चाहिये और उसी दिन पूजाकी प्रधानताके कारण उपवास करना चाहिये।

श्रावणमासकी कृष्णपञ्चमीको नागपञ्चमी कहते हैं। उस दिन प्राङ्गणमें मनसादेवी और अष्टनागकी पूजा की जाती है। इस तरह प्रति पञ्चमी अर्थात् भाद्रमासकी कृष्णपञ्चमी तक पूजा करनी चाहिए। इससे सर्पभय निवारित होता है।

माघमासकी शुक्लपक्षीय चतुर्थीको वरदावसन्त चतुर्थी कहते हैं। उस दिन गौरीकी पूजा की जाती है, इसके सिवा उक्त पञ्चमीमें लक्ष्मी और सरस्वतीकी एकत्र पूजा करके दावात और कलमकी पूजा करनी चाहिये। श्रीपञ्चमीके दिन अध्ययन वा लिखना न चाहिये तथा उस दिन सरस्वतीका उत्सव करना चाहिये। इस तिथिमें बेल न खाना चाहिये।

षष्ठी -- सप्तमीयुक्त षष्ठी ही ग्रहण की जाती है। जेठ मासकी शुक्लाषष्ठीको अरण्यषष्ठी कहते हैं। इस कारण उक्त षष्ठीको स्त्रियां एक एक पंखा हाथमें ले कर वनमें षष्ठीकी पूजा करने जाती हैं। इसको "जमाईषष्ठी" भी कहते हैं।

भाद्रमासकी शुक्लाषष्ठीको अक्षयाषष्ठी कहते हैं। इस दिन स्नानादि करनेसे अक्षय फल होता है।

अगहन महीनेकी शुक्लाषष्ठीको गुहषष्ठी कहते हैं, उसमें शिवाकी शान्ति की जाती है।

चैत्रमासकी शुक्लाषष्ठीको स्कन्दषष्ठी कहते हैं, उस दिन कार्त्तिककी पूजा करनेसे इस जन्ममें सुख-सौभाग्य और परलोकमें वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है।

आश्विनमासकी शुक्लाषष्ठीको बोधनषष्ठी कहते हैं।

कृष्णाष्टमी अर्थात् जन्माष्टमी, स्कन्दषष्ठी और शिवरात्रि इनमें शेषको पकड़ कर कार्य करें। तिथिके अन्तमें पारणा करनी चाहिये।

सप्तमी --षष्ठीयुक्त सप्तमी युग्मादरके कारण ग्रहणीय है। पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी, पतिपदा और नवमी, ये तिथियां उपवासविधिमें सन्मुखी अर्थात् त्रिसन्ध्याव्यापिनी, परयुक्त ग्रहणीय हैं। सिर्फ हरिवासरमें अर्थात् एकादशीमें शेषको पकड़ना उचित है। उपवासविधिके अनुसार षष्ठीयुक्त सप्तमीमें ही उपवास करना चाहिये, अष्टमीयुक्त होने पर नहीं। यदि शुक्लपक्षीय सप्तमीमें रविवार पड़ जावे, तो उसका नाम विजयासप्तमी है, उस दिन स्नान, दान और सूर्यपूजा करनेसे फल होता है।

भाद्रमासकी शुक्ला सप्तमीको ललितासप्तमी कहते हैं। इसमें कुक्कुटीव्रत किया जाता है। जो इस व्रतको करता है, दूसरे जन्ममें उसके लिए पृथिवी पर कुछ दुष्प्राप्य नहीं रहता।

माघमासकी शुक्ला-सप्तमीको माकरी सप्तमी कहते हैं। इसको युगाद्या भी कहते हैं। उस दिन अरुणोदयमें यदि गङ्गास्नान किया जाय, तो शतसूर्यग्रहण

कालीन गङ्गास्नानका फल हो। माकरी सप्तमीको सप्तबदरीपत्र और सप्त अर्कपत्र मस्तक पर धारण करके स्नान करे। महानवमी, द्वादशी, भरणी नक्षत्रयुक्त दिन, अक्षय तृतीया और रथाख्य सप्तमी अर्थात् माघ मासकी सप्तमी इन दिनोंमें अध्ययन न करना चाहिये।

मन्वन्तरा तिथि—आश्विनकी शुक्ला नवमी, कार्तिककी द्वादशी, चैत्र और भाद्रकी शुक्लातृतीया, पौषकी एकादशी, फाल्गुनकी अमावस्या, आषाढ़की शुक्लासप्तमी, माघकी शुक्ला सप्तमी, श्रावणकी राधाष्टमी, आषाढ़की पूर्णिमा एवं कार्त्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्यैष्ठकी पूर्णिमाको मन्वन्तरा कहते हैं। इन तिथियोंमें दानादि करनेसे महाफलकी प्राप्ति होती है।

अष्टमी—शुक्लपक्षकी अष्टमी नवमीयुक्त और कृष्णपक्षकी अष्टमी सप्तमीयुक्त होने पर ही ग्राह्य है। कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी उपवासविधिके अनुसार पूर्व तिथियुक्त ही ग्राह्य है। परन्तु शुक्लपक्षके लिए परयुक्त ग्रहणीय है।

शनि और मङ्गलवारको यदि कृष्णपक्षीय अष्टमी और चतुर्दशी पड़े, तो वह अत्यन्त पुण्यजनक तिथि होती है। वृहस्पतिवारकी अष्टमी, सोमवारकी अमावस्या, रविवारकी सप्तमी और मङ्गलवारकी चतुर्थी इनमें जो लोग धर्म वा पाप कर्म करते हैं, वह ६० हजार वर्ष तक अक्षय रहता है।

जन्माष्टमी—भाद्रमासकी कृष्णाष्टमीके दिन सावर्णि मन्वन्तरीय प्रथम युगमें देवकीके गर्भसे श्रीकृष्णने जन्मग्रहण किया था। श्रावणमें हो चाहे भाद्रमें, रोहिणीयुक्त कृष्णाष्टमीको जयन्ती कहते हैं, जयन्ती-अष्टमीका ही अपर नाम जन्माष्टमी है। विवेचनापूर्वक देखा जाय तो इस जगह एक सन्देह हो सकता है, कि एक बार श्रावण मासमें और एक बार भाद्र मासमें जन्माष्टमी कही गई, इसका तात्पर्य क्या? तात्पर्य यह है, कि श्रावणके मुख्यचन्द्रमें और भाद्रके गौणचन्द्रमें कृष्णजन्माष्टमी होती है; इसी कारण श्रावण और भाद्र ये दोनों पद प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु व्रतके लिए भाद्र मासका उल्लेख करना पड़ेगा। भाद्रमासकी कृष्णपक्षीय रोहिणीयुक्त अष्टमीमें कृष्णाष्टमी व्रत है और उसी दिन उपवास करनेका विधान है। जन्माष्टमी देखो।

दोनों दिन निशीथ सम्बन्ध होने वा न होने पर दूसरे दिन अंग्रेजी हिसाबसे अमावस्या आदि तिथि गणनाके नियम ५१० के पृष्ठमें लिखे जाते हैं।

प्रथम विधि—जिस सालके जिस महीनेके नीचे जो संख्या दी गई है, वह संख्या उस महीनेकी तिथिके लिए आवश्यक होगी, उस मासकी तारीखकी उक्त संख्याके साथ जोड़नेसे जो संख्या होगी, वही तिथिकी संख्या है।

प्रमाण—तालिकामें १८७१ सन्के जून मासके स्तम्भकी १३ संख्याको उस मासकी दो तारीखसे जोड़ने पर १५ होता है, ३२ तारीखकी पूर्णिमा है। यदि ३० हो, तो उसे छोड़ देना पड़ेगा।

अमावस्याके दिननिरूपणकी विधि—ऊपरकी अनुक्रमणिकामें सन्के पूर्वभागमें जो संख्या है, उसका ३० से वियोग करनेसे जो संख्या बचेगी, उतने संख्यक दिन अमावस्या है। यथा—

१८७१ सन्के जून मासके स्तम्भकी १३ संख्याके ऊपर ३० रख कर यदि बाकी निकाली जाय, तो १७ बाकी बचते हैं। इस तरह जून मासके १७वें दिन अमावस्या हुई।

तिथियोंके अधिपति—शुक्ल और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिके अधिपति अग्निदेव, द्वितीयाके प्रजापति, तृतीयाकी गौरी, चतुर्थीके गणेश, पञ्चमीके अहि, षष्ठीके कार्तिक, सप्तमीके रवि, अष्टमीके शिव, नवमीकी दुर्गा, दशमीके यम, एकादशीके विश्व, द्वादशीके हरि, त्रयोदशीके काम, चतुर्दशीके हर, पूर्णिमा और अमावास्याके अधिपति चन्द्र हैं।

मासदग्धा तिथि—वैशाख मासकी शुक्लाषष्ठी, आषाढ़ मासकी शुक्लाष्टमी, भाद्रमासकी शुक्लादशमी, कार्तिककी शुक्लाद्वादशी, पौषकी शुक्लाद्वितीया और फाल्गुन मासकी शुक्लाचतुर्थी मासदग्धा होती है। श्रावणकी कृष्णाषष्ठी, आश्विनकी कृष्णाष्टमी, अग्रहायणकी कृष्णादशमी, माघकी कृष्णाद्वादशी, चैत्रकी कृष्णाद्वितीया और ज्यैष्ठकी कृष्णाचतुर्थी मासदग्धा होती है।

उक्त मासदग्धा तिथियोंमें जो व्यक्ति जन्म लेता वा यात्रा करता है, वह व्यक्ति इन्द्रतुल्य होने पर भी कालका

तिथियोंकी तालिका।

ईस्वी सन्	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रील	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सेप्टेम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
१८७१	९	११	१०	११	१२	१३	१४	१५	१७	१७	१९	१९
१८७२	२०	२२	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२८	२८	०	०
१८७३	१	३	२	३	४	५	६	७	९	९	११	११
१८७४	१२	१४	१३	१४	१६	१६	१७	१८	२०	२०	२२	२२
१८७५	२३	२५	२४	२५	२६	२७	२८	२९	१	१	३	३
१८७६	४	६	५	६	७	८	९	१०	१२	१२	१४	१४
१८७७	१५	१७	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२३	२३	१५	२५
१८७८	२६	२८	२७	२८	२९	०	१	२	४	४	६	६
१८७९	७	९	८	९	१०	११	१२	१३	१५	१५	१७	१७
१८८०	१८	२०	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२६	२६	२८	२८
१८८१	०	२	१	२	३	४	५	६	८	८	१०	१०
१८८२	११	१३	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१९	१९	२१	२१
१८८३	२२	२४	२३	२४	२५	२६	२७	२८	०	०	२	२
१८८४	३	५	४	५	६	७	८	९	११	११	१३	१३
१८८५	१४	१६	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२२	२२	२४	२४
१८८६	२५	२७	२६	२७	२८	२९	०	१	३	३	५	५
१८८७	६	८	७	८	९	१०	११	१२	१४	१४	१६	१६
१८८८	१७	१९	१८	१९	०	२१	२२	२३	२५	२५	२७	२७
१८८९	२८	०	२९	०	१	२	३	४	६	६	८	८

ग्रास बनता है तथा उसके विवाहमें विधवा, कृषिकर्ममें फलका अभाव, विद्या आरम्भमें मूर्ख, स्त्री-सङ्गममें गर्भपात और वाणिज्यमें मूलधनका नाश होता है। इसलिये बुद्धिमान व्यक्ति दग्धा तिथियोंमें कोई भी शुभकार्य नहीं करते।

प्रतिपदासे ले कर अष्टमी तककी व्यवस्था पहले लिखी जा चुकी है।

जन्माष्टमीको पारणविधि-रोहिणीयुक्त अष्टमी होने पर पारण न करें। अन्यथा पूर्वकृत कर्म और उपवासजनित फल नष्ट हो जायंगे। जन्माष्टमीके पारणके लिये यह नियम है, अन्यान्य व्रतोंके लिए भी ऐसी विधि है। जिस तिथि और नक्षत्रके योगमें उपवासादि करें, उसमें एकका क्षय न होने तक पारण करना उचित नहीं। जन्माष्टमी रोहिणीयुक्त होने पर उपवासादि करें तथा पहले दिन षष्ठीदण्डात्मिका अष्टमी है, किन्तु रोहिणी योग नहीं है, दूसरा दिन यदि रोहिणीयुक्त हो तो उस दिन उपवासादि करें।

यदि जयन्तीयोगके पूर्व दिन उपवास हो और दूसरे दिन रात्रि साढ़ेप्रहर बीत जाने पर तिथि-नक्षत्र दोनोंसे या एकसे विमुक्त हो तो उस दिन सवेरे पारण करें। उपवासके दूसरे दिन तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारण करें और जब महानिशाके पूर्व एकका अवसान और अन्यकी महानिशामें स्थिति हो, तो एकके अवसान होने पर पारण करें। महानिशामें यदि दोनोंकी स्थिति हो तो उस दिन सुबह पारण करें। किसी विद्वान्ने बारह महीने ही रोहिणीयुक्त अष्टमीकी जयन्ती-अष्टमी

बतलाया है, किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। क्योंकि, सूर्यके समसूत्रपात अवस्थानसे अमावस्या होती है। ज्योतिःशास्त्रमें ऐसा नियम है। यहां मानना पड़ेगा कि सूर्य द्वादश मासमें द्वादश राशियोंमें भ्रमण करता है। यदि ऐसा ही है, तो भाद्रमासमें जिस राशिका भोग करता है, अन्य मासमें उस राशिका भोग किस तरह कर सकता है? अतएव बारह महीने रोहिणीयुक्त अष्टमीका होना नितान्त असंभव है।

दूर्वाष्टमी—भाद्र मासकी शुक्लपक्षीय अष्टमीको दूर्वाष्टमी कहते हैं; यह पूर्वयुक्त ग्राह्य है।

महाष्टमी—आश्विन मासकी शुक्लाष्टमीको महाष्टमी कहते हैं; इसमें दुर्गा-पूजा और उपवास करें। पुत्रवान् व्यक्तिके लिए उपवास नहीं है; स्त्रियोंमें सभी कर सकती हैं; दूसरे दिन पारण करना चाहिये। सहस्र कोटि एकादशी पालनेसे जितना फल है, महाष्टमीके उपवास करने पर भी उतना ही फल मिलता है। महाष्टमीका व्रत नवमीयुक्त होने पर ही करें।

गोपाष्टमी—कार्तिककी शुक्ला अष्टमीको गोपाष्टमी कहते हैं, उस दिन गो-पूजा, गोग्रासदान और गवानुगमन करनेसे महापुण्य होता है।

अष्टका—अग्रहायण, पौष और माघकी कृष्णाष्टमीको अष्टका कहते हैं। अग्रहायणमासकी कृष्णाष्टमीका नाम पूपाष्टका है, उस दिन पिष्टक द्वारा पितरोंका श्राद्ध किया जाता है। पौषमासकी कृष्णाष्टमीका नाम मांसाष्टका है इसमें पितरोंका मांस द्वारा श्राद्ध होता है। माघमासकी कृष्णाष्टमीको शाकाष्टका कहते हैं, उस दिन शाक द्वारा पितरोंका श्राद्ध किया जाता है।

भीमाष्टमी—माघमासकी शुक्लाष्टमाको भीमाष्टमी कहते हैं। इस दिन चारों वर्णोंको भीमका तर्पण करना पड़ता है। तर्पण देखो।

अशोकाष्टमी—चैत्रमासकी शुक्लाष्टमीका नाम अशोकाष्टमी है। इसमें ८ अशोक कलिका खाई जाती हैं तथा स्नानदानादि करनेसे शोकसे छुटकारा मिलता है। लोहित जलमें स्नान करना ही विधेय है।

अशोककलिका भक्षण करनेका मन्त्र—

"त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ॥"

अशोकाष्टमी देखो।

नवमी—अष्टमीयुक्त नवमी ग्राह्य है, क्योंकि अष्टमीके साथ नवमीका युग्मादर होता है, भाद्रमासकी आर्द्रायुक्त कृष्णानवमीमें बोधन तथा कल्पारम्भ किया जाता है। इस नवमीको बोधननवमी कहते हैं। यदि उस दिन आर्द्रा नक्षत्र न हो, तो तिथिमाहात्म्यके कारण उस दिन कार्य करना होगा।

कार्तिककी शुक्लपक्षीय नवमीको ब्रह्माने चण्डी-पूजा की थी और वह दिन युगका प्रधान दिन था, इसलिए उस दिन चण्डीपूजा की जाती है।

माघमासकी शुक्लानवमीका नाम है महानन्दा, उस दिन स्नानादि करनेसे उसका फल अक्षय होता है।

श्रीरामनवमी—चैत्रमासकी पुनर्वसुनक्षत्रयुक्त शुक्लानवमीके दिन भगवान्ने रामके रूपमें जन्म लिया था, इसलिये उक्त तिथिका नाम रामनवमी पड़ा है। कोटिसूर्यग्रहण कालकी तरह उस दिन जो कुछ किया जाता है, उससे अक्षय फल प्राप्त होता है।

वैष्णवोंके लिए अष्टमीविद्धा रामनवमीका मानना उचित नहीं अर्थात् विष्णुपरायण व्यक्तिको दशमीयुक्त होने पर उपवास आदि करना चाहिये। उपवासके उपरान्त दशमीको पारण करें, यदि दूसरे दिन दशमी न हो एकादशी हो, तो अष्टमीविद्धामें ही साधारण उपवास करें।

दशमी—शुक्लपक्षीय दशमी एकादशीयुक्त और कृष्णपक्षीय दशमी नवमीयुक्त ग्रहणीय है अर्थात् उपवास और दैव-पैत्र-कर्ममें उक्त प्रकार प्रसिद्ध है।

दशहरा—ज्यैष्ठ मासकी शुक्लपक्षीय दशमीको दशहरा कहते हैं। उस दिन गङ्गास्नान करनेसे दशविध पापोंका क्षय होता है, इसलिए उसका नाम दशहरा पड़ा है।

ज्यैष्ठ मासकी शुक्लपक्षीय दशमीमें यदि हस्तानक्षत्र योग हो, तो गङ्गास्नान मात्रसे दश-जन्मकृत पाप नष्ट हो जाते हैं।

विजयादशमी—आश्विनकी शुक्लादशमीका नाम विजयादशमी है। यह दशमी तिथि उदयमें प्रशस्त है। इस

दशमीमें देवीका विसर्जन होता है। यह परयुक्त होने पर अग्राह्य है।

एकादशीके साथ युग्मादर होनेके कारण परयुक्त अर्थात् द्वादशीयुक्त एकादशी ही प्रशस्त है। दोनों पक्षकी एकादशीमें गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी और साग्निक सभीको उपवास करना चाहिये। किन्तु पुत्रवान् गृहस्थ कृष्णपक्षमें उपवास न करे। शयन और बोधनके मध्य जो कृष्णपक्षीय एकादशी पड़ती है, उसमें पुत्रवान् गृहस्थको भी उपवास करना पड़ता है। इसके सिवा अन्य कृष्णपक्षीय एकादशीमें उपवास न करे। पुत्रवती सधवा स्त्रीको तो कोई भी उपवास करना उचित नहीं। उपवास करनेसे स्वामीकी आयु क्षय होती है। किन्तु स्वामीकी अनुमति ले कर उपवास कर सकती हैं। जो नारी विधवा हो, उसको दोनों पक्षोंमें एकादशीव्रत करना चाहिये। यदि न करेगी, तो उसके समस्त पुण्यादिका नाश होगा और भ्रूणहत्याजनित पातक लगेगा।

वैष्णवोंके लिए शुक्ल और कृष्णपक्षके कारण एकादशीमें कुछ प्रभेद नहीं है। जो व्यक्ति इस प्रकारसे समान ज्ञान रखता है, वही वैष्णव है। विष्णुभक्तिपरायण वैष्णवोंको भक्तियुक्त हो कर प्रत्येक पक्षमें एकादशीका उपवास करना चाहिये। इनमें गृहस्थ पुत्रवान् है। इसका भी कुछ भेद नहीं। विष्णुभक्तके लिए एकादशी नित्यव्रत है। विष्णुकी प्राप्तिके लिए एकादशी उनका नित्य-कर्त्तव्य है।

ब्रह्महत्या आदि जो पातक हैं, वे एकादशीके दिन अन्नका आश्रय ले कर वास करते हैं; अतएव उस दिन अन्नभक्षण करनेसे उक्त समस्त पाप शरीरका आश्रय लेते हैं। इस लिए एकादशीके दिन अन्न न खाना चाहिये। और ८ वर्षसे लगा कर ८० वर्ष तक एकादशीका उपवास करना चाहिये।

एकादशीकी व्यवस्था।—पूर्ण एकादशी अर्थात् षष्टिदण्डात्मिका एकादशीका परित्याग करना चाहिये। यदि द्वितीय दिन कुछ समय तक एकादशी हो, तो पूर्ण एकादशीको छोड़ कर दूसरे दिन उपवास करना चाहिये। और यदि द्वादशीमें पारणयोग्य समय न मिले अर्थात् यदि पूर्व दिन ६० दण्ड एकादशी, दूसरे दिन १ दण्ड फिर द्वादशी और रात्रिके शेषमें द्वादशीका क्षय हो कर त्रयोदशी हो, तो पूर्णाको ग्रहण करना चाहिये। कारण ऐसे स्थल पर पारणयोग्य समय नहीं मिलता। यदि पूर्वदिनमें दशमीयुक्ता एकादशी हो तथा दूसरे दिन द्वादशीयुक्ता, अर्थात् पूर्वदिनमें यदि १५ दण्डके उपरान्त एकादशी हो और दूसरे दिन पारणयोग्य समय तक द्वादशी रहे वा न रहे, तो भी दशमीयुक्त एकादशीको छोड़ देना चाहिये।

दशमीविद्धा एकादशी कभी भी न करें। यदि सूर्योदयके वाद अल्प समय तक दशमी, पीछे एकादशी और उसका क्षय हो कर द्वादशी हो तो शुद्ध द्वादशीमें ही उपवास करके त्रयोदशीको पारण करें। इस प्रकार एकादशी करनेसे शत यज्ञका फल होगा। किन्तु ऐसा होना अत्यन्त दुर्लभ है।

यदि एकादशी षष्टिदण्डात्मिका दूसरे दिन न रहे और द्वादशी आ जाय तो द्वादशीके एक पदका परित्याग करके पारण करें। कारण, द्वादशीका प्रथम पाद एकादशी व्रत नित्य है, इस कारण अशौचादिकी प्रतिबन्धकता होने पर भी व्रत भङ्ग नहीं होता।

यदि एकादशीके दिन स्त्री रजस्वलादि कारणोंसे अशुद्ध हो, तो वह स्वयं उपवास करके दूसरेके द्वारा पूजा आदि करावे। एकादशी न कर सके तो उसके अनुकल्प हैं, उपवास करनेमें असमर्थ व्यक्ति यदि फल-मूल वा जलाहार करे वा एक बार हविष्य वा विष्णुका नैवेद्य खावे, तो वह प्रत्यवायी नहीं होगी। और उपवास करनेमें यदि बिल्कुल ही असमर्थ हो तो एक ब्राह्मणको जिमा दे वा भोजनसे दूना मूल्य दे देवे।

इस जगह विशेष नियम यह है, कि विष्णुशयन, पार्श्वपरिवर्त्तन और उत्थानकी एकादशीमें उक्त नियम लागू नहीं होंगे।

भगवान्ने स्वय कहा है, कि मेरे शयन, उत्थान और पार्श्व परिवर्तनकी एकादशीमें जो फल-मूल और जलमात्रका आहार करेगी, वह मेरे हृदयमें शल्य निक्षेप करेगी। इसलिए सभीको इन एकादशियोंका पालन करना चाहिये। भीम एकादशीके विषयमें भी ऐसा ही नियम है।

एकादशीके दिन पतितश्राद्ध और सपिण्डीकरण आदि करना पड़ता है। पतितश्राद्ध देखो।

द्वादशी।—युग्मत्व हेतु अर्थात् युग्मादर युक्त द्वादशी ही प्रशस्त है।

वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीको वैष्णवी तिथि वा पिपीतकी द्वादशी कहते हैं। अतएव उस दिन पिपीतको व्रत करें।

ज्यैष्ठ मासकी शुक्ला द्वादशीको विशोका-द्वादशी कहते हैं। उस दिन विष्णुकी पूजा की जाती है।

आषाढ़ मासकी शुक्ला द्वादशीको रातको विष्णुका शयन, भाद्रकी शुक्ला द्वादशीको पार्श्व-परिवर्तन और कार्तिककी शुक्ला द्वादशीको उनका उत्थान होता है। यद्यपि उक्त तिथिको अनुराधा नक्षत्र होता है, तो भी वह उत्तम है, नहीं तो तिथिमाहात्म्यके कारण रात्रिके समय विष्णुका शयन करावें। श्रवणा नक्षत्रमें पार्श्व-परिवर्तन और रेवती नक्षत्रमें उत्थान करावें। विष्णुका रात्रिमें शयन, दिनमें उत्थान और संध्याको पार्श्व-परिवर्तन करावें।

यदि उक्त नक्षत्रोंकी तिथिमें सम्यक् योग न हो, तो पाद योग होनेसे भी उक्त कर्म अर्थात् शयनोत्थानादि करें। विष्णु किसी समय भी दिनको शयन और रातको उत्थान वा पार्श्वपरिवर्तन नहीं करते।

यदि शयन, पार्श्व-परिवर्तन और उत्थानकी द्वादशीमें उक्त नक्षत्रोंका योग न हो, तो एकादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, और पूर्णिमा इन चार तिथियोंमेंसे जिस तिथिमें नक्षत्रका पादयोग हो, उसी तिथिमें शयनादि कृत्य करें। किन्तु एकादशीसे पूर्णिमा तक किसी भी तिथिमें नक्षत्र योग न होने पर, द्वादशीमें संध्याके समय उक्त कार्य होंगे। यदि द्वादशीके दिन रात्रिको रेवतीका अन्तपाद हो, तो दिनके तृतीय भागमें उत्थान होगा।

भाद्रकी शुक्लपक्षीय द्वादशीमें यदि श्रवणा नक्षत्रका योग हो, तो उस तिथिको श्रवणाद्वादशी और विजया-द्वादशी कहते हैं। उस दिन उपवास और विष्णुपूजा करनेसे अत्यन्त फल होता है। यदि उक्त नक्षत्र एकादशीमें युक्त हो, तो एकादशीके उपवासमें ही द्वादशीके उपवासका फल होगा। क्योंकि द्वादशीसे एकादशीका काम्यत्व है। और यदि एकादशीमें योग न हो कर द्वादशीमें योग हो, तो एकादशी और द्वादशी दोनों दिन उपवास करना पड़ेगा। श्रवणानक्षत्रके अवसानमें पारण किया जाता है।

अग्रहायण मासकी शुक्ला द्वादशीको अखण्ड द्वादशी कहते हैं।

फाल्गुन मासकी शुक्ला द्वादशीमें पुष्या नक्षत्रका योग होने पर वह गोविन्दद्वादशी कहलाती है। उस दिन गङ्गास्नान करनेसे महत् फल होता है। गङ्गास्नानका मन्त्र—

"महापातकसंज्ञानि यानि पापानि सन्ति मे।
गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि॥"

त्रयोदशी।—शुक्ला त्रयोदशी द्वादशीयुक्त और कृष्णा त्रयोदशी चतुर्दशीयुक्त ही प्रशस्त है।

भाद्र मासकी कृष्णा त्रयोदशीमें यदि मघा नक्षत्रका योग हो, तो मधु और क्षीरसे पितरोंका श्राद्ध करें। इस जगह विचार कर देखें, कि शङ्ख वचनमें मधु और क्षीरसे मनुवचनमें यत्किञ्चित् मधुसे और विष्णुधर्मोत्तरमें उक्त श्राद्ध नित्य कहा गया है; किन्तु अब सिर्फ मधु और क्षीरसे करना चाहिये। इस सन्देहको दूर करनेके लिये विष्णुधर्मोत्तर और शातातपमें इस प्रकार लिखा है—

"पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च।
तस्माद्दद्यात् सदोद्युक्तो विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च॥"

(शातातप०)

"मघायुक्ता च तत्रापि शस्ता राजंस्त्रयोदशी।
तत्राक्षयं भवेत् श्राद्धं मधुना पायसेन च॥"

(विष्णुधर्मोत्तर०)

इस जगह प्रथमोक्त वचनमें ब्राह्मणके लिये अन्नसे मघाष्टकादि समस्त अष्टका-श्राद्ध करनेको और दूसरे वचनमें मधु और क्षीरसे श्राद्ध करनेकी विधि है। इस जगह स्मार्तभट्टाचार्यने ऐसा कहा है—"तत्राश्वयुक् कृष्णपक्षे अत्र मत् श्राद्धं तन्मधुयोगेन पायसयोगेन वा क्षयं भवेत्।" और मधु-वचनके स्थल पर 'अतोऽत्र सुतरां शूद्रस्याप्यधिकारः" ऐसा कहा है।

आश्विन मासके दशवें दिन तक हस्ता नक्षत्रका अधिकार है, अर्थात् १० दिन तक सूर्य हस्तानक्षत्रमें रहता है।

उसमें यदि मघानक्षत्रयुक्त कृष्णा त्रयोदशी पड़े, तो उसको गजच्छायायोग कहते हैं। उसमें उक्त श्राद्धके करनेसे पूर्वापेक्षा फल अधिक होता है। इसमें विभक्त-अविभक्त-का भेद नहीं है, अर्थात् ज्येष्ठ-कनिष्ठ सभी कर सकते हैं।

जैसे वार्षिक एकोद्दिष्ट श्राद्धमें ज्येष्ठ-कनिष्ठका भेद नहीं है, इसमें भी वैसा ही है। इस श्राद्धमें पुत्रवान् व्यक्तिको पिण्डदान न करना चाहिये। जिस श्राद्धमें पिण्डदानका निषेध है, उसमें स्वधावचन ("स्वधां वाचयिष्ये") का पाठ करके पवित्र मोचन न करना चाहिये। किन्तु इसमें अग्निदग्धका पिण्ड देना पड़ता है।

वारुणी—चैत्रमासकी शतभिषानक्षत्रयुक्त कृष्णा त्रयोदशीको वारुणी कहते हैं। इसमें गङ्गास्नान करनेसे शत-सूर्यग्रहणकालीन गङ्गास्नानका फल होता है। इसमें यदि शनिवार-योग हो, तो उसको महावारुणी कहते हैं। उस दिन स्नान करनेसे कोटि-सूर्यग्रहण-कालीन स्नानका फल होता है। यदि शनिवारमें शतभिषा नक्षत्र शुभ योगके साथ संयुक्त हो, तो उसको महामहावारुणी कहते हैं। उस दिन गङ्गास्नान करनेसे तीन कोटि कुलका उद्धार होता है। इस जगह फाल्गुनका मुख्य चन्द्र और चैत्रका गौणचन्द्र होने पर भी स्नानके संकल्पमें चैत्रका उल्लेख होगा। सधवा स्त्रीको वारुणीमें स्नान न करना चाहिये तथा सामान्य शतभिषामें (अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार योगादिके विना मिले जो शतभिषा हो उसमें भी स्नान करना ठीक नहीं। शतभिषा नक्षत्रयुक्त चन्द्रमें जो स्त्री स्नान करती है, वह निश्चयसे सात जन्म तक विधवा और हतभागिनी होती है। वारुणीमें स्नानके लिए दिन रातका विचार नहीं, अर्थात् चाहे दिन हो, चाहे रात्रि वा संध्या हो, जब तिथि और नक्षत्रका समागम हो, तभी स्नान करना चाहिये। उस दिन गृहस्थित गङ्गाजलसे स्नान करने पर भी अश्वमेधका फल होता है।

चैत्रमासकी त्रयोदशीमें मदनकी पूजा की जाती है; चैत्रमासकी शुक्ला त्रयोदशीमें जो मदनकी पूजा करके व्यजन करता है, उस पर वर्ष भर कोई विपत्ति नहीं पड़ती।

चतुर्दशी—शुक्ला चतुर्दशी पूर्णिमायुक्त और कृष्णा चतुर्दशी त्रयोदशीयुक्त होने पर ग्रहणीय है। कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीमें उपवासादि कार्यमें परविद्धाको छोड़ कर पूर्वविद्धाको ग्रहण करना चाहिये।

ज्यैष्ठकी कृष्णा चतुर्दशीका नाम सावित्री चतुर्दशी है। उस दिन अवैधव्यकी कामनासे स्त्रियोंको श्रद्धा और भक्तिपूर्वक सावित्रीव्रत करना चाहिये। यह अनन्तचतुर्दशीकी भांति १४ वर्ष पाला जाता है।

सावित्रीव्रत परविद्धा तिथिमें करना चाहिये। यदि दोनों दिन व्रतका समय हो, तो दूसरे दिन व्रत करें और यदि दोनों दिन प्रदोषके समय चतुर्दशी पड़े तो भी दूसरे दिन व्रत करना उचित है। व्रतका समय प्रदोष अर्थात् रजनीमुखका समय है।

"चतुर्दश्याममावस्या यदा भवति नारद।
उपोष्या पूजनीया सा चतुर्दश्यां विधानतः॥" (ज्योतिष)

भाद्रमासकी कृष्णपक्षीय चतुर्दशीको अघोरा चतुर्दशी कहते हैं। इसमें शिवपूजा और उपवास करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है।

भाद्रमासकी शुक्लाचतुर्दशीको अनन्त-चतुर्दशी कहते हैं। इस चतुर्दशीमें व्रत करनेसे सर्वकाम और सर्वफलका लाभ होता है। अनन्तव्रतके निमित्त पूजा होमादि करना चाहिये। यह व्रत पूर्वाह्णकालमें न हो सके, तो मध्याह्नकालमें भी व्रत सिद्ध होता है।

चतुर्दशी देखो।

कार्तिककी कृष्णपक्षीय उदयगामिनी चतुर्दशीका नाम भूत-चतुर्दशी है। उस दिन गङ्गास्नान, होम और तर्पण किया जाता है। अपामार्गके पत्ते मस्तक पर फेरें और प्रदोषमें दीपदान करें। उस दिन दीपदान करनेसे नरकसे उद्धार होता है। और यमतर्पणके जो मन्त्र हैं, उन मन्त्रोंको बोल कर एक एकके लिये तिलके साथ तीन बार जल चढ़ावें।

अपामार्ग-पल्लव फेरनेका मन्त्र—

"शीतलोष्णसमायुक्तसकण्टकदलान्वित।
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमानः पुनः पुनः॥"

अग्रहायण मासकी कृष्णा चतुर्दशीको पाषाणचतुर्दशी कहते हैं। उस दिन रात्रिको गौरीकी पूजा करके पाषाणाकार पिष्टक भक्षणपूर्वक व्रत करें।

माघमासकी कृष्णा चतुर्दशीको रटन्ती-चतुर्दशी कहते हैं। इसमें अरुणोदयके समय स्नान करनेसे यमभय जाता रहता है। स्नान और तर्पण द्वारा समस्त पापोंसे छुटकारा मिलता है। इस चतुर्दशीको रटन्ती पूजा होती है। यदि यह तिथि दोनों दिन अरुणोदय काल पावे, तो पहले दिन स्नान करें और जिस दिन सन्ध्या-मुख पावे, उस दिन रटन्तीपूजा करें। यह रटन्तीपूजा पौषके गौणचंद्र और माघके मुख्य चन्द्रमें होती।

माघमासके अन्तमें हो या फाल्गुनमासके प्रारम्भमें, कृष्णा चतुर्दशीको शिवचतुर्दशी कहते हैं और उस दिन शिवरात्रिका व्रत होता है। किन्तु माघका गौणचन्द्र और फाल्गुनका मुख्यचन्द्र ग्रहणीय है। माघमासकी कृष्णा चतुर्दशीको रविवार या मङ्गलवार पड़े तो इसके फलमें आधिक्य होता है। रविवार वा मङ्गलवारयुक्त व्रतके दिन यदि शिवयोग पड़े तो इसका फल उत्तमसे भी उत्तमतम हो जाता है। इस तिथिमें यदि पहले दिन महानिशि और दूसरे दिन प्रदोष पड़े, तो प्रथम दिन व्रत और उपवास करें। पहले दिन महानिशिमें चतुर्दशी न हो कर यदि दूसरे दिन प्रदोष लाभ हो, तो दूसरे दिन व्रतादि करें।

पहले जन्माष्टमीके प्रकरणमें कहा जा चुका है, कि तिथिके अन्तमें पारण करें; किन्तु यह नियम सिर्फ जन्माष्टमीके लिए है, यहां वह विधि नहीं है। यहां जिस तिथिमें उपवास हो, उसी तिथिमें पारण करना उचित है। मध्यरात्रिव्यापिनी चतुर्दशीको यदि शिवरात्रिव्रतका समय हो अर्थात् दिनको चतुर्दशी पतित हो कर यदि मध्यरात्रिव्यापिनी हुई हो, तो उसी चतुर्दशीमें पारण करें। इसमें फलाधिक्य है—

"ब्रह्माण्डोदरमध्येतु यानि तीर्थानि सन्ति वै ।
पूजाताति भवन्तीह भूतायां पारणे कृते ॥" (स्कन्दपु०)

इस पृथिवी पर जितने भी तीर्थ हैं, चतुर्दशीमें पारण करनेसे उन सबकी पूजा करनेका फल होता है। यदि दूसरे दिन वह चतुर्दशी न रहे और दूसरे दिन प्रदोष-व्यापिनी तिथि न हो, तो पूर्व निशीथव्यापिनी चतुर्दशीको उपवास और अमावस्यामें पारण करें।

चैत्रमासका कृष्णा चतुर्दशीका नाम अङ्गारक-चतुर्दशी है। उस दिन गङ्गास्नान और गङ्गामें भोजन करनेसे पिशाचत्वकी प्राप्ति नहीं होती। इसमें फाल्गुनके मुख्य-चन्द्र और चैत्रकी गौणचन्द्रकी व्यवस्था है।

पूर्णिमा—चतुर्दशीके साथ युग्मत्व-हेतु पूर्णिमा ग्राह्य और देवकर्मके लिए आदरणीय है। अमावस्या और पूर्णिमामें चन्द्र और बृहस्पति ग्रहका योग हो, तो उसको महापूर्णिमा कहते हैं। इसमें स्नान और उपवासका फल होता है।

ज्यैष्ठ मासकी पूर्णिमाको ज्येष्ठानक्षत्रमें यदि गुरु और शशी हो तथा उस दिन गुरुवार हो, तो वह महाज्यैष्ठी होती है अथवा ज्येष्ठानक्षत्रमें या अनुराधानक्षत्रमें गुरु चन्द्र दोनों हों, तो ज्येष्ठमासकी पूर्णिमा महाज्यैष्ठी कहलाती है। यदि ज्येष्ठा वा अनुराधा नक्षत्रमें बृहस्पति हो तथा रोहिणी और मृगशिरा नक्षत्रमें रवि हो एवं ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त शशी हो, तो वह पूर्णिमा महाज्यैष्ठी होती है।

ज्यैष्ठ नामके सम्वत्सरमें ज्येष्ठमासकी पूर्णिमा ज्येष्ठा नक्षत्रयुक्त होने पर महाज्यैष्ठीयोग होता है।

जिस वर्षमें ज्येष्ठा वा मूला नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय वा अस्त हो, उस वर्षको ज्यैष्ठनामा वत्सर कहते हैं।

पूर्णिमा मन्वन्तराका विषय पहले कहा जा चुका है, कि माघ और श्रावणी पौर्णमासीमें तथा आश्विनकी कृष्णात्रयोदशीमें श्राद्ध करना जरूरी है। यदि पहले दिन सङ्गमके समय पूर्णिमा तिथि प्राप्त न हो, तो उस दिन ही श्राद्ध करना उचित है। यदि दोनों ही दिन सङ्गमकालका लाभ न हो, तो दूसरे दिन श्राद्ध करें। सूर्योदयके मुहूर्तत्रयको प्रातःकाल और उसके बादके मुहूर्तत्रयको सङ्गमकाल कहते हैं।

कोजागर पूर्णिमा प्रदोषके पाने पर ही ग्राह्य होता है, अर्थात् जिस दिन प्रदोष और निशीथव्यापिनी तिथि हो, उसी दिन कोजागर पूर्णिमा समझा जायगा। यदि पहले दिन निशीथसमयमें और दूसरे दिन प्रदोषमें उक्त तिथिका लाभ हो, तो दूसरे दिन उसका कृत्य होगा। यदि पहले दिन निशीथ समयमें उक्त तिथि हो और दूसरे दिन प्रदोषके समय उक्त तिथिका पतन न हो,

तो निशीथव्यापिनी तिथिमें अर्थात् पहले दिन कोजागर कृत्य होगा। कार्तिककी पूर्णिमामें रासयात्रा और मन्वन्तरा होती है।

पौषमासकी पूर्णिमाके बादसे माघमासकी पूर्णिमा तक प्रति दिन यथानियम विष्णुकी पूजा करें और उस समय तक मूली न खावें। माघमासमें मूली खानेसे ज्यादा दोष लगता है।

फाल्गुनकी पूर्णिमाका नाम दोल-पूर्णिमा है। इसमें श्रीकृष्णकी दोलयात्रा करें। दोल देखो।

अमावस्या—अमावस्या प्रतिपद्‌युक्त होने पर ही ग्रहणीय है। भाद्रमासकी अमावस्याको महालया कहते हैं। उस दिन विहित पार्वणश्राद्ध और षोड़श पिण्ड दान किये जाते हैं।

कार्तिककी अमावस्याको दीपान्विता अमावस्या कहते हैं। उस दिन पार्वणश्राद्ध किया जाता है। जो व्यक्ति महालयामें उक्त श्राद्ध नहीं करते, दीपान्वितामें यह श्राद्ध करें।

कार्तिककी अमावस्याको स्नानके बाद दही, चीर और गुड़ आदि द्वारा देवों और पितरोंकी भक्तिपूर्वक अर्चना एवं पार्वणश्राद्ध करें। इसमें दीपदान करना पड़ता है। क्योंकि पितृगण आ कर श्राद्धभागको ग्रहण करते हैं और प्रतिगमनकालमें उस आलोकसे उनको मार्ग दिखाना पड़ता है।

इसके सिवा उस दिन लक्ष्मीपूजा और उसी समय देवगृहमें दीपदान किया जाता है। उसके मन्त्रमें उस दिन कालिकापूजाकी व्यवस्था देखनेमें आती है। यह पूजा प्रदोषकालमें की जाती है। यद्यपि दोनों दिन यह तिथि प्रदोषव्यापिनी होती है, तथापि युग्मादरके कारण दूसरे दिन होगी। दोनों दिन प्रदोषकाल न प्राप्त हो तो पार्वणके अनुरोधसे दूसरे दिन उल्कादान करें।

यदि दिनकी चतुर्दशी और रातकी अमावस्या हो, तो उस दिन लक्ष्मीपूजा करें। इसका नाम सुखरात्रिका है। किन्तु इसके एक विशेष वचनमें ऐसा है, कि दूसरे दिन एक दण्ड रजनी तक अमावस्या हो, तो पूर्व दिनको छोड़ कर दूसरे दिन लक्ष्मीपूजा करें। (तिथितत्त्व)

यदि दोनों दिन प्रदोषके समय अमावस्या न पड़े, तो श्राद्धके दूसरे क्षणमें दिनको ही उल्कादान करें। पहले दिन प्रदोष समयमें अमावस्याका योग हो कर दूसरे दिन श्राद्धकाल प्राप्त हो, तो पहले दिन प्रदोष-समयमें उल्कादान करके दूसरे दिन श्राद्ध करें और दोनों दिन अगर प्रदोषकालमें अमावस्या प्राप्त हो, तो दूसरे दिन करना होगा। (तिथितत्त्व)

प्रतिपदादि तिथियोंमें जन्मफल।

प्रतिपदामें जन्म होनेसे सर्वदा नाना रत्नोंसे विभूषित, मनोहरकान्तिविशिष्ट, प्रतापशाली और सूर्यबिम्बके समान अपने कुलरूप कमलका प्रकाश-स्वरूप हुआ करता है।

द्वितीयाका फल—द्वितीयामें जन्म होनेसे वह निखिल गुणयुक्त, अतिशय शूर, अपने कुमुदकुलके लिए चन्द्रमा-सदृश, विपुलकीर्तिशाली और अपने भुजबल द्वारा अरातिकुलको पराजित करनेवाला होता है।

तृतीयाका फल—तृतीयामें जिसका जन्म हुआ है, वह सकल गुणयुक्त, गम्भीर, नृपानुरागी, वायुरोगयुक्त, सबका उपकार करनेवाला, अन्यके अधिकारमें आश्रयी, कौतुकप्रिय, सत्यवादी और समस्त विद्यासम्पन्न होता है।

चतुर्थीका फल—जो चतुर्थीमें जनमा है, वह सर्वदा स्वीय पुत्रमित्र और प्रमदा, प्रमोदी, द्यूताभिलाषी, कृपान्वित, विवादशील, विवादमें विजयी और कठोर होता है।

पञ्चमीका फल—पञ्चमीके दिन जन्म हो, तो वह राजमान्य, सुन्दरशरीर, दयावान, पण्डिताग्रगण्य, कामी, गुणवान् और बन्धुजनोंमें एकमात्र माननीय होगा।

षष्ठीका फल षष्ठीमें जिसका जन्म हुआ है, वह विद्वान्, वरिष्ठ, चतुर, सुन्दर, कीर्तिसंपन्न, आलम्बित बाहु-विशिष्ट, व्रणाकीर्ण देह, सत्यप्रतिष्ठ, धनपुत्रयुक्त और चिरायु होता है।

सप्तमीका फल—जिसका जन्म सप्तमीको हुआ है, वह कन्यासन्ततियुक्त, अरातिमातङ्गके लिये मृग-स्वरूप, विशाल नेत्रवाला, प्रसिद्ध प्रभावशाली, देवद्विजका अर्चना-परायण, रसिक, महात्मा, और पितृधनहारी हुआ करता है।

अष्टमीका फल—अष्टमीको जन्म लेनेवाला राजलक्ष्मी,

धनसंपन्न, कृशाङ्ग, सुखी, युवतीप्रिय, चतुष्पदयुक्त, धनधान्यसंपन्न और उत्तम धीर होता है।

नवमीका फल—नवमीके दिन जिसका जन्म हुआ है, वह विरोधकर, साधुओंके लिए अगम्यस्थल, दूसरेके लिए अनिष्टकर-मतिसंपन्न, दुश्चरित्र, आचारविहीन, कंजूस और कठोर होता है।

दशमीका फल—दशमी तिथिमें जन्म लेनेवाला विद्याविनोदी, धन-पुत्र-युक्त, लम्बे कानोंवाला, कन्दर्पसे भी अधिक श्रीसंपन्न, उदारचेता, प्रशस्त अन्तःकरण-विशिष्ट और दयालु हुआ करता है।

एकादशीका फल—एकादशी तिथिमें जन्म होनेसे, वह क्रोधोत्कटमूर्ति विशिष्ट, क्लेशसहनशील, सुभाषी, योगादिका कर्त्ता, आत्मीयवर्गका एकमात्र भर्त्ता, महामतिसंपन्न, देवगुरुका प्रिय और अत्यन्त हृष्ट होगा।

द्वादशीका फल—द्वादशीमें जन्म लेनेवाला बहुसन्तान-विशिष्ट, सर्वजनानुरागी, नृपमान्य, अतिथिप्रिय, प्रवासवासहीन और व्यवहारमें दक्ष होता है।

त्रयोदशीका फल—इस तिथिमें जन्म लेनेवाला सुरूपशरीर, सात्विक-भावशून्य, बाल्यकालमें सुखी, जननीको प्रियकर, सर्वदा आलस्ययुक्त और एकमात्र शिल्पगुणवेत्ता होता है।

चतुर्दशीका फल—चतुर्दशीको जिसका जन्म होता है, वह विरुद्धस्वभाव, सर्वदा रोषपरायण, चोर, कठोर, परवञ्चक, परान्नभोजी और परदारामें अनुरक्त होता है।

कृष्णपक्षीय चतुर्दशीका फल पृथक हुआ करता है। कृष्णा चतुर्दशी तिथिके परिमाण दण्डको ६ भागोंमें विभक्त करें, प्रथम भागमें जन्म होने पर बालकका शुभ होगा, द्वितीय भागमें जन्म होनेसे पिताकी हानि, तृतीय भागमें जननीकी हानि, चतुर्थ भागमें मामाकी हानि, पञ्चममें वंशका नाश एवं षष्ठ भागमें धनकी हानि, और आत्मवंशका नाश हुआ करता है।

पूर्णिमामें जन्म होने पर, वह कन्दर्पतुल्य रूपवान्, युवतीप्रिय, न्यायोपार्जित धनसम्पन्न, सर्वदा हर्षयुक्त, शूर, बलवान् और शास्त्रार्थमें दक्ष होता है।

अमावस्या तिथिमें जिसका जन्म होता है, वह क्रूर, साहसिक, कृतघ्न, त्यागशील और सर्वदा चोरके काममें रत रहता है।

सिनीवाली तिथिमें यदि दासी, पत्नी, हाथी, घोड़ा, महिषी आदि किसी भी एकका प्रसव हो, तो गृहस्वामीकी धनहानि होती है। यदि देवराज इन्द्रके यहां भी ऐसी घटना हो, तो उनको भी धनकी हानि उठानी पड़ती है। जैसे गण्ड-प्रसूत दोष वर्णित हैं, सिनीवालीमें प्रसव होनेसे वैसे ही दोष होते हैं इस तिथिमें प्रसव होनेसे गृहस्वामीकी आयु और धनका नाश होता है।

प्रतिपद् आदि पन्द्रह तिथियां नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा इन पांच भागोंमें विभक्त हैं।

उनमें प्रतिपदा, एकादशी और षष्ठी इन तीन तिथियोंका नाम नन्दा है। द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी भद्रा कहलाती है। तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशीको जया कहते हैं। चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी ये तीन तिथियां रिक्ता है। पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा, और अमावस्या इन चार तिथियोंका नाम पूर्णा है।

नन्दा तिथिमें जिसका जन्म हुआ है, वह महामानी, पण्डित, देवता-भक्ति-निष्ठ और ज्ञातियोंका प्रियवत्सल होता है।

भद्रा तिथिमें जन्म लेनेवाला बन्धुवर्गमें माननीय, राजसेवी, धनवान्, संसारसे भयभीत और परमार्थतत्त्वपण्डित होता है

जया तिथिमें जन्म लेनेवाला राजपूज्य, पुत्रपौत्रादिसंयुक्त, शासनकर्ता, दीर्घायुविशिष्ट और महाविज्ञ होता है।

रिक्ता तिथिमें जिसका जन्म हुआ है, वह धनहीन, प्रमादविशिष्ट, गुरुनिन्दाकर, शास्त्रवेत्ता, शत्रुहन्ता और धार्मिक होता है।

पूर्णा तिथिमें जिसने जन्म लिया है, वह धनपूर्ण, शास्त्रार्थमें जयी, तत्त्ववेत्ता, सत्यवादी और शुद्धचेता होता है। (ज्योतिष—ऊम्रचन्द्रिका)

मृत्यु-तिथिका निर्णय।

उम्र, राशि और स्वराङ्कको एक साथ जोड़ कर युक्ताङ्कको भाग करने पर जो बाकी बचेगा, उसके द्वारा नन्दा आदि तिथियोंका निर्णय होगा। एक बाकी बचनेसे नन्दा तिथिमें मृत्यु होगी। इसी तरह २ बाकी बचनेसे भद्रा तिथिमें, ३ बचने पर जयामें, ४ बचने पर रिक्तामें और

५ बाकी बचने पर पूर्णा तिथिमें मृत्यु होगी ।

मतान्तरमें ऐसा भी है—वयसका अङ्क, राशिका अङ्क और स्वराङ्क इनको एकत्र जोड़ कर युक्ताङ्कका ५से भाग लगावें ; जो बाकी बचे उससे नन्दा भद्रा आदि तिथियोंका निर्णय करें ।

उक्त राशि और स्वराङ्कको एक साथ जोड़ कर, युक्ताङ्कका ६से भाग करने पर जो अवशिष्ट बचे, उससे मृत्युतिथिका निर्णय करें । वयसाङ्क, स्वराङ्क और राशिके अङ्कको एक साथ जोड़ कर, युक्ताङ्कको ६से गुणा करें, फिर उस गुणफलका १५से भाग करने पर जो अवशिष्ट रहे, उससे मृत्यु-तिथिका निश्चय करें । १ अवशिष्ट होनेसे प्रतिपदामें, २ बचनेसे द्वितीयामें, ३ अवशिष्ट रहने पर तृतीयामें मृत्यु होगी; इसी तरह आगे समझें ।

चन्द्र-बल-साधन—शुक्ला प्रतिपदासे १० दिन अर्थात् दशमी तक चन्द्र मध्यबल रहता है । एकादशीसे ले कर दश दिन अर्थात् कृष्णा पञ्चमी तक चन्द्र पूर्णबल और कृष्णाषष्ठीसे ले कर दश दिन अर्थात् अमावस्या तक चन्द्र हीनबल होता है ।

तिथिविशेषमें द्रव्यादि भक्षणका निषेध—प्रतिपदाके दिन कुष्माण्ड भक्षण करनेसे अर्थकी हानि होती है। द्वितीयाको बृहती, तृतीयाको पटोल, चतुर्थीको मूली, पञ्चमीको बेल, षष्ठीको नीम, सप्तमीको ताड़, अष्टमीको मांस और नारियल खाना निषिद्ध है, तथा नवमीको तुम्बी (लौकी), दशमीको कलम्बी, एकादशीको सेम, द्वादशीको पूतिका, त्रयोदशीको वार्त्ताकु, चतुर्दशीको उड़द और मांस तथा अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें मांस खाना निषिद्ध है ।

आषाढ़की शुक्ला एकादशीसे ले कर कार्त्तिककी शुक्ला द्वादशी तक सफेद सेम, पटोल, वरबटी, कदम्ब, कलमीशाक, वार्त्ताकु और कैथ खाना निषिद्ध है ।

कार्त्तिककी शुक्ला एकादशीसे पूर्णिमा तक मत्स्य और मांस खाना निषिद्ध है । (स्मृति)

तिथि-विशेषमें योगिनीका निर्णय—प्रतिपदा और नवमीको योगिनी पूर्व दिशामें रहती है; तृतीया और एकादशीको अग्निकोणमें, पञ्चमी और त्रयोदशीको दक्षिणमें, चतुर्थी और द्वादशीको नैर्ऋतमें, षष्ठी और चतुर्दशीको पश्चिममें, सप्तमी और पूर्णिमाको वायुकोणमें, द्वितीयाको और द्वादशीको उत्तरमें तथा अष्टमी और अमावस्याको ईशानकोणमें योगिनी रहती है ।

यात्राका फल—षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, पूर्णिमा, कृष्ण प्रतिपद्, अमावस्या, रिक्ता, यमद्वितीया, श्रवस और त्र्यहस्पर्शमें यात्रा करना निषिद्ध है; इन तिथियोंके सिवा अन्य दिनकी यात्रा शुभ होती है ।

रविवारको द्वादशी, सोमवारको एकादशी, मङ्गलवारको दशमी और बुधवारको सप्तमी होनेसे, वह तिथि दिनदग्धा होती है। उनमें कोई शुभ कार्य न करना चाहिये ।

वर्षप्रवेशमें तिथिका आनयन—गतवर्षकी संख्याको ११ से गुणा कर डालें, फिर उसके गुणफलमें १७०का भाग लगावें । जो भागफल उपलब्ध हो, उसका उपर्युक्त गुणफलके साथ जोड़ लगावें । इस युक्ताङ्कको ३०से भाग करने पर जो बाकी बचेगा, उसके साथ जन्मतिथिके अंकका जोड़ लगानेसे जो अङ्क होगा, उस अङ्कके द्वारा वर्षप्रवेशकी तिथिका निर्णय हो जायगा । वह अङ्क ३०से अधिक होने पर ३०से उसका भाग करें, जो बाकी बचे, उसे ग्रहण करना चाहिये । कभी कभी निरूपित तिथिसे पूर्वकी वा बादकी तिथिमें भी वर्षप्रवेश हुआ करता है । (ज्योतिष)

तिथिभेदसे देवपूजाभेद ।

“यद्दिने यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थिति ।” (नारद)

जिस देवताके लिए जो दिन निर्द्धारित है, उस दिन उसी देवताकी संस्थिति होती है । प्रतिपद्में अग्निकी, द्वितीयाको वेधाकी, दशमीको यमकी, षष्ठीको गुहकी, चतुर्थीको गणनाथकी, तृतीयाको गौरीकी, नवमीको सरस्वतीकी, सप्तमीको भास्करकी, अष्टमी, चतुर्दशी और एकादशीको शिवकी, द्वादशीको हरिकी, त्रयोदशीको मदनकी, पञ्चमीको फणीशकी तथा पर्व (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा)के दिन इन्द्रकी पूजा करनी चाहिये; इस प्रकार पूजा करनेसे शीघ्र ही फलकी प्राप्ति होती है । (अग्निपु०)

तिथिकृत्य (नं० क्ली०) तिथिषु कृत्यं, ७-तत् । तिथिविहित कार्य, विवाहादि माङ्गलिक कर्म जो निर्दिष्ट तिथिमें किये जाते हैं ।

उद्वाह, यात्रा, उपनयन, प्रतिष्ठा, चौलकर्म, वास्तुकर्म, गृहप्रवेश और सम्पूर्ण मङ्गल-कार्य शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको न करने चाहिए। (पीयूषधाराधृत वसिष्ठ)

किसी किसीका कहना हैं, कि शुक्ला प्रतिपदाकी भांति कृष्णा-प्रतिपदा भी वर्जनीय है; किन्तु यह सङ्गत नहीं है। कारण मूल वचनमें "मासाद्य तिथैः" ऐसा उल्लेख है; यदि कृष्णपक्षीय प्रतिपद्‌का निषेध होता तो "पक्षाद्य तिथैः" ऐसा पाठ होता। द्वितीयामें राजाके सप्ताङ्ग चिह्न, वास्तु और व्रत-प्रतिष्ठा, यात्रा, विवाह, विद्यारम्भ, गृहप्रवेश आदि समस्त माङ्गलिक कार्य शुभजनक हैं। तृतीयामें उक्त कार्य अहितकर हैं। पञ्चमीमें ऋणप्रदानके सिवा अन्यान्य मङ्गल कार्य शुभकर है। षष्ठीमें अभ्यङ्ग और यात्राके अतिरिक्त पौष्टिक मङ्गल-कार्य विधेय हैं। द्वितीया तृतीया और पञ्चमीमें जो जो कार्य शुभकर हैं, सप्तमीमें भी वे कार्य शुभजनक हैं। अष्टमीमें संग्राम-योग्य अखिल वास्तु कर्म, शिल्प, विवाह आदि विधेय हैं।

द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और सप्तमीमें जो जो कार्य कहे गये हैं, दशमीमें वे कार्य विधेय हैं। एकादशीमें व्रत, उपवास, पितृकर्म, समग्र धर्मकार्य और शिल्पकर्म विधेय है। द्वादशीमें यात्रा और नवगृहके सिवा अन्यान्य शुभ कार्य हितकर हैं। त्रयोदशीमें द्वितीयादि तिथियोंके सभी कार्य किये जा सकते हैं। पूर्णिमाको यज्ञक्रिया, पौष्टिक और मङ्गलकार्य, संग्राम-योग्य अखिल वास्तुकर्म, उद्वाह, शिल्पप्रतिष्ठा आदि समग्र मङ्गलकार्य किये जा सकते हैं।

अमावस्याको पितृकर्मके सिवा अन्य शुभकर्म वर्जनीय हैं। यदि कोई मोहवश निषिद्ध कार्योंका अनुष्ठान करे तो सब विनष्ट हो जाते हैं। (पी० धा० वसिष्ठवचन)

तिथिक्षय (सं० पु०) तिथीनां तिथ्युपलक्षितचन्द्रकलानां क्षयो क्षयारम्भो यस्मिन् बहुव्री०। १ दर्श, अमावस्या। (शब्दार्थच०) तिथीनां क्षयः ६-तत्। २ तिथिका नाश, दिनक्षय। (ज्योतिष०)

एक दिनमें तीन तिथि हों, तो उसे दिनक्षय कहते हैं। इसमें वैदिक क्रिया करनेसे सहस्र गुण फल होता है। अवम और त्र्यहस्पर्श देखो।

तिथिपति (सं० पु०) तिथीनां पतयः, ६-तत्। तिथियोंके अधिपति। ब्रह्मा, विधाता, हरि, यम, शशाङ्क, षड़ानन, शक्र, वसु, भुजग, धर्म, ईश, सविता, मन्मथ तथा कलि ये सब देवता प्रतिपदादि तिथिके यथाक्रमसे अधिपति हैं। अमावस्याके अधिपति पितृगण हैं। (बृहत्सं० ९९ अ०)

शुक्ल और कृष्ण पक्षके प्रतिपद्‌के अधिपति अग्नि, द्वितीयाके प्रजापति, तृतीयाके गौरी, चतुर्थीके गणेश, पञ्चमीके अहि, षष्ठीके गुह; सप्तमीके रवि, अष्टमीके शिव, नवमीके दुर्गा, दशमीके यम, एकादशीके विश्व, द्वादशीके हरि, त्रयोदशीके काम, चतुर्दशीके हर, पूर्णिमा और अमावस्याके अधिपति शशि हैं।

तिथिप्रणी (सं० पु०) तिथिं प्रणयति तिथि प्र-नी-क्विप चन्द्रमा।

तिथियुग्म (सं० क्ली०) तिथ्योस्तिथि विशेषयो युग्मं ६-तत्। तिथिका जोड़ा, दो तिथि।

तिथिसन्धि (सं० पु०) तिथ्योः सन्धि, ६-तत्। तिथिकी सन्धि, दो तिथियोंका एकमें मिलना।

तिथी (सं० स्त्री०) तिथि कृदिकारादिति वा ङीष्। तिथि देखो।

तिथ्यर्द्ध (सं० क्ली०) तिथीनां अर्द्धं, ६-तत्। करण।

तिदरी (हिं० स्त्री०) वह कोठरी जिसमें तीन दरवाजे या खिड़कियाँ हों।

तिदारी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया। यह बतककी तरह होती और सदा जलके किनारे रहती है। यह उड़नेमें बहुत तेज है और जमीन पर सूखी घासका घोसला बनती है। लोग इसका शिकार करते हैं।

तिद्वारी (हिं० स्त्री०) वह कोठरी जिसमें तीन दरवाजे या खिड़कियां हों।

तिधर (हिं० क्रि०-वि०) उधर, उस ओर।

तिधारा (सं० पु०) एक प्रकारका थूहर। इसमें पत्ते नहीं होते और उंगलियोंकी तरह शाखाएँ ऊपरको निकलती हैं। बगीचों आदिकी बाड़ या टट्टीके लिये इसे लगाते हैं। इसका दूसरा नाम वज्री या नरसेज है।

तिधारीकाण्डवेल (सं० स्त्री०) हड़ जोड़।

तिनकना (हिं० क्रि०) क्रोधित होना, चिड़ना, नाराज होना।

तिनका (हिं॰ पु॰) तृण, सूखी घास।

तिनगना (हिं॰ क्रि॰) तिनकना देखो।

तिनगरी (हिं॰ स्त्री॰) एक पकवान।

तिनतिहिया (हिं॰ पु॰) मनुवा कपास।

तिनधरा (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी रेती जिसमें तीन धार रहती हैं। यह आरीके दांतोंको तेज करनेके काममें आती है।

तिनपहल (हिं॰ वि॰) तिनपहला देखो।

तिनपहला (हिं॰ वि॰) जिसमें तीन पार्श्व हों, जिसमें तीन पहल हों।

तिनमिना (हिं॰ पु॰) वह माला जिसके बीचमें मीनेका या जड़ाऊ जुगनू हो।

तिनवा (हिं॰ पु॰) बरमा और छोटा-नागपुरमें होनेवाला एक प्रकारका बाँस। यह इमारतोंमें लगता है और चटाइयां बनानेके काममें आता है।

तिनाशक (सं॰ पु॰) तिनिश स्वार्थे कन् पृषोदरादित्वात् आत्वं। तिनिश वृक्ष।

तिनिश (सं॰ पु॰) वृक्षविशेष, सीसमकी जातिका एक पेड़। इसकी पत्तियां शमी या खैरकी-सी होती हैं। संस्कृत पर्याय—स्यन्दन, नेमी, रथद्रु, अतिमुक्तक, वञ्जुल, चित्रकृत, चक्री शताङ्ग, शकट, रथ, रथिक, भस्मगर्भ, मेषी, जलधर, स्यन्दनि, अक्षक और तिनाशक (Dalbergia Ougeinsis)। इसके गुण—कषाय, उष्ण, कफ, रक्त, अतिवातामयनाशक, ग्राहक, दाह, जनक, श्लेष्मा, पित्त, रक्तदोष, मेद, कुष्ठ, प्रमेह, श्वित्र, दाह, व्रण, पाण्डु और कृमिनाशक है।

तिन्तिड़ (सं॰ पु॰) तिन्तिड़ी पृषोदरादित्वात् साधुः। वृक्षाम्ल, इमली।

तिन्तिड़िका (सं॰ स्त्री॰) तिन्तिड़ी स्वार्थे कन्-टाप् पूर्व ह्रस्वश्च। तिन्तिड़ी, इमली।

तिन्तिड़ी (सं॰ स्त्री॰) तिम्यते क्लिद्यते मुखाभ्यन्तरमनेन तिम-ईकन् पृषोदरा॰। वृक्षविशेष, इमली। इसके संस्कृत पर्याय—चिञ्चा, अम्लिका, तिन्तिड़िक, तिन्तिड़िका, अम्लीका, आम्लिका, आम्लीका, चुक्र, चुक्रा, चुक्रिका, अम्ला, अत्यम्ला, भुक्ता, भुक्तिका, चारित्रा, गुरुपत्रा, पिच्छिला, यमदूतिका, शाकचुक्रिका, सुचुक्रिका और सुतिन्तिड़ा। (Tamarindos Indica) कच्ची इमली अत्यम्ल, कफ और पित्तकारक तथा वातनाशक होती है।

पक्की इमली दीपन, रुचिकारक, भेदक, उष्ण, कफ और वातनाशक, विष्टम्भनाशक, मधुराम्ल; पित्त, दाह, अस्र और कफदोषप्रकोपक है। पक्की इमलीका मधुराम्ल, रुचिप्रद, शोफ और पाककार है; इसका लेप देनेसे व्रण-दोष जाता रहता है। इमलीके पत्तेके गुण—शोफ, रक्तदोष और व्यथानाशक हैं। इमलीकी सूखी छाल—शूल और मन्दाग्निनाशक है। इमलीके पके फलको जलसे अच्छी तरह पीस कर गुड़ और मिर्च मिला दें, बाद लवङ्ग और हींगसे सुगन्धित करें; इस तरहसे जो पानीय प्रस्तुत होता है, वह अत्यन्त मुखरोचक, वातनाशक, पित्तश्लेष्माकर और वह्निरोधक है। (भावप्रकाश)

तिन्तिड़ीक (सं॰ पु॰-क्ली॰) तिम-ई-कन् निपातनात् साधुः। वृक्षाम्ल, इमली।

तिन्तिड़ीका (सं॰ स्त्री॰) वृक्षाम्ल, इमली।

तिन्तिड़ीद्यूत (सं॰ क्ली॰) तिन्तिड़ीभिः तिन्तिड़ीजातद्यूतैः यद्द्यूतं। चुञ्चुरी, वह जूआ जो इमलीके चिंओंसे खेला जाय।

तिन्तिराङ्ग (सं॰ पु॰) वज्रलौह, इसपात।

तिन्तिलिका (सं॰ स्त्री॰) तिन्तिड़िका डस्य लत्वं। तिन्तिड़ी, इमली।

तिन्तिली (सं॰ स्त्री॰) तिन्तिड़ी डस्य लत्वं। इमली।

तिन्तिलीका (सं॰ स्त्री॰) तिन्तिड़ीका डस्य लत्वं। इमली।

तिन्तिलीफल (सं॰ क्ली॰) जयपालबीज, जमालगोटेका बीया।

तिन्दिश (सं॰ पु॰) ढिण्डिश वृक्ष, टिंडसी नामक तरकारी, डिंढसी।

तिन्दु (सं॰ पु॰) तिम्यति आर्द्रीभवति तिम-कु प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। तिन्दुक वृक्ष, तेंदूका पेड़।

तिन्दुक (सं॰ क्ली॰) तिन्दुरिव कायति कै-क। १ कर्ष-परिमाण, दो तोला। (पु॰ स्त्री॰) तिन्दु स्वार्थे कन्। २ रक्तलोध्र वृक्ष, तेंदूका पेड़। इसके संस्कृत पर्याय—स्फूर्ज्जक, कालस्कन्ध, शितिशारक, केन्दु, तिन्दु, तिन्दुल, तिन्दुकि, तिन्दुकी, नीलसार, अतिमुक्तक, स्वयंक, रामण, स्फूर्जन, स्पन्दनाह्वय और कालसार।

इसके कच्चे फलके गुण—कषाय, ग्राही, वातकारक, शीतल और लघु। पक्के फलके गुण—मधुर, स्निग्ध, दुर्जर, श्लेष्मद, गुरु, व्रण और वातनाशक, पित्त, मेह और रक्तदोषकारक तथा विषद। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसके कच्चे फलके गुण—ग्राहक, वायुवर्द्धक, शीतवीर्य और लघु। पक्के फलके गुण—मधुररस, गुरु, पित्तदोष, प्रमेह, रक्तदोष और कफनाशक।

तिन्दुकतीर्थ—तीर्थ विशेष, एक तीर्थका नाम। यह व्रजमण्डलके अन्तर्गत है। इस तीर्थमें स्नानादि करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। (श्रीवृन्दावनलीलामृत)

तिन्दुकाकृतिफल (सं० पु०) द्वीपान्तर खर्जूर, एक प्रकारका खजूर।

तिन्दुकास्थि (सं० क्ली०) तिन्दुकबीज, तेंद फलका बीया।

तिन्दुकि (सं० स्त्री०) तिन्दुकी निपातनात् ह्रस्वः। तिन्दुक, तेंदूका पेड़।

तिन्दुकिनी (सं० स्त्री०) तिन्दुकस्तदाकारः फलेऽस्त्यस्याः तिन्दुक-इनि ङीप्। आवर्तकी लता, भगवत वल्ली।

तिंदुकी (स० स्त्री०) तिंदुक गौरा० ङीष्। तिंदुक, तेंदू।

तिन्दुज (सं० पु०) लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़।

तिन्दुल (सं० पु०) तिंदुक. पृषोदरादित्वात् कस्य लः। तिंदुक, तेंदू।

तिन्धरिया—बङ्गालके दार्जिलिङ्गके अन्तर्गत कारसोयङ्ग उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २६° ५१' उ० और देशा० ८८° २०' पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे २७४८ फुट ऊँचे पर अवस्थित है। यहां दार्जिलिङ्ग-हिमालय रेलवे (Darjeeling Himalayan Railway)-का एक कारखाना है। इसके सिवा यहां उक्त रेलवे कम्पनीकी ओरसे एक चिकित्सालय भी है।

तिन्नेवेली—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत मदुरा राज्यका एक जिला। यह अक्षा० ८° ८' और ९° ४३' उ० तथा देशा० ७७° १२' और ७८° २३' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ५३८९ वर्गमील है।

मदुरा जब १७४४ ई०में आर्कटके नवाबके राज्यभुक्त हुआ; उसी समयसे तिन्नेवेली एक स्वतन्त्र जिला रूपमें गण्य हुआ है। भारतवर्षके दक्षिण-पूर्व कोणमें केवल यही जिला उपकूलवर्ती है। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें मदुरा जिला, दक्षिणमें मान्यार उपसागर तथा पश्चिममें पश्चिमघाट पर्वतमाला है। इसी पर्वतमालासे यह त्रिवाङ्कुड़ राज्यसे अलग हो गया है। मेम्बर नामक स्थानसे कुमारिका अन्तरीप तकका उपकूल भाग ८५ मील लम्बा है। जिलेकी लम्बाई १२२ मील और चौड़ाई ७४ मील है। यहांकी भूमि साधारणतः समतल है, किन्तु पूर्वकी ओर कुछ ढालू है। पश्चिममें पर्वतमाला ४०८० फुट ऊँची है। पर्वतके नीचेकी जमीनकी ऊँचाई समुद्रपृष्ठसे ८०० फुटसे अधिक नहीं है। इस जिलेमें ३४ नदियाँ प्रवाहित हैं, जिसमेंसे प्रधान ताम्रपर्णी ८० मील लम्बी है और पश्चिमघाटसे उत्पन्न हुई है। पापनाशम् स्थानमें इसका एक सुन्दर जलप्रपात है। चित्रानदी इसकी प्रधान उपनदी है, जो कुत्तालम् नामक स्थानके ऊपरसे निकली है। ताम्रपर्णीके किनारे तिन्नेवेली और पलामकोटा नगर अवस्थित है। वैपार भी एक दूसरी बड़ी नदी है। इसके किनारे सातुर नगर पड़ता है। इस जिलेका उत्तरी भाग प्रायः वृक्षरहित है और दक्षिणी भागमें तालवन है।

इतिहास—इसका स्वतन्त्र इतिहास नहीं है, वरन् मदुरा और त्रिवाङ्कुड़के इतिहासके साथ मिला हुआ है। यहाँ बहुत दिनोंसे द्रविड़-सभ्यता प्रचलित है। और यहांके मोती निकालनेका व्यवसाय ग्रीक लोगोंको भी मालूम था। कोलकेई नगरमें पाण्ड्य, चेर, और चोल राजगण राज्य करते थे। अन्तमें लड़ाई झगड़ा होनेके बाद पाण्ड्य ही इस देशके अधिपति हुए। अगस्त्य ऋषिने सबसे पहले इस देशमें आर्य ब्राह्मण उपनिवेश स्थापन किया। प्रवाद है, कि अगस्त्य ऋषि ताम्रपर्णी नदीके उत्पत्तिस्थानमें अगस्त्यपर्वत पर आज भी जीवित हैं। ब्राह्मणोंका कहना है कि अगस्त्य ही तामिल भाषाके सृष्टिकर्त्ता थे। पाण्ड्य राजाओंकी पहली राजधानी कोलकईमें और दूसरी मदुरामें थी। कोलकईका उल्लेख टलेमीके ग्रन्थ तथा पेरिप्लास ग्रन्थमें पाया जाता है। उक्त ग्रन्थोंमें यह नगर मुक्ता निकालनेके व्यवसायका प्रधान

स्थान कह कर उल्लिखित है। यह नगर अभी एक छोटे ग्राममें परिणत हो गया है तथा समुद्रसे केवल ५ मील की दूरीमें पड़ता है। यही स्थान प्राचीन कयाल नगर था। मार्कोपोलोने इसे केइल बतलाया है। इसका वर्तमान नाम कोरकेई है। वर्त्तमान रामेश्वरम् नगरका प्राचीन नाम कोटी है। यह भी मुक्ता-व्यवसायके लिये ग्रीकवासियोंके निकट परिचित था। "कोलकेई" का अर्थ सैन्यदल वा स्कन्धावार है। कोलकेई और समुद्रके मध्यस्थित एक स्थानको अब भी प्राचीन कयाल कहते हैं। यह प्राचीन कयाल समुद्रके तीरसे दो मीलकी दूरी पर अवस्थित है। कयालके अर्थमें समुद्रके साथ संयोग विशिष्ट बृहत् ह्रद आता है। चीन और अरबके साथ कयाल नगरका वाणिज्य-सम्बन्ध था। इसका चिह्न अब भी पाया जाता है। पुर्तगीजोंने आ कर कयालको समुद्रसे दूरवर्त्ती देख तुतिकोरिण (तुतकुड़ी) शहरको वाणिज्यका बन्दर बनाया। अब भी तिन्नेवेली जिलेमें तुतकुड़ी एक प्रधान बन्दर है। वर्त्तमान कोरकेई शहर प्राचीन कयालका अंशविशेष था, जो मन्दिरकी खोदी हुई लिपि तथा टकसाल इत्यादिके देखनेसे प्रमाणित होता है। प्राचीन चीनके वाणिज्य-सम्बन्धमें कयालमें किसी जगह जमीनके नीचे नाना प्रकारके चीनी मट्टीके टुकड़े और चीनाके प्राचीन जङ्क नामक जहाजके भग्न-खण्ड पाये जाते हैं। अभी यहाँ लावि नामक देशीय मुसलमान और रोमन-काथलिक मत्स्यव्यवसायी वास करते हैं। मार्कोपोलो कहते हैं, कि पाण्ड्य वंशीय पाँच भाइयोंमेंसे अशाय नामक बड़ा भाई केइलमें राज्य करते थे। एडेन, हरमस प्रभृति अरबीय देशोंसे जहाज इस देशमें आते थे। उन जहाजों पर प्रायः घोड़ेकी आमदनी होती थी। राजाके यथेष्ट मणि-माणिक्य था। उनके ३०० स्त्रियां थीं। इस स्थानको खोद कर मि० कॉल्डवेलने बहुतसे कलसके आकार मिट्टीके बरतन पाये थे, जिनमें प्राचीनकालकी एक जाति मुर्दे गाड़ती थी। जितने बरतन पाये गये थे उनमेंसे एकका घेरा ११ फुट था और उसमें मनुष्यका अस्थिपञ्जर पाया गया था। यहां जगह जगह बुद्ध-मूर्त्तियां देखी जाती हैं, उनकी पूजादि नहीं होती। एक जगह एक बुद्ध-मूर्त्तिको उलटा कर धोबी उस पर कपड़ा फींचता है। पुर्त्तगीज जब पहले पहल इस देशमें आये, तब उन्होंने इस देशमें कुइलनके राजाको राज्य करते देखा था। शायद वे त्रिवांकुरके कोई राजपुत्र होंगे, क्योंकि पुर्तगीज आगमनके समय यह त्रिवांकुड़ राज्यके अन्तर्भुक्त था। १०६४ ई० तक पाण्ड्य राजाओंके अधिकारमें रह कर पीछे यह प्रदेश सुन्दर-पाण्ड्यद्वारा अधिकृत हुआ। १३१० ई०में मुसलमानोंने एक बार इस पर आक्रमण किया, किन्तु पाण्ड्य राजा विजयी हुए। इस समय २५० वर्ष तक एक प्रकारकी अराजकता फैली हुई थी। पाण्ड्य राजाओंने तथा कर्णाटके नायकोंने इस प्रदेशको खण्ड खण्डकर अधिकार कर लिया था। १५५८ ई०में विजयनगरके सेनापति नायकोंने मदुराका नायकवंश प्रतिष्ठित किया। १५६२ ई०में विजयनगरके ध्वंस होने पर यह स्वाधीन हो गया। १७वीं शताब्दीके अन्तको उपकूलमें पुर्तगीजोंका प्रभाव बढ़ने लगा, किन्तु ओलन्दाजोंने उन्हें उक्त स्थानसे मार भगाया। इन्होंने तुतकुड़ीमें प्रथम युरोपीय कोठी स्थापन की। १७४४ ई०में यह स्थान आर्काटके नवाबके नाममात्रका अधीन हुआ, प्रकृतपक्षमें यह कई एक पालैयक्कार (पलिगार)के सर्दारोंके अधीन था। १७८१ ई० तक यहाँ केवल सर्दारोंमें परस्पर छोटी छोटी लड़ाई होती रहनेके कारण एक प्रकारकी अराजकता फैली हुई थी। १७५६ ई०में महम्मद युसुफ़खाँने मदुरा और तिन्नेवेली इन दोनों राज्योंमें सुशृङ्खला स्थापन करनेके लिये तिन्नेवेली एक हिन्दू सर्दारके हाथ, ११००००) रु० वार्षिक कर स्थिर कर अर्पण किया। १७५८ ई०में महम्मद युसुफखाँके चले जाने पर पुनः पूर्ववत् अराजकता दीखने लगी। उन्होंने फिर आकर स्वयं दोनों राज्योंका शासनभार ग्रहण किया। १७६३ ई० तक वे राज्य करते रहे, बाद वे राजस्व देनेमें असमर्थ होनेके कारण सैन्यदलसे पकड़े गये और उन्हें फांसीकी आज्ञा दी गई। १७८१ ई०में बहुत राजस्व हो जानेसे आर्काटके नवाबने यह जिला अङ्गरेजोंको दे दिया।

१७८२ ई०में चक्कणपत्ति और पाञ्चालमकुरिचि नामक पलिगारके सर्दारोंकी दो राज्य कर्नल फुलार्टोनने

जीते। बहुतसे पलिगार सर्दार उस समय भी कई एक स्थानोंके शासनकर्त्ता थे। किन्तु १७९९ ई०में वे विद्रोही हो उठे और शायद ये टीपू सुलतानकी मदद करें, इस डरसे अङ्गरेजोंने उनके अस्त्र छीन लिये और दुर्ग तहस नहस कर डाला। १८०१ ई०में पुनः विद्रोह आरम्भ हुआ, किन्तु इस समय समस्त कर्णाट और तिन्नेवेली अङ्गरेजोंके हाथ रहनेसे कोई विशेष गड़बड़ी न मची।

इस जिलेमें २९ शहर और लगभग १४८२ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः २०५९६०७ है। यहां हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयांका वास है। मुसलमानोंकी अपेक्षा ईसाइयोंकी संख्या अधिक है। मुसलमान प्राचीन अरबियोंके वंशधर हैं। ये अपनेको सोनागर या बोनागर कहते और अङ्गरेज लोग उन्हें लाधि कहते हैं। ये सब मत्स्य-व्यवसायी है।

हिन्दुओंके मध्य बल्लीय (मजदूर और कृषक), वेल्लालर (कृषिव्यवसायी), शानान (ताड़ीवाले), परिया (चण्डाल सरीखी नीच जाति और जातिभ्रष्ट), कम्मालर (शिल्पी) ब्राह्मण, कैकलर (ताँती), सतानी (वर्णसङ्कर और नीच जाति), अम्बत्तन (नाई), वन्नन (धोबी), शेठी (बनियां), कुशवन (कुम्हार), क्षत्रिय, शेम्बाड़वन (धीवर), कणक्कन (कायस्थ) प्रभृति जातियां प्रधान हैं। शानान और परवर जातिके लोग इस देशमें एक प्रकारसे प्रधान हैं। परवर जातिके सभी मनुष्य रोमन काथलिक ईसाई हैं। शानान लोग केवल ताड़के पेड़की खेती करते हैं। इन लोगोंमें प्रेतोपासना प्रचलित है। ब्राह्मण्य धर्मका प्रभाव यहां बहुत कम है। बहुतसे ब्राह्मण भी प्रेतपूजा करते हैं।

वेल्लालर जातिमें कोट्टाई वेल्लालर नामक एक सम्प्रदाय है। वे मट्टीके दुर्गमें वास करते हैं। इनकी स्त्री-जाति उस दुर्गके बाहर नहीं आती।

समुद्रके किनारे तेरुचेन्दुर, ताम्रपर्णीके ऊपर पापनाशम् और चित्राके किनारे कोत्तालुम नामक स्थानमें तीन प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर हैं, कोत्तालुमका शिवमन्दिर शहरके दक्षिण 'तेङ्काशी' अर्थात् दक्षिण-काशी नामसे मशहूर है।

१५४२ ई०में पुर्तगीज सेण्ट फ्रान्सिस जेभियर नामक पादरीने परवरोंको पहले पहल ईसाई बनाया। मुसलमानी अत्याचारके समय इन्होंने पुर्त्तगीजोंका आश्रय लिया था। तभीसे ये अपनेको सेण्ट जेभियरकी सन्तान कहते आये हैं।

मदुरा और तिन्नेवेली जिलेसे कहवा और चायके लिए सिंहल देशको आदमी भेजे जाते हैं।

यहांके ३९ नगरोंमें तिन्नेवेली, पालनकोटा, तुतकुड़ी और श्रीविल्लिपत्तुर नगर प्रधान हैं। यहांकी प्रधान भाषा तामिल है। इसके सिवा यहां तेलगू, कर्णाटी, गुजराती, हिन्दी और पतनुल भाषा भी प्रचलित है। यहां धान, चना, कँगनी, चेना, उरद प्रभृति अन्न उपजाते हैं। तमाकू, कहवा, प्याज, पान, लाल मिर्च, धनिया, तिल, रेंड़ी, रूई, ईख और ताड़ यहांके प्रधान कृषिद्रव्य हैं। तुतकुड़ीसे भेंड़, घोड़ा और बैलकी रफ्तनी सिंहलमें होती है और कहवा, ताड़की मिसरी और लाल मिर्च दूसरे दूसरे देशोंमें भेजी जाती है। उपकूल भागमें कौड़ी और सीप पकड़नेका व्यवसाय विख्यात है। एक समय ओलन्दाजोंने शङ्ख पकड़नेका व्यवसाय स्वयं अपने अधिकारमें कर लिया था। मान्यार उपसागरमें अंगरेजोंने १७९६ ई०में पहले पहल मुक्ता निकालनेका व्यवसाय आरम्भ किया। यहांके मुक्ता उतना उत्कृष्ट नहीं है। शङ्ख वंगदेशमें अधिक भेजे जाते हैं।

शासनकी सुविधाके लिए यह जिला ४ भागों और ९ तालुकोंमें बाँटा गया है, जैसे—तिन्नेवेली तालुक (पालमकोटा), तापोड़ारम् और तेङ्कराई तालुक (तुतकुड़ी), नानागुनेरी, अम्बासमुद्रम्, तेनकाशी (शर्मदेवी), श्रीविल्लपुत्तुर, सातूर, शङ्करनाइनारकोविल (श्रीविल्लिपतुर)। रेल लाइन भी इस जिलेमें गई है। मार्च और जून महिनेमें यहांका ताप-परिमाण वृक्षकी छायामें ९५° तथा दिसम्बर और जनवरी महीनेमें लगभग ७७° है। वार्षिक वृष्टिपात २५ इंच है।

२ मन्द्राजके अन्तर्गत उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह तिन्नेवेली और संकरनाइनार-कोविल तालुक लेकर संगठित हुआ है।

३ उक्त जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ८° ३६′ से ८° ५७′ उ० और देशा० ७७° ३४′ से ७७° ५१′

पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ३२८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १८४६४७ है। इस तालुकमें दो शहर और १२३ ग्राम लगते हैं। कोदगन, पालयन, तिन्नवेली, पूर्वीय मरुदूर और पश्चिमीय मरुदूर नामक नहरोंसे जल सिञ्चनका कार्य होता है।

४ इसी नामके तालुक और जिलेका एक प्रधान शहर यह अक्षा० ८°४४´ उ० और देशा० ७७°४१´ पू० में ताम्रपर्णी नदीके किनारे मन्द्राज शहरकी रेलसे ४४६ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। इसका ऐतिहासिक विवरण अस्पष्ट है। १५६० ई०में नायकवंशके अधिष्ठाता विश्वनाथने इस शहरका संस्कार किया था। यहांका एक प्राचीन शिवमन्दिर बहुत प्रसिद्ध है, अन्यान्य बड़े बड़े मन्दिरोंकी नाईं इसमें भी सहस्रस्तम्भ-नाटमन्दिर है।

इस शहरकी लोकसंख्या प्रायः ४०४६८ है, जिनमें ३४६६४ हिन्दू, ४६९८ मुसलमान और ८०७ ईसाई हैं। १८६६ ई०में यहां म्युनिस्पलिटि स्थापित हुई है। इस शहरकी वार्षिक आय ३६,५००) और व्यय ३४,९००) रु० है। यहां दो कालेज, एक शिल्पविद्या सिखानेका स्कूल तथा कई एक छोटे छोटे स्कूल हैं।

तिन्सुकिया—आसामप्रदेशके लखिमपुर जिलेके अन्तर्गत डिब्रूगढ़ उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २७° २९´ उ० और देशा० ९५° २१´ पू०में अवस्थित है। यहां एक चिकित्सालय है। आसाम-बङ्गाल और डिब्रू-सदिया रेलवेका यहां सङ्गम होनेके कारण यह स्थान दिनों दिन प्रसिद्ध होता जा रहा है।

तिपड़ा (हिं० पु०) कमखाब बुननेवालोंके करघेकी एक लकड़ी। इस लकड़ीमें तागा लिपटा रहता है और यह दोनों बेसरोंके बीचमें होता है।

तिपतूर—महिसुरके तुमकूर जिलेका तालुक। यह अक्षा० १३° ०´ और १३° २६´ उ० और देशा० ७६° २१´ और ९६° ५१´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ५०८ वर्गमील और लोकसंख्या ९०७०९ है। इसमें चार शहर और ३९१ ग्राम लगते हैं।

तिपल्ला (हिं० वि०) १ जिसमें तीन पर्त्त या पार्श्व हों। २ जिसमें तीन तागे हों।

तिपाई—दक्षिण-आसामकी एक नदी। मणिपुरमें तुईआइ और लुसाइ पर्वत पर तुइवर कहते हैं। लुसाइ पर्वत पर यह नदी घूमती हुई कछाड़के दक्षिण-पश्चिमकोणमें 'बराक' नदीसे मिल गई है। इस सङ्गमस्थल पर तिपाईमुख नामक एक ग्राम है। इस ग्राममें लुसाइयोंके साथ व्यवसाय चलता है। लुसाइ लोग रुई, एक प्रकारका मोटा कपड़ा, भारतीय रबर, हाथीके दाँत, मोम इत्यादि वनजात द्रव्योंको अपने साथ ला कर यहांके चावल, नमक, लोहेके यन्त्रादि, कपड़े, नकली मोतीकी माला और तमाकूसे बदला करते हैं।

तिपागढ़—मध्यभारतका एक प्राचीन स्थान। यह चन्दा जिलेमें अवस्थित है। यहां तिपागढ़ पर्वतके ऊपर तिपागड़ नामक एक किला है। इस किलेके निकट एक सरोवरसे तिपागड़ी नामकी एक नदी निकली है। यह प्राचीन दुर्ग, कनिंहम साहबके मतसे गोड़ राजाओंकी कीर्त्ति है। दुरारोह पर्वत, बांसके जङ्गल तथा गम्य पथके अभावसे इस दुर्गमें सहजमें नहीं जा सकते। रास्ता इतना दुर्गम है, कि तिपागड़ी नदीको हो सात बार पार करना पड़ता है। यह दुर्ग तिपागड़ पर्वतकी एक दुर्गम उपत्यकाके ऊपर अवस्थित है। इस दुर्गके नीचे एक बड़ा सरोवर है जो पार्वत्य झीलकी नाईं दीख पड़ता है। यह दुर्ग सरोवर चारों ओर दीवारसे घिरा हुआ है। केवल दक्षिण-पूर्वकी ओर दीवार नहीं है। दीवार पर्वतके अधिरोह और अवरोहके अनुसार एकक्रमसे पांच शिखरको घेरे हुए है। इस वेष्टित स्थानमें बहुतसी समतल उपत्यकायें हैं, जिनमें तिपागड़ी नदीकी उपनदियां प्रवाहित हैं। उन नदियोंका जल प्रायः पहाड़के ढालवाँ स्थानसे न बह कर इधर उधर समतल भूमिमें गिरता है। बहुतसे छोटे बड़े सोते उत्पन्न होनेका यही कारण है। दुर्गके समस्त अंशको निकटवर्ती हरलदन्द ग्रामके लोगोंने भी नहीं देखा है और पहाड़के उस अंश पर जानेकी सुविधा न होनेके कारण कोई भी वहां नहीं जा सकता। प्राचीर बड़े बड़े प्रस्तरखण्डोंसे गठित है, किन्तु अभी उसकी ऊंचाई किसी जगह भी ५ फुटसे अधिक नहीं देखी जाती है। पर्वतके दक्षिण-पश्चिम शिखरके निकट बहुतसे मकानोंके

भग्नावशेष देखनेमें आते हैं। कहा जाता है, कि यहां एक राजभवन था।

पर्वतमें एक हनुमानकी आकृति खुदी हुई है। यहां कहीं भी उत्कीर्ण शिलालेख नहीं पाया जाता। उक्त तालाब चारों ओर बड़े बड़े पत्थरोंसे बंधा है। चूना, सुर्खी अथवा और किसी प्रकारके मसालेका व्यवहार कहीं भी नहीं है। पहले इसमें सीढ़ियां लगी हुई थीं। इसके एक तरफका भाग टूट फूट गया है। प्रवाद है, कि इसी भग्नमुखसे तिपागडी नदी निकली है, किन्तु उस स्थानसे जलका निकलना अनुमान नहीं किया जाता है। किसी दूसरी दिशासे तिपागड़ीकी उत्पत्तिका कारण जल नाली है। प्रवाद है, कि इस दुर्गकी अंतिम रानी एक दिन गोवाहित रथसे उतरते उतरते ह्रदके मध्य रथके साथ अदृश्य हो गईं, तभीसे यह जङ्गलमें परिणत हो गया है। एक दूसरा प्रवाद है, कि द्रुपदराजने इस दुर्गका निर्माण किया। वे युद्दरागढ़में रहते और जमीनकी एक सुरंग हो कर यहां आते थे। यहां उनका एक अखाड़ा था। पाउनीके राजा भी सुरंग हो कर इस अखाड़ेमें आते थे, किन्तु द्रुपदराज उन्हें कहीं भी देख नहीं सकते थे।

तिपाड़ (हिं० पु०) १ तीन पाट जोड़ कर बनाई हुई चीज। २ वह जिसमें तीन पल्ले हों। ३ वह जिसमें तीन किनारे हों।

तिपारी (हिं० स्त्री०) बरसातमें आपसे आप होनेवाला एक प्रकारका छोटा झाड़। इसके पत्ते छोटे और सिरे पर नुकीले होते हैं। इसमें सफेद फूल गुच्छोंमें लगते हैं। इसके दूसरे नाम—मकोय, परपोटा और छोटी रसभरी।

तिपैरा (हिं० पु०) बड़ा कुआँ जिसमें तीन चरसे एक साथ चल सकें।

तिबद्धी (हिं० वि०) जिसमें तीन रस्सियां एक साथ एक एक बार खींची जांय।

तिबारा (हिं० वि०) १ तीसरी बार। (पु०) २ वह मद्य जो तीन बार उतारा गया हो। ३ वह घर या कोठरी जिसमें तीन द्वार हों।

तिबासी (हिं० वि०) तीन दिनका बासी।

तिबी (हिं० स्त्री०) खेसारी।

तिब्बत—हिमालयके उत्तरमें एक देश। तिब्बती भाषामें इसका नाम 'पों' है। इसके उत्तरमें चीनतातार, पूर्वमें चीन, दक्षिणमें हिमालय पर्वत और पश्चिममें तूरान है। इसका परिमाणफल १८०५०० वर्गकोस और लोकसंख्या प्रायः ५००००० है। इसके दक्षिणमें जैसा हिमालय पर्वत है। उत्तरमें भी वैसा ही एक अत्यन्त विस्तीर्ण पर्वत है। चीनी इस पहाड़को 'कियुन्लन्' हिन्दुस्तानी 'कैलास' कहते हैं। पूर्व और पश्चिममें बहुतसे पर्वत हैं। इन पर्वतोंसे एशियाकी बहुतसी नदियां निकली है। यह देश अत्यन्त उन्नत और शीतप्रधान है। शीतका अधिक प्रादुर्भाव होनेसे यहां बहुत उद्भिद् नहीं जनमते हैं, इससे यहाँ जलावन दुष्प्राप्य है। इस देशमें तरह तरहके पक्षी पाये जाते हैं। गाय, भैंस और घोड़े तथा खच्चर ही यहांके साधारण पशु हैं। हिमालय-पथ पर बैलगाड़ी अथवा मवेशी इत्यादि नहीं जा सकते हैं, इसी कारण भेंड़े और बकरे ही बोझ ढोनेका काम करते हैं। चमरी नामक एक प्रकारकी गोजाति पाई जाती है, इसीकी पूंछसे चामर बनता है। चमरी देखो। कस्तूरी मृग भी इस प्रदेशमें बहुत हैं। इस देशके बकरेके रोएंसे दुशाले बनते हैं। अज देखो।

तिब्बतके कुत्ते बहुत बड़े और बलवान् होते हैं। यहांकी खानोंमें सोना, पारा, सुहागा और नमक पाया जाता है। तिब्बतके लोग देखनेमें बहुत कुछ तातारोंसे मिलते जुलते हैं। ये अलस, शान्त और सन्तुष्टचित्त हैं। शाल और ऊनी वस्त्र बुनना ही इन लोगोंका प्रधान शिल्प है। इनका वाणिज्य चीनके साथ चलता है। मुर्देको जलाने तथा गाड़नेकी प्रथा इस देशमें नहीं है। ये पारसियोंकी नाईं मुर्देको श्मशानमें फेंक आते हैं, केवल याजककी देहको जलाते हैं। भेंड़का मांस इन लोगोंका प्रधान खाद्य है। बहुतसे लोग कच्चा मांस खाते हैं। ये सब भाई मिल कर एक स्त्रीसे विवाह करते हैं। बड़े भाई स्त्री पसन्द करनेके अधिकारी हैं। तिब्बतवासी बौद्ध हैं। इनका याजकसम्प्रदाय 'लामा' नामसे प्रसिद्ध है। दलई-लामा सबसे प्रधान और तशि-लामा उसके नीचे हैं। तिब्बतवासियोंका विश्वास है कि दलई-लामा स्वयं ईश्वर हैं, मनुष्यके भेषमें मनुष्यके मध्य रहते हैं,

उनकी मृत्यु नहीं है ; लेकिन कभी कभी शरीर बदला करते हैं। दलई-लामाकी मृत्यु होने पर शास्त्रोक्त विशेष लक्षणयुक्त शिशुको दलई-लामाका 'नवशरीरधारण' जान कर उसीको उक्त पद पर अभिषिक्त करते हैं। सब कोई पहले दलई लामाकी देहको मन्दिरमें रख पूजा करते हैं। तशि-लामा बुद्धके अंश समझे जाते हैं। ये चीन-सम्राट्के गुरु और धर्मोपदेशक हैं।

तिब्बतके समस्त मन्दिरोंमें बुद्धप्रतिमा प्रतिष्ठित हैं। यहांकी भाषा स्वतन्त्र हैं। अक्षर बहुत कुछ नागरी अक्षरसे मिलते जुलते हैं। ईसाकी ७वीं शताब्दीमें यह लिपि भारतवर्षसे तिब्बतको चली गई है। ये काष्ठफलकमें खोद कर पुस्तकादि मुद्रित करते हैं।

ले, लासा और टिसुलम्बू ये तीन नगर इस देशमें सर्वप्रधान हैं। लासा नगरमें दलई-लामाका मन्दिर है। इसीसे यह बहुत पवित्र स्थान माना गया है। काश्मीरके समीप लदुवग (लदाक) प्रदेशको छोड़ कर तिब्बतके और सभी अंश चीनके अधीन हैं। चीनराजके एक प्रतिनिधि यहांके शासनकर्त्ता हैं। लासा नगरमें ही ये रहते हैं। लदाककी राजधानी ले है। लदाक देखो।

आमदो नामक स्थानके लामा सोनपो नोमनखन तिब्बतका भू-विवरण लिख गये हैं, जिससे निम्नलिखित विवरण संगृहीत हुआ है—

तिब्बत देशमें शीत और उष्णताका अंश बराबर रहनेके कारण यहां न तो अत्यन्त गर्मी पड़ती है और न अत्यन्त शीतहीका प्रादुर्भाव है। इसी कारण यहां दुर्भिक्ष नहीं और हिंसक पशु तथा कीटादि नहीं पाये जाते।

पर्वतमाला।—लोहब्रा प्रदेशमें तेसी, चोमोकनकर, फुलहरी, कुल-कन्ग्री ; उत्तर नांग प्रदेशमें हवे ; दो-कान्दस प्रदेशमें छि-कङ्गचरित और नाङ्-छेन-मङ्गल है। इनके सिवा यरलह-सहम्बू, तोइरोकर्पो, खवा-लोदि, सहब्राकर्पो, मछेनपोमर इत्यादि बर्फसे ढकी हुई सफेद शिखरयुक्त ऊंची पर्वतमाला है। होति-गोङ्गिया, मरि-वर च्यम, जोमोनगरी, कोन्स-तृस्थन छेमो प्रभृति पर्वत सुगन्धि घास, जड़ी बूटीके उद्भिद् और सुन्दर तरुलता-गुल्मसे परिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त कृष्णपर्वत देशमय व्याप्त है।

ह्रद।—मफम्-यू चहो (मानस-सरोवर), नन-चहो फि-उग-मो, चहा-चहो, यर ब्रो गयु चहो, फग-चहो, चहो कियरिंग न्सोरङ्, खो-स्हो, गोया-मो प्रभृति ह्रद हैं। एतद्भिन्न और भी कई एक परिष्कार मीठे और स्वच्छ जलयुक्त ह्रद इस देशके नाना स्थानोंमें देखे जाते हैं।

नदी।—चांग-पो (ब्रह्मपुत्र), सेङ्ग खबब् (सिन्धु), मब्चिश खब्व, चहा-सहिक, जछू, ङ्गछू, त्रि-छू, मछू (होयाङ्हो), मि-छू, वे-छू, साङ्ग-छू, हजुलगा-छू और चाङ्-छू अपनी असंख्य उपनदियोंके साथ इस देशके नाना स्थानोंमें प्रवाहित हैं।

विस्तृत अरण्य, चारणभूमि, तृणमय प्रान्तर, तृणपूर्ण उपत्यका, कर्षित क्षेत्र और अनुर्वर अधित्यका बालुकामय मरुदेशके नाना स्थानोंमें है। ग्यनग् (चीन), ग्यगर (भारतवर्ष), पेरसिग (पारस्य) प्रभृति बृहत् देशोंकी सीमामें जिस तरह बड़े बड़े समुद्र हैं, इसके चारों ओर भी उसी तरह बड़े बड़े पर्वत हैं। इन पर्वतोंके दूसरे पारमें ग्य-नग् (चीन), ग्य-गर (भारतवर्ष), मोन् (हिमालय प्रान्तवर्ती प्रदेश), ब-यो (नेपाल), ख-छे (काश्मीर), स्तग्-सिसगस् (ताजिक वा पारस्य) और होर (तातार) प्रभृति बड़े बड़े देश अवस्थित हैं। इन देशोंकी उर्वरता जिन बड़ी नदियों द्वारा होती है, उनका अधिकांश ही इस 'पो' (तिब्बत वा भोट) देशसे उत्पन्न होनेके कारण यह प्रदेश जम्बुलिङ्ग (जम्बूद्वीप) खण्डका केन्द्रस्थान कहा जा सकता है।

'पो' देश प्रधानतः तीन भागोंमें विभक्त है—

१। तो-ङ्गह्-री कोर-सुम—ऊंचा या छोटा तिब्बत।

२। बु-साङ्ग् (चार प्रदेशोंमें विभक्त)—प्रकृत तिब्बत।

३। दो, खम और गङ्ग् बड़ा तिब्बत।

ऊंचा तिब्बत (संक्षेपमें पो छुङ्ग्)—इसके कई उपविभाग हैं—तनग्-मो लदवग, मङ्ग्-यू-सहाङ्ग सहङ्ग, गुगेबुहरङ्ग् (पुरङ्ग)। प्रत्येक उपविभाग नौ जिलोंमें विभक्त है।

पहले 'पो' देशकी शासन-सीमा तुरुष्क या तुर्कीके देशके कोण तक विस्तृत थी। ऊंचा तिब्बत प्रकृत उत्तर और दक्षिण इन दो भागोंमें विभक्त है। उत्तरभाग बदकशानके मध्यमें है। यहां तिब्बतियोंका एक दुसोङ्ग,

(दुर्ग) है। दोक्‌प नामक दुर्दान्त जाति पर शासन रखनेके लिये दुर्गके मालिक तिब्बताधिपतिके अधीन प्रतिनिधि स्वरूप हैं। ये पहले दोक्‌प-राज कहलाते थे। उच्च तिब्बतके पूर्वमें तुषारमण्डित उच्च तेसि (कैलास पर्वत), मफम् (मानस-सरोवर) ह्रद और थुङ्‌ग्रोल नामक निर्झरका जल बहुत पवित्र जाना गया है। जो इसे पीते हैं, वे मुक्ति पाते हैं। उक्त निर्झर तोगर नामक स्थानके एक स्वतन्त्र गारपोन (गवर्नर) या शासनकर्त्ताके अधीन हैं और ये भी लासाके प्रधान शासनकर्त्ताकी मातहतमें हैं।

मानससरोवर और कैलास पर्वतकी महिमा एक तिब्बतीय पुस्तकमें लिखी है, कि कैलाससे चार प्रधान नदियां निकली हैं। इन नदियोंका उत्पत्तिस्थान क्रमशः हाथी, गिद्ध, घोड़े और सिंहके मुंह सरीखा है। अन्यान्य पुस्तकोंमें उन्हें क्रमशः गाय, घोड़े, मयूर और सिंहमुखके तुल्य बतलाया है। इन्हीं स्थानोंसे गङ्गा, लौहित्य (ब्रह्मपुत्र), वक्षु (अक्सस्) और सिन्धुकी उत्पत्ति हुई है।

सिन्धुनदी पश्चिम दिशामें तिब्बतके अन्तर्गत बलति प्रदेशमें होती हुई काश्मीरके अन्तर्गत कपिस्थान नामक स्थानमें दक्षिण-पश्चिमकी ओर भारतमें प्रवेश करती है। पक्षु नदी कैलासके उत्तरपश्चिमांशसे निकल कर थोकर प्रदेशके मध्य होती हुई पश्चिमकी ओर तुर्कियोंके देशमें प्रवेश करती है। कैलास पर्वतसे सीता नामक और एक दूसरी नदी पूर्वांशसे निकल कर अभी मानस-सरोवरमें गिरती है। कहा जाता है, कि पहले यह देशके मध्य हो कर पूर्व सागरमें गिरती थी।

कैलासपर्वतके सामनेका गोनपेरी नामक एक छोटा पर्वत तीर्थीकों द्वारा 'हनुमन्त' कहलाता है। इस पर्वतमें हलसे जमीन खोदने पर जैसे गड्ढे हो जाता है, वैसे दाग दीख पड़ते हैं। इसके विषयमें कई एक गल्प हैं। तिब्बती लोग कहते हैं, कि जे-त्सुन मिलरप और नरोपोनछुङ् नामक दो तिब्बतीय ज्ञानी पण्डितोंके धर्मविचारके समय उनमेंसे शेष व्यक्ति नीचे गिर पड़े थे, उन्हींकी देहके भारसे ऐसे चिह्न हो गये हैं। भारतवासियोंके मतसे कार्त्तिकके वाण शिक्षाकालमें उनके शराघातसे यह चिह्न उत्पन्न हुए हैं। उनका यह भी कहना है, कि पहले यह पर्वत कैलासके ऊपर ही अवस्थित था, किन्तु हनुमान इसको कैलासपर्वतसे अलग कर स्वतन्त्र स्थापनपूर्वक उस पर रहते थे। इसीसे जाना जाता है, कि तीर्थिक (ब्राह्मण)-गण इसे हनुमान पर्वत कहते हैं। इस पर्वतके ऊपर कई जगह ऐसे चिह्न हैं। भारतवासी उन्हें शिवदुर्गा, कार्त्तिक, बकासुर, हनुमान प्रभृतिके पदचिह्न बतलाते हैं। यहां जिगतेन-शोगछियुगिर नामक एक पवित्र गुहा है। कैलासके पूर्वाञ्चलके लोग कहते हैं कि वे समस्त चिह्न सिद्धपुरुषोंके हैं। 'लदाक' प्रदेशमें लेखर (ले) दुर्ग अवस्थित है। यहाँके लोग काश्मीरकी नाईं परिच्छदधारी हैं। इनकी टोपी चीन देशके अपराधियोंकी टोपीसी होती हैं। याजकगण लाल और काले रंगकी टोपी पहनते हैं। लद्वगके पूर्वकी ओर गुगी प्रदेश है। यहांका थोडिङ्गका आश्रम बहुत विख्यात है, जो लोचव-रिञ्छेन साङ्गपो द्वारा प्रतिष्ठित हुआ है। इसके पूर्वमें पुरङ्ग् प्रदेश है। यहां पहले स्रोन-त्सन-गम्पो वंशीय-राजा राज्य करते थे। राजा होद इस वंशमें बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। इसके दक्षिणमें अत्यन्त पुराना और प्रसिद्ध 'चोभो जमली'का मन्दिर है, जिसे खुरछोग मन्दिर भी कहते हैं। पहले इस स्थानसे कुछ दूरमें एक संन्यासी रहते थे। उन्होंने अपनी कुटीमें ७ आर्य बौद्धपण्डितोंको आश्रय दिया था। ये आचार्य जब भारतवर्षको लौटे थे, तब इन्होंने संन्यासीके पास सात बोरे रख छोड़े थे। बहुत वर्ष बीत चुकने पर भी वे वापस न गये। अन्तमें संन्यासीने बोरोंको खोल कर देखा, कि उनमें कई एक थैलियां हैं और उन पर 'जमली' नाम लिखा हुआ है। संन्यासीने उन थैलियोंको भी खोला, उनमें कई एक चांदीके टुकड़े पाये। वे समस्त टुकड़ोंको ले कर जुमलस नामक स्थानको गये और वहां उन्होंने उसी चाँदीसे एक बुद्धमूर्ति निर्माण कराई। जब प्रतिमाके घुटने तक तैयार हो गया, तब वह आपसे आप चलने लगी। इस पर संन्यासी बहुतसे लोगोंको अपने साथ ले उस प्रतिमाको तिब्बत ले आये। यहां पहुंच कर वह प्रतिमा अचल हो गई। उसी स्थान पर संन्यासीने

उन्हें प्रतिष्ठित कर एक मन्दिर बनवाया और उसका नाम 'जमलो' रक्खा। जमलोका अर्थ अचल है। निम्न पुरलके पूर्वमें लवमन्थम नामक एक बहुत विस्तृत समतल क्षेत्र है, जो पहले लासा शासनकर्त्ताओंके अधीन था। अभी यह नेपालके अधिकारमें है। इसके पूर्वमें जोङ्ग ढुमोङ्ग नामक एक स्थान है। यहां एक बड़ा दुर्ग और कारागार तथा बहुतसे सङ्घाराम हैं। इसके दक्षिणमें किरोङ्ग नामक स्थान है; यही उच्च तिब्बतकी अन्तिम सीमा है। यहाँका समतन-लिङ्ग नामका आश्रम पुरातन और पवित्र है। तिब्बतके चार विख्यात चोभो (बुद्ध) मन्दिरोंमें एक की कथा पहले कही जा चुकी है, एक दूसरा अर्थात् चोभो-ओयति स्साङ्-पो नामक मन्दिर इस स्थानमें विद्यमान है। इसके दक्षिणमें मम्खू नयाकोट (नवकोट) और अन्यान्य स्थान नेपालाधिकृत है। इसके पूर्ववर्ती नलन वा ननम तथा उसके समीपका गुणथङ्ग नामक स्थान जैत्सुन मिलरप, व-लोचव और तैपकुग नामके तीन पण्डितोंके जन्मभूमि है। चुम्बर नामक स्थानमें मिलरपकी मृत्यु हुई थी। नलमके नीचे नलम नामक गिरिवर्त्म (घाटी) नेपालमें प्रवेश करनेका एक पथ है।

प्रकृत तिब्बतके प्रधानतः दो भाग हैं—त्साङ्ग और ऊ (वू) ये भी फिर चार रु अर्थात् सामरिक विभागोंमें विभक्त हैं; यथा—उरु, येरु, योनरु और रुलस्। होर राजाओंके समयमें यह प्रदेश छ थि-कोर नामक विभागोंमें विभक्त था। याम्दो नामका ह्रदप्रदेश एक स्वतन्त्र थि-कोरके जैसा गिना जाता था। नेपाल-सीमाके जोमो-कङ्कर नामके ऊँचे तुषारमण्डित पर्वतके निकट मिलरप पण्डित पांच परी-सिद्ध हुए थे। लब-छी नामक शिखर पर त्शेरिङ्ग त्शे-ङ्गा नामक एक ज्ञानीका वास स्थान था। इसके मूलदेशमें पांच तुषार-ह्रद है, जिनके जलका वर्ण परस्पर विभिन्न है। ये ह्रद उक्त ज्ञानीके नाम पर उत्सर्ग किये गये हैं। इस स्थानके आश्रमके उत्तरमें कोमा नामक एक बड़ा तुषार-ह्रद है, जो तिब्बतके चार प्रधान तुषार-ह्रदोंमेंसे एक है। इसके समीप रिवो तगससाङ्ग नामक एक बहुत पवित्र स्थान है। यहीं पद्मसम्भव नामके प्रसिद्ध बौद्धाचार्यकी स्त्री लचम् मन्दरवाका प्रिय-आवास था, यहाँ उस देवकल्पिता स्त्रीका पदचिह्न देखा जाता है। नलमके उत्तरमें गुङ्-मङ्-ला नामके ऊंचे पहाड़ पर विख्यात तम्मचुमो नामक बारह अप्सराओंका वास था। पद्मसंभवने इन्हें शपथ दिला कर तीर्थिक (ब्राह्मण) के पंजेसे बौद्धधर्मकी रक्षा तथा भारतवर्षसे शत्रुभावसे ब्राह्मणोंका आना बन्द कर दिया था। तिब्बती लोगोंका विश्वास है, कि तभीसे शत्रुभावमें कोई तीर्थिक तिब्बतमें प्रवेश नहीं कर सकता; किन्तु यह ठीक नहीं है। भारतवर्षसे अब भी ब्राह्मण परिव्राजक तिब्बत देखने जाते हैं। इस पर्वत पर गुङ्-थङ्-ला गिरिवर्त्म है। इस राह हो कर उत्तरकी ओर जानेसे टिङ्गिर नामक जिला मिलता है। यहांका तम्प-साङ्गे नामक पण्डितका तपोवन, गुहा और समाधि-स्तम्भ है। ये ही तिब्बतीय धर्मके शियेत् शाखाके मत-प्रवर्तक थे। यहाँ चीन राजाकी एक दल सैन्य और एक सीमान्तरक्षक सेनापति हैं। इसके पूर्वमें तेंसि-जोङ्ग (दुर्ग) और उत्तरमें शिकरदोर्जे जोङ्ग (दुर्ग) तथा उसके समीप एक कारागार अवस्थित है। इसके निकट शिकर छोदे आश्रम है। इस आश्रमके पास पा-शाक्य नामका सङ्घाराम है। जिसमें एक इतना लम्बा चौड़ा घर है कि उसमें बहुत आसानीसे घुड़दौड़ हो सकती है। इस घरका नाम दुखङ्ग-कम्भो है। यहाँ तान्त्रिक बौद्धमत प्रचलित है। पा-शाक्य आश्रमसे उत्तरमें एक दिनके रास्ते पर, खहु तग जोङ्ग (दुर्ग) नामक स्थानमें खहुलामा गोनशो शादुब नामक महापुरुष सिद्ध हुए थे। यहां पा-गोन्थिम नामकी एक गुहा और आरिग-कर्पो नामक एक प्रकारके श्वेतवर्ण अक्षरोंमें उत्कीर्ण शिला-लेख है। इसके समीप त्रिकोण आकारका एक काला पत्थर देखा जाता है जिसे लोदोन कहते हैं। प्रवाद है, कि यह पा-गोम लामाके हृत्पिण्डकी प्रस्तरीभूत अवस्था है। बहुतसे भक्त इसके चटके हुए टुकड़े उठा ले जाते हैं। यहु-जोङ्गके उत्तरमें एक तुषारावृत ऊंची पर्वतमाला है। इसके दूसरे पारमें मृस्पो नामक होर (मनुष्य-भक्षक) जातिके लोग रहते और ताई-होर कहलाते थे। ऐसा साधारण लोगोंका विश्वास है, कि उक्त पर्वत-मालाकी तुषारराशिके गल कर जमीन पर गिरनेसे

तिब्बतका बहुत अनिष्ट होता है। इसके अलावा शिखिलालो (मुसलमान) भी वास करते हैं। ये काशगरके अधीन हैं। इन लोगोंके देशके बाद न्यानम् नामकी विस्तृत मरुभूमि पड़ती है और फिर उसके बाद अच्छिया नामकी एक मुसलमान जाति रहती है। उन लोगोंके साथ बौद्धधर्मकी चिरशत्रुता चली आ रही है। योन खङ्ग नामक स्थानमें बहुतसे मृत मनुष्योंकी हड्डी और खोपड़ी पाई जाती हैं। शाक्यप और दिगुनप आश्रमकी लड़ाईमें जितने मनुष्य मारे गये थे, शायद ये उन्हींकी अस्थिमाला होंगी। पा-शाक्य सङ्घारामके निकट तसाङ्-पो नदी प्रवाहित है। इसके तीरवर्ती लह-रत्से, ङ्गम-रिङ्ग और फुन-त्स होस जोङ्ग प्रभृति स्थान सान् गवर्मेण्टके अधीन हैं। इन सब स्थानोंमें बहुतसी पवित्र मूर्त्तियां देखी जाती हैं। यहांका खोपु-चम-छेन नामका स्तम्भ थोपुलोचवने बनवाया है। फुन-त्सहो लिङ्ग नामक आश्रम कुन खियेन-जोमी नङ्पने बनाया है। इस स्थानमें तथा फुण-त्सो-लिङ्ग प्रभृति स्थानोंमें गो-व नामक बौद्धाचार्यकी शिष्यपरम्परा वास करती तथा बौद्धशास्त्रके कालचक्र व्याकरण और विचार ग्रन्थादि पढ़ती थी। फुन-त्सो-लिङ्गसे जोनङ्ग मत प्रचलित हुआ है। यहां कुब्लई नामक सम्राट्के गुरु दोगोन-फग-पा रहते थे। बाद जोनङ्ग्प साम्प्रदायिक मतकी श्रीवृद्धि हो जानेसे यह प्रायः लोपसा हो गया। इसके दक्षिणमें तशि-ल हुन-पो सङ्घाराम है, जो ग्ये-गदुन्दुव द्वारा स्थापित हुआ है। यहां अमिताभ बुद्ध मनुष्यके आकारमें पञ्छेन-थम्-पा खनपा नामसे आविर्भूत हुए थे। तशिंल-हुनपो नामक आश्रममें उनकी कई एक जन्मकी समाधियां हैं। इसके समीप कुन-ख्याब-लिङ्ग नामका प्रासाद पञ्छेन-तनपइ-निमसे बनाया गया है। तशि-ल्हुन्पो आश्रमके पूरबकी उत्तर न्यङ्ग् नामक स्थानमें तिब्बतका तीसरा प्रसिद्ध नगर ग्यन्-त्से अवस्थित है। इस शहरका व्यवसाय बहुत बढ़ा चढ़ा है। पहले यहां मितु-रब्तन-कुन-स् सङ्ग नामक राजाकी राजधानी थी। उक्त राजाने यहां गोमङ्ग गम्भोल छेनपो नामक संघाराम स्थापन किया। तशि-ल्हुन्पो आश्रमके दक्षिणमें छोईकित् दोर्जे नामक एक संन्यासीका तपोवन है, जिसे लोग गर्मो छाईजोङ्ग कहते हैं। यहां एक आश्चर्यजनक निर्झर है, जिसके जलसे रोग नाश होता है। इसके सिवा हरपार्वतीकी लिङ्ग-मूर्त्ति पर्वत पर खुदी हुई है। त्साङ्ग-पो नदीके किनारे त्साङ्ग-रङ्ग उपत्यकामें रिञ्छेनपुङ्गप जोङ्ग अवस्थित है। यह रिञ्छेन पुङ्ग नामक राजाके द्वारा बनाया गया है। निकटवर्ती थब-ग्य नामक ग्राममें पञ्छेन-रिनपोछे नामक तशिलामाका जन्म हुआ था। इस उपत्यकाके नाना स्थानोंमें बहुतसे लामाओंने जन्मग्रहण किया था। यहां अनेक तपोवन हैं, किन्तु लोकसंख्या अधिक नहीं है।

ग्यन्-त्से नगरके दक्षिणमें पर्वतमालाके दूसरे बगल रहि नामक स्थान है। इसके पूर्वमें मिवङ्ग फोलह नामक राजाका जन्मस्थान फोल्हग्राम है। तशिल्-हुन पो आश्रमके दक्षिण-पूर्वमें किङ्ग करल नामकी पर्वतमालाके दूसरे पारमें सोन-जोङ्ग नामका दुर्ग और एक ह्रदके मध्य कारागार निर्मित है। इस स्थानके बाद टिङ्किय जोङ्ग है। इसके दक्षिणमें मोन-दजोङ्ग नामका राज्य है, जिसे भारतवासी सिकिम कहते हैं। ग्यन्-त्से नगरके ठीक दक्षिणमें पर्वतमालाके दूसरे किनारे फग री-जोङ्ग नामका दुर्ग अवस्थित है। यही लासा गवर्मेण्टका सीमान्त दुर्ग है। इसके दक्षिण-पूर्वमें ल्हो-दुक (भूटान) राज्य है।

उत्तर न्यङ्ग् नामक स्थानसे खरूल पर्वतमाला पार होने पर यरदोक (यम-दो) नामक स्थान मिलता है, जो ठीक फग्रीके उत्तरमें पड़ता है। यहां तिब्बतके प्रधान चार ह्रदोंमेंसे यर-दोक-युनत्सो नामक एक ह्रद है। शीतकालमें ह्रदका ऊपरी भाग जम जाता है। उस समय ह्रदमेंसे वज्रध्वनिकी नाईं शब्द हमेशा निकलता रहता है। किसीके मतसे यह शब्द समुद्र या सिंहकी गरज और किसीके मतसे वायुका शब्द है। इस ह्रदकी मछलियां छोटी और सब एक ही आकारकी होती हैं। यरदोक नामक स्थानके पूर्वमें त्साङ्ग्-पो और क्यि-छु नामकी नदीके सङ्गमस्थलसे कुछ पूर्वको हट कर जङ्ग् नामक स्थानमें प्रतिवर्ष लामा लोगोंकी सभा होती है। इसके निकटवर्ती यसा नदीके किनारे हुसङ्ग-दोइ-ल्हखङ्ग् नामका मन्दिर राजा रल्पचन द्वारा निर्माण किया गया है। इसके पूरबमें लेगपइ-शेरब-खुपोन नामक स्थानमें ङोग-लोदन-शेवर नामके देवताकी दो स्वयम्भू प्रतिमायें हैं।

पहली प्रतिमामें शिरा-संस्थान और मांसपे समूह साफ साफ दीख पड़ती हैं। साङ्कु उपत्यकामें नेहुजोङ्ग नामका प्रासाद और दुर्ग है। यहां फगमो-दुब्रवंशीय सितु चङ्ग-छुर-ग्यत्शान नामके राजा रहते थे। उसका भग्नावशेष अब गन्धर्वोंका वासस्थान कहा जाता है।

कुछ दूर पूर्वकी ओर जानेसे विभो-गेकेल नामक पर्वतके समीप पदन्द-पुङ्ग नामका आश्रम है, जो समस्त उत्तरी एशियामें विख्यात है। यहांके बड़े उपासनागृहमें मैत्रेय (चम्पथोङ्गदी)-की बड़ी प्रतिमा स्थापित है। इसके सिवा यहां भारतवर्षीय चन्द्र पण्डितके हस्तलिखित ग्रन्थ, अवलोकितेश्वर (चनरसिग)-की प्रतिमा और रत्न लोचवकी समाधि भी है। यहां दलइ लामाका एक प्रासाद है। यहांके तान्त्रिक मतके देवता वज्रभैरवकी प्रतिमा बहुत प्रसिद्ध है। यहां विनय, अभिधर्म और माध्यमिक दर्शनकी शिक्षा दी जाती है। इसके सिवा प्रज्ञापारमिता तथा नि-ता-त्शङ्ग तान्त्रिकके मतका कुछ अंश भी पढ़ाया जाता है। इसके पूर्वमें तिब्बतकी राजधानी पा-लहदन (लासा) नगर है। आर्यावर्तके किसी वृहत् नगरके साथ इसकी तुलना नहीं होते पर भी तिब्बतके मध्य यह एक प्रधान नगर गिना जाता है। लासा नगरके बीचमें एक ऊँचा तिमजला शाक्यबुद्धका मन्दिर है। इसमें शाक्यसिंहकी जो प्रतिमा है, वह उनके बारह वर्षकी अवस्थाका प्रतिरूप है। राजा स्रोन्त्सन गम्पोने चीनकी राजकन्यासे विवाह किया और वहींसे इस प्रतिमाको अपने देशमें लाये थे। यह अवलोकितेश्वर (चनरसिग) और मैत्रेय बुद्धकी स्वयंभू प्रतिमा है। इसके सिवा त्सोङ्गखप, ओ-सुन्, ग्यमोदेवी (भारतमें शची कामिनी नामसे ख्यात) प्रभृतिकी मूर्त्तियां हैं।

तिब्बतके अधिकांश सम्भ्रान्त और जमींदार लासा नगरमें रहते हैं। चीन, काश्मीर, नेपाल, भूटान प्रभृति स्थानोंसे यहां वणिक् आते हैं। इस नगरसे आध मीलकी दूरी पर पोताला नामक प्रासाद है। प्रवाद है, कि इस प्रासादमें जगन्नाथ अवलोकितेश्वर वास करते थे। ये ही दलइ-लामाके रूपमें वर्तमान हैं। स्रोन्त्सन गम्पो नामक राजाने इसे निर्माण किया था। यहां लोहित प्रासाद (को-दुङ्ग-मर्पो) है। इस प्रासादमें लोकेश्वरकी प्रतिमा और कोनगस-ङ्गप नामक ५म दलइ लामाकी समाधि है, जिसमें तेरह रत्न लगे हुए हैं। पोताला प्रासादके दक्षिण-पश्चिममें चग्पोहरी पर्वत पर चिकित्साशास्त्र सिखानेका विद्यामन्दिर है। यह मन्दिर वज्रपाणिके नाम पर तथा पर्वतके पश्चिममें दरि पर्वत आर्यमञ्जुश्रीके नाम पर उत्सर्ग किया गया है। यहाँ दल्ह यङ्गदुङ्ग राजा हैं। पोताला और लासाके मध्यमें अम्पन नामके एक राजकर्मचारीका वास है। ये दलइलामाकी गतिविधि पर दृष्टि रखनेके लिये चीन-सम्राट् द्वारा नियुक्त किये गये हैं। इस नगरके उत्तरमें सेर थेग छे-लिङ्ग नामक आश्रममें अवलोकितेश्वरकी ग्यारह मुखकी प्रतिमा विराजमान है। उ-छू नदीके किनारे होकर पूर्वकी ओर जानेसे एक जङ्गल पार होना पड़ता है, उसके बाद तग्येर नामक पहाड़के ऊपर अतिषदेवका तपोवन और गुहा, आचार्य (दफुग) पद्मसम्भवके तथा ८० योगियोंकी गुहाएँ देखी जाती हैं। यहां अवलोकितेश्वरमूर्त्ति, कृष्णप्रस्तर-सम्भूत स्वयंभू मणि, नीलप्रस्तरक्षेत्रके मध्यगत श्वेतप्रस्तरसे स्वयं जात तारामूर्त्ति, जम्भल (कुवेर)-मूर्त्ति, रिगचीम (वेदमती)मूर्त्ति और दुवल्वाव विवर्पमूर्त्ति हैं। चार मैत्रेयोंमें येरप चामछेनने इस प्रदेशमें अमृतकी वर्षा की थी। यहाँ पल हशिव नामक एक अद्वितीय देवताकी प्रतिमा है। उ-छू नदीके दाहिने किनारे प्रसिद्ध संस्कारक शरचोङ्ग-द्वारा खप स्थापित गधन नामक आश्रम और उनका समाधिस्थान है। इसके सिवा यहां यमान्तक महाकाल कालरूप नामक देवताकी प्रतिमा और गुह्य-समाजका मण्डल है। गध्नके उत्तर पूर्वमें छगल पर्वतके दूसरे पारमें रदेङ्ग नामका आश्रम है। इसके दक्षिणमें चीनका यूनान नामक स्थान पड़ता है। नङ्ग नामक स्थानके पूर्व पूर्वतके दूसरे पारमें खम लहरी अवस्थित है। इसके पूर्वमें ङु-छु (रौप्य) नदीके बायें किनारे रिभोछे नामक प्रसिद्ध सङ्घाराम है और सङ्घारामके पूर्वमें मरखम् प्रदेश है। यहां राजा स्रोन्-त्सन गम्पोके समयमें निर्मित कई एक मन्दिर हैं। इसके पूर्वमें कोङ्ग चे-ख नामक स्थान है, यही चीन और तिब्बतकी सीमा है। कोङ्गचे-खके पूर्वमें वाह विभागके मध्य थुं व-

क्वेन च्यम्बलिङ्ग नामका सङ्घाराम लियङ्ग् नामक स्थानमें अवस्थित है। यहाँ चन्-नि शास्त्रमतावलम्बी २८०० संन्यासी रहते हैं। लियङ्ग् नामक स्थानके उत्तरपूर्वमें नागरङ्ग जिला पड़ता हैं। यहाँ नागछु नदीके किनारे कोड नामका मन्दिर भारतवर्षीय आचार्य्य फ-तम्प सङ्ग्र (सिद्धिपशास्त्रमत प्रवर्त्तक)का योगाश्रम मन्दिर है। शमो-रोल नामके प्रदेशमें लोचव विरोचनकी तपस्याका स्थान और गुहा है। आमदो प्रदेशमें च-ख्युङ्ग नामक स्थानके उत्तर पर्वतके पारमें चोङ्ग्म जिला है। वर्त्तमान युगके द्वितीय बुद्ध शार चोङ्ग्खप लोसं तग्प नामक प्रसिद्ध संस्कारककी जन्मभूमिके ऊपर कुम्बुम नामका सङ्घाराम स्थापित है। यहाँ एक सफेद चन्दनका पेड़ है। प्रवाद है, कि उक्त संस्कारकके जन्मकालमें उसके हरएक पत्तेमें सेङ्गनारो बुद्धकी छवि दीखने लगी थी। इस स्थानसे उत्तरपूर्वमें आमदो गोमङ्ग् गोनप वा सेर-खङ्ग गोन्प नामका सङ्घाराम अवस्थित है। इस सङ्घारामके प्रधान आचार्य तगचे चोम्रो लामाके अवतार हैं। वे ही इस भूविवरणके प्रणेता हैं। यहाँ चन-नी मतावलम्बी २००० संन्यासी वास करते हैं। इसके उत्तरमें आमदो परी नामक जिलेके जोमोखोर सङ्घाराम बहुत विख्यात है। च्यमलिङ्ग नामके एक मन्दिरमें १ लाख बुद्ध मूर्त्तियां और मैत्रेय बुद्धकी ८० फुट ऊँची प्रतिमा हैं। लोक्यातुन सङ्घाराममें सम्बर नामके तान्त्रिक देवताकी मूर्त्ति है। यह देवता अपनी ही शक्ति आलिङ्गन करके विद्यमान हैं। इसके उत्तरमें को-कोनर नामका ह्रद है जिसके बीचमें महादेव नामका एक पर्वत है। यहां को-कोनर मोङ्गोल नामकी एक श्रेणीकी होर जाति ३२ सर्दारोंके अधीन वास करती हैं। ये बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। आजकल तिब्बतके पूर्वाञ्चलके लोग अक्सर ही कनफुचि मत ग्रहण करते हैं। लदाकके मनुष्य नानकके मतावलम्बी हैं। इस देशमें कहीं कहीं चीन-तातार, तुर्किस्तान और मङ्गोलियाके मुसलमान रहते हैं, उन्होंने इस देशके दस्यु-व्यवसायी लोगोंको मुसलमान बनाया है।

वर्त्तमान तिब्बत राज्य अक्षा० २७° से ३७° उ० और देशा० ७२° से १०५° पूर्वमें अवस्थित है। इसके उत्तरमें गोबी नामकी विस्तृत मरुभूमि है। इसकी सबसे ऊँची समतल भूमि समुद्रतलसे ४० हजार फुट ऊँची है। उच्च तिब्बतमें इस तरहकी भूमि १२से १३ हजार फुट ऊँची है। तिब्बतको चीना लोग 'चङ्ग' वा 'सितङ्ग' देश कहते हैं। तिब्बत शब्द ढ़-पेइ-तेह (तुबो) शब्दका अपभ्रंश है। तिब्बतके लोग अपने देशको 'पो' वा 'पो-युल' कहते हैं। पो शब्दसे प्राचीन भारतवासियोंने इसे भोटको आख्या दी है। पो शब्द लिखनेमें 'बोद' इस तरह लिखा जाता है। सुतरां उसका भोट शब्द होना असम्भव नहीं है। पो-युलका अर्थ 'पो' देश है, 'पो-प'का अर्थ पो देशीय पुरुष तथा 'पो-मो'का अर्थ पो देशीय स्त्री होता है। तिब्बती लोग मध्य तिब्बतको ही प्रकृतपक्षमें पो कहते हैं। पूर्व तिब्बत साधारणतः खम वा बड़ा तिब्बत नामसे पुकारा जाता है। चीन गवर्मेंटने तिब्बतको दो भागोंमें विभक्त किया है। अग्र-तिब्बत और पश्चात्-तिब्बत। चङ्ग प्रदेश (प्रकृत तिब्बत) साधारणतः चार भागोंमें विभक्त है—पूर्वमें चोयेन चङ्ग (खम), मध्यमें चुङ्ग्, चङ्ग्, पश्चिमोत्तरमें इयू चङ्ग् (प्रकृत गुति) और पश्चिममें नरि (लदाक)।

लदाक प्रदेशमें 'ले' प्रधान नगर है और इकार्दो वलति प्रदेशका प्रधान नगर है। वलतिमें सिन्धु नदीके किनारे वलति और रोङ्गदो, सिङ्ग-गे-चु नदीके किनारे खरटक्सो, तोलतो, पर्कुत शगर नदीके किनारे शगर और श्वेवरु नदीके किनारे ख्येबलु, चोर्वत तथा कि्बस शहर हैं।

तिब्बतवासी हिमालय पर्वतको कङ्गिर कहते हैं।

गिरिपथ—भारतवर्षसे शतद्रु नदीके किनारे हो कर एक रास्ता गया है। यही रास्ता तिब्बतका प्रधान रास्ता माना जाता है और यह मध्य एशिया तक विस्तृत है। गढ़वाल राज्यके मध्य टेहरी प्रदेशमें नीलनघाट गिरिपथ है। अंग्रेजोंके अधिकृत गढ़वाल राज्यमें नीति और माना गिरिपथ, कुमायूं प्रदेशमें योहर गिरिपथ, कुमायूं राज्यके सीमान्तमें दर्म और व्यास गिरिपथ है। इनके सिवा भारतवर्षसे तिब्बतमें प्रवेश करनेका और भी कई एक पथ हैं।

अधिवासी—तिब्बतके लोग मङ्गोलीय जातिके हैं। नेपाल और भूटानके लोग भी इसी जातिसे उत्पन्न

हुए हैं। तिब्बती लोग इन समस्त पार्वतीय प्रदेशोंके मनुष्योंको मोन कहते हैं। लदाकके लोग अपनेको भोटिया बतलाते हैं। गोबि-मरुके दक्षिणमें थोर्प नामक जाति वास करती है। ये उइगुर जातिसे उत्पन्न हुए हैं। होर वा होर-प जाति मङ्गोलियाके इलुथ जातिसे उत्पन्न हैं। ये उत्तर-तिब्बतमें वास करते हैं। मुसलमान लोग साधारणतः ललो नामसे विख्यात हैं।

वेशभूषा—धनी और सम्भ्रान्त लोग ग्रीष्मकालमें चीना-साटन और शीतकालमें उसी साटनके नीचे पशुके रोएँ लगा कर पहनते हैं। साधारण लोग ग्रीष्ममें रोएँके बुने हुए कपड़े और शीतमें भेंड़के चमड़े पहनते हैं। सभी लोग जूता पहनते हैं। साधारण लोग शीतमें प्रायः स्नान नहीं करते तथा कपड़े भी सर्वदा नहीं धोते हैं, इसी कारण उनके शरीरमें थोड़ा जल पड़नेसे ही चमड़ा फट जाता है। शहरके लोग जो प्रायः घरसे बाहर नहीं जाते स्नान नहीं करते हैं और वे स्नान करनेको अपकर्म समझते हैं। यहां कोई भी साबुनका व्यवहार नहीं करता; एक प्रकारके वृक्षके निर्यासको जलमें बट कर उसीसे कपड़ा साफ करते हैं।

व्यवसाय-पार्वतीय प्रदेशके सभी मनुष्य व्यवसाय करते हैं। ये मार्चसे नवम्बर मास तक उपत्यकामें रहते हैं। इन लोगोंकी स्त्रियां कुछ कुछ कृषिकार्य्य करती हैं। उत्पन्न अनाजोंमेंसे पुरुष चावल, आटा, रुई और चीनी तैयार कर तिब्बतको ले जाते और वहांसे सुहागा, नमक और पशम लाते हैं। नवम्बरसे मार्च तक वे पर्वतको छोड़ कर अलकनन्दाके किनारे कुरुप्रयाग और नन्दीप्रयागमें आ कर नजीबाबादके वणिकोंके साथ वाणिज्य करते हैं। ये चमरी गौको बोझ ढोनेके काममें नियुक्त करते हैं। यह पशु १५० से २०० पौण्ड अर्थात् २॥ मन बोझ ढो सकती है। तिब्बतमें पर्वत और नदीमें स्वर्णरेणु पाया जाता है, किन्तु सुहागाका आदर वाणिज्य-व्यापारमें बहुत अधिक है। बहुत दिन हुए, कि यहां चायका व्यवसाय चल रहा है। लगभग चार सेर चायका एक बण्डल २४) रुपयेमें बिकता है। भेंड़ और बकरीके रोएँके लिए इन दो प्रकारके पशुओंका पालन ही यहांके निम्न श्रेणीके अधिवासियोंका मुख्य व्यवसाय है। पशु-पालक उन्हें चरानेके लिए १४।१६ हजार फुट ऊपर तक चले जाते हैं, इससे अधिक ऊपर जानेका साहस नहीं होता।

धर्म—बौद्धधर्म ही समस्त देशका प्रधान धर्म है। छोटे तिब्बतके लोग सिया मुसलमान हैं। दलई-लामा बौद्धधर्मके सर्वप्रधान याजक हैं और वे लासा नगरमें रहते हैं। तशिलामा द्वितीय याजक हैं और वे साम्पु (ब्रह्मपुत्रके किनारे) तशिल् हुनपो नगरमें रहते हैं। साधारण याजक (श्रमण) "गइलङ्ग" नामसे पुकारे जाते हैं। इनके बाद "तोहब" वा "तुप्प" गण धर्मशास्त्र-व्यवसायके शिक्षार्थी हैं। ये ८।१० वर्षकी अवस्थामें किसी धर्ममन्दिरमें शिक्षाके लिये प्रवेश करते हैं। १५ वर्षकी उमरमें इन्हें "तुप्प" उपाधि और २४ वर्षमें "गइलङ्ग" उपाधि मिलती है। बौद्धधर्मके लोग यहां दो सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं—"गेलुग्प" और "शमार"। प्रथम सम्प्रदायके याजक पीले वस्त्र पहनते हैं और विवाह नहीं करते; किन्तु द्वितीय सम्प्रदायके याजक लाल वस्त्र पहनते और विवाह करते हैं। लामा, गइलङ्ग और तुप्पोंके सिवा इनमें और भी कई एक संन्यासी हैं जो सभी तरहके काम काज करते हैं।

उत्सव—किसी गोन्प वा गुम्बके लामाकी मृत्यु-तिथिके उपलक्ष्यमें प्रति वर्ष उसी गुम्बमें उत्सव और रोशनी की जाती है। तशि-ल हुन्पो गुम्बमें प्रतिवर्ष तीन बार इसी तरहका उत्सव होता है। जिस दिन यहां पहले पहल बौद्धधर्म प्रचार हुआ था, उसी तिथिके अनुसार प्रतिवर्ष लासा नगरमें 'लासा मिउहलुम' नामका उत्सव होता है। इसके सिवा फलसुपेच, चुसुपेच, गेसुपेच, मेसुपेच, गोसुङ्गपेच, गैजिपेच, लल्ल्पेच, चिन्दूपेच दुड्पेच, कम्शुरपेच और लुक्कोपेच नामके बारह वार्षिक उत्सव हैं। इन लोगोंमें वार्हस्पत्य-संवत्सर प्रचलित है। १०२५ ई०से इन लोगोंका अब्द शुरू हुआ है।

६३८से ६४३ ई०के मध्य शाक्यकालमें, दूसरे अशोककालमें (शाक्यकी मृत्युके ११० वर्ष बाद) और तीसरे कनिष्ककालमें (शाक्यकी मृत्युके ४०० वर्षसे भी अधिक समय बाद) भारतवर्षमें जो बौद्धग्रन्थ संगृहीत हुए थे, तिब्बतवासी बौद्धोंके ग्रन्थ भी उन्हींके मतानुयायी थे।

संस्कार-विधि—ये न तो शवदाह करते हैं और न गाड़ते, वरन् ऊँचे स्थानमें फेंक आते हैं। गीदड़ मांस खा लेते और हड्डी छोड़ देते हैं। धनीकी देहको तख्ते पर रख कर एक ऊँचे पर्वत पर ले जाते हैं, (श्मशानके उद्देश्यसे ही यह पर्वत व्यवहृत होता है) और वहां मुर्देके शरीरसे वे मांस काट कर अलग करते हैं, बाद हड्डीको चूर चूर कर आगमें डालते और धुआँ उत्पादन करते हैं। धुएँको देख कर गिद्ध, गीदड़ आदि पहुँच जाते और उन्हींको काटा हुआ मांस दे दिया जाता है। प्रधान प्रधान लामाकी मृतदेह उन्हींके गोनपके मध्य नवीन प्रस्तुत समाधिमन्दिरमें गाड़ते हैं। निम्नपदके लामाकी देह जलाई जाती है, किन्तु भस्मराशिको धातव-पुत्तलिकामें बन्द कर मन्दिरमें रख छोड़ते हैं। साधारण लोगोंके लिए पारसियोंकी नाईं दीवारसे घिरा हुआ 'मृतस्थापनस्थान' है। मङ्गोलियामें कोई कोई मृतदेहको जलाते और कोई पत्थरके ढेरमें गाड़ते तथा कोई निर्जन स्थानमें फेंक आते हैं। ये हठात् मृत शिशुकी देहको रास्तेमें फेंक देते हैं।

धर्मविस्तार और धर्ममत—तिब्बतमें बौद्धधर्म प्राचीन वा नदर और आधुनिक वा छिं-दर इन दो भागोंमें विभक्त है। नह-थित्-त्सम्पो राजाके समयसे अधस्तन २६ पुरुष नमरि-स्रोन्-त्सन राजाके राजत्वकाल तक तिब्बतमें बौद्धधर्मकी बात कोई नहीं जानता था। ल्ह-थो-रि-मन्-त्सन नामक राजाके राजत्वकालमें राजप्रासाद पर कई भाग पं कों छ्यग-ग्य पुस्तक आकाशसे गिरी थी, इस पुस्तकका अर्थ नहीं जाननेके कारण तिब्बती लोगोंने इसका नाम 'नं-पोसां-व' रखा। यहींसे बौद्धधर्मका सूत्रपात हुआ। राजाको स्वप्नमें मालूम हो गया, कि उनसे अधस्तन पञ्चम पुरुषमें इस पुस्तकका अर्थ प्रचारित होगा। इसीके अनुसार बोधिसत्व अवलोकितेश्वरके अवतार स्रोन्-त्सन गम्पो राजाके अधिकारके समय उनके मन्त्री खोन-मि-सम्भोट भारतवर्षमें उपस्थित हुए और उन्होंने बौद्धधर्मके नाना शास्त्र अध्ययन किये। वे हिन्दुओंके शास्त्रोंमें भी व्युत्पत्ति लाभ कर तिब्बतको लौट गये। तिब्बतमें जा कर उन्होंने ही तिब्बतकी 'बुचन' नामक अक्षरमालाकी सृष्टि की। मात्रायुक्त नागरी अक्षर और मात्राहीन बुत्तु अक्षरों (काफिरिस्तान वा वाकद्रियामें प्रचलित भाषा और अक्षरमाला)से तोड़ फोड़ कर मात्रायुक्त 'बुचन' अक्षर निकाले गये हैं। यही तिब्बत देशकी प्रथम वर्णमाला है। राजा स्रोन-त्सन-गम्पो नेपालकी राजकुमारीसे विवाह कर वहांसे अक्षोभ्य-बुद्धकी (पञ्च ध्यानी बुद्धमेंसे एक) और चीनकी राजकुमारीके साथ विवाह कर वहांसे शाक्य मुनिकी प्रतिमा लाये थे। ये ही दोनों तिब्बतकी सबसे पहली और प्राचीन बौद्ध-प्रतिमा हैं। रस-थुल-नं-किचुं-लखं नामक मन्दिर बनवा कर राजाने उन दो मूर्त्तियोंको स्थापित किया। इसी मन्दिरके नामानुसार उनकी राजधानीका नाम 'लासा' पड़ा है। थोन्-मि-सम्भोट और उनके अनुगामिगण राजाके आदेशसे तिब्बतके नवसृष्ट अक्षरोंमें तिब्बतीय भाषामें संस्कृतसे बौद्धग्रन्थ अनुवाद करनेमें नियुक्त हुए। सं-ग्ये-फलपो-छे प्रभृति ग्रन्थ ही सबसे पहले अनुवादित हुए थे।

थि स्रोन-दे-त्सन् राजा मञ्जुघोषके अवतार माने जाते थे। उनके राजत्वकालमें महापण्डित शान्तरक्षित, पद्मसम्भव और अन्यान्य भारतवर्षीय बौद्ध-पण्डित तिब्बतमें आमन्त्रित हुए। इन लोगोंके साथ सात श्रमण बौद्ध-संन्यासी भी आये थे, जिनमें वैरोचन प्रधान थे। इनके शिक्षादानसे देशमें शीघ्र ही बहुतसे लोचव (संस्कृतज्ञ तथा दो वा तीन भाषावित् तिब्बतीय लोग) हो गये। लोचवोंमें लुइ-वनपो, सेगोर वैरोचन, आचार्य रिञ्छेन-छोग, येसे वनपो, कछोग शङ् प्रभृति प्रधान हैं। इन्होंने सूत्र, तन्त्र और ध्यानशास्त्रका तिब्बतीय भाषामें अनुवाद किया। ये शान्तरक्षित दुल्व (विनय) शास्त्रसे माध्यमिक शास्त्र तक शिक्षा देते थे। पद्मसम्भव ज्ञानी छात्रोंको तन्त्रशास्त्र सिखाते थे। इस समय ह्वयन् महायान नामक एक चीन देशीय पण्डितने तिब्बत आ कर एक नया मत प्रचार किया। वे कहते थे "सत्य हो वा असत्य, मन जब तक आसक्त रहेगा, तब तक उसको मुक्ति नहीं है; शृङ्खल लोहेका हो या सोनेका वह समान भावसे बांधे रखता है। बिना निरासक्त हुए बार बार जन्मग्रहणसे परित्राण नहीं है।' यह मत प्रचारित होने पर शान्तरक्षितका दर्शनशास्त्र

ज्ञानलुप्त हो गया और ह्वयन महायानका मत बहुत जल्द फैलने लगा। राजा थि-स्रोन-दे-त्सन आकुल हो कर भारतवर्षसे पण्डित कमलशीलको लाये। कमलशीलसे तर्कमें चीन पण्डित परास्त किये जाने पर उनका मत धीरे धीरे लुप्त होने लगा। कमलशील तिब्बतमें पुनः शिक्षा प्रचार करने लगे। शान्तरक्षित और कमलशील दोनों स्वतन्त्र-माध्यमिक मतावलम्बी थे। इनके बाद और कई एक योगाचार्य पण्डित यहां आये थे. किन्तु वे स्वतन्त्र-माध्यमिक मतके विरुद्ध कुछ विशेष नहीं कह सके। राजा रल-पचनके राजत्वकालमें पण्डित जिनमित्रने आ कर अनेक धर्मग्रन्थोंका देशीय भाषामें अनुवाद किया था।

इसके बाद जब लन्‌दर्म नामके राजा सिंहासन पर बैठे, तब उनके यत्नसे कुछ समयके लिये बौद्धधर्म तिब्बतसे जाता रहा। इस समय तीन संन्यासी पल-छेन-छु-बोरिसे भाग कर आमदो देशमें गोन-प-रब-सल नामक लामाके शिष्य हुए। इनके बाद और भी दश मनुष्य लामाका शिष्यत्व ग्रहण कर संन्यासी हो गये। लुम-छल-थिम इनमें प्रधान थे। लनदर्मकी मृत्युके बाद वे लौट कर अपने अपने सङ्घाराममें पहुँचे और पुनः बौद्धधर्मके संस्कारमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने श्रमणोंकी संख्याको बढ़ानेके लिये उ और त्सन् प्रदेशमें कार्य आरम्भ किया। इस तरह पुनः आमदो प्रदेशके लामा गोन परब-सल और लुमि छुल-थिम द्वारा तिब्बतमें बौद्धधर्म प्रतिष्ठित हुआ। लह-लामाके समयमें लोच वरिण छेन म्संपो भारतमें शास्त्रादि सीखनेको आये। उन्होंने लौट कर सूत्र और तन्त्रशास्त्रका अनुवाद किया।

लन्‌दर्म राजाके पूर्ववर्त्ती कालको 'न-दर' और परवर्त्ती कालको 'छि-दर' कहते हैं।

रिणछेन-ससंपोने तान्त्रिक मतावलम्बीके अनेक आचार व्यवहारका भी संस्कार किया। धर्मकी दुहाई देकर बहुतोंने अश्लील व्यवहार अवलम्बन किया था। ये प्रसङ्ग माध्यमिक मतावलम्बी थे।

राजा लह-लामाने भारतवर्षसे धर्मपाल और उनके तीन शिष्योंको बुलाया। पूर्व भारतसे धर्मपाल अपने शिष्य सिद्धिपाल, गुण पाल और प्रज्ञापालके साथ इस देशमें आये। इनसे ग्यल वै-सेब दीक्षित होकर नेपालमें विनयशास्त्र सीखनेके लिये हीनयान मतावलम्बी पण्डित प्रेतकके निकट पहुँचे। इन्होंके शिष्य तीदुल्व (उत्तर देशीय विनयवित्) कह कर प्रसिद्ध है। इसके बाद राजा लहदके समयमें काश्मीरके पण्डित शाक्यश्री बुलाये गये। उनसे कई एक शास्त्र अनुवाद कराया गया। उन्होंने जो आचार-विधि प्रचार की, वह 'पञ्छेन डोम ग्युण' नामसे मशहूर है। आमदो देशीय पञ्छेनने दूसरे प्रकारकी आचार विधि निबद्ध की जो 'लछेन डोम ग्युण' नामसे प्रसिद्ध है। इस तरह विनयशास्त्र ही तिब्बतीय बौद्धधर्मके प्राचीर-रूपमें और डोमग्युण वा आचार-विधि बौद्धधर्मके आनुष्ठानिक आवरण-रूपमें प्रतिष्ठित हुई।

कालक्रमसे नाना पण्डितोंके नाना व्याख्याबलसे तिब्बतीय बौद्धधर्म भारतवर्षके १८ प्रकारके वैभाषिक मतकी नाईं नाना साम्प्रदायिक मतोंमें विभक्त हो गया। इन लोमोंमें अनेक मत प्रवर्त्तयिताके नामसे, अनेक मतप्रचारके प्रथम स्थानके नामसे और अनेक मत-प्रवर्त्तकके भारतीय गुरुके नामसे प्रसिद्ध हो गये तथा बहुतसे मत अपने अपने क्रिया विशेष नामसे भी अभिहित हुए।

समस्त साम्प्रदायिक मत पुनः पुरातन और संस्कृत (गेलुग्‌प) इन दो भागोंमें विभक्त हो गये हैं। पुरातन सम्प्रदायमें निंम-प, कह्‌दम्प, कह-ग्युंप, शि-च्ये-प, जोनंप और निङ्छिप ये सात शाखायें हैं। पुरातन सम्प्रदाय साधारणतः दो भागोंमें विभक्त है· निंम-प और शर्मप। इस भेदकी कथा नाकि तन्त्रशास्त्रमें लिखी गई है। जो सब ग्रन्थ पण्डित स्मृतिके पहले तिब्बतीय भाषामें अनूदित हैं, वेही निं-मप और जो रिन्छेन-ससंपोसे अनूदित हैं, वेही शर्मप कहलाते हैं। मञ्जुश्रीमूल तन्त्रोंके राजा थि-स्रोनके राजत्व कालमें अनूदित होने पर भी वे शर्मतन्त्रमें गिने जाते हैं। इस तरह और भी दो एक गोलमाल रहने पर भी रिन्छेन्-ससंपोही शर्म तन्त्रके प्रतिष्ठाता कह कर सर्वत्र स्वीकृत हुए। लोचव रिन्छेन्-ससंपोने प्रज्ञापारमिता, माट और पित्र तन्त्रका प्रचार किये। सर्वोपरि योगतन्त्र

उन्होंके द्वारा तिब्बतमें प्रचार किया गया। गो नामक तान्त्रिक पण्डितने नागार्जुनके मतसे समाजगुह्य मतका प्रचार किया और सर्प नामक तान्त्रिक पण्डितने पितृ-तन्त्रके अनुसार समाज गुह्यमत, मातृतन्त्रके अनुसार महामाया अनुष्ठान, वज्रहर्ष और सम्वर-अनुष्ठान विधि प्रचलित की। ये समस्त लोचवोंके प्रतिष्ठित तान्त्रिक अनुष्ठान और विधि 'शर्मतन्प' वा नव्यतन्त्र नामसे ख्यात हैं।

राजा स्रोन् त्सन-गम्पो स्वयं धर्मोपदेष्टा थे। इनके छात्र जो सब पुस्तक व्यवहार करते थे, वे 'क्योरिम' नामसे और अवलोकितेश्वरके उपदेशसमूह 'झोगरिम' नामसे पुकारे जाते थे। स्रोन्त्सन-गम्पोने ही सबसे पहले 'ओँ मणि पद्मे हुँ' यह मन्त्र प्रचलित किया तथा जलविधिकी शिक्षा दी। वेही भारतवर्षसे कुशर और शङ्कर ब्राह्मण नामके दो आचार्योंको तथा काश्मीरसे पण्डित शीलमञ्जुको लाये। इनके पाँचवें पुरुषके बाद राजा थि-स्रोन् पहले शान्तरक्षितको लाये। इन्होंने देशीय लोगोंके धर्माचरणकी अवस्था देख कर उन्हें कुछ कुछ अनुष्ठानादि सिखानेके लिये पहले 'दशधर्म' अर्थात् प्राणी हिंसानिषेध, चौर्यनिषेध, व्यभिचारनिषेध, मिथ्या कथननिषेध, परनिन्दा वा कुवाक्यवचननिषेध, वृथा वाक्यव्ययनिषेध, लोभनिषेध, अमङ्गलचिन्तानिषेध, सत्यका अपलापनिषेध, इन दश विधियोंका प्रचार किया। इसके बाद तन्त्रमत सिखानेके लिये शान्तरक्षितके अनुरोधसे वे उद्यानसे पद्मसम्भवको लाये। इन्होंने यहां कूटागारकी नाईं एक विहार स्थापन किया। पद्मसम्भवने राजाको योगशिक्षा दी। राजा और छब्बीस संन्यासी विविध योगसे सिद्धि लाभ कर नाना अलौकिक क्षमतापन्न हुए। बाद धर्मकीर्त्ति, विमलमित्र, बुद्धगुह्य, शान्तिगर्भ प्रभृति पण्डित इस देशमें आये। धर्मकीर्त्तिने वज्रधातुयोग नामक तान्त्रिक आचार और विमलमित्रने तन्त्रके गुप्त रहस्यकी शिक्षा दी। निंमके मतसे नौ प्रकारके अनुष्ठान हैं—

(१) नं-थो (२) रं-ग्यल् (३) च्यव्-सेम (४) क्रिया (५) उप (६) योग (७) क्येप महायोग (८) लुं अनुयोग (९) झोग-छेन्पो-अतियोग।

इनमेंसे पहले तीन निर्माणकाय-बुद्धके (बुद्ध शाक्यसिंह) उपदेश हैं। इन्हींका नाम साधारण 'यान' है। दूसरे तीन सम्भोगकाय वज्रसत्वके उपदेश हैं, जिनका नाम वाह्य वा वज्र तन्त्रयान रखा गया है। शेष तीन धर्मकाय सामन्तभद्र वा कुन्तत-संपोके उपदेश हैं और ये ही अनुत्तर अन्तरयानत्रय नामसे ख्यात हैं। कुन्तत-संपो यहांके सर्व प्रधान बुद्ध माने जाते है। वज्रधर संस्कृतके मतसे सम्प्रदायियोंमें (गेलुगप) प्रधान बुद्ध हैं। वज्रसत्व निंमके मतसे दूसरे और शाक्यसिंह बुद्धके अवतार कह कर तीसरे बुद्ध रूपमें सम्मानित होते हैं। वाह्य और अन्तर तन्त्रोंमें बुद्धशाक्यसिंह स्वयं क्रियातन्त्रोंके उपदेष्टा हैं और उप वा कर्मतन्त्र तथा योगतन्त्र वैराचनसे उपदिष्ट हैं। पञ्च जाति वा ध्यानी बुद्धोंके नाम—(१) अक्षोभ्य (२) वैराचन (३) रत्नसम्भव (४) अमिताभ और (५) अमोघसिद्ध। प्रत्येकमें बुद्ध अवस्थाके पांच ज्ञानोंका प्रतिमा स्वरूप है। वज्रधर अनुत्तर वा अन्तर तन्त्रके उपदेशकर्त्ता हैं। निंमके मतानुसार लामाकी नौ श्रेणियां हैं—

(१म) बुद्ध-जैसे शाक्यसिंह, कुन्तत संपो, दोर्जेसेम्व, अमिताभ। (२य) रिगजिन। जो शैव कालमें ही महत् गुणसम्पन्न और पीछे अपनी चेष्टा और अध्यवसायसे महाविद्वान् और अन्तमें विद्याधरियोंसे (ये से खहदाम) से अनुप्राणित होते हैं; जैसे-पद्म सम्भव, श्रीसिंह, मानपुर और अन्यान्य बोधिसत्वगण। (३य) गं सग-नन वा अनुनुप्राणित संन्यासी, जो बहुत यत्नसे गुह्य विषयकी रक्षा करते हैं। (४र्थ) कहब्व्-लुन तन-स्वप्नादिष्ट और स्वप्नानुप्राणित लामागण। (५म) ले-थो-तेर—जो सब लामा गुप्त धर्मपुस्तक पाकर विना शिक्षककी सहायतासे उन्हें समझ सकते और लिख सकते हैं। (६ष्ठ) मोन-लम तंग्य-जो सब लामा उपासनामें सिद्धि लाभ कर ऐश्वरिक शक्ति पाते हैं। इन छह उच्च श्रेणीके भेदके अतिरिक्त आनुष्ठानिक अवस्थाके और तीन भेद हैं;—(१) रिंकहम् (सिद्धिकी दूरस्थ श्रेणी) (२) ने-तेर्म (सिद्धिकी निकटस्थ श्रेणी) और (३) सब-मो,दग-भन (गम्भीर भाव श्रेणी) पहली श्रेणीमें पुनः तीन उपविभाग हैं—ग्यु थुल, दुपैदो और सेमछोग।

ग्यु थुल श्रेणी—ऊ-चं और खम प्रदेशमें व्याप्त हैं।

पण्डित विमलमित्र इस श्रेणीके प्रतिष्ठाता हैं। दुपैदो श्रेणीका मूलशास्त्र दो प्रकारका है-मूलतन्त्र और वाक्य तन्त्र। भारतीय पण्डित दानरक्षितने काश्मीरके धर्मबोधि और वसुधर नामक दो पण्डितोंको उक्त दो पुस्तकोंकी शिक्षा दी। पीछे उन्होंने ही इसे तिब्बतमें प्रचार किया।

सेम-छोग श्रेणी भारतीय पण्डित कालाचार्यके अवतार रीन-सेम लोचवसे स्थापित हुई। हयग्रीव (तामन) इस श्रेणीके तान्त्रिक देवता हैं। ये क्रोधप्रकृतिक और दैत्यविनाशक हैं। इन लोगोंके मतानुसार जम्पल कु, पद्मसुव, थुग्सदुचि, योतनन और कुर्पथिनले नामक पञ्च देवोपासना मोक्षसाधक हैं। जम्पल-कु नामक देवताकी पूजा शान्तिगर्भसे प्रवर्त्तित है। इस देवताको मञ्जुश्रीके प्रतिरूप मानते हैं, किन्तु प्रतिमाकी आकृति भयङ्कर अनेक मस्तकयुक्त और बाहुमें बुरी तरहसे आलिङ्गित स्त्री मूर्त्ति है। यंदग नामक देवोपासना हुङ्कार नामक तान्त्रिक योगीसे प्रतिष्ठित है। हयग्रीव, फूर्प और दुचि उपासना विमलमित्रसे स्थापित हुई हैं।

अनुत्तरयानतन्त्र ही अभी नेपालमें प्रचलित है। इसका दार्शनिक भाव बहुत बड़ा है। अभियोग इसका प्रधान अनुष्ठान है। इसके सेमदे, लोनदे और मननगदे नामक तीन प्रकारके शास्त्रग्रन्थ हैं। सेमदे ग्रन्थ १८ हैं, जिनमेंसे ५ वैरोचनसे और १३ विमलमित्रसे बनाये गये हैं। लोनदे ग्रन्थ ८ हैं, जिनके रचयिता वैरोचन और पंमिक्रम गोनवे हैं। लामा धर्मबोधि और धर्मसिंह इस शास्त्रके प्रधान उपदेशक थे। मनगदे शास्त्रके तीन ग्रन्थ सुन्दर आलङ्कारिक भाषामें बने हैं। विमलमित्रने इसे राजा थिस्रोनको सिखाया। बुद्ध वज्रधरसे पहले पहल भारतवर्षके पण्डित आनन्दवज्रने इसे पाया था। पीछे उन्होंने यह अपने शिष्य श्रीसिंहको दिया। उन्हींसे पद्मसम्भवने इसे पाया।

इतिहास—शाक्यसिंहके पहले कुरु पाण्डवके युद्ध कालमें रूपति नामक एक क्षत्रिय राजा युद्धमें भय खाकर तुषारावृत तिब्बतको भाग गये। वे कौरवके पक्षके सेनापति थे। दुर्योधनके भयसे वा पाण्डवके पश्चादानुसरणके भयसे उन्होंने स्त्रीके भेषमें एक हजार अनुचरोंके साथ पुग्यल देशमें आश्रय लिया। यहांके आदिम अधिवासियोंने उनको राजा मान लिया। वे अपने नम्र और शान्त प्रिय व्यवहारसे उन लोगोंके श्रद्धाभाजन हो कर राज्य करने लगे। इसके बाद ईसा जन्मके चारसौ वर्ष पहले तक तिब्बतका और कोई इतिहास जाना नहीं जाता और न तो किसी प्रवाद ही सुना जाता है। ई० सनके पूर्व चौथी शताब्दीका विवरण पढनेसे मालूम होता है, कि रूपति वंश ध्वंस होने पर तिब्बत कईएक छोटे छोटे स्वाधीन भागोंमें विभक्त हो गया।

भोट-पण्डित बुतानकी तालिकाके अनुसार बुद्धनिर्वाणके ४१७ वर्ष बाद अर्थात् १२६ ई०की पहले भारतवर्षमें तिब्बतके प्रथम क्षत्री राजा नह-थि-तसम्पोने जन्म लिया। उनका भारतीय नाम क्या था, वह तिब्बतके इतिहासमें नहीं लिखा है। उनके पिता प्रसेनजित् कोशल देशके राजा थे। प्रसेनजित्के पञ्चम पुत्रने एक अद्भुत आकारमें जन्म ग्रहण किया। तुर्कोंकी नाईं उनका गात्र वर्ण, भौंके रोएं नीलवर्ण, दोनों आंख असमान और उंगलियां जलचर प्राणीकी नाईं पतली चमड़ीसे परस्पर संयुक्त थीं। सद्योजात शिशुके सभी दाँतोंका पूर्ण विकाश हो गया था, और वे शंखके जैसा सफेद दीख पड़ते थे। प्रसेनजित्ने इस पुत्रको कुलक्षणाक्रान्त समझ कर उसे तांबेके बरतनमें रख गङ्गामें बहा दिया। एक कृषकने उसे निकाल कर प्रतिपालन किया। वह कृषक भोलाभाला मनुष्य था, अतः उसने यह पुत्र उसके औरससे उत्पन्न हुआ है ऐसा कहीं भी प्रचार न किया, वरन् वह उसे राजकुमार कहा करता था। जब लड़का बड़ा हुआ तब उसने अपना जन्म वृत्तान्त सुन मन ही मन बहुत क्षुब्ध हो प्रतिज्ञा की, "राजपुत्र होकर मैंने जन्म लिया है, किन्तु अदृष्ट दोषसे कृषकके घरमें कृषक-वृत्तिमें समय व्यतीत करता हूं, इससे मरना ही अच्छा है। यदि राजा हो सकूं तभी मैं अपना जीवन रख सकता हूं, अन्यथा इस कष्टदायक जीवनको किसी हालतसे रख नहीं सकता।" कुछ दिन बाद वह बालक प्रतिपालकके घर और जन्मभूमिको छोड़ कर चुपके जङ्गलमें भाग गया। जङ्गली फलसे जीवन धारण कर वह लड़का कुछ दिन पीछे हिमालय पर्वतको पार कर उससे और भी उत्तरको ओर जाने

लगा। चिरतुषारावृत पर्वतमालाको पार करनेमें उसे कष्ट होने लगा सही, किन्तु उसके लिये मरना और जीना दोनों बराबर था, इस कारण वह क्यों हतोत्साह होता? क्रमशः आर्य अवलोकितेश्वरकी कृपासे बालक तिब्बतके तुषारमण्डित लहरि पर्वत पर पहुंचा। इस स्थानकी शोभासे मुग्ध होकर वह क्रमशः पार करता हुआ चारों ओर चार पथविशिष्ट चल-अव नामक मालभूमिमें जा पहुंचा। यहांके लोगोंने उसके महिमान्वित आकारको देखकर उससे परिचय पूछा। लड़का उस देशकी भाषा तो नहीं जानता था, केवल इशारेसे उन्हें सूचित किया कि वह एक राजपुत्र है और लहरि पर्वतकी ओरसे आ रहा है। तिब्बतवासियोंने समझा कि यह ऊपरसे आ रहा है, अतः यह बालक देवताके सिवा और दूसरा कोई नहीं हो सकता। सभीने उन्हें दण्डवत् कर उस देशके राजा होनेके लिये उनसे अनुरोध किया। इस पर वह बालक भी राजी हो गया। बाद वे उन्हें एक काठके आसन पर बिठा अपने कन्धे पर चढ़ाकर देशको ले गये। आसन पर बैठ कर मनुष्यके कन्धेसे ढोये जानेके कारण लड़केका नाम नहथि-सम्पो (नह-पीठ। थ्रि वा थि, काठका आसन, त्सम्पो=राजा) रखा गया। अभी जहां लासा नगरी अवस्थित है, उसी जगह नये नृपतिने यम्ब-लगर नामकी एक बड़ी अट्टालिका निर्माण की।

उस नवीन नृपतिने नम-मूग-मूग नामक एक तिब्बतीय रमणीके साथ विवाह किया। अत्यन्त प्रशंसा और अपक्षपातसे प्रजाको पालन करते हुए अन्तमें वे परलोकको सिधारे। पीछे इनके पुत्र मूगथि-तसम्पो राजा हुए। नये राजासे निम्न सात राजा "नमखि" नामसे इतिहासमें अभिहित हुए हैं। आठवें राजा दि-गुम-तसम्पोने लुतसनमेर चम नामकी कन्याको व्याहा। इसके गर्भसे राजाके तीन पुत्र हुए। राजमन्त्री लोनमने उच्चाभिलाषके वशमें आ कर विद्रोह ठान दिया। घमसान लड़ाई हुई, राजा मारे गये। इसी युद्धमें तिब्बतमें पहले पहल थ्रुव (लौह-वर्म) व्यवहृत हुआ था। थम प्रदेशके मारखम नामक स्थानसे यह कवच पहली बार इस देशमें लाया गया था। मन्त्री लड़ाईमें जय प्राप्त कर राजा बन बैठे और उन्होंने एक विधवा रानीसे विवाह कर लिया। तीनों राजकुमारने कोनपो नामक स्थानमें भाग कर प्राण रक्षा की। नई रानी और राजकुमारोंकी माताने योग-बलसे यह-लह-तसम्पो नामक उपदेवताको प्रसन्न कर एक पुत्र प्राप्त किया। यह पुत्र कालक्रमसे मन्त्रीके पद पर अभिषिक्त हुए। बाद उन्होंने दुष्ट मन्त्रिराजको निहत कर उन भगे हुए तीनों राजकुमारोंको अपने देशमें बुलवा मंगाया। उनमेंसे बड़े चा-थ्रि-तसम्पो राजा हुए। इन्होंने रोम-श नामकी एक कन्यासे शादी की। इस वंशके राजा पहलेसे २७ पुरुष तक "बोन" नामक धर्मावलम्बी थे। इस धर्ममें अनेक प्रकारके उपदेवताओंकी उपासना है। पहलेसे आठवें राजा दि-गुम-तसम्पोके राजत्व-कालमें इस धर्मकी विशेष उन्नति हुई। इन राजाओंके नाम रखते समय उनके पितामाताके नामका कुछ कुछ अंश लिया जाता था। दि-गुम-तसम्पो और उनके परवर्त्ती एक राजा तिब्बतमें पेर्क्रि-दिं नामसे पुकारे जाते थे। राजाकी मृत्युके समय रानी अपने स्वामीको ले कर स्वर्गको चली जाती थी, उनका एक भी चिह्न पृथ्वी पर नहीं रह जाता था। च-थ्रि-तसम्पोके परवर्त्ती छह राजा 'सैलग' (भौमवर) नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध हुए। इनके बाद ८ राजाओंके नामके पहले "दे" उपसर्ग लगाया गया जो संस्कृत 'सेन' शब्दार्थ प्रकाशक है। उनके बाद तो-रि-लोंतसन नामके राजा हुए। इनसे पांच राजा तसन' (राजा) नामसे विख्यात हुए। यद्यपि इस समय भी बोनधर्मका प्रभुत्व प्रबल था, तो भी बौद्ध धर्मका बिन्दुमात्र तिब्बतमें प्रचारित न हुआ।

४४१ ई०में तिब्बतके सुविख्यात राजा लह-थो-थो-रि ननतसनने जन्म ग्रहण किया। ये बोन धर्मके प्रधान देवता कुन्तु तसम्पके अवतार माने जाते थे। ये इकीस वर्षकी अवस्थामें राजसिंहासन पर बैठे। राजा लहथो-थोरिके ८० वर्षकी उम्रमें ५२१ ई०को यम्बूलगं प्रासादके ऊपर आकाशसे एक कीमती सन्दूक गिरा। उसमें 'दोदे समतोग' (सूत्रान्तपिटक) 'सेक्यि-कोर्त्तन' (सोनेकी बनी हुई एक छोटी वेदी) "पनको-छ-ग्य छेन पो" (सामुद्रिक शास्त्र) और 'चिन्तामणि नपो (चिन्तामणि

और पात्र) भरे थे। इन्होंने ही इस तरह तिब्बतके राजाओंमें सबसे पहले देव प्रसाद प्राप्त किया तथा तिब्बती लोगोंसे देवसम्मान पाया है। एक समय राजा मन्त्रीके साथ इन द्रव्योंकी आलोचना कर रहे थे, इतनेमें आकाशसे देववाणी हुई, कि उनसे निम्न चौथे पुरुषके बाद पाँचवें राजाके समय इन समस्त विषयोंका अर्थ प्रकाशित होगा। इस पर राजाने यत्नपूर्वक उन्हें सं-बनं-पो (अपरिज्ञात द्रव्य) नाम देकर राज-प्रासादमें रख दिया और उसी दिनसे वे प्रतिदिन उनकी पूजा करने लगे। ५६१ ई०को १२० वर्षकी अवस्थामें उनकी मृत्यु हुई। इनके प्रपौत्र जन्मके ही अंधे थे, किन्तु कोई उत्तराधिकारी न रहनेके कारण अनेक तर्कवितर्कके बाद अन्ध राजकुमार ही राजसिंहासन पर बैठे। इनके अभिषेकके समय उन समस्त देवदत्त द्रव्योंकी पूजा करनेसे उनका अन्धत्व दूर हो गया। आंखके खुलते समय सबसे पहले उन्हें मालूम पड़ा, कि लग्रि पर्वत पर एक भेंड़ भागा जा रहा है। इसी कारण इनका नाम तग्रि लन-सिग रखा गया। इनके बाद इनके पुत्र नम-रि-स्रोन-तसन राजा हुए। उनके राजत्व कालमें तिब्बती लोगोंने चीनसे चिकित्साशास्त्र और अङ्कशास्त्र पहले पहल सीखा। इस समय पशुपालन और गोधनका इतना आदर था और अधिकता भी इतनी थी, कि राजाने अपना राजप्रासाद बनाते समय गाय और चमरीके दूधसे सभी मसाला भिगो दिया था। इन्होंने (लासाके निकटवर्त्ती २० मील विस्तृत) ब्रगसुम-दिनम नामक ह्रदके किनारे एक सुन्दर द्रुतगामी और बलशाली घोड़ा पाया। यह घोड़ा उनका बहुत प्यारा था और इसका नाम दोवंचं रखा गया। एक दिन इस घोड़े पर सवार हो एक दुर्द्दान्त चमरीका शिकार कर लौटते समय राजाने विख्यात चम-गि-छ नामक लवण क्षेत्रका सबसे पहले आविष्कार किया। ६३० ई०में इनकी मृत्यु होने पर इनका पुत्र सुविख्यात अद्भुतकर्मा स्रोन-त्सन-गम्पो राजा हुए। इनके समय तिब्बतमें एक नया युग आविर्भूत हुआ।

स्रोन-त्सन-गम्पोने ६००से ६१७ ई०के मध्य जन्म ग्रहण किया था। इनके सिर पर एक उभड़ा हुआ छोटा चिह्न था, जिसे लोग अमिताभ बुद्धकी मूर्त्तिका चिह्न अनुमान करते थे। वह चिह्न बहुत साफ साफ दीखता तथा उससे ज्योति भी निकलती थी, इसी कारण राजा उसे एक लाल साटनकी टोपीसे सदा ढके रहते थे। तेरह वर्षकी अवस्थामें राजसिंहासन पर बैठे। इनके राजत्वकालमें अनेक पर्वतगुहा और पर्वतके नाना स्थानोंसे अवलोकितेश्वर, तारा, हयग्रीव प्रभृति देवताओंकी स्वयम्भू मूर्त्तियां आविष्कृत हुईं। इनके अलावा बहुतसे उत्कीर्ण शिलालेख भी पाये गये, जिनमें 'ओं मणिपद्मे हुं' यह षड़क्षर मन्त्र भी खोदा हुआ था। राजा उक्त देवमूर्त्तियोंका दर्शन कर अपने हाथसे पूजन करते थे। अभी जिस जगह पोताला प्रासाद अवस्थित है, उस जगह राजाने नो-खनका एक प्रासाद निर्माण किया। उन्हें बहुतसे सैन्यदल थे और विद्याबलसे उन्होंने अनेक भूत-प्रेतोंको वश कर उनका एक सैन्यदल बना लिया था। ज्ञान और बलवीर्यसे राजाने अधिक प्रसिद्धि पाई थी। प्रतिवेशी राजगण इन्हें बहुमूल्य उपहार भेजते थे। राजा भी उन लोगोंकी सभामें दूत प्रेरण करते। इनके राज्यकालके पहले भी तिब्बतमें कोई लिखनप्रणाली-सम्वलित भाषा नहीं थी; किन्तु राजा विदेशी राजाओंको उन्हींके देशोंकी भाषामें पत्रादि लिख कर मित्रता रखते थे। संस्कृत, चीन और नेवारी (नेपालकी) भाषामें उनका पूरा प्रवेश था। राजाने आस पासके कई एक प्रदेशोंको लड़ाईमें जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया। अन्तमें वे लड़ाइकी ओरसे ध्यान हटाकर धर्मोन्नतिकी ओर विशेष ध्यान रखने लगे।

राजा स्वयं बौद्धप्रिय और भक्त थे। वे स्वराज्यमें बौद्धधर्म प्रचारके लिये विशेष यत्नवान् हुए। उन्होंने देखा, कि लेखनप्रणालीविशिष्ट भाषाके बिना धर्म प्रचारकी सुविधा नहीं हो सकती तथा देश शासनके लिये राजविधि भी प्रचारित नहीं हो सकती है। यह स्थिर कर उन्होंने अनुके पुत्र थोन्-मि-सम्भोटको १६ सहचरोंके साथ भारतवर्षमें संस्कृत भाषा और बौद्धधर्म-शास्त्र सीखनेके लिए भेजा। राजाने उन लोगोंको संस्कृत अक्षरके आधार पर तिब्बतीय भाषाके उच्चारणके अनुसार उस भाषाके लिए उपयुक्त वर्ण निकालनेकी चेष्टा करनेको कहा।

सम्भोट आर्यावर्त्तमें पहुँच कर पण्डितोंको बहुत सुवर्णादि उपहार दे लिविकर नामक बौद्ध पण्डितोंसे उक्त भाषा सीखने लगे। सम्भोटने बहुत थोड़े ही दिनोंमें संस्कृत भाषा और ६४ प्रकारकी लिपिप्रणाली तथा पण्डित देवसिंहके निकट कलाप, चान्द्र और सारस्वत व्याकरण सीख लिया। इसके बाद उन्होंने तथा सहचरोंने २४ बौद्ध प्रवचन और रहस्य ग्रन्थ अध्ययन किये। देशमें लौट कर उन्होंने विद्या और ज्ञानदेवता मञ्जुश्रीका पूजन किया। बाद तिब्बतीय भाषा लिखनेके लिये सम्भोटने "उ चन्" (मात्राविशिष्ट) वर्णमालाकी सृष्टि की और उसी भाषामें प्रथम व्याकरण-शास्त्र "सुमचु दग यिग" प्रणयन किया। राजाके हुक्मसे ज्ञानवान् सभी मनुष्य लिखना पढ़ना सीखने लगे और क्रमशः उन नये अक्षरोंकी सहायतासे धर्मग्रन्थादि संस्कृतसे तिब्बती भाषामें अनूदित होने लगे। राजाने प्रजाको धर्मनिष्ठ करनेके लिए निम्नलिखित १६ आदेश प्रचार कर उन्हें उसी नियमके अनुसार चलनेको बाध्य किया।

(१) कोन-छोगमें (ईश्वरमें) विश्वास करो।
(२) धर्मानुष्ठान और धर्मशास्त्रका पाठ करो।
(३) पितामाताकी सेवा करो।
(४) ज्ञानीकी सेवा करो और विद्वान्‌को उच्चासन दो।
(५) उच्च वंशीय तथा वयोवृद्धका सम्मान करो।
(६) विनय और न्यायी बनो।
(७) धनधान्यको अच्छे कामोंमें खर्च करो।
(८) बड़ोंका पदानुसरण करो।
(९) उपकारीका प्रत्युपकार और उनके प्रति कृतज्ञ हो।
(१०) सद्भाव और प्रीति रख कर हिंसा द्वेष छोड़ो।
(११) आत्मीय स्वजन बन्धु बान्धवोंकी सेवा सुश्रुषा करो।
(१२) देशके हित साधन और देशके कामोंमें तत्पर हो।
(१३) सच्ची तौलका (बटखरा) व्यवहार करो।
(१४) स्त्रियोंकी बात मत सुनो।
(१५) नम्रता और सभ्यताका व्यवहार सीखो।
(१६) धैर्य और नम्रतासे विपद् और क्लेशका सहन करो।

इन समस्त व्यवहारोंसे प्रजाका सुख स्वच्छन्द और शीलता दिनों दिन बढ़ने लगी।

कहा जाता है, कि राजा स्रोन त्सन-गम्पोने भारत-महासागरके किनारेसे अवलोकितेश्वरकी नागसार-चन्दकी स्वयम्भू प्रतिमा प्राप्त की थी।

राजा नेपालाधिपतिने ज्योतिर्वर्माकी कन्यासे विवाह किया। यौतुकमें राजाको सात अमूल्य द्रव्य मिले थे, जिनमेंसे अक्षोभ्य बुद्ध और मैत्रेयकी प्रतिमा, तारा देवीकी चन्दन प्रतिमा तथा रत्नदेव नामक वैदुर्य मणि प्रधान थे।

बाद भोटपतिने चीनराज सेङ्ग-त्सन-पोकी कन्या हुणषिन कुमारीको अपने प्रधान मन्त्री गरके कौशलसे मङ्गा कर उससे विवाह किया। चीन राजकुमारी अपने साथ बुद्धमूर्त्ति, एक बौद्ध धर्मग्रन्थ तथा चिकित्सा और ज्योतिषशास्त्र लाई थी।

भोटके अधिवासी राजा स्रोन-त्सन गम्पोको चेन रेससिगका (अवलोकितेश्वरका) अवतार और उपरोक्त दो रानियोंको तारादेवीसी मानते थे। यथार्थमें इन्हीं तीनोंके यत्नसे तिब्बतमें बौद्धधर्म एक ऊँचे शिखर पर पहुंच गया था। राजाने १०८ बड़े बड़े मन्दिरोंका निर्माण कर उनमें बुद्धमूर्त्ति प्रतिष्ठित की थीं। २५ वर्षकी उम्रमें उन्होंने मञ्जुश्रीका भवन पेकिनके उत्तरमें १०८ मठ बनानेके लिये अपने मन्त्रीको भेजा था।

६३९ ई०में स्रोन-त्सनने तिब्बतकी विख्यात लासा नगरी स्थापन की। सभी प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थोंका अनुवाद करानेके लिये उन्होंने भारतसे कुशर और शङ्कर पण्डितको, नेपालसे पण्डित शीलमञ्जुको और चीनसे ह्व-यन महो-तषे नामक प्रसिद्ध आचार्यको बुलवाया था।

चीन-राजकुमारी और नेपाल-राजकुमारीसे कोई सन्तान न हुई, इसीसे स्रोन-त्सनने जी-थि-कर और थि-चन् नामकी दो राजकुमारियोंका पाणिग्रहण किया। पहलेके गर्भसे मन-स्रोन-मन-तसन और दूसरेसे गुन-गुन-तसन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। गुन-रि जब १३ वर्षका हुआ, तब स्रोन-त्सनने उसे राजा बनाया और आपने वानप्रस्थ अवलम्बन किया। किन्तु दुःखका विषय है, कि १८ वर्षकी अवस्थामें राजकुमारकी हठात्

मृत्यु हो गई। अतः स्त्रोन-त्सन पुनः राजदण्ड धारण करनेको बाध्य हुए। शेषावस्थामें उन्होंने अपना समय केवल शास्त्रचर्चा, धर्मचिन्ता और मन्दिर-प्रतिष्ठामें बिताया। बुढ़ापेमें यथासमय वे अमिताभके धर्मकार्यमें संयुक्त हुए। उनकी दो प्रधान स्त्रियां भी तुषित लोकमें जा कर उनके साथ मिलीं। इस लोकको छोड़नेके पहले राजा हयग्रीव और यमपूजाविधि प्रचार कर आये।

उनके बाद मन-स्त्रोन् मन त्सन राजा हुए। इधर चीनराजने देवावतार भोटराजका मृत्युसम्वाद पाकर तिब्बत पर अधिकार करनेके लिये बहुतसी सेनाएँ भेजीं। लासाके निकट घमसान युद्ध हुआ। युद्धमें चीन-सैन्य परास्त हुई। तिब्बतीय सेनाने भी चीन राज्य पर आक्रमण करनेके लिये शत्रुओंका पीछा किया था। किन्तु इस बार वे चीनासे सम्पूर्ण रूपसे पराजित हुए। इस युद्धमें वृद्ध सेनापति गरने प्राणत्याग किया।

चीनाने आकर लासा नगरी पर आक्रमण किया। तिब्बती लोगोंने बहुत कष्टमें चीन-राज-नन्दिनीसे लाई हुई सोनेकी शाक्यमूर्त्तिको छिपा रखा।

चीनाने राजभवन जला डाला। अक्षोभ्य मूर्त्ति भी वे अपने साथ लेते आते थे, किन्तु बहुत भारी होनेके कारण एक दिनके पथ पर ला उसे वहीं छोड़ कर चले गये।

२७ वर्षकी अवस्थामें मनस्त्रोनकी मृत्यु हुई। पीछे उनका छोटा लड़का दु-स्त्रोन्-मनपो राज्यसिंहासन पर बैठा। दु-स्रोनके राज्य कालमें ७ महावीर तिब्बतमें आविर्भूत हुए थे।

दु-स्त्रोनके पीछे उनके पुत्र मेग-अगत्षोम राजा हुए। उन्होंने अपने प्रपितामह स्त्रोनसनका लिखा हुआ एक ताम्रानुशासन पाया था। उसके पढ़नेसे वे जान गये, कि उन्हींके समयमें तिब्बतमें बौद्धधर्म समधिक प्रबल होगा। अभी उस अनुशासन-वाक्यको सुसिद्ध करनेके लिये उन्होंने कैलासवासी भारतीय पण्डित बुद्धगुह्य और बुद्धशान्तिको बुला भेजा। दोनों पण्डितोंने आनेसे अस्वीकार किया, किन्तु जो दूत उन्हें बुलाने गये थे, वे पांच भाग महायान-सूत्रान्त कण्ठस्थ कर आये। पीछे उन्होंने ही उसे तिब्बती भाषामें प्रचार किया। राजाने पांच बड़े बड़े मन्दिर निर्माण कर उनके हरएकमें एक भाग करके महायानसूत्रान्त रखा। इसके सिवा उन्हींके यत्नसे सेरहोड़ तम्प प्रभृति बाई एक शास्त्र अनुवादित हुए। उस समय भी तिब्बतमें कोई संन्यासाश्रम ग्रहण नहीं करता था। वे भिक्षुसङ्घ स्थापन करनेके लिये नेपाल (लियुल) से बहुतसे बौद्धसंन्यासीको लाये थे। उन्होंने एक अत्यन्त वृहत् वैदुर्यमणिको पाया था। प्रवाद है, कि उस तरहका बड़ा वैदुर्य और किसीके पास न था। उन्होंने जन-राजकुमारी थि-तसुकके साथ विवाह किया। उस रानीसे उनके जोनतषा-लापोन नामक एक अत्यन्त रूपवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने उस पुत्रके विवाहके लिये अपने राज्यके चारों तरफ एक रूपवती कन्या ढूंढ़नेको आदमी भेजा, किन्तु उपयुक्त कन्या कहीं भी न मिली। अन्तमें चीनसम्राट् वैजूनके निकट दूत भेजा गया। उनकी कन्या काइम-यन असामान्या सुन्दरी थी। राजकुमारीने भी तिब्बतके राजकुमारके अनुपमरूपकी कथा सुन उनसे विवाह करनेकी इच्छा प्रगट की। बाद वह पिताकी आज्ञा ले तिब्बतको चली। किन्तु तिब्बत पहुंचनेके पहले ही तिब्बतके किसी सामन्तने विश्वासघातकतासे राजकुमारको मार डाला था। राजा अगतषोमने शीघ्र ही यह निदारुण सम्वाद चीन राजकुमारीको कहला भेजा। यह सुन कर राजकुमारीको शोक-सीमा न रही और वह फिर चीन देशको न लौटीं। तिब्बतका तुषार राज्य और शाक्यमूर्त्ति देखनेके लिये वह यहीं ठहर गईं। भोटराजने उस कन्याका खूब सत्कार किया। इसी राजकुमारीके यत्नसे ही तीन वर्षके बाद पुनः अक्षोभ्य मूर्त्ति निकाली गईं।

उस चीनकुमारीके रूप पर भोटराज भी मोहित हो गये। उन्होंने उससे विवाह करनेकी इच्छा प्रगट की। पहले तो चीन राजकुमारी सहमत न हुईं, लेकिन पीछे न मालूम क्या सोच कर राजासे विवाह करनेको राजी हो गईं। इस तरह पुत्रकी जगह पिताने चीनराजकुमारीका पाणि ग्रहण किया।

नई रानीसे थि-स्त्रोन-दे-त्सन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सभी इस राजकुमारको मञ्जुश्रीका अवतार मानने लगे। तिब्बतके इतिहासमें इन्होंने विशे

प्रतिष्ठा प्राप्त की है। इनका जन्म ७३० ई०में हुआ और ७४२ ई०में ये राज-सिंहासन पर बैठे। यह एक विलक्षण पण्डित थे। राजपुस्तकालयमें जितने ग्रन्थ थे, उन सबकी आलोचना करके वे विशुद्ध धर्ममतके प्रचारमें लग गये थे। इस समय राजदरबारमें दो दलके लोग थे, एक बौद्ध दल और दूसरा बौद्ध-विद्वेषी दल। बौद्ध-विद्वेषी मन्त्रिगण सर्वदा राजाको कहा करते थे, कि बौद्धधर्मसे राज्यमें घोर अनिष्ट हो रहा है, इस कारण राज्यके कल्याणके लिये राज्यसे सभी बौद्धोंको भगा देना उचित है। प्रधान मन्त्री मषन भी इसी दलमें शामिल थे। किन्तु बौद्धधर्म पर राजाका प्रगाढ़ अनुराग था। बौद्ध सम्प्रदायके प्रधान मनुष्योंने दैवज्ञ और ज्योतिषियोंको रिशवत दे कर अपने वशमें कर लिया। अब वे कहने लगे कि राजाका शीघ्र ही अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। यदि सबसे प्रधान दो राजकर्मचारी अन्धकार कन्दरामें तीन मास वास करें, तो राजाकी जीवन रक्षा हो सकती है। राजाने सभाके सभी कर्मचारियोंको यह बात कह सुनाई और यह भी कहा, कि जो उनके लिये आत्मोसर्ग करेंगे, उन्हें यथेष्ट उपहार दिये जायगें। प्रधान मन्त्री मषन राजाके इस प्रस्ताव पर सहमत हो गये। बौद्ध मन्त्री गोंने उनका अनुसरण किया। दोनोंने अन्धकार कन्दरामें प्रवेश किया। तीन मनुष्योंकी लम्बाईके समान वह कन्दरा गहरी थी। दो पहर रातको गोके बन्धुबान्धवोंने पूर्व सङ्केतके अनुसार एक पेड़में रस्सी लगा कर गोको बाहर निकाल लिया और एक बड़े पत्थरसे उस गहरी गुहाका मुंह बन्द कर दिया। इस तरह प्रधान मन्त्री मषनकी प्राणवायु उसी गह्वरके भीतर उड़ गई। राजाके वयः प्राप्त होने पर वे उद्ययनसे शान्तरक्षित और पण्डित पद्मसम्भवको बुला तिब्बतमें बौद्ध धर्मका प्रचार करने लगे। राजाकी सहायतासे पद्मसम्भवने यहां सम्ये नामक एक बड़ा मठ निर्माण किया। इन्हीं राजाके समय ह्वयन महायान चीनसे आ भ्रष्ट बौद्ध मतका प्रचार कर निम्न श्रेणीके मनुष्योंको अपने मतमें लाने लगे। भारतसे कमलशीलने आ कर उन्हें शास्त्रीय तर्कमें पराजित किया। तब राजा भी चीन धर्मावलम्बियों पर विशेष रूपसे शासन करने लगे। उन्होंने अपनी शासन-विधिको एक बृहत् फलकमें लिखा कर राज्य भरमें प्रचार कर दिया। प्रजा-साधारणके मङ्गलके लिये दीवानी और दण्ड-विधि प्रचलित हुई। ४६ वर्ष राज्य करने बाद राजा इस लोकसे चल बसे। उनकी बड़ी स्त्री तये-पों माइके तीन पुत्र थे, जिनमेंसे बड़े मुनि-त-सन्-पो पितृ-सिंहासन पर आरूढ़ हुए। ये नाबालिग अवस्थामें राजा हुए थे, इसलिये उनके धार्मिक मन्त्रिगण उनके बदले राज्य शासन करते रहे। राजा मुनि-त-सनपोने अपने प्रतापसे राज्यके धनी दरिद्र उच्च नीच सभी मनुष्योंको एक सा बना दिया। धनी दरिद्रोंका अभाव दूर करनेके लिये अपनी सम्पत्तिमेंसे कुछ कुछ उन्हें बांटने लगे। सचमुच जो किसी राजाके समयमें न हुआ था, वह इनके राजत्व कालमें इन्हींके यत्नसे हो गुजरा। किन्तु राजाने देखा कि उनकी इतनी चेष्टा व्यर्थ जा रही है। दरिद्रोंकी दरिद्रता घटती नहीं है और धनी मनुष्योंके धन वितरण-करने पर भी वे ज्यों के त्यों धर्मशाली बने हुए हैं। इस पर राजा बहुत विस्मित हुए। पण्डित और लोचवने राजाको समझाया कि मानव अपने पूर्व जन्मकी सुकृति और दुष्कृतिके अनुसार सुख दुःख भुगते और ऊँच नीच हो कर जन्मग्रहण करते हैं। जो कुछ हो, राजाके साधु सङ्कल्पके लिये गरीब प्रजा तक भी उनका नाम लेने लगी। किन्तु इस तरहके राजा बहुत काल तक राजत्व कर न सके। एक वर्ष नौ मास नहीं होने पाया था कि, उनकी माताने छोटे पुत्रको राजा बनानेके लिये विष खिलवा कर उनका प्राण नाश किया। छोटे भाई मुतिग त्सनपोके राजा होने पर राजमाताकी इच्छा पूरी हुई। मुतिगने पद्मसम्भवके निकट शिक्षा लाभ की थी। आठ या नौ वर्षकी अवस्थामें वे राज-सिंहासन पर बैठे। उनके समयमें राज्यकी यथेष्ट श्रीवृद्धि हुई थी और तिब्बती भाषामें बहुतसे संस्कृत बौद्ध ग्रन्थ अनुवादित हुए थे। वृद्धावस्थामें पांच पुत्र छोड़कर वे पर लोकको सिधारे। उनके प्रथम दो पुत्रोंने बहुत थोड़े समय तक राज्यशासन किया था। बौद्ध मन्त्रियोंके षड़यन्त्रसे अल्प-दिनोंमें ही उनकी मृत्यु हुई। कनिष्ठ रल्-पचनने मन्त्रियोंके निर्वाचनसे राजपद प्राप्त किया।

८४५ से ८६० ई०के मध्य रल-पचनका जन्म हुआ। इनके समयमें तिब्बती भाषाका एक युगान्तर उपस्थित हुआ। इन्होंने मगध, उज्जयिनी, नेपाल, चीन प्रभृति नाना स्थानोंमें लोगोंको भेज कर असंख्य बौद्धधर्म ग्रन्थ संग्रह किये। तिब्बती भाषामें उन समस्त पुस्तकोंका अनुवाद कर प्रकाश करनेके लिये उन्होंने भारतवर्षसे तत्कालीन विख्यात बौद्ध पण्डित जिनमित्र, सुरेन्द्रबोधि, शिलेन्द्रबोधि, दानशील और बोधिमित्रको बुलाया। पहले जिस अनुवादमें भ्रम था और जो असम्पूर्ण था, उसीका संशोधन करनेके लिये रत्नरक्षित, मञ्जुश्रीवर्मा, धर्मरक्षित, जिनसेन, रत्नेन्द्रशील, जयरक्षित, कव-पलतसेग, चोदे स्यल-तषन प्रभृति पण्डित नियुक्त हुए थे। व्यवसायियोंकी सुविधाके लिये राजा रल-पचनने चीन देशकी तोल और मापका अपने राज्यमें प्रचार कर दिया। भारतीय बौद्ध याजकगण जिस तरह विधि और रीतिनीतिका पालन करते थे, उन्होंने यहांके याजकोंमें भी वे ही नियम प्रचलित किये। वे जानते थे, कि याजकोंके ही हाथमें धर्म शासन है। इसीसे वे उपयुक्त मनुष्योंको देख कर उन्हें याजक बनाने लगे।

इन्हींके समयमें चीन और तिब्बतमें विवाद छिड़ा था। चीन पर आक्रमण करनेके लिये राजा रल-पचनने बहुतसी सेनायें भेजीं। चीन और तिब्बतके युद्धमें रक्तकी नदी बह चली थी। दोनों देशके ज्ञानियोंने इस अनर्थकर रक्त-पातके निवारणके लिये खूब चेष्टा की। उन्हींके यत्नसे लड़ाई रुक गई और सन्धि भी हुई। इस समय गुङ्गु मेरु नामक स्थानमें एक पत्थरका स्तम्भ गाड़ कर दोनों राज्यकी सीमा निर्दिष्ट हुई। एक प्रस्तर स्तम्भमें वह सन्धि-पत्र खोदा गया था।

रलपचनके समय तिब्बतमें अनेक सुनियम प्रचलित हुए थे। इस समय संन्यासी और याजकमण्डलीके प्रति राजाका विशेष लक्ष्य था, जिससे कि वे शास्त्रविधि लङ्घन न कर सकें। अन्तमें किसी दुष्टने गला घोंट कर राजाके प्राण लेलिये। ९०८ से ९१४ ई०के मध्य राजाके भाई-लन्दर्मकी उत्तेजनासे यह दुर्घटना घटी थी।

अब दुष्ट लन्दर्म राजा बन बैठे। उनके समान बौद्ध विद्वेषी राजा और कोई देखे नहीं गये थे। वे सदा घूम घूम कर कहा करते थे कि बुद्धकी प्रधानता होनेसे उनके असत्य उपदेशमें आ कर ही भारत और चीनके मनुष्योंने अपनी सुख शान्ति खो दी है। बौद्ध पण्डित उनके दौरात्म्यसे देश छोड़ कर भग चले। लन्दर्मने किसी श्रमणको तो गृहस्थ बनाया और किसीको उनके वास्ते पशु शिकार कर लाने बनको भेजा। जहां जितने बौद्ध ग्रन्थ पाये गये, वे जला और फाड़ दिये गये। कितने बौद्ध मन्दिर उनके आदेशसे विध्वस्त हुए। जिस मन्दिरको तोड़नेकी सुविधा न थी, उसके सामने दीवार खड़ा कर उसका दरवाजा बन्द कर दिया गया। उनके मन्त्री और खुशामदी टट्टुओंने फिर दीवारमें बहुतसी बुरी तसवीरें अङ्कित कर दीं। ये सब अत्याचार धार्मिक तिब्बतवासियोंको असह्य मालूम पड़ने लगे। लहलुन पल पल-दोर्जे नामक एक साधु पापिष्ठ राजाके हाथसे धार्मिकोंको बचानेके लिये एक दिन रणनृत्य करते करते राजाके निकट जा पहुंचे और एक तीक्ष्ण शर द्वारा उन्हें विद्धकर वहांसे बहुत शीघ्र चम्पत हो गये। उस शराघातसे ही राजाकी प्राणवायु उड़ गई। उनके साथ साथ तिब्बतीय राजाओंका एकाधिपत्य भी जाता रहा।

लन्दर्मके दो रानियाँ थीं। छोटी रानी गर्भवती थी। इससे बड़ी रानीको बहुत ईर्षा हुई। उन्होंने भी गर्भ होनेका एक ढोंग रचा। यथा समय छोटी रानीके एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ, जिसका नाम नम-दे होद-सुन रखा गया। बड़ी रानीने उसका वध अथवा हरण करनेकी चेष्टा की थी, किन्तु उस नवजात शिशुके निकट एक जलती हुई बत्ती रहनेके कारण उनका उद्देश्य सफल न हुआ। इससे बड़ी रानी और भी क्षुब्ध हो गई और उसी समय उन्होंने बदला लेनेके लिये एक गरीब लड़केको ला कर उसे अपने पुत्रसा प्रचार किया। बड़ी रानीसे सभी भय खाते थे, इस कारण किसीके सन्देह होने पर भी वे उस पुत्रके विषयमें कोई बात नहीं छिड़ते थे। उस बालकका नाम थिदे-युमतेन पड़ा।

पहले बौद्ध मन्त्रिगण ही राज्यशासन करते रहे। उन्होंने पुनः सभी बौद्धकीर्त्तियोंकी स्थापन करनेकी यथेष्ट चेष्टा की थी। लन्दर्मके दौरात्म्यसे जो सब मन्दिर अङ्गहीन हो गये थे, मन्त्रिगण उनका संस्कार कराने लगे।

जब दोनों भाई बड़े हुए, तो राज्यके लिये आपसमें विवाद उठा। अन्तमें समग्र राज्य दो भागोंमें बांटा गया। होद-स्रुनने पश्चिम भाग और युमतेनने* पूर्व भाग पाया। राज्यके आपसमें बँट जानेसे राज्यभरमें युद्धविग्रह चलने लगा। इससे राज्यकी आभ्यन्तरिक अवस्था धीरे धीरे खराब होने लगी।

९८० ई०में होदस्रुनका देहान्त हुआ। उनके पुत्र पल-खोरतसन सिर्फ १३ वर्ष राज्य कर (९९३ ई०में) ३१ वर्षकी अवस्थामें मरे। उनके दो पुत्र थे, तसेगप-पल और थि-क्यि-देत निमगोन। कनिष्ठ सेगप नाहरि (लदाक) देशको गये और वहां उन्होंने राजा होकर 'पुराण' नामकी राजधानी और नि-सुन नामक दुर्गकी प्रतिष्ठा की। उनके तीन पुत्रोंमेंसे बड़े पलग्यि-देरि गल्प-गोन मन युल प्रदेशमें, मँझले तसि-देगोन पुराण प्रदेशमें और छोटे देतसुग्गोन शानसुम (वर्तमान गुणमें) प्रदेशमें राजा हुए। देतसुग-गोनके दो पुत्र थे, बड़ा खोर-रे और छोटा स्रोनने। ज्येष्ठ येशे-होद नाम धारण कर संन्यासी हो गये।

तसि-तसेगप पिताकी मृत्युके बाद राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त हुए—उनके तीन पुत्र थे—पलदे, होद-दे और क्यि दे।

इस समय तिब्बतमें बौध धर्मका पुनरुत्थान हुआ। लन्दर्मके समयसे इस समय तक कोई भारतीय पंडित तिब्बतमें नहीं आये। बहुत समयके बाद एक नेपाली द्विभाषी पण्डितने (तिब्बतमें लेक-तसे नामसे परिचित) पण्डित यल-रिणव और स्मृतिको तिब्बतमें बुलाया। किन्तु जब वे पण्डित तिब्बतमें पहुँचे, तो उनकी मृत्यु हो गई, पीछे किसीने उन पण्डितोंको ग्राह्य भी न किया। स्मृति यहाँ निर्बान्धव अवस्थामें रह तनग नामक स्थानमें पशुपालवृत्तिका अवलम्बन करके जीविकानिर्वाह करने लगे। कुछ दिन बाद तिब्बती भाषामें उनका प्रवेश हो जानेसे उनकी विद्याकी कथा धीरे धीरे फैलने लगी। अन्तमें उन्होंने खम प्रदेशके पण्डितोंके साथ शास्त्रालोचना की। उन्होंने तिब्बती भाषामें एक 'शब्दमाला' बनाई जिसका नाम उन्होंने "कथाशास्त्र" रखा।

राजवंशीय श्रमण येशेहोदके यत्न, परिश्रम और चेष्टासे तिब्बतमें बौद्धधर्मका पुनरुत्थान हुआ। १०१३ ई०में इसका सूत्रपात हुआ था। उक्त श्रमणने मगधमें भारतीय पण्डित धर्मपालको बुलाया। उनके साथ तीन शिष्य भी आये हुए थे। राजाने इन लोगोंकी सहायतासे देशमें पुनः धर्म कला, शास्त्र और विनयशास्त्रके प्रचारमें विशेष सुविधा पाई।

खोर-रे श्रमणके पुत्र लह-देने पण्डित सुभूति श्रीशान्तिको बुलाया। इस महापण्डितने इस देशमें आकर समस्त प्रज्ञापारमिताका (शेर-चिन) अनुवाद किया। विख्यात अनुवादक रिनछेन-सङ्गपो सुभूति द्वारा याजक पद पर प्रतिष्ठित हुए। लहदके तीन पुत्र थे होद दे, शिव होद और च्यन-छुब-होद। कनिष्ठ पुत्रने बौद्धशास्त्र और उसके विरुद्ध मतके दर्शन शास्त्रादिमें विशेष अभिज्ञता लाभ की। बौद्धधर्मकी उन्नतिके लिए इस पण्डित राजपुत्रने आर्यावर्त्तमें सर्वशास्त्रविशारद ज्ञानी पण्डितोंको ढूंढ़नेके लिए आदमी भेजा। तलाश करने पर प्रभु अतिश पण्डितका नाम और यश तिब्बतमें सभाका मालूम हो गया। च्यन-छुब होदने उनको बुलानेके लिए नगतषो लोचवके साथ और भी कई एक मनुष्योंमें भेजा। लोचव आर्यावर्त्तमें वहांके बौद्ध धर्मके प्रधान स्थान विक्रमशील नगरको पहुंचे। वहांके तत्कालीन राजाने उनका खूब सत्कार किया। वह राजा तिब्बतीय लोगोंसे ग्य-तसोन-सेनगे नामसे अभिहित हुए हैं। बाद उन्होंने पण्डित प्रभु अतिशके सामने साष्टाङ्ग प्रणिपात हो उन्हें राजप्रेरित

---

* युमतेनकी वंशावली इस तरह पायी जाती है—

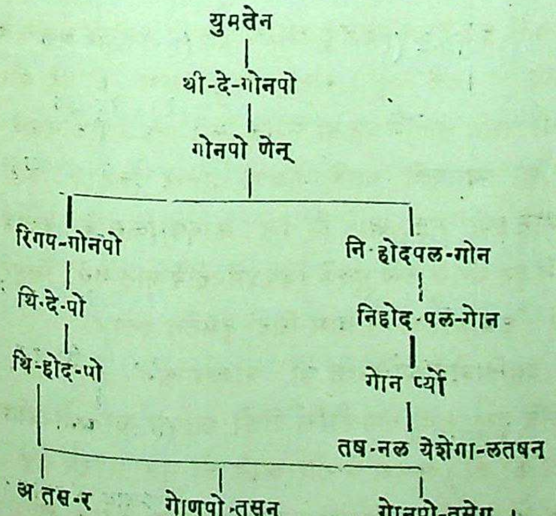

स्वर्णादि बहुमूल्य उपहार दिये और पीछे तिब्बतमें बौद्ध धर्मका प्रचार, श्रीवृद्धि, ध्वंस और पुनः प्रचारकी चेष्टाका सारा विवरण उनसे कह सुनाया। कातर हृदयसे उन्होंने यह भी कहा; "अभी आपके सिवा और कोई दूसरा मनुष्य नजरमें नहीं आता जो तिब्बतको इस धर्मविप्लवसे उद्धार कर सके, अतः आपको एक बार तिब्बत जानेका कष्ट दिया जाता है।"

लोचव और उनके अनुयात्री पण्डित अतिशका शिष्यत्व ग्रहण कर उनकी सम्मति पानेके लिए दासकी नाईं सेवा करने लगे। अन्तमें अतिश तारादेवीकी आकाशवाणीसे तिब्बत जानेको राजी हुए। वे तिब्बतका बहुत उपकार और एक महासाधक (उपासक) का विशेष सहायता करेंगे, इस प्रकारकी आकाशवाणी होनेसे उन्होंने ५८ वर्षकी अवस्थामें १०४२ ई०को अपने प्राणकी उपेक्षा करके विक्रमशीलके सङ्घारामका परित्याग कर तिब्बतमें प्रस्थान किया। नह-रि प्रदेशके थोङ्गि सङ्घाराममें अतिश रहते थे। उन्होंने राजाको तन्त्रसूत्र सिखाया, बाद उ और तसन प्रदेशमें धर्म प्रचार किया। उन्होंने कई एक शास्त्र ग्रन्थ प्रणयन किये, जिनमेंसे लमदोन (सत्यपथ-प्रदीप) प्रधान है। ७५ वर्षकी अवस्थामें १०५५ ई०को अतिशकी मृत्यु हुई। होद-दे के पुत्र अत्सेदके राजत्व कालमें अतिशने उ, तसन और खम प्रदेशोंके समस्त लामा और श्रमणको एकत्र कर कालगणनाके नूतन नियमका प्रचार किया। उत्तर भारतके शम्भल प्रदेशमें षष्टि-संवत्सरको वर्षचक्रकी गणनाके जो नियम अतिशने पाये थे, वे ही इस समय प्रचारित किये गये। तिब्बती लोगोंने इसका नाम रब-जून रखा। १२०५ ई० तक अतिशके मतसे ही शिक्षा दी गई थी। इस समय विख्यात लोचवने बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ तिब्बतीय भाषामें अनूदित किये। तेरहवीं शताब्दीमें पण्डित मर्प, मिलगोनपो, काश्मीरीय पण्डित शाक्यश्री और अन्यान्य भारतीय पण्डितोंने तिब्बतमें बौद्ध धर्म-प्रचारके लिए अशेष सहायता की। तसेदसे निम्न नवम पुरुषमें राजा तग-प-देके* राजत्वकालमें मैत्रेय बुद्धकी एक प्रतिमा बनाई गई जिसमें १२००० दोतषद (अर्थात् १५ लाख रुपये) खर्च हुए थे। उन्होंने मञ्जुश्री देवकी एक प्रतिमा बनवाई थी जिसमें ७ ब्रे अर्थात् एक मन सोना लगा था। इनके पुत्र असोदे पिताकी अपेक्षा भक्तिमान् थे और प्रतिवर्ष बुद्धगयाके वज्रासन (दोर्जे-दन) नामक बौद्धपीठमें पूजा भेजते थे। इस प्रथाको इन्होंने अपने जीवन काल तक जारी रखा था। इनके पौत्र अनन्‌मलने 'कह्‌ग्युर' नामक धर्मशास्त्रको सम्पूर्णरूपसे सोनेके पत्तरोंमें लिखवाया था। अननमलके पुत्र रिहुमलने लासा नगरमें बहुत खर्च करके बुद्धमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की, तथा उनके मन्दिरके गुम्बजको स्वर्णमण्डित करा दिया था। रिहुमलके पुत्र सङ्ग-ह-मल शाक्य-प लामाओंसे बौद्धधर्ममें दीक्षित हो राज-सिंहासन पर बैठे। इस वंशके अन्तिम राजा अपुत्रक थे। उन्होंने पर-तव-मलके आत्मीय सो-नम-दे का नाम पुण्यमल रख कर राजगद्दी पर बिठाया।

वश-तसेग-प राजाके पुत्र पलदेके वंशधरोंने गुणथन्, लुग्यबल, चित-प, लहतसे, लनलुन और तसकोर प्रदेशोंमें छोटा छोटा राज्य स्थापन कर वहां राज्य किया। कि-दे के वंशधरोंने सु, जन, तनग, य-रु-लग और ग्यल-तसे जिलोंमें छोटा छोटा राज्य बसाया। होदके चार पुत्र थे—फवदेसे, थिदे, थिछुन और नग-प। प्रथम और

---

* तसेदकी वंशावली —

(१) तसेद
|
(२) वरदे
|
(३) काशि-दे (१म)
|
(४) भने
|
(५) नागदेव
|
(६) तसल-फयुग
|
(७) कशि-दे (२म)
|
(८) प्राग-तसन-दे
|
(९) तग-प-दे

(१०) असो-दे
|
(११) जे-दर-मल (१म)
|
(१२) अनन-मल
|
(१३) रिहु-मल
|
(१४) संग-ह-मल
|
(१५) जे-दर-मल (२य
|
(१६) अ-जिन-मल
|
(१७) कलन-मल
|
(१८) पर-तव-मल
|
इसके बाद वंशलोप।

चतुर्थने तसन-रोन प्रदेश पर, द्वितीयने आमदो और तसोनथ प्रदेश पर और तृतीयने उ प्रदेश पर अधिकार जमाया। तृतीय थि-कुन यन्न-लुन नगरमें राजधानी उठा कर ले गये। थि-छुनके अधस्तन पञ्चमपुरुष जोबोनाल्-जोर च्येन्-न-रिन पोछे और पल-फगमो-दु-प नामक दो लामाओंका विशिष्टरूपसे परिपोषण करते थे। इनके पौत्र शाक्यगोन प्रसिद्ध शाक्य पण्डितके परिपोषक थे। शाक्यगोनके पौत्र तग् प-रिन-पोछेकी चीन-सम्राटके यहां खूब खातिर होती थी। तग-खै-फोटनमें जो विख्यात प्रासाद है, वह इन्होंका बनाया हुआ है। इनके पुत्र शाक्य-गोन-पो (२य) ने युम्ब-लगन प्रासादमें एक सङ्घारामको प्रतिष्ठा की।

तिब्बतमें मुगल अधिकार।—थिकुनवंशोय राजगण बहुत ही दुर्बल थे। जिस मुगलवीरने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, उसी छेङ्गिसखाँने ‡ १३वीं शताब्दीके प्रथमभागमें बातकी बातमें समस्त तिब्बत पर अधिकार जमा लिया। छेङ्गिसके बाद उनके एक पुत्र गोगान राज्यके पूर्वांशके अधिकारी हुए। गोगनके दो पुत्र गोदन और गोयुगनने अपनी सभामें शाक्य पण्डितको बुलाया था। इस घटनासे शाक्यसङ्घारामके प्रधान याजकोंने तिब्बतके राजनीतिक युगमें मुगलोंके धर्म-मत-परिवर्त्तनका एक नया युग गिना।

तिब्बतमें याजकाधिकार।—(१२७०-१३४० ई०में) चीन देशके प्रथम मुगलसम्राट् प्रसिद्ध § कुबले (कहवले) ने शाक्य पण्डितके भतीजे फग्‌प लोटोई ग्यल्‌तषन् नामक पण्डितको अपनी सभामें बुलाया। वे १९ वर्षकी अवस्थामें चीन-राजसभामें पहुंचे। उनके आनेसे सम्राट्‌ने उन्हें स्वर्णसनन्द, अपनी मुहर, मणिमुक्ताके अलङ्कार, मणिमुक्ताका मुकुट, स्वर्णदण्ड और स्वर्णसूत्रका वृहत् छत्र तथा निशान आदि उपहारमें दिये। पीछे सम्राटने उन्हें अपना गुरु बनाया और बौद्धधर्म अवलम्बन किया। अन्तमें सम्राट्‌ने गुरुको प्रकृत तिब्बत (उ और तसन प्रदेशके १३ जिलाओंके साथ)‡ खम् और आमदो प्रदेश दानमें दिये। इस समय शाक्य लामा तिब्बतके स्वाधीन शासन

---

‡ थि-छुनकी वंशावली—

खिछुन वा थिछुन
|
होद-कियि-द-त्रर
|
युमचन (६ पुत्र और)
|
जो गह
|
दर्म (अन्यान्य कई मनुष्य)
|
जोवो-नल-व्योर

जोवोवग्
|
शाक्य-गोन् (१म)
|
शाक्यक्रशि
|
प्रग प रिन पोछे
|
शाक्यगोनपो (२य) उ और
|
जे-शाक्य-रिन्छेन

* जंगिसखाँ तिब्बतमें जेंगिर ग्यलपो वा खेद-सुन नामसे मशहूर थे। ये फोर्ग बाहदुर (बहादुर) नामक कालका (कहलकह) राजाके औरस और रानी दुलान (कहलान) के गर्भसे इनका जन्म हुआ था। ३८ वर्षकी उमरमें ये पैतृक सिंहासन पर बैठे। २३ वर्ष तक ये भारत, चीन, तिब्बत और एशियाके अन्यान्य प्रदेशों पर आक्रमण करते रहे। बहुतोंको इन्होंने जीता था और बहुतोंको लूटा भी था। ६१ वर्षकी अवस्थामें इनका देहान्त हुआ।

जंगिस वा चेंगिजखां देखो।

§ कहुवले (कवलाइ) का अर्थ अवतार वा अलौकिक जन्म-विशिष्ट है।

‡ तिब्बतके १३ जिले जिन्हें कुवलेखांने फगपको दानमें दिये, उनके नाम नीचे दिये जाते हैं—

तसन् प्रदेशमें ७—

१ । २ उत्तर और दक्षिणलाटो (ला-टो)।
३ गुर्मो (कुर्मो)
४ छुमिग
५ षन्।
६ षलु ।

उ प्रदेशमें ६ —

१ ग्यम
२ द्विगुण
३ तषल-प
४ थन— पो-छे-व
५ फग-छु ।
६ षह-सन् ।

उ और तसन् प्रदशोंमें यरु दग जनपदके १३ जिले (षदोत् वा षम्-दो-छो जिलाओंके साथ) अवस्थित हैं।

कर्त्ता ¶ ठहराये गये। फग्‌प और दोगन फगप नामसे विशेष प्रसिद्ध हुए। १२ वर्ष तक चीन देशमें रह कर फग्‌प शाक्यभूमिमें लौट आये।

फग्‌प-दो-गोनको जब शाक्यभूमिमें ३ वर्ष हो चुका था, तब उन्होंने कहग्युकी पुस्तकको एक प्रस्थ प्रतिलिपि तैयार कराई। यह प्रतिलिपि स्वर्णाक्षरमें लिखी गई थी। प्रकृत तिब्बतके तेरह जिलोंका राजस्व वसूल कर शाक्यभूमिमें उन्होंने एक ऊंचा मन्दिर बनवाया। इसके सिवा उन्होंने एक स्वर्णको प्रकाण्ड बुद्धप्रतिमा, एक बहुत ऊंचा छोरतेन (चैत्य) और अन्यान्य देव प्रतिमाको स्थापना की, और प्रति दिन एक सौ श्रमणोंका आहार तथा भिक्षा देनेकी पूरी व्यवस्था कर दी। चीन सम्राट्‌के प्रार्थनानुसार ये दो बार चीन देशको गये थे। अबकी बार लौटते समय इन्हें ३०० ब्रे स्वर्ण, ३०००ब्रे रौप्य और १२००० ब्रे साटनकी पोशाक मिली थी। शाक्यलामाओंमें ये हो सबसे अधिक क्षमताशाली थे। इनके परवर्त्ती प्रतिनिधिगण दुर्बलमना और अक्षम प्रकृतिके समझे जाते थे। उनके समयमें प्रजाका सुख स्वाच्छन्द्य जाता रहा, सामन्त और सम्भ्रान्त लोग भी बागी हो गये। शाक्यलामा लोग इन सब प्रतिनिधियोंके हाथोंकी कठपुतली हो रहे थे। अतः वे इसका कुछ भी प्रतिकार कर नहीं सकते थे। कलह, युद्ध, षड़यन्त्र, खून खराबी आदि होने पर भी उन सब प्रतिनिधियोंमेंसे किसीने भी लामाओंकी अधीनता न छोड़ी।

फग्‌पके परवर्त्ती चतुर्थ प्रतिनिधि च्यन्-रिन्-क्योपको चीनसम्राटसे एक सनद मिली थी, किन्तु इसके कुछ समय बादही वे अपने एक नौकरके हाथसे मारे गये। इनके परवर्त्ती दोनों प्रतिनिधियोंने आईनादिका संस्कार किया था। अनलेन नामक अष्टम प्रतिनिधिने शाक्य सङ्घारामके वेष्टनी प्राचीरादिका निर्माण किया। उन्होंने ही खुन्-सर-लिन और पोन-पाई-रि नामक दो सङ्घाराम प्रतिष्ठित किये। इस समय दिगुण सङ्घारामकी क्षमता सबसे प्रवल हो गई थी। यहां उस समय १८ हजार श्रमण वास करते थे। शाक्यसङ्घाराम और दिगुण सङ्घाराममें इसी प्रधानताको ले कर विवाद उठा। उस विवादकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई, यहां तक कि अन्तमें अनलेनने सेना भेज कर दिगुण सङ्घारामको लुटवा लिया और जलवा डाला। सङ्घाराममें आग लगनेसे कितने श्रमण तो प्राण ले कर भागे और कितने उसीमें जल मरे। इस दुर्दशाके कई वर्ष बाद पुनः यह सङ्घाराम प्रवल और क्षमताशाली हो उठा। उस समय फिर गलुग-प मतावलम्बियोंके साथ विवाद चला। इस बार भी सङ्घाराम पूर्वसा तहस नहस कर डाला गया। लेकिन यह सङ्घाराम अभी शाक्यसङ्घारामका मुकाबिला कर रहा है। अनलेन जब दिगुण सङ्घारामका ध्वंस कर लौटे आ रहे थे, तब रास्तेमें भी किसीने इन्हें मार डाला। वनतसुन नामक शेष प्रतिनिधि फगदु नामक प्रधान मन्त्रीके साथ युद्धमें परास्त हुए। इसके साथ साथ तिब्बतमें जो ७० वर्षसे याजकाधिकार चला आ रहा था, वह भी जाता रहा।

तिब्बतमें चीनाधिकार।—शाक्य सङ्घारामका प्रभुत्व लोप हो जाने पर दि-गुन, फग्‌-दुग और तसल नामक सङ्घाराम क्रमशः प्रभूत क्षमताशाली हो उठे। १३०२ ई०में

¶ शाक्यप राज-प्रतिनिधिगण—

(१) शाक्य ससनयो
कुनगाइ ससनयो (इन्होंने राज्य नहीं किया)।
(२) षन् तसुन्
(३) वन कर्पो
(४) च्यन-रिन-क्योप
(५) कुन-षन
(६) षन्-द्वन्
(७) च्यन दोर
(८) अन लेन
(९) लेग-पा-पल
(१०) सेंगेपल्
(११) हो-ससेदंपल
(१२) हो ससेर सेंगे (१म)
(१३) कुन रिन्
(१४) दोन-षो-पल
(१५) षोनत्-सुन
(१६) हो-ससेर-सेंगे (२य)
(१७) गाल-व-ससन पो (१म)
(१८) द्वन् क्युग-पल
(१९) सो नम् पल
(२०) ग्यल-व ससन-पो (२य)
(२१) वन-तसुन

विख्यात भ-ग्रि च्यन कुब-ग्यलंतषनं जो फग्मो-दु * नामसे प्रसिद्ध हैं उनका जन्म फगमोदु नगरमें हुआ था। उन्होंने ही प्रकृत तिब्बतके १३ जिलों और खम प्रदेशको वशीभूत कर वहां अपना राजत्व स्थापित किया। तीन वर्षकी उमरमें इन्होंने लिखना पढ़ना सीख लिया था। छः वर्षकी उमरमें छो-कि-तीनचन लामाने इन्हें धर्मशास्त्रादिकी शिक्षा दी। सात वर्षकी उमरमें ये च्यनव-न लामासे उपदेश धर्ममें दीक्षित हुए। जब ये चौदह वर्षके हुए, तब इन्होंने शाक्यसङ्घाराममें जा कर प्रधान लामा दगछेन रिनपोछके साथ आलाप किया और उन्हें एक टट्टू उपहारमें दिया। कुछ काल तक शाक्यसङ्घाराममें रहनेके बाद एक दिन प्रधान लामाने खाते समय इन्हें अपना प्रसाद खानेको बुलाया। १७ वर्षकी उमरमें उनकी विद्या-शिक्षा और परीक्षा खतम हुई थी। जब इनकी उमर सिर्फ १८ वर्षकी थी, तब चीन-सम्राट्से इन्हें १० हजार सेनाओंके अधिनायकत्वकी सनद मिली थी। इस सम्मान पर दि-गुन्, तषल, षह तसन और शाक्य प्रदेशके सर्दार लोग जल उठे। अन्तमें दोनों पक्षमें खूब घमसान युद्ध चला। प्रथम युद्धमें तो फगमोदु परास्त हुए, लेकिन द्वितीय युद्धमें उन्हींकी जीत हुई। यह युद्ध फिर कई वर्षों तक चलता रहा। अन्तमें फग-मोदु ही विजयी हुए। विपक्षके सरदारगण पकड़े गये और कैद कर लिये गये। इसके बाद उन् और तसन प्रदेशके सरदार तथा लामाओंने मिल कर चीन सम्राट्से निवेदन किया, कि फगमोदु बड़े अत्याचारी हो गये हैं। विशेषतः शाक्य-सरदारोंको उन्होंने कैद कर रखा है। इधर फगमोदुने भी चीनमें स्वयं जा कर तत्कालीन यो-गन-थ्म नामक प्रसिद्ध चीन-सम्राट्को तरह तरहकी बहुमूल्य सामग्री, दुर्लभ धनरत्न और श्वेत सिंहचर्म उपहारमें दे कर प्रकृत घटना कह सुनाई। सम्राट्ने यह रहस्य सुनकर फगमोदुका पहलेसे भी अधिक सम्मान किया और न्यायपरताके पुरस्कार स्वरूप वंशानुक्रमसे भोग करनेके लिये उ प्रदेश उनके अधिकारमें कर दिया। तसन् प्रदेश शाक्योंके हाथ रहा। चीनसे लौट कर फगमोदुने राज्यशासनकी सुव्यवस्था और नियमादि स्थिर कर दिये। प्राचीन राजनीति और आईनका संस्कार किया गया। शाक्य-शासनकर्त्ताओंने स्रोन-तसन-गम्पो और थि-स्रोनके आईनादिका त्याग कर दिया था। इन्होंने उनका संस्कार कर पुनः उन्हें काम में लाया। इन्होंने नेदेन-तसे नामका एक दुर्ग बनवाया था, जहां स्त्रियोंका प्रवेश निषेध था। विनयशास्त्रानुसार फगमोदु संयमका आचरण करते थे और मद्य तथा रात्रिभोजन इनके लिये हराम था। ये गोनकर, ब्रगकर आदि १३ दुर्गोंके तथा तसे-थन सङ्घारामके प्रतिष्ठाता थे। शाक्य सरदार गण दुर्बलता और अक्षमताका तथा चीन मुगलीय नियमका अवलम्बन करते थे, इस कारण प्रजा उनसे बहुत अप्रसन्न रहती थी। उनके साथ प्रजाका प्रायः विवाद हुआ करता था। फगमोदुने यह वृत्तान्त चीन-सम्राटको कह सुनाया। उन्होंने उन्हें यम् और तिब्बतके अन्यान्य प्रदेशोंको स्वराज्यभुक्त करनेका हुक्म दे दिया। कहते है, कि फगमोदुने समस्त तिब्बतका एकाधिपत्य पा कर एक करोड़ धातु प्रतिमा स्थापित की और अपना नाम 'किंसुत' रखा।

फगमोदुके अधःस्तन चतुर्थ पुरुष शाक्यरिनछेन चीन-सम्राट् थी गन-थुनके प्रिय मन्त्री थे। चीन सम्राट्ने इन्हें पहले सम्राट्-पुरीके रक्षक पद पर, पीछे चीन साम्राज्यका राजस्व-वसूलके सर्वाध्यक्षके पद पर नियुक्त किया। किन्तु शाक्य रिनछेन् सम्राट्को खून खराबी करनेके लिए चीनके प्रधान मन्त्रीके साथ षड्यन्त्रमें शामिल हो गये। उन्होंने बहुत सी बैल गाड़ियों पर सशस्त्र सेनाओंको सुला ऊपरसे साटनके कपड़ोंसे ढक कर सम्राटपुरीमें भेज दिया। सम्राट्को इस बातकी

* फगमो-दु की वंशतालिका—

(१) फग-मो-दु (तिसरि)
(२) जम-व्यन-गुश्ट छेनपो
(३) ग्रग-प-रिनछेन
(४) सो-नम-ग्रग-पन
(५) शाक्यरिनछेन
(६) ग्रगप ग्यलत् यन
(७) व्रन ग्प्रग-व्युनने
(८) रिमछेन-दोजेवन
(९) गलनग-वन
(१०) नवन् कशि
(११) मनवन प्रगपो
(१२) नम्बर गानपो
(१३) सोद नम् वम् फुग्ग

खबर तुरत लग गई और उसी समय वे पश्चाद्द्वार होकर मङ्गोलियाको भाग गये। प्राचीन मन्त्री चीनके सम्राट् हुए। इस समयसे चीन स्वदेशीय अधिकारमें आया और कबलाई मुगलवंशका उच्छेद हुआ। प्रधान मन्त्री क्येन हुनके पुत्र थुनमिन प्रथम सम्राट् माने गये।

शाक्य रिनछिनकी उस समय मृत्यु हो चुकी थी। उनके पुत्र तग् पग्यालत्षन सम्राट्से अच्छी तरह सम्मानित हुए। सम्राट्ने उन्हें थम और आमदो प्रदेशका भी अधिकार दे दिया। तग् पग्यालत्षन्ने इस प्रकार नह रि-कोर-सुमसे ले कर थम प्रदेशके पश्चिम सीमान्त तक अपना प्रभुत्व फैला लिया। ये प्रधान संस्कारक तसोन खयके विशेष परिपोषक बन्धु थे। इन्हींके समयमें १ लाख 'धारणी' लिखी गई। कई वर्षोंतक इन्होंने अपने खर्चसे १ लाख श्रमणोंका प्रतिपालन किया था। हु-चिङ्ग लिन और कर्जीन दुर्गके ये ही अधिष्ठाता थे। इनके पौत्रने चीन-सम्राट्से 'बन'(राजा)की उपाधि पाई थी। इसी वंशके दशम राजा नम-बन-ताश भूटानके धर्मराजके (पद्म कर्पो) बन्धु थे। उन्होंने लासा नगरमें चैत्यादि निर्माण किये। उनके मन्त्री रिनछेनने कई बार उनके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। लेकिन प्रतिबार वे हारते ही गये थे। चीन सम्राट्ने उन्हें 'दिन-की-श्टह्' की उपाधि दी थी।

इसवंशके राजत्वकालमें तिब्बत सच पूछिए तो उन्नतिकी चरम-सीमा तक पहुंच गया था। दुभिक्षादिका ह्रास और विदेशियोंका आक्रमण बन्द हो जानेसे प्रजा सुखी थी। बीच बीचमें लोभपरतन्त्र मन्त्रीके कारण यदि लड़ाई छिड़ भी जाती थी, तो उससे शान्ति भङ्ग नहीं होता था। इस वंशके बारहवें राजा नम्बेर ग्यलवनके राजत्वकालमें उ और तसनके मन्त्रियोंने मिल कर राजाके विरुद्ध लड़ाई ठान दी थी। लड़ाईमें राजा अपनी सारी क्षमता खो बैठे और केवल नाम मात्रके राजा रह गये। तसनके राजा ही वास्तवमें राजक्षमताका परिचालन करने लगे। इस प्रकार जब भाग्य लक्ष्मी तसनके राजाके प्रति ढल गई, ठीक उसी समय मुगल वीर गुशरीखांने तिब्बत पर धावा मारा और उसे जीत लिया। गुशरीखांने ५म दलई लामाको तिब्बतका राज्य प्रदान किया। यह घटना १६४५ ई०में घटी थी। तभीसे आज तक तिब्बत एक प्रकारसे दलईलामाके अधीन चला आ रहा है।

लामा देखो।

तिब्बती (हिं० वि०) १ तिब्बत सम्बन्धी, जो तिब्बतमें उत्पन्न हुआ हो। (स्त्री०) २ तिब्बतकी भाषा। (पु०) ३ तिब्बत देशका रहनेवाला।

तिमंजिला (हिं० वि०) तीन खण्डोंका, तीन मरातिबका।

तिम (हिं० पु०) नगारा, डंका।

तिमाशी (हिं० स्त्री०) १ एक तौल जो तीन माशेके बराबर मानी गई है। २ पहाड़ी देशोंमें प्रचलित ४० जौकी एक तौल।

तिमि (सं० पु०) तिम्-इन् वा ताम्यति तम्-इन् अकारस्य इकारादेशः। १ समुद्रचर स्तन पीनेवाला मत्स्यके आकारका सुबृहत् जीवविशेष, क्या जलचर और क्या स्थलचर, तिमिकी अपेक्षा बृहदाकार जीव आज तक आविष्कृत नहीं हुआ। मछलीकी तरह इसकी पूंछ होती है। पानीमें तैरनेके लिए मछलियोंकी तरह कानके नीचे पंख होते हैं। इसके पैर नहीं होते, पेड़ूके कुछ ऊपर स्तन होते हैं, स्तनके दो वृन्त होते हैं। दुग्धाधार देहमें ही रहता है, थनकी तरह वह उच्च नहीं होता। इनके आकार और वर्णमें नाना प्रभेद होते हैं। इसीसे प्राणितत्त्वविदोंने उन्हें उनके आकार प्रकारके अनुसार ३०।३२ भागोंमें विभक्त किया है। अत्यन्त प्राचीन कालसे सभ्य जगत्‌को तिमिके अस्तित्व और उसके मत्स्य जातिसे अलग होनेकी बात विदित है। महाभारत रामायण प्रभृति प्राचीन ग्रन्थोंमें 'तिमि' 'तिमिङ्गिल' 'महातिमिङ्गिल' नामसे इस बृहदाकार जीवका उल्लेख है। अरिष्टॉटल अपने जीव-तत्त्वमें तिमि, शुशुक और मत्स्य इन्हें परस्पर विभिन्न श्रेणीके बतला गये हैं। उनका कहना है कि “तिमि ठीक अन्यान्य चौपाये जानवरोंकी तरह श्वास-प्रश्वास लेता है, सङ्गम करता है तथा मादा तिमि जीवित और आकारयुक्त सन्तान प्रसव करती है और स्तन्य दे सन्तानका पालन करती है। इनके फुसफुस प्रभृति भीतरके शरीरयन्त्रके कार्य भी अन्यान्य चतुष्पदोंकी तरह होते हैं।”

तिमि प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है-दन्तविशिष्ट और

दन्तविहीन। जिनके दांत नहीं। उनके मुखमें कोमल अस्थिफलककी भांति एक तरहकी कोमल अस्थि होती है। इनकी टुड्डी खूब भारी और मोटी होती है। मछलियोंकी तरह इनके बदनमें छिलके नहीं होते; नाकका छेद बहुत बड़ा होता है। ये जलके तृण और जीव जन्तुओं का आहार करते हैं। जिनके दांत नहीं होते अंग्रेज प्राणितत्वविदों ने उनका नाम बलिनिडि (Balœnide) रक्खा है अर्थात् इनके ऊपर चीनामट्टीकी तरह एक हड्डी जन्मती है, जिसे अंग्रेजोंमें Balaen or whale-bone कहते हैं; इसीसे इस जातिका नामकरण हुआ है। दन्तहीन तिमि फिर चार भागोंमें विभक्त हैं। बलिन (Balaena) अर्थात् समपृष्ठ दन्तहीन तिमि; कवई मछलीकी पीठके ऊपरी भागके कांटोंकी तरह इनके छोटे पंख या पृष्ठकण्टक नहीं होते, पीठमें ऊंटकी तरह कुब्बड़ या सांड़की तरह कंधावर नहीं होता। उदरमें (मनुष्यों की तोंद बढ़ जानेसे जिस तरह तह दिखलाई देती है उस तरहके) स्तर नहीं होते। इसी श्रेणीमें तिमिकी अस्थि (Balaen) खूब मोटी और दृढ़ होती है। यह तिम्यस्थि ठीक दांतोंकी तरह तालुके ऊपरकी कतारमें उत्पन्न होती है। एक एक जातिमें एक ओरके मसूड़ेमें ३१४ तक तिम्यस्थि उत्पन्न होती है। एक एक अस्थिमें अभ्रकके परतोंकी तरह १२ तक परत रहते हैं।

ये तिम्यस्थियां तालुकी भांति मध्यरेखासे हो कर समस्त तालूको घेरे रहती हैं। संख्यामें अधिक होनेके कारण ये खूब घनी उगती हैं। प्रत्येक अस्थि भीतरकी ओर क्रमशः सूक्ष्म हो कर कोमल हड्डीके कांटोंकी तरह मसूड़ोंके निकट लटकती रहती है। यह तिम्यस्थि व्यवसायका एक मूल्यवान् उपकरण है। व्यवसायी लोग इसे तिमिकण्टक नामसे पुकारते हैं। इनकी जिह्वा कोमल और गलेकी नाली बहुत छोटी होती है, यहां तक कि बड़ेसे बड़े तिमिकी भी गलेका छिद्र एक इञ्चसे बड़ा नहीं होता। मस्तक समस्त देहके नापका तिहाई होगा; माथेके दोनों पार्श्व समान नहीं होते, दाहिना भाग बांये भागसे बड़ा होता है। इसका मांस रक्तवर्ण, दृढ़ और खुरखुरा होता है। बदनमें कांटे या छिलके नहीं, केवल पूंछकी ओर कांटोंकी तरह कुछ लोम होते हैं। इसके चमड़ेके ठीक नीचे मांसके ऊपरी भागमें एक फुटसे ले कर दो फुट तक जालकी तरहके आच्छादनके भीतर चर्बी रहती है। बृहदाकार तिमिके शरीरकी समस्त चर्बीका परिमाण ७५० मनसे ज्यादा होता है। इसी चर्बीसे इसका शरीर उष्ण रहता है, और उसके शरीरका आपेक्षिक गुरुत्व कम हो जाता है, जिससे वह जलके ऊपर तैरा करता है और इसीसे गहरे जलमें भी उसे जलका भार मालूम नहीं होता। इनके शरीरमें कई तरहकी कीड़ें होते हैं। यह कीट अनेक प्रकारके होते हैं, जिनमें तिमिका जूँ नामक एक श्रेणी है जो इनके शरीरमें ही उत्पन्न होते हैं और उसके ऊपरका शरीर कोर कोर कर खाते हैं। इसके शरीरमें घोंघे भी लगे रहते हैं। तिम्यस्थियोंकी संख्या और परिमाण देख कर इनके वयस निरूपित की गई, जिससे इनकी परमायु ८००से ९००वर्ष पर्य्यन्त स्थिर हुई; किन्तु यह अभ्रान्त विवेचित नहीं होता।

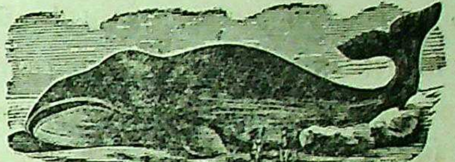
बृहत्काय तिमि।

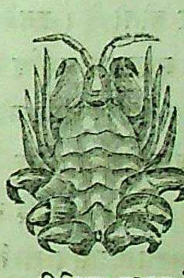
तिमिका उत्कुण है।

इस दन्तहीन समपृष्ठ तिमि जातिके फिर देश भेदसे कुछ उपभेद हैं। यथा—

१। *Balaena mysticetus* or the Right whale—बृहत्तिमि—ग्रीनलैण्ड।

२। *Balaena marginata* or the Western Australian whale—पश्चिम अष्ट्रेलियादेशीय तिमि। प-अष्ट्रेलिया।

३। *Balaeua Australis* o1 the cape whale, उत्तमाशा अन्तरीपका तिमि—उत्तमाशा अन्तरीप।

४। *Balaena Japonica* or the Japan whale जापान देशीय तिमि—जापान सागर।

५। *Balaena antarctica or Balaena Antipoda* or the Newzeeland whale—न्यूजिलैण्ड देशीय तिमि—दक्षिण महासागर।

६। *Balaena gibbosa* or the Scrag-whale—अस्थिसार-तिमि – अटलाण्टिक महासागर।

७। *Balaena Hunterius Temminckii*—दक्षिण देशीय शिकारी तिमि—उत्तमाशा अन्तरीप।

८। *Balaena Hunterius Swedenborgii*—उत्तर देशीय शिकारी तिमि।

इन आठ प्रकारके तिमियोंमें वृहत्तिमि (The Right whale) अत्यन्त विख्यात है। ये हिमाच्छन्न उत्तर महासागरमें ही रहते हैं। कभी कभी इन्हें फ्रान्सकी उत्तर सीमा तक आते देखा जाता है। इनकी लम्बाई ६०।७० फुट होती है। इनकी पूंछ ठीक गंगादेवीके वाहन मकरकी तरह २०।२५ फुट विस्तृत होती है। सामनेका पर ८।९ फुट लम्बा और ४।५ फुट चौड़ा होता है। मुख १५।१६ फुट दीर्घ होता है। दोनों आखें मुखगर्तसे एक फुट ऊंचे पर होती हैं। इनके जल फेंकनेके दो छिद्र खूब सूक्ष्म और मस्तकके सर्वोच्च स्थानमें बने होते हैं। इनके शरीरका रंग चिकना और काला (काली मखमलकी तरह) और पेटकी तरफ सफेद होता है। ये कितने दिनमें गर्भ-धारण करते हैं यह विदित नहीं। एक गर्भमें एक ही सन्तान प्रसव करती हैं। सद्योजात सन्तान १० से १४ फुट दीर्घ होती है। इनका सन्तान-स्नेह अत्यन्त प्रबल होता है। इसीलिए वृहत्तिमिके शिकारी समय समय पर शावकोंकी हत्या कर शावकोंकी जननीको अपेक्षाकृत अल्प श्रमसे पकड़ लेते हैं। तिमिप्रसूति स्थानमें जाके चित होकर पड़ जाती है और सन्तान पेटके ऊपर चढ़कर स्तन्यपान करती हैं। ये साधारणतः घण्टेमें ४।५ मील चल सकते हैं। जलके बहुत नीचे ये नहीं फिरते। चलते समय मुंह फाड़ कर चलते हैं और गालमें जलके साथ खाद्य द्रव्यके पहुंचते ही मुंह बन्द करके मछलीकी तरह जल बाहर कर देते हैं। दौड़ते समय ये और ज्यादा तेज चलते हैं, शिकारके समय ये वर्षीसे आहत होते ही कुछ सेकेण्डोंमें पानीके तले चले जाते हैं। इनका बल अत्यन्त प्रचण्ड है। पूंछके झपाटेसे ही बड़े बड़े लड़ाईके जहाज डुबा देते हैं। तिमि पानीके भीतर लगातार आध घण्टेसे कुछ अधिक रह सकते हैं। सांस लेनेके लिए प्रति ८।१० मिनटमें मुख उठा कर तैरते हैं। सांस लेते समय ही जल फेंकते हैं। जल फेंकते समय इनके मत्थेके छेदोंसे फुहारेकी तरह जल ऊपर उठने लगता है। यह जल १०।१५ हाथ ऊपर तक उठता है। कभी कभी ये क्रीड़ा करनेके लिए मस्तक नीचे कर और पूंछ जलके ऊपर कर—ठीक सीधे खड़े हो कर एक प्रकारका शब्द करते हैं जो २।३ मील दूर तक सुना जाता है। ये दल बांध कर नहीं घूमते। प्रायः अकेले कभी कभी नर-मादा एक साथ घूमती हैं। उत्तमाशा अन्तरीपके तिमिका मस्तक अपेक्षाकृत छोटा, वर्ण बिलकुल कृष्णवर्ण होता है। ये तीरके निकट थोड़े जलमें घूमते हैं। इस जातिके तिमि विषुवत् रेखाके निकटसे दक्षिण महासागरके तुषारक्षेत्रके मध्य तक घूमते हैं और उत्तर जापान तक आते जाते हैं। दक्षिण आफ्रिका और न्यूजिलैण्डके निकट तिमि-शिकारी इन्हें ही ज्यादा पकड़ा करते हैं। आइसलैण्डके निकट वृहत्तिमिका (The Rigt Whale) एक उपविभाग है। आइसलैण्ड निवासी उन्हें Nord-kapper कहते हैं। इनका शरीर वृहत्तिमिकी अपेक्षा सबल, मस्तक छोटा, नीचेका जबड़ा गोल और चौड़ा, वर्ण धूसर, मस्तकका निम्न भाग उज्ज्वल श्वेतवर्ण और यह वृहत्तिमिकी अपेक्षा अधिकतर चतुर एवं भयंकर स्वभावका होता है। ग्रीनलैण्डके अधिवासी और ऐस्कुइमो जातिके लोग वृहत्तिमिका मांस खाते हैं और उदरका पतला चमड़ा पहनते हैं।

दन्तहीन तिमिके द्वितीय भागका नाम *Megapatera* or the Humpbacked whale वा कुब्जपृष्ठ तिमि। इस श्रेणीकी पीठमें ऊंटकी तरह कूबड़ होता है। बहुतोंके मतमें कूबड़ और कुछ नहीं, केवल पीठकी पङ्ख या पीठके कांटोंका ही रूपान्तर मात्र है। इनके बारेमें और अधिक कुछ नहीं जाना जाता। केवल यही, कि साधारणतः ये समष्ठ तिमि श्रेणीके ही अनुसार हैं। इनकी देशभेदसे निम्नलिखित शाखाएं हैं—

१। *Megaptera Longimana* or The Johnstone's Hump-backed whales वृहत् कुब्जपृष्ठ तिमि—उत्तर वा जर्मन सागर।

२। *Megaptera Kuzira* or the Kuzira-कुज्जीय तिमि या जापान देशादि कुब्जपृष्ठ तिमि—जापान सागर।

३। *Megaptera Americana* or the Bermuda Humpbacked whale वार्मुदा द्वीपीय कुब्जपृष्ठ तिमि।

४। *Megaptera poeskop* or the Cape Hump-backed whale, उत्तमाशा अन्तरीपका कुब्जपृष्ठ तिमि—दक्षिण आफ्रिका।

५। *M. Eschrichtus Robustus*-स्थूलकाय कुब्जपृष्ठ तिमि। *Balaenopttera* or the Rorqual (or the pike whales) खोडेन।

दन्तहीन तिमिश्रेणीके तृतीय विभागका नाम है चंचुमुख तिमि।

इनका मुख सूक्ष्म होनेके कारण इनका यह नाम पड़ा है। इनकी पीठमें एक छोटेसे पङ्खकी तरह पृष्ठकण्टक होता है। तिमिजातीय जीवोंमें यही श्रेणी वृहत् है। इस तिमिकी अपेक्षा और बड़ा जीव संसारमें दूसरा नहीं है। उत्तर देशका चञ्चुमुख तिमि १०० फुटसे भी बड़ा होता है। यह वृहत् श्रेणी ही अङ्गरेजीमें Rorqual नामसे ख्यात है। इसलिये हिन्दीमें इसे रर्कुयल या वृहत्काय चञ्चुमुख तिमि कहा जा सकता है। इस श्रेणीमें २५।२६ फुट दीर्घ तिमिकी एक जाति है जिसे अंग्रेजीमें pike-whale या बर्षामुख तिमि कहते हैं। इनके मुखकी आकृति अंग्रेजी पाइक नामक वर्षा अस्त्रकी तरह होती है। इसी श्रेणीके तिमि संख्यामें अधिक पाये जाते हैं। उत्तर यूरोपके रर्कुयालोंका रङ्ग स्लेटकी तरह धूसर और उदर सफेद होता है। ये ब्रिटेनद्वीपके दक्षिणमें नहीं आते। जलके एक स्थानमें स्थिर हो कर बहा नहीं करते, वरन् तैर कर घूमा करते हैं। घण्टेमें ये चार पांच मील घूम सकते और अतिउच्च शब्द करते हैं। ये वर्षासे आहत होने पर एक दौड़में ३००० फुट पर्यन्त चले जाते हैं। शिकारी लोग इस जातिके तिमि पकड़नेको नहीं जाते। पहले तो इनका पकड़ना बड़ा कष्टकर और मुद्दत्तिमिकी अपेक्षा विपद्जनक है, उस पर इनकी चर्वी बहुत कम और तिम्यस्थि क्षुद्र और निकृष्ट होती है। रर्कुयालकी गलेकी नाल औरोंकी अपेक्षा दीर्घ होती है। इसलिए ये मछलियां इत्यादि खा सकती हैं और छोटे छोटे कीड़े-मकोड़े तो एक ही झपाटेमें हड़प कर जाते हैं। एक बार एक रर्कुयालके पेटमें छः सौ काड मछलियोंके अस्थिपंजर पाये गये थे। इस जातिके केवल दो उपभेद देखे जाते हैं:

१। *Balaenoptera rostata*-उत्तरदेशीय चञ्चुमुख तिमि—उत्तर या जर्मन सागर पर्यन्त।

२। *Balaenoptera Swinhoa* or chinensis-चीनदेशीय चञ्चुमुख-फर्मोजा द्वीपके निकट।

दन्तहीन तिमिके चौथे विभागका नाम Physalu. अर्थात् पृष्ठकण्टकी है। ये देखनेमें ठीक रर्कुयालकी तरह होते हैं। फर्क इतना ही, कि उनकी पीठ बड़ी लम्बी चौड़ी और उसमें कांटे होते हैं। ये भी चञ्चुमुख ही हैं और यथार्थमें तो उन्हें चञ्चुमुख तिमिका एक उपविभाग कहना ही युक्तिसंगत जान पड़ता है। इनका स्वभाव इत्यादि भी रर्कुयालकी भाँति होता है। इनके ये भेद हैं—

१। *Physalus Antiquorum* or the Razor back—क्षुरपृष्ठ—ग्रीनलैण्ड और उत्तरमहासागर।

२। *Physalus Boops*—वूप—उत्तरसागर।

३। *Physalus fasciatus* or the Peruvian Finner, पेरू देशीय पृष्ठकण्टक—पेरू उपकूल।

४। *Physalus Iuasi* or the Japan Finner—जापानी पृष्ठकण्टक—जापान उपकूल।

५। *Physalus Australis* or the Southern Finner दक्षिण महासागरका पृष्ठकण्टक—दक्षिण महासागर।

६ *Physalus Dugnidii*-आकेनो द्वीपका पृष्ठकण्टक—आकेनो उपकूल।

७। *Physalus Patachonicus*-अमेरिकाका पृष्ठकण्टक—रायोप्लाटा उपकूल।

८। *Physalus Sibbaldii*-शिवाल्डी पृष्ठकण्टक—उत्तर सागर।

९। *Physalus sibbaliüs borealis* तुषारदेशीय शिवाल्डी—उत्तर सागर।

१०। *Physalus sibbaldius schligelii*-यवद्वीपका पृष्ठकण्टक—यवद्वीपका उपकूल।

११। *Physalus sibbaldius Antarcticus*-दक्षिण मेरुका पृष्टकण्टक—वोर्नियाका उपकूल।

१२। *Physalus Rudolphins laticeps* रौडल्फका पृष्टकण्टक—उत्तर सागर।

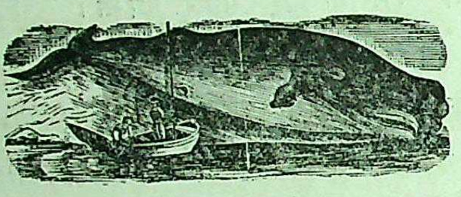

तिमिकी दूसरी श्रेणी है दन्तयुक्त। यूरोपके प्राणीतत्त्वविद् इन्हें डेण्टिसिटी (Denticete) कहते हैं। ये प्रधानतः तीन शाखाओंमें विभक्त हैं (१) *Cal d ntidae* या तैलकर तिमि, (२) *Kogia* or Short headed whales या क्षुद्रशीर्ष तिमि और (३)

या तैलपृष्ठ तिमि। प्रथम शाखाके तिमियोंके नासा-छिद्र दो अलग अलग, तालू समतल, मस्तक खूब बड़ा और डाढ़ीमें दाँत होते हैं। अंग्रेजोंमें ये साधारणतः Catodon, Cachalot या Sperm whale नामसे कहे जाते हैं। इनकी पुरुषजाति कमसे कम ६५ फुट और स्त्रीजाति कमसे कम ३५ फुट दीर्घ होती है। इनके शरीरका रङ्ग सब जगह एकसा नहीं, प्रायः उदर और पूंछका भाग सफेद और बाकी अंश काला होता है। ये अपनी पूंछकी चोटसे पानी फेंक कर क्रीड़ा करते घूमते हैं। नासाछिद्र द्वारा ये भी १०।१५ मिनटके बाद पानी फेंका करते हैं। इनके शरीरकी तैलकर चर्बी खूब गाढ़ी और प्रायः ८०।९० मन निकलती है। इनके पानी फेंकनेवाली छिद्रनालीके नीचे दक्षिण भागके गह्वरमें तेलकी तरह तरल पदार्थ होता है। वही असली तिमि-तैल (Spermacete oil) है। यह तेल प्रत्येक प्राणीमें प्रायः ४०।५० मन पाया जाता है। इनकी चर्बीके तेलको Sperm-oil कहते हैं। असली तिमि तेल चर्बीके तेलके साथ मिला रहता है। इस जातिके तिमि भूमध्य-सागरमें भी आते हैं। ये ८० फुट तक दीर्घ होते हैं। इनका मस्तक इतना बड़ा होता है कि वह समस्त शरीरका तृतीयांश कहा जा सकता है। साधारणतः इनका वर्ण गाढ़ा धूसर होता है। पूर्ण वयस्क तिमिको शिकारी लोग Bull-whale (वृषभ-तिमि) कहते हैं। इनका मुख-विवर भी खूब बड़ा और चौड़ा होता है। नीचेके मसूढ़ासे ऊपरका मसूढ़ा कई फुट बड़ा होता है। इनके तिम्यस्थि या दन्त नहीं होते। नीचेके मसूढ़ोंमें दांत होते हैं। मुख बन्द करते समय इन दाँतोंके प्रवेशके लिए ऊपरके मसूढ़ेमें छेद होते हैं। इनकी बाईं आँख दहिनी आंखसे छोटी होती है। इनकी पीठका मध्य भाग कुब्जपृष्ठ तिमिकी तरह ऊंचा होता है। तैरते समय कुब्ज भाग जलके ऊपर उठा रहता है। ये घण्टेमें सात मील तक चलते हैं। शिकारियों द्वारा छेड़े जाने पर और भी तेज चलते हैं। इनके पंखे अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। पूंछका पंखा खूब चौड़ा होता हैं। यह जिस समय माथा उठा कर जलके ऊपर विश्राम करते हैं उस समय मालूम पड़ता है मानो कृष्णगिरिका एक खण्ड जलके ऊपर उठा हुवा है। इनकी चर्बीवाली खाल बृहत्तिमिकी तरह मोटी नहीं होती। वक्षमें १४ इञ्च और अन्यत्र ७।८ इञ्च होती है। मस्तकके तैल-गह्वरके नीचे एक चकत्ता चर्बीका होता है जिसे Junk (जङ्क) कहते हैं। इससे चर्बीका तेल निकलता है। चर्बी वाली खाल निकाल कर गलानेसे तेल निकलता है। यह तेल गलाते समय तिमिका चमड़ा ही लकड़ीका काम करता है। ये जलचर जीव अन्यान्य जीवोंको भक्षण करते हैं। ये ५।६ सौ एक साथ मिल दल बांध कर चलते हैं। इनके दलमें स्त्री जाति ही अधिक पाई जाती है। इनके पुरुषोंमें प्रायः ही युद्ध होता है, जिससे दन्त मसूढ़े और ठुड्डीकी हड्डी टूट जाती हैं। इस तिमिकी प्रथम शाखाके ये भेद हैं—

१ *Catodon Macrocephalus*—सममण्डलका तैलकर तिमि—सममण्डलका समुद्र।

२। *Cafodon cabeeasi* मेक्सिको देशीय तैलकर तिमि—मक्सिको उपकूल।

३। *Catodon polycyphus* दक्षिण सागरीय तैलकर तिमि—दक्षिणसागर।

इस तिमिकी दूसरी शाखा क्षुद्रमस्तक है। इनकी आकृतिमें मस्तककी क्षुद्रता छोड़ कर और कोई भेद नहीं है, इस श्रेणीके केवल दो उपविभाग हैं। (१) *Kogiu bleniceps* or short headed sperm whale क्षुद्रमस्तक तैलकर तिमि दक्षिण-आफ्रिकाके उपकूलमें और (२) *Kogia macbayii* भारतीय क्षुद्रमस्तक तैलकर तिमि अष्ट्रेलिया और भारत-महासागरमें निवास करते हैं।

इस तिमिकी तृतीय शाखा कुब्जपृष्ठ तैलकर तिमिका उपविभाग हैं। (१) *Physter tursis* or the black fish कृष्णमत्स्य—स्काटलैण्डका उपकूल और (२) *Euphysetes Grayii* वा अष्ट्रेलियाके तैलकर तिमि—दक्षिण-महासागर।

तिमिकी यह जाति शिकारियोंके बड़े लोभकी सामग्री है। शिकारी लोग इसे पाकर और कुछ नहीं चाहते। इनके शिकार करनेमें बड़ी विपदोंका सामना करना पड़ता है। ये पूंछके झपाटे हीसे नौका उलटा देते हैं। इनके शिकारकी प्रणाली वृहत्तिमिके शिकारकी तरह है। शिकारी लोग नौकामें चढ़ हारपून (Harpoon) नामक बर्छीसे आक्रमण करते हैं और एकके ऊपर एक बर्छीकी वर्षा कर मार डालते हैं। हारपूनके आघातसे दुर्बल हो जाने पर इन्हें मार डालना कष्ट कर नहीं होता। हारपूनमें खूब बड़ी रस्सी बंधी रहती है। आघात पाकर ये डूब जाते हैं। उस समय मछली पकड़नेकी तरह रस्सी छोड़ कर नौकामें तेजीसे उनके साथ घूमना होता है। फिर ऊपर उठ आने पर बर्छी छोड़ कर इन्हें पकड़ा जाता है। हारपूनका फला ठीक बर्छीके (मछली पकडनेके काँटे)की तरह उलटी ओरको घुमाया होता है। यह देखनेमें लङ्गरके फलकी तरह होता है। नौकामें ४०।५० शिकारी दो हारपून और ५।६ बर्छे होते हैं। नौकासे हारपून फेंकते ही नौका पहले एक दम पीछे हटानी पड़ती है। चोट लगनेसे तिमि भयके मारे सम्मुख नहीं दौड़ते, हमेशा जलके नीचे डूबते हैं। यहां तक कि २०० हाथ नीचे डूब जाते हैं। हारपूनकी रस्सी इससे भी बड़ी रखनी होती है। पानीके नीचे तिमि २०।२५ मिनट डूबे रहते है, परन्तु इसके बाद श्वासकष्ट होनेके कारण फिर ऊपर उठ आते हैं। कभी वे झपट्टा मार कर नौका उलट देते हैं। ये बर्छेके आघातसे ही मरते हैं। चोट खाकर कोई कोई तिमि ऊपर नहीं उठते और जो ऊपर नहीं उठते वे हाथ नहीं आते। इनके झपट्टेसे बचनेके लिए नौकामें बड़े बड़े लोहेके कांटे लगे रहते हैं। तिमिके मरजाने पर शिकारी नौकाको उसके निकट ले जाते हैं और जलमें ही उसके शरीरके ऊपर खड़े हो कर उसकी खाल और चर्बी निकालना आरम्भ कर देते हैं। इन लोगोंके साथ जहाज रहता है। नौकाको जहाजसे बांध कर या लङ्गर डाल कर इस तरह ये तेल चर्बी इत्यादि संग्रह करते हैं। वसन्त कालमें शिकार आरम्भ होता है और शरद समयमें समाप्त हो जाता है। नोरवेके निवासी नवम शताब्दीसे वृहत्तिमिका शिकार करना जानते हैं। त्रयोदश शताब्दीमें फरासीसी स्पेनियर्ड और क्लेमिज लोगोंने इनका शिकार करना आरम्भ किया। अंग्रेजोंने इसे १६वीं सदीसे शुरू किया है। इङ्गलैण्डके कानून मुताबिक इङ्गलैण्डके उपकूलसे तीन मीलके बीचमें जो तिमि पकडे जांय, वे सब राजसम्पत्ति गिनी जाती है, इससे दूर सागरमें जो सबसे पहले बल्ली चला कर तिमिको रोक दे वही व्यक्ति उसके अर्धांशका अधिकारी होता है; अपर अर्धांशके अधिकारी अन्य अनुचर आदि होते हैं। इनको छोड़ और भी कई स्थानीय नियम हैं।

२ समुद्र। ३ राजविशेष, पुरुवंशीय दूर्वके पुत्र। इन्हीं तिमिराजाने ४७ वर्ष राजत्व किया था।

तिमिकोष (सं॰ पु॰) तिमेः कोष इव। समुद्र।

तिमिङ्गिल (सं॰ पु॰) तिमिं गिलति ततः मुम्। (गिलेऽगिलस्य। पा ६।३।१०) १ वृहत्काय मत्स्यविशेष, ह्वेल नामकी बड़ी मछली। २ द्वीपविशेष, एक द्वीपका नाम। ३ उक्त देशके निवासी। (त्रि॰) ४ तद्द्वीपजात, जो उस द्वीपमें उत्पन्न हो।

तिमिङ्गिलगिल (सं॰पु॰) तिमिङ्गिलं गिलति तिमिङ्गिल-गृ-क, रस्य ल, अगिलस्येति पर्य्युदासात् न मुम्। अति बृहत् मत्स्यभेद, एक प्रकारकी बहुत बड़ी मछली।

तिमिङ्गिलाशन (सं॰ पु॰) तिमिङ्गिलो मत्स्यः अश्यते यत्र अश आधारे ल्युट्। १ दक्षिणस्थ देशभेद, दक्षिणका एक देश-विभाग जिसके अन्तर्गत लङ्का आदि हैं। यहांके निवासी तिमिङ्गिल मछलीका मांस खाते हैं। २ उक्त देशके निवासी। ३ उक्त देशके राजा।

तिमिज (सं॰ क्ली॰) तिमितो जायते जन-ड। मुक्ताभेद, तिमि नामक मछलीसे निकलनेवाला मोती। यह मोती वेधनीय है; किन्तु अपरिमित गुणशाली जान कर इसका मूल्य शास्त्रमें निर्दिष्ट नहीं हुआ है। यह राजाओंका सुत, अर्थ, सौभाग्य और यशः-सम्पादक, रोग-शोक-हारक तथा कामप्रद हैं। (बृहत्सं॰ ८१ अ॰)

तिमित (सं॰ त्रि॰) तिम कर्त्तरि क्त। १ निश्चल, स्थिर। २ क्लिन्न, आर्द्र, भींगा।

तिमितिमिङ्गिल (सं॰ पु॰) महामत्स्यभेद, एक प्रकारकी बड़ी मछली।

तिमिध्वज (सं॰ पु॰) दानवविशेष, शम्बर नामक दैत्य जिसे मार कर रामचन्द्रने ब्रह्मासे दिव्यास्त्र प्राप्त किया था। (रामा॰ २।२०।११)

तिमिर (सं॰ क्ली॰-पु॰) तिम्यतीति तिम-किरच्। इषि मदि मुदीति। उण् १।५२। १ अन्धकार, अँधेरा। २ चक्षुरोगविशेष, आँखका एक रोग। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

दृष्टिविशारद पण्डितोंका कहना है, कि मनुष्योंकी दृष्टि पञ्चभूतोंके गुणसे बनी हुई है। बाह्य पटलमें अव्यय तेज कर्त्तृक आवृत, शीतल प्रकृतिविशिष्ट, खद्योतके दोनों विस्फुलिङ्गोंसे निर्मित और मसूरदल परिमित विरवाकृतिविशिष्ट, इन सब दृष्टिगत रोगोंके तथा पटलके अभ्यन्तरस्थ तिमिर रोगके लक्षण कहे जाते हैं।

दोष विगुण हो कर शिरा-समूहके अभ्यन्तर जाता है और उसके दृष्टिके प्रथम पटलमें ठहरनेसे सभी रूप अव्यक्त भावसे देखे जाते हैं। विगुणित दोषके द्वितीय पटलमें रहनेसे दृष्टि विह्वल हो जाती है और सब जगह मक्षिका, मशक, केशजाल, मण्डल, पताका, मरीचि और कुण्डल समूह देखनेमें आते हैं, अथवा जलमग्न वा वृष्टि होती है, ऐसा मालूम पड़ता है; अथवा मेघाच्छन्न वा तिमिराच्छन्नके जैसा दीख पड़ता है। दृष्टिकी भ्रान्तिसे दूरस्थित वस्तु निकटमें और निकटस्थित वस्तु दूरमें मालूम पड़ती है और कोशिश करनेसे भी सूचीपार्श्व नहीं देखा जाता। दोषके तृतीय पटलमें रहनेसे बृहदाकार और वस्त्राच्छन्नके जैसा दीख पड़ता है और कर्ण, नासिका तथा चक्षुःविशिष्ट सभी आकृतियाँ विपरीत भावसे देखनेमें आती हैं। दोष बलवान् हो कर जब दृष्टिके अधोभागमें रहता है, तब समीपस्थ द्रव्य, ऊर्द्ध्व भागमें रहनेसे दूरस्थ द्रव्य और पार्श्वभागमें रहनेसे पार्श्वस्थ द्रव्य नहीं दीखता। दोष जब दृष्टिमें चारों तरफ फैल जाता है, तब सभी वस्तु सङ्कुचित दीख पड़ती हैं। दृष्टिके केवल दो स्थानोंमें यदि दोष रहे, तो एक आकृति तीन बार और यदि अवस्थित भावसे रहे, तो बहुत बार देखती है। चतुर्थ पटलमें दोष रहनेसे तिमिर रोग उत्पन्न होता है। तिमिर रोगमें, एक ही समयमें दृष्टिरोध होनेसे वह लिङ्गनाश रोग हो जाता है। तिमिर रोगके अत्यन्त गभीर होने पर चन्द्र, सूर्य, विद्युत् और नक्षत्रविशिष्ट आकाश तथा निर्मल तेज और ज्योतिः पदार्थ देखनेमें आते हैं। लिङ्गनाश रोगकी इस अवस्थाको नीलिका वा काच कहते हैं। यह लिङ्गनाश रोग यदि वायुसे उत्पन्न हो, तो सभी पदार्थ लाल, सचल और मैले दीखते हैं। पित्त कर्त्तृक उत्पन्न होनेसे आदित्य, खद्योत, इन्द्रधनु, तड़ित् और मयूरपुच्छके जैसा विचित्र वर्ण अथवा नील वा कृष्णवर्ण, वा श्वेत चामर वा श्वेतवर्ण मेघके जैसा अत्यन्त स्थूल अथवा मेघशून्य समयमें मेघाच्छन्नके जैसा, अथवा सभी पदार्थ जलप्लावितसे दीखते हैं। रक्त कर्त्तृक उत्पन्न होनेसे सभी रक्तवर्ण और अन्धकारमय, कफसे उत्पन्न होनेसे सभी श्वेतवर्ण और स्निग्ध तैलाक्त जैसे दीखते है। पित्त कर्त्तृक उत्पन्न होनेसे परिम्लायिरोग होता है। इसमें सभी दिशाएँ नवोदित सूर्यकी नाईं वा खद्योतपूर्ण वृक्ष समूहकी नाईं दीख पड़ती हैं। वायु कर्त्तृक दोष उत्पन्न होनेसे दृष्टिमण्डल रक्तवर्ण, पित्तसे परिम्लायि-

रोगयुक्त अथवा नीलवर्ण-श्लेष्मसे श्वेतवर्ण, शोणितसे रक्तवर्ण, और सन्निपातसे विचित्रवर्ण होता है।

परिम्लायिरोगमें दृष्टिमण्डलमें रक्तजन्य अरुणवर्ण मण्डलाकार स्थूलका उत्पन्न होता है अथवा समूचा मण्डल कुच्छ नीलवर्ण हो जाता है। इस रोगमें कभी कभी आपसे आप दोष क्षय हो कर दृष्टिकी शक्ति बढ़ जाती है।

इसके सिवा पित्तविदग्धदृष्टि, कफविदग्धदृष्टि, रात्र्यन्धता, धूमदर्शी, ह्रस्वजाड्य, नकुलान्धता और गम्भीरक ये सात प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। दृष्टिके स्थानमें दुष्टपित्तके रहनेसे वह स्थान पीला हो जाता है, तथा सभी वस्तु पीली नजर आती हैं। इसे पित्तविदग्धदृष्टि कहते हैं। दोषके तृतीय पटलमें रहनेसे रोगीको दिनके समय नहीं सूझता, रातको सूझता है। दृष्टि जब श्लेष्मासे विदग्ध होती है, तब सभी पदार्थ सफेद दीख पड़ते हैं।

तीनों पटलोंमें यदि थोड़ा थोड़ा दोष रहे, तो नक्तान्धता तुरंत उत्पन्न होती है। इसमें दिनके समय सूर्यकिरणमें कफकी अल्पताके कारण दृष्टिशक्ति प्रकट होती है। शोक, ज्वर, परिश्रम और मस्तकके अभिताप द्वारा दृष्टिके अभिहत हो जाने पर सभी पदार्थ धूम्रवर्ण देखे जाते हैं। इसको धूमदर्शी कहते हैं। इसमें दिनके समय बारीक वस्तु बहुत कठिनतासे नजर आती है।

रातको शैत्यगुण द्वारा पित्तकी अल्पताके कारण वे सब पदार्थ देखे जाते हैं, इसे ह्रस्वजाड्य कहते हैं। जिस रोगमें दृष्टिके दोषाभिभूत हो जानेसे नकुलकी दृष्टिके समान विद्युत्‌की आभा निकलती है, उसे नकुलान्ध कहते हैं। वायु कर्त्तृक दृष्टिस्थानके विरूप होनेपर भी उसका अभ्यन्तर भाग बहुत गम्भीर भावसे प्रकाशित होता है। इन सब लोगोंके सिवा दृष्टिस्थानमें सनिमित्त और अनिमित्त नामक दो प्रकारके और भी बाह्यरोग हैं। मस्तकके अभितापसे दृष्टि हत होने पर सनिमित्त होता है। यह रोग अभिष्यन्द निदर्शन द्वारा जाना जाता है। देवता, ऋषि, गन्धर्व, महोरग वा ज्योतिः अथवा दीप्तिमान् पदार्थोंके सन्दर्शनसे दृष्टिगत होने पर अनिमित्त लिङ्गनाश होता है। इस रोगमें दृष्टि स्पष्ट विमल वैदूर्यमणिकी तरह दीख पड़ती है। दृष्टि द्वारा अभिघात हत होने पर विदीर्ण, अवसन्न वा हीन मालूम पड़ती है।

(सुश्रुत चिकित्सित ७ अ०)

कुपित दोषके बाह्य पटलमें रहनेसे दृष्टि बिलकुल बन्द हो जाती है, इसीको कोई तिमिर और कोई लिङ्गनाश कहते हैं। यह तमःसदृश तिमिररोग यदि अचिरजात हो तो रोगीको सब पदार्थ चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, विद्युत्, अग्नि आदिका तेज और सुवर्णादि दीप्तिशील पदार्थोंके समान दीखने लगते हैं। इसी लिङ्गनाश रोगको नीलिका और काच कहते हैं। (भावप्र०) इन दोनोंके लक्षण पहले ही लिख चुके हैं। विशेष विवरण चक्षुरोग और रोगमें देखो।

तिमिरनुद् (सं० पु०) तिमिरं नुदति खण्डयति नुद्-क्विप्। १ सूर्य। (बृहत्सं० ५।१५) (वि०) २ अन्धकारनाशक, अंधकारका नाश करनेवाला।

तिमिरभिद् (सं० पु०) तिमिरं भिनत्ति भिद-क्विप्। १ सूर्य। (त्रि०) २ अन्धकारको नाश करनेवाला।

तिमिररिपु (सं० पु०) तिमिरस्य रिपुः, ६-तत्। १ सूर्य। (त्रि०) २ तिमिरनाशक, अंधकार दूर करनेवाला।

तिमिरहर (सं० पु०) १ सूर्य। २ दीपक।

तिमिरा (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हल्दी।

तिमिरारि (सं० पु०) तिमिरस्य अरिः, ६-तत्। १ सूर्य। २ अन्धकारका शत्रु।

तिमिरावलि (सं० स्त्री०) अन्धकारका समूह।

तिमिरि (सं० पु०) तिमि मत्स्य, तिमि नामकी मछली।

तिमिरिन् (सं० पु०) तिमिरं अस्त्यस्य तिमिर-णिनि। १ अन्धकारकारी, अंधकार करनेवाला। २ इन्द्रगोप कीट, जुगनू।

तिमिर्ष (सं० पु०) दीरुश्रुत।

तिमिष (सं० पु०) तिम इसक्। १ ग्राम्य कर्कटी, कंकड़ी, फूट। २ कुष्माण्ड, कुम्हड़ा। ३ नाटाम्र, तरबूज।

तिमी (सं० स्त्री०) तिमि पृषोदरादित्वात् ङीप्। १ तिमि मत्स्य। २ दक्षकी एक कन्या। यह कश्यपकी स्त्री और तिमिङ्गलोंकी माता थी।

तिमीर (सं० पु०) वृक्षभेद, एक पेड़का नाम।

तिमुहानी (हिं० स्त्री०) १ वह स्थान जहां तीन ओर तीन राह गई हों। २ वह स्थान जहां तीन ओरसे नदियां आ कर मिली हों।

तिम्म (तिम्मप)—इस नामके दाक्षिणात्यमें बहुतसे छोटे छोटे राजा, सामन्त वा सर्दार हो गये हैं। कृष्णा जिनसे आविष्कृत बहुतसे शिलालेखोंमें उनका नाम उल्लिखित हुआ है। इनमेंसे एक कृष्णदेवरायके मन्त्री थे, जिन्होंने १४३७ शकमें कोण्डवीड़ अधिकार किया था। मङ्गलगिरिके शिलालेखमें इनका माहात्म्य वर्णित है। मङ्गलगिरिके गरुड़ल्वर मन्दिरमें एक शिलालेख है, जिसमें उड्डराजपुत्र तिम्मका परिचय पाया जाता है। विजयनगरकी एक शिलालिपिमें चिक्क तिम्मय्यदेवका महाअरसुके पुत्र तिम्मराजके नामसे उल्लेख मिलता है। वेङ्कटगिरिके नायुड़ू वंशमें भी गणि-तिम्म नामके एक पराक्रमशाली पुरुषका जन्म हुआ था। इनके समयमें पलनाड़ और कृष्णाके दक्षिणांशस्थित प्रदेशोंमें कुछ दस्यु-सरदारोंने मिल कर बहुत उपद्रव किया था। इन्होंने विजयनगराधिपति अच्युतदेवरायके आदेशानुसार वहां जा कर उनका शासन किया था। इसी तरह १५३० ई०में मल्लपुरके कृष्णाके कुछ सरदारोंको परास्त किया था। आखिरको रणक्षेत्रमें ही ये मारे गये थे। इनके पुत्रने भी मुसलमान सरदारोंसे घोर युद्ध किया था।

तियला (हिं० पु०) स्त्रियोंकी पोशाक।

तिया (हिं० पु०) तीन बूटियोंका ताशका एक पत्ता। २ नक्कीपुरके खेलका एक दाँव।

तिरकट (पु०) अगला पाल।

तिरकट गावासवाई (पु०) वह पाल जो सबसे ऊपर और आगेमें रहता है।

तिरकटगावी (पु०) ऊपरका पाल।

तिरकट डोल (पु०) अगला मस्तूल।

तिरकट तवर (पु०) छोटा और चौकोर अगला पाल। यह सबसे बड़े मस्तूलके ऊपर आगेकी ओर लगाया जाता है। जब धीमी हवा चलती है तो यह पाल काममें लाया जाता है।

तिरकट सवर (पु०) वह पाल जो सबसे ऊपर रहता है।

तिरकट सवाई (पु०) रस्सेमें बंधा हुआ अगला पाल। यह मस्तूलके सहारेके लिये लगाया जाता है।

तिरकाना (हिं० क्रि०) १ ढीला छोड़ना। २ रस्सा ढीला करना।

तिरकुटा (हिं० पु०) सोंठ, मिर्च, पीपल इन तीन कड़ुई दवाइयोंका समूह।

तिरखूँटा (हिं० वि०) त्रिकोणयुक्त, जिसमें तीन कोने हों।

तिरच्छ (सं० पु०) तिनिश वृक्ष।

तिरछउड़ी (हिं० स्त्री०) मालखम्भकी एक कसरत।

तिरछा (हिं० वि०) जो ठीक सामनेकी ओर न जा कर इधर उधर हट कर गया हो। २ अस्तरके काममें आनेवाला एक प्रकारका रेशमी कपड़ा।

तिरछाना (हिं० क्रि०) तिरछा होना।

तिरछापन (हिं० पु०) तिरछा होनेका भाव।

तिरछी (हिं० वि०) तिरछा देखो।

तिरछी बैठक (हिं० स्त्री०) मालखम्भकी एक कसरत।

तिरछौहाँ (हिं० वि०) जो कुछ तिरछापन लिए हो।

तिरछौहैं (हिं० क्रि०-वि०) वक्रता, तिरछापन लिए हुए।

तिरना (हिं० क्रि०) पानीकी सतहके ऊपर रहना, उतराना। २ तैरना, पैरना। ३ पार होना। ४ मुक्त होना, उद्धार पाना।

तिरनी (स्त्री०) एक डोरी जिससे घाघरा या धोती नाभिके पास बांधते हैं, नीवी, तिन्नी। २ नाभिके नीचे लटकता हुआ घाघरे या धोतीका एक भाग।

तिरप (हिं० स्त्री०) नाचमें एक प्रकारका ताल।

तिरपटा (हिं० वि०) जो तिरछी आँख करके देखता हो, ऐंचाताना।

तिरपन (हिं० वि०) १ जिसकी संख्या पचाससे तीन ज्यादह हो। (पु०) २ वह संख्या जो पचास और तीनके योगसे बनी हो।

तिरपाई (हिं० स्त्री०) वह चौकी जिसमें तीन पाये लगी रहते हैं, स्टूल।

तिरपाल (हिं० पु०) १ छाजनमें खपड़ोंके नीचे दिए जानेका फूस या सरकण्डोंके लम्बे पूले। २ वह कनवस जिसमें रोगन चढ़ा रहता है।

तिरपौलिया (हिं० पु०) वह बड़ा स्थान जिसमें तीन फाटक हों और जिसमें होकर हाथी, घोड़े, ऊंट इत्यादि सवारियाँ अच्छी तरह निकल सकें।

तिरफला (हिं० पु०) त्रिफला देखो।

तिरखी (हिं० स्त्री०) सिन्धु देशमें एक प्रकारकी नावका नाम।

तिरमिरा (हिं० पु०) १ कमजोरीके कारण नजरका एक दोष। २ तीक्ष्ण प्रकाशमें नज़रका न ठहरना, चकाचौंध। ३ घी तेल इत्यादिके छींटे जो पानी दूध तरल पदार्थके ऊपर तैरते दिखाई देते हैं।

तिरमिराना (हिं० क्रि०) रोशनीके सामने नजरका न ठहरना, चौंधना, झपना।

तिरवट (हिं० पु०) तिल्लानेकी जातिका एक प्रकारका राग।

तिरवा (फा० पु०) किसी स्थानकी उतनी दूरी जहां तक एक तीर जा सके।

तिरश्च (सं० क्ली०) शय्याधारका तिर्यक् अवलम्ब, चारपाईके तिरछे पाये।

तिरश्चता (सं० त्रि०) तिरश्चीन, तिरछा।

तिरश्चथा (सं० अव्य०) गुप्तरूपसे, छिपके।

तिरश्चिराजि (सं० पु०) आङ्गिरस वंशके एक ऋषिका नाम।

तिरश्ची (सं० स्त्री०) तिर्यक् जातिः स्त्रियां ङीष्। १ पशु-पक्षियोंकी स्त्री, मादा। (पु०) २ आङ्गिरस वंशके एक ऋषिका नाम।

तिरश्चीन (सं० त्रि०) तिर्यगेव स्वार्थे ख। १ तिर्यग्भूत, तिरछा। २ कुटिल, टेढ़ा।

तिरश्चीनगति (सं० स्त्री०) मल्लयुद्धकी एक गति, कुश्तीका एक पेंच।

तिरश्चीननिधन (सं० क्ली०) सामभेद।

तिरश्चीनपृश्नि (सं० त्रि०) जिसमें तिरछा दाग दिया गया हो।

तिरस् (सं० अव्य०) तरति दृष्टिपथं तॄ-असुन्। १ अन्तर्धान, गायव। २ तिर्यग्, तिरछा। ३ तिरस्कार।

तिरसठ (हिं० वि०) १ जिसकी संख्या साठसे तीन अधिक हो। (पु०) २ वह संख्या जो साठ और तीनके योगसे बनी हो।

तिरसा (हिं० पु०) एक तरहका पाल जिसका एक सिरा चौड़ा और दूसरा तङ्ग हो।

तिरस्कर (सं० त्रि०) तिरस्करोति णिच् सलोपः तिरयति आच्छादयति। तिरः करोति कृ-ट। आच्छादक, परदा करनेवाला, ढांकनेवाला।

तिरस्करिन् (सं० त्रि०) तिरः करोति कृ-णिनि। आच्छादक, ढांकनेवाला।

तिरस्करिणी (सं० स्त्री०) तिरस्करिन् संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वात् वृद्ध्यभावः ततो ङीप्। १ पटमय आच्छादक पदार्थ, परदा, कनात, चिक। २ ओट, आड़। ३ मनुष्यको अदृश्य करनेकी एक प्रकारकी विद्या।

तिरस्करी (हिं० पु०) आच्छादक, परदा।

तिरस्कार (सं० पु०) तिरस्-कृ-घञ्। १ अनादर, अपमान। २ भर्त्सना, फटकार। ३ अनादरपूर्वक त्याग। (त्रि०) ४ अवज्ञाकारक, अपमान करनेवाला।

तिरस्कारिन् (सं० त्रि०) तिरस् करोति कृ णिनि। १ आच्छादक, ढांकनेवाला। (पु०) २ पटभेद, कनात, चिक। (त्रि०) ३ अवज्ञाकारक, अपमान करनेवाला।

तिरस्कृत (सं० त्रि०) तिरस् कृ-कर्मणि क्त। १ अनादृत, जिसका तिरस्कार किया गया हो। २ आच्छादित, परदेमें छिपा हुआ। ३ अनादरपूर्वक त्याग किया हुआ। (क्ली०) ४ तन्त्रसारोक्त मन्त्रविशेष, तन्त्रसारका एक मन्त्र। इसके मध्यमें दकार और मस्तक पर दो कवच और अस्त्र होता है।

तिरस्क्रिया (सं० स्त्री०) तिरस्-कृ भावे श। १ अनादर, तिरस्कार। २ आच्छादन। ३ वस्त्र, पहरावा।

तिरस्य (सं० पु०) तिरस् कण्ड्वादित्वात् यक्। अन्तर्धान, गायव।

तिरहुत—यह संस्कृत तीरभुक्ति शब्दका अपभ्रंश है। १८७४ ई०के शेष तक यह भारतवर्षके अन्तर्गत विहार प्रदेशके पटना विभागके सर्वोत्तरवर्त्ती एक जिला था। बङ्गालके छोटे लाटके अधीन ऐसा बड़ा और अधिक संख्याविशिष्ट जिला दूसरा नहीं था। इसमें मुजफ्फरपुर, हाजीपुर, सीतामढ़ी, दरभङ्गा, मधुवनी और ताजपुर ये छह उपविभाग लगते थे। उस समय इसके उत्तरमें नेपालराज्य, उत्तर-पूर्वमें भागलपुर जिला, दक्षिण-पश्चिममें मुङ्गेर जिला, दक्षिणमें गङ्गानदी, दक्षिण-पश्चिममें सारण जिला वा गण्डक नदी, उत्तर-पश्चिममें चम्पारण

जिला था। उत्तर सीमामें नेपालराज्यके साथ अंगरेजी राज्यके सीमानिर्द्धारणके लिये खाई, नदी, ईंटे और काठ आदिके स्तम्भ हैं।

१८७५ ई०को १ली जनवरीसे यह बड़ा जिला शासनकार्यकी सुविधा और सुव्यवहारके लिये दो स्वतन्त्र जिलाओंमें विभक्त हुआ। मुजफ्फरपुर, हाजीपुर, सीतामढ़ी इन तीनों उपविभागोंको ले कर मुजफ्फरपुर तथा दरभङ्गा, मधुवनी और ताजपुर इन तीन उपविभाग लेकर दरभङ्गा जिला संगठित हुआ है। वास्तवमें अभी बङ्गाल-विहारके मानचित्रसे तिरहुत जिलेका अस्तित्व लोप हो गया है। मुजफ्फरपुर और दरभङ्गा इन दो जिलोंका विवरण अब भी स्वतन्त्र भावसे संगृहीत नहीं हुआ है; सुतरां तिरहुत नाममें ही इनका कुछ कुछ विवरण दिया जाता है।

१७६५ ई०में जब सूबा विहार अंगरेजोंके हाथ आया, तब गङ्गाके उत्तरकूलवर्ती सारण, चम्पारण, तिरहुत और हाजीपुर ये चार स्थान सरकारमें विभक्त थे। उस समय सरकार तिरहुतका परिमाण ५०५३ वर्गमील और सरकार हाजीपुरका परिमाण ७८३५ वर्गमील था; किन्तु उस समय सारे तिरहुत जिलेका परिमाण केवल ६३४३ वर्गमील था, पहले सरकार तिरहुत और सरकार हाजीपुर इन दोनोंमें १०४ परगने थे। इन सब परगनोंके नामकी तालिका नहीं पाई जाती, पर सरकारी कागजातसे जाना जाता है, कि उस समय भागलपुर और मुङ्गेर जिलोंके अधिकांश स्थान इन्हीं दो सरकारोंके अधीन थे।

१७९५ ई०में भागलपुर और मुङ्गेरके अन्तर्गत बलिया, मस्जिदपुर, बादेभुसारी, इमादपुर, कुड़ा, गावखण्ड, कवखण्ड, नारादिगर, छय, फरकिया, मालकी बलीया, मानले गोपाल और नयपुर ये तेरह परगने तिरहुत कलेक्टरीके अन्तर्गत हुए, किन्तु १८३७ ई०में ये पुनः तिरहुतसे अलग कर दिये गये। १८६५ ई०में सारणके अन्तर्गत परगना बावरा और मुङ्गेरके अन्तर्गत परगना बादे भुसारी तिरहुतके अन्तर्भुक्त हुआ तथा १८६८ ई०में गङ्गानदीकी गति परिवर्त्तित हो जानेसे पटनाके अन्तर्गत भीमपुर, गयासपुर तथा आजिमाबाद इन परगनोंके कई अंश तिरहुतके अन्तर्भुक्त हुए।

तिरहुत जिलेका भूभाग साधारणतः पङ्कमय है, बीच बीचमें नदी है, कई जगह जङ्गल भी हैं। बांस और आमके वन यथेष्ट हैं। समस्त भूभाग जमीनकी प्रकृतिके अनुसार तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। दक्षिण-पश्चिममें हाजीपुर, बालागाछा, सरेसा, बिपाड़ा, रति और गदेश्वर परगनेको लेकर एक विभाग बना है; इसकी जमीन ऊंची और उर्वरा है। बाद छोटी गण्डक और बाघमती नदियोंके अन्तर्गत दुआब भूभाग है; इसकी जमीन पङ्कमय है, वर्षामें नदी बढ़ जाती है। यहांका प्रधान शस्य खरीफ है। तृतीय विभाग बाघमती नदीके उत्तर और पूर्वमें है, यहांकी जमीन भी पलङ्की है और जिलेका मध्य भाग सबसे अधिक स्वास्थ्यकर है। हैमन्तिक धान ही इस अञ्चलका प्रधान शस्य है।

जमीन स्वभावतः रेतीली है, कहीं काङ्कर और कहीं मट्टीमें सोरा तथा नमक पाया जाता है। नुनिया नामकी एक जाति सोरा और नमकसे अपनी जीविका निर्वाह करती है।

तिरहुतमें गङ्गा, बड़ी गण्डक, बया, छोटी गण्डक और तिलगुजा ये चार नदियां प्रवाहित हैं। इनमेंसे गङ्गा, गण्डक, छोटी गण्डक, बाघमती छोटी बाघमती, तिलगुजा और कराई इन सात नदियोंमें वर्ष भरमें सभी समय जा आ सकते हैं। इनके सिवा केवल वर्षाकालमें कमला और इसकी शाखा नदी बलान, चाउस, झिम, लाखहाण्डाई, पुरानी बाघमती और बयामें भी गमनागमन होता है।

गंगा—शिकमारीपुरके निकट गङ्गानदी इस जिलेकी दक्षिणी सीमाके रूपमें गिनी जाती है। हाजीपुरके निकट चामताघाटसे कई कोस उत्तर-पूर्वमें बाढ़ नामक स्थानके सामने गण्डक गङ्गामें जा मिली है। वर्षाकाल छोड़ कर दूसरे समयमें गङ्गाकी चौड़ाई आध कोस तक रहती है, किन्तु वर्षाकालमें बहुत बढ़ जाती है। सारण दियारासे गङ्गाकी एक स्वाभाविक खाड़ी निकल कर हाजीपुरके निकट नेपाली मन्दिरके नीचे गण्डककी साथ मिली है; इसकी चौड़ाई इतनी थोड़ी है कि इसे किसी हालतमें नदी नहीं कह सकते। गङ्गामें जब जल बढ़ जाता है, तब तीरवर्ती सभी स्थान जलमग्न हो जाते

हैं और गण्डकका जल भी प्रतिरुद्ध हो कर उसमें गङ्गाका जल प्रवेश हो जाता है, जिससे तीरवर्ती स्थान प्लावित हो जाते हैं। ताजपुर उपविभागमें प्रतिवर्ष प्लावन होता है। गङ्गाके किनारे तिरहुतमें कोई विख्यात स्थान नहीं है। बाढ़के सामनेसे गङ्गा उत्तरपूर्वकी ओर घूम कर बाजितपुर तक आई है और दक्षिण-पूर्वकी ओर तिरहुत जिलेसे दूर हट गई है।

गण्डक—हाजीपुरके निकट यह गङ्गाके साथ मिली है। यह नदी कहीं कहीं नारायणी तथा शालग्रामी नामसे भी पुकारी जाती है। हिमालयसे उत्पन्न हो कर मुजफ्फरपुरके करणौल नीलकोठीके निकट यह तिरहुतमें प्रवेश करती है, बाद दक्षिण-पूर्वकी ओर प्रवाहित हो कर हाजीपुर तक चली आई है। गण्डकके किनारे लालगञ्ज ही प्रधान गञ्ज वा बाजार है। इसका स्रोत बहुत प्रबल है। नाव द्वारा आने जानेमें बहुत खतरा है। हजार मन बोझ लाद कर नाव लालगञ्ज तक अच्छी तरह जा सकती है। गण्डककी तरह तीर-भूमिकी अपेक्षा ऊंची है। इसीसे बाढ़ रोकनेके लिये दोनों किनारों पर बांध दिये गये हैं। सारण जिलेकी ओर जो बांध है, वह बहुत ऊंचा है, किन्तु तिरहुत जिलेका बांध उतना ऊँचा नहीं है, इसी कारण बांध पार हो कर प्लावन हो जाता है।

बया—चम्पारण जिलेमें गण्डकसे बया निकल कर करणील-नीलकोठीके निकट तिरहुत जिलेमें प्रवेश करती है। दक्षिण-पूर्वकी ओर यह क्रमशः डुरिया, सरिदा, भटौलिया, चितवारा और शाहपुर पतोरी नीलकोठीके बगल हो कर जिलेके दक्षिण-पूर्व प्रान्तमें गङ्गाके साथ जा मिली है।

छोटी गण्डक—यह चम्पारण जिलेसे निकल कर मुजफ्फरपुर विभागमें घोषेबात ग्रामके निकट तिरहुत जिलेमें प्रवेश करती है, बाद मुजफ्फरपुरके समीप टेढी हो कर अठाराकोठीके नीचे होती हुई; मुङ्गेर शहरके ठीक सामने गङ्गामें गिरी है। वर्षाकालमें नाव गङ्गासे दो हजा मन बोझ ले कर रुसेरा तक और हजार मन ले कर मुजफ्फरपुर तक जा सकती है। नागर बस्तीके निकट इस नदीके ऊपर हो कर "दरभङ्गा ष्टेट रेलवे" गई है। इसके किनारे मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, और रुसेरा प्रधान वाणिज्य-केन्द्र हैं।

बलान—यह ताजपुरके निकट छोटी गण्डकसे निकल कर ताजपुर दलसिंहसरायके समीप होती हुई, जहां जामवयारी नदी मुङ्गेरके पास छोटी गण्डकमें मिली है, ठीक उससे कुछ ऊपरमें जामवयारीके साथ मिती है।

बाघमती- यह नेपालमें काटमाण्डू नगरके निकट उत्पन्न हो कर सीतामढ़ी उपविभागमें मणियाड़ी घाटके निकट तिरहुत जिलेमें प्रवेश करती है। कुछ दूर जा कर इसमें लालबाकिया नदी आ मिली है। बाद यह नरवया तक छोटी गण्डकके साथ समान्तर भावमें आकर पहले रुसेराके निकट छोटी गण्डकमें ही मिली थी, किन्तु अभी घूम कर हायाघाटके निकट कराई नदीके सहारे तिलगुजा नदीमें जा गिरी है। बाघमतीका पुराना गर्भ आज भी पुरानी बाघमती नामसे पुकारा जाता है। दरभङ्गा और मुजफ्फरपुर शहरसे दूर गाईघाटी नामक स्थानसे नूतन बाघमती दरभङ्गा और मुजफ्फरपुर रास्तेको काटती हुई चली गई है। तुर्की नामक स्थानमें बाढ़का पानी रोकनेके लिये बांध है। इस नदीमें अदीरी नामक स्थानके पास लालबाकिया, मणियारी घाटके पास भूरेङ्गी नदी, सीतामढ़ीके नीचे दरभङ्गा और मुजफ्फरपुरके रास्तेसे ७।८ मील दक्षिणमें लाखहण्डाइ नदी मिली है। कमतौल नामक स्थानमें कमला नदी और पालीमें पूर्वसे चाउस और पश्चिमसे झिमनदी छोटी बाघमतीमें मिल गई है। इसके बाद छोटी बाघमती दरभङ्गा शहरसे ४ कोस दक्षिणमें हयाघाटके निकट बड़ी बाघमतीमें जा गिरी है।

कराई—बाघमती जब पुरानी बाघमती नदीके भीतर होकर बहती थी, तब यह एक सामान्य नदी थी, अभी यही हायाघाटके नीचे बाघमतीका प्रधान स्रोत हो गई है। मुङ्गेरकी सीमामें तिलकेश्वर नामक स्थानके निकट यह तिलगुजा नदीमें मिली है।

तिलगुजा—यह नेपालसे निकल कर कहोलगावके पास तिरहुतकी गङ्गामें गिरी है। राइसारी ग्रामके निकट यह दो भागोंमें विभक्त हो कर भेजाग्रामके समीप पुनः

मिल गई है। पश्चिमकी शाखामें बागता नामक स्थानके पास यह बलान नदीमें मिली है। राइसारीसे ले कर नदीके गर्भ तक जगह जगह बाँध दिये हुए हैं। नाव जाने आनेका कोई रास्ता नहीं है।

कमला—यह नेपालसे निकल कर जयनगर नामक स्थानसे तिरहुतमें प्रवेश करती है। पहले यहां शिलानाथ नामक एक शिवमन्दिर था जो क्रमशः नदीकी गति बदल जानेसे, नदीके गर्भमें पड़ गया है। कमतौलके निकट कमला बाघमतीमें मिली है। कमलाकी पुरानी खाई तिलकेश्वरके निकट तिलगुजा नदीमें गिरती है।

इनके सिवा छोटी बलान नयाधार, कमला, पण्डौल नाला आदि नदियां हैं।

ताजपुरसे ५ कोस दक्षिण-पश्चिममें सरैसा परगनेके मध्य तालबरैला नामक नाला ही विख्यात है। इसकी लम्बाई ३ कोस और क्षेत्रफल २० वर्गमील है।

तिरहुतमें खनिज द्रव्य कुछ भी उत्पन्न नहीं होता, लेकिन मट्टीके साथ सोरा और नमक पाया जाता है। हरौली नामक स्थानमें छोटी गण्डकसे कङ्कर निकला जाता है।

वन्य द्रव्योंमें मधु, शम्बुक, सीप, आदिकी देहोंसे प्रस्तुत चूना, चिरायता, मदरकोश, गुम्च, मुण्डि, तालमूली तथा मकाइ प्रभृति भेषज उत्पन्न होते हैं। जङ्गलमें भाँगका पेड़ भी होते हैं। यथार्थमें इस जिलेमें उतना जङ्गल वा परती जमीन नहीं है। जामुन, शीशम, झाव, आम, कटहल, महुआ आदिके वृक्ष भी यथेष्ट हैं।

इस देशमें सैकड़े पीछे ८८ हिन्दू और ८ मुसलमान हैं। घोषेवात नामक स्थानमें एक पार्वतीय जाति वास करती है। पहले वे एक नेपाली सूबेदारके भृत्यके रूपमें थे। सुबादारका वंश लुप्त हो गया है। उनके भृत्य खेती करके अपनी जीविकानिर्वाह करते हैं।

ब्राह्मणोंमें मैथिल और गौड़ हैं, जो विशेष कर मधुबनी और दरभङ्गामें रहते और तिरहुतिया ब्राह्मण कहलाते हैं। मैथिल ब्राह्मणोंमें श्रोत्रिय लोग शुचि हैं। ये मजगीती, योगिया और गृहस्थ वा मैथिल, श्रोत्रिय, योगचङ्गोला तथा पण्डित इन पांच भागोंमें विभक्त हैं। श्रोत्रिय लोग सबसे माननीय हैं। दरभङ्गके महाराज भी इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं। ये बङ्गालके कुलीन ब्राह्मणोंकी नाईं बहु-विवाह और इच्छानुसार कुछ दिन एक श्वशुरालयमें और कुछ दिन दूसरे श्वशुरालयमें रहते हैं। श्वशुरसे प्रति बार ये लोग रहनेके लिये रुपये आदि ले लेते हैं। सौराठ नामक स्थानके देव-मन्दिरमें यावदीय ब्राह्मणोंका मेला लगता है। इस मेलेमें अपनी अपनी श्रेणीके पण्डित प्रत्येक व्यक्तिकी वंशतालिका खोलकर विवाह-सम्बन्धका निरूपण करते हैं। उच्च कुलकी सन्तानके पिता निम्न कुलमें विवाह होनेसे कुलमर्यादा स्वरूप रुपये आदि पाते हैं। इस मेलेके दिन वर और कन्याका नाम निरूपित होता और उनके पिताकी सम्मति-सूचक एक तालिका लिखी जाती है। श्रोत्रिय लोग यदि अपनी श्रेणीके सिवा भिन्न श्रेणीमें विवाह करें तो वे उसी श्रेणीके हो जाते और आत्मीय स्वजन परित्यक्त होते हैं। ये लोग अपने हाथसे कुदाल द्वारा पारते और जमीन सींचते हैं। केवल हल जोतनेके लिये किसी दूसरे (निम्न श्रेणीके लोगों) को नियुक्त करते हैं। पहले ये लोग किसीके यहां नौकरी नहीं करते थे, किन्तु अभी बहुतसे तहसीलदार और गुमस्ते हो गये हैं। इन लोगोंमेंसे बहुतसे आमके बगीचे लगा कर जीविका चलाते हैं। मैथिलब्राह्मण देखो।

ब्राह्मणोंके बाद इस देशमें राजपूतोंका सम्मान अधिक है। ये अधिकांश जमींदार और कृषक हैं। आजकल कुछ पुलिसके चौकीदार, प्यादे और घोड़ेदारका काम करते हैं। राजपूत और ब्राह्मणके बाद बाभन नामकी एक दूसरी जाती है। वे राजपूतोंकी अपेक्षा हीनमर्याद होने पर भी दूसरी दूसरी जातिकी अपेक्षा गण्य मान्य हैं। ये लोग जमींन्दार वा अस्त्रजीवी ब्राह्मणके नामसे परिचित हैं। बाभन देखो।

तिरहुतमें निम्नलिखित शहर विशेष प्रसिद्ध हैं—

मुजफ्फरपुर—यह मुजफ्फरखाँ नामक एक व्यक्ति द्वारा स्थापित हुआ था, इसीसे इसका नाम मुजफरपुर पड़ा है। यह शहर अक्षा० २६° ७′ २३″ उ० और देशा० ८५° २६′ २३″ पू०में छोटे गण्डकके किनारे अवस्थित है। इसी नगरमें जिलेकी सदर अदालत है। यहां म्युनिसिपालिटी, कलेक्टरी, दीवानी और फौजदारी अदालत, जेल,

अस्पताल और स्कूल हैं। शहर बहुत परिष्कार और सड़कें प्रशस्त हैं। यहांके बाजार बड़े बड़े हैं और सुबह शाम उनमें बिक्री होती है। अदालतके समीप मान नामक एक गड्ढेके सदृश जलाशय है जो किसी नदीके पुरातन-गर्भका अंश मात्र है। बाजारमें तालाबके किनारे राम-सीता और शिवका मन्दिर है। यह शहर बहुत प्राचीन कालका नहीं है। इसके स्थापनकर्त्ता मुजफ्फर खाँ एक 'आमिल' वा 'चकला नाइ' (नायक) थे। कम्पनीको दीवानी मिलनेके बहुत पहले उन्होंने उत्तरमें सिकन्दरपुर ग्राम, पूर्वमें कर्णौली ग्राम, दक्षिणमें सैयदपुर और पश्चिममें सारिहागञ्जसे ७५ बीघे जमीन निकाल कर उसीमें अपने नाम पर नगर स्थापन किया। क्रमशः इसकी उन्नति होती गई। १८१७ ई०में छोटी गण्डकके बढ़नेसे इसकी बहुत क्षति हो गई है।

रहुआ—यह मुजफ्फरपुरसे ३ कोस दूर, पूसा रास्तेके ऊपर अवस्थित एक छोटा ग्राम है। यहां जुलाई महीनेमें ७ दिनका एक मेला लगता है। यहां पीरका एक स्थान है जहां बहुतसे यात्री एकत्र होते हैं।

सरिया—यह मुजफ्फरपुरसे दक्षिण-पश्चिम ८ कोस दूर, बया नदीके किनारे अवस्थित है। यहां नीलकी एक कोठी है। बयाके ऊपर छपराके रास्ते पर तीन गुम्बजका एक पुल है। यहांसे थोड़ी दूरके फासले पर पत्थरका एक स्तम्भ है जो किसी एक ब्राह्मण द्वारा स्थापित हुआ है। लोग इसे 'भीमसिंहकी लाठी' कहते हैं। यह २४ फुट ऊंचा और सिर्फ एक पत्थरका बना हुआ है। इसके ऊपर चौकोन पत्थर पर एक पत्थरकी सिंहमूर्त्ति है। सिंहमूर्त्ति तक खम्भेकी ऊंचाई ३० फुट है। डा० राजा राजेन्द्रलाल मित्रके मतसे यह एक अशोकस्तम्भ है। इसके बगलमें एक गहरा कूआं है।

वसन्तपुर—सरियाकी नीलकोठीसे कुछ दक्षिणमें यह बृहत् ग्राम अवस्थित है। यहां ग्राम्यसमिति है।

साहेबगञ्ज—मुजफ्फरपुरसे १५ कोस उत्तर-पश्चिममें बया नदीके किनारे पर यह शहर अवस्थित है। यहांसे मोतिहारी, मोतीपुर और लालगञ्ज तक सड़कें गई हैं। यहांका बाजार बहुत लम्बा चौड़ा है। तेलहन, अनाज, गेहूं, उरद और नमकका व्यवसाय अधिक होता है।

कर्णौलकी नील-कोठी बाजारसे बहुत समीप है। यहांके जूते दूसरे देशोंमें भेजे जाते हैं।

कण्टाई—यह मुजफ्फरपुरसे ४ कोस दूर मोतिहारीके रास्ते पर अवस्थित है। इसी स्थानमें कण्टाई नील-कोठी है। पहले यहां सोराकी भी कोठी थी। सप्ताहमें दो बार हाट लगती है। यहां मीनापुरका रास्ता मुजफ्फरपुरके रास्तेमें आ मिला है।

बेलसण्ड कलां—यह मुजफ्फरपुरसे १४ कोस दूर सीतामढ़ीके रास्ते पर अवस्थित है। यह स्थान पुरानी बागमती नदीके किनारे बसा है। यहां एक बड़ी नीलकी कोठी है।

राजखण्ड—मुजफ्फरपुरसे ११ कोस उत्तर-पूर्वमें यह बड़ा ग्राम अवस्थित है। यहां भैरव नामका एक बड़ा मेला लगता है। इस मेलेमें गाय बैलकी बिक्री होती है। यहां एक नीलकी कोठी है। पहले यहां चीनीका कारखाना था। इसके पश्चिममें लाखहण्डाई नदी प्रवाहित है।

कटरा वा अकबरपुर—यह लाखहण्डाई नदीके किनारे पर अवस्थित है। इसके पश्चिममें एक टूटा फूटा मट्टीका किला है। किलेका परिमाण प्रायः ६० बीघा और दीवार ३० फुट ऊंची है। राजचन्द नामक एक व्यक्ति इस दुर्गके अधिपति थे। दरभङ्गा जाते समय वे अपने परिवारवर्गसे कह गये थे कि यदि उनकी ध्वजा गिर जावे तो उनकी मृत्यु निश्चित समझना चाहिये। एक कुरमी राजाका शत्रु था, उसने ध्वजा तोड़ डाली और राजपरिवारको इसकी खबर दी। इस पर वे जलती हुई चितामें जल मरे।

मधुवनी—दरभङ्गा शहरसे ८ कोस उत्तर-पूर्वमें यह शहर अवस्थित है। यह मधुवनी उपविभागका सदर थाना है। यहांका बाजार खूब विस्तृत है; साग सब्जी और कपड़े आदि प्रधान वाणिज्य द्रव्य हैं। शहरके उत्तरमें दरभङ्गा-राज मधुसिंहके तीसरे लड़के कीर्त्तिसिंहका वंश "मधुवनीके बाबू" नामसे प्रसिद्ध है। इन्होंने जबदी परगनेके कई ग्राम राजपरिवारसे पाये हैं। इस शहरके भीतर नेपाल जानेका प्रधान पथ है।

भौवारा—मधुवनीसे पाव कोस दक्षिणमें यह बड़ा

ग्राम अवस्थित है। इसके दक्षिणमें एक दुर्गका भग्नावशेष देखा जाता है। पहले इस दुर्गमें ईंटोंकी दीवार थी। रघुसिंह नामक एक व्यक्तिने यह दुर्ग निर्माण किया था। ये दरभङ्गा-राजके वंशोद्भव थे। १७६२ ई०में इनके वंशीय प्रतापसिंह यहांसे अपना वासस्थान उठा कर दरभङ्गा ले गये। यहां एक मसजिदका भग्नावशेष है। अकबरके समसामयिक शासनकर्त्ता अलाउद्दीनने यह मसजिद निर्माण की थी।

बिरटपुर (विराटपुर)—यह खजौली थानाके अन्तर्गत एक ग्राम है। यहां भी एक दुर्गका ध्वंशावशेष और गृह-प्राचीरादिके चिह्न हैं। एक जगह गड्ढेमें महादेवको लिङ्ग-मूर्त्तिके कुछ अंश हैं। कहा जाता है कि महाभारतके अनुसार राजा विराटने इस दुर्गको निर्माण किया था। तेली लोग राजाको स्वजाति और गड्ढेके शिवलिङ्गको कोल्हूका मूसल बतलाते हैं।

सोराठ—यह मधुवनीसे ४ कोसकी दूरी पर है। ३० वर्ष पहले दरभङ्गाके राजाओंने यहां एक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की है। उसी मन्दिरके निकट तिरहुतीय ब्राह्मणोंका वार्षिक मेला लगता है। कभी कभी लाखसे अधिक ब्राह्मण एकत्रित हो जाते हैं। इस मेलेमें वरकर्त्ता और कन्याकर्त्ता पुत्रकन्याका विवाह सम्बन्ध स्थिर करते हैं।

झञ्झारपुर—यह मधुवनीसे पूर्व-दक्षिणमें ७ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। इस छोटे ग्राममें दरभङ्गा राजवंशीय प्रतापसिंहके नाम पर प्रतापगञ्ज और राजा मधुसिंहकी बहन श्रीदेवीके नाम पर श्रीगञ्ज नामक दो बाजार हैं। दरभङ्गा-राजकी सभी सन्तान इस ग्राममें भूमिष्ठ हुई हैं, इसीसे यह प्रसिद्ध है। राजवंशके बहुतोंके निःसन्तान अवस्थामें मरने पर राजा प्रतापसिंहने निकटवर्त्ती सुर्णमग्रामवासी महन्त शिवरतनगिरिकी सेवा-सुश्रुषा की। महन्त झञ्झारपुर आये और अपनी जटाकी एक शिखा इस स्थानमें जला कर बोले कि जो यहां वास करेगा उसके पुत्ररत्न होगा। उनके कथनानुसार प्रतापसिंहने यहां एक वासस्थान निर्माण किया, किन्तु मकान तैयार होनेके पहले ही अपुत्रक अवस्थामें उनकी मृत्यु हुई। बाद उनके भाई मधुसिंह मकान तयार करा कर रहने लगे। यह ग्राम पहले राजपूतोंका था। महाराज छत्रसिंहकी स्त्री गर्भिणी हो कर प्रसवकाल तक इस घरमें थीं, इसीसे छत्रसिंहने इस ग्रामको खरीद लिया। यहां रक्तमालादेवीका एक मन्दिर है। इस ग्रामका पीतलका पनबट्टा और 'गङ्गाञ्जली' नामका जलपात्र बहुत प्रसिद्ध है।

मधेपुर (मध्यपुर)—यह बरहमपुर, हरसिंहपुर, गोपालपुरघाट और दरभङ्गाके सङ्गमस्थान पर अवस्थित है। प्राचीन मिथिलाका केन्द्रस्थल होनेसे यह मधेपुर और मध्यपुर नामसे प्रसिद्ध है। महाराज मधुसिंहके चौथे लड़के रमापतिसिंह पश्चि परगना पा कर इस ग्राममें रहते थे। तिरहुत और पूर्णियाके रास्ते पर यह ग्राम अवस्थित होनेसे व्यवसायका केन्द्रस्थल माना गया है।

बासुदेवपुर—मधुवनीसे ५ कोस पूर्वमें यह ग्राम अवस्थित है। पहला इसका नाम शङ्करपुर था। पीछे इसका नाम शङ्करपुर-गंधवार पड़ा और अन्तमें वासुदेवपुर हुआ है। इस विषयमें किम्बदन्ती इस प्रकार है यहां गन्ध और भैरव नामके दो भाई रहते थे। दोनों पराक्रमशाली और नाम मात्रको तिरहुत राजाके अधीन थे। तिलयुगाके पूर्वतीरवर्त्ती कई स्थानोंमें गन्धकी जमींदारी थी और कराई नदीके दक्षिणमें भैरवका अधिकार था। तिरहुतके राजाने स्वयं उन्हें दमन नहीं कर सकने पर किसी दो विदेशियोंसे उन्हें मरवा डाला। जिस हत्याकारीने जिसे मारा, उसने उसीकी जमींदारी पुरस्कारमें पाई। गन्ध-हन्ताके वंशधर "गन्धमारिया' और भौर हन्ताके वंशधर 'भौरमारिया' नामसे प्रसिद्ध हुए। गन्धमारियावंश शङ्करपुरमें और भौरमारियावंश सिंहिया ग्राममें रहते हैं। इसीसे शङ्करपुरका गन्धवार नाम पड़ा है। महाराज छत्रसिंहने विवाहके समय यह ग्राम यौतुकमें पाया था। महारानी छत्रपति कुमारी मरते समय यह ग्राम अपने मंझले लड़के बासुदेवको सौंप गई। छत्रसिंहकी मृत्युके बाद कुदरसिंहने राजा हो कर वासुदेवको जराइल परगना दान किया, उन्होंने इस राज्यपर अपना दावा करके विवाद ठान दिया। अन्तमें कुमार बासुदेवने जराइल परगनेको ग्रहण न कर, मातृदत्त शङ्करपुरका नाम बदल कर अपने नाम पर रक्खा और वे वहीं जा कर रहने लगे।

मिर्जापुर—मधुवनीसे ४ कोस उत्तर-पूर्वमें यह ग्राम अवस्थित है। यहांके बाजारमें नेपालकी तराईसे अनाज आता है। यहांसे ६ कोस उत्तर-पूर्वमें बलराजाका ध्वंसावशिष्ट दुर्ग है। इस ग्रामका नाम भी बलराजपुर है। दुर्गकी लम्बाई ४सौ गज और चौड़ाई २ सौ गज है। बलराजा कौन थे, इसका पता नहीं।

जयनगर–यह नेपालकी सीमा पर अवस्थित है और एक मृण्मय दुर्गका भग्नावशेष है। पहाड़ियोंको शासनमें रखनेके लिये किसी मुसलमानने यह दुर्ग निर्माण किया था। दुर्ग बनवाते समय पृथ्वीसे एक मृतदेह पाई गई थी, इसी कारण यह स्थान अशुभकर समझा जाता है। सम्भवतः १५६३ ई०में बङ्गालके शासनकर्त्ता अलाउद्दीनने कामरूपसे बेतिया तक जो सीमान्त दुर्ग निर्माण किये थे, उन्हींमेंसे यह एक दुर्ग होगा। नेपाल-युद्धके समय यहां अंगरेजोंका स्कन्धावार था। इस ग्राममें नीलकी कोठी और चीनीका कारखाना है।

शिलानाथ—जयनगरके निकट कमलाके किनारे शिलानाथ ग्राम है। वैशाख महीनेमें यहां पन्द्रह दिन तक मेला लगता है। इस मेलेमें तिरहुतसे अनाज और मवेशी तथा नेपालसे लौहपिण्ड, कुठार, तेजपत्ता और कस्तूरी आती है। मेलेमें पहले शिवदर्शनके लिए बहुत संन्यासी आते थे, किन्तु कमलागर्भमें उस मन्दिर और प्रतिमाका लोप हो जानेसे संन्यासी बहुत कम आते हैं।

ककरौल—दरभङ्गासे ६ कोस उत्तरमें यह ग्राम पड़ता है। यहां तिरहुतीय याग ब्राह्मणोंका बास अधिक है। कुकी कपड़ेके लिए यह स्थान प्रसिद्ध है, नेपाली लोग इस कपड़ेको अधिक व्यवहारमें लाते हैं। हुसेनपुर नामक ग्राममें कपिलेश्वर महादेवका एक मन्दिर है। प्रवाद है कि पुराणोक्त कपिल मुनि यहां रहते थे। वे ही शिवके प्रतिष्ठाता माने जाते हैं। माघ मासमें यहां एक मेला लगता है, जिसमें कुकी कपड़े, पीतलके बरतन और अनाज आदि बिकते हैं। यहांकी पुष्करिणीमें मोखना नामक एक प्रकारका सुस्वादु फल उपजता है।

दरभङ्गा—यह तिरहुतमें सबसे बड़ा नगर है। यह अक्षा० २८° १०′ उ० और देशा० ८५° ५४′ पू०में छोटी बागमतीके बांये किनारे पर अवस्थित है। यह एक उपविभागीय सदर थाना है।

दरभंगा शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

जिमच—यह दरभङ्गासे डेढ़ कोस पूर्व कमलाके किनारे पर है। यहां कार्तिक और माघी पूर्णिमामें एक मेला लगता है, जिसमें पुत्रार्थिनी हिन्दू स्त्रियां कमलामें स्नान करने आती हैं। उनका विश्वास है कि स्नान करनेसे वन्ध्यात्वदोष दूर हो जाता है।

लेहरा—यहां तीन बड़ी दिग्गी हैं। घुड़दौड़ नामकी एक दिघी (दिग्गी) २ मील लम्बी है। दरभङ्गाके राजा शिवसिंह पुष्करिणी खनन करनेका सङ्कल्प करके एक हाथमें जलपूर्ण झारी ले घोड़े पर सवार हुए, और जल गिराते गये। उन्होंने प्रण किया था, कि झारीका जल जहां खतम हो जायगा, पुष्करिणीकी लम्बाई भी उतनी ही दूर तक रखी जायगी। यह वही दीर्घिका है। अभी इसमें उतना अधिक जल नहीं है। इसके एक अंशमें सामान्य जल है और अन्यान्य अंशोंमें खेती होती है। कमला नदी किसी समय इस दीर्घिकाके समीप हो कर बहती थी, वह इसका सब जल निकाल ले गई है। इसके निकट १३ बीघा जमीनमें शिवसिंहके प्रासादका भग्नावशेष है।

सिंहिया—बहेरासे ६ कोस दक्षिण सिंहिया ग्राममें कराई नदीके किनारे एक कोसकी दूरी पर मङ्गल नामका एक दुर्ग है। इस दुर्गकी परिधि प्रायः डेढ़ मील है। इसके चारों ओर ३०।४० फुट ऊँची मिट्टीकी दीवार और उसके बाद गहरी खाई है। मङ्गलगढ़के भीतरमें अभी कोई अट्टालिका नहीं है, बल्कि वहां खेती होती है। किन्तु १॥ से २ फुट तककी बहुतसी ईंटें देखनेमें आती हैं। इसका इतिहास कुछ भी जाना नहीं जाता है। प्रवाद है, कि बलराजाने दुर्गाधिपति राजा-मङ्गलको परास्त और विनष्ट किया था। गढ़के पूर्वमें नीलकी कोठी है।

अहियारी—कामटोल ग्रामके दक्षिण-पूर्वमें यह ग्राम अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ढाई हजार है। वैसाख महीनेमें अहल्यास्थान वा सिंहेश्वर नामक स्थानमें एक मेला लगता है जो केवल एक दिन तक रहता

है और लगभग १० हजार मनुष्योंका समागम होता है। इस मेलेमें न कोई चीज खरीदी जाती है और न बेची जाती, केवल पुण्यकार्यका अनुष्ठान होता है। यात्री लोग यहां आ कर पहले देवकाली नामक पवित्र कुण्डमें स्नान करते हैं, बाद एक पत्थर परके एक पदचिह्नको देख कर आते हैं। यह सीता वा रामका पदचिह्न कह कर प्रसिद्ध है। इसी चिह्नके ऊपर एक मन्दिर बना है जिसे अहल्यास्थान कहते हैं। रामायणके अहल्यागौतम-सम्वादसे इसकी उत्पत्ति बतलाई गई है। यहां दरभङ्गाके राजका बनाया हुआ एक बहुत ऊँचा देवालय है।

मालीनगर—छोटी गण्डकके उत्तरी किनारे पर अवस्थित एक ग्राम। यहां रामनवमीसे ले कर पांच दिन तक मेला लगता है, जिसमें २ हजारसे ४ हजार तक मनुष्य एकत्रित होते हैं। १८४१ ई०में यहां एक शिवमन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है उसी मन्दिरके निकट "रामनवमी" नामक उक्त मेला लगता है। शिव नामक कोई मध्यवित्त वैश्य थे। गुरुके उपदेशसे उन्होंने एक देवमन्दिर निर्माण किया। इनके वंशधर क्रमशः धनी हो गये और सिपाही-विद्रोहके समय इसी वंशके बाबू नन्दीपत्सिंहने गवर्मेण्टकी सहायता कर रायबहादुर उपाधि पाई थी। पूसा जमींदारी इन्हीं लोगोंकी है। इस वंशके मुखियाके मतानुसार शिवके पुरोहित निर्वाचित होते हैं।

पूसामें मालीनगर और बख्तियारपुर नामके गवर्मेण्टके दो खास ग्राम हैं। मालीनगर पहले दरभङ्गा राजकी मिलकीयतमें गिना जाता था। पहले यहां गवर्मेण्टके घोड़ेके बछड़े आदि उत्पादन तथा पालन करनेका स्थान था। किन्तु १८७२ ई०में वह काम बन्द कर दिया गया। यहां अफीम तथा कुसुमफूल उपजाये जाते हैं।

सीतामढ़ी—लाखहण्डाई नदीके पश्चिमी किनारे पर अक्षा० २६°३५´ उ० और देशा० ८५°३२´ पू०में यह शहर अवस्थित है। यहां प्रायः ६ हजार मनुष्य वास करते हैं। यह सीतामढ़ी उपविभागका सदर थाना है। सरसों आदिका तेलहन अनाज, धान, गायका चमड़ा और नेपालके द्रव्यादि ही यहांके प्रधान वाणिज्य द्रव्य हैं। सखुआ नामका काठ वर्षाकालमें नदीमें बहा ले जाते हैं। चैत्रमासमें यहां पन्द्रह दिनका एक मेला लगता है। मेलेमें रामनवमीके दिन ही खूब उत्सव होता है। इसमें सब प्रकारकी चीजोंकी आमदनी होती है। हाथी और घोड़े भी बिकने आते हैं, किन्तु बैलोंके विक्रयके लिये ही यह मेला प्रसिद्ध है। सीतामढ़ीके बैल बहुत ताकतवर और सुन्दर होते हैं। प्रवाद है—सीतामढ़ी ही राजर्षि जनककी कर्षित यज्ञभूमि थी। इसी जगह सीताका जन्म हुआ था। खेतके जिस गड्ढेमें सीताकी उत्पत्ति हुई थी, वह अभी पुष्करिणीके रूपमें परिणत हो गया है। फिर किसीका मत है, कि निकटवर्ती पनौरा नामक स्थानमें सीताका जन्म हुआ था। सीतामढ़ीमें सीताका एक मन्दिर है। इसी मन्दिरके निकट हनुमान, शिव, दाही आदिके और भी ८ मन्दिर हैं।

शिउहर (शिवहर)—सीतामढ़ीसे ८ कोस दक्षिण-पश्चिममें यह ग्राम अवस्थित हैं। यहां बेतिया राजके एक ज्ञाति राजा हैं। उन्होंने एक लाख रुपये खर्च करके ग्राममें बहुतसे मन्दिर बनवाये हैं।

पनौरा—यह सीतामढ़ीसे तीन मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। लोग इस स्थानको सीतादेवीकी जन्मभूमि बतलाते हैं। यहां एक मट्टीका बना हुआ बड़ा राक्षस और बानरकी मूर्ति है। जो हनुमान तथा रावणके युद्धका दृश्य कह कर प्रसिद्ध है। राक्षस मूर्त्तिके दो मस्तक हैं। इन दोनों प्रतिमाके निकट एक महन्त रहते हैं और प्रतिवर्ष उनका अङ्गराग होता है।

देवकाली—शिवहर ग्रामसे २ कोस पूर्वमें यह ग्राम अवस्थित है। यहां फाल्गुन महीनेमें एक मेला लगता है और एक बहुत ऊँचा शिवमन्दिर भी है। शिवको जल चढ़ानेके लिये बहुत दूरसे यात्री आते हैं।

भैराग्निया—उत्तर सीमान्तवर्त्ती एक स्थान। यहां एक बड़ा बाजार है। जहां नेपाली और पहाड़ी वणिक पण्य द्रव्य बेचा करते हैं। इसके दक्षिणकी ओर वे नहीं जाते हैं।

बेलामी चपकौनी—इस ग्रामका नाम बेला है, किन्तु यहांका जल बहुत खराब है।

हाजीपुर—यह गण्डकके उत्तरी किनारे अक्षा० २५

४०´ ५०´ उ० और देशा० ८५´ १४´ २४´´ पू०में अवस्थित है। यह इसी नामके उपविभागका सदर थाना है। लोकसंख्या प्रायः २२॥ हजार है। यह पटना शहरसे विपरीत दिशामें पड़ता है और इसके तीनों ओर नदी रहनेके कारण जिलेमें यह एक विशेष प्रयोजनीय वाणिज्यकेन्द्र हो गया है। यहां एक दुर्ग, कई एक सराय, मन्दिर और मसजिदके भग्नावशेष हैं। किलेमें एक सराय है जहां नेपालके मन्त्री कभी कभी आया करते हैं। सरायके मध्य एक दोतलाकी बौद्धमन्दिर है। इस सखुए काठकी शिल्पकारी तथा अट्टालिकाकी बनावट प्रशंसनीय है। मन्दिर ८० वर्ष पहलेका बना हुआ है। शोनपुरघाटके निकट जामीमसजिद नामकी पत्थरकी बनी हुई एक मसजिद है। हाजीइलियस् नामके किसी मुसलमानने ५सौ वर्ष पहले यह शहर स्थापन किया था। मसजिद भी उन्हींकी बनाई हुई है। मीनापुर और हाजीपुरके बाजारमें और दो मसजिदें हैं। मीनापुरकी मसजिदके प्रतिष्ठाताका नाम इमामबक्स है। शहरके पश्चिममें राममन्दिर है। प्रवाद है, कि जनकपुर जाते समय रामचन्द्रजी यहां कुछ काल तक ठहरे थे। उनके अवस्थितिस्थान पर ही यह मन्दिर बना हुआ है। अभी सारण जिलेमें जो शोनपुरका मेला लगता है, पहले वह हाजीपुरमें ही लगता था। उक्त मेलेमें, नदीमें बकरा फेंक देनेका जो नियम था, वह अब गण्डकके उत्तरी किनारे अर्थात् हाजीपुरमें हुआ करता है। पहले जिस दुर्गके भग्नावशेषका उल्लेख किया जा चुका है, उसे भी हाजी इलियसने ३६० बीघा जमीनके ऊपर बनाया है।

१५७२ ई०में अकबरके एक सेनापति मुजफ्फरखाँने अफगान-विद्रोहियोंके हाथसे हाजीपुर छीन लिया, किन्तु वे नदीके किनारे टहलते समय शत्रुसे मार डाले गये। दो वर्षके बाद सुलेमान कररानीके छोटे लड़के दाऊदने पटनेके दुर्गको तहस नहस कर दिया। इस पर दाऊदको पकड़ने तथा विहार पर शासन करनेके लिये खाँ खानानको दिल्लीसे हुक्म मिला। दाऊदने हाजीपुरके किलेमें आश्रय लिया। मुगल-सेनाने दुर्ग अवरोध किया। अकबरको यह संवाद मिलने पर वे स्वयं पटनेकी ओर चल पड़े। उन्होंने तीन हजार सेना साथ ले हाजीपुरके गढ़को जीतनेका सङ्कल्प किया। हाजीपुरके जमींदार गजपति सेनापति हो कर बढ़ने लगे। दुर्गाधिपति अफगान फतेखाँ तथा और भी बहुतसे सैनिक मारे गये। सभीके मस्तक दाऊदके निकट भेजे गये, जिसका उद्देश्य यह था कि वे इससे अपना परिणाम समझ सकेंगे। अकबर अपना दुर्ग देखनेके लिये पञ्च-पहाड़ीके ऊपर गये और फिर लौट आये। पांच दिनके बाद दाऊद बङ्गालसे उड़ीसा भाग आये; वहाँ वे परास्त हो कर सन्धि करनेको बाध्य हुए, किन्तु १५७७ ई०में उन्होंने विद्रोही हो कर मुगल सेनाको हाजीपुरसे निकाल भगाया। पीछे मुजफ्‌फरखाँने उन्हें अच्छी तरहसे परास्त किया। १५७८ ई०में विद्रोही अरब बहादुरने इस दुर्गमें आश्रय लिया। हाजीपुरके दीवान मुल्ला तानिया द्वारा उनकी जागीर छीन ली जाने पर वे बागी हो गये। मुल्ला मजदी (अमीन), परखोतम (बकशी) और समशेर (खलिसा)ने अरब बहादुरका पक्ष लिया। अन्तमें अरब बहादुरने परखोत्तमको मार कर सारा विहार प्रदेश हस्तगत किया, किन्तु पटनेके दुर्गमें पराजित हो कर उन्होंने हाजीपुरके दुर्गकी शरण ली। महाराजखाँने एक मास कोशिश करनेके बाद उन्हें यहांसे निकाल दिया। १५८४ ई०में मसूमखाँके सेनापति खविता इसी स्थान पर पराजित हुए थे। किसी समय यही हाजीपुर सरकार हाजीपुरका प्रधान शहर था, उस समय इसमें ११ परगने लगते थे। अभी इसके कई एक परगने मुङ्गेर जिलेमें मिला दिये गये हैं।

लालगञ्ज—गण्डकके पूर्वी किनारे पर हाजीपुरसे ६ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित एक प्रधान वाणिज्य-केन्द्र और विख्यात शहर। इससे कुछ दूरमें सिंहिया नील-कोठी है। पहले ओलन्दाज लोग इस कोठीमें सोरेका कारोबार करते थे। तिरहुतमें यूरोपीय कोठियोंमें केवल दो ही आदि और पुरातन हैं। १७९१ ई०में ओलन्दाज ईष्टइण्डिया कम्पनीने यह कोठी और इसके संलग्न १४ बीघा जमीन जगन्नाथ सरकार नामक एक व्यक्तिसे एक सौ रुपयेमें खरीदी थी। इस विक्रयके कागजात अब भी विद्यमान है। जिन्हें जगन्नाथ सरकारसे अंग्रेज गवर्मेण्टने खरीद लिया है।

तिरहुतमें आम, कटहल, बेल, नीबू, अनार, केला, अमरूद, और जामुन यथेष्ट उपजते हैं। तालावमें मखाना बहुत होता है।

धान तीन प्रकारका होता है—आउस वा भदई, अगहनो वा हैमन्तिक और साठो। यहांकी प्रधान उपज गेहूं, जौ, चना, जई, कोदों, जुनहरो, मड़ुआ, कोदो, श्यामा, चेना, अरहर, खेसारो, मूंग, मसूर, आलू, तिल, तिसी, रेड़ी, रुई, पान, ईख, तमाखू, अफोम, कुसुमफूल आदि हैं। खनिज द्रव्योंमें सोराका काम हो खूब बढ़ा चढ़ा है।

शासनविभाग–तिरहुत जिला दरभङ्गा और मुजफ्फरपुर इन दो जिलोंमें विभक्त हुआ है। इसके प्रत्येक जिलेमें तीन उपविभाग हैं। इन छः विभागों वा पूर्वतन तिरहुत जिलेमें अभो कुल निम्नलिखित ८४ परगने लगते हैं— १)अहिलवर (२) अहोस (३) अकबरपुर (४)आलापुर (५) बावरा नं० १ (६) वावरा नं० २ (७) बाबरा तुर्की (८) बादेभुसारो (९) बहादुरपुर (१०) बालागाछ (११) बानूयन (१२) बरैल (१३) बसोतरा (१४) बेगई (१५) भदबार (१६) भाला (१७) भरवारा (१८) भौर (१९) विचौर (२०) बोचुहा (२१) चकमणि २२) धरौरा (२३) ढढ़नबंगरा (२४) दिलबरपुर (२५) फखराबांद (२६) फरहपुर (२७)गदेश्वर (२८) गड़चाँद (२९) गरजौल (३०) गौर (३१) गोपालपुर (३२) हाजोपुर (३३) हमोदपुर (३४) हाटो (३५) हवेलो दरभङ्गा (३६) हावो (३७) हिरनो (३८) जबदो (३९) जहांनाराबाद (४०) जखलपुर (४१) जाखर (४२) जराल (४३) कम्बरा (४४) कनहोलो (४५) कसमा (४६) थन्द (४७) खुरसन्द (४८) लदुयारो (४९) लोबन (५०)महिला (५१) महिला जिला तुर्की (५२) महिन्द (५३) मकरबपुर (५४) मड़वाकला (५५) मड़वाखुर्द (५६) ननपुर (५७) नारङ्गा (५८) नौतन (५९) निजामउद्दोनपुर बोगरा (६०) ओघरा (६१) पछो (६२) पछिम (पश्चिम) भोगो (६३) पद्रो (६४) परहारपुर जंबदो (६५) परहारपुर मोवास (६६) परहारपुर राघो (६७) पिण्डारूज (६८) पिङ्गो (६९) पूरब (पूर्व) भोगो (७०) रामचन्द (७१) रतो (७२) सहोरा (७३) सलोमाबाद (७४) सलोमपुर महवा (७५), सराय हमोदपुर (७६) सरेसा (७७) शाहजहानपुर (७८) ताजपुर (७९) तप्पा भातशाला (८०) तिरसोन (८१) तिरयानी (८२) तिलकचान्द (८३) तिरसत (८४) चौकला है।

सिपाही-विद्रोह—१८५७ ई०में संवाद आया, कि सिपाही विद्रोहमें उन्मत्त बहुतसे विद्रोही सिपाही स्वदेश तिरहुतको लौटे आ रहे हैं। यहांके अंगरेज पहलेसे ही रक्षाका उपाय खोज रहे थे। धनो मनुष्य भयभीत हो कर अपने अपने परिवारको अन्यत्र भेजनेको व्यवस्था कर रहे थे। जून महीनेके तोसरे सप्ताहमें ऐसा सुना गया कि वारिसअलो नामका एक व्यक्ति जिसका जन्म दिल्लोके बादशाह वंशमें था, पटनेके मुसलमानोंके साथ इस विषयमें पत्र व्यवहार कर रहा है। इस पर एक नवयुवक सिविलियन और चार नोलकर साहब उसे पकड़नेके लिये गये और पटने तथा गयाके मध्यवर्ती किसो स्थानके एक मशहूर बदमाशको, जो इस विषयमें चिट्ठो लिख रहा था, पकड़ लाये। वारिसअलोको फांसो हुई। बाद जरोफखांने उन लोगोंके अधिनायक हो कर मुङ्गेरको डाक तथा कलक्टरका घर लूट लिया। पीछे उन्होंने राजकीय कोषागार पर धावा मारा, किन्तु पुलिस और नाजिमोंने इन्हें मार भगाया। विद्रोही लोग अलोगंजको भाग गये। इसके सिवा यहां और कोई गड़बड़ो नहीं हुई, मगर अनेक तरहको शंकाएं अवश्य हुई थीं।

तिरहुतिया (हिं० वि०) १ तिरहुत सम्बन्धी, जो तिरहुतका हो। (पु०) २ वह जो तिरहुतमें रहता हो (स्त्री०) ३ तिरहुतकी बोलो।

तिरा (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। इसके बीजोंसे तेल निकलता है।

तिराटो (सं० स्त्री०) निसोत।

तिरानवे (हिं० वि०) १ जिसकी संख्या नब्बेसे तीन अधिक हो। (पु०) २ वह संख्या जो नब्बे और तीनके योगसे बनो हो।

तिराना (हिं० वि०) १ पानीके ऊपर ठहराना। २ तैरना। ३ पार करना। ४ निस्तार करना, तारना।

तिरासो (हिं० वि०) १ जिसकी संख्या अस्सीसे तीन अधिक हो। (पु०) २ वह संख्या जो अस्सो और तीनके योगसे बनो हो।

तिराहा (हिं॰ पु॰) वह स्थान जहांसे तीन रास्ते तीन ओर गये हों, तिमुहानी।

तिराही (हिं॰ स्त्री॰) तिराह नामक स्थानकी बनी कटार या तलवार।

तिरिजिह्विक (सं॰ पु॰) वृक्षभेद, एक पेड़का नाम।

तिरिटि (सं॰ पु॰) इक्षु-ग्रन्थि, ईखकी गिरह या गांठ।

तिरिणीकण्ट (सं॰ पु॰) पारिजातका पेड़।

तिरिन्दिर (सं॰ पु॰) एक राजाका नाम।

तिरिम (सं॰ पु॰) तृ-इमक्। शालिभेद, एक प्रकारका धान।

तिरिया (हिं॰ स्त्री॰) स्त्री, औरत।

तिरिश (सं॰ पु॰) तृ-इषक्। शालिभेद, एक प्रकारका धान।

तिरीट (सं॰ क्ली॰) तीर्यते शिरोऽविपदोऽनेनेति तृ-कीटन्। कृत् कृपिभ्यः कीटन्। उण् ४।१८४। १ किरीट, मुकुट। २ स्वर्ण, सोना। ३ लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़।

तिरीटी (सं॰ त्रि॰) तिरीटं अस्यास्ति तिरीट-णिनि। मस्तकाच्छादन-युक्त, जिसका सिर ढका हो।

तिरीफल (हिं॰ पु॰) दन्तीवृक्ष।

तिरीबिरी (हिं॰ वि॰) तिड़ीबिड़ी देखो।

तिरीपशालि (सं॰ पु॰) तीन महीनेमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

तिरुकचुर—चेङ्गलपट्टु जिलेके मध्य चेङ्गलपट्टु नगरसे ४॥ कोस दक्षिण-पूर्वमें स्थित एक ग्राम। यहां दो प्राचीन शिवमन्दिर हैं, जिनमें बहुतसे प्राचीन शिलालेख मौजूद हैं।

तिरुकम्बिलियर—त्रिशिरापल्ली जिलेका एक ग्राम और नदी। यह कट्टलई स्टेशनसे आध मीलकी दूरी पर अवस्थित है। इसको प्राचीन चेर, चोल और पाण्ड्य राज्यकी सीमा समझना चाहिए।

तिरुकरार—तञ्जोर जिलेके अन्तर्गत मन्नारगुड़ीसे ८ कोस पूर्वमें स्थित एक छोटा ग्राम। यहांका शिवमन्दिर अत्यन्त प्राचीन है, जिसमें प्राचीन शिलालेख और पांच ताम्रलेख मिले हैं।

तिरुकवलई—तञ्जोर जिलेके नागपट्टनसे ७ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर और उसमें एक शिलालेख है।

तिरुकालूर—एक प्रसिद्ध ग्राम। यह तिन्नेवेलि जिलेके अन्तर्गत श्रीवैकुण्ठ नामक स्थानसे २ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ एक अत्यन्त प्राचीन शिवमन्दिर और एक विष्णुमन्दिर है। यहांके स्थलपुराणमें विष्णुमन्दिरका माहात्म्य वर्णित है। यहांका चेलचोलपाण्ड्येश्वर नामक देवमन्दिर भी अत्यन्त प्राचीन है। वहांके एक शिलालेखमें लिखा है कि १५३२ ई॰में त्रिवाङ्कुड़के राजा मार्त्तण्डवर्माने देवसेवाके लिये शासन दिया था। ग्रामके बीचमें एक प्रस्तरस्तम्भ पर शिलालेख है।

तिरुकुलम्—एक प्राचीन ग्राम। यह मलबार जिलेके अन्तर्गत मञ्जेरीसे १ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है यहाँका शिवमन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। टीपू सुलतानके समयका यहाँ एक दुर्ग है। इसके अलावा यहां कई एक पत्थरकी कब्रें भी हैं।

तिरुकोइलूर (तिरुकोविलूर) —१ मन्द्राजके दक्षिण आर्काट जिलेका एक उपविभाग। इसमें तिरुकोइलूर और कल्लकुरची नामके दो तालुक लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक तालुक। यह अक्षा॰ ११° ३८' से १२° ५' उ॰ और देशा॰ ७८° ४' से ७८° ३१' पू॰में अवस्थित है। क्षेत्रफल ५८४ वर्गमील है। लोकसंख्या प्रायः २७८५०६८ है। इसमें इसी नामका एक शहर और ३५० ग्राम लगते हैं। पोनियर और गदीलम नामकी दो नदियां इस तालुकमें प्रवाहित हैं।

३ उक्त तालुकका एक प्रधान शहर। यह अक्षा॰ ११° ५८' उ॰ और देशा॰ ६९° १२' पू॰में पोन्नैयार नदी दक्षिणतट पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८,६१७ है। इस शहरमें श्रीवैष्णव संप्रदायका एक प्रसिद्ध विष्णुमन्दिर है। इसकी गठन-प्रणाली तिरुवन्नमलयके शिव-मन्दिरसे कहीं अच्छी है। उत्सव-मण्डपके स्तम्भ पर अत्यन्त सुन्दर कारुकार्य है और बाहरके आंगनकी दीवारके ऊपर तीन, तथा मन्दिरके दरवाजेके ऊपर एक गोपुर है। इस मन्दिरमें बहुतसे शिलालेख हैं। किउलूरके शिव-मन्दिरकी अपेक्षा यह मन्दिर नया मालूम पड़ता है। इसमें विष्णु-मूर्त्ति विद्यमान हैं। उनके हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, कण्ठमें १०८ मण्ड-युक्त शालग्राम माला, वक्षःस्थल पर महालक्ष्मी हैं।

इनका भार बायें पैर पर है और दहिना पैर ब्रह्मलोक की ओर फैला हुआ है। प्रतिमाके पास ही पद्मयोनि सनकादि ऋषि पूजा कर रहे हैं। माघ मासकी शुक्ल-पञ्चमीसे ले कर पूर्णिमा तक विष्णुके वार्षिक उत्सव, दोलोत्सव, रथोत्सव आदि बहुत समारोहसे मनाये जाते हैं।

यहाँ नित्य वेदपाठ और देवनर्त्तकियोंका नाचगान हुआ करता है। प्रति शुक्रवारको अभिषेकादिका उत्सव होता है। उस दिन वहाँ बहुत मनुष्योंका समागम होता है। इस मन्दिरके खर्चके लिये गवर्मेण्ट प्रति-वर्ष १८सौ रुपये देती है। मन्दिरके धर्मकर्त्ताको उक्त रुपये खर्च करनेका अधिकार है। यहाँ विल्वपुर-गुण्टा-कुल रेलवेका एक स्टेशन है, जो पेन्नर वा पिणाकिनी नदीके बायें किनारे देवनूर नामक ग्रामके समीप अवस्थित है। स्थलपुराणमें वर्णन है, कि पूर्व समयमें बालखिल्य महर्षियोंने देवनूर ग्रामके निकट पिणाकिनीके किनारे तपस्या की थी; लेकिन तपस्या करनेके स्थानका पता नहीं चलता।

इतिहास—पहले यह शहर जिञ्जीके हिन्दू-राजाओंके अधीन था। पीछे विजयनगरके राजाओंके हाथ लगा। प्रायः १६५४ ई० में गोलकुण्डाके सूबेदारने वेलूरके नरसिंहरायको जीत कर जिञ्जीको मुसलमान राज्यभुक्त कर लिया और आप वहांके नवाब बनाये गये। वे ही वहांके शासनकर्त्ता थे। १६७७ ई०में शिवाजीने जिञ्जी अधिकार कर वहाँ एक सुदृढ़ दुर्ग स्थापन किया। शिवाजी स्वदेशको लौटते समय वहाँ एक शासनकर्त्ता छोड़ आये थे। किन्तु उनके आनेके बाद ही मुसलमान शासन-कर्त्ताने इस पर अपना अधिकार जमा लिया। जिञ्जीके हिन्दू राजाओंने ही यहाँका मन्दिर स्थापना किया था। तिण्डिवनम् रेल-स्टेशनसे तिरुवन्नमलयकी ओर २८ मील दूरमें भग्नावशिष्ट जिञ्जीका दुर्ग है।

तिरुकोइलूरके विष्णु-मन्दिरसे आध मीलकी दूरीमें पिणाकिनी नदीके किनारे किउलुर ग्राम अवस्थित है। यहाँ एक पुरातन शिवमन्दिर विद्यमान है। यह मन्दिर लगभग ५०० वर्षका होगा। मन्दिरका प्रबन्ध सुचारु रूपसे चलाया जाता है। फाल्गुन मासमें यहां एक उत्सव मनाया जाता है जिसमें दूर दूरके लोग आते हैं।

तिरुकोट्टूर—एक प्राचीन ग्राम, जो मदुरा जिलेके मध्य-वर्त्ती शिवगङ्गासे ८ कोस उत्तरमें अवस्थित है। यहांका शिवमन्दिर बहुत विख्यात है। यहांके शिलालेखके पढ़नेसे मालूम पड़ता है कि रघुनाथ तिरुमलय सेतुपतिने १६०१ ई०में मन्दिरके खर्चके लिये बहुत जमीन दानकी थी।

तिरुकरक्कावूर—तञ्जोर जिलेके अधीन कुम्भकोणम्‌से ७ कोस दक्षिण पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। यहां एक अत्यन्त प्राचीन शिवमन्दिर और उसमें एक शिलालेख है।

तिरुक्करुकुण्डम्—चेङ्गलपट्टु जिलेके मध्यवर्त्ती चेङ्गलपट्टु-शहरसे ४ कोस दक्षिण-पूर्वमें स्थित एक मनोहर प्राचीन ग्राम। यहां हिन्दूराजाओंके समयका एक बड़ा मण्डप है जो पहाड़ काट कर प्रस्तुत किया गया है। इसके सिवा यहां एक सुन्दर शिल्पकार्ययुक्त प्राचीन मन्दिर है।

तिरुकाट्टुप्पल्ली—तञ्जोरसे ६॥ कोस उत्तरमें अवस्थित एक प्रसिद्ध ग्राम। यहां चोलराज-निर्मित एक प्राचीन शिव-मन्दिर है जिसमें खुदा हुआ शिलालेख देखा जाता है। बहुतसे यात्री यहांके शिवलिङ्ग देखनेके लिये आते हैं।

तिरुकारवाशाल—तञ्जोरके तिरुवालूर रेल स्टेशनसे ४॥ कोस दक्षिणमें अवस्थित एक ग्राम। यहां शिवमन्दिर है जिसमें प्राचीन कालका शिलालेख पाया जाता है।

तिरुकोलक्कुड़ि—मदुरा जिलेका एक अत्यन्त प्राचीन ग्राम जो मदुरा शहरसे १५ कोस उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहांके प्राचीन शिवमन्दिरमें पाण्ड्य राजाओंके समयके खुदे हुए बहुतसे शिलालेख हैं जिनमेंसे दो त्रिभुवन चक्रवर्त्ती सुन्दर पाण्ड्यके १९वें और २०वें वर्षमें तथा एक त्रिभुवन चक्रवर्त्ती वीर पाण्ड्यदेवके राज्यके ३१वें वर्षमें उत्कीर्ण हुए हैं।

तिरुचङ्गगोड़ू—सलेम जिलेके अन्तर्गत तिरुचेङ्गोड़ तालु-कका शहर। यह अक्षा० ११° २२' ४४" उ० और देशा० ७७° ५६' २० पू० शङ्कगिरि दुर्गसे साढ़े तीन कोस दूर एक ऊँचे पर्वतके नीचे समतलभूमिसे १२०० फुट ऊँचे पर अवस्थित है। शहरमें तथा गिरिचूड़ामें कई एक शिवमन्दिर हैं, जिनमेंसे अर्द्धनारीश्वरके मन्दिरमें १५२२से १५८१ शकमें उत्कीर्ण बहुतसे शिलालेख हैं। कैलास-नाथेश्वरके मन्दिरमें भी कई एक शिलालिपि हैं, जिनमेंसे

एकके पढ़नेसे मालूम होता है कि उस मन्दिरका सम्मुखवर्ती गोपुर १५८५ ई०में मदुराके विजयङ्ग चोक्कलिङ्ग नायक द्वारा निर्मित हुआ है। यहांके एक ताम्रशासनमें लिखा है कि शैलचूड़ास्थ मन्दिरको देवसेवाके लिये १६५६ ई०में महिसुरके कृष्णराज उदैयारने बहुतसी जमीन दान की थी।

इस शहरकी जनसंख्या हजारसे अधिक है। वस्त्र बुननेका व्यवसाय ही यहां प्रधान है। यहां अत्यन्त उत्कृष्ट चन्दनकाष्ठके गोली प्रस्तुत होते है।

तिरुचेन्दूर—तिन्नेवेल्लि जिलेके तेङ्कराई तालुकके मध्यवर्ती एक शहर। यह अक्षा० ८° २९ ५०´ उ० और देशा० ७८° १०´ ३०´´ पू० श्रीवैकुण्ठम्से ९ कोस पूर्व-दक्षिण कोणमें समुद्रकूल पर अवस्थित है। यहांका सुब्रह्मण्यस्वामीका मन्दिर अत्यन्त विख्यात है। स्थलपुराणमें यहांका माहात्म्य वर्णित है। प्रतिवर्ष अनेक यात्री यहां आया करते हैं। मन्दिरका शिल्पनैपुण्य अत्यन्त सुन्दर है, जिनमें अनेक प्राचीन शिलालेख पाये जाते हैं। समुद्रके किनारे सोलह स्तम्भ खड़े हैं, उनमें भी प्राचीन लेख खुदे हुए हैं।

तिरुचानूर—आर्काट जिलेका एक पुण्यस्थान। यह तिरुपतिसे १॥ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां लक्ष्मी वरदराजस्वामी, कृष्णस्वामी और अम्मवारु प्रभृति प्राचीन देवमन्दिर हैं, जिनमेंसे यहांके स्थलपुराणमें लक्ष्मीका माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णित है। कृष्णस्वामी और अम्मवारुके मन्दिरमें कई एक शिलालेख हैं।

तिरुचुनई—मदुरा जिलेका एक ग्राम। यह मेलूरसे ७॥ कोस उत्तरमें त्रिशिरापल्लीके रास्ते पर अवस्थित है। कहा जाता है कि यहांका देवमन्दिर पराक्रम द्वारा चोलराजासे बनाया गया है। उस मन्दिरमें बहुतसे शिलालेख देखे जाते हैं। जिनमेंसे एक आधुनिक शिलालेखके पढ़नेसे मालूम पड़ता है कि १७०५ ई०में उस मन्दिरका संस्कार हुआ था।

तिरुचूलई—मदुरा जिलेके मध्य रामनादसे २२ कोस पश्चिम उत्तरमें अवस्थित एक तालुकका सदर। यहां पराक्रम पाण्ड्य निर्मित एक वृहत् शिवालय है। प्रति वर्ष बहुतसे यात्री शिवलिङ्गकी देखने आते हैं।

तिरुक्किरई—तञ्जोरके मध्यवर्ती कुम्भकोणम्से ३ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां एक प्राचीन विष्णुमन्दिर है जिसमें बहुतसे शिलालेख हैं।

तिरुतनि (तिरुत्तनि)—१ मन्द्राजके आर्काट जिलेकी एक जमींदारी तहसील। क्षेत्रफल ४०१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १७१००५ है। इसमें इसी नामका एक शहर और ३२७ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त जमींदारी तहसीलका एक प्राचीन शहर। यह अक्षा० १३° ११´ उ० और देशा० ७९° ३७´ पू० शोलिङ्गम्से १५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ३६९७ है। ‘तिरुतनि’ इस नामकी उत्पत्तिके विषयमें स्थानीय प्रवाद इस तरह प्रचलित है—

प्राचीन कालमें सुब्रह्मण्य स्वामीने तारकासुर, सिंह, चक्रासुर, सुरपद्मासुर प्रभृति असुरोंको मार कर इस स्थानमें आ विश्राम किया था। "तिरुत्तणिगी" शब्दका अर्थ सुविश्राम है, इसीसे यह नाम उत्पन्न हुआ है और उसीका अपभ्रंश तिरुतनि है। इन्द्र उपद्रव-रहित हो स्वर्गराज्यमें रहने लगे और सुब्रह्मण्य स्वामीके कार्योंसे संतुष्ट हो उन्होंने अपनी कन्या देवसेनाके उन्हें अर्पण किया। सुब्रह्मण्य इनसे विवाह कर यहां रहने लगे। इसके पीछे इन्होंने वल्लीम्मा नामकी एक दूसरी रूपवती रमणीका पाणिग्रहण किया। इस विषयमें दो प्रवाद सुने जाते हैं। १ला प्रवाद—वल्लीष्मा किसी एक ब्राह्मणके औरस और चाण्डाल-कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुई थी। उसकी माताने अपने स्वामीके निकट यह प्रार्थना की कि सद्योजात शिशुको जंगलमें छोड़ कर वह आपका अनुसरण करेगी। सुतरां वल्लीके जन्म होनेके साथ ही उसकी माता उसे जंगलमें छोड़ आप पतिकी अनुगामिनी हो गई। किसी अस्पृश्य जातिने उसका भरण पोषण किया। युवती होने पर वह (बहुत रूपवती होनेसे) सब जगह प्रसिद्ध हो गई। वल्ली पहाड़ पर बैठ कर अपने पालक पिताके शस्यक्षेत्रकी रक्षा करती थी। एक दिन सुब्रह्मण्य स्वामी उसे देख मोहित हो गये। बाद उससे विवाह करनेके उद्देश्यसे वे तिरुतनिसे एक सुरंग खोद कर उसीके द्वारा प्रति दिन वल्लीके निकट आने जाने लगे, पीछे उसे शादी कर तिरु-

तनिमें ले आये। उत्तर आर्कटके अन्तर्गत चित्तुर तालुकके मेलपादि ग्राममें वल्लीम्माका पालक पिता रहता था। इस ग्रामसे १ मील पश्चिममें जहां पहले दोनोंमें मुलाकात हुई, पीछे मिलन और विवाह हुआ। वहां अब भी एक मन्दिरमें सुब्रह्मण्यस्वामी और वल्लीम्माकी मूर्त्ति विराजित है। वल्लीकी माता किसी अस्पृश्य जातिकी कन्या थी। कोई कोई कहते हैं, कि वल्लीकी माता सुप्रसिद्ध तामिलकवि तिरुवल्लुवरकी बहिनके सिवा और कोई नहीं है।

२रा प्रवाद—किसी समय लक्ष्मी और नारायणने हरिण और हरिणीके रूपमें कौतुक क्रीड़ा की थी। हरिणी रूपकी लक्ष्मी इस समय एक कन्या प्रसव कर उसे उसी स्थान पर छोड़ स्वस्थानको चली गईं। पीछे सपतीका नगरीके कुरव नामके राजने वल्लीमलय नामक पहाड़ पर उसका पालनपोषण किया। वल्लीमलयके निकट पाये जानेसे लड़कीका नाम वल्लीम्मा रखा गया। किसी समय सुब्रह्मण्य स्वामीने शिकार करते समय उसे देखा। पीछे वे उसके रूप पर मोहित हो कर राजाके निकट इस कन्याके कर प्रार्थी हुए। इस पर राजाने वल्लीम्माको उसे अर्पण किया। सुब्रह्मण्य उससे विवाह कर अपने देशको चले गये।

तिरतनिका मन्दिर बहुत पुराना है। ग्यारहवीं शताब्दीकी चोल राजाओंके समयमें इसका मूलपत्तन और विजयनगरके राजाओं द्वारा इसका संस्कार हुआ। यह मन्दिर एक ऊंचे पहाड़ पर अवस्थित है। पहाड़के ऊपर जानेके लिये दो पथ हैं और दोनोंमें सुन्दर सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यात्रियोंके रहनेके लिये, पथके बगलमें बहुत सी कोठरियां हैं। मन्दिरके पास ही कुमार, ब्रह्मा, अगस्त्य, इन्द्र, शेष, राम, विष्णु, नारद और सप्तर्षि नामके छोटे बड़े नौ तीर्थ हैं। प्रत्येक माहात्म्यका विषयक स्वतन्त्र इतिहास है। मन्दिरके सामने जो पुष्करिणी है, उसे लोग कैलासतीर्थ कहते हैं। सुब्रह्मण्य स्वामीकी पत्थरमय मूर्ति चतुर्भुज है और उसकी लम्बाई मनुष्य-सी है। कहा जाता है, कि ये शैशवकालमें कृत्तिका द्वारा बाँधे गये थे, इसीसे प्रति वर्ष कार्त्तिक मासके कृत्तिका नक्षत्रको इस मन्दिरमें विशेष समारोहके साथ उत्सव होता है, जिसमें दूर दूरके देशोंके यात्री आते हैं। देवसेना और वल्ली माताका मन्दिर पृथक् रूपसे निर्दिष्ट है और पूजादि भी अलग अलग होती है। तिरुतनि चार अंशोंमें विभक्त है। १ला स्थान तिरुतनि, यह पर्वतके ऊपर और देवालयके बगलमें है। यहां अधिकांश वैदिक अर्चक वास करते हैं। २रा, मठ ग्राम, यहाँ ३० मढ़ी १० कु—और २३ मण्डप हैं, इसीसे इस स्थानको मठम कहते हैं। ३रा, नल्लीनगुण्टा, नल्लीन नामके किसी राजाने ८० वर्ष पहले एक बड़ी पुष्करिणी खुदवाकर पहाड़के चारों ओर ब्राह्मणोंके लिए एक पक्केका घर बनवा दिया है, तभीसे राजाके नाम पर उक्त ग्रामका नाम पड़ा है। ४था, अमृतपुर—यहां ऐसा प्रवाद है, कि यहाँके वर्त्तमान जमींदारके पितामह वेङ्कट पेरुमल राजाने किसी समय अत्यन्त कठिन रोगाक्रान्त हो इस स्थानपर दूध और मट्ठा पीकर आरोग्य लाभ की थी, तभीसे इस स्थानका नाम अमृतपुर हुआ है। देवालयके दक्षिण १ मीलकी दूरीमें एडुवन नामक एक जङ्गलमें ७ कुण्ड हैं। इनके समीप सप्तकुमारियोंका एक मन्दिर है। जो अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। कारवेट नगरके जमीन्दारा मन्दिरका खर्च देते हैं।

तिरुइतुरैपुण्डि—तञ्जोर जिलाके तिरुइतुरैपुण्डि तालुकका सदर। यह तञ्जोरसे १८ कोस पूर्व-दक्षिणमें अवस्थित है। यहाँ अत्यन्त प्राचीन शिवमन्दिर है जिसमें उत्कीर्ण शिलालेख है।

तिरुत्तङ्गल—तिन्नेवेली जिलेके शातुर तालुकके मध्यस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहांके विष्णुमन्दिरकी बाहरी दीवारमें प्राचीन शिलालेख खुदे हुए हैं।

तिरुत्तरकोशमङ्गै—मदुरा जिलेमें रामनादसे ४ कोस दक्षिण-पश्चिम अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। प्रवाद है कि यहाँ पाण्ड्य राजाओंकी प्राचीन राजधानी थी। यहांका भास्कर और शिल्पकार्ययुक्त शिवमन्दिर देखने योग्य है। मन्दिरमें बहुतसे शिलालेख खुदे हुए हैं जिनमें सबसे प्राचीन लिपि १३०५ ई०में वीर पाण्ड्य देवके राजत्वकालमें उत्कीर्ण हुई है।

तिरुनन्रियूर—तञ्जोर जिलेके मायावरम्‌से २ कोस दक्षिण

पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहाँ एक अत्यन्त प्राचीन शिवमन्दिर है जिसमें बहुतसे शिलालेख देखनेमें आते हैं।

तिरुनरुङ्कुलम्—दक्षिण आर्काटके अन्तर्गत तिरुकोइलूरसे ६॥ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक ग्राम। यहाँ अत्यन्त प्राचीन शिवमन्दिर और जैनमन्दिर है। शिवमन्दिरमें बहुतसे बड़े बड़े शिलालेख हैं। यहाँके स्थलपुराणमें जैन मन्दिरका माहात्म्य वर्णित हैं।

तिरुनवारि—मलबार जिलेके पोनानी तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह कुट्टिपुरम् और तीरुट रेलवे स्टेशनके बीचोबीच अवस्थित है। गाँवके पास ही कृषि क्षेत्रके ऊपर एक बाँध हैं। पहले प्रति बारह वर्षके अन्तमें राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमें यहाँ नरबलि होती थी। लगभग २०० वर्ष हुए, यह प्रथा सदाके लिये बंद हो गई है। इसके पास ही एक पहाड़ी कन्दरा है, इसी जगह ठहर कर राजा बलि देखा करते थे। गाँवमें रामचन्द्रजीका एक मन्दिर है।

तिरुनामवल्लूर—दक्षिण आर्काटके अन्तर्गत तिरुकोइलूर शहरसे प्रायः १० कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यहां एक शिवमन्दिर है, जिसमें बहुतसे प्राचीन शिलालेख हैं। ११५४ ई०से पहले भी यह मन्दिर विद्यमान था, क्योंकि उस ई०के उत्कीर्ण शिलालेखमें पुरोहितोंके साथ देवसेवाके प्रबन्धकी कथा वर्णित है। इसके सिवा विकृत संवत्सरमें उत्कीर्ण महामण्डलेश्वर नरसिंहदेव और चोलराज कोनेरि-नम्मइकोण्डनकी कई एक अनुशासन-लिपियां हैं।

तिरुनागेश्वर—तञ्जोर जिलाके कुम्भकोणम् तालुकके अन्तर्गत एक शहर। यहांकी जनसंख्या प्रायः छः हजार है। जिलेमें यही वस्त्र बुननेका प्रधान स्थान है। यहां प्राचीन शिवमन्दिर भी है।

तिरुनिरइयूर—एक प्राचीन ग्राम। यह तञ्जोर जिलेके कुम्भकोणम्से ढाई कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां शिवमन्दिर है जिसमें प्राचीन कालके शिलालेख है।

तिरुपति (त्रिपति)--उत्तर-आर्काट (अरुकड़ू) जिलेका एक प्रधान वैष्णवतीर्थ और चन्द्रगिरि तालुकका प्रधान शहर। यहां पाकाल जंगशन ब्राञ्च-रेलवेका एक ष्टेशन है जो शहरसे १मील दूरी पर है। यहां पहाड़के ऊपर श्रीनिवासदेवका मन्दिर प्रतिष्ठित है। उक्त पहाड़ तिरुमलय नामसे प्रसिद्ध है। यह निम्न तिरुपतिसे ६ मील पूर्वमें है। तिरुमलय पर चढ़नेके लिए चार प्रधान मार्ग हैं। पहला मार्ग निम्न तिरुपतिसे उत्तरकी तरफ, दूसरा चन्द्रगिरिकी ओरसे पूर्वोत्तर दिशामें, तीसरा नागपट्टनसे पश्चिमकी तरफ और चौथा मार्ग वालपट्टसे पूर्वकी तरफ है। इनके सिवा और भी कई-एक छोटे छोटे मार्ग हैं। इस पर चढ़नेकी सीढ़ी निम्न तिरुपतिसे १ मील दूर होगी। इस पहाड़की सात प्रधान शिखरें हैं। प्रत्येक शिखर भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे शेषाचल नामकी शिखर पर श्रीनिवासदेवका मन्दिर है; इसलिए कोई कोई इसे 'शेषाचलम्' भी कहते हैं। इस पर्वतका दूसरा नाम 'व्यङ्कट' है। स्कन्दपुराणीय व्यङ्कटाद्रिमाहात्म्यमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—

किसी समय विष्णु अन्तःपुरमें रमाके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। शेषनाग पुरद्वार पर द्वाररक्षाके लिए नियुक्त थे। इतनेमें वायुने आ कर अन्तःपुरमें प्रवेश करनेकी चेष्टा की। शेषनागने उन्हें भीतर जानेके लिए निषेध किया, किन्तु वायु उनकी बातकी कुछ भी परवाह न कर जबरन भीतर जानेकी कोशिश करने लगे। दोनोंमें खूब झगड़ा होने लगा। कलह-शब्द सुन कर विष्णु द्वार पर आये और कहने लगे—"तुम लोग विवाद क्यों कर रहे हो?" विष्णुने विवादका कारण जान कर शेषसे कहा—"संसारमें वायु ही सबसे बलवान् है।" शेषने कहा—"भगवन्! दोनोंमें कौन बलवान् है, आप इसका प्रत्यक्ष कर लीजिये। जाम्बुनदतटमें व्यङ्कटगिरि है, मैं उसे घेरे रहूंगा; वायु यदि मुझे स्थानच्युत कर सके तो समझूंगा वह सबसे बलवान् है।" शेषनागके व्यङ्कटगिरिको वेष्टित करने पर वायुने उन्हें प्रबलवेगसे उड़ा कर पचास हजार योजन दूर, दक्षिणसमुद्रसे ३२ योजन उत्तरमें पूर्वसमुद्रके पश्चिमभागकी सुवर्णमुखी नदीके वामभागमें फेंक दिया। शेषका शरीर विदीर्ण हो गया। वे अपनेको अपमानित समझ लज्जासे म्रियमाण हो गिरिशृङ्ग पर भगवान् विष्णुका ध्यान करने लगे। विष्णुने प्रसन्न हो कर उनसे वर मांगनेके लिए कहा। शेषने यह

वर मांगा कि "आप जैसे मेरे कुण्डल पर वैकुण्ठमें सर्वदा अवस्थित हैं, उसी तरह व्यङ्कटस्थित शैलरूप मेरे शरीर पर सदा वास करें।" भगवान् 'तथास्तु" कह कर तभीसे शङ्खचक्र हाथमें लिए शेषाचल पर वास करते हैं। वे व्यङ्कटगिरिके ऊपर हैं, इसलिए व्यङ्कटेश वा व्यङ्कटपति कहलाते हैं। वराहपुराणमें लिखा है त्रेतायुगमें श्रीरामचन्द्रने लङ्का जाते समय अपने दल-सहित स्वामितीर्थमें स्नान किया था। उक्त पुराणके ४१वें अध्यायमें यह भी लिखा है कि पाण्डवोंने वनवासके समय इस पर्वत पर एक वर्ष तक वास किया था और जिस तीर्थतट पर वे थे, उसका नाम है पाण्डवतीर्थ। स्कन्दपुराणके व्यङ्कटाचलमाहात्म्यमें लिखा है—रामानुजाचार्यने व्यङ्कटशैल पर जा कर आकाशगङ्गाके किनारे विष्णुके पञ्चाक्षर-मन्त्रका ध्यान किया था और विष्णुने तुष्ट हो कर उन्हें दर्शन दिये थे। रामानुजने कलिके ४११८ अब्दमें जन्म लिया था; इस हिसाबसे ८०० वर्षसे पहले भी यह स्थान महातीर्थके नामसे प्रसिद्ध था।

पर्वतश्रेणीके भिन्न भिन्न स्थानमें झरना और उसके नीचे बड़े बड़े जलाशय हैं, जो पुण्यतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। इनमें सात तीर्थ प्रधान हैं,—१म स्वामितीर्थ, २य वियद्गङ्गा, ३य पापविनाशिनी, ४र्थ पाण्डवतीर्थ, ५म तुम्बीरकोण, ६ष्ठ कुमारवारिका और ७म गोगर्भ। स्वामितीर्थ १०० गज लम्बा और ५० गज चौड़ा है; इसके चारों तरफ ग्रेनाइट-पत्थरकी सीढ़ियां बनी हुई हैं। यह तीर्थ देवालयके पास ही है। यात्रिगण इसमें स्नान किया करते हैं। पापविनाशिनीतीर्थ देवालयसे ३ मील दूरी पर एक सामान्य जलप्रपातके नीचे अवस्थित है। इस जल प्रपातके नीचे खड़े हो कर स्नान करनेसे ब्रह्महत्या आदि महापातक विनष्ट होते हैं। यहां ऐसी किम्वदन्ती है कि, पापके तारतम्यके हेतु जलका वर्ण तक मलिन हो जाता है। पहाड़के पूर्वकी ओर जो जलप्रपात है, वही तुम्बुरकोण (तुम्बिरकोण) कहलाता है। स्थलपुराणके मतसे—पहले ऋषिगण यहीं वास करते थे। इस समय यह स्थान जङ्गलसे भरा हुआ है। यहां कोई मान्नत करनी हो, तो कपिलतीर्थमें स्नान करके स्वर्ण वा रौप्यनिर्मित व्यङ्कटेशका काँटा गलेमें धारण करना चाहिए। ऐसा प्रवाद है, कि पीछे स्वामितीर्थमें स्नान करनेसे वह काँटा उसके कपोलदेशसे अपने आप खुल जाता है। कपिलतीर्थके पीछे जो बृहत् गोपुर है वह आलपिलि नामसे प्रसिद्ध है। इस गोपुरके द्वार तक सब श्रेणीके मनुष्य जा सकते हैं; इसके आगे हिन्दुओंके सिवा अन्य किसी भी जातिकी गति नहीं है। इस जगहसे ऊपर चढ़नेके लिए पक्की सीढ़ी शुरू होती है। यह सीढ़ी करीब एक मील लम्बी और समतल भूमिसे १ हजार फुट ऊँची होगी। बीच बीचमें विश्रामस्थान भी हैं। सीढ़ीके सर्वोच्च स्थानमें एक बृहत् गोपुर है जो "गालि-गोपुर"के नामसे मशहूर है। इसके पीछे वैकुण्ठ नामके मन्दिरमें रामकृष्णकी मूर्त्ति विराजमान है। इस मन्दिरके ईशान कोणमें वैकुण्ठ-गुहा नामक एक गुफा है। श्रीरामचन्द्रके श्रीशैल आने पर उनके अनुचरगण इसी गुफामें ठहरे थे। इस स्थानसे व्यङ्कटेशके मन्दिरको जानेकी पक्की सड़क है।

तिरुमलय-गिरिस्थित नगर बहुत मामूली है। यह स्वामितीर्थके व्यङ्कटस्वामीके मन्दिरके चारों तरफ अवस्थित है। यहाँ हिन्दुओंके सिवा अन्य कोई भी जाति वास नहीं कर सकती। यहाँकी जनसंख्या १६ हजारसे ज्यादा न होगी। यात्रियोंके ठहरनेके लिए यहाँ बहुतसे छत्र हैं जिनको महिसुर और कोचीनके राजा तथा कालहस्ती और व्यङ्कटगिरिके जमींदारोंने बनवा दिया है। मन्दिरके पार्श्वमें सहस्रस्तम्भ मण्डप हैं, इसका शिल्पनैपुण्य उत्तम है। यह ग्रेनाइट पत्थरके स्तम्भ पर विस्तृत है। रास्तेकी तरफ प्रत्येक स्तम्भ पर मूर्त्ति खुदी हुई है। इस मण्डपका एक अंश गिर पड़ा है। एक लाख रुपयेसे इसका जीर्णसंस्कार हुआ है। इसके एक बगल एक अपूर्व प्रस्तररथ पड़ा हुआ है। चन्द्रचोल नामक किसी राजाने इस प्रस्तर-रथको बनवाया था। यहांके स्वामितीर्थमें स्नान करना चाहिये। तीनों देवालय भिन्न भिन्न प्राचीरोंसे वेष्टित हैं। बाहरकी दीवार काले ग्रेनाइट पत्थरकी बनी है जिसके एक पार्श्वमें एक बृहत् अनुशासनलिपि खुदी हुई है। इसके द्वार पर एक साधारण गोपुर है। यह प्राचीर १२७ गज लम्बी और ८७

गज चौड़ी है। मन्दिरमें चतुर्भुज विष्णुमूर्त्ति खड़ी हैं, जिनके दाहिने हाथमें चक्र, दूसरा हाथ भूमिकी तरफ और बायें हाथमें शङ्ख, दूसरेमें पद्म है। इस मूर्त्तिके साथ शक्ति न होनेके कारण लोग अनुमान करते हैं, कि पहले यहाँ केवल शिवमूर्त्ति ही थी, रामानुजके प्रयत्नसे उसी मूर्त्तिमें शङ्ख और चक्रसे शोभित दो सोनेके हाथ लगा दिये गये हैं। प्रवाद है, कि कुलोत्तुङ्ग चोलके पुत्र तोण्डमन चक्रवर्त्तीने इस प्रसिद्ध मन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी।

इस मन्दिरमें देवदर्शन करने पर कुछ दर्शनी देनी पड़ती है। देवका दुग्धस्नान देखनेसे १३) रुपये और कर्पूरालोकमें देवदर्शन करनेसे १) रु० देना पड़ता है। दिनके १२ बजेसे २ बजे तक पूजा आदि होती है। साधारणके दर्शनके लिए आठ घण्टे तक द्वार खुला रहता है। अरूकाड़ु प्रदेश जबसे अंग्रेजोंके शासनाधीन हुआ है, तबसे १८४७ ई० तक यह मन्दिर अंग्रेजोंकी देख-रेखमें था। पीछे इसका भार महन्तके ऊपर सौंपा गया। अब भी महन्त पर ही इसका भार है। इस देवालयकी वार्षिक आय करीब २१ हजार रुपये और व्यय १५ हजार रुपये है। अन्यान्य देवालयोंकी भांति इसमें देवाङ्गनाएं नहीं हैं। पहले यहां कोई भी कुलटा प्रवेश न कर सकती थी; किन्तु अब वह बात नहीं रही उसका बहुत कुछ व्यतिक्रम हो चुका है। जिन महात्माओंने इस मन्दिरकी उन्नति की थी, उनका नाम अब भी मन्त्रपुष्पके साथ उच्चारित होता है। देवालयकी हस्तलिपिमें उसका इस प्रकार विवरण मिलता है,—'परीक्षितने प्राङ्गणकी दूसरी प्राचीर और उनके पुत्र जनमेजयने बाहरकी प्राचीर बनवाई थी। पीछे विक्रम नामके किसी दूसरे राजाने इस मन्दिरका संस्कार कराया था। कोई कोई कहते हैं, कि, तण्डमन चक्रवर्त्ती महाराजने वर्त्तमान मूलमन्दिर बनवाया था। ब्रह्मपुराणीय व्यङ्कटेश-माहात्म्यमें स्पष्ट लिखा है कि—"किसी समय नारद पृथिवी पर्यटन करके भगवान् वैकुण्ठनाथके दर्शन करने गये थे, उन्होंने यह कहा था कि 'गङ्गासे एक हजार कोस दक्षिण और पूर्वसागरसे २५ कोस पश्चिममें एक मनोहर पर्वत है।" विष्णुने इसके उत्तरमें कहा—"कलियुगमें चोल राजपुत्र चक्रवर्त्ती द्वारा प्रतिष्ठित हो कर मैं वहाँ रहूंगा।" यहांका प्रधान उत्सव आश्विन मासमें १० दिन तक होता है। उत्सवके पाँचवें दिन गरुड़ोत्सव और दशवें दिन नारायणवनमें पद्मावतीके साथ वात्सरिक कल्याणोत्सव हुआ करता है।

व्यङ्कटेश्वरस्वामीके मन्दिरके बाहर स्वामी पुष्करिणीके किनारे एक सामान्य मन्दिर है, जिसमें वराहस्वामीकी मूर्त्ति हैं। किसीके मतसे, कोई यज्ञवराह विचरण करते हुए उक्त स्थानमें आये थे, इसलिए ये उस शृङ्गके अधिष्ठाता देवता हैं। तभीसे यहां वराहस्वामी प्रतिष्ठित हैं। यात्रिगण व्यङ्कटेश स्वामीसे पहले इनकी पूजा करते हैं। व्यङ्कटेश स्वामीके मन्दिरके समीप गोगर्भतीर्थ है और उसके पास ही चेत्र-वलिगुण्डि नामक एक प्रस्तरमय स्तम्भ है। इस स्तम्भके पास कोई भी मिथ्या वचन कहनेका साहस नहीं करना। जिन विषयोंकी सत्यताका निर्णय करना विचारकोंकी शक्तिसे बाहर है, वे विषय भी यहां सुलझ जाते हैं। वादी और प्रतिवादी गोगर्भतीर्थमें स्नानपूर्वक भीगी धोती पहने स्तम्भके पास जा कर जो कुछ कहते हैं, वह सत्य समझा जाता है। इस प्रकार शपथ करनेके लिए वादी और प्रतिवादीको सात सात रुपये जमा करने पड़ते है। उसके बाद खिचड़ी, पूड़ी, अन्न और दधिमण्डीका भोग होता है वैरागियोंको उस भोगका प्रसाद मिलता है।

तिरुपतूर—मन्द्राज प्रदेशके सलेम जिलेका एक तालुक और उस तालुकका प्रधान नगर। यह शहर अक्षा० २०° २८' ४०" उ० और देशा० ७८° ३६' ३०' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १६४९९ है, जिसमें अधिकांश हिन्दू और कुछ मुसलमान हैं। यहां समस्त राजकीय कार्यालय हैं। जिलेमें इस स्थानसे चारों ओर रास्ते गये हैं। जिस कारण यहां अनाजकी आमदनी अधिक होती है। यहां चमड़ेका व्यवसाय भी होता है। इस शहरमें एक बहुत बड़ा तालाब है जिसके मुकाबिलेका और दूसरा तालाब जिलेभरमें नहीं देखा जाता है।

तिरुपरङ्गाड़ु—एक प्राचीन ग्राम। यह दक्षिण आर्काट जिलेके अन्तर्गत आर्काट शहरसे दश कोस पूर्वमें अव-

स्थित है। यहांके प्राचीन मन्दिरमें कई एक शिलालेख हैं।

तिरुपुड़ैमरुदूर—एक ग्राम। यह तिन्नेवेलि जिलेके मध्य अम्बासमुद्रसे डेढ़ कोस उत्तर-पूर्वमें, जहां घटना नदी ताम्रपर्णीके साथ मिली है उसी सङ्गमस्थान पर अवस्थित है। यहां अनेक पवित्र देवमन्दिर है। प्रधान मन्दिरमें १५ वीसे १७ वीं शताब्दीके मध्य प्रदत्त कोलम्बाद-अङ्कित कई एक शिलालेख और एक ताम्रशासन देखनेमें आता हैं।

तिरुपुर—कोयम्बतुर जिलेके अन्तर्गत एक शहर और रेल स्टेशन। यह अक्षा० ११° ३७´ उ० और देशा० ७७°४०´´ ३०´ पू०में अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः ४००० है।

तिरुपोलूर—चेङ्गलपट्ट जिलेके अन्तर्गत कोभलङ्ग शहरसे ३½ कोस दक्षिण-पश्चिम और चेङ्गलपट्ट शहरसे ७ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित एक स्थान। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर है। ४० वर्ष पहले प्रधान असिष्टैण्ट कलक्टरको इस मन्दिरके पास ही कई एक प्राचीन ताम्रशासन मिले थे।

तिरुप्पंतिरुत्ति-तञ्जोर जिलेमें तिरुवाड़ीसे १ कोस पश्चिममें अवस्थित एक स्थान। यहाँ शिल्पकार्य खचित एक प्राचीन शिवमन्दिर हैं, जिसमें बहुतसे शिलालेख हैं।

तिरुप्पट्टूर—त्रिशिरापल्ली जिलेमें मुसीरी तालुकका एक ग्राम। यह मुसीरी शहरसे १२ कोस पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर है और उसमें कई एक शिलालेख हैं।

तिरुप्पत्तूर—मदुरा जिलेके मध्य तिरुमङ्गलम तालुकका एक ग्राम। यह तिरुमङ्गलम् शहरसे ¾ कोस उत्तर-पश्चिममें पड़ता है। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर और उसमें बहुतसे शिलालेख हैं।

तिरुप्पदिकुन्रम्—चेङ्गलपट्ट जिलेके काञ्चीपुर तालुकका एक स्थान। यह काञ्चीपुरसे १¾ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है, यहां एक प्राचीन, अत्यन्त सुन्दर शिल्पकार्य विशिष्ट शिवमन्दिर है जिसमें बहुतसे शिलालेख हैं। एक शिलालेख कृष्णदेव महाराजके राजत्वकालका (१५१८का) खुदा हुआ है। उसमें मन्दिरके लिये भूमि दानका उल्लेख है।

तिरुप्पदिरिलियुर—दक्षिण आर्काट जिलेमें कूदालूर शहरसे ४ मील उत्तरपश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। इसके पास ही रेल-ष्टेशन है। यहाँ एक उत्तम शिल्पकार्य विशिष्ट प्राचीन मन्दिर हैं, जिसमें बहुतसे शिलालेख है।

तरुप्पनन्दाल—तञ्जोर जिलेमें कुम्भकोणम् शहरसे ११ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित एक ग्राम। यहाँ एक सम्पत्तिशाली शूद्र द्वारा प्रतिष्ठित मन्दिर है। उस मन्दिरमें तामिल भाषामें लिखे हुए बहुतसे प्राचीन ग्रन्थ पाये जाते हैं। इसके सिवा मन्दिरमें एक तेलगू भाषाका और तीन तामिल भाषाके ताम्रशासन हैं। तुरइयुव नामक स्थान इस मन्दिरके लिये दान किया गया है जिसका दानपत्र तेलगू भाषामें है और वह १७४४ ई०में धनगिरि नामक स्थानमें वेङ्कटपतिरायके राजत्वकालमें खोदा गया है। उक्त तामिल भाषाके शासनोंमेंसे एक १७१३ ई०में रामेश्वरके पास उक्त मठको कुछ भूमिदान करनेके लिए रामनादके सेतुपति सर्दार हिरण्यगर्भ-याजिकुमार मुत्तुविजय रघुनाथ सेतुपतिके द्वारा खुदाया गया है।

तिरुप्परकुन्नू—मलवार जिलेमें वल्लवनाद तालुकका एक ग्राम। यह अङ्गदपुरसे ५ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ ३८ डोलमेन (प्राचीन कालमें असभ्य जातियोंमें मृत मनुष्योंके स्मृतिचिह्नके लिये चार पत्थरोंके ऊपर एक बड़ा चौड़ा पत्थर रख कर आसनवत् स्थान बनता था, इसीको डोलमेन कहते हैं)।

तिरुप्पलङ्गुड़ि—मदुरा जिलेको रामनाद जमींदारीका एक स्थान, जो रामनाद शहरसे १८ मील उत्तर-पूर्वमें समुद्रके किनारे पर है। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर है, जिसमें एक ताम्रशासन और मन्दिरके सामने बहुतसे शिलालेख हैं।

तिरुप्पलात्तुरइ—त्रिशिरापल्ली जिलेका एक स्थान जो त्रिशिरापल्ली शहरसे २¾ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर है और उसमें एक शिलालेख है।

तिरुप्पाक्कुड़ी—चेङ्गलपट्ट जिलेके काञ्चीपुर तालुकका पश्चिममें एक स्थान। यह काञ्चीपुर शहरसे ३¼ कोस

पड़ता है। यहाँ एक प्राचीन विष्णुमन्दिर है, जिसमें विभिन्न अक्षरोंमें खुदे हुये शिलालेख हैं।

तरुप्पार्कड़ल—उत्तर आर्काट जिलेके अन्तर्गत वलाजापेट-से ४ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक पुण्यतीर्थ। यहांका विष्णु-मन्दिर विख्यात है। स्थानीय स्थलपुराणमें विष्णुमन्दिर और उक्त तीर्थका माहात्म्य वर्णित है। यहां बहुतसे प्राचीन शिलालेख हैं। किसीके मतसे पहले यह शिवमन्दिर था, फिर वही अब विष्णुमन्दिरके रूपमें परिणत हो गया है।

तिरुप्पाशूर (त्रिपासुर)—चेङ्गलपट्टु जिलेका एक शहर। यह तिरुवल्लूरसे १ कोस पश्चिम अक्षा० १३° ८' २०" उ० और देशा० ७९° ५५' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः साढ़े तीन हजार है।

यह स्थान एक पवित्र तीर्थ समझा जाता है। हिन्दू राजाओंके समयमें निर्मित यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर है। यहांके स्थलपुराणमें इस स्थानका तथा शिवमन्दिरके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन है। मन्दिरमें जगह जगह चोल-राजाओंके समयके शिलालेख हैं। यहांके स्थलपुराणमें लिखा है, कि महाराज करिकालने कुरुम्ब-रियोंको जीता था।

पहले पलिगारियोंके दौरात्म्यसे रक्षा पानेके लिये बहुतसे मनुष्य इस दुर्गमें आश्रय लेते थे। १७८१ ई०में सर आयर कूटने इस दुर्ग पर आक्रमण किया। कम्पनी-के समयमें यहां विभिन्न श्रेणीके सैनिक वास करते थे। बाद कभी कभी गोरोंकी फौज भी यहां आ कर ठह-रती थी।

तिरुप्पिरम्बियम्—यह स्थान तञ्जोर जिलेमें, कुम्भकोणम्से २॥ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहां एक अति प्राचीन शिवमन्दिर है, जिसमें यत्र तत्र बहुतसे शिला-लेख हैं।

तिरुप्पुण्ड—तञ्जोर जिलेके नागपट्टन शहरसे ५ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित एक स्थान। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर है, जिसमें बहुतसे शिलालेख देखनेमें आते हैं।

तिरुप्पुरापुर—कृष्णा जिलेमें विनुकोण्ड शहरसे ४ कोस उत्तरमें अवस्थित एक ग्राम। यहाँ असभ्य जातियोंके मृत-समाधि-निर्देशक बहुतसे प्रस्तरासन हैं।

तिरुप्पुल्लाणि—इसका संस्कृत नाम दर्भशयनम् है। यह स्थान मदुरा जिलेके रामनाद जमींदारीके मध्य रामनाद शहरसे ३ कोस दक्षिणमें पड़ता है। स्थलपुराण और सेतुमाहात्म्यमें इस स्थानका एक पवित्र तीर्थके जैसा वर्णन किया है। रामेश्वरके यात्रिगण प्रायः इस स्थानको देखने जाते और यहांके विष्णुकी दर्भशयन-मूर्त्तिकी पूजादि करते हैं। सेतुमाहात्म्यमें लिखा है, कि रामचन्द्र-जी लङ्का जाते समय समुद्रके किनारे आ कर वरुणदेवको खुश करनेके लिये तीन दिन तक दर्भ वा कुश-शय्या पर सोये थे; इसीसे यह स्थान दर्भशयन नामसे विख्यात है। यहांकी मूलमन्दिरस्थ शेषशायी विष्णु-मूर्त्तिको ही पण्डा लोग रामचन्द्रकी दर्भशयन-मूर्त्ति बतलाते हैं। देखनेसे ही मालूम पड़ता है, कि किसी समय यह स्थान समुद्रके किनारे पर था। अभी उस जगहसे समुद्र प्रायः तीन मील पीछे हट गया है। मूल मन्दिरके सामने एक बड़ा सरोवर है, जिसे सेतुमाहात्म्यमें चक्र-तीर्थ बतलाया है। यह सरोवर चारों ओर पत्थरसे बंधा था, किन्तु अभी उसका अधिकांश नष्ट हो गया है। इसके उत्तरमें एक पुष्करिणी है, जिसे रामतीर्थ कहते हैं। मन्दिरकी दीवारकी लम्बाई तथा चौड़ाई प्रायः ४०० फुट होगी। प्रवेश-द्वारके ऊपर एक बड़ा गोपुर है।

मूल मन्दिर यद्यपि बड़ा नहीं है, तो भी इसके चारों ओर बड़े बड़े मण्डप हैं। विजयनाथ सेतुपतिने इन पत्थरके मण्डपोंको बनवाया था। यहांके जगन्नाथजीका मन्दिर ही सबसे प्रधान है। प्रवाद है—तिरुमङ्गै आल्वर नामक एक व्यक्तिने चौर्यवृत्ति कर यह मन्दिर निर्माण किया था। मूलमन्दिर मरकत नील पत्थरसे बना हुआ है। यह मन्दिर कब बनाया गया इसका निश्चय नहीं है। किन्तु यहांके चोल राजाओंके समयमें उत्कीर्ण तेरहवीं शताब्दीके शिलालेखमें इस मन्दिरका प्रसङ्ग रह-नेसे अनुमान किया जाता है कि यह मन्दिर उसके पहले ही बनाया गया होगा।

दर्भशयनके मन्दिरके समीप वरुणकुण्ड है। सेतु-माहात्म्यमें लिखा है—रामचन्द्रजीने तीन दिन दर्भ-शयनमें रह कर जब देखा कि वरुणदेव नहीं आये, तब उन्होंने गुस्सा कर समुद्रको सुखानेके लिये तीर छोड़ा।

समुद्र भयसे किनारा छोड़ कर एक योजन पीछे हट गया। तब वरुणने उक्त कुण्डसे निकल स्तुतिवादपूर्वक रामचन्द्रको प्रसन्न किया, तभीसे वह कूप वरुणकुण्ड नामसे मशहूर हो गया है।

चक्र, वरुण और रामतीर्थके अलावा यहाँ सेतु और अगस्त्य नामके और दो तीर्थ हैं। यात्रिगण नियमपूर्वक इन पञ्चतीर्थोंमें स्नान करते हैं। दर्भशयन मूर्त्तिके सिवा महालक्ष्मी, श्रीदेवी, भूदेवी, जगन्नाथ, कोदण्ड रामस्वामी और सन्तान रामस्वामीके कई एक मन्दिर हैं। मन्दिरोंमें बहुतसे प्राचीन शिलालेख हैं।

तिरुप्रङ्गोत्तुर—मलवर जिलेमें कोट्टयम् शहरसे ३ कोस दक्षिणमें अवस्थित एक ग्राम। यहांके पहाड़ पर (खुदी हुई) एक कन्दरा है।

तिरुमङ्गलम्—मन्द्राज प्रदेशके मदुरा जिलेका एक तालुक और उसका प्रधान सदर। तालुकका भूपरिमाण ६२५ वर्गमील है। शहर अक्षा० ८°४८′२०″ उ० और देशा० ७८° १′१०″ पू०में पड़ता है। शहरकी लोकसंख्या प्रायः छः हजार है। १५६६ ई०में यहां वेल्लालर जाति आ कर बस गई है।

तिरुमङ्गलक्कुरी—यह स्थान तञ्जोर जिलेके कुम्भकोणम्से ४ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर है जिसमें ग्रन्थाक्षरमें उत्कीर्ण शिलालेख पाये जाते हैं।

तिरुमलुर—त्रिशिरापल्ली जिलेके उदैयारपलेयम् तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहाँ सुन्दर भास्कर्ययुक्त एक शिवमन्दिर है। जिसमें कई एक शिलालिपि उत्कीर्ण हैं।

तिरुमल नायक—मदुराके एक विख्यात राजा। इनका प्रकृत नाम 'महाराज मान्यराज श्री तिसमल शवेरी-नायणि आय्यलु गारू' था। इन्होंने त्रिशिरापल्ली परित्याग कर मदुरामें अपनी राजधानी स्थापन की थी। इनके यत्नसे मदुरामें सुन्दर राजप्रासाद और बहुतसे देवमन्दिर बने थे। इन्होंने पहले हा पहल विजयनगरका अधीनतापाश विच्छिन्न कर एक बार स्वाधीन होनेकी चेष्टा की थी। इस समय महिसुरने सैना दण्डिगुल नामक स्थानमें आकर उन्हें सहायता दी, किन्तु वे सम्पूर्ण रूपसे पराजित हुए थे।

१६२३ ई०में रोवर्ट डि नोवलियस नामक प्रसिद्ध जेसुट मदुरा पहुंचे, उस समय मदुराके राजा तिरुमलके साथ रामनादके सेतुपतिका घमसान युद्ध हो रहा था। इस युद्धमें तिरुमल कृतकार्य न हो सके थे।

वे हमेशा विजयनगरके राजाको अपनी अधीनताका चिह्नस्वरूप उपहार भेजते थे, किन्तु एक बार उसकी अवहेला कर १६५७ ई०में विजयनगरके राजकुमारने तिरुमल पर शासन करनेके लिये उसके साथ युद्ध-घोषणा कर दी। इस पर तिरुमल तञ्जोर और जिञ्जोर नायकोंके साथ मिल गये। विजयनगरकी सेनाने जिञ्जी पर आक्रमण किया। इधर तिरुमलके बहकानेसे मुसलमानोंने भी विजयनगर पर धावा किया। वे क्रमशः मुसलमानराज्यको विस्तार करते हुए दक्षिणमें आ विजयनगरके करद राज्य पर आक्रमण करने लगे। उस समय तिरुमल भाग कर मदुरामें आ टिके। अन्तमें वे गोलकुण्डाके मुसलमान राजाओंके साथ मिल कर महिसुर और विजयनगराधिकृत अवशिष्ट राज्य पर आक्रमण करने लगे। महिसुरके राजा उदैयारने तिरुमलकी विश्वासघातकताका बदला लेनेके लिये तिरुमल पर आक्रमण किया। भीषण युद्धके बाद मदुराके राजा तिरुमलकी जीत हुई, किन्तु इसी साल इनका देहान्त हो गया।

तिरुमल देव—विजयनगरके एक प्रसिद्ध राजा। ये सुविख्यात राम राजके भाई थे। विजयनगरके नानास्थानोंसे तिरुमलके समयमें उत्कीर्ण शिलालेख आविष्कृत हुए हैं जिनके पढ़नेसे जाना जाता है कि तालिकोटके युद्धमें रामराजका अधःपतन होनेसे तिरुमलने ही विजयनगरके राजवंशमें प्राधान्य लाभ किया था तथा पेन्नकोण्ड नामक स्थानमें राजधानी बनाई थी। इन्होंने १५६०से १५७१ ई० तक राज्य किया था। इनकी मृत्युके बाद इनके बड़े लड़के श्रीरङ्ग राजा हुए थे।

तिरुमलपुरमा—उत्तर आर्काट जिलेमें वालाजापेट तालुकका एक ग्राम, जो पुन्नूर रेल-ष्टेशनसे २॥ कोस उत्तरमें अवस्थित है। यहाँ एक अति प्राचीन भग्न विष्णुमन्दिर है; जिसमें बहुतसे शिलालेख देखे जाते हैं। तिन्नेवेली जिलेमें भी इसी नामका स्थान है जो तिन्नेवेली शहरसे ६ कोस उत्तर पश्चिममें पड़ता है। इस

THE

Modern Buddhism.

and its

FOLLOWERS IN ORISSA

BY

Nagendra Nath Vasu, M.R.A.S.

with an introduction by

Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri M. A., C. I. E.

It has been conclusively proved in this book that Buddhism is neither dead nor driven out of India, but its pulse still beats with all the energy of life in Orissa. "Sankaracharyya drove away Buddhism from the soil of India" is proved to be absolutely false. The discoveries of 50000 crypto Buddhists living in the jungle tracts of Orissa first announced in this book has taken the world of European scholars by surprise.

The book contains more than 250 pages. It is nicely printed and beautifully bound. **Price**—Rs. 3/-, for students Rs. 2/-.

Dr. L. D. Burnett of the British Museum writes :—

"A more fascinating and erudite work I have not read for many years and I shall find it most valuable both in the study and in the lecture-room."

Dr. H. Kern, the great Buddhist scholar writes :—

"I need hardly to tell you that the subject matter is one that interests me highly, so that it will be a pleasure for me to read the book, which contains so much that is little known or not at all in Europe."

Sir. George A. Grierson, K. C. I. E. Author of Linguistic Survey of India writes :—

"I have found your chapter on the Revival of Buddhism most interesting. I think it a most important contribution towards the religious history of India. It should certainly be carefully studied by all who interest themselves in that subject."

A. Smith I. C. S. (retired) writes from 116 Banbury Road, Oxford—

"Your book is also of high value for the history of Buddhism and Indian religion generally. The account of later and modern Buddhism is novel and your constant citation of little known Sanskrit works gives it special authority."

ग्राहकोंसे निवेदन।

बहुतसे महाशय हमारे साथ पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर नहीं लिखते। ऐसे महाशयोंसे प्रार्थना है कि पत्र लिखते समय अपना ग्राहक श्रेणीका नम्बर अवश्य २ लिख दिया करें अन्यथा पत्रोत्तरकी आशा न करें।

२। हम आपके साहाय्यसे ही 'हिंदी विश्वकोष'के प्रकाशनका भार उठाने समर्थ हुये हैं। अतः आपसे प्रार्थना है कि कमसे कम दो ग्राहक बनानेकी कृपा करें।

निवेदक—

प्रबंधकर्त्ता—हिंदी-विश्वकोष कार्यालय,

९ विश्वकोष लेन, कांटापुकर, बागबाजार, कलकत्ता

आवश्यकीय सूचना

हिन्दी-विश्वकोषकी आज तक प्रतिमास ४ संख्या प्रकाशित होती थीं, परन्तु अब छ संख्या प्रतिमास प्रकाशित होंगी, तदनुसार ग्राहकोंकी सेवामें भी छ संख्या ही प्रतिमास भेजी जाया करेंगी। आशा है, कि छ संख्याकी वी॰ पी॰ छुड़ा कर कृतार्थ करेंगे।

निवेदक—
प्रबन्धकर्त्ता

ARCHÆOLOGICAL REPORT OF
MAYURABHANJA.

BY

Nagendranath Vasu, Editor of "Visvakosha."

This work contains along with the results of the archæological and historical reserches conducted at the cost of the Chief of Mayurabhanja, a descriptive account of the rise and development of the various Hindu, Buddhist and Jaina sects. The discoveries of numerous cripto-Buddhists in Orissa, first announced in this book, has taken the world of European Scholars by surprise. Dr. Kern, Dr. Fleet, Dr. Oldenburg, Sir Grierson, Dr. Sylvain Levi, M. Emile Senart, Mr. Vincent Smith, Dr. Thomas of India Office and other European scholars have enthusiastically received the book and lavished high-flown praises upon it. Beautifully printed and gorgeously bound with more than 100 large plates of inscriptions, grants, ancient temples, ruins and figures of Hindu, Buddhist and Jaina Gods and Goddesses with their identification from the authoritative scriptures of various sects. Price Rs. 15/-, for students Rs. 10/-.

Dr. L. D. Burnett writes in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland, 1912. pp. 802-4.

"The body of the book comprises a series of report on the antiquities and history of a number of sites visited in the course of the survey, with an appendix containing text and facsimiles * * * Almost every form of Hindu religion has left its mark in Morbhanj * * * Undoubtedly the most interesting part of this interesting survey is the Chapter on Buddhism. * * * Pandit Nagendra Nath Vasu brings the history of Buddhism in Orissa down to the present day. He finds distinct traces of Mahayana cults among the Bathuri or Bauri tribe on whose ethnology he gives some valuable data. * * * In concluding this brief notice of this *veritable Ratnakar of learning*, we may add that it is illustrated by numerous plates."

Dr. J. F. Fleet, C. I. E. (the great antiquaran) writes from 8, Leopold Road, Ealing W. London.—

"I have read the book with much interest, and consider it a useful addition to our researches into the ancient and mediæval history of India"

नवम भाग] [२११—२१५ खण्ड

१६-२-८
१०८८८

सचित्र] हिन्दी [समान चित्र

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस,

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

*

नवम भाग

THE
ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. IX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava.

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnākara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Bangiya Sāhitya Parishad
and Kāyastha Patrikā ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society,
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by P. C. Bose, at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

1925.

बारह खण्डका मूल्य ६) रुपया, एक खण्डका मूल्य ॥) आना और डाक महसूल अलग।

Expert-Opinion

Sir Gooroo Dass Banerjee,
Kt., M. A., D. L., Ph. D.,

The late Justice of the Calcutta High Court and Vice-Chancellor of the Calcutta University writes—

"I am glad to learn that you are publishing a Hindi edition of your great work, the Bengali Encyclopædia "Visvakosha." I had to consult it on several occasions, and I found in it much valuable and rare information. A Hindi edition of this monumental work will make all that useful information available for all India, and will, I am sure, meet with the same enthusiastic encouragement and support that the Bengali Visvakosha has received. (30. 11. 15.)

Babu Saradacharan Mitra, M A., B L. &c.,
The late Justice of the Calcutta High Court writes :—

"The "Viswakosha" or Encyclopædia in Bengali by Babu Nagendra Nath Vasu Práchyavidyamahárnava is an wonderful production. It contains an immense mass of correct information and is very valuable. The learned author is now issuing a Hindi Edition and the first volume is out. The Hindi Edition is enlarged and contains informations upto date. There should be no library without this."

The Hon'ble Sir Ashutosh Mukerjee,
Sarasvati C. S. I. &c. &c.,

The Justice of the Calcutta High Court, the late Vice-Chancellor of the Calcutta University, writes :—

"I have had occasion many a time to consult the Bengal Encyclopædia Visvakosha prepared by Babu Nagendranath Vasu. I have always entertained the highest opinion about its unique value, due chiefly to its accuracy and completeness. It is a truly monumental work, and I am delighted to learn that a Hindi version of it has been undertaken."
(9. 11. 15)

The Hon'ble Justice A. Chaudhuri,
M. A. LL. B.

of the Calcutta High Court, writes :—

"Your Encyclopædia Indica I constantly refer to in my work. I have always found it thoroughly accurate and very helpful. It is a wonder to me that the compilation, although made by you alone, is so complete. I am writing these few lines in admiration of the great work you have done. I wish the **Hindi** edition every success." (10. 9. 15.)

THE SOCIAL HISTORY OF
KAMARUPA.
Vol. I.

BY

Nagendra Nath Vasu
Prachyavidyamaharnava etc. etc.

A very interesting and readable account of a great social movement which shed a beam of light across the otherwise lurid clouds that envelop the history of Assam.

The book is divided into three chapters of which the first one is devoted to the prehistoric period. The first chapter consists of seven sections. The first section is the general remark upon Kamarupa's claims to historical recognition. The second section deals with the activities of the Phœnicians in Eastern India, their references in the Vedas, the difference between them and the Aryans, the geography of their times, their religion, arts, sciences and commerce and their identity with modern Koch.

The third section deals with the origin of the Mismi, Abors, Daflas and Miris. The fourth section deals with the origin of the Kiratas, Garos and Kacharis. The fourth section describes Usha and Anirudha, Bana and Saumar dynasty and Bànalinga. The sixth section deals with the Kimmerian influence in Kamarupa and the seventh section deals with the Assyrian (Mech) influence with their full history. The second chapter deals with the historical period and third with the rise of the Kayasthas in Kamarupa.

The book is worth reading and without it no research in ancient Indian history could be complete. The book is neatly bound, adequately indexed, clearly written with the support of the authority whose chapter and verse are quoted in their proper place, and on the whole carefully printed and nicely got up. The price Rs. 5|- only. To be had at 9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

ग्रामके पास ही एक बड़ा प्रस्तर-निर्मित अट्टालिकाका भग्नावशेष पड़ा हुआ है।

तिरुमालकात्तान् कोट्ट—मदुरा जिलाके रामनादसे १७ कोस पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। यहाँ एक अति सुन्दर भास्करनैपुण्ययुक्त पुरातन शिवमन्दिर है और उसमें बहुतसे शिलालेख हैं।

तिरुमुक्कुड़ल—त्रिशिरापल्लीके कुलितलय शहरसे ८ कोस पश्चिममें एक पुण्यस्थान जो अमरावती और काबेरी नदीके संगम-स्थान पर अवस्थित है। यहाँके अति प्राचीन शिवमन्दिरमें बहुतसे शिलालेख मिलते हैं।

तिरुमुरुगनपूण्डि—कोयम्बतुर जिलेके तिरुपुर रेल-ष्टेशनसे २ कोस उत्तर पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। यहाँके दो प्राचीन मन्दिरोंमें बहुतसे शिलालेख देखे जाते हैं।

तिरुमूर्त्तिकोविल—कोयम्बतुर जिलेका एक प्राचीन ग्राम। यह अक्षा० १०° २७´ उ० और देशा० ७७° १२´ पू०में अवस्थित है। यहाँ एक बड़े और सुन्दर मन्दिरमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी मूर्त्तियाँ विराजमान हैं, इन्हींके लिए यहाँका स्थान मशहूर है। स्थलपुराणमें इनका माहात्म्य सविस्तर वर्णित है। यहाँ प्रति रविवारको यात्री जुटते हैं।

देवताके वार्षिक उत्सवके समय यहां हजारों मनुष्य एकत्र होते हैं। यहांके सहस्र स्तम्भ मण्डप देखने योग्य है। ग्रामके पास ही एक पहाड़ है। पहाड़ पर कहीं कहीं विष्णुके पदचिह्न खुदे हुए दीख पड़ते हैं।

तिरुमोकूर—यह ग्राम मदुरा जिलेके मदुरा शहरसे २ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां अति प्राचीन शिवमन्दिर और विष्णुमन्दिर हैं। दोनों मन्दिरोंमें बहुतसे शिलालेख मिलते हैं। एक शिलाफलकमें लिखा है कि १६२२ ई०में दलवाय सेतुपतिने यहांके शिवमन्दिरका संस्कार किया था।

तिरुवक्करै—दक्षिण-आर्काट जिलेके विल्वपुरम् शहरसे ६ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर है। जिसमें एक गोपुर भी है और उसके चारों ओर अनेक तरहके शिलालेख दृष्टिगत होते हैं। कहा जाता है कि यह मन्दिर वेल्लूरके किसी राजा द्वारा निर्माण किया गया है।

तिरुवङ्कोर—यह स्थान त्रिवाङ्कुड़ राज्यके पद्मनाभतीर्थसे ४ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहां तामिल अक्षरमें लिखे हुए दो प्रस्तरस्तम्भ हैं। इसके अलावा यहाँ एक ईसाइयोंका प्राचीन गिर्जा भी है। पहले इस प्रदेशमें एक कुप्रथा थी कि उच्चश्रेणीकी हिन्दू-रमणियोंके किसी निर्दिष्ट दिनमें बाहर निकलने पर पुलिया नामक नीच दासजाति उन्हें पकड़ कर ले जाती थी। यहांके एक शिलालेखमें इस कुप्रथाको रोकनेके लिये स्थानीय राजाकी ओरसे कठोर आदेश दिया गया है।

तिरुवट्टार—त्रिवाङ्कुड़के अन्तर्गत कल्कुलम्से ३ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। यहाँ अनेक प्राचीन देवमन्दिर हैं जिसमें शिलालेख भी देखे जाते हैं।

तिरुवड़न्दै—चेङ्गलपट्टु जिलेके चेङ्गलपट्टु शहरसे ७ कोस उत्तर पूर्व तथा कोवलङ्गसे ३ कोस दक्षिण-पश्चिम समुद्रके किनारे अवस्थित एक ग्राम। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर हैं जिनमें उत्कीर्ण शिलालिपि भी देखी जाती है।

तिरुवड़मादूर—तञ्जोर जिलेमें कुम्भकोणम् तालुकके अन्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० ११° उ० और देशा० ७८° २७´ पू० कुम्भकोणम् शहरसे ३ कोस उत्तर-पूर्व वीर सोलनार नदीके किनारे अवस्थित है। यहां रेलवे-ष्टेशन है। लोकसंख्या प्रायः ११२३७ होगी। यहाँ एक अति प्राचीन शिवमन्दिर है। जिसमें तामिल भाषामें उत्कीर्ण १५४४ ई०के रामराज वट्टल देवरायके राजत्वकालका एक शिलालेख मिलता है। मन्दिरका शिल्प-नैपुण्य देखने योग्य है। इसके सामने एक सुन्दर गोपुर है।

तिरुवड़ि—तिरुवयार देखो।

तिरुवड़ि शूल—एक ग्राम। यह चेङ्गलपट्टु जिलेमें चेङ्गलपट्टु तालुकके पूर्व एक पहाड़ पर अवस्थित है। यहां एक प्रसिद्ध मन्दिर है। कहा जाता है कि कुरुम्बरोंने यहां भी एक दुर्ग ११वीं सदीमें निर्माण किया था। विजयनगरके प्रतापके समय दो सर्दार यहांके दुर्गका संस्कार कर विजयनगरके प्रभुत्वकी अवहेला करते थे। विश्वासघातकसे उनका नाश होने पर दुर्ग भी विनष्ट हो गया। इस विषयकी अनेक कहानियां सुनी जाती हैं।

तिरुवण्डुतुरै—तञ्जोर जिलेके मन्नारगुड़ि शहरसे ३ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक ग्राम। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर है जिसमें १३५३ ई०का खुदा हुआ एक शिलालेख है इससे मन्दिरके विषयका पूरा पता चलता है।

तिरुवत्तियुर—मन्द्राज प्रदेशके चेङ्गलपट्ट जिलेके अन्तर्गत सैदापेट तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १३°१०´ उ० और देशा० ८०°१८´ पू० सेंट जोर्ज किलासे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहाँकी जनसंख्या प्रायः १५८१८ है। यहाँ एक अति प्राचीन शिवमन्दिर है। मन्दिरके बाहर और भीतर ग्रन्थअक्षरमें खुदा हुआ शिलालेख पाया जाता है। १६७३ ई०में फ्रायर साहब इस मन्दिर और शिलालेखको देख गये हैं।

तिरुवतूर-मन्द्राजके उत्तर अरुकाड़ (आर्कट) जिलेका एक शहर। यह आर्कट शहरसे ११ कोस दक्षिण-पूर्व चेयार नदीके उत्तरकूल पर अवस्थित है। पहले यह जैनियोंका एक प्रधान शहर था। यहांका देवमन्दिर पहले स्थानीय पौराणिक मताचारियोंके हाथ था। इसके सामने नदीके दूसरे पारमें पूर्णावत्तो नामक स्थानमें एक जैन मन्दिरका तलभाग अवशिष्ट है। कहा जाता है, कि उस मंदिरको तहस नहस कर उसके द्रव्यादिसे तिरुवत्तूरका मन्दिर निर्मित हुआ है। पूर्णावतीके मन्दिरकी जैन-प्रतिमा अभी पृथ्वी पर पड़ी हुई हैं। उसके पास ही एक नहर है; सुना जाता है कि उस नहरमें मंदिरके पीतलका किवाड़ और धनरत्न रखा हुआ है। मंदिरके ध्वंसके समय बहुतसे जैन फांसी पर अस्त्राघातसे तथा कोल्हूमें पेर कर मारे गये थे। मंदिरमें खुदे हुए चित्रसे इसका पूरा प्रमाण झलकता है। मंदिरकी एक खुदी हुई तसवीरमें एक ताड़का पेड़ है। वहाँके लोगोंका विश्वास है कि महादेवकी अर्द्धनारीश्वर मूर्त्तिके प्रतिमा-स्वरूप यह पेड़ खुदा हुआ है। इस तसबीरका लेख अत्यन्त विख्यात है। यह एक मण्डप पर अवस्थित है और इसकी ऊंचाई लगभग ८ फुटकी होगी। मंदिरकी दीवारमें बहुतसे अस्पष्ट उत्कीर्ण शिलालेख देखे जाते हैं।

तिरुवन्दिपुरम्—दक्षिण-आरुकाड़ (आर्कट) जिलेका एक शहर। यह कुड्डलूर शहरसे २½ कोस उत्तर-पश्चिममें पड़ता है। यहां एक प्राचीन विष्णुमन्दिर है, जिसके नाना स्थानों में भिन्न अक्षरोंमें खुदे हुए बहुतसे शिलालेख पाये जाते हैं। मन्दिरके भीतरकी दीवारमें भी एक शिलालिपि है। इसके पास ही तिरुमणिक्कुलि नामक ग्राम है, यहां वृहत् यथेष्ट कारुकार्य विशिष्ट एक शिवमन्दिर है। प्रवाद है कि यह मन्दिर १३वीं शताब्दीमें निर्माण किया गया है। इसमें भी बहुतसे शिलालेख हैं। पूर्वकी ओर प्रवेशद्वार पर १८ इञ्च चौड़ी और १५ गज लंबी एक लिपि है। द्वारके दोनों बगल दीवारोंमें बहुतसे शिलालेख खुदे हुए हैं।

तिरुवन्नमलय—मन्द्राज के दक्षिण आर्कट जिलेका उत्तर-पश्चिमीय तालुक। यह अक्षा० ११°५८´ से १२°३५´ उ० देशा० ७८°३८´से ७९°१७´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १००९ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २४४७०८५ है। बारामहलसे चेङ्गमगिरिपथकी राहमें यही सबसे पहला शहर पड़ता है, इसीसे बाद पर्वतके उपरिस्थित स्थानसमूहका व्यवसाय इस शहरमें चलता है। पर्वतके ऊपर स्कन्धावार है। १७५३ ई०से १७९१ ई०के मध्य इस पर दश बार धावा मारा गया था। १७६० ई०में यहां अंगरेजोंका एक स्कन्धावार था। १७६७ ई०में कर्णल स्मिथने हैदरअली और निजामके साथ युद्धके समय चेङ्गमगिरिपथ हो कर आते हुए इस स्थानमें उनके सहयोगियोंको एक एक करके परास्त किया; किन्तु १७९१ ई०में यह टीपूके हाथ लगा। टीपूके अधःपतनके बाद यह फिर अंगरेजोंके दखलमें आया।

तिरुवन्नमलय दक्षिण प्रदेशमें मन्द्राजके मध्य एक प्रधान तीर्थ है। यहां एक रेलवे स्टेशन भी है जो शहरसे ¼ मीलकी दूरी पर पड़ता है। स्टेशन अरुणाचल पहाड़के पूर्वकी ओर है। यह तीर्थ संस्कृत शास्त्रोंमें अरुणाचल नामसे प्रसिद्ध है। यहां महादेवकी पाञ्चभौतिक मूर्त्तिकी तेजोमूर्त्ति विराजित हैं। अरुणाचल गिरिशृङ्ग समुद्रपृष्ठसे २६६४ फुट और शहरसे २०११ फुट ऊंचा है।

महादेवकी तेजोमूर्त्तिके आविर्भावके विषयमें एक रोचक कहानी इस प्रकार है—किसी समय हर और पार्वती कैलासके पुष्पोद्यानमें भ्रमण कर रहे थे

पार्वतीने कौतुक करनेकी इच्छासे छिपके आ कर महादेवकी आँख मूंदी; महादेवकी आँख बंद हो जानेसे सम्पूर्ण विश्वसंसार अन्धकाराच्छन्न हो गया। यद्यपि यह देवलीला थोड़े ही समय तकके लिये थी, तो भी पृथ्वी पर अन्धकार बहुत काल तक रही। चन्द्रसूर्यका उदय बंद हो गया। प्रकाशके अभावसे त्रिभुवन हाहाकार करता हुआ शिवजीके निकट पहुंचा। शिवजी सारी बात सुन कर पार्वतीके ऊपर असन्तुष्ट हुए और उन्हें शाप देते हुए बोले, 'जब तुमसे पृथ्वीका अमङ्गल हुआ है, तब तुम्हें पृथ्वी पर जा तपस्या करके प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।' इस तरह शाप दिये जाने पर पार्वती गङ्गाके किनारे तपस्या करने लगीं। बहुत समय व्यतीत होने पर आकाशवाणी हुई, 'काञ्चीपुरमें जा कर तपस्या करो।' इस पर पार्वती काञ्चीपुरमें जाकर तपस्या करने लगीं। उस स्थान पर बहुत समय बीत चुकने पर पुनः दैववाणीके आदेशानुसार पार्वती अरुणाचल पर जा तपस्या करने लगी। इस समय पार्वतीने पञ्चाग्नि तप आरम्भ किया। कुछ कालके बाद महादेवजीने संतुष्ट हो कर पर्वत-शिखरके ऊपर ज्योतिर्मयरूपमें उन्हें दर्शन दिया। पार्वतीका प्रायश्चित्त समाप्त हो गया। हर-पार्वती उसी मूर्त्तिमें अरुणाचल पर ही रहने लगे। अरुणाचल पर अभी महादेव और महादेवीकी मूर्त्ति हैं। महादेव तिरुवन्नमलयेश्वर वा अरुणाचलेश्वरके नामसे और महादेवी अपीत-कुचाम्बल वा उन्नमाल नामसे अभिहित हैं। यहां विश्वेश्वर, सुब्रह्मण्य, चण्डिकेश्वर प्रभृति देवमूर्त्तियोंकी पृथक् पृथक् पूजा होती है। दाक्षिणात्यके विधानानुसार अरुणाचलेश्वरकी भी दो मूर्त्तियां हैं, एक स्थावरमूर्त्ति और दूसरी उत्सवमूर्त्ति। मूलमूर्त्ति पत्थरकी और उत्सव-मूर्त्ति धातुकी बनी हुई हैं। अरुणाचलेश्वर किस समयकी प्रतिमा हैं उसका कोई निश्चय नहीं है, किन्तु अनुमान किया जाता है यह चोलराजाओंके समयमें स्थापित हुई है। मन्दिर भुरभुरा (Granite) पत्थरका बना हुआ है।

मन्दिरके चारों ओर प्राङ्गण है और प्राङ्गणके चारों तरफ दुरारोह पत्थरकी दीवार। दक्षिण प्रदेशके युद्धादिके समय ये समस्त उच्च प्राचीर-वेष्टित देवमन्दिरादि एक प्रकार सुदृढ़ स्थान सदृश व्यवहृत होते थे। १७५३ ई०में मूर्त्तजा अलीखाँ और महाराष्ट्रीय सेनापति मुरारिरावने यह मन्दिर अवरोध किया था; किन्तु कर्णाटकके नवावद्वारा मन्दिरकी रक्षा की गई। १७५७ ई०में फ्रान्सीसियोंने यह स्थान अधिकार किया।

१८५७ ई०में तियागरके कृष्णरावने पुनः इस पर दखल किया। १७६० ई०में कप्तान टिफिनने कर्णाटकके नवावकी ओरसे इसका उद्धार किया। १७९१ ई०में यह टीपूके हाथ लगा। अन्तमें १७९२ ई०की टीपूके साथ सन्धि हो जाने पर यह अंगरेजोंके अधिकारमें आया।

मन्दिरके बाहरकी दीवार पर चार गोपुर हैं। मन्दिर सात प्रकोष्ठमें विभक्त है। सामनेका प्रकोष्ठ उत्सव-मण्डप कहलाता है। इसके पीछे शेष छः प्रकोष्ठ हैं। ये प्रकोष्ठ क्रमशः छोटे और अन्धकारमय हैं। प्रत्येक प्रकोष्ठके दरवाजे पर प्रकाश देनेकी अच्छी व्यवस्था की गई है। दिनके समय भी यहां रोशनी दी जाती है। अन्तिम प्रकोष्ठ सबसे छोटा और अन्धकारमय है। इस घरका नाम मूलस्थान है और यहां देवताकी स्थावरमूर्त्ति विराजित हैं। घरमें वायुवा प्रकाश आनेकी अच्छी व्यवस्था नहीं है। इस अन्धकारको दूर करनेके लिये हमेशा रोशनीकी जरूरत पड़ती है। मूलस्थानमें पूजकके सिवा दूसरेको जानेका अधिकार नहीं है। यात्री लोग मूर्त्ति देखनेके लिये दरवाजे पर खड़े रहते हैं और पूजक भीतर जाकर उनके प्रतिनिधि-स्वरूप अष्टोत्तरशत वा सहस्र नाम पाठ द्वारा अर्चना करते हैं। नारियल, केला, पान और सुपारी नैवेद्य दिया जाता है। पीछे पूजक कपूर जला कर वेद-पाठ करते हुये आरती उतारते है और उसी प्रकाशमें यात्री लोग देवता दर्शन करते हैं। कार्त्तिककी शुक्ल-तृतीयासे पूर्णिमा तक अरुणाचलेश्वरका वार्षिक उत्सव होता है, जिसे ब्रह्मोत्सव कहते हैं। उत्सवके अन्तिम दिनमें जनताकी अधिक जमाव होता है। इस उत्सवके उपलक्ष्यमें प्रायः ६।७ लाख मनुष्य एकत्र होते हैं। डेपुटि मजिष्ट्रेट शान्तिरक्षाके लिये इसमें पहुँचते हैं। पुलिस-इन्सपेक्टर स्वयं मन्दिर द्वार पर रखवाली करते हैं। मण्डपकी छतके एक बगलमें साहबोंके आसन देखे जाते हैं। छत

मनुष्योंसे भर जाता है। सन्ध्याके बाद ही अरुणाचलेश्वर और अपीतकुचाम्बल देवीकी उत्सवमूर्त्ति नाना मणिमुक्ताके अलङ्कारसे भूषित कर कंधे पर मण्डप स्थानमें लाई जाती हैं। मूलस्थानसे मन्त्रपूत कपूरका प्रकाश कपड़ेसे ढाक कर प्राङ्गणके मध्यस्थलमें लाया जाता है। उसी समय एक प्रकारकी आतशबाजी होती है और तब कपूरके प्रकाशका आवरण अलग किया जाता है। आतशबाजीके ऊपर जाने पर अरुणाचलका सर्वोच्चशृङ्ग प्रकाशमय हो जाता है। वहाँ एक कुण्ड है जिसे स्थलपुराणके मतसे भगवतीकी तपस्याका अग्नि-कुण्ड कहते हैं। इस कुण्डमें पहलेसे घी, नया कपड़ा और कपूर इत्यादि दिये जाते हैं और वहां एक मनुष्य रोशनी ले कर हमेशा खड़ा रहता है। मन्दिर-प्राङ्गणसे आतशबाजी ऊपर उठने पर ही उस कुण्डमें आग उत्पन्न हो जाती है और यह प्रकाश बहुत दूरसे देखनेमें आता है। यहांके बहुतसे लोग इस दिन उपवासी रहते और प्रकाशको देख जलग्रहण करते हैं। इस मन्दिरका खर्च निभानेके लिये वृटिश-सरकार प्रति वर्ष ८ हजार रुपये देती है। मन्दिरके अभिभावक 'धर्म-कर्त्ता' नामसे पुकारे जाते हैं। प्रवाद है, कि गौतम मुनिने यहां तपस्या की थी। वे चिरजीवी हैं, अभी भी हर एक रातको वे अरुणाचलेश्वरकी पूजा कर जाते हैं।

२०से ४० तक ब्राह्मणकुमार यहां वेद अध्ययन कर सकते हैं। नित्य प्रति जो नियमित भोग चढ़ाया जाता है, उसे अभ्यागत ब्राह्मण और पूजक लोग पाते हैं। दाक्षिणात्यके नियमानुसार इस मन्दिरमें भी देवनर्त्तकी हैं जिनकी संख्या लगभग ५० है।

यहां बहुतसे धर्मक्षेत्र हैं, जहां ब्राह्मण यात्री तीन दिन तक बिना खर्चके भोजन पाते हैं। शूद्र जातिके लिये पृथक् धर्मशाला भी है जहां वे केवल रह सकते हैं, किन्तु भोजन नहीं मिलता। रसोई करनेके लिये स्वतन्त्र घर हैं।

इस देशके नटकोटा शेठी प्रधान धनी हैं। उन्होंने अनेक स्थानके अनेक देवालय और यात्रियोंके सुविधाके लिये बहुतसे छत्र बनवा दिये हैं।

तिरुमुवत्तूर—दक्षिण-आर्काट जिलेके विल्वपुरम् शहरसे २ कोस पूर्वमें अवस्थित एक स्थान। यहाँ एक प्राचीन शिवमन्दिर है, जिसमें बहुतसे शिलालेख देखे जाते हैं।

तिरुवयार (तिरुवाड़ी)—मन्द्राजके अन्तर्गत तञ्जोर तालुक और जिलेका एक शहर। यह अक्षा० १०° ५३´ उ० और देशा० ७९° ६´ पू०में तञ्जोर शहरसे ६ मील उत्तर कावेरी नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ७८२१ है। तञ्जोरके प्रथम आक्रमणके समय शिवाजीने यहां स्कन्धावार स्थापित किया था। यहाँ पत्थरका एक प्राचीन शिवमन्दिर है। मंदिर देखनेमें सुंदर और कारुकार्य-विशिष्ट है। इसकी गिनती प्रधान तीर्थोंमें की गई है। उत्सवके समय हजारों यात्री एकत्रित होते हैं। उत्सवका नाम सप्तस्थान है। इस स्थानके देवताका नाम तिरुनय्यि वा त्रिनंदिकेश्वर है। एक तो उत्सव, दूसरे पञ्चनाथी नामकी पुष्करणीमें स्नान करनेके लिये यात्रियोंकी संख्या और भी बढ़ जाती है। यात्री बहुत दूर दूर देशोंसे आया करते हैं। दशहराके दिन गङ्गास्नान करनेमें जो फल लिखा है, वही फल पञ्चनाथीमें भी स्नान करनेका है। शिवमंदिरके प्राङ्गणमें यह पुण्य सरसी अवस्थित है। कहते हैं न्यायमिश्र नामक किसी ऋषिने यहां स्वयम्भू शिवलिङ्गकी तपस्या की थी। तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर शिवजीने उनसे कहा, 'लिङ्गमूर्त्तिके समीप उत्तरकी ओर तीन गोष्पद चिह्न हैं। उन्हींको खोदनेसे आपकी मनस्कामना पूरी होगी।' तदनुसार ऋषिने जब उन्हें खोदा, तो पहलेमें ईंटोंका, दूसरेमें चूना-सुरखीका और तीसरेमें सोनेका ढेर मिला। बाद ऋषिने उसी सामानोंसे स्वयम्भू लिङ्गके ऊपर वर्तमान मन्दिर बनवाया। सप्तस्थानके विषयमें प्रवाद है, कि त्रिशूली नामके कोई ब्राह्मण थे। शैशवकालमें जब वे जङ्गलमें खेल रहे थे, एक ऋषिकी दृष्टि उन पर पड़ गई। कौतुक करनेके लिये बालक त्रिशूलीने ऋषिके भिक्षापात्रमें अर्घ्यदानके बहाने एक लोष्ट्र डाल दिया। ऋषि बिना कुछ कहे चल दिये। वयःप्राप्त होने पर त्रिशूली इस सामान्य घटनाको भूल गये। क्रमशः विवाहादि कर संसारधर्ममें प्रवृत्त हुए। बहुत दिन बीत गये, पर उनके एक भी सन्तान न हुई। अतः वे बहुत दुःखित हो नाना धर्मानुष्ठान और व्रतनियमादि करने लगे। एक

दिन सपनेमें उस ऋषिने दर्शन दिया और उनके शैशव चरितके कुकर्मोंके लिये मृदु तिरस्कार करते हुए कहा, उसी कर्मदोषसे आपने अब तक पुत्रसुख दर्शन नहीं किया है।' बाद त्रिशूलीने इसके लिये प्रायश्चित्त करनेको यों विचारा—"मोहमदमें पड़ कर शैशवकालमें ऋषिको खानेके लिए मैंने जो पत्थर भिक्षामें दिया था, अभी मुझे वही भोजन करना उचित है।" ऐसा स्थिर कर वे अन्यान्य खाद्य त्याग कर छोटे छोटे पत्थरके टुकड़े खाने लगे। उनका नाम शिलातरण (शिलाभक्षक) पड़ा। प्रायश्चित्तसे सन्तुष्ट हो कर भगवान्‌ने अपना दर्शन दिया और कहा, 'जमीन खोदने पर एक बक्स और उसमें एक शिशु मिलेगा।' वैसा भी हुआ। त्रिशूलीको जो बच्चा मिला, उसका मनुष्य-सा शरीर और गौसा मुख था। शिशुको पा कर त्रिशूलीने उसे महादेवके नाम पर अर्पण कर दिया। महादेवने उसे अपने अनुचरोंका अधिनायक बनाया। इसीका नाम था तिरुनन्दि वा त्रि-नन्दी। जो शिवजीका वाहन कह कर प्रसिद्ध है। छ ऋषिकी बहनके साथ त्रिनन्दीका विवाह हुआ था। त्रिनन्दीकी प्रमथाधिपत्व-दानके समय जब अभिषेक होता है, तब उनके मस्तक पर शिवके हस्तस्थ कमण्डलुका जल, शिवके मस्तकस्थ गङ्गाजल, शिववाहन वृषभके मुखका जल और चन्द्रमासे अमृतधारा गिरती है, त्रिनन्दीके मस्तक परसे यह चार प्रकारका जल गिर कर नदीकी धाराके साथ एक गह्वरमें जमा हो जाता है। इसी गह्वरमें वर्तमान पञ्चनाली सरोवर है। वर्त्तमान शियाली शहरके समीप प्राचीनकालमें इन्द्रका एक प्रिय कानन था। एक बार वर्षाके नहीं होनेसे यह बिलकुल सूख गया था। वरुणके अधिकारमें जलराशि रहनेके कारण इन्द्र इसका कुछ भी प्रतीकार कर न सके। बाद नारदने आ कर उनसे कहा, 'पथियम् नामक पर्वतशिखर पर अगस्त्य ऋषिने कमण्डलुमें गङ्गाजल रख छोड़ा है। यदि आप पिल्लिहर नामक देवताकी सहायतासे उस जलको चुरा लावें तो आपकी इच्छा पूरी हो, इन्द्रने वैसा ही किया। पिल्लिहर गो-मूर्त्ति धारण कर कमण्डलुका जल पीने गये। अगस्त्यने सामान्य गो जान कर उसे हटा दिया। ऐसा करनेमें कमण्डलु उलट गया और जल नदीके रूपमें बह चला। यही नदी पूर्वोक्त अभिषेक-जलके साथ मिल कर पहले पञ्चनाशोक्ष्दमें गिरी है, पीछे इसीके जलसे कावेरी नदीकी उत्पत्ति हुई है।

त्रिनन्दी उत्सवके समय वाहकस्कन्ध पर सात स्वतन्त्र स्थानोंमें लाये जाते हैं। कहते हैं कि इन सात स्थानोंमें सात ऋषि गुप्तभावसे तपस्या करते हैं। उन्हींको दर्शन देनेके लिये ही ऐसा किया जाता है। प्राचीनकालमें सूर्यवंशीय महाराज सुरथ इस उत्सवमें बहुत रुपये खर्च करते थे। तञ्जोर-तालुक बोर्डके निरीक्षणमें यहां एक संस्कृत हाईस्कूल है। इसके सिवा एक वैदिकस्कूल और एक अंगरेजी हाई स्कूल भी है।

तिरुवरङ्ग—दक्षिण-आर्काट जिलेमें कल्लकुचि शहरसे १० कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक स्थान। यहां एक प्राचीन विष्णुमन्दिरमें बहुतसी शिलालिपियां पाई जाती हैं।

तिरुवरम्बुर—त्रिचिरापल्ली जिलेमें तञ्जोरके रास्ते पर अवस्थित एक स्थान। यह त्रिशिरा पल्ली शहरसे ३ कोस पूर्व और उत्तरमें पड़ता है। यहां एक रेलवे स्टेशन है। इसके पास ही एक ऊंचे पहाड़के ऊपर एक सुन्दर शिवमन्दिर है। दूरसे इस मन्दिरकी शोभा अपूर्व दीख पड़ती है। इसकी दीवारमें बहुतसे शिलालेख मिलते हैं। इस स्थानका दूसरा नाम एरुम्बेश्वर है।

तिरुवल—त्रिवाङ्कुड़ राज्यका एक स्थान जो कुईलन् शहरसे १७ कोस उत्तरमें अवस्थित है। यहां एक अति प्राचीन मन्दिर है। त्रिवन्द्रम्‌के प्रसिद्ध मन्दिरके बाद ही इस स्थानके मन्दिरका उल्लेख किया जाता है।

तिरुवलङ्गुड़—तञ्जोर जिलेके सियाली शहरसे २ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित एक ग्राम। यहां एक प्राचीन शिव-मन्दिर है, जिसमें बहुतसे शिलालेख खुदे हुए हैं और यहांके कन्तमऋषिके मन्दिरमें एक ताम्रशासन है।

तिरुवलञ्जुरि—तञ्जोर जिलेके कुम्भकोणम् तालुकका एक स्थान। यह कुम्भकोणम् शहरसे डेढ़ कोस दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर है जिसमें बहुतसे उत्कीर्ण शिलालेख पाये जाते हैं। यह मन्दिर अत्यन्त वृहत् और सुन्दर गोपुर-विशिष्ट है।

तिरुवल्ल—उत्तर-आर्काट जिलेके वेल्लुर शहरसे ५ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित एक ग्राम और रेलवे स्टेशन। यहांके विश्वनाथेश्वर स्वामीका मन्दिर अत्यन्त बड़ा है। उसकी दीवार पर बहुतसे अस्पष्ट शिलालेख खुदे हुए हैं।

तिरुवल्लूवर—एक प्रसिद्ध तामिल कवि और दार्शनिक त्रिवल्लूवर देखो।

तिरुवाङ्कोड़—मन्द्राज प्रदेशके त्रिवाङ्कुड़ राज्यका एक ग्राम। यह अक्षा० ८° १५' उ० और देशा० ७७° १८' पू० त्रिवन्द्रम् शहरसे २४ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या १८३८ है। यह त्रिवाङ्कुड़ राज्यकी प्राचीन राजधानी है। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर हैं जिसमें बहुतसे शिलालेख भी खुदे हुए हैं। त्रिवांकुड देखो।

तिरुवालूर—१ मन्द्राज प्रदेशके तञ्जोर जिलेके अन्तर्गत नागपट्टन तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १०° ४६' उ० और देशा० ७९° ३८' पू०में तञ्जोर-नागपट्टन रेलपथ पर अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः १५४३६ हैं। यहां डिपुटी तहसीलदार और जिलेके मुनसिफ रहते हैं। यहां चावलकी कल, हाई-स्कूल तथा बहुतसे प्राचीन देव-मन्दिर है।

२ चेङ्गलपट्टु जिलेमें और एक विष्णुधाम है, वह भी तिरुवल्लूर नामसे प्रसिद्ध है। यह मन्द्राजसे १३ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या प्रायः पाँच हजारसे अधिक नहीं होगी। यहां एक रेल-स्टेशन भी है। यहांकी विष्णुमूर्त्ति देखनेके लिये दूर दूरके मनुष्य आते हैं। यहाँ हृत्तापनाशिनी नामका एक तीर्थ है। प्रवाद है, कि शालिहोत्र ऋषिने बहुत समय तक इस हृत्तापनाशिनीके किनारे कठोर तपस्या की थी। तपस्यासे सन्तुष्ट होकर विष्णुने उन्हें दर्शन दिया। ऋषिने वर मांगा कि इस सरोवरमें स्नान करनेसे महापापीका भी पाप दूर हो। विष्णु उनके मस्तक पर हाथ रख 'ऐसा ही होगा' कह कर अन्तर्द्धान हो गये। तभीसे यह तीर्थ हृत्तापनाशिनी नामसे प्रसिद्ध है। यहांकी अनन्तशायी चतुर्भुज विष्णुमूर्त्तिका एक हाथ शालिहोत्र ऋषिके मस्तक पर रखा हुआ दीख पड़ता है। एक मन्दिरमें कनकवल्ली देवी विराजमान है। कहा जाता है कि यह मूर्त्ति स्वर्णसीताके अनुरूप है। यहां भी कई एक शिलालेख देखे जाते हैं।

तिरूर—मन्द्राजके मलवार जिलेके अन्तर्गत पोनाई तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा० १०° ५३' उ० और देशा० ७५° ५६' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ४४४४ है। यह एक रेलवेष्टेशन है।

तिरूरङ्गाड़ी—मन्द्राजके मलवार जिलेके अन्तर्गत अर्णाड़ तालुकका एक शहर। यह अक्षा० ११° २' उ० और देशा० ७५° ५६' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ५४०० हैं। वहां डिपटी-तहसीलदार और सहकारी मजिष्ट्रेटकी अदालत तथा प्रसिद्ध माविल्ल फकीर ताराभल टङ्गलकी एक समाधि है। मछली, सुपारी और नारियल यहाँका वाणिज्यद्रव्य है।

तिरिंदा (हिं० पु०) समुद्रमें तैरता हुआ पीपा। समुद्रका पानी जहां छिछला रहता है वहीं पर संकेतके लिये यह रखा जाता। २ मछली मारनेकी वंसीमें बंधी हुई पाच छः अंगुलकी लकड़ी। यह लकड़ी पानीमें तैरती रहती है और इसके डुबनेसे मछलीके फंसनेका पता लगता है।

तिरै (हिं० पु०) फीलवानोंका एक शब्द। जिसे वे नहाते हुए हाथियोंको लिटानेसे प्रयोग करते हैं।

तिरोअह्न्य (वै० त्रि०) अहनि भवं अह्न्यं भवेच्छन्दसीतियत्। तिरोहितोऽह्न्यः। एक दिनसे अधिकका।

तिरोगत (सं० त्रि०) अदृश्य, गायब।

तिरोजनं (सं० अव्य०) मनुष्यसे पृथक्।

तिरोध (सं० स्त्री०) तिरस्-धा-क्विप्। अन्तर्धान, अदर्शन।

तिरोधातव्य (सं० त्रि०) तिरस-धा-तव्य। आच्छादन योग्य, ढाकने लायक।

तिरोधान (सं० क्ली०) तिरस् धा-भावे ल्युट्। अन्तर्धान, अदर्शन, गोपन।

तिरोधायक (सं० पु०) गुप्त करनेवाला, छिपानेवाला। आड़ करनेवाला।

तिरोभवित्व (सं० त्रि०) तिरस् भू-तृच्। १ तिरोभाव, अन्तर्द्धान। २ गुप्तभाव, गोपन, छिपाव।

तिरोभाव (सं० पु०) तिरस् भू-भावे घञ्। १ अन्तर्धान,

अदर्शन, लोप। २ आच्छादन। ३ गुप्तभाव, छिपाव।

तिरोभूत (सं० त्रि०) तिरस्-भू-क्त। अन्तर्हित, गुप्त, छिपा हुआ।

तिरोरा—मध्य-प्रदेशके भण्डारा जिलेकी उत्तरीय तहसील। यह अक्षा० २१° १०' और २१° ४७' उ० तथा देशा० ७८° ४३' और ८०° ४०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १३२८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २८१५२४ है। इस तहसीलमें ५७१ ग्राम और ११ जमींदारियां हैं। जमींदारी-ष्टेटका रकबा ७६९ वर्गमील है, जिसमें १६३ वर्गमील जंगल है।

तिरोवर्ष (सं० त्रि०) तिरः तिरोहिताः वर्षाः यत्र। वृष्टिसे रक्षित, जिसका बरसासे बचाव हुआ हो।

तिरोहित (सं० त्रि०) तिरस्-धा-क्त। १ अन्तर्हित, अदृष्ट, छिपा हुआ। २ आच्छादित, ढका हुआ।

तिरोऽह्न्य—तिरोअह्न्य देखो।

तिरौदा (हिं० पु०) तिरेंदा देखो।

तिरौर—पञ्जाबके कर्नाल तहसील और जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २८° ४८' उ० और देशा० ७६° ५८' पू०के मध्य आनसेर से १४ मील दक्षिणमें अवस्थित है। ११९१ ई०में अजमेरके चौहान राजा पृथ्वीराजने महमद घोरको इसी स्थान पर परास्त किया था और फिर ११९२ ई०में आप भी यहीं पर परास्त हुए थे। इसका प्राचीन नाम अज़माबाद है, क्योंकि यहां औरङ्गज़ेबके पुत्र आज़मशाहका जन्म हुआ था। १७३९ ई०में नादिर शाहने इसे जीता था। पहले यह समृद्धशाली शहर था, आज कल इसकी अवस्था शोचनीय है।

तिर्य (सं० त्रि०) तिल-निर्मित, जो तिलका बना हो।

तिर्यक् (सं० त्रि०) वक्र, टेढा, आड़ा, तिरछा। मनुष्यको छोड़ पृथिवीके समस्त जीव तिर्यक् कहलाते हैं, क्योंकि खड़े होनेमें उनके शरीरका विस्तार ऊपरकी ओर नहीं रहता, आड़ा हो जाता है। इनका खाया हुआ अन्न पेटमें सीधे ऊपरसे नीचकी ओर नहीं जा कर आड़ा जाता है (पु०)। २ चञ्चल धातु, पारा।

तिर्यक्छिन्न (सं० त्रि०) तिर्यक वक्रभावेन छिन्नं वक्र भावसे छिन्न, जो तिरछा गिरा हो।

तिर्यक्ता (सं० स्त्री० तिर्यच्-भावे तल्। वक्रत्व, तिरछापन, आड़ापन।

तिर्यक्त्व (सं० क्ली०) तिर्यच् भावे त्व। १ वक्रत्व, तिरछापन।

तिर्यक्गति (सं० स्त्री०) तिरश्ची गतिः कर्मधा०। वक्रगति तिरछी चाल।

तिर्यक्पाती (सं० त्रि०) तिर्यक् पतति पत-णिनि। १ वक्र प्रसारित आड़ा फैलाया हुआ। २ कुटिलवृत्तियुक्त, जो कुटिल वृत्तिका हो।

तिर्यक्प्रमाण (सं० क्ली०) तिर्यक् प्रमाणः कर्मधा०। विस्तार-प्रमाण, चौड़ाई।

तिर्यक्प्रेक्षण (सं० त्रि०) तिर्यक् प्रेक्षणं यस्य, बहुव्री०। वक्रदृष्टिकारी, तिरछी नजरसे देखनेवाला।

तिर्यक्प्रेक्षी (सं० त्रि०) तिर्यक् वक्रं यथा तथा प्रेक्षते प्र ईक्ष णिनि। वक्रदृष्टिकारी, जो तिरछी नजरसे देखता हो।

तिर्यक्भेद (सं० पु०) दो आधार पर रक्खी हुई वस्तुका बीचमें दबाव पड़नेसे टूटना।

तिर्यक्लोक (सं० पु०) जैनमतानुसार वह लोक जहां मनुष्य, देव और नारकियोंका अस्तित्व न हो। यह लोकस्थित नाड़ीके बाहर है। 'जैनधर्म' शब्दमें लोकरचना' देखो।

तिर्यक्व्यतिक्रम (सं० पु०) जैनमतानुसार दिग्व्रतका एक अतीचार। तिर्यगतिक्रम देखो।

तिर्यक्स्रोतस् (सं० पु०) तिर्यक् वक्रं स्रोतः आहारसञ्चारो यस्य, बहुव्री०। पशु पक्षी प्रभृति। भागवतमें इनके विषयमें इस प्रकार लिखा है—तिर्यक्स्रोताओं अर्थात् पशुपक्षियोंकी सृष्टि अष्टम है। ये २८ प्रकारके माने गये हैं। ये ज्ञानशून्य तथा तमोगुणविशिष्ट हैं, इसीसे आहारादिमात्र-परायण हैं। ये केवल घ्राणेन्द्रिय द्वारा ही अपने अर्थकी सिद्धि करते हैं, इनके अन्तःकरणमें किसी प्रकारका ज्ञान नहीं बतलाया गया है। तिर्यक्स्रोताओंके नाम—(दो खुरवाले) गाय, बकरी, भैंस, कृष्णसारमृग, सूअर, नीलगाय, रुरु नामक मृग, भेड़ और ऊंट; (एक खुरवाले-) गदहा, घोड़ा, खच्चर, गौर मृग, शरभ, सुरागाय; (पञ्चनख) कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिल्ली, खरहा, सिंह, बंदर, हाथी, कछुवा,

मेढक; (जलचर—) मकरादि जन्तु; (नभचर—) गीध, बगला, मोर, हंस, कौवा, पेचक इत्यादि।

तिर्यग (सं० पु०) तिर्यग ग, कुटिलगामी पशुपक्ष्यादि, वे पशुपक्षी जिनकी चाल टेढ़ी हो।

तिर्यगतिक्रम (सं० पु०) जैनमतानुसार दिग्व्रतके पांच अतीचारोंमेंसे तीसरा अतीचार। पर्वतादिकी गुफाओं तथा सुरंग आदिमें टेढ़ा जाना, जिससे व्रतमें दोष लगे, तिर्यक्-अतिक्रम कहलाता है। (तत्त्वार्थसूत्र ७।३०)

तिर्यगन्तर (सं० क्ली०) दो द्रव्योंके मध्यस्थानका परिमाण।

तिर्यगयन (सं० क्ली०) तिरश्चां अयनं, ६ तत्। १ पशुपक्षियोंकी गति तिर्यक् अयनं कर्मधा०। २ वक्रगति, टेढ़ी चाल।

तिर्यगागत (सं० त्रि०) तिर्यक् वक्रभावेन आगतः। जो वक्रभावसे आता हो।

तिर्यगीक्ष (सं० त्रि०) तिर्यक् ईक्ष-अच्। वक्रभावसे देखना, जो तिरछी नजरसे देखता हो।

तिर्यगीश (सं० पु०) कृष्णका एक नाम।

तिर्यगेकादश—जैनमतानुसार ग्यारह तिर्यक् प्रकृतियोंका नाम। तिर्यञ्चगति आदि २, एकेन्द्रियादि जाति ४, आताप उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण—ये ११ तिर्यक प्रकृतियां हैं। इनका उदय तिर्यञ्चगतिमें ही होता है; इसीसे 'तिर्यगेकादश' ऐसा पड़ा है।
(गोम्मटसार कर्मकांड ४१५) देखो।

तिर्यग्ग (सं० त्रि०) तिर्यक् गच्छति तिर्यक्-गम-ड। कुटिलगामी, जिसकी गति टेढ़ी हो।

तिर्यग्गत (सं० त्रि०) तिर्यक् वक्रभावेन गतः। वक्रगामी।

तिर्यग्गति (सं० स्त्री०) तिरश्ची गतिः, कर्मधा०। १ वक्रगति, तिरछी या टेढ़ी चाल। कर्मवश पशु-योनि-प्राप्त। तिर्यञ्चगति देखो। (त्रि०) २ तिर्यक् गति यस्य। ३ वक्रगमन शील, जिसकी चाल टेढ़ी हो।

तिर्यग्गम (सं० क्ली०) तिर्यक् गमं गमनं। वक्रगमन, टेढ़ी चाल।

तिर्यग्गमन (सं० क्ली०) तिर्यक् गम्-ल्युट्। १ वक्र गमन, टेढ़ी चाल (त्रि०) तिर्यक् गमनं यस्य। २ वक्र। ३ गतिशील वायु।

तिर्यग्ज (सं० त्रि०) तिर्यक् जन-ड। १ जो पक्षी इत्यादिसे उत्पन्न हो। (पु०) पक्षी इत्यादिकी जाति।

तिर्यग्जन (सं० पु०) तिर्यक् जनः कर्मधा०। कुटिल, कपटी मनुष्य आदमी।

तिर्यग्जाति (सं० स्त्री०) तिरश्चां जाति ६-तत्। पक्षि-जाति।

तिर्यग्दिश् (सं० स्त्री०) तिर्यक् दिश्-क्विप्। उत्तर-दिशा।

तिर्यग्धार (सं० पु०) तिर्यक् धृ-घञ्। वक्रधार, जिसका किनारा तेज हो।

तिर्यग्नासा (सं० स्त्री०) तिर्यक् नासा यस्य, बहुव्री०। वह जिसकी नाक तिरछी या टेढ़ी हो।

तिर्यग्भागव्यतिक्रम (सं० पु०) सागारधर्मामृत नामक जैन-ग्रन्थमें वर्णित अतीचार-भेद।

तिर्यग्यवोदर (सं० क्ली०) जौका दाना (Barley corn)

तिर्यग्यान (सं० क्ली०) तिर्यक् यानं यस्य, बहुव्री०। कुलीर, केकड़ा।

तिर्यग्योन (सं० पु०) शुकसारिकादि पक्षी-जाति, तोता और मैना पक्षीकी जाति।

तिर्यग्योनि (सं० स्त्री०) पशुपक्ष्यादि तिर्यक् जाति। गृहस्थ यदि ब्रह्मचारियोंका वेश धारण कर भिक्षादि द्वारा जीविका निर्वाह करें, तो वे तिर्यग्योनिको प्राप्त होते हैं। पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप और स्थावर इन्हीं पांच भागोंमें तिर्यक् योनि विभक्त है।

तिर्यग्योन्यन्वय (सं० पु०) तिर्यक् योनीनां अन्वयः ६-तत्। पशुपक्ष्यादि जाति।

तिर्यग्विद्ध (सं० त्रि०) तिर्यक् भावेन विद्धः। सुश्रुतोक्त एक प्रकारका शिरावेध। तिर्यक् (वक्र)-भावसे शस्त्रपात होनेसे यदि समस्त अङ्ग कट जाँय, केवल थोड़ा ही बच रहे तो उसे तिर्यक् विद्ध कहते हैं। यह तिर्यग्वेध अत्यन्त दूषणीय है। (सुश्रुत चिकि० ८अ०) २ जो तिर्यक्-भावसे विद्ध किया गया हो।

तिर्यङ्नास (सं० पु०) वह जिसकी नाक टेढ़ी हो।

तिर्यच् (सं० पु०) तिरो अञ्चति तिरस् अञ्च-क्विप्, तिरसः तिरि आदेशः आञ्चेर्न लोपश्च। विहङ्ग प्रभृति, पक्षी इत्यादि। पाप करने पर मनुष्य पक्षी-योनिमें जन्म लेता

है। (भाव० १३।११।१२५) (त्रि०) २ वक्रगामी, जिसकी गति टेढ़ी हो।

तिर्यञ्च (सं० पु०) जैनमतानुसार मनुष्य, देव और नारकियोंके सिवा जगत्‌में जितने भी जीव हैं, वे सब तिर्यञ्च हैं। तिर्यञ्च जीवके दो भेद हैं—त्रस और स्थावर।

जैनधर्म शब्दमें जीव-तत्त्व प्रकरण देखो।

तिर्यञ्चानुपूर्वी (सं० स्त्री०) जैनशास्त्रानुसार जीवकी एक गति। इसमें उसे तिर्यग्योनिमें जाते हुए कुछ काल तक रहना पड़ता है।

तिर्यञ्ची (सं० स्त्री०) तिर्यच् स्त्रियां ङीप्। तिरश्ची, पशुपक्षियोंकी स्त्री मादा पशु वा पक्षी।

तिल (सं० पु०) तिलति स्निह्यति तैलेन पर्णो भवति तिलक। स्वनामख्यात शस्यविशेष (Sesamum Indicum)। इसके पर्याय—होमधान्य, पवित्र, पितृतर्पण, पापघ्न, पुतधान्य, स्नेहफल और फलपुर।

तिलकी गिनती 'पञ्चशस्य'में की गई है। इसका व्यवहार संस्कृतमें प्राचीन है, यहां तक कि जब और किसी बीजसे तैल नहीं निकाला गया था, तब तिलसे निकाला गया। इस कारण उसका नाम ही "तैल" (तिलसे निकाला हुआ) पड़ गया। पर आज कल अन्यान्य तेलके बीजोंसे (सरसों, पोस्त, बादाम आदि) जो निर्यास निकलता है, वह भी "तैल" नामसे ही प्रसिद्ध हो गया है। अभी 'तेल' कहनेसे तिलका तेल न समझ कर सरसोंका तेल ही समझा जाता है।

तिल ग्रीष्ममण्डलका शस्य है। पाश्चात्य उद्भिद्शास्त्रवेत्ताओंका अनुमान है, कि तिलका आदि स्थान अफ्रीका महाद्वीप है। आज तक केवल १२ जातिके तिल पाये गये हैं। अफ्रीकामें प्रायः बारह प्रकारके तिलोंमेंसे आठ प्रकारके तिल जङ्गली उपजते हैं। तेलहन बीजकी खेती अफ्रीकामें भी बहुत पहलेसे प्रचलित है। ग्रीक, लाटिन और अरबीय प्राचीन ग्रन्थकारोंके ग्रन्थोंमें सिसेम वा सिसेमम शब्द (अरबीय सिम्सिम्) पाया जाता है। थिउफ्रेष्टस और दिउसकोरिदिस्ने लिखा है, कि 'मिस्रमें सिसेम नामक तेलहन बीजकी खेती होती है।" प्लीनी कुछ और ही लिख गये हैं—कि तिल भारतवर्षसे इस देशमें लाया गया है। अरबीय "सेमसेम" वा "सिमसम" शब्दसे ही ग्रीक 'सिसेम' शब्द निकला है।

पाश्चात्य पण्डित लोग जो कुछ कहें, पर तिलका व्यवहार भारतवर्षमें बहुत पहलेसे चला आ रहा है। यूरोप जब अफ्रीकाका विवरण बिलकुल नहीं जानता था, अफ्रीकाकी जब अरबीय सभ्यता विशुद्ध नहीं हुई थी, तभीसे भारतमें तिलका व्यवहार प्रचलित है। पृथ्वीके प्राचीन ग्रन्थ वेदमें इसका उल्लेख है (अथर्ववेद २।८।३, ६।१।४०।१, शुक्ल यजुर्वेद १८।१२ और शतपथब्राह्मणमें ८।१।१।३)। इसके सिवा हिन्दूके श्राद्ध और तर्पणादिमें बहुत प्राचीन कालसे तिलका व्यवहार चला आ रहा है। एतद्भिन्न भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंकी विभिन्न भाषाओंमें इस शस्यके जितने भी नाम प्रचलित हैं, उन सभीमें तिल यह नाम एक प्रकार अविकृत भावसे ले लिया गया है। किसी दूसरे शस्यके नामोंकी इस प्रकार समता भारतवर्षमें नहीं है। जिङ्गलि, जिञ्जलि आदि चलित नाम यद्यपि अरबीय 'जुल्जुलान्' शब्दका रूपान्तर है, तो भी यही आदिम नाम हैं, ऐसा नहीं कह सकते। भारतीय आयुर्वेद शास्त्र सबसे प्राचीन है। उसमें भी तिलके जातिभेदसे गुणभेद आदि बतलाये गये हैं। ग्रीष्ममण्डलका शस्य जान कर मध्यभारतके किसी स्थानमें जङ्गली तिल यद्यपि नहीं भी मिलता है, तो भी हिमालय, अफगानिस्तान, फारस, अरब, मिस्र आदि देशोंमें जो इसकी खेती होती है, उससे अनुमान किया जाता है कि यह भारतका आदि शस्य न भी हो, पर यह आर्यों द्वारा इस देशमें पहले पहल लाया गया था, इसमें सन्देह नहीं। इसका आर्य-नाम तिल और ईरानी नाम 'सेमसेम' देख कर अनुमान किया जाता है कि बहुत पहले तिल एक ऐसे स्थानमें उपजता था जहांसे इसकी खेती पूर्व और पश्चिमकी ओर फैलते फैलते बहुत दूर तक फैल गई है। अंगरेज लोग इसीके आधार पर कहते हैं कि इउफ्रेटीश नदीके किनारेसे ले कर उत्तर-भारत तक मध्यएशियाके किसी स्थानमें इसका आदि वास था। उसी स्थानसे आर्य लोग इसे भारतवर्षमें, पीछे भारतीय द्वीपपुञ्जमें लाये। भारतमें प्रचार होनेके पहले तिल अरब वा यूरोपमें नहीं भेजा जाता था, यह संस्कृतशास्त्रके प्रमाणसे पता चलता है। फिलहाल गवर्मेण्टकी तरफसे भारतीय पण्य द्रव्योंका विवरण संग्रह करनेके लिए

जो कर्मचारी नियुक्त हुए हैं, उनके अनुसन्धानसे प्रकाशित हुआ है कि पारसनाथ पहाड़में १५०० फुटसे लेकर ३५०० फुटकी ऊंचाई पर तथा हिमालयके उत्तर-दक्षिणांशमें इस जातिका शस्य जङ्गलीरूपमें पाया गया है। जङ्गली और खेती तिलमें बहुत फर्क पड़ता है। खेती तिलका फूल सफेद और जङ्गलीका काला होता है। पत्ते डंठल और मूलमें भी अनेक प्रभेद देखनेमें आते हैं।

प्लिनि और पेरिप्लनके ग्रन्थोंसे जाना जाता है, कि तिलका तेल गुजरात और सिन्धदेशसे लोहितसागर होता हुआ यूरोपको जाता था।

आइन-इ-अकबरीमें श्वेत तिल और कृष्ण तिलका उल्लेख है। यह आशु वा आउस अनाजोंमें गिना गया है। आगरा, इलाहाबाद, अयोध्या, दिल्ली, लाहोर, मुलतान, मालवा आदि सूबोंमें इसकी खेती होती थी।

थोड़े ही दिनोंसे इसका कारोबार बहुत बढ़ गया है, विदेशोंको भी यह भेजा जा रहा है।

खेती—भारतवर्षके प्रायः गरम देशोंमें इसकी खेती होती है। ग्रीष्ममण्डलस्थ प्रदेशमें यह शीतकालका शस्य, दूसरी जगह शारद-शस्य और शीत प्रदेशमें ग्रीष्मकालका शस्य है। पञ्जाब प्रदेशमें वर्षाकालमें इसकी खेती होती है। मध्यभारतमें और मन्द्राजमें वसन्त तथा शरत्कालमें इसकी फसल दो बार उपजायी जाती है। मध्यभारत और उत्तर-भारतकी बालुकामय भूमिमें इसकी जैसी वृद्धि और पुष्टि देखी जाती है, ब्रह्म, आसाम और बङ्गालकी सजल भूमिमें वैसी नहीं देखी जाती। तिल साधारणतः चार श्रेणियोंमें विभक्त है। लेकिन यह नहीं कह सकते कि, ये चार श्रेणियां जातिके अनुसार हैं अथवा खेतीके अवस्थानुसार। वर्ण देख कर यदि इसकी श्रेणी कायम की गई हो, तो भी इसकी संख्या चार ही है; श्वेत, कृष्ण, रक्त और धूसर। भारतवर्षमें कहीं भी इसका पौधा १८ इञ्चसे अधिक ऊँचा नहीं देखा गया है; कहीं कहीं तो इसकी ऊँचाई केवल तीन ही चार फुट है। इसकी पत्तियां आठ-दश अंगुल तक लंबा और तीन-चार अंगुल चौड़ी होती हैं। ये नीचेकी ओर तो ठीक आमने सामने मिली हुई लगती हैं, पर थोड़ा ऊपर चल कर कुछ अन्तर पर होती हैं। पत्तियोंके किनारे सीधे नहीं होते, टेढ़े-मेढ़े होते हैं। फूल गिलासके आकारका होता और ऊपर चार दलोंमें विभक्त रहता है। फूल सफेद रंगका होता है, केवल मुंह पर भीतरकी ओर बैंगनी धब्बे दिखाई देते हैं। यह सब देख कर मालूम पड़ता है, कि तिल और धानकी खेती प्रायः एक ही समयसे आरम्भ हुई है। धान्य देखो। किसी किसी तिलको पकनेमें तीन मास और किसीको ८।१० मास लगते हैं। इसके प्राचीन विषयका पता लगानेसे ऐसा विश्वास होता है, कि जितने प्रकारके तेलहन बीज हैं, उनमेंसे तिल ही सबसे पहले मनुष्योंके व्यवहारमें आया और इसीका तेल संसारमें प्रथम तैल हुआ।

पूर्व-भारतमें तिलका पौधा स्वतन्त्ररूपसे जनमता है। सफेद तिलकी पत्तियां काले तिलकी पत्तियोंसे चौड़ी होती हैं। फूलका रंग मटमैला और पत्तोंका गाढ़ा, उजला, सब्ज होता है। सफेद तिलका स्वाद मीठा, दाना मोटा और बड़ा होता है।

भारतवर्ष भरमें तिलकी खेती कहां और किस प्रकार होती है, वह नीचे दिया जाता है—

ढाका—लक्ष्मी नदीके किनारे इसकी खेती खूब होती है। यह धानके साथ ही मिला कर बोया जाता है। खेत तैयार होनेके समय पहले वर्षके धानकी जड़ यदि खेतमें रह गई हो, तो उसे जला देते हैं। बाद हल चलाते हैं। जमीन यदि अधिक सूख गई हो, तो हलके साथ साथ ही चौकी देनी चाहिये और यदि सरस हो, तो चौकी देनेकी जरूरत नहीं पड़ती। पहली बार खेत जोते जानेके पन्द्रह दिन बाद फिर एक बार तिरछे जोतते हैं। इसी प्रकार तीन चार बार जोत कर प्रति बीघेमें डेढ़ सेर तिल और १० दश सेर आमन धान एक साथ मिला कर बोते हैं। आधे फागुनसे लेकर चैत तक बोनेका अच्छा समय है। जब इसका अंकुर ४।५ इञ्चका हो जाता है, तब खेतकी एक बार कुदालसे कोड़ते हैं और घने पौदे उपजने पर उनमेंसे कितनेको काट डालते हैं। दश पन्द्रह दिनके बाद खेतको एक दफा और कोड़ देनेसे सब घास मर जाती है। जेठके

महीनेमें तिल पकने पर काट लेते हैं और उसे कई दिनों तक ढेरमें रखते है। बाद लाठीसे पीट कर अनाज निकाल लेते हैं। प्रति बीघेमें २।३ मन तिल उपजता है। ढाकामें कहीं कहीं आउस, आमन और तिल तीनों एक साथ मिला कर बोते हैं। चैत्र मासके अन्तमें एक बार पानी हो जानेसे पूर्ववत् खेत तैयार करते और प्रति बीघेमें १। सेर तिल, १० सेर आउस और ६ सेर आमन बोते हैं। अङ्कुरके उगने पर एक बार हलकी चौकी फेर देते हैं। जेठ मासमें जब तिल पक जाते हैं, तो उसे काट लेते हैं।

मेदनीपुर—कृष्णतिल और श्वेततिल जङ्गली जमीनमें आषाढ़ मासमें बोते और अगहन वा पूस मासमें काटते हैं तथा खशला-तिल ईखके खेतमें चैत वैशाख मासमें बोते और जेठ आषाढ़ मासमें काटते हैं। भदई वा भाद्रीय तिल दलदल जमीनमें आषाढ़ श्रावण मासमें बोया और भाद्रमें काटा जाता है।

हुगली—कृष्णतिल आषाठ-श्रावण मासमें बोते और आश्विन-कार्त्तिक मासमें काटते हैं। खेसारीकी तरह इस जिलेमें तिल भी धानकी जमीनमें दूसरी फसलके रूपमें बोया जाता है। पर यह उसी हालतमें होता है, जब अतिवृष्टिसे धान सड़ जाता है।

फरीदपुर—यहां ऊंची जमीनमें माघ फाल्गुन मासमें काला तिल बोते और आषाढ़ श्रावणमें काट लेते हैं। जो जमीन नीची है, उसमें सफेद तिल श्रावण भाद्रमें बोते और अग्रहायण पौषमें काटते हैं। इस जिलेमें तिल और तिलका तेल दोनों ही प्रस्तुत होते हैं।

रंगपुर—यहां श्रावण भाद्रमें कृष्ण तिल बोया जाता और अग्रहायण पौषमें काटा जाता है। ऊंची जमीनमें ही यह फसल अच्छी लगती है। कहीं कहीं उरदके साथ ही साथ इसे बोते हैं। अच्छी फसल लगने पर प्रति बीघे १॥ या २ मन दाना निकलता है। सरसोंकी दरमें इसकी बिक्री होती है। लाल वा आउस तिल बहुत कम बोया जाता है। पौष माघ मासमें इसे बोते और ज्येष्ठ आषाढ़में काट लेते हैं। इसकी दर सरसोंसे कम रहती है।

राजशाही—धानकी जमीनमें चैत्र वैशाखमें बोते और आषाढ़ श्रावणमें काटते हैं। कृष्णतिल वैशाख मासमें बोया जाता और अग्रहायणमें काट लिया जाता है। इस जिलेमें तिलकी खेती बहुत कम होती है।

बगुड़ा—यहां तीन प्रकारके तिल उपजते हैं। काले तिलहीकी फसल अच्छी होती है। वर्षाके अन्तमें बोया जाता और हिमके प्रारम्भमें काट लिया जाता है।

लोहरडांगा—तिल या तिसली भाद्र आश्विनमें ऊंची जमीनमें बोते और चैत्र वैशाखमें काटते हैं। पलामू विभागका यह एक प्रधान शस्य है, दक्षिणांशमें काफी उपजता है। इस देशमें तिल प्रति बीघे १॥ मन पैदा होता और २॥) से ले कर ३) रु० मन बिकता है।

आसाम—यहां तिलकी खेती होती है और बङ्गाल देशमें रफतनी होती है।

ब्रह्म—तिलकी खेती यहां बहुत कम है। मन्द्राजसे इसकी आमदनी होती है। इस देशमें तिल नहीं होने पर भी ब्रह्मवासी इसका व्यवहार खूब करते हैं।

बरार—यहां २८३५४८ बीघा जमीन तिलकी खेतीके लिये है। प्रति बीघे सवा मनके हिसाबसे उपजता है। निजाम राज्यका और बरार प्रदेशका तिल बहुतायतसे बम्बई होता हुआ यूरोप भेजा जाता है।

मध्यभारत—नागपुर नर्मदा आदि स्थानोंमें तिलकी खेती खूब होती है। यहांके तिलकी रवानगी भी बम्बई होते हुए है। इस प्रान्तमें शारद और वासन्ती दोनों फसलमें ही तिल उपजता है। शरत्के तिलको मघई तिल और वसन्तके तिलको हावड़ी तिल कहते हैं। गरीब कृषक ही कई जमीनमें इसकी खेती करते हैं। इसमें इन्हें न तो अधिक परिश्रम करना पड़ता है और न अधिक रुपये ही व्यय होते हैं। जमीन-परके जंगल आदिको साफ कर एक दो बार हल जोत देते और तब बीज बो देते हैं। एक मुट्ठी तिलसे तीन बीघा जमीन बोई जाती है। एक बार कोड़ना भी पड़ता है। जब तक यह अच्छी तरह पक नहीं जाता, तब तक गौ, बकरे, भेंड़े आदि इसका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते। पकनेके साथ ही इसे काट लेना चाहिये। अच्छीसे अच्छी जमीनमें यह प्रति बीघे २॥-३ मन उपजता और २॥)-३) रु० मन बिकता है। इसके सिवा प्रति बीघेमें रुपये आठ आने खर्च भी पड़ते हैं। तिल काट कर उस जमीनमें बाजरा या ज्वार बोई जाय तो उक्त घाटेकी पूर्ति हो कर लाभ हो सकता है। यहां ८ सेर तिलमेंसे ३ सेर तेल निकलता है

और ६ सेर खली। प्रत्येक कोल्हूका खर्चा ।~)॥ या ।≈) है। घानीसे तेल निकालनेका कोई स्वतन्त्र रास्ता नहीं रहता है। तेल और खली दोनों एक साथ मिल कर घानीके ऊपर चले आते हैं। बाद पानी दे कर खली और तेल अलग अलग कर लिया जाता है, इसीसे यहांका तेल खराब होता है।

पञ्जाब—प्रायः सभी जिलोंमें थोड़ा बहुत तिल हुआ ही करता है। करांची बन्दर हो कर इसकी अधिकांश रफ्तनी होती है। रावलपिण्डीकी पहाड़ी जमीनमें इसकी फसल अच्छी होती है। इस देशमें तिल प्रायः अन्यान्य शस्ययुक्त खेतोंके किनारे किनारे जाता है। काला तिल ही यहां अधिक उपजता है। गरम जल द्वारा इसकी भूसी अलग कर बाजारमें बेचते हैं। यहां ५ सेर तिलमेंसे २ सेर तेल निकलता है।

झंग—सरस हल्की मट्टीमें तिल अच्छा होता है। इस देशमें पतली मट्टीकी तहसे आच्छादित बालूके ऊपर तिल बोया जाता है और उपजता भी खूब है। ज्वार, उरद, मूंग आदिके साथ मिला कर इसे बोते हैं। एक ही दो बार जोतनेसे खेत तैयार हो जाता है श्रावण भाद्र मासमें इसे बालूमें मिश्रित कर प्रति बीघे ६॥ सेर बोते हैं। उत्तरी वायुके लगनेसे फूल झड़ जाता है।

मोण्टगोमारी—यहां ज्वार, मोथा, मूंग आदिके साथ मिला कर बोया जाता है। वर्षाकालमें इसकी खेती होती है। जल सींचनेकी सुविधा रहनेसे दूसरे समय भी हो सकती है। वर्षाके बाद हलसे खेतको एक बार जोत लेते और तब मट्टी या किसी दूसरे अनाजमें मिला कर इसे बोते हैं। बोनेके बाद एक बार फिर हलसे जोत देना अच्छा है। प्रति बीघे तीन पाव बीज लगता है। यदि पौदे घने उगे हों तो कुछ उखाड़ डालने चाहिये। अनसाधारणमें प्रवाद है, कि जौके फरक फरक बोने, तिलके घने बोने, भैंसके बछड़ा जनने तथा स्त्रीके कन्या जननेमें जो कष्ट होता है वह कहा नहीं जाता। यहां केवल काला तिल ही उपजता है। इस देशमें बिजलीके अधिक कड़कनेसे खेतीमें बहुत नुकसान होता है। तिल काट कर उसके डंठलोंके मुंहको एक ओर करके ढेर कर रखते हैं और ऊपरसे कोई भारी चीज दबा देते हैं। ऐसा करनेसे तिलकी छीमी नरम हो जाती है। बाद पौधोंको एक एक करके रस्सीमें गूंथ कर धूपमें औंधे लटका देते हैं। नीचे कपड़ा भी बिछा रहता है। धूपसे जब छीमी फट जाती है, तब तिल नीचे झड़ कर कपड़ेमें जमा हो जाता है। इस देशमें १५ सेर तिलमेंसे ६ सेर तेल निकलता है। तिलका सूखा डंठल जलानेके काम आता है।

करनाल—यहां तिलका श्रेणीभेद नहीं है। नई कड़ी जमीनमें यहां तिल अच्छा होता है। इसी कारण नहरके समीप तिलकी खेती कुछ अधिक होती है। यहां इसे ज्वारके साथ मिला कर बोते हैं, कारण, जिस तरह ज्वारकी खेती होती है, उसी तरह इसकी भी। तिल काट कर धूपमें सुखाते हैं। अच्छी तरह सूख जाने पर छीमी काट लेते हैं और डंठलको फेंक देते हैं। यहां पाँच सेर तिलमें एक सेर तेल मिलता है। रसोई तथा दीपमें यही तेल काम आता है। इस देशमें तिलके पौधेमें एक प्रकारका कीड़ा लगता है। जिसके एक बार लगनेसे फिर पौधेको बचाना मुश्किल हो जाता है।

युक्तप्रदेश—इस देशमें कृष्ण और श्वेत तिल उत्पन्न होता है। कृष्ण तिलको 'तिल' और श्वेत तिलको 'तिली' कहते हैं। तीसीकी अपेक्षा तिल देरीसे पकता है। तिलको ज्वारके साथ और तीसीको कपासके साथ मिला कर बोनेसे फसल अच्छी होती है। तिलके तेलकी अपेक्षा तीसीका तेल रन्धन-कार्यमें अच्छा माना गया है। हिमालयके नीचे देरा, पीलिभीत, बस्ती, गोरखपुर आदि स्थानोंमें तिलकी खेती साधारण तौर पर होती है, पर बुन्देलखण्डमें अधिक है। इलाहाबादमें भी तिल उपजाया जाता है। इस देशमें इसकी गिनती खरीफमें की गई है। मौसममें यह बोया जाता और कातिक अगहनमें काटा जाता है। बुन्देलखण्डमें हलकी जमीनमें यह खूब होता है। हलकी पीली मट्टी इसके लिये उपयोगी है। तिलके बाद उस जमीनमें निकृष्ट कोदों वा कुटकीके सिवा और कुछ नहीं उपजता। तीन बार खेतको भली भाँति जोत कर कपास ज्वार आदिके साथ इसे मिला कर बोते हैं। किसान अपनी इच्छानुसार तिल मिलाते हैं। सिर्फ तिल

प्रति बीघे २॥ सेर लगता है। तिल पक जाने पर उसे काट लेते और अँटिया बांध कर धूपमें सुखाते हैं। जब छीमी कट जाती है, तब तिल झरने लगता है, बाद उसे परिस्कार कर अलग रख देते हैं। तिलका डंठल जलानेके काममें आता है। असमय वृष्टि हो, वा फूल लगते समय हो, तो इसका बहुत नुकसान होता है। आश्विनमें वृष्टि होनेसे तो यह फसल बिलकुल ही नहीं लगती। ज्वार वा कपासके साथ बोनेसे प्रति बीघे आध मन तीस सेर और यदि फकत बोया जाय तो १॥ मनसे २ मन तक उपजता है।

सिन्धुप्रदेश— यहांका तिल एक प्रधान शस्य है। सब जिलोंमें इसकी खेती होती है। महम्मदखाँ जिलेकी जमीन तिलके लिए बहुत उपयोगी है। इस जिलेमें प्रति अठारह दिन तिलका खेत सींचा जाता है। साढ़े चार महीनेमें तिल पकता है और प्रति बीघे २॥ मन उपजता है। नौशहर जिलेमें तिल आषाढ़ मासमें सरस उत्कृष्ट जमीनमें बोया जाता है। हर एक खेतमें ७।८ बार जल देना पड़ता है। यहां पाँच महीनेमें तिल पकता और प्रति बीघे बीस सेर उत्पन्न होता है।

बम्बई प्रदेशके गुजरात, खानदेश, पूना, नासिक, कर्णाटक, कोङ्कण, रत्नगिरि आदि स्थानोंमें तिलकी खेती होती है। कनाड़ामें अधिक वर्षा होनेके कारण वहां बिलकुल तिल नहीं होता। उक्त स्थानोंमें कृष्ण और श्वेत दोनों प्रकारके तिल उपजते हैं। धूसर तिल केवल गुजरातमें ही होता है। वहा बाजराके साथ मिला कर इसे बोते हैं। काठियावाड़ प्रदेशमें श्वेत, कृष्ण और रक्त तीनों प्रकारके तिल पाये जाते हैं। श्वेत तिलका तेल अन्य जिलोंके तेलसे सुस्वादु और अधिक तैलद होता है। यहां पुरबिया तिल काफी उपजता है।

मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलेमें तिलको काट कर अंटियामें बांधते और ताड़के पत्तोंसे ढक कर आठ दिन धूपमें रख छोड़ते हैं। पीछे अंटियोंको झाड़नेसे बारह आना तिल नीचे गिर पड़ता है और जो कुछ रह जाता है वह भी दो तीन दिन तक धूप खानेके बाद झड़ जाता है। कोयम्बतोर जिलेमें क्या दलदल और क्या सूखी जमीन सभीमें तिल उपजता है। यहां 'कार' और 'टट्टू' यही दो प्रकारके तिल मिलते हैं। प्रथम कारका तिल ही उत्कृष्ट होता और ग्रीष्मकालमें उपजता है। उत्तर अरकाडु जिलेमें बड़े और छोटेके भेदसे दो प्रकारका तिल होता है। यहां लाठीसे पीट कर तिल निकालते हैं। इस देशमें ४ सेर तिलमें १ सेर तेल निकलता है। यहाँ सभी प्रकारके तेलोंसे तिलके तेलका ही आदर यथेष्ट है। यह तेल रसोईमें तथा सभी कामोंमें व्यवहृत होता है। यहांसे अधिकांश तिल यूरोपको भेजा जाता है।

महिसुरमें बोल एल्लु' 'कार एल्लु' और 'गुर एल्लु' येही तीन प्रकारके तिल उपजते हैं। तिलके पौधोंको जला कर जो राख बनती है, उसे वे खादकी तरह खेतमें डालते हैं।

तिलका व्यवसाय—तिलका व्यवसाय बहुत विस्तृत है। बङ्गाल और आसाममें जो तिल पैदा होता है उसमेंसे कुछ तो बङ्गालमें ही खप जाता है और अधिकांश मन्द्राज भेजा जाता है। मन्द्राजमें जो कुछ उपजता तथा बङ्गालसे जितना भी आता है उसमेंसे बारह आना हिस्सा ब्रह्मदेशको रफतनी होती है। इसीसे मन्द्राजमें तिलका व्यवसाय खूब चलता है। अयोध्या और युक्तप्रदेशकी उपजमेंसे कुछ तो बम्बई और कुछ बङ्गालको भेजा जाता तथा अवशिष्टांश उसी देशमें खर्च होता है। मध्यभारतका समस्त तिल बम्बई भेजा जाता है। बम्बईमें जो कुछ उपजता तथा जो कुछ आमदनी होती है, उसमेंसे अधिकांश उसी देशमें खर्च होता है और जो जाता है, वह यूरोपका रवाना होता है। सिन्धुप्रदेशका अधिकांश तिल यूरोप जाता है। यूरोपमें तिलसे स्वीट ऑयेल, अलिभ ऑयेल आदि तैयार हो कर फिर इस देशमें आते हैं। त्रिपुराके पार्वत्यप्रदेश तथा काश्मीर प्रदेशसे भी तिल भारतवर्षमें आता है।

तिलकी भूसी मवेशी आदिको खिलाई जाती है। पञ्जाब तथा निम्न बङ्गालके गरीब मनुष्य भूसीको आटेमें मिला, पीठी बना कर खाते हैं। पश्चिममें इसकी बिकता है।

तिलका भेषजगुण - तिल अर्शरोगका रामवाण है। रक्तस्रावी अर्शमें, तिलके पानीमें मक्खन मथ कर

उसका प्रलेप देनेसे रोगी बहुत जल्द आरोग्य हो जाता है। तिलका लड्डू, तिलकुट, तिलका बड़ा आदि तिल-द्रव्य अर्श रोगीका पथ्य है। तिल और तिलका तेल आमाशय तथा मूत्र-रोगमें बड़े कामकी चीज है। यह स्निग्धकारक है। रज-रोध रोगमें तिलका चूर्ण कमर-भर गरम जलमें डाल कर यदि उसमें रोगी खड़ा रहे, तो वह बहुत जल्द आरोग्यता प्राप्त कर सकता है। तिल-सिद्ध जलमें चीनी मिला कर रखनेसे खाँसी जाती रहती है। तिल और तीसी-सिद्ध जलसे कामोद्दीपन होता है तथा शय्यादोष भी दूर हो सकता है। अग्नि-दग्ध स्थानमें तिल पीस कर लगानेसे चंगा हो जाता है। तिलका फूल चक्षुरोगका अव्यर्थ महौषध है। मृदु विसूचिका, आमाशय, दमा, पीनस, श्वेत-प्रदर और मूत्र-नालीके रोगोंमें इसकी पत्तियोंको भिगो कर जलके साथ खानेसे बहुत उपकार होता है। दो ताजी पूर्ण-पुष्ट पत्तियां लगभग डेढ़ पाव जलमें डाल कर कुछ समय तक छोड़ देनेसे वह जल पीने योग्य हो जाता है। यदि पत्तियां सूखी हों, तो गरम जल देना उचित है। भारतवर्षमें तिलकी पत्तियां छोटी होती हैं, अतः वे बहुत लगती हैं। डाक्टर एमर्स कहते हैं (मार्च १८७५) कि 'मैंने तिलकी पत्तियोंको भिगो कर उसका पानी जितने आमाशय रोगोंमें प्रयोग किया है, सभी आरोग्य हो गये हैं।' गर्भिणीके लिये तिल अपथ्य है। इससे गर्भस्राव होनेकी सम्भावना है। तिलकी पत्तियोंको जलमें भिगो कर यदि वह जल बालमें लगाया जाय, तो बालकी श्रीवृद्धि होती है। भुने हुए तिलसे अन्तमें शिथिलता आ जाती है।

कलमें चीनी प्रस्तुत करते समय चीनीके मैल काटनेके लिये तिल व्यवहृत होता है।

आयुर्वेदके मतसे—तिल चार प्रकारका होता है, कृष्ण, शुक्ल, रक्तवर्ण और एक जो छोटा छोटा होता है, उसे जंगली तिल कहते हैं। तिलके गुण—कटु, तिक्त मधुर-कषाय-रस, गुरु, कटु, मधुर, विपाक, स्निग्ध, उष्ण-वीर्य, कफघ्न, पित्तनाशक, बलकारक, बालका, हित-सम्पादक, शीतलस्पर्श, चर्मके, हितकर, स्तन्यवर्द्धक, व्रण हिंसकारक, और दातोंका दृढ़तासम्पादक, ईषता मूत्रकारक, मलशोधक, वायुनाशक और अग्नि तथा बुद्धिप्रदायक है। उक्त चार प्रकारके तिलोंमेंसे कृष्णतिल सबसे उत्तम, शुक्लतिल मध्यम और रक्तवर्णादि तिल अधम माना गया है। (भावप्रकाश)

जंगली तिलको उपतिल कहते हैं। इस तेलके गुण—अलङ्कार, बालको हितकर, कषाय, उष्ण, तीक्ष्ण, मधुर, तिक्त, बलकारक, कफ, वात, व्रण और कण्डूनाशक, कान्तिप्रद, वस्ति, अभ्यङ्ग, पान, नस्य, कर्ण और अक्षि-पूरणमें हितकर है। (राजनि०)

तिल-तैल—सरसोंकी नाईं तिल भी घानीमें फट कर तेल निकलता है। तिलतैल स्वच्छ, परिष्कार और तरल होता है। इसका वर्ण मलिन पीताभ रक्त है। इसमें गन्ध नहीं होती, पुराना होने पर भी यह न तो गाढ़ा होता और न सड़ी बू ही निकलती है। भारतमें तिल-तैल रन्धनमें, गात्र मर्दनमें तथा दीपमें व्यवहृत होता है। देशी साबुन भी तिलतैलसे बनाया जाता है। यूरोपमें यह केवल दीप और साबुन बनानेके काम आता है। बादामके तेल और घीमें तिलका तेल मिला रहता है। भारतमें जो यूरोपीय "अलिभ आयेल" भेजा जाता है, उनमें अधिकांश शुद्ध तिलका तेल ही रहता है। चीनमें बादाम, तिल और कुसुमफूलको एक साथ पीस कर एक प्रकारका तेल बनाया जाता है, जिसे 'गोरा तेल' कहते हैं। सभी प्रकारके फुलेल तिलके तेलसे ही बनते हैं। तीन गुण फूल और तीन गुण तेलको एक साथ मिला कर बोतलमें भर रखें और बोतलके मुंहको कागसे बन्द कर धूपमें कुछ काल तक छोड़ दें, तो एक प्रकारका सुन्दर फुलेल तैयार हो जाता है। अथवा एक स्तर फूलके ऊपर तिल और फिर द्विगुण फूलके ऊपर तिल रख कर उसे फूलोंसे ढके रहें, तो थोड़ी देर बाद तिलमें फूलोंकी गन्ध आ जाती है। अब इस तिलसे जो तेल निकलेगा, वह बहुत सुगन्धयुक्त होगा। व्यवसायी लोग अतरमें तिलका तेल मिला कर अतरकी दरमें बेचते हैं।

तिलतैलका भेषज गुण—सभी प्रकारके जखमोंमें यह व्यवहृत होता है। स्वीट ऑयल वा अलिभ ऑयल जिस तरह व्यवहृत होता है, यह भी उसी तरह व्यवहृत होता। मेहरोगमें तिलका तेल बहुत उपकारी है।

समूचे शरीरमें जब एक प्रकारका लोम वा कण्टकवत् रोग उत्पन्न होता है, तब डाक्टर लोग नहरनीसे उन्हें बाहर निकालनेको सलाह देते हैं। किन्तु यदि उसमें तिलका तैल प्रयोग किया जाय तो वे सब नरम हो कर नोचे गिर पड़ते हैं और प्रत्येक काँटेको जड़में फुंसो पड़ कर फट जातो है। पोछे तिलके तेलसे वह आराम हो जातो है। जो तेल भूसो-रहित तिलसे निकलता है, वह बहुत उत्कृष्ट होता है। कृष्ण तिल प्रत्येक धर्म-कार्यमें व्यवहृत होता है। तिलका दान लेना पाप है। लेकिन तिलदानसे अशेष पुण्य प्राप्त होता है।

जो ब्राह्मण प्रातःकाल उठ कर तिल दान करते हैं. वे सब प्रकारके पापोंसे छुटकारा पाते हैं। प्रेतोद्देशसे तिल-दान किया जाता है। जो प्रेतोद्देशसे हेमगर्भ तिलदान करते हैं, उनके पितृगण तिल-संख्यक वर्ष स्वर्गलोकमें वास करते हैं। हेमगर्भ तिल-दान आद्य एकोद्दिष्ट श्राद्धके दिन किया जाता है।

अशौचान्तके द्वितीय दिन और आद्यश्राद्धके दिनको पहले तिल-दान कर पोछे दूसरे दानादि किये जाते हैं इस तिलदानको जो ब्राह्मण ग्रहण करते हैं, वे अपवित्र समझे जाते हैं इसी कारण यह दान महाब्राह्मण (अग्र-दानो) लिया करते हैं। श्राद्ध देखो।

तिलसे पितृगणका तर्पण किया जाता है। किन्तु सभो दिन तिल तर्पण करना निषिद्ध है। गङ्गादि तोर्थ-में और प्रेतपक्षमें (प्रतिपद्से महालया अमावस्य पर्यन्त) तिल-तर्पण कर सकते हैं। तर्पण देखो।

जन्मतिथिके दिन जो तिल द्वारा स्नान, तिल-मिश्रित, तिलहोम, तिलप्रदान, तिलवपन और तिलोद्वर्त्तन करते हैं, वे चिरायु होते तथा उनके सब कष्ट जाते रहते हैं।

रातको न तो तिल खाना चाहिये और न तिल मिश्रण कोई द्रव्य हो। सप्तमो, नवमो, चतुर्दशो, अष्टमो, अमावस्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति इन कई एक तिथियोंमें तिलका तेल लगाना निषिद्ध है।

२ तिलकालक, देहस्थित तिलाकार चिह्नविशेष, काले रङ्गका छोटा दाग जो शरीर पर होता है। सामुद्रिक तिलोंके स्थानसे अनेक प्रकारके शुभाशुभ बतलाये जाते हैं। यह तिल यदि पुरुषके शरीरमें दाहिनो ओर और स्त्रोके शरीरमें बाईं ओर हो तो शुभ है। हथेलोका तिल सौभाग्यसूचक समझा जाता है। ३ तिलतुल्यस्वल्प-प्रमाण, तिलके बराबरको कोई वस्तु। ४ एक प्रकारका गोदना जो कालो बिन्दोके आकारका होता है। स्त्रियां शोभाके लिए इसे अपने गाल ठुड्डो आदिमें गुदातो हैं। ५ आँख की पुतलोके बोचो-बोचको गोल बिन्दो। इसमें सामने पड़ो हुई वस्तुका छोटासा प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है।

तिलंगनो (हिं॰ स्त्रो॰) एक प्रकारको मिठाई जो चोनो में तिलको पाग कर बनाई जातो है।

तिलंगसा (हिं॰ पु॰) हिमालय पर्वतसे लगा कर नेपाल पञ्जाब तथा अफगानिस्तानमें होनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसको लकड़ो इमारतोंमें लगतो है तथा हल और झप्पानका डंडा आदि बनानेके काममें आतो है।

तिलंगा (हिं॰ पु॰) अंगरेजो फौजके देशो सिपाहो। पहले पहल ईस्ट-इंडिया कंपनोने मन्द्राजमें किला बनवा कर वहांके तिलंगियोंको अपनो सेनामें भरतो किया था। तभोसे अंगरेजो फोजके देशो सिपाहो मात्र तिलंग कहलाने लगे।

तिलंगना (हिं॰ पु॰) तैलङ्ग देश।

तिलङ्गो (हिं॰ वि॰) तिलङ्गनाका रहनेवाला, तैलङ्ग।

तिलक (सं॰ क्लो॰) तिलवत् तिलपुष्पइव कायति कै-क। चन्दनादि द्वारा ललाट आदि द्वादश अङ्गों पर धारणोय चिह्न, वह चिह्न। जिसे गोले चन्दन और केशरादि ललाट, वक्षस्थल, बाहु आदि अङ्गों पर शोभा अथवा साम्प्रदायिक सङ्केतके लिये लगाया जाता है। चलतो बोलोमें इसे टोका भो कहते हैं। पर्याय—तमालपत्र, चित्रक और विशेषक। (अमर॰)

द्वादश तिलक लगानेको विधि—प्रत्येक वैष्णवको स्नानके बाद विष्णुके द्वादश नाम लेकर अपने द्वादशअङ्ग पर तिलक लगाना चाहिये। (हरिभक्तिवि॰)

ललाट पर तिलक लगाते समय केशवका नाम लेना चाहिए। इसो तरह उदर पर नारायण, वक्षस्थल पर माधव, कण्ठकूप पर गोविन्द दक्षिण कुक्षिमें विष्णुबाहु-पर मधुसूदन, कन्धरमें त्रिविक्रम, वामपार्श्वमें वामन,

वाम बाहु पर श्रीधर, वाम कन्धरमें हृषीकेश, पृष्ठ पर पद्मनाभ और कटि पर दामोदरका नाम लेकर तिलक लगाना उचित है। (पद्मपु० तिलके लगाते समय ललाट पर प्रथम ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिए। फिर ललाटादि पर क्रमशः तिलक लगाना चाहिए। (पद्मपु०)

सम्प्रदायानुसार सर्वार्थसिद्धिके लिए मस्तक पर किरीटमन्त्र (न्यासपूर्वक) धारण करना चाहिए।

किरीटमन्त्र—"ओं श्रीकिरीटकेयूरहारमकरकुण्डल-चक्र-शंख-गदा-पद्महस्त पीताम्बरधर श्रीवत्साङ्कित-वक्षःस्थल-श्री भूमि-सहित-स्वात्मज्योतिर्दीप्तिकरायतहस्रादित्यतेजसे नमो नमः।"

(हरिभक्तिवि० ४ वि०)

ललाटादि द्वादश अङ्गोंके तिलक हरिमन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है।

वाम पक्षः, नेत्रान्त, शुण्ड और स्कन्ध, इन स्थलों पर शङ्ख चिह्नित तिलक करना चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण नेत्रान्त आदि स्थल पर चक्र-चिह्नित तिलक लगाना चाहिए।

ऊपर लिखे अनुसार द्वादश अङ्गों पर विष्णुका नाम लेकर तिलक लगानेवाले वैष्णवको प्रति दिन प्रेम और भक्तिकी प्राप्ति होती है। (हरिभक्तिवि०)

जो वैष्णव गलेमें तुलसीकाष्ठकी माला धारण करते, द्वादश अङ्गों पर पूर्वोक्त प्रकारसे तिलक लगाते और श्रीकृष्ण पर दृढ़ भक्ति रखते हैं, उनके द्वारा जगत् आशु पवित्र होता है।

मध्यदेश-छिद्रयुक्त ऊर्द्ध पुण्ड्राख्य तिलक हरिमन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है। यह तिलक नासिकामूलसे लेकर शिरोमध्यगत पर्यन्त लगाया जाना है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रके बीचमें पीली रेखा होने पर, वह रामानुजतिलक कहलाता है। (पद्मपु०)

जो लोग रामोपासक हैं, उनके तिलकमें यदि ऊर्ध्वपुण्ड्रक तथा भ्रूद्वयके बीचमें बिन्दु हो तो उसे हरिके मत्स्यादि अवतारोंको उपासकोंका तिलक समझना चाहिये।

ब्राह्मणोंको ऊर्ध्वपुण्ड्रक करना चाहिए; क्षत्रियोंके लिए भी ऐसी ही व्यवस्था है वैश्यों और शूद्रोंको मण्डलाकृति तिलक लगाना चाहिए। जो ऊर्ध्वपुण्ड्रके बीचमें छिद्र नहीं करते हैं, वे नराधम हैं; एवं उनके ललाट पर वह तिलक कुत्तेके पैरके समान है। यदि किसी द्विजातिके मस्तक पर इस प्रकारका तिलक दीख पड़े तो कृष्णके नामका स्मरण कर वस्त्रसे मुंह ढक लेना चाहिये।

ललाटके दक्षिणमें ब्रह्मा, वामपार्श्वमें महेश्वर और बीचमें विष्णु वास करते हैं, इसलिए बीचका अंश शून्य रखना चाहिए। गोल, टेढ़ा, छिद्रहीन, छोटा, लम्बा और विस्तृत, ये षड्लक्षणायुक्त तिलक निरर्थक हैं।

त्रिपुण्ड्रका प्रमाण दीर्घ होगा; नासिकाके मूलसे लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक; शूद्रके लिए इसका प्रमाण एक अङ्गुल और ब्राह्मणोंके लिए चार अङ्गुल है। नासिकको तीन भागोंमें विभक्त करने पर जो भाग होता है वह अर्थात् भ्रूद्वयके मध्यभागके अधःस्थानको विद्वानोंने मूल कहा है।

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, गृहस्थ और यतिगण जो ऊर्ध्वपुण्ड्रक करते हैं, उसका नाम है हरिमन्दिर। वैष्णव विप्र, भूपाल, वैश्य, शूद्र और अन्त्यजोंके ऊर्ध्वपुण्ड्रको भी हरिमन्दिर है। नर वा नारी यदि कृष्णपदमें चित्त लगानेकी इच्छा करें, उन्हें यत्नपूर्वक तुलसी माला और हरिमन्दिर (तिलक) धारण करना चाहिए। दण्डाकार दो रेखायें मूलदेशमें कोणक (अर्थात् कोणयुक्त और मध्यमें छिद्रयुक्त होने पर उसे ऊर्ध्वपुण्ड्र कहा जा सकता। (पद्मपु०)

अधोमुख पद्मकलिकाके आकार, मध्यदेश छिद्रयुक्त और दो युग्म रेखाएं होने पर, उसे ऊर्ध्वपुण्ड्र-तिलक कहते हैं। तीर्थ-मृत्तिका, यज्ञकाष्ठ, विल्व, अश्वत्थ और तुलसी मूलकी, मृत्तिका गोष्पदमृत्तिका, गङ्गा-मृत्तिका, महानिम्ब, तुलसीकाष्ठ-मृत्तिका, कस्तूरी, कुङ्कुम, फलु, सिन्दूर, रक्त-चन्दन, गोरोचन, गन्धकाष्ठ, जल, अगुरु, गोमय और धात्रीमूलके द्वारा सन्ध्या आदि सम्पूर्ण कार्योंमें तिलक लगाया जा सकता है।

प्रति दिन स्नान करनेके बाद तिलक लगाना सभी वर्णोंका कर्त्तव्य है। नित्य, नैमित्तिक, काम्य ये तीन प्रकारके कर्म तथा पैत्रादि कर्म विना तिलकके निष्फल होते हैं। तिलक और दर्भके विना स्नान, संध्या

पञ्चयज्ञ, पैत्र और होमादिकर्म सब निष्फल हैं; ब्राह्मणोंको ऊर्ध्वपुण्ड्र, क्षत्रियोंको त्रिपुण्ड्रक, वैश्योंको अर्द्धचन्द्राकृति और शूद्रोंको वर्तुलाकार तिलक करना चाहिये। (आह्निकतत्त्व०)

ऊर्ध्वपुण्ड्र मिट्टीसे, त्रिपुण्ड्र भस्मसे और तिलक चन्दनसे करना चाहिये। (श्राद्धत०) जो अशुचि और अनाचारी हैं तथा मनमें पापाचरण करते हैं, वे भी त्रिपुण्ड्रक तिलकके धारण करनेसे समस्त पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। ऊर्ध्वपुण्ड्रका धारक चाहे जहां मरे और मर कर चण्डाल ही क्यों न हुआ हो, वह स्वर्गलोकमें जाता है। (पद्मपु०)

श्राद्धकर्त्ताको पैत्रिक कार्य अर्थात् श्राद्ध करते समय अर्द्धपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र वा चन्द्राकार तिलक करके श्राद्ध वा पैत्रिक कार्य न करना चाहिये। (विश्वप्र०)

वेदनिष्ठ ब्राह्मणोंको ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिशूल, वर्तुलचतुरस्र वा अर्द्धचन्द्रादि चिह्न नहीं धारण करना चाहिये। वेदनिष्ठ ब्राह्मण आदि अज्ञानतावश इन चिह्नोंको धारण करे, तो वह अवश्य ही पतित होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। (निर्णयसि० सूत्र०)

तिलकसेवा वैष्णवोंका एक मुख्य साधन है। ये लोग ललाटादि द्वादश अङ्गों पर गोपीचन्दन और अन्य मृत्तिका द्वारा नाना प्रकार तिलक लगाया करते हैं। इनके तिलकद्रव्योंमें द्वारकाका गोपीचन्दन ही सर्वापेक्षा प्रशस्त है। व्यङ्कटादिकी मृत्तिका भी तिलकके लिए उत्कृष्ट कही गई है।*

परम भक्तिपूर्वक व्यङ्कटाद्रिके ह्रदकी मृत्तिका ले कर ऊर्द्ध्वपुण्ड्रक तिलक धारण करना चाहिए। ऐसा करनेसे हरिके सदृश लोककी प्राप्ति होती है। श्रीवैष्णवगण नासामूलसे ले कर केश पर्यन्त दो ऊर्ध्व रेखाएं अङ्कित करते हैं और उन दोनों रेखाओंके नासामूलस्पृष्ट उभयप्रान्त, अन्य एक भ्रूमध्यगत रेखाके द्वारा संयुक्त हो जाते हैं तथा उन दोनों ऊर्ध्वपुण्ड्रके बीचमें पीत अथवा रक्तवर्णकी और एक रेखा अङ्कित करते हैं।

इसके सिवा ये लोग हृदय और बाहुओं पर गोपीचन्दनसे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मका प्रतिरूप चिह्नित किया करते हैं।

शङ्ख आदिके बीचमें एक रक्तवर्णकी रेखा रहती है, जो लक्ष्मीस्वरूप समझी जाती है। काशीखण्डमें इन वैष्णवाचारोंके विषयमें इस प्रकार लिखा है,—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वा अन्य कोई यदि शरीर पर शङ्ख-चक्र आदि चिह्न अङ्कित करें तो उन्हें देखते ही पाप विनष्ट होते हैं।

बहुतोंके पास इन तिलकोंकी लकड़ी वा धातुकी छाप रहती है। वे उसे ही अङ्गविशेष पर अङ्कित कर शरीरको पवित्र बनाते हैं। कोई कोई उक्त धातुमय मुद्राको उत्तप्त करके शरीर पर अङ्कित करते हैं। परन्तु यह शास्त्रविरुद्ध है। बृहन्नारदीयपुराणमें लिखा है—यदि कोई पुरुष शङ्खादि चिह्नको उत्तप्त करके शरीरसे लगावे, तो वह पातालका भोग करता हुआ शत कोटि जन्मपर्यन्त चण्डालयोनिमें रहता है और नरकमें जाता है। ऐसे व्यक्तिके साथ बातचीत करनेसे नरक भोगना पड़ता है।*

श्रीसम्प्रदायकी तरह रामानन्दियोंमें भी तिलकसेवा प्रचलित है। परन्तु यह ये अपनी अपनी रुचिके अनुसार ऊर्द्ध्वपुण्ड्रकी अन्तवर्ती रेखाका रूप और परिमाण कुछ विशेष कर देते हैं और प्रायः रामानुजोंकी अपेक्षा कुछ छोटा बनाते हैं।

दादूपन्थी लोग तिलकसेवा और माला धारण नहीं करते। मुलकदासी सम्प्रदाय ललाट पर एक छोटी रेखा अङ्कित करता है।

रामसनेही सम्प्रदायके लोग ललाट पर एक श्वेतवर्ण दीर्घपुण्ड्र लगाया करते हैं।

सनकादि सम्प्रदाय अर्थात् निमात लोग गोपीचन्दनकी दो ऊर्द्ध्व और उसके बीचमें एक काला वर्तुलाकार तिलक लगाते हैं।

---

* हरिभक्तिवि० धृत गारुडवचन, हरिभक्तिवि० २६वां अ०।

* "तथाहि तप्तशङ्खादि लिंगचिह्नतनुर्नरः।
स सर्वपातकाभोगी चाण्डालो जन्मकोटिभिः॥
तं द्विजं तप्तशङ्खादिलिंगांकिततनुं हय।
सम्भाष्य रौरवं याति यावदिन्द्रश्चतुर्दशः॥"

(बृहन्नारदीयपु०)

विटल-भक्त सम्प्रदायके लोग वैष्णवोंकी तरह ललाट पर दो श्वेतवर्ण ऊर्ध्वरेखा चिह्नित करते हैं।

वल्लभाचारी सम्प्रदायके लोग ललाट पर दो ऊर्ध्वपुण्ड्र बना कर फिर उसे नासामूलमें अर्द्धचन्द्राकृति करके मिला देते हैं, इन दो पुण्ड्रके बीचमें एक वर्तुलाकार रक्तवर्णका तिलक बनाते हैं। इस सम्प्रदायके भक्तगण श्रीवैष्णवोंकी तरह बाहु और वक्षःस्थल पर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म अङ्कित करते हैं तथा कोई कोई श्यामबिन्दी नामकी काली मिट्टी अथवा अन्य प्रकारकी काले रंगकी धातु द्वारा उल्लिखित वर्तुलाकार तिलक धारण करते हैं।

चरणदासी सम्प्रदायके लोग ललाट पर चन्दन वा गोपीचन्दनकी एक लम्बी रेखा खींच कर तिलक करते हैं। उदासीन शैव हो वा वैष्णव, तिलक देख कर उन्हें सहजमें पहचाना जा सकता है।

वैरागी लोग नासामूलसे ले कर केश पर्यन्त ऊर्ध्वरेखा और शैव लोग ललाटके वामपार्श्वसे लगा कर दक्षिणपार्श्व तक विभूतिसे तीन रेखाएँ खींचते हैं। प्रथमोक्त तिलकको ऊर्ध्वपुण्ड्र कहते हैं और शेषोक्तको त्रिपुण्ड्र। वैष्णव ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाते हैं और शैव त्रिपुंड्र। उत्कलमें जैसे तिलकके पार्थक्यसे अतिबड़ी और बिन्दुधारी आदि सम्प्रदायोंकी पहचाना जाता है, उसी प्रकार हिन्दुस्थानमें भी हरिव्यासी, रामप्रसादी, बड़गल आदिको अनायास ही पहचाना जा सकता है।

निमात सम्प्रदायी हरिव्यासी लोग अन्यान्य अंशोंमें रामानन्दियोंकी भांति ही तिलकसेवा करते हैं, विशेषता सिर्फ इतनी ही है कि ये ललाटस्थ पुंड्रके बीचमें रक्तवर्ण 'श्री' (ऊर्ध्वपुंड्रकी मध्यरेखाका नाम 'श्री' है) न बना कर भ्रू-युगलके बीच श्यामबिन्दी नामक कृष्णवर्ण मृत्तिका द्वारा एक छोटी बिन्दी बनाते हैं। श्यामबिन्दीका अभाव हो तो गोपीचन्दन द्वारा शुभ्रवर्ण बिन्दु बनाया जा सकता है। रामानन्दी लोग भ्रूयुगलके नीचे तथा नासिकाके ऊपर गोपीचन्दनका लेपन कर जो अर्द्धगोलाकृति वा तदनुरूप एक प्रकारकी आकृति बनाते हैं; उसे सिंहासन कहते हैं। हरिव्यासी लोग इस तरह सिंहासन न बना कर अर्द्ध-गोलाकृति रेखामात्र अङ्कित करते हैं। उस रेखाके उभय प्रान्त ललाटस्थ ऊर्द्धपुंड्रके निम्नभागसे लगी रहते हैं। भारतवर्षके दक्षिणखण्डके अन्तर्गत मुगीपट्टन हरिव्यासियोंका आदि वासस्थान है। रामात सम्प्रदायी रामप्रसादी लोग भ्रूके बीचमें काली बिन्दी न लगा उससे कुछ ऊँचे (ललाटके बीचमें) सफेद बिन्दु लगाते हैं। यह बिन्दु हरिव्यासियोंकी अपेक्षा बड़ा होता है। इस तिलकको बेणीतिलक कहते हैं। इसमें ऐसी किम्बदन्ती प्रसिद्ध है, कि सीतादेवीने अपने हाथसे रामप्रसादके ललाट पर यह तिलक अङ्कित किया था। बड़गल नामक रामात-सम्प्रदायके वैष्णव ऊपर लिखे अनुसार बिन्दु न करके रामानन्दियोंकी तरह उर्ध्वपुंड्रके बीचमें रक्तवर्ण 'श्री' अङ्कित करते हैं। परन्तु उनकी तरह नासिकाके ऊपर और भ्रूके नीचे सिंहासन नहीं बनाते। इसी सम्प्रदायके लश्करी नामक वैष्णव रामानन्दियोंकी भांति सिंहासन बनाते हैं; पर उनकी तरह रक्तवर्ण नहीं बल्कि श्वेतवर्ण।

चतुर्भुजोंका तिलक रामानन्दियोंके समान होता है, सिर्फ ललाट पर 'श्री' नहीं होता। 'श्री'का स्थान खाली रहता है। वैष्णवधर्ममें तिलककी बड़ी महिमा बतलाई है। बङ्गालमें भिन्न भिन्न वैष्णव सम्प्रदायोंमें विभिन्न प्रकारके तिलक प्रचलित हैं। नित्यानन्द प्रभुके परिवारमें वेणुपत्राकृति, अद्वैत प्रभुके परिवारमें वटपत्राकृति, आचार्यप्रभुके परिवारमें तिलपुष्पाकृति, गौरीदासके परिवारमें रसकलिकाकृति इत्यादि नाना प्रकार तिलक प्रचलित हैं। ये सभी तिलक नासिका पर लगाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त वैष्णव-परिवारके लोग ललाट पर भी नाना प्रकारके ऊर्ध्वपुंड्र देखनेमें आते हैं।

गोपीचन्दनमें सफेद रङ्ग, श्यामबिन्दी नामकी मिट्टीमें काला रङ्ग तथा हल्दी, सुहागा और नीबूका रस मिला कर पीला और लाल तिलक लगाया जाता है। इस (शेषोक्त) तिलकके उपादानमें सुहागाका अंश अधिक होनेसे रंग लाल हो जाता है; नहीं तो एक तरहका पीला रंग हो जाता है।

२ सौवर्चल लवण, सोंचर नमक। ३ कृष्णवर्ण सौवर्चल लवण, काला सोंचर नमक। ४ राजसिंहासन पर अधिरोहण, राज्याभिषेक, राजगद्दी। ५ विवाह-सम्बन्ध

स्थिर करनेकी एक प्रथा वा रिवाज जिसे टीका कहते हैं। इसमें कन्यापक्षके लोग वरके ललाट पर दधि अक्षत आदिका तिलक लगाते और उसके साथ कुछ द्रव्य भी देते हैं। ६ स्त्रियोंका एक गहना जो माथे पर पहना जाता है, टीका। ७ क्लोम, पेटकी तिल्ली। ८ किसी ग्रन्थकी अर्थसूचक टीका वा व्याख्या।

(पु०) ११ लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़। १ मरुवकवृक्ष, मरुवा। १२ रोगभेद, तिलकारक रोग। १४ अश्वभेद, एक जातिका घोड़ा, घोड़ेका एक भेद। १३ अश्वत्थवृक्षविशेष, एक प्रकारका अश्वत्थ, पीतलके पेड़का एक भेद।

१४ पुष्पवृक्षविशेष, पुन्नागकी जातिका एक पेड़। काण्ड काट कर रोपनेसे यह पुनः जीवित होता है। वसन्त ऋतुमें पुष्पादिके लगनेसे इसमें अपूर्व सुन्दरता आ जाती है। इसके पुष्प छत्तेके आकारके होते हैं। शोभाकी वृद्धिके लिए इसका पेड़ बगीचोंमें लगाया जाता है। इसकी छाल और लकड़ी औषधके काम आती है। पर्याय—विशेषक, मुखमण्डनक, पुण्ड्र, पुण्ड्रक, स्थिरपुष्पी, छिन्नरुह, दग्धरुह, मृतजीव, तरुणीकटाक्षकाम, वासन्तसुन्दर, दुग्धरुह, भालविभूषणसंज्ञ, पुन्नाग, रेचक, क्षुरक, श्रीमान्, पुरुष, छत्रपुष्पक। (राजनि० भावप्र०)

गुण—यह पाकमें कटु, वात, पित्त और कफनाशक; बल, पुष्टि और मेद-कारक; हृद्य और लघु होता है। इसकी छाल—कषाय, उष्ण, पुंस्त्व, दन्तदोष, कृमि, शोथ, व्रण और रक्तदोष-नाशक है।

१५ ध्रुवकविशेष, ध्रुवकका एक भेद। इसके प्रत्येक चरणमें पच्चीस अक्षर होते हैं। (संगीतदामोदर) १६ मूत्राधार।

(त्रि०) १७ श्रेष्ठ, शिरोमणि, किसी समुदायका श्रेष्ठ व्यक्ति। (माघ ३।६३)

तिलक—लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक। महाराष्ट्र-देशीय सर्वजन-मान्य सुप्रसिद्ध देशनायक। साधारण जनता इन्हें "तिलक महाराज" कहा करती थी।

१८६६ ई०में पवित्र चित्पावन ब्राह्मणकुलमें तिलकका जन्म हुआ था। आपके पिता स्वर्गीय गङ्गाधर रामचन्द्र तिलक पहले रत्नगिरि-विद्यालयके अन्यतम सहकारी शिक्षक थे। बादमें वे थाना और पूनाके शिक्षाविभागके सहकारी डिप्टी-इन्सपेक्टर नियुक्त हुए थे। शिक्षकका कार्य करते समय गङ्गाधर-रामचन्द्र अत्यन्त लोक-प्रिय हो गये थे। उन्होंने व्याकरण तथा त्रिकोणमिति-सम्बन्धी कई पुस्तकें भी लिखी थीं। बालगङ्गाधरने अपने पिताके पास ही गणितकी शिक्षा प्राप्त की थी और इस विषयमें वे इतने सिद्धहस्त हो गये थे कि सोलह वर्षकी उम्रमें पिताको भी छका दिया करते थे।

पिताकी मृत्युके चार मास बाद, १८७२ ई०के अन्तमें आप मैट्रिक परीक्षामें उत्तीर्ण हुए और फिर पूनाके डेक्कन-कालेजमें अध्ययन करने लगे। १८७६ ई०में आप बी० ए०में आनर हो कर पास हुए। १८७९ ई०में बम्बई-विश्वविद्यालयकी आईन-परीक्षामें उत्तीर्ण हो कर आपने एल० एल० बी, की उपाधि प्राप्त की। आईन वा 'ला' पढ़ते समय परलोकगत मि० आगरकरसे आपकी मित्रता हो गई। इन दोनों मित्रोंने मिल कर निश्चय किया कि "हममेंसे कोई भी सरकार की नौकरी नहीं करेगा। एक राष्ट्रीय (बे-सरकारी) विद्यालय वा महाविद्यालय (कालेज) खोल कर उसीकी उन्नतिके लिए आत्मसमर्पण करेंगे। देशके होनहार युवकोंको कम खर्चमें यथायोग्य शिक्षा दे कर उन्हें मनुष्य बनानेका प्रयत्न करेंगे।"

इसी समय मि० विष्णुकृष्ण चिपलोनकर सरकारी शिक्षा-विभागके कार्यको छोड़ कर स्वयं स्वाधीन-भावसे शिक्षा देनेके लिए उत्सुक हुए। आपकी साधारण जनतामें विष्णुशास्त्रीके नामसे प्रसिद्धि थी। आप एक प्रतिष्ठावान लेखक थे। इनके सङ्कल्पकी बात युवक तिलक और आगरकरके कानमें पड़ी। दोनोंने जा कर विष्णुशास्त्रीसे मुलकात की। इसी समय परलोकगत एम० बी० नामजोशी भी इनमें मिल गये। इस शुभ योगके फलसे तथा स्वर्गीय मि० नामजोशीके उत्साह और अध्यवसायसे आनुप्राणित हो तिलक और चिपलोनकरने १८८० ई०को २री जनवरीको "पूना-न्यू-इंग्लिश स्कूल"की प्रतिष्ठा की। जून मासमें मि० वी० एस० आपटे एम० ए० ने इनके शिक्षा दान-रूप शुभकार्यमें योग दिया और उसी वर्ष आगरकरने भी एम० ए० पास कर, उसी स्कूलमें पढ़ाना शुरू कर दिया। शिक्षा-दानके साथ साथ पांची

युवकोंने मिल कर "केशरी" और "मराठा" इन दो संवाद-पत्रोंका निकालना शुरू कर दिया। "केशरी" मराठीमें निकला और "मराठा" अंग्रेजीमें। ये दोनों संवादपत्र अब भी महाराष्ट्रके श्रेष्ठ पत्र समझे जाते हैं। तिलक महाराज "केशरी"के लिए ही अधिकतर परिश्रम किया करते थे। कारण, उन्हें मालूम था कि देशकी जनशक्तिको उद्‌बुद्ध करनेके लिए देशीय भाषामें लिखित संवाद-पत्रकी ही आवश्यकता है। अंग्रेजी भाषाके जाननेवाले बहुत कम हैं। इसलिए तिलक महाराजने देशकी भाषामें देशकी बात प्रगट करनेका निश्चय कर लिया। "केशरी"का महाराष्ट्रमें जितना प्रभाव था, उतना प्रभाव भारतके और किसी भी पत्रका नहीं था। "केशरी"को क्या धनी और दरिद्र, सब समान भावसे पढ़ते थे।

'न्यू-इङ्गलिश स्कूल' धीरे धीरे उन्नति करता गया और पूनाके समस्त स्कूलोंमें उसीने श्रेष्ठ स्थान पाया। विष्णु शास्त्री चिपलोनकरने दो प्रेस खोल दिये। इन कार्यक्षेत्रोंमें पाचों युवक मिल कर पूर्ण उत्साहसे कार्य करने लगे।

इसी समयसे देशके काममें तिलकने आत्मत्याग किया और साथ ही उन पर विपत्तियाँ भी पड़ने लगी। 'केशरी' और 'मराठा'में कोल्हापुरके तदानीन्तन महाराज शिवाजीरावके प्रति दुर्व्यवहारके सम्बन्धमें तीव्र प्रतिवाद करके अपना मन्तव्य प्रकट किया था; इसके लिए तिलक महाराज और आगरकर पर मानहानिकी नालिश हुई। अदालतने दोनोंको ४।४ महीनेकी कैदकी सज़ा दी। पर इस कारादण्डके फलसे तिलक और आगरकरकी जन-प्रियता सौ गुनी बढ़ गई और वे नवीन उत्साहसे सारी शक्ति लगा कर जन-सेवा करने लगे।

इस समय इन निर्यातित देश-प्राण युवकोंकी सहायताके लिए एक नाटक खेला गया, जिसमें स्वयं गोखलेने नाटककी भूमिका ग्रहण की थी।

१८८४ ई०के अन्तमें तिलक महाराजने "दाक्षिणात्य-शिक्षा-समिति"की स्थापना की। इसमें पहले सिर्फ़ उनके मित्रगण ही सदस्य थे; पर कुछ दिन बाद बहुतसे युवक इस समितिके सभासद हो गये और उत्साहके साथ काम करने लगे। केलकर, पटनकर और गोखले भी इस समितिमें शामिल थे। धीरे धीरे इनके स्कूलने कालेजका रूप धारण कर लिया, जो कि "फर्गूशन कालेज"के नामसे पूनामें अब भी मौजूद है। शिक्षा-समितिके सदस्योंने प्रतिज्ञा कर ली कि "बीस वर्ष तक नाममात्रको वेतन लेकर इस कालेजमें अध्यापना करेंगे।" दाक्षिणात्य शिक्षा-समितिके अधीनस्थ सभी संस्थाएँ धीरे धीरे उन्नति करने लगीं। समितिने युवकोंके खेलने-कूदनेके लिए दो मैदान खरीद लिए। बम्बईके पूर्ववर्ती शासनकर्त्ता सर जेम्स फर्गुशनकी प्रतिश्रुतिके अनुसार परवर्त्ती शासनकर्त्ता लार्ड रीयेने उक्त कालेजको बड़ा करनेके लिए और भी कुछ जमीन दे दी। युवक-सङ्घने चतुरसिंगीके पास कालेजके लिए एक बड़ा सुन्दर भवन बनवाया। तिलक कालेजमें गणितकी शिक्षा देते थे और आवश्यक होने पर कभी कभी विज्ञान तथा संस्कृत भी पढ़ाया करते थे। तिलक उक्त तीनों विषयोंमें समान कृतित्व दिखलाते थे। गणितकी शिक्षा देनेमें तिलककी समानता और कोई भी नहीं कर सकता, ऐसी छात्रोंकी धारणा थी। अध्यापकोंमें इनका यश सर्वत्र व्याप्त हो गया था।

परन्तु १८९० ई०में आपको अध्यापकका पद त्याग देना पड़ा। बहुत दिनोंसे समितिके सदस्योंमें मनोमालिन्य चला आ रहा था। समाज और धर्मके विषयमें आपका मत कट्टर हिन्दुओं"के समान था। इसलिए राष्ट्रकी सहायता लेकर किसी समाजके संस्कार करनेकी आवश्यकता है, इस बातको आप स्वीकार नहीं करते थे। परन्तु आगरकरका मत इनसे सम्पूर्ण विपरीत था। वे समाज-संस्कारको आशु प्रयोजनीय समझते थे। समितिके अन्यान्य सदस्य भी आगरकरके मतानुवर्ती थे। किन्तु इस समय तिलकके पदत्याग करनेका और भी एक गुरुतर कारण उपस्थित हुआ। १८८८ ई०में अध्यापक गोखले पूनाकी 'सार्वजनिक सभा'के सम्पादक (वा मन्त्री) नियुक्त हुए। इसमें तिलकको आपत्ति थी। आपका कहना था कि "जो दाक्षिणात्य समितिके आजीवन सभ्य हैं, उन्हें अपनी सम्पूर्ण शक्ति और समय कालेजकी उन्नतिके लिए व्यय करना चाहिए।" गोखले शिक्षक हो कर भी राजनीतिक सभाके मन्त्री होते हैं

और समितिके अन्यान्य सदस्य उसमें सम्मति देते हैं. यही तिलकके पदत्यागका मूल-कारण था। इस तरह तिलकने अपने अभीष्ट कार्य—अध्यापकत्वको छोड़ दिया और राजनीतिक जीवन यापन करनेमें प्रवृत्त हो गये।

इसी समय सरकारने "सहवास-सम्मति"वाला प्रस्ताव पाश करना चाहा, जिस पर देश-व्यापी तुमुल आन्दोलन शुरू हो गया। तिलक इस कानूनके पाश होनेके विरुद्ध जीजानसे कोशिश करने लगे। जिस नीतिके अनुसार विदेशी विजातीय गवर्मेण्ट प्रजाके धर्म और समाज सम्बन्धी यम-नियमोंमें हस्तक्षेप कर बाध्यता-मूलक आईन बनानेके लिए अग्रसर हो, तिलक महाराज उस नीतिके कट्टर विरोधी थे। सहवास-सम्मति' आईनका पाश होना कितना ही हितकर क्यों न हो, गवर्मेण्ट बलपूर्वक ऐसी व्यवस्था करती थी, इस कारण समाज-संस्कारके विशेष पक्षपाती और भी बहुतसे व्यक्ति सरकारके घोर विरोधी हो गये थे।

कालेजके अध्यापकका पद त्याग कर तिलकने पुनः कानून पढ़ानेकी व्यवस्था की। बम्बई-प्रेसिडेन्सीमें यही पहल-लॉ-कालेज है। कालेजमें हाई-कोर्टके लिए वकालती विद्या पढ़ानेका बन्दोबस्त हो गया। इसके बाद दाक्षिणात्य-समितिके सभ्योंमें एक बटवारा हुआ, जिसमें तिलक अकेले "केशरी" और "मराठा" पत्रके स्वत्वाधिकारी और सम्पादक हुए। "केशरी"के सम्पूर्ण-भावसे तिलकके कर्तृत्वाधीन होने पर, दिनों दिन उसकी उन्नति होने लगी।

तिलकने राजनीतिक क्षेत्रमें अवतरण करने पर भी अपनी असाधारण मनीषाको केवलमात्र उसीमें निबद्ध नहीं रक्खा था; प्रत्युत विद्यामें भी उनका असीम अनुराग था। अवसर पाते ही आप शास्त्राध्ययन करते थे। वेदके काल-निर्णयके विषयमें आपने कई निबन्ध लिखे हैं, जिससे आपके असाधारण पाण्डित्यका यथेष्ट परिचय मिलता है। १८७२ ई०में लण्डनमें प्राच्यविद्यावित् विद्वानोंकी एक अन्तर्जातीय बैठक हुई थी, उसमें तिलक महाराजके उक्त निबन्ध भेजे गये थे। उनसे तिलककी विद्वत्ता और प्रतिभा चारों ओर व्याप्त हो गई। १८९३ ई०में ये निबन्ध पुस्तकाकारमें प्रकाशित किये गये; पुस्तकका नाम "ओरायन" रक्खा गया। इस पुस्तकमें, ग्रीककी अपेक्षा हिन्दू सभ्यताकी प्राचीनताके विषयमें आपने बहुतसे प्रमाण दिये हैं। ग्रीक् आख्यायिकामें मृत शिकारीके 'ओराओन' नामक नक्षत्रराशिमें स्थान-लाभकी जो कथा है, उसके साथ (उक्त नक्षत्रराशिका हिन्दू-नामकरण) मृगशिरा और सूर्यावस्थानकाल मार्गशीर्ष मासका जो शब्दगत सादृश्य है, उस विषयकी विस्तृत आलोचना कर तथा 'अग्रहायण' (मार्गशीर्ष) शब्दका अर्थ 'वर्षका प्रथम दिन, क्यों है, इसका विचार कर तिलक महोदयने दिखलाया है कि ऋग्वेदके जिन स्तोत्रोंमें उक्त अग्रहायण शब्दका उल्लेख है वा उस विषयकी नाना आख्यायिका हैं, वे जिस समय रची गई थीं, उस समय तक ग्रीक् लोग हिन्दुओंसे पृथक् नहीं हुए थे। सूर्यदेवके मृगशिरानक्षत्रमें अवस्थान करते समय जब वत्सरका प्रथम मास शुरू होता था, तब (अर्थात् ईसासे चार हजार वर्ष पहले) उपर्युक्त दोनों प्राचीन जातियां एक ही स्थानमें रहती थीं और उस समय ऋग्वेदकी गाथाएं रची गई थीं। प्राच्य और प्रतीच्य विद्यामें कैसी प्रगाढ़ विद्वत्ता होने पर और कैसी तीक्ष्ण दृष्टिसे गवेषणा करने पर ऐसा सिद्धान्त स्थिर किया जा सकता है, यह बात सहज ही समझ सकते हैं। उच्च गणित-विद्यामें तथा फलित ज्योतिषमें तिलकके असाधारण अधिकारका परिचय इसीसे मिल सकता है। इस ग्रन्थके प्रकाशित होने पर अध्यापक मोक्षमूलर, जेकोबी, वेबर और हुइटनी आदि प्रमुख पाश्चात्य विद्वानोंने तिलककी सी मुंहसे प्रशंसा की थी। 'जन हपकिन्स विश्वविद्यालय'के डाक्टर ब्लूमफिल्डने विश्वविद्यालयके वार्षिक अधिवेशन पर कहा था, कि "ओरायनके लेखकने अपने प्रतिपाद्य प्रधान विषयों पर मुझे विश्वास करनेके लिए बाध्य किया है, यह बात मैं मुक्तकण्ठसे कहता हूं। 'ओरायन' अब साहित्य-जगत्में कुछ समयके लिए महा आन्दोलनकी सृष्टि करता रहेगा।" साहित्य और इतिहासके क्षेत्रमें सचमुच ही 'ओरायन'ने विप्लवकी सृष्टि की है।

इसी समय तिलक महाराज बम्बई प्रादेशिक कान्फ्रेन्सके मन्त्री नियुक्त हुए। लगातार पांच अधिवेशनों तक

आप ही इसका कार्य सम्हालते रहे। पांचवें अधिवेशनमें सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई। १८९२ ई०में इसका एक अधिवेशन हुआ। इसके दूसरे वर्ष लार्ड डफरिनकी भेदनीतिके कारण हिन्दू-मुसलमानोंमें बड़ा भारी दंगा हो गया। तिलकने अपने व्याख्यानमें भेदनीतिकी बात प्रकट कर दी; जिससे सरकार भीतर ही भीतर तिलक महाराजसे जलने लगी। यहींसे तिलक पर सरकारकी कड़ी निगाह रही, उनके प्रत्येक कार्य पर सरकार लक्ष्य रखती थी। तिलक महाराज कुछ सरकारी कर्मचारियोंकी अनुसृत नीतिके विरोधी हो गये। कर्मचारियोंकी इसी सम्पर्कसे, जनसाधारण पर तिलकके असाधारण प्रभावकी बात मालूम हो गई। "केशरी"की सहायतासे ही तिलकने अपना प्रभाव समग्र मराठा-समाजमें फैला दिया था। तिलकके प्रभावसे मराठा-जातिमें इस समय एक नवीन भाव जाग्रत् हुआ था। शिक्षित समाजमें भी तिलकका काफी प्रभाव था, इसी बीचमें आप दो बार बम्बईकी व्यवस्थापक-सभाके सभ्य निर्वाचित हुए थे और बम्बई-विश्वविद्यालयके 'फेलो' हुए थे। १८९५ ई०में आपको पूनाकी म्युनिसिपालिटीने सदस्य चुना। इसी साल पूनामें कांग्रेसका ग्यारहवां अधिवेशन होना निश्चित हुआ और आप उसकी अभ्यर्थना समितिके मन्त्री निर्वाचित हुए। तिलकने सेप्टेम्बर मास तक इसके लिए बहुत परिश्रम किया। उपरान्त कांग्रेसके पण्डालमें समाज-संस्कारके विषयमें आलोचना हुई, जिसका तिलक महाराजने विरोध किया और आखिरकी इसी कारणवश आपने मन्त्रि-पदसे इस्तीफा दे दिया। परन्तु कांग्रेसकी सफलताके लिए आपने एक दिन भी परिश्रम करना न छोड़ा था।

१८९५ ई०में आपने मराठा जातिमें स्वदेश-प्रेम लानेके अभिप्रायसे शिवाजीकी पूजाका प्रवर्तन किया। जातीय देशनायकोंके जीवनचरित्रकी आलोचना करनेसे जातीयताकी वृद्धि होती है, ऐसा समझ कर ही तिलक महाराजने इस अनुष्ठानका प्रचार किया था। शिवाजीकी स्मृति-रक्षाके आन्दोलनमें योग देनेके बाद तिलक महाराजने 'केसरी' में इस विषयका लेख लिखा। उस लेखके परिमाणस्वरूप २० हजारका चन्दा हुआ, जिससे रायगढ़में शिवाजीके समाधिमन्दिरका संस्कार हो गया। तभीसे यहां प्रति वर्ष शिवाजी-पूजाका अनुष्ठान चिरस्थायी हो गया।

१८९६ ई०में महाराष्ट्र-प्रदेशमें भीषण दुर्भिक्ष और प्लेग फैल गई। लोकहितमें प्राण विसर्जन देनेवाले महामति तिलकका हृदय क्रन्दन करने लगा। आपने इस समय स्वार्थ-त्यागका ऐसा अपूर्व दृष्टान्त दिखलाया कि उसीसे आपका नाम अक्षय हो सकता था। दुर्भिक्षके समय विपन्न नरनारियोंको सहायता पहुंचानेके लिए जो सरकारी व्यवस्था है, उसको काममें लानेके लिए आपने बम्बई सरकारसे विशेष लिखा-पढ़ी की थी। परन्तु तिलकका अनुरोध व्यर्थ गया सरकारने कुछ भी सुनाई न की। आखिर तिलक विपन्नोंके क्लेश-निवारणार्थ स्वयं ही अग्रसर हुए। आपने पूनामें स्वल्पमूल्यमें खाद्यशस्य बेचने और अन्नवितरणकी व्यवस्था कर दी। इस समय यदि ऐसी व्यवस्था न होती, तो दंगा फसाद हुए बिना कभी न रहता। शोलापुर और नागरके जुलाहोंकी दुर्व्यवस्थाके विषयमें संवाद पाते ही आप वहांके लिए रवाना हो गए। आपने स्थानीय नेताओंसे परामर्श किया और सरकारी कर्मचारियोंके साथ मिल कर विपन्न नरनारियोंको सहायता पहुंचानेकी व्यवस्था कर दी। युक्तप्रदेशके दुर्भिक्षके समय वहांके तदानीन्तन छोटे लाट महोदयने जिस व्यवस्थाके अनुसार काम कर सुयश प्राप्त किया था, तिलक महाराजने शोलापुर प्रान्तके लिए भी वैसी ही व्यवस्था की थी। परन्तु तिलक महाराजके कार्य-कलापोंसे उस समय बम्बई-सरकारकी सहानुभूति न होनेके कारण, वह उस व्यवस्थाके अनुसार कार्य करनेको तैयार नहीं हुई। तिलकके अन्यान्य प्रस्ताव भी इसी तरह सरकारके द्वारा उपेक्षित हुए थे।

पूनामें प्लेग उपस्थित होते ही महाप्राण तिलकने वहां हिन्दू-प्लेग-अस्पतालकी स्थापना कर दी। इस अस्पतालके व्ययके लिए आपने आवश्यक अर्थ-संग्रह करनेमें भी यथेष्ट परिश्रम किया था। प्लेगके भयसे पूनाके प्रायः सभी नेता बाहर खसक दिए। यह देख तिलक दूने उत्साहसे कार्य करने लगे। प्लेगके रोगियोंकी सेवा आप उसी तरह करने लगे, जिस तरह एक योग्य स्वयं

सेवक करता है। इसके सिवा अस्पतालकी देख-रेख भी आप ही करते थे। प्लेगकी आशङ्कासे, जिन आदमियोंको शहरसे हटा कर छावनीमें रक्खा गया था। उनके लिए आपने अन्नसत्र खोल दिया। प्रजा सरकारकी व्यवस्थासे कष्ट पा रही थी, इसके लिए तिलक महाराजने बहुत लिखा-पढ़ी की और उच्च कर्मचारियोंके साथ जा कर मिले। किन्तु आपने अपने दोनों संवादपत्रोंमें प्लेग-दमनकी सरकारी व्यवस्थाका संपूर्ण समर्थन किया था।

१८९७ ई०, ता० १५ जूनको "केशरी"में शिवाजी-उत्सवका एक विवरण प्रकाशित हुआ। उत्सव १३ जूनको हुआ था। इस साल प्लेगके कारण शिवाजीके जन्मदिनको यह उत्सव न हो पाया था; मुकुटोत्सवके दिन हुआ था। अबकी बार इस उत्सवमें उपदेश, व्याख्यान, पुराण-पाठ आदि अनेक प्रकारकी व्यवस्था हुई थी। इस उत्सवमें एक स्तोत्र पढ़ा गया था; तिलक महाराजने उसे "केशरी'में छाप दिया। २२ जूनको मि० रैण्ड और लेफ्टिनैण्ट एयार्स गुप्त घातकके अस्त्रसे मारे गये। "शिवाजी-उत्सव' शीर्षक लेखसे इस हत्याका सम्बन्ध है, इस सन्देह पर सरकारने तिलक महाराजको गिरफ्तार कर लिया। हाई-कोर्टमें तिलकके नाम राजद्रोहका ममला चला। बम्बई गवर्मेण्टने ता० २६ जूनको तिलक-की गिरफ़ारीका हुक्म निकाला। २७ तारीखको तिलक गिरफ़ार हुए। आखिर ता० २ अगस्तको जब ममला हाई-कोर्टमें आया, तब वहांके विचारपति बदरुद्दीन तयाबजीने आपको जमीन पर छोड़ दिया। ता० ८ सेप्टेम्बरको मुकदमा दायर हुआ और एक सप्ताह तक उसकी सुनवाई हुई। कलकत्तेसे बैरिष्टर प्यू० तिलकके पक्षका समर्थन करनेके लिये बम्बई गये; मि० गार्थ प्यू०की सहायताके लिए उपस्थित थे। माननीय विचारपति मि० ष्ट्राटीने इस मुकदमाका फैसला किया। नौ जूरियोंमेंसे ६ यूरोपियनोंने तिलकको दोषी ठहराया और ३ हिन्दुस्तानियोंने उन्हें निर्दोष बतलाया। परिणाम यह हुआ कि तिलक महाराजको १॥ वर्ष सश्रम कारादण्डका आदेश दिया गया। 'फूल-बेञ्च'की प्रार्थना की, पर वह व्यर्थ हुई। आखिर प्रिविकौन्सिलमें अपील की गई। विलायतमें मि० आस कुइथने तिलकके पक्षका समर्थन किया। मन्त्रि-सभाके अन्यतम सदस्य लार्ड हैल्सबेरीने प्रिविकौन्सिलमें (१८९७ ई०के नवेम्बर मासमें) तिलकके मुकद्दमेका विचार किया। मि० आस कुइथने बम्बईके जूरियोंकी भ्रान्त धारणा और ष्ट्राटीके विचारके विषयमें बहुत कुछ समझाया, पर कुछ फल न हुआ। अन्तमें अध्यापक मोक्समूलर और विलियम हण्टरने तिलककी अपूर्व विद्यावत्ताका उल्लेख कर महारानी विक्टोरियासे दयाके लिए प्रार्थना की। तिलकको भी यह प्रतिश्रुति देनी पड़ी कि 'कभी भी सरकारके विरुद्ध असन्तोष-उत्पादक वक्तृता न दूंगा और न लिखूंगा।' तारीख ६ सेप्टेम्बर (१८९८ ई०)-को तिलक छूट गये।

कारागारमें तिलकका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था, इसलिए जेलसे छूटनेके बाद छ महीने तक वे स्वास्थ्योन्नतिकी कोशिशमें रहे। पहले कुछ दिन सिंहगढ़के स्वास्थ्य निवासमें रहे, फिर दिसम्बर महीनेमें मन्द्राजकी कांग्रेसमें शामिल हुए। मंद्राजसे आपने सिंहल भ्रमणके लिए यात्रा की।

कारागारमें रहते समय आपको जितना भी अवकाश मिलता था, उतना समय आप ग्रन्थ लिखनेमें व्यय करते थे। आपका 'उत्तरमेरुमें वैदिक निवास" नामक ग्रन्थ इसी समयका लिखा हुआ है। इस ग्रन्थमें आपने नाना युक्तियां द्वारा यह प्रमाणित किया है, कि प्राचीन आर्योंका वैदिक निवास उत्तर मेरुमें था। इसकी भूमिकामें आपने लिखा है, कि 'इस पुस्तकके लिखनेमें मैंने दश वर्ष समय व्यतीत किया है।'

तिलक प्रारम्भसे ही दारिद्र्यके साथ युद्ध करते आये थे। इस लिए वे कभी किसीके सामने हाथ न पसारते थे। जब आपको भीषण राजद्रोहके मामलेमें फंसना पड़ा, उस समय भी आपने किसीका मुंह नहीं ताका। आपने कानूनका एक कालेज खोला था और लातूरमें आपका कारखाना भी था; उसीकी आमदनीसे आपके परिवारका खर्च चलता था। आपके जेल चले जाने पर आपका आईन-कालेज प्लेगकी गड़बड़ीमें बन्द हो गया और लातूरके कारखानेमें प्रबन्धककी असावधानीसे नुकसान हो गया। जिस समय तिलक "केशरी"के मालिक हुए थे, उस समय उसके कुल ४००० ग्राहक

थे, किन्तु अब उसकी ग्राहक संख्या काफी बढ़ने लगी। राजद्रोहके मुकदमाके समय इसके सात हजार ग्राहक हो गये। जेलसे लौट कर आपने "केशरी"का पहलेका कर्ज सब चुका दिया। आईन-कालेजके बन्द हो जाने तथा कारखानेमें नुकसान पड़ जानेसे अब आपके अर्थागमका उपाय सिर्फ "केशरी" ही रह गया। इसलिए आपको "केशरी"के लिए और भी अधिक परिश्रम करना पड़ा।

श्रीबाबा महाराज नामक एक सरदार तिलकके मित्र थे। उनका भी वासस्थान पूना था। श्रीबाबा महाराजकी स्त्रीका नाम था ताई महाराज। मरते समय उन्होंने एक 'इच्छापत्र' लिखा, जिसमें तिलकको वे अपनी सम्पत्तिके परिचालक नियुक्त कर गये। यह घटना तिलकके हाजतसे छुटनेके बाद ही हुई थी। श्रीबाबाका कुछ ऋण भी था, तिलक महाराजने ऋण चुका दिया और विशेष शृङ्खलाके साथ उनकी सम्पत्तिका रक्षणावेक्षण करते रहे। श्रीबाबाके कोई पुत्र न था, इसलिए आपने ताई महाराजको दत्तकपुत्र ग्रहण करनेका परामर्श दिया। ताई महाराजने अपनी इच्छानुसार एक बालकको पुत्ररूपमें ग्रहण कर लिया। तिलककी सुव्यवस्थासे औरोंके स्वार्थमें बाधा पड़ी। आखिर स्वार्थी लोग ताई महाराजको कुपरामर्श दे कर बहकाने लगे। ताई महाराज भी बातोंमें आ गईं। उन्होंने पवित्रहृदय तिलक महाराज पर जाल, प्रवञ्चना, सम्मति न होने पर भी दत्तक-ग्रहण करना आदि दफा सातमें नालिश कर दी। १९०१से १९०४ई० तक, चार वर्ष मामला चला। छोटी अदालतने तिलकको दोषी ठहरा कर १॥ वर्षकी सजाका हुक्म दिया। सेशनमें अपील की गई। जजने दण्ड घटा कर ६ महीनेकी सजाका हुक्म दिया। फिर हाई कोर्टमें अपील हुई और खलास हो गये। जजने स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कर दिया कि मि० तिलकने किसी प्रकारकी भी प्रवञ्चना नहीं की, जालका अभियोग मिथ्या है। इसके बाद आपने ताई महाराजकी सम्पत्तिके तत्त्वावधायकका पद छोड़ दिया।

इसके दूसरे वर्ष तिलक महाराजका ध्यान अपनी सम्पत्ति पर गया। आप अपने दो संवादपत्रों और प्रेसके इन्तजाममें लग गये। इस समय "केशरी"की ग्राहक-संख्या बहुत ही बढ़ गई थी। इसलिए आपको प्रेसके लिए एक अच्छी मशीनकी जरूरत पड़ी। महाराज गायकवाड़ने आपको स्वल्पमूल्यमें पूनाका 'गायकवाड़-बाड़ा' बेच दिया। उस जमीन पर आपने प्रेसके लिए मकान बनवाया। तिलक महाराजने मुद्रण-यन्त्रकी उन्नतिके लिए अपनी असामान्य प्रतिभा नियोजित कर वहां भी एक अद्भुत कार्य कर डाला। लीनो-यन्त्रमें काम आवे ऐसा मराठी टाइप बनाया जा सकता है या नहीं, आप इस विषयकी चिन्ता करने लगे। आपने लीनो-यन्त्रके लिए जैसे मराठी टाइप बनानेकी कल्पना की थी, उसका विलायतवालोंने अनुमोदन किया। परन्तु वैसे हरूफोंके साथ लीनो-यन्त्रके मंगानेमें बाधा पड़ गई, विलायतके कारखाने उस तरहकी सिर्फ एक ही मशीन ढाल कर भेजना स्वीकार नहीं किया।

समग्र भारतमें, एकता स्थापनके उद्देशसे एक ही लिपिके प्रचारके लिए तिलक महाराजने यथेष्ट प्रयास किया था। १९०५ ई०में "एकलिपि-विस्तार-समिति" के अधिवेशनमें बाबू रमेशचन्द्र दत्त महाशय सभापति हुए थे, जिसमें तिलक महाराजने भारतके सर्वत्र नागरी अक्षरके प्रचलन पर जोर दिया था और नाना युक्तियों द्वारा उसे उपयोगी बतलाया था। वास्तवमें देखा जाय तो एक लिपि हुए बिना सम्पूर्ण जातियोंमें एकताका होना असम्भव है।

तिलक धार्मिक और सामाजिक उन्नतिके परिपन्थी न थे। १९०६ ई०में आपने काशीमें हिन्दूसमाजके संस्कारके विषयमें जैसा मत दिया था, उससे ऐसा ही प्रतीत होता है। आपने कहा था, कि वैदिक युगमें भारतका बाहरकी किसी भी समाज वा जातिसे संस्पर्श न था; भारतके अधिवासी उस समय परस्पर एक दूसरेके साथ घनिष्ठ संबन्धसे संबद्ध थे और सबकी मात्र एक ही विराट् जाति थी। भारतके नेताओंका कर्तव्य है कि उस एकताकी पुनः प्रतिष्ठा करें। काशीके हिन्दू जैसे हैं, बम्बई, मन्द्राजके हिन्दू भी ठीक वैसे ही हैं। विभिन्न देशवासी हिन्दुओंकी भाषा और पहनावेमें अन्तर हो सकता है, पर जिस अनुप्राणनासे वे अनुप्राणित

है वह एक ही है। अतएव विभिन्न देशके हिन्दुओंका एकताके सूत्रमें आवद्ध होना आवश्यक है।

लोकमान्य तिलक, कांग्रेसके प्रायः प्रारम्भसे ही, उससे संश्लिष्ट थे। कांग्रेसके काममें आप प्रतिवर्ष उसका साथ देते थे। १८८५ ई०की अाउल-कांग्रेसकी विषय निर्वाचिनसमितिके सभ्योंमें आपका नाम चुना गया था इसी वर्ष आपने व्यवस्थापक सभा-सम्बन्धी प्रस्तावका समर्थन किया था। नागपुरकी सप्तम कांग्रेसमें आपने आईन-अस्त्रके संबन्धमें प्रस्ताव उठाया था, लाहोरकी नवम कांग्रेसमें चिरस्थायी बन्दोबस्त संबन्धी प्रस्तावका समर्थन किया था, पूनाकी ग्यारहवीं कांग्रेसमें प्रजा-स्वत्व संबन्धीय प्रस्तावके आप अन्यतम वक्ता थे और कलकत्तेकी बारहवीं कांग्रेसमें आपने प्रादेशिक गवर्मेण्टोंकी राजस्वके विषयमें अधिक जिम्मेवारी और स्वाधीनता देनेका प्रस्ताव किया था। सोलहवीं कांग्रेसमें भी तिलकने जन-साधारणके एक प्रस्तावका समर्थन किया था। कलकत्तेकी सत्रहवीं कांग्रेसमें शिक्षा संबन्धकोई प्रस्ताव पेश हुआ था, जिस पर आपने एक बड़ी वक्तृता दी थी। इंग्लैण्डमें प्रतिनिधि भेजनेके विषयमें स्वर्गीय सर वेडरबर्नने जो प्रस्ताव पेश किया था, तिलक महाराजने उसका समर्थन किया था। कहनेका तात्पर्य यह है कि राजनीतिक आन्दोलनमें आपका खूब उत्साह और विश्वास था। आप प्रायः यह कहा करते थे कि "हमारे कार्याकार्यके विचारकर्त्ता इंग्लैण्डमें हैं।" आप ब्रिटिश प्रजातन्त्रकी ओर इशारा करते थे। ब्रिटिश प्रजा-साधारण पर आपकी श्रद्धा थी। १९०५ ई०में जब काशीमें कांग्रेस हुई थी; उस समय तिलक महाराजकी विशेषरूपसे अभ्यर्थना की गई थी इस कांग्रेसमें आपने दुर्भिक्ष, दारिद्र्य और भारतकी अर्थनीति अवस्थाके विषयमें अनुसन्धान तथा सेटलमेण्टके बारेमें एक प्रस्ताव उपस्थित किया था। १९०६ ई०में कलकत्तेकी कांग्रेसमें स्वर्गीय पं० आनन्दचालूने स्वदेशी आन्दोलनके विषयमें जो प्रस्ताव किया था, उसके आप समर्थक थे।

परन्तु भारतकी राजनीति-क्षेत्रकी शान्ति अब नष्ट हो गई। विधि-सङ्गत राजनीतिक आन्दोलन पर जो भारतवासियोंकी श्रद्धा थी, लार्ड कर्जनने उसके मूल पर कुठाराघात किया। लार्ड कर्जनके बङ्ग भङ्गके बाद भारतवासियोंने जैसा भारत इतिहासमें अभूतपूर्व आन्दोलन उठाया, उधर नौकरशाहीने भी वैसे ही कठोरतम शासनसे देशको विभीषिकामय कर दिया। साधारणमें सभा-समितियोंका होना बन्द कर दिया, देशके गण्यमान्य जन-नायकोंको बिना विचारके निर्वासित किया गया, बहुतोंको फाँसी पर भी लटकाया गया। जो लोग कभी राजनीतिक आन्दोलनकी छायामें भी न जाते थे, वे भी इस धड़-पकड़से घबड़ा उठे। इस विभीषिका-सृष्टिका परिणाम यह हुआ कि भारतके कुछ व्यक्तियोंने पुरानी "आवेदन-निवेदन"की प्रथा सर्वथा त्याग दी। राजनीतिक युद्धक्षेत्रमें वे दृढ़तर और प्रबल अस्त्र-प्रयोगके पक्षपाती हो गये। एक एक करके बहुतोंने पुरानी रिवाजका मुंह काला किया। भारतके इन नव-गठित "चरम-पन्थियों"में भी विभिन्न दलोंकी सृष्टि हुई। इस दलबन्दीके कारण सूरतकी कांग्रेसमें विच्छेद हो गया। भारतके इस राजनीतिक विच्छेदके घोर सङ्कटके समयमें लोकमान्य तिलकने "चरमपन्थियों"का नेतृत्वपद ग्रहण किया।

लोकमान्य तिलकने अपने राजनीतिक मतवादकी निम्नलिखित रूपसे व्याख्या की,—"हमारे इस राजनीतिक सम्प्रदायको जो 'चरम पन्थी'की आख्या प्राप्त हुई है, वह उसके उद्देश्यकी विशिष्टताके लिए नहीं, बल्कि कर्म पन्थाके वैशिष्ट्यके कारण मिली है। भारतमें अभी ब्रिटिश-शासनका उच्छेद करना चाहते हों वा ब्रिटिश-शासनसे किसी तरहका सम्बन्ध नहीं रखना चाहते हों, ऐसे राजनीतिक मतके समर्थक वा पोषक भारतमें बहुत कम ही हैं। उनके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है—वह सुदूर भविष्यकी बात है। हम लोगोंमें किसी तरहकी शृङ्खला नहीं है, सम्पूर्ण निरस्त्र हैं, गृह-विच्छेदके कारण दुर्बल हैं, भला हम कैसे ब्रिटिश-आधिपत्यसे छुटकारा पा सकते हैं? ये सब बातें सुदूर भविष्यके लिए छोड़ देना ही हमारे लिए सङ्गत और उचित है। वर्तमानमें, हमारे देशका शासन-भार क्रमशः अधिकतर हमारे ही हाथमें आवे, यही हमारा उद्देश्य है। हमारी यह भविष्यकी आशा है,—

भारतके विभिन्न प्रदेश सम्मिलित हो कर एक युक्त-राज्यका सङ्गठन करेंगे तथा ब्रिटिश औपनिवेशिक स्वायत्त-शासनके द्वारा, देश-देशवासियोंके द्वारा और भारतके प्रधान केन्द्रीय गवर्मेण्ट इंग्लैण्डमें रह कर निखिल भारत सम्बन्धी समस्याओंका समाधान करेगा। स्वायत्त-शासनकी व्यवस्थासे प्रादेशिक गवर्मेण्टोंमें भी सुव्यवस्थाकी आकांक्षाका हम पोषण करते हैं। परन्तु ये भी बहुत दूरकी बातें हैं, अबसे शुरू होने पर बहुत दिनों बाद सम्भव पर हो सकती हैं। फिलहाल हम अपनी कार्य-पद्धतिके जरिये नौकरशाहीको समझाना चाहते हैं, कि उनकी सभी कार्य-पद्धति अच्छी हों, ऐसा नहीं। सम्प्रति हमारे ब्रिटिश-कर्मचारियोंकी गतिविधि बहुत ही बिगड़ गई है।………किस प्रकारसे हम नौकरशाहीको सचेत कर सकते हैं, यही हमारी वर्तमान समस्या है। इस नौकरशाहीमें हमारे प्रतिनिधि स्थानीय व्यक्ति उतने नहीं हैं, निम्नपदों पर अधिकार करनेके सिवा हमारा नौकरशाहीके साथ और कोई सम्बन्ध नहीं हो पाया है। यहीं पर 'माडरेटों'के साथ हमारे मतका पार्थक्य है। 'माडरेट'-गण अब भी यह आशा रखते हैं, कि हम इंग्लैण्डमें प्रतिनिधि भेज कर अंग्रेज जन-साधारणकी मतिगतिमें परिवर्तन ला सकते हैं। इस देशमें जितने भी अंग्रेज हैं, उनके मति-परिवर्तनकी आशा तो दोनों ही दलोंने, बहुत दिन हुए छोड़ दी है। 'माडरेट' गण इंग्लैण्डके लोगोंसे अब भी आशा रखते हैं; पर 'चरमपन्थी' गण ऐसी आशा नहीं रखते।

………हमारा आदर्श है, 'आत्म-निर्भरता'—भिक्षावृत्तिका तिरोधान।

'साधारण स्वदेशी-आन्दोलनके सिवा बायकाट और निष्क्रिय प्रतिकूलता भी हमारे अस्त्र हैं। हम बायकाटके लिए किसी पर बल-प्रयोग करनेके पक्षपाती नहीं हैं। हम किसीको विलायती चीजें खरीदनेके लिए मना नहीं करते और न दूकानदारके दरवाजे पर जा कर धन्ना देनेकी ही सलाह देते हैं। और निष्क्रिय प्रतिकूलतामें भी हम सिर्फ 'राजद्रोहसभा-निषेध'की आईन जैसी व्यवस्थाकी उपेक्षा करेंगे। हमारे भाग्यमें जो कुछ है, होने दो; उसके लिए हम चिन्तित नहीं हैं। हम भारतवासी जन-साधारणके महान् उद्देश्यकी सिद्धि के लिए व्रती हुए हैं। नौकरशाही यदि हमारे ३।४ हजार भाइयोंको एक साथ कैद कर ले, तो भी विव्रत होनेके सिवा उन्हें कोई सुफल नहीं प्राप्त हो सकता। व्यवसायक्षेत्रमें असुविधाकी सृष्टि कर एवं सरकार वा नौकरशाहीके विरोधी हो कर हम इंग्लैण्ड की दृष्टि आकर्षित करना चाहते हैं। रेल चला कर, शिक्षाकी व्यवस्था कर और सरकारी कार्यमें एक मात्र अंग्रेजी भाषाका व्यवहार कर इंग्लैण्ड और भारतका एकताके आदर्शकी परिपुष्टि तो की है, पर यह सब कुछ उन्होंने अपनी इच्छासे नहीं किया। ब्रिटिश-आधिपत्यके प्रबल प्रतापसे भारतवासी अपने ही आप ही एकताके सूत्रमें आबद्ध होना सीख रहे हैं। किन्तु इस एकताकी परिपुष्टि कई पीढ़ियोंके बाद हो सकती है। अतएव हमें अभीसे ही अपने उद्देश्यकी पुष्टिके लिए सम्मुखीन होना चाहिए; हमको दूसरे मार्ग पर न चल कर पहले इसी मार्ग पर चलना उचित है।"

लोकमान्य तिलक महाराजने एक जगह कहा है—"हमारा यह विद्रोह सम्पूर्णभावसे बिना रक्त-पातके ही होना चाहिये। किसीको भी ऐसा न समझ लेना चाहिये कि रक्त-पात न होगा, इस कारण लोगोंको दुःख कष्ट भी न होगा, कष्टोंका सामना तो हर हालतमें करना पड़ेगा। बिना रक्त-पातके ही हमें जिन कष्टोंको भोगना पड़ेगा, वे सामान्य नहीं हैं। यह बात निश्चित है कि यदि हम दुःख-कष्ट सहनेके लिये तैयार नहीं हैं, तो हमारे द्वारा किसी भी उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो सकती।"

सूरत-कांग्रेसके विच्छेदके बाद भारतके राजनीतिक क्षेत्रमें और भी भीषण घटनाएं होने लगीं। सरकारने अपनी दमननीतिकी कठोरताका किञ्चिन्मात्र ही ह्रास नहीं किया। परिणाम यह निकला कि बङ्गालमें विद्रोह उपस्थित हो गया। मजफ्फरपुरमें बम फटा। जिसे मारना चाहते थे उसे तो मारा नहीं, आततायियोंने दो अङ्गरेज रमणियोंको मार डाला। बम फेंकनेके बारेमें संवादपत्रोंमें आलोचना होने लगी। 'केशरी' में भी इसके प्रतीकारके विषयमें कई धारावाहिक लेख प्रकाशित हुए। इन लेखोंमें देशकी तदानीन्तन अवस्थाका

स्पष्ट भाषामें वर्णन किया गया था और बतलाया गया था कि “बम फेंकनेका कार्य अत्यन्त गर्हित है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु सरकारी दमननीति और अन्यान्य व्यवस्थाके दोषसे ही ऐसा हुआ है। अब यदि इस अत्याहितके लिये फिरसे कठोरतर दमननीतिकी व्यवस्था की गई, तो उसका फल यह होगा कि देशमें विद्रोहका विस्तार होने लगेगा। विद्रोह निवारणका उपाय यही है, कि देशके आदमियों पर सहानुभूति-पूर्ण हृदयसे उनके लिये नाना विषयोंमें सुव्यवस्था कर देना। इस परसे गवर्मेण्टने प्रमाणित किया कि ‘केशरी’ के लेखोंमें कौशलसे बमके व्यवहारका समर्थन किया गया है और उसके लिए लोगोंको उत्तेजना दी गई है। तिलक महाराज ही केशरी के सम्पादक हैं, ऐसा सरकारको मालूम था। अतएव उनके प्रेस और सिंहगढ़के स्वास्थ्य-निवासमें खानातलाशी हुई। तलाशीमें एक पोष्ट-कार्ड निकला, जिसमें विस्फोटकको दो पुस्तकोंका नाम लिखे थे। तिलक महाराज गिरफ़तार हो गए। सरकारने उन्हें जमानत पर भी नहीं छोड़ा। आप पर दो अभियोग लगाए गए। १३ जुलाईको हाई-कोर्टमें मुकदमा शुरू हुआ; स्पेशल जुरीमें सात अङ्गरेज और दो पारसी चुने गये। ‘केशरी’के जिन लेखोंके लिए तिलक गिरफ्तार हुए थे, वे सब मराठी भाषामें लिखे हुए थे। जज और जूरियोंमें कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो मराठी भाषा जानता हो। तिलकने अपने पक्ष समर्थनके लिए वक्तृता दी। मुकदमाके तीसरे दिन चार बजेसे आपकी वक्तृता शुरू हुई थी, परवर्ती बुधवारको (मुकदमाके आठवें दिन) दोपहरके वख्त वह खतम हुई। अपना पक्ष-समर्थन करते समय आपने व्यवहार-शास्त्रमें अपनी विशेष दक्षताका परिचय दिया था। एडभोकेट जनरलने तिलककी वक्तृताका उत्तर देते समय कुछ व्यङ्ग किया था; उनकी वक्तृता उसी दिन शामको समाप्त हो गई। जजने कहा -‘हम रात तक मुकदमा करेंगे और आज ही इस मामलेको खतम कर देंगे।” विचारपति मि० दाबरने जूरियोंको मामला समझाते समय तिलकके विरुद्ध वक्तृता दी। रातके आठ बजे जूरी लोग आपसमें सलाह करनेके लिए इजलाससे उठ कर दूसरे कमरेमें चले गये। ९।१० बजेके समय जूरी लोग इजलासमें आये। सात जूरियोंने तिलकको दोषी ठहराया और दोने निर्दोष। जजने अधिकांश जूरियोंके मतानुसार तिलकको अपराधी ठहराया और उन्हें छः वर्षके लिए द्वीपान्तर-वास तथा एक हजार रुपये जुर्मानाका हुक्म सुनाया। दण्ड देते समय तिलक महाराजके लिए जजने कहा था---‘आपमें असामान्य प्रतिभा है, असीम शक्ति है और जन-समाज पर आपका यथेष्ट प्रभाव है। इस प्रतिभाको यदि आप अपने देशके हितके लिए नियोजित करते, तो आज जिस जन-समाजके लिए आप चिन्तित हैं, उसके सुख-सन्तोषमें कारण हो सकते थे। राजनीतिक आन्दोलनमें बमका व्यवहार विधि-सङ्गत उपाय है, यह बात विकृत-मस्तक और उन्मार्गगामीके सिवा और कोई भी नहीं कह सकता; और तो क्या, इसकी चिन्ता भी नहीं कर सकता। और आपने जो लेख लिखे हैं, वे विविध सङ्गत हैं, यह बात भी विकृतमस्तकके सिवा और कोई नहीं कह सकता। आप जैसे अवस्थापन्न और उच्चपदस्थ व्यक्तिको कैसा दण्ड देनेसे आईन और विचारका उद्देश्य सिद्ध हो सकता है, उसीकी मैं चिन्ता कर रहा हूं। आपकी वयस और अन्यान्य पारिपार्श्विक अवस्थाका विचार करते हुए मैं विवेचना-पूर्वक स्थिर करता हूं कि देशकी शान्ति और शृङ्खलाकी रक्षाके लिए तथा जिस देशकी सेवाके लिए आपने आत्म-नियोग किया है, उस देशके मङ्गलार्थ अब आपको कुछ दिनोंके लिए उस देशसे दूर रखना ही विशेष वाञ्छनीय है।’

विचारपतिके इस मन्तव्य-पाठसे तिलक महाराजने अपना अपमान समझा। मि० दाबरने जब तिलकको अपना शेष वक्तव्य कहनेके लिए कहा, तब आप कठघरेमेंसे जलदगम्भीर-स्वर और मर्मस्पर्शी भाषामें बोल उठे—“मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं कि जूरियोंके द्वारा अपराधी ठहराये जाने पर भी, मैं निरापराध हूं। एक महाशक्ति जगत्के भाग्यका नियन्त्रण किया करती है; भगवान्की इच्छा शायद ऐसी ही है, कि मैंने जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए आत्म-नियोग किया था, मेरे स्वाधीन रहनेकी अपेक्षा मेरे दुःख कष्ट सहनेसे ही उसमें अधिक सफलता प्राप्त होगी।”

लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक।

तिलक महाराजके इस दण्डके प्रतिवाद करनेके लिए महाराष्ट्र प्रदेशमें प्रबल आन्दोलन और उत्तेजना फैल गई। मध्यवित्त व्यक्तियोंने एक सप्ताह तक कोई काम-काज ही नहीं किया। देशी और विदेशी प्रायः सभी संवादपत्रोंमें इस दण्डाज्ञाके विरुद्ध प्रतिवाद-प्रकाशित हुआ था। जनता तिलकके लिए इतनी क्षुब्ध हो गई कि शहरमें जहां-तहां दङ्गा-फिसाद होने लगा। इसके दमनके लिए शहरमें सेना लाई गई; जिनकी गोलियोंसे १५ आदमी मर गये और १८ घायल हुए। मध्यवित्त शिक्षित समाजने भी एक सप्ताहके लिये अपना व्यापार बन्द रक्खा था।

दण्डाज्ञाके अनुसार तिलक महाराज शीघ्र ही बम्बई-से अहमदाबाद भेजे गये। परन्तु मालूम नहीं, सरकारने क्या सोच कर, उन्हें आन्दामन नहीं भेजा। छः वर्ष तक आप मन्दालयमें ही रक्खे गये। अहमदाबाद पहुंचते ही सरकारने जुर्मानेके एक हजार रुपये माफ कर दिये थे। आपके आत्मीय बन्धु जब हाई-कोर्टमें बार बार आवेदन दे कर व्यर्थमनोरथ हो गये, तब प्रिविकौन्सिलमें अपील करनेके लिये मि० खापर्डे को विलायत भेजा। परन्तु प्रिविकौंसिलका विचार भी भारत गवर्मेण्टके परामर्शानुसार होता है, इसलिए उससे भी कोई सुफल नहीं हुआ।

मन्दालयमें निर्वासनके समय तिलक महाराजने अपने प्रिय-ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' की आलोचना

करना प्रारम्भ कर दिया। गीताकी आलोचनामें आप निर्वासनकी निर्ज़नताको बिलकुल भूल गये और साथ ही आपका सामयिक अवसाद भी दूर हो गया। परन्तु हाय! इसी समय आपकी कर्म-क्लेशमय जीवनकी चिरसङ्गिनी, सहधर्मिणीका देहान्त हो गया, जिससे आप अत्यन्त व्यथित हुए। आप विद्वान् थे, शीघ्र ही दर्शन और धर्म-सम्बन्धीय आलोचनामें मन लगा कर आपने कुछ शान्ति प्राप्त की। आपने बहुत आलोचना करनेके बाद मौलिक गवेषणा-पूर्वक 'गीता-रहस्य' नामक एक विशाल ग्रन्थकी रचना की। निर्वासन-स्थानसे लौट कर आपने यह ग्रन्थ प्रकाशित किया, जिससे देशमें एक नव-जागरणकी आवाज गूँज उठी। तिलककी असामान्य विद्वत्ता, गभीर अनुभूति और हिन्दू-शास्त्रकी मर्यादा इस 'गीता-रहस्य'से ही प्रकट हो जाती है।

१९१४ ई०में तिलक मुक्ति पाकर अपने देशमें आये। आपने एक पत्रमें अपनी अहिंस-राजनीतिक मतवाद प्रकट किया कि—"गवर्मेण्ट धीरे धीरे भारतकी उन्नतिके लिये प्रयत्न कर रही है, अतएव इंगलैण्डके इस दुःसमयमें प्रत्येक भारतवासीको सहायता देनी चाहिए।" इतने पर भी, पूना पहुँचते ही सरकारने आप पर तीक्ष्ण दृष्टि रखनेकी व्यवस्था की थी।

सन् १९१५ की कांग्रेसमें तिलक महाराजने नरम और गरम दलका विरोध मिटा दिया। आपके उद्योगसे १९१६ ई०के सेप्टेम्बर मासमें, पूनामें "होमरूल लीग" नामकी एक सभा स्थापित हुई। एक बार आपने लखनऊकी कांग्रेसमें स्वायत्त-शासनके सम्बन्धमें वक्तृता दी थी और अपना मन्तव्य प्रकट किया था। ६१ वीं वर्षगाँठमें लोगोंने आपको १ लाख रुपयेकी थैली भेंटमें दी थी।

१९१७ ई०में मण्टेगू साहब जब भारतवर्षमें नवीन शासन-प्रथा प्रवर्तन करने आये, तब तिलक महाराजने 'होमरूल लीग'की तरफसे उनके साथ मुलाकात की थी। आपने विलायतकी ब्रिटिश जनताको भारतकी अवस्थाका परिज्ञान करानेके लिए विलायत जानेकी इच्छा प्रकट की, किन्तु गवर्नमेण्टने इन्हें वहां जानेकी आज्ञा न दी। १७१८ ई०में 'इम्पीरियल वार कानफरेन्स'ने पहले तिलक महाराजको निमन्त्रण नहीं दिया था, किन्तु पीछे जन-साधारणके आन्दोलनसे आप निमन्त्रित हुए थे। तिलकने वहां राजभक्ति-प्रकाशक प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा था—"जब तक देशमें स्वायत्त शासनकी व्यवस्थाका विरोध करनेवाला कानून रहेगा, तब तक कोई भी हृदयसे राजभक्ति नहीं दिखा सकता।" लाट साहबने तिलककी वक्तृता देनेसे रोका, इस पर तिलक और उनके बन्धु-बान्धवोंने अपना अपमान समझा और उसी समय सब सभासे उठ कर चले आये। वास्तवमें तिलक राजभक्ति दिखानेके विरोधी न थे। दूसरी सभामें उन्होंने स्वयं इस बातको भली भांति समझा दिया था। लाट साहबके उक्त व्यवहारके विरुद्ध बम्बईमें एक सभा हुई। तिलकने उसमें कहा कि "यदि सरकार भारतवासियोंको सैन्य-विभागमें ग्रहण करे, तो मैं इसी समय पांच हजार सेना इकट्ठी करके दे सकता हूं।" परन्तु गवर्नमेण्टने आपकी यह स्वतःप्रणोदित सहायता ग्रहण करनेमें शायद अपना अपमान समझा।

नवीन शासन-संस्कारका कानून जब छप कर प्रकाशित हुआ तब तिलकने उस पर असन्तोष प्रकट किया था।

सर वेलेण्टाइन चिरोलने अपनी "भारतमें अशान्ति" नामक पुस्तकमें तिलकके विरुद्ध बहुतसी झूठी बातें लिख मारी थीं। इसलिए चिरोल पर मुकदमा चलानेके लिए १८१८ ई०में आप विलायत गये। वहां मुकदमा करके आप कृतकार्य न हुए। आपने विलायतके श्रमजीवी सम्प्रदायकी दृष्टि भारतकी शासनप्रथाकी ओर आकर्षित की थी। विलायतमें आप ब्राह्मणके हाथकी रसोई जीमते थे।

भारत लौट कर १९१९ ई०में आप अमृतसरकी कांग्रेसमें शामिल हुए और उसकी प्रबन्धकारिणी समितिको आपने अपने आदर्शमें अनुप्राणित किया। इस बार कांग्रेसका कार्य सिर्फ आप ही के मतानुसार चला था।

१९२० ई०के जुलाई मासमें तिलक महाराजको बीमारीने घेर लिया। सुयोग्य चिकित्सकोंके बहुत परिश्रम करने पर भी आपको पुनः स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हुआ।

अन्तमें ३१ जुलाई, शनिवार रात्रिको १२ बजके ४० मिनट पर आप सर्वदाके लिए धराधाम त्याग कर स्वर्ग सिधारे। दूसरे दिन महात्मा मोहनदास करमचन्द गान्धी, खापर्डे, मुनजो, देशपाण्डे, कारन्दिकर, शौकतअली, छोटानी, बैपटिष्टा आदि हिन्दू-मुसलमान नेतागण विषस हृदयसे अपने सम्मानित सहयोगीको अन्तिम क्रिया सम्पादनके लिए पैदल अरथीके साथ गये थे। भारतके सर्वत्र ही इस महापुरुषके लिए शोकप्रकाश किया गया था।

तिलक वास्तवमें भारतमाताके ललाटके उज्ज्वल तिलक थे। आपके चरित्रसे हमें असाधारण दृढ़ता, आत्यन्तिक सरलता, अकृत्रिम देशभक्ति और समाजनिष्ठा की शिक्षा मिलती है। आपकी मृत्युसे जातीय-जीवनको जो क्षति हुई है, सहजमें उसकी पूर्ति न हो सकती।

तिलकक (सं॰ पु॰) काश्मीरके एक राजाका नाम। (राजतर॰ ८।८६८)

तिलककामोद (सं॰ पु॰) एक रागिणीका नाम। यह कामोद और विचित्र अथवा कान्हड़ा कामोद और षड़ योगसे मिल कर बनी है।

तिलकट (सं॰ क्ली॰) तिलस्य रजः तिल-कटच्। तिलका चूर्ण।

तिलकत्वक् (सं॰ स्त्री॰) तिलका छिलका।

तिलकना (हिं॰ क्रि॰) ताल आदिकी मट्टीका सूख कर दरारके साथ फटना।

तिलकमुद्रा (सं॰ पु॰) चन्दन आदिका टीका और शङ्खचक्र आदिका छापा। इसे भक्त लोग लगाते हैं।

तिलकराज (सं॰ पु॰) काश्मीरके एक राजाका नाम। (राजतर॰ ७।३१४)

तिलकल्क (सं॰ पु॰) तिलस्य कल्कः ६-तत्। तिलकुट, तिलका चूर्ण।

तिलकल्कज (सं॰ त्रि॰) तिलकल्कात् आयते तिल कल्क, जन-ड। जो तिलके चूर्णसे उत्पन्न हो।

तिलकसिंह (सं॰ पु॰) काश्मीरके एक राजाका नाम। (राजतरं ८।१४३२)

तिलकहार (हिं॰ पु॰) वह मनुष्य जो कन्याकी ओरसे वरको तिलक चढ़ानेके लिये जाता है।

तिलका (सं॰ स्त्री॰) तिलस्तिल बीजकोष इव कायति तिल-कै-क टाप्। १ हारभेद, कण्ठमें पहननेका एक आभूषण। २ शरीरमें गन्धादि द्वारा तिल-पुष्पके आकार-का चिह्न। ३ छन्दोभेद, एक वृत्तका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें ६ अक्षर होते हैं।

तिलकालक (सं॰ पु॰) तिल इव कालकः कृष्णवर्णः। १ देहस्थित तिल, शरीर परका तिलके आकारका काला चिह्न, तिल। इसके संस्कृत पर्याय—तिलक, कालक, पिल्लु और जडुल। जिसका परिमाण तिलके समान तथा वर्ण काला होता और जिसकी वृद्धि नहीं होती और जो कष्टदायक नहीं होता, उसे तिलकालक कहते हैं। वात पित्त और कफकी अधिकता होनेसे यह तिल उत्पन्न होता है। २ रोगविशेष। इसका वर्ण काला अथवा विचित्रवर्ण विषाक्त होता है। इसमें पुरुषकी इन्द्रिय पक जाती है और उस पर काले काले दागसे पड़ जाते हैं और थोड़े दिनके बाद मांस गल कर गिरने लगता है। ३ तिलयुक्त व्यक्ति, वह मनुष्य जिसके तिल हो।

तिलकाश्रय (सं॰ पु॰) तिलकस्य आश्रयः ६-तत्। वह स्थान जहां तिलक लगाया जाता है, ललाट।

तिलकिट्ट (सं॰ क्ली॰) तिलस्य किट्टं ६-तत्। तिलमल, तिलकी खली।

तिलकित (सं॰ त्रि॰) तिलकोऽस्य सञ्जातः तारकादित्वादितच्। अङ्कित, छापा हुआ।

तिलकी (सं॰ त्रि॰ तिलकमस्त्यस्य तिलक इनि। तिलक युक्त, जो तिलक लगाता हो। तिलक धारण कर सब काम करना चाहिये।

तिलकुट (हिं॰ पु॰) कुटे हुए तिल जो खाँड़की चाशनी में पगे हों।

तिलकेश्वरतीर्थ (सं॰ क्ली॰) तिलकेश्वर नामका तीर्थ। शिवपुराणोक्त एक तीर्थका नाम।

तिलखलि (सं॰ स्त्री॰) तिलस्य खलिः ६-तत्। तिलकी खली।

तिलखा (हिं॰ पु॰) एक चिड़ियाका नाम।

तिलङ्ग—एक प्राचीन जनपद। स्कन्दपुराणके कुमारिका-खण्डमें इस जनपदका उल्लेख है। मालूम होता है कि यह त्रिकलिङ्ग शब्दका अपभ्रंश है। अभी यह तैलङ्ग नामसे मशहूर है। तेलंग देखो।

तिलचटा (हिं० पु०) एक प्रकारका झींगुर।

तिलचावली (हिं० स्त्री०) १ तिल और चावलकी खिचड़ी। (वि०) जो कुछ सफेद और कुछ काला हो।

तिलचित्रपत्रक (सं० पु०) तिलचित्राणि तिलवत् विचित्राणि पत्राणि यस्य बहुव्री० कप्। तैलकन्द।

तिलचूर्ण (सं० क्ली०) तिलस्य चूर्णं ६-तत्। चुर्णीकृत तिल, तिलकुट। पर्याय—तिलकल्क, पलल और पिष्टक है, इसका गुण रुच्य, पित्त, रक्त बल और पुष्टिदायक है।

तिलच्छक (सं० पु०) ईहामृग, कोक, भेड़िया।

तिलज (सं० क्ली०) तैल, तेल।

तिलजटा (सं० क्ली०) तिलमञ्जरी, तिलका मंजर।

तिलजा (सं० स्त्री०) तिलवासिनी धान्य एक प्रकारका धान जिसकी सुगन्ध तिल जैसी होती है।

तिलजूगा—उत्तरबिहारमें प्रवाहित एक नदी। यह नेपालकी तराईसे निकल भागलपुर जिला होती हुई तिलकेश्वर ग्रामके निकट दक्षिणपूर्वकी ओर घूमकर मुङ्गेरके फर्ड़किया परगनेमें प्रविष्ट हुई है। फिर बलहर नामक स्थानपर भागलपुर जिलेमें प्रवेश कर ठीक पूर्वकी ओर जा कर भोगावती ग्रामके निकट कोसी नदीमें गिरी है। इस नदीमें बारहो मास नाव आती जाती है। इससे कई एक शाखा नदी और खाल निकली है।

तिलछना (हिं० क्रि०) बेचैन होना, विकल रहना।

तिलड़ा (हिं० वि०) १ जिसमें तीन लड़े हों।
(हिं० पु०) २ पत्थर गढ़नेवालोंकी एक छेनी इससे वे टेढ़ी लकीर या लहरदार नक्काशी बनाते हैं।

तिलड़ी (हिं० स्त्री०) तीन लड़ोंकी एक माला। इसके बीचमें जुगनी लटकती है।

तिलतण्डुलक (सं० क्ली०) तिलस्य तण्डुल इव कायति कै-क। १ आलिङ्गन। (पु०) तिलस्य तण्डुलः, ६-तत्। २ निस्तुष तिल, बिना भूसीका तिल। ३ तिलमिश्रित तण्डुल, तिल मिला हुआ चावल।

तिलतेजा (सं० स्त्री०) तिल इव तेजयति चुरादि तिज-अच् टाप्। लताभेद, एक प्रकारकी बेल।

तिलतैल (सं० क्ली०) तिलस्य स्नेहः तिल-तैलच्। स्नेहे तैलच्। पा ५।२।२९ इति सूत्रस्य वार्त्तिकोक्त्या तैलच्। तिलतैल, तिलका तेल। सब प्रकारके तेलोंसे तिलका तेल प्रशस्त है।

इसके गुण—कषाय स्वादु, उष्ण, पित्तकृत्, वातनाशक, श्लेष्मावर्द्धक, मेधा, कण्डु, कुष्ठ और विकारनाशक, वृष्य और श्रमनाशक।

छिन्न, भिन्न, च्युत, घृष्ट, क्षत, भग्न, अग्निदाह, अभ्यङ्ग, विष, अङ्गावगाहन, पान, वस्तिक्रिया, नस्य, कर्णपूरण इन सब स्थानोंमें तिलका तेल विधेय है।
(हारीतस०)

तिलका तेल आग्नेय, उष्ण, तीक्ष्ण, मधुर, पुष्टिकर, तृप्तिकर, ग्राम्य-धर्ममें उत्तेजक, सूक्ष्म, विशद, गुरु, सारक, विकाशी, तेजस्कर, मेधा, शरीरकी कोमलता, और मांसकी दृढ़ करनेवाला, वर्णकर, बलकर, दृष्टिराहित्य, साधक, मूत्ररोधक, लेखनकर, तिक्त, कषाय, याचक, वातश्लेष्मानाशक, कृमिघ्न, योनिशूल, शिरःशूल और कर्णशूलमें शान्तिकर, गर्भाशयका शोधनकर, छिन्न, भिन्न, उत्पिष्ट, विद्ध, च्युत, मथित, क्षत, भग्न, स्फुटित क्षारदग्ध, अग्निदग्ध, विश्लिष्ट, दारित, अभिहत, दुर्भग्न और मृगव्यालादि दष्ट इन सब स्थानोंमें तिलका तेल बहुत हितकर है। (सुश्रुत)

तिलदानी (हिं० स्त्री०) दरजीकी सूई, तागा, अंगुश्ताना आदि औजार रखनेकी कपड़ेकी थैली।

तिलदेश्वरतीर्थ (सं० पु०) तिलदेश्वर इति नाम्ना प्रसिद्ध तीर्थं। रेवानदीके तीरवर्त्ती तीर्थ विशेष, एक तीर्थका नाम जो रेवानदीके किनारे अवस्थित है। इसका दूसरा नाम तिलकेश्वरतीर्थ है। रेवामाहात्म्य।

तिलद्वादशी (सं० स्त्री०) द्वादशीभेद। द्वादशी देखो।

तिलधेनु (सं० स्त्री०) तिलनिर्मिता धेनु, मध्यलो० कर्मधा०। विधानपूर्वक तिलनिर्मित धेनु, एक प्रकारका दान जिसमें तिलोंकी गाय बना कर दान करते हैं। पद्मपुराणमें लिखा है षोड़श आढ़क अर्थात् चौंसठ सेर तिलसे गाय और चार आढक अर्थात् सोलह सेर तिलसे बछड़ा बनाना चाहिये। उसके ईखके टुकड़ोंके पैर, फूलोंके दांत, गन्धमयी नाक और गुड़की जीभ होनी चाहिये। इसी तरह तिलधेनु प्रस्तुत होती है। पीछे उसे काले मृगचर्ममें स्थापित कर वस्त्र द्वारा

आच्छादन और पञ्चरत्नोंसे सुशोभित करते हैं। बाद मन्त्रपूत कर दान किया जाता है। तिलधेनु दान करनेसे सब कामना सिद्ध होती है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

तिलनामा (सं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका धान।

तिलनालभूति (सं॰ स्त्री॰) तिलका क्षार। तिलकी राख।

तिलनी (सं॰ स्त्री॰) धान्यविशेष, एक प्रकारका धान।

तिलपट्टी (हिं॰ स्त्री॰) खांड़ या गुड़में पगे हुए तिलोंका कतरा।

तिलपपड़ी (हिं॰ स्त्री॰) तिलपट्टी देखो।

तिलपर्ण (सं॰ पु॰) तिलस्येव पर्णमस्य। १ श्रीवेष्ट सरलका गोंद। (क्ली॰) २ रक्तचन्दन। ३ तिलके पेड़का पत्ता।

तिलपर्णिका (सं॰ स्त्री॰) तिलपर्णी स्वार्थे कन् टाप् च रक्तचन्दन।

तिलपर्णी (सं॰ स्त्री॰) तिलस्येव पर्णान्यस्याः ङीष्। तिलपर्णी नदी आकरोऽस्त्यस्याः इति अच् ङीच्। १ रक्तचन्दन। २ नदीविशेष, एक नदीका नाम।

तिलपिच्चट (सं॰ क्ली॰) तिलस्य पिष्टकं पृषोदरादित्वात् साधुः। तिलपिष्टक, तिलोंकी पीठी।

तिलपिञ्ज (सं॰ पु॰) निष्फलस्तिलः तिल-पिञ्ज। निष्फल तिलवृक्ष, वह तिलका पौधा जिसमें फूलफल नहीं लगते, बंझा तिलका पेड़।

तिलपिण्डी (सं॰ स्त्री॰) तिलकल्क, तिलका चूर्ण।

तिलपिष्टक (सं॰ क्ली॰) तिलस्य पिष्टकं ६-तत्। तिलपिच्चट, तिलोंकी पीठी। इसका पर्याय पलल है। गुण— यह बलकृत्, वृष्य, वातघ्न, कफ, पित्तकृत्, वृंहण, गुरु, स्निग्ध, मूत्राधिक्यकारक और निवर्त्तक है।

तिलपीड़ (सं॰ पु॰) तिलं पीड़यति पीड़-अच्। तैलिक, तेली।

तिलपुष्प (सं॰ क्ली॰) तिलस्य पुष्पं ६-तत्। १ तिलका फूल। २ व्याघ्रनखवृक्ष, बघनखी।

तिलपुष्पक (सं॰ पु॰) तिलस्येव पुष्पमस्य कप्। १ विभीतकवृक्ष, बहेड़ा। २ तिलका फूल। ३ नासिका, नाक। इसकी उपमा तिलके फूलसे दी जाती है। इसलिये नाकको तिलपुष्प कहा गया है।

तिलपेज (सं॰ पु॰) निष्फलस्तिलः तिल-पेज। १ निष्फल तिल, बंझा तिलका गाछ। २ श्वेततिल, सफेद तिल।

तिलचटा (हिं॰ पु॰) चौपायोंका एक रोग। इसमें गलेके भीतरके मांसके बढ़ जानेसे वे कुछ खा-पी नहीं सकते।

तिलबर (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका पक्षी।

तिलभार (सं॰ पु॰) देशभेद, एक देशका नाम जिसका विवरण महाभारतमें आया है।

तिलभाविनी (सं॰ स्त्री॰) तिलं भावयति तिल भू-णिनि स्त्रियां ङीप्। तैलभाविनी, चमेलीका पेड़।

तिलभुञ्जा (हिं॰ पु॰) तिलकुट।

तिलभृष्ट (सं॰ क्ली॰) तिलेन भृष्टं ६-तत्। तिल द्वारा भर्जित, तिलके साथ भूना या पकाया हुआ। महाभारतमें लिखा है कि तिलके साथ भुनी हुई वस्तुका खाना निषिद्ध है। स्मृतियोंमें तिल मिला हुआ पदार्थ बिना देवार्पित किए खाना वर्जित है।

तिलभेद (सं॰ पु॰) खसखस, पोस्तेका दाना।

तिलमय (सं॰ त्रि॰) तिलस्य विकारः असंज्ञायां मयट्। तिलका विकार।

तिलमयूर (सं॰ पु॰-स्त्री॰) तिलपुष्पचिह्नितः मयूरः मध्यलो॰। मयूरभेद, एक प्रकारका मोर जिसके शरीर पर तिलके समान काले चिह्न होते हैं।

तिलमापट्टी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी कपास जो दक्षिणमें बिलारी और करनूलमें होती है।

तिलमिल (हिं॰ स्त्री॰) चकाचौंध, तिरमिराहट।

तिलमिलाना (हिं॰ क्रि॰) तिरमिराना देखो।

तिलमिश्र (सं॰ त्रि॰) तिलेन मिश्रः ३-तत्। जिसमें तिल मिला हो।

तिलमोदक (सं॰ क्ली॰) तिलोंका लड्डू, तिलवा।

तिलरस (सं॰ पु॰) तिलस्य रसः ६-तत्। तिलका तेल।

तिलरा (हिं॰ पु॰) कसेरेकी एक छेनी जिससे वे टेढ़ी लकीर बनाते हैं।

तिलवट (हिं॰ पु॰) तिलपट्टी, तिलपपड़ी।

तिलवन (हिं॰ स्त्री॰) जंगलों और बगीचोंमें मिलनेवाला एक पौधा। इसके दो भेद हैं—एक सफेद फूलका, दूसरा नीलापन लिये पीले फूलका। इसके बीज, फूल आदि दवाके काममें आते हैं। इससे गरमी और वातगुल्म आदि जाते रहते हैं।

तिलवा (हिं० पु०) तिलोंका लड्डू।

तिलवासिनी (सं० पु०-स्त्री०) एक प्रकारका धान जिसकी सुगन्ध तिलसी होती है।

तिलव्रती (सं० त्रि०) तिलस्य व्रतमस्त्यस्य तिल-व्रत-इनि। तिलव्रतधारी, जो तिलव्रतका अनुष्ठान करता है।

तिलशकरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मिठाई जो तिल और चीनीके मेलसे बनाई जाती है, तिलपपड़ी।

तिलशस् (सं० अव्य०) तिलं तिलं तत् परिमितं करोतीति मनार्थत्वात् वीप्सायां कारकार्थे शस्। धीरे धीरे, आहिस्ते-अहिस्ते।

तिलशालि (सं० पु० स्त्री०) धान्यविशेष, एक प्रकारका सुगन्धित धान।

तिलशैल (सं० पु०) तिलनिर्मितः शैलः मध्यलो० कर्मधा०। दान करनेके लिये तिलकल्पित शैल। दानके लिए दश पर्वत कल्पित हुए हैं, उनमेंसे तिलशैल एक है। तिलशैलके दो भेद हैं, पहला पर्वतका तिलमय प्रधान मेरु, दूसरा तिलशैलके पश्चात् कल्पित तिलमय विष्कुम्भगिरि। इस शैलदानका विधान इस प्रकार लिखा है —

अयन, विषुव, व्यतीपात, दिनक्षय, शुक्लतीया, अमावस्या, विवाह, उत्सव, यज्ञ, द्वादशी, पुण्यदिन आदिमें यह शैलदान करना पड़ता है। यथाशास्त्र इस शैलके दान करनेसे मनुष्य सनातन विष्णुलोकको पाते हैं।

दश द्रोण परिमित तिलका जो शैल कल्पित होता है, वह उत्तम, पञ्च द्रोणका मध्यम और तीन द्रोणका अधम माना गया है।

इस तरह यथाशक्ति १०,५ वा ३ द्रोण द्वारा पहले शैल बनाते हैं; पीछे इस मन्त्रसे आमन्त्रण करना पड़ता है।

मन्त्र— 'यस्मान् मधु वधे विष्णोर्देहस्वेदसमुद्भवाः।
तिलाः कुलाश्च माषाश्च तस्माच्छन्नो भवत्विह ॥
हव्ये कव्ये च यस्माश्च तिला एवाभिरक्षणम्।
भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचल नमोऽस्तुते ॥"

इस मन्त्रसे आमन्त्रण कर ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इससे विष्णुलोकको प्राप्ति होती है और पुनर्जन्म नहीं होता। तिलविकम्भगिरि करनेमें इसी तिलपर्वतको अनेक सुगन्धित पुष्प, सुवर्ण, पिप्पल और हिरण्मय हंसयुक्त बनाना पड़ता। पीछे पूर्वोक्त रूपसे यथाविधि दान करते हैं। (मत्स्यपु० ८१।८२ अ०)

तिलन्तुद (सं० त्रि०) तिलं तुदति-तुद-खश् मुम्। तिलको पेरनेवाला, तेली।

तिलस्नेह (सं० पु०) तिलस्य स्नेहं, ६-तत्। तिलका तेल।

तिलस्म (हिं० पु०) १ इन्द्रजाल, जादू। २ चमत्कार, करामात।

तिलस्मी (हिं० वि०) इन्द्रजाल सम्बन्धी, जादूका।

तिलहन (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। इसके बीजोंसे तेल निकलता है।

तिलहर—१ युक्तप्रदेशके शाहजहानपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७° ५१´ से २८° १५´ उ० और देशा० ७९° २७´ से ७९° ५६´ पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ४१८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २५७०३५ है। इसमें तिलहर, खुदागंज और कटरा नामके तीन शहर और ५५८ ग्राम लगते हैं। इस तहसीलमें रामगङ्गाके बहनेसे यहांकी मट्टी बहुत उपजाऊ हो गई है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २७° ५८´ उ० और देशा० ७०° ४४´ पू० शाहजहानपुरसे ६ कोस पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १९०९१ है। किसी समय यह शहर चारों ओर ईंटोंकी दीवारसे घिरा था, अभी उसका केवल ध्वंसावशेष रह गया है। सिपाही-विद्रोहके समय यहांके सम्भ्रान्त मुसलमानगण विद्रोही हुए थे, इसीसे उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। अब यहां धनी मुसलमान बहुत थोड़े हैं। यह शहर गुड़के व्यवसायके लिए प्रसिद्ध है।

तिला (हिं० पु०) लिङ्गलेप, वह तेल जो लिङ्गेन्द्रिय पर उसकी शिथिलता दूर करनेके लिए लगाया जाय।

तिलाक (हिं० स्त्री०) स्त्री पुरुषके सम्बन्धका टूटना। ईसाइयों और मुसलमानोंमें यह प्रचलित है। वे अपनी विवाहिता स्त्रीसे एक विशेष नियमके अनुसार सम्बन्ध तोड़ देते हैं। सम्बन्ध टूट जाने पर स्त्री और पुरुष दोनोंको पृथक् पृथक् विवाह करनेका अधिकार हो जाता है।

तिलाङ्कितदल (सं० पु०) तिलवत् अङ्कितं दलं यस्य, बहुव्री०। तैलकन्द।

तिलाञ्जली (सं० स्त्री०) मृतक संस्कारका एक अङ्ग। मुरदेके जल चुकने पर स्नान करके यह क्रिया की जाती है। इसमें हाथकी अङ्गुलियोंमें जल भर उसमें तिल डाल कर उसे मृतकके नामसे छोड़ते हैं।

तिलान्न (सं० क्ली०) तिलमिश्रितं अन्नं, मध्यलो० कर्मधा०। कृशर, तिलकी खिचड़ी।

तिलपत्या (सं० स्त्री०) तिलस्येव क्षुद्रः अपत्य वीजमस्याः, बहुव्री०। कृष्णजीरक, काला जीरा।

तिलाम्बु (सं० क्ली०) तिलमिश्रितः अम्बु, मध्यपदलो० कर्मधा०। तिलकोदक, तिल मिला हुआ पानी।

तिलार्द्ध (सं० क्ली०) तिलस्य अर्द्धं, ६-तत्। तिलका आधा, बहुत छोटा पदार्थ।

तिलावा (हिं० पु०) १ बड़ा कुआँ। २ रातके समय कोतवाल आदिका शहरमें गश्त लगाना, रौंद।

तिलित्स (सं० पु०) गोनस सर्प, एक प्रकारका सांप।

तिलिन—ऊपर ब्रह्मके पकोक्कु जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २१° २७´ और २१° ४७´ उ० तथा देशा० ८३° ५८´ और ८४° २२´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४८८ वर्गमील और लोकसंख्या १०८४३ है। इसमें कुल १२० ग्राम लगते हैं। शहरमें माव नामकी नदी प्रवाहित है।

तिलिया (हिं० पु०) सरपत।

तिली—बङ्गालकी एक प्रभावशाली हिन्दू जाति। इस जातिमें धनाढ्य और जमींदारोंकी संख्या काफी है। भारतवर्षके अन्यान्य प्रदेशोंमें जो तेली जातिके लोग रहते हैं, उनके साथ इनके आचार-व्यवहार और सामाजिक सम्मानमें बिलकुल सौसादृश्य नहीं है; इसलिए इसको हम स्वतन्त्र जाति कह सकते हैं।

तिली जाति कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय, महाजनी आदिका कार्य कर जीविकानिर्वाह करती है।

शास्त्रोंके प्रति दृष्टिपात करने पर भी हमें दीख पड़ेगा, कि तिल तेली और तैलकारक जातिकी उत्पत्तिमें कितना अन्तर है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें तैलिक जातिकी उत्पत्ति-विषयमें इस प्रकार लिखा है—

"गोपालिन्यां वारजीवात् तैलकस्य च सम्भवः।"

अर्थात् वारुजीवि वा तमोलीके औरस और ग्वालिनके गर्भसे तैलिक जातिकी उत्पत्ति हुई है। किन्तु तेलीके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—

"कुम्भकारश्च वीर्येण सद्यः कोटकयोषितः।
वभूव तैलकारश्च कुटिलः पतितो भुवि॥"

अर्थात् तैलकार वा तेलीजाति कुम्भकारके औरस और राज (वा संगतराश)के गर्भसे उत्पन्न हुई है, जो कि कुटिल और पतित है।

इससे मालूम होता है कि तैलकार वा तेली जाति हिन्दू-समाजमें बहुत समयसे पतित है। परन्तु तैलिकगण किसी शास्त्रमें शङ्करोंमें मध्यम श्रेणीके और किसी शास्त्रमें उत्तम श्रेणीके माने गये है।

पराशरपद्धतिमें तिलियोंके सामाजिक अवस्थानके बारेमें इस प्रकार कहा गया है—

"गोपो माली तथा तैली तन्त्र मोदको वारुजिः॥
कुलालः कर्मकारश्च नापितो नवसायकाः।
एते सत्शूद्रजाताश्च नवशाखा प्रकीर्तिताः॥"

इस प्रमाणसे तैलिक तथा तैली जाति एक हो सकती है। तैलिक जातिकी बृहद्धर्म पुराणमें एक स्थल पर तौलिक कहा गया है; जिसका स्थान उत्तम सङ्करोंमें तथा गुवाकविक्रय-जीविकोंमें निर्दिष्ट हुआ है। ब्रह्म वैवर्त पुराणके ब्रह्मखण्डमें भी लिखा है,—

"तासां सङ्करजातेन वभूवुर्वर्णसङ्कराः।
गोपनापितलीलाश्च तथा मोदककूवरौ॥
ताम्बुलीवर्णकारौ च तथा वणिजजातयः।
इत्येवमाद्या विप्रेन्द्र सच्छूद्राः परिकीर्तिताः॥"

इस श्लोकसे तोल वा तिली जाति सत्शूद्र प्रमाणित होती है।

ऊपर जितने भी संस्कृत वचन उद्धृत किये गये हैं, उनमें एक भी ऐसा नहीं जिसे हम प्राचीन शास्त्र-सम्मत कह सकें। पराशरपद्धति अथवा परशुराम वा भार्गवरामकृत जातिमालाकी दुहाई दे कर जितनी भी वर्णसङ्करोत्पत्तिकी कथाएं कीर्तित हैं, वे सब बङ्गालकी निजस्व हैं; बङ्गालके बाहर कहीं भी उनका प्राचीन अस्तित्व नहीं मिलता। बंगालके नाना स्थानोंसे उक्त पद्धति वा जातिमालाकी जितनी भी पोथियां निकली हैं, उनमेंसे कोई भी सौ वर्षसे ज्यादा पुरानी नहीं है। किसी भी महापुराण वा उपपुराणोंकी सूचीमें बृहद्धर्मपुराणका नाम नहीं मिलता; अथवा यों कहिए, कि प्राचीन स्मृति-

निबन्धमें बृहद्धर्मपुराणके वचन उद्धृत नहीं हुए। कलकत्तेमें विभिन्न स्थानोंसे जितने भी बृहद्धर्मपुराण मुद्रित हुए हैं, उनके उत्तरखण्डमें (शेषभागमें) १३वें और १४वें अध्यायमें जो वर्णसङ्करप्रकरण ग्रथित हुआ है, वह एक अपूर्व वस्तु ही मालूम पड़ती है। जिन धर्मसूत्र और स्मृतिसंहिताओंमें वर्णसङ्करका प्रसङ्ग है, उनमें सर्वत्र अनुलोम और प्रतिलोम सङ्करोंका पृथक् पृथक उल्लेख किया गया है, परन्तु बृहद्धर्मपुराणमें अनुलोम और प्रतिलोम दोनों प्रकारकी २० सङ्करजातियोंको श्रेष्ठ वर्णसङ्कर कहा गया है। आश्चर्यकी बात है कि बृहद्धर्मपुराणके पाठभेदसे तैलिक वा तौलिक जातिको एक मान लेने पर भी उक्त पुराणकी 'वैश्यात्तु द्विजकन्यायां जातौताम्बूलितौलिकौ।' (१३।२१) अर्थात् 'वैश्यके औरस और ब्राह्मणकन्याके गर्भसे ताम्बुलि और तौलिक जाति उत्पन्न हुई है' इस प्रकार उत्पत्तिको मान कर ताम्बुलि और तौलिक जातिको किसी प्रकार भी श्रेष्ठ वर्णसङ्करोंमें नहीं गिना जा सकता। ऐसी दशामें उन्हें प्रतिलोमजात हीन वर्णसङ्कर माना जा सकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्मवैवर्तपुराणके ब्रह्मखण्डका १०वां अध्याय, जिसमें वर्णसङ्कर जातिमाला कीर्तित हुई है, वह भी नितान्त आधुनिक समयकी रचना है। उक्त अध्यायमें यह श्लोक मिलता है—

"म्लेच्छात् कुविन्दकन्यायां जोलाजातिर्बभूव ह।" (१०।१२१)

अर्थात् म्लेच्छ वा मुसलमानके औरस और कुविन्द-कन्याके गर्भसे 'जोला' जाति उत्पन्न हुई है।

'जोला' शब्द केवल बङ्गालमें ही प्रचलित है; बङ्गालको छोड़ कर उत्तरपश्चिम प्रान्तोंमें 'जुलहा' कहते हैं। बंगालमें मुसलमानोंके आनेके बाद, उनके सम्पर्कसे इस जुलहा जातिकी उत्पत्ति हुई है और इसीलिए ब्रह्मवैवर्तपुराणके ब्रह्मखण्डमें वर्णित वर्णसङ्करजातिमालाका अंश आधुनिक सिद्ध होता है। शङ्खचूड़के युद्धमें "राढ़ीय" और "वारेन्द्र" वीरोंका उल्लेख (प्रकृतिखण्ड २० अ०)से यह बात प्रमाणित होती है कि प्रचलित ब्रह्मवैवर्तमें बहुतसे श्लोक ऐसे भी हैं, जो पीछेसे बङ्गालियोंने बना लिए हैं। इसलिए पूर्वोद्धृत श्लोकोंके अनुसार 'तिली' 'तैलिक' वा 'तौलिक' और 'तैलकार' जातिकी उत्पत्तिका निर्णय करना न्यायसङ्गत नहीं है। जातिके विषयमें उद्धृत श्लोक किसी विशेष उद्देश्य-साधनके लिए आधुनिक समयमें रचे गये हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

बंगालमें साधारणतः तिली, तेली और 'कोलू' ये तीन जातियां पाई जाती हैं; जिनमेंसे तिली जातिका आचार-व्यवहार उच्चश्रेणीके हिन्दूओंके समान है; उपनयनके सिवा इस जातिमें अन्य संस्कार मुख्य वा गौणरूपसे प्रचलित हैं। इस समाजमें विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है, किन्तु विधवाएं यथारीति ब्रह्मचर्यका पालन करती हैं। तिली और तेली जातिमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। तेली जातिका सामाजिक आसन तिली जातिसे बहुत नीचे है। कहीं कहीं तेली जातिका पानी नहीं चलता; परन्तु तिली जातिका पानी सर्वत्र और उच्च ब्राह्मण भी ग्रहण करते हैं। उक्त तिली और तेली जातिकी अपेक्षा 'कोलू' जातिकी सामाजिक अवस्था और भी हीन है। कहीं भी इसका पानी नहीं चलता; सर्वत्र ही यह अस्पृश्यजातिकी तरह मानी जाती है। बंगीय शास्त्रकारोंने तेलीजातिका 'तैलिक' नामसे तथा 'कोलू' जातिका 'तैलकार' नामसे उल्लेख किया है; ऐसी दशामें परशुराम वा पराशरपद्धति, ब्रह्मवैवर्त वा बृहद्धर्मपुराणमें जो तैलिकजातिका प्रसङ्ग है, उसे हम तेली मान सकते हैं और जहां तैलकार जातिका प्रसङ्ग है, उसे "कोलू"। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि बृहद्धर्मपुराणमें 'तैलिक'की जगह 'तौलिक' भी पाठ है। और भी देखिये—

"तैलिकेह्यकरोदाज्ञयां गुवाकविक्रये खलु।" (१४।६४)

अर्थात् तैलिकको गुवाक (सुपारी) विक्रय करनेके लिए आज्ञा दी गई थी। यहां किसी किसी मुद्रित पुस्तकमें तौलिक पाठ रहनेसे, कोई कोई ऐसा समझते हैं कि तिली जातिमें कोई कोई सुपारीका रोजगार करते हैं, इसलिये तिली और तौलिक दोनों एक ही जाति हैं। परन्तु यह उनका भ्रम है। तौलि वा तौलिक शब्दका आभिधानिक अर्थ चित्रकर (अर्थात् जो 'तूली' वा कूंचीसे चित्राङ्कण द्वारा जीविकानिर्वाह करे) है। आधुनिक बृहद्धर्मपुराणमें तौलिक जातिका गुवाक-

व्यवसाय निर्दिष्ट किया गया है; परन्तु जरा विचार करनेसे सहज ही मालूम हो सकता है कि सिर्फ तिली जातिमें ही नहीं, बल्कि ताम्बूलि, बारुई, गन्धवणिक् आदि सभी जातियोंमें बहुत समयसे गुवाक वा सुपारीका व्यवसाय प्रचलित है। फिलहाल तिली जातिका कोई निर्दिष्ट व्यवसाय ही नहीं है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि यह जाति कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय, महाजनी आदि द्वारा जीविका निर्वाह करती है। यह कहना फिजूल है, कि शास्त्रानुसार उपर्युक्त कार्य ही वैश्याजातिकी उपजीविकाके लिए योग्य हैं।

तिली शब्दका मुख्यार्थ तिलोत्पादनकारी है। अमरकोषके वैश्यवर्गमें इस प्रकार लिखा है—

"'तिल्य' तैलीनवन्माषोमाण्णुमंगाद्द्विरूपता।" (२।८।७)

अर्थात् तिल्य और तैलीन शब्दसे तिलोत्पादक (क्षेत्रादि) का बोध होता है। तिली शब्द 'तिल्व' और 'तैलीन' शब्दका एकार्थवाची है। ऐसी दशामें तिली शब्द भी वैश्यवर्गीमें पड़ता है।

महाभारत शान्तिपर्वमें तुलाधार वैश्य और जाजलि-संवादमें लिखा है—

"विक्रीणतः सर्वरसान् सर्वगन्धाश्च वाणिज ।
वनस्पतीनोषधीथाश्च तेषां मूलफलानि च ॥
अध्यगा नैष्ठिकीं बुद्धिं कुतस्त्वामिदमागतम् ।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं निखिलेन महामते ॥" (२६१।२।३)

जाजलिने तुलाधारसे पूछा—'हे वणिक्पुत्र! तुम सर्व प्रकार रस, सर्व प्रकार गन्ध, वनस्पति, औषधि और फल-मूल बेचा करते हो; तुमने किस प्रकार ऐसा निश्चय बुद्धि और ज्ञान प्राप्त किया है? हे महामते! मुझे सब समझा दो।'

इस प्रकार विस्तृतरूपमें धर्म तत्त्व प्रकट करते हुए तुलाधारने कहा—

"ये च छिन्दति वृषणान् ये च भिन्दति नस्तकान् ।
वहन्ति महतो भारान् बध्नन्ति दमयन्ति च ॥३७॥
हत्वा सत्वानि खादन्ति तान् कथं न विगर्हसे ॥३८॥
पंचेन्द्रियेषु भूतेषु सर्वं वसति दैवतम् ।
आदित्यश्चन्द्रमा वायुर्ब्रह्मा प्राणः क्रतुर्यमः ॥४०॥
तानि जीवानि विक्रीय का मृतेषु विचारणा ।
अजोऽग्निर्वरुणो मेषः ऽसूर्यो ऽश्वः पृथिवी विराट् ॥४१॥
धेनुर्वत्सश्च सोमो वै विक्रीय तत्र सिद्धति ।
का तैले का घृते ब्रह्मन् मधुन्युप्यौषधेषु वा ॥४२॥"

अर्थात्—'जो गो-समूहका मुष्कमोषण और नासिका भेदन कर उनको गुरु-भारसे प्रपीड़ित, बद्ध और दमित करते हैं तथा जो नाना प्रकारकी जीवहिंसा कर मांस भक्षण करते हैं, उनकी क्यों न निन्दा की जाय? पञ्चेन्द्रिय-विशिष्ट जीवमात्रमें ही सूर्य, चन्द्र, वायु, ब्रह्मा, प्राण, क्रतु और यम वास करते हैं; सुतरां जीवदेह विक्रय द्वारा जो अपनी देह त्याग करते हैं, वे भी क्या निन्दनीय नहीं हैं? छागमें अग्नि, मेषमें वरुण, अश्वमें सूर्य, पृथिवीमें विराट् तथा धेनु और वत्समें चन्द्र अवस्थान करते हैं; इसलिए जो व्यक्ति इनको विक्रय करते हैं, उन्हें कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। परन्तु तैल, घृत, मधु और औषध-विक्रय द्वारा किसी पापस्पर्शकी सम्भावना नहीं है।' उद्धृत विवरणसे धार्मिक वैश्यका क्या क्या कर्तव्य है? सो मालूम हो जाती है।

मनुसंहिताके दशवें अध्यायमें लिखा है—

"अपः शस्त्रः विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः ।
क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥"

अर्थात्—जल, शास्त्र, विष, मांस सोमवल्ली, सर्वप्रकार गन्ध, दुग्ध, क्षीर, दधि, घृत, गुड़, तैल, मधु और कुश इन वस्तुओंको ब्राह्मण नहीं बेच सकता; यह वैश्यके लिए पालनीय है। परन्तु आपद्कालमें ब्राह्मण भी उक्त वैश्यके व्यवसायको ग्रहण न कर सकता है।

अब देखा जाता है कि अमरकोष, महाभारत और मनुसंहिताके अनुसार तिलोत्पादन, तिल और तैल बेचना वैश्यकी उपजीविकामें था; परन्तु गाय वा बैलका अण्डकोष छेदन और नासिका भेदन निन्दित समझा गया है। कोलू जाति, कोल्हूमें जुत कर बिना सङ्कोचके काम करेगा इस खयालसे, बैलका मुष्क छेदन करती है और इसी निन्दितकर्मके द्वारा वह हिन्दू-समाजमें अस्पृश्य एवं पतित समझी जाती है। तेलीजाति ऐसा हीन कर्म न करने पर भी चक्रमें जोत कर बैलको कष्ट देती है; इसलिए वह कोलूकी तरह अतिहीन न होने पर भी विपरीत आचरण द्वारा वैश्यसमाजके बाहर

चली गई है। बङ्गालमें तिली नवशाखमें शामिल किये जाते हैं। तिली जातिमें अब बहुतोंने कोल्हू चलाना छोड़ दिया है और भिन्न व्यवसाय करने लगे हैं। इनमें जो 'घानी' (कोल्हू) चलाते हैं, वे 'घनातिली' कहाते हैं। यह कहना व्यर्थ है कि उक्त विभिन्न प्रकार कार्योंसे तिली जातिका कोई सम्पर्क नहीं है। सम्भवतः यह जाति बहु पूर्वकालसे तिल उत्पादन और तिलका व्यवसाय करती थी और इसीसे इसका नाम तिली पड़ा है।

तिली जातिका वर्तमान हिन्दूसमाज पर कितना प्रभाव है, इस बातका निर्णय उनकी शिक्षा दीक्षा और धनवत्ताकी आलोचना करनेसे ही हो सकता है। तिली लोग आचार-व्यवहारमें ब्राह्मण और कायस्थोंकी तरह सदाचारी होते हैं। स्त्री-जातिका परिश्रम कर जीविका निर्वाह करना सामाजिक नीचताका चिह्न है; किन्तु तिलियोंमें ऐसी स्त्रियां बहुत कम हैं जो कायिक परिश्रम द्वारा जीविकानिर्वाह करती हों।

इस जातिमें हजार पीछे ३८ शिक्षित व्यक्ति हैं।

तिली जाति बहुत प्राचीन है, इसमें सन्देह नहीं। बङ्गालमें बहुतोंने सम्मानजनक कार्य कर कीर्ति प्राप्त की है। पुण्यकीर्ति रानी भवानीने इसी जातिके दयारामको दीवानीका पद दिया था। अंग्रेजोंके अभ्युदयके प्रारम्भमें काशिमबाजार-राजवंशके प्रतिष्ठाता कान्त बाबूने वारेन् हेष्टिंस् आदि उच्चपदस्थ व्यक्तियोंका सौहार्द्य प्राप्त किया था। कान्त बाबूके आन्तरिक प्रयत्न और चेष्टासे, हेष्टिंसको इस देशमें सुशासन स्थापन करनेमें बहुत कुछ सहायता मिली थी। कहा जाता है, कि कृष्णनगरके सुप्रसिद्ध राजा कृष्णचन्द्रने तिलीजातीय एक व्यक्तिको राजवैद्यका पद दिया था।

इस युगमें कृष्णदास पाल इस जातिका मुखोज्ज्वल कर गये हैं। आप असामान्य प्रतिभाशाली लेखक और असाधारण वाग्मी थे। आपका राजनीतिक मतवाद उस समय सर्वत्र आदरके साथ गृहीत होता था। तिली जातिके राजकृष्ण राय भी सुप्रसिद्ध कवि और नाट्यकार एवं औपन्यासिक हो गये हैं। फिलहाल काशिमबाजारके लोकमान्य महाराज सर मणीन्द्रचन्द्र नन्दी बहादुर, जिन्होंने इसी तिलीजातिमें जन्म लिया है, अपने औदार्य, वदान्यता, अमायिकता आदि गुणोंसे बङ्गालके एक आदर्श पुरुषके रूपमें सम्मान पा रहे हैं।

बङ्गालमें तिली जातिके धनाढ्योंकी संख्या काफी है। काशिमबाजार, दीघापतिया, राणाघाट, बयड़ा वैद्यपुर, श्रीरामपुर, फरासडांगा, फरीदपुर, भाग्यकूल, चूड़ामन आदि स्थानोंके जमींदार इसी जातिके हैं।

तिलेती (हिं० स्त्री०) तेलहनकी खूंटी जो फसल काटने पर खेतमें बच जाती है।

तिलेदानी (हिं० स्त्री०) तिलदानी देखो।

तिलेगू (हिं० स्त्री०) तेलगू देखो।

तिलोकपति (हिं० पु०) विष्णु।

तिलोकी (हिं० पु०) त्रिलोकी देखो।

तिलोचन (हिं० पु०) त्रिलोचन देखो।

तिलोत्तमा (सं० स्त्री०) तिलप्रमाणैः सर्वरत्नानां अंशैरुत्तमा। स्वर्वेश्या, स्वर्गकी एक वेश्या। सुन्द और उपसुन्द नामके दो असुर थे, जो देवताओं द्वारा अवध्य और प्रबल पराक्रमी थे। ये दोनों भाई यदि परस्पर न लड़ते, तो इनकी मृत्यु होनी दुर्घट थी। लोक-पितामह भगवान् ब्रह्माने इन दोनों असुरोंके विनाशार्थ समस्त रत्नोंका तिल तिल ग्रहण कर तिलोत्तमाकी सृष्टि की थी*।

इसके समान रूपवती रमणी स्वर्गराज्यमें दूसरी न थी। तिलोत्तमाके रूपलावण्यका विषय इस प्रकार वर्णित है—'एक दिन एक असामान्य रूपलावण्यवतीने महादेवको प्रलोभित करनेके लिए उनके चारों ओर घूमना शुरू कर दिया। उस समय महादेव भी उस पर मोहित हो गये और उसको देखनेकी अभिलाषासे, जिस तरफ वह गई, योगबलसे उसी तरफ वे अपना मुंह बनाने लगे। इस प्रकार तिलोत्तमाके दर्शनके लिए महादेवको चार मुंह बनाने पड़े थे§।

---

* "तिलं तिलं समानीय रत्नानां यद्विनिर्मिता।
तिलोत्तमेति तत्तस्याः नाम चक्रे पितामहः॥"
(भारत आदि० २११ अ०)

§ "यतो यतः सा सुदती मामुपाधावदन्तिके।
ततस्ततो मुखञ्चारु मम देवि विनिर्गतम्॥
तं दिदृक्षुरहं योगाच्चतुर्मूर्तित्वमागतः।
चतुर्मुखश्च संवृत्तो दर्शयन् योगमुत्तमम्॥"
(भारत अनु० १४५।२३)

तिलोत्तमाको पानेके लिए सुन्द और उपसुन्दमें परस्पर विवाद हो गया और उसी युद्धमें दोनोंको मृत्यु हो गई।

तिलोथु—शाहाबाद जिलेके ससेराम उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २४° ४८′ उ० और देशा० ८७° ६′ पू० में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः २५८२ है। यहाँ शीतलादेवोको एक प्रतिमूर्त्ति है, जिस पर १३३२ ई० अङ्कित है। इस देवोके कारण यह स्थान बहुत मशहूर हो गया है। प्रति वर्ष कार्त्तिक मासमें यहां एक मेला लगता है जिसमें १००००० मनुष्य एकत्रित होते हैं।

तिलोदक (सं० क्लो०) तिलमिश्रितः उदकं, मध्यलो० कर्मधा०। तिलमिश्रित जल, तिल मिला हुआ पानो।

तिलोरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको मैना।

तिलौंछना (हिं० क्रि०) तेल लगा कर चिकना करना।

तिलोदन (सं० क्लो०) तिलमिश्रितं ओदनं, मध्यलो० कर्मधा०। कृशर, तिलको खिचड़ो।

तिलौंछा (हिं० वि०) जिसका स्वाद या रंग तेलसा हो।

तिलौरी (हिं० स्त्री०) तिल मिलो हुई उरद या मूंगको बरी।

तिलपिञ्ज (सं० पु०) तिल पिञ्ज वेट्टे डिच्च। बन्ध्यतिल, बंझा तिल।

तिल्य (सं० क्लो०) तिलानां भवनं क्षेत्रं वा तिल-यत्। विभाषा तिलमाषोमाभंगाण्युभ्यः। पा ५।२।४। १ तिलको खेत। (त्रि०) २ तिलाय हितं हितार्थे यत्। तिलका हितकर। ३ तिलोत्पादक।

तिल्लना (हिं० पु०) तिलका नामक वर्णवृत्त।

तिल्लर (हिं० पु०) १ एक प्रकारका चिड़िया। (वि०) २ तिलड़ा।

तिल्ला (अ० पु०) १ कलाबत्तूका नाम। २ पगड़ो, दुपट्टे या साड़ीका कलाबत्तूका काम किया हुआ अंचल। ३ वह वस्तु जो शोभा बढ़ानेके लिये किसो चीजमें लगाई जातो है।

तिल्लाना (हिं० पु०) तराना देखो।

तिल्ली (हिं० स्त्री०) पेटके भीतरका एक अवयव। यह मांसकी पोली गुठलीके आकारको होतो है और पसलियोंके नीचे पेटकी बाईं ओर रहती है। इसमें खाए हुए पदार्थका रस कुछ समय तक रहता है। जब शरीरके रक्त द्वारा यह रस सोख लिया जाता है तो तिल्ली चिपक कर पूर्ववत् हो जातो है लेकिन इसके पहले यह रससे बढ़ो हुई दोख पड़ती है।

ज्वर होने पर यह तिल्लो कुछ बढ़ जातो है; क्योंकि उसमें रस आ जाता है। ऐसो अवस्थामें उसे छेदनेसे लाल लेहू निकलता है। इस रोगमें मनुष्य बहुत कमजोर हो जाता है और मुंह सूखा रहता है। वैद्यकशास्त्रमें लिखा है कि दाहकारक तथा कफकारक पदार्थोंके विशेष सेवन करनेसे लोहू कुपित हो कर कफ द्वारा प्लोहाको बढता है तब तिल्लो बढ़ आतो है। आयुर्वेदके अनुसार जवाखार, पलासका क्षार, शङ्खको भस्म आदि प्लोहाको उपयुक्त औषध है। डाक्टरोंमें कुनेन, संखिया और लोहा-मिश्रित औषध तिल्लो बढ़ने पर दो जाती हैं। इसे प्लोहा और पिलहो भो कहते हैं।

२ तिल नामका अन्न। ३ आसाम और बरमामें ऊंची पहाड़ियों पर मिलनेवाला एक प्रकारका बांस। इसकी ऊँचाई पचास फुट तक और गांठें दूर दूर पर होतो हैं।

तिल्व (सं० पु०) तिलतोति तिल-वन्। उल्वादयश्च। उण् ४।९५। इति सूत्रेण निपातनात साधुः। १ लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़। २ श्वेतवर्ण लोध्र। ३ रक्तलोध्र, लाल लोध।

तिल्वक (सं० पु०) तिल्व-स्वार्थे कन्। १ लोध्र, लोध। २ तिनिश।

तिल्वनो (सं० स्त्री०) कर्णस्फोटा, एक प्रकारको वेल।

तिल्विल (सं० पु०) देवयजन-स्थान, वह जगह जहां देवताको पूजा को जातो है।

तिवारो—ब्राह्मण-जातिको एक उपाधि। इस नामके ब्राह्मण गौड़ व कान्यकुब्ज आदि सम्प्रदायमें विशेष हैं। यह शब्द त्रिवेदी-शब्दका अपभ्रंश रूप है। पूर्वकालमें जो लोग तोनों वेदोंके ज्ञाता थे, उन्हें राजधर्मसभासे और विश्वविद्यालयोंसे त्रिवेदीको उपाधि मिलती थी। तदनुसार उनका कुल भो त्रिवेदो कहाते कहाते भाषाभाषियों द्वारा तिवारो कहाने लग गया।

तिवासो (हिं० वि०) तिबासी देखो।

तिवो (हिं० स्त्री०) खेसारी।

तिश्‍ना (फा॰ पु॰) ताना, मेहना।

तिष्ठ (सं॰ क्रि॰) अवस्थान करो, ठहरो, रहो।

तिष्ठद्‌गु (सं॰ पु॰) तिष्ठन्त्यो गावो यस्मिन् काले तिष्ठद्‌गु प्रभृतित्वात् निपातनात् अव्ययोभावः। दोहन काल, वह समय जब गायें अपने खूंटे पर चर कर आ जाती हैं संध्या, शाम।

तिष्ठद्‌गुप्रभृति (सं॰ क्ली॰) पाणिन्युक्त गणविशेष, पाणिनि की एक गणका नाम। अव्ययोभाव समासमें निपातप्रयुक्त तिष्ठद्‌गु प्रभृति कई एक शब्द सिद्ध होते हैं, यथा—तिष्ठद्‌गु, वहद्‌गु, आयतीगव, खलेयव, खलेबुस, लुनयव, पूतयव, पूयमानयव, संहृतयव, संप्रमाणयव, संहृतबुस, समभूम, समपदाति, सुषम, विषम, दुःसम, निःसम, अपसम, आयतीसम, प्रोढ़, पापसम, पुण्यसम, प्राह्ण, प्ररथ, प्रमृग, प्रदक्षिण, अपरदक्षिण, सम्प्रति और असम्प्रति। (पाणिनि)

तिष्ठद्धोम (सं॰ त्रि॰) तिष्ठता होमो यत्र। यजतिरूप यागभेद। इस यागमें वषट्‌कार मन्त्रद्वारा होम करना पड़ता है।

तिष्ठा (सं॰ स्त्री॰) तिस्ता नामकी नदी। यह हिमालय पर्वतके पाससे निकल कर नवाबगंजके पास गंगामें जा मिली है।

तिष्य (सं॰ पु॰) तुष्यत्यस्मिन् तुष-क्यप् निपातनात् साधुः। १ पुष्य नक्षत्र। (क्ली॰) त्विष्-दीप्तौ अघ्न्यादित्वात् यक् निपा॰ साधुः। २ कलियुग। तिष्यं नक्षत्रमस्त्यस्य पौर्णमास्यां अच्। ३ पौषमास। पुष्यानक्षत्रमें पौषमासकी पूर्णिमा होती है। (त्रि॰) तिष्ये नक्षत्रे जातः अण् तस्य लुक्। ४ पुष्यानक्षत्रजात, जो पुष्यनक्षत्रमें उत्पन्न हो। ५ माङ्गल्य, कल्याणकारी।

तिष्यक (सं॰ पु॰) तिष्य एव स्वार्थे कन्। पौषमास।

तिष्यपुष्पा (सं॰ स्त्री॰) तिष्यं माङ्गल्यं पुष्पं यस्याः, बहुव्री॰। आमलकी, आंवला।

तिष्यफला (सं॰ स्त्री॰) तिष्यं फलं यस्याः, बहुव्री॰। आमलकी।

तिष्या (सं॰ स्त्री॰) तिष्यं मङ्गलं हेतुत्वेनास्त्यस्याः अच्। आमलकीवृक्ष, आंवलेका पेड़।

तिसखुर (हिं॰ स्त्री॰) तिसखुट देखो।

तिसरायत (हिं॰ स्त्री॰) तीसरा होनेका भाव।

तिसरैत (हिं॰ पु॰) १ मध्यस्थ। २ तीसरे हिस्सेका मालिक।

तिसृका (सं॰ स्त्री॰) त्रिभावे कन् तिसृ आदेशः। तिसृभावे संज्ञायां कन्नुपसंख्यानं। पा ७।२।९९। ग्रामभेद, एक गांवका नाम।

तिसृधन्व (सं॰ क्ली॰) तिसृभिरिषुभिर्युतं धन्व धनुः, वैदिक प्रयोगे अच समासान्तः अविभक्तावपि वेदे तिस्रादेशः। वह धनुष जिसमें तीन बाण लगे हों।

तिस्रा (सं॰ स्त्री॰) शङ्खपुष्पी।

तिस्स (हिं॰ पु॰) अशोक राजाके सगे भाईका नाम।

तिहत्तर (हिं॰ वि॰) १ जिसकी संख्या सत्तरसे तीन अधिक हो। (पु॰) २ वह संख्या जो सत्तर और तीनके योगसे बनी हो।

तिहद्दा (हिं॰ पु॰) वह स्थान जहां तीन सीमा मिलती हों।

तिहन् (सं॰ पु॰) तुह अर्दने कनिन् निपातनात् साधु। १ व्याधि, रोग, पीड़ा। २ व्रीहि, धान। ३ धनु, धनुष। ४ सद्भाव।

तिहरा (हिं॰ वि॰) १ तेहरा देखो। (स्त्री॰) २ मट्टीका बरतन जिसमें दही जमाया जाता है।

तिहराना (हिं॰ क्रि॰) तीन बार करना।

तिहरी (हिं॰ स्त्री॰) १ तीन लड़ोंकी माला। २ दूध जमानेका मट्टीका बरतन। (वि॰) ३ तिहरा देखो।

तिहवार (हिं॰ पु॰) त्योहार, पर्वका दिन।

तिहवारी (हिं॰ स्त्री॰) त्योहारी देखो।

तिहाई (हिं॰ पु॰) १ तृतीयांश, तीसरा हिस्सा। (स्त्री॰) २ खेतकी उपज, फसल।

तिहानी (हिं॰ स्त्री॰) चूड़ी बनानेके काममें आनेवाली एक प्रकारकी लकड़ी। यह एक बालिश्त लंबी और तीन अंगुल चौड़ी होती है।

तिहायत (हिं॰ पु॰) तिसरैत, मध्यस्थ।

तिहाली (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी कपासकी बौंड़ी।

तिहैया (हिं॰ पु॰) तृतीयांश, तीसरा भाग।

तीकुर (हिं॰ पु॰) खेतकी उपजकी बँटाई। इसमें तिहाई अंश जमींदार और दो तिहाई गृहस्थ लेता है।

तीक्ष्ण (सं॰ क्ली॰) तेजयति तेज्यतेऽनेन वा तिज-क्स्न दीर्घश्च। तिजेर्दीर्घश्च। उण् ३।१८। १ उष्णता, गरमी। २ विष, जहर। ३ लौहभेद, इस्पात। ४ युद्ध, लड़ाई। ५ मरण, मौत। ६ शस्त्र, हथियार। ७ सामुद्र लवण, समुद्री नमक, करकच। ८ मुष्क, मोखा। ९ चव्यक, चाव। १० मरक, महामारी, मरी। (त्रि॰) ११ तीक्ष्णतायुक्त, तेज या तीखे स्वादवाला। प्रतिभा, हीरक, कटाक्ष, दुर्वाक्य, नख, लवण, रविकर ये सब तीक्ष्ण वस्तु हैं। (कविकल्पलता) १२ आत्मत्यागी। १३ निरालस्य, जिसे आलस्य न हो। १४ तेज धारवाला। १५ तीव्र, प्रखर, उग्र। १६ कर्णकटु, जो सुननेमें अप्रिय हो। १७ असह्य, जो सहन न हो सके। (पु॰) १८ यवक्षार, जवाखार। १९ श्वेतकुश, सफेद कुश। २० कुन्दुरुक, कुंदुर गोंद। २१ ज्योतिषोक्त नक्षत्रगण, आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा और मूला नक्षत्र। २२ योगी।

तीक्ष्णक (सं॰ पु॰) तीक्ष्ण संज्ञायां कन्। १ श्वेतसर्षप, सफेद सरसों। २ मुष्कक, मोखावृक्ष।

तीक्ष्णकण्टक (सं॰ पु॰) तीक्ष्णानि कण्टकानि यस्य, बहुव्री॰। १ धुस्तूर, धतूरा। २ इङ्गुदीवृक्ष। ३ बर्बूर, बबूलका पेड़। ४ करीर, करीलका पेड़। (त्रि॰) ५ तीक्ष्ण कण्टकयुक्त, जिसमें तेज कांटे हों।

तीक्ष्णकण्टका (सं॰ त्रि॰) तीक्ष्ण कण्टक-टाप्। कन्यारी वृक्ष एक पेड़।

तीक्ष्णकन्द (सं॰ पु॰) तीक्ष्णः कन्दो मूलं यस्य, बहुव्री॰। पलाण्डु, प्याज।

तिक्ष्णकर्म (सं॰ त्रि॰) तीक्ष्णं कर्म यस्य, बहुव्री॰। कार्यदक्ष, जो काम-काज करनेमें तेज हो।

तीक्ष्णकल्क (सं॰ पु॰) तीक्ष्णः कल्को यस्य, बहुव्री॰। तुम्बुरुवृक्ष, धनिया।

तीक्ष्णकान्ता (सं॰ स्त्री॰) तीक्ष्णा उग्रा कान्ता कमनीया कर्मधा॰। मङ्गलचण्डिकाकी मूर्त्तिविशेष, तारादेवी, उग्रतारा।

कालिकापुराणमें लिखा है, कि दिक्करवासिनी देवीकी पीठ पर स्वयं भगवान् शम्भु लिङ्गरूपमें, विष्णु शिलारूपमें और ब्रह्मा लिङ्गरूपमें अवस्थित हैं। फिर वहां देवी दुर्गा तीक्ष्णकान्ता और उग्रतारा इन दो रूपोंमें विहार करती हैं। ललितकान्ता नामक परात्परा मङ्गलचण्डिकाका नाम ही तीक्ष्णकान्ता है। तीक्ष्णकान्ता देवी कृष्णवर्णा, लम्बोदरी और एकजटाधारिणी हैं। साधकको इस देवीका पूजन सर्वदा करना चाहिए। मन्त्रपाठपूर्वक इसका त्रिकोणमण्डल करना चाहिये—“रेखे सुरेखे तथा तिष्ठन्तु’ यही तीक्ष्णकान्ताका मण्डलन्यास मन्त्र है।

नरान्तक, त्रिपुरान्तक, देवान्तक, यमान्तक, वेतालान्तक, दुर्द्धरान्तक, गणान्तक और श्रमान्तक ये तीक्ष्णकान्ताके द्वारपाल हैं। मण्डलके आठ ओर इन सबोंकी पूजा करनी चाहिये। पूजा करते समय सम्बोधनान्त एक नाम, पीछे “वज्रपुष्पं” तब “स्वाहा” सबको मिला कर जो बने वही इन द्वारपालकोंका मन्त्र है। तीक्ष्णकान्ता और उग्रतारा इन्हीं दो मूर्त्तियोंमें पात्र, उपकरण, स्नान, न्यास प्रभृति कहना पड़ता है। चामुण्डा, कराला, सुभगा, भीषणभगा और विकटा ये छ देवीकी योगिनी हैं।

‘हे भगवत्येकजटे विद्महे विकटदंष्ट्रे धीमहि तन्नस्तारे प्रचोदयात्।’

यही पीठदेवी तीक्ष्णकान्ताकी गायत्री है। विकटचण्डिका देवी इनकी निर्माल्यधारिणी हैं।

मृण्मय वा रुद्राक्षसे इनकी जपमाला करनी पड़ती है। तीक्ष्णकान्ता देवीकी पूजामें यही विशेष है। इसके सिवा उपचार बलिदान जप आदि समस्त कार्य कामाख्या पूजाके अनुसार करने पड़ते हैं। तीक्ष्णकान्ता देवीके जलमें मदिरा, बलिमें नरबलि और नैवेद्यमें मोदक, नारियल, मांस, व्यञ्जन और ईख ही प्रशस्त और प्रीतिप्रद हैं। इनकी पूजा करनेसे साधक अभीष्ट लाभ करता है।
(कालिकापु॰ ८० अ॰)

तीक्ष्णकील (सं॰ क्ली॰) १ अकर्कर, अकरकरा। २ शुक्लमदनवृक्ष, सफेद मदनका पेड़।

तीक्ष्णक्षीरी (सं॰ स्त्री॰) वंशलोचन।

तीक्ष्णगन्ध (सं॰ पु॰) तीक्ष्णः प्रचण्डो गन्धो यस्य, बहुव्री॰। १ शोभाञ्जनवृक्ष, सहिजनका पेड़। २ रक्ततुलसी, लाल तुलसी। ३ श्वेततुलसी, सफेद तुलसी। ४ कुन्दुरु नामक गन्धद्रव्य।

तीक्ष्णगन्धा (सं॰ स्त्री॰) तीक्ष्णगन्ध-टाप्। १ श्वेतवचा,

सफेद वच। २ कम्बारीका वृक्ष। ३ राजिका, राई। ४ वचा, वच। ५ जीवन्ती। ६ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची। ७ श्वेतजीरक, सफेद जीरा।

तीक्ष्णगन्धोग्रा (सं० स्त्री०) शुक्लवचा, सफेद वच।

तीक्ष्णतण्डुला (सं० स्त्री०) तीक्ष्णस्तण्डुला यस्य:, बहुव्री०। पिप्पली, पीपल।

तीक्ष्णतरु (सं० पु०) पिलुवृक्ष, एक पेड़।

तीक्ष्णता (सं० स्त्री०) तीक्ष्णस्य भावः तीक्ष्ण भावे तल्-टाप्। तीव्रता, तेजी।

तीक्ष्णताप (सं० स्त्री०) तीक्ष्णः तापः यस्य। महादेव, शिव।

तीक्ष्णतैल (सं० क्ली०) तीक्ष्णस्य स्नेहः स्नेहे तैलच् वा तीक्ष्णं तैलं स्नेहो यस्य। १ स्नूही क्षीर, सेहुँड़का दूध। २ सर्जरस, राल। ३ मद्य, शराब। ४ सरसोंका तेल।

तीक्ष्णत्वक् (सं० पु०) तुम्बुर, धनिया।

तीक्ष्णदंष्ट्र (सं० पु०-स्त्री०) तीक्ष्ण दंष्ट्रा यस्य, बहुव्री०। १ व्याघ्र, बाघ। (त्रि०) २ तीक्ष्ण दंष्ट्रायुक्त, जिसके दांत तेज हों।

तीक्ष्णदग्धा (सं० स्त्री०) यावनाल वृक्ष।

तीक्ष्णदन्त (सं० पु०) वह जानवर जिसके दांत बहुत तेज या नुकीले हो।

तीक्ष्णदृष्टि (सं० स्त्री०) तीक्ष्ण दृष्टिः, कर्मधा०। सूक्ष्म दृष्टि, जिसकी दृष्टि सूक्ष्मसे सूक्ष्म बात पर पड़ती हो।

तीक्ष्णद्रु (सं० पु०) पिलुवृक्ष, एक प्रकारका काँटेदार पेड़।

तीक्ष्णधार (सं० पु०) तीक्ष्णधारा यस्य, बहुव्री०। १ खड्ग। (त्रि०) २ तीक्ष्ण धारयुक्त, जिसकी धार बहुत तेज हो।

तीक्ष्णपत्र (सं० पु०) तीक्ष्णानि पत्राणि यस्य, बहुव्री०। १ तुम्बुरु, धनिया। २ कुमरिच, लाल मिर्चका पेड़। (त्रि०) ३ तीव्रपत्रयुक्त, जिसके पत्तोंमें तेज धार हो।

तीक्ष्णपुष्प (सं० क्ली०) तीक्ष्णं पुष्पं यस्य, बहुव्री०। १ लवङ्ग, लौंग। (त्रि०) २ तिग्म पुष्पयुक्त, जिसके फूलमें तेज धार हो।

तीक्ष्णपुष्पा (सं० स्त्री०) तीक्ष्ण पुष्प-टाप्। केतकी।

तीक्ष्णप्रिय (सं० पु०) यव, जौ।

तीक्ष्णफल (सं० पु०) तीक्ष्णं फलं यस्य, बहुव्री०। १ तुम्बुरु, धनिया। २ तेजा फल।

तीक्ष्णफला (सं० स्त्री०) तीक्ष्ण फल-टाप। राजसर्षप, राई।

तीक्ष्णबुद्धि (सं० पु०) तीक्ष्णबुद्धिर्यस्य, बहुव्री०। प्रखरमति, जिसकी बुद्धि बहुत तेज हो।

तीक्ष्णमञ्जरी (सं० स्त्री०) पर्णलता, पानका पौधा।

तीक्ष्णमूल (सं० पु०) तीक्ष्णं मूलं यस्य, बहुव्री०। १ शोभाञ्जन, सहिंजन। २ कुलाञ्जन। (त्रि०) ३ तिग्ममूलक, जिसकी जड़में बहुत तेज गन्ध हो। (क्ली०) तीक्ष्णं मूलं कर्मधा०। ४ तिग्म मूल, तेज जड़।

तीक्ष्णरश्मि (सं० पु०) तीक्ष्णरश्मयो यस्य, बहुव्री०। तिग्मांशु, सूर्य। (त्रि०) २ तिग्म रश्मियुक्त, जिसकी किरणों बहुत तेज हों।

तीक्ष्णरस (सं० पु०) तीक्ष्ण रसो यस्य बहुव्री०। १ यवक्षार, जवखार। तीक्ष्णः रसः कर्मधा०। २ तिग्मरस, शोरा। (त्रि०) ३ तिग्मरस युक्त, जिसका रस बहुत तेज हो।

तीक्ष्णलौह (सं० क्ली०) तीक्ष्ण लौहं कर्म०। लौहभेद, इस्पात।

तीक्ष्णवल्क (सं० पु०) तुम्बुरु, धनिया।

तीक्ष्णवृक्ष (सं० पु०) पिलुवृक्ष, एक प्रकारका कांटेदार पेड़।

तीक्ष्णवेग (सं० त्रि०) तीक्ष्णः वेगः यस्य, बहुव्री०। अधिक वेगयुक्त, जिसमें तेज गति हो।

तीक्ष्णशूक (सं० पु०) तीक्ष्णं शूको अग्रं यस्य, बहुव्री०। यव, जौ। (त्रि०) २ खरशूकयुक्त, जिसकी नोक तेज हो। (क्ली०) तीक्ष्णं शूकं, कर्मधा०। ३ खरशूक, तेज नोक।

तीक्ष्णसारा (सं० स्त्री०) तीक्ष्णः कठिनः सारो यस्या, बहुव्री०। १ शिंशपावृक्ष, शीशमका पेड़। २ मधुकवृक्ष, महुवेका पेड़। ३ लौह, लोहा। ४ (त्रि०) तिग्मसारयुक्त, जिसका रस बहुत तेज हो। (क्ली०) ५ खरसार, तेज रस।

तीक्ष्णा (सं० स्त्री०) तीक्ष्ण-टाप्। १ वचा, वच। २ सर्पकङ्कालिकावृक्ष। ३ कपिकच्छु, केवाँच। ४ महाज्योति-

ष्मती लता, बड़ी मालकंगनी। ५ अत्यम्लपर्णी लता। ६ जलौका, जोंक। ७ कटुवीरा, मिर्च। ८ तारादेवीका एक नाम।

तीक्ष्णांशु (सं० पु०) तीक्ष्णाः अंशवो यस्य, बहुव्री०। तिग्मरश्मि, सूर्य।

तीक्ष्णांशुतनय (सं० पु०) तीक्ष्णांशुः सूर्यस्तस्य तनयः, ६-तत्। सूर्यतनय, सूर्यके पुत्र।

तीक्ष्णाग्नि (सं० पु०) १ छातीका एक रोग। २ अजीर्ण रोग। ३ जठराग्नि।

तीक्ष्णाग्र (सं० त्रि०) तीक्ष्णःअग्रो यस्य, बहुव्री०। सूक्ष्माग्र, पैनी नोकवाला, जिसका अगला भाग तेज या नुकीला हो।

तीक्ष्णायस (सं० क्ली०) अय एव आयसं तीक्ष्णाञ्च तत् आयसञ्चेति, कर्मधा०। लौहविशेष, इस्पात लोहा। इसके संस्कृत पर्याय—लौह, शस्त्रायस, शस्त्र, पिण्ड, पिण्डायस, शठ, आयस, निशित, तीव्र, खड्ग, मुण्डित, अयस, चित्रायस और चीनज। इसके गुण—उष्ण, तिक्त; वात, पित्त, कफ, प्रमेह, पाण्डु और शूलनाशक तथा तीक्ष्ण।

इस्पातका चूर्ण और त्रिफलाका चूर्ण एकत्र मिला कर दूधके साथ सेवन करनेसे शूलरोग जाता रहता है।

तीक्ष्णीषु (सं० पु०) असह्य बाणयुक्त।

तीखा (हिं० वि०) १ तीक्ष्ण, जिसकी धार या नोक बहुत तेज हो। २ प्रखर, तीव्र, तेज। ३ उग्र, प्रचण्ड। ४ जिसका स्वभाव बहुत उग्र हो। ५ बढ़िया, अच्छा। ६ अप्रिय बचन। ७ जिसका स्वाद बहुत तेज या चरपरा हो।

तीखी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका काठका औजार जो रेशम फेरने वालोंके काममें आता है। इसके बीचमें गज डाल कर उस पर रेशम फेरा जाता है।

तीखुर—हलदीकी जातिका एक प्रकारका पौधा। इसकी जड़से अरारूट प्रस्तुत किया जाता है। अरारूट देखो। मध्य भारतमें यह प्रचुर परिमाणमें पैदा होता है। बङ्गाल, मन्द्रास और बम्बईके पहाड़ी प्रदेशोंमें भी इसकी खेती होती है। हरिद्रा, कचूर और आमहल्दी प्रभृतिकी तरह मध्यभारतके रायपुर जिलेमें तीखुरका भी खूब बड़ा व्यवसाय होता है। उत्तर-पश्चिम हिमालय, कनाड़ा जिलेके रामघाट पर्वत, त्रिवाङ्कोर और कोचीनमें भी यह उगता है। यह दो प्रकार होता है; अंग्रेजीमें इन दो जातियोंके नाम Curcuma augustifolia एवं Curcuma Leucorrhiza हैं। हिन्दीमें दोनों श्रेणियां तीखुर और तेलङ्गमें आरारूटगड्डालू नामसे कही जाती है।

कई लोगोंका कहना है कि इसकी प्रथम श्रेणीका देशी नाम कुआ या कुया और दूसरीका नाम तीखुर है।

इसकी खेती ठीक हल्दीकी खेतीकी तरह होती है; लेकिन इसे खोदते समय हल चलानेकी जरूरत होती है। इसकी जड़ इतनी कठिन होती है कि बिना हल चलाये निकाली नहीं जा सकती। यत्न पूर्वक इसकी खेती करने पर इससे विलायती आरारूटकी तरह उत्कृष्ट द्रव्य बनता है।

कनाड़ा, कोचीन और त्रिवाङ्कोरमें इससे आरारूट प्रस्तुत होता है। इसका आटा काशीके बाजारोंमें बिकता है वहांके हलवाई इससे एक प्रकारके मीठे लड्डू बनाते हैं, जो खानेमें अत्यन्त सुस्वादु होते है। इसके बिस्कुट भी अच्छे बनते हैं। यह कुछ कोष्ठबद्धकर (कब्ज करनेवाला) है। बम्बईमें पानी मिलाया दूध या चार गाढ़ा करनेके लिए यही आटा काममें लाया जाता है। यह रोगीके लिए भी हितकर है। नाना स्थानोंमें यह नाना उपायोंसे प्रस्तुत किया जाता है। उनमेंसे गोदावरी जिलेमें जो उपाय अवलम्बित किये जाते हैं, वे ही आरारूट शब्दमें लिखे गये हैं। अधिक धूप लगनेसे इसमें तनिक खट्टापन आ जाता है। यत्नसे, प्रस्तुत करने पर एक बीघेमें डेढ़ सौ रुपया लाभ हो सकता है।

तीखुल (हिं० पु०) तिखुर देखो।

तीज (हिं० स्त्री०) १ प्रत्येक पक्षकी तीसरी तिथि। २ हरतालिका तृतिया, भादों सुदी तीज।

(हिं० वि०) हरतालिका देखो।

तीजा (हिं० पु०) १ मुसलमानोंमें किसीके मरनेके दिनसे तीसरा दिन। (हिं० वि०) २ तृतीय, तीसरा।

तीतर (हिं० पु०) समस्त एशिया और युरोपमें मिलने वाला एक प्रसिद्ध पक्षी। इसके दो भेद हैं, चितकबरा

और काला। इसका पेट कुछ भारी, दुम छोटी और पैरमें चार उंगलियां होती हैं। यह एक जगह कभी स्थिर नहीं रहता। हिन्दुस्तानमें यह प्रायः कपास, गेहूँ या चावलके खेतोंमें जालमें फंसाकर पकड़ा जाता है। इसके अंडे चिकने और धब्बेदार होते हैं।

विशेष विवरण तित्तिर शब्दमें देखो।

तीता (हिं॰ वि॰) १ तिक्त, जिसका स्वाद तीखा और चरपरा हो। २ कटु, कड़ुआ। ३ गीला, नम। (हिं॰ पु॰) ४ जोतने बोनेकी जमीनका गीलापन। ५ ऊपर भूमि। ६ ढेंकी या रहटका अगला भाग। ७ ममीरेके भाड़का एक नाम।

तीन (हिं॰ वि॰) १ जो दोसे एक अधिक हो। (पु॰) वह संख्या जो दो और एकके योगसे बनती हो।

तीनपान (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका बहुत मोटा रस्सा। इसकी मुटाई एक फुटसे अधिक नहीं होती।

तीनपाम (हिं॰ पु॰) तीनपान देखो।

तीनलड़ी (हिं॰ स्त्री॰) तीन लड़ियोंकी माला, तिलड़ी।

तीनी (हिं॰ स्त्री॰) तिन्नीका चावल।

तीपड़ा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका औजार जो रेशमी कपड़ा बुननेवालोंके काममें आता है। इसके नीचे ऊपर दो लकड़ियां लगी रहती हैं।

तीपरा (ढिप्‌रा)—त्रिपुरा और चट्टग्रामकी पार्वत्य प्रदेशवासी एक भ्रमणशील जाति। आराकानमें इन्हें मरङ्ग कहते हैं। इस जातिका प्रकृत जातिगत नाम तीपरा नहीं है। इनमेंसे बहुतोंका त्रिपुराके पार्वत्य प्रदेशमें वास होनेके कारण ये लोग तीपरा नामसे मशहूर हो गये हैं। पूछने पर भी ये अपनेको बङ्गालके 'तिपारा' बतलाते हैं। यूरोपीय मानवतत्त्वविद्‌गण इस जातिको लौहित्यश्रेणी-भुक्त करते हैं। इन लोगोंका आकार प्रकार बहुत कुछ बङ्गालियों जैसा होने पर भी ये उनसे मजबूत मालूम पड़ते हैं।

ये लोग खेतीबारी करके अपनी जीविका निर्वाह करते हैं।

इन लोगोंकी खेतीबारी मघ जातिसी होती है। लुशाई, मघ और हिन्दुओंको अपने दलमें लानेमें ये तनिक भी आपत्ति नहीं करते।

बाल्यविवाहकी प्रथा इन लोगोंमें प्रचलित नहीं है। स्त्रियां प्रायः शुद्धाचारी होती हैं। विवाहके समय कोई विशेष अनुष्ठानादि नहीं करने पड़ते। खाना पीना और नाच गान यही विवाहका प्रधान अङ्ग है। इस समय वन और नदी-देवताके उद्देश्यसे एक सूअरके बच्चेकी बलि दी जाती है। कन्याकी माता एक पात्रमें शराब लाकर उसे कन्याके हाथमें अर्पण करती है। फिर कन्या वरकी गोदमें बैठ कर उस पात्रको वरके हाथमें दे देती है। आधी शराब तो वर खुद पी लेता और आधी अर्द्धाङ्गिनीको पिलाता है। कन्याके मातापिताकी इच्छासे यदि विवाह हुआ हो, तो वरको तीन वर्ष तक ससुरालमें रह कर काम काज करना पड़ता है।

ये लोग काली और सत्यनारायणकी पूजा करते हैं। पूजामें ब्राह्मण नियुक्त नहीं होते। औचाई नामक स्वजातीय एक घर है, जो वंशानुक्रमसे पुरोहितका काम करता है। जब किसीकी मृत्यु होती है, तब वे मृतदेहको घरके बाहर ले जाते और एक मुर्गीको मार कर चावलके साथ उसे मृत व्यक्तिके पांव तले रख देते हैं, जहां दाहकर्म होता है, वहां मृतके आत्मीयगण ७ दिन तक आते और प्रति दिन मृतके उद्देशसे एक एक मुर्गी मार कर उसे चावलके साथ वहीं रख जाते हैं। पीछे मृतकी भस्म लाकर पहाड़के ऊपर रखते और उसके ऊपर एक छोटासा घर बना कर उसमें मृतके अस्त्र-शस्त्र बहुत सावधानीसे रख छोड़ते हैं। इनमेंसे एक श्रेणी राजवंशी नामसे प्रसिद्ध है। वे अपनेको त्रिपुराके राजवंशीय बतलाते हैं।

तीमारदारी (फा॰ स्त्री॰) रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषाका काम।

तीय (हिं॰ स्त्री॰) स्त्री, औरत।

तीर (सं॰ क्ली॰) तीर-अच्। नद्यादिका कूल, नदी आदिका किनारा। नदी किनारेसे ५० हाथ तक परिमित स्थानको तीर कहते हैं। भाद्र मासकी कृष्णा चतुर्दशी तिथिमें जहां तक जल प्लावित होता है, वहां तक गर्भ और उस जगहसे ५० हाथ तक तीर कहलाता है। पुराणोंके मतसे गङ्गादि पुण्य नदीके किनारे किया हुआ पुण्य या पाप चिरस्थायी रहता है, इसलिये भूलसे भी पुण्यनदियोंके किनारे पाप कार्य नहीं करना चाहिये और सदा

यथाशक्ति पुण्योपार्जनमें यत्नवान् होना चाहिये। (पु०) २ सीसक, सीसा नामक धातु। ३ बाण, शर। ४ त्रपु, टीन। ५ समीप, निकट, पास।

तीरंदाज (फा० पु०) वह जो तीर चलाता हो।

तीरंदाजी (फा० स्त्री०) तीर चलानेकी विद्या।

तीरगर (फा० पु०) १ तीरप्रस्तुतकारी, तीर बनानेवाला कारीगर। २ एक श्रेणीके मुसलमान। अहमदाबाद जिलेमें इनका बास अधिक है। पहले ये युद्धके लिये तीर बनाते थे, इसीसे इनका नाम तीरगर पड़ा है। अभी तीरका आदर जाता रहा; सुतरां इन्होंने भी जातीय व्यवसायका परित्याग किया है। अभी ये चोबदार या दासका कार्य कर जीविका निर्वाह करते हैं।

तीरग्रह (सं० पु०) देशभेद, एक देशका नाम।

तीरण (सं० क्ली०) लताभेद, करञ्जिका, करंज।

तीरभुक्ति (सं० पु०) देशविशेष, इसका नामान्तर विदेह है। तिरहुत देखो।

तीररुह (सं० त्रि०) तीरे रोहति रुह-क। वृक्ष, पेड़।

तीरवर्त्ती (सं० त्रि०) १ जो तट पर रहता हो। २ पास रहनेवाला, पड़ोसी।

तीरस्थ (सं० त्रि) तीरे तिष्ठति तीर-स्था-क। १ तीरस्थित, तट पर रहनेवाला। २ नदीके तीर पर पहुंचाया हुआ मरणासन्न व्यक्ति। बहुत जगह जब रोगी मरनेको होता है, तब उसके सम्बन्धी पहलेहीसे उसको नदीके तीर पर ले जाते हैं। धार्मिक दृष्टिसे नदीके तीर पर मरना अधिक उत्तम समझा जाता है।

तीराट (सं० पु०) लोध्र, लोध।

तीरान्तर (सं० क्ली०) तीरस्य अन्तरं, ६-तत्। दूसरे पार।

तीरित (सं० त्रि०) तीर-क्त। कार्यसमाप्ति।

तीरु (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ शिवकी स्तुति।

तीर्ण (सं० त्रि०) तॄ-क्त। १ उत्तीर्ण, जो पार हो गया हो। २ अभिभूत, हराया हुआ। ३ आप्लुत, जो भोगा हुआ हो। ४ अतिक्रान्त, जो सीमाका उल्लंघन कर चुका हो।

तीर्णपदा (सं० स्त्री०) मूसली, तालमूल।

तीर्णपदी (सं० स्त्री०) तीर्णः पादोः मूलमस्याः अन्त्य-लोपः कुम्भपद्या० ङीष्। तालमूली, मूसली।

तीर्णा (सं० स्त्री०) प्रतिष्ठाख्य वृत्तिविशेष, एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें एक नगण और गुरु होता है।

तीर्थ (सं० क्ली०) तरति पापादिकं यस्मात् तॄ-थक्। पातॄ तुदि वचीति। उण् २।३। १ शास्त्र। २ यज्ञ। ३ क्षेत्र, स्थान। ४ उपाय। ५ नारीरज, रजस्वला स्त्रीका रज। ६ अवतार, अवतरण। ७ ऋषिजुष्ट जल, वह जल जिसे ऋषिगण सेवन करते हैं। ८ पात्र, बरतन। ९ उपाध्याय, गुरु। १० मन्त्री, वजीर। ११ योनि, भग। १२ दर्शन। १३ घाट। १४ विप्र। १५ आगम। १६ निदान। १७ वह्नि, अग्नि। १८ पुण्यस्थानादि। काशीखण्डमें तीर्थका विषय इस प्रकार लिखा है,—तीर्थ तीन प्रकारका है, जङ्गम, मानस और स्थावर। जगत्में ब्राह्मणगण जङ्गम तीर्थ हैं। ये पवित्रस्वभाव और सर्वकामप्रद हैं। इनके वाक्योदकके द्वारा मलिन मनुष्य विशुद्ध हो जाते हैं। ब्राह्मणोंकी सेवा करनेसे पाप नहीं रहते और समस्त कामनाओंकी सिद्धि होती है।

मानसतीर्थ—सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, दया, ऋजुता, दान, दम, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, विप्रवादिता, ज्ञान, धैर्य और तपस्या ये मानसतीर्थ हैं; इनमें भी मनकी विशुद्धता ही सबसे श्रेष्ठ है। देशभ्रमण करनेसे आत्माकी उन्नति वा बहुदर्शिता होती है, इसलिए भी तीर्थयात्राको हिन्दूगण अति पुण्यदायक समझते थे। तीर्थमें जानेसे मन विशुद्ध होता है और साधुओंके दर्शनसे आत्मा भी पवित्र होती है। जिन महात्माओंके आश्रममें जाते हैं, उनका वृत्तान्त स्मरण करनेसे जगतकी अनित्यता स्पष्ट ही प्रतीयमान होने लगती है, सैकड़ों मनुष्य उन आश्रमोंमें आ कर जन्म और मृत्युके हाथसे उद्धार हुए हैं। इन सब विषयोंकी चिन्ता करनेसे मनमें एक उदारभावका उदय होता है और सर्वदा पापोंसे दूर रहनेकी इच्छा जाग्रत होती है। अतएव प्रत्येक मनुष्यको आत्माकी उन्नतिके लिए तीर्थयात्रा करनी चाहिये। सारे शरीरको पानीमें डुबा कर स्नान कर लेनेसे तीर्थस्नान नहीं होता; यथार्थ तीर्थस्नानी वही

हैं जिसने अपनी पांचों इन्द्रियोंको जीत लिया है। जो लोभी, क्रूर, दाम्भिक वा विषयासक्त हैं और सैकड़ों बार तीर्थस्नान करते हैं, वे कभी भी पापोंसे मुक्त नहीं होते। केवल शरीरका मैल दूर करनेसे ही मनुष्य निर्मल नहीं हो जाता, मनसे मलको निकाल देनेसे ही मनुष्य यथार्थमें निर्मल हो सकता है। तीर्थयात्राका वास्तविक उद्देश्य चित्तका शुद्धि प्राप्त करना है। यदि अन्तःकरणका भाव पवित्र न हुआ, तो दान, तप, यज्ञ, शौच, तीर्थसेवा, सत्कथा श्रवण आदि सदनुष्ठान करने पर भी कोई फल नहीं होता। मनुष्य अपनी इन्द्रियोंकी जय करके चाहे जहां क्यों न बैठा रहे, वहीं उसके लिए कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थस्थान हैं। जो लोग राग-द्वेष आदि मलोंको दूर करके विशुद्ध ज्ञानरूप जलमें स्नान करते हैं, उन्हींको उत्कृष्ट गति प्राप्त होती है।

स्थावरतीर्थ—गङ्गा आदि पुण्यप्रदेशोंको स्थावरतीर्थ कहते हैं। जैसे शरीरका अवयवविशेष पवित्र माना जाता है, उसी तरह पृथिवीके भी कुछ प्रदेश पुण्यतम माने जाते हैं। स्थावर और मानसतीर्थमें जो लोग नित्य अवगाहन करते हैं, उनको उत्कृष्ट फलकी प्राप्ति होती है। (काशीखं०)

तीर्थयात्राके द्वारा जो फल होता है, वह फल विपुल दक्षिणाके साथ बहुतर यज्ञद्वारा भी नहीं होता। जो लोग हाथ, पैर और मनको संयत करके विद्या, तपस्या और कीर्ति सम्पन्न हो चुके हैं, उन्होंने यथार्थमें तीर्थफल प्राप्त किया है। प्रतिग्रहसे निवृत्त हो कर जो व्यक्ति जिस किसी तरह सन्तुष्ट रहता है, उसीको तीर्थका फल मिलता है। जो व्यक्ति दाम्भिक नहीं हैं, जिनके आरम्भ निष्फल हो चुके हैं, जो सम्पूर्ण अङ्गोंसे निवृत्त, क्रोधरहित, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, स्थिरव्रत और समस्त प्राणियोंको अपने समान देखते हैं, वे ही तीर्थका फल भोगते हैं। इन्द्रियोंको संयत करके, श्रद्धा और धीरताके साथ तीर्थ-भ्रमण करनेसे पापी मनुष्य विशुद्ध हो जाते हैं; साधुओंकी तो बात ही क्या? तीर्थानुसरण करनेसे तिर्यग्योनि वा कुदेशमें जन्म नहीं होता। तीर्थभ्रमणकारी व्यक्ति दुःखी नहीं होता और अन्तमें स्वर्गवासी होता है। जिसकी श्रद्धा नहीं, जो पापात्मा और नास्तिक है, जिसका संशय दूर नहीं हुआ है, जो निरर्थक तर्क करता है, उसे तीर्थका फल नहीं मिलता।

जो शीतोष्णको सह कर धीरतासे विधिपूर्वक तीर्थयात्रा करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं।

तीर्थयात्राके लिए जानेवाले व्यक्तिको प्रथमतः घरमें संयत हो कर उपवास करना चाहिए; पीछे यथाशक्ति गणेश, पितृगण, ब्राह्मण और साधुओंकी पूजा करना उचित है। तदनन्तर पारण करके नियम अवलम्बनपूर्वक आनन्दसे यात्रा करनी चाहिए। तीर्थयात्रासे लौट कर पुनः पितरोंकी पूजा की जाती है। ऐसा करनेसे उसका फल मिलता है। तीर्थमें ब्राह्मणकी परीक्षा न करनी चाहिए। कोई अन्न मांगे तो उसे यथाशक्ति देना चाहिए और किसी पर क्रोध न करना चाहिए। तिलपिष्ट और गुड़से श्राद्ध भी करना पड़ता है। श्राद्धमें अर्घ प्रदान और आवाहन करना उचित नहीं। काल विशुद्ध हो या न हो, किसी तरहका विघ्न न रहनेसे ही श्राद्ध और तर्पण करना चाहिए। प्रसङ्गाधीन तीर्थमें जा कर यदि स्नान किया जाय, तो उसका फल प्राप्त होता है, किन्तु तीर्थयात्राके निमित्त स्नान करनेसे फल लाभ नहीं होता। तीर्थयात्रासे पापात्माओंके पाप नष्ट होते हैं और श्रद्धा-सम्पन्न व्यक्तियोंको यथोक्त फल प्राप्त होता है। जो दूसरेके लिए तीर्थयात्रा करते हैं, उन्हें षोड़श अंश फल प्राप्त होता है और जो प्रसङ्गाधीन यात्रा करते हैं, उनको आधा फल प्राप्त होता है। जिसके लिए कुशकी प्रतिकृति बना कर उसे तीर्थमें स्नान कराया जाता है। उस व्यक्तिको अष्टमांश फल प्राप्त होता है। तीर्थमें उपवास और मस्तक-मुण्डन करना चाहिये। तीर्थमें मस्तक मुड़ानेसे शिरोगत समस्त पाप नष्ट होते हैं। जिस दिन तीर्थमें जाना हो, उसके पहले दिन उपवास करना चाहिये और तीर्थमें पहुंचते ही श्राद्ध करना चाहिए। काशी, काञ्ची, माया, अयोध्या, द्वारका, मथुरा और अवन्ती ये सात पुरी मोक्षप्रद एवं श्रीशैल और केदार उनसे भी ज्यादा मुक्तिप्रद हैं।

तीर्थराज प्रयागसे अविमुक्त क्षेत्र विशेष मुक्तिप्रद हैं। अविमुक्तक्षेत्रमें जो निर्वाण वा मुक्त होते हैं, वे फिर कहीं भी जन्म नहीं लेते। अन्यान्य जितने भी मुक्तिक्षेत्र

हैं, वे सब काशीमें मिलते हैं, अन्य किसी क्षेत्रमें ऐसा नहीं होता। (काशीख॰ ३ अ॰)

ब्रह्मपुराणमें तीर्थका विषय इस प्रकार लिखा है,—विशुद्ध मन ही पुरुषका तीर्थ है। तीर्थ वही यथार्थ और आवश्यक है, जिससे अन्तःकरण निर्मल हो, जब तक मन विशुद्ध न हो, तब तक किसी भी तीर्थका फल प्राप्त नहीं होता। जैसे मद्यपात्रको सौ बार धोने पर भी वह पवित्र नहीं होता, उसी तरह अविशुद्धात्माओंको सैकड़ों बार तीर्थ-जलसे धोये जाने पर भी कभी फलकी प्राप्ति नहीं होती। दुष्टाशय दाम्भिक लोगोंका व्रत, दान आदि सब निष्फल है। मनुष्य इन्द्रियोंको दमन करके चाहे जिस जगह वास करे, वह स्थान उसके लिए पुष्कर नैमिषारण्य आदि तीर्थ हो जाता है। (पद्मपु॰)

तीर्थमें जा कर जिनके चित्तका मल दूर नहीं हुआ, उनको तीर्थ करने पर भी कुछ फल नहीं मिलता। प्रयागतीर्थमें जा कर पितरोंका श्राद्ध और केशमुण्डन करना चाहिये; अन्यथाके उचित नहीं। तीर्थयात्रासे पहले और तीर्थसे लौट कर पितरोंका श्राद्ध करना उचित है। ऐश्वर्यमत्त धनी जो मानादि द्वारा तीर्थयात्रा करते हैं, उनकी तीर्थयात्रा वृथा है। (मत्स्यपु॰)

सत्ययुगमें पुष्कर, त्रेतामें नैमिषारण्य, द्वापरमें कुरुक्षेत्र और कलियुगमें गङ्गा ही श्रेष्ठ तीर्थ है। तीर्थमें प्रतिग्रह नहीं करना चाहिए। नारायणक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, वाराणसी, वदरीनाथ, गङ्गासागरसङ्गम, पुष्कर, भास्कर, प्रभास, रासमण्डल, हरिद्वार, केदार, सरस्वती, वृन्दावन, गोदावरी, कौशिकी, त्रिवेणी आदि तीर्थोंमें जो लोग इच्छापूर्वक प्रतिग्रह करते हैं, उनको कुम्भीपाक नरकमें जाना पड़ता है। तीर्थमें जा कर, प्राण कण्ठगत होने पर भी दान ग्रहण न करना चाहिये। अकाल, मलमास और यात्रोक्त निषिद्ध दिनको छोड़ कर तीर्थयात्रा करनी चाहिये। किन्तु गयाक्षेत्रको अकालमें भी जा सकते हैं, अथवा संक्रान्तिमें सभी तीर्थमें जा सकते हैं।

इस पृथिवी पर कितने तीर्थ हैं, इसका निर्णय करना दुःसाध्य है। एक पद्मपुराणमें ही साढ़े तीन करोड़ तीर्थोंका उल्लेख है। ऐसी दशामें सम्पूर्ण तीर्थोंका निर्णय करना असम्भव है। एकमात्र इस भारतवर्षमें ही इतने तीर्थ हैं, जिनकी शुमार नहीं। जहां कहीं भी कोई महापुरुष आविर्भूत हुए हैं, अथवा जहां किसी देव या महात्माने लीला की है, धर्मप्राण हिन्दुओंने उसी स्थानको तीर्थ मान लिया है। इसलिए समस्त तीर्थोंके नाम एकत्र प्रगट करके ग्रन्थकी कलेवरवृद्धि करना वृथा है। तीर्थोंके नामानुसार उन्हीं शब्दोंमें विवरण दिया गया है।

यहां महाभारतके अनुसार कुछ प्राचीन तीर्थोंका उल्लेख किया जाता है।

पुष्कर—इसका नाम तीर्थराज है। इस तीर्थमें त्रिसन्ध्या दश कोटि तीर्थोंका आगमन होता है; इसमें स्नानादि करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। जम्बूमार्ग—इससे अश्वमेधसदृश फल और विष्णुप्राप्ति होती है। तण्डुलिकाश्रम—इसका फल है दुर्गतिविनाश और ब्रह्मप्राप्ति। अगस्त्य-सरोवर—इसमें तीन रात उपवास करनेसे वाजपेय यज्ञका फल और शाकभोजन करनेसे कौमारलोककी प्राप्ति होती है। धर्मारण्य—यहां कण्वाश्रम है, प्रवेश करते ही पापक्षय होता है। देवपितृपूजा द्वारा अश्वमेधफल और देवलोककी प्राप्ति होती है। ययातिपतन—यहां जाते ही अश्वमेधका फल होता है। कोटीतीर्थ—यहां महाकाल नित्य विराजित रहते हैं। स्नान करनेसे अश्वमेध-तुल्य फल होता है।

भद्रवट—नर्मदा नदी, यहां पितरोंका तर्पण करनेसे अग्निष्टोम करनेका फल होता है। दक्षिणसिन्धु—यहां ब्रह्मचर्य आचरण करनेसे अग्निष्टोम तुल्य फल और स्वर्गप्राप्ति होती है। चर्मण्वती नदी—यहां इन्द्रियनिग्रह करनेसे ज्योतिष्टोम तुल्य फल होता है। अर्बुदाचल—यहां वशिष्ठाश्रम है, एक रात्रि उपवास करनेसे सहस्र गोदानके समान फल होता है। पिङ्गतीर्थ—यहां इन्द्रिय जय करनेसे सवत्स शत कपिलादान तुल्य फल होता है। प्रभास—यहां हुताशन स्वयं विराजित हैं, अतः अग्निष्टोम सदृश फल होता है। सरस्वतीसागरसंगम—यहां स्नान करनेसे सहस्र गोदानतुल्य फल और तीन दिन उपासे रह कर देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे अश्वमेधतुल्य फल होता है।

वरदान—यहां दुर्वासाने विष्णुको वर प्रदान किया

था, अतः स्नान करनेसे गोदानतुल्य फल होता है।

द्वारावतीका पिण्डारकतीर्थ—यहां पद्मचिह्नयुक्त मुद्रा और शूलचिह्नित पद्म अब भी देखनेमें आते हैं। महादेव स्वयं इस स्थानमें हैं। यहां स्नान करनेसे सुवर्णदान यज्ञसदृश फल प्राप्त होता है।

समुद्रसिन्धुसङ्गम—यहां स्नान और पितरोंका तर्पण करनेसे वरुणलोककी प्राप्ति होती है। द्रिमीतीर्थ—यहां महादेव स्वयं विराजित हैं; स्नान करनेसे अश्वमेधका फल और महादेवके दर्शन वा पूजनसे सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं। वसुधारातीर्थ—इसके दर्शन करनेसे अश्वमेधका फल, स्नान और तर्पण द्वारा पितृलोककी प्राप्ति होती है। सिन्धूत्तमतीर्थ—यहां स्नान करनेसे बहुयज्ञतुल्य फल प्राप्त होता है। यदुतुङ्गतीर्थ—यहां जानेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। कुमारिका और शक्रतीर्थ—यहां स्नान करनेसे सम्पूर्ण पापोंका नाश होता है। पञ्चनदतीर्थ—इसमें पञ्चयज्ञका फल प्राप्त होता है। भीमास्थानतीर्थ—यहां स्नान करनेसे मनुष्य देवीपुत्र होता है और सहस्र गोदानतुल्य फल मिलता है।

गिरिकुञ्जतीर्थ—यहां स्वयं ब्रह्मा विराजित हैं। उनको प्रणाम करनेसे सहस्र गोदानतुल्य फल होता है। विमलतीर्थ—अब भी यहां सौवर्ण और रजत मत्स्य मौजूद हैं। स्नान और पानद्वारा वाजपेय सदृश फल प्राप्त होता है। वितस्तानदी—यहां तर्पण करनेसे वाजपेय फल और स्वर्गलोक-गमन होता है। काश्मीरमें वितस्ता नामक तक्षकनागसदन तीर्थमें स्नान करनेसे वाजपेय फल और स्वर्गलोक प्राप्त होता है। शमपरातीर्थ—यहां सन्ध्याकालमें स्नान और सप्तार्चिको चरु प्रदान करनेसे सहस्र अश्वमेधका फल प्राप्त होता है।

रुद्रास्पदतीर्थ—यहां महादेवके दर्शन करनेसे अश्वमेध-सदृश फल होता है। मतिमान् पर्वत—यहां तीन दिन उपवास करनेसे ज्योतिष्टोम सदृश फल होता है। देविकानदी—यह महादेवका स्थान है; यहां स्नान, महादेवके दर्शन और महादेवको चरु प्रदान करनेसे समस्त कामनाओंकी सिद्धि और दीर्घसत्र, राजसूय और अश्वमेधका फल होता है। विनशनतीर्थ—यहां स्नान करनेसे वाजपेय सदृश फल होता है। शशपानतीर्थ—यहां स्नान करनेसे शिवकी भांति दीप्ति और सहस्र गोदान तुल्य फल होता है। कुमारकोटितीर्थ—यहां स्नान तथा पितृ और देवताओंका पूजन करनेसे गवामयनयाग जैसा फल होता है। रुद्रकोटितीर्थ—यहां एक करोड़ ऋषियोंने मिल कर ऐसा प्रण किया था कि 'हम पहले महादेवको देखेंगे'। उनके प्रस्थान करने पर रुद्र सन्तुष्ट हो कर यहां कोटी हुए थे। यहां स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल और कुलका उद्धार होता है। सरस्वतीसङ्गमतीर्थ—यहां जनार्दन स्वयं विराजते हैं; अतः स्नान करनेसे बहु सुवर्णयागका फल प्राप्त होता है। शयावसानतीर्थ—यहां जानेसे सहस्र गोदानका फल होता है।

कुरुक्षेत्रतीर्थ—यहां जानेसे समस्त पापोंका नाश और मचक्रुक द्वारपालकी पूजा करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है। विष्णुस्थान—यहां स्नान और दर्शन करनेसे अश्वमेधका फल और विष्णुलोकमें गमन होता है। पारिप्लवतीर्थ—यहां अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है। पृथिवी तीर्थ—यहां सहस्र गोदान तुल्य फल होता है। शालूकिनीतीर्थ—स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है। सर्पिर्वीतीर्थ—यहां जानेसे अग्निष्टोमका फल और नागलोककी प्राप्ति होती है। अवर्णकद्वारपाल तीर्थ—यहां रात्रिवास करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है।

पञ्चनदतीर्थ—यहां स्नान करनेसे अश्वमेधका फल होता है। अश्वितीर्थ—फल, उत्तमरूप। वराहतीर्थ—फल, अग्निष्टोमतुल्य। जयन्ततीर्थ—फल, राजसूययज्ञतुल्य। एकहंसतीर्थ—फल, सहस्र गोदानतुल्य। कृतशौचतीर्थ—फल, पुण्डरीकयज्ञ तुल्य।

मुञ्जावटतीर्थ—यह महादेवका स्थान है; यहां एक रात्रि वास करनेसे गाणपत्यकी प्राप्ति होती है। जामदग्न्यहृतपुष्कर तीर्थ—यहां स्नान पूजा करनेसे हयमेधका फल होता है। रामह्रदतीर्थ—परशुरामके क्षत्रियोंके विनाश करने पर उनके रक्तसे ५ ह्रद उत्पन्न हुए थे। यहां पितरोंका तर्पण करनेसे बहु सुवर्णयज्ञका फल होता है। वंशमूलकतीर्थ—यहां स्नान करनेसे कुलका उद्धार

होता है। कायशोधनतीर्थ—यहां स्नान करनेसे देहकी शुद्धि होती है। लोकोद्धारतीर्थ—फल, स्वकीय लोकोद्धार। श्रीतीर्थ—फल, उत्तम श्रीप्राप्ति। कपिलातीर्थ—यहां स्नान तथा देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे सहस्र कपिलादानका फल होता है। सूर्यतीर्थ—यहां उपवास, पितृपूजा और स्नान करनेसे अग्निष्टोम फल और देवलोककी प्राप्ति होती है। गोभवनतीर्थ—यहां अभिषेक करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है। शङ्खिनीतीर्थ—यहां स्नान करनेसे उत्तम वीर्यकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्मावर्त्ततीर्थ—स्नानका फल, ब्रह्मलोककी प्राप्ति। सुतीर्थ—यहां स्नान, पितृ और देवपूजा करनेसे अश्वमेध तुल्य फल और पितृलोककी प्राप्ति होती है। अम्बुमतीतीर्थ—यहां स्नान करनेसे समस्त रोगोंका नाश और ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। शीतवनतीर्थ—यहां केशमुण्डन करनेसे पवित्रता होती है। श्वानलोमापहतीर्थ—यहां स्नान करनेसे परमगति प्राप्त होती है। दशाश्वमेधतीर्थ—स्नानका फल, निश्चलागतिकी प्राप्ति। मानुषतीर्थ—यहां व्याधपीड़ित कृष्णमृगोंको, अवगाहन करनेसे मानुषत्व प्राप्त हुआ था। फल, पापोंका विनाश। आपगानदी—यहां देवता और पितरोंके उपलक्षमें ब्राह्मणभोजन करनेसे कोटि ब्राह्मणभोजनका फल लाभ होता है। ब्रह्मोड़ुम्बर तीर्थ—यहांके सप्तर्षिकुण्डमें स्नान करनेसे सम्पूर्ण पापोंका नाश और ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

कपिलकेदारतीर्थ—यहां तपस्या करनेसे समस्त पापोंका नाश और अन्तर्द्धानकी प्राप्ति होती है। सरकतीर्थ—वृषध्वजको प्रणाम करनेसे समस्त कामनाओंकी सिद्धि और शिवलोक प्राप्ति होती है। इलास्पदतीर्थ—स्नान, देवता और पितृपूजासे दुर्गतिका विनाश और वाजपियका फल प्राप्त होता है। किन्दानतीर्थ—स्नानसे अप्रमिय दानका फल प्राप्त होता है। किंजप्यतीर्थ—स्नानसे अप्रमिय जपका फल होता है। अम्बाजन्मतीर्थ—यह नारदका स्थान है; यहां मृत्यु होनेसे अनुत्तम लोककी प्राप्ति होती है। वैतरणीनदीतीर्थ—यहां महादेवकी पूजा और स्नान करनेसे समस्त पापोंसे मुक्ति और परमपदकी प्राप्ति होती है। फल्कीतीर्थ और मिश्रकतीर्थ—नारदने यहां सभी तीर्थ मिलाये थे; स्नान करनेसे सर्व तीर्थ स्नानका फल होता है। मधुवटीतीर्थ—स्नान देवता और पितृपूजन करने सहस्र गोदान तुल्य फल होता है। कौषकीदृषद्वतीसङ्गमतीर्थ—स्नानसे पापोंका नाश होता है। किन्दत्तकूप तीर्थ—तिलप्रस्थदान करनेसे ऋणत्रयसे मुक्ति और परमसिद्धि प्राप्ति होती है। वेदीतीर्थ—स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है। अहः और सुदीनतीर्थ—यहां दान करनेसे सूर्यलोक प्राप्ति होती है।

मृगधूमतीर्थमें स्नान और वामनपूजा करनेसे सम्पूर्ण पापोंका नाश और सूर्यलोकप्राप्ति, सरस्वतीतीर्थमें स्नान करनेसे स्वर्गवास और नैमिषकुञ्जतीर्थमें स्नान करनेसे हयमेधका फल होता है। कन्यातीर्थमें स्नान करनेसे ज्योतिष्टोमका फल, ब्रह्मस्थानतीर्थमें स्नान करनेसे शूद्रको ब्राह्मणत्व-प्राप्ति, सप्तसारस्वततीर्थमें स्नान और जप करनेसे ब्रह्मलोक-प्राप्ति, अग्नितीर्थ स्नानसे वह्निलोक लाभ, विश्वामित्रतीर्थ स्नानसे ब्राह्मण्यप्राप्ति, ब्रह्मयोनितीर्थ स्नानसे ब्रह्मलोकवास, पृथूदकतीर्थमें अभिषेक करनेसे अश्वमेध-फल और पापियोंको स्वर्गलाभ होता है। मधुस्रवतीर्थमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है। सरस्वत्यरुणासङ्गमतीर्थमें तीन रात्रि उपवास और स्नान करनेसे ब्रह्महत्याजनित पापका नाश होता है।

अवकीर्णतीर्थ-स्नानसे दुर्गतिका नाश होता है। शतसहस्रतीर्थ और साहस्रकतीर्थमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है, दान और उपवाससे फलकी शतगुण वृद्धि होती है। रेणुकातीर्थमें अभिषेक, देवता और पितृपूजन करनेसे समस्त पापोंका नाश और अग्निष्टोमयज्ञका फल होता है। विमोचनतीर्थमें स्नान करनेसे समस्त प्रतिग्रह-पापोंसे मुक्ति मिलती है। पञ्चवटतीर्थ—फल, महत् पुण्यलाभ और स्वर्गगमन। तैजसतीर्थ—यहां ब्रह्मादि देवोंने कार्त्तिकेयको सेनापति पद पर अभिषिक्त किया था। कुरुतीर्थमें स्नान करनेसे रुद्रलोक प्राप्त होता है। स्वर्गद्वारतीर्थमें जानेसे अग्निष्टोमयज्ञका फल प्राप्त होता है। अनरकतीर्थमें जानेसे दुर्गति नष्ट

होती है। अस्थिपुरतीर्थ—इस जगह पितृ और देवताओंका तर्पण करनेसे अग्निष्टोमका फल होता है। गङ्गाह्रदकूपतीर्थमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। स्थाणुवटतीर्थमें स्नान और एक रात्रि उपवास करनेसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। बदरीपाचनतीर्थ—यहां वशिष्ठका आश्रम है; तीन रात्रि उपवास और बदरीफल भक्षण करनेसे अश्वमेधका फल और इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। इन्द्रमार्गतीर्थमें अहोरात्र उपवास करनेसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। आदित्याश्रमतीर्थ-स्नानसे स्वर्गलोक प्राप्त होता है। सोमतीर्थमें स्नान करनेसे सोमलोकमें गमन होता है। कन्याश्रमतीर्थ—यहाँ तीन रात्रि अवस्थान और उपवास करनेसे ब्रह्मलोकमें गमन होता है। दधीचितीर्थ-स्नानसे वाजपेययज्ञका फल होता है। सन्निहतीतीर्थ—यहां अमावस्याके दिन सम्पूर्ण तीर्थोंका समागम होता है। अमावस्याके दिन और सूर्यग्रहणके समय स्नान करनेसे शत अश्वमेधका फल होता है। सूर्यग्रहणमें स्नानमात्रसे सकल पापोंका नाश और ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। गङ्गाह्रदतीर्थमें स्नान करनेसे राजसूय और अश्वमेधयज्ञका फल होता है। उसके बाद कारापचनतीर्थमें स्नान करनेसे अग्निष्टोमयज्ञका फल और विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

सौगन्धिकवनतीर्थ—यहाँ ब्रह्मा आदि देव प्रति दिन आया करते हैं, इस वनमें प्रवेशमात्रसे ही समस्त पापोंका विनाश होता है। प्लक्षसरस्वतीतीर्थमें स्नान, पितृ और देवपूजा करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल होता है। ईशानाध्युषिततीर्थ—यहाँ त्रिरात्रोपवास और शाकाहार करनेसे द्वादशवर्ष शाकाहारका फल होता है। सुवर्णाक्षतीर्थ—यहां महादेव स्वयं विराजित है, शिवपूजा द्वारा अश्वमेधयज्ञका फल और गाणपत्यकी प्राप्ति होती है। धूमावतीतीर्थमें त्रिरात्र उपवास द्वारा मनस्कामनाकी सिद्धि होती है। रथावतीतीर्थमें आरोहण करनेसे महादेवके प्रसादसे परमगति होती है। धारातीर्थमें स्नान करनेसे शोक नष्ट होता है। गङ्गाद्वारतीर्थमें स्नान करनेसे पुण्डरीक-यागका फल होता है।

सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और शक्रावर्ततीर्थ - इन तीन तीर्थोंमें पितृ और देवताओंका तर्पण करनेसे पुण्यलोककी प्राप्ति होती है। गङ्गायमुनासङ्गमतीर्थमें स्नान करनेसे दशाश्वमेधका फल और कुलका उद्धार होता है। कनखलतीर्थमें स्नान और त्रिरात्र उपवास करनेसे वाजिमेध-फल और ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। कपिलावटतीर्थमें एक दिन उपवास करनेसे सहस्र गोदानका फल होता है। कपिलानागराजतीर्थमें अभिषेक करनेसे सहस्र कपिलादानका फल होता है। ललितिकातीर्थमें स्नान करनेसे दुर्गतिका नाश होता है। सुगन्धातीर्थमें जानेसे समस्त पापोंका नाश और ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। गङ्गासरस्वतीसङ्गमतीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेधका फल और स्वर्ग-गमन होता है। भद्रकर्णतीर्थमें स्नान और शिवपूजा करनेसे दुर्गति नहीं होती। कुब्जाम्रकतीर्थमें जानेसे स्वर्गलाभ, अरुन्धतीवटतीर्थमें एक रात्रि वास करनेसे सहस्र गोदानका फल और कुलोद्धार होता है। ब्रह्मावर्ततीर्थमें जानेसे अग्निष्टोम-यज्ञका फल और ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। यमुनाप्रभवतीर्थ-स्नानसे अश्वमेध-फल और ब्रह्मलोकगमन होता है। सिन्धुप्रभवतीर्थमें पञ्चरात्र वास करनेसे बहुसुवर्णयज्ञका फल होता है। अर्थवेदीतीर्थमें जानेसे अश्वमेधयज्ञका फल और स्वर्गलोकका लाभ होता है। वाशिष्ठीनदीतीर्थमें जानेसे सभी वर्णको द्विजत्वकी प्राप्ति और स्नानोपवास करनेसे ऋषिलोक प्राप्ति होती है। भृगुतुङ्गतीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल, वीरप्रमोक्षतीर्थमें जानेसे समस्त पापोंका नाश, विद्यातीर्थस्नानसे सर्वत्र विद्यालाभ और महाश्रमतीर्थमें उपवास करनेसे शुभलोककी प्राप्ति होती है।

महालयतीर्थमें उपवास और एक मास वास करनेसे अपने साथ २१ पीढ़ीका उद्धार होता है। वेतसीतीर्थ-गमनसे अश्वमेधफल और औशनसगति प्राप्ति, सुन्दरिकातीर्थ-गमनसे रूपप्राप्ति, ब्राह्मणिकातीर्थ गमनसे ब्रह्मलोक लाभ, नैमिषतीर्थमें प्रवेश करनेसे सकल पापोंका नाश, स्नान करनेसे सप्तकुलोद्धार और प्राणत्याग द्वारा स्वर्गकी प्राप्ति होती है। गङ्गोद्भेदतीर्थमें तीन दिन उपवास करनेसे वाजिमेधका फललाभ और विष्णुलोकमें वास होता है। देवता और पितृतर्पण करनेसे सारस्वतलोकमें वास होता है। बाहुदानदीतीर्थमें एक रात्रि वास करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

गोप्रचारतीर्थमें स्नान करनेसे सम्पूर्ण पापोंका नाश और देवलोकको प्राप्ति होती है। रामतीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेधका फल, साहस्रवतीर्थमें जानेसे राजसूय और अश्वमेधका फल, राजगृह तीर्थमें स्नान करनेसे कुवेर-तुल्य सन्तोष, मणिनागतीर्थमें जानेसे सहस्र गोदानका फल और सर्पविष-भय नष्ट होता है। गोतमवन तीर्थ—यहांके अहल्याह्रदमें स्नान करनेसे परमगति प्राप्त होती है। श्रीदेवीतीर्थमें जानेसे श्रीप्राप्ति, उदपान तीर्थमें अभिषेक करनेसे वाजिमेधफल-प्राप्ति, जनकराज कूप तीर्थमें अभिषेक करनेसे विष्णुलोक प्राप्ति, विनशनतीर्थमें जानेसे वाजपेय-फलप्राप्ति. विशल्यातीर्थमें अवस्थान करनेसे गुह्यकलोकमें वास, कम्पनानदी तीर्थमें जानेसे पुण्डरीकयज्ञका फल, विशल्यनदीतीर्थमें जानेसे अग्निष्टोमका फल और देवलोकमें चिरवास. माहेश्वरीतीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल और स्वकुलोद्धार, दिवौकःपुष्करिणीमें जानेसे दुर्गतिका विनाश और वाजिमेधका फल, रामह्रदतीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल, महेश्वरपदतीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेधका फल, नारायणस्थानतीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल और इन्द्रलोकमें वास तथा जातिस्मरतीर्थमें स्नान करनेसे जातिस्मरत्व प्राप्त होता है।

वटेश्वरपुरतीर्थमें केशवके दर्शन, पुजन और उपवास करनेसे अभीष्टकी सिद्धि होती है। वामनतीर्थमें जानेसे दुर्गतिका विनाश और विष्णुलोक प्राप्ति, चम्पकारण्य तीर्थमें एक रात्रि अवस्थान करनेसे सहस्र गोदानका फल, गोष्ठीवनतीर्थमें एक रात्रि उपवास करनेसे अग्निष्टोमका फल, कन्यासंवेद्यतीर्थमें आहार जय करनेसे मनुलोककी प्राप्ति, निश्चीरानदीतीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल और स्वकुलोद्धार तथा वशिष्ठाश्रममें अभिषेक करनेसे वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है। देवकूट तीर्थमें वाजपेयका फल और स्वकुलोद्धार होता है।

कौशिकमुनिह्रद—इस स्थानमें एक मास वास करनेसे अश्वमेधका फल होता है। सर्वतीर्थवरह्रद—यहां वास करनेसे बहुसुवर्णयागका फल और दुर्गतिका विनाश होता है। वीराश्रमतीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल अग्निधारा-तीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल और स्वकुलोद्धार, पितामह-सरमें अभिषेक करनेसे अग्निष्टोमका फल, कुमारधारातीर्थमें स्नान करनेसे कृतार्थता और ब्रह्महत्याके पापका विनाश, गौरीशेखरतीर्थमें आरोहण, स्नान, देवता और पितृपूजन करनेसे अश्वमेधका फल और स्वर्गगमन, ऋषभ-द्वीपतीर्थ और औद्दालकतीर्थमें अभिषेक करनेसे समस्त पापोंका नाश, ब्रह्मतीर्थमें जानेसे वाजपेयका फल, चम्पातीर्थमें जानेसे सहस्र गोदानका फल नरेतिकातीर्थमें जानेसे वाजपेयका फल तथा संविद्यतीर्थमें स्नान करनेसे विद्या प्राप्त होती है। लोहित्यतीर्थमें जानेसे बहुसुवर्ण यज्ञका फल, करतोयातीर्थमें तीन रात्रि उपवास करनेसे ११ वृषभदानका फल और कालतीर्थमें जानेसे सहस्र गोदानका फल और स्वर्गलाभ होता है। परद्वीपतीर्थमें स्नान और त्रिरात्र उपवास करनेसे कामनाओंकी सिद्धि, वैतरणीतीर्थमें जानेसे समस्त पापोंका नाश और विजयतीर्थमें जानेसे चन्द्रकी भांति कान्ति होती है। प्रभवतीर्थमें जानेसे पाप नष्ट होते हैं। शोणभागीरथीसङ्गममें पितृ और देवतातर्पण करनेसे अग्निष्टोमका फल प्राप्त होता है। शोणप्रभव, नर्मदाप्रभव और वंशगुल्म, इन तीन तीर्थोंमें स्नान करनेसे वाजिमेधका फल प्राप्त होता है। ऋषभतीर्थमें जानेसे सहस्र गोदानका फल, पुष्पवतीतीर्थमें स्नान और त्रिरात्र उपवास करनेसे सहस्र गोदानका फल और कुलोद्धार होता है। वदरिकातीर्थमें स्नान करनेसे दीर्घायुलाभ और स्वर्गगमन होता है। महेन्द्रपर्वत पर जा कर स्नान करनेसे वाजिमेध-फल, मातङ्गकेदार-स्नानसे स्वर्गलोक लाभ, श्रीपर्व नामक रामतीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेधका फल और परमगति प्राप्त होती है। ऋषभपर्वत पर जानेसे वाजपेयका फल, कावेरीतीर्थमें जानेसे सहस्र गोदानका फल, कन्यातीर्थ स्नानसे समस्त पापोंका नाश, गोकर्णतीर्थमें स्नान, उपवास, पूजा आदि करनेसे अश्वमेध यज्ञादिका फल, सम्बतीवापीतीर्थ-गमनसे रूप और सौभाग्यप्राप्ति, वेणातटमें देवता और पितृतर्पण करनेसे मयूर और हंसयुक्त विमान प्राप्ति, गोदावरीतीर्थमें जानेसे वायुलोक-प्राप्ति, वेणा-सङ्गममें स्नान करनेसे सर्व पापोंका नाश, वरदासङ्गममें स्नान करनेसे वाजिमेधका फल तथा ब्रह्मस्थाणमें तीन

दिन उपवास करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है।

कुशप्लवनतीर्थमें स्नान और उपवास करनेसे चन्द्रलोकको प्राप्ति होती है। देवह्रद, कृष्णवेण्वा-समुद्भव, ज्योतिर्मात्रह्रद और कण्वाश्रम, इन चार तीर्थोंको यात्रा करनेसे अग्निष्टोमयज्ञका फल होता है। पयोष्णोनदीमें स्नान और तर्पण करनेसे सहस्र गोदानका फल तथा दण्डकारण्य, शरभङ्गाश्रम और कुशाश्रममें जानेसे दुर्गतिका नाश और स्वकुलोद्धार होता है। सूर्पारक, रामतीर्थ, सप्तगोदावर, देवपथ, तङ्कारण्य, मेधाविक, कालञ्जरपर्वत, देवह्रद, त्रिकूटपर्वत, भर्तृस्थान, ज्येष्ठस्थान, शृङ्गवेरपुर, मुञ्जावट आदि तीर्थोंमें स्नान, दान, पूजा, तर्पण आदि करनेसे अश्वमेधादि यज्ञका फल और स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है।

प्रयाग, वासुकीतीर्थ, अयोध्या, मथुरा, गया, काशी, काञ्ची, अवन्ती, पुरी और द्वारावती ये सब तीर्थ मोक्षदायक हैं। पुष्कर, केदार, इक्षुमती, भद्रसर आदि तीर्थ पितृकार्यके लिये प्रशस्त हैं। वंशोद्भेद, हरोद्भेद, गङ्गोद्भेद, महालय, भद्रेश्वर, विष्णुपद, नर्मदाद्वार और गया ये सब पितृतीर्थ कहलाते हैं। गयाकी तरह यहां भी पिण्डदान करनेसे मुक्ति होती है। ये तीर्थ समस्त पापोंको हरण करनेवाले हैं; इनका नामस्मरण करनेसे ही अधिक पुण्य होता है, पिण्डदानकी तो बात ही क्या? गयाशीर्ष, अक्षयवट, अमरकण्ठकपर्वत, वराहपर्वत, नर्मदातीर, गङ्गा, कुशावती, विल्वक, सुगन्धा, शाकम्भरी, फल्गु, महागङ्गा, कुमारधारा, प्रभास, सरस्वती, प्रयाग, गङ्गासागरसङ्गम, नैमिषारण्य, वाराणसी, अगस्त्याश्रम, कौशिकी, सरयूतीर्थ, शोणी, श्रीपार्वती, विपाशा, वितस्ता, शतद्रु, चन्द्रभागा और इरावती, ये सब तीर्थ श्राद्धके लिये प्रशस्त हैं। (विष्णुसंहिता)

ऊपर जो कुछ तीर्थोंका फल कहा गया है, वह सब उन्हींके लिए है जो जितेन्द्रिय हैं। अजितेन्द्रियोंके तीर्थमें जानेसे उनका मन पवित्र होता है, विषयासक्ति घट जाती है, इसलिए प्रत्येकको तीर्थयात्रा करना उचित है। तीर्थमें पापाचरण करनेसे वह पाप अक्षय हो जाता है। अतएव तीर्थोंमें हस्त, पद और इन्द्रियोंको विशेषरूपसे संयत रखना चाहिये।

१८ हस्तस्थित तीर्थ, हाथमेंके कोई विशिष्ट स्थान। दाहिने हाथके अंगूठेमें उत्तरसे जो रेखा गई है, उसका नाम ब्रह्मतीर्थ है। आचमनके समय इस ब्रह्मतीर्थमें जल ले कर आचमन करना चाहिये। तर्जनी और अंगुष्ठका शेषभाग पितृतीर्थ है। इस तीर्थके द्वारा नान्दीमुखके सिवा अन्य समस्त श्राद्धोंमें पिण्डादि दिये जाते हैं। अङ्गुलिके अग्रभागमें देवतीर्थ है, इसके द्वारा देवकार्य करना चाहिये। कनिष्ठा अङ्गुलिके अधोभागका नाम काय वा प्राजापत्यतीर्थ हैं; इसके द्वारा पितरोंके साथ देवताओंका कार्य किया जाता है।

(मार्क० पु० ३४।१०३—१०७)

२० मन्त्री आदि राष्ट्रकी अठारह सम्पत्तियां, जिनके नाम इस प्रकार हैं—१ मन्त्री, २ पुरोहित, ३ युवराज, ४ भूपति, ५ द्वारपाल, ६ अन्तर्वंशिक, ७ कारागाराधिकारी, ८ द्रव्यसञ्चयकारक, ९ कृत्याकृतमें अर्थका विनियोजक, १० प्रदेष्टा, ११ नगराध्यक्ष, १२ कार्यनिर्वाणकारक, १३ धर्माध्यक्ष, १४ सभाध्यक्ष, १५, दण्डपाल, १६ दुर्गपाल, १७ राष्ट्रान्तपाल, १८ अटवीपाल। राजा इन अठारह तीर्थोंमें अवगाहन करके कृतकृत्य होते हैं अर्थात् इनको भलीभांति जान लेनेसे ही राजा राजकार्य सुचारुरूपसे चला सकते हैं। (नीलकंठ)

२१ पुण्यकाल। २२ वह जो तार दे, तारनेवाला। २३ ईश्वर। २४ अतिथि, महमान। २५ पितामाता। २६ वैरभावका त्याग कर परस्पर उचित व्यवहार।

२७ जलाशयका अरत्निमात्र प्रदेश। अरत्निमात्र स्थानको छोड़ कर शौचकार्य करना चाहिये।

(आह्निकतत्त्व)

२८ संन्यासियोंकी उपाधिविशेष। जो तत्त्वमस्यादि लक्षणरूप त्रिवेणीसङ्गममें तत्त्वार्थभावसे स्नान कर चुके हैं, वे ही तीर्थ उपाधिके योग्य हैं। २९ अवसर।

तीर्थक (सं० त्रि०) तीर्थ-कन्। १ योग्य, लायक। (पु०) २ तीर्थ कारी, वह जो तीर्थोंको यात्रा करता हो। ३ ब्राह्मण। ४ तीर्थङ्कर।

तीर्थंकर (सं० पु०) तीर्थं शास्त्रं करोति कृ-ट। १ जिन। २ विष्णु। ये चौदह विद्याको वाह्यविद्याओंमें प्रणेता तथा प्रवक्ता हैं, इन्होंने हयग्रीव रूपमें मधु और कैटभको मार

कर सृष्टिके पहले ब्रह्माको समस्त श्रुति और अन्य विद्याओंका उपदेश दिया था तथा अरि और दलोंको मोहित करनेके लिये वाह्यविद्याका प्रदान किया था। (त्रि०) २ शास्त्रकार।

तीर्थकाक (सं० पु०) तीर्थे काक इव लोलुपत्वात्। तीर्थस्थित काककी नाईं व्यवहारी, जिस तरह कौवा इधर उधर भोजन ढूंढ़नेमें व्यस्त रहता है, उसी तरह बहुतसे मनुष्य तीर्थमें जा कर कौवेकी नाईं अर्थानुसन्धानमें व्यस्त रहते हैं ये अत्यन्त पापी होते और अन्तमें नरक वास करते हैं। (पुराण)

तीर्थकृत (सं० पु०) तीर्थं करोति तीर्थ-कृ-क्विप् तुगागमश्च। १ जिनदेव। (त्रि०) २ शास्त्रकार।

तीर्थङ्कर (सं० पु०) तीर्थं संसारसमुद्रतरणं करोति कृ-ख-मुम्च। जिन, जिनेन्द्र भगवान्, जैनोंके उपास्य देव जो देवताओंसे भी श्रेष्ठ और सब प्रकारके दोषोंसे रहित, मुक्त और मुक्तिदाता हैं। इनकी मूर्तियां दिगम्बर होती हैं और उनकी आकृति प्रायः एकसी होती है। केवल उनका वर्ण और सिंहासनका आकार ही एक दूसरेसे भिन्न होता है। तीर्थङ्करोंकी जितनी भी मूर्तियां देखनेमें आती हैं, वे सब या तो पद्मासन होती हैं या खड्गासन। इनके आसनके नीचे वृषभ, गज, अश्व आदि विभिन्न चिह्न * अङ्कित रहते हैं, जिनसे उनका परिचय मिलता है कि ये अमुक (ऋषभनाथ वा अजितनाथ आदि) तीर्थङ्करकी प्रतिमूर्ति हैं।

जैन-हरिवंश, जिनेन्द्रपञ्चकल्याणक आदि ग्रन्थोंके अनुसार नीचे तीर्थङ्करोंका संक्षिप्त विवरण लिखा जाता है—

जिस समय तीर्थङ्कर भगवान् स्वर्गोंके विमानोंसे चयन कर अपनी माताके गर्भमें अवतरण करते हैं, उसके छः महीने पहलेसे ही सौधर्म नामक प्रथम स्वर्गके इन्द्र उस नगरकी शोभा वर्द्धनके लिए कुवेरको भेजते हैं। कुवेर नगरमें आकर वहां रत्नोंके मन्दिर, वन, उपवन कूप, बावड़ी आदि निर्माण करते हैं; और साथ ही नगरमें रत्नोंकी वर्षा करते हैं, जिससे नगरस्थ कोई भी व्यक्ति दरिद्र नहीं रहता। सब आनन्दसे कालातिपात करते हैं। इन्द्रकी आज्ञा पा कर रुचिक पर्वत पर रहनेवाली देवियां आ कर नाना प्रकारसे माताकी सेवा करने लगती हैं। छः महीने बीतने पर तीर्थङ्करकी माताको रात्रिके शेष भागमें श्वेत ऐरावत हस्ती आदि १६ स्वप्न* दिखाई देते हैं। स्वप्नोंसे माता पिताको यह निश्चय हो जाता है कि उनको त्रिभुवनविजयी पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। दोनों भगवान्‌के जन्मावधि महासुखसे कालातिपात करते हैं। गर्भमें ही उनके मति, श्रुति और अवधि ये तीन ज्ञान होते हैं। जिस समय मति-श्रुत-अवधिज्ञान-विशिष्ट तीर्थङ्कर भगवान्‌का जन्म होता है, उसी समय तीन लोकके प्राणी आनन्दित होते हैं और इन्द्रका आसन कांपने लगता है। इससे उनको तीर्थङ्करके जन्मका संवाद मालूम हो जाता है। साथ ही भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके भवनोंमें घण्टा आदिका रव होने लगता है, जिससे उनको भी मालूम हो जाता है कि भगवान्‌का जन्म हुआ। उसी समय कुवेर लक्ष योजन परिमित ‡ हस्तीकी रचना करते हैं, जिस पर इन्द्र अपने परिवार सहित चढ़ कर मर्त्यलोकमें अवतरण पूर्वक जय जय शब्द करते हुये नगरकी प्रदक्षिणा देते हैं। इन्द्राणी प्रसूतिगृहमें जा कर भगवान्‌की माताको मायाबलसे निद्रित कर देती हैं और वहां दूसरे मायामयी बालकको रख कर तीर्थङ्कर भगवान्‌को बाहर ले आती हैं। इन्द्र जब भगवानके रूपको देखते देखते तृप्त नहीं

---

* चिन्होंका विवरण 'जैनधर्म" शब्दमें 'जिनमाला' शीर्षक तालिकामें देखना चाहिये।

* सोलह स्वप्न इस प्रकार हैं—१ श्वेतवर्ण ऐरावत हस्ती, २ सुन्दर रूपविशिष्ट श्वेत वृषभ (बैल), ३ उछलते हुये सुन्दर कान्तिविशिष्ट केशरी वा सिंह, ४ निर्मलजलपूर्ण दो स्वर्णघटोंसे नहाती हुई लक्ष्मी, ५ आकाशमें लटकती हुई कल्पतरुओंके पुष्पोंकी दो माला, ६ पूर्ण चन्द्र, ७ सूर्य, ८ जलमें केलि करती हुई दो मछलियां, ९ केशर चन्दनादिलिप्त रत्नपूर्ण दो घट, १० निर्मल जलपूर्ण सरोवर, ११ समुद्र, १२ रत्नजडित सुवर्णका सिंहासन, १३ देव-देवांगनाओंसे शोभित रत्नजडित इन्द्रका विमान, १४ पृथिवीको चीर कर निकलता हुआ धरणेंद्रका भवन, १५ पंचवर्णविशिष्ट रत्नराशि और १६ शतसहस्रशिखा विशिष्ट अग्नि।

‡ यह हस्ति देवकृत मायामयी होता है, इसलिए इसके आवागमनसे किसीको बाधा नहीं होती।

होता तब वह उसी समय १००० नेत्र बना लेता है। प्रथम स्वर्गके सौधर्म इन्द्र प्रणाम कर भगवान्को गोदमें लेते हैं और द्वितीय स्वर्गके ईशान इन्द्र उन पर छत्र लगाते हैं। तीसरे और चौथे स्वर्गके इन्द्र दोनों तरफ खड़े हुए भगवान् पर चमर ढारते हैं। अन्य समस्त इन्द्र एवं देव आदि 'जय जय' शब्द उच्चारण करते हैं। अनन्तर भगवान्को ऐरावत हस्ती पर चढ़ा कर महासमारोहके साथ सुमेरु पर्वत पर ले जाते हैं। वहां अर्द्धचन्द्राकार पाण्डुकशिला पर रक्खे हुए रत्नमयी सिंहासन पर भगवान्को विराजमान करते हैं। उस समय अनेक प्रकारके बाजे बजते हैं, शचियां मङ्गलगान करती हैं और देवाङ्गनाएं नृत्य करती हैं। देवगण हाथों हाथ क्षीर-समुद्रसे १००८ कलश भर कर लाते हैं और सौधर्म एवं ईशान इन्द्र उनसे भगवान्का अभिषेक करते हैं। फिर इन्द्राणी तीर्थङ्कर भगवान्को वस्त्राभूषण पहनाती हैं। पश्चात् उस प्रकार समारोहके साथ नगरकी ओर लौटते हैं और भगवान्को माताके हाथमें सौंप कर ताण्डवनृत्य करते हैं। अनन्तर माताकी सेवाके लिए कुवेरको नियुक्त कर इन्द्र, इन्द्राणियां और समस्त देव अपने अपने स्थानको चले जाते हैं। बालक अवस्थामें तीर्थङ्करोंके साथ स्वर्गके देवगण बालकका रूप धारण कर क्रीड़ा करते हैं। तीर्थङ्कर किसीके निकट अध्ययन नहीं करते।

इसी तरह जब भगवान् राज्यादि त्याग कर दीक्षा ग्रहण करते हैं, तब पञ्चम ब्रह्मस्वर्गके ब्रह्मर्षि नामक देव आ कर उनके वैराग्यकी प्रशंसा करते हैं और इन्द्र पालकी पर चढ़ा कर उन्हें वनमें पहुंचा आते हैं। तीर्थङ्कर "नमः सिद्धेभ्यः" कह कर केशलुंचन करते हैं। इन्द्र उन केशोंको रत्नमयी पिटारीमें रख कर क्षीरसागरमें निःक्षेप करते है। इसके बाद केवलज्ञान प्राप्त होने पर इन्द्रकी आज्ञासे कुवेर आदि देवगण समवसरण (तीर्थङ्करोंकी सभा)-की रचना करते हैं। इसके सिवा निम्नलिखित विशेषताएं हो जाती हैं। एक सौ योजन तक सुभिक्ष हो जाता है। तीर्थङ्कर विना इच्छाके आकाश-मार्गसे विहार करते हैं और उसके चरणोंके नीचे देव कमल रचते जाते हैं, उनका मुख चारों दिशाओंमें दीखता है, किन्तु होता एक ही है। उन पर किसी तरहका उपसर्ग नहीं होता और न वे भोजन ही करते हैं। समवसरणमें आये हुए प्राणी भी परस्पर अविरोधी मैत्रीभाव धारण करते हैं। आकाश, दिशाएं और पृथिवी निर्मल हो जाती है। छहों ऋतुओंके फूल एक साथ फल जाते हैं। चतुर्दशअतिशय देखो। इसके बाद जब उनको मोक्षकी प्राप्ति होती हैं, तब स्वर्गसे इन्द्रादि देव आते हैं। चन्दनादिके साथ अग्निकुमार जातिके देवोंके मुकुटोंकी अग्निसे दाह-क्रिया सम्पन्न होती है। इन्द्रादि देव उनका भस्म मस्तकसे लगाते और स्तुति पूजादि करते हैं।

तीर्थङ्कर हमेशा २४ ही होते हैं, इसमें न्यूनाधिक्य नहीं होता; न तेईस ही हो सकते हैं और न पचीस।

जैनागममें उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इन दो काल विभागोंका उल्लेख है। जैनधर्म देखो। उत्सर्पिणी कालमें निम्नलिखित २४ तीर्थङ्कर हो गये हैं, जिन्हें साधारणतः 'अतीत चौबीसी" कहते हैं। यथा —

(१) श्रीनिर्वाण, (२) सागर, (३) महासाधु, (४) विमलप्रभु, (५) श्रीधर, (६) सुदत्त, (७) अमलप्रभु, (८) उद्धर, (९) अङ्गिर, (१०) सन्मति, (११) सिन्धुनाथ, (१२) कुसुमाञ्जलि, (१३) शिवगण, (१४) उत्साह, (१५) ज्ञानेश्वर, (१६) परमेश्वर, (१७) विमलेश्वर, (१८) यशोधर (१९) कृष्णमति (२०) ज्ञानमति, (२१) शुद्धमति, (२२) श्रीभद्र, (२३) अतिक्रान्त, और (२४) शान्ति।

वर्तमान अवसर्पिणीकालमें जो २४ तीर्थङ्कर हो गये हैं, उन्हें साधारण, "वर्तमान चौबीसी" कहते हैं और उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) ऋषभदेव* वा आदिनाथ, (२) अजितनाथ, (३) सम्भवनाथ, (४) अभिनन्दननाथ, (५) सुमतिनाथ, (६) पद्मप्रभ, (७) सुपार्श्वनाथ, (८) चन्द्रप्रभ, (९) पुष्पदन्त, (१०) शीतलनाथ; (११) श्रेयांसनाथ, (१२) वासुपूज्य, (१३) विमलनाथ, (१४) अनन्तनाथ (१५) धर्मनाथ, (१६) शान्तिनाथ, (१७) कुन्थुनाथ, (१८) अरनाथ, (१९) मल्लिनाथ, (२०) मुनिसुव्रतनाथ, (२१) नमिनाथ; (२२) नेमिनाथ, (२३) पार्श्वनाथ और (२४) वर्द्धमान वा महावीर स्वामी।

---

* श्रीमद्भागवतके मतसे ये ही विष्णुके प्रथम अवतार है।

इनमेंसे १म तीर्थङ्कर श्रीऋषभनाथ भगवान् कैलाश पर्वतसे, १२वें श्रीवासुपूज्य चम्पापुरीसे, २२वें श्रीनेमिनाथ गिरनार पर्वतसे, २४वें श्रीमहावीरस्वामी पावापुरसे और शेष बीस तीर्थङ्कर श्रीसम्मेदशिखर वा पार्श्वनाथ पहाड़से मोक्ष वा निर्वाणप्राप्त हुए हैं।

भविष्यमें होनेवाले २४ तीर्थङ्करोंको सचराचर "अनागत चौबीसी" कहते हैं; जिनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) श्रीमहापद्म, (२) सुरदेव, (३) सुपार्श्व, (४) स्वयंप्रभु, (५) सर्वात्मभूत, (६) श्रीदेव, (७) कुल-पुत्र-देव, (८) उदङ्कदेव, (९) प्रोष्ठिलदेव, (१०) जयकीर्ति, (११) मुनिसुव्रत, (१२) अरह (अमम), (१३) निष्पाप (१४) निःकषाय, (१५) विपुल, (१६) निर्मल, (१७) चित्रगुप्त, (१८) समाधिगुप्त, (१९) स्वयंभू, (२०) अनिवृत्त, (२१) जयनाथ, (२२) श्रीविमल, (२३) देवपाल और (२४) अनन्तवीर्य।

इनके सिवा जैनग्रन्थोंमें यह भी वर्णन है कि सम्प्रति विदेहक्षेत्रके विभिन्न स्थानों वा क्षेत्रोंमें २० तीर्थङ्कर अब भी विद्यमान हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) सीमन्धर, (२) युगन्धर, (३) बाहु, (४) सुबाहु, (५) सुजात, (६) स्वयंप्रभु, (७) वृषभानन, (८) अनन्तवीर्य, (९) सुरप्रभु, (१०) विशालकीर्त्ति (११) वज्रधर, (१२) चन्द्रानन, (१३) चन्द्रबाहु, (१४) भुजङ्गम, (१५) ईश्वर, (१६) नेमप्रभ, (१७) वीरसेन (१८) महाभद्र, (१९) देवयश, और (२०) अजितवीर्य। विशेष विवरणके लिये जैनधर्म शब्द तथा जैन-पुराण ग्रन्थ देखना चाहिये।

तीर्थङ्करनामकर्म (सं० क्ली०) जैनधर्मानुसार वह शुभ कर्म-प्रकृति जिसके उदयसे अचिन्त्य विभूति-संयुक्त तीर्थङ्करत्वकी प्राप्ति हो। दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता आदि षोड़श भावनाओंका पूर्णतया अनुशीलन करनेसे भव्य पुरुष (आत्मा) जन्मान्तरमें तीर्थङ्कर हो सकता है। अतीतकालमें जितने भी तीर्थङ्कर हुए हैं तथा भविष्यमें जितने भी होंयगे, सबमें यही कर्म-प्रकृति कारण है। जैनगण इन पवित्रपावन षोड़शभावनाओंकी पूजादि करते हैं। षोडशकारण और जैनधर्म देखो।

तीर्थतम (सं० क्ली०) अयमेषामतिशयेन तीर्थं तीर्थ-तमप्। श्रेष्ठ तीर्थ, तीर्थराज।

तीर्थदेव (सं० पु०) तीर्थमिव श्रेष्ठः। शिव, महादेव।

तीर्थध्वाङ्क्ष (सं० पु०) तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव। तीर्थकाक देखो।

तीर्थपति (सं० पु०) तीर्थराज देखो।

तीर्थपद (सं० पु०) तीर्थं पादौ यस्य, बहुव्री० समासे पादशब्दस्य पदादेशः। हरि, विष्णु।

तीर्थपादीय (सं० पु०) वैष्णव।

तीर्थभूत (सं० त्रि०) तीर्थभुक्त। तीर्थस्वरूप।

तीर्थमहाह्रद (सं० पु०) तीर्थरूपो महाह्रदः। स्वनामख्यात तीर्थभेद।

तीर्थमृत्युयोग (सं० पु०) तीर्थे मृत्युविषयकः योगः। योगविशेष, इस योगके रहनेसे मनुष्यकी मृत्यु तीर्थमें होती है। इसका विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है। जन्म कालीन चन्द्रमा यदि उच्च स्थानमें रहे तथा दशम स्थानमें वृहस्पतिकी दृष्टि रहे, अथवा अष्टम स्थानमें शुक्र और द्वितीय स्थानमें वृहस्पति रहें तो जात मनुष्यकी तीर्थमृत्यु होती है।

वृष राशिमें रवि, नवम स्थानमें वृहस्पति, लग्नमें शुक्र रहे और अष्टम स्थानमें बुधकी दृष्टि पड़ती हो तो मनुष्यकी मृत्यु गङ्गाजलमें होती है।

लग्नमें शुक्र और वृहस्पति रहे, अष्टम स्थानमें चन्द्रमा रहे और उसके प्रति लग्नाधिपतिकी दृष्टि पड़ती हो तो मनुष्यकी मृत्यु काशीमें होती है।

जिस मनुष्यका जन्म सिंहलग्नमें हुआ हो और उसके षष्ठ स्थानमें शनि, मिथुनमें वृहस्पति तथा अष्टम स्थानमें लग्नाधिपतिकी दृष्टि पड़ती हो, तो उस मनुष्यकी मृत्यु तीर्थ स्थानमें होती है।

जिसके जन्मकालमें तीन ग्रह राशि और लग्नसे भिन्न किसी भी गृहमें रहे तो वह मनुष्य विविध सुख सम्पद् भोग कर जाह्नवी-जलमें प्राण परित्याग करता है।

यदि लग्नके चतुर्थ, षष्ठ, सप्तम, अष्टम या दशम स्थानमें वृहस्पति रहे और वह वृहस्पति यदि उच्च स्थानमें हो तथा जात बालकका लग्न यदि मीन हो, तो उसकी तीर्थमृत्यु होती है और वह अन्तमें मोक्ष पाता है। (ज्योतिष०)

तीर्थयात्रा (सं० स्त्री०) तीर्थमुद्दिश्य यात्रा। पवित्र स्थानोंमें दर्शन स्नानादिके लिये जाना।

तीर्थराज (सं० पु०) तीर्थानां राजा, ६-तत्। प्रयागतीर्थ।

तीर्थराजि (सं० स्त्री०) तीर्थानां राजिरत्र, बहुव्री०। अविमुक्त काशीक्षेत्र। यहां सभी तीर्थ विराजित हैं, इसलिये काशीको तीर्थराजि कहा जा सकता है। किस किस क्षेत्रसे कौन कौन तीर्थ काशीमें आये हैं, उसका वर्णन काशीखण्डमें इस प्रकार लिखा है,—

स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें जितने भी मुक्तिप्रद शुभ आयतन हैं, वे सभी काशीमें लाये गये हैं। कुरुक्षेत्रसे देवदेवके स्थाणु नामक महालिङ्ग यहां आविर्भूत हुए हैं, यहाँ उनकी कलामात्र अवस्थित है। इसके पास ही लोलार्कसे पश्चिमकी तरफ सन्निहती नामक महापुष्करिणी है, यहीं कुरुक्षेत्रतीर्थ है। नैमिषक्षेत्रसे देवदेव ब्रह्मावर्तकूपके साथ आये, जो ढुण्ढिराजसे उत्तरकी ओर अवस्थित हैं और उनके पास ही ब्रह्मावर्तकूप है। गोकर्णसे महाबल नामक लिङ्ग और प्रभासतीर्थसे शशिभूषण नामक लिङ्ग आये, जो ऋणमोचनतीर्थके पूर्वकी ओर अवस्थित हैं। उज्जयिनीसे पापनाशन लिङ्ग आये, जो ओङ्कारेश्वरलिङ्गके पूर्वकी तरफ विद्यमान हैं। पुष्करसे आयोगन्धेश्वर लिङ्ग आये जो मत्स्योदरीसे उत्तरमें हैं, अट्टहाससे महानादेश्वरलिङ्ग आये जो त्रिलोचनासे उत्तरमें हैं, मरुत्कोटसे महोत्कटेश्वरलिङ्ग आये जो कामेश्वरसे उत्तरमें हैं, विश्वस्थानसे विमलेश्वर लिङ्ग आये जो स्वर्लीनसे पश्चिममें हैं, महेन्द्रपर्वतसे महाव्रत नामक महालिङ्ग आये जो स्कन्देश्वरके पास हैं; और गयातीर्थसे फल्गु आदि सार्द्धकोटि परिमित तीर्थों-सहित पितामहेश्वर यह आ कर अवस्थान कर रहे हैं। गयातीर्थसे शूलटङ्क नामक महेश्वर तीर्थराज-सहित आकर निर्वाणमण्डपसे दक्षिणमें अवस्थान कर रहे हैं तथा महाक्षेत्र शङ्कुकर्णसे महातेजोवृद्धिप्रद महातेज लिङ्ग, रुद्रकोटितीर्थसे महायोगीश्वर लिङ्ग, भुवनेश्वर क्षेत्रसे स्वयं कृत्तिवास और कुरुजाङ्गलसे चण्डीश्वर यहां आये हैं।

कालञ्जर तीर्थसे स्वयं भगवान् नीलकण्ठ आये हैं, तथा काश्मीरसे विजयलिङ्ग आ कर शालहटङ्कके पूर्वमें अवस्थान कर रहे हैं। त्रिदण्डापुरीसे भगवान् ऊर्द्धरेता यहां आये हैं और कुष्माण्डक नामक गणपतिको सामने रख कर अवस्थान कर रहे हैं। मण्डलेश्वर क्षेत्रसे श्रीकण्ठ नामक लिङ्गका आगमन हुआ है, ये मण्ड नामक विनायकको उत्तरदिशामें रख कर अवस्थान कर रहे हैं।

छागलाण्ड नामक महातीर्थसे भगवान् कपर्द्दीश्वर पिशाचमोचनतीर्थमें स्वयं आविर्भूत हुए हैं। आम्रातकेश्वरक्षेत्रसे सूक्ष्मेश्वर आये जो विकटदन्त गणपतिके समीप अवस्थित हैं। मधुकेश्वरसे जयन्त नामक महालिङ्गका आगमन हुआ, ये लम्बोदर गणपतिके सामने अवस्थित हैं। श्रीशैलसे देवदेव त्रिपुरान्तक आये, जो विघ्नेश्वर स्थानसे भगवान् कुक्कुटेश्वर, जालेश्वरसे भगवान् त्रिशूली, रामेश्वरसे जटीदेव, त्रिसन्ध्याक्षेत्रसे देवदेव त्र्यम्बक, हरिश्चन्द्र क्षेत्रसे भगवान् हरेश्वर, मध्यमेश्वरसे भगवान् शर्व, स्थलेश्वरसे यज्ञेश्वर महालिङ्ग, हर्षितक्षेत्रसे तमोहारी हर्षितलिङ्ग, वृषभध्वजक्षेत्रसे भगवान् वृषेश्वर, केदारक्षेत्रसे ईशानेश्वर लिङ्ग, ईशानक्षेत्रसे मनोहर भैरवमूर्ति, कनखलतीर्थसे सिद्धिप्रद भगवान् उग्र, वस्त्रापथ नामक महाक्षेत्रसे भगवान् भवदेव, दारुवनसे भगवान् दण्डी, भद्रकर्णह्रदसे भद्रकर्ण-सहित साक्षात् शिव, हरिश्चन्द्र, पुरसे भगवान् शङ्कर और कायारोहणक्षेत्रसे आचार्य नकुलीश पाशुपतव्रतावलम्बी अपने शिष्योंके साथ आकर यहां अवस्थान कर रहे हैं। गङ्गासागरसे अमरेश्वर, सातगोदावरीसे भगवान् भीमेश्वर, भूतेश्वरक्षेत्रसे भगवान् भस्मगात्र, नकुलीश्वरसे भगवान् स्वयम्भू, हेमकूट पर्वतसे विरूपाक्ष, गङ्गाद्वारसे हिमाद्रीश्वर, कैलाससे सप्तकोटि अन्यान्य महाबल गणनिचयोंके साथ गणाधिप, गन्धमादन पर्वतसे भूर्भुवः नामक लिङ्ग, जललिङ्गस्थलसे पवित्र जलप्रिय लिङ्ग और कोटीश्वरतीर्थसे श्रेष्ठलिङ्गका यहाँ आगमन हुआ है। ये सभी तीर्थ काशीमें अवस्थान कर रहे हैं;, इसलिये इसका नाम तीर्थराजि पड़ा है। उपर्युक्त तीर्थोंमें स्नान, दान आदि करनेसे जितना पुण्य होता है, काशीस्थ उन्हीं तीर्थोंमें स्नानादि करनेसे होता है उससे कहीं सौगुना अधिक पुण्य होता है।

(काशीखण्ड० ६९ अ०; काशी देखो।)

तीर्थवत् (सं० त्रि०) तीर्थं विद्यतेऽस्य तीर्थ-मतुप मस्य,

वादेशः । बहुसंख्यक तीर्थविशिष्ट, बहुत तीर्थोंसे विरा हुआ ।

तीर्थवाक (सं० पु०) तीर्थस्येव वाको वचनं यस्य, बहुव्री०। केश, बाल ।

तीर्थवायस (सं० पु०) तीर्थवायस इव । तीर्थकाक
तीर्थकाक देखो ।

तीर्थशिला (सं० स्त्री०) किसी तीर्थमें स्नान करनेकी पत्थरकी सीढ़ी ।

तीर्थशौच (सं० क्ली०) तीर्थस्य खट्टस्य शौचं परिष्कारः ६-तत् । खट्टादि परिष्कार ।

तीर्थसेनि (सं० पु०) कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम ।

तीर्थसेवा (सं० स्त्री०) तीर्थसेवा, ७-तत् । तीर्थगमन, तीर्थयात्रा ।

तीर्थसेवी (सं० पु० स्त्री०) तीर्थं घट्टादिजलप्राप्तिस्थानं सेवते सेव-णिनि । १ वकपक्षी, बगला । (त्रि०) २ तीर्थयात्री, जो तीर्थमें जाता है ।

तीर्थाटन (सं० पु०) तीर्थयात्रा ।

तीर्थिक (सं० पु०) १ तीर्थकारी ब्राह्मण, पंग । २ बौद्धमतानुसार बौद्ध धर्मविद्वेषी ब्राह्मण । ३ तीर्थङ्कर ।

तीर्थिया (हिं० पु०) तीर्थङ्करोंको माननेवाले, जैनी ।

तीर्थकरण (सं० त्रि०) पवित्रीकरण, जिससे आदमी पवित्र हो जाय ।

तीर्थभूत (सं० त्रि०) तीर्थ-भू-अभूततद्भावे च्वि । तीर्थस्वरूप पवित्र । गौ जिस स्थान पर विचरण करती हैं, वही स्थान पवित्र अर्थात् तीर्थस्वरूप है ।

तीर्थ्य (सं० पु०) तीर्थे भव यत् । १ रुद्रभेद, एक रुद्रका नाम । २ सहाध्यायी, सहपाठी ।

तीलखा (हिं० पु०) एक प्रकारकी चिड़िया ।

तीली (फा० स्त्री०) १ बड़ा तिनका, सींक । २ धातु आदिका पतला पर कड़ा तार । ३ पटवोंका एक औजार । इससे रेशम लपेटी जाती है । ४ नरी पहनाई जानेकी करवेमें ढरकीकी सींक । ५ जुलाहोंके सूत साफ करनेकी तीलियोंकी कूँची ।

तीवर (सं० पु०) तीरयति तृ-ष्वरच । छित्वरछत्वरेति । उण् ३।१। १ समुद्र । तीरयति कर्मसमाप्तिं करोति तीर-ष्वरच । २ व्याध, बहेलिया ।

३ वर्णसङ्कर जातिविशेष । ब्रह्मवैवर्तके मतसे, यह जाति क्षत्रियके औरस और राजपूतस्त्रीके गर्भसे उत्पन्न * हुई है । पराशर-पद्धतिके अनुसार यह जाति चूर्णकके औरससे उत्पन्न हुई है और प्रधानतः मत्स्य और हलव्यवसायी है । यह जाति अन्त्यज है । इसी तीवर जातिसे तेलीकी स्त्री-द्वारा दस्यु और लेट जातिका उत्पत्ति हुई है । तीवरी और लेटसे झल्ल, मल्ल, माठर भड़, कोल और कन्दर इन छः जातियोंकी उत्पत्ति है ।

बङ्गाल और बिहारके किसी किसी स्थानमें यह तीयर, तीओर, राजवंशी अथवा मकुआ नामसे प्रसिद्ध है ।

किसी किसीने तीयर और धीमर इन दोनों जातियोंको एक बतलाया है, पर ऐसा समझना भ्रम है। धीमर कहार जातिकी एक श्रेणी है । परन्तु तीवरोंका कहारोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । आकृति और प्रकृतिमें भी धीमरोंकी अपेक्षा तीवर निकृष्ट मालूम पड़ते हैं ।

भागलपुरके तीयरोंमें बामनयोग्य और गोवरिया ये दो थाक पाये जाते हैं । बामनयोग्य सत्शूद्र समझे जाते हैं और मैथिल ब्राह्मण उनका पौरोहित्य करते हैं । ये दशनामी गुरुके शिष्य हैं । परन्तु गोदावरिया लोग हीन समझे जाते हैं और शराब, सूअरका मांस आदि भक्षण करते हैं । बङ्गालके गोस्वामी लोग गोवरियोंमें गुरुका काम करते हैं । पतित ब्राह्मण इनके पुरोहित हैं ।

पूर्व बङ्गालमें तीयर लोग अपनेको राजवंशी कहा करते हैं । मैमनसिंहके तीयर अपनेको तिलकदल बतलाते हैं और गङ्गा किनारेके तीयर सूरजवंशी ।

तीयर जातिमें चौधरी, छड़ीदार, मल्लाह, मनझन (महाजन), मरर, मुथियार आदि उपाधियां पायी जाती हैं । इनमें इतवाल, काश्यप और जयसिंह इस तरह तीन गोत्र हैं ।

पूर्व बङ्गालके तीवर तीन भागोंमें विभक्त हैं—प्रधान, परामाणिक और गण । प्रधान सबसे श्रेष्ठ हैं, उसके

---

* "सद्यः क्षत्रियवीर्येण राजपूतस्य योषिति ।
बभूव तीवरश्चैव पतितो राजदोषितः ॥"
(ब्रह्मवै० ब्र १० अ०)

बाद परामाणिक और उससे नीचे गण। नीचे थाकके तीयरोंको उच्चश्रेणीको कन्या लेनी पड़ती है; इसके सिवा कन्याके पिताको अधिक रुपये न देनेसे इनका ब्याह नहीं होता। इनमें विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है। हां, गरीब विधवायें अपनी इच्छासे मछली बेचती हैं, सूतकी करधनी बनाती हैं अथवा वैष्णवी हो भीख मांग कर अपना गुजारा करती हैं।

तीवरी (सं॰ स्त्री॰) तीवर स्त्रियां ङीष्। १ तीवरपत्नी, तीवरकी स्त्री। २ व्याधपत्नी, व्याधकी स्त्री।

तीव्र (सं॰ त्रि॰) तीव-रक् वा तिज निशाने इन् दीर्घः। (जसावीत्रा। उण २।२८ सूत्रे उज्ज्वल) १ अतिशय, अत्यन्त। २ तीक्ष्ण, तेज। ३ अत्युष्ण बहुत गरम। ४ कटु, कड़ुवा। ५ अतिशययुक्त, नितान्त, वेहद। ६ असह्य, न सहने योग्य। ७ प्रचण्ड। ८ तीखा। ९ वेगयुक्त, तेज। (सं॰ क्ली॰) लौहभेद, इस्पात। ११ तीर, नदीका किनारा। १२ त्रीपु, टीन। १३ लौहमात्र, साधारण लोहा। (सं॰ पु॰) १४ शिव, महादेव। १५ वैराग्यका उपायविशेष। (पातञ्जल १।२१-२२)

किसी किसी मनुष्यको तीव्र योगी कहते हैं। योगसाधनका उपाय तीन तरहका है, मृदु, मध्य और अधिमात्र अर्थात् तीव्र। जो ये त्रिविध उपाय अवलम्बन करते हैं, उन्हें यथेष्ट फल प्राप्त होता है। यह भी तीन प्रकारका है, मृदु उपाय, मध्य उपाय और तीव्र उपाय। फिर इसके तीन भेद हैं—मृदुसंवेग, मध्य संवेग और तीव्रसंवेग। सुतरां योगियोंके उपाय नौ प्रकारके हैं। जो तीव्रसंवेग हैं, उनकी सिद्धि सन्निकट है। (पातं॰व्यासभाष्य)

तीव्रकण्ठ (सं॰ पु॰) तीव्रः कण्ठो यस्मात् बहुव्री॰। शूरण फल, जमीकन्द, ओल।

तीव्रकन्द (सं॰ पु॰) तीव्रः कन्दः मूलं यस्य। १ शूरण, जमीकन्द। २ पलाण्डु, प्याज।

तीव्रगति (सं॰ त्रि॰) तीव्रा गतिर्यस्य बहुव्री॰। १ जिसकी चाल तेज हो। (पु॰) २ वायु, हवा।

तीव्रगन्ध (सं॰ स्त्री॰) तीव्राः गन्धो यस्य। तीव्रगन्धयुक्त, वह पदार्थ जिसकी गन्ध बहुत तेज हो।

तीव्रगन्धा (सं॰ स्त्री॰) तीव्रगन्ध-टाप्। यवानी, अजवायन।

तीव्रगन्धिका (सं॰ स्त्री॰) यवानी, अजवायन।

तीव्रज्ञानी (सं॰ त्रि॰) तीव्रज्ञान-णिनि। अत्यन्त ज्ञानी, बहुत अक्लमन्द।

तीव्रज्वाला (सं॰ स्त्री॰) तीव्रं यथा तथा ज्वालयति ज्वल-णिच्-अच-टाप्। धातकी, धवका फूल। लोग कहते हैं कि इसके छूनेसे शरीरमें घाव हो जाता है। (त्रि॰) २ तीव्रज्वालायुक्त, जिसमें बहुत जलन हो। तीव्रा ज्वाला कर्मधा॰। तीव्रज्वाला, तेज जलन।

तीव्रता (सं॰ स्त्री॰) तीव्रस्य भावः तीव्र-तल्। उष्णता, तीक्ष्णता, तेजी, तीखापन।

तीव्रदारु (सं॰ क्ली॰) तीव्रं दारु कर्मधा॰। तीव्रकाष्ठ, तेज लकड़ी।

तीव्रबन्ध (सं॰ पु॰) तीव्रः बन्धो यस्मात् बहुव्री॰। तामस गुण, तमोगुण।

तीव्रवेदना (सं॰ स्त्री॰) तीव्र वेदना कर्मधा॰। अत्यन्त यन्त्रणा, बहुत पीड़ा, ज्यादा तकलीफ।

तीव्रसंवेग (सं॰ पु॰) तीव्रः संवेगः कर्मधा॰। तीव्र वैराग्य। तीव्र देखो।

तीव्रसन्ताप (सं॰ पु॰) श्येनपक्षी, बाज।

तीव्रसव (सं॰ पु॰) एकाह यागभेद, एक दिनमें होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ।

तीव्रसुत (सं॰ त्रि॰) सोमका अवयवभूत प्रातःसवनिक।

तीव्रा (सं॰ स्त्री॰) तीव्र-टाप्। १ कटुरोहिणी, कटकी। २ गण्डदूर्वा, गाँडर दूब। ३ राजिका, राई। ४ महाज्योतिष्मती, बड़ी मालकंगनी। ५ तरदीवृक्ष, तरवीका पेड़। ६ तुलसी। ७ नदीविशेष, एक नदीका नाम। ८ षडज स्वरकी चार श्रुतियोंमेंसे पहली श्रुति। ९ मदकारिणी, खुरासानी अजवायन। (त्रि॰) १० तीव्रवेगयुक्त, जिसमें बहुत तेज गति हो।

तीव्रानन्द (सं॰ पु॰) तीव्र आनन्दो यस्य। शिव, महादेव।

तीव्रान्त (सं॰ त्रि॰) तीव्र या तीक्ष्ण फल।

तीव्रानुराग (सं॰ पु॰) जैन-मतानुसार एक प्रकारका अतीचार। जैसे—परस्त्री या परपुरुषसे अत्यन्त अनुराग करना अथवा कामकी वृद्धिके लिये अफीम, कस्तूरी

आदि खाना। इससे स्वदार-सन्तोष व्रतमें दूषण लगता है।

तीस (हिं॰ वि॰) १ जो इकतिससे एक कम हो। (पु॰) २ वह संख्या जो बीस और दशके योगसे बनी हो।

तीसट (सं॰ पु॰) एक वैद्यक-ग्रन्थकार।

तीसरा (हिं॰ वि॰) १ जो दोके बाद आता हो। २ सम्बन्ध रखनेवालोंसे भिन्न।

तीसवां (हिं॰ पु॰) जो उनतीसके बाद आता हो, जिसके पहले उनतीस और हों।

तीसी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका तेलहन-अनाज। भिन्न भिन्न भाषामें इसके नाम इस प्रकार हैं—

हिन्दी (भाषामें) अलसी, तीसी। बङ्गाल—तीसी, मसीना। विहार-तीसी, चिकना। उड़ीसा-पेशु। युक्तप्रदेश-विजरी। कमायुन—तीसी, अलसी। काश्मीर-फियुन्, आलिस। पञ्जाब—आलशि, तीसी, अलसी। काशघर—जिघिर। वम्बई-अलसी, जरसा, जरस। गुजरात-अलसी। तामिल (भाषामें) अलसी विराइ। तेलगु (भाषामें) आतसी, उल्लू, सुलू मदन-गिञ्जालु। कर्णाटक—अलसी, अलासी। मलय-चेरु, चाना, विचिन्ते, विलता। तुर्की-गिग्गर। अरब-कत्तान वा वजरत कत्तान। पारस्य-जघ, जघिर, कुतान वा तुखमें कुतान। हिब्रु (भाषामें) पिस्ता। संस्कृत (भाषामें) अतसी, उमा, क्षुमा, मालिका, मसृणी, शण। लाटिन (भाषामें) लाइनम्। इंगलैण्ड-लिनसीड। केलटिक (भाषामें) सिन।

इसका वैज्ञानिक नाम Linum usitatissimum है। तीसीसे तीसीका बीज, तेल और खरी बनती है; किन्तु यूरोप और अमेरिकामें इसके पौधेसे सन सरीखा एक प्रकारका सूत प्रस्तुत होता है जो लिनेन (Linen) वा विलायती साटिन नामसे इस देशमें प्रसिद्ध है। यूरोपीय पण्डितोंका कहना है, कि यूरोपमें आर्य लोगोंकी विस्तृतिके समय तीसीका व्यवहार प्रचलित हुआ था। मिस्रके प्राचीन समाधि-मन्दिरकी दीवारमें जो अङ्कित छवि हैं, उनमें तीसीके पौधेसे सूता तैयार कर कपड़ा बुननेके सब काम अच्छी तरह चित्रित हैं। प्राचीन मिस्रवासियोंका समाधिवस्त्र इसी तीसीके सूतेसे बनता था। ईसा-जन्मके २३ शताब्द पहले मिस्रमें तीसीके सूतेका व्यवहार हर एकको मालूम था, यह प्रमाणित है। हिब्रू और ग्रीक-ग्रन्थोंमें तीसीके सूतेका २५३०० बार उल्लेख है। स्वीजर्लैण्डके हदनालाके निकट जो सब प्राचीन स्तूपाकार वासस्थान आविष्कृत हुए हैं, उनमें तीसीका पौधा आदि पाया गया है। उत्तर यूरोपमें शालिमेने अन्यान्य प्रयोजनीय वृक्षोंकी नाईं तीसीकी खेती प्रचलित की, किन्तु नरीवे और स्वीडनमें बारहवीं शताब्दीमें इसका प्रचार हुआ है।

ग्रैनचन नामक यूरोपीय पण्डितने १८४८ ई॰में यह प्रकाश किया कि तीसीके तीन भेद हैं—(१) Linum usitatissimum (२) L. humili और (३) L. amgustifolium। हियर नामके एक दूसरे पण्डितने प्रमाण कर दिखला दिया है, कि उक्त ३य श्रेणीकी तीसी ही सबसे उत्कृष्ट है तथा प्रथम श्रेणीमें इसकी गिनती होती है। इस प्रथम श्रेणीकी तीसीके फिर भी दो भेद हैं,—(क) सामान्य (alpha vulgar) और हुमिलि (Beta humilji) इनमें से पहला भेद भारतवर्षमें और दूसरा पारस्यमें प्रचलित है। लाइनम अगिष्टिफोलियम (L. augustifolium) भूमध्यसागरके दोनों ओर पार्वत्यप्रदेशमें जंगली अवस्थामें उपजता है। भिन्न भिन्न मूल भाषामें इसका नाम जिस तरह स्वप्रधान है, उससे जाना जाता है, कि विभिन्न देशोंमें विभिन्न जाति द्वारा यह प्राचीनकालसे प्रचलित है।

भारतमें भी तीसीका प्रचार बहुत पहलेसे है। आजकल इस देशमें तीसीके बीज और तेलके सिवा उसके सूतेका व्यवहार नहीं है, किन्तु पहले था। संस्कृत शास्त्रमें क्षौम-वस्त्रका यथेष्ट व्यवहार देखा जाता है। बहुतेरे क्षौमवस्त्रका अर्थ रेशमी वस्त्र लगाते हैं। किन्तु वह नहीं है। क्योंकि तीसीका एक नाम जब 'क्षुमा' है तब उससे प्रस्तुत वस्त्रको ही क्षौम वस्त्र कहते हैं। चीनमें चुमा नामकी एक प्रकारकी घास होती है, उसके रेशे या सूतेसे एक प्रकारका वस्त्र प्रस्तुत होता है, जो देखनेमें ठीक रेशमी सा मालूम पड़ता है और रेशमी नामसे प्रचलित भी हो गया है। इससे अनुमान किया जाता है कि क्षौम वस्त्र भी इसी प्रकार रेशमी वस्त्र कहलाता है। मनुसंहितामें लिखा है, कि वैश्यलोग क्षौम्य सूतका उपवीत धारण करते थे।—

तीसीका बीज। भारतवर्षमें तीसीके पौधेसे तीसीका बीज, बीजसे तेल और खरी वा खली बनती है। इस देशमें तीसीसे रेशे नहीं निकालते हैं, इस कारण बीज बहुत पतला बोया जाता है। पतले पौधेमें टहनियां और फूल बहुत निकलते हैं। फूल झड़नेपर छोटी घुडियां बंधती हैं; इन्हीं घुडियोंमें बीज रहते हैं। यूरोपमें केवल रेशेका ही आदर अधिक है। इस कारण वे बहुत घना बीज बोते हैं, जिससे पौधोंमें टहनियां न निकले और पौधे भी बड़े हों। भारतवर्षमें खेतीके दोष वा गुणसे तीसीका दाना पतला और मोटा हुआ करता है तथा रंग भी कई तरहके हो जाते हैं। तीसी सफेद और लालरंगकी होती है। खेतीकी प्रणाली और जङ्गली गुणसे लाल तीसीके भी फिर कई भेद हैं जिन्हें केवल महाजन लोग ही पहचानते हैं।

सफेद तीसीका बीज लाल तीसीके बीजसे पुष्ट और बीजका छिलका पतला होता है। इससे तेल भी काफी निकलता है। इसका छिलका (भूसी) भी हल्का और स्वादु होता है। सफेद तीसी गेहूं और चनेके मोलमें बिकती है। जब्बलपुरमें इस प्रकारकी तीसी बहुत उपजती है। नर्मदाके दक्षिणमें इस तीसीका व्यवहार अधिक है। जब्बलपुरकी सफेद तीसी दूसरे देशमें उपजानेसे लाल हो जाती है।

बहुत वर्षा होनेसे तीसी नुकसान हो जाती है क्योंकि इसके पत्तेमें गोटीसा दाग पड़ जाता है, इसीसे प्रायः आधेसे अधिक पौधे नष्ट हो जाते हैं। इसके सिवा इसमें और भी कई तरहके कीड़े लगकर इसका सत्यानाश कर डालते हैं।

बङ्गालके मध्य वर्द्धमान-विभागमें सर्वत्र इसकी खेती नहीं होती है। दियारेकी तीसी अच्छी होती है। हल्की तथा पङ्कमय जमीन तीसीकी खेतीके लिये उपयोगी है। कड़ी मट्टीमें तीसी नहीं उपजती। तीसीके खेतका पानी अच्छी तरह बाहर निकाल देना अच्छा है; क्योंकि खेतमें पानीके रह जानेसे इसका बहुत नुकसान होता है। जिस खेतका पानी सूख गया हो तथा जिसमें धानके पौधे लगी ही हों, वैसे खेतमें प्रति बीघे ऽ२ सेर तीसी बोई जाती है। अन्तमें जब धान पकता है, तब वह काट लिया जाता है और तीसी उसमें चैत्र मास तक लगी रहती। दियारेकी जमीनमें तीसी अधिक होती है। गेहूं, चने, सरसों वा खेसारीमें इसे मिला कर बोते हैं अथवा बिना किसी दूसरे अनाजमें मिलाये भी यह बोई जाती है, जो खेत बहुत गहरा जोता गया हो, उसमें तीसी अच्छी नहीं उपजती है। तीसी बो कर खेतको चौरस कर देना अच्छा है। पहली फसल बोई जानेके बाद खेतमें एक बार हल चलाया जाता है; पीछे तीसी बो कर दो बार चौंकी देनी पड़ती है। यह फसल आश्विन और कार्तिक मासमें बोयी जाती और चैत्रमें काटी जाती है। केवल तीसी बोनेमें प्रति बीघे ३ सेर और मिलाकर बोनेमें १॥ सेर बीज लगता है। सिर्फ तीसी प्रति बीघे २ मन उपजती है। गङ्गाके किनारे इसकी फसल अच्छी लगती है। फसल अच्छी तरह पक जानेके पहले ही इसे जड़से काट डालते हैं।

शाहाबादमें यह जौ, मसुर आदिके साथ मिला कर बोई जाती है। युक्तप्रदेश और अयोध्याके सभी जिलोंमें इसकी खेती होती है। काश्मीरके पश्चिमांशमें भी यह कम नहीं उपजती है। इसका तेल उस देशमें बहुत व्यवहृत होता है। मन्द्राज और ब्रह्म देशमें इसकी खेती प्रायः नहींके बराबर समझना चाहिये। बम्बई प्रदेशमें भी इसका खूब आदर है। पूना, शोलापुर, नासिक, खानदेश, अहमदनगर, गुजरात आदि स्थानोंमें भी यह कुछ कुछ उपजायी जाती है। मध्यभारत और बरारमें कुछ अधिक होती है, हैदराबादमें भी कम नहीं उपजती।

तीसीका तेल। बीजकी पुष्टि और श्रेणीके अनुसार इसके तेलका परिमाण जाना जाता है। पुराने बीजसे नये बीजमें तथा पतले दानेसे मोटे दानेमें अधिक तेल निकलता है। कमसे कम ऽ४ सेर बीजमें १ सेर तेल पाया जाता है, किन्तु दाना अच्छा रहनेसे ऽ२ सेरमें एक सेर तेल निकलता है। शाहाबादमें यह तेल दीयेमें व्यवहृत होता है। जलानेके समय इस तेलसे धुआँ निकलता है। विलायतसे जो तीसीका तेल इस देशमें आता है, वह विशुद्ध होता है और रंगसाजी तथा लिथोके छापेकी स्याही बनानेके काममें आता है। इसके सिवा उस तेलमें सुखानेका गुण अधिक है; किन्तु हम लोगोंके देशकी

तीसी अन्य तेलहन बीजके साथ मिलकर खराब हो जाती है तथा इसके तेलमें सुखानेका गुण कम रह जाता है। इस देशका तेल एक दफा विलायतमें बेचनेके लिये भेजा गया था; किन्तु वहां जब यह तेल जाँचा गया, तब बाजारकी दरसे दश पन्द्रह रुपये कममें बिका। तभीसे इसकी रफतनी बहुत कुछ बन्द हो गई है। मिर्जापुरकी लाल तीसीका तेल विलायतके तेलसे बली और अच्छा होता है; किन्तु कोल्हूमें पेरे जानेके कारण उतना आदर नहीं है। घानीसे तेल निकालनेमें खर्च भी ज्यादे पड़ते हैं। १०० मन तेलमें प्रायः ८०) रु० खर्च होते हैं। विलायती वाष्पीय कालमें १०० मन तेल निकालनेमें लगभग १९) रु० खर्च पड़ते हैं।

तीसीका सूत। अभी यूरोपीय विद्वानोंके यत्न और चेष्टासे भारतवर्षमें कई जगह तीसीका सूता तैयार होने लगा है। १७९०से १७९९ ई०में पहले पहल इस विषयमें चेष्टा की गई। इस देशके किसान लोग पहले तीसीसे रेशा निकालनेमें किसी तरह सहमत न हुए। इन लोगोंका विश्वास था, कि जो काम बाप-दादाने नहीं किया है वह काम करनेमें विशेष अनिष्ट होगा। इन सब अज्ञान मनुष्योंके दृढ़ विश्वासको हटानेमें साहबोंको जितना कष्ट झेलना पड़ा था वह अकथनीय है। लाभकी कथा उदाहरण वा उपदेश किसीसे भी इन लोगोंका ध्यान इस ओर आकर्षित न हुआ। डा० रक्सवर्गने सबसे पहले इष्टइण्डिया कम्पनीके राज्यमें रिसड़ाके सनकी कोठीमें सूत तैयार करनेकी व्यवस्था कर दी। उनका प्रस्तुत सूता बहुत उमदा होता था। १८३९ ई०में लण्डनमें एजार्स नामक एक व्यक्तिके अधीन एक कम्पनी संगठित हुई। रिगा और ओलन्दाजी बीजके साथ एक बेलजियमका कृषक और एक बेलजियमवासी तीसीसे सूत प्रस्तुत करनेवाला यूरोपीय यन्त्रादि लेकर इस देशमें आया। यहां उन्हें इसके लिये खेती नहीं करनी पड़ी। क्योंकि उनके उपदेशसे ही यहांके मनुष्य इस विषयमें चेष्टा करने लगे। काशीके निकट बलिया नामक स्थानमें १७४० ई०की जो खेती की गई, वह सन्तोषजनक न हुई थी। क्योंकि असमयमें खेती करने और सूत निकालनेसे सब बरबाद हो जाता है। १८४१ ई०में मुङ्गेरमें इसका प्रयत्न किया गया। तीन वर्ष परिश्रम करनेके बाद १८४४ ई०में सूत कुछ कुछ परिष्कार और कोमल होने लगा; किन्तु गवर्नमेण्टकी ओरसे किसी प्रकारकी सहायता नहीं मिलनेसे कुछ समयके बाद कारबार बन्द हो गया। अन्तमें नर्मदाके किनारे जब्बलपुरमें इस विषयकी ओर लोगोंका अच्छा ध्यान था। यहांके तीसीके पौधेसे उत्कृष्ट सूत तैयार होता है। शाहाबादमें १८३७ ई०को इसकी परीक्षा आरम्भ हुई। यहां जो सूत तैयार होता है वह बहुत कड़ा होता है। रूसियाके सूत सरीखा यह भी विलायतमें कम दरमें बिकता है। एक समय बङ्गाल देशमें भी इसकी खूब उन्नति हुई। चट्टग्राममें जो सूत तैयार होता था, वह लम्बाईमें कम होने पर भी कम्पनीकी परीक्षा द्वारा बहुत उत्कृष्ट प्रमाणित हुआ था। वर्द्धमानमें चार प्रकारके सूत प्रस्तुत हुए; जिनमेंसे तीसरा प्रकारका सूत सबसे उमदा समझा जाता था।

इस तरह नाना स्थानोंमें तीसीके सूतके लिये जब खेती आरम्भ हुई, तब धीरे धीरे किसान लोग अपनेसे ही बहुत कुछ इसे उपजाने लगे।

१८५५ ई० को पञ्जाबमें लाहौरके निकटवर्ती सियालकोट और दीननगरमें इससे जो सूत बनता वह चारपाई आदिकी रस्सीके काममें आने लगा। काङ्गड़ा उपत्यकासे १८५८ ई०में जो सूतका नमूना विलायत भेजा गया, उसका वहां खूब आदर हुआ और ऊंची दरमें बिक गया। अतः भारतवर्षमें रीतिमतसे व्यवसाय चलानेकी इच्छासे बेलफाष्ट शहरमें १८६१ ई०को बेलफाष्ट भारतीय तीसी-सूतकी कम्पनी नामक एक दल अंगरेज इस काममें प्रवृत्त हुए।

सियालकोटमें इन लोगोंका एजेण्ट-आफिस स्थापित हुआ। पहले इनकी इतनी क्षति हुई कि कारबार प्रायः उठने उठने पर हो गया था। अन्तमें होम-गवर्नमेण्टके वार्षिक साहाय्यसे इन लोगोंका प्रस्तुत सूत आइरिश-सूतसे मिलता-जुलता था; किन्तु अधिक जमीन और कृषकके नहीं मिलनेसे उक्त कारबार बन्द हो गया। १८६९ ई०में एक दूसरी कम्पनीने इस काममें हाथ डाला।

पेशावरमें तीसीसे गृहकर्म-व्यवहारके लिये रस्सा तैयार करते हैं। इसके अलावा पञ्जावमें और किसी दूसरे काममें तीसीके सूतका व्यवहार नहीं होता है और न वहांके लोग इस ओर ध्यान ही देते हैं; किन्तु वहां जो कुछ सूत तैयार होता है. उसकी गिनती अच्छीमें है। युक्तप्रदेशमें भी सूत तैयार नहीं होता है; यहां तीसीका बीज निकाल कर उसके पौधोंको अंटियोंमें बांधते और उन्हें सात-आठ दिन तक तालाबके जलमें रख छोड़ते हैं। प्रति दिन अंटियां उलटानी पड़ती हैं। ७।८ दिन बाद (अधिक गर्मीके समयमें ४।५ दिन बाद) इसकी जड़की फाड़ कर देखना पड़ता है, कि पटुवेकी समान इसकी डण्ठल अलग हुआ है वा नहीं। ऐसा होने पर पन्द्रह दिन तक उन्हें बाहर ठंडमें पतला करके सुखाना पड़ता है। यदि वृष्टि होनेकी आशङ्का हो, तो अंटियोंको कोणाकारमें बाहर जमा कर रखना चाहिये। पीछे मोगरी या मूसलसे डंठलकी चूर चूर करना पड़ता है। तब परिष्कार कर बन्डलमें बांधकर रख छोड़ते हैं। यह बम्बई हो कर विलायत भेजा जाता है। देशी कम्पनीने अभी इसका व्यवसाय आरम्भ नहीं किया है।

मध्यभारतमें तीसीका पौधा एक फुटसे अधिक ऊंचा नहीं होता है, किन्तु तीसी बहुत ज्यादे निकलती है। इस देशमें यह प्रायः रब्बी आदिके साथ बोई जाती है। बरारमें भी ऐसा ही है। इन दो स्थानोंमें कहीं भी सूत नहीं होता है।

सिन्धुप्रदेशकी उत्तरी सीमामें तीसीसे सूत तैयार होता है, जमींदार लोग इसकी रस्सी बनवाते हैं। सिन्धुके और किसी भागमें तीसीकी खेतीका नाम भी नहीं है। बम्बईमें बीजसे केवल तेल निकाला जाता है, सूत कहीं भी तैयार नहीं होता। मन्द्राजमें भी वही हाल है। बङ्गालमें यदि यत्न किया जाय तो सूतेसे रस्सी, चटाई आदि बन सकती हैं। कलकत्तेके निकट गङ्गाके दूसरे किनारे कलसे एक समय तीसीके सूतका पाल और तिपालका बहुत बढ़ियां कपड़ा तैयार हुआ था।

भारतमें अभी सब जगह तीसीका बीज संगृहीत होता है। पौधा या तो मवेशीको खिलाया जाता या जला दिया जाता है। यदि यह बरबाद न किया जाय, वरं अंटियोंको सुखा कर कागजकी कलमें भेजा जाय, तो दोनोंके लिये विशेष लाभ हो।

तीसीका व्यवसाय—भारतवर्षमें तीसीका कितना खर्च है, वह ठीक ठीक जाना नहीं जाता। इस देशमें तीसीकी सुन्दर कल कहीं भी देखनेमें नहीं आती है। इसकी पका कर गाढ़ा करके एक प्रकारका वारनिश भी बनता है। धनी लोगोंके घरमें किवाड़ तथा झरोखेमें जो सब्जा रंग देखा जाता है, वह यही वारनिश है। प्रति वर्ष कई सौ मन बीज विदेशमें भेजे जाते हैं।

तीसीका व्यवहार। यदि प्रस्तुत कर सके तो इसके रेशेसे रस्सी, चटाई, तिपाल, पाल आदि बन सकते हैं। यदि सूत निकाल न सके तो इसके पौधोंको सुखा कर कागजकी कलमें भेज देनेसे बहुत लाभ होता है। लेथोके छापेकी स्याही, रंगसाजी तथा वारनिशके सिवा इसके तेलसे नकल-इण्डिया-रबर और नरम साबुन बनता है। तेल विशुद्ध होने पर ये सब चीजें अच्छी बनती हैं। किन्तु भारतमें मिश्रित तेल ही अधिक है।

तीसी औषधके काममें भी आती है। इसकी खली को पीस कर उसकी पुलटिस बांधनेसे सूजन बैठ जाती है वा कच्चा फोड़ा शीघ्र पक कर बह जाता है। दर्द भी कम जाता है। मृदु-काश-रोगमें भी यह काममें आती है। मेह और मूत्ररोग तथा लिङ्गयन्त्रकी पीड़ामें भी यह बहुत उपकारी है। दातव्य चिकित्सालयोंमें तीसीको जलमें सिद्ध कर उसे मेहरोगीको सेवन कराते हैं। बीजके चूर्णको चीनीके साथ मिला कर खानेसे मेहरोग शान्त होता तथा कामाग्नि बढ़ती है। लड्डूमें भी यह तिलकी नाईं मिलाई जाती है। इस देशमें तेल कम होता है। इसलिये खली भी कम होती है। किन्तु रूसियामें परीक्षा कर देखा गया है, कि खली गौको खिलानेसे उसके दूधमें मक्खन अधिक होता है।

तु (सं० अव्य) १ निरर्थक पादपूरण। २ भेद। ३ अवधारण ४। समुच्चय। ५ पक्षान्तर। ६ नियोग। ७ प्रशंसा। ८ निग्रह। ९ सम्पर्क। १० किन्तु। ११ आधिक्य।

तुंजाल (हिं० पु०) फुंदने लगी हुए एक प्रकारका जाल। यह मक्खी आदिसे बचनेके लिये घोड़ोंके ऊपर डाला जाता है।

तुँदैला (हिं० वि०) लम्बोदर, बड़े पेटवाला, तोंदवाला।

तुबड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका छोटा पेड़। इसकी लकड़ी मकानोंमें लगती है जो सफेद, नर्म और चिकनी मालूम पड़ती है। मवेशी इसके पत्ते बड़े चावसे खाते हैं।

तुअर (हिं० पु०) अरहर, आढ़की।

तुई (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बेल जो कपड़े पर बुनी हुई रहती है।

तुक् (सं० पु०) तुज-क्विप्। अपत्य, सन्तान।

तुक (हिं० स्त्री०) १. किसी पद्य या गीतका कोई खण्ड, कड़ी। २ वह अक्षर जो किसी पद्यके अंतमें रहता है। ३ अक्षरमैत्री, पद्यके दोनों चरणोंके अन्तिम अक्षरोंका परस्पर मेल।

तुकज्योतिर्विद्—एक प्राचीन हिन्दू ज्योतिर्विद्।

तुकबंदी (हिं० स्त्री०) १ भद्दी कविता करनेकी क्रिया। २ ऐसा पद्य जिसमें काव्यके गुण न हो, भद्दा पद्य।

तुकमा (फा० पु०) घुंडी फसानेका फंदा।

तुकान्त (हिं० स्त्री०) अन्त्यानुप्रास, काफिया।

तुका (फा० पु०) बिना गांसीका तीर, वह तीर जिसमें गांसीकी जगह घुंडीसी बनी हो।

तुकाक्षीरी (सं० स्त्री०) तुगाक्षीरी पृषोदरादित्वात् साधुः। वंशलोचन।

तुकार (हिं० स्त्री०) अशिष्ट सम्बोधन, 'तू' का प्रयोग जो अपमान-जनक समझा जाता है।

तुकारना (हिं० क्रि०) अशिष्ट सम्बोधन करना, तू तू करके पुकारना।

तुकाराम—महाराष्ट्र देशके एक प्रसिद्ध भक्त कवि। भारतवर्ष धर्मविद तथा महापुरुषोंकी लीलाभूमि है। प्रति युगमें और देश देशमें भगवद्भक्त महापुरुष जन्मग्रहण करके इस देशका गौरव बढ़ाते हैं। कोई भक्ति, कोई ज्ञान, कोई वैराग्य, इत्यादि सद्गुणों द्वारा स्वदेशवासियोंका बहुत उपकार साधन कर गये हैं। वैदिक मन्त्रोंसे लगाकर वर्तमान समयके धर्मसङ्गीत तक सभी धर्मभावमें अनुप्राणित हैं। हमारे देशकी आधुनिक भाषाओंमें धर्म-भावोद्दीपक पदावलियोंका अभाव नहीं है। हिन्दीमें तुलसीदास, बङ्गलामें रामप्रसाद, तामिलमें तिरुवल्लुवर तथा मराठीमें तुकाराम प्रत्येक नरनारीके हृदयमें विराजित हैं। हिन्दुस्तानमें ऐसी कोई हिन्दू-सन्तान नहीं है, जिसने तुलसीदासके कवित्तोंको न सुना हो। राजपथमें, नगरमें, ग्राममें ऐसा कोई स्थान नहीं, जहां तुलसीदासकी कविता न सुनी जाती हो। तुलसीदासने युक्तप्रान्तमें जैसा स्थान पाया है, तुकारामने भी महाराष्ट्रदेशमें भी वैसा ही गौरवका आसन प्राप्त किया है। ये भक्तमहापुरुष अपनी जन्मभूमिमें देवांश या देवानुगृहीतके समान प्रतिष्ठाभाजन हुए हैं। इनके समस्त पद अभङ्ग नामसे परिचित हैं। ये सब अभङ्ग महाराष्ट्र जातिके हृदयके रत्नस्वरूप हैं। भिक्षुकसे लेकर राजचक्रवर्ती सम्राट् तक इनके अभङ्गको आदरसे गाते और सुनते हैं। बहुतसे धर्ममन्दिरमें यह देवीमाहात्म्य या गीताकी नाईं आदरसे पढ़ा जाता है।

महाराष्ट्रकी राजधानी पूनासे आठ कोस पश्चिमोत्तरमें इन्द्रायणी नामक एक छोटी नदी है। इसके किनारे देहु नामका एक ग्राम अवस्थित है। इस ग्राममें "मोरे" उपाधिधारी शूद्र जातिका एक महाराष्ट्र-परिवार वास करता था। वाणिज्य ही उनका प्रधान व्यवसाय था। यह वंश अत्यन्त धर्मपरायण था। तुकारामके पूर्वपुरुष भक्ति और वैराग्यमें उस समय सबसे श्रेष्ठ थे। तुकारामके ऊर्ध्व सप्तम पुरुषका नाम विश्वम्भर था। ये वाणिज्य-व्यवसायी थे किन्तु साधारण वणिक्की नाईं अन्यायाचारी न थे। जब कभी अतिथि और संन्यासीसे मुलाकात हो जाती, तो ये बहुत यत्नसे उनकी सेवा करते थे और रातको भक्तवृन्दोंके साथ मिल कर बहुत आनन्दसे सङ्कीर्त्तन करते थे।

पण्ढरपुरके बिठावादेवकी पूजा करना इन लोगोंकी कौलिक रीति थी। उसीके अनुसार प्रत्येक एकादशीको वे पण्ढरपुर जाकर बिठोवा देवकी पूजा करते थे। किन्तु एक दिन उन्होंने स्वप्नमें देखा कि बिठोवा देव स्वयं उपस्थित होकर उनसे कह रहे हैं कि "वत्स! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हुआ हूं, अब तुम्हें पण्ढरपुर जानेकी कोई आवश्यकता नहीं। तुम अपने ग्राम देहुमें ही

मुझे पाओगे।" इसके बाद विश्वम्भरने जैसी मूर्ति स्वप्नमें देखी थी ठीक वैसी ही एक विठोबाकी मूर्ति आम्रकाननमें देखी। देहुके पास ही इन्द्राणीके तीर पर उन्होंने मन्दिर बनवा कर उसमें उस मूर्तिकी स्थापना की और आप स्वयं ही उनकी पूजार्चनामें नियुक्त हो गये। ये बहुत ही धर्मपरायण थे, इसीसे उन्होंने तुकाराम जैसे वंशके गौरव बढ़ानेवाले पुत्रको प्राप्त किया था।

तुकारामका जन्म १६०७ ई०में हुआ था। इनके पिताका नाम बोह्लावा और माताका नाम कनकाङ्ग था। बोह्लावा सद्गुणोंसे विभूषित थे और कनकाङ्ग अत्यन्त पतिपरायणा थी। इनके प्रथम पुत्रका नाम शान्तजी था। तुकाराम पिताके द्वितीय पुत्र थे। कनकाङ्ग जब गर्भवती हुई, तब संसारके प्रति उनका अत्यन्त विराग उत्पन्न हुआ था और वे सर्वदा निर्जन स्थानमें बैठकर हरिनाम जपा करती थी। वे पहलेसे ही जानती थी कि उनका पुत्र (तुकाराम) एक भक्तशिरोमणि होगा। तुकारामके बाद भी कनकाङ्गके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई थी। तुकारामके पिता इधर जैसे पुत्रकन्यासे सम्पन्न थे, वैसे ही उनके धनसम्पद्की भी कमी न थी। अवस्था उन्नत होनेसे ही प्रायः सभी भगवान्का नाम भूल जाया करते हैं, किन्तु बोह्लावा और कनकाङ्ग ये दोनों उस प्रकृतिके मनुष्य नहीं थे। सांसारिक सब प्रकारके सुखोंको प्राप्त करने पर भी वे भगवान्की चर्चा न भूलते थे। यथासमय पुत्रकन्याका विवाह हुआ, किन्तु धन जन-पुत्र प्रभृति होनेपर भी उन्हें अहंकारने छुआ तक न था। ज्येष्ठ पुत्र शान्तजीके वयःप्राप्त होने पर उनके ऊपर संसारका भार अर्पण कर उन्होंने निर्विघ्नचित्तसे भगवन्की आराधनामें जीवन व्यतीत करनेका सङ्कल्प किया और तदनुसार ज्येष्ठ पुत्र शान्तजीको गृहस्थीका भार ग्रहण करनेके लिये अनुरोध किया; किन्तु शान्तजी बाल्यकालसे ही विरक्त थे। सुतरां उन्होंने इस भारको लेना स्वीकार न किया। तब बोल्लावाने मध्यमपुत्र तुकारामसे कहा। पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर तुकारामने तेरह वर्षकी अवस्थामें गृहस्थीका गुरुतर भार अपने ऊपर ले लिया।

तुकारामके दो विवाह हुए थे। उनकी पहली स्त्रीका नाम रुकाबाई और दूसरीका अवलाई था। अवलाई साधारणतः जीजीबाई या जीजाई नामसे प्रसिद्ध थीं। पहली स्त्री कासरोगग्रस्त थी, इसीसे उन्होंने दूसरा विवाह किया था; इनकी दोनों स्त्रियोंमें छोटीके ऊपर ही गृहस्थीका भार था। तुकारामने यद्यपि थोड़ी ही अवस्थामें संसारका गुरुतर भार ग्रहण किया था तो भी वे इस गुरुतरभारको वहन करनेमें अकृतकार्य न हुए थे, वरन् वे अत्यन्त दक्षताके साथ गार्हस्थिक कर्त्तव्योंका सम्पादन करने लगे।

कौलिक-वाणिज्य व्यवसायमें उनकी विशेष प्रतिष्ठा हुई एवं थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने बहुतसे धनाढ्य वणिकोंके विश्वासभाजन होकर यथेष्ट अर्थ उपार्जन किया। तुकारामके सौभाग्य-लक्षण सब विषयोंमें ही दिखाई देने लगे। मनुष्यकी अवस्था सब दिन एकसी नहीं रहती। प्रायः सुखके बाद दुःख आ कर अपना स्थान अधिकार कर लिया करता है। तुकारामकी भी यह सुखकी अवस्था अधिक दिन तक न रही। सत्रह वर्षकी अवस्थामें इन्हें पहले पिताका और फिर माताका वियोग-दुःख सहना पड़ा।

तुकाराम माता-पिताके वियोगसे बिलकुल अधीर हो उठे। इसी शोकने संसार बन्धनके समस्त मलको अपनीत कर तुकारामके चित्तकी निर्मलता सम्पादन किया। भगवद्भक्ति और वैराग्य तुकाराममें पुरुषानुक्रमसे वर्तमान था; किन्तु सम्प्रद. माता पिताके स्नेह, विषयानुरक्ति और संसारके भारने एकत्र हो कर इतने दिन उन्हें आध्यात्मिक उन्नति साधनमें अवसर प्रदान नहीं किया। दुःख किसे कहते हैं, तुकारामने इसे एक दिन भी अनुभव नहीं किया। इतने दिन संसार उनके निकट सुखमय था; किन्तु माता पिताकी मृत्युसे उनका ज्ञानचक्षु उन्मीलित हो उठा। संसार अनित्य है, दुःख अवश्यम्भावी है यह वे अच्छी तरह जान गये। तुकारामने तेरह वर्षसे ही संसारका भार ग्रहण किया था; सही किन्तु जबतक माता पिता जीवित रहे, तब तक यह भार इतना गुरुतर नहीं मालूम होता था; परन्तु अब यह भार उनके लिये

अत्यन्त कष्टदायक मालूम पड़ने लगा। भवितव्य अनतिक्रमणीय है, यह सोचकर वे संसारिक कार्य करनेमें यत्नवान् हुए। दुःखके बाद दुःख आता है, इस समय एक दूसरी दुर्घटनाने उन्हें और विपद्‌में डाल दिया। इस समय इनके बड़े भाईकी स्त्रीका अकाल ही प्राणान्त हुआ। शान्तजी एक तो सब विषयोंमें उदासीन थे ही, दूसरे माता पिताकी मृत्युसे उनकी उदासीनता और ज्यादा बढ़ गई। अब स्त्रीके मर जाने पर अपनेको संसारके सब बन्धनसे मुक्त समझ कर उन्होंने तीर्थ-पर्यटन और धर्म-चर्चाके लिये घर छोड़ दिया।

इस समय तुकारामकी उम्र अठारह वर्षकी थी। तुकाराम जिस कार्यके लिये इस पृथिवी पर आये हुए थे, क्रमशः उनका वह पथ उन्मुक्त होने लगा।

भ्रातृजायाकी मृत्यु और ज्येष्ठ भ्राताके गृहत्यागसे भगवद्भक्ति तुकारामके हृदयमें जागरित हो गई और वे क्रमशः भगवत्‌प्रेममें निमग्न होने लगे तथा संसारके प्रति क्रमशः उनकी उदासीनता झलकने लगी। व्यवसायके प्रति ध्यान नहीं रहनेसे वाणिज्यमें उन्हें बहुत घाटा लगा। तुकारामका धन क्रमशः नाश होने लगा। व्यवसाय-वाणिज्य चलानेमें आदान प्रदान विशेष आवश्यक है; किन्तु इसे ह्रास होते देख व्यवसायिगण तुकारामके साथ आदान-प्रदान बंद करने लगे; परन्तु तुकाराम जिनसे रुपये पाते थे, वे इन्हें व्यवसायमें उदास देख कर ऋण-परिशोधमें विलम्ब करने लगे। सुतरां दिनों दिन तुकारामकी अवनति होने लगी। सांसारिक व्यय जैसाका तैसा बना रहा, आयका पथ क्रमशः घटने लगा। तुकाराम अत्यन्त विपद्‌में पड़ गये। पूर्वकी अवस्थाको पलटानेको इन्होंने सैकड़ों यत्न किये; लेकिन वे सफलता प्राप्त न कर सके। उनका हृदय जिस भगवद्भक्तिसे पूर्ण था, वह क्रमशः बढ़ने लगा। इस समय तुकारामने पहलेकी नाईं महाजनी व्यवसायमें उन्नतिकी सम्भावना न देख कर एक साधारण दाल-चावलकी दूकान खोली। इस समय तुकाराम जहां बैठते थे, वहीं हरि-कीर्तन करते थे।

ग्राहकके आने पर वे सोचते थे कि उन्हें द्रव्य कम देनेसे अधर्म होगा, यह सोच कर ग्राहककी इच्छाके अनुसार द्रव्यादि देते थे। इस व्यवसायमें लाभकी बात तो दूर रहे, असलमें भी बहुत घाटा हुआ। जब इन्होंने देखा कि दूकानदारीमें कोई लाभ नहीं; तो वे एक नवीन व्यवसायमें प्रवृत्त हुए। किन्तु उसमें भी उन्हें सुविधा न हुई। इस समय चारों ओरसे इनकी निन्दा होने लगी। एक तो सांसारिक कष्ट और दूसरे चारों ओरसे आत्मीय स्वजनोंके कटुवचनकी बौछार; वे अधीर हो उठे। कोई कहता कि तुकाराम अत्यन्त निर्बोध है; कोई कहता कि तुकाराम अकर्मण्य और व्यवसाय-कार्यमें नितान्त मूर्ख है। इन्हीं कारणोंसे तुकारामका मन अत्यन्त चञ्चल हो उठा। अनेक चेष्टा करने पर भी वे अपने मनको संसारके प्रति आकृष्ट कर न सके। उनका हृदय जिस भावसे पूर्ण हो गया था, उसके वेगको दमन करना असाध्य था। तुकाराम काम-काज तो करते थे; किन्तु उनका अन्तःकरण सर्वदा हरिभक्तिमें रहा करता था। धीरे धीरे तुकारामका समस्त मूलधन जाता रहा। इस समय उनके अत्यन्त सांसारिक कष्ट उपस्थित हुआ।

तुकाराम इस कष्टको निवारण करनेके लिए फिर भी व्यवसाय कार्यमें प्रवृत्त हुए। किन्तु अब उनके पास मूलधन कुछ भी न बचा था। तब वे भार ढोनेवाले बैलकी पीठ पर धान लाद कर गांव गांव बेचने लगे। रात दिनके परिश्रमसे, आहार-निद्रा समय पर न होनेसे, शीत ग्रीष्मसे किसीसे भी वे विचलित न हुए; किन्तु इस कार्यमें भी उन्हें लाभ न हुआ। उनका दुःख जितना ही अधिक बढ़ने लगा, उतना ही वे विठोवाके चरणमें आत्मसमर्पण करने लगे। इस समय तुकारामका अलङ्कार इत्यादि जो कुछ था, वह धीरे धीरे निःशेष होने लगा। तब प्रतिवासी वणिक् आ कर उनका कागज पत्र देखने लगे। बाद उन्होंने अनुमान किया कि तुकारामकी रक्षाका अब कोई उपाय नहीं है; तुकाराम दिवालिया हो गये। व्यवसायीके लिए दिवाला निकलने और निन्दा फैलनेसे बढ़ कर और कोई कष्ट नहीं। यह सम्वाद सब जगह बिजलीकी तरह फैल गया। सब महाजनोंने आ कर उनका दरवाजा घेर लिया। इसी समय तुकाराम पर बड़ी भारी विपत्ति थी, वे बिलकुल हतबुद्धि हो गये। तब उनके आत्मीयस्वजनोंमेंसे किसीने अर्थसे सहायता

दे कर और किसीने जमानत दे कर तुकारामकी इस विपत्तिसे रक्षा की। तुकारामके बन्धुबान्धवोंकी ऐसी धारणा थी कि विठोबाकी भक्ति ही उनकी अवनतिका कारण है। एक दिन कई बन्धुओंने तुकारामसे कहा,-"तुम विठोबाकी भक्ति छोड़ कर सांसारिक कार्यमें लग जाओ, इस संसारमें विठोबाकी भक्ति करके किसने उन्नति प्राप्त की है?" इस तरह तुकाराम चारों ओरसे तिरस्कृत होने लगे। घरमें अबलाओंकी भी यही धारणा थी; वे भी सर्वदा कहती थीं कि विठोबा-भक्तिसे ही हम लोगोंकी अवनति हुई है। घरमें स्त्री, बाहरमें बन्धुबान्धव सभी उनको उत्यक्त करने लगे। इधर गृहस्थीका दारुण कष्ट था, उधर इन लोगोंका झंझट; तुकाराम सभीकी बातें सह लेते थे। वे विठोबाके प्रेममें निमग्न रहते, इसीसे सांसारिक दुःख उन्हें उतना कष्टकर नहीं मालूम पड़ता था। लोगोंकी ताड़नासे, स्त्रीकी भर्त्सनासे उनका भगवद्प्रेम और भी अधिक बढ़ता जाता था।

वणिकोंके लिए व्यवसायके सिवा जीविका-निर्वाहका कोई दूसरा उपाय नहीं है। सुतरां तुकारामने इस बार अन्तिम उद्यमका बीड़ा उठाया। उनके पास जो कुछ पूंजी बची थी, उसीसे उन्होंने लालमिर्च खरीदी और उसे बेचनेके लिए कोङ्कणदेश गये। यद्यपि वे नये द्रव्यको ले कर भिन्न देशमें गए थे, तोभी उनके व्यवसायकी रीति पूर्ववत् थी। नूतन व्यवसायीको देख कर झुंडके झुंड ग्राहक आने लगे और मूल्य दे कर इच्छानुसार सौदा खरीदने लगे। बहुतोंने उधार भी लिया। इस तरह थोड़े ही दिनोंमें लाभकी बात तो दूर रही, मूलधन भी गायब हो गया। मिर्च बेच कर जो उनके पास बचा, उसे ले कर स्वदेशको लौटे। किन्तु दैवकी ऐसी विड़म्बना हुई कि रास्तेमें आते समय वे एक ठगके उलझनमें फँस गये। वह ठग उन्हें बहुतसे कृत्रिम सुवर्णालङ्कार दे कर इनकी सब पूंजी ले नौ दो ग्यारह हो गया। तुकाराम घर आ कर इस दुर्बुद्धिताके कारण आत्मीय स्वजनोंके निकट बड़े लाञ्छित हुए।

इधर घर-गृहस्थीके कष्टने भी अपना पूरा रंग दिखाया; उनकी स्त्रीने देखा कि स्वामी सर्वस्वान्त हो गये, उनके ऊपर लोगोंका विश्वास जाता रहा, अब किसीसे कर्ज मिलना दुर्लभ है। अबलाई सङ्गतिपन्न गृहस्थकी लड़की थी, उसके ऊपर बहुतोंका विश्वास था। उसने २००) रु कर्ज ले कर स्वामीको दिये और बहुत समझा-बूझा कर व्यवसाय करनेके लिये कहा। तुकाराम रुपये लेकर व्यवसायके लिए बालाघाट नामक स्थानमें गये। इस बार खरीद-बेचकर उन्हें एक-चतुर्थांश लाभ हुआ। घर लौटते समय तुकारामने देखा कि राजानुचरगण एक ब्राह्मणको ऋण न चुका सकनेके कारण बांध कर ले जा रहे हैं, उसकी स्त्री भी रोती हुई उसके पीछे जा रही है। ब्राह्मणने ऋण परिशोधके लिये १२ वर्ष तक क्रमागत भीख मांगी; किन्तु वह कुछ संग्रह न कर सका। ब्राह्मणकी ऐसी दुर्दशा देख कर तुकारामका हृदय दयासे पिघल गया। उन्होंने अपना व्यवसायसे प्राप्त सब द्रव्य ब्राह्मणको देकर उसे उसी समय ऋण-मुक्त किया तथा ब्राह्मणके चौरकार्य और दानकी दक्षिणामें दश ब्राह्मणोंको भोजन कराया। इस बार तुकारामकी बची-खुची सब पूंजी खतम हो गई।

तुकारामके घर आनेसे पहले ही यह संवाद चारों ओर फैल गया और सब उन्हें पागल समझने लगे। अबलाई दरिद्रताकी पीड़ासे कठोरस्वभावा हो गई थी। स्वामीके इस व्यवहारसे उसने अग्निमूर्त्ति धारण की। अब तुकारामका घरमें रहना भी कठिन हो गया। इसी समय दारुण दुर्भिक्ष भी उपस्थित हुआ; रुपयेमें दो सेर धान बिकने लगा। इस दुर्भिक्षमें तुकारामका परिवार-वर्ग अन्नके अभावसे दारुण क्लेश भोगने लगा। जब तुकाराम पड़ोसियोंसे सहायता मांगने जाते, तो वे उन्हें अवज्ञाके साथ भगा देते थे। कोई कोई तो उन्हें यह कह कर चिढ़ाते थे कि "अब तुम्हारा विट्ठल देवता कहां गया? विट्ठल-भक्तिका परिणाम देख चुके न!" ऐसे वचनोंसे तुकाराम बहुत ही मर्माहत होते थे; किन्तु उस समय दुर्भिक्षका प्रकोप बढ़ता ही जाता था, तुकारामकी बड़ी स्त्री तो पहलेसे ही कामरोगसे पीड़ित थी। अनाहार और क्लेशसे इस समय उसने इस लोकका परित्याग किया। उसकी मृत्युसे सभी तुकारामको धिक्कारने लगे। इसके कुछ दिन बाद तुकारामके बड़े पुत्र शम्भोजीका भी प्राणान्त हुआ। तुकाराम शम्भोजी पर

अत्यन्त स्नेह करते थे। पुत्रकी अकालमृत्युसे तुकारामके हृदय पर गहरी चोट पहुँची।

तुकारामका ज्ञान अब तक पूर्ण विकशित न हुआ था; किन्तु इस तरह बार बार विपत्तियोंके सहते रहनेसे वे अच्छी तरह समझ गये, कि इस संसाररूप कर्मक्षेत्रमें कहीं भी सुखका स्थान नहीं है। सांसारिक-सुख अलीक और भ्रान्तिमात्र है। पहली स्त्री और पुत्र-की मृत्युसे तुकारामका संसार-मोह इतने दिनों तक अलक्ष्य था। तुकारामने सोचा, कि सांसारिक सुखकी आशासे कितनी ही चेष्टायें कीं; किन्तु कुछ फल न हुआ, वरन् दुःख ही बढ़ता गया। संसारका दुःख पर्वत-प्रमाण और सुख भ्रान्तिमात्र है। ऐसा विचार कर तुकाराम संसार-बन्धनको छिन्न कर देहुतके निकटवर्त्ती भास्वनाथ नामक पर्वत पर जा भगवदाराधनामें लीन हो गये। इस पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने शान्ति-लाभके लिये सप्ताह-व्यापी अविश्राम आराधना और चिन्तनके बाद शान्ति-लाभ की।

तुकाराम जब भास्वनाथ चले गये, तब उनके आत्मीय-स्वजन चारों ओर उनकी पर्यटन कर उसी स्थान पर आ पहुँचे। बार बार अनुरोध करने पर तुकाराम पर्वतसे उतर कर इन्द्रायणीके किनारे आये। सात दिनों तक उन्होंने कुछ खाया-पीया न था। भोजन करनेके बाद उन्होंने रोते हुए अपने भाईसे सांसारिक अवस्था कही। व्यवसायमें तुकारामकी समस्त सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर भी उनके पिताने लोगोंको जो ऋण दिया था, वह उन्होंने पूर्णतया वसूल न किया था। भाईने रोते हुए इनसे कागजात मांगे। तुकारामने कागजात ला कर छोटे भाईसे कहा—'भाई अब वृथा आशा क्यों करते हो, आज इन कागजातोंको इन्द्रायणीके जलमें फेंक दो।' इस पर भाईने कहा—"आप संसारत्यागी हैं, आपसे यह काम हो सकता है; किन्तु मुझे जब इस परिवार-वर्गका प्रतिपालन करना ही है तब मुझसे यह काम होना असम्भव है।" तुकारामने छोटे भाईकी इस बातको सुन कर उसका अर्द्धांश उन्हें दे दिया और अर्द्धांशको इन्द्रायणीके जलमें फेंकते हुए कहा,—'आजसे तुम निश्चिन्त हो जाओ, भिक्षासे ही मैं जीवन निर्वाह करूंगा।' तुकारामकी इस अवस्थामें देख लोग तरह तरहकी बातें उड़ाने लगे। कोई कहता था कि व्यवसायमें क्षतिग्रस्त हो कर तुकारामका मस्तिष्क विकृत हो गया है, कोई कहता था कि तुकारामने जीविकाके लिये यह साधु-भाव धारण किया है; इत्यादि किन्तु तुकारामके लिए निन्दा और स्तुति एक ही समान थी। वे इच्छानुसार नाना स्थानोंमें घूम-घूम कर धर्मचिन्तामें समय व्यतीत करते थे।

तुकारामके पूर्वपुरुष विश्वम्भरने देहुतमें बिठोवाके लिये जो मन्दिर निर्माण किया था, वह संस्कारके अभावसे भग्नप्रायः हो गया था। तुकारामने मन्दिर-संस्कार कराना चाहा; किन्तु इतना धन उनके पास नहीं जिससे उनका अभीष्ट सिद्ध हो; परन्तु साधु-उद्देश्यसे निरस्त होना इस भगवद्भक्तके लिये सुकठिन थे। तुकारामने अपने हाथसे मन्दिर-संस्कारका संकल्प किया एवं स्वयं मट्टी खोद कर मन्दिरनिर्माणका कार्य आरम्भ किया। सदिच्छा-प्रणोदित-कार्य कभी असंपूर्ण नहीं रहता। क्रमशः प्रतिवासी इस कार्यमें सहायता देने लगे। तुकारामने आदिसे अन्त तक साधारण श्रमजीवियोंकी तरह मन्दिर निर्माणके कार्यमें परिश्रम किया तथा सर्वसाधारणकी सहायतासे मन्दिरकी प्रतिष्ठा कर दी। अब तो तुकाराम नव-अनुरागसे बिठोवाकी पूजा करने लगे और रामकीर्त्तनमें नियुक्त हुए। अन्यान्य भक्तगण अभिनव पदावली रचना कर बिठोवाके चरणमें उपहार प्रदान करते थे; किन्तु तुकारामके इस तरहकी पदावली रचकर भेंट देनेकी यथेष्ट इच्छा करने पर भी भक्ति-ग्रन्थोंमें अभिज्ञता न होनेसे उनकी वासनाकी पूर्ण न होती थी। इसलिये वे पूर्वतन साधु-भक्तोंकी ग्रन्थावलीका मनोयोगके साथ पाठ करने लगे। महाराष्ट्र देशीय प्राचीन भक्त-कवि नामदेवकी अभङ्ग, कबीरकी पदावली ज्ञानेश्वरकृत गीताव्याख्या, अमृतानुभव नामक अध्यात्म-ग्रन्थ, योगवाशिष्ठ और श्रीमद्भागवत प्रभृति भक्ति-ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेसे उनका हृदय और भी भक्तिसे परिपूर्ण हो गया। इनकी स्मृति शक्ति अत्यन्त तीक्ष्ण थी, इससे थोड़े ही समयमें वे उक्त ग्रन्थोंके तत्त्वावधारणमें समर्थ हुए। उस समय वे ध्यान, धारणा,

निदिध्यासन प्रभृतिमें अभ्यस्त होने लगे। इस तरह तुकारामका धर्मजीवन संगठित होने लगा।

तुकाराम देहुत लौट आनेके बाद ही साधु और सज्जनोंकी सेवामें नियुक्त हुए। जिस स्थान पर हरिसङ्कीर्तनके लिये १० मनुष्य एकत्र होते, उस स्थानको वे अपने हाथसे परिष्कार कर दिया करते थे, जिससे कि भक्तोंके चरणमें कठिन कङ्कड़ोंका आघात न लगे। जब सब कोई हरि-कथा श्रवणार्थ घरमें प्रवेश करते, तब वे उनके जूतोंकी रक्षा करते थे। दूसरेका उपकार और साधुओंकी सेवाके अतिरिक्त उनके जीवनका और दूसरा कोई लक्ष्य ही न था। तुकारामकी ऐसी अवस्था देख बहुतसे लोग उनसे व्यर्थ परिश्रम कराते थे। यह व्यवहार तुकारामकी स्त्री सहन न कर सकती थी, इस कारण वह सभोंसे कलह करती थी। तुकारामके जीवनी-लेखकोंने तुकारामकी स्त्रीका वर्णन करते समय उन्हें मुखड़ा प्रभृति कह कर दूषित किया है, किन्तु पर्यालोचना करके देखा जाय तो उन्हें प्रकृत-पतिपरायणाके सिवा और कुछ नहीं कह सकते। अवलाई धनवान्की कन्या थीं। जब उनका विवाह हुआ था, तब तुकारामकी अवस्था अच्छी थी। बादमें अदृष्ट-दोषसे क्रमशः दरिद्रताके कारण वह सर्वदा अन्नकी चिन्तामें व्यस्त रहती थीं। तुकारामने विठोवाकी भक्तिमें अपना सर्वस्व खो दिया है, यह धारणा उनके हृदयमें बैठ गई थी। इसी कारण अवलाई तुकारामको कभी कभी तिरस्कार करती थीं, किन्तु उसमें एक प्रधान गुण यह था कि वह स्वामीको बिना खिलाये आप कभी न खाती थीं। इसलिये तुकाराम जब कभी घरसे अदृश्य हो जाते थे, तब अवलाई नदीतीर, प्रान्तर, पर्वत, गुहा अथवा जहांसे हो वहांसे वह उन्हें खोज लातीं और भोजन कराती थीं, उन्हें खिलाये बिना वह किसी काममें न लगती थीं। जब तुकाराम भाम्बनाथ पर्वत पर रहते थे, तब वहां भी अवलाई आहार्य द्रव्य लेकर पहुंचती थीं। एक दिन इसी अवस्थामें कड़ी धूप और पथ श्रमसे क्लान्त होकर वह मूर्च्छित हो पड़ी थीं। तुकाराम अपनी स्त्रीके इस क्लेशको देख कर वहांसे देहुत चले गये और वहीं रहने लगे थे।

तुकारामने नामदेव-रचित अभङ्गसे अपने धर्म-जीवनके विकाशमें विशेष सहायता पायी थी। इस समय एक दिन उन्होंने स्वप्नमें देखा, कि विठोवा देव उपस्थित हो कर उनसे कह रहे हैं—"तुकाराम! मेरे भक्त नामदेवने जितने अभङ्ग रचनेकी इच्छा की थी, उतने पूरे न हुए, इसलिये तुम उन्हें समाप्त कर जीवोंका कल्याण करो। मैं तुमको सप्रेम ज्ञान प्रदान करता हूं।" इतना कह कर विठोवा अन्तर्द्धान हो गये।

तुकारामने पहले भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित श्रीकृष्णकी बाल्यलीलाका ८०० सौ श्लोकोंमें वर्णन कर एक ग्रन्थ बनाया और सङ्कीर्त्तनके समय उनके मुखसे भावमयी कविताएं अनर्गल निःसृत होने लगीं। धर्मविद्वेषी लोग तुकारामकी उस उपदेश-पूर्ण पदावलीको सुन कर आत्म-विस्मृत हो जाते थे। इनके सङ्कीर्तनमें ऐसी एक मोहिनी शक्ति थी, कि जो इसे एक बार सुन लेता वह उसे कभी न भूलता था; प्रत्युत वह उसके हृदयमें दृढ़रूपसे अङ्कित हो जाता था।

पहले जो तुकारामको पागल समझ कर घृणा करते थे, अभी वे उनका भाव देख कर विस्मित होने लगे। क्रमशः तुकारामका गौरव और प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। सबको पूरा विश्वास हो गया कि तुकाराम यथार्थमें एक प्रकृत साधु हैं। तुकारामने पहले स्थिर किया था कि निर्जन स्थान ही तपस्याके लिये उपयुक्त है, किन्तु अभी उनके मनका भाव बदल गया। संसारमें रह कर वे नाना प्रकारसे जीवका कल्याण साधन कर सकते। यह सोच कर संसारके प्रति उनका विराग घटने लगा। वे पुनः संसारमें प्रवेश हुए और अनासक्त-भावसे संसारमें रह कर नामकीर्त्तन करने लगे। उनके इस कीर्त्तनको सुननेके लिये दूर दूर देशोंसे अनेक लोग आने लगे। इस समय दलके दल तुकारामके शिष्य होने लगे। तुकाराम नये अनुराग और उत्साहसे कीर्त्तन करते थे। तुकारामके शिष्योंमेंसे गङ्गाधरपन्थ नामक एक ब्राह्मण और सन्ताजी नामक एक तैलिक ये ही दो मनुष्य प्रधान थे। तुकारामके पीछे पीछे कीर्त्तनके समय ये करताल और वीणा ले कर घूमते फिरते थे। गङ्गाधरपन्थके ऊपर तुकारामकी कविता लिखनेका भार था। इस समय कपट

धार्मिकगण तुकारामके ऊपर अत्याचार करने लगे। मन्वाजी बाबा गुसाईं नामक एक ब्राह्मणने इनके प्रति पहले अत्याचार आरम्भ किया। मन्वाजी इस ग्राममें एक मठ बनाकर वहांका महन्त हो गये थे, पहले इनको सब कोई भक्ति करते थे। अब तुकारामके प्रति सभीका अनुराग देख कर वे उन्हें स्थानच्युत करनेके लिये विशेष चेष्टा करने लगे। तुकारामकी एक भैंसने एक दिन मन्दिरको तोड़ फोड़ दिया। इस पर गोसाईंने उन्हें गाली दी। एक दिन सन्ध्या समय एकादशीको विठोबाका दर्शन करनेके लिये इस मन्दिरमें बहुतसे लोग एकत्रित हुए थे; चारों ओर कांटेके रहनेके कारण दर्शकोंको अत्यन्त कष्ट होता था इसलिये तुकारामने अपने हाथसे कांटेको उखाड़ कर स्थान परिष्कृत किया था। मन्वाजी गोसांई तुकारामको कांटा उखाड़ते देख क्रोधित हो उठे और उसी कांटेसे तुकारामको मारने लगे। एकके बाद एक करके १०।१५ कांटेकी छड़ी तुकारामकी पीठ पर टूट गईं; बाद इसके मन्वाजी क्लान्त हो कर बैठ गये। गोसाईं प्रभु इस तरहसे तुकारामको प्रहार कर मन्दिरमें प्रत्यावृत्त हुए; तुकारामने बिना शब्द किये इस कष्टको सहन कर लिया। तुकारामकी ऐसी अवस्था देख सबके नेत्रमें आंसू भर आये। तुकारामने इस प्रहारको उपलक्ष करके कई एक अभङ्गकी रचना की।

तुकाराम किस तरहके असाधारण पुरुष थे, उसका वर्णन करना असाध्य है। वे इस प्रकारसे दण्डित हो कर घरको लौटे, उनकी स्त्री अबलाई उनकी अङ्ग वेदनाको दूर करनेके लिये सेवा शुश्रुषामें लग गईं। तुकारामके सुस्थ होने पर एकादशीके हरिजागरणके लिये समस्त आयोजन हुआ, कीर्तन सुननेके लिये झुण्डके झुण्ड मनुष्य आने लगे; किन्तु मन्वाजी गुसाईं नहीं आये। इस पर तुकारामने उनको बुलानेके लिये किसी एकको भेजा। शरीर असुस्थ कह कर गुसाईंजीने उस आदमीको लौटा दिया। तब तुकारामने स्वयं जा दण्डवत् कर कहा, ‘‘आपने हाथसे बहुत कालतक छड़ी प्रहार करनेमें प्रभु थक गये होंगे, इसमें मेरा ही दोष है। अभी मुझे क्षमा कर कीर्तनमें योगदान करनेको कृपा करें।’’ मन्वाजी तुकारामके इस व्यवहारसे एकदम स्तम्भित हो गये, उसी दिनसे उनका विद्वेष भाव जाता रहा और तुकारामके प्रति आन्तरिक प्रेम उत्पन्न हो आया।

दीक्षा नहीं होनेसे ज्ञान सम्पूर्ण नहीं होता, इसीसे एक दिन विठोबाने स्वप्नमें ब्राह्मणका रूप धारण कर तुकारामको ‘राम, कृष्ण, हरि’ इस मन्त्रसे दीक्षित किया। स्वप्नदृष्ट महापुरुषके अन्तर्द्धानसे तुकाराम अत्यन्त व्याकुल हो गये। उन्हें कुछ भी शान्ति न मिली। अन्तमें उन्होंने सोचा कि पुनः संसारमें प्रवेश ही शान्ति नहीं पानेका कारण है। यह सोच कर फिर कुछ दिनके लिये उन्होंने संसार परित्याग किया। उस ग्रामके निकट वल्लालर वन नामक एक अरण्यमें जाकर वे रहने लगे और प्रति दिन प्रातःकाल इन्द्रायणी नदीमें स्नान कर विठोबाका दर्शन करनेके लिये अरण्य जाते थे। एक दिन जब वे वहांसे न लौटे तब उनकी स्त्री अबलाई अत्यन्त व्याकुल हो उन्हें खोजने लगीं; अन्तमें इन्द्रायणी तीर पर उनसे भेंट हुई और बहुत कह सुन कर उन्हें घर लौटा लायीं और बोलीं ‘‘आज दिनसे मैं फिर कभी धर्मकार्यमें व्याघात न करूंगी।’’ किन्तु अबलाई इस प्रतिज्ञाको अनेक दिन तक पालन न कर सकीं, क्योंकि तुकारामके तीन कन्या और दो पुत्र थे। तीनों कन्याओंका नाम भागीरथी, काशी और गङ्गा तथा पुत्रका नाम महादेव और विठोबा था। एक तो पुत्र कन्याओंका प्रतिपालन, दूसरा प्रभूत अतिथि-समागम, इससे अबलाई बहुत व्यस्त रहती थीं। इसी कारण अनेक बार वह तुकारामको दो चार बातें कहा करती थीं। इसके सिवा प्रथमा कन्या विवाहके योग्य हो गई थी, जिसके लिये वह सर्वदा वर ढूढ़नेके लिये हठ करती थी। एक दिन तुकाराम पात्रानुसन्धानको गये और स्वजातीय तीन बालकको देखकर उन्हें अपने घर लाया और एक ही दिन तीनों लड़कीका विवाह करा दिया गया।

तुकारामने इस बार अबलाईके हाथसे छुटकारा पाया। इनकी ख्याति धीरे धीरे फैलने लगी। दूर दूर देशोंसे मनुष्य आकर उनका उपदेश ग्रहण करने लगे। तुकाराम शूद्र होकर ब्राह्मणको उपदेश देते थे,

शास्त्रज्ञानरहित होने पर भी शास्त्रका मर्म साधारणके निकट प्रचार करते थे जो किसी किसीको असह्य मालूम पड़ने लगा। मन्वाजीकी नाईं रामेश्वरभट्ट नामक एक ब्राह्मण तुकारामके ऊपर अत्याचार करने लगे। रामेश्वर राजमान्य शास्त्रज्ञ पण्डित कहकर परिचित थे। उन्होंने ग्रामाधिकारीसे समझा कर कहा कि तुकाराम शूद्र होकर श्रुतिका मर्म प्रकाश करते हैं। जब ग्रामाधिकारीको मालूम हुआ कि तुकाराम सब धर्मकर्मको उत्पाटित कर नाम महिमा प्रचार और भक्तिपथ स्थापनमें चेष्टा वार रहे हैं तब उन्होंने तुकारामको निर्वासनका आदेश प्रदान किया। तुकाराम विषम विपद्में पड़ गये। अन्तमें उन्होंने सोचा इस समय रामेश्वरका शरणापन्न होनेसे इस विपद्से उद्धार हो सकता है, यह सोचकर इन्होंने रामेश्वरकी शरण ली। रामेश्वर अत्यन्त गर्वित थे, इसीसे इसका विपरीत फल हुआ। रामेश्वरने कहा, 'तुमने जो समस्त अभङ्गकी रचना की है, उसमें श्रुतिका अर्थ प्रकाशित होता है, इस कारण तुम उस अभङ्गको इन्द्रायणीके जलमें फेंक डालो।'

ब्राह्मणकी आज्ञा अपरिहार्य समझकर तुकारामने अपने हृदयके धन उस अभङ्गको इन्द्रायणीके जलमें फेंक दिया।

तुकाराम इस काम पर बहुत ही व्यथित हुए और अन्न जल परित्याग कर बिठोवाके चरणमें अनवरत ध्यान करने लगे। इस तरहसे तेरह दिन व्यतीत हो गये। अन्तमें बिठोवाने स्वप्न दिया 'मैंने उस अभङ्गकी रक्षा की है, तुम उसे उद्धार करो।' ग्रामके लोगोंने उस कविताको उद्धार कर तुकारामको प्रत्यर्पण किया। तुकारामने इस उपलक्षमें ७ अभङ्गकी रचना की। बाद रामेश्वर भी उनके एक प्रधान शिष्य हो गये थे।

इस समय बाहुबल, ज्ञानबल और भक्तिबलसे महाराष्ट्रदेश अपूर्व गौरवमें गौरवान्वित हो गया था। बाहुबलके अवतारस्वरूप शिवाजी, तथा ज्ञानबलके अवतार रामदास स्वामी थे, इधर भक्तिबलने तुकाराम महाराष्ट्र देशमें शीर्षस्थानीय हो गये थे। तुकाराम, शिवाजी तथा रामदास स्वामी केवल एक समयमें आविर्भूत हो नहीं हुए थे, वरन् एक दूसरेके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध भी था। तुकारामके साथ शिवाजीका साक्षात् और सम्मिलन ये दोनों उनके जीवनका एक एक विशेष उल्लेख योग्य घटना है। शिवाजी तुकारामको पूनामें लानेके लिये सम्भ्रमसूचक छत्र, अश्व और एक कारकुन भेजे; किन्तु तुकाराम सम्पत्तिको विषके समान मानते थे। बहुजनाकीर्ण पूना शहरमें आनेका उनकी तनिक भी इच्छा न हुई। उन्होंने शिवाजीके लिये कई एक अभङ्ग रचना कर कारकुनको बिदा किया; किन्तु शिवाजी तुकारामका अभङ्ग और गुण सुनकर एक दम मोहित हो उठे थे, इसलिये वे स्थिर रह न सके। शिवाजी राजपदको तुच्छ समझ कर तुकारामकी पर्णकुटी पर गये। उन्होंने तुकारामको प्रभूत स्वर्णमुद्रा प्रदान की; परन्तु तुकारामने शिवाजी-प्रदत्त प्रभूत स्वर्ण-राशिकी ओर दृष्टि तक भी न डाली और शिवाजीसे कहा,—"महाराज! हरि-सेवकके निकट मृत्तिका और सुवर्ण-मुद्रामें कुछ भी पार्थक्य नहीं है, इससे केवल मोह और आशा बढ़ती है। यह दृश्य यथार्थमें ही अवलोकनीय था। इधर राजचक्रवर्त्ती शिवाजी कृताञ्जलि पुटसे दण्डायमान थे, उधर प्रभूत स्वर्णमुद्राका ढेर लगा था। शिवाजी उनकी निष्पृहता देख कर बिलकुल स्तम्भित हो गये और अपने राजपदको तुच्छ समझ कर इस संन्यासीकी क्षमताको ही अधिक मानने लगे। उन्होंने राजकार्यमें अवहेला कर तुकारामके कीर्त्तन और धर्मचर्चामें जीवन व्यतीत करनेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया; बाद तुकारामने उन्हें उपदेश देकर पूना-शहरमें भेज दिया। इस तरह तुकारामकी प्रतिपत्ति और शिष्यसंख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी। सब कोई तुकारामको देवावतार और देवानुगृहीत पुरुष समझ कर अर्चना करने लगे। इस समय तुकाराम सर्वदा कहा करते थे, 'प्रभो! अब मुझे वैकुण्ठ ले चलिये।'

फाल्गुनी-दोलपूर्णिमामें यहाँ अनेक प्रकारका कुत्सित आमोद-प्रमोद हुआ करता था, इस बार तुकारामने होलीके इस कुत्सित आमोदको बन्द कर हरिकीर्त्तनका उत्साहके साथ प्रचार किया। इस रात्रिमें उन्होंने २४ अभङ्गकी रचना की, जो "काय ब्रह्मकारण',

अर्थात् "ब्रह्ममें देहसमर्पण" नामसे परिचित है। दूसरे दिन सबेरे उन्होंने कीर्त्तन कर शिष्योंको अनेक प्रकारके उपदेश देते हुए कहा 'मैं वैकुण्ठ जाऊंगा' बाद अपनी स्त्री अवलाईको भी यह संवाद भेजा कि 'तुम्हें वैकुण्ठ जाना होगा; आओ, हम दोनों मिल कर एक साथ वैकुण्ठको चलें।' अवलाईने सोचा, कि प्रभु सायद कोई तीर्थ जा रहे हैं; यह सोच कर उद्वेगको प्रकाश नहीं करके खबर दी कि 'एक तो मैं गर्भवती हूँ दूसरे इस संसारको फेंक कर क्यों कर जाऊं?', इस तरह तुकाराम सभीसे बिदा ले कर नाम-घोषणा करते हुए बाहर निकले। तुकारामने सत्य ही जो महाप्रस्थान किया वह किसीको भी विश्वास न हुआ। १५७२ ई०की फाल्गुनी कृष्णा द्वितीया तिथिमें तुकारामने महाप्रस्थान किया। उस दिनसे तुकाराम फिर कभी नहीं देखे गये। तुकाराम अन्तर्द्धान हो गये हैं, यह सम्बाद चारों ओर बिजलीकी नाईं फैल गया। सब कोई हाहाकार करने लगे। उनके चरित-लेखकोंने ऐसा निर्देश किया है कि वे स्व-शरीरसे स्वर्गको चले गये। तुकारामने जाते समय अपनी स्त्री अवलाईको कहा था कि तुम्हारे गर्भसे इस बार जो सन्तान उत्पन्न होगी उसका नाम नारायण रखना और यह सन्तान विशेष भक्तिवान् होगी। तुकारामकी यह भविष्यवाणी सफल हुई थी। यथार्थमें नारायण विशेष हरिभक्तिपरायण निकले। कुछ दिनके बाद शिवाजी हरि-भक्त शिशुको देखनेके लिए देहुत ग्राम आये थे और इन्होंने इस परिवारके भरण-पोषणके लिए कोई एक ग्राम जागीर दी थी। आज भी उनके वंशीयगण उस जागीरका भोग कर रहे हैं।

तुकारामने जिन सब अभङ्गोंकी रचना की थी वे सब प्रायः निम्नलिखित भावोंमें लिखे गये हैं—

१। सुख, दुःख, सम्पद्, विपद्, सब अवस्थामें भगवान्की भक्ति करनी चाहिये।

२। भ्राता और शरणमें आये हुए व्यक्तिको अभयदान देना चाहिए।

३। ईश्वर केवल भक्ति-लभ्य हैं। बाह्यानुष्ठानसे वे प्राप्त नहीं किए जा सकते।

४। जीवके प्रति अनुकम्पा, चरित्रकी निर्मलता, आत्मानुभूति ये सब धर्मके लक्षण हैं। शरीरमें भस्म लगाना, यह सिर्फ धर्मका निकृष्ट अंश है।

५। द्विज, शूद्र, स्त्री, पुरुष प्रभृति सबके सब भगवान्की कृपाके अधिकारी हैं।

६। भगवान्के साथ जीवोंका सम्बन्ध अत्यन्त निकट तथा अत्यन्त मधुर है। वे हम लोगोंसे दूर नहीं हैं। व्याकुल हृदयसे पुकारने पर हमें दर्शन देते हैं।

ये ही तुकारामके प्रचारित धर्मके मूलमन्त्र हैं, तथा इन्हींसे उन्होंने महाराष्ट्रदेशको आबालवृद्धवनिताको मोहित किया था।

तुकोजीराव होलकर—इन्दौरके एक अधिपति। मल्हाररावके पुत्र खण्डेरावके पिताके जीवन कालमें ही (१७५४ ई०) कुम्भके दुर्ग घेरनेके समय मारे गये थे। खण्डेरावका विवाह भारतप्रसिद्ध अहल्यावाईसे हुआ था। उसके गर्भसे मल्लिरावने जन्म ग्रहण किया। मल्हाररावके मरने पर मल्लिराव सिंहासन पर अभिषिक्त हुआ। किन्तु उसने अधिक दिन राज्य नहीं किया। अभिषेकके ८ मास बाद ही वे कालग्रासमें पतित हुए।

इस समय मलहाररावकी ओर कोई उत्तराधिकारी न थे। अहल्यावाईकी एक कन्या थी सही किन्तु एक भिन्न श्रेणीके सामन्तके साथ उसका विवाह हुआ था, इसलिए हिन्दूधर्मशास्त्रानुसार वह उत्तराधिकारी न हो सकी। इसी समय अहल्यावाईने अपने हाथमें राज्य-शासन दण्ड ग्रहण किया। किन्तु सैन्यपरिचालना करना स्त्रियोंके लिए संगत नहीं है, यह सोच कर उसने स्वजातीय तुकोजी होलकरको १७६७ ई०में सेनापतित्वमें नियुक्त किया। इन्दौरके इतिहासमें तुकोजी होलकरका अभिषेक इसी समयसे गिना जाता है।

मलहारराव होलकरके साथ तुकोजीका कोई निकट सम्पर्क न था। वे मलहाररावके अधीन काम करते थे। उनकी वीरता, प्रभु-भक्ति और साहससे सन्तुष्ट हो कर मलहाररावने उन्हें बहुत सी सेनाओंके नायकपद पर नियुक्त किया। बुद्धिमति अहल्यावाईने तुकोजीकी दक्षता और विचक्षणतासे सन्तुष्ट हो कर उन्हें राज्यका प्रधान बनाया। अहल्यावाईकी अनुमतिके अनुसार

तुकोजी अपने उच्चपदके निदर्शनस्वरूप खिलात पानेके लिए महाराष्ट्र-राजधानीकी ओर अग्रसर हुए। पूनामें तुकोजीने यथेष्ट सम्मान लाभ किया।

उनके समयमें गङ्गाधरने प्रधान मन्त्रित्व प्राप्त किया। होलकर राज्यमें इनका भी यथेष्ट आदर था। अहल्यावाईने सेनापतित्वके सिवा शीघ्र ही तुकोजीको 'होलकर' अथवा राज-सम्भ्रम-सूचक उपाधि प्रदान की। अहल्यावाईने कौशलक्रमसे यह सम्मान प्रदान किया था, जिससे कि कोई भी उनके साथ असन्तोष प्रकाश कर न सके। तुकोजीने निर्विवादसे २० वर्ष तक यह उच्च-सम्मान भोग किया था। इतने दिनोंमें अहल्यावाईके गुणसे एक दिनके लिए भी राज्यमें कोई विघ्न न हुआ।

अहल्यावाईने जो उपकार किया था, उसे तुकोजी एक दिनके लिए भी विस्मृत न हुए। अहल्यावाईसे अधिक उमर होने पर भी वे उन्हें मातृसम्बोधन करते थे; किन्तु अहल्यावाईके अभिप्रायसे उनकी मुद्रामें 'मल्हारराव होलकरके पुत्र तुकोजी' अङ्कित थी।

तुकोजीने होलकर उपाधि ग्रहण करनेके बाद बारह वर्ष तक ससैन्य दक्षिण देशमें वास किया। इस समय सातपुरा गिरिमालाका दक्षिणांश उनके अधीन तथा उत्तरांश अहल्यावाईके शासनाधीन था। जब वे हिन्दूस्थानमें थे, तब वे राजपूताने और बुन्देलखण्डके अन्तर्गत देशोंसे स्वयं कर वसूल करते थे। वे सर्वदा दूर देशमें रह कर अपनी इच्छानुसार कार्य करते थे सही, किन्तु अहल्यावाईके निकट कार्यविवरणी नियमित भेजा करते तथा उनके मन्त्रणानुसार कार्य करते थे।

सचमुच अहल्यावाई जितने दिन बची थीं, उतने दिन राजपद पा कर भी तुकोजी केवल प्रधान सेनापति और अपने निकटवर्ती स्थानके राजस्व-आदायकारी कर्मचारीकी नाईं काम करते थे। ऐसे कृतज्ञ और ऐसी उच्च-प्रकृतिके मनुष्य होलकरराज्यमें कभी नहीं देखे गये।

वे जैसे प्रभुभक्त थे वैसे ही मित्रप्रिय भी थे। पानीपथकी लड़ाईके बाद मुसलमान-राज्य ध्वंस करके प्रतिशोध लेनेके लिए महाराष्ट्र-वीरोंकी इच्छा पूरी हुई। उस समय तुकोजी पूना जा कर पेशवाके निकट रहते थे। पेशवाके आदेशसे रामचन्द्र गणेशके साथ वे मुसलमान समरमें भेजे गये। इस समय नाजिब्-उद्दौला एक प्रधान मुसलमान सर्दार थे। पहले महाराष्ट्रोंने १७७० ई०में उन्हींके अधिकृत नाजिबाबाददुर्ग पर आक्रमण किया। नाजिब खांके साथ मल्हारराव होलकरकी मित्रता थी। तुकोजी उसी सूत्रसे उनके साथ कथा वार्त्ता करने लगे; किन्तु इस पर माधोजी सिन्धिया अत्यन्त चीढ़ कर बोले, 'हम लोग प्रतिशोध लेनेके लिए आ रहे हैं न कि सन्धि स्थापन करनेके लिए। मैं अपने भाई और भतीजेके शोणितका प्रतिशोध क्यों न लूं? तुकोजी मुसलमान उमराहके साथ भ्रातृभाव स्थापन कर रहे हैं। पूनामें पेशवाको सम्वाद देना चाहिए। हम लोग उनके केवल आदेशवाही हैं; उनके आदेशानुसार ही काम करेंगे।" किन्तु तुकोजीने सिन्धियाका प्रस्ताव ग्राह्य नहीं किया। जिनको उन्होंने एक बार वचन दे दिया है, उनके विरुद्ध किसी प्रकारकी कार्रवाई करनेमें वे सहमत न हुए। उन्होंने नाजिब्‌उद्दौलाके साथ पूर्व-मित्रताकी रक्षा की। इससे महाराष्ट्रोंकी अनेक सुविधा हुई। वे जाट और राजपूत राज्यमें बहुत लूटमार और कर वसूल करने लगे।

नाजिब्‌उद्दौला तुकोजीकी उदार-प्रकृतिसे अत्यन्त आकृष्ट हुए थे। यहां तक कि वे मृत्युके पहले अपने प्रियपुत्र जबिता खांको तुकोजीके हाथ समर्पण कर गये थे। वे जानते थे कि उनकी मृत्युके बाद महाराष्ट्रोंके करालकवलसे तुकोजीके सिवा दूसरा कोई भी उनके परिवारवर्गोंकी रक्षा नहीं कर सकते।

यथार्थमें उनकी मृत्युके बाद महाराष्ट्रोंने हिन्दुस्थानका अधिकांश अपने दखलमें कर लिया। इस समय सिन्धिया हिन्दुस्थानमें सबसे बढ़े-चढ़े थे। तुकोजी सहयोगीकी उन्नतिसे सन्तुष्ट थे सही, किन्तु उनके अधीन सामन्तकी नाईं कार्य करनेमें प्रस्तुत नहीं थे: इसलिये वे लौट कर मालवको चले आये।

कुछ दिनके बाद पेशवा मधुरावकी मृत्यु तथा राघव कर्तृक पेशवाके कनिष्ठ भाई नारायणरावकी मृत्यु होने पर महाराष्ट्र-सामन्तगण दाक्षिणात्यमें आ पहुंचे। हत्याकारीके विरुद्ध इस समय 'बार भाई' नामक महाराष्ट्र-सर्दारोंने एक दल संगठित किया था। माधोजी

सिन्धिया और तुकोजीने इस दलमें योग दिया था । इसीसे ब्रिटिशगवर्मेण्टके साथ तुकोजीको युद्ध करना पड़ा था ।

नारायणरावकी मृत्युके बाद मधुराव नामक उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ । सर्दारोंने उसी मधुरावको पेशवाके पद पर नियुक्त किया, किन्तु प्रकृत-क्षमता बालाजी जनार्दनके हाथ रही । इतिहासमें ये नानाफड़नवीसके नामसे विख्यात हैं । राघवके विरुद्ध जो सैन्यदल संगठित हुआ था, उसमें जनार्दनने यथेष्ट कार्य किया था । १७७६ ई०में कर्नल आपटनकी मध्यस्थतासे दोनों दलमें सन्धि हो गई । किन्तु वह सन्धि कायम न रही । अन्तमें सालबाई नामक स्थानमें दूसरी बार सन्धि स्थापन की गई इससे युद्ध कुछ कालके लिए शान्त रहा ।

पूना गवर्मेण्टने निजामकी सहायतासे टिपु सुलतानके विरुद्ध जो युद्ध किया था, उसमें तुकोजीने प्रधान कार्यका भार लिया था । दूसरे वर्ष उन्होंने महेश्वर पहुँच कर अहल्याबाईके साथ मुलाकात की और इसीसे सब गड़बड़ी मिट गई ।

प्रथम बाजीरावके औरस और एक मुसलमान-रमणीके गर्भसे अली बहादुर नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । बुन्देलखण्डके अधिकांशमें अली बहादुरका अधिकार तथा समस्त भारतवर्षमें माधोजी सिन्धियाका अधिकार फैलानेके लिये महाराष्ट्रोंने यथेष्ट चेष्टा की, इस विषयमें योग देनेके लिये तुकोजी तैयार हुए, किन्तु तुकोजी, माधोजी सिन्धियाके प्रति सहायता करनेमें सहमत न हुए । इसी सूत्रसे लड़ाई छिड़ी, किन्तु इसमें तुकोजीने कोई उपकार न पाया । अन्तमें हिन्दुस्थानके राज्यमें होलकर और सिन्धियाका बराबर बराबर अंश स्वीकृत हुआ । राणजी सिन्धिया और मलहारराव होलकरके देन-लेनमें जो गड़बड़ी थी वह इस समय मिट गई । ऋण परिशोधके लिये कई एक जिला तुकोजीको देने पड़े ; किन्तु माधोजीके प्राबल्यसे तुकोजीने कोई विशेष लाभ प्राप्त न किया । माधोजी इस समय पूनाके दरबारमें अपनी प्रभुता स्थापन करनेके लिये जब उपस्थित हुए तब तुकोजी सर्दारोंके साथ विवादमें लिप्त हो गये । १७९२ ई०में सिन्धियाके प्रतिनिधि लुक्कदादा-लाखिरी गिहड़ सङ्कटमें तुकोजीके डि-वयन नामक फरासीसी सेनापतिके पदातिक दलसे पराजित हुए । जब सिन्धियाकी सेना भागने लगी, तब तुकोजीकी सेनाओंने इन्दौर तक उनका पीछा किया ; किन्तु मालवके मध्य सिन्धियाकी कोई क्षति न हुई । इस युद्धमें सिन्धिया और होलकरका कुछ भी स्वार्थ न था । दोनों दलके सर्दारोंकी स्पर्द्धा प्रकाश करना ही उद्देश्य था ।

तुकोजी मालवमें कई एक मास रहे । इस समय बहुत दिनोंसे सङ्कल्पित निजामअली खाँके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये पूनामें सर्दारगण एकत्र हो रहे थे, उन्होंने तुकोजीको बुलाया । १७९५ ई०में यह लड़ाई छिड़ी । इस समय तुकोजीकी उम्र ७० वर्षकी थी । माधोजी सिन्धियाके मरने पर, ये सबसे प्राचीन सर्दार कह कर सम्मानित होते थे, किन्तु दौलतराव सिन्धियाकी क्षमता ही सबसे अधिक थी । निजामको पराजित करनेके लिये जितनी लड़ाइयां हुईं, उनमें होलकरने प्रकृत पक्षमें सिन्धियाकी केवल परामर्शदानमें सहायता की, विशेष कार्यमें कुछ भी नहीं । इस युद्धके समाप्त होनेके पहले ही तुकोजीकी मृत्यु हुई । ये वीर पुरुष, समर-कुशल और कृतज्ञ थे । उन्नतिके पथ पर अग्रसर होते हुए मृत्युपर्यन्त अहल्याबाईके निकट जैसे बाध्य, वशीभूत और कृतज्ञ थे उसके लिये सौ मुखसे उनकी प्रशंसा करनी चाहिये ।

तुक्कड़ (हिं० पु०) वह जो भद्दी कविता बनाता हो ।

तुक्कल (फा० स्त्री०) मोटी डोर पर उड़ाई जानेकी एक प्रकारकी बड़ी पतङ्ग ।

तुक्का (फा० पु०) १ बिना गांसीका तीर । २ क्षुद्रपर्वत, छोटी पहाड़ी, टीला । ३ सीधी खड़ी वस्तु ।

तुक्रेश्वरी पहाड़—आसामके मध्य ग्वालपाड़ा जिलेका एक पहाड़ । इसके शिखर पर बिजनीके किसी एक राजासे बना हुआ एक सुन्दर प्राचीन मन्दिर है, जिसमें दुर्गा-देवीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है । मन्दिर अत्यन्त सुदृश्य कारुकार्यविशिष्ट है । इसकी गठन प्रणालीमें यथेष्ट कौशल देखे जाते हैं । यहां भिन्न भिन्न स्थानके संन्यासी और यात्री आते हैं । पर्वत केवल संन्यासियोंका वास-स्थान है । संन्यासियोंमेंसे एक राजाकी और संन्यासिनियोंमेंसे एक रानीकी उपाधि ग्रहण करती हैं । ये ही

यहांके सामाजिक विषयोंके सर्वमय कर्त्ता माने जाते हैं।

तुख (सं० पु०) १ छिलका, भुसी। २ अंडेके ऊपरका छिलका।

तुखार (सं० पु०) विन्ध्यपर्वतस्थ जातिभेद। (हरिवं० ५ अ०)

महर्षियोंने मोहान्ध और मदगर्वित वेणको निग्रह करके मन्थन किया था, उसी समय इस जातिकी उत्पत्ति हुई थी। ये विन्ध्या पहाड़ पर रहते हैं। ये असभ्य तथा अधर्मरत हैं और तुख्वर या तुखार नामसे प्रसिद्ध हैं।

२ एक देशका प्राचीन नाम। इसका उल्लेख अथर्ववेद परिशिष्ट रामायण, महाभारत इत्यादिमें आया है। अधिकांश ग्रन्थोंके मतसे यह देश हिमालयके उत्तर-पश्चिममें बतलाया गया है। वर्तमान नाम तुखारिस्तान है। यहाँके घोड़े प्राचीनकालमें बहुत अच्छे माने जाते थे।

तुषार देखो।

तुगलक (तुघलक)---सुलतान गयास्‌उद्दीन बलवनके एक क्रीतदास। इनके पुत्रने (१४२१ ई०में) खुशरूशाहको मार कर गयास्‌उद्दीन तुगलक नाम ग्रहण-पूर्वक दिल्लीके सिंहासन पर बैठे थे। इस वंशके राजा ही तुगलकवंशके नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध हुए हैं। तुगलकवंशमें जो राजा हुए हैं, उनकी एक वंशावली दी जाती है।

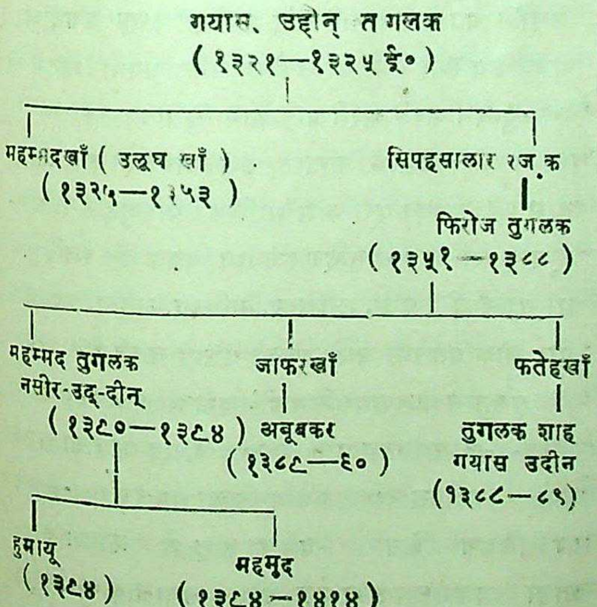
गयास्‌उद्दीन् तुगलक
(१३२१—१३२५ ई०)
महम्मदखाँ (उलुघ खाँ)
(१३२५—१३५३)
सिपहसालार रजक
फिरोज तुगलक
(१३५१—१३८८)
महम्मद तुगलक
नसीर-उद्-दीन्
(१३९०—१३९४)
जाफरखाँ
अबूबकर
(१३८९—९०)
फतेहखाँ
तुगलक शाह
गयास उदीन
(१३८८—८९)
हुमायू
(१३९४)
महमुद
(१३९४—१४१४)
(तैमूर द्वारा दिल्ली-अधिकार)

तुगा (सं० स्त्री०) तुज वाहुलकात् घ क्विच वंशलोचन। यह क्षय-काश, श्वास और काम-विनाशक है।

तुगाक्षीरी (सं० स्त्री०) तुगा सा एव क्षीरी। वंशलोचन।

तुग्र (सं० क्ली०) तुज-रक् न्यङ्क्वादित्वात् जस्य गः। वैदिककालके पनिवंशीय एक राजर्षि। ये अश्विनीकुमारोंके उपासक थे। इनके पुत्रका नाम भुज्यु था। इन्होंने द्वीपान्तर-वासी शत्रुओंको परास्त करनेके लिये अपने पुत्रको जहाज पर चढ़ा कर समुद्र पथमें भेजा था। भुज्यु देखो। मार्गमें जब एक बड़ा तूफान आया और वायु नौकाको उलटाने लगी, तब भुज्युने अश्विनीकुमारोंकी स्तुति की थी। अश्विनीकुमारोंने संतुष्ट हो कर भुज्युको सेना-सहित अपनी नौका पर ले कर तीन दिनमें उसके पिताके पास पहुंचा दिया था। (ऋक् १।११६।३)

तुग्र (सं० स्त्री०) १ जल, पानी। २ तुग्रके पुत्र भुज्यु।

तुग्रा (सं० स्त्री०) तुग्र-टाप्। जल, पानी।

तुग्रावृध् (सं० त्रि०) तुग्रा-वृध-क्विप्। उदकवर्द्धयिता, जलको बढ़ानेवाला।

तुग्वन् (सं० त्रि०) तुज-क्वनिप् न्यङ्क्वादित्वात् जस्य गत्वं। हिंसक, हिंसा करनेवाला।

तुघरिल खाँ—ये दिल्लीके सुलतान अल्‌तमसके एक क्रीतदास थे। इनका पूरा नाम मालिक इखतियार उद्दीन उजबक-इ-तुघरिल खाँ था। उनके समयमें ये बादशाही पाकशालाके सहकारी अध्यक्ष (नाहय चाशनीब गीर) थे। सुलतान रुक्‌नउद्दीन फिरोज शाहके समयमें इन्होंने दरबारमें मुखपात्र (अमीर-इ-मजलिस)-का पद पाया था। इसके बाद हस्तिशालाके अध्यक्ष हुए।

सम्राट्‌के क्रीतदास जब विद्रोही हो उठे थे, तब तुघरिलखाँने भी विद्रोहमें योग दिया था, किन्तु सुलतान रजियाके राजत्व-कालमें ये अश्वशालाध्यक्षके पद पर नियुक्त हुए। बहराम शाहके राजत्वमें (६३८ हिजरीमें) तुर्की मालिक और अमीरोंने जब दिल्ली पर आक्रमण किया, तब मालिक तुघरिल खाँ और मालिक कराकस खाँ विपक्षदलमें रह कर भी सम्राट्‌के दलमें मिल गये और विपक्षियोंसे लड़ने लगे, किन्तु गुप्त शत्रुके सन्देहमें कारागार भेजे गये। अन्तमें दिल्लीके उद्धार होने पर उनकी मुक्ति हुई। अलाउद्दीन्‌के राजत्वकालमें इन्होंने

नबर-हिन्द और लोहनका शासनभार पाया, इसके बाद ये कन्नौजके शासनकर्त्ता हुए। इस स्थानका अधिकार पा कर ये विद्रोही हो उठे, किन्तु मालिक कुतबउद्दीन् हुसेनसे पराजित हो कर दिल्लीको लौट आये। इसके कुछ दिनोंके बाद इन्होंने अयोध्या तथा लक्ष्मणावतीका शासनभार ग्रहण किया। इनके साथ जाजनगरके अधिपति (उत्कलके राजा)-को लड़ाई छिड़ी। जाजनगराधिपतिके मन्त्री सेनापति हो कर आये थे, किन्तु तुघरिल दोनों लड़ाईमें पराजित हो कर भाग चले। तीसरी लड़ाईमें मालिक तुघरिलखाँने दिल्लीसे सैन्यसाहाय्यकी प्रार्थना की, बाद लक्ष्मणावतीसे एक वृहत् सैन्यदल ले कर जाजनगराधिपतिके अधिकारभुक्त अमर्दन देश पर हठात् आक्रमण किया।

यहांके राजा अपने परिवारवर्गको छोड़ कर भाग गये। धनरत्न हाथी घोड़े सब तुघरिल खाँके हाथ लग गये।

तुघरिल राजधानी लौट कर रक्त, श्वेत और कृष्ण वर्णके चन्द्रातप व्यवहार करने लगे; बाद अयोध्या पर चढ़ाई करनेके लिये अग्रसर हुए। अयोध्या नगरमें प्रवेश र सब जगह इन्होंने अपने नाम पर खुतवा * पाठ करनेका आदेश किया तथा अपनेको सुलतान मुघिसउद्दीन् नामसे प्रचार किया। एक पक्षके बाद सम्राट्के अधीन् एक अमीरने हठात् आ कर संवाद दिया कि सम्राट्की सैन्य बहुत नजदीक पहुँच गई है। यह सुनते ही तुघरिल खाँने नौका पर चढ़ कर लक्ष्मणावतीकी ओर प्रस्थान किया।

इस विद्रोहाचरणसे मुसलमान और थोड़े हिन्दू भी उन पर विरक्त हो गये थे। जो कुछ हो, उन्होंने लक्ष्मणावती लौट बाघमती नदीको पार कर कामरूप पर आक्रमण किया। कामरूपाधिपति पराजित हुए तुघरिलने कामरूप नगर और धनरत्न अधिकार किया। कामरूपाधिपतिने कर दे कर राज्य पानेकी आशासे एक विश्वासी मनुष्यको उनके पास भेजा, किन्तु तुघरिल इस पर सहमत न हुए। तब कामरूप-पतिने अपनी सैन्य और प्रजाओंको धन दे कर कहा कि जितना मूल्य लगे उतना दे कर कामरूपका सब अनाज खरीद लाओ। प्रजाओंने उनके कथनानुसार वैसा ही किया। तुघरिलने देशकी उर्वरता पर विश्वास कर असम्भव दरमें भर अनाज बेंच डाला। इसके बाद काटनेके समय कामरूपपतिने चारों ओरके जलपथ या नाला खोल दिया जिससे कि प्रस्तुत किया हुआ अनाज बह गया। मुसलमानोंने निराहार मरनेके डरसे लक्ष्मणावतीको भाग जानेका विचार किया। देश जलसे बह रहा है, रास्ता कहीं न मिला, किन्तु पथदर्शककी सहायतासे सब कोई पहाड़ी रास्तासे भाग निकले। अन्तमें एक सङ्कीर्ण रास्तेमें आकर हठात् हिन्दुओंने आक्रमण किया; इस युद्धमें शराघातसे तुघरिल खाँ हाथीकी पीठ परसे नीचे गिर पड़े और हिन्दुओंके हाथसे बन्दी हुए। धातुर सैनिक भी बहुतसे मरे और बहुतसे बन्दी हुए। तुघरिलकी सन्तानादि तथा पत्नीवर्ग भी बन्दी हुआ था।

तुघरिल कामरूपपतिके सामने लाये गये। यहां उन्होंने अपनी सन्तानसे भेंट करनेकी इच्छा प्रकट की। पुत्रके उपस्थित होने पर उन्होंने उसे अपनी गोदमें ले मुख-चुम्बन करते करते प्राणत्याग किया।

तुघान खाँ—दिल्लीके सम्राट् अल्तमसका एक क्रीतदास। इनका पूरा नाम मालिक आइजुद्दीन-तुघ्रिल-तुघान् खाँ था। ये सुन्दर रूपवान् पुरुष थे। इनमें गुण भी यथेष्ट थे। दया, दाक्षिण्य, महिमा, भद्रता, उच्चाशय और लोकप्रियतासे सभी इनकी बड़ाई करते थे।

सुलतान अल्तमसने इन्हें खरीद कर सबसे पहले साकि-इ-खास (पानपात्र-वाहक)-के पद पर तथा उसके बाद सरदीवत-दार (प्रधान लेख्याधार-रक्षक)-के पद पर नियुक्त किया। इसके बाद ये क्रमशः शाही पाकशालाके अध्यक्ष और अश्वशालाध्यक्ष नियुक्त हुए। इसके बाद ६३० हिजरीमें ये बदाऊं प्रदेशके शासनकर्त्ता बनाये गये। इस स्थान पर सुख्याति लाभ करनेके बाद इन पर विहारका शासनभार सौंपा

---

* कुरानका कोई विशेष अंश मंगलविधानके लिये पाठ किया जाता है जो हम लोगोंके चण्डीपाठकी नांई है। किसी व्यक्तिविशेषके नाम पर खुतवा पाठके अर्थमें हम लोगोंके 'श्र-विष्णु प्रीतिकाम" वचनकी नांई भगवान्के नामकी जगह उस व्यक्तिका नामोल्लेख किया जाता है।

गया। ६३१ हिजरीमें लक्ष्मणावतीके शासनकर्त्ता मालिक युवनतातकी मृत्यु होने पर तुवान खाँ ही शासनकर्त्ता हुए। जब सुलतान अल्‌तमसकी मृत्यु हुई तब तुघान खाँ और आइवक नामक राढ़प्रदेशके शासनकर्त्तामें विवाद हुआ। मिनहाजने लिखा है, कि इस समय लक्ष्मणावती दो भागोंमें विभक्त थी—एक भाग लखनऊ या राढ़ और दूसरा भाग वसनकोट वा वरेन्द्र था। तुवान खाँ वरेन्द्रभूमके और आइवक राढ़के शासनकर्त्ता थे। लक्ष्मणावती नगरीके अन्तर्गत वसनकोट शहरके अधिकारके लिये दोनोंमें लड़ाई छिड़ी। आइवक साहसी पुरुष थे, इन्हें सब कोई आओर खाँ कहते थे। युद्धमें तुघान खाँने आओर खाँके मर्मस्थानमें शराघात कर मार डाला। आइवकके मरने पर दोनों प्रदेश तुघानके अधीन आ गये।

सुलताना रजियाके राजत्वकालमें तुघान खाँने दिल्लीके दरबारमें अनेक उपयुक्त व्यक्ति और उपहार प्रेरण किया। सुलतानाने भी चन्द्रताप, राजदण्ड, पञ्जा, नहबत इत्यादि प्रदान करके तुघानको सम्मानित किया। इसके बाद तुघानने त्रिहुत पर आक्रमण किया और बहुत धनरत्न लूट कर घर लाये।

सुलतान मुइज-उद्दीन् बहराम शाहके राजत्वकालमें भी तुघान खाँ सम्राट्‌के साथ सद्भाव रखते थे। सुलतान अलाउद्दी मसायूद शाहके राजत्वके पहले तुघानके हितैषी विश्वासी मन्त्री बहाउद्दीन् हिलाल सुरियानीने अयोध्या, कोरा-माणिकपुर और उर्णादेश अधिकारमें लानेके लिये प्रतिज्ञा की। ६४० हिजरीमें तुघान खाँ कोरा-माणिकपुरमें उपस्थित हुए, बाद अयोध्याकी सीमामें कुछ दिन रह कर लक्ष्मणावतीको लौट आये।

६४१ हिजरीमें जाजनगर (उत्कल)के राजाने लक्ष्मणावती राज्यमें उत्पात आरम्भ किया। तुघान खाँने जाजनगर-सैन्यके उत्पात-निवारणके लिये उन्हें कतासीन्‌के निकट दो नहरोंके पार मार भगाया। वे एक बेंतके जङ्गलमें छिप रहे। अन्तमें जब मुसलमान सैनिक खाने पीनेके लिये शिविरको आये, तब हिन्दू-सैन्यने पीछेसे आक्रमण कर बहुतसे मुसलमानोंको विनष्ट कर डाला। तुघानखाँ विफल मनोरथ हो राजधानी लौट आये। राजधानीमें आ कर उन्होंने अपने मन्त्रीको दिल्ली भेजा। सर्फ़-उल-मुल्कने दिल्ली-दरबारमें आ कर सम्राट् अलाउद्दीन मसायूद शाहसे साहाय्यकी प्रार्थना की। सम्राट्‌ने काजी जलालउद्दीन कनानीको खिलात्, चन्द्रातप, ताज और राजचिह्न दे कर प्रेरण किया तथा कमरउद्दीन्‌के अधीन हिन्दुस्थानी सैन्य दलको एवं गङ्गा नदीके पूर्वीय स्थानके सैन्यदलको भेजा। अयोध्याके शासनकर्त्ता तमरखाँने भी किनारको ससैन्य लक्ष्मणावतीके सहायतार्थ प्रेरण किया।

६४२ हिजरीमें जाजनगराधिपति कतासीन्‌के युद्धका प्रतिशोध लेनेके लिये, लक्ष्मणावती पर आक्रमणके उद्देश्यसे बहुसंख्यक अश्वारोही और पदाति सैन्य लेकर वहां जा पहुंचे। राढ़में इस समय तुघानके अधीन फखर-उल्-मुल्क करीम-उद्दीन् लावरी शासनकर्त्ता थे। जाजनगरके सेनापतिने पहले राढ़ देश पर ही आक्रमण किया। युद्धमें करीम-उद्दीन्‌की बहुतसी सेना मारी गई। अन्तमें करीम दल-सहित लक्ष्मणावतीको भाग गये। (नाटेश्वर शब्द देखो।) जाजनगरके सेनापतिने उनका पीछा किया, किन्तु जब उन्होंने सुना कि दिल्लीसे सेना आ रही है तब वे कूच करनेको वाध्य हुए। दिल्लीसे प्रेरित सैन्यदलने उपस्थित हो कर देखा कि विपक्ष नहीं है और न युद्ध ही हो रहा है। अन्तमें तमर खाँके साथ तुघान खाँका युद्ध छिड़ा। किन्तु कई एक घंटा युद्ध करनेके बाद एक व्यक्तिकी मध्यस्थतासे लड़ाई बन्द हो गई। नगरके द्वार पर ही तुघान खाँका शिविर था, वे ससैन्य शिविरमें जा अस्त्रादि त्याग कर विश्रामका उद्योग करने लगे; किन्तु तमर खाँके शिविरसे कुछ दूरहीमें रह कर उन्होंने अस्त्रादि त्यागके छलसे शिविरमें जा अवशिष्ट सैन्योंको परास्त किया और हठात् आ कर तुघान खाँ पर आक्रमण किया। तुघान खाँने घोड़े पर सवार हो नगरमें प्रवेश कर अपने प्राण बचाये। तुघानके अनुरोधसे मिनहाज-उद्दीन् सिराजीने दोनोंमें सन्धिका प्रस्ताव किया। तमरखाँने प्रस्ताव किया कि तुघान खाँ यदि उन्हें लक्ष्मणावती राज्य छोड़ कर दिल्ली चले जांय, तो सन्धि हो सकती है। तुघान खाँ इस अजब प्रस्तावसे समझ गये कि यह तमरखां-

का प्रस्ताव नहीं है, दिल्लीके सम्राट्‌ने ही उन्हें ऐसा करनेका उपदेश दिया है, नहीं तो ऐसा असङ्गत प्रस्ताव तमर खाँ कभी करनेका साहस नहीं करते। जो कुछ हो, तुघान खाँ राजभक्तिके बलसे वैसा ही कर अपना धनरत्न, हाथी, घोड़ा और अनुचरोंको साथ ले ६४२ हिजरीमें दिल्लीको गये। लक्ष्मणावती नगर तमरखाँके अधीन हो गया। तुघान खाँने दिल्लीमें जा कर महा सम्मान प्राप्त किया और उनकी राजभक्ति तथा क्षतिपूर्त्ति स्वरूप उन्हें तमर खाँसे परित्यक्त अयोध्याका शासन-कर्त्तृत्व दिया गया। इसके कई एक महीने बाद सम्राट् नसीरुद्दीन् महम्मद शाहके सिंहासन पर आरूढ़ होने पर तुघान खाँने अयोध्या जा कर वहांका शासन-भार ग्रहण किया। यहां पर उन्होंने यथेष्ट सुख-शान्ति पाई थी, किन्तु कुछ कालके बाद ही उनकी मृत्यु हो गई। आश्चर्यका विषय यह था कि जिस रातमें अयोध्यामें तुघान खाँकी मृत्यु हुई, ठीक उसी रातको बङ्गालमें तमर खाँकी भी जीवनलीला शेष हुई।

तुङ्ग—(सं० पु०) तुज हिंसायां यञ, न्यंक्वादित्वात् कुत्वं। १ पुन्नागवृक्ष। २ पर्वत, पहाड़। ३ नारिकेल। ४ बुधग्रह। ५ गण्डक। (त्रि०) ६ उच्च, ऊँचा। (क्लो०) ६ ग्रहविशेषका राशिभेद, ग्रहोंकी उच्चराशि। ज्योतिषमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—यवनाचार्य्यके मतसे मेषादि सप्त राशि, सूर्यादि सप्तग्रहोंके दशमादि अंश यथाक्रमसे उच्च और परमोच्च हैं। मेष राशिका दशांश रविसे उच्च तथा दशांशका शेष अंश ही परमोच्च है। वृष राशिके तीन अंश चन्द्रसे उच्च और तृतीयांशका शेष अंश परमोच्च है। मकर राशिका अट्ठाईसवाँ अंश मङ्गलसे उच्च तथा अट्ठाईसवेंका पूर्णांश ही परमोच्च है। कन्याराशिका पन्द्रहवाँ अंश बुधसे उच्च और पन्द्रहवांका पूर्णांश ही परमोच्च है। कर्कट राशिका पांचवां अंश उच्च और पांचवेंका शेष अंश ही परमोच्च है। मीन राशिका सत्ताईसवाँ अंश शुक्रसे उच्च और सत्ताइसवेंका शेष अंश ही परमोच्च है। तुला राशिका बीसवाँ अंश शनिसे उच्च और बीसवेंका शेष अंश ही परमोच्च है। इन मेषादि सप्त राशियोंके सातवें घरमें रवि प्रभृति सप्तग्रहोंके दशमादि अंशके यथाक्रमसे नीचे और दशांशका शेष अंश और भी नीचे है। इस तरह चन्द्र, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि इनके वृश्चिक, कर्कट, मीन, मकर, कन्या और मेषराशिमें पूर्वोक्त उच्चांशके अनुसार नीच परमनीच विचार करना पड़ेगा। इन सब अंशोंका तीसवां अंश स्फुटगणनामें सम्हालना चाहिये।

मेषराशि रविका उच्च ग्रह, वृषराशि चन्द्रका, मकर मङ्गलका, कन्या बुधका, कर्कट वृहस्पतिका, मीन शुक्रका और तुला शनिका उच्च ग्रह है। सब ग्रह उच्च गृहस्थितसे यदि पूर्वोक्त उच्चांशमें रहे, तो ग्रहोंको सम्पूर्ण बली समझना चाहिये। इन्हीं ग्रहोंके ऊंचे स्थानका नाम तुङ्ग है तथा परमोच्च स्थानका नाम सुतुङ्ग है। ग्रहगण नीच घरमें यदि नीचांशमें रहे तो उन्हें बलहीन जानना चाहिये। जन्मकालीन सिंह, वृष, कन्या और कर्कट राशिमें राहुग्रहके रहनेसे तुङ्ग होता है। राहु तुङ्ग होनेसे मनुष्य नाना धनरत्न-भूषित राजराजाधिपति और चिरायु होता है। (कोष्ठी प्र०)

मूल त्रिकोणको भी तुङ्ग कहते हैं। सिंहराशि रविका त्रिकोणगृह, वृष राशि चन्द्रमाका मूल त्रिकोण है; मेष मङ्गलका, कन्या बुधका, धनु वृहस्पतिका, तुला शुक्रका और कुम्भ शनिका मूल त्रिकोणगृह है। त्रिकोण अंश रवि प्रभृति सप्त ग्रहोंके सिंहादि सप्तराशिका विंशादि अंश यथाक्रमसे मूलत्रिकोणांश कहकर प्रसिद्ध है। यथा, रविको सिंहराशिका बीसवां अंश, मङ्गलको मेषराशिका बारहवां अंश, वृहस्पतिको धनुराशिका दशवां अंश, शुक्रको तुला राशिका पन्द्रहवाँ अंश और शनिको कुम्भराशिका बीसवाँ अंश मूलत्रिकोण अंश है। इनमेंसे बुध और चन्द्रमें विशेषता यह है कि बुधके सु-उच्चांशके बाद दशांश और चन्द्रमाके सु-उच्चांशके बाद सत्ताईसवां अंश मूलत्रिकोण अर्थात् बुधका पन्द्रहवाँ अंश सु-उच्च है, इसलिये कन्याराशिके पन्द्रहवें अंशके बाद दशांश मूलत्रिकोण तथा चन्द्रमाके तृतीयांश सुउच्चके बाद सत्ताईसवाँ अंश मूल त्रिकोण होता है। मिथुनराशि राहुका उच्च गृह है, कुम्भराशि मूल त्रिकोण, कन्या राशि स्वगृह शुक्र और शनि मित्र तथा, सूर्य, चन्द्र और मङ्गल ये शत्रु और मिथुनके बीसवें अंशको उच्चांश समझना चाहिये। सिंहराशि केतुका मूलत्रिकोणगृह है; धनु

उच्च, मीनराशि स्वगृह, शुक्र और शनि शत्रु, सूर्य, मङ्गल और चन्द्र ये मित्र हैं, वृहस्पति और बुध ये न तो शत्रु हैं और न मित्र; और धनुराशिके छठे अंशको केतुका उच्चांश समझना चाहिये।

मेषमें रवि, वृषमें चन्द्र, कन्यामें बुध, कुलीरमें गुरु, मीनमें शुक्र, मकरमें मङ्गल एवं तुलामें शनिके रहनेसे तुङ्ग होता है।

"आदित्यमेषे वृषभे शशांके कन्यागते च गुरौ कुलीरे।
मीने च शुक्रे मकरे महीजे शनौ तुलायामिति तुङ्गगेहा: ॥
(समयामृत)

तुङ्गका फल—रवि अपने उच्चमें रहनेसे मनुष्य पण्डित, धार्मिक, धीरस्वभावसम्पन्न, अरोगी, बहुतोंके प्रतिपालक, दाता, बहु सुख संभोगकारी तथा मण्डलेश्वर नृपति होता है।

जन्म समयमें बुध यदि अपने उच्च स्थानमें रहे, तो मानव कन्या, पुत्र और उत्तम रत्नसम्पन्न राजासे माननीय, राज्यके एकदेशका अधिकारी, शास्त्रालापमें आमोदयुक्त तथा सर्वदा सौभाग्यविशिष्ट होता है।

जन्म समयमें वृहस्पति यदि अपनी उच्च राशिमें रहे तो मनुष्य उत्तम मन्त्रिसम्पन्न, अत्यन्त बलवान्, माननीय, क्रोधी, अत्यन्त धनवान्, हस्ती, अश्व, यान और उत्तम स्त्रीका स्वामी तथा बहुत मनुष्योंका प्रतिपालक होता है।

जन्म समयमें शुक्र यदि अपनी उच्च राशिमें रहे, तो मनुष्य मिष्टान्नभोजी, सकल गुणयुक्त, राजमन्त्री, दीर्घायु, दाता, देवब्राह्मण-भक्त तथा उत्तम भोगी होता है।

जन्म समयमें शनि यदि अपने उच्च गृहमें रहे, तो मनुष्य, स्त्री विलासकर, उत्तम कीर्त्तिशाली, अत्यन्त बलवान्, दीर्घजीवी, राज्यके एकदेशका अधिपति, पण्डित, दाता तथा भोक्ता होता है।

"एक तुगे भवेद्भोगी द्वितुंगे च धनेश्वर: ।
त्रितुंगेच भवेद्राजा चतुर्थे चक्रवार्त्तिन: ॥"

जन्मकालीन एक गृह तुङ्ग होनेसे भोगी, दो ग्रहमें धनेश्वर, तीनमें राजा और चारमें राजचक्रवर्त्ती होता है।

यदि शत्रु, निधन और व्ययगृहमें ग्रहगण तुङ्ग हों तो कथित समस्त फल व्यर्थ होते हैं, और केन्द्र या त्रिकोणमें होनेसे यथोक्त फल होता है। लग्नका सप्तम, चतुर्थ और दशम स्थान केन्द्र माना जाता है। (कोष्ठीप्रदीप)

८ किञ्जल्क। ९ उग्र। १० प्रधान। ११ उन्नत। (पु०) १२ शिव, महादेव। १३ क्षत्रियपुत्र। इन्होंने तपके प्रभावसे नारायणको सन्तुष्ट कर वेण नामक इन्द्र-सदृश एक पुत्र प्राप्त किया था। १४ एक प्रसिद्ध क्षत्रिय राजवंश।

तुङ्गक (सं० पु०) तुङ्ग स्वार्थे क, संज्ञायां कन् वा। १ पुन्नाग वृक्ष, नागकेसर। (क्ली०) २ तुङ्गी शब्दार्थ। ३ अरण्यरूप तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम। पहले यहां सारस्वत मुनि ऋषियोंको वेद पढ़ाया करते थे। एक बार जब वेद नष्ट हो गये तब अङ्गिराके पुत्रने 'ॐ' शब्दका यथाविधि उच्चारण किया था। इस शब्दके उच्चारणके साथही पूर्वाभ्यस्त सब वेद उपस्थित हो गया। तब ऋषि और देवगण, वरुण, अग्नि, प्रजापति, हरि, नारायण, भगवान् पितामह इत्यादिने महाद्युति भृगुको यज्ञ करनेके लिये नियुक्त किया। व यथाविधि ऋषियोंके अधीन यज्ञ करने लगे। आज्य द्वारा अग्नि सन्तुष्ट की गई। बाद देवता और ऋषि अपने अपने स्थान को गये। यह अरण्य तुङ्गकतीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुआ। पुरुष या स्त्रीके इस स्थानमें जानेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं और एक मास यहां रहनेसे ब्रह्मलोकको प्राप्ति होती है तथा सब कुलका उद्धार होता है।

तुङ्गकूट (सं० पु०) तुङ्गं कूटमस्य। उच्चशृङ्ग पर्वतभेद, ऊँची चोटीका एक पहाड़।

तुङ्गता (सं० स्त्री०) तुङ्गस्य भाव तुङ्ग तल्। उच्चता, ऊँचाई।

तुङ्गत्व (सं० क्ली०) तुङ्गस्य भाव:, भावे त्व। उच्चता, ऊँचाई।

तुङ्गधन्वन् (सं० पु०) तुङ्गं उन्नतं धनुर्यस्य बहुव्रीहौ धनुर्धन्वादेश: । उच्च धनु।

तुङ्गनाथ (सं० पु०) हिमालय पर एक शिवलिङ्ग और तीर्थस्थान।

तुङ्गनाभ (सं० पु०) तुङ्गनाभिर्यस्य बहुव्री०। कीटभेद, एक प्रकारका विषैला कीड़ा। तुङ्गीनाश देखो।

तुङ्गप्रस्थ (सं० पु०) रामगढ़के निकटस्थ एक पर्वत।

तुङ्गबल (सं० पु०) तुङ्ग देखो।

तुङ्गभ (सं॰ क्ली॰) तुङ्गं भं कर्मधा॰ । सूर्यादिकी उच्चराशि मेष प्रभृति । तुंग देखो ।

तुङ्गभद्र (सं॰ पु॰) तुङ्गोऽपि भद्रः । मदमत्त हस्ती, मतवाला हाथी ।

तुङ्गभद्रा (सं॰ स्त्री॰) तुङ्गप्रधाना भद्रा निर्मला च । नदीविशेष, एक नदीका नाम ।

'तुंगभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेरी चैव हि ।
दक्षिणापथनद्यस्ताः सह्यपादाद्विनिःसृता ॥"
(मत्स्यपु॰ ११३।२९)

यह दक्षिण प्रदेशकी एक बड़ी नदी है। तुङ्ग तथा भद्रा नामक दो नदीके संयोगसे यह उत्पन्न हुई है। महिसुरकी दक्षिण-पश्चिम सीमामें सह्य पर्वतके गङ्गामूल नामक शिखरसे ये नदियाँ निकल कर दक्षिण-कनाड़ा होती हुई प्रवाहित है। महिसुरके मध्य १४° उत्तर-अक्षां॰में और ७५° ४३' पूर्व-देशां॰में सिमोगा जिलेके कुदली नामक ब्राह्मण-ग्राममें ये दोनों नदियां आ कर मिली हैं। यह नदी प्रायः आध मील चौड़ी है और इसकी गहराई भी कम नहीं है। पश्चिमस्थ वनके बड़े बड़े काष्ठादि नदीमें बहा कर ले जाते हैं। ३०० वर्ष पहले विजयनगरके राजाओंने इस नदीमें ७ 'आनिकट' निर्माण किये थे। महिसुर और धारवार जिलेसे वर्धा और कुमुद्वती नामकी दो नदियां तथा दक्षिणमें विलारी जिलेसे हगरी तथा कर्णूलसे हिन्दरी नदी आकर इसमें मिली है। तुङ्गभद्रा ८ कोस बह कर कृष्णा नदीमें मिली है। इस नदीकी लम्बाई कुल २०० कोस है। बांस या बेंत द्वारा लोग नदी पार होते हैं। इसके किनारे महिसुरके मध्य हरिहर, बेलारीके मध्य कम्पिलि तथा कर्णूल नगर अवस्थित है। हरिहर नगरमें एक ईंट और पत्थरका बना हुआ सेतु है। नदीमें कुम्भीर अधिक हैं। बेलारीके मध्य रामपुर नामक स्थानमें ५१ खंभोंके ऊपर बना हुआ मन्द्राज रेलवेका पुल है।

इस नदीका चलित नाम तुंभद्रा है। आयुर्वेदमें इसका जल स्निग्ध, निर्मल, स्वादु, गुरु, कण्डु और पित्तास्रदायक, प्रायः शाम्यकर तथा मेधाकर कहा गया है। (राजनि॰)

तुङ्गमुख (सं॰ पु॰) गण्डक, गैंडा ।

तुङ्गरस (सं॰ पु॰) तुङ्गः श्रेष्ठो रसो यस्य । गन्धद्रव्य-भेद ।

तुङ्गबाहु (सं॰ पु॰) तलवारके ३२ हाथोंमेंसे एक ।

तुङ्गबीज (सं॰ क्ली॰) तुङ्गस्य शिवस्य बीजं, ६-तत् । पारद, पारा ।

तुङ्गवेणा (सं॰ स्त्री॰) नदीभेद, एक नदीका नाम ।
'विनदीं पिंगलां वेणां तुंगवेणां महानदीं ।' (भारत भीष्मप॰ ९ अ॰)

तुङ्गवृक्ष (सं॰ पु॰) नारिकेलवृक्ष, नारियलका पेड़ ।

तुङ्गशेखर (सं॰ पु॰) तुङ्ग उन्नतं शेखरं यस्य । १ पर्वत, पहाड़ । (क्ली॰) तुङ्गं शेखरं, कर्मधा॰ । २ पहाड़की ऊँची चोटी । (त्रि॰) ३ उच्च शेखरयुक्त जिसकी चोटी ऊँची है ।

तुङ्गस्कन्धफल (सं॰ पु॰) नारिकेलवृक्ष, नारियलका पेड़ ।

तुङ्गा (सं॰ स्त्री॰) तुङ्ग-टाप् । २ वंशलोचन । २ शमी वृक्ष ।

तुङ्गारण्य (सं॰ पु॰) एक जङ्गल जो झांसीसे ६ कोस दूर ओड़छाके पास है। यहां एक मन्दिर है और प्रतिवर्ष मेला लगता है।

तुङ्गारि (सं॰ पु॰) श्वेत करवीरवृक्ष, सफेद कनेरका पेड़ ।

तुङ्गिन् (सं॰ स्त्री॰) तुङ्गं मेषादिकं स्थानमाश्रयत्वेनास्ति अस्य इनि । १ उच्चस्थित ग्रह । (त्रि॰) २ प्रधान स्थानस्थ ।

तुङ्गिनी (सं॰ स्त्री॰) तुङ्गिन्-ङीप् । १ महाशतावरी, बड़ी शतावर ।

तुङ्गी (सं॰ स्त्री॰) तुङ्ग गौरादित्वात् ङीष् । १ हरिद्रा, हल्दी । २ रात्रि, रात, । ३ बर्बरीवृक्ष, बम्बई, ममरी ।

तुङ्गीनास (सं॰ पु॰) तुङ्गी हरिद्रेव पीता नासा यस्य, बहुव्री॰ । कीटभेद, एक विषैला कीड़ा । तुङ्गीनस, विचिलिक, तालक, वाहक, कोष्ठागारी, क्रमिकर, मण्डल-पुच्छक, तुङ्गनाभ, सर्षपीक, अवल्गुली और शम्बुक ये बारह प्रकारके कीड़े प्राणनाशक हैं। इन कीड़ोंके काटनेसे सांपके काटने जैसा विषका कोप देखा जाता है, एवं सान्निपातिक जन्य वेदना और तीव्र यातना उत्पन्न होती है। क्षार या आगसे जला हुआ शरीरका भाग जैसा हो जाता है, काटा हुआ स्थान भी वैसा ही हो जाता है और उसमेंसे पीला, काला और लाल रंगका

लोह निकलते देखा जाता है। ज्वर, अङ्गमर्द, रोमाञ्च, वेदना, वमन, अतीसार, तृष्णा, दाह, अत्यन्त शीत, शोफ, हिक्का, दाह, मोह, कम्प, श्वास, ग्रन्थि, मण्डलाकार चिह्न, दद्रु, कर्णिका, विसर्प प्रभृति, कोड़ेकी प्रकृतिके अनुसार ये समस्त उपद्रव होते हैं।

(सुश्रुत कल्प० ८ अ०)

तुङ्गीपति (सं० पु०) तुङ्ग्या रात्रेः पतिः। चन्द्रमा।

तुङ्गीश (सं० पु०) तुङ्गी सर्वप्रधानाः ईशः, कर्मधा०। १ शिव। २ कृष्ण। ३ सूर्य। तुङ्ग्या ईशः, ६-तत्। ४ चन्द्रमा।

तुच (सं० पु०) त्वच्-क्विप् सम्प्रसारणं तुज-क्विप् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ अपत्य, सन्तान।

तुच्छ (सं० क्ली०) तौति असारत्वं गच्छति तुच्छ। छोहदिकचिभ्यांशुतुम्यान्त कित् पीपूडो स्वश्च। उण् २।३३ १ पुलाक, भूसी, छिलका। २ हीन, क्षुद्र नाचीज। (त्रि०) तुद् क्विप् तेन तं वा छ्यतीति छो-क। ३ शून्य, निःसार, खोखला। ४ अल्प, थोड़ा। (पु०) ५ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। ६ तुत्थ, तूतिया।

तुच्छज्ञान (सं० क्ली०) तुच्छस्य ज्ञानं ६-तत्। सामान्य बोध।

तुच्छता (सं० स्त्री०) तुच्छस्य भावः तल्-टाप्। सामान्यता, हीनता, नीचता। २ क्षुद्रता, ओछापन। ३ अल्पता।

तुच्छत्व (सं० क्ली०) तुच्छस्य भावः। १ हेयता, हीनता। २ क्षुद्रता, ओछापन।

तुच्छद्रु (सं० पु०) तुच्छो हीनोद्रुर्वृक्षः कर्मधा०। एरण्डवृक्ष, रेंड़ीका पेड़।

तुच्छधान्यक (सं० क्ली०) तुच्छं धान्यं अल्पार्थे कन्। पुलाक, भूसी, छिलका।

तुच्छ्य (सं० क्ली०) तुच्छ वेदे स्वार्थे इहार्थे वा यत्। १ तुच्छशब्दार्थ। २ तुच्छकल्प।

तुच्छा (सं० स्त्री०) तुच्छ-टाप्। १ तुत्थ, तूतिया। २ नीलीवृक्ष, नीलका पेड़। ३ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची।

तुच्छीकृत (सं० त्रि०) अतुच्छं तुच्छं कृतं अभूततद्भावे च्वि। अवज्ञात, जिसका अपमान किया गया हो।

तुच्छातितुच्छ (सं० त्रि०) अत्यन्तक्षुद्र, छोटेसे छोटा।

तुज् (सं० स्त्री०) तुज-क्विप्। १ रक्षणसमर्थ, वह जो रक्षा करनेमें समर्थ हो।

तुजि (सं० त्रि०) बलवान्, ताकतवर।

तुजि (सं० पु०) एक राजाका नाम।

तुजह (हिं० स्त्री०) धनुष, कमान।

तुज्य (सं० त्रि०) तुज हिंसायां अघ्न्यादयश्चेति यत्। हिंस्य, हिंसा करने योग्य।

तुञ्ज (सं० पु०) तुजिःवले अच्। १ वज्र। २ उक्त फलदानकर्त्ता।

तुञ्जीन (सं० पु०) काश्मीरके एक राजाका नाम।

तुटितुट (सं० पु०) शिव।

तुटुम (सं० पु० स्त्री०) तुटति नाशयति द्रव्यजातं तुट बाहुलकात् उम। इन्दूर, चूहा।

तुड़वाना (हिं० क्रि०) तोड़नेका काम किसी दूसरेसे कराना।

तुड़ाई (हिं० स्त्री) १ तुड़ानेकी क्रिया या भाव।

तुड़ाना (हिं० क्रि०) १ तोड़नेका काम किसी दूसरेसे कराना। २ बन्धन छुड़ाना। ३ सम्बन्ध तोड़ना। ४ रुपया तुड़ाना, भुनाना।

तुड़ि (सं० स्त्री०) तुड़-इन-किच्च। तोड़न, तोड़नेकी क्रिया।

तुडुम (हिं० पु०) तुरही, बिगुल।

तुणि (सं० पु०) तुण संकोचे इन् पृषोदरादित्वात् साधुः वा तुणति सङ्कोचयति तुण-इन् (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११३) तुन्नवृक्ष, तुनका पेड़। यह उत्तरीय भारतमें सिन्धु नदीसे लेकर सिक्किम और भूटान तक होता है। यह चालीससे लेकर पचास हाथ तक ऊंचा और दश बारह हाथ मोटा होता है। शिशिरऋतुमें इनके सब पत्ते गिर जाते हैं। वसन्तके आरम्भमें ही इसमें नीमके फूलकी तरहके छोटे छोटे फूल गुच्छोंमें लगते हैं। इन फूलोंसे एक प्रकारका पीला बसन्ती रंग निकलता है। इसके फूल जब झड़ जाते हैं तो रंग बनानेके लिये लोग उन्हें इकट्ठा करके सुखा लेते हैं। इसकी लकड़ी लाल रंगकी और बहुत मजबूत होती है। इसमें दीमक और घुन लगनेका डर नहीं रहता है। इसका संस्कृत पर्याय—तुनि, तुन्नक, आपीन, तुनिक, कच्छक, कुठेरक,

कान्तलक, नन्दिवृक्ष नन्दक । इसका गुण—कटु, विपाक, कषाय, मधुर, तिक्तरस, लघु, धारक, शीतवीर्य, शुक्रवर्द्धक तथा व्रण, कुष्ठ और रक्तपित्तनाशक ।

तुण्णिक (सं० पु०) तुण्णि स्वार्थे कन् । नन्दिवृक्ष, तुनका पेड़ ।

तुण्ड (सं० क्ली०) तोड़ने अच् । १ मुख, मुंह । (पु०) २ महादेव । ३ राक्षसविशेष, एक राक्षसका नाम । (भारत० ३।२८४।८) ४ एक दानव जो अत्यन्त बलशाली था । यह आयुके पुत्र नहुष द्वारा मारा गया था । (पद्मपु०) (क्ली०) ५ चंचु, चोंच । ६ थूथन, निकला हुआ मुंह । ७ खड्गका अग्रभाग, तलवारका अगला हिस्सा ।

तुण्डकेरिका (सं० स्त्री०) कार्पासी. कपासका वृक्ष ।

तुण्डकेरी (सं० स्त्री०) प्रशस्तं तुण्डं प्रशंसायां कन् । तदोर्त्तं ईरयति वा ईर-अण् स्त्रियां ङीष् । १ कर्पासी, कपास । २ विम्बिका, कुंदरू ।

तुण्डकेशरी (सं० पु०) मुखका एक रोग । इसमें तालूकी जड़में सूजन होती और दाह पीड़ा आदि उत्पन्न होती है ।

तुण्डदेव (सं० पु०) तुण्डरूपी देवः तुण्डेन दीव्यति दिव-अच् । एक राजाका नाम ।

तुण्डि (सं० पु०) तुण्डते निष्पीडयति तुण्ड-इन् । सर्व धातुभ्य इन् । उण् ४।११७ । १ मुख, मुंह । २ चञ्चु, चोंच । ३ विम्बिका, विंबाफल, कुँदरू । ४ बन्दा । (स्त्री) ५ नाभि ।

तुण्डिका (सं० स्त्री०) तुण्डिरेव तुण्डि-स्वार्थे कन् टाप् च । १ नाभि, टुंड़ी । २ विम्बिका कुंदरू ।

तुण्डिकेरी (सं० स्त्री०) १ कार्पासी, कपास । २ विम्बिका, कुंदरू । इसके पर्याय—तुष्टि, रक्तफल, विम्बी और विम्बिका । ३ कीटविशेष, एक कीड़ा । ४ तालूगत रोगविशेष, मुखका एक रोग । इसमें तालूकी जड़में सूजन होती और दाह पीड़ा आदि उत्पन्न होती हैं । इस रोगमें शास्त्रकार्य उचित है ।

तुण्डिकेशी (सं० स्त्री०) विम्बिका, कुंदरू ।

तुण्डिभ (सं० त्रि०) तुण्डिर्वृद्धा नाभिरस्य तुन्दि-भ । तुन्दि-वालवटेभः । पा ५ । २ । १४० । वृद्धनाभि जिसकी नाभि निकली हुई हो ।

तुण्डिल (सं० त्रि०) तुण्डि सिध्मादित्वादिलच् । १ वृद्ध-नाभि, जिसकी नाभी निकली हुई हो । २ तोंदवाला, निकला हुआ पेटवाला । ३ मुखर, बकवादी, मुँह जोर ।

तुण्डी (सं० त्रि०) १ मुखयुक्त, मुंहवाला । २ चंचुयुक्त, चोंचवाला । ३ थूथनवाला । (पु०) ४ गणेश । (स्त्री) ५ नाभि, टुंड़ी ।

तुण्डीगुदपाक (सं० पु०) एक रोग । इसमें बच्चोंकी गुदा पक जाती और नाभिमें पीड़ा होती है ।

तुण्डीरमण्डल (सं० पु०) दक्षिणके एक देशका नाम ।

तुतकुड़ी (Tuticorin)—समुद्रतीरवर्त्ती एक प्रसिद्ध बन्दर सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें पुर्तगीजोंने यहां प्रथम आवास स्थापन किया । १६५८ ई०में वे इसे अपने अधिकारमें लाये । इसके बाद प्रायः १७०० ई०में डेनमार्कोंने यहां एक छोटा दुर्ग निर्माण किया । उस समय तिन्नेवेलीके सन्निहित समुद्रसे मोती, सीप और शङ्ख संग्रह करनेके लिये ७ सौ नावें रहा करती थीं ।

इस कार्यका भार उन्हीं लोगों पर सौंपा गया था। उन लोगोंका यह व्यवसाय बहुत दिनों तक चलता रहा और इससे उन्हें यथेष्ट आय होती रही ।

१७८२ ई०में अंगरेजोंने तुतकुड़ी पर अधिकार जमाया और १७८५ ई०में उन्होंने इसे फिर डेनमारोंको प्रत्यर्पण किया । १७९५ ई०में अंगरेजोंने इसे पुनः अपने अधिकारमें कर लिया । १८१८ ई० तक इसे अपने अधिकारमें रख कर उन्होंने फिर डेनमार्कोंको लौटा दिया । १८५२ ई०में डेनमार्कोंने इसे पुनः अंगरेजोंको दे दिया । आज तक यह अंगरेजोंके अधिकारमें है । यात्री इसी बन्दरसे कलम्बो जाते हैं । इसके किनारे अधिक जल न होनेके कारण बड़े बड़े जहाज किनारेके निकट नहीं आते हैं । ष्टीम-लञ्च द्वारा यात्रिगण जहाज पर चढ़ते हैं; यहां कईएक रुई और सूतेकी कलें हैं । यहां रुई और सूते गांठमें बंधे जानेके बाद विलायत भेजा जाता है । इस स्थानसे मनार उपकूल पर मोती-सीप निकालनेका बन्दोवस्त किया गया है । समुद्रके किनारे बीच नामक एक प्रशस्त रास्ता है । यहां आम, नारंगी और केला आदि अनेक प्रकारके फल पाये जाते हैं, नारियल तथा ताड़के वृक्ष भी यथेष्ट

हैं। ताड़का गुड़ और ताड़की चीनी यहां यथेष्ट पाई जाती है। यहांका स्वास्थ्य उत्तम है, किन्तु मीठे जलका बहुत अभाव है। आजकल आर्टिजेन कूप खोदे गये हैं। शहरके समुद्रतीरवर्ती बहुत अंश प्रजाविशिष्ट और समृद्धिशाली हैं। यहां हिन्दुओंके रहनेके कईएक छत्र और साहबोंके लिये एक उत्तम होटल है। यहां 'तुतकुड़ी टारमिनश' नामक रेलकी एक स्टेशन है।

तुतराना (हिं० क्रि०) तुतलाना देखो।

तुतलाना (हिं० क्रि०) शब्दों और वर्णोंका अस्पष्ट उच्चारण करना, साफ न बोलना।

तुतली (हिं० वि०) तोतली देखो।

तुतान (सं० पु०) मीमांसकभेद।

तुतुरी—एक तरहका छोटा शृङ्गयन्त्र। यह यन्त्र माङ्गलिक कार्य और देवमन्दिरोंमें व्यवहृत होता है।

तुतुवार्ण्ण (सं० पु०) तूर्णीवनिर्भजनमस्य वेदे पृषोदरादित्वात् साधुः। तूर्ण भजन, जल्दी जल्दी भजन करनेकी क्रिया।

तुत्थ (सं० पु०) तुदति पीड़यत्यनेन तुद-थक्। पातृतुदेति। उण् २।३। १ प्रस्तर, पत्थर। २ अग्नि, आग। ३ अञ्जनभेद। ४ नीलवृक्ष, नीलका पौधा। ५ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची। ६ उपधातुविशेष, तूतिया। इसके संस्कृत पर्याय—नीलाञ्जन, हरिताश्म, तुत्थक, मयूरग्रीवक, ताम्रगर्भ, अमृतोद्भव, मयूरतुत्थ, शिखिकण्ठ, नील, तुत्थाञ्जन, शिखिग्रीव, वितुन्नक, मयूरक, भूतक, मूसातुत्थ, मृतामद और हेमसार। इसमें तांबेका भाग थोड़ा ही है। इसमें अन्यान्य द्रव्य संयुक्त है, इसीसे इसमें दूसरे दूसरे गुण भी हैं। इसके गुण—क्षारसंयुक्त, कटु, कषायरस, वमनकारक, लघु, लेखनगुणयुक्त, भेदक, शीतवीर्य, चक्षुका हितकर एवं कफपित्त, विष, अश्मरी, कुष्ठ, और कण्डुनाशक है। (भाव-प्र०) रसेन्द्रसारसंग्रहके मतसे इसकी शोधनप्रणाली इस तरह है,—बिल्ली और कबूतरकी बीटसे तूतिया पीस कर उसके दश भागोंमेंसे एक भागके बराबर सुहागा मिलाते और मृदु पुटमें पाक करते हैं। इसके बाद सैन्धव लवणके साथ मधु दे कर पुट देनेसे यह विशुद्ध होता है।

दूसरे प्रकारसे—बिल्लीकी बटके साथ तूतिया पीसते और उसमें चतुर्थांश मधु और सुहागा मिला कर तीन बार पुट देनेसे वमन और भ्रमिकर शक्ति रहित होनेसे शुद्ध हो जाता है। शोधनकी दूसरी रीति—तूतियामें उसका अर्द्धांश गन्धक मिलाकर चार दण्ड पाक करते हैं। वमन और भ्रमशक्ति-रहित होनेसे पाक सिद्ध होता है। तूतियाके गुण—कटु, क्षार, कषाय रस, विषद, लघु, लेखन, विरेचक, चाक्षुष, कण्डू, कृमि और विषनाशक है। (रसेन्द्रसारसं०)

तुत्थक (सं० क्ली०) तुत्थमिव स्वार्थे कन्। तुत्थ, तूतिया।

तुत्था (सं० स्त्री०) तुत्थ-टाप्। १ नीली वृक्ष, नीलका पौधा। २ क्षुद्रैला, छोटी इलायची।

तुत्थाञ्जन (सं० क्ली०) तुत्थञ्च तत् अञ्जनञ्चेति कर्मधा०। उपधातुविशेष, तूतिया, नीलाथोथा।

तुद्य (सं० पु०) तुद-यक् तुदायक्। पृषो० साधुः। १ हननकर्त्ता, मारनेवाला, कतल करनेवाला। २ ब्रह्म। ३ दक्षिणाविभाजक, ब्रह्मरूप ऋत्विग्भेद।

तुदन (सं० पु०) १ व्यथा देनेकी क्रिया, पीड़न। २ व्यथा, पीड़ा। ३ चुभाने या गड़ानेकी क्रिया।

तुदादि (सं० पु०) धातुगणविशेष। इस गणकी धातुके बाद 'स' आता है। "तुदादिभ्यः स" इस 'स' प्रत्ययके होनेसे गुण नहीं होता, इसीसे इसका नाम अगुण हुआ है। विशेष विवरण धातु शब्दमें देखो।

तुन (हिं० पु०) एक बहुत बड़ा पेड़। तुनि देखो।

तुनकामीज (लश० पु०) छोटा समुद्र।

तुनकी (फा० स्त्री०) एक तरहकी खस्ता रोटी।

तुनतुनी (हिं० स्त्री०) तुन तुन शब्द देनेवाला एक प्रकारका बाजा।

तुनि—१ मन्द्राजके गोदावरी जिलेकी एक जमींदारीका तहसील। यह अक्षा० १७° ११´ और १७° २२´ उ० तथा देशा० ८२° ८´ और ८२° ३६´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २१६ वर्गमील और लोकसंख्या ५८७६२के लगभग है। इसमें एक शहर और ४८ ग्राम लगते हैं। तहसीलका अधिकांश पहाड़ और जङ्गलसे आच्छादित है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० १७° २२′ उ० और देशा० ८२° ३२′ पू० मन्द्राजसे ४२५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ८८४२ है।

तुनौ (हिं० स्त्री०) तुनका पेड़।

तुनीर (हिं० पु०) तूणीर देखो।

तुन्तुभ (सं० पु०) सर्षपवृक्ष, सरसोंका पौधा।

तुन्द (सं० क्ली०) तुदतीति तुद-दन् (अब्दादयश्च। उण् ४।९८)। उदर, पेट।

तुन्दकूपिका (सं० स्त्री०) तुन्दस्य कूपिकेव। क्षुद्र कूप, नाभि, टुंड़ी।

तुन्दकूपी (सं० स्त्री०) तुन्दस्य कूपीयस्य। नाभि, टुंड़ी।

तुन्दपरिमार्ज (सं० त्रि०) तुन्दं परिमष्टि तुन्द परि-मृज-क तुन्द परि-मृज- अण्। मन्द, सुस्त। २ अलस, अलसी।

तुन्दमृज (सं० त्रि०) तुन्दं माष्टि-मृज्-क। तुन्दपरिमार्ज देखो।

तुन्दवत् (सं० त्रि०) तुन्दं विद्यते अस्य। तुन्द-मतुप्। तुन्दिल, तोंदवाला, निकला हुआ पेटवाला।

तुन्दादि (सं० पु०) पाणिनिकथित शब्दगणविशेष, इस तुन्दादि शब्दके बाद अस्त्यर्थमें इलच् प्रत्यय आता है।

तुन्दि (सं० क्ली०) तुद-इन् बाहुलकात् नुमच्। १ गन्धर्व विशेष, एक गन्धर्वका नाम। (स्त्री०) २ नाभि, टुंड़ी।

तुन्दिक (सं० त्रि०) अतिशयितं तुन्दमुदरं मस्त्यस्य तुन्द-ठन्। विशाल जठरयुक्त, तोंदवाला, बड़े पेटवाला।

तुन्दिकर (सं० पु०) तुन्दिं करोति कृ-अच्। तुन्दिल, बड़े पेटवाला।

तुन्दिकफला (सं० स्त्री०) खीरेकी बेल।

तुन्दिका (सं० स्त्री०) तुन्दिक-टाप्। नाभि।

तुन्दित (सं० त्रि०) तुण्डिल, जिसकी नाभी निकली हो।

तुन्दिन (सं० त्रि०) तुन्दोऽस्त्यस्य इनि। तुन्दयुक्त, निकले हुए पेटवाला।

तुन्दिभ (सं० त्रि०) तुन्दि वृद्धा नाभिरस्त्यस्य तुन्दि-भ। तुन्दिवलिवटेर्भः। पा ५।२।१३९। तुन्दिल, तोंदवाला।

तुन्दिल (सं० त्रि०) तुन्दकस्यास्ति तुन्द-इलच्। तुन्दादिभ्य इलच्। पा ५।२।११७। स्थूलोदर, बड़े पेटवाला।

तुन्दिफला (सं० स्त्री०) तुन्दिलं बृहत्फलं यस्याः। त्रिपुषी, खीरा।

तुन्न (सं० पु०) तुद-क्त। १ नन्दि, तुनका पेड़। २ फटे हुए कपड़ेका टुकड़ा। (त्रि०) ३ व्यथित, दुःखित। ४ छिन्न, कटा या फटा हुआ।

तुन्नकारिका (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भुआँवला।

तुन्नवाय (सं० पु०) तुन्नं छिन्नं वयति तुन्न-वे-अण्। सौचिक, कपड़ा सीनेवाला, दरजी।

तुन्नसेवनी (सं० स्त्री०) तुन्नं छिन्नं सीव्यतेऽनया सिव् करणे ल्युट् ङीप्। सूचीभेद, एक प्रकारका दरजी।

तुपक (हिं० स्त्री०) १ छोटी तोप। २ बन्दूक, कड़ाबीन।

तुफंग (हिं० स्त्री०) १ हवाई बन्दूक। २ एक लम्बी नली। इसमें मट्टी या आटेकी गोलियां तथा छोटे तीर आदि डाल कर फूंकके जोरसे चलाए जाते हैं।

तुभना (हिं० क्रि०) स्तब्ध रहना, ठक रह जाना।

तुम (हिं० सर्व०) 'तू' शब्दका बहुवचन।

तुमकूर—१ महिसुर राज्यका एक जिला। यह अक्षा० १२° ४५′ और १४° ६′ उ० तथा देशा० ७६° २१′ और ७७° २८′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१६८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें मन्द्राजके अनन्तपुर जिला, पूर्वमें कोलर और बंगलूर जिला, दक्षिणमें महिसुर जिला और पश्चिममें चितलदुग, कडूर तथा हसन जिले हैं।

जिलेका पूर्वीय भाग छोटे छोटे पहाड़ोंसे भरा है; पर्वत उत्तरसे दक्षिण तक फैले हुए हैं। यों तो यहां अनेक नदियां प्रवाहित हैं, पर जयमङ्गली और शिमशा ये ही दो प्रधान हैं। यहांका जलवायु बहुत मनोरम तथा स्वास्थ्यकर है। जिलेका दक्षिणी भाग बहुत कुछ बंगलूर जिलेसे मिलता जुलता है। वार्षिक वृष्टिपात ३९ इञ्च है।

कहते हैं, कि प्राचीन कालमें यह स्थान गङ्गवंशके अधिकारमें था। पीछे यह होयसल राजवंशके अधिकारमें आया। वे अधिक दिन तक राज्य न कर पाये। कालक्रमसे यह जिला विजयनगरके अधीन आ गया। विजयनगरके अधःपतन होने पर १६३८ ई०में बीजापुरराजने इस पर अपना पूरा दखल जमाया और इसे शिवाजीके पिता शाहजीके निरीक्षणमें

छोड़ दिया। १६८७ ई०में मुगलोंने इसे जीता और सीरामें राजधानी स्थापित की। मुगलोंके अधीन यह स्थान सत्तर वर्षके लगभग रहा। पीछे यह १७५७ ई०में महाराष्ट्रोंके हाथ लगा, लेकिन दो वर्ष बाद ही उन्होंने पुनः सन्धि हो जाने पर मुगलोंको प्रत्यर्पण किया। सन्धि टूट जाने पर १७६६ ई०में महाराष्ट्रोंने फिरसे इसे अपने अधिकारमें कर लिया। बहुत दिनों तक वे इसका भोग न कर सके। १७७४ ई०में टीपू सुलतानने इस पर अपना अधिकार जमा लिया।

तुमकूरकी लोकसंख्या लगभग ६७८१६२ है। यहाँ हिन्दू, जैन, मुसलमान, ईसाई तथा अन्यान्य जातिके लोग रहते हैं। हिन्दुओंकी संख्या सबसे अधिक है। इसमें १८ शहर और २७५३ ग्राम हैं। धान, चना, ईख, रुई, रागी और नील यहांके प्रधान उत्पन्न-द्रव्य हैं। यहां सूतके मोटे कपड़े, कम्बल, रस्से नारियलके रेशे तथा बारीक रेशमका सूत प्रस्तुत होता है। दक्षिण-महाराष्ट्र-रेलवे इसी जिलेमें हो कर बङ्गलूरसे पूना तक गई है।

राजकार्यकी सुविधाके लिए यह जिला आठ तालुकोंमें विभक्त है। डिपटी कमिश्नर जिलेके प्रधान माने जाति हैं। इसे अनेक उपविभागोंमें बांट कर हर एक उपविभागको एक एक सहकारी कमिश्नरके अधीन रखा गया है।

२ तुमकूर जिलेका पूर्वीय तालुक। यह अक्षा० १३' ७' और १३' ३२' उ० तथा देशा० ७६' ५८' और ७७' २१' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४५५ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १०७५१३ है। इस तालुकमें २ शहर और ४७७ ग्राम लगते हैं। इसका पूर्वीय भाग जङ्गल तथा पहाड़ोंसे परिपूर्ण है। यहांकी जमीन बहुत उर्वरा है, अतः प्रति वर्ष अच्छी फसल होती है। सुपारी तथा नारियलके पेड़ सब जगह नजर आते हैं।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १३' २१' उ० और देशा० ७७' ६' पू०; बङ्गलूरसे ४३ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या ११८८८ के लगभग है। यह शहर एक उच्च स्थान पर बसा हुआ है। इसके चारों ओर केले और ताड़के वन हैं। प्रवाद है, कि वर्तमान शहर महिसुरवंशके कान्त अरसू नामक एक व्यक्तिद्वारा स्थापित हुआ है। यहां १८७० ई०में म्युनिसपालिटी कायम हुई है।

तुमड़ी (हिं० स्त्री०) १ कड़ुए गोल कद्दूका सूखा फल। २ वह पात्र जो सूखे गोल कद्दूको खोखला करके बनाया जाता है। ३ सूखे कद्दूका एक बाजा जिसको मुंहसे फूँक कर बजाते हैं।

तुमतड़ाक (हिं० स्त्री०) तूमतड़ाक देखो।

तुमसर—मध्यप्रदेशके भण्डारा तहसील और जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २१' २३' उ० और देशा० ७९' ४६' पू०के मध्य भण्डारा शहरसे २७ मील और बम्बईसे ५७० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८१६६ है। यहां १८६७ ई०में म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई है। यह एक प्रधान वाणिज्यकेन्द्र है। शहरके आस पास धानकी अच्छी फसल लगती है। यहां बैलगाड़ीका खूब बढ़िया पहिया तैयार होता है जो विशेष कर नागपुर और बरारको भेजा जाता है। शहरमें एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल, एक बालिकाओंका स्कूल तथा एक चिकित्सालय है।

तुमाना (हिं० क्रि०) तूमानेका काम किसी दूसरेसे कराना।

तुमिनकट्टी—बम्बईके धारवार जिलेके अन्तर्गत रानीबेन्नूर तालुकका एक छोटा शहर। यह तुङ्गभद्रा नदीके किनारे रानीबेन्नूर शहरसे १५ मील दक्षिणमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६३४१ है। यहां केवल दो विद्यालय हैं।

तुमुती (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया।

तुमुर (सं० क्ली०) तुमुल लस्य र। १ तुमुल, सेनाका कोलाहल। २ क्षत्रियोंकी एक जाति। इसका उल्लेख पुराणोंमें आया है।

तुमुल (सं० क्ली०) तु सौत्र धातु, बाहुलकात्, मुलक्। १ रणसङ्कुल, लड़ाईकी हलचल। २ कलि वृक्ष, बहेड़ेका पेड़। ३ व्याकुल युद्ध, गहरी मुठभेड़। (त्रि०) ४ प्रचण्ड, उग्र, तेज।

तुमुलयुद्ध (सं० त्रि०) तुमुलं युद्धं। घोरतर संग्राम, घमसान लड़ाई।

तुम्ब (सं० पु०-स्त्री०) तुम्बति नाशयत्यरुचिं तुम्ब-अच्। अलाबू, लौकी।

तुम्बक (सं० पु०) तुम्ब-ण्वुल्। अलाबु, लौआ, लौकी। २ धन्याक, धनियाँ।

तुम्बर (सं० क्ली०) तुम्बं तदाकारं राति-रा-क। वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा। २ तुम्बरु गन्धर्व।

तुम्बरचक्र (सं० क्ली०) तुम्बरं चक्रं, कर्मधा०। नरपतिजयचर्य्योक्त चक्रभेद। चक्र देखो।

तुम्बरु (सं० पु०) गन्धर्वभेद, एक गन्धर्वका नाम।

तुम्बवन (सं० पु०) वृहत्संहिताके अनुसार एक देश। यह दक्षिणमें १२।१३।१४ नक्षत्रके मध्य अवस्थित है।

तुम्बा (सं० स्त्री०) तुम्ब-टाप्। १ अलावु, कड़ुआ कद्दू। २ गवी, एक प्रकारका जङ्गली धान। यह नदियों या तालोंके किनारे आपसे आप होता है।

तुम्बि (सं० स्त्री०) तुम्बति नाशयति अरुचिं तुम्ब-इन्। अलावु, कड़ुआ कद्दू।

तुम्बिका (सं० स्त्री०) तुम्ब-ण्वुल् टापि अत इत्वं। १ अलावु, कद्दू। २ कटुतुम्बी, कड़ुआ कद्दू।

तुम्बिनी (सं० स्त्री०) तुम्ब णिनि-ङीप्। कटुतुम्बी, कड़ुआ कद्दू, तित लौकी।

तुम्बी (सं० स्त्री०) तुम्बि-ङीष्। १ अलावु, छोटा कड़ुआ कद्दू। २ कुलिक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़। (रत्नमाला)

तुम्बीतैल (सं० क्ली०) अलावुतैल, कद्दूका तेल।

तुम्बापुष्प (सं० क्ली०) तुम्बाः पुष्पमिव पुष्पमस्य। अलावुपुष्प, कद्दूका फूल।

तुम्बुक (सं० क्ली०) तुम्ब बाहुलकात् उकः। अलावुफल, कद्दूका फल।

तुम्बुकी—भारतवर्षीय एक प्राचीन आनद्ध यन्त्र, चमड़ेसे मढ़ा हुआ एक प्रकारका बाजा।

तुम्बुगुठ—महाराष्ट्र ब्राह्मण जातिका एक भेद।

तुम्बुर (सं० पु०) विन्ध्यपर्वत-स्थित जातिभेद, विन्ध्य पहाड़ पर रहनेवाली एक जाति। (हरिवंश ५ अ०)

तुम्बुरी (सं० स्त्री०) तुम्बरं आकारं राति रा-क ङीष पृषोदरादित्वादुत्वं। १ कुक्कुरी, कुतिया। २ धन्याक, धनिया।

तुम्बुरु (सं० क्ली०) १ धन्याक, धनिया। (पुं-क्ली०) २ तपस्वीविशेष, एक तपस्वीका नाम। ३ एक जिन-उपासकका नाम। ४ फलवृक्षविशेष। इसका बीज धनियेके आकारका पर कुछ कुछ फटा हुआ होता है। इसके संस्कृत पर्याय—शूलघ्न, सौरज, सौर, वनज, सानुज, द्विज, तीक्ष्णकल्क, तीक्ष्णफल, तीक्ष्णपत्र, महामुनि, स्फुटफल, सुगन्धि। इसके गुण—कफ, वात, शूल, गुल्म, उदराध्मान, कृमिनाशक और अग्निप्रदीप्तकारक हैं। भावप्रकाशके मतसे इसके पर्याय—सौरभ, सौर, वनज, सानुज और अन्धक। इसके गुण—तिक्त, कटुरस, कटु, विपाक, रूक्ष, उष्णवीर्य, अग्निदीप्तिकारक, तीक्ष्ण, रुचिकारक, लघु, विदाही एवं वातश्लैष्मिक रोग, चक्षुरोग, कर्णरोग, ओष्ठगत रोग, शिरोरोग शरीरका गुरुत्व, कृमि, कुष्ठ, शूल, अरुचि, श्वास और प्लीहा प्रभृति रोग-नाशक।

तुम्बुरु (सं० पु०) १ एक गन्धर्वका नाम। ये मधु अर्थात् चैत्र मासमें सूर्यके रथ पर रहते हैं। सङ्गीतविद्यामें ये विशेष पारदर्शी थे। इन्होंने ब्रह्माके निकट सङ्गीतविद्या सीखी थी। ये विष्णुके अत्यन्त प्रिय पार्श्वचर थे।

अद्भुत-रामायणमें लिखा है,—त्रेतायुगमें कौशिक नामके एक ब्राह्मण थे। वे वासुदेवके अत्यन्त भक्त थे और सर्वदा उन्हींका गुण गान किया करते थे। हरिगुणगानके सिवा उनका कोई दूसरा कार्य ही न था। वे विष्णुस्थल नामक अनुत्तम हरिक्षेत्रमें जा कर वहां मूर्च्छनाके उन्नतियोगमें तालवर्णसे पूरित अत्यन्त भक्तिके साथ हरिगुण करनेमें प्रवृत्त हुए तथा भिक्षा द्वारा जीवनयात्रा निर्वाह करने लगे। वहां पद्माक्ष नामक एक ब्राह्मण रहते थे। वे कौशिकका गान सुन कर सर्वदा उन्हें अन्न दान करते थे। जब कौशिकको अन्न-चिन्ता जाती रही, तब वे और भी हरिप्रेममें उन्मत्त हो कर हरिगुण गान करने लगे। पद्माक्ष भी उस गानको भक्तिपूर्वक सर्वदा सुनते थे। धीरे धीरे कौशिकके क्षत्रिय, वैश्य और ब्राह्मणकुलोत्पन्न ज्ञान और विद्यामें श्रेष्ठ ७ शिष्य हो गये। पद्माक्ष सभीको अन्नदान देने लगे। उसी स्थानमें मालव नामक विष्णुभक्तिपरायण एक वैद्य रहते थे। वे हृष्टचित्तसे हरिको प्रतिदिन दीपमाला प्रदान करते थे। मालती नामकी उनकी पतिव्रता स्त्री भी प्रीत-मनसे हरिक्षेत्रके चारों ओर गोमय लेपन करती थीं। हरिके निमित्त कुशस्थलसे ५० ब्राह्मण आकर कौशिकके कार्यसाधनार्थ वहां रहने लगे। क्रमशः यह गान अत्यन्त

विख्यात हो गया। कलिङ्गराज इस गानकी कथा सुनकर यहां आये और उनसे बोले, कौशिक! तुम सहचरोंके साथ मेरा यशोगान करो। यह सुन कर कौशिकने कहा,—'महाराज! मेरी जिह्वा या वाक्य कभी भी हरिके सिवा किसी दूसरेका यहां तक कि इन्द्रका भी स्तव नहीं करता।' बाद उनके शिष्योंने भी राजासे इस तरह कहा। इस पर राजाने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर अपने भृत्योंसे कहा 'तुम लोग अत्यन्त उच्चस्वरसे मेरा गुणगान करो, जिससे इनका गान कोई सुन न सके।' भृत्योंके गान आरम्भ करने पर उन समस्त ब्राह्मणों और कौशिकने अत्यन्त दुःखित हो कर्णरोध किया तथा काष्ठशङ्कु द्वारा एक दूसरेका कर्णभेद किया। पीछे राजाने बल पूर्वक गानमें नियुक्त किया। इस भयसे सबोंने अपना अपना जिह्वाग्र छेदन किया। राजाने इस व्यापारसे अत्यन्त क्रुद्ध हो कर सभीको देशसे निकलवा दिया। वे सबके सब उत्तरकी ओर रवाना हुए। उन लोगोंका भोग शेष हो गया। इसके बाद हरिने उन लोगोंको अपना पार्श्वद बनाया। कौशिक दिग्बन्धु नामक गणाधिप हुए। उस समय कौशिकके प्रीति-उत्पादनके लिये मधुराक्षरदक्ष, वीणागुणतत्त्व गीत-विशारदोंके गान द्वारा विष्णु-सभामें अद्भुत महोत्सव आरम्भ हुआ। इस सभामें महात्मा तुम्बरू और कौशिकने प्राण भर कर हरिजीका गुणगान किया। गान सुन कर नारदके मनमें अत्यन्त क्रोध हो आया। नारद क्रुद्ध हो कर तुम्बरूको जीतनेके लिये विष्णुके उपदेशानुसार गान शिक्षार्थ गानबन्धु नामक उलूकेश्वरके निकट गये। उनके समीप एक हजार वर्ष गान सीख कर नारदके मनमें कुछ अहङ्कार उत्पन्न हुआ, बाद तुम्बरूको जीत करनेके लिये उनके घरके निकट आकर उन्होंने देखा कि यहां बहुतसे विक्षताकार स्त्रीपुरुष रहते हैं। उनमेंसे एकके भी प्रकृत अङ्ग नहीं है। नारदने उन लोगोंको इस विकृतावस्थामें देख उनसे परिचय पूछा। वे बोले कि हम लोग राग और रागिणी हैं। आपके गानसे हम लोगोंकी यह दुरवस्था हुई हैं। तुम्बुरु गानसे हम सबको सुस्थ कर देंगे, इसीसे हम लोग यहां आये हैं। नारद इस बातसे अत्यन्त लज्जित होकर नारायणके निकट गये। नारायणने नारदका आक्षेप सुनकर कहा, 'नारद! तुम अब तक गीतशास्त्रमें पारदर्शी नहीं हुए हो। तुम्बुरुके सदृश होनेमें अभी बहुत विलम्ब है। जब मैं कृष्णरूपमें जन्मग्रहण करूंगा तब तुम्हारे लिये गानशिक्षाका उपाय कर दूंगा। बाद नारदने जब सम्पूर्ण रूपसे गीत अधिकृत किया, तब तुम्बुरुके प्रति उनका द्वेषभाव हुआ। (अद्भुतराम०)

तुम्बुरुवीणा—इसका प्रचलित नाम तम्बुरा या तानपुरा है। यह एक सूखेहुए गोल कद्दूके खोलले और एक बांसके डंडेसे बनता है। तुम्बुरु गन्धर्व इस यन्त्रका सृष्टिकर्त्ता है, इसीसे इसका नाम तुम्बुरुवीणा पड़ा है। गीत और वाद्यके समय सुर-विराम निवारणके लिये इस यन्त्रका प्रयोजन पड़ता है। इसमें दो लोहे और दो पीतलके तार लगे रहते हैं, इसका सुर बन्धन क्रमसे इस प्रकार है—

पि—लो—लो—पि
स स स प
० ०

तानपूरामें जो चार तार रहते हैं, वे इसी प्रकार लगाये जाते हैं।

तुम्न (सं० त्रि०) तुम प्रेरणे आहरणे च रक्। १ प्रेरक, भेजनेवाला। २ हिंसक, मारनेवाला।

तुम्हारा (हिं० सर्व०) 'तुम' का सम्बन्ध कारकका रूप।

तुम्हें (हिं० सर्व०) तुमको।

तुरंज (फा० पु०) १ चकोतरा नीबू। २ तिजौरा नीबू। ३ पान या कलगीके आकारका बूटा जो अंगरखोंके मोढों और पीठ पर तथा दुशालेके कोनों पर बनाया जाता है।

तुरंजबीन (फा० स्त्री०) खुरासान देशमें होनेवाली एक प्रकारकी चीनी। यह ऊंटकटारेके पौधों पर ओसके साथ जमती है।

तुरंत (हिं० वि०) अत्यन्त शीघ्र, झटपट, फौरन।

तुरंता (हिं० पु०) गांजा।

तुर (सं० त्रि०) तुर-क। वेगविशिष्ट, वेगवान्, जल्दी चलनेवाला।

तुर (हिं० पु०) १ जुलाहेकी वह लकड़ी जिस पर वे

कपड़ा बुनकर लपेटते जाते हैं। २ वह बेलन जिस पर गोटा बुन कर लपेटते जाते हैं।

तुरई (हिं॰ स्त्री॰) १ एक प्रकारकी बेल। इसके लम्बे फलोंकी तरकारी बनाई जाती है। 'तुरही' देखो।

तुरक (हिं॰ पु॰) तुर्क देखो।

तुरकटा (फा॰ पु॰) मुसलमान। यह घृणासूचक शब्द है।

तुरकाना (हिं॰ पु॰) १ तुर्कों जैसा। २ तुर्कोंका देश या बस्ती।

तुरकानी (फा॰ वि॰) १ तुर्कोंकी जैसी (स्त्री॰) २ तुर्ककी स्त्री।

तुरकिन (फा॰ स्त्री॰) १ तुर्ककी स्त्री। २ तुर्कजातिकी स्त्री।

तुरकिस्तान (सं॰ पु॰) तुरुष्क देखो।

तुरकी (फा॰ वि॰) १ तुर्क देशका। २ तुर्क देश सम्बन्धी। (फा॰ स्त्री॰) तुर्किस्तानकी भाषा।

तुरग (सं॰ पु॰-स्त्री) तुरेण वेगेन गच्छति गम-ड। १ घोटक, घोड़ा। २ चित्त। (त्रि॰) ३ शीघ्रगामी, तेज चलनेवाला।

तुरगगन्धा (सं॰ स्त्री॰) तुरगस्येव गन्धो यस्याः बहुव्री॰। १ अश्वगन्धा, असगंध।

तुरगदानव (सं॰ पु॰) तुरगाकारः दानवः मध्यलो॰ कर्मधा॰। केशी नामक दैत्य। यह दैत्य कंसकी आज्ञासे कृष्णको मारनेके लिये वृन्दावनमें घोड़ेका रूप बना कर रहता था। इसके अत्याचरसे वह स्थान जनप्राणिशून्य हो गया। दुरात्मा तुरगवेशी दैत्य गोपोंको मारने लगा। यहां तक कि उसके डरसे समस्त वन कम्पित हो उठा। कोई भी दूसरी बार वन जानेका साहस न करता था। एक दिन वह दैत्य काल-प्रेरित हो घोषपल्लीमें प्रविष्ट हुआ। उसे देख घोषविष्टने भयभीत हो श्रीकृष्णकी शरण ली। केशी भी ऊपरको मुख किये, आंख फैलाये, दांत दिखलाते, और बहुत जोरसे गरजते हुए कृष्णकी ओर अग्रसर हुए। बहुत देर बाद कृष्णने उसे मार डाला। (हरिवं ८० अ॰)

तुरगप्रिय (सं॰ पु॰) तुरगाणां प्रियः, ६-तत्। यव, जौ।

तुरगब्रह्मचर्य (सं॰ क्ली॰) तुरगस्येव ब्रह्मचर्यं ततः स्वार्थे कन्। स्त्रीके अभाव हेतु अङ्गनात्याग रूप ब्रह्मचर्यभेद; वह ब्रह्मचर्य जो केवल स्त्रीके न मिलनेके कारण हो हो।

तुरगमेध (सं॰ पु॰) तुरगेण मेधः ६-तत्। अश्वरचक, वह जो घोड़ेकी रचा करता हो।

तुरगरचक (सं॰ पु॰) तुरगस्य रचकः ६-तत्। अश्वरचक। (वृहत्स॰ १५।२६)

तुरगलीलक (सं॰ पु॰) सङ्गीतका तालविशेष, सङ्गीतदामोदरके अनुसार एक तालका नाम।

तुरगातु (सं॰ त्रि॰) तुरेण गातुः, गम वेदे गतु। १ शीघ्रगमनकारक, जल्दी चलनेवाला। (क्ली॰) तूर्णं गमन, जल्दी जानेकी क्रिया।

तुरगानन (सं॰ पु॰) तुरगस्य आननमिव आननमस्य। किन्नरभेद, एक प्रकारके देवता, जिनका मुख घोड़ेके जैसा और शेष अङ्ग मनुष्य जैसा हो।

तुरगारोह (सं॰ पु॰) अश्वारोही, घुड़सवार।

तुरगिन् (सं॰ त्रि॰) तुरग वाहनत्वेनास्त्यस्य इनि। अश्वारोही, घुड़सवार।

तुरगी (सं॰ स्त्री॰) तुरगवत् गन्धोऽस्त्यस्य, अर्श आदित्वात् अच ततो ङीष्। १ अश्वगन्धा, असगंधा। २ अश्वी, घोड़ी।

तुरगीय (सं॰ पु॰ स्त्री॰) अश्वसम्बन्धीय।

तुरगुला (हिं॰ पु॰) कर्णफूल नामक कानके गहनेमें लटकाये जानेका लटकन, झुमक, लोलक।

तुरगोपचारक (सं॰ पु॰) अश्वसादी, घुड़सवार। शनिके अश्विनीनक्षत्रमें विचरण करनेसे घोड़ा, घुड़सवार, कवि, वैद्य और अमात्योंकी हानि होती है। (वृहत्सं॰ १०।३)

तुरङ्ग (सं॰ पु॰-स्त्री॰) तुरेण गच्छति तुर-गम-खच् वा डिच्च। १ घोटक, घोड़ा। (क्ली॰) २ चित्त। ३ सैन्धव-नमक। ४ सातकी संख्या। (त्रि॰) शीघ्रगामी, जल्दी चलनेवाला।

तुरङ्गक (सं॰ पु॰) तुरङ्ग इव कायति कै-क। १ हस्तिघोषातकी, बड़ी तोरई। स्वार्थे कन्। २ घोटक, घोड़ा।

तुरङ्गगन्धा (सं॰ स्त्री॰) तुरगगन्धा देखो।

तुरङ्गगौड़ (सं॰ पु॰) गौड़रागका एक भेद। यह वीर या रौद्र रसका राग है।

तुरङ्गद्वेषिणी (सं॰ स्त्री॰) तुरङ्गो द्विष्यतेऽनया तुरङ्गद्विष-वाहु॰ क्यु ङीप्। महिषी, भैंस।

तुरङ्गप्रिय (सं॰ पु॰) तुरङ्गस्य प्रियः, ६ तत्। यव, जौ।

तुरङ्गम (सं॰ पु॰-स्त्री॰) तुरं गच्छति गम्-खच्-मुम्। १ घोटक, घोड़ा। २ चित्त। ३ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें दो नगण और दो गुरु होते हैं। (त्रि॰) ४ शीघ्रगामी, जल्दी चलनेवाला।

तुरङ्गमशाला (सं॰ स्त्री॰) तुरङ्गमस्य शाला गृहं, ६-तत्। अश्वशाला, घुड़सार।

तुरङ्गमेध (सं॰ पु॰) अश्वमेध।

तुरङ्गवक्त्र (सं॰ पु॰) तुरङ्गस्येव वक्त्रमस्य। अश्वमुखाकार किन्नरभेद, घोड़ेकासा मुखवाला किन्नर।

तुरङ्गवदन (सं॰ पु॰) तुरङ्गस्येव वदनमस्य। अश्वमुखाकार किन्नरभेद, घोड़ेकासा मुंहवाला किन्नर।

तुरङ्गारि (सं॰ पु॰) तुरङ्गस्य अरिः ६-तत्। १ करवीर, कनेर। २ महिष, भैंस।

तुरङ्गिका (सं॰ स्त्री॰) तुरङ्गवत् आकारोऽस्त्यस्याः। तुरङ्ग-ठन्। देवदाली लता, घघरबेल।

तुरङ्गिन् (सं॰ त्रि॰) तुरङ्गे वाहनत्वेन अस्त्यस्य। तुरङ्ग-इन्। अश्वारोही, घुड़सवार।

तुरङ्गी (सं॰ स्त्री॰) तुरङ्गस्तत् गन्धोऽस्त्यस्याः अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ अश्वगन्धा, असगन्ध। जातौ ङीष्। २ अश्वी, घोड़ी।

तुरण (सं॰ क्ली॰) तुर भावे क्यु। क्षिप्र गमन, जल्दीसे जानेकी क्रिया।

तुरण्य (सं॰ पु॰) तुरण्य कण्वादित्वात् भावे घञ्। त्वरा, शीघ्र।

तुरण्यसद् (सं॰ त्रि॰) तुरण्य-सद-क्विप्। जो बहुत थक जाते हों।

तुरत (हिं॰ अव्य॰) तत्क्षण, शीघ्र, चटपट।

तुरत—हिन्दीके एक कवि। ये १७५४ ई॰में विद्यमान थे। सुजानचरित्रमें इनका नाम आया है।

तुरपई (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी सिलाई।

तुरपन (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी सिलाई। इसमें जोड़ोंको पहले लम्बाईके बल टांके डाल कर मिला लेते हैं, फिर निकले हुए छोरको मोड़ कर तिरछे टांकोंसे जमा देते हैं। लुढ़ियावन।

तुरपवाना (हिं॰ क्रि॰) तुरपाना, तुरपानेका काम दूसरेसे कराना।

तुरपाना (हिं॰ क्रि॰)) तुरपवाना देखो।

तुरपना (हिं॰ क्रि॰) लुठियाना।

तुरम् (सं॰ अव्य॰) तुर अमु। त्वरा, जल्दी।

तुरम (हिं॰ पु॰) तुरही।

तुरमती (हिं॰ स्त्री॰) एक चिड़िया जो बाज की तरह शिकार करती है। इसका आकार बाजसे छोटा होता है।

तुरमनी (हिं॰ स्त्री॰) नारियल रेतनेकी रेती।

तुरया (सं॰ त्रि॰) तूर्ण, शीघ्र, जल्द।

तुरस् (सं॰ क्ली॰) त्वरा, शीघ्र।

तुरस्पेय (सं॰ क्ली॰) तुरस-पा-यत्। तूर्णपेय।

तुरही (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका बाजा जो मुंहसे फूंक कर बजाया जाता है।

तुरा—आसामके गारोहिल जिलेका एक शहर। यह अक्षा॰ २५° ३१' उ॰ और देशा ९०° १४' पू॰में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १३७५ है। यहांकी आबहवा गरम और अस्वास्थ्यकर है। यहां एक छोटा कारागार और एक अस्पताल है।

तुराब—एक प्रसिद्ध हिन्दी कवि। इनकी रसपक्षकी कविता सराहनीय है। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

"आयोरी आयो बसन्त सुहावन।
आवोरी सखियां सब हिलमिलके नए नए रंगसों बसन रंगावन।
नई बहार नई ऋतु लागी नई नई नई छबिसों पियाको रिझावन।
अबकी बसन्त पिया आगनमें आयो मो घर फाग मचावन॥
भई तुराब पिय की कृपा काहे न होरीकी धूम मचावन॥"

तुरायण (सं॰ क्ली॰) तुर-क, तस्य अपत्यं। १ असङ्ग। २ यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ जो चैत्र शुक्ला पञ्चमी और वैशाख शुक्ला ५मीको होता है। ३ परायण, आसक्त, लीनता।

तुरावत् (हिं॰ वि॰) वेगयुक्त, वेगवाला।

तुरावती (हिं॰ वि॰) वेगवाली, झोंकके साथ बहनेवाली।

तुरावान् (हिं॰ वि॰) तुरावत देखो।

तुराषाट् (सं॰ पु॰) इन्द्र।

तुरासाह् (सं॰ पु॰) तुरं त्वरितं साहयति सह-णिच्-

क्विप्। अन्येषामपि दृश्यन्ते इति सूत्रेण दीर्घः। इन्द्र। तुरादि शब्दके बाद सह धातुका जब षाढ़ रूप होगा तभी सह धातुका स षत्व होगा, षाढ़ रूप नहीं होनेसे नहीं होगा। तुराषाट्, जनाषाट्, प्रभृतिका स षत्व हुआ, किन्तु त्वरासाह्, जनासाह प्रभृतिका स षत्व नहीं हुआ।

तुरि—एक युद्धप्रिय जाति। अफगानिस्तानके निकटवर्ती कुरम नदीके किनारे इस जातिका वास है। इन लोगोंमें ५५०० योद्धा हैं। ये लोग दूसरी दूसरी जातिके साथ मिल कर मोरञ्जाइ उपत्यकामें बहुत उत्पात मचाते हैं। यह अंगरेज-द्वेषी हैं और सर्वदा अंगरेजाधिकृत कोहाट जिलेमें लूट-पाट किया करते हैं तथा दूसरी जातिको भी अङ्गरेजोंके विरुद्ध उत्तेजित करते हैं। १८५३ ई०में कप्तान कोकने एक दल तुरि विद्रोहियोंको, जब वे नमकको खान खोदने जा रहे थे, पकड़ा था। १८५४ ई०में दोनोंमें सन्धि हो गई, लेकिन थोड़े समयके बाद २००० तुरियोंने मोरञ्जाइ पर आक्रमण कर सन्धि तोड़ दी। काबुल-युद्धमें (१८७८--८० ई०में) इन्होंने कोई उपद्रव नहीं किया था।

दाउदपुत्र, विजनोट, नोक, लोकायेट, उदुर आदि स्थानोंमें एक दल तुरि वास करता है। ये लोग अपने ऊंटको किराये पर देते हैं किन्तु बाउरी और खेङ्गारोंकी नाईं चोरीमें प्रवृत्त होनेके कारण ये लोग शैतानके वंशधर तथा भूत-प्रेत कहलाते हैं।

तुरि (सं० स्त्री०) तुर-इन्। तन्तुवायका काष्ठादिनिर्मित वयन-साधन, जुलाहोंका काठका बना हुआ तोड़िया नामका औजार।

तुरी (सं० स्त्री०) तुरि-ङीप्। १ तुरि, जुलाहोंका तोरिया या तोड़िया नामका यन्त्र। पर्याय—तन्त्रकाष्ठ, तुली, तुलि। २ जुलाहोंकी कूची, हत्थी। (त्रि०) ३ त्वरायुक्त, वेगवाली।

तुरी (हिं० स्त्री०) १ घोड़ी। २ बाग, लगाम। (पु०) ३ अश्वारोही, सवार। (अ० स्त्री०) ४ फूलोंका गुच्छा। ५ मोतीकी लड़ोंका झब्बा जो पगड़ीमें कानके पास लटकाया जाता है।

तुरीय (सं त्रि०) तुरीय अच् चतुर्णां पूरणः चतुर छ; आद्यलोपश्च। १ गतियुक्त, जिसमें चाल हो। २ चतुर्थका पूरण, चौथा। ३ तारक, तारण वा उद्धार करनेवाला। (पु०) ४ चतुर्थी वैखरीरूप वाक्।

वेदमें वाणी वा वाक्के चार भाग किये गये हैं,—परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी। वैखरी वाक्यका नाम तुरीय हैं। नादात्मक वाणी मूलाधारसे उठी है। इसका निरूपण नहीं हो सकता। इसीसे इसका नाम परावाक् हुआ। परावाक्को योगी लोग ही जान सकते हैं, इस कारण इसे पश्यन्तिवाक् कहते हैं। फिर जब वाणी बुद्धिगत हो कर बोलनेकी इच्छा उत्पन्न करती है, तब उसे मध्यमा कहते हैं। अन्तमें जब वाणी मुखमें आ कर उच्चारित होती है, तब उसे वैखरी या तुरीय कहते हैं। इनमेंसे परादि तीन वाक्य हृदयके अन्तवर्त्तित्वके लिए भीतर रक्खे गये और चौथे तुरी वाक्य सब कोई उच्चारण करने लगे। (ऋक् १।१६४।४५ सायण)

५ सर्वाधारभूत अनुपहित चैतन्य परब्रह्म।

वेदान्तसारमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—वन वा तत्स्थ आकाश और वृक्ष वा तत्स्थित आकाश एवं जलाशय वा तद्गत प्रतिबिम्बस्थित आकाशादिका आश्रयरूप अनुपहित महाकाशकी नाईं यह समष्टि, व्यष्टि, अज्ञान, और तदुपहित चैतन्योंका आधार जो अनुपहित चैतन्य है, उसे तुरीय ब्रह्मचैतन्य कहते हैं। इस विषयमें श्रुति प्रमाण इस प्रकार है - मङ्गलस्वरूप अद्वितीय चैतन्यको चौथा मानते हैं। वे ही आत्मा हैं, वे ही अभिन्नविज्ञेय हैं। जिस तरह दग्ध लौहपिण्डके साथ अभिन्नरूप अग्नि "अयो दहति" इस वाक्यका वाच्य है, लौहपिण्डभिन्नरूपमें उसका लक्ष्य कहते हैं, उसी तरह यह समष्टि, व्यष्टि, अज्ञान, और तदुपहित चैतन्यके साथ अभिन्नरूप यह तुरीय चैतन्य "तत्त्वमसि" इत्यादि महावाक्यका वाच्य और भिन्नरूपमें महावाक्यका लक्ष्य होता है।

तुरीयक (सं० पु०) तुरीय स्वार्थे क। चतुर्थ, चौथा।

तुरीयन्त्र (सं० पु०) सूर्यकी गति जाननेका एक यन्त्र।

तुरीयवर्ण (सं० पु०) तुरीयः वर्णः कर्मधा०। चतुर्थ वर्ण, शूद्र।

तुरुप (हिं० पु०) ताशका एक खेल। इसमें कोई एक रंग प्रधान मान लिया जाता है। इस रङ्गका छोटेसे छोटा पत्ता भी दूसरे रङ्गके बड़ेसे बड़े पत्तेको मार सकता है।

तुरुपना (हिं॰ क्रि॰) तुरपना देखो।

तुरुवनूर—महिसुरके चितलद्रुग जिलेके अन्तर्गत चितलद्रुग तालुकका एक शहर। यह अक्षा॰ १४° २४' उ॰ और देशा॰ ७६° २६' पू॰ चितलद्रुग शहरसे ११ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ५०३५ है। यहां सूती कपड़ा और कम्बल तैयार होता है। १८९८ ई॰में म्युनिसिपलिटी स्थापित हुई है।

तुरुष्क (तुर्की)—एशिया और यूरोपके अन्तर्गत एक देशका नाम। यह देश प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है एशियाक तुरुष्क और यूरोपीय तुरुष्क। इन दोनोंमेंसे एशियाक तुरुष्क ही बड़ा है। एशियाक तुरुष्क ही एशियाका पश्चिमान्त देश है। इसके उत्तरमें कृष्णसागर और एशियाक रूषिया, पूर्वमें पारस्य, दक्षिणमें अरब और भूमध्य-सागर तथा पश्चिममें भूमध्य-सागर है। आकारमें यह देश भारतवर्षसे आधा है। इस प्रदेशमें निम्नलिखित प्रदेश लगते हैं—एशिया-माइनर, सिरीया, आर्मेनियाके कई अंश, कुर्दिस्तान, अल जेजिराह वा मेसोपोटेमिया, ईराक अरबी (वा कालदिया) और अरबिस्तान (वा तुरुष्काधिकृतअरब)।

वामनपुराणमें भारतवर्षकी उत्तरसीमा जिस तुरुष्क देशका उल्लेख है, वह तुरुष्क नहीं है, वह अभी तुर्किस्तान नामसे मशहूर है।

एशिया-माइनर (छोटा एशिया—यह एक बड़ा उपद्वीप है और कृष्ण-सागर तथा भूमध्य-सागरके बीचमें अवस्थित है। इसके अभ्यन्तर-भागमें ऊंची मालभूमि है। इस प्रदेशकी प्रधान नदियां किजिल-इर्माक (लोहितनदी इसका प्राचीन नाम हालिज है) और सकेरिया कृष्णसागरमें जा गिरी हैं। मियन्दर, हरमूज और सराबत नदियां लिवण्ट उपसागरमें गिरी हैं। अङ्गोरा नामक स्थानमें लोमश छाग पाया जाता है। इसके रोएँसे इस देशमें शाल बनता है। यह प्रदेश पुनः पश्चिममें आनातोलिया, मध्यस्थलमें कारामानिया, उत्तरपूर्वमें तुरूम वा शिवस इन कई एक भागोंमें विभक्त है। स्मारना इस देशमें सबसे बड़ा शहर और वाणिज्य स्थान है। स्कुटारि, अङ्गोरा, सिनोपि, त्रिबिजन्द, कोनेह, (प्राचीन नाम आइकोनियम), शिवस प्रभृति नगर प्रधान हैं। इसके पश्चिमस्थ वेबा अन्तरीप ही एशियाके सर्वपश्चिम अन्तरीप है।

सिरीया एशिया माइनरके दक्षिण तथा अरबके उत्तरमें अवस्थित है। ईसाइयोंका पवित्र स्थान पलेस्टाइन इसी सिरीयाके मध्य पड़ता है। यही इस प्रदेशका पश्चिम विभाग है। जेरुसलेम इसका प्रधान नगर है। वेथलेहम शहरमें यीशुका जन्म हुआ था। सिरीयाकी राजधानी अलेपो है। अन्तिअक वा आन्ताकिया, सैदा (प्राचीन सिदोन) तायर, एकर, जायफा, गाजा प्रभृति कई एक विख्यात शहर हैं।

आर्मेनिया प्रदेश कृष्णसागरके दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। इसका समस्त भाग पहले तुरुष्कके अधिकारमें था, पीछे रूस-तुरुष्क युद्धके बाद इसका पूर्वांश रूसराजाको अर्पण किया गया। इसके पूर्वमें आरारट पर्वत, पारस्य, रूस और तुरुष्क इन तीन बड़े साम्राज्योंके सीमास्वरूप दण्डायमान है। इसकी शिखर डेढ़ कोस तक वर्फसे ढकी है। इस प्रदेशमें युफ्रेतिस नदी दक्षिणकी ओर कुर और अरस पूर्वकी ओर जा कास्पीय ह्रदमें गिरती है। आर्जरूम इसकी राजधानी है और भाननगर भानह्रदके किनारे अवस्थित है।

कुर्दिस्तानका प्राचीन नाम असीरीया है। यह प्रदेश आर्मेनियाके दक्षिण ताइग्रीस नदीके उत्तरमें पड़ता है। यहांके लोग कुर्द नामसे प्रसिद्ध हैं। ये कृषिजीवी हैं, किन्तु दस्युव्यवसायी और भयानकस्वभाव हैं। इन लोगोंका धर्म मुसलमानधर्म है सही, किन्तु उसमें प्रेतकी उपासना और अग्निकी उपासना मिश्रित हैं। यहां ताइग्रीसके किनारे प्राचीन नगर निनेभीका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

अल-जी-जिरहका प्राचीन नाम मेसोपोटेमिया है। यह कुर्दिस्तानके दक्षिण ताइग्रीस और युफ्रेतिस इन दो नदियोंके बीचमें अवस्थित है। ताइग्रीसके किनारे मोजल नगर इसकी राजधानी है। यहां प्राचीन कालमें बहुत महीन कपड़ा तैयार होता था जिसे मजलिन (मसलिन) कहते थे।

ईराक-अरबी प्रदेशका प्राचीन नाम कालदिया या बाबिलोनिया है। यह पारस्य-सागर निकट अवस्थित है। पहले यह प्रदेश बहुत उर्वर था। किन्तु अभी इसका अधिकांश मरुभूमि हो गया है। बागदाद नगर

इसकी राजधानी है इसी नगरमें पहले खलीफाओंकी राजधानी थी। युफ्रेतिसके किनारे प्राचीन नगर बाबिलनके ध्वंसावशेषके मध्य वर्त्तमान हिल्लेह नगर अब स्थित है। युफ्रेतिस और ताइग्रीस नदीने इस प्रदेशमें मिलकर साट अल्-अरब नाम धारण किया है। इस युक्त-नदीके किनारे बसोरा वा बज़रा नगर अवस्थित है। इस नगरका वाणिज्य बहुत फैला हुआ है। यहांका गुलाबका फूल बहुत उमदा होता है।

यूरोपीय तुरुष्क—इसके उत्तरमें अष्ट्रिया, सर्भिया और रुमानिया, पूर्वमें कृष्णसागर, दक्षिणमें इजियन-सागर और ग्रीस तथा पश्चिममें आड्रियाटिक सागर है। डानियूब नदी उत्तरमें शाखा प्रशाखाओंके साथ संपूर्ण देशमें बहती हुई कृष्णसागरमें गिरी है। दक्षिणांशमें बहुत सी छोटी नदियां हैं। इस देशका जलवायु स्वास्थ्यकर और साधारणतः न अधिक उष्ण और न शीत है। किन्तु समय समय पर बहुत ग्रीष्म और शीत पड़ता है। यूरोपीय तुरुष्कमें निम्नलिखित कई एक प्रदेश लगते हैं—रूमेनिया, पूर्व-रूमेनिया अलबानिया और बुलगेरिया।

कनस्तान्तिनोपल वा इस्ताम्बुल शहर तुरुष्क साम्राज्यकी राजधानी है। यह नगर बसफरसके किनारे अवस्थित है। नगर देखनेमें बहुत सुन्दर लगता है। अट्टालिकायें प्रायः नहीं हैं। अधिकांश घर काठके बने हुए हैं। रास्ते बहुत तंग और गलीज़ हैं। कलकत्तेकी अपेक्षा यह शहर छोटा है।

गलिपोली शहर दर्दनेलिस प्रणालीके किनारे अवस्थित है। यह शहर तुरुष्क-राज्यके नौ-सेनाके रहनेका प्रधान अड्डा है। एड्रियानोपलमें (रोमके सम्राट् एड्रियन द्वारा प्रतिष्ठित) तुर्कोंकी प्राचीन राजधानी थी। यही राज्यका दूसरा शहर है। सलोनिका (प्राचीन थेसालोनिका) दूसरा बन्दर है।

बुलगेरिया प्रदेशमें बुलगेरिया और स्कुमला, बलकान पर्वतकी घाटी पर अवस्थित हैं। यह सुदृढ़ दुर्गसे घिरा हुआ है। वर्णा कृष्णसागरके किनारे एक बन्दर है। सिलिष्ट्रीया, त्रिनोमा और सोफिया (बुलगेरियाकी राजधानी) तथा और भी कई एक प्रधान नगर हैं।

अरबिस्तान वा तुरुष्काधिकृत अरब प्रदेश-इसका क्षेत्रफल १ लाख ४० हजार वर्गमील है। बोगदाद ही इसकी राजधानी है। शासनविभागके अनुसार कुर्दिस्तानके कई अंश इसके अन्तर्गत हैं। मेसोपोटेमिया भी इसके अधीन है। अंगरेज लोग इष्ट-इण्डिया-कम्पनीके नामसे जब भारतवर्षमें आये थे, तभीसे इस प्रदेशके साथ उनका सम्बन्ध चला आता है। उस समय बसोरामें उनकी एक कोठी थी और बन्दर अब्बास नामक स्थानमें उनके एक एजेंट रहते थे। १८३३ ई०में इस एजेंटकी राजनीतिक क्षमता बोगदादके अंगरेज-प्रतिनिधिके हाथ चली गई है।

यूरोपीय तुरुष्कके अधिकांश स्थल ही पर्वताकीर्ण हैं। बलकान् पर्वत अभी यद्यपि रूसके अधीन है, तोभी इसके गिरिपथ तुरुष्कके काममें आते हैं। यहांके खनिजोंमेंसे लोहा ही अधिक है, इसके अलावा चांदी मिला हुआ सीसा, ताँबा, गन्धक, नमक, फिटकरी और कोयला भी पाया जाता है।

यूरोपीय तुरुष्कमें ७६८ मील और एशियाक तुरुष्कमें केवल ५०० मील तक रेल लाइन गई है।

यूरोपीय और एशियाक तुरुष्कके अधीन अफ्रिकामें कई एक देश हैं। ये सब मिल कर यूरोपमें तुरुष्क साम्राज्य वा अटोमान-साम्राज्य कहलाता है। तुरुष्क साम्राज्य एक समय समस्त दक्षिण-यूरोप तथा उत्तर-आफ्रिका तक फैला हुआ था। रूस-तुरुष्कयुद्धके बाद अभी तुरुष्क साम्राज्यके अधीन अफ्रिकामें त्रिपली, बार्का, मिशर और एशियामें एशियाक तुरुष्क तथा तुरुष्काधिकृत अरब मात्र रह गया है।

तुरुष्कमें तुर्की, यहूदी और ग्रीकचर्चके ईसाई तथा अन्यान्य श्रेणीके लोग भी वास करते हैं।

तुरुष्कमें इस्लामधर्म प्रधान है। सम्राट् भी मुसलमान थे। अबसे कुछ पहले यहांके सम्राट्का नाम सुलतान अबदुल हमीद (२य) था। इनका जन्म १८४२ ई०में हुआ था। ये १८७६ ई०में राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त हुए थे। अब साधारणतन्त्र प्रचलित हुआ है।

राज्यकी शासनप्रणाली—तुरुष्कके सुलतान स्वेच्छाचारी राजा थे। उनकी इच्छामें कोई भी बाधा नहीं हो सकती है। आइन देशकी प्रचलित प्रथा वा प्रजाकी

अभिप्राय इनमेंसे कोई भी उन्हें किसी कामके लिए बाध्य नहीं कर सकता; किन्तु कुरानके मतानुसार उन्हें चलना पड़ता है। कुरानके अनुसार उनको विधि निषेध करनेके लिये उनकी एक पण्डित-सभा है। ये सब पण्डित अच्छी तरह कुरान जानते हैं और वे 'उलमा' नामसे पुकारे जाते हैं। पण्डितसभाके सभापतिको सेख-उल्-इसलाम तथा मुख्यपात्रको मुफ्ती कहते हैं। इस सभामें धर्म-सम्बन्धीय, राजनीतिक, फौजदारी, दीवानी और सामरिक विषयकी मीमांसा कुरानके मतानुसार की जाती है। इसके सिवा और भी कई प्रकारकी आईन हैं। कुरानके अनुसार जो सब विधि राज्यारम्भके समयसे आज तक पण्डित-सभा तथा सुलतान द्वारा चलाई गई हैं, वे ही 'कानून-नामी' नामसे चली आ रही हैं। युद्ध-सन्ध-विग्रहके विषयमें सुलतान अकेले कुछ नहीं कर सकते, उन्हें पण्डितसभाका मत लेना पड़ता है।

राजसभाका सम्मानकर पद दो प्रकारका है -- विद्याका सम्मान और अस्त्रका सम्मान। विद्याका सम्मान तीन प्रकारका है -- रिजाल, खाजा और आगा। राजाकी मन्त्रि-सभाके सदस्य 'रिजाल' कहाते हैं। इन लोगोंके मुखपात्र स्वयं प्रधान वजीर हैं। इनके कर्यावि (राजधानीस्थ सब विभागोंके विभिन्न मन्त्रिगण), रईस-एफेन्दि (विदेशी मन्त्रिदल), चाउश-बाशी (शासन-परिचालक मन्त्री और प्रधान कर्मचारिदल) प्रधान हैं। राजस्व-विभागके प्रधान कर्मचारी 'खाजा' कहलाते हैं। पहले, दूसरे और तीसरे प्रधान कर्मचारी दफ़रदार नामसे पुकारे जाते हैं। निशानजी-वाशी (सुलतानके मोहर-रक्षक) और दफ्तर अमीनी (राजस्व-विभागका परिदर्शक) इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं। इनकी मन्त्रि-सभाके सदस्य भी वज़ीर कहलाते हैं। वज़ीर-मण्डलीका नाम 'दीवान' है। अनेक तरहके दीवानी और सामरिक कर्मचारी 'आगा' नामसे मशहूर हैं। इनमेंसे "बसस्तनजी बाशी" (अन्तःपुरोद्यानरक्षीके अध्यक्ष) तोपजी बाशी 'तोपखाना गोला गोली, बारूद और तोपोंके अध्यक्ष', मीरी-आलम (महम्मदका चिह्नयुक्त पताका-वाहक) प्रभृति श्रेष्ठ हैं।

सामरिक सम्मान भी तीन प्रकारका है—मन्त्री, पाशा वे-गण। वज़ीर तीन चिह्नधारी पाशा हैं, प्रादेशिक शासनकर्त्ता दो चिह्नधारी पाशा और वे-गण एक चिह्नधारी हैं। वे-गण पाशा नहीं कहलाते। युद्धके सेनापति भी वजीरोंकी नांई तीन चिह्नधारी हैं, इन्हें 'शिरस्कर' कहते हैं।

सम्पूर्ण साम्राज्य कईएक प्रदेशोंमें विभक्त है। प्रत्येक विभागमें एक पाशा शासनकर्त्ता हैं, जिन्हें 'वाली' (प्रतिनिधि Viceroy) कहते है। वालीके अधीन रहनेके कारण प्रत्येकको 'वालियत' कहते हैं। प्रत्येक वालियत पुनः कई एक समजक वा लिवामें विभक्त है। प्रत्येक लिवामें एक 'काय-मकान' (सहकारी प्रतिनिधि वा Lieutenent Governors) हैं। प्रत्येक लिवा भी पुनः कई एक करजा (जिला) में विभक्त हैं। प्रत्यक करजा फिर कईएक 'नहिज' (परगना वा मण्डल वा चकला) में विभक्त है। वालियत और लिवाके शासनकर्त्ताकी उपाधि 'पाशा' है, काजा प्रभृतिके शासकोंकी उपाधि 'वे' है। पाशाके हाथमें सामरिक, दीवानी, फौजदारी और राजस्व-विभागका पूरा अधिकार है। पाशाका अधीनस्थ शासनकर्त्ताओंके ऊपर प्रभुत्व है सही, किन्तु वह केवल नाममात्रके लिये है।

यहांके अधिवासी प्रधानतः दो भागोंमें बंटे हैं—तुर्की और राया। मुसलमान लोग (तुर्की) कुर्द, अरबी, बोसनियावासी मुसलमान, आलबेनिवासी मुसलमान और प्राचीन एशियावासी मुसलमान) साधारणतः तुर्की कहलाते हैं। विधर्मी विदेशी मात्र ही 'राया' नामसे पुकारे जाते हैं।

इतिहास—ओसमान-लि-तुर्की एशियाकी तूरानीय जातिकी ही एक शाखा हैं। एशिया-माइनर, रुमेलिया, काजान प्रभृति स्थानोंके ये ही लोग प्रधान अधिवासी हैं। हिरोदोतसके ग्रन्थमें वर्त्तमान किउ शहरके दक्षिण-पश्चिममें 'इयूरकी' नामक एक जातिका उल्लेख है। इस जातिका वासस्थानका नाम उन्हींके ग्रन्थोंमें 'तुर्की' कह कर उल्लिखित है। प्लिनीने इसे 'तुर्की (Turk)' कहा है। यूरुक नामक एक श्रेणीकी भ्रमणशील आदिम जाति अब भी एशिया-माइनर तथा पारस्यमें रहती है। तुर्की और तुरुष्क

देशकी बात चौथी वा पांचवीं शताब्दीके प्रारम्भमें यूरोपमें विज्ञापित हुई। इसके कई सौ वर्ष पहले चीना लोग इस विषयका कुछ कुछ हाल जानते थे।

तुर्कोंके कई एक प्राचीन वंश-विभाग हैं—(१) ओघुज (२) सेलजुक और (३) ओसमान-ली।

(१) ओघुज—प्रवाद है, कि तुर्किस्तानमें (मध्य एशियाके तूरान देशमें) ओघुजखाँ नामके एक पराक्रान्त तुर्की नरपति रहते थे। उनके पिताका नाम कारा खाँ था। ओघुजखाँ इब्राहिमके समसामयिक थे। इनका राज्य इनके कईएक उत्तराधिकारियोंमें विभक्त हुआ। पूर्वाञ्चलमें तीन खाँओंने चीन तक अपना राज्य फैलाया और पश्चिमाञ्चलमें दूसरे तीनखाँओंने अक्षु और जकजर्तिस नदीके चारों ओर राज्य विस्तार किया था। इनमेंसे प्रथम खाँ पार्वतीय खाँ नामसे विख्यात थे। ये तुर्कमान (वर्तमान कास्पीयन-सागर-तीरवर्ती तुर्की) जातिके आदि पुरुष थे। द्वितीय खाँ सामुद्रिकखाँ नामसे मशहूर थे। ये ही सेलजुकोंके आदिपुरुष माने जाते हैं। तृतीय खाँ स्वर्गीय खाँ नामसे विख्यात थे। ये कायि जातिके आदि पुरुष रहे। इसी कायि जातिसे ओसमान-ली तुर्कोंकी उत्पत्ति हुई है। ओघुज लोग बहुत काल तक पारस्यके साथ लड़ाईमें उलझे रहनेके कारण ७११ ई०में अरबके साथ विद्रोहमें लिप्त हो गये। अरबोंने इस समय बुखार और समरकन्द जय किया। बुगराखाँ हारुनने ९९८ ई०में चीन तक अपना राज्य फैलाया। बाद अन्तर्विद्रोहसे सेलजुकोंने प्रबल हो कर इनका राज्य जीत लिया।

(२) सेलजुक—१० वीं शताब्दीके अन्तमें सेलजुकोंके अधिपति प्रबल हो उठे। इनके पौत्र तुघरिल बेग ११ वीं शताब्दीके मध्यभागमें एक स्वाधीन राजा थे। इस समय बोगदादमें खलीफा अलीकायम राज्य करते थे। उनके पुत्र बेसानिरि पितृ-राज्य जय करनेकी इच्छासे सेलजुकपति तुघरिलसे मारे गये। खलीफाने सेलजुकपतिको अपना रक्षक समझ कर उन्हें अमीरउल्-उमरा-ई (राजाधिराज)। की उपाधि दी, और उनकी बहनसे आपने विवाह किया तथा अपनी लड़कीसे उनका विवाह करा दिया।

१०६८ ई०में तुघरिल बेगका भतीजा अलप-आर्सलान राजा हुए और उन्होंने खलीफा कायमकी एक कन्याके साथ विवाह किया। उन्होंने पारस्यके उत्तर-पश्चिमांश, आर्मेनिया, जर्जिया, मेसोपोटेमिया और सिरीया आदि देशोंको फतह किया। १०७१ ई०में उन्होंने ग्रीक-सम्राट् रोमिनसको पराजित कर उन्हें कैद कर लिया। इनके पुत्र मालिकशाहने एशिया-माइनरका अधिकांश जय किया। इसके बाद १३० वर्ष तक इस वंशके राजा अत्यन्त पराक्रान्त रहे। इन्होंने पश्चिम एशियाके प्रायः समस्त भाग अधिकार कर लिये थे। सेलजुकोंके अन्तिम राजा द्वितीय अलाउद्दीन् १२०७ ई०में मुगलोंके हाथ विनष्ट हुए। इनके पीछे इनका राज्य कई एक सर्दारोंने आपसमें बांट लिया। तुर्किस्तान देखो। इन लोगोंके समयमें कोनि नगरमें राजधानी थी।

(३) ओसमान-ली—सुलेमान शाह कायि जातिके राजपुत्र थे। १३ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें वे खुरासानके अन्तर्गत महान् नामक स्थानमें राज्य करते थे। चङ्गेज खाँके भयसे वे १२३४ ई०में ५०००० लोगोंके साथ आर्मेनियाके मध्य आखलत और आरजेनजान नामक स्थानमें जा कर रहने लगे थे। ७ वर्ष पीछे कोन नगरके सेलजुक-राज अल-उद्दीन्के खुरासान और ख्वारिज्म अधिकार कर लेने पर वे पुनः स्वदेशको लौटे, किन्तु रास्तेमें जाबेर शहरके निकट यूफ्रेतिस नदी पार करते समय वे डूब मरे। उनके अनुयात्रियोंने वहाँ उनका एक समाधिमन्दिर निर्माण किया जो आज भी वर्तमान है। इन्हींके एक पुत्र अरतुघरिलने पश्चिम देशमें वास करनेके लिये कृतसंकल्प हो अलाउद्दीन सेलजुकोंकी अधीनता स्वीकार की और मुगलोंके साथ लड़ाईमें उन्हें सहायता पहुंचा कर उस युद्धमें जय लाभ की। इस पर अलाउद्दीनने सन्तुष्ट हो कर उन्हें अङ्गोरा प्रदेशकी जागीर दी और उन्हें सामन्तराज स्वीकार किया। इसके सिवा अरतुघरिलने अलाउद्दीन्को ग्रीक और मुगल-युद्धमें साहाय्य किया था। इस समय वे सेलजुक राज्यके पश्चिम सीमान्त-रक्षक कह कर सम्मानित हुए। १२८८ ई०में उनकी मृत्यु हुई। उन्हींके पुत्रका नाम ओसमान था।

(१२८८—१३२६) – ओसमानने राजा हो कर ग्रीकवासियोंके साथ लड़ाई करके उनके अनेक स्थान जीत लिये। सेलजुक-राज अलाउद्दीनकी मृत्यु होने पर ओसमानने एशिया-माइनरके बहुतसे छोटे छोटे राज्यों पर अपना प्रभुत्व जमाया। १० वर्ष पीछे इन्होंने ब्रुसा अधिकार किया। उन्हींके नामानुसार इस प्रदेशके कायि जातीय तुर्क लोग ओसमान-ली नामसे प्रसिद्ध हुए। १३२१ ई०में ओसमानली तुर्कोंने बसफोरस पार कर कनस्तान्तिनोपलके निकटवर्ती प्रदेश अधिकार किये, १३२६ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनके बड़े लड़के उर खाँ राजा हुए। ओसमान मरते समय उत्तरमें बिथिनिया, पूर्वमें गालासिया, दक्षिणमें फ्रिगिया और पश्चिममें सङ्गोरियस नदीके किनारे तक राज्यसीमा बढ़ा गये थे, यहींसे तुरुष्क साम्राज्यका सूत्रपात है। वर्तमान शेष सम्राट् इन्हींके वंशोद्भव हैं।

(१३२६—१३५०) – उर खाँने राजा हो कर अपने भाई अलाउद्दीनको प्रधान वजीरके पद पर नियुक्त किया। उर खाँने अपने नाम पर सिक्का चलाने तथा खुतबा पढ़नेका आदेश दिया। केवल इन्होंने ही स्वाधीनता अवलम्बन की। राज्यशासनके लिये इन्होंने जो कर्मचारी नियुक्त किये, आज तक उन्हीं पदों पर कर्मचारी नियुक्त होते आ रहे हैं। उनकी शासनप्रणाली अब भी प्रचलित है। इन्होंने भ्रातृविद्रोहकी आशङ्का करते हुए पहलेसे ही सतर्क रहनेके उद्देश्यसे एक नियमित सैन्यदल सङ्गठित किया। इस तरहकी सेना यूरोपमें पहले किसीने भी नियुक्त न की थी, इस काममें प्रधान विचारक कारा खलील चेन्देरेलीने उन्हें सलाह दी था। इस सैन्यदलको जेनिसेरी कहते थे। इसीसे वर्त्तमान तुरुष्कके जेनिसेरी (नवगठित सैन्यदल) शब्दकी उत्पत्ति हुई है। १३३० ई०में इसी सैन्यको ले कर फिलोक्रेनके युद्धमें सम्राट् उरखाँने अपने छोटे भाई आन्द्रनिकस्‌को पराजित किया। इस लड़ाईमें उन्होंने निकिया जीता और वहां राजधानी स्थापित की। छह वर्ष बाद (१३३६ ई०में) इन्होंने मिदिया दखल किया। १३३२ ई०में सम्राट् आन्द्रनिकसने एक सन्धि की जिसमें उन्होंने अपना एशियाका राज्य उर खाँको दे दिया। १३३७ ई०में स्वयं उरखाँने बसफरस पार कर ग्रीकराज्य पर आक्रमण किया। सम्राट् जन कण्टाकुजेनस्‌ने अपनी कन्या उरखाँको व्याह दी और (१३४६ ई०में) उन्हें शान्त करनेकी चेष्टा की, किन्तु कुछ फल न निकला। उरखाँके पुत्र सुलेमानने १३५४ ई०में दार्दानेलिस पार कर जिम्पि दुर्ग अधिकार किया। तुर्कोंका यूरोपमें यही सबसे पहला अधिकार था और तभीसे वह उसके हाथमें है। सम्राट् जन कण्टाकुजेनस और उनके एक दूसरे जामाता प्यालिओलोगसके बीच विद्रोह उपस्थित हुआ। उरखाँने दार्दानेलिसके द्वारा गलिपोलि दुर्ग पर आक्रमण और अधिकार किया। १३५९ की २५ वर्षकी उम्रमें उरखाँकी मृत्यु हुई। उनके मरनेके बाद उनका साम्राज्य कई भागोंमें बँट गया। प्रति विभागमें एक पाशा नामक राजा हुए। पारसीक "पय-शाह" शब्दसे पाशा शब्दकी उत्पत्ति है, जिसका अर्थ 'जो फारसके शाहकी प्रधानतः रक्षा करें' होता है।

(१३५९-१३८९)—उरखाँके बड़े लड़के सुलेमान घोड़ेसे गिर कर मर गये, सुतरां छोटे पुत्र मुराद राजा हुए। राजा होनेके साथ ही उन्होंने अवशिष्ट बाइजण्टाइन साम्राज्य अधिकार करनेका उद्योग किया। १३६१ ई०में उन्होंने आद्रियानोपल अधिकार किया और वहां राजधानी स्थापित की। हङ्गेरि, बोसनिया, सर्भिया और वालासियाके राजगण मुरादके विरुद्ध हो गये। किन्तु वे सबके सब तुर्कोंके हाथ से १३६३ ई०में पूर्णरूपसे पराजित हुए। इस युद्धमें थ्रेस, बुलगेरिया, माकिदोनिया, थेसाली और एपिरस तुर्कोंके हाथ लगी। १३८६ ई०में मुरादने कारामानियाके सेलजुकराज अलाउद्दीनको वशीभूत कर अपने अधीन राजाके जैसा स्वीकार किया। इतनेमें सर्भियाके राजा लाजारसने बोसनिया, बुलगेरिया, हङ्गेरी, पोलैण्ड और वालासियाके राजाओंकी सहायता पा कर तुर्कोंके विरुद्ध लड़ाई ठान दी। १३८९ ई०में सर्भियाके दक्षिण कोसोवा नामक स्थानमें मुरादके साथ लड़ाई छिड़ी। लड़ाईमें रक्तकी नदी बहने लगी। लाजारस कैद कर लिये गये। साहाय्यकारी राजगण भाग चले। प्रधान

प्रधान कैदी शिविरमें ही मुरादके सामने लाये गये।

मिलोश कोबिलेविच नामक सर्भियाके एक सेनापतिने मुरादके सामने साष्टाङ्ग दण्डवत् कर उनका पद चुम्बनादि किया और पीछे हठात् कमरसे एक तेज छुरी निकाल कर उनकी छातीमें भोंक दी। मुराद सिंहासनसे नीचे गिर पड़े और उसी समय सर्भियाके राजा लाजारसने अपने सेनापतिका शिर छेद डालनेकी आज्ञा दी। उनके सामने ही यह कार्य किया गया। मुरादके मरने पर उनके बड़े लड़के बयाजिद राजा हुए और उन्होंने सर्भियाको अपने राज्यमें मिला लिया।

(१३८९-१४०३)—बयाजिद मुरादके बड़े लड़के थे। इन्होंने ओसमान-लोमें सबसे पहले 'सुलतान'की उपाधि ग्रहण की। सिंहासन पर बैठनेके साथ ही उन्होंने पहले अपने छोटे भाई याकुबका सिर काट डालनेका आदेश दिया। १३९१ ई०में उन्होंने कनस्तान्तिनोपल पर आक्रमण किया। इस समय कईएक फ्रांसीसी वीरोंने नगरकी रक्षा की। पीछे सात वर्ष तक घेरा डाला गया। एशिया-माइनरमें बयाजिदने कारामानिया और कईएक सेलजुक राज्य जय किये। इस समय हङ्गरि-राज सिगिसमन्दने वार्गण्डी-पति जन, नेभाके काउण्ट और चुने हुए फ्रांसीसी अश्वारोही योद्धाओंकी सहायतासे बयाजिद पर धावा किया। १३९६ ई०को निकिपोलिसमें घमसान लड़ाई हुई। युद्धमें बयाजिदकी ही जीत हुई। दूसरे वर्ष उन्होंने ग्रीकदेश पर आक्रमण किया, पीछे हङ्गरि जीतनेका संकल्प किया था, किन्तु तैमूरके अभ्युदय होने पर उन्होंने एशियाका अधिकार बचानेके लिये यात्रा की। अन्तमें १४०२ ई०की अङ्गोराकी लड़ाईमें वे तैमुरसे पराजित तथा बन्दी हुए। इसके दूसरे ही वर्ष पिसिदियाके आक-शहरमें तातार-शिविरमें उन्होंने प्राणत्याग किया।

(१४०३—१४१३)—अङ्गोराके युद्धके बाद तैमूरने कारामानिया, अइदिन प्रभृतिके सेलजुक राजकुमारोंको पुनः पैतृक राज्यमें स्थापित किया। किन्तु वे आपसमें लड़ने लगे। इधर ओसमानका सिंहासन लेकर सुलेमान, ईशा और महम्मद इन तीन पुत्रोंमें विवाद उपस्थित हुआ। अन्तमें सुलेमान यूरोपमें स्वाधीन हुए। ईशा और महम्मदने सेलजुकोंको परास्त कर पितृराज्य उद्धार करनेके बाद, ब्रुसामें ईशा और आमासियामें महम्मद स्वाधीन भावसे राज्य करने लगे। किन्तु महम्मदसे तीन बार परास्त हो कर ईशा कारामानियाको भाग गये। इसके बाद उनका नाम सदाके लिये लुप्त हो गया। बयाजिदके मूसा नामक और एक पुत्र थे। वे महम्मदके अधीन होनेसे सुलेमान पर आक्रमण करनेके लिये महम्मदद्वारा भेजे गये। १४१० ई०में सुलेमान परास्त हुए और रास्तेमें उनका देहान्त हुआ। मूसा यूरोपमें तुर्कोंके अधिपति हुए। इस समय मूसा और महम्मदमें लड़ाई छिड़ी। करापू नदीके उत्पत्तिस्थानके समीप चामूरला क्षेत्रमें १४१३ ई०को मूसा सम्पूर्णरूपसे पराजित हुए। सुतरां महम्मद अब एकमात्र सुलतान हुए।

(१४१३-१४२१)—रूपमें, गुणमें, शौर्यमें, वीर्यमें सब तरहसे महम्मद (१म)-ने ख्याति लाभ की। चामूरला क्षेत्रसे एशिया आकर उन्होंने सेलजुकोंको अपने अपने राज्योंसे भगा दिया। १४२१ ई०में वे कनस्तान्तिनोपलमें सम्राट मानुअलसे जा मिले। यहां बहुत समारोहसे सम्राट ने उनका स्वागत किया। इसी वर्ष महम्मद अपने पुत्र (२य) मुरादको राज्य सौंप कर परलोकको चल बसे।

(१४२१—१४५१)—१८वर्षमें महम्मदके तीसरे पुत्र (२य) मुराद राज्यसिंहासन पर बैठे। महम्मदको मृत्युके बाद ही मुस्तफा नामक बयाजिदके एक पुत्रने आ कर सिंहासनका दावा किया। मुरादने भिनिशके नौ-सेनापति अडरनोकी सहायतासे मुस्तफाको पराजय तथा विनष्ट किया। १४४२ ई०में हङ्गरीके राजाके साथ उनका युद्ध छिड़ा। युद्धमें बहुतसी तुरुष्क-सेना निहत हुई। अन्तमें सन्धि हो जानेसे सब गड़बड़ी जाती रही। मुराद शान्तिप्रिय थे। हङ्गरीके साथ सन्धि हो जाने पर वे ज्ञानचर्चाके लिये पुत्र महम्मदके ऊपर राज्य भार सौंप कर आप एशियाको चले गये। किन्तु सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर हो जानेके दश सप्ताह बाद मुरादने सुना, कि हङ्गरीकी सेना उनके राज्य पर आक्रमण करनेको आ रही है। उन्होंने बहुत जल्द ससैन्य आ कर हङ्गरीके राजाको परास्त किया। इस युद्धमें हङ्गरी-

राज और दूसरे कईएक प्रधान सामन्त मारे गये थे। इसके पीछे मुरादने पुनः एक बार अपने पुत्र पर राज्यभार अर्पण किया था ।

(१४५१ - १४८१)—२य मुरादके पुत्र महम्मद २१ वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इनके समयमें तुरुष्कराज्यकी क्षमता और समृद्धि बहुत बढ़ गई थी। इन्होंने १४५३ ई०को २८ वीं मईको कनस्तान्तिनोपल, सर्भिया, पिलपनिसस, त्रिविजन्द, काफा, क्रिमिया प्रभृति राज्य जय किये। ग्रीकोंकी जो कुछ स्वाधीनता बची थी, त्रिविजन्द जीते जानेके बाद वह भी विलुप्त हो गई। महम्मदके पराक्रमसे यूरोपीय राजन्यवर्ग तक भी भीत और विचलित हो गया था। धर्म, विज्ञान, आईन और अङ्कशास्त्र सिखानेके लिये इन्होंने नाना स्थानोंमें विद्यालय खोले थे ।

(१४८१—१५१२)—२य महम्मदकी मृत्युके बाद २य बयाजिद सिंहासन पर बैठे। किन्तु उनके भाई जेमने राज्य पानेके लिये गृहविवाद आरम्भ किया। कईएक युद्धके बाद जेम रोड्स-द्वीपको भाग गये; वहां फिर भी पकड़े जाने पर वे फ्रांसके राजाके निकट भेजे गये। वहांसे जेम पोपका आश्रय पानेके लिये रोम देशको गये। किन्तु इस बार उनकी आयु भी शेष हो गई।

इसके अलावा बाजिदके राजत्वकालमें इजिप्ट, भिनिश, हङ्गेरी, पोलैण्ड और अष्ट्रियामें युद्ध छिड़ा। इन्हींके समयमें १४८५ ई०को सबसे पहले रूस-दूत कनस्तान्तिनोपलमें पहुंचा। अन्तिम अवस्थामें बयाजिद अपने पुत्र सलीमके साथ गृहविप्लवमें व्यतिव्यस्त हो गये। अन्तमें वे सलीमको राज्य अर्पण कर निश्चिन्त हुए। १५१२ ई०में उनका प्राणान्त हुआ।

(१५१२—१५२०)—सलीम जैसे निष्ठुर थे. वैसे ही कार्यकुशल और वीर भी थे। उनका समय तुरुष्कके इतिहासमें बहुत प्रसिद्ध है। राजा होनेके बाद ही उन्होंने अपने छोटे भाई कोरकुद और पांच भतीजोंका प्राणनाश किया। पीछे १५१३ ई०में उन्होंने अपने दूसरे भाई अहमदको परास्त कर उनका प्राणसंहार किया। १५१४ ई०में पारस्यके साथ जो युद्ध हुआ, उसमें सलीम शाह इसमाइलको जीत कर तारनेबिज अधिकार किया। इसके थोड़े समय बाद ही उन्होंने आर्मेनियासे कोरामानिया तक भूभागके अधिपति अलाउद्दौलत् पर आक्रमण किया। अलाउद्दौलत् युद्धमें पराजित हुए। उनका विस्तीर्ण राज्य तुरुष्कके साम्राज्यभुक्त हुआ। पीछे १५१६-१७ ई०में उन्होंने इजिप्ट और सिरीया अधिकार किया। इस समय वे मुसलमान-समाजमें सबसे प्रधान गिने जाने लगे। मक्काके अधिकारीने सलीमके हाथ वहांकी चाभी सौंप दी। सलीम एक कट्टर सुन्नी थे। विद्वेषवश उन्होंने शिया मुसलमानोंको मार डालनेकी आज्ञा दी और जो ईसाई मुसलमान धर्म स्वीकार न करेंगे, उन्हें भी विनष्ट करनेकी इच्छा की, किन्तु उनके मन्त्रीने यह कह कर उन्हें रोक दिया, कि सब विधर्मी जिजियाकर दिया करते हैं, कुरानमें उन्हें विनाश करनेकी विधि नहीं है। १५२० ई०में अधिक अफीम खानेसे सलीमकी मृत्यु हुई।

(१५२०-१५६६)—सलीमके मरने पर उनके पुत्र सुलेमान राजगद्दी पर बैठे। ओसमान-लीके राजाओंमें ये अत्यन्त प्रबल पराक्रान्त थे। राजा होनेके साथ ही उसी वर्ष उन्होंने बेलग्रेड और रोड्स द्वीप अधिकार किया। उसी साल वालासियाके राजा राडुल उनकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। १५२६ ई०में हङ्गेरि-राज लुईने सुलेमानके विरुद्ध युद्धयात्रा कर मोहाककी लड़ाईमें प्राणत्याग किया, सुलेमानने हङ्गेरी प्रवेश कर राजधानी बुडा नगर और पीछे ट्रान्सिलभानिया राज्य अधिकार किया। १५२८ ई०में उन्होंने जर्मनीमें प्रवेश कर भियाना नगर अवरोध किया, किन्तु ४ वर्षके बाद वे लौट जानेको बाध्य हुए। इसके बाद उन्होंने पारस्य देश पर धावा किया। उस समय शाह तमास्प पारस्यके राजा थे। तुरुष्कके अधीनस्थ बेदलिस-राज शरीफ-बेने विद्रोही हो कर पारस्यके शाहकी शरण ली थी, इसीसे पारस्यके साथ लड़ाई छिड़ी। यह युद्ध १५५४ ई० तक चला था। तुर्कोंने बोगदाद अधिकार किया, किन्तु शाहके विद्रोहियोंकी युद्धके समयमें सहायता नहीं पहुंचाने पर सुलमानने जीते हुए स्थान उन्हें लौटा दिये। पारस्यके युद्धके समयमें सुलमानकी नौ-सेनाने भिनिशियोंके साथ युद्ध किया था। इजियन-सागरके

बहुतसे द्वीप इस युद्धमें तुरुष्कके हाथ लगे। ट्रान्सिलभानियाके राजा जापोलाकी मृत्यु होने पर अष्ट्रियाके राजा फार्डिनण्डने हङ्गेरी अधिकार किया। १५४१ ई०में हङ्गेर जीतनेके लिये सुलेमानने सेना भेजी। १५४७ ई०में अष्ट्रियाके राजा बुडा वा ओफेन नगरके साथ हङ्गेरीका अधिकांश छोड़ देनेको बाध्य हुए। दो वर्षके बाद हङ्गेरी ले कर फिर लड़ाई छिड़ी। अन्तमें १५६२ ई०की एक सन्धि हुई, जिसमें यह स्वीकार किया गया कि समस्त हङ्गेरी राज्य तुरुष्कके अधीन हो, केवल उत्तर-हङ्गेरी राज्य अष्ट्रियाके अधिकारमें रहे और वे उसके लिए तुरुष्क-पतिको वार्षिक कर देवें। इस सन्धिसे पहले सुलेमानके दोनों पुत्र सलीम और बयाजिद् सम्राट्की मृत्युके बाद सिंहासनके लिए लड़ने लगे। कोनि नगरमें दोनों भाइयोंका युद्ध हुआ। युद्धमें पराजित हो कर बयाजिदने अपने चार पुत्रोंको साथ ले पारस्य देशमें आश्रय लिया। सुलेमानद्वारा सलीम उत्तराधिकारी स्वीकार किये जाने पर पारस्यके राजाने बयाजिद् और उनके चारों पुत्रोंको सम्राट्के हाथ सौंप दिया। सुलेमानके आदेशसे १५६१ ई०में बयाजिद् पुत्र समेत मार डाले गये। इनके समयमें तुरुष्कको नौ-सेनाकी खूब चली बनी थी। नौ-सेनाके अध्यक्ष सर्वदा इटाली, रोम और अफ्रिकाके बन्दरादि पर आक्रमण किया करते और रेगियो, सोरेण्टो, बूजिया, ओरान और मिजर्का द्वीप अधिकार भी कर चुके थे। १५६० ई०में जार्बारके निकट इटली और स्पेनकी एकत्र सेना तुरुष्कको नौ-सेनासे परास्त हुई। एक दूसरी तुर्की सेना लोहित-सागर, पारस्यसागर और भारतसागरमें घूमा करती और पूर्तगीजोंके साथ इस दलका सदैव युद्ध हुआ करता था। जर्बारके युद्धमें जय प्राप्त कर सुलतान सुलेमान माल्टा जीतनेको अग्रसर हुए और १६६० ई०में एक बड़ी सेना साथ ले माल्टाका अवरोध छोड़ कर हङ्गेरी युद्धमें जा पहुंचे। उस युद्धमें १६६६ ई०को सजिगेथ अधिकार करते समय वे परलोकको चल बसे।

(१६६६--१५७४)—सुलेमानके मरनेके बाद उनके पुत्र २य सलीम राजा हुए। इन्होंने राजसिंहासन पर बैठते ही जेनिसेरियोंका एक विद्रोह दमन किया और अष्ट्रियाके राजा द्वितीय म्याक्सिमिलियनके साथ सन्धि स्थापन कर १५६२ ई०की सन्धिकी शर्तें रद्द कर दीं। पीछे १५७० ई०में इन्होंने अरबके अन्तर्गत येमेन प्रदेश और साइप्रस द्वीप अधिकार कर लिया। बाद १६७० ई०में स्पेनियोंसे अफ्रिकाके अन्तर्गत टिउनिस दखल किया। १५७२ ई०में तुरुष्कको ऐसी प्रबल नौ-सेना भी लेपाण्टोकी लड़ाईमें अष्ट्रियाके डन-जुअनद्वारा प्रायः ध्वंस हो गई।

(१५७४—१५९५)—२य सेलिमके पुत्र ३य मुराद राजा हुए। चिलदिरके युद्धमें तुरुष्कसम्राट्ने ऐरिवन, जर्जिया और दागिस्तान जय किया। क्रिमियाके खाँ इस समय रूस द्वारा आक्रान्त थे। तुरुष्कसेनापति ओसमान पाशा उनकी सहायता पहुंचानेके लिए आगे बढ़े। १५८४ ई०के युद्धमें उन्होंने क्रिमिया पलटा लिया। इनके राजत्वका अन्तिम समय पारस्यके साथ लड़ाईमें बीता। ट्रान्सिलभानिया, मलदोरिया, वालाकिया प्रभृतिके राजाओंने इनकी स्वाधीनता स्वीकार की और यूरोपीय राजन्यवर्गके साथ कुछ कुछ सम्बन्ध रखा। इंगलैण्डके साथ प्रथम वाणिज्य-व्यवसायकी सन्धि इन्हींके समयमें हुई थी।

(१५९५—१६०३)—तृतीय मुरादबाद उनके पुत्र महम्मद अपने १९ भ्राता और ७ गर्भवती बेगमको मार कर राज्य सिंहासन पर बैठे। इनका समस्त राजत्वकाल अष्ट्रियाके साथ युद्धमें बीता, किन्तु किसी युद्धमें ये जय अथवा पराजित न हुए। सिजिलमण्ड नामक ट्रान्सिलभनियाके राजा विद्रोही हो कर पुनः उनके वशीभूत हुए और अधीनता स्वीकार की। इनके राजत्वकालमें एशियाके दिलहुसेन विद्रोही हुए थे।

(१६०३—१६१७)—तृतीय महम्मदके पुत्र प्रथम अहमद २४ वर्षकी अवस्थामें राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। दिल होसेनके विद्रोहीने पारस्यके प्रबल राजा शाह अब्बासकी सहायतासे और भी विषम रूप धारण किया। १६१३ ई० तक यह युद्ध होता रहा। पितामहसे जीते हुए तीनों राज्य ये पारस्यके राजाको लौटा देनेमें बाध्य हुए। अष्ट्रियाके सम्राट् द्वितीय रोडलकने अन्यान्य राजन्यवर्गके साथ मिल कर हङ्गेरी प

आक्रमण किया। बहुतसी घमसान लड़ाइयां हुईं। अन्तमें १६०६ ई०को अहमदने सिटभाटोरोक नामक स्थानमें सन्धि कर ली। इस युद्धमें सुलतानने अष्ट्रियाको उसके अधिकृत उत्तर हङ्गेरीका कर छोड़ दिया। इस समय नेदारलण्डके साथ वाणिज्य स्थापित हुआ। एकदल कोशाकने इस समय एशियामें साइनप नगर लूटा और ध्वंस किया। सुलतान स्त्री और प्रियपात्रोंके हाथ कठपुतली सरीखे थे, इस कारण इनके समयमें तुरुष्क साम्राज्यकी यथेष्ट क्षति हुई थी।

१६१७ ई०में इनकी मृत्यु होने पर इनके भाई प्रथम (१) मुस्ताफाने छ मास तक राज्य किया। अन्तःपुरवासियोंके षड़यन्त्रसे ये कैद कर लिये गये थे।

(१६१४—१६२२)—प्रथम अहमदके पुत्र २य ओसमान राजा हुए। पोलण्डका युद्ध इनके राजत्वकालमें प्रथम और प्रधान घटना था। तुरुष्क सम्राट् क्रीतदासीके सिवा और दूसरी कुमारीसे विवाह नहीं कर सकते थे। इन सम्राट्ने वह नियम उल्लङ्घन कर प्रधान कर्मचारीकी कन्याओंमेंसे तीनके साथ विवाह किया। इस कारण वे प्रजाके अप्रीतिभाजन हो गये। जेनिसेरलोग विद्रोही हो उठे। उन्होंने मुफतीके परामर्शसे सुलतानको कैद किया और उनके कुपरामर्शदाताओंको मार डाला। प्रथम मुस्ताफा कारागारसे मुक्त कर राज्याभिषिक्त किये गये, किन्तु उनके पागल हो जानेसे द्वितीय ओसमानके भाई चतुर्थ मुराद राज्यसिंहासन पर बैठे।

(१५२३—१६४०)—चतुर्थ मुराद १२ वर्षकी अवस्थामें राज्याभिषिक्त हुए। प्रथम दश वर्ष तक उनकी माता उनकी अभिभाविका थीं, पीछे वे निष्ठुर तथा कार्यदक्ष सम्राट निकले। इनके समयमें बोगदादके शाह विद्रोही हुए और बोगदाद पारस्यके अधीन आ गया। क्रिमियाके तातारोंने विद्रोही हो कर तुर्की सेनापति कपूदान पाशाको परास्त किया। प्रायः डेढ़ हजार कोशाक इस समय बसफरसके किनारे लूट पाट मचाने लगे। तब जेनिसेरियोंने कातर हो कर अपने ही कनस्तान्तिनोपलके एक अंशमें आग लगा कर सम्राट्को चेता दिया कि, 'आपकी तलवारके साहाय्यके विना राज्यका कष्ट दूर नहीं हो सकेगा।' १६३३ ई०में इस बातसे युवक-सम्राट्को बहुत उत्साह हुआ। अन्तःपुर त्याग कर वे सैन्यकी संग्रहमें दत्तचित्त हुए। दो वर्षके बाद एशियाकी युद्धयात्रा कर उन्होंने आर्जेरूम, एरिवन और ताबिजका उद्धार किया। १६३८ ई०में बोगदाद भी उद्धार किया गया। इस युद्धमें ८० हजार मनुष्योंकी जानें गईं थीं। १६३८ ई०में पारस्यके साथ सन्धि की गई, जिसमें यह स्थिर किया गया कि बोगदाद राज्य तुरुष्कके और एरिवन पारस्यके अधीन होगा। इस जयलाभके बाद स्वदेशको लौट आनेके साथ ही सम्राट्की मृत्यु हुई।

(१६४०—१६६४)—चतुर्थ मुरादके बाद उनके भाई १म इब्राहिम राजा हुए। इन्होंने अपने शासनकालमें कोशाकके हाथसे आजफ जीता और भिनिशकी लड़ाईमें कण्डिया अधिकार किया। राजा दिनरात भोगविलासमें लगे रहते थे। जेनिसेरिके विद्रोहमें ये मारे गये।

(१६४८-१६८७)—प्रथम इब्राहिमकी मृत्युके बाद उनका सात वर्षका लड़का चतुर्थ महम्मद राज्यसिंहासन पर बैठा। १म अहमदकी स्त्री और इनकी पितामही इनकी अभिभाविका थीं। नाबालिग अवस्थामें हमेशा वजीरके हेर फेरसे राज्यमें बहुत गड़बड़ी और क्षति हुई थी। १६४८से १६५६ ई०के मध्य १८ बार प्रधान मन्त्री परिवर्त्तित हुए, अन्तमें वृद्धा सुलताना माह-पिक अन्तःपुरके षड़यन्त्रसे मारी गई। १६५६ ई०में महम्मद केप्रिलीने प्रधान वजीर हो कर राज्यकी दुर्दशा दूर की। ट्रानसिलभानियाके राजा रागोजीने अष्ट्रियाको कई एक देश दे कर सम्राट् १म लियोपोल्डके साथ भीषण संग्राम किया। तुरुष्क सेनाने बहुतसे देश दखल किये। १६६४ ई०के एक युद्धमें तुरुष्क सेना पराजित हुई। बाद सन्धि हो जाने पर ट्रानसिलभानिया और हङ्गेरीके और भी कईएक अंश अष्ट्रिया साम्राज्यभुक्त हुए। सुलतानने १६६८ ई०में कण्डिया जीत कर इसकी क्षति पूरी की। १६७५ ई०में उन्होंने पोलण्डके बहुत अंश जय किये। १६८२ ई०को हङ्गेरीमें विद्रोह उपस्थित हुआ। उसकी सहायता देनेमें तुरुष्कके साथ अष्ट्रियाका पुनः युद्ध छिड़ा। १६८३ ई०में प्रधान वजीर करा मुस्ताफाने २ लाख सेना साथ ले भियेना नगर अवरोध किया, किन्तु काउण्ट ष्टारहेम-

वर्गके वीरत्व और कौशलसे उस बार भियाना उद्धार हुआ। पोलण्डके राजा और बभेरियाके राजाने अष्ट्रियाका साथ दे कर तुर्कोंको सम्पूर्ण रूपसे पराजित किया। करा मुस्तफा हङ्गेरीको भाग गये। ६ हजार पुरुष, ११ हजार स्त्री, १४ हजार बालिका और ५० हजार बालक क्रीतदास बना कर लाये गये। अष्ट्रियाकी सेनाने उनका पीछा किया था। ३ वर्ष युद्धके बाद तुरुष्क दानियुब नदीके दूसरे किनारेका समस्त अधिकार छोड़ देनेको बाध्य हुए। पीछे भिनिशी लोग इन लोगोंका साथ दे तुरुष्कका समस्त ग्रीस राज्याधिकार हड़प गये। जेनिसेरियोंने विद्रोही हो कर सुलतानको अन्तःपुरमें कैद कर रक्खा।

(१६८७-९१)—उसके बाद उनके भाई द्वितीय सुलेमान राजा हुए।

(१६९१—९५)—द्वितीय सुलेमानके दूसरे भाई द्वितीय अहमद राजा हुए। अष्ट्रियाके राजाने पुनः बहुतसे राज्य दखल कर लिये। भिनिशियोंने भी कियस अधिकार किया। सम्पूर्ण राज्यमें अशान्ति फैल गई।

(१६९५—१७०३)—चतुर्थ महम्मदके पुत्र द्वितीय मुस्तफा उनके बाद राजगद्दी पर बैठे। इनके समयमें बहुतसे भिनिशी दमन किये गये, किन्तु अष्ट्रियवासी बल्कन पर्वतके निकट बहुत ऊधम मचाने लगे। १६९६ ई०में रूसके राजा पिटर दि-ग्रेटने अष्ट्रियाकी सहायतासे आजफ लौटा लिया। १६९९ ई०में भिनिशकी सेना तुरुष्कसे पराजित होने पर कार्लोउइजकी सन्धि हुई। करिन्थ योजकके उत्तरवर्त्ती समस्त ग्रीस तुरुष्कके हाथ लगा। अष्ट्रियाने तेमिश्वरको छोड़ कर और सारा हङ्गेरी दखल किया। ओसमान-ली अपने समस्त राज्यके खो जानेसे उन्मत हो गये और १७०३ ई०में उन्होंने बागी होकर द्वितीय मुस्तफाको राज्यच्युत किया।

(१७०३—३०)—द्वितीय मुस्तफाके भाई तृतीय अहमद राजा हुए। उन्होंने विद्रोह दमन कर राज्यमें शान्ति स्थापन करनेकी विशेष चेष्टा की। १५ वर्षमें उन्हें १४ प्रधान वजीर बदलने पड़े। उनके राजत्वकालमें स्वीडेनके राजा १२वें चार्ल्सने तुरुष्कमें आ कर आश्रय लिया था। इस सूत्रसे रूसियाके साथ एक लड़ाई छिड़ी। बालताजी महम्मदके षड़यन्त्रमें आकर पिटर-दि-ग्रेट ससैन्य तुरुष्कके हाथसे कैद कर लिये गये, किन्तु रूसकी रानी काथेरिनने प्रधान वजीरको रिशवत दे कर षड़यन्त्रसे उद्धार किया। आजफ नगर रूसियाको छोड़ देना पड़ा। १७१४ ई०में मोरिया दखल किया गया। १७१७ ई०में अष्ट्रियाके साथ युद्ध आरम्भ हुआ। तेमिश्वर अस्त्रियाके अधिकारमें आ गया। इसके पीछे पारस्यके साथ युद्ध छिड़ा। युद्धमें उत्तर पारस्य अधिकार किया गया, किन्तु १८२६ ई०में पुनः वह उनके हाथसे जाता रहा। इसी कारण जेनिसेरियोंने विद्रोही हो कर राजाको राज्यसे च्युत कर दिया। इनके राजत्वकालमें तुरुष्कमें एक छापाखाना खोला गया था।

(१७३०—५४)—उनके बाद २य मुस्तफाके पुत्र १म महमूद राजा हुए। इनके सेनापतिने ताब्रिज दखल किया। पारस-पति तमास्पके साथ जो सन्धि हुई थी, उससे ओसमान-ली सन्तुष्ट न हो कर पुनः विद्रोही हो गये। उधर नादि कुलीखाँने पारस अधिकार कर तुरुष्कके विपक्षमें अस्त्र धारण किया और तृतीय अहमदने जो सब राज्य जय किये थे, उन्हें फिर लौटा लिया। १७३७ ई०में रूसियाके साथ तुरुष्ककी अनबन हो गयी और अष्ट्रियाने रूसियाके साथ मिल कर तुरुष्कके विरुद्ध लड़ाई ठान दी। १७३९ ई०में अष्ट्रिया पराजित हो वालासिया, सर्भिया और बेलग्रेड तुरुष्कको दे देनेमें बाध्य हुए। रूसने मलदेविया अधिकार किया। अन्तमें पारस और अरबके ओहाबियोंके साथ युद्ध हुआ। १७५४ ई०में सम्राट्की मृत्यु हुई।

(१७५४—५७)—प्रथम महमूदके बाद उनके भाई तृतीय ओसमान राजा हुए।

(१७५७—७३)—उसके बाद तृतीय अहमदके पुत्र तृतीय मुस्तफा राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इन्होंने रूसकी रानी दूसरी काथेरिनके विरुद्ध युद्ध ठान दिया। पोलैण्डको रूसियाके हाथसे बचानेके लिये यह युद्ध हुआ था। इनके जीते-जी यह लड़ाई समाप्त नहीं हुई।

(१७७३—८९)—इसके बाद तृतीय अहमदके दूसरे पुत्र प्रथम अबदुल हमीद (वा चतुर्थ अहमद) राजा हुए। रूसियाके कईएक युद्धमें जयलाभ करने पर

१७७४ ई०में एक सन्धि हुई। इस सन्धिमें कबर्दा, आजफ, किलबरन, फार्चे, येनिकेल, बोग और निपर नदीके मध्यस्थ प्रदेश कृष्णसागर, बसफरस तथा दार्दानेलिससे अबाधगति एवं मलदेभिया और उपालसियाका रक्षाभार तथा तुरुष्क-साम्राज्यके समस्त ग्रीकसमाजभुक्त ईसाइयोंके ऊपर रूसका प्रभुत्व फैल गया था।

क्रिमियाके खाँ स्वाधीन हो गये। तीन वर्ष बाद अष्ट्रियाको वुकोनिया छोड़ देना पड़ा। इसके पीछे रूससे क्रिमिया ले लिये जाने पर तुरुष्कमें घमसान युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं। रूसिया भी अष्ट्रियाके साथ मिल गया १७८७ ई०में यह युद्ध आरंभ हुआ। इस युद्धमें तुरुष्कोंने अष्ट्रियाके ऊपर अपना प्रभुत्व जमाया; किन्तु वे रूसियासे पराजित हो गये। इसके बाद सुलतानकी मृत्यु हुई।

(१७८९—१८०१)—उनके बाद तृतीय मुस्ताफाके पुत्र तृतीय सलीम राजा हुए। इस समय रूस और अष्ट्रियामें लड़ाई छिड़ी हुई थी। कई एक युद्धमें तुरुष्क पराजित हुए। इस युद्धमें तुरुष्क तहस-नहस हो जाता; किन्तु इंगलैण्ड, प्रूसिया और स्वीडेन इसके बीचमें पड़ गये। १७९१ ई०में सिष्टाउयामें अष्ट्रियाके साथ सन्धि स्थापन हुई, जिसमें तुरुष्कने अपना खोया हुआ राज्य पुनः पाया। १७९२ ई०को जेसीमें रूसियाके साथ सन्धि हुई। तुरुष्कने क्रिमियाका दावा छोड़ दिया और निष्टर नदी दोनों राज्योंके सीमारूपमें निर्द्धारित हुई। इस समय बोनापार्टीने मिश्र जीत कर फ्रांसके साथ युद्ध ठान दिया; किन्तु इंगलैण्डने मिश्र उद्धार कर १८०३ ई०में तुरुष्कको प्रदान किया। १८०० ई०में सुलतान सलीमने रूसिया, नेपल्स और इंगलैण्डके साथ सन्धि कर आयोनीय द्वीपावली दखल की। सुलतान सलीमने इस समय यूरोपीय सैन्यगठन तथा दीवानी परिवर्त्तित की। इतनेमें इङ्गलैण्ड और रूसियाके बीच प्रतिद्वन्द्विता उत्पन्न हुई। फ्रांसीसीकी उत्तेजनासे रूस और तुरुष्कमें १८०६ ई०को लड़ाई छिड़ी। इङ्गलैण्डने तुरुष्कको सहायता की। रूस दानियुबके किनारे अग्रसर होने लगा। जेनसेरि और सुफ्तिने मिल कर सुलतानको राज्यच्युत और कैद किया।

(१८०७—८)—इसके बाद प्रथम अबदुल हामिदके पुत्र मुस्ताफा राजा हुए। इन्होंने तृतीय सलीमकी संस्कारविधि परित्यागपूर्वक प्राचीन प्रथा अवलम्बन करके विद्रोह दमन किया। क्रमसे तुरुष्ककी सेना पराजित हुई। रुश्चुक नामक प्रदेशके पाशा मुस्ताफा वैरक्तरने ससैन्य आकर सुलतानको राज्यच्युत करना चाहा। कारावद्ध तृतीय सलीमको इस विद्रोहका मूल समझ कर सुलतान मुस्ताफाने उन्हें मार डालनेकी आज्ञा दी; किन्तु वे ही बहुत जल्द पाशासे राज्यच्युत हुए।

(१८०८—४०)—उनके बाद उनके भाई द्वितीय महमुद राजा हुए। इन्होंने सुलतान तृतीय सलीमको कारागारसे मुक्त किया। वे उन्हींके मतानुसार राज्य करने लगे। अभी यूरोपीय अन्यान्य राज्योंके साथ शत्रुता बांधनेसे तुरुष्कमें जिन सब संस्कारकी आवश्यकता होगी, वृद्ध सुलतान नये सुलतानको उन्हींके विषयमें उपदेश देने लगे। पाशा मुस्ताफा प्रधान वजीर हुए। संस्कारविधि अवलम्बन कर जेनिसेरी पुनः विद्रोही हुए। विद्रोहियोंने अन्तःपुर पर आक्रमण किया। राज्यको बचानेके लिये प्रधान वजीरने राज्यच्युत सुलतान चतुर्थ मुस्ताफाको मार डाला और आप भी जेनसेरियोंकी गुस्से में पड़ कर मृत्युको प्राप्त हुए। सुलतान द्वितीय महमुदने उसमानका वंशधर बतला कर त्राण पाया। उन्होंने भी अपना सिंहासन निष्कण्टक करनेके लिये चतुर्थ मुस्ताफाके शिशुपुत्रको मरवा डाला। जेनिसेरियोंकी इच्छानुसार उन्होंने संस्कार-प्रथा परित्याग की। वे इङ्गलैण्डके साथ सन्धि करके रूसियाके साथ लड़ने लगे। इस समय बहुतसे अधीनराज्य स्वाधीन हो गये। अतः उनको वाध्य हो कर १८१२ ई०को बुकारेष्टमें रूसियाके साथ सन्धि करनी पड़ी। प्रथ और बेसारेबियाके पूर्वस्थ समस्त देश, चिलदियके कुछ अंश और दानियुबका मुहाना रूसियाको देने पड़े। ग्रीकोंने इस समय स्वाधीनता अवलम्बन कर तुरुष्कको सम्पूर्ण रूपसे शक्तिहीन बना दिया। बहुतसे यूरोपीय राज्य ग्रीसके पक्षमें आ गये। इङ्गलैण्ड, फ्रांस, और रूसियाकी सेनाने मिल कर १८२७ ई०को नाभारिणोके युद्धमें तुरुष्ककी सेनाको अच्छी तरह तहस-नहस कर डाला। इस युद्धके

बाद ग्रीस सम्पूर्ण रूपसे स्वाधीन हो गया। बभेरिया-राजवंशके उथो प्रथम राजा हुए।

१८२२ ई०के बाद विद्रोहियोंको दमन करते समय उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी और श्रेष्ठ राजपुरुषोंको खोते हुए भी महमुद जेनसेरियोंका मूलोच्छेद किया। ऐसा होनेसे तुरुष्कमें नवयुगका सूत्रपात हुआ। मलदेविया और वालासिया ले कर बहुत दिनोंसे रूसके साथ झगड़ा चल रहा था। १८२६ ई०में आक-वार्माणकी सन्धिके अनुसार सब गड़बड़ी दूर हो गई। इस समय महमुदने दल-बल बहुत बढ़ा लिया। तब भी ग्रीसका विवाद चल रहा था। यूरोपीय राजगण ग्रीसकी स्वाधीनताके पक्षपाती थे। महमुद यूरोपीय राजाओंको घुड़की दे कर ग्रीसमें मुसलमान-अधिकार स्थायी करनेके लिये विशेष यत्नवान् हुए। १८२६ ई०में रूसके साथ सन्धि की गई। रूसके सेनापति डिविसने (Diebitsch) सामला नामक स्थानमें तुर्कसैनिकोंको पराजय कर आड्रियानोपल अधिकार किया। इस समय पास्किविच नामक एक दूसरे रूस-सेनापतिने आरजरूम पर आक्रमण किया। महमुदने आड्रियानोपलमें १८२८ ई०को रूसके साथ सन्धि स्थापन की, जिससे ग्रीसराज्य निर्विवाद स्वाधीन हो गया। मलदेविया और वालासियाने स्वाधीन शासन-शक्ति लाभ की। इसके सिवा और कई एक देश रूसके अधिकारमें आ गये। १८३१ ई०में सुलतानने इजिप्टके पाशा महम्मद अली पर धावा किया, किन्तु इस युद्धमें सुलतानकी सैन्य ही परास्त हुई। इसके दूसरे वर्ष इब्राहिम पाशा कानस्तान्तिनोपल-से ६५ कोस दूर कुट्टाया नामक स्थान तक अग्रसर हुए थे। १८३३ ई०में एक सन्धि की गई, जिससे मुहम्मद अलीने समस्त सिरीया-राज्य तथा इब्राहिम पाशाने आदनका कर्त्तृत्व पाया। इस समय विजयी इब्राहिम पाशाके हाथसे कानस्तान्तिनोपल बचानेके लिये रूस-सम्राट् निकोलसने जलपथसे एक सैन्य-दल भेजा। इसी कारण १८३३ ई०की आङ्कियर-स्कोलेसितमें एक सन्धि हुई, जिसमें यह स्थिर हुआ कि रूसका कोई विपक्ष-दार्दनेलिस पार कर न सकेगा। १८३५ ई०में तुरुष्कको नौसेनाने त्रिपली अधिकार किया। इसके बाद सुलतान महमूदने महम्मद अलीको दमन करनेके लिये पुनः नयी लड़ाई आरम्भ कर दी; किन्तु १८३९ ई०की २४वीं जूनको इब्राहिम पाशाके निकट तुरुष्ककी सेना सम्पूर्ण रूपसे पराजित हुई। उसके कुछ दिनके बाद ही महमूद की मृत्यु हुई।

२य महमूदके पुत्र अबदुल मेजिद १६ वर्षकी अवस्थामें राज्य-सिंहासन पर बैठे। इस समय नेजिब-युद्धमें पराजय, कपुदान पाशाकी विश्वासघातकतासे महम्मदअलीके नौ-सेना-दलका नाश तथा विजयी इब्राहिम पाशाके आगमनसे मानो तुरुष्क-साम्राज्य विलुप्तसा हो गया था। इस सङ्कटके समय सुलतानने अंग्रेजोंके साथ (लण्डनमें १८४० ई०की १५ वीं जुलाई-को) एक सन्धि स्थापन की। सन्धिके अनुसार एक दल अंग्रेजी और फ्रांसीसी नौसेनाने आकर एकर, सिदन, और सिरीयाके उपकूलवर्ती कई एक नगरअधिकार किये। इब्राहिम पाशाने उक्त स्थान बाध्य हो कर छोड़ दिये। शीघ्र ही शान्ति विराजने लगी। महम्मद अली वार्षिक कर दे कर पुरुषानुक्रमसे पाशा हो कर रहने लगे।

इस समय तुरुष्कके थोड़े मुसलमानोंने उत्पात मचाना आरम्भ कर दिया। उन्होंने सोचा 'इस बार ऐसा मालूम पड़ता है कि सभी ईसाईका अनुकरण करेंगे, पहलेकी रीति-नीति जाती रहेगी। सुतरां इस्लाम-धर्मकी अवनति होगी।' ऐसा जान कर उन्होंने अस्त्र धारण किया। रशीद पाशाने सबके सामने यह प्रचार किया, कि सुलतानके अधीन प्रजाके मध्य सभी धर्मके मनुष्य एक दृष्टिसे देखे जायँगे। सब कोई समानभाव-से अपना अपना धर्म पालन कर सकते हैं, विधर्मियोंके ऊपर अन्याय करके किसी प्रकारका कर नहीं लिया जा सकता है; किन्तु यह प्रस्ताव तुरुष्कके वृद्ध अमीर-उमराओंको अच्छा न लगा। अतः वे सबके सब असन्तोष प्रकाश करने लगे। इधर यूरोपीय तुरुष्कमें बहुतसी ईसाई-प्रजा वास करती थी। वे भी अभी सुविधा पा कर अपना स्वार्थसंरक्षणके लिये रूस-राजके हाथमें राज्य समर्पण करनेको प्रस्तुत हुए। इधर फ्रांस, अष्ट्रिया और इङ्गलैण्डके राजदूतगण तुरुष्कको

सभामें सुयोग खोज रहे थे; किन्तु इस समय बुद्धिमान् सुलतानने निरपेक्ष आइन प्रचार कर ईसाई-प्रजाको शान्त किया। यथार्थमें अभी भी यूरोपीयगण अबदुल मेजिदकी समुन्नत-प्रकृतिकी बड़ाई किया करते हैं। १८४८ ई०में हङ्गेरीके प्रधान राजपुरुषोंने आ कर सुलतानका आश्रय ग्रहण किया। अष्ट्रिया और रूस-सम्राट्ने उन्हें पकड़वा देनेका अनुरोध किया। किन्तु सुलतानने उनके प्रस्तावकी उपेक्षा करते हुए कहा, "आश्रित मनुष्योंकी रक्षा करना ही हम लोगोंका जातीयधर्म है। प्राण विसर्जन करते हुए भी हम लोग जातीय धर्मकी रक्षा किया करते हैं।"

पहले रूसके साथ तुरुष्कको कई एक सन्धि हुई थीं सही, किन्तु उनमें रूसका ही स्वार्थ भरपूर था। रूस बराबर तुरुष्कके ऊपर तीव्र दृष्टि रखा करते थे।

तुरुष्कके ग्रीस-समाजभुक्त ईसाइयोंने सुलतानके विरुद्ध रूस-राजके निकट अभियोग किया। जारने पूर्वसन्धिपत्रके विरुद्ध सब हाल जान कर तुरुष्कके आभ्यन्तरिक व्यापारमें हस्तक्षेप किया। रूससैन्यने आ कर मलदेविया और वालासिया अधिकार कर लिया। तब सुलतान भी निश्चिन्त रह न सके। उनके सेनापति उमार पासाने वलकान और दानियुब नदीतीरस्थ दुर्ग अधिकार कर लिये। इधर फ्रांसीसी और अंग्रेज-नौ-सेनाने वेसिक-उपसागरमें आ कर लङ्गर डाला। अक्तूबर मासमें तुरुष्कने रूसके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी और अंग्रेज तथा फ्रांसीसियोंको मदद देनेके लिये बुलाया।

वालासियामें दोनों दलमें कई बार युद्ध हुए, प्रति युद्धमें ही रूससैन्य हारने लगी। नवम्बर मासमें रूसकी नौ-सेनाने शिवास्तुपोल-बन्दरसे निकल कर सिहुपके रास्ते पर तुर्कीके-युद्ध जहाजोंको नष्ट किया। पीछे १८५४ ई०में रूससैन्यने दानियुब नदी पार कर दीबरुचाके दुर्गों पर आक्रमण किया। इस समय इंगलैण्ड और फ्रांसमें लड़ाई छिड़ी हुई थी। १५ जूनको रूसगण असीम चेष्टा और बहुतसी सैन्य नष्ट करनेके बाद सिलिष्ट्रिया पर आक्रमण कर लौटे आ रहे थे। तुर्की-सेनाने भी दानियुब पार कर रूससैन्यका पीछा किया। गिउरगीवो नामक स्थानमें रूस-सेना पराजित हुई। इस देशमें अष्ट्रियाकी सेनाने तुरुष्कके अधिकारभुक्त जो सब देश दखल किये थे, उन्हें भी अभी छोड़ दिये। इसी बीचमें अंग्रेज और फ्रांसीसीके जङ्गीजहाज कृष्णसागरमें प्रवेश कर ओड़ेसा नगरके ऊपर गोला बरसाने लगे। रूसके जङ्गीजहाजने आ कर शिवास्तुपोल बन्दरमें आश्रय लिया था। १८५४ ई०की १४वीं सितम्बरको मार्सल सेण्ट-आर्णड और लर्ड रागलेनके अधीनमें अंग्रेजी और फ्रांसीसी सेना क्रिमिया शहरकी उतरी। इस समय जो भीषण युद्ध हुए थे, वे ही यूरोपीय इतिहासमें 'क्रिमिया-समर'के नामसे प्रसिद्ध हैं।

२० वीं सितम्बरको आलमामें युद्ध हुआ। कुमार मेजिकोफके अधीन रूसकी सेना सम्पूर्ण रूपसे पराजित हुई। बहुत शीघ्र ही अंग्रेजी और फ्रांसीसी सेनाने आ कर वालाक्लावा और कामिस बन्दर अधिकार किया। २६वीं सितम्बरको वे शिवास्तुपोलका दक्षिणांश दखल कर बैठे। इस समय कठिन शीतसे शिवास्तुपोलके ऊपर अंग्रेजी और फ्रांसीसी सेनाको तुरुष्क-राज्यके बचानेमें जो कष्ट भुगतना पड़ा था, वह अकथनीय है। भीतर और बाहर महाबलशाली रूससैन्य उन्हें घेरी हुई है, रूस अपना गौरव बचानेके लिये प्राणपणसे चेष्टा कर रहा है; किन्तु उनके सामने मुट्ठी भर फ्रांसीसी और अंग्रेजी सेनाने तुर्क-सेनाकी सहायतासे रूसका वह विपुल गौरव मट्टीमें मिला दिया। उनका काम यथार्थमें अत्यन्त प्रशंसनीय था। इस समय तुर्क सेनापति उमार पाशाने भी जिस तरह बुद्धिमत्ता और विचक्षणताका परिचय देते हुए रूससैन्यको बारबार पराजय किया था, वह तुरुष्कके पक्षमें महागौरवका विषय था; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अन्तमें फ्रांसकी राजधानी पेरिस नगरमें सन्धि हो जानेसे सब गड़बड़ी मर-मिट गई। तुरुष्कपतिने मलदेविया और कृष्णनगरको उपकूलवर्त्ती नदीके मुहाने तक समस्त देश तथा निस्तार और दानियुब नदीके उत्तरांश कई एक प्रदेश लौटा पाये।

१८६१ ई०में अबदुल अजीज सिंहासन पर बैठे।

इनके समयमें मोण्टनिग्रो तुरुष्कके अधीन राज्यरूपमें गिना जाने लगा। १८७६ ई०में अबदुल हमीद (२य) राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इन्हींके समयमें विख्यात रूस और तुरुष्कका युद्ध आरम्भ हुआ था। रूसने अपना नष्ट-गौरव पुनरुद्धार करनेके लिये इस बार भीमबलसे तुरुष्क पर आक्रमण किया। बारबार रूसकी जय होने लगी। अन्तमें तुरुष्कराजने १८७८ ई०में रूसको बटम, कारस और आर्डाहन छोड़ दिये। वे रूसका युद्धव्यय ३२ करोड़ रुपये देनेको राजी हुए और उसीके अनुसार उन्हें प्रति वर्ष ३१८१८० रुपये रूस-गवर्मेण्टको देने पड़ते थे।

तुरुष्क-राज्य पहले बहुत विस्तृत होने पर भी अभी इसका भूपरिमाण ६६५०० वर्ग मील और लोकसंख्या लगभग ४६६८००० है।

बीसवीं शताब्दीमें तुरुष्क—उन्नीसवीं शताब्दीके शेष भागसे ही तुरुष्कमें नव-जागरणकी आवाजें उठी थीं। तुरुष्कके युवक-सम्प्रदायने युरोपीयोंके समक्ष यह प्रमाणित करना चाहा 'कि तुरुष्क बिलकुल मरा हुआ नहीं है—उसमें अब भी प्राण हैं।' अबदुल हमीदके शासनकालमें "नव्य तुर्की-सम्प्रदाय" नामसे तुरुष्कमें युवकोंकी एक संस्था स्थापित हुई थी। इन लोगोंका उद्देश्य था, कि अबदुल हमीदका उच्छेद कर तुर्कीका नवीन रीतिसे संगठन किया जाय पहले उन लोगोंने तुर्कीके सैन्यदलको वशमें किया। फिर १८०८ ई०की २२वीं जुलाईको नियाजिबेके अधिनायकत्वमें तत्कालीन तुर्की-गवर्मेण्टके विरुद्ध इन लोगोंने विद्रोहकी घोषणा की। मनष्टि और अविदाके मध्यपथमें रेजना नगरमें ही प्रथम विद्रोह शुरू हुआ। इस आकस्मिक घटनासे रूस और इंग्लैण्डने फिर तुर्कीके बीच हस्तक्षेप करनेका साहस न किया। दूसरे दिन आनोयार-बेके सभापतित्वमें सैनिकोंकी 'ऐक्य और उन्नति-सम्मति'की तरफसे नवीन राजतन्त्रकी घोषणा हुई। उन लोगोंने सुलतानसे उक्त घोषणा मान्य करनेके लिए अनुरोध करते हुए यह भी सूचित किया, कि यदि शीघ्र ही उन लोगोंके प्रस्ताव पर सुलतान सम्मति न देंगे, तो दो और तीन नम्बर सेना कनृष्टिनोपल अधिकार करनेके लिये अग्रसर होगी। कुछ भी हो, २८ तारीखको अब्दुल हमीदने उन लोगोंके इस प्रस्तावको स्वीकार कर घोषणापत्रके द्वारा पूर्वतन १८७३के राजतन्त्रके माननेकी प्रतिज्ञा की। यद्यपि इस विद्रोहको सम्पूर्ण सफल नहीं कहा जा सकता, तथापि इससे सुलतानका स्वेच्छाचार बहुत कुछ प्रशमित हुआ। तारीख ६ अगस्तको ग्रीक, आर्मेनियन, शेख उल इसलाम आदि समस्त सम्प्रदायके प्रतिनिधियोंको ले कर एक नवीन 'कविनेट' (मन्त्रिसभा) संगठित हुआ।

परन्तु नव्यतुर्की दलकी विजय अधिक दिन तक निष्कण्टक न रही। सुलतानके अनुचरगण अपनी पूर्व-क्षमता प्राप्त करनेके लिए भरसक कोशिश करने लगे। इसलिए नव्यतुर्कीदलने अबदुल हमीदको सिंहासनसे उतार दिया और उनके कनिष्ठ भ्राता महम्मद रेशाद एफान्दीको सुलतान-पद प्रदान किया; परन्तु अबसे वास्तवमें नव्यतुर्कीदलके ख्यातनामा नेता आनोयर वे ही समग्र तुर्कीका शासन करने लगे।

इस समय मुस्तफा कमाल पाशाने इच्छानुसार सैन्यसंस्कार किया। उनके आदेशसे असंलग्न सैनिकोंमें संघबद्धभावसे आधुनिक समर-विद्यानुमोदित तुर्की-सेनाके लिए उपयोगी कूच-कवाजोंका प्रचलन हुआ। वे पहलेसे ही सेनाकी युद्धोत्साहितकी ओर दृष्टि रखते थे। नव्य-तुर्की-विप्लवके प्रथम वर्षमें उन्होंने सैलोनिकामें सैन्य-परिचालनमें अपना कृतित्व दिखा कर तत्कालीन प्रवीण तुर्की-सेनापतियोंको विस्मित कर दिया। १९१० ई०में कमाल पाशा समर-सचिवकी अनुमति अनुसार फ्रान्स गये और पिकडिमें उन्होंने कौशलपूर्ण परिचालना द्वारा फ्रान्सको सहायता पहुँचाई। यहीं उन्हें फरासीसी जातिके आचार-व्यवहार और सेनाकी युद्धनीतिके साथ विशेषरूपसे परिचित होनेका सुयोग प्राप्त हुआ था।

बलकानके युद्धमें तुर्कीको बड़ी विपत्तिमें पड़ना पड़ा था; परन्तु अनोयार और कमाल पाशाने इस विपत्तिसे तुर्कीकी रक्षा की थी। बुलगेरियाके हाथसे आद्रियानोपलने तुर्कीको छीन लिया।

१९१४ ई०के अगस्त महीनेमें युरोपमें महायुद्धका सूत्रपात हुआ। तुर्कीके साथ इस युद्धका कुछ भी सम्बन्ध न

था; परन्तु सुचतुर जर्मनोंने कूट-कौशलसे दुर्बल तुर्कोंको भी इस युद्धमें घसीट लिया। जर्मनीकी तरफसे तुरुष्कके युद्धक्षेत्रमें अवतीर्ण होनेमें कमाल पाशाका व्यक्तिगत विरुद्ध मत था। परन्तु जब युद्धकी घोषणा हुई, तब उन्होंने सैन्यदलमें योग दिया। कुछ दिन बाद मित्र-सेनाने कनष्टैष्टिनोपलकी ओर अग्रसर होनेकी चेष्टा की। इससे प्रधान सेनापति विचलित हो उठे; परन्तु निर्भीक कमाल पाशाने उस समय प्रस्ताव किया कि 'मुझे युद्ध-परिचालकका भार दिया जाय।" उन्होंने अपने ऊपर भार ले कर अंग्रेजी सेनाको अनाफोर्टामें इस तरह परास्त किया, कि समग्र जगत् उस अमानुषिक घटनाको देख कर दंग हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी इस विजयसे ही तुर्की-साम्राज्य निश्चित ध्वंसके ग्राससे बच गया। इसके बाद जर्मनोंने चक्रान्त कर आनवार और कमाल पाशाको नाना विपदोंमें डालनेका प्रयत्न किया था।

परन्तु शीघ्र ही पुनः तुरुष्कके जीवन-मरणकी समस्या उपस्थित हुई। कमाल पाशा कोशिश करने पर भी कुछ न कर सके। जर्मन लोग बोगदादमें पराजित हो गये। १९१८ ई॰में जब महायुद्धका अवसान हुआ, तब (३० अक्तूबरको) अर्मिष्टिस्की सन्धिके अनुसार अटोमान-गवर्नमेण्ट मित्र-शक्तिके समक्ष सम्पूर्ण रूपसे आत्म-समर्पण करनेके लिए बाध्य हुई। कनष्टष्टिनोपल इस समय मित्रशक्तिके अधिकारमें था। पेरा और गालाटामें अंग्रेजी सेनाने तथा इस्ताम्बुलमें फरासीसी सेनाने शिविर-सन्निवेश किया था। सुलतान उस समय अंग्रेजोंके यहां नजरबन्द थे। अर्मिष्टिसके समयसे ही मातृभूमिकी रक्षाके लिए तुर्कोंमें सर्वत्र ऐसे छोटे छोटे दलोंका संगठन हो रहा था। कमाल पाशाने उन्हीं छोटे छोटे दलोंको एक वृहत्तर जातीय सङ्घका रूप दे दिया। इसी समय ग्रीसोंने स्मरना अधिकार कर लिया। स्मरना तुर्कियोंका एक प्रयोजनीय वाणिज्य-केन्द्र था। कमाल पाशा अंग्रेज और ग्रीक-सेनाको बाधा देनेके लिए अग्रसर हुए। तुर्कियोंने वृटिश-सेनाकी उपस्थितिमें ही पश्चिम-आनातोलिया पर कब्जा कर लिया। अली फयादे १५ सौ अश्वारोही सेनाको देख, उसे चालीस हजार वृटिश-सैनिकोंका प्रबलदल समझ कर डरके मारे स्थान छोड़ कर भाग गये।

१९१८ ई॰के अक्तूबर मासमें एशिया-माइनरके दो स्थानोंमें युद्ध केन्द्रीभूत हुआ था। एक स्मरना और एडिनका अंश था (अंग्रेजोंकी सहायतामें ग्रीक लोग इसी तरफ थे) और दूसरा बोगदादका अंश जहां वृटिश-सेना उपस्थित थी। तुर्कोंकी जातीय सेना इन दोनों दलोंके साथ अत्यन्त वीरता और सतर्कताके साथ युद्ध करनेके लिए अग्रसर हो रही थी। कमाल पाशा इस समय तुर्कीजातिके अन्दर स्वदेशप्रेम लानेके लिए भी चेष्टा कर रहे थे। उन्हींके निर्देशानुसार तुर्कोंकी राष्ट्रीय महासभा परिचालित होती थी। उन्होंने अङ्गोरामें एक महासभा कर उसमें कुछ 'जातीय शर्तें' निर्णीत की थीं। जो नीचे लिखी जाती हैं—

१। जिन स्थानोंमें अरबवासियोंकी संख्या अधिक है, उन स्थानोंसे तुर्कोंका दावा उठा लिया जायगा; परन्तु तुर्कीके अवशिष्ट अंश एक राष्ट्र एकजाति और एक धर्मकी समष्टि समझी जायगी।

२। पश्चिम-थ्रेसके अधिवासिगण अपने देशकी इतिकर्तव्यताके संबन्धमें विचार कर सकेंगे। परन्तु पूर्व-थ्रेसके विषयमें कोई भी मध्यस्थता न मानी जायगी।

३। वृहत् शक्ति-पुञ्जने नवीन क्षुद्रराज्योंके लिए जितनी भी शर्तें कायम की हैं, वे मान्य होंगी।

४। कनष्टैण्टिनोपल और समुद्र-सङ्कटों (प्रणालियों)-को बिना शर्तके तुर्कियोंको दे देना पड़ेगा। हां, वाणिज्यके सुभीतेके लिए स्वार्थसंश्लिष्ट शक्ति-समूहका न्याय्य स्वत्व मान्य होगा।

५। राष्ट्रीय आर्थिक और विचार-संबन्धीय समस्त कार्योंमें तुर्कोंकी स्वाधीनताको मानना पड़ेगा। अन्य शब्दोंमें यों समझना चाहिए कि तुर्कोंके सिवा अन्यान्य देशोंमें तुरुष्ककी जितनी भी प्रजा है, उनको स्वायत्त-शासन देना होगा।

इसी बीचमें सुलतानने सेभर्सकी सन्धि स्वीकार कर ली, जिससे जातीय दल अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। १९२१ ई॰की जनवरीमें ग्रीक-सेना युद्ध-यात्राके लिए प्रस्तुत हुई। कमाल पाशाने उन्हें पद-पर बाधा पहुंचाई,

जिससे ग्रीकोंको बड़ी मुसीबत झेलनी पड़ी। उनके बहुतसे देश हस्तच्युत हो गये। इस युद्धके कारण जातीय दलकी शक्ति और भी बढ़ गई। तीन महीने के भीतर ग्रीक लोग तुर्कीसे निकाल भगाये गये।

ग्रीकोंके भगाये जाने और स्मरनाके जातीय दलके अधिकारमें आ जानेसे एशिया-माइनरमें कमाल पाशाका प्रभुत्व अविसंवादी हो गया था। इस समयसे ले कर सुलतान महम्मद अलीके भागने तक जिस फुरतीके साथ कमाल पाशाने समस्त प्रकार राष्ट्रीय प्रचेष्टाएं कीं थीं, वह यथार्थमें प्रशंसनीय हैं। उन्होंने शीघ्र ही ग्रीस और कनष्टैण्टिनोपल अधिकार करनेके लिए दार्दानिलिस प्रणाली (समुद्रसंकट)-की ओर सेना भेजी। सेभर्सकी सन्धिके अनुसार तुर्कीका कोई कोई स्थान मित्रशक्तिके हाथ लग गया था। उन स्थानोंका नाम था निर्द्वन्द्व स्थान इन स्थानोंमें तुर्कियोंका प्रवेश करनेका अधिकार न था। परन्तु अपनी शक्ति पर भरोसा रखनेवाले विजयी कमाल पाशा सेना-सहित बल-पूर्वक उधर अग्रसर हुए, जिससे यूरोपीय राष्ट्र-समूह अत्यन्त चञ्चल हो उठे। फरासीसी और इटलीसेनाका वहां रहना अनावश्यक समझ वह पहलेसे ही वहांसे हटा ली गई थी। मात्र थोड़ेसे अंग्रेज-सैनिक कुछ जंगीजहाजोंके साथ, तुर्कीकी स्वार्थ-रक्षाके बहानेसे वहां पहरा दे रहे थे। कमाल पाशाकी इस विजयसे इङ्गलैण्डकी तमाम कूट-कल्पनाएं नष्ट होती देख, वृटिश-मन्त्रियोंकी भीतरी चोट पहुँची। उन लोगोंने तुर्कीका अपवाद उड़ाया कि तुर्कियोंने ग्रीकों पर अमानुषिक अत्याचार किया है तथा यूरोप और अमेरिकाकी समस्त सहानुभूति पानेके लिए कोशिश भी की; परन्तु 'फरासीसी अनुसन्धान-समिति'से प्रमाणित हुआ कि तुर्की द्वारा अत्याचार किये जानेकी अफवाह बिलकुल झूठी है।

इसी बीचमें जातीय पदातिक और अश्वारोही सेना चालकके पास पहुंच गई थी। कमाल पाशाने भी 'थ्रेस और कनष्टैण्टिनोपल अधिकार करेंगे' ऐसी घोषणा कर दी। मध्य थ्रेस पर आक्रमण करनेके लिए भी तुर्की-सेना तैयार हो गई। लायड जार्जने अब चुप रहना उचित न समझा। इंगलैण्ड तुर्कीके विरुद्ध युद्ध करनेके लिए तैयार हुआ; परन्तु फ्रान्स और इटलीने साफ कह दिया कि हम इसमें सहायता न देंगे। इधर रूसकी सोवियेट-गवर्नमेण्ट तुर्कीको न्याय्य हक दिलानेमें सहायक हुई। फिर एक महायुद्धकी आशङ्कासे सब चिन्तित हो उठे। अन्तमें मित्र-शक्तिके अनुरोधसे कमाल पाशाने 'निर्द्वन्द्वप्रदेश पर आक्रमण नहीं करेंगे' ऐसा प्रकट किया। आखिर एङ्गोरा (तुर्की)-गवर्नमेण्टकी स्वाधीनता संम्पूर्ण शक्तियोंके द्वारा स्वीकृत हुई। फिल हाल कमाल पाशा ही तुर्कीके सुलतान और अंग्रेजोंके द्वैतशासनका अवसान कर एङ्गोरा-गवर्नमेण्टकी स्वाधीनतासे चला रहे हैं।

तुरुष्क गोड़—तुरंगगाड देखो

तुरुही (हिं० स्त्री०) तुरही देखो।

तुरैया (हिं० स्त्री०) तुरही देखो।

तुर्क (हिं० पु०) १ तुर्किस्तानका निवासी। २ तुरुष्कका निवासी, तुर्कीका रहनेवाला।

तुर्कमान (फा० पु०) तू तुर्क जातिका मनुष्य। २ तुर्की घोड़ा जो बहुत बलिष्ठ और साहसी होता है।

तुर्कसवार (फा० पु०) एक विशेष प्रकारका सवार।

तुर्किन (फा० स्त्री०) १ तुर्क जातिकी स्त्री। २ तुर्ककी स्त्री।

तुर्किनी (हिं० स्त्री०) तुर्किन देखो।

तुर्की (फा० वि०) १ तुर्किस्तानका। (स्त्री०) २ तुर्किस्तानकी भाषा। ३ तुर्किस्तानका घोड़ा। ४ तुर्कीकीसी ऐंठ, अकड़, गर्व।

तुर्घर खाँ—एक मुगल-सर्दार। १३०३ ई०में अला-उद्दीन जब चितौर-आक्रमण करने गये थे, तब तुर्घर खांने भारतवर्ष लूटनेकी तैयारियां की थीं। १२००० अश्वारोही सेना ले कर दिल्लीके समीप जमुनाके किनारे जा कर इन्होंने पड़ाव डाला था। अलाउद्दीनको पहले ही मालूम हो गया था, वे शीघ्र ही राजधानीमें लौट आये। यद्यपि अलाउद्दीन् तुर्घर खांसे पहले ही राजधानीमें पहुंच गये थे, तथापि वे सेनाकी राजपूताना छोड़ आनेके कारण अग्रसर हो कर तुर्घरसे युद्ध न कर सके; सिर्फ दिल्लीके उपकण्ठके बाहर परिखा खुदवा कर दो महीने तक बैठे रहे। मुगलोंने बाहर रह

कर शहरमें रसद भेजना वन्द कर दिया और नगरके उपकण्ठमें लूट मचाने लगे। १३०४ ई०में एक मुसल्मान फकीरके किसी आश्चर्य उद्भावित कौशलसे मुगल लोग सहसा डर गये और एकबारगी घिरावको छोड़ कर भाग गये। तुर्घरखाँ इतने डर गये थे, कि घर पहुंचने तक उन्होंने रास्तेमें कहीं भी पड़ाव न डाला था।

तुर्फरी (सं० त्रि०) तृफ हिंसायां वा० अरी। हन्ता, अंकुशका मारनेवाला भाग जो सामने सीधी नोककी ओर होता है।

तुर्फरीतु (सं० त्रि०) तृफ-अरीतु पृषोदरादित्वात् साधुः। हन्ता। तुर्फरी देखो।

तुर्य (सं० त्रि०) चतुर्णां पूरणः चतुर-यत् च भागस्य लोपः। चतुर्थ, चौथा।

तुर्यगोल (सं० पु०) कालज्ञानार्थ यन्त्रभेद, समय जाननेका एक यन्त्र।

तुर्यवाह् (सं० पु०) तुर्य चतुर्थवर्षं वहति वह-ण्वि। चार वर्षका पशु।

तुर्या (सं० स्त्री०) तुरीय ज्ञान, वह ज्ञान जिससे मुक्ति हो जाती है।

तुर्याश्रम (सं० पु०) चतुर्थाश्रम, संन्यासाश्रम।

तुर्रा (अ० पु०) १ घुँघुराले वालोंकी लट जो माथे पर हो। २ कलगी, गोशवारा। ३ पगड़ीके ऊपर लगानेका वादलेका गुच्छा। ४ फूलोंकी लड़ियोंका गुच्छा। यह दूल्हेके कानके पास लटकता रहता है। ५ टोपी आदिमें लगा हुआ फुंदना। ६ पक्षियोंकी चोटी, शिखा। ७ हाशिया, किनारे। ८ मकानका छज्जा। ९ जटाधारी, मुर्गकेश नामका फूल। १० चावुक, कोड़ा। ११ आठ या नौ अंगुल लम्बी एक प्रकारकी वुलवुल। जाड़ेकी ऋतुमें यह भारतवर्षके पूर्वीय भागोंमें रहती है। पर गरमियोंमें चीन और साइबेरियाकी ओर चली जाती है। १२ एक प्रकारका वटेर, डुबकी। (वि०) १३ अद्भुत, अनोखा।

तुर्वणि (सं० त्रि०) तूर्णं वनुते वन् संभक्तौ इन् पृषोदरादित्वात् साधुः। तूर्णसंभक्ता।

तुर्वन् (सं० क्ली०) शत्रुका हिंसन, दुश्मनका मारना।

तुर्वश (सं० पु०) नृपभेद, एक राजाका नाम। ये ययातिके पुत्र थे। जहां तक सम्भव है, येही तुर्वसु नामसे सुप्रसिद्ध हैं।

तुर्वशे (सं० अव्य०) अन्तिक, निकट, पास।

तुर्वसु (सं० पु०) ययाति राजाके एक पुत्रका नाम। ययातिके औरस और देवयानीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। एक दिन ययातिने इन्हें वुला कर कहा—"पुत्र! विषय भोगोंसे मुझे अभी तक तृप्ति नहीं हुई है; इसलिए मैं तुमसे यौवन चाहता हूं। हजार वर्ष तुम्हारे यौवनका उपभोग कर मैं उसे फिर तुम्हें वापस कर दूंगा।" तुर्वसुने उत्तर दिया—"पिता! मैं वुढ़ापा लेनेको तैयार नहीं हूं।"

"न कामये जरां तात! कामभोगप्रणाशिनीं।
बलरूपान्तकरणीं बुद्धिप्राणप्रणाशिनीं॥" (भारत आ० ;

ययाति पुत्रका उत्तर सुन कर वहुत क्रुद्ध हुए और पुत्रको उन्होंने इस प्रकार अभिशाप दे डाला—

"मेरे शरीरसे जन्मग्रहण करने पर तुमने मुझे अपना यौवन न दिया; इसलिये तुम जहांके राजा होओगे, वहांकी प्रजाका क्षय होगा। और जिनमें धर्माधर्मका ज्ञान नहीं है, जो प्रतिलोमाचार, मांसभक्षक, सर्वदा गुरुदारप्रसक्त और तिर्यक् योनि हैं, उन्होंके तुम राजा होओगे तथा नाना प्रकारका कष्ट पाओगे।"

(भारत अ० ८४)

तुर्वसुका वंशविवरण विष्णुपुराणमें इस प्रकार लिखा है—तुर्वसुके पुत्र साहु, उनके पुत्र गोभानु, उनके पुत्र त्रैशम्ब, उनके पुत्र करन्धम और करन्धमके पुत्र मरुत्त थे। मरुत्तके कोई सन्तान न थी, इसलिए उन्होंने पुरुवंशीय दुष्मन्तको पुत्ररूपसे ग्रहण किया। इस प्रकार ययातिके प्रभावसे तुर्वसुके वंशने पौरववंशका आश्रय लिया था। (विष्णुपु० ४ अंश, १६ अ०)

तुर्वीति (सं० पु०) वैदिक राजभेद, एक राजाका नाम।

तुर्श (फा० वि०) खट्टा।

तुर्शरू (फा० वि०) कठोर स्वभाववाला, वदमिजाज।

तुर्शाना (फा० क्रि०) खट्टा हो जाना।

तुर्शी (फा० स्त्री०) अम्लता, खटाई।

तुर्शीदंदा (फा० स्त्री०) घोड़ेके दांतोंमें कीट या मैल जमनेका रोग।

तुल (हिं॰ वि॰) तुल्य देखो।

तुलछराय—मारवाड़के एक राजपूत कवि। ये गीत कवित्तके कईएक ग्रन्थ बना गये हैं।

तुलना (हिं॰ क्रि॰) १ तौला जाना। २ उद्यत होना, उतारू होना। ३ गाड़ीके पहियेका औंगा जाना। ४ पूरित होना, भरना। ५ नियमित होना, अंदाज होना। ६ ठीक अन्दाजके साथ टिकना। ५ तुल्य होना, तौलमें बराबर उतरना।

तुलना (सं॰ स्त्री॰) १ सादृश्य, समता, बराबरी। २ तारतम्य, मिलान।

तुलनी (हिं॰ स्त्री॰) वह लोहा जो तराजू वा कांटेकी डांड़ीमें सूईके दोनों तरफ लगा रहता है।

तुलबुली (हिं॰ स्त्री॰) जल्दबाजी।

तुलभ (सं॰ पु॰) तुरेण वेगेन भाति भा-डस्य लः। आयुधजीवि सङ्घभेद।

तुलव—महाराष्ट्र सम्प्रदायी ब्राह्मण जातिका एक भेद। दक्षिण कनाड़ाके आस पास इस जातिका वास है। वहां इनकी स्थिति और जानपद साधारण है। ये लोग कम पढ़े लिखे होते हैं।

तुलवाई (हिं॰ स्त्री॰) १ तौलनेकी मजदूरी। २ पहियेकी औंगनेकी मजदूरी।

तुलवाना (हिं॰ क्रि॰) १ तौल करना, वजन करना। २ गाड़ीके पहियेकी धूरीमें घी तेल आदि दिलाना, औंगवाना।

तुलसारिणी (सं॰ स्त्री॰) तुरेण वेगेन सरति सृ-णिनि-ङीप्। तृण, घास।

तुलसी (सं॰ स्त्री॰) तुलां सादृश्यं स्यति नाशयति सो-क-गौरादित्वात् ङीष् शकन्ध्वा॰। स्वनामख्यात वृक्ष। (Ocymum Sanctum) "तुलसी" की नामोत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है। इस अखिल संसारमें जिस देवीकी तुलना नहीं है, वही तुलसी नामसे प्रसिद्ध है। (शब्दार्थचि॰)

वृहद्धर्मपुराणके मतसे—तकारसे मरण और उकार युक्त होनेसे मृत समझा जाता है अर्थात् मृतव्यक्ति जिसके प्रभावसे "लसति" अर्थात् दीप्ति पाता है, उसीका नाम तुलसी है। (वृहद्धर्मपु॰ ७।६३)

पर्याय—सुभगा, तीव्रा, पावनी, विष्णुवल्लभा, सुरेज्या, सुरसा, कायस्था, सुरदुन्दुभि, सुरभि, बहुपत्री, मञ्जरी, हरिप्रिया, अपेतराक्षसी, श्यामा, गौरी, त्रिदशमञ्जरी, भूतघ्नी, भूतपत्री, पर्णास, वृन्दा, कठिञ्जर, कुठेरक, वैष्णवी, पुण्या, पवित्रा, माधवी, अमृता, पत्रपुष्पा, सुगन्धा, गन्धहारिणी, सुरवल्ली, प्रेतराक्षसी, सुवहा, ग्राम्या, सुलभा, बहुमञ्जरी, देवदुन्दुभि।

क्षुद्रपत्र तुलसीके पर्याय—खरपत्र, जम्बीर, पत्रपुष्प, फणिज्झक, अल्पपत्र, समीकरण, मरुवक प्रस्थपुष्प। गन्धतुलसीके पर्याय—सुगन्धक, गन्धनामा, तीक्ष्णगन्ध, गन्धफणिज्झक, सुगन्ध, देवदुन्दुभि। विल्वगन्धके पर्याय—वैकुण्ठक, विल्वगन्ध, अल्पमानक। श्वेत तुलसीके पर्याय—अर्जक, श्वेतपर्णाश, गन्धपत्र, कुठेरक, अस्ताअर्जक, तीक्ष्ण, तीक्ष्णगन्ध और सितार्जक।

कृष्ण तुलसीके पर्याय—कृष्णार्जक, कृष्णवर्णी, सुरभि, कालमान, करालक, कालपर्णी, मानका, कालमानक और वर्वरी।

वर्वरी तुलसीके पर्याय—सुरभि, सुरभिद्वेषा, सुरसा, अपेतराक्षसी, वर्वरी, करवी, तुङ्गी, खरपुष्पा और अजगन्धिका।

गुण—कटु, तिक्तरस, हृदयग्राही, उष्णवीर्य, दाहजनक, पित्तकारक, अग्निप्रदीपक एवं कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, रक्तदोष, पार्श्वशूल, कफ और वायुनाशक। शुक्ल तुलसी और कृष्ण तुलसी दोनोंके गुण एकसे हैं।

वर्वरी तुलसीके गुण—यह रूक्ष, शीतवीर्य, कटुरस, विदाही, तीक्ष्ण, रुचिकारक, हृदयग्राही, अग्निप्रदीपक, लघुपाकी, पित्तवर्द्धक एवं कफ, वायु, रक्त, कण्डु, कृमि और विषनाशक है। (भावप्र॰)

इसकी उत्पत्तिका विवरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस प्रकार लिखा है—तुलसी नामकी एक गोपिका गोलोकमें राधाकी सखी थी। एक दिन राधाने इसे कृष्णके साथ विहार करते देख शाप दिया कि 'तू मनुष्य शरीर धारण कर।' तुलसी यह शाप सुन कर बहुत दुःखित हुई और कृष्णके शरणमें पहुंची। कृष्णने उसे कहा, 'तू मनुष्ययोनिमें जन्म ले कर तपस्याके द्वारा मेरा अंश पायेगी।' शापके अनुसार तुलसी धर्मध्वज राजाके

औरस और उनकी स्त्री माधवीके गर्भसे कार्त्तिक पूर्णिमाके दिन उत्पन्न हुई। उसके रूपकी तुलना किसीसे नहीं हो सकती थी, इसीसे इसका नाम तुलसी पड़ा। पीछे तुलसी वनमें जा कर कठोर तपस्या करने लगी। उसकी घोरतर तपस्यासे सभी उद्विग्न हो गये। जितनी कठोर तपस्या हो सकती थी, तुलसीने एक भी न छोड़ी। इस तपस्यासे ब्रह्मा भी स्थिर न रह सके और तुलसीके निकट आ कर बोले, 'तुलसी! तुम अपना अभीष्ट वर मांगो।'

तुलसीने ब्रह्मासे कहा, 'प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जिस वरके लिये प्रार्थना करती हूं सो सुनिये। आप सर्वज्ञ हैं, आपसे कोई बात छिपी नहीं है। मेरा नाम तुलसी गोपी है, मैं पहले गोलोकमें रहती थी। एक दिन मैं गोविन्दके साथ विहार करते करते मूर्च्छित हो गई थी, तिस पर भी मेरी इच्छा पूरी न हुई। उसी समय रासेश्वरी राधा वहां पहुंच गईं और ऐसी अवस्थामें हम दोनोंको देख कृष्णको तो अनेक कटु वचन कहे और मुझे शाप दिया। बाद कृष्णने मुझसे कहा कि तू तपस्या करके मेरा चतुर्भुज अंश पायेगी। अब मैं उन्हींको पति स्वरूपसे पाना चाहती हूं।'

इस पर ब्रह्मा बोले, 'श्रीकृष्णके अङ्गसे उत्पन्न सुदाम नामक गोपने राधिकाके शापसे दानवगर्भमें जन्म लिया है। शङ्खचूड़ उसका नाम है, गोलोकमें तुम उसे देख कर मोहित हो गई थीं; पर राधिकाके भयसे कुछ कर न सकीं। अभी उसीको तुम पतिके रूपसे ग्रहण करो, पीछे कृष्ण मिल जांयगे। नारायणके शापसे तुम एक वृक्षमें परिणत हो कर सभीसे पूज्या और विश्वपावनी होओगी एवं सब पुष्पोंके प्रधान और नारायणकी प्राणाधिका होओगी। बिना तुम्हारे सभी पूजा निष्फल होंगी।' तुलसीने ब्रह्माके मुखसे यह सुन कर कहा, 'आपने जो कुछ कहा, वह सत्य होवे। किन्तु कृष्णकी रतिसे मैं तृप्त नहीं हुई, अतः श्यामसुन्दर द्विभुज कृष्णसे मिलनेकी इच्छा करती हूं। आपके प्रसादसे उनका मिलना दुर्लभ नहीं है। किन्तु अभी सबसे पहले मेरे जो राधाका भय है, उसे ही मोचन कीजिये।'

ब्रह्माने षोड़शाक्षर राधिकामन्त्र, स्तव, कवच, आदि उसे दे दिये और 'तुम राधाकी तरह सुभगा होओ' ऐसा कह कर वे अपने स्थानको चल दिये। तुलसी भी तपस्याको समाप्त कर स्थिर चित्तसे बैठी। कुछ समय बाद ब्रह्माके कथनानुसार शङ्खचूड़ नामक राक्षससे इसका विवाह हुआ। शङ्खचूड़को वर मिला था कि बिना उसकी स्त्रीका सतीत्व भङ्ग हुए उसकी मृत्यु न होगी। शङ्खचूड़ने स्वर्गराज्य जीत कर देवताओंका अधिकार छीन लिया था। जब देवता लोग कुछ भी उसका कर न सके, तब वे सबके सब ब्रह्माके पास गये। ब्रह्मा उन्हें अपने साथ ले कर शिवके पास आये, शिवजी उन्हें वैकुण्ठमें विष्णुके निकट ले गए। विष्णुने कहा, 'आप लोग मिल कर शङ्खचूड़के साथ युद्ध कीजिये, हम शङ्खचूड़का रूप धारण कर तुलसीका सतीत्व भङ्ग करेंगे। पीछे शङ्खचूड़ आप लोगों द्वारा मारा जायगा।' यह कह नारायणने तुलसीका सतीत्व नष्ट किया। जब तुलसीको मालूम पड़ा कि ये नारायण हैं, तब उसने उन्हें शाप दिया कि "तुम पत्थर हो जाओ।" स्वामीकी मृत्युके बाद तुलसी नारायणके पैर पर गिर कर रोने लगी, तब नारायणने कहा, 'तुम यह शरीर छोड़ कर लक्ष्मीके समान मेरी प्रिया होओगी। तुम्हारे शरीरसे गण्डकी नदी और केशसे तुलसी वृक्ष होगा।' उसी समय वैसा ही गया। तबसे बराबर शालग्रामकी पूजा होने लगी और तुलसीदल उनके ऊपर चढ़ने लगा। बिना तुलसीके उनकी पूजा नहीं होती।

(ब्रह्मवै० प्रकृतिख० १३—२१ अ०)

बृहद्धर्मपुराणके मतसे—प्राचीन कालमें कैलासपुरमें धर्मदेव नामक विष्णुभक्तिपरायण एक साधुशील ब्राह्मण रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम वृन्दा था। वृन्दा धर्मचारिणी और पतिव्रता थीं।

एक दिन धर्मदेव ब्राह्मणकी सभामें जा कर कृष्णका गुण गान कर रहे थे। इधर भोजनका समय बीत गया, वृन्दा अपने घरमें अभ्यागत अतिथिकी पूजा करके मनोहर कैलासशिखर पर प्रतिवासियोंके घर घूमने चली गईं। इसी बीचमें धर्मदेव अपने घर आये और पत्नीको क्षुधातुरा तथा चञ्चला जान कर बहुत बिगड़े। वृन्दा पर नजर पड़नेके साथ ही उन्होंने शाप दिया कि, 'तू क्षुधार्त्ता हो कर अपना घर छोड़ इधर उधर

घूमती फिरती है, इस कारण राक्षसीका शरीर धारण कर।' वृन्दा उसी समय राक्षसी बन कर पृथ्वी पर आई और सब जन्तुओंको खाने लगी। किन्तु पूर्वस्मृतिके कारण वह गो, ब्राह्मण और वैष्णवादिको नहीं मारती थी। अनेक जीवोंके नष्ट हो जानेसे पृथ्वी अस्थिमालिनी हो गई। जब वृन्दाको और कोई जन्तु न मिला, तो उसने तीन दिन उपवास किया।

पीछे जीवोंके अन्वेषणमें वह कैलासको गई और वहां भी शैवके अतिरिक्त और कोई सत्व न मिला। उसने सात दिन अनाहार रह कर शरीर त्याग दिया। एक दिन महादेव पार्वतीके साथ भ्रमण करते करते वहीं पहुँच गये जहां वृन्दाकी लाश पड़ी थी। महादेव बोले, यह रूपवती वृन्दा धर्मदेवकी पत्नी है। अभिशापवश राक्षसीका रूप धारण करके भी उसने आज तक ब्राह्मणहत्या नहीं की है। अतः उसका शरीर निष्फल रहना उचित नहीं है। हमारे वचनानुसार यह वृन्दा पृथ्वी पर वृक्षके रूपमें जन्म लेगी और सभीकी प्रेमभाजना होगी। जब यह वृक्ष होवेगी, तब इसके पत्ते विष्णु पर चढ़ाये जांयगे। इसके पत्तोंके सिवा मणिमुक्ता आदि किसीसे भी विष्णुकी पूजा नहीं हो सकेगा; वृक्ष तुलसीके नामसे प्रसिद्ध होगा। पार्वती और हम इसके अधिष्ठात्री देवता होंगे।

तुलसी कार्त्तिक मासकी अमावस्या तिथिमें पृथ्वी पर वृक्षके रूपमें उत्पन्न हुई थी। (वृहद्धर्मपु० ८ अ०)

तुलसीका माहात्म्य—कार्त्तिक मासमें तुलसीदलसे जो नारायणकी पूजा करते एवं दर्शन, स्पर्शन, ध्यान, प्रणाम, अर्चन, रोपण तथा सेवन करते हैं, वे कोटिसहस्र युग तक स्वर्गपुरीमें वास करते हैं। जो तुलसीका वृक्ष रोपते हैं, उनका पुण्य उतनाही युग सहस्र वर्ष विस्तृत हो जाता है जितना उसका मूल फैलता है। तुलसीदलसे जो नारायणकी पूजा करते हैं, उनके जन्मार्जित सभी पाप जाते रहते हैं। वायु तुलसीकी गन्ध जिस ओर ले जाती है, वही दिशा पवित्र हो जाती है। तुलसीके वनमें पितृश्राद्ध करनेसे पितृगण बहुत प्रसन्न होते हैं। जिनके घरमें तुलसी-तलकी मट्टी रहती है, उनके घरमें यमकिङ्कर नहीं जा सकते। तुलसी-मृत्तिकासे लिप्त यदि किसी मनुष्यका देहान्त हो, तो वह कितना ही पापी क्यों न हो, तो भी यमकिङ्करगण उसके समीप जानेकी बात तो दूर रहे, उसे देख भी नहीं सकते। जो तुलसीके मूलमें दीप दान करते हैं, उन्हें विष्णुपद प्राप्त होता है। जिसके घरमें तुलसीकानन है, उसका घर तीर्थ स्वरूप है तथा नर्मदा और गोदावरीमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है वही फल तुलसीवन संसर्गमें है। जो तुलसी मञ्जरी द्वारा विष्णुका पूजन करते हैं, उन्हें फिर गर्भवास-यन्त्रणा नहीं भुगतनी पड़ती अर्थात् उन्हें मोक्ष मिलता है।

पुष्करादि तीर्थ, गङ्गादि सरित्, वासुदेव आदि देवता सर्वदा तुलसीदलमें वास करते हैं।

जहां केवल एक तुलसीका वृक्ष है, वहां ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि त्रिदश अवस्थित हैं।

तुलसी पत्रमें केशव, पत्राग्रमें प्रजापति, पत्रवृन्तमें शिव सब समय रहते हैं। इसके पुष्पमें लक्ष्मी, सरस्वती, गायत्री, चन्द्रिका और शची आदि देवियां तथा शाखामें इन्द्र, अग्नि, शमन, वरुण, पवन और कुबेर आदि देवगण अवस्थित हैं। आदित्यादि ग्रह, वसु, मनु और देवर्षि विद्याधर, गन्धर्व आदि समस्त देवयोनि तुलसीपत्रमें रहती हैं।

जो वैशाखमासमें तुलसीका वृक्ष सींचते हैं, उन्हें अश्वमेधका फल मिलता है। तुलसीके समान पुण्य और मुक्तिप्रद वृक्ष और दूसरा कोई नहीं है।

तुलसी हाथमें रख कर यदि कोई मिथ्या शपथ करे अथवा मिथ्या वचन बोले, तो जब तक चौदहों इन्द्र रहेंगे, तब तक उसे बार बार कुम्भीपाक नरकमें रहना होगा।

तुलसीचयननिषेध—पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी और संक्रान्तिमें तुलसी नहीं तोड़ना चाहिये। तेल लगा कर मध्याह्नस्नान किये बिना निशि और सन्ध्या कालमें एवं रात्रिवास परिधान कर जो तुलसीदल तोड़ते हैं, वे हरिका मस्तक छेदन करते हैं।

तुलसीचयनविधि—मध्याह्नस्नान कर और पवित्र वस्त्र पहन कर तुलसीदल तोड़ना चाहिये। तुलसीदल इतने आहिस्ते आहिस्ते तोड़ें जिससे कि शाखा हिलने

न पावे। शाखाके टूट जानेसे महापाप होता है। तोड़नेके पहले भक्तिपूर्वक निम्नलिखित मन्त्रका पाठ कर तीन बार ताली बजानी चाहिये और तब धीरे धीरे तोड़ना चाहिये। तोड़नेका मन्त्र—

"मातस्तुलसि ! गोविन्दहृदयानन्दनकारिणि !
नारायणस्य पूजार्थं चिनोमि त्वां नमोऽस्तु ते॥
कुसुमैः पारिजाताद्यैः सुगन्धैरपि केशवः।
त्वया विना नैव तृप्तिं चिनोमि त्वामतः शुभे॥
त्वया विना महाभागे समस्तं कर्म निष्फलं।
अतस्तुलसि देवि त्वां चिनोमि वरदा भव॥
चयनोद्भवदुःखं यद्देवि ते हृदि वर्तते।
तत्क्षमस्व जगन्मातस्तुलसि त्वां नमाम्यहं॥"

(क्रियायोगसार)

"तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया।
केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने॥
त्वदंगसम्भवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम्।
तथा कुरु पवित्रांगि कलौ मलविनाशिनि॥"

(स्कन्दपु०)

इन सब मन्त्रोंका पाठ कर तुलसीदल तोड़ें और विष्णुकी पूजा करें, तो लक्षकोटि फल मिलता है। द्वादशी आदि तिथियोंमें तुलसी चयनका निषेध है। विष्णुपूजाके लिये एक द्वादशी तिथिको छोड़ कर और सब निषिद्ध दिनोंमें तुलसीदल तोड़ सकते हैं।

(विष्णुधर्मोत्तर)

तुलसीकाष्ठ मालाका माहात्म्य—प्रत्येक विष्णु-भक्तिपरायण वैष्णवको तुलसीकाठकी माला अवश्य धारण करनी चाहिये। जो तुलसीकी माला धारण करते हैं, उन्हें पद पद पर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। तुलसीमाला वैष्णवोंके चिह्नस्वरूप है। अन्य वचनानुसार, ब्राह्मणको काठकी माला पहने, यतिको किसी सवारी पर चढ़े और विधवाको चारपाई पर सोये हुए देखें तो सचेल स्नान करना चाहिये।

"काष्ठमालाधरं विप्रं यतिनं यानरोहिणं।
खट्वास्थां विधवां दृष्ट्वा सचेलं जलमाविशेत्।"

(पद्मपु०)

इस वचनके अनुसार ब्राह्मणको तुलसीमाला धारण करना निषिद्ध है। इसके उत्तरमें वैष्णव कहते हैं—तुलसीकाठकी मालाके सिवा और दूसरे काठकी माला निषिद्ध है। तुलसीमाला धारणका निषेध है, यह इस वचनसे नहीं झलकता।

स्मार्त्त पण्डितोंका कहना है कि यह विप्रोंके लिये निषिद्ध है। इसके प्रमाणमें वे ये वचन देते हैं—

"तुलसीपत्रजातेन माल्येन भव भूषितः।
विप्रत्वं न च तत् काष्ठमालां गलगतां कुरु॥"

(पाद्मोत्तरख०)

इसके सिवा दूसरोंके मतसे—विष्णुदीक्षाविहीन विप्रोंको इसका धारण करना उचित नहीं है।

तुलसीका स्तव—

"वृन्दां वृन्दावनीं विश्वपूजितां विश्वपावनीं।
पुष्पसारां नन्दिनीञ्च तुलसीं कृष्णजीवनीं॥"
एतन्नामाष्टकं चैतत् स्तोत्रं नामार्थसंयुतं।
यः पठेत्तांच संपूज्य सोऽश्वमेधं फलं लभेत्॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु०)

जो यह स्तव प्रति दिन पाठ करते हैं, उन्हें अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है। तुलसीपत्रसे गणेशपूजा नहीं करनी चाहिये। "न तुलस्याः विनायक" (स्मृति)

तुलसीविवाह और तुलसीप्रतिष्ठा विधि—पहले तुलसीवृक्ष घरमें अथवा किसी दूसरी जगह रोपते हैं। पीछे तीन वर्ष पूरे होने पर वहां एक वेदिका बनाते हैं। इसके अनन्तर विशुद्धकालमें वा कार्तिकमासके वैवाहिक नक्षत्रमें वहां मण्डप और कुण्डवेदी निर्माण करते हैं। यह प्रतिष्ठा पूर्णिमामें भी विशेष फलप्रद है।

बाद शान्तिकर्म, मातृस्थापन, वृद्धिश्राद्ध आदि विवाहविधिके अनुसार सब काम करने पड़ते हैं। वेदवेदाङ्गपारग ब्राह्मणोंको ऋत्विक् नियुक्त करना चाहिये और वैष्णवविधानके अनुसार वर्द्धनीकलस स्थापन करना चाहिये। यहां मण्डपमें लक्ष्मी-नारायणकी मूर्त्ति स्थापन करनी पड़ती है। सूर्यके अस्त होने पर शुभलग्नमें मन्त्रपूर्वक विवाह कर्मवत् सब कार्य करके होम करना होता है। मन्त्र—

"ओं नमो केशवाय नमः स्वाहा, नारायणाय स्वाहा, माधवाय गोविन्दाय विष्णवे मधुसूदनाय त्रिविक्रमाय वाम-

नाय श्रीधराय हृषीकेशाय पद्मनाभाय दामोदराय उपेन्द्राय अनिरुद्धाय अच्युताय अनन्ताय गदिने चक्रिणे विष्वक्सेनाय वैकुण्ठाय जनार्दनाय मुकुन्दाय अधोक्षजाय स्वाहा" इस मन्त्रसे होम करना चाहिये। बाद यजमानकी स्त्री और सगोत्र बन्धुओंके साथ मिल कर इसका प्रदक्षिण करते हैं। वेदिका पर तुलसीके पाणिग्रहणमें सूक्त, शान्तिकाध्याय, जप और वैष्णवसंहिताका पाठ भी करना पड़ता है।

पीछे तरह तरहके मङ्गलवाद्य कर पूर्णाहुति देते और तब अभिषेकविधि समाप्त कर ऋत्विकोंको दक्षिणा दे विदा करते हैं। इस प्रकार विष्णुके साथ साथ देवी तुलसीकी अर्चना करनी पड़ती है। जो इस विधानसे तुलसी-प्रतिष्ठा, तुलसी-रोपण और तुलसीकी सेवा करते हैं, वे विपुल भोग प्राप्त कर मोक्ष पाते हैं।

(हरि भक्तिवि० २० विला०)

प्रत्येक मनुष्यको अपने घरमें कमसे-कम एक तुलसीवृक्ष अवश्य लगाना चाहिये।

तुलसी कवि—हिन्दीके एक कवि। इनके पिताका नाम यदुराय था। इन्होंने १६५५ ई०में कविमाला नामक एक हिन्दी-ग्रन्थ रचा था। इस ग्रन्थमें पूर्ववर्त्ती ७५ कवियोंकी कविताएं उद्धृत की गई हैं।

तुलसीदल (सं० पु०) तुलसीपत्र।

तुलसीदाना (हिं० पु०) एक आभूषण।

तुलसीदास—हिन्दुस्तानके सर्वप्रधान भक्त-कवि। किसीका मत है, कि ये कनौजिया ब्राह्मण थे, और कोई इन्हें सरयूपारीण ब्राह्मण बतलाते हैं। कनौजिया ब्राह्मण भिक्षावृत्तिसे बड़ी नफरत रखते हैं; पर तुलसीदासने अपनी कवितामें लिखा है—"जायो कुल-मंगन" अर्थात् 'जिस कुलमें मांगनेकी प्रथा है, उस कुलमें मेरा जन्म हुआ'। इससे उन्हें कनौजिया न समझ सरयूपारीण समझें तो कोई आपत्ति नहीं। इनकी दुबे उपाधि थी और गोत्र पराशर। वि०सं० १५८९में इनका जन्म हुआ था। पहले बहुतसे हिन्दुओंकी ऐसी श्रद्धा थी, कि 'जो ज्येष्ठाके अन्त और मूलाके प्रारम्भमें अभुक्तमूल (गण्ड) में जन्मग्रहण करता है, वह पितृहन्ता और अत्यन्त नीच-हृदय होता है। ऐसे पुत्रको त्याग देना ही उचित है, यदि स्नेहवश त्याग न सकें, तो कम-से-कम आठ वर्ष तक उसका मुंह तो देखना ही नहीं चाहिए।' यह ज्योतिषका आदेश है।

तुलसीदासका जन्म भी उक्त अभुक्तमूल नक्षत्रमें हुआ था। सम्भवतः इसीलिए उनके पिताने उन्हें त्याग दिया था। उस समय ऐसे बच्चोंको पालनेके लिए अन्य गृहस्थ भी तैयार नहीं होते थे। सौभाग्यवश तुलसीदास एक साधुके हाथ पड़ गये थे। कविवरने अपनी विनयपत्रिकामें लिखा है—

'जननी जनक तजो जनमि करम बिनु विधिहू शिरज्यो अबडेरे।'

अर्थात् जनमनेके बाद मातापिताने मुझे छोड़ दिया था; विधिने भी मेरा भाग्य अच्छा नहीं किया; इसीलिए मुझे छोड़ दिया है।

वे साधु ही तुलसीदासके गुरु थे; उन्हींकी सङ्गतमें तुलसीदासने भारत-भ्रमण किया था और उन्हींसे उन्हें आध्यात्मिक शिक्षा मिली थी।

इनके कवित्त-रामायणके पढ़नेसे मालूम होता है कि इनका यथार्थ नाम रामबोला था; पिताका नाम आत्माराम शुक्ल, माताका हुलसी, पत्नीका रत्नावली, श्वसुरका दीनबन्धु पाठक और पुत्रका नाम तारक था। शैशवावस्थामें ही पुत्रकी मृत्यु हो गई थी।' जैसा कि कविवरने स्वयं लिखा है—

"दूबे आतमराम है, पिता नाम जगजान।
माता हुलसी कहत सब, तुलसी है सुन कान॥
प्रहलाद उधारन नाम करि, गुरुको सुनिए साध।
प्रगट नाम नहिं कहत जग, कहे होत अपराध॥
दीनबन्धु पाठक कहत, ससुर नाम सब कोइ।
रत्नावलि तिय नाम है, सुत तारक गत सोई॥"

बहुतोंका विश्वास है, कि तुलसीदासका यह नाम उनके गुरुका दिया हुआ है। इनके जन्मस्थानके विषयमें भी नाना मत हैं। कोई कहते हैं कि दोआबके अन्तर्गत तरी नामक स्थानमें इनका जन्म हुआ था तो कोई हस्तिनापुरमें बतलाते हैं, कोई चित्रकूटके निकटवर्ती हाजिपुरका इनकी जन्मभूमि मानते हैं तो कोई बांदा जिलेमें यमुनाके किनारे राजपुर नामक स्थानमें इनका जन्म हुआ बतलाते हैं। परन्तु आनुसङ्गिक प्रमाण द्वारा यही

अनुमित होता है कि तरी ग्राम ही इनकी जन्मभूमि है।

बाल्यावस्थामें इन्होंने शूकरक्षेत्रमें (वर्तमान शोरों नामक स्थानमें) विद्याभ्यास किया था। परन्तु यहां वे संस्कृत भाषामें विशेष पाण्डित्य प्राप्त न कर सके थे। साधुकी कृपासे यथासमय पितृगृहमें रह कर इन्होंने मामूली हिन्दी और उर्दू सीख ली थी। इनके बनाये हुए रामायणमें उत्तरकाण्डके मङ्गलाचरणके श्लोकको पढ़नेसे मालूम होता है कि संस्कृतभाषामें इनका विशेष दखल न था।

तुलसीदासके उपदेष्टाका नाम था नरहरि। रामानन्दने जिस प्रकार रामानुजके विशिष्टाद्वैतमतका प्रचार किया था, तुलसीदास उस पद्धतिके बहुत कुछ पक्षपाती थे। ये कट्टर वैरागी वैष्णवोंकी तरह द्वैतवादको नहीं मानते थे। अयोध्यामें इनको 'स्मार्त्त ब्राह्मण'के नामसे प्रसिद्धि है। इन्होंने शङ्कराचार्य-प्रवर्तित वेदान्तके अद्वैतवादका निर्विशेषाद्वैत नामसे उल्लेख किया है। इनके रामायणमें कई जगह शङ्कराचार्यका मत ग्रहण किया गया है। शङ्कराचार्यके ब्रह्मको इन्होंने 'राम'के नामसे प्रसिद्ध किया है।

शङ्कराचार्यके अनुयायी प्रसिद्ध मधुसूदन सरस्वती तुलसीदासके एक मित्र थे।

रामानुजसे जो गुरुपरम्पराएँ प्रचलित हैं, उनमेंसे दो तालिकाओंमें तुलसीदासका नाम पाया जाता है। यथा—

१ रामानुजस्वामी, २ शठकोपाचार्य, ३ कुरेशाचार्य, ४ लोकाचार्य, ५ पराशराचार्य, ६ वाकाचार्य, ७ लोकाचार्य, ८ देवाधिदेव, ९ शैलेशाचार्य, १० पुरुषोत्तमाचार्य ११ गङ्गाधराचार्य, १२ रामेश्वरानन्द, १३ द्वारानन्द, १४ देवानन्द, १५ श्यामानन्द १६ श्रुतानन्द, १७ नित्यानन्द, १८ पूर्णानन्द, १९ हर्यानन्द, २० श्रर्यानन्द, २१ हरिवर्यानन्द, २२, राघवानन्द, २३ रामानन्द, २४ सुरसुरानन्द, २५ माधवानन्द, २६ गरिवानन्द, २७ लक्ष्मीदास, २८ गोस्वामीदास, २९ नरहरिदास और ३० तुलसीदास।

तुलसीदासके श्वशुर दीनबन्धु श्रीरामचन्द्रजीके उपासक थे। इनकी बालिका कन्या, तुलसीदासके साथ विवाह होनेके बाद भी, बहुत दिनों तक पिताके घर रही थीं, ये भी रामचन्द्रजीकी भक्ति करती थीं। यथासमय रत्नावली अपने पतिके घर आ कर रहने लगीं। उनके एक पुत्र हुआ। तुलसीदास स्त्रीको छोड़ कर क्षणभर भी न रह सकते थे। ये अत्यन्त स्त्रैण हो गये थे। एक दिन तुलसीदासकी पत्नी पतिसे बिना पूछे ही अपने मायके चल दीं। इससे तुलसीदासको बड़ी चिन्ता हुई, वे तुरन्त ही पत्नीके पीछे पीछे दौड़े गये और रास्तेमें उन्हें पकड़ लिया। इस पर रत्नावलीने कहा—

‘लाज न लागत आपुकों धौरे आयेहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेमकों कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थिचर्ममय देह मम तामहँ जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ होत न तौ भवभीति॥” *

स्त्रीकी मीठी भर्त्सनासे तुलसीदासकी आँखें खुल गईं। उन्होंने फिर स्त्रीकी तरफ ताका भी नहीं। रत्नावली नहीं जानती थीं, कि इस जरासी बातसे उनके स्वामीके हृदयमें गहरी चोट पहुंचेगी। उन्होंने तुलसीदासको वहां ठहरा कर उनसे आहारादिके लिये बहुत कुछ प्रार्थना की; परन्तु कुछ फल न हुआ। उसी समय तुलसीदास राम नामकी आश्रय मान-संन्यासी हो गये।

ये पहले तो अयोध्यामें और फिर काशीमें बहुत दिनों तक रहे। इसी बीचमें ये मथुरा, वृन्दावन कुरुक्षेत्र प्रयाग और पुरुषोत्तमक्षेत्र दर्शन कर आये।

रत्नावलीने गृहस्थावस्था छोड़नेके बाद अपने पति तुलसीदासको एक पत्र लिखा—

“कटिकी खीनी कनक-सी, रहत सखिन संग सोइ।
मोहि फटेका डर नहीं, अनत कटे डर होइ॥”

अर्थात्—कनकवर्णी क्षीणकटि मैं, सखियोंके साथ रहती हूं; मेरी छाती फटे इसका मुझे डर नहीं; डर इसी बातका है कि तुम्हें कोई दूसरी स्त्री न ले ले।’

---

* भक्तमाल और भक्तिमाहात्म्य नामक संस्कृत ग्रन्थमें लिखा है;—तुलसीदासकी पत्नी पालकीमें बैठ कर पीहर जा रही थीं; मार्गमें उन्होंने पतिको पीछे पीछे आते देख यह बात कही थी; परंतु अयोध्यामें ऐसी किम्बदन्ती है कि, तुलसीदासके सुसराल पहुंचने पर उनकी स्त्रीने उक्त दोहे कहे थे।

तुलसीदासने इसका उत्तर दिया—

"कटे एक रघुनाथ संग, बांधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेमरस, पत्नीके उपदेश।"

कैसी मधुर बात है। पतिका उत्तर पा कर रत्नावली निश्चिन्त हो गईं। जी भरके पतिकी प्रशंसा करने लगीं।

वर्षों बीत गये। तुलसीदास इस समय वार्द्धक्यमें पदार्पण कर चुके थे। उन्हें घर-द्वार कुछ भी स्मरण न था। नाना स्थानोंमें पर्यटन करते हुए दैववश वे अपनी सुसराल पहुंचे और अतिथि बन कर एक दिन वहीं रहे। उन्हें याद हो न थी कि यह उनकी सुसराल है। उन्हींकी वृद्धापत्नी उनका अतिथिसत्कार करने आईं। उन्होंने भी अपने पतिको न पहचाना। उन्होंने तुलसीदासके लिए आहारादिकी व्यवस्था कर दी। तुलसीदास स्मार्त-वैष्णव थे, वे अपने हाथसे रसोई बनाने लगे। दो एक बात सुन कर रत्नावलीने अपने पतिको पहचान लिया। उन्होंने अपने मनका भाव छिपा कर कहा—'आपको मिर्च ला दूं।' तुलसी बोले—'जरूरत नहीं, मेरी झोलीमें है'। रत्नावली बोलीं—'तो क्या जरासा कपूर ला दूं?' तुलसीने कहा—'वह भी मेरी झोलीमें है।'

इसके बाद साध्वी, पतिसे कुछ न कह कर उनके चरण प्रक्षालनके आगे बढ़ीं। परन्तु तुलसीदासने निषेध कर दिया, जिससे उनकी मनस्कामना सिद्ध न हुई। उस दिन रातको उन्हें नींद भी न आई। सिर्फ यही चिन्ता थी—"किस तरह मैं हृदयेश्वरकी पादसेवा कर सकूंगी?' बड़ी सोचा-विचारीके बाद निश्चय किया कि जो अभी जरा जरासी चीजोंको भी त्याग नहीं कर सके हैं, वे क्या अपनी धर्मपत्नीको सर्वथा त्याग सकते हैं! दूसरे दिन प्रातःकाल आ कर उन्होंने पतिसे पूछा—'देव! आपने क्या मुझे पहचाना।' तुलसीदासने उत्तर दिया, 'नहीं।' रत्नावलीने फिर पूछा, 'आपको क्या यह भी नहीं मालूम कि आप किसके घर ठहरे हुए हैं?' उत्तर मिला, 'नहीं।' फिर पूछा, 'इस स्थानका नाम जानते हैं?' इसका भी उत्तर मिला, 'नहीं'। फिर रत्नावलीने धीरे धीरे अपना पूरा परिचय दे कर उनसे सङ्गकी प्रार्थना की। परन्तु तुलसीदास किसी प्रकार भी राजी न हुए। रत्नावलीने बड़े दुःखके साथ कहा—

"खरिया खरी कपूरलों उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलिकै अचल करौ अनुराग॥"

अर्थात् जब तुम्हारी झोलीमें खड़ी ले कर कपूर तकको स्थान मिल गया, तब प्रियतम! स्त्रीको त्याग देना उचित नहीं। या तो मुझे भी झोलीमें रख लीजिए, अथवा (सर्वत्यागी हो कर) उस भगवानमें अनुराग कीजिए।'

स्त्रीकी बात सुन कर साधु तुलसीदासको ज्ञानोदय हुआ। उन्होंने मान लिया कि उनकी अपेक्षा उनकी स्त्रीने अधिक ज्ञान प्राप्त किया है। फिर क्या था, तुलसीदास सर्वत्यागी हो गये—झोली एक ब्राह्मणको दे दी।

तुलसीदास, बलिया जिलेके अन्तर्गत भृगुके आश्रम, हंसनगर, पाराशिया (पाराशरीय) आदि पुण्यस्थानोंके दर्शन करते हुए गायघाटके राजा गम्भीरदेवकी आतिथेयता पर मुग्ध हो कुछ दिन वहीं रहे। वहांसे ब्रह्मेश्वरनाथ नामक महादेवके दर्शन करनेके लिये आरा जिलेके ब्रह्मपुरमें गये। वहांसे वे काण्ट-ब्रह्मपुर गये; यहांके अधिवासियोंकी राक्षसी नीतिको देख कर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। यहां सङ्गरू नामके एक अहीरने तुलसदासकी बहुत सेवा की थी। अहीरकी सेवासे खुश हो कर इन्होंने उससे कुछ माँगनेके लिए कहा। दरिद्र अहीरने प्रार्थना की—"भगवान् पर मेरी पूर्ण भक्ति रहे और मेरा वंश दीर्घजीवी हो, इतनी ही मेरी प्रार्थना है।" तुलसीदासने कहा,—"यदि तुमने (वा तुम्हारे परिवारमेंसे और किसीने) चोरी न की हो, अथवा किसीके मनको कष्ट न दिया हो, तो तुम्हारा अभिप्राय सिद्ध होगा।" बलिया और शाहाबाद जिलेके लोग अब भी इस किम्बदन्तिको कह करते हैं; तुलसीदासकी बात सच्ची निकली।

काण्टसे तुलसीदास बेलापतीत नामक स्थानमें चले गये। यहां पण्डित गोविन्दमिश्र नामक एक शाकद्वीपी ब्राह्मण और रघुनाथसिंह नामक एक क्षत्रियने बड़े आदरसे इनको अपना अतिथि बनाया था। उनकी

कथनानुसार बेलापतीतका नाम रघुनाथपुर प्रसिद्ध हुआ। यहां जिस चौराये पर वे बैठा करते थे, उसको अब भी लोग भक्तिकी निगाहसे देखते हैं। रघुनाथपुरके निकटवर्त्ती कायथ-ग्राममें जोरावरसिंह नामक एक क्षत्रियने इनसे दीक्षा ग्रहण की थी।

तुलसीदास पहले अयोध्यामें आ कर कुछ दिन स्मार्त्त-वैष्णवके रूपमें रहे थे। उस समय भगवान् रामचन्द्रने उनको स्वप्नमें दर्शन दिये और भाषामें रामायण लिखनेका आदेश दिया। १६३१ संवत्में इन्होंने रामायण लिखना प्रारम्भ किया। अरण्यकाण्ड समाप्त होनेके पहले ही वैरागी वैष्णवोंसे उनका मतभेद हो गया। वे वाध्य हो कर काशी चले आये। लोलार्क-कुण्डके पास असीघाटमें इनका डेरा था। यहीं से १६८० संवत्में इन्होंने स्वर्गलाभ किया। जहाँ ये रहते थे, उसके पासका घाट अब भी ‘तुलसीघाट” कहलाता है। उसके पास ही उक्त कवि द्वारा प्रतिष्ठित एक हनुमानका मन्दिर है।

काशीमें इनके विषयमें बहुतसी किम्बदन्तियां प्रसिद्ध हैं—

सुना जाता है, कि रामायण समाप्त होनेके बाद, एक दिन तुलसीदास मणिकर्णिका-घाटमें स्नान कर रहे थे। इतनेमें एक संस्कृतके जानकार पण्डितने आ कर उनसे कहा,—“साधु आपतो संस्कृत जानते हैं, फिर भाषामें रामायण क्यों लिखी।” तुलसीदासने हँस कर उत्तर दिया—“मेरी भाषा नितान्त तुच्छ है यह मैं मानता हूं, पर वह आपके ‘नायिकावर्णन’ की अपेक्षा अनेक अंशोंमें उत्तम है।” पण्डितने कहा—“कैसे ?” तुलसीदासने उत्तर दिया—

“मनिभाजन विख पारई पूरन अमी निहारि।
का छाँडिय का संग्रहिय कहहु विवेक विचारि॥’

घनश्याम शुक्ल एक अच्छे कवि थे, हिन्दीकी कविता इनकी बहुत अच्छी होती थी। एक दिन कुछ पण्डितोंने उनसे संस्कृत भाषामें कविता बनानेके लिए कहा। इस पर वे बोले—“मैं तुलसीदाससे पूछ कर उत्तर दूँगा।” तुलसीदाससे पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया—

“का भाखा का संसकृत प्रेम चाहिये सांच।
काम जु आवहि कामरी का लै करै कुमांच॥”

किसी समय कुछ डकैत तुलसीदासको मारने आये थे। उन्होंने अपनी रक्षाके लिए प्रयत्न न कर कहा था—

“वासर ढासनिके ढका रजनी चहुँदिशि चोर।
दलत दयानिधि देखिये कपी किशोरि किशोर॥”

तुलसीदासके कथनानुसार हनूमान्ने दर्शन दिये। उनके उस भीम आकारको देख कर डकैत लोग मूर्छित हो कर गिर पड़े।

अकबर बादशाहके राजस्व-सचिव टोडरमल्ल तुलसीदासके एक परम मित्र थे। १६४६ सं०में टोडरमल्लकी मृत्यु होने पर, उनके स्मरणार्थ तुलसीदासने निम्नलिखित दोहे रचे थे—

“महतो चारो गांवको मनको बडउ महीप।
तुलसी या कालिकालमें अथये टोडरदीप॥
तुलसी राम सनेहको सिर धर भारी भार।
टोडर धरे न कांध हू जग कर रहेउ उतार॥
तुलसी उर थाला विमल टोडर गुणमन बाग।
समुझि सुलोचन सींचिहैं उमगि उमगि अनुराग॥
रामधाम टोडर गये तुलसी भयेउ निसोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु यही बड़ो संकोच॥”

अम्बर-राज मानसिंह और जगत्सिंह आदि हिन्दू राजकुमारगण अक्सर इनसे मिला करते थे। एक दिन किसीने तुलसीदाससे पूछा—“बड़े आदमी आपके पास क्यों आते हैं ?” तुलसीदासने इसका उत्तर दिया—

“लहै न फूटी कौड़िहू को चाहै किहिं काज।
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीबनिवाज॥
घर घर मांगे टूक पुनि भूपति पूजे पांइ।
ते तुलसी तब राम बिनु ते अब राम सहाइ॥”

इस प्रकार तुलसीदासके सम्बन्धमें और भी बहुतसी किम्बदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। ‘बनारसी विलास’ नामक हिन्दी-जैनग्रन्थमें कविवर बनारसीदासकी जीवनीमें लिखा है कि “सं० १६८०में जिस समय तुलसीदासका शरीरपात हुआ था, उस समय जैनकवि बनारसीदासकी आयु ३७ वर्षकी थी। आगरेमें तुलसीदासके साथ बनारसीदासकी भेंट हुई, तुलसीदासने रामायणकी

एक प्रतिलिपि करा कर उन्हें उपहारस्वरूप दी। इसके २।३ वर्ष बाद दोनोंका पुनः समागम, हुआ. तो तुलसीदासने रामायणके सौन्दर्य विषयमें उनसे प्रश्न किया। बनारसीदासने उसी समय यह कविता रच कर सुनाई—

"विराजै रामायण घट मांहि ॥
मरमी होय मरम सो जानै, मूरख जानै नहिं; विराजै० ॥
आतमराम ज्ञानगुन लछमन सीता सुमति समेत।
शुभपयोग बानरदल-मंडित, वर विवेक रणखेत; विराजै० ॥
ध्यान धनुष टंकार शोर सुनि, गई विषयदिति (१) भाग।
भई भस्म मिथ्यामत लङ्का, उठी धारणा आग; विराजै० ॥
जरे अज्ञान भाव राक्षस कुल, लरे निकांक्षित सूर।
जूझे रागद्वेष सेनापति संसै गढ चकचूर; विराजै० ॥
विलखत कुम्भकरण भवविभ्रम, पुलकित मन दरयाव।
थकित उदार वीर महिरावण, सेतुबन्ध समभाव; विराजै० ॥
मूर्छित मन्दोदरी दुराशा, सजग चरन हनुमान।
घटी चतुर्गति परणति सेना, छुटे छपक गुण बान; विराजै० ॥
निरखि सकति गुण चक्रसुदर्शन, उदय विभीषण दीन।
फिरै कबन्ध महीरावणकी, प्राणभाव शिरहीन; विराजै० ॥
'इह विधि सकल साधुघटअन्तर होय सहज संग्राम।
यह विवहारदृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम ॥
विराजै रामायण०"

तुलसीदास यथार्थ में हिन्दीके महाकवि थे। उनकी रचनाका माधुर्य, लिपिचातुर्य और आध्यात्मिकभाव सन्निवेश अत्यन्त प्रशंसनीय है। हिन्दीभाषा-भाषी अति उच्च राजा महाराजाओंसे ले कर दीन दरिद्र भिक्षुक तक तुलसीदासके दोहोंका आदर करते हैं। इनके नामसे बहुतसे ग्रन्थ प्रचलित हैं, किन्तु वे सभी इन्हींकी लेखनीसे निकले हुए हैं या नहीं, इसमें सन्देह है।

निम्नलिखित ग्रन्थ खास उन्हींके रचे हुए समझे जाते हैं,—

१ रामलीला नहछू, २ वैराग्यसन्दीपनी, ३ बरवै रामायण, ४ पार्वतीमङ्गल, ५ जानकीमङ्गल, ६ रामाज्ञा (ये छः ग्रन्थ छोटे छोटे हैं), ७ दोहावली वा सतसई, ८ कवित्त रामायण वा कवितावली, ९ गीत-रामायण वा गीतावली, १० कृष्णावली वा कृष्ण-गीतावली, ११ विनयपत्रिका, १२ रामचरितमानस। अन्तके छः ग्रन्थ बड़े बड़े हैं। रामचरितमानस सबसे बड़ा ग्रन्थ है और वर्तमानमें वह 'तुलसीरामायण'के नामसे प्रसिद्ध है।

तुलसीदुङ्गारि—विशाखपत्तन जिलान्तर्गत बस्तार राज्यकी एक विस्तृत गिरिमाला। यह अक्षा० १८° ४५' उ० और देशा० ८१° ३०' से ८२° ४०' पूर्वमें अवस्थित है। इसकी ऊँची चोटीका नाम तुलसी है। जो समुद्रपृष्ठसे ३८२८ फुट ऊंची है।

तुलसीद्वेषा (सं० स्त्री०) तुलसीं द्वेष्टि तुल्यगन्धत्वात् द्विष-अण्, तत-टाप्। बर्बरी, बन तुलसी।

तुलसीपत्र (सं० क्ली०) तुलस्याः पत्रं ६-तत्। तुलसीकी पत्ती।

तुलसीपुर—१ अयोध्याके गोण्डा जिलेके अन्तर्गत एक परगना। इसके उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें बलरामपुर परगना, पूर्वमें आरनाला नदी और बहराइच जिला है। इस स्थानका प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोरम है। उत्तरभागमें पहाड़के ऊपर गवर्मेण्टका रक्षित विस्तीर्ण वनविभाग है और उसके बाद ही छोटे छोटे पहाड़ोंसे घिरे हुए ऊँचे नीचे भूमिखण्ड हैं। यहांकी जमीन उत्तम होने पर भी जलवायु बहुत अस्वास्थ्यकर है। इसी कारण यहां बहुत कम मनुष्य बसते और उतना अच्छा कृषिकार्य भी नहीं होता है।

परगनेका प्रधान अंश जलीय है किन्तु यहां धानकी फसल अच्छी होती है। इसके सिवा जौ, गेहूं और उरद भी कम नहीं उपजते। यहां हिन्दुओंकी संख्या ही सबसे अधिक है जिनमेंसे थारु जातिका नाम ही उल्लेखयोग्य है। थारुलोग तूराणी जातिके जैसा होने पर भी ये अपनेको चितौरके राजपूत कुलोद्भव बतलाते हैं।

अधिक दिनकी बात नहीं है, कि तुलसीपुर परगनेका अधिकांश ही शालवनसे ढका हुआ था। बीच बीचमें दो एक घर थारु अपने अपने सर्दारके अधीनमें वहां स्वाधीन-भावसे रहने लगे। ये सब थारु-सर्दार दो प्रकारके कर देते थे। एक कर 'दखिनाहा' वा दक्षिणांशमें बलरामपुरके राजाको और दूसरे 'उत्तराइ' वा उत्तरांशमें दङ्ग राजाको मिला करता था।

---

(१) सूर्पनखा राक्षसी।

प्रवाद है, कि प्रायः ५०० वर्ष पहले यहां मेघराज नामक चौहान वंशीय एक राजाने और पीछे उनके वंशधरोंने बहुत दिनों तक थारुओंके ऊपर आधिपत्य किया था।

प्रायः सौ वर्ष बीत चुके, बलरामपुरके राजा पृथ्वीपाल सिंहकी मृत्यु हुई। उनके पुत्र नवलसिंह राजा होनेको थे, किन्तु उनके भतीजे कलवारि सर्दारने नवलको भगा कर राज्य अधिकार कर लिया। चौहानराजाने गिरि जङ्गलमें आश्रय ले कर दो हजार थारुओंकी सहायतासे अपना पैतृकराज्य उद्धार किया। तब राज्यहारीने पहाड़ पर जाकर आश्रय लिया। कुछ दिन बाद नेपालराजके उन पर आक्रमण करने पर उन्होंने पुनः बलरामपुरमें आकर नवलसिंहकी शरण ली। नवलसिंहने उनकी सहायतासे तुलसीपुरके थारु सर्दारोंको दमन किया और उसका नाम तुलसीपुर रखा। वे भी बलरामपुरके राजाको वार्षिक डेढ़ हजार कर देनेको राजी हुए। उनके पुत्र दलील सिंह उचित रीतिसे उक्त कर देते आ रहे थे। उनके बाद दानबहादुर सिंह राजा हुए। उन्होंने कर देना बन्द कर दिया।

१८२८ ई०में गवर्नर जेनरल तुलसीपुरमें शिकारको गये। राजाकी आतिथ्यसेवासे मुग्ध हो कर बड़े लाटने अयोध्याके नवाबको हुक्म दिया कि वे कुछ वार्षिक कर ले कर तुलसीपुर परगनेका चिरस्थायी बन्दोबस्त दानबहादुरके साथ कर दे।

दान बहादुरके समयमें राज्य एक उन्नतिके शिखर पर पहुँच गया था। १८४५ ई०में दान बहादुरकी मृत्यु होनेके बाद उनके लड़केका दृगराजसिंहने पितृसम्पत्ति पाई। कोई कोई कहते हैं कि दृगराज सिंहके षड़यन्त्रसे ही उनके पिताकी मृत्यु हुई। दृगराजाको भी अधिक दिन राज्य नहीं भोगना पड़ा। उनके पुत्र दिग्नारायणसिंह १८५० ई०में पिताको राज्यसे बाहर निकाल कर आप राजा बन बैठे। दृगपालने बलरामपुरमें आ कर आश्रय लिया। उनके साहाय्यके लिए वृटिश गवर्मेण्टने एक दल सेना भेजी। दृगराजने इन सेनाओंकी मददसे अपना राज्य अधिकार किया। किन्तु दुर्वृत्त पुत्रके हाथसे उन्हें बहुत कष्ट भुगतना पड़ा। दिग्नारायणने समय पाकर पिताको कैद कर लिया और विष खिला कर मरवा डाला।

अयोध्या प्रदेश वृटिश शासनाधीन होने पर गवर्मेण्टने दिग्नारायणसे कर मांगा। किन्तु हीनमति दिग्नारायण कर देनेको राजी न हुए। इसी कारण वे बन्दी कर लखनऊ नगर लाये गए। इसी समय विद्रोह आरम्भ हुआ। बन्दी अवस्थामें दिग्नारायणकी मृत्यु हुई। उनकी स्त्रीने भी विद्रोहमें साथ दिया था। इसलिए तुलसीपुर राज्य जब्त कर गवर्मेण्टने बलरामपुरके राजाको अर्पण किया।

२ उक्त परगनेका एक प्रधान नगर। यहां तुलसीपुर राजाओंका बनाया हुआ एक पुराना गढ़ है। प्रायः दो सौसे अधिक वर्ष हुए, तुलसीदास नामक किसी कुर्मीने यह नगर स्थापन किया। उन्हींके नामानुसार तुलसीपुर नाम पड़ा है।

तुलसीबाई- इन्दौरके राजा यशवन्तराव होलकरकी एक प्रेयसी। यह रमणी पहले एक सामान्य नर्तकी थी; पीछे इसने महाराज यशवन्तरावका हृदय अधिकार कर लिया था। यशवन्तरावके शेषावस्थामें उन्मादरोगग्रस्त होने पर तुलसीबाई होलकर-राज्यकी सर्वेसर्वा हो गई, तुलसीबाईने रूपकी छटासे, मधुर बातोंसे और मनोहर हावभावसे थोड़े ही दिनोंमें सबको मोहित कर लिया। तुलसीके कोई सन्तान न थी। यशवन्तरावकी मृत्युके बाद उनके पुत्र मल्हाररावको दत्तकपुत्र ग्रहण कर तुलसीबाई राज्य चलाने लगी। दीवान गणपतरावसे तुलसीबाईकी कुछ गटपट थी, इसलिए सरदार लोग तुलसीबाईसे नाराज हो गये।

रूपमें अप्सरा और बातोंमें मूर्तिमयी करुणा होने पर भी तुलसीबाईका हृदय कूट अभिसन्धियोंसे भरा हुआ था। तुलसीबाईसे जो लोग किसी प्रकारका द्वेष रखते थे, उनके सर्वनाशकी चिन्तामें वह सर्वदा मशगुल रहती थी।

उस समय महाराष्ट्र लोग ब्रिटिशशक्तिको परास्त करनेके लिए दल बांध रहे थे। तुलसीबाईने भी सरदारोंके अभिप्रायको जान उसी दलमें साथ दिया। परन्तु गणपतराव समझ गये कि मराहठे सरदार जिस तरह

एकत्र हो रहे हैं, उससे यही प्रतीत होता है कि उन पर और तुलसीबाई पर शीघ्र ही आपत्ति आनेवाली है। यह विचार कर उन्होंने ब्रिटिश-पक्षसे मिलनेके लिए दूत भेज दिया। १८१७ ई०, तारीख २० दिसम्बरकी प्रातःकालके समय बालक मल्हारराव तम्बूके बाहर खेल रहा था, उसी समय शत्रु लोग कुमारको पकड़ कर ले गये और एक दल सैनिकोंने आ कर तुलसीबाईको घेर लिया। तुलसीबाईने आसन्न विपद् देख उन लोगोंसे सावधान रहनेके लिए कहा और तिरस्कार भी किया। परन्तु किसीने भी उनकी बातपर ध्यान नहीं दिया। अन्तमें रक्षक लोग तुलसीबाईको पाल्कीमें बिठा कर शिप्रा नदीके किनारे ले गये और उसका शिर काट कर नदीमें फेंक दिया।

तुलसीवास (हिं० पु०) अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका महीन धान। इसका चावल बहुत सुगन्धि होता है और कई साल तक रह सकता है।

तुलसीमाला (सं० स्त्री०) तुलस्याः माला। तुलसीकी माला। तुलसी देखो।

तुलसीवन (सं० पु०) १ तुलसीके वृक्षोंका समूह, तुलसीका जङ्गल। २ वृन्दावन।

तुलसीविवाह (सं० पु०) तुलस्याः विवाहः। तुलसीका विवाह। तुलसी देखो।

तुलसीश्याम—जूनागढ़के अन्तर्गत उना वा उन्नतनगरसे प्रायः ११ कोस उत्तरमें अवस्थित एक पुण्यस्थान। यहां विष्णु, शिव और हनुमानके अनेक मन्दिर तथा उष्ण प्रस्रवण हैं। यहां आकर वैष्णव लोग हाथमें विष्णुके शङ्ख और चक्रका छाप देते हैं।

तुला (सं० स्त्री०) तोल्यतेऽनया तुल-अङ्। १ सादृश्य तुलना, मिलाना। २ गृहका दारुबन्ध काष्ठ, घरका बीम। ३ मान, तौल। ४ शत पल परिमाण, प्राचीन कालकी एक तौल जो १०० पल या पांच सेरके लगभग होती थी। ५ भाण्ड, अनाज आदि नापनेका बरतन। ६ राशि विशेष, ज्योतिषकी बारह राशियोंमेंसे सातवीं राशि। मोटे हिसाबसे दो नक्षत्र और एक नक्षत्रके चतुर्थांश अर्थात् सवा दो नक्षत्रकी एक राशि होती है। चित्रा नक्षत्रके शेष ३० दण्ड और स्वाती तथा विशाखाके आद्य ४५ दण्ड तुलाराशि होती हैं। इसकी स्वरूप संज्ञा तुला पुरुष, चर, नानावर्ण, क्रम, उष्णस्वभाव, पश्चिमदिशाका स्वामी, वायु प्रकृति, चिक्कण, वरशून्य, वनचारी, अल्पस्त्रीसङ्गप्रिय, अल्पसन्तान संख्या, शूद्रवर्ण, उग्रस्वभाव, दिनबली, द्विपद, समान और शिथिलाङ्ग है।

(नीलकण्ठताज०)

यवनेश्वरके मतसे—पुण्यधर, पुरुष, उच्चाङ्ग, नाभि, कटि, वस्ति देश, वीथि विक्रयस्थान, नगर, पेषणशिलादि, पथ, शुक्लवर्ण, धनागार, अर्थाधिवास अर्थात् सिन्दूका आदिके ऊपर, वा गृहके ऊपर, एवं शस्यकी भूमि, पहाड़का पार्श्व, पर्वतकी चूड़ा, वृक्ष, मृगया स्थान, उत्तम वायु आदि तुला शब्दमें हैं।

(भट्टोत्पलधृत यवनेश्वर।)

इन सब संज्ञाओंसे नाना प्रकारकी गणनाएँ की जा सकती हैं। जिस तरह, हृत वस्तुकी प्रश्नगणनामें वह राशि किस स्थानमें अवस्थित है, उसका ज्ञान हो जाता है एवं उस राशि द्वारा जिस तरह शरीरका विभाग है, उस उस स्थानमें ग्रहोंके रहनेसे व्रणादिके चिह्न तथा ग्रहोंके बलाबलसे उस उस अङ्गप्रत्यङ्गकी हानि वा दौर्बल्य इत्यादि जाना जाता है।

इस राशिका आकार तराजू लिए हुए मनुष्यका सा है। इसके अधिपति देवताका भी आकार शस्य-दहन तुलावान् पुरुष जैसा माना जाता है। यह राशि कृष्ण वर्ण और क्षत्रिय है।

तुलाराशिमें जिसका जन्म होता है, वह देवता, ब्राह्मण और साधुओंकी अर्चनामें रत, बुद्धिमान्, पवित्र, स्त्रीविजित, उन्नतदेह और उन्नत नासिकायुक्त, क्षीण, चञ्चलगात्र विशिष्ट, अटनशील, अर्थयुक्त, हीनाङ्ग, क्रय-विक्रयमें कार्यकुशल, रोगी, बन्धुओंका उपकारी, क्रोधी, बन्धु द्वारा निन्दित एवं बन्धुसे परित्यक्त होता है।

(बृहज्जातक)

कोष्ठीप्रदीपके मतसे तुलाराशिमें जिसका जन्म होता है, वह अतिशय दीर्घताविहीन, शिथिल गात्रविशिष्ट, अर्थादि द्वारा बान्धवोंका परितोषकारक, अत्यन्त बहुभाषी, ज्योतिः यज्ञ और भृत्योंका अनुरक्त होता है।

कोष्टीप्र०) राशि देखो।

तुलाई (हिं० स्त्री०) १ रुईसे परिपूर्ण दोहरा कपड़ा,

तुलाई। २ तौलनेका काम या भाव। ३ तौलनेकी मजदूरी।

तुलाकावेरी—कावेरी नदीका उत्पत्तिस्थान। कूर्ग-राज्यके पश्चिम सह्याद्रिका जो अंश ब्रह्मगिरि नामसे प्रसिद्ध है उसीके ऊपर अक्षा० १२° २३′ १०″ उ० और देशा० ७५° ३४′ १०″ पू०के मध्यगिरिके बाद देशस्थ भागमण्डलसे २ कोसकी दूरी पर तुला-कावेरी प्रवाहित है। उन्नति स्थानके निकट एक बहुत पुराना देवमन्दिर है। देवदर्शन करनेके लिए हजारों तीर्थयात्री यहां आते हैं। तुला-कावेरीके अनेक माहात्म्य पाये जाते हैं जिनमेंसे कोई तो अग्निपुराणीय, कोई ब्रह्मकैवर्त्त पुराणीय और फिर कोई ब्रह्मवैवर्त्त पुराणीय नामसे प्रचलित हैं। स्थलपुराणमें लिखा है, कि तुला या कार्त्तिक मासमें यहां गङ्गाजी आई हैं। उस समय यहां स्नान करनेसे अशेष फल मिलते और सब पाप जाते रहते हैं।

इस महीनेमें कूर्गके प्रायः हर एक घरसे एक एक मनुष्य गङ्गाकी पूजा करने आते हैं।

मन्दिरकी देवसेवाके लिए गवर्मेण्टकी ओरसे वार्षिक २३२०) मिलते हैं।

तुलाकूट (सं० क्ली०) तुलायाः कूटं ६-तत्। तुलामानका कूट, तौलमें कसर। तुलायां कूटं यस्य। तुलाका कूटकारक लोक, तौलमें कसर करनेवाला, डाँड़ी मारनेवाला मनुष्य।

तुलाकोटि (सं० स्त्री०) तुलां सादृश्यं कोटयति कुट-इन्। १ नूपुर। तुलाया कुटति कुट-इन्। २ मानभेद, एक तौलका नाम। ३ तराजूकी डंडीके दोनों छोर जिनमें पलड़ेकी रस्सी बँधी रहती है। ४ अर्बुद संख्या।

तुलाकोष (सं० पु०) तुलायाः परिमाणस्य कोष इव। तुला परीक्षा।

तुलाजा (तुलजा) काठियावाड़के अन्तर्गत भावनगर राज्यका मध्यस्थित एक प्राचीरवेष्टित नगर। यह अक्षा० २१° २१′ १५″ उ० और देशा० ७२° ४′ उ० पू० पहाड़के ढालुवां भाग पर अवस्थित है। इसके चारों ओर अत्यन्त सुन्दर और शिल्पनैपुण्ययुक्त अनेक जैनमन्दिर हैं। पहाड़के शिखर पर प्रसिद्ध तुलजाभवानीका मन्दिर और एक सुन्दर सरोवर विद्यमान है। सैकड़ों तीर्थयात्री तुलजा देवीका दर्शन और सरोवरमें स्नान करनेके लिए यहां आते हैं। स्कन्द पुराणीय तुलजामाहात्म्यमें इस स्थानकी कथा विशेषरूपसे वर्णित है। यहांके पहाड़ पर खोदी हुई अनेक गुहा हैं जिनमें १८२३ ई० तक चोर डकैत लोग रहते थे।

तुलाजापुर—(तुलजापुर) १ हैदराबाद राज्यके ओसमानाबाद जिलेका पूर्वीय तालुक। यहांकी लोकसंख्या ५८४१५ और भूपरिमाण ४११ वर्गमील है। इसमें दो शहर और १३४ ग्राम लगते हैं। २ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १८° १′ उ० और देशा० ७६° ५′ पू०के मध्य शोलापुरसे २८ मील और ओसमानाबादसे १४ मील दूरमें अवस्थित है। लोकसंख्या ६६१२ है। यहां एक पुलिस इन्सपेक्टरका अफिस, एक अस्पताल, डाकघर, डाक बङ्गला और एक स्कूल है। यह व्यवसायका एक प्रधान केन्द्र है। पहाड़के नीचे तुलजाभवानीका एक मन्दिर है जहां दुर्गापूजाके समय दूर दूर देशोंसे आये हुये यात्रियोंका समागम होता है। कहते हैं कि सतारा और कोल्हापुरके राजाओंके उक्त मन्दिरका निर्माण किया है। प्रति मङ्गलवारको यहां हाट लगती है।

तुलाजी—तञ्जोरके विद्योत्साही एक प्रसिद्ध राजा। इन्होंने १७६५ से १७८८ ई० तक राज्य किया था। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थ रचे हैं—१ आदिधर्मसार संग्रह, २ इनकुल तेजोनिधि (ज्योतिष), ३ धन्वन्तरीसारविधि, ४ मन्त्रशास्त्रसारसंग्रह, ५ राजधर्मसारसंग्रह, ६ रामध्यान, ७ वाक्यामृत और सङ्गीतसारामृत।

तुलाजी अङ्ग्रीय—प्रसिद्ध महाराष्ट्र दस्यु कनोजी अंग्रीयाका एक पुत्र। कनोजीके जैसा इससे उत्पातसे अंगरेज और महाराष्ट्रगण बहुत व्यस्त हो गये थे। अन्तमें बम्बई गवर्मेण्ट और महाराष्ट्र-सेनापतिने मिल कर तुलाजीको परास्त किया था।

तुलादण्ड (सं० पु०) तुलायाः दण्डः। मानदण्ड, नापनेको डंडी।

तुलादान (सं० क्ली०) तुलया स्वदेहमानेन दानं। तुला पुरुषसंज्ञक महादान, एक प्रकारका दान जिसमें किसी मनुष्यकी तौलके बराबर द्रव्यका दान होता है। यह सोलह महादानोंमेंसे एक है। तुलापुरुषदान देखो।

तुलाधट (सं० पु०) तुलायै तोलनाय धटः। तुलाधार दण्ड, तराजूको डंडो जिसमें रस्सो बंधो रहती है।

तुलाधर (सं० पु०) तुलाया मान दण्डस्य धरः धृ-अच्। १ वाणिजक, वनिक धर्मपुरुष। २ तुलाराशि। ३ सूर्य। ४ तुला गुण, तराजूकी डोरी। (त्रि०) ५ तुलादण्ड धारक, तराजूको पकड़नेवाला।

तुलाधार (सं० पु०) तुला-धृ-अण्। १ तुलाराशि। २ तुलागुण, तराजूको डोरी जिससे पलड़े बंधे रहते हैं। ३ वाराणसीनिवासी एक व्याध। यह सदा माता पिताकी सेवामें तत्पर रहता था, इसी पुण्यसे यह सर्वदर्शी हुआ था। क्रतबोध नामक एक व्यक्ति जब इनके सामने आया तब इसने उसका समस्त पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर उस व्यक्तिने भी माता पिताकी सेवाका व्रत ले लिया। (वृहद्धर्मपु० ३ अ०) ४ वाराणसी निवासी वणिक्, इन्होंने महर्षि जाजलिको मोक्षधर्मका उपदेश दिया था। (भारत १२।२६० अ०)

तुलापरीक्षा (सं० स्त्री०) अभियुक्तोंकी एक परीक्षा। प्राचीन कालमें यह अग्निपरीक्षा विष-परीक्षादिके समान प्रचलित थी। इसकी परीक्षा इस तरह थी - एक खुले स्थानमें यज्ञकाष्ठको एक बड़ीसी तुला खड़ी की जाती और चारों ओर तोरण आदि बांधे जाते थे। फिर मन्त्र-पाठ-पूर्वक देवताओंकी पूजा करते थे और अभियुक्तको एक बार तराजूके पलड़े पर बिठाकर मट्टी आदिसे तोल लेते थे। फिर उसे उतार कर दूसरी बार तौलते थे। यदि पलड़ा कुछ झुक जाता था, तो अभियुक्त दोषी समझा जाता था।

तुलापुरुषकृच्छ्र (सं० पु०) एक प्रकारका व्रत। इसमें पिण्याक (तिलकी खली), भात, मट्ठा, जल और सत्तू इनमेंसे प्रत्येकको क्रमशः तीन तीन दिन तक खा कर पन्द्रह दिनों तक रहना पड़ता है। यमने इसे २१ दिनोंका व्रत लिखा है। इसका पूरा विधान याज्ञवल्क्य, हारीत आदि स्मृतियोंमें पाया जाता है।

तुलापुरुषदान (सं० क्लो०) तुलापुरुषस्य तुलास्थित पुरुषभारसम परिमित द्रव्यस्य दानं ६ तत्। षोड़श महादानके अन्तर्गत दानविशेष, सोलह प्रकारके दानोंमेंसे एक दान। यह सब दानोंसे प्रधान और आदिदान है तथा यह अयन, विषुवसंक्रान्ति, व्यतीपात, दिनक्षय, युगादि, मन्वन्तरादि, संक्रान्ति, पौर्णमासी, द्वादशी, अष्टका आदिमें किया जाता है। संसार-भयभीरुको तीर्थ, गृह, वन, तड़ाग अथवा मनोज्ञ स्थानमें यह महादान करना होता है। जीवन अनित्य है, धन अत्यन्त चञ्चल है। ऐसा जान कर इस दानमें हाथ डाले। पुण्यतिथिमें ब्राह्मणको निर्दिष्ट कर मण्डप प्रस्तुत करे और उसमें सात हाथ तोरण एवं चारों ओर चार कुण्ड और पूर्णकुम्भ स्थापन करे। इसके पूर्वोत्तरमें एक हाथकी वेदी बनावे। इस वेदीमें ग्रहादि ब्रह्मा, शिव, अच्युत आदि देवताओंको पूजा फल, वस्त्र और मालासे करनी होती है। ब्रह्मा, शिव और अच्युतको पूजा प्रतिमामें तथा अन्य देवताओंको पूजा स्थण्डिलमें करते हैं।

साल, इङ्गुदी, चन्दन, देवदारु, श्रीपर्णी और विल्व आदि लकड़ियोंकी एक तुला बनानी होती है। तुलादण्डकी ऊँचाई ५ हाथ और बीचमें चार हाथका फासला रहे। तुलाकी सीकर लोहेकी होनी चाहिये। उसे सुवर्णयुक्त रत्नमाला, माल्यविलेपन आदिसे विभूषित कर उसमें पांच रङ्गकी पांच पताका लगा देनी चाहिये।

इस दानमें विधान दक्ष वेदविद् ब्राह्मण नियुक्त रहे। ऋग्वेदी होनेसे पूर्वकी ओर यजुर्वेदी होनेसे दक्षिणकी ओर, सामवेदी होनेसे पश्चिमकी ओर तथा अथर्ववेदी होनेसे उत्तरकी ओर दो ब्राह्मणोंको रखना होता है। पीछे विनायकादि लोकपाल, आदित्य आदि ग्रहगण, ब्रह्मा आदि देवताओंकी पूजा करते और स्व स्व मन्त्र द्वारा होम चतुष्टय जपसूक्त आदि यजमानके साथ यथाविहित मन्त्र द्वारा करते हैं। पीछे देवता और ऋत्विकोंको हेमभूषण दान देते हैं। जापकगण शान्तिकाध्यायका जप करते और आदि अन्त और मध्यमें ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करते हैं।

बाद तीन बार तुलाकी प्रदक्षिण कर पुष्पाञ्जलि ले इस मन्त्रसे उसे आमन्त्रण करते हैं—

"नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं शक्तिमास्थिता।
साक्षीभूता जगद्धात्रा निर्मिता विश्व योनिना ॥"

एकतः सर्वसत्त्वानि तथा भूतशतानि च।
धर्मी धर्मकृतां मध्ये स्थापितासि जगद्धिते ॥
त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्त्तिता।
मां तोलयन्ती संसारा दुद्धरस्व नमोऽस्तु ते ॥
नमो नमस्ते गोविन्द ! तुलापुरुषसंज्ञक।
त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात् संसारसागरात् ॥
पुण्यं कालमथासाद्य कृत्वाधिवासनं पुनः।
पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा तां तुलामारुहेद्बुधः ॥
स खड्गचर्मः कवची सर्वाभरणभूषितः।
धर्मं राजमथादाय हैमं सूर्येण संयुतं ॥"

इस मन्त्र पाठके बाद ब्राह्मणगण दान द्रव्यको तराजूके पलड़े पर रखते और फिर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हैं।

"नमस्ते साक्षी भूतानां साक्षीभूते सनातनि।
पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥
त्वया धृतं जगत् सर्वं सहस्थावरजङ्गमम्।
सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि ॥"

यह मन्त्र पढ़ कर तराजू परसे दान-द्रव्यको नीचे उतारते और उसमें आधा गुरुको देते, आधेमें दूसरे दूसरेको बांट देते हैं। तुलास्थित द्रव्यको अधिक काल तक घरमें नहीं रखना चाहिये।

तुलादानमें तराजूके एक पलड़े पर दान करनेवाला बैठता है और दूसरे पलड़े पर उसीको तौलके बराबर सोना-चाँदी आदि द्रव्य रखे जाते हैं।

द्रव्यविशेषसे तुला बनानेसे ये सब फल मिलते हैं। जो मनुष्य अष्टधातुकी तुला बनाते, वे मानसिक, वाचिक और कायिक सभी पापोंसे मुक्त होते हैं एवं जितने दिन वे सब धातु रहेंगी, उतने सौ कोटि वर्ष स्वर्गलोकमें वास करते हैं। पीछे पुण्यक्षय होने पर वे उच्च कुलमें जन्म लेते एवं धन-धान्य द्वारा समृद्ध होते हैं। जो सोनेकी तुला बनाते, उनके पूर्वके दश पुरुष एवं पीछेके दश पुरुष उद्धार पाते हैं तथा आप भी स्वर्गगामी होते हैं और कभी भी दरिद्रताको प्राप्त नहीं होते। जो चाँदीकी तुला बनाते, वे स्वर्गगामी होते हैं और पृथ्वी पर राजा हो कर जन्म ग्रहण करते हैं। सुवर्णहारी, कुष्ठ-रोगी आदि महापातकग्रस्त मनुष्य भी ताम्रकी तुला बना कर निष्पाप होते हैं तथा स्वर्गलोकमें वास करते हैं।

काँसेकी तुला बनानेसे इन्द्रका पद, लोहेसे उत्तम स्थान लाभ, पीतलसे स्वर्ग, सीसेसे गन्धर्व लोकमें वास रांगेसे चन्द्रका सायुज्य लाभ, घीसे तेजस्वी और तेलकी तुला बनानेसे अरोगी और सुखी होते हैं।

जितने प्रकारके दान हैं, उनमेंसे तुलादान ही सर्वप्रधान है। जीवन धारण कर प्रत्येक मनुष्यको यह दान करना उचित है। विभवके अनुसार सुवर्णादि तुलादान अवश्य विधेय है। (दानसाग॰)

२ व्रतभेद, एक प्रकारका व्रत जो १५ या २१ दिनों तक करना होता है।

१५ दिन साध्यव्रतमें पिन्याक, माँड़, मट्ठा, जल और सत्तू प्रत्येक तीन तीन दिन खा कर रहना पड़ता है। २१ दिन साध्यव्रतमें पूर्वोक्त ५ द्रव्य तीनदिन करके १५ और शेष ६ दिन तक वायुभक्षण अर्थात् उपवास करना पड़ता है।

तुलाप्रग्रह (सं॰ पु॰) तुला प्र-ग्रह-अप्। तुलादण्ड, तराजूमें बंधी हुई डोरी।

तुलाप्रग्राह (सं॰ पु॰) तुला-प्रग्रह घञ्। तुलादण्ड, तराजूकी डोरी।

तुलाबीज (सं॰ क्ली॰) तुलायाः तोलनस्य बीजं ६-तत्। गुञ्जा, घुंघचीके बीज जो तौलके काममें आते हैं।

तुलाभवानी (सं॰ स्त्री॰) शङ्करदिग्विजयके मतानुसार एक नदी और नगरीका नाम। तुलजापुर देखो।

तुलामान (सं॰ क्ली॰) तुलार्थं तोलनार्थं मानं मीयतेऽनेन मा करणे ल्युट्। १ तुलादण्ड, तराजूकी डोरी। २ वह अंदाज वा मान जो तौल कर लिया जाय। ३ बाट, बटखरा।

तुलायन्त्र (सं॰ पु॰) तुलायाः यन्त्र ६-तत्। तुलादण्ड, तराजू।

तुलायष्टि (सं॰ स्त्री॰) तुलायाः यष्टिः ६-तत्। तुलादण्ड तराजूमें बंधी हुई डोरी।

तुलाराम सेनापति—पहले ये कछारके अन्तिम हिन्दू-राजा गोविन्दचन्द्रके एक सिपाही वा चपरासी

थे। विद्रोहमें पिताके मारे जाने पर तुलारामने पहाड़ पर जा कर आश्रय लिया और यहां वे अपना प्रभुत्व फैलाने लगे।

१८२४ ई०में ब्रह्म-सेनाने आ कर जब कछारराज्य पर आक्रमण किया, तब उस समय तुलारामने उन लोगोंको कुछ सहायता की थी। १८२९ ई०में कछार राज्यको बाध्य हो कर तुलारामके लिए कुछ पार्वतीय भूभाग छोड़ देना पड़ा। १८३४ ई०में राजा गोविन्द चन्द्रकी हत्याके बाद तुलारामने महर और दयाङ्ग नदी-अन्तर्वर्ती तथा दयाङ्ग और कापिली नदीको मध्यवर्ती भूमि गवर्मेण्टको छोड़ दी।

इससे पहले तुलारामने 'सेनापति' उपाधि ग्रहण कर ली थी। उत्तरमें दयाङ्ग और जमुना नदी, दक्षिणमें महानदी, पूर्वमें धनेश्वरी तथा पश्चिममें दयाङ्ग नदीको मध्यवर्ती समस्त भूमि तुलाराम सेनापतिके अधिकारमें थी। इस स्थानका सरकारी कागजातोंमें 'तुलाराम सेनापतिका राज्य, वा 'महाल रङ्गिलापुर'के नामसे उल्लेख किया गया है।

तुलाराम पहले गवर्मेण्टको प्रतिवर्ष ४ हाथी (बादमें ४९० रु०) कर देते थे। अत्यन्त वृद्ध हो जानेके कारण १८१४ ई०में इन्होंने अपनी सम्पत्ति दोनों पुत्रोंको बांट दी। १८५० ई०में इनकी मृत्यु हो गई। इनके बड़े लड़केका नाम था नकुलराम १८५७ ई०में नागाओंके विरुद्ध युद्ध करते समय मारे गये।

उसके बाद तुलाराम सेनापतिके राज्यमें नाना प्रकारकी विशृङ्खला होने लगी, जिससे वृटिश-गवर्मेण्टने (१८५४ ई०में) तुलारामके परिवारके ५ व्यक्तियोंको कुछ लाखराज जमीन और सामान्य वृत्ति ठहरा कर समस्त भूभाग उत्तर-कछारमें शामिल कर लिया। उस समय उक्त भूभागका परिमाण १००० वर्गमील था।

तुलावत् (सं० त्रि०) तुला विद्यतेऽस्य तुला-मतुप्, मस्य वः तुलाधारी, तराजू पकड़नेवाला।

तुलावा (हिं० पु०) गाड़ीकी एक लकड़ी। इसके सहारे गाड़ी खड़ी करके धुरीमें तेल दिया जाता है और पहिया निकाला जाता है।

तुलासूत्र (हिं० स्त्री) तुलार्थं तोलनार्थं सूत्र। तुलादण्डस्थित सूत्र, तराजूकी रस्सी जिससे पलड़े बंधे रहते हैं।

तुलि (सं० स्त्री०) तुरि-रस्य लः। १ तुरी, जुलाहोंकी कूँची। २ चित्रकरकी वर्त्तिका, चित्र बनानेकी कूँची।

तुलिका (सं० स्त्री०) तोलयति सादृश्यं गच्छति तुल बाहुलकात् इकन् स च कित्। १ खञ्जनपक्षी। २ तुलि, कूँची।

तुलित (सं० त्रि०) तुल-तत्-करोतीति णिच् कर्मणि क्त। १ परिमित, तुला हुआ। २ बराबर, समान।

तुलिनी (सं० स्त्री०) तुलमस्ति फलेऽस्याः तुल-इनि ङीप् पृषो० ह्रस्वः। शाल्मली, सेमरका पेड़।

तुलिफला (सं० स्त्री०) तुलि तुलयुक्तं फलं यस्याः पृषो० ह्रस्वः। शाल्मली, सेमरका पेड़।

तुली (सं० स्त्री०) तुरी रस्य लः। तन्तुवायकी तुरी, जुलाहोंकी कूंची।

तुली (हिं० स्त्री०) छोटा तराजू, काँटा।

तुलुव (सं० पु०) दक्षिणके एक प्रदेशका प्राचीन नाम। यह सह्याद्रि और समुद्रके बीच अक्षा० १२° २७' से १३° १५' उ० और देशा० ७४° ४५' से ७५° ७० पू० कल्याणपुर और चन्द्रगिरि दोनों नदियोंके किनारे अवस्थित है। सह्याद्रिखण्डमें यह स्थान "तौलव" देश नामसे प्रसिद्ध है।

"ततः सह्याद्रिशिखरे ह्यदूरे दृष्टवान्मुनिः।
नानाफलप्रस्रवणैर्नानाकन्दरसानुभिः॥
अवतीर्य ददर्शाथ तौलवं देशमुत्तमम्।
तत्क्षेत्रं प्राप्तवान् रामो मेधावी भृगुनन्दनः॥
महालिङ्गेश्वरं सम्यक् पूजयामास शाश्वतः।"
(उत्तरार्द्ध २१।५२-५७)

इस स्थानके अधिवासी भी सह्याद्रिखण्डमें "तौलव" नामसे मशहूर हैं। (सह्याद्रि २।५।१) आजकल इस प्रदेशको उत्तर कनाड़ा कहते हैं। स्कन्दपुराणके 'तुलुवनाद उत्पत्ति' नामक ग्रन्थमें इस स्थानका माहात्म्य वर्णित है।

इस प्रदेशमें तुलुभाषा प्रचलित है। लगभग चार लाख मनुष्य यह भाषा बोलते हैं। छह प्रधान द्राविड़ भाषाओंमें तुलु भी एक है। इस भाषामें कोई ग्रन्थ आज तक नहीं बनाये गये हैं। मलयालम् अथवा कनाड़ी अक्षरोंमें ही इस भाषाके लिखनेका काम किया जाता है।

कनाड़ाके इतिहासके साथ तुलुवका इतिहास मिला हुआ है।

तुलूली (हिं० स्त्री०) पेशाव इत्यादिकी बंधी हुई धार जो कुछ दूर पर जा कर पड़े।

तुलोपतुला (सं० स्त्री०) तुला और उपतुला, चतुर्थभागका नाम तुला और तृतीय भागका नाम उपतुला है।

"भवति तुलोपतुलानां मूलं पादेन पादेन।"

(वृहत्संहिता ५३।३०)

तुल्य (सं० त्रि०) तुलया सम्मितं यत्। नौवयोधर्मेति। पा ४।४।९१) सादृश्य, बराबरी। इसके संस्कृत पर्याय—सम, सदृक्ष, सदृश, सदृक्, साधारण, समान, सधर्म, सम्मित और स्वरूप। इनके उत्तरपदमें रहनेसे तुल्यवाचक होता है। निभ, सङ्काश, नोकाश प्रतोकाश, उपमा, भूत, रूप, कल्प, प्रभ, ये भी तुल्यके पर्याय हैं। २ समान, बराबर। (पु०) ३ स्वनामख्यात गन्धर्व।

तुल्यकोणिक (Equiangular) जिस क्षेत्रके सब कोन बराबर हों।

तुल्यज्ञ (सं० पु०) तुल्यं जानाति तुल-ज्ञा-क। तुल्यज्ञानी, बराबर बराबर ज्ञानवाले।

तुल्यता (सं० स्त्री०) तुल्यस्य भावः तुल्य-तल्-टाप्। १ सादृश्य। २ समता, बराबरी।

तुल्यदर्शन (सं० त्रि०) तुल्यं दर्शनं यस्य, बहुव्री०। समान-दर्शन।

तुल्यपान (सं० क्ली०) तुल्यैः सह पानं। स्वजातिके लोगोंके साथ मिलजुल कर खानापीना।

तुल्यप्रधानव्यंग्य (सं० पु०) वह व्यंग्य जिसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ बराबर हो।

तुल्यबल (सं० त्रि०) तुल्यं बलं यस्य। १ समशक्ति-सम्पन्न, समान ताकतवाला। (क्ली०) तुल्यं बलो कर्मधा०। २ समान बल, बराबर जोर।

तुल्यभावन (सं० क्ली०) तुल्यं भावनं। एक प्रकारकी राशिका मिलान।

तुल्यमूल्य (सं० त्रि०) तुल्यं मूल्यं यस्य। १ समान मूल्य-विशिष्ट, बराबर दामवाला। २ समान, बराबर।

तुल्ययोगिता (सं० स्त्री०) काव्यालङ्कारविशेष, एक अलङ्कार जिसमें प्रस्तुतों या अप्रस्तुतोंका अर्थात् बहुतसे उपमेयों या उपमानोंका एक ही धर्म बतलाया जाय।

तुल्ययोगी (सं० त्रि०) समान सम्बन्ध रखनेवाला।

तुल्यरूप (सं० त्रि०) तुल्यं रूपं यस्य। एकरूप, सदृश।

तुल्यवृत्ति (सं० त्रि०) तुल्या वृत्तिर्यस्य। एक व्यवसायी, एक रोजगारके।

तुल्यशस् (अव्य०) तुल्य वीप्सार्थे-शस्। बराबर बराबर।

तुल्याकृति (सं० त्रि०) तुल्या आकृतिर्यस्य। सदृशाकृति, जो देखनेमें एकसे हों।

तुल्वल (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

तुव—तव देखो।

तुवर (सं० पु०-क्ली०) तवति हिनस्ति रोगान् तु-बाहु-ष्वरच्। १ कषाय रस, कसैला रस। २ धान्यभेद, एक प्रकारका धान। ३ आढ़क, अरहर। ४ नदियों और समुद्रके तटपर होनेवाला एक पौधा। इसके फल इमलीके समान होते हैं, जिनके खानेसे पशुओंका दूध बढ़ता है। ५ अजातशृङ्ग गवि, वह गाय जिसके सींग नहीं निकले हों। (त्रि०) ६ कषाय, कसैला। ७ तिक्त, तीता। ८ श्मश्रुहीन, बिना दाढ़ी-मूंछका।

तुवरयावनाल (सं० पु०) तुवरः कषायः यावनालः कर्मधा०। धान्यभेद, लाल ज्वार, लाल जुन्हरी। पर्याय—तुवर, कषाययावनाल, रक्तयावनाल, लोहित कुस्तुम्बुरु धान्य। यह गुण—कषाय, उष्ण, विरेचक, संग्राही, वातनाशक, विदाही और शोषकारक है।

तुवरिका (सं० स्त्री०) तुवरः कषायरसोऽस्त्यस्याः तुवर-ठन्। १ सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपीचन्दन। २ आढ़की, अरहर।

तुवरी (सं० स्त्री०) तुवर स्त्रियां यित्वात् ङीष्। १ आढ़की, अरहर। २ धान्यभेद, एक प्रकारका धान। गुण यह धारक, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, अग्नि-कारक और कफ, विष, रक्त, कण्डु, कुष्ठ और कोष्ठगत

रोगनाशक है। ३ सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपीचन्दन। पर्याय—मृत्, सौराष्ट्री, मृत्स्ना, आसङ्ग, मसी, सुराष्ट्रजा, मृत्तालक, काली, मृत्तिका, स्तुत्या, काची, सुजाता। गुण—यह तिक्त, कटु, कषाय, उष्ण, लेखन, चक्षुको हितकर, ग्राही, छर्द्दि और पित्तके लिये जृम्भानाशक है।

तुवरीमृत् (सं० स्त्री०) सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपीचन्दन

तुवरीशिम्ब (सं० पु०) तुवर्या इव शिम्बा फलत्वक यस्य। चक्रमर्द्द वृक्ष, चकवड़का पेड़, पँवार।

तुवि (सं० स्त्री०) तुम्बी पृषो० साधुः। १ तुम्बी, तूँबी। २ बहुशब्दार्थ, जिसके कई अर्थ हों।

तुविकूर्मि (सं० त्रि०) बहुकर्मा, युद्धमें अनेक प्रकारके काम करनेवाला।

तुविग्र (सं० त्रि०) १ प्रभूतगमन, बहुत जल्द जानेवाला। २ बहुत जोरसे शब्द करनेवाला। ३ बहुत खानेवाला।

तुविग्राम (सं० त्रि०) बहुग्राहक, जोरसे पकड़नेवाला।

तुविग्र (सं० त्रि०) पूर्णग्रीव, बहुत प्रशंसनीय।

तुविग्रिव (सं० त्रि०) विस्तीर्णकन्धर, जिसका कंधा बहुत मज़बूत हो।

तुविजात (सं० त्रि०) १ ओजस्वी, ताकतवर। २ जो बहुतोंकी रक्षाके लिये उत्पन्न हुआ हो। ३ जिससे बहुतोंकी उत्पत्ति हो। यहां तुविजात इन्द्रका विशेषण है।

तुविद्युम्न (सं० त्रि०) तुवि बहु द्युम्नं धनं यस्य। प्रभूतधनेन्द्र, जिसके पास बहुत धन हो।

तुविनृम्न (सं० त्रि०) प्रभूत बलयुक्त, जो बहुत ताकत रखता हो।

तुविप्रति (सं० त्रि०) १ बहुप्रतिगन्ता, बहुतोंसे भेंट करनेवाला। २ बहुतोंसे मुकाबला करनेवाला।

तुविबाध (सं० त्रि०) बहुपीड़क, बहुतोंको कष्ट पहुचानेवाला।

तुविब्रह्मन् (सं० त्रि०) बहुस्तोत्र, जिसके अनेक स्तोत्र हों।

तुविमघ—तुवीमघ देखो।

तुविमन्यु (सं० त्रि०) प्रवृद्धमति, जिसका पक्का विचार हो।

तुविस् (सं० स्त्री०) तु-वृद्धौ पूर्त्तौ वा इसि किच्च। १ वृद्धि, बढ़ती। २ प्रज्ञा, बुद्धि, ज्ञान। ३ बल, ताकत।

तुविम्रक्ष (सं० त्रि०) जिसके बरसनेसे बहुतोंका अनिष्ट हो।

तुविराधस् (सं० त्रि०) प्रभूत धनयुक्त, धनी, जिसके पास खूब दौलत हो।

तुविवाज (सं० त्रि०) प्रभूत बलयुक्त, बलवान्, ताकतवर।

तुविशग्मम (सं० त्रि०) बहु सुखयुक्त, सुखी, जिसे यथेष्ट आराम हो।

तुविशुष्म (सं० त्रि०) बहुबल, बलवान्, ताकतवर।

तुविश्रवस् (सं० त्रि०) बहु अन्नयुक्त, जिसके पास बहुत अनाज हों।

तुविष्टम (सं० त्रि०) बहुतम, बली, ताकतवर, जोरावर।

तुविष्मत् (सं० त्रि०) तुविस्-मतुप्। १ प्रज्ञावान्, बुद्धिमान्। २ जोरावर।

तुविष्वणस् (सं० त्रि०) प्रभूतध्वनियुक्त, जिससे बहुत शब्द निकलता हो।

तुविष्वणि (सं० त्रि०) महाशब्दयुक्त, जिससे खूब आवाज आती हो।

तुविष्वन् (सं० त्रि०) बहु शब्दयुक्त, जिसमें बहुत शब्द हों।

तुवीमघ (सं० त्रि०) प्रभूत धनयुक्त, बहुत धनी।

तुवीरव (सं० त्रि०) बहु शब्दयुक्त, जिसमें बहुत आवाज हो।

तुवीरवत् (सं० त्रि०) तुवी मत्वर्थीयो रः ततो मतुप्, मस्य व। बहु स्तोत्रयुक्त, जिनमें अनेक स्तोत्र हों।

तुव्योजस् (सं० त्रि०) तुवि ओजः यस्य। बहुबलयुक्त, बहुत बलवान, जो खूब ताकत रखता हो।

तुशियार (हिं० पु०) पश्चिम-हिमालयमें होनेवाला एक झाड़। पुरनो इसके छिलकेसे रस्सियाँ बनाई जाती हैं।

तुष (सं० पु०) तुष क। १ धान्यत्वक्, अन्नके ऊपरका छिलका, भूसी। २ विभीतकवृक्ष, बहेड़ेका पेड़। ३ अंडेके ऊपरका छिलका।

तुषग्रह (सं० पु०) तुषेण गृह्यते ग्रह कर्मणि अप्। अग्नि, आग।

तुषज (सं० त्रि०) तुषे जायते जन-ड। तुषजात अग्नि प्रभृति, वह आग जो भूसीसे निकली हो।

तुषधान्य (सं॰ क्ली॰) तुषावृतं धान्यं। सतुषधान्य, छिलका सहित धान।

तुषसार (सं॰ पु॰) तुषं सरति अनुसरति सृ-अण्। आग भूसीके बीच बहुत धीरे धीरे फैलती है, इसीसे तुषका नाम तुषसार रक्खा गया है।

तुषानल (सं॰ पु॰) तुषस्य अनलः। १ तुषजातअग्नि, भूसीकी आग, करसीकी आंच। २ तुषाग्निमें आत्मदाह-रूप प्रायश्चित्तविशेष, भूसी वा वास-फूसकी आगमें भस्म होनेकी क्रिया जो प्रायश्चित्तके लिए की जाती है। कुमारिलभट्ट तुषाग्निमें ही भस्म हो कर मरे थे।

तुषाम्बु (सं॰ क्ली॰) तुषस्य अम्बुः ६-तत्। तुषोदक, एक प्रकारकी कांजी जो भूसीसहित कुटे हुए जौकी सड़ा कर बनाय जाती है। गुण—अग्निदीप्तिकारक, हृदयग्राही, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, पाचक, रक्तपित्तजनक एवं पाण्डु, क्रिमि और वस्तिगत शूलविनाशक है।

तुषार (सं॰ पु॰) तुष्यत्यनेन शस्यात् तुष-आरन्। तुषाराद्यश्च। उण् ३।१३८) १ हिम, बरफ। २ हिमकण, पाला।

विकिरणशक्ति ही तुषारकी उत्पत्तिका प्रधान कारण है। रातको पृथ्वी परकी सभी वस्तु जब अपना तेज विकीर्ण कर वायुराशिकी अपेक्षा अधिक ठण्डी हो जाती हैं, तब चारों ओरकी वायुके अन्तर्गत जलीय वाष्प घनीभूत हो कर तुषारके बिन्दुके रूपमें उनके ऊपर जम जाती है।

उष्णताका जितना ही ह्रास होता है, वायुराशिमें उतनी ही कम वाष्प रहती है; अर्थात् उतनी ही कम वाष्प द्वारा वायुराशि परिषिक्त होती है। सुतरां दिनके समयमें जो वाष्प रहती है, रातमें कुछ कुछ शीतल हो कर यदि वह उससे परिषिक्त हो जाय तो शीतलद्रव्यके स्पर्शसे ही उनके अन्तर्गत कुछ वाष्प घनी हो कर तुषारके रूपमें परिणत हो जाती है। वायुमें जितनी ही अधिक वाष्प रहती है, उतना ही कम यदि वह ठण्डी हो जाय तो तुषार बनता है। इस देशमें ग्रीष्मकालमें दिनकी वायुराशि बहुत गरम रहती है, किन्तु रातको उतनी ठण्डी नहीं रहती; इसी कारण हवामें मिली हुई है। वाष्प भी तुषाररूपमें परिणत नहीं होती है। जिन सब वस्तुओंकी विकिरणशक्ति प्रबल रहती है, वे रातको कुछ शीतल हो जाती हैं। यही कारण है कि उन सब वस्तुओंके ऊपर कुछ तुषार जम जाता है। सभी धातु द्रव्योंकी विकिरणशक्ति बहुत कम है, इसीसे उनके ऊपर उतना तुषार नहीं जमता, किन्तु मट्टी, कांच, बालू, वृक्षपत्र, पशम आदि द्रव्योंमें विकिरण-शक्ति अधिक है, इस कारण उनके ऊपर तुषार भी अधिक जम जाता है. उससे पृथ्वीपृष्ठमे तेज विकिरणकी तथा तुषारउत्पत्तिकी प्रतिबन्धकता होती है। जब आकाशमण्डल मेघाच्छन्न रहता है, तब वह भूपृष्ठ तेज-विकिरण द्वारा उतना ठंढा नहीं हो सकता, क्योंकि मेघावलीसे तेज विकीर्ण होता हुआ उसके ऊपर गिरता है। यही कारण है, कि मेघाच्छन्न रात्रिमें उतना तुषार नहीं पड़ता। विस्तृत शाखाविशिष्ट वृक्षके तले भी तुषार नहीं जमनेका यही कारण है। जब वायु धीमी चालसे बहती है, तब सब वस्तुए अधिक ठंडी हो जाती हैं और तुषारोत्पत्ति बहुत कुछ ज्यादा हो जाती है। क्योंकि उतनी ही कम शीतल होनेसे वायु वाष्पकर्त्तृक परिषिक्त हो जाती है। नदीसे समुद्र तक सभी जलाशयका अन्तवर्त्ती तेज संयोगसे धुएंके अवयवसदृश वाष्पाकारमें ऊपर जा कर जो जल गिरता है, उसे तुषारज जल कहते हैं। यह तुषारज जल प्राणियोंके लिये तो अहितकर है, पर वृक्षोंके लिये विशेष उपकारक है। भावप्रकाशके मतसे इसके गुण—शीतल, रूक्ष, वायुवर्द्धक, पित्तनाशक, एवं कफ, ऊरुस्तम्भ, कण्ठरोग, मन्दाग्नि, मेद और गलगण्डादि रोगनाशक। (भावप्रकाश॰) ३ शीतलस्पर्श। ४ कर्पूरभेद, एक प्रकारका कपूर, चीनिया कपूर। ५ देशभेद, हिमालयके उत्तरका एक देश। ग्रीक लोगोंके ग्रन्थोंमें यह देश 'तोखारि' नामसे प्रसिद्ध है। ७ तुषारदेशोद्भव जाति, तुषारदेशमें बसनेवाली जाति। प्रत्नतत्त्वविदोंके मतानुसार यह जाति शकजातिकी एक शाखा है। १ली शताब्दीमें इन लोगोंने भारतवर्षमें प्रवेश कर अनेक स्थानों पर आक्रमण किया था। (त्रि॰) ८ शीतल-स्पर्शयुक्त, छूनेमें बरफकी तरह ठण्डा।

तुषारकण (सं॰ पु॰) तुषाराणां कणः, ६-तत्। हिमकण।

तुषारकर (सं॰ पु॰) १ हिमकर, चन्द्रमा। २ कर्पूरभेद, एक प्रकारका कपूर।

तुषारकाल (सं॰ पु॰) तुषारस्य कालः ६-तत्। शीतकाल।

तुषारकिरण (सं॰ पु॰) हिमकिरण, चन्द्रमा।

तुषारगिरि (सं॰ पु॰) हिमालय।

तुषारगौर (सं॰ वि॰) तुषारवत् गौरः। १ जो हिमसा उजला हो। (क्ली॰) २ कर्पूर, कपूर।

तुषारनविहार—प्रतापगढ़ जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन शहर। अयोध्याके मध्य यह स्थान बहुत प्राचीन और सुप्रसिद्ध है। मुसलमानोंके शासनकालमें यह जिलेका प्रधान शहर था। अभी भी यह स्थान सूबा-विहार नामसे मशहूर है। गङ्गाके प्राचीन तलके ऊपर यह नगर बसा है। नगरके पश्चिमांशमें ऊँचे मट्टीके स्तूप हैं, जिनमेंसे कहीं कहीं खोद कर प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहम साहबने बड़ी बड़ी ईंटें निकाली थीं। उनके मतानुसार चीन-परिव्राजक यूएनचुअङ्गने जो अयोमुख वा हयमुख नामक स्थानका उल्लेख किया है वही यह तुषारनविहार हो सकता है। यहां पहले बौद्धमतका प्राधान्य था। अभी भी यहांके बुद्ध और बुद्धिकी मूर्त्ति प्रसिद्ध हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है, कि पहले इस स्थानको तुषाराराम-विहार कहते थे, उसीके अपभ्रंशसे तुषारन-विहार नाम पड़ा है। यहांका अष्टभुजाका मन्दिर उल्लेखयोग्य है।

तुषारपाषाण (सं॰ पु॰) १ ओला। २ हिम, बरफ।

तुषारमूर्त्ति (सं॰ पु॰) तुषारः मूर्त्तिर्यस्य। हिमकर, चन्द्रमा।

तुषाररश्मि (सं॰ पु॰) तुषारः रश्मिर्यस्य। हिमकर, चन्द्रमा।

तुषाराद्रि (सं॰ पु॰) तुषारस्य अद्रिः। हिमालय पर्वत। इस पहाड़ पर बहुत बरफ गिरता है, इसीसे इसका नाम तुषाराद्रि पड़ा है।

तुषाराम्बु (सं॰ क्ली॰) नीहारका जल, कुहरेका पानी, ओस।

तुषित (सं॰ पु॰) तुष्यति तुष बाहुलकात् कितच्, तारकादित्वात् इतच वा। १ गणदेवताभेद, एक प्रकारके गणदेवता। इनकी संख्या बारह है, किन्तु मन्वन्तरके भेदसे इनके नाम बदला करते हैं। इनके नाम ये हैं—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र, रस, घ्राण, स्पर्श, बुद्धि और मन। (सारसुन्दरी)

चाक्षुषमन्वन्तरमें तुषित नामक बारह देवताओंने वैवस्वतमन्वन्तरके आने पर मनुष्योंकी भलाईके लिये अदितिके गर्भमें जन्म लिया था. वैवस्वतमन्वन्तरमें ये द्वादश आदित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए थे। (हरिवंश ३ अ॰)

इनके नाम इस प्रकार हैं—तोष, प्रतोष, भद्र, शान्ति, इड़स्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वाहा, सुदेव और रोचन। कोई कोई तो इनकी संख्या ३६ और कोई १२ बतलाते हैं। किसीने इनकी इसप्रकार मीमांसा की है—एक एक मन्वन्तरमें १२, इस हिसाबसे तीन मन्वन्तरमें ३६ हुए। इसी अभिप्रायसे "षट्त्रिंशत् तुषिता मताः" ऐसा लिखा गया है। २ विष्णु। (भारत शान्ति ३८ अ॰)

३ बौद्धमतानुसार एक स्वर्गका नाम।

४ जैनधर्मानुसार ब्रह्मस्वर्गकी दिशाओंमें रहनेवाले सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लौकान्तिक देवोंमेंसे एक। ये तीर्थङ्करोंके तपकल्याणकमें आते और उनके वैराग्यका अनुमोदन करते हैं। (तत्त्वार्थसूत्र ४।२५)

तुषोत्थ (सं॰ क्ली॰) तुषादुत्तिष्ठति उद्-स्था-क। तुषोदक, कांजी।

तुषोदक (सं॰ पु॰) तुषस्य उदकं, ६-तत्। १ तुषाम्बु, छिलके समेत कूटे हुए जौको पानीमें सड़ा कर बनाई हुई कांजी। यह अग्निदीप्तिकारक, हृदयग्राही, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, पाचक, रक्तपित्तजनक एवं पाण्डु, कृमि और वस्तिगत शूलनाशक है।

सौवीरक भी तुषोदकके समान गुण-सम्पन्न है। कच्चे अथवा पक्के जौकी भूसी निकाल कर जो कांजी बनाई जाती है, उसीको सौवीर कहते हैं। सौवीर और तुषोदकमें भेद यही है कि छिलके समेत जौकी कांजीका नाम तुषोदक है और बिना छिलकेकी कांजीका नाम सौवीर। सौवीर देखो।

तुष्ट (सं॰ वि॰) तुष कर्त्तरि-क्त। १ सन्तोषयुक्त, तृप्त। २ प्रसन्न, राजी, खुश। (पु॰) ३ विष्णु। ये ही एक मात्र आनन्दस्वरूप और आनन्दाश्रय हैं, इसीसे तुष्ट शब्द कहनेसे विष्णुका बोध होता है।

तुष्टि (सं० स्त्री०) तुष-भावे क्तिन्। १ तोष, सन्तोष, तृप्ति २ बुद्धिभेद। यह बुद्धि नौ प्रकारकी है, चार आध्यात्मिक और पांच वाह्य। (सांख्यका० ५१)

आध्यात्मिक तुष्टियां ये हैं—प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य। आध्यात्मिकका अर्थ आभ्यन्तरिक है। प्रकृति सगुण है वा निर्गुण एवं सभी तत्त्व प्रकृतिके ही कार्य हैं; यह जाननेसे जो तुष्टि होती है, उसे प्रकृत्याख्य तुष्टि कहते हैं।

उपादान—कोई सभी तत्त्वोंको न जान कर केवल उपादान ग्रहण करते हैं अर्थात् संन्याससे विवेक होता है, ऐसा समझ संन्याससे जो तुष्टि होती है, उसे उपादानाख्य तुष्टि कहते हैं।

काल—काल पा कर आप ही विवेक या मोक्ष प्राप्त हो जायगा। अतः तत्त्वाभ्यास निष्प्रयोजन है, ऐसा जो जानता हैं और जो इसीमें सन्तुष्ट रहता है; इस प्रकारकी तुष्टिको कालाख्य तुष्टि कहते हैं।

भाग्य—भाग्यमें होगा तो मोक्ष हो ही जायगा, ऐसी तुष्टिको भाग्याख्य तुष्टि कहते हैं। ये चार प्रकारकी तो आध्यात्मिक तुष्टि हुईं।

अब बाह्य तुष्टिका विषय कहते हैं। वाह्य विषयोंकी विरक्तिसे जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप पांच प्रकारकी तुष्टियां उत्पन्न होती हैं, उन्हें वाह्यतुष्टि कहते हैं। अर्जन, रक्षण, क्षय, सङ्ग और हिंसा इन पांच विषयोंसे विरक्त अर्थात् इनमेंसे प्रत्येकका दोष देख कर उनसे विरक्त हो जानेका नाम पञ्च वाह्य तुष्टि है।

(सांख्यका०)

तुष्टि आध्यात्मिकादिके भेदसे ९ प्रकारकी है, चार आध्यात्मिकी तुष्टि और पांच वाह्यतुष्टि। आत्मभावसे या आत्मबुद्धिसे ग्रहण करनेका नाम आध्यात्मिक है। प्रकृतिके विवेकज्ञानको ही मुक्ति कहते हैं, इस कारण प्रकृति ही उपास्य है। प्रकृतिके सिवा और दूसरा उपास्य ही नहीं है, ऐसा सोच कर जो तुष्टि होती है, उसे प्रकृतितुष्टि कहते हैं, इसका नाम अम्भ है। व्रतधारण और संन्यासादिके सिवा विवेकसे मुक्ति नहीं है; यही मुक्तिके प्रतिकारण हैं, ऐसा समझ कर अनेक व्रती हो जाते हैं और सन्तुष्ट रहते हैं। इस प्रकारकी तुष्टिका नाम उपादानतुष्टि है; इसीको सलिल कहते हैं। व्रती हो चुके हैं, समय पा कर मुक्त हो जायंगे, ऐसी तुष्टिका नाम काल है; इसीको ओघ कहते हैं। भाग्यमें रहनेसे मुक्ति अवश्य होगी, ऐसी तुष्टिको भाग्य कहते हैं; इसका नाम वृष्टि है।

इनके सिवा विषयत्यागजनित ५ प्रकारकी तुष्टि हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

धनोपार्जन करनेमें बहुत कष्ट होता है। अतः धनका कोई प्रयोजन नहीं, ऐसा जान कर जो सन्तोष रखा जाता है, उसे पारतुष्टि कहते हैं। धनकी रक्षा करना और भी कठिन है, ऐसा जान कर विषयपरित्यागपूर्वक सन्तुष्ट रहनेमें जो सन्तोष है, उसका नाम सुपारतुष्टि है। धनके नाश हो जानेसे बहुत दुःख होता है, उसका नहीं रहना ही अच्छा है, ऐसी तुष्टिको पारपारतुष्टि कहते हैं। ज्यों ज्यों भोग करते हैं, त्यों त्यों इच्छा बढ़ती जाती है, अतः भोग भी दुःखदायक है। उसका त्याग करना ही श्रेय है। इस प्रकार त्याग-बुद्धिसे जो सन्तोष उत्पन्न होता है, उसे अनुत्तमाम्भतुष्टि कहते हैं। विषय-सम्पर्कमें हिंसादि नाना प्रकारके दोष होते हैं अर्थात् विना दूसरेको कष्ट दिये सुख नहीं मिलता, यह जान कर विषय-विमुख होनेमें जो सन्तोष है, उसे उत्तमाम्भतुष्टि कहते हैं। ये ही ९ प्रकारकी तुष्टियां ज्ञानशक्तिकी उद्बोधक वा उत्तेजक हैं। इनके नहीं रहनेसे ज्ञाननाशक और योगनाशक विपर्य्यय सभी वृत्तियां प्रबल हो जाती हैं। (सांख्यद०)। तुष-कर्त्तरि क्तिच्। ३ गौर्यादि षोलह मातृकाओंमेंसे एक मातृकाका नाम। कुलदेवता देखो। ४ शक्तिविशेष। (देवीभाग० १।१५।६१) ५ कंसके आठ भाइयोंमेंसे एक।

तुष्टिकर (सं० वि०) तुष्टिं करोति तुष्टि-कृ-ट। सन्तोषकार, तृप्तिजनक।

तुष्टिजनक (सं० वि०) तुष्टीनां जनकः, ६-तत्। सन्तोषजनक, तृप्तिकर।

तुष्टिमत् (सं० त्रि०) तुष्टिरस्त्यस्य तुष्टि-मतुप्। १ तोषयुक्त, सन्तुष्ट। (पु०) २ उग्रसेनके पुत्र, कंसके भाई। (भाग० ९।२४।२४)

तुष्टु (सं॰ पु॰) तुष बाहुलकात् तुक्। कर्णस्थित मणि, वह मणि जो कानमें पहनी जाता है।

तुष्य (सं॰ पु॰) तुष्य कर्त्तरि क्यप्। महादेव, शिव। तुटितुट देखो।

तुस (सं॰ पु॰) तुष पृषो॰ यस्य सत्वं। तुष, भूसी।

तुसी (हिं॰ स्त्री॰) अन्नके ऊपरका छिलका भूसी।

तुस्त (सं॰ क्ली॰) तुस-क्त। रेणु, धूल, गर्द।

तुहमत (हिं॰ स्त्री॰) तोहमत देखो।

तुहर (सं॰ पु॰) तुह-बाहु॰ करण्। कुमारानुचरभेद, कुमारके एक अनुचरका नाम।

तुहार (सं॰ पु॰) तुह-बाहु॰ आरन्। कुमारानुचरभेद, कुमारका एक अनुचर।

तुहिन (सं॰ क्ली॰) तुह्यतेऽनेन तुह इनन् गुणे कृते ह्रस्वश्च। वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च। उण् २।५२। १ हिम, बरफ। २ चन्द्रमाका तेज, चांदनी। ३ तुषार, कुहरा, पाला। (त्रि॰) ४ शीतल, ठंडा।

तुहिनकण (सं॰ पु॰) तुहिनस्य कणः, ६-तत्। हिमकण, बरफ।

तुहिनकर (सं॰ पु॰) तुहिनं करोऽस्य। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

तुहिनकिरण (सं॰ पु॰) चन्द्रमा।

तुहिनकिरणपुत्र (सं॰ पु॰) तुहिनकिरणस्य पुत्रः ६-तत्। १ चन्द्रपुत्र, बुध। इन्होंने ताराके गर्भसे जन्मग्रहण किया था। तारा देखो।

तुहिनगिरि सं॰ पु॰) हिमालय पर्वत।

तुहिनगु (सं॰ पु॰) तुहिनाः गोर्यस्य। शीत, चन्द्रमा।

तुहिनदीधिति (सं॰ पु॰) चन्द्रमा।

तुहिनद्युति (सं॰ पु॰) चन्द्रमा।

तुहिनरश्मि (सं॰ पु॰) तुहिन, चन्द्रमा।

तुहिनशैल (सं॰ पु॰) तुहिनस्य शैलं ६-तत्। हिमालय पर्वत।

तुहिनांशु (सं॰ पु॰) चन्द्रमा।

तुहिनांशुतैल (सं॰ क्ली॰) तुहिनांशोः तैलं ६ तत्। कर्पूरतैल, कपूरका तेल।

तुहिनाचल (सं॰ पु॰) हिमालय।

तुहिनाद्रि (सं॰ पु॰) हिमालय।

तुहिनास्रु (सं॰ पु॰) १ चन्द्रमा। २ कपूर।

तुहुण्ड (सं॰ पु॰) १ दनुवंशके एक दानवका नाम। यह दानव बहुत पराक्रमी था। (भारत आदि ६५ अ॰) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत आ॰ १८६ अ॰)

तू (हिं॰ सर्व॰) १ एक सर्वनाम। यह उस पुरुषके साथ आता है, जिसे संबोधन करके कुछ कहा जाता है। (हिं॰ स्त्री॰) २ कुत्तोंको बुलानेका शब्द।

तूँ (हिं॰ सर्व॰) तू देखो।

तूंबड़ा (हिं॰ पु॰) तूंबा देखो।

तूंबना (हिं॰ क्रि॰) तूमना देखो।

तूंबा (हिं॰ (पु॰) १ कड़ुआ गोल कद्दू, तितलौकी। २ कद्दूको खोखला करके बनाया हुआ बरतन। इसे प्रायः साधु अपने साथ रखते हैं, कमण्डल।

तूंबी (हिं स्त्री॰) १ कड़ुआ गोल कद्दू। २ कद्दूको खोखला करके बनाया हुआ बरतन।

तूटना (हिं॰ क्रि॰) टूटना देखो।

तूण (सं॰ पु॰) तूण्यते पूर्यते बाणैः तूण पूरणे घञ्। १ बाणाधार, तीर रखनेका चोंगा, तरकश। पर्याय—उपासङ्ग, तूणीर, निषङ्ग, इषुधि, तूणी। २ चामर नामक वृत्तका नाम।

तूणक (सं॰ क्ली॰) छन्दोविशेष, एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १५ अक्षर होते हैं, पहलेसे लेकर एक एकके बाद एक एक गुरु रहता है।

तूणक्ष्वेड़ (सं॰ पु॰) बाण, तीर।

तूणधार (सं॰ पु॰) तूणं धारयति धारि-अन्। तूणधारी, वह जो तीर धारण करता हो।

तूणव (सं॰ पु॰) तूणस्तदाकारोऽस्त्यस्य केशादित्वात् व, तूणं तदाकारं वाति वा-क इति वा। तूणाकार वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा जिसका आकार तूणसा होता है।

तूणवध्म (सं॰ पु॰) तूणवः वाद्यभेदं धमति ध्मा-क। तूणव वाद्यकारक, वह जो तूणव नामका बाजा बजाता हो।

तूणवत् (सं॰ त्रि॰) तूण अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। १ तूणयुक्त, धानुष्क, जो तीर चला कर अपनी जीविका चलाता हो।

तूणि (सं० पु०) तूण देखो।

तूणिक (सं० पु०) तूणीक देखो।

तूणिन् (सं० पु०) तूणवदा कृतिरस्त्यस्येति तूण-इनि। नन्दीवृक्ष, तूनका पेड़। पर्याय—तूणी, नतूक, आपीन, तूणिक, कच्छक, कुठेरक, कान्तलक, नन्दिवृक्ष, नन्दक। गुण—यह कटुपाक, कषाय, मधुर, लघु, तिक्त, शीतल, बलकारक, व्रण, कुष्ठ और अम्लपित्तनाशक है। (त्रि०) २ तूणयुक्त, जो तरकश लिये हो।

तूणी (सं० स्त्री०) तूण्यते पूर्यते वाणैः तूण कर्मणि वञ्, गौरादित्वात् ङीष्। तूण, तरकश। २ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। ३ वातरोगविशेष। इसमें मूत्राशयके पाससे दर्द उठता है और गुदा एवं पेड़ू तक फैलता है। मलद्वार और मूत्राशयके पाससे वेदना उत्पन्न होकर बहुत शीघ्र पक्वाशयमें चले जानेको प्रतितूणी कहते हैं।

तूणीक (सं० पु०) तूणी तूण इव कायति कै-क। नन्दवृक्ष, तुनका पेड़।

तूणीर (सं० पु०) तूण्यते पूर्यते वाणैः तूण बाहुलकात् ईरन्। तूण, तरकश।

तूणीरवत् (सं० त्रि०) तूणीर अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। तूणीरधारी, जो तीर चला कर अपनी जीविका निर्वाह करता हो।

तूत्थक (सं० क्ली०) तूत्थ पृषो० साधुः। तूत्थ, तूतिया, नीलाथोथा।

तूती (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारका छोटा शुक या तोता। इसकी चोंच पीली, गरदन बैंगनी और पैर हरे होते हैं। २ कनारी द्वीपसे भारतवर्षमें आनेवाली एक प्रकारकी छोटी सुन्दर चिड़िया। इसकी बोली बहुत मधुर होती है। इसे लोग पिंजरोंमें पालते हैं। ३ एक प्रकारकी छोटी चिड़िया। इसका रंग मटमैला होता है। इसकी बोली भी बहुत मीठी है। जाड़ेमें यह सारे भारतवर्षमें पाई जाती है, पर गरमियोंमें उत्तर-काश्मीर तुर्किस्तान आदिकी ओर चली जाती है। ४ एक प्रकारका बाजा या खिलौना जो मुंहसे बजाया जाता है। ५ एक छोटी टोंटीदार घड़िया जो मट्टीकी बनी होती है और जिससे लड़के खेलते हैं।

तूतुजान (सं० पु०) तुज-कानच्, तुजादित्वात् अभ्यासदीर्घः बाहु० नलोपः। क्षिप्र, तेजी।

तूतुजि (सं० स्त्री०) तुजि बले दाने वा तुजि-कि-द्वित्वे तुजां अभ्यासदीर्घः बाहु० नलोपश्च। १ क्षिप्र, तेजी। २ दाता।

तूतुज्यमानस (सं० पु०) तुजि कर्मणि शानच् द्वित्व अभ्यासदीर्घः बाहुलकात् नलोपः तथाभूतः असति दीप्यति अस अच्। क्षिप्र, तेजी।

तूतुम (सं० त्रि०) तुद अच् द्वित्वे अभ्यासदीर्घः पृषो० साधुः। तूर्ण, जल्दी।

तूद (सं० पु०) तुदति तुद-क पृषोदरादित्वात् दीर्घः। १ तूलवृक्ष, तूतका पेड़, शहतूत। २ इसी नामका एक पेड़, इसे कोई कोई पाश्व पिप्पल भी कहते हैं। पर्याय—तूद, तूलपूग, क्रमुक, ब्रह्मदारु। पक्के तूदफलके गुण—यह गुरु, मधुररस, शीतवीर्य और पित्त तथा वायुनाशक है। कच्चे तूदफलके गुण—यह गुरु, सारक, अम्लरस, उष्णवीर्य और रक्तपित्तकारक है।

तूदा (फा० पु०) १ राशि, ढेर। २ सीमाका चिह्न, हद्दबन्दी। ३ मट्टीका वह टीला जिस पर तीर, बन्दूक आदिसे निशाना लगाना सीखा जाता है।

तूदी (सं० स्त्री०) देशभेद, एक देशका नाम।

तून (हिं० पु०) १ तुनका एक पेड़। २ तूल नामका लाल कपड़ा।

तूना (हिं० क्रि०) १ चूना, टपकना। २ खड़ा न रह सकना, गिरना। ३ गर्भपात होना, गर्भ गिरना।

तूनीर (हिं० पु०) तूणीर देखो।

तूफान (आ० पु०) १ आपत्ति, ईति, प्रलय, आफत। २ हल्लागुल्ला। ३ उपद्रव, झगड़ा, बखेड़ा, फसाद। ४ डुबानेवाली बाढ़। ५ वायुके वेगका उपद्रव, आंधी, झटिका। पृथिवीमण्डल चारों ओरसे प्रायः २५ कोस वायुमण्डलसे आवृत (घिरा हुआ) है। यह वायुराशि नाना कारणोंसे सर्वदा चञ्चल रहती है। जब यह कोमल और मन्द मन्द लहरोंसे अनेक तरहके सुगन्धि द्रव्योंको ले कर चलती है, तब सभीको आनन्दित कर देती है। बहुत समय यह वायुराशि नाना तरहके स्वाभाविक कारणोंसे विलोड़ित हो कर भीषण प्रभञ्जनरूप

वेगसे प्रवाहित होती है एवं कभी कभी क्षणमात्रमें अधिक दूर तक विस्तृत स्थानके वृक्षोंको उन्मूलित, मकानोंको छिन्न भिन्न, उद्यानोंको तहस नहस, नाव आदिको भग्न और यानवाहनादिको छिन्न भिन्न कर डालती है। इस वेगवान वायुमण्डलको लोग तूफान कहते हैं। हिन्दुओंके पुराणादि ग्रन्थोंमें ४८ पवनोंका उल्लेख है। वे पवन कभी कभी एक एक और कभी कभी सब मिल कर तूफान पैदा करते हैं। चीनके अधिवासियोंका विश्वास है कि टाइफून (किउय अर्थात् तूफानकी अधिष्ठात्री देवीकी अनेक सन्तान) कभी कभी भिन्न भिन्न दिशाओंमें जानेवाले तूफानरूपी अपनी सन्तानको ले कर क्रीड़ा करती हैं, वही घूर्ण वायु अथवा टाइफुन है।

तूफान जैसा उत्पात मचाता है उसमें पहलेहीसे सावधान रहने पर बहुत अनिष्टसे बच सकते हैं। यूरोपके पण्डित वायुमान-यन्त्रके द्वारा अनेक तूफानकी सम्भावना निश्चय करते हैं। पहले सभी देशोंमें कितने लक्षणोंको तूफानके पूर्वलक्षण बतला कर विश्वास करते थे तथा उसीके द्वारा तूफान और वृष्टिका निर्णय करते थे। उदय और अस्तकालमें सूर्यकी कान्ति, मेघका वर्ण और वायुकी गति आदिके द्वारा अब भी अनेक तूफान और वृष्टिकी सम्भावना की जाती है। सार यह है कि ये सब नितान्त अमूलक नहीं है।

वायु और प्रलय शब्द देखो।

यूरोपीयोंके प्रयत्नसे पृथ्वीके प्रायः सभी स्थानोंमें वायुकी गति और दाब-निर्णय, वृष्टिपरिमाण प्रभृति विषय देखनेके लिए यन्त्रादि आविष्कृत हुए हैं। इन यन्त्रोंकी सहायतासे तथा प्राकृतिक विज्ञानादिके द्वारा उन्होंने तूफानके प्रकृततत्त्व, उत्पत्ति, गति, विस्तार और पूर्वसूचना आदिको मालूम किया है। किन्तु अब तक सब स्थानोंके वायविक परिवर्त्तनादिकी तालिका पर्याप्त रूपसे प्राप्त न होनेके कारण इनका सूक्ष्म तत्त्व अभ्रान्तरूपसे प्रतिपादित नहीं हुआ है। यूरोपके विद्वानोंने बहुत परिक्षाओंके द्वारा तूफानकी उत्पत्ति, प्राकृतिक गति, और व्याप्ति प्रभृति जिस प्रकार निर्द्धारण की है, उसका मूल मर्म नीचे लिखा जाता है।

पृथ्वी यदि निश्चला होती और सर्वत्र समान उत्तप्त होती तो वायुमण्डल भी निश्चल होता तथा वायु-प्रवाह होता ही नहीं, किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। पृथ्वीके गोलत्व हेतु निरक्षरेखाके उभय पार्श्ववर्ती कितनेही स्थानोंमें लम्बरूपसे पतित होता है, सुतरां दोनों मेरुप्रदेशकी अपेक्षा निरक्षदेश अधिक उत्तप्त होता है। इससे निरक्षदेशमें भूपृष्ठसंलग्न वायुराशि भी उत्तप्त होनेके बाद लघु हो कर ऊपर उठ जाती है एवं पार्श्ववर्तीकी अपेक्षा शीतल वायु आ कर उसका स्थान पूर्ति कर देता है। इस प्रकार पृथ्वी पर नियत उत्तर और दक्षिण प्रदेशसे वायुराशि निरक्षदेशकी ओर तथा वायुसागरके ऊपरी भागमें निरक्षदेशसे वायुराशि दोनों मेरुप्रदेशकी ओर प्रवाहित होती है। पृथ्वी यदि निश्चला रहती तो वायुराशि ठीक उत्तर और दक्षिणाभिमुख बहती, किन्तु पृथ्वी मेरुदण्डके ऊपर पश्चिमसे पूर्वकी ओर वेगसे आवर्त्तन करती है, सुतरां भूपृष्ठका वायुप्रवाह ठीक सरलतासे नहीं आता। इसी प्रकार निरक्षदेशके उत्तरभागमें वायुप्रवाह ठीक उत्तरसे नहीं आ कर उत्तर-पूर्व दिशासे तथा निरक्षके दक्षिणभागमें पूर्वदक्षिणसे आता है। किन्तु भूपृष्ठ पर स्थल और जलराशिका असमान संस्थान, सुदीर्घ और अत्युच्च पर्वतोंके अवस्थान इत्यादि कारणोंसे वायुराशि उक्त समस्त नियमोंके वशवर्त्ती न हो कर अनेक स्थानोंमें परिवर्त्तन हो जाता है। इसी प्रकार वाणिज्य वायु, मौसुम वायु (Monsoon) प्रभृति वायुप्रवाह उत्पन्न होता है। इसका विस्तृत विवरण वायुप्रवाह तथा तत्तत् शब्दमें लिखा जायगा।

किसी स्थानकी वायु किसी कारणसे उत्तप्त होने पर विस्तृत होती है सुतरां लघु हो कर ऊपर उठ जाती है तथा चारों ओरसे वायुराशि इस स्थानाभिमुख दौड़ती है। ये समस्त विभिन्नमुखी वायु एकत्र संघृष्ट हो कर घूमती हुई गमन करती हैं, इसी घूर्णायमान वायुको घूर्णवायु कहते हैं; इसका व्यास कभी कभी कई गजका हो जाता है। उस समय यह अत्यल्प भूभागके ऊपरसे घूमती हुई भीषण वेगसे गमन करती है किन्तु कभी कभी इन समस्त घूर्णवायुका व्यास

१ मीलसे १०००-१२०० मील पर्यन्त हो जाता है। इन समस्त प्रकाण्ड घूर्णवायुके केन्द्रके निकट वायु प्रायः स्थिर रहती है, किन्तु परिधिकी तरफ वायुप्रवाह भीषण तूफान रूपमें प्रवाहित हो कर वृक्ष और मकान आदिको भग्न और चूर चार कर डालता है। प्राकृततत्त्वज्ञ पण्डितोंने निर्णय किया है, कि हम लोग जिन बड़े-बड़े तूफानोंको देखते हैं वे एक एक प्रकाण्ड घूर्णवायु मात्र हैं। ये समस्त घूर्णवायु १से १५०० मील विस्तृत स्थान तक फैल कर घूमते घूमते गमन करती हैं। उसमें ४०० से ६०० मील व्यास युक्त घूर्णवायु ही अधिक है। इस प्रकार एक एक घूर्णवायु ८।१० पर्यन्त विद्यमान रहती है तथा सौ सौ मील स्थानके ऊपर हो कर गमन करती है, अंगरेजीमें इन सबको साईक्लोन (Cyclone) कहते हैं। इन समस्त घूर्णवायुकी परिधि ही झटिकाचक्र है। केन्द्रस्थल बिलकुल शान्तभावापन्न होता है। उसके चारों ओर चक्राकारसे तूफान प्रवाहित होता है। घूर्णवायु चलनेके समय एक ही कालमें अनेक स्थानमें विभिन्न मुखी तूफानको उत्पन्न करते करते अग्रसर होती है। पहले ही कहा जा चुका है, कि केन्द्रस्थलमें वायु प्रायः निश्चल रहती है, सुतरां जिस स्थानके ऊपर हो कर केन्द्र जाता है, वहाँ पहले एक ओरसे तूफान बनता है। पीछे कुछ काल शान्त रह कर फिर ठीक विपरीत दिशासे तूफान आता है।

जिस स्थानके ऊपर हो कर केन्द्र जायगा, वहां पहले और अन्तमें दो विपरीत दिशामें तूफान होगा तथा बीचमें केन्द्र जानेके समय वह शान्त रहेगा। यदि एक घूर्णवायुका केन्द्र मन्द्राजके उत्तर हो कर पश्चिमाभिमुख जाय, तो वहां पहले उत्तर-पश्चिमसे तूफान बहेगा, बाद वह वायु पश्चिम और क्रमशः दक्षिण-पश्चिमसे बह कर शेष हो जायगी।

तूफान एक समयमें जितने स्थानमें फैल कर रहता है, उसीको तूफान अथवा घूर्णवायुका आकार कह सकते हैं। यह व्यासस्थान ठीक गोल नहीं होता। कितने ही असम वृत्तके आभासकी नाईं हैं। क्षुद्र व्यासकी अपेक्षा बड़ा व्यास दो तीन गुना बड़ा होता है। जिस दिशासे घूर्णवायु गमन करती है, उसी दिशामें गुरु व्यास विस्तृत रहता है। लघु व्यास गमनपथके साथ समकोण करके अवस्थान करता है। वृत्ताभास जितना लम्बा होता है, उतना ही तूफानका तेज अधिक होता है। बहुत स्थानोंके परीक्षालब्ध घूर्णवायु विषयक कितने ही नियम नीचे दिखलाये जाते हैं।

१। झंझावायु निरक्षदेशसे दोनों क्रान्तिवृत्त पर्यन्त मध्यवर्ती प्रदेशमें निरक्षरेखाके निकटवर्ती वाणिज्य-वायु-प्रवाहके आरम्भस्थलमें शीतकालके समय किम्वा मौसुमवायुके परिवर्तनके समय उत्पन्न होती है। विषुव प्रदेशमें कभी तूफान नहीं होता है। कभी कोई तूफान विषुवरेखाके पारसे नहीं देखा जाता, वरं इसको दोनों दिशाओंसे एक ही द्राघिमासे परस्पर १०।१२ अंशके मध्यमें तूफानका एक ही समयमें प्रवाहित होना सुना गया है। दोनों गोलार्द्धमें घूर्णवायु प्रथम भागमें पश्चिमाभिमुख और शेष भागमें पूर्वाभिमुख गमन करती है। सर्वत्र ही उनकी गति निरक्षदेशसे वक्राकार हो कर मेरुकी तरफ हो जाती है।

२। उनकी गति द्वित्वभावापन्न है अर्थात् केन्द्रके चारों ओर झटिकाचक्र प्रवाहित रहता है, फिर इसी प्रकार आवर्त्तन करते करते घूर्णवायु अग्रसर हो जाती है। उत्तर गोलार्द्धमें यह आवर्त्तन दहिनी ओरसे बायीं तरफ अर्थात् घड़ीकी सूई जिस तरह घूमती है, उसके ठीक विपरीत दिशामें रहता है। दक्षिण-गोलार्द्धमें यह आवर्त्तन घड़ीकी सूईके अनुरूप होता है।

सभी घूर्णवायुका गमनपथ एक विस्तीर्ण क्षेपणीकी नाईं है। इसका शिर पश्चिमदिशामें तथा दोनों बाहु पूर्वदिशामें विस्तृत रहती हैं। यह शिर उत्तर-गोलार्द्धमें प्रायः ३० और दक्षिण गोलार्द्धमें प्राय २६ रेखाओंकी किसी याम्योत्तररेखाको स्पर्श करता रहता है।

३। सचराचर निरक्षरेखाके निकट विस्तीर्ण क्षेपणीके पूर्वप्रान्तमें सूकी अस्फुट क्रान्तिकी (Declination of the sun) समपरिमाण अक्षरेखाकी झंझावात उत्पन्न होती है, इसी प्रकार पश्चिमकी ओर जाते जाते अन्तमें शीर्ष स्थानका प्रदक्षिण करके पूर्वाभिमुख गमन करती है। शेष भागमें यह क्रमशः निरक्षरेखासे दूर चली जाती है। चीन-सागरके अनेक तूफान इसके ठीक

विपरीत हैं अर्थात् गमनकालमें निरक्षरेखाके निकटवर्त्ती रहते हैं ।

४ । समस्त घूर्णवायुओंकी गति पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें भिन्न भिन्न रूपमें होती है, यहां तक कि एक ही स्थानमें एक ही ऋतुमें भिन्न भिन्न हो जाती है। पश्चिम भारतीय द्वीपपुञ्जमें और उत्तरी-अमेरिकामें उसकी गति घण्टेमें ८ मीलसे १२ मील तक होती है । दक्षिण-भारत महासागरमें इसकी गति १० मीलसे कम २ मील तक होती है। वंगोपसागरमें उसका परिमाण घण्टेमें २से ३८ मील, चीनसागरमें ७से २४ मील तथा प्रशान्त महासागरमें १०से २४ मील तक होता है। कोई कोई घूर्ण वायु तो इतनी धीमी चलती है, जिसकी भ्रमसे स्थिर भी कह सकते हैं। इसी प्रकार घूर्णवायुका तूफान बहुत काल तक एक ही दिशासे प्रवाहित होता रहता है।

५। इन समस्त झंझावातोंका व्यास ५००।६०० मील तक और कभी कभी १००० मील अथवा उससे भी अधिक हो जाता है ! गमन-कालमें कभी आकुंचित अथवा कभी प्रसारित होता है, तथा आकुञ्चनकालमें यह अति भीषण वेगशाली हो जाता है। पश्चिम भारतीय द्वीपपुञ्जमें इस वायुका व्यास प्रायः १०० अथवा १५० मीली है, किन्तु अटलाण्टिक महासागरमें आते ही वह प्रसारित हो जाता है, उस समय कभी कभी इसका व्यास १००० मील पर्यन्त हो जाता है। वङ्गोपसागरमें सभी झंझावायुओंका परिसर प्रायः ३००वा ३५०मील है। कभी यह ६०० मील और कभी १५० भी हो जाता है, शेषोक्त समयमें तूफानका वेग भीषण रूपसे बढ़ता है। अरबसागरमें उसका व्यास २४० मीलसे अधिक नहीं होता, ऐसा बहुतोंका अनुमान है। चीन-सागरके सभी टाइफुनका व्यास ६०।७० मील तक होता है।

घूर्णवायु आवर्त्तन करते करते गमन करती है। सुतरां झटिकाचक्रकी वायुकी गति और घूर्णवायुकी गति एक ही दिशामें होती है, वहां तूफान सबसे प्रवल रहता है। जहां परस्पर विपरीत है, वहां इसकी गति मन्द हो जाती है। ये दोनों बिन्दु गमनपथके दोनों पार्श्व परस्पर विपरीत भागसे रहते हैं, फिर घूर्णवायु पहले पश्चिमकी ओर और पीछे तेजोहीन हो कर पूर्वकी ओर गमन करती है। यही कारण है, कि उत्तर गोलार्द्धमें अग्रगामी घूर्णवायुकी दक्षिणदिशाका तथा दक्षिण-गोलार्द्धमें बाईं दिशाका तूफान सबसे तेज होता है।

तूफानके समय वायु जिस दिशासे प्रवाहित होती है, वास्तवमें उसी दिशासे तूफान नहीं आता, अर्थात् घूर्णवायुकी गति उस दिशासे नहीं होती। पहले ही कहा गया है, कि इसके चारों ओर सभी दिशाओंसे वायु प्रवाहित हुआ करती है। इस झटिकाचक्रका जो अंश जिस स्थानके ऊपर हो कर जाता है, उस अंशमें वायु जिस दिशासे बहती है उसी स्थान पर और उसी दिशासे तूफान बहता है। ऐसा भी हो सकता है कि यदि पूर्व-दिशासे तूफान आवे तो उस हालतमें वायुका वेग पश्चिम और दक्षिण आदि दिशाओंसे हो सकता है।

घूर्णवायुकी गति घंटेमें २से ४० मील तक होती है, कभी कभी उससे भी अधिक हो जाती है। इसके द्वारा तूफानका वेग नहीं समझा जा सकता। झटिकाचक्रका आवर्त्तवेग इसकी अपेक्षा बहुत अधिक है। इसलिए तूफानका वेग कभी कभी घण्टेमें ८०।९० मील तक हुआ करता है।

अनेक समय क्षुद्र क्षुद्र घूर्णवायुएं प्रवल तूफान उत्पन्न करके बहुत अनिष्ट करती हैं। इनका व्यास कई गजसे १ मील वा उससे भी कुछ अधिक हुआ करता है। ये अधिक देर तक नहीं ठहरतीं, किन्तु इनका तेज बड़ा ही भयानक होता है। दो चार घण्टोंमें ही ये वृक्ष, मकान, मनुष्य, पशु, जो कुछ सामने आता है, उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालती हैं।

ये सभी तूफान स्वभावतः कई घण्टों तक एक स्थान पर विद्यमान रहते हैं, किन्तु अनेक स्थानोंमें ८।१० वा उससे भी अधिक दिनों तक प्रवल तूफान प्रवाहित होता है। यह तूफान घूर्णवायुसे उत्पन्न नहीं होता, पृथ्वी-पृष्ठस्थ सामयिक वायु-प्रवाहसे उत्पन्न होता है। इसी प्रकार वाणिज्य-वायु पश्चिमकी ओर आमेजन नदीके प्रान्तसे प्रवाहित हो कर आन्दिज पर्वतके निकट प्रवल होती तूहुई फामके रूपमें परिणत हो जाती है। पार्वत्य प्रदेशमें सामयिक वायुप्रवाह निर्विघ्नतया चलने नहीं पाता,

सुतरां वह प्रतिहत हो कर जगह जगह तूफान उत्पन्न कर देता है। फिर उष्ण वायुके लघु होने पर ऊर्ध्वगमनकालमें प्रवाहके द्वारा पर्वत पर जानेसे यदि वह वहांके शीतप्रभावसे फिर शीतल, घनीभूत, और गुरु हो जाय तो अधिक भारके कारण वह पर्वतपार्श्व हो कर वेगसे नीचेकी ओर बहती है। इसी प्रकार एक स्थानमें १०।१२ दिनतक एक ही दिशासे भीषण तूफान होता रहता है।

तूफानकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें पण्डितोंमें मतभेद है। प्रोफेसर टेलर (Taylor) साहबका मत है, कि स्थानीय तापके कारण जब किसी स्थानकी वायु ऊपर जाती है तब चारों ओरसे वायुप्रवाह इस स्थान पर दौड़ आता है। उसके परस्पर प्रतिघातसे और पृथ्वीके आवर्तनके लिए घूर्णवायु उत्पन्न होती है। फिर कितने पण्डित यह कहते हैं कि परस्पर विपरीतमुखी दो वायुप्रवाहके संघर्षणसे यह उत्पन्न होता है। मि० ब्लान्फोर्ड (Blanford) कहते हैं कि किसी कारण किसी स्थान पर वायुमें रहनेवाली जलराशि घनीभूत हो कर मेघमें परिवर्त्तित हो जाती है और वहांका वायुसागर अवनत हो जाता है। सुतरां चारों दिशाओंमें रहनेवाली वायु इस स्थानसे धावित हो कर तूफान उत्पन्न करती है। शेषोक्त सिद्धान्त ही बहुत कुछ ठीक प्रतीत होता है। अनेक प्रकारकी परीक्षाओं द्वारा पण्डित लोग इस सिद्धान्तको स्वीकार कर रहे हैं। जिस जिस स्थान पर वायुराशिकी दाब ह्रासका होता है, चारों ओर रहनेवाला अधिक दाबयुक्त स्थानसे उस अल्पदाबयुक्त भूभाग पर वायुकी गति हुआ करती है। यदि चारों दिशाओंमें रहनेवाली वायुराशिकी दाब थोड़ी थोड़ी बढ़ती जाय, तो वायुप्रवाह धीरे धीरे गमन करता है, और यदि समीपहीमें अधिक दाबयुक्त प्रदेश रहे, तो वायुराशि वेगसे दौड़ती है। कहीं भी इसका व्यतिक्रम नहीं देखा जाता। किसी स्थान पर वायुयन्त्रके द्वारा Barometer पारदकी अवनति देखने पर उस समय यदि पार्श्ववर्त्ती देशोंमें उन्नति हुई हो तो समझना चाहिये, कि शीघ्र ही तूफान आनेवाला है। नाविक लोग इसी उपायसे तूफान आदिका आगमन पहलेसे ही जान कर सावधान हो जाते हैं तथा अनेक दुर्घटनाओंके हाथसे त्राण पाते हैं।

जिन सब समुद्रोंमें तूफान और वृष्टि आदि हुआ करती हैं, उन सब समुद्रोंमें हो कर यदि निरापद जाना चाहें तो पहले वायुमानयन्त्रके पारदकी उन्नतिकी ओर लक्ष्य करना अवश्य कर्त्तव्य है। परीक्षा द्वारा प्रमाणित हुआ है कि ग्रीष्ममण्डल वा उसके निकटवर्त्ती स्थानमें जब यन्त्रस्थ पारदकी अवनति होती है, तभी तूफान आता है। कभी कभी पारदकी यह अवनति २॥ इञ्च तक हुआ करती है। तूफानके केन्द्रस्थलमें ही अवनति सबसे अधिक होती है। बहुतोंका कहना है, कि सभी तूफान लम्बरूपसे अथवा एक पार्श्वमें कुछ टेढ़ा मेरुदण्डके चारों ओर चक्कर लगाते हुए जाते और उस घूर्णके कारण केन्द्रापसारिणी शक्तिके द्वारा केन्द्रसे वायुराशि परिधिकी ओर गमन करती है। केन्द्रस्थल पर पारदकी अवनति एवं प्रान्तभाग पर उन्नति होनेका यही कारण है। बहुतसे लोग इसमें आपत्ति दिखला कर कहते हैं, कि तूफान बार बार चक्कर लगा कर नहीं आता। सभी समय इसकी केन्द्राभिमुख दौड़नेकी प्रवृत्ति देखी जाती है। वे यह भी कहते हैं, कि जब केवल केन्द्रापसारिणी शक्तिसे यह अवनति उत्पन्न होती है, तब उसका परिमाण बहुत घट जाता है। क्योंकि तूफानका व्यास ४०० मील है और प्रान्तभागमें यह घण्टेमें ७० मीलके वेगसे प्रवाहित होता है, तो भी इसकी केन्द्रापसारिणी शक्ति यन्त्रस्थ पारदको $\frac{१}{२००}$ इञ्चसे अधिक अवनत नहीं कर सकती। किन्तु सर्वत्र एक इञ्च वा उससे भी अधिक अवनति होते देखी जाती है।

जो कुछ हो तूफानके पहले तथा समकालमें वायुराशिकी चापकी असमता प्रयुक्त वायुमानयन्त्रस्थ पारद एक बार उच्च और एक बार नीचा होता रहता है। इस लिए यन्त्रस्थ पारदका इस प्रकार स्पन्दन देख कर समझना चाहिये कि तूफान अवश्यम्भावी है। १८४० ई०के अक्टूबर मासमें चीनसागरमें जिस तूफानसे गोलकुण्डा नामक युद्धनौका जलमें डूब गई थी, उस तूफानके आरम्भके पहले ही २४ घण्टे तक वायुमानयन्त्रस्थ पारद स्पन्दित हुआ था। किसी दूसरे जहाजने इस दुर्घनासे उद्धार पाया था, उसीसे उल्लिखित तालिका पायी गई है।

तूफानके शेष होनेसे पहले ही यन्त्रमें पारदका उन्नति देखी है। पिडिंटन साहब कहते हैं, कि यही निदर्शन तूफानमें पड़े हुए नाविकोंके निराश हृदयमें आशाका सञ्चार करता है।

किसी किसी तूफानके समय पारदकी उन्नति और अवनति अत्यन्त धीरे धीरे और किसी समय अत्यन्त शीघ्र शीघ्र हुआ करती है। जितना शीघ्र यह परिवर्त्तन होता है, तूफानका प्रकोप भी उतना ही अधिक बढ़ता है। तूफानके केन्द्रके किसी स्थान पर आनेके ३से ६ घंटे पहले ही पारद सहसा अवनत हो जाता है। तूफानके प्रकोपके अनुसार इस अवनतिका तारतम्य होता है। इसका वेग जब अत्यन्त अधिक होता है, तब यह अवनति २॥ इञ्चसे अधिक हो जाती है, अर्थात् यन्त्रस्थ पारद २९.९ इञ्चसे २६.३० इञ्च पर्यन्त उतर जाता है।

तूफानका पूर्वलक्षण—तूफान आनेके पहले वायु निश्चल और सूक्ष्म रहती है, निःश्वास प्रश्वासमें कष्ट मालूम पड़ता है। उसके बाद उच्छृङ्खलभावसे एक एक दिशासे मन्द मन्द वायु प्रवाहित होती है। तदनन्तर एक घण्टा वा उससे भी अधिक काल तक शान्तभाव लक्षित होता है तथा उसके बाद ही उस दिशासे प्रबल तूफान उठने लगता है। तूफानके साथ साथ प्रायः विद्युत्, वज्राघात, मेघ और वृष्टि सङ्घटित रहती है। तूफानके पहले तापमानयन्त्रमें तापकी अधिकता देखी जाती है। इसके आनेसे ही ताप घट जाता है तथा मेघ और वृष्टि होने लगती है। तूफानके बाद शीतका अनुभव न हो कर यदि फिर गरमी मालूम पड़े तो समझना चाहिये कि शीघ्र ही और एक तूफान आवेगा। बड़े बड़े तूफानके समय समुद्र उद्वेलित और उच्च तरङ्गाकारमें बहुत वेगसे लहराता है और कभी कभी आस पासके देशोंको भी प्लावित कर डालता है। यह तरङ्ग दो प्रकारकी होती है—एक तो समग्र घूर्णवायु द्वारा विताडित हो कर इसके आगे आगे चलती है और दूसरी घूर्णवायुके चारों ओर रहनेवाले झटिका-चक्रसे सभी दिशाओंमें उत्पन्न होती है।

भूमण्डलके किस प्रदेशमें कब किस दिशासे तूफान आता है यह अब तक अच्छी तरह स्थिर नहीं हुआ है। पश्चिम-भारतीय द्वीपपुञ्जमें वर्षाके शेष हो जाने पर सूर्य जब मस्तक पर आ जाते हैं, तभी प्रायः तूफान होता है। अटलाण्टिक महासागरके उत्तरीय भागमें जून माससे ले कर दिसम्बर तक तूफानका समय है। विशेषतः अगस्त मासमें ही कई बार तूफान आता है। दक्षिण भारत महासागरमें नवम्बरसे जून पर्यन्त तूफानका समय रहता है, जिसमें जनवरी और मार्च मासमें सबसे अधिक तथा जून और नवम्बर मासमें अल्प हुआ करता है। वङ्गोपसागरमें अक्टूबर और नवम्बर मासमें अर्थात् प्रबल उत्तर-पूर्व मौसम वायुके समयमें ही प्रायः तूफान होता है। तद्भिन्न दक्षिण-पश्चिममें मौसुम वायु रहनेके समय अर्थात् मई और जून मासमें भी तूफान हुआ करता है। चीनसागरमें सर्वत्र जूनसे नवम्बर मासके मध्य तक तूफानका प्रकोप है जिसमेंसे सितम्बरमें सबसे अधिक और जून मासमें कम होता है। अरबसागरमें दोनों प्रकारकी मौसुम वायुके समयमें ही तूफान होता है।

१८ वीं शताब्दीके प्रारम्भसे भारतवर्ष और उसके निकटवर्ती समुद्रमें जो भीषण तूफान हो गया है, उसका विवरण अनेक अंग्रेजी पुस्तकोंमें वर्णित है। हेनरि पेडिंटन (Henry Peddington) साहबने, १८३९से १८५१ ई० तक पर्यन्त जो तूफान हुए हैं उनका विवरण लिखा है। इन्होंने पहले पहल स्थिर किया था कि भारतवर्ष और निरक्ष-रेखाके उत्तरके समुद्रोंमें जो तूफान आता है, वह सबल चक्रवत् परिभ्राम्यमान घूर्णवायु है। उन्होंने सभी तूफानोंका वेग तथा चलनेका रास्ता भी स्थिर किया है।

मन्द्राजके १०९ मील उत्तरसे ले कर १२० मील दक्षिण तकके स्थानोंमें तूफानका प्रकोप अत्यन्त अधिक है। १७४६ से १८८१ ई० पर्यन्त १७ भीषण तूफान हुए थे जिनसे बहुतोंकी हानि हुई थी।

वङ्गोपसागरमें जो भीषण तूफान हो गये हैं, पेडिङ्टन आदिकी पुस्तकोंमें उनमेंसे १३के उल्लेख हैं। ब्लानफोर्ड साहबने हिसाब लगा कर देखा है, कि जनवरी मासमें २, फरवरीमें ०, मार्चमें १, अप्रीलमें ५, मईमें १७, जूनमें ४,

जुलाईमें २, अगस्तमें २, सितम्बरमें ३, अक्तूबरमें २०, नवम्बरमें १४, और दिसम्बर मासमें ३ तूफान होते हैं। इनमेंसे नवम्बरसे अप्रोलके शेष तक जितने तूफान आते हैं, वे ही वङ्गोपसागरके दक्षिणांशमें आवद्ध रहते हैं, मई और जून तथा अक्तूबर और नवम्बर मासके प्रथम सप्ताहमें प्रधानतः सागरके उत्तर भागमें तूफान होते हैं। मध्यवर्ती समयमें अर्थात् दक्षिण-पश्चिम मौसुमवायुके समय कभी कभी उत्तर भागमें तूफान होता है सही किन्तु उसकी संख्या बहुत कम है।

कप्तान टेलरने वङ्गोपसागरके तूफानके विषयमें इसी प्रकार लिखा है। किसी जहाजके ऐसे ही तूफानमें पड़नेसे पहले एक दिशासे उसे तूफान आ घेरता है, उसके कुछ देर बाद वायु शान्त भाव धारण करती है तथा आकाश निर्मल हो जाता है। तदनन्तर विपरीत दिशासे फिर भीषण तूफान आता है। इन समस्त झटिकाओंकी गति पूर्वोक्त नियमानुवर्ती अर्थात् घूर्णवायुके उत्तरांशमें तूफान पूर्वसे, दक्षिणांशमें पश्चिमसे और पश्चिमांशमें उत्तरसे प्रवाहित होता है। ये घूर्णवायुएँ प्रायः दक्षिण-पूर्व कोणसे उत्तरपश्चिम कोणकी ओर जाती हैं।

मन्द्राज और उसके चतुःपार्श्ववर्ती स्थानोंमें अनेक बार भीषण तूफान हो गये हैं। इन सभी तूफानोंकी उत्पादक घूर्णवायु है जो पूर्व-दक्षिणकी ओरसे उत्तर-पश्चिमकी ओर बहुत तेजीसे बहती है। जब यह किनारे पहुंचती है, तब इसकी गति परिवर्त्तित हो कर पश्चिम वा उत्तर-पश्चिमकी ओर हो जाती है। इसका व्यास प्रायः १५० मील है और इसका आवर्त्तन घड़ीके कांटेके विपरीत दिशामें रहता है।

१७४६ ई०में ३ अक्तूबरको दो-प्रहर रात्रिके समय मन्द्राज नगरमें एक भीषण तूफान आया था। उस समय पारस्य-सेनापति लावोंडनसे मन्द्रास नगर पर अधिकार कर वहां २३ दिन तक ठहर गया था। पोतके आश्रयमें बहुतसे जङ्गी जहाज तथा नावें थीं। प्रायः सभी भग्न और जलमग्न हो गयी थी। तीन नावोंमें लगभग १२ हजार मनुष्य थे, उनकी भी जानें गईं।

१७४८ ई०की १२वीं और १३वीं अप्रोलकी रात्रिके समय कडालूरके निकट तूफान आया था। यह तूफान उत्तर-पश्चिमकी ओरसे प्रवाहित हुआ था और दो दिन तक एक ही गतिसे बहता रहा था। पेम्ब्रोक जहाज पार्टोनभोसे बहुत समीप हो जलमग्न हो गया था केवल-मात्र १२ मनुष्योंने उस उपद्रवसे रक्षा पाई थी। देवी-कोटके समीप ही नमूर नामक जहाज टूट फूट गया और उसमेंके ५२७ क्रम चारी पुरुष और आरोही जलमें डूब मरे। सेण्टडेभिड फोर्टके निकट ही इष्ट इण्डिया कम्पनीके दो बड़े जहाज और सभी छोटी छोटी डोङ्गियां नष्टभ्रष्ट हो गई थीं।

१७५२ ई०की ३१वीं अकतूबरको एक भयानक तूफान उठा था। १७६१ ई०की १ली जनवरीको पुंदि-चेरीमें जो भीषण तूफान आया था, उसमें कितने अङ्ग-रेज तो डूब मरे और कितनोंने बहुत मुशकिलसे आत्म-रक्षा की। ८ अंगरेजी जहाजोंमें केवल चार जहाज बच गये थे और ४ टूटफूट गये। किन्तु वे किसी प्रकार जलमग्न होनेसे बचे थे। निउकासल प्रभृति ३ जहाज तीरमें निक्षिप्त हुए एवं शेष ३ जहाज डूब गये। ११०० सौ आरोहियोंमेंसे केवल मात्र ७ यूरोपियन और ७ देशीय मनुष्य मरे थे।

१७७३ ई०में २१वीं अक्तूबरको मन्द्राजमें प्रबल तूफान हुआ था। उस समय पोताश्रयमें जितने जहाज लङ्गर लगाये थे, वे सभी विनष्ट हो गये।

१७८२ ई०में उत्तर-पश्चिमसे तूफान आरम्भ हुआ था। दूसरे दिन प्रातःकालमें १०० देशीय पोत तीरमें निक्षिप्त हुये। इंग्लैण्डाधिपतिके दो जहाज कुछ विक्षत हो कर बड़े कष्टसे बम्बई पहुंचे। इस समय हैदर अलीके उत्पीड़नसे बहुसंख्यक प्रजाने मन्द्राज नगरमें आश्रय लिया था। तूफानके बाद ही यह दुर्घटना हुई थी। गवर्नर मेकार्टेनिने उन लोगोंके कष्टको दूर करनेके लिये यथासाध्य यत्न किया था।

१७९१ ई०की २७ वीं अक्तूबरको प्रबल तूफान हुआ था। इस समय वायुमानयन्त्रसे पारदकी उन्नति २९·४६५ इञ्चसे कम नहीं थी।

१८११ ई०की २री मईको मन्द्राजमें जो भीषण तूफान आया था, उससे प्रायः शताधिक जहाज और छोटे छोटे पोतादि नष्ट हुए थे। केवल दो जहाज समुद्र-

में पड़ कर बच गये थे। इस तूफानके तेजसे समुद्रकूलसे प्रायः ४ मील तकको भूमि ३६ हाथ जलके नीचे चली गई थी।

१८१८ ई०को २४वीं अक्तूबरको मन्द्राज नगरमें उत्तरसे तूफान आरम्भ हुआ था। क्रमशः तूफानका वेग वृद्धि होकर एक बार रुक गया, हठात् दक्षिणको ओरसे फिर पहलेके समान प्रबल तूफान आया। यह घूर्णवायु मन्द्राज नगरसे पश्चिमाभिमुख आई थी। वायुमानयन्त्रसे पारा २८·७८ इञ्च तक चढ़ गया था।

१८३६ ई०को ३०वीं अक्तूबरको मन्द्राज नगरमें उत्तरसे तूफान आया था। अपराह्न चार बजेके समय वायु उत्तर-पश्चिम तथा उत्तरदिशासे प्रवाहित हो कर आध घण्टा तक ठहरी, अनन्तर सायंकाल ७ बजेके समय द्विगुण वेगसे दक्षिणको तरफसे तूफान आने लगा, इस समय वायुमानयन्त्रमें पारा २८·१८५ इञ्च चढ़ा था। घूर्णवायु नगरके ऊपर हो कर चलती थी।

१८४६ ई०की २५वीं नवम्बरको जो तूफान हुआ था, उससे मन्द्राजके मानमन्दिरके वायुगतिपरिमापक यन्त्रादि नष्टभ्रष्ट हो गये थे।

१८६४ ई०की १ली नवम्बरको मसुलीपत्तनमें जो भयानक तूफान आया था, उसके प्रकोपसे समुद्र स्फीत हो उठा था। उपकूल भागमें १२।१३ मील तक और कहीं कहीं तो १७ मील तक प्रायः ७८० वर्गमील स्थान प्लावित हो गया था। इस भीषण प्लावनमें प्रायः ३०००० मनुष्य यमपुरको सिधारे थे।

झटिका द्वारा सुन्दरवनकी बड़ी हानि हुई थी। १५८५ ई०में हरिणघाटा और गङ्गाके मध्यवर्ती स्थानमें अर्थात् वर्त्तमान समग्र वरिशाल और बाखरगञ्ज जिला तूफानके द्वारा ताड़ित समुद्रकी तरङ्गोंमें प्लावित हो गया। चन्द्रद्वीप देखो। उसके बाद ही मग और पोर्तुगीज लुटेरोंने नगरको तहस नहस कर डाला। १६२२ ई०में यह देश फिर जलप्लावित हो गया। उसमें प्रायः १०००० मनुष्योंने प्राण त्याग किये तथा कितने गृहादि नष्ट हो गये।

एक अंग्रेजी सामयिक पत्रमें लिखा है, कि १७३१ ई०में कलकत्तेमें एक भीषण तूफान हुआ था। इस तूफानसे समुद्रमें ऐसी भीषण तरंग आई थी, कि कलकत्तेको प्लावित कर दिया था। उसमें प्रायः ३००००० प्राणी मर गये थे। १७३६ ई०में लक्ष्मीपुरके निकट मेघना नदीका जल ६ फुट ऊंचा हो गया था। १८३१ ई०के प्रबल तूफानसे कलकत्तेके चारों तरफ ३०० ग्राम और प्रायः ११ सहस्र मनुष्य बह गये थे।

१८३३ ई०के प्रबल तूफानसे सागरद्वीप १० फुट नीचे जलमें डूब गया था तथा यहांके समस्त मनुष्य और यूरोपके तत्त्वावधारकगण नष्टभ्रष्ट हो गये थे।

१८५८ को कलकत्तेमें एक प्रबल तूफानने बहुतसे मनुष्योंको नष्टभ्रष्ट कर दिया।

१८६४ ई०को ५वीं अक्तूबरको रात्रिमें समुद्रसे एक भीषण तूफान कलकत्तेके ऊपर होकर गया। इस तूफानमें बहुतसे ष्टीमर और ६०।७० सहस्र मन बोझा लादनेवाले जहाजोंमेंसे कुछ तो टूट टाट गये, कुछ तीरमें निक्षिप्त हुए और जलमें डूब गये। प्रायः ३०० मील तकके गृहवृक्षादि बिलकुल धराशायी हो गये। यह तूफान आन्दमान द्वीपके निकट उत्पन्न हो कर उत्तर-पश्चिमके सम्मुख बालेश्वर और हिजलीके निकट उपकूलभागमें प्रतिहत हुआ था। बाद वहांसे यह ५ अक्टूबरको कलकत्ता आया और कृष्णनगर तथा बगुड़ाके ऊपर हो कर गाड़ो पहाड़पर जा पहुँचा। इस तूफानके प्रकोपसे बहुत अनिष्ट हुआ था। सागरने ३० फुट ऊंचा तरंगित हो कर भागीरथीके उभयकूलवर्त्ती प्रायः ८ मील पर्यन्त स्थानको जलप्लावित कर दिया। कलकत्ते और हवड़ेके प्रायः १८६४८१ मकान बह गये। मेदनीपुर जिले और सुन्दरवनमें इससे भी अधिक हानि हुई थी। यहां तककि जिलेके प्राय ३॥ अंश अधिवासी तूफानके प्रकोपसे बह गये थे। अभी बहुत रुपये खर्च करके २५।३० वर्षके कठिन परिश्रमके बाद जलप्लावनके हाथसे सुन्दरवन आदि स्थानको रक्षा की गई है। तूफानके समय कलकत्तेमें जिस तरह बहुतसे अधिवासियोंकी अकालमृत्यु हुई है, उसका उल्लेख करते हुए बालफोर साहबने लिखा है, कि गङ्गा यदि टेम्स और लण्डनसे कम अधिवासीयुक्त हो कर कलकत्ता होती, तो पृथ्वीकी चारों ओर हाहाकारकी ध्वनि सुनाई पड़ती तथा लिसबनका

भू-कम्प इत्यादि दुर्घटनायें जो इतिहासमें इतनी प्रसिद्ध हो गई हैं, वह कलकत्तेके तूफानके विषम उत्पातके सामने बहुत तुच्छ गिनी जातीं। इस तूफानमें प्रायः २००जहाज और ७००००० मनुष्य नष्ट हुए थे।

मेघना नदीके मुहानास्थित सन्द्वीप, साहबाजपुर, हतिया प्रभृति धान्यक्षेत्र तथा नारियलसे सुशोभित सभी द्वीपको भी तूफानसे अनेक बार हानि पहुंची थी। वे द्वीप जलसे बहुत ऊँचेमें अवस्थित है। इस लिये जो कुछ हानि हुई वह केवल तूफानसे हो। वायुराशिके असाधारण शान्त भाव और आकाशकी लालिमा द्वारा वहांके अधिवासी पहलेसे हो तूफान आगमन मालूम कर सकते हैं। किन्तु १८७६ ई०की ३१वीं अक्तूबरको तूफान सहसा उत्तरकी ओर आया। दूसरे दिन अर्थात् पहली नवम्बरको बहुत वेगसे बहने लगा। ज्वार बहुत ऊँचा उठ आया। इसके बाद पश्चिम दक्षिणके कोनसे भारी-तूफान आ जानेसे १०से १४ फुटतक सागरतरङ्ग बढ़ गई। ४ बजे तक जल बढ़ता रहा, पीछे धीरे धीरे घटने लगा, इसमें प्राय १६५०८० मनुष्योंके प्राण गये थे।

तूफानी (फा० वि०) १ ऊधमी, उपद्रवी, बखेड़ा करनेवाला, फसादी। २ झूठा कलङ्क लगानेवाला, तोहमत जोड़नेवाला। ३ उग्र, प्रचण्ड।

तूबर (सं० पु०-स्त्री०) तु-क्विप् तूः ब्र-ब्रत्यां अच् वा तूपर पृषो० पस्य व। १ अजातशृङ्ग पशु, बिना सींगका बैल, डूड़ा बैल। २ बे दाढ़ीमूंछका मनुष्य। ३ अव्यक्त पुरुषका लक्षण। ४ कषाय रस, कसैला रस। (त्रि०) ५ कषायरसयुक्त, जिसमें कसैला रस हो।

तूमकूर—तुमकूर देखो।

तूमड़ी (हिं० स्त्री०) १ तूंबी। २ सपेरोंके बजानेका तूंबीका बना हुआ एक प्रकारका बाजा।

तूम-तड़ाक (फा० स्त्री०) १ तड़क भड़क, शान शौकत, आन बान। २ बनावट, ठसक।

तूमना (हिं० क्रि०) १ रुईके गालेसे सटे हुए रेशोंको कुछ अलग अलग करना, उधेड़ना। २ धज्जी धज्जी करना। ३ हाथसे मसलना, मलना, दलना। ४ रहस्य खोलना, पोल खोलना, बातकी उधेड़ना।

तूमार (अ० पु०) बातका व्यर्थ विस्तार, बातका बतंगड़।

तूमारिया सूत (हिं० पु०) खूब महीन कता हुआ सूत।

तूय (सं० क्ली०) तोय पृषोदरादित्वात् साधुः। १ जल, पानी। २ क्षिप्र, तेजी।

तूया (हिं० स्त्री०) काली सरसों।

तूर् (सं० त्रि०) तूर-कर्त्तरि क्विप्। १ वेगयुक्त, तेज। (स्त्री०) २ वेग, तेजी।

तूर (सं० क्ली०) तूर्यते सुखं तूर-घञ्। १ वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा, नगारा। २ तुरही नामका बाजा, तुरही।

तूर (हिं० स्त्री०) १ जुलाहोंके करघेकी गज-डेढ़गज लम्बी एक लकड़ी। इसमें तानी लपेटी जाती है। इसके दोनों सिरों पर दो चूर और चार छेद होते हैं, लपेटनी, फनियाला। २ जनानी पालकीके चारों ओर बंधी हुई एक रस्सी। यह हवासे परदा उड़ जानेसे बचाती है। ३ अरहर।

तूरंत (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी।

तूरना (हिं० पु०) एक चिड़ियाका नाम।

तूरान (फा० पु०) फारसके उत्तरमें अवस्थित मध्य एशियाका सारा भाग। यह तुर्क, तातारी, मुगल आदि जातियोंका निवास स्थान है।

ईरान अर्थात् पारस्यदेशके उत्तर और उत्तर पूर्वमें अवस्थित मध्यएशियाके समस्त देशको पारसी लोग 'तूरान' कहते हैं। जिस तरह हिन्दू आर्य और म्लेच्छ ये दो शब्द व्यवहार करते हैं, उसी तरह पारसी 'ईरान और तूरान' करते हैं। तूरानदेशके लोगोंको तूरानी कहते हैं।

पाश्चात्य जातितत्त्वविद् कुभीरका मत है, कि मङ्गोलीय (जाफतवंशीय) जातिका आदि वासस्थान खोजरलैण्डके अन्तर्गत अलटाय पर्वत पर था। यहांसे वे उत्तर और मध्य एशिया तथा गङ्गा नदीके उत्तरप्रदेश तक जा बसे। वर्त्तमान समयमें तुङ्गस, तुर्की, मुगल, कोन आदि जातियां इसी बड़ी तूरानी जातिकी शाखा कहलाती हैं।

प्रागैतिहासिक कालसे एक दल वीर जाति जो हिमालयसे ले कर अलटाय तककी बृहत् पर्वतमालाकी अधित्यका प्रदेशमें वास करती थी, वह प्राचीन समस्त

सभ्य जातियोंकी आदिम अवस्थाका विवरण अनुसन्धान करनेसे ही जाना जाता है। यह जाति कभी कभी दल बाँध कर एशिया और यूरोपके उर्वर देशोंमें जाती और वहां लूटपाट मचाती थी। इस तरह लूटका शब्द जहाँ तक पाया गया है, उसमेंसे चीन देशकी सीमामें हियङ्ग-नु द्वारा उत्पात और चीनके प्रबल पराक्रान्त चीन-राजाओं द्वारा उनका दमन-विवरणही सबसे प्राचीन प्रतीत होता है। जब इन्हें पूर्वकी ओर चीन सीमासे बाधा पहुंची तो इन्होंने पश्चिमकी ओर हारमनरिच नामक प्राचीन पथिक-राज्यमें उत्पात मचाया और पीछे एजिल वा अट्टिलाके अधीन फ्रान्सके बीच जा कर वास किया। इसी जातिके लोगोंने कभी कभी तुघरिल बेग, सेलुजुग महम्मद, चङ्गेजाखाँ, तैमूर, ओसमान आदिके अधीन चीन, बोगदाद, बैजेन्टियम और भारतवर्षमें उपद्रव मचाया है। इसी जातिके लोगोंकी एक शाखा तुरुष्कमें राज्य करती है और मुगल नामक एक दूसरी शाखा भारतवर्षमें बहुत काल तक राज्य कर गई हैं। इस जातिके लोगोंने कभी सभ्येतर जातिकी अधीनता स्वीकार नहीं की। इन्होंने अपनी पार्श्ववर्ती सभ्यजाति पांनिसे ही अनेक विषयोंमें शिक्षा प्राप्त की है सही, किन्तु वह न तो उनके बन्धुभावसे और न प्रजाभावसे, वरं उनके ऊपर प्रभुत्व और राजत्व करके ही सीखी है।

वर्त्तमान कालमें तूरानी जातिको तुर्की-भारतीय जाति कहनेसे भी उन्हींका बोध हो सकता है। प्राचीन कालमें आर्यगण सामाजिक और राजनैतिक बन्धनमें बद्ध हो कर रहना चाहते थे। वे एक स्त्रीसे विवाह और ईश्वरकी उपासना कर जाति और समाज-बन्धनकी चेष्टा करते थे, किन्तु तूरानी लोग ठीक इसके विपरीत चलते थे। इनमें भी धर्मसमाज है, किन्तु उनमें आध्यात्मिक भाव अधिक नहीं था। पाश्चात्य पण्डितोंका मत है, अश्वमेधादिकी (पशुके वधमूलक यज्ञादि) कि आर्यों ने अत्यन्त प्राचीन कालमें इस तूरानी संघर्षमें भी पाया था। काइरस नामक प्राचीन पारस्य राजाके महोत्सवमें श्वेत अश्वकी बलि एक प्रधान अंग समझा जाता था। साइविरियाके दक्षिणमें भी इस तरहकी अश्वबलि प्रचलित है।

पाश्चात्य पण्डितोंका अनुमान है, कि भारतके तामिल, तेलगू, आदि द्राविड़ जाति तथा कोल, भील, सन्थाल असभ्य जाति भी इसी तूरानी जातिके अन्तर्गत हैं। वे लोग प्रमाण देते हैं, कि आर्य लोग जब भारतवर्षमें आये, तब यहां उन्होंने शकजातिको चारों ओर फैला देखा। यह शक जाति उक्त तूरानी जातिकी तातार वा तुर्की शाखाके अन्तर्गत है। आर्योंने शक लोगोंको उत्तर (भारतसे) दास, दस्यु, म्लेच्छ इत्यादि नामोंसे अभिहित कर विन्ध्य प्रभृति पर्वताञ्चलोंमें भगा दिया था। शेषी द्रविड़, मलय और सिंहलमें बसे हुए है। तेलगू, तामिल, कर्णाटी, मलय आदि भाषाओंकी घनिष्ठ सादृश्य भी इस अनुमानका एक विशिष्ट प्रमाण है। भील, गोंड़, तोड़ा प्रभृति पार्वतीय जातिकी भाषा भी उन सब दाक्षिणात्य भाषाओंके साथ बहुत कुछ मिलती जुलती है, इससे अनुमान किया जाता है, कि ये लोग भी शक जातिके वंशधर हैं। अष्ट्रेलिया द्वीपवासीकी भाषा भी दाक्षिणात्यकी अनेक भाषाओंसी है, इस कारण यह स्पष्ट है कि तूरानी जातिके अभी मध्य एशिया और उत्तर एशियामें रहते भी तूरानी भाषा अनेक तरहसे विकृत हो कर उत्तर और मध्य एशिया, उत्तर यूरोप और दक्षिण भारतमें फैली हुई है। लैपलैण्ड, फिनलैण्ड, हङ्गेरी, तुरुष्क, क्रिमिया आदि देशोंकी भाषा भी इस तूरानी भाषाके अन्तर्गत है, आर्य और समितिक भाषाको छोड़कर अन्यान्य यूरोपीय और आसियिक भाषायें इस तूरानी भाषाके अन्तर्गत नहीं है। चीनकी भाषा इसके अन्तर्गत नहीं है। तूरानी भाषा विकृत हो कर अभी उत्तर देशीय (Ural-Altaic वा Ugro Tartaric) एवं दक्षिण देशीय भाषामें विभक्त हो गई है। उत्तर-तूरानीय भाषा फिर मङ्गोलीय, मङ्गोसीय, तुर्की, फिनीय और सामयदीय इन पांच भागोंमें तथा दक्षिणदेशीय भाषा तामिलीय, गाङ्गय, वहिर्हिमालय और अन्तर्हिमालयप्रदेशीय, लौहित्य, तैलङ्ग और मलयप्रदेशीय इन पांच भागोंमें विभक्त है।

चीनके उत्तरसे ले कर साइविरियाके मध्यवर्ती तस्कन नदीके किनारे तक मङ्गसीय भाषा प्रचलित है। चीमाके अन्तर्गत माञ्चु जातिके लोग यह भाषा बोलते हैं।

वैकालह्रदकी तीरवर्ती स्थान मङ्गोलीय भाषाका आदि-स्थान है। साइबिरियाके पूर्वांशमें यह भाषा चलती है। चङ्गेजखाँने १२२७ ई०में मङ्गोलीयोंने बुरियात, ओलीट वा कालमक प्रदेशोंको और एकत्र कर मङ्गोल-राजत्व स्थापन किया। इसी समयसे मङ्गोलीय, तुङ्गसीय और तातारीय भाषावादी मनुष्य एक देशके अन्तर्गत हो गये।

भारतमें शतद्रु नदीके किनारे उच्च और निम्न कुनावर प्रदेशसे ले कर भूटान तक गाङ्ग्र-तूरानी भाषा (अन्तर्हिमालय अंशमें) प्रचलित है। ब्रह्म, अनम् आदि पूर्व उपद्वीपोंकी उत्तरदेशीय भाषा, आसामकी मिकिर जातिकी भाषा और बोडो कछाड़ी, कुकी, नागा, गोड़ प्रभृति पूर्व-बङ्गालकी असभ्य जातियोंकी भाषा; कोल, मुण्डा, सन्याल, भूमिज प्रभृति पश्चिम-बङ्गालकी असभ्य जातियोंकी भाषा और छोटा नागपुरकी मुण्डाजातिकी भाषा लौहित्य-तूरानी भाषाके अन्तर्गत है। तामिलीय-तूरानी भाषाके मध्य बेलुचिस्तानकी ब्राहुइ जातिकी भाषा, गोंड़ भाषा, कनाड़ा प्रदेशकी तुलुव जातिकी भाषा, कर्णाटकी भाषा नीलगिरिकी तोड़ा जातिकी भाषा, त्रिवाङ्कुड़की मलयालम् भाषा, तामिल भाषा, तेलगू भाषा, ताप्ती और नर्मदाके मध्यवर्ती भील, कुर, कोर्कु आदिकी भाषा गणनीय है। पूर्वद्वीपपुञ्जके मध्य निफन साम्राज्य और लिकु साम्राज्यकी भाषा बहुत कुछ उत्तर-देशीय तूरानी भाषासे मिलती जुलती है। अष्ट्रेलियाकी भाषा तामिलके अनुरूप है। तुरुष्कको भाषा और व्याकरण अविकल तुरानीय भाषाके समान है।

तूरानी (फा० वि०) तूरान सम्बन्धी, तूरान देशका।

तूरी (सं० स्त्री०) तूरं तदाकारः पुष्पादौ अस्त्यस्येति तूर-अच् गरा ङीष्। धुस्तूर वृक्ष, धतूरेका पेड़।

तूर्ण (सं० क्ली०) त्वर भावे क्त पक्षे इड़भाव तत ऊट्, निष्ठा तस्य न। (ज्वरत्वरेति। पा ६। ४ २० इति।) ऊट्, (रदाभ्यां निष्ठा त इति। पा ८। २। ४२ इति) तस्य न। १ शीघ्र, जल्दी, तुरन्त। २ त्वरायुक्त जिसमें तेजी हो।

तूर्णक (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका चावल जिसे त्वरितक कहते हैं।

तूर्णाश (सं० क्ली०) तूर्णं अश्नुते अच् अभ्। उदक, जल, पानी।

तूर्णि (सं० पु०) त्वरते त्वर नि स च नित्। १ मल, विष्ठा। २ त्वरा, शीघ्रता, जल्दी। ३ मनस। (त्रि०) ४ क्षिप्र तेज। ५ क्षिप्रगामी, तेज चलनेवाला।

तूर्ण्यर्थ (सं० त्रि०) शीघ्र गमनयुक्त, जो खूब तेजीसे चलता हो।

तूर्त (सं० क्ली०) त्वर-क्त ऊठ् वेटे न निष्ठातस्य न। १ क्षिप्र, शीघ्रता, जल्दी।

तूर्य (सं० क्ली०) तूर्यते ताड्यते तुर-ण्यत्। वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा, तुरही, सिंघा।

तूर्यखण्ड (सं० पु०) तूर्यस्य खण्ड इव। वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा।

तूर्यजीव (सं० त्रि०) तूर्यं आजीवः जीविका यस्य। (Musician) वाद्यव्यवसायी, जो बाजा बजाकर अपनी जीविका निर्वाह करता हो।

तूर्यमय (सं० त्रि०) तूर्य। स्वरूपे मयट्। तूर्य स्वरूप, वाद्यभेद, एक बाजा।

तूर्याचार्य (सं० पु०) तूर्यस्य आचार्यः ६-तत्। वह जो वाद्यके विषयमें शिक्षा देता हो।

तूर्व (सं० क्ली०) तुर्व अच् रेफ पूर्वाणो दीर्घः। क्षिप्र, शीघ्रता, जल्दी।

तूतूर्यार्व (सं० त्रि०) तूतूर्वं यानं यस्य। १ क्षिप्रगामी, तेज चलनेवाला। (पु०) १ एक राजाका नाम।

तूर्वि (सं० क्ली०) तूर्व इन् दीर्घः। १ क्षिप्र, शीघ्रता।

तूल (सं० क्ली०) तूलयति पूरयति सर्वं व्यापकत्वात् तूल-क। १ आकाश। २ अश्वत्थपत्राकार वृक्षविशेष, तूतका पेड़, शहतूत, पर्याय—तूद, ब्रह्मकाष्ठ, ब्राह्मणेष्ट, पूषक, ब्रह्मदारु, सुपुष्प, सुरूप, नीलवृन्तक, क्रमुक, विप्रकाष्ठ, मदसार। गुण—मधुर, अम्ल, दाहनाशक, बलकारक, कषाय और कफनाशक है। तूत देखो।

(पु०) ३ कपास, मदार, सेमर आदिके डोडेके भीतर-का घूआ। पर्याय—पिचु, पिचुल, पिचुतुल और तूलपिचु है।

तूल (हिं० पु०) १ सूती कपड़ा जो चटकीले लाल रङ्गका होता है। २ गहरा लाल रङ्ग।

तूलक (सं० क्ली०) तूल-स्वार्थे कन्। तूल, कपास।

तूलकार्मुक (सं० क्ली०) तूलाय तूलस्फोटनाय-कार्मुक-

मिव। तूलस्फोटनार्थं धनुः, रूई धुननेका यन्त्र, धुनको, फटका।

तूलग्रन्थिसमा (सं० स्त्री०) ऋद्धि नामको औषध।

तूलचाप (सं० पु०) तूलाय तूलस्फोटनाय चाप इव। तूलकार्मुक, धुनको।

तूलत (हिं० स्त्री०) जहाजकी रेलिंग या कठहरेको छड़में लगो हुई एक खूंटो जिसमें किसो उतारे जानेवाले भारी बोझमे बंधो रस्सो अटका दो जातो है ताकि बोझ धोरे धोरे उतर जाय।

तूलता (हिं० स्त्री०) समता, बराबर।

तूलना (हिं० स्त्री०) १ धूरोमें तेल देनेके लिये पहियेको निकाल कर गाड़ोको किसो लकड़ोके सहारेपर ठहराना। २ पहियेको धुरोमें तेल या चिकना देना।

तूलनालिका (सं० स्त्री०) तूल-निर्मिता नालिका। पिञ्जिका, रूईकी पोलो बत्तो जिससे कातने पर बढ़ बढ़कर सूत निकलता हैं, पूनो।

तूलनाली (सं० स्त्री०) तूलनिर्मिता नालो। पिञ्जिका, पूनो।

तूलपिचु (सं० स्त्री०) पिच-कुन तूलप्रधानः पिचुः। तूल वृक्ष, रुईका पोदा।

तूलफल (सं० पु०) अर्कवृक्ष, अकवनका पेड़।

तूलफला (सं० स्त्री०) शाल्मलो वृक्ष, सेमरका पेड़।

तूलमूल (सं० क्ली०) काश्मोरको चन्द्रभागा नदोके किनारेका एक देश।

तूलवती (सं० स्त्री०) वृक्षविशेष, नोल।

तूलवृक्ष (सं० पु०) तूलस्य वृक्षः। शाल्मलोवृक्ष, सेमरका पेड़।

तूलशर्करा (सं० स्त्री०) तूलस्य शर्करेव। कार्पासबोज, कपासका बोया, बिनौला।

तूलसेचन (सं० क्ली०) तूलस्य सेचनं ६-तत्। तूलसूत्र कर्त्तन, रूईसे सूत कातनेका काम।

तूला (सं० स्त्री०) तूल-अच् ततः टाप्। कार्पासो, कपास।

तूलि (सं० स्त्री०) तूल-इन् सच कित्। इगुपधात् कित्। उण् ४। ११६। चित्रकारको वर्तिका, चित्रकारोंको कूँचो।

तूलिका (सं० स्त्री०) तूलिरेव स्वार्थे कन्। चित्रकरोपकरण, रंग भरनेको कूंचो। पर्याय—ईषिका, ईषोका, तुलि, तुलो। २ द्रव सुवर्णपरोक्षार्थं शलाका, गला हुआ सोना परखनेको बत्तो। ३ गलाया हुआ सोना ढारनेका बरतन। ४ वीरणादि शलाका, लालटेन आदिको बत्तो। तूल-ठन् कापि अतइत्वं। ५ शय्योपकरणविशेष, तोशक।

तूलिनो (सं० स्त्री०) तूलोऽस्त्यस्या इनि-ङोष्। १ शाल्मलोवृक्ष, सेमरका पेड़। २ लक्ष्मणाकन्द। (त्रि०) ३ तूलयुक्त, जिसमें रुई हो।

तूलिफला (सं० स्त्री०) तूलि तूलवत् फलं यस्याः। शाल्मलोवृक्ष, सेमरका पेड़।

तूलो (सं० स्त्री०) १ नोलवृक्ष। २ रंग भरनेको कूँचो। ३ जुलाहोंका लकड़ोका एक यन्त्र। इसमें कूंचोके रूपमें खड़े खड़े रेशे जमाए रहते हैं।

तूवर (सं० पु०) तु-बाहुलकात् वरच् दोर्घश्च। १ तूवरशब्दार्थ। २ कषाय रस, कसैला रस। (त्रि०) ३ कषायरसयुक्त, जिसका रस कसैला हो।

तूवरक (सं० पु०) अजातशृङ्गपशु, डूंड़ा बैल, बिना सींगका बैल। २ वे-दाढ़ोमूंछका मनुष्य। ३ कषायरस, कसैला रस।

तूवरिका (सं० स्त्री०) तूवर संज्ञायां कन-टाप् अतइत्वं। १ आढ़को, अरहर। २ सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपोचन्दन।

तूवरो (सं० स्त्री०) तूवर गौरा० ङोष्। १ आढ़को, अरहर। २ सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपोचन्दन।

तूष्णींशोल (सं० त्रि०) तूष्णीं शोलं यस्य। मौनावलम्बो, मौन, चुप। इसका नामान्तर तुष्णिक है।

तूष्णोक (सं० त्रि०) तूष्णीं शोलं यस्य। शीलेको मलोपश्च। पा ५।३।७३ इति वार्त्तिकोक्त्या कः मलोपश्च। मौनो, मौन साधनेवाला।

तूष्णोकां (सं० अव्य) तुष्णोम् कां। अकच् प्रकरणे तूष्णीमः कां वक्तव्यः। पा ५।३।७२। इति वार्त्तिकोक्त्या कां। मौन, चुप।

तूष्णोम् (सं० अव्य०) तूष बाहुलकात् नोम्। मौन।

तूष्णीम्भूद (सं० पु०) पूष्णों भू घञ्। मौनावलम्बन, निस्तब्धता, सन्नाटा।

तूष्णीम्भूत (सं० त्रि०) तष्णीं भू-क्त। मौन, चुप, शान्त।

तृस (हिं॰ पु॰) १ भूसी, भूसा। २ हिमालय पहाड़ पर काश्मीरसे ले कर नेपाल तक पाई जानेवाली एक पहाड़ी बकरीका ऊन, पशम, पशमीना। यह बकरी पहाड़के बहुत ऊँचे स्थान पर पाई जाती है। यह काश्मीरसे ले कर मध्य-एशियामें अलटाई पर्वतके ठण्डे स्थानोंमें पाई जाती है। इसके शरीर पर घने घने मुलायम रोयोंकी बड़ी मोटी तह होती है। इसकी भीतरी ऊनको काश्मीरमें असली तृस या पशम कहते हैं। यह दुशालेमें दिया जाता है। इसके ऊपरके ऊन या रोएँसे या तो रस्सियाँ बांटी जाती हैं या पट्टू नामका कपड़ा बुना जाता है। ३ तृसके उनका जमाया हुआ कंबल या नमदा।

तृसदान (हिं॰ पु॰) कारतृस।

तृसा (हिं॰ पु॰) चोकर, भूसी।

तृसी (हिं॰ वि॰) १ तृसके रंगका, करंजई। (पु॰) २ करंज या स्लेटके रंगकी तरहका एक रंग।

तृस्त (सं॰ क्ली) तुस-बाहुलकात् तन् दीर्घश्च। १ रेणु, धूल। २ जटा। ३ चाप, धनुष। ४ सूक्ष्म पदार्थ, अणु, कणिका।

तृंहण (सं॰ क्ली॰) तृह भावे ल्युट। हिंसन, हत्या, कतल।

तृक्ष (सं॰ पु॰) तृक्ष-अच्। कश्यप ऋषि।

तृक्षाक (सं॰ पु॰) तृक्ष-आकन्। ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

तृक्षि (सं॰ पु॰) तृक्ष-इन्। त्रसदस्युके पुत्र एक ऋषिका नाम।

तृख (सं॰ क्ली॰) तृष-क पृषो॰ साधुः। जातीफल, जायफल।

तृखा (हिं॰ स्त्री॰) तृषा देखो।

तृच (सं॰ क्ली॰) तिसृणामृचां समाहारः तिस्र ऋचो यत्र वा, अच् समासान्तः सम्प्रसारणं। समान देवता और समान छन्दकके तीन ऋक्।

तृण (सं॰ क्ली॰) तृण्यते भक्ष्यते तृण-घञ् वा तृह-क्न-हकारलोपश्च। तृहेः क्नो हलोपश्च। उण् ५।८। नड़ादि, नरकट घास आदि। पर्याय—अर्जुन, त्रिण, खट, खेट्ट, हरित और ताण्डव। तृणस्य अयं शिवा॰ अण्। २ तार्ण। गाय इत्यादिको तृण देनेसे अशेष पुण्य होता है। धनिष्ठादि पञ्च नक्षत्रोंमें घरके लिये तृण और काष्ठ आहरण नहीं करना चाहिये। आहरण करनेसे अग्नि, चौरभय, रोग, राजपीड़ा और धन क्षय होता है। ३ गन्धद्रव्यविशेष, रामकपूर। पर्याय—कुतृण, तृण, सुगन्ध, सुशीतल।

तृणक (सं॰ क्ली॰) तृणं स्वल्पार्थे कन्। १ स्वल्पतृण, थोड़ी घास। २ चीनाक, चेना धान।

तृणकर्ण (सं॰ पु॰) तृणमिव कर्णोऽस्य। ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

तृणकाण्ड (सं॰ क्ली॰) तृणानां समूहः दूर्वादित्वात् काण्डच्। तृणसमूह, घासका ढेर।

तृणकीय (सं॰ त्रि॰) तृण मत्वर्थे-छ नाड़ादित्वात् कुक् च। तृणभव, जो घाससे उपजा हो।

तृणकुङ्कुम (सं॰ क्ली॰) तृण सम्भूतं कुङ्कुमं। सुगन्ध द्रव्यभेद, एक सुगंधित घास, रोहिस घास। पर्याय—तृणासृक्, गन्धि, तृणशोणित, तृणपुष्प, गन्धाधिक, तृणित्य, तृणगौर, लोहित। गुण-यह कटु, उष्ण, कफ, वायु, शोक, कण्डु, कोष्ठ और आमदोषनाशक तथा परमभास्वर है।

तृणकुटी (सं॰ स्त्री॰) तृणाच्छादिता कुटी। तृणाच्छादित गृह, वह घर जो खड़से छाया रहता है। पर्याय—कायमान।

तृणकुटीरक (सं॰ क्ली॰) तृणौकः। तृणनिर्मित घर, पयाका घर।

तृणकूट (सं॰ क्ली॰) तृणराशि, घासका ढेर।

तृणकूर्म (सं॰ पु॰) तृणमयः कूर्मः। श्वेततुम्बी, सफेद कद्दू या लौकी।

तृणकेतकी (सं॰ स्त्री॰) १ वंशलोचन। २ तवक्षीरभेद, एक प्रकारका तीखुर।

तृणकेतु (सं॰ पु॰) तृणेषु केतुरिव। १ वंशवृक्ष, बाँस। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

तृणकेतुक (सं॰ पु॰) तृणकेतु स्वार्थे कन्। वंश, बांस।

तृणकेसर (सं॰ क्ली॰) तृणकुङ्कुम, रोहिस घास।

तृणगड़ (सं॰ पु॰) समुद्र कर्कट, समुद्रका एक प्रकारका केकड़ा। २ कीटभेद, कीड़ा।

तृणगन्धा (सं॰ स्त्री॰) तृणवत् गन्धो यस्याः। विदारी, शालपर्णी।

तृणगोधा (सं० स्त्री०) तृणस्य गोधेव क्षुद्रत्वात्। १ चित्रकोल, छिपकली। २ तृणजलौका, एक प्रकारकी जोंक।

तृणगौर (सं० क्ली०) सुगन्ध द्रव्यभेद, एक सुगन्धित घास, रोहिस घास।

तृणग्रन्थि (सं० स्त्री०) तृणमिव ग्रन्थयंस्य। स्वर्ण जीवन्ती वृक्ष।

तृणग्राही (सं० पु०) तृणं गृह्णाति तृण-ग्रह-णिनि मणिविशेष, एक रत्नका नाम, नीलमणि। पर्याय—शूकापुष्ट, तृणमणि।

तृणाचर (सं० पु०) तृणेषु चरति चर-अच्। १ गोमेद मणि। (त्रि०) २ तृणचारिमात्र, तृण चरनेवाला।

तृणजम्भन् (सं० त्रि०) तृणं जम्भो भक्ष्यं यस्य। जम्भासुहरिततृणसोमेभ्यः। पा ४।१।२५। इति निपातनात् साधुः। १ तृणभक्षक, घास चरनेवाला। तृणमिव जम्भो दण्डो यस्य। २ तृण तुल्य दन्तयुक्त, जिसके दांत घासके रंगसे हों।

तृणजलायुका (सं० स्त्री०) तृणाकारा तृणजाता वा जलायुका। जलौकाभेद, एक प्रकारकी जोंक।

तृणजलूका (सं० स्त्री०) जलौकाभेद, एक प्रकारको जोंक।

तृणजलौका (सं० पु०) जलौकाविशेष, एक प्रकारकी जोंक।

तृणजलौकान्याय (सं० पु०) तृणजलौकाके समान। नैयायिक लोग इस वाक्यका प्रयोग तभी करते हैं, जब उन्हें आत्माके एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीरमें जानेका दृष्टान्त देना होता है। जिस प्रकार जोंक जलमें बहते हुए तिनकेके अग्रभाग तक पहुंच कर जब दूसरा तिनका पकड़ लेती है तब पहलेको छोड़ देती है, उसी प्रकार आत्मा जब दूसरे शरीरमें जाती है तब पहलेको परित्याग कर देती है।

तृणजाति (सं० स्त्री०) तृणमेव जातिः। उलपादि खड़।

तृणजीवन (सं० त्रि०) तृणेन जीवति जीवन-ल्युट्। जो प्राणी घास खाकर जीवन धारण करते हैं।

तृणज्योतिष (सं० क्ली०) तृणेषु मध्ये ज्योतिः ज्योतिज्यष्मतः। तिष्मती लता।

तृणता (सं० क्ली०) तृणमिव तायते ताय-क्विप्। १ धनु, चाप, कमान। २ तृणत्व तृणका भाव।

तृणदुह (सं० पु०) वड़वाग्नि।

तृणद्रुम (सं० पु०) तृणमिव द्रुमः असारत्वात्। १ नारिकेल, नारियल। २ ताल, ताड़का पेड़। ३ गुवाक, सुपारी। ४ ताली, एक प्रकारका छोटा ताड़। ५ केतकी। ६ खजुर, खजूरका पेड़। ७ हिन्ताल। इसके निर्यासके गुण - यह शीतल, लघु, मोहन, बलकारक, हृद्य, तृष्णा और सन्तापनाशक है।

तृणधान्य (सं० क्ली०) तृणबहुलं धान्यं। १ धान्यविशेष, तिन्नीका धान। २ तिन्नीका चावल। ३ सावां।

तृणध्वज (सं० पु०) १ वंश, बाँस। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

तृणनिम्ब (सं० पु०) तृणाकारः निम्बः। नेपालनिम्ब, चिरायता।

तृणप (सं० पु०) तृणं पाति पा-क। गन्धर्वभेद, एक गन्धर्वका नाम।

तृणपञ्चमूल (सं० क्ली०) तृणरूपाणां पञ्चाणां मूलं। पञ्चाङ्गविशिष्ट पाचन। कुश, काश, शर, दर्भ, इक्षु ये पांच तृणपञ्चमूल है। शालि, इक्षु, कुश, शर और काश ये भी पाँच तृणपञ्चक हैं। इनके मूलके गुण—यह तृष्णा, दाह, पित्त, असृक् और मूत्रनाशक है।

तृणपति (सं० पु०) राजघास, काला कपूर।

तृणपत्रिका (सं० स्त्री०) तृणस्येव पत्रमस्त्यस्याः ठन्-टाप्। इक्षुदर्भ तृण, एक प्रकारको घास।

तृणपत्री (सं० स्त्री०) तृणमिव पत्रमस्याः ङीष्। तृणपत्रिका, एक प्रकारकी घास।

तृणपदी (सं० स्त्री०) तृणस्येव पादोऽस्याः अन्त्यलोपः ङीष पद्भावः। तृणतुल्य मूलयुक्त लता, वह लता जिसकी जड़ घासकी जैसी होती है।

तृणपाणि (सं० पु०) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

तृणपीड़ (सं० क्ली०) तृणस्येव पीड़ा यत्र। युद्धभेद, एक प्रकारकी लड़ाई।

तृणपुष्प (सं० क्ली०) तृणस्य पुष्पमिव। १ तृण कुङ्कुम, तृणकेशर। २ ग्रन्थिपर्णी, गठिवन।

तृणपुष्पिका (सं० स्त्री०) सिन्दूरपुष्पी नामक घास।

तृणपूली (सं॰ स्त्री॰ तृणस्य पूलः संहतिर्यत्र गौरादित्वात् ङीष्। चञ्चा, घासकी बनी हुई चटाई।

तृणप्राय (सं॰ त्रि॰) निकम्मा, बेमसरफ, बुरा।

तृणमणि (सं॰ पु॰) तृणग्राहको मणिः। तृणग्राहिमणिभेद, एक रत्नका नाम।

तृणमत्कुण (सं॰ पु॰) प्रतिभू, वह जो जमानतमें पड़ता हो, जामिन।

तृणमय (सं॰ त्रि॰) तृणस्य विकारः तृण-मयट्। तृण् विकार, घासका बना हुआ।

तृणमयी (सं॰ स्त्री॰) तृणमय-ङीप्। तृण निर्मिता, घासकी बनी हुई चीज।

तृणमल्लिका (सं॰ स्त्री॰) मल्लिकापुष्पभेद, एक प्रकारका चमेलीका फूल।

तृणमुद्र (सं॰ पु॰) श्यामाकधान्य, एक प्रकारका धान।

तृणमुस्तिका (सं॰ स्त्री॰) मुस्ततृण, मोथा नामकी घास।

तृणमूल (सं॰ क्ली॰) तृणपञ्चमूल देखो।

तृणमेरु (सं॰ पु॰) रुद्राक्ष वृक्ष।

तृणराज (सं॰ पु॰) तृणेषु राजते राज-अच् वा तृणस्य राजा। १ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। २ नारियलका पेड़। ३ वंश, बाँस। ४ इक्षु, ईख। ५ खर्ज्जूर, खजूर।

तृणराजवर्ग (सं॰ पु॰) तृणराजानां वर्गः। वृक्षसमूह, सुपारी, ताड़, हिन्ताल, केतकी, खजूर, नारियल और ताड़ी ये सात वृक्ष तृणराजवर्ग हैं। इनके पत्ते आदिसे दतुअन नहीं करना चाहिये।

तृणवल्वजा (सं॰ स्त्री॰) तृणरूपा वल्वजा। वल्वजा तृण, एक प्रकारकी घास।

तृणविन्दु (सं॰ पु॰) एक ऋषिका नाम। ये २४वें द्वापरमें सब वेदोंकी विभाग कर वेदव्यास हुए हैं। ये ऋषि महाभारतके कालमें भी थे और इनसे पाण्डवोंके साथ वनवासकी अवस्थामें भेंट हुई थी।

तृणविन्दुसरोवर (सं॰ पु॰) तृणविन्दोः, ६-तत्। तृणविन्दु ऋषिके सरोवर रूप तीर्थ यह सरोवर काम्यक वनके निकटवर्ती मरुभूमिके प्रान्तभागमें अवस्थित है।

(भारत वन २५७ अ॰)

तृणवीज (सं॰ क्ली॰) तृणस्य वीजं ६-तत्। श्यामाक, तिन्नीका धान।

तृणवीजोत्तम (सं॰ पु॰) तृणवीजेषु उत्तमः। श्यामाक, तिन्नी धान।

तृणवृक्ष (सं॰ पु॰) तृणमिव वृक्षः असारत्वात्। १ नारिकेल, नारियल। २ ताल, ताड़। ३ गुवाक, सुपारी। ४ ताली, एक प्रकारका छोटा ताड़। ५ केतकी। ६ खर्जूर, खजूर। ७ हिन्ताल।

तृणशय्या (सं॰ स्त्री॰) घासका बिछौना, चटाई, साथरी।

तृणशीत (सं॰ क्ली॰) तृणेषु शीतं शीतलं। गन्ध तृण, रोहितघास जिसमेंसे नीबू-कीसी सुगन्ध आती है।

तृणशीता (सं॰ स्त्री॰) तृणेषु शीता। जल पिप्पली।

तृणशून्य (सं॰ क्ली॰) तृणमिव शून्यं फलरहितं। १ केतकीपुष्प। २ मल्लिका, चमेली। ३ नागरङ्ग, नारङ्गी। (त्रि॰) तृणेन शून्यं। ४ तृणरहित, बिना घासका।

तृणशूली (सं॰ स्त्री॰) तृणं शूलमिव तीक्ष्णाग्रं यस्याः गौरा॰ ङीष्। लताभेद, एक लताका नाम।

तृणशोणित (सं॰ क्ली॰) तृणकुङ्कुम, रोहिस घास।

तृणशोषक (सं॰ पु॰ स्त्री॰) तृणमपि शोषयति शुष-णिच् अण्। राजिमत् जातीय सर्पभेद, एक प्रकारका साँप।

तृणशौण्डिका (सं॰ स्त्री॰) तृणेषु शौण्डिका। लघुकेतकी वृक्ष।

तृणषट्पद (सं॰ पु॰) तृणमिव षट्पदः। कीटविशेष, एक प्रकारका कीड़ा।

तृणसंज्ञक (सं॰ पु॰) तृणं संज्ञा यस्य। तृणसमूह। कुश, काश, नल, दर्भ, काण्ड और इक्षु ये तृणसंज्ञक हैं।

तृणसारा (सं॰ स्त्री॰) तृणस्येव सारो यस्याः। कदली वृक्ष, केलाका वृक्ष।

तृणसिंह (सं॰ पु॰) तृणेषु सिंह इव तन्नाशकत्वात्। कुठार, कुल्हाड़ी।

तृणसोमाङ्गिरा (सं॰ पु॰) दक्षिणदिक् स्थित युधिष्ठिरके ऋत्विक् भेद, युधिष्ठिरका पुरोहितके नाम। उन्मुचु, प्रमुचु, स्वास्त्यात्रेय, दृढव्य, उर्द्धवाहु, तृणसोमाङ्गिर और मित्रावरुणके पुत्र अगस्त्य ये ७ ऋषि युधिष्ठिरके पुरोहित थे और दक्षिणप्रदेशमें वास करते थे।

तृणस्कन्द (सं० पु०) तृणमिव स्कन्दति स्कन्द-अच्। तृणवत् चञ्चल स्वभावयुक्त, जिसका स्वभाव तृणसा चंचल हो।

तृणस्पर्शपरिषह (सं० पु०) जैनधर्मानुसार मुनियोंके लिए आवश्यक पालनीय बाईस परिषहोंमेंसे एक मार्ग चलते समय कांटे या कांच आदिसे चरण विद्ध होने पर भी मुनिगण उस क्लेशको वीतराग भावसे सहन करते हैं, उसे दूर करनेका कोई प्रयत्न नहीं करते। इसीका नाम तृणस्पर्शपरिषह है।

तृणहर्म्य (सं० पु० क्ली०) तृणाच्छादितो हर्म्यः। तृणयुक्त अट्टालिका, वह अटारी जिसके ऊपर खड़का घर बना हुआ हो।

तृणाङ्घ्रिप (सं० पु०) तृणरूपः अङ्घ्रिपः। मन्थानक तृण, एक प्रकारकी घास।

तृणाग्नि (सं० पु०) तृणजातः। अग्निः। तार्ण अग्नि, घास फूसकी आग, करसीकी आँच।

तृणाञ्जन (सं० पु०) तृणमिव अञ्जनः। कृकलास, गिरगिट।

तृणाटवी (सं० स्त्री०) तृणप्रचुरा अटवी। तृणमय वन

तृणाढ्य (सं० क्ली०) तृणेषु आढ्य। पर्वतजात तृण, वह घास जो पहाड़ पर उगी हो।

तृणादि (सं० पु०) तृणको आदिमें रख कर सप्रत्यय निमित्त पाणिनि-उक्त गण विशेष। तृण, नड़, मूल, वन, पर्ण, वर्ण, विल, पूल, फल, अर्जुन, अर्ण, सुपर्ण, वल, चरण, वसु ये तृणादि हैं। (पाणिनि)

तृणान्न (सं० क्ली०) तृणस्य तृण धान्यस्य अन्नं। तन्नि चावलका भात।

तृणामल्ल (सं० क्ली०) त्रिमल्ल, तृणवल्ली तीर्थ।

तृणाम्ल (सं० क्ली०) तृणेषु अम्लःलवण तृण, नोनिया, अम लोनी।

तृणारणिन्याय (सं० पु०) न्यायभेद; और तृण अरणी रूप स्वतन्त्र कारणके समान व्यवस्था। यों तो अग्निके पैदा होनेमें तृण और अरणी दोनों कारण हैं पर परस्पर निरपेक्ष अर्थात् अलग-अलग कारण हैं। अरणिसे अग्नि उत्पन्न होनका कारण दूसरा है और तृणमें अग्नि लगानेक कारण दूसरा।

तृणावर्त्त (सं० पु०) तृणं आवर्त्तयति भ्रमयति आ-वृत-णिच्-अण्। १ वात्यारूप वातसमूह, घूर्णवायु, बवंडर।

२ कंसराजके एक दैत्यका नाम। एक दिन कंसने इसे श्रीकृष्णको मारनेके लिये गोकुल भेजा था। चक्रवात (बवंडर)का रूप धारण कर इसने गोकुलमें हलचल मचा दिया। धूलसे सबोंकी आँखें बन्द हो गईं तथा इसके घोर गर्जनसे सब दिशाएँ गूंज उठीं थीं। यह असुर बालक कृष्णको कुछ ऊपर भी ले गया था। वहां श्रीकृष्ण इतने भारी हो गये कि भूरिभार सहन करना उसके लिये दुःसाध्य हो गया। धीरे धीरे वायुवेग घटने लगा। इससे उस दैत्यको श्रीकृष्ण और भी पर्वतके समान मालूम पड़ने लगे। श्रीकृष्ण उसका गला पकड़े हुए थे। इस कारण वह उन्हें छोड़ भी नहीं सकता था। अधिक समय तक गला पकड़े रहनेके कारण वह चेष्टाशून्य हो गया और उसकी दोनों आंखें बाहर निकल आईं। पीछे वह अव्यक्त शब्द करता हुआ गतासु हो कर श्रीकृष्णको साथ लिये व्रजमें गिरा। आकाशसे शिला पर गिरनेके कारण तृणावर्त्तकी हड्डी चूर चूर हो गई और वहीं पञ्चत्वको प्राप्त हुआ।
(भाग० १०।७ अ०)

तृणावल्लीतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष, तृणामल्ल तीर्थ।

तृणासृज् (सं० क्ली०) तृणेषु असृगिव रक्तत्वात्। तृणकुङ्कुम, रोहिस घास।

तृणाह्वा (सं० स्त्री०) तृणविशेष, एक प्रकारकी घास।

तृणेक्षु (सं० पु०) तृणमिक्षुरिव मधुररसत्वात्। वल्वजा, सागिवागी।

तृणेन्द्र (सं० पु०) तृणां इन्द्र इव। तृणराज, ताड़का पेड़।

घृणोत्तम (सं० पु०) तृणेषु उत्तमः। उखर्वल तृण, जङ्गल घास।

तृणोत्थ (सं० क्ली०) तृणकुङ्कुम, रोहिस घास।

तृणोद्भव (सं० पु०) तृणेषु उद्भवति उद् भू-अच्। १ नीवार धान्यभेद, तीनी धान, पसही। २ तृणजात अग्नि, घास फूसकी आग। (त्रि०) ३ तृणजात मात्र, जो केवल घाससे उत्पन्न हुआ हो।

तृणोलुप (सं० क्ली०) उलप तृण, एक प्रकारकी घास।

तृणोल्का (सं० स्त्री०) तृणजाता उल्का। तृणजा उल्का, घास फूसकी मशाल।

तृणीकस् (सं० क्ली०) तृण निर्मितः उकः। तृणनिर्मित गृह, घास फूसका घर।

तृणौषध (सं० क्ली०) तृणात्मकं औषधं। एलवालुक नामक गन्धद्रव्य, एलुवा।

तृणमान (सं० त्रि०) तृष्णायुक्त।

तृण्या (सं० स्त्री०) तृणानां समूहः तृण-य। तृणसमूह, घास फूसका ढेर।

तृतीय (सं० त्रि०) त्रयाणां पूरणः त्रि-तीय सम्प्रसारणं। तीनका पूरण, तीसरा।

तृतीयक (सं० पु०) तृतीय-कन्। विषम ज्वरविशेष, तीसरे दिन आनेवाला ज्वर, तिजारा। आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर, और सन्धि ये पांच कफके स्थान माने गये हैं। दिन और रात ये दो ही दोषके प्रकोपकाल हैं। इनमेंसे एक एक प्रकोपके समय दोष हृदयमें लीन हो कर दूसरे प्रकोपकालमें ज्वर उत्पन्न कर देता है। दोष यदि कण्ठमें स्थित हो, तो ज्वरदिवस हृदयमें रह कर तीसरे दिनमें आमाशय आच्छादन करता और ज्वर पैदा करता है। इसीको तृतीयक ज्वर कहते हैं। यह ज्वर एक दिनके बाद आता है। (सुश्रुत)

भावप्रकाशमें भी लिखा है, कि जो ज्वर एक दिन बाद आता है, उसे तृतीयक ज्वर कहते हैं। जो तृतीयक ज्वर कफपित्तसे उत्पन्न होता है, उससे त्रिकस्थानमें, वायु और कफसे उत्पन्न होनेसे पीठमें तथा वायु पित्तसे उत्पन्न होनेसे पहले सिरमें दर्द होता है। तृतीयक ज्वरके यही तीन भेद हैं। (भावप्र०) ज्वर देखो।

तृतीयकविपर्यय (सं० पु०) तृतीयक ज्वरविशेष। जो ज्वर बीचमें एक दिन हो कर, आदि और अन्तिम दिनमें विमुक्त हो जाता है, उसे तृतीयकविपर्यय कहते हैं। "मध्ये एकं दिनं ज्वरं जनयति आदावन्त्ये च दिने मुंचतीति तृतीयकविपर्ययः।" (भावप्रकाश)

तृतीयता (सं० स्त्री०) तृतीय भावे तल्। तृतीयत्व, तीनका भाव।

तृतीयप्रकृति (सं० स्त्री०) तृतीया प्रकृतिः प्रकारः। पुरुष और स्त्रीके अतिरिक्त एक तीसरी प्रकृतिवाला, नपुंसक, क्लीव, हिजड़ा।

तृतीययुगपर्यय (सं० पु०) तृतीयस्य युगस्य द्वापररूपस्य परिवर्त्तः यत्र काले। वह समय जब द्वापर युगका तृतीय पर्यय उपस्थित हो।

तृतीयसवन (सं० क्ली०) सूयते सोमोऽस्मिन् तृतीयं सवनं कर्मधा०। यज्ञभेद, अग्निष्टोम आदि यज्ञोंका तीसरा सवन। यह यज्ञ प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें करना होता है। कात्यायन-श्रौतसूत्रमें इस प्रकार लिखा है—प्रातःकालके यज्ञमें जो सब कर्म उच्चस्वर द्वारा करनेके हैं, उन्हें उच्चस्वरसे नहीं करके प्रथम स्वरसे; मध्याह्नमें जो सब कर्म नीच और उच्चस्वरसे करनेके हैं, उन्हें मध्यमस्वरसे और सायंकालमें जो नीच और मध्यमस्वरसे करनेके हैं, उन्हें प्रथमस्वरसे करना चाहिए।

तृतीयांश (सं० पु०) तृतीयः अंशः। तृतीय भाग, तीसरा हिस्सा।

तृतीया (सं० स्त्री०) तृतीय टाप्। १ तिथिविशेष, प्रत्येक पक्षका तीसरा दिन, तीज। तिथि देखो। व्याकरणमें करण-कारक।

तृतीयाकृत (सं० त्रि०) तृतीय डाच्-कृ-क्त। वारत्रय कर्षितक्षेत्र, वह खेत जो तीन बार जोता गया हो।

तृतीयाप्रकृति (सं० स्त्री०) तृतीया प्रकृतिः। संज्ञा पूरण्याश्च। पा ६।३।३८। इति न पुंवद्भावः। नपुंसक, हिजड़ा।

तृतीयाश्रम (सं० पु०-क्ली०) तृतीयं आश्रमं। वानप्रस्थाश्रम। गृहस्थाश्रमके बाद यही आश्रम अवलम्बन करना पड़ता है।

तृतीयासमास (सं० पु०) तृतीया सह समासः। समास विशेष, तृतीया तत्पुरुष समास। तृतीया विभक्तिके साथ यह समास होता है, इसीलिए इसका नाम तृतीया समास रखा गया है। समास देखो।

तृतीयी (सं० त्रि०) तृतीय अस्त्यर्थे इनि। तृतीय भागार्ह, तीसरे हिस्सेका हकदार।

तृत्सु (सं० त्रि०) तृद् बाहुलकात् सुक्। हिंसक, कतल करनेवाला।

तृदिल (सं० त्रि०) तृद्-बाहु० इलच। १ भेदक, फूट करानेवाला। २ भिन्न, अलग।

तृपत् (सं० पु०) तृप्नोति प्रीणयति तृप-अति। संश्चत्तृपद्वेहत्। उण् २।८५। इति सूत्रेण निपातनात् साधुः। १ चन्द्र, चन्द्रमा। २ छत्र, छतरी। ३ इन्द्र।

तृपल (सं॰ त्रि॰) तृप्यति-तृप-कल। कलस्तृपश्च। उण् १।१०६। क्षिप्र, तेज, चञ्चल।

तृपला (सं॰ स्त्री॰) तृपल-टाप्। १ लता। २ त्रिफला।

तृपलप्रभर्मन् (सं॰ त्रि॰) १ प्रस्तरादि द्वारा प्रहारकारक, जो पत्थर आदिसे चोट करता हो। २ क्षिप्र प्रहारकारक, जो बहुत तेजीसे मारता हो।

तृपाना (सं॰ स्त्री॰) तृप-कानच्। लता।

तृप्त (सं॰ त्रि॰) तृप-क्त। १ तृप्तियुक्त, तुष्ट, अघाया हुआ, जिसकी इच्छा पूरी हो गई हो। २ प्रसन्न, खुश।

तृप्ता (सं॰ स्त्री॰) तृप्त-टाप्। गायत्रीभेद, एक प्रकारकी गायत्री।

तृप्ता (सं॰ स्त्री॰) तृप्त-टाप्। गायत्रीभेद, एक प्रकारकी गायत्री।

तृप्तांशु (सं॰ त्रि॰) तृप्तः अंशुर्यस्य। तर्पितावयव, जिसका शरीर तृप्त हो गया हो।

तृप्ति (सं॰ स्त्री॰) तृप-क्तिन्। भक्षणादि द्वारा आकांक्षा-निवृत्ति, इच्छा पूरी होनेसे प्राप्त शान्ति और आनन्द, संतोष। इसके पर्याय—सौहित्य, तर्पण, प्रीणन् और असितम्भव हैं।

तृप्तिकर (सं॰ त्रि॰) तृप्तिं करोति कृ-ट। प्रीतिप्रद, आह्लादजनक, खुश करनेवाला।

तृप्तिदा (सं॰ स्त्री॰) तृप्तिं ददाति दा-क-टाप्। गायत्री-भेद, एक प्रकारकी गायत्री। तृप्ता देखो।

तृप्तिन् (सं॰ त्रि॰) तृप्तोऽस्त्यस्य तृप्त-इनि; सुखादिभ्यश्च पा ५।२।१३१) तृप्तियुक्त, प्रसन्न, खुश।

तृप्तिमत् (सं॰ त्रि॰) तृप्तिः विद्यते अस्य तृप्ति-मतुप्। १ तृप्तियुक्त, आह्लादविशिष्ट। (क्ली॰) २ उदक, जल।

तृप्नु (सं॰ त्रि॰) तृप-क्नु। तृप्तिशील, खुश रहनेवाला।

तृप्र (सं॰ पु॰) तृप्यत्यनेन तृप-रक्। स्फायितञ्चीति। उण् २।१३। १ घृत, घी। २ पुरोडास। (क्ली॰) ३ दुःख, तकलीफ। (त्रि॰) ४ तर्पक, तृप्त करनेवाला।

तृप्रालु (सं॰ त्रि॰) तृप्रं दुःखं न सहते असहने तृप्राआलु। दुःखासहन, जो दुःख सहन न कर सकता हो।

तृफला (सं॰ स्त्री॰) तृम्फति पीड़यति तृफ्-कलच् टाप्। त्रिफला, हड़, बहेड़ा आंवला।

तृफू (सं॰ स्त्री॰) तृफति पीड़यति तृफ-ऊ। सर्पजाति, एक प्रकारका सांप।

तृम्फादि (सं॰ पु॰) धातुगणविशेष। तृम्फ, तुम्फ, दृन्फ, ऋन्फ, गुन्फ, उन्फ, शुन्फ ये सब धातु तृम्फादि हैं।

तृष् (सं॰ स्त्री॰) तृष्-क्विप्। तृषा देखो।

तृषा (सं॰ स्त्री॰) तृष-टाप्। १ आकांक्षा, इच्छा, अभिलाषा। पर्याय—इच्छा, स्पृहा, ईहा, तृष्, वाञ्छा, लिप्सा, मनोरथ। २ पिपासा, प्यास। ३ कामकन्या, कामदेवकी लड़की। ४ लाङ्गली वृक्ष, कलिहारी। ५ लोभ, लालच।

तृषाभू (सं॰ स्त्री॰) तृषायाः भूरुत्पत्तिस्थानं। क्लोम, पेटमें जल रहनेका स्थान।

तृषालु (सं॰ त्रि॰) पिपासित, प्यासा।

तृषावान् (सं॰ त्रि॰) पिपासित, प्यासा।

तृषास्थान (सं॰ पु॰) क्लोम, पेटमें जल रहनेका स्थान।

तृषाह (सं॰ क्ली॰) तृषां हन्ति हन-ड। १ जल, पानी। २ मधुटिका, एक प्रकारकी सौंफ।

तृषित (सं॰ त्रि॰) तृषा जाता अस्य तारकादित्वादितच्। १ तृष्णान्वित, प्यासा। २ लुब्ध, लोभी, लालची। ३ इच्छुक, अभिलाषी।

तृषितोत्तरा (सं॰ स्त्री॰) तृषित उत्तरो यस्याः। अशन-पर्णीवृक्ष, पटसन।

तृषु (सं॰ क्ली॰) तृ-सुक् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ क्षिप्रता, तेजी, शीघ्रता। (त्रि॰) २ क्षिप्रतायुक्त, तेज।

तृषुच्यवस् (सं॰ त्रि॰) तृषु च्यवः यस्य। क्षिप्रगमनयुक्त, बहुत तेज चलनेवाला।

तृषुच्युत् (सं॰ त्रि॰) तृषु-च्युत्-क्विप्। क्षिप्रगमनशील, जो तेजीसे चलता है, जिसकी गति बहुत तेज हो।

तृष्ट (सं॰ त्रि॰) तृष-क्त वेटे बाहुलकात् इड़भावः। १ दाहजनक। २ तृषित, प्यासा।

तृष्टामा (सं॰ स्त्री॰) तृष्टं दाहं श्रमयति गमयति श्रम-णिच्-अच्। नदी, दरया।

तृष्णज् (सं॰ त्रि॰) तृष्यति आकांक्षति तृष नजिङ्। १ लुब्ध, लोभी। २ तृषित, प्यासा।

तृष्णा (सं॰ स्त्री॰) तृष न, सच कित्। १ पिपासा, प्यास। पर्याय—उदन्या, तृष्, तर्ष, तृषा, तर्पण। (जटाधर) २ लिप्सा, लोभ, लालच। ३ अप्राप्त अभिलाष। ४ रोग-

भेद, एक बीमारी। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—

जलपानसे तृप्ति न हो कर यदि फिर फिर जलकी आकांक्षा बनी रहे तो उसे तृष्णा कहते हैं। यह संक्षोभ, शोक, भ्रम, मद्यपान, रूक्ष, अम्ल, शुष्क, उष्ण और कटु द्रव्य भोजन; धातुक्षय, लङ्घन तथा ताप इन सबोंके द्वारा पित्त और वायुकी वृद्धि हो कर जलीय धातुवाही सभी स्रोतोंको दूषित करती है। इन सब स्रोतोंको राह दूषित हो जानेसे अत्यन्त तृष्णा उत्पन्न होती है। इसकी उत्पत्तिके सात भेद हैं—वायुसे, पित्तसे, श्लेष्मासे, क्षतसे क्षयसे (धातुक्षय), आमसे तथा कटु, तिक्त आदि भोजन करनेसे।

तालु, ओष्ठ, कण्ठ एवं मुखका सूखना, दाह, सन्ताप, मोह, भ्रम, विलाप और प्रलाप ये सब तृष्णाके पूर्वलक्षण हैं। विशेषतः वायुसे उत्पन्न तृष्णामें मुखशोष; शङ्खदेश (कपालास्थि), शिरोदेश तथा गलदेशमें पीड़ा; स्रोतपथका अवरोध, मुखका वैरस्य और शीतल जलकी इच्छा होती है। मूर्च्छा, प्रलाप, अरुचि, मुखशोष, पीत नेत्र, अत्यन्त दाह शीताभिलाष, मुखकी तिक्तता और कण्ठसे धूमोद्गम ये सब पित्तसे उत्पन्न तृष्णाके लक्षण हैं। जठरानलके कफ द्वारा संवृत हो जाने पर उसकी वाष्प रुक जाती है जिससे जलवाही स्रोतपथ दूषित हो कर शुष्क तृष्णा उत्पन्न करता है।

निद्रा, देहकी गुरुता, मुखकी मधुरता, शीतज्वर, वमन, अरुचि ये सब कफसे उत्पन्न तृष्णाके लक्षण हैं। शोणितके कारण पीड़ा वा शोणितके गिरनेसे तृष्णाके सब लक्षण पाये जाने पर भी अधिक जलकी आकाङ्क्षा नहीं रहती। इसको रक्तसे उत्पन्न तृष्णा कहते हैं। रस आदि धातु क्षय होनेसे जो तृष्णा पैदा होती है, दिनरात बार बार जल पीने पर भी उसकी शान्ति नहीं होती। इसे कोई कोई सान्निपातिक तृष्णा कहते हैं। आमज तृष्णामें त्रिदोषके सभी लक्षण दीख पड़ते हैं। इनके सिवा हृद्शूल, निष्ठीवन और शरीरमें अवसाद आदि लक्षण भी उत्पन्न होते हैं। अतिशय स्नेह, अम्ल वा लवण अथवा गुरुपाक अन्न खानेसे भी तृष्णा पैदा होती है, इसे भोजनसे उत्पन्न तृष्णा कहते हैं। तृष्णार्त मनुष्य यदि क्षीण, मानसिक क्रियाहीन और बधिर हो जीभ निकल गई हो, तो रोगको असाध्य चाहिये। (सुश्रुत उत्तरतन्त्र ४८ अ०) भावप्रकाशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

भय, परिश्रम, बल क्षय तथा पित्तवर्द्धक द्रव्य खानेसे पित्त और वायु कुपित हो कर ऊपरकी ओर चला जाता है और तालुमें पहुँच कर पिपासा उत्पन्न करता है। अन्न, कफ, आमरससे दूषित दोष जलवाही स्रोतोंको दूषित कर तृष्णा उत्पन्न करता है। तृष्णाके सात भेद हैं—वातज, पित्तज, कफज, क्षतज, क्षयज, आमज, और अन्नज। सुश्रुतके 'सलिलवहस्रोतः' इससे बहुवचनका ज्ञान होनेके कारण चरकके मतानुसार जिह्वा, हृदय, गलदेश और क्लोम (मूलाधार)की बोध होता है अर्थात् तृष्णा होनेके समय दोष इन्हीं सब स्थानोंमें रहता है।

तृष्णाका सामान्य लक्षण—तृष्णके उपस्थित होने पर रोगीके तालु, ओष्ठ, कण्ठ और मुखमें वेदना तथा जलन पैदा होती है; एवं सन्ताप, मोह, भ्रम और प्रलाप भी होता है।

वातज तृष्णाका लक्षण—वातसे उत्पन्न तृष्णारोगमें मुखमें मलिनता और विरसता, शङ्ख (कपालास्थि) और मस्तकमें वेदना होती एवं रस और अम्बुवाहिधमनी बन्द हो जाती है।

पित्तजका लक्षण—पैत्तिक तृष्णारोगमें मूर्च्छा, अन्नसे अरुचि, प्रलाप, दाह, रक्ताक्ष, अत्यन्त मुखशोष, शीतल सेवनाभिलाष, मुखकी तिक्तता और धुआं निकलनेके जैसा मालूम पड़ता है।

कफजका लक्षण—कफसे उत्पन्न तृष्णारोगमें आपसे आप कुपित कफ जठराग्निका आच्छादन करता तथा पावक ऊष्माको रोक देता है। यह अवरुद्ध ऊष्मा जलवाही स्रोतको सोख कर कफ-कर्त्तृक तृष्णा उत्पादन करती है। इस रोगमें निद्राधिक्य, देहमें गुरुत्व, मुखमें मधुरता और तृष्णापीडित व्यक्ति अत्यन्त कृश हो जाता है।

क्षतजका लक्षण—शस्त्रादि द्वारा क्षत मनुष्यको जो वेदना तथा रक्त निःसरणके कारण तृष्णा उत्पन्न होती है, उसको क्षतज तृष्णा कहते हैं।

क्षयजका लक्षण—रसक्षयप्रयुक्त जो तृष्णा उत्पन्न होती है, उसे क्षयज तृष्णा कहते हैं। क्षयज तृष्णारोगमें रोगी दिनरात सभी समय जल पी कर भी तृप्तिलाभ नहीं कर सकता तथा रसक्षयके सभी लक्षण दिखलाई देते हैं। कोई कोई इसे सान्निपातिक तृष्णा भी कहते हैं।

रसक्षयका लक्षण—रसक्षय होने पर हृदयमें वेदना, कम्प, मुखशोष, हृदयमें शूल, शोष और शून्यता होती है।

आमजका लक्षण—आमज तृष्णा सान्निपातिक तृष्णाकी नाईं लक्षणयुक्त होती है। इसमें हृदयमें वेदना, निष्ठीवन और शरीरमें अवसन्नता होती है।

अन्नजका लक्षण—स्निग्धद्रव्य, अम्ल, लवण और कटु, रसयुक्त द्रव्य तथा गुरुद्रव्य सेवन करनेसे शीघ्र ही तृष्णा उत्पन्न होती है। इस तृष्णाको अन्नज तृष्णा कहते हैं।

उपसर्ग तृष्णाका लक्षण—जिस तृष्णामें रोगीका स्वर क्षीण हो जाता है, मूर्च्छा और क्लान्ति आने लगती है तथा मुखशोष, हृदय-शोष और तालुशोष हो जाता है उस धातु-शोषणकारी तृष्णाको कष्टसाध्य समझना चाहिये।

तृष्णारोगका उपसर्ग और अरिष्ट—ज्वर, मोह, क्षय, कास और श्वासादियुक्त अत्यन्त मुखशोषादि कठिन उपद्रवयुक्त रोगोंसे कृश और वमिवेगसे कातर ये सब लक्षण रोगीको मृत्युके कारण हैं।

तृष्णाकी चिकित्सा—वातज तृष्णारोगमें वायुनाशक अथच कोमल, लघु और शीतल द्रव्योंसे चिकित्सा करानी चाहिये। वातज तृष्णारोगमें गुड़मिश्रित दही खाना प्रशस्त है। पित्तज तृष्णारोगमें मधुर और तिक्तरसयुक्त द्रव्य तथा तरल और शीतल द्रव्य हितकर है। मोथा, पित्तपापड़, बाला, धनियां, खसकी जड़ और श्वेतचन्दन सभीके मिश्रित परिमाण दो तोलेको दो सेर पानीमें उबालते हैं। जब पानी जल कर एक सेर बचता है, तो उसे उतार लेते हैं। ठण्डा करके सेवन करनेसे पिपासा दाह और ज्वर घट जाता है। ८ तोले लाईका चूर्णको २८ तोले उष्ण जलमें डाल कर एक रात रख छोड़ते हैं। दूसरे दिन उसमें मधु ४ माशा, गुड़ ४ माशा, गाम्भारीफलचूर्ण ४ माशा और चीनी ४ माशा मिला कर सेवन करनेसे पैत्तिक तृष्णा जाती रहती है।

आर्द्र वस्त्रोंकी शय्या पर सोनेसे तथा उनसे शरीर ढकनेसे तृष्णा और उग्र दाह दूर हो जाता है। द्राक्षा, इक्षुरस, दुग्ध, यष्टिमधु, मधु और नीलोत्पल इन सब द्रव्योंको पीस कर जलके साथ उसे नाक द्वारा पीनेसे कठिनसे कठिन तृष्णा नष्ट हो जाती है।

अनार, सेव, लोध, कैथ और खट्टा (नीबू) इन सबको एक साथ पीस कर मस्तक पर लेप देनेसे तृष्णा जाती रहती है।

ठण्डा जल भर पेट पी कर पान और अल्प मधु खा कर वमन करनेसे तृष्णा प्रशमित हो जाती है। धनियेंके काढ़ेको चीनीके साथ प्रति दिन सवेरे पीनेसे तृष्णा और दाह जाता रहता है। आँवला, पद्ममूल, कुट, लावा, बटरोहक इन सबको चूर्ण कर मधुके साथ गोली बनाते हैं। बाद उस गोलीको मुखमें रखनेसे प्यास और दारुण मुखशोष नष्ट हो जाता है। क्षयज तृष्णामें बराबर भाग जलमिश्रित दूध वा मांस रस अथवा असम परिमाणका मधुमिश्रित जल हितकर है। आमज तृष्णामें विल्व और वचका क्वाथ सेवन करना चाहिए। अधिक खाने पर यदि तृष्णा उपस्थित हो जाय तो वमि करनेसे इसका प्रतिकार होता है। इस प्रक्रिया द्वारा क्षयज तृष्णाके सिवा अन्य प्रकारके तृष्णारोग भी अच्छे हो जाते हैं।

मूर्च्छा, वमि, अनाह, रक्त पित्त और मदात्यय रोगीको एवं रमण और मद्याकर्षित व्यक्तिको शीतल जल पिलाना चाहिए। हितकर अन्न और औषधद्वारा तृषित व्यक्तिकी तृष्णा दूर करना कर्त्तव्य है, क्योंकि तृष्णाकी शान्ति होनेके बाद अन्य रोगकी चिकित्सा की जा सकती है। तृष्णातुर मनुष्यको यदि जल न मिले तो वह उत्कट व्याधियुक्त वा मरणापन्न हो जाता है। तृष्णासे मोह और मोहसे जीवननाश होता है, इसी कारण हर हालतमें जल देना उचित है। भोजन न करनेसे भी जीवन धारण हो सकता है, किन्तु तृष्णातुर मनुष्यको जल न मिले तो शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाती है।

(भावप्र० तृष्णाधिकार)

तृष्णाक्षय (सं० पु०) तृष्णायाः क्षयो यत्र। १ शान्ति। तृष्णाके नहीं रहने पर आदमी सुखी रहता है। तृष्णायाः

शयः ६-तत् । २ पिपासानाश, प्यासका दूर होना ।

तृष्णाघ्न (सं॰ त्रि॰) तृष्णां हन्ति तृष्णा-हन्-ठक् । १ जल, पानी । २ तृष्णानाशक, जिससे तृष्णा जाती रहती हो ।

तृष्णार्त्त (सं॰ पु॰) तृष्णाया ऋतः ३-तत् । पिपासायुक्त, पिपासाकातर, वह जो प्याससे छटपटाता हो ।

तृष्णारि (सं॰ पु॰) तृष्णायः अरिः ६-तत् । १ पर्पट, पित्तपापड़ा । (त्रि॰) २ तृष्णानाशक, प्यास दूर करनेवाला ।

तृष्णातुर (सं॰ पु॰) तृष्णायाः आतुरः ६-तत् । पिपासायुक्त, वह जिसे प्यास लगी हो ।

तृष्णालु (सं॰ त्रि॰) तृष्णा अस्त्यर्थे आलु । १ तृषित, प्यासा । २ लुब्ध, लालची, लोभी ।

ते (सं॰ अव्य॰) १ त्वया, तुमसे ।

तेइस (हिं॰ वि॰) तेईस देखो ।

तेइसवाँ (हिं॰ वि॰) तेईसवां देखो ।

तेईस (हिं॰ वि॰) १ जो बीससे तीन अधिक हो । (पु॰) २ वह संख्या जो बीस और तीनके योगसे बनी हो ।

तेईसवां (हिं॰ वि॰) जो क्रमसे तेईसके स्थान पर पड़ता हो ।

तेंतरा (हिं॰ पु॰) वह लकड़ी जो बैलगाड़ीमें फड़के नीचे लगी रहती है ।

तेतालिस (हिं॰ पु॰) तेंतालीस देखो ।

तेंतालिसवां (हिं॰ वि॰) तेंतालीसवां देखो ।

तेंतालीस (हिं॰ वि॰) १ जो गिनतीमें बयालिससे एक अधिक हो । (पु॰) २ वह संख्या जो चालीससे तीन अधिक हो ।

तेंतालीसवां (हिं॰ वि॰) जो क्रमसे तेंतालीसके स्थान पर पड़ता हो ।

तेंतिस (हिं॰ वि॰) तेंतीस देखो ।

तेंतिसवां (हिं॰ वि॰) तेंतीसवां देखो ।

तेंतीस (हिं॰ वि॰) १ जो गिनतीमें तीससे ज्यादा हो । (पु॰) २ वह संख्या जो तीस और तीनके योगसे बनी हो ।

तेंतीसवां (हिं॰ वि॰) जो क्रमसे तेंतीसके स्थान पर पड़ता हो ।

तेंदुआ (हिं॰ पु॰) अफ्रीका और एशियाके घने जङ्गलोंमें मिलनेवाला एक हिंसक पशु । यह बिल्ली या चीतेकी जातिका होता है । बल और भयङ्करतामें यह शेर और चीतेसे कम नहीं है । किन्तु यह चीतेसे छोटा होता और चीतेकी तरह इसकी गरदन पर भी अयाल नहीं होती । यह चार पांच फुट लम्बा होता है । इसके शरीरका रङ्ग कुछ पीलापन लिए भूरा होता है । इस जातिके कुछ जानवर काले रंगके भी होते हैं ।

तेंदू (हिं॰ पु॰) भारतवर्ष, लङ्का, बरमा और पूर्व-बङ्गालके पहाड़ों और जङ्गलोंमें होनेवाला एक प्रकारका वृक्ष । पुराना होने पर इसके हीरकी लकड़ी बिलकुल काली हो जाती है जो बाजारमें आबनूसके नामसे बिकती है । इसके पत्ते लम्बोतरे, नोकदार, खुरदुरे और महुवेके पत्तोंकी तरहके पर उससे नुकीले होते हैं । इसका छिलका काला होता और जलानेसे चिड़चिड़ाता है । २ इसी पेड़का फल । यह नीबूकी तरहका हर्द रंगका होता है । जब यह फल पकता है, तब इसका रंग पीला हो जाता और खानेके काममें आता है । इसके कच्चे फलके गुण—स्निग्ध, कसैला, हलका, मलरोधक, शीतल, अरुचि और वातोत्पन्नकारक । पक्के फलके गुण—भारी, मधुर, कफकारी और पित्त, रक्तरोग तथा वातनाशक । ३ एक प्रकारका तरबूज जो सिंध और पंजाबमें पाया जाता है ।

तेग (अ॰ स्त्री॰) खड्ग, तलवार ।

तेगबहादुर (तेजबहादुर)—सिख-सम्प्रदायके ९वें गुरु, ६ठे गुरु हरगोविन्दके पुत्र । हरगोविन्दके तीन स्त्रियोंसे पांच पुत्र थे, जिनमें दामोदरीके गर्भसे ज्येष्ठपुत्र गुरुदत्त हुए थे और नानकीके गर्भसे तेगबहादुर । पिताकी जीवित अवस्थामें ही गुरुदत्तकी मृत्यु हो गई ; परन्तु उनके पुत्र हरराय पर हरगोविन्दका बड़ा स्नेह था । इन्हीं हररायको हरगोविन्द अपनी गद्दी दे गये । इस पर नानकीने पतिके सामने अपना दुःख प्रकट किया । मरते समय हरगोविन्द नानकीसे कह गये कि "भविष्यमें तेगबहादुरको ही गद्दी मिलेगी । तुम मेरे इस कवच (तावीज) को रख दो ; जब तेग गुरु होगा, तब उसे देना ।"

गुरु हररायके भी दो पुत्र थे—रामराय और हरकिसन । हररायके बाद हरकिसन भी कम उम्रमें गुरु हो

गये। इनकी चेचककी बीमारीसे मौत हो गई। मरते समय वे अपने शिष्योंसे कह गये" कि 'जाओ, तुम्हारे गुरु विपाशानदीके किनारे बकाला ग्राममें हैं।'

तेगबहादुर बहुत दिनों तक पटनेमें थे, उसके बाद नाना स्थानोंमें घूमते हुए गोविन्दवालके पास बकाला ग्राममें पहुँचे और वहीं रहने लगे। हरकिसनकी मृत्युके बाद उनके अनुगत शिष्योंने तेगबहादुरको अपना गुरु बना लिया। किन्तु सोधियोंने हरकिसनके भ्राता रामरायको गुरु बनानेका निश्चय कर लिया था। उनके प्रयत्नसे रामराय दिल्लीमें गुरुपद पर अभिषिक्त हुए। उस समय हरगोविन्दके एक प्रधान शिष्य मक्खनशाह दिल्लीमें ही थे, इनका सिख-सम्प्रदाय पर अच्छा प्रभाव था। अब मक्खनशाह भी गुरुवाक्यको सुसिद्ध करनेकी इच्छासे बकाला पहुंचे और तेगबहादुरको गुरु मान कर उन्हें नजराना भेंट किया। परन्तु तेगबहादुरने उसे ग्रहण नहीं किया, कहा-"मुझे क्यों देते हैं? जो राजा हैं उन्हें नजराना दीजिए।" अन्तमें माता और मक्खनशाहकी कोशिशसे तेगबहादुर गद्दी पर बैठे। माताने उन्हें वह कवच और हरगोविन्दकी तलवार ला कर दी। तेगबहादुरने कहा—"इनको लेने लायक मैं नहीं हूं। आप लोग मुझे तेगबहादुर (महायोद्धा) समझते हैं, मगर मेरा नाम है देघ-बहादुर (अर्थात् पाकस्थलीका रक्षक)।"

तेगबहादुरके अन्तिम वाक्य पर तमाम सिख-समाज उन्हें भक्तिकी दृष्टिसे देखने लगी और उन्हींको सिख-धर्मका रक्षक मानने लगी। थोड़े ही दिनोंमें उनके सैकड़ों शिष्य बन गये। अब तेगबहादुर पितासे भी अधिक प्रसिद्ध हो गये।

पहले इन्होंने सोधियोंके उच्छेदका विचार किया था, किन्तु मक्खनशाहके कहनेसे शान्त हो गये। अब ये महा आड़म्बरसे समय बिताने लगे। हजारों घुड़सवार इनकी आज्ञा पालनेके लिए सशस्त्र तैयार रहते थे। शिष्योंके उपहारोंसे इनके पास यथेष्ट धन भी सञ्चित हो गया था, जिससे कर्तारपुरमें इन्होंने एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया। वहां इनकी धर्मसभा संस्थापित हुई। रामराय अब तक कोई बहाना ढूंढ़ रहे थे; उन्होंने मौका जान दिल्लीश्वर औरङ्गजेबको खबर दी कि 'तेगबहादुरने आपके साथ शत्रुता करनेके लिए दुर्ग बनवाया है, शीघ्र ही उनका दमन करना चाहिये।" दिल्लीके दरबारसे तेगबहादुरको पकड़ लानेके लिए परवाना निकला। तेगबहादुर अपने परिवार-सहित दिल्ली पहुंचे और वह जयपुरराजके प्रासादमें ठहरे। जयपुरराजने उनकी तरफसे बादशाहको खबर दी, कि "तेगबहादुर एक शान्त एवं शिष्ट फकीर हैं, उच्चपद पाना वा राज्यका अनिष्ट करना उनका उद्देश्य नहीं है। नाना तीर्थोंमें भ्रमण करना ही उनका उद्देश्य है।" कुछ भी हो, इस बार जयपुरराजके प्रयत्नसे तेगबहादुर बाल बाल बच गये। फिर वे जयपुरके राजाके साथ बङ्गालमें चले आये। पीछे ये पटनेमें ही परिवार-सहित रहने लगे। यहां इनकी पत्नी गुजरीने भावी सिख-गुरु प्रसिद्ध गोविन्दसिंहका प्रसव किया। पटनामें तेगबहादुर करीब पांच-छ वर्ष थे, उनका अधिकांश समय पूजा और ध्यानमें व्यतीत होता था। यहाँ उन्होंने सिखोंको धर्मनीति सिखानेके लिए एक विद्यालय स्थापित किया।

अनन्तर ये अपने देश लौट आये। कहलूर-राज देवीमाधवसे, ५०० रु० दे कर, इन्होंने आनन्दपुरमें थोड़ीसी जमीन खरीदी, जिसमें मखोरवाल नामक नगर बसाया। अब भी यह नगर मौजूद है, सिख लोग उसे पवित्र मानते हैं।

बङ्गालमें एक उदासीनसे इन्होंने कुछ उपदेश ग्रहण किया था। उस उपदेशके प्रभावसे ये पञ्जाब पहुंचते ही एक डकैत बन गये। हांसी और शतद्रु, नदीके मध्यवर्ती समस्त भूभाग इनके उपद्रवोंसे तंग हो गया। बहुतसे गृहस्थ घर छोड़ कर भगने लगे। इसी समय आदम हाफिज नामक एक धर्मध्वजी भी तेगबहादुरके साथ हो लिया। मुगल बादशाहके पंजेसे बचनेके लिए बहुतसे भागे वा छुपे हुए व्यक्तियोंने भी इनका साथ दिया। धीरे धीरे तेगबहादुरका दल शस्त्रधारी हो गया। बादशाहने इनके दमनके लिए फौज भेजी। उसके साथ इनका एक छोटा-मोटा युद्ध भी हो गया। आखिर तेगबहादुर कैद कर लिये गये। दिल्ली जानेसे पहले वे गोविन्दको अपने पद पर अभिषिक्त कर गये। भविष्यमें ये ही गुरु गोविन्दसिंह नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। तेगबहा-

दुरके दिल्ली लाये जाने पर, औरङ्गजेबने उनसे धर्म-विषयक बहुतसी बातें पूछीं। अन्तमें उन्होंने तेगबहादुरको मुसलमानधर्म ग्रहण करनेके लिये आदेश दिया। परन्तु तेगबहादुरने मुसलमान होना स्वीकार नहीं किया।

पहले उन्हें कारागारमें रक्खा गया और मुसलमान बनानेके लिये काफी तंग किया गया। अन्तमें तेगबहादुरने बादशाहको कहलवा भेजा कि "दरबारमें मैं अपनी एक करामत दिखाना चाहता हूं"।

औरङ्गजेबने उन्हें दरबारमें हाजिर होनेके लिये हुक्म दिया। तेगबहादुरने एक कागज पर कुछ लिखा और उसे गले पर रख कहा—"मेरे इस मन्त्रके प्रभावसे कटा हुआ शिर जुड़ जायगा।" उन्होंने उसी समय जल्लादसे शिरको अलग कर देनेके लिए कहा। भरे दरबारमें तेगबहादुरका शिर धड़से अलग हो गया! सबने बड़े आश्चर्यसे उस कागजकी ओर दृष्टि डाली, उस पर लिखा था—"शिर दिया, पर सर न दिया" अर्थात् मस्तक दिया पर मनकी बात न दी। १६७५ ई०में यह घटना हुई थी।

तेगबहादुरने इस तरह १३ वर्ष ७ मास २१ दिन गुरुआई की थी। निर्दयी बादशाहने उसी वक्त उनकी देहको रास्तेमें फेंक देनेके लिए हुक्म दिया। दिल्लीवासी सिखोंने गुरुके पवित्र मस्तकका दाह किया और वहां एक समाधि-मन्दिर बनवा दिया। मक्खनशाहकी कोशिशसे मजबीसिख (वा झाड़ूदार) उनके उस मस्तक हीन शरीरको आनन्दपुर ले आये। वहां गुरु गोविन्दने महा समारोहसे पिताका ऊर्ध्वदैहिक कार्य समाप्त किया। आनन्दपुरमें तेगबहादुरके स्मरणार्थ एक बड़ा मन्दिर बनवाया गया।

अब भी सिख-सम्प्रदाय तेगबहादुरको "सच बादशाह" कह कर उनका खूब सम्मान करता और भक्ति दिखलाता है।

तेगा (सं० स्त्री०) तिज-पुंसि घ जस्य गः। अप्रसिद्ध देवता भेद, एक सामान्य देवताका नाम।

तेगा (अ० पु०) १ खड्ग, खिड़ा। २ दरवाजेको ईंट पत्थर मट्टी आदिसे वंद करनेकी क्रिया। ३ कुश्तीका एक दांव या पेंच। इसका दूसरा नाम कमरतेगा है।

तेङ्कुञ्चला—दक्षिण कनाड़ाका एक ग्राम। यह कासर गोड़से ८ मील उत्तरमें समुद्रके किनारे अवस्थित है। यहां इक्केर राजाओंका बनाया हुआ एक पुराना किला है। किलेके प्रवेशद्वार पर एक कर्णाटी शिलालेख देखनेमें आता है।

तेङ्करइ—मदुरा जिलेमें पेरिय कुलमसे आधकोस पूर्वमें अवस्थित एक पुण्यस्थान। यहांका सुब्रह्मण्यका मन्दिर बहुत पुराना है। मन्दिरमें बहुतसे शिलालेख विद्यमान है।

तेङ्करइ—तिन्नेवेलि जिलेके अन्तर्गत तेङ्करइ तालुकका एक सदर। इसका दूसरा नाम आड़वारतिरु नगरी है। यह अक्षा० ८° ३५´ उ० और देशा० ७८° ७´ ३०´´ पू० तुतकुड़ीसे १८ कोस दक्षिण-पश्चिममें तथा ताम्रपर्णी नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। यहां तेङ्करइ सरोवरके बगलमें एक शिलालेख मौजूद है।

तेङ्कासि—मन्द्राजके तिन्नेवेलि जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० ८° ४९´ और ९° ९´ उ० तथा देशा० ७७° १३´ और ७७° ३८´ पू०में पड़ता है। भूपरिमाण ३७४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ११४,४३० हैं। इसमें तीन शहर और ९२ ग्राम लगते हैं।

२ तिन्नेवेलि जिलेके इसी नामके तालुकका एक शहर। यह अक्षा० ८° ५८´ उ० और देशा० ७७° १९´ पू० तिन्नेवेलि शहरसे ३३ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग १८१२८ है।

दक्षिणकाशी शब्दके अपभ्रंशसे तेङ्कासि नाम पड़ा है। यहाके अधिवासी इस स्थानको काशीके जैसा पवित्र समझते हैं। यहांका विश्वनाथस्वामीका मन्दिर प्रसिद्ध है। इसके सिवा और भी कई एक शिवालय हैं जिनमें काशी विश्वनाथस्वामीका मन्दिर बहुत सुन्दर दीख पड़ता है। यहांके स्थलपुराणमें उक्त मन्दिर तथा यहांके तीर्थोंका माहात्म्य लिखा है। इन सब मन्दिरोंमें पाण्डवराजाओंके समयमें उत्कीर्ण बहुतसे शिलालेख देखे जाते हैं।

किसी समय यह दक्षिणकाशी दुर्गम दुर्ग प्रासाद आदिसे घिरा हुआ था। पलिगारोंके युद्धकालमें वे सब तहस नहस कर डाले गये।

तेङ्गल (तेङ्गलई)—मन्द्राज प्रदेशके वैष्णवोंकी एक श्रेणी। उक्त प्रदेशके वैष्णवगण दो सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं—एक बड़गल वा उत्तरवेदी और दूसरा तेङ्गल वा दक्षिणवेदी। रामानुजके समय ये लोग एक ही सम्प्रदायभुक्त थे। उसके बाद रामानुजके शिष्य मनवलमनुखि वा राम्यज मत्रिके मतावलम्बी तेङ्गल और रामानुजके अन्य शिष्य वेदान्ताचार्य वा वेदान्तदेशिकके अनुवर्ती लोग बड़गल-नामसे प्रसिद्ध हुए। किसी किसीका कहना है, कि काञ्ची पुर-वासी वेदान्तदेशिकने यह प्रचार किया था कि "मैं दाक्षिणात्यके ब्राह्मणकुलके आचार-व्यवहारका संशोधन करने और दाक्षिणात्यके उत्तरापथके सनातन शास्त्र एवं धर्मको पुनः प्रतिष्ठाके लिए भगवान्‌द्वारा प्रेरित हुआ हूं।" बड़गलोंने उनका मत मान लिया, पर तेङ्गलोंमें किसीने भी नहीं माना। इसलिए दोनों दलोंमें विषम विरोध खड़ा हो गया। परन्तु दोनों सम्प्रदाय विष्णुके उपासक हैं। बड़गल लोग विष्णुकी भांति विष्णु-शक्तिका अस्तित्व और उसका प्रभाव भी मानते हैं, किन्तु और किसी भी विषयमें उनकी कर्मशीलता स्वीकार नहीं करते। इसी मतभेदको ले कर दो दलोंमें विरोध और विषम विद्वेष खड़ा हो गया है। इस विषयमें अनेक वादानुवाद भी हो चुका है।

इसके सिवा तिलकसेवाके विषयमें भी बहुत वाक्‌वितण्डा हुआ करता है। तेङ्गलोंके तिलकमें सिंहासन होता है, पर बड़गलोंमें नहीं पाया जाता। दोनों ही दल अपने अपने तिलकको शास्त्रसम्मत और विपक्षियोंके तिलकको शास्त्रविरुद्ध सिद्ध करनेकी चेष्टा करते रहते हैं। कभी कभी इस विषयको ले कर लड़ाई भी हुआ करती हैं।

बड़गल और तेङ्गल दोनों विरुद्धवादी होने पर भी एक जाति होनेसे परस्पर विवाह सम्बन्ध होता है।

तेज (हिं॰ पु॰) तेजस् देखो।

तेज (फा॰ वि॰) १ तीक्ष्ण धारका, जिसकी धार पैनी हो। २ जो चलनेमें बहुत तेज हो। ३ जो काम करनेमें फुरतीला हो। ४ तीक्ष्ण, तीखा, झालदार। ५ बहु-मूल्य, महँगा। ६ उग्र, प्रचण्ड। ७ जिसमें भारी प्रभाव हो। ८ जिसकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण हो। ९ जो बहुत चञ्चल या चपल हो।

तेजःपुञ्ज (सं॰ पु॰) तेजसां पुञ्जः। तेजोराशि, आभाका समूह।

तेजःफल (सं॰ क्ली॰) तेजसे फलमस्य तेजः फलति वा फल-अच्। वृक्षभेद, एक पेड़का नाम, तेजफल। पर्याय—बहुफल, शाल्मलीफल, स्तवकफल स्तेयफल, गन्धफल, कण्टवृक्ष। गुण—यह कटु, तीक्ष्ण, सुगन्ध, दीपन, वातश्लेष्मा और अरुचिनाशक तथा बालरक्षाकारक है।

तेजकरण—ग्वालियरके एक राजा। इनका दूसरा नाम दुल्‌हाराय था। भट्ट कवि खड्गराय आदिके ग्रन्थोंमें तेजकरणकी विस्तृत आख्यायिका लिखी है। देवसाके राजा रणमल्लकी कन्याके साथ इनका विवाह हुआ था। रणमल्लके कोई पुत्र न था, इसलिए उन्होंने तेजकरणको ही अपना राज्य दे दिया। तेजकरणके विषयमें खड्गराय, टाड साहब और जनरल कनिङ्‌हमने जो निरूपण किया है, वह यथार्थ नहीं मालूम पड़ता।

देखो ग्वालियर शब्द, पृष्ठ ७४१, भाग ६।

तेजधारी (हिं॰ वि॰) तेजस्वी, प्रतापी।

तेजन (सं॰ पु॰) तेजयति शास्त्रं अग्निमिति वा तिज-णिच्-ल्यु। १ वंश, बांस। २ मुञ्ज, मूंज। ३ भद्रमुञ्ज, रामशर, सरपत। (क्ली॰) ४ दीपन, दीप्त करने या तेज उत्पन्न करनेकी क्रिया या भाव। ५ भोजन। ६ चटाई। ७ सिरके बालका गुप्फा।

तेजनक (सं॰ पु॰) तिज-णिच्-ल्यु, संज्ञायां कन् वा। शरतृण, सरपत।

तेजनाख्य (सं॰ पु॰) तेजन आख्या यस्य। मुञ्ज तृण, मूंज।

तेजनाह्वय (सं॰ पु॰) मुञ्ज तृण, मूँज।

तेजनी (सं॰ स्त्री॰) तेजन-गौरा॰ ङीष्। १ मूर्वा। २ चविका, चव्य, चाव। ३ तेजोवती, तेजबल। ४ ज्योतिष्मती, मालकँगनी।

तेजपत्ता (हिं॰ पु॰) दारचीनीकी जातिका एक पेड़। संस्कृतमें इसका नाम तमाल है और अंगरेजी उद्भिद् शास्त्रोंमें Cinnamomum Tamala। इससे अनुमान किया जाता है, कि यह संस्कृक उद्भिद्शास्त्रोंके तमाल जातीय वृक्षोंके अन्तर्गत है। अंगरेजी उद्भिद शास्त्रोंमें इसका दूसरा नाम Cassia Lignea वा Cassia Cinnamon है।

तेजपत्ता दो प्रकारका होता है—तेजपत्ता (Cinnamomum Tamla) और राम तेजपत्ता (Cinnamomum Obtusifolium)

तेजपत्तेका पौधा अधिक बड़ा नहीं होता। जिस स्थान पर कुछ समय तक अच्छी वर्षा हो कर पीछे धूप पड़ती हो, वहां यह पेड़ अच्छी तरह बढ़ता है। हिमालयके पूर्वांशमें यह ३ से ७ हजार फुटकी ऊँचाई पर पाया जाता है। लङ्का, दारजिलिङ्ग, कांगड़ा, जयन्तिया, खासिया, ब्रह्मदेश और अन्दामन द्वीपमें यह बहुत उपजता है। सिन्धुके किनारेसे ले कर शतुद्र के किनारे तक भी इसका पेड़ कहीं कहीं देखनेमें आता है। जयन्तिया और खासियामें इसकी खेती होती है। इसके बीजको सात सात फुटकी दूरी पर बोते हैं। पौधा जब पांच वर्षका हो जाता है, तब उसे दूसरे स्थान पर रोप देते हैं। जब तक इसके पौधे छोटे रहते हैं, तब तक विशेष रक्षाकी आवश्यकता होती है। धूप आदिसे बचानेके लिए उन्हें झाड़ियोंकी छायामें रख देते हैं। पांचवें वर्षमें जब यह दूसरे स्थान पर रोपा जाता है, तभी इसके पत्ते काममें आने योग्य हो जाते हैं।

इसकी छाल और पत्तियां दोनों ही काममें लाई जाती हैं। दारचीनीकी नाईं तेजपत्तेकी छाल भी सुगन्धित होती है और बहुत कुछ दारचीनीके साथ मिलती जुलती भी है। छालसे एक प्रकारका तेल और साबुन तथा पत्तियोंसे एक प्रकारका रंग बनाया जाता है।

छाल।—दारचीनीकी नाईं इसके धड़ और मोटी डालियोंसे छाल निकाल कर उसे दारचीनीकी तरह काममें लाते हैं। दारचीनीकी अपेक्षा इसकी छाल पतली होती है सही, पर उस तरह सिकुड़ी नहीं होती, वरन् ठीक गोल नल जैसी रहती है। दारचीनीकी छालका ऊपरी भाग यत्नपूर्वक जितना काट कर अलग कर दिया जाता है, उतना इसमें नहीं। इसी कारण इसमें कई जगह ऊपरी भाग भी लगा हुआ दीख पड़ता है। इसकी शाखा वा धड़की छालकी अपेक्षा मूलतन्तुकी छालमें दारचीनीसी गन्ध अधिक रहती है। मणिपुर प्रान्तमें पौधेकी छाल न लेकर मूलतन्तुकी छाल ही ली जाती है। तेजपत्तेकी छालका गुण भी दालचीनीके जैसा है, लेकिन उतना उत्कृष्ट नहीं। केवल मूलतन्तुकी छालका गुण दारचीनी सरीखा देखनेमें आता है। चीनके काण्टन, कलकत्ता और बम्बई आदि स्थानोंमें इसका खूब व्यवसाय होता है।

तैल—इसकी छालका ऊपरी भाग जो काट कर अलग कर दिया जाता है, उसीसे एक प्रकारका सुगन्ध तेल बनता है। १० सेर छालमें लगभग ।≈ छटाक तेल निकलता है। यह तेल देखनेमें म्लान, पीतवर्ण तथा दारचीनीके समान गन्धविशिष्ट होता है, किन्तु गुणमें दारचीनीके तेलसे कुछ हीन है। इस तेलसे खास कर साबुन (Military soap) बनाया जाता है।

फूल और फल—इसका फूल और फल ठीक लवङ्ग जैसा होता है। फल बढ़ने नहीं दिया जाता। यह भी छालकी नाईं गुणविशिष्ट है। प्राचीन कालमें हिपीक्रस (Hippocrus) नामक सुगन्ध मद्य इसीसे बनाया जाता था। यूरोपमें यह Cssiabud नामसे और बम्बईमें 'काली नागकेशरके' नामसे मशहूर है। चीन और दक्षिण भारतवर्षसे यह बम्बईको भेजा जाता है। 'चीना' और 'मलबारी' नामसे इसके दो भेद हैं। दक्षिण प्रदेशके मुसलमान लोग व्यञ्जनादिको सुगन्धित करनेके लिये इसे मसालेकी तरह काममें लाते है।

पत्ता—तेजपत्रकी पत्तियां साधारणतः भारतवर्षमें शाक तरकारी आदिमें मसालेकी तरह डाली जाती हैं और औषधके काममें भी लाई जाती हैं। प्रति वर्ष कुआरसे अगहन तक और कहीं कहीं फागुन तक इसकी पत्तियां तोड़ी जाती हैं। साधरण वृक्षोंसे प्रति वर्ष, और पुराने तथा दुर्बल वृक्षोंसे प्रति दूसरे वर्ष पत्तियाँ ली जाती हैं। प्रत्येक वृक्षोंसे प्रति वर्ष १०से २५ सेर तक पत्तियां निकलती हैं। छींटका रंग बनानेके समय इसकी पत्तियोंको हड़, बहेड़ा और आँवलेके साथ मिला देते हैं, जिससे रंग पक्का हो जावे। इसी उद्देश्यसे प्रतिवर्ष ५००।६०० मन पत्तियोंकी रामगनी और सरदाके मध्यवर्त्ती स्थानोंसे रफ्तनी होती है।

औषध—इसकी छाल और पत्तियां वात रोगमें उत्तेजक रूपसे एवं उदरामय और आमाशयमें केवल

पत्तियां ही व्यवहृत होती हैं। हकीम लोग मूत्रकृच्छ्र, प्लीहा, उदरामय, पेटव्यथा, सर्पदंशन और अफीमके विषमें इसकी पत्तियोंका प्रयोग करते हैं। इसके फूल और फल लवङ्गके बदले व्यवहृत होते हैं। और तेलसे सिर-दर्द, अधकपारी जाती रहती है। पीपल, मधु और तेजपत्तोंका अवलेह सेवन करनेसे खाँसी, सरदी और श्वाँस दूर हो जाती है। यदि प्रसवका स्राव दूषित हो कर अधिक गिरने लगे तो इसके पत्तोंका चूर्ण खिला देनेसे अच्छा हो जाता है। वैद्यगण भी बहुतसे ज्वरोंकी औषधमें इसकी पत्तियोंका व्यवहार करते हैं। जापानमें एक श्रेणीका तेजपात है जिसके मूलतन्तुसे यथेष्ट कर्पूर निकलता है।

बहुतोंका मत है, कि यह पेड़ भारतवर्षका आदिम पेड़ नहीं है। पहले पहल चीन देशसे यह रूस देशमें आया था। और अभी इसका प्रचार बहुत दूर तक हो गया है। किन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि तेजपत्तोंका व्यवहार भारतवर्षमें बहुत पहलेसे था। ईसाके जन्म पहलेसे भी इसके पत्ते भारतवर्षसे युरोपमें भेजे जाते थे। प्लिनीने मालवथम (Malabathrum) नामक जिस पत्रका उल्लेख किया है, वही भारतीय तमाल पत्रम् शब्दका अपभ्रंश है। चीनसे प्रति वर्ष लगभग ढाई लाख रुपयेकी छाल और पत्तियां इस देशमें आती हैं और अरब, पारस्य तथा तुरुष्क देशोंमें प्रायः लाख रुपयेका द्रव्य भेजा जाता है।

तेजपत्र (सं॰ क्ली॰) तेजयति तिज-णिच्-अच् तेजं पत्रमस्य। स्वनामख्यात पत्र, तेजपत्ता। पर्याय—गन्धजात, पत्र, पत्रक, त्वक्पत्र, वराङ्ग, भृङ्ग, चोच, उत्कट। गुण—यह कफ, वायु, अर्श, हृल्लास और अरुचिनाशक है। भावप्रकाशके मतानुसार—यह लघु, उष्ण, कटु, स्वादु, तिक्त, रूक्ष, पित्तल, कफ, वात, कण्डू, आम और अरुचिनाशक है। तेजपत्ता देखो।

तेजपाल—गुर्जरके एक विख्यात मन्त्री। अश्वराजके पुत्र, वस्तुपालके भाई, चौलुक्यराज वीरधवलके बन्धु और प्रधान मन्त्री। इनकी स्त्रीका नाम था अनुपमा और पुत्रका लावण्यसिंह। जैनधर्मके ये प्रधान उत्साहदाता थे। १३ वीं शताब्दीमें तेजपाल और वस्तुपाल प्रचुर रुपये व्यय कर अर्बुद और गिरना पहाड़के ऊपर तीर्थङ्करोंके उद्देशसे कई एक सुन्दर और सुरम्य जैन-मन्दिरोंका निर्माण कर गये हैं। आबू और वस्तुपाल देखो।

तेजपुर—१ आसामके दरंग जिलेका प्रधान नगर और सदर। यह अक्षा॰ २६° ३७′ १५″ उ॰ और देशा॰ ९२° ५३′ ५″ पू॰में ब्रह्मपुत्रके उत्तरी किनारे भरली और ब्रह्मपुत्रके सङ्गम स्थान पर अवस्थित है।

इस नगरकी बनावट अच्छी है। दो छोटे छोटे पहाड़ोंके मध्य समतल क्षेत्रके ऊपर नगर बसा हुआ है। यह बहुत प्राचीन नगर है। इसके पास ही शिल्पनैपुण्ययुक्त प्राचीन देवालयका भग्नावशेष देखा जाता है। किसी किसी प्राचीन भग्न मन्दिरमें शिलालेख है। देवद्वेषी मुसलमानोंके उत्पातसे इन मन्दिरोंका सत्यानाश हो गया है।

प्रवाद है—यहां बाण राजाके साथ श्रीकृष्णका युद्ध हुआ था। यहां राजकीय कार्यालय, कारागार, अंगरेजी विद्यालय और दातव्य चिकित्सालय है। दिनों दिन इस शहरकी उन्नति देखी जाती है। वाणिज्य-व्यवसाय भी दिन दूना और रात चौगुना बढ़ रहा है।

२ बंबईके अन्तर्गत महीकांटेका एक छोटा राज्य।

तेजबल (हिं॰ पु॰) हरिद्वार तथा उसके आस पासके प्रान्तोंमें अधिकतासे होनेवाला एक काँटेदार जङ्गली वृक्ष। इसका छिलका लाल मिर्चकी तरह बहुत चरपरा होता है। पहाड़ी लोग दाल मसाले आदिमें इसकी जड़ मिर्चकी तरह काम लाते हैं। इसकी जड़की छाल चबानेसे दाँतका दर्द जाता रहता है। गुण—यह गरम, चरपरा, पाचक, कफ और वातनाशक तथा श्वास, खाँसी, हिचकी, और बवासीर आदिका नाशक है।

तेजल (सं॰ पु॰) तेजसि अतिशयेन पालयति शावकानिति तेज-बाहुलकात् कलच्। कपिञ्जल पक्षी, चातक, पपीहा।

तेजवती (सं॰ स्त्री॰) तेजोवती, तेलबल।

तेजवन्त (हिं॰ वि॰) तेजवान देखो।

तेजवान् (हिं॰ वि॰) १ तेजस्वी, जिसमें तेज हो। २ वीर्यवान्। ३ बली, ताकतवाला। ४ कान्तिमान्, चमकीला।

तेजसी—मारवाड़के एक राजपूत कवि। इनकी सभी कविताएं सराहनीय होती थीं।

तेजस्कर (सं॰ त्रि॰) तेजः करोति कृ-ट। तेजोवृद्धिकारक, तेज बढ़ानेवाला।

तेजस्य (सं॰ त्रि॰) तेजसि साधु-यत्। १ तेजःसाधन। (पु॰) २ महादेव।

तेजस्व (सं॰ पु॰) महादेव, शिव।

तेजस्वत् (सं॰ त्रि॰) तेजस् अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। तेजोयुक्त, तेजस्वी, तेजयुक्त।

तेजस्वती (सं॰ स्त्री॰) गुणवर्माकी कन्या। कथासरित्सागरमें इसकी कथा इस प्रकार लिखी है—उज्जयिनीमें आदित्यसेन नामक एक राजा थे। एक दिन ससैन्य गङ्गाके किनारे टहल रहे थे। उस प्रदेशके गुणवर्मा नामक किसी धनी व्यक्तिके तेजस्वी नामकी एक कन्या थी। गुणवर्माने आदित्यसेनको उपयुक्त वर जान अपनी लड़कीका विवाह उनके साथ कर दिया। राजा तेजस्वतीके रूप और गुण पर मोहित हो राजकार्य भी भूल गये थे। कुछ दिन बाद इनके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई। राजा तेजस्वतीके रूपसे इतने मुग्ध हो गये थे कि एक दण्ड भी उन्हें अलग नहीं रख सकते थे। एक दिन राजाने उन्हें हाथी पर चढ़ा और आप घोड़े पर चढ़ शत्रु-राज्य पर चढ़ाई करनेके लिये प्रस्थान किया। रास्तेमें महिषीको खुश करनेके लिये राजाने बहुत तेजसे अपना घोड़ा छोड़ा। मुहूर्त्त भरमें घोड़ा आंखोंकी ओट हो गया। अनेक अनुसन्धान करने पर भी जब राजा न मिले, तब अमात्यगण महिषीको राजधानी वापिस लाये। उधर राजा दिक्भ्रान्त हो विन्ध्याटवीके मध्य जा पहुंचे। आप बहुत थके थे, अतः घोड़ेको अपनी इच्छानुसार चलने दिया। घोड़ा भी अपनी जातीय बुद्धिके बलसे राजाको उज्जयिनीकी ओर ले चला। इसी समय रात हो गई, नगरका दरवाजा बन्द हो गया। राजा भी घोड़े पर घूमते घूमते थक हो गये। श्मशानके निकट छान्दस ब्राह्मणोंका एक गांव था, वहीं राजा अकस्मात् जा पहुंचे। गांवके बीच एक मन्दिर था। जब राजा मन्दिरमें प्रवेश करने लगे, तब वहांके लोगोंके साथ इनका विवाद हुआ। इसी बीचमें विदूषक नामक एक ब्राह्मण वहां आये और भव्यवेश देख कर उन्होंने राजाको आश्रय दिया। विदूषकने अपने तपके प्रभावसे अग्निसे एक खड्ग पाया था।

विदूषकने परिचारक द्वारा राजाकी सेवा-टहल कराई और सोनेको एक उमदा स्थान भी दिया। उनकी शरीर-रक्षाके लिये आप रात भर जगते रहे। सुबह होने पर राजा उठ कर क्या देखते हैं, कि विदूषक घोड़ेको भली भांति सजा कर सामने खड़ा है। राजा घोड़े पर सवार हो अपने नगरको लौट आए। राजाको देख कर रानीके आनन्दका पारावार न रहा। राजाने कृतज्ञताके उपकार स्वरूप विदूषकको एक सौ गांवका आधिपत्य और राजपौरोहित्य अर्पण किया। विदूषकने अपनी सारी सम्पत्ति मन्दिरके ब्राह्मणोंको दे दी। कुछ दिन बाद ब्राह्मण लोग विदूषकको अग्राह्य कर आपसमें झगड़ने लगे। इस बीचमें चक्रधर नामक एक व्यक्ति वहां आ पहुंचे और बोले, 'तुम लोगोंमें एक नायकका होना आवश्यक है, अतः तुममेंसे जो अधिक साहसी है, वही इस गांवका नायक होगा।' तब सभीने नायक होनेकी अपनी अपनी इच्छा प्रकट की। इस पर चक्रधरने उन लोगोंसे कहा, देखो! श्मशानमें तीन चोर शूलसे मरे पड़े हैं, तुममेंसे जो उनकी नाक काट लावेगा, वही नायकके योग्य होगा। यह काम करनेमें और सभाने तो अपनी अनिच्छा प्रगट की, मगर विदूषक बिल्कुल तैयार हो गये। पीछे विदूषकने अग्निदत्त खड्गको ले दो पहरे रातको श्मशानकी ओर प्रस्थान किया। वहां उन्हें बहुत डर मालूम हुआ और जब वे तीनों मुर्दोंके पास पहुंचे तो वे भूत पिशाच बन कर उन्हें मुष्टिप्रहार करने लगे। तब विदूषकने भूतका वेश दूर करनेके लिये तलवारसे वार किया और तीनोंकी नाक काट कपड़ेमें बांध ली। पीछे लौटते समय वे क्या देखते हैं, कि एक मनुष्य शवके ऊपर बैठ कर जप कर रहा है। विदूषक यह काण्ड छिपके देखने लगे। कुछ कालके बाद आसन्नस्थ शव भूतके रूपमें हो कर फुत्कार करने लगा, जिससे उसके मुंहसे अग्नि और नाभिसे सरसों निकलने लगीं। योगीने सरसों उठालीं और कसकर उसे तमाचा मारा। बाद वह शव उठ कर खड़ा हो गया। योगी

उसके कन्धे पर चढ़ लिया और वह धीरे धीरे चलने लगा। विदूषक भी अलक्षितरूपसे उसके पीछे पीछे जाने लगे। क्रमशः वे दोनों एक कात्यायनीके मन्दिरमें पहुँचे। योगीने शवको छोड़ कर मन्दिरमें प्रवेश किया। विदूषक मन्दिरकी भीतमें कान लगाये खड़े रहे। कुछ काल बाद देववाणी हुई, यदि तुम अभिलषित वर चाहते हो, तो आदित्यसेनाकी एकमात्र कन्याको इसें उपहार दो।' यह सुन कर योगी फिर वेतालके सहारे नभोपथसे चल दिये। विदूषकने सोचा कि मैं अवश्य ही प्रतिपालक की कन्याकी रक्षा करूंगा। ऐसा सोचते हुए वे हाथमें तलवार लिये उसी जगह खड़े रहे। योगी जब राजकन्याको ले कर वहां पहुँचा तब विदूषकने उसे कतल कर डाला। तब फिर देववाणी हुई, 'विदूषक! यह योगी महावेताल और सर्षपसिद्ध था, केवल पृथ्वी और राजकन्या सम्भोगकी कामना आज उसकी जाती रही। तुम इन सब सर्षपोंको ग्रहण करो, इन्हींके प्रभावसे आज रातको आकाशमार्गसे अभीष्ट देशको पहुँच जावोगे।' यह सुन विदूषकने सर्षपोंको ग्रहण कर राजकन्याको अपनी गोदमें बिठा लिया। पीछे देववाणी हुई, 'मासके अन्तमें फिर यहां आ जाना।”

विदूषकने प्रणाम कर आकाशपथसे राजपुरको ओर प्रस्थान किया। कुछ समय बाद राजकन्याके घर पर पहुँच कर जब विदूषकने उसे अपनी खाट पर सुला दिया, तब वह बोली, 'आर्य! आप यहांसे न जांय' नहीं तो भयसे मेरा प्राणान्त होगा।' विदूषक भी वहीं पड़ रहे। सुबहको जब ये सब बातें राजाको मालूम हुईं, तब उन्होंने विदूषकको पुरस्कारस्वरूप अपनी कन्या दे दी। जब महीना शेष होनेको चला, तब राजकन्याने देववाणीकी बात विदूषकको याद दिला दी। विदूषक फिर श्मशान गये और कात्यायनीके मन्दिरके समीप जा कर बोले, 'मैं विदूषक आ गया।' मन्दिरके भीतरसे आवाज आई, 'भीतर चले आओ।' भीतर जा कर विदूषकने देखा कि वहां सुन्दर वासभवन है और एक असामान्य रूपवती कन्या बैठी हुई है। पूछनेसे पता चला, कि यह विद्याधरकी कन्या है और उसका नाम है भद्रा। पीछे उसके अनुरोधसे विदूषकने उसका पाणिग्रहण किया और दोनों वहीं रहने लगे। इधर दूसरे दिन राजकन्या स्वामीको न देख कर व्याकुल हो गई। कई दिन बीत गये, तो भी उनका कुछ पता नहीं। सबके सब चिन्तित हो गये। पीछे भद्राने अपनी सहचरी योगेश्वरीसे सुना कि विद्याधरगण इसके लिए उस पर बहुत क्रुद्ध हो गये हैं।

इस पर भद्राने विदूषकसे कहा, 'आप यहीं ठहरिये। मैं पूर्वसागरके पार कर्कोटक नदीके पार्श्वस्थित शीतोदा नदीके दूसरे किनारे उदयगिरिके सिद्धाश्रमको जाती हूं।' इतना कह उसने यादगारीमें अपनी मुंदरी उन्हें दे दी और आप उक्त स्थानको चली गई। विदूषक भी पागल जैसे, 'हा भद्रे!' करते हुए उस घरसे निकल पड़े। पीछे राजा आदित्यसेनने ऐसी अवस्थामें देख इनकी चिकित्सा कराई। दुःसाध्य रोग समझ कर एवं चिकित्सकोंकी सलाह ले कर राजाने उन्हें यथेच्छ व्यवहार करनेका अधिकार दिया। विदूषक भद्राकी तलाशमें निकले। दिन रात पूर्व दिशाकी ओर जाते जाते एक दिन वे शामको पौण्ड्रवर्द्धन नगरमें पहुँचे। वहां उन्होंने एक राक्षसको परास्त कर देवसेन राजाकी दुःखलब्धिका नामक कन्यासे विवाह किया। पीछे वे वहांसे ताम्रलिप्त नगरको चले गये। यहां स्कन्ददास नामक वणिक्‌के साथ उन्होंने समुद्रपथसे यात्रा की। कुछ दिन बाद स्कन्ददासका जहाज समुद्रमें रुक गया। इस पर बहुत दुःखित हो कर बोला, 'जो मुझे इस विपद्‌से उद्धार करेगा, उसे मैं अपना आधा धन और कन्या दूंगा।' विदूषकने स्कन्ददाससे कहा, 'कमरमें रस्सी बांध कर यदि आप मुझे समुद्रमें गिरा दें तो मैं आपका यह शंकट दूर कर सकता हूं।' विदूषकने वैसा ही किया, किन्तु स्कन्ददासने रुपये देनेके भयसे उनकी बन्धन रस्सी काट दी, जिससे वे नीचे समुद्रमें गिर पड़े और अपने घरकी राह ली। जब विदूषक बहुत मुश्किलसे समुद्र पार कर गये, तब देववाणी हुई, 'विदूषक! तुम धन्य हो। जिस स्थान पर तुम लाये गये हो, इसका नाम नग्नराज्य है। यहांसे पूर्वकी ओर सात दिनका रास्ता तै करनेके बाद ही कर्कोट नगर पहुंचोगे।' तदनुसार सातवें दिनमें वे कर्कोटनगर

तैजस् (सं॰ क्ली॰) तेजयति तेज्यतेऽनेन वा तिज-असुन्। १ दीप्ति, कान्ति, चमक दमक। २ प्रभाव, रोब दाब। ३ पराक्रम, जोर, बल। ४ रेतस्, शुक्र, वीर्य। ५ देहज कान्ति, शरीरको चमक दमक। ६ नवनीत, मक्खन, लौनी। ७ वह्नि, अग्नि, आग। ८ सुवर्ण, सोना। ९ मज्जा। १० पित्त। ११ अधिक्षेप और अपमानादि असहनरूप नायकका गुणभेद। पर प्रयुक्त अधिक्षेप और अपमानादि प्राणनाश और सह्य नहीं करनेका नाम तेज है। १२ सार रसादि शुक्रान्तः धातुका तेज पदार्थ।

गर्भोत्पत्तिके समय तेजधातु जब अधिकांश जल धातुके साथ मिलती है, तब गर्भ गौरवर्ण और जब पार्थिव धातुके साथ मिलती है; तब कृष्णवर्ण हो जाता है। अधिकांश पृथ्वी और आकाश धातुके साथ मिलनेसे कृष्णश्याम और अधिकांश जलीय तथा आकाश धातुके साथ मिलनेसे गौरश्याम हो जाता है। तेजधातु अन्धा दृष्टिशक्तिके साथ जब नहीं मिलती, तब जात बालक शोणितके साथ मिलनेसे रक्ताक्ष, पित्तके साथ मिलनेसे चक्षु पीतवर्ण, श्लेष्माके साथ मिलनेसे शुक्लाक्ष और वायुके साथ मिलनेसे विकृताक्ष होता है। (सुश्रुत शरीरस्थान)

१३ प्रागल्भ्य, साहस। १४ पराभिभव सामर्थ्य। तेज रहनेसे दूसरेको परास्त करनेकी सामर्थ्य रखती है। १५ शत्रुका अनभिभाव्यत्व, वह गुण जिससे शत्रु विजय नहीं प्राप्त कर सकता। १६ अप्रतिहताज्ञत्व, वह आज्ञा जिसे उल्लंघन नहीं कर सकते। १७ चैतन्यात्मक ज्योतिः। १८ सत्वगुणजात लिङ्गदेह, सत्वगुणसे उत्पन्न लिङ्ग शरीर। १९ अश्वका वेग, घोड़ेकी चलनेकी तेजी घोड़ोंका स्वाभाविक स्फूरण (हिलाव) ही तेज है। यह तेज दो प्रकारका है, सततोत्थित और भयोत्थित। घोड़ोंको चलाये विना जो स्वाभाविक स्फूरण होता है, उसीका नाम सततोत्थित तेज है। चाबुकसे अथवा भय दिखलानेसे जो स्फूरण होता है, उसे भयोत्थित तेज कहते हैं। (भोजराज)

२० पञ्चमहाभूतका तृतीय भूत, पांच महाभूतोंमेंसे तीसरा भूत। इसका स्पर्श उष्ण, रूप शुक्ल और भास्वर है। किसी वस्तुके स्पर्श करनेसे जो उष्णता मालूम पड़ती है, उसका नाम तेज है। यह तेज, शब्द और तन्मात्रके साथ रूप तन्मात्रसे उत्पन्न हुआ है। इसी कारण तेजमें तीन गुण है, शब्द, स्पर्श और रूप। (सांख्यद॰)

न्याय और वैशेषिक दर्शनके मतसे यह दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य। परमाणुरूप नित्य है और कार्यरूप अनित्य। यह अनित्य अर्थात् कार्यरूप तेज शरीर, इन्द्रिय और विषयके भेदसे तीन प्रकारका है। शरीर तेज आदित्यलोकमें प्रसिद्ध है, इन्द्रियतेज रूपग्राहक चक्षु है और विषयतेज चार प्रकारका है—भौम, दिव्य, औदर्य तथा आकरज। भौम, अग्नि प्रभृति है, दिव्य विद्युदादि है, भुक्तद्रव्योंके परिपाकका कारण औदर्य है और उदरमें जो तेज है उससे भुक्तद्रव्य परिपक्व हो कर शरीर पुष्ट होती है। आकरज सुवर्णादि है। इसका धर्म, रूप, द्रवत्व प्रत्यक्षयोगित्व है। इसका गुण—स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, रूप, द्रव्य, वेग, तेजका द्रवत्व और नैमित्तिक है, किन्तु यह सांसिद्धिक द्रव पदार्थ नहीं है, निमित्तके लिए ही द्रव्य हुआ करता है।

रूप, दर्शनेन्द्रिय, पाक, सन्ताप, तीक्ष्णता, वर्ण (गौरादि), भ्राजिष्णुता, अमर्ष, शौर्य और साहस ये सब तेजके गुण हैं अर्थात् तेजसे ये सब उत्पन्न होते हैं। शरीरमें तेज पदार्थ है इसीसे प्राणी रूपवान् दर्शनेन्द्रियसम्पन्न प्रभृति गुणविशिष्ट होते हैं और उसीसे भुक्त द्रव्य भी भली भांति परिपक्व हो जाता है। २१ तेजस्वी उपचारके कारण तेजस् शब्दसे तेजस्वीका बोध होता है। (भारत अनुशा॰)

तैजसिंह—प्रसिद्ध सिख-सेनापति। ये गौड़ब्राह्मणवंशमें उत्पन्न हुए थे। इनका प्रकृत नाम तेजराम और इनके पिताका नाम निधिराम था। ये महाराज रणजित् सिंहके प्रियपात्र खुशालसिंहके भतीजे थे। खुशालसिंह रणजितसिंहके यहां द्वारपालकका काम करते थे। खुशालसिंहसे आज्ञा लिये विना कोई भी रणजित सिंहसे मुलाकात नहीं कर सकता था। जब कभी कोई संभ्रान्त व्यक्ति रणजितसिंहसे मुलाकात करना चाहते थे, तब खुशालसिंहको बहुत रुपये हाथ लगते थे। इस प्रकार खुशालसिंह धीरे धीरे बहुत धनी हो गये और

सिखराज्यमें एक प्रधान व्यक्ति समझे जाने लगे। मेरठमें उनका आदि निवास था। वहांसे उन्होंने तेजरामको सिख-दरबारमें बुलावा भेजा। १७१६ ई०में तेजरामने सिखधर्म अवलम्बन कर अपना नाम तेजसिंह रखा। अपने चचाकी तरह ये भी धीरे धीरे सिख-दरबारमें गण्य-मान्य हो उठे।

१८४५ ई०की २१ सितम्बरको जवाहिरसिंहको हत्याके बाद महारानी झिन्दन लालसिंहको प्रधान वजीर और तेजसिंहको प्रधान सेनापति बना कर राज्य चलाने लगीं। किन्तु लालसिंह और तेजसिंह पर खालसा सेना बहुत विरक्त थी। अनेक कारणोंसे वह विरक्तिभाव क्रमशः बद्धमूल होने लगा। इस समय खालसासेनाकी क्षमता भी कुछ बढ़ गई थी। सभी राजपुरुष उससे डरा करते थे। इस कारण तेजसिंह खालसा-सेनाके पराक्रमको खर्व कर डालनेके लिये नाना प्रकारकी चेष्टाएं करने लगे। लालसिंहने भी इस षड़यन्त्रमें हाथ दिया। इन्होंने यह स्थिर कर लिया कि ब्रिटिश सेनाके सिवा खालसा सेना किसीसे भी विदलित नहीं हो सकती। उन्होंने दरबारमें यह घोषणा कर दी कि अंगरेजी सेना शतद्रु नदी पार कर सिख राज्य पर आक्रमण करनेको आ रही है। इस समय उन्हें भी ब्रिटिशराज्य पर धावा मारना उचित है। एक दिन दरबारमें प्रधान प्रधान सिख-योद्धाओंके सामने दीवान दीननाथने कई एक मिथ्या पत्र पढ़ कर यह कहा, कि मातृभूमिकी रक्षाके लिये अभी सभीको अस्त्रधारण करना उचित है। महाराणीकी इच्छा है, कि राजा लालसिंह वजीर और तेजसिंह प्रधान सेनापति हों।

स्वदेशानुरागी खालसा सेना यह सुन कर उत्तेजित हो उठी। इस समय राजा लालसिंहको वजीर और तेजसिंहको सरदार बनानेमें किसीने आपत्ति न की। नीचाशय तेजसिंहने अभी खालसा-सेनाके ऊपर अपना आधिपत्य पा कर उन्हें ध्वंस करना चाहा। बिना किसी कारणके सिखयुद्ध छिड़ गया। जहां जहां खालसा सेनाके साथ ब्रिटिशसेनाका संसर्ग था, वहां दुर्मति तेजसिंहने विश्वासघातकता करनेमें कोई कसर उठा न रक्खी, किन्तु सिखसेनाने इस ओर तनिक भी ध्यान न दिया। बार बार अपने सरदारकी कूटनीति देख कर भी वह जैसी वीरता दिखलाती आ रही थी, वह अत्यन्त प्रशंसनीय थी। जहां अंगरेजोंकी जीतकी कुछ भी आशा न थी, तेजसिंहकी विश्वासघातकतासे वहां उन्होंने बहुतोंकी खूनखराबी कर जय प्राप्त कर ली। जिस फिरोजशाहके युद्धमें सिख सेनाकी सम्पूर्ण रूपसे हार हुई थी, जिस विख्यात युद्धमें अंगरेजी सेनानायकोंने स्वदेशमें सम्मान प्राप्त किया था, वह युद्ध केवल इसी दुर्वृत्त तेजसिंहकी विश्वासघातकतासे समाप्त हुआ था। उस युद्धमें तेजसिंह बीस हजार पदाति और पांच हजार अश्वारोही सेनाओंके साथ उपस्थित थे।

उन्होंने अपनी आँखोंसे लालसिंहकी पराजय देखी थी, लेकिन वे कुछ भी मदद न पहुँचाई। वे परिश्रान्त और निरुपाय ब्रिटिशसेनाकी अवस्थासे भी अच्छी तरह जानकार थे। उनके सभी योद्धा युद्ध करनेके लिये उत्तेजित हो गए थे, लेकिन कापुरुष तेजसिंह विश्वघातकतासे उन्हें भुलावेमें डाल कर शतद्रु नदीके पार लौटा लाये। अन्तमें जब उन्हें तेजसिंहकी चालबाजी अच्छी तरह मालूम हो गई, तब वे दांत पीस कर रह गये। प्रथम सिखयुद्धके बाद तेजसिंहने ब्रिटिश-शिविरमें जा कर गवर्नर-जेनरलसे मुलाकात की और सन्धि करनेको कहा, किन्तु बड़े लाटने उनका प्रस्ताव नामंजूर कर दिया। अन्तमें सिखसेनाके भयसे तेजसिंह दहल उठे। कब कौन आ कर उनका प्राण ले लेगा, इस आशङ्कासे उन्हें रातको नींद नहीं आती थी। उन्होंने किसी ज्योतिषीके कहनेसे निरापद रहनेके लिए एक अद्भुत दुर्ग बनवाना विचारा था। जो कुछ हो, अन्तिम दशामें वे मानसिक दुःखसे ही पञ्चत्वको प्राप्त हुए थे।

यदि सरदार तेजसिंह पदपदमें विश्वासघातकता नहीं करते, तो सिखयुद्धका इतिहास भिन्नरूपसे लिखा जाता। सिखयुद्ध देखो।

तेजसिंह—१ प्राग्वाटवंशीय एक सामन्त। इनके पिताका नाम विजयसिंह और पितामहका नाम विक्रम था। इन्होंने दैवज्ञालङ्कृति नामक एक ज्योतिर्ग्रन्थ रचा है।

२ बुन्देलखण्डवासी एक कवि। ये जातिके कायस्थ थे। ये दफतरनामा ग्रन्थ बना गये हैं

तेनाली—१ मन्द्राजके अन्तर्गत गुन्टुर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १५°४५' से १६°२६' उ० और देशा० ८०°३१' से ८०°५४' पू०के मध्य कृष्णा नदीके बाएँ किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ६४४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २८८१२७ है। इसमें कुल १५० ग्राम लगते हैं। राजस्व प्रायः १५७३०००) रु० का है। कृष्णा नदीसे जो नहर काटी गई है, उसीसे जलका काम चलाता है। यह तालुक उस प्रान्तमें सबसे बड़ा है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १६° १५' उ० और देशा० ८०°३८' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या १०२०४ है। इष्ट-कोष्ट-रेलवे (East Coast Railway)-के खुल जानेसे यह शहर दिनों दिन बहुत तरक्की कर रहा है। यहांका मन्दिर बहुत प्राचीन है और उसमें बहुतसी शिलालिपियां हैं। इसी शहरमें विजयनगरके राजा कृष्णदेवके सभा-कवि गर्लपति रामलिङ्गमका जन्म हुआ था।

तेन्दूखेड़ा—मध्यप्रदेशके नरसिंहपुर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २३°१०' उ० और देशा० ७८°५८' पू० गादरवाड़ा रेल-स्टेशनसे ११ कोस दूरमें अवस्थित है। इस नगरसे एक कोसकी दूरी पर लोहेकी खान है।

तेम (सं० पु०) तिम-घञ्। आर्द्रीभाव, आर्द्रता, गीलापन।

तेमन (सं० क्ली०) तिम-ल्युट्। १ आर्द्रीकरण, गीला करनेकी क्रिया। २ व्यञ्जन, पका हुआ भोजन।

तेमनी (सं० स्त्री०) तेमन-ङीप्। चुल्लीभेद, चूल्हा।

तेमरू (हिं० पु०) तेंदूका वृक्ष, आवनूसका पेड़।

तेरज (हिं० पु०) खतियौनीका गोशवारा।

तेरस (हिं० स्त्री०) त्रयोदशी, किसी पक्षकी तेरहवीं तिथि।

तेरह (हिं० वि०) १ जो गिनतीमें दशसे तीन अधिक हो। (पु०) १ वह संख्या जो दश और तीनके योगसे बनी हो।

तेरहवां (हिं० बि०) जो क्रमसे तेरहके स्थान पर पड़े।

तेरहीं (हिं० स्त्री०) किसी मनुष्यकी मृत्युके दिनसे तेरहवीं तिथि। इसमें पिण्डदान और ब्राह्मणभोजन करके दाह करनेवाला और मृतकके घरके लोग शुद्ध होते हैं।

तेरा (हिं० स्त्री०) मध्यम पुरुष, एकवचन, सम्बन्धकारक सर्वनाम।

तेरि—१ पञ्जाबके कोहाट जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३२°४८' से ३३°४४' उ० और देशा० ७०°३३' से ७२°१' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण १६१६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ८४३३६ है। इसमें कुल १६६ ग्राम लगते हैं। तहसीलकी आय लगभग ८५०००) रु०की है। यहां युद्धप्रिय खट्टक जातिका वास है। उनके सर्दार ख्वाजा महम्मद खाँने वृटिश गवर्मेंटको किसी लड़ाईमें सहायता पहुँचाई थी, इसी पर गवर्मेंटने खाँको तेरि तहसील जागीरके तौर पर दे दी है।

२ उक्त तहसीलका एक सदर। यह अक्षा० ३३°१८' उ० और देशा० ७१°७' पू०में अवस्थित है। यहां प्रायः साढे सात हजार मनुष्योंका वास है। जागीरदारका प्रासाद इसी नगरमें है। इसके सिवा यहां और भी बहुतसी मसजिदें तथा सुन्दर अट्टालिकायें हैं। नगरके बीचमें बाजार, पान्थनिवास, थाना, विद्यालय और औषधालय हैं।

तेरितोई—कोहाट जिलेकी एक नदी। मीरखईसे दो छोटे छोटे स्रोत निकल कर तिरिनगरसे ५ कोस दूरमें वे एक दूसरेसे मिल गये हैं। उसी जगह यह नदी तेरितोई नाम धारण कर पूर्वकी ओर बहती हुई सिन्धु नदीमें जा गिरी है। जिन पहाड़ीसे यह नदी बहती है, प्रायः उनके समीप नमककी खानें हैं।

तेरिदाल—सांगल नामक दक्षिण-महाराष्ट्रराज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६°३०' उ० और देशा० ७५°५' पू० कृष्णा नदीके दहिने किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६१२५ है। पूर्व समयमें यह शहर चारों ओर दीवारसे घिरा था। अब भी दुर्गके प्राकारका भग्नावशेष देखनेमें आता है। यह शहर वाणिज्यका केन्द्र है। यहां साड़ी धोती और अच्छे अच्छे कम्बल तैयार होते हैं। यहांके ११८७ ई०में बने हुए प्रभुस्वामी और भगवान् नेमनाथ स्वामीके जैनमन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। यहां विद्यालय और चिकित्सालय भी हैं।

तेवन्धर-१ मध्यभारतके रेवा राज्यकी एक तहसील। यह अक्षा० २४°४५' और २५°१२' उ० तथा देशा० ८१°

१६ और ८१° ५८ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ८१६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १०५१५४ है। इसमें एक शहर और ५०५ ग्राम लगते हैं। पन्ना पर्वत इसे दो भागोंमें विभक्त करता है। टतोन्स नदी तहसीलके मध्य हो कर बहती है। यहांकी आय तीन लाख रुपयेसे अधिककी है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २४° ५८ उ० और देशा० ८१°४१ पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या १५८३ के लगभग है। यहां एक स्कूल और एक चिकित्सालय है।

तेवौरा--पालनपुरके शासनाधीन एक देशीय राज्य। इसके उत्तरमें दिवदर, पूर्वमें कांकरेज, दक्षिणमें राधनपुर और पश्चिममें भारत राज्य है। भूपरिमाण १२५ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ८ हजार है। यहांकी जमीन समतल है, मट्टीकाली और बालू-मिश्रित है। वर्षभरमें केवल एक फसल होती है। २० से ५० हाथ नीचे धरती खोदने पर जल मिलता है।

पहले यहां बघेला राजपूत लोग राज्य करते थे। १७१५ ई०में नवाब कमालउद्दीनखाँने इसे अधिकार किया। उस समय यह राज्य राधनपुरके नवाबके शासनाधीन था। सिन्धु प्रदेशसे मुसलमानका एक दल आ कर नवाबके यहां घुड़सवारमें भर्ती हो गया। उनमेंसे बलुचखाँ प्रधान थे। १८२२ ई०में पालनपुरके सुपरिण्टेण्डेण्टने बलुचखाँको यह स्थान प्रदान किया। तभीसे बलुचखाँके वंशधर यहां राज्य करते आ रहे हैं।

तेल (हिं० पु०) तैल देखो।

तेलकूपी--मानभूम जिलेकी दामोदर नदीके किनारे अवस्थित एक ग्राम। यहां बहुतसे सुन्दर, सुदृश्य और सुवृहत् प्राचीन देवमन्दिर हैं। ये सब मन्दिर कब बनाये गये हैं, उसका ठीक पता नहीं चलता। उक्त मन्दिरोंमें शिवमन्दिर ही अधिक हैं, इसके बाद विष्णुमन्दिर और तब सूर्यमन्दिर। इतने प्राचीन मन्दिर रहने पर भी शिलालेख अधिक देखनेमें नहीं आते। केवल दो जगह दो अक्षर देखे जाते हैं और वे भी १०वीं शताब्दीके प्रतीत होते हैं। राजा मानसिंहने भी कईएक मन्दिर निर्माण किये थे। दामोदर नदीकी बाढ़से यहांके प्रायः सभी ईंटोंके बने हुए मन्दिर बरबाद हो गये हैं, किन्तु प्रस्तरनिर्मित मन्दिरोंमेंसे अधिकांश मट्टीके नीचे दब गये हैं। यहां भगवान् महावीरस्वामीके उद्देशसे बनाया हुआ एक अति प्राचीन जैनमन्दिर है, जिसे स्थानीय लोग वीरूपका मन्दिर कहते हैं। प्रायः सभी मन्दिर बणिकोंके यत्नसे बनाये गये हैं। प्रवाद है, कि राजा विक्रमादित्य दुल्मीके छाता-पोखरमें स्नान करनेके पहले यहां आ कर तेल लगाते थे, इसीसे इस स्थानका नाम तैलकूपी या तेलकूपी पड़ गया है।

तेलगू (हिं० स्त्री०) तैलंग देशकी भाषा।

तेलङ्ग (सं० पु०) १ तैलङ्ग देश। २ तैलङ्ग देशके मनुष्य। त्रिलिंग देखो।

तेलवाई (हिं० पु०) १ तेल लगाना, तेल मलना। २ विवाहकी एक प्रथा। इसमें वधू पक्षवाले जनवासेमें वरपक्षवालोंके लगानेके लिए तेल भेजते हैं।

तेलसुर (हिं० पु०) चट्टग्राम और सिलहटके जिलोंमें होनेवाला एक जंगली वृक्ष। यह बहुत ऊँचा होता है। इसके हीरकी लकड़ी कड़ी और सफेदी लिए पीली होती है। इसकी लकड़ी नाव बनानेके काममें आती है।

तेलहंड़ा (हिं० पु०) मट्टीका बड़ा बरतन जिसमें तेल रखा जाता है।

तेलहंड़ी (हिं० स्त्री०) मट्टीका छोटा बरतन जिसमें तेल रखा जाता है।

तेलहन (हिं० पु०) वे बीज जिनसे तेल निकलता हो।

तेला (हिं० पु०) तीन दिनरातका उपवास।

तेलिन (हिं० स्त्री०) १ तेलीकी स्त्री। २ एक बरसाती कीड़ा। यह कीड़ा जहां शरीरसे छू जाता है, वहां छाले पड़ जाते हैं।

तेलियर (हिं० पु०) काले रंगका एक पक्षी। इसके सारे शरीर पर सफेद बुंदकियाँ या चित्तियाँ होती हैं।

तेलिया (हिं० वि०) १ जो तेलकी तरह चिकना और चमकीला हो। (पु०) २ वह रंग जो काला, चिकना और चमकीला हो। ३ इसी रंगका घोड़ा। ४ एक प्रकारका बबूल। ५ एक प्रकारकी छोटी मछली। ६ तेलिये रंगका कोई पदार्थ या जानवर। ७ सींगिया नामक विष।

पहुंचे। वहां उन्होंने पूव पराजित यमदंष्ट्र नामक राक्षसका बायां हाथ काट कर उसे परास्त किया और वहांकी राजकन्याको व्याहा। पीछे जब यमदंष्ट्रके साथ इनकी दोस्ती हुई, तब उसके साहाय्यसे वे शीतादा नदी पार कर उदयगिरिके तल पर पहुंचे। वहां भद्राके साथ इनका मिलन हुआ। इसके अनन्तर विदूषक यमदंष्ट्रकी सहायतासे स्कन्ददासकी कन्या तथा धन बलपूर्वक ग्रहण कर पत्नियोंके साथ उज्जयिनी नगरको वापिस आये। यहां आ कर आनन्दपूर्वक श्वशुरका राजत्व-भोग करने लगे। (कथासरित्सागर)

२ गजपिप्पली, गजपीपल। ३ चविका, चवर नामकी ओषधि। ४ महाज्योतिषी, बड़ी मालकंगनी।

तेजस्विता (सं० स्त्री०) तेजस्विनः भावः तल्-टाप्। प्रभावशालिता, तेजस्वी होनेका भाव।

तेजस्वित्व (सं० क्ली०) तेजस्विनः भावः त्व। बलवत्व, बलवान् होनेका भाव।

तेजस्विनी (सं० स्त्री०) तेजस्विन् स्त्रियां ङीप्। १ ज्योतिष्मतीलता। २ महाज्योतिष्मती, मालकँगनी। पर्याय—तेजस्विनी, तेजोवती, तेजोह्वा, तेजनी। गुण—यह कफ, श्वास, काश, मुखरोग और वातनाशक, कटु, तिक्त तथा अग्निदीपक है।

तेजस्वी (सं० त्रि०) तेजोऽस्त्यस्य तेजस्-विनि। १ तेजोयुक्त, जिसमें तेज हो। प्रतापी प्रतापवाला (पु०) इन्द्रके पुत्रका नाम।

तेजःसेन (सं० पु०) काश्मीरके एक राजाका नाम। (राजतरं ८।४०१)

तेजा (फा० पु०) एक प्रकारका काला रंग जो चूने आदिसे बनाया जाता है। इससे रँगरेज लोग मोरपंखी रंग तैयार करते हैं।

तेजाब (फा० पु०) किसी क्षारपदार्थका अम्ल-सार यह द्रावक होता है। सब प्रकारके तेजाब पानीमें घुल जाते हैं। इसका स्वाद बहुत खट्टा होता है और क्षारोंका गुण नष्ट कर देता है। जब यह किसी धातु पर पड़ता है, तब उसे काटने लगता है। एक किस्मका तेजाब इतना तेज होता है कि शरीरके किसी स्थान पर लगनेसे वह बिलकुल जल जाता है। इसका व्यवहार प्रायः औषधोंमें होता है।

तेजाबी (फा० वि०) तेजाब सम्बन्धी।

तेजारत (हिं० स्त्री०) तिजारत देखो।

तेजारती (हिं० वि०) तिजारती देखो।

तेजिका (सं० स्त्री०) ज्योतिष्मती, मालकँगनी।

तेजित (सं० त्रि०) तिज-णिच्-क्त। शाणित, जो तेज किया गया हो। पर्याय—निशित, क्षुत, शाणित, शान्त, शाणादि मार्जित, क्ष्णुत, निशात, शित, शात।

तेजिनी (सं० स्त्री०) तेजोवल लता, तेजबल (Sanseviera Zeylanica)

तेजिष्ठ (सं० त्रि०) तेजस्विन् अतिशयार्थे इष्ठन् विनेर्लुकि डिङ्गावः। अति तेजस्वी, अत्यन्त प्रभावशाली।

तेजी (फा० स्त्री०) १ तेज होनेका भाव। २ तीव्रता, प्रबलता। ३ उग्रता, प्रचण्डता। ४ शीघ्रता, जल्दी। ५ महँगी, गरानी।

तेजीयस् (सं० त्रि०) तेजो विद्यतेऽस्य तेजस्-ईयसुन्। तेजोयुक्त, तेजस्वी।

तेजेयु (सं० पु०) रौद्राश्व राजाके एक पुत्रका नाम। (भारत आदि० ९४ अ०)

तेजोद्वेष (सं० पु०) पित्तज रोग, वह रोग जो पित्त बिगड़नेसे हुआ हो।

तेजोधातु (सं० पु०) पित्त।

तेजोनाथतीर्थ (सं० क्ली०) शिवपुराणोक्त एक तीर्थका नाम।

तेजोमण्डल (सं० क्ली०) चन्द्र वा सूर्यमण्डल।

तेजोमन्थ (सं० पु०) तेजो मन्याति मन्थ-अण्। गणिकारिका वृक्ष, गनियारीका पेड़।

तेजोमय (सं० त्रि०) तेजस् प्रचुरार्थे विकारे वा मयट्। १ तेजःप्रचुर, तेजसे पूर्ण। २ तेजोविकार। ३ ज्योतिर्मय, जिसमें खूब कान्ति या चमक दमक हो। ४ पित्त।

तेजोमात्रा (सं० स्त्री०) तेजसां सत्वगुणानां मात्रा अंशः। तेजस अंश, चमकीला भाग।

तेजोमूर्त्ति (सं० पु०) तेजः तेजस्वती मूर्त्तिर्यस्य। १ सूर्य। (त्रि०) २ तेजात्मक, जिसमें खूब तेज हो। ३ तेजःप्रचुर, तेजसे पूर्ण।

तेजोराशि (सं० पु०) तेजसां राशिः। तेजःपुञ्ज, तेजका समूह।

तेजोरूप (सं० क्ली०) तेजः सर्वप्रकाशकं चैतन्यं रूपं यस्य। १ ब्रह्म। ये ज्योतिरूप प्रकाशात्मक हैं, ब्रह्मका स्वरूप ज्योतिरूपमें प्रकाशित होता है। तेजसा रूपः। २ जो अग्नि या तेजरूप हो।

तेजोवत् (सं० त्रि०) तेजस् अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। तेजयुक्त, जिसमें तेज हो।

तेजोवती (सं० स्त्री०) तेजोवत् ङीप्। १ गजपिप्पली। २ चविका, चव्य। ३ महाज्योतिष्मती, मालकंगनी। तेजस्वती देखो। ४ अग्निका विमान।

तेजोविद् (सं० त्रि०) जिसमें तेज वा दीप्ति हो।

तेजोविन्दु (सं० पु०) एक उपनिषद्का नाम।

तेजोविन्दूपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद, एक उपनिषद्का नाम। नारायणने इसकी दीपिका रची है।

तेजोबीज (सं० क्ली०) मज्जा।

तेजोवृक्ष (सं० पु०) क्षुद्राग्निमन्थ वृक्ष, छोटी अरणीका वृक्ष।

तेजोवृत्त (सं० क्ली०) तेजसो वृत्तं, ६-तत्। वीर्यानुरूप।

तेजोह्वा (सं० स्त्री०) तेजः ह्वयते स्पर्द्धते ह्वे-क। १ तेजोवती, तेजबल। २ चविका, चव्य।

तेतालीस (हिं० वि०) तेंतालीस देखो।

तेतीस (हिं० वि०) तैंतीस देखो।

तेदनी (सं० स्त्री०) देवताभेद, एक देवताका नाम।

तेन (सं० पु०) ते गौरी न शिवो यत्र। गानाङ्गभेद, गानका एक अङ्ग।

"तेनेति शब्दस्तेन स्यात् मंगलानां प्रदर्शकः।"

ते और न ये दो शब्द मङ्गल प्रदर्शक है। ते शब्दसे गौरी और न शब्दसे हरका बोध होता है। इसीसे तेन शब्द माङ्गलिक है। गानके पहले हर-गौरीका प्रसाद प्राप्त करनेके लिये यह शब्द उच्चारण किया जाता है।

तेनसेरिम—ब्रह्मदेशका एक विस्तीर्ण विभाग। यह अक्षा० ९° ५८' से १९° २९' उ० और देशा० ९५° ४८' से ९९° ४०' पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें अपर बरमा, पूर्वमें करेनी और श्याम, पश्चिममें पेगु विभाग और बङ्गालकी खाड़ी तथा दक्षिणमें मलयप्रायोद्वीप है। भूपरिमाण ४६७३० और लोकसंख्या प्रायः ११५९५५८ है, जिनमें बौद्धोंकी संख्या अधिक है। इस विभागके अन्तर्गत अमहर्ष्ट, तावय, मागुंइ, श्वेगिन, तोङ्गङ्ग, मौलमिन और सालउइन शैलभूभाग नामके ७ जिले हैं। इसमें ४६६३ ग्राम और ८ शहर लगते हैं।

२ उक्त तेनसेरिम विभागके मागुंइ जिलेका प्रधान शहर। यह अक्षा० ११° ११' से १३° २८' उ० और देशा० ९८° ५१' से ९९° ४०' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ४०३३३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १०७१२ है। छोटा और बड़ा तेनसेरिम नदीके सङ्गम पर मागुंइ नगरसे २० कोस दक्षिण-पूर्वमें पड़ता है। इसके चारों ओर पहाड़ और जङ्गल है। एक समय यह नगर उन्नतिके ऊंचे शिखर पर पहुँचा हुआ था। ब्रह्म और श्याम-राजोंका बार बार आक्रमण होते रहनेसे अभी यह श्रीहीन हो गया है।

१३१३ ई०में श्यामवासियोंने बहुत यत्नसे यह नगर निर्माण किया। अबभी बड़े बड़े पत्थरके स्तम्भ पूर्वगौरवका परिचय दे रहे हैं। स्तम्भमें यद्यपि कोई लिपि उत्कीर्ण नहीं है, तो भी ब्रह्मदेशके लोगोंका कहना है कि नगरकी भावी उन्नतिके लिये देवताओंके प्रीत्यर्थ यहां एक रमणीकी जीवन्त समाधि हुई थी। अब भी नगरके चारों ओर प्रायः ४ वर्गमील स्थान मट्टीकी दीवारसे घिरा हुआ है। १७५९ ई०में ब्रह्मदेशके राजा आलंपयाने यह नगर अधिकार किया और शासनकर्त्ताकी तेजतलवारके आघातसे बहुतसे अधिवासियोंकी जानें गईं। उसी समयसे श्यामवासियोंने इस स्थान पर दखल करनेके लिये कई बार चेष्टा की थी। शहरकी पूर्वश्री जाती रही और अब एक सामान्य ग्रामसा हो गया है।

मागुंइ जिलेमें दो नदियोंके आपसमें मिल जानेसे इसका तेनसेरिम नाम पड़ा हैं। यह नदी प्रायः ढाई सौ मील जा कर समुद्रमें गिरी है। इसके बहुतसे मुहाने हैं।

३ उक्त मागुंइ जिलेके इसी नामके शहरका एक ग्राम। यह अक्षा० १२° ६' उ० और देशा० ९९° २' पू० बड़ी और छोटी तेनसेरिम नदियोंके सङ्गमस्थान पर अवस्थित है। किसी समय यह ग्राम बहुत समृद्धशाली था। इसमें केवल एकसौ घर रह गये हैं।

तेलियाकंद (हिं॰ पु॰) तेलकन्द देखो।

तेलियाकत्था (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका कत्था। इसका भीतरी भाग काले रंगका होता है।

तेलियाकाकरेजी (हिं॰ पु॰) कालापनके लिये गहरा ऊदा रंग।

तेलियाकुमैत (हिं॰ पु॰) १ घोड़ेका एक रंग। यह अधिक कालापन लिये लाल या कुमैत होता है। २ इसी रंगका घोड़ा।

तेलियागढ़ी—सन्थाल परगनेके अन्तर्गत एक परगना और उसी परगनेके मध्य एक गिरिपथ तेलियागढ़ी गिरिपथके उत्तरमें राजमहल और दक्षिणमें गङ्गा है। पूर्व समयमें शत्रुओंके आक्रमणसे गौड़राज्यको बचानेके लिये यह स्थान काममें लाया जाता था।

तेलियागर्जन (हिं॰ पु॰) गर्जन देखो।

तेलियापानी (हिं॰ पु॰) एक तरहका पानी जिसका स्वाद बहुत खारा और बुरा मालूम पड़ता है।

तेलियासुरंग (हिं॰ पु॰) तेलियाकुमैत देखो।

तेलिया सुहागा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका बहुत चिकना सुहागा।

तेली—हिन्दुओंकी एक जाति जिसकी गणना शूद्रोंमें होती है। इस जातिके लोग प्रायः सारे भारतवर्षमें फैले हुए हैं और सरसों, तिल आदि पेर कर तेल निकालनेका व्यवसाय करते हैं। युक्तप्रान्तमें द्विज लोग इन लोगोंका छूआ हुआ जल ग्रहण नहीं करते। इस जातिकी उत्पत्तिके विषयमें मतभेद पाया जाता है। मिर्जापुरके तेलियोंका कहना है, कि प्राचीन समयमें किसी मनुष्यके तीन पुत्र थे। उसके और कोई सम्पत्ति तो थी नहीं, केवल बावन महुएके पेड़ थे। मरते समय उसने लड़कोंसे उन्हें आपसमें बराबर बराबर बाँट लेनेको कहा। बावन पेड़ोंके तीन समान भाग हो नहीं सकते, इसलिये वे उनकी पैदावार ही आपसमें बाँट लेनेको राजी हुए। एकने तो उनकी पत्तिया ले लीं और वह भड़-भूँजा नामसे प्रसिद्ध हुआ। आजतक भी इस जातिके लोग भाड़में पतियां जलाते हैं। दूसरेने उनके फूल लिये और वह कलवार कहलाने लगा। तीसरेने उनके कोइंदा (गुलैंदा) लिये और वही तेली नामसे प्रसिद्ध हुआ है। परन्तु यह कहां तक सत्य है, कह नहीं सकते।

इस जातिके कईएक विभाग हैं; जैसे—व्याहुत, जैसवार, जौनपुरिया, कनौजिया, मथुरिया, राठौर, श्रीवास्तव, उमरी आदि। मिर्जापुरके तेली व्याहुत, कनौजिया, श्रीवास्तव और पछिवाहा श्रेणीभुक्त हैं। ये लोग विशेषतः भैंस पर माल लाद कर अपनी जीविका-निर्वाह करते हैं। बनारसमें व्याहुत, कनौजिया, जौनपुरिया, श्रीवास्तव, बनरसिया, जैसवार, लोहौरिया, गुलहरिया और गुलहानी श्रेणीके तेली रहते हैं। इनमें गुलहानी सबसे निकृष्ट समझे जाते हैं। जौनपुरिया तेली तेलका व्यवसाय न कर केवल दालका व्यवसाय करते हैं। फर्रुखाबादमें राठौर, परनामी, रैथी, जैसवार, श्रीवार, मथुरिया और भियान तेलीका तथा बस्तीमें व्याहुत, जौनपुरी, कनौजिया, तुरकिया और सेठवार तेलियोंका वास है। इनमेंसे मैनपुरीके कैथिया, कानपुरके परनामी, इलाहाबादके सुरहिया, झांसी और ललितपुरके बातरा, मिर्जापुरके माहुर बरनिया, दखिनाहा गोरखपुरके झिझौतिया, भड़ौंचके भड़ोंचिया, प्रतापगढ़के मकनपुरी तेली सबसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। ये लोग निकट-सम्बन्धीके साथ आदान-प्रदान नहीं करते। पिता और माताकी तरफ कमसे कम तीन पीढ़ी तक जब कोई सम्बन्ध नहीं ठहरता, तभी विवाह स्थिर करते हैं।

उच्च श्रेणीके हिन्दुओंके समान इन लोगोंमें भी विवाहके नियम प्रचलित हैं। व्याहुत तेलीको छोड़ कर प्रायः सभी तेली विधवा विवाह करते हैं। रजोदर्शनके पहले ही लड़कियां व्याही जाती हैं, लेकिन पुरुषकी उमर जबतक २०।२५ वर्षकी नहीं होती, तब तक उसका विवाह नहीं होता है। विशेषतः विधवा अपने देवरसे ही विवाह कर लेती है। पुरुष जब अपनी स्त्रीका चाल चलन खराब देखता अथवा उसमें दूसरा ही कोई नुक्स पाता, तो उसे त्याग सकता है। इस जातिके कोई कोई लोग शराब पीते तथा मछली मांस आदि खाते हैं। इन लोगोंके पुरोहित निम्नश्रेणीके ब्राह्मण होते हैं, जो तेलिया-बाभन कहलाते हैं। उच्च श्रेणीके हिन्दुओं जैसा ये लोग भी शिव, काली, दुर्गा आदि देवदेवियोंकी पूजा किया करते हैं। इस जातिके लोग बड़े कंजूस

होती, कैसा ही धनी होने पर भी उसकी कृपणता नहीं जाती। इस पर एक मसल भी प्रचलित है—"तेली खसम किया रूखा खाये।"

बंगालमें दो प्रकारके तैलजीवी वा तेली पाये जाते हैं; तेली और 'कोलू'। इनकी उत्पत्तिके विषयमें दो प्रवाद प्रचलित हैं,—

(१) महादेव सर्वदा भस्म लगा कर रहते थे; सहसा एक दिन उन्हें तेल लगानेकी इच्छा हुई। इच्छा होनेके साथ ही उनके दाहिने हाथके पसीनेसे एक दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ। यही पुरुष तैलिकोंके आदिपुरुष रूपनारायण वा मनोहरपाल थे। शिवका वर पा कर इन्होंने पहले पहल कोल्हू बनाया। कोई कोई ऐसा कहते हैं, कि पहले कोल्हूमें दो बैल जोते जाते थे और उनकी आखोंमें अँधोटी नहीं लगायी जाती थी। 'कोलु'ओंने एक बैल जोतना और उसकी आखोंमें अंधोटी बाँधना शुरू कर दिया, जिससे वे पतित हो गये।

(२) एक दिन भगवतीने स्नानके समय हल्दी मल कर, उस उबटनसे दो पुरुषोंकी सृष्टि की और उनसे शीघ्र ही तेल बना लानेके लिए कहा। एक पुरुष बहुत ही जल्दी तेल बना कर ले आया और दूसरेको उससे दूनी देर हो गई। भगवतीने देरीका कारण पूछा, तो उसने उत्तर दिया कि 'पेषणीसे वस्त्रको भिगो कर तैल संग्रह किया था, इससे देर हो गई।' जो जल्दी आया था, उसने कहा 'मैंने पेषणीके नीचे एक छेद कर दिया था जिससे मूत्राधारकी तरह तेल आपसे आप टपकता था, इसलिए जल्दी आ गया।' भगवतीको क्रोध आ गया। मूत्र-निर्गमकी भाँति जो तैल सञ्चित हुआ है, वह उनके लिए लाया गया, यह बात उन्हें सह्य न हुई। उन्होंने शेषोक्त व्यक्तिको अभिशाप दिया, जिससे वह पतित हो गया।

इनमेंसे प्रथम व्यक्ति तेलिओंके आदिपुरुष थे और द्वितीय व्यक्ति 'कोलु'ओंके। बंगालमें 'कोलू'लोग तेलकार और विशुद्ध तेली लोग तैलिक कहाते हैं। तिली देखो। बंगालके तेलियोंमें दो प्रधान श्रेणी विभाग हैं—एक एकादशतेली और दूसरा द्वादशतेली। इन श्रेणी-विभागोंके सम्बन्धमें एक प्रवाद है कि—आदि तेली मनोहरपाल व्यापारी बन कर नाना देशोंमें पण्य द्रव्य बेचनेके लिए गये थे। इनकी दो स्त्रियां थीं। सहसा एक दिन घर पर खबर आई कि मनोहर मर गये। इस खबरके पाते ही ज्येष्ठा पत्नीने अलङ्कारादि त्याग दिये और विधवाके सदृश रहने लगी, परन्तु कनिष्ठाको इस संवाद पर विश्वास न हुआ और इसलिए वह सधवाकी भांति रहने लगी। कुछ दिन बाद जब मनोहर घर लौटे, तो भ्रम दूर हो गया। इन दोनों स्त्रियोंकी गर्भजात सन्तान दो स्वतन्त्र श्रेणियोंमें बंट गई। ज्येष्ठ पत्नीकी सन्तान एकादशतेली कहलाने लगी और कनिष्ठाकी द्वादशतेली।

पूर्व-बङ्गालमें और एक श्रेणीके तेली रहते हैं, जो 'घानी' वा 'गाछुआ' कहाते हैं। इनका कोल्हू 'कोलु'ओंके कोल्हूसे भिन्न प्रकारका होता है; उसमें तेल टपकनेके लिए छेद नहीं रहता।

बङ्गालमें 'धनातेली' और 'कोलु'ओंके सिवा अन्य तेली (एकादश, द्वादश आदि) कोल्हू नहीं चलाते। अधिकांश लोग अनाज वगैरहकी महाजनी करते हैं। कोई कोई चीनी वा गुड़का रोजगार भी करते हैं और कोई कोई दाल-चावलकी दूकान भी।

तेलियोंमें जो लोग तेल बेचते हैं, वे सिर्फ तिलसे ही तेल निकालते हैं। अन्यथा करने पर जातिच्युत किये जाते हैं। ये लोग तिल पेरनेके लिए दो प्रकारके कोल्हुओंमेंसे किसीका भी व्यवहार नहीं करते। पहले तिलको जरा उबालते हैं और फिर मुसलमानोंसे कुटवा लेते हैं। वे तिलको कूट कर सिर्फ छिलका अलग कर देते हैं; उसके बाद तेली लोग उसे एक बड़े मट्टीके बरतनमें डाल कर ऊपरसे गरम पानी छोड़ देते हैं। बारह घण्टे भोगनेके बाद सबेरे एक बांसकी घोंटनीसे घोंटते हैं। फिर उसमें थोड़ासा गरम पानी छोड़ देते हैं और कुछ देर तक योंही रहने देते हैं। उसके बाद ही पानीके ऊपर तेल बहने लगता है, जिसे कपड़ेसे उठा कर अन्य पात्रमें निचोड़ लेते हैं।

जो लोग ऊपर लिखे अनुसार तेल बनवाते हैं, वे बंगालमें सच्छूद्र समझे जाते हैं। युक्तप्रदेशमें जो लोग उक्त प्रकारसे दूसरोंसे तिल कुटवा कर तेल बनाते हैं, वे

भी अन्यान्य तेलियोंसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। ये लोग अपनेको विशुद्ध वैश्य समझते हैं।

बङ्गालमें स्थानभेदके कारण और भी अनेक श्रेणियां पाई जाती हैं और उनमें बहुतसी ऐसी भी हैं, जिनमें परस्पर ब्याह-शादी नहीं होती।

दाक्षिणात्यमें सतारा जिलेमें तेलियोंके दो विभाग हैं—एक लिङ्गायत और दूसरा मराठा। इन दोनोंमें परस्पर ब्याह-शादी वा खाना-पीना आदि नहीं होता। ये लोग तिल, नारियल और इनके बीजसे तेल निकालते हैं तथा तेल और खली बेचा करते हैं। लिङ्गायत लोग देवताको नहीं पूजते। जङ्गम ब्राह्मण लोग इनके पुरोहित हैं। मराठा तेली महाराष्ट्रीय हिन्दू हैं। लिङ्गायतोंके विवाहकी रीति प्रायः कुनबियोंके समान है। ये लोग रजस्वला स्त्रीको चार दिन तक नहीं छूते। इस जिलेके तेलीलोग मुरदेको गाड़ते हैं और दश दिनका अशौच मानते हैं। ये जातीय व्यवसायके सिवा अन्य किसी प्रकारका रोजगार नहीं करते।

पूना जिलेके तेली शनिवारी, सोमवारी, परदेशी और लिङ्गायत इन चार श्रेणियोंमें विभक्त हैं। शनिवारी और सोमवारी तेली उक्त दो वारोंको कोई भी काम नहीं करते। इन लोगोंका आचार कुनबियों जैसा है। परस्पर-खाना-पीना वा शादी-ब्याह नहीं होता। प्रत्येकके घर 'घाना' (कोल्हू) चलता है; सभी भद्र-परिच्छदधारी हैं। स्त्रियां अति सुन्दरी होती हैं, माथे पर फूल नहीं लगातीं। ये लोग नारियल, तिल, चीना-बादाम (मूंगफली), सरसों आदिका तेल निकालते हैं। इनमें स्मार्त्त हैं तथा गणपति मारुति आदि गृहदेवता भी हैं। देशीय ब्राह्मणगण इनका पौरोहित्य करते हैं। बच्चा होने पर पांचवें दिन ये 'सढ्वाई' (षष्ठी) देवीकी पूजा करते हैं। १२वें या १३वें दिन बच्चेका नामकरण होता है। रजोदर्शनसे पहले लड़कियोंका विवाह नहीं होता और पुरुषोंका विवाह २०।२५ वर्षकी अवस्थामें होता है। विधवाओंका धरेजा भी इनमें प्रचलित नहीं है। ये मुरदेको जलाते हैं और दश दिनका अशौच मानते हैं। किरासिन तेलके प्रचारसे इनका जातीय व्यवसाय बिलकुल नष्ट हो गया है। अब ये गाड़ी चलाते तथा खेतीबारी और मजदूरी करते हैं। बहुतसे मांस-मछली और शराब भी पीते हैं।

अहमदाबाद जिलेकी तेलीजाति कुनबी जातिका अंश समझी जाती है। तैलकारका व्यवसाय करनेके कारण ही शायद ये पतित हुए होंगे। इनमें दिवाकर, दोलसे, गायकवाड़, लोखण्डे, मंगर, मेजन्दार, काठिवाड़ और बलमुंजकर—ये आठ विभाग हैं। इनमें परस्पर एक दूसरेसे शादी-ब्याह नहीं होता। ये लोग चोटीके सिवा तमाम मस्तक मुड़ाते हैं, पर दाढ़ी और मूंछें नहीं मुड़ाते। इनका व्यवसाय पूनाके तेलियोंके समान है। ये वैष्णव हैं और मोशी ब्राह्मण लोग इनका पौरोहित्य करते हैं।

प्राचीन हिन्दू-शास्त्रोंमें तेलीके विषयमें इस प्रकार पाया जाता है। मनुसंहितामें लिखा है—

> "सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीविताम्।" (४।८४)

अर्थात् जो पशुमारणमांसविक्रयजीवी हैं, जो तिलादि बीजोंसे तेल निकाल कर बेचते हैं अर्थात् तैलिक हैं, मद्यविक्रेता, शौण्डिक और वेश्याकी आयसे जो जीविका निर्वाह करते हैं, उनसे दान लेनेका निषेध है। कारण—"दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमोध्वजः" (मनु ५।८५) अर्थात् दशसूनावान् वा मांसविक्रेतामें जो दोष है, वही दोष चक्रवान् वा तैलिकमें है।

याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है—

> "पिशुनानृतिनोश्चैव तथा चाक्रिकवन्दिताम्।
> एषामन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा॥" (४।१६५)

अर्थात् पिशुन, मिथ्यावादी, चाक्रिक वा तैलिक, बन्दी और सोमविक्रयी, इन लोगोंका अन्न न खाना चाहिए।

विष्णुसंहितामें इस प्रकार लिखा है—

> "श्वजीविशौण्डिकतैलिकचेलनिर्णेजकाश्च।" (५१।१५)

अर्थात् चमार, शौण्डिक, तैलिक और वस्त्रधौतकारी (धोबी) इन लोगोंका अन्न अभक्ष्य है।

तेलु (सं० पु०) नृपभेद, एक राजाका नाम।

तेलौंची (हिं० स्त्री०) तेल रखनेकी छोटी प्याली, मलिया।

तेवट (हिं॰ स्त्री॰) सात दीर्घ अथवा १४ लघु मात्राओंका एक ताल।

तेवन (सं॰ क्ली॰) तेव भावे ल्युट्। १ क्रीड़ा, खेल। २ केलिकानन, प्रमोदकानन।

तेवर (हिं॰ पु॰) कुपित दृष्टि, क्रोधभरी नजर। भ्रुकुटी, भौंह।

तेवरसी (हिं॰ स्त्री॰) १ ककड़ी। २ खीरा। ३ फूट।

तेवरा (हिं॰ पु॰) दूनमें बजाया हुआ रूपक ताल।

तेवरना (हिं॰ क्रि॰) १ भ्रममें पड़ना, सन्देहमें पड़ना। २ विस्मित होना, आश्चर्य करना। ३ मूर्च्छित हो जाना, बेहोश हो जाना।

तेवरी (हिं॰ स्त्री॰) त्योरी देखो।

तेवहार (हिं॰ पु॰) त्यौहार देखो।

तेवार (तेयार) मध्य भारतका एक छोटा ग्राम। यह जब्बलपुरसे ६ मील पश्चिम, बम्बईके रास्ते पर अवस्थित है। यहांके अधिकांश अधिवासी पत्थर काट कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। प्राचीन नगर करणवेलके ध्वंशावशेषसे तथा मन्दिरोंसे ही ये लोग पत्थर काट लाते हैं। इस गांवके पूर्वमें बाल-सागर नामक एक सुन्दर बड़ा तालाब है। सीढ़ियां चौकोन पत्थर और लोहेकी बनी हुई हैं। तालाबके बीचमें एक छोटा द्वीप है। उस द्वीप पर एक आधुनिक मन्दिर विद्यमान है। गाँवके पश्चिम प्रान्तमें एक बड़े वृक्षके नीचे कारुकार्य विशिष्ट बहुतसे छोटे छोटे पत्थरके खण्ड एकत्र हैं। उनमेंसे अधिकांश अच्छे दिखाई पड़ते हैं। और बहुतसे टूट फूट भी गये हैं। ये सब पत्थरके खण्ड करणवेल नगरके ध्वंशावशेषसे लाये गये हैं। इस ग्रामके दक्षिण-पश्चिम पाव कोसकी दूरी पर प्राचीन करणवेल शहरका खण्डहर अवस्थित है। एकत्र पत्थरोंमेंसे एकमें "वज्रपाणि" बुद्ध मूर्ति खोदी हुई है। वह एक चौकोन पत्थर पर उत्कीर्ण है। इसके पीछे "ये धर्म हेतु" इत्यादि लिखा हुआ है। चन्द्रातपके नीचे वज्रपाणि उपविष्ट हैं। इनके बायें बगलमें वज्रधर मनुष्य मूर्ति और दहिने बगलमें हाथ जोड़े हुए एक मनुष्य मूर्ति नीचे घुटनेके बल बैठी हुई है। बोधमंत्रके नीचे एक लम्बी चौड़ी शिलालिपि है। इसके अलावा एक दूसरी प्रतिमा भी एक बड़े पत्थर पर खोदी हुई है। शय्या पर एक पुरुष-मूर्ति सोई हुई है, जिसका दाहिना घुटना उठा हुआ है और उस पर बायाँ हाथ रखा हुआ है। दहिना हाथ सिरके ऊपर है। मूर्तिके चारों बगल बहुतसी मनुष्य मूर्तियां हाथ जोड़े खड़ी हैं। सिरके निकट हाथ जोड़े हुई एक स्त्री मूर्ति बैठी है और पैरके नीचे पुरुष-मूर्ति खड़ा है। इसके भी पीछे शिलालेखकी दो पंक्तियां हैं किन्तु उनके अक्षर प्रायः लुप्त हो गये हैं। सोई हुई मूर्तिका आकार पुरुषकार होने पर भी ग्रामके लोग उन्हें त्रिपुरा देवी कहा करते हैं। और भी एक पुत्तलिकाकी प्रतिमा है। ये कुम्भीर पर चढ़ी हुई चार हाथवाली देवी मूर्ति हैं। स्थानीय मनुष्य "नर्मदा माई" नामसे इनकी पूजा करते हैं। शायद यह किसी प्राचीन मन्दिरकी गङ्गाकी प्रतिमा हैं। इसके सिवा शिव, कृष्ण और भैरवादिकी मूर्तियां भी हैं। एक बड़ी शिला पर उलंगिनी गोपियोंसे घिरी हुई वंशीवदन कृष्णकी मूर्ति क्या ही खूबीसे खोदी हुई हैं।

जैनोंके दिगम्बर सम्प्रदायकी आदिनाथकी मूर्तिका शिलाफलक भी विद्यमान है।

करणवेल और तेवार ग्राम बहुत प्राचीन कालसे इतिहास पुराणादिमें मशहूर है। इन दोनों ग्रामका प्राचीन नाम त्रिपुर नगर है, जहां किसी समय चेदि राजाओंकी राजधानी थी। कहा जाता है, कि महादेवने जिस जगह त्रिपुरको मारा था, वही जगह त्रिपुर नामसे विख्यात है। नर्मदाके उत्पत्ति-स्थलस्थ प्रदेशमें पहले पौराणिक युगमें प्रबल पराक्रान्त हैहयवंशके राजा राज्य करते थे। चेदिराज्य भी यहां तक विस्तृत था। महाभारतमें उपरिचर, शिशुपाल, भीष्मक आदिके नाम पाये जाते हैं। उपरिचर वसुकी राजधानीका नाम महाभारतमें नहीं है, किन्तु शुक्ति नदीके किनारे अवस्थित थी ऐसा लिखा है। कालक्रमसे चेदिराज्य दो भागमें विभक्त हुआ एक भाग महाकोशल कहलाया जिसकी राजधानी मणिपुरमें थी। दूसरा भाग चेदि नामसे ही मशहूर था और उसकी राजधानी वर्त्तमान तेवारी वा त्रिपुर नगरीमें थी। हेमकोषमें त्रिपुरनगरका दूसरा नाम चेदिनगरी लिखा है। चेदि नाम क्यों पड़ा इसका पता नहीं

चलता। कनिङ्हम साहबने अनुमान किया है, कि मणिपुर राजाकी लड़की चित्राङ्गदाके नामसे "चित्राङ्गदी देश" "चङ्गदीदेश" "चेदी देश" ऐसा रूपान्तर हुआ है, किन्तु यह युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता। उनके मतसे टलेमीका "सागेद" नगर भी चेदि कहलाता है, किन्तु हम लोगोंके ख्यालसे "सागेद" साकेत शब्दका ही रूप है। महाभारत पढ़नेसे जाना जाता है, कि मणिपुर कलिङ्गराजके अधीन था। रत्नपुरके शिलालेखमें कलचूरीके राजा जाजल्ल सुरगणाधिपति नामसे उल्लिखित हैं। कनिङ्हमने कलचुरि शब्दका मूल अनुसन्धान करते हुए इस उपाधिसे इसे "कुलसुर" शब्दका रूपान्तर अनुमान किया है। कलचुरि देखो।

कर्णवेल ग्राममें अब भी बहुतसे भग्नावशेष पड़े हैं, किन्तु तेवारके लोगोंने उस स्थानसे पत्थर आदि ला कर प्राचीन कीर्तिका शेष कर डाला है। तेवारसे १॥ मील दूर कारीतराय पर्वतके निम्नभागमें एक गुहा है। यहांके लोग इस गुहाको बनियाका घर कहा करते हैं। इस गुहासे २०० फुटकी दूरी पर दो अट्टालिकाओंका भग्नावशेष विद्यमान है। यह बरामदेकी नाईं दीख पड़ता है; केवल स्तंभकी पंक्ति पर जो छत थी, वह अब नहीं है। इसके चारों ओर घूम कर एक छोटे पहाड़ सरीखे एक स्तूपके निकट जाना होता है। इसका ऊपरी भाग समतल, प्रशस्त तथा ईंटोंसे आच्छादित है। यह स्तूप बड़ा हतियागढ़ नामसे मशहूर है। यहांकी ईंटें लगभग ६ फुट लम्बी चौड़ी हैं।

अन्यान्य छोटे छोटे पहाड़ोंके ऊपर भी इसी तरह बहुत सी ईंटोंको देख कर अनुमान किया जाता है, कि एक समय यह सब स्थान प्राचीर द्वारा मजबूतीसे घिरा हुआ था। एक जगह छोटे दुर्गका भग्नावशेष भी देखनेमें आता है। इसकी दीवारें छोटे छोटे पत्थरके खंडोंसे बनी थीं। इसके तीन ओर बनगङ्गा नामकी छोटी नदी चारों ओर घूम गई है। नदीके किनारे पहाड़का रास्ता दुर्गम है। वहां एक बड़ी प्रतिमा है जिसके तीन मस्तक हैं। हर एक मस्तक पर बड़ी बड़ी टोपी है। प्रत्येक मुखमें तीन तीन आंखें हैं। बायें मुखकी जिह्वा लपलपा रही है। प्रतिमा केवल ५ फुट ऊंची है और उसका निम्नांश (कमर तक) टूट फूट गया है। इसके समीप एक विस्तीर्ण गह्वरमें जल संचित हो कर एक छोटा तालाब सरीखा हो गया है। कर्णवेलके निकट एक पवित्र पुष्करिणी है और उसके निकट भी पत्थरमूर्त्तिकी पीठ पर उत्कीर्ण लिपिके शेष चरणमें "ईशानसिंह मूर्तिकपद्दित" लिखा हुआ है।

तेहरा (हिं॰ वि॰) १ तीन परत किया हुआ, तीन लपेटका। २ जिसकी एक साथ तीन प्रतियां हों। ३ जो दो बार हो कर फिर तीसरी बार किया गया हो।

तेहराना (हिं॰ क्रि॰) १ तीन लपेट या परतका करना। २ त्रुटि आदि दूर करनेके लिये किसी कामको तीसरी बार करना।

तेहवार (हिं॰ पु॰) त्योहार देखो।

तेहा (हिं॰ पु॰) १ क्रोध, गुस्सा। २ अहङ्कार, शेखी।

तेही (हिं॰ वि॰) १ क्रोधी, जिसमें गुस्सा हो। २ अभिमानी, घमंडी।

तैंतालीस (हिं॰ वि॰) तेंतालीस देखो।

तैंतीस (हिं॰ वि॰) तेंतीस देखो।

तै (अ॰ पु॰) १ मीमांसा, निबटेरा, फैसला। २ पूर्त्ति, पूरा करनेकी क्रिया। (वि॰) ३ जिसका फैसला हो गया हो। ४ समाप्त, जो पूरा हो चुका हो

तैकायन (सं॰ पु॰) तिकस्य ऋषेः गोत्रापत्यं तिक-फक्। तिक ऋषिके वंशज।

तैकायनि (सं॰पु॰-स्त्री) तिकस्य ऋषेः गोत्रापत्यं युवा तैकायनि-छ। तिक ऋषिके युवा वंशज।

तैक्त (सं॰ पु॰) तिक्तका भाव, तीतापन, चरपराहट।

तैक्ष्णायन (सं॰ पु॰) तीक्ष्णस्य ऋषेः गोत्रापत्यं। तीक्ष्ण-फञ्। अश्वादिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०। तीक्ष्ण ऋषिके वंशज।

तैक्ष्ण्य (सं॰ क्ली॰) तीक्ष्णस्य भावः तीक्ष्ण-ष्यञ्। १ तीक्ष्णता, तेजी। २ कठोरता, कड़ाई, सख्ती। ३ क्रूरता, निष्ठुरता, बेरहमी।

तैखाना (हिं॰ पु॰) तहखाना देखो।

तैग्म्य (सं॰ क्ली॰) तिग्मस्य भावः तिग्म-ष्यञ्। तिग्मता, प्रखरता, तीक्ष्णता।

तैजनित्वच (सं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी छोटी वीणा।

तैजस (सं॰ क्ली॰) तेजसो विकारः तैजस्-अण्। १ घृत, घी। २ धातु द्रव्यमात्र। (मनु ५।१११) ३ तीर्थविशेष। (भारत ८।४६।१०३)

४ सांख्योक्त रजोगुणोत्पन्न एकादशेन्द्रियादि।

"सात्विक एकादशकः प्रवर्त्तते वैकारादहंकारात्।
भूतादेस्तन्मात्रः सतामसस्तैजसादुभयं॥"
(सांख्यका॰ २५)

वैकृत (अर्थात् सात्विक अहङ्कार)-से एकादशक (अर्थात् एकादश इन्द्रिय), तामससे तन्मात्र और तैजससे दोनों ही प्रवर्तित होते हैं। अहङ्कारका जब सात्विक अंश प्रबल होता है, तब उसकी वैकृत संज्ञा होती है, फिर उसे सात्विक अहङ्कार कहा जा सकता है। इस वैकृत (सात्विक) अहङ्कारसे ही एकादश इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई है। इसलिये इन्द्रियोंमें सत्वांश अधिक होनेके कारण वे अपने विषयको ग्रहण करनेमें समर्थ होती हैं। तामस भूतादिसे तन्मात्र हुआ है अर्थात् जब तम द्वारा सत्त्व और रजः अभिभूत होता है, तब उस अहङ्कारको तामस कहते हैं। सांख्याचार्योंने इस तामस अहङ्कारको भूतादि कहा है। भूतादिसे पञ्च तन्मात्रकी उत्पत्ति होती है। तैजससे इन दोनों (अर्थात् एकादश इन्द्रिय और पञ्च तन्मात्र)-का प्रवर्तन हुआ है। रज द्वारा जब सत्व और तम अभिभूत होता है, तब वह अहङ्कार ही तैजस संज्ञा पाता है। पूर्वोक्त सात्विक अहङ्कार जब वैकृत हो कर एकादश इन्द्रियोंको उत्पन्न करता है, तब उसे तैजस अहङ्कारकी सहायता लेनी पड़ती है। सात्विक निष्क्रिय है, तैजस अहङ्कारके साथ बिना मिले उसमें कार्य करनेकी शक्ति नहीं आती। इसलिए तैजसके साथ मिल कर एकादश इन्द्रियोंको उत्पन्न करता है। इसी तरह भूतादि तामस अहङ्कार भी निष्क्रिय है, वह तैजसके साथ मिल कर तन्मात्रोंको उत्पन्न करता है। इसलिए तैजससे ही इन दोनों (एकादश इन्द्रिय और पञ्च तन्मात्र)-की उत्पत्ति होती है। तैजस ही एकमात्र इनकी उत्पत्तिमें कारण है। तैजसकी सहायताके बिना सत्व और तम कोई भी कार्य नहीं कर सकते।
(सांख्यद॰)

५ पराक्रम। ६ शरीरकी वह शक्ति जो आहारको रस और रसको धातुमें परिणत करती है।

(पु॰) ७ सूक्ष्म शरीर व्यष्ट्य पहित चैतन्य। (वेदान्तसा॰) ८ सुमतिके एक पुत्रका नाम। (ब्रह्मांडपु॰ ३६ अ॰) ९ बहुत तेज चलनेवाला घोड़ा। १० भगवान्। ११ एक प्रकारकी शारीरिक शक्ति। यह शक्ति आहारको रसमें और रसको धातुमें परिणत करती है। (त्रि॰) १२ तेजःसम्बन्धी, तेजसे उत्पन्न।

तैजसावर्त्तनी (सं॰ स्त्री॰ आवर्त्ततेऽत्र आ-वृत-ल्युट्, स्त्रियां ङीप्, तैजसानां आवर्त्तनी। मूषा, चांदी सोना गलानेकी घरिया।

तैजसी (सं॰ स्त्री॰) गजपिप्पली।

तैतल (सं॰ पु॰) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

तैतिक्ष (सं॰ त्रि॰) तितिक्षा शीलमस्य, तितिक्षा छत्रादित्वात् ण। तितिक्षाशील, क्षमाशील।

तैतिक्ष्य (सं॰ पु॰-स्त्री॰) तितिक्षस्य ऋषेः गोत्रापत्यं गर्गा वञ्। तितिक्ष ऋषिके वंशज।

तैतिर (सं॰ पु॰ स्त्री॰) तैत्तिर पृषो॰ साधुः। तित्तिर पक्षी, तीतर। २ गण्डक, गैंडा।

तैतिल (सं॰ पु॰) १ गण्डक, गैंडा। (क्ली॰) २ ग्यारह करणोंमेंसे चौथा करण। फलित ज्योतिषके मतसे इस करणमें मनुष्यका जन्म होनेसे वह कलाकुशल, रूपवान्, वक्ता, गुणी, सुशील और कामी होता है। ३ देवता।

तैतिलन (सं॰ पु॰) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषियोंका प्रवरभेद।

तैत्तिर (सं॰ क्ली॰) तित्तिरीणां समूहः तित्तिर-अच्। अनुदात्तादेरञ्। पा ४।२।४४। १ तित्तिर पक्षी, तीतर। २ गण्डक, गैंडा।

तैत्तिरि (सं॰ पु॰) १ कुकुरवंशके एक राजाका नाम। २ ऋषिभेद, कृष्ण यजुर्वेदके प्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

तैत्तिरीय (सं॰ पु॰) तित्तिरिणा प्रोक्तं अधीयते छन्। तित्तिरीय प्रोक्त समस्त शाखाध्यायी। यह शब्द बहुवचनान्त है।

इसके सम्बन्धमें भागवतादि पुराणोंमें इस प्रकार लिखा है—एक बार वैशम्पायनने ब्रह्महत्या की। उसके प्रायश्चित्तके लिए उन्होंने अपने शिष्योंको यज्ञ करनेकी आज्ञा

हो और सब शिष्य तो यज्ञ करनेके लिए प्रस्तुत हो गये, पर याज्ञवल्क्य प्रस्तुत न हुए। इस पर वैशम्पायनने कहा, तुम हमारी शिष्यता छोड़ दो। याज्ञवल्क्यने 'वैसा ही होगा' यह कह कर जो कुछ उनसे पढ़ा था सब उगल दिया। अन्यान्य सहपाठियोंने तीतर बन कर उस वमनको चुग लिया। इसी कारण उनका नाम तैत्तिरीय पड़ा। यजुर्वेद शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। २ इसी शाखाका उपनिषद्। यह तीन भागोंमें विभक्त है। पहले भागका नाम संहितोपनिषद्। इसमें व्याकरण और अद्वैतवाद सम्बन्धी बातें हैं। दूसरे भागका नाम आनन्दवल्ली और तीसरेका भृगुवल्ली है। इन दोनों सम्मिलित भागोंको वारुणी उपनिषद् भी कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद्में केवल ब्रह्मविद्या पर ही विचार नहीं किया है, बल्कि श्रुति स्मृति और इतिहास संबन्धी भी बहुत सी बातें हैं। इस उपनिषद् पर शंकरार्यका बहुत अच्छा भाष्य है।

तैत्तिरीयक (सं॰ पु॰) तैत्तिरीय स्वार्थे कन्। तैत्तिरीय शाखाका अनुयायी या पढ़नेवाला।

तैत्तिरीय ब्राह्मण (सं॰ पु॰) कृष्णयजुर्वेदीय ब्राह्मण। भिन्न भिन्न प्रकारके सदुपदेशोंसे पूर्ण थे।

तैत्तिरीया (सं॰ स्त्री॰) तित्तिरिणा प्रोक्ता छन् टाप्। यजुर्वेदकी एक शाखाका नाम। यजुर्वेद देखो।

तैत्तिरीयारण्यक (सं॰ पु॰) तैत्तिरीय शाखाका आरण्यक अंश। इस अंशमें वानप्रस्थोंके लिए उपदेश है।

तैत्तिरीयोपनिषद् (सं॰ स्त्री॰) उपनिषद्भेद, एक उपनिषद्का नाम।

तैत्तिल (हिं॰ पु॰) तैतिल देखो।

तैनात (अ॰ वि॰) नियत, नियुक्त, मुकर्रर।

तैनाती (हिं॰ स्त्री॰) नियुक्ति, मुकर्ररी।

तैन्तिड़ीक (सं॰ स्त्री॰) तिन्तिड़ीकेन संस्कृतं कोपधत्वात् अण्। १ तिन्तिड़ीक संस्कृत व्यञ्जनादि, वह व्यञ्जन जिसमें इमली दी गई हो। २ तिन्तिड़ीकविकार, इमलीका रस।

तैमिर (सं॰ पु॰) तिमिरमेव अण्। नेत्ररोग भेद, आँखकी एक बिमारी। तिमिर देखो।

तैमिरिक (सं॰ त्रि॰) तैमिरो रोगोऽस्त्यस्य ठन्। तिमिर रोगयुक्त, जिसको तिमिर रोग हुआ हो।

तैया (हिं॰ पु॰) मट्टीका छोटा बरतन। इसमें छीपी कपड़ा छापनेके लिए रंग रखते हैं, अहर।

तैयार (अ॰ वि॰) १ दुरुस्त, ठीक, लैस। २ उद्यत, तत्पर, मुस्तैद। ३ प्रस्तुत, मौजूद। ४ हृष्टपुष्ट, मोटा-ताजा।

तैयारी (हिं॰ स्त्री॰) १ दुरुस्ती। २ तत्परता, मुस्तैदी। ३ शरीरकी पुष्टता, मोटाई। ४ समारोह, धूमधाम। ५ सजावट।

तैर (सं॰ क्ली॰) तीरे भवः अण्। कुलत्य, कुलथी।

तैरणी (सं॰ स्त्री॰) तीरे नमति नम-ड, स्वार्थे अण् स्त्रियां गौरादित्वात् ङीष्। क्षुप विशेष, एक प्रकारका क्षुप। इसके पर्याय—तैरण, तैर, कुनीली और रागद। इसके गुण -यह शिशिर, तिक्त, व्रणनाशक और अरुणवर्णद है।

तैरना (हिं॰ क्रि॰) १ पानीके ऊपर ठहरना, उतराना। २ शरीरका अंग संचालन कर पानीमें चलना, पैरना, तरना।

तैरश्च (सं॰ त्रि॰) तिरश्चामिदं तिर्यच्-अण् तन्वात् तिरश्चादेशः। तिर्यग् जाति सम्बन्धीय।

तैराई (हिं॰ स्त्री॰) १ तैरनेकी क्रिया। २ तैरनेके बदलेमें मिलनेवाला धन।

तैराक (हिं॰ वि॰) तैरनेवाला, जो अच्छी तरह तैरना जानता हो।

तैराना (हिं॰ क्रि॰) १ तैरनेका काम किसी दूसरेसे कराना। २ घुसाना, धँसाना, गोदना।

तैर्थ (सं॰ त्रि॰) तीर्थे दीयते कार्यं वा व्युष्टादित्वात् अण्। १ वह कृत्य जो तीर्थमें किया जाय। २ तीर्थमें देने योग्य। ३ तीर्थ सम्बन्धी। ४ वह द्रव्यादि जो तीर्थस्वरूप किसी दूसरे स्थानसे आता है।

तैर्थिक (सं॰ त्रि॰) तीर्थं सिद्धान्तनिश्चयं नित्यं अर्हति छेदादि॰ ठञ्। १ तीर्थसिद्धान्ताभिज्ञ, शास्त्रकार, कपिल कणाद आदि। तीर्थं वेत्ति ठञ् वा। सिद्धान्ताभिज्ञ, जो सिद्धान्त जानता हो। तीर्थे भवः ठञ्। ३ तीर्थभव, जो तीर्थमें उत्पन्न हो।

तैर्थ्य (सं॰ त्रि॰) तीर्थ सङ्काशादित्वात् ण्य। तीर्थ समीपादि, जो तीर्थके निकट हो।

तैर्थगयनिक (सं० त्रि०) तिरश्चां अयनं सत्रभेदः तत्रेव ठञ्। यज्ञ विशेष, एक प्रकारका यज्ञ।

तैर्यग्योन (सं० त्रि०) तिर्यग्योनि रिदं अण्। तिर्यग् योनि पशु इत्यादिका सर्गभेद। तिर्यक् योनिके पांच भेद हैं; पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप और सभी स्थावर भूत।

तैर्यग्योन्य (सं० त्रि०) तिर्यग् योनेरिदं ष्य। पशु पक्षी इत्यादिका सर्ग भेद।

तैल (सं० क्ली०) तिलस्य तत्सदृशस्य वा विकारः अञ्। तिल-सर्षपादि-जनित स्नेह द्रव्यभेद, तिल सरसों आदिको पेर कर निकाला हुआ चिकना और तरल पदार्थ, तेल, रोगन।

"तिलादिस्निग्धवस्तूनां स्नेहस्तैल मुदाहृतम्।
तत्तु वातहरं सर्वं विशेषात्तिलसम्भवं॥" (भावप्र०)

वैद्यकके अनुसार तिल आदि स्निग्ध-द्रव्यके स्नेहको तैल कहा जा सकता है। परन्तु तिलसे जो स्नेह-निर्यास निकलता है, वास्तवमें उसीको तैल कहते हैं। तिलकी तरह अन्यान्य स्नेह-रस-प्रदायी बीजोंके निर्यासको भी सामान्यतः तैल कहते हैं। उद्भिज्ज बीजोंसे उत्पन्न तैलके सिवा कुछ वृक्षोंकी शाखा प्रशाखा और काण्डसे, काष्ठसे, कुछ तृणोंके पत्तोंसे और जड़से भी तैलवत् निर्यास निकलता है, वह भी तैल कहलाता है। जीव-देहसे चरबीके सिवा एक प्रकारका तैलवत् रस निकलता है, उसका भी नाम तैल है। इनके सिवा मिट्टी और पर्वत-गह्वरोंमें भी तैलवत् अत्यन्त तरल पदार्थ मिलता है, उसे भी तैल कहते हैं।

तैल पानीसे हलका और गाढ़ा, स्निग्ध, चिकना और मेदयुक्त होता है। यह किसी प्रकार भी पानीमें घुल नहीं सकता; किन्तु अलकोहलमें घुल जाता है। जो जलके साथ सर्वाङ्गीनरूपसे मिश्रित नहीं होता ऐसे उद्भिज्ज, प्राणीज और मृत्तिज रसको ही सामान्यतः तैल कहा जाता है। कागज पर पड़ने पर, कागज इसे सोख जाता है और कुछ स्वच्छ भी हो जाता है।

तैलका व्यवहार नाना प्रकारसे होता है। आहार्य द्रव्यमें, गात्र-मर्द्दनमें, नाना प्रकारकी चीजें बनानेमें और आलोक-उत्पादनमें, इत्यादि अनेकों कार्यों में तैलका बहुत व्यवहार होता है। मनुष्यके लिए धान्य, गेहूं, जौ, चना, मटर, मक्का आदि प्रधान आहार्य शस्योंके बाद ही घीकी आवश्यकता होती है और उसकी बाद तैल वा तैलाक्त पदार्थकी। तैलकर द्रव्य, तैलजद्रव्य और तैल ये तीनों वस्तुएं व्यवसायके सर्व-प्रधान द्रव्योंमें शामिल हैं। नाना प्रकारका तैल इस देशमें आता है और यहांसे बाहर भी जाता है।

अवस्थाके भेदसे तैल दो प्रकारका है उद्वायु (वायु-परिणामी) और स्थिर।

१। उद्वायु-तेल।—यह प्रायः जलके समान, अतिशय दाह्य, तीव्रगन्ध और तीक्ष्णस्वाद होता है। यह सुरासारके साथ घुलता नहीं, पानीमें भी अच्छी तरह नहीं घुलता, कागज पर गिरने और उड़ जानेसे दाग नहीं लगता। यदि सूख जाने पर भी दाग लगे, तो उसे तेलकी मिलावटी समझना चाहिये। उद्भिज्ज तैलके सिवा और कोई भी तैल (प्रायः) उद्वायु नहीं होता। साधारणतः यह तैल चुआ कर निकाला जाता है। इस श्रेणीके तेलोंमें कई तैल ऐसे पतले होते हैं कि हाथमें लेने पर भी मालूम नहीं पड़ता कि यह तैल है। सन्तरा, नीबू आदिके तैल इसी श्रेणीके हैं। दारूचीनी, जावित्री, लवङ्ग, इलायची आदिका तैल अपेक्षाकृत गाढ़ा होता है; जायफल मिर्च आदिका तैल जम कर मक्खन जैसा हो जाता है। पीपरमिण्ट, मर्जोरम आदिके तैलमें मृदु उत्ताप देनेसे स्वच्छ दाने बंध जाते हैं। उद्वायु-तैलके पात्रका आवरण खोल कर, उसमें उत्ताप देनेसे तैल उड़ जाता है और उस स्थानके चारो तरफ उसकी गन्ध फैल जाती है; परन्तु पात्रमें आवरण लगा कर यदि उत्ताप दिया जाय तो बहुत देरमें उड़ता है और रंग बदल कर काला पड़ जाता है, गन्ध भी जाती रहती है। विशुद्ध तैलमें प्रायः गैस नहीं होती, किन्तु जलादि मिश्रित रहने पर होती है।

२। स्थिरतैल—यह उत्तापमें उड़ता नहीं, और स्वभावतः तरल वा उत्तापसे तरल हो जाता है। स्थिर-तैल स्निग्ध, चिकना, मेद-युक्त, अतिदाह्य एवं मृदु स्वाद होता है। यह ६०० डिग्रीसे कम उत्तापसे खौलता नहीं पानीमें घुलता नहीं, और न सुरासारमें ही अच्छी तरहसे मिलता है। कागज पर पड़ने पर दाग पड़ जाता है।

स्थिर तैलमें कार्बोन, हाइड्रोजन और अक्सिजन रहता है। विश्लेषण करनेसे इस तैलसे दो तरहके पदार्थ निकलते है—तैलसार और तैलमौक्तिक। तैलके तरलांशको पाश्चात्य विद्वान् Oleum (वा Liquid portion of oil) वा तैलसार कहते हैं और उसके स्वच्छ एवं चिक्कणांशको Margarine (a pearllike substance in some Oil) वा तैलमौक्तिक। प्राणीज तैलमें, बीजोत्पन्न तैलमें तथा जलपाई-जातीय फलोंके तैलादिमें Stearine (aproximate principle of fat) वा चरबीका गाढ़ अंशवत् और भी एक उपादान पाया जाता है।

तैलका व्यवहार बहुत ज्यादतीसे होता है। साबुन और बत्ती बनानेमें, दीया जलानेमें, मशीनमें, पशम बनानेमें, रंग और वार्निश बनानेमें, साग, तरकारीमें, दवाइयोंमें, छापनेकी स्याहीमें, फलादिके अचारोंमें, केश हादिके संस्कारमें, तथा सुगन्धित तैल और इत्र आदिके बनानेमें तैलका यथेष्ट व्यवहार होता है। इसके सिवा और भी बहुतसे छोटे छोटे कामोंमें तैलका व्यवहार होता है।

मृत्तिज तैल वा मिट्टीका तेल—इसका अंग्रेजी नामक 'केरोसिन' है। यह तेल तुरुष्कके अधीन अरबमें, उत्तर-पारस्यके बाकुट नामक स्थानमें, उत्तर भारतमें, चीन और ब्रह्मदेशमें उत्पन्न होता है। इस तैलसे छ तरहकी चीजें बनती हैं, जिनमें एक प्रकारका तुषारश्वेत कठिन मोम और एक तरहका उमदा खुशबूदार तेल ही मुख्य है।

हमारे आयुर्वेदके मतसे सभी तैल वायुनाशक हैं; जिनमें तिलका तैल ही सबसे श्रेष्ठ है। इसके पर्याय - म्रक्षण, स्नेह, अभ्यञ्जन। (हेम०)

तैल आग्नेय, उष्ण, तीक्ष्ण, मधुर, पुष्टिकर, तृप्तिकर, ग्राम्यधर्मका उत्तेजक, सूक्ष्म विशद, गुरु, सारक विकाशी, तेजस्कर, त्वक्के लिए प्रसन्नतासम्पादक, मेधा, शरीरकी कोमलता और मांसको दृढ़ करनेवाला, वर्णकर बलकर, दृष्टि-हितकर, मूत्र-रोधक, लेखनकर, तिक्त पश्चात् कषाय, पाचक; वातश्लेष्मा और कृमिनाशक, योनिशूल, शिरःशूल और कर्णशूलको शान्त करनेवाला एवं गर्भाशयका शोधक होता है। छिन्न, भिन्न, उत्पिष्ट, विद्ध, च्युत, मथित, क्षत, पिच्चित, भग्न, स्फुटित, क्षारदग्ध, अग्निदग्ध, विश्लिष्ट, दारित, अभिहत, दुर्भग्न, मृगवालादि द्वारा दष्ट, इनमें तथा परिषेचन, मर्दन और अवगाहनके लिए तिलका तैल ही प्रशस्त है।

वस्तिक्रियामें, पीनेमें, नस्यमें, कर्णरन्ध्र-पूरणमें, अन्नपानके संयोगमें तथा वायुकी शान्तिके लिए तैलका व्यवहार किया जाता है।

सर्षपतैल (सरसोंका तेल)—यह अग्निदीप्तिकारक, कटुरस, कटुविपाक, लघु, कृशताकारक, उष्णस्पर्श, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, रक्तपित-प्रकोपक तथा कफ, मेद, वायु, अर्श, शिरोरोग, कर्णरोग, खुजली, कोढ़, कृमि, श्वित्र, कोठ और दुष्टव्रण-नाशक होता है। काली और सफेद सरसोंका तेल भी उक्त गुण-सम्पन्न एवं मूत्रकृच्छ्रोत्पादक होता है।

एरण्डतैल (अंडीका तेल)--यह तेल मधुर, उष्ण, तीक्ष्ण, अग्निकर, कटु और पीछेसे कषाय, सूक्ष्म, नाड़ीशोधक, त्वक्के लिए हितकर, वृष्य, पाकमें मधुर एवं वयःस्थापक (जिसके व्यवहारसे शरीर शीघ्र जीर्ण नहीं होता), योनि और शुक्रका शोधक, आरोग्य, मेधा, कान्ति और बलको उत्पन्न करनेवाला तथा वातश्लेष्मा और शरीरके अधोभागके दोषोंका नाशक है।

निम्ब, अतसी, शण, कुसुम्भ, मूलक, देवताड़, कृतवेधन, (घोषाफल), अर्क, काम्पिल्ल, हस्तिकर्ण, पृथ्विका (बड़ी इलायची), पीलु, करञ्ज, इङ्गुदी, शिग्रु, सर्षप, सुवर्चला (तीसी), विडङ्ग, ज्योतिष्मती इनके बीज और फलका तैल तीक्ष्ण, लघु पर अनुष्णवीर्य, रस और पाकमें कटु, सारक तथा वातश्लेष्मा, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और शिरोरोगका नाशक है।

शण वीजकातैल—वातघ्न, मधुर, बलकारक, कटु, चक्षुके लिए अहितकर, स्निग्धोष्ण, गुरुपाक और पित्तकर होता है।

इंगुदीका तैल कृमिघ्न, ईषत् तिक्त, लघु, कुष्ठ एवं कृमिनाशक; और दृष्टि, शुक्र एवं बलक्षयकर होता है।

कुसुमवीजका तैल—परिपाकमें कटु, समस्त दोषोंका वर्द्धक, रक्तपित्तजनक, तीक्ष्ण, चक्षुके लिए अहितकर और विद्रोही (जिससे गला जलने लगे) होता है।

किराततिक्त (चिरायता), तिनिश, विभीतक, नारिकेल, कोल, पोलु, जयन्ती पियाल, कवंदा, सूर्यवल्ली, त्रपुष, एर्वारुक, ककसिक, कुष्माण्ड आदिका तैल मधुर वायु और पित्तको शान्त करनेवाला, शीतवीर्य, चक्षुके लिए अहितकर, मलमूत्रजनक और अग्निमान्द्यकर होता है। मधुक, गम्भारी और पलाशका तैल मधुर, कषाय और कफ पित्तको शान्त करनेवाला है।

तुवरक और भल्लातकका तैल—उष्ण, मधुर, कषाय, पीछेसे तिक्त, कटु एवं कुष्ठ, मेद, मेह, और कृमिका नाशक तथा ऊर्ध्व और अधोभागके दोषोंको दूर करनेवाला है।

सरल, देवदारु, गण्डीर, शिंसपा और अगुरु इनके सारभागका तैल—तिक्त, कटु, कषाय, दूषित व्रणोंका शोधक तथा कृमि, कफ, कुष्ठ एवं वायुको शान्त करनेवाला है।

तुम्बी, कोषाम्र, दन्ती, द्रवन्ती, शामा, सप्तला, नालि, कम्पिल्ल और शङ्खिनीका तैल--तिक्त, कटु, कषाय शरीरके अधोभागके दोषोंका नाशक तथा कृमि, कफ, कुष्ठ और वायुको शान्त करनेवाला एवं दूषित व्रणोंका संशोधक है।

यवतिक्ताका तैल—सब दोषोंको शान्त करनेवाला, ईषत् तिक्त, अग्निदीप्तिकर, लेखन, पथ्य, पवित्र और रसायन हैं।

ऐकैषिका (वकपुष्प)-का तैल—मधुर, अति शीतल, पित्त-शान्तिकर, वायुप्रकोपक और श्लेष्मावर्द्धक हैं।

आम्रबीजका तैल—ईषत् तिक्त, अति सुगन्धित, वात-श्लेष्माशान्तिकर, रूक्ष, मधुर, कषाय और इसके रसकी भांति अतिशय पित्तकर है।

जिन फलोंके तैलोंका उल्लेख किया गया है, वे फल भी तैलकी तरह वायुशान्तिकर हैं। सब तैलोंमें तिलका तैल ही उत्कृष्ट है। तैलके सदृश कार्यकारी और उसी प्रकार गुणयुक्त होनेके कारण ही अन्यान्य तैलोंमें तैलत्व स्वीकार किया जाता है।

वाग्भटका कहना है, कि जिस चीजसे जो तैल उत्पन्न होता है, उसमें उस चीजके गुण विद्यमान रहते हैं। इसलिए तैलोंके गुण नहीं लिखे गये हैं; उनके गुण उपादान-कारणके सदृश समझ लेना चाहिये। शरीर पर तैल लगानेसे शरीर मुलायम रहता है, कफ और वायु नष्ट होते हैं, धातु पुष्टिकर होती है, तेज और वर्ण प्रसन्न रहता है, पैरोंके तलवे पर तैल मलनेसे खूब नींद आती है, आंखोंको तरावट पहुंचती है और पादरोग नष्ट होता है; परन्तु कफरोगीके लिए यह अनिष्टकर है। शरीरसे तैल मल कर स्नान करनेसे बल बढ़ता है। लोम-कूप एवं शिराओंके मुखमें तैल प्रविष्ट होनेसे नाड़ी तृप्त रहती है। तैल-द्वारा मस्तकको भीगा रखनेसे शिरःशूल, मांस-लोलित और गंजरोग नहीं होता, प्रत्युत केश घने, मजबूत और काले होते हैं तथा इन्द्रियां प्रसन्न और मुख श्री-युक्त रहता है। कानमें तैल डालनेसे कर्णरोग नष्ट हो जाता है। मर्दन वा लगानेके लिए सरसोंका तैल ही सबसे उत्तम है।

तैल-पक्व खाद्यके गुण—विदाही, गुरुपाक, परिपाकमें कटु, उष्ण; वायु और दृष्टिके लिए अहितकर, पित्तकर एवं त्वक् दोषोत्पादक है। तैलपक्व मांस सुखप्रिय, रुचिकर एवं लघुपाक होता है।

तैल जितना पुराना होता जाता है, उसमें उतनी ही गुणोंकी वृद्धि होती है। (भावप्र०, सुश्रुत, द्रव्यगु०)

प्रातःस्नान (सूर्योदयसे पहले), व्रत, श्राद्ध, द्वादशी और ग्रहणके दिन तैल नहीं लगाना चाहिए।

> "प्रातःस्नाने व्रते श्राद्धे द्वादश्यां ग्रहणे तथा।
> मद्यलेपसमं तैलं तस्मात्तैलं विवर्जयेत् ॥" (कर्मलोचन)

उक्त श्लोकमें तैलका निषेध किया गया है। तिलतैलपर, अर्थात् पूर्वोक्त कार्योंमें तिलका तैल नहीं लगाना चाहिये।

घृत, सर्षपका तैल और पुष्पवासित तैल तथा पक्व तैल शरीर पर न लगाना चाहिए, क्योंकि इन तैलोंका लगाना दोषावह है। (तिथितत्त्व)

वार विशेषमें तैल ग्रहणका फल—रविवारको तैल लगानेसे हृदयका विनाश होता है, सोमको कीर्तिलाभ, मङ्गलको मृत्यु, बुधको पुत्रलाभ, वृहस्पतिवारको अर्थनाश, शुक्रवारको शोक और शनिवारको तैल लगानेसे दीर्घायु प्राप्त होती है। (ज्योतिस्तत्त्व)

घी मलनेकी अपेक्षा तैल मर्दन करनेसे ८ गुना फल होता है।

"घृतदाष्टगुणं तैलं मर्दयेत् नतु खादयेत् ॥" (वैद्यक।

तैलंगा (हिं० पु०) तिलंगा देखो।

तैलंगी (हिं० पु०) १ तैलंग देशवासी। (स्त्री०) २ तैलंग देशकी भाषा। (वि०) ३ तैलंग देश सम्बन्धी, तैलंग देशका।

तैलक (सं० क्ली०) स्वल्पं तैलं, अल्पार्थे-कन्। अल्प परिमाण तैल, थोड़ा तेल।

तैलकन्द (सं० पु०) तैलप्रधानः कन्दः। कन्दविशेष। इसके पर्याय—द्रावककन्द, तिलाङ्कितदल, करवीरकन्दसंज्ञ और तिलचित्रपत्रक। इसके गुण—लौह, द्रावी, कटु, उष्ण, वात, अपस्मार, विष और शोकनाशक।

तैलकल्कज (सं० पु०) तैलात् तिलसम्बन्धिनः कल्काज्जायते जन-ड। तैलकिट्ट, खली।

तैलकार (सं० पु०) तैलं करोति कृ-अण्। वर्णशङ्कर जातिविशेष, तेली। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणके अनुसार इस जातिकी उत्पत्ति कोटक जातिकी स्त्री और कुम्हार पुरुषसे बतलाई गई है। इसके पर्याय—धूसर, चाक्रिक और तेली। यात्राकालमें इस जातिको देखनेसे अमङ्गल होता है।

"ददर्शामंगलं राजा पुरो वर्त्मनि वर्त्मनि।
कुम्भकारं तैलकारं व्याधं सर्पोपजीविनं॥"

(ब्रह्मवै० गणपतिख० ३५ अ०)

तैलकिट्ट (सं० क्ली०) तैलस्य किट्टं ६-तत्। तैलमल, खली। पर्याय—पिन्याक, खलि, और तैलकल्कज। गुण—यह कटु, गौल्य, कफ, वात और प्रमेहनाशक है।

तैलकीट (सं० पु०) कीटभेद, तेलिन नामका कीड़ा।

तैलक्य (सं० क्ली०) तिलकस्य भावः कर्म वा तिलक-यक्। पत्यन्त पुरोहितादिभ्यो यक्। पा ५।१।१२८। तिलकका भाव, तिलक करनेका काम।

तैलङ्ग (सं० पु०) देशविशेष, श्रीशैलसे ले कर चोलराजके मध्यभाग तककी तैलङ्ग देश कहते हैं। त्रिलिंग देखो। यहाँकी भाषा त्रिलिङ्ग वा तेलगू है।

तैलङ्गभट्ट—जैसलमेरके रहनेवाले हिन्दीके एक कवि। ये महारावल रणजित्सिंह जैसलमेर-नरेशके दरबारमें रहते थे। ये साधारण श्रेणीके एक कवि थे। इन्होंने 'रणजित-रत्नमाला' नामक ग्रन्थ रचा है।

तैलङ्गस्वामी—एक महापुरुष। भारतवर्ष महापुरुषोंकी लीलाभूमि है। कितने ही महात्माओंने इस देशमें जन्म ग्रहण किया है, बाद वे प्रभूत उपकार साधन कर तिरोहित हो गये हैं। महात्मा तैलङ्गस्वामी काशीधामके एक अमूल्य रत्न थे। इन्हें देखनेसे आभ्यन्तरिक तामसिक भाव दूर हो जाता था और हृदयमें सात्त्विक भावका समावेश होता था। जिन्होंने एक बार इनकी मूर्त्ति देख ली है, वे ही यथार्थमें इसका अनुभव कर सकते हैं। विदेशीय यात्रिक और साधु लोग जिस प्रकार भक्तिपूर्वक विश्वेश्वर, अन्नपूर्णा, मणिकर्णिकादिका दर्शन करते थे, इस महात्माका भी उसी प्रकार भक्तिपूर्वक दर्शन कर वे आत्माको चरितार्थ बना विमल अनिर्वचनीय पवित्र सुख अनुभव कर गये हैं।

हम लोगोंके देशमें साधु पुरुषोंकी जीवनी अन्धकारमें छिपी हुई है, महात्मा तैलङ्गस्वामीके विषयमें भी वही हाल है। पता लगानेसे जो कुछ मालूम हुआ है, वही इस जगह लिखा जाता है। महात्माका प्रकृत नाम तैलिङ्गस्वामी था। ये जातिके ब्राह्मण थे। दाक्षिणात्य प्रदेशके होलिया नगरमें इनका जन्म हुआ था। १५२९ शताब्दीके पौषमासमें इन्होंने जन्मग्रहण किया था। इनके पिताका नाम नरसिंहधर था। नरसिंहधर सम्पत्तिपन्न पुरुष थे। इनके दो विवाह हुए थे जिनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। प्रथम पक्षके पुत्रका नाम तैलिङ्गधर और दूसरेका श्रीधर था। ४० वर्षकी अवस्थामें इनके पिताका देहान्त हुआ। इनकी माता विद्यावती और विचक्षण बुद्धिमती थीं। पिताके मरने पर तैलिङ्ग अपनी माता से ही विद्या सीखते थे। इसी प्रकार बारह वर्ष बीत गये, इस समय इन्होंने मातासे योगशिक्षा भी सीख ली थी। इनकी अवस्था जब ५२ वर्षकी हुई, तब माता भी इस लोकसे चल बसीं। मृत्युके बाद इनकी माताकी जहां अन्त्येष्टिक्रिया हुई थी, वहांसे ये फिर लौट कर घर न आये। श्रीधरने इन्हें घर लानेकी बहुत चेष्टा की, पर कुछ फल न हुआ। तैलिङ्गने श्रीधरको यह कह कर विदा किया कि, 'भाई! अब मैं फिर मायामय संसारमें प्रवेश न करूंगा, जो कुछ पैतृक सम्पत्ति है स्वच्छन्दसे उसका भोग करो।' श्रीधरने इनके रहनेके लिए वहां

एक सुन्दर घर बनवा दिया और खाने पीनेकी अच्छी व्यवस्था कर दी। तभीसे तैलिङ्गधर वहां रह कर माता द्वारा उपदिष्ट योगाभ्यास करने लगे। इस प्रकार वहां बीस वर्ष बीत गये। इस समय पश्चिमप्रदेशमें पतियाला राज्यके बासुर ग्राममें भगीरथस्वामी नामक एक सुप्रसिद्ध योगी रहते थे। संयोगवश एक दिन तैलिङ्गके साथ उनकी भेंट हो गई और दोनोंमें बहुत देर तक वार्त्तालाप होता रहा, पीछे कुछ दिन दोनों एक साथ रहे। अनन्तर भगीरथ स्वामी उन्हें अपने साथ पुष्करतीर्थको ले गये। वहां बहुत दिन तक रह कर तैलिङ्गधरने भगीरथस्वामीसे अच्छी तरह योगशिक्षा प्राप्त की। इस प्रकार दीक्षित हो जाने पर भगीरथस्वामी इन्हें गणपतिस्वामी नामसे पुकारने लगे। अनन्तर ये दोनों जब अनेक तीर्थोंको पर्यटन कर काशीधाममें पहुंचे, तब वहांके सभी लोग इन्हें तैलिङ्गस्वामी कहने लगे। कुछ दिन बाद भगीरथस्वामीका पुष्करतीर्थमें ही शरीरान्त हुआ। स्वामीजीके मरने पर त्रिलिङ्गस्वामी भी तीर्थ-पर्यटनकी इच्छासे वहांसे निकले। इसी प्रकार कुछ दिन घूमते फिरते ये सेतुबन्ध-रामेश्वरमें पहुँचे जहां इन्होंने महाराष्ट्र देशीय अन्धराव नामक एक ब्राह्मणको अपना शिष्य बनाया। कार्त्तिक मासकी शुक्ला पञ्चमीमें बहुत समारोहके साथ एक मेला लगा जिसमें अनेक यात्री इकट्ठे हुए थे। तैलिङ्गस्वामीके स्वदेशवासी कई एक यात्री भी यहाँ आये हुए थे। उन्होंने तैलिङ्गस्वामीको घर चलनेके लिए बहुत तंग किया। इस पर वे यह स्थान छोड़ कर सुदामापुरीको चले गये। पीछे वहाँसे भी नेपाल जा कर कुछ काल तक योगाभ्यास करने लगे। यहां लोगोंकी संख्या अधिक देख कर तिब्बतको चले गये। फिर वहाँसे मानस-सरोवरमें जा कर इन्होंने दीर्घकाल तक योगाभ्यास किया। पीछे यह स्थान भी छोड़ कर नर्मदा नदीके किनारे मार्कण्डेय ऋषिके आश्रममें रहने लगे यहां इनकी अनेक महात्माओंसे भेंट तथा बातचीत हुई। इस आश्रमके थाकीबाबा एक दिन यथासमय नदीके किनारे जा रहे थे कि इसी बीचमें उन्होंने देखा कि नदी दूधका रूप धारण कर तैलङ्गस्वामीके पास पहुंच गई। तैलिङ्गस्वामीने भी प्रशान्त चित्तसे उस दूधको पी लिया। थाकीबाबाके उस स्थान पर आनेसे ही नदीने दूधका रूप परित्याग कर स्वाभाविक आकार धारण किया। यह आश्चर्य घटना देख कर वे स्तब्ध हो रहे और उस रातको योगाभ्यासमें न जाकर आश्रमको लौट आए और वहाँ अन्यान्य महात्माओंसे यह अभूतपूर्व वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया। इस पर सब कोई स्वामीजीकी असाधारण क्षमता देख कर पहलेसे भक्ति और श्रद्धा करने लगे। पीछे स्वामीजी यहाँसे प्रयागधाम जा कर कुछ काल तक रहे और फिर वहाँसे काशीधामके असी घाटमें आकर तुलसीदासके उद्यानमें गुप्तभावसे रहने लगे। इस समय काशीधाममें आज कल जैसा असत् लोगोंका वास नहीं था। अधिकांश लोग धार्मिक और सात्विक स्वभावके थे। जब ये तुलसीदासके उद्यानमें रहते थे, तब कभी कभी लोलार्ककुण्डमें जाया करते थे। अनेक उत्कट रोगी रोगकी यन्त्रणासे बेचैन हो कर स्वामीजीकी शरण लेते और स्वामीजी दयापरवश हो कर उन्हें इस रोगसे आरोग्य कर देते थे। क्रमशः अनेक लोग आकर उन्हें तङ्ग करने लगे। बाद वे यह स्थान छोड़ कर दशाश्वमेधघाटमें रहने लगे। इनका तात्कालिक अमानुषिक कार्यकलाप बहुत आश्चर्यजनक था। वे कभी तो शीतकालकी दुःसह शीतमें और कभी जलमें रहते थे। फिर ग्रीष्मकालकी प्रचण्ड ग्रीष्मके उत्तापमें जब साधारण लोगोंको बाहर निकलनेका साहस नहीं होता, तब वे अवलीलाक्रमसे दुःसह उत्तप्त बालू पर सो जाया करते थे। ये भीख मांग कर नहीं खाते थे; जब कभी खाद्य पदार्थ सामने आ जाता था, तभी उसे खा लेते थे। इसमें किसी जाति वा पात्रापात्रका अथवा खाद्याखाद्यका विचार नहीं करते थे। वहांके लोग किसी समय इन्हें २०।२५ सेर खाद्य पदार्थ खिला देते थे। फिर थोड़ी देरके बाद ही यदि कोई कुछ खानेको दे देता तो उसे भी वे खानेसे मुँह नहीं मोड़ते थे। पहले तो ये सभीसे वार्त्तालाप किया करते थे, किन्तु यहाँ आ कर किसीसे बोलते तक न थे। जब शास्त्रका कोई दुर्बोध्य विषय आ पड़ता था, तब स्वामीजी ही मध्यस्थ बन

कर उनकी मीमांसा कर देते थे। कोशिश करके जो कुछ इन्हें खानेको दिया जाता था, उसे ही वे खुसीसे खा लेते थे। काशीधाममें अनेक धार्मिक मनुष्य आया करते हैं। एक दिन किसी धनी व्यक्तिने २० भरी सोनेका एक कंकण स्वामीजीके हाथमें पहना दिया। काशीके गुण्डोंने उसे देख कर सोचा कि यदि स्वामीको शराब पिला कर बेहोश कर दें, तब यह कंकण हम लोगोंके हाथ लग जाय। यह सोच कर उन्होंने स्वामीजीको ७।८ बोतल शराब पिला दी, किन्तु इससे स्वामीजीका कुछ भी अनिष्ट न हुआ। पीछे इन्होंने स्वयं अपने हाथसे सोनेका कंकण खोल कर उन दुष्टोंको दे दिया।

स्वामीजी सर्वदा नंगे घूमते फिरते थे। एक दिन पुलिस उन्हें पकड़ कर मजिष्ट्रेटके सामने ले गई। साहबने नंगा घूमनेसे मना किया और कहा, 'यदि तुम कपड़ा नहीं पहनोगे, तो हम अपना खाना तुम्हें खिला देंगे।' इस पर स्वामीजी बोले, 'पहले तुम हमारा खाना खाओ, तब हम तुम्हारा खाँयगे।" साहबने जब पूछा कि तुम्हारा खाना क्या है? तब स्वामीजी उसी समय मल त्याग कर उसे खाने लगे। यह देख कर साहबको ज्ञान हुआ और उन्होंने स्वामीजीको छोड़ कर यथेच्छा भ्रमण करनेकी अनुमति दी।

दयानन्द सरस्वतीने किसी समय काशीधाममें आकर हिन्दू देवदेवियोंके असारत्वका प्रमाण देते हुए तथा पुराणादिकी निन्दा करते हुए जनताको अपने मतमें पलटा लिया और "एकमेवाद्वितीयम्" यह मत सर्वसाधारणमें प्रचार किया। फल यह हुआ, कि बहुतसे लोग मन्त्रमुग्धकी नाईं अपने धर्मकी निन्दा करने लगे। दिनों दिन दयानन्दका दल पुष्ट होने लगा। बाद स्वामीजीके शिष्योंने यह संवाद उन्हें कह सुनाया। इस पर स्वामीजीने एक कागजके टुकड़े पर कुछ लिख कर उसे अपने शिष्य मङ्गलप्रसाद ठाकुरके हाथ दयानन्दके पास भिजवा दिया। कागज पढ़ कर दयानन्दने उसी समय काशीधाम छोड़ दिया। कागज पर जो कुछ लिखा था, वह दयानन्द और स्वामीजीके अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता था।

१८०५ शताब्दीमें, काशीधाममें पञ्चगङ्गाके गर्भमें तैलङ्ग स्वामीने "लाट" नामक एक पत्थरका शिवलिङ्ग स्थापित किया। इसके कुछ दिन बाद इन्होंने पञ्चगङ्गाके ऊपर, जिस आश्रममें ये रहते थे उस आश्रममें, बहुत समारोहसे तैलिङ्गेश्वर नामक एक दूसरे शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की। मङ्गलप्रसाद ठाकुर उसके सेवक नियुक्त हुए। इस आश्रममें स्वामीजीकी एक मूर्त्ति भी विद्यमान है। काशीवासी तथा यात्रीलोग उस मूर्त्तिका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं।

महात्मा तैलिङ्गस्वामीने देहत्याग करनेके १५ दिन पहले मृत्युका हाल अपने सेवकोंसे कह दिया था। जिस घरमें ये रहते थे, उस घरके सभी द्वार बन्द करा कर आप समाधिस्थ हुए थे। कालपूर्ण होने पर सन्ध्याके पहले दरवाजा खोला गया और आप बाहर निकल कर योगासन पर बैठे। पीछे इन्होंने आत्माको परब्रह्ममें लीन कर शरीरत्याग किया।

१८०८ शकाब्दीमें पौषशुक्ला एकादशीके दिन सन्ध्या समय स्वामीजीने अपना कलेवर बदला था।

इनका बनाया हुआ "महावाक्यरत्नावली" नामक एक ग्रन्थ मिलता है जिसमें निम्नलिखित उपदेशपूर्ण विषय लिखे हुए हैं—

बन्धनमोक्षवाक्य, विद्वन्निन्दावाक्य, उपदेशवाक्य, जीवब्रह्मैक्यवाक्य, मननवाक्य, जीवन्मुक्तवाक्य, स्वानुभूतिवाक्य, समाधिवाक्य, अष्ट स्वरूपवाक्य, पुंलिङ्गस्वरूपवाक्य, स्त्रीलिङ्गस्वरूपवाक्य, नपुंसकलिङ्गरूपवाक्य, आत्मस्वरूपवाक्य, फलावाक्य और विदेहवाक्य।

स्वामीजीने दीर्घजीवन भोग कर जीवन्मुक्ति प्राप्त किया। वे मुक्त पुरुष थे। शिष्यगण उन्हें द्वितीय विश्वेश्वरके जैसा मानते थे। इन महापुरुषके स्वरूपका वर्णन करना असाध्य है। इनकी कृपासे कितने ही लोगोंने दुःसाध्य रोगोंके पंजेसे छुटकारा पाया है। कितने ही लोगोंने इनका शिष्यत्व लाभ कर अपनेको धन्य समझा है।

इनके शिष्यगण इष्टदेवकी नाईं इनका भी नाम सबेरे स्मरण किया करते हैं।

तैलचोरिका (सं० स्त्री०) तैलं चोरयति चुर-ण्वुल

पृषो० साधुः। तैलपायिका, तेलिन नामका कीड़ा।

तैलचौरिका (सं० स्त्री०) तैलस्य चौरिकेव। तैलकीट, तेलका कीड़ा।

तैलत्व (सं० क्ली०) तैलस्य भावः तैल-त्व। तेलका भाव या गुण।

तैलद्रोणी (सं० स्त्री०) तैलपूर्णा द्रोणी मध्यलो० क०। प्राचीन कालका काठका एक प्रकारका बड़ा पात्र जिसकी लम्बाई आदमीकी लम्बाईके बराबर हुआ करती थी। इसमें तेल भरकर चिकित्साके लिये रोगी लिटाए जाते थे और सड़नेसे बचानेके लिये मृतशरीर रखे जाते थे। इस पात्रमें लेटे रहना—वातरोग, व्याधि, कुष्ठ-रोग, पङ्गु, वाधिर्य, मिन्मिन, गद्‌गद्, हन्वङ्गस्तब्ध, पृष्ठप्रचलित, पवन, गात्रकम्प, ग्रीवाभङ्ग, अपतन्त्र, क्षय, रुधिर, मूत्रकृच्छ्र और वस्ति आदि रोगोंमें हितकर है। राजा दशरथकी मृत्यु होने पर उनका शरीर कुछ समय तक तैलद्रोणीमें रखा गया था। तैलद्रोणीमें मृत शरीर रखनेसे जल्दी सड़ता नहीं।

"तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिं।
राज्ञः सर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुः कर्माण्यनन्तरम्॥"
(रामा० २।६६।१४)

तैलधान्य (सं० क्ली०) तैलोपयोगि धान्यं। तैलोपयोगी सतुष शस्य, धान्यका एक वर्ग जिसके अन्तर्गत तीनों प्रकारकी सरसों, दोनों प्रकारकी राई, खस और कुसुमके बीज हैं।

तैलनिर्यास (सं० पु०) गन्धराज।

तैलनी (सं० स्त्री०) तैलकिट्ट, खली।

तैलपक (सं० पु०) तैलं पिबति पा-क। तैलपायिका, तेलिन नामका कीड़ा। तेल चुरानेवाला दूसरे जन्ममें तेलपायिका-योनिमें जन्म लेता है।

तैलपर्णक (सं० पु०) तैलोक्तमिव पर्णं यस्य कप्। ग्रन्थिपर्ण वृक्ष, गठिवन।

तैलपर्णिक (सं० क्ली०) तैलं तैलयुक्तमिव पर्णमस्य वा तिलपर्णी वृक्ष उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्य ठन्। १ हरिचन्दन, लालचंदन। २ चन्दनभेद, एक प्रकारका चन्दन। पर्याय—श्रीखण्ड, चन्दन, भद्रश्री, तैलपर्णी, गन्धसार, मलयज और चन्द्रद्युति। ३ वृक्षविशेष, एक प्रकारका पेड़।

तैलपर्णी (सं० स्त्री०) तिलपर्णी वृक्षे जातः तत्र जातं इत्यण् ततो ङीप्। १ चन्दन। २ श्रीवास, सलईका गोंद। ३ सिल्लक, शिलारस या तुरुष्क नामका गन्धद्रव्य।

तैलपा (सं० स्त्री०) तैलं पिबति पा-क टाप्। तैलपायिका, तेलका कीड़ा।

तैलपायिका (सं० स्त्री०) तैलं पिबति पा-ण्वुल् टापि अतइत्वं। कीटविशेष, झींगुर, चपड़ा। पर्याय—[illegible]योषी, तैलचौरिका, तैलपा, तैलाम्बुका और खला धारा।

तैलपायी (सं० पु०) तैलं पिबति पा-णिनि। तैलपायिका, झींगुर।

तैलपिञ्ज (सं० पु०) तिलपिञ्ज, बंझा तिलवृक्ष।

तैलपिपीलिका (सं० स्त्री०) तैलप्रिया पिपीलिका। पिपीलिकाभेद, एक प्रकारकी चींटी। पर्याय—उदया और कपिजाङ्घिका।

तैलपिष्टक (सं० पु०) तैलस्य पिष्टकः। तैलकिट्ट, खली।

तैलपीत (सं० त्रि०) पीतं तैलं येन, समासे परनिपातः। पीततैलक, जिसने तेल पीया हो।

तैलफल (सं० पु०) तैलप्रधानं फलं यस्य। १ इङ्गुदी। २ विभीतक, बहेड़ा।

तैलभाविनी (सं० स्त्री०) तैलं भावयति सद्‌गन्धं करोति भू-णिच्-णिनि ङीप्। जातीपुष्प वृक्ष, चमेलीका पेड़।

तैलमर्दन (सं० क्ली०) तैलस्य मर्दनं। शरीरमें तेल लगानेकी क्रिया।

तैलमाली (सं० स्त्री०) तैलानां माला समूहो यत्र ततो ङीष्। वर्त्ति, तेलकी बत्ती, पलीता।

तैलम्पाता (सं० स्त्री०) तिलपातोऽस्यां वर्त्तते तिलपात-ञ् मुम्। स्वधा।

तैलयन्त्र (सं० पु०) तैलमर्दनार्थं यन्त्रं। तिलादि निष्पीड़नार्थं यन्त्रभेद, कोल्हू।

तैलवक (सं० पु०) तेलुङ्गपस्य विषयो देशः राजन्या वुञ्। तेलुराजाका देश।

तैलवल्ली (सं० स्त्री०) तैलाक्तेव वल्ली। लघुशतावरी, शतमूली।

तैलसाधन (सं० क्ली०) तैलं साधयति सुगन्धीकरोति

साध-णिच् ल्युट्। गन्धद्रव्यविशेष, शीतल चीनी, कबाब-चीनी। पर्याय—काकोल, कोलक, गन्धव्याकुल, कक्कोलक और कोषफल।

तैलस्फटिक (सं॰ पु॰) तैलाक्तः स्फटिक इव। १ तृण-मणि, कहरुवा। यह प्रायः समुद्रके किनारे होता है। २ अम्बर नामका गन्धद्रव्य।

तैलस्यन्दा (सं॰ स्त्री॰) तैलमिव स्यन्दति स्यन्द-अच्। १ श्वेत-गोकर्णी, सुरहटी। २ काकोली, एक प्रकारकी दवा। ३ भूमिकुष्माण्ड, भूआँवला।

तैलाक्त (सं॰ त्रि॰) तैलेन-आक्तं। तैलमर्दित, जिसमें तेल लगा हो।

तैलाख्य (सं॰ पु॰) तुरुष्क नामक गन्धद्रव्य, शिलारस नामका गन्धद्रव्य।

तैलागुरु (सं॰ क्ली॰) तैलाक्तमिव अगुरु। दाहगुरु नामक गन्धद्रव्य, अगरकी लकड़ी।

तैलाङ्ग (सं॰ पु॰) बकुल वृक्ष, मौरसीका पेड़।

तैलाटी (सं॰ स्त्री॰) तैलेन तैलप्रदानेन अटति दूरी भवति अट-अच् गौरा॰ ङीष्। वरटा नामका कीट, बर्रें, भिड़।

तैलाधार (सं॰ पु॰) तैलस्य आधारः। तेल रखनेका बरतन।

तैलाभ्यङ्ग (सं॰ पु॰) शरीरमें तेल मलनेकी क्रिया, तेल-की मालिश।

तैलाम्बुका (सं॰ स्त्री॰) तैलं अम्बु जलमिव पेयं यस्याः कप् टाप्। तैलपायिका, झींगुर।

तैलिक (सं॰ पु॰) तैलं पण्यत्वे नास्त्यस्य तैल-ठन्। तैलकार, तेली। तिली और तेली देखो।

तैलिकयन्त्र (सं॰ पु॰) कोल्हू।

तैलिन (सं॰ त्रि॰) तैलं निष्पातत्वेनास्त्यस्य तैल-इनि। १ तैलकार, जो तेल निकालता हो। २ तैलयुक्त जिसमें तेल मिला हो।

तैलिनी (सं॰ स्त्री॰) तैलं भक्षत्वेन आश्रयत्वेन वा ऽस्त्यस्य तैल-इनि-ङीप्। १ कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा। पर्याय—तैलकीट, षड़बिन्दु, दद्रुनाशिनी। २ दशावर्त्ती, तेलकी बत्ती।

तैलिशाला (सं॰ स्त्री॰) तैलिनः शाला। यन्त्रगृह, वह स्थान जहां तेल पेरनेका कोल्हू चलता हो।

तैलीन (सं॰ क्ली॰) तिलानां भवनं क्षेत्रं तिल-खञ्। (विभाषा तिलमाषेति। पा ५।२।४) तिलक्षेत्र, तिलका खेत। तिली देखो।

तैल्वक (सं॰ पु॰) लोध्र, लोध। १ (त्रि॰) २ जो लोधकी लकड़ीसे बना हो।

तैल्वणपूग (सं॰ क्ली॰) पूगफल, सुपारी।

तैव्रक (सं॰ त्रि॰) तीव्र-वुञ्। तीव्र, तेज। तीव्र देखो।

तैव्रदारव (सं॰ त्रि॰) तीव्रदारुण इदं रजतादित्वात् अञ्। तीव्रदारु सम्बन्धी।

तैश (अ॰ पु॰) आवेश-युक्त क्रोध, गुस्सा।

तैष (सं॰ पु॰) तैषी तिष्यनक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी अस्मिन् इति तैषी सास्मिन् पौर्णमासीति अण्। पौष-मास, पूसका महीना। शुक्ल प्रतिपदसे लेकर अमावस्या तक चान्द्र पौषमासका नाम तैष है। पौष मासकी पूर्णिमाके दिन तिष्य (पुष्या) नक्षत्र होता है।

तैषी (सं॰ स्त्री॰) तिष्येण नक्षत्रेण युक्ता तिष्य-अण्। पुष्यनक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी, पूसकी पूर्णिमा।

तैसा (हिं॰ वि॰) उस प्रकारका।

तोंद (हिं॰ स्त्री॰) पेटके आगेका बढ़ा हुआ भाग, पेटका फुलाव।

तोंदल (हिं॰ वि॰) तोंदवाला, जिसका पेट आगेकी ओर बढ़ा और खूब फूला हुआ हो।

तोंदा (हिं॰ पु॰) १ वह मार्ग जिसमें होकर तालाबका पानी निकलता हो। २ टीला या मट्टीकी दीवार जिस पर तीर या बन्दूक चलानेका अभ्यास करनेके लिये निशाना लगाते हैं। ३ राशि, ढेर।

तोंदी (हिं॰ स्त्री॰) नाभी, ढोंढी।

तोंदीला (हिं॰ वि॰) तोंदल देखो।

तोंदैल (हिं॰ वि॰) तोंदल देखो।

तोंबा (हिं॰ पु॰) तूंबा देखो।

तोंबी (हिं॰ स्त्री॰) तूंबी देखो।

तोई (हिं॰ स्त्री॰) १ कुरते आदिमें कमर पर लगी हुई पट्टी या गोट। २ चादर वा दोहर आदिकी गोट। ३ लँहगेका नेफा।

तोंवरघार—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यका एक जिला। यह अक्षा० २५° ४८' और २६° ५२' उ० तथा देशा० ७७°३३' और ७८° ४२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १८३८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३६८४१४ है। यहाँके प्रधान अधिवासी तोंवर ठाकुरके नाम पर ही जिलेका नामकरण हुआ है। इसमें गोहद नामका एक शहर और ७०४ ग्राम लगते हैं। यह चार परगनोंमें विभक्त हैं, अम्बा, गोहद, जोरा और नूरावाद। राजस्व १११२००० रु० का है।

तोक (सं० क्ली०) तौति पूरयति गृहं तु-वाहुलकात् क। १ अपत्य, लड़का वा लड़की। २ शिशु, बालक, बच्चा। ३ श्रीकृष्णचन्द्रके सखाओंमेंसे एक।

तोकक (सं० पु०) चाषपक्षी, नीलकण्ठ।

तोकरा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी लता। यह प्रायः अफीमके पौधों पर लिपट कर उन्हें सुखा देती है।

तोकवत् (सं० त्रि०) तोकं विद्यतेऽस्य तोक-मतुप् मस्य व। पुत्रादियुक्त, जिसके पुत्रपौत्र हों।

तोक्म (सं० पु०) तकन्ति हसन्ति आनन्दिता भवन्ति लोका अनेन तक-वाहुलकात् म ओत्वञ्च। १ हरिद्वर्ण अपक्व यव, हरा और कच्चा जौ। २ हरिद्वर्ण, हरा रंग। ३ मेघ, बादल। (क्ली०) ४ कर्णमल, कानकी मैल। ५ नवप्ररूढ़ यव, जौका नया अङ्कुर। ६ पल्लवयुक्त अङ्कुर, वह अंकुर जिसमें पत्ते निकल गये हों।

तोक्मन् (सं० क्ली०) तोक-मनिन् पृषोदरादित्वात् अतउत्वं। १ नवप्ररूढ़ यव, जौका नया अंकुर। २ अपत्य, लड़का, लड़की।

तोटक (सं० क्ली०) १ द्वादशाक्षरपाद छन्द, बारह अक्षरका वर्णवृत्त। इस छन्दके प्रत्येक चरणमें १२ अक्षर होते हैं। २ शङ्कराचार्यके चार प्रधान शिष्योंमेंसे एक। इनका दूसरा नाम नन्दीश्वर था।

तोटका (हिं० पु०) तोटका देखो।

तोड (हिं० पु०) १ तोड़नेकी क्रिया। २ नदी आदिके जलकी तेजधारा। ३ दुर्गकी दीवारों आदिका वह अंश जो गोलेकी मारसे टूट फूट गया हो। ४ प्रतिकार, मारक। ५ दहीका पानी। ६ कुश्तीका एक पेच जिससे कोई दूसरा पेच रद हो। ७ बार, झोंक, दफा।

तोड़जोड़ (हिं० पु०) १ युक्ति, चाल। २ चट्टे बट्टे लड़ा कर काम निकालना।

तोड़न (सं० क्ली०) तुड़ भावे ल्युट्। १ भेदन, छेद करनेकी क्रिया। २ दारण, चीरने या फाड़नेका काम। ३ हिंसन, मारनेका काम।

तोड़ना (हिं० क्रि०) १ भग्न, विभक्त या खण्डित करना। २ किसी वस्तुके अंगको किसी प्रकार अलग करना। २ किसी वस्तुका कोई अंश बेकाम करना। ४ किसी संगठन व्यवस्थाको नष्ट कर देना। ५ खरीदनेके लिए किसी पदार्थका दाम घटा कर निश्चित करना। ६ सेंध लगाना। ७ किसीका कुमारीत्व भङ्ग करना। ८ क्षीण दुर्बल करना। ९ निश्चयके विरुद्ध आचरण करना। १० दूर करना, अलग करना। ११ स्थिर न रहने देना, कायम न रहने देना।

तोड़ल (सं० क्ली०) तन्त्रभेद, एक तन्त्र।

तोड़ा—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत नीलगिरिनिवासी एक असभ्य जाति। किसीका मत है, कि तामिल 'तोरवम्' वा तोरम् शब्दसे तोड़ वा तोड़ा शब्द निकला है जिसका अर्थ है पशुपाल वा यूथ।

तोड़ोंके मतानुसार इनके चार पाँच यूथ हैं जिनमेंसे दो तो निःशेष प्रायः हैं।

इस जातिके लोग देखनेमें लम्बे, शरीरानुरूप गठन, वलिष्ट तथा स्वाधीन प्रकृतिके होते हैं। नाक लम्बी, ललाट चौड़ा, गण्डस्थल गोल, दिबुक और भौंके बाल खूब काले होते हैं। देखनेमें मानो ये पाश्चात्य सभ्य जातिकी एक शाखा हैं। इन लोगोंका जैसा स्वभाव है, वैसी ही पोशाक भी है, पर कुछ विशेषता है। ये लोग एक कपड़ेको दोहरा कर पहनते हैं। स्त्री पुरुष दोनों ही सिर पर पगड़ी धारण करते हैं।

तोड़ालोग स्वभावतः बहुत अपरिष्कार रहते हैं। स्त्री बहु विवाह कर सकती है। अकसर दो चार भाईमें एक स्त्री रहती है।

मवेशी आदिका पालन करना ही इन लोगोंकी प्रधान उपजीविका है। ये लोग प्रधानतः दूध, दही, घी और नाना प्रकारके दलहन अनाज खा कर रहते हैं।

ये लोग घने जङ्गलमें घर बना कर रहते हैं जि

मण्ड' वा 'मलत' कहते हैं। प्रति मण्डमें पाँच पाँच घर रहते हैं। जिनमेंसे तीन तो रहनेके लिए, एक दूध दही रखनेके लिए और शेष एक ग्वालेके लिये। ये सब घर दूरसे बादामी रंगके दीख पड़ते हैं। हरएक घर १० फुट ऊँचा. १५ फुट लम्बा और ९ फुट चौड़ा रहता है। सभी घर बांसके बने होते और उनमें गोबरका लेप दिया रहता है। घरका भीतरी भाग ६ से दश हाथ तक चौड़ा होता है। बीचमें दो फुट ऊँचा मट्टीका चबूतरा रहता है जिस पर हरिण वा भैंसके चमड़ा अथवा चटाई बिछा कर सोते हैं। उसके पश्चिमकी ओर भट्टी और भट्टीके चारों तरफ असबाब रहता है। दूधका घर सबसे बड़ा होता है। यह घर टटियासे दो बराबर भागोंमें विभक्त रहता है। एक भागमें दूध घी आदि रखे जाते और दूसरेमें उन लोगोंके इष्टदेवताकी पूजा होती है।

तोड़ा (हिं० पु०) १ सोने चाँदी आदिकी सिकरी। यह लच्छेदार और चौड़ी होती है। यह तोड़ा आभूषणकी तरह पहननेके काममें आता है। इसके कई भेद हैं। कोई कोई इसे पैरों, हाथों या गलेमें पहनते हैं। कभी कभी सिपाही लोग अपनी पगड़ीके ऊपर चारों ओर भी तोड़ा लपेट लेते हैं। २ रुपये रखनेकी टाट आदिकी थैली। ३ तट, किनारा। ४ वह मैदान जो नदीके सङ्गम आदि पर बालू मट्टी जमा होनेके कारण बन जाता है। ५ घाटा, कमी, टोटा। ६ रस्सी आदिका खण्ड। ७ नाचका एक टुकड़ा। ८ हलकी लम्बी लकड़ी, हरिस। ९ फलीता, पलीता। १० एक प्रकारकी साफ चीनी जो प्रायः मिस्रीकी तरह होती है और उससे ओला बनाते हैं। ११ वह लोहा जिसके चकमक पर मारनेसे आग निकलती है। १२ तीन बार तक ब्याई हुई भैंस।

तोड़ाई (हिं० स्त्री०) तुड़ई देखो।

तोड़ाना (हिं० क्रि०) तुड़ाना देखो।

तोड़ी (सं० स्त्री०) तुड़-अच् गौरा० ङीष्। १ तील साधन धान्यभेद, एक प्रकारका धान। २ वसन्तरागकी स्त्री। इसका ग्रह अंश और न्यास मध्यम है।

तोड़ी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी सरसों।

तोतई (हिं० वि०) जिसका रंग तोतेके रंगसा हो, धानी।

तोतरंगी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया।

तोतरा (हिं० वि०) तोतला देखो।

तोतराना (हिं० क्रि०) तुतलाना देखो।

तोतला (हिं० वि०) १ अस्पष्ट बोलनेवाला, जो तुतला कर बोलता हो। २ जिसमें उच्चारण साफ साफ न हो।

तोतम् (सं० अव्य०) तु-बाहुलकात्। १ कलत्र। २ त्वं, तुम।

तोता (फा० पु०) एक प्रसिद्ध पक्षी। इसके शरीरका रंग हरा और चोंच लाल होती है। इसकी दुम छोटी होती है। और पैरोंमें दो, आगे और पीछे दो इस प्रकार चार अंगुलियां होती हैं। यह मनुष्योंकी बोलीका अनुकरण अच्छी तरह कर सकता है। इसकी बोली बहुत मीठी होती है, इसीलिये लोग इसे अपने घरमें पालते हैं। और छोटे मोटे पद तथा "राम राम" सिखाते हैं। इसके कई भेद हैं, जिनमेंसे अधिकांश फल खाते और कुछ मांस भी खाते हैं। तोतेकी लम्बाई कमसे कम तीन फुटकी होती है। कुछ ऐसे भी तोते हैं जिनका स्वर बहुत कटु, अप्रिय होता है। नर और मादाका रंग प्रायः एकसा ही होता है। अमेरिकामें कई प्रकारके तोते मिलते हैं। हीरामन, कातिकनूरी, काकातूआ आदि तोतेकी जातिके हैं। जिस तरह दूसरे दूसरे पालतू पक्षी अपने मालिकके यहांसे भाग जाने पर फिर लौट आते हैं उस तरह तोते छूट जाने पर फिर कभी अपने पालनेवालेके पास नहीं आते। इसलिये तोता कृतघ्न पक्षी कहलाता है। २ बन्दूकका घोड़ा।

तोताचश्म (फा० पु०) तोतेकी तरह आंखें फेर लेनेवाला, वह जो बहुत बे-मुरौवत हो।

तोताचश्मी (फा० स्त्री०) बेमुरौवती, बेवफाई।

तोताराम—हिन्दी तथा अंग्रेजीके एक प्रसिद्ध विद्वान्। इनका जन्म संवत् १९०४में कायस्थकुलमें हुआ था। कुछ दिन सरकारी नौकरी करके इन्होंने अलीगढ़में वकालत जमाई। वकालतमें इन्हें खासी आमदनी होती थी। इन्होंने कुछ दिन 'भारतबन्धु' नामक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था। केटो-कृतान्त नामक नाटकग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ है। आप वाल्मीकीय रामायणका राम-रामायण नामक एक उल्था स्वच्छ दोहा चौपाइयोंमें

बनाते थे, लेकिन वह अधूरा हो रह गया। संवत् १८५८में आपका देहान्त हो गया।

तीती (फा० स्त्री) १ तोतेकी मादा। २ उपपत्नी, रखनी।

तोत्र (सं० क्ली०) तुद्यते ताड्यतेऽनेन तुद-ष्ट्रन्। गवादि ताड़नदण्ड, वह छड़ी या चाबुक आदि जिससे जानवर हाँके जाते हैं।

तोत्रवेत्र (सं० क्ली०) विष्णुदण्ड, विष्णुके हाथका दण्ड।

तोद (सं० पु०) तुद-भावे घञ्। १ व्यथा, पीड़ा, तकलीफ। (त्रि०) तुदतीति तुद-अच्। २ पीड़ादायक, कष्ट पहुंचानेवाला।

तोदन (सं० क्ली०) तुद्यतेऽनेन तुद-करणे ल्युट्। १ तोत्र, चाबुक, कोड़ा। २ व्यथा, पीड़ा। ३ फलवृक्षविशेष, एक प्रकारका फलदार पेड़। इसके फलके गुण-कषाय, मधुर, रूक्ष, कफ और वायुनाशक।

तोदपर्णी (सं० स्त्री०) तोदं तोदकं पर्णमस्याः गौरा० ङीष्। कुधान्यभेद, एक प्रकारका खराब धान।

तोदरी (फा० स्त्री०) एक प्रकारका बड़ा कँटीला पेड़ जो पारस्य देशमें पाया जाता है। इसमें पतले छिलकेवाले फूल लगते हैं। इसके बीज औषधोपयोगी होनेके कारण भारतवर्षके बाजारोंमें आकर बिकते हैं। ये बीज तीन प्रकारके होते हैं, लाल, सफेद और पीले। बीजोंका गुण—रक्तशोधक, पौष्टिक और बलवर्द्धक है। इनके सेवनसे शरीरका रंग खूब खुल जाता तथा चेहरेका रंग लाल हो जाता है।

तोदी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका ख्याल।

तोन्नूर—महिसुर जिलाके अन्तर्गत श्रीरङ्गपट्टम् तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा० १२° ३३´ उ० और देशा० ७६° ३९´ पू०के मध्य श्रीरङ्गपट्टम्से १० मील उत्तरपश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ६४३ है। १३५८ ई०की बनाई हुई यहां एक मुसलमान समाधि है। इसके पास ही मोती नामका एक तालाब भी है। इसका प्राचीन नाम तोन्दनूर है। आधुनिक नाम १७४६ ई०में दक्षिणप्रदेशके सूबेदार द्वारा रखा गया है।

तोप (तु० स्त्री०) एक प्रकारका बहुत बड़ा अस्त्र। यह प्रायः दो या चार पहियोंकी गाड़ी पर रखा रहता है। इसमें ऊपरकी ओर बन्दूककी नलीकी नाईं एक बहुत बड़ा नल लगा रहता है जिसमें छोटे छोटे गोले रख कर युद्धके समय शत्रुओं पर चलाये जाते हैं। गोले चलानेके लिये नलके पिछले भागमें बारूद रख कर पलीते आदिसे आग लगा दी जाती है। तोपके कई भेद हैं—छोटी बड़ी, मैदानी और जहाजी। प्राचीन कालमें केवल दो प्रकारकी तोपें काममें लाई जाती थीं, एक मैदानी और दूसरी छोटी। उनके खींचनेके लिये बैल या घोड़े जोते जाते थे। इसके सिवा और एक प्रकारकी तोप होती थी जिसके नीचे पहिये नहीं रहते थे। इस प्रकारकी तोपें घोड़ों, ऊटों या हाथियों पर रख कर रणभूमिमें पहुंचायी जाती थीं। आजकल यूरोप आदि देशोंमें बहुत बड़ी बड़ी जहाजी, मैदानी और किले तोड़नेवाली तोपें तैयार होती हैं। उनमेंसे किसी किसी तोपका गोला ७५ मील तक जाता है। और एक प्रकारकी तोपें हैं जो बाइसिकिलों, मोटरों और हवाई जहाजों आदि परसे चलाई जाती हैं। इनका मुंह ऊपरकी ओर रहता है। किसी प्रसिद्ध पुरुषके आगमन पर अथवा किसी महत्वपूर्ण घटनाके समय बिना गोलेके बारूद भर कर शब्द किया जाता है।

तोपखाना (फा० पु०) १ तोपें तथा उनका कुल सामान रहनेका स्थान। २ गाड़ियों आदि पर लदीहुई युद्धके लिये सुसज्जित चारसे आठ तोपोंका समूह।

तोपची (अ० पु०) वह जो तोप चलाता हो, गोलन्दाज।

तोपचीनी (हिं० स्त्री०) चोबचीनी देखो।

तोपड़ा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कबूतर। २ एक प्रकारकी मक्खी।

तोपा (हिं० पु०) एक प्रकारकी सिलाई जो एक टाँकेमें की हुई रहती है।

तोपाना (हिं० क्रि०) तोपवाना देखो।

तोपास (हिं० पु०) वह जो झाड़ू देता हो, झाड़ूबरदार।

तोफगी (फा० स्त्री०) अच्छापन, उमदा होनेका भाव, खूबी।

तोबड़ा (फा० पु०) चमड़े या टाट आदिका थैला। इसमें दाना भर कर घोड़ेके खानेके लिये उसके मुँह पर बांध दिया जाता है।

तोबा (अ० स्त्री०) पश्चात्ताप, भविष्यमें दुष्कृत्य न करनेकी प्रतिज्ञा।

तोम (हिं० पु०) समूह, ढेर।

तोमड़ो (हिं० स्त्री०) तूंबड़ी देखो।

तोमर (सं० पु०-क्लो०) तुम्पति हिनस्ति तुम्प बाहुलकात् अर प्रत्ययेन साधुः। १ प्राचीन भारतीय युद्ध यन्त्रविशेष, भालेकी तरहका एक प्रकारका अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीन कालमें होता था। चलती बोलीमें इसे शर्पला या शापल कहते हैं। यह शापल दो प्रकारका होता है, एक दण्डमय और दूसरा लौहमय। इसके तीन भेद हैं, उत्तम, मध्यम और अधम। पाँच हाथका उत्तम, साढ़े चार हाथका मध्यम और चार हाथका अधम माना गया है। इसी प्रकार छह उंगलीका तोमर उत्तम, साढ़े पांच उँगलीका मध्यम और पांच उंगलीका अधम है। २ हस्तक्षेप्य दण्डविशेष, वह बरछा जिसकी मूंठ बांसकी हो। ३ जनपदविशेष, एक देशका नाम। ४ इसी देशके अधिवासी। ५ पिङ्गल छन्दशास्त्रोक्त, ९ अक्षरयुक्त छन्दोविशेष, एक प्रकारका छन्द जिसमें केवल ९ मात्रायें रहती हैं।

तोमर—राजस्थानका एक प्राचीन राजपूत क्षत्रिय राजवंश। इस श्रेणीके राजपूत अब प्रायः नहींके बराबर हैं। आगरेमें प्रायः तीन हजार और बांदा, झांसी तथा फरक्काबादमें बहुत थोड़े घर हैं। राजपूतानेमें ये लोग तुयार नामसे प्रसिद्ध हैं। यह नाम किस प्रकार पड़ा, इसका कोई ऐतिहासिक सूत्र नहीं मिलता। अबुलफजलकी आइन-इ-अकबरीमें तुयार वंशका उल्लेख है। कनिङ्‌हम साहबने बीकानेर, गड़वाल, कुमायूंन और ग्वालियरसे इस विषयमें जो सब हस्तलिखित इतिहास आदि संग्रह किये हैं, उन सबको मिला कर यदि देखा जाय, तो अबुलफजलका लेख ठीक प्रतीत होता है। अबुलफजलके मतानुसार दिल्लीमें तुयारवंशीय निम्नलिखित राजगण राज्य कर गये हैं।

नाम	राज्यारोहण खृष्टाब्द,	राज्य व० मा० दि०
१ अनङ्गपाल	७३६।३।०	१८।०।०
२ वासुदेव	७५४।३।०	१९।१।१८
३ गाङ्गय	७७३।४।१८	२१।३।२८
४ पृथिवीपालमल्ल (पृथ्वी)	७९४।८।१६	१९।६।१९
५ जयदेव	८१४।३।४	२०।७।२८
६ वीर वा हीरापाल	८३४।११।३	१४।४।९
७ उदयराज	८४९।३।४२	२६।७।११
८ विजय वा वच्च	८७५।१०।२३	२१।२।१३
९ विच्च वा अनेक	८९७।१।६	२२।३।१६
१० रिच्चपाल	९१९।४।२२	२१।६।५
११ सुखपाल वा अनेकपाल	९४०।१०।२७	२०।४।४
१२ गोपाल वा महीपाल	९६१।३।१	१८।३।१५
१३ सल्लक्षणपाल	९७९।६।१६	२५।१०।१०
१४ जयपाल (२य)	१००५।४।२६	१६।४।३
१५ कुमारपाल	१०२१।८।२९	२९।९।१८
१६ अनङ्गपाल (२य) वा अनेकपाल (२य)	१०५१।६।१७	२९।६।१८
१७ तेजपाल विजयपाल	१०८१।१।५	२४।१।६
१८ महीपाल	११०५।२।११	२५।२।२३
१९ अनङ्गपाल (३य) वा अक्रूरपाल	१५३०।१।१४ अर्थात् (११५१।७।१९)	२१।२।१५

प्रवाद है, कि तोमरवंशीय अनङ्गपाल नामक एक राजाने प्राचीन दिल्ली वा इन्द्रप्रस्थ नगरका पुनरुद्धार किया था। संवत्प्रतिष्ठाता विक्रमादित्यके बाद ७९२ वर्ष तक दिल्ली नगर बिलकुल उजाड़ था। अन्तमें, ७३६ ई०में तोमरवंशीय अनङ्गने इसे पुनः बसाया।

दिल्ली देखो।

१म अनङ्गपालके परवर्त्ती कई एक राजाओंकी राजधानी दिल्लीमें ही थी। पीछे न मालूम, क्यों वे राजधानी उठा कर कन्नौज ले गये। महमूदके ऐतिहासिक ओटवी कन्नौजमें तोमरवंशीय राजा जयपालका उल्लेख कर गये हैं। अनङ्गपालसे १४ पीढ़ी नीचे थे। ९१५ ई०में जब सुविख्यात मुसलमान भौगोलिक मसुदी इस देशमें आये थे, तब उन्होंने भी कन्नौजमें तोमरवंशीय राजाको राज्य करते देखा था।

फिरिस्ताका कहना है, कि कन्नौजराज जयपाल महमूद गजनीसे १०१७ ई०में परास्त हो कर उनके अधीन हो गये थे। उनके पार्श्ववर्त्ती राजगण मुसलमानोंके

हाथसे कन्नौजका उद्धार करनेके लिए जयपालके विरुद्ध हो गये। १०२१ ई०में महमूदको जब यह खबर मिली तब वे पुनः इस देशको लौटे, लेकिन उनके पानेके पहले ही जयपाल मार डाले गये थे। पीछे १०२२ ई०में महमूदका जब कन्नौज पर अधिकार हो गया, तब तोमरवंशीय राजकुमारने वहांसे ३ दिनके रास्तेसे दूर गङ्गाके पूर्वीय किनारे वारि नामक स्थान पर राजधानी स्थापित की। मुसलमानोंके दो बार आक्रमणसे कन्नौजकी रक्षा नहीं होनेसे ही जहाँ तक समझते हैं कि जयपालके परवर्ती कुमारपाल बारि नामक स्थानमें राजधानी उठा ले गये थे। इस समय कन्नौजके राठोर राजवंशके प्रतिष्ठाता चन्द्रदेवने पुनः कन्नौज राज्यका मुसलमानोंके कवलसे उद्धार किया। चन्द्रदेवके पुत्रपौत्रादिके राज्यारोहणके विषयमें जो खोदितलिपि मिली है, उससे जाना जाता है कि चन्द्रदेवके पुत्र मदनपाल १०९७ ई०में राजा थे। इस हिसाबसे १०५० ई०में चन्द्रदेवका राजा होना स्वीकार किया जा सकता है। उस समय तोमरवंशीय द्वितीय अनङ्गपाल राज्य करते थे। शायद उन्होंने दिल्ली नगरमें फिरसे राज्यस्थापन और लालकोट नामका दुर्ग स्थापन किया था। लालकोटका भग्नावशेष अब भी विद्यमान है। दिल्लीके विख्यात लौहस्तम्भमें एक खोदित लिपि है जिससे अनङ्गपाल द्वारा लालकोटका बनाया जाना साबित होता है। उसमें "संवत् दिहली ११०९ अनंगपाल वहि" लिखा है; अर्थात् ११०९ संवत्में (१०५२ ई०में) अनङ्गपालने दिल्लीको बसाया। फिर कुमायूंके ग्रन्थमें लिखा है—"कि दिल्लीका कोट कराया लालकोट कहाया।' यानि दिल्लीका दुर्ग निर्माण कर उसका नाम लालकोट रखा। लालकोट नाम कुतुबउद्दीन्के समय तक प्रचलित था' वह इस वचनसे प्रमाणित होता है। "लालकोट तया नगारी बाजती था" कुतुब-उद्दीनने यह नियम चला दिया था, कि लालकोटकी सीमाके अन्दर कोई नगाड़ा नहीं बजा सकता। यही नियम कनिंहमके समयमें भी प्रचलित था। अनङ्गपाल लालकोटके मध्य 'अनङ्गपाल' नामक १६९ फुट लंबा और १५२ फुट चौड़ा एक जलाशय और २७ देवमन्दिर बनवा गये हैं। अनङ्गपालका जब कुतुब-मीनार बनाते समय सूख गया है। अब केवल शुष्क गर्भ मात्र रह गया है। उक्त मन्दिर भी मुसलमान तहस-नहस कर डाले गये हैं। दुर्गका अंश विशेष अभी पूर्ववत् दृढ़ है। इन्होंने बलरामगढ़ जिलेमें अनेकपुर नामक एक नगर भी बसाया था। यह नगर आज भी उसी नामसे ग्रामके रूपमें वर्त्तमान है। इनके पुत्र सूर्यपालने अनेकपुर नगरके समीप १०६१ ई०में सूर्यकुण्ड नामका तालाब खुदवाया जो अब भी मौजूद है। इनके तेजपाल (विजयपाल) नामक एक पुत्रने गुड़गांव और अलवरके बीच तेजोया नगर, दूसरे एक पुत्र इन्द्रराजने 'इन्द्रगढ़', रङ्गराजने अजमेरके निकट तारागढ़ और अचलराजने भरतपुर तथा आगराके बीच "अचेव" वा अचनेर नामका नगर स्थापित किया। द्रौपद नामक इनके और एक पुत्र थे जो असि वा हाँसीमें रहते थे। इनके एक पुत्र शिशुपालने शीर्ष वा शिशवल स्थापन किया जो अभी शिरसीपाटन नामसे मशहूर है। ये सब प्रवाद यदि सत्य तो कह सकते हैं, कि द्वितीय अनङ्गपालका राज्य उत्तरमें हांसीसे ले कर दक्षिणमें आगरा, पश्चिममें अलवार और अजमेरसे ले कर पूर्वमें सम्भवतः गङ्गा नदी तक विस्तृत था।

दन्त-कहानीमें तोमरवंशीय कर्णपाल नामक एक विख्यात राजाका नाम पाया जाता है। इनके भी छह लड़के थे। वे भी नगरादि स्थापन कर गये हैं। इनमेंसे एकका नाम था बचदेव। इन्होंने नरनोलके समीप 'बाघोर' और अजमेर-टोडाके समीप 'बाघोरा' वा 'बाचेरा' नगर स्थापित किया; इसी प्रकार नागदेवने अजमेरके निकटस्थ 'नागोर' और 'नागद', कृष्णरायने 'किशनगढ़' त्रयनिलरायने अलवारके पश्चिम 'नारायणपुर', श्यामसिंहने अलवार और जयपुरके बीच 'अजबगढ़' और हरपालने अलवारके पश्चिम 'हरसोरा' और उत्तरमें 'हरसोली' नगर स्थापित किया है। इसके सिवा अलवारके उत्तरपूर्वमें जो 'बहादुरगढ़' है, वह स्वयं कर्णपालका बसाया हुआ है।

कुतुब-मीनारसे एक कोस दूर महीपाल नामक ग्राम भी इसी वंशके राजा महीपालकी कीर्त्ति है। इस वंशमें महीपाल नामके दो राजा हो गये हैं; उनमेंसे यह

किनकी कीर्त्ति है, नहीं कह सकते।

दिल्लीके दक्षिण-पश्चिममें तुयारवती वा तोमरावती नामका एक जिला है। वहां आज भी एक तोमरवंशीय सरदार रहते हैं। धौलपुर और ग्वालियरके बीच तोमरगढ़ वा तुयारगढ़ नामका जो एक जिला और दुर्ग है, वहांके जमींदार भी इसी तोमरवंशके हैं।

द्वितीय अनङ्गपालके बाद तीन तोमरराज दिल्लीमें राज्य कर गये हैं। उनमेंसे अन्तिम तृतीय अनङ्गपाल अक्रूरपालके समयमें चौहान विशालदेवने दिल्ली पर अधिकार जमाया। कनिंहमके मतानुसार यह घटना ११५१ ई०में घटी।

विशालदेवके पुत्र सोमेश्वरने तृतीय अनङ्गपालकी कन्यासे विवाह किया था। इसीके गर्भसे सुविख्यात पृथ्वीराज वा राय पिथौराका जन्म हुआ। ११६९ ई०में ये मातामहसे गोद लिये गये।

ग्वालियरमें प्रायः दो शताब्दतक एक तोमर वंशने राज्य किया था। सुहानिया वा वर्त्तमान तोमरगढ़के जमींदार अपनेको दिल्लीके अनङ्गपालके वंशधर बतलाते हैं। इस वंशके इतिहास-लेखक कवि खड्गराय तोमरवंशकी पाण्डुवंशोद्भव कह कर वर्णन कर गये हैं। राजपूत लोग भी इसे स्वीकार करते हैं।

कनिंहम साहबको १८६४-६५ ई०में वहांके जमींदारोंसे एक वंशपत्रिका मिली थी। शिलालिपिमें भी ग्वालियरराज ८ तोमर-नृपतिके नाम पाये गये हैं। खड्गरायके इतिहासके साथ मिला कर कनिंहमने ग्वालियरकी तोमरराजवंश तालिका इस प्रकार स्थिर की है।

नाम	ई०सन्
तेजपाल	१०८१
मदनपाल	११०५
खुण्डगिर	११३०
रतनसिंह	११५१
श्यामचन्द	११७५
अचलब्रह्म	१२००
वीरसहाय	१२२५
मदनपाल	१२५०
भूपति	१२७५
कुमारसिंह	१३००
घाटमदेव	१३२५
ब्रह्म	१३५०
राजा वीरसिंहदेव	१३७५
उद्धारणदेव, विरमदेव और लक्ष्मीसेन	१४००
गणपतिदेव	१४१८
डुङ्गड़सिंह	१४२५
कीर्त्तिराय वा कीर्त्तिसिंह	१४५४
कल्याणसहाय वा कल्याणमल्ल	१४७९
मानसिंह	१४८६
विक्रमादित्य	१५१६

राजा वीरसिंहसे ले कर विक्रमादित्य तक हो यथार्थमें ग्वालियरके राजा हुए। विक्रमके समय १५१८ ई०में इब्राहिम लोदीने ग्वालियर पर अधिकार किया। पीछे यह राजवंश जमींदारके रूपमें गिने जाने लगे। उक्त राजाओंके बाद खड्गरायके ग्रन्थमें और भी कई एक राजाओंके नाम, "मिलते हैं, जैसे—

रामसहाय	१५२६
शालिवाहन	१५६५
श्यामराय	१५८५
संग्रामसहाय	१६३०
कृष्णसहाय	१६७०

बाद तोमरगढ़की वंशपत्रिकामें दो और नाम हैं—

विजयसिंह	१७१०
हरिसिंह	......

सम्राट् अलाउद्दीन् खिलजीके समयमें वीरसिंहदेव ग्वालियरके स्वाधीन राजा हुए। यह सब ऐतिहासिकोंका कहना है; किन्तु १३१५ ई०में अलाउद्दीन्की मृत्यु हुई, सुतरां वीरसिंहका अभ्युदय और अलाउद्दीन्की मृत्यु इन दो घटनाओंमें प्रायः ६०।७० वर्षका फर्क पड़ता है। खड्गरायने इनका समय उल्लेख करते समय कहा है, कि दिल्लीमें नसरत् खां प्रधान वजीर थे। फिर फजल अली कहते हैं, कि सिकन्दरखाँ प्रधान वजीर थे। इन दोनोंका नाम ले कर यदि विचार किया जाय, तो ऐसा अनुमान होता है, कि वीरसिंह, तमुरके भारत आक्रमण करनेके कुछ पहले आविर्भूत हुए। इसी

समय सिकन्दर, हुमायूं और नसरत दिल्लीकी आधिपत्य पानेके लिए आपसमें झगड़ रहे थे।

वीरसिंह ग्वालियरके उत्तर दन्दरोली नामक स्थानके जमींदार थे। ये ही बादशाहके प्रधान वजीरके किसी कार्यमें नियुक्त हो कर उनके पास रहा करते थे। इसी अवसरमें उन्होंने बादशाहसे ग्वालियरके दुर्गकी अध्यक्षता और शासनकर्तृत्व प्राप्त किया था। फजल अली कहते हैं; एक सैयद उस समय ग्वालियर-दुर्गके अधिपति थे, वे दुर्गका अधिकार छोड़ देनेको राजी न हुए। अन्तमें वीरसिंहने सैयद और उनके सेनापतियोंको निमन्त्रण कर भोजनमें अफीम मिला दी। नशामें जब वे बेहोश हो गये, तब वीरसिंहने उन्हें कैद कर दुर्ग पर अपना अधिकार जमा लिया।

वीरसिंह आदि कई एक पुरुष दिल्लीके अधीन रह कर खिजिर खाँको कर देते थे। वीरसिंहके बाद विरमदेव राजा हुए। शिलालिपिमें इसका प्रमाण है; किन्तु खड्गरायके ग्रन्थमें राजा उद्धारणका नाम मिलता है। ये वीरसिंहके भाई थे, यथार्थमें ये राजा हुए वा नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं है। विक्रमदेवके बाद शिलालिपिमें गणपतिदेवका नाम पाया जाता है। लक्ष्मीसेनके राज्यप्राप्तिका कोई प्रमाण नहीं है, केवल खड्गरायके ग्रन्थमें उनके नामका उल्लेख है।

१४२४ ई०में दुङ्गड़सिंहके राजा होने पर मालवके होसङ्गशाहने ग्वालियरका अवरोध किया। अन्तमें दिल्लीसे मुबारकशाहने आ कर उन्हें परास्त किया। मुबारक शाह दुङ्गड़सिंहसे कर वसूल कर दिल्लीको वापिस आये थे। पीछे १४३२ ई० तक उन्होंने कर न दिया। और तब सुलतान महमूद बहुत बिगड़े और स्वयं बहुत सी सेनाओंको साथ ले ग्वालियर पर धावा मारा। जब दुङ्गड़सिंहने उपायका रास्ता न देखा, तब उन्होंने अपनी राजधानीको सम्राट्की क्रोधाग्निसे बचनेके लिए मालवके अधिकृत नरवर दुर्गको जा घेरा। सम्राट्की सेना ग्वालियरको छोड़ नरवरदुर्गकी रक्षाके लिए चल पड़ी। दुङ्गड़सिंह नरवर-दुर्गमें परास्त हुए। वे निराश हो कर ग्वालियर आये और सम्राट्की सेना विजयी होकर दिल्लीको वापिस चली गई। ग्वालियर कुशलसे बच गया। दुङ्गड़सिंहके दीर्घ राजत्वकालमें ही ग्वालियरके पार्वतीय भास्करकर्मोंका सूत्रपात हुआ। उस समय इनकी क्षमता उत्तर-भारतमें बहुत प्रसिद्ध थी। समय समय पर दिल्ली, जौनपुर और मालवके मुसलमान राजगण ग्वालियरसे सहायता लेते थे।

दुङ्गड़सिंहके बाद उनके लड़के कीर्त्तिसिंह राजा हुए। इन्हींके समयमें पार्वतीय गुहामन्दिरका काम समाप्त हुआ। ये पहले जौनपुरके साथ मिल कर दिल्लीके प्रति विरुद्धाचरण करते थे। पर इनके लड़के कीर्त्तिराय और पृथ्वीरायने दिल्लीका पक्ष अवलम्बन किया था। बहलोल लोदी और जौनपुरके राजा महम्मद शर्कीके साथ जो युद्ध हुआ, उसमें पृथ्वीराय फते खाँ हाजीके हाथसे मारे गये। पीछे कीर्त्तिरायने फते खाँको परास्त कर उसे कैद कर लिया और सिर काट कर बहलोलको उपहारमें भेज दिया। १४६५ ई०में जौनपुर-पति हुसेन शर्कीने एक वृहत् सेनाको साथ ले ग्वालियर दखल किया। कीर्त्तिराय सन्धि करके कर देनेको राजी हुए और जौनपुरका पक्ष ग्रहण किया। जौनपुरपतिकी माताके मरने पर कीर्तिरायके पुत्र कल्याणमल्ल जौनपुरमें आत्मीयताकी रक्षा करने आये थे। १४७८ ई०में बहलोल रांविरी नामक स्थानमें हुसेन शर्कीको सम्पूर्ण रूपसे परास्त कर ये ग्वालियर पहुंचे। कीर्त्तिसिंहने तुरंत ही लाखों रुपये, तम्बू, घोड़े, ऊँट आदि भेंट दे कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और बाद उनके साथ काल्पी पर चढ़ाई करनेके लिए चल दिये। १४७८ ई०में कीर्त्तिसिंहकी मृत्यु हुई। पीछे कल्याणमल्ल राजा हुए। इनके थोडे राजत्वकालमें कोई उल्लेखयोग्य घटना न हुई।। १४८६ ई०में कल्याणमल्लके पुत्र मानसिंह राजा हुए। ये सिंहासन पर बैठते न बैठते बहलोल लोदीसे आक्रान्त हुए। पीछे उन्होंने ८० लाख रुपये दे कर उनसे छुटकारा पाया। १४८८ ई०में बहलोलकी मृत्यु होने पर सिकन्दर लोदीने सम्राट् हो कर ग्वालियरराज मानसिंहको पोशाक आदि भेंटमें दीं। मानसिंहने भी अपने भतीजेके साथ एक हजार सेना और उपहार इत्यादि भेज कर सम्राट्को संवर्द्धना की। १५०१ ई०में नेहाल नामक एक दूत दिल्लीको भेजा गया।

सम्राट्ने जब उससे ग्वालियरका समाचार पूछा, तब उसने बहुत अभद्रतासे उत्तर दिया। इस पर वह उसी समय दरबारसे निकाल बाहर किया गया और सिकन्दरने स्वयं ग्वालियरके विरुद्ध यात्रा की। मानसिंहने सैयद, बाबर खाँ और रायगणेश नामक तीन पलातक व्यक्तियोंको सम्राट्के हाथ सौंप, अपने लड़केको उनके पास उपहारके साथ भेजा। उसी समयसे युद्ध बन्द हो गया, लेकिन १५०५ ई०में सिकन्दरने पुनः ग्वालियर पर चढ़ाई कर दी। इस बार देशके मनुष्य भी उनके विरुद्ध हो गये। वे देशीय लोगोंके चक्रान्तमें पड़ कर भूखसे कातर हो लौट आनेको बाध्य हुए। अन्तमें शत्रुके भयसे उन्हें एक गुप्त स्थानमें छिपना पड़ा और वहांसे किसी प्रकार भाग कर प्राण बचाया। उनकी सारी सेना नष्ट हो गई। सिकन्दर जब ग्वालियर दुर्ग जीतनेमें हताश हो गये, तब दूसरे वर्ष उन्होंने ग्वालियरके अधीन हिम्मतगढ़को ही जीत कर सम्मानरक्षा की। १५१७ ई०में ग्वालियरको तहस-नहस कर डालनेकी इच्छासे उन्होंने दूर दूर देशोंके सामन्तगण निमन्त्रण किया। इसी बीच सिकन्दरकी मृत्यु हो गई। इब्राहिम लोदी सम्राट् हो कर उनके विद्रोही भाई जलालखाँको आश्रय देनेके अपराधमें मानसिंहके प्रति बहुत क्रोधित हुए। तदनुसार ३० हजार अश्वारोही और ३ सौ हाथी अजीम हुमायूँ नामक सेनापतिके अधीन ग्वालियरके विरुद्ध भेजे गये। अन्यान्य स्थानोंके और भी सात सेनापति अजीमके पच्चावलम्बन करनेमें नियुक्त हुए। इस युद्धमें ग्वालियरका दुर्ग हाथ आ गया और युद्धके थोड़े दिनोंके बाद मानसिंह इस लोकसे चल बसे। राजा मानसिंह बहुत साहसी, वीरपुरुष थे, शत्रु-मित्र दोनोंसे एक ही तरह सम्मानित होते थे। कभी भी किसीके प्रति इन्होंने अत्याचार न किया। नियामत उल्ला नामक एक ऐतिहासिक उनकी प्रशंसामें कह गये हैं कि हिन्दू रहने पर भी मुसलमानोंके प्रति कभी बुरी निगाह न डाली, बाहरसे तो हिन्दू-भाव टपकता था, पर भीतर मुसलमानी-भाव खचाखच भरा था। इन्होंने ही ग्वालियरकी 'मोती झील' बनवाई। तोमरगढ़ और जितवरजिलामें जितनी झीलें हैं वे भी राजा मानसिंहकी ही कीर्त्ति है। स्थापत्यविद्यामें, भास्करशिल्पमें और सङ्गीतविद्यामें इनका बड़ा प्रेम था। उनका प्रासाद और उनकी बनाई संगीतावली ही इसका निदर्शन है। वे ही गुर्जरी नामक मिश्ररागिणीके प्रतिष्ठाता थे। उन्होंने अपनी गुर्जरीमहिषी मृगनयनाको खुश करनेके लिए इस नव सुरका नामकरण किया। उनसे ही गुर्जरीरागिणीको बहुलगुर्जरी मल्लगुर्जरी, मङ्गलगुर्जरी और विशुद्धगुर्जरी ये चार विभाग कल्पित हुए हैं। इनके दो सौ महिषियोंमेंसे मृगनयना ही श्रेष्ठ तथा रूपवती थी। राजकार्यमें भी ये खूब विलक्षणा थी जिसकी तारीफ अबुलफजल कर गये हैं।

इनके बाद इनके लड़के विक्रमादित्यने कुवड़ीमें राज्यलाभ किया। इनके समयमें अजीम हुमायूँ बादिलगढ़का तोरण जला कर उस पर अधिकार कर बैठा। यही ग्वालियरका पहला द्वार था। दूसरे और तीसरे तोरणमें घनघोर युद्ध हुआ, अन्तमें वे भी मुसलमानोंके हाथ लगे। लक्ष्मणपुर नामक चौथे तोरण पर अधिकार करते समय दिल्लीके एक प्रधान सेनापति ताजनिजामका मृत्यु हो गई। जब अन्तिम तोरण हतियापुर पर अधिकार करने आये, तब राजा विक्रमने अपमानित तथा दुर्दशाग्रस्त होनेके भयसे आत्मसमर्पण किया। राजा आगरा लाये गये। यहां सम्राट्ने उन्हें शमसाबाद प्रदेश जागीरमें दिया। ग्वालियरका तोयर या तोमरवंश इसी प्रकार ध्वंस हो गया। मुगलके साथ पानीपतकी लड़ाईमें १५२६ ई०को इब्राहिम लोदीकी तरफसे लड़ते हुए राजा विक्रम मारे गये।

बाबर पानीपतकी लड़ाईमें जयलाभ कर आप तो दिल्लीके सम्राट् बन बैठे और अपने पुत्र हुमायूँको ग्वालियर भेज दिया। राजा विक्रमके वंशधरोंने उन्हें बहुतसे हीरा, मणिमुक्ता उपहारमें दिये। इनमेंसे एक हीरा बहुत बड़ा था, जिसका वजन फेरिस्ताने ८ मिष्काल ३२४ रत्ती बतलाया है। वे आरष्किन् और टावार्नियर इन दोनों हीरेकी खानोंको 'कोहिनूर' कह कर वर्णन कर गये हैं। ये खानें सम्राट् अलाउद्दीन खिलजीने पाई थीं।

१५२६ ई०के अन्तमें राजा मङ्गलराय नामक तोमर-

वंशीय वीरने जब ग्वालियरके अफगान शासनकर्त्ता तितर खाँको बहुत तंग किया, तब बाबरने रहीमदाद नामक एक सेनापतिको उनके विरुद्ध भेजा। रहीमके आने पर तितर खाँका मन बदल गया और उन्होंने रहीमको दुर्गमें प्रवेश न होने दिया। किन्तु महम्मद गाउस नामक एक व्यक्तिके कौशलसे रहीमदादने दुर्गपर अधिकार कर ही लिया। १५२७ ई०में राजा मङ्गलरायने (मङ्गलदेव) ग्वालियरको अवरोध किया। ये कीर्त्तिसिंहके छोटे लड़के माने जाते थे। तोमरगढ़के अन्तर्गत धुन्धारी, अखा आदि १२० ग्रामोंके ये जमींदार थे। इनकी वंशावली आज भी उक्त ग्रामोंमें है। ग्वालियरके अवरोधमें ये कृतकार्य न हुए।

सम्राट् हुमायुँ १५४२ ई०में ग्वालियरके दुर्गमें रहते थे। इस समय राजा विक्रमके पुत्र रामसहायने ग्वालियरके दुर्गको अपने अधिकारमें लानेके लिये उनसे प्रार्थना की, किन्तु व्यर्थ हुई। इस पर वे बहुत दुखित हुए और शेरशाहके साथ मिल गये। बाद इन्होंने शेरशाहके सेनापति सुजा खाँके साथ युद्धमें जा कर मालव फतह किया।

फेरिस्ता कहते हैं—१५५६ ई०में सम्राट् अकबरके प्रधान मन्त्री बैराम खाँने ग्वालियरके शासनकर्त्ता सुहेल खाँके विरुद्ध सैन्य भेजनेका उद्योग किया। सुहेल खाँने यह सम्वाद पाकर उक्त रामसहायको लिख भेजा कि "आपके पूर्वपुरुष ग्वालियरके राजा थे। कालक्रमसे यह अभी मेरे हाथ है। सम्प्रति मुगल बादशाह चढ़ाई करने आ रहे हैं। हममें उतनी शक्ति नहीं कि उन्हें रोकें। आप यदि मुझे कुछ अर्थ प्रदान करें, तो मैं अपने हाथसे ग्वालियरराज्य दे सकता हूं।" यह सुनकर रामसहाय ग्वालियरको चल पड़े; किन्तु एकवाल खाँ नामक ग्वालियरके एक निकटवर्त्ती जमींदारने सैन्य संग्रह कर रास्तेमें ही रामसहायको परास्त किया। रामसहाय परास्त होकर मीरके राणाके राज्यमें भाग गये। फजल अली नामक एक ऐतिहासिकका कहना है, कि शेरशाहके पुत्रके मरने पर ग्वालियर बहवल नामक एक क्रीतदासके हाथ लगा। सम्राट् अकबरके समयमें रामसहायने राजपूतोंकी सहायतासे ग्वालियर पर चढाई कर दी। मुगल-सेनापति कावा खाँ ग्वालियरकी रक्षाके लिये भेजे गये। रामसहायके साथ कावा खाँका युद्ध हुआ। तीन दीन तक युद्ध होते रहनेके बाद कावा खाँकी ही जीत हुई। अकबर जब चित्तौरमें घेरा डाले हुए थे (१५६८ ई०) तब उस युद्धमें ग्वालियरराज शालिवाहनको (रामसहायके पुत्र) रक्षा मिली थी। शालिवाहन किसी शिशोदीय राजकुमारीका पाणिग्रहण कर राणाके पास ही रहते थे। ग्वालियर अकबरके अधीन होने पर भी शालिवाहन राजपूत-राजसभामें ग्वालियरके राजा कह कर सम्मानित होते थे।

पीछे रोहिताश्वकी खोदितलिपिसे जाना जाता है, कि शालिवाहनके श्यामसहाय और मित्रसेन नामक दो पुत्र थे। ये दोनों कालक्रमसे अकबरके अधीन काम करते रहे। १६३१ ई०में श्यामसहायकी मृत्यु हुई। मित्रसेन मुगलके अधीन ग्वालियर-दुर्गके अध्यक्ष हुए। इसके सिवा मित्रसेनका और हाल मालूम नहीं। श्यामसहायके वंशधर तोमरगढ़की जमींदारी और नाममात्र ‘ग्वालियर-राज” की उपाधि लेकर सन्तुष्ट थे। श्यामसहायके दो पुत्र थे--संग्रामसिंह और नारायणदास। संग्रामको १६७० ई०में ‘ग्वालियरराज’की उपाधि मिली और उनके पुत्र राजा कृष्णसिंहकी १७१० ई०में मृत्यु हुई। कृष्णसिंहके पुत्र विजयसिंह और हरिसिंहने उदयपुरमें आश्रय लिया। विजयसिंहका निःसन्तान-अवस्थामें १७८१ ई०को उदयपुरमें देहान्त हुआ। हरिसिंहके वंशधर अब भी उदयपुरमें हैं। इनकी एक दूसरी शाखा आज भी तोमरगढ़की जमींदारी भोग करती है।

तोमरग्रह (सं० पु०) तोमरं गृह्णाति ग्रह-अच्। तोमरास्त्रग्राही, वह योद्धा जो तोमर अस्त्र ले कर लड़ता हो।

तोमरधर (सं० पु०) धरतीति धरः धृ-अच् तोमरस्य धरः। १ अग्नि, आग। २ तोमरधारी योद्धा।

तोमराण (सं० पु०) काश्मीरके एक राजाका नाम। ये लक्षिय राजाके पुत्र थे। (राजतर० ४।२२७)

तोमरिका (सं० स्त्री०) तोमर संज्ञायां कन् स्त्रियां टाप् अतइत्वं। तुवरिका, गोपीचन्दन।

तोय (सं॰ क्ली॰) तु-विच् तवे पूर्त्यै याति या-क वा तवते-र्वृद्धिकर्मणः तु-यत् निपातनात् साधुः । १ जल, पानी । २ पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र । ३ लग्नस्थानसे चौथा स्थान ।

तोयकर्म (सं॰ क्ली॰) तोयेन कर्म । तर्पण ।

तोयकाम (सं॰ पु॰) तोयं जलं कामयते कम-अण् । १ परिव्याध वृक्ष, एक प्रकारका बेंत जो जलके समीप उत्पन्न होता है, वानीर । (त्रि॰) २ जलाभिलाषुक, जो जल चाहता हो ।

तोयकुम्भ (सं॰ पु॰) तोयस्य कुम्भ इव । शैवाल, सेवार ।

तोयकृच्छ्र (सं॰ क्ली॰) तोयेन तोयमात्रपानेन कृच्छ्रं व्रतं॰ । जलमात्र पानरूप व्रतविशेष, एक प्रकारका व्रत जिसमें जलके सिवा और कुछ आहार ग्रहण नहीं किया जाता । यह व्रत एक महीने तक करना होता है ।

तोयक्रीड़ा (सं॰ स्त्री॰) तोयस्य क्रीड़ा ६-तत् । जलक्रीड़ा ।

तोयचर (सं॰ त्रि॰) तोये जले विचरति चर-अच् । जलचर ।

तोयज (सं॰ त्रि॰) तोये जायते जन-ड । जलज, जो जलसे उत्पन्न होता हो ।

तोयडिम्ब (सं॰ पु॰) तोयस्य डिम्ब इव । मेघोपल, ओला ।

तोयद (सं॰ पु॰) तोयं ददाति दा-क । १ मेघ, बादल । २ मुस्तक, नागरमोथा । क्ली॰) ३ घृत, घी । (त्रि॰) ४ विधिपूर्वक जलदाता, जो विधिपूर्वक जल देता हो । जलदान करनेसे अत्यन्त फल होता है । अन्नदान करना मानो प्राणदान करना है । प्राणदानसे अधिक और कुछ नहीं है, किन्तु जलके विना अन्नादि भी तृप्तिजनक नहीं है, इसीसे जलदान ही सबसे श्रेष्ठ माना गया है । जलदाता सब प्रकारकी कामना और कीर्त्ति लाभ कर अक्षयस्वर्गको प्राप्त होते हैं और उनके सब जाते रहते है । (भारत शान्तिपर्व) ।

"तोयदो मनुजव्याघ्र ! स्वर्गं गत्वा महाद्युते ।
अक्षयान् समवाप्नोति लोकानित्यब्रवीन् मनुः ॥"
(भारत शान्तिप॰)

तोयदागम (सं॰ पु॰) तोयदस्य आगमः ६-तत् । मेघागम, वर्षाऋतु, बरसात ।

तोयधर (सं॰ पु॰) धरतीति धरः धृ-अच् तोयस्य धरः । १ मेघ, बादल । २ मुस्तक, मोथा । ३ सुनिषण्ण शाक, एक प्रकारका साग ।

तोयधार (सं॰ पु॰) तोयानां धारा यत्र । १ मेघ, बादल । २ मुस्तक, मोथा । धारि भावे अच् तोयस्य धारः । ३ जलवर्षण ।

तोयधारा (सं॰ स्त्री॰) जलसन्तति, जलकी धारा ।

तोयधि (सं॰ पु॰) तोयानि धीयन्तेऽत्र धा-कि । समुद्र, सागर ।

तोयधिप्रिय (सं॰ क्ली॰) प्रीणाति प्री-क, तोयधि प्रियो यस्य । लवङ्ग, लौंग ।

तोयनिधि (सं॰ पु॰) तोयं निधीयतेऽस्मिन् तोय-नि-धा-कि । समुद्र ।

तोयनीवी (सं॰ स्त्री॰) तोयं समुद्रोदकं नीवीव यस्याः आर्षे न कप् । पृथ्वी ।

तोयपर्णी (सं॰ स्त्री॰) १ धान्यविशेष, एक प्रकारका धान । २ कारवेल्ल लता, करेला ।

तोयपाषाणजमल (सं॰ क्ली॰) खर्पर, खपड़ा ।

तोयपिप्पली (सं॰ स्त्री॰) जलपिप्पली ।

तोयपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) तोयेन बहुजलदानेन पुष्पाण्यस्याः । पाटलावृक्ष, पाडर ।

तोयप्रष्ठा (सं॰ स्त्री॰) तोयतुष्पी देखो ।

तोयप्रसादन (सं॰ क्ली॰) प्रसादयति प्र-सद-णिच् ल्युट् तोयस्य प्रसादनं । कतकफल, निर्मली । यह फल जलमें घिस देनेसे जल परिष्कार हो जाता है ।

तोयप्रसादनफल (सं॰ क्ली॰) तोयप्रसादनाय फलं । कतकफल, निर्मली ।

तोयफला (सं॰ स्त्री॰) तोयप्रधानं फलं यस्याः । १ फल, लताविशेष, तरबूजकी बेल । २ इर्वारु, ककड़ी ।

तोयमञ्जरी (सं॰ स्त्री॰) जलापामार्ग, एक प्रकारकी औषध ।

तोयमल (सं॰ क्ली॰) समुद्रका फेन ।

तोयमुच् (सं॰ पु॰) तोयं मुञ्चति मुच-क्विप् । १ जलमुच्, मेघ, बादल । २ मस्तक, मोथा ।

तोययन्त्र (सं॰ क्ली॰) १ कालज्ञानार्थ घटी यन्त्रविशेष, कालसूचक जलघड़ी । घटीयन्त्र देखो । २ जलयन्त्रभेद, फुहारा ।

तोयराज (सं० पु०) तोयेषु राजते राज-क्विप्। समुद्र, सागर।

तोयराशि (सं० पु०) तोयानां राशिरिव। १ समुद्र २ जलसमूह।

तोयवल्लिका (सं० स्त्री०) तोयवल्ली-कन्। १ कारवेल्लक, करेला। २ अमृतस्रवा लता।

तोयवल्ली (सं० स्त्री०) तोये जलसन्निहितस्थाने वल्लीर्यस्याः। कारवेलक, करेला।

तोयविम्ब (सं० क्ली०) तोयोत्थितं विम्बं। जलविम्ब।

तोयवृक्ष (सं० पु०) तोये वृक्ष इव। शैवाल, सेवार।

तोयवृत्ति (सं० पु०) जलापामार्ग, एक प्रकारकी दवा।

तोयशाला (सं० स्त्री०) वारिशाला, वह स्थान जहां पर राह चलतोंको पानी पिलाया जाता हो।

तोयशुक्तिका (सं० स्त्री०) तोयजाता शुक्तिका मध्यलो० कर्मधा०। जलशुक्तिका, सीप।

तोयशूक (सं० पु०) तोयस्य शूक इव। शैवाल, सेवार।

तोयसर्पिका (सं० स्त्री०) भेक, मेंढक।

तोयसूचक (सं० पु०-स्त्री०) तोयं जलवर्षं सूचयति रवेण सूच-ण्वुल्। भेक, मेंढक। मेंढकके बोलनेसे पानी बरसता है। २ जलवर्षणसूचक योगभेद, ज्योतिषमें वह योग जिससे वर्षा होनेकी सूचना मिले।

तोयस्राव (सं० पु०) घोड़ेका एक रोग। इसमें घोड़ेकी आंखोंसे जल टपकता है।

तोयात्मन् (सं० पु०) तोयं आत्मा स्वरूपं यस्य। परमेश्वर।

तोयाधार (सं० पु०) तोयस्य आधारः, ६-तत्। जलाधार, पुष्करिणी, तालाब।

तोयाधिवासिनी (सं० स्त्री०) तोयं जलप्रधानं स्थलं अधिवसति अधि-वस-णिनि। पाटलावृक्ष, पाँढर।

तोयापामार्ग (सं० पु०) जलापामार्ग।

तोयालय (सं० पु०) तोयस्य आलयः। उदधि, समुद्र।

तोयाशय (सं० पु०) तोयस्य आशयः, ६-तत्। जलाशय, तालाब।

तोयेश (सं० पु०) तोयस्य ईशः, ६-तत्। १ वरुण। २ शतभिषा नक्षत्र। (क्ली०) तोयं जलं ईशः अधिदेवोऽस्य। ३ पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र।

तोयोद्भवा (सं० स्त्री०) तोये उद्भवो यस्याः। तोयापामार्ग।

तोर (हिं० पु०) अरहर।

तोरई (हिं० स्त्री०) तुरई देखो।

तोरण (सं० पु०-क्ली०) तुतोर्त्ति त्वरया गच्छत्यनेन तुर करणे ल्युट्। १ वहिर्द्वार, किसी घर या नगरका बाहरी फाटक। इस द्वारका ऊपरी भाग मण्डपाकार तथा मालाओं और पताकाओं आदिसे सजा रहता है। २ सजावटके लिये खंभों और दीवारों आदिमें बांध कर लटकाई जानेकी माला, बंदनवार। ३ कन्धरा, ग्रीवा, गला। ४ महादेव, शिव।

तोरणमाल (सं० क्ली०) तीर्थविशेष, अवन्तिकापुरी।

तोरणवत् (सं० त्रि०) तोरणं विद्यतेऽस्य तोरण-मतुप् मस्य व। तोरणविशिष्ट।

तोरणस्फाटिका (सं० स्त्री०) दुर्योधनकी सभाका नाम। दुर्योधनने पाण्डवोंकी मयदानववाली सभा देख कर यह सभा बनाई थी। (भारत सभाप० ५५ अ०)

तोरमाण १ काश्मीरके एक पराक्रान्त राजा। काश्मीर देखो। २ पञ्जाबके एक पराक्रान्त स्वाधीन राजा। लवण-शैलस्थ बूरासे आविष्कृत शिलाफलकमें ये राजमहाराज तोरमाणषाहि जउल' नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके समयकी उत्कीर्ण लिपि देख कर कोई कोई इन्हें ४थी वा ५वीं शताब्दीके बतलाते हैं।

३ मालवसाम्राज्यके एक सुप्रसिद्ध राजा। किसीका मत है, कि गुप्तराजाओंके शक्तिहीन होने पर हूणवंशीय तोरमाणने आ कर मालव राज्य पर अपना अधिकार जमाया था। ये पराक्रान्त हूणराज मिहिरकुलके पिता थे।

बुद्धगुप्तके समयमें (१६५ गुप्त सम्वत्में) उत्कीर्ण एरणकी शिलालिपिमें मातृविष्णु और धन्यविष्णु का नाम मिलता है। किन्तु तोरमाणके १म वर्षमें उत्कीर्ण एरणकी स्वतन्त्र लिपिमें* धन्यविष्णु जीवित और मातृविष्णु मृत हैं ऐसा लिखा है। फिर एरणके दूसरे प्रस्तरस्तम्भमें खोदित लिपिसे मालूम होता है कि १६०

---

* Epigraphia Indica, Vol. 1 p. 239.

गुप्त सम्वत्‌में भानुगुप्त इस प्रान्तमें राज्य करते थे। इससे अनुमान किया जाता है कि हूणराज तोरमाणने बुद्धगुप्तके (४८४ ई०के) कुछ पीछे और भानुगुप्तके (५१० ई०के) पहले पूर्व मालवामें राज्य किया था।

मिहिरकुल देखो।

तोरश्रवा (सं० पु०) अङ्गिरा ऋषिका नाम।

तोरिया (हिं० स्त्री०) गोटा किनारी आदि बुननेवालोंका छोटा बेलन। यह बेलन लकड़ीका बना हुआ रहता है और इस पर बे-बुना हुआ गोटा पट्ठा और किनारी आदि लपेटे जाते हैं। २ वह गाय या भैंस जिसका बच्चा मर गया हो। ३ एक प्रकारकी सरसों।

तोरी (हिं० स्त्री०) तुरई देखो।

तोरी-फतेहपुर—मध्यभारतका एक छोटा सनद राज्य। यह बुन्देलखण्ड एजेन्सीके अधीन है। भूपरिमाण ३ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ७०८८ है। यह जागीर बुन्देलाके प्रधान दीवान रायसिंहने अपने बड़े लड़के दीवान हिन्दूसिंहको दी थी। उन्होंने फतेहपुर ग्रामके तोरी पहाड़के ऊपर एक किला बनवाया था। जब यह वृटिश गवर्मेण्टके हाथ लगा, तब उन्होंने १८२३ ई०में दीवान हरप्रसादको १४ ग्रामोंकी एक सनद दी। वर्त्तमान जागीरदारका नाम अर्जुनसिंह है।

तोल (सं० पु० क्ली०) तुल्यते परिमीयते तुल-कर्मणि घञ्। तोलक, ८० रत्तीका वजन, तोला।

तोल (हिं० पु०) नावका डाँड़ा।

तोलक (सं० पु०-क्ली०) तोलमेव स्वार्थे कन्। तोल परिमाण, एक तोला। ८० रत्तीका एक तोला होता है लेकिन वैद्यक परिभाषामें ९६ रत्तीका १ तोला माना गया है। पर्याय—कोल, द्रङ्क्षण, वटक, कर्षार्द्ध और कर्ष।

तोलन (सं० क्ली०) तुल-ल्युट्। १ तौलकरण, तौलनेकी क्रिया। २ उत्तोलन, उठानेकी क्रिया।

तोलन (हिं० स्त्री०) छतके नीचे सहारेके लिये लगाई जानेकी लकड़ी, चाँड़।

तोलवाना (हिं० क्रि०) तौलवाना देखो।

तोला (हिं० पु०) १ एक तौल जो बारह माशे या छानबे रत्तीकी होती है। २ इस तौलका बाट।

तोल्य (सं० वि०) तुल-कर्मणि ण्यत्। १ तोलनीय, तोलनेके योग्य। (क्ली०) भावे ण्यत्। २ तोलन, तौलनेकी क्रिया।

तोश (सं० पु०) तुश वधे भावे घञ्। १ हिंसा। कर्त्तरि अच्। २ हिंसक।

तोशक (तु० स्त्री०) दोहरी चादर या खोलमें रूई, नारियलकी जटा आदि भर कर बनाया हुआ नरम बिछौना।

तोशकखाना (हिं० पु०) तोशाखाना देखो।

तोशदान (फा० पु०) १ मार्गके लिये जलपान आदि या दूसरी आवश्यक चीजें रखनेकी थैली। २ सिपाहियोंकी पेटीमें लगी हुई चमड़ेकी छोटी थैली। इसमें कारतूस भरे रहते हैं।

तोशल (हिं० पु०) तोसल देखो।

तोशा (फा० पु०) १ मार्गमें खानेका खाद्यपदार्थ। २ साधारण खाने पीनेकी चीज। ३ बाँह पर पहननेकी चीज, बाँह पर पहननेका एक प्रकारका गहना।

तोशाखाना (फा० पु०) वस्त्रों और आभूषणों आदिका भण्डार।

तोष (सं० पु०) तुष भावे घञ्। १ सन्तोष, तृप्ति। २ प्रसन्नता, आनन्द। ३ भागवतके अनुसार स्वायम्भुव मन्वन्तरके एक देवताका नाम। ४ श्रीकृष्णचन्द्रके एक सखाका नाम। (त्रि०) ५ अल्प, थोड़ा।

तोषक (सं० त्रि०) तुष्टिकारक, सन्तुष्ट करनेवाला।

तोषण (सं० क्ली०) तुष भावे ल्युट्। १ सन्तोष, तृप्ति। २ सन्तोषोत्पादन, सन्तुष्ट करनेकी क्रिया या भाव। (त्रि०) कर्त्तरि ल्यु। ३ सन्तोषजनक, खुश करनेवाला।

तोषनिधि—हिन्दीके एक सुकवि। ये चतुर्भुज शुक्लके पुत्र जिला इलाहाबादके शृङ्गवेरपुरके रहनेवाले थे। इन्होंने संवत् १७९१में सुधानिधि नामक रस-भेद, और भावभेदका एक बहुत ही बढ़िया ग्रन्थ बनाया है। विनयशतक और नखशिख नामक इनके दो और ग्रन्थ मिलते हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थमें आचार्यता भी प्रदर्शित की है तथा कई और काव्याङ्ग पर अच्छे विचार प्रकट किये है। इनका सुधानिधि नामक ग्रन्थ ऐसा विलक्षण बना है कि इन्हें सुकवि कहनेमें कोई आपत्ति नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ उसमेंसे एक छन्द नीचे दिया जाता है—

'इक दौरी अधीनी करैं बतियां जिनकी कटि छीनी छलामैं करैं ।
इक दोस धरैं अपसोस भरैं इक रोसकै नैन ललामैं करैं ॥
कहि तोष जुटी जुग जंघनसों उर दै भुज स्यामैं सलामैं करैं ।
निज अम्बर माँग कदम्ब तरे ब्रज बामैं कलामैं मुलामैं करैं
तोतनमैं रविको प्रतिबिम्ब परैं किरनैं सो घनी सरसाती ।
भीतर हूँ रहि जात नहीं अँखियाँ चकचौंध ह्वै जात है राती ॥
बैठि रहौं बलि कोठरिमें कहि तोष करौं बिनती बहुभाँती ।
सारसी नैन लै आरसी सो अँग काम कहा कढि धाममैं जाती ॥

तोषयितव्य (सं० त्रि०) तुष-णिच्-तव्य। तोषणीय, खुश करने योग्य।

तोषल (सं० पु०) १ कंसके एक असुर मल्लका नाम। धनुर्यज्ञमें श्रीकृष्णने इसे मार डाला था। (क्ली०) तोषं लूनाति लू बाहुलकात् ड। २ अस्त्रभेद, मूसल।

तोषाम—पञ्जाबके अन्तर्गत हिस्सार जिलेका एक ग्राम। यह हाँसी नगरसे २८ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां बालुकामय समतल क्षेत्रसे ८०० फुट ऊँचे एक पहाड़ पर बौद्ध और वैष्णवोंके यत्नसे कई एक उत्कीर्ण शिलालेख है। प्रवाद है, कि पतियालेके अमरसिंहने तुषाम पर्वत पर एक दुर्ग निर्माण किया था। किन्तु दुर्गके देखनेसे मालूम होता है, कि यह दुर्ग अमरसिंहसे पहले बनाया गया था। अमरसिंहने इसका केवल संस्कार किया है।

कोई कोई अनुमान करते हैं, कि यहां तुषार जातिका एक सङ्घाराम था जिसे तुषाराराम कहते थे। उसीके अपभ्रंशसे तुषाम या तोषाम नाम हुआ है।

तोषित (सं० त्रि०) तुष-णिच् क्त। तृप्त, तुष्ट।

तोषिन् (सं० त्रि०) तुष्यतीति तुष-णिनि। तुष्टकारक, जो तृप्त करता हो।

तोष्य (सं० त्रि०) तुष-ण्यत्। तोषणीय, तुष्ट करने योग्य।

तोहफगी (फा० स्त्री०) भलाई, अच्छापन।

तोहफा (अ० पु०) उपायन, उपहार, भेंट।

तोहमत (अ० स्त्री०) मिथ्या अभियोग, झूठा कलङ्क।

तोहमती (अ० वि०) झूठा अभियोग लगानेवाला।

तोहान—१ पञ्जाबके हिस्सार जिलेके अन्तर्गत फतहाबाद तहसीलकी एक उप-तहसील। इसका भूपरिमाण ४५० वर्गमील है। इसमें ११७ ग्राम लगते हैं। राजस्व लगभग ८६०००) रु० का है।

२ उक्त उप-तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २९' ४३' उ० और देशा० ७५' ५४' पू० हिस्सार शहरसे ४० मील उत्तरमें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग ५८३१ है। किसी समय इसकी गिनती अच्छे शहरोंमें होती थी। कहते हैं, कि दिल्लीके तोमर राजा अनङ्गपालने इसे बसाया था और चौहान राजाने इसे तहस नहस कर डाला। १३९८ ई०में इसी स्थान पर तमूरसे जाट लोग परास्त हुए थे।

तौंकना (हिं० क्रि०) तौंसना देखो।

तौंस (हिं० स्त्री०) धूपसे उत्पन्न प्यास जो किसी भांति न बुझे।

तौंसना (हिं० क्रि०) गरमीके कारण सन्तप्त होना या झुलस जाना।

तौंसा (हिं० पु०) अधिक ताप, कड़ी गरमी।

तौक (अ० पु०) १ एक प्रकारका गहना जो हँसुलीके आकारका होता और गलेमें पहना जाता है। यह पटरीकी तरह कुछ चौड़ा होता और उसके नीचे घुंघरू आदि लगे होते हैं। २ इसी आकारकी वृत्ताकार पटरी या मेंडरा। इसकी तौल हँसुलीसे बहुत भारी होती है। यह अपराधी या पागलके गलेमें पहनाया जाता है जिससे कि वह अपने स्थानसे हिल न सके। ३ पक्षियों आदिके गलेमें इसी आकारका प्राकृतिक चिह्न। ४ चपरास, पट्टा। ५ कोई गोल घेरा या पदार्थ।

तौक्षिक (सं० पु०) धनु राशि।

तौग्र (सं० पु०) तुग्रके पुत्र।

तौचा (हिं० पु०) सिर पर पहननेका एक प्रकारका गहना।

तौजा (अ० पु०) १ विवाहादिमें खर्च करनेके लिये खेतिहारोंको पेशगीमें दिये जानेका द्रव्य, बियाही। (वि०) २ हाथउधार। दस्तगर्दा।

तौजी (अ० स्त्री०) वह हिसाब जिसमें प्रजाका नाम, जमीनकी तायदाद और जमाबन्दी आदि लिखी रहती है।

तौतातिक (सं० क्ली०) तुतातभट्टेन निर्वृत्तं तुतात-

र्क । तुतातभट्टका दर्शनशास्त्र, कौमारिल शास्त्र।

तौतातित—सुप्रसिद्ध कुमारिलभट्टका नामान्तर। माधवाचार्यने सर्वदर्शन संग्रहमें इसी नामसे कुमारिलके वचन उद्धृत किये हैं। इसके पहले कुमारिलभट्ट शब्दमें कुमारिलके धर्ममतको विस्तृत आलोचना की गई है। उस शब्दमें लिखा है, कि कुमारिल पांचवीं शताब्दीमें प्रादुर्भूत हुए थे, किन्तु आजकलके प्रमाणसे उनका ५ वीं शताब्दीसे बहुत परवर्ती होना जान पड़ता है।

चीन-परिव्राजक इत्सिङ् ७ वीं शताब्दीमें भारतवर्ष आये थे। उनके मतानुसार वाक्यप्रदीपके रचयिता भर्तृहरिने ६५० ई०में अपनी मानवलीला समाप्त की। कुमारिल स्व-रचित मीमांसावार्त्तिकमें वाक्यप्रदीपसे अनेक जगह वचनोद्धार और उसकी समालोचना कर गये हैं।

प्रसिद्ध दि० जैनाचार्य समन्तभद्र स्वामीने आप्तमीमांसामें अर्हत्की सर्वज्ञता प्रतिपादन की है। जैनग्रन्थकार अकलङ्कदेवने अष्टशती नामक आप्तमीमांसाकी टीकामें लिखा है, कि अर्हत्के किसी इन्द्रियज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। उसीका प्रतिवाद कुमारिलने किया है। यहां समन्तभद्रका मूल और अकलङ्ककी टीका उद्धृत कर दिखलाते हैं—

"सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।"
(स्वामी समन्तभद्राचार्य)

अकलङ्कदेवने अपनी टीकामें 'अन्तरित' अर्थात् 'कालविप्रकर्षि अतीतादि' लिखा है। कुमारिलने समन्तभद्राचार्यका मूल और अकलङ्कदेवकी टीका उद्धृत कर इस प्रकार प्रतिवाद किया है—

"एवं यैः केवलं ज्ञानमिन्द्रियाद्यनपेक्षिणः।
सूक्ष्मातीतादिविषयं जीवस्य परिकल्पितम्॥
न ते तदागमात् सिध्येन्न च तेनागमो विना।
दृष्टान्तोपि न तस्यान्यो नृषु कश्चित् प्रवर्त्तते॥"
(तन्त्रवार्तिक)

फिर दि० जैनग्रन्थकार विद्यानन्दिने श्लोकवार्त्तिकमें कुमारिल भट्टका मत उद्धृत कर लिखा है—

"ततो यदुपहसनकारि भट्टेन
यैरुक्तं केवलं ज्ञानमिन्द्रियाद्यनपेक्षिणः।
सूक्ष्मातीतादिविषय सूक्ष्मजीवस्य तैरदः॥"

कुमारिलके तन्त्रवार्त्तिकमें कई जगह इसी प्रकार अकलङ्ककी अष्टशती व्याख्याकी कथा और उसका प्रतिवाद दीख पड़ता है। दूसरे पक्षमें विद्यानन्दि भी अकलङ्कदेवका मतसमर्थन करते हुए निज अष्टसहस्री ग्रन्थमें कई जगह कुमारिलका तीव्र प्रतिवाद कर गये हैं। इस प्रकार अकलङ्कदेव और विद्यानन्दिके समयका निरूपण हो जानेसे ही हम निःसन्देह कुमारिलका प्रकृत सयम स्थिर कर सकते हैं।

८६३ शकमें पम्प कर्णाटीभाषामें लिखित आदि पुराणमें तथा ८८२ शकमें सोमदेवने अपने यशस्तिलक चम्पूमें अकलङ्क देवको श्रेष्ठ प्रमाणशास्त्रवित् माना है। फिर जिनसेनाचार्यने ७६० शकको जैन-आदिपुराणमें अकलङ्कदेवका नामोल्लेख किया है। जिनसेनाचार्य राष्ट्रकूटराज १म अमोघवर्षके गुरु थे। उन्होंने आदिपुराणमें एक जगह प्रभाचन्द्रके चन्द्रोदय नामक न्याय-ग्रन्थका उल्लेख किया है। प्रभाचन्द्रने अपने न्यायकुमुदचन्द्रोदयमें और विद्यानन्दिने अष्टसहस्री ग्रन्थमें अपनेको अकलङ्कदेवका शिष्य बतलाया है। इधर प्रभाचन्द्रने बाणभट्टकी कादम्बरी और भर्तृहरिका वाक्यप्रदीप उद्धृत किया है फिर दि० जैनग्रन्थकार ब्रह्मनेमिदत्तने लिखा है अकलङ्कदेव राष्ट्रकूटराज (१म) कृष्णराजके समसामयिक थे। गुजरातसे आविष्कृत राष्ट्रकूटराज दन्तिदुर्गके ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि ६७५ शकमें वे राज्य करते थे। पीछे उनके चाचा कृष्णराज उत्तराधिकारी हुए। जिनसेनाचार्यने उत्तरपुराणमें लिखा है, कि ७०५ शकमें कृष्णराजके पुत्र वल्लभराजको राजगद्दी मिली।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि इत्सिङ्के मतानुसार ६५० ई०में वाक्यप्रदीपके रचयिता भर्तृहरिकी मृत्यु हुई। कुमारिलने वाक्यप्रदीपका श्लोक उद्धृत किया है। अकलङ्कदेवके शिष्य प्रभाचन्द्र और विद्यानन्दि दोनों ही कुमारिलके तन्त्रवार्त्तिककी आलोचना कर गये हैं। फिर कुमारिलने भी अकलङ्कदेवकी अष्टशतीके अनेक वचन उद्धृत किये हैं। किन्तु अकलङ्कदेवने कहीं भी कुमारिलके मतका प्रतिवाद नहीं किया। इस हिसाबसे कुमारिल धर्मकीर्त्ति और वाक्यप्रदीपके रचयिता भर्तृहरिके परवर्त्ती, अकलङ्कदेवके समसामयिक और उनके

शिष्य विद्यानन्दि तथा प्रभाचन्द्रके कुछ पूर्ववर्त्ती होते हैं। अकलङ्कदेव राष्ट्रकूटके राजा कृष्णराजके समयमें (६७५ शकके बाद और ७०५ शकके पहले) विद्यमान थे। सुतरां कुमारिलभट्टने भी उसी समय आविर्भूत हो कर वैदिक धर्मका प्रचार किया था।

तौतिक (सं० क्ली०) १ मोती। २ शुक्ति, मोतीकी सीप।

तौदी (सं० स्त्री०) विषनाशक वृक्षभेद, घृतकुमारी।

तौन (हिं० स्त्री०) गाय दुहते समय उसके बच्चेको उसीके अगले पैरमें बांधनेकी रस्सी।

तौनी (हिं० स्त्री०) १ रोटी सेंकनेका छोटा तवा तई, तवी। तौन देखो।

तौवा (हिं० स्त्री०) तोवा देखो।

तौम्बरविन् (सं० पु०) तुम्बुरुणा कलाप्यन्तेवासिना प्रोक्तमधीयते इति। तुम्बुरुप्रोक्त शाखाध्यायी, तुम्बुरुप्रोक्त शाखाका अध्ययन करनेवाला।

तौर (सं० क्ली०) यागभेद, एक प्रकारका यज्ञ।

तौर (अ० पु०) १ चरित्र, चालचलन, चलढाल। २ अवस्था, दशा, हालत। ३ तरीका, ढंग। ४ प्रकार, भांति, तरह।

तौरा (हिं० पु०) वह रस्सी जिससे मथानी मथी जाती है, नेती।

तौरयान (सं० क्ली०) तूर्णं यानमस्य पृषोदरादित्वात् साधुः। तूर्णगमनयुक्त, बहुत तेजीसे चलनेवाला।

तौरश्रवस (सं० क्ली०) तौरश्रवसा अङ्गिरसा दृष्टं साम-अण्। सामभेद, एक प्रकारका साम।

तौरात (हिं० पु०) तौरेत देखो।

तौरायणिक (सं० त्रि०) तुरायणं यज्ञं वर्त्तयति तुरायण-ठञ्। तुरायणयज्ञकारी, जो तुरायण यज्ञ करता हो।

तौरेत (अ० पु०) यहूदियोंका प्रधान धर्मग्रन्थ। यह हजरत मूसा पर प्रगट हुआ था। इसमें सृष्टि और आदमकी उत्पत्ति आदि विषय लिखे गये हैं।

तौर्य (सं० क्ली०) तूर्ये मुरजादौ भवं तूर्य-अण्। तूर्यवाद्य, ढोल मंजीरा आदि बाजे। २ ढोल मंजीरा आदि बजानेकी क्रिया।

तौर्यत्रिक (सं० क्ली०) त्रयोंशाः यस्य त्रिसंख्यायां कन् तौर्योपलक्षितं त्रिकं। समुदित नृत्य गीत और वाद्य, नाचना, गाना और बाजे बजाना आदि काम। मनुने इसे कामज व्यसन कहा है और त्याज्य बतलाया है। (मनु० ७।४७)

विष्णुगृह या देवालयमें नाच, गान और बाजे बजानेसे पुण्य होता है और अन्तमें विष्णु लोकको प्राप्ति होती है। (वराहपुरा०)

तौल (सं० क्ली०) तुला एव स्वार्थे अण्। स्वार्थिकाः प्रत्ययाः क्वचित् लिङ्गवचनानि अतिवर्त्तन्ते इत्युक्तेः देवतादिवत् क्लीवता। १ तुला, तराजू। (पु०) २ तुलाराशि।

तौल (हिं० स्त्री०) १ किसी पदार्थके गुरुत्वका परिमाण, वजन। २ तौलनेकी क्रिया या भाव।

तौलकर (सं० त्रि०) तौलं करोति कृ-ट। परिमापक, तौलनेवाला।

तौलना (हिं० क्रि०) १ वजन करना, जोखना। २ साधना, ठीक करना। ३ तारतम्य जानना, मिलान करना। ४ गाड़ीका पहिया औंगना, गाड़ीके पहिएमें तेल देना।

तौलवाई (हिं० स्त्री०) तौलाई देखो।

तौला (हिं० पु०) १ मट्टीका बरतन जिससे दूध मापा जाता है। २ अनाज तलनेवाला मनुष्य, बया। ३ तबिया। ४ मट्टीका कमोरा। ५ महुएकी शराब।

तौलाई (हिं० स्त्री०) १ तौलनेकी क्रिया या भाव। २ तौलनेके बदलेमें दिये जानेका धन, तौलनेकी मजदूरी।

तौलाना (हिं० क्रि०) तौलनेका काम किसी दूसरेसे कराना।

तौलिक (सं० पु०) तुल्या तुलिकया जीवति तुलि ठक्। १ चित्रकार। २ वृहद्धर्मपुराणोक्त वर्णसंकर जातिभेद। तिली देखो।

तौलिकिक (सं० पु०) तुलिकया जीवति तुलिका-ठक्। चित्रकार। संस्कृत पर्याय—रङ्गाजीव, चित्रकृत्, तौलिक।

नवम भाग सम्पूर्ण।

हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक
श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,
सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस
तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

नवम भाग

[ट—तौलिकिक]

THE
ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. IX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava.

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Banglya Sâhitya Parishat
and Kâyastha Patrikâ ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayurabhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society,
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by P. C. Bose, at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

1925.

THE
Modern Buddhism.
and its
FOLLOWERS IN ORISSA
BY
Nagendra Nath Vasu M.R.A.S.
with an introduction by
Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri M. A., C. I. E.

It has been conclusively proved in this book that Buddhism is neither dead nor driven out of India, but its pulse still beats with all the energy of life in Orissa. "Sankaracharyya drove away Buddhism from the soil of India" is proved to be absolutely false. The discoveries of 50000 crypto-Buddhists living in the jungle tracts of Orissa first announced in this book has taken the world of European scholars by surprise.

The book contains more than 250 pages. It is nicely printed and beautifully bound. **Price**—Rs. 3/-, for students Rs. 2/-.

Dr. L. D. Burnett of the British Museum writes :—

"A more fascinating and erudite work I have not read for many years and I shall find it most valuable both in the study and in the lecture-room."

Dr. H. Kern, the great Buddhist scholar writes :—

"I need hardly to tell you that the subject matter is one that interests me highly, so that it will be a pleasure for me to read the book, which contains so much that is little known or not at all in Europe."

Sir. George A. Grierson, K. C. I. E. Author of Linguistic Survey of India writes :—

"I have found your chapter on the Revival of Buddhism most interesting. I think it a most important contribution towards the religious history of India. It should certainly be carefully studied by all who interest themselves in that subject."

A. Smith I. C. S. (retired) writes from 116 Banbury Road, Oxford—

"Your book is also of high value for the history of Buddhism and Indian religion generally. The account of later and modern Buddhism is novel and your constant citation of little known Sanskrit works gives it special authority."

ग्राहकोंसे निवेदन।

बहुतसे महाशय हमारे साथ पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर नहीं लिखते। ऐसे महाशयोंसे प्रार्थना है कि पत्र लिखते समय अपना ग्राहक श्रेणीका नम्बर अवश्य २ लिख दिया करें अन्यथा पत्रोत्तरकी आशा न करें।

२। हम आपके साहाय्यसे ही 'हिंदी विश्वकोष'के प्रकाशनका भार उठाने समर्थ हुये हैं। अतः आपसे प्रार्थना है कि कमसे कम दो ग्राहक बनानेकी कृपा करें।

निवेदक—
प्रबंधकर्त्ता—हिंदी-विश्वकोष कार्यालय,
९ विश्वकोष लेन, कांटापुकर, बागबाजार, कलकत्ता

आवश्यकीय सूचना

हिन्दी-विश्वकोषकी आज तक प्रतिमास ४ संख्या प्रकाशित होती थीं, परन्तु अब छ संख्या प्रतिमास प्रकाशित होंगी, तदनुसार ग्राहकोंकी सेवामें भी छ संख्या ही प्रतिमास भेजी जाया करेंगी। आशा है, कि छ संख्याकी वी० पी० छुड़ा कर कृतार्थ करेंगे।

निवेदक—
प्रबन्धकर्त्ता

RCHÆOLOGICAL REPORT OF MAYURABHANJA.

BY

Nagendranath Vasu, Editor of "Visvakosha."

This work contains along with the results of the archæological and historical reserches conducted at the cost of the Chief of Mayurabhanja, a descriptive account of the rise and development of the various Hindu, Buddhist and Jaina sects. The discoveries of numerous cripto-Buddhists in Orissa, first announced in this book, has taken the world of European Scholars by surprise. Dr. Kern, Dr. Fleet, Dr. Oldenburg, Sir Grierson, Dr. Sylvain Levi, M. Emile Senart, Mr. Vincent Smith, Dr. Thomas of India Office and other European scholars have enthusiastically received the book and lavished high-flown praises upon it. Beautifully printed and gorgeously bound with more than 100 large plates of inscriptions, grants, ancient temples, ruins and figures of Hindu, Buddhist and Jaina Gods and Goddesses with their identification from the authoritative scriptures of various sects. Price Rs. 15/-, for students Rs. 10/-.

Dr. L. D. Burnett writes in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland, 1912. pp. 802-4.

"The body of the book comprises a series of report on the antiquities and history of a number of sites visited in the course of the survey, with an appendix containing text and facsimiles * * * Almost every form of Hindu religion has left its mark in Morbhanj * * * Undoubtedly the most interesting part of this interesting survey is the Chapter on Buddhism. * * * Pandit Nagendra Nath Vasu brings the history of Buddhism in Orissa down to the present day. He finds distinct traces of Mahayana cults among the Bathuri or Bauri tribe on whose ethnology he gives some valuable data. * * * In concluding this brief notice of this *veritable Ratnakar of learning,* we may add that it is illustrated by numerous plates."

Dr. J. F. Fleet, C. I. E. (the great antiquaran) writes from 8, Leopold Road, Ealing W. London.—

"I have read the book with much interest, and consider it a useful addition to our researches into the ancient and mediæval history of India"

११०४१

नवम भाग] [२१७—२१९ खण्ड

सचित्र] हिन्दी [समान चित्र

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस,

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

—*—

नवम भाग

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. IX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava.

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Banglya Sâhitya Parish
and Kâyastha Patrikâ ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-
bhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society,
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by P. C. *Bose*, at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9, *Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.*

1925.

Expert-Opinion

Sir Gooroo Dass Banerjee,

Kt., M. A., D. L., Ph. D.,

The late Justice of the Calcutta High Court and Vice-Chancellor of the Calcutta University writes—

"I am glad to learn that you are publishing a Hindi edition of your great work, the Bengali Encyclopædia "Visvakosha." I had to consult it on several occasions, and I found in it much valuable and rare information. A Hindi edition of this monumental work will make all that useful information available for all India, and will, I am sure, meet with the same enthusiastic encouragement and support that the Bengali Visvakosha has received. (30. 11. 15.)

Babu Saradacharan Mitra, M A., B L. &c.,
The late Justice of the Calcutta High Court
writes :—

"The "Viswakosha" or Encyclopædia in Bengali by Babu Nagendra Nath Vasu Práchyavidyamahárnava is an wonderful production. It contains an immense mass of correct information and is very valuable. The learned author is now issuing a Hindi Edition and the first volume is out. The Hindi Edition is enlarged and contains informations upto date. There should be no library without this."

The Hon'ble Sir Ashutosh Mukerjee,

Sarasvati C. S. I. &c. &c.,

The Justice of the Calcutta High Court, the late Vice-Chancellor of the Calcutta University, writes :—

"I have had occasion many a time to consult the Bengal Encyclopædia Visvakosha prepared by Babu Nagendranath Vasu. I have always entertained the highest opinion about its unique value, due chiefly to its accuracy and completeness. It is a truly monumental work, and I am delighted to learn that a Hindi version of it has been undertaken."

(9. 11. 15 ,

The Hon'ble Justice A. Chaudhuri,

M. A. LL. B.

of the Calcutta High Court, writes :—

"Your Encyclopædia Indica I constantly refer to in my work. I have always found it thoroughly accurate and very helpful. It is a wonder to me that the compilation, although made by you alone, is so complete. I am writing these few lines in admiration of the great work you have done. I wish the **Hindi** edition every success." (10. 9. 15.)

THE SOCIAL HISTORY OF

KAMARUPA.

Vol. I.

BY

Nagendra Nath Vasu

Prachyavidyamaharnava etc. etc.

A very interesting and readable account of a great social movement which shed a beam of light across the otherwise lurid clouds that envelop the history of Assam.

The book is divided into three chapters of which the first one is devoted to the prehistoric period. The first chapter consists of seven sections. The first section is the general remark upon Kamarupa's claims to historical recognition. The second section deals with the activities of the Phœnicians in Eastern India, their references in the Vedas, the difference between them and the Aryans, the geography of their times, their religion, arts, sciences and commerce and their identity with modern Koch.

The third section deals with the origin of the Mismi, Abors, Daflas and Miris. The fourth section deals with the origin of the Kiratas, Garos and Kacharis. The fourth section describes Usha and Anirudha, Bana and Saumar dynasty and Bànalinga. The sixth section deals with the Kimmerian influence in Kamarupa and the seventh section deals with the Assyrian (Mech) influence with their full history. The second chapter deals with the historical period and third with the rise of the Kayasthas in Kamarupa.

The book is worth reading and without it no research in ancient Indian history could be complete. The book is neatly bound, adequately indexed, clearly written with the support of the authority whose chapter and verse are quoted in their proper place, and on the whole carefully printed and nicely got up. The price Rs. 5|- only. To be had at 9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

हिन्दी
विश्वकोष

[दशम भाग]

तौलिन् (सं० पु०) तुलैव तोलं तत् विद्यते अस्य इनि। तुलाराशि।

तौलिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका मोटा अँगोछा। यह स्नान आदि करनेके बाद शरीर पोंछनेके काममें आती है।

तौली (हिं० स्त्री०) १ मट्टीकी एक प्रकारकी छोटी प्याली। २ मट्टीका चौड़े मुँहका बड़ा बरतन। इसमें विशेषकर गुड़ रक्खा जाता है।

तौली (सं० पु०) तुलैव तोलं तत् विद्यते अस्य इनि। १ तुलाराशि। तुलादण्डं मानदण्डं धारयति यः सः। २ तुलादण्डधारी वणिक्। ३ बङ्गालकी तिली जाति। यह जाति तुलादण्ड धारण कर वंशपरम्परासे व्यवसाय करती आई है, इस कारण तिली जातीका दूसरा नाम तौली पड़ा है। कोई कोई इस जातिको तौलिक समझते हैं, परन्तु तौलिक प्रतिलोम वर्णसङ्कर जाति है, उसके साथ तौली जातिका कोई भी सम्बन्ध नहीं।

तिली और तैलिक देखो

तौल्य (सं० त्रि०) तुलया परिच्छिन्नं ष्यञ्। १ तुला द्वारा परिच्छिन्न, जो तौल कर बांटा गया हो। २ तुल्य, सदृश।

तौल्वलायन (सं० पु०) तुल्वलस्य ऋषेरपत्यं युवा, तुल्वल-इञ् फक्। तुल्वल ऋषिके युवा वंशज।

तौल्वलि (सं० पु०) तुल्वलस्य ऋषेरपत्यं इञ्। तुल्वल ऋषिके वंशज।

तौल्वल्यादि (सं० पु०) पाणिनिका गणविशेष। तौल्वलि, धारणि, पारणि, रावणि, दैलीपि, दैवति, वार्कलि, नैवकि, दैवमति, दैवयज्ञि, चाफट्टकि, वैल्वकि, वैह्नि, आनुराहति, पौष्करसादि, आनुराहति, आनुति, प्रादोहनि, नैमिश्र, प्राड़ाहति, वान्धकि, वैशीति, आसिनासि, आहिंसि, आसुरि, नैमिषि, आसिबन्धकि, पौष्करेणुपालि, वैकर्णि, वैरकि, वैहति। (पाणिनि २।४।६१)

तौवरक सं० त्रि०) तुवर्या इदं अण् स्वार्थे कन्। १ तुवरी सम्बन्धीय स्नेहादि। २ तुवरक।

तौविलिका (सं० स्त्री०) औषधभेद, एक प्रकारकी दवा।

तौषायण (सं० त्रि०) तुषस्य अदूरदेशादि पक्षादित्वात् फक्। तुषके समीपवर्त्ती देश।

तौषार (सं० पु०) १ तुषारका जल, पालेका पानी। (त्रि०) तुषारस्येदं तुषार-अण्। २ तुषार सम्बन्धीय।

तुषार देखो।

तौहीन (अ॰ स्त्री॰) अपमान, अप्रतिष्ठा, बेइज्जती ।

त्मन (सं॰ पु॰) आत्मन् आलोपः । आत्मा ।

त्यक्त (सं॰ त्रि॰) त्यज-क्त । कृतत्यागी, त्यागा हुआ, छोड़ा हुआ । पर्याय—हीन, समुज्झित, उत्सृष्ट, धूत, विधूत, विनाकृत, विरटित और निर्व्यूढ़ ।

त्यक्तव्य (सं॰ त्रि॰) त्यज-तव्य । त्यजनीय, छोड़ने योग्य ।

त्यक्तृ (सं॰ त्रि॰) त्यज्-तृच् । त्यागकारी, छोड़नेवाला ।

त्यगल (सं॰ पु॰) ग्रन्थकर्त्ता, वह जो किताब बनाता हो ।

त्यग्नायि (सं॰ क्ली॰) सामभेद, एक प्रकारका साम ।

त्यजन (सं॰ क्ली॰) त्यज-ल्युट् । त्याग, छोड़नेका काम ।

त्यजनीय (सं॰ त्रि॰) त्यज-अनीयर् । त्यागने योग्य, छोड़ने क़ाबिल ।

त्यजस् (सं॰ पु॰) त्यज भावे असुन् । १ त्याग । (त्रि॰) कर्त्तरि असुन् । २ त्यागकर्त्ता, छोड़नेवाला ।

त्यज्यमान (सं॰ त्रि॰) जिसका त्याग कर दिया गया हो, जो छोड़ दिया गया हो ।

त्यद् (सं॰ त्रि॰) त्यज-अदि सच डित् । (त्यजितनीति । उण् १।१३१) । १ आकाश । २ वायु । (भाग॰ १०।२।२६) ३ सर्वदा परोक्षाभिधानार्थ वस्तु । ४ प्रसिद्ध, मशहूर । यह शब्द सर्वनाम है । इसका रूप त्यदादिकी नाईं होगा, जैसे पुलिङ्गमें स्यः, त्यौ, त्ये, स्त्रीलिङ्गमें स्या, त्ये, त्याः और क्लीवलिङ्गमें त्यद्, ते, तानि इत्यादि । अव्ययीभाव समासमें इस शब्दका अच् समासान्त होता है । यथा—त्यस्य समीपे उपत्यदं इत्यादि ।

त्यदादि (सं॰ पु॰) पाणिनीय गणसूत्रोक्त शब्द समूह—त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम् । अत्त्व विधिमें अर्थात् टि स्थानमें अत् होता है । इस विषयमें शब्द पर्यन्त ग्रहण ही भाष्यकारका अभिलषित है । त्यदादिके टि स्थानमें अत् होता है, इसमें त्यद्से ले कर किम् पर्यन्त मालूम पड़ता है, किन्तु भाष्यकारका कहना है कि अत्त्व विधिमें द्वि पर्यन्त ग्रहण जानना चाहिये ।

त्याग (सं॰ पु॰) त्यज-भावे घञ् । १ उत्सर्ग, किसी पदार्थ परसे अपना स्वत्व हटा लेने अथवा उसे अपने पाससे अलग करनेकी क्रिया । मनुने लिखा है, कि माता, पिता, स्त्री और पुत्र ये चारों त्यागने योग्य नहीं हैं अर्थात् इन्हें त्याग नहीं करना चाहिये ।

२ दान । ३ विरक्त पुरुष, ज्ञानी मनुष्य । ४ सर्व कर्मफल विसर्जन, विरक्ति आदिके कारण सांसारिक विषयों और पदार्थों आदिको छोड़नेकी क्रिया । त्यागका विषय गीतामें इस प्रकार लिखा है—

संन्यास और त्यागमें सचमुच कोई विभेद नहीं है। संन्यासकी ही एक विशेष अवस्थाको त्याग कहते हैं। विद्वानोंने समस्त काम्यधर्मोंके परित्यागको संन्यास और समस्त कर्मोंके फलकी आशा न रखनेको त्याग बतलाया है । अतएव संन्यासकी विशेष अवस्थाकी गिनती त्यागमें की गई है । त्याग और संन्यासके विषयमें कुछ ऋषियोंके जटिल सिद्धान्त देख कर मतभेदसा प्रतीत होता है, किन्तु बहुत गौरसे देखा जाय, तो कोई मतभेद नहीं मालूम पड़ता । कोई कोई कहते हैं, कि जीव देह, मन और इन्द्रियादि द्वारा जो काम करता है, वह केवल बन्धनके लिये है । इस कारण यह भी अन्यान्य दोषोंकी नाईं परित्याज्य है । फिर कोई ठीक इसका विपरीत कहते हैं । उनका कहना है, कि यज्ञ, दान और तप आदि कर्मानुष्ठानों द्वारा विशुद्ध हो कर चित्त ब्रह्मज्ञानका अधिकारी होता है, अतएव यह परित्याज्य नहीं है । भगवान्ने इसके विषयमें अर्जुनसे यों कहा था—"त्यागके तीन भेद हैं, सात्विक, राजसिक और तामसिक । यज्ञ, दान और तप आदि कर्म कभी भी छोड़ने योग्य नहीं हैं । इनका अनुष्ठान सर्वदा करना चाहिये, क्योंकि यज्ञ, दान और तप आदि कर्मोंसे मनुष्योंकी देह, मन और इन्द्रियां विशुद्ध वा निर्मल हो जाती हैं । अतएव आसक्ति और फलकामना-रहित हो कर इन सबका अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है । विद्वानोंने बन्धनके भयसे जिस कर्मके परित्यागकी बात कही है, वह तो कर्म है । अमुक कार्य द्वारा हमें अमुक प्रकारके सुख मिलेंगे, इस उद्देश्यसे जो काम किया जाता है, उसे काम्यधर्म कहते हैं । काम्यधर्म द्वारा आत्मज्ञान लाभकी उपयुक्त चित्तशुद्धि तो नहीं होती; पर स्वर्गादि फल अवश्य मिलते हैं । सुतरां मुक्ति नहीं हो कर बन्धन ही हुआ । इसीसे जो ऐहिक और पारत्रिक किसी प्रकार

के सुखभोगकी इच्छा नहीं रखते; केवल मुक्ति अर्थात् भ्रान्तिज्ञान द्वारा देह, मन और इन्द्रियादि जड़पदार्थोंके साथ अभिन्नभावसे आत्माको पाते हैं, वे इसी भ्रान्तिके विनाशके लिये मुझसे प्रार्थना करते हैं। इस कारण काम्यधर्मके अनुष्ठानकी उन्हें जरूरत नहीं पड़ती, यही समझ कर वे नित्य और नैमित्तिक कर्मका कभी भी परित्याग नहीं करते। क्योंकि नित्य और नैमित्तिक कर्मोंका यथाविधि अनुष्ठान करनेसे जीवका कभी बन्धन नहीं होता, परन्तु ब्रह्मज्ञान अवश्य होता है। अतएव मोहवश इन सब कर्मोंके परित्यागको तामसत्याग कहते हैं। शारीरिक क्लेश और अर्थभयादिके डरसे अत्यन्त कष्टजनक जान जो कर्म परित्याग किया जाता है, उसे राजस परित्याग कहते हैं। इस तरह कर्मत्याग करनेसे त्यागका फल नहीं होता। जो समस्त आसक्ति फलाकांक्षाकी आशा छोड़ कर केवल कर्त्तव्यके ख्यालसे जो नित्य और नैमित्तिक कर्म किया जाता है, वही सात्विक त्याग है। कर्ममें आसक्ति और फलाभिलाषके परित्यागको ही कर्मत्याग कहते हैं, न कि क्रियाके त्याग को।

जो न तो अकुशल कर्मोंसे कुछ विद्वेष रखते हैं और न शुभजनक कार्यमें आसक्त ही रहते हैं, वे ही यथार्थमें कर्मत्यागी हैं। जब तक देह, मन और इन्द्रियां कायम रहेंगी, तब तक कोई भी प्राणी अशेष कर्म परित्याग नहीं कर सकता। क्योंकि जीवन धारण करनेमें देह, मन और इन्द्रियोंकी क्रिया अवश्य होती ही है। यहां तक कि स्वप्नावस्थामें भी क्रिया बन्द नहीं रहती। अतएव कर्मोंका जो परित्याग है, वह क्रियाका भी परित्याग है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। किन्तु जो कर्मके फलत्यागी हैं; वेही त्यागी कहलाते हैं। कर्मफलत्याग ही त्याग पदवाच्य हैं।" (गीता १८ अ०) ५ किसी बातको छोड़नेकी क्रिया। ६ सम्बन्ध या लगाव न रखनेकी क्रिया। ७ कन्यादान। (टिं०) (त्रि०) ८ त्यागकर्त्ता, छोड़नेवाला।

त्यागना (हिं० क्रि०) पृथक् करना, छोड़ना।

त्यागपत्र (सं० क्ली०) त्यागस्य पत्रं। १ दानपत्र, वह पत्र जिसमें किसी प्रकारके त्यागका उल्लेख हो। २ दारपरित्यागालाप, तिलाकनामा। ३ इस्तीफा।

त्यागवान् (सं० त्रि०) त्यागी, जिसने त्याग किया हो अथवा जिसमें त्याग करनेकी शक्ति हो।

त्यागशील (सं० त्रि०) त्याग एवं शीलं यस्य। दानशील, उदार, दानी।

त्यागस्वीकार (सं० पु०) आत्मस्वार्थ विसर्जन, अपने सुखका परित्याग।

त्यागिन् (सं० त्रि०) त्यजतीति त्यज-घिणुन्। १ दाता, दानी। २ शूर। ३ वर्जनशील, छोड़नेवाला। ४ कर्मफलत्यागी, सांसारिक सुखको छोड़नेवाला।

त्यागिम (सं० त्रि०) त्यागेन निर्वृत्त, त्याग-मप्। त्यक्त, छोड़ा हुआ।

त्याज्य (सं० त्रि०) त्यज्यते इति त्यज कर्मणि ण्यत् त्यजेश्च इति न कुत्वं। १ वर्जनीय, जो छोड़ देने योग्य हो। २ दानके योग्य।

त्यादृश (सं० त्रि०) त्यस्य इव दृश्यते ऽसौ त्यद् दृश-क्विप्। तादृश, उसके समान, वैसा।

त्यों (हिं० क्रि०-वि०) १ उस प्रकार, उस तरह। २ तत्काल, उसी समय।

त्योरी (हिं० स्त्री०) अवलोकन, दृष्टि, निगाह।

त्योहार (हिं० पु०) धर्मिक या जातीय उत्सव-दिन, पर्वदिन।

त्योहारी (हिं० स्त्री०) त्योहारके उपलक्षमें छोटों लड़कों या नौकरों आदिको दिये जानेका धन।

त्यौं (हिं० क्रि०-वि०) त्यों देखो।

त्यौनार (हिं० पु०) ढंग, तर्ज।

त्यौर (हिं० पु०) त्योरी देखो।

त्यौराना (हिं० क्रि०) सिरमें चक्कर आना, माथा घूमना।

त्यौरी (हिं० स्त्री०) त्योरी देखो।

त्यौरुस (हिं० पु०) त्योरुस देखो।

त्यौहार (हिं० पु०) त्योहार देखो।

त्यौहारी (हिं० स्त्री०) त्योहारी देखो।

त्रङ्ग (सं० पु०) त्रगि-अच। पुरभेद, एक प्राचीन नगरका नाम जो पहले राजा हरिश्चन्द्रका राजनगर था।

त्रपमान (सं० त्रि०) त्रप्-शानच्। लज्जामान, जिसने लज्जा पाई हो।

त्रपा (सं॰ स्त्री॰) त्रप्यते इति त्रप-अङ्, ततष्टाप्। १ लज्जा, लाज, शर्म। २ कुलटा, छिनाल स्त्री। ३ कीर्त्ति, यश। ४ कुल, वंश। (त्रि॰) ५ सलज्ज, लज्जित, शरमिन्दा।

त्रपाक (सं॰ पु॰) त्रपते लज्जते त्रप-आ-क। म्लेच्छ विशेष, नीच जाति।

त्रपानिरस्त (सं॰ त्रि॰) त्रपया निरस्तः। निर्लज्ज, लज्जाहीन, बेशर्म, बेहया।

त्रपान्वित (सं॰ त्रि॰) त्रपया अन्वितः। लज्जायुक्त, शरमिन्दा।

त्रपारण्डा (सं॰ स्त्री॰) त्रपायां रण्डेव, लज्जाहीनत्वात् तथात्वं। वेश्या, रंडी।

त्रपावत् (सं॰ त्रि॰) त्रपा विद्यतेऽस्य, त्रपा-मतुप्, मस्य व। लज्जाशील, लज्जावान्, हयामन्द।

त्रपित (सं॰ त्रि॰) त्रय-क्त। त्रपायुक्त, लज्जित, शरमिन्दा।

त्रपिष्ठ (सं॰ त्रि॰) अयमेषामतिशयेन तृप्र-इष्ठन्। प्रियस्थिरेत्यादिना तृप्र-शब्दस्य त्रप् आदेशः। अत्यन्त लज्जित, बहुत लज्जावान्।

त्रपीयस् (सं॰ त्रि॰) अयमनयोरतिशयेन तृप्रः तृप-ईयसुन् तृपस्य त्रप् आदेशः। त्रपिष्ठ, अत्यन्त लज्जित।

त्रपु (सं॰ क्ली॰) अग्निं दृष्टा त्रपते इव त्रप-उस्। १ सीसक, सीसा। २ रङ्ग, टीन। इसे तामिलमें तगरम, मलयमें तिम, फलघ, ब्रह्ममें खैम, अरबमें कसदिन, रैसस और पारसमें उरजिज कहते हैं। (It-latta, banda, stagnata, Fr. Ferblace; Cer. Weissblech, zinn; Rus. Blacha shest)

यह धातु देखनेमें चाँदीकी तरह होती है। जब यह परिष्कार रहती है, तब बहुत सफेद दीख पड़ती है। इसमें कुछ स्वाद भी है। घिसनेसे एक प्रकारकी गन्ध निकलती है। सोना जैसी नहीं होने पर भी यह धातु सीसासे कुछ कड़ी होती है। इसका भारीपन ७२८ है। यह बड़ा ही घातसह है, कितना ही इसे पीटें तो भी यह टूटती नहीं। यहां तक कि एक टीनसे $\frac{1}{1000}$ पतली चद्दर बन सकती है। ·००७-इञ्च परिधिविशिष्ट टीनके तारमें सोलह सतह सेरका बोझ लटका सकते हैं। इसको पीट कर इच्छानुसार जितना पतला कर सकते हैं, उतना चौड़ा नहीं कर सकते। यह बहुत ही कोमल होता है, सहजमें ही झुक जाता है। तांबा, जस्ता आदि धातुओंके साथ टीन बहुत आसानीसे मिल सकती है। दूसरी धातुओंमें कलई करने वा ढांकनेमें टीन बहुत व्यवहृत होती है। इसकी चद्दर द्वारा मढ़नेसे लोहेमें मोरचा नहीं लगता। अग्निका स्पर्श करानेसे टीन लोहेके भीतर भी प्रवेश करती है और उसका रंग सफेद बना देती है। मालूम पड़ता है, इसी कारण स्कोटलैण्डमें टीनकी चद्दर श्वेतलोह (White iron) नामसे प्रसिद्ध है। टीनको गला कर उसमें पतली लोहेकी चद्दर डुबो देनेसे साधारणतः 'श्वेतलोह' बनता है। विलायतमें श्वेतलोहका खूब आदर है।

तांबेके रसोई बनानेके बरतनोंमें बहुत जल्द मोरचा लग जाता है, किन्तु यदि टीनकी चद्दरसे उसमें कलई की जाय तो फिर मोरचा नहीं पड़ता। नाइट्रिक म्युरियाटिक, नाइट्रोसलफिउरिक और टर्टारिक एसीडमें टीनको गला कर वह बहुतसे रंगोंमें मिलायी जाती है। इससे रंग सदा एकसा बना रहता है और सफेदी भी बढ़ती है।

बहुत प्राचीन कालसे टीन जनसाधारणके काममें आ रही है। यजुर्वेदमें हम लोग 'त्रपु' शब्दका उल्लेख पाते हैं—

"लौहश्चमे सीसश्चमें त्रपुश्चमे यज्ञेन कल्पन्तामशुक्लयजुः १८।१३

इसके सिवा अथर्ववेदमें (११।३।८) छान्दोग्यपनिषत् (४।१७।७) आदि श्रुतियोंमें एवं मनु याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियोंमें 'त्रपु' अर्थात् टीनका उल्लेख है। नपुंसक (पशुपक्षी)की हत्या करने पर याज्ञवल्क्यने प्रायश्चित्तस्वरूप एक माष और सीसा दान करनेकी व्यवस्था की है। (३।२७३)

महाभारतमें त्रपुकी चांदीका मल बतलाया है।

(भारत उद्योग॰ ३८अ॰)

भारतमें जिस तरह वैदिक युगसे त्रपुका व्यवहार चला आ रहा है उसी तरह यूरोपमें भी चिरकालसे इसका प्रचार है। हिरोदोतस, दिओदोरस सिक्युलस और ष्ट्राबो फिनिकीय वणिकोंके कासितेरी देश वा टीन द्वीपमें यात्राका विवरण लिपिबद्ध कर गये हैं। पुराणोंमें

जाननेवालोंने सिसिली द्वीप और विलायतके कर्णवालको प्राचीन कासिटेरी देश माना है। यथार्थमें अब भी कर्णवाल नामक स्थानमें खानसे जितनी टीन निकलती है उतना यूरोपके और किसी दूसरे स्थानसे नहीं निकलती।

प्राचीन कालमें आर्य ऋषि लोग अथवा फिनिकीय वणिक् लोग टीनसे कौन चीज बनाते थे, उसका कोई खासा प्रमाण नहीं मिलता। यज्ञमें टीनकी जरूरत पड़ती थी, यह हम लोगोंको यजुर्वेदसे पता लगता है। स्मृतिमें त्रपुकी गिनती मूल्यवान् वस्तुमें की गई है। टीन और तांबेको एक साथ मिलानेसे कांसा बनता है, यह भी भारतवासी बहुत प्राचीन कालसे जानते हैं।

हजारीबाग, धारवार, गुजरात और मध्यभारतके बस्तार राज्यमें कई जगह टीन पत्थर (Tin stone) पाया गया है। किन्तु अच्छी टीन कहीं भी नहीं मिलती। ब्रह्मदेश, मलयप्रायोद्वीप, यव-द्वीप और चीनमें त्रपुकी खान मिलती है जिनमेंसे मलयप्रायोद्वीपकी खान संसारमें प्रसिद्ध है। इतनी टीन और कहीं नहीं मिलता। प्राचीन कालमें यहींसे भारतवर्षमें त्रपु भेजा जाता था। यहांके तावय नगरमें १५८६ ई०के प्रसिद्ध भ्रमणकारी राफफिच आकर यों लिख गये हैं —

I went from Pegu to Malacca, passing many of the sea-ports of Pegu, as Martaban, the island of Tavoy; whence all india is supplied with tin, Tenasserim; the island of Junk Ceylon, and many others.

अब भी मलयसे भारतवर्षमें टीन आता है। यहाँसे टीनकी प्रति वर्ष १२७१३ लाख रुपयेकी रफ्तनी होती है।

त्रपु खानके भीतर दो अवस्थाओंमें रहता है। कभी कभी यह सिकताञ्जन, तांबे और सीसे आदिके साथ चिमटा रहता है। इसीको टीन-लोह कहते हैं। इसको गला कर परिष्कार करनेसे टीनका टुकड़ा बनता है। दूसरी अवस्थामें यह बालू आदिके साथ मिश्रित रहता है, इसकी गिनती अकृत्रिम टीनमें की गई है।

त्रपुकर्कटी (सं० स्त्री०) १ त्रपुषी, ककड़ी। २ शसा, खीरा।

त्रपुटी (सं० स्त्री०) सूक्ष्मैला, छोटी इलायची।

त्रपुल (सं० क्ली०) त्रपति अग्निसंस्पर्शेन लज्जते इव त्रप-बाहु० उलच्। रङ्ग, रांगा।

त्रपुष (सं० क्ली०) त्रप-बाहु० उष। १ रङ्ग, रांगा। २ त्रपुषी फल, खीरा। पर्याय—कण्टकिफल, सुधावास और सुशीतल। छोटे फलके गुण—नील, बल, तृष्णा, भ्रम, दाह, पित्त और रक्तपित्तनाशक। पके फलके गुण—अम्ल, उष्ण, पित्तल, कफ और वातनाशक। बड़े फलका गुण—मूत्रल, शीत, रुच, पित्त और अस्रकृच्छ्रनाशक।

त्रपुषतैल (सं० क्ली०) त्रपुषबीजतैल, खीरेका तेल।

त्रपुषी (सं० स्त्री०) त्रपुष गौरा० ङीष्। १ कर्कटी, ककड़ी। २ त्रपुष, खीरा।

त्रपुस (सं० क्ली०) त्रप बाहुलकात् उस। १ रङ्ग, रांगा। २ कर्कटी, ककड़ी।

त्रपुसा (सं० स्त्री०) त्रपुसी, महेन्द्रवारुणी, बड़ा इन्द्रायण।

त्रपुसी (सं० स्त्री०) त्रपुस गौरा० ङीष्। १ महेन्द्रवारुणी, बड़ा इन्द्रायण। २ फल लताविशेष, खीरा (Cucumber)। पर्याय—पीतपुष्पा, काण्डालु, त्रपुकर्कटी, बहुफला, कोषफला, तुन्दिलफला, कण्टकीलता, सुधावासा। गुण—यह रुच्य, मधुर, शिशिर, गुरु, भ्रम, पित्त, विदाह और वमननाशक है। (राजनि०) इसकी दो जाति हैं, एक तो भूमिचारिणी अर्थात् जमीन पर फैलनेवाली और दूसरी मञ्चचारिणी अर्थात् मचान वा दीवार पर फैलनेवाली। भूमिचारिणीका फल छोटा और मोटा होता है। एवं शीतकालसे ग्रीष्मकाल तक रहता है। मञ्चचारिणीका फल लम्बा और साथ ही साथ मोटा भी होता है। किसीका फल सफेद और किसीका सब्ज रंगका देखनेमें आता है। इसकी तरकारी भी बनती है, परन्तु अधिकतर लोग इसे नमक मिर्चके साथ कच्चा ही खाते हैं। इसके बीज दवाके काममें आता है। फल और बीजोंकी तासीर ठण्ढी होती है। इसके भीतरमें जलका अंश पाया जाता है, इसी कारण लोग इसे चीरा वा खीरा कहते हैं। यह फल वर्षासे ले कर शरत्काल तक पाया जाता है। ३ ककड़ी।

त्रप्वादि (सं० पु०) रङ्गादि सप्त धातु, राँगा इत्यादि सात धातुओंके नाम, जैसे-राँगा, सीसा, ताँबा, चाँदी, सोना, काला लोहा, लोहेकी मैल।

त्रप्सा (सं० स्त्री०) घनीभूत श्लेष्मादि, जमी हुई श्लेष्मा या कफ।

त्रप्स्य (सं० क्ली०) घनेतर दधि, पतला दही।

त्रय (सं० क्ली०) त्रि-तयप्। १ त्रितय, तीन युक्त। २ त्रित्व संख्या युक्त। तीसरी संख्या।

त्रयःपञ्चाशत् (सं० स्त्री०) १ त्र्यधिकपञ्चाशत्, तिरपन।

त्रयशाप्य (सं० पु०) त्रयं जन्मत्रयं याति या बाहु० आप्य। जन्मत्रयप्राप्त, वह जिसने तीनों प्रकारके जन्म पाये हैं। तीनों जन्मके समय - मातृगर्भसे जन्म तक प्रथम, मौञ्जिबन्धन अर्थात् उपनयन संस्कार द्वितीय और यज्ञदीक्षा तृतीय।

त्रयश्चत्वारिंशत् (सं० स्त्री०) त्र्यधिका चत्वारिंशत्, त्रिशब्दस्य त्रयस् आदेशः। वह संख्या जो चालीससे तीन अधिक हो, तैंतालीस।

त्रयःषष्टि (सं० स्त्री०) त्र्यधिका षष्टिः। वह संख्या जो साठ और तीनके योगसे बनी हो, तिरेसठ।

त्रयस्—आदेश विशेष, अशीति शब्द और बहुव्रीहि समासके सिवा संख्यावाचक उत्तरपद परे रहे तो त्रि शब्दके स्थानमें त्रयस् होता है। यथा त्रयोदश प्रादि। अशीति शब्द परे रहने पर नहीं होता है। यथा— त्र्यशीति। (पा ६।३।४८)

त्रयस्त्रिंश (सं० त्रि०) त्रयस्त्रिंशत् पूरणे-डट्। जो तीससे तीन अधिक हो।

त्रयस्त्रिंशत् (सं० स्त्री०) त्र्यधिका त्रिंशत्, त्रि शब्दस्य त्रयस् आदेशः। वह संख्या जो तीस और तीनके योगसे बनती हो।

त्रयस्त्रिंशत्पति (सं० पु०) त्रयस्त्रिंशत् देवानां पतिः। १ इन्द्र। वेदमें ३३ देवताओंकी कथा है, उनमें इन्द्र सबसे श्रेष्ठ माने गये हैं, अतः इन्द्रका नाम त्रयस्त्रिंशत्पति हुआ है। २ प्रजापति। ये देवताओंके अधिपति हैं, अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य ये एकत्रिंशत् इन्द्र और प्रजापति ये त्रयस्त्रिंशत हुए। (शतपथब्रा० ११।६।३।५)

त्रथस्त्रिंशस्तोम (सं० पु०) त्रयस्त्रिंशत्स्तोमो अस्य। यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ।

त्रयस्त्रिंशिन् (सं० क्ली०) त्रयस्त्रिंशत् ऋचः सन्त्यस्मिन् इनि डिच्च। त्रयस्त्रिंशत् ऋक् द्वारा गीयमान सामभेद, वह साम जो ३३ ऋकों द्वारा गाया जाता है।

त्रयःसप्तति (सं० स्त्री०) त्र्यधिका सप्ततिः। तीन अधिक सत्तर, तिहत्तरकी संख्या।

त्रयी (सं० स्त्री०) त्रय-ङीप्। ऋक्, यजुः और साम ये तीनों वेद। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर। सर्गके आदिमें ऋङ्मय ब्रह्मा, स्वर्गस्थितिमें यजुर्मय विष्णु, स्वर्गनाशमें साममय रुद्र ये ही त्रयी हैं। २ पुरन्ध्री, पति पुत्र कन्या आदिसे भरी पूरी स्त्री। ३ सुमति। ४ सोमराजी लता। ५ भवानी, दुर्गा।

त्रयीतनु (सं० पु०) त्रयी वेदो एव तनुः शरीरं यस्य। सूर्य। समस्त वेद सूर्यसे प्रचारित हुए हैं। इसीसे सूर्यका नाम त्रयीतनु पड़ा है।

त्रयीधर्म (सं० पु०) त्रय्या वेदत्रयेण विधीयमानो धर्मः। वैदिक धर्म, जैसे ज्योतिष्टोम यज्ञ आदि।

त्रयीमय (सं० पु०) त्रय्यात्मकः मयट्। १ सूर्य। (त्रि०) २ त्रयीधर्मात्मक। ३ वराहरूप। (पु०) ४ परमेश्वर। (भाग० २।४।१७)

त्रयीमुख (सं० पु०) त्रयी मुखे यस्य। ब्राह्मण।

त्रयोदश (सं० त्रि०) त्रयोदशानां पूरणः त्रयोदशन् डट्। त्रयोदश संख्याका पूरण, तेरह।

त्रयोदशचारित्र (सं० क्ली०) जैनधर्मानुसार मुनियोंके लिए अवश्य पालनीय तेरह चारित्र। यथा—(१) पूर्ण अहिंसा, (२) पूर्ण सत्य, (३) पूर्ण अचौर्य, (४) पूर्ण ब्रह्मचर्य, (५) पूर्ण परिग्रहत्याग, (६) मार्ग संशोधनपूर्वक गमन करना, (७) मिष्ट, हितकर, मार्जित और संदेह रहित वचन बोलना, (८) दिनमें एक बार निर्दोष और अनुद्दिष्ट आहार ग्रहण करना, (९) शरीर, शास्त्र, कमण्डलु आदि उपकरणोंको नेत्रोंसे देख कर रखना और उठाना, (१०) त्रस और स्थावर किसी भी प्रकारके जीवको पीड़ा न हो, ऐसी शुद्ध प्राणिरहित भूमि पर मलमूत्रादि क्षेपण कर प्रासुक जलसे शौचक्रिया करना, (११) मनकी (१२) वचनकी और (१३) कायकी पूर्णरूपसे वशमें करना वा रोकना। जैनधर्म देखो।

त्रयोदशद्वीप (सं० पु०) जैन-शास्त्रानुसार वे तेरह द्वीप जिनमें अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं। जम्बू, धातकीखण्ड, पुष्करवर, वारुणीवर, क्षीरवर, घृतवर, क्षौद्रवर, नन्दीश्वर, अरुणवर, अरुणाभासवर, कुण्डलवर, शङ्खवर और रुचिकवर इन तेरह द्वीपोंमें अवस्थित जिन मन्दिरोंकी अष्टाह्निकापर्वमें पूजा की जाती है।

त्रयोदशन् (सं० त्रि०) त्र्यधिका दश। वह संख्या जो तीन और दशके योगसे बनती हो, तेरहकी संख्या यह शब्द नित्य बहुवचनान्त है। २ त्रयोदश संख्यायुक्त, किसी समय तेरह महीनेका संवत्सर होता है। मलमास होने पर तेरह महीनेका वर्ष होता है।

त्रयोदशवाचकशब्द—१ अपक्षपातिता, २ इन्द्रियानिग्रह, ३ अमत्सरता, ४ क्षमा, ५ लज्जा, ६ तितिक्षा, ७ अनसूया, ८ त्याग, ९ सरलता, १० ध्यान, ११ धैर्य, १२ दया, १३ अहिंसा ये ही सत्य स्वरूप हैं। (भारत शान्ति० १६२ अ०)। त्रयोदश दोष—१ काम, २ क्रोध, ३ मोह, ४ मद, ५ मात्सर्य, ६ ईर्षा, ७ शोक, ८ निद्रा, ९ अकार्यप्रवृत्ति, १० असूया, ११, कृपा, १२ भय, १३ प्रतिविधानेच्छा। (भारत शान्ति १६३ अ०)

त्रयोदशाङ्गगुग्गुलु (सं० पु०) गुग्गुलु औषधभेद। इसकी प्रस्तुतप्रणाली—बर्बूर, अश्वगन्धा, हवुषा, गुलञ्च, शतमूली, गोक्षुर, रास्ना, श्यामालता, शुलफा, शठी, यवानी और शुण्ठी इनके समान भागोंको चूर कर जितना हो उतना ही गुग्गुल और गुग्गुलसे आधा घी मिलावें बाद १ तोला प्रातःकाल जल, यूष, मद्य, उष्णजल, दुग्ध वा मांसरस इनमेंसे किसी एकके साथ सेवन करनेसे त्रिकशूल, जानुशूल, हनुस्तम्भ, बाहुगत वात सन्धि, अस्थिस्नायु और मज्जागत वात कोष्ठगत वायु, वात श्लैष्मिक रोग, वायुके कारण हृद्रोग और योनिरोग, भग्नास्थि, शलत्र, खञ्जता, गृध्रसी तथा पक्षाघात रोग जाते रहते हैं। (भावप्रकाश द्वितीयभा०)

त्रयोदशी (सं० स्त्री०) त्रयोदश दित्वात् ङीप्। तिथिविशेष, किसी पक्षकी तेरहवीं तिथि, तेरस। पुराणके अनुसार यह तिथि धार्मिक कार्य करनेके लिये बहुत उपयुक्त है।

त्रयोनवति (सं० त्रि०) त्र्यधिका नवतिः। जो गिनतीमें नब्बेसे तीन अधिक हो, तिरानवे।

त्रयोविंशति (सं० स्त्री०) त्र्यधिका विंशतिः। वह संख्या जो बीस और तीनके योगसे बनती हो, तेईसकी संख्या।

त्रयारुण (सं० पु०) १ मान्धातावंशके त्रिधर्माके पुत्रका नाम। २ पन्द्रहवें द्वापरके एक व्यासका नाम। ३ भरतवंशीय उरुक्षतके पुत्र एक राजाका नाम।

त्रयारुणि (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। ये लोमहर्षणके शिष्य और काश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, शिंशपायन और हारीतके सहपाठी थे (भाग०)

त्रस (सं० क्ली०) त्रस्यति विभेदत्यस्मिन् एस घञर्थे क। १ वन, जंगल। २ जङ्गम। ३ त्रसरेणु, सूक्ष्मकण। ४ जैन धर्मानुसार एक प्रकारके जीव। इन जीवोंके चार भेद हैं, जैसे—द्वीन्द्रिय अर्थात् दो इन्द्रियोंवाले जीव, त्रीन्द्रिय तीन इन्द्रियोंवाले जीव, चतुरिन्द्रिय अर्थात् चार इन्द्रियोंवाले जीव और पञ्चद्रिय अर्थात् पांच इन्द्रियोंवाले जीव।

त्रसदस्यु (सं० पु०) पुरुकुत्सके पुत्र और मान्धाताके एक पौत्रका नाम।

त्रसन (सं० क्ली०) त्रस-भावे ल्युट्। १ भय, डर। २ उद्वेग। कर्त्तरि ल्युट्। (त्रि०) ३ त्रासयुक्त, जिसे डर लगा हो।

त्रसर (सं० पु०) त्रस बाहु० अरन्। तन्तुवायका उपकरण विशेष, जुलाहोंकी ढुरकी, तसर। पर्याय—सूत्रवेष्टन तसर।

त्रसरेणु (सं० पु०) त्रसश्चलत्वात् भीत इव रेणुः। सूक्ष्म कण, वे छोटे छोटे चमकीले कण जो छेदमेंसे आती हुई धूपमें नाचता वा घूमता दिखाई देता है। ६ परमाणु वा ३ द्व्यणुका एक त्रसरेणु होता है। परमाणु दिखाई नहीं पड़ता है, किन्तु जब त्रसरेणु होता है अर्थात् ६ परमाणु एकत्र होते हैं तभी वह देखनेमें आता है। सूर्यकी किरण जब झरोखेमें होकर प्रवेश करती है, तब उस प्रकाशमें जो छोटा पदार्थ विचरण करता दिखाई देता है, वही त्रसरेणु है। (स्त्री०) २ सूर्यपत्नीभेद, सूर्यकी एक स्त्रीका नाम।

त्रसित (हिं० वि०) भयभीत, डरा हुआ।

त्रसुर (सं० त्रि०) त्रस्-उरच्। भीरु, डरपोक।

त्रस्त (सं॰ त्रि॰) त्रस-क्त। १ भीत, डरा हुआ। २ चकित, जिसे आश्चर्य हुआ हो। ३ शीघ्र, जल्दी। ४ पीड़ित, जिसे कष्ट पहुँचा हो।

त्रस्नु (सं॰ त्रि॰) त्रस्यतीति त्रस-क्नु। त्रासयुक्त, भय-भीत, डरा हुआ।

त्राटक (सं॰ पु॰) योगके षट्कर्मोंसे छठा कर्म वा साधन। इसमें अनिमेषरूपसे किसी विन्दु पर दृष्टि रखी जाती है।

त्राण (सं॰ क्ली॰) त्रै भावे ल्युट् वा क्त: पक्षे तस्य नत्वं। १ रक्षण, रक्षा, बचाव। २ त्रायते इति कर्त्तरि ल्यु। २ रक्षिता, जिसकी रक्षा की गई हो। (क्ली॰) त्रायतेऽनेन इति करणे ल्युट्। ३ रक्षाका साधन, कवच। ४ त्रायमाणालता।

त्राणकर्त्तृ (सं॰ पु॰) रक्षक।

त्राणा (सं॰ स्त्री॰) त्राण् टाप्। त्रायमाणालता।

त्रात (सं॰ त्रि) त्रै-क्त, विकल्पे तस्य नत्वाभावः। १ रक्षित, जिसकी रक्षाकी गई हो। (क्ली॰) भावे क्त। २ रक्षण, बचाव।

त्रातव्य (सं॰ त्रि॰) त्रा-तव्य। रक्षा करनेके योग, बचानेके लायक।

त्राता (हिं॰ पु॰) रक्षक, बचानेवाला।

त्रातार (सं॰ पु॰) रक्षक, वह जो रक्षा करता हो।

त्रातृ (सं॰ त्रि॰) त्रै-तृच्। रक्षाकर्त्ता, बचानेवाला।

त्रापुष (सं॰ पु॰) त्रपुषा निर्वृत्तं अण्, सुक्-च। रङ्ग-निर्मित पात्रादि, राँगेका बना हुआ बरतन या और कोई पदार्थ।

त्रिमन् (सं॰ त्रि॰) त्रै पालने मनिन्। रक्षक, बचाने-वाला।

त्रायन्तिका (सं॰ स्त्री॰) त्रायमाणा लता।

त्रायन्ती (सं॰ स्त्री॰) त्रा-क्विप्, त्रा अयति इ-शतृ ततः ङीप्। त्रायमाणालता।

त्रायमाण (सं॰ त्रि॰) त्रै कर्मणि शानच्। रक्ष्यमाण, बचानेवाला।

त्रायमाणा (सं॰ स्त्री॰) त्रायमाण-टाप्। क्षुद्र डुम्बुराकृति फललताविशेष, बनफशेकी तरहकी एक प्रकारकी लता जो जमीन पर फैलती है। इसमें बीच बीचमें छोटी डंडियाँ निकलती हैं और उनमें फसले बीज होते हैं। पर्याय—वार्षिक, त्रायन्ती, वल-भद्रिका, वलदेवा, सुभद्राणी, भद्रनामिका, क्षतवा, त्राय-माणिका, वलभद्रा, सुकामा, वार्षिकी, गिरिजा, अनुजा, माङ्गल्यार्हा, देवलता, पालिनी, भयनाशिनी, अवनी, रक्षणी और त्रामा। गुण—यह शीत, मधुर, गुल्म, ज्वर, कफ, अस्त्र, भ्रम, तृष्णा, क्षय, ग्लानि, विष और छर्दि-नाशक है। भावप्रकाशमें इसे कषाय, तिक्तरस, सारक, पित्त कफ, ज्वर रोग, हृद्गुल्म, अर्श, भ्रम, शूल और विषनाशक माना है।

त्रायमाणिका (सं॰ स्त्री॰) त्रायमाणालता।

त्रायवृन्त (सं॰ पु॰) अनूपदेशजात गण्डीर नामक शाकविशेष, गंडीर या गुंडिरी नामका साग।

त्रायोदश (सं॰ त्रि॰) त्रयोदश्यां भावे अण्। त्रयोदशी-भव, जो काम त्रयोदशीमें किया जाय।

त्रास (सं॰ पु॰) त्रस भावे घञ्। १ भय, डर। २ मणिका एक दोष। ३ कष्ट, तकलीफ।

त्रासकर (सं॰ त्रि॰) त्रास-कृ-ट। भयजनक, डराने-वाला। २ निवारक, दूर करनेवाला।

त्रासदिष्ट (सं॰ पु॰) कुक्कुरदष्ट रोगभेद, वह रोग जो कुत्तेके काटनेसे उत्पन्न हो।

त्रासदस्यव (सं॰ क्ली॰) त्रसदस्युके स्तोत्र-सम्बन्धी साम।

त्रासदायी (सं॰ त्रि॰) त्रासं भयं ददाति दा-णिनि। भयदाता, डरानेवाला। इसका नामान्तर शङ्कुर है।

त्रासन (सं॰ क्ली॰) त्रस-णिच् भावे ल्युट्। १ भयोत्पादन, डरानेका कार्य। (त्रि॰) कर्त्तरि ल्यु। २ भयोत्पादक, डरानेवाला, भय दिखानेवाला।

त्रासनीय (सं॰ त्रि॰) त्रस णिच्-अनीयर्। ताड़नीय, दण्ड देने या डराने योग्य।

त्रासित (सं॰ त्रि॰) त्रस्-णिच्-क्त। १ भीत, जो डराया गया हो। २ त्रस्त, जिसे कष्ट पहुँचाया गया हो।

त्रासिन् (सं॰ त्रि॰) त्रस्-णिच्-णिनि। भयशील, डरा हुआ।

त्राहि (सं॰ क्रि॰) त्रै-लोट् हि। रक्षा करो, बचाओ। त्राहि कहनेसे 'तुम रक्षा करो' ऐसा समझना चाहिये।

त्रि (सं॰ त्रि॰) तरतीति तॄ-ड्रि। तरतेर्ड्रिः। उण् ५।६६।

त्रित्व संख्याविशिष्ट, तीन। तीनके वाचकशब्द काल—भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान; अग्नि—दक्षिण, गार्हपत्य, आहवनीय; भुवन—स्वर्ग, मर्त्य, पाताल; गङ्गामार्ग—मन्दाकिनी, भागीरथी, भोगवती; शिवचक्षु—चन्द्र, सूर्य और अग्नि; गुण—सत्व, रज, तम; सन्ध्या—प्रातःसन्ध्या, मध्याह्नसन्ध्या, सायंसन्ध्या; राम—परशुराम, दाशरथीराम, बलराम। यह शब्द बहुवचनान्त है।

त्रिंश (सं॰ त्रि॰) त्रिंशत्-डट्। तस्य पूरणे डट्। पा ५।२।४८। त्रिंशत्तम, तीसवाँ।

त्रिंशक (सं॰ त्रि॰) त्रिंशता क्रीतः वुन्-डिच्च। जिसे खरीदनेमें तीस द्रव्य लगे हों।

त्रिंशच्छत (सं॰ क्ली॰) त्रिंशदधिकं शतं। वह संख्या जो एकसौ और तीसके योगसे बनती हो, एक सौ तीसकी संख्या।

त्रिंशत् (सं॰ त्रि॰) त्रयो दशतः परिमाणमस्य। पंक्ति त्रिशदित। पा ५।१।५८। इति निपातनात् साधुः। संख्याविशेष, तीस।

त्रिंशतक (सं॰ त्रि॰) त्रिंशत् परिमाणमस्य कन्। १ त्रिंशत्परिमाण। २ उतनी ही संख्या।

त्रिंशति (सं॰ स्त्री॰) त्रिंशत् पृषोदरादित्वात् साधुः। तीसकी संख्या।

त्रिंशत्तम (सं॰ त्रि॰) त्रिंशतः पूरणः तमप्। तीस संख्याका पूरक, तीसवाँ।

त्रिंशत्पत्र (सं॰ क्ली॰) त्रिंशत् संख्यानि पत्राणि दलानि प्रतिपुष्पमस्य। कुमुद, कोईंका फूल।

त्रिंशांश (सं॰ पु॰) त्रिंशस्त्रिंशत् पूरणोऽशः। १ किसी पदार्थका तीसवां भाग। २ राशिका त्रिंशत् पूरणभाग, एक राशिका तीसवाँ भाग। इसका विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—मेषादि बारह राशियोंको तीससे भाग देने पर जो अंश पाया जाता है, उसीका नाम त्रिंशांश है। यह त्रिंशांश मेषादि राशियोंमें जिस तरह व्यवहृत होता है, उसके नियम इस प्रकार हैं—

मेषादि बारह राशियां 'विषम' और 'सम'में विभक्त हुई हैं। जो छह राशियां विषम मानी गई हैं, उनके त्रिशांशके विचार करनेमें मङ्गल, शनि, बृहस्पति, बुध और शुक्र ये पाँच ग्रह क्रमसे ५।५।८।७।५ अंशके अधिपति होते हैं। प्रत्येक राशि तीस अंशोंमें विभक्त है, यह पहले ही कहा जा चुका है। अतएव जिस किसी विषम संज्ञक राशिके त्रिंशांशका विचार करना हो, उस राशिके प्रथम अंशसे पञ्चमांश तक मङ्गलग्रह त्रिंशांशके अधिपति, फिर षष्ठांशसे दशमांश तक शनिग्रह त्रिंशांशके अधिपति होते हैं। ११ अंशसे १८ अंश तक बृहस्पति, १८से २५ अंश तक बुध, २६ अंशसे ३० अंश तक शुक्र त्रिंशांशके अधिपति होते हैं।

जिस प्रकार ६ विषम राशियोंके त्रिंशांशका विचार किया गया है, उसी प्रकार ६ समराशियोंके त्रिंशांश-विचार करनेमें भी शुक्र, बुध; बृहस्पति, शनि और मङ्गल ग्रह क्रमशः त्रिंशांशके अधिपति होते हैं। (कोष्ठीप्र॰)

सभी राशियोंको तीस भागोंमें बाँट कर मङ्गल, शनि, बृहस्पति बुध और शुक्र ये क्रमसे मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ इन छः विषम राशियोंमें ५। ५। ८। ७। ५ भागके अधिपति होते हैं। तथा वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन इन छः राशियोंमें वैपरीत्यानुसार हैं अर्थात् शुक्र, बुध, शनि, मङ्गल क्रमसे पञ्च, सप्त, अष्ट, पञ्च और पञ्चभागके अधिपति माने गये हैं।

त्रिशांश जन्मफल—मङ्गलके तीसवें अंशमें जन्म होनेसे मनुष्य स्त्री-विजयी, धनहीन, क्रोधपरायण, आत्मविषयमें गर्वित, तस्करकर्मकारी एवं पुत्र और वित्तविहीन होता है। यदि बुधके तीसवें अंशमें हो, तो वह उत्कृष्टविभव और सुखसम्पन्न, नाना प्रकारके रत्नोंसे समन्वित होता है एवं दिनोंदिन उसके कोषागारकी वृद्धि होती है। बृहस्पतिके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे श्रेष्ठ कामिनीका वल्लभ, नित्यभाग्यसम्पन्न, राजप्रिय और दीर्घायु एवं शुक्रके त्रिशांशमें जन्म होनेसे श्रीमान्, बहु आत्मायुक्त, दानधर्मपरायण, देवताओंका अर्चक तथा नृत्यगीतसमायुक्त होता हैं।

जिसका जन्म शनिके त्रिशांशमें हो, वह पापात्मा, लोभी, परनिन्दक, परदाररत और धनवान् होता है। प्रकारान्तरमें—मङ्गलके त्रिशांशमें जन्म होनेसे मनुष्य सर्व धातुविषयोंका वक्ता, सर्वदा क्रियायुक्त, धन और दारवर्जित, तस्कर, मलिनदेह और धूर्त्तस्वभावका होता है।

शनिके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे मलिन, धूर्त्त, सर्वदा कातर, सत्य और शौचविहीन, सेवापरायण, कृपण और नीचस्वभावयुक्त ; बृहस्पतिके त्रिशांशमें जन्म लेनेसे उग्रस्वभावविशिष्ट, सुन्दर शरीरयुक्त, बुद्धिमान्, भोक्ता, धनी सुखी, गुणाढ्य और विषम लोचनविशिष्ट ; बुधके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे सर्वदा धर्म, अर्थ, काम, सुत, कीर्त्ति और जययुक्त, प्रज्ञाविवेककुशली, गुणवान्, उत्तम आश्रययुक्त, दिव्याङ्ग और सुगन्धि पुष्पयुक्त तथा शुक्रके त्रिंशांशमें जन्म होनेसे बहुगुणपरिपूर्ण, सुन्दर, मनोहर, दृष्टिसम्पन्न, युवतियोंको आमोददाता ; सर्वशास्त्रवेत्ता, ब्राह्मण और गुरुभक्त; दानशील और कृपालु होता है। (कोष्ठीप्र०)

त्रिक (सं० क्ली०) त्रयाणां सङ्घः कन्। १ त्रित्वसंख्या, तीनका समूह। २ पृष्ठवंशाधर, रीढ़के नीचेका भाग जहां कूल्हेकी हड्डियां मिलती हैं। ३ कटिभाग, कमर। ४ त्रिफला। ५ त्रिकटु। ६ त्रिपथसंस्थान, तिरमुहानी। ७ गोक्षुर, गोखरू। ८ त्रिमद। तृतीयेन रूपेण ग्रहणं यस्य कन् पूरणप्रत्ययस्य वा लुक्। ९ तृतीयक, तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। त्रयः अधिकाः शुल्कं लाभो वृद्धिर्वा यत्र शतादौ। १० तीन रुपये सैकड़ेका सूद या लाभ आदि। ११ सन्धिभेद, शरीरका जोड़ या गिरह।

त्रिककुद् (सं० त्रि०) त्रीणि ककुदसदृशानि ध्वजतुल्यानि शृङ्गाणि यस्य ककुदस्य अन्त्यलोपः। त्रिककुद्पर्वते। पा ५।४।१४७। १ त्रिकूट पर्वत। २ विष्णु। इन्होंने एक बार एकदन्त और तीन शृङ्ग वराह मूर्त्ति धारण कर पृथ्वीका उद्धार किया था, इसीसे इनका नाम त्रिककुद् पड़ा है (भारतशांति ३४४ अ०) ३ दशरात्रसाध्य यज्ञभेद, दश दिनोंमें होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ। (त्रि०) ४ जिसके तीन शृङ्ग हों।

त्रिककुभ् (सं० पु०, त्रेधा कं पीतं उदकं स्कुभ्नाति स्कुन्भ-क्विप् छान्दसः सलोपः। १ उदानवायु जिससे डकार और छींक आती है। २ नवरात्रसाध्य यज्ञभेद, नौ दिनोंमें होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ।

त्रिककुव्धामन् (सं० पु०, मूर्द्धोधोमध्यभेदेन तिसृणां ककुभां दिशां समाहारः त्रिककुव्, तत् धाम आश्रयो यस्य विष्णु।

त्रिकग्रह (सं० पु०) एक प्रकारका वातरोग।

त्रिकट (सं० पु०) त्रीन् वातादिदोषान् कटति आवृणोति-अच्। गोक्षुरवृक्ष, गोखरू।

त्रिकटु (सं० क्ली०) त्रयाणां कटुरसानां समाहारः। सोंठ मिर्च और पीपल ये तीन वस्तुएँ। पर्याय—त्र्यूषण, व्योष, कटुत्रय, कटुत्रिक। गुण—यह दीपन, कास, श्वास, त्वक्‌रोग, गुल्म, मेह, कफ, स्थौल्य, मेद, श्लीपद और पीनस नाशक है।

त्रिकटुक (सं० क्ली०) त्रिकटु।

त्रिकटुकाद्यमोदक (सं० पु०) मोदक औषधविशेष। इसकी प्रस्तुतप्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, अकवन, शोहिञ्जनका मूल, विड़ङ्ग, हींग, कुटकी, बृहती, कण्टकारी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, अजवायन, अतीस, चीतेकी छाल, सौवर्चल, जीरा, हवुषा और धनिया, प्रत्येकको आध आध छटांक ले कर उसे चूर्ण करें। पीछे जौका सत्तू साढ़े ग्यारह सेर, घी तीन पाव, तिलका तेल तीन पाव और मधु तीन पाव सबको एक साथ मिला कर मोदक बनाया जाता है। प्रत्येक दिन दो तोला भर खानेसे कठिनसे कठिन प्रमेह नष्ट हो जाता है।

(भावप्र० तृतीयभा० प्रमेहाधि०)

त्रिकटुगुटिका (सं० स्त्री०) गुटिका औषधभेद। प्रस्तुतप्रणाली-त्रिकटु और त्रिफलाचूर्ण आध पाव तथा गुग्गुल एक पाव इनको एकत्र कर गोखरूके काढ़ेसे ७ दिन तक भावना दें। दोष, काल और बलानुसार इसका व्यवहार करनेसे मेह, वातरोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष और प्रदर आदि रोग जाते रहते हैं तथा वायु भी स्वपथगामी हो जाती है।

(भावप्र० तृतीयख० प्रमेहाधि०)

त्रिकटुकाद्यवर्त्ति (सं० स्त्री०) वर्त्ति औषधभेद। प्रस्तुतप्रणाली-त्रिकटु, सैन्धव, सर्षप, गृहधूम, कुड़ और मदनफल सबका मिश्रित परिमाण २ तोला, मधु ८ तोला और गुड़ २ तोला इन सबका एकत्र पाक कर अंगूठेके बराबर बत्ती बनावें। पीछे उसे घीमें भिगो कर गुह्यमें प्रयोग करणसे आनाह, उदावर्त्त, उदर और गुल्मरोग दूर हो जाता है। (भावप्र० तृतीयभा०)

त्रिकण्ट (सं॰ पु॰) त्रयः कण्टाः कण्टकाः अस्य। १ गोक्षुर, गोखरू। २ स्नुही वृक्ष। ३ मत्स्यभेद, टेंगरा मछली। ४ पत्रगुप्त, तिधारा, थूहर। ५ वृहती मिलित अग्निदमनी और दुरालभा इन तीनों द्रव्योंका समूह। पर्याय—कण्टकारीत्रय, कण्टकात्रय, कण्टकत्रय।

त्रिकण्टक (सं॰ पु॰-स्त्री॰) १ लघुगर्गमत्स्य, टेंगरा मछली। (त्रि॰) कण्टकत्रयान्वित, जिसमें तीन कांटे हों। २ गोक्षुर वृक्ष, गोखरू। ३ त्रिशूल।

त्रिकण्टकक्वाथ (सं॰ पु॰) क्वाथ औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—कण्टकारी, सोंठ और गुलञ्च प्रत्येकका समभाग लेकर काढ़ा बनावें। पीछे उस काढ़ेमें पीपलका चूर्ण डाल कर पान करनेसे जीर्णज्वर, अरुचि, खांसी, शूल, श्वास, अग्निमान्द्य, प्रतिश्याय (जुकाम) और ऊर्ध्वगत रोग जाता रहता है। इस क्वाथको सवेरे सेवन करनेका विधान है।

त्रिकत्रय (सं॰ पु॰) त्रिफला, त्रिकुटा और त्रिमेद, हड़, बहेड़ा और आँवला; सोंठ, मिर्च और पीपल तथा मोथा चीता और वायविड़ंग इन सबका समूह।

त्रिकत्रयाद्यलौह (सं॰ पु॰) औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली—मण्डूर, घृत, शर्करा, मधु प्रत्येकका आठ-आठ तोला और कान्तलौह १ तोला, इन सबको सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, आंवला, बहेड़ा, मोथा, चीता और विड़ङ्गके क्वाथसे पत्थर या लोहेके बरतनमें भावना दे कर धूपमें सुखावें। आदि, मध्य और अन्तमें अनुपानके साथ सेवन करनेसे सुदारुण पाण्डु, कामला और हलीमक रोग जाता रहता है। (रसेन्द्रसारसं॰)

त्रिकद्रुक (सं॰ पु॰) ज्योतिः गो और आयुः नामक यज्ञ जो छह दिनोंमें समाप्त होता है।

त्रिकर्म्मन् (सं॰ पु॰) त्रीणि कर्माणि यस्य। विप्रके यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान लेना, दान देना, पढ़ना और पढ़ाना ये ६ ब्राह्मणोंके धर्म हैं। इन ६ कर्मोंमें वृत्तिके लिये याजन, प्रतिग्रह और अध्ययनके सिवा अवृत्त्यर्थ दान, इज्या और अध्ययनरूप कर्मकारी ब्राह्मणको त्रिकर्मी कहते हैं। (भारत अनुशा॰ १४१ अ॰)

त्रिकल (सं॰ पु॰) १ तीन मात्राओंका शब्द, प्लुत। २ दोहेका एक भेद। इसमें ८ गुरु और ३० लघु अक्षर होते हैं। (त्रि॰) जिसमें तीन कलाएं हों।

त्रिकलिङ्ग—त्रकलिंग और त्रिलिंग शब्द देखो।

त्रिकश (सं॰ क्ली॰) त्रिसृणां कशानां तद्घातानां समाहारः। कशाघातत्रय, कोड़ा मारनेके तीन प्रकार वा भेद।

त्रिकशूल (सं॰ क्ली॰) त्रिकस्य शूलं, ६-तत्। रोगविशेष, एक प्रकारका वातरोग। नितम्बकी दोनों हड्डियों एवं रीढ़की दोनों हड्डियोंके सन्धिस्थानको त्रिक कहते हैं। इन दोनोंमें अथवा दोमेंसे किसी एकमें जब वायु द्वारा पीड़ा होने लगती है, तब उसे त्रिकशूल कहते हैं। ऐसी हालतमें यन्त्रके साथ बालूका स्वेद तथा रोगीके पीछे वनगोइठोंकी आग देनी चाहिये। (भावप्र॰)

त्रिका (सं॰ स्त्री॰) त्रिधा कायति कै-क, ततष्टाप्। कूपसमीपस्थ जलोद्धारक चिदारुमय यन्त्रभेद, कुएं परका वह चौखटा जिसमें गराड़ी लगी होती है।

त्रिकाण्ड (सं॰ पु॰) त्रीणि काण्डान्यस्य। १ अमरसिंहके एक कोषका नाम। इसमें तीनकाण्ड हैं—स्वर्गवर्गादि काण्ड, भूमिवर्गादि काण्ड और सामान्य काण्ड। तीन काण्ड रहनेके कारण इसका नाम त्रिकाण्ड पड़ा है। २ निरुक्त। इसमें भी तीन काण्ड हैं—प्रथम काण्ड नैघण्टुक, द्वितीय नैगम तृतीय दैवत।

त्रिकाण्डी (सं॰ स्त्री॰) त्रयाणां काण्डानां समाहारः ङीप्। १ काण्डत्रय, वह ग्रन्थ जिसमें कर्म, उपासना और ज्ञान तीनोंका वर्णन हो (त्रि॰) २ त्रिकाण्डयुक्त, जिसमें तीन काण्ड हों।

त्रिकाम (सं॰ पु॰) बुद्धदेव।

त्रिकाय (सं॰ पु॰) त्रयः कायाः अस्य यद्वा त्रिकं अयति अय अपादाने अच् घञ् वा। बुद्ध।

त्रिकार्षिक (सं॰ क्ली॰) कर्षाय हितं ठक्, त्रयाणां वातपित्तकफानां कार्षिकं। नागरप, अतीस और मोथा इन तीनोंका समूह। २ त्रिकर्ष परिमाण, ६ तोला।

त्रिकाल (सं॰ क्ली॰) त्रयाणां कार्यकालभूतभविष्यत्कालानां समाहारः। १ भूत वर्त्तमान और भविष्यत् काल। २ प्रातः मध्याह्न और सायाह्न काल।

त्रिकालज्ञ (सं॰ पु॰) त्रिकालं जानाति ज्ञा-क। १ अर्हत्, जिनेन्द्र। २ बुद्ध। (त्रि॰) ३ भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानका ज्ञाता।

त्रिकालज्ञता (सं० स्त्री०) १ तीनों कालोंकी बातें जाननेकी शक्ति। २ जैनधर्मानुसार वह ज्ञान जो अर्हन्तको होता है, केवलज्ञानत्व।

त्रिकालदर्शक (सं० त्रि०) जो तीनों कालोंकी बात जानते हों। (पु०) जिन भगवान्।

त्रिकालदर्शिता (सं० स्त्री०) त्रिकालज्ञता देखो।

त्रिकालदर्शी (सं० पु०) त्रिकालं पश्यति दृश-णिनि। १ जिन, अर्हन्त। २ ऋषि, मुनि। ३ त्रिकालज्ञ, भूत भविष्यत् और वर्त्तमानका जाननेवाला व्यक्ति।

त्रिकूट (सं० पु०) त्रीणि कूटानि शृङ्गाण्यस्य। त्रिशृङ्ग पर्वतविशेष, तीन शिखरवाला पर्वत, वह पर्वत जिसको तीन चोटियां हों। यह पर्वत लवणसमुद्रके मध्यस्थित और लङ्कापुरका आधार है। पर्याय—सुवेल, त्रिककुत्, त्रिकूट, त्रिशृङ्ग, चित्रकूटक। यह एक पीठस्थान है। यहां भगवती रुद्रसुन्दरीके रूपमें विराजित हैं। (देवीभा० ७।३०६६) २ क्षीरोदसमुद्रके मध्यस्थित पर्वत, सुमेरुका पुत्र। यह पर्वत समुद्र भेद कर बाहर निकला है। यहां देवर्षि रहते हैं और विद्याधर, किन्नर, अप्सर, गन्धर्व, सिद्ध और चारणगण क्रीड़ा करने आते हैं। इसकी तीन चोटियां हैं। एक चोटी सोनेकी है जहां सूर्य आश्रय लेते हैं। दूसरी चोटी चाँदीकी है; यह चोटी तरह तरहके फूलोंसे आच्छादित है। यहां चन्द्रमा वास करते हैं। तीसरी चोटी बरफसे ढकी रहती है और वैदूर्य, इन्द्रनील आदि मणियोंकी प्रभासे चमकती रहती है। यही पहाड़की सबसे ऊँची चोटी है; यह पर्वत नास्तिकों और पापियोंको दिखलाई नहीं देता। (वामनपु०) (क्ली०) त्रिकूटः पर्वतः उत्पत्तिस्थानत्वेन अस्त्यस्य अर्श आदित्वात् अच्। ३ सिन्धुलवण, सेंधा नमक।

त्रिकूटलवण (सं० क्ली०) त्रिकूटं सामुद्रीमिव लवणं। द्रोणी लवण, एक प्रकारका नमक।

त्रिकूटवत् (सं० पु०) त्रीणि कूटानि अस्त्यस्य त्रि-कूट-मतुप्, मस्य व। त्रिकूट पर्वत।

त्रिकूटा (सं० स्त्री०) भैरवीभेद, तान्त्रिकोंकी एक भैरवी।

त्रिकूटाह्वय (सं० क्ली०) काचलवण, काचिया नोन, काला नमक।

त्रिकूर्चक (सं० क्ली०) सुश्रुतोक्त शस्त्रभेद, सुश्रुतके अनुसार फोड़े आदि चीरनेका एक शस्त्र। इसका व्यवहार बालक, वृद्ध, भीरु, राजा आदिकी अस्त्र-चिकित्साके लिये होता है।

त्रिकोण (सं० क्ली०) त्रयः कोणा यस्य। १ योनि, भग। २ कामरूपस्थ पीठविशेष, कामरूपके अन्तर्गत एक तीर्थ जो सिद्धपीठ माना जाता है। करतोयासे ले कर दिक्करवासिनी तक सौ योजन फैला हुआ सर्व सिद्धिक्षेत्र माना गया है। कामरूप देखो। ३ लग्नस्थानसे नवम और पञ्चम स्थान। ४ त्रिभुज क्षेत्रभेद, तीन कोनेका क्षेत्र। ५ मोक्ष। ६ त्रिकोटियुक्त पदार्थ, तीन कोनेवाली कोई वस्तु।

त्रिकोणक (सं० पु०) तीन कोणका पिण्ड, तिकोना पिण्ड।

त्रिकोणघण्टा (सं० पु०) एक प्रकारका तिकोना बाजा, जो लोहेकी मोटी सलाखका बना हुआ रहता है। इस पर लोहेके एक दूसरे टुकड़ेसे आघात करके ताल देते हैं।

त्रिकोणफल (सं० क्ली०) त्रिकोणं त्रास्त्रं फलं यस्य। शृङ्गाटक, सिंघाड़ा। २ त्रिभुजका क्षेत्रफल।

त्रिकोणभवन (सं० क्ली०) त्रिकोणस्थान, जन्मकुण्डलीमें लग्नसे पाँचवाँ और नवाँ स्थान।

त्रिकोणमण्डलभूमि (सं० स्त्री०) नदीके मुहाना पर स्थित मात्राशून्य वकारके जैसा द्वीप, डेलटा।

त्रिकोणमिति—(त्रिकोण + मिति = परिमाण) शास्त्रभेद, त्रिकोण वा त्रिभुजकी बाहु और कोणका सम्बन्ध निर्णय करना ही पहले इस शास्त्रका मुख्य उद्देश्य था, किन्तु गणितशास्त्रकी उन्नतिके साथ साथ त्रिकोणमितिका कलेवर पुष्ट होता गया और बीजगणितका विषय भी इसमें शामिल कर दिया गया। अब त्रिकोणमिति कहनेसे उसी ग्रन्थका बोध होता है जिसमें त्रिभुज, चतुर्भुज आदि क्षेत्रोंकी बाहु और कोणका विचार हो। सबसे पहले ग्रीकोंने यह शास्त्र प्रकाशित किया। हमारे भारतवर्षमें भी पूर्वकालसे त्रिकोणमिति प्रचलित है और वह गणितविद्यामें विशेष पारदर्शी बड़े भारी विद्वान् द्वारा लिखा गया है। त्रिकोणमितिके विषयमें वे जितना जानते थे, सबको लिपिबद्ध करना उन्होंने आवश्यक न

समझा। मालूम होता है, जमीन आदि मापनेके लिए रेखागणितव्युत्पन्न किसी विद्वान्ने पहले पहल इसका प्रणयन किया था।

त्रिकोणमिति प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है—सरल त्रिकोणमिति (Plane trigonometry) और वर्त्तुल त्रिकोणमिति (Spherical trigonometry)। इनके सिवा और भी एक श्रेणी है, जिसे वैश्लेषिक त्रिकोणमिति (Analytical trigonometry) कहते हैं।

साइन, कोसाइन, टैञ्जेण्ट, कोटैञ्जेण्ट, सीकैण्ट और कोसीकैण्ट ये सब शब्द त्रिकोणमितिमें अकसर व्यवहृत हुआ करते हैं। ये सभी अमित्रराशि हैं। नीचे इनके लक्षण लिखे जाते हैं—

मान लो, क ख ग एक समकोण त्रिभुज है और ख कोण एक समकोण है।

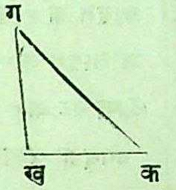

$\frac{\text{खग}}{\text{कग}}$, $\frac{\text{कख}}{\text{कग}}$, $\frac{\text{खग}}{\text{कख}}$, ये यथाक्रम कोणक,के साइन (Sine), कोसाइन Cosine) और टैञ्जेण्ट (tangent) नामसे तथा इनके विपरीत अनुपात $\frac{\text{कग}}{\text{खग}}$, $\frac{\text{कर}}{\text{कख}}$, और $\frac{\text{कख}}{\text{खग}}$, यथाक्रम कोसीकण्ट (Cosecant), सीकण्ट (Sicant) और कोटैञ्जेण्ट (Cotanjent) नामसे पुकारे जाते हैं। किसी कोणविशेषके (यथा क कोण) साइन आदि लिखनेमें साइन क, इस तरह लिखा जाता है और यदि इन सब राशियोंके वर्ग आदि लिखने हों, तो (साइन क)^{२} (कोसाइन) क २ आदि न लिख कर साइन^{२} क, कोसाइन^{२} क इस तरह लिखना चाहिये।

रेखागणितके मतसे जब दो भिन्न सरल रेखाएं भिन्न भिन्न दिशाओंसे आ कर एक दूसरीसे मिल जाती हैं, तब कोण बनता है। किन्तु त्रिकोणमितिमें कोणकी उत्पत्ति किसी और प्रकारसे बतलाई गई है और यही उक्त गणितशास्त्रमें ग्राह्य है।

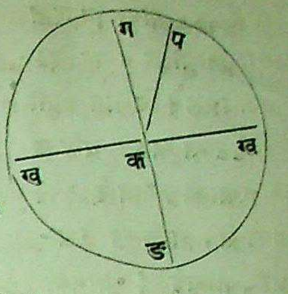

मान लो, क ख एक निर्दिष्ट रेखा है और क एक निर्दिष्ट बिन्दु है। क प एक दूसरी रेखा पहले क ख-के साथ मिल कर घड़ीकी सूईकी गतिके विपरीत ओर घूमती है। इस घूमनेवाली रेखा और क ख निर्दिष्ट रेखाके योगसे ख क प कोण उत्पन्न होता है। रेखागणितके मतसे ख क प कोण कहनेसे सूक्ष्म कोणका ही बोध होता है। किन्तु त्रिकोणमितिके मतसे ख क प कहनेसे अनेक कोण समझे जाते हैं। क्योंकि जितनी बार एक सम्पूर्ण चक्कर शेष होता है, उतनी ही बार समकोण जोड़ने पड़ते हैं।

ख क रेखाको घ बिन्दू तक बढाओ और ग क ङ एक लम्बी रेखा करो। जब क प रेखा क ग रेखाके साथ मिलेगी, तब एक समकोण बनेगा। पीछे क ख रेखाके साथ मिलनेसे दो समकोण, क ङ के साथ मिलनेसे ३ समकोण और फिर क ख रेखाके साथ मिलनेसे ४ समकोण बनेंगे।

रेखागणितके साथ त्रिकोणमितिका एक और भी अन्तर है। रेखागणितके कोणके पहले कोई चिह्न नहीं लगता, किन्तु त्रिकोणमितिमें विपरीत दिशामें घूमनेसे उत्पन्न कोई न कोई चिह्न लग ही जाता है। गणितज्ञ लोग एक मत हो कर पूर्व चित्रमें चिह्नित और उत्पन्न कोणको योजक और विपरीत ओर उत्पन्न कोणको वियोजक चिह्नसे चिह्नित करते हैं।

इसी प्रकार रेखाके विषयमें भी भिन्न भिन्न चिह्न व्यवहृत होते हैं। ख घ के ऊपर और क ग के समान्तर जितनी रेखाएं खींची गई हैं, उनमेंसे योजक और विपरीत ओर खींचनेसे वियोजक चिह्न होता है। फिर ४थे चित्रमें जो सब रेखाएँ क खके साथ समान्तर कर ग ङको दाहिनी ओर खींची गई हैं, वे

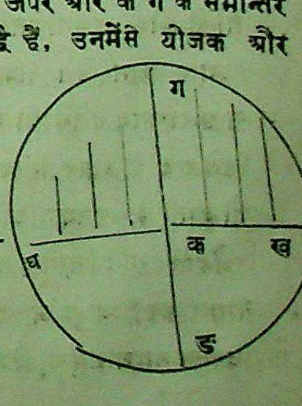

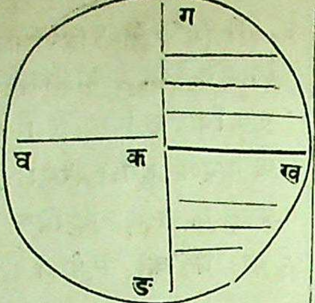

योजकसे और विपरीत ओर खींची जाने पर वियोजक चिह्नसे चिह्नित होती हैं, दृष्टान्त स्वरूप यदि क ख रेखाकी लम्बाई × $\frac{३}{४}$ मान लें, तो क ख रेखाकी लम्बाई $\frac{३}{४}$ माननी पड़ेगी।

एक समकोणको ९० समान भागोंमें बाँटनेसे प्रत्येक भागको १ डिग्री और प्रत्येक डिग्रीको ६० समभागोंमें बाँटनेसे प्रत्येक भागको १ मिनट एवं इसी तरह १ मिनटको ६० समभागोंमें विभक्त करनेसे प्रत्येक सेकेण्ड कहते हैं। डिग्री, मिनट और सेकेण्डके चिह्न क्रमशः °, ′, ″ हैं। ५ पांच डिग्री ६ मिनट ८ सेकेण्ड यदि लिखना हो, तो ५°६′८″ इस प्रकार लिखा जाता है।

कोण मापनेकी एक और प्रक्रिया है। तदनुसार एक समकोणको १०० भागोंमें विभक्त करना होता है। प्रत्येक भागको एक ग्रेड और प्रत्येक ग्रेडको १०० भागोंमें बांटनेसे प्रत्येकको १ मिनट तथा प्रत्येक मिनटको १०० भागोंमें बांटनेसे प्रत्येकको १ सेकेण्ड कहते हैं। इनके चिह्न यथाक्रम ग्रे, ′, ″ हैं। पन्द्रह ग्रेड छः मिनट और सात सेकेण्डको अङ्कमें इस प्रकार लिखते हैं, जैसे—१५ ग्रे ६′७″। फ्रान्समें इसी प्रक्रियासे कोण नापनेका प्रस्ताव किया गया था, किन्तु वह कार्यमें परिणत न हुआ।

उपर्युक्त दोके सिवा कोण नापनेकी और भी एक प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया सबसे अधिक काममें लाई जाती है और उच्चगणितमें केवल इसी प्रक्रिया द्वारा कोण मापा जाता है। किसी वृत्तकी परिधिका उसके व्यास द्वारा भाग देनेसे जो संख्या पाई जाती हैं, वे वृत्तके लिये एक हैं। यह संख्या ग्रीक वर्ण (π) इसी द्वारा लिखी जाती है, इसका परिमाण ३·१४१५९··· अर्थात् प्रायः $\frac{२२}{७}$ है; यदि किसी वृत्तकी परिधिसे उसके व्यासार्द्धके समान कर एक अंश करके लिया जाय, तो उस परिधिखण्डके अभिमुखी केन्द्रस्थ कोणका परिमाण सभी वृत्तोंके लिये समान है। इस परिमिति कोणको एक रेडियन (radian) कहते हैं। जिस प्रकार डिग्री और ग्रेड प्रभृति द्वारा कोणका परिमाण निर्णय किया जाता है, उसी प्रकार इस रेडियनके परिमाणमें भी कोण निर्दिष्ट होता है।

यदि क और ख दो अनपूरक (Complimentary) कोण हों, तो ख अर्थात् क + ख = ९०°

$$\left.\begin{array}{l}\text{साइन क} = \text{कोसाइन ख}\\ \text{कोसाइन क} = \text{साइन ख}\\ \text{टैञ्जेट क} = \text{कोटञ्जेण्ट ख}\end{array}\right\}\begin{array}{l}\text{सीकण्ट क} = \text{कोसीकण्ट ख}\\ \text{कोसीकण्ट क} = \text{सीकण्ट ख}\end{array}$$

क और ख यदि परिपूरक (supplementary) कोण हों अर्थात् क + ख = १८०° हों, तो

साइन क = साइन ख

कोसाइन क = कोसाइन ख

टैञ्जेण्ट क = टैञ्जेण्ट ख

उपर्युक्त सम्बन्धसे सीकण्ट, कोसीकण्ट और कोटैञ्जेण्टका विषय मालूम किया जाता है। यथा—

$$\text{सीकण्ट क} = \frac{१}{\text{कोसाइन क}} = \frac{-१}{\text{कोसाइन ख}} = \text{सीकण्ट ख}$$

इसी प्रकार—

$$\text{कोसीकण्ट क} = \frac{१}{\text{टैञ्जेण्टक}} = \frac{१}{\text{साइन ख}} = \text{कोसीकण्ट ख}$$

$$\text{कोटैञ्जेण्ट क} = \frac{१}{\text{टैञ्जेण्ट क}} = \frac{१}{\text{टैञ्जेण्ट}} = \text{कोटैञ्जेण्ट}$$

१ से ३६०° तकके कोणसमूहके साइन आदिके परिमाण और चिह्नमें कैसा परिवर्त्तन हुआ करता है, वह निम्नलिखित चित्रसे मालूम हो जायगा।

क	०°		९०°		१८०°		२७०°		३६०°
साइन क	०	+	१	+	०	—	−१	—	०
कोसाइन क	१	+	०	—	−१	—	०	+	१
टैञ्जेण्ट क	०	+	∞	—	०	+	∞	—	०
कोसीकण्ट क	∞	+	१	+	∞	—	१	—	∞
सीकण्ट क	१	+	∞	—	१	—	∞	+	१
कोटैञ्जेण्ट क	∞	+	०	—	∞	+	०	—	∞

स्तम्भमें पूर्वलिखित यदि कोणका परिमाण हो, तो साइन आदिका परिमाण जो होगा, वही १,३,५,७,९ स्तम्भमें लिखा गया है।

कोणका परिमाण यदि ०से ९०°, ९०°से १८०°, १८० से २७०° और २७०° से ३६०° हो, तो उनके पहले कौन चिह्न लगेगा, वह २,४,६,८ स्तम्भमें लिखा गया है।

प्रत्येक त्रिकोणमें ६ अंश, ३ बाहु और ३ कोण होते हैं, इनमेंसे यदि १ बाहु और दूसरे २ अंश मालूम हों, तो तीसरे अंशका परिमाण निर्णय किया जा सकता है। केवल एक जगह इसका कुछ वैलक्षण्य हो जाता है। यदि किसी त्रिभुजके कोणोंको क ख ग कहें और उक्त कोणोंकी विपरीत बाहुके नाम क ख और ग हो, तो

$$\frac{\text{साइन क}}{\text{क}_{\text{१}}} = \frac{\text{साइन ख}}{\text{ख}_{\text{१}}} = \frac{\text{साइन ग}}{\text{ग}_{\text{१}}}$$

$$\text{व कोसाइन क} = \frac{\text{ख}^{\text{२}} + \text{ग}_{\text{१}}^{\text{२}} - \text{क}_{\text{१}}^{\text{२}}}{\text{२ ख}_{\text{१}}\,\text{ग}_{\text{१}}}$$

$$\text{कोसाइन ख} = \frac{\text{ग}_{\text{१}}^{\text{२}} + \text{क}_{\text{१}}^{\text{२}} - \text{ख}_{\text{१}}^{\text{२}}}{\text{२ ग}_{\text{१}}\,\text{क}_{\text{१}}}$$

$$\text{कोसाइन ग} = \frac{\text{क}_{\text{१}}^{\text{२}} + \text{ख}_{\text{१}}^{\text{२}} - \text{ग}_{\text{१}}^{\text{२}}}{\text{२ क}_{\text{१}}\,\text{ख}_{\text{१}}}$$

इसके सिवा $\text{क} + \text{ख ग} = \text{१८०}^\circ = ॥$ और अन्यान्य त्रिकोणमितिके विशेष विशेष नियम विशेष विशेष स्थानोंमें व्यवहृत होते हैं। उक्त नियमों और रेखागणितको कईएक प्रतिज्ञाओंकी सहायतासे त्रिकोणका निर्णय विषय निकाला जाता है

वर्तुल त्रिकोणमिति ग्रहनक्षत्रादिके अवस्थान और पथनिर्णय करनेके लिये व्यवहृत होती है। यदि कोई समतल कोण वर्त्तुलका केन्द्र भेद कर इसे दो खण्डोंमें विभक्त करे, तो प्रत्येक वर्त्तुलच्छेद महावृत्त कहलाता है। इस तरह ३ महावृत्त द्वारा सीमाबद्ध असमतल क्षेत्रको वर्त्तुल त्रिकोण (spherical triangle) कहते हैं। सरल त्रिकोणमितिमें जो सब नियम व्यवहृत होते हैं, वर्त्तुल त्रिकोणमितिमें भी वही सब नियम लागू हैं।

त्रिकोणा (सं॰ स्त्री॰) १ योनि, भग। २ शृङ्गाटकवृक्ष, सिंघाड़ेकी लता।

त्रिक्षार (सं॰ क्ली॰) त्रयाणां क्षाराणां समाहारः क्षारत्रय समूह, जवाखार, सज्जी और सुहागा इन तीनों क्षारोंका समूह।

त्रिक्षुर (सं॰ पु॰) त्रीणि क्षुराणीव अग्राणि यस्य। कोकिलाक्ष वृक्ष, ताल मखाना।

त्रिख (सं॰ क्ली॰) त्रिधा खं आकाशोऽवकाशः फलेऽत्र। त्रपुष, खीरा।

त्रिखट्व (सं॰ क्ली॰) त्रिसृणां खट्वानां समाहारः। खट्वात्रय, तीन चारपाइयोंका समूह।

त्रिखट्वी (सं॰ स्त्री॰) त्रिखट्व-ङीप्। त्रिखट्व देखो।

त्रिखर्व (सं॰ पु॰) सामवेदकी शाखाके विशेषाध्यायी।

त्रिगङ्ग (सं॰ पु॰) तिस्रो गङ्गा नद्यो यत्र वहुव्रीहार्थे "नदीभिश्च" इति सूत्रेण अव्ययीभावः। तीर्थभेद, महाभारतके अनुसार एक तीर्थका नाम।

त्रिगण (सं॰ पु॰) त्रयाणां धर्मार्थकामानां गणः वर्गः। त्रिवर्ग, धर्म, अर्थ और काम।

त्रिगन्धक (सं॰ क्ली॰) त्रयाणां गन्धकद्रव्याणां समाहारः। त्रिजात देखो।

त्रिगम्भीर (सं॰ पु॰) त्रिभिः गम्भीरः। वह जिसका सत्व (आचरण), स्वर और नाभि गम्भीर हो। लोगोंका विश्वास है कि ऐसा आदमी सदा सुखी रहता है।

त्रिगर्त्त (सं॰ पु॰) त्रयो गर्त्ता यत्र। १ देशविशेष। इसका वर्त्तमान नाम जालन्धर है। वृहत्संहिताके अनुसार यह कूर्मविभागके उत्तरकी ओर अवस्थित है। (वृहत्सं॰ १४।२५) जालन्धर देखो। २ त्रिगर्त्तदेशस्थ भूमि। ३ इस देशके निवासी।

त्रिगर्त्तक (सं॰ पु॰) त्रिगर्त्त एव स्वार्थे कन्। त्रिगर्त्त देश।

त्रिगर्त्तषष्ठ (सं॰ पु॰) त्रिगर्त्तः षष्ठो वर्गो यस्य। आयु, जीविसङ्घ भेद।

त्रिगर्त्ता (सं॰ स्त्री॰) त्रयो योनिस्थाः गर्त्ता यस्याः। १ कामुकी स्त्री, छिनाल स्त्री। कामुकी स्त्री एकयोनिका होने पर भी मैथुनके समय त्रियोनिकाके तुल्य हो जाती है, इसीसे इसका नाम त्रिगर्त्ता पड़ा है। २ घुरघुरा।

त्रिगर्त्तिक (सं॰ पु॰) त्रिगर्त्त देश।

त्रिगुण (सं॰ क्ली॰) त्रयाणां सत्वरजस्तमसां गुणानां समाहारः। सांख्यशास्त्र-प्रसिद्ध सत्व, रज और तमोगुणात्मक

प्रधान। सत्त्व, रज और तम इन्हींसे सबसे पहले प्रधानकी उत्पत्ति हुई। इस प्रधानका नाम है बुद्धितत्त्व। इस बुद्धितत्वसे ही सब उत्पन्न होता है। (सांख्याका० ११)

त्रिगुण अविवेकी, विषय, सामान्य, अचेतन और प्रसवधर्मी है। प्रधान व्यक्त सदृश है। यह परिदृश्यमान संसार त्रिगुणात्मक और अविवेकी है, अर्थात् इसके विवेक वा भेद नहीं है। यह गाय है, यह घोड़ा है, जिस तरह यह पृथक् किया जाता है, उस तरह व्यक्त और गुण पृथक् नहीं किया जा सकता। इसी कारण जो जो गुण है, वही वही व्यक्त हैं। गुण और व्यक्त एक ही हैं। विषय भोग्य है ऐसा जानकर जिसे भोग करते हैं वही पदार्थ भोग्य है। त्रिगुण वा त्रिगुणोत्पन्न व्यक्त भोग्य पदार्थ हैं, इसीसे व्यक्तका नाम विषय पड़ा है। यह व्यक्त सभी पुरुषोंके भोग करनेका पदार्थ है।

सामान्य वेश्याकी तरह सभीका भोग्य-पदार्थ है, इस कारण व्यक्त सामान्य हैं। अचेतन, सुख: दुःख और मोहका बोधाभाव है, अतः व्यक्त अचेतन है। प्रसवधर्मी बुद्धिसे अहङ्कारादि निकले हैं, इस कारण व्यक्त प्रपञ्चधर्मी है। अहङ्कारसे एकादश इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्र तथा तन्मात्रसे पञ्चमहाभूत हुए हैं।

यह त्रिगुण अभिन्न भावसे जड़ा हुआ है। व्यक्त भी त्रिगुण है और अव्यक्त भी त्रिगुण है, जिसका कार्य है यह महादादि, वह भी त्रिगुण है। यह गुण है, यह प्रधान है, इसको पृथक् नहीं कर सकते। त्रिगुण वा प्रधान अचेतनका अनुमान इस प्रकार है, अचेतन मृत्पिण्डसे अचेतन घड़े ही बन सकते हैं। इस कारण प्रधान वा प्रधानोत्पन्न सुख दुःख और मोहमें चेतनता नहीं है, इस कारण त्रिगुण अचेतन है। यह त्रिगुण अर्थात् सत्व, रज और तम प्रकाशार्थ है, प्रवृत्यर्थ है। प्रवृत्यर्थ और नियमार्थ है, एक दूसरेसे अभिभूत है, एक दूसरेका आश्रित है, एक दूसरेसे उत्पन्न होता है, एक दूसरेसे मैथुन सम्बन्ध है, एक दूसरेमें वर्त्तमान है एवं यह सुख, दुःख और मोहात्मक है। सुख सत्व है, दुःख रज है और मोह तम है। सत्व गुण प्रकाशार्थ अर्थात् प्रकाशसमर्थ है; रज प्रवृत्यर्थ अर्थात् प्रवृत्तसमर्थ है, तम नियमार्थ अर्थात् नियमसमर्थ है वा नियम शब्दमें स्थित है। अतएव सत्व रज और तमोगुण क्रमशः प्रकाशक्रिया और स्थितिशील रूपमें परिगणित होता है। एक दूसरेसे अभिभूत है अर्थात् प्रत्येक गुण शेष दो गुणोंको वशीभूत करता है। जब सत्त्वगुण उत्कट होता है, तब रज और तमोगुण अपने अपने गुणोंसे अभिभूत हो कर प्रीति और प्रकाश स्वभावमें वास करता है। जब रजोगुण उत्कट होता है, तब सत्व और तमोगुण अभिभूत हो कर अप्रीति और प्रवृत्तिधर्म्ममें वास करता है। तमोगुण जब उत्कट होता है, तब सत्व और रजोगुण अभिभूत हो कर विषाद और स्थितिशील धर्ममें वास करता है। यह त्रिगुण परस्पर मिथुनभावमें सम्बद्ध है। रज सत्वको ले कर मिथुन और सत्व रजको भी ले कर मिथुन हुआ है अर्थात् यह एक दूसरेका सहायक है। त्रिगुण एक दूसरेमें वर्त्तमान हैं अर्थात् सभी गुण त्रिगुणमें ही अल्पाधिकभावसे रहते हैं, इसका एक उदाहरण देनेसे स्पष्ट हो जायगा। एक सुन्दरी स्त्री स्वामीके सुख, सपत्नीके दुःख और लम्पटके मोहका कारण है। उसमें यह त्रिगुण है। ऐसा जान कर ही वह इस प्रकार प्रकृतिके अनुसार सुख-दुःख और मोहका कारण हुई है। इसी प्रकार संसारके सभी विषयोंमें ही समझना चाहिये।

सत्वगुण लघु और प्रकाशक है, रजोगुण उपष्टम्भक और चञ्चल है तथा तमोगुण गुरु और आवरक है। ये तीनों एक साथ मिलाकर प्रदीपकी नाईं किसी विशेष प्रयोजनको सिद्ध करते हैं। जब सत्वगुण उत्कट होता है, तब अङ्गादि लघु, बुद्धि प्रकाश और सभी इन्द्रियां प्रसन्न होती हैं। रजोगुण उपष्टम्भक और चञ्चल उसी प्रकार है, जिस प्रकार एक वृष जब दूसरे वृषको देखता है, तो वह उपष्टम्भक अर्थात् रजोगुण द्वारा चालित होता है। उस समय इसी रजोगुणका आधिक्य होता है। इस कारण चित्त चञ्चल हो जाता है और उसीके अनुसार काम करने लगता है। तम गुरु और आवरणक है। जब तमका आधिक्य होता है तब अङ्गादि भारी मालूम पड़ने लगता है और सभी इन्द्रियां आच्छन्न हो जाती हैं अर्थात् अपना काम नहीं कर सकतीं।

यहां यह कह सकते हैं, कि त्रिगुण जब एक दूसरेके विरुद्ध रहता है, तब वह किस प्रकार प्रदीपकी नाईं

किसी विशेष प्रयोजनको सिद्ध कर सकता है? इसका उत्तर यह है, कि प्रदीपमें तेल, अग्नि और बत्ती इन तीन पदार्थोंके विरुद्ध स्वभाव होने पर भी वह एकत्र संयोगसे प्रकाश द्वारा दूसरे दूसरे पदार्थोंको प्रकाश पहुंचाता है। उसी प्रकार सत्व, रज और तम एक दूसरेके विरुद्ध रहने पर भी वह अपने अपने स्वार्थ साधनमें समर्थ है। (सांख्यका) कोई कोई कहते हैं, कि त्रिगुण वैशेषिक दर्शनोक्त गुणपदार्थ है वा द्रव्य पदार्थ। इसमें गुण शब्द रहनेसे गुण पदार्थ समझा जाता है, किन्तु यथार्थमें यह गुणपदार्थ नहीं है। सांख्यदर्शनके भाष्यमें इस प्रकार मीमांसा की गई है—

"सत्वादीनि द्रव्याणि न वैशेषिकवद्गुणाः संयोगवत्वात् लघुत्व-चलत्व-गुरुत्वादिधर्मकत्वात्वाच्च श्रुत्यादौ तु गुणशब्दः पुरुषोपकरणत्वात् पुरुषपशुबन्धनकत्रिगुणात्मकमहदादि रज्जुनिर्मातृत्वाच्च प्रयुज्यते" (सांख्यद० भाष्य १।६५)

सत्वादि तीनों गुण द्रव्य पदार्थ न कि गुणपदार्थ। संयोगत्वाके लिये लघुत्व, चलत्व और गुरुत्व आदि द्रव्यपदार्थोंके ही धर्म हैं। गुण पदार्थके धर्म नहीं है। इसे द्रव्य पदार्थ न कह कर गुण पदार्थ कहा गया है। इसका कारण यह है कि पुरुषरूप पशुबन्धन करनेके लिये प्रकृति त्रिगुण महदादि रज्जु बनाते हैं। इसीसे इसको गुणपदार्थ बतलाया है। विशेष विवरण प्रकृति शब्दमें देखो। (त्रि०) २ सत्त्वादि गुणयुक्त, जिसके सत्वादि तीनों गुण हों। मनुने लिखा है, कि जगत् त्रिगुणमय है, एक आत्माके सिवा और सभी पदार्थोंमें ही त्रिगुण वर्त्तमान है। ३ तीन द्वारा गुणित, तीनगुना, तिगुना। ४ त्रिशिख, जिसकी तीन शाखाएँ हों।

त्रिगुणा (सं० स्त्री०) त्रयो गुणा यस्याः। १ दुर्गा। २ माया ३ स्वनामख्यात बीजभेद, तन्त्रमें एक प्रसिद्ध बीजका नाम।

त्रिगुणाकर्ण (सं० त्रि०) त्रिगुणौ कर्णौ यस्य। त्रिगुण कर्णरूप लक्षणान्वित। जिसके कान तीन भागोंमें चीरे हुए हों। यह शुभलक्षणका चिह्न है।

त्रिगुणाकृत (सं० त्रि०) त्रिगुणं कर्षणं कृतं त्रिगुणा डाच्। संख्यायाश्च गुणान्तायाः। पा ५।४।५९। जो खेत तीन बार जोता गया हो।

त्रिगुणाख्यरस (सं० पु०) वातरोगका रस।

त्रिगुणात्मक (सं० क्ली०) त्रयो गुणाः तेजोवत्स्वरूपा आत्मानो यस्य। त्रिगुणविशिष्ट, जिसमें सत्व, रज और तम ये तीनों गुण हों।

त्रिगुणित (सं० त्रि०) त्रिभिर्गुणितः। त्रिरावृत्त, जो तीन बार गुणा किया गया हो।

त्रिगुणी (सं० स्त्री०) त्रयो गुणा पत्रे यस्याः। बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। बेलके पत्ते तीन तीन एक साथ होते हैं इसीसे इसका यह नाम पड़ा।

त्रिगुल (तिर्गुल) – बम्बई-प्रदेशवासी एक जाति। जिनकी तीन पीढ़ी गोलक (जारज) हैं, वे ही त्रिगुल नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। किसी किसी स्थानके त्रिगुलोंका कहना है कि ब्राह्मण माता और शूद्र पिताके औरससे उनकी उत्पत्ति हुई है। प्रवाद है, कि पेशवाओंके शासनकालमें जितनी भी ब्राह्मण-स्त्रियां और ब्राह्मण विधवायें परपुरुषके सहवाससे गर्भवती होती थीं, उन्हें महाराष्ट्रोंके प्रधान तीर्थ पण्ढरपुरमें भेज देते थे। वहां वे प्रसवके बाद नवजातशिशुको अन्य किसीको दे देती थीं। इसी कारण पण्ढरपुरमें और उसके निकटवर्त्ती स्थानोंमें त्रिगुलोंकी संख्या अधिक है।

इन लोगोंके आङ्गिरस, भरद्वाज, हरिताश्व, काश्यप, लोहित और श्रीवत्स गोत्र हैं। ये स्मार्त्त वा भागवत हैं, देखनेमें प्रायः मराठा ब्राह्मणोंके सदृश हैं। ये लोग प्रधानतः पर्णजीवी हैं, पर कुछ दिनोंमें बहुतसे लोग शस्यव्यवसाय, महाजनी, दूकानदारी और नौकरी करने लग गये हैं। सबकी अवस्था एकसी नहीं है। आहार व्यवहार, चाल-चलन सब देशस्थ ब्राह्मणोंसे मिलते जुलते हैं। ब्राह्मणोंकी तरह ये लोग भी यज्ञोपवीत पहनते हैं; किन्तु किसी दूसरी श्रेणीके ब्राह्मण इन लोगोंके साथ आहार वा विवाह-सादी नहीं करते। देशस्थ ब्राह्मण ही इनके पुरोहित हैं। वाराणसी, नासिक, आलन्द, पण्ढरपुर और तुलजापुर ये इनके प्रधान तीर्थ हैं।

इन लोगोंमें कई एक विशेष नियम हैं। पहले प्रसवके समय स्त्रियां पिताके घर आती हैं। सन्तान उत्पन्न होनेके बाद प्रसूतिगृहमें तीन मास तक दीया जलाया

जाता है। प्रसवके बाद प्रथम दश दिन ग्रामको पुरोहित आ कर शान्तिपाठ करते और पीछे प्रसूतिको धानसे आशीर्वाद देते हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, वे प्रसूति और शिशुके ललाटमें भस्म भी लगाते हैं। इस देशमें जिस तरह छठीके दिन पुरोहित आकर षष्ठी-रात्रिकी पूजा करते हैं, उसी तरह इन लोगोंमें भी पांचवें दिन धाय आ कर यथारीति षष्ठी-पूजा करती है। इस दिन चार ब्राह्मण रात भर जग कर शान्ति पाठ करते हैं और सवेरे उनको कुछ दक्षिणा तथा पान-सुपारी दे कर बिदा करते हैं। ग्यारहवें दिन प्रसूति और शिशु स्नानादि करके शुद्ध होते हैं। सन्तान उत्पन्न होनेके तीन मास बाद प्रसूति अपने स्वामीके घर जाती है।

१० वर्ष होनेके पहले ही बालकका उपनयन होता है।

त्रिगूढ़ (सं० पु०) स्त्रियोंके वेषमें पुरुषोंका नृत्य।

त्रिग्रामी (सं० स्त्री०) त्रयाणां ग्रामाणां समाहारः। १ तीन ग्रामोंका समूह। २ एक ग्रामका नाम।

त्रिघण्टा—एक कल्पित नगर जो हिमालयकी चोटी पर अवस्थित माना जाता है। कहा जाता है, कि यहां विद्याधर आदि रहते हैं।

त्रिचक्र (सं० पु०) त्रीणि चक्राणि यस्य। अश्विनीकुमारोंका रथ।

त्रिचक्षु (सं० पु०) त्रीणि चक्षुंषि यस्य। त्रिनेत्र महादेव।

त्रिचतुर (सं० त्रि०) त्रयो वा चत्वारो वा विकल्पार्थे डच् समासान्तः। तीन या चार।

त्रिचत्वारिंश (सं० त्रि०) त्र्यधिका चत्वारिंशत् पूरणे डट्। तेंतालीसवां।

त्रिचत्वारिंशत् (सं० त्रि०) त्र्यधिका चत्वारिंशत्। जो गिनतीमें चालीससे तीन अधिक हो, तेंतालीस।

त्रिचित् (सं० पु०) त्रीन् अग्नीन् चिनोति स्म चि-भूते क्विप्। अतीताग्नित्रय चयनकारी।

त्रिचित (सं० पु०) त्रिभिः त्रिभागीत्सेधाभिरिष्टकाभिः चितः। गार्हपत्य अग्निभेद, एवा प्रकारकी गार्हपत्याग्नि।

त्रिचिनापल्ली (त्रिशिरापल्ली)—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १०° १६′से ११° ३२′ उ० और देशा० ७८° ८′से ७९° ३०′ पू०में अवस्थित है। क्षेत्रफल ३६३२ वर्गमील है। इसके पूर्वमें तञ्जोर, उत्तरमें आर्काट और सलेम, पश्चिममें कोयाम्बतुर और मदुरा, तथा दक्षिणमें पुदुकोट राज्य है।

इस जिलेमें जितनी भी नदियां हैं, उन सबमें कावेरी नदी प्रधान है। यह पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहती हुई श्रीरङ्गम् द्वीपके निकट जा दो शाखाओंमें विभक्त हो गई है, जिनमेंसे एक तो कावेरी नामसे प्रसिद्ध है और दूसरी कोलेरून नामसे। कावेरी नदीके दक्षिण और उत्तरमें चूने और लोहेकी खानें हैं; परन्तु वे काममें नहीं लाई जातीं। यहांकी जलवायु शुष्क तथा स्वास्थ्यकर है। वार्षिक वृष्टिपात लगभग ३४ इं० है।

इसमें कुल शहर और ग्राम मिला कर ८३७ लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः १४४७७० है, जिनमें अधिकांश हिन्दू और थोड़े मुसलमान तथा ईसाई हैं। ये लोग तामिल बोली बोलते हैं; किन्तु कुछ तेलगू तथा कर्णाटी भाषाका भी व्यवहार करते हैं। तमाम जिला कुलितलै, मुसिरि, परम्बलूर, त्रिचिनापल्ली और उदैयारपालयम् इन पांच तहसीलोंमें विभक्त है।

विशेष ऐतिहासिक विवरण इसी नामके शहरमें देखो।

२ उक्त जिलेका एक तालुक यह अक्षा० १०° ३८′से ११° ३′ उ० और देशा० ७८° २८′से ७९° १′ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ५४२ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ३८२०९१ है। इसमें शहर और ग्राम दोनों मिला कर १९३ हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान शहर। यह अक्षा० १०° ४९′ उ० और देशा० ७८° ४२′ पू०के मध्य कावेरी नदीके दाहिने किनारे मन्द्राजसे १९५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

इस नगरकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसा प्रवाद है—पूर्व समयमें त्रिशिरा नामका एक राक्षस पर्वतकी गुहामें रहता था। पर्वतके चारों ओर घना जंगल था। उक्त राक्षसके भयसे कोई वहां जानेका साहस नहीं करता था। बाद सुरवदित्तान नामक किसी साहसी वीर पुरुषने इस राक्षसको मार डाला। उसी दिनसे इसका नाम त्रिशिरापल्ली पड़ गया। सुरवदित्तानने त्रिशिरा राक्षसको मार कर वहांका जंगल कटवा डाला और

उसी जगह राजधानी स्थापन की। ये किस समयमें आविर्भूत हुए थे, इसका पता नहीं चलता। सुखदित्तानने त्रिशिरराक्षसके भयसे इस जनपदकी रक्षा की थी, इसीसे वहांके लोग कावेरी नदीके दोनों किनारे शिवालय निर्माण कर सुब्रह्मण्य नामसे उनकी पूजा करते हैं।

कहा जाता है, कि ईसाकी पाचवीं शताब्दीके पहलेसे यहा चोल-राजाओंका राज्य था। मगधके अशोक राजाके विजयस्तम्भमें जो शिलालेख है, उसमें चोल-राजाओंके नाम पाये जाते हैं। उरैयुर नामक स्थानमें चोल-राजाओंकी राजधानी थी, जो त्रिचिनापल्लीसे एक मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १०४७२१ है, जिनमें अधिकांश हिन्दू और कुछ मुसलमान तथा ईसाई हैं।

जिस समय रामानुजाचार्य श्रीरङ्गक्षेत्रमें रह कर विशिष्टाद्वैतमतका प्रचार कर रहे थे, उस समय करिकाल नामक कोई चोल-राज त्रिचिनापल्लीमें राज्य करते थे। १०१७ ई०में श्रीरामानुजाचार्यका जन्म हुआ था और १७ वर्षकी उम्रमें वे काञ्चीपुर और वहांसे फिर श्रीरङ्गम्को पढ़ाने गये थे, पीछे वे वैष्णवधर्ममें दीक्षित हो कर काञ्चीपुरको लौट आये। इसके बाद वे तिरुपति होते हुए विशिष्टाद्वैतमतका प्रचार करनेके लिये श्रीरङ्गम् गये। उस समय उनकी उम्र ५० वर्षसे कम न होगी। इसके भी बहुत समय बाद श्रीरङ्गम्में उनका देहान्त हुआ था। इससे प्रतीत होता है, कि चोल-राजने करिकाल १०६० ई०के बाद किसी समय राज्य किया होगा। मधुरापुरीके विवरणमें लिखा है, कि सुन्दर पाण्ड्यने उरैयुरको जला डाला था और वहांके पूर्वशासनकर्त्ताके पुत्र करिकालको कुम्भकोणका शासनकर्त्ता बनाया था। मि० टेलरने परम्परागत विवरणकी सहायतासे यह दिखलाया है, कि उरैयुरके तहस-नहस हो जाने पर चोल-राजधानी उठ कर कुम्भकोण चली गई थी।

१०७१ ई०में विजयबाहु लङ्काके सिंहासन पर बैठे। उनके राजत्वकालमें चोल-राजने सिंहल पर आक्रमण किया; किन्तु वे कृतकार्य न हो सके। सिंहलके राजाने १११६ ई०में चोलराज्य पर धावा किया। वे भी कृतकार्य न हो कर वहांसे लौट आये। पराक्रमबाहुने ११५३ से ११८६ ई० तक सिंहलमें राज्य किया। पाण्ड्य कुलशेखरके सिंहल-राजसे पराजित होने पर चोल-राजने उन्हें नष्ट राज्य लौटानेमें सहायता की थी। इस पर पराक्रमबाहुने प्रतिशोध लेनेके लिए चोलराज्य पर धावा किया और कुछ प्रदेश दखल कर लिए।

मुसलमानोंने किस समय त्रिशिरापल्ली पर आक्रमण किया था, इसका पता लगाना बहुत कठिन है। हजरत सुलतान अलाउद्दीन् साहबने १२८० ई०में मधुरापुरी जीत कर उसे अपने राज्यमें मिला लिया था। १३१० ई०में दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीन्के प्रधान सेनानायक बल्लाल-राजधानी द्वारसमुद्र लूट कर रामेश्वर तक अग्रसर हुए थे। त्रिशिरापल्लीके आक्रमणके विषयमें कोई विशेष विवरण नहीं मिलने पर भी अन्ततः इतना अनुमान अवश्य किया जा सकता है, कि उन लोगोंने त्रिशिरापल्लीमें लूट मचाई थी।

तञ्जोर और मधुरापुरीके विवरणसे जाना जाता है, कि तञ्जोरके शेष राजा वीरशेखरने त्रिशिरापल्ली और मधुरापुरीको अपने राज्यमें मिला लिया था। विजयनगरके सेनानायक कतियान नागनायकने वीरशेखरको परास्त कर त्रिशिरापल्ली, तञ्जोर और मधुरापुरी पर कब्जा किया था। विजयनगरके राजा अच्युतरायने अपने साले सेवप्पानायकको तञ्जोर और त्रिशिरापल्लीका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। इस समय त्रिचिनापल्लीमें डकैतोंकी संख्या बहुत बढ़ गई और उनसे लोग बहुत भय खाने लगे। विश्वनाथ नायकको मधुरापुरीके शासनकर्त्ता होनेके बाद त्रिचिनापल्लीमें डकैतोंका प्रभाव मालूम हो गया। उन्होंने तञ्जोरके राजाको त्रिचिनापल्लीके बदले बल्लान नामक दुर्ग दे दिया और स्वयं वहां आ कर देखा, कि त्रिचिनापल्ली अत्यन्त स्वास्थ्यकर स्थान है और दुर्गका संस्कार हो जानेसे वह और भी सुदृढ़ हो जायगा। ऐसा सोच कर उन्होंने राजधानी स्थापित की। त्रिचिनापल्लीके प्राचीन प्राचीरका संस्कार कराया तथा एक नई चहार-दीवारी भी बनवाई। इसी प्राचीरके पश्चात्भागमें खाई खुदवा कर इसे दुर्भेद्य कर दिया। खाईमें जल लानेके लिए कावेरी नदी तक एक

नाला लगा दिया। इस समय नदीके दोनों पारके जङ्गल कटवा कर आबादी की गई और भिन्न भिन्न देशोंके शिल्पकारोंको ला कर यहां बसाया गया। विश्वनाथने ब्राह्मणोंके रहनेके लिए स्वतन्त्र घर बनवा दिये थे। थोड़े ही दिनोंके मध्य यह नगर सुख-समृद्धिशाली देशोंमें गिना जाने लगा। इस समय इन्होंने श्रीरङ्गक्षेत्रके रङ्गनाथ-स्वामीके मन्दिरके बाहरवाले दरवाजे पर एक गोपुर निर्माण किया। ये कभी मधुरामें और कभी त्रिचिनापल्लीमें रहते थे। इस समयसे ले कर चांदसाहबके अधिकारके समय (१७३६ ई०) तक मधुरापुरी और त्रिचिनापल्ली नायक-राजाओंके शासनाधीन था। मदुरा देखो। नायक-राजगण अधिकांश समय तक त्रिचिनापल्लीमें रह कर राजकाज करते थे। १६२६ ई०में तिरुमलके राजा होने पर वे राजधानीको उठा कर मधुरापुरीको ले गये। इनके पुत्र अलकाद्रि (मत्तु वीरप्पा)-ने त्रिचिनापल्लीदुर्ग-का पुनः संस्कार किया। इनके पुत्र शोक्कनाथ १६६१ ई०में जब राजसिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने पुनः त्रिचिनापल्लीमें राजधानी कायम की। नायक-राजाओंने उनके समयसे ले कर १७३१ ई० तक त्रिचिनापल्लीमें वास किया था। १७३१ ई०में अन्तिम नायक-राज विजय राघवकी मृत्यु हुई। उन्हें कोई सन्तान न थी, इसलिए उनकी विधवा स्त्री मीनाक्षी देवीने वङ्गारु-तिरुमलके पुत्र विजयकुमार मुत्तु तिरुमलको गोद लिया और आप नाबालिगकी अभिभाविका हो कर राज-कार्य करने लगी। इस समय वङ्गारुतिरुमलने प्रकृत उत्तराधिकारी होनेका दावा किया। ये ख्यातनाम तिरुमल नायकके छोटे भाई और कुमार मुत्तुके प्रपौत्र थे। इनके पिता कुमार तिरुमलने रङ्गकृष्ण मुत्तुवीरप्पाके समयमें थोड़े दिनोंके लिए युवराजका कार्य किया था। जब इनके प्रपितामह राज्यके अधिकारी न हुए, तब ये किसी हालतसे प्रकृत उत्तराधिकारी हो नहीं सकते थे। दलवाय वेंकटाचार्यने त्रिमलको राजा बनानेकी पूरी चेष्टा की; किन्तु वे कृतकार्य न हो सके। अन्तमें वेंकटाचार्यने अपने मनोरथकी सिद्धिका कोई उपाय न देख आरकाड़के नवाब दोस्त अलीके पुत्र सुबेदार अलीकी शरण ली और उनसे कहा,—'यदि आप वङ्गारु-तिरुमलको राजसिंहासन पर बैठा सके, तो आपको ३० लाख रुपये दिये जायंगे।" सुबेदार अली अच्छा मौका हाथ आता देख कर चांदसाहबके साथ त्रिचिनापल्लीके दुर्गके सामने आ पहुंचे और उन्होंने सहसा बलपूर्वक रानीके सैन्य-सामन्तोंको पराजय किया। पीछे उन्होंने देखा, कि दुर्ग अधिकार करना बहुत सहज है; इस हेतु छल करके दोनों पक्षका विवाद मिटानेके लिए उन्हें अपने दरबारमें बुलाया। वङ्गारुतिरुमल तो दरबारमें पहुंच गये; किन्तु मीनाक्षीदेवीके पक्षसे कोई नहीं गया। तब उन्होंने वङ्गारुतिरुमलको प्रकृत स्वत्वाधिकारी स्थिर कर राज्यशासनका भार अर्पण किया और ३० लाख रुपयेका एक पत्र उनसे लिखवा लिया। रुपया वसूल करनेका भार चांद साहबके हाथ दे कर नवाबके पुत्र आरकाड़को चले गये। उनके चले जानेपर मीनाक्षी देवीने चांदसाहबको कहला भेजा "यदि राज्य वङ्गारुतिरुमलके बदले मेरे ही हाथमें रखा जाय, तो मैं आपको १ करोड़ रुपया दूंगी।" चांदसाहबने रुपयेके लोभमें पड़ कर वङ्गारुतिरुमलको रानीके हाथमें ही सौंप दिया। चांदसाहबने अपनी बात पूरी करनेके लिये मीनाक्षी देवीके सामने हाथमें कुरान ले कर शपथ खाया था। कोई कोई इतिहास-लेखक कहते हैं, कि—'उन्होंने कुरानके बदले एक ईंटको अच्छे कपड़ेसे ढक कर अपने हाथमें ले शपथ खाया था।' कोषागारमें रुपया नहीं रहनेसे एक करोड़ रुपयेके रत्नादि दिये गये। मीनाक्षी देवीने वङ्गारुतिरुमलको मधुरापुरीका शासन-कर्त्ता बना कर भेजा। १७३८ ई०को चांदसाहबने त्रिचिनापल्लीमें आ कर धोखेसे दुर्गमें प्रवेश किया और रानीको अपने घरमें नजरबन्दी कर आप राजा बन बैठे।

रानीने अपने बचावका कोई रास्ता न देख विष खा कर आत्महत्या कर डाली। अब चांदसाहब निष्कण्टक हो गये। वङ्गारुतिरुमलने अपनेको निरावलम्ब देख सतारा जा कर महाराष्ट्र-पतिसे सहायता मांगी। महाराष्ट्र सेना-नायक रघुजी भोंसले एक दल सैन्य ले कर कर्णाटक प्रदेशको गये। आरकाड़के नवाब दोस्त अलीने उनसे छोड़-छाड़ की; किन्तु १७४० ई०की २०वीं मईको वे बेलरके निकट पराजित हो कर मार डाले गये। रघुजी

भोंसलेने त्रिचिनापल्ली अवरोध कर १७४१ ई०को २६ वीं मार्चको दुर्ग अधिकार किया। इधर चांदसाहबने भी उनके पुत्रको कैद कर सतारा भेज दिया और सेनानायक मुरारि रावको त्रिचिनाका शासन-भार सौंपा, १८ हजार महाराष्ट्र-सेना रख कर आप सिताराको चले गये। बङ्गारुतिरुमलने इनसे भेंट कर राज्य-प्राप्तिकी इच्छा प्रगट की। रघुजी भोंसलेने युद्धका खर्च ३० लाख रुपये माँगी। बङ्गारुतिरुमल उस समय उतना देनेको राजी हो गये; किन्तु वे अदा कर न सके। १७४३ ई०में जब निजाम-उल-मुल्क-आसफजाह त्रिचिनापल्लीको अवरोध करने आये तब मुरारी राव भी दुर्ग छोड़ कर भाग चले। उस समय त्रिचिनापल्ली और मधुरापुरी निजामके आदेशसे आरुकाड़ुके नवाबके अधीन हो गया। बङ्गारुतिरुमलने पुनः भाग्य-परीक्षाके लिये निजामकी शरण ली। निजाम बहादुरने उन्हें सम्मान करते हुये कहा, कि 'युद्ध-व्यय ३० लाख रुपये और वार्षिक भेंट ३० लाख रुपये देनेसे उन्हें राज्य मिल सकता है।' इस समय त्रिचिनापल्लीके शासन-कर्त्ता अनवर उद्दीन्ने बङ्गारुतिरुमलको दैनिक व्ययके लिये १०० रुपये और उनके पुत्रको २५० रुपये नियत कर दिये तथा मधुरापुरी लौटा देनेकी बात दी। बङ्गारुतिरुमल इस वृत्तिको भोग करते करते परलोकको चल बसे।

१७४८ ई०में निजाम-उल मुल्ककी मृत्यु हुई। उनके लड़के नासिरजङ्गने पितृपद प्राप्त किया। इस समय चांदसाहबने भी सतारासे छुटकारा पाया। निजामके एक दौहित्र मुजफ्फरजङ्ग जब नासिरजङ्गके विरुद्ध चांदसाहबके षड़यन्त्रमें शामिल हुये, तब फ्रांसीसियोंने भी मुजफ्फरजङ्गका पक्ष अवलम्बन किया। अङ्गरेजोंने नवाब अनवर उद्दीन् और निजाम नासिरजङ्गका साथ दिया। १७४९ ई०को १२ वीं जुलाईको आरुकाड़ुसे २५ कोस दूर अम्बूर नामक स्थानमें लड़ाई छिड़ी। इस लड़ाईमें अनवर उद्दीन् पराजित हो कर मृत्युको प्राप्त हुये। इनके दूसरे लड़के महम्मद अलीने त्रिचिनापल्ली भाग कर आरुकाड़ुके नवाबका नाम ग्रहण किया और अङ्गरेज-गवर्मेण्टसे सहायता मांगी। इधर चाँदसाहब पुदिचेरीमें फ्रांसीसी-गवर्मेण्टकी सहायतासे कर्णाटकके नवाब हो गये। चांदसाहबने फ्रांसीसी-सेना साथ ले त्रिचिनापल्ली जा घेरा। इस समय महम्मद अली अर्थके अभावसे बहुत ही कष्टमें थे। उन्होंने महिसुरके राजासे अर्थ और सेनाकी सहायता मांगनेके लिये प्रतिज्ञापत्र इस प्रकार लिख भेजा,—"यदि आप मुझे इस घोर विपद्से बचावें तो त्रिचिनापल्ली प्रदेश आपको अर्पण करूं।"

महिसुरके सेनानायक दलवाय नन्दीराव और महाराष्ट्रके सेनानायक मुरारिराव नवाबकी सहायताके लिये अपनी अपनी सेनाको साथ ले कृष्णनारायणपुरके निकट आ पहुँचे। फ्रांसीसी सेनाने उन्हें रोका। कप्तान कोप यह संवाद पाकर उनकी सहायताके लिये चल पड़े और पराजित हो कर करालकालके गालमें फंस गये। इसके बाद कप्तान दंटनने इस युद्धमें सहायता पहुँचायी। नन्दीराव और मुरारिराव अपनी अपनी सेनाके साथ त्रिचिनापल्ली तक अग्रसर हुए। इधर तञ्जोरके राजाने महम्मद अलीके साहाय्य: लिये अपने सेनानायक मङ्कोजीके साथ ३००० अश्वारोही और २००० पदातिसेना भेजीं। पदुकोट्टईके तण्डोमान ४०० सौ अश्वारोही और ३०० सौ पदातिक सैन्य साथ ले आ पहुँचे। बाद मेजर लरेन्सने सेण्टडेविड-दुर्गसे ४०० सौ गोरे और ११०० सौ सिपाहीको ले त्रिचिनापल्लीकी ओर आते समय फ्रांसीसी रकके समीप फ्रांसीसियोंको परास्त किया और वे त्रिचिनापल्लीके दुर्गके भीतर आ डटे। उन्होंने चान्दसाहबको पराजय करनेका दृढ़ सङ्कल्प किया। इस समय चान्दसाहब श्रीरङ्गक्षेत्रके विष्णुमन्दिरमें और फ्रांसीसी जम्बुकेश्वरकी छावनीमें ठहरे हुए थे। दोनों पक्षोंमें कई एक छोटी छोटी लड़ाइयां चलती रहीं। धीरे धीरे विपक्षियोंकी रसद कम जानेके कारण फ्रांसीसी सेनानायकने जम्बुकेश्वर छोड़ कर श्रीरङ्गमन्दिरमें आश्रय लिया। तब मेजर लरेन्सने श्रीरङ्गके सम्मुख दहिने द्वारको अवरोध किया। इस समय क्लाइव उत्तरकी ओर कोलरून नदीके किनारे, तञ्जोरके सेनानायक मङ्कोजी विष्णुमन्दिरके निकट और महिसुरके सेनानायक नन्दीराय पश्चिमकी ओर अपेक्षा कर रहे थे।

चांदसाहब इस तरह चारों ओरसे घिर गये। जब क्लाइवने सुना कि फ्रांसीसीसेना चांदसाहबकी सहायताके लिये आ रही है, तब वे छिपके १०० सौ गोरे, १००० सिपाही और दो हजार महाराष्ट्रसेनाको साथ ले फ्रांसीसीको रोकनेके लिये आगे बढ़े। बलिकन्दपुरके सामने दोनोंमें घनघोर युद्ध मचा, जिसमें क्लाइवकी ही जीत हुई। इस युद्धमें १०० सौ फ्रांसीसी, ४०० सौ सिपाही और ३४० देशीय अश्वारोहीके साथ फ्रांसीसी-सेनानायक कैद किये गये। चांदसाहबने यह सम्बाद सुन कर तञ्जोरके सेनानायक मंकोजीसे सन्धि कर ली। चांदसाहबने मंकोजीके ऊपर विश्वास करके उन्हें आत्मसमर्पण किया। मंकोजीने विश्वास-घातकतासे चांदसाहबको अपने हाथसे मार डाला। फ्रांसीसीका पराभव और चांदसाहबकी मृत्युका सम्बाद पाकर फ्रांसीसी-शासनकर्त्ता डुप्ले अत्यन्त दुःखित हुए।

बाद १७५३ ई०के नवम्बर मासमें फ्रांसीसियोंकी नई सेना आने पर विपक्षियोंने रातके समय त्रिचिनापल्ली अधिकार करनेके अभिप्रायसे दलटन-व्यूहके निकट आक्रमण किया; किन्तु सफलता प्राप्त न की। इसमें ३५० फ्रांसीसीसेना अङ्गरेजोंके हस्तगत हुई। १७५४ ई०के फरवरी मासमें अङ्गरेजोंकी रसद कलिपुर नामक स्थानमें आ जानेसे फ्रांसीसी-सेनानायकने वह रसद छीन ली और पदुकोट्टाई-प्रदेशमें लूट-मार मचाते हुवे तञ्जोरकी ओर अग्रसर हुये। इसके बाद अगस्त मासके अन्तमें अङ्गरेज और फ्रांसीसीके बीच कई एक छोटी छोटी लड़ाइयां हुईं; किन्तु पीछे दोनोंमें सन्धि हो गई। महिसुरके सेनापतिका नाम इस सन्धिमें न रहनेसे वे इस सन्धिको माननेमें बाध्य न हुए और उन्होंने कहला भेजा कि—"मैं इस नियमसे बाध्य नहीं हो सकता।'

कप्तान स्मिथ १५० गोरे और ७०० काले सिपाही लेकर त्रिचिनापल्लीके दुर्गकी रक्षा कर रहे थे। उन्होंने दुर्गका अच्छी तरह संस्कार किया। फ्रांसीसीने इस दुर्ग पर आक्रमण करनेकी पूरी कोशिश की; किन्तु वे इसमें कृतकार्य न हो सके।

१७६० ई०के मई मासमें हैदर अली महिसुरके प्रधान हो गये। १७८० ई०में उन्होंने अंगरेजोंके साथ लड़ाई ठान दी और १७८१ ई०में वे स्वयं कर्णाटकमें आ कर त्रिचिनापल्ली और मदुरामें लूट-मार मचाने लगे। उन्होंने जलप्रणालीका बांध काट कर सब आबादी जमीन नष्ट कर दी और कर्नल बेलीको कैद कर महिसुर भेज दिया। बाद त्रिचिनापल्लीका दुर्ग अधिकार किया। सर-आयरकूट पराजित हो कर पीछे हट गये; किन्तु १ली जुलाईकी जो लड़ाई छिड़ी, उसमें हैदरकी हार और सर-आयरकूटकी जीत हुई।

१७८२ ई०में हैदर अलीके मरने पर उनके लड़के टीपू सुलतान कर्णाटकको छोड़ कर महिसुरको लौट आये। १७९२ ई०में गवर्मेण्टके साथ नवाबकी एक सन्धि हुई।

१७९९ ई०में टीपूकी मृत्युके बाद श्रीरङ्गपत्तन अधिकृत हो जाने पर अन्यान्य कागजोंके साथ नवाब हैदरके बहुतसे पत्र पाये गये। 'नवाब अंग्रेजोंके विरुद्ध टीपूके पक्षमें हैं और १७९२ ई०में उन्होंने सन्धि तोड़ दी है' इस कारण ब्रिटिश-गवर्मेण्टने यह प्रदेश अपने साम्राज्यमें मिला लिया और नवाबकी वृत्ति कायम कर दी।

अभी त्रिचिनापल्लीमें दुर्ग नहीं है, केवल दो दरवाजे पूर्व गौरवका परिचय दे रहे हैं। दुर्गकी दीवार टूट-फूट गई है और उसके चारों ओरकी खाईको भर कर उसके ऊपर रास्ता बना दिया गया है। दुर्गके भीतर पुराना राजभवन आज भी विद्यमान है, जिसमें तहसीलदारकी कचहरी, मुन्सफकी कचहरी, स्थानीय कोषागार और औषधालय अलग अलग बना दिये गये हैं।

त्रिचिनापल्ली-दुर्गका पर्वत तयुमानस्वामीमलय नामसे प्रसिद्ध है। पर्वतके ऊपर जानेके लिये चारों ओर पत्थरकी सीढ़ियां बनी हुई हैं। सीढ़ीके ऊपर महादेव तयुमान स्वामीका मन्दिर है। सामनेका पहाड़ काट कर एक घर बना दिया गया है। कर्णाटकके युद्धके समय उसमें बारूद रखी जाती थी। इस मन्दिरका दृश्य बहुत सुन्दर है। अनुमान किया जाता है, कि मन्दिर चोलराजाओंसे बनाया गया होगा। प्रति वर्ष भाद्रमासमें महादेवका उत्सव होता है। जबसे त्रिचिनापल्ली अंग्रेजोंके हाथ आया है, तबसे यहांकी बहुत उन्नति हुई है। यहां जिलेके जज, कलक्टर, मुन्सफ, डाक्टर, पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट आदि रहते हैं।

इस शहरमें एस, पी, जी, हाइस्कूल, अंग्रेजोंका एक सेना-निवास और दक्षिण-प्रदेशके रेलवेका एक प्रधान कार्यालय है। यहांकी जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है।

त्रिचूर—मन्द्राजके कोचीनराज्यका एक शहर। यह अक्षा० १०° ३२´ उ० और देशा० ७६° १३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३३ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १५५८५ है। यह एक प्राचीन शहर है। यहांके स्थल-पुराणके अनुसार परशुराम इसके अधिष्ठाता माने जाते हैं। १७६० ई०में जमोरिनने इस पर चढ़ाई करके अपना दखल जमा लिया था। पीछे १७७६ ई०में यह स्थान हैदर अलीके और १७८९ ई०में टीपू सुलतानके हाथ लगा। १७७४ ई०में यहां मट्टीका एक दुर्ग बनाया गया था, जो अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। यह शहर वाणिज्यका एक प्रधान केन्द्र है। यहां डिष्ट्रिक्ट-जज, मजिष्ट्रेटकी अदालत, चिकित्सालय और तीन हाईस्कूल हैं। इनके सिवा शंकराचार्यके छात्रोंके बनाए हुए बहुत प्राचीन तीन मठ हैं। इनमेंसे एक मठमें फिलहाल ब्राह्मणको भोजन तथा वेदकी शिक्षा दी जाती है।

त्रिजगत् (सं० क्ली०) त्रिगुणितं जगत् संज्ञात्वात् कर्मधारयः। स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल ये तीनों लोक।

त्रिजट (सं० पु०) तिस्रः जटाः यस्य। १ महादेव। २ ब्राह्मणका नाम जिसको वनयात्राके समय रामचन्द्रने बहुतसी गायें दी थीं।

त्रिजटा (सं० स्त्री०) तिस्रो जटाः यस्याः। राक्षसीभेद, विभीषणकी बहन। यह राक्षसी अशोकवाटिकामें जानकीजीके पास रहा करती थी। सीताके प्रति इसका बहुत प्रेम था। जब कभी अन्यान्य राक्षसी सीता पर अत्याचार करती, तब यह उन्हें रोक देती थी। त्रिजटाने स्वप्नमें राक्षसोंका अमङ्गल देखा था और वह स्वप्नवृत्तान्त सुना-सुना कर सीताको उत्साहित करती थी।

(रामा० सुन्दर० २७-३० अ०)

२ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। इसके तीन पत्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर रहते हैं। वृन्त शक्तिरूपी है, वृन्तमूलमें वज्र रहता है तथा समूचे पत्ते ब्रह्मस्वरूप हैं। इन पत्तोंसे हर वा हरिकी अर्चना करनी चाहिये। शक्तिपूजामें बेलके पत्ते अत्यन्त प्रयोजनीय हैं। इन पत्तोंद्वारा पूजा करनेसे कैवल्यलाभ होता है।

(ज्ञानभैरवीतन्त्र ६प०)

त्रिजटी (सं० पु०) महादेव, शिव।

त्रिजड़ (हिं० पु०) १ कटारी। २ तलवार।

त्रिजातक (सं० क्ली०) त्रिजातस्वार्थे कन्। इलायची, दारचीनी और तेजपत्ता इन तीन प्रकारके पदार्थोंका समूह। इसे त्रिसुगन्धि भी कहते हैं; यदि इसमें नागकेशर भी मिला दिया जाय तो इसे चतुर्जातक कहेंगे। त्रिजात और चतुर्जात ये दोनों ही रेचक, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, मुखगत-दुर्गन्धनाशक, लघु, पित्तवर्द्धक, अग्निकारक, वर्णप्रसादक तथा कफ, वायु और विषनाशक हैं।

त्रिजीवा (सं० पु०) त्रिषु राशिषु जीवा। तीन राशियों अर्थात् ९० अंशों तक फैले हुए चापकी ज्या।

त्रिज्या (सं० स्त्री०) व्यासकी आधी रेखा, किसी वृत्तके केन्द्रसे परिधि तक खींची हुई रेखा।

त्रिणा (सं० क्ली०) तृण पृषोदरा० साधुः। तृण, घास।

त्रिणता (सं० स्त्री०) त्रिषु स्थानेषु नता नस्य णत्वं। पूर्वपदात् संज्ञायामगः। पा ८।४।३। १ धनु, धनुष। (त्रि०) २ जो तीन जगह झुका हुआ हो।

त्रिणत्व (सं० क्ली०) त्रिणस्य भाव त्रिण-त्व। तृणका भाव।

त्रिणयन (सं० पु०) त्रीणि नयनानि यस्य। शिव, महादेव।

त्रिणव (सं० पु०) त्रिरावृत्ता नवच समासान्तः संज्ञात्वात् णत्वं। सप्तविंशावृत्त सामस्तोमभेद, साम-गानकी एक प्रणाली, जिसमें एक विशेष प्रकारसे उसकी सत्ताईस आवृत्तियां करते हैं। सत्ताईस बार आवृत्तियां करनेमें प्रथमपर्यायमें, प्रथम तीन, मध्यम ५ और उत्तम १; द्वितीयपर्यायमें प्रथम एक, मध्यम तीन और उत्तम पांच तथा तृतीयपर्यायमें प्रथम पांच, मध्यम एक और उत्तम तीन। इन तीन पर्यायमें नौ-नौ करके तीन नौ अर्थात् २७ बारकी आवृत्तियां सामस्तोम हैं। इस समष्टि स्तोमकी सभी आवृत्तियां करनेसे त्रिणव होता है।

त्रिणाक—त्रिनाक देखो।

त्रिणाचिकेत (सं० पु०) त्रिः कृत्वश्चितो नाचिकेतः अग्नियेन, पूर्वपदादिति णत्वं। १ यजुर्वेदके एक विशेष

भागका नाम। २ उस भागके अनुयायी। यजुर्वेदका प्रख्यात भाग त्रिणाचिकेत नामसे ख्यात है। ३ नारायण। (भारत १२।३३८।४)

त्रित (सं० पु०) १ देवताभेद, एक देवताका नाम। २ ब्रह्माके मानसपुत्ररूप ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम जो ब्रह्माके मानसपुत्र माने जाते हैं। ३ गौतममुनिके पुत्र। एकत और द्वित नामक इनके दो भाई थे, पर ये दोनोंसे अधिक तेजस्वी और विद्वान् थे। ऋषि लोग इनका गुण देख कर इन्हें गौतमकी नाईं पूजा करते थे। किसी समय ये अपने भाइयोंके अनुरोधसे उनके साथ पशुसंग्रह करनेके लिए जङ्गलमें गये। वहां दोनों भाइयोंने इनके संग्रह किये हुए पशु छीन कर इन्हें अकेला छोड़ कर घरका रास्ता लिया। इसी बीच एक भेड़िया आया, जिसे देख कर ये डरके मारे दौड़ने लगे और दौड़ते हुए एक गहरे कुएँमें जा गिरे। वहीं इन्होंने सोमयोग आरम्भ किया, जिसमें देवता लोग भी आ पहुँचे। उन्हीं देवताओंके वरसे ये कुएँसे निकले। महाभारतमें लिखा है, कि इसी कुएसे सरस्वती नदीका आविर्भाव हुआ।

त्रितत्त्व (सं० क्ली०-स्त्री०) त्रयाणां तत्त्वं समाहारः अच् समा०। तीनों तत्त्व, तीनों सूत्रधर।

त्रितन्त्रीवीणा—वीणावाद्यविशेष। यह कच्छपी वीणाकी तरहका होता है। केवल इसका खोल काठका बना होता और इसमें तीन आवद्ध रहते हैं। इस वीणाके तीन तार कच्छपीके नायकीसुर और पञ्चमके जैसे होते हैं। बजानेका ढंग भी कच्छपीसा है। यन्त्रकोष।

इसका आधुनिक नाम सितार है, जो वीणाका अनुकल्प है। त्रिशब्दको पारसी भाषामें 'से' कहते हैं, इसीसे अमीर खुसरूने तीन तारोंसे युक्त त्रितन्त्रीका सेतार वा सितार नाम रखा है।

त्रितय (सं० क्ली०) त्रयोऽवयवा अस्य त्रि-तयप्। (संख्याया अवयवे तयप्। पा। ५।२।४२) धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंका समूह। २ सन्निपात। (त्रि०) ३ त्रिप्रकार, तीन तरह।

त्रितल (सं० त्रि०) त्रितलगृह; तीन खण्डका घर।

त्रिताप (सं० क्ली०) त्रयाणां तापानां समाहारः आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीनों प्रकारके दुःख। आध्यात्मिक दुःख दो प्रकारका होता है, शारीरिक और मानसिक। वात पित्त और श्लेष्मादिके विपर्य्ययसे उत्पन्न ज्वर, अतिसार आदि रोग शारीरिक दुःख है। काम, क्रोध, प्रियवियोग और अप्रियसम्वादसे जो दुःख उत्पन्न होता है, वह मानसिक दुःख है। आधिभौतिकके चार भेद हैं, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। शीत, उष्ण, वात, वर्षा और वज्रपतन आदिसे जो दुःख उत्पन्न होता है, उसे आधिदैविक कहते हैं। लोग त्रितापमें पड़ कर तरह तरहके कष्ट पाते हैं। श्रवण, मनन, निदिध्यासन ये सभी त्रितापके नाशक हैं। त्रितापके नाश होनेसे ही मोक्ष मिलता है। लगातार त्रितापसे पीड़ित रहनेके बाद मनुष्यके सामने शास्त्रजिज्ञासाका उद्देश्य पहुँच जाता है। शास्त्रजिज्ञासाका उद्देश्य पहुंच जानेसे ही वे मोक्षके पथ पर अग्रसर होते हैं।

त्रिदण्ड (सं० पु०) त्रिदण्डं चतुरङ्गुलगोवालवेष्टनान्योन्यसम्बन्धं अस्त्यस्य, अर्श आदित्वादच्। १ सन्न्यासाश्रम, संन्यास आश्रमका चिह्न। (क्ली) त्रयाणां दण्डानां समाहारः। यतियोंके चार अङ्गुलपरिमित तीन दण्ड जो एक दूसरेमें बंधे रहते हैं। यथा—वाग्दण्ड, मनोदण्ड और कायदण्ड।

त्रिदण्डक (सं० क्ली०) त्रिदण्ड-स्वार्थे कन्। त्रिदण्ड।

त्रिदण्डी (सं० पु०) त्रिदण्डमस्त्यस्य इति इनि। त्रिदण्डधारी यति, वे जिनके कायदण्ड, मनोदण्ड और वाग्दण्ड बुद्धिमें स्थापित है अर्थात् जो ज्ञानबलसे मन, वचन और कर्म इन तीनोंको दमन कर सकते, वे ही त्रिदण्डी कहला सकते हैं। केवल तीनों दण्ड धारण कर लेनेसे ही त्रिदण्डी बन नहीं सकते। वरन् काम और क्रोधको दूर हटा कर जो त्रिदण्डका यथाव्यवहार करते, वे ही त्रिदण्डीपदवाच्य तथा सिद्धिलाभके अधिकारी हैं। (मनु १२।१०।११)

त्रिदण्डग्रहण करनेसे उनका प्रेतत्व दूर हो जाता है। त्रिदण्डियोंका आद्यश्राद्ध नहीं करना पड़ता है; किन्तु मृत्युके बाद ग्यारह दिनोंमें पार्वणश्राद्ध करना पड़ता है। २ यज्ञोपवीत, जनेऊ।

त्रिदल (सं० पु०) त्रीणि दलानि यस्य। विल्ववृक्ष, बेल-का पेड़।

त्रिदला (सं० स्त्री०) त्रीणि दलानि प्रतिपत्रं यस्याः। गोधापदीलता, हंसपदी।

त्रिदश (सं० पु०) तृतीया दशा यस्य। त्रिशब्दस्यात्र त्रिभागवत् तृतीयार्थकता वा तिस्रो जन्मसत्ता-विनाशाख्याः न तु मर्त्यानामिव वृद्धिपरिणामक्षयाख्याः दशा यस्यः यद्वा त्रीन् तापान् दशति दन्श बन्हर्थे क पृषो० साधुः वा त्रयधिका त्रिरावृत्ताः दश परिमाणमस्य। देवताओंका स्थिर यौवनसम्पन्न। देवताओंके जन्म, सत्ता और विनाशाख्या अवस्था हैं; किन्तु यह अवस्था मानवोंके जैसा वृद्धि, परिणाम और क्षयरूप नहीं है। देवगण मनुष्योंके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक त्रितापोंको नाश करते हैं। देवताओंको संख्या तीन आवृत्ति दश अर्थात् तीस है; किन्तु उनका परिमाण त्रयस्त्रिंशत् अर्थात् तैंतीस बतलाया है। यहां पर एक एक त्रिशब्दतन्त्रता द्वारा उच्चारणके कारण त्रयस्त्रिंशत्-का बोध होता है। इन्हीं सब कारणोंसे देवताओंका नाम त्रिदश पड़ा हैं।

तैंतीस प्रधान देवतायें हैं—१२ अर्क, ११ रुद्र, ८ अष्टवसु और २ अश्विनीकुमार। कोई कोई कहते हैं, कि दोनों अश्विनीकुमारको छोड़, इन्द्र और प्रजापतिको लेकर तैंतीस होते हैं। त्रिस्रोदशाः जाग्रदावस्था यस्य। २ जीव। ३ देवताओंका वासस्थान, स्वर्ग। (त्रि०) त्रिंशत्परिमित, तीस।

त्रिदशगुरु (सं० पु०) त्रिदशानां देवानां गुरुः ६-तत्। देवगुरु, वृहस्पति।

त्रिदशगोप (सं० पु०) त्रिदशो देवभेद इन्द्रः गोपो रक्षकोऽस्य। इन्द्रगोपकीट, बीरवहूटी नामका कीड़ा।

त्रिदशत्व (सं० क्ली०) त्रिदशस्य भावः त्रिदश-त्व। देवत्व।

त्रिदशदारु (सं० क्ली०) देवदारुकाष्ठ।

त्रिदशदीर्घिका (सं० स्त्री०) त्रिदशानां देवानां दीर्घिका। स्वर्गङ्गा, आकाशगङ्गा।

त्रिदशपति (सं० पु०) त्रिदशानां पतिः ६-तत्। इन्द्र।

त्रिदशमञ्जरी (सं० स्त्री०) त्रिदशप्रिया मञ्जरी यस्याः। संज्ञात्वात् न कप्। तुलसी।

त्रिदशवधू (सं० स्त्री०) त्रिदशानां वधूः। अप्सरा।

त्रिदशवर्त्मन् (सं० क्ली०) त्रिदशानां वर्त्म। नभस्, आकाश।

त्रिदशसर्षप (सं० पु०) त्रिदशप्रियः सर्षपः। देवसर्षप, एक प्रकारकी सरसों।

त्रिदशाङ्कुश (सं० पु०) त्रिदशस्य अङ्कुशः। वज्र।

त्रिदशाचार्य (सं० पु०) त्रिदशानां आचार्यः। देवताओंके गुरु वृहस्पति।

त्रिदशाधिप (सं० पु०) त्रिदशानां अधिपः। त्रिदेशके अधिपति, इन्द्र।

त्रिदशाध्यक्ष (सं० पु०) त्रिदशानां अध्यक्षः। विष्णु।

त्रिदशायन (सं० पु०) त्रिदशानां अयनं यत्र। विष्णु।

त्रिदशायुध (सं० पु०) त्रिदशानां आयुधः। वज्र, इन्द्रका धनुष।

त्रिदशारि (सं० पु०) त्रिदशानां देवानां अरिः ६-तत्। देवताओंके शत्रु, असुर।

त्रिदशालय (सं० पु०) त्रिदशस्य आलयः ६-तत्। १ स्वर्ग। २ सुमेरुपर्वत।

त्रिदशावास (सं० पु०) त्रिदशानां आवासः। १ स्वर्ग। २ सुमेरुपर्वत।

त्रिदशाहार (सं० पु०) त्रिदशानां आहारः। अमृत, सुधा।

त्रिदशेश्वर (सं० पु०) त्रिदशानां ईश्वरः। इन्द्र।

त्रिदशेश्वरी (सं० स्त्री०) त्रिदशेश्वर-ङीप्। दुर्गा।

त्रिदालिका (सं० स्त्री०) त्रिदलिका वृक्षविशेष, चामर-कषा, सातला।

त्रिदिनस्पृश् (सं० पु०) त्रिदिनं चान्द्रदिनत्रयं स्पृशति स्पृश-क्विप्। त्र्यह, वह तिथि जो तीन दिनोंको स्पर्श करती है।

६० दण्ड अहोरात्रके मध्य यदि दो तिथियोंका संपूर्ण अवसान हो तो उसे अवमदिन कहते हैं और एक एक तिथि यदि तीन वारको स्पर्श करती हो, तो उसे त्र्यहस्पर्श कहते हैं। ऐसे दिनमें स्नान और दानादिके अतिरिक्त और कोई शुभकार्य नहीं करना चाहिये।

त्रिदिव (सं० पु०) त्रयो ब्रह्मविष्णुरुद्राः दीव्यन्त्यत्र, दिव-घञ्, वा दीव्यन्ति इति दिवाः दिव-क, त्रयः सत्त्व-रजस्तमोरूपाः दिवा क्रीड़का यत्र। १ स्वर्ग; ब्रह्मा,

विष्णु और महेश्वर स्वर्गमें रहते हैं, इसीसे स्वर्गका नाम त्रिदिव पड़ा । २ आकाश । (क्ली०) ३ सुख ।

त्रिदिवा (सं० स्त्री०) नदीभेद, एक नदीका नाम । २ एला; इलायची ।

त्रिदिवाधीश (सं० पु०) त्रिदिवस्य अधीशः । इन्द्र ।

त्रिदिवेश (सं० पु०) त्रिदिवस्य ईशः । देवता ।

त्रिदिवेश्वर—त्रिदिवाधीश देखो ।

त्रिदिवोद्भवा (सं० स्त्री०) त्रिदिवे उद्भवो यस्याः । १ स्थूलएला, बड़ी इलायची । २ गङ्गा । (त्रि०) ३ स्वर्गभवमात्र, जो स्वर्गसे उत्पन्न हुआ हो ।

त्रिदिवौकस् (सं० पु०) त्रिदिव ओको यस्य । देवता ।

त्रिदृश् (सं० पु०) त्रिस्रः दिशः नेत्राणि यस्य । वा त्रीणि भूतादीनि पश्यति दृश्-क्विप् । त्रिनयन, महादेव, शिव ।

त्रिदोष (सं० क्ली०) त्रयाणां दोषाणां समाहारः । १ वात, पित्त और कफ ये तीन दोष । २ त्रिदोषज रोगभेद, वात, पित्त और कफसे उत्पन्न रोग, सन्निपात ।

त्रिदोषज (सं० त्रि०) त्रिदोषाज्जायते जन-ड । वात, पित्त और कफजनित सन्निपात आदि रोग । ज्वर देखो ।

त्रिदोषज वमिरोगमें अत्यन्त शूल, भुक्तद्रव्योंका अपाक, अरुचि, दाह, पिपासा, श्वास और मोह होता है । इसका रोगी सर्वदा उष्ण, नील वा रक्तवर्ण लवणाम्लरसविशिष्ट पदार्थ वमन करता है ।

त्रिदोषघ्न (सं० त्रि०) त्रिदोषं हन्ति हन-टक् । त्रिदोषनाशक ।

त्रिदोषदावानलरस (सं० पु०) ज्वरमें दिये जानेका एक प्रकारका रस ।

त्रिदोषरोहिणी (सं० स्त्री०) गलेका एक रोग जो त्रिदोषसे उत्पन्न होता है ।

त्रिदोषसम्भव (सं० पु०) सन्निपात ।

त्रिदोषहारी (सं० पु०) ज्वरकी औषधि ।

त्रिधनि (सं० पु०) एक प्रकारकी रागिणी ।

त्रिधन्वन् (सं० पु०) सुधन्वा राजाके एक पुत्रका नाम । ये त्रिधन्वाके त्रयरुण नामक सर्वविद्याविशारद एक पुत्र निकले । (हरिवंश १२ अ०)

त्रिधर्मा (सं० पु०) महादेव, शिव ।

त्रिधा (अव्य) त्रि-प्रकारे धाच् । त्रिविध, तीन प्रकारसे, तीन तरहसे ।

त्रिधातु (सं० पु०) त्रीन् धर्मार्थकामान् दधाति पुष्णातीति धा-तुन् । १ गणेश । (क्ली०) त्रयाणां धातूनां समाहारः । धातुत्रय, सोना, चाँदी और ताँबा ।

त्रिधात्व (सं० क्ली०) त्रिधा-भावे त्व । त्रिप्रकारत्व, तीन प्रकारका भाव ।

त्रिधामन् (सं० पु०) त्रीणि भूरादीनि सत्वादीनि वा धामानि यस्य । १ विष्णु । २ शिव । ३ अग्नि । ४ मृत्यु । (क्ली०) त्रयाणां धातूनां धाम्नां समाहारः । ५ धामत्रय, तीनों धाम । ६ स्वर्ग । (त्रि०) ७ त्रिसंख्यान्वित, जिसमें तीन अंक हों ।

त्रिधामूर्त्ति (सं० पु०) त्रिधा मूर्त्तिर्यस्य । परमेश्वर जिनके अन्तर्गत ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों हैं ।

त्रिधारक (सं० पु०) तिस्रो धारा अग्राख्यस्य, ततः स्वार्थे कन् । गुण्डतृण, बड़ा नागरमोथा, गुँदला । २ कसेरूका पेड़ ।

त्रिधारस्नुही (सं० स्त्री०) त्रिषु भागेषु धारा यस्याः सा एव स्नुही । स्नुहीविशेष, तिधाराथूहर, तीन धारवाला सेंहुड़ । इसका पर्याय—वज्र और स्नुही है ।

त्रिधारा (सं० स्त्री०) त्रिषु स्थानेषु धारा प्रवाहा अस्याः । धारात्रयान्वित गङ्गा, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोकोंमें बहनेवाली गङ्गा ।

त्रिधाविशेष (सं० पु०) त्रिधा त्रिप्रकारो विशेषः । सांख्यके अनुसार सूक्ष्म, मातापितृज और महाभूत तीनों प्रकारके रूप धारण करनेवाला शरीर । इसके मध्य सूक्ष्म शरीर नियत, मातापितृज शरीररस, भस्म वा विष्ठारूपमें परिणत होता है ।

त्रिधासर्ग (सं० पु०) त्रिधात्रि प्रकारः सर्गः । भूतादि सर्ग ।

ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस, और पैशाच ये आठ प्रकारके दैवसर्ग हैं । पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप और स्थावर ये पाँच प्रकारके तिर्यग्सर्ग हैं । मानुषसर्ग भी एक है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रभृति सभी जातियां ही मानुष-सर्गके अन्तर्गत हैं । ये ही तीन प्रकारके सर्ग हैं, जिनके अन्तर्गत सारी सृष्टि आ जाती है ।

त्रिनयन (सं० पु०) त्रीणि चन्द्रसूर्याग्निरूपाणि नय

नानि यस्य, पूर्वपदात् संज्ञायामिति प्राप्ते क्षुभ्नादिषु च इति निषेधात् न णत्वं। १ शिव, महादेव। महादेवके तीसरे नेत्रकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—एक दिन पार्वतीने हँसीसे महादेवकी दोनों आँखें अपने हाथोंसे मूंद रखीं। ऐसा करनेसे सारा संसार अंधकारमय दीखने लगा और होम तथा वषट्कार शून्य हो गया। तब महादेवके ललाटदेशसे एक युगान्तकालीन प्रचण्ड मार्त्तण्ड सदृश नेत्र उत्पन्न हुआ। इस नेत्रकी ज्योतिसे चारों दिशायें जगमगा उठीं। बहुत जल्द अन्धकार दूर हो गया और हिमालय पर्वत दग्ध होने लगा। यह अद्भुत दृश्य देख कर पार्वती महादेवका स्तव करने लगीं। तब महादेवने प्रकृतिस्थ हो कर पार्वतीसे कहा,—देवि! तूने बिना आगे-पीछे सोचे मेरी दोनों आँखें मूंद रखी थीं, जिससे सारा संसार अंधकारमय और विनष्टप्राय हो गया था। उस समय मैंने उन सबकी रक्षाके लिये ही इस समुज्ज्वल तृतीय नेत्रकी सृष्टि की है। (भारत अनुशासन० १४० अ०)

(त्रि०) २ लोचनत्रययुक्त, जिसकी तीन आँखें हों।

त्रिनयना (सं० स्त्री०) त्रीणि नयनानि यस्याः टाप्। दुर्गा।

त्रिनवति (सं० स्त्री०) त्र्यधिका नवतिः। वह संख्या जो तीन और नब्बेके योगसे बनती हो, तिरानबेकी संख्या। २ उक्त संख्यासूचक अङ्क। (त्रि०) ततः पूरणे डट्। ३ तिरानबे।

त्रिनवतितम (सं० त्रि०) त्रिनवति-तमप्। तिरानबेवाँ।

त्रिनाक (सं० पु०) नास्ति अकं दुःखं यस्मिन् नाकं पुण्यलोकः तृतीयं नाकं। १ तृतीय नाक, स्वर्ग। २ उत्तम स्थान।

त्रिनाभ (सं० पु०) त्रयो लोका नाभौ यस्य अच् समासान्तः। विष्णु।

त्रिनिष्क (सं० त्रि०) त्रिभिर्निष्कैः क्रीतं ठञ् तस्य वाहुं लुक्। जो तीन निष्कमें खरीदा गया हो, जिसकी कीमत तीन निष्क हो।

त्रिनेत्र (सं० पु०) त्रीणि नेत्राणि यस्य। १ महादेव, शिव। २ स्वर्ण, सोना।

त्रिनेत्र—झालावाड़के लखतर-राज्यके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। यह अभी तरनेत नामसे मशहूर है और विख्यात प्राचीन नगरथानके पार्श्वमें अवस्थित है।

थानमाहात्म्यके मतसे सुराष्ट्रके एक अंशका नाम देवपञ्चाल है। यहां त्रिनेत्रेश्वर महादेव रहते हैं। इन्हींके नामानुसार इस स्थानका नाम त्रिनेत्र वा तरनेत पड़ा है। त्रिनेत्रमाहात्म्यके मतानुसार सत्ययुगमें मान्धाताने यहां एक सूर्यमन्दिर निर्माण किया था। स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डमें लिखा है,—

'त्रिपथगामिनी गङ्गाके ईशान कोणमें संगालेश्वर नामक एक तीर्थके माहात्म्यसे यहाँकी सब मछलियाँ तीन आँखवाली हो गई थीं। इस तीर्थमें स्नान करनेसे सर्व पाप जाते रहते हैं।' ये सब बातें सुन कर पार्वतीने एक दिन महादेवसे पूछा, कि त्रिपथगामिनी गङ्गा किस कारण यहाँ आई थीं और यहाँकी मछलियोंके क्यों त्रिनेत्र हो गये थे? इसके उत्तरमें महादेवने कहा,—"किसी कारणसे अज्ञानान्ध ऋषियोंने मुझे शाप दिया। इस पर बहुतसे ऋषिगण मुझको शापग्रस्त देख कर कठोर तपस्या करने लगे। मैंने भी ऋषियोंके शापसे राजरूप धारण किया था। कठोर तपस्या करने पर भी उन्हें मुझसे दर्शन न हुआ, मुझसे साक्षात् नहीं होने पर भी वे सब त्रिनेत्र हो गये थे। तभीसे यह स्थान एक प्रधान तीर्थमें गिना जाने लगा। यह सम्वाद चारों ओर फैल जाने पर भृगु प्रभृति ऋषिगण आकर कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुए और उन्होंने वहाँ संगालेश्वर नामक महादेवकी मूर्त्ति स्थापन की। उन्हें भी मुझसे दर्शन नहीं होने पर तीन आँखें हो गईं। बाद उन्होंने ध्यानमें मेरा स्वरूप जान कर कहा 'प्रभो! यदि आप हम पर सन्तुष्ट हैं तो हमें यही वर दीजिये, कि यहाँ त्रिपथगामिनी गङ्गा प्रवाहित हों।' उसी समय मेरे अनुग्रहसे त्रिपथगामिनी गङ्गा जमीन छेद कर बाहर निकलीं और इसमें मछलियोंके तीन आँखें हो गईं।"

(प्रभासखण्ड २१४ अ०)

यहांके सङ्गालेश्वर महादेव ही त्रिनेत्रेश्वर कहलाते हैं। यहां बहुतसे मनुष्य वास करते हैं।

त्रिनेत्रचूड़ामणि (सं० पु०) त्रिनेत्रस्य चूड़ामणिः शिरोभूषणं। चन्द्र, चन्द्रमा।

त्रिनेत्ररस (सं॰ पु॰) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा जिसका व्यवहार सन्निपातरोगमें होता है। इसकी प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार है,—शोधे हुए पारे, गन्धक और फूँके हुए ताँबेका बराबर भाग लेकर जितना हो, उतने ही गायके दूधसे उसे मलते हैं। पीछे कड़ी धूपमें सुखा कर उसे संभालू और सोहिञ्जनके क्वाथसे एक दिन तक फिर मर्दन करते हैं। बाद उसे गोल बना कर एक अन्धमूषायन्त्रमें रखते और बालुकायन्त्रमें तीन प्रहर तक पाक करते हैं। इसके बाद उसे खरलमें पीस कर चूर चूर कर डालते हैं। चूर्णमें इसके आठवें भागके बराबर विष मिला कर इसे अच्छी तरह मलते हैं और एक एक गोली २ रत्तीकी बनाते हैं। पञ्चकोलके क्वाथ अथवा बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे कठिनसे कठिन सन्निपातज्वर नाश हो जाता है। (भावप्र॰)

त्रिनेत्रा (सं॰ स्त्री॰) वाराही कन्द।

त्रिनैष्किक (सं॰ त्रि॰) त्रिभिर्निष्कैः क्रीतं त्रिनिष्क-ठञ् ठञि उत्तरपदस्य वृद्धिः। जो तीन निष्कमें खरीदा गया हो, जिसका मूल्य तीन निष्क हो।

त्रिपक्ष (सं॰ पु॰) तृतीयः पक्षः संख्याशब्दस्य वृत्तौ पूरणार्थत्वात्। तृतीयपक्ष, तीसरा पख। आद्यश्राद्ध-कालमें प्रेतोद्देश्यसे वृषोत्सर्ग नहीं होने पर त्रिपक्षमें किया जा सकता है।

"षष्ठे मासि त्रिपक्षे वा।" (श्राद्धतत्त्व)

त्रिपच्छस् (अव्य॰) तीन पदोंसे।

त्रिपञ्च (सं॰ त्रि॰) त्रिगुणिताः पञ्च। जो गिनतीमें दश से पांच अधिक हो, पन्द्रह। यह शब्द नित्य बहुवचनान्त है।

त्रिपञ्चाङ्ग (सं॰ पु॰) त्रिपञ्च पञ्चदश अङ्गानि यस्य। समाधिभेद। इस समाधिमें १५ अङ्ग हैं; यथा यम, नियम, त्याग, मौन, देश, सुकालता, आसन, मूलबन्ध, देहसाम्य, दृक्स्थिति, प्राण-संयमन, प्रत्याहार, धारणा, आत्मध्यान और समाधि।

त्रिपञ्चाश (सं॰ त्रि॰) त्रिपञ्चाशत् पूरणे डट्। जो गिनतीमें पचाससे तीन और अधिक हो, तिरपन।

त्रिपञ्चाशत् (सं॰ स्त्री॰) त्र्यधिका पञ्चाशत। १ पचाससे तीन अधिककी संख्या। २ उक्त संख्यासूचक अङ्क।

त्रिपञ्चाशत्तम (सं॰ त्रि॰) त्रिपञ्चाशत् पूरणे तमप्। तिरपन संख्याका पूरण।

त्रिपटु (सं॰ पु॰) १ कांच, शीशा। २ बिड़ सैन्धव और काच ये तीन प्रकारके नमक।

त्रिपताक (सं॰ क्ली॰) तिस्रः पताका इव रेखा यत्र। १ रेखात्रयान्वित ललाटदेश। माथा वा ललाट जिसमें तीन बल पड़े हों। २ मध्यमा और अनामिका छोड़ शेष तीन उंगलियोंको उठाकर हाथका फैलाना।

त्रिपती (सं॰ स्त्री॰) तिरुपति देखो।

त्रिपत्र (सं॰ पु॰) त्रीणि त्रीणि पत्राणि यस्य। १ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। २ तीन तीन दल लगे हुए बेलके पत्ते। बेलका पेड़ परम तीर्थ माना गया है। इसके तीन पत्तोंमेंसे ऊपरका पत्ता शिव स्वरूप, बांया पत्ता ब्रह्मा और दहिना पत्ता विष्णु है। (त्रि॰) त्रयाणां पत्राणां समाहारः। ३ पत्रत्रय, जिसमें तीन पत्ते लगे हों।

त्रिपत्रक (सं॰ पु॰) त्रिपत्र संज्ञायां कन्। १ पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़। (क्ली॰) त्रयाणाँ पत्राणां समाहारः। संज्ञायाँ कन्। २ तुलसी, कुंद और बेलके पत्तोंका समूह।

त्रिपत्रा (सं॰ स्त्री॰) १ अरहरका पेड़। २ तिपतिया घास।

त्रिपथ (सं॰ क्ली॰ त्रयाणाँ पथाँ समाहारः अच् समा॰। १ कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गोंका समूह। २ त्रिमार्गयुक्त, तिमुहानी।

त्रिपथगा (सं॰ स्त्री॰) त्रिपथे स्वर्गमर्त्यपाताल मार्गे गच्छतीति गम-ड। गङ्गा। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीन लोकोंमें गङ्गा बहती हैं, इसीलिये इसे त्रिपथगा कहते हैं।

"गंगा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च।
त्रीन् पथो भावयन्तीति तस्मात् त्रिपथगा स्मृता॥"
(रामा॰ १।४४।६)

त्रिपथगामिनी (सं॰ स्त्री॰) त्रिपथ-गम-णिनि-ङीप्। गङ्गा।

त्रिपद्—त्रिपाद् देखो।

त्रिपद (सं॰ पु॰) त्रीणि पदानि यस्य। १ त्रिविक्रम, परमेश्वर। २ तिपाई। ३ त्रिभुज। यज्ञोंकी वेदी नापनेकी प्राचीन कालकी एक नाप जो प्रायः तीन हाथसे कुछ कम

होती थी। (त्रि०) ४ तीन पदयुक्त, जिसके तीन पद वा चरण हों।

त्रिपदा (सं० स्त्री०) त्रयः पादाः मूलानि यस्याः। टापि पादस्य पद्भावः। १ हंसपदीलता, लाल रङ्गका लज्जू। पर्याय—गोधापदी, सुवहा और हंसपदी है। (त्रि०) त्रयः पादाः चरणानि यस्याः। २ त्रिपादयुक्त गायत्री। गायत्रीमें केवल तीन ही पद होते हैं। इसीलिये इसका यह नाम पड़ा। त्रिपदागायत्री ही एकमात्र ब्रह्मप्राप्तिका उपाय है।

त्रिपदिका (सं० स्त्री०) त्रयः पदाः यस्याः त्रिपदी ततः संज्ञायाँ कन् ततष्टाप्। पूजा कालीन शङ्ख रखनेका पात्र एक प्रकारका पात्र जिस पर देवपूजनके समय शङ्ख रखा जाता है। यह तिपाईकी तरहका पीतल आदिका बना होता है। इस पात्रके ऊपर शङ्ख रख कर अर्घ्य स्थापन करना पड़ता है। २ तिपाई। ३ सङ्कीर्ण रागका एक भेद।

त्रिपदी (सं० स्त्री०) त्रयः पादाः अस्याः अन्त्यलोपः समा०, ङीपि पद्भावः। १ त्रिपादयुक्त। २ गायत्रीछन्दः। इसके प्रत्येक पदमें ८ अक्षर होते हैं। इसलिये तीन पदमें २४ अक्षरका एक छन्द होता है।

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूलहमस्य पांसुरे।
(ऋक् १।२२।१७)

३ हस्तियोंके पादबन्धनार्थ रज्जुभेद, वह रस्सी जिससे हाथियोंके पाँव बाँधे जाते हैं। ४ अर्घ्याधार पात्रभेद, तिपाई। ५ छन्दोविशेष, एक प्रकारका छन्द। लक्षण—

"पज्झटिकान्ता यदि यमकान्ता
द्वादश परिणत मात्रा।
किन्नरगीति तदितिनिवीति
स्यार्द्धसमाक्षरगात्रा॥" (काव्योदय)

त्रिपदीछन्दमें तीन तीन करके पद रहते हैं। जिनमेंसे पहले और दूसरे पदके साथ तथा तृतीयपद युग्मचरणके तृतीयपदके साथ तुकबन्दी रहती है।

त्रिपत्र (सं० पु०) चन्द्रमाके दश घोड़ोंमेंसे एक।

त्रिपरिक्रान्त (सं० पु०) त्रिषु इत्यर्थं कर्मसु परिक्रान्तः चेष्टमानः। वह ब्राह्मण जो यज्ञ करे, पढ़े-पढ़ावे और दान दे।

त्रिपर्ण (सं० पु०) त्रीणि त्रीणि पर्णानि यस्य। १ पलासका पेड़। (त्रि०) २ त्रिदलपत्रत्रय, जिसमें तीन पत्ते हों।

त्रिपर्णिका (सं० स्त्री०) त्रीणि त्रीणि पर्णानि यस्याः संज्ञायां कन्-टाप्, टापि अतइत्वं। कन्दविशेष, एक प्रकारकी मूली। पर्याय—वृहत्पत्रा छिन्नग्रन्थिनिका, कन्दालु, कन्दबहुला, आम्लवल्ली, विनाकृता और त्रिपर्णी है। इसका गुण मधुर, शीतल, श्वास, कास, विष और व्रणविनाशक है। २ यवास।

त्रिपर्णी (सं० स्त्री०) त्रीणि त्रीणि पर्णानि यस्याः। गौरादित्वात् ङीष्। १ शालपर्णी। २ वनकार्पासी, वनकपास। ३ पृश्निपर्णी, पिठवनलता।

त्रिपर्याय (सं० त्रि०) जिसमें तीन तह लगी हों।

त्रिपला (सं० स्त्री०) त्रिफला।

त्रिपाठ (सं० पु०) त्रयाणां पाठः। तीन पदक्रमसंहिताका पाठ।

त्रिपाठी (सं० पु०) त्रीन् पदक्रमसंहितारूपग्रन्थान् पठति पठ-णिनि। १ तीन वेदोंका जाननेवाला पुरुष, त्रिवेदी। २ ब्राह्मणोंकी एक जाति, त्रिवेदी, तिवारी।

त्रिपाण (सं० क्ली०) त्रिः कृत्वः पानं उदकपानं यस्य, वृत्तौ सुचो लोपः, संज्ञात्वात् णत्वं। १ वह सूत जो तीन बार भिगोया गया हो। २ वल्कल, छाल।

त्रिपात् (सं० पु०) त्रयः पादाः अस्य, संख्यापूर्वत्वेऽपि समासान्तविधेरनित्यत्वान्नान्त्यलोपः। १ परमेश्वर। २ ज्वर, बुखार।

त्रिपाद (सं० पु०) त्रयः पादा अस्य, संख्या पूर्वत्वादन्त्यलोपः। त्रिविक्रम, विष्णु। भगवान् विष्णुने वामनरूप धारण कर बलिसे तीन पद भूमि माँगी। तेजस्वी बलिने तथास्तु कह कर उनकी माँग पूरी की। उसी समय भगवान्ने वामनरूप परित्याग किया और बलिको सर्व देवमय विराट् रूप दिखलाया। बलिको ऐसा मालूम पड़ा कि पृथ्वी उनके दोनों पैर हैं, आकाश मस्तक है, चन्द्र और सूर्य दोनों नेत्र हैं; इत्यादि। बलि भयानक विश्वरूप देख कर मोहित हो गये। तब भगवान्के एक पैरसे बलिकी सारी भूमि, शरीरसे आकाश, दोनों बाहुसे सब दिशायें छा गईं। उनके दूसरे पदमें स्वर्गके प्रायः सभी स्थान आ गये। किन्तु तीसरा पद रखनेको

कहीं जगह न बची, तब भगवान्‌ने उसे स्वर्गसे ले कर मर्त्यलोक, जनलोक और तपोलोकके ऊपर सत्यलोकमें फैलाया। भगवान्‌का यह चरण अत्यन्त दुर्लभ है। (भागवत ८।२० अ० और हरिवंश २६२ अ०) वामन और वलि देखो। २ ज्वर, बुखार।

त्रिपादिका (सं० स्त्री०) त्रयः पादिका मूलानि यस्याः कप्, ततष्टाप्, टापि अत इत्वं। १ हंसपादीलता, लाल रङ्गका लज्जालु। संस्कृतपर्याय—हंसपदी, हंसपादी, कीटमाता और त्रिपदिका है। २ तिपाई।

त्रिपापचक्र (सं० क्ली०) त्रिपापस्य चक्रम्। ज्योतिषोक्त त्रिपापविषयक चक्र। इस चक्रसे वर्ष भरका शुभाशुभ फल जाना जाता है। ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है,—

राशिचक्रमें अश्विनी आदि २७ नक्षत्र हैं। प्रत्येक मनुष्यका किसी न किसी नक्षत्रमें जन्म हुआ ही करता है। इसी कारण २७ नक्षत्रोंका एक चक्र लिखा गया। इन चक्रोंको देख कर हर एक मनुष्य जिस वर्षका चाहे शुभाशुभ फल मालूम कर सकता है।

त्रिपापचक्रफल—त्रिपापचक्रके जिस वर्षमें चन्द्र और बुध वर्षाधिपति हों उस वर्षमें शुभफल जानना चाहिये। फिर जिस वर्षमें राहु और शनि वर्षपति हों, उस वर्षमें मृत्युतुल्य फल; दो वृहस्पतिमें सुख, मंगल और रविके वर्षाधिपतिमें दुःख होता है। केतुपताकी, केतुकुण्डली और गुरुकुण्डली इन तीनोंके मतसे भी यदि पापग्रहका वर्ष हो, तो उस वर्ष जीवनका डर रहता है। रवि और मंगलके वर्षमें दुःख, केतुके वर्षमें महाक्लेश, चन्द्र और बुधके वर्षमें सुख, वृहस्पति और शुक्रके वर्षमें राज्यलाभ तथा राहु और शनिके वर्षमें महाक्लेश होता है।

त्रिपापचक्रमें दो रविके रहनेसे क्लेश, दो चन्द्रसे सुख, दो मंगलसे अग्निभय और पीड़ा, दो बुधसे धनसञ्चय, दो शनिसे सर्वनाश, दो वृहस्पतिसे राजभोग, दो राहुसे अस्त्रभय और दो शुक्रके रहनेसे नाना प्रकारके सुख मिलते हैं। त्रिपापचक्रमें तीन रवि हों, तो वित्तनाश; तीन चन्द्र हों, तो रौप्य और शुभवस्त्रलाभ; तीन मंगल हों, तो जीवनसञ्चय; तीन बुध हों, तो रत्नलाभ; तीन शनि हों, तो वध और बन्धन; तीन वृहस्पति हों, तो अतुल ऐश्वर्य; तीन राहु हों, तो अस्त्राघात, तीन शुक्र हों, तो सर्वदा लाभ और यदि तीन केतु हों, तो ज्वरपीड़ा होती है। त्रिपापके वर्षमें नाना प्रकारके कष्ट हुआ करते हैं। (ज्योतिष०)

त्रिपिटक (सं० क्ली०) बौद्धोंका धर्मग्रन्थ। बुधकी मृत्युके उपरान्त उनके ५०० शिष्योंने पाटलीपुत्रके निकटवर्त्ती किसी गुहामें एकत्र हो कर उनकी उपदेशावलीका संग्रह किया। यही बौद्धोंकी पहली समिति है। इसी प्रकारकी धर्म-समितिका नाम सङ्घ है। उन्होंने प्रभुके उपदेशोंको तीन भागोंमें विभक्त किया (१) शिष्योंके प्रति बुद्धका उपदेश, (२) तत्‌प्रदर्शित नियमविधि, (३) तत्कथित धर्ममत। यही तीन पिटक सूत्र, विनय और अभिधर्म नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रथम पिटकमें नीति वा विनय सम्बन्धीय विषयोंका वर्णन है, द्वितीय पिटकमें सूत्रावली और तृतीय पिटकमें दार्शनिक तत्त्वसमूहकी बातें लिखी हैं। द्वितीय और तृतीय पिटक कभी कभी धर्म नामसे भी पुकारे जाते हैं। ये सब सूत्र शाक्यमुनिकृत बतलाये जाते हैं। इनमें कथोपकथनके छलसे नीतिशास्त्र और दार्शनिकतत्त्वकी आलोचना की गई है। नारायण, जनार्दन, शिव, ब्रह्मा, पितामह, वरुण, शङ्कर, कुवेर, शक्र, वासव-विश्वकर्मा प्रभृति देवताओंका भी उल्लेख इस धर्मग्रन्थमें है। इण्डिया-आफिसकी लाईब्रेरीमें चीन-भाषामें लिखा हुआ जो बौद्धोंका त्रिपिटक है, वह २००० खण्डोंमें विभक्त है। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि "अत्थकथा" नामक पालिभाषामें जो टिप्पणी थी, उसे अशोकके पुत्र महेन्द्रने सिंहलमें ले जा कर वहाँ उसका सिंहली-भाषामें अनुवाद किया और बुद्धघोषने प्रायः ४३० ई०में शेषोक्त ग्रन्थका अनुवाद पुनः पालिभाषामें किया। फिर किसी किसीका मत है, कि राजा वर्त्तगमनीके राजत्वकालमें (ईसाके ८८—७६ सन् पहले) सिंहलके याजकों और कनिष्कसे जो धर्मसभा संगठित हुई थी (१०—४० ई०) उसीमें उक्त मत लिपिबद्ध हुआ। सिंहलके याजकोंने जो कुछ लिखा है, वह सिंहली-भाषामें ही है और पीछे ५म ई० सन्‌में वह

पालिभाषामें अनुवादित हुआ; किन्तु पूर्वोक्त धर्मसभामें संस्कृत भाषा ही व्यवहृत हुई थी। बौद्धधर्मके प्रतिष्ठित मत चिरकाल तक एकसे नहीं रहे। बीच बीचमें उनका परिवर्तन भी होता गया। महावंश नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि बुद्धकी मृत्युके बाद २०० वर्षके अभ्यन्तर १८ बार इसी प्रकार परिवर्तन हुआ था। बौद्धधर्मके जन्मभूमि भारतवर्षमें वैदिक अनुयायियोंने इसका घोर विरोध किया था; किन्तु सिंहलमें इसके विरुद्ध कोई विशेष बात न छिड़ी थी। १६ शताब्दीमें तामिलोंने सिंहल पर आक्रमण कर बौद्धशास्त्रोंको तहस नहस कर डालनेका खूब प्रयत्न किया था; किन्तु वहांके याजकोंने यह वृत्तान्त दूत द्वारा श्यामदेशमें कहला भेजा। पीछे ब्रह्मदेशसे उपयुक्त याजकोंने आ कर धर्मग्रन्थकी रक्षा की। अठारहवीं शताब्दीका शेष न होने पाया था, कि सिंहलमें याजकोंके यत्नसे बौद्धधर्मकी जड़ पुनः मजबूत हो गई। तभीसे याजक लोग उत्साही हो कर बौद्धधर्मके मतका प्रचार कर रहे हैं। इन लोगोंके छापेखाने अलग हैं और वहींसे अनेक पुस्तक तथा छोटे छोटे धर्मग्रन्थ प्रकाशित होते हैं।

त्रिपिण्ड (सं० क्ली०) त्रीणि पिण्डानि देयानि यत्र। पार्वणश्राद्धमें पिता, पितमह और प्रपितामहके उद्देश्यसे दिये हुए तीनों पिण्ड।

त्रिपिण्डी (सं० स्त्री०) त्रयाणां पिण्डानां समाहारः ङीप्। त्रिपिण्ड देखो।

त्रिपिब (सं० पु०) कर्णाभ्यां जिह्वया च पिबति पा-क। वार्ध्रीणस लम्बकर्ण छागभेद; लम्बे कानवाला बड़ा खसी। यह अपने दोनों कान और जीभसे जल पीता है, इसीसे इसका नाम त्रिपिब पड़ा। ऐसा बकरा मनुके अनुसार पितृकर्मके लिए बहुत उपयुक्त होता है।

त्रिपिष्टप (सं० क्ली०) मर्त्यं, पातालापेक्षया तृतीयं पिष्टकं भुवनं वृत्तौ त्रिशब्दस्य त्रिभागवत् पूरणार्थता। १ स्वर्ग। २ आकाश।

त्रिपिष्टपसद् (सं० पु०) त्रिपिष्टपे सीदति सद क्विप्। देवता।

त्रिपु (सं० पु०) स्तेन, चोर।

त्रिपुट (सं० पु०) त्रीणि पुटानि अस्य। १ सतीलक, मटर। २ तीर, किनारा। ३ हस्तभेद, एक हाथका माप। ४ तालकयन्त्र, ताला। ५ गोक्षुरवृक्ष, गोखरूका पेड़। ६ शर। ७ खेसारी। इसका पर्याय—त्रिपुट और खण्डिक है। इसका गुण—मधुर, तिक्त, तुवर, रूक्ष, कफ और पित्तनाशक, रुचिकर, ग्राहक, शीतल, खञ्ज और पङ्गकारक तथा अत्यन्त वायु-वृद्धिकर है।

त्रिपुटक (सं० पु०) त्रिपुट संज्ञायां कन्। १ वेदल खेसारी। २ फोड़ेका एक आकार। ३ त्रिभुज।

त्रिपुटा (सं० स्त्री०) त्रीणि पुटानि यस्याः। १ मल्लिका, चमेली। २ बेलीका फूल। ३ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। ४ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची। ५ स्थूलैला, बड़ी इलायची। ६ त्रिवित्, निसोथ। ७ कर्णस्फोटलता, कनफोड़ा बेल। ८ रक्तत्रिवृत्। ९ श्वेतत्रिवृत्। १० कुलत्थिका, कुलथी। ११ तन्त्रोक्तदेवीविशेष, तान्त्रिकोंकी एक देवी जो अभीष्टदात्री मानी जाती हैं।

यह त्रिपुटा देवी पारिजातवनमें सुन्दर रत्नमय सिंहासन पर कल्पवृक्षके नीचे रहती हैं। इनकी पूजा सदा करनी चाहिये। ये अभीष्टदात्री हैं।

त्रिपुटिन् (सं० पु०) त्रीणि पुटानि सन्त्यस्य इनि ङीष्। १ एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़। २ विदलविशेष, खेसारी।

त्रिपुटी (सं० स्त्री०) त्रीणि पुटानि सन्त्यस्याः अच् गौरा० ङीष। १ त्रिवृता, निसोथ। २ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची। त्रयाणां ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपाणां पुटानामाकाराणां समाहारः ङीप्। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूप तीनों पुट।

त्रिपुटरूप द्वैत या दोके अभावके लिये सभी भूतोंकी उत्पत्तिके पहले केवल सर्वव्यापी चैतन्य था, इसके सिवा और कुछ नहीं था। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता इन तीनोंका नाम त्रिपुट है। प्रलयकालमें यह त्रिपुटी नहीं रहती है। जागतिक सृष्टिकालमें इस त्रिपुटीका पृथक् पृथक् ज्ञान हुआ करता है। प्रलयकालमें फिर अभिन्नज्ञान नहीं रहता। जो ही ज्ञाता है, वे ही ज्ञेय हैं और वे ही ज्ञान भी हैं। अतः सब एक ही हैं।

उत्पन्न विज्ञानमय कोषको ज्ञाता कहते हैं। मनोमय कोष ज्ञान है तथा शब्द स्पर्शादि सभी विषय ज्ञेय हैं। इसके समूहका नाम त्रिपुटी है। उत्पत्तिके पहले

इस त्रिपुटीकी सत्ता असम्भव है। उस समय यह परिपूर्ण अद्वैतके स्वरूपमें रहती है। (पञ्चदशी।)

शंकराचार्यरचित 'त्रिपुटी प्रकरण' एवं आनन्दतीर्थ और प्रज्ञानन्दकृत-त्रिपुटी प्रकणकी टीकामें इसका विस्तृत विवरण देखो।

त्रिपुटीफल (सं० पु०) त्रिपुटी पुटत्रयं फलेऽस्य। एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़।

त्रिपुण्ड्र (सं० क्लो०) त्रयाणां पुण्ड्राणां इक्षुवदाकाराणां समाहारः। तिलकभेद, भस्मकी तीन आड़ी रेखाओंका तिलक जो शैव या शाक्त लोग ललाट पर लगाते हैं। त्रिपुण्ड्र धारण कर शिव-पूजा करनेका विधान है।

बिना भस्म और त्रिपुण्ड्र लगाये शिवपूजा निष्फल है। शैवको त्रिपुण्ड्र और वैष्णवको उर्द्धपुण्ड्र धारण करना चाहिये। जो लोग त्रिपुण्ड्रकी निन्दा करते, वे मानों महादेवकी निन्दा करते हैं, जो इसे ललाट पर लगाते, वे मानों शिवजीको धारण करते हैं। तिलक और शिवपूजा देखो।

त्रिपुनित्तुर—मन्द्राजके कोचीन-राज्यके अन्तर्गत कनयनूर तालुकका एक शहर। यह अक्षा० ९° ५७´ उ० और देशा० ७६° २०´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३००० के लगभग है। शहरसे १½ मील दूर एक पहाड़के ऊपर सुन्दर भवन बना हुआ है, जिसमें कोचीनके राजा अकसर आ कर रहा करते हैं।

त्रिपुर (सं० स्त्री०) त्रिगुणिताः पुरः समासान्तविधेरनित्यत्वात् आर्षेन अच् समा०। मयदानवके बनाये हुए असुरोंके तीनों नगर।

त्रिपुर (सं० क्लो०) त्रयाणाँ पुराणां समाहारः। असुरोंके तीनों पुर। त्रिपुरका विषय महाभारतमें इस प्रकार लिखा है,—'तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तारकासुरके तीन लड़कोंने कठोर तपस्या आरम्भ की। ब्रह्मा उनलोगोंकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो वर देनेको उद्यत हुए। इस पर उन्होंने प्रार्थना की, कि जिससे हम लोग समस्त भूतोंसे अवध्य होवें, वही वर देनेकी कृपा करें। पर ब्रह्मा यह वर देनेको राजी न हुए। बाद इन तीनों भाइयोंने मिल कर फिर ब्रह्मासे इस प्रकार निवेदन किया, 'हम लोग यही वर चाहते हैं, कि हम तीनों तीन पुरमें रह कर जनसमाजमें पूजित होवें और हजार वर्ष बाद जब हम तीनों एक साथ मिल जावें, उस समय यदि कोई एक बाणसे तीनों पुरोंका एक साथ संहार कर सके, तो हम लोगोंकी उसीके हाथसे मृत्यु होगी।' ब्रह्मा तथास्तु कह कर चल दिये। इस समय इन तीनोंने तीन पुर निर्माण करनेके लिये मयदानवको नियुक्त किया। मयदानवने अपने तपोबलसे स्वर्गमें काञ्चनमय. अन्तरीक्षमें रजतमय और मर्त्यलोकमें लौहमय तीन पुरोंका निर्माण किया। हर एक पुर सौ योजन विस्तृत था और वह गृह, अट्टालिका, प्राकार, तोरण आदिसे सुशोभित होता था। तारकाक्ष स्वर्णमय पुरीका, कमलाक्ष रजतमय पुरीका और विद्युन्माली लौहमय पुरीका अधीश्वर हुआ। इन लोगोंने जब अस्त्रके बलसे तीनों लोक पर आक्रमण किया, तब असुर लोग देवताओंको नाना प्रकारके कष्ट देने लगे। तारकाक्षको हरि नामक एक पुत्र था जिसने कठोर तपस्या करके ब्रह्मासे यह वर मांगा कि "मैं अपने पुरमें एक ऐसा तालाब प्रस्तुत करनेकी इच्छा करता हूं कि जिसका जल यदि अस्त्र निहत वीरोंके ऊपर फेंका जाय तो वे पुनर्जीवित हो जावें।" इससे वे और भी दुर्द्धर्ष हो गये। देवताओंने पद पद पर लाञ्छित हो ब्रह्माकी शरण ली और विनयपूर्वक जब उनसे असुरोंके दौरात्म्यकी कथा कह सुनाई तब ब्रह्माने कहा, 'ये तीनों दानव मेरे ही वरके प्रभावसे अभिमानमें चूर चूर हो रहे हैं, शीघ्र ही उन लोगोंका सर्वनाश होगा। महादेवके सिवा और कोई देवता एक बाणसे इन तीन पुरोंको भेद नहीं सकता। अतः हम लोग इन्हींके पास चलें। इससे तीनों पुरोंका अति शीघ्र नाश होगा और ये तीनों दानव मारे जायगे।' यह कह कर वे सबके सब महादेवके समीप गये। महादेवने देवताओंकी बात सुन कर कहा, 'तुम लोग पहले हमारे आधे बलको लेकर युद्ध करनेको तैयार हो जावो।' इस पर देवगण बोले, 'हम लोग आपकी आधी शक्ति ले कर लड़ें, ऐसा सामर्थ्य हममें नहीं है, बल्कि आप ही हम लोगोंके आधे बलको ग्रहण करें तो और अच्छा हो।' तब महादेव देवताओंके आधे बलको ले कर और भी अधिक बलशाली हो उठे। इसी समयसे शिवका नाम महादेव

हुआ है। महादेवने देवताओंसे कहा,-'तुम लोग यदि मेरे लिये धनुष और रथ तैयार कर दो, तो मैं बहुत जल्द त्रिपुराको दग्ध कर डालूंगा।' तब देवगण विश्वकर्माको बुला कर रथ बनवाने लगे। उन्होंने पर्वत, वन, द्वीप और भूतोंसे परिवृत विशाल नगरसम्पन्न वसुन्धराको महादेवका रथ बनाया; मन्दिर, पर्वत, दानवालय और जलनिधि रथका अक्ष; भागीरथी जङ्घा; दिशाएं भूषण; नक्षत्र ईषा, सत्ययुग और स्वर्गयुग काष्ठ; भुजगराज, अनन्तदेव, कुबेर, हिमालय, विन्ध्याचल, सूर्य और चन्द्र चक्र; सप्तर्षिमण्डल चक्ररक्षक; गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु और आकाशधूर्भाग, जल और नदी बन्धनसामग्री; दिन, रात्रि, कला, काष्ठा, छः ऋतु और समस्त दीप्तग्रह अनुकर्ष; तारागण वरूथ; धर्म, अर्थ और काम त्रिवेणु; फलपुष्पसे सुशोभित ओषधि और लता घण्टा; रात्रि और दिनपूर्व और अपरपक्ष; धृतराष्ट्रप्रमुख दशनागपति ईषा; महोरगगण योक्त्र; सम्वर्त्तक मेघ युगचर्म, कालपृष्ठ; नहुष, कर्कोटक, धनञ्जय और अन्यान्य नागगण अश्वोंके केशबन्धन; समस्त दिशाएँ और धर्म, सत्य, तप, तथा अर्थ अश्वरश्मि; सन्ध्या, धृति, मेधा, स्थिति, सन्नति और ग्रह-नक्षत्रादिसे सुशोभित नभोमण्डल बाह्यावरण; लोकेश्वर, इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर अश्व; पूर्वअमावस्या पूर्वपौर्णमासी, उत्तर अमावस्या और उत्तर पौर्णमासी अश्वयोक्त्र, पूर्व अमावस्याके अधिष्ठित पितृगण, युगकीलक; मन, रथोपस्थ, सरस्वती, रथका पश्चाद्भाग; शक्रचापसमन्वित विद्युत पवनोद्धूत पताका; वषट्कार प्रतोद एवं गायत्री शीर्षबन्धन हुई। विष्णु, सोम और हुतासन ये तीनों महात्माके योगसे महादेवके बाण कल्पित हुए। अग्नि उस बाणका काण्ड; सोम फलक और विष्णु तीक्ष्णधारस्वरूप हुए। पहले ईशानके यज्ञमें जो वर्ष कल्पित हुआ था, अभी उसने शरासनका रूप और सावित्रीने मौर्वीका रूप धारण किया। कालचक्रसे अभेद्य दिव्यवर्म वहिर्भूत हुआ। मैनाक और मेरुपर्वत ये दोनों ध्वजयष्टि हुए। सौदामिनी सहित मेघमाला पताका हुई। इस प्रकार अपूर्व रथ शरासनादिके तैयार हो जाने पर देवताओंने यह वृत्तान्त महादेवसे जा सुनाया। महादेवने उस पर अपने प्रधान समस्त शस्त्रोंको रखा और आकाशको ध्वजयष्टि बना कर उसके ऊपर महावृषभको सन्निवेशित किया। ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड और ज्वर, रथके पार्श्वरक्षक; अथर्व और आङ्गिरस चक्ररक्षक तथा ऋग्वेदादि पार्श्वचर हुए। 'ओंकार' रथके सामने लिख दिया गया। महादेवने छः ऋतुओंसे युक्त सम्वत्सरको विचित्र शरासन बना कर अपनी छायाको ही मौर्वी बनाया। भगवान् रुद्र साक्षात् कालस्वरूप हैं, संवत्सर उनके शरासन हैं, इसी लिये उनकी छायारूप कालरात्रि उस शरासनकी मौर्वी हुई। विष्णु, अग्नि और चन्द्र ये लोग उनके बाणस्वरूप हुए। महादेवने इन शरोंपर भृगु और अङ्गिराकी यज्ञसम्भूत दुःसह क्रोधाग्निको स्थापन किया। महादेवने इस रथ पर चढ़ कर देवताओंसे कहा,-'अभी कौन महात्मा मेरे सारथीका काम करेंगे?" इस पर देवगण बोले,—"आप जिनको आज्ञा देवें, वे ही आपके सारथी होंगे।" फिर महादेवने कहा,—"जो मुझसे अधिक श्रेष्ठ हों, तुम लोग उसका विचार कर उन्हें बहुत जल्द सारथी बना कर भेजो।" यह सुन कर देवताओंने पितामहकी शरण ले कर कहा, "इस युद्धमें आप हीको सारथीका काम करना होगा।" पितामह इसे स्वीकार कर महादेवके सारथीके पद पर अभिषिक्त हुए। तब महादेव विष्णु सोमाग्नि-समुत्पन्न शर ग्रहण कर रथ पर चढ़े। कमलयोनि (ब्रह्मा) भूतनाथके वाक्यानुसार त्रिपुरकी ओर रथ हांकने लगे। शूलपाणि महादेव जब क्रोधसे अधीर हो उठे, तब तीनों लोक कांपने लगा। उस समय वह रथ सोम, अग्नि, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र तथा उस शरासनके संचालनसे चलन सका। तब नारायणने उस शरभागसे निकल कर वृषभरूप धारण कर उस महारथको अपनी पीठ पर रख लिया। महादेव घोड़ोंकी पीठ और वृषभके मस्तक पर सवार हो कर सिंहनाद करते हुए दानवपुरकी ओर देखने लगे और उन्होंने घोड़ेके स्तनको काट डाला तथा वृषभके खुरोंको दो खण्डोंमें विभक्त किया। तभीसे घोड़े स्तनहीन हैं और गोसमूहके खुर दो भागोंमें बँटे हुए हैं। बाद महादेव शरासनको प्रत्यञ्चा खींच और उसे पाशुपतास्त्रमें संयोजित कर त्रिपुरकी अपेक्षा करने लगे।

तब वे तीनों पुर एक साथ मिल गये। यह देख कर देवता, सिद्ध और महर्षिगण अत्यन्त आह्लादित हुए और वे महादेवका स्तव करने लगे। तब त्रिलोकेश्वर महादेवने दिव्यशरासन खींच कर तीनों पुरों पर लक्ष्य करते हुए उस त्रैलोक्यसारभूत शरको छोड़ा। उस शरसे त्रिपुर उसी समय भूतल पर गिर पड़ा। असुरगण घोरतर आर्त्तनाद करने लगे। तब भगवान् शङ्करने उन्हें दग्ध कर पश्चिमसागरमें फेंक दिया। चारों ओरसे महादेवके स्तुति-गान होने लगे। महादेवके क्रोधके प्रभावसे त्रिपुर भस्म हो गया। बाद महादेवने अशेष क्रोधको रोका। पृथ्वी भारशून्य हो गई, देवगण स्वर्गराजमें अधिष्ठित हुए। (भारत कर्णप० ३५ अ०, तथा हरिवंश।)

त्रिपुरघ्न (सं० पु०) त्रिपुरं हन्ति हन-टक। महादेव। त्रिपुर देखो।

त्रिपुरदहन (सं० पु०) महादेव, शिव।

त्रिपुरदास—एक भगवद्भक्त कायस्थ। ये पहले ब्रिटिश गवर्मेण्टके अधीन मुहर्रिरका काम करते थे। इसमें इन्हें बहुत आमदनी होती थी। इनके पास जितना धन था, सभी इन्होंने भगवद्सेवामें लगा दिया। प्रति वर्ष गोवर्द्धन पर्वत पर ये श्रीनाथजीको शीतवस्त्र देते थे। सरकारी नौकरी छूट जाने पर ये दरिद्र हो गये। जमा कुछ भी रकम न थी, जो कुछ आमदनी होती थी, उसे भगवद्सेवामें खर्च कर डालते थे। इस समय इनकी अवस्था शोचनीय हो जाने पर भी ये श्रीनाथजीको येनकेन प्रकारेण गात्रवस्त्र देते ही थे। एक वर्ष दुर्भाग्यवश जब वस्त्रका इन्तजाम न हो सका, तब इन्होंने अपनी पीतलकी दवात बेच कर उसी पैसेसे श्रीनाथजीका गात्रवस्त्र खरीद दिया। इस बार भण्डारीने इसे श्रीनाथजीको न देकर कहीं दूसरी जगह रख दिया। रातमें भण्डारीको स्वप्न सुनाया कि, 'मैं जाड़ेसे कष्ट पा रहा हूं, और तूने त्रिपुरदासके दिये हुये कपड़ेको उठा रखा है, हजारों शाल-बनात रहते भी मेरा जाड़ा नहीं जाता। अतः त्रिपुरदासके कपड़ेको हमें शीघ्र दो।

(भक्तमाल)

त्रिपुरभैरवी (सं० स्त्री०) त्रिपुरा धर्मार्थकामानां दात्री सा चासौ भैरवी चेति। एक देवीका नाम। ये रक्तवर्ण, रक्तवस्त्रपरिधाना और चतुर्भुजा हैं। इनके ऊर्ध्वदक्षिणहस्तमें माला, अधोदक्षिण-हस्तमें उत्तम पुस्तक, दोनों वामहस्तोंमें अभयवर है, शरीरकी दीप्ति सहस्रसूर्यकी नाईं उज्ज्वल है, तीन नेत्र हैं, चाल गजेन्द्रसी है, दोनों स्तन बड़े बड़े हैं, श्वेतप्रेतके ऊपर बैठी हुई हैं तथा सर्वालङ्कारभूषिता और सुहास्यवदना हैं। इनके मस्तक, वक्षस्थल और कटि इन तीन अङ्गोंको छोड़ कर शेष मुण्डमालासे सुशोभित हैं। तीनों नेत्र मधु पानसे भ्रमित हैं तथा ओष्ठाधर रक्तवर्ण है। इसी प्रकार त्रिपुरभैरवीका ध्यान करना चाहिये। (कालिकापु० ७४ अ०)

त्रिपुरभैरवीके पूजोपकरण-पात्रादि और आसनादिका किसी दूसरी पूजामें व्यवहार न करना चाहिए।

त्रिपुरभैरवीकी पूजा करनेका समय तीन मुहूर्त्तकाल लिखा है। इनकी पूजामें तीन बारसे कम जप नहीं करते हैं। अङ्गुष्ठा, मध्यमा और अनामिका इन तीन उंगलियोंके योगसे पुष्पादि चढ़ाते और माला द्विगुणा करके पहनाते हैं। साधक चर्मासन पर बैठ कर दोनों पैरोंको पीछेकी ओर रख एकाग्रचित्तसे निर्जनस्थानमें इस देवीकी पूजा करते हैं। विज्ञसाधक पुष्प और नैवेद्यादिको बायें हाथसे चढ़ाते हैं। इस देवीकी यदि विधानपूर्वक पूजा न की जाय, तो पूजकके शरीरमें अवश्य ही निन्दितव्याधि उत्पन्न होती है। स्त्री, पुत्र और भृत्यादि अवशीभूत होते हैं तथा पीछे उनकी शस्त्राघातसे मृत्यु होती है। यह त्रिपुरभैरवी योगनिद्रा जगज्जननी मायाका रूपभेद है। एक ही माया अनेक रूपमें क्रीड़ा करती है। (कालिकापु० ७४ अ०)

त्रिपुरमल्लिका (सं० स्त्री०) त्रीणि पुराणि दलावृत्तयो यस्याः, सा चासौ मल्लिका चेति। पुष्पवृक्षविशेष, एक प्रकारकी चमेलीका पेड़।

त्रिपुरा (सं० स्त्री०) त्रीन् धर्मार्थकामान् पुरति पुरती ददाति पुर-क, ततष्टाप्। देवीविशेष, त्रिपुरादेवी कामाख्याकी एक मूर्त्तिका नाम। वाग्भव, कामबीज और ईश्वर, धर्म; अर्थ तथा कामादिके साधक और ये कुण्डलीयुक्त हो कर त्रिपुरादेवीके मूलमन्त्र होते हैं। कामरूपिणी कामाख्या तीन प्रकारके पदार्थ दान करती

हैं और तीनके आगे पूजी जाती हैं। इसीसे इनका नाम त्रिपुरा पड़ा है। (कालिकापु० ६३ अ०)

इस देवीका मण्डल त्रिकोण—तीन रेखासे निर्मित है, तीन पुर मन्त्रके तीन अक्षर हैं, रूप तीन प्रकारके हैं और त्रिदेवीओ सृष्टिके लिए कुण्डलीशक्ति भी तीन ही प्रकारकी है। ये सभी वस्तु तीन तीनकी हैं, इसीसे इनका नाम त्रिपुरा पड़ा है। (कालिकापु० ६३ अ०)

इनका रूप सिन्दूरपुञ्जसदृश है, इनके तीन नेत्र हैं, चार भुजा हैं, वायीं ओरके ऊर्ध्व हस्तमें पुष्प-धनु है, अधोहस्तमें पुस्तक है, दाहिनी ओरके ऊर्ध्व हस्तमें पांच वाण हैं, अधोहस्तमें अक्षमाला है, चार कुणप (वरछा) पीठ पर और एक रक्षाके लिए दण्डायमान है, जटाजूट हैं। अर्द्ध चन्द्र द्वारा वद्धकेश हैं, नग्ना हैं, मध्यदेशमें त्रिवलि द्वारा सुशोभिता हैं, सव अलंकारोंसे भूषिता है। सर्वाङ्गसुन्दरी हैं, मङ्गलमयी हैं, धनवितरणकारिणी हैं तथा सर्वलक्षणसम्पन्ना हैं। इसी प्रकार उस मूर्त्तिका ध्यान करना पड़ता है।

इसी रूपसे पहले ध्यान करना चाहिये और अपनेको भी तीन प्रकारके रूपोंमें समझना चाहिये।

द्वितीय त्रिपुरा-मूर्त्ति इस प्रकार है—वन्धुकपुष्पसदृशी, जटाजूट तथा चन्द्रद्वारा मण्डिता, सर्वलक्षणसम्पन्ना, सव प्रकारके अलङ्कारोंसे सुशोभिता, उद्यत्सूर्यसदृश वस्त्रपरिधाना, पद्मपर्यङ्कसंस्थिता, मुक्ता और रत्नावलीयुता, पीनोन्नतपयोधरयुक्ता, त्रिवलिसुशोभिता, आसवके आमोदमें सन्तुष्टा, नेत्राह्लादकरी, विशुद्धा, जगत्की क्षोभिणी, त्रिनेत्रा, योनिमुद्राके प्रति ईषत् हास्यसमायुक्ता, नवयौवनसम्पन्ना, मृणालतुल्य चतुर्भुजा, वायीं ओरके ऊर्ध्व हस्तमें पुस्तक, अधोहस्तमें अभय, दाहिनी ओरके ऊर्ध्व हस्तमें अक्षमाला, अधोहस्तमें वर, गलद्रक्ता, सूर्याभा, कदम्बोपवनान्तरिता, शुभदायिनी और कामाह्लादकारी हैं। यही मनोहरा द्वितीय त्रिपुरा-मूर्त्तिका ध्यान है। (कालिकापु० ६३ अ०)

तृतीय त्रिपुराकी मूर्त्ति जवाकुसुम-सदृशी, मुक्तकेशी, शुभानना और हास्यकारी है। ये सदाशिवकी प्रेतवत् स्थापन कर उन्हींके हृदय पर पद्मासनके रूपमें वैठी हुई हैं। ग्रीवादेशसे आपादलम्बिनी रक्तोत्पलमिश्रित मुण्डमालाधारिणी, पीनोन्नतपयोधरा, चतुर्भुजा, दिगम्बरी, दाहिनी ओरके ऊर्ध्व हस्तमें अक्षमालाधारिणी, अधोहस्तमें वरदा, वायीं ओरके ऊर्द्ध हस्तमें भी अक्षमालाधारिणी तथा अधोहस्तमें वरदायिनी, त्रिनेत्रा, हास्यमुखी, गलद्रुधिरभोगार्त्ता और सर्वांग सुन्दरी हैं। साधकको इसी प्रकार तीसरी मूर्त्तिका ध्यान करना चाहिये।

(कालिकापु० ६३ अ०)

आद्यरूप वाग्भाव, द्वितीय कामवीज और तृतीय डामर एवं मोहन नामसे प्रसिद्ध हैं। साधकको चाहिये कि वे पहले एक एक करके तीनों रूपोंका ध्यान कर वाहरके सदृश हृदयाभ्यन्तरमें भी तीनों मन्त्रोंकी उच्चारण कर षोड़शोपचारसे प्रत्येककी पूजा करें। देवीकी तीनों मूर्ति एकत्र कर उसके वीचमें तीनों मन्त्र एक साथ करके हृदयमें रखें।

कामरूपिणी त्रिपुरादेवीकी नौ प्रकारसे पूजा की जाती है। विधिवत् त्रिपुराकी पूजा करनेसे साधकके अभीष्ट पूर्ण होते हैं और अन्तमें वे देवलोकको जाते हैं।

(कालिकापु० ६३ अ०)

त्रिपुरा—पूर्व-वङ्गालका एक प्रान्त-भूभाग। इस प्रदेशके कई अंश जिला-त्रिपुरा नामसे वङ्गालके लाटके अधीन और कई अंश पार्वत्य-त्रिपुरा नामसे त्रिपुराके प्राचीन राजवंशके अधीन हैं।

जिला त्रिपुरा—यह अक्षा० २३° २´ से २४° १६´ उ० और देशा० ९०° ३४´ से ९१° २२´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २४९९ वर्गमील है। इसके उत्तरमें वङ्गालके अन्तर्गत मैमनसिंह जिलेके कई अंश और आसामके अन्तर्गत श्रीहट्ट जिला, दक्षिणमें नोआखाली जिला, पश्चिममें मेघना नदी और पूर्वमें पार्वत्य-त्रिपुरा है। जिला-त्रिपुराकी पूर्व-सीमा ही वृटिशभारतकी पूर्वान्त-सीमा है। १८५४ ई०में भारत-गवर्मेण्टकी ओरसे मि० लिसेष्टरने और त्रिपुराराजकी ओरसे मि० क्याम्बेलने यह सीमा निर्द्धारित की। पहले यह जिला चट्टग्रामके कमिश्नरके अधीन था। १८७५ ई०से यह ढाकाके कमिश्नरके अधीन हो गया।

इस जिलेकी भूमि सव जगह समतल है, केवल पूर्वांशमें कहीं कहीं लालमाटी पर्वतका कुछ कुछ अंश

है। नदी और खाड़ीकी संख्या अधिक है। देशका वाणिज्य प्रायः नाव द्वारा ही चलता है। ग्रीष्मकालमें नदी और खाड़ीके सुख जाने अथवा जलके कम जाने पर भी उसी राह हो कर वाणिज्य होता है। बड़ी बड़ी नदियोंमें वर्षाकालमें बाढ़ आ जाती है, जिससे निकटवर्त्ती घर आदि जलमग्न हो जाते हैं। निम्नस्थानकी मट्टी बहुत हलकी और उच्च स्थानकी कड़ी पाई जाती हैं।

लालमाई पहाड़ पर कपासकी खेती अधिक होती है। जङ्गल परिष्कार किये जाने पर इस पहाड़ पर सब जगह बैलगाड़ी आ-जा सकती है। इस पहाड़के उत्तर मयनामती पहाड़ पर पार्वत्य-त्रिपुराके महाराजकी कई एक अट्टालिकायें हैं, वहां जिला-त्रिपुराका प्रधान शहर कुमिल्ला है जहां अङ्गरेज लोग वास करते हैं। समस्त लालमाई पहाड़ पहले महाराजके अधीन था; किन्तु कुछ दिनसे मयनामतीके घरके सिवा गवर्मेण्टने और कहीं भी महाराजका अधिकार न दिया। अन्तमें महाराजने प्रायः २८ हजार रुपये दे कर समस्त पहाड़ खरीद लिया है। त्रिपुराकी राजवंशी लालमाई (लालमयी) नामक किसी राजकन्याके नामसे इस पहाड़का नामकरण हुआ है।

इस जिलेके पश्चिममें मेघना नदी प्रवाहित है। केवल इसी नदीमें बड़ी बड़ी नावें आ जा सकती हैं। गोमती, डाकातिया तथा तितास प्रभृति नदियोंमें डोंगी सब समय चलती है।

मेघना—चाँदपुरके निकट मेघनामें गङ्गा और ब्रह्मपुत्र नदी मिली है। तीन नदियोंका जल मिल जानेसे इस जिलेकी मेघना नदीका परिसर और वेग अधिक हो गया है। नदीमें कई जगह चर भी पड़ गया है। इस नदीमें आना जाना बहुत खतरानाक है। नदीमें धँसे हुए बहादुरी काठ और बड़े बड़े वृक्षकी शाखाओंमें टकरानेसे प्रायः नावें नष्ट हो जाया करतीं हैं। रेनेल साहबके समयमें ब्रह्मपुत्र और मेघनाका सङ्गम वर्त्तमान स्थलसे ६० मील उत्तर भैरवराज नामक स्थानमें था। कालक्रमसे चर पड़ जानेके कारण नदीकी गति बदल गयी है। इस नदीके निकटवर्त्ती स्थानमें 'बरिसालके कमान'की नाईं कामानका शब्द होता है। यह शब्द कहांसे आता है, इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता।

गोमती—मेघनाके बाद ही गोमती इस जिलेकी प्रधान नदी है। यह लालमाई नदीसे निकली है और जिला त्रिपुराको दो समान भागोंमें विभक्त करती है। जिलेका प्रधान शहर कुमिल्ला नगर इसीके किनारे अवस्थित है। नगरसे ८ मील उत्तरमें यह नदी इस जिलेमें प्रवेश करती है। दाउदकान्दिके निकट गोमती मेघनामें मिलती है। वर्षाकालमें यह नदी बहुत प्रबल हो उठती है। शीतकाल और ग्रीष्मकालमें यह कई जगह सूख जाती है और लोग इसे पैदल पार हो जाते हैं। कुमिल्ला छोड़ कर इसके किनारे जाफरगञ्ज तथा पाँचपोखरिया नामक और दो प्रधान शहर पड़ते हैं। नदीकी लम्बाई कुल ६६ मील है जिसमेंसे ३६ मील इसी जिलेमें पड़ता है।

डाकातिया—यह पार्वत्य-त्रिपुरासे निकल कर सुआगाजी नामक स्थानमें त्रिपुरा जिलेमें प्रवेश करती है। इसकी लम्बाई १५० मील है। यह पश्चिमकी ओर लाचाम, चितोसी और हाजीगञ्जके निकट होती हुई पश्चिमकी ओर बह गई है। फिर वहांसे दक्षिणकी ओर ६$\frac{३}{१}$ मील आनेके बाद नोआखाली जिलेके रायपुर नामक ग्रामके निकट मेघनामें मिली है।

तितास—यह नदी इस जिलेके उत्तरमें प्रवाहित है और लालपुरके चरके निकट मेघनामें गिरी है। इसकी लम्बाई ८२ मील है। इसके किनारे ब्राह्मणबाड़िया पड़ता है।

उक्त नदियोंके सिवा मुहरी, बिजयगांग, बूढ़ीगांग आदि और भी कई एक छोटी छोटी नदियां हैं। इन सब नदियोंके पार होनेके ८ घाट हैं। गोमतीमें कुमिल्ला, कम्पनीगञ्ज और नुरपुर; मुहुरीमें शुभापुर, परशुराम और कारचुनी; तितासमें उजानी शहर और विजयगाङ्गमें नयानपुर नामक स्थानमें पार होनेके घाट हैं।

समस्त जिलेमें १०४ खाड़ियां हैं, जिनमेंसे चांदपुरकी खाड़ी और गोकर्णकी खाड़ी विशेष विख्यात है। इनमें बड़े बड़े गर्त्त भी हैं, जिनमेंसे सराइल परगनेमें आठ- कोपागर्त्त, ककाइगर्त्त, बड़ालेगर्त्त, चाक्तागर्त्त, काजलागर्त्त, आलतागर्त्त, खोलधारीगर्त्त, बबदा-

खांन परगनेमें वड़ागर्त्त, वांदचाड़ गर्त्त और नुरनगर परगनेमें मनधारीगर्त्त ही विशेष विख्यात है। इनमेंसे कोई भी १ वर्गमीलसे कम नहीं है। नड़ालीगर्त्त ५·८ वर्गमील विस्तृत है।

इस जिलेके उत्तरमें मछलीका कारवार है। ये सव मछलियां ढाका और चट्टग्राम भेजी जाती हैं।

जिलेसे शीतलपाटी वनाने योग्य घास और सोलाकी रफ्तनी होती है।

जिलेका अधिकांश क्षेत्र पङ्कमय होनेके कारण धानकी फसल अच्छी लगती है और पौधा वहुत लम्बा वढ़ता है। सराइल परगनेमें २८ फुट लम्बा पयाल देखा गया है।

लालमाई पहाड़ पर १८७१ ई०में वहुतसी लोहेकी खानें आविष्कृत हुईं; किन्तु अच्छा लोहा और खानमें अधिक कोयला नहीं रहनेके कारण खानका काम आरम्भ नहीं हुआ।

इस देशका आम वहुत खराव होता है। अन्य स्थानोंकी नाईं आमकी लकड़ी भी उतनी अच्छी नहीं होती है। सुपारी, वेत, खजूर आदिके रससे आमदनी होती है। यहांके जङ्गलोंमें हाथी, वाघ, चीता, जंगली सूअर, गीदड़ और भैंस अधिक पाये जाते हैं। तरह तरहके पक्षी भी मिलते हैं, जो चीन और चट्टग्राम भेजे जाते हैं। यहां भैंसेके चमड़ेका व्यवसाय भी होता है।

त्रिपुरामें तिपारा नामक एक असभ्य जातिका वास है। ये वङ्गालियोंसे कोई सम्पर्क नहीं रखते। इन लोगोंकी भाषा स्वतन्त्र है; किन्तु कोई वर्णमाला नहीं है। एक प्रकारका विकृत हिन्दूधर्म ही इन लोगोंका धर्म है।

सराइल परगनेमें एक प्रकारका मसलिन कपड़ा प्रस्तुत होता है, जिसे ताञ्जिव कहते हैं और यह ढाकाके विख्यात मसलिनसे किसी अंशमें कम नहीं है। इसका सूत हाथसे काता जाता है। इसके सिवा शीतलपाटीका व्यवसाय भी यहां खूव चलता है। चपंटा नामक स्थानमें पहले अंगरेजोंके अधीन वाफता कपड़ेका कारवार था। अव उसका विलकुल कारखाना वन्द हो गया है।

त्रिपुरा जिलेमें अंगरेजोंके राजत्वकालका इतिहास—१७६५ ई०में वङ्गालके अन्यान्य स्थानोंके साथ त्रिपुरा भी अंगरेजोंके हाथ आ गया। इसके पहले १५८८ ई०में त्रिपुरा और नोआखाली सरकार सुवर्णग्रामके अधीन था। १७३३ ई०में सरकार सुवर्णग्राम और सुलतान सुजाने जो जो अंश जीत कर इस सरकारके अन्तर्भुक्त किये थे, वे १३ चकलोंमें विभक्त हुए। उनमेंसे त्रिपुरा और नोआखाली चकला जहाङ्गीरनगरके अधीन था। चकला जहाङ्गीरनगर पुनः कई एक जमींदारियोंमें विभक्त हुआ। जिनमें जलालपुरके जमींदार प्रधान गिने जाते थे। १७२८ ई०में सुजा खाँने वङ्गालको २५ "इहतिमाम" नामक अंशोंमें विभक्त किया। इस समय पूर्वोक्त जलालपुर जमींदारीको एक 'इहतिमाम' वनाया गया। नोआखाली और त्रिपुरा इसी इहतिमामके अन्तर्गत था। १७६५ ई०में अंगरेजोंका वङ्गालमें अधिकार हो जानेसे जलालपुरका शासन-भार राजा हिम्मतसिंह और जमारत खाँ नामक दो जमींदारोंके हाथ सौंप दिया गया। वाद १७६८ से १७७२ ई० तक तीन पुरुष अंगरेजोंके तत्त्वावधानमें रहे, जिनके नाम मि० केलसाल, मि० हारिस और मि० ल्यम्वर्ट थे। १७७२ ई०में एक व्यक्तिको कलक्टरकी उपाधि दे कर उनके हाथ शासन-भार सौंपा गया। १७७४ ई०में प्रोभिन्सियल कौन्सियल स्थापित हुई। तभीसे १७८० ई० तक कौन्सिलके नियुक्त नायव ही राजत्वसम्वन्धके सभी कार्य करते थे और दूसरे दूसरे कार्य कई एक चिह्नित अंगरेज कर्मचारियों द्वारा किये जाते थे। १७८१ ई०में नोआखाली और त्रिपुरा स्वतन्त्र विभाग गिना जाने लगा। वहुतसे अंगरेज-कर्मचारीके हाथमें इस नूतन विभागका भार रहा, किन्तु उन लोगोंके हाथमें मजिष्ट्रेटकी क्षमता न थी। अन्तमें १८२२ ई०में त्रिपुरा और नोआखाली पुनः विभक्त किया गया। इसके वाद भी सीमा और परगनेकी व्यवस्था ले कर समय समय पर वहुत परिवर्त्तन हो गया है।

इस जिलेमें तीन विभाग हैं—सदर उपविभाग, चांदपुर और ब्राह्मणवाड़िया उपविभाग। सदर उपविभागमें कुमिल्ला, मुरादनगर, दाउदकान्दि, चांदिना,

जगन्नथदीघी और लाक्षाम नामक छह थाने हैं। इस उपविभागमें प्रायः ४ हजार ७ सौ ग्राम लगते हैं। ब्राह्मणबाड़ियामें कसबा, नबिनगर और ब्राह्मणबाड़िया ये तीन थाने तथा चाँदपुरविभागमें चाँदपुर और हातीगञ्ज नामक दो थाने हैं। समग्र जिलेमें ११७ परगने पड़ते हैं। इसका क्षेत्रफल २४८१ वर्गमील है। लोकसंख्या लगभग २११७८८१ है जिनमेंसे मुसलमानोंकी संख्या अधिक है।

पार्वत्यत्रिपुरा—यह स्थान त्रिपुराके प्राचीन राजवंशके अधीन है। राजा अंगरेजोंके मित्र हैं। अंगरेजोंकी ओरसे एक पोलिटिकल-एजेण्ट इस राजसभामें रहते हैं। आगरतला नामक स्थानमें राजधानी है। यह नगर हाउड़ नदीके ऊपर अवस्थित है। इस राज्यके उत्तरमें आसामके अन्तर्गत श्रीहट्ट जिला, दक्षिणमें नोआखाली और चट्टग्राम, पूर्वमें लुसाई और चट्टग्रामका पार्वत्यप्रदेश और पश्चिममें बङ्गालके अन्तर्गत जिला त्रिपुरा है। त्रिपुराराजका पार्वत्य-राज्य छोड़ कर जिला-त्रिपुरामें चकला-रोसनाबाद नामक एक बड़ी जमींदारी है। वृटिशगवर्मेण्टको इसका कर देना पड़ता है। समग्र राज्यसे राजाकी जो कुछ आमदनी होती है, उससे अधिक इस जमींदारीकी आमदनी है। सम्भवतः राजा मुसलमानोंके करद थे। समतल भूभागके लिए वे मुसलमानको कर देते थे। मुसलमानोंने लुसाइयोंके हाथसे राज्यका उत्पात दूर करनेके लिए शायद जान-बूझ कर ही पार्वत्य-प्रदेश राजाके हाथसे किसी दिन लेनेकी चेष्टा न की। इससे जाना जाता है, कि राजाके राज्यमें कुछ करद जमींदारी और कुछ स्वाधीन राज्यकी सृष्टि हुई होगी।

प्रति राजाकी मृत्युके बाद उत्तराधिकारीके लिए बहुत गड़बड़ी मचती थी। उत्तराधिकारी कुकियोंके साथ मिल कर घमसान युद्ध करते थे। राजा स्वयं उत्तराधिकारी निरूपित कर देते थे। जो भविष्यत्में राजा होते, उनकी उपाधि युवराज होती थी। युवराजके बाद बड़े ठाकुरका पद मिलता था। राजाकी मृत्युके बाद युवराज राजा और बड़े ठाकुर युवराज होते थे। राजाके पुत्र रहने पर भी युवराज ही राज्य पाते थे। यदि राजा युवराजादि नियुक्त किये विना मर जाते, तो उनके ज्येष्ठ पुत्र ही गद्दी पर बैठते थे। इस तरह युवराजके राजा होने पर वे बड़े ठाकुरको ही युवराजका पद देनेमें बाध्य होते थे। उनके जीवित रहते भी बड़े ठाकुर एक दिन तक राज्य भोग कर सकते थे। पहले इष्ट-इण्डिया कम्पनी प्रत्येक राजाके राज्यारोहणके समय कुछ नजराना पाती थी और वह उन्हें पोशाक उपाधि तथा सनद प्रदान करती थी। वर्तमान समयमें राजा स्वाधीनभावसे सभी कार्य कर सकते हैं। १८७१ ई०से एक पोलिटिकल-एजेण्ट नियुक्त हुए है। राजाके साथ अंगरेजोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक राजाके राज्यारोहणके समय अभी भी वृटिश-गवर्मेण्टको पार्वत्य-त्रिपुराका एक वर्षके राजस्वका अर्द्धांश उत्तराधिकार-कर-स्वरूप (Succession-duty) देना पड़ता है।

राजा स्वेच्छाचारी होते हैं। राजाकी इच्छाके अनुसार आदेश ही आईन है। ईंटोंके घर बनाने, तालाब खोदवाने और विवाहोत्सवमें पाल्कीका व्यवहार करनेमें राजाकी आज्ञा लेनी पड़ती है। राजा चिरानुगत प्रथाओंको मानते हैं। प्रायः सभी राजकर्मचारी राजाके स्वसम्पर्कीय व्यक्ति होते हैं। बहुतसे पद पुनः वंशगत हो गये हैं। इसीसे कभी कभी १०।१२ वर्षके बालक भी जिलेके कमिश्नरकी नाईं उच्चपद पर प्रतिष्ठित होते देखे गये हैं।

१८७३ ई०में बङ्गाल गवर्मेण्टकी ओरसे बाबू नीलमणिदास नामक एक विचक्षण बङ्गाली त्रिपुराराज्यमें दीवान नियुक्त हुए। इन्हींसे राज्यकी खूब उन्नति हुई है। राज्यका परिमाण ४०८६ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः एक लाख है। नीलमणि बाबूने यहां वृटिश-गवर्मेण्टके दृष्टान्तमें व्यवस्थापकसभा, फौजदारी-आईन, दीवानी-आईन, पुलिस-आईन, तमादी-आईन इत्यादि प्रचलित किये हैं; किन्तु राजाका आदेश अब भी सर्वोपरि है।

पार्वत्य-त्रिपुरामें समतलवासी और पर्वतवासी ये दो प्रकारकी प्रजा हैं। समतलवासी प्रजा जिला-त्रिपुराके लोगोंकी नाईं है। पश्चिम-सीमासे दो कोस प्रशस्त स्थानमें तथा नोआखाली, जिला त्रिपुरा और चटग्रामके सीमान्तमें इन लोगोंका वास है। पर्वतवासी खाना-

बाड़ीकी प्रजाके नामसे अभिहित हैं। पार्वत्य प्रत्येक ग्राममें एक एक सर्दार सर्दारके नामके बाद 'बाड़ी' शब्द जोड़ कर उस ग्रामका नामकरण किया जाता है।

यह प्रदेश साधारणतः पर्वतमय है। भूमि पश्चिमसे ऊँची होती गई है। ५।६ पर्वतमालाएं समानान्तररूपसे अवस्थित हैं। प्रत्येक पर्वतमें ६ कोसका अन्तर है। पर्वत पर बांसका जङ्गल और निम्नभूमिमें बेतका जङ्गल ही अधिक है। पूर्व दिशाके प्रधान पर्वतका नाम जाम्पुई है। इसकी सबसे ऊँची चोटी बेतलिङ्गशिब ३२०० फुट ऊँची है। यहाँकी प्रधान नदियाँ गोमती, हावरा, खोआई, बलाई, मनु, जुरी और फेनी हैं। इन नदियोंमें जंगलके बड़े बड़े वृक्षकी शाखायें बहा कर लाती हैं, जिनसे अच्छी अच्छी नावें बनाई जाती हैं। लुसाईगण जंगलमें बड़े बड़े बोया नामके सांपको मारते और उनका मांस खाते हैं। जाम्पुईके सिवा इस प्रदेशमें और भी कई एक पर्वतमाला है।

गोमती नदी—अठरमुड़ा पर्वतसे चायमा और लङ्गतराई पर्वतसे रायमा नामक दो नदियाँ निकल कर डुमरा नामक जलप्रपातसे कुछ ऊपर एकत्र हो कर गोमती नाम धारण करती हैं। काशीगाङ्ग और पितागाङ्ग नामकी दो उपनदियाँ हैं, जो बीबी-बाजार नामक ग्रामके निकट जिला त्रिपुरामें प्रवेश करती हैं।

मनु नदी—सकन्तलङ्ग पर्वतके खोईशिव शिखरसे निकल कर श्रीहट्टमें प्रवेश करती है। देव और दुलाई नामक इसकी दो उपनदियाँ यथाक्रमसे कामनाथ और कदमहाटा नामक स्थानमें इसके साथ मिल गई हैं।

इन सब नदियोंमें पानसी, डिङ्गी, शालती आद चलती हैं। इन नदियोंमें ३० मन बोझ लाद कर नावें आ जा सकती हैं। पर्वत पर कहीं कहीं कोयले और तरह तरहके पत्थर पाये जाते हैं। कामनाथ और शिप्री पर्वत पर दो नदियाँ हैं, जिन्हें नुनचड़ा कहते हैं। इन दो नदियोंके उत्पत्तिस्थानका जल लवणाक्त और उष्ण होता है। जाम्पुई पर्वत पर नमककी खान है।

जङ्गलमें हाथी और चीते बहुत देखे जाते हैं। हाथी पकड़नेके लिए राज-दरबारसे अनुमति लेनी पड़ती और कर देना पड़ता है। प्रत्येक हाथी बेचते समय भी उसके मूल्यसे राजप्राप्य कह कर उसका आठवां अंश राजाको देना पड़ता है। जङ्गलसे सुग्गा पकड़ कर अन्य देशमें भेजनेसे राजा एक प्रकारका कर लेते हैं। वर्षाके समय जङ्गलविभागमें डांस, मच्छड़ आदि इतने अधिक होते हैं, कि वनवासी भी कभी कभी अपना वासस्थान छोड़ कर अन्यत्र चले जाते हैं।

पार्वत्य त्रिपुरा आगरतला और कैलाशहर इन दो विभागोंमें विभक्त है। आगरतला विभागमें ४२ हजार और कैलाशहर-विभागमें ६ हजार पार्वतीय लोगोंका वास है। समतल स्थानमें कुल २७ हजार मनुष्य रहते हैं।

पार्वतीय जाति तीन भागोंमें विभक्त है। १, तिपरा वा टिपरा। तिपरा देखो। २, जामाइता, ३, नोआतिया और रियङ्ग। यहां कूकी और लुसाइयोंका भी वास है। कुकी और लुसाई देखो। पार्वतीय उपत्यकामें मणिपुरी जाति रहती है।

वे निम्नलिखित कई एक उत्सव मनाते हैं—१, चैत्रमासके अन्तिम दिनमें साल समाप्त होनेके उपलक्षमें एक उत्सव करते हैं। इसमें भोज और आमोद-आह्लाद ही अधिक किया जाता है। यह उत्सव सात दिन तक रहता है। २, आश्विन मासमें फसल काटते समय "मिकाटाल" वा नवान्न नामक उत्सव होता है। पार्वतीय लोग यह उत्सव मानते हैं। इसमें देवतासे जमीनकी उर्वरताके लिये प्रार्थना करते हैं। ३, अग्रहायण मासमें हैमन्तिक धान्य काटे जाने पर नूतन मद्यका एक उत्सव होता है। इसमें वे 'मनुई' नामक धान्यसे एक प्रकारकी कांजी प्रस्तुत करते और देवताको नवीन चावल उत्सर्ग करते हैं और सब कोई नवीन चावल खाते तथा बकरा, पक्षी और शूकर आदिकी भी बलि देते हैं।

इन लोगोंके प्रधान उत्सवका नाम 'केरपूजा' है। सर्वापद्शान्तिके लिये आषाढ़ मासमें यह उत्सव होता और ढाई दिन तक रहता है। सब कोई पहले दिनके दश बजे रातसे तीसरे दिनके छह बजे प्रातःकाल तक अपने अपने घरका दरवाजा बन्द रखते हैं। घरके बाहर कोई नहीं जा सकता है। बीचमें कुछ कालके लिये

दिनमें दो बार बाहर निकल सकती हैं। आगरतलामें राजप्रासादके निकट एक स्थान बांससे घिरा हुआ है, उसी जगह उत्सव मनाया जाता है।

विदेशियोंका वास—चट्टग्रामके पार्वत्य प्रदेशसे लुसाई-युद्धके समय कुलीका काम करनेके लिये चाकमा जाति लोग इस देशमें आ बस गये हैं।

ग्राम-नगरादि—एक आगरतला नगरके सिवा और कोई दूसरा प्रसिद्ध नगर नहीं है। कैलाशहर और त्रिपुराकी प्राचीन राजधानी उदयपुर ग्राम ही इस प्रदेशमें सबसे बड़ा है।

आगरतला कुमिल्लासे ३० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यहांकी अट्टालिकायें उतनी सुन्दर नहीं हैं। सामान्य दोखण्डका मकान ही राजभवन है। यहां केवल नौ सौ मनुष्योंका वास है, सड़कें अच्छी नहीं हैं।

कैलाशहर—पर्वतके नीचे अवस्थित एक ग्राम है। एक उपविभागका सदर होनेके कारण यहां हाट लगती है। इस हाटमें तमाकू, सुपारी और सूखी मछलीके साथ रूई बदली जाती है।

उदयपुर—यह गोमतीके बायें किनारे प्राचीन राजधानी उदयपुरसे कई कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहां पार्वतीय रूईकी हाट लगती है। बहादुरी काठ, बांस और रूईके बदले पहाड़ी लोग तमाकू, नमक और सूखी मछली ले जाते हैं। १८६१ ई०को वर्त्तमान उदयपुरमें कूकी लोगोंने बहुत अत्याचार मचाया था। वे ग्रामके अधिकांश मनुष्योंको मार कर और बहुतोंको पकड़ कर अपने देश ले गये थे।

वर्त्तमान आगरतलासे २ कोस पूर्वमें प्राचीन आगरतला है। १८६४ ई०में यहां १ हजार मनुष्य रहते थे। पहले यहां राजाओंका वास था। १८४४ ई०को आगरतलामें नूतन राजधानी हुई। प्राचीन आगरतलाका राजभवन अभी भी भग्नावस्थामें विद्यमान है। यहां राजा और रानियोंके कई एक स्मरणस्तम्भ हैं। पुराने राजभवनके निकट एक छोटे मन्दिरमें पहाड़ी लोगोंके चौदह देवताओंकी प्रतिमा हैं। मन्दिरके निकट होकर जाते समय सब कोई यहां तक कि मुसलमान भी प्रतिमाको प्रणाम किया करते हैं।

प्राचीन उदयपुर सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें राजा उदयमाणिक्यसे राजधानीमें परिणत हुआ और उन्हींके नाम पर इसका नामकरण हुआ है। यह भी गोमतीके बायें किनारे पड़ता है। प्राचीन राजभवन आदि अभी भी घने जङ्गलमें वर्त्तमान हैं। यहां ८ फुट लम्बा एक लोहेका कामान है। लोगोंका विश्वास है कि इस पर फूल रखनेसे शुभाशुभ जाना जाता है। पथिक कामान देख कर सलाम करते हैं। यह कामान किसका है और किस तरह कहांसे यहां आया है कोई भी नहीं बता सकता।

यह प्राचीन उदयपुर एक पीठ स्थान है। यहांकी देवीका नाम त्रिपुरादेवी और भैरवका नाम त्रिपुरेश है। यहां सतीका दाहिना पैर गिर पड़ा था। भैरव-लिङ्ग सफेद पत्थरके बने हुए हैं। त्रिपुरादेवीके मन्दिरमें अनेक यात्री एकत्र होते हैं।

भारतचन्द्रने भैरवका नाम नल बतलाया है। देवीके मन्दिरके निकट बहुतसी छोटी छोटी अट्टालिकाओंके ऊपर बङ्गला अक्षरमें खुदा हुआ शिलालेख है। मन्दिरके समीपमें अण्डाकार एक बड़ा तथा परिष्कार तालाब है। इसके किनारे दुष्प्रवेश्य जङ्गल है।

त्रिपुराका इतिहास—बङ्गला भाषामें लिखा हुआ राजमाला नामक एक काव्यग्रन्थ है, जिसमें त्रिपुराके राजवंशका इतिहास लिखा है। त्रिपुरा अत्यन्त प्राचीनकालसे आजतक एक राजवंशके अधीन आ रहा है। राजमालाके मतसे यह राजवंश चन्द्रवंशोद्भूत है। चन्द्रवंशमें ययातिके पुत्र द्रुह्युसे इस वंशकी उत्पत्ति गणना की जाती है; किन्तु गौर कर विचार करनेसे स्थिर हुआ है कि यह वंश शान जातिसे उत्पन्न हुआ है। शान जाति लौहित्यवंश नामसे अभिहित हुई। अंगरेज लोग इस जातिके व्याख्याकालमें इसे Tibbeto-Burman कहते हैं।

त्रिपुराके राजाओंसे प्रतिष्ठित एक अब्द अभी भी प्रचलित है। इस देशमें प्रचलित सन्से ३ वर्ष पहले त्रिपुराब्द प्रतिष्ठित हुआ।

जब चन्द्रवंशीय राजगण भारतवर्षमें सम्राट् थे, तब भारतके पूर्वसीमान्तवर्त्ती हिड़िम्ब देशके दक्षिणस्थ

पर्वतमय राज्य 'किरात' देश कहलाता था। किरात देखो। चन्द्रवंशीय राजा ययातिके चौथे पुत्र राजा हुए। राजमालाके मतसे द्वितीय पुत्र द्रुह्यु पितासे परित्यक्त होकर इसी किरात देशमें आये। किरात देशकी कपिला (ब्रह्मपुत्र) नदीके किनारे किरातराजके साथ द्रुह्युका युद्ध हुआ। इस युद्धमें किरातोंको पराजय करके वे राजा बन बैठे। बाद उन्होंने कपिलाके किनारे त्रिवेग नामक नगर निर्माण कर वहीं राजधानी स्थापन की। द्रुह्युको ययातिने शाप दिया था कि "द्रुह्यु! तुमने मेरे हृदयसे जन्मग्रहण करके भी अपनी उमर प्रदान न की; इस कारण तुम्हारा प्रियतर अभिप्राय कहीं भी सिद्ध नहीं होगा। जहां घोड़ा, रथ, हाथी, राजाके योग्य सवारी, गाय, गदहा, बकरा, पालकी आदि द्वारा गमनागमन न हो सके, सर्वदा बेड़ा और प्लुतगति द्वारा आवागमन हो सके और जहां राजशब्द प्रसिद्ध न हो, तुम स्ववंशमें उसी देशमें वास करोगे।" (महाभा॰ सम्भव ८४ अध्या॰) महाभारतके मतानुसार इनके वंशमें 'भोजगण' उत्पन्न हुए थे। (प॰ सम्भव ८५ अध्या॰)

राजमालाके मतसे यही किरातदेश त्रिपुरा है और ययातिके पुत्र ही यहांके प्रथम राजा थे। राजमालाके मतानुसार द्रुह्युके बाद उनके पुत्र त्रिपुर राजा हुए। विष्णुपुराण और हरिवंशमें द्रुह्युके दो पुत्र बभ्रु और सेतुके नाम पाये जाते हैं। सेतुके पौत्रका नाम गान्धार था। श्रीमद्भागवतमें गान्धारके परवर्त्ती ५ पुरुषके नाम पाये जाते हैं, किन्तु उनमें त्रिपुरका नाम नहीं मिलता है। पुराणके मतानुसार द्रुह्युके पुत्र गान्धारसे गान्धारका नामकरण हुआ है। इस तरह पौराणिकके मतसे ऐसा स्वीकार किया जाता है, कि द्रुह्यु भारतवर्षके पूर्वप्रान्तमें न आ कर पश्चिमप्रान्तमें गये थे।

जो कुछ हो; राजमालाके मतसे उक्त त्रिपुरसे ले कर वर्तमान काल तक त्रिपुर एक ही राजवंशके अधीन आ रहा है।

त्रिपुरने राज्यसिंहासन पर बैठ किरात-राज्यका नाम परिवर्तन किया और अपने नामके अनुसार त्रिपुरा राज्य और किरात जातिका नाम त्रिपुरा (टिपरा) जाति रखा। त्रिपुर प्रजापीड़क थे और शिवद्वेषी हो कर उन्होंने अपने राज्यसे शैव नाम लोप किया। धर्मद्वेषी त्रिपुरके अत्याचारसे ब्राह्मण धीरे धीरे दूसरे देश जा कर बसने लगे। बहुतसी प्रधान प्रजाने अत्याचारीके हाथसे राज्योद्धारके लिए कामरूपके अधिपतिसे प्रार्थना की, किन्तु वे त्रिपुरपतिके भयसे इस विषयमें सहमत न हुए। प्रजा हताश हो कर स्वदेशको लौट आई। इतनेमें अपुत्रक त्रिपुरकी मृत्यु हुई। विधवा रानी सिंहासन पर बैठ कर राज्य करने लगीं। ब्राह्मणोंने राजवंश नष्टप्राय देख शिवकी आराधना की। शिवजीने वर दिया कि, "तुम लोगोंकी इच्छा पूर्ण होगी। मेरे औरस और विधवा रानीके गर्भसे एक सुलक्षण पुत्र उत्पन्न होगा।" कुछ समयके बाद वैसा ही हुआ। रानीने तीन नेत्रवाला एक पुत्र प्रसव किया, जिसका नाम त्रिलोचन रखा गया। दश वर्षकी अवस्थामें त्रिलोचन राजा हुए। राजा त्रिलोचनने क्रमशः प्रजाको युद्धविद्या सिखायी। बाद चारों ओरके राज्य जय कर अपने राज्यकी उन्नति करने लगे। इन्होंने ही त्रिपुरपतियोंमें राज-चिह्न, और धवलछत्रका पहले पहल व्यवहार किया। तभीसे आज तक उक्त चिह्न चला आ रहा है। पार्श्ववर्ती हैडिम्ब-देशाधिपतिने त्रिपुराधिपति त्रिलोचनके साथ सद्भाव रखनेके लिए अपनी लड़कीका विवाह कर दिया। महाराज त्रिलोचन शिवभक्त थे और शिवके आदेशसे उन्होंने चौदह देवप्रतिमा प्रतिष्ठित कीं। ये चौदह देवता ही त्रिपुरा पतियोंके कुलदेवताके रूपमें आज भी पूजे जाते हैं।

> "हरामा हरिमावाणी कुमारो गणको विधुः।
> खाब्धि गंगा शिखी कामो हिमाद्रिश्च चतुर्दश॥"

हर, उमा, हरि, लक्ष्मी, सरस्वती, कार्त्तिक, गणेश, चन्द्र, आकाश, समुद्र, गङ्गा, काम और हिमालय ये ही चौदह देवता हैं।

त्रिलोचनने एक यज्ञका अनुष्ठान करके दैवज्ञ-ब्राह्मणको लानेके लिए गङ्गासागरक्षेत्रमें अपने आदमीको भेजा था। बङ्गदेशके वे दश ब्राह्मणको जब मालूम हुआ कि त्रिपुरराज जीवित हैं, तब पहले तो वे आनेको राजी न हुए; किन्तु अन्तमें त्रिपुरकी मृत्यु-सम्वाद पर

विश्वास कर उन्होंने जा कर त्रिलोचनका यज्ञसम्पन्न किया। इस यज्ञमें किरात (त्रिपुरा) और कूकियोंसे लाये हुए अनेक हंसमहिषादि बलिदान किये गए। हैड़िम्ब-राजकुमारीके गर्भसे त्रिलोचनके बारह पुत्र उत्पन्न हुए। राजमालाके मतसे ये सब पुत्र विष्णु और शिव-की देहकी नाईं अङ्ग-प्रत्यङ्गविशिष्ट थे। वर्त्तमान कालमें भी प्रवाद है, कि राजवंशधर इसी तरह लक्षणक्रान्त होंगे।

राजमालामें लिखा है, कि—"त्रिपुराधिपति त्रिलोचन राजा युधिष्ठिरके समसामयिक थे; किन्तु महाभारतमें इनका नामोल्लेख नहीं है, पर राजसूययज्ञकालमें भीमसे पूर्वदेश जय करनेके समय किरातके राजाका पराजय-विवरण और घोषयात्राके बाद कर्णसे पूर्व दिशामें जय-के समय त्रिपुरा राज्यका जयविवरण लिखा है। महाभारतकी लड़ाईमें त्रिपुराधिपति किसी पक्षमें उपस्थित नहीं थे। ऐसा प्रतीत होता है, फिर राजसूययज्ञके समय उपस्थित राजाओंमें भी उनका नाम पाया नहीं जाता है; किन्तु त्रिलोचन और युधिष्ठिरका समय निरूपण कर देखनेसे दोनों समसामयिक प्रतीत नहीं होते हैं। त्रिलोचनकी वंशावली राजमालामें जो कुछ लिखी है, उससे जाना जाता है, कि त्रिपुराके राजा वीरचन्द्र माणिक्यके भतीजे व्रजेन्द्रचन्द्र तक त्रिलोचनसे १०८ पीढ़ी हो गई है। वर्तमान प्रत्नतत्त्वविदोंके मतानुसार त्रिलोचन व्रजेन्द्रचन्द्रसे ३६३६ वर्ष पहले वर्त्तमान थे। वर्त्तमान त्रिपुर राजके पूर्ववर्ती महाराज ईशानचन्द्रमाणिक्यके १२७७ बङ्गाब्दको ३० वर्षकी अवस्थामें मृत्यु हुई, तब उनके पुत्र व्रजेन्द्रचन्द्र बहुत बच्चे थे। अभी यदि युधिष्ठिर कलियुगके प्रारम्भमें वर्त्तमान थे, ऐसा स्वीकार किया जाय, तो व्रजेन्द्रसे ४९६९ वर्ष पहले विद्यमान होंगे; क्योंकि महाराज ईशानचन्द्रकी मृत्युके समयमें कलियुगके ४९६९ वर्ष बीत चुके थे। इस हिसाबसे युधिष्ठिर और त्रिलोचनमें १३३३ वर्षका फर्क पड़ता है। १३३३ वर्षमें ४० पुरुषका अभाव देखा जाता है; किन्तु महाभारतके वनपर्वमें जब त्रिपुरा नाम पाया जाता है, तब अनुमान किया जा सकता है, कि त्रिलोचनके पिता त्रिपुर युधिष्ठिरके पूर्ववर्त्ती न थे, पर समसामयिक थे। सभापर्वमें भीमके दिग्विजय-के समय जब किरात राज्यका नाम त्रिपुरा नाम न हो कर किरात नाम ही देखा जाता है, तब यह भी समझना होगा कि राजसूययज्ञके समय त्रिपुरके रहने पर भी उन्होंने स्वराज्यका नाम परिवर्त्तन नहीं किया। यह भी सम्भव है; क्योंकि राजसूययज्ञके बाद दुर्योधनने द्यूत-क्रीड़ामें पाण्डवको बारह वर्षके लिये वन भेजा था। इसी बारह वर्षके अन्तमें घोषयात्रा हुई। इसके बाद कर्णसे त्रिपुरा जीता गया। सुतरां भीमसे किरात राज्य जीते जानेके बारह वर्ष बाद कर्णसे त्रिपुरा नामक किरात राज्यका जीता जाना कुछ असम्भव नहीं है। इसी घटनासे त्रिपुरको युधिष्ठिरका समसामयिक कह सकते हैं। राजमालाके मतसे त्रिपुर द्रुह्युके पुत्र हैं। यदि ऐसा स्वीकार किया जाय, तो त्रिपुर युधिष्ठिरके बहुत पूर्ववर्त्ती हो जाते हैं; किन्तु त्रिपुरामें एक प्रवाद है, कि "त्रिपुर द्रुह्युके पुत्र नहीं हैं। केवल उत्तर-पुरुषमात्र हैं। द्रुह्युसे बीस राजाओंके बाद त्रिपुर सिंहासन पर बैठे।" इस प्रवाद पर विश्वास करनेसे देखा जाता है, कि ययातिके तीसरे पुत्र द्रुह्युसे निम्न ३२वीं पीढ़ीमें त्रिपुर और ययातिके कनिष्ठ पुत्र पुरुकी ३८वीं पीढ़ीमें युधिष्ठिर वर्त्तमान थे। पौराणिक-विवरणमें ४।५ पुरुषका अन्तर (१५०।१७५ वर्षका फर्क होने पर भी) वर्त्तव्य नहीं हैं। अतएव राज-मालाके मतसे त्रिलोचनको युधिष्ठिरके समसामयिक स्वीकार करनेकी अपेक्षा, महाभारतके मतसे त्रिपुरको युधिष्ठिरके समसामयिक स्वीकार करना ही सङ्गत है; किन्तु इस जगह यह कहना उचित होगा, कि ये सब घटनायें निःसन्देह ऐतिहासिक नहीं कही जा सकती हैं।

राजमालाके मतसे त्रिलोचन त्रिपुरके पुत्र माने गये हैं, किन्तु त्रिलोचनके जन्मविवरणका जो उपाख्यान दिया गया है, वह अस्वाभाविक स्वीकार किया जा सकता है।

कल्यब्दके हिसाबसे भी देखा गया है, कि युधिष्ठिर

और त्रिलोचनमें जो १३३३ वर्ष वा ४० पीढ़ीका अन्तर पड़ता है, उससे अनुमान किया जा सकता है, कि उक्त ४० पिढ़ियों अथवा उनसे भी अधिक पीढ़ियोंके राजा त्रिपुरकी तरह देवद्विजविद्वेषी थे। इस कारण राजमालाके कवियोंने अपने इतिहासमें उक्त विद्वेषी राजाओंका उल्लेख न करके शैव और द्विजभक्त राजा त्रिलोचनको शिवके वरसे प्राप्त शिवपुत्र माना है।

त्रिलोचन यथार्थमें चन्द्रवंशोद्भव नहीं हैं। राजमालामें भी उन्हें शिवजीके औरससे उत्पन्न बतलाया गया है। इधर पाश्चात्य गवेषणासे स्थिर हुआ है, कि मणिपुर राजवंशकी नाईं त्रिपुराका राजवंश भी शान वा लौहित्यवंशोद्भुत है अथवा यदि उसे चन्द्रवंशीय भी कहा जाय, तो भी प्रमाणकी कोई विशेष सुविधा नहीं; क्योंकि इसके पहले ही देखा गया है, कि द्रुह्यु से लेकर त्रिपुरके मध्य ३२ राजाओंके नाम तथा त्रिपुरसे ले कर त्रिलोचनके मध्य ४० राजाओंके नाम नहीं मिलते हैं। कौन कह सकता है, कि उक्त दो समयके मध्य राज्य एक राजवंशसे दूसरे वंशके हाथ नहीं गया होगा।

जो कुछ हो, अभी राजमालाधृत इतिहास हीका अनुसरण करना होगा। त्रिलोचनके जीतेजी उनके श्वसुर हैड़िम्बपतिकी मृत्यु हुई। वे अपुत्रक थे। त्रिपुराके बारह राजकुमार मातामह राज्यके उत्तराधिकारी बन कर आपसमें राज्याधिकारके लिये झगड़ने लगे। इस पर त्रिलोचनने अपने बड़े पुत्रको हैड़िम्बदेशका राजा बना कर भ्रातृविरोध शान्त किया। महाराज त्रिलोचनने बहुत समय तक राज्य किया। उनके समान दीर्घायु राजा आज तक कोई त्रिपुराके सिंहासन पर न बैठे, किन्तु उनके बड़े भाई मातामह-राज्य हैड़िम्बदेशके राजा हुए थे। वे ही पैतृकराज्य पानेके लिये राजा दक्षिणके विरुद्ध ससैन्य अग्रसर हुए थे। सात दिनों तक दोनों भाइयोंमें युद्ध होता रहा। बाद हैड़िम्बराजने मध्यम भ्राताको पराजित कर पितृराज्य अधिकार कर लिया और वे दोनों राज्यको मिलाकर शासन करने लगे। राज्यच्युत राजा दक्षिण और उनके दूसरे दश भाइयोंने त्रिपुरा परित्याग कर खालामसा नदी पार हो, एक जगह वासस्थान स्थिर किया। महाराज त्रिलोचनके इस बड़े पुत्रका नाम राजमालामें नहीं पाया जाता।

कुछ समयके बाद प्रजा-विद्रोहसे हैड़िम्बराज, राज्यच्युत और प्रवासी राजा दक्षिण पुनः सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए। महाराज दक्षिणके बाद उनके पुत्र तयदक्षिण राजा हुए। इनसे लेकर प्रमार तक ५३ राजाओंके शासनकालमें त्रिपुरामें कोई विशेष घटना नहीं घटी। महाराज प्रमारके पुत्र कुमार राजा हो श्यामलनगरमें शिवके दर्शन करने गये। श्यामलनगर शिवका प्रियक्षेत्र समझा जाता था। यह श्यामलनगर कहां है, उसका पता नहीं चलता। पर कहते हैं, कि चट्टग्रामके उत्तरीय पर्वतका सुप्रसिद्ध शम्भुनाथ-शिवमन्दिर बहुत प्राचीनकालमें त्रिपुराधिपतिका बनाया हुआ है। अब भी मन्दिरके संस्कारका खर्च त्रिपुरा राजकोषसे दिया जाता है। इससे अनुमान किया जाता है कि यही स्थान उस समय श्यामलनगर नामसे प्रसिद्ध था।

राजमालाके त्रिलोचनसे ले कर निम्न २७वें पुरुषके महाराज ईश्वरकी 'फा' की उपाधि थी। त्रिपुराभाषामें 'फा' का अर्थ 'पिता' होता है। कोई कोई राजा गौरवके लिये यह "फा"की उपाधि ग्रहण करते थे।

महाराज कुमारके बाद उनके पुत्र सुकुमार, सुकुमारके बाद उनके पुत्र तक्षराव और तक्षरावके बाद उनके पुत्र राज्येश्वर त्रिपुराके सिंहासन पर बैठे। महाराज राज्येश्वर बहुत क्रुद्धस्वभावके थे। उन्होंने पुत्र पानेके लिये शिवजीकी तपस्या की; किन्तु तपस्यासे विफल हो उन्होंने क्रोधित हो कर मन्दिरकी शिवप्रतिमाके दोनों पैर बाणसे छेद डाले। शिवजीने इस अपराधसे त्रिपुरा छोड़ दिया। अन्तमें महाराज राज्येश्वरने शिवके उद्देश्यसे दो नरबलि देकर दो पुत्र प्राप्त किये। शायद इसी समयसे त्रिपुरामें नरबलिकी प्रथा पहले पहल आरम्भ हुई। महाराज राज्येश्वरके बाद उनके बड़े लड़के मिश्रलिराज राजा हुए। उनके कोई सन्तान न थी, इस कारण उनके बाद उनके छोटे भाई तेजाङ्ग-फा राज्यसिंहासन पर बैठे। तेजाङ्ग-फाके बाद सात राजा और हुए। उन लोगोंके शासनकालमें कोई विशेष घटना न हुई।

बाद महाराज प्रतीत राज्यसिंहासन पर बैठे। उन्होंने हैड़िम्ब राजके साथ दोनों राज्योंकी सीमानिर्द्धारण कर सन्धि स्थापन की और दोनों राज्यकी सन्धिके स्थान पर एक श्वेतवर्णका स्तम्भ निर्माण करके दोनों राजाने शपथ खायी, कि यदि वे आपसमें सीमा लङ्घन करें, तो काला कौवा भी सफेद हो जायगा। दोनों राजाओंमें ऐसा गहरा प्रेम देख पार्श्ववर्त्ती राजा भयभीत हो गये और वे एक दूसरेसे फूट करानेकी कोशिश करने लगे। अन्तमें किसी राजाने त्रिपुरेश्वरके पास एक सुन्दरी स्त्रीको भेंटमें भेजा। हैड़िम्ब-राजने इस स्त्रीकी सुन्दरता सुन कर त्रिपुरेश्वरके हाथसे उसे लेनेकी कोशिश की, किन्तु पूर्वोक्त दृढ़सङ्कल्पके कारण वैसा न किया। महाराज प्रतीतके बाद और कितने राजा हुए। इन लोगोंके समयमें भी कोई घटना न हुई।

इसके बाद महाराज जनक-फा राजा हुए। ये बड़े युद्ध कुशल थे। इन्होंने राज्य-सीमा बढ़ानेकी आशासे दक्षिणमें अनेक देश जय किये। अन्तमें रांगामट्टीके अधीश्वर निक्कने दश हजार सुशिक्षित कूकी सेनाओंको साथ ले उन्हें रोका; किन्तु युद्धमें पराजित हो कर उन्हें भागना पड़ा। महाराज जनक-फाने रांगामट्टीमें त्रिपुराकी राजधानी स्थापन की। इनके समयमें ब्रह्मदेशकी राजधानी अमरापुर तक त्रिपुराके राजाका अधिकार विस्तृत था। अन्तमें उन्होंने बंगदेश जय करनेका संकल्प किया, किन्तु युद्धमें राजकोष शून्य हो जाने पर उनका उद्देश्य सिद्ध न हुआ। इनके बाद २० राजा और हुए जिनके नाममात्र इतिहासमें है।

बाद सिंहतुङ्ग-फा राजा हुए। इनके समयमें आराकान राजाके एक चौधरी बहुतसे मणिमाणिक्य भेंट ले कर गौड़पतिके समीप जा रहे थे। महाराज सिंहतुङ्ग-फाने उसे बलपूर्वक छीन लिया। गौड़ेश्वरने यह सम्वाद पाकर त्रिपुरा जीतनेके लिये एक बड़ी सेना भेजी। त्रिपुरापतिने गौड़ेश्वरके सेनाबलसे भयभीत हो सन्धि करनी चाही, किन्तु रानीने अपने स्वामीको कायर बतलाते हुए तिरस्कार किया और सेनाओंको उत्साहित करनेके लिये कहा,—'तुम लोगोंके राजा शृगालकी तरह कार्य कर रहे हैं; किन्तु मैं उसे पसन्द न करती। मैं स्वयं युद्ध करूंगी, जिसकी इच्छा हो, वह मेरे साथ लड़े और कुलगौरवकी रक्षा करे।' समस्त सेना रानीका साथ देनेको प्रस्तुत हुई। रानीने सेनाओं परसे खुश हो कर उन्हें भैंसे और बकरेके मांससे अच्छी तरह भोजन कराया। दूसरे दिन दोनोंमें लड़ाई छिड़ी। त्रिपुराकी रानी हाथी पर सवार हो, सैन्यपरिचालन करने लगीं। युद्धमें गौड़-सेना प्रायः सभी विनष्ट हुई। इस समय गौड़ाधिप कौन थे, यह मालूम नहीं। राजमालामें उनका नाम भी नहीं है। महाराज सिंहतुङ्ग फाकी मृत्युके बाद उनके पुत्र कुञ्जहोम-फा राजा हुए। ये योग्य पिताके योग्य पुत्र थे; किन्तु उनकी स्त्री उनकी माताकी तरह तेजस्विनी और विदूषी थीं। महाराज कुञ्जहोम-फाके बाद उनके पुत्र दानकुरु-फा राजा हुए। उनके १८ पुत्र थे। भविष्यत्में इन १८ पुत्रोंमेंसे राज्याधिकारी कौन होंगे, इसका निरूपण करनेके लिये महाराज दानकुरु-फाने ३० कोड़ाशोल मुर्गोंको अनाहार कुछ काल तक बन्द कर रखा। अन्तमें वे अपने पुत्रोंको ले एक साथ भोजन करनेको बैठ गये। इसके पहले उन्होंने उन सब क्षुधातुर मुर्गोंको भोजन करनेके स्थान पर छिपके छोड़ देनेके लिये अपने अनुचरोंसे कह दिया था। जब मुर्गे अन्नपात्रमें मुख देने लगे, तब महाराजने अपने पुत्रोंसे कहा,—'तुम लोगोंमेंसे यदि कोई सामर्थ्यवान् हो, तो किसी उपायसे इन्हें यहांसे हटावो।' वे बहुत उपाय करने लगे, किन्तु एकबार बहुतसे मुर्गोंको हटा न सके। अन्तमें छोटे राजकुमार रत्न-फाने कुछ अन्न अपने हाथमें ले लिया और थोड़ी दूर जाकर जमीन पर छिड़क दिया। इस पर सभी मुर्गे उसी जगह भोजन करनेको चले गये। राजाने छोटे कुमारकी बुद्धिमत्ता और प्रत्युत्पन्नमतित्व देख कर उन्हें उत्तराधिकारी निरूपण किया।

महाराज दानकुरु-फाकी मृत्युके बाद राजकुमारोंने षड़यन्त्र करके पितृनिर्वाचित राजकुमार रत्न-फाको राज्यसे अलग कर सबसे बड़े राजकुमार राजा-फाको सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

कुमार रत्न-फाने राजसे भगाये जाने पर गौड़ेश्वरकी शरण ली। उस समय तुघरिल खाँ गौड़के शासनकर्त्ता

थे। इनके साथ रत्न-फाको मित्रता हुई। उन्होंने कुमारको चार वर्ष तक बहुत आदरसे अपने पास रखा। पीछे एक बड़ी सेना साथ दे कर पितृराज्यका उद्धार करनेमें सहायता की।

जब रत्न-फा ससैन्य त्रिपुराप्रान्तमें पहुंचे, तब राज-वंशके अनेक सुहृदोंने उनका साथ दिया। युद्धमें त्रिपुराके राजाको हार हुई। कुमार रत्न-फा निष्कण्टक होनेके लिये उन विश्वासघाती १७ भाइयोंका प्राण-नाश कर आप राजा बन बैठे। शायद यह घटना ६८८ त्रिपुराब्दमें (१२७७ ई०) हुई होगी। यह त्रिपुराब्द त्रिपुराके राजाओंका निज प्रतिष्ठित एक अब्द है। यह अब्द किससे, कब और क्यों प्रतिष्ठित हुआ? इसका पूरा पता नहीं चलता। १८६२ ई०में महाराज ईशान चन्द्रमाणिक्यकी मृत्यु हुई। उस समय त्रिपुराब्द १२७२ था। अतः ईसवी और त्रिपुराब्दमें ५९० वर्षका अन्तर पड़ता है। अतएव ६८२ ई०में प्रथम त्रिपुराब्द प्रचलित हुआ।

महाराज रत्न-फाने राज्य लाभ कर कृतज्ञताके निदर्शनस्वरूप तुघरिल-खाँको १०० हाथी और तरह तरहके मणिमाणिक्य प्रदान किये। इन रत्नोंमेंसे एक ऐसा रत्न था कि वैसा बड़ा रत्न गौड़ेश्वरको भी न था। तुघरिलने इस रत्नको पाकर बहुत आनन्दसे रत्न-फाको माणिक्यकी उपाधि और ४००० सुशिक्षित सैन्य प्रदान कीं। रत्न-फाने महोपकारी बन्धुदत्त उपाधि धारण कर यह नियम चलाया, कि कृतज्ञताके चिह्नस्वरूप उनके वंशधर प्रत्येक राजा यह 'माणिक्य' उपाधि धारण करेंगे। मुसलमान ऐतिहासिकगण इस घटनाको तुघरिल-कर्त्तृक त्रिपुरा-विजय कह कर वर्णन कर गए हैं। मि० मर्समानने अपने इतिहासमें लिखा है कि गौड़के शासन-कर्त्ता गयास-उद्दीन्ने त्रिपुराके राजासे कर ग्रहण किया था, किन्तु राजमालामें इसका कोई उल्लेख नहीं है। महाराज रत्नमाणिक्यने अपने राज्यमें बहुतसे दुर्ग निर्माण किये थे।

महाराज रत्नमाणिक्यके बाद प्रतापमाणिक्य राजा हुए। इनके समयमें सुवर्णग्रामके वङ्गाधिप शामस्-उद्दीन्ने प्रताप-माणिक्य पर आक्रमण किया। इस युद्धमें पार्वत्य त्रिपुरा छोड़ कर और सभी स्थान मुसलमानोंके हाथ आ गये। प्रताप-माणिक्यके प्रपौत्रके समय तक यही सब स्थान मुसलमानोंके अधिकारमें थे। महाराज प्रतापकी अपुत्रक अवस्थामें मृत्यु हुई। सुतरां उनके छोटे भाई मुकुट राजा हुए। महाराज महामाणिक्यके बड़े लड़के धर्मने उनकी जीवन दशामें ही संन्यास ग्रहण किया और छोटे लड़के धन उनके मरते समय कमसीन थे।

वसन्तरोगसे महाराज महामाणिक्यका देहान्त हुआ। कुमार धर्म उस समय संन्यासी होकर काशीमें थे। महाराज महामाणिक्यकी मृत्युके बाद त्रिपुराके बहुतसे मनुष्य उनकी तलाशमें काशी पहुँचे। वहां उन्होंने धर्मसे कहा,-'कुमार! आपके पिताकी मृत्यु हो गई। सेनाओंने प्रतिज्ञा की है, कि आपके जीते-जी दूसरेकी बात तो दूर रहे, छोटे कुमारको भी सिंहासन पर नहीं बैठने देंगे।' राजकुमारने इस अनुरोधसे वाध्य होकर राज्यभार ग्रहण किया। ये ८१७ त्रिपुराब्दमें (१४०७ ई०में) राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इन्होंने मुसलमानोंके हाथसे त्रिपुराके सभी राज्यांश लौटा लिए। महाराजने इन सब प्रदेशोंको इस तरह लूट लिया था, कि कुछ दिनों तक वहांके अधिवासियोंको वल्कल पहनना पड़ा था। इसका बदला लेनेके लिये गौड़ाधिपने अहमदशाहको सेनाको पराजित कर पूर्ववङ्गाल लूटा। कुमिल्लानगरमें इन्होंने एक सरोवर खोदवा कर उसका नाम धर्मसागर रखा। इसके बनानेमें दो वर्ष लगे थे। इन्होंने ताम्रशासनके द्वारा ब्राह्मणोंको बहुतसी जमीन दान दी। इनके समयमें ब्राह्मणोंको पुत्र कन्याके विवाहका खर्च राजकोषसे दिया जाता था। इन्हींके समयमें बङ्गला पद्यछन्दमें राजमाला रची गई। ३२ वर्ष राज्य करनेके बाद महाराज धर्ममाणिक्य परलोकको चल बसे। महाराज धर्मके बाद ८४९ त्रिपुराब्दमें (१४३९ ई०में) उनके छोटे लड़के राजा हुए। राजमालामें उनका नाम नहीं है। बहुत थोड़े समयके बाद ही सेनापतियोंके षड़यन्त्रसे वे मारे गये और धर्मके छोटे भाई धन राजा हुए। धनमाणिक्यने राजा होनेके साथ ही प.।·

क्रान्त सेनापतियोंकी क्षमता ह्रास करनेके लिए मन्त्रियोंसे सलाह ली। एक दिन उन्होंने अपने कष्टका सम्वाद देकर किसी निर्जनस्थानमें दुर्दान्त सेनापतियोंको बुलाया। उस निर्जनस्थानमें राजाके आदेशसे अनेक गुप्तचर एकत्र थे। उन्होंने सेनापतियों पर आक्रमण कर उन्हें मार गिराया। दुर्वृत्तोंके मारे जाने पर युद्ध-कुशल विश्वस्त राय चयचाग नामक व्यक्तिको प्रधान सेनापति बनाकर महाराज श्रीधनमाणिक्य राज्य करने लगे। इस समय त्रिपुराके पूर्वमें एक सफेद हाथी वहिर्गत हुआ। महाराजने इसे पकड़ लानेको कहा। कूकियोंने हाथीको पकड़ा, किन्तु उन्होंने उसे राजाके पास न भेजा। इस पर सेनापति चयचागरायने थानासीनगरमें कूकियोंको पराजित कर हाथी ले लिया और उन्हें चिरवशीभूत भी कर लिया। ये अभी भी कई अंशोंमें त्रिपुराके राजाके वशीभूत हैं। बाद वीरवर चयचागने ८२२ त्रिपुराब्दमें (१५१२ ई०में) आराकानके राजाकी सेनाओंको पराजित कर चट्टग्राम प्रदेश त्रिपुराराज्यमें मिला लिया। इस पर गौड़के नवाब सैयद हुसेन शाहने कुपित हो कर गौरमल्लिक नामक एक बङ्गालीको सेनापति बना कर भेजा। कुमिल्लामें चयचाग और गौरमल्लिकके साथ लड़ाई छिड़ी। प्रथम युद्धमें त्रिपुरासैन्य पराजित हो कर पीछे हट गई और मुसलमान-सैन्य मेहेरकुल दुर्ग अधिकार कर राङ्गामट्टीकी ओर अग्रसर हुई। सेनापति चयचागने लौटते समय सोणामट्टीके दुर्गमें आश्रय ले कर गोमती नदीमें एक बांध बांध दिया, जिससे ३ दिनों तक जलस्रोत बन्द हो गया। मुसलमान लोग नदीको सूखा समझ ज्यों ही पैदल पार कर रहे थे त्यों ही सेनापतिने बांध तोड़ दिया। जिससे अधिकांश मुसलमान-सेना जलमें डूब मरीं। जो कुछ बच रहीं उन्होंने चण्डीगढ़में आ कर आश्रय लिया। किन्तु रातको त्रिपुराकी सेनाने दुर्गमें प्रवेश कर बहुतोंको मार डाला। बहुत थोड़ी सेना अपने प्राण ले कर गौड़को भाग चलीं। मेहरकुलदुर्गमें शत्रुको पराजित करनेकी आशासे महाराज श्रीधनमाणिक्यने एक काले चण्डालके बालककी भवानीके निकट बलि दी थी। बाद चयचागने आराकानराज्यके कई अंश जीत लिये। हायतन खां नामक गौड़के एक दूसरे सेनापति इस समय पुनः त्रिपुराकी ओर अग्रसर हुए। कुमिल्लाके निकट युद्ध हुआ। पहले युद्धमें चयचाग तो पराजित हुए, किन्तु अन्तमें पूर्व कौशल अवलम्बन कर उनने सुगड़िया दुर्गके नीचे मुसलमान-सेनाको जलमें बहा दिया। बची खुची सेनाने सुगड़िया दुर्गमें आश्रय लिया। द्विगुण सैन्य नहीं होनेसे त्रिपुराका जीतना असम्भव है, ऐसा जान कर वे नौ दो ग्यारह हो गये। बहुतसे कैद भी किये गए।

त्रिपुरामें पहले चौदह देवताओंके निकट वार्षिक एक हजार नरबलि दी जाती थी। महाराज श्रीधनमाणिक्यने उसे बन्द कर अपराधी और युद्धमें बन्दी शत्रुओंको बलि देनेकी प्रथा प्रचलित की। उन्होंने मिथिलासे गीतवाद्यविशारद मनुष्योंको बुला कर अपने राज्यमें संगीतविद्याका खूब प्रचार किया। तभीसे राजवंशके प्रत्येक मनुष्यका कुछ न कुछ अनुराग उस ओर देखा जाता है। महाराज श्रीधनमाणिक्यने एक शिवमन्दिर और १ मन सोनेकी भुवनेश्वरी प्रतिमा निर्माण की। ८२५ त्रिपुराब्दमें (१५१५ ई०में) उनकी मृत्यु हुई। महारानी भी उनके साथ सती हो गईं। श्रीधनके बड़े लड़के ध्वजमाणिक्य राजा हुए। ६ वर्ष राज्य करनेके बाद इन्द्र नामका एक शिशुपुत्रको छोड़ महाराज ध्वजमाणिक्य परलोकको सिधारे।

बाद ध्वजमाणिक्यके छोटे भाई देवमाणिक्य ८६२ त्रिपुराब्दमें (१५२२ ई०में) राजा हुए। वे पहले पहल चट्टग्रामसे प्रचुर धन और बहुतसे दुष्ट मनुष्योंको कैद कर लाये। बन्दि लोग चौदह देवताओंके निकट बलिदान दिये गये। चोन्ताई (चौदह देवताओंके प्रधान पूजक)-ने इस समय राजासे कहा,—'शिवजीने प्रधान सेनापतियोंका रक्त चाहा है।' देवताको खुश करनेके लिये महाराजने दुष्ट पुरोहितकी मन्त्रणासे प्रधान सेनापतियोंका बध किया। कुछ दिन बाद ही जब उन्होंने जाना कि चोन्ताई ध्वजमाणिक्यकी स्त्रीके साथ मिल कर उन्हें मार डालनेकी कोशिशमें हैं, तब वे भी सतर्क हो गये। किन्तु सुअवसर पा कर चोन्ताईने छिपके उन्हें मार कर इन्द्रमाणिक्यको ८४५ ई० में सिंहासन पर बिठाया और

आप रानीके साथ राज्य करने लगी। चार महीनेके बाद जब सेनाओंने जाना कि चोन्ताईने रानीकी सलाहसे देवमाणिक्यको मार डाला है। तब उन्होंने उन्मत्त हो कर परपिष्ठ चोन्ताई, पापिनी रानी और पापीयसीके गर्भजात शिशु महाराज इन्द्रमाणिक्यको विनाश कर एक गड्ढेमें गाड़ दिया।

इसके बाद देवमाणिक्यके बड़े लड़के विजयमाणिक्य ८४५ त्रिपुराब्दमें (१५३५ ई० में) राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। विजयने राजा हो कर जब देखा, कि मन्त्री ही प्रकृतराजा हैं, वे साक्षी गोपालमात्र हैं। तब उन्होंने खूब शराब पिलाकर मन्त्रीको मार डाला। इनके समयमें दिल्लीके सम्राट्ने त्रिपुराकी स्वाधीनता स्वीकार की। विजयमाणिक्यने कई हजार पठान अश्वारोही सेना नियुक्त की। खासियाके राजा उन्हें वार्षिक ५ हाथी और १० घोड़े करस्वरूप देते थे। अभिमानमें आ कर जब जयन्तियाके राजाने उनकी अधीनता स्वीकार न की, तब विजयमाणिक्यने उनका विनाश करनेके लिए १२सौ भंगीको १२ सौ कुदाली दे कर भेजा। भंगीके हाथसे मरना अपमानजनक समझ कर जयन्तीके राजाने उनकी अधीनता स्वीकार की। पीछे उन्होंने पठान सेनाको चट्टग्राम जीतनेके लिए भेजा; किन्तु उन लोगोंकी तनखाह बाकी थी; इसलिए वे राजाको मार डालनेके लिए तैयार हो गये। महाराज विजयमाणिक्यको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने स्वयं युद्ध करके उन लोगोंको कैद कर लिया और चौदह देवताओंके सामने बलिदान दिया। बाद बङ्गालके नवाब सुलेमानने एक हजार अश्वारोही और १० हजार पदाति सेनाके साथ महम्मद खाँ नामक सेनापतिको त्रिपुरा भेजा। चट्टग्राममें ८ मास तक लड़ाई होती रही। युद्धमें पहले त्रिपुराके सेनापति विनष्ट हुए सही; किन्तु पीछे मुसलमानोंकी ही हार हुई। सेनापति महम्मद खाँ लोहेके पिंजरेमें बन्द करके राजधानीको लाये गए; यहां चौदह देवताओंके निकट उनकी बलि दी गई।

कुछ दिन बाद विजय-माणिक्यने स्वयं बङ्गदेश पर आक्रमण किया। उनके साथ २६ हजार पदाति, ५ हजार अश्वारोही और ५ हजार नावें थीं। सुवर्णग्राममें लड़ाई छिड़ी, मुसलमान लोग हार गये। पीछे वे लाक्षा नदी पार कर पद्मापर्यन्त अनेक स्थानोंमें लूट मार मचाते हुए लौट आये। ब्रह्मपुत्र नदीके किनारे आकर लूटकी सामग्री राजधानी भेज दी गई और आप श्रीहट्टमें लूट मार मचाने लगे। श्रीहट्टको लूट कर उन्होंने वहांके एक ग्रामके सभी अधिवासियोंको विनाश कर डाला और पीछे बहुतसे जलाशय खुदवा कर वे स्वदेशको लौट आये।

विजयमाणिक्य एक दिन कल्पतरु हुये थे। इनके छोटे लड़के अमरने सेनापति गोपीप्रसादकी कन्यासे विवाह किया। किसी ज्योतिषीने राजासे कहा था, कि उनके छोटे लड़के ही राजा होंगे।' यह सुन कर उन्होंने अपने बड़े लड़केको तीर्थयात्राके बहानेसे पुरुषोत्तममें भेज दिया। विजयमाणिक्य प्रबल पराक्रमसे ४७ वर्ष राज्य कर ८८३ त्रिपुराब्दमें वसन्तरोगसे मरे। बहुतसी रानियां भी उनके साथ सती हुईं।

बाद उनके छोटे लड़के अनन्त श्वसुरकी सहायतासे राजा हुए, किन्तु डेढ़ वर्षके बाद श्वसुरसे ही गुप्त तौरसे मार डाले गये। उनकी स्त्री जब सती होनेको चलीं, तब उनके पिता गोपीप्रसादने उनको रोका। अन्तमें रानीने स्वयं सिंहासन पर बैठनेकी इच्छा प्रगट की; किन्तु विश्वासघातक जामातृहन्ता गोपीप्रसाद कन्याको राज्यसिंहासन न दे कर स्वयं उदयमाणिक्य नाम धारण करके ८८५ त्रिपुराब्दमें (१५८५ ई०में) सिंहासन पर बैठे। बाद उन्होंने कन्याको चण्डीगढ़ग्राम जागीर देकर हस्तीगढ़की रानी बनाया। गोपीप्रसाद पहले धर्मनगरके तहसीलदार थे, पीछे राजाके पाचक बाद चौकीदार और अन्तमें शालग्रामको छू कर शपथ खा करके सेनापति हुए।

उदयमाणिक्यने राजधानी राङ्गामट्टीका नाम बदल कर उदयपुर रखा। उनके समयमें बहुतसे जलाशय और प्रासाद बनाये गये। उनके २४० स्त्रियां थीं जिनमेंसे अनेक भ्रष्टा थीं। इस समय गौड़के एक मुसलमान राजपुत्र भ्रमण करनेके लिये त्रिपुरा आये। महाराजने उनका खूब सत्कार किया। भ्रष्ट रानियोंमेंसे किसी किसीने इनके साथ भी सङ्गत की। यह रहस्य मालूम

हो जाने पर उदयमाणिक्यने गौड़-राजपुतको देशसे निकलवा दिया और भ्रष्टा स्त्रियोंको हाथीके पैरसे कुचलवा दिया ।

मुगलोंने पुनः इस समय चट्टग्राम पर अधिकार किया युद्धमें २४ हजार त्रिपुरसैन्य विनष्ट हुई । इस युद्धके ५ वर्ष बाद किसी स्त्रीने विष खिला कर राजाके प्राण नाश किये । उदयमाणिक्यके समय त्रिपुरामें घोर दुर्भिक्ष पड़ा जिससे बहुतसी प्रजा नष्ट हुई ।

उदयमाणिक्यके बाद उनके लड़के जयमाणिक्य १००६ त्रिपुराब्दमें (१५८६ ई०में) राजा हुए । वे नाममात्रके राजा थे । उनके चाचा रङ्गनारायण ही सर्वसर्वा हो कर राज्य चलाते थे । रङ्गनारायणने देखा कि महाराज अनन्तमाणिक्यके चाचा (विजयमाणिक्यके भाई) अमर बहुत प्रबल हो उठे हैं, उनको शीघ्र दमन नहीं करनेसे पुरातन राजवंश पुनः इनके हाथ लग जायगा । यह सोच कर उन्होंने एक दिन अमरको भोजन करनेके लिये बुलाया । वहां अमरके एक बन्धुने तलवारसे एक पानको दो खण्ड कर उन्हें इशारा किया । अमर यह इशारा समझ हठात् अस्वस्थताका बहाना करके घोड़े पर सवार हो चल दिये । पीछे वे एक दूसरेको मारनेकी चेष्टा करने लगे । रङ्गनारायणने भय खा कर दुर्गमें आश्रय लिया और पत्रद्वारा अपने भाईको ससैन्य आकर अमर पर चढ़ाई करनेके लिये बुलाया । राहमें पत्रवाहक अमरसे पकड़ा गया और कैद कर लिया गया । अमरने रङ्गका हस्ताक्षर बना एक कृत्रिमपत्र तैयार कर रङ्गके निज विश्वस्त अनुचर द्वारा उनके भाईके पास भेज दिया । रङ्गके भाईने पत्र पाकर वाहकका ज्योंही आलिङ्गन किया त्योंही वह उनका मस्तक काट कर अमरके पास ले आया । अमरने उस मस्तकको दुर्गमें रङ्गके पास भेजवा दिया । रङ्ग मस्तक देख व्याकुल हो उठे और सोचने लगे, कि जब भाई मारे जा चुके हैं, तब अवश्य ही उनकी सेना भी निहत हुई होगी । इस पर वे आप भी भयभीत हो किला छोड़ कर भाग गये । दो दिन छिपके रहनेके बाद अमरको एक सेनाने उन्हें देख पाया और उसने तुरत उनका मस्तक काट कर अमरको उपहार दिया । अमरने खुश हो कर उस सैनिकको 'साहसनारायण'की उपाधि दी ।

जयमाणिक्यने यह सम्वाद पा कर अमरको एक पत्र लिखकर पूछा कि वे ऐसा अत्याचार क्यों कर रहे हैं ? अमर अस्त्रमुखसे उत्तर देनेके लिये ससैन्य अग्रसर हुए । महाराज जयमाणिक्य डरकर कहीं भाग गये । अमरको सेनाने उन्हें रास्तेमें पकड़ कर मार डाला । केवल एक वर्ष राज्य करनेके बाद जयमाणिक्य मारे गये थे ।

१००७ त्रिपुराब्दमें अमरमाणिक्य राज्यसिंहासन पर बैठे । राजा होनेके साथ ही इन्होंने त्रिपुराके सभी जमींदारोंको लिख भेजा, "एक सुदीर्घ दीर्घिका खुदवानी होगी । इसके लिये आप लोग कुदाल भेजें ।" उनके कथनानुसार ८ जमींदारोंने ७३०० कुदाल भेजे थे । बाद उदयपुरमें जो बड़ी दीर्घिका खुदवाई गई, वह आज भी अमरसागर नामसे प्रसिद्ध है । श्रीहट्टके अन्तर्गतके जमींदारोंने इस कार्यमें कुदाली नहीं भेजी थी । इस कारण महाराज अमरने उन्हें कैद करनेके लिये २२ हजार सेना भेजी । जमींदारने भाग कर श्रीहट्टके मुसलमान शासनकर्त्ताकी शरण ली । उनके लड़के कैद कर लिये गये । अमरमाणिक्यने यह सुन कर श्रीहट्टके मुसलमान शासनकर्त्ताके विरुद्ध यात्रा की और गरुड़व्यूह बनाकर सूर्योदयके समय लड़ाई छेड़ दी । दो पहरको कुछकाल तक विश्राम करनेके बाद पुनः युद्ध आरम्भ हुआ । सन्ध्याकालमें मुसलमान लोग पराजित हुए । १००८ त्रिपुराब्दमें (१५८८ ई०में) शायद यह घटना हुई होगी । इसी समयसे श्रीहट्ट त्रिपुराका करप्रद हुआ । नोआखालीके अन्तर्गत बलरामके जमीन्दारने पहले अमरमाणिक्यको कर नहीं दिया और कहा कि, अमर जारज हैं । अतएव वे राज्यके विधिसङ्गत अधिकारी नहीं हो सकते । यह सुनकर महाराज अमरने एक दल सेना भेजकर युद्धमें उन्हें करप्रद बनाया । इस समय बाकलाचन्द्रद्वीप बहुत समृद्धशाली था । अमरमाणिक्यने धनके लोभसे उस राज्यमें लूटपाट मचाई और बहुतसे अधिवासियोंको दासके रूपमें बन्द किया बहुतोंको खरीदा भी । बाद उन्होंने ब्राह्मण-दम्पती और तुलापुरुष दान किया तथा दीर्घिका बनवाई । १०१९ त्रिपुराब्दमें बङ्गालके नवाब इसलाम

खाँने राजधानी ढाकासे त्रिपुरा पर धावा किया। अमरमाणिक्यके इशा खाँ नामक एक मुसलमान सेनापति था। एक बड़ी सेना ले कर महाराज अमरने उन्हींको युद्धमें भेजा। इशा खाँने शत्रुके सामने होते हुए भी समय जान कर आक्रमण न किया। त्रिपुराके प्रधान मन्त्रीने यह सुनकर और भी एक दल सेना उनकी सहायताके लिये भेजी और इशा खाँको हुक्म दिया, कि वे अब समयकी अपेक्षा न कर विपक्ष पर आक्रमण करें। इस समय अमरमाणिक्यकी स्त्रीने इशा खाँको प्रसादस्वरूप अपना चरणामृत भेजवा दिया। इशा खाँने रानीके इस अनुग्रहसे उत्साहित हो बारह हजार अश्वारोही और कुछ पदाति सेना ले कर शत्रु पर हठात् आक्रमण किया। मुसलमान लोग पराजित हो कर भाग चले और इशा खाँ विजयी होकर लौट आये।

इसके बाद अमरमाणिक्यने आराकान पर आक्रमण कर उसके अन्तर्गत कई एक प्रदेश जीत लिये। आराकानपतिने बार बार पराजित होने पर पोर्त्तुगीजोंकी सहायता ली और त्रिपुराके राजा पर धावा किया। युद्धमें पहले त्रिपुरापति पराजित हुए, किन्तु दलसञ्चय कर पुनः आराकान पर चढ़ाई करनेको उद्यत हुए। इस पर आराकानके राजाने एक वर्ष तक लड़ाई बन्द रखनेके लिये अनुरोध किया। दोनों पक्षके लोग आगामी दुर्गोत्सवके पहले युद्ध करनेको सहमत हुए, क्योंकि युद्धमें बन्दियोंकी दुर्गाके सामने बलि दे सकेंगे। त्रिपुराकी सेना लौट आई। आराकानपतिने अच्छा मौका देख सन्धिभङ्ग कर दी तथा चट्टग्राम पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। त्रिपुरापतिने अपने तीनों पुत्रोंको सेनापति बना कर एक बड़ी सेनाके साथ भेजा। आराकानपतिने भयभीत हो हाथीदांतका बना हुआ मुकुट उपहार दिया और राजकुमारोंके निकट सन्धिका प्रस्ताव पेश किया। मुकुटके अधिकारके लिये तीनों राजकुमारोंमें अनबन हो गई। ऐसे अवसर पर आराकानके राजाने त्रिपुराकी सेना पर धावा किया। तीनों राजकुमारोंमेंसे एक आहत हाथीकी पीठ परसे गिर कर पञ्चत्वको प्राप्त हुए और शेष दो राजकुमार पराजित हो कर भाग चले। मगोंने उनका अनुसरण किया था। पुनः दोनोंमें मुठभेड़ हुई। इस बार त्रिपुराके पठान-अश्वारोहियोंके अवाध्य हो जानेसे कुमारोंकी हार हुई। मग लोग राजधानी उदयपुर पहुँच गये। अमरमाणिक्य दुर्लक्षण समझ राजधानी छोड़ कर देवघाट नामक स्थानको चले गये। मग लोग उदयपुरको लूट कर वापिस आ गये। उसी समय फेनी नदी त्रिपुराकी दक्षिणीसीमा निर्दिष्ट हुई। चट्टग्रामादि स्थान आराकानराजके अन्तर्गत हुए। महाराज राज्यकी अवस्था, पुत्रोंकी बुद्धि और विवेचना आदि देख कर दुःखसे व्याकुल हो उठे। अन्तमें एक दिन पवित्र मनु नदीमें स्नान कर उन्होंने अफीम खा कर प्राणत्याग किया। उनकी स्त्री भी सती हो गईं।

१०२१ त्रिपुराब्दमें (१६११ ई०में) अमरमाणिक्यके पुत्र राजधर राजा हुए। वे शान्तिप्रिय वैष्णव थे। सिर्फ देवकार्यमें लगे रहते थे। उन्होंने एक सुन्दर विष्णुमन्दिर निर्माण किया था, जिसमें ८ गायक सर्वदा हरिनाम-कीर्त्तन करनेके लिये नियुक्त थे। उन्होंने बहुतसे ब्राह्मणोंको विस्तर जमीन दान दी थी। मन्त्रियोंके उनकी उदारता पर छेड़-छाड़ करने पर महाराज राजधर बोले,—"शेष अवस्थाको मेरे अदृष्टमें क्या होगा, यह कौन कह सकता है। समय रहते परकालका उपाय करना अच्छा है।" इधर बङ्गालके नवाबने राजधरकी ऐसी अवस्था सुन त्रिपुरा पर आक्रमण करनेके लिये एक सैन्यदल भेजा; किन्तु त्रिपुराके सेनापतिके कौशलसे वे पराजित हुए। राजधर ३ वर्ष राज्य कर गोमतीमें डूब मरे।

बाद १०२३ त्रिपुराब्दमें (१६३१ ई०में) राजधरके पुत्र यशोधर राजा हुए। राजा होनेके साथ ही इन्होंने त्रिपुरामें मग लोगोंका अत्याचार निवारण किया। इनके समयमें दिल्लीश्वर जहांगीरने कई एक हाथी करस्वरूप मांगे थे। महाराज यशोधरके देनेमें अस्वीकार करने पर दिल्लीके आदेशसे बङ्गालके नवाबने त्रिपुरा पर आक्रमण किया। दिल्लीसे मुगलसैन्य भी पहुँच चुकी थी। युद्धमें त्रिपुराके राजा पराजित और बन्दी हुए। मुगलसेना राज्यका कुछ अंश लूट बन्दी महाराज यशोधरमाणिक्यको साथ ले कर

दिल्ली पहुँची। सम्राट्ने उन्हें छुटकारा दे कर कहा, कि 'यदि वे प्रति वर्ष कई एक हाथी और घोड़े करस्वरूप दें, तो उनके विरुद्ध लड़ाई नहीं ठानी जायगी। यशोधरने इसे अस्वीकार किया और यवनसे पराजित होने पर वे तीर्थाटनमें पापदेह क्षय करनेके लिये प्रयाग, मथुरा वृन्दावनादिको गये। ७२ वर्षकी अवस्थामें वृन्दावनमें विष्णु सेवा करते हुए उनका प्राणान्त हुआ। उधर त्रिपुरामें अवशिष्ट मुगल सेना लगातार दो वर्ष तक राज्यमें लूट-मार मचाती रही। इतनेमें वहाँ महामारी उपस्थित हुई, जिसमें अधिकांश मुगलोंकी मृत्यु हो गई और अवशिष्ट प्राण जानेके भयसे त्रिपुरा छोड़ दिल्लीको चले आये। बाद कल्याणमाणिक्य सभी त्रिपुरावासियोंकी सम्मतिसे राज्यसिंहासन पर बैठे।

१०३५ त्रिपुराब्दमें (१६२५ ई०में) कल्याणमाणिक्य राजा हुए। वे किनके पुत्र थे, वह राजमालामें लिखा नहीं है; किन्तु लोग उन्हें यशोधरमाणिक्यके ज्ञाति भ्राता बतलाते हैं। अनुमान किया जाता है, कि महाराज राजधरमाणिक्यके एक भाई आराकान-युद्धमें हाथीके पैरतले मर चुके थे और दो भाग गये थे। कल्याणमाणिक्य इन्हीं दोमेंसे किसीके पुत्र होंगे। कल्याणमाणिक्यके जन्मसम्बन्धमें भी एक लौकिकप्रवाद है—उनका पिता एक दिन आखेटको बाहर निकले। एक पलायित मृगके पीछे दौड़ते दौड़ते मध्याह्नकालमें वे प्याससे कातर हो गये। बाद जलकी खोज करते करते वे बाछाल-प्रजाके घर पर गये। त्रिपुरा जातिमें बाछाल नामक एक सम्प्रदाय है। कल्याणके पिता उस बाछालकी रूपवती कन्याको देख कर मोहित हो गये। बाछाल-कुमारीने भी राजपुत्रको आत्मसमर्पण किया और उसीसे कल्याणमाणिक्यका जन्म हुआ। महाराज कल्याणमाणिक्य विद्वान्, बुद्धिमान् और बलशाली थे। उन्होंने सेनाओंको सुशिक्षित किया। उन्हींसे त्रिपुराके राजपरिवारमें एक नूतन नियम स्थापित हुआ। उन्होंने ही सबसे पहले युवराज पदकी सृष्टि कर अपने बड़े लड़के गोविन्दको उस पद पर नियुक्त किया और सिक्केमें अपने नामके साथ 'शिव' देवनाम अङ्कित किया था। उन्हींके समयसे राजनामके साथ देवनाम योग कर सिक्का मुद्रित हुआ करता था। सम्राट् शाहजहान्ने उनसे कर माँगा था, किन्तु कल्याणमाणिक्यके अस्वीकार करने पर सम्राट्ने बङ्गालके सुबेदार शाह सुजाको त्रिपुरा पर चढ़ाई करनेका हुक्म दिया। शाह सुजाने जो सैन्यदल भेजा था, उनके साथ एक चर्मनिर्मित कामान था। जो कुछ हो, महाराज कल्याणने मुसलमानोंको पराजित कर भगा दिया था। इसके बाद कल्याणने तुला उपलक्षमें उड़ीसा, मथुरा आदि दूर स्थानोंसे ब्राह्मणोंको बुलाकर प्रचुर धन दान दिये थे और अपने राज्यमें घूम घूम कर निःस्व प्रजाको अर्थदान तथा ब्राह्मणोंको यथेष्ट भूमि दान दी थी। जब कोई तीर्थाटनकी इच्छा करता तो वे अपने राजकोषसे उसका खर्च देते थे। नूरनगरके कशबा ग्राममें उनकी प्रसिद्ध दीर्घिका आज भी 'कल्याणसागर' नामसे विद्यमान है। कल्याण ३४ वर्ष राज्य कर १०६८ त्रिपुराब्दमें स्वर्गको प्राप्त हुए।

बाद युवराज गोविन्ददेव 'माणिक्य' की उपाधि धारण कर १०६८ त्रिपुराब्दमें (१६५८ ई०में) राज्यसिंहासन पर बैठे। उनकी स्त्री कमला महादेवी बहुत धर्मपरायणा थीं। उनके सिक्केके एक पृष्ठ पर शिव और स्वामीका नाम तथा दूसरे पृष्ठ पर उनका नाम अङ्कित रहता था। उनका निर्मित कमलासागर आज भी कशबा ग्राममें वर्त्तमान है। महाराज गोविन्दके छोटे भाई नक्षत्रराय बङ्गालके सूबेदार शाह सुजाके साथ मिल कर त्रिपुरा आक्रमण करनेको उद्यत हुए; किन्तु महाराज गोविन्दमाणिक्यने सोचा, कि इस युद्धमें चाहे मेरा प्राण जायगा अथवा मेरे भाईका। यह समझ कर उन्होंने बिना युद्ध किये नक्षत्रके हाथमें राज्य सौंप आप आराकान राज्यमें आश्रय ग्रहण किया। इधर नक्षत्रराय छत्रमाणिक्य नामसे सिंहासन पर बैठे। महाराज गोविन्द आराकानके आश्रयमें जब चट्टग्राममें रहते थे, तब भ्रातृयुद्धसे पराजित शाह सुजाने आ कर आराकानमें आश्रय लिया। राहमें महाराज गोविन्ददेवने उनका खूब सत्कार किया और यथासाध्य सहायता भी दी। सुजाने उनके व्यवहारसे लज्जित हो कर क्षमाप्रार्थना माँगी और अपनी "निमचा" नामक बहुमूल्य तलवार प्रदान की।

सुजाके आराकान पहुँचने पर आराकानके राजा सुजाकी कन्याके रूपसे मुग्ध हो गये। उसे हस्तगत करनेके लिये उन्होंने अपने राज्यमें यह प्रचार किया, कि सुजा अपने कौशलसे आराकान जीतनेके लिये आये हैं, अतएव उन्हें मार डालना उचित है; किन्तु बिना युद्धका रक्तका गिरना बौद्धोंके नियमसे अनुचित था, इसलिये उन्होंने छिपके सुजाको पकड़ मंगाया और उन्हें एक नावमें बांध कर नदीमें डुबो दिया। सुजाकी स्त्रीने अपनी छातीमें छुरी चुभा कर प्राण त्याग किया और दो कन्याओंने विष खा कर आत्महत्या की। तीसरी कन्याको आराकानके राजाने ग्रहण किया था।

इधर ७ वर्ष राज्य करके छत्रमाणिक्य जगद्राम और नरहरि नामक दो पुत्र छोड़ परलोक सिधारे। छत्रकी मृत्युके बाद गोविन्ददेव पुनः सिंहासन पर बैठे। उन्होंने सुजाके प्रति आराकान-राजके नृशंस-व्यवहारसे मर्माहत हो कर सुजाकी तलवारकी सहायतासे अर्थसंग्रह किया और कुमिल्लानगरमें एक मस्जिद बनवाई जो आज भी 'सुजा-मस्जिद' नामसे वर्त्तमान है। महाराज गोविन्दमाणिक्यने मेहेरकुल-आवाद और वातिसा ग्राममें दीर्घिका खुदवाई। वे भी ताम्रशासन द्वारा ब्राह्मणोंको बहुतसी जमीन दान कर गए हैं। १०७९ त्रिपुराब्द (१६६९ ई०में) उनका देहान्त हो गया।

१०८० त्रिपुराब्दमें (१६७० ई०में) युवराज रामदेव ठाकुर (गोविन्दके ज्येष्ठ पुत्र) राजा हुए। उन्होंने पहले अपने साले बलिभीमनारायणको युवराजके पद पर नियुक्त किया। बाद अपने बड़े लड़के रत्नदेवको भी उसी पद पर स्थापित किया। इसके अनन्तर उन्होंने युवराज-पदका अव्यवहित होनेके बाद जो 'बड़ा ठाकुर' नामक एक पदकी सृष्टि कर उस पर अपने दूसरे पुत्र दुर्जयदेवको नियुक्त किया। इनको राज्यच्युत करनेके लिए षड़यन्त्र रचा गया, किन्तु इसका कुछ फल न हुआ। घनश्याम और चन्द्रमणि नामक उनके और भी दो पुत्र थे।

१०९२ त्रिपुराब्दमें (१६८२ ई०में) युवराज रत्नदेव राजा हुए। उन्होंने अपने छोटे भाई दुर्जयमणिको 'बड़ा ठाकुर'का पद और मामा बलिभीमनारायणको 'युवराज'-का पद प्रदान किया; किन्तु उन्हें धीरे धीरे हटा कर राजवंशीय चम्पकराय और गोरोचरणको युवराज-पद पर तथा चौथे भाई चन्द्रमणिको 'बड़े ठाकुर'के पद पर नियुक्त किया। रत्नदेवके १२५ विवाह हुए थे। रत्नमाणिक्यकी बहुत कच्ची उमर थी, किन्तु शेषोक्त युवराजगण उनकी अपेक्षा बड़े और बहुत अत्याचारी थे। इस समय बंगालके नवाब साइस्ताखाँने नरेन्द्रठाकुर नामक रत्नमाणिक्यके एक चाचाकी सहायतासे त्रिपुरा पर आक्रमण किया और उसे जीत भी लिया। बाद वे रत्नमाणिक्य और तीनों युवराजोंको कैद कर लाये।

साइस्ता खाँकी सहायतासे नरेन्द्रठाकुर राजा हुए। तीन वर्ष राज्य करनेके बाद रत्नमाणिक्यने साइस्ता खाँको हस्तगत कर पुनः राज्याधिकार किया। २९ वर्ष राज्य करनेके बाद रत्नमाणिक्यके तीसरे भाई घनश्यामने उन्हें राजच्युत किया।

घनश्याम राज्य पा कर महेन्द्रमाणिक्य नामसे सिंहासन पर बैठे। मन्त्रीके परामर्शसे महेन्द्रने एक स्त्रीके दो स्वामी रहना युक्तिसिद्ध नहीं है, यह जान रत्नमाणिक्यको मार डाला। अन्तमें भ्रातृवधके पापसे दुःस्वप्न देखते देखते २ वर्षके अभ्यन्तर ही उनका प्राणवायु उड़ गया।

११२४ त्रिपुराब्दमें (१७१४ ई०में) युवराज दुर्जयदेव धर्ममाणिक्य नाम धारण कर सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उन्होंने चन्द्रमणिको युवराजके पद पर और बड़े लड़के गंगाधरको बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त किया। बंगालके नाजिरने इस समय एक दल सैन्य भेज त्रिपुराके कई एक जिले अधिकार कर लिए और वहां मुसलमान जमींदार नियुक्त किया तथा एक दल मुगलसैन्य उदयपुरमें रख दी। एक दिन मुगल लोग जब निश्चिन्तचित्तसे भोजन कर रहे थे, तब धर्ममाणिक्यने हठात् उन पर आक्रमण किया और उन्हें छिन्न भिन्न कर मार डाला। बहुत थोड़े लोग प्राण ले कर भाग पाये।

छत्रमाणिक्यके लड़के जगद्रामने इस समय ढाकाके मुसलमान-शासनकर्त्ताके साथ मिल कर त्रिपुरा पर

चढ़ाई की। युद्धमें पहले तो त्रिपुराकी जीत हुई; किन्तु पीछे महाराज धर्ममाणिक्य पराजित हो कर भाग गए।

११४२ त्रिपुराब्दमें (१७३२ ई०में) जगद्रामममाणिक्यने मुसलमानोंके साहाय्यसे राज्य प्राप्त किया, किन्तु उनसे त्रिपुरामें जो क्षति हुई, वह आज तक संशोधित न हो सकी। मुसलमान-दीवान मीर हबीबने पार्वत्य त्रिपुरा स्वाधीन रख अन्य समस्त स्थान मुसलमान राज्यमें मिला लिए और उन्हें मुसलमान जमींदारके हाथ सौंपा। केवल जगद्राम-माणिक्यको २२ परगनेका चकला रोसनाबाद जागीरके रूपमें दे दिया। यह जमींदारी अब भी मौजूद है। त्रिपुराके राजा अभी इसका कर बृटिश-सरकारको देते हैं।

धर्ममाणिक्य राज्यच्युत हो कर मुसलमानोंकी सहायताके बिना और कोई दूसरा उपाय न देख मुर्शिदाबादको चले गये। वहाँ उन्होंने जगत् सेठसे मित्रता की और उनकी सहायतासे पुनः राज्यप्राप्त किया। धर्ममाणिक्यने बंगला भाषामें महाभारतका अनुवाद किया। थोड़े समयके बाद धर्ममाणिक्यकी मृत्यु हुई।

बाद ढाकाके फौजदारने धर्ममाणिक्यके बड़े लड़के गङ्गाधरको उनके पिताके समयका बाकी राजस्व परिशोध करनेको कहा। इस पर उन्होंने अपनी अक्षमता प्रगट की। युवराज चन्द्रमणि वह ऋण परिशोध कर फौजदारकी सहायतासे मुकुन्दमाणिक्य नामसे राजा हुए। मुकुन्दने राज्य पा कर अधर्म नहीं किया। उन्होंने अपने भतीजे गङ्गाधरको हो युवराजके पद पर और बड़े लड़के पांचकौड़ीको बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त किया तथा जामीनस्वरूप पांचकौड़ीको मुर्शिदाबादमें रख छोड़ा। मुकुन्दमाणिक्यने रुद्रमणि नामक एक ज्ञातिको हाथी पकड़नेके लिये मतिया पहाड़ पर भेजा। वहां रुद्रमणिने बूचरनारायण नामक पार्वतीय तिपरा सर्दारके साथ मिल कर मुकुन्दमाणिक्यको एक पत्र लिख भेजा, कि—'पार्वतीय त्रिपुरगण यवन-संश्रवमें रहना नहीं चाहते। महाराजकी अनुमति पानेसे वे फौजदार-सानुचर हाजीके लिये मुनसिपको वध करनेमें प्रस्तुत हैं।' मुकुन्दमाणिक्यने पत्र पा कर चिन्तित हो उत्तर दिया, कि—'ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि उनके बड़े लड़के जामीनस्वरूप मुर्शिदाबादमें हैं।' रुद्रमणि इस पर भी स्थिर न हो कर फौजदारको मार डालनेके लिये तैयार हो गये। मुकुन्दमाणिक्यने किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो कर वह पत्र फौजदारको दिया। फौजदारने प्राणरक्षाके लिये कृतघ्न न हो कर सोचा, कि महाराज मुकुन्द भी इस षड़यन्त्रमें शामिल हैं। सुतरां उन्होंने उनको, उनके लड़के भद्रमणि, कृष्णमणि और बड़े ठाकुर गङ्गाधरको कैद कर लिये। रुद्रमणिठाकुरने यह सम्बाद पा कर ससैन्य आ उदयपुरको घेर लिया।

इसी बीच महाराज मुकुन्दने यवनके हाथ बन्दी हो जाने पर विष खाकर आत्महत्या कर डाला। रानी सती होनेको तैयार हो गईं। इस पर सर्दार बूचरनारायणने उन्हें उत्तराधिकारी नियुक्त करनेकी प्रतिज्ञा की। रानीने पहले अपने पुत्र पांचकौड़ी, और उनके बाद गङ्गाधरको उत्तराधिकारी निर्द्देश किया; किन्तु बूचरनारायणके रुद्रमणिको उत्तराधिकारी निर्वाचित करने पर रानीने चितामें बैठ आत्महत्या की।

सर्दार बूचरनारायणके साहाय्यसे रुद्रमणिठाकुर जयमाणिक्य (२य) नाम धारण कर राज्यसिंहासन पर बैठे। ये गोविन्दमाणिक्यके छोटे भाईके छोटे लड़केके ज्येष्ठ पुत्र थे। फौजदारने अपने अपराध पर क्षमा प्रार्थना मांगी। इस पर जयमाणिक्यने उन्हें अभयदान दिया। रुद्रमणि प्रभृति राजकुमार छुटकारा पाकर ढाकाको चल दिये।

पांचकौड़ी उस समय भी बङ्गालके नवाबके निकट थे। वे बहुत दिनोंसे त्रिपुराका कोई सम्बाद नहीं पानेसे नवाबकी अनुमति ले नाव पर चढ़ कर स्वदेशको आ रहे थे। पद्मागर्भमें उन्हें ज्यों ही कृष्णमणिके पत्रसे राज्यकी अवस्था मालूम हो गई त्यों ही वे पुनः मुर्शिदाबाद लौट गये। नवाबने उनसे सब बातें सुन कर ढाकाके शासनकर्त्ताको उन्हें सहायता देनेका आदेश किया। बङ्गालके नवाबने इस समय पांचकौड़ीको सिंहासन पर बैठनेकी अनुमति स्वरूप एक सनद दी।

पांचकौड़ीके ससैन्य कुमिल्ला पहुंचने पर प्रजा और सभी कर्मचारियोंने उन्हें अपना राजा बनाया। उदय-

पुरमें लड़ाई छिड़ी। द्वितीय जयमाणिक्य पराजित हुए। ११४८ त्रिपुराब्दमें (१७३८ ई०में) पांचकोड़ी इन्द्रमाणिक्य (२य) नाम ग्रहण कर सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उनके भाई कृष्णमणि युवराज और हरिमणि बड़े ठाकुर हुए।

जयमाणिक्य राजच्युत हो कर हरिनारायण चौधरी नामक एक व्यक्ति समस्त मेहरेकुलके सैन्यदल और १४ सौ सेनाओंको साथ ले त्रिपुराके कई स्थान लूटने लगे। अन्तमें उन्होंने रिशवत देकर ढाकाके शासनकर्त्ता जलकादेरखाँको वशीभूत किया तथा इन्द्रमाणिक्यके विरुद्ध उत्तेजित किया। रौसनाबादके बाकी खजानाके कारण जलकादेर खाँ इन्द्रमाणिक्यको कैद कर ढाका ले गये। इस समय ढाकामें धर्ममाणिक्यके पुत्र गङ्गाधर रहते थे। उन्होंने जलकादेर खाँको घूस देकर राजा होना चाहा। महम्मद रफि नामक एक व्यक्तिने एक दल सेना साथ ले जलकादेरकी आज्ञानुसार गङ्गाधरको त्रिपुराके सिंहासन पर बिठाया। गङ्गाधर द्वितीय उदयमाणिक्य नामसे राजा हुए।

जयमाणिक्य राज्यच्युत हो ढाकाके ३ परगनेका जमींदारीसत्व ले कर वास कर रहे थे। (इनके वंशधर अब भी ढाकामें हैं। वे 'कादबाके राजा' वा 'ढाकाके राजा' नामसे प्रसिद्ध हैं।) जयमाणिक्यने सफलता प्राप्त न कर सकने पर वृद्ध जगद्रामको पुनः भुलावेमें डालनेकी चेष्टा की। उन्होंने कहला भेजा, कि—'यदि जगद्राम रिशवत देकर ढाकाके नवाबको वशीभूत कर सकें, तो वे (जयमाणिक्य) पुनः राजा हो सकते हैं और राजा हो पर जगद्रामके भाई नरहरिको युवराज अवश्य बनावेंगे।' जगद्रामने भी वैसा ही किया। जलकादेर खाँ भी अर्थके दास थे। उन्होंने भी इसी समय उदयमाणिक्यके बदले जयमाणिक्यको त्रिपुराका राजा स्वीकार किया और उदयको भगा कर उन्हें सिंहासन पर बिठाया। जयमाणिक्यने पुनः राज्य पाकर जगद्रामके भाई नरहरिको युवराज बनाया।

इस समय निवाइस महम्मद ढाकाके शासनकर्त्ता हुए। हुसेनकुली खाँ उनके सहकारी थे। इन्द्रमाणिक्यने हुसेनकुलीसे मित्रता की और उनकी सहायतासे बङ्गालके नवाब अलीवर्दी खाँसे सैन्य लेकर त्रिपुरा पर अधिकार जमाया। द्वितीय जयमाणिक्य कैदी बनाकर मुर्शिदाबाद भेज दिये गये। इन्द्रमाणिक्यने दूसरी बार राज्यप्राप्त कर मुर्शिदाबादमें एक प्रतिनिधि रखा। कुछ दिनोंके बाद मुर्शिदाबादसे सम्वाद आया कि जयमाणिक्यने नवाबके प्रियपात्र हाजी हुसेनके साथ मित्रता की है और हाजी हुसेन उन्हें राज्य देनेकी चेष्टामें हैं। इन्द्रमाणिक्य उद्विग्न हो मुर्शिदाबाद गये और उन्होंने सब बातें अलीवर्दी खाँसे कह सुनाईं। नवाबने हाजी हुसेनको इसके लिये तिरस्कार कर जयमाणिक्यको कारागारमें रखनेका आदेश दिया। इन्द्रमाणिक्य अपने राज्यको लौट आये। इसके बाद हाजी हुसेन अपमानका बदला लेनेके लिये कुमिल्लाके फौजदार हो कर त्रिपुरा आये और इन्द्रमाणिक्यके राज्यमें अत्याचार करने लगे। इन्द्रमाणिक्यने इसे सहन न कर नवाबको खबर दी। उन्होंने इसका अनुसन्धान लेनेके लिये हुसेन उद्दीन्को भेजा। वे इसका पता लगा कर हाजी हुसेन और इन्द्रमाणिक्यको साथ ले मुर्शिदाबाद गये। नवाबने हाजीका ही दोष ठहरा कर उन्हें इन्द्रमाणिक्यकी क्षतिपूर्ति करनेको कहा। १७४४ ई०में इन्द्रमाणिक्य इस उपलक्षमें मुर्शिदाबादमें थे। मरहट्टा-युद्धमें नवाबने उन्हें एक दल सेनाका भार सौंपा, किन्तु शारीरिक असुस्थ रहनेके कारण वे युद्धमें जा न सके। उनकी अस्वस्थ्यताकी बात सुनकर नवाबने हाजी हुसेनके ऊपर चिकित्साका भार दिया। हाजीने चिकित्सकके साथ परामर्श करके जो औषध उन्हें खिलाई थी, उसीसे उनका प्राणान्त हुआ। नवाबने लौट कर उनकी खोज ली और मृत्युसम्वाद सुनकर बहुत आक्षेप किया। बाद उन्होंने उनके छोटे भाईको राज्य देनेके लिये कहा। फौजदार हाजी हुसेन वैसा ही करनेको राजी हुए और कुमिल्ला पहुँच कर उन्होंने युवराज कृष्णमणिको रौसनाबादसे भगा दिया एवं समसेर गाजी और अबदुल रजाक नामक दो व्यक्तियोंके ऊपर शासनभार अर्पण किया। युवराज कृष्णमणिने बाहुबलसे स्वाधीन त्रिपुराके कुछ अंश अपने दखलमें कर लिए। इसके बाद हाजी हुसेन मुर्शिदाबाद आए और द्वितीय जयमाणिक्यको कारागारसे

मुक्त कर त्रिपुरा ले गए। जाते समय ढाकामें उनकी मृत्यु हुई। तब हाजीने उनके भाई हरिधनठाकुरको विजयमाणिक्य नाम देकर सिंहासन पर बिठाया और रौसनाबादसे मासिक एक हजार रुपये उन्हें देनेकी व्यवस्था कर दी। रौसनाबादका राजस्व बाकी रह जानेके कारण विजयमाणिक्य कैद कर लिए गए और कुछ कालके बाद वहीं उनका प्राणान्त हुआ।

समशेर गाजी और अबदुल रजाक रौसनाबादमें शासन करने लगे। त्रिपुरा जातिसे कर मांगने पर उन्होंने कहा कि राजवंश छोड़ कर और किसीको हम लोग कर नहीं देंगे। इस पर उन दोनों मुसलमानोंने परामर्श कर द्वितीय उदयमाणिक्यके भतीजे बनमाली ठाकुरको लक्ष्मणमाणिक्य नाम देकर त्रिपुराके राजा बनानेका सङ्कल्प किया। युवराज कृष्णमाणिक्यको यह बात मालूम होने पर उन्होंने त्रिपुराका राजसिंहासन तोड़ कर नदीमें बहा दिया। लक्ष्मणमाणिक्य बांसके बने हुए सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उन दो मुसलमानोंने उनके नामसे नोआखाली और चट्टग्राम प्रभृति देशोंमें लूट-पाट करना आरम्भ की तथा वे लूटके मालसे अपने धनागार भरने लगे। रौसनाबादकी प्रजाने उनके अत्याचारको सहन न कर नवाब मीर-काशिम अलीखाँसे प्रार्थना की। इस पर नवाबने सेना भेज दोनोंको कैदी बना कर तोपसे उड़ा डाला।

११७० त्रिपुराब्दमें (१७६० ई०में) युवराज कृष्णमणि नवाब काशिम अली खाँकी सनद ले कर कृष्णमाणिक्य नामसे राजा हुए। उन्होंने त्रिपुरामें नवीन राजसिंहासन प्रस्तुत किया और उदयपुर परित्याग कर आगरतलामें राजधानी स्थापित की। कृष्णमाणिक्यने अपने भाई हरिमणिको युवराजके पद पर और अपने चचेके पोते वीरमणिको बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त किया। इस समय चट्टग्रामके मुसलमान बहुत अत्याचार कर रहे थे। कशवाग्राममें लड़ाई छिड़ी। महाराज कृष्णमाणिक्यने पराजित हो कर दुर्गमें आश्रय लिया और वहांसे अस्त्रनिक्षेप कर मुसलमानोंको परास्त किया। कशवा-दुर्गका भग्नावशेष अब भी काली स्थानके उत्तरमें वर्त्तमान है। इस समय अंगरेजोंने बंगाल दखल किया। पीछे १७६५ ई०में लार्ड क्लाइवने बंगालकी दीवानी पाकर राल्पलिक नामक एक व्यक्तिको रेसिडेण्ट बना कर त्रिपुरा भेजा।

२य रत्नमाणिक्यने कुमिल्लेमें जो सप्तदश चूड़ा-मन्दिरका आरम्भ किया था, उसे महाराज कृष्णमाणिक्यने समाप्त कर उसमें जगन्नाथकी मूर्त्ति स्थापित की, युवराज हरिमणि कण्ठमणि और राजधरमणि नामक दो शिशुपुत्र छोड़ कर परलोकको सिधारे। महाराज कृष्णमाणिक्य और उनकी स्त्री जाह्नवा देवी कण्ठमणिका अनादर और राजधरका समादर करती थीं। ११८० त्रिपुराब्दमें (१७८० ई०की, ११वीं जुलाई) महाराज कृष्णमाणिक्यकी मृत्यु हुई। उस समय कुमार राजधर कुमिल्लामें और रेसिडेण्ट लिक चट्टग्राममें थे।

स्वामीकी मृत्युके बाद रानी जाह्नवादेवी त्रिपुरामें राज्य करने लगीं। रेसिडेण्टने गवर्नर जेनरल वारेन् हेस्टिंग्सको यह सम्वाद पहुँचाया। मि० लिकके आगरतला आने पर रानीने उन्हें कहला भेजा कि राजधरके सिंहासन पर बैठनेसे वे राजकार्यसे अलग हो जाँयगी। बड़े ठाकुर वीरमणि रानीका अभिप्राय समझ कर राज्याधिकार करनेके अभिलाषी हुए, किन्तु हठात् मृत्यु हो जानेसे वे कुछ भी कर न सके। राज्यच्युत लक्ष्मणमाणिक्यने ऐसे सुयोगमें सिंहासन अधिकार करनेकी चेष्टा की, किन्तु जाह्नवादेवीके कौशलसे वे वशीभूत हुए।

जाह्नवादेवीने कुमिल्लेमें एक दीर्घिका खुदवाई, जो आज भी रानीकी दीघी नामसे वर्त्तमान है। वारेन् हेष्टिंग्सने रानीके कथनानुसार राजधरको त्रिपुरापति स्वीकार किया। ११८५ त्रिपुराब्दमें (१७८५ ई०में) महाराज राजधरमाणिक्य सिंहासन पर बैठे और उन्होंने महाराज लक्ष्मणमाणिक्यके पुत्र दुर्गामणि ठाकुरको युवराजके पद पर नियुक्त किया। राजधर राजा हुए सही, किन्तु वे लिखना पढ़ना कुछ भी नहीं जानते थे। इसलिये अंगरेज गवर्मेण्टने रौसनाबाद कुछ दिनोंके लिये त्रिपुराके कलेक्टरके हाथ लगा दिया। उस समय वहांकी आमदनी १३८०००) रुपयेकी थी। महाराज अपने खर्चके लिये मासिक १ हजार रुपये पाते थे।

राजधरने मणिपुरके राजा जयसिंहकी कन्यासे विवाह किया। इनसे इन्हें कोई सन्तान न थी। दूसरी स्त्रीके गर्भसे उनके चार पुत्र थे जिनमेंसे दो की शैशव-कालमें ही मृत्यु हुई और दो जीवित रहे।

इनके समयमें ब्रह्मदेशाधिपतिने त्रिपुरा और आराकान पर आक्रमण किया। सेनापति आशुमणिने मग लोगोंको पराजित किया। आराकान ब्रह्मदेशके अधिकारमें आया। कूकियोंके विद्रोही होने पर सेनापति आशुमणिने उन्हें परास्त किया।

राजधरने अपने बड़े लड़के रामगङ्गाको बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त कर उनके हाथमें राज्यशासनका भार सौंपा। वे पितृमन्त्री कालीचरणकी सलाह ले कर अच्छी तरह राजकार्य चलाते थे। श्रीहट्टके किसी भद्र कायस्थकी कन्या चन्द्रतारासे रामगङ्गाका विवाह हुआ था।

राजधरने राजधानीमें वृन्दावन नामक एक विग्रहकी प्रतिष्ठा की और मोगराग्राममें राजधरगञ्ज नामका एक बाजार स्थापित किया। राजधर अन्तिम अवस्थामें वैराग्य अवलम्बन कर १२१४ त्रिपुराब्दमें (१८०४ ई०में) कराल कालके गालमें फंसे। पिताकी मृत्युके बाद रामगङ्गा राजा और भाई काशीचन्द्र युवराज हुए। युवराज दुर्गामणिने कुलाचारानुसार राज्य पानेके लिये आवेदन किया। अन्तमें १८०८ ई०की १८वीं जुलाईको प्रभिन्सियल कोर्टके मतसे वे ही रोशनाबाद जमींदारीके अधिकारी ठहराये गये। महाराज रामगङ्गामाणिक्यने सदर दीवानीमें अपील की। अपीलमें भी दुर्गामणिका स्वत्व कायम रहा। अतः अंगरेज गवर्मेण्टने दुर्गामणिको त्रिपुरापति बनाया। रामगङ्गा राज्य छोड़ कर श्रीहट्टको चले गये और वहांके विषगाँव और बालिशिरा नामक दो परगनेकी जमींदारी स्वत्व ले कर सपरिवार रहने लगे।

दुर्गामाणिक्य १८०९ ई०में राजा हुए। उन्होंने पहले दीवान रामरत्नकी कन्या सुमित्रा देवीको ब्याहा, उनके गर्भसे दो कन्या उत्पन्न हुईं। पीछे उन्होंने नकुल गाइलिमकी कन्या मधुमतिसे विवाह किया।

दुर्गामाणिक्यने काशीमें शिवका स्थापन और शिवमन्दिर निर्माण किया। उन्होंने दो वर्ष राज्य करके द्वितीय विजयमाणिक्यके पौत्र शम्भुचन्द्र ठाकुरको युवराज पदोपयोगी छत्रदण्डादि दिये थे, किन्तु उनका अभिषेक नहीं हुआ। शम्भुचन्द्रके हाथमें राज्यभार देकर आप काशीको चले गये। राहमें १२२६ त्रिपुराब्दको (१८०९ ई०के अप्रिल मासको) पटनेमें उनका देहान्त हुआ।

दुर्गामाणिक्यकी मृत्युके बाद रामगङ्गा अंगरेजके अनुग्रहसे पुनः राजा हुए। कण्ठमणि ठाकुरके पुत्र (महाराज राजधरके बड़े भाई) अर्जुनमणि ठाकुर, मनोनीत युवराज शम्भुचन्द्र ठाकुर और रानी सुमित्रा महादेवीने रोशनाबाद जमींदारीके लिये मुकद्दमा चलाया; किन्तु रामगङ्गा माणिक्य पहले बड़े ठाकुर थे इसलिये सदर दीवानी अदालतमें उन्हींका स्वत्व स्थिर किया गया। मुकद्दमा शेष होने पर रामगङ्गा १२३१ त्रिपुराब्दमें (१८२१ ई०में) दूसरी बार राजा हुए। काशीचन्द्र पुनः युवराजके पद पर और रामगङ्गाके पुत्र कृष्णकिशोर बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त हुए।

शम्भुचन्द्र मुकद्दमेमें हार कर काईपें प्रभृति कुकियोंके साथ मिल गये और युद्धका आयोजन करने लगे, किन्तु त्रिपुराके सेनापति सुवा धनञ्जयसे परास्त हुए। ब्रह्मराजने त्रिपुरा पर चढाई की, किन्तु रामगङ्गाने अपने कौशलसे उन्हें राज्यमें प्रवेश करने न दिया। ब्रह्मयुद्धमें इन्होंने अंगरेजोंकी सहायता की थी।

महाराज रामगङ्गामाणिक्यने मोगराग्राममें एक दीर्घिका खुदवाई जिसका नाम गङ्गासागर रखा गया। यह दीर्घिका आज भी वर्त्तमान है। उन्होंने अपने गुरु भुवनमोहन और गुरुपत्नी और किशोरीदेवी नामके दो विग्रह प्रतिष्ठित किये। उनके केवल एक स्त्री थी। वे पारसी भाषामें पण्डित, शास्त्र, शस्त्रविद्या और मल्लयुद्धमें पटु थे। १२३६ त्रिपुराब्दमें (१८२६ ई०में) चन्द्रग्रहणके समय रातको मस्तकमें दीक्षा-गुरुका पद और वक्षस्थलमें शालग्राम धारण कर महाराज रामगङ्गामाणिक्य स्वर्गलोकको प्राप्त हुए। वृन्दावनमें भी उन्होंने रासविहारी नामक देवता स्थापित किया। मृत्युके बाद उनकी हड्डियां वृन्दावनके उसी देवालयमें

गाड़ी गई। उनके श्राद्धमें १८ हजार रुपये केवल गरीबोंको बाँटे गये थे।

१२३७ त्रिपुराब्दमें (१८२७ ई०के मार्च मासमें) युवराज काशीचन्द्र राजा हुए। रामगङ्गामाणिक्यके समयसे त्रिपुरापतिके अभिषेक काल तक वृटिशराज उन्हें खिलात दिया करते थे। कृष्णकिशोर युवराज और कृष्णचन्द्र नामक काशीचन्द्रके पुत्र बड़े ठाकुर हुए। कृष्णचंद्रकी माता कुटिलाक्षी महादेवी मणिपुर-राजकन्या थीं। उन्होंने अपने पुत्रोंको युवराज बनाने कहा, इसलिए काशीचन्द्रने उनका यथेष्ट तिरस्कार किया।

इस समय फ्रान्सीसी एक कुर्जन रौसनाबादके अध्यक्ष हुए। वे राजाके विश्वासपात्र हो कर बहुत धनशाली हो गये थे। इनके बड़े लड़के चन्दननगरमें सबसे सुन्दर अट्टालिका बना गए हैं। काशीचन्द्र शराब बहुत पीते थे, इसलिए तीन वर्ष राज्य करनेके बाद ही इनका प्राणान्त हुआ।

१२४० त्रिपुराब्दमें कृष्णकिशोर राजा हुए। बड़े ठाकुर कृष्णचन्द्रके मर जाने पर कृष्णकिशोरने अपने लड़के ईशानचन्द्रको (जिनकी उमर ढाई वर्षकी थी) युवराजके पद पर नियुक्त किया। कृष्णकिशोरने तान्त्रिकोंके अनुरोधसे अनेक चण्डालोंका वध किया और उनके मस्तकसे महापात्र और हड्डीसे महाशङ्खकी माला बनवा कर उन्हें तान्त्रिकोंको दान दिए। विद्वान्, वीर और युद्धकुशल होने पर भी वे मद्यप और इन्द्रियपरायण थे, कृष्णकिशोरके समयमें चट्टग्रामके कमिश्नरने त्रिपुराकी स्वाधीनता ले लेनेकी चेष्टा की, किन्तु गवर्नर जेनरलने उसे अनुमोदन न किया। उनके दूसरे लड़के उपेन्द्र बड़े ठाकुर हुए।

कृष्णकिशोर शिकारप्रिय थे। शिकारके हेतु उन्होंने जलाभूमिमें राजधानी बसाई और उसका नाम रखा 'नूतन हवेली'। ८ पुत्र और १५ कन्यायें छोड़ कर कृष्णकिशोर १२५८ त्रिपुराब्दमें वज्राघातसे मरे। इनके अपरिमित व्ययके कारण चाकले रौसनाबाद बहुत ऋणसे ग्रसित था।

१२५८ त्रिपुराब्दके २० माघको (१८५० ई०की १ली फरवरीको) महाराज ईशानचन्द्रमाणिक्य राजा और बड़े ठाकुर उपेन्द्र युवराज हुए। उस समय राज्यका ११ लाख रुपये ऋण था। कृष्णकिशोरने अपनी माताकी सहचरीके लड़के बलरामको आलाहाजीके पद पर नियुक्त किया। ईशानने उसे सुचतुर समझ कर दीवानका पद दिया, किन्तु बलराम अपने भाई श्रीदामकी सहायतासे राजमें अत्याचार करके अपना कोष भरने लगे। यह देख कर राजा और युवराज छोड़ कर और सभी विरक्त हो उठे। त्रिपुराके प्रधान मनुष्य उन्हें मार डालनेकी चेष्टा करने लगे। अन्तमें कुकियोंकी सहायता ले परीक्षित और कीर्त्ति नामक दो व्यक्तियोंने नायक हो कर बलराम तथा श्रीदामके घर पर धावा किया। बलराम भाग गये और श्रीदाम मारे गए। ईशानचन्द्रने क्रुद्ध होकर बलरामके शत्रुओंको बन्दी और श्रीदामहन्ता कीर्त्तिका प्राणनाश किया। बलरामके प्रति प्रजाका विद्वेष जान कर महाराज ईशानने उन्हें पदच्युत किया और व्रजमोहन ठाकुरको दीवान बनाया। द्वितीय विजयमाणिक्यके पुत्र इस समय केशी नदीके दक्षिणी किनारे बगाचतल नामक स्थानमें एक छोटा राज्य स्थापन कर त्रिपुराके दक्षिणांशमें लूट मार मचाते थे। ईशानचन्द्रने उन्हें वशीभूत किया। युवराज उपेन्द्र पिता सरीखे मद्यपान और कुक्रियासक्त थे। १२६१ त्रिपुराब्दमें उनकी मृत्यु हो जाने पर त्रिपुरामें शान्ति विराजने लगी। व्रजमोहन दीवान भी ऋण शोध न कर सके। रौसनाबाद हाथसे निकलने पर हो गया। राजपरिवारका भरणपोषण क्लेशकर हो पड़ा। कलकत्तेके ठाकुर वंशीय दक्षिणारञ्जन मुखोपाध्याय इस समय त्रिपुरा आ पहुंचे। उन्होंने महाराजको दिलाशा दिया। इस पर महाराजने उन्हींको मन्त्री बनाना चाहा, किन्तु उनके चरित्रमें दोष रहनेके कारण राजगुरु विपिनविहारी गोस्वामीने समस्त कर्मचारियोंके परामर्शसे महाराजको इस काममें बाधा दी। महाराज ईशान अत्यन्त गुरुभक्त थे। उन्होंने गुरुवाक्यसे दक्षिणा बाबूको विदा करके उन्हें कहा, 'प्रभो! मैं चाकले गौसनाबादकी रक्षाका उपाय नहीं देखता हूं। आपके चरण पर राज्य और जमींदारी सौंपता हूं, आप ही इसकी रक्षा कीजिये।'

विपिनविहारीने १२६५ त्रिपुराब्दमें त्रिपुराका शासन भार अपने ऊपर लिया। कलकत्तेमें कार्य चलानेके लिये इस समय यज्ञचन्द्र चट्टोपाध्याय नामक एक अत्यन्त बुद्धिमान् मनुष्य आममोख्तार नियुक्त हुए। वे छह मास कलकत्तेमें और छह मास आगरतलामें रहते थे। गुरु विपिनविहारीने अमात्योंके परामर्शसे राज्यका ऋणशोध अनेक उपायसे किया। ईशानचन्द्रने २ खण्ड भूमि आबाद कराकर उनका नाम अपने दो पुत्रोंके नाम पर ब्रजेन्द्रनगर और नवद्वीप रखा। गुरुकी सलाहसे इन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको युवराज और बड़े ठाकुरके पद पर नियुक्त करना चाहा। इस पर उनके भाई चक्रान्त करने लगे। उन्होंने भयसे ईशानचन्द्रको कहला भेजा कि ईशानके दो पुत्रोंके सिवा और किसीको कोई उत्तराधिकारी पद नहीं देवें। राजाको भी छिपके मार डालनेकी कोशिश होने लगी, किन्तु गुप्तचरके कौशलसे यह बात जान लेने पर राजाने उन्हें पकड़ मंगाया और कैद कर लिया। इस समय चट्टग्राममें सिपाही विद्रोह आरम्भ हो गया था। ईशानचन्द्रने इसे दमन करनेमें अंगरेजोंकी खूब सहायता की।

१२६८ त्रिपुराब्दमें कूकियोंका उत्पात शुरू हुआ, किन्तु महाराजने उसे तुरंत दमन किया। इस समय बड़े ठाकुर और युवराजके पद पानेके लिये नीलकृष्ण और वीरचन्द्र नामक ईशानके दोनों भाई आपसमें झगड़ने लगे। मुकदमा करने पर भी वे विजयी न हुए, किन्तु इसके परिणाममें बृटिश गवर्मेण्टके साथ त्रिपुराकी मित्रताके रूपमें एक सन्धि हुई।

ईशानचन्द्रने तीसरे पुत्रके नाम पर भी रोहिणी नगर नाम रखकर एक नूतन नगर बसाया और तीसरे पुत्रको जागीर दी। तिष्णा परगनेमें रानी चन्द्रेश्वरी महादेवीके नामसे एक बाजार बसाया गया। चन्द्रेश्वरने वृन्दावनमें राधामाधवकी एक मूर्त्ति स्थापन की।

१२७२ त्रिपुराब्दके ११ श्रावणको ३४ वर्षकी अवस्थामें महाराज ईशानचन्द्रमाणिक्य उत्तराधिकारी नियुक्त किये बिना वातरोगसे परलोकको चल बसे। इन्होंने ही त्रिपुरामें नूतन राजप्रासाद निर्माण किया था। केवल एक दिन तक इन्होंने इस प्रासादका भोग किया था। बहुत तर्क वितर्कके बाद वीरचन्द्रमाणिक्यने राज्य प्राप्त किया। ये धार्मिक तथा साहित्यानुरागी थे। इन्हींके यत्नसे त्रिपुराराज्यमें बहुतसे सुनियम बनाये गये हैं। इनके बाद राजा विजयमाणिक्य और राजा राधाकिशोर देव वर्मनमाणिक्यने त्रिपुरा-राजसिंहासनको सुशोभित किया। वर्त्तमान राजाका नाम H. H. राजा वीरेन्द्रकिशोरमाणिक्य बहादुर है। इन्हें बृटिश गवर्मेण्टकी ओरसे १३ तोपोंकी सलामी मिलती है। त्रिपुरामें बौद्धधर्म प्रचलित है।

"रामपालके राजत्वकालमें प्रसिद्ध बौद्धतान्त्रिक विरूप आविर्भूत हुए। इनका दूसरा नाम धर्मपाल था। इनके प्रधान शिष्यका नाम कालविरूप था। एक समय आचार्य कालविरूप त्रिपुराको आये। उनका सदुपदेश सुनकर त्रिपुरापति विमुग्ध हो गये और उनसे तान्त्रिक-बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए। आचार्यके निकट रहते रहते राजा भी एक सिद्ध हो गये। तान्त्रिक बौद्धोंके मतसे भी शक्तिसङ्गम नहीं होनेसे सिद्धिलाभ नहीं होता है। एक दिन राजाको भी आदेश मिला कि पद्मावती नामक डोमकी कन्याको शक्तिरूपसे ग्रहण करने पर उन्हें सिद्धि प्राप्त हो सकती है। राजाने हृष्टचित्तसे डोमनीको ग्रहण किया। उसको साथ ले वे राजधानी छोड़ वनको चले गये और वहीं साधना करने लगे। क्रमशः वे डोमराज वा डोमाचार्य नामसे विख्यात हुए। इनके असाधारण क्षमता थी; किन्तु डोमकन्यासे सहवास करनेके कारण वे राज्यसे निर्वासित हुए थे। उनकी अनुपस्थितिमें राज्यमें महामारी पहुंची। ज्योतिषियोंने गणना कर कहा कि राजाके नहीं रहनेसे ही ऐसी दुर्घटना उपस्थित हुई है। प्रजाने राजाको बहुत यत्नसे बुलाया। राजाके आने पर राज्यमें शान्ति स्थापित हुई। उन्होंने धर्म नामक तान्त्रिकबौद्ध मतका प्रचार किया। बहुत थोड़े दिनोंके मध्य बहुतसे लोगोंने इस मतको ग्रहण कर लिया। धर्मपूजामें वज्रयोगिनी, वज्रवाराही, वज्रडाकिनी, वज्रभैरव वा क्षेत्रपाल, नाथ आदिकी पूजा की जाती है।"

त्रिपुरान्तक (सं० पु०) त्रिपुरस्य अन्तं करोति अन्त-णिच् ण्वुल । १ शिव, महादेव ।

त्रिपुरारि (सं० पु०) त्रिपुरस्य अरिः, ६-तत् । १ शिव, महादेव । २ एक टीकाकारका नाम, पार्वतीनाथके पुत्र । इनकी बनाई हुई अनर्घराघव और मालतीमाधवकी टीका पायी जाती है ।

त्रिपुरारिपाल—एक संस्कृत कवि । सदुक्तिकर्णामृतमें इनकी कविता उद्धृत हुई है ।

त्रिपुरारिरस (सं० पु०) औषधविशेष; एक प्रकारकी दवा । इसकी प्रस्तुत प्रणाली—हिङ्गु लौह्य, पारा, ताँबा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, विष प्रत्येक १ तोला, चाँदीकी भस्म आध तोला, इन सबको एक साथ मिला कर अदरखके रससे मलते हैं और बाद २ रत्तीकी गोली बनाते हैं । इसका अनुपान मधु, चीनी वा अदरखका रस है । इसके सेवन करनेसे आठों प्रकारके ज्वर, प्लीहोदर, शोथ और अतिसार बहुत जल्द आराम हो जाते हैं । शङ्करने जिस प्रकार त्रिपुरको दग्ध कर डाला था, उसी प्रकार यह दवा भी रोगोंको अति शीघ्र जला देती है, इसीसे इसका नाम त्रिपुरारिरस पड़ा ।

त्रिपुरुष (सं० क्ली०) त्रयाणां पुरुषाणां समाहारः । १ पित्रादि पुरुषत्रय, पिता, पितामह और प्रपितामह । त्रयः पुरुषाः पित्रादयो भोक्तारो यस्य । २ भोगभेद, सम्पत्तिका वह भोग जो तीन पीढ़ियां अलग अलग करें ।

प्रपितामहने जिसका भोग किया हो, पीछे उसके पुत्रने किया हो और बाद जिसे उसका भी पुत्र भोग कर रहा हो, उसे त्रिपुरुष कहते हैं ; किन्तु पितामह, पिता और पुत्र इन तीनोंके जीवित रहते जो भोग किया जाता है, उसे एक पुरुष भोग कहते हैं ।

(त्रि०) त्रयः पुरुषाः परिमाणमस्याः ठन् तस्य लुक् । ३ पुरुषत्रयपरिमित, जो तीन पीढ़ियोंसे चला आ रहा हो ।

त्रिपुरेशाद्रि (सं० पु०) काश्मीरका एक पर्वत ।

त्रिपुष (सं० पु०) १ ककड़ी । २ खीरा । ३ गेहूँ ।

त्रिपुषा (सं० स्त्री०) त्रीन् वातादिदोषत्रयान् पुष्णातीति पुष-क, ततष्टाप् । कृष्णत्रिवृत्, काला निसोथ ।

त्रिपुष्कर (सं० क्ली०) त्रयाणां पुष्कराणां समाहारः । १ पुष्करत्रय, ब्रह्मकृत तीर्थभेद । २ ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठके भेदसे पुष्कर कुंड । (पु०) ३ नक्षत्र, वार, तिथिरूप अशुभयोगभेद । पुनर्वसु, उत्तराषाढ़ा, कृत्तिका, उत्तरफल्गुनी, पूर्वभाद्र, विशाखा, रवि, मङ्गल और शनिवार तथा द्वितीया, सप्तमी, तथा द्वादशी तिथिमें मृत्यु होनेसे त्रिपुष्करयोग होता है । मृत्युके दिन उक्त वार, नक्षत्र और तिथिके पड़नेसे ही इस प्रकारका त्रिपुष्करयोग लगता है ।

यह त्रिपुष्करयोग बहुत अशुभ है । इस योगमें किसी व्यक्तिकी मृत्यु होनेसे बहुत जल्द उसकी शान्ति करनी चाहिये, नहीं तो उसके परिवारके प्रायः सभी आदमी मर जाते हैं, यहां तक कि उसके वृक्ष आदि भी नष्ट हो जाते हैं । पूर्वोक्त तिथि, वार, नक्षत्रमें जन्म होनेसे जारजयोग होता है । इसमें यदि कोई लाभ हो, तो वैसा ही लाभ और तीन बार होता है, यदि हानि हो, तो वैसी ही हानि और तीन बार होती है और यदि कोई चीज चोरी गई हो, तो वैसीही तीन बार चोरी होती है । इस योगमें मरनेसे प्रथम मास वा वर्षमें पीड़ा होती और उसके पुत्र विनष्ट होते हैं । देवतासे रक्षाकी जाने पर भी पुत्रकी रक्षा नहीं है ।

त्रिपुष्करयोगकी शान्ति अशौचके दिन करनी होती है । इसमें देरी करनेसे धीरे धीरे अनर्थ होने लगता है । अर्थात् पुत्र, भाई, स्त्री, पति, श्वसुर, माता, पिता, स्वसा, चाचा, बहनोई, बड़े भाई, स्वामी, अपत्य इनमेंसे एक एककी मृत्यु क्रमशः होने लगती है । १६ मास पूर्ण पर बान्धव नष्ट होते और यदि बान्धव न हो, तो वास्तु वृक्ष तक भी जीवित नहीं रहते । इस योगमें यदि कोई मरे, तो उसके परिवारमें तीन आदमी और मरते हैं । यदि कोई वस्तु लाभ हो; तो वैसा ही लाभ और तीन बार होता है । इस प्रकार शुभाशुभ कार्यमें तीन तीन कर मङ्गलामङ्गल होते हैं, इसीसे इस योगका नाम त्रिपुष्कर हुआ है । इसकी शान्ति करनेमें वराह-संहितोक्त अयुतहोम करना होता है । यदि इसमें कोई अशक्त हो, तो उसे सुवर्णादि दान करना चाहिये ।

आचार्य द्वारा होम और बलि प्रभृति की जाती हैं । शान्तिविवरण पुष्कर शब्दमें देखो ।

त्रिपृष्ठ (सं० पु०) जैन-पुराणानुसार पोदनपुरके राजा प्रजापतिके पुत्र, इस युगके ९ नारायणोंमेंसे प्रथम नारायण। इनकी माताका नाम भगवती था। नारायण त्रिपृष्ठ ग्यारहवें तीर्थङ्कर भगवान् श्रेयांसनाथके समयमें उत्पन्न हुए थे। इनका जीव पूर्वभवमें मारीचकी पर्यायमें था। इनकी आयु चौरासी लाख वर्षकी थी। इन्होंने प्रतिनारायण अश्वग्रीवको युद्धमें परास्त और निहत किया था तथा आप तीन खण्डके स्वामी बने थे। इनके पास चक्रवर्तीसे आधी सम्पत्ति थी, इसलिये ये अर्द्धचक्रवर्ती कहलाते थे; अन्य ८ नारायणोंके विषयमें भी यही बातें हैं। इनकी १६०० रानियां थीं; पट्टरानीका नाम था स्वयंप्रभा। इनके ज्येष्ठ पुत्रका नाम श्रीविजय था। इनके पिता प्रजापतिने पिहिताश्रव मुनिके निकट दीक्षा ली थी और निर्वाणप्राप्त हुए थे; किन्तु नारायण त्रिपृष्ठ मर कर नरक गये।"

(प्राचीन जैन-इतिहास १म भाग पृ० ११२-१३)

त्रिपौरुष (सं० स्त्री०) त्रीन् पित्रादीन् पुरुषान् व्याप्नोति अण् उत्तरपदवृद्धिः। पित्रादि क्रमसे तीन पीढ़ियोंका भोग। त्रिपुरुष देखो।

त्रिपौलिया (हिं० स्त्री०) तिरपौलिया देखो।

त्रिप्पपूर—मन्द्राजके त्रिवाङ्कुरराज्यके अन्तर्गत त्रिवन्द्रम् तालुकका एक ग्राम। यह अक्षा० ८° ३३´ उ० और देशा० ७६° ५८´ पू०में त्रिवन्द्रम्से ५ मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १६३७ है। यह विष्णुके चरणोंकी पूजा होती है, इस कारण इसकी गिनती तीर्थोंमें की गई है। कहते हैं कि, त्रिवाङ्कुर राजवंशके कुलदेवता अनन्तपद्मनाभका मस्तक तिरुवल्लभमें, धड़ त्रिवन्द्रममें और पैर त्रिप्पपूरमें है। इस कारण यह ग्राम बहुत पवित्र माना जाता है।

त्रिप्रश्न (सं० पु०) त्रयाणां दिग्देशकालानां प्रश्नः। १ दिक् देश और कालविषयक प्रश्न, दिशा, देश और कालसम्बन्धी प्रश्न।

त्रिप्रस्तुत (सं० पु०) त्रिषु स्थानेषु प्रस्तुतः। मद क्षरित मत्तगज, वह हाथी जिसके मस्तक, कपोल और नेत्र इन तीनों स्थानोंसे मद झड़ता हो।

त्रिप्लक्ष (सं० पु०) जनपदविशेष, एक बहुत प्राचीन देशका नाम।

त्रिफला (सं० स्त्री०) त्रयाणां फलानां समाहारः अजादित्वात्। "द्विगोः" (पा० ४।१।२१) इति सूत्रेण ङीप्। १ आंवले, हड़ और बहेड़ेका समूह। इसका पर्याय — त्रिफली, फलत्रय और फलत्रिक है। यह आंखोंके लिए हितकारक, अग्निदीपक, रुचिकारक, सारक तथा कफ, पित्त, मेह, कुष्ठ और विषमज्वरका नाशक माना जाता है। इसके द्वारा वैद्यकमें अनेक प्रकारके घृत आदि बनाए जाते हैं।

त्रिफलाघृत (सं० क्ली०) त्रिफलानां रसेन युक्तं घृतं। घृतऔषधभेद। घी ऽ४ सेर, क्वाथके लिए मिला हुआ त्रिफला ऽ८ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, गायका दूध ऽ४ सेर, चूर्ण मिला हुआ ऽ१ सेर इन्हीं सबके मेलसे यह घृत प्रस्तुत होता है। इसके सेवन करनेसे तिमिररोग जाता रहता है। (भैषज्यर०)

प्रस्तुतकी दूसरी विधि-घी ऽ४, क्वाथके लिए त्रिफला (प्रत्येकका) ऽ२ सेर, जल ४८ सेर, शेष १२ सेर, दूध ऽ४ सेर, कल्कार्थ त्रिफला, त्रिकटु, द्राक्षा, यष्टिमधु, कुटकी, पुण्डरीककाष्ठ, छोटी इलायची, विडङ्ग, नागेश्वर, नीलोत्पल, अनन्तमूल, श्यामालता, रक्तचन्दन, हरिद्रा, दारुहरिद्रा प्रत्येकका दो दो तोला ले कर घृत प्रस्तुत करते हैं। इससे तिमिररोग एवं कामल, अर्बुद, विसर्प, प्रदर, कण्डु आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

(भैषज्यर०)

त्रिफलादिलौह (सं० क्ली०) औषधविशेष। इसके बनानेकी विधि यह है—त्रिफला, मोथा, त्रिकटु, विड़ङ्ग, [illegible], वच, चीतामूल, यष्टिमधु प्रत्येकका चूर्ण १ पल, लौहचूर्ण ८ पल, गुग्गुल ८ पल, इन सबको १२ पल मधुके साथ घोट कर औषध बनाते हैं। प्रातःकाल इसका सेवन करनेसे दुःसाध्य आमवात, पाण्डु, हलीमक, शूल, श्वयथु और विषमज्वर जाता रहता है।

त्रिफलाद्यघृत (सं० क्ली०) १ चक्रदत्तोक्त घृतऔषधभेद। छोटे और बड़ेके भेदसे यह दो प्रकारका है।

लघुत्रिफलाद्यघृतमें ऽ४ सेर घी और १६ सेर शतमूलीके क्वाथमें कल्कार्थ त्रिफला और यष्टिमधु ऽ१ सेर

डाल कर आग पर चढ़ाते हैं। थोड़ी देर बाद उसे उतार कर उसमें एक सेर मधु मिला देते हैं। इससे त्रिदोषज तिमिररोग दूर हो जाता है।

त्रिफलाद्यमहाघृत—घृत ऽ४ सेर, क्वाथके लिए मिला हुआ त्रिफला ऽ२ सेर, जल ऽ६ सेर, शेष ऽ४ सेर, भृङ्गराजरस ऽ४ सेर अथवा वासकमूल ऽ२ सेर, जल ऽ६ सेर, शेष ऽ४ सेर, शतमूलीका रस ऽ४ सेर, छागदुग्ध ऽ४ सेर अथवा पूर्ववत् क्वाथ ऽ४ सेर, आँवलेका रस ऽ४ सेर, कल्कार्थ पीपल, चीनी, द्राक्षा, त्रिफला, नीलोत्पल, यष्टिमधु, क्षीरकाकोलिका, गम्भारीकी छाल, कण्टकारी आदिका मिश्रित भाग ऽ१ सेर लेकर यह महाघृत प्रस्तुत करते हैं। इसके सेवन करनेसे सभी तरहके चक्षुरोग नष्ट हो जाते हैं। यह नेत्ररोगके लिए रामबाण है। (भैषज्यर०)

२ कृमिरोगोक्त घृत—औषधभेद। यह घृत ऽ४ सेर, गोमूत्र ऽ६ सेर, कल्कार्थ त्रिफला, निसोथ, दन्तीमूल, वच, कमलगट्टा ऽ१ सेर लेकर प्रस्तुत किया जाता है। इसके सेवन करनेसे सब प्रकारके कृमिरोग जाते रहते हैं।

दूसरी विधि--हड़, बहेड़ा, आँवला, विड़ङ्ग प्रत्येक १६ पल, पीपल, पीपरामूल, चई, चीतामूल, सोंठ सबको मिला कर १६ पल, दशमूल १६ पल, पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष ऽ८ सेर, घृत ऽ४ सेर, कल्कार्थ सैन्धव लवण ऽ२ सेर सबको एक साथ मिला कर आग पर चढ़ाते हैं। बाद आग परसे उतार कर ऽ१ सेर चीनी डाल देते हैं। इसका गुण भी पूर्ववत् है। (भैषज्यर०)

त्रिफलीकृत (सं० त्रि०) त्रिः त्रिवारं फली कृतः वितुषीकृतः। वह चावल जिसकी भूसी तीन बार निकली गई हो।

त्रिवन्दरम्--मन्द्राजके त्रिवाङ्कुर राज्यकी एक राजधानी। यह अक्षा० ८° २९´ उ० और देशा० ७६° ५७´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ९८९ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः ५७८८२ है। मलयालम देशको सामाजिक प्रथाका एक केन्द्र होनेके कारण यह नगर बहुत प्रसिद्ध है। त्रिवाङ्कुड़ राज्यके प्रासाद सभामण्डप और दुर्ग इसी नगरमें हैं। नगरके चारों ओरका दृश्य बहुत मनोहर है। समुद्रके किनारेसे यह एक कोस दूर है। इसके सामने समुद्र गर्भमें एक बालूका चर और दलदलविशिष्ट द्वीप पश्चिमघाट पर्वतके क्रोड़वर्ती जमीनके साथ मिल गया है। करुमानय नदी इस नदीके निकट हो कर बहती है। नगरका दक्षिण भाग अस्वास्थ्यकर है। घने नारियलके बगीचे होनेके कारण उस अंशकी जलवायु खराब है। यहांका दुर्ग उतना मजबूत नहीं है, चारों ओर दृढ़ और ऊंचे प्राचीरसे घिरा है। त्रिवाङ्कुड़ राज्यका यही सबसे प्रधान शहर है। यहां त्रिवाङ्कुड़के महाराज और वृटिशसेना रहती हैं।

दुर्गमें राजवंशका प्रासाद तथा पद्मनाभ नामक विष्णुमूर्त्तिका विख्यात मन्दिर है। इन सब अट्टालिकाओंके बड़े बड़े बरामदे, झरोखे आदि कारुकार्ययुक्त हैं, जो देखनेमें बहुत सुन्दर लगते हैं। पद्मनाभका मन्दिर बहुत प्राचीन और पुण्यस्थान होनेके कारण प्रसिद्ध है। मन्दिरके रहनेसे ही यहाँ त्रिवाङ्कुड़की राजधानी उठा कर लाई गई। मन्दिरकी देवोत्तर-सम्पत्तिसे वार्षिक ५ हजार रुपयेकी आय है। बहुतोंने आधुनिक राजाओंको यह अस्वास्थ्यकर स्थानका दुर्गवास छोड़नेके लिए अनुरोध किया, किन्तु प्राचीन वासस्थानकी माया तथा ब्राह्मणोंके कथनानुसार वे यह स्थान छोड़ देनेको राजी न हुए। प्रति पुण्याह कर्ममें महाराजकी उपस्थितिका प्रयोजन पड़ता है, इस कारण वे और भी पद्मनाभके मन्दिरका सान्निध्यवास परित्याग नहीं कर सकते। इस नगरमें महाराजकी एक टकसाल जिसमें पैसेके सिवा और कोई मुद्रा नहीं ढलती है। शहरके उत्तरमें स्कन्धावार, अस्त्रागार, अस्पताल, नायर विग्रेड नामक नायर सैन्यदलके कार्यालयादि और युरोपीयनके वासस्थान हैं। सैन्यदलमें प्रायः १४ सौ सेना हैं जिनमेंसे तीन युरोपीय सेनानायक हैं। ये लोग मन्द्राज गवर्नमेण्टसे नियुक्त हुए हैं। महाराजके बाद ही दीवानका पूरा अधिकार रहता है। उनकी वासस्थान तथा कार्यालयादि भी इसी शहरमें हैं। शहरमें एक सदर अदालत, एक चिकित्सालय और अंगरेज डाक्टरके अधीन अस्पताल है, जिनमेंसे गर्भिणीका अस्पताल, साधारण अस्पताल, पागलोंका अस्पताल और

वसन्तरोगका अस्पताल स्वतन्त्र है। यहां महाराजका एक कालेज है जिसकी बनावट देखने योग्य है। १८३५ ई०को शहरमें एक मान-मन्दिर स्थापित हुआ है। महाराज ही इस मन्दिरके अधिष्ठाता हैं। १८५४ ई०में इस मन्दिरकी एक शाखा अगस्त्येश्वर पर्वतके ऊपर स्थापित हुई है। पहले यहाँ यूरोपीय ज्योतिषी रहते थे, अभी उनकी जगह पर देशीय ज्योतिषी हैं। खर्च पड़नेके कारण १६६५ ई०में अगस्त्येश्वरका मान-मन्दिर तोड़ डाला गया। यहाँका 'नेपियर म्युजियम' नामक जादूघर बहुत सुन्दर है। त्रिवाङ्कुरराज्यकी ४५ अतिथिशालाओंमेंसे प्रधान अतिथिशाला जो इसी नगरमें अवस्थित है, राजव्ययसे परिचालित होती है। 'त्रिवाङ्कुर राज-गजट' नामक साप्ताहिक पत्र मलयालम् और अंगरेजी भाषामें इसी स्थानसे प्रकाशित होता है। नागरकयल शहरमें 'त्रिवाङ्कुर टाइम्स' नामक अंगरेजी समाचारपत्र महीनेमें तीन बार निकलता है। त्रिवाङ्कुड़के राजाकी राय लेकर अङ्गरेजोंसे यहां टेलिग्राफआफिस खोला गया है।

त्रिबन्धन (सं० पु०) १ हर्यश्वके पौत्र एक राजाका नाम। २ जाग्रदादि तीनों अवस्थाके जीव।

त्रिबन्धु (सं० पु०) त्रिलोकका बन्धु।

त्रिबलि (सं० स्त्री०) त्रिगुणिता बलिः। उदरस्थित वलीत्रय, वे तीन बल जो पेट पर पड़ते हैं।

त्रिबलीक (सं० क्ली०) तिस्रो बल्यो यत्र कप्। १ वायु। २ मलद्वार, गुदा।

त्रिबाहु (सं० पु०) त्रयो बाहवो यस्य। १ रुद्रानुचरभेद, रुद्रके एक अनुचरका नाम। २ असियुद्धाकारभेद, तलवारका एक हाथ।

त्रिभ (सं० क्ली०) त्रयाणां भानां राशीनां समाहारः। १ लग्नादि राशित्रय, लग्न इत्यादि तीनों राशि। २ तीन राशि। (त्रि०) ३ नक्षत्रत्रययुक्त, जिसमें तीन नक्षत्र हों; रेवती, अश्विनी और भरणी नक्षत्रयुक्त आश्विन, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रयुक्त भाद्र, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी और हस्ता नक्षत्रयुक्त फाल्गुन मास।

त्रिभङ्ग (सं० लि०) त्रीणि भङ्गानि वक्राणि यस्य। त्र व त्रि-भङ्ग, तीन जगहसे टेढ़ा, श्रीकृष्णकी एक मूर्त्ति जिसमें भगवान्‌की ग्रीवा, कटि और जानु कुछ वक्र भावसे बने होते हैं।

त्रिभङ्गी (सं० स्त्री०) १ मात्रावृत्त छन्दोभेद, एकमात्रिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें ३२ मात्राएं होती हैं और १०,८,८,६ मात्राओं पर यति होती है। २ तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक। इसमें एक गुरु, एक लघु और एक प्लुत मात्रा होती है। ३ शुद्ध रागका एक भेद। (त्रि०) ४ त्रिभङ्ग, तीन जगहसे टेढ़ा।

त्रिभजीवा (सं० स्त्री०) त्रिभस्य जीवा, ६-तत्। त्रिज्या, व्यासकी आधी रेखा।

त्रिभज्या (सं० स्त्री०) व्यासार्द्ध रेखा, त्रिजया।

त्रिभण्डी (सं० स्त्री०) त्रीन् वातादि दोषान् भण्डति परिहसतीति भण्ड-अण्, ततो ङीप्। त्रिवृता, निसोथ।

त्रिभद्र (सं० क्ली०) त्रिषु नखक्षतदन्तक्षतमर्द्दनेष्वपि भद्रं यस्मिन्। प्रसङ्ग, भोग, रतिक्रिया।

त्रिभमौर्विका (सं० स्त्री०) त्रिजया, व्यासकी आधी रेखा।

त्रिभाग (सं० पु०) तृतीयो भागः वृत्तौ संख्या शब्दस्य पूरणार्थत्वात्। तृतीय भाग, तीसरा हिस्सा।

त्रिभानु (सं० पु०) तुर्वसु वंशके एक राजाका नाम।

त्रिभाव (सं० पु०) त्रिषु कालेषु भावोऽस्य। त्रिकालिक पदार्थ।

त्रिभुक्ति (सं० पु०) त्रिषु भुक्तिरस्य। तिरहुत या मिथिला-देश।

त्रिभुज (सं० क्ली०) त्रयो भुजा यत्र। त्रिबाहुक, तीन भुजाओंका क्षेत्र। क्षेत्र देखो।

त्रिभुवन (सं० क्ली०) त्रयाणां भुवनानां लोकानां समाहारः, पात्रादित्वात् ङीप्। त्रिलोक, स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल।

त्रिभुवन—समाधितन्त्र नामक जैन-ग्रन्थके रचयिता।

त्रिभुवन चक्रवर्त्ती—दक्षिण प्रदेशके राजाओंकी उपाधि। चेर, चोल, पाण्ड्य, चालुक्य प्रभृति वंशोंमें बहुतसे राजाओंने यह उपाधि ग्रहण की थी।

त्रिभुवनपाल—१ गुजरातके चौलुक्य वंशके एक राजाका नाम। ये तिहुनपाल नामसे प्रसिद्ध थे। इन्होंने १२८८

सम्वतसे लेकर केवल चार वर्ष तक राज्य किया था। किसीके मतसे इन्होंने ही सूर्यशतकको टीका रची थी।

२ गौड़राज धर्मपालके महासामन्ताधिपति। ये ब्राह्मण और पण्डितोंका खूब आदर करते थे। इन्हींके अनुरोधसे राजा धर्मपालने नारायण भट्टारकको बहुतसी जमीन दान दी थी। दूताङ्गद नामक संस्कृत छाया नाटकके रचयिता कवि सुभटने इन्हींके आश्रय और उत्साहसे उक्त पुस्तक रचना की थी।

त्रिभुवनलाल—नारदविलास नामक संस्कृतग्रन्थके रचयिता।

त्रिभुवनेश्वर लिङ्ग (सं० क्लो०) भुवनेश्वर वा एकाम्र क्षेत्रका प्रधान लिङ्ग। एकाम्र और भुवनेश्वर देखो।

त्रिभुवनसुन्दरी (सं० स्त्री०) १ दुर्गा। २ पार्वती।

त्रिभूम (सं० पु०) तिस्रो भूमयः ऊर्द्धाधो मध्यस्था अस्य, अच समासान्तः। प्रासादभेद, तीन खण्डोंवाला मकान, तिमहला घर।

त्रिभोनलग्न (सं० क्लो०) क्षितिजवृत्त पर पड़नेवाले क्रान्तिवृत्तका ऊपरी मध्य भाग।

त्रिमङ्गल—एक विख्यात द्राविड़ पण्डित। इन्होंने त्रिमङ्गलवार्त्तिक नामक मध्वाचार्यका मतपोषक एक बड़ा ग्रन्थ प्रणयन किया है।

त्रिमण्डला (सं० स्त्री०) लूता भेद, एक प्रकारको जहरीली मकड़ी।

त्रिमद (सं० पु०) त्रिगुणितो मदः संज्ञात्वात् कर्मधा०। विद्यामद, धनमद, और अभिजनमद ये तीन प्रकारके मदोत्पन्न गर्व वय, परिवार, विद्या और धन इन तीन कारणोंसे होनेवाला अभिमान। २ मुस्ता, चित्रक, विड़ङ्ग, मोथा, चीता और बाय बिड़ङ्ग इन तीन चीजोंका समूह।

त्रिमधु (सं० क्लो०) त्रिगुणितं मधु संज्ञात्वात् कर्मधा०। १ दुग्धादित्रय, दुध, चीनी और शहद इन तीनोंका समूह। (पु०) २ ऋग्वेदैकदेश, ऋग्वेदके एक अंशका नाम। ३ ऋग्वेदका यागभेद, ऋग्वेदका एक यज्ञ। ४ वह व्यक्ति जो विधिपूर्वक उक्त अंश पढ़े। ५ मधुवातादि तीनों ऋक् जाननेवाला पुरुष।

त्रिमधुर (सं० क्लो०) त्रिगुणितं मधुरं संज्ञात्वात् कर्मधा०। घी, शहद, और चीनी इस तीनका समूह।

त्रिमल्ल—इस नामके बहुतसे संस्कृत और तामिल ग्रन्थकार दक्षिण प्रदेशमें हो गए हैं, जिनमेंसे निम्नलिखित प्रधान हैं--

१म—इन्होंने गीतगौरी, गोपालाख्या और भक्तिविलास चम्पू प्रणयन किए।

२य—इन्होंने 'अनुव्याख्या' नामक सिद्धान्तकौमुदीकी एक व्याख्या पुस्तक लिखी है।

३य—ये तिरुमल्ल आवाई नामसे प्रसिद्ध हैं। द्वैतसिद्धि नामक वेदान्त, सहस्रकिरणी और सारकौमुदी प्रभृति संस्कृत ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं।

त्रिमल्लशान—आश्वलायनीय विध्यपराध-प्रायश्चित्त नामक संस्कृत ग्रन्थकार।

त्रिमल्लतनय—कात्यायनस्नानसूत्रके एक टीकाकार।

त्रिमल्लभट्ट—अलङ्कारमञ्जरी नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

त्रिमल्लभट्ट वैद्य—आयुर्वेदके जाननेवाले एक प्रसिद्ध तैलङ्ग पण्डित। ये शिङ्गणके पौत्र, वल्लभके पुत्र और रसप्रदीपके रचयिता शङ्करभट्टके पिता थे। इन्होंने द्रव्यगुणशतश्लोकी, योगतरङ्गिनी, वृत्तमाणिक्यमाला और वैद्यचन्द्रोदय आदि वैद्यकग्रन्थ प्रणयन किये।

त्रिमातृ (सं० त्रि०) त्रयाणां लोकानां माता, निर्माता। त्रिलोक-निर्माणकारक, तीनों लोकोंके बनानेवाले।

त्रिमात्र (सं० पु०) तिस्रः मात्रा उच्चारणकालेऽस्य। प्लुत स्वर। एकमात्र स्वर ह्रस्व, द्विमात्र स्वर दीर्घ, त्रिमात्र स्वर प्लुत और व्यञ्जन अर्द्धमात्र है, प्रणव त्रिमात्र है, प्रत्येक कार्यके प्रारम्भमें त्रिमात्र प्रणव उच्चारण करना पड़ता है।

त्रिमात्रिक (सं० त्रि०) तीन मात्राओंका, जिसमें तीन मात्राएँ हों, प्लुत।

त्रिमार्ग (सं० क्लो०) त्रयाणां मार्गाणां समाहारः। तीन पथ, तिमुहानी।

त्रिमार्गगा (सं० स्त्री०) त्रिभिर्मार्गैः गच्छति गम-ड। गङ्गा।

त्रिमार्गगामिनी (सं० स्त्री०) त्रिभिर्मार्गैं गच्छति गम-णिनि-ङीप्। गङ्गा।

त्रिमार्गा (सं० स्त्री०) त्रयो मार्गाः यस्याः। १ गङ्गा। २ तिमुहानी।

त्रिमार्गी (सं० स्त्री०) त्रिमार्गा देखो।

त्रिमाली—बम्बई प्रदेशमें रहनेवाली एक प्रकारकी भिक्षाजीवि जाति। इन लोगोंका कहना है, कि बहुत दिन हुए तैलङ्गसे यह जाति कर्णाटक प्रदेशमें आ बसी है। ये लोग तेलगु भाषा बोलते हैं। भिक्षा ही इनकी जातिगत उपजीविका है। कोई कोई रुद्राक्ष, तुलसीमाला, यज्ञसूत्र आदिका व्यवसाय करके भी जीविका निर्वाह करते हैं। मछली, मांस, शराब आदि व्यवहार इन लोगोंमें खूब है। ये लोग १० दिन तक अशौच मानते हैं। आचार, व्यवहार, व्रत, उपवासादि मराठी कुणवियों सरीखा है। बाल्यविवाह और विधवा विवाह आदिकी प्रथा प्रचलित है।

त्रिमुकुट (सं० पु०) त्रीणि मुकुटानीव शृङ्गानि यस्य। त्रिकुट पर्वत, वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियां हों।

त्रिमुख (सं० पु०) त्रीणि मुखानि यस्य। १ शाक्यमुनि। २ गायत्री जपनेकी चौबीस मुद्राओंमेंसे एक मुद्रा।
मुद्रा देखो।

त्रिमुखा (सं० स्त्री०) त्रीणि मुखानि यस्याः। बौद्ध देवीभेद, मायादेवी। पर्याय—मारीची, वज्रकालिका, विकटा, वज्रवाराही, गौरी और पात्रिरथा है।

त्रिमुखी (सं० स्त्री०) बुद्धकी माता, मायादेवी। महायान शाखाके बौद्धदेवी रूपसे इनकी उपासना करते हैं।

त्रिमुनि (सं० क्ली०) त्रयाणां मुनीनां समाहारः पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि ये तीनों मुनि। २ पाणिनि आदि तीनों मुनियोंके बनाये हुए व्याकरण।

त्रिमूर्त्ति (सं० पु०) तिस्रो मूर्त्तयो यस्य। १ ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता। २ सूर्य। (स्त्री०) ब्रह्मशक्तिभेद, ब्रह्माकी एक शक्ति। यह शक्ति एकरूपिणी होने पर भी जगज्जनपालनके रूपमें भिन्नरूपकी हो गई है। ३ बौद्ध देवीभेद, बौद्धोंकी एक देवी।

त्रिमूर्द्ध (सं० पु०) त्रयो मूर्द्धानोऽस्य, बहुव्री० डीषसमान्तः। १ तीन देवता। (त्रि०) २ जिसके तीन मस्तक हों।

त्रिमोहानी—यशोर जिलेका एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० २२°५४ उ० और देशा० ८९°१० पू०, केशवपुरसे २॥ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहाँ भद्रानदी कपोताक्षसे अलग हो कर बहती है। जिस जगह इस नदीके तीन मुख वा मुहाने हो गये हैं वही जगह त्रिमोहानी नामसे प्रसिद्ध है। नदीके किनारे यह स्थान हाटके लिये प्रसिद्ध है। इस जगहके ग्रामका नाम चन्द्रा है। यहां पहले चीनीका बहुत कारबार चलता था, लेकिन अब उतना नहीं होता। तौभी यहांसे दूर दूर देशोंमें चीनीकी रफ़्नी होती है। चैत मासमें बारुणीके समय यहां एक बड़ा मेला लगता है। त्रिमोहानीसे एक पाव दूरमें मिर्जानगर है जहां मुसलमानोंके समयमें यशोरके फौजदार रहते थे। १८१५ ई० तक यह स्थान यशोरके मध्य एक बड़ा नगर गिना जाता था, किन्तु अभी इसका पूर्व गौरव जाता रहा।

त्रिम्बक—बम्बईके नासिक जिलेका एक प्रसिद्ध शहर और तीर्थस्थान। यह अक्षा० १९°५४´ उ० और देशा० ७३°३३´ पू० नासिक नगरसे २० मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ३३२१ है।

स्थानमाहात्म्यमें यह स्थान त्रिम्बक नामसे प्रसिद्ध है। त्रिम्बकेश्वर महादेव यहां प्रतिष्ठित हैं, इसीसे यह पुण्य स्थानोंमें गिना गया है। इस त्रिम्बकके कई एक माहात्म्य पाये जाते हैं, जिनमेंसे एक पद्मपुराणके पातालखण्डके अन्तर्गत है, एक वराहपुराणके और एक नारदपुराणके उत्तर खण्डमें वर्णित हैं।

यहांके त्रिम्बकेश्वर-महादेवका मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। वर्त्तमान मन्दिर सदाशिव रावसे बनाया गया है। मन्दिरके खर्चके लिये गवर्मेण्टसे वार्षिक १२०००) रु० मिलते हैं। अहल्याबाईने यहां एक सुन्दर मन्दिर निर्माण किया था।

त्रिम्बक दुर्ग पहाड़के ऊपर समुद्रपृष्ठसे ४२४८ फुट और निकटवर्त्ती ग्रामसे १८०० फुट ऊँचे पर अवस्थित है। ऐसा दुर्भेद्य और दुर्गम दुर्ग इस प्रान्तमें और कहीं नहीं देखनेमें आता। दुर्गमें जानेके केवल दो

द्वार हैं। दक्षिण द्वार होकर रसद आदि पहुँचाई जाती है और उत्तर द्वार होकर केवल एक मनुष्य जा सकता है। यह चारों ओर ऊँचे नीचे पहाड़ोंसे घिरा है। दुर्ग द्वार छोड़ कर पहाड़ पर कहीं कहीं बहुतसे बुर्ज हैं। १८५७ ई०में पण्डाओंको उत्तेजनासे कई एक भील और ठाकुरोंने यहांके सरकारी कोषागार पर आक्रमण किया था। दक्षिण प्रदेशके भिन्न भिन्न स्थानोंसे बहुतसे यात्री यहां जुटते हैं। बृहस्पतिके सिंह राशिमें प्रवेशके समय यहां भी कुम्भ लगता है। आमदनी ८८००) रु०की है। इसके सिवा वार्षिक २५००) रु० तीर्थयात्रियोंसे भी प्राप्त होती हैं। शहरमें केवल एक चिकित्सालय है।

त्रिम्बकजी देङ्गलिया—पेशवा बाजीरावके एक विश्वासी और आश्रित व्यक्ति। ये पहले एक सामान्य जासूस वा गुप्तचरका काम करते थे। जिस समय होलकरके डरसे बाजीराव पूनासे पहाड़में भाग आये थे, उस समय इन्होंने बाजीरावके पत्रका जवाब बहुत अल्प समयमें उन्हें ला कर दिया था। इनकी कार्यकुशलताको देख बाजीराव इन पर बहुत खुश हुए थे। तभीसे त्रिम्बकजी हमेशा उन्हींके साथ रहा करते थे। वे अत्यन्त चतुर, धूर्त्त तथा पटु थे। थोड़े ही समयमें बाजीरावके हृदय पर इन्होंने अपना अधिकार जमा लिया। बाजीराव सबोंकी अपेक्षा इन पर अधिक विश्वास रखते थे। अतः धीरे धीरे ये उनके एक प्रधान मन्त्रदाता हो गये। सच पूछिये तो ये बाजीरावका बहुत सम्मान करते थे। बाजीराव जो फरमाते, त्रिम्बक हिताहितका बिचार किये बिना उसे फौरन कर डालते थे। क्रमशः इनकी अवस्था उन्नत होने लगी। सेनापति गणपत रावकी जागीर जब जब्त कर ली गई, तब इन्होंने ही सेनापतिका पद ग्रहण किया था।

इसके कुछ दिन बाद ही खुसरूजीने जब कर्णाटक प्रदेशके शासनकर्तृत्वका पद त्याग कर रेसिडेन्सी एजेण्टका पद प्राप्त किया तब त्रिम्बकजी कर्णाटकके शासनकर्त्ता बनाये गये।

अंगरेजोंके ऊपर ये बहुत जलते थे। ब्रिटिशराज्यको ध्वंस करने तथा इनकी क्षमताको भारतवर्षसे विलुप्त कर डालनेके लिये इन्होंने कोई कसर उठा न रखी थी। इनकी उत्तेजनासे बाजीराव ब्रिटिश गवर्मेण्टके शत्रु हो गये। उनके पंजेसे बाजीरावको स्वाधीन करनेके लिये त्रिम्बक गोसावी और अरबी सेना नियुक्त करने लगे। १८१५ ई०में इन्हींके परामर्शसे बाजीरावने सिन्धिया, भोंसले, होलकर और पिण्डारियोंके पास गुप्तचर भेजा। बाद सब कोई मिलकर येनकेन प्रकारेण ब्रिटिश पराक्रम खर्व हो जाय, वही षड़यन्त्र रचने लगे।

इसी वर्ष इन्होंने पण्ढरपुर नामक पुण्यक्षेत्रमें गङ्गाधर शास्त्रीको गुप्तभावसे मरवा डाला। इस ब्रह्महत्याके पापसे वे पीछे विलुप्त हो ही गये। यह पापकाण्ड छिपानेसे भी छिप न सका। बम्बईके गवर्नर एल फिंष्टन साहबको इस बातकी खबर लग गई। उन्होंने त्रिम्बकजीको बहुत जल्द ब्रिटिश गवर्मेण्टके हाथ अर्पण करनेके लिये पेशवाको बुला भेजा। बाजीराव तो त्रिम्बकको बहुत चाहते थे। अतः वे उन्हें ब्रिटिश गवर्मेण्टके हाथ लगा देनेको राजी न हुए। इसपर एक दल ब्रिटिश सेनाने पूना पर धावा मारा। त्रिम्बकजीने कोई उपाय न देख (२५ सितम्बरको) ब्रिटिश गवर्मेण्टको आत्मसमर्पण किया। सालसेटके थाना दुर्गमें वे बन्दी हुए। बाजीरावने उन्हें छुड़ा लानेके लिये अपना कुल दिमाग लड़ाया। थाना दुर्गमें केवल गोरा ही पहरू थे, उन्हें रिशवत दे कर वशीभूत करना अथवा उनकी आँखोंमें धूल डाल कर उन्हें भगा देना कोई सहज काम नहीं था। केवल एक साईसकी सहायतासे त्रिम्बकजी किसी तरह थाना दुर्गसे भाग आये थे। साईसने त्रिम्बकजीसे कोई बात तो की नहीं, पर इशारेसे घोड़ेका शरीर मलमल कर एक गीत गाया जिसका मर्म इस प्रकार था,—'झाड़ीके मध्य अनेक धनुर्धर रहते हैं, वहीं पेड़के तले एक घोड़ा बंधा हुआ है, फौरन वहां जाओ और घोड़े पर सवार हो दाक्षिणात्यको स्वाधीन करो।'

त्रिम्बकजी उस गानका आशय समझ गये, पर यूरोपीय सैनिकोंको कुछ भी समझमें न आया। सचमुच वहांसे भागते समय इन्होंने खूब बहादुरी दिखलाई थी। आज भी महाराष्ट्रगण त्रिम्बकके दूसरे कार्यके लिए तो नहीं, पर उनके भागनेके साहस और कौशलकी खूब तारीफ करते हैं।

वहांसे भाग आने पर वे चुप ही न बैठे। अंग्रेजोंके ऊपर उनका क्रोध और भी बढ़ गया। वे नासिक, सङ्गमनेरि, खानदेश और महादेश आदि पार्वतीय स्थानोंमें घूम घूम कर भील, रामुसी और वङ्ग सैन्यको संग्रह करने लगे। फलतनके अन्तर्गत रेंवाड़ नामक स्थानमें उनका प्रधान अड्डा था। वहाँ जङ्गलमें जब ये सो जाते थे, तब ५०० रामूसी सेना सशस्त्र उनकी रक्षा करती थी। बाजीराव भी धनसे उन लोगोंकी सहायता करने लगे।

अब त्रिम्बक पिण्डारियोंकी नाईं वृटिश राज्यमें उत्पात मचाने लगे। एलफिन्स्टन साहबने फिर बाजीरावको कहला भेजा कि वे तुरंत त्रिम्बकजीको पकड़वा दें, नहीं तो उनका बहुत अनिष्ट होगा। जब तक वे त्रिम्बकजीको पकड़वा न देंगे, तब तक सिंहगढ़, पुरन्दर, तथा रायगढ़का दुर्ग वृटिशके हाथ रहेगा। कुछ दिन तो बाजीरावने मीठी मीठी बातोंसे एलफिन्ष्टनको भुलावेमें डालनेकी चेष्टा की, पर उससे कोई फल न हुआ। ७वीं मईको (१८१७ ई०) एलफिन्सटनने पुनः कहला भेजा कि जब अब भी पेशवाने त्रिम्बकके प्रतिभूस्वरूप तीन दुर्गको न छोड़ा, तब पूना पर अधिकार करनेके लिये सेना भेजनी पड़ी। इधर पूनाके पास अंग्रेजी सेना पहुंच गई। बाजीरावने उक्त तीनों दुर्ग छोड़ दिये और अङ्गरेजोंको प्रसन्न रखनेके लिए यह घोषणा कर दी कि त्रिम्बकको मरा या जिन्दा जो पकड़ कर लावेगा, उसे दो लाख रुपये पारितोषिकमें दिये जांयगे। इसके सिवा वे त्रिम्बकजीके अनुगत आत्मीय स्वजनोंके ऊपर भी लोगोंको दिखलानेके लिये अत्याचार करने लगे।

जो कुछ हो, इस बार बाजीराव प्रकाश्य रूपसे चाहे जो करें, पर त्रिम्बकजी जिससे वृटिशके पंजेमें न पड़ें, गुप्तरूपसे उसका भी आयोजन करने लगे। अभी जिससे वृटिशराज्य ध्वंस हो जाय, एलफिन्ष्टन भी शीघ्र ही इस लोकसे चल बसे, बाजीराव इसकी भी चिन्तामें लग गये। अपनी इस कामनाको पूरा करनेके लिये बाजीरावने प्रधान मन्त्री बापूगोखलाको एक कोटि रुपये दिये। भोंसले, सिन्धिया और होलकरसे भी पत्र-व्यवहार होता था। इसी समय यशोवन्तरावने घोड़पड़ेमें एलफिन्ष्टनको यह गुप्त समाचार कह दिया। एलफिन्ष्टन बाजीरावसे जा मिले। इस समय भी दोनोंमें अच्छा सद्भाव था। जो कुछ हो, थोड़े दिनके बाद यह सुलगती आग धधक उठी। चारों ओरसे मराठीसेना पूनामें आने लगी। एलफिन्ष्टन साहब विपद्‌की आशङ्का कर पूनासे दो कोस उत्तर किर्की ग्रामको चले गये। १८१७ ई०के ५ नवम्बरको किर्कीमें एक छोटी लड़ाई हुई। १७ नवम्बरको अंगरेजीसेनाने पूना पर अधिकार कर लिया। बाजीराव कई एक युद्धोंमें परास्त हो ससैन्य रणसे भाग गये।

त्रिम्बकजी जूनिरके उत्तर लालघाटके बामनवाड़ीग्राममें दलबलके साथ पेशवासे मिले। यहांका गिरिसङ्कट बहुत दुर्गम था, जेनरल स्मिथ ससैन्य उनका पीछा करते आ रहे थे। त्रिम्बकने यहां प्राणपणसे उनका सामना किया था। कई एक युद्धोंमें पराजित हो जानेसे महाराष्ट्र-सेना निरुत्साह हो गई थी। अतः त्रिम्बकजीके विशेष प्रयत्न करने पर भी वे युद्ध कर न सके। पुनः पेशवाको लड़ाईमें पीठ दिखानी पड़ी। कुड़िगाँ नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। जिसमें बहुतसे यूरोपीय कर्मचारी मारे गये तथा घायल हुए। त्रिम्बकने युद्धमें साहस तो खूब दिखलाया, पर वे अंगरेजी आग्नेय अस्त्रके सामने ठहर न सके। महाराष्ट्रकी हार हुई। युद्धमें बाजीरावने त्रिम्बक आदिको सम्बोधन देते हुये कहा था, तुम लोगोंको धिक्कार है, कि मुट्ठी भर सेनाको तुम-लोग हरा न सके, अभी वह तुम्हारा गर्व कहां चला गया ?

कई जगह भटकते भटकते त्रिम्बकजी वृटिशके फंदेमें फंस गये। इस बार उन्हें चुनारके दुर्गमें कैद किया गया, अब फिर मुक्ति लाभकी आशा न रही।

त्रिम्रत (सं० पु०) त्रिवृत्त, निसोथ।

त्रियम्बक (सं० पु०) त्रीणि अम्बकानि यस्य। इयङ् वा (छन्दस्युभयथा। पा ६।४।७७) त्रिनेत्र, महादेव।

त्रियव (सं० क्लो०) त्रयो यवाः परिमाणं यस्य। परिमाण-विशेष, एक परिमाण जो तीन जौके बराबर या एक रत्तीके लगभग होता है।

त्रियष्टि (सं० स्त्री०) त्रिषु वातपित्तकफात्मकेषु दोषेषु यष्टिरिव । १ क्षुपभेद पित् पापड़ा, शाहतरा । २ त्रिगुच्छ हार ।

त्रियान (सं० क्ली०) बौद्धोंके तीन प्रधान भेद या यान, यथा महायान, हीनयान और मध्यमयान ।

त्रियामक (सं० क्ली०) त्रिषु कालेषु यमयति यम-ण्वुल् पाप ।

त्रियामा (सं० स्त्री०) त्रयो यामा अस्याः । निशा, रात्रि । रातके पहले चार दण्डों और अन्तिम चार दण्डोंकी गिनती दिनमें की जाती है, जिससे रातमें केवल तीन ही पहर बच रहते हैं, इसीसे उसे त्रियामा कहते हैं । २ हरिद्रा, हल्दी । ३ यमुना नदी । ४ कृष्ण त्रिवृत्, काला निसोथ । ५ नीली, नीलका पेड़ ।

त्रियुग (सं० पु०) त्रीणि युगानि सत्यत्रेताद्वापररूपाणि आविर्भावकालोऽस्य । १ विष्णु । २ वसन्तादि काल त्रय, वसन्त, वर्षा और शरद् ये तीन ऋतुएं । ३ सत्य, त्रेता और द्वापर ये तीनों युग । (त्रि०) ४ षड़ैश्वर्यशाली, जिसे छवों प्रकारके ऐश्वर्य हों ।

त्रियूह (सं० पु०) कपिलाश्व, सफेद रंगका घोड़ा ।

त्रिरत्न (सं० क्ली०) बौद्धधर्मके प्रधान तीन धन यथा बुद्ध, धर्म और सङ्घ ।

त्रिरश्मि (सं० क्ली०) त्रिकोण ।

त्रिरसक (सं० क्ली०) त्रयाणां रसकाणां समाहारः । १ त्रिप्रकार रसयुक्त सुरा, वह मदिरा जिसमें तीन प्रकारके रस या स्वाद हों । २ तीन बार मधु पान ।

त्रिरात्र (सं० क्ली०) त्रिसृणां रात्रीणां समाहारः अच् समा० । संख्यापूर्वत्वात् क्लीवता । १ रात्रित्रय, तीन रात । २ तदुपलक्षित तीन दिन । ३ गर्गत्रिरात्र नामक योग । ४ एक प्रकारका व्रत जिसमें तीन दिनों तक उपवास करना पड़ता है ।

त्रिरूप (सं० पु०) त्रीणि रूपाण्यस्य । अश्वमेधीय अश्वभेद, अश्वमेध यज्ञके लिये एक विशेष प्रकारका घोड़ा ।

त्रिरेख (सं० पु०) तिस्रो रेखा यत्र । १ शङ्ख । (क्ली०) तिसृणां रेखाणां समाहारः । २ रेखात्रय, तीन रेखा । (त्रि०) ३ तीन रेखाओंवाला, जिसमें तीन रेखाएं हों ।

त्रिल (सं० पु०) त्रयो लाः लघुवर्णा यत्र । लघुवर्णयुक्त नगण ।

त्रिलघु (सं० त्रि०) त्रयो लघवो यत्र । १ छन्दोग्रन्थ प्रसिद्ध नगण । २ पुरुषविशेष, वह पुरुष जिसकी गर्दन, जांघ और मूत्रेंद्रिय छोटी हो । पुरुषके लिये ये लक्षण शुभ माने जाते हैं । (काशीखंड ११ अ०)

त्रिलवण (सं० त्रि०) त्रयाणां लवणानां समाहारः, त्रिगुणितं लवणं संज्ञात्वात् वा कर्मधारयः । लवनत्रय; सेंधा, साँभर और सोचर नमक ।

त्रिलिङ्ग (सं० त्रि०) त्रीणि लिङ्गानि अस्य । १ पुंस्त्वादि तीनों लिङ्गयुक्त शब्द । त्रीणि सत्वादीनि लिङ्गानि अनुमापकानि अस्य । २ अहङ्कार आदि । ३ वात इत्यादि धातुदोषसे उत्पन्न एक प्रकारका रोग । ४ तैलङ्ग देशका बना संस्कृत रूप ।

त्रिलिङ्ग—(तैलङ्ग) दक्षिण भारतका एक प्राचीन देश । कोई कोई कहते हैं, कि कालेश्वर, श्रीशैल और भीमेश्वर नामक तीन पहाड़ों पर शिवलिङ्ग रूपमें आविर्भूत हुए थे शायद इसी कारण इस प्रदेशका नाम त्रिलिङ्ग पड़ा है । अभी उसीका अपभ्रंश रूप तैलङ्ग है । फिर कोई कोई कहते हैं, कि प्राचीन कालमें इसका नाम त्रिकलिङ्ग था, 'क' का लोप हो कर त्रिलिङ्ग हुआ, एवं अपभ्रंशरूपमें कोई तो तिलङ्ग कोई तैलङ्ग और कोई तिलिङ्ग इत्यादि कहा करते हैं । कलिंग शब्दमें विस्तृत विवरण देखो ।

यथार्थमें त्रिकलिङ्गसे त्रिलिङ्ग हुआ है वा नहीं, यह ठीक ठीक कह नहीं सकते । महाभारतके समयमें इसका विस्तार वैतरणी नदीसे लेकर गोदावरीके कलिङ्ग राज्य तक था । किन्तु उस समय इसका कोई अंश त्रिकलिङ्ग वा त्रिलिङ्ग नामसे प्रसिद्ध न था । १ली शताब्दीमें प्लिनिने मोदोगलिङ्गम् (Modogalingam) शब्दका उल्लेख किया है । तैलङ्ग शब्दमें मुदुका अर्थ तीन है, सुतरां मोदोगलिङ्गम् शब्दके प्रयोगसे त्रिकलिङ्ग नामका बोध हो सकता है । २री शताब्दीमें टलेमीने त्रिग्लिप्टन वा त्रिग्लिफन् देशका उल्लेख किया है । यह शब्द संस्कृत त्रिकलिङ्ग वा त्रिलिङ्ग इन दो शब्दोंका रूपान्तर मात्र हो सकता है ।

६ठी शताब्दीसे शिलालिपि वा ताम्रशासनमें त्रिक-

लिङ्ग देशका उल्लेख पाया जाता है। उत्कल और कलिङ्गके राजाओंने भी 'त्रिकलिङ्गनाथ' नामसे अपना परिचय दिया है।

११वीं शताब्दीके प्रथमभागमें उत्कलराज उद्योतकेशरीके समयमें उत्कीर्ण ब्रह्मेश्वर-लिपिमें हम लोग सबसे पहले 'तिलङ्ग' देशका उल्लेख पाते हैं। इस शिलालेखमें लिखा है, कि महाराज उद्योतकेशरीके पूर्व पुरुष पहले तिलङ्ग देशमें राज्य करते थे, वहांसे आ कर उन्होंने उत्कल पर अधिकार जमाया। यही तिलङ्ग देश अभी तैलङ्ग नामसे मशहूर है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु यह 'तिलङ्ग' शब्द 'त्रिकलिङ्ग' शब्दका अपभ्रंश है वा 'त्रिलिङ्ग'का इसका कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता। लेकिन यह कह सकते हैं, कि कलिङ्ग राज्यका दक्षिणांश एक समय तिलङ्ग नामसे विख्यात था। शक्तिसङ्गमतन्त्रके मतानुसार श्रीशैलसे लेकर चोलेशके मध्य भाग तक तैलङ्गदेश है।

श्रीशैल कर्णुल जिलेमें तथा चोलेश वा चोललिङ्गस्वामी उत्तर आर्कट जिलेके शोलङ्गिपुरमें अवस्थित है। कृष्णा नदीसे पेन्नर वा पिनाकिनी नदी तक दाक्षिणात्यके पूर्वांशमें प्रायः समस्त भूभाग पहले तैलङ्ग नामसे मशहूर था। कुछ लोगोंका मत है कि पुराणमें जो अंध्र-राज्यका उल्लेख है, वही तैलङ्ग देश है। ७वीं शताब्दीमें चीन परिव्राजक यूएनचुयंग अंध्रराज्यमें आये थे। उनके मतानुसार यह राज्य ३०० लीग अर्थात् प्रायः ५००० मील विस्तृत* है और इसकी राजधानीका नाम वेङ्गलि (वेङ्गि) है। गोदावरी जिलेमें इलोरासे ६ मील उत्तर वेङ्गि वा वेगि पड़ता है।† इस हिसाबसे (कनिंहम आदि प्रत्नतत्त्वविदोंके मतसे) अन्ध्र वा तैलङ्ग देश गोदावरी और कृष्णा नदीका मध्यवर्त्ती भूभाग होता है।

आइन-इ-अकबरीमें‡ 'तैलिङ्गाना' वा तैलङ्ग सूबा बरार या बेरारके दक्षिणांशमें निर्दिष्ट हुआ है। उस समय सरकार तेलिङ्गना १८ परगनोंमें विभक्त था और ७१८०४००० दाम राजस्व वसूल होता था।

तिब्बतके पण्डित तारानाथने १६०८ ई०में लिखा है, 'कलिङ्ग त्रिलिङ्गका ही कुछ अंश है।'*

फिर १७८३ ई०में रेनेल साहब लिख गये हैं, 'तेलिङ्गनकी राजधानी वरङ्गल है। यह कृष्णा और गोदावरीके बीच तथा विसियापुरके (बिजापुर ?) पूर्वमें अवस्थित है।§

इस तैलङ्ग वा त्रिलिङ्गके मनुष्य और उनकी अवलम्बित भाषा तैलङ्ग वा तेलगू नामसे प्रसिद्ध है। वर्त्तमान समयमें उत्तर श्रीकाकोलम् (चिकाकोल)से ले कर दक्षिण परवक्कोड् (पुलिकट) तक तेलगू भाषा प्रचलित है। चिकाकोलके समीप उड़ियाने और पुलिकटके बादसे तामिल भाषाने तेलगूका स्थान अधिकार कर लिया है। इधर पश्चिमांशमें महाराष्ट्रकी पूर्वसीमा, महिसुर, कर्णुल जिला और निजाम राज्य तक तेलगू भाषा चलती है। भाषा-संस्थानकी ओर दृष्टिपात करनेसे तेलगू भाषा-प्रचलित भूभागको ही तैलङ्ग देश कह सकते हैं। इस हिसाबसे त्रिकलिङ्ग शब्दसे त्रिलिङ्ग वा तैलङ्ग नाम पड़ा है, यह स्वीकार कर सकते हैं और कलिङ्ग देशको तैलङ्गका एक अंश समझ सकते हैं।

कलिङ्ग देखो।

७वीं शताब्दीमें यूएनचुयङ्गने अंध्रदेशमें आ कर देखा था, कि यहां मध्यभारतकी लिपि प्रचलित है। इससे हम लोगोंको प्रमाण मिलता है, कि उस समय मध्यभारतकी वर्णमालाके साथ उड़ीसाकी वर्णमालाका भी आकार मिलता जुलता था। कालक्रमसे आजकल इतना विभेद पड़ गया है, कि तैलङ्गकी वर्णमालाको एक सम्पूर्ण पृथक् वर्णमाला कहनेमें भी कोई अत्युक्ति नहीं।

कुमारिलभट्ट दाक्षिणात्यकी भाषाको अन्ध्र-द्राविड़ भाषा कह कर वर्णन कर गये हैं। तामिल देखो। कुमारिल वर्णित आन्ध्र भाषा आज भी तेलगू नामसे प्रसिद्ध है

---

* Beal's Buddhist Records of the Western World, Vol. II. p. 217,

† R. Sewell's Lists of Antiquitiesin the Madras Presidency, Vol. I p. 36

‡ Jarrett's Aini Akbari, Vol. II p, 228, 237,

* Schiefner's Taranatha, p. 264,

§ Rennell's Memoir, 3rd edition, p. cx,

तैलङ्ग भाषामें १२ स्वर और ३५ व्यञ्जनवर्ण हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, (ह्रस्व), ए (दीर्घ), ऐ, ओ (ह्रस्व), ओ (दीर्घ) और औ यही १२ स्वर है एवं क, ख, ग, घ, ङ; च, छ, ज, झ, ञ; ट, ठ, ड, ढ, ण; त, थ, द, ध, न; प, फ, ब, भ, म; य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ और क्ष यही ३५ व्यञ्जन हैं।

तैलङ्गके पण्डितोंका कहना है, कि कण्व मुनिने सबसे पहले तेलगू व्याकरणकी रचना की। एक बार वे आन्ध्र-राजकी सभामें उपस्थित हुए थे। इसी राजके समयसे संस्कृत भाषा तैलङ्ग देशमें प्रचलित हुई। उक्त प्रवादसे कुछ कुछ ऐसा मालूम पड़ता है, कि ब्राह्मणोंने आ कर ही तैलङ्ग देशमें संस्कृत भाषाका प्रचार किया और उन्हींके आधार पर तैलङ्गलिपि और तैलङ्ग व्याकरण बनाया गया। कण्वका तैलङ्ग व्याकरण अभी विलुप्त हो गया है। अभी जो सबसे पुराना तेलगू व्याकरण मिलता है, वह भी नन्नय वा नन्नपभट्टका संस्कृत भाषामें बनाया हुआ है। नन्नपभट्टने ही तेलगू भाषामें महाभारतका प्रकाश किया। अभी नन्नपभट्टका महाभारत ही तेलगू भाषाका आदिग्रन्थ समझा जाता है। चालुक्यराज विष्णु वर्द्धनके समयमें नन्नप आविर्भूत हुए थे। चालुक्य वंशमें विष्णुवर्द्धन नामक नौ दश राजाओंने विभिन्न समयमें राजत्व किया था। चालुक्य शब्द देखो। किस विष्णु-वर्द्धनके समयमें नन्नप विद्यमान थे, उसका पता नहीं चलता। यदि शेष विष्णु वर्द्धनका समय हो तो भी नन्नप-भट्टको ११वीं शताब्दीके कवि कह सकते हैं।

कोई कोई तो इन्हें आदि ग्रन्थकार मानते हैं पर वह ठीक प्रतीत नहीं होता। इनके विस्तृत ग्रन्थकी रचना-प्रणाली और भाषाकी छटा देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है कि तेलगू भाषाकी सृष्टि इनके बहुत पहले ही हो चुकी थी तथा इनके महाभारत बनाये जानेके पहले भी अनेक छोटे छोटे ग्रन्थ प्रचलित थे। नन्नपभट्टके बाद अप्प कविने तेलगू भाषामें एक तेलगू व्याकरण श्लोकके आकारमें प्रणयन किया।

वेमन नामक एक व्यक्तिने सूत्राकारमें दो हजारसे अधिक धर्मनीति-विषयक उपदेश तेलगू भाषामें लिखे है। इनकी वाक्यावलीमें कर्मकाण्ड और द्वैतवादको निन्दा रहनेसे कोई कोई इन्हें ईसाधर्मके परवर्त्ती बतलाते हैं। किन्तु वेमनके विशुद्ध आध्यात्मिक और अद्वैतवादविषयक सरल उपदेशोंकी भाषा पढ़नेसे वह बहुत प्राचीन प्रतीत होती है। इसके सिवा तैलङ्ग भाषामें और भी कई एक ग्रन्थ हैं। मुद्रायन्त्रके प्रभावसे तैलङ्गमें भी प्रतिवर्ष अनेक ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं।

त्रिलिङ्गक (सं० त्रि०) त्रिलिङ्ग स्वार्थे कन्। त्रिलिंग देखो।

त्रिलिङ्गी (सं० स्त्री०) त्रयाणां लिङ्गानां समाहारः ङीप्। लिङ्गत्रय, तीनों लिङ्ग।

त्रिलोक (सं० क्ली०) १ त्रिभुवन, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक। (पु०) २ स्वर्ग, मर्त्य और पातालके अधिवासी।

त्रिलोक—हिन्दीके एक कवि। ये १७५४ ई०में वर्त्तमान थे। सुजानचरित्रमें इनका नाम दिया हुआ है। इनकी रस पक्षकी कविता बड़ी सराहनीय होती थी। उदाहरणार्थ नीचे देते हैं,—

"मेरो मन मोह्यो सांवरो अब घर ही मो पै रह्यो न जाय।
चपल तिरछी भौंहसों सर्वस्व हो मेरो लियो चुराय॥
माई हौं गोरस ले निकसी वृन्दावन होरी मंझार।
आय अचानक आंचक मटुकी वहीं मेरी दीन्हीं ढार॥
गहि अञ्चर मो सो यों कह्यो कौन हो तुम काकी नार।
के वेरी या मार्ग गई दान हो हमारो डार॥
और कहां लगि वरणिये कह तब री जोइ आवे लाज।
जन त्रिलोक प्रभुसो रंगी देखो मेरे तनको साज॥"

त्रिलोकधृत् (सं० पु०) त्रयाणां लोकानां धृत् धृति रस्य धृ-क्विप्। परमेश्वर।

त्रिलोकदास—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने भजनावली नामक ग्रन्थ बनाया है। ये १७२० ई०के लगभग विद्यमान थे।

त्रिलोकनाथ (सं० पु०) त्रयानां लोकानां नाथः। परमेश्वर।

त्रिलोकसिंह—एक हिन्दी कवि। इनका बनाया हुआ सभा-प्रकाश नामक ग्रन्थ मिलता है, जिसे इन्होंने १७२० ई०में बनाया था।

त्रिलोकात्मन् (सं० पु०) त्रयो लोकाः आत्मानः स्वरूपाणि यस्य। परमेश्वर।

त्रिलोकपति (सं० पु०) परमेश्वर।

त्रिलोकी (सं० स्त्री०) त्रयाणाँ लोकानां समाहारः ङोष्। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक; भूलोक, भुवनलोक और स्वर्गलोक।

त्रिलोकीनाथ (सं० पु०) त्रिलोकनाथ देखो।

त्रिलोकीनाथ भुवनेश—हिन्दीके एक कवि। ये शाकद्वीपी ब्राह्मण, महाराज मानसिंह अयोध्यानरेशके भतीजे थे। ये भाषाके अच्छे कवि थे। इन्होंने पहले चाणकनीतिका एकादश अध्याय पर्यन्त भाषा छन्दोंमें अनुवाद किया और फिर संवत् १९३७में भुवनेशभूषण नामक ५० पृष्ठोंका स्फुटशृङ्गार कविताका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाया। इनके बनाये हुए और भी ग्रन्थ मिलते हैं; यथा भुवनेश-विलास और भुवनेश-अङ्क-प्रकाश। इनके कुटुम्बमें प्रायः सभी थोड़ा बहुत काव्य रचना करते थे। भुवनेशजीका स्वर्गवास हुए करीब २५ वर्ष के हुए हैं। इन्होंने व्रजभाषामें कविता की है जो सरस और मनोहर है। उदाहरणार्थ इनका केवल एक छन्द नीचे लिखा जाता है—

"कर कंज केवार पै राजि रहे छहरी छति लौं छुटिकै अलिकै।
अंगिराति जम्हति भली विधि सों अधनैननि आनि परी पलकें॥
भुवनेश जु भाषे बनै न कछु मुख मंजुल अम्बुजसे झलकैं।
मनमोहन नैन मलिन्दन सों रस लेत न क्यों कटिकै कलिकैं॥"

त्रिलोकेन्द्रकीर्ति—एक दिगम्बर जैन ग्रन्थकार। इन्होंने सामायिकसूत्रकी टीका रची है।

त्रिलोकेश (सं० पु०) त्रयाणां लोकानामीशः। १ परमेश्वर। २ सूर्य।

त्रिलोचन (सं० पु०) त्रीणि लोचनानि यस्य। १ शिव, महादेव। २ काशीके चौदह लिङ्गोंमेंसे एक लिङ्ग। ३ एक संस्कृत ग्रन्थकार। इन्होंने पार्थविजय नामका एक काव्य बनाया है।

त्रिलोचनतीर्थ—विरजा क्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ।

(कपिलसंहिता)

त्रिलोचन-दास—एक प्रसिद्ध व्यक्ति। वर्द्धमानसे दश कोस उत्तर गुसकरा स्टेशनसे पांच कोस दूर कुनूर नदीके किनारे मङ्गलकोटके समीप कुआ वा की नामका एक ग्राम है, वहीं १४४५ ई०में इनका जन्म हुआ था। इनके और तीन नाम हैं—सुलोचन, लोचनानन्द, लोचन। शेषोक्त लोचन नामसे वे हो प्रसिद्ध थे। चरितामृत और भक्तिरत्नाकरादि प्राचीन ग्रन्थोंमें ये सुलोचन नामसे ही मशहूर हैं।

गुसकरा स्टेशनके समीप कांकड़ा ग्राममें विख्यात चैतन्यमङ्गल गायक प्राणकृष्ण चक्रवर्त्तीके घरमें इनके हस्तलिखित अनेक ग्रन्थ हैं। उस मौलिक ग्रन्थमें तथा छापाके चैतन्यमङ्गलमें जमीन आसमानका फर्क है।

फिर बहुतसे लोग कहते हैं, कि लोचनदास संस्कृत नहीं जानते थे, किन्तु यह असत्य जान पड़ता है। प्रसिद्ध राय रामानन्द कृत संस्कृत जगन्नाथवल्लभके श्लोकांशका जो एक मनोहर पद्यानुवाद है वह लोचन दासका ही बनाया हुआ है। अगर वे संस्कृत नहीं जानते होते तो श्लोकके अनुवादमें कृतकार्य नहीं हो सकते थे।

इनकी लिखावट अच्छी और बड़ी होती थी। अपने घरमें एक पत्थरके ऊपर बैठ कर शून्य आकाशके तले ये चैतन्यमङ्गल काव्य लिखते थे। वह पत्थर आज भी विद्यमान है। जिसके दर्शनके लिए वैष्णव लोग आज भी जाया करते हैं। १५३० शकमें इनका देहान्त हुआ था।

त्रिलोचन दास—एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने कातन्त्रवृत्तिपञ्जिका और कातन्त्रोत्तरपरिशिष्टकी रचना की है।

त्रिलोचनदेव न्यायपञ्चानन—नवद्वीपके एक नैयायिक पण्डित, रामके छात्र। ये न्यायकुसुमाञ्जलिव्याख्या रच गये हैं।

त्रिलोचनपाल—महाराज राज्यपालके पुत्र। ये शायद प्रयाग अञ्चलमें राज्य करते थे। प्रयागसे प्रदत्त त्रिलोचनपालका १०८४ अङ्काङ्कित एक ताम्रशासन एशियाटिक सोसाइटीमें रखा हुआ है। उसे पढ़ कर प्रत्नतत्त्वविद् किलहर्ण साहबने इस अंककी सम्वत्ज्ञापक स्थिर किया है। (Indian Antiquary, vol. XVII p.34)

किन्तु इस ताम्रशासनकी १०८४ शक सम्वत्का भी

मान सकते हैं, क्योंकि मूल ताम्रशासनमें सम्वत् शब्द स्पष्ट नहीं है। ताम्रशासनमें इन्हें राज्यपालके पुत्र और विजयपालके पौत्र बतलाया है। ११८८ सम्वत्‌में जो ताम्रशासन उत्कीर्ण हुआ है, उसमें महाराजपुत्र राज्यपालका परिचय है। (Ind. Ant. XVIII. p. 26) पूर्वोक्तको और शेषोक्तको सम्वत् माननेसे राज्यपालके ताम्रशासनमें केवल २०० वर्षका अन्तर देखा जाता है। 'महाराजपुत्र' राज्यपालने भी कान्यकुब्जराज गोविन्दचन्द्रकी सम्मतिसे भूमिदान किया था। ऐसा होनेसे राज्यपालका गोविन्दचन्द्रके अधीन होना साबित होता है; किन्तु त्रिलोचनपालको परम भट्टारक महाराजाधिराज इत्यादि स्वाधीन राजाकी उपाधि मिली थी।

२ एक पराक्रान्त राजा जो पश्चिमोत्तर प्रदेशमें राज्य करते थे। उन्होंने सुलतान महमुदके साथ युद्ध किया था।

३ लाटदेशके चौलुक्यवंशीय एक विख्यात राजा, वत्सराजके पुत्र। ये ८२७ शकमें राज्य करते थे।

त्रिलोचन भट्टाचार्य—न्यायसङ्केत नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

त्रिलोचनमिश्र—धर्मकोष नामक धर्मशास्त्रके संग्रहकार। वर्द्धमान और आह्निकतत्त्वमें रघुनन्दनने इनके वचन उद्धृत किये हैं।

त्रिलोचन शिवाचार्य—रत्नत्रयोद्योत और सिद्धान्तसारावली नामक शैवशास्त्रकार।

त्रिलोचना (सं॰ स्त्री॰) दुर्गा।

त्रिलोचनाचार्य—वैयाकरण कोटिपत्र नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

त्रिलोचनादित्य—एक संस्कृत ग्रन्थकार। इन्होंने नाट्टलोचन और लोचनव्याख्याञ्जन ग्रन्थ बनाये हैं।

त्रिलोचनाष्टमी (सं॰ स्त्री॰) त्रिलोचनाय शिवपूजार्थे या अष्टमी। ज्यैष्ठमासकी गौणचान्द्र कृष्णाष्टमी। इस अष्टमीमें शिवकी पूजा करनेसे शिवलोककी प्राप्ति होती है।

त्रिलोचनी (सं॰ स्त्री॰) त्रीणि लोचनानि यस्याः। दुर्गा।

त्रिलोचनेश्वरतीर्थ (सं॰ क्ली॰) त्रिलोचनेश्वर नाम तीर्थ। तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम।

त्रिलोह (सं॰ क्ली॰) सुवर्ण, रजत और ताम्र; सोना, चांदी और तांबा।

त्रिलोहक (सं॰ क्ली॰) सोना, चाँदी और ताँबा ये तीनों धातु।

त्रिलोहक (सं॰ त्रि॰) त्रीणि लोहानि धातवो यत्र, संज्ञायां कन्। सुवर्ण, रजत और ताम्रमय पात्रादि, सोने, चाँदी और ताँबेके बरतन आदि।

त्रिवण (सं॰ पु॰) सम्पूर्ण जातिका एक राग। यह दो पहरके समय गाया जाता है। कोई कोई इसे हिंडोलरागका पुत्र मानता है।

त्रिवणी (हिं॰ स्त्री॰) एक संकर रागिणी। यह शंकराभरण, जयश्री और नरनारायणके योगसे बनती है।

त्रिवत्स (सं॰ पु॰) त्रयो वत्साः वत्सराः यस्य सः। तीन वर्षका पशु।

त्रिवर्ग (सं॰ पु॰) त्रयाणां धर्मार्थकामानां वर्गः समूहः। १ अर्थ, धर्म और काम। २ त्रिफला। ३ त्रिकटु। ४ वृद्धि, स्थिति और क्षय। ५ सत्व, रज और तम ये तीनों गुण। ६ ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियां। ७ सुनीति। ८ गायत्री।

त्रिवर्ण (सं॰ क्ली॰) १ तीन रङ्ग।

त्रिवर्णक (सं॰ क्ली॰) त्रिवर्ण स्वार्थे कन्। १ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों प्रधान जातियां। २ त्रिफला। ३ श्याम, रक्त और पीत; काला, लाल और पीला रंग। ४ गोक्षुर, गोखरू। ५ त्रिकटु।

त्रिवर्णकृत् (सं॰ पु॰) सरट, गिरगिट। यह तीनों रंग धारण कर सकता है।

त्रिवर्णा (सं॰ स्त्री॰) वन कार्पासी, वन-कपास।

त्रिवर्त्त (सं॰ पु॰) एक प्रकारका मोती। कहा जाता है कि जिसके पास यह मोती होता है उसको दरिद्र कर देता है।

त्रिवर्त्मगा (सं॰ स्त्री॰) त्रिपथगा, गङ्गा।

त्रिवर्त्मन् (सं॰ क्ली॰) १ त्रिपथ। त्रीणि वर्त्मानि यस्य। २ देवयान, पितृयान और दक्षिणायन इन तीनों मार्गोंके जीव।

त्रिवर्ष (सं॰ त्रि॰) त्रयो वर्षा वत्सराः अस्य। १ तीन वर्षके जीव। (पु॰ क्ली॰) २ वर्षत्रय, तीन वर्ष।

त्रिवर्षा (सं॰ स्त्री॰) तीन वर्षकी गाय।

त्रिवर्षिका (सं॰ स्त्री॰) त्रिवर्षा देखो।

त्रिवर्षीय (सं० त्रि०) त्रिवर्षं भवः गहादिभ्यश्च। त्रिवर्षोत्पन्न, जो केवल तीन वर्ष तक ठहरता है।

त्रिवल्ली (सं० स्त्री०) इन्दीवर, नीलकमल।

त्रिवल्य (सं० पु०) बहुत प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा। इस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

त्रिवाङ्कुर (तिरुवाङ्कोड़ वा तिरुवाङ्कूड़)—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत देशीय राजशासित एक मित्रराज्य। यह अक्षा० ८°४´ और १०° २१´ उ० तथा देशा० ७६° १४´ और ७७°३७´ पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें कोचीनराज्य, पूर्वमें मदुरा और तिन्नेवेली जिला, पश्चिम और दक्षिणमें भारत महासागर है। यह राज्य उत्तर दक्षिणमें ८७ कोस लम्बा और ३८. कोस चौड़ा है। भूपरिमाण ६७३० वर्गमील है। इसमें ३१ तालुक लगते हैं। इसकी राजधानी त्रिवन्द्रम् है। यहां त्रिवाङ्कुरके राजा वास करते हैं।

यही राज्य प्राचीन केरलका दक्षिणांश है। इसके कई एक नाम पाये जाते हैं, यथा—श्रीविल्वकुण्ड, श्रीवर्द्धनपुर और पद्मनाभपुर। पेरिप्लसके अनुसार इसका एक प्राचीन नाम 'पुरलि' है।

त्रिवाङ्कुरका प्राकृतिकदृश्य अत्यन्त सुन्दर है। पूर्वांशमें पर्वतमाला बहुत घने जङ्गलसे ढकी है। पर्वतका शिखर ८ हजार फुट ऊंचा है। समुद्रके किनारेसे ५ कोस दूर समस्त क्षेत्रमें नारियल और सुपारीके वृक्ष देखे जाते हैं। ये ही दोनों द्रव्य देशके धनागमके प्रधान उपाय हैं। सारा देश एक प्रकारकी उर्वर उपत्यकासे आच्छादित है, पूर्व-पश्चिममें नदियां प्रवाहित हैं। समुद्रके किनारे तथा अभ्यन्तर बहुतसे ह्रद हैं जिनमेंसे खाड़ी काट कर एक दूसरीसे मिल गई हैं। जब नदीमें जल नहीं रहता वा आसानीसे समुद्र होकर आ जा नहीं सकते, तब इन्हीं ह्रदों हो कर लोग आते जाते हैं। नाञ्जिनाड़ नामक पूर्व विभागमें धान और ताड़ बहुत उपजते हैं। यह नगर ठीक तिन्नेवेली जिलेके जैसा है, पर कहीं कहीं अनुर्वर जमीन भी पाई जाती है। समुद्रके किनारेकी जमीन सबसे अधिक उर्वरा है। पर्वतमालाका दृश्य बहुत मनोरम है। दक्षिणांशमें पर्वतमाला जङ्गलोंसे आच्छादित और खूब ऊंची है। मध्यस्थलका पहाड़ उतना ऊंचा नहीं है। उपत्यकादिमें ऊँचे मन्दिर और गिर्जा हैं। पश्चिमांशमें बहुतसे बगीचे हैं। मनारगुड़ि, कोलाचल, विलिञ्जम, पन्तराइ, अञ्जेङ्गो, कुइलोन (कोलम्ब), कायङ्कुलम्, पोरकाड़ और अल्लेपि नामक प्रधान बन्दर समुद्रके किनारे अवस्थित है। इनमेंसे अल्लेपि, कुइलोन और कोलाचल बन्दरोंमें ही बड़े बड़े जहाजादि आते जाते हैं और सब दूसरे बन्दरोंमें देशी बड़ी बड़ी नावें आती हैं। पेरियर नदीके पश्चिममें पर्वतमालाका नाम अनमलय है। इसी शिखरसे ताम्रपर्णी नदी निकली है। यहांकी उपत्यकामें सब जगह काफी और चाय उपजती है। एरिविमलय वा हामिलटन उपत्यका ३ कोस लम्बी और डेढ़ कोस चौड़ी है जिसमेंसे ३० हजार बीघे जमीनमें केवल काफी और चायकी फसल होती है। मेलमलय वा कानन्दवन पर्वत पर भी ऐसा ही लम्बा चौड़ा चाय और काफीका क्षेत्र है। त्रिवाङ्कुरके सबसे ऊंचे पर्वतशिखरका नाम अनयमुड़ि है, जिसकी ऊँचाई ८८३७ फुट है। हिमालयके दक्षिणमें यही सबसे ऊंचा पर्वत है। इसके समीप और भी कई एक शिखरकी ऊँचाई ८ हजार फुट है। इस पर्वतमालाके दक्षिणमें एलाचि-पर्वतमाला है, जहां दारचीनी बहुत उपजती है। यह पर्वतमाला दक्षिणमें क्रमशः पतली और छोटी होकर कन्याकुमारिका तक विस्तृत है। इस अञ्चलमें मनुष्योंका वास बहुत कम है।

घाट पर्वतसे इस देशकी बहुतसी नदियां उत्पन्न हुई हैं। पेरियर नदी ही इस देशमें प्रधान है। यह पर्वतके बहुत ऊँचे स्थानसे निकल १४२ मील आकर कोदङ्गलुर नामक स्थानमें समुद्रके एक जलावर्त्तमें गिरी है। इस नदीके मुहानेसे ऊपर ३० कोस तक नावें चलती हैं। इसके बाद पम्बइ नदी है। इसकी अचिनकइल और कल्लदा नामकी दो उपनदियां हैं। कुलितोरह वा पश्चिमताम्रपर्णी नदी महेन्द्रगिरि नामक पर्वतसे उत्पन्न हो कर तिन्नेवेलि जिलेमें प्रवेश करती है। बड़ी ताम्रपर्णी नदी भी अगस्त्येश्वर पर्वतसे निकल कर उसी जिलेमें प्रवेश करती है। दक्षिणांशमें प्रलय और कोदर नामक स्थानमें पाण्ड्य राजाओंके बनाये हुए बहुतसे आनिकट वा जलावरोध हैं। तीरवर्त्ती जलावर्त्त

ह्रदोंकी लम्बाई प्रायः एक सौ कोस है और चौघाटसे त्रिवन्दरम् तक विस्तृत है। त्रिवन्दरम् और कुइलोनके बीचमें ३ कोस जमीन बहुत ऊंची है। इस जगह दो खाड़ी काटकर उत्तर दक्षिणमें ह्रदोंके साथ मिला दी गई हैं। अञ्जेपिके पूर्वमें बिम्बनाह्रद ही सबसे बड़ा है, किन्तु ग्रीष्मकालमें इसका जल बहुत सूख जाता है।

खनिज पदार्थोंमें लोहा यथेष्ट पाया जाता है इसके सिवा फिटकरी, गन्धक और कृष्ण शीस पाये जाते हैं। हाथी दाँत इस देशका प्रधान द्रव्य है। जङ्गलमें हाथी, शाम्बर, नीलगाय और अन्यान्य हरिण पाये जाते हैं।

इस देशकी लोकसंख्या प्रायः ढाई करोड़ है जिनमेंसे १ करोड़से अधिक हिन्दू होंगे। ईसाईकी संख्या सैकड़े २६ और मुसलमानकी सैकड़े ७ है। इसकी राजधानी त्रिवन्दरम्की लोकसंख्या लगभग ४२ हजार है। प्रधान वाणिज्यकेन्द्र और प्रधान बन्दर अञ्जेपि शहर है, इसकी लोकसंख्या २६ हजार है। प्रधान सेनानिवास कुइलोन शहरकी जनसंख्या १४ हजार है। इसके सिवा नागरकोल शहरमें १७ हजार, कोट्टायममें १२ हजार और शेनकोट्टायम् शहरमें ८ हजार मनुष्योंका वास है। एतद्भिन्न परवर, कोतर, शेरतलय प्रभृति स्थानोंमें क्रमशः वृद्धि हो रही है।

यहां मलवारमें प्रचलित मरुमक्कातायमविधि ही सामाजिक शासनार्थ प्रचलित है। तामिल, तेलगु और मराठी लोग अपनी देशीय विधिके अनुसार चलते हैं। नाम्बुरियोंका बड़ा लड़का विवाह करता और उत्तराधिकारी होता है। अन्यान्य सन्तान पैतृकविषयका अधिकार नहीं पाते हैं। कन्या अधिक वर्ष तक अविवाहिता रहती हैं, यहां तक कि अनेक वृद्धावस्था हो जाने पर भी अविवाहितावस्थामें मरती हैं। नाम्बुरी देखो। नायरोंमें प्रथाके अनुसार बालिकावस्थामें ही कन्याका विवाह हो जाता है; किन्तु वे स्वामीगृहमें नहीं जातीं वा स्वामीके साथ उनका कोई संश्रव नहीं रहता है। वे पिताके घरमें ही रहती और यौवनकालमें स्वजातीय किसी व्यक्ति वा किसी ब्राह्मणसे मिल कर स्वामी स्त्रीके रूपमें वास करती हैं। इन कन्याओंके गर्भसे जो पुत्र जन्म लेते वे ही मामाके उत्तराधिकारी होते हैं। नायरोंमें भांजा वा भांजी नहीं रहनेसे उत्तराधिकारीविहीन हो जाता है। वे पोष्यपुत्रकी नाईं पोष्यभगिनीको ग्रहण करते और उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्रको उत्तराधिकारी बनाते हैं। नायर सन्तानमेंसे कोई भी पिताकी विवाहिता पत्नीसे उत्पन्न नहीं हैं और परस्पर मामाके उत्तराधिकारी मात्र है। वे मामाके श्राद्धादि और विषय-सम्पत्ति अधिकार करते हैं। नायर और नाम्बुरि बड़े ही शुद्धाचारी होते हैं। ब्राह्मण शवदाह करते, किन्तु नायर लोग वंशप्रथाके अनुसार शवदाह वा समाहित करते हैं। श्मशान वा साधारण समाधिस्थान नहीं है, वे अपने उद्यानमें किसी जगह शवदाह वा समाहित करते हैं। ये लोग शिखास्थानमें शिखा धारण न कर तालुमें धारण करते और उसे सम्मुखकी ओर उलटा रखते हैं। नायर शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

कृषिद्रव्योंमें धान और नारियल प्रधान है। लालमिर्च और सुपारीकी उपज भी कम नहीं है। कटहल गरीबोंका प्रधान अवलम्बन है। इसका फल वे खाते और काठसे घर आदि बनाते हैं। हल्दीके गाछके जैसा यहां इलायचीका गाछ यथेष्ट उपजता है। इलायचीका गाछ ६से १० फुट लम्बा होता है। यथासमय जङ्गल काट कर इलायची बोते और आश्विन कार्तिकमें पकने पर उसे काट लाते हैं। इसमें राजसरकारको कर देना पड़ता है। काफीकी उपज अच्छी होती है। चाय भी कम नहीं उपजती। इसके पत्ते बहुत अच्छे होते हैं। भैंसे और बैल दोनों ही हलमें जोते जाते हैं।

इस देशमें जमीनके ऊपर कोई नियमित राजकर वा खजाना नहीं है। मलवारमें सभी जनम् वा उत्तराधिकारसूत्रसे निष्कर जमीन भोग करते हैं। नाम्बुरि ब्राह्मणोंने परशुरामसे यह देश निष्करवासस्थान बना लिया। कहा जाता है, कि तभीसे यह देश बिना करका ही उपभुक्त हो रहा है। अभी त्रिवाङ्कुरके राजाने एक प्रकारका कर निश्चित किया है। जो जमीन जिस वंशके अधीन पूर्वसमयसे आ रही है, वह गृहस्थ किसी

प्रकारका कर आज तक नहीं देता। किन्तु जब कोई 'जनम्' स्वत्वकी जमीन स्वजाति छोड़ कर किसी दूसरेके हाथ बेचता वा बन्धक रखता है, तब उस जमीनका 'जनम्' स्वत्व नष्ट हो जाता और राजा उसके ऊपर शुल्क कायम कर देते हैं। इस करको 'राजभोगम्' कहते हैं। जितनी जमीन पर कर लगाया जाता है। उसमें बोनेके लिये बीजका आधा खर्च राजा देते हैं और उस जमीनका जो कुछ कर प्रजा देती है उसका छठां हिस्सा राजा पाते हैं। इस तरह सम्प्रति बहुतसी जमीन विदेशियोंके हाथ आ गई है; इसे कानम् वा चिरस्थायी बन्दोबस्त कहते और जो जमीन नायरोंके हाथ पहलेसे आ रही है उसे 'मादम्बिमार' कहते हैं। इससे राजा राजभोगम् वसूल नहीं करते। जनम् स्वत्वकी जमीन विद्रोहके अपराध और उत्तराधिकारीके नहीं रहने पर राजाके दखलमें आ जाती है। बाढ़की जमीन, चरकी जमीन और समुद्रका चर राजाके कब्जेमें है, इसे सरकारी जमीन कहते हैं।

इस देशसे नारियल, नारियलकी रस्सी, हुक्केका खोल, नारियलका तेल, सूखी अदरख वा सोंठ, लाल मिर्च, लोना मछली, बहादूरी काठ, काफी, इलायची, मोम, इमली और तालाबकी मछली रफ्तनी होती तथा दूसरे दूसरे देशोंसे तमाखू, विलायती द्रव्य, चावल, सूत, रुई और तांबेकी आमदनी होती है।

इस देशमें १८ मुन्सफी, ६० फौजदारी, ५ जिला अदालत और राजधानीमें एक सदर अदालत है। पुलिस्का एक भी स्वतन्त्र प्रबन्ध नहीं है। दीवान पेशकार (वा विभागीय प्रधान कर्मचारी) और तहसीलदार लोग पुलिसका काम करते हैं। त्रिवन्द्रम्में २, कुईलोनमें एक और अल्लेपिमें एक उच्च विद्यालय तथा कालेज है। इसके सिवा २५ जिला स्कूल और बालिकाविद्यालय हैं।

१८६१ ई०में डाकघर स्थापित हुआ, जिसमें केवल राजकीय कार्य चलाया जाता है। अभी उसमें साधारणको भी अधिकार दे दिया गया है। इसके अतिरिक्त और भी ९८ डाकघर हैं।

महाराजके पास १३६० पदाति सैन्य, ६० अश्वारोही ३० गोलन्दाज और ४ कमान हैं।

इतिहास—त्रिवाङ्कुरका प्राचीन विश्वासयोग्य इतिहास नहीं है। प्रवाद है, कि परशुरामने जब समुद्रके ग्राससे समस्त मलयालम् भूभाग बचाया था; तब उन्होंने यह प्रदेश नाम्बुरि नामक ब्राह्मणोंको दान दिया। ई० सनके ६८ वर्ष पहले नाम्बुरिगण इस प्रदेशमें शासन करते थे। बाद ब्राह्मण लोग एक क्षत्रियको बारह वर्ष तक अपना राजा बनाते और एक आदमीका बारह वर्षका समय पुरने पर एक दूसरे आदमीको उस पद पर अभिषिक्त करते थे।

त्रिवाङ्कुरके दीवान सङ्कुनिमेननने त्रिवाङ्कुरका प्राचीन इतिहास इस प्रकार लिखा है—

परशुरामने मलयालम् भूभागका उद्धार कर दक्षिणकेरलमें भानुविक्रम नामक एक चेरराजको अभिषिक्त किया। भानुविक्रमके बाद उनके भतीजि आदित्यविक्रम परशुरामसे राजा बनाये गए थे। पीछे परशुराम उदयवर्माको उत्तरकेरल प्रदान किया। त्रेतायुगमें यह घटना हुई। कलियुगमें ४८ राजाओंने दक्षिण केरलमें राज्य किया। १८६० कल्पाब्दमें राजा कुलशेखर आर्वामें राज्य करते थे। कुछ दिन बाद ही उन्होंने संन्यास धर्म ग्रहण किया। आज भी त्रिवाङ्कुरके भिन्न भिन्न स्थानोंके मन्दिरोंमें उनकी मूर्त्ति पूजा हुआ करती है। बहुत समयके बाद शकाब्दके प्रारम्भमें मदुराके राजा वीरवर्माने पाण्ड्य और चेर राज्य पर अधिकार किया। पीछे कोङ्गराजाओंने चेर राज्य जीत लिया। इस समय चेरराजवंशने मदुरा और तिन्नेवेलीका अंश परित्याग कर त्रिवाङ्कुरमें आकर आश्रय ग्रहण किया।

पेरुमलोंने प्रायः २०० वर्ष केरल राज्य पर शासन किया। इस समय सिरीयक ईसाई और यहूदीगण कोचीनमें आकर रहने लगे। अन्तमें पेरुमलराज कोचीनके राजा और कालिकटके सामरिराजको राजदण्ड देकर अन्तर्हित हो गये।

उपर्युक्त विवरण केवल प्रवादमूलक है, यह प्रकृत ऐतिहासिकसा ग्रहण नहीं किया जा सकता। बाद उल्लेखयोग्य दो राजाओंके नाम पाये जाते हैं—एक वीरमार्त्तण्ड वर्मा, ये ७३१ ई०में विद्यमान थे और दूसरे उदयमार्त्तण्ड वर्मा, इन्होंने ८२४ ई०में कोलम्बाब्द स्थापन

किया। यह शब्द अभी मलयालम् शब्द नामसे प्रचलित है। बाद ११८८ और १२२० ई०में आदित्यवर्मा नामक दो राजाओंके नाम मिलते हैं। वीररममार्त्तण्ड वर्माने (१२३५-१२७८ ई०के मध्य) त्रिवन्द्रम्‌का राजप्रासाद और दुर्ग निर्माण किया। उनके पीछे एरवीवर्माने १२७६से १२८२ ई०तक राज्यशासन किया। केरलवर्मा कुलशेखर-पेरुमलके २ मास राजत्व कर स्वर्गगमन करने पर उनके यमज सहोदर चेर उदयमार्त्तण्ड वर्मा राजा हुए। इन्होंने १२८२से १४४४ ई० तक राज्य किया। ये चेरमादेवी नामक स्थानमें रहते थे। वहां इनकी शिलालिपि भी है। बाद निम्नलिखित राजाओंने यथाक्रमसे राज्य किया,—

राजाओंके नाम	राज्यकाल
वनवनाड़ मुत्तराज	१४४४-१४५८ ई०
वीरमार्त्तण्डवर्मा	१४५८-१४७१
आदित्यवर्मा	१४७१-१४७८
एरवीवर्मा	१४७८-१५०४
मार्त्तण्ड वर्मा	१५०४
वीरएरवी वर्मा	१५०४-१५२८
मार्त्तण्ड वर्मा	१५२८-१५३७
उदयमार्त्तण्ड वर्मा	१५३७-१५६०
केरलवर्मा	१५६०-१५६३
आदित्यवर्मा	१५६३-१५६७
उदयमार्त्तण्डवर्मा	१५६७-१५८४
वीरएरवी वर्मा	१५८४-१६०४
वीर वर्मा	१६०४-१६०६
रवि वर्मा	१६०६-१६१८
उन्निकेरल वर्मा	१६१८-१६२५
रवि वर्मा	१६२५-१६३२
उन्निकेरल वर्मा	१६३२-१६६१
आदित्य वर्मा	१६६१-१६७७

शेष आदित्यवर्मा और उनके ज्ञातिगण मारे गये। उनकी भांजी उमयम रानी १६७७ ई०में राज्यकी अभिभाविकाके रूपमें नियुक्त हुई। १६८० ई०में मुसलमानोंने त्रिवाङ्कुर पर आक्रमण किया। उन लोगोंके अधिनायक त्रिवन्द्रम्‌में कुछ काल रहे थे। अन्तमें राजवंशीय सेनापति केरलवर्माने उन्हें राज्यसे भगा कर मार डाला। उमयम रानीके पुत्र रविवर्मा वयःप्राप्त होने पर १६८४ ई०में राज्यसिंहासन पर बैठे। रविवर्माके परवर्ती राजाओंकी तालिका नीचे दी जाती है—

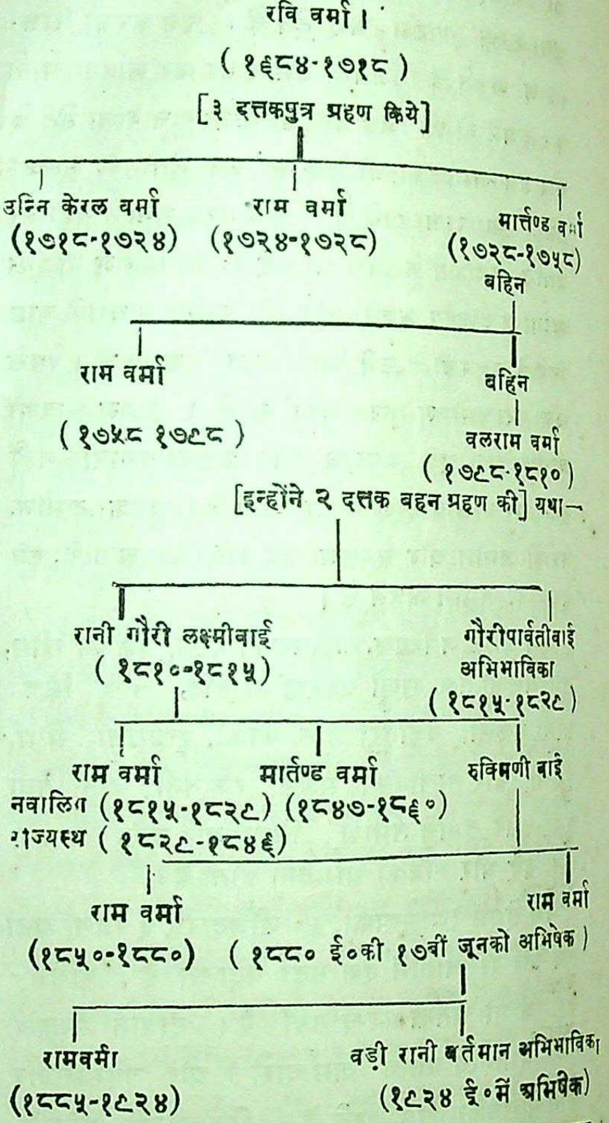
रवि वर्मा।
(१६८४-१७१८)
[३ दत्तकपुत्र ग्रहण किये]
उन्नि केरल वर्मा
(१७१८-१७२४)
राम वर्मा
(१७२४-१७२८)
मार्त्तण्ड वर्मा
(१७२८-१७५८)
बहिन
राम वर्मा
(१७५८ १७९८)
बहिन
वलराम वर्मा
(१७९८-१८१०)
[इन्होंने २ दत्तक बहन ग्रहण की] यथा—
रानी गौरी लक्ष्मीबाई
(१८१०-१८१५)
गौरीपार्वतीबाई
अभिभाविका
(१८१५-१८२९)
राम वर्मा
नवालिग (१८१५-१८२९)
राज्यस्थ (१८२९-१८४६)
मार्तण्ड वर्मा
(१८४७-१८६०)
रुक्मिणी बाई
राम वर्मा
(१८६०-१८८०)
राम वर्मा
(१८८० ई०की १७वीं जूनको अभिषेक)
रामवर्मा
(१८८५-१९२४)
वड़ी रानी वर्तमान अभिभाविका
(१९२४ ई०में अभिषिक्त)

मार्त्तण्ड वर्मा पेरुमलने १७२९से १७४६ ई० तक राज्य किया। इन्होंने १७४२ ई०में इल्लाइदातुनाड़ और १७४५ ई०में कायङ्कुलम् फतह किये। बाद बनजी-रामवर्मा पेरुमल राजा हुए। इन्होंने कई स्थान जय किये।

१७७६से १७९२ ई० तक टीपू सुलतानके साथ युद्धमें त्रिवाङ्कोरराज अंगरेजोंके अत्यन्त विश्वस्त बन्धु थे। टीपूके मलवार जीतने पर त्रिवाङ्कोरके राजा बहुत डर गये और १७८८ ई०में अंगरेजोंके साथ सन्धि करके राजाको अपने खर्चसे दो दल अङ्गरेजी सेना रखनेकी अनु-

मति मिली। इन सेनाओंका खर्च उन्हें नगद वा लालमिर्च देकर शोध करना पड़ता था। यह सैन्यदल विपिनद्वीपके निकट पहुँचने न पाया था कि टीपूने त्रिवाङ्कोर पर धावा किया। आयकोट्ट और कोदङ्गलुर ये दोनों दुर्ग ओलन्दाजोंसे त्रिवाङ्कोरके राजाने खरीदे थे। टीपूने उन पर अपना दावा जमाया और युद्ध ठान दिया। भाग्यक्रमसे युद्धमें टीपू पराजित हुए और उनके दलके २ हजार मनुष्य मारे गये। दूसरे वर्ष (१७९० ई॰में) टीपूने पुनः त्रिवाङ्कोर पर आक्रमण किया और इस बार वे पराजित हुए। १७९२ ई॰में अंगरेजोंने टीपूके अधिकृत प्रदेशके कुछ अंश (तीन जिले) राजाको लौटा दिये और उसके बदले राजा तीन दल सिपाही सैन्य और एक दल अंगरेज-गोलन्दाज सैन्यका खर्च देनेको बाध्य हुए। १८०५ ई॰में अंगरेजोंने राजाको फिर भी एक दल सिपाहीसैन्यका खर्च वार्षिक ८ लाख रुपये देनेको बाध्य किया। १८०९ ई॰में यह रुपया बहुत बाकी पड़ गया। इसका दोष दीवानके मत्थे मढ़ा गया। अङ्गरेजोंने दीवानको कामसे अलग हो जाने कहा। इस पर ३० हजार नायर विद्रोही होकर अङ्गरेजोंकी रक्षितसैन्य पर टूट पड़े। अङ्गरेजोंने मध्यस्थ हो कर कर्णाटक-ब्रिगेड नामक अधिक व्ययसाध्य अंगरेजी-सेनादलके छत्रभङ्ग किया। उसका खर्च राजाने दिया। तभीसे त्रिवाङ्कोड़में और कोई दुर्घटना न घटी। १८१० ई॰में बलरामकी मृत्यु हुई। इनके बाद लक्ष्मीरानीने कुछ काल तक राज्य कर कर्नल मनरो नामक रेसिडेण्टके हाथ राज्य-परिचालनका भार सौंपा। १८१४ ई॰में लक्ष्मीरानीकी मृत्युके बाद उनकी बहन पार्वतीरानीने अभिभाविका हो कर राजा रामवर्माको सिंहासन पर अधिष्ठित किया। रामवर्मा १७ वर्ष राज्य कर १८४९ ई॰में कराल कालके गालमें फंसे। उनके भाई मार्त्तण्ड वर्मा राजा हुए। बाद इनके भांजे बनजोवाल रामवर्माने १८६० ई॰से १८८० ई॰ तक राज्य किया। १८६२ ई॰में गवर्नर जेनरलने उत्तराधिकारीके अभावमें दत्तक बहन ग्रहण करनेका अधिकार प्रदान किया। ये सब दत्तक रानियां अत्तिल नामक स्थानमें रहतीं और तुम्बत्ती नामसे प्रसिद्ध थीं। मलवारके नियमानुसार इस राज्यमें राजाके बाद उनके भाई और तब बड़े भांजे राजा हुआ करते हैं। वर्त्तमान राजाके भूतपूर्व महाराजका पूरा नाम श्रीपद्मनाभदास-वनजीवाल-रामवर्मा-कुलशेखर-किरीटपति-मुन्ने-सुलतान-महाराज राजाराम राजा बहादुर सर समसेरजङ्ग जी॰ सी॰ एस॰ आई॰ था। इनके सम्मानार्थ २१ तोपें दी जाती थीं। यहांके महाराज सम्पूर्ण स्वाधीन हैं। अपराधियोंके जीवनमरणके ऊपर इनको पूरी क्षमता है अर्थात् प्रयोजन पड़ने पर ये प्राणदण्ड दे सकते हैं। इनकी मातृभाषा मलयालम् है।

त्रिवाङ्कोरमें अभी आदर्श हिन्दूराज्य है। राजा विशेषरूपसे हिन्दूशास्त्रके अनुसार चलते हैं, इसीसे उन्हें प्रति दिन कमसे कम एक बार पद्मनाभ स्वामीके मन्दिरमें जाना पड़ता है।

त्रिवार (सं॰ त्रि॰) १ वारत्रययुक्त, तीन बार, तीन दफा। (पु॰) २ गरुड़के एक पुत्रका नाम।

(भारत उद्योग १०० अ॰)

त्रिवाहु (सं॰ पु॰) तलवारके ३२ हाथोंमेंसे एक हाथ।

त्रिविक्रम (सं॰ पु॰) त्रिषु लोकेषु बलिवञ्चनार्थं भूपातालस्वर्गेषु क्रमः पादन्यासो यस्य यद्वा त्रीन् लोकान् विशेषेण क्रमेति व्याप्नोतीति विक्रम-अच्। १ विष्णु। २ वामनका अवतार।

त्रिविक्रम—१ सदुक्तिकर्णामृतधृत संस्कृत कवि। किसीके मतसे सदुक्तिकर्णामृतमें दो विक्रमकी कवितायें उद्धृत हुई हैं, जिनमेंसे एक भागवत और दूसरा वैद्य है। २ एक धर्मशास्त्रकार। निर्णयसिन्धु और प्रतिष्ठामयूखमें इनके वचन उद्धृत हुए हैं।

३ एक अभिधानकर्त्ता। हेमाद्रि और दिनकरकी रघुवंशटीकामें इनका नाम उद्धृत हुआ है।

४ कालविधान नामक ज्योतिषग्रन्थकार। महादेव और विश्वनाथने इनका मत उद्धृत किया है।

५ उषाहरण नामक संस्कृतके काव्यकार।

६ एक विख्यात ज्योतिषी। इन्होंने तिथिसारिणी, ब्रह्मव्यवहार, शतश्लोकव्यवहारक वा त्रिविक्रमशतक, स्त्रीजातक इत्यादि नामक कई एक ज्योतिषग्रन्थ बनाये हैं।

७ पञ्जिकोद्योत नामक संस्कृत ग्रन्थकार।

८ मदालसाचम्पूके रचयिता।

९ रामकीर्त्ति मुकुन्दमाला नामक संस्कृतग्रन्थकार।

त्रिविक्रमज्ञभट्टारक--एक विख्यात तान्त्रिक, राम भारतीके शिष्य। इन्होंने मन्त्ररत्नमञ्जूषा नामक तन्त्र और सुगूढ़ार्थदीपिका नामक शारदातिलककी एक टीका रची है।

त्रिविक्रमदेव, १ प्राकृत व्याकरणकी त्रिविक्रमा नामक वृत्तिके रचयिता। ये जैनधर्मावलम्बी मल्लिनाथके पुत्र और आदित्यवर्माके पौत्र थे।

२ लौहप्रदीप नामक वैद्यकग्रन्थकार। इन्होंने गौड़ान्तःपुर वैद्य कह कर अपना परिचय दिया है। भोजराज, वङ्गसेन आदिके ग्रन्थ देख कर यह ग्रन्थ बनाया गया है। इसमें नाना प्रकारके खनिजद्रव्योंका गुणागुण वर्णन किया गया है।

त्रिविक्रम पण्डित—पुण्यग्रामके एक विख्यात शास्त्री। इन्होंने पञ्चायुधप्रपञ्च नामक एक संस्कृत भाण प्रणयन किया है।

त्रिविक्रम पण्डिताचार्य--वायुस्तुति, नृसिंहस्तुति और विष्णुस्तुतिके रचयिता। ये त्रिविक्रम पण्डित नामसे प्रसिद्ध हैं।

त्रिविक्रमशिष्य--योगदीपिका नामक वैदान्तिक ग्रन्थकार।

त्रिविक्रम सूरि—रघुसूरिके पुत्र। इन्होंने आचारचन्द्रिका और प्रतिष्ठापद्धति नामक ग्रन्थ बनाये हैं।

त्रिविक्रमाचार्य—१ गीर्वाणभाषाभूषण नामक संस्कृतके अभिधानकार।

त्रिविक्रमानन्द—सारसंग्रहज्ञानभूषा नामक वैदान्तिक ग्रन्थकार।

त्रिविद् (सं० त्रि०) तीनों वेदके जाननेवाले।

त्रिविद्य (सं० पु०) तिस्रो विद्याऽस्य। त्रिवेदज्ञ द्विज, तीनों वेदके जाननेवाले द्विज।

त्रिविध (सं० त्रि०) तिस्रो विधा अस्य। तीन प्रकारका, तीन तरहका।

त्रिविनत (सं० त्रि०) जो देवता ब्राह्मण और गुरुके प्रति बहुत श्रद्धा और भक्ति रखता हो।

त्रिविष्टप (सं० क्ली०) विशन्ति अस्मिन् सुकृतिनः विश-कपन् तुट यत्वञ्च। १ स्वर्ग। २ तिब्बत देश।

त्रिविष्टपसद् (सं० पु०) त्रिविष्टपे स्वर्गे सीदति सद-क्विप्। देवता।

त्रिविष्टब्ध (सं० क्ली०) त्रीणि विष्टब्धानि यत्र। त्रिदण्डरूप तीन अवष्टम्भ।

त्रिविस्त (सं० त्रि०) त्रीणि विस्तानि स्वर्णकर्षमूल्यवान् अनर्हति ठक् तस्य वा लुक्। जिसका दाम तीन स्वर्ण कर्ष हो।

त्रिविस्तीर्ण (सं० पु०) त्रिभिः विस्तीर्णः। शुभलक्षणयुक्त पुरुष, वह पुरुष जिसका ललाट, कमर और छाती ये तीनों अङ्ग चौड़े हों। ऐसा मनुष्य भाग्यवान् समझा जाता है।

त्रिवीज (सं० पु०) श्यामाक, सावाँ।

त्रिवृत् (सं० पु०) त्रि-वृ-क्विप्, तुक् च। लताविशेष, निसोथ। इसके संस्कृत पर्याय—सर्वानुभूति, सुवहा, त्रिपुटा, सरण, सरमा, त्रिपुटी, रोचनी, मालविका, मसूरी श्यामा, अर्द्धचन्द्रा, विदला, सुवेणी, कालिङ्गक, कालमेषी, काली, त्रिवेला, त्रिवृन्तिका, श्वेता और सारा हैं। कोई तो इन्हें सामान्य त्रिवृत्के और कोई श्वेत त्रिवृत्के पर्याय बतलाते हैं।

कृष्ण त्रिवृत्के पर्याय—श्यामा, कालिन्दी, सुषेणिका, काला, मसूरविदला, अर्द्धचन्द्रा, कालमेषिका, कालमेशिका, पालिन्दी।

श्वेत त्रिवृत्के पर्याय—त्रिवृत्, वृकाची, सुवहा, त्रिभण्डी, त्रिपुटा।

अरुणत्रिवृत्के पर्याय--व्याघ्रादनी, कटुरुणा, निःसृता, त्रिवृता, अरुणा।

निसोथ भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न नामोंसे पुकारी जाती हैं; जैसे,—वर्द्धमान, ढाका, यशोर और वरिशालके अञ्चलमें तेउड़ी, मैमनसिंहमें त्रिशिरा, बङ्गमें कहीं कहीं दुधकलमी, सन्यालपरगनेमें वनएतका, पञ्जाबमें चिताबांस, बम्बईमें निशोतर, फुटकारी, दक्षिणमें तिकुरी, तामिलमें शिवदई, तेलगुमें तेगड़ और अरबी भाषामें तरवन्द वा तरवद। अंगरेजी वैज्ञानिक नाम Ipomaea Turpethum (India jalap)।

यह लता सारे भारतवर्षमें, सिंहल, भारतमहासागरीय द्वीपपुञ्ज, मलय, अष्ट्रेलिया आदि नाना देशोंमें

पाई जाती है। कलकत्तेमें कई जगह उद्यानोंकी शोभा बढ़ानेके लिये यह लता लगाई गई है ; किन्तु दवाके काममें जङ्गली लता ही फायदामन्द है।

वैद्यकके मतसे सामान्य त्रिवृत्का गुण—कटु, उष्ण, क्रमि, श्लेष्मा, उदररोग, कुष्ठ, कण्डु और व्रणनाशक है ; विरेचनमें इसे प्रशस्त माना है। (राजनि०)

अरुण त्रिवृत्का गुण—स्वादु, कषाय, मृदु, रेचक, रूक्ष, कटु, दोषपाकमें पित्त और कफनाशक है। राजवल्लभके मतसे श्वेतत्रिवृत् और अरुणत्रिवृत्के गुणमें थोड़ा ही फर्क पड़ता है।

भावप्रकाशके मतसे श्वेत त्रिवृत्का गुण—विरेचन, स्वादु, उष्ण, वायुकर, रूक्ष तथा पित्तज्वर, श्लेष्मा, पित्त, शोफ और उदररोग नाशक है। कृष्ण त्रिवृत्का गुण—श्वेतत्रिवृत्से कुछ हीन, तीव्र, विरेचक, मूर्च्छा, दाह, मद, भ्रान्ति और कण्ठोत्कर्षणकर है। (भावप्रकाश) अभी देशीय वैद्यगण अकसर विरेचक औषधस्वरूप त्रिवृत्को ही काममें लाते हैं। भारतवासीकी नाईं अरबीचिकित्सकगण भी बहुत प्राचीनकालसे औषधमें त्रिवृत्का व्यवहार करते आये हैं। आविशिन्नाने 'तरवद' नामसे इस विरेचक औषधका उल्लेख किया हैं। इसी 'तरवद'से अंगरेजी नाम Turbith or turpeth नाम पड़ा है।

डाक्तर एनस्लि, वालिच, गर्डन, ग्लास आदि अनेक यूरोपीय चिकित्सकोंने त्रिवृत्का उत्कृष्ट विरेचक गुण स्वीकार किया है। इनके सिवा डाक्तर आलष्टनका मत है कि यह वात, कुष्ठ और शोथरोगमें भी विशेष उपकारी है। इतने गुण रहने पर भी एक समय त्रिवृत्का बहुत अनादर हो गया था। डाक्तर उसफन्सीने निजसे परीक्षा करके* तथा उन्हींके अनुवर्त्ती होकर डाक्तर वेरिङ्गने अपना मत प्रकट किया कि, "इसका गुण बिलकुल अनिश्चित है, भैषज्यसंग्रह पुस्तकमें इसका नाम नहीं रहना ही उचित है।" उन दोनोंकी बातों पर विश्वास रखते हुए यूरोपमें इसका प्रचार उठ गया। किन्तु भारतवर्षमें ज्योंका त्यों बना रहा। मुदिनसेरिफ आदि विचक्षण चिकित्सकोंने उसका प्रतिवाद करते हुए कहा, त्रिवृत्के सीकड़की छालमें जैसा गुण है वैसा और किसी अङ्गमें नहीं है। बाजारमें इसकी जड़ और जड़की छाल दोनों एक साथ बिकती हैं। सीकड़की छाल एक एक लतासे २से ४ इञ्च तक लम्बी और चौथाई इञ्चसे एक इञ्च तक मोटी होती है। इसके पत्ते गोल और नुकीले होते हैं। इसमें गोल गोल फल लगते हैं। सफेद निसोथके सीकड़की छाल धूसर वा रक्ताभ धूसर देखनेमें आती है। काली निसोथ पिंगल वर्णकी होती है और इसकी छाल सफेद निसोथसे बहुत पतली होती हैं। इसका जुलाब सबसे अच्छा समझा जाता है।

वर्त्तनं वृत् त्रिः तिस्रः वृतो यत्र। (त्रि०) २ त्रिधा त्रिगुणित। तीन बार तिगुना, यज्ञोपवीत। यज्ञोपवीतको तीन बार त्रिगुणित करके बनाते हैं, इसीसे इसका नाम त्रिवृत् पड़ा है।

यद्यपि मनुने 'त्रिगुण' कार्य" अर्थात् तिगुणा करनेकी भी कहा है तथापि छन्दोगपरिशिष्ट आदिके मतानुसार यज्ञोपवीतको तीन बार तिगुना करना चाहिये।

त्रिवर्त्तते वृत-क्विप्। ३ मिश्रित तेज, जल और अन्न। ४ त्रिगुणित, तिगुना। त्रिभिः ऋग्यजुःसामभिर्वर्त्तते वृत कर्त्तरि क्विप्। (पु०) ५ यज्ञ। त्रिस्त्रिर्वर्तते त्रिशब्दस्य वीसार्थत्वं। ६ ऋक्विशेषका नरक। यह नरक ऋग्वेदके साथ साथ ब्रह्माके पूर्व मुखसे उत्पन्न हुआ है। (विष्णुपु० १।५।४८)

त्रिवृता (सं० स्त्री०) त्रिभिरवयवैर्वृता। त्रिवृत्, निसोथ। त्रिवृत देखो।

त्रिवृत्करण (सं० क्ली०) त्रिवृतां करणं ६-तत्। तेज, जल और अन्नका त्र्यात्मक करण, क्षिति, जल और तेज इन तीनोंका मिश्रण। इन तीन भूतोंको दो भागोंमें विभक्त कर प्रत्येकके एक एक अर्द्धको फिर दो भागोंमें बांटते हैं, बाद स्वीय अर्द्धको छोड़ कर शेष दो अर्द्धोंमें एक एक भाग जोड़ना होता है, इसीको त्रिवृत्करण कहते हैं।

छान्दोग्योपनिषद्में इस प्रकार लिखा है—

उक्त तीन देवताओंके अर्थात् तेज, जल और अन्न रूप तीन देवताओंके बीजभूत अव्याकृत स्वात्मावस्थामें अनु

---

* Dr. O. Shaughnessy's Bengal Dispensatory,

* Waring's Pharmacopaeia of India,

प्रवेश कर इनके नाम रूप व्यक्त करते हैं। इसी अभिप्रायसे दर्शन कर उन तीन देवताओंमेंसे एक एकको तिगुणा करते हैं। जिस प्रकार समान परिमाणके तीन सूतोंको तिगुणा करनेसे रस्सी बनती है, उसी प्रकार तेज, जल और अन्न इन सबको भी त्रिवृत्करण समझना चाहिए। किन्तु तीनोंके नाम पृथक् पृथक् रखे गये हैं, अर्थात् यह तेज है, यह जल है, यह अन्न है इत्यादि तेजोंको विशेष माना है। उक्त तीनों तेज देवताओंके उक्त रूपमें यथोक्त जीवोंके साथ अन्तःप्रविष्ट होते हैं और वैराजपिण्ड अर्थात् देवताओंके पिण्डमें अनुप्रवेश करके इनके ये नाम हैं एवं इनके ये रूप हैं इत्यादि प्रकारसे उसी तरह नाम रूप व्यक्त करते हैं। जिस तरह इस वहिःस्थ पिण्डसे तीन देवताओंका त्रिवृत्करण हुआ है। देवताओंका जो त्रिवृत्करण कहा गया है उसका उदाहरण इस प्रकार है—

अग्निका जो लोहित रूप देखा जाता है, वह उन्हीं तेजोंका रूप है, शुक्ल रूप जलका है और जो कृष्ण रूप है उसे अन्नका अर्थात् अत्रिवृत्कृत पृथ्वीका रूप समझना चाहिए। ऐसा होने पर भी लोग अग्निको इन तीन रूपोंके अतिरिक्त मानते हैं। इससे अग्निका अग्नित्व नष्ट हो गया है। पहले वे तीनोंरूप विवेकविज्ञानवशतः अग्नि समझे जाते थे, पर तेज द्वारा वह अग्निबुद्धि और अग्निशब्द अपगत हो गया है। रक्तोपधान संयुक्त स्फटिक मणिको ग्रहण करनेसे पहले वह पद्मराग मणिके जैसा प्रतीत होता है, लेकिन जब इसके स्वरूपका ज्ञान हो जाता है, अर्थात् यह रक्तोपधान है ऐसा मालूम पड़ने लगता है, तब फिर पद्मरागका ज्ञान जाता रहता है। उसी तरह जब तक अग्निके पूर्वोक्त तीन गुणोंका ज्ञान नहीं होता, तभी तक अग्निबुद्धि और अग्निशब्द रहता है। तीनों रूपोंका सम्यक् ज्ञान हो जानेसे ही उनको पृथक्ताका ज्ञान दूर हो जाता है। यथार्थमें वह विकार मात्र है, केवल तीनों रूप ही सत्य हैं। तीनों रूपोंको छोड़ कर और कुछ भी सत्य नहीं है।

सूर्यका जो लोहित रूप देखा जाता है, वह तेजका रूप है; चन्द्रमाका शुक्ल रूप जलका और कृष्णरूप अन्नका अर्थात् अत्रिवृत्कृत पृथ्वीका है। जब तक तीनों गुणोंका सम्यक् ज्ञान नहीं होता, तब तक वे पृथक् पृथक् रूपसे प्रतीत होते हैं। विवेकज्ञान हो जानेसे तीन रूपोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रहता, इसीसे केवल वे ही तीनों रूप एक मात्र सत्य हैं।

उक्त तीन रूपोंके अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं है। तेज, जल और अन्न जिस तरह इन तीन देवताओंके त्रिवृत् करनेमें एक एक होता है, वह इसी तरह जानना चाहिये। पहले जो उदाहरण दिया गया, वह तेजका था। अब जल और अन्नका उदाहरण दिया जाता है।

पृथ्वीमें गन्ध है और जलमें रस है; किन्तु तेजमें वे सब नहीं हैं। गन्ध और रस तेजमें नहीं है, सारा संसार त्रिवृत् है, केवल तीनों रूप ही सत्य हैं, अन्न और जल निष्पाद्य प्रयुक्त जल ही सत्य है, जल भी केवल तेजः सम्पाद्य है। सुतरां जल और नाम मात्र तेज ही सत्य है, तेज और सत्पदार्थ निष्पाद्य है, सुतरां तेज भी नाम मात्र है। अतः वही सत्पदार्थ सत्य है, वायु और आकाश त्रिवृत्कृत नहीं हैं, तभी वे तेजके अन्तर्गत नहीं हैं।

जितने त्रिवृत्कृत हैं, सभी असत्य हैं। केवल एक मात्र सत् पदार्थ ही सत्य है। (छान्दोग्य उप० भाष्य)

त्रिवृत्त (सं० त्रि०) त्रिगुणित, तिगुणा।

त्रिवृत्ता (सं० स्त्री०) त्रिरावृत्ता, त्रिवृत्, निसोथ।

त्रिवृत्ति (सं० स्त्री०) तिस्रः वृत्तयः कर्मधा०। त्रिवृत्, निसोथ।

त्रिवृत्तिका (सं० स्त्री०) तिस्रः वृत्तयोऽस्याः कप्। १ त्रिवृत्, निसोथ। (त्रि०) २ त्रिधावृत्तियुक्त, जिसको तीन वृत्तियाँ हों।

त्रिवृत्पर्णी (सं० स्त्री०) त्रीन् दोषान् नाशकत्वेन। वृणोति त्रिवृत त्रिदोषघ्नं पर्णमस्याः। हिलमोचिका, हुरहुर।

त्रिवृद्वेद (सं० पु०) ऋगाद्यात्मना, त्रिवर्त्तते त्रिवृत् कर्मधा०। १ त्रयी; ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद। २ उनसे उत्पन्न प्रणव। जो उक्त तीनों वेदको जानते हैं, वे ही वेदविद् कहलाते और ये तीनों वेद जिनमें प्रतिष्ठित हैं और जो आद्य अक्षर ब्रह्म अर्थात् प्रणवको जानते हैं; वे ही वेदज्ञ हैं।

त्रिवृन्त (सं० पु०) पलाश वृक्ष, ढाकका पेड़।

त्रिवृष (सं० पु०) एकादश द्वापरके व्यास, पुराणानुसार ग्यारहवें द्वापरके व्यासका नाम।

त्रिवृषन् (सं० पु०) एक राजर्षिका नाम, त्र्यरुणके पिता।

त्रिवेणी (सं० स्त्री०) तिस्रो वेण्यः वारिप्रवाहा विमुक्ताः संयुक्ता वा यत्र। बङ्गालके हुगली जिलेके अन्तर्गत गङ्गा-तीरस्थ एक तीर्थ और ग्राम। यह अक्षा० २२° ५८' उ० और देशा० ८८° २६' पू०में अवस्थित है। त्रिवेणी ग्रामके सामने गङ्गामें चर पड़ गया है। इस चरके दक्षिणमें दूसरे किनारे यमुनाका मुहाना है। त्रिवेणी ग्रामके उत्तर हो कर सरस्वती आ कर गङ्गामें मिल गई है। इन तीन नदियोंके सङ्गमस्थानके कारण इसका त्रिवेणी नाम पड़ा है। त्रिवेणी ग्राम पहले एक प्रधान बन्दर था। ग्रीक लोग इस बन्दरका हाल जानते थे। प्लिनी लिख गए हैं कि दक्षिणमें गोदावरी मुहानेसे जो सब जहाज पटने जाते उन्हें पहले त्रिवेणी हो कर जाना पड़ता था। टलेमीकी पुस्तकमें भी त्रिवेणीका उल्लेख है। त्रिवेणीके नीचे सरस्वतीकी खाईमें मिट्टी खोदते समय अभी बहुतसे मस्तूल, पुरानी नावें और शृङ्खलादि देखे जाते हैं। ग्राममें भी कई जगह मट्टीके नीचे अट्टालिकाओंकी दीवार मिलती हैं।

सरस्वती मुहानेके उत्तरमें त्रिवेणीका सुप्रशस्त घाट है। कहा जाता है कि उड़ीसेके गजपतिवंशीय अन्तिम स्वाधीन राजा मुकुन्ददेवने यह घाट निर्माण किया था। १५५२ ई०में मुकुन्ददेव सिंहासन पर बैठे। तीन सौ वर्षसे अधिक हो गये हैं तो भी घाट ज्योंका त्यों बना हुआ है। बीचमें एक बार इसकी मरम्मत हुई है। इस घाटमें चांदनी वा घर नहीं है। इस घाटके बगलमें चांदनी विशिष्ट एक सुन्दर घाट हैं जहां गङ्गा यात्रियोंके घर हैं।

त्रिवेणीकी दक्षिणसीमामें एक विख्यात मस्जिद है जिसमें जाफर खाँ और उनके वंशके कई एक व्यक्तियोंकी समाधियां हैं। जाफरखाँ पाण्डुआके गोहत्यासे घटित युद्धके नायक शाह सफीके चचा थे। जाफर खाँके साथ भुदियाके राजाका युद्ध हुआ था, उसी युद्धमें जाफर मारे गये थे। उनके लड़केने हुगलीके राजाको परास्त कर उनकी लड़कीको व्याहा था। मस्जिदमें उस राजकन्याकी भी समाधि है। मुसलमान पर्वमें हिन्दूलोग आज भी राजकन्याकी कब्रमें सिरनी चढ़ाते हैं। सुना जाता है कि जाफर खाँ भी गङ्गाकी पूजा करते थे।

मि० ब्लाकम्यान जाफरकी मस्जिद देख कर इस प्रकार लिख गये हैं—

मस्जिद दो दीवारोंसे घिरी है। बाहरवाली पहली दीवार बड़े बड़े पत्थरोंकी बनी हुई है। कहा जाता है कि सौ हिन्दू मन्दिरको तोड़ कर उन्होंने पत्थर संग्रह किये थे। गङ्गाकी ओर दीवार पर उसके कई एक प्रमाण पाये जाते हैं। क्योंकि पत्थरों पर बहुतसी हिन्दू देव-देवियोंकी अङ्गहीन मूर्तियां और पंखदार सांप बिच्छू आदिकी मूर्तियां अङ्कित हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि ये सब पत्थर सचमुचमें किसी हिन्दू मन्दिरसे लिये गये हैं। इस दीवार पर जमीनसे चार हाथ ऊपरमें एक लोहेका खम्भा गड़ा हुआ है। प्रवाद है कि यह जाफर खाँका युद्धास्त्र था। दूसरी दीवार पहली दीवारके दक्षिणकी ओरसे निकल कर मस्जिदको घेरे हुये हैं। यह दानादार पत्थरोंकी बनी हुई है। वर्त्तमान खादिम आस्तानाके अध्यक्षको निपट मूर्ख नहीं कह सकते हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि जाफर खाँका कब्रिस्तान सबसे पश्चिममें है। आयेन खाँ, गायेन खाँ और बीरखाँ गाजी नामक जाफरके तीन पुत्रोंकी भी अलग अलग तीन कब्रें हैं। पहली दीवारके मध्य बर खाँ गाजीके दो पुत्र रहीम खाँ गाजी और करीम खाँ गाजीके समाधिस्तम्भ हैं। दूसरी दीवारके मध्य पश्चिमकी ओर ४० हाथके अन्तर पर एक मस्जिदका भग्नावशेष देखा जाता है। यह भी हिन्दू मन्दिरके उपकरणसे बनी हुई है। इसके गुम्बजके स्तम्भ बहुत मोटे हैं। इस मस्जिदकी पश्चिमी भीतमें बहुतसे लेख खुदे हुए हैं और भीतरमें कई एक अरबी भाषामें लिखी हुई शिलालिपियां हैं। उनके पढ़नेसे जाना जाता है कि तुर्की खाँ महम्मद जाफर खाँने ६८८ हिजरीमें (१२८४ ई०में) यह मस्जिद निर्माण की। इसके अलावा बहुतसी ईंटोंकी भीतके ध्वंसावशेष देखनेमें आते हैं। यहांके

अधिवासियोंका कहना है कि ये सब खादिमोंके घर थे।

प्राचीन पुराणादिमें प्रयाग ही त्रिवेणी नामसे प्रसिद्ध है। प्रयागमें गङ्गाके साथ यमुना और सरस्वतीके मिल जानेसे उस स्थानको युक्तवेणी और त्रिवेणी नामक ग्राममें गङ्गासे सरस्वती और यमुनाके स्वतन्त्र हो कर भिन्न मुख हो जानेसे उस स्थानको मुक्तवेणी कहते हैं।

रघुनन्दनके प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखा है कि 'प्रद्युम्न-नगरके दक्षिण और सरस्वती नदीके उत्तरमें दक्षिण प्रयाग है। इस स्थानमें गङ्गासे यमुना दूर रह गई है। यहां स्नान करनेसे प्रयागमें स्नान करनेका फल होता है। उन्मुक्तवेणी दक्षिण-प्रयाग सप्तग्रामके निकट दक्षिण देशमें त्रिवेणी नामसे प्रसिद्ध है।'

स्मार्त्त रघुनन्दन श्री चैतन्यके समकालवर्त्ती थे, सुतरां चार सौ वर्ष पहले भी जो त्रिवेणी तीर्थवत् प्रसिद्ध और प्रयागके समान गिनी जाती थी उसका प्रमाण पाया जाता है। इसके सिवा कविकङ्कणकी चण्डीमें भी त्रिवेणीका उल्लेख और उसकी समृद्धिका कुछ कुछ प्रमाण है। त्रिवेणी एक प्रधान तीर्थ और वाणिज्यका स्थान कह कर उक्त पुस्तकमें वर्णित है।

त्रिवेणीमें शिवेश्वर नामका एक स्थान है। इसके सामने गङ्गाके एक दहको लोग कालीदह कहते हैं।

त्रिवेणी-घाटके उत्तरमें बान्दा पहाड़ हैं। यहां एक जगह प्राचीन कालका एक बड़ा पत्थर विद्यमान है जिसे लोग धोबिनका पाट कहते हैं। त्रिवेणीके घाटसे कुछ उत्तरमें उस पत्थरके समीप एक पुष्करिणी भी है, वह भी 'धोबिनका पोखर' नामसे मशहूर है।

जाफर खांकी मस्‌जिदमें जो लौहदण्डकी कथा कही जा चुकी है उसके विषयमें एक प्रवाद है। लोग साधारणतः उसे 'गाजीका कुठार' और उस स्थानको 'दफरा गाजीका तल्ला' कहते हैं। वह लौहदण्ड नवानेसे नव जाता है, किन्तु दीबारसे गिर नहीं पड़ता, इसीसे एक प्रवाद इस प्रकार है, 'गाजीका कुठार नवता, चढ़ता किन्तु गिरता नहीं।' दफरा गाजीके विषयमें एक कहानी भी इस तरह है। दफरा गाजी नामक कोई मुसलमान धनी थे। एक दिन निमन्त्रणसे लौटते समय राहमें तूफान तथा वृष्टिने उन्हें घेर लिया। समीपमें कोई आश्रम न पा कर वे पासके एक बड़े वटवृक्ष पर चढ़ गये। वृक्षके पास ही श्मशान था। भूत और प्रेतिनी उस वृक्ष पर बैठ आपसमें कुछ बात चीत कर रही थीं, प्रेतिनीने भूतसे पूछा 'क्या मेरा विवाह नहीं होगा'? क्या इसी अवस्थामें चिरकाल तक रहूंगी?' भूतने जवाब दिया—'बहन! अमुक ग्रामके दफरा गाजीके नौकरको कल उसीकी गाय उसे मार डालेगी वह मर कर भूत होगा। उसी भूतके साथ तुम्हें व्याहूंगा।' दफरा गाजीने सब बातें सुन लीं और वृष्टि बन्द होने पर उसने घरकी राह ली। यहां उसने किसीसे कुछ न कह कर उस नौकरको बुलाया और उसे एक घरमें बन्द कर ताला लगा दिया, किन्तु वे उसकी ताली उसी जगह भूल आये। उनकी स्त्रीने उसे छिपा रखा। इधर उनकी गाय रस्सी तोड़ कर बहुत उत्पात मचाने लगी। कभी वह गङ्गाके किनारे और कभी घरमें इधर उधर कूदती और अनर्थ करती थी। गृहिणीने देखा कि यह भारी विपद् आ गयी, ऐसा होनेसे राहके मुसाफिर मारे जा सकते हैं। ऐसा सोच कर उसने गायको बांधनेके लिये उस नौकरको बाहर कर दिया। ज्योंही वह गायको बाँधने गया त्योंही उसने ऐसा सींग मारा कि उसके पेटकी अंतड़ी आदि बाहर निकल आई और उसकी प्राणवायु उड़ गई।

घर आने पर दफरा गाजीको नौकरकी मृत्युका हाल मालूम हो गया। वे किसीको कुछ कहे बिना संध्याके समय उसी श्मशानके वटवृक्ष पर छिपके बैठ गये। कुछ समयके बाद उन्होंने सुना, प्रेतिनी कह रही है, 'तुमने कहा, कि दफरा गाजीका नौकर मरने पर भूत होगा लेकिन ऐसा तो हुआ नहीं।' भूतने कहा 'हां! उसका जन्म भूतयोनिमें न हुआ। गाय जब रस्सी तोड़कर गङ्गाके किनारे गई थी, तब उसके सींगमें गङ्गाकी मट्टी लग गई थी। मरते समय मृत्तिकाके स्पर्शसे नौकर उद्धार हो गया।' दफरागाजीने यह सुनकर अपने मनमें कहा, 'हिन्दूकी देवी गङ्गाका जब ऐसा माहात्म्य है, तो मैं गङ्गाके किनारे रहनेसे क्यों वञ्चित रहूं।' यह सोच कर दूसरे दिन जहां जाफर खांकी मस्जिद थी, उसी जगह वे आकर रहने लगे। इसके पश्चिम ओरकी

दीवार पर अर्थात् जहाँ गाजीका कुठार है, वहाँ बिना छतका एक पत्थरका घर देखनेमें आता है। कहा जाता है, कि दफरा गाजी गङ्गावासी हो कर उस स्थान पर रहते थे। लोगोंका विश्वास है कि विश्वकर्माने गङ्गाके आदेशसे गङ्गाभक्तके लिये रात भरमें वह घर निर्माण किया था, किन्तु सवेरा हो जानेसे वे रह न सके और घर अधूरा हो रह गया। दफरा गाजी गङ्गास्तव करके मुक्त हो गये थे।

गङ्गाकी स्तवमालाके मध्य संस्कृत भाषाके सुललित छन्दमें एक स्तव है जिसे दराफखाँ नामक किसी मुसलमानने रचा है। स्तव जैसा भावविशुद्ध है वैसा ही सुललित भी है। प्रायः सभी हिन्दू यह स्तव जानते हैं और गङ्गास्नातक नित्य इसे पाठ करते हैं। इस स्तवका शेष इस प्रकार है—

"सुरधुनिमुनिकन्ये तारयेः पुण्यवन्तं
स तरति निजपुण्यैस्तत्र किं ते महत्त्वम्।
यदि च गतिविहीनं तारयेः पापिनं मां
तदिह तव महत्त्वं तन्महत्त्वं महत्त्वं ॥"
इति दराफखांविरचितं गंगाष्टकं समाप्तम्।

गाजीका कुठार और जाफरखाँका युद्धास्त्र तथा दफरागाजी, दराफखाँ और जाफरखांके नाम और उनकी गङ्गाभक्तिकी कथा सुन कर अनुमान किया जाता है, कि ये सब एक व्यक्तिके विवरण हैं। लोगोंके मुखमें एक जाफरखाँके नामने ही विविध आकार धारण किया है।

पहले संस्कृत शिक्षाके लिये चार स्थान नदिया राज्यमें विशेष विख्यात थे, इन चारोंको चार समाज कहते हैं। ये चारों स्थान नवद्वीप, भाटपाड़ा, गुप्तिपाड़ा और यही त्रिवेणी हैं। इस समय त्रिवेणीमें तीन संस्कृतकी पाठशालायें हैं।

सुविख्यात सर विलियम जोन्सके संस्कृत शिक्षक अद्वितीय पण्डित जगन्नाथ तर्कपञ्चाननने यहां जन्म ग्रहण किया था और वे उसी ग्रामके वासी थे।

जगन्नाथ तर्कपंचानन देखो।

वारुणी और मकर-संक्रातिको त्रिवेणीमें तीन दिनों तक मेला लगता है उस समय बहुत यात्री इकट्ठे होते हैं। इसके सिवा ग्रहणादिमें भी अनेक यात्री आते हैं।

२ इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्नारूप पारिभाषिक तीनों नदियोंका सङ्गमस्थान।

त्रिवेणु (सं॰ पु॰) त्रयो वेणवो यत्र। रथमुखस्थित अवयव भेद, रथके अगले भागके एक अंगका नाम।

त्रिवेद (सं॰ पु॰) त्रीन् वेदान् वेत्ति-विद-अण्, त्रयो वेदाः अधीतत्वेन सन्त्यस्य अण् वा। १ वेदत्रयवेत्ता, तीनों वेदके जाननेवाले। २ ऋक, यजु और साम ये तीनों वेद। ३ वेदत्रयविहित कर्म, तीन वेदोंमें बतलाये हुए कर्म।

त्रिवेदी (सं॰ पु॰) त्रिवेदं वेत्ति-इन्। १ वेदत्रयज्ञ; ऋक्, यजु और साम इन तीनों वेदके जाननेवाले। २ ब्राह्मणोंका एक भेद।

त्रिवेला (सं॰ स्त्री॰) तिस्रो वेला सीमानोऽस्य। त्रिवृत्, निसोथ।

त्रिवैस्तिक (सं॰ त्रि॰) त्रीणि विस्ताणि स्वर्णकर्षे मूल्यान्यर्हति ठक तस्य च लुगभावः स्वर्णकर्षमूल्यार्ह, जिसकी कीमत तीन स्वर्णकर्ष हो।

त्रिशक्ति (सं॰ स्त्री॰) त्रिगुणिता शक्तिः। १ काली, तारा और त्रिपुरा ये तीनों देवियाँ। २ इच्छा, ज्ञान और क्रियारूपी तीनों ईश्वरीय शक्तियां। ३ राजाओंकी, प्रभाव, उत्साह और मन्त्र; ये तीनों शक्तियां। ४ त्रिगुणात्मक प्रधान, बुद्धित्व। ५ गायत्री।

त्रिशक्तिधृत् (सं॰ पु॰) त्रिशक्तिं इच्छादिशक्तित्रयं धरति धृ-क्विप्। १ परमेश्वर। २ विजिगीषु राजाका नाम।

त्रिशङ्कु (सं॰ पु॰) त्रयः शङ्कव इव यत्र। १ मार्जार, बिल्ली। २ शलभ, पतंग, टिड्डी। ३ चातक पक्षी, पपीहा। ४ खद्योत, जुगनू। ५ पर्वतविशेष, एक पहाड़का नाम। ६ सूर्यवंशीय एक राजा। इनका विषय रामायणमें इस प्रकार लिखा है,-राजा त्रिशङ्कुने सशरीर स्वर्गलाभकी कामनासे अपने गुरु वशिष्ठदेवको यज्ञ करने कहा। वशिष्ठने इसमें अनिच्छा प्रकट की और 'ऐसा नहीं हो सकता' यह उनसे कहा। इस प्रकार त्रिशङ्कु वशिष्ठसे विमुख हो कर दक्षिण दिशाको चल दिये। वहाँ वशिष्ठके लड़के तपस्या कर रहे थे। त्रिशङ्कुने उनकी शरण ली और यज्ञ करनेके लिये विशेष अनुरोध किया। तब वशिष्ठके लड़कों-

ने उनसे कहा, 'मालूम पड़ता है कि तुम्हारी बुद्धि मारी गई है। जब पिताजीने इसका खंडन कर दिया, तब तुम उसे उल्लङ्घन कर क्यों दूसरेकी शरण लेते हो? उन्होंने जो कुछ कहा है वह अमोघ है और किसी हालतसे टल नहीं सकता। सुतरां जब उन्होंने "ऐसा नहीं हो सकता" यह कहा, तब हम लोग पिताजीकी आज्ञाके विरुद्ध यह यज्ञ नहीं कर सकते।' इस पर त्रिशङ्कु बोले "आपके पिताने मुझे विमुख कर दिया और आपने भी वैसा ही किया, अब मैं किसी दूसरेका आश्रय लेनेको वाध्य हूं।" यह सुन कर वशिष्ठके लड़के क्रोधसे अधीर हो उठे और 'तुम चाण्डाल हो जाओ' ऐसा शाप दे कर वे अपने अपने आश्रमको चल दिये। बाद त्रिशङ्कु चाण्डालत्व प्राप्त कर इधर उधर भ्रमण करने लगे और दुःखसे नितान्त विह्वल हो उन्होंने महर्षि विश्वामित्रका आश्रय ग्रहण किया। राजाकी चण्डालरूपी और विफलकर्मा देख कर विश्वामित्रका हृदय दयासे भर आया और वे बोले 'मैं दिव्य चक्षुसे देखता हूं कि तुम महाबलसम्पन्न अयोध्याधिपति हो और अभिशापसे चण्डालत्वको प्राप्त हुए हो। जिस कार्यके लिये तुम मेरे समीप आये हो उसे कहो "तुम्हारा कल्याण होगा।" तब त्रिशङ्कु राजाने हाथ जोड़ कर कहा, 'प्रभो! मैं यज्ञ करके सशरीर स्वर्ग जाना चाहता हूं, यही मेरा अभिलाष है। मैं गुरु वशिष्ठ और उनके लड़कोंसे विमुख हो चुका हूं, अभी आपही मेरे एक मात्र आश्रयदाता हैं। मैंने अनेक यज्ञ किये हैं और कभी भी धर्म विगर्हित कार्य नहीं करता।" विश्वामित्रने त्रिशङ्कुकी यह बात सुन कर कहा, 'डरो मत, गुरुके अभिशापसे तुम्हारी ऐसी अवस्था हो गई है। तुम इसी अवस्थामें सशरीर स्वर्गको पहुंच जावोगे। अभी मैं यज्ञ साहाय्यकारी पुण्यकर्मा महर्षियोंको बुलाता हूं, तुम निश्चिन्त हो कर यज्ञ करो।' तब विश्वामित्रने अपने पुत्रोंको यज्ञका आयोजन करने कहा और सब शिष्योंको बुला कर कहा, 'तुम लोग मेरी आज्ञासे ऋत्विक् और वशिष्ठपुत्रादि बहुश्रुत ऋषियोंको सुहृद् और शिष्योंके साथ बुला लावो। 'जायंगे वा नहीं' जो जैसा कहें वह मुझे खबर दो। शिष्यगण चारों ओर चल दिये। वेदविद् सभी ऋषि यज्ञमें आने लगे, केवल वशिष्ठके पुत्र और महोदय नामक ऋषि नहीं आये। उन्होंने कहला भेजा कि, जिस यज्ञका याजक क्षत्रिय है विशेषतः जो चण्डाल है उसकी यज्ञस्थलीमें सुर और ऋषि लोग किस प्रकार हवि भोजन करेंगे। विश्वामित्र यह वचन सुन कर क्रुद्ध हो बोले, "वशिष्ठके पुत्र जब बिना दोषके मुझे दोषी बनाते हैं, तब वे मेरे इस अभिशापसे कुरूप कुक्कुर मांसाहारी भंगीकी योनिमें सात सौ वर्षतक जन्म लेकर इस संसारमें भटकते फिरें। महोदय भी निषादत्वको प्राप्त कर अधिक समय तक दुर्गति भोगें।" बाद विश्वामित्रने समागत ऋषियोंसे कहा, 'त्रिशङ्कुने सशरीर स्वर्ग जानेकी इच्छा करते हुए मेरी शरण ली है। अतः ये जिससे ज्ञान द्वारा सशरीर स्वर्ग जा सकें आप लोग मेरे साथ उसी यज्ञका अनुष्ठान करें।'

ऋषियोंने विश्वामित्रको अत्यन्त क्रोधित स्वभावका जान कुछ भी प्रतिवाद किये बिना यज्ञका आरम्भ कर दिया।

विश्वामित्र स्वयं इस यज्ञमें अध्वर्यु बने। मन्त्रकोविद् ऋत्विक शास्त्रानुसार सब कार्य करने लगे। महर्षि विश्वामित्रने देवताओंको हविर्भाग प्रदान किया, किन्तु कोई देवता यज्ञमें न आये। तब विश्वामित्रने क्रुध हो स्रुवको उठा कर त्रिशङ्कुसे यह कहा, 'नरेश्वर! मेरी अर्जित तपस्याका प्रभाव देखो! अभी मैं अपने तेजसे तुम्हें स्वर्ग भेजता हूं। कोई भी सशरीर स्वर्ग नहीं जा सकता है, पर तुम जाओ। मैंने अपनी तपस्या द्वारा जो फल प्राप्त किया है, तुम उसीके प्रभावसे सशरीर स्वर्गको जा सकते हो।' विश्वामित्रके इतना कहने पर त्रिशङ्कु सशरीर स्वर्गको जाने लगे। इधर इन्द्रने त्रिशङ्कुको सशरीर स्वर्गकी ओर आते देख कर कहा, 'मूर्ख! तुम्हारे लिये स्वर्गमें स्थान नहीं। तुम पर गुरुका शाप है, अतः यहांसे औंधे मुंह मर्त्यलोकको लौट जावो।' त्रिशङ्कु जब नीचे गिरने लगे, तब 'मुझे बचाइये' कह कर जोरसे चिल्ला उठे। इस पर विश्वामित्र बहुत बिगड़े और "ठहरो, ठहरो" यह कह कर उन्होंने दक्षिणकी ओर दूसरे सप्तर्षियों और नक्षत्रोंकी रचना आरम्भ की। इन्द्रने सृष्टि करनेकी इच्छा करते

हुए पुनः सोचा कि इन्द्रशून्य सृष्टि ही प्रशस्त है। सब देवता भयभीत हो कर विश्वामित्रकी शरणमें पहुंचे। तब विश्वामित्रने उनसे कहा, मैंने त्रिशङ्कुको सशरीर स्वर्ग पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है, अब वह किस प्रकार मिथ्या हो सकती। अतः अब वह राजा जहांके तहां वास करेंगे और जब तक मनुष्य वर्त्तमान रहेंगे तब तक हमारे बनाए सप्तर्षि और नक्षत्र उनके चारों ओर रहेंगे।' आप लोग इस विषयमें क्या कहते हैं। देवताओंने उनकी यह बात स्वीकार कर ली। तबसे त्रिशङ्कु वहीं आकाशमें सफेद नक्षत्रोंके बीच नीचे शिर किए हुए लटके हैं और नक्षत्र उनकी परिक्रमा करते हैं। (रामायण १।५७-६२ सर्ग)

हरिवंशमें त्रिशङ्कुका विषय इस प्रकार लिखा है—

महाराज त्रयारुणके सत्यव्रत नामक एक पुत्र था। ये बहुत पराक्रमी थे। इन्होंने वैवाहिक नियमका उल्लङ्घन कर दूसरेकी विवाहिता स्त्रीको अपने घर ला उसे अपनी स्त्री बना कर रख लिया। जब महाराज त्रयारुणको यह हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने सत्यव्रतको कलङ्की समझ कर परित्याग किया। इस प्रकार पितासे तिरस्कृत होने पर सत्यव्रतने उनसे पूछा, "मैं कहां रहूं।' इस पर वे बहुत बिगड़े और बोले, 'तुम चाण्डालोंके साथ जा कर रहो। मैं तुम्हारे सरीखा दुरात्मा पुत्र द्वारा पुत्रवान् होनेकी इच्छा नहीं करता।' सत्यव्रत पिताके आदेशसे नगर छोड़ बाहर हो गये। वशिष्ठने भी इसमें कुछ छेड़ छाड़ न की। इसी तरह सत्यव्रत अपना समय चाण्डालोंके साथ बिताने लगे। इस प्रान्त पर भगवान् इन्द्रकी ऐसी कुदृष्टि पड़ी कि बारह वर्ष तक वृष्टि ही न हुई। इधर विश्वामित्र अपनी स्त्रीको इसी प्रान्तमें छोड़ आप कठोर तपस्या करनेके लिए किसी दूसरी जगह चले गए थे। इससे विश्वामित्रकी स्त्री अन्यान्य पुत्रोंके भरणपोषणके लिए ऋषिके औरस-जात मध्यम पुत्रको गलेमें बांध कर सौ गायोंकी बेचने निकलीं। जब वह सत्यव्रतके पास पहुंची, तो उन्होंने ऋषिको प्रसन्न रखने अथवा अनुग्रह प्राप्ति की आशासे उनकी खबर ली एवं उनके भरण पोषणका भार ग्रहण किया। विश्वामित्रके पुत्र सत्यव्रतसे पाले गए थे, इसी कारण उनका नाम गालव पड़ा।

सत्यव्रत प्रतिज्ञाबद्ध हो कर विश्वामित्रकी पत्नीका प्रतिपालन करने लगे। सत्यव्रतके राज्यसे बहिर्गत होते समय वशिष्ठने कुछ भी नहीं कहा था, इस कारण वे ऋषि पर कुपित रहते थे। सत्यव्रतके ऊपर उनके पिता जो अप्रसन्न थे उसी महापापसे इन्द्रने बारह वर्ष तक वृष्टि बन्द कर दी थी। अभी सत्यव्रतने बारह वर्षके बीच दुर्वह दीक्षा ग्रहण की अर्थात् पापसे निवृत्त हो कर कुलकी निष्कृति लाभ की; किन्तु एक बार मांसके अभावके कारण उन्होंने वशिष्ठकी कामधेनु गौको मार कर उनका मांस विश्वामित्रके लड़केको खिलाया था और स्वयं भी खाया था, सुतरां यह घोर महापापका काम हुआ। वशिष्ठको जब अपनी गौके मारे जानेका हाल मालूम हुआ तब उन्होंने सत्यव्रतसे कहा; 'यदि तुम ये दोनों पाप नहीं किये होते तो निश्चय ही मैं तुम्हारे पापरूपी शङ्कुको दूर कर देता। एक तो तुमने अपने पिताको असन्तुष्ट किया, दूसरे अपने गुरुकी गौ मार डाली और तीसरे उसका मांस स्वयं तथा ऋषि-पुत्रोंको खिलाया। यही तीन महापातक तुमने किये। अब किसी प्रकार तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती।' सत्यव्रतने ये तीन महापातक किये थे, इसीसे वे त्रिशङ्कु कहलाए। उन्होंने विश्वामित्रकी स्त्री और पुत्रोंकी रक्षा की थी, इसलिये ऋषिने उनसे वर मांगनेके लिए कहा। त्रिशङ्कुने सशरीर स्वर्ग जानेकी प्रार्थना की विश्वामित्रने 'तथास्तु' कह कर स्वीकार किया। पीछे बारह वर्षकी अनावृष्टिका भय दूर होने पर उन्होंने त्रिशङ्कुको उनके पैतृक राज्य पर अभिषिक्त किया और स्वयं उनके पुरोहित बने। विश्वामित्रके यज्ञ करने पर देवताओंने भी वशिष्ठका अनादर किया और त्रिशङ्कुके सशरीर स्वर्गारोहणको अनुमोदन किया। सत्यव्रतने केकयवंशकी सत्यरथा नामक कन्याको ब्याहा था और उसीके गर्भसे प्रसिद्ध सत्यव्रती महाराज हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुए थे। हरिश्चन्द्रको त्रैशङ्कव भी कहते हैं।

७ नक्षत्रविशेष, एक तारा। इसके विषयमें प्रसिद्ध है, कि यह वही त्रिशंकु हैं जिन्हें इन्द्र आकाशसे गिरा रहे थे और जिन्हें मार्गमें ही विश्वामित्रने रोक दिया था।

(हरिवंश १२-१३ अ०)

त्रिशङ्कुज (सं॰ पु॰) त्रिशङ्कोर्जायते जन-ड। हरिश्चन्द्र राजा।

त्रिशङ्कुयाजी (सं॰ पु॰) त्रिशङ्कुं याजयति यज-णिनि। विश्वामित्र ऋषि। त्रिशंकु देखो।

त्रिशत (सं॰ क्ली॰) त्रिगुणितं शतं मध्यलो॰। त्रिगुणित शत, तिगुना सौ, तीन सौ।

त्रिशतीप्रसारिणीतैल (सं॰ क्ली॰) तैल औषध भेद। प्रस्तुत प्रणाली—तिल तैल ४८ सेर, क्वाथार्थ मूल-पत्र और शाखाके साथ सारविशिष्ट गन्धभद्रा १०० पल, पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, अश्वगन्धा १०० पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दशमूल १०० पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दधिका जल १६ सेर, काँजी ३२ सेर, कल्क पाकार्थ जल २५६ सेर, कल्कार्थ जीवनीय गण प्रत्येक १ पल, अदरख ५ पल, भिलावेकी मुष्टि ३० पल, पिपरामूल २ पल, चीतामूल २ पल, यवक्षार २ पल, सैन्धव २ पल, सचल लवण २ पल, मजीठ २ पल, गन्धभद्रा २ पल, यष्टिमधु २ पल, इन सब द्रव्योंको तैल विधिके अनुसार पाक कर उतार लेते हैं। यह तैल अभ्यङ्ग, वस्तिकर्म, निरूह, पान और नस्यार्थमें व्यवहृत होता है। यह वातरोगका एक उत्कृष्ट तैल है। इस तैलका व्यवहार करनेसे अस्सी प्रकारकी वातज व्याधि और बीस प्रकारकी पैत्तिक तथा श्लैष्मिक व्याधि बहुत जल्द प्रशमित हो जाती हैं। इसके सिवा गृध्रसी, अस्थिभङ्ग, मन्दाग्नि, अरोचक, अपस्मार, उन्माद, विभ्रम, पक्षाघात, सर्वाङ्गहत, वातगुल्म आदि रोग जाते रहते हैं। (भैषज्यरत्नावली)

त्रिशरण (सं॰ क्ली॰) त्रीणि शरणानि यस्य। १ बुद्ध। २ जैनियोंके एक आचार्यका नाम।

त्रिशर्करा (सं॰ स्त्री॰) त्रिगुणिता शर्करा, मध्यलो॰। गुड़, चीनी और मिस्री इन तीनोंका समूह।

त्रिशला (सं॰ स्त्री) तिस्रः शला यस्याः पृषोद॰ साधुः। अर्हन् मातृविशेष, वर्द्धमान या महावीर स्वामीकी माताका नाम।

त्रिशल्य (सं॰ पु॰-क्ली॰) जैनधर्मानुसार माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीन शल्य; मनमें और वचनमें तथा कायमें कुछ और ही करना यही मायाशल्य है, तत्त्वार्थ अर्थात् जिनागममें अश्रद्धान वा सन्देह करना मिथ्यात्वशल्य है और भविष्यमें विषयभोगोंकी वांछा करना निदानशल्य है। इन तीनोंके रहते हुए मनुष्य व्रती नहीं हो सकते अर्थात् जिनमें ये तीन शल्यें पाई जाँय, उनका अहिंसादि व्रत वृथा है।
(तत्त्वार्थसूत्र ७।१८)

त्रिशाख (सं॰ त्रि॰) तिस्रः शाखा अग्राणि यस्य। शिखाकार अग्रत्रय युक्त, जिसमें आगेकी ओर तीन शाखाएं निकली हों।

त्रिशाखपत्र (सं॰ पु॰) बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़।

त्रिशाण (सं॰ त्रि॰) त्रयः शाणाः परिमाणमस्य तैः क्रीतं वा अण् तस्य वा लुक्। १ त्रिशाण परिमित। २ जो एक त्रिशाणमें खरीदा गया हो।

त्रिशालक (सं॰ क्ली॰) तिस्रः शाला यत्र वा कप्। हिरण्यनामाख्य वस्तु भेद, वह इमारत जिसके उत्तर ओर और कोई इमारत न हो। ऐसी इमारत अच्छी समझी जाती है।

त्रिशिख (सं॰ क्ली॰) तिस्रः शिखा यस्य। १ त्रिशूल। २ किरीट। ३ रावणके एक पुत्रका नाम। ४ बिल्व, बेल। ५ तामस नामक मन्वन्तरके इन्द्रका नाम। (त्रि॰) ६ शिखात्रययुक्त, जिसकी तीन शिखाएँ हों।

त्रिशिखर (सं॰ पु॰) त्रीणि शिखराणि यस्य। त्रिशृङ्ग पर्वत, वह पहाड़ जिसकी तीन चोटियाँ हों।

त्रिशिखिदला (सं॰ स्त्री॰) तिस्रः शिखाः सन्त्यत्र इति तादृशं दलमस्य। मालाकन्द नामक मूल।

त्रिशिखिन् (सं॰ त्रि॰) त्रिशिखाः सन्त्यस्य इनि। त्रिशिख, जिसकी तीन चोटियाँ हों।

त्रिशिरस् (सं॰ पु॰) त्रीणि शिरांसि अस्य। १ कुबेर। २ रावणके एक पुत्रका नाम। ३ खरके एक सेनापतिका नाम। ४ ज्वर पुरुष। इसे दानवोंके राजा रावणकी सहायताके लिये महादेवजीने उत्पन्न किया था। इसके तीन सिर, तीन पैर, छह हाथ और नौ आंखें थीं। ५ जैवरथ। ६ त्वष्टा प्रजापतिके पुत्रका नाम। ७ असुरविशेष, एक राक्षस जिसका उल्लेख महाभारतमें है। यह खर-दूषणकी सेनामें वर्त्तमान था। श्रीरामजीके द्वारा १४ हजार राक्षसोंके मारे जाने पर त्रिशिरा और खर ये दो

दोनों बचे थे। (त्रि०) ८ जिसके तीन सिर हैं।

त्रिशीर्ष (सं० त्रि०) त्रीणि शीर्षाणि यस्य। १ त्रिशिखर, जिसकी तीन चोटियां हों। २ त्वष्टा प्रजापतिके पुत्रका नाम।

त्रिशीर्षक (सं० क्ली०) त्रिशीर्ष-कप्। त्रिशूल।

त्रिशीर्षन् (सं० पु०) त्वष्टाके एक पुत्रका नाम।

त्रिशुच (सं० पु०) तिस्रः शुचो दीप्तयः शोका वा अस्य। १ धर्म, जिसका प्रकाश स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी तीनों स्थानोंमें है। २ आध्यात्मिकादि शोकत्रययुक्त, वह जिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकारके दुःख हों।

त्रिशूल (सं० पु०) त्रीणि शूलानि इव अग्राणि यस्य। स्वनामख्यात अस्त्रविशेष, एक प्रकारका अस्त्र जिसके सिरे पर तीन फल होते हैं। यह महादेवजीका अस्त्र माना जाता है। इसका संस्कृत पर्याय--त्रिशिख, शूल और त्रिशीर्षक है। २ दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख। ३ तन्त्रके अनुसार एक प्रकारकी मुद्रा। इसमें अंगूठेको कनिष्ठा-उँगलीके साथ मिलाते हैं और बाकी तीन उँगलियोंको फैला देते हैं।

त्रिशूलखात (सं० क्ली०) त्रिशूलेन खातं। तीर्थविशेष, एक तीर्थका नाम। इस तीर्थमें स्नान कर पितृ और देवताओंकी अर्चना करनेसे गाणपत्यदेह प्राप्त होती है।

त्रिशूलमुद्रा (सं० स्त्री०) त्रिशूलं आकारत्वेनास्त्यस्याः। मुद्राविशेष, एक प्रकारकी मुद्रा। त्रिशूल देखो।

त्रिशूली (सं० पु०) त्रिशूलं अस्त्रमस्त्यस्य, त्रिशूल-इनि। १ शिव, महादेव। (स्त्री०) २ दुर्गा। (त्रि०) ३ त्रिशूलधारी, त्रिशूलको धारण करनेवाले। (क्ली०) ४ पारद, पारा।

त्रिशृङ्ग (सं० पु०) त्रीणि शृङ्गाणि यस्य। १ त्रिकूट पर्वत। इसी पहाड़ पर लङ्का बसी है। २ त्रिकोण।

त्रिशृङ्गी (सं० पु०) त्रीणि शृङ्गाणीव सन्त्यस्य त्रिशृङ्ग-इनि। रोहित मत्स्य, टेंगना नामकी मछली जिसके सिर पर तीन कांटे होते हैं।

त्रिशोक (सं० पु०) त्रय आध्यात्मिकादयः शोका अस्य। जीव, आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक ये तीन प्रकारके शोक जीवके होते हैं, इसीसे जीव मात्र ही त्रिशोक है। २ कण्व ऋषिके एक पुत्रका नाम।

त्रिश्रुतिमध्यम (सं० पु०) एक प्रकारका विकृत स्वर। यह सन्दीपनी नामकी श्रुतिसे आरम्भ होता है। इसमें चार श्रुतियां होती हैं।

त्रिषंयुक्त (सं० त्रि०) त्रिभिर्त्रिभिः संयुक्तं वेत्ति छन्दसीति चानुवृत्तौ वेदे षत्वं। १ तीन बार हविसंयुक्त यज्ञ। २ जो तीन चीजोंसे संयुक्त हो।

त्रिषंवत्सर (सं० क्ली०) त्रयः संवत्सराः साधनकाला अस्य वेदे षत्वं। त्रिवर्ष साध्य सत्रभेद, तीन वर्षमें होनेवाला एक प्रकारका सत्र।

त्रिषन्धि (सं० त्रि०) त्रयः सन्धयोऽस्य, वेदे वा षत्वं। त्रिसन्धियुक्त, जो तीन भागोंमें विभक्त हो।

त्रिषवण (सं० क्ली०) सूयते सोमोऽत्र सु-आधारे ल्युट्; पूर्वपदादिति। त्रिकाल, प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों काल।

त्रिषष्ट (सं० त्रि०) त्रिषष्टा युतं शतादित्वात् ड। त्रिषष्टि युत शतादि, क्रममें तिरसठके स्थान पर पड़नेवाला, तिरसठवाँ।

त्रिषष्टि (सं० स्त्री०) त्र्यधिका षष्टि, बहुत्वेऽपि एकवचनं। त्र्यधिक षष्टि संख्या, वह संख्या जो साठसे तीन और अधिक हो, तिरसठकी संख्या। २ उक्त संख्यासूचक अङ्क।

त्रिषष्टितम (सं० त्रि०) त्रिषष्टि पूरणे तमप्। त्रिषष्टि संख्याका पूरण, तिरसठवां।

त्रिषुपर्ण (सं० पु०) त्रयः सुपर्णास्तद्वाचकशब्दा यत्र। १ बह्वृच वेदके एक भागका नाम। त्रिसौपर्ण देखो। २ उक्त व्रत। ३ उक्त व्रतधारी पुरुष।

त्रिष्टुभ (सं० स्त्री०) त्रिषु स्थानेषु स्तुभ्यते स्तुभ-क्विप्, षत्वं। एकादश अक्षर पादक वर्णवृत्त छन्दोभेद, एक वैदिक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें ग्यारह अक्षर होते हैं। इन्द्र ग्यारह अक्षरोंसे त्रिष्टुभ् छन्दका विधान करते है। (शुक्लयजु० ९।३२)

यह छन्द प्रजापतिके मांससे उत्पन्न हुआ है।

(भागवत० ३।१२।२९।)

इसका प्रकार नीचे लिखे अनुसार है —

इन्द्रवज्रा ॥ ॥ । ॥ ॥ । । ॥ । ॥ ॥

उपेन्द्रवज्रा । ॥ । ॥ ॥ । । ॥ । ॥ ॥
उपजाति भिन्न छन्दयोगसे—
सुसुखी । । । । ॥ । । ॥ । । ॥
शालिनी ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥ ॥
वातोर्मि ॥ ॥ ॥ ॥ । । ॥ ॥ । ॥ ॥
भ्रमरविलसित ॥ ॥ ॥ ॥ । । । । । । ॥
अनुकूला ॥ । । ॥ ॥ । । । । ॥ ॥
रथोद्धता ॥ । ॥ । । । ॥ । ॥ । ॥
स्वागता ॥ । ॥ । । । ॥ । । ॥ ॥
दोधक ॥ । । ॥ । । ॥ । । ॥ ॥
मोटनक ॥ ॥ । । ॥ । । । । । ॥
वृत्ता । । । । । । । । ॥ ॥ ॥
भद्रिका । । । । । । । । ॥ ॥ ॥
उपस्थित } अखण्डित } । ॥ । । । ॥ ॥ ॥ । ॥ ॥
उपचित्र । । ॥ । । ॥ । । ॥ । ॥
कुपुरुषजनिता । । । । । । ॥ । ॥ ॥ ॥
अश्वसिता ॥ । ॥ । । । ॥ । । ॥ ॥
विश्वङ्कमाला ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥ ॥
सान्द्रपद ॥ । । ॥ ॥ । । । । ॥ ।
द्रुता ॥ । ॥ । ॥ । । । ॥ । ॥
इन्दिरा । । । ॥ । ॥ ॥ । । ॥ । ॥
दमनक । । । । । । । ॥ । । ।
मालतीमाला ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

(छन्दो० वृत्त० पिंगल)

त्रिष्टोम (सं० पु०) त्रयः स्तोमा यत्र, षत्वं। एक प्रकारका यज्ञ। यह यज्ञ चतष्टुति यज्ञके पहले और पीछे किया जाता है।

त्रिष्ठ (सं० पु०) त्रिषु चक्रेषु तिष्ठति स्था-क अम्बाम्बेत्यादिना षत्वं। चक्रत्रय स्थित रथ, तीन पहियोंका रथ या गाड़ी।

तिष्ठन् (सं० त्रि०) त्रिषु विद्यादानयज्ञेषु स्था-वा० इनि सुषामादित्वात् षत्वं। विद्यादि शीलयुक्त; विद्यादान और यज्ञयुक्त।

त्रिस् (सं० अव्य) त्रि वारार्थे सुच। त्रिवार, तीन बार।

त्रिसंवत्सर (सं० क्ली०) त्रिगुणितः संवत्सरः। त्रिवर्ष, तीन साल।

त्रिसङ्गम (सं० पु०) १ तीन नदियोंके मिलनेका स्थान। २ किसी प्रकारकी तीन चीजोंका मेल।

त्रिसन्धि (सं० स्त्री०) त्रय सन्धयोऽन्तरकाला विकाशेऽस्याः। पुष्पभेद, एक प्रकारका फूल जो लाल सफेद और काला तीन रङ्गोंका होता है। संस्कृत पर्याय—सान्ध्यकुसुमा, सन्धिवल्ली, सदाफला, त्रिसन्ध्यकुसुमा, काण्डा, सुकुमारा और सन्धिजा। गुण—रुचिकर, कफ, कास और त्रिदोषनाशक है।

त्रिसन्धिपुष्पदा (सं० पु०) त्रिसन्ध फूलका पेड़।

त्रिसन्धी (सं० स्त्री०) शुक्ल त्रिसन्ध, सफेद त्रिसन्ध फूल।

त्रिसन्ध्य (सं० क्ली०) तिसृणां सन्ध्यानां समाहारः आवन्ती वेति पाक्षिकी क्लीवता। प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीन काल। जो तिथि त्रिसन्ध्य-व्यापिनी, अर्थात् सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त तक रहती है, वह सब कार्योंके लिए प्रशस्त है।

त्रिसन्ध्यकुसुम (सं० स्त्री०) त्रिसन्ध्यं कुसुमं यस्याः। त्रिसन्धि देखो।

त्रिसन्ध्यव्यापिनी (सं० स्त्री०) त्रिसन्ध्यं व्याप्नोति वि-आप-णिनि ङीप्। वह तिथि जो सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त तक रहती है।

त्रिसन्ध्या (सं० स्त्री०) १ त्रिसन्धि पुष्प वृक्ष, त्रिसन्धि फूलका पेड़। २ प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीनों सन्ध्याएं।

त्रिसप्तन् (सं० त्रि०) त्रिगुणिताः सप्त। वह संख्या जो सातको तीनसे गुना करनेसे उत्पन्न हो, इक्कीसकी संख्या।

त्रिसप्तति (सं० स्त्री०) त्र्यधिका सप्ततिः। सत्तर और तीनका जोड़, तिहत्तरकी संख्या।

त्रिसप्ततितम (सं० त्रि०) त्रिसप्तति पूरणे तमप्। तिहत्तर पूरण, तिहत्तरवाँ।

त्रिसम (सं० क्ली०) त्रीणि हरीतकी नागरगुड़ानि समानि यत्र। सोंठ, गुड़ और हड़ इन तीनोंके बराबर बराबर भागोंका समूह।

त्रिसर (सं० पु०) त्रिभिः स्त्रीयते सृ-अप्। कृशर, तिलमिश्रित अन्न, खिचड़ी।

त्रिसरक (सं० क्ली०) त्रिवारं सरकं, त्रयाणां सरकाणां

मधुपानानां समाहारः वा० पात्रादित्वात् न ङीप्। तीन बार मधु पान।

त्रिसरा (सं० स्त्री०) त्रिसर देखो।

त्रिसरी (सं० पु०) एक प्रकारका घोड़ा जिसके सर्वाङ्ग भिन्न भिन्न वर्णके हों केवल शिर काला हो।

त्रिसर्ग (सं० पु०) त्रयाणां सत्वरजस्तमसां सर्गः। सत्व, रज और तम तीनों गुणोंका सर्ग, सृष्टि।

त्रिसवन (सं० क्ली०) त्रिकाल साध्य वैदिक सवन।

त्रिसवनस्नायी (सं० पु०) त्रिसवने त्रिकाले स्नातीति स्ना णिनि। त्रिकालस्नायी, वह जो तीनों काल स्नान करता हो।

त्रिसामन् (सं० पु०) त्रीणि सामानि स्तुतिसाधनानि यस्य। परमेश्वर।

त्रिसामा (सं० स्त्री०) त्रिसामन्-टाप्। महेन्द्र पर्वतसे निकली हुई एक नदीका नाम। (भागव० ५।१९।१८)

त्रिसाहस्र (सं० त्रि०) त्रीणि सहस्राणि परिमाणस्य अण् उत्तरपदवृद्धिः। जो तीन हजारका हो अथवा जिसमें तीन हजार हों।

त्रिसिता (सं० स्त्री०) त्रिगुणिता सिता। त्रिशर्करा देखो।

त्रिसत्य (सं० क्ली०) त्रिवारं सीतया सहितं यत्। (नौवयोधर्मेति। पा ४।४।९१) वह जमीन जो तीन बार जोती गई हो।

त्रिसुगन्धि (सं० क्ली०) त्रयाणां सुगन्धिद्रव्यानां समाहारः। त्रिजातक, दालचीनी, इलायची और तेजपात इन तीनों सुगन्धित मसालोंका समूह।

त्रिसुपर्ण (सं० पु०) १ ऋग्वेदके तीन विशिष्ट मन्त्रोका नाम। २ यजुर्वेदके तीन विशिष्ट मन्त्रोंका नाम। त्रिसुपर्ण देखो।

त्रिसुपर्णिक (सं० पु०) वह पुरुष जो त्रिसुपर्णका जाननेवाला हो।

त्रिसुवर्चक (सं० पु०) आङ्गिरस च्यवनरूप अग्नि।

त्रिसौगन्ध्य—त्रिसुगन्धि देखो।

त्रिसौपर्ण (सं० क्ली०) सुपर्णेन ऋषिणा कृतं अण् वृत्तौ त्रिशब्दस्य सुजर्थता उत्तरपदवृद्धिः। सुपर्ण ऋषिका किया हुआ एक व्रत। महर्षि सुपर्णने कठोर तपस्या, नियम और दमगुणके प्रभावसे स्वयं भगवान् नारायणसे इस धर्मको पाया था और वे प्रतिदिन तीनबार करके इसका पाठ किया करते थे। इसी कारण विद्वान् लोग इस धर्मको त्रिसौपर्ण कहते हैं। इस धर्मका वर्णन ऋग्वेदमें आया है। इसका अनुष्ठान बहुत कठिन है। जगत्प्राण समीरणने महर्षि सुपर्णसे यह सनातन धर्म पाया था। पीछे समीरणने यह धर्म विघसाशी महर्षियोंको और फिर उन्होंने भी इसे महासमुद्रको प्रदान किया। बाद यह धर्म पुनः भगवान् नारायणमें लीन हो गया। (भारत शान्तिप० ३५० अ०)

सुपर्णा एव स्वार्थे अण्, त्रयः सौपर्णाः यत्र। २ मन्त्र त्रिक, ऋग्वेदके निम्नलिखित तीन मन्त्रके नाम त्रिसौपर्ण हैं—

चतुष्कपर्दी युवतिः सुपेशा घृत प्रतीका वयुनानि वस्त्रे।
तस्यां सुपर्णा वृषणा निषेदतु र्यत्र देवा दधिरे भागधेयं॥
एकः सुपर्णः ससमुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।
तं पाकेन मनसा पश्यमन्तितस्तं माता ह्रिस उ रेह्मातरं॥
सुपर्णंविप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्तसोमस्य मिमते द्वादश॥"
(ऋक् १०।११४।३-५)

एक युवती स्त्री है, जिनके मस्तक पर चार वेणी हैं, जो सुन्दर और स्निग्ध हैं, जो अच्छे अच्छे वस्त्र पहनती हैं, दो पक्षी जिनके ऊपर बैठे रहते हैं और जहां देवता अपना अपना भाग पाते हैं। (इस जगह नारी शब्दका अर्थ यज्ञवेदी है) इसके चारों ओर घी रहनेसे यह स्निग्ध है और इसीको वेणी कहा गया है। यज्ञ सामग्री ही अच्छे अच्छे वस्त्र हैं। इसमें जो दो पक्षी बतलाये गये हैं, वे यजमान और पुरोहित हैं। सुपर्ण अर्थात् जीव और परमात्मा इसमें निषण्ण हैं। इस वेदीमें अग्न्यादि देवता अपना अपना भाग पाते हैं। एक सुपर्णने (पक्षीने) समुद्रमें प्रवेश किया और वहाँ इस विश्व भुवनको देख पाया। परिणत बुद्धिके द्वारा मैं उन्हें क्या देखता हूं कि वे निकटवर्त्तिनी माताको चूम रहे हैं और माता भी उन्हें चूम रही है। यहां पर पक्षीका अर्थ प्राणवायु वा परमात्मा है, समुद्र जो है, वह ब्रह्माण्ड है, उन्होंने इस विश्वको, समस्त

भुवनको एवं भूतजातको विशेषरूपसे स्थापित किया है। माताका अर्थ वाक्य या बोली है। प्राणके नहीं रहनेसे बोली नहीं निकलती। सुपर्ण एक ही हैं, पर पण्डितोंने कल्पना करके उनके अनेक रूप बतलाये हैं। ये लोग यज्ञके समय नाना प्रकारके छन्द उच्चारण करति हैं और बारह सोमपात्र संस्थापन करते हैं। सुपर्ण अर्थात् परमात्मा एक ही हैं, पर तत्त्वज्ञ लोग उन्हें छन्द और स्तोत्रादि द्वारा अनेक बतलाति हैं। भिन्न भिन्न देवताओंका एक आत्मा है। (सायण) ३ परमेश्वरका नामभेद, परमेश्वरका एक नाम।

'त्रिसौपर्ण तथा ब्रह्म यजुषां शतरुद्रियं।' (भारत शां० २८६अ०)

कई जगह 'त्रिसौवर्ण' ऐसा पाठ है। यह लिपिकर प्रमाद है, इसीसे यह शब्द नहीं लिया गया।

त्रिस्कन्ध (सं० क्ली०) त्रयः स्कन्धा इव अवयवा यस्य। ज्योतिःशास्त्र। नाना प्रकारके भेदविषयक ज्योतिःशास्त्र तीन स्कन्धोंसे प्रतिष्ठित हैं। संहितास्कन्ध, तन्त्रस्कन्ध और होरास्कन्ध, येही तीन ज्योतिःशास्त्रके स्कन्ध हैं। जिसमें ज्योतिःशास्त्रके सभी विवरण रहते हैं, उसे संहितास्कन्ध; जिसमें गणित द्वारा ग्रहगतिका निरूपण होता है, उसे तन्त्रस्कन्ध और जिसमें अङ्ग विनिश्चय अर्थात् यात्रा विवाह आदिका वर्णन रहता है उसे होरास्कन्ध कहते हैं। (बृहत्सं १।८)

त्रिस्तनी (सं० स्त्री०) त्रयः स्तना अस्याः ङीप्। १ राक्षसीभेद, एक राक्षसीका नाम, जिसके तीन स्तन थे। २ गायत्री।

त्रिस्तावा (सं० स्त्री०) त्रिगुणिता तावती वेदिः अच् समासान्तटिलोपौ समासश्च निपात्यते। (द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदि। पा ५।४।८४।) अश्वमेध यज्ञकी वेदी जो साधारण वेदीसे तिगुनी बड़ी होती थी।

त्रिस्थली (सं० स्त्री०) त्रयाणां गया काशी-प्रयाग-रूपस्थलानां समाहारः। काशी, गया और प्रयाग ये तीन पुण्यस्थान।

त्रिस्थान (सं० पु०) स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों स्थानोंमें रहनेवाला परमेश्वर।

त्रिस्नान (सं० क्ली०) त्रिषु कालेषु स्नानमत्र। त्रिकाल स्नानाङ्ग व्रतभेद, सबेरे, दो पहर और संध्या तीनों समयका स्नान जो वानप्रस्थ आश्रममें रहनेवालेके लिये आवश्यक है। कई प्रायश्चित्तोंमें भी त्रिकालस्नान करना पड़ता है।

त्रिस्पृशा (सं० स्त्री०) त्रीणि चान्द्रदिनानि एकस्मिन् सावने दिने स्पृशति स्पृश-क। एकादशीभेद। जिस एकादशीके पूर्वदिन दशमी और दूसरे दिन कुछ एकादशी, पीछे द्वादशी, और रातके अन्तमें त्रयोदशी होती है, उसे त्रिस्पृशा कहते हैं, अर्थात् एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी ये तीन तिथि एक सावन दिनमें रहनेसे त्रिस्पृशा होती है। ऐसी एकादशी बहुत उत्तम और पुण्यकार्योंके लिये उपयुक्त मानी जाती है। इसमें स्नानदानादि विशेष फलप्रद हैं।

त्रिस्रोता (सं० स्त्री०) त्रीणि स्रोतांसि यस्याः, त्रिषु स्थानेषु स्वर्ग-मर्त्य-पातालेषु स्रोतो यस्याः। गङ्गा।

त्रिस्रोता (तिस्ता)—उत्तर बङ्गालकी एक बड़ी नदी। यह अक्षा० २८° २' उ० और देशा० ८८° ४४' पू०में अवस्थित है। तिब्बतके अन्तर्गत चतामू ह्रदसे इसकी उत्पत्ति हुई है। फिर सिक्किमके काञ्चनजङ्घाशृङ्ग पर भी इसका दूसरा उत्पत्तिस्थान पाया जाता है। दार्जिलिङ्गकी उत्तरी सीमामें यह नदी सिक्किमसे अलग हो कर बृटिश राज्यमें प्रवेश करती है। कुछ दूर तक दार्जिलिङ्गकी सीमामें प्रवाहित होकर रङ्गित नदीके साथ मिलती है और दक्षिणकी ओर दार्जिलिङ्गके पहाड़ी प्रदेश होती हुई जल्पाईगुड़ी जिलेमें प्रवेश करती है। यहां इसके किनारे पहाड़ पर शालकी जंगल है। जिस स्थान पर तिस्ता शिवकगोला नामक गिरिवर्त्म होती हुई समतल भूमिमें गिरती है, उस जगह उसकी चौड़ाई ७।८ सौ गज है। नदीमें कहीं कहीं पत्थरके बड़े बड़े टुकड़े रहनेसे नावके लिये बहुत विपज्जनक है। तराईसे पृथक् हो कर जलपाईगुड़ीमें और पीछे बक्सीगञ्जके निकट कोचबिहार राज्यमें यह नदी प्रवेश करती है और जयसिंहके निकट कोचबिहार छोड़कर वारुणी ग्रामसे ६ मील उत्तर रङ्गपुर जिलेमें बहती है। रङ्गपुरमें भवानीगञ्ज उपविभागके मध्य चिलमारी थानाके निकट बगोआ नामक स्थानसे नीचे यह ब्रह्मपुत्रमें गिरी है। रङ्गपुरमें

इसकी लम्बाई ११० मील और चौड़ाई ३से ८ सौ गज है। उस स्थान पर इसका स्रोत बहुत प्रखर है। सभी समय रङ्गपुरमें इस नदी होकर सौ मन बोझ लाद कर नावें जाती आती हैं। तिस्तानदीका गर्भ बालुमय है। इसके दक्षिणी भागको झापासियासे लेकर नलगञ्जहाट तक पागली नदी कहते हैं।

तिस्ताका जलस्रोत बहुत जल्दी जल्दी बदलता रहता है। इस तरह इसके अनेक पुरातन गर्भ छोटी तिस्ता, बूढ़ी तिस्ता तथा मरी तिस्ता नामसे पुकारे जाते हैं। १७६४-७२ ई०में मेजर रेनेलके भूमापके समय तिस्ताका प्रधान स्रोत दक्षिणकी ओर बहता हुआ दिनाजपुरकी आत्रेयी नदीके साथ मिल कर गङ्गा या पद्मामें गिरता था। १७८७ ई०को रङ्गपुरमें जो महाप्लावन हुआ था, उस समय तिस्ता उक्त पथको छोड़ गई थी और दक्षिण-पूर्वकी ओर अपनी ही एक शाखामें मिलकर बहुतसे देश, घाट तथा मनुष्योंको नष्ट करती हुई ब्रह्मपुत्रमें गिरी थी। इससे पश्चिमी किनारेका घोड़ामारा नामक वृहत्गञ्ज जिस तरह प्रति वर्ष पीछे हटता जा रहा है, उससे अनुमान किया जाता है, कि उक्त ग्रामकी प्रकृत अवस्थिति बहुत जल्द लुप्त हो जायगी। तिस्ताके इस तरह परिवर्त्तन होनेसे उत्तर-बङ्ग-रेलवेके किनारे डोमर नामक स्थानमें हाट बाजार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

दार्जिलिङ्गमें इसकी प्रधान शाखाओंके नाम रङ्गचु, रोली, बड़ी रंजित, रङ्गजो, रायेङ्ग और शिवक हैं। यहां इसका जल समुद्रके जैसा नीला और कभी कभी दूधसा सफेद हो जाता है। जलपाईगुड़ीमें तिस्ताकी अनेक उपनदियां और शाखा नदियां हैं जो उतना प्रबल वा प्रयोजनीय नहीं हैं। इनमेंसे घाघट और मानस विख्यात हैं।

तिस्ताका संस्कृत नाम त्रिस्रोता वा तृष्णा है। कालिकापुराणमें इसका उत्पत्ति-विवरण इस प्रकार लिखा है— किसी समय एक शिवभक्त असुरने भगवतीकी उपेक्षा करते हुए उनके साथ लड़ाई ठान दी। युद्धमें कातर होकर वह असुर तृष्णातुर हो गया और शिवजीसे जलके लिये प्रार्थना की। इस पर शिवजीने भगवतीके वक्षसे दूधकी धाराके रूपमें पानी निकाल कर उसे पिला दिया। असुरकी तृष्णा मिट जाने पर भी वह धारा बन्द नहीं हुई वरं तीन धाराओंमें विभक्त हो कर पृथ्वीमें प्रवाहित हुई।

त्रिस्रोतसी (सं० स्त्री०) त्रीणि स्रोतांसि सन्ति अस्याः। वह नदी जिससे तीन स्रोत निकले हों।

त्रिहल्य (सं० क्ली०) त्रिवारं हलेन कृष्टं हल यत्। वह खेत जो तीन बार जोता गया हो। इसका पर्याय-त्रिगुणाकृत, तृतीयाकृत और त्रिसीत्य है।

त्रिहायण (सं० त्रि०) त्रयोः हायना वयोऽस्य, णत्वं। १ त्रिवर्ष वयस्क गवादि, तीन वर्षका बछड़ा। २ त्रिवत्सर, तीन वर्ष।

त्रिहायणी (सं० स्त्री०) त्रिहायण-ङीप्। १ त्रिवर्ष गाभि, तीन वर्षका बछड़ा। २ द्रौपदी। कृत युगमें वेदवती, त्रेतामें जनकात्मजा और द्वापरमें द्रौपदी ये ही कृष्णा और त्रिहायणी नामसे प्रसिद्ध हैं।

त्रिहुत--तिरहुत देखो।

त्रीषु (सं० त्रि०) त्रय इषवः परिमाणमस्य कन् तस्य लुक्। बाणत्रयपरिमित स्थान, तीन बाणों तककी दूरीका स्थान।

त्रीषुक (सं० क्ली०) त्रय इषवो यत्र कप्। बाणत्रययुक्त धनु, तीन बाणवाला धनुष।

त्रीष्टक (सं० पु०) त्रिस्रः ऋगादिरूपा इष्टका यस्य। अग्निभेद, एक प्रकारकी वैदिक अग्नि।

त्रुटि (सं० स्त्री०) त्रुट्यते त्रुट-इन् स च कित्। १ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची। २ अल्प, थोड़ा, कमी, कसर। ३ संशय, संदेह। ४ कालभेद, समयका एक अत्यन्त सूक्ष्म विभाग। दो परमाणुका एक अणु और तीन अणुका एक त्रसरेणु होता है। जब सूर्यकी किरण झरोखे होकर घरमें प्रवेश करती है तब यह त्रसरेणु देखा जाता है। सूर्यकी किरणके योगसे अत्यन्त लघुत्वके कारण जो इधर उधर आकाशमें उड़ता दिखाई देता है वही त्रसरेणु है। ऐसे ऐसे तीन त्रसरेणु जो समय भोग करते उसीका नाम त्रुटि है। त्रटिरूपसे कालको सौ भाग करनेसे एक वेध, तीन वेधका एक लव, तीन लवका एक निमेष और तीन निमेषका एक क्षण होता है।

५ कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। ६ अभाव। ७ भूल, चूक। ८ वचनभङ्ग।

त्रुटित (सं० त्रि०) त्रुट-क्त। १ छिन्न, कटा या टूटा हुआ। २ भग्न। ३ आहत। ४ आघातित, जिस पर आघात लगा हो। ५ स्खलित, गिरा हुआ।

त्रुटिबीज (सं० पु०) अरुई, कचू।

त्रुटिस्वीकार (सं० पु०) त्रुटीनां स्वीकारः। दोषस्वीकार भूल मंजूर करना।

त्रेता (सं० स्त्री०) त्रीन् भेदान् एति प्राप्नोति वा त्रित्वामिता पृषो० साधुः। १ अग्नित्रय, दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय नामक तीन प्रकारकी अग्नि। वेदविद् मुनियोंने अग्निको तीन बार प्रणयण किया था, इसीसे अग्निके त्रेता नाम पड़े हैं। (हरिवंश २०५।५)

महाराज इलानन्दनने एक अरणि निर्माण कर शमी वृक्षसे अग्निमन्थनपूर्वक उसे तीन भागोंमें विभक्त किया तथा उस अग्निमें अनेक प्रकारके यज्ञका अनुष्ठान किया। यज्ञमें महाराजको गन्धर्वोंका सालोक्य मिला जो पहले केवल अग्नि था। गन्धर्वोंके वरके प्रसादसे महाराजने उसे तीन भागोंमें बांट दिया। तभीसे अग्नि तीन भागोंमें विभक्त है। (हरिवंश २६,४५,४६)

२ द्यूत विशेष, तीन कौड़ियोंके चित हो जानेसे त्रेता होती है।

जिस पासेसे जुआ खेला जाता है उसके जिस ओर तीन बिंदिया हों, उस ओर यदि वह पासा चित हो जाय तो त्रेता होती है। 'त्रेतया हृतसर्वस्वः' (मृच्छकटिक

३ सत्य और द्वापर युगान्तरवर्त्ती युगभेद, चार युगोंमेंसे दूसरा युग। कार्त्तिक मासकी शुक्लानवमी तिथिमें त्रेतायुगकी उत्पत्ति हुई है, इसीसे कार्त्तिक मासकी शुक्लानवमी बहुत पुण्या तिथि मानी जाती है। इसी युगमें भगवान्ने वामन, परशुराम और श्रीरामचन्द्रके रूपमें अवतार लिया था। इस युगमें पुण्यके तीन पाद और पापका एक पाद होता है। पुष्कर ही प्रधान तीर्थ है, ब्राह्मण साग्निक हैं और प्राण अस्थिगत है। मनुष्यका परिमाण चौदह हाथ और उनकी आयुका परिमाण दश हजार वर्ष होता है। चांदीके पात्र काममें आते हैं। यह युग १२९६००० वर्षका होता है। इस समय सूर्यवंशीय बाहुक, सगर, अंशुमान्, असमञ्जा, दिलीप, भगीरथ, अज, दशरथ, श्रीरामचन्द्र और कुश ये लोग राजचक्रवर्त्ती होंगे। तथा सब लोग दानधर्मपरायण, ब्राह्मण साग्निक और राजगण यज्ञपरायण होंगे।

त्रेता युगमें राजा अपनी प्रजाकी सन्तानकी तरह पालन करते हैं, इसीसे अन्तमें वे स्वर्गको प्राप्त होते हैं। त्रेतायुगके आनेसे ही धर्मका एक पद जाता रहता है। लोगोंको अधिक कष्ट भुगना नहीं पड़ता। सबके सब दयालु होते, कोई भी धर्मका उल्लङ्घन नहीं करता। तथा वे यागयज्ञपरायण और विष्णुध्यानरत होते हैं। क्षत्रिय भूमिके अधिकारी होते, शूद्र ब्राह्मणोंकी सेवामें लगे रहते तथा ब्राह्मण उदारचित्त, वेदवेदान्तपारग, प्रतिग्रहनिरत, सत्यसन्ध, जितेन्द्रिय और विष्णुसेवी होते हैं। स्त्रियां पतिरता होतीं, पुत्र पितृभक्तिपरायण होते तथा वसुन्धरा शस्यशालिनी होती है।

(पाद्मे क्रियायोगसार)

मनुके मतानुसार इस युगमें मनुष्योंकी आयु तीन सौ वर्ष होती है। महानिर्वाणतन्त्रमें लिखा है,—सत्ययुगके बीत जाने पर त्रेतायुगमें मर्त्यलोक वेदोदित सभी कर्म अच्छी तरहसे नहीं हो सकता। इस समय वैदिक कर्म बहुत क्लेशकर होगा, वेदार्थयुक्त सभी शास्त्र स्मृतिके रूपमें अवस्थित रहेंगे और ऐसे घोर संसार सागरमें शिव ही एक मात्र हर्त्ता कर्त्ता होंगे।

त्रेताग्नि (सं० पु०) दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय ये तीन प्रकारकी अग्नि।

त्रेताय (सं० पु०) त्रेताणां एकोऽयः। द्यूत भेद, पासा खेलनेका एक प्रकार।

त्रेतायुग (सं० क्ली०) त्रेतैव युगं। द्वितीय युग। त्रेता देखो।

त्रेतायुगाद्य (सं० स्त्री०) त्रेतायुगस्य आद्या तिथिः। कार्त्तिक शुक्ला नवमी। इसी दिन त्रेताका जन्म या आरम्भ होना माना जाता है। यह तिथि पुण्य-तिथियोंमें गिनी जाती है।

त्रैतिनी (सं० स्त्री०) त्रेता अस्त्यस्य इनि-ङीप्। त्रेताग्निसाध्य क्रिया, वह क्रिया जो दक्षिण, गार्हपत्य और आहवनीय तीनों प्रकारकी अग्नियोंसे हो।

त्रैधा (सं॰ अव्य) त्रिप्रकारं त्रि-एधाच् संज्ञायां विधार्थे धा। (पा ५।३।४२) इति-धा। (एधाच्। पा ५।३।४६) त्रिप्रकार, तीन तरहसे।

त्रैंश (सं॰ क्ली॰) त्रिंशदध्यायाः परिमाणमस्य ब्राह्मणस्य ड। तीस अध्याय परिमित ब्राह्मणभेद।

त्रै (हिं॰ वि॰) तीन।

त्रैककुद (सं॰ क्ली॰) त्रिककुद नाम पर्वतः तत्र भव अण्। सौवीराञ्जन, एक प्रकारका काजल या सुरमा।

त्रैककुभ (सं॰ क्ली॰) त्रिककुभ् अण्। १ उदान सम्बन्धीय। २ नवरात्रि साध्य यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ जो नौ दिनमें समाप्त होता है।

त्रैकटु (सं॰ क्ली॰) त्रिकटु।

त्रैकण्टक (सं॰ त्रि॰) त्रिकण्टकः लघुगर्गमत्स्य ततः परिमाणे रजतादि त्वात् अञ्। लघुगर्गमत्स्यका परिमाण, जो छोटी टेंगरा मछलीके परिमाणका हो।

त्रैकालज्ञ (सं॰ त्रि॰) त्रिकालज्ञ-अण्। त्रिकालज्ञ सम्बन्धीय, तीनों कालका।

त्रैकालिक (सं॰ त्रि॰) त्रिकाले भवः ठञ्। भूत भविष्यत् और वर्तमान कालवर्त्ती, तीनों कालमें या सदा होनेवाला।

त्रैकाल्य (सं॰ क्ली॰) त्रिकाल स्वार्थे ष्यञ्। भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल।

त्रैकूटक—चेदिराज्यमें कलचुरि वंशका समसामयिक त्रिकूटक वा त्रैकूटक वंश राज्य करता था। आज तक इस वंशके धरसेन नामक केवल एक ही राजाका नाम पाया गया है। उनका २०७ सम्वत्में प्रदत्त एक ताम्रशासन आविष्कृत हुआ है। पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे वह अङ्क चेदि-सम्वत्-ज्ञापक है। यदि यह बात सत्य हो, तो ४५६ ई॰में राजा धरसेन विद्यमान थे, ऐसा समझना चाहिये। (२४६ ई॰में चेदि सम्वत् प्रतिष्ठित हुआ।) त्रैकूटक राजाओंसे स्थापित एक अब्द प्रचलित था। उनके २४५ ई॰में प्रदत्त और भी एक ताम्रशासन पाया गया है जिसमें "त्रैकूटकानां प्रवर्द्धमान राज्य सम्वत्" ऐसा लिखा हुआ है, किन्तु उसमें इस वंशके किसी राजाका नाम नहीं है। राजा धरसेनने अश्वमेध यज्ञ किया था, ऐसा उनके प्रदत्त ताम्रशासनमें लिखा है। इससे प्रमाणित होता है, कि त्रैकूटक वंशीय राजाओंका प्रभाव एक समय बहुत बढ़ा चढ़ा था।

त्रैकोणिक (सं॰ पु॰) १ वह जिसके तीन पार्श्व हों, तिमहला। २ वह जिसके तीन कोण हों।

त्रैगर्त्त (सं॰ पु॰) त्रिगर्त्तो देशविशेषः सोऽभिजनोऽस्य तस्य वा अण्। १ वह जो पुरुषानुक्रमसे त्रिगर्त्त देशमें रहता हो। २ त्रिगर्त्त देशके राजा।

त्रैगर्त्तक (सं॰ त्रि॰) त्रिगर्त्तस्य देशभेदस्य अदूर देशादि त्रिगर्त्त वुञ्। त्रिगर्त देशके निकटवर्ती देशादि।

त्रैगुणिक (सं॰ त्रि॰) त्रिगुणार्थं द्रव्यं एक गुणं प्रयच्छति त्रिगुण-ठक्। १ जो तीन बार गुणा किया गया हो। २ जिसमें तीनों प्रकारके गुण हों।

त्रैगुण्य (सं॰ क्ली॰) त्रिगुणानां भावः कर्म वा स्वार्थे ष्यञ्। १ सत्वादि गुणत्रय, सत्व, रज और तम इन तीन गुणोंका धर्म वा भाव।

त्रैत (सं॰ पु॰) त्रीन् वत्सान् तनोति युगपत् तन बाहु॰ ड त्रितः गर्भभेदः तत्र भवः अण्। १ युगपज्जन्मधारक गर्भजात पशु, वह पशु जिसके साथ साथ दो और पशु पैदा हुए हों। २ किसी तीन चीजोंका समूह।

त्रैतन (सं॰ पु॰) अत्यन्त निर्घृण दासभेद।

त्रैदशिक (सं॰ क्ली॰) त्रिदशा देवता अस्य ठञ्। दैव अङ्गुल्यग्र रूप तीर्थभेद, उँगलीका अगला भाग जो तीर्थ कहलाता है।

त्रैध (सं॰ अव्य) त्रि प्रकारं इति त्रिधा ततः धमुञ (द्वित्र्योश्च धमुञ्। पा ५।३।४५) त्रिप्रकार, तीन तरहसे।

त्रैधर्म्य (सं॰ क्ली॰) त्रयाणां वेदानां धर्मान् अर्हति ष्यञ्। ऋगादिवेद सम्बन्धीय होत्र।

त्रैधातवी (सं॰ स्त्री॰) उदवसानीयाख्य यज्ञभेद, एक प्रकारका यज्ञ।

त्रैधातवीय (सं॰ क्ली॰) त्रैधातवी गहादि॰ छ। यज्ञभेदाङ्ग कर्मभेद।

त्रैधातुक (सं॰ त्रि॰) त्रिभिः धातुभिः स्वर्णरौप्यताम्रैः निर्वृत्तः ठञ्। १ स्वर्गादि धातुत्रय निष्पाद्य, जो तीनों धातुओंसे बनाया गया हो। (पु॰) २ तीनों लोक।

त्रैनिष्किक (सं॰ त्रि॰) त्रिभिः निष्कैः क्रीतं ठक्। जो तीन निष्कोंमें खरीदा गया हो, जिसकी कीमत तीन निष्क हो।

त्रैपारायणिक (सं॰ त्रि॰) त्रिः पारायणं आवर्त्तयति ठञ्। जिसने तीन बार वेद पढ़ा हो।

त्रैपुर (सं॰ पुं॰) त्रिपुर-स्वार्थे अण्। १ त्रिपुरदेश २ उस देशके निवासी। ३ उस देशके राजा। ४ त्रिपुर नामक असुर भेद, त्रिपुरासुर नामका एक राक्षस।

त्रैफल (सं॰ क्ली॰) त्रिफलानां तदाद्यद्रव्याणामिदं अण्। चक्रदत्तोक्त घृतभेद, चक्रदत्तके अनुसार वैद्यकमें एक प्रकारका घृत। इसकी प्रस्तुतप्रणाली इस प्रकार है---घृत ४ सेर, काढ़ेके लिये त्रिफला दो सेर, जल ४८ सेर, शेष २ सेर, दूध ४ सेर, चूर्णके लिये त्रिफला, त्रिकटु, द्राक्षा, यष्टिमधु, कुट, पुण्डरीक काष्ठ, छोटी इलायची, विड़ङ्ग, नागेश्वर, नीलोत्पल, अनन्तमूल, श्यामालता, रक्तचन्दन, हरिद्रा और दारुहरिद्रा प्रत्येक दो दो तोला, इन सब द्रव्योंको एक साथ मिला कर यथानियम घृत प्रस्तुत करते हैं, इससे तिमिर, कामल, विसर्प, प्रदर आदि अनेक प्रकारके रोग प्रशमित होते हैं।
(चक्रदत्त)

त्रैबलि (सं॰ पुं॰) ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम जिनका उल्लेख महाभारतमें आया है।

त्रैमातुर (सं॰ पुं॰) तिसृणां मातृणामपत्यं अण्, मातुरत्। लक्ष्मण। ये कौशल्या, कैकयी और सुमित्राके स्नेहभाजन थे। सुमित्राने कौशल्या और कैकयीके चरुका अंश खाया था और उन्हींसे लक्ष्मणजीकी उत्पत्ति है इसीसे उनका नाम त्रैमातुर पड़ा। लक्ष्मण देखो।

त्रैमासिक (सं॰ त्रि॰) त्रैमासं तृतीयमासं भूतः स्वसत्तया प्राप्त ठञ्, त्रिशब्दस्य पूरणार्थत्वेन संख्यावाचकत्वाभावात् न द्विगुत्वं 'द्विगोर्लुगनपत्ये' इति नलुक्। १ जिसकी उम्र तीन वर्षकी हो। २ त्रिमासभव, हर तीसरे महीने होनेवाला।

त्रैमास्य (सं॰ क्ली॰) त्रिमास स्वार्थे ष्यञ्। त्रिमास, तीन महीने।

त्रैयम्बक (सं॰ पुं॰) त्र्यम्बको देवता अस्य। १ त्र्यम्बक देवताके उद्देशसे ग्रहण किया हुआ एक पशु। २ होमभेद, एक प्रकारका होम। ३ रुद्र देवताकी धनुर्विद्याभेद। ४ रुद्रदेवताक वलि प्रभृति, महादेवके उद्देशसे ग्रहण किये हुए उपहार आदि। (त्रि॰) ५ त्र्यम्बक सम्बन्धी।

त्र्यम्बका (सं॰ स्त्री॰) गायत्री।

त्रैयाहावक (सं॰ स्त्री॰) त्र्याहावे देशभेदे भवः धूमादि वुञ्, अत वृद्धि निषेधात् ऐच्। त्र्याहावदेशभव, जो त्र्याहावदेशसे उत्पन्न हुआ हो।

त्रैराशिक (सं॰ क्ली॰) त्रीन् राशीन् अधिकृत्य प्रवृत्तं ठञ्। गणितभेद, गणितकी क्रिया जिसमें तीन ज्ञात राशियोंको सहायतासे चौथी अज्ञात राशिका पता लगाया जाता है।

तीन राशियाँ लेकर यह काम किया जाता है, इसीसे इसका नाम त्रैराशिक (Rule of three) पड़ा है। तीन निर्दिष्ट राशियोंमेंसे एक और फिर एकका जितना गुणा वा भाग होगा, निर्णय चौथी अवशिष्ट राशिका उतना ही गुणा वा भाग होगा। अतः त्रैराशिककी प्रक्रिया गुणन और भागकी मूलक है। जैसे-- एक मन चीनीका मूल्य ७॥/ आना हो, तो ५ मन चीनीका मूल्य कितना होगा?

इस प्रश्नमें ५ मन एक मनका जितन गुणा है, ५ मनका मूल्य भी एक मनके मूल्यका अर्थात् ७॥/ आनेका उतना ही गुणा होगा। सुतरां ७॥/ आनेको पञ्चगुण या ५से गुणा करनेसे ५ मनका मूल्य ३८/ हुआ इस प्रश्नके अङ्कोंको दूसरी रीतिसे रख कर उत्तर निकाला जा सकता है, जैसे--

मन मन रुपया
१ : ५ : : ७॥/; उ॰

अर्थात् इष्ट राशि। यह अङ्कपात इस प्रकारसे पढ़ना होता है।

१ जैसे ५ सम्बन्धमें ७॥/ आ॰ है वैसे उनके सम्बन्धमें भी। इस लिये उ निकालनेमें ७॥/) आनेको ५से गुणा कर गुणनफलको १से भाग देना होता है, किन्तु १से भाग देना वा नहीं देना दोनों एकसा है। अतएव ५से गुणा कर जो गुणनफल होगा, वही उके बराबर है। यहां पर ५ मनसे गुणा किया गया, ऐसा न ख्याल कर

अनवच्छिन्नराशि ५ से ही गुणा किया गया है, ऐसा समझना चाहिए, अन्यथा गुणक्रिया सम्भव नहीं है।

उदाहरण—यदि ८ भरी सोनेका मूल्य ४२) रु० हो, तो ३ भरी सोनेका मूल्य कितना होगा।

यहां पर पहले १ भरीका मूल्य निकाल कर उसे तीनसे गुणा करने पर तीन भरीका मूल्य निकल आवेगा।

एक भरीका मूल्य निकालनेमें ८ भरीके मूल्य ४२ रुपयेमें ८से भाग देना होगा। ४२ रुपयेमें ८से भाग देने पर भागफल ५।) रु० होता है। अब उसे ३से गुणा करने पर १५॥।) आ० हुआ और यही प्रश्नका उत्तर है। अभी इस प्रश्नके अङ्कोंको पूर्ववत् रखनेसे इस प्रकार होता है। जैसे--

भरी भरी रु०
८ : ३ : : ४२ : उ० वा इष्ट राशि

किन्तु ४२को पहले ८से भाग दे कर पीछे भागफलको उसे गुणा नहीं कर यदि ४२को ही उसे गुणा करें और गुणनफलको ८से भाग दें, तो फलमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। अतएव ४२को ३से गुणाकर गुणनफल १२६में ८का भाग देनेसे भागफल १५॥।) हुआ। इसी प्रकार प्रश्नकी सभी प्रक्रियाओंको भली भांति सोच विचार कर परवर्त्ती नियम स्थिर हो सकता है।

त्रैराशिकके अङ्कपातका नियम-तीन निर्दिष्ट राशियोंमेंसे जो राशि इष्ट चौथी राशिकी जातिकी हो, उसे तीसरे स्थानमें रखते हैं। पीछे प्रश्नका भाव भली भांति सोच कर यह देखना होता है, कि चौथी राशि तीसरी राशिसे बड़ी होगी वा छोटी। यदि बड़ी हो, तो निर्दिष्ट राशियोंमेंसे अवशिष्ट दोमें जो बड़ी होगी उसे अथवा यदि छोटी हो, तो उन दो राशियोंमेंसे जो छोटी होगी उसे दूसरे स्थानमें तथा शेषको प्रथम स्थानमें रखते हैं।

प्रक्रिया घटित नियम—

पहली और दूसरी राशि यदि भिन्न भिन्न श्रेणीकी हों, तो उन्हें आवश्यकतानुसार सबसे निम्न वा एक श्रेणीमें करते हैं। क्रिया करते समय उन्हें अनवच्छिन्न समझना चाहिये। तीसरी राशि यदि मिश्र राशि हो, तो उसे आवश्यकतानुसार सबसे निम्न श्रेणीमें लाते हैं। पीछे दूसरी और तीसरी राशिके गुणनफलको पहली राशिसे भाग दे कर जो भागफल हो वही उत्तर होगा। तीसरी राशि जिस श्रेणीमें लाई गई है उत्तर भी उसी श्रेणीमें होगा।

पीछे जरूरत होने पर उसे उच्च वा निम्न भिन्न भिन्न श्रेणियोंमें लानेसे प्रकृत उत्तर निकल आवेगा। दूसरे सभी अङ्कोंको रखनेसे वा उन्हें अन्य श्रेणीमें लानेसे यदि पहली और दूसरी श्रेणीका अथवा पहली और तीसरीका कोई साधारण गुणनीयक रहे, तो उससे उनमें भाग देना होता है और भागफल ले कर पूर्वलिखित कार्य करना होता है। ऐसा करनेसे कुछ प्रभेद नहीं पड़ेगा और प्रक्रियाकी भी सुविधा होगी। क्योंकि भाज्य और भाजक दोनों राशिको किसी एक राशिसे भाग देनेसे भागफलमें कोई अन्तर नहीं पड़ता है। उदाहरण—यदि ५॥४ सेर तेलका दाम ४२॥।०) आना हो, तो ४्८ सेरका दाम कितना होगा?

इस प्रश्नमें इष्ट या अज्ञात राशि रुपया है। अतएव उसी जातिका ४२॥।०) आना तीसरे स्थानमें रखा गया एवं प्रश्नकी गतिसे ऐसा ज्ञात हुआ कि इष्ट राशि तीसरी राशिसे कम होगी। इसी कारण अवशिष्ट दो राशियोंमेंसे जो राशि छोटी है उसे दूसरे स्थानमें और शेषको पहले स्थानमें रखा।

मन मन रुपया
५॥४ : : ४्८ : : ४२॥।० : उ०

पीछे पहली और दूसरी राशिको सेरमें ला कर और तीसरी मिश्र राशिको आनेमें ला कर फिर इस प्रकार लिखा गया।

सेर सेर आना
२२४ : : १६८ : : ६८४ : उ०

अब प्रक्रियाके नियमानुसार--

$$\frac{६८४ \times १६८}{२२४} = \frac{६८४ \times ३}{४} = १७१ \times ३ = ५१३ \text{ आना}$$

अर्थात् ३२=) उत्तर हुआ।

यहां १६८ और २२४ को ५६से भाग देने पर अंश ३ और हर चार हुआ; फिर ६८४ और ४ को ४ से भाग दिया गया।

इसी प्रकार सब जगह समझना चाहिये।

त्रैरूप्य (सं० क्ली०) त्रिरूपस्य भावः ष्यञ्। त्रिधारूप, जिसका आकार तीन प्रकारका हो।

त्रैलिङ्ग (सं० क्ली०) त्रीणि सत्त्वरजस्तमांसि पुंस्त्रीक्लीवरूपाणि वा लिङ्गानि यस्य तस्येदं वा अण्। त्रिलिङ्गप्रधान कार्य। त्रिलिंग देखो।

त्रैलोक (सं० पु० त्रिलोक स्वार्थे अण्। त्रैलोक्य, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल ये तीनों लोक।

त्रैलोक्य (सं० क्ली०) त्रिलोकी एव स्वार्थे ष्यञ्। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल।

त्रैलोक्यचिन्तामणिरस (सं० पु०) १ रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त ज्वरनाशक औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—स्वर्ण, रौप्य और अभ्र प्रत्येक दो भाग; लौह और प्रवाल प्रत्येक ५ भाग तथा रससिन्दूर ७ भाग इन सबको एक साथ मिला कर घृतकुमारीके रससे घोंटते हैं। पीछे २ रत्तीकी गोली बना कर छायामें सुखाते हैं। इस औषधको बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे क्षय, कास (खांसी), गुल्म, प्रमेह, जीर्ण ज्वर और उन्माद आदि रोगोंकी शान्ति होती है। यह औषध वायुकी शान्तिकारक है। (रसेन्द्रसारस० ज्वर चि०)

२ रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषध भेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—हीरा, स्वर्ण, मुक्ता, तीक्ष्ण लौह प्रत्येक एक एक भाग, अभ्र ४ भाग, रससिन्दूर चार भाग इन सबको पत्थरके खलमें लौहदण्डसे घृतकुमारीके रसके साथ घोंटते हैं। बाद एक रत्तीकी गोली बनाते हैं। पार्वती और सूर्यदेवकी पूजा कर इस रसका सेवन करनेसे अनेक प्रकारके रोग और ज्वरका नाश होकर सुख मिलता है। अदरकके साथ रसके सेवन करनेसे श्लेष्मा जाती रहती है। श्लेष्माके सूख जाने पर माक्षिक पित्तकी अधिकतामें घृत और चीनी वात-श्लेष्मामें पीपरका चूर्ण और मधु तथा प्रमेहमें दूधका सेवन करना चाहिए। यह औषध कास और कफवातनाशक, बल और अग्निवर्द्धक, आयु और पुष्टिकर, वृष्य तथा सर्व रोगनाशक हैं। (रसेन्द्रसा० वातव्याधिचि०)

त्रैलोक्यडम्बररस (सं० पु०) रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, ताम्र, गन्धक, पीपर, जयपाल कटकी, (लालमिर्च), हरीतकी (हड़) निसोथ प्रत्येकके एक तोलेको थूहरके दूधमें मिला कर २ रत्तीकी गोली बनाते हैं। इसका अनुपान मधु है। इस औषधसे नवज्वर बहुत जल्द जाता रहता है।

(रसेन्द्रसारस० ज्वरचि०)

त्रैलोक्यमल्ल—१ चौलुक्यराज प्रथम भीमदेवके परवर्त्ती राजा, प्रथम कर्णदेवका नामान्तर। चौलुक्य देखो।

२ कालञ्जरराज त्रैलोक्यवर्मदेव किसी किसी ताम्रशासनमें त्रैलोक्यमल्लदेव नामसे प्रसिद्ध हैं।

३ ग्वालियरके कच्छपारिवंशमें उत्पन्न मालवके विजेता राजा कीर्त्तिराजके पुत्र। इनका दूसरा नाम मूलदेव था। राजा मूलदेव भुवनपाल नामसे भी पुकारे जाते थे। इनकी पत्नीका नाम देवव्रता था जिनके गर्भसे राजा देवपाल उत्पन्न हुए थे।

ग्वालियरके सास्‌बाहु मन्दिरमें ११५० विक्रममें उत्कीर्ण महीपालकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि कच्छपघात वा कच्छपारिवंशमें लक्ष्मण नामके एक राजा थे। उनके पुत्र वज्रदामाने गाधिनगर वा कान्यकुब्जराजको परास्त कर गोपाद्रि दुर्ग (ग्वालियरके दुर्ग) पर अधिकार जमाया। वज्रदामाके पुत्र मङ्गलराज और मङ्गलराजके पुत्र कीर्त्तिराजने मालवदेशको फतह किया तथा सिंहपानीय ग्राममें शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की। इन्हींके पुत्र मूलदेव थे। इनमें चक्रवर्त्ती राजाके सभी लक्षण मिलते थे। मूलदेव ही त्रैलोक्यमल्ल नामसे मशहूर थे। इनके पुत्र देवपालके बाद इनके पोते पद्मपाल बहुत शूरवीर तथा युद्धप्रिय निकले। दक्षिण भारतमें भी ये युद्ध करने गये थे। युवावस्थामें ही इनकी अकाल मृत्यु हुई। बाद इनके ज्ञातिभ्राता सूर्यपालके पुत्र महीपाल राजा हुए। कच्छपारिवंश इतिहासमें कच्छवह वंश नामसे प्रसिद्ध है। ग्वालियर देखो।

४ नेपालके तृतीय ठाकुरीवंशीय एक राजा। १४७२ ई०में इस वंशके राजा यक्षमल्लकी मृत्यु हुई। यक्षमल्लके तीन पुत्र थे। सबसे बड़े जयरायमल्लने भाटग्राममें एक स्वतन्त्र राजवंश स्थापित किया। इन्होंने सिर्फ १५ वर्ष राज्य किया था। पीछे इनके लड़के सुवर्णमल्ल, सुवर्णमल्लके पुत्र प्राणमल्ल और प्राणमल्लके पुत्र विश्वमल्ल एक एकने

१५ वर्ष शासन किया। पीछे विश्वमल्लके एक पुत्र त्रैलोक्यमल्ल १५१७ ई०में राजसिंहासन पर बैठे। शायद इन्होंने भी १५ वर्ष राजत्व किया था। नेपाल देखो।

त्रैलोक्यमोहन (सं० त्रि०) त्रैलोक्यं मोहयति मुह-णिच्-ल्यु। तन्त्रोक्त ताराकवचभेद। यह कवच सर्वापद्विनाशक, सर्वविद्यामय और सर्वमन्त्रमय है। जो इसे धारण करते वा रोज जपते हैं, वे सर्वज्ञ और सर्वसिद्ध होते, उनके घरमें लक्ष्मी वास करती तथा मुँह पर सरस्वती विराजमान रहती हैं। इस कवचके प्रभावसे किसी प्रकारका कष्ट भुगतना नहीं पड़ता। इस कवचको जाने बिना जो तारादेवीकी अर्चना करते हैं, वे अल्पायु, निर्धन और मूर्ख होते हैं। इसीसे तारादेवीके उपासकको चाहिये, कि वे सबसे पहले इस कवचको जान लें और तब तारादेवीकी पूजामें हाथ डालें।

त्रैलोक्यराज (सं० पु०) काश्मीरके एक राजाका नाम।

त्रैलोक्यवर्मदेव—कालञ्जरके एक राजाका नाम। अपने पिता परमर्दिदेवके मरने पर ये १२०३ ई०में राजगद्दी पर बैठे थे। इन्हींके समयमें मुसलमानोंने कालञ्जर पर आक्रमण किया था। अजयगढ़में इनकी राजधानी थी। १२३३ ई०में दिल्लीके सम्राट् अलतमस् एक बार कालञ्जरको लूटने आये थे। इनके पिताके समयमें महोबा प्रदेश कालञ्जर राज्यसे अधिकारभ्रष्ट हो पृथ्वीराजके हाथ लगा था। इन्होंने चेदिराज कलचूरीवंशके हाथसे रेवा प्रदेश जीता था। इनका अधिकार रेवा प्रदेशके पूर्वांशके उत्तर जौनपुर और मिर्जापुर जिला तक विस्तृत था। शायद बघेल राजाओंके प्रबल होने पर उस अञ्चलसे इनका अधिकार जाता रहा। ये चन्देल वा चन्द्रात्रेय वंशके थे। चन्द्रात्रेयवंश देखो।

त्रैलोक्यविजया (सं० स्त्री०) त्रैलोक्यस्य विजयो यस्याः। सिद्धि, भाँग।

त्रैलोक्यसुन्दररस (सं० पु०) १ रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषधभेद, वैद्यकमें एक प्रकारका रस। प्रस्तुत प्रणाली—पारा ४ भाग, अभ्रक ६ भाग, लौह ८ भाग, गन्धक, हरीतकी, आमलकी (आँवला), बहेड़ा, सोंठ, पीपर, मिर्च, मोच रस, तालमूली (मुसली) और गुरुच प्रत्येकके ५ भागको एक साथ मिला कर चीता और मोहञ्जनके काढ़ेमें दश दिन तक बीस बार भावना देते हैं। पीछे आध तोलेकी गोली बनाते हैं। इसका अनुपान चीना और मधु है। इसके सेवन करनेसे शोथ, पाण्डु, क्षय और ज्वरातिसाररोग शान्त होता है।

(रसेन्द्रसारस० पाण्डु चि०)

२ ज्वरनाशक औषधभेद। मिश्रित एक तोला पारा और एक तोला गन्धकको एक साथ मिला कर उसे कूटज, तालमूली, धतूरे, तरोई, जयन्ती और मण्डूकपर्णीके पत्तोंके रसमें मिला कर सुखाते हैं। पीछे एक रत्तीकी गोली बनाते हैं। इसके सेवन करनेसे त्रिदोषज ज्वर अतिशीघ्र दूर होता है। यह विरेचक है। शरीरका उत्ताप यदि अधिक हो गया हो, तो नारियलके पानीसे इसका प्रयोग करना चाहिये। (रसेन्द्रसारस० ज्वरचि०)

त्रैवण (सं० त्रि०) त्रिवणस्य वनत्रयस्य इदं शिवादि-अण्। त्रिवण सम्बन्धी।

त्रैवणि (सं० पु०) त्रिवणस्य ऋषेरपत्यं इञ्। त्रिवण ऋषिकी सन्तान।

त्रैवणीय (सं० त्रि०) त्रिवणः सोऽस्यास्ति इति उत्करादि-छ। त्रैवण सम्बन्धयुक्त।

त्रैवर्गिक (सं० त्रि०) त्रिवर्गाय हितं वा ठञ्। धर्मार्थकामसाधन कर्मादि, वह कर्म जिससे धर्म, अर्थ और काम इन तीनोंकी साधना हो। २ त्रिवर्गरत, जो त्रिवर्गमें लगे हों।

त्रैवर्ग्य (सं० त्रि०) त्रिवर्गे भव साधुः ष्यञ्। त्रिवर्गसाधन धनादि, वह धन जिससे अर्थ, धर्म और काम इन तीनोंकी साधना हो।

त्रैवर्णिक (सं० पु०) त्रिषु वर्णेषु विहितः ठञ्। १ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन जातियोंका धर्म। (त्रि०) २ तीन वर्ण सम्बन्धी।

त्रैवर्षिक (सं त्रि०) त्रिवर्षे भविष्यति ठञ्, 'वर्षस्या भविष्यति' इति उत्तरपद न वृद्धिः। तीन वर्षोंमें होनेवाला, जो तीन वर्षोंमें होता हो।

त्रैवार्षिक (सं० त्रि०) त्रिवर्षं भूतः भवति वा, ठञ् अभविष्यत्वात् उत्तरपदवृद्धिः। १ त्रिवर्षभूत, जो तीन वर्षोंमें हुआ हो। २ जो तीन वर्षोंमें अथवा हर तीसरे वर्ष हो।

त्रैविक्रम (सं॰ त्रि॰) त्रिविक्रमस्य इदं अण्। १ त्रिविक्रमसम्बन्धी। (पु॰) २ त्रिविक्रमावतार विष्णु।

त्रैविद्य (सं॰ पु॰) तिस्रो विद्याः समाहृताः ऋक्-यजुः सामरूप त्रिविद्यं तदधीते वेद वा अण्। १ त्रिवेदज्ञ, तीनों वेदोंका जाननेवाला मनुष्य। २ तीन विद्या। ३ व्रतविशेष, एक प्रकारका व्रत।

त्रैविध मुनि—सिद्धान्तशिरोमणि नामक जैनग्रन्थके रचयिता।

त्रैविध्य (सं॰ क्ली॰) त्रिविधस्य भावः ष्यञ्। त्रिप्रकारत्व, तीन प्रकार, तीन तरह।

त्रैविष्टप (सं॰ पु॰) त्रिविष्टपे वसति अण्। स्वर्गमें रहनेवाले देवता।

त्रैविष्टपेय (सं॰ पु॰) त्रिविष्टपे वसति वा ठक्। देवता।

त्रैवृष्ण (सं॰ पु॰) त्रिवृष्णस्य अपत्यं वा अण्। राजविशेष, एक राजाका नाम।

त्रैवेदिक (सं॰ त्रि॰) त्रिषु वेदेषु तदध्ययनार्थं विहितः ठक्। तीनों वेद अध्ययन करनेके व्रतादि।

त्रैशङ्कव (सं॰ पु॰) त्रिशङ्कोरपत्यं अण्। त्रिशङ्कुके पुत्र हरिश्चन्द्र। त्रिशंकु देखो।

त्रैशाण (सं॰ त्रि॰) त्रयः शानाः परिमाणस्य तैः क्रीतं वा अण् विकल्प पक्षे नलुक्। १ त्रिशाण परिमित, जो एक त्रिशाणके बराबर हो। २ त्रिशाण परिमाण द्वारा क्रीत, जो एक त्रिशाणमें खरीदा गया हो।

त्रैशोक (सं॰ क्ली॰) त्रिशोकेन ऋषिणा दृष्टं साम। 'विश्वा पृतना' इत्यादि ऋग्वेदका ब्रह्मस्तुतिविषयक सामभेद।

त्रैष्टुभ (सं॰ त्रि॰) त्रिष्टुप् उत्सादि-अण्। त्रिष्टुभछन्द सम्बन्धीय। त्रिष्टुभ देखो।

त्रैसानु (सं॰ पु॰) तुर्वसुवंशके राजा गोभानुके पुत्रका नाम।

त्रैस्वर्य (सं॰ क्ली॰) त्रिस्वर-स्वार्थे ष्यञ्। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीनों प्रकारके स्वर।

त्रैहायण (सं॰ त्रि॰) त्रिहायणस्य इदं हायनान्तत्वादण्। १ त्रिवर्षसम्बन्धी, तीन वर्षोंमें होनेवाला। (क्ली॰) २ तीन वर्षका समय।

त्रोटक (सं॰ त्रि॰) त्रुट-णिच-ण्वुल्। १ छेदक। (क्ली॰) २ दृश्यकाव्यभेद, नाटकका एक भेद। इसमें ५, ७, ८ वा ९ अङ्क होते हैं। स्वर्गीय और पार्थिव विषय इसके प्रधान वर्णनीय हैं। यह नाटक शृङ्गाररसका प्रधान है और इसका नायक कोई दिव्य मनुष्य होता है। स्तम्भितरम्भ और विक्रमोर्वशी प्रभृति त्रोटक दृश्यकाव्य हैं। ३ एक रागका नाम। ४ एक विषैला कीड़ा। ५ शङ्कराचार्यके एक शिष्यका नाम।

त्रोटकी (सं॰ स्त्री॰) रागिणीविशेष, एक रागिणीका नाम।

त्रोटि (सं॰ स्त्री॰) त्रोट्यते भिद्यतेऽनया त्रोटि-इ (अच् इः। उण् ४।१३८) १ कटफल, जायफल। २ चञ्चु, चोंच। ३ पक्षिभेद, एक प्रकारकी चिड़िया। ४ मीनभेद, एक प्रकारकी मछली।

त्रोटिहस्त (सं॰ पु॰) त्रोटिश्चञ्चुर्हस्त इव ग्रहणसाधनं यस्य। पक्षी, चिड़िया।

त्रोटी (सं॰ स्त्री॰) त्रोटि-ङीष्। १ टोंटी। २ चिड़ियाकी चोंच। त्रोटि देखो।

त्रोतल (सं॰ क्ली॰) १ तोड़ल तन्त्र। (त्रि॰) २ तोतला, जो बोलनेमें तुतलाता हो।

तोत्र (सं॰ क्ली॰) त्रायते शिक्ष्यते नियम्यतेऽनेन त्रै उत्र (अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ। उण् ४।१७२) गवादि ताड़नदण्ड, चाबुक। पर्याय—प्राजन, तोदन और प्रवयण। २ अस्त्र। ३ आरूपक्रिया। ४ व्याधिभेद, एक प्रकारका रोग।

त्रोम्बे—बम्बई प्रदेशके थाना जिलान्तर्गत सालसेट तालुकका एक बन्दर। यह अक्षा॰ १९°२' उ॰ और देशा॰ ७२°५७' पू॰ बम्बई शहरसे ३ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः २७७२ है। यहाँ कुष्ठपीड़ित रोगियोंका एक आश्रम है।

त्र्यंश (सं॰ पु॰) तृतीयोंऽशः। १ तृतीय अंश, तीसरा भाग। २ त्रिगुणित अंश, तिगुना भाग।

त्र्यक्ष (सं॰ पु॰) त्रीणि अक्षीणि नेत्राणि यस्य ततः समासान्तप्रत्ययः। त्रिनेत्र, शिव। २ दैत्यविशेष, एक दैत्यका नाम। (त्रि॰) ३ नेत्र त्रयविशिष्ट, जिसको तीन आँखें हों।

त्र्यक्षर (सं॰ पु॰) त्रीणि अकारोकारमकाररूपाणि

THE
Modern Buddhism.
and its
FOLLOWERS IN ORISSA
BY
Nagendra Nath Vasu, M.R.A.S.
with an introduction by
Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri M. A., C. I. E.

It has been conclusively proved in this book that Buddhism is neither dead nor driven out of India, but its pulse still beats with all the energy of life in Orissa. "Sankaracharyya drove away Buddhism from the soil of India" is proved to be absolutely false. The discoveries of 50000 crypto Buddhists living in the jungle tracts of Orissa first announced in this book has taken the world of European scholars by surprise.

The book contains more than 250 pages. It is nicely printed and beautifully bound. **Price**—Rs. 3/-, for students Rs. 2/-.

Dr. L. D. Burnett of the British Museum writes :—

"A more fascinating and erudite work I have not read for many years and I shall find it most valuable both in the study and in the lecture-room."

Dr. H. Kern, the great Buddhist scholar writes :—

"I need hardly to tell you that the subject matter is one that interests me highly, so that it will be a pleasure for me to read the book, which contains so much that is little known or not at all in Europe."

Sir. George A. Grierson, K. C. I. E. Author of Linguistic Survey of India writes :—

"I have found your chapter on the Revival of Buddhism most interesting. I think it a most important contribution towards the religious history of India. It should certainly be carefully studied by all who interest themselves in that subject."

A. Smith I. C. S. (retired) writes from 116 Banbury Road, Oxford—

"Your book is also of high value for the history of Buddhism and Indian religion generally. The account of later and modern Buddhism is novel and your constant citation of little known Sanskrit works gives t special authority."

ग्राहकोंसे निवेदन।

बहुतसे महाशय हमारे साथ पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर नहीं लिखते। ऐसे महाशयोंसे प्रार्थना है कि पत्र लिखते समय अपना ग्राहक श्रेणीका नम्बर अवश्य २ लिख दिया करें अन्यथा पत्रोत्तरकी आशा न करें।

२। हम आपके साहाय्यसे ही 'हिंदी विश्वकोष'के प्रकाशनका भार उठाने समर्थ हुये हैं; अतः आपसे प्रार्थना है कि कमसे कम दो ग्राहक बनानेकी कृपा करें।

निवेदक—
प्रबंधकर्त्ता—हिंदी-विश्वकोष कार्यालय,
९ विश्वकोष लेन, कांटापुकर, बागबाजार, कलकत्ता

आवश्यकीय सूचना

हिन्दी-विश्वकोषकी आज तक प्रतिमास ४ संख्या प्रकाशित होती थीं, परन्तु अब ८ संख्या प्रतिमास प्रकाशित होंगी, तदनुसार ग्राहकोंकी सेवामें भी ८ संख्या ही प्रतिमास भेजी जाया करेंगी। आशा है, कि ८ संख्याकी वी० पी० छुड़ा कर कृतार्थ करेंगे।

निवेदक—
प्रबन्धकर्त्ता

ARCHÆOLOGICAL REPORT OF
MAYURABHANJA.
BY
Nagendranath Vasu, Editor of "Visvakosha."

This work contains along with the results of the archæological and historical reserches conducted at the cost of the Chief of Mayurabhanja, a descriptive account of the rise and development of the various Hindu, Buddhist and Jaina sects. The discoveries of numerous cripto-Buddhists in Orissa, first announced in this book, has taken the world of European Scholars by surprise. Dr. Kern, Dr. Fleet, Dr. Oldenburg, Sir Grierson Dr. Sylvain Levi, M. Emile Senart, Mr. Vincent Smith, Dr. Thomas of India Office and other European scholars have enthusiastically received the book and lavished high-flown praises upon it. Beautifully printed and gorgeously bound with more than 100 large plates of inscriptions, grants, ancient temples, ruins and figures of Hindu, Buddhist and Jaina Gods and Goddesses with their identification from the authoritative scriptures of various sects. Price Rs. 15/-, for students Rs. 10/-.

Dr. L. D. Burnett writes in the Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland, 1912. pp. 802-4.

"The body of the book comprises a series of report on the antiquities and history of a number of sites visited in the course of the survey, with an appendix containing text and facsimiles * * * Almost every form of Hindu religion has left its mark in Morbhanj * * * Undoubtedly the most interesting part of this interesting survey is the Chapter on Buddhism. * * * Pandit Nagendra Nath Vasu brings the history of Buddhism in Orissa down to the present day. He finds distinct traces of Mahayana cults among the Bathuri or Bauri tribe on whose ethnology he gives some valuable data. * * * In concluding this brief notice of this *veritable Ratnakar of learning*, we may add that it is illustrated by numerous plates."

Dr. J. F. Fleet, C. I. E. (the great antiquaran) writes from 8. Leopold Road, Ealing W. London.—

"I have read the book with much interest, and consider it a useful addition to our researches into the ancient and mediæval history of India"

११०८१

नवम भाग] [२२०—२२२ खण्ड

सचित्र] हिन्दी [सयान चित्र

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस,

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

नवम भाग

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. IX.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prâchyavidyâmahârnava.

Siddhânta-vâridhi, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintâmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Banglya Sâhitya Parishad
and Kâyastha Patrikâ ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-
bhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society,
Member of the Philological Committee, Asiatic
Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by P. C. *Bose*, at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

1925.

Expert-Opinion

Sir Georoo Dass Banerjee,

Kt., M. A., D. L., Ph. D.,

The late Justice of the Calcutta High Court and Vice-Chancellor of the Calcutta University writes—

"I am glad to learn that you are publishing a Hindi edition of your great work, the Bengali Encyclopædia "Visvakosha." I had to consult it on several occasions, and I found in it much valuable and rare information. A Hindi edition of this monumental work will make all that useful information available for all India, and will, I am sure, meet with the same enthusiastic encouragement and support that the Bengali Visvakosha has received. (30. 11. 15.)

Babu Saradacharan Mitra, M A., B L. &c.,

The late Justice of the Calcutta High Court writes :—

"The "Viswakosha" or Encyclopædia in Bengali by Babu Nagendra Nath Vasu Práchyavidyamahárnava is an wonderful production. It contains an immense mass of correct information and is very valuable. The learned author is now issuing a Hindi Edition and the first volume is out. The Hindi Edition is enlarged and contains informations upto date. There should be no library without this."

The Hon'ble Sir Ashutosh Mukerjee,

Sarasvati C. S. I. &c. &c.,

The Justice of the Calcutta High Court, the late Vice-Chancellor of the Calcutta University, writes :—

"I have had occasion many a time to consult the Bengal Encyclopædia Visvakosha prepared by Babu Nagendranath Vasu. I have always entertained the highest opinion about its unique value, due chiefly to its accuracy and completeness. It is a truly monumental work, and I am delighted to learn that a Hindi version of it has been undertaken."

(9. 11. 15)

The Hon'ble Justice A. Chaudhuri,

M. A. LL. B.

of the Calcutta High Court, writes :—

"Your Encyclopædia Indica I constantly refer to in my work. I have always found it thoroughly accurate and very helpful. It is a wonder to me that the compilation, although made by you alone, is so complete. I am writing these few lines in admiration of the great work you have done. I wish the **Hindi** edition every success." (10. 9. 15.)

THE SOCIAL HISTORY OF
KAMARUPA.
Vol. I.

BY

Nagendra Nath Vasu

Prachyavidyamaharnava etc. etc.

A very interesting and readable account of a great social movement which shed a beam of light across the otherwise lurid clouds that envelop the history of Assam.

The book is divided into three chapters of which the first one is devoted to the prehistoric period. The first chapter consists of seven sections. The first section is the general remark upon Kamarupa's claims to historical recognition. The second section deals with the activities of the Phœnicians in Eastern India, their references in the Vedas, the difference between them and the Aryans, the geography of their times, their religion, arts, sciences and commerce and their identity with modern Koch.

The third section deals with the origin of the Mismi, Abors, Daflas and Miris. The fourth section deals with the origin of the Kiratas, Garos and Kacharis. The fourth section describes Usha and Anirudha, Bana and Saumar dynasty and Bànalinga. The sixth section deals with the Kimmerian influence in Kamarupa and the seventh section deals with the Assyrian (Mech) influence with their full history. The second chapter deals with the historical period and third with the rise of the Kayasthas in Kamarupa.

The book is worth reading and without it no research in ancient Indian history could be complete. The book is neatly bound, adequately indexed, clearly written with the support of the authority whose chapter and verse are quoted in their proper place, and on the whole carefully printed and nicely got up. The price Rs. 5/- only. To be had at 9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta.

अक्षराणि यस्य। १ प्रणव। त्र्यक्षर प्रणव ही ब्रह्म है। इसमें तीनों वेद अवस्थित हैं। (क्ली०) २ छन्दोभेद, एक प्रकारका छन्द। ३ त्रिवर्णात्मक तन्त्रोक्त मन्त्रभेद, तन्त्रमें वह यन्त्र जिसमें तीन अक्षर हों। ४ घटक। (त्रि०) ५ वर्णत्रययुक्त मात्र, तीन अक्षरोंका।

त्र्यङ्ग (सं० क्ली०) त्रीणि अङ्गानि अस्य। सौविष्टिकृत हवि।

त्र्यङ्गट (सं० क्ली०) त्रिभिरङ्गैरट्यते गम्यते त्र्यङ्ग-अट् अप्, शकन्ध्वादित्वादलोपः। १ शिक्यभेद, छीका, सिकहर। २ धौताञ्जनी। (पु०) ३ ईश्वर। ४ चन्द्रमा।

त्र्यङ्गुल (सं० त्रि०) तिस्रोऽङ्गुल्यः प्रमाणमस्य, तद्धितार्थे द्वि० द्वयसच्, तस्य लुकि अच् समा०। १ अङ्गुलित्रय परिमित, जो तीन उँगलीका हो। २ अङ्गुलित्रय परिमित खातयुक्त, जो तीन उँगली खुदा गया हो।

त्र्यञ्जन (सं० क्ली०) त्रयाणां अञ्जनानां समाहारः। कालाञ्जन, रसाञ्जन और पुष्पाञ्जन ये तीनों अञ्जन, काला सुरमा, रसौत और वे फूल जो अञ्जनोंमें मिलाए जाते हैं, जैसे तिल, चमेली, नीम, लौंग अगस्त्य इत्यादि।

त्र्यञ्जल (सं० क्ली०) त्रयाणां अञ्जलीनां समाहारः वा० टच् समा०। १ समाहृत तीनों अञ्जली। त्रिभिरञ्जलिभिः क्रीतः तद्धितार्थे द्विगौ तु तद्धितलुकि टच्। २ त्र्यञ्जलि, जो तीन अञ्जलिमें खरीदा गया हो।

त्र्यधिपति (सं० पु०) त्रयाणां अधिपतिः ६-तत्। तीनों लोकके अधिपति, कृष्ण, विष्णु।

त्र्यधिष्ठान (सं० पु०) त्रीणि मनोवाक्शरीराणि अधिष्ठानान्यस्य, तिसृणां जाग्रदादीनां अधिष्ठानं वा। १ जीव। २ चैतन्य, चेतनता।

त्र्यधीश (सं० पु०) त्रयाणां अधीशः। त्र्यधिपति, तीनों लोकके स्वामी विष्णु।

त्र्यध्वगा (सं० स्त्री०) त्रिभिरध्वभिर्गच्छति। गङ्गा।

त्र्यनीक (सं० पु०) त्रीणि उष्णवर्षशीताख्यानि अनीकानि गुणा अस्य। १ संवत्सराभिमानी देवताभेद। २ हाथी, घोड़े और रथकी सेना।

त्र्यम्बक (सं० क्ली०) त्रीणि अम्बकानि नयनानि यस्य त्रयाणां लोकानां अम्बक पिता इति। १ शिव, महादेव। २ महादेवके अंशसे उत्पन्न चन्द्रशेखर नामक पौष्य राजाके पुत्र। ये सार्वभौम राजा होकर त्रिलोकमें विख्यात हुए थे। ३ ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक रुद्र।

त्र्यम्बकसख (सं० पु०) त्र्यम्बकस्य सखा टच् समासान्तः। त्र्यम्बकके सखा, कुबेर। कुबेर देखो।

त्र्यम्बका (सं० स्त्री०) त्रीणि अम्बकानि यस्याः। दुर्गा, जिनके सोम, सूर्य और अनल ये तीनों नेत्र माने जाते हैं।

त्र्यमृतयोग (सं० पु०) त्रयाणां तिथिवारनक्षत्राणां अमृततुल्यो योगः। तिथि, नक्षत्र और वार विषयक योगभेद, एक प्रकारका योग जो कुछ विशिष्ट तिथियों, नक्षत्रों और वारोंके संयोगसे होता है। इस योगका विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है--

यदि रवि और मङ्गलवारको नन्दा अर्थात् प्रतिपद्, एकादशी और षष्ठी, स्वाती, शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, अश्लेषा और मूला नक्षत्र हो, शुक्र और सोमवारको भद्रा अर्थात् द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी, भद्रा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्र हो, बुधवारको जाया अर्थात् त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया, मृगशिरा, श्रवणा, पुष्या, ज्येष्ठा, भरणी, अभिजित् और अश्विनी नक्षत्र हो, वृहस्पतिवारको चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी तिथि, उत्तराषाढ़ा, विशाखा, अनुराधा, मघा और पुनर्वसु नक्षत्र हो, शनिवारको पूर्णा, दशमी, पञ्चमी, पूर्णिमा वा अमावस्या तिथि और रोहिणी, हस्ता तथा धनिष्ठा नक्षत्र हो, तो त्र्यमृतयोग होता है। यह योग यात्राके लिये बहुत शुभ है। यात्रिककरणमें यह त्र्यमृतयोग बहुत उत्तम माना है। विष्टि व्यतीपातादि दोषयुक्त होने पर भी यदि इस त्र्यमृतका योग हो, तो भी सब दोष नष्ट हो जाते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

त्र्यरुण (सं० पु०) त्रिवृष्णके पुत्र राजर्षिभेद।

त्र्यरुषि (सं० त्रि०) त्रीणि अरुषीणि रोचमानानि शुभ्राणि ककुप्पृष्ठपार्श्वस्थानानि यस्य। रोचमान शुभ्र पृष्ठादि स्थानत्रययुक्त गवादि, जिस पशुकी पीठ पर तीन सुन्दर सफेद ककुप् या कुब्बड़ हो।

त्र्यवर (सं० त्रि०) सेवकत्रयविशिष्ट, जिसके तीन नौकर हों।

त्र्यवि (सं० पु०) षण्मासात्मकः कालः अवि तिस्रोऽवयो यस्य। अष्टादश मास वयस्क पशु, अठारह महीनेका पशु।

त्र्यब्द (सं० क्ली०) त्रयाणां अब्दानां समाहारः। १ वर्षत्रय, तीन वर्ष। (त्रि०) २ त्रिवर्षवयस्क, जिसकी उमर तीन वर्षकी हो।

त्र्यशीत (सं० त्रि०) त्र्यशीति ततः पूरणे डट्। त्र्यशीति संख्याका पूरण, तिरासीवां।

त्र्यशीति (सं० स्त्री०) त्र्यधिका अशीतिः कर्मधा०। १ अस्सी और तीनका जोड़, तिरासी। २ उक्त संख्यासूचक अङ्क।

त्र्यशीतितम (सं० त्रि०) त्र्यशीति पूरणे तमप्। त्र्यशीति संख्याका पूरण, तिरासीवां।

त्र्यष्टक (सं० क्ली०) सुश्रुतोक्त जलनिक्षेपण स्थानभेद, सुश्रुतके अनुसार वह स्थान जहां जल फेंका जाता है।

त्र्यष्टन् (सं० त्रि०) त्रिगुणिताः अष्ट। १ चतुर्विंशति संख्या, चौबीसकी संख्या। २ उक्त संख्यासूचक अङ्क।

त्र्यस्र (सं० क्ली०) तिस्रः अस्रयः कोणा यस्य अच् समा०। १ त्रिकोण। २ त्रिपुट क्षुप, मटरका गाछ। ३ व्याघ्रनख, बाघका नाखून। (स्त्री०) ४ शुक्ल त्रिवृति, सफेद निशोथ। ५ वार्षिक मल्लिका, चमेली।

त्र्यस्रफल (सं० स्त्री०) शल्लकी वृक्ष, सेमरका पेड़।

त्र्यह (सं० पु०) त्रयाणां अह्नां समाहारः समासान्त टच्, समाहारद्विगुत्वात् अह्नादेशः। दिनत्रय, तीन दिन।

त्र्यहस्पर्श (सं० पु०) त्र्यहं चान्द्रदिनत्रयं स्पृशति स्पृश-अण्। १ तिथित्रयस्पर्शी एक सावन दिन, वह सावन दिन जिसे तीन तिथियाँ स्पर्श करती हों। २ दिनक्षय, दिनका घटना।

त्र्यहस्पृश (सं० क्ली०) त्र्यहं स्पृशति स्पृश-क। सावन दिनत्रयस्पर्शी एक तिथि, वह तिथि जो तीन सावन दिनोंको स्पर्श करती हो। ऐसी तिथि विवाह या यात्रा आदिके लिए निषिद्ध पर स्नान-दान आदिके लिए अच्छी मानी जाती है। अवम देखो। त्र्यह-स्पृश-क्विन् त्र्यहस्पृश्।

'एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी।
त्र्यहस्पृक् तदहोरात्रमुपोष्या सा सदा तिथि॥" (स्मृति)

पहले एकादशी पीछे द्वादशी और रात्रिके शेषमें त्रयोदशी होनेसे त्र्यहस्पृक् होता है। यही तिथि उपोष्य है अर्थात् इस तिथिमें उपवास करना चाहिए।

त्र्यहिकारिरस (सं० पु०) रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त औषध भेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, तूतिया और शङ्खके प्रत्येक भागको द्रावीशाक, जयन्ती और नटिया शाकके रससे सात सात बार भावना दे कर ४ रत्तीकी हरएक गोली बनाते हैं। जीरा और घीके साथ सेवन करनेसे त्र्यहिक या तिजारी ज्वर जाता रहता है।

त्र्यहीन (सं० पु०) त्रिभिरहोभिः निर्वृत्तः ख। त्रिदिन साध्य क्रतुभेद, तीन दिनोंमें होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ।

त्र्यहैहिक (सं० त्रि०) ईहायां चेष्टायां भवं ऐहिकं धनं त्र्यहे दिनत्रये पर्याप्तं ऐहिकं धनं यस्य। दिनत्रयनिर्वाहोचित धनयुक्त, वह गृहस्थ जिसके यहां तीन दिन तक निर्वाह करनेके लिए यथेष्ट सामग्री हो।

मनुने चार प्रकारके गृहस्थ बतलाए हैं-कुशूलधान्यक, कुम्भीधान्यक, त्र्यहैहिक और अश्वस्तनिक। जो गृहस्थ तीन दिनकी जीविका सञ्चय कर रखते हैं उन्हें त्र्यहैहिक कहते हैं। ऐसे गृहस्थ मध्यम समझे जाते हैं।

त्र्याक्षायण (सं० पु०) त्र्यक्षस्य युवा अपत्यं फञ्। शिशुपाल हरादिके युवा वंशज।

त्र्याक्षायणभक्त (सं० पु०) त्र्याक्षायणः तस्य विषयो देशः ऐषुकादिः भक्तल्। त्र्याक्षायणका विषय।

त्र्यायुष (सं० क्ली०) त्रयाणां वाल्ययौवनस्थविराणां आयुषां समाहारः वेदे अच् समा०। वाल्यादि आयुस्त्रय, वाल्य यौवन और स्थविर ये तीन अवस्थायें।

त्र्यार्षेय (सं० पु०) त्रयः आर्षेयाः ऋषयो यत्र। १ त्रिप्रवर गोत्रभेद, वह गोत्र जिसके तीन प्रवर हों। ऋषेरयं ठक् आर्षेयः ऋषिधर्मः त्रय आर्षेयाः धर्मा येषां। २ अन्ध, वधिर और मूक, अन्धा, बहरा और गूंगा। इन तीनोंको यज्ञमें जानेका अधिकार नहीं है। तीन ऋषियोंमेंसे एकने दूसरेकी चीज देख कर आँखे बंद कर लीं। इसीसे वे अन्धे हुए, दूसरेने परनिन्दा श्रवणशङ्का करके कान मूंद लिये, इसीसे वे बहरे हो गये और तीसरेने मिथ्याकथनकी शङ्का की थी, इसीसे वे गूंगे हुए थे।

त्र्याशिर (सं॰ त्रि॰) तिस्रः दधितक्रपयोरूपा आशिरः यस्य। अग्निका वृषभेद।

त्र्याहण (सं॰ पु॰-स्त्री॰) त्रिभिः चञ्चुपादै राहन्ति आ-हन-अच्, 'पूर्वपदात् संज्ञायामग' इति णत्वं। सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका पक्षी।

त्र्याहाव (सं॰ पु॰) त्रैयाहावक देशभेद, त्रयाहावक नामका एक देश।

त्र्याह्निक (सं॰ पु॰) त्र्यहे भवः ठञ्। आर्षत्वात् पूर्वं न ऐच्। १ त्र्यहभव ज्वरादि, हर तीसरे दिन आनेवाला ज्वर। (त्रि॰) २ तीन दिनोंमें होनेवाला।

त्र्युदय (सं॰ क्ली॰) त्रिषु सवनेषु उदयो गतिरस्य। सोमाख्य द्रव्य।

त्र्युधन् (सं॰ पु॰) त्रिभिः वसन्तशरद्धेमन्तै ऋतुभिरूधोऽस्य अनङ् ह्रस्वश्च। वसन्तादिरूपोधोयुक्त वत्सररूप वृषभ, पालने योग्य साँढ़।

त्र्युषण (सं॰ क्ली॰) त्रयाणां उषणानां समाहारः पृषो॰ वा दीर्घः। १ त्रिकुटु, सोंठ, पीपल और मिर्च। इसका गुण--दीपन, श्वास, कास, त्वगामय, गुल्म, मेह, कफ, स्थौल्य, मेद, श्लीपद और पीनस रोगनाशक है। २ चरकोक्त घृतविशेष, चरकके अनुसार एक प्रकारका घृत जो उक्त औषधियोंके मेलसे बनाया जाता है।

त्र्युषणादिमण्डूर (सं॰ क्ली॰) एक प्रकारकी औषध जिसका व्यवहार पाण्डु रोगमें होता है। इसकी प्रस्तुत प्रणाली--त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग, चई, चीतामूल, दारुहल्दी, दालचीनी, स्वर्णमाक्षिक, पीपर, मूली और देवदारु प्रत्येकका दो दो पल चूर्ण, यह चूर्ण जितना हो उससे दूना शोधित मण्डूरचूर्ण और मण्डूरचूर्णसे ८ गुना गोमूत्रकी जरूरत पड़ती है। पहले गोमूत्रमें मण्डूरको पाक करते और गाढ़ा होने पर उसमें उक्त चूर्ण डाल देते हैं। पीछे अंजीरके (गूलरके) बराबर गोली बनाते हैं। मट्ठेके साथ इसका सेवन करनेसे कामल, मेह, प्लीहा आदि रोग दूर हो जाते हैं। अजीर्ण होने पर भोजन करना उचित नहीं है। (भैषज्यर॰)

त्र्युषणाद्यवर्त्ती (सं॰ स्त्री॰) वर्त्तिविशेष, एक प्रकारकी बत्ती। त्रिकटु, त्रिफला, दारचीनी, सैन्धव और मनःशिला इन सबको मिला कर बत्ती तैयार करनी पड़ती है। इस बत्तीका आंखमें प्रयोग करनेसे आँखका कीचड़ जाता रहता है।

त्र्यृच (सं॰ क्ली॰) तिसृणां ऋचां समाहारः अच् समा॰। ऋक्त्रय, ऋग्वेदके तीन मन्त्र।

त्र्येणी (सं॰ स्त्री॰) त्रीणि एतानि अस्य वा त्रिषु स्थानेषु एतः कर्वुरो यस्याः 'वर्णादनुदात्तात् ङीप् तस्य नः, ततो णत्वं। कर्वुरा स्त्री, वह स्त्री जिसके शरीरमें तीन जगह चितकबड़े दाग हों।

त्व (सं॰ त्रि॰) तनोति विस्तारयति तन-क्विप् अनश्च वः (तनोते रनश्च वः। उण् २।६३) १ भिन्न, अन्य, दूसरा। २ एक।

त्वं (सं॰ त्रि॰) सर्वनाम युष्मद् प्रथमैकवचनं। तुम, आप।

त्वक् (सं॰ पु॰) त्वच् देखो।

त्वक्कण्डुर (सं॰ पु॰) त्वचः कण्डुं राति रा-क। व्रण, फोड़ा।

त्वक्क्षीरा (सं॰ स्त्री॰) त्वचः वंशत्वचः क्षीरमस्त्यत्र। वंशलोचना, वंशलोचन।

त्वक्क्षीरी (सं॰ स्त्री॰) त्वक्क्षीर-गौरा॰ ङीष्। वंशलोचना, वंशलोचन। पर्याय--वांशी, तुगाक्षीरी, तुगा, वंशज, शुभ्रा, वंशक्षीरी और वैणवी।

त्वक्च्छद (सं॰ पु॰) त्वगिव छदो यस्य। क्षीरीश वृक्ष, क्षीरकंचुकी।

त्वक्छेद (सं॰ क्ली॰) (Circumcision) मुसलमान प्रभृति म्लेच्छ जातियोंका एक संस्कार। इसमें मुसलमान बालकोंके लिङ्गोंका अगला चमड़ा काटा जाता है।

त्वक्तरङ्ग (सं॰ पु॰) त्वचःस्तरङ्ग इव। कण्डु पदार्थ।

त्वक्त्र (सं॰ क्ली॰) त्वचं त्रायति त्रा-क। वर्म, कवच, बखतर।

त्वक्पञ्चक (सं॰ क्ली॰) त्वचां पञ्चकं। बड़, पीपल, गूलर, सीरीस और पाकर ये पाँचों वृक्ष। गुण--शीतल, व्रण, शोथ, विसर्प, विष्टंभ और आध्माननाशक, तिक्त, कषाय, लघु और लेखन।

त्वक्पत्र (सं॰ क्ली॰) त्वगेव पत्राणि यस्य। १ गुड़त्वक्, दारचीनी। २ तेजपत्र, तेजपत्ता। पर्याय--सूत्कट, भृङ्ग, त्वच, चोच और वराङ्गक है।

त्वक्पत्री (सं० स्त्री०) त्वक्, गौरा० ङीष्। १ हिङ्गुपत्री। पर्याय—कारवी, पृथ्वी, वाष्पीका, कवरी और पृथु। २ केलेका पेड़। ३ तेजपत्तेके जैसी पत्ता।

त्वक्परिपुटन (सं० क्ली०) त्वचः परिपुटनं। चमड़ेका खींचना, शरीरसे चमड़ेका अलग करना।

त्वक्पाक (सं० पु०) त्वचः पाको यत्र। शूकदोष निमित्त पीड़कारोगविशेष, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका रोग जिसमें पित्त और रक्तके कुपित होनेसे शरीरमें फुंसियां निकल आती हैं। शूकदोष देखो।

त्वक्पारुष्य (सं० क्ली०) त्वचः पारुष्यं कठोरता। त्वक्‌का काठिन्य, चमड़ेका कड़ापन।

त्वक्पुष्प (सं० क्ली०) त्वचः पुष्पमिव। १ रोमाञ्च, रोएं खड़े हो जाना। २ किलास, सेहुआँ रोग।

त्वक्पुष्पिका (सं० स्त्री०) चर्मरोग विशेष, एक प्रकारका चमड़ेका रोग।

त्वक्षस् (सं० क्ली०) त्वक्ष्यतेऽनेन त्वक्ष करणे असुन्। बल, ताकत।

त्वचीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन त्वचिता ईयसुन् तृणोलोपः। दीप्त, चमकता हुआ।

त्वक्सार (सं० पु०) त्वचि सारो यस्य। १ वंश, बांस। २ वंशका त्वक्, बांसका छिलका। ३ गुड़त्वक्, दारचीनी। ४ शोणवृक्ष, सनका पौधा।

त्वक्सारभेदिनी (सं० स्त्री०) त्वचः सारं भिनत्ति भिद-णिनि ङीप्। क्षुद्रचञ्चुवृक्ष, छोटा चेंच।

त्वक्सारा (सं० स्त्री०) त्वक्सारो वंश उत्पत्तिकारत्वेनास्त्यस्याः अच, ततष्टाप्। वंशलोचना; वंसलोचन।

त्वक्सुगन्ध (सं० पु०) त्वचि सुगन्धः सद्गन्धो यस्य। १ नारंगी नीबू। २ लवङ्ग, लौंग।

त्वक्सुगन्धा (सं० स्त्री०) त्वचि सुगन्धो यस्याः। १ एलवालुका नामक गन्धद्रव्य, एलुवा। २ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची।

त्वक्स्वाद्वी (सं० स्त्री०) त्वचि स्वाद्वी। दारचीनी।

त्वगङ्कुर (सं० पु०) त्वचश्चर्मणः अङ्कुर इव। रोमाञ्च।

त्वगाक्षीरी (सं० स्त्री०) त्वक्क्षीरी पृषोदरा० साधुः। वंशलोचना, वंसलोचन।

त्वग्गन्ध (सं० पु०) त्वचि गन्धो यस्य। नागरङ्ग, नारङ्गी नीबू।

त्वग्ज (सं० क्ली०) त्वचः जायते जन-ड। १ रोम, रोआं। २ रुधिर, लोहू।

त्वग्दोष (सं० पु०) त्वचो दोषो दूषणं यस्मात्। कुष्ठरोग, कोढ़। इसमें शरीर पर चकत्ते पड़कर फिर पीछे छिप जाते हैं। इसकी गिनती महारोगोंमें की गई है। महापातकज ८ प्रकारके जो रोग कहे गये हैं, उन्हींमेंसे यह एक है। इस रोगसे यदि किसीकी मृत्यु हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त किये बिना दाहकर्म करना निषिद्ध है। मोहवश यदि कोई दाह कर्म कर ले, तो उसे चान्द्रायणव्रत करना होता है। (शुद्धितत्त्व)

लोध्र, नीराम्ल और कनकचूर्णको कुछ गरम कर जहां जहां ये चकत्ते पड़ गये हों, वहाँ उसे लगा देनेसे रोग जाता रहता है। (गरुड़ १८४ अ०)

त्वग्दोषापहा (सं० स्त्री०) त्वग्दोषं रोगविशेषं अपहन्ति हन ड-टाप्। सोमराजी, बकुची, बावची।

त्वग्दोषारि (सं० पु०) त्वग्दोषस्य अरिः, तन्नाशकत्वात् तथात्वं। हस्तिकन्द। इससे त्वग्दोष नष्ट होता है।

त्वग्दोषी (सं० त्रि०) त्वग्दोषोऽस्त्यस्य त्वग्दोष-इनि। त्वग्दोषयुक्त, जिसे कुष्ठरोग हो।

त्वग्भेद (सं० पु०) त्वचो भेदः ६-तत्। त्वक्‌का भेद, चमड़ेका फटना।

त्वग्भेदक (सं० पु०) त्वचो भेदकः। त्वक्भेदकारी, वह जो चमड़ा छेदता हो। समान जातिमें यदि कोई किसीका चमड़ा छेद करे अथवा खून बहावे, तो उसे एक सौ पण दण्ड होगा।

त्वङ्कार (सं० पु०) तुम इस प्रकारका वाक्य। गुरुजनोंको त्वङ्कार अर्थात् तुम इस तरहका वाक्य कहनेसे भारी दोष समझा जाता है। ऐसी हालतमें कहनेवालोंको चाहिये कि वे उपवास कर अपमानितोंके पैर पकड़ें और उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करें!

त्वच् (सं० स्त्री०) त्वच्यते संव्रियते देहोऽनया, त्वचति संवृणोति वा देहं त्वच-क्विप्। १ वल्कल, छाल। २ चर्म, चमड़ा। ३ स्पर्शग्राहक वाह्येन्द्रियभेद, पांच इन्द्रियोंमेंसे एक। यह इन्द्रिय सारे शरीरके ऊपरी भागमें

व्याप्त है। इसके द्वारा स्पर्श होता है तथा कड़े और नरम आदिका ज्ञान प्राप्त किया जाता है। प्राचीन ऋषियोंने इसे वायुके सत्त्वांशसे उत्पन्न माना है और इसको अधिष्ठात्री देवी वायु बतलाई है। ४ गुड़त्वक्, दारचीनी। पर्याय—त्वचा, वल्कल, भृङ्ग, वराङ्ग, मुखशोधन, शकल, सिंहल, वन्य, सुरस, कामवल्लभ, उत्कट, बहुगन्ध, विज्जल, वनप्रिय, नटपर्ण, गन्धवल्क, वर और शीत। गुण—यह कटु, शीतल, कफ और कासनाशक, शुक्र और आमदोषनाशक, कण्ठशुद्धिकर तथा लघु है। ५ कंचुक, केंचुल।

त्वच् (सं० क्लो०) प्रशस्ता त्वगस्त्यस्य, इति अर्श आदित्वादच्। १ गुड़त्वक्, दारचीनी। २ त्वगपत्र, तेजपत्ता।

त्वचस् (सं० क्ली०) त्वच-असुन। त्वच् देखो।

त्वचस्य (सं० त्रि०) त्वचसि हितं यत्। त्वगिन्द्रियका हितकर।

त्वचा (सं० स्त्री०) त्वच् पक्षे टाप् वा त्वचति संवृणोति सर्वशरीरमिति अच् ततष्टाप। १ त्वक्, चर्म, चमड़ा। २ मिष्ट वल्कल, दारचीनी।

त्वचापत्र (सं० क्ली०) त्वचा त्वक् पत्रमिव यस्य। १ गुड़त्वक्, दारचीनी। २ तेजपत्र, तेजपत्ता।

त्वचिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन त्वग्वान् त्वग्वत् इष्ठन्, ततो मतुपो लुक्। (विन्मतोर्लुक्। पा ५।३।६४) अत्यन्त त्वक्युक्त, ज्यादा चमड़ावाला।

त्वचिसार (सं० पु०) त्वचि सारो यस्य। वंश, बांस।

त्वचिसुगन्धा (सं० स्त्री०) त्वचि सुगन्धो यस्याः, सप्तम्याः अलुक्। क्षुद्रैला, छोटी इलायची।

त्वचीयस् (सं० त्रि०) अतिशयेन त्वग्वान् त्वच् ईयसुन् मतोलुक्। अत्यन्त त्वक्युक्त, जिसमें अधिक चमड़ा या छिलका हो।

त्वज्ज्ञान (सं० क्ली०) त्वचा ज्ञानं। स्पर्श इन्द्रियसे उत्पन्न ज्ञान।

त्वज्ज्ञेय (सं० त्रि०) त्वचा ज्ञेयः। स्पर्शनइन्द्रिय द्वारा जानने योग्य।

त्वत् (सं० त्रि०) तन-क्विप् अनो वः तुक् च। (तनोतेरनश्च वः। उण् २।६३) १ भिन्न। २ युष्मद् शब्दको प्रथमाके एकवचनका रूप।

त्वत्कृत (सं० त्रि०) त्वया कृतः ३ तत्। तुमसे किया हुआ।

त्वत्तस (सं० अव्य) एकार्थवृत्तेः युष्मदस्तसिल्। तुम्हारे निकटसे।

त्वदीय (सं० त्रि०) तव इदं त्वदादित्वेन वृद्धत्वात् छ, त्वदादेशः। तुम्हारा। जिस जगह बहुवचन हो, उस जगह त्वदीय शब्द न होकर युष्मदीय शब्द होगा।

त्वद्विध (सं० त्रि०) तवेव विधा प्रकारो यस्य। त्वत् सदृश, तुम्हारे जैसा।

त्वम्पदलक्ष्यार्थ (सं० पु०) त्वमिति पदस्य लक्ष्योऽर्थः। चैतन्य, चेतनता।

त्वम्पदवाच्य (सं० त्रि०) त्वम्पदस्य वाच्यः। त्वं, ब्रह्म। जिस प्राणीके देह आदि आवरण नहीं हैं वे ही त्वं हैं।

त्वम्पदवाच्यार्थ (सं० त्रि०) त्वमिति पदस्य वाच्योऽर्थः। अज्ञानादिकी व्यष्टि।

त्वम्पदाभिध (सं० पु०) त्वंपदं अभिधा यस्य। त्वम्पद वाच्य जीव, जिनके "अहं" इत्यादि अभिमान छिपे हुए हैं और बोधस्वरूपमें अवस्थित हैं, वे ही त्वम्पदाभिध हैं।

त्वन्मय (सं० त्रि०) युष्मत् स्वरूपे मयट्। त्वत् स्वरूप।

त्वयता (सं० स्त्री०) त्वया दत्तं पृषो० साधुः। तुमसे दिया हुआ।

त्वरण (सं० क्ली०) त्वर भावे ल्युट्। त्वरा, शीघ्रता, जल्दी।

त्वरणीय (सं० त्रि०) त्वर-अनीयर्। द्रुतगमनशील, जल्दी जानेवाला।

त्वरमाण (सं० त्रि०) त्वर-शानच्। सत्वर, तेज।

त्वरा (सं० स्त्री०) त्वरणमिति, त्वर-अङ्, ततः टाप्। वेग, शीघ्रता, जल्दी। पर्याय—सम्भ्रम, आवेग, त्वरि, तूर्णि और संवेग है।

त्वरायण (सं० त्रि०) त्वरा अयनं यस्य। ततो णत्वं। त्वरासक्त, शीघ्रता करनेवाला, जल्दबाज।

त्वरारोह (सं० पु०) पारावत, कपोत, कबूतर।

त्वरावत् (सं० त्रि०) त्वरास्त्यस्य त्वरा मतुप् मस्य वः। त्वरायुक्त, शीघ्रता करनेवाला।

त्वरि (सं० स्त्री०) त्वरणमिति त्वर भावे इन्। त्वरा, शीघ्रता, जल्दी।

त्वरित (सं० क्ली०) त्वर-क्त। १ शीघ्र, जल्दी। (त्रि०) २ तेज।

त्वरितक (सं० पु०) त्वरितं कायति प्रकाशते जायते कै-क। व्रीहिभेद, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका चावल जिसे तूर्णक भी कहते हैं।

त्वरितगति (सं० स्त्री०) छन्दोभेद, एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें दश अक्षर होते हैं। इसके पांचवें और दशवें वर्ण गुरु और शेष वर्ण लघु होते हैं।

त्वरिता (सं० स्त्री०) देवीभेद, तन्त्रके अनुसार एक देवी। इसकी पूजा युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये की जाती है। इसका विधान अग्निपुराणके १४१ अध्यायमें और इसकी यन्त्रादिका विषय तन्त्रसारमें लिखा है।

त्वरितोदित (सं० क्ली०) त्वरितं शीघ्रं यथा तथा उदितं कथितं। शीघ्रोच्चारित वाक्य, बहुत जल्द उच्चारण किया हुआ वाक्य।

त्वलग (सं० त्रि०) त्वलग पृषो० साधुः। जलसर्प; पानीका सांप।

त्वष्ट (सं० त्रि०) त्वक्ष तनूकरणे क्त। तनूकृत, जो पतला या सूक्ष्म किया गया हो।

त्वष्टि (सं० पु०) मनूक्त सङ्कीर्ण जातिभेद, मनुके अनुसार एक संकर जाति।

त्वष्टीमती (सं० स्त्री०) त्वष्टा तदनुग्रहोऽस्त्यस्याः मतुप्-पृषो० साधुः। त्वष्टाकी अनुग्रहयुक्ता स्त्री, विश्वकर्माकी दयालु स्त्री।

त्वष्टृ (सं० पु०) त्विषति दीप्यति त्विष दीप्तौ तृच, इतो अत्वञ्च (नप्तृनेतृत्वष्टृहोत्रिति। उण् २।९६) १ आदित्यभेद। बारह आदित्योंमेंसे ग्यारहवें आदित्य। ये आंखके अधिष्ठातृ देवता माने जाते हैं। विराट पुरुषकी दो आंखोंके डिम्ब पृथक् पृथक् उत्पन्न होने पर लोकपाल त्वष्टा (ग्यारहवें आदित्य) अपने अंशसे चक्षुके साथ अधिदेवता स्वरूप उसमें प्रविष्ट हो गये। उसी चक्षुसे जीवका ज्ञान हुआ करता है। त्वक्षति तनूकरोति, काष्ठादिकं शिल्पकार्यं त्वात्त्वक्ष—तृच्। २ विश्वकर्मा। विष्णुपुराणके अनुसार ये सूर्यके सात सारथियोंमेंसे एक हैं। ३ विश्वकर्माके पुत्रविशेष, विश्वकर्माके एक पुत्रका नाम। ४ प्रजापतिविशेष, एक प्रजापतिका नाम। ५ महादेव, शिव। ६ वर्णसंकरजातिविशेष, सूत्रधार नामकी वर्णसंकर जाति। ७ चित्रा नक्षत्रके अधिष्ठात्री देवताका नाम। ८ तक्षणकर्त्ता, बढ़ई। ९ पशु और मनुष्यादिके गर्भके अभ्यन्तरस्थित रेतोरूप विभागकारक देवभेद, एक वैदिक देवता। ये पशुओं और मनुष्योंके गर्भमें वीर्यका विभाग करनेवाले माने जाते हैं। १० ताम्र, तांबा।

त्वष्टृमत् (सं० त्रि०) त्वष्टृ अस्त्यर्थे मतुप्। वीर्याधिष्ठातृ देवभेदयुक्त, एक देवता जो वीर्यके अधिष्ठातृ देवता माने जाते हैं।

त्वाचप्रत्यक्ष (सं० क्ली०) त्वाचं त्वच-सम्बन्धि प्रत्यक्षं। स्पर्श ज्ञान, छू कर किसी चीजका अनुभव करना।

त्वादत्त (सं० त्रि०) त्वया दत्तः वेदे साधुः। जो तुमसे दिया गया हो।

त्वादूत (सं० त्रि०) त्वं दूतो येषां। तुम जिसके दूत हो।

त्वादृश् (सं० त्रि०) त्वमिव दृश्यते युष्मद् दृश् क्विन्। तुम्हारे जैसा, तुम सरीखा।

त्वादृश (सं० त्रि०) त्वमिव दृश्यतेऽसौ युष्मद् दृश्-कञ् (तदादिषुदृशो रनालोचने कंच। पा ३।२।६०) तुम्हारे सदृश, तुम्हारे जैसा।

त्वायत् (सं० त्रि०) त्वामात्मन इच्छति, सुप आत्मनः क्यच्, क्यजन्तात्लटः शतृ। आत्माभिलाषी, जो अपनी इज्जत वा प्रतिष्ठा चाहता हो।

त्वायु (सं० त्रि०) त्वात्मन इच्छति क्यच् युष्मदस्त्वदादेशे क्याच्छन्दसि' इति उ। जो तुम्हें चाहता हो।

त्वावसु (सं० पु०) त्वं वसु व्यापकोऽस्य त्वादेशः वेदे पृषो० साधुः। तुमसे व्याप्त।

त्वावृध (सं० पु०) त्वया वर्द्धितः। तुमसे बढ़ाया हुआ।

त्वाष्टी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

त्वाष्ट्र (सं० त्रि०) त्वष्टा देवता अस्य अण्। १ त्वष्टा देवताके उद्देशसे लाया हुआ घी इत्यादि। २ वृत्रासुर। ३ त्वष्टा या विश्वकर्माका बनाया हुआ हथियार, वज्र। ४ चित्रा नक्षत्र। ५ विश्वरूप।

त्वाष्ट्री (सं० स्त्री०) त्वष्टा अधिष्ठात्री देवता अस्य, त्वष्टृ अण् ङीप्। १ चित्रा नक्षत्र। २ विश्वकर्माकी कन्या संज्ञाका एक नाम। यह सूर्यकी व्याही थी और इसके गर्भसे अश्विनीकुमारका जन्म हुआ था।

त्विष् (सं॰ स्त्री॰) त्विष दीप्तौ सम्पदादि त्वादिक्विप्। १ शोभा, प्रभा, चमक। २ वाक्य। ३ व्यवसाय। ४ जिगीषा, जयकी इच्छा। (त्रि॰) ५ दीप्यमान चमकता हुआ।

त्विषा (सं॰ स्त्री॰) त्विष् हलन्तात् वा टाप्। दीप्ति, प्रभा, चमक दमक।

त्विषामीश (सं॰ पु॰) त्विषां ईशः अलुक् समासः। १ सूर्य। २ अर्क वृक्ष, आकका पेड़।

त्विषाम्पति (सं॰ पु॰) त्विषां पतिः षष्ठ्याः अलुक्। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष।

त्विषि (सं॰ स्त्री॰) त्विष दीप्तौ त्विष् इन् सच कित् (इगुपधात् कित्। उण् ४।११९) किरण।

त्विषित (सं॰ त्रि॰) त्विट् जाताऽस्य तारकादि इतच्। ज्वलित, चमकता हुआ।

त्विषीमत् (सं॰ त्रि॰) त्विषि विद्यतेऽस्य त्विषि मतुप् वेदे दीर्घः। दीप्तिमत्, चमकता हुआ।

त्वेष (सं॰ त्रि॰) त्विष पचाद्यच्। दीप्त, जगमगाता हुआ।

त्वेषथ (सं॰ त्रि॰) त्विषअथ्। दीप्त, चमकता हुआ।

त्वेषद्युम्न (सं॰ त्रि॰) त्वेषं दीप्तं द्युम्नं यस्य। दीप्यमान यशोयुक्त, जिसका यश जगमगाता हो।

त्वेषनृम्ण (सं॰ त्रि॰) त्वेषं नृम्णं यस्य। प्रदीप्त बल, जिसे खूब ताकत हो।

त्वेषप्रतीक (सं॰ त्रि॰) त्वेष प्रतीकः यस्य। दीप्तमुख, जिसका मुँह बहुत चमकता हो।

त्वेषरथ (सं॰ त्रि॰) त्वेषः रथः यस्य। दीप्तरथ, चमकीला रथ।

त्वेषस् (सं॰ क्लो॰) त्विष् असुन्। दीप्त, प्रकाशमान।

त्वेषसंदृश् (सं॰ त्रि॰) त्वेषः संदृक् यस्य। दीप्त संदर्शन।

त्वेषी (सं॰ स्त्री॰) दीप्ता।

त्वै (सं॰ अव्य॰) १ विशेष। २ वितर्क।

त्वैषीरथी (सं॰ पु॰) कुशिक।

त्वोत (सं॰ त्रि॰) त्वया उतः वेदे साधुः। तुमसे रक्षित, जो तुमसे बचाया गया हो।

त्सरु (सं॰ पु॰) त्सरति कौटिल्यं गच्छति त्सर-उ। १ खड्गमुष्टि, तलवारकी मूठ। इसका पर्याय—मुष्टितालतल है। २ सर्प, साँप।

त्सारिन (सं॰ त्रि॰) त्सरणयुक्त, बहुत डरपोक।

त्सारुक (सं॰ त्रि॰) त्सरौ तद्युद्धे निपुणः। आकर्षां कन् ततः स्वार्थे अण्। असियुद्धनिपुण, जो तलवार चलानेमें निपुण हो।

* * *

थ

थ—थकार, संस्कृत और हिन्दी वर्णमालाका सत्रहवां व्यञ्जनवर्ण और तवर्गका दूसरा अक्षर। इसका उच्चारण-स्थान दन्तमूल है। दन्तमूलके द्वारा जिह्वाके अग्रभागका स्पर्श होने पर इस वर्णका उच्चारण होता है। इस आभ्यन्तर प्रयत्नके कारण इसकी वर्णस्पर्शता होती है। इसमें विवार, श्वास, अघोष और महाप्राण बाह्य प्रयत्न होते हैं।

पर्याय—त्रिवासी, महाग्रन्थि, ग्रन्थिग्राह, भयानक, शिली, शिरसिज, दन्ती, भद्रकाली, शिलोच्चय, क्षण, बुद्धि, विकर्णी, दक्षिणाशा, अधिप, अमर, वरदा, भोगदा, केश, वामजङ्घा, अलस, अनल, लोल, उज्जयिनी, पृथु, गुह्य, शरच्चन्द्र, विदारक। (वर्णाभिधान) इसका आकार इस प्रकार है—"थ"।

इसके ध्यानके मन्त्र—

'नीलवर्णां त्रिनयनां षड्भुजां वरदां पराम्।
पीतवस्त्रपरिधानां सदा सिद्धिप्रदायिनीम्॥
एवं ध्यात्वा थकारन्तु तन्मत्रं दशधा जपेत्।
पंचदेवमयं वर्णं पंचप्राणमयं सदा॥
तरुणादित्यसंकाशं थकारं प्रणमाम्यहम्॥" (वर्णोद्धारतन्त्र॰)

मातृकान्यासमें—वाम जङ्घा पर थकारका न्यास किया जाता है।

इसका स्वरूप--कुण्डली, मोक्षरूपिणी, त्रिशक्ति;

त्रिविन्दु पंचप्राणमय और सर्वदा पञ्चप्राणमयवर्ण एवं नवोदित सूर्यके समान है। (कामधेनुतन्त्र)

काव्यादिमें थकारका प्रथम प्रयोग होनेसे फल युद्ध होता है। ("थस्तु युद्धम्" वृत्तरत्ना० टी०)

थ (सं० पु०) थुड़-संवृत्तौ ड। १ पर्वत, पहाड़। २ व्याधिभेद, एक रोग। ३ भय। ४ भक्षण, आहार। ५ रक्षण। ६ मङ्गल। ७ साध्वस। (त्रि०) ८ भयरक्षक।

थंका (हिं० पु०) बिलमुक़ता।

थंब (हिं० पु०) खंभा। २ सहारा। ३ राजपूतोंका एक भेद।

थंबी (हिं० स्त्री०) १ खड़ी लकड़ी। २ सहारेकी बल्ली, चाँड़, थूनी।

थंभ (हिं० पु०) खंभा।

थंभन (हिं० पु०) १ स्तम्भन, रुकावट, ठहराव। २ तन्त्रके छः प्रयोगोंमेंसे एक। ३ एक प्रकारकी दवा जो शरीरसे निकली हुई वस्तु जैसे मल मूत्र शुक्र इत्यादिको रोके रहे।

थक (हिं० पु०) थाक देखो।

थकना (हिं० क्रि०) १ शिथिल होना, क्लान्त होना। २ ऊब जाना, हैरान हो जाना। ३ मुग्ध होना, लुभाना। ४ बुढ़ापेसे अशक्त होना। ५ शिथिल पड़ जाना, चलता न रहना, धीमा पड़ जाना।

थकरी (हिं० स्त्री०) खसकी कूँची जिससे स्त्रियाँ बाल झाड़ती हैं।

थकान (हिं० स्त्री०) शिथिलता, थकावट।

थकाना (हिं० क्रि०) शिथिल करना, हराना।

थकामाँदा (हिं० वि०) श्रमित, मिहनत करते करते अशक्त।

थकार (सं० पु०) थ स्वरूपे कारः। 'थ' अक्षर।

थकारादि (सं० पु०) थकार आदिर्यस्य। जिसके प्रारम्भमें थ अक्षर हो।

थकारान्त (सं० त्रि०) थकारोऽन्तो यस्य। जिसके अन्तमें थ हो।

थकाव (हिं० पु०) थकावट।

थकावट (हिं० स्त्री०) शिथिलता।

थकाहट (हिं० स्त्री०) थकावट देखो।

थकित (हिं० वि०) १ श्रान्त, शिथिल, थका हुआ। २ मुग्ध, मोहित।

थकिया (सं० स्त्री०) १ वह मोटी तह जो किसी गाढ़ी चीजके जम जानेसे हो जाती है। २ गली हुई धातुका जमा हुआ लौंदा।

थकौहां (हिं० वि०) शिथिल, कुछ थका हुआ।

थक्का (हिं० पु०) १ गली हुई धातुका जमा हुआ कतरा। २ किसी गाढ़ी चीजकी मोटी तह, जमा हुआ कतरा।

थगर—निम्न ब्रह्मके तौङ्गु जिलेके अन्तर्गत एक नगर। इसके मध्य होकर बहुतसे गिरिशैल गये हैं और कहीं कहीं तरह तरहके वृक्ष तथा लतासे परिपूर्ण क्षेत्र देखे जाते हैं।

थगित (हिं० वि०) १ ठहरा हुआ, रुका हुआ। २ शिथिल, ढीला। ३ मन्द, सुस्त।

थड़ा (हिं० पु०) १ बैठनेका स्थान, बैठक। २ दूकानकी गद्दी।

थतिया—युक्तप्रदेशके फरूखाबाद जिलेके अन्तर्गत तिरवा नगरसे ३॥ कोसकी दूरी पर अवस्थित एक नगर। पहले यहाँ बहुत मनुष्योंका वास था। अब भी यहां बाजार आदि हैं। बहुतसी सड़कें इस नगरमें आ मिली हैं। यहां गो आदिका व्यवसाय होता है। नगरमें पुलिस, डाकघर, अंगरेजी विद्यालय, सराय प्रभृति हैं। नगरसे दक्षिण एक ऊँची जमीनके ऊपर दुर्गका चिह्न देखनेमें आता है। पहले उस दुर्गमें ताल ग्रामके बघेला राजपूत रहते थे।

१८५७ ई०में यहांके दुर्गपति बघेला सर्दार भी विद्रोही हुए थे। विद्रोहके बाद वे द्वीपान्तर भेजे गये और उनका किला तहस नहस कर डाला गया।

थतुन—निम्न ब्रह्मके तेनसेरिम विभागका एक जिला। यह अक्षा० १६° २८´ से १७° ५१´ उ० और देशा० ९६° ३८´ से ९८° २०´ पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण ५०७९ वर्गमील है। इसके उत्तरमें सलवीन और थौनगीन नदियोंका सङ्गमस्थान, पूर्वमें थौनगीन नदी ७० मील तक प्रवाहित है तथा दक्षिण-पश्चिममें मर्त्तवानकी खाड़ी और सीतंग नदीका मुहाना है। जिला चारों ओर पर्वतमालासे घिरा हुआ है।

जिलेकी प्रधान नदी थोनगीन है जो अमहर्ष्ट जिलेसे निकल कर २८० मील तक बहती हुई जिलेके उत्तर सलवीन नदीसे जा मिली है। इसके सिवा हैलेङ्बे, सलवीन, गैङ्ग, बिलीन और सितङ्ग नामक कई एक नदियाँ जिलेके चारों ओर प्रवाहित हैं। यहांके जङ्गलमें हाथी, चीता, बाघ, हरिण, सूअर, भालू और तरह तरहके पक्षी पाये जाते हैं।

यह जिला पहले मोन वा तैलङ्गके अधिकारमें था। आज कल भी इसके कुछ अंश इन्हीं लोगोंके अधिकारमें है। १८५२ ई०में बरमाकी दूसरी लड़ाईमें यह अंगरेजोंके दखलमें आया।

इसमें दो शहर और ११७३ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ३४३५१० है। करेन जातिके लोगोंकी संख्या सबसे अधिक है। यहांकी जमीन बहुत उपजाऊ है। धानही जिलेकी प्रधान उपज है। यहांसे विलायती कपड़े, रेशम, चांदी, धान, सालकी लकड़ी और चूनेके पत्थरकी रफ्तनी होती है। १८८३ ई०से यहाँ ट्रामगाड़ी भी चलाने लगी है।

सम्पूर्ण जिला तीन उपविभागोंमें विभक्त है, पहला पान उपविभाग, जो दोनथमी नदीके पूर्वस्थ भागमें पड़ता है, दूसरा कैकती और तीसरा थतुन उपविभाग है। डिष्ट्रिक्ट जज और सहकारी जजसे विचारकार्य सम्पादन होता है। यहाँकी आय १६ लाख रुपयेसे अधिक की है।

थतुन जिला विद्यास्थितिमें बहुत पीछा पड़ा हुआ है, किन्तु इसकी उन्नति अब धीरे धीरे होती जा रही है। आजकल यहां केवल ११ सेकेण्डरी, २११ प्राइमरी और ३२८ एलिमेण्ट्री स्कूल है। विद्याविभागमें वार्षिक २३८००) रु० व्यय होते हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। इसमें थतुन और पौङ्ग नामक दो शहर लगते हैं।

३ उपरोक्त जिलेका एक प्राचीन शहर। यह अक्षा० १६° ५५' उ० और देशा० ९८° २२' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १४३४२ है। अभी यहांकी पूर्व समृद्धि जाती रही। तैलङ्ग इतिहासमें यह स्थान बहुत विख्यात है। कई एक ऐतिहासिकोंका कहना है, कि १७वीं शताब्दीमें यह नगर स्थापित हुआ है और बहुत काल तक यहां स्वाधीन राज्यकी राजधानी था। १०वीं शताब्दीमें ब्रह्मराज अनवरतने इस पर अधिकार किया। ब्रह्मपुरावृत्तमें थतुनके अधिकार करनेका विषय विस्तारपूर्वक लिखा है। इस नगरमें अनेक बौद्ध देवालय देखे जाते हैं, किन्तु अधिकांश भग्नावस्थामें पड़े हैं।

थत्ती (हिं० स्त्री०) राशि, ढेर, पुञ्ज।

थन (हिं० पु०) चौपायोंका स्तन।

थनकुटी (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटी पक्षी। यह नील रङ्गके लिये चमकीला होता है और कीड़े मकोड़े खाता है।

थनगन (हिं० पु०) बरमा, बरार और मलबारमें होनेवाला एक बड़ा पेड़। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत बनानेके काममें आती है।

थनटुट्टू (हिं० स्त्री०) वह स्त्री जिसके स्तनसे दूध नहीं निकलता हो।

थनी (हिं० स्त्री०) १ बकरियोंके गलेके नीचे लटकती हुई दो थैलियां जिनका आकार स्तनसा होता है, गलथना। २ थनके आकारका निकला हुआ मांसका अङ्कुर जो हाथियोंके कानके पास होता है। इस तरहका हाथी ऐबी समझा जाता है। ३ वह लटकता हुआ मांस जो घोड़ेकी लिङ्गेन्द्रियमें रहता है और जिसका आकार थन सा होता है। घोड़ेमें यह एक ऐब समझा जाता है।

थनैला (हिं० पु०) १ स्त्रियोंके स्तन पर होनेवाला एक प्रकारका फोड़ा। इसमें सूजन और पीड़ा होती है तथा घाव भी हो जाता है। २ एक प्रकारका कीड़ा। यह गुबरैलेकी जातिका होता और गाय भैंस आदिके थनमें डङ्क मार देता है जिससे दूध सूख जाता है।

थनैत (हिं० पु०) १ ग्रामका प्रधान, गांवका मुखिया। २ जमींदारकी ओरसे गांवका लगान वसूल करनेवाला मनुष्य।

थपकना (हिं० क्रि०) १ स्नेहवश किसीके शरीर पर धीरे धीरे हाथ मारना, बच्चेको सुलानेके लिए उसे धीरे धीरे ठोंकना। २ ढाढ़स बंधाना, दम दिलासा देना। ३ किसीका गुस्सा ठण्ढा करना, शान्त करना।

थपकी (हिं० स्त्री०) १ वह आघात जो प्यारसे किसीके

शरीर पर हथेली द्वारा धीरे धीरे पहुँचाया जाता है। २ हाथसे अहिस्ता आहिस्ता ठोंकनेकी क्रिया। ३ वह कड़ा आघात जो हाथके झटकेसे पहुँचाया जाता है। ४ वह मुंगरी जिससे जमीन पीट कर चौरस की जाती है। ५ थापी। ६ मोटे मोटे कपड़े पीटनेका धोबीका मुंगरा।

थपड़ी (हिं० स्त्री०) करतलोंका परस्पर आघात दोनों फैली हुई हथेलियोंकी एक दूसरे पर मारनेकी क्रिया। २ ताली बजनेकी आवाज। ३ जीरा, नमक और हींग मिली हुई बेसनकी पूरी।

थपथपी (हिं० क्रि०) थपकी देखो।

थपना (हिं० क्रि०) १ स्थापित होना, ठहरना। २ प्रतिष्ठित होना। ३ धीरे धीरे पीटना या ठोंकना।

थपना (हिं० पु०) १ किसी धातुको पीटनेका पत्थर, लकड़ी आदिका औजार। २ थापी।

थपुआ (हिं० पु०) चौड़ा, चौरस और चिपटा छाजनका खपड़ा। खपरैलमें प्रायः थपुआ और नरिया दोनोंका मेल होता है।

थपेड़ा (हिं० पु०) १ वह आघात जो हथेलीसे पहुंचाया जाता है, थप्पड़। २ धक्का, टक्कर, ठोकर।

थप्पड़ (हिं० पु०) १ तमाचा, चपेट। २ धक्का, टक्कर ३ दाद या फुंसियोंका छत्ता, चकत्ता।

थप्पा (हिं० पु०) एक प्रकारका जहाज।

थम (हिं० पु०) १ स्तम्भ, खम्भा, थूनी। २ केलेका पेड़। ३ देवीको चढ़ानेकी छोटी छोटी पूरियां और हलुआ।

थमकारी (हिं० वि०) स्तम्भन करनेवाला, रोकनेवाला।

थमना (हिं० क्रि०) १ रुकना, ठहरना। २ किसी चीजका जारी न रहना, बन्द हो जाना। ३ धैर्य धरना सब्र करना।

थर (हिं० स्त्री०) १ तह, परत। (पु०) २ बाघकी मांद।

थर और पार्कर—बम्बईके सिन्ध प्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० २४° १३´ से २६° १५´ उ० और देशा० ६८° ५१´ से ७१° ८´ पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें खैरपुर राज्य, पूर्वमें जयसलमेर, मल्लानी, जोधपुर और पालनपुर राज्य; दक्षिणमें कच्छकी लवणाक्त दलदलभूमि और पश्चिममें हैदराबाद जिला है। भूपरिमाण १३८४१ वर्गमील है। जिलेका सदर अमरकोट है।

थर और पार्कर जिलेको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—एक भाग 'पट' वा समतल भूभाग और दूसरा 'थर' वा मरुभूमि है। पट भूभाग समुद्रसे ५० वा १०० फुट ऊँचा है। इसके मध्य भी कहीं कहीं २०० फुट ऊँचा बालूका पहाड़ विद्यमान है। किन्तु थरमें उससे ऊँचा बालूका पहाड़ एक भी नहीं देखा जाता। कुछ दिन पहले यह भूभाग मरुभूमिसा दीखता था, जलकी सुविधा भी वैसी नहीं थी। लेकिन अभी रोड़ी नामक खाड़ीके हो जानेसे जलका कष्ट जाता रहा। इस भूभागमें पहलेसे नारा और मिथ्री नामकी दो खाड़ियां बहती आ रही हैं और इनसे चोर तथा थरथाल नामके दो कृत्रिम स्रोत निकल कर प्रायः ८० मील तक बह गये हैं।

थर वा मरुमय अंशमें एक भी नदी वा खाड़ी नहीं है। इसके दक्षिण-पूर्वमें पार्कर नामक भूभाग है जो थरसे बिलकुल विभिन्न है। यहां कई एक छोटे छोटे पहाड़ देखे जाते हैं जिनकी ऊँचाई ३५० फुटसे अधिक की नहीं होगी। इसका पूर्वभाग उतना ऊँचा नहीं है और जो कुछ है भी वह अब धीरे धीरे समतलक्षेत्रमें परिणत होता जा रहा है।

जिलेमें कई जगह सूखी नदीका गर्भ रह गया है जो देखनेसे ही मालूम पड़ता है, कि एक समय सिन्धु नदी अथवा उसकी शाखा प्रशाखाके स्रोत इसी हो कर बहते थे। अभी जहां मरुभूमि है, पहले उसी जगह काफी अनाज उपजते थे। बहुतसी ईंटें और पात्रादि जो वहां पाये गये हैं उनसे जाना जाता है, कि एक समय वहां मनुष्योंका वास था।

पुरातत्त्व—पार्कके भूभागमें बहुतसे प्राचीन देवालयोंके भग्नावशेष देखे जाते हैं। बिरावेसे १४ मील उत्तर-पश्चिममें गोरी नामक एक प्राचीन और प्रसिद्ध जैन देवमन्दिर है। यहां की जिनमूर्त्ति देखनेके लिये दूर दूर देशोंसे जैन लोग आते हैं। इसके निकट पारा नगर नामक एक प्राचीन नगरका ध्वंसावशेष पड़ा है जिसका आयतन प्रायः ६ मील होगा। धर्मसिंह नामक किसी व्यक्तिने यह नगर स्थापन किया था। पहले यह विशेष समृद्धिशाली और बहुजनाकीर्ण था।

१६वीं शताब्दीसे इसकी अवनति हो रही है। यहांके प्राचीन भग्न देवालयका शिल्पनैपुण्य देख कर चमत्कृत होना पड़ता है। खिप्रानगरसे दक्षिण नाराखाड़ीके ऊपर रताकोट नामक एक विध्वस्त नगर देखा जाता है। प्रवाद है कि १००० वर्ष पहले रता नामक किसी मनुष्यने यह नगर स्थापन किया। छः सौ वर्ष पहलेसे इसकी अवस्था शोचनीय हो गई है। जिलेके नाना स्थानोंमें तलपुर-मीरोंके समयके बनाये हुए अनेक दुर्ग देखनेमें आते हैं, जिनमेंसे इस्लामकोट, मित्ति और सिङ्गाल प्रधान हैं। अभी ये सब भग्नावस्थामें पड़े हैं।

इतिहास—जिलेका प्राचीन इतिहास बहुत कम जाना जाता है। यहांके सोदा राजपूतोंका कहना है, कि उज्जयिनीमें उन लोगोंके पूर्वपुरुष परमार सोदा वास करते थे। १२२६ ई०में वे सिन्धुप्रदेशको आये और यहांके शासनकर्त्ताओंको हरा कर आप राजा बन बैठे। इनके पहले यहां सूमरागण राज्य करते थे। कोई कोई कहते हैं, कि १६वीं शताब्दीमें सूमरागण सोदा राजपूतोंसे परास्त हुए थे। १७५० ई०में वे भी कलहोरोंकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। इस समय कुछ काल तक यह जिला सिन्धुराज्यके शासनाधीन रहा। कलहोरोंके अधःपतनके बाद यह जिला तलपुर-मीरोंके अधिकारमें आया। वे लोग उपजका $\frac{२}{५}$ भाग प्रजासे वसूल करते थे। उनके समयमें यहां कई जगह दुर्गादि बनाये गये।

बहुत दिनों तक थर और पार्कर जिला डकैतोंका अड्डा कह कर प्रसिद्ध था। वे लोग कच्छ और निकटवर्त्ती जिलाओंमें लूट मार मचाते थे।

१८४३ ई०में जब सिन्धुप्रदेश वृटिशराज्यके अन्तर्भुक्त हुआ; तब इस जिलेके लोगोंने कच्छके शासनाधीन रहनेकी इच्छा की। इसके अनुसार १८४४ ई०में बलियारी, दिप्ला, मित्ति, इस्लामकोट, सिङ्गला, बिरावा, पिटापुर, बोजासर और पार्कर कच्छमें मिलाये गये एवं अमरकोट, गदरा और नराई आदि कई एक भूभाग हैदराबाद कलक्टरीके अधीन हुए।

लाखराज और हिन्दू-विवाहके उत्सवमें पटेल वा प्रधान लोग जो अनर्थक अर्थ संग्रह करते थे, वह उठा दिया गया और सर्दारोंको अस्त्र व्यवहार करनेसे भी निषेध किया गया। इन सब कारणोंसे सोदाराजपूत लोग ताड़ गये और विद्रोही हो उठे। १८४९ ई०में विद्रोह कुछ कुछ शान्त हुआ। गवर्मेंट उन लोगोंके असन्तोषके कारण जाननेको इच्छुक हुई। इस पर उन्होंने कहा, हम लोग कराड़ बनियोंसे विवाहमें करस्वरूप २१॥ रुपये और ऋणके समय एक रुपया लेने करनेकी इच्छा करते हैं, क्योंकि यह नियम बहुत दिनोंसे चला आ रहा है। हम लोग जो निष्कर जमीन भोग करते हैं, वह बहुत कम हो गई हैं और कुछ हम लोगोंसे छीन भी ली गई हैं, वह हमें लौटा दी जांय। विशेष कर दुर्भिक्षके समय हम लोगोंके व्यवहार्य अफीम वा शस्यादि पर शुल्क न लगाया जाय। हम लोग बहुत दिनोंसे ही भ्रमणकालमें जब कभी बनियोंके घर पहुंच जाते तो बिना कुछ दिये ही भोजन करते और अनाज पाते आ रहे हैं। हम लोगोंकी यह प्रथा ज्योंकी त्यों बनी रहे। इसके अलावा अमरकोटसे जो शुल्क वसूल होता है, उसका कुछ अंश हम लोगोंको भी मिले।’

उन लोगोंका यह आवेदन सुन कर वृटिश गवर्मेंटने इस प्रकारका बन्दोबस्त कर दिया—

कराड़ बनियोंके विवाहमें सोदाराजपूतगण करस्वरूप सैकड़े ५) रु०के हिसाबसे ११०००) रु०का वार्षिक सूद पावेंगे, बहुतसी निष्कर जमीन भी भोग कर सकेंगे और अमरकोटसे जो शुल्क वसूल होगा, उसका कुछ भाग उन्हें भी दिया जायगा।

१८५० ई०में सोदाके जमींदारके साथ अमरकोट और नारा विभागका एक प्रकारका बन्दोबस्त हो गया। पीछे १८५४ ई०में सिन्धु प्रदेशके कमिश्नर सर बार्टल फ्रियरने यहां दश साला बन्दोबस्त कायम किया।

१८५६ ई०में इस जिलेका मरुमय भाग और पार्कर, पुनः सिन्धुप्रदेशके साथ मिला दिये गये।

१८५९ ई०में बहुतसी कोलीसैन्य रानाके साथ मिल कर विद्रोही हो गई। पीछे हैदराबादसे सेनाने जा कर उन्हें दमन किया। १८६८ ई०में विचारानुसार रानाको १४ वर्ष और उनके मन्त्रीको १० वर्षका निर्वासन दण्ड मिला। तभीसे जिलेमें कोई दुर्घटना न घटी।

यहांकी लोकसंख्या प्रायः २६३८९४ है। इसमेंसे सैकड़े ५३ मुसलमान, २१ हिन्दू और अहिन्दू असभ्य जाति प्रायः सैकड़े २३ है। इसके अलावा यहां जैन, सिख, ईसाई, यहूदी और ब्राह्म भी हैं। बाजरा और दूध ही यहांके लोगोंकी प्रधान उपजीविका है। धान, ज्वार और दलहनकी फसल भी कम नहीं लगती।

वाणिज्य—थर और पार्करसे प्रधानतः तरह तरहके अनाज, पशम, घी, ऊंट, गाय, भेंड़े, चमड़े, मछली, नमक आदिकी रफ्तनी और रुई, धातु, सूखा फल, रंग, कपड़ा, रेशम, गुड़ और तमाकूकी आमदनी होती है। यहां ऊनी और सूती कपड़े तैयार होते हैं।

शासन—राजस्व और विचारादिका काम एक डिपटी कमिश्नरके हाथमें है। इनके ऊपर जज और मजिष्ट्रेट इन दोनोंका अधिकार है। इनके अधीन एक डिपटी कलक्टर और एक मुख्तियार हैं।

विद्यास्थितिमें यह जिला बहुत गिरा हुआ है। अभी यहां कुल १६४ स्कूल हैं। अमरकोट टेकनिकल स्कूलमें बढ़ई और लोहारका काम सिखाया जाता है। विद्याविभागमें वार्षिक ३४०००) रुपये खर्च होते हैं। इसके सिवा यहां चिकित्सालय भी है।

थरकाना (हिं० क्रि०) भयसे कँपाना।

थरथर (हिं० स्त्री०) १ भयादिहेतु कम्पन, डरसे काँपनेकी मुद्रा।

थरथर-कंपनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी चिड़िया। जब यह बैठती है तो कांपती हुई मालूम पड़ती है।

थरथराना (हिं० क्रि०) १ भयसे काँपना। २ काँपना।

थरथराहट (हिं० स्त्री०) डरसे उत्पन्न कँपकपी।

थरथरी (हिं० स्त्री०) थरथराहट देखो।

थरना (हिं० क्रि०) १ हथौड़ी आदिसे धातु पर आघात करना। (पु०) २ पत्तीकी नक्काशी बनानेका सुनारोंका औजार।

थरवदी—निम्नब्रह्मके अन्तर्गत पेगूविभागका एक जिला। यह अक्षा० १७° ३१' से १८° ४७ उ० और देशा० ९५° १५' से ९६° १०' पू०में अवस्थित है। भूपरिमाण २८५१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें प्रोम जिला, पूर्वमें पेगुयोमगिरि, दक्षिणमें हन्थवदी और पश्चिममें इरावती नदी है। इसका प्रधान सदर थरवदी है। सदरके समीप ही कर इरावती-ष्टेट-रेलवे गई है।

यहांकी इरावती और नितं नदियोंकी अववाहिका और पेगुयोम पहाड़का प्राकृतिक दृश्य, बहुत मनोहर है। प्रधान शैलशृङ्ग बरवेसकन और क्यौक्पु-दङ्ग २००० फुट ऊंचे हैं। शैलमालाके मध्य क्यौक्-त-द अर्थात् शैलसेतु नामक एक विचित्र पहाड़ है जो तालाबके ऊपरमें चारों ओर विस्तृत है। यह सेतुके जैसा देखनेमें लगता है, इसीसे इसका नाम शैलसेतु पड़ा है।

लोकसंख्या प्रायः ३९५५७० है, जिनमेंसे बौद्धोंकी संख्या सबसे अधिक है। अनेक हिन्दूधर्मावलम्बी हिन्दुस्थानी, बङ्गाली, उड़िया तेलगू और तामिल लोग भी यहाँ आकर बस गये हैं। इस जिलेमें ५ शहर और १८६९ ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन उर्वरा है, अतः तरह तरहकी काफी फसल उत्पन्न होती है। इस जिलेका इतिहास हेनजदा जिलेके साथ संश्लिष्ट है।

थरहरी (हिं० स्त्री०) वह कँपकपी जो डरके कारण हुई हो।

थराड़—थराड़ और मोरवाड़ा राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° २३' १०" उ० और देशा० ७१° ३७' पू०में अवस्थित है। यहां थराड़के राजा वास करते हैं।

थराड़ और मोरवाड़ा—बम्बई प्रदेशके पालनपुर एजेन्सीके अधीन एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २४° १०' उ० और देशा० ७२° २८' पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १७७९९ है। यह राज्य उत्तर-दक्षिणमें प्रायः १२½ कोस तक विस्तृत है। इसके उत्तरमें मारवाड़ जिला, पूर्वमें पालनपुरराज्य, दक्षिणमें भावर और तेलवारा-राज्य है। राज्यकी अधिकांश जमीन अनुर्वर और बालुकामय है, सिर्फ ग्रामोंके निकट कुछ कुछ कालीमट्टी पाई जाती है। यहां ५०से ९० हाथ जमीन खोदने पर पानी मिलता है। सुतरां जलकी विशेष सुविधा नहीं है। इसी कारण फसल अच्छी नहीं लगती। यहाँ वैशाख और ज्येष्ठ मासमें असह्य गरमी पड़ती है। पानीसे

माण्डवी तक एक पक्की सड़क राज्यके मध्य हो कर गई है।

यहां बहुत दिनोंसे बघेला राजपूतगण राज्य करते थे। १८१८ ई०में खोसा आदि लुटेरोंके उत्पातसे तङ्ग आ कर यहांके सामन्तराजने बृटिश गवर्मेण्टकी शरण ली थी।

राज्यके भूतपूर्व सरदारका नाम ठाकुर खेङ्गरसिंह था। राजा थराड़ नामक नगरमें रहते और राजकार्य स्वयं चलाते हैं।

राज्यकी आय ८५०००) रु० है। इन्हें ५० अश्वारोही और ३० पदातिक सैन्य हैं। राजाके मरने पर उनके बड़े लड़के ही उत्तराधिकारी होते हैं।

थरि (हिं० स्त्री०) बाघ आदिकी मांद, चुर।

थरिया (हिं० स्त्री०) थाली देखो।

थरुहट (हिं० पु०) थारुओंकी बस्ती।

थर्मामीटर (अं० पु०) वह यन्त्र जिससे सरदी गरमी नापी जाती है। तापमान देखो।

थर्राना (हिं० क्रि०) भयसे कांपना, दहलना।

थल (हिं० पु०) १ स्थल, जगह, ठिकाना। २ शुष्क स्थान, सूखी धरती। ३ थलका मार्ग। ४ व्रणमण्डल, फोड़ेका लाल और सूजा हुआ घेरा। ५ चवन्नीके बराबरका बादलेका गोल साज। यह बच्चोंकी टोपी आदि पर टाँका जाता है। ६ रेत पड़ी हुई स्थान, रेगिस्तान, भूड़। ७ बाघकी मांद। ८ ऊँची धरती, टीला।

थलकना (हिं० क्रि०) १ झोल पड़नेके कारण ऊपर नीचे हिलना। २ थल थल करना, मोटाईके कारण शरीरका मांस हिलना।

थलचर (हिं० पु०) वह जीव जो पृथ्वी पर रहते हैं।

थलचारी (हिं० वि०) भूमि पर चलनेवाला।

थलथल (हिं० वि०) हिलता हुआ।

थलथलाना (हिं० क्रि०) मोटाईके कारण शरीरका मांस हिलना।

थलबेड़ा (हिं० पु०) वह जगह जहां नाव या जहाज आ कर ठहरता है, नाव या जहाज लगनेका घाट।

थलभारी (हिं० पु०) कहारोंकी एक बोली। इससे वे पिछले कहारोंको आगे रेतीले मैदानका होना सूचित करते हैं।

थलिया (हिं० स्त्री०) थाली।

थली (हिं० स्त्री०) १ स्थान, जगह, ठिकाना। २ ऊँची जमीन, टीला। ३ परती जमीन। ४ बालूका मैदान, रेतीली जमीन। ५ बैठनेका स्थान, बैठक। ६ जलके नीचेका तल।

थवई (हिं० पु०) वह जो मकान बनाता हो, कारीगर, राज।

थवन (हिं० पु०) वधूकी तीसरी बार अपने पतिके घरकी यात्रा।

थवना (हिं० पु०) कच्ची मट्टीका एक गोला। इसमें लगी हुई लकड़ीके छेदमें चरखीकी लकड़ी पड़ी रहती है।

थहराना (हिं० क्रि०) १ कमजोरीके कारण अङ्गोंका कांपना। २ कांपना।

थहराना (हिं० क्रि०) गहराईका पता लगाना, थाह लेना। २ किसीकी विद्या वा आन्तरिक इच्छाका पता लगाना।

थहारना (हिं० क्रि०) जहाजको ठहराना।

थाँग (हिं० स्त्री०) १ वह गुप्त स्थान जहां चोर या डाकू आ कर ठहरते हैं। २ अनुसन्धान, खोज, पता। ३ गुप्तरूपसे किसी बातका पता लगाना, भेद।

थाँगी (हिं० पु०) १ वह मनुष्य जो चोरीका माल लेता हो वा अपने पास रखता हो। २ चोरोंका भेदिया। ३ वह मनुष्य जो चोरीके मालका पता लगाता हो, जासूस। ४ चोरोंके गोलका सरदार।

थाँगीदारी (हिं० स्त्री०) थाँगीका काम।

थाँभ (हिं० पु०) १ खम्भा। २ थूनी, चांड़।

थाँवला (हिं० पु०) किसी लगे हुए पौधेका घेरा या गड्ढा, थाला।

था (हिं० क्रि०) 'है' शब्दका भूतकाल, रहा।

थाई (हिं० वि०) १ स्थिर रहनेवाला, जो बहुत दिनों तक बना रहे। (पु०) २ बैठनेका स्थान, बैठक। ३ ध्रुवपद, स्थायी। यह पद गानेमें बार बार कहा जाता है।

थाक (हिं० पु०) १ ग्रामसीमा, गांवकी सरहद। २ पुञ्ज, राशि, ढेर।

थाति (हिं॰ स्त्री॰) १ स्थिरता, ठहराव।

थाती (हिं॰ स्त्री॰) वह वस्तु जो समय पर काम आनेके लिए रखी जाती है। २ धरोहर, अमानत। ३ सञ्चित धन, जमा, पूंजी।

थान (हिं॰ पु॰) १ स्थान, जगह, ठौर। २ घोड़े या चौपाये बांधनेका स्थान। ३ निवासस्थान, डेरा। ४ मन्दिर, देवल। ५ लिङ्गेन्द्रिय। ६ संख्या, अदद। ७ घोड़ेके नीचे बिछाई जानेकी घास। ८ कपड़े गोटे आदिका पूरा टुकड़ा।

थान—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने १८४८ ई॰में दलेल-प्रकाश नामक ग्रन्थ बनाया। इनके पिताका नाम निहाल-राय और पितामहका नाम महासिंह था। दलेल-प्रकाशमें एकादश अध्याय और कौरब साढ़े तीन सौके छन्द है। आदिमें इन्होंने जिस छन्दका नाम आ गया है उसका लक्षण भी उसी स्थान पर कह दिया है। इसी प्रकार जहां किसी छन्दमें कोई अलङ्कार आ गया वहां उनका भी लक्षण कह दिया है। एक स्थान पर राग रागिनियोंका नाम आया, वहां इन्होंने उनका भी वर्णन कर दिया है। ग्रन्थके अन्तमें कुछ चित्रकविता भी की गई है। इन्होंने चित्रकाव्यके विषयमें छत्वाक्षरोंका जो एक छन्द कहा है, वह बहुत अच्छा है। आपने अनुप्रासका समावेश भी किया है, पर अधिकतासे नहीं। कुल मिला कर थानरामकी कविता सन्तोषजनक है। उदाहरणार्थ दो कविताएं नीचे देते हैं—

(१) जै लम्बोदर शम्भुसुवन अम्भोरुह-लोचन।
चरचित चन्दन चंद्रभाल बंदन रुचि रोचन॥
मुख मंडल गंडालि गंड मंडित श्रुतिकुंडल।
वृंदारक बर वृंद चरन बंदत अखंड बल॥
बर अभय गदा अंकुश धरण विघन हरण मंगल करन।
कवि थान मवासी सिद्धि बर एक दंत जै तुव सरण॥

(२) पोथी पै दाहिनी परम हंसवाहिनी हो
पोथी पर बीना सुर मंगल मढत है।
आसन कबल अंग अंबर धवल मुख
चंद सों अवल रंग नवल चढत है॥
ऐसी मातु भारतीकी आरती करत थान
जाको जस विधि ऐसो पंडित पढत है।
ताको दयादीठ लाखं पाखंर निराखरकै
मुखते मधुर मंजु आखरं कढत है॥

थान—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ राज्यके अन्तर्गत लखतर राज्यका एक शहर। लोकसंख्या प्रायः १३२७ है। बड़वानसे राजकोट तककी सड़क इसी शहर हो कर गई है। शहरमें एक दुर्ग है। यहांके त्रिनेत्रेश्वर-का मन्दिर, कन्दोलाका सूर्य मन्दिर और वसाङ्गीका वासुकी मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है।

शहरके निकट कमला और प्रीतम (प्रियतम) नाम-की दो पुष्करिणी हैं। प्रवाद है, कि इन दो सरोवरोंमें लक्ष्मीनारायण स्नान करते थे। दुर्गका नाम कन्दोला है, यहीं सुविख्यात सूर्यमन्दिर प्रतिष्ठित है। कन्दोला दुर्गके सामने पर्वतके ऊपर सोनगढ़ दुर्ग है। वासुकी मन्दिरके जैसा बन्दियाबेली नामक स्थानमें बन्दूक नाम-का एक और भी सर्पमन्दिर है। जिसके निकट टाला पर्वतमाला अवस्थित है। इस पर्वतके एक अंशको माण्डव पर्वत कहते हैं। इसके ऊपर माण्डव दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

थानक (हिं॰ पु॰) १ स्थान, जगह। २ बबूला, फेन। ३ वह गड्ढा या घेरा जिसके भीतर पौधा लगाया जाता है, थाला। ४ नगर।

थाना (हिं॰ पु॰) १ ठहरनेका स्थान, अड्डा, ठहराव। २ पुलिसकी बड़ी चौकी। यहां अपराधोंकी सूचना दी जाती है और कुछ सरकारी सिपाही भी रहते हैं। ३ बाँसोंका समूह, बांसकी कोठी।

थाना—बम्बई प्रदेशका एक जिला। यह अक्षा॰ १८° ५२' से २०° २२' उ॰ और देशा॰ ७२° ३८' से ७३° ४८' पू॰में अवस्थित है। इसके उत्तरमें पोर्त्तगीज अधिकृत दमन और सुरत जिला; पूर्वमें नासिकनगर, अहमदनगर और पूना; दक्षिणमें कोलावा जिला और पश्चिममें अरबसागर है। जिलेके उत्तरी और पूर्वी भूभाग ऊँचे हैं। नासिक जिलेके अन्तर्गत त्र्यम्बक पर्वतसे वैतरणी नदी निकली है। यह एक पवित्र नदी है। जिलेके निकट सालसेट द्वीप है।

यहाँ ह्रद एक भी नहीं है। लेकिन कुर्ला और थानामें बम्बई नगरसे ७॥ कोसकी दूरी पर बेहार नामक

स्थानमें एक जलसञ्चय जलाशय है। जिसका परिमाण ४२०० बीघा है। इसका जल बम्बई शहरमें जाता है। तीन बांध दे कर यह जलाशय तैयार हुआ है। इसके निकट खेती वा वाणिज्य व्यवसाय करनेकी गवर्मेण्टकी ओरसे मनाही है। पहले इस जलाशयका जल परिष्कार रहता था, अभी इसमें नल आदिके लग जानेसे कुछ खराब हो गया है।

जिलेके चारों ओर पर्वत हैं। सालसेट द्वीपके उत्तर-दक्षिणमें जो पर्वतमाला है, वही सबसे प्रधान है। मथेरन और दमन पर्वत भी कम ऊँचाईकी नहीं है। वैतरणी नदीके उत्पत्ति-स्थानसे उत्तर-दक्षिणमें बहुतसे पहाड़ हैं। इनमेंसे किसी किसी पहाड़के ऊपर प्राचीन सुदृढ़ दुर्ग देखनेमें आते हैं जिनमेंसे माहुली और मलनगढ़ प्रसिद्ध हैं।

पेशवाके अधिकृत कुछ राज्योंको लेकर यह जिला संगठित हुआ है। अन्यान्य ऐतिहासिक विषय बम्बई शब्दमे देखो। इसमें ७ शहर और १६४६ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः ८११४३३ है। सालसेट और वेसिन नामक स्थानके ईसाई लोग १६वीं शताब्दीमें सेण्ट-जेभियर और उनके अनुचरोंसे दीक्षित हुए। ये लोग भण्डारी, कुनबी, कोली आदि जातियोंसे ईसाई हुए हैं। ईसाई होने पर भी ये लोग जातिभेद मानते हैं, और अभी ईसाई भण्डारी, ईसाई कुनबी कहलाते हैं। इन लोगोंके पोर्तुगीज ईसाई भी नाम हैं। जब कभी गिर्जामें मेला लगता है, तब ईसाईके सिवा और भी बहुतसे हिन्दू तथा पारसी वहाँ इकट्ठे होते हैं। उनका विश्वास है, कि गिर्जामें जानेसे अनेक रोग दूर हो जाते हैं, इसीसे वे लोग वहां जाकर तरह तरहके पूजोपहार दिया करते हैं। ईसाई लोग भी हिन्दू ग्राम्य देवताकी भक्ति और पूजा करते हैं। इसमें जो सात शहर लगते हैं, उनके नाम ये हैं--बन्दरा, बेसीन, भीवन्दी, कल्याण, केलवेमाहीन, कुर्ला और थाना।

चावल, नमक, काठ, चून और सूखी मछलीकी रफ़तनी और कपड़ा, अनाज, तमाकू, नारियल, चीनी और गुड़की आमदनी होती है।

कृषिकार्य ही यहांके लोगोंकी मुख्य उपजीविका है, बाद नमक तैयार करनेका काम है। नमकके २०० कारखाने हैं जिनमें प्रतिवर्ष ४६१७०००) मन नमक प्रस्तुत होता है। समुद्रके जलको धूपमें सुखा कर नमक बनाते हैं।

शासनकार्यको सुविधाके लिये यह जिला तीन उपविभागोंमें विभक्त कर सहकारी कलक्टर तथा एक डिपटीकलेक्टरके अधीन रखा गया है। विचारकार्य डिष्ट्रिक्ट और सेसन जज तथा छह सहकारी जजों द्वारा सम्पादन होता है।

यहां एक डिष्ट्रीक्ट जेल, ११ छोटे जेल, एक हवालत, ३ हाई स्कूल, ९ मिडिल और २४१ प्राइमरी स्कूल हैं।

२ थाना जिलेका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १९° १२´ उ० और देशा० ७२° ५८´ पू०में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १६०११ है। सालसेट खाड़ीके तीरवर्त्ती होनेके कारण यह नगर देखनेमें बहुत सुन्दर लगता है। दुर्ग, पोर्तुगीज-गिर्जा और कई एक जलाशय इसकी पूर्व समृद्धिका परिचय देते हैं। तेरहवीं शताब्दीमें यह एक स्वाधीन राज्यकी राजधानी था। १३१८ ई०में मुबारक खिलजी इसके शासनकर्त्ता हुए। १५२९ ई०में काम्बे शहरकी नौसेनाके विनष्ट और बेसिन-उपकूलके दग्ध होने पर इस नगराधिपतिने पोर्तुगीजोंकी अधीनता स्वीकार की। पोर्त्तुगीजोंने इस नगरको दो बार और गुजरातीने एक बार लूटा था। १५३३ ई०में सन्धिके अनुसार यह नगर पोर्तुगीजोंको दे दिया गया। उनके समयमें नगरकी खूब उन्नति हुई थी। १७३९ ई०में पोर्तुगीजोंके हाथसे बेसिनके साथ साथ थानाका अधिकार जाता रहा। १८७४ ई०में पोर्त्तुगीजोंने पुनः थाना नगर जीतनेके लिये नौ सेना भेजी। घनघोर युद्धके बाद अंगरेज लोग विजयी हुए। इस नगरमें एक रेलवे ष्टेशन है। बम्बईसे सिर्फ एक घंटेका रास्ता होनेसे यहां बम्बईके अनेक अंगरेज कर्मचारी आकर रहते हैं। शहरमें जीजीभोय हाईस्कूल, बालक तथा बालिकाके मिडिल-इंगलिश स्कूल और ४ वर्नेक्युलर स्कूल हैं। १८६३ ई०में यहां म्युनिसिपैलिटी स्थापित हुई है।

३ अयोध्याके अन्तर्गत उनाव जिलेका एक शहर। यह उनाव शहरसे २॥० कोसकी दूरी पर अवस्थित है। अकबरके राजत्वकालमें चौहान ठाकुर थानसिंह और पुराणसिंहसे यह नगर प्रतिष्ठित हुआ है। थानसिंह यहां एक दुर्ग भी निर्माण कर गये हैं।

थानापति (हिं० पु०) ग्राम देवता।

थानाभवन—युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलेके अन्तर्गत कैराना तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २९°३५´ उ० और देशा० ७७°२५´ पू० मुजफ्फरनगरसे ८ कोस उत्तर पश्चिममें कृष्णा नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ८८६१ है। अकबरके समयमें यह 'थानाभीम' नामसे मशहूर था। यहांके भवानीदेवीके मन्दिरसे वर्त्तमान नाम प्रसिद्ध हुआ है। भवानीदेवीके दर्शन करनेके लिये अनेक यात्री आया करते हैं।

सिपाही विद्रोहके समय काजी महबुर अलीखाँ और उनके भतीजे इनायतअलीकी अधिनायकतामें यहां भी विद्रोह हुआ था। शेखजादागण इन विद्रोहियोंके प्रधान थे। विद्रोहके बाद नगरकी चहारदीवारी और आठ फाटक तोड़ डाले गये। यहां १७वीं शताब्दीकी कई एक मस्जिदें और समाधियां हैं।

थानी (हिं० पु०) १ स्थानका मालिक। २ लोकपाल, दिक्पाल। (वि०) ३ सम्पन्न, पूर्ण।

थानेत (हिं० पु०) थानैत देखो।

थानेदार (हिं० पु०) थानेका अफसर या प्रधान। इनका काम शान्ति बनाये रखना तथा अपराधोंकी छानबीन करना है।

थानेदारी (हिं० स्त्री०) थानेदारका पद वा कार्य।

थानेश्वर—१ पञ्जाबके कर्णाल जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २९° ५५´ से ३०° २५ उ० और देशा० ७६° ३६´ से ७७° १७´ पू० यमुना नदीके पश्चिमी किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ५९९ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १७३२०८ है। इसमें थानेश्वर, लादव और शाहाबाद नामके तीन शहर तथा ४१८ ग्राम लगते हैं। तहसीलकी आय दो लाख रुपयेसे अधिक है। पहले यह स्थान अम्बाला जिलेके अन्तर्गत था। १८९७ ई०में यह कर्णाल जिलेमें मिला दिया गया। तहसीलके चारों ओर ढाक (पलास)के जंगल हैं।

२ उक्त तहसीलका एक पवित्र नगर और प्राचीन हिन्दूतीर्थ। यह अक्षा० २९° ५९´ उ० और देशा० ७६° ५०´ पू० कुरुक्षेत्रके ठीक समतल क्षेत्रमें सरस्वती नदीके किनारे अवस्थित है। इसका संस्कृत नाम स्थाण्वीश्वर है, इसीका अपभ्रंशरूप थानेश्वर हो गया है। महाभारतमें स्थाणुतीर्थ नामसे इसका उल्लेख है। लोकसंख्या लगभग ५०६६ है।

७वीं शताब्दीमें युएनचुअंग जब यहाँ आये थे, उस समय स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) स्वतन्त्र राज्योंमें गिना जाता था। चीन-परिव्राजकने लिखा है कि यह राज्य प्रायः ५८३ कोस विस्तृत था। १०११ ई०में गजनीके महमूदने इस नगर पर आक्रमण किया और वे यहाँकी प्रसिद्ध चक्रस्वामीकी मूर्त्ति गजनीको उठा ले गये।

सिखोंके अभ्युदयके समयमें सरदार मिठासिंहने थानेश्वर पर अधिकार जमाया। बाद वे अपने भतीजेको यह पुण्यतीर्थ अर्पण कर गये। मुगलोंके आधिपत्यकालमें यहाँके अनेक मन्दिर तोड़-फोड़ डाले गये और उस स्थान पर मसजिदें बनाई गईं। सिखोंने पुनः सब मसजिदें अधिकार कर वहाँ अपना धर्मग्रन्थ पाठका स्थान बनाया।

मिठासिंहका वंश लोप होने पर यह स्थान १८५० ई०में वृटिशगवर्मेण्टके अधिकारभुक्त हुआ। पहले यहाँ बहुत मनुष्योंका वास था। सदरके उठ जानेसे लोकसंख्या बहुत कम गई है। कुरुक्षेत्र देखो।

थानैत (हिं० पु०) १ किसी स्थानका मालिक। २ ग्रामदेवता वा किसी स्थानका देवता।

थाप (हिं० स्त्री०) १ तबले, मृदङ्ग आदि पर पूरे पंजेका आघात, ठोंक। २ शपथ, कसम। ३ मान, कदर। ४ महत्त्व स्थापन, प्रतिष्ठा, धाक, साक। ५ स्थिति, जमाव। ६ पञ्चायत। ७ छाप, निशान। ८ थप्पड़, तमाचा।

थापन (हिं० पु०) १ स्थापित करनेकी क्रिया। २ प्रतिष्ठित करनेका कार्य, रखनेका काम।

थापना (हिं० क्रि०) स्थापित करना, बैठाना। २ हाथ या साँचेसे पीट या दबा कर किसी गीली वस्तुको कुछ बनाना। (स्त्री०) ३ प्रतिष्ठा, स्थापन। ४ नवरात्रमें

दुर्गा पूजाके लिये घट स्थापना। ५ किसी प्रतिमाकी स्थापना या प्रतिष्ठा।

थापरा (हिं॰ पु॰) छोटी नाव, डोंगी।

थापा (हिं॰ पु॰) १ पंजेका छापा या निशान जिसे स्त्रियाँ किसी मङ्गलके अवसर पर दीवार आदि पर बनाती हैं। २ पुञ्ज, राशि, ढेर। ३ गीली सामग्री दबा कर या डालकर कोई वस्तु बनानेका साँचा। ४ नेपालियोंकी एक जाति। ५ चन्दा जो गांवमें देवी देवताकी पूजाके लिये संग्रह किया जाता है। ६ गोबर आदिका वह निशान जो खलियानमें अनाजके ढेर पर लगाया जाता है, चाँकी। ७ रंग आदि पोत कर कोई चिह्न अङ्कित करनेका साँचा, छापा।

थापिया (हिं॰ स्त्री॰) थापी देखो।

थापी (हिं॰ स्त्री॰) १ काठका बना हुआ चौड़े सिरेकी एक मुंगरी। इससे कुम्हार कच्चा घड़ा पीटता है। २ गच पीटनेकी राज या कारीगरकी चिपटी मुँगरी।

थाम (हिं॰ पु॰) १ स्तम्भ, खंभा। २ मस्तूल। (स्त्री॰) ३ थामनेकी क्रिया या ढंग, पकड़।

थामना (हिं॰ क्रि॰) १ गति अवरुद्ध करना। २ गिरने पड़नेसे बचाना। ३ किसी कार्यका भार ग्रहण करना। ४ हाथमें लेना, पकड़ना। ५ सहायता देना, सहारा देना। ६ चौकसीमें रखना, पहरेमें करना।

थायेतम्यो—निम्न ब्रह्माके पेगूके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा॰ १८° ५२′ से १९° ५८′ उ॰ और देशा॰ ९४° २४′ से ९५° ५२′ पू॰में अवस्थित है। भूपरिमाण ४७५० वर्गमील है। इसके उत्तरमें उत्तर ब्रह्म, पूर्वमें तोङ्गू जिला, दक्षिणमें प्रोम और पश्चिममें सान्दोये है। उत्तर ब्रह्मके ठीक निम्नभागमें अवस्थित होनेके कारण यह जिला निम्न ब्रह्मके सीमान्त प्रदेशको स्पर्श करता है। इरावतीका डेल्टा दखल करनेके बाद १८५२ ई॰में डलहौसीने इसे निम्नब्रह्मसे पृथक कर सीमा निर्दिष्ट कर दिया। यह जिला उत्तरमें आराकानसे पेगु-योमा गिरिमाला तक विस्तृत है। इसके पूर्वमें पेगु-योमा और पश्चिममें आराकान-योमा गिरिमाला है। शेषोक्त गिरिमाला ५००० फुट ऊँची है। कायितङ्ग, नातुदङ्ग और स्वोदङ्ग-मङ्गनिमा नामक इसके तीन शिखर हैं। यह पहाड़ देखनेमें बहुत सुन्दर है और इससे अनेक नदियाँ निकली हैं। चार गिरिपथ इस पर्वतश्रेणीके मध्य हो कर सान्दोये प्रदेशको चले गये हैं। ग्रीष्मकालके सिवा इन राहों हो कर जाना आना बहुत दुःसाध्य हो जाता है।

इरावती इस जिलेकी प्रधान नदी है जो थायेतम्योके उत्तरसे दक्षिण तक विस्तृत है। इसका किनारा बहुत ऊंचा है, इसीसे इस जिलेका कोई स्थान बाढ़से नहीं डूबता। इस नदीमें दो द्वीप हैं—थायेतम्योनगरके सामनेका येवत्त द्वीप और न्योङ्ग-चिन्-सिप द्वीप। ग्रीष्मकालमें इस नदीका जल बहुत घट जाने पर भी किसी जगह पांच फुटसे कम गहरा नहीं होता।

पश्चिमकी ओरसे तीन और पूर्वसे दो नदियाँ इरावतीमें आ गिरी हैं। प्रथम तीन नदियोंके नाम—पान, मातान और मदी तथा शेषोक्त दोके नाम कारिनी और बालेट हैं। पान उत्तर ब्रह्मसे निकल कर कई मील जानेके बाद थायेतम्यो नगरके निकट और मातान निम्न ब्रह्मसे निकल कर दक्षिण-पूर्वकी ओर १५० मील जानेके बाद कामानगरके निकट इरावतीमें गिरी है। पूर्वकी दो नदियोंमेंसे एक कायिनी नदी उत्तर ब्रह्मके योमाशैलसे निकल कर मायिदे नगरसे कुछ दूर इरावतीके साथ मिलती है। बालेट नदीके मुँह पर ४५० फुट लम्बा काठका एक पुल है जिसके ऊपर हो कर रंगून और मायिदेका रास्ता गया है।

इस जिलेमें बहुतसे गरम सोते बहते हैं। थायेतम्यो नगरसे ७ मील उत्तर-पश्चिममें पदकविन नगरके निकट किरासन तेल पाया जाता है। जङ्गलमें चीता, वनबिलाव, हरिण, हाथी, गैंड़ा, बाघ आदि मिलते हैं।

ब्रह्मदेशके इतिहासमें थायेतम्योका नाम बहुत कम पाया जाता है। पहले इस अञ्चलमें प्यूस जातिके लोग रहते थे। भारतवर्षके धर्मयाजकोंने जब इस प्रदेशके लोगोंको बौद्ध धर्ममें दीक्षित किया, तब शायद इस जिलेका निम्नभाग थरक्षेत (श्रीक्षेत्र-यहांका प्रोम) के साथ संश्लिष्ट था। ४४४ ई॰ सन्के पहले द्युत-ताङौङ्गसे प्रोम वंश स्थापित होने पर यह प्रदेश उन्हींके राज्य भुक्त हुआ। बाद ही प्रोमवंशका पतन होने पर पहली शताब्दीके अन्तमें थमनद-रेतने पगनमें एक राज्य

बसाया। उनके वंशधरोंने ११०० वर्षसे अधिक राज्य किया। इस समय थायेतम्यो पगन राज्यके अन्तर्भुक्त था। पीछे यह जिला सान सरदारोंसे अधिकृत हुआ। १८५२-५३ ई०में जब पेगू ब्रिटिश राज्यमें मिलाया गया, तब थायेतम्यो प्रोम प्रदेशका एक महकूमा हुआ। १८७० ई०में इसे पृथक् कर एक डिपटी कमिश्नरके अधीन कर दिया गया है।

इसमें थायेतम्यो और आलनम्यो नामके दो शहर तथा १२७५ ग्राम लगते हैं। लोकसंख्या प्रायः २३८७०६ है। इनमेंसे अधिकांश लोग विशुद्ध मग वा ब्रह्मअंशके हैं। इसके सिवा और कई जातियां यहां वास करती हैं, यथा—चीन, तेलगू, तामिल, हिन्दुस्थानी, सान, करी, बङ्गाली, चीन देशीय और अन्यान्य।

जिलेके उत्पन्न द्रव्योंमें चावल, तेलहन, रुई, तमाकू और प्याज प्रधान हैं।

इस जिलेसे कत्था, सुपारी, रुई, चावल, नमक, अपरिष्कृत रेशम और मिट्टीके बरतनोंकी रफ़्तनी और अपरिष्कृत रुई, रेशम नील, चमड़े आदिकी आमदनी होती है।

इस अञ्चलमें विद्याकी खूब उन्नति है। प्रति वर्ष १६ हजार रुपयेसे अधिक इस विभागमें खर्च होते हैं। यहाँ चार अस्पताल भी हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। इसमें कुल तीन शहर लगते हैं।

३ उपरोक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० १८° २०' उ० और देशा० ९५° १२' पू०में इरावती नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। कहते हैं, कि १३०६ ई०में पगनके शेष राजासे यह शहर स्थापित हुआ है। लोकसंख्या प्रायः १५८२४ है। यहाँ अंग्रेजी सेनाओंका वास है। अप्रेल और मई मासमें यहाँ बहुत गरमी पड़ती है। शहरमें अस्पताल और स्कूल हैं।

थारू—विहार और उत्तर भारतकी एक जाति। थारुओंकी उत्पत्तिके विषयमें नाना मतभेद पाये जाते हैं। इसकी 'रौतर' नामक श्रेणीका कहना है कि वे चित्तौरके राजपूतोंसे उत्पन्न हुए हैं। परन्तु इसका कुछ प्रमाण नहीं मिलता।

पूर्णियाके अन्तर्गत कुशी नदीसे कुमायुँ और नेपालके अन्तर्गत शारदानदी तक हिमालय निम्न-प्रदेशमें इस जातिका यत्र तत्र वास है। अति प्राचीन कालमें गोरखपुरके लालगञ्जके पास बातकान् और देवगञ्ज ग्राममें थारुओंका वास था, ऐसा वहांके लोगोंका विश्वास है।

थारू लोग देखनेमें काले तथा इनके सिरके बाल लम्बे और घने होते हैं। आकृति और चालचलन प्रायः स्थानीय लोगोंके समान ही होता है।

गोरखपुरके थारू लोग दो भागोंमें विभक्त हैं—एक पूरबी और दूसरे पछमी। पछमी लोग अपनेको क्षत्री बतलाते हैं और पूर्वियोंके साथ आहार विहार नहीं करते। पछमियोंमें भी दो थोक हैं—बड़का और छुटका। अयोध्याके अन्तर्गत गोण्डा प्रदेशके कठरिया और उँगरिया नामके थारुओंमें भी दो श्रेणी हैं। विहारमें रउतर श्रेणी श्रेष्ठ समझी जाती है।

चितबनिया वा चितौनिया कहलानेवाले थारू जुलाहेका काम करते हैं। ये लोग मृतव्यक्तिकी श्राद्धादि क्रियाएं नहीं करते और न इनकी स्त्रियाँ प्रसवके बाद अशौच-पालन ही करती हैं। बारातमें सिर्फ चार पाँच आदमी जाते हैं और गाना बजाना कुछ भी नहीं होता। बाल्य और प्रौढ़ दोनों प्रकारके विवाह इनमें प्रचलित हैं। लड़केका बाप नौ रुपये कन्याको देता है। यह प्रथा इनमें बहुत दिनोंसे प्रचलित है। परन्तु अवस्थाविशेषमें इसमें तारतम्य भी हो सकता है। इनकी विवाह-प्रथा निम्नश्रेणीके हिन्दुओंके समान है। ब्राह्मण लोग पुरोहितका काम करते हैं। मर्दनिया और चितौनियोंके विवाहमें (विवाहसे पहले) वर पक्षवाले तीन दिन तक कन्या पक्षवालोंको खिलाते हैं। बड़ी उम्रमें ब्याह होनेसे वधूको शीघ्र ही स्वामीके पास आना पड़ता है। इस समय वधू और उसके साथ आनेवाले कुटुम्बियोंके स्वागतके लिए वरके घर "दुलहिन भतावन" (बहूभात) नामका उत्सव होता है। परन्तु वधूकी उम्र कम होने पर उसे पुनः पीहर जाना पड़ता है और ऋतुमती न होने तक वहीं रहना पड़ता है।

इनमें बहु-विवाह और विधवा विवाह प्रचलित है। विवाह बन्धन समाजकी अनुमतिसे छूट सकता है।

ऐसी दशामें परित्यक्ता स्त्री पुनः अपना विवाह कर सकती है। परन्तु यह विवाह विधवा-विवाहकी तरह होता है। इस तरहकी स्त्रीको दोनों पक्षवाले 'उरारी' स्त्री कहते हैं। परन्तु दूसरे पतिके आत्मीयवर्गकी सम्मतिके बिना विवाहिता होने पर तथा 'भताना' न देनेसे ऐसी स्त्री 'सुरैतिन' वा वेश्याके समान समझी जाती है। समाज-च्युत होने पर भी उसे 'भताना' देना पड़ता है।

आदिम असभ्य जातियोंमें प्रचलित प्राणीपूजा और प्रकृतिपूजाका मिश्रण ही थारुओंका धर्म है। वीर ऋक्षेश्वर इनके एक प्रधान उपास्य देवता हैं। दूर देशमें जानेसे पहले उनकी पूजा की जाती है। खेरी जिलेके थारू लोग कहा करते हैं, कि राजचक्रवर्ती वेणके ऋक्षेश्वर वा रक्ष नामके एक पुत्र थे। राजाने क्रुद्ध हो कर आदेश किया कि उन्हें (ऋक्षेश्वरको) दल-सहित उत्तरकी ओर ऐसे स्थानमें निर्वासित किया जाय, जिससे फिर वे लौट न सकें। राजाके आदेशसे ऋक्षेश्वर अपने दल-सहित निर्वासित हुए। रास्तेमें वे जहाँ तहाँ लूटने लगे; बलपूर्वक उन्होंने बहुतसी स्त्रियां भी इकट्ठी कीं। उन स्त्रियोंके गर्भसे जो सन्तान हुई, वह थारू कहलाने लगी। ऋक्षेश्वरने हिमालयके वनमें बड़े यत्नसे थारुओंकी रक्षा की थी। थारुओंका विश्वास है, कि अब भी रणमें, वनमें, मार्गमें सब जगह ऋक्षेश्वर उनकी रक्षा करते हैं। ये मटदेव और धरचण्डी नामके और भी दो देवताओंको पूजते हैं। गो, मेष, शूकर आदि निर्विघ्न विचरण कर सकें, इसके लिए ये धरचण्डीकी पूजा करते हैं। ये 'मरी' नामक देवताकी भी उपासना करते हैं। कोई कोई 'मरी' और हिन्दुओंकी कालीदेवीको एक ही समझते हैं। चम्पारणमें 'कुआं' ग्राम्यदेवताकी तरह पूजा जाता है। परन्तु फिलहाल इनमें शिव और काली-पूजाका प्रचार होनेसे उक्त देवताओंकी पूजा क्रमशः घटती जाती है। थारू लोग कालिका देवीको ही जगत्में सर्वश्रेष्ठ देवता मानते और जीवन मरणकी कर्त्री समझ उनकी पूजा करते हैं। जिन स्त्रियोंके सन्तान नहीं होती, वे उसके लिए कालिकादेवीसे प्रार्थना करती हैं, गोण्डा प्रदेशके देवीपाटनमें कालिकादेवीके पूजोत्सवमें ये अनेक जन्तुओंका वध करते और उसीमें आनन्द मानते हैं। ये लोग भैरव, ठाकुर, महादेव आदि नामसे शिवके लिङ्गकी प्रतिष्ठा कर उनकी पूजा करते हैं। थारू लोग उन्हें सृष्टिके स्थितिकर्त्ता मानते हैं। बहुतसे थारुओंके मकानके सामने मिट्टीके टीले पर मिट्टीके शिव लिङ्ग देखनेमें आते हैं।

अभी अधिकतासे हिन्दूधर्मको मान कर चलने पर भी थारुओंका पूर्व विश्वास तिरोहित नहीं हुआ है। ज्वर, खाँसी, उदरामय, मूर्च्छा, शिरःपीड़ा, उन्माद, दुःस्वप्न तथा अन्यान्य रोगोंके उपस्थित होने पर ये उसे उपदेवताका कार्य समझते हैं। किसी भी प्रकारकी पीड़ा क्यों न हो, ये ओझाको अवश्य बुलाते हैं। उन लोगोंके दिलमें ऐसा विश्वास बैठा हुआ है, कि अधिकांश उपदेवता ओझाओंकी आज्ञा मानते हैं; ओझा चाहें तो पीड़ित शरीरसे भूतको अलग कर सकते हैं और चाहें तो उन्हें स्थानान्तरित कर शत्रुओंको कष्ट दे सकते हैं, प्राण तक नष्ट कर सकते हैं। इसलिए थारू लोग ओझाओंसे बहुत डरते हैं। भूत झाड़ते समय ओझा बायें हाथमें कण्डेकी राख और सरसों ले कर कालिकादेवीके लिए निम्न लिखित मन्त्र पढ़ते हैं —

"गुरु है गुरु सैर तन्त्र मन्त्र गुरु, लखै निरञ्जन, तोका सोहै फूलका भार, हमका सोहै गुन विद्याकै भार; जहान कै विद्या नहीं, कमरा कामकै विद्या। जैसे विद्या कमरू काम कै लागै, ऐसे विद्या लागइ मोर।"

थारुओंकी अन्त्येष्टिक्रिया नाना प्रकारकी हैं। बहुतोंके मतसे पहले ये लोग मुरदेको सिर्फ गाड़ दिया करते थे। परन्तु अब हिन्दुओंकी देखा-देखी ये शवदाह करने लगे हैं; सिर्फ हैजा और चेचकवालेको गाड़ते हैं गाड़ने वा दाह करनेसे पहले ये सिन्दूर लपेट कर मुरदेको एक रात्रि घरके सामने मिट्टीके टीले पर सुला रखते हैं। थारुओंका विश्वास है, कि रातको मृत व्यक्तिकी प्रेतात्मा वन्य जन्तुओंको खदेड़ कर शवकी रक्षा करती है। अन्त्येष्टि क्रिया ग्रामके दक्षिणांशमें होती है। दाहके बाद उसकी भस्म ले कर पासकी नदीमें डालते हैं। जो पहले चितामें आग लगाता है, उसे १० दिन तक

पातक रहता है। अशुचि-अवस्थामें उसको कोई भी छूता नहीं, उसे अकेला रहना पड़ता है। दश दिनके बाद (कहीं कहीं १३ दिन बाद) मृत व्यक्तिके आत्मीय लोग उसके घर आ कर चौरकर्म और पान-भोजनादि करते हैं, जिसमें मद्य-मांसका भी व्यवहार होता है।

ज्ञानी, शिकारमें सिद्धहस्त, ऐन्द्रजालिक वा भैषज्य-वित् किसी प्रधान व्यक्तिकी मृत्यु होने पर उसे घरमें ही गाड़ देते हैं। उस दिनसे वह घर देवमन्दिरके समान समझा जाता है; उस घरमें फिर कोई रहता नहीं। थारुओंका कहना है, कि उस घरमें सिर्फ मृत व्यक्तिकी आत्मा ही अधिष्ठित रहती है और वह अपने परिवारवर्गको आशीर्वाद दिया करती है। तीन वा छ-महीने बाद मृत व्यक्तिके आत्मीय और प्रतिवासीगण उस शवमन्दिरमें आते हैं। यहां मिट्टीसे प्रतिमूर्ति बना कर उसे तरह तरहके रंगोंसे रंगते हैं; यही मृत व्यक्तिकी प्रतिमा समझी जाती है। प्रतिमाके प्रस्तुत होने पर उसके पैरों पर रँधा हुआ मांस और शराब चढ़ा कर सब जमीन पर लेट कर विलाप करते रहते हैं। उसके बाद किसी निदर्शनको देख कर जब वे समझ लेते हैं कि मृत व्यक्तिकी आत्मा मूर्तिमें प्रविष्ट हो चुकी, तब सब आनन्दसे नाचते गाते हैं और अन्तमें उस प्रसादी मद्य-मांसको खा जाते हैं।

हिन्दू लोग थारुओंके हाथका पानी नहीं पीते। हिन्दूओंके लिए ये अस्पृश्य अन्त्यज जातिमें शामिल हैं। थारुजाति अत्यन्त शान्तिप्रिय है। किसी भी हिन्दू-जातिसे इनका झगड़ा नहीं होता।

ये जुम प्रथाके अनुसार खेती करते हैं। कृषिजीवी होने पर भी ये अकसर अपना स्थान बदला करते हैं। ये लोग जंगली हाथी पकड़नेमें बड़ सिद्धहस्त हैं। इनमें अच्छे अच्छे माहुत पाये जाते हैं।

थारू लोग बांका नामके तृणसे एक तरहकी खूबसूरत चटाई बनाते हैं।

बङ्गालमें करीब २० हजार थारुओंका वास है।

थाल (हिं॰ पु॰) बड़ी थाली।

थाला (हिं॰ पु॰) १ आलवाल, थाँवला। २ कुंड़ी जिसमें ताला लगाया जाता है।

थाली (हिं॰ स्त्री॰) १ गोल छिछला बरतन जो कांसे या पीतलका बना होता है, बड़ी तश्तरी। २ नाचकी एक गत।

थाव (हिं॰ स्त्री॰) थाह देखो।

थाह (हिं॰ स्त्री॰) १ गहराईका अन्त, जलाशयका तल भाग। २ कम गहरा पानी। ३ गहराईका पता। ४ किसी संख्या वा परिमाणका अनुमान। ५ परिमिति, अन्त, हद। ६ गुप्त रीतिसे लगाया हुआ किसी बातका पता। ७ चित्तकी बातका पता।

थाहना (हिं॰ क्रि॰) १ गहराईका पता लगाना। २ अनुमान करना, अंदाज लेना।

थिएटर (अं॰ पु॰) १ रंगभूमि, रंग शाला। २ नाटकका अभिनय।

थिगली (हिं॰ स्त्री॰) १ कपड़े आदिका छोटा टुकड़ा जो किसी बड़े कपड़े आदिका छेद बंद करनेके लिये जोड़ कर सी दिया जाता है, चकती।

थिति (हिं॰ स्त्री॰) १ स्थायित्व, ठहराव। २ वह स्थान जहां आकर विश्राम किया जाता है। ३ रहन, रहाइस। ४ रक्षा। ५ अवस्था, दशा।

थिबाऊ (हिं॰ पु॰) दहिने अंगका फड़कना। इसे ठग लोग अपने लिये अशुभ समझते हैं।

थिर (हिं॰ वि॰) १ अचल, ठहरा हुआ। २ शान्त, धीर। ३ स्थायी, दृढ़।

थिरक (हिं॰ पु॰) नृत्यमें पैरोंका हिलना डोलना।

थिरकना (हिं॰ क्रि॰) १ नृत्यमें अङ्ग सञ्चालन करना। २ ठमक ठमक कर नाचना।

थिरता (हिं॰ स्त्री॰) १ अचलत्व, ठहराव। २ स्थायित्व। ३ अचञ्चलता, शान्ति।

थिरथिरा (हिं॰ पु॰) भारतवर्षका एक प्रकारका बुलबुल। यह प्रायः जाड़ेके दिनोंमें ही दिखाई पड़ता है।

थिरना (हिं॰ क्रि॰) १ जलका क्षुब्ध न रहना, पानीका हिलना डोलना, बंद होना। २ पानी छन जाना, निथरना। ३ पानीमें मिली हुई गन्दी वस्तुका उसके पेंदेमें जा कर जमना। ४ थिर कर साफ होना।

थिराना (हिं॰ क्रि॰) १ लहराते हुए जलको स्थिर होने देना। २ पानी या और किसी पतली चीजको स्थिर

करना जिससे उसमें घुली हुई मल आदि नीचे बैठ जाय। ३ थिरा कर किसी घुली हुई वस्तुको नीचे बैठने देना। ४ थिरा कर पानी छानना।

थी (हिं० क्रि०) 'था'का स्त्री।

थीहरा (हिं० पु०) आपत्तिके समय रक्षा या सहायताका भार। ग्रामका प्रत्येक समर्थ मनुष्य बारी बारीसे इस तरहका भार अपने ऊपर लेता है।

थीबो—ब्रह्मदेशके अन्तिम स्वाधीन राजाका नाम।

थीरागढ़—कर्णाट प्रदेशका एक नगर।

थुकवाना (हिं० क्रि०) थुकाना देखो।

थुकहाई (हिं० वि०) थूकी जाने योग्य स्त्री. जिसकी निन्दा सब करते हों।

थुकाई (हिं० स्त्री०) थूकनेका काम।

थुकाना (हिं० क्रि०) १ किसी दूसरेसे थूकनेका काम कराना। २ उगलवाना। ३ तिरस्कार या निन्दा कराना।

थुकाफजीहत (हिं० स्त्री०) निन्दा और तिरस्कार, धिक्कार।

थुकी (हिं० स्त्री०) रेशमके तागोंमें उन्हें सुलझानेके लिये थूकका लगाना।

थुड़ी (हिं० स्त्री०) धिक्कार, लानत।

थुत्कार (सं० पु०) कृ-भावे घञ्, थुत् इत्यव्यक्तशब्दस्य कारः करणं यत्र। निष्ठीवन, वह शब्द जो थूक फेंकनेसे होता है।

थुथना (हिं० पु०) थूथन देखो।

थुथाना (हिं० क्रि०) अप्रसन्न होना, मुंह फुलाना।

थुथुकृत (सं० स्त्री०) थुथु इत्य व्यक्तशब्दं करोत्यस्यां कृ-वा० आधारे क्विप्। १ हेलाक्षा, वह आवाज जो जोरसे थूकनेमें मुंहसे निकलती है। २ पक्षीविशेष, एक प्रकारकी चिड़िया।

थुनेर (हिं० पु०) गठिवनका एक भेद।

थुन्नी (हिं० स्त्री०) स्तम्भ, खंभा, चांड़।

थुपरना (हिं० क्रि०) गरमी पहुँचानेके लिये मड़ुवेकी बालोंका ढेर लगाकर दबाना।

थुपरा (हिं० पु०) मड़ुवेके बालोंका ढेर।

थुरना (हिं० क्रि०) १ कूटना। २ मारना, पीटना।

थुरहथा (हिं० वि०) १ छोटे हाथवाला, जिसकी हथेलीमें कमचीज आवे। २ किफायत करनेवाला।

थुर्वण (सं० क्लो०) थुर्व भावे ल्युट्। हनन, हत्या, कतल।

थुलना (हिं० पु०) पहाड़ी ऊनी कपड़ा वा कम्बल।

थुली (हिं० स्त्री०) दल कर कई टुकड़े किया हुआ अनाज, दलिया।

थुवा (हिं० पु०) थूवा देखो।

थूंक (हिं० पु०) थूक देखो।

थूंकना (हिं० क्रि०) थूकना देखो।

थू (हिं० अव्य०) १ थूकनेका शब्द। २ तिरस्कार सूचक शब्द, धिक्, छि:।

थूक (हिं० पु०) निष्ठीवन, खखार, लार। मनुष्य तथा और उन्नत स्तन्य जीवोंकी जिह्वाके अग्र भाग तथा मुखके अभ्यन्तरकी मांसल झिल्लियोंमें अत्यन्त उभरे हुए सूक्ष्म-छिद्र होते जो दानेकी तरह दीख पड़ते हैं। ये छिद्र एक प्रकारके गाढ़े रससे भरे रहते हैं। भिन्न भिन्न जन्तुओंमें भिन्न भिन्न प्रकारका रस होता है। मनुष्य आदि प्राणियोंके थूकमें मिला हुआ रासायनिक द्रव्य पाचनमें सहायता देता है।

थूकना (हिं० क्रि०) १ मुंहसे थूक फेंकना। २ मुंहमें रखी हुई वस्तुको गिराना, उगलना। ३ तिरस्कृत करना, निन्दा करना, धिक्कारना।

थूथन (हिं० पु०) लम्बा निकला हुआ मुंह।

थूथनी (हिं० स्त्री०) १ थथून देखो। २ हाथीके मुंहका एक रोग। इसमें उसके तालूमें घाव हो जाता है।

थूथरा (हिं० वि०) वह मुँह जो थूथनके जैसा बाहर निकला रहता है, भद्दा चेहरा।

थून (हिं० स्त्री०) १ स्तम्भ, खंभा, चांड़। (पु०) २ मन्द्राजमें होनेवाला एक प्रकारका गन्ना।

थूना (हिं० पु०) मट्टीका लौंदा। यह परेता खोंस कर सूत या रेशम फेरनेके काममें आता है।

थूनी (हिं० स्त्री०) १ स्तम्भ, खंभा, थम। २ सहारेका खंभा, चाँड़। ३ गड़ी हुई लकड़ी जिसमें रस्सीका फंदा लगा कर मथानीका डंडा अटकाया जाता है।

थूबी (हिं० स्त्री०) साँपका विष दूर करनेकी एक युक्ति। इसमें लोहेसे काटे हुए स्थानको दागते हैं।

थूरना (हिं० क्रि०) १ दलित करना, कूटना। २ ठूस

ठूस कर खाना। ३ मारना, पीटना। ४ कस कर भरना, ठूसना।

थूर्त्त (सं० वि०) थूर्व-क्त। विनाशित, जिसकी हानि हुई हो।

थूला (हिं० वि०) हृष्ट पुष्ट, मोटा ताजा।

थूली (हिं० स्त्री०) १ अनाजका वह मोटा कण जो दल कर अलग किया जाता है। २ गायको बच्चा जनने पर दिये जानेका पकाया हुआ दलिया। ३ सूजी।

थूवा (हिं० पु०) १ ऊंची भूमि, टीला। २ मट्टीका लोंदा। ३ ढूहके आकारका काला रंगा हुआ पिंडा। तम्बाकू बेचनेवाले इसे अपनी दूकानों पर चिह्नके लिये रखते हैं। ४ गीली मट्टीका पिंडा, धोंधा। ५ सीमा सूचक स्तूप, मट्टीका वह चिह्न जो सरहदके निशानके लिये उठाया जाता है। (स्त्री०) ६ धिक्कारका शब्द।

थूहर (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा पेड़। इसकी टहनियां लचीली नहीं होतीं, गांठों परसे गुल्ली या डंडेके आकारके डंठल निकलते हैं। इसके कई भेद हैं। किसीमें बहुत मोटे दलके लम्बे पत्ते होते हैं और किसीमें एक भी पत्ता नहीं होता। इसके डंठलों और पत्तोंमें कड़ुआ दूध भरा रहता है। इसमें पीले रंगके फूल भी लगते हैं। औषधके काममें इसका दूध बहुत उपयोगी है। यदि दूधमें सानी हुई बाजरेके आटेकी गोली कुछ काल तक रख कर सेवन करे तो पेटका दर्द जाता रहता है और पेट भी परिष्कार हो जाता है। थूहरके दूधमें भिगोई हुई चनेकी दाल जुलाबसा काम देती है। इसकी राखसे निकाला हुआ खार भी दवामें बहुत काम देता है और इसका कोयला बारूद बनानेके काममें आता है। विशेष विवरण स्नुही शब्दमें देखो।

थूहा (हिं० पु०) १ राशि, ढेर, ढूह। २ ऊंची भूमि, टीला।

थूही (हिं० स्त्री०) १ मट्टीका ढेर। २ मट्टीके खंभे। इन पर गाड़ी या विरनीकी लकड़ी ठहराई जाती है।

थेंथर (हिं० वि०) श्रान्त, सुस्त, हैरान।

थेईथेई (हिं० बि०) ताल सूचक नाचकी आवाज और मुद्रा।

थेगली (हिं० वि०) थिगली देखो।

थेवा (हिं० पु०) १ अंगूठीका नगीना। २ मुहर खोदी जानेका धातुका पत्र। ३ नगीना जड़नेका अंगूठीका एक घर।

थेवेनो (कनिष्ठ) एक प्रसिद्ध भ्रमणकारी। इन्होंने पारसमें जन्मग्रहण किया था। फ्रान्सके मियाना नगरमें १६६७ ई० ता० १८ नवेम्बरको इनकी मृत्यु हुई। ये Petis de la Croiz के मित्र थे और इसलिए इन्होंने उनके Memoirs नामक ग्रन्थका संशोधन किया था। यह ग्रन्थ (१६८९ ई०में) तीन खण्डोंमें छपा था। थेवेनो १६६५ ई० ता० ६ नवम्बरको वसोरासे जहाज पर सवार हो जनवरीकी १० तारीखको सूरत आए थे। ये भड़ौंच होते हुए अहमदाबाद, बम्बई, आगरा, देहली, इलाहाबाद, बरहमपुर, गोया, गोलकुण्डा, हैद्राबाद, मछलीपट्टम, सूरत, बन्दर अब्बास, सिराज, कूम और फरसङ्ग भ्रमण कर मियाना पहुंचे थे। इनके भ्रमण-वृत्तान्तसे उस समयकी भारतकी अवस्थाका कुछ कुछ परिज्ञान हो सकता है।

थैचा (हिं० पु०) वह छप्पर जो खेतमें मचानके ऊपर रखा जाता है।

थैला (हिं० पु०) किसी वस्तुको भर कर बन्द करनेका एक पात्र जो कपड़े टाट आदिको सी कर बनाया जाता है, बड़ा कोश। २ जांघसे लेकर घुटने तकका पायजामेका एक भाग। ३ वह कोश जिसमें रुपये भरे रहते हैं, तोड़ा।

थैली (हिं० स्त्री०) १ छोटा थैला, कोसा। २ रुपयोंसे परिपूर्ण कोश, तोड़ा।

थैलीदार (हिं० पु०) १ खजानेमें रुपये उठानेका एक मनुष्य। २ तहसीलदार, रोकड़िया।

थैलीबरदारी (हिं० स्त्री०) थैली उठा कर पहुंचानेका कार्य, थैलियोंकी ढोआई।

थोक (हिं० पु०) १ पुञ्ज, राशि, ढेर। २ समूह, झुण्ड, जत्था। ३ वह स्थान जहां कई एक ग्रामोंकी सीमाएं मिलती हों। ४ इकट्ठा बेचनेकी चीज। ५ एकत्रित वस्तु, कुल। ६ किसी खास एक आदमीका जमीनका टुकड़ा।

थोकदार (हिं० पु०) वह व्यापारी जो इकट्ठा माल बेचता हो।

थोड़न (सं० क्ली०) थुड़-ल्युट्। सम्बरण, आच्छादन ढकना।

थोड़ा (हिं० वि०) न्यून, अल्प, कम, जरासा।

थोती (हिं० स्त्री०) मवेशीके मुखका अग्रभाग, थूथन।

थोथ (हिं० स्त्री०) १ निःसारता, खोखलापन। २ तोंद, पेटी।

थोथरा (हिं० वि०) १ खोखला, खाली। २ निःसार, पोला। ३ व्यर्थका, निकम्मा।

थोथा (हिं० वि०) १ जो विना सारका हो, खोखला। २ कुण्ठित, भोथा, जिसकी धार तेज न हो। ३ बिना पूंछका, बाँड़ा। ४ व्यर्थका, निकम्मा। (पु०) ५ मट्टीका वह साँचा जिसमें बरतन ढाला जाता है।

थोथी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास।

थोपड़ी (हिं० स्त्री०) थप्पड़, चपत, धौल।

थोपना (हिं० क्रि०) १ पानीमें सनी हुई वस्तुके लोंदेको चिपकानेके लिये दूसरी वस्तु पर फैला कर डालना। २ आक्रमण आदिसे रक्षा करना, बचाना। ३ मोटा लेप चढ़ाना। ४ आरोपित करना, मत्थे मढ़ना।

थोबड़ (हिं० पु०) थूथन।

थोब रखना (हिं० क्रि०) जहाजको धार पर चढ़ाना।

थोरी (हिं० स्त्री०) एक हीन अनार्य जाति।

थौनियक (सं० पु०) ग्रन्थि पर्ण, गठिवनका पेड़।

द

द—दकार, संस्कृत एवं हिन्दी वर्णमालाका अठारहवाँ व्यञ्जनवर्ण और तवर्गका तीसरा अक्षर। इसका उच्चारण-स्थान दन्तमूल है। दन्तमूलके साथ जिह्वाके अग्रभागका स्पर्श होने पर इस वर्णका उच्चारण होता है, इसलिए इसमें स्पर्शवर्णता है। इस वर्णके उच्चारणमें संवार, नाद और घोष वाह्यप्रयत्न होते हैं। यह अल्पप्राण है। इसके पर्याय—अद्रि, ईश, धातकी, धाता, दाता, त्रास, कलत्रक, दीन, ध्यान, दान, भक्ति, आवहनी, धरा, सुषुम्ना, योगिनी, सद्यःकुन्तल, वामगुल्फक, कात्यायनी, शिवा, दुर्गा, अनङ्गनामा, त्रिकण्टकी, स्वस्तिक, कुटिलारूप, कृष्ण, श्यामा, जितेन्द्रिय, धर्मकृत, वामदेव, भ्रमरेह, सुचञ्चला, हरिद्रापुरवेदी, दक्षपाणि, त्रिरेखक। (वर्णाभिधान) इसकी अधिष्ठात्रीदेवीका ध्यान इस प्रकार है—

"ध्यानमस्य दकारस्य वक्ष्यते शृणु पार्वति।
चतुर्भुजां पीतवस्त्रां नवयौवनसंस्थितां॥
अनेकरत्नघटितहारनूपुरशोभितां।
एवं ध्यात्वा दकारन्तु तन्मात्रं दशधा जपेत्॥
त्रिशक्तिसहितं देवि त्रिविन्दुसहितं तथा।
आत्मादितत्त्वसंयुक्तं दकारं प्रणमाम्यहम्॥" (वर्णोद्धारत०)

दकारकी अधिष्ठात्री देवी चतुर्भुजा, पीतवस्त्रपरिधाना और नवयुवती तथा नाना रत्नादि खचित हार नूपुरादिसे सुशोभित हैं। इस प्रकार दकारका ध्यान कर इसका दश बार जप करना चाहिये। पीछे त्रिशक्ति संयुक्त, त्रिविन्दुसहित और आत्मादि तत्त्व संयुक्त दकारको प्रणाम करना चाहिए। कामधेनुतन्त्रमें दकारका स्वरूप इस प्रकार कहा है—

दकार चतुर्वर्ग-प्रदायक है, पञ्चदेवमय और पञ्चप्राणमय है, त्रिशक्ति और त्रिगुणयुक्त है, रक्तविद्युल्लताकार और आत्मादितत्त्वसंयुक्त है। काव्यके आदिमें इस वर्णका प्रयोग होने पर सुखकी प्राप्ति होती है। (वृत्तर० टीका) मातृकान्यासमें इस वर्णके वामगुल्फमें न्यास किया जाता है।

द (सं० पु०) दैप शुद्धौ वा दा दाने दो वाहुलकात् क। १ अचल, पर्वत, पहाड़। २ दन्त, दाँत। ३ दाता। ददाति आनन्दमिति दा-क। (स्त्री०) ४ भार्या, स्त्री। दो खण्डने सम्पादितात् भावे क्विप्। (क्ली०) ५ खण्डन। ६ रक्षण, रक्षा। ददाति दा-क। (वि०) दाता, देनेवाला।

दई (हिं० पु०) १ ईश्वर, विधाता। २ दैव संयोग, प्रारब्ध।

दईमारा (हिं० वि०) जिस पर ईश्वरका कोप हो, अभागा, कमबख्त।

दंग (फा० वि०) १ आश्चर्यान्वित, विस्मित, चकित (पु०) २ भय, डर।

दंगई (हिं० वि०) उपद्रवी, लड़ाका, झगड़ालू।

दंगल (फा० पु०) १ मल्लयुद्ध, पहलवानोंकी कुश्ती। २ वह स्थान जहां पहलवान लड़ते हैं, अखाड़ा। ३ समूह, जमात, दल। ४ बहुत मोटा तोशक।

दंगवारा (हिं० पु०) किसानोंकी आपसमें हल बैल देकर सहायता, जिता, हरसोत।

दंगा (फा० पु०) उपद्रव, बखेड़ा। २ शोरगुल, गुलगपाड़ा।

दंगैत (हिं० वि०) १ उपद्रवी, लड़ाका। २ बागी।

दँतिया (हिं० स्त्री०) छोटे छोटे दाँत।

दंद (हिं० स्त्री०) १ वह गरमी जो किसी पदार्थसे निकलती है। (पु०) २ द्वन्द, लड़ाई झगड़ा। ३ हल्ला गुल्ला, गुलगपाड़ा।

दंदाना (फा० पु०) उभरी हुई वस्तुओंकी पंक्ति जो दांतके आकारसी होती है।

दंदानेदार (फा० वि०) जिसमें दाँतकी तरह निकले हुए कंगूरोंकी पंक्ति हो।

दंदारु (हिं० पु०) छाला, फफोला।

दंदी (हिं० वि०) उपद्रवी, झगड़ालू।

दंवरी (हिं० स्त्री०) बैलोंसे रौंदवानेका काम जिससे अनाजके सूखे डंठलोंमेंसे दाने झड़ जाते हैं।

दंश (सं० पु०) दंश दंशने पदाद्यच्। कीटविशेष, डाँस, बगदर। इसका पर्याय—वनमक्षिका, गोमक्षिका, अरण्यमक्षिका, भम्भरालिका, पांशुर, दंशक, दुष्टमुख, क्रूर, क्षुद्रिका और दंशमशक है। विष्ठा, मूत्र, मृतदेह और सड़े हुए अंडोंसे दंश प्रभृति अनेक तरहके कीड़े उत्पन्न होते हैं। इसके काटनेसे शरीरमें सूजन और पीड़ा होती है। दशतीव शरीरं। २ वर्म, बकतर। दंश भावे घञ्। ३ दंशन, दाँत काटनेकी क्रिया। ४ दोष। ५ सर्पक्षत, साँपके काटनेका घाव। ६ दन्तक्षत, दाँत काटनेसे उत्पन्न घाव। ७ द्वेष, वैर। ८ दन्त दांत। ९ विषैले जन्तुओंका डंक। १० आक्षेपवचन, कटूक्ति, चीत्कार। ११ एक असुर जिसकी कथा महाभारतमें इस प्रकार लिखी है—

सत्ययुगमें दंश नामका एक प्रबल पराक्रान्त असुर रहता था। यह भृगु मुनिसे ज्यादा उम्रका था। एकदिन वह असुर भृगुकी स्त्रीको हर ले गया। इस पर भृगुने अत्यन्त क्रोधित हो कर उसे शाप दिया कि, 'तू मलमूत्रका कीड़ा हो जा।' शापसे डर कर जब असुरने भृगुसे बार बार क्षमा प्रार्थना की, तब उनका शरीर दयासे पिघल गया और बोले—"मेरे वंशमें जो राम होंगे वही तुझे मुक्त करेंगे।" बाद यह दंश कीटयोनिको प्राप्त हुआ। कर्ण जब परशुरामसे अस्त्रविद्या सीख रहे थे, तब एक दिन परशुराम कर्णकी जांघ पर अपना सिर रख कर सो गये। ठीक उसी समय वह कीड़ा कर्णके समीप पहुँच उनकी जांघमें काटने लगा। गुरुकी निद्रा भङ्ग होनेके डरसे कर्णने अपनी जांघ न हटाई। कुछ समय बाद जब जांघसे रक्तकी धारा निकल कर परशुरामके शरीर पर गिरने लगी, तब परशुरामकी नींद टूटी। कर्णने सारा हाल गुरुसे कह सुनाया।

परशुरामने कर्णकी बात सुन कर उस कीड़ेकी ओर ताका। वह सफेद कीड़ा था और उसके शरीरका आकार सूअर सा, दांत तेज और समूचा शरीर सूई सरीखे रोएंसे ढका था। परशुरामके ताकतेही कीड़ेने उसी रक्तके बीच अपना कीट शरीर छोड़ा और शापसे विमुक्त हो कर रामसे प्रार्थना की। बाद वह अपने स्थानको चला गया। (भारत शान्तिप० ३अ०)

दंशक (सं० पु०) दशतीति दन्श-ण्वुल्। १ दंशः डांस नामकी मक्खी। २ नृपभेद, एक राजाका नाम। ये कम्पन देशके अधिपति थे। (त्रि०) ३ दंशनकर्त्ता, काटनेवाला; जो दाँतसे काट खाय।

दंशन (सं० पु०) १ दांतसे काटना, डसना। २ वर्म, कवच।

दंशनाशिनी (सं० स्त्री०) दंशं नाशयति नाशि-णिनि-ङीप्। तैलकीटभेद, एक प्रकारका तेलका कीड़ा।

दंशभीरु (सं० पु०) दंशात् वनमक्षिकातः भीरुः। महिष, भैंसा।

दंशमूल (सं० पु०) दंशवदुग्रं मूलमस्य। शिग्रुवृक्ष, सहजनका पेड़।

दंशवदन (सं० पु०) कङ्क पक्षी, सफेद चील, काँक।

दंशिका (सं० स्त्री०) वनमक्षिका, डाँस।

दंशित (सं० त्रि०) दंशो वर्म सञ्जातोऽस्य परिहितत्वादिति, दंश तारकादित्वात् इतच्। १ वर्मित, कवच आदिसे ढका हुआ। दंश्यते दन्श णिच् भावे क्त। दष्ट, दाँतसे काटा हुआ।

दंशी (सं० स्त्री०) क्षुद्रो दंशः स्वल्पार्थे ङीष्, वा दशतीति दंश-अच् गौरा-ङीष्। १ क्षुद्र दंश, छोटा डांस। २ कुकुर, कुत्ता। (त्रि०) जो दांतसे काटता हो, डसनेवाला। ४ कटूक्ति कहनेवाला, आक्षेप वचन कहनेवाला। ५ द्वेषी, वैर रखनेवाला।

दंशूक (सं० त्रि०) दन्श बाहुलकात् उक। दंशनशील, डसने योग्य।

दंशेर (सं० त्रि०) दंश बाहु० एरक्। अपकारक, बुराई करनेवाला।

दंष्ट्र (सं० पु०) १ दन्श-त्र। २ दन्त, दांत। ३ शूकर, सूअर।

दंष्ट्रा (सं० स्त्री०) दश्यतेऽनया दन्श करणे ष्ट्रन्। (दाम्नीशसेति। पा ३।२।१८२) वा 'सर्वधातुभ्य ष्ट्रन्' इति ष्ट्रन्। १ स्थूल दन्तभेद, बड़े बड़े दाँत, दाढ़, चौमर। २ वृश्चिकाली, बिछुआ नामका पौधा। इसमें रोईंदार फल लगते हैं।

दंष्ट्रानखविष (सं० पु०) दंष्ट्रायां नखे च विषं यस्य। मार्जारादि, वह जन्तु जिसके नख और दांतमें विष हो। बिल्ली, कुत्ता, बन्दर, मकर, मेंढ़क, प्रचलाक (कीड़ा,) छिपकली, गोह, सांप और चार पैर वाले कीड़े दंष्ट्रानख, विष। उनके दाँत, नख, मूत, विष्ठा, वीर्य, लार, रज, मुँह आदिमें विष रहता है।

दंष्ट्रायुध (सं० पु०) दंष्ट्रा आयुध इव यस्य। वराह, सूअर।

दंष्ट्राल (सं० त्रि०) दंष्ट्रा अस्ति चूड़ादित्वात् ल। १ दंष्ट्रायुक्त, बड़े बड़े दांतोंवाला। (पु०) २ राक्षसविशेष, एक राक्षसका नाम।

दंष्ट्राविष (सं० पु०) दंष्ट्रायां विषमस्य। भौम सर्प, वह सांप जिसके दाँतोंमें विष रहता है।

दंष्ट्रास्त्र (सं० पु०-स्त्री०) दंष्ट्राऽस्त्रमिवास्य। वराह, सूअर।

दंष्ट्रिका (सं० स्त्री०) दंष्ट्री विद्यतेऽस्याः, दंष्ट्रा, ठन्। १ दंष्ट्रा, दाढ़, चोमर। (त्रि०) २ दंष्ट्रायुक्त, जिसके दाढ़ हों।

दंष्ट्री (सं० पु०-स्त्री०) प्रशस्ता दंष्ट्रा अस्त्यस्य इति इनि। १ शूकर, सूअर। २ सर्प, सांप। (त्रि०) ३ दंष्ट्रायुक्त, बड़े बड़े दाँतवाला।

दंसना (सं० स्त्री०) दंस, चुरादित्वात् णिच्, ततोभावे युच्। कर्म, काम।

दंसनावत् (सं० त्रि०) दंसना विद्यतेऽस्य मतुप्, ततो मस्य वः। १ कर्मयुक्त। २ अलौकिक शक्तिमान, जिसे खूब ताकत हो।

दंसस् (सं० क्ली०) दसस्-असुन्। कर्म, काम।

दंसि (सं० पु०) दन्स-इन्। कर्म, काम।

दंसिष्ठ (सं० त्रि०) दन्स तृण् दंसयिता अतिशयेन सः इष्ठन् तृणो लुकि णिलोपः। १ अत्यन्त कर्मकर्त्ता, जो खूब काम करता हो। २ दर्शनीयतम, देखने योग्य। ३ अत्यन्त शत्रुहिंसक।

दंसु (सं० क्ली०) अलौकिक शक्ति, अद्भुत ताकत।

दंसुजूत (सं० त्रि०) दान्त अश्वद्वारा सुष्ठु प्रेरित, जो खूब तेज घोड़ेसे भेजा गया हो।

दंसुपत्नी (सं० स्त्री०) १ वह जिसे अलौकिक शक्तिसम्पन्न मालिक हो। २ दमन करने बाद असुरोंके पति।

दक सं० क्ली०) उदक पृषोदरादित्वात् साधुः। जल, पानी।

दकलावणिक (सं० पु०) यूषविशेष।

दकार (सं० पु०) द स्वरूपे कारः। तवर्गका तीसरा अक्षर 'द'।

दकारादि (सं० त्रि) दकार आदिर्यस्य। जिसके आदिमें दकार हो।

दकारान्त (सं० त्रि०) दकारोऽन्ते यस्य। जिसके अन्तमें दकार हो।

दकीका (अ० पु०) १ कोई बारीक बात। २ उक्ति, उपाय। ३ ढंग, लहजा।

दकोदर (सं० क्ली०) दकं जलस्फीतं उदरं यत्र। सुश्रुतोक्त उदररोगभेद, एक तरहकी पेटकी बीमारी। सुश्रुतमें ऐसा लिखा है, कि शरीरस्थ समस्त दोष पृथक्

रूपसे अथवा मिल कर प्लीहोदर, बद्धगुद, आगन्तुक और दकोदर आदि रोग उत्पन्न करते हैं।

दकोदरके लक्षण—स्नेहपान द्वारा अनुवासित होने वा वमन वा विरेचन कराने अथवा निरूढ़ वस्तिका प्रयोग करनेके बाद यदि शीतल जल पान किया जाय, तो जलवाहिनी नाड़ियोंके दूषित होने वा पहलेकी तरह जठरकी अंतड़ियां स्नेहोपलिप्त हो जाती हैं और उससे दकोदर हो जाता है। इस रोगमें नाभिमण्डल स्निग्ध किन्तु वृत्ताकारमें शीघ्र ही उन्नत और जलसे भरा हुआ सा हो जाता है। चर्मखण्ड जलपूर्ण होने पर जैसे क्षुब्ध, कम्पित और शब्दित होता है, दकोदरमें भी वैसा ही होता है।

इस रोगमें आध्मान, गमनकी अशक्ति, दौर्वल्य, शोफ, अङ्गोंकी अवसन्नता, वायु और मल रुक जाता है। (सुश्रुत) विशेष विवरणके लिये उदर शब्द देखो।

दक्खिन (हिं॰ पु॰) दक्षिण देखो।

दक्खिनी (हिं॰ वि॰) जो दक्षिण दिशामें हो, दक्खिनका। दक्षिणी देखो।

दक्ष (सं॰ पु॰) दक्ष कर्त्तरि अच्। १ ताम्रचूड़, मुरगा। २ अत्रि ऋषि। ३ शिववृषभ, महादेवका बैल। ४ वृक्षभेद, एक तरहका पेड़। ५ दक्षसंहिताके कर्त्ता कोई मुनि। मनु, अत्रि आदिने जो धर्मशास्त्र रचे हैं, दक्षसंहिता उन्हींमेंसे एक है। ६ महेश्वर। ७ उशीनरके पुत्र नृपभेद, एक राजा जो उशीनरके पुत्र थे। (भागवत ९।२४।) ८ विष्णु। ९ बल। (निघण्टु)

(क्लो॰) १० वीर्य। (शुक्ल यजु॰ १४।३)

(त्रि॰) ११ चतुर, कुशल, निपुण, जिसमें किसी कामको झटपट और सुगमतासे करनेकी शक्ति हो, होशियार। १२ दक्षिण भाग, दाहना।

(पु॰) १३ एक प्रजापति, जिनसे देवताओंकी उत्पत्ति हुई। (पुराण)

ऋग्वेदके बहुतसे मन्त्रोंमें प्रजापति दक्षकी स्तुति की गई है। किसी किसी मन्त्रमें उनको ज्योतिष्कोंका पिता बतलाया है। जैसे—'हे शोभनदीप्तिशाली सूर्य! दक्ष जिनके पितृपुरुष हैं, उन शोभन-ज्योतिष्क देवोंसे हमारे अनपराधकी कामना करना।" (ऋक् ६।५०।२)

दक्ष अदितिके पिता है। अदितिसे ज्योतिष्क और देवोंकी उत्पत्ति हुई है, इसीलिये दक्षको देवताओंका पितृपुरुष माना गया है। ऋक्संहिताके अन्य मन्त्रों (१०।७२ सू॰) में लिखा है--"देवोंके उत्पन्न होनेसे पहले ब्रह्मणस्पति कर्मकारकी तरह कार्य करते थे। असत्से सत् उत्पन्न हुआ। देवोंकी उत्पत्तिके प्रथमकालमें (इस प्रकार) असत्से सत्की उत्पत्ति हुई। बादमें उत्तानपद्से दिक् हुआ। उत्तानपद्से 'भू' और 'भू' से दिक्की उत्पत्ति हुई। अदितिसे दक्ष उत्पन्न हुए, फिर दक्षसे अदिति। हे दक्ष! जिन्होंने अदितिके रूपमें जन्म ग्रहण किया है, वे तुम्हारी कन्या * हैं, पीछे उन्हींसे भद्र और अविनाशी देवोंकी उत्पत्ति हुई।"

अदितिसे दक्ष, फिर दक्षसे अदिति उत्पत्ति की हुई, इस बातका तात्पर्य क्या? इस विषयमें यास्कने निरुक्तमें लिखा है--"दक्ष आदित्य (अर्थात् अदितिके पुत्र) हैं और आदित्यके पुत्र होनेके कारण वे स्तुत्य हैं। अदिति दाक्षायणी अर्थात् दक्षकी कन्या हैं। (श्रुतिमें लिखा है, कि) 'अदितिसे दक्ष और दक्षसे अदिति उत्पन्न हुए हैं' यह कैसे सम्भव हो सकता है? या तो दोनोंका एक साथ जन्म हुआ होगा अथवा देव धर्मके अनुसार दोनों ही एक दूसरेसे उत्पन्न और प्रकृति-प्राप्त हुए।

जर्मन विद्वान् रोथका मत है कि यहां दक्ष Spirituac force है और अदिति Eternity।

शतपथब्राह्मणमें लिखा है—'केवल प्रजापति ही सबसे पहले हुए थे। प्रजापतिने प्रजाकामा हो कर पहले यज्ञ किया था कि मुझे बहुत सन्तान प्राप्त हो, श्री प्राप्त हो, यशस्वी होऊं, और अन्न मिले। उन्हींका नाम दक्ष है।" (२।४।४।१)।

पुराणोंमें जिस तरह विष्णुको विश्वका पालक बतलाया है, उसी तरह दक्षको भी माना है। जैसे—"प्रजापति वै भरतः स हीदं सर्वं बिभर्त्ति।" (शतपथ ६।८।१।१४) अर्थात् प्रजापति ही भरत है, क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत्का भरणपोषण करते हैं।

हरिवंशमें दक्षको विष्णुका ही स्वरूप माना है.--

"व्यतिरिक्तेन्द्रियो विष्णुर्योगात्मा ब्रह्मसम्भवः।
दक्षः प्रजापति भूत्वा सृजते विपुलाः प्रजाः॥"
(हरिवंश २११ अ॰)

---

* विष्णुपुराणके मतसे भी अदिति दक्षकी कन्या है (४।२।५)

रामायण, महाभारत तथा पुराण-ग्रन्थोंमें दक्षयज्ञका जैसा प्रसङ्ग है, वेदमें उसका कुछ उल्लेख न रहने पर भी तैत्तिरीयसंहिताके २य काण्डके ६ष्ठ प्रपाठकके रुद्रके प्रभाव प्रस्तावमें उसका कुछ आभास पाया जाता है।

महाभारत और पुराणादिके मतसे—ब्रह्माके दक्षिणाङ्गुष्ठसे दक्षका जन्म है।

इससे पहले मानसकी सृष्टि होती थी। दक्ष प्रजापतिने जब देखा कि मानस-सृष्टिके द्वारा प्रजाकी वृद्धि नहीं होती, तब उन्होंने पहले पहल मैथुन-द्वारा प्रजाकी सृष्टि की। तभीसे मनुष्य, पशु और पक्षी आदिकी मैथुन-द्वारा सृष्टि होने लगी है।

दक्षोत्पत्तिके विषयमें गरुड़-पुराणमें इस प्रकार लिखा है—विधाताने प्रजा-सृष्टिकी अभिलाषासे पहले धर्म, रुद्र, मनु, सनक, भृगु आदि प्रजाकर्त्ता मानसपुत्रोंकी सृष्टि की, पीछे उनके दक्षिणाङ्गुष्ठ-द्वारा दक्षको तथा वामाङ्गुष्ठसे दक्षपत्नीकी उत्पत्ति हुई। दक्षने उस पत्नीसे बहुतसी कन्यायें उत्पन्न कीं और ब्रह्माके मानसपुत्रोंको सौंप दीं। रुद्रको सती नामकी कन्या प्राप्त हुई। क्रमसे रुद्रके असंख्य महाबल पुत्र उत्पन्न हुए। किसी समय दक्ष हयमेध यज्ञ कर रहे थे, वहां सती भी अनाहूता होकर आईं और दक्ष-द्वारा अपमानित हो कर उन्होंने प्राण तज दिये। इस पर महादेव क्रुद्ध होकर यज्ञ ध्वंस कर दिया और दक्षको अभिशाप दिया कि "तुम ध्रुवके वंशमें उत्पन्न हो कर मनुष्यत्वको प्राप्त होवो।" बादमें ध्रुववंशोत्पन्न प्रचेताओंके कठोर तपस्या द्वारा प्रजापतित्वको प्राप्त होने पर, मारिषाके गर्भमें दक्ष उत्पन्न हुए। अनन्तर दक्षने चतुर्विध मानस प्रजाकी सृष्टि की। जब यह मानस-सृष्ट प्रजा भी वृद्धिको प्राप्त न हुई, तब मैथुन द्वारा प्रजाकी सृष्टि करनेके लिए उन्होंने वीरण प्रजापतिकी कन्या असिक्नीके साथ विवाह कर लिया और उससे उन्होंने हजार पुत्र उत्पन्न किए। इन पुत्रोंसे भी प्रजाकी वृद्धि न हुई। इसके बाद असिक्नीके ६० कन्याएं उत्पन्न हुईं जिनमेंसे दो अङ्गिराको, दो कृशाश्वको, दश धर्मको, तेरह कश्यपको और सत्ताईस चन्द्रको प्रदान की गईं। धीरे धीरे इनके द्वारा चराचर जगत्‌की सृष्टि हुई और तभीसे मैथुन-द्वारा सृष्टि क्रियाका प्रवर्त्तन हुआ। (गरुड़पु० ५।६ अ०)

कालिकापुराणमें लिखा है,—इस जगत्‌की आदि-सृष्टिके समय ब्रह्माने अर्द्धशरीरमें पुरुष, और अर्द्ध शरीरमें स्त्री हो कर, उसी स्त्रीके गर्भसे विराट पुरुषको उत्पन्न किया और उनसे कहा, "तुम प्रजापतिकी सृष्टि करो।" अनन्तर विराट-पुरुषने तपस्या करके स्वायम्भुव मनुकी सृष्टि की। सायम्भुव मनुने तपस्याके प्रभावसे ब्रह्माको परितुष्ट किया। ब्रह्माने सन्तुष्ट हो कर सृष्टिके लिए दक्षको उत्पन्न किया। उत्पन्न होनेके साथ ही दक्षने मनु और विधिको दश बार प्रणाम किया। इस पर ब्रह्माने और भी दश प्रजापतिकी सृष्टि की। दक्षने बहुतर प्रधान प्रधान देवर्षि, महर्षि और सोमप आदि पितृगणोंको उत्पन्न कर सृष्टि प्रवर्तित की। यही दक्षका प्रतिसर्ग है। (का०पु० १८ अ०)

दक्ष प्रजापतिने योगमायाको लक्ष्य करके कठोर तपस्या की थी। योगमाया सन्तुष्ट हो कर प्रत्यक्षगोचर हुईं और दक्षसे कहा—"तुम्हारे स्तवसे मैं सन्तुष्ट हुई हूं, तुम अभिलषित वर मांगो।" दक्षने कहा—'यदि वर देती हैं, तो यह दीजिये कि आप मेरी कन्या हो कर महादेवकी पत्नी होवें। महामाये! यह वर केवल मेरा ही नहीं है वरन् ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरका भी समझें।' महामाया उत्तरमें "तथास्तु" कह कर बोली कि "मैं शीघ्र ही तुम्हारी पत्नीके गर्भसे तुम्हारी कन्यारूपमें अवतीर्ण हो कर शङ्करकी सहधर्मिणी होऊंगी। किन्तु जिस समय मेरा तुम अनादर करोगे, मैं उसी समय देह त्याग दूंगी। मैं प्रत्येक सृष्टिमें तुम्हारी कन्या हो कर महादेवकी पत्नी होऊंगी।" इतना कह कर महामाया अन्तर्हित हो गईं। अनन्तर दक्ष स्त्री-सङ्गके बिना ही सङ्कल्प, अभिसन्धि, मानस और चिन्ताकी सहायतासे प्रजा उत्पादन करने लगे। ये सब पुत्र नारदके उपदेशानुसार पृथिवी पर्यटन करने लगे। इससे भी जब प्रजाकी वृद्धि न हुई, तब आपने मैथुन-धर्ममें वीरणतनया असिक्नीके साथ विवाह किया। 'इसके गर्भसे सन्तान होवे', पहले ऐसी अभिसन्धि करनेके साथ ही उसके गर्भसे महामायाने जन्म लिया। ये सतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं। देवोंके प्रयत्नसे महादेवके साथ

सतीका विवाह हो गया। प्रजापति दक्षने एक महायज्ञका अनुष्ठान करना शुरू कर दिया। इस यज्ञमें अस्सी हजार ऋत्विक् होतृकार्यमें व्याप्त थे, चौंसठ हजार देवर्षि उद्गाता थे, नारद आदि बहुतर ऋषि अध्वर्यु और होता थे। समस्त देवताओंके साथ विष्णु इस यज्ञके अधिष्ठाता और स्वयं ब्रह्मा इसके देवविधि-प्रदर्शक थे। इस यज्ञमें समस्त दिक्पालगण द्वारपाल और रक्षक थे। उस स्थान पर मूर्तिमान् यज्ञ स्वयं उपस्थित था। पृथिवी स्वयं यज्ञवेदी थी। प्रजापति दक्षने सभीको वरण किया था। महादेव कपाली होनेके कारण यज्ञार्ह नहीं हैं, ऐसा समझ कर दक्षने यज्ञमें सिर्फ उन्हें निमन्त्रण नहीं दिया था। सती प्रिय-तनया होने पर भी कपालीकी भार्या थीं, इस लिए वे भी निमन्त्रित नहीं हुईं। यह सुन कर सती अत्यन्त क्रोधित हुईं और दक्षके इस निदारुण कार्यका स्मरण कर मनही मन जलने लगीं। इस समय कोप-रक्तनयना सतीने योगबलसे समस्त द्वारोंको रोक कर कुम्भक धारण किया; इस महाकुम्भकसे ब्रह्मरन्ध्र भेद कर उनकी प्राणवायु निकल गई। उस समय शिव मानससरोवरमें सन्ध्या समापन कर कैलासको लौट रहे थे। मार्गमें सतीके देहत्यागका संवाद पा कर वे शीघ्र ही घर लौटे और वहां विजयाके मुंहसे सब सुन कर अत्यन्त रुष्ट हुए। उस समय महारुद्रकी आँख, कान और मुखकुहरसे अग्निकणोद्गार प्रलयसूर्यसन्निभ ज्वलन्त उल्का निकलने लगी। इसके बाद महादेव यज्ञ-स्थानके बहिर्भागमें जा विराजे और दूरसे उस समुज्ज्वल यज्ञस्थानको देख कर वीरभद्रको शीघ्र ही वहां भेज दिया। वीरभद्र अपने दलबलके साथ यज्ञस्थलमें पहुँचे और महात्मा दक्षके यज्ञको ध्वंस करने लगे। वीरभद्रको यज्ञ ध्वंस करते देख देवोंके साथ विष्णुने उन्हें वारण किया। वीरभद्रको निवारित होते देख लालपीली आँखें कर महादेव स्वयं यज्ञस्थानमें घुस पड़े और यज्ञ ध्वंस करने लगे। उन्होंने समस्त देवताओंको भगा दिया और मृगका रूप धारण कर भागते हुए यज्ञका पीछा किया; यज्ञ ब्रह्मलोकमें प्रविष्ट हो गया। पीछे पीछे महादेव भी पहुंचे। बेचारा यज्ञ डर गया और ब्रह्मलोकसे उतर कर अपनी मायासे सतीके शरीरमें प्रविष्ट हो गया। फिर क्या था, यज्ञानुगामी रुद्र मृत सतीके पास पहुंचते ही उन्हें देख कर यज्ञको भूल गये और सतीके शोकमें व्याकुल हो कर रोने लगे। (कालिकापु० ८-१८अ०)

सती देखो।

दक्षोत्पत्तिके विषयमें हरिवंशमें इस प्रकार लिखा है—दश प्रचेताओंके मानस द्वारा मारिषाके गर्भ और सोमदेवके अंशसे दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए। अनन्तर इन्होंने स्थावर, जङ्गम आदि विविध पदार्थोंकी सृष्टि कर कुछ मनःकल्पित कन्याओंकी सृष्टि की। उन कन्याओंमेंसे १० धर्मको दी गईं, १३ कश्यपको और अवशिष्ट २१ कन्याएं सोमदेवको दी गईं। उनके गर्भसे गो, पक्षी, नाग, दैत्य, दानव आदि नाना जातिके प्राणियोंकी सृष्टि हुई। इसी समयसे स्त्री-पुरुषके सहयोगसे प्रजा-सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। इससे पहले मनन, दर्शन और स्पर्शद्वारा प्रजाकी सृष्टि होती आ रही थी, वह अब वर्जित हो गई। ब्राह्मणके दक्षिण-अङ्गुष्ठसे दक्ष और वामाङ्गुष्ठसे उनकी पत्नी उत्पन्न हुई, यह बात अन्यत्र कही जा चुकी है। परन्तु इस जगह दक्षको प्रचेताओंका पुत्र कहा गया है। सोमदेवके दौहित्र हो कर भी वे किस तरह उनके श्वशुर हुए, इस सन्देहके निवारणार्थ जनमेजयने कहा है—'उत्पत्ति निरोध अर्थात् जन्म मृत्यु प्राणिमात्रका ही नियत धर्म है। इसमें ऋषि और ज्ञानियोंके लिए कोई मोहका विषय नहीं है। प्रत्येक युगमें दक्ष आदि नृपतियोंकी एक बार उत्पत्ति और फिर लय हुआ है। पहले ज्येष्ठत्व कनिष्ठत्व कुछ भी न था, एक मात्र तपोबल ही उत्कर्ष और अपकर्षका कारण था। प्रजाविधाता दक्ष विधाता द्वारा आदिष्ट हो कर भूतोंकी सृष्टि करने लगे। दक्ष प्रजापतिने पहले ऋषि, देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पशु, पक्षी और मृग आदिकी मानसद्वारा सृष्टि की; किन्तु पीछे जब देखा कि मानससृष्ट प्रजाकी वृद्धि नहीं होती, तब उन्होंने प्रजा-सृष्टिकी उत्कट वासनासे स्त्री-पुरुषके सहयोग द्वारा विविध प्राणियोंकी सृष्टि करना ही श्रेय समझा और वीरण प्रजापतिकी असिक्नी नामकी कन्याका पाणि-

ग्रहण किया। अनन्तर प्रजापति दक्षने उस असिक्नीके गर्भसे ५ हजार वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न किये। इनके ५००० पुत्र जो प्रजा-सृष्टिके लिये व्यस्त थे, नारदके उपदेशसे वे निरुद्दिष्ट हो गये। दक्षने इस संवादके पाते ही नारदका संहार किया ब्रह्माको मालूम पड़ते ही वे स्वयं दक्षके पास आये और पुत्रकी प्रार्थना करने लगे। दक्षने उत्तर दिया—'मैं अपनी कन्या असिक्नीको तुम्हें दे रहा हूं, उसके गर्भसे नारदका पुनर्जन्म होगा। अतएव इसे ले कर कश्यपको प्रदान करना।' इतना कह कर उन्होंने अपनी कन्या ब्रह्माको सौंप दी। अभिसम्पातके भयसे कश्यपने उस कन्याको ग्रहण किया और उसके गर्भसे पुनः नारदको उत्पादन किया। उसके बाद प्रजापति दक्षने धर्मपत्नी वीरणतनया-द्वारा साठ कन्यायें उत्पन्न कीं और धर्मको दश, कश्यपको तेरह, सोमको सत्ताईस, अरिष्टनेमिको चार, वसुपुत्रको दो तथा अङ्गिरा और कृशाश्वको भी दो चार कन्याएँ दीं। अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा इन दश कन्याओंने धर्मको प्रतिग्रह किया। बादमें विश्वासे विश्वदेवगण, साध्यासे साध्यगण, मरुत्वतीसे मरुत्वत्गण, वसुसे वसुगण; भानुसे भानु, मुहूर्त्तासे मुहूर्तगण, लम्बासे घोष, यामीसे नागवीथी, अरुन्धतीसे पार्थिव पदार्थ, संकल्पासे सर्वात्मरूप तथा संकल्प, यामिनी और नागवीथीसे वृषल उत्पन्न हुए। इस तरह क्रमशः एक दक्ष प्रजापतिसे चराचर जगत्की सृष्टि होने लगी। (हरिवंश २।३ अ०)

श्रीमद्भागवतमें लिखा है—प्रजापति दक्ष ब्रह्माके आत्मज थे और मनु-कन्या प्रसूतिके साथ इनका विवाह हुआ था। प्रसूतिके गर्भसे १६ कन्याएं उत्पन्न हुई थीं, जिनमेंसे १३ कन्याएँ धर्मको एक अग्निको तथा एक पितरोंको प्रदान की थी। सती नामकी कन्याके साथ महादेवने विवाह किया था। प्रजापति दक्ष अत्यन्त दुहितृवत्सल थे। किसी समय विश्वस्रष्टाओंने एक वृहत् यज्ञका अनुष्ठान किया। इस यज्ञमें समस्त देवता उपस्थित थे। प्रजापति दक्ष जब इस यज्ञमें आये, तब उन्हें देख कर सब खड़े हो गये, सिर्फ ब्रह्मा और शिव नहीं उठे। दक्षके आसन ग्रहण करने तक महादेव अपने ही आसन पर बैठे रहे, दक्षका कुछ भी सम्मान नहीं किया। दक्ष मारे क्रोधके उन्मत्तप्राय हो कर शिवकी निन्दा करने लगे। महादेव रुष्ट न हुए, सभामें ही बैठे रहे।

दक्ष सिर्फ निन्दा करके ही चुप न रहे, वरन् क्रोधमें आ कर उन्होंने जल-स्पर्श-पूर्वक यह अभिशाप दिया कि "यह देवाधम शिव, इन्द्र और उपेन्द्रादिके साथ यज्ञभागको प्राप्त न होवे।" इस प्रकार शाप दे कर दक्ष अपने घर लौट आये। इधर गिरिशानुचर नन्दीश्वरको शापका हाल मालूम हुआ; उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर, जिन्होंने दक्षके वाक्यका अनुमोदन किया था उनको ऐसा प्रतिशाप दिया कि, 'महादेव कभी किसीका अपकार नहीं करते। उनसे जो लोग द्वेष रखेंगे, उनकी कभी भी कार्यसिद्धि न होगी। इस दक्षकी बुद्धि देहको आत्मा मान कर ध्यान करती है और वह आत्मतत्त्व भूल गई है। दक्ष पशुओंके समान अत्यन्त स्त्री-कामी होगा और शीघ्र ही उसका बकरेका मुंह हो जायगा। वस्तुतः इस दक्षका मुंह बकरेके समान ही होना चाहिये, क्योंकि वह अविद्याको तत्त्वविद्या समझता है।"

श्वशुर दक्ष और जामाता शिव इन दोनोंमें सर्वदा इसी तरहका विवाद चलने लगा। कुछ दिन बाद परमेष्ठी ब्रह्माने दक्षको प्रजापतिका सब आधिपत्य प्रदान किया, जिससे दक्षका अभिमान और भी बढ़ गया।

अनन्तर दक्षने वृहस्पतिके नामसे उत्कृष्ट यज्ञ प्रारम्भ किया। इस यज्ञमें त्रिलोक निमन्त्रित हुआ। सिर्फ महादेव और सतीको निमन्त्रण नहीं दिया। यज्ञकी खबर पड़ते ही, सतीने महादेवसे वहां जानेके लिए अनुमति मांगी। महादेवने आज्ञा न दी। परन्तु सती बिना निमन्त्रणके पित्रालय पहुंच गईं और यज्ञस्थलमें पिताके द्वारा अपमानित हो कर उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। महादेव नारदके मुंहसे सतीके शरीरत्यागकी बात सुन कर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उसी समय उन्होंने अपने मस्तकसे एक जटा उत्पाटन कर उसे भूमि पर फेंक दिया, जिससे वीरभद्रकी उत्पत्ति हुई। वीरभद्र यज्ञ ध्वंस करनेके लिए गये। उन्होंने भृगुकी दाढ़ी और पूषाके दांत उखाड़

कर दक्षके वक्षःस्थल पर मारा और वे तीक्ष्ण अस्त्रसे उनका मस्तक छेदने लगे। परन्तु पुनः पुनः अस्त्राघात करने पर भी जब मस्तक छेद न सके, तब उसने दक्षको कण्ठनिष्पीड़नादिरूप पशुमारणोपयोगी एक यन्त्रमें डाल कर उनका मस्तक देहसे पृथक् कर दिया। पीछे उस छिन्न मस्तकको दक्षिणाग्निमें होम कर यज्ञशाला जला डाली। इस तरह दक्षयज्ञका बिलकुल ध्वंस हो गया। लोकपितामह ब्रह्मा दक्षके इस तरह मारे जानेकी खबर सुन कर अन्यान्य देवोंके साथ कैलास पर्वत पर उपस्थित हुए और नाना प्रकारके स्तवोंसे महादेवको सन्तुष्ट कर उनसे दक्ष आदिके जीवनकी प्रार्थना करने लगे। महादेवने सन्तुष्ट हो कर कहा—दक्ष जैसे बालकोंके अपराध पर मैं ध्यान नहीं देता। जो लोग देवमायामें विमोहित हैं, उन्होंको मैंने दण्ड दिया है। प्रजापति दक्षका मुँह भस्म हो चुका है, अब उसका मुख छाग जैसा हो जायगा तथा वह भगदेव और मित्र नामक देवताके चक्षु द्वारा अपने यज्ञभागका दर्शन करेगा। पूषा स्वयं पिष्टभोजी होंयगे। ये यजमानके दन्त द्वारा यज्ञीय द्रव्य भक्षण करेंगे और जिनके अङ्ग बिलकुल नष्ट हो चुके हैं, वे अश्विनीकुमारद्वयकी बाहुद्वारा बाहु-विशिष्ट होंगे और पूषाके हस्त द्वारा हस्तवान् और छागकी दाढ़ी ही भृगुकी दाढ़ी होगी। अनन्तर ब्रह्माने देवोंके साथ महादेवके वाक्यानुसार दक्षका मस्तक आदि अङ्ग उक्त प्रकारसे संयोजित कर दिये। फिर दक्षने विधानानुसार यज्ञ समाप्त किया और महादेवका नाना प्रकारसे स्तव करने लगे। (भागवत ४।१।७ अ०)

'रुद्र' और 'सती' शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

दक्षकन्या (सं० स्त्री०) दक्षस्य कन्या ६-तत्। दक्षकी कन्या, सती। दक्षकी असिक्नी नामकी स्त्रीसे ६० कन्यायें उत्पन्न हुई थीं, जिनमें १० धर्मको, १३ कश्यपको, २७ चन्द्रमाको, भृगु, अङ्गिरा और कृशाश्व इन तीनोंको दो दो तथा तार्क्ष्यको ४ कन्यायें व्याही थीं। (भागवत ६।६ अ०) मनुकी कन्या प्रसूतिके गर्भसे १६ कन्यायें उत्पन्न हुईं जिनमेंसे १३ धर्मको, १ अग्निको, १ पितृगणको और १ महादेवको समर्पण की गई थीं। (भागवत ४।१ अ०) दक्ष देखो।

दक्षक्रतु (सं० पु०) दक्षस्य क्रतुः ६-तत्। दक्षका यज्ञभेद, दक्षका वह यज्ञ जिसमें उन्होंने शिवजीको नहीं बुलाया था। दक्ष देखो। दक्षाः कुशलाः क्रतवो संकल्पा येषां। २ चक्षुरादि इन्द्रियरूप प्राण।

दक्षक्रतुध्वंसी (सं० पु०) दक्षक्रतुं ध्वंसयति ध्वंस-णिच्-णिनि। १ महादेव। २ महादेवके अंशसे उत्पन्न वीरभद्र। महादेवकी जटासे इनकी उत्पत्ति है। इन्होंने दक्षका यज्ञ विध्वंस किया था।

दक्षजा (सं० स्त्री०) दक्षात् जायते जन-ड। दक्षकी कन्या, सती, दुर्गा, अश्विनी प्रभृति।

दक्षजापति (सं० पु०) दक्षजानां दक्षकन्यानां पतिः। चन्द्र, महादेव प्रभृति।

दक्षतनया (सं० स्त्री०) दक्षस्य तनया। दक्ष प्रजापतिकी कन्या, दुर्गा अश्विनी प्रभृति। प्रसूतिके गर्भसे श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, मूर्त्ति, तितिक्षा, ह्री, स्वाहा, स्वधा और सती ये सोलह कन्यायें उत्पन्न हुईं। दक्ष देखो।

दक्षता (सं० स्त्री०) दक्षस्य भावः भावे तल्-टाप्। नैपुण्य, पटुता, योग्यता, कमाल।

दक्षताति (सं० स्त्री०) मानसिक शक्ति।

दक्षनिधन (सं० क्ली०) सामभेद।

दक्षपति (सं० पु०) दक्षाणां बलानां पतिः। बलाधिपति जिनमें सबसे अधिक बल हो।

दक्षपितृ (सं० पु०) दक्षः दक्ष प्रजापतिः पिता उत्पादको यस्य, समासान्तविधेरनित्यत्वात् न कप्। दक्ष प्रजापतिसे उत्पन्न प्राणाभिमानी देव। २ वीर्योत्पादक। (स्त्री०) ३ अश्विनी प्रभृति, इनके उत्पादक दक्ष हैं, इसीसे इनका नाम दक्षपितृका पड़ा है।

दक्षयज्ञ (सं० क्ली०) दक्षस्य यज्ञं वा दक्षेण अनुष्ठितं यज्ञं। दक्ष प्रजापति द्वारा अनुष्ठित यज्ञविशेष, वह यज्ञ जो दक्षसे किया गया हो। दक्ष देखो।

दक्षयज्ञभङ्ग (सं० पु०) दक्षयज्ञस्य भङ्गः। वीरभद्रसे दक्षका यज्ञ विध्वंस।

दक्षयज्ञविनाशिनी (सं० स्त्री०) दुर्गा। दुर्गा या सती ही दक्षयज्ञ भङ्गके कारण थी, इसीसे दुर्गाको दक्षयज्ञविनाशिनी कहते हैं।

दक्षयागापहारी (सं० पु०) महादेव, शिव।

दक्षविहिता (सं० स्त्री०) दक्षेण विहिता गीतिका। १ गीतिकाभेद, एक प्रकारका गीत। (त्रि०) २ दक्षकृत, दक्षसे किया हुआ।

दक्षवृध (सं० त्रि०) जिसने अपनी योग्यतासे उन्नति की हो।

दक्षस् (सं० क्ली०) दक्ष करणे असुन्। बल, ताकत्।

दक्षसाधन (सं० त्रि०) दक्षस्य साधनः। बलसाधक।

दक्षसावर्णि (सं० पु०) मनुभेद, नवम मनु। भागवतमें इनके विषयमें इस प्रकार लिखा है--वरुणसे इनकी उत्पत्ति हुई; भूतकेतु, दीप्तिकेतु आदि इनके पुत्र थे। इस मन्वन्तरमें मरीचि गर्भ आदि देवता हैं, अद्भुत इनके इन्द्र हैं; द्युतिमान् आदि ऋषि, आयुष्मान्से अम्बुधाराके गर्भमें भगवान् विष्णु ऋषभदेवके नामसे अवतीर्ण हुए थे। ये अद्भुत नामक इन्द्रकी सर्व सम्पत्समृद्ध त्रिलोकके भोगी बतलाते हैं। दशम मनुका नाम भी दक्षसावर्णि था। ये उपश्लोकके पुत्र थे। भूरिषेण आदि इन्हींके वंशधर थे। इस मन्वन्तर हविष्मान् आदि ब्राह्मण अर्थात् हविष्मान्, सुकृत, सत्य, जय, मूर्त्ति आदि ऋषि और सुरसेन, अनिरुद्ध आदि देव तथा शम्भु, देवराज हैं। भगवान् विभुने विश्वसृक् विप्रके घर विसूचिके अंशांशसे जन्मग्रहण किया था; ये विष्वक्सेन नामसे प्रसिद्ध थे। उस समय देवराजका शम्भुके साथ मैत्री हुई थी। (भाग० ८।१३ अ०) दक्षसावर्णिके समय पुलहपुत्र हविष्मान्, भृगुतनय सुकृति, अत्रिपुत्र अपोमूर्त्ति, वशिष्ठतनय अष्टम, पुलस्त्यपुत्र प्रमति, कश्यपपुत्र नभोग और अङ्गिरापुत्र सत्य ये सात महर्षि थे। ये ही ऋषिमन्वके अद्वितीय लक्ष्य कहे गये हैं। दक्षसावर्णिके सुत उत्तमौजा, वीर्यवान्, कूलिषञ्ज, शतानीक, नरमित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुवर्चा ये १० पुत्र थे। (हरिवंश ७ अ० मार्कण्डेयपु० ९४अ०)

दक्षसुत (सं० पु०) दक्षस्य सुतः। १ देवता। (शब्दार्थचि०) प्रजापतिने दक्षके पुत्रोंके नष्ट हो जाने पर पुत्रिका उत्पन्न कीं और उनसे देवता आदि उत्पन्न हुए। इन पुत्रिकाओंके पुत्र होनेके कारण दक्षोंमें पुत्रत्व सिद्ध हुआ। विधाताने जब दक्षको प्रजासृष्टिके लिये आदेश दिया, तब उन्होंने मनके प्रभावसे ऋषि, देवता, सुर, गन्धर्व आदिकी सृष्टि की।

२ हर्यश्वादि पुत्र। दक्षप्रजापतिके हर्यश्व आदि पुत्र हुए। वे सभी प्रजाकी वृद्धिके लिए सचेष्ट रहते थे; किन्तु नारदके उपदेशानुसार वे पृथिवीका परिमाण जाननेके लिए चारों दिशाओंको गये थे; फिर लौटे नहीं। (हरिवंश ३ अ०)

(स्त्री०) ३ अश्विनी आदि दक्षकन्याओंका नाम।

दक्षा (सं० स्त्री०) दक्षते वर्द्धते भारधारणे समर्था भवति दक्ष-अच्-टाप्। पृथ्वी।

दक्षाध्वरध्वंसक (सं० पु०) दक्षस्य अध्वरं ध्वंसयति ध्वन्स-णिच्-ण्वुल्। १ शिव। २ शिवजीकी जटासे उत्पन्न वीरभद्र।

दक्षाध्वरध्वंसकृत् (सं० पु०) दक्षाध्वरस्य ध्वंसं करोति। कृ क्विप् तुगागमः। दक्ष-यज्ञ-विनाशक शिव, वीरभद्र।

दक्षाय्य (सं० पु०) दक्षते कार्येषु समर्थो भवति दक्ष-आय्य। (सुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः। उण् ३।८६) १ गरुड़। २ गृध्र पक्षी। दक्ष वृद्धौ आय्य। (त्रि०) ३ वर्द्धक, बढ़ाने या उन्नति करनेवाला। ४ पूजनीय।

दक्षाराम (द्राक्षाराम)—गोदावरी जिलेके अन्तर्गत सुप्रसिद्ध स्मार्त तीर्थ। यह कोटीफली नामक प्रसिद्ध तीर्थसे ७ मील पूर्व और रामचन्द्रपुरसे ४ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां भीमेश्वरका एक बड़ा मन्दिर है। इसका लिङ्ग दुमंजलेकी छतको भेद कर दो फुट ऊंचा चला गया है। पूजाके वक्त पुरोहितको दुमंजल पर बैठ कर लिङ्गका अभिषेकादि करना पड़ता है। प्रधान मन्दिरके भीतर और भी छोटे मन्दिर हैं। प्रधान मन्दिर बड़ी खूबसूरतीको लिए हुए, नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित है। यहां ओलन्दाजोंकी दो खूबसूरत कब्रें हैं। भीमेश्वरके मन्दिरमें ईसाकी बारहवीं शताब्दीके बहुतसे शिलालेख पाये जाते हैं।

दक्षि (सं० त्रि०) दहनशील, जलाये जाने योग्य।

दक्षिण (सं० त्रि०) दक्षते इति दक्ष-इनन् (द्रुदक्षिभ्यामिनन्। उण् २।५०) १ दक्षिणोद्भूत, जो दक्षिण दिशामें हो। २ परच्छन्दानुवर्त्ती, जो दूसरेके अभिप्रायसे चलता हो। ३ वह दिशा जो सूर्यकी ओर मुंह करके खड़े

होनेसे दहने हाथकी ओर पड़ता है, उत्तरके सामनेकी दिशा। ४ अपसव्य, दहना, दाहना। किसीको दान देते समय ओंकार शब्द उच्चारण करके दहिने हाथसे देते और पीछे स्वस्ति वाक्य पढ़ते हैं। ५ नायकभेद, जिस नायकके बहुतसी नायिका हो और जिसका अनुराग सबपर समान हो, उसे दक्षिणनायक कहते हैं। ६ प्रदक्षिण। ७ तन्त्रोक्त आचार विशेष, शैवाचारसे दक्षिणाचार श्रेष्ठ और दक्षिणसे वामाचार उत्कृष्ट है। ८ विष्णु। ९ दक्षिणाग्नि। ब्राह्मणोंके दहिने कानमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सोम, सूर्य और अनल रहते हैं, इसीसे क्षुत, दन्तोच्छिष्ट, अनृत और पतितोंके साथ आलाप करते समय दहिना कान स्पर्श करना चाहिये। (पराशर) १० उदर, पेट। ११ समर्थ, निपुण।

दक्षिणकालिका (सं० स्त्री०) दक्षिणा अनुकूला कालिका आद्याशक्ति, जिन्होंने शिवजीकी छाती पर दहिना पैर रखा है, कालिका देवी। श्यामा और दशमहाविद्या देखो।

दक्षिणगोल (सं० पु०) दक्षिणः गोलः। विषुवत् रेखासे दक्षिण पड़नेवाली छह राशियां। तुला, विछा, धनु, मकर, कुम्भ और मीन इन छह राशियोंका नाम दक्षिण गोल है।

दक्षिणतस् (सं० अव्य) दक्षिण अतसुच्। १ दक्षिण दिशा। २ दक्षिण भाग।

दक्षिणतस्कपर्द (सं० त्रि०) दक्षिणतः शिरसो दक्षिणे भागे कपर्दश्चूड़ा यस्य। दक्षिण भाग चूड़ायुक्त, जिसके दक्षिणकी ओर शिखर हो।

दक्षिणतीर (सं० क्ली०) दक्षिणं तीरं। दक्षिण तीर, दहिना किनारा।

दक्षिणतीर (सं० क्ली०) नदी इत्यादिका दहिना किनारा।

दक्षिणत्रा (सं० स्त्री०) दक्षिण वेदे निपातनात् त्रा। दक्षिणभागादि।

दक्षिणदिक् (सं० स्त्री०) दक्षिणस्य दिक्। पूर्व प्रभृति दश दिशाओंके अन्तर्गत एक दिशा, उत्तरकी विपरीत दिशा, जिसके अधिपति भौम हैं।

पूर्वकालमें सूर्यदेवने यथाविधि यज्ञानुष्ठान करके यह दिशा गुरु कश्यपको दक्षिणास्वरूप दी, उसी समयसे यह दिशा दक्षिण नामसे प्रसिद्ध हुई है। दिक् देखो।

दक्षिणदेश—दाक्षिणात्य देखो।

दक्षिणधुरीण (सं० त्रि०) शकटके दक्षिण भागका धुरायुक्त, बैलगाड़ीके दहिनी ओरका धुरा।

दक्षिणपथ—दक्षिणा देखो।

दक्षिणपश्चात् (सं० अव्य०) दक्षिणस्याः परायाश्च दिशः अन्तराला दिक् बहुव्रीहौ आति, परस्य पश्चादादेशः। नैऋत कोण।

दक्षिणपश्चार्द्ध (सं० पु०) दक्षिण-पश्चिम भाग।

दक्षिणपश्चिमा (सं० स्त्री०) दक्षिणस्याः परायाश्च दिशः अन्तरालादिक् ततः पुम्वत्। नैऋत कोण।

दक्षिणपाञ्चालक (सं० त्रि०) दक्षिणपञ्चाल सम्बन्धीय। पञ्चाल देखो।

दक्षिणपूर्वा (सं० स्त्री०) दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालं इति समासः। १ पूर्व-दक्षिण कोण, अग्निकोण। (त्रि०) २ अग्निकोणस्थित, जो अग्निकोणमें पड़ता हो।

दक्षिणमानस (सं० क्ली०) गयास्थित तीर्थ विशेष, गयाके एक तीर्थका नाम। यह तीर्थ गयाके दक्षिण भागमें पड़ता है। इसमें तीन और तीर्थ हैं।

दक्षिणमार्ग (सं० पु०) १ तन्त्रोक्त आचारभेद। २ पितृयान नामक मार्गभेद।

दक्षिणमेरु (सं० पु०) दक्षिणकेन्द्र। (The south-pole)

दक्षिणराढ़ (सं० स्त्री०) राढ़का दक्षिणांश। राढ़ देखो।

दक्षिणराय—सुन्दरवनके प्रसिद्ध वनदेवता। बङ्गालके दक्षिणांशमें जहां बहुतसे जङ्गल हैं और व्याघ्र आदिका भय है, वहीं दक्षिणरायकी पूजा होती है। ये व्याघ्रजातिके अधिष्ठाता समझे जाते हैं। मलङ्गी, मोल्या जङ्गली आदि नीच जातियां दक्षिणराय और कालुरायकी बड़ी भक्त हैं। जङ्गली लोग जब सुन्दरवनमें लकड़ी चीरने जाते हैं, तो पहले दक्षिणरायकी पूजा कर लेते हैं। डायमण्ड-हारबर और मातलाकी तरफ जहां जहां आबादी है, सर्वत्र दक्षिणरायकी पूजा होती है। उच्चश्रेणीके हिन्दुओंमें दक्षिणरायकी पूजा उतनी प्रचलित न होने पर भी, निम्न श्रेणीके हिन्दुओंमें इनकी पूजा बहुत दिनोंसे प्रचलित है। बङ्गालके दक्षिणाञ्चलके मुसलमान भी पीर गाजीकी तरह दक्षिणरायकी विशेष भक्ति करते हैं और समय समय पर पूजा भी करते हैं।

माधवाचार्य, कृष्णराम आदि बहुतसे बङ्गाली कवियोंने दक्षिणरायकी लीलाके आधार पर कई ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें कृष्णरामदासका रायमङ्गल नामक ग्रन्थ उल्लेखयोग्य है। इसके पढ़नेसे मालूम होता है कि प्रभाकर नामके एक राजा थे, जिन्होंने वन कटवा कर राज्य स्थापन किया था। इन्हींको महादेवकी पूजा करनेसे दक्षिणराय प्राप्त हुए थे। दक्षिणराय अठारह भाँटीके राजा हुए थे। कालूरायके परामर्शानुसार हिजली जा कर इन्होंने नरसिंह पर शासन किया था। खनिया नामक स्थानमें बड़े खाँ गाजीके साथ इनका युद्ध हुआ था। अन्तमें दोनोंमें मित्रता हो गई थी।

बड़े खाँ गाजीके प्रसङ्गसे मालूम होता है कि जिस समय बङ्गालमें मुसलमानोंका प्राबल्य था, उसी समय दक्षिणराय आविर्भूत हुए थे, उसके चारों तरफ व्याघ्रोंका बड़ा उपद्रव था। परन्तु इनके प्रतापसे व्याघ्र किसीका अनिष्ट न कर सकते थे। इसीलिए नीच लोग इन्हें व्याघ्रारोही और व्याघ्रके राजा समझ कर बड़ी भक्ति करते थे। कवि कृष्णरामने लिखा है, कि बड़े खाँ गाजीके फकीरोंने दक्षिणरायके अधिकारमें जा, अनुगत उनकी प्रजाको तङ्ग करना शुरू कर दिया, इसलिए दक्षिणरायसे बड़े खाँ गाजीका युद्ध ठन गया और उस युद्धमें दक्षिणरायका शिर कट गया; परन्तु दैवबलसे कटा हुआ सिर फिर जुड़ गया। आखिर महादेवने आ कर दोनोंका झगड़ा निबटा दिया और दोनोंमें मित्रता कर दी। तभीसे बङ्गालके दक्षिणाञ्चलमें निम्न श्रेणीके हिन्दू और मुसलमान बड़े खां गाजी और दक्षिणरायके मस्तककी पूजा करते आ रहे हैं।

पौष-संक्रान्तिके दिन दक्षिणरायके साथ साथ उनके वाहन व्याघ्र और कुम्भीरकी मृन्मय मूर्त्तिकी भी पूजा हुआ करती है। कहीं कहीं दक्षिणराय और कालूराय क्षेत्रपालके रूपमें पूजे जाते हैं। किसी किसीका कहना है, कि महादेवने जब ब्रह्माका मस्तक छेदा था, उस समय ब्रह्माके मस्तकसे कालूराय और दक्षिणरायकी उत्पत्ति हुई थी।

दक्षिण शाहबाजपुर—मेघना नदीके मुहानास्थ एक द्वीप। यह बाखरगञ्ज जिलेका एक महकूमा है। १८४५ ई०में इसे पृथक् महकूमा किया गया। भोला और बरण उद्दीन-हाल्लदर नामके दो थाने इसके अन्तर्गत हैं। भूपरिमाण ६१५ वर्गमील है। इसमें ४०८ ग्राम लगते हैं।

प्रवाद है, कि १८७६ ई०की ३१वीं अक्तूबरको जो तूफान उठा था उससे ललित खाँ नामक इस महकूमेके प्रायः सभी लोग विनष्ट हुए थे।

दक्षिणसद् (सं० त्रि०) दक्षिण भागमें स्थित, जो दक्षिणकी ओर पड़ता हो।

दक्षिणसमुद्र (सं० पु०) दक्षिणः समुद्रः कर्मधा०। दक्षिणदिक्स्थित समुद्र, लवण समुद्र।

दक्षिणस्थ (सं० त्रि०) दक्षिणे भागे तिष्ठति स्था-क। १ वह सारथी जो अपने प्रभुके दक्षिण ओर खड़ा हो। २ दक्षिण भागस्थित, जो दाहिनी ओर पड़ता हो।

दक्षिणा (सं० स्त्री०) दक्षिण-टाप्। १ दक्षिण दिक्, दक्षिणदिशा। पर्याय—अवाची, शमनी, यामी, वैवस्वती।

दक्षिण दिशाकी वायुका गुण षड्रसयुक्त, चक्षुका हितकारक, बलवर्द्धक, रक्तपित्तनाशक, सुख, कान्ति और बुद्धिदायक, शस्यनाशक, विदाही, अस्र और वायुवर्द्धक है। गरुड़पद (फालपाव) कीटजनक है। इस दिशाके अधिपति वृष कन्या और मकरराशि है। (ज्योतिस्तत्त्व) २ यज्ञादिविधि दान। ३ प्रतिष्ठा, इज्जत, सम्मान। ४ यज्ञादिके अवसान पर ब्राह्मणोंको दिये जानेका धन, ब्राह्मणों वा पुरोहितोंको यज्ञादि कर्म करानेके पीछे जो धन दिया जाता है, उसे दक्षिणा कहते हैं। दान यज्ञ व्रत आदिकी दक्षिणा नहीं देनेसे, वह राखमें घी डालनेके जैसा निष्फल हो जाता है। इसीसे प्रत्येक कार्यकी समाप्ति पर दक्षिणा देना कर्त्तव्य है।

"अदत्तदक्षिणं दानं व्रतं चैव नृपोत्तम।
विफलं तद्विजानीयाद्भस्मनीव हुतं हविः॥" (भविष्यपु०)

शुचि हो कर भक्तिपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिये। दक्षिणा दिये बिना किया कराया सब काम निष्फल हो जाता है। जितने दान कहे गये हैं उनमेंसे सोना ही श्रेष्ठ है। इसी कारण सभी दानोंमें सोनेकी दक्षिणा देनेका विधान है।

"सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।
सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणेष्यते ॥" (व्यास)

बहुतसे दानोंमें जहां गोवस्त्रादि दक्षिणाका विधान है, वहां गो वस्त्रादि ही देने चाहिये। जहां दक्षिणाका कोई उल्लेख नहीं है, केवल वहीं सुवर्ण दक्षिणा प्रशस्त है। सभी धातुओंमें सोना श्रेष्ठ है, इसी कारण 'सुवर्णं दक्षिणेष्यते' ऐसा लिखा है।

"सुवर्णं रजतं ताम्रं तण्डुलं धान्यमेव च ।
नित्यं श्राद्धं देवपूजा सर्वमेव सदक्षिणं ॥" (स्कन्दपु०)

नित्यश्राद्ध, देवपूजा आदिमें सोने, चाँदी, ताँबे, धान और चावल सभीकी दक्षिणा दी जा सकती है। देय द्रव्यका तृतीयांश दक्षिणा देनी चाहिये। लेकिन जिस दानकी दक्षिणा कही नहीं गई है, उसका दशांश वा शक्तिके अनुसार दक्षिणा देनी होती है। (स्कन्दपु०)

तुलापुरुष आदि दानोंमें उसका दशांश वा अर्द्ध दक्षिणा देनेको लिखा है और जितने ऋत्विक् हों, सबको दश दश निष्क यज्ञ दक्षिणाके साथ यज्ञकर्त्ताको फल देता है। कार्य समाप्त होने पर ही दक्षिणा देनी चाहिये नहीं तो वह प्रतिक्षण बढ़ती है। कार्य हो जाने पर मुहूर्त्त कालके भीतर नहीं देनेसे द्विगुण वृद्धि, एक दिन बीत जाने पर शत गुण, तीन दिन पर उसका दश गुण, एक महीने पर लाख गुण और एक वर्ष बीत जाने पर तीन कोटि गुणकी वृद्धि होती है। पीछे यजमानको उस कर्मका फल नहीं मिलता और कर्मकर्त्ता ब्रह्मस्वापहारी होता है। लक्ष्मी शाप दे कर उसके घरसे जाती रहती हैं। बाद वह दरिद्र व्याधियुक्त हो कर कष्टसे समय बिताता है और उसका दिया हुआ श्राद्धतर्पणादि उसके पितृगण भी ग्रहण नहीं करते हैं। यजमानको यदि दक्षिणा देनेमें विलम्ब हो जाय, तो पुरोहितको मांग लेनी उचित है, नहीं तो दोनों ही नरकगामी होते हैं। दक्षिणा मांगने पर यदि यजमान न दे, तो वह ब्रह्मस्वापहारीके समान पातकी होता और निश्चय ही उसे कुम्भीपाक नरककी हवा खानी पड़ती है, केवल यही नहीं, यमदूतका दण्ड सहते हुए वहां लाख वर्ष तक रहना पड़ता है। पीछे वह चाण्डालकी योनिमें जन्म लेता और सर्वदा व्याधियुक्त दरिद्र रहता है। यहाँ तक कि उसके पापसे सात पुरुष तक नरकगामी होते हैं। (ब्रह्मवैवर्त्त पु०)

दक्षिणा यज्ञकी पत्नी है। कार्त्तिकी पूर्णिमाकी रातको जो एक बार रासमहोत्सव हुआ था उसीमें श्रीकृष्णके दक्षिणांशसे इसकी उत्पत्ति हुई थी, इसीसे इसका नाम दक्षिणा पड़ा।

दक्षिणाका दूसरा नाम दीक्षा है। ये सभी स्थानोंमें पूजी जाती हैं। बिना दक्षिणाके संसारके सभी काम निष्फल हैं। (भागवत) ५ नायिकाविशेष। नायकके अन्य स्त्रियों पर आसक्त होने पर भी जो स्त्री पहलेकी तरह नायकके प्रति गौरव, भय, प्रेम, सद्भाव आदि परित्याग नहीं करती, उसे दक्षिणा नायिका कहते हैं। ६ पुरस्कार, भेंट।

दक्षिणांशव्रणी (सं० पु०) दक्षिणांशे दक्षस्कन्धे व्रणोऽस्त्यस्य इनि। दक्षिणस्कन्धस्थित व्रणयुक्त, वह जिसके दहिने कन्धे पर फोड़ा हुआ हो। पिताकी बहन अर्थात् फूफीके साथ संभोग करनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। अजा दान करनेसे यह रोग जाता रहता है।

दक्षिणाकपर्द (सं० पु०) वसिष्ठ।

दक्षिणाकाल (सं० पु०) दक्षिणा देनेका समय।

दक्षिणाग्नि (सं० पु०) दक्षिणोऽग्निः। यज्ञाग्निविशेष। यज्ञमें दक्षिणकी ओर जो अग्नि स्थापित की जाती है उसका नाम दक्षिणाग्नि है।

दक्षिणाग्र (सं० पु०) दक्षिणस्यां अग्रमस्य। दक्षिण दिग्भागस्थिताग्र कुशादि, वह कुश जिसका अगला भाग दक्षिण भागमें रहे।

दक्षिणाचल (सं० पु०) दक्षिणा दक्षिणस्यां दिशि दक्षिणे दक्षिण प्रदेशे वा स्थितोऽचलः पर्वत। मलय पर्वत, मलयाचल।

दक्षिणाचार (सं० पु०) दक्षिणः अप्रतिकूलः आचारः। १ तन्त्रोक्त आचार भेद। इसमें अपने आपको शिव मान कर पञ्चतत्त्वसे शिवाकी पूजा की जाती है और मद्यके स्थानमें विजयारस दिया जाता है। विजयारस भी पञ्चमकारमेंसे एक है। यह आचार वामाचारसे श्रेष्ठ और प्रायः वैदिक माना जाता है। २ शिष्टाचारविशिष्ट शुद्ध और उत्तम आचरण। ३ दक्षिणदिग्गतिशाली, जिसकी गति दक्षिणकी ओर हो।

दक्षिणाज्योतिस् (सं० पु०) दक्षिणा दक्षिणस्यां ज्योतिरस्य। पञ्चौदन छागभेद।

दक्षिणात् (सं० अव्य०) दक्षिणस्यां दिशि, दक्षिणस्या दिशः दक्षिणा वा दिक्, दक्षिणा-आति (उत्तराधरदक्षिणादातिः। पा ५।३।३४) १ दक्षिण दिक्, दक्षिणकी ओर। २ दक्षिणमें। ३ दक्षिणसे।

दक्षिणान्तिका (सं० स्त्री०) वैतालीय छन्द। यह मात्रावृत्त है। वैतालीय मात्रावृत्तके पहले और तीसरे चरणमें १४ मात्राएं और दूसरे तथा चौथे चरणमें १६ मात्राएं रहती हैं; किन्तु इसमें प्रभेद यह है, कि यदि दूसरी और तीसरी मात्रामें एक गुरु हो, तो यह दक्षिणान्तिका मात्रावृत्त होगी और दूसरी दूसरी मात्रा वैतालीय सी होती है।

दक्षिणापथ (सं० पु०) दक्षिणा पन्थाः अच्, समासान्तः। १ देशभेद, एक देशका नाम। अवन्ती और ऋष्य पर्वत पार कर दक्षिण पथमें कई एक राहें गई हैं जो विन्ध्य पर्वत और समुद्रगामिनी पयोष्णी नदी हैं। यहां महर्षियोंके आश्रम और विदर्भोंके पथ हैं जो कोशलकी ओर चले गये हैं। इसके बाद दक्षिण दिशामें जो देश पड़ता है, उसीका नाम दक्षिणापथ है। (भारत ३।१६ अ०) दाक्षिणात्य देखो। २ दक्षिणस्थितमार्गमात्र, वह रास्ता जो दक्षिणकी ओर गया हो।

दक्षिणापथिक (सं० त्रि०) दक्षिणापथोऽस्त्यस्य स्वामित्वेन आवासत्वेन वा ठन्। दक्षिणापथदेशवासी, दक्षिणापथ देशके राजा, दक्षिण देशके सम्बन्धी।

दक्षिणापरा (सं० स्त्री०) दक्षिणाया अपराया दिशोऽन्तराला दिक्। १ नैर्ऋतकोण। (त्रि०) २ तत्संस्थित, जो नैर्ऋत कोणमें पड़ता हो।

दक्षिणाप्रवण (सं० त्रि०) दक्षिणा दक्षिणस्यां प्रवणं निम्नं। उत्तरकी अपेक्षा दक्षिणकी ओर नीचा स्थान, श्राद्धादि प्रदेश। यह स्थान श्राद्धादिके लिए प्रशस्त होता है।

"शुचिंदेशं विविक्तंच गोपयेनोपलेपयेत्।
दक्षिणा प्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत्॥" (मनु० ३।२०६)

श्राद्धकार्यके लिए अस्थि वा अङ्गारादिशून्य शुचि और निर्जन प्रदेश निश्चित कर, उसे गोबरसे लीपना चाहिए। वह स्थान यदि स्वभावतः दक्षिणकी ओर क्रमशः नीचा न हो, तो प्रयत्न करके उसे दक्षिणावनत करना चाहिए "दक्षिणाप्रवणं।" (कात्यायनश्रौ० २२।३।६) "दक्षिणाप्रवणं देवयजनं भवति।" (कर्क)

दक्षिणाप्रष्टि (सं० पु०) धुर्योपेक्षया प्रकृष्टं देशमश्नोति प्र-अश-क्तिच् दक्षिणा दक्षिणभागे प्रष्टिः वाह्यः। १ धुर्यके मध्य दक्षिणस्थित अश्वभेद, वह घोड़ा जो तीन घोड़ोंके रथकी गाड़ीमें आगे जोता जाता है। २ दक्षिणस्थित प्रष्टि सदृश अश्व।

दक्षिणाबन्ध (सं० पु०) दक्षिणायां बन्धः अनुबन्धः। गृहस्थ आदिके दक्षिणानुबन्धका एकभेद। जो अभिमान पूर्वक दक्षिणा देते हैं और काम मोह आदिसे अभिभूत हैं, ऐसे गृहस्थ, ब्रह्मचारी, भिक्षु और वैखानसोंके लिए ही दक्षिणबन्ध कहा गया है। "दक्षिणाबन्धो नाम गृहस्थब्रह्मचारिभिक्षुकवैखानसानां काममोहोपचेतसां अभिमानपूर्वकां दक्षिणां प्रयच्छतां दक्षिणाबन्ध इत्युच्यते।" (तन्त्रसार) बद्धावस्थामें अर्थात् जिनका अभिमान दूर नहीं हुआ है, उनके लिए बद्धावस्था समझना चाहिए।

दक्षिणामुख (सं० त्रि०) १ दक्षिणा दक्षिणस्यां मुखं यस्य। दक्षिणादिङ्मुख, दक्षिणास्य, जिसका मुंह दक्षिणकी ओर हो। पूर्वकी ओर मुंह करके भोजन करनेसे आयुकी वृद्धि और दक्षिणमुख बैठ कर भोजन करनेसे यशकी प्राप्ति होती है। (मनु०)

परन्तु जिनके पिता जीवित हैं. उनके लिए यह विधि नहीं है। वे यदि दक्षिणमुख बैठ कर भोजन करें, तो उन्हें पितृघाती समझना चाहिये। जीवितपितृकोंको अमाश्राद्ध, गयाश्राद्ध, और दक्षिणमुख भोजन न करना चाहिये। (तिथितत्त्व) दक्षिणकी तरफ मुंह करके पितरोंका तर्पण करना चाहिए। (क्ली०) २ दक्षिणकी ओर मुख।

दक्षिणामूर्ति (सं० पु०) दक्षिणा अनुकूला मूर्तिरस्य संज्ञात्वात् न पुम्वत्। शिव मूर्तिभेद, तन्त्रके अनुसार शिवकी एक मूर्ति। साधकश्रेष्ठको प्रति दिन शिवकी दक्षिणामूर्त्तिका ध्यान करना चाहिये। इस मूर्तिका एक वर्ष तक ध्यान करनेसे शास्त्रव्याख्यानकी शक्ति प्राप्त होती है। (तन्त्रसार)

इसका ध्यान इस प्रकार है--

"प्रोद्यच्छाखमहावटद्रुमतले योगाननस्थं प्रभुं ।
प्रत्यक्तत्त्वबुभुत्सुभिः प्रतिदिशं प्रोद्वीक्ष्यमानाननं ॥
मुद्रां तर्कमयीं दधानममलं कर्पूरगौरं शिवं ।
हृद्यन्तः कलये स्फुरन्तमनिशं श्रीदक्षिणामूर्त्तिकं ॥"

ये महावटके तले योगासनसे अवस्थित हैं, अध्यात्मतत्त्वके जिज्ञासुगण चारों तरफसे उनका मुख निहारते हैं, वे तर्कमुद्रा धारण किये हुए हैं, उनका वर्ण कर्पूरवत् शुभ्र है, वे सर्वदा देदीप्यमान हैं। ऐसे दक्षिणामूर्त्ति महादेवका सर्वदा ध्यान करना चाहिए। (तन्त्रसार) समासमें 'कप्' होता है, उस अवस्थामें 'दक्षिणामूर्त्तिक' ऐसा रूप हो जाता है।

दक्षिणामूर्त्तिमुनि—उद्धारकोष वा कोषध्याननिर्णय नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता।

दक्षिणायन (सं० क्ली०) दक्षिणा दक्षिणस्यां दक्षिणे गोले वा अयनं रवेः। १ सूर्यकी दक्षिण गति, सूर्यकी कर्करेखासे दक्षिण मकर रेखाकी ओर गति। २ सूर्यका दक्षिण गोलरूप तुलादि ६ठी राशिमें जाना।

सूर्य गगनमण्डलमें प्रतिवर्ष आषाढ़मासके अन्तमें उत्तरकी ओर जहां तक गमन करते है, वहां तकका नाम उत्तरसंक्रान्ति और क्रान्ति तथा उत्तर क्रान्तिसे ले कर जहाँ तक दक्षिणकी ओर गमन करते हैं, इसका नाम दक्षिणक्रान्ति है। इन दो प्रकारकी गतियोंको दक्षिणायन और उत्तरायण कहते हैं। अर्थात् सूर्य जब श्रावणसे पौषमास तक उत्तरी रेखासे दक्षिणी रेखाको जाते हैं, तब उसे दक्षिणायन और जब माघ माससे आषाढ़ तक दक्षिणी रेखासे उत्तरीरेखाको जाते हैं तब उसे उत्तरायण कहते हैं। इन दो सीमाओंके बीच पृथ्वीका जो अंश पड़ता है, उसका नाम मध्यखण्ड है। इस खण्डमें १२ राशि हैं और इन बारहोंके अन्तर्गत १०१६ नक्षत्र देखनेमें आते हैं। गगन-मण्डलके मध्यखण्डसे उत्तर जो अंश है, उसे उत्तरखण्ड कहते हैं। इस खण्डमें ३५ राशि अर्थात् पुञ्ज हैं और उनके भी अन्तर्गत १४५६ नक्षत्र हैं। यह हम लोगोंको यूरोपीय ज्योतिर्विदों द्वारा पता लगा है। मध्य खण्डमें जितने अचल नक्षत्र हैं, उनमेंसे कितनोंकी एक एक कर आकृति निर्दिष्ट कर पूर्वकालमें ज्योतिर्विदोंने उन्हें बारह भागोंमें राशिचक्र नामसे सीमाबद्ध किया है। इन बारह राशियोंके नाम ये हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला, बिछा, धनु, मकर, कुम्भ और मीन।

मेषराशिके प्रथमांशमें जो क्रान्तिपात होता है। जिन दो दिनोंमें सूर्य उस रेखामें रहते हैं, उन दिनोंमें दिवा और रात्रिमान बराबर होता है।

विषुवरेखाके उत्तरकी ओर ६ राशि अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या और फिर दक्षिणकी ओर ६ राशि अर्थात् तुला, विछा, धनु, मकर, कुम्भ और मीन तिर्यक भावसे अवस्थित हैं।

पृथ्वी अपने कक्ष पर घूमते घूमते वैशाख माससे जब मीन और मेषराशिके बीच पहुंच जाती है अर्थात् जिस अंशमें राशिचक्रके साथ विषुव रेखासे मिलती है, तब उस अंशके साथ सूर्यका समसूत्रपात होता है और मीन तथा मेष राशि ठीक सूर्यके सामने रहती हैं। उस समय पृथ्वीके निरक्षवृत्तके ऊपर सूर्यरश्मि ठीक सीधी पड़ती है। इसी कारण पृथ्वी पर सब जगह उस दिन दिवा और रात्रिमान बराबर रहता है। अर्थात् जब सूर्य विषुवरेखा पर रहते हैं, तब उनकी क्रान्ति शून्य होती है और एक मेरुसे दूसरे मेरु तकका गोलकार्द्ध प्रकाशमय रहता है। सूर्यकी उत्तरक्रान्ति जितनी ही बढ़ती हैं, उतना ही उत्तरमेरु पार कर सूर्यका प्रकाश फैल जाता तथा दक्षिणमेरु प्रकाशहीन हो जाता है और सूर्यकी दक्षिणक्रान्ति जितनी बढ़ती है, उतना ही दक्षिणमेरु पार कर सूर्यका प्रकाश फैलता तथा उत्तरमेरु प्रकाशहीन हो जाता है। सूर्यकी क्रान्तिका परिमाण २३° २८′ है। वैशाखमासमें सूर्य मेषराशिमें प्रवेश कर रोज एक अंशसे कुछ कम हो कर ज्येष्ठमासमें वृषराशिमें पहुँच जाते हैं। मेषराशिसे कुछ पश्चिम और कुछ उत्तरमें वृषराशि अवस्थित है। सूर्य रोज एक अंशके कमकी चालसे जा कर आषाढ़ मासमें मिथुन राशिमें प्रवेश करते हैं। मिथुनराशिके वृषराशिके ठीक उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। सूर्य मिथुन राशि पार कर श्रावणमासमें कर्कट राशिमें जाते हैं। जिस स्थान पर राशिचक्रके

साथ उत्तरक्रान्तिकी रेखा मिली है, वह स्थान उस दिन ठीक सूर्यके सामने रहता है। इसके बाद सूर्य उत्तरकी ओर नहीं जाते। इसीलिये उस समयको अयनान्तकाल कहते हैं। सूर्य इस राशिसे ३०° पार कर भाद्रमासको सिंह राशिमें गमन करते हैं। यह सिंह राशि कर्कट राशिके दक्षिण-पश्चिम भागमें अवस्थित है। पीछे सूर्य आश्विन मासको कन्याराशिमें जाते हैं। मेषराशिमें विषुवरेखाके साथ चक्रका जैसा संयोग है, वैसा ही संयोग तुलाराशिमें समझना चाहिए। मेषराशि तुला राशिसे १८०° दूर है। इसी कारण मेषादि ६ राशियां राशिचक्रका अर्द्ध भाग और तुलादि ६ राशियां उस चक्रका अपरार्द्ध अंश है। सूर्य कार्त्तिक मासमें तुलाराशिमें, अग्रहायण मासमें वृश्चिक राशिमें और पौष मासमें धनुराशिमें प्रवेश करते हैं। जिस अंशमें राशिचक्रके साथ दक्षिणक्रान्तिकी रेखा मिलती है, वह अंश उस दिशाके ठीक सूर्यके सामने पड़ता है। फिर इस स्थानसे सूर्य दक्षिणकी ओर नहीं जाते। इसीसे यह समय दक्षिणायनान्तकाल कहलाता है। इस राशिके बाद कुम्भराशि और तब मीन राशि पड़ती है जिनमें सूर्य क्रमशः फाल्गुन और चैत्र मासमें प्रवेश करते हैं।

इसी प्रकार पृथ्वी फिरसे वैशाख मासमें मीन और मेषराशिके मध्यस्थलमें जा पहुँचती है। विषुवरेखाके साथ राशिचक्रका जो अंश मिलता है, उस अंशके सूर्यमण्डलके सामने आने पर दिवा और रात्रिमान सदा एक सा रहता है। यथार्थमें सूर्य ही एक राशिसे दूसरी राशिमें पूर्वोक्त रूपसे भ्रमण करते हैं, ऐसा नहीं, सचल पदार्थमें अवस्थित हो कर अचल पदार्थकी ओर दृष्टिपात करनेसे उस पदार्थका गतिभ्रम होता है। इसी भ्रमके कारण ऐसा दीख पड़ता है। इसका फल यह निकलता है, कि पृथ्वी उपरोक्त क्रमसे एक राशिसे दूसरी राशिमें जा कर उत्तरायण और दक्षिणायनके अनुसार बारह राशियोंका भोग करती हुई एक वर्षमें सूर्यकी एक बार परिक्रमा करती है। सूर्य, पृथ्वी और अयन देखो। दक्षिणायनमें पुण्य कर्म तथा प्रतिष्ठा आदि करना निषेध है।

मलमासतत्त्वमें लिखा है, कि दक्षिणायनमें विवाह, व्रत, चूड़ादि संस्कार, दीक्षा, यज्ञ, गृहप्रवेश, दान, पूजा, प्रतिष्ठादि नहीं करनी चाहिये। यदि कोई मोहवश कर भी ले, तो उसे फल नहीं होता।

फिर स्मृतिमें भी लिखा है कि देवता, वापी और आरामादिकी प्रतिष्ठा उत्तरायणमें करनी चाहिये। दक्षिणायणमें नहीं करनेसे फल प्राप्त नहीं होता, किन्तु दक्षिणायनमें मातृ, भैरव, वराह, नरसिंह, त्रिविक्रम और महिषासुरहन्त्रीकी प्रतिष्ठा की जा सकती है।

(कालमा० वैखानस०)

दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है इसीसे दुर्गोत्सवके समय सन्ध्या कालमें देवीका उद्बोधन करना होता है। ३ दक्षिणायनाभिमानी देवताभेद। ४ दक्षिणभागस्थित प्राण।

दक्षिणारण्य (सं० क्ली०) दक्षिणस्थं अरण्यं। अरण्यभेद, एक जंगलका नाम।

दक्षिणारुस् (सं० पु०) दक्षिणे दक्षिणभागे अरुर्व्रणं यस्य। व्याधि कर्त्तृक दक्षिणाङ्ग व्रणित मृग, वह मृगा जिसके दहिने अङ्गमें व्याधाके तीर मारनेसे घाव हो गया हो।

दक्षिणार्ह (सं० पु०) दक्षिणां अर्हति दक्षिणा-अच् (अर्ह। पा ३।२।१२) दक्षिणायोग्य, वह जो दक्षिणाके उपयुक्त हो। इसका पर्याय--दक्षिणीय और दक्षिण्य है।

दक्षिणावत् (सं० त्रि०) दक्षिणा अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। दक्षिणायुक्त।

दक्षिणावर्त्त (सं० त्रि०) दक्षिणे आवर्त्तते आ-वृत अच्। १ दक्षिणमें आवर्त्तयुक्त जो दाहिनी ओर घूमा हुआ हो। २ दक्षिणदिक् स्थित, जो दक्षिणकी ओर अवस्थित हो। (पु०) ३ शङ्ख विशेष, एक प्रकारका शङ्ख जिसका घुमाव दाहिनी ओरका होता है।

दक्षिणावर्त्तकी (सं० स्त्री०) वृश्चिकाली नामका पौधा।

दक्षिणावर्त्तवती (सं० स्त्री०) दक्षिणे आवर्त्तते आवृत ण्वुल्, गौरादित्वात् ङीष्। वृश्चिकाली नामका पौधा।

दक्षिणावर्त्ता (सं० स्त्री०) मेषशृङ्ग, भेंड़के सींग।

दक्षिणावह सं० पु०) दक्षिणा दक्षिणदिक्तो वहति वह-अच्। दक्षिणानिल, दक्षिणसे आनेवाली हवा।

दक्षिणावृत् (सं० त्रि०) दक्षिण आवर्त्तते वृत-क्विप्। दक्षिणावर्त्त।

दक्षिणाशा (सं० स्त्री० दक्षिणा आशा दिक्। दक्षिणदिक्, दक्षिण दिशा।

दक्षिणाशापति (सं० पु०) दक्षिणस्या दिशः अधिपति। १ यम। २ मङ्गलग्रह।

दक्षिणासद्--दक्षिणसद् देखो।

दक्षिणाहि (सं० अव्य) दक्षिण दूरार्थे आहि। दूरस्थित दक्षिण भाग।

दक्षिणित् (सं० अव्य) दक्षिणात् वेदे पृषोदरादित्वात् साधुः। दक्षिणकी ओर।

दक्षिणी (हिं० स्त्री०) दक्षिण देशकी भाषा। (पु०) २ दक्षिणदेशका निवासी। (त्रि०) ३ दक्षिणदेश सम्बन्धी, दक्षिण देशका।

दक्षिणीय (सं० त्रि०) दक्षिणामर्हति दक्षिणा-छ। १ दक्षिणार्ह, जो दक्षिणाका पात्र हो। २ दक्षिण सम्बन्धी, दक्षिणका।

दक्षिणेतर (सं० त्रि०) दक्षिणादितरः। दक्षिणसे इतर, बाम, बायां।

दक्षिणेन (सं० अव्य) दक्षिणएनप्। दक्षिणकी ओर इस शब्दके योगमें द्वितीया विभक्ति होती है।

दक्षिणेर्मन् (सं० पु० दक्षिणे ईर्मं व्रणं यस्य ततोऽनिच्। व्याध कर्तृक दक्षिण पार्श्वका आहत मृग, वह हरिण जिसके दहिने बगलमें व्याधाके तीरसे घाव हो गया हो।

दक्षिणेश्वर--बंगालमें चौबीस परगने जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह हुगली नदीके किनारे अवस्थित है और कलकत्तेसे कुछ उत्तरमें पड़ता है। यहां बारूद तैयार करनेका कारखाना, बारह मनोहर शिवमन्दिर और एक सुन्दर कालीका मन्दिर है।

दक्षिणोत्तर (सं० त्रि०) दक्षिण और उत्तरकी ओर अवस्थित, जो दक्षिण और उत्तरमें पड़ता हो।

दक्षिणोत्तरी सं० त्रि०) दक्षिण भागके ऊपर अवस्थित।

दक्षिण्य (सं० त्रि०) दक्षिणां अर्हति दक्षिणा यत्। दक्षिणार्ह, जो दक्षिणाका पात्र हो।

दक्षिणेश्वरलिङ्ग (सं० क्ली०) काशीस्थित दक्षप्रजापति स्थापित लिङ्गभेद, काशीका एक लिङ्ग जिसे दक्षप्रजापतिने स्थापित किया था। दक्षप्रजापतिने ब्रह्माके आदेशसे काशीमें शिवलिङ्गकी स्थापना की थी। वहां वे अनन्यचित्तसे उनकी पूजादि करते थे। महादेवने सन्तुष्ट हो दक्षको वर दिया और कहा—"तुम्हारे सम्पूर्ण अपराध मैंने क्षमा कर दिये, तुम्हें और भी एक वर देता हूं कि तुमने जिस लिङ्गकी प्रतिष्ठा की है, वह दक्षिणेश्वरलिङ्गके नामसे प्रसिद्ध होगा। जो लोग इस लिङ्गकी सेवा करेंगे, मैं उनके सहस्र सहस्र अपराध क्षमा कर दूंगा। तुम भी इस लिङ्गकी पूजाके कारण सबके मान्य बनोगे और दो परार्द्धकालके बाद मोक्ष प्राप्त करोगे।' इतना कह कर महादेव उस लिङ्गमें अन्तर्हित हो गये। (काशीख० ६१ अ०)

दखमा (हिं० पु०) पारसीके मुर्दे रखनेका स्थान। पारसी लोग शवको जलाते या गाड़ते नहीं है, बल्कि उसे खास निर्जन स्थानमें रख देते हैं जहां चील, कौए आदि उनका मांस खा जाते हैं। इस कामके लिये थोड़ासा स्थान पचीस तीस फुट ऊँची दीवारसे घेर दिया जाता है और इसके ऊपरी भागमें जंगला मढ़ा जाता है। वे इसी जँगले पर शव रख देते हैं, चील-कौए आदिसे उसका मांस खाये जाने पर हड्डियां जँगले होकर नीचे गिर पड़ती हैं।

दखल (अ० पु०) १ अधिकार, कबजा। २ हस्तक्षेप, हाथ डालना। ३ प्रवेश, पहुँच।

दखलदिहानी (हिं० स्त्री०) किसी वस्तु पर किसीको अधिकार दिला देना, कबजा दिलवाना।

दखलनामा (अ० पु०) दखलदिहानीका सरकारी आज्ञापत्र।

दखील (अ० वि०) अधिकार रखनेवाला।

दखीलकार (फा० पु०) कमसे कम बारह वर्ष तक किसी जमींदारके खेत पर अपना दखल जमाये रखनेका आसामी।

दखीलकारी (फा० स्त्री०) १ दखीलकारका पद। २ वह जमीन जिस पर दखीलकारका अधिकार हो।

दगड़ (हिं० पु०) एक प्रकारका ढोल जो लड़ाईमें बजाया जाता है, जंगी ढोल।

दगड़ना (हिं० क्रि०) सत्य वचनका विश्वास न करना।

दगदगा (अ० पु०) १ डर, भय। २ संदेह, शक। ३ एक प्रकारकी कंडील।

दगदगाना (हिं॰ क्रि॰) चमकना, दमदमाना।

दगदगाहट (हिं॰ स्त्री॰) चमक, दमक।

दगदगी (हिं॰ स्त्री॰) दगदगा देखो।

दगना (हिं॰ क्रि॰) १ बन्दूक या तोपका छूटना। २ दागा जाना। ३ दग्ध होना, जलना।

दगरी (हिं॰ स्त्री॰) बिना मलाईका दही।

दगलफसल (हिं॰ पु॰) धोखा फरेब।

दगला (हिं॰ पु॰) रुईदार वा मोटे कपड़ेका अंगरखा।

दगवाना (हिं॰ क्रि॰) किसी दूसरेको दागनेके काममें लगाना।

दगहा (हिं॰ वि॰) १ दागवाला। २ सफेद दागवाला। ३ प्रेतकर्म-कर्त्ता, जिसने प्रेतक्रिया की हो। ४ जो दग्ध किया गया हो।

दगा (अ॰ स्त्री॰) कपट, छल, धोखा।

दगादार (फा॰ वि॰) विश्वासघातक, धोखेबाज, छली।

दगाबाज (फा॰ वि॰) १ कपटी, छली। (पु॰) २ वह मनुष्य जो धोखा देता हो, छली आदमी।

दगाबाजी (फा॰ स्त्री॰) छल, कपट, धोखा।

दगार्गल (सं॰ क्ली॰) दकस्य जलद्वारोधस्य अर्गलमिव, गमध्यपाठे तु पृषोदरादित्वात् गकारस्य ककारः दकार्गलं। निर्जल स्थानके ऊपरी लक्षण देख कर भूमिके नीचे पानी होने अथवा न होनेका ज्ञान।

इसका विषय बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—जिस प्रकार मनुष्यके शरीरमें रक्तवाहिनी शिराएँ होती हैं, उसी प्रकार पृथ्वीमें ऊपर नीचे जलवाहिनी शिराएं होती हैं। एक वर्ण और एक रसयुक्त जलके आकाशसे गिरने पर मट्टी अनेक वर्णों तथा रसोंसे युक्त हो जाती है। इसी कारण जलकी परीक्षा मट्टी द्वारा करनी चाहिये। इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, पवन, चन्द्र, शङ्कर आदि देवगण क्रमशः प्रदक्षिणक्रमसे पूर्वादि सभी दिशाओंके अधिपति हैं। आठों दिशाओंमें बहनेवाली शिराएं अपने अपने अधिपतिके नामसे पुकारी जाती हैं।

पृथ्वीके मध्य जो शिरा प्रवाहित है, उसे महाशिरा कहते हैं। महाशिराके अलावा और भी सैकड़ों शिराएँ हैं, जो नाना प्रकारसे निकल कर भिन्न भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हैं।

चारों ओर अवस्थित तथा पातालसे उत्थित जो सब ऊर्द्धशिराएं हैं, वे शुभजनक हैं। कोणकी ओरसे अर्थात् अग्नि, नैऋत, वायु और ईशान इन चार कोणोंमें निकली हुई शिराएं शुभजनक नहीं हैं। यदि किसी निर्जन स्थानमें बेंतका वृक्ष हो, तो समझना चाहिये कि उससे पश्चिम तीन हाथकी दूरी पर डेढ़ पुरसे नीचे अच्छे जलकी शिरा है और उससे भी आध पुरसे* नीचे पाण्डुवर्ण मण्डूक, पीतवर्ण मृत्तिका और पुटभेदक पाषाण इन्हीं चिह्नोंके नीचे जल है। निर्जन प्रदेशमें यदि जामुनका पेड़ हो, तो उससे उत्तर तीन हाथकी दूरी पर दो पुरसे नीचे पूर्ववाहिनी शिरा अवस्थित है। इस जगह एक पुरसे नीचे लौहगन्धिका मृत्तिका और पाण्डुवर्ण मण्डूक है, ऐसा समझना चाहिये। जम्बुवृक्षके पूर्वकी ओर पास ही यदि वल्मीक हो, तो उससे दक्षिण दो पुरसेकी दूरी पर दो पुरसे नीचे स्वादिष्ट जल मिलेगा। मट्टी खोदते समय यदि आध पुरसे नीचे मछली और कबूतरके समान पत्थर एवं मट्टी नीली निकले तो समझना चाहिये यहां बहुत समय तक जल रहता है। गूलरवृक्षसे तीन हाथ पश्चिम एक पुरसे जमीनके नीचे सफेद हड्डी और अञ्जनके जैसा पत्थर निकले, तो आध पुरसेकी दूरी पर उत्तम जलयुक्त शिरा मिलेगी। अर्जुन वृक्षसे तीन हाथ उत्तर यदि वल्मीक रहे, तो समझना चाहिये, पश्चिमकी ओर आध पुरसेकी दूरी पर जल है। मट्टी खोदते समय यदि आधपुरसे नीचे गोह नामक जन्तु और एक पुरसे नीचे धूसरवर्ण मट्टी तथा उसके भी कुछ नीचे पीली एवं रेतीली मट्टी मिले, तो वहां अपरिमित जल पाया जायगा। वल्मीकसे एकत्रित निर्गुण्डी वृक्षसे तीन हाथ दक्षिण दो पुरसे नीचेमें अशोष्य और स्वादु जल; उससे भी आध पुरसे नीचे रोहित मछली; तब कपिलवर्ण और उससे भी नीचे मण्डूरवर्ण तथा रेतीली मट्टी मिलेगी और वहांका जल बहुत स्वादिष्ट होगा। यदि बेर पेड़से पूर्व वल्मीक देखा जाय, तो उसके बगलमें तीन पुरसे नीचे जल अवश्य मिलेगा। जहां ढाक तथा बेरका पेड़ एक साथ मिला हो, वहां तीन पुरसे नीचे पश्चिमकी ओर जलशिरा; उससे भी

---

* भट्टोत्पलके मतसे १ पुरसा = १२ उंगली।

एक पुरसे नीचे दुन्दुभिका चिह्न; यदि बेल और गूलरका पेड़ मिला हो, तो दक्षिणकी ओर तीन हाथ छोड़ कर तीन पुरसे नीचे जल तथा उससे भी आध पुरसे नीचे कृष्णमण्डूक मिलेगा। कठगूलर पेड़के समीप यदि वल्मीक नजर आवे, तो समझना चाहिये, कि पश्चिमकी ओर तीन पुरसे नीचे दिग्वाही शिरा प्रवाहित है। इससे भी आध पुरसे नीचे ईषत् पाण्डुवर्ण और पीली मिट्टी, दूधके जैसा सफेद पत्थर और कुमुदके जैसा मूषक देखनेमें आवेगा। जलहीन स्थानमें जहां सफेद नीसादरका पेड़ देखा जाय, वहां पूर्वकी ओर तीन हाथकी दूरी पर प्रथम दक्षिणवाहिनी शिरा प्रवाहित होती है। इस जगहकी जमीन खोदनेसे नीलोत्पलवर्ण और कपोतवर्णविशिष्ट मालूम पड़ेगी तथा हाथ भरके फासले पर अजगन्धी मत्स्य और क्षीर समन्वित जल मिलेगा। शोणाक वृक्षके पश्चिम-उत्तरकी ओर दो हाथ छोड़ कर कुमुद नामकी शिरा मिलेगी। यह शिरा तीन पुरसे नीचे हो कर बहती है। यदि विभीतक वृक्षके दाहिने बगलमें वल्मीक हो, तो समझना चाहिये, कि पूर्वकी ओर आध पुरसे नीचे हो कर जलशिरा प्रवाहित है। यदि वहांसे हाथ भरकी दूरी पर वल्मीक रहे, तो साढ़े चार पुरसे नीचे जल प्रवाहिणी शिरा अवश्य बहती होगी। उस जगहकी एक पुरसे नीचेकी मट्टी सफेद तथा कुङ्कुमकी तरह चमकीला पत्थर मिलेगा। तीन वर्ष बीत जाने पर वहांकी जलवाहिनी शिरा नष्ट हो जायगी, ऐसा समझना चाहिये। (बृहत्संहिता ५४ अ०)

दगैल (फा० वि०) १ जिसमें दाग हो। २ जिसमें कुछ दोष हो। (पु०) ३ छली, कपटी, दगाबाज।

दग्ध (सं० त्रि०) दह-क्त। १ कृतदाह, भस्मीकृत, जो जल गया हो, जला या जलाया हुआ।

"दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव या ॥" (साहित्यद०)

२ दुःखित, जिसे कष्ट पहुंचा हो, जिसका हृदय दग्ध हुआ हो वा जो जल गया हो।

(स्त्री०) ३ शरीरस्थ अग्निदाहभेद, वह शरीर जो जल गया हो। शरीरका कोई अङ्ग जल जाने पर निम्नलिखित प्रणालीसे उसका प्रतिविधान करना चाहिए। अग्नि घृत, तैलादि स्नेहविशिष्ट अथवा नीरस द्रव्यका आश्रय ले कर दहन-कार्य सम्पन्न करती है। अग्नि द्वारा सन्तप्त होने पर घृत तैल आदि स्नेह-द्रव्य सूक्ष्म शिराओंमें प्रविष्ट हो जाते हैं, इस कारण वह त्वक् और मांस आदिके भीतर प्रवेश कर शीघ्र ही दहन करते हैं। इसीलिए स्नेह-द्रव्य द्वारा दग्ध होने पर अत्यन्त वेदना होती है। यह अग्निदग्ध चार प्रकारका है—प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यक्दग्ध और अतिदग्ध। जिसमें जलन पड़े और रंग बदल जाय उसे प्लुष्ट कहते हैं। जिसमें दग्ध स्थान पर स्फोट (फफोला) हो जाय और वह स्थान अत्यन्त उष्ण, दाहयुक्त, रक्तवर्ण, पाक एवं वेदनाविशिष्ट हो तथा विलम्बसे आरोग्य हो, उसका नाम है दुर्दग्ध। दग्ध स्थान गम्भीर न हो और पके ताड़की तरह उसका रंग हो तथा पूर्वोक्त लक्षण उसमें विद्यमान हों, तो उसे सम्यक् दग्ध समझना चाहिये। अतिदग्ध होनेसे, दग्ध स्थानका मांस झूल जाता है; शरीर शिथिल और शिरा, स्नायु, सन्धि, एवं अस्थि नष्ट हो जाती है तथा अत्यन्त ज्वर, दाह, पिपासा, मूर्च्छा आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इसमें क्षत स्थान देरसे भरता है और भर जाने पर विवर्ण हो जाता है। इस चार प्रकारके दग्धोंके द्वारा अग्निकर्मका साधन हुआ करता है।

अग्नि द्वारा प्राणियोंका रक्त कुपित हो कर शीघ्र ही वेग-विशिष्ट हो जाता है।

रक्तके उस वेगके कारण पित्त भी वेगवान् हो जाता है। अग्नि और पित्त दोनों प्रायः एक जातिके पदार्थ हैं और एक ही रस-विशिष्ट हैं; इसीलिए अग्नि-दग्ध स्थानमें तीव्र वेदना, स्वभावतः जलन और स्फोट हो जाते हैं तथा ज्वर और तृष्णाकी वृद्धि होती है।

दग्ध-चिकित्सा—प्लुष्ट दग्धमें अग्निका ताप तथा उष्णक्रिया और उष्ण औषधका प्रयोग करना चाहिए। उसके द्वारा शरीर घर्माक्त होने पर और भी तरल हो जाता है। शीतल जल द्वारा स्वभावतः उक्त स्कन्दित (जम जाना) होता है। इस लिए प्लुष्ट-दग्धमें उष्णके सिवा शीतल क्रिया कभी भी सुखकर नहीं होती। दुर्दग्ध स्थान पर उष्ण एवं शीतल दोनों प्रकारकी क्रियाएं करनी चाहिए। दग्ध स्थान पर घी लगाना और शीतल वस्तु सेचन करना चाहिए। सम्यक् दग्ध होने

वंशलोचन, चन्दन, गेरू और गुलञ्च इनको घीमें मिला कर प्रलेप देना चाहिए। अथवा ग्राममें वा जलबहुल देशोंमें जो पशु रहते हैं, उनका अथवा जलजन्तुका मांस पीस कर उसका भी प्रलेप दिया जा सकता है। पित्तजन्य विद्रधि होने पर जैसे निरन्तर उष्ण क्रिया की जाती है, इसमें भी वैसा ही करना चाहिए। अतिदग्ध-स्थानका जो मांस शीर्ण हो जाता है, उसे उठा कर देखना चाहिए और उस पर शीतल क्रिया करनी चाहिए। उसके बाद शालिधान्यके तुष-विहीन तंडुलों (चावलों) को पीस कर घीमें मिला कर अथवा गाबके क्वाथमें गाबकी छाल पीस कर उसमें घृत मिला कर उसका प्रलेप देना चाहिए। गुलञ्चके पत्तेसे अथवा पानीमें होनेवाले किसी पेड़के पत्तेसे क्षत-स्थानको ढक रखना चाहिए। पित्तजन्य विसर्परोगमें जो क्रियाएं की जाती हैं, इसमें भी उनका प्रयोग करना चाहिए। मोम, जेठी-मधु, लोध्रके पेड़की छाल, धूना, मंजीठ, चन्दन और मूर्वामूल इनको एक साथ पीस कर, घृत पाक करना चाहिए। इस घीसे सब प्रकारके अग्निदग्ध व्रण अच्छी तरह भर जाते हैं। स्नेह-द्रव्यके संयोगसे दग्ध होने पर उसमें रूक्ष क्रिया ही विशेष लाभदायक होती है।

उष्ण वायु और रौद्र (धूप वा घाम) द्वारा दग्ध होने पर शीतल क्रिया करनी चाहिए। अतिशय तेज-द्वारा दग्ध होने पर किसी भी प्रतिकारसे उसकी शान्ति नहीं होती। वज्राग्नि-द्वारा दग्ध हो कर यदि जीवित रहे, तो तमाम शरीरमें घृत तैलादि स्नेह-द्रव्योंका मर्दन और सेवन करना चाहिए तथा पूर्वोक्त अग्निदग्धके प्रलेपका भी प्रयोग करना चाहिए।

शस्त्र-चिकित्सामें अग्निक्रिया ही प्रधान है। पीड़ित स्थानको अग्नि-द्वारा दग्ध करनेका नाम अग्निक्रिया है। अग्निकर्मके विधानानुसार दग्ध करनेसे वह रोग फिर कभी नहीं होता। जो रोग क्षार-द्वारा आरोग्य नहीं होते, वे अग्निक्रियासे आरोग्य हो जाते हैं। स्नेहद्रव्यसे पीड़ित स्थान पर अग्निकर्म करना हो, तो उसमें पिप्पली, छागीविष्ठा, गोदन्त, शर, शलाका, जाम्बवौष्ठ अथवा अन्य किसी प्रकारका लौह, मधु, गुड़, घृत, तैल और वसा आदि द्रव्योंके संयोगकी आवश्यकता होती है।

किसी प्रकारके त्वक्‌रोगमें यदि दग्ध करनेकी आवश्यकता आ पड़े, तो पिप्पली, छागीविष्ठा, गोदन्त शर और शलाकाके द्वारा मांसगत रोगमें दग्ध करना हो, तो जाम्बवौष्ठ वा अन्य किसी प्रकारके लौह-द्वारा; शिरागत, स्नायुगत, सन्धिगत, वा अस्थिगत रोगमें दग्ध करना हो, तो गुड़, मधु वा अन्य किसी प्रकारके घृत तैलादि स्नेह-द्रव्य द्वारा दग्ध करना चाहिए।

शरत् और ग्रीष्मऋतुके सिवा अन्य सभी ऋतुओंमें रोग-विशेषसे पीड़ित स्थान दग्ध किया जा सकता है। परन्तु दग्ध क्रियाका प्रयोग तभी करना चाहिए, जब कि वह रोग अन्य किसी भी प्रक्रियासे आरोग्य न हो। अन्यथा दग्धकर्म करना उचित नहीं।

रोगीको, दग्धकर्म करनेसे पहले पिच्छिल अन्न खिलाना चाहिए; तब दग्ध करना चाहिए।

किसी किसी विद्वान्‌के मतसे यह दो प्रकारका है—त्वक्‌दग्ध और मांसदग्ध। परन्तु सुश्रुतके मतसे शिरा, स्नायु, सन्धि और अस्थि-स्थानमें भी इस प्रकार दग्ध करनेका निषेध नहीं है। त्वक्‌को दग्ध करनेसे 'चट्-चट्' शब्द, दुर्गन्ध और त्वक्‌का सङ्कोच होता है। मांसको दग्ध करनेसे दग्धस्थान कपोतवर्ण, अल्प स्फीत, वेदनाविशिष्ट, शुष्क, संकुचित और क्षत हो जाता है। शिरा और स्नायु पर दग्धकर्म करनेसे दग्धस्थान कृष्णवर्ण और उन्नतव्रणविशिष्ट तथा रक्तादिका स्राव बंद हो जाता है। सन्धि और अस्थिको दग्ध करनेसे दग्धस्थान रूक्ष, अरुणवर्ण और कर्कश हो जाता है तथा दग्धजनित क्षत भी शीघ्र आरोग्य नहीं होता। शिरोरोग और अधिमन्थ रोगमें भ्रू, ललाट और ललाटकी अस्थिको दग्ध करना पड़ता है। वर्त्मरोगमें, चक्षुके दृष्टि-स्थान पर अलक्तक आच्छादित कर वर्त्मस्थानके रोग पर दग्ध क्रिया करनी चाहिये। रोगके स्थानभेदसे अग्निकर्मके भी चार भेद हैं—वलय, विन्दु, विलेपन और प्रतिसारण। चूड़ीकी तरह गोल रेखाके आकार दग्ध करनेका नाम वलय है। विन्दुके आकार दग्ध करना विन्दु कहलाता है। शरीरके सिर्फ चमड़ेको जला देना विलेखन है। उष्ण घृत वा तैलादि तरल पदार्थके संयोगसे जो दग्धकर्म होता है एवं जिसमें दग्धका उपकारी द्रव्य शरीरमें

व्याप्त हो जाय उसे प्रतिसारण कहते हैं। इससे विलम्बमें आरोग्यता प्राप्त होती है। (सुश्रुत) अग्निदग्ध देखो।

(क्ली०) ४ कत्तृण, एक प्रकारकी घास। (रत्नमाला०)

५ तिथिभेद-युक्त चन्द्राश्रित राशि। (ज्योतिस्तत्व)

इस दग्धग्रहमें जो भी कार्य किया जाता है, वह नष्ट हो जाता है। ६ वारभेद-युक्त नक्षत्रभेद।

दग्धकाक (सं० पु०-स्त्री०) दग्ध इव काकः। द्रोणकाक, डोम कौवा।

दग्धपात्रन्याय (सं० पु०) न्यायभेद, एक प्रकारका न्याय।

दग्धमन्त्र (सं० पु०) दग्धः मन्त्रः कर्मधा०। तन्त्रसारोक्त मन्त्रभेद, तन्त्रके अनुसार एक मन्त्र। इसके मूर्द्धा प्रदेशमें वह्नि और वायुयुक्त वर्ण होते हैं।

दग्धमत्स्य (सं० पु०) अग्निदग्ध मीन, भुनी हुई मछली।

दग्धरथ (सं० पु०) दग्धः रथः यस्य। इन्द्रके एक सारथी, चित्ररथ गन्धर्वका नामान्तर। ये इन्द्रके यहां सारथीका काम करते थे। इनके एक विचित्र रथ था, इसीसे इनका नाम चित्ररथ पड़ा। किसी समय पाण्डवगण पाञ्चाल को जा रहे थे, इसी समय दग्धरथ सोमाश्रयण तीर्थमें गङ्गामें पैठ कर रमणियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। पाण्डवोंको अपनी ओर आते देख ये धनुष्टङ्कार करते हुए अर्जुनके पास पहुँच गये और अभिमानसे बोले,—"मैं यहाँ जलविहार करता हूं। इस समय देवगण भी यहां आनेका साहस नहीं करते। तुमने मनुष्य हो कर क्या सोच कर यहां आनेका साहस किया?' इस प्रकार दोनोंमें कुछ काल तक वादानुवाद होता रहा। पीछे घनघोर युद्ध छिड़ हो गया। अर्जुनने आग्नेय शास्त्रके प्रभावसे इनका रथ दग्ध कर डाला। उसी समयसे ये दग्धरथ नामसे प्रसिद्ध हुए। बाद इन्होंने अर्जुनके साथ मित्रता कर ली और उन्हें चक्षुषी विद्या सिखला दी। (महाभारत आदिप० १७० अ०)

दग्धरुह (सं० पु०) दग्ध अपि रोहति रुह-क। तिलकृष्ण। तिलक वृक्ष।

दग्धरुहा (सं० स्त्री०) दग्धरुह-टाप्। वृक्षविशेष, कुरुह नामका पेड़।

दग्धवर्णक (सं० पु०) रोहिष नामक तृण, रोहिष नामकी घास।

दग्धा (सं० स्त्री०) १ सूर्यावस्थान दिक्, वह दिशा जिस ओर सूर्य अवस्थान करता हो, सूर्यके अस्त होनेकी दिशा, पश्चिम। २ वृक्षविशेष, एक तरहका पेड़। इसे कुरु कहते हैं। पर्याय—कुरुह, दग्धरुहा, दग्धिका, स्थलेरुहा, रोमशा, कर्कशदला, भस्मरोहा, सुदग्धिका। गुण-कटु, कषाय, उष्ण, कफवातनाशक, पित्तप्रकोपक, जठराग्निकारक। (राजनि०)

३ राशिभेदयुक्त तिथिभेद, विशिष्ट राशियोंसे युक्त कुछ विशिष्ट तिथियाँ। जैसे वैशाख मासकी शुक्लाष्टमी, आषाढ़की शुक्लाष्टमी, भाद्रपदकी शुक्लादशमी, कार्त्तिककी शुक्लाद्वादशी, पौषकी शुक्लाद्वितीया, फाल्गुनकी शुक्लाचतुर्थी, श्रावणकी कृष्णाष्टमी आश्विनकी कृष्णाष्टमी, अगहनकी कृष्णादशमी, माघकी कृष्णाद्वादशी, चैत्रकी कृष्णाद्वितीया और ज्येष्ठकी कृष्णाचतुर्थी। ये दग्धा तिथियां निष्फला हैं और इनको मासदग्धा कहते हैं। इन दग्धा तिथियोंमें यदि कोई यात्रा करे, तो उसकी मृत्यु निश्चित है, चाहे वह इन्द्र-तुल्य क्यों न हो। दग्धातिथिमें विवाह होनेसे स्त्री विधवा हो जाती है, कृषिकार्यमें फलका अभाव, विद्यारम्भमें मूर्खता, स्त्री-सङ्गममें गर्भपात और मूलधनका नाश होता है। अतएव दग्धातिथियोंमें कोई भी शुभ कार्य न करना चाहिए। (ज्योतिस्तत्त्व)

रविवारको द्वादशी, सोमवारको एकादशी, मङ्गलवारको दशमी, बुद्धवारको तृतीया, बृहस्पतिवारको षष्ठी शुक्रवारको अमावस्या और पूर्णिमा एवं शनिवारको सप्तमी होनेसे वह तिथि दग्धा समझी जाती है; इनको दिनदग्धा कहते हैं। दिनदग्धा तिथियोंमें भी कोई शुभ कार्य न करना चाहिये। (ज्योतिःसारसंग्रह)

दग्धाक्षर (सं० पु०) पिङ्गलके अनुसार झ, ह, र, भ और ष ये पाँचों अक्षर। इनका छन्दके आरम्भमें रखना वर्जित है।

दग्धास्य (सं० पु०) कुमारिच क्षुप लालमिर्चका पौधा।

दग्धाह्व (सं० पु०) क्षारप्रधान वृक्षविशेष, एक प्रकारका पेड़।

दग्धिका (सं० स्त्री०) कुत्सिता दग्धा-कन् (कुत्सिते। पा ५।३।७४) टाप्। १ दग्धान्न, जला हुआ भात। इसका पर्याय-भिस्सटा, भिस्सिटा, भिस्सिटा, भिस्सिष्टा और भिस्सिका है। २ दग्धावृक्ष, कुरु नामका पेड़।

दग्धेष्टका (सं॰ स्त्री॰) दग्ध इष्टका, जली हुई ईंट, झांवा।

दग्धोदर (सं॰ क्ली॰) दग्धं उदरं। हतोदर, जला हुआ पेट।

दचक (हिं॰ स्त्री॰) १ वह चोट जो झटके वा दबावसे हो जाती है। २ धक्का, ठोकर। ३ दबाव।

दचकन (हिं॰ क्रि॰) १ ठोकर खाना। २ दब जाना। ३ झटका खाना। यह सकर्मक क्रिया भी है।

दचना (हिं॰ क्रि॰) गिरना, पड़ना।

दज्जाल (अ॰ पु॰) १ मिथ्यावादी, धूर्त्त, बेईमान। २ निष्ठुर।

दड़वल (हिं॰ पु॰) सहदेई नामका पौधा।

दड़ोकना (हिं॰ क्रि॰) दहाड़ना, बाघ, सांढ़ आदिका बोलना।

दढ़ियल (हिं॰ वि॰) दाढ़ीवाला, जिसने दाढ़ी रखी हो।

दणियर (हिं॰ पु॰) सूर्य।

दण्ड (सं॰ क्ली॰) दण्ड घञ्, वा दाम्यतेऽनेन दम-ड। दमन्तात् डः। उण् १।११३। यष्टि, लाठी, डंडा।

दण्ड धारण करनेसे लाभ—गिर पड़ने पर उसके सहारे उठ सकते हैं, शत्रुके आक्रमण करने पर अपनी रक्षा कर सकते हैं इत्यादि। यह आयुष्कर और भय-नाशक है। (वैद्यक) ब्राह्मण पर दंड उठाने पर कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र आचरण करना चाहिये।

२ वह दंड जिसे ब्रह्मचारी धारण करते हैं। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके लिए उपनयनके समय दंड धारण करनेकी विधि है। तदनुसार ब्राह्मणको विल्व और पलाशका, क्षत्रियको वट और खदिरका, एवं वैश्यको पिलु और उदुम्बर-काष्ठका दंड धारण करना चाहिये। ब्राह्मणोंका दंड केशान्त पर्यन्त, क्षत्रियोंका दंड ललाट पर्यन्त और वैश्योंका दंड नासिका पर्यन्त होना चाहिए। (मनु २।४५-४८)

संन्यासियोंके लिए दंड ग्रहणके विषयमें विशेषता है। यथा--

"कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः।
चतुर्थो परमो हंसो यो यः पश्चात् स उत्तमः॥" (हारीत)

कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस इन संन्यासियोंमें पहलेकी अपेक्षा पीछेके उत्तरोत्तर उन्नत और श्रेष्ठ हैं। कमलाकरने लिखा है, कुटीचक और बहूदकको तीन दंड, हंसको एक वैणवदंड तथा परमहंसको एक दंड रखना चाहिए। (निर्णयसि॰)

मेधातिथि लिखते हैं--

"यावन्नस्युस्त्रयो दंडास्तावदेकेन वर्त्तयेत्"

अर्थात्, जब तक त्रिदंडी न हो सके, तब तक एक ही दंड रखो, परन्तु यहां त्रिदंड यष्टिपर नहीं है, वाग्-दंडादि दमनपर है।

पहले जो परमहंसके लिए एक दंडकी बात कही गई है वह अविद्वानोंके लिए है; परमज्ञानियोंके लिये नहीं। महोपनिषद्में लिखा है-'न दंडं न शिखां नाच्छादनं न भैक्षं चरति परमहंसः' 'ज्ञानमेवास्य दंडः।' अर्थात् ज्ञान ही परमहंसका दंड स्वरूप हैं।

३ व्यूहभेद, एक प्रकारका व्यूह। अग्निपुराणके मतसे मण्डल और असंहतके भेदसे नाना प्रकारके दण्ड हैं, यथा—तिर्यग्वृत्ति, वृत्ति, सर्वतोवृत्ति, पृथग्वृत्ति। इनके नामान्तर इस प्रकार हैं—प्रदर, दृढ़क, असह्य, चाप, वैकुक्षि, प्रतिष्ठ, सुप्रतिष्ठ, श्येन, विजय, सञ्जय, विशाल, सूची, स्थूणाकर्ण, चमूमुख, सर्पमुख, वलय, अतिक्रान्त, प्रतिक्रान्त, विपर्यय, स्थूणापक्ष, धनुःपक्ष, द्विस्थूण, ऊर्ध्वदंड, द्विदंड, चतुर्दण्ड, गोमूत्रिका, सञ्चारी, शकट, मकर, इत्यादि। व्यूह देखो।

भावे अच्। ४ दमन, शासन। ५ शरणागतत्राण, सर्वभूतमें अहिंसा और दानरूप कर्मत्रय।

(भारत मोक्षधर्म)

दण्ड इवाचरति दंड-क्विप् ततो भावे घञ्। ६ दंड तुल्यस्थिति, दंड देने योग्य अवस्था। दंड करणादौ अच्। ७ प्रकाण्ड, बड़ा भारी। ८ अश्व, घोड़ा। ९ कोण, कोना। १० मन्थन, मथानी। ११ सैन्य, सेना। १२ भूमिका परिमाणभेद, जमीन मापनेका एक प्रकारका दंड वा गज। यह चार हाथ लम्बा होता है। (लीलावती)

१३ सूर्यका एक परिषद्। १४ यम, दण्डकर्त्ता। १५ अभिमान, घमण्ड। १६ दंडाकार ग्रहभेद, एक ग्रह जो दंडके आकारका होता है। महाशृंगारक देखो। १७ इक्ष्वाकुराजके एक पुत्र। इन्हींके नामानुसार दण्ड-

कारण्यका नामकरण हुआ है। (हरिवंश १० अ०)

१८ साठ पलके बराबर समय। घटियन्त्र देखो।

१९ विष्णु। (भारत १३।१४९।१०५) २० शिव। (भारत १३।२८६ अ०) २१ दंडाकार ऋजु सूर्यके परिवेषका एक भेद। (वृहत्सं० १३ अ०) २२ दंडवत् स्थित सूर्यादिकी किरणोंका संघात। (वृहत्सं० ३०अ०)

२३ राज्यकी रक्षाके लिये राजाओंकी ओरसे किया जानेवाला चौथा उपाय। साम, दाम, भेद और दंड ये चार उपाय हैं। स्वदेश और परदेशके भेदसे दंडमें पार्थक्य होता है। राजा स्वदेश अर्थात् अपने राज्यमें प्रजाशासनके लिये जो दंडविधि प्रचलित करता है, उसे स्वदेश-दण्ड कहते हैं। अग्निपुराणमें लिखा है-परदेशमें प्रयोज्य दण्डादि प्रकाश और अप्रकाशके भेदसे दो प्रकारके हैं। लुण्ठन, ग्रामघात, शस्यघात, अग्निदीपन, विष, अग्नि और विविध पुरुषोंकी सहायतासे वध, ये प्रकाश-दण्ड हैं। साधु-दूषण और उदक-दूषण इनको अप्रकाश-दण्ड कहते हैं। (अग्निपु० १७४ अ०)

प्रजा शासन दण्डके विषयमें महाभारत और हिन्दूधर्मशास्त्रादिमें जैसा वर्णन है, यहां उसका सार मात्र कहा जाता है।

राजाको किस अपराधमें कैसा दण्डविधान करना चाहिए, इस विषयमें निम्न प्रकार लिखा है।

ऋणदान—उत्तमर्णके कर्ज देने पर यदि अधमर्ण परिशोध (चुकता) न करे, पीछे उत्तमर्ण राजाके पास नालिश करे और अधमर्ण ऋणको स्वीकार करे, तो अधमर्णको एक सौ पणमेंसे ५ पण दण्ड देना चाहिए, परन्तु अधमर्ण यदि ऋणको अस्वीकार करे, तो उसे सौ पणमेंसे १० पण दण्ड देना उचित है। उत्तमर्णको बन्धक (गिरवी) ले कर ऋणस्थानमें वृद्धि ग्रहण करना चाहिए अर्थात् प्रतिमास सैकड़ा पीछे अस्सी भागका एक भाग व्याज लेना चाहिए। यदि कोई भोगार्थ वस्तु वा दास दासीको उत्तमर्णके पास गिरवी रख कर अधमर्ण रुपये कर्ज लेवे, तो उन रुपयोंका जुदी व्याज नहीं ली जाती। इसका व्यतिक्रम करनेसे दण्डनीय होंगे।

मिथ्या साक्ष्य (झूठी गवाही)—लोभके वशवर्ती झूठी गवाही देनेसे हजार पण दण्ड होता है। मोहके कारण झूठी गवाही देनेसे ढाई सौ पण, भयके कारण मिथ्या साक्षी देनेसे हजार पण, स्नेहमें आ कर झूठी गवाही देनेवालेको हजार पण, कामाधीन हो कर झूठी गवाही देनेसे ढाई हजार पण, क्रोधवश देनेसे तीन हजार पण, अज्ञानतासे देने पर दो सौ पण और असावधानतासे झूठी गवाही देने पर एक पण दण्ड होता है। राजाको सत्यधर्मके पालनार्थ और अधर्मके शासनके लिए उक्त दण्डविधान करना चाहिए। परन्तु क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण यदि बारम्बार मिथ्या साक्ष्य दें, तो उन्हें पूर्वोक्त दण्ड दे कर देशसे निकाल देना चाहिए। ब्राह्मणको अर्थदण्ड न करके, सिर्फ निर्वासन-दण्ड ही देना चाहिए।

निःक्षेप—यदि कोई व्यक्ति विश्वासपूर्वक किसीके पास धन गच्छित (धरोहर) रखे और उसे फिर वह वापिस न दे, तो राजाको उचित है कि उसे सुवर्णादि-चोरके समान दण्ड दें। जो व्यक्ति मिथ्या प्रतारणादिके द्वारा परधन हरण करता है, उसको तथा उसके सहायकोंको वध-दण्ड मिलता है।

अस्वामि-विक्रय—जो अस्वामी हो कर स्वामीकी अनुमतिके बिना उसकी चीज बेचता है और वह व्यक्ति यदि द्रव्य-स्वामीके वंशका कोई हो, तो उसे ६ सौ पण दण्ड देना चाहिए और यदि द्रव्य-स्वामीके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध न हो, तो उसे चोरदण्डसे दण्डित करना चाहिए।

सम्भूयसमुत्थान—बहुतसे मिल कर काम करें, उनमेंसे परस्परका अंश भी यथा नियमसे विभाग कर लें। यदि मोहवश इससे अन्यथा करें, तो राजाको चाहिए कि उसको चौर्यके निमित्त एक सुवर्णका दण्ड दें।

क्रयविक्रयानुशय--क्रय वा विक्रय करके जो पीछे अनुताप करता है, वह उस द्रव्यको दश दिनके भीतर फिरती दे वा फिरती ले सकता है। परन्तु दश दिनके बाद इस तरह फिरती लिया वा दिया नहीं जा सकता। यदि बलपूर्वक लौटा दे वा फिरती ले, तो उसको ६ सौ पणका दण्ड होता है।

दोषविशिष्टकन्यादान—दोषविशिष्टा कन्याके अवगुणोंको छिपा कर यदि उसका कोई सम्प्रदान करे,

तो राजा उसे ७६ पणका दण्ड देता है। जो व्यक्ति द्वेषके कारण किसी कन्या पर 'क्षतयोनि है,' 'कुमारी नहीं है' कह कर दोष लगाता है और उसे प्रमाणित नहीं कर सकता राजा उसे सौ पणका दण्ड देता है।

स्वामि-पाल विवाद—पशुओंके बारेमें स्वामी और पालक नियमका व्यतिक्रम करे, तो राजाको विचार पूर्वक दण्ड देना चाहिए। यदि कृषकके दोषसे शस्यको हानि हो, तो राजा उसे जितना शस्य राजाका प्राप्य है, उससे दश गुना दण्ड दे। स्वामी और पशुपालके रक्षण के दोषसे पशुद्वारा शस्य नष्ट होने पर भी राजाको उक्त प्रकार दण्डविधान करना चाहिए।

वाक्पारुष्य (गालीगलौज)—क्षत्रिय यदि ब्राह्मणको गाली देवे, तो उसे सौ पण, वैश्यको डेढ़ वा दो सौ पण और शूद्रको वध (अर्थात् दशविध शारीरिक दण्डोंमेंसे कोई एक) दण्ड देना चाहिए।

ब्राह्मण यदि क्षत्रियको गाली दे, तो उसे ५० पण दण्ड देना पड़ता है, वैश्यको दे तो २५ पण और शूद्रको दे तो १२ पण दण्ड होता है। द्विजातियोंमें, समवर्णमें परस्पर अपभाषण होने पर १२ पण दण्ड होना चाहिए। किन्तु यदि कोई अकथ्य गाली-गलौज करे तो उसे पूर्वोक्त दण्डसे दूना दण्ड देना चाहिए।

एक जाति अर्थात् शूद्र यदि द्विजातियोंके प्रति कठिन वाक्यका प्रयोग करे, तो शूद्रको जिह्वाच्छेदका दण्ड मिलना चाहिए। दर्पित भावसे शूद्र यदि ब्राह्मणको धर्मोपदेश दे तो राजाको उसके मुंह और कानमें गरम तेल डलवा देना चाहिए। किन्तु यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको विद्या, देश, जाति, संस्कार और कर्मके विषयमें दर्प करके अन्यथा कुछ कहे, तो उसे दो सौ पण दण्ड होना चाहिए।

माता, पिता, पत्नी, भ्राता, पुत्र अथवा गुरु, इनको गाली देनेसे एक सौ पण दण्ड होना चाहिए।

दण्डपारुष्य (मारपीट)—यदि अन्त्यज (अर्थात् शूद्र) किसी भी अङ्गसे श्रेष्ठ जातिको मारे, तो राजाको उचित है कि वह उसके उस अङ्गको छेद दे। शूद्र यदि श्रेष्ठ जातिको मारनेके लिए हाथ या डंडा उठावे, तो उसे हस्तच्छेदका दण्ड मिलना चाहिए और यदि पदद्वारा आघात किया हो, तो पदच्छेद होना उचित है।

शूद्र यदि ब्राह्मणके साथ एक आसन पर बैठे तो राजाको उचित है कि उसके कटिदेश पर लौहमय तप्त शलाका दाग कर देशसे निकाल दें अथवा मरने न पावे इस ढंगसे उसका पश्चात्भाग (चूतड़) काट लें। दर्प करके यदि शूद्र ब्राह्मणके शरीर पर थूक दे, तो उसके ओष्ठाधर छेद देना चाहिए; पेशाब करनेसे लिङ्गच्छेद, अधोवायु त्यागनेसे गुह्यदेश छेदन, और अहङ्कारपूर्वक यदि हस्तद्वारा ब्राह्मणके केश धारण करे वा हिंसाजन्य पदद्वय और डाढ़ी पकड़े तो उसके दोनों हाथ छेद देना चाहिए। समान जातिमें यदि कोई किसीका चर्मभेद अथवा रक्तदर्शन करे, तो उसे एक सौ पण दण्ड होगा। मांसभेद-कारीको ६ निष्क दण्ड होगा। अस्थि भेद करनेवालेको निर्वासनदण्ड होगा। मनुष्य अथवा पशुओंको मार कर पीड़ा देनेसे पीड़ाके अनुसार दंड होगा। अङ्गभेद, क्षत वा रक्तपात होने पर, मारनेवालेको आहत व्यक्तिके आराम पड़नेके लिए औषध और पथ्य आदिका खर्च देना पड़ता है; नहीं देनेसे उस व्ययके समान दंड होता है।

चौर्यादि—मालिकके सामने बल-पूर्वक जो चोरी की जाती है, उसे साहस कहते हैं और असमक्षमें छिप कर चोरी करनेको चोरी। यदि कोई किसीकी चीज ले कर अस्वीकार करे कि, "मैंने नहीं ली," तो उसे भी चोरी कहते हैं। चोर जिन जिन अङ्गोंसे चोरी करता है, राजाको उचित है कि उसके वे अङ्ग छेद दें, जिससे फिर वह चोरी न कर सके। पिता, आचार्य, भार्या, पुरोहित आदि सभी दण्डनीय हैं। राजा यदि स्वयं अपराध करें तो उन्हें भी दंड ग्रहण करना पड़ता है। राजा स्वयं जो अर्थदंड देंगे, उसे पानीमें डाल देंगे वा ब्राह्मणको दे देंगे।

चोरी करनेवाला गुणदोषज्ञ यदि शूद्र हो तो अष्टगुण; इसी प्रकार वैश्य चोरको १६ गुण क्षत्रिय चोरको ३२ गुण और ब्राह्मण चोरको ६४ गुण दंड दिया जाता है। यदि ब्राह्मण बहुत गुणवान् हो, तो शतगुण दंडकी व्यवस्था करनी चाहिए; उससे भी अधिक गुणवान् होने पर १२८ गुण अधिक दंड होना चाहिए।

परस्त्री वा वेश्यागमन—स्त्री-संग्रह और परदारसम्भोगसे लोकमें वर्णसङ्कर सन्तान उत्पन्न होती है और उससे नाना प्रकारके अधर्म एवं सर्वनाश उपस्थित होते हैं। इसलिए परदारसम्भोगमें प्रवृत्त लोगोंके लिए नाना प्रकार उद्वेगजनक नासाकर्णच्छेदनादि कठोर दंड-विधान करना उचित है। परस्त्रीको सुगन्ध माला आदि भेजना, उससे परिहास करना, आलिङ्गन करना, उसके अलङ्कार छूना, वस्त्र पकड़ना, उसके साथ एक शय्या पर सोना और एक साथ भोजन करना इत्यादि अपराध करनेवालोंकी गणना स्त्री-संग्रहण रूपमें करनी चाहिए। स्त्रियोंके अपस्थान पर यदि पुरुष हाथ लगावे वा स्त्री यदि पुरुषके अपस्थानको स्पर्श करे और पुरुष कुछ न कहे, तो यह दोष सानुमत स्त्रीसंग्रहपदवाच्य होगा।

शूद्र यदि अकामा ब्राह्मणोंके साथ उक्त प्रकार व्यवहार करे, तो उसे प्राण दंड होगा। चारों ही वर्णके लिए भार्या सर्वदा अत्यन्त रक्षणीया है। भिक्षाजीवी, बन्दी, ऋत्विक् और सूपकारादि कारुकर, ये लोग परस्त्रीके साथ अनवारित भावसे बात चीत कर सकते हैं; किन्तु स्वामीके निषेध कर देने पर उन्हें बोलना बन्द कर देना चाहिए। निषेध करने पर भी जो बात चीत करता है, उसे एक सुवर्ण दण्ड देना पड़ता है।

ऊपर जो विधि लिखी गई है, वह नट, नर्तक वा भार्याजीवी आदि नीचोंकी स्त्रियोंके लिए लागू नहीं हो सकती। तोभी उपर्युक्त व्यक्तियोंकी स्त्री वा दासीके साथ छिप कर व्यभिचार करनेवालोंको किञ्चित् दण्ड देना उचित है।

अकामा कन्याके साथ सम्भोग करनेसे सद्यः शारीरिक दण्ड होगा। समानजातीय अकामा कन्या-गमनमें शारीरिक दण्ड नहीं है। अपकृष्ट जातीय स्त्री यदि अपनेसे उत्कृष्ट जातीय पुरुषको भजना करे, तो उसे कुछ भी दण्ड नहीं होगा। जो पुरुष दर्प करके बल-पूर्वक समान जातीय पर स्त्रीकी योनिमें अङ्गुलि प्रक्षेप करे, उसकी दो अङ्गुलि उसी समय छेद देनी चाहिए और ६०० पण भी दण्ड देना चाहिए। सकामा समानजातीय स्त्रीके साथ यदि उक्त रूप व्यवहार किया जाय, तो उसकी अङ्गुलि नहीं छेदी जायगी; किन्तु अत्यासक्ति निवारणके लिए दो सौ पण दण्ड अवश्य होगा। यदि कोई कन्या अन्य कन्याकी योनिमें उँगली डाले, तो उसे दो सौ पण दण्ड तथा दूना शुल्क और दश बेंत मारना उचित है। (मनु ८। ३६९)

यदि वयस्का स्त्री-कन्याको उक्त प्रकारसे नष्ट करे, तो उसका मस्तक मूंड कर अंगुलि छेद देना चाहिए और गदहे पर चढ़ा कर राजपथमें घुमाना चाहिए। जो स्त्री 'मैं धनकी कन्या हूं' यह समझ कर वा अपने सौन्दर्यके मदमें आकर अपने पतिको त्याग दे और परपुरुषके साथ रमण करे, तो उसे जनसमूहके बीचमें ले जाकर कुत्तोंसे नुचवाना चाहिए। पाप करनेवाले जार पुरुषको तप्त लोह पर सुलाकर जलाना चाहिए और जब तक वह भस्म न हो जाय, तब तक लकड़ी देते रहना चाहिए। एक बार दण्डित हो कर यदि फिर एक वर्ष बीतने पर वही अपराध करे तो उस दुष्टको दूना दंड देना चाहिए। व्रात्यजात स्त्री और चांडाली स्त्रीके साथ गमन करनेसे भी यही दंड देना चाहिये। रक्षिता हो वा अरक्षिता, शूद्र यदि द्विजातीय स्त्रीसे सम्भोग करें तो उसे लिङ्गच्छेद और सर्वस्व हरणका दंड देना चाहिए तथा भर्तृ आदि रक्षिता स्त्रीके साथ गमन करनेसे वध और सर्वस्वहरण दंड होगा। वैश्य यदि रक्षिता ब्राह्मणीसे रमण करे, तो उसे सहस्र पण दंड और गदहेके मूत्रसे मस्तक मुण्डन करना चाहिए।

वैश्य और क्षत्रिय यदि रक्षाहीना ब्राह्मणीके साथ रमण करे, तो उसे शूद्रवत् दण्ड होगा, अथवा दर्भ वा शर द्वारा ढक कर उसे जला देना उचित है। ब्राह्मण यदि रक्षिता ब्राह्मणीके साथ बलपूर्वक सम्भोग करे, तो सहस्र पण दण्ड और सकामा ब्राह्मणी-गमनमें ५०० पण दण्ड होगा। ब्राह्मणके समस्त पापयुक्त होने पर भी उसे सर्वस्व धनके साथ अक्षत शरीरसे निर्वासन दण्ड देना उचित है। वैश्य यदि रक्षिता क्षत्रिया स्त्रीके साथ गमन करे अथवा क्षत्रिय यदि इस प्रकारकी वैश्य-स्त्रीसे सम्भोग करे, तो दोनोंको अरक्षिता ब्राह्मणी-गमनमें जो दंड दिया जाता है वही दंड देना उचित है। ब्राह्मण यदि रक्षिता क्षत्रिया वा वैश्या स्त्री-गमन करे, तो सहस्र पण दण्ड होगा। वैश्य यदि अरक्षिता क्षत्रियाके साथ

सङ्गम करे, तो वैश्यको ५०० पण दंड होगा, क्षत्रियके लिए गधेके मूत्रसे मस्तक-मुंडन अथवा ५०० पण दण्डकी व्यवस्था है। अरक्षिता क्षत्रिया वा वैश्या-गमनमें ब्राह्मणको सहस्र पण दंड होगा। चण्डालादि स्त्रियोंके साथ गमन करनेसे भी ब्राह्मणके लिए उक्त दण्ड होता है। जिस राजाके राज्यमें दंडके भयसे कोई भी चोरी, परस्त्री-गमन, वाक्पारुष्य, साहस-दण्डपारुष्य आदि अपराध नहीं करता, वह राजा इन्द्रके समान प्रभावशाली है।

यदि कर्मक्षम ऋत्विक्‌को यजमान अकारण त्याग दे अथवा यदि निर्दोष यजमानको पुरोहित अकारण त्याग दे, तो दोनोंको एक सो पण दण्ड देना पड़ता है।

(मनु० ८।३८८)

पिता, माता, स्त्री और पुत्र इनको बिना पतित हुए, मोह-पूर्वक परित्याग करनेसे ६०० पण दंड होता है

द्विजातियोंमें, गार्हस्थ्यादि आश्रम-घटित शास्त्रानुष्ठानके विषयमें यदि परस्पर विवाद हो जाय, तो आत्महितकामी राजाको चाहिये कि उसी समय कोई दण्ड स्थिर न करें। ऐसी अवस्थामें जो जिस प्रकार संभ्रमके योग्य हैं, उनको उसी प्रकारसे पूजा करके सान्त्वना द्वारा उनके क्रोधका उपशम करना चाहिये और ब्राह्मणोंकी सहायतासे धर्मकी व्यवस्था समझा देनी चाहिए। कोई गृहस्थ यदि माङ्गलिक कार्यमें २० ब्राह्मणोंको भोज देना चाहे, और प्रतिवेशी अथवा तदनन्तरवर्ती अनुवेशी भोजनार्ह ब्राह्मणको छोड़ कर अन्य ब्राह्मणोंको बुलावे, तो राजाको उसे एक मासा चांदीका दण्ड देना चाहिये। स्वयं श्रोत्रिय होकर यदि कोई प्रतिवेशी वा अनुवेशी श्रोत्रिय साधुओंको विवाहादि भूति-कार्योंमें भोजन न करावे, तो उसे भोजनसे द्विगुण भोज्य द्रव्य और एक मासा सोना दण्डस्वरूप देना पड़ता है।

जो पण्य-वस्तुएँ राजाकी खास कहलाती हैं, अथवा जिनको देशान्तर ले जानेको राजाने मनाई कर दी है, उन वस्तुओंको यदि कोई व्यवसायी लोभमें आकर देशान्तर ले जाय, तो राजाको चाहिये कि उसका सर्वस्व हरण कर लें। राजा पण्य-द्रव्यके लभ्यांशमेंसे बीसवां भाग लेंगे। यदि कोई व्यक्ति शुल्क न देनेके अभिप्रायसे असत्मार्गका अवलम्बन करे, रात्रिको क्रय विक्रय करे वा बेची हुई चीजोंकी संख्या घटा कर कहे, तो उसे आपलापित राजदेयसे आठ गुना दण्ड मिलता है।

ब्राह्मण यदि प्रभुत्व एवं लोभके वशीभूत हो कर अनिच्छुक ब्राह्मणसे पैर धोना आदि दास्यकर्म करावे तो राजा उसके लिए ६०० पण दण्ड विधान करेंगे।

(मनु० ८ अ०)

याज्ञवल्क्यसंहितामें दंडविधिके संबन्धमें इस प्रकार लिखा है—

राजाको क्रोध और लोभशून्य हो कर धर्मशास्त्रानुसार विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ व्यवहारको विशेषरूपसे जान कर दण्ड विधान करना चाहिये।

दण्ड-पारुष्य—आघात, चिह्न और प्रयोजन-आदिको पर्यालोचना तथा जन-प्रवादके ऊपर निर्भर करके, किन्तु साक्षी-रहित विवादमें विशेष पर्यालोचना करके दण्ड देना चाहिए। शरीर पर भस्म, पङ्क अथवा धूलि देने पर दश पण दण्ड होगा। अपवित्र वस्तु पादधौत और निष्ठीवन जल स्पर्श करानेसे पूर्वोक्त दण्डको अपेक्षा दूना दण्ड होगा। सम-व्यक्तिके प्रति यह नियम है। उत्कृष्ट व्यक्ति वा परस्त्रीके प्रति ऐसा करनेसे दूना दंड और हीन व्यक्तिके प्रति ऐसा व्यवहार करनेसे आधा दंड होगा। चित्तवैकल्य वा मत्ततादि वश ऐसा करनेसे दंड नहीं होगा। स्वजातिको प्रहार करने वा उसके प्रति पैर उठानेसे दश पण दंड होगा। परस्पर हननार्थ शस्त्र उद्यत करनेसे उत्तम साहसका दंड होगा। पद, केश, वस्त्र अथवा हाथ पकड़ कर खींचनेसे दश पण दंड होगा। वस्त्र द्वारा बन्धन, गात्रमर्दन एवं आकर्षणपूर्वक पाद प्रहार करनेसे सौ पण दंड होगा। काष्ठादि प्रहारसे आहत व्यक्तिके रक्तपात न होने पर उस प्रहर्ता व्यक्तिको २२ पण और रक्तपात होने पर उससे दूना दंड होगा। हाथ पैर अथवा दाँत तोड़नेसे कान वा नाक काटनेसे पूर्व व्रणको ज्यादा बढ़ा देनेसे, और जिससे मनुष्य मुर्देके समान हो जाय ऐसी ताड़ना करनेसे मध्यम साहसका दंड देना चाहिये। गमन, भोजन और बात कहना बन्द कर देनेसे चक्षु और जिह्वा छेद देनेसे तथा ग्रीवा बाहु वा ऊरु छेदनेसे मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिए।

जिस अपराधमें एक व्यक्तिको जो दण्ड हुआ है, बहुतसे मिल कर एक व्यक्तिको मारें तो उस अपराधमें उससे दूना दण्ड भोगना पड़ेगा। दूसरेकी भित्ति मुगदर आदिसे अभिहत, विदारित, द्विधाकृत तथा भूमिशायित करनेसे उसका यथा—क्रमसे पांच दश और बीस पण दंड होगा, तथा गृह स्वामीको पुनः संस्कार करने योग्य धन देना पड़ेगा। जो परकीय गृहमें दुःखजनक कण्टकादि वा विषसर्पादि प्राणहर द्रव्य फेंकेगा, उसे क्रमशः १६ पण और मध्यम साहसका दण्ड होगा। छागादि क्षुद्र पशुको ताड़न, रक्तपात, शृङ्गादि छेदन एवं कर-चरणादि अङ्गच्छेदन करनेसे यथाक्रमसे दो पण चार पण और आठ पण दंड होगा। इनकी हत्या अथवा लिङ्गच्छेदन करनेसे मध्यम साहसका दंड होगा। गवादि महापशुके प्रति ऐसा व्यवहार करनेसे दूना दण्ड होगा।

जो साधारण वस्तुका अपलाप करता और दासीका धर्म्म नष्ट करता है, त्यागके उपयुक्त कारणके बिना ही पितामाता आदिको त्याग देता है, उसके लिए १०० पण दंड कहा गया है। रजक यदि शोधनार्थ समर्पित परकीय वस्त्रको पहने, तो तीन दंड, बेच दे; भाड़े पर दे, गिरवी रखे वा बान्धवोंको पहननेके लिए दे, तो उसे दश पण दंड होगा।

आयुर्वेदको बिना जाने ही, केवल जीविका निर्वाह करनेके लिए किसी पशुपक्षीकी मिथ्या चिकित्सा करनेसे, चिकित्सकको प्रथम साहसका दंड होगा; साधारण मनुष्यकी मिथ्या चिकित्सा करनेसे मध्यम साहस और राजपुरुषके साथ ऐसा व्यवहार करनेसे उत्तम साहसका दंड होगा। (याज्ञव० २ अ०)

वर्त्तमानमें ये दंडविधियाँ प्रचलित नहीं हैं। ब्रिटिश गवर्मेण्टने अब नये नये कानून चलाए हैं।

२४ कौरव पक्षीय एक वीर। इनके भाईका नाम दंडधार था। दंडधारकी मृत्युके बाद ये अर्जुनके हाथ मारे गये थे। (भारत कर्ण० १९ अ०) २५ द्वापरके एक राजाका नाम। (भारत आदि० ६७ अ०) २६ इक्ष्वाकुके सौ पुत्रोंमेंसे एक। ये शुक्राचार्यके शिष्य थे। २७ धर्मके पुत्रका नाम। दंडयति कर्त्तरि अच्। २८ राजा, दंडविधानकर्त्ता। २९ हलकी लम्बी लकड़ी।

दण्डक (सं० पु०-क्ली०) दंडइव कायति कै-क। १ छन्दोभेद। इस छन्दके प्रत्येक चरणमें २७ अक्षर होते हैं। दंडक दो प्रकारका होता है, एक गणात्मक और दूसरा मुक्तक। गणात्मक वह है जिसमें गणोंका बन्धन होता है अर्थात् किस गणके बाद फिर कौन गण आना चाहिये इसका नियम होता है। मुक्तक वह है जिसमें केवल अक्षरोंकी गिनती होती है अर्थात् जो गणोंके बंधनसे मुक्त होता है। किसी किसीमें कहीं कहीं लघु गुरुका नियम होता है। हिन्दी काव्यमें जो कवित्त और घनाक्षरी छन्द अधिक व्यवहृत हुए हैं वे इसी मुक्तकके अन्तर्गत हैं। २ इक्ष्वाकुराजाके एक पुत्रका नाम। ये शुक्राचार्यके शिष्य थे। इन्होंने एक बार गुरुकी कन्याका कौमार्य धर्म नष्ट किया। इस पर शुक्राचार्यने शाप दे कर उन्हें इनके पुरके साथ भस्म कर दिया। इनका देश जङ्गल हो गया और दंडकारण्य कहलाने लगा। (रामायण) ३ वातरोगविशेष, एक प्रकारका वातरोग। इस रोगमें हाथ, पैर, पीठ, कमर आदि अङ्ग स्तब्ध हो कर ऐंठसे जाते हैं। ४ डंडा। ५ दंड देनेवाला पुरुष, शासक। ६ दंडकारण्य। ७ शुद्धरागका एक भेद।

दण्डकन्दक (सं० पु०) दंडवत् कन्दो मूलं यस्य। धरणी कन्द, सेमरका मुसला।

दण्डकर्त्तृ (सं० त्रि०) दंडस्य कर्त्ता। जो दंड विधान करते हों।

दण्डकर्मन् (सं० क्ली०) दंडस्य कर्म। दंडविधायकका काम।

दण्डकल (सं० पु०) छन्दोभेद, एक छन्दका नाम। इसमें १०, ८ और १४के विरामसे ३२ मात्राएँ होती हैं।

दण्डका (सं० स्त्री०) दंडक स्त्रीलिङ्गत्वादत टाप्। नागवल्लीलता।

दण्डकाक (सं० पु०) दंडो यमदंडइव काकः, अमङ्गलसूचकत्वात् अस्य तथात्वं। द्रोण काक, काला कौआ, डोम कौआ।

दण्डकारण्य (सं० क्ली०) दंडकं नाम अरण्यं। दंडका वन, दंडक नामक राजाका राज्य। यह प्राचीन वन विन्ध्य पर्वतसे ले कर गोदावरीके किनारे तक विस्तृत था। इस वनमें श्रीरामचन्द्रजी वनवासके कालमें चौदह

वर्ष रहे थे। यहां शूर्पणखाके नाक-कान काटे थे और सीता हरण हुआ था। इस अरण्यका बहुत अंश आज भी वर्त्तमान है। यह स्थान बहुत रमणीय है। (रामायण)

दण्डकाष्ठ (सं० क्ली०) दंडार्थं काष्ठं। दंड सम्बन्धीय काष्ठ। दण्ड देखो।

दण्डकी (सं० स्त्री०) ढोलक।

दण्डगौरी (सं० स्त्री०) अप्सराभेद, एक अप्सराका नाम।

दण्डग्रहण (सं० क्ली०) दंडस्य ग्रहणं। संन्यासाश्रम अवलम्बन। इन आश्रमियोंके हाथमें आश्रम चिह्नस्वरूप एक एक दंड रहता है।

दण्डग्राह (सं० त्रि०) दण्डं गृह्णाति ग्रह-अण्। दण्ड-धारक, दण्ड रखनेवाला।

दण्डघ्न (सं० त्रि०) दंडेन देहेन हन्ति हन-टक्। १ दंडपारुष्यकर्त्ता, डंडेसे मारनेवाला। जिस राजाके राज्यमें चोर, परस्त्रीगामी, दंडपारुष्यकारी प्रभृति न हों वे इन्द्रलोकको पाते हैं। २ दंडको न माननेवाला, वह मनुष्य जो राजाके दिये हुए दंडको न मानता हो।

दण्डचक्र (सं० पु०) १ पुराणोक्त अस्त्रभेद। २ सैन्य विभागभेद।

दण्डचक्रादिन्याय (सं० पु०) न्यायभेद। न्याय देखो।

दण्डढक्का (सं० स्त्री०) दंडा ताड्यमाना ढक्का। वाद्य विशेष, दमामा, नगारा, धौंसा। इसका संस्कृत पर्याय—नाली, घटी, यामनाली, यमिरुका, यामघोष, दम्मम, दुन्दुभि, दुन्दु और गम्भीरिका है।

दण्डताम्री (सं० स्त्री०) दंडेन ताड्यमाना ताम्री ताम्र निर्मित वाद्यं। ताम्रीवाद्यभेद, वह जलतरङ्ग बाजा जिसमें तांबेकी कटोरियाँ काममें लाई जाती हैं।

दण्डत्व (सं० क्ली०) दंडस्य भावः भावे त्व। दंडता, दंडका भाव।

दण्डदास (सं० पु०) दंडादि धन शुद्धयर्थं दासः। राजकृत दंड शुद्धिके लिये दास्य स्वीकार करनेवाला, वह जो दंडका रुपया न दे सकनेके कारण दास हुआ हो। दास देखो।

दण्डदेवकुल (सं० क्ली०) दंडदेवस्य कुलं यत्र। धर्माधिकरण, पुलिस अदालत।

दण्डधर (सं० पु०) धरतीति धरः पचाद्यच् दंडस्य धरः। १ यम, यमराज। २ राजा, शासनकर्त्ता। राजा सभी लोगोंकी स्थितिके लिये दंड धारण करते हैं इसीलिये राजाका नाम दंडधर पड़ा है। ३ संन्यासी। (त्रि०) ४ लगुड़ धारक, डंडा रखनेवाला।

दण्डधार (सं० पु०) दंडं धरति धृ-अण्। १ यमराज। २ राजा। ३ स्वनामख्यात एक नृपति, एक राजाका नाम। इन्होंने क्रोधवर्द्धन असुरके अंशमें जन्म ग्रहण किया था। कुरु-पाण्डवकी लड़ाईमें यह दुर्योधनकी ओर था और अर्जुनसे वीर युद्ध कर मारा गया था। इसका भाई दंड भी इसी युद्धमें निहत हुआ था। (भारत कर्ण १८ अ०) ४ पांडव पक्षीय एक वीर, पाण्डव पक्षके एक योद्धाका नाम। यह पाँडवकी ओरसे लड़ा था और कर्णके हाथसे मारा गया था। (भारत कर्ण ५० अ०५) ५ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ६ दण्डधारक, दंड धारण करनेवाला, शासक।

दण्डधारण (सं० क्ली०) दंडस्य धारणं ६ तत्। १ दंड ग्रहण। २ संन्यास आश्रमका अवलम्बन।

दण्डधारी (सं० त्रि०) दंडं धरति दंड-धृ-णिनि। १ दंडधर, डंडा रखनेवाला। २ दंडाश्रमी, संन्यास आश्रम अवलम्बन करनेवाला।

दण्डधृश् (सं० पु०) दंडधारी।

दण्डन (सं० क्ली०) दंड ल्युट्। दंड देनेकी क्रिया, शासन।

दण्डनायक (सं० पु०) दंडं राज्ञः चतुर्थोपायं नयति नी-ण्वुल्। १ सेनापति। २ दंडप्रणेता नृप, दंडविधान करनेवाला राजा। ३ दंड देनेके अधिकारी, विचारपति, हाकिम। ४ सूर्यके एक अनुचरका नाम।

दण्डनिपातन (सं० क्ली०) दंडस्य निपातनं। दंड देनेकी क्रिया, शासन।

दण्डनीति (सं० स्त्री०) दण्डेन नीयते वा दंडो नीयते-ऽनया, नी कर्मणि करणे वा क्तिन्। १ अर्थशास्त्र, राजनैतिक शास्त्र, वह शास्त्र जिसमें राज्यशासन सम्बन्धी समस्त नियम और उपदेश हों, चाणक्य आदिके नीति-शास्त्र।

"दण्डेन नीयते चेदं दडं नयति वा पुनः।
दण्डनीतिरिति ख्याता त्रीन लोकानतिवर्तते" (भारत)

एक दण्डनीतिमें ही औशनसी आदि विद्याओंका वास है और उसीसे समस्त विद्याओंका प्रारम्भ कहा गया है। दमन ही एकमात्र दंड है। इस दंडमें राजा अवस्थान करता है; इस कारण राजाका नाम भी दंड है। राजा जिसके द्वारा लोगोंको संस्थापित करता है, उसे दंडनीति कहते हैं।

महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है—

भगवान् कमलयोनि ब्रह्माने लोकस्थितिके लिये दंडनीतिका प्रणयन किया है। इस नीतिशास्त्रमें अनेकानेक विषय हैं, यथा—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; सत्व, रज और तम ये मोक्षके तीन वर्ग; वृद्धि, क्षय और समानत्व नामक दंडज त्रिवर्ग; चित्त, देश, काल, उपाय कार्य और सहाय ये नीतिज षड्वर्ग; कर्मकांड, ज्ञानकांड और कृषि वाणिज्यादि जीविकाकांड; अमात्यरक्षार्थ नियुक्त चर और गुप्तचरोंका विषय, राजपुत्रके लक्षण, चरोंके विविध उपाय, साम, दाम, दंड, भेद, उपेक्षा, भेदकरण, मन्त्रण और विभ्रम, मन्त्रसिद्धि और असिद्धिका फल; भय, सत्कार और वित्तग्रहणार्थ अधम, मध्यम और उत्तम ये तीन सन्धियाँ, चतुर्विध यात्राकाल, त्रिवर्गका विस्तार, धर्मयुक्त विजय, अर्थद्वारा विजय और आसुरिक विजय; अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, बल और कोष इन पांच वर्गोंका त्रिविध लक्षण; प्रकाश्य और अप्रकाश्य सेनाका विषय, अष्टविध गूढ़ विषय प्रकाश, हस्ती, अश्व, रथ, पदाति, भारवह, चर, पोत और उपदेष्टा इन अष्टविध सेनाङ्गोंका विषय, वस्त्रादि और अन्नादिमें विषयोग; अभिचार, अरि, मित्र और उदासीनोंका विषय पथ-गमनके ग्रहनक्षत्रादि-जनित समस्त गुण, भूमिगुण, आत्मरक्षा, आश्वास, रथादि निर्माणका अनुसन्धान, मनुष्य, हस्ती, अश्व और रणसज्जाके उपाय, विविध व्यूह; विचित्र युद्ध-कौशल; धूमकेतु आदि ग्रहोंके उत्पात, उल्का आदिका पतन, सुप्रणालीसे युद्ध, पलायन, अस्त्रशस्त्रमें शाणप्रदान, अस्त्र-ज्ञान, सैन्य व्यसन, मोचन, सेनामें हर्षोत्पादन, पीड़ा, आपद्काल, पदाति-ज्ञान, खात, खनन, पताकादि प्रदर्शन-पूर्वक शत्रुके अन्तःकरणमें भय सञ्चारण, चोर, उग्र-स्वभाव, अरण्यवासी, अग्निदाता, विषप्रयोक्ता, प्रतिरूपकारी, प्रधान व्यक्तिके भेद, वृक्षच्छेदन, मन्त्रतन्त्रादिके प्रभावसे हस्तियोंका बल-ह्रास, शङ्का उत्पादन, अनुरक्त व्यक्तिके आराधन और विश्वासजनक द्वारा पर-राष्ट्रमें पीड़ा-प्रदान; राज्यकी ह्रास-वृद्धि और समता, कार्यसामर्थ्य, राष्ट्रवृद्धि, शत्रुमध्यस्थित मित्रोंका संग्रह, बलवानोंका विनाश-साधन और पीड़न, सूक्ष्म व्यवहार, खलका उन्मूलन, व्यायाम, दान, द्रव्य-संग्रह, अभृत व्यक्तियोंका भरण-पोषण, भृत व्यक्तियोंका पर्यवेक्षण, यथासमय अर्थदान, व्यसनमें अनासक्ति, भूपतिके गुण, सेनापतिके गुण, त्रिवर्गके कारण और गुण-दोष, असत् अभिसन्धि, अनुगतोंके व्यवहार, सबमें आशङ्का, अनवधानता-परिहार, अलब्ध विषयोंमें लोभ, लब्ध विषयोंकी वृद्धि, प्रवृद्ध धनके विधानानुसार सत्पात्रमें दान, धर्म, अर्थ और काम; व्यसनोंके विनाशार्थ अर्थदान; मृगया, अक्षक्रीड़ा, सुरापान और स्त्री-सम्भोग इन चार प्रकारके कामज तथा वाक्पारुष्य, उग्रता, दण्डपारुष्य निग्रह, आत्मत्याग और अर्थदूषण इन छः प्रकारके क्रोधज व्यसनोंका विषय, विविधयन्त्र और कार्ययन्त्र, चिह्नविलोप, चैत्य-छेदन, अवरोध, कृष्यादि कार्यका अनुशासन, नाना प्रकारके उपकरण; द्रव्योपार्जनके लिये युद्धयात्रा, युद्धोपाय, पणव, आनक, शङ्ख और भेरी इन छः प्रकारके द्रव्योंका विषय, लब्ध राज्यमें शान्ति स्थापन, साधुओंकी पूजा, विद्वानोंके साथ मित्रता, दान और होमका परिज्ञान, माङ्गल्य वस्तुका स्पर्श, शरीर-संस्कार, आहार, आस्तिकता, एक मार्गसे उन्नति लाभ; सत्य और मधुर वाक्य, सामाजिक उत्सव, गृहकार्य, चत्वरादि स्थानके प्रत्यक्ष और परोक्ष व्यवहारका अनुसन्धान, ब्राह्मणकी अदण्डनीयता, युक्त्यनुसार दण्डविधान, अनुजीवियोंमें जाति और गुणगत पक्षपात, नगरवासियोंकी रक्षाका विधान, द्वादश राजमंडल विषयक चिन्ता, बहत्तर प्रकार शारीरिक प्रतीकार; देश, जाति और कुलके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका उपाय; अर्थस्पृहा, कृष्यादि मूलकार्योंकी प्रणाली, मायायोग, नौकानिमज्जनादि द्वारा नदीका पथरोध इत्यादि।

इस शास्त्रके द्वारा जगत्के समस्त मनुष्य दण्ड-प्रभावसे पुरुषार्थ फलको प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं, इसलिए इसका नाम दण्डनीति पड़ा है। इस दंडनीतिमें ही

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्ग निहित है। ब्रह्माने पहले लक्षाध्यायको दंडनीति रची थी, बादमें प्रजावर्गको आयुकी अल्पता पर विचार कर उसको संक्षिप्त कर दिया। महेश्वरने इसे दश हजार अध्यायोंमें प्रसिद्ध किया। उक्त संक्षिप्त नीतिशास्त्र 'वैशालाक्ष'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। अनन्तर इन्द्रने उसका ५ हजार अध्यायोंमें वर्णन किया, जो 'बाहुदण्डक' नामसे विख्यात हुआ। बृहस्पतिने इस 'बाहुदण्डक' ग्रन्थका तीन हजार अध्यायोंमें प्रचार किया और वह 'बार्हस्पत्य' नामसे प्रसिद्ध हुआ। अन्तमें शुक्राचार्यने इस शास्त्रको एक हजार अध्यायोंमें रचा। इस प्रकारसे यह जगत्में प्रचारित हुआ। एक दण्डनीतिके प्रभावसे ही जन-समाजमें नीति और धर्मका प्रचार हुआ है।

(भारत भीष्मप० ५९ अ०)

२ प्रजाको दण्ड दे कर अथवा पीड़ित करके शासनमें रखनेकी राजाओंकी नीति, सेना आदिके द्वारा बल-प्रयोग करनेकी विधि।

दण्डनीय (सं० त्रि०) दण्ड-अनीयर्। दण्डार्ह, दंड देने योग्य।

दण्डनेतृ (सं० त्रि०) दण्डं नयति दंड-नी-तृच्। दण्ड-विधाता, सजा देनेवाला।

दण्डप (सं० पु०) दण्डेन पाति पा-क। दंड द्वारा पालक राजा, दण्डके द्वारा शासन करनेवाला राजा।

दण्डपांशुल (सं० पु०) दंडेन दंडधारणेन पांशुलः नीचः। द्वारपाल, दरबान।

दण्डपाणि (सं० पु०) दंडः यष्टिः पाणौ यस्य। १ यम। ये अपने हाथमें हमेशा दंड लिए रहते हैं। २ काशीस्थित भैरवभेद, काशीमें भैरवकी एक मूर्त्ति। पूर्णभद्र नामक किसी यक्षने महादेवकी आराधना करके एक पुत्र प्राप्त किया जिसका नाम रखा गया हरिकेश। हरिकेश बचपनहीसे महादेवका बड़ा भक्त था। पीछे उन्होंने महादेवके उद्देश्यसे कठोर तपस्या आरम्भ की। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। महादेव इनकी तपस्यासे प्रसन्न हो कर पार्वतीके साथ वहां पहुँच गये और हरिकेशका शरीर स्पर्श किया। इस पर हरिकेशके हृदयमें ज्ञानका उदय हुआ और अपने अभीष्ट देवको सामने देख वे फूले न समाये और उनकी स्तुति करने लगे। बाद शिवजी बोले.—'यक्ष! तुम काशीके दंडहर हो जा। वहांके दुष्टोंका शासन और साधुओंका पालन करना। आजसे तुम्हारा नाम दंडपाणि रहा। सम्भ्रम और उद्भ्रम नामके मेरे दो गण तुम्हारी सहायताके लिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। बिना तुम्हारी पूजा किये कोई काशीमें मुक्ति नहीं पा सकेगा। जो मेरे भक्त होंगे, उन्हें भी पहले तुम्हारी पूजा करनी पड़ेगी। देवगण और मानव समाजमें तुम ही प्रधान पूजनीय होंगे।' इतना कह कर महादेवने आनन्दकानन-में प्रवेश किया। दंडपाणि महादेवके आदेशानुसार काशीपुरका शासन कर रहे हैं। (काशीख० ३२ अ०)

३ स्वनामख्यात चन्द्रवंशीय नृपविशेष, चन्द्रवंशके एक राजाका नाम। ४ बुद्ध मूर्त्तिभेद, बुद्धदेवके एक मूर्त्तिका नाम।

दण्डपात (सं० पु०) दंडस्य पातः। सन्निपात रोग-विशेष। इसमें रोगीको नींद नहीं आती, वह इधर उधर पागलकी तरह घूमता है।

दण्डपातन (सं० क्ली०) दण्डस्य पातनं। दंड निक्षेप, डंडेका फेंकना।

दण्डपारुष्य (सं० क्ली०) दंडेन यत् पारुष्यं परुषता दंड्य-तेऽनेनेति दंडो देहस्तेन यत् पारुष्यं विरुद्धाचरणं। १ व्यवहार विषयभेद, दुष्टकार्य, मार पीट। दूसरेके शरीर पर हाथ पैर और अस्त्र आदिसे आघात करने तथा धूल मलमूत्र आदि फेंकनेको दंडपारुष्य कहते हैं अर्थात् देहके प्रति जो कुछ विरुद्धाचरण किया जाय, उसीका नाम दंडपारुष्य है। २ राजाओंके सात व्यसनों-मेंसे एक। ३ अठारह विवादोंमेंसे एक। दंड देखो।

दण्डपाल (सं० पु०) दण्डं शरीरं पालयति पालि-अण्। १ मत्स्यभेद, डांड़िका मछली। दण्डेन पालयति पालि-अच्। २ द्वारपाल, ड्योढ़ीदार, दरबान।

दण्डपालक (सं० पु०) दण्डपालात् कायति कै-क। शकुलमत्स्य, बाम मछली।

दण्डपाली (सं० स्त्री०) तुलायन्त्र, तराजू।

दण्डपाशक (सं० पु०) १ प्रधान दण्डदाता, दण्ड देनेवाला प्रधान कर्मचारी। २ घातक, जल्लाद।

दण्डपाशिक (सं० पु०) घातुक, जल्लाद।

दण्डपिङ्गलक (सं० पु०) दंडः देहः पिङ्गलोऽत्र। उत्तरस्थ देशभेद, एक देशका नाम जो उत्तरकी ओर पड़ता है।

दण्डप्रणाम (सं० पु०) दंडवत्, भूमिमें डंडेके समान पड़ कर प्रणाम करनेकी क्रिया।

दण्डबध (सं० पु०) दंडेन वधः। प्राणदण्ड।

दण्डबालधि (सं० पु०) दंड इव बालधिर्यस्य। हस्ती, हाथी।

दण्डबाहु (सं० त्रि०) दंड इव बाहुर्यस्य। १ दंडाकार बाहुयुक्त, जिसकी बाहु डंडेके आकारसी हो।

दण्डभीति (सं० स्त्री०) दंडस्य भीतिः ६-तत्। दंडित होनेका भय, सजा पानेका डर।

दण्डभृत् (सं० पु०) चक्रभ्रामणार्थं लगुड़ादिकं भ्रमति भृ क्विप् तुगागमश्च। १ कुम्भकार, कुम्हार। दंडं दमनं बिभर्त्ति। (त्रि०) २ दंडधारक, डंडा रखनेवाला।

दण्डमत्स्य (सं० पु०) दंडइव मत्स्यः। दण्डाकार मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली जो देखनेमें डंडे या सांपके आकारकी होती है, बाम मछली। इसका गुण—तिक्त, पित्तरक्त और कफनाशक, शुक्र तथा बलवर्द्धक है।

दण्डमातङ्ग (सं० पु०) तगर, एक प्रकारका पेड़।

दण्डमाथ (सं० पु०) दंडकारी माथः पन्थाः। प्रधान पथ, सीधा रास्ता।

दण्डमाथिक (सं० पु०) दंडमाथं धावति ठक्। प्रधान पथसे धावमान व्यक्ति. वह मनुष्य जो सीधे रास्तेसे जाता हो।

दण्डमानव (सं० पु०) दंडप्रधानो मानवः मध्यलो० कर्मधा०। दंडप्रधान जन, वह जिसे दंड देनेकी अधिक आवश्यकता पड़ती हो, बालक, लड़का।

दण्डमुद्रा (सं० स्त्री०) दंडाकारा मुद्रा। तन्त्रसारोक्त मुद्राभेद, तन्त्रकी एक मुद्रा। इसमें मुट्ठी बांधकर बीचकी उंगली ऊपरको खड़ी करते हैं।

दण्डयात्रा (सं० स्त्री०) दंडाय शत्रुदमनाय यात्रा या यात्रा प्रयाणं। १ दिग्विजय। २ सेनाकी चढ़ाई। ३ वरयात्रा, बारात।

दण्डयाम (सं० पु०) दंडं यच्छति यम-अण्। १ यमराज। २ दिवस, दिन। दंडे इन्द्रियदमने यामः संयमो यस्य। ३ अगस्त्य मुनि।

दण्डयोग (सं० पु०) दंडविधान, शान्तिप्रदान।

दण्डरी (सं० स्त्री०) दंडं तदाकारं राति रा-क-गौरा० ङीष्। डङ्गरी वृक्ष, एक प्रकारकी ककड़ी।

दण्डवत् (सं० त्रि०) दंडः विद्यतेऽस्य दंड-मतुप् मस्य वः। १ दंडविशिष्ट, दंडधारी। (स्त्री०) २ साष्टाङ्ग प्रणाम, पृथ्वी पर लेट कर किया हुआ नमस्कार।

दण्डवादिन् (सं० पु०) दंडेन वदति वद-णिनि। १ द्वारपाल। (त्रि०) २ दंडवक्ता, जो सजा देनेका डर दिखलाता हो।

दण्डवाच्यं (सं० क्ली०) अवस्थानभेद।

दण्डवासिक (सं० पु०) द्वारपाल, ड्योढ़ीदार, दरवान।

दण्डवासी (सं० पु०) दंडेन वसति वस-णिनि। १ द्वारपाल, दरवान। २ एक ग्रामका शासनकर्त्ता, गांवका हाकिम या मुखिया।

दण्डवाही (सं० पु०) दंडं वहति वह-णिनि। दंडधारक पुलिस कर्मचारी।

दण्डविधि (सं० स्त्री०) वह नियम वा व्यवस्था जो अपराधोंके दंडसे सम्बन्ध रखता हो, जुर्म और सजाका कानून। (Criminal law)

दण्डविष्कम्भ (सं० पु०) दंडः मन्थान दंडं विष्कभ्नाति निबध्नाति यत्र, वि-स्कन्भ अधिकरणे घञ् ततोषत्वं। मन्थनदंड बांधनेका स्तम्भ, मट्ठा मथनेका खंभा।

दण्डवृक्ष (सं० पु०) दंडाकारः पत्रादिहीनत्वात् वृक्षः। १ स्नुहीवृक्ष, थूहर, सेंहुड़। (Euphorbia) स्वार्थे कन्। दंड वृक्षक, एक प्रकारका पेड़ जिसमें पत्ते आदि कुछ भी नहीं होते। यह डंडेकी तरह खड़ा रहता है। इसीसे इसका नाम दंडवृक्ष पड़ा है।

दण्डव्यूह (सं० पु०) दंडसंज्ञको व्यूहः। व्यूहभेद, सेनाकी डंडेके आकारकी स्थिति। इसमें आगे सेनाध्यक्ष, बीचमें राजा, पीछे सेनापति, दोनों ओर हाथी, हाथियोंकी बगलमें घोड़े और घोड़ोंकी बगलमें पैदल सिपाही रहते थे। इस व्यूहका उल्लेख मनुस्मृतिमें आया है। अग्निपुराणमें इसके सर्वतोवृत्ति, तिर्यग्वृत्ति आदि अनेक भेद बतलाये गये हैं।

दण्डव्रतधर (सं० पु०) दंडस्य व्रतं तस्य धरः। १ दंडरूप व्रतधारी राजा। २ दंडधर, यम। (त्रि०) ३ दंडधारक, डंडा रखनेवाला।

दण्डसंहिता (सं० स्त्री०) दंडस्य संहिता शास्त्रं। दंडविषयक शास्त्र, फौजदारी आईन (Penal code)

दण्डसहाय (सं० पु०) दंडे सहायः। दुष्ट दमन प्रभृतिमें राजाका साहाय्य, वह सहायता जो दुष्टोंको दमन करनेके लिये राजाकी ओरसे पहुंचाई जाती है।

दण्डसेन (सं० पु०) १ पुरुवंशके एक राजा जो विष्वक्सेनके पुत्र थे। २ द्वापरयुगके एक राजाका नाम। (भा·त० आदिप० १अ०)

दण्डस्थान (सं० क्ली०) दंडस्य स्थानं ६-तत्। दंडका स्थानविशेष, वह स्थान जहां दंड दिया, जा सकता है। मनुने दंडके लिये १० स्थान निर्णय किये हैं,—उपस्थ, उदर, जिह्वा, दोनों हाथ दोनों पैर, चक्षु, नासिका, कर्ण, धन और देह। राजा अपराधके अनुसार उक्त दश स्थानोंमें दंडका विधान कर सकते हैं। (मनु ८।१२४-२५) दंड देखो।

दण्डहस्त (सं० क्ली०) दंडइव हस्तो वृन्तरूपो यस्य। तगरपुष्प, तगरका फूल।

दण्डा (सं० स्त्री०) नागवला, गंगेरन, गुलसकरी।

दण्डा (हिं० पु०) डंडा देखो।

दण्डाख्य (सं० क्ली०) तीर्थभेद, एक तीर्थस्थान जो चम्पा नदीके किनारे अवस्थित है। इसमें स्नान दानादि करनेसे हजार गो दान करनेका फल होता है।

दण्डाघात (सं० पु०) दंडेन आघातः ३-तत्। दंड द्वारा प्रहार, डंडेसे मारनेकी क्रिया।

दण्डाजिन (सं० क्ली०) दंडञ्च अजिनञ्च द्वयोः समाहारः। १ साधु संन्यासियोंके धारण करनेका दंड और मृगचर्म। तच्छलेन धार्यतया अस्त्यस्य अच। २ शठता, कपट वेश, झूठमूठका आडम्बर। कपटी बाहरसे तो दंड मृगचर्म आदि धारण करते, किन्तु भीतरसे कपट भरा रहता है। इसी कारण दंडा शब्दसे शठताका भी अर्थ होता है।

दण्डाज्ञा (सं० स्त्री०) दंडस्य आज्ञा। दंडादेश, सजा देनेका हुक्म।

दण्डादण्डि (सं० अव्य०) दंडैश्च दंडैश्च प्रहृत्य प्रवृत्तं युद्धं इच् समासान्तः पूर्वपददीर्घः। इच् कर्मव्यतिहारे। पा ५।४।१२७) परस्पर यष्टि द्वारा युद्ध, डंडेकी मार पीट, लट्ठबाजी।

दण्डादि (सं० क्ली०) दंड आदिर्यस्य। पाणिन्युक्त गणभेद पाणिनिका एक गण। दंड, मुसल, मधुपर्क, कशा, अर्घ, मेघ, सुवर्ण, उदक, वध, युग, गुहा, भाग, इभ और भङ्ग ये दंडादि गण हैं। (पाणिनि)

दण्डाधिप (सं० पु०) दंडस्य अधिपतिः ६-तत्। दंडाधिपति, राजा।

दण्डाधिपति (सं० पु०) दंडस्य अधिपतिः ६-तत्। दंड-देनेके अधिपति, राजा।

दण्डापतानक (सं० क्ली०) वातरोगविशेष, एक प्रकारकी वात-व्याधि। इसमें कफ और वातके बिगड़नेसे मनुष्यकी देह सूखे काठकी तरह जड़ हो जाती है।

दण्डापूपन्याय (सं० पु०) दण्डे दंडाकर्षे अपूपस्य तत्सम्बन्धस्य कर्षः तत्प्रतिपादकन्यायः। न्यायभेद, एक प्रकारका न्याय वा दृष्टान्तकथन जिसके द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जब किसीसे कोई कठिन कार्य हो गया तब उससे सम्बन्ध रखनेवाला सहज कार्य अवश्यही हुआ होगा। जैसे—कोई गृहस्थ अपने घरके किसी जगह डण्डेमें बांध कर मालपूआ रख गया हो और लौट कर उसने चूहेको डंडा खाते देखा हो, तो यह सहज ही समझमें आ जाता है कि उस चूहेने मालपूआ तो पहले ही उड़ा दिया होगा क्योंकि जब वह डंडा सरीखी कड़ी चीज खा रही है, तो उसने मालपूआ जैसी नरम और मीठी चीज न खायी हो यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता। अतएव निर्णय हुआ कि चूहेने अवश्य ही मालपूआ खाया है। इसी प्रकार किसी कष्टसाध्य कार्यकी सिद्धिके अनुमान करनेको दण्डापूपन्याय कहा जा सकता है। न्याय देखो।

दण्डायमान (सं० त्रि०) जो डंडेकी तरह सीधा खड़ा हो।

दण्डार (सं० पु०) दंड ऋच्छति ऋ-अण्। १ वाहन, गाड़ी, नाव आदि। २ मत्त हस्ती, मतवाला हाथी। ३ कुम्भकारचक्र, कुम्हारका चाक। ४ यन्त्रभेद, धनुष।

दण्डार्क (सं० क्ली०) चम्पा नदीके समीपस्थ तीर्थभेद, एक तीर्थ जो चम्पा नदीके किनारे पड़ता है।

दण्डालय (सं० पु०) १ न्यायालय जहांसे दंडका विधान हो। २ दंड दिये जानेका स्थान। ३ एक छन्द। कोई कोई इसे दंडकला भी कहता है।

दण्डासन (सं० क्ली०) आसनभेद एक प्रकारका आसन।

दण्डाहत (सं० क्ली०) दण्डेन आहतं। १ तक्र, छाछ, मट्ठा। (त्रि०) २ दंड द्वारा ताड़ित, डंडेसे मारा हुआ।

दण्डिक (सं० पु०) दंडोऽस्त्यस्य दंड-ठन्। (अत-इनिठनौ पा। ५।२।११५) १ दंडधारक, वह जो डंडा रखता हो। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। इसका गुण—तिक्त, कफ, वायु और पित्तनाशक तथा लघु है। (त्रि०) ३ दंडदाता, मारनेवाला।

दण्डिका (सं० स्त्री०) दंडिक टाप्। १ हारविशेष। २ रज्जु, डोरी, रस्सी। ३ श्रेणीकवृक्ष। ४ बीस अक्षरोंका एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें रगणके बाद एक जगण इस प्रकार गणोंका जोड़ा तीन बार आता है और अन्तमें गुरु लघु होता है।

दण्डित (सं० त्रि०) सञ्जातोऽस्य दंडतारकादित्वादितच्। कृतदंड, दंड पाया हुआ; जिसे दंड मिला हो। इसका पर्याय—दापित और साधित है।

दण्डिन् (सं० पु०) दंडोऽस्त्यस्य दण्ड-इनि। १ यम। २ नृप, राजा। ३ द्वारपाल। ४ मञ्जु-घास, मूंज। ५ सूर्यके एक पार्श्वचरका नाम। ६ जिनदेव। ७ दमनक वृक्ष, दौनेका पौधा। ८ चतुर्थाश्रमविशिष्ट, दंडाश्रमी, वह संन्यासी जो दंड और कमंडलु धारण करे वा किये हो। दंडी देखो। ९ दंडधारक, दंडधारण करनेवाला व्यक्ति। १० महादेव। ११ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

१२ संस्कृत साहित्यके एक प्रधान कवि। कोई कोई इन्हें व्यासके बाद ही आसन देनेके लिए प्रस्तुत हैं। एक उद्भट श्लोक है—

"जाते जगति वाल्मीके कविरित्यभिधीयते।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥"

वाल्मीकि द्वारा ही 'कवि' शब्द प्रचलित हुआ। अर्थात् वाल्मीकिके पहले किसीने कवि आख्या नहीं पाई, उनके बाद व्यासने जन्म लिया तो 'कवी' अर्थात् दो कवि हुए, फिर दण्डी हुए, जिससे 'कवयः' अर्थात् तीन कवि हो गये।

किसी किसीका कहना है कि उक्त श्लोक महाकवि कालिदासका है, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता; क्योंकि दण्डी महाकविके बहुत पीछे हुए हैं। पर हाँ, कालिदास नामधारी अन्य किसी परवर्ती व्यक्तिका हो सकता है।

ऊपरके श्लोकके अनुसार दंडीको कालिदाससे श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कालिदासकी रचना दंडीकी अपेक्षा कहीं उत्कृष्ट है। लेकिन दंडीके सुमधुर, सुललित और उत्तम छन्दोविन्यासको देख कर उन्हें भी महाकवि कह सकते हैं।

संस्कृतवित् पंडितोंका कहना है कि दंडीने तीन ग्रन्थ रचे थे जिनमें 'दशकुमारचरित' और 'काव्यादर्श' ये दो ग्रन्थ मिलते हैं। थोड़े दिन हुए, प्रो० पिस्चेल साहबने प्रकट किया था कि शूद्रक-रचित मृच्छकटिका नामक जो नाटक है, वही दंडीका तृतीय ग्रन्थ है। उनका विश्वास है, कि दंडीने काव्यादर्शमें (२।३६१) जो यह श्लोक लिखा है कि—

'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥"

वह मृच्छकटिकके प्रथमाङ्कसे उद्धृत किया गया है। दंडीने कभी भी दूसरेका श्लोक उद्धृत नहीं किया। इसलिये मृच्छकटिक दंडीका ही रचा हुआ मालूम पड़ता है। मृच्छकटिकमें जिस ढङ्गसे मानव-जीवनके घटना-वैचित्र्यका वर्णन किया गया है, दंडीके दशकुमारमें भी वही ढङ्ग पाया जाता है *।

पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्नने इसके उत्तरमें प्रमाणित किया है कि "उक्त श्लोक दंडीका रचा हुआ नहीं है; अन्यान्य अलङ्कारशास्त्रोंमें भी इसका उल्लेख है। दंडीने काव्यादर्शमें महाभारत, शकुन्तला तथा शिशुपालवधसे भी कोई कोई श्लोक मूलतः वा सामान्यतः उद्धृत किए हैं जैसा कि नीचेके श्लोकसे स्पष्ट प्रतीत होता है—

"पूर्वशास्त्राणि संहृत्य प्रयोगानुपलभ्य च।
यथासामर्थ्यमस्माभिः क्रियते काव्यलक्षणं॥'

पूर्व शास्त्रसे संग्रह किया है यह कवि स्वयं स्वीकार करते हैं। ऐसी दशामें मृच्छकटिकके वचन (श्लोक)

---

* Pischel's edition of Rudrata's Cringaratilaka and Rayyaka's Sahridayalila.

काव्यादर्श में रहनेके कारण मृच्छकटिकको दंडि-रचित नहीं कहा जा सकता। विशेषतः दशकुमारचरितकी आड़म्बर-युक्त भाषा और मृच्छकटिककी सरल भाषा इन दोनोंकी पर्यालोचना करनेसे दोनों ग्रन्थ एक व्यक्तिके लिखे हुए हैं, यह कदापि नहीं कहा जा सकता। मृच्छकटिकके रचयिता शूद्रक हैं जो दंडीसे बहुत पहले हुए हैं, इसके बहुत प्रमाण भी हैं † शूद्रक देखो।

बहुतोंका मत है कि दंडी ६ठीं शताब्दीमें आविर्भूत हुए थे। कोई कहते हैं कि काव्यादर्शमें (१।१२) 'छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपञ्चो निदर्शितः।' इस वचनमें 'छन्दोविचिति'का उल्लेख है और वही दंडीका तीसरा ग्रन्थ है और किसी किसीका यह कहना है, कि 'दशकुमारका' उत्तरार्द्ध दंडीका रचा हुआ नहीं है।

१३ संस्कृत भाषामें अनामयस्तोत्रके रचयिता।

१४ काव्यप्रकाशके एक टीकाकार।

१५ नाममाला § नामक संस्कृत कोषके रचयिता।

दण्डिमन (सं० पु०) दंडस्य भावः कर्म वा इमनिच्। दंडभाव, दंड देनेका काम।

दण्डी—हिन्दूका एक उपासक संप्रदाय। ये लोग दंड और कमंडलु लिए इधर उधर भ्रमण करते हैं, इसी कारण इनका नाम दंडी पड़ा। ब्राह्मणके सिवा और किसीको दंडी होनेका अधिकार नहीं है। फिर पिता, माता, पुत्र, कन्या और भार्याके रहते भी दंडी होना निषेध है। (निर्वाणतन्त्र १३ पटल)

पिता माता इत्यादिके नहीं रहने पर ब्राह्मण जब संन्यासाश्रम ग्रहण करनेके नितान्त उत्सुक हों, तभी वे किसी दंडी गुरुके पास जा सकते हैं। दंडी गुरु भी फिर उन्हें विशेषरूपसे जांचकर ज्ञातव्य विषय जान लेते और जब उन्हें अच्छी तरहसे मालूम हो जाता है कि यथार्थमें दंडी होनेकी इनकी गहरी उत्कण्ठा है, तब उन्हें मन्त्र दान करते हैं।

मन्त्रप्रदानका नियम यह है,—गुरु पहले शिष्यके शरीरमें फूत्कार दे कर प्राण प्रतिष्ठा करते और पीछे अन्नाशनादि सभी संस्कार फिरसे करते हैं। इसके उपरान्त दशाक्षर मन्त्र देते हैं। शिष्य इस मन्त्रको मूल मन्त्र समझ कर जप करता है। मन्त्र लेते समय उसकी शिखा मूंड़ दी जाती और जनेऊ उतार कर भस्म लगा दिया जाता है। पहला नाम भी बदल दिया जाता है। इस प्रकार यथाविहित क्रियादि कर चुकनेके बाद गुरु दण्ड, कमण्डलु और गेरुआ वस्त्र देते हैं। दण्ड ही दण्डियोंके लिए अत्यन्त आदरकी वस्तु है, क्योंकि वे इसके ऊपर महामायाकी कल्पना करके पूजा करते हैं।

दण्डीलोग गेरुआ वस्त्र पहनते, सिर मुड़ाये रहते और भस्म तथा रुद्राक्षकी माला धारण करते हैं। ये लोग अग्नि, धातु, वा धातव पात्रादि स्पर्श नहीं करते, सुतरां अपने हाथसे रसोई नहीं बना सकते हैं। साथमें यदि कोई ब्रह्मचारी रहे, तो उन्हींसे रसोई बना कर खा सकते, अन्यथा किसी ब्राह्मणके घरसे पक्की रसोई मांग कर खा सकते हैं। सोनेके लिए इन्हें केवल एक छोटी चटाई और एक तकिया चाहिये। इनके लिए दो बार भोजन करना तथा ब्राह्मणके अतिरिक्त और किसी दूसरी जातिका अन्न खाना निषेध है। इन सब नियमोंका बारह वर्ष तक पालन करके बाद दंडको जलमें फेंक दंडी परमहंस आश्रमको प्राप्त करता है।

किन्तु कोई कोई बारह वर्षके पहले ही दंड फेंक देता और कोई थोड़े ही दिन तक इस आश्रममें रहता है। दंडियोंके साधारणतः विशुद्धाचारी होने पर भी तान्त्रिक दंडियोंके लिए छिप कर मद्यमांसादि व्यवहार करनेकी व्यवस्था लिखी है—

"पंचतत्त्वं सदा सेव्यं गुप्तभावे जितेंद्रियः।"
(प्राणतोषिणी)

किन्तु ऐसी व्यवस्था रहने पर भी कितने तान्त्रिक दंडी लोग मद्यमांसादिका व्यवहार नहीं करते। जो करते भी हैं, वे बहुत छिप कर।

निर्गुण ब्रह्मोपासना ही दंडियोंका प्रधान धर्म है। लेकिन जो इस प्रकारकी उपासना नहीं कर सकते उनके लिए शिवादिकी उपासना लिखा है।

---

† Proc. of the Asiatic Society of Bengal, 1887, p. 198.

§ 'नाममाला' नामक और एक संस्कृत कोष है जिसके रचयिता धनंजय कवि हैं। यह ग्रन्थ छप चुका है।

इस धर्मसम्प्रदायमें जो विशेष विद्वान् हैं, वे तो अपना अधिकांश समय अध्ययनादिमें बिताते हैं। वे मीमांसा, न्याय, वेदान्त और अन्यान्य शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं। बहुतसे ब्राह्मण पंडित उनके समीप शिक्षा प्राप्त करनेके निमित्त आते हैं।

मरने पर दंडियोंका शवदाह नहीं होता, या तो शव मिट्टीमें गाड़ दिया जाता या नदीमें फेंक दिया जाता है। काशीमें आज भी बहुतसे दंडी दिखाई देते हैं।

फिर एक दूसरी श्रेणीके दंडी हैं जो अपने परिवारके साथ रहते हुए भी दंडी कहलाते हैं। ये लोग सांसारिक विषय वासनामें लिप्त रहते हैं। इनकी उपाधि 'तीर्थ' 'आश्रम' आदि हैं। यही नहीं, वरन् कभी कभी दंड, कमंडलु और गेरुआ वस्त्रके साथ तीर्थयात्राको निकलते हैं। काशी जिलेमें कई जगह इस सम्प्रदायके लोग देखे जाते हैं। ये लोग अपने सम्प्रदायमें ही विवाह करते न कि अपने मठके दंडीके घरमें।

इस घरबारी (गृहस्थ) दंडीके ऊपर एक गल्प है। कितने संन्यासियोंके मुखसे ऐसा सुना जाता है कि कोई सुरसिक दंडी किसी स्त्रीके रूप पर मोहित हो उसे लेकर संसारी हो गये थे। उसीसे घरबारी (गृहस्थ), दंडी ऐसा नाम चला आ रहा है।

वैष्णव दण्डी नामक एक और श्रेणीके दण्डी हैं। ये लोग अपने साथ त्रिदण्डी अर्थात् तीन दण्डको एकमें बांध इधर उधर लिए फिरते हैं। चतुर्भुज नारायण इनके उपास्य देवता हैं। ये लोग शिखा छोड़ कर तमाम सिर मुड़ा देते, गेरुवा वस्त्र पहनते तथा गलेमें तुलसीकाष्ठ और कमलवीजकी माला एवं यज्ञोपवीत धारण करते हैं। वैष्णव दंडी बड़े शुद्धाचारी होते हैं, यथासमय वेदाध्ययन और नित्य क्रिया किया करते हैं। इन लोगोंका भोजन, अग्निस्पर्श, कौपीन और कमंडलुधारण तथा ऊर्द्धदैहिक सभी क्रियाएं शैव दण्डियों सरीखी हैं; किन्तु कुलाचारी शैव दंडियोंके जैसा कोई मद्यमांसका व्यवहार नहीं करते।

दण्डोत्पल (सं० क्ली०) दण्डयुक्तं उत्पलमिव। वृक्षभेद, एक पौधेका नाम। (Canscorda decussata) यह एक प्रकारका शाक जातीय क्षुप है। कमलके जैसा इसका कुसुमस्थित वृन्त दण्डकी तरह लम्बा होता है, इसीसे इसे दण्डोत्पल कहते हैं। पीला, लाल और सफेद फूलके भेदसे यह तीन प्रकारका होता है। दंडोत्पलके विषयमें बहुतोंका मतभेद देखनेमें आता है।

इसे कुछ लोग गूमा, कुछ लोग कुकरौंधा और कुछ बड़ी सहदेया समझते हैं। कोई कोई कहते हैं, कि इसका नाम दण्डकलस है। अब यह देखना चाहिए, कि दण्डोत्पलकी प्राकृतिक संज्ञाको यदि दण्डकलस कहें, तो द्रोणपुष्पीके विषयमें भेद पड़ जाता है। क्योंकि द्रोणपुष्पीको ही लोग दण्डकलस कहते हैं, कारण इसमें द्रोणकलशके जैसा छोटे छोटे सफेद दलयुक्त पुष्प लगते हैं। फल भी ठीक गोशीर्षककी आकृतिका होता है, इसीसे उसे गोशीर्षक भी कहते हैं। उड़ीसामें यह गोंइच और हम लोगोंके देशमें गूमा नामसे मशहूर है। दण्डोत्पलको कहीं कहीं शङ्खपुष्पी वा शङ्खाहुली कहते हैं। किन्तु शङ्खपुष्पी और दण्डोत्पल भिन्न भिन्न जातिका पौधा है। शायद मालूम पड़ता है कि इसके तीन भेद जो बतलाये गये हैं; उनमेंसे शुक्लपुष्प दण्डोत्पलको शङ्खाहुली और पीतपुष्प दण्डोत्पलको गोबरिया कहते हैं। गोबरियाका अपभ्रंश गोवन्दिनी है। अरुणपुष्प दण्डोत्पलको उनसे भिन्न बतलाया है, लेकिन यह युक्तिसङ्गत नहीं है। क्योंकि भावप्रकाशमें उक्त तीनों प्रकारके पुष्पोंको कुकरौंधाके अन्तर्गत माना है। रत्नमालामें उसे कुकरौंधा, गोबरिया और गोच्छाल नामसे उल्लेख किया है। इससे यह साबित होता है, ये तीनों वृक्ष ही दण्डोत्पल नहीं है और न इनके फूल ही कमलके जैसे लम्बे होते हैं। अब यह देखना आवश्यक है कि किस जातिके वृक्षको दण्डोत्पल कह सकते हैं। जब पहले यह कहा जा चुका है कि दीर्घवृन्तयुक्त कमलके सदृश जिसका फूल होता है वही दण्डोत्पल है तब सहदेव जातीय पुष्पशाकको ही दण्डोत्पल कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं। क्योंकि इसका फूल उत्पल सा और वृन्त भी लम्बा होता है। लोग इसके पौधेको अकसर दीवालके ऊपर लगाया करते हैं। इसके पत्ते हरसिंगार (सिउली)के पत्ते सदृश, पर उनसे कुछ मोटे होते हैं।

इसमें वृन्तके ऊपर स्वल्प दलयुक्त चन्द्रमल्लिका पुष्पाकृतिके पुष्प लगते हैं। यह पुष्प प्रस्फुटित हो कर जब सूख जाता है, तब उससे बहुत बारीक रूई निकल कर हवामें इधर उधर उड़ती है। यही यथार्थ में श्वेतपुष्प दण्डोत्पल है। बहु दलयुक्त सहदेवीको पीत दण्डोत्पल और इसी जातिके अरुण पुष्पको अरुण दण्डोत्पल कह सकते हैं। पीत दण्डोत्पलका नामान्तर गोवन्दनी और गन्धवल्ली है। इसका गुण—क्षय, श्वास और कासनाशक तथा अग्निदीपक है। (राजनि॰)

दण्डोत्पला (सं॰ स्त्री॰) श्वेत पुष्प दंडोत्पल, सफेद फूल वाला दंडोत्पल।

दण्ड्य (सं॰ त्रि॰) दंड कर्मणि यत्। दंडनीय, दंड पाने योग्य, जिसे दंड देना उचित हो।

दत् (सं॰ पु॰) दन्त पृषोदरादि॰ साधुः। दन्त, दांत।

दतवन (हिं॰ स्त्री॰) दतुअन देखो।

दतारा (हिं॰ वि॰) दाँतवाला, जिसमें दाँत हों।

दतिउर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत थाना जिलेके माहिम उपविभागका एक बन्दर। यह अक्षा॰ १९´ १७` उ॰ और देशा॰ ७२´ ५०` पू॰; माहिमसे १० मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। इस बन्दरके निकट एक दुर्गका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। शायद यह दुर्ग पोर्त्तुगीजोंसे बनाया गया होगा।

दतिया—१ बुन्देलखंडके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा॰ २५´२४` से २६´१७` उ॰ और देशा॰ ७८´१७` से ७८´५६` पू॰में अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ८३६ वर्गमील है। इसके पूर्वमें झांसी प्रदेश और तीनों ओर ग्वालियर राज्य पड़ता है। लोकसंख्या १५२० है।

१८०२ ई॰की बेसिनकी सन्धिके अनुसार बुन्देलखंडके अन्यान्य प्रदेशोंके साथ दतिया राज्य पेशवासे अंगरेजोंके हाथ सौंपा गया। १८०४ ई॰में अंगरेजोंने दतियाके राजा परीच्छित्के साथ सन्धि कर ली। राजा परीच्छित्के बाद उनके दत्तक पुत्र विजय बहादुर राज्य सिंहासन पर बैठे। १८५७ ई॰में राजा विजयकी मृत्युके बाद उनके पोष्य पुत्र भवानी राजा हुए। ये बुन्देला राजपूत हैं। इनका जन्म १८४५ ई॰में हुआ था। वर्तमान महाराजका नाम H. H. महाराज सर लोकेन्द्र गोविन्दसिंह बहादुर K. C. S. I. और युवराजका नाम राजा बहादुर बलभद्रसिंहजी है।

राज्यकी आमदनी प्रायः १००००००) रु॰की है। सैनिक विभागमें ८७ कमान, १६० गोलन्दाज, ७०० अश्वारोही और ३०४० पदातिक सेना हैं। राजसम्मानके लिये १५ तोपें छोड़ी जाती हैं।

२ बुन्देलखंडके दतिया राज्यका एक नगर। यह अक्षा॰ २५´ ४०` उ॰ और देशा॰ ७८´ ३०` पू॰ एक छोटे पहाड़के ऊपर अवस्थित है। यह आगरेसे १२५ मील दक्षिण-पश्चिम तथा समुद्रसे १४८ मील उत्तर-पूर्व आगरेसे समुद्र तक जानेवाले रास्ते पर पड़ता है। शहरके मध्यस्थलमें तरह तरहके फल वृक्ष तथा प्रमोद उद्यानसे समवलित राज-प्रासाद है। यहांसे प्रायः ४ मीलकी दूरीमें बहुतसे जैनमन्दिर देखे जाते हैं।

दत्त (सं॰ त्रि॰) दीयते इति दा-क्त। १ रक्षित, बचाया हुआ। २ कृत दान, दिया हुआ। इसका संस्कृत पर्याय—विसृष्ट और विश्राणित है। (पु॰) दा-भावे क्त। ३ दान। ४ एक ऋषि। ये अत्रिके पुत्र और दत्तात्रेय नामसे प्रसिद्ध थे। भागवतके मतसे ये विष्णुके बाईस अवतारोंमेंसे छठें अवतार माने गये हैं। इन्होंने इस अवतारमें अलर्क और प्रह्लादके समीप आत्मविद्या वर्णन की थी। इनके पुत्रका नाम निमि था। ५ अग्निसिंहनन्दन जैनभेद, जैनियोंके नौ वासुदेवोंमेंसे एक। ६ एक राजाका नाम। (भारत १२।२३६।१५) ७ यदुवंशीय राजाधिदेवरके पुत्र। (हरिवंश ३८।२) ८ वैश्योंकी एक उपाधि। ९ ब्राह्मणोंमें शर्मन्, क्षत्रियोंमें वर्मन्, वैश्योंमें दत्त और शूद्रोंमें दास ये कई एक साधारण उपाधि हैं। १० एक प्रकारके बंगाली कायस्थोंकी उपाधि। गौड़में मल्लिकोंकी दत्त उपाधि है। कुल। ११ पुत्रभेद, दत्तक।

दत्तक (सं॰ पु॰) दत्त एव स्वार्थे कन्। द्वादशविध पुत्रोंके अन्तर्गत पुत्रविशेष, बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे एक, शास्त्रविधिसे बनाया हुआ पुत्र, वह जो वास्तवमें पुत्र न हो पर पुत्र मान लिया गया हो, गोद लिया हुआ लड़का, सुतबन्ना।

दत्तक-विषयक अनेक ग्रन्थ हैं, यथा—कुबेराचार्य, कोलप्पाचार्य, नन्द पंडित और राम पंडितकी चार 'दत्तकचन्द्रिका,' व्यासाचार्यका 'दत्तकदर्पण', अनन्तरामकी 'दत्तकदीधिति' तथा शास्त्री और विश्वनाथ उपाध्याय-प्रणीत 'दत्तकनिर्णय' अनन्तदेव-कृत 'दत्तकपुत्र

विधि', नन्दपंडित, माधवाचार्य और रामकवि-प्रणीत भिन्न भिन्न 'दत्तकमीमांसा', शूलपाणि-कृत 'दत्तकविवेक' और 'दत्तककल्पलता', अनन्तदेव-कृत 'दत्तकौस्तुभ', धर्मराजका 'दत्तरत्नाकर', माधव पंडितका 'दत्तादर्श', गङ्गदेव वाजपेयीकी 'दत्तकचन्द्रिका', नागोजी भट्टका 'दत्तकौस्तुभ', कृष्णमिश्रका 'दत्तकाभाषण', श्रीनाथभट्टका 'दत्तनिर्णय', 'दत्तकतिलक' आदि ग्रन्थ प्रचलित हैं।" इनमेंसे नन्द पंडितकी 'दत्तकमीमांसा' और देवानन्द भट्ट वा कुवेर प्रणीत 'दत्तकचन्द्रिका' ही सर्वापेक्षा मान्य है। ये दो ग्रन्थ भारतवर्षके प्रायः समस्त प्रदेशमें तुल्यरूपसे प्रामाण्य और समादृत होते हैं। 'दत्तक'के विषयमें, शास्त्रोंमें कोई विशेष मतभेद न होने पर भी जहां जहाँ 'दत्तकमीमांसा' और 'दत्तकचन्द्रिका'के मतमें अनैक्य है, वहां वहां 'दत्तकचन्द्रिका'का मत बङ्गाल और दक्षिणप्रदेशके किसी किसी स्थानमें आदृत होता है—और 'दत्तकमीमांसा'का मत मिथिला एवं काशीकी तरफ मुख्यरूपसे गण्य है।

पुत्र उत्पन्न हुए बिना पितृऋणसे उद्धार नहीं होता और पुन्नाम नरकका भोग होता हैं। इसलिए अपुत्रकको पुत्र ग्रहण करना चाहिए।

"अपुत्रेण सुतः कार्यः यादृक् तादृक् प्रयत्नतः ।
पिंडोदकक्रियाहेतोर्नामसंकीर्त्तनाय च ॥
अपुत्रेणैव कर्त्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिः सदा ।
पिंडोदकक्रियाहेतोर्यस्मात् कार्यः प्रयत्नतः ॥" (मनु)

अपुत्रक व्यक्तिको श्राद्ध तर्पण आदि तथा नामकी रक्षाके लिए अतिशय प्रयत्नके साथ पुत्र ग्रहण करना चाहिए अर्थात् विशेष प्रयत्न करके पुत्र-प्रतिनिधि दत्तकादि ग्रहण करना चाहिए। पुत्रके बिना अन्य किसी भी उपायसे नामकी रक्षा नहीं होती और पितृगण श्राद्धतर्पणादिके अभावसे नितान्त अवसन्न हो जाते हैं; इसलिए अपुत्रकके लिए दत्तकादिका ग्रहण करना अवश्य कर्तव्य है। पुत्र उत्पन्न हो कर यदि मर जाय तो पितृऋणसे तो मुक्त हो सकते हैं; परन्तु श्राद्धतर्पण आदि कुछ भी सम्पन्न नहीं होते। इस कारण मृतपुत्र व्यक्ति (अर्थात् जिसका पुत्र मर गया हो)-को भी पुत्र ग्रहण करना आवश्यकीय है।

"अपुत्रो मातृपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च ।
ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः ॥
पितृणामनृणश्चैव स तस्माल्लब्धुमर्हति ॥" (शौनक)

'मृतपुत्रो वा' इस पदसे व्यक्त होता है, कि मृतपुत्र व्यक्तिका पुत्र-ग्रहण करना अवश्यकर्तव्यमें गण्य है। परन्तु जिनके पुत्रकी तो मृत्यु हो गई है और पौत्र वा प्रपौत्र जीवित है, ऐसी दशामें उसको दत्तक ग्रहण करना पड़ेगा या नहीं? इसका समाधान इस प्रकार हैं—'उसको दत्तक ग्रहण करनेकी जरूरत नहीं; कारण पुत्र-ग्रहणका उद्देश्य नाम-रक्षा और पितृगणका श्राद्ध तर्पणादि कार्य सम्पन्न होना है और वह कार्य पौत्र वा प्रपौत्रसे भी हो सकता है। इसलिए उसको पुत्र-ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं। अपुत्रकको पुत्र प्रतिनिधि करना चाहिए। प्रतिनिधि शब्दसे क्षेत्रज आदि ग्यारह प्रकारके पुत्र समझना चाहिए।

"क्षेत्रजादीन् सुतानेतानेकादश यथोदितान् ।
पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान् मनीषिणः ॥" (मनु)

क्रियाके लोपके कारण मनीषियोंने क्षेत्रज आदि ग्यारह प्रकारके पुत्रोंको ही पुत्र प्रतिनिधि कहा है। जैसे घृतके अभावमें तैलको उसका प्रतिनिधि कहा गया है, उसी प्रकार औरसपुत्रके अभावमें ग्यारह प्रकारके पुत्रोंको पुत्र-प्रतिनिधि समझना चाहिए। औरस-पुत्रको ले कर पुत्र बारह प्रकारके हैं; यथा—औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न, अपविद्ध, कानीन, सहोढ़, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और शौद्र। पुत्र देखो।

"अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिर्ये पुरातनैः ।
न शक्यन्तेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनतया नरैः ॥

पुत्र-प्रतिनिधि अनेक प्रकार होने पर भी कलियुगमें शक्तिहीनताके कारण अपुत्रक व्यक्ति उक्त सभी प्रकारके पुत्रोंको ग्रहण करनेमें समर्थ न होंगे।

'ईमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ।"

दत्तक पुत्रके सिवा कलियुगमें अन्य प्रकारके पुत्र ग्रहण करना निषिद्ध वा वर्जित है।

कलिकालमें अपुत्रकके नामकी रक्षा और श्राद्ध तर्पण आदिके लिए एकमात्र दत्तक पुत्र ही उपाय-स्वरूप है। प्रत्येक अपुत्रक व्यक्तिके लिए दत्तक ग्रहण करना आवश्यक है।

जन्म ले कर तीन ऋणोंसे मुक्त होना प्रत्येक हिन्दूका कर्तव्य है। ब्रह्मचर्य द्वारा ऋषिओंके, यज्ञ द्वारा देवताओंके और पुत्रोत्पादन द्वारा पितरोंके ऋणसे विमुक्त हो सकते हैं। इसलिए पुत्रोत्पादन अवश्य विधेय है। परन्तु जिनके पुत्र नहीं हुआ है, वे पितृ-ऋणसे मुक्त नहीं हो सकते; और इसीलिए उन्हें पुत्र-प्रतिनिधिकी आवश्यकता होती है। कलिकालमें ग्यारह प्रकारके पुत्रनिधियोंमेंसे दत्तकके सिवा अन्य प्रकारके पुत्र-प्रतिनिधि ग्रहण करना निषिद्ध है; इस कारण कलिमें अपुत्रक व्यक्तिके लिए दत्तक ग्रहण करनेके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। 'अपुत्रक व्यक्ति दत्तक ग्रहण करे' इससे यह समझना चाहिए कि स्त्रियोंको दत्तक ग्रहण करनेकी क्षमता नहीं है; पतिकी अनुमतिके बिना कोई भी विधवा स्त्री दत्तक ग्रहण नहीं कर सकती और स्त्रीकी अनुमतिके बिना पति भी दत्तक देने वा ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। स्वामी यदि मृत्यु समयमें अनुमति दें, तो वह विधवा स्त्री दत्तक ग्रहण कर सकती है। पति जितने दत्तक ग्रहण करनेकी अनुमति दे जांय, स्त्रीको उतने ही दत्तक ग्रहण करनेका अधिकार है।

"न स्त्री पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुरिति अनेन विधवाया भर्त्रनुज्ञानासम्भवात् अनधिकारो गम्यते। न च सधवाया स्वभर्त्रनुज्ञापेक्षा पारतन्त्रात्।" (दत्तकमीमांसा)

सधवा स्त्री स्वामीकी अनुमति ले कर दत्तकग्रहण कर सकती है या नहीं? इसका समाधान इस प्रकार है—सधवा स्त्री स्वयं कोई कार्य नहीं कर सकती किन्तु स्वामीके साथ मिल कर सभी कार्य कर सकती है। स्वामी यदि दत्तकग्रहणकी अनुमति बिना दिये ही मर जाय, तो विधवा स्त्रीको दत्तक ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं है। कारण यह कि स्वामीकी मृत्युके बाद ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर अनायास ही वह समस्त पापोंसे विमुक्त हो स्वर्गलोकको जा सकती है, अतएव दत्तक-ग्रहण निष्प्रयोजन है। जैसा कि कहा है—

"मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥

इति मनुना ब्रह्मचर्येणैव तत्परिहाराभिधानादिति सकलमकलंकं।" (दत्तकमीमांसा)

'अपुत्रेण' यह शब्द एक वचन है, इसलिए इसका अर्थ यह होता है कि एक ही अपुत्रक व्यक्ति दत्तक ग्रहण करे, दो वा तीन व्यक्ति मिल कर नहीं। कारण दत्तक आदिका द्वामुष्यायणत्व स्मरण विरुद्ध हुआ है, इसलिए ऐसा नहीं कर सकते।

"द्वामुष्यायणका ये स्युर्दत्तक्रीतकादयः।
गोत्रद्वयेऽप्यनुद्वाहः शुंगशैशिरयोर्यथा॥" (दत्तकमीमां)

दत्तकविधि—ब्राह्मणोंका सपिंडमें पुत्र संग्रह करना चाहिए; अर्थात् सपिंडके पुत्रको दत्तक वा गोद लेवें। सपिंडका पुत्र यदि न मिले तो असपिंड, और असपिंडका भी न मिले तो सगोत्रके पुत्रको दत्तक ग्रहण करना चाहिए। यदि सगोत्रका पुत्र न मिले, तो असगोत्रका पुत्र ग्रहण करें, किन्तु दत्तक-ग्रहण करनेमें सपिंडका पुत्र ही सर्वापेक्ष श्रेष्ठ कहा गया है। अतएव सपिंडके पुत्रको गोद लेनेके लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए। सप्तम पुरुष पर्यन्त ज्ञातिको सपिंड कहते हैं। सपिंड पुत्रके न मिलने पर समानोदक पुत्र, समानोदक पुत्रके न मिलने पर साकुल्य पुत्र और साकुल्य पुत्र भी न मिले तो सगोत्रका पुत्र दत्तक-ग्रहणके योग्य है। यह भी यदि न मिल सके, तो भिन्न गोत्रके पुत्रको गोद लेना चाहिये। इतनी विधियोंके द्वारा दत्तककी आवश्यकता दिखलाई है; किन्तु दौहित्र, भागिनेय और मातृस्वसृ पुत्रको कदापि गोद न लेना चाहिए।

"ब्राह्मणानां सपिंडेषु कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः।
तदभावेऽसपिण्डे वा अन्यत्र तु न कारयेत्॥"

ब्राह्मणादि सपिंड वा उसके अभावमें असपिंड पुत्र ग्रहण कर सकते हैं, पर अन्यत्र नहीं कर सकते। 'अन्यत्र न तु' अन्यत्र न करें, इसका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदिके पुत्रको ग्रहण नहीं कर सकते। परन्तु 'अन्यत्र' अर्थात् सपिंड और असपिंडके सिवा अन्यके पुत्रको ग्रहण न कर सकेंगे, ऐसा अर्थ करनेसे वचनान्तरके साथ विरोध होता है; क्योंकि वचनान्तरमें स्पष्ट लिखा है—

'सपिण्डापत्यकञ्चैव सगोत्रजमथापिवा।
अपुत्रकोद्विजोयस्मात् पुत्रत्वे परिकल्पयेत्॥

समानगोत्रजाभावे पालयेदन्यगोत्रजं ।
दौहित्रं भागिनेयञ्च मातृस्वसृसुतं विना ॥"

अपुत्रक द्विज सपिण्डादिके पुत्रको ग्रहण करे, उसके अभावमें सगोत्रजपुत्रको ग्रहण करे और वह भी न मिले तो अन्य गोत्रज पुत्रको दत्तक बनावे। परन्तु दौहित्र (धेवता), भागिनेय (भानजा) और मातृस्वसृपुत्र (मौसेरा भाई) को कदापि दत्तक न बनावे। इसलिए अन्यत्र शब्दका अर्थ सवर्णातिरिक्त समझना चाहिये अर्थात् ब्राह्मण ब्राह्मणके ही पुत्रको दत्तक बना सकता है, क्षत्रिय वा वैश्य वा शूद्रके पुत्रको नहीं। क्षत्रियादिके विषयमें ऐसा ही समझना चाहिये। मनु और वृद्ध याज्ञवल्क्यने भी ऐसा ही कहा है—

"माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि ।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥ (मनु)
"सजातीयः सुतो ग्राह्यः पिंडदाता स रिक्थभाक् ।

प्रतिग्रहीताके यदि पुत्र न हो, तो पिता और माताको चाहिये कि वे उसे सन्तुष्टचित्तसे सजातीय पुत्रको प्रदान करें; इसीका नाम दत्रिम वा दत्तकपुत्र है। यह सजातीय दत्तक पुत्र पिण्डतर्पणादि करता है, इसलिये ग्रहीताके धनका अधिकारी होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये दौहित्र भागिनेय आदिको दत्तक ग्रहण नहीं कर सकते। परन्तु शूद्र इनको दत्तक ले सकता है।

"क्षत्रियाणां स्वजातौ च गुरुगोत्रसमेऽपि वा ।
वैश्यानां वैश्यजातेस्तु शूद्राणां शूद्रजातिषु ॥
सर्वेषामेव वर्णानां जातिष्वेव न चान्यतः ।
दौहित्रो भागिनेयश्च शूद्रैस्तु क्रियते सुतः ॥
ब्राह्मणादित्रये नास्ति भागिनेयः सुतः क्वचित् ।"
(दत्तकमी०)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सबको अपने अपने वर्णमेंसे दत्तक ग्रहण करना उचित है इसका अतिक्रम नहीं करना चाहिये। परन्तु ब्राह्मणादि तीन वर्ण भागिनेय आदिको दत्तक ग्रहण नहीं कर सकते, एक मात्र शूद्र ही भागिनेय आदिको दत्तक बना सकते हैं। शूद्रोंके विषयमें यह विशेष विधि है।

दत्तकदाता—जिसके एक ही पुत्र है, ऐसा व्यक्ति दत्तक नहीं दे सकता; जिसके अनेक पुत्र हों, वही पुत्र दान कर सकता है। जिसके दो पुत्र हैं, वह भी पुत्र-दान नहीं कर सकता। कारण उनमेंसे यदि एकको दत्तक दिया जाय तो एक ही रह जाता है और पीछे वह यदि मर जाय तो उसका भी नाम लोप हो जायगा, पिंड-तर्पणादि कार्य सम्पन्न नहीं होंगे और सन्ततिके अभावसे पितृगण अवसन्न हो जावेंगे। इसलिये द्विपुत्र व्यक्ति भी पुत्र दान नहीं कर सकता।

"नैकपुत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रदानं कदाचन ।
बहुपुत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रदानं प्रयत्नतः ॥

द्विपुत्रस्यापि पुत्रदाने अपरपुत्रनाशे वंशविच्छेदमाशंक्याह बहुपुत्रेणेति ॥" (दत्तकमीमांसा)

एक पुत्रका पिता कदापि पुत्र-दान नहीं कर सकता। बहुतसे पुत्रोंका पिता ऐसा कर सकता है। "बहु पुत्र व्यक्ति पुत्रदान दे" इस विधानके द्वारा द्विपुत्र व्यक्तिके लिए भी पुत्रदानका निषेध किया गया है। स्त्रियां पतिके रहते हुए अथवा प्रोषित वा मर जाने पर पतिकी अनुमति होने पर ही पुत्र प्रदान कर सकती हैं अन्यथा नहीं।

निरपेक्षदान—

"दद्यान् मातापिता वायं स पुत्रो दत्तको भवेत् ।"

माता और पिता जिसको दान कर देते हैं ऐसे पुत्रको दत्तक कहते हैं। जिस स्थल पर माता और पिता प्रीति-पूर्वक, दूसरेके वंशका नाश होते देख, उसके प्रति दयापरवश हो पुत्र दान करते हैं, उसी पुत्रको दत्तक कहा जा सकता है।

रुपया-पैसा दे कर पिता माताको सन्तुष्ट करके जो पुत्र लिया जाता है, उसे दत्तक नहीं कहा जा सकता। ऐसे पुत्रको 'क्रीतपुत्र' कह सकते हैं। क्रीत पुत्रका ग्रहण करना निषिद्ध है, यह बात पहले ही कही जा चुकी है।

पुत्र-प्रतिग्रहकी विधि—जिस दिन पुत्र ग्रहण करना हो, उसके एक दिन पहले उपवास करना चाहिये और दूसरे दिन (पुत्र ग्रहणके दिन) अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर वेदपारग आचार्यके साथ मधुपर्कादिके द्वारा राजा और द्विजातियोंकी पूजा करनी चाहिए। समस्त आत्मीय-स्वजन तथा बन्धुबान्धवोंको आमन्त्रण कर उन्हें

सुमिष्ट भोजन आदिके द्वारा परितुष्ट करना चाहिए।

तदनन्तर बन्धुओंके साथ दाताके समक्ष जा कर "पुत्रं देहि" (अर्थात् मुझे पुत्रदान दीजिए) ऐसी याचना करनी चाहिए। दाता यदि पुत्र-दान देनेमें समर्थ हो, तो ग्रहीताको चाहिए कि वह पुत्रदान-प्रयोगविधिके अनुसार पुत्रको ग्रहण कर ले। "देवस्य त्वादि" इस मन्त्रके द्वारा पुत्र ग्रहण किया जाता है। उपरान्त अटक्लयका जप करके शिशुका मस्तक सूंघना चाहिए और फिर नृत्य गीत आदि माङ्गलिक कार्योंके सम्पन्न होने पर उसे घर ले आना चाहिए। *

अनन्तर आचार्यको दक्षिणा देनी चाहिए। यदि राजा दत्तक ग्रहण करे, तो राज्यार्द्ध अर्थात् राज्यकी जितनी आय हो, उससे आधी दक्षिणा देनी चाहिए। वैश्यादिको यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए। ग्रहीताको उचित है कि दत्तक ग्रहण कर, स्व-शाखोक्त विधिके अनुसार उस दत्तक (पुत्र)-के पिताके द्वारा कोई संस्कार कार्यादि सम्पन्न करावे। यदि कोई संस्कार हो चुका हो, तो पुनः संस्कार करानेकी कोई आवश्यकता नहीं। जो संस्कार न हुए हों, उन्हीं केवल संस्कारोंको कराना चाहिए।

जिस बालकका चूड़ाकरण संस्कार हो चुका है, उसे दत्तकरूपमें न लेना ही उचित है और न देना। अतएव पांच वर्ष तकके बच्चोंको ही गोद लेना चाहिए, फिर नहीं। *

दत्तक द्वारा होनेवाले श्राद्धका निर्णय—दत्तक-ग्रहणके बाद यदि ग्रहीताके पुत्र उत्पन्न हो, तो ग्रहीताकी मृत्यु होने पर, सपिंडीकरणके बाद षोड़श श्राद्धमें दत्तकका अधिकार नहीं रहता। इसमें ज्येष्ठ और कनिष्ठके नियमकी रक्षा नहीं होती। दत्तक ज्येष्ठ होने पर भी, औरस पुत्रके रहते हुए सपिंडीकरणके अन्तमें षोड़श श्राद्ध नहीं कर सकता।

दत्तकाशौच—दत्तकके जननकुलमें यदि कोई मर जाय, तो उसका अशौच नहीं होता। केवल ग्रहीतृकुलमें जनन और मरणमें होनेसे त्रिरात्रि अशौच रहता है; अर्थात् ग्रहीता आदि व्यक्तियोंका यथासम्भव जनन और मरण होने पर दत्तकको, तथा दत्तककी स्त्री और उसके पुत्रादिका यथासम्भव जनन और मरण होने पर ग्रहीता आदिको तीन दिनका अशौच लगता है।

दत्तक यदि सपिंड हो, तो भी अशौच तीनही दिनका होता है, सम्पूर्ण नहीं।

"भिन्नगोत्राः पृथक् पिंडाः पृथक् वंशकराःस्मृताः।
जनने मरणे चैव त्र्यहाशौचस्य भागिनः॥
भिन्नगोत्रः सगोत्रो वा नीतः संस्कृत्य चेच्छया।
जनने मरणे तस्य त्र्यहाशौचं विधीयते॥"

(दत्तकमीमांसा)

दत्तक चाहे सपिंड हो और चाहे सगोत्र वा भिन्नगोत्र हो, जनन और मरणमें उसे तीन ही दिनका अशौच लगता है। दत्तकके समान दत्तक-ग्रहीताको भी तीन दिन अशौचका पालन करना पड़ता है। परन्तु द्व्यामुष्यायण-दत्तकके जननकुल और ग्रहीतृकुल दोनों कुलोंमें तीन दिन अशौच होता है। कन्याकी जिस प्रकार आत्मपञ्चममें सापिंड्य निवृत्ति होती है, दत्तकका भी उसी प्रकार आत्मपञ्चममें (अर्थात् अपनेको सम्हाल कर चतुर्थ पुरुष पर्यन्त सापिंड्यके कारण तीन दिनका अशौच होता है। दत्तकको पञ्चम पुरुषसे दशम पुरुष पर्यन्त एक दिनका अशौच लगता है। दशम पुरुषके ऊपर स्नानमात्रसे शुद्धि होती है। 'दत्तकचन्द्रिका'के मतसे यदि ग्रहीता द्वारा दत्तक उपनीत हुआ हो, तो ग्रहीताकी मृत्यु होने पर उसे दश दिनका अशौच लगेगा।

"गुरुप्रेतस्य शिष्यास्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति॥"

---

* "शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि पुत्रसंग्रहकारणं।
अपुत्रो मृतपुत्रो वा पुत्रार्थं समुपोष्य च॥
वाससी कुंडले बुद्धा उष्णीषं चांगुलीयकं।
आचार्यं धर्मसंयुक्तं वैष्णवं वेदपारगं॥
मधुपर्केन संपूज्य राजानश्च द्विजान् शुचीन्।
दातुः समक्षं गत्वा च पुत्रं देहीति याचयेत्॥
दाने समर्थो दाताऽस्मै यो यज्ञेनेति पंचभिः।" (दत्तकमीमांसा)

* "पितुर्गोत्रेण यः पुत्रं संस्कृतः पृथिवीपते।
आचूडान्तं न पुत्रः स पुत्रतां यादि चान्यतः॥
चूडाद्या यदि संस्कारा निज गोत्रेण वै कृताः।
दद्याद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते॥
ऊर्द्ध्वन्तु पंचमाद्वर्षात् न दद्याद्याः सुता नृप।"

(दत्तकमीमांसा)

इति मरीचिवचनेन शिष्यस्य गुरुप्रेतकार्यकरणनिमित्त दशाहाशौचमुक्तं भवति, अत्र गुरुशब्द आचार्यादिरूपः। गुरुत्वमत्राऽप्यस्ति उपनयनादिकर्तृत्वात् ततश्च दत्तकस्य प्रतिग्रहीतृक्रियाकरण एव दशरात्राशौच सिद्धति, अन्यथा त्रिरात्रमेव" (दतकमीमांसा)

साग्नि—दत्तकको साम्वत्सरिक श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधानका अनुसार करना चाहिये; पार्वणविधानानुसार नहीं।

दत्तकके विवाह—दत्तकके विवाहादिमें परिवेदन दोष नहीं होता, अर्थात् ज्येष्ठ सहोदरके अविवाहित रहते हुए दत्तक विवाह नहीं कर सकता और दत्तक अविवाहित हो तो उसके कनिष्ठ सहोदरका विवाह नहीं हो सकता। दत्तकके विवाहस्थल पर ग्रहीतृकुलमें त्रैपुरुषिक सापिण्ड है, अर्थात् ग्रहीतृकुलमें दत्तक चतुर्थी कन्याके साथ विवाह कर सकता है।

दत्तकका मातामहपक्ष—यदि ग्रहीताके बहुतसो स्त्रियां हों और गृहीत दत्तककी वृद्धि उपस्थित हो, तो दत्तक-ग्रहोताकी कौन सो स्त्रोके पित्रादि उसका मातामह पक्ष होगा? शास्त्रोंमें प्रथमा स्त्रोको धर्मपत्नो कहा है, द्वितोया आदि कामपत्नो कहो गई है, अतएव प्रथम स्त्रोके पित्रादि हो मातामह पक्ष होगा। जिस स्थल पर पतिकी अनुमतोके अनुसार विधवा स्त्रियां दत्तक ग्रहण करती हैं, उस स्थल पर स्वामी अपनी स्त्रियोंमेंसे जिसको अनुमति दे जायगा और उसके अनुसार जो दत्तक ग्रहण करेगो, उसोके पित्रादि दत्तकका मातामह पक्ष होगा।

दत्तक-दायविभाग—दत्तक ग्रहणके बाद औरस पुत्र उत्पन्न हो, तो उस औरस पुत्रको २ भाग और दत्तक पुत्रको १ भाग मिलेगा। बंगालमें तीन भागमेंसे दो भाग दत्तकको मिलता है।

"उत्पन्ने त्वौरसे पुत्रे तृतीयांशहरा स्मृताः।
सवर्णा असवर्णास्तु ग्रासाच्छादनभागिनः॥
चतुर्थांशहरा स्मृता इति द्वितीय चरणे क्वचित् पाठः।"

(दत्तकचन्द्रिका)

दत्तक-कन्याग्रहणविधि—दौहित्रादिके द्वारा उपकार पानेकी प्रत्याशा कर दत्तककन्या ग्रहण को जा सकती है। यह शास्त्रानुमोदित है, पुराणादिमें इसका उदाहरण मिलता है। दशरथने शान्ताको दत्तककन्याके रूपमें ग्रहण किया था। इत्यादि।

अविवाहितके लिए दत्तकका निषेध—अविवाहित पुरुष दत्तक ग्रहण नहीं कर सकता। दार परिग्रह न करनेसे अपुत्रक तो कहलाता है, पर उसके पुत्र होनेको सम्भावना अवश्य है, इसलिए उसके लिए दत्तक ग्रहण करनेका निषेध है।

बहुतसो स्त्रियोंके होते हुए यदि स्वामो उन स्त्रियोंको दत्तक ग्रहण करनेकी अनुमति दे और तदनुसार प्रत्येक स्त्रो एक एक दत्तक ग्रहण कर ले, तो ऐसी दशामें शास्त्रानुसार सिद्ध होने पर भो प्रथम गृहीत दत्तक हो धनका अधिकारो होता है तथा एक समयमें अनेक दत्तक गृहीत होने पर किसी भी दत्तकको धन ग्रहण करनेका अधिकार नहीं होता।

वीरमित्रोदयके मतसे—पति यदि मरते समय दत्तककी आज्ञा न दे सके और मर जाय, तो स्त्रो स्वयं दत्तक ग्रहण कर सकती है। बंगालमें ऐसा नहीं होता।

स्त्री अथवा शूद्रको दत्तक ग्रहण करना हो, तो पहले ब्राह्मणके द्वारा होम कर लेना चाहिए। ऐसा नहीं करनेसे दत्तकत्व सिद्ध नहीं होता। ब्राह्मणादिके द्वारा आवश्यक मन्त्रादिका पाठ कराना चाहिए। मन्त्र-पाठके बिना हो स्त्रो और शूद्रादिका दत्तकत्व सिद्ध हो सकता है, किन्तु होमके बिना कदापि दत्तकत्व सिद्ध नहीं होता। उत्तरकालमें कोई अनर्थ न हो, इसके लिए बन्धुबान्धव और राजपुरुषके समक्षमें दत्तक ग्रहण करना सङ्गत है। (दत्तचन्द्रिका, दत्तकमीमांसा)

दत्तकग्रहण-प्रयोगविधि—ग्रहीताको दत्तक-ग्रहणके एक दिन पहले उपवास करना चाहिए, फिर उसके दूसरे दिन प्रातःकृत्य सम्पन्न करके आचमन, विष्णुस्मरण और नारायणको गन्धपुष्प चढ़ा कर स्वस्तिवाचन करना चाहिये। "ॐ कर्तव्येऽस्मिन् पुत्रप्रतिग्रहकर्मणि पुण्याहं भवन्तो ब्रवन्तु, ॐ पुण्याह" यह मन्त्र तीन बार पढ़ा जाता है।

इस तरह स्वस्ति और ऋद्धिको तीन बार करना चाहिए, परन्तु शूद्रके लिए "स्वस्ति भवन्तो ब्रवन्तु" इतना हो कहना पर्याप्त होगा।

सामवेदियोंको—"ॐ अस्ति सोमोऽहं" और यजुर्वेदियोंको-"ॐ सूर्यः सोमो यमः कालः" यह मन्त्र पढ़ना चाहिए।

उसके बाद "एते गन्धपुष्पे ॐ आदित्यादि नवग्रहेभ्यो नमः" ऐसा कह कर पूजा करें। फिर गणेशादि पञ्चदेवता, इन्द्रादि दश दिक्पाल, गुरु और ब्राह्मणको पूजा करें। उसके बाद सङ्कल्प करें जो इस प्रकार है—

"श्रीविष्णुरों तत्सदद्य अमुके मा स अमुके पक्षे अमुक तिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुक देवशर्मा (शूद्र हों तो अमुक दासः) अप्रजात्वप्रयुक्तपैतृकऋणापकरणपुन्नामनरकात्त्राणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं आत्मवंशरक्षार्थञ्च मनुवृहस्पतिवशिष्ठशौनकपराशराद्यपि वाक्यानुसारेन स्वशाखोक्तविधिना पुत्रप्रतिग्रहमहं करिष्ये।"

सामवेदी हो तो 'देवो वो' इत्यादि, यजुर्वेदी हो तो 'यज्जाग्रतो' इत्यादि, संकल्पसूक्त पाठ करना चाहिए। बादमें विघ्ननाशके लिए गणेशपूजा करें और ब्रह्म, होता, आचार्य और सदस्यको वरण करें।

दत्तक-ग्रहीता कहें—'ओम् साधु भवानास्तां' ब्राह्मण कहें—'ओम् साध्वहमासे', कर्त्ता कहे 'अर्चयस्यामो भवन्त'' और ब्राह्मण कहें—'ओम् अर्चय।' इसके बाद ब्राह्मणको वस्त्र अलङ्कार आदि दे कर उनके दक्षिण जानुका स्पर्श कर कहें—

"विष्णुरों तत्सदद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुक तिथौ मत्सङ्कल्पितशौनकाद्युक्तविधिना पुत्रग्रहणकर्मणि ब्रह्मकर्मकरणाय अमुक गोत्रं श्रीअमुक देवशर्माणं एभिः पाद्यादिभिरभ्यर्च्य भवन्तु महं वृणे" (ब्राह्मण हों तो वृतोऽस्मि कहें)। उसके बाद 'यथाविहितं ब्रह्मकर्म कुरु' ऐसा कहें। ब्राह्मण हों तो 'यथा ज्ञानं करवाणि' ऐसा कहें। इस प्रकार होता, आचार्य और सदस्योंको वरण करना चाहिए। बादमें होता आदि वेदी पर बैठ कर पञ्चगव्यद्वारा स्वशाखोक्त यथाविहित मन्त्र पढ़कर पञ्चगव्यका शोधन करें। पञ्चगव्यका शोधन हो चुकने पर प्रणव द्वारा पञ्चगव्यको एकत्र करके इस मन्त्रसे वेदीका शोधन करना चाहिए-'ओम् वेदावेदिः समाप्यते वर्हिषा वर्हिरिन्द्रियं यूपेन यूप आप्यायते प्रणीतोऽग्निरग्निना।' उसके बाद वेदीके ऊपर चन्द्रातप (चँदवा) लगाना चाहिये; मन्त्र इस प्रकार है-'ओम् ऊर्द्ध्व उषण उतये तष्टादेवो नः सविता। ऊर्द्ध्वोराजस्य सविता यदेञ्जिभिर्वाग्भिर्विह्वयामहे।'

उक्त शान्तिकलसको दो वस्त्रोंसे आच्छादित कर "ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भ सर्जनीस्थ वरुणस्य ऋत सदन्यसि वरुणस्य ऋत सदनमसि वरुणस्य ऋत सदनो मासीद" इस मन्त्र द्वारा शान्तिकुम्भमें जल भरना चाहिए। उसके बाद वेदीके मध्य पञ्चवर्णके चूर्णद्वारा सर्वतोभद्रमण्डल अथवा अष्टदलकमल बनाना चाहिए। इसमें शालग्राम शिला स्थापन कर पूजा करनी चाहिए। पहले सामान्यार्घ्य और भूतशुद्ध्यादि करें। प्रथम घटमें गणेश, द्वितीय घटमें सूर्य, तृतीय घटमें विष्णु, चतुर्थ घटमें शिव और पञ्चम घटमें दुर्गाको पूजा करें तथा आदित्यादि नवग्रहों और इन्द्रादि दशदिक्पालोंका पृथक्, पृथक्, आवाहनादि करके पूजन करें। अनन्तर शान्तिकलसमें वरुणका आह्वान करके यथाशक्ति पूजा करें। फिर गणपति, प्रजापति, विष्णु और धर्मको षोड़शोपचारसे पूजा करें। इस प्रकार पूजा करके पितृगणका आवाहन कर शक्तिके अनुसार उनको पूजा करनी चाहिए। "ओम् पितृभ्यो नमः, ओम् कुलदेवताभ्यो नमः, ओम् गुरुभ्यो नमः, ओम् अग्नये नमः, ओम् सूर्यसावित्र्यै नमः, ओम् वायवे नमः, ओम् सूर्याय नमः, ओम् प्रजापतये नमः, ओम् सोमाय नमः, ओम् दिवे नमः, ओम् पृथिव्यै नमः, ओम् भूर्नमः, ओम् भुवर्नमः, ओम् स्वर्नमः, ओम् भूर्भुवः स्वर्नमः, ओम् अग्नये स्विष्टिकृते नमः" इनकी पूजा कर स्व-गृह्योक्त विधिसे कुंड वा स्थण्डिलमें वह्निस्थापन कर होम करना चाहिए। यजुर्वेदियोंको यजुर्वेदोक्त और सामवेदियोंको सामवेदोक्त विधिके अनुसार कुशण्डिका सम्पन्न करनी चाहिए। उसके बाद आचार्यको भी उचित है, कि ब्राह्मणादिके साथ ग्रहीताको दाताके पास ले जा कर "ओम् पुत्रं देहि" इस प्रकार पुत्रकी याचना करें। बादमें पुत्रदाता आचमनपूर्वक विष्णुका नाम स्मरण कर गुरु, गणेश और नवग्रह आदिकी पूजा करें। फिर स्वस्तिवाचन करें—'ओम् कर्त्तव्येऽस्मिन् पुत्रदानकर्मणि ओम् पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु ओम् पुण्याम्"

(इसको तीन बार पढ़ना होगा।) फिर स्वस्तिऋद्धिका पाठ करें।

अनन्तर वेदीके पूर्वमें पांच घट आरोपित कर घटस्थापनोक्त मन्त्र द्वारा पांच घट स्थापन करें। फिर देवीके ईशानकोणमें शान्तिकलस स्थापन करें।

अनन्तर 'स्वस्तिनः इन्द्रो' और 'सूर्य सोमो यमः कालः' ये दो मन्त्र पढ़ें बादमें नारायणको गन्ध पुष्प दे कर पूजा करें और इस प्रकार सङ्कल्प करें—

'ओविष्णुरों तत्सद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुक गोत्रः श्रीअमुक देवशर्मा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पुत्रदानकर्माहं करिष्ये।'

इसके बाद सङ्कल्पसूक्तका पाठ करें और गणेश आदिकी पद्यादि द्वारा पूजा कर पुत्रदान करें। उत्सर्ग करनेका मन्त्र इस प्रकार है —

"विष्णुरों तत्सद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुक गोत्रः श्रीअमुक देवशर्मा चतुस्त्रिष्टुप् पञ्चानुष्टुप् पुत्रदाने विघ्ने यज्ञेन दक्षिणया समर्पयिष्ये इति पठित्वा ये च यज्ञेत्यादि पञ्च ऋचश्च पठित्वा इमं पुत्रं तव पैतृकऋणापकरण पुन्नामनरकत्रासवंशरक्षासिद्धयर्थं आत्मनश्च परमेश्वरप्रीत्यर्थं अमुक गोत्राय अमुक प्रवराय श्रीअमुकाय तुभ्यमहं सम्प्रददे।'

अनन्तर "मम प्रतिगृह्णातु पुत्रं भवान्" यह मन्त्र पढ़ कर "प्रतिगृह्णीयुस्ते" कहते हुए अक्षतके साथ जल चढ़ावें और उसके बाद दक्षिणा देवें। अनन्तर "विष्णुरों तत्सद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा परमेश्वरप्रीतकामनया याचते तत्पुत्रदानकर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं कांचनं तन्मूल्यं वा श्रीविष्णुदैवतं अमुकगोत्राय अमुकप्रवराय श्रीअमुकाय तुभ्यमहं संप्रददे" इतना कह कर बालकको ग्रहीताके हस्तमें अर्पण करें। इसी समय दाता बालककी प्रतिग्रहीताको देवें। दत्तकग्रहीता 'ॐ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवश्विनोर्बाहुभ्यां पुष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ" इस मन्त्रको पढ़ कर बालकको अपने हाथोंमें ले लेवें। फिर गोदमें बिठा कर 'ॐ अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयाधिजायसे आत्मावै पुत्रनामासि संजीव शरदः शत" इस मन्त्रके द्वारा बालकका मस्तक सूंघें और यह मन्त्र पढ़ें—"धर्माय त्वा परिगृह्णामि ॐ सन्तानाय त्वा परिगृह्णामि।" इसके बाद ॐ 'वस्त्राणि परिधत्स्व" इस मन्त्रके द्वारा वस्त्र पहराना चाहिए। अनन्तर उष्णीष और कुंकुमादि द्वारा तिलक करें तथा "ॐ हिरण्यरूपमवसे कृणुध्वं" इस मन्त्रके द्वारा अलंकृत कर बालकको गोदमें लेवें। पश्चात् "ॐ स्वस्तिनो मिमितामश्विनोभ्यां स्वस्ति ते व्यादिभि बनवर्णः स्वस्ति पूषा स्वरोदधातु नः स्वस्ति वाद्या वा पृथिवी सुचेतना स्वस्तये वायुमुपब्रुवा महो सोमं स्वस्ति भुवसं यम्पतिः। ॐ बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तये आदित्य सोमा भवन्तु नः विश्वेदेवा नोद्यो स्वस्तये वैश्वानरा वसुरग्निः स्वस्तये देवा ऋभवऋभवः स्वस्तये स्वस्तये स्वस्तिनो रुद्रपात्वंहसः स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्यो रेवती स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्तिनोऽदितयेस्कृधि। स्वस्तिपन्था मनुरेम सूर्याचन्द्रमसौ च पुनर्ददता दनता जानता सङ्गमे मयि स्वस्मरेध नन्तारिष्टनेमि रित्वमरिष्टनेमि महद्भूतं वयसं देवतानां असुरघ्नं इन्द्रसखं समित्सहस्रसोनामिवारुहेम अयं हीसुवमाङ्गीरसङ्गयश्च स्वात्रेयं मनसा च तार्क्ष्यं प्रेतपाणि स्मरणं प्रपद्ये स्वस्ति सम्बाटेष्वभयन्नस्तु तदस्तु मित्रावरुणा तदग्नये शंयोरस्यमन्तु सस्तं अशीमहि गाधसुतः प्रतिष्ठन्ना मा दिवे बृहते साधनाय गृहावै प्रतिष्ठासुक्तं तत् प्रतिष्ठितं मया वाचा संस्तव्यं तस्मादेत्य विदूरे पुषं लभते गृहाणि वै नानाजिगमिषति पशुनां प्रतिष्ठा।"

इस मन्त्रको पढ़ कर अग्निकी पश्चिम दिशामें उपवेशन करें और अग्निकी पश्चिमदिशामें अपने दाहिने बालकको बिठा कर आचार्यके दाहिने ग्रहीता स्वयं बैठे। इसके बाद आचार्य होम करना प्रारम्भ करें।

"ॐ यस्त्वाहृदाव्यारिणामन्य मामीमर्त्यं मान्याजोऽवीषिजात वेदीयशोऽस्मासुधेहि प्रजाभिरग्नेरमृतत्वमश्या स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ यस्मैत्वां सुकृते जातवेद उलोकमग्नेकृणवस्योणं अश्विणं सपुत्रिणं धीरवन्तं गोमन्तं यिंनश्नते स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ त्वं त्वामग्ने पर्यवहन् सूर्यां वहतुनासह। पुनः पतिभ्योजायादा अग्नेप्रजयासह स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽददग्नये वयित्वापुत्रान्चाददे दग्नेमंहीय मह्यो इमां स्वाहा ॥४॥

ॐ इहैवत्वं यायोस्त्वं विश्वमायुरश्नुतं विश्वमायुरश्नुतं । क्रीडतो पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानो स्वो स्वाये गृहे स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ आनः प्रजा जनयतु प्रजापति वाजरसाय-मानत्वयमा आयुर्मङ्गलो: पतिलोकमाविश सन्नोभव द्विपदेशं चतुष्पदे स्वाहा ॥ ६ ॥ ॐ अघोरचा सुरपति घ्न्यधिगिरा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः । वीरसूर्देवकामा स्योनो शन्ना भव द्विपदेशं चतुष्पदे स्वाहा ॥ ७ ॥ ॐ इमां त्वमिन्द्रमोत्वः सुपुत्रान् कृणु । दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि स्वाहा ॥ ८ ॥ सम्राज्ञि श्वशुरे भव ॐ साम्राज्ञि श्वश्रूवां भव । ननान्दरि च सम्राज्ञि भव सम्राज्ञि अधिदेवृषु स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ समञ्जन्तु विश्वेदेवा समापो हृदयानिनौ । सम्मातरिश्वा सन्धाता समुदेष्टी दधातु नौ स्वाहा ॥ १० ॥ इन दश मन्त्रों द्वारा प्रत्येकका चरुहोम करके प्रजापति होम करना चाहिए। मन्त्र—“ॐ प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वजातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहेति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं आज्यपायसहोमं कुर्यात् ।”

प्रायश्चित्त-होम सम्पन्न कर दक्षिणान्त करें। “अद्येत्यादि अमुक गोत्रः श्रीअमुक देवशर्मा अमुक गोत्रस्य अमुकदेवशर्मणः सङ्कल्पित पुत्र प्रतिग्रहाङ्गहोमकर्मणि ब्रह्मकर्मप्रतिष्ठार्थं पूर्णपात्रं श्रीविष्णुदैवतं अमुक गोत्राय श्रीअमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणे तुभ्यमहं सम्प्रददानि।” ब्रह्म-दक्षिणा सम्पन्न कर “अग्नेत्वं” इत्यादि मन्त्र द्वारा अग्नि-विसर्जन करें। उसके बाद ‘अद्येत्यादि मत्सङ्कल्पितपुत्रप्रतिग्रहाङ्गहोमकर्मणि गोत्रादिकर्म प्रतिष्ठार्थं इदं सुवर्णं श्रीविष्णुदैवतं अमुक गोत्राय श्रीअमुक देवशर्मणे होत्रे तुभ्यमहं सम्प्रददे ।” इत्यादि रूपसे दक्षिणान्त करें। इसके उपरान्त ब्राह्मण, आत्मीय स्वजन आदिको भोजन करा कर महोत्सव करें।

पोष्यपुत्र देखो।

दत्तकपुत्र (सं० पु०) दत्तक एव पुत्रः। बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे एक प्रकारका पुत्र। माता वा पिताने जिस पुत्रको दान कर दिया है, उसे दत्तकपुत्र कहते हैं।

दत्तक देखो।

दत्तचित्र (सं० वि०) जिसने किसी काममें खूब जी लगाया हो।

दत्ततीर्थकृत् (सं० पु०) गत उत्सर्पिणीके दस अर्हत्-भेद, गत उत्सर्पिणीके आठवें अर्हत्।

दत्तनृत्योपहार (सं० वि०) नृत्य द्वारा कृत अभिवादन, नाच द्वारा की हुई स्तुति।

दत्तप्राण (सं० वि०) जिसने अपना जीवन उत्सर्ग किया हो।

दत्तमार्ग (सं० क्रि०) गतिरोध नहीं करना, राहसे अलग हो जाना।

दत्तवर (सं० वि०) १ जिससे वर दिया गया हो। २ वह वर जो प्रार्थना करने पर मिला हो।

दत्तशत्रु (सं० पु०) राजाधिदेव शूरके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ३८ अ०)

दत्तशुल्का (सं० स्त्री०) वह कन्या जिसके लिये शुल्क वा पण दिया गया हो।

दत्तहस्त (सं० वि०) जिसने अवलम्ब वा रक्षाके लिए हाथ दिया हो, रक्षित।

दत्तात्मा (सं० पु०) बारह प्रकारके पुत्रोंमेंसे एक पुत्र। मनुने लिखा है, कि जिस पुत्रको उसके माता पिताने त्याग दिया हो अथवा जिसके माता-पिताका देहान्त हो चुका हो और जो स्वयं किसीके पास जा कर उसका दत्तक पुत्र बने, वह ग्रहीताका दत्तात्मा वा स्वयं दत्तपुत्र कहलाता है।

दत्तात्रेय—विष्णु अवतारके ऋषिभेद। महाभारत, हरिवंश, भागवत, विष्णुपुराण, मार्कण्डेयपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें दत्तात्रेयका उल्लेख है। इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मार्कण्डेयपुराणमें जो कथा लिखी है, इस प्रकार है—

कुशिक वंशीय कोई कोढ़ी ब्राह्मण प्रतिष्ठानपुरमें रहते थे। उनकी स्त्री पतिव्रता और स्वामिभक्त थी। अनेक कष्ट झेलते हुए भी वह प्राणपणसे स्वामीकी सेवा शुश्रूषा किया करती और सदा उन्हें खुश रखनेकी कोशिश करती रहती थी। एक बार वह ब्राह्मण किसी सुन्दरी वेश्या पर आसक्त हो गये और उसके घर ले जानेके लिये उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा। उसके आज्ञानुसार वह पतिव्रता स्त्री घोर घनघटाच्छन्न रात्रिमें स्वामीको अपने कन्धे पर बिठा और साथमें कुछ रुपया

ले वेश्याके घरको निकली। रास्तेमें शूलविद्ध अणीमाण्डव्य ऋषि तपस्या कर रहे थे। अंधेरी रातमें कोढ़ी ब्राह्मणका पैर उन्हें लग गया। महर्षि माण्डव्य बहुत बिगड़े और शाप दिया, 'जिस नराधमने पांवसे हमें ठेल दिया है, वह सूर्य निकलते निकलते मर जायगा।' सती स्त्री इस विकट अभिशापको सुन कर बहुत दुःखित हुई और बोली 'जाओ! सूर्यका उदय ही नहीं होगा, सती की बात टलनेकी नहीं।' जब सूर्यका उदय न हुआ तो पृथ्वीके नाशकी सम्भावना हुई। इस पर सब देवता बहुत चिन्तित हो ब्रह्माके पास गये और सूर्योदयके नहीं होनेसे यज्ञ-लोपकी कथा सुनाई। ब्रह्माने कहा, 'तेज द्वारा तेजका और तपस्या द्वारा तपस्याका उपशम होता है। जब पतिव्रताके माहात्म्यके प्रभावसे सूर्य उदय नहीं होते हैं, तब पतिव्रता स्त्री द्वारा ही उनका उदय करना होगा।' ब्रह्माके कथनानुसार वे सबके सब महासाध्वी अत्रि मुनिकी सहधर्मिणीके पास गये और अपना दुखड़ा रोया। देवताओंको सन्तुष्ट करनेके लिए अनसूयाने जा कर ब्राह्मणपत्नीको समझाया और मधुर स्वरसे कहा, 'तुम्हारे वचनसे सूर्यका उदय बन्द हो गया है जिससे यज्ञ और सृष्टिके लोप होनेकी सम्भावना है। अतः तुम सूर्योदय होने दो, बाद तुम्हारे पतिके मरते ही मैं उन्हें फिर सजीव कर दूंगी और उनका शरीर नीरोग हो जायगा।' अनसूयाकी बात सुन कर ब्राह्मणपत्नी सहमत हो गई। सूर्यका उदय हुआ और मृत ब्राह्मणको अनसूयाने जीवित कर दिया। देवताओंने प्रसन्न हो कर जब अनसूयासे वर मांगने कहा, तब वह बोलीं, 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों मेरे गर्भसे जन्म ग्रहण करें।' ब्रह्मादिने इसे स्वीकार कर लिया।

यथा समय ब्रह्माने सोम बन कर, विष्णुने दत्तात्रेय बन कर और महेश्वरने दुर्वासा बन कर अनसूयाके घर जन्म लिया। हैहयराजके उद्धत स्वभावसे जब अत्रि तंग आ गये, तब भगवान् दत्तात्रेय क्रुद्ध हो कर सातवें ही दिन गर्भसे निकल आए थे। दत्तात्रेय अनेक दैत्यदलन और शिष्टका पालन कर थोड़ी ही उमरमें योगी हो विषयभोगसे विरक्त हो गये थे। वे सदा ऋषिकुमारोंके साथ योग साधन किया करते थे। एक बार ये अपने साथियों और संसारसे छुटकारा पानेके लिये बहुत समय तक सरोवरमें डूबे रहे। पर तो भी ऋषिकुमारोंने उनका संग न छोड़ा, वे सरोवरके किनारे उनके आसरे बैठे रहे। उन्हें छलनेके लिये दत्तात्रेय एक सुन्दरीको साथ लिए निकले और उसके साथ मद्यपान तथा नृत्य-गीत करने लगे। इस पर भी ऋषिकुमारोंने उनका साथ न छोड़ा। उन्होंने सोचा, कि दत्तात्रेय महापुरुष हैं, योगियोंके भी नियन्ता हैं, किसी विषयमें इनकी आसक्ति नहीं है। सुतरां मद्यपान तथा स्त्रीसङ्गकी कालिमा उनमें लग नहीं सकती। जो योगवित् तथा योगीश्वर हैं, वे भी उनका स्मरण किया करते हैं।

एक समय जम्भासुरके साथ देवताओंका घनघोर युद्ध हुआ। इसमें असुरोंकी ही जीत हुई। बृहस्पतिकी आज्ञासे देवताओंने जा कर दत्तात्रेयको खुश किया। उनके कहनेसे देवताओंने पुनः दैत्योंके साथ युद्ध घोषणा कर दी। किन्तु दैत्योंके प्रबल आक्रमणसे डर कर देवगण सहायताके लिये फिर भी दत्तात्रेयके पास आए। दैत्योंने भी उनका पीछा न छोड़ा, वरं उन्हें खदेरते हुए वहां तक पहुँच गये। उन्होंने देखा, कि पराक्रमी दत्तात्रेय अपनी बगलमें जगत्की वरणीया लक्ष्मीको लिए बैठे हुए हैं। लक्ष्मीके रूप पर दैत्यगण मोहित हो गये और देवताओंको छोड़ उसी रमणीरत्नकी डोलीमें चढ़ा चलते बने। तब दत्तात्रेयने हँस कर देवताओंसे कहा, 'सौभाग्यवश अब तुम लोग विजयी हो गये। क्योंकि जब लक्ष्मी दैत्योंका सप्ताङ्ग छोड़ कर उनके शिर पर चढ़ बैठी हैं, तब निश्चय ही उन्हें परित्याग कर किसी दूसरेका आश्रय लेंगी।' दत्तात्रेयके वचनोंसे उत्साहित देवताओंने दैत्योंका विनाश कर डाला। लक्ष्मी भी उनके शिर परसे गिरकर दत्तात्रेयकी पार्श्ववर्तिनी हुईं।

राजा कार्त्तवीर्यार्जुनने विवेकके वशीभूत हो पहले राजपद ग्रहण करना न चाहा। पीछे वे दत्तात्रेयके कहनेसे सिंहासन पर बैठे थे। अलक आदि राजर्षियोंने दत्तात्रेयसे योगोपदेश प्राप्त किया था।

(मार्क० पु० १५।१९ अ०) दत्त देखो।

दत्तात्रेयके नाम पर निम्नलिखित अध्यात्मशास्त्र प्रचलित हैं--

अद्भुतगीता, अवधूतगीता, दत्तगीतायोगशास्त्र, वर्ण-प्रबोध, विद्यागीता, स्वात्मसम्वित्युपदेश, दत्तात्रेयगोरक्ष और दत्तात्रेयोपनिषत्। इसके सिवा दत्तात्रेयतन्त्र, दत्तात्रेयचन्द्रिका, दत्तात्रेयपटल, दत्तात्रेयसंहिता, दत्तात्रेयहृदय आदि कुछ तान्त्रिक ग्रन्थ भी देखनेमें आते हैं। 'दत्तात्रेय-महापूजा-वर्णना' नामक संस्कृत ग्रन्थमें दत्तात्रेयको पूजादि वर्णित हैं। जैनी लोग भी दत्तात्रेयको पूजा करते हैं। दिगम्बरानुचर द्वारा रचित दत्तात्रेय-माहात्म्यमें इस विषयको बहुतसी बातें लिखी हैं। भागवतमें लिखा है, कि दत्तात्रेयने चौबीस पदार्थोंसे अनेक शिक्षाएँ सीखी थीं और उन्हीं चौबीस पदार्थोंको ये अपना गुरु मानते थे। चौबीस पदार्थोंके नाम ये हैं--पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, सागर, पतङ्ग, मधुकर, हाथी, मधुहारी, हरिण, मछली, पिङ्गला वेश्या, गिद्ध, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, साँप, मकड़ी और तितली।

दत्तात्रेय दैवज्ञ--विवाहभूषण नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता।

दत्तापदानिक (सं० क्ली०) दत्तस्य सम्प्रदानं ग्रहणमस्त्यस्य दत्ता-प्रदान-ठन्। अष्टादश विवाद पदान्तर्गत विवादपदविशेष, अठारह प्रकारके विवाद पदोंमेंसे पाँचवाँ विवादपद। चार प्रकारके दानमार्गोंमें जो दत्ताप्रदानिक पदार्थके अन्तर्गत अदेय, देय, दत्त और अदत्त ये चार प्रकारके दानमार्ग हो दत्ताप्रदानिक नामसे प्रसिद्ध हैं।

जो दान देकर फिरसे अन्याय पूर्वक उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, उसे दत्ताप्रदानिक कहते हैं और यह व्यवहारपदके अन्तर्गत है। इसका विषय वीरमित्रोदयमें जो लिखा है, वह इस प्रकार है। स्थावर वस्तु पर प्रकाश्यरूपसे अधिकार कर सकते हैं। दानका जो विषय स्वीकार कर लिया गया हो, उसे अवश्य देना चाहिये और जो दे दिया गया हो, उसे फिरसे लेना कर्त्तव्य नहीं है। लेनेवाला जब तक दानवस्तुको ग्रहण न कर ले तब तक दाताका सत्त्व उस परसे नहीं जाता। दाता उस वस्तु परसे अपना स्वत्व हटा भी क्यों न ले, लेकिन जब तक ग्रहीता उसे ग्रहण न करे, तब तक दाताका स्वत्व उस पर बना रहता है। असम्पूर्णरूपसे दान दे कर फिरसे जो ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट करे, तो उस ग्रहण करनेका नाम दत्ताप्रदानिक व्यवहार है। जब वस्तु दे दी जाती है, तब यही ग्रहण करेंगे, ऐसा निश्चय कर उसी उद्देशसे दाताके त्याग करने पर ग्रहीताका स्वत्व हो जाता है। यदि ग्रहीताकी इच्छा दान लेनेकी ओर न रहे, तो वह स्वत्व नहीं रहता। याज्ञवल्क्य-संहितामें इस प्रकार लिखा है-परिवार प्रतिपालनके अविरोधमें आत्मीय द्रव्य दान कर सकता है। अर्थात् जितनेसे परिवारका भली भांति पालन हो सके, उतना धन रख कर तब दान कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। पुत्रपौत्रादिके रहते सर्वस्व दान नहीं कर सकते एवं पहले यदि किसी दूसरेको कुछ वस्तु देनेकी बात दे भी चुके हों तो भी वह नहीं दे सकते। प्रतिग्रह प्रकाश्य भावसे ही करना चाहिये। जो कुछ दान देनेको स्वीकार किया हो, वही दान करना उचित है। दान करके फिरसे उसे लेना बिलकुल निषेध है।

दत्तानपकर्मन् (सं० क्ली०) दत्तस्य अनपकर्म आदानं यत्र। दत्ताप्रदानिक, दान किए हुए पदार्थको अन्याय पूर्वक फिरसे प्राप्त करनेका प्रयत्न।

दत्तामित्र (सं० पु०) सौवीर नृपभेद।

(भारत आदि १३९ अ०)

किसी किसी प्रत्नतत्त्वविद्के मतानुसार ग्रीक लोगोंके निकट यह शब्द Demitrius नामसे प्रसिद्ध है।

दत्तावधान (सं० त्रि०) दत्तं अवधानं येन। अवहित, एकाग्र चित्त, सावधान।

दत्तासन (सं० त्रि०) दत्तं आसनं येन। प्रदत्तासन, जिसे आसन दिया गया हो।

दत्ति (सं० स्त्री०) दा भावे क्तिन्। दान।

दत्तिक (सं० त्रि०) अल्पो दत्तः ठक्। अल्पदत्त, थोड़ा दिया हुआ।

दत्ती (हिं० स्त्री०) दृढ़सम्बन्ध, सगाईका पक्का होना।

दत्तेय (सं० पु०) दत्तायां अपत्यं पुमान् दत्त-ढक्। इन्द्र।

दत्तोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद् भेद, एक उपनिषद्का नाम।

दत्तोलि (सं० पु०) पुलस्त्य मुनिका एक नाम।

दत्र (सं० क्ली०) दा-बाहु० कत्रन्। १ धन। २ हिरण्य, सोना।

दत्रिम (सं० त्रि०) दानेन निर्वृत्तः दा-क्त्रि क्त्रेर्मप्। १ दान द्वारा निष्पन्न। (पु०) २ दत्तक पुत्र। दत्तक देखो।

दद (सं० त्रि०) दा-बाहु० श। दाता, देनेवाला।

ददन (सं० क्ली०) दद भावे ल्युट्। दान।

ददमर (सं० पु०) वृक्ष विशेष, एक प्रकारका पेड़।

ददरा (हिं० पु०) छाननेका कपड़ा, छन्ना, साफी।

ददरी (हिं० स्त्री०) वह दाग जो पके हुए तम्बाकूके पत्ते पर पड़ जाता है।

ददा (हिं० पु०) दादा देखो।

ददि (सं० त्रि०) दा-कि। दाता, दान देनेवाला।

ददितृ (सं० पु०) दाता।

ददियाससुर (हिं० पु०) श्वसुरका पिता, ससुरका बाप।

ददियासास (हिं० स्त्री०) ददिया श्वसुरकी स्त्री, सासकी सास।

ददिहाल (हिं० पु०) १ दादाका कुल। २ दादाका घर।

ददोड़ा (हिं० पु०) ददोरा देखो।

ददोरा (हिं० पु०) शरीर पर उभड़ा हुआ वह दाग जो मच्छर बर्रे आदिके काटनेसे हो गया हो, चकत्ता।

दद्दशानपवि (सं० पु०) अग्नि, आग।

दद्द—भरुकच्छके गुर्जरवंशीय कई एक राजा इसी नामसे परिचित हैं। उनकी आज्ञासे उत्कीर्ण अनेक ताम्रशासन पाये गये हैं। किसीके मतानुसार ये लोग वलभी राजाओंके सामन्त माने जाते हैं। १म दद्द नामके अतिरिक्त औरोंके नाम मालूम नहीं। ये भरुकच्छके १म गुर्जर राज नामसे प्रसिद्ध थे और प्रायः ४३० ई०में राज्य शासन करते रहे। इनके पुत्रका नाम जयभट वीतराग था। इन्हीं जयभटके औरससे २य दद्द प्रशान्तराग उत्पन्न हुए थे। इनके समयके ४००, ४१५ और ४१७ शकके उत्कीर्ण ताम्रशासन पाये गये हैं। ये ज्ञानी और सद्विवेकी राजा थे। इन्होंने दार्शनिक ग्रन्थ भी रचा तथा नाना स्थानोंमें मठ निर्माण कर वहां अपना धर्ममत और शास्त्रीय उपदेशके लिये ब्राह्मण नियुक्त किया था।

इनके बाद गुर्जरवंशीय कौन राजा राज्य करते रहे, उनका कोई प्रमाण आज तक नहीं मिला है। ताम्रशासनमें (३य) दद्दका उल्लेख है। डाक्टर बुहलरके मतसे ये ५८० ई०में राज्य करते थे। खोदिनलिपिसे ऐसा जाना जाता है कि इन्होंने अपने शत्रु नागवंशीको परास्त कर विन्ध्यशैल तक अपना अधिकार फैला लिया था। इनके उत्तराधिकारी (२य) जयभट हुए। जयभटके पुत्रका नाम (४र्थ) दद्दप्रशान्तराग था। खेड़ासे ३८० और ३८१ (चेदि) सम्वत्के उत्कीर्ण दो ताम्रशासन पाये गये हैं। जिनसे जाना जाता है कि (४र्थ) दद्दने ६२८ से ६३३ ई० तक राज्यशासन किया। ये सूर्यके उपासक थे। इन्होंने सम्राट् श्रीहर्षदेवके प्रबल आक्रमणसे वलभीराजको बचाया था। इतनी कृतज्ञता दिखलाने पर भी दोनोंमें अधिक दिन तक मित्रता न बनी रही। वलभीराज (२य) ध्रुवसेनने ६४८ ई०में गुर्जर राजधानी भरुकच्छ जीत कर यहां ताम्रशासन अर्पण किया। किन्तु गुर्जरराज अधिक दिन तक गिरी दशामें पड़े न रहे। वलभीराज (४र्थ) धरसेनके मरने पर (४र्थ) दद्द प्रशान्तराग पुनः प्रबल हो उठे। इसके कुछ दिन बाद ही चालुक्यराजने गुर्जर राज्यके दक्षिणांश पर अधिकार कर लिया। ४र्थ दद्दके पुत्रका नाम भी जयभट था। जयभटके पुत्र बाहुसहाय थे और यही (५म) दद्द हुए। वलभी और चालुक्य राजाओंके साथ इन्हें अनेक बार लड़ना पड़ा था। इनके पुत्रका नाम भी जयभट था। इनके ४५६ और ४८६ (चेदि) सम्वत्में प्रदत्त दो ताम्रशासन मिलते हैं। अन्तिम चेदि सम्वत् ७३४-३५ ई० होता है। इनके बाद गुर्जर वंशीय और किसी राजाका नाम नहीं मिलता।

दद्रु (सं० पु०) १ कच्छप, कछुआ। २ ददाति कण्डूमिति दद-बाहु० रुः वा दरिद्राति दुर्गच्छत्यनेन, दरिद्रा कुप्रत्ययान्तेन साधुः। त्वग्रोगविशेष, दादका रोग। इसका पर्याय—दद्रुरक, दर्द्रू और दद्रू। यह रोग

कुष्ठरोगके अन्तर्गत माना गया है। भावप्रकाशमें लिखा है-कुष्ठमें रक्तवर्ण कण्डुयुक्त जो पीड़का मण्डलाकारमें निकलती है उसे दद्रु कहते हैं। उसकी चिकित्सा इस प्रकार है—कुट्‌की, विड़ङ्ग, चकवंड़, हल्दी, सैन्धव और सरसों इन सबको कांजीके साथ पीस कर प्रलेप देनेसे दाग और कुष्टरोग जाता रहता है। दूसरी विधि—दूब, मघा (औषधविशेष), सैन्धव, चकवंड़ और नन्दी वृक्ष इन सबका बराबर बराबर भाग ले कर कांजीके साथ पीसते हैं। बाद तीन दिन तक इसका लेप देनेसे दद्रु और कुष्ठरोग आरोग्य हो जाता है।

भावप्रकाशके मतसे--गाँड़र घास, सफेद सरसों और थूहरका पत्ता इन तीनोंको बराबर बराबर भागसे दूना चकवंड़का पत्ता, इन सबको बिना कूटे अठगुने गायको छाछमें डुबो देते हैं। तीन दिन बाद उन्हें एक साथ पीस कर सात दिन तक प्रलेप देनेसे दद्रुरोग नाश हो जाता है। प्रलेप देनेके पहले उस जगहको बनगोंइठासे खुजला लेना चाहिये। कुष्ठसर्षप, श्रीनिकेत (तारपीनका तेल), हरिद्रा, त्रिकटु, चक्रमर्दका बीज और मूलकबीज इन सबको छाछके साथ पीस कर दाद पर लगानेसे दादरोग आरोग्य हो जाता है। सैन्धव, चक्रमर्दका बीज, शर्करा नागकेशर और कृष्णाजिनको कैथके रसके साथ पीस कर प्रलेप देनेसे दद्रुरोग शीघ्र विनष्ट हो जाता है। स्वर्णक्षीरी, व्याधिघात, शिरीष, निम्ब, शाल, कूटज और लतासालका चूर्ण तैयार कर स्नानके बाद उसे दादकी जगह पर घिस कर लगानेसे दाद बहुत जल्द जाती रहती है। (सुश्रुत कुष्ठाधिकार) गरुड़पुराणके मतानुसार यह एक प्रकारके व्रण जातिका रोग है। हरिद्रा, हरिताल, दूर्वा, गोमूत्र और सैन्धव इन सबको एक साथ पीस कर लगानेसे यह रोग आरोग्य हो जाता है।

(गरुडपु० १८४ अ०)

दद्रुक (सं० पु०) दद्रुरेव स्वार्थे कन्। दद्रु रोग।

दद्रुघ्न (सं० पु०) दद्रुं दद्रुरोगं हन्ति हन-ठक्। चक्रमर्दक, चक्रमर्दी, चकवँड़।

दद्रुण (सं० त्रि०) दद्रुरस्त्यस्य दद्रु ण। दद्रुरोगी, जिसे दद्रुरोग हुआ हो।

दद्रुनाशिनी (सं० स्त्री०) दद्रुं नाशयति नश-णिच्-णिनि ङीप्। तैलिनी कीट, एक प्रकारका वृक्ष।

दद्रुरोगी (सं० त्रि०) दद्रुरोगोऽस्त्यस्य दद्रुरोग-इनि। दद्रुरोगविशिष्ट, जिसे दादका रोग हुआ हो।

दद्रू (सं० पु०) दरिद्राति दुर्गत्यमनेनेति दरिद्रा-ऊः, रकारिकाराकाराणां लोपश्च (दरिद्रातेयो लोपश्च। उण् १।८२) दद्रु, दादका रोग।

दद्रूघ्न (सं० पु०) दद्रुं हन्ति हन टक्। दद्रु, दाद।

दद्रूण (सं० त्रि०) दद्रू न। दद्रु।

दधन्वत् (सं० त्रि०) दधि-मतुप् वेदे निपातनात् दधन्नादेशो मस्य वः। दधिविशिष्ट, जिसमें दही मिला हुआ हो।

दधालिया—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत महीकाण्ठाका एक राज्य। यहांके प्रधान एक करद सर्दार हैं। उन्हें बरोदाके गायकवाड़को वार्षिक ७००) रु० 'घासदाना' कह कर तथा एदरके राजाको ६००) रु० सैन्यको रसद कह कर कर स्वरूप देने पड़ते हैं। महीकान्तामें वे अपने वंशके स्थापनकालसे ही राज्य करते आ रहे हैं। ये सिसोदिया राजपूत हैं और राजपूतानेसे यहां आ कर बस गये हैं। दत्तक पुत्र लेनेके विषयमें इन लोगोंमें कोई छेड़छाड़ नहीं है। ज्येष्ठ पुत्र ही राज्यके अधिकारी होते हैं। १६७४ ई०में प्रथम ठाकुर या प्रधान एदरके राजा यहां नौकरी करते थे और उसीमें उन्हें ४८ ग्राम उपहारमें मिले थे। किन्तु पीछे जब वे मारवारके राजकुमारोंको सेवा करनेको राजी न हुए, तब उनको उक्त वृत्ति कुछ घटा दी गई।

दधि (सं० पु०) दधातीति धा-कि (भाषायां धाञ्-कृसृ-गमिजनि नमिभ्यः। पा ३।२।१७१) दुग्धविकारविशेष, दही, जमाया हुआ दूध। इसका पर्याय—क्षीरज मङ्गल्य, विरल और पयस्य है। इसका गुण—उष्णवीर्य, अग्निदीप्तिकारक, स्निग्ध, कषाय, गुरु, अम्लविपाक, धारक, रक्तपित्तकारक, शोथजनक, मेदोवर्द्धक, कफप्रदायक, बलकारक, शुक्रवर्द्धक, मूत्रकृच्छ्र, प्रतिश्याय, शीतकनामक विषमज्वर, अतीसार, अरुचि और कृशताके लिये बहुत उपकारी है। दधि पांच प्रकारका होता है, पहला मन्द, दूसरा स्वादु, तीसरा स्वाद्वम्ल, चौथा अम्ल और पाँचवाँ अत्यम्ल।

मन्ददधि—जो दूध विकृत हो कर कुछ गाढ़ा हो

गया हो और अच्छी तरह दधिके रूपमें न जमा हो, उसे मन्द दधि कहते हैं। इसका गुण—मल और मूत्रनिःसारक तथा त्रिदोषजनक है।

स्वादुदधि—जो दूध अच्छी तरह गाढ़ा हो कर अत्यन्त मधुर रसके साथ जम गया हो और खट्ट रसका अनुभव न होता हो, उसे स्वादु दधि कहते हैं। इसका गुण—अत्यन्त अभिष्यन्दी, शुक्रजनक, मेदोवर्द्धक, कफकारक, वायुनाशक, मधुरविपाक और रक्तपित्तका दोषनाशक है।

स्वाद्वम्लदधि जो दूध गाढ़ा हो कर कुछ कसैला लिये मधुर अम्ल स्वाद देता हो, उसे स्वाद्वम्ल दधि कहते हैं। इसका गुण सामान्य दधि सरीखा है।

अम्लदधि—जिस दधिमें मिठास न हो, वरं अम्लरस पाया जाय, उसे अम्लदधि कहते हैं। इसका गुण—अग्निसन्दीपक, रक्तपित्तवर्द्धक और कफवर्द्धक है।

अत्यम्लदधि—जिस दधिसे दन्त तथा रोम हर्ष हो जाय और कण्ठसे दाह देने लगे, उसे अत्यम्ल दधि कहते हैं। इसका गुण—अग्निदीप्तिकारक और रक्तपित्तजनक है।

गव्यदधि—मधुर रस, बलकारक, रुचिजनक, पवित्र, अग्निदीपक, स्निग्ध, पुष्टिकारक और वायुनाशक है। सब प्रकारके दधियोंमें गव्यदधि ही अधिक गुणविशिष्ट है।

महिषदधि—अत्यन्त स्नेहयुक्त, कफकारक, वायु और पित्तनाशक, मधुरविपाक, अभिष्यन्दी, शुक्रवर्द्धक, गुरु और रक्तदूषक है।

छागीदधि—बहुत संग्राही, लघु, त्रिदोषनाशक, अग्निदीप्तिकारक तथा श्वास, कास, अर्श, क्षय और क्षशरोगमें हितकर है।

पक्व दुग्धदधि—अच्छी तरह उबाले हुए दूधसे जो दधि बनता है, उसकागुण—रुचिकारक, स्निग्ध, अत्यन्त गुणकारी, पित्त और वायुनाशक तथा धात्वग्नि समूहका बलकारक है।

निःसार दुग्धदधि—असार दूध अर्थात् जिस दूधसे मक्खन निकाल लिया गया हो, वैसे दूधसे जो दधि जमाया जाता है, वह धारक, शीतवीर्य, वायुवर्द्धक, लघु, विष्टम्भी, अग्निदीप्तिकारक, रुचिजनक और ग्रहणी रोगनाशक है।

गालितदधि—जिस दधिका तोड़ निकाल लिया गया है, उसे गालित दधि कहते हैं। इसका गुण—स्निग्ध वायुनाशक, कफकारक, गुरु, बलकारक, पुष्टिजनक, रुचिजनक, मधुररस और अत्यन्त पित्तजनक नहीं है।

शर्करायुक्त दधि—(चीनी मिला हुआ दही) यह दधि सब प्रकारके दधियोंमें श्रेष्ठ गुणदायक है। इससे प्यास, रक्तपित्त और दाह जाता रहता है। गुड़युक्त दधि वायु-नाशक, शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक, तृप्तिकर और गुरु है। रातको दही खाना मना है। एकान्त भोजन करते समय जल, घी, चीनी, मूंग, तरकारी, मधु अथवा आँवला इनमेंसे किसी एकको दधिके साथ मिला कर खाना चाहिये। उष्ण करके भी रातमें खा सकते हैं। यद्यपि रातमें दधि खाना निषिद्ध है तो भी घी आदिके साथ मिला कर खानेसे वह दोषावह नहीं है। किन्तु रक्तपित्त और कफोद्भव रोगमें जल वा घी मिला कर दहीका सेवन करना अप्रशस्त है।

हेमन्त, शिशिर और वर्षा इन तीन ऋतुओंमें दधि खाना स्वास्थ्यकर है तथा शरत्, ग्रीष्म और वसन्त इन ऋतुओंमें अहितकर। दधिलोलुप मनुष्य यदि उक्त नियमका उल्लङ्घन कर दधिका सेवन करे, तो वह ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डु, भ्रम और उग्र कामला रोगसे पीड़ित रहता है। दधिके स्नेह समन्वित ऊपरी भागको मलाई वा छाली और मण्डको मस्तु वा तोड़ कहते हैं। दधिकी छालीमें मधुर रस, गुरु, शुक्रवर्द्धक एवं वायु और अग्निप्रणाशक गुण है। खट्टा हो जाने पर इसका गुण वस्तिशोधक एवं पित्त और कफवर्द्धक है। दधिके तोड़में क्लान्तिनाशक, बलकारक, अन्नाभिलाषजनक, स्रोतःसमूहका शोधनजनक, आह्लादजनक, कफघ्न, पिपासाजनक, वातापहारक, अहृद्य, प्रीतिजनक और शीघ्र ही सञ्चित मलविरेचक गुण माना गया है। (भावप्रकाश)

सुश्रुतमें दधिका विषय इस प्रकार लिखा है—दही तीन प्रकारका होता है-मधुर, अम्ल, और अत्यम्ल पीछे कषाय। यह स्निग्ध और उष्ण एवं पीनस, विषमज्वर, अतिसार, अरुचि और मूत्रकृच्छ्ररोग-शान्तिकर, तेज-

ष्कर, प्राणकर और मङ्गलजनक है। मीठा दहीसे चक्षुरोग उत्पन्न होता है तथा कफ और मेदकी वृद्धि होती है। खट्टा दही पित्तश्लेष्माको बढ़ाता है और जो बहुत खट्टा है उससे रक्त दूषित होता है। मन्दजात अर्थात् जो अच्छी तरह जमने नहीं पाता, वह दही विदाही होता है, गलेमें दाह उत्पन्न करता है तथा उससे मल, मूत्र, वायु, पित्त और कफकी वृद्धि होती है।

गव्यदधि—स्निग्ध, मधुर, अग्निकर रुचिकर, और पवित्र है।

छागीदधि—लघु, कफ, पित्तका शान्तिकर, वायुजनित क्षयरोगका निवृत्तिकर, अर्श, श्वास और कास रोगका हितकर एवं अग्निकर है।

माहिष दधि-मधुर, वृष्य, वायुपित्तका शान्तिकर, कफवर्द्धक और स्निग्ध है।

उष्ट्र दधि—उबालने पर कटु रस, क्षारयुक्त, गुरुपाक और भेदकर तथा वात, अर्श, कुष्ठ, कृमि और पेटकी बीमारीमें शान्तिकर है।

आविक दधि—भेंड़के दूधका जमाया हुआ दही वात, श्लेष्मा और अर्श वर्द्धकर। रस और पाक होने पर मधुर, चक्षुरोगकर एवं दोषवर्द्धक है।

घोड़ीका दधि—अग्निकर, चक्षुरोग और वातवर्द्धक, रूक्ष, उष्ण, कषाय एवं कफ तथा मूत्रनाशक है।

नारी दधि—स्निग्ध, पाक होने पर मधुर, बलकर, तृप्तिकर, भार, चक्षुका हितकर एवं दोषशान्तिकर है।

हस्तिनीका दधि—लघुपाक, कफघ्न, उष्णवीर्य, अजीर्ण, कफ एवं मलवर्द्धक है। लेकिन जितने प्रकारके दधि बतलाये गए हैं, उनमेंसे गव्य दधि ही श्रेष्ठ है। गायका दही स्वादिष्ट होता है, वस्त्रसे छानने पर यह शरीरको मजबूत बनाता है, वायुको शान्त करता है और श्लेष्माको बढ़ाता है। लेकिन इससे पित्त कुपित नहीं होता। दधिकी मलाई गुरुपाक, वृष्य, वायुकी शान्तिकर, अग्निकर एवं कफ और शुक्रवर्द्धक है। बिना मलाईका दधि रूक्ष, मलरोधक, वायुवर्द्धनकर, अग्निकर, लघु, कषाय और रुचिकर होता है। शरत्, ग्रीष्म और वसन्तकालमें दही खाना अप्रशस्त और हेमन्त शिशिर तथा वर्षाकालमें प्रशस्त है। दहीका तोड़ा या पानी तृष्णा और क्लान्तिनाशक, लघु, शरीरके द्वारका शोधनकर, अम्ल, कषाय, मधुर और वातश्लेष्माका शान्तिकर है, किन्तु यह तेजोवर्द्धक नहीं है। इसके सिवा यह प्रह्लादकर, तृप्ति, बल, रुचिकर तथा मलभेदक भी है। जितने प्रकारके दधि ऊपर बतलाए गए हैं उन्हें सात प्रकारके दधिके अन्तर्गत समझना चाहिये। स्वादु, अम्ल, अत्यम्ल, मन्दजात पक्वदुग्धजात, दधिरस और असार यही सात प्रकारके दधि हैं। इनका तोड़ या पानी भी दधि सरीखा गुणकारी है। (सुश्रुत)

शरत्कालमें दधिका गुण—गुरु, अम्ल और रक्तपित्तवर्द्धक, शोफ, तृष्णा, ज्वर, शूल और विषमज्वरकारक है।

हेमन्तकालमें दधिका गुण—गुरु, स्निग्ध, मधुर, कफकृत और बलवर्द्धक, वृष्य, मेध्य, पुष्टि, तुष्टि तथा वृद्धिदायक है।

शिशिरमें दधिका गुण—अम्ल मधुर, गुरु, वृष्य, बलकारक, बल और वीर्यनाशक है।

ग्रीष्ममें दधिका गुण लघु, अम्ल, उष्ण, रक्तपित्तकारक, शोष, भ्रम और पिपासाकारक है।

वर्षामें दधिका गुण—शीतल, शोथ, वात, भ्रम, श्रम और अतिसारनाशक है (राजवल्लभ) इस समय यह पीनस, अतिसार, शीत, विषमज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कृशता रोगमें विशेष फायदामन्द माना गया है। (हारीत ८ अ०) २ वस्त्र, कपड़ा।

दधि (हिं० पु०) समुद्र, सागर।

दधिक (सं० पु०) श्रीवेष्टकवृक्ष, सलाइका पेड़।

दधिकर्म (सं० पु०) दधिसंस्कारकं कर्म। दधिसंस्कारक वैदिक कर्मभेद।

दधिकांदो (हिं० पु०) एक प्रकारका उत्सव जो प्रायः जन्माष्टमीके समय होता है। इसमें लोग हल्दी मिला हुआ दही एक दूसरे पर फेंकते हैं। प्रवाद है, कि जब श्रीकृष्णने जन्मग्रहण किया था, तब गोपों और गोपियोंने आनन्दमें मग्न होकर हल्दी मिला हुआ दही एक दूसरे पर इतना अधिक फेंका था कि गलियोंमें दहीका कीचड़ सा हो गया था।

दधिकूर्चिका (सं० स्त्री०) दधिजाता कूर्चिका वा अर्द्धकोष्ण दुग्धे दध्यम्लसंयोगात् जाता। दुग्ध विकार भेद, फटे हुए दूधका वह अंश जो पानी निकलने पर

बच जाता है, छेना। उबाले हुए दूधके साथ दही मिल जानेसे अर्थात् गरम दूधमें खटाई मिल जानेसे दूध फट जाता है, उसी फटे हुए अंशको दधिकूर्चिका कहते हैं। इसका गुण—वातनाशक, ग्राहक, रूक्ष और दुर्जर है।

दधिक्रा (सं॰ पु॰) दधिः दधदन्यं धारयन् सन् क्रामति, क्रम-विट्, अन्तस्यात। १ अश्वरूप अग्न्यात्मक देवभेद। एक वैदिक देवता जो घोड़ेके आकारके माने जाते हैं। २ अश्व, घोड़ा।

दधिक्रावन् (सं॰ पु॰) दधिः दधत् क्रामति क्रम-वनिप्, अन्तस्यात्। अश्वरूप अग्न्यात्मक देवभेद, वैदिकके एक देवता जिनका आकार घोड़ेसा माना गया है।

दधिग्राम—श्रीकृष्णका एक लीलास्थान।

दधिचार (सं॰ पु॰) दधि चारयति चालयति चर-णिच अण्। दधिमन्थनदण्ड, दही मथनेका डंडा, मथानी। इसका पर्याय—वैशाख, तक्राट और करघर्षण है।

दधिज (सं॰ क्ली॰) दध्नो जायते जन-ड। नवनीत, मक्खन।

दधिजात (सं॰ पु॰) १ नवनीत, मक्खन। २ उदधिसुत, चन्द्रमा।

दधित्थ (सं॰ पु॰) दधिवर्णो द्रव्यस्तिष्ठत्यस्मिन्, स्था-क, पृषोदरादित्वात् साधुः। कपित्थ, कैथ।

दधित्थाख्य (सं॰ पु॰) दधित्थं आख्याति कपित्थद्रव्यं अनुकरोति आ-ख्या-क। सरलद्रव, लोबान।

दधिधेनु (सं॰ स्त्री॰) दधिनिर्मिता धेनुः। दानार्थ-कल्पित दधिकुम्भ निर्मित धेनुभेद, दानके लिये कल्पित गौ जिसकी कल्पना दहीके मटकेमें की जाती है। इसका विषय हेमाद्रिदानखण्डमें इस प्रकार लिखा है—जिस स्थान पर यह कल्पित धेनु प्रस्तुत करनी पड़ती है उस स्थानको गोबरसे अच्छी तरह पोत देते हैं। फूलोंसे सुशोभित एक गोचर्म रखना होता है। पीछे जमीन पर कुश फैला कर उसके ऊपर कृष्णाजिनका आसन रखते हैं और धानके ऊपर दधिकुम्भ स्थापित करते हैं। इसके बछड़ेकी भी कल्पना कर उसका मुंह सोनेका बनाना होता है। पीछे प्रशस्तपत्र द्वारा धेनुके श्रवण, मुक्ताफल द्वारा चक्षु, चन्दन और अगुरु द्वारा शृङ्ग, शर्करा द्वारा जिह्वा, श्रीखण्ड द्वारा घ्राण, फलमूल द्वारा दण्ड, ताम्र द्वारा पृष्ठ, दर्भ द्वारा रोम, सूत्रमय द्वारा पुच्छ, सुवर्ण द्वारा शृङ्ग, रौप्य द्वारा क्षुर, नवनीत द्वारा स्तन और इक्षु द्वारा पाद प्रस्तुत करते हैं। इसके अनन्तर धेनु सर्वाभरणसे संयुक्त की जाती है। बाद वस्त्रयुग्म और गन्ध-पुष्पादि द्वारा धेनुकी पूजा करते हैं। जितेन्द्रिय और सकलगुणसम्पन्न कुलीन ब्राह्मणोंको दधिक्राव्णो इत्यादि मंत्र पढ़ कर वह धेनु दान देते हैं और साथ साथ उन्हें छत्रपादुका आदि भी देने होते हैं। इस प्रकार दधिमय धेनु जो दान करते हैं और उस दिन केवल दधि खा कर ही रहते हैं, वे परमपदको प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं, उनके पूर्व दश, अधस्तन दश और एक आप ये इक्कीस पुरुष विष्णुलोकको जाते हैं। जहां नदियां मधु-वाहिनी हैं, पायसमय कर्दम है एवं जहां ऋषि, मुनि और सिद्धगण अवस्थान करते हैं, दाता उसी स्थान पर पहुंच जाते हैं। (हेमाद्रिदानख॰ बराहपु॰) जो यह भक्ति-पूर्वक श्रवण करते हैं, उन्हें भी अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है।

दधिनाम (सं॰ क्ली॰) १ कपित्थ फल, कैथका फल। २ कपित्थ वृक्ष, कैथका पेड़।

दधिपयस् (सं॰ क्ली॰) दधि च पयश्च। दधि और पय दही और दूध।

दधिपयसादि (सं॰ क्ली॰) दधिपयः आदिर्यस्य। गणभेद, एक प्रकारका गण। इस गणका समाहारद्वन्द्व निषेध हुआ है। दधिपयस्, मधुसर्पिस्, ब्रह्म प्रजापति, शिव-वैश्रवण, स्कन्दविशाख, परिव्राट्, कौशिक, प्रवर्ग्य, उपसद, शुक्लकृष्ण, इध्मावर्हिस्, दीक्षातपस्, मेधातपस्, अध्ययनतपस्, उदखलमुशल आदि अवसान, श्रद्धा, मेधा, ऋक् साम और वाङ्मनस् ये सब दधिपयस् आदि गण हैं। (पाणिनि)

दधिपुष्पिका (सं॰ स्त्री॰) दधीव शुभ्रं पुष्पमस्याः कप्, टापि अतइत्वं। श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता।

दधिपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) दधीव पुष्पमस्याः जातित्वात् ङीष्। कोलसिम्बी, सेम। २ श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता। ३ कटभी वृक्ष, लघु ज्योतिष्मती लता, छोटी रनजोत।

दधिपूप (सं० पु०) दधिपक्वः पूपः। अपूपभेद एक प्रकारका पकवान। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—शालि धानके चूर्णको दहीमें मिला कर घीमें तला जाता है। बाद उसे गोलाकारमें प्रस्तुत करते हैं। इसका गुण—गुरु, बलकारक, बृंहण, वायु और पित्तनाशक, अग्निजनक तथा रुचिकर है।

दधिपूर्वमुख (सं० पु०) दधिपूर्वं मुखं यस्य। दधिमुख। दधिमुख देखो।

दधिफल (सं० पु०) दधीव शुभ्रोद्‌द्वयः फले यस्य। कपित्थ, कैथ।

दधिभव (सं० क्ली०) नवनीत, मक्खन।

दधिमण्ड (सं० पु०) दध्नः मण्डः। दधिका मस्तु. दहीका पानी। दधि देखो।

दधिमण्डातक (सं० क्ली०) दधि मस्तुनि, दहीका पानी।

दधिमण्डोद (सं० पु०) दधिमण्ड इव उदकं यत्र, उदकस्य उदादेशः। दधिसमुद्र, दहीका समुद्र। इस समुद्रका जल दहीके जलके समान होता है, इसीसे इसका नाम दधिमण्डोद हुआ है।

दधिमण्डोद्भव (सं० क्ली०) नवनीत, मक्खन।

दधिमुख (सं० पु०) दधिवत् शुभ्रं मुखं यस्य। रामचन्द्रका एक बन्दरसैन्य। यह सुग्रीवका मामा और मधुवनका रक्षक था। हनुमान आदि बन्दरोंने सीताका सम्वाद पा कर इस वनमें उत्सव किया था। पहले दधिमुखने बन्दरोंको उत्सव करनेसे मना किया, किन्तु उन्होंने उसकी बात अनसुनी कर उसका बहुत अपमान किया था। (रामायण ४।६२,६३,६४ सर्ग)

दधियार (हिं० पु०) एक लता जो जीवन्तिकाकी जातिकी होती है। इसके पत्ते लम्बे और पानके आकारके होते हैं। इसकी टहनियों आदिमेंसे दूध निकलता है। इसके फूल सूर्यमुखी फूलसे होते हैं। औषधमें यह बहुत उपयोगी है, अर्कपुष्पी, अन्धाहुली।

दधिलेह (सं० पु०) दधिसर, दहीका ऊपरी भाग, छाली, मलाई।

दधिवक्त्र (सं० पु०) दधिवत् वक्त्रं यस्य। दधिमुख।

दधिवत् (सं० त्रि०) दधि अस्त्यत्र मतुप् वेदे मस्य वः। दधियुक्त, जिसमें दही मिला हो।

दधिवामन (सं० क्ली०) १ शालग्राम मूर्त्तिके मध्य वामन मूर्त्तिभेद, इनका लक्षण इस प्रकार है—

"अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीननीरदोपमं।
दधिवामनकं ज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदं॥"
(ब्रह्मवैवर्त्त० प्रकृतिख०)

इनकी आकृति छोटी, द्विचक्रयुक्त और नवीन बादलके जैसा वर्ण है। यह मूर्त्ति गृहस्थोंके लिये सुखजनक है, अर्थात् गृहस्थ यदि इस मूर्त्तिकी पूजा करे अथवा घरमें प्रतिष्ठित करे, तो उसे सुख अवश्य मिलता है। (पु०) २ दध्योदन द्वारा हवनीय वामनभेद। वामनका दध्योदन द्वारा होम करनेसे सब प्रकारकी दुर्गतियां जाती रहती हैं।

"दध्योदनेन शुद्धेन हुत्वा मुच्यते दुर्गतः।
स्मृत्वा त्रैविक्रमं रूपं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः॥"
(तन्त्रसार—दधिवामनप्र०)

दधिवारि (सं० क्ली०) दध्नः वारि ६ तत्। दधिमस्तु, दहीका पानी।

दधिवास्तुका (सं० स्त्री०) १ गोदन्त हरिताल। २ दुरालभाभेद, जवासा, धमासा।

दधिवाहन (सं० पु०) अङ्ग नामक राजाके पुत्र। (हरिवंश ३१ अ०)

दधिशोण (सं० पु०) शुक्ल वानर, सफेद बन्दर।

दधिषाय्य (सं० पु०) दधिस्यति सो-आय्य, ततो षत्वं निपा० साधुः। (दधिषाय्यः। उण. ३।९१) घृत, घी।

दधिसक्तु (सं० पु०) दध्युपसिक्ताः सक्तवः। दध्युपसिक्त सक्तु, दही मिला हुआ सत्तू।

दधिसर (सं० पु०) दध्नः सरः। दधिस्नेह, छाली, मलाई।

दधिसागर (सं० पु०) पुराणके अनुसार दहीका समुद्र।

दधिसार (सं० पु०) दध्नः सारः। नवनीत, मक्खन।

दधिसुत (हिं० पु०) १ कमल। २ मुक्ता, मोती। ३ चन्द्रमा। ४ जालन्धर दैत्य। ५ विष, जहर।

दधिसुत (सं० पु०) नवनीत, मक्खन।

दधिसुता (हिं० स्त्री०) सीप। उदधिसुता देखो।

दधिस्कन्द (सं० पु०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

दधिस्नेह (सं० पु०) दध्नः स्नेहः। दधिका सर, दही-

को मलाई। इसका पर्याय—दधिसर, सर, दध्युत्तरग और कट्वर है। इसका गुण दधि शब्दमें देखो।

दधिस्वेद (सं० पु०) दध्नः स्वेद इव। तक्र, छाछ, मट्ठा।

दधीच (सं० पु०) दधीचि मुनि, शुक्राचार्यके एक पुत्र।

दधीचास्थ (सं० पु०) दधीचस्य अस्थि। १ वज्र। २ हीरक, हीरा।

दधीचि—एक पौराणिक ऋषि। ये वेदमें दध्यञ्च और महाभारतमें दधीच तथा दधीचि नामसे प्रसिद्ध हैं। यास्कके निरुक्तके मतसे ये अथर्वाके पुत्र हैं, इसीसे ऋगादि वेदोंमें इनका नाम आथर्वण लिखा है। (निरुक्त १२।३३) ब्रह्माण्डपुराणमें इनको शुक्राचार्यका पुत्र बतलाया है। सरस्वतीसे इनके सारस्वत नामक पुत्रगण उत्पन्न हुए थे। (ब्रह्माण्डपु० उ० १म अ०) किसी किसी पुराणमें इन्हें अथर्वके औरस और कर्दमकन्या शान्तिके गर्भसे उत्पन्न माना है। ऋक्संहिताके दो ऋकोंमें दधीचके विषयमें ऐसा लिखा है—

"दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रयदीमुवाच॥"
(१।११६।१२)

अथर्वाके पुत्र दधीचने अश्वमस्तक धारण कर तोमाओंको मधुविद्या सिखलाई थी।

"आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयन्।
स वां मधु प्रवोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम्॥"
(ऋक् १।११७।२२)

हे अश्वियुगल! तुमने आथर्वण दधीचिके धड़ पर घोड़ेका मस्तक जोड़ दिया था। उन्होंने भी सत्यका पालन करते हुए त्वष्टासे * लब्ध मधुविद्या तुम दोनोंको सिखला दी थी। हे दस्रद्वय! यह विद्या तुम लोगोंकी अपिकक्ष्यरूप¶ हुई थी।

सायणने प्रथमोक्त २२ ऋक्के भाष्यमें शाट्यायन और वाजसनेयप्रपञ्चसे जो उपाख्यान उद्धृत किया है वह इस प्रकार है—"इन्द्रो दधीचे प्रवर्ग्यविद्यां मधुविद्यां चोपदिश्य यदीमामन्यस्मै वक्ष्यसि शिरस्ते छेत्स्यामीत्युवाच। ततोऽश्विनावश्वस्य शिरश्छित्वा दधीचः शिरः प्रच्छिद्यान्यत्र निधाय तत्राश्व्यं शिरः प्रत्यधत्तां। तेन च दध्यङ् ऋच सामानि यजूंषि च प्रवर्ग्य विषयाणि मधुविद्याप्रतिपादकं ब्राह्मणं चाश्विनावध्यापयामास। तदिन्द्रो ज्ञात्वा वज्रेण तच्छिरोऽच्छिनत्। अथाश्विनौ तस्य स्वकीयं मानुषं शिरः प्रत्यधत्तामिति।"

इन्द्रने दधीचिको प्रवर्ग्य विद्या और मधुविद्या सिखला कर कहा था, 'यदि यह विद्या तुम किसी दूसरेको बतला दोगे, तो हम तुम्हारा शिर काट डालेंगे।' अश्वियुगलने दधीचका शिरश्छेदन कर उसे अन्यत्र रख दिया और उस स्थान पर फिर घोड़ेका शिर जोड़ ऋक्, साम और यजुः इन तीन प्रवर्ग्य विद्या और मधुविद्या-प्रतिपादक ब्राह्मणोंका अध्ययन किया। यह बात जब इन्द्रको मालूम हुई, तब उन्होंने फिर उस शिरको काट गिराया। बाद अश्वियुगलने धड़ पर पुनः मनुष्यवाला पहला शिर लगा दिया।

ऋग्वेदमें और दो जगह दधीचिको मस्तकास्थिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

प्रतिकूल शब्दरहित इन्द्रने दधीचिकी अस्थिसे नौ गुण निन्यानवे बार वृत्रगणका वध किया था पर्वत पर छिपे हुए दधीचिके अश्वमस्तकको पानेकी जब इन्द्रकी इच्छा हुई, तब उन्होंने उसे शर्य्यणावतमें पाया था। (१।८४।१३) (१।८४।१४)

उक्त दो ऋकोंके विषयमें शाट्यायनीका एक इतिहास यों प्रसिद्ध है—

अथर्वाके पुत्र दधीचिको फिरसे जीवित देख कर असुर लोग देवताओंसे परास्त हुए थे। पीछे दधीचिके स्वर्ग चले जाने पर असुर लोग पुनः पृथ्वी पर भर गये। बाद इन्द्र उनसे लड़नेमें असमर्थ हो दधीचिको तलाश करने लगे। यहाँ उन्हें न देख वे स्वर्ग जा कर सभीसे पूछने लगे, 'दधीचिका अवशिष्ट अङ्ग कहां है?' जवाब मिला, 'दधीचिका केवल अश्वरूप मस्तक मौजूद है जिससे उन्होंने अश्विद्वयको मधुविद्या सिखलाई थी।' इस पर इन्द्रने कहा, 'मैं उसी मस्तककी खोजमें हूं।' इस पर वे बोले, 'हम लोग नहीं कह सकते, वह मस्तक कहां है।' इस पर इन्द्रने जब उन्हें मस्तककी तलाश करने कहा, तब उन्होंने शर्य्यणावत् नामक कुरुक्षेत्रके जघ-

---

* सायणने यहां 'त्वष्टा' शब्दका 'अर्थ' इन्द्र लिखा है।

¶ सायणने 'अपिकक्ष्य' शब्दका अर्थ किया है प्रवर्ग्यविद्यारूप रहस्य।

नालेमें इसे पाया था। पीछे इन्द्रने उसी मस्तककी हड्डीसे असुरोंका वध किया था।

भागवतमें भी दधीचिके अश्वशिरके विषयमें कुछ प्रसङ्ग है। श्रीधरस्वामीने भी सायण की तरह इस उपाख्यान को प्राचीन ग्रन्थसे बहुत बढ़ा चढ़ा कर उद्धृत किया है। (भागवत ६।११ अ० और श्रीधरटीका द्रष्टव्य)

महाभारतमें इनकी कथा इस प्रकार लिखी है—दक्ष जिस समय हरिद्वारमें बिना शिवजीके यज्ञका अनुष्ठान करते थे, उस समय इन्होंने शिवजीको निमन्त्रित करनेके लिए दक्षको बहुत समझाया था; किन्तु दक्षने एक भी न सुनी। इस पर रुद्रभक्त दधीचि यज्ञसभाको छोड़ कर चले गये थे। इनके शिष्य नन्दी इनसे शिवमन्त्रमें दीक्षित हो शिवपार्षद कहलाने लगे।

एक समय दधीचि बड़ी कठिन तपस्या करने लगे। इस पर इन्द्र बहुत डर गये और उन्होंने अलम्बुषा अप्सराको यज्ञ भङ्ग करनेके लिये भेजा। जिस समय ये सरस्वतीके किनारे तर्पण कर रहे थे, उसी समय अलम्बुषा उनके सामने आकर खड़ी हो गई। अलम्बुषाको देखकर दधीचिका वीर्यस्खलित हो गया जिससे एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। यही पुत्र सारस्वत नामसे प्रसिद्ध हुआ। देवगण जब वृत्रासुरके भयसे तंग तंग आ गये, तब उन्हें मालूम पड़ा, कि दधीचिका अस्थिनिर्मित वज्र पाये बिना वृत्रका नाश नहीं हो सकता है। तब देवराज इन्द्रने इनके पास जा कर अस्थिके लिये प्रार्थना की। जो इन्द्र दधीचिके कट्टर शत्रु थे, आज उन्हींके उपकारके लिये दधीचिने अपना शरीर तक अर्पण कर दिया। अग्निपुराणमें लिखा है, कि केवल वज्र ही नहीं बल्कि दधीचिकी अस्थिसे और भी अनेक अस्त्र बनाये गये थे।

दधीच्यस्थि (सं॰ क्ली॰) दधीचेरस्थि। १ दधीचि मुनिकी अस्थि जिससे वज्र बनाया गया। २ वज्र। ३ हीरक, हीरा। दधीचि देखो।

दधीमुख (सं॰ पु॰) वानरभेद, एक बन्दरका नाम।

दधृष (सं॰ त्रि॰) धृष्णोतीति, धृष-क्विन्, द्वित्वादिकञ्च निपातनात् सिद्धं (ऋत्विक् दधृगिति। पा ३।२।५९) १. धृष्ट, निर्लज्ज, बेहया। २ धर्षक, दमन करनेवाला, साहसी।

दधृष्वनि (सं॰ त्रि॰) दधृगिवाचरति दधृष् क्विप्, ततो बाहुलकात् वनि। धर्षक, अभिभावक, पराजित करनेवाला।

दध्न (सं॰ पु॰) दधते जीवेभ्यः पापपुण्यफलाफलं ददातीति दध दाने बाहुलकात् न। यम, चौदह यमोंमेंसे एक यम।

दध्यग्र (सं॰ क्ली॰) दधिसर, दहीकी मलाई।

दध्यङ्ग (सं॰ पु॰) सरल द्रव लोबान।

दध्यञ्च् (सं॰ पु॰) दधिं धारकं अञ्चति अन्च-क्विप्। अथर्वा ऋषिके पुत्र दधीचि मुनि

इन्द्रने दधीचिको प्रवर्ग्यविद्या और मधुविद्या सिखा कर कहा था कि यदि तुम यह विद्या किसीको बतलाओगे तो मैं तुम्हारा सिर काट डालूंगा। इस पर अश्वियुगलने दधीचिका सिर काट कर अलग रख दिया और उसके धड़ पर घोड़ेका सिर लगा दिया। इस तरह उन्होंने दधीचिसे प्रवर्ग्य, (मधु), ऋक, साम और यजुः प्रभृति विद्यायें सीखीं। जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने आ कर उनका घोड़ेवाला सिर वज्रसे काट डाला। बाद अश्वियुगलने उनके धड़ पर फिर उनका अपना सिर लगा दिया।

(ऋक् १।११६।१२ सायण) दधीचि देखो।

दध्यन्न (सं॰ क्ली॰) दध्युपसिक्तं अन्नं। दधिमिश्रित अन्न, दही मिला हुआ अनाज।

दध्यानी (सं॰ स्त्री॰) दधिवत् शुभ्रतां आनयति आ-नी-क्विप्। सुदर्शन वृक्ष, मदन मस्त।

दध्याली (सं॰ स्त्री॰) दध्यानी देखो।

दध्याशिर (सं॰ त्रि॰) दधाति पुष्णाति इति दधि शृणाति हिनास्ति इत्याशी दध्येव आशीर्यस्य। दोषघातक।

दध्याह्वः (सं॰ पु॰) कपित्थ वृक्ष, कैथका पेड़।

दध्युत्तर (सं॰ क्ली॰) दध्नः उत्तरं चरमावस्थां गच्छतीति गम-ड। दधिस्नेह दहीकी मलाई।

दध्युत्तरग (सं॰ क्ली॰) दध्नः उत्तरं चरमावस्थां गच्छतीति गम-ड। दधिस्नेह, दहीकी मलाई।

दध्युद (सं॰ पु॰) दधिवदुदकं यस्य उदकस्य उदादेशः। दधिसमुद्र, दहीका समुद्र।

दध्योदन (सं॰ पु॰) दध्युपसिक्तः ओदनः। दधिमिश्रित ओदन, दही मिला हुआ भात।

दन (हिं० पु०) दिन।

दनकर (हिं० पु०) सूर्य।

दनकौर—युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर जिलेके अन्तर्गत सिकन्दराबाद तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८´ २१` उ० और देशा० ७७´ ३२´ पू०के मध्य बुलन्दशहरसे २० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या ५४४४ है। कहते है, कि महाभारतके वीर द्रोणने यह नगर बसाया था। यहां एक तालाब और एक मन्दिर है जो आज भी द्रोणाचार्य नामसे पुकारा जाता है। शहरके पास ही यमुना नदी बहती है। यहां घी, चीनी और शस्यका व्यापार होता है।

दनखर—पञ्जाबके काङ्गड़ा जिलेकी एक प्राचीन राजधानी। यह अक्षा ३२´५` उ० और देशा० ७८´१५` पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ७१३ है।

दनगा (हिं० पु०) खेतका छोटा टुकड़ा।

दनगोधा—त्रिपुराके अन्तर्गत साचर नदीके किनारे एक ग्राम। यहां वाणिज्य व्यवसायकी अच्छी वृद्धि है।

दनदनाना (हिं० क्रि०) १ दन दन शब्द करना। २ आनन्द करना, खुशी मनाना।

दनमणि (हिं० पु०) सूर्य।

दनादन (हिं० वि०) दन दन शब्दके साथ।

दनायुस् (सं० स्त्री०) दक्षकी कन्या, कश्यपकी स्त्री। इनके चार पुत्र थे—विक्षर, बल, वीर और वृत्र (भारत आदि ६५ अ०) दनायुस्के पुत्र दानव नामसे प्रसिद्ध हैं।

दनु (सं० स्त्री०) १ दक्षकी एक कन्या जो कश्यपकी ब्याही थी। इसके चालीस पुत्र हुए थे जिनके नाम ये हैं—विप्रचित्ति, शम्बर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा केशी, दुर्जय, अयःशिरा, अश्वशिरा, अश्वशङ्कु, गगनमूर्द्धा, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुण्ड, एकपद, एकचक्र, विरूपाक्ष महोदर, निचन्द्र, निकुम्भ, कुपट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य, चन्द्र, एकाक्ष, अमृतप, प्रलम्ब, नरक, वातापी, शठ, वनायु और दीर्घजिह्व। ये सब दानव कहलाते हैं। इनमें जो चन्द्र और सूर्य हैं, वे देव सूर्यसे भिन्न हैं। २ एक दानवका नाम, जो श्रीदानवका पुत्र था।

दनुज (सं० पु०) दनोर्जायते जन-ड। असुर, राक्षस।

दनुजदलनी (सं० स्त्री०) दनुजस्य दलनी। असुरनाशिनी, दुर्गा।

दनुजद्विष् (सं० पु०) दनुजानां असुराणां द्विट् शत्रुः वा दनुजान् द्वेष्टि द्विष-क्विप्। १ देवता। (त्रि०) २ दनुजशत्रु, जो असुरके दुश्मन हों।

दनुजराय (हिं० पु०) दानवोंका राजा हिरण्यकश्यप।

दनुजारि (सं० पु०) दनुजस्य अरिः ६-तत्। दनुजशत्रु, देवता।

दनुजेन्द्र (सं० पु० दानवोंका राजा रावण।

दनुजेश (सं० पु०) १ हिरण्यकश्यप। २ रावण।

दनुष (सं० पु०) राक्षस।

दनुसंभव (सं० पु०) सम्भवत्यस्मात् संभू-अप् दनोः सम्भवः। दनुके पुत्र, दानव।

दनुसूनु (सं० पु०) दनोः सूनुः। दनुकी सन्तान, दानव।

दन्त (सं० पु०) दम-तन् (हसिमृग्रिणिति। उण् ३।८६) १ अद्रिकटक, पर्वतका मध्य भाग। २ कुञ्ज, हाथीका दांत। ३ पर्वतनितम्ब, पहाड़का ढालुवां किनारा। ४ सानु, अधित्यका, ऊँचा पथरीला मैदान। ५ मुखके भीतर चर्वण साधन अस्थिभेद, अंकुरके रूपमें निकली हुई हड्डी जो जीवोंके मुंह, तालु, गले और पेटमें होती है और आहार चबाने, तोड़ने तथा आक्रमण करने, जमीन खोदने इत्यादि कामोंमें आती है, दांत। इसकी संख्या बत्तीस है। पर्याय—रदन, दशन, रद, द्विज, खरु।

(शब्दरत्नावली)

आहार करनेकी नलीसे लेकर मुखके भीतर संलग्न जितने कठिन पदार्थ हैं, वे दाँत कहलाते हैं। प्राणीमात्रको ही दाँत होते हैं, किन्तु आहार्य द्रव्य तथा अभ्यासका पार्थक्यके अनुसार दाँत भी पृथक् पृथक् होते हैं. दाँतोंकी ऐसी पृथक्तासे प्राणीतत्त्वविदोंको प्राणीकी श्रेणीविभाग करनेमें बहुत सहायता मिली है।

शारीरतत्त्वविद् पण्डितोंके मतसे दांत तीन भागोंमें विभक्त है, पहला मस्तक (Crown), दूसरा जड़ (Rood) और तीसरा ग्रीवा (Neck)। प्रत्येक दांतके भीतर एक धमनी और एक स्नायु प्रवेश करती है तथा इस प्रत्येकके बीचमें एक छोटा गड्ढा देखा जाता है। इस गड्ढेके भीतर पल्प (Pulp) अर्थात् दांतके लिए एक

कोमल रक्तपूर्ण और सचेतन पदार्थ देखनेमें आता है। दांतको लम्बे रूपसे छेद करनेसे उसमें चार पदार्थ देखे जाते हैं-(१) डेण्टाइन (Dentine), (२) सिमेण्ट वा क्रुष्टापिट्रोसा (Cement or creusta petrosa), (३) ऐनामिल (Enamel) और (४) पल्प् (pulp)

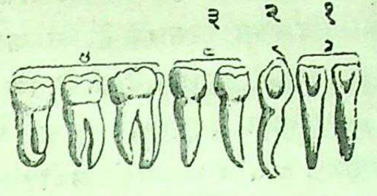

१ डेण्टाइन—यह दांतका प्रधान अंश है। इसके भी फिर तीन भेद है—(१) दृढ़ वा शुद्ध डेण्टाइन (Hard or true dentine), (२)भासो डेण्टाइन (vaso dentine), (३) अष्टिओ डेण्टाइन (osteo dentine)। डेण्टाइन सिमेण्ट और एनामिल द्वारा आवृत रहता है। इसमें अनेक छोटे छोटे नल और गह्वर तथा सूक्ष्मय कणिका देखी जाती हैं। इन सब सूक्ष्म नलों और गह्वरोंमें चूर्णखण्डक कणिका (Calcareous particles) तथा एक प्रकारका वर्णहीन तरल पदार्थ रहता है। डेण्टाइनके मध्य स्थानमें पल्प नामका गह्वर देखा जाता है। सूक्ष्म सूक्ष्म नलों और गह्वरोंके मुख इसी पल्प गह्वरमें लगे रहते हैं।

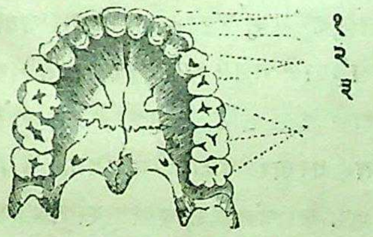

इनमेंसे प्रत्येकको एक एक वह्रिरावरण है जिसे डेण्टाल् सिट् (dental sheath) वा दन्तावरण कहते हैं।

जिस मूल रक्तवहा नाड़ीमय पल्प (Primitive vascular pulp) द्वारा डेण्टाइन परिपुष्ट होता है, वह जब स्थायीरूपसे चूर्णकविहीन रहता है, तब लाल कणिकामय रक्तवहा नाड़ी द्वारा व्यूहतन्तु वा झिल्लीमें (Tissue) लाया जाता है। इस प्रकारके डेण्टाइनको भासो डेण्टाइन (vaso dentine) कहते हैं।

क्षुद्र कोषमय (cellular basis) रक्तवहा नाड़ीके (vascular canals) चारों ओर जब समकेन्द्रिक स्तर पर सज्जित रहता है, तब डेण्टाइनका कुछ रूपान्तर हो जाता है। इस अवस्थाके डेण्टाइनको अष्टिओ डेण्टाइन (osteo dentine) कहते हैं।

२। सिमेण्ट वा क्रुष्टा पिट्रोसा अर्थात् दांतका कठिन पदार्थ—यह दाँतके मूल भागको ढके रहता है। हाथी तथा और कितने प्रकारके जन्तुओंके दाँतोंमें सिमेण्ट अधिक मात्रामें रहता है।

३। एनामिल—दाँतके व्यूहतन्तु (Tissue)-में यह सबसे कठिन है। यह दाँतके मस्तक (crown) को आवृत किये रहता है।

४। पल्प—ये डेण्टाइनके मध्यस्थानको अपनाये हुए हैं। इसमें रक्तवहा नाड़ी, स्नायु और संयोगतन्तु देखे जाते हैं।

डेण्टाइन और भासोडेण्टाइनयुक्त दन्तमत्स्य ही साधारणतः देखे जाते हैं। मनुष्य और मांसाहारी जन्तुओंके दाँत देखनेसे ही पता लगता है कि उनमें डेण्टाइन और एनामल भरे हैं। किन्तु उनके दाँतके मस्तक (crown) पर सिमेण्टका एक पतला आवरण रहता है।

मनुष्यके दो बार दाँत निकलते हैं—१ दुग्धदन्त (यह दाँत बहुत कम समय तक रहता है) और २ दीर्घकाल स्थायी दन्त।

दुग्धदन्त—ये दो वर्षकी अवस्थामें ही निम्नलिखित प्रणालीक्रमसे निकलते हैं।

१। ऊपरके चौभड़के बीच ४ इनसाइजर वा छेदक दन्त जो ८से १० मास तक रहते हैं।

२। नीचेके चौभड़के दोनों ओरके इनसाइजर और ४ मोलर वा चर्वणदन्त—१२से १४ मास।

३। ४ क्यानाइन वा श्वोवनदन्त—१८से २० मास

४। ४ पश्चाद्भागके मोलर २०से २४ मास।

दीर्घकालस्थायी दन्त—छः वर्षकी अवस्थाके भीतर ही दुग्धदन्त झड़ जाते हैं। पीछे दीर्घकाल स्थायी दन्त निकलते हैं। बारह या तेरह वर्षके भीतर दाँत निकल आते हैं। २१ या २२ वर्षकी अवस्थामें जब आखिरी चौभड़ या अकिलदाढ़ (wisdom-tooth) निकलती है, तब ३२ दाँत पूरे हो जाते हैं। निम्न-

लिखित प्रणाली-क्रमसे वे सब दाँत निकलते हैं।

१। प्रथम मोलर ६ वर्षकी अवस्थामें,
२। दो मध्यके इनसाइजर ७ ,, ,,
३। दो समीपके ,, ८ ,, ,,
४। प्रथम बाइकाम्पिड वा द्विमूली ९ ,, ,,
५। द्वितीय ,, १० ,, ,,
६। क्यानाइन ११-१२ ,, ,,
७। द्वितीय मोलर १२-१३ ,, ,,
८। ज्ञानदन्त (अकिलदाढ़ १७-२१ ,, ,,

दुग्धदन्तके मोलर दन्तकी जगह पर बाइकाम्पिड दन्त और मोलरदन्तके पीछे तीन तीन करके स्थायी मोलर दन्त निकलते हैं। ३२ दाँतोंमें प्रत्येक दाढ़के आधे भागमें २ इन्साइजर १ क्यानाइन्, २ बाइकाम्पिड और ३ मोलर रहते हैं, सुतरां कुल ८ इनसाइजर, ४ क्यानाइन, ८ बाइकाम्पिड और १२ मोलरदंत है। इनमेंसे ८ इन्साइजर दंत सामनेकी दो दाढ़ोंमें रहते है। ये दांत लम्बे और चिपटे होते हैं। इनमें धार रहती है। जिससे खाद्य पदार्थ आसानीसे काट कर खाया जाता है।

दाढ़के इनसाइजर दाँतके पासही ४ क्यानाइन दंत हैं। ये दांत लम्बे होते है और इनकी एक बगल चिपटी होती है।

क्यानाइन दंतके बाद ही ८ बाइकाम्पिड दंत रहते हैं जिन्हें प्रिमोलर (Premolar) दंत भी कहते हैं। इनकी जड़ (Fang) का अगला भाग दो खण्डोंमें विभक्त रहता है। इनके पार्श्वकी ओर गड्ढा, ऊपरमें चिपटा और दोनों बगल २ गुटिका देखी जाती हैं। नीचेके जबड़ेके बीचमें दो इन्साइजर हैं जो ६८ मासकी अवस्थामें निकलते हैं।

सबसे पीछे १२ मोलर दाँत रहते हैं। इनका शिरा चौड़ा और चौकोर होता है और जिनसे पीसा या चबाया जाता है।

ज्ञानदन्त या अकिलदाढ़ एकसी लम्बी नहीं होती।

दांतका रासायनिक पदार्थ—

दन्तास्थिमें सैकड़े ३३ भाग जान्तव पदार्थ
क्रुष्टा पिट्रोसा वा सिमेण्ट ,, ३० भाग ,, ,,
डेण्टाइन ,, २८ भाग ,, ,,
एनामिल ,, ३:५ भाग ,, ,,

दांतोंमें जो खनिज पदार्थ देखे जाते हैं, उनमें क्यालसिक फस्फेट, क्यालसिक कार्बनेट, क्यालसिक फ्लुओराइड और म्याग्निसिक फस्फेट प्रधान हैं।

दांत देख कर कौन जन्तु किस श्रेणीका है तथा उसके अभ्यासादि किस प्रकारके हैं, उसका निरूपण किया जा सकता है। हमलोग देखते हैं, कि मांसाहारी जन्तुओंके मोलर दन्त पेषणदन्तके जैसा न हो कर तीक्ष्णधारविशिष्ट होते हैं। कीड़े मकोड़े खानेवाले जन्तुओंके मोलर दांत दंदानेदार तथा खूब बारीक होते हैं।

फल खानेवाले जन्तुओंके मोलर दांतोंके ऊपर गोलदाने से रहते हैं और पाकभोजी जन्तुओंके मोलर दांतोंका ऊपरी भाग चौड़ा तथा असमान रहता है।

मनुष्य तथा और दूधपिलानेवाले जीवोंमें दांत दाढ़ और ऊपरी जबड़ेके मांसमें लगे रहते हैं। मछलियों और सरीसृपोंके दांत केवल जबड़ोंमें ही नहीं, तालुमें भी होते हैं। पक्षियोंकी चोंच ही दांतका काम करती है, उनके दांत नहीं होते। असली दांत मसूड़ोंके गड्ढोंमें जमे रहते हैं। सरीसृप आदिमें दांतका जबड़ेकी हड्डीसे अधिक घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। रीढ़वाले जन्तुओंमें मुंहको छोड़ स्रोत अर्थात् भोजन भीतर ले जानेवाले नलमें और कहीं दाँत नहीं होते। बिना रीढ़वाले छोटे छोटे जन्तुओंमें दांतोंकी स्थिति और आकृतिमें परस्पर बहुत विभिन्नता है। किसीके मुंहमें किसीकी अंतड़ीमें अर्थात् स्रोतके किसी स्थानमें दांत हो सकते हैं। केकड़ा, झिंगवा आदिके उदरमें महीन महीन दांत या दानेदार हड्डियाँ सी होती हैं। जलके भीतर बहुतसे ऐसे कीड़े हैं जिनका मुंह गोल या चक्राकार होता है। ऐसे कीड़ेके मुंहके किनारे पर चारों ओर असंख्य महीन दांतोंका मण्डलसा होता है। मनुष्य और बनमानुसमें दन्तावलि पूर्ण होती है।

दन्तोद्गमफल—बालक यदि सदन्त उत्पन्न हो, तो वह पितामाताका घातक होता है। जातबालकके पहले ही मासमें दांत निकलने पर पिताकी मृत्यु, दूसरे

मासमें निकलने पर माताकी और तीसरे मासमें निकल पर सहोदरकी मृत्यु होती है। चार मासमें दाँत निकलना शुभजनक है। पांच मासमें दांत निकलनेसे जातबालक मिष्टभोजी और सुखी होता है; ६ मासमें निकलनेसे पण्डित. ७ मासमें बलवान्, ८ मासमें दरिद्र, ९ मासमें वीर और दश मासमें निकलनेसे उसीकी मृत्यु होती है। ग्यारहवें और बारहवें महीनेमें दांत निकालना अच्छा है। यदि पूर्वोक्त अशुभजनक महीनोंमें दांत निकलें तो उसकी शान्ति करना आवश्यक है शान्ति करनेमें पहले ८ पुत्तलिका बना कर उन्हें सुगन्ध गन्धद्रव्योंसे अनुलिप्त करते हैं। पीछे शुक्लपुष्प द्वारा स्थापित कर ब्राह्मणपूजा और होमादि करते हैं।*

रतिक्रीड़ामें दन्ताघातका स्थान—मैथुनके समय स्तन, गण्ड, ओष्ठ और अधर इन पांच स्थानोंमें दाँत गड़ाना स्त्रियोंके लिये सुखजनक है।

"स्तनयोर्गण्डयोश्चैव ओष्ठे चैव तथाधरे।
दन्ताघातः प्रकर्त्तव्यः कामिनीनां सुखावहः॥" (कामशास्त्र)

गर्भकालके सातवें मासमें बालकके दन्तमूलका प्रादुर्भाव होता है।

दन्तक (सं॰ पु॰) दन्ते दन्तमार्जने प्रसितः कन्। १ दन्त मार्जन प्रसित, वह पीप जो दांत मलनेसे निकलती है। दन्त इव कन्। २ शैलशृङ्ग, पहाड़की चोटी। ३ पर्वतसे बहिर्निर्गत पाषाणभेद, पहाड़से निकलनेवाला एक प्रकारका पत्थर। स्वार्थे कन्। ४ दन्त, दांत।

दन्तकथा (सं॰ स्त्री॰) जनश्रुति, ऐसी बात जिसे बहुत दिनोंसे लोग एक दूसरेसे सुनते चले आये हों।

दन्तकराल (सं॰ पु॰) दंतरोगभेद, दाँतकी एक प्रकारकी बीमारी।

दन्तकर्षण (सं॰ पु॰) दंतान् कर्षति कृष-ल्यु। जम्बीर, जंभीरी नीबू।

दन्तकाष्ठ (सं॰ क्ली॰) दंतधावनार्थं काष्ठं। दंतधावनकाष्ठ, दतुवन।

दन्तकाष्ठका विषय बृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है,—वल्ली, लता, गुल्म और वृक्षोंके प्रभेदके कारण हजारों प्रकारके दंतकाष्ठ हो सकते हैं। इस कारण किस किस वृक्षका दंतकाष्ठ शुभजनक है और किस किस वृक्षका अशुभजनक सो लिखते हैं। अज्ञातपूर्व काष्ठका वा पत्रसमन्वित, युग्मपर्व, पाटित ऊर्द्ध्वशुष्क और त्वक्विहीन दंतकाष्ठसे दंतधावन नहीं करना चाहिए। वैकङ्कत, श्रीफल और काश्मीरी वृक्षकी दतुवन करनेसे ब्रह्मसम्बन्धिनी द्युतिः प्राप्त होती है। क्षेमतरुवृक्षके दंतकाष्ठसे उत्तमा भार्या, वटवृक्षसे वृद्धि, अर्कवृक्षसे तेजोवृद्धि, मधुकवृक्षसे पुत्रलाभ और ककुभवृक्षसे सबोंका प्रियत्व प्राप्त होता है। शिरीष और करञ्ज वृक्षका यदि दंतकाष्ठ हो, तो लक्ष्मी; प्लक्षका हो, तो अभीप्सित अर्थसिद्धि; जातिवृक्षका हो तो मनुष्यत्व प्राप्ति; अश्वत्थ वृक्षका हो, तो प्राधान्यलाभ, वदरी और बृहती वृक्षका हो तो आरोग्य और आयुवृद्धि, तथा बिल्व और खदिर वृक्षका हो, तो ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है। नीमकी दतुवन करनेसे अर्थप्राप्ति, करवीरसे अन्नलाभ, भाण्डीरसे अथ तथा अन्नलाभ और अर्जुन वृक्षकी दतुवन करनेसे शत्रुनाश होता है। शाल, अश्वकर्ण, भद्रदारु और आटरूषक वृक्षके दंतकाष्ठका व्यवहार करनेसे गौरव प्रकाश और प्रियंगु, अपामार्ग, जंबू तथा दाड़िमका व्यवहार करनेसे सब प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं। पूर्व और उत्तर मुख बैठ कर दतुवन करनी चाहिये। दतुवन करके मुख धो लेना चाहिये। बाद उस दतुवनको किसी अच्छे स्थानमें फेंक देना चाहिये। ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि दंतकाष्ठके प्रशस्त दिककी ओर गिरनेसे शुभकर और यदि वह ऊपरमें हो कहीं पर अटक रहे, तो अत्यंत शुभजनक फल प्राप्त होता है। ऐसा नहीं होनेसे अशुभकर फल मिलता हैं।

प्रातः कालमें शौचादि कार्य सम्पन्न करके दतुवन करनी चाहिए। तिक्त, कटु, कषाय, सुगन्धि, कण्टक, युक्त और चीरिकाष्ठ सब दतुवनोंमें श्रेष्ठ है।

निषिद्धकाष्ठ—गुवाक, ताल, हिंताल, केतकी, खर्जूर और नारियल ये सब वृक्ष तृणराज नामसे प्रसिद्ध हैं। अतः इनका दंतकाष्ठ काममें न लाना चाहिए।

खदिर, कदंब, करञ्ज, वट, तिंतड़ी, वेणुपृष्ठ, आम्र, निंब, अपामार्ग, बिल्व, अर्क तथा डूमर इन सब वृक्षोंके दंतकाष्ठ प्रशस्त माने गये हैं।

दंतकाष्ठका परिमाण—वैश्योंके लिए बारह उङ्गली

का शूद्रोंके लिए छः उंगलीका और स्त्रियोंके लिए चार उंगलीका दंतकाष्ठ बतलाया है।

'द्वादशांगुलं च वैश्यानां शूद्राणां तु षडंगुलम्।
चतुरंगुलमानेन नारीणां विधिरुच्यते ॥" (मरीचि)

दन्तधावन देखो।

दन्तकाष्ठक (सं० क्ली०) ह्रस्वं काष्ठं काष्ठकं दन्तधावनयोग्यं काष्ठकं। आहुल्य वृक्ष, तरवटका पेड़।

दन्तकूर (सं० पु०) दन्ताः कूरं अन्नमिव चर्व्यत्वात् यत्र। संग्राम, युद्ध, लड़ाई।

दन्तकेतु (सं० पु०) लघुनिम्बू वृक्ष, छोटा नीबूका पेड़।

दन्तक्रूर (सं० पु०) दन्ताः क्रूराः यत्र। १ देशविशेष, एक देशका नाम। २ दंतक्रूर देशके राजा।

(भारत द्रोण प० ६० अ०)

दन्तग्राही (सं० त्रि०) दंतं गृह्णाति ग्रह-णिनि। जो दंत नष्ट करता हो, दांत बरबाद करनेवाला।

दन्तघर्ष (सं० पु०) दंतस्य घर्षः ६-तत्। सभी दांतोंका परस्पर घर्षणभेद, दांत पर दांत दबाकर घिसनेकी क्रिया, दांतका किरकिराना। भोजन कर लेने पर भी जिसका हृदय क्षुधासे पीड़ित हो और दांत किरकिराते हों उसकी आयुका शेष समझना चाहिए। निद्राकी अवस्थामें बच्चे कभी कभी दांत किरकिराते हैं जो अशुभ समझा जाता है। रोगीके पक्षमें यह और भी अशुभ लक्षण है।

दन्तघात (सं० पु०) १ दंतस्य घातः दंतेन वा। दंत द्वारा आघात, दाँतसे काटना। २ निम्बूवृक्ष, नीबूका पेड़।

दन्तचाल (सं० पु०) दंतानां चालस्खलनमत्र। आतुरोपद्रवभेद, दाँतका हलना। वृद्ध होने पर दांत आपसे आप हलने लगते हैं।

दन्तच्छद (सं० पु०) दंताश्छाद्यन्तेऽनेन छदि-णिच् घ, ततो ह्रस्वः (पुंसि संज्ञायां घ प्रायेण। पा० ३।३।११८) ओष्ठ, ओंठ।

दन्तच्छदा (सं० स्त्री०) मधुरबिंबी, बिंबाफल, कुंदरू।

दन्तच्छदोपमा (सं० स्त्री०) दंतच्छदस्य ओष्ठस्य उपमा सादृश्यं यत्र। बिंबीलता, बिंबाफल, कुंदरू। कविने इसके साथ ओष्ठकी उपमा दी है, इसीसे इसका नाम दन्तच्छदोपमा पड़ा है।

दन्तजात (सं० त्रि०) जातो दन्तोऽस्य, निष्ठान्तत्वात् परनिपातः। १ जातदन्त, जिसे दाँत निकल आए हों। २ दाँत निकलनेके योग्य। गर्भोपनिषद्में लिखा है, कि बच्चेको सातवें महीनेमें दांत निकलना चाहिए। यदि उस समय दाँत न निकलें, तो अशौच लगता है।

दन्तजाड्य (सं० क्ली०) दंतानां मूलं कर्णादित्वात् जाहच्। दंतमूल, दाँतकी जड़।

दन्तताल (सं० पु०) ताल देनेका एक प्रकारका प्राचीन बाजा।

दन्तदर्शन (सं० क्ली०) दंतानां दर्शनं दृश-णिच्-ल्युट्। युद्ध या चिड़चिड़ाहटमें दाँत निकालनेकी क्रिया। युद्धमें सबसे पहले दांत निकालना, पीछे शब्द करना और तब युद्ध करना चाहिए। (महाभारत बन प० ७१ अ०)

दंतधावन (सं० क्ली०) दंतानां धावनं। १ दंतमार्जन, दाँत धोने या साफ करनेका काम, दातुन करनेकी क्रिया। दंतानां धावनं यस्मात्। २ दंतकाष्ठ, दतुवन, दतून।

प्रातःकाल उठकर सभीको दतुवन करना आवश्यक है। दतुवन करनेसे मुखकी दुर्गन्ध आदि जाती रहती हैं, दाँत परिष्कार और अधिक दिन तक स्थायी रहते हैं। इसी कारण दतुवन करना हर एकका अवश्य कर्तव्य है।

दंतधावनका विषय आह्निकतत्त्वमें इस प्रकार लिखा है,—

"मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भक्षयेत् दंतधावनम् ॥"

(आह्निकतत्त्व)

मुंह बासी रहनेसे दुर्गन्ध निकलती है, इसीसे यत्नपूर्वक दंतधावन करना उचित है।

सवेरे यथाविधि शौचकर्म सम्पन्न करनेके बाद दतुवन करके स्नान करना चाहिए। दाँत परिष्कार करनेमें दंतकाष्ठ ही एक मात्र प्रशस्त है। इस कारण दंतधावन करनेके लिए दंतकाष्ठका इन्तजाम करना अवश्य कर्तव्य है। कोमल साथ साथ कड़ई तीती और कसैली दतुवन जिससे दांतके मांसमें असर न पड़े, दंतधावनके लिए प्रशस्त है। कनेर, आम, करञ्ज, मौलसरी आदि

कण्टक वृक्षसे तथा क्षीरयुक्त वृक्षसे जो कड़ुआ, कसैला, तीता और सुगन्धित हो, दंतकाष्ठ संग्रह करना चाहिए। दँतकाष्ठ देखो। दक्षिण और पश्चिममुखी होकर दतुवन करना निषिद्ध है। यदि कोई मोहवश दक्षिणमुखी हो कर दतुवन करे, तो उसकी आयुक्षय होती है, पश्चिममुखी हो कर दतुवन करनेसे रोग होता है। बाद मरने पर उसे नरक जाना पड़ता है।

"दक्षिणाभिमुखो भूत्वा पश्चिमाभिमुखस्तथा।
न दन्तधावनं कुर्यात् कुर्याच्चेत् नारकी भवेत्॥"
(आह्निकतत्त्व)

पूर्व और उत्तरमुखी होकर दतुवन करना प्रशस्त है। दाँतोंको ऊपर नीचे भलीभाँति दतुवनसे घिसकर मुंहको जलपूर्ण करनेसे तथा चक्षुको जलसे धोनेसे दृष्टि प्रसन्न होती हैं। अमावस्या, षष्ठी, नवमी, प्रतिपद्, एकादशी और उपवासमें तथा श्राद्धवासरमें और रविवारके दिन लकड़ीसे दतुवन न करनी चाहिए। इन सब निषिद्ध दिनोंमें तथा उस स्थानमें जहां दतुवन न मिलती हो, वहां कपड़ेसे दांत और जीभ घिस कर बारह बार कुल्ली करके मुंह साफ करना चाहिए। अर्दित, कर्णशूलग्रस्त, दंतरोगी, नवज्वर, शोषरोगी, काशरोगी और मूर्च्छाव्याधियुक्त मनुष्योंको दंतकाष्टका व्यवहार करना बिलकुल मना है। (राजव०)

दन्तधावनका गुण—प्रतिदिन दतुवन करनेसे मुंहका कड़ुआपन तथा जीभ और दांतके मैल जाते रहते हैं और मुंहकी रुचि होती है। दांतोंको तर्जनीसे कदापि घिसना न चाहिये, इसके लिये मध्यमा, अनामिका वा वृद्धाङ्गुष्ठ प्रशस्त है। सूर्योदयके पहले दतुवन करना उचित है। जो सूर्योदय होने पर दतुवन करते हैं, उनकी सब क्रियायें भ्रष्ट होती हैं। स्नान करते वक्त दतुवन करनेसे उनके पितृगण निराश हो कर चले जाते हैं तथा देवता लोग उनकी पूजा ग्रहण नहीं करते। जो मध्याह्न और अपराह्नके समय दतुवन करते हैं, उन पर देवता और पितृगण रुष्ट रहते हैं।

"सूर्योदये द्विजश्रेष्ठ यः कुर्याद्दन्तधावनं;
नित्यक्रियाफलं तस्य सर्वमेव विनश्यति॥
यः स्नानसमये कुर्यात् जैमिने दंतधावनं।
निराशाः पितरो यांति तस्य देवाः सुवर्षयः॥
दंतस्य धावनं कुर्यात् यो मध्याह्ना पराह्णयोः।
तस्य पुष्पं न गृह्णंति देवताः पितरो जलं॥"
(पाद्म क्रियायोगसार)

दन्तकाष्ठ कनिष्ठा उँगलीके अग्रभागके समान होना चाहिये। यह ब्राह्मणके लिये बारह उंगली, क्षत्रियके लिये नौ, वैश्यके लिये आठ और शूद्रके लिये छः उँगलीका होना आवश्यक है।

दन्तधावनका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है—मनुष्य अपनी स्वास्थ्यरक्षाके लिये ब्राह्ममुहूर्तमें जगें पीछे शौचकार्यादि करके हाथ पैर धो डालें। इसके अनन्तर दतुवन करें। दतुवन बारह उँगली लम्बी, कनिष्ठा उँगलीके अग्रभागके समान मोटी, सीधी तथा बिना गांठकी होनी चाहिये। बाद जिससे दन्तवेष्टित मांसमें चोट न पहुंचे इसके लिये दतुवनके अग्रभागको कूंची सरीखा बनावें और उसमें दन्तशोधन चूर्ण मिला कर दतुवन करें।

मधुर, त्रिकटु सर्षपतैल, सैन्धवलवण, तेज और वल्कल चूर्ण द्वारा प्रतिदिन शोधन तैयार करे। मधुरकाष्ठमें मोलकाष्ठ, कटुरसयुक्त काष्ठमें करञ्ज और तिक्तरससंयुक्त काष्ठमें निम्ब प्रशस्त है। अतः इन्हीं सब पेड़ोंकी दतुवन अच्छी मानी गई है। इस प्रकार दन्तधावन करनेसे मुखकी विरसता, दन्तगतरोग, जिह्वागत रोग जाते रहते हैं तथा रुचि, मुखकी निर्मलता और लघुता उत्पन्न होती है। अकवनकी दतुवन करनेसे वीर्य लाभ होता है; वटसे शरीरकी कान्ति खुलती है। करञ्जसे जय होती है, पाकरसे अर्थ सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। खैरसे शरीरमें सुगन्ध निकलती है, बेलसे धन प्राप्त होती है, यज्ञडुमरसे वाक्की सिद्धि होती है, आमसे नीरोगी होता है। कदम्बसे धारणशक्ति बढ़ती है, चम्पासे मति दृढ़ होती है। शिरीष वृक्षसे कीर्ति, सौभाग्य और परमायु प्राप्त होती है। अपाङ्ग वृक्षसे धारण शक्ति बढ़ती है, दाड़िंब, अर्जुन और कूटज वृक्षसे दन्तधावन करनेसे मनुष्य सुन्दर आकृतिसम्पन्न होता है। जाती, तगर और मन्दारपुष्पकाष्ठसे दुःस्वप्न दूर होता है। सुपारीके पेड़की दतुवन काममें न लानी

चाहिये, यह पहले ही कह चुके हैं। गलरोगी, तालुरोगी, ओष्ठरोगी, जिह्वा और दंतरोगी, मुख और मुखशोषरोगीको दतुवन नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य दुर्बल हो, जिसकी पाचनशक्ति कम गई हो, जो श्वास, कास, वमि, हिक्का और मूर्च्छा आदि रोगोंसे ग्रसित हो, जो मदरोगसे, शिरोरोगसे पीड़ित हो, जो पिपासित, श्रान्त और मद्यपानसे क्लांत हो गया हो तथा जो अर्दित रोगसे, कर्णशूलसे, नेत्ररोगसे, नवज्वरसे और हृद्रोगसे आक्रांत हो, उसे दंतकाष्ठ वर्जन करना कर्त्तव्य है। दतुवन कर चुकनेके बाद जीभी करनी चाहिये, तब कुल्ली करके मुंह अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये

(भावप्रकाश)

धावयत्यनेन धावि-ल्युट्। ३ खदिरवृक्ष, खैरका पेड़। ३ गुच्छ करञ्ज, करञ्जका पेड़। ५ वकुल, मौलसिरी।

दन्तधावनक (सं० पु०) दंतधावन, स्वार्थे कन्। दंतधावन, दातुन करनेकी क्रिया।

दन्तपत्र (सं० क्ली०) दंतइव पत्राणि अस्य। १ कर्णाभरणविशेष, (Earing) कानका एक गहना। २ गजदंतनिर्मित पत्राकार कर्णभूषणभेद, पत्तेके आकारका गहना जो हाथीके दांतका बना होता है।

दन्तपत्रक (सं० क्ली०) कुंदपुष्प, मकरंद।

दन्तपवन (सं० क्ली०) दंतं पुनाति अनेन पू करणे ल्युट्। १ दंतकाष्ठ, दातुन, दतुवन। भावे ल्युट्। २ दंतधावन, दांत साफ करनेका काम।

दन्तपात (सं० पु०) दंतस्य पातः ६-तत्। १ दंतका पतन, दांतका झड़ना। २ घोड़ोंकी वह अवस्था जब उसके दाँत आपसे आप झड़ने लगते हैं। वृहत्संहितामें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

जब घोड़ेके छः सफेद दांत निकल आवें, तब उसे शिशु समझना चाहिये। वे सब दांत जब कषाय वर्णके हो जांय, तब उसकी अवस्था दो वर्षकी जाननी चाहिये। मध्यम और अंतके दांतोंके झड़ने वा समुदित होनेसे घोड़ेकी उमर ३से ५ वर्ष तककी होती है। दांतोंमें जो दाग पड़ जाता है उसका नाम सन्दंश है, अथवा जबड़ेके दोनों ओर एक साथ जो दो दाँत निकलते हैं, उसे भी सन्दंश कहते हैं। यह सन्दंश यदि काला, कुछ पीला, सफेद, कांचके जैसा, मक्खीके जैसा तथा शङ्खके जैसा हो जाय तो उसे यथाक्रम उत्तरोत्तर तीन तीन वर्ष अधिक उमरका जानना चाहिये। अर्थात् सन्दंशके काला होनेसे घोड़ेकी उमर ८ वर्षकी, पीला होनेसे ११ वर्षकी और सफेद होनेसे १४ वर्षकी होती है। अनन्तर घोड़ेके दांतोंमें छेद हो जानेसे उसकी उमर चौबीस वर्षकी, उनके हलनेसे सत्ताईस वर्षकी और झड़नेसे उसकी उमर तीस वर्षकी होती है, ऐसा जानना चाहिये।

(वृहत्संहिता ६६ अ०)

दन्तपार (हिं० स्त्री०) दाँतकी पीड़ा, दांतका दर्द।

दन्तपाली (सं० स्त्री०) दंतस्य पाली ६-तत्। १ दंताग्र, दांतका अगला भाग; तालु, ओष्ठ, अधर और दंताग्र प्रभृति यदि रक्त वर्णके हों तो सुख, वनिता, अर्थ तथा संतति प्राप्त होती है। २ शिशुदन्तरोग, बच्चोंके दांतका एक रोग।

दन्तपीठक (सं० क्ली०) दंतवेष्ट; दांतोंके ऊपरका मांस, मसूड़ा।

दन्तपुप्पुटक (सं० पु०) दंतरोगभेद, मसूड़ोंका एक रोग जिसमें वे सूज जाते और दर्द करते हैं।

दन्तपुर (दन्तपुरी)—बौद्धग्रन्थके मतानुसार प्राचीन कलिङ्ग राज्यका एक नगर। बौद्ध धर्मकी तूती जब चारों ओर बोल रही थी, तब यह नगर बहुत बढ़ा चढ़ा था। बौद्धाधिकारके पहले इसका क्या नाम था, मालूम नहीं। कलिङ्गराज ब्रह्मदत्तके समय यहां बुद्धदेवका दन्त स्थापित हुआ था और उसी पर एक मन्दिर भी बनवाया गया था, इसीसे इसका नाम 'दन्तपुर' या 'दंतपुरी' पड़ा है।

दन्तपुरका वर्त्तमान स्थाननिर्णय ले कर पुरातत्त्वविदोंमें बहुत मतभेद है। डा० राजेन्द्र लालमित्रने अपने उड़ीसाके पुरातत्त्वमें लिखा है, कि कलिङ्गनगरीमें पहले पहल बुद्धदंत स्थापित हुआ। वहांसे यह पिपलीके निकट एक मन्दिरमें प्रतिष्ठित किया गया। राजेन्द्रपाल उक्त स्थानका नामोल्लेख करते समय उसे दंतपुर बतला गये हैं।

फार्गुसन साहबने सिंहली बौद्धग्रन्थ दाठावंशकी दुहाई दे कर प्रमाणित किया है, कि प्राचीन दंतपुरी नगरी ही यहांकी पुरी नगरी है। पुरीमें जगन्नाथदेवका मन्दिर जो वेदीवत् स्थानके ऊपर निर्मित है; वह फार्गुसन साहबके मतानुसार बौद्धोंके दहगोबके जैसा है और गठनप्रणाली भी ठीक उसीकी तरह है। सुतरां जगन्नाथका मन्दिर ही दंतमन्दिर है और पुरी दंतपुरी नगरी है। किन्तु दाठावंश पढ़नेसे जाना जाता है, कि क्षेम नामक बुद्धके एक शिष्यने बुद्धदेवकी चितासे दाहकालमें एक दंत संग्रह किया। उन्होंने वह दंत कलिङ्गराज ब्रह्मदत्तको दे दिया। ब्रह्मदत्तने उस दंतके ऊपर एक मन्दिर बनवाया जिसका भीतरी भाग सोनेसे मढ़वा दिया था। ब्रह्मदत्तने मन्दिरका निर्माण किया, दहगोबका नहीं। ब्रह्मदत्तके वंशमें ३७०से ३८० ई०के समकालमें गुहशिव नामक एक राजा हुए। गुहशिव ब्राह्मणधर्मकी श्रेष्ठता स्वीकार करते थे। वे ब्राह्मणके शिष्य तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिके पूजक थे। एक दिन राजधानी दंतपुरमें दंतोत्सव देख वे मुग्ध हो गये और बौद्ध बन गये। इस पर ब्राह्मणलोग बहुत बिगड़े और उन्होंने पाटलीपुत्रके राजा पाण्डुराजको यह समाचार कहला भेजा। पाण्डुराजने जब सुना कि उनके अधीनस्थ राजाने दूसरा धर्म अवलम्बन कर लिया है, तब उन्होंने उन्हें कैद कर लानेके लिये चैतन्य नामक किसी सामन्त राजाको दलबलके साथ भेजा। चैतन्य दंतपुर जाकर दंतमन्दिरादि देख मुग्ध हो गये और उसी समय बौद्ध बन गये। किन्तु पाण्डुराजका आदेश जिससे उल्लङ्घन न हो सके। इस कारण युद्धमें राजा गुहशिवको परास्त और बन्दी कर दंतपुरसे दंत भी साथ ले वे पाटलीपुत्र पहुंच गये।

बुद्धदंतके पाटलीपुत्रमें आनेसे ही राज्यमें अनेक प्रकारकी आश्चर्य घटनाएं होने लगीं। पाण्डुराज आप भी बड़े विस्मित हो गए। इस पर ब्राह्मणलोग नारायणके सर्वव्याप्तत्व और असंख्य अवतारत्वकी कथाए सुना सुना कर राजाको प्रबोध देने लगे, लेकिन फल कुछ भी न निकला। पाण्डु भी आखिरमें बौद्ध हो ही गए। उन्होंने दंतका एक मन्दिर भी बनवा दिया। पाण्डुके मरने पर गुहशिव दंत ले कर अपने राज्यको लौट आए। क्षीरधार नामक एक राजाने उन पर आक्रमण किया, किन्तु वे ही युद्धमें मारे गए। क्षीरधारके भतीजे जब राजा हुए, तब वे एक एक करके गुहशिवको तङ्ग करने लगे। उज्जयनीके राजपुत्र दंतकुमारने राजा गुहशिवकी कन्या हेममालासे विवाह किया था। गुहशिवने विपद्की आशङ्का देख अपने जामातासे कहा, 'यदि युद्धमें मेरी मृत्यु हो जाय, तो दंत ले कर तुम सिंहलको चला जाना।' वैसा ही हुआ भी। युद्धमें गुहशिव मारे गए, राजपुत्र दंतकुमार स्त्रीके साथ दंत ले कर सिंहलको चल दिये। राहमें वे ताम्रलिप्तमें ठहरे और वहाँसे जहाज पर चढ़ कर सिंहलको रवाना हुए। इस प्रसङ्गसे जाना जाता है, कि दंतपुर जगन्नाथपुरी नहीं है। फाहियान जब ५वीं शताब्दीमें पुरी आए थे, उस समय पुरी ही एक बड़ा बन्दर था और दक्षिण जानेके लिए इसी बन्दरमें जहाज पर चढ़ना होता था। दंतकुमार वैसा न कर सिंहल जानेके लिए जब तमोलुक गए थे, तब यह स्वीकार करना होगा, कि उसीके पास किसी स्थान पर दंतपुर अवस्थित था।

डा० राजेन्द्रलालने अपने उड़ीसाके प्रत्नतत्त्वमें लिखा है, कि मेदिनीपुरके अन्तर्गत जलेश्वरसे ६ कोस दक्षिणमें दाँतन नामका जो स्थान है वही प्राचीन दंतपुर है। यह तमोलुकसे २५ कोस दूरमें पड़ता है।

इस दांतनके विषयमें जगन्नाथके पंडा कहते हैं, कि जगन्नाथ जब दक्षिणको आ रहे थे, तब उन्होंने इसी स्थान पर दंतधावन करके दंतकाष्ठ फेंका था। पंडा लोग यात्रियोंको मन्दिरमें एक चांदीकी दतुवन दिखलाया करते हैं।

पुराविद् कनिंहमने स्वप्रणीत प्राचीन भूविवरणके ५१७वें पृष्ठमें रोमकपण्डित प्लिनीके भारतीय स्थान समूहके स्थाननिर्णय करते समय कहा है, कि प्राचीन कलिङ्गराज्य कलिङ्गन अन्तरीपसे दंतगुड़ नगर तक विस्तृत था। यह कलिङ्गन अंतरीप वर्त्तमान कलिङ्गपत्तनके निकट और दंतगुड़ नगर प्लिनीके मतानुसार गङ्गाके मुहानेसे ५७४ मील दूर है। वर्त्तमान राजमहेन्द्री नगरकी दूरी गङ्गा-मुहानेसे प्रायः उतनी ही होगी।

सुतरां कनिंहमके मतानुसार राजमहेन्द्री हो प्लिनीकथित दंतगुड़ वा दंतपुर नगर है। प्रमाण देते हुए उन्होंने कहा है, कि वर्त्तमान कलिङ्गपत्तनसे राजमहेन्द्री वा प्राचीन दंतपुरको दूरी केवल १५ कोस है।

राजमहेन्द्री जो दन्तपुर नहीं है, वह विश्वकोषके 'कलिङ्ग' शब्दमें देखो।

मेदिनीपुर जिलेमें दांतन नामका एक परगना है जिसका भूपरिमाण ३८०.३ वर्गमील है। इसका राजस्व १०८०६) रु० है। इसमें ३४ जमींदारी और ३३७ ग्राम लगते हैं। इस परगनेका प्रधान ग्राम दांतन है। यहां जगन्नाथदेवका एक मन्दिर है। प्रवाद है, कि अभिराम चौधरीके बहुत पहले यहाँके मन्दिरको देवसेवाके लिये परगनेकी आय निर्दिष्ट थी। यहां दूसरे दूसरे देशोंसे बारीक चावल और ईखकी आमदनी होती है।

दन्तपुष्प (सं० क्ली०) दंतइव शुक्लं पुष्पं यस्य। १ कतक फल, निर्मली। २ कुन्द, कुंदका फूल। ३ अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़।

दन्तप्रक्षालन (सं० क्ली०) दंतस्य प्रक्षालनं। १ दंतधावन, दांत साफ करनेका काम। २ दंतकाष्ठ, दतुवन, दातुन। दन्तधावन देखो।

दन्तफल (सं० क्ली०) दंतइव शुभं फलं यस्य। १ कतकफल, निर्मली। २ कपित्थ, कैथ।

दन्तफला (सं० स्त्री०) दंतफल-टाप्। पिप्पली।

दन्तभङ्ग (सं० पु०) दंतस्य भङ्गः। दांतका टूटना।

दन्तभाग (सं० पु०) दंतसहितो भागः। गजाग्र भाग, हाथीके मस्तकके सामनेका भाग जहां दांत दिखाई पड़ते हैं।

दन्तमय (सं० त्रि०) दंतस्य विकार दंत-मयट्। १ दंत निर्मित, दाँतका बना हुआ। २ दंतस्वरूप, दांतके जैसा।

शंख, पशुकी सींग, पशुकी हड्डियाँ वा दांतके बने हुए द्रव्य ये सब क्षौमवस्त्र (सनके रेशोंके बने हुए कपड़े) की तरह गोमूत्र वा जलयुक्त सफेद सरसोंके चूर्णसे विशुद्ध होते हैं।

दन्तमल (सं० क्ली०) दंतलग्नं दंतस्य वा मलं। दंतलग्नक्लेद, दाँतकी मैल। इसका पर्याय—पुष्पिका है।

दन्तमाँस (सं० क्ली०) दंतसंलग्नं मांसं। दंत संलग्न मांस, मसूड़ा।

दन्तमूल (सं० क्ली०) दंतस्य मूलं। १ दंतका मूल, दांतकी जड़। २ दंतरोगभेद, दांतका एक रोग।
दन्तरोग देखो।

दन्तमूलिका (सं० स्त्री०) दंत इव शुक्लं मूलं यस्याः कप्, टापि अतइत्वं। दंतीवृक्ष, जमालगोटेका पेड़।

दन्तमूलीय (सं० पु०) दंतमूले भवः छ। तवर्गादि, ये वर्ण दंतमूलसे उच्चारण किये जाते हैं, इसीसे इनका नाम दंतमूलीय पड़ा है।

दन्तरञ्जन (सं० क्ली०) काशीष, कसीस।

दन्तरोग (सं० पु०) दन्तस्य रोगः ६-तत्। मुखरोगान्तर्गत दन्तमूल सम्बन्धीय रोगभेद, दन्तपीड़ा, दाँतका दर्द। इसका विषय सुश्रुत, भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें इस प्रकार लिखा है—

दन्तरोग—शीताद, दन्तपुप्पुटक दन्तवेष्टक, शौषीर, महाशौषीर, परिदर, उपकुश, दन्तवैदर्य, अधिमांस और ५ प्रकारकी नाड़ी ये पन्द्रह प्रकारके रोग दांतोंकी जड़में हुआ करते हैं। दन्तमूलसे अकस्मात् दुर्गन्धयुक्त कृष्णवर्ण और क्लिन्न शोणित जब थोड़ा थोड़ा करके निकलता है और जब दाँतका मांस शीर्ण हो पक कर गिरने लगता है, तब उसे शीताद नामक रोग कहते हैं। यह रोग कफ और शोणितसे उत्पन्न होता है।

दन्तपुप्पुटक—दो या तीन दन्तमूलोंमें जब अत्यन्त वेदना होती है और सूजन पड़ जाती है, तब उसे दंतपुप्पुटक रोग कहते हैं। इसकी भी उत्पत्ति कफ और रक्तसे है।

दन्तवेष्टक—दंतमूलसे पीप और शोणितके निकलने और उससे दंत चालित होने अर्थात् हलनेसे दंतवेष्टक रोग होता है। यह रोग दूषित शोणितसे उत्पन्न होता है।

शौषीर—दंतमें जब सूजन पड़ती, वेदना होती और रक्तस्राव होता है, तब उसे शौषीर रोग कहते हैं।

महाशौषीर—दंतमूलसे दाँतोंके चालित होनेसे, तालु, ओष्ठ और दंतमूलके अवदीर्ण होनेसे तथा दंत-

मूलके मांसके पकने पर मुखमें यन्त्रणा होनेसे महाशौषीर रोग होता है।

परिदर—दंतमांसके शीर्ण होनेसे, निष्ठीवनके समय अर्थात् थूक फेंकते समय लोहूके निकलनेसे परिदररोग होता है। यह रोग पित्त, रक्त और कफकर्त्तृक उत्पन्न होता है।

उपकुश—दंतमूलमें जब दर्द होता है और पक कर जब दाँत हिलने लगते हैं, थोड़ी रगड़से जब शोणित निकलने लगता है, रक्तस्रावके बाद जब दंतमूल सूज जाता है और मुखसे दुर्गन्ध आने लगती है, तब उसे उपकुश रोग कहते हैं। इस रोगकी उत्पत्ति रक्तपित्तसे है।

दन्तवैदर्य—किसी तरह घर्षित होनेसे जब दंतमूलमें दर्द मालूम पड़े और वह सूज जाय तथा सभी दाँत हिलने लगे, तब उसे दंतवैदर्य कहते हैं। यह रोग किसी प्रकारके आघातसे उत्पन्न होता है। इसमें वायुकर्त्तृक स्वाभाविक दाँतोंसे अधिक दाँत निकलते हैं। उन सब दाँतोंके निकलते समय बहुत तीव्र वेदना होती है; किन्तु उनके निकल जाने पर पूर्वसी वेदना नहीं रहती, बहुत कुछ कम जाती है।

अधिमांसक—गालके भीतरके शेष भागके दाँतोंमें जब सूजन होती है और दर्द भी होता है तथा लोहू गिरने लगता है, तब उसे अधिमांसक रोग कहते हैं। यह कफसे उत्पन्न होता है।

दन्तमूलमें पांच प्रकारकी नलियां उत्पन्न होती हैं यथा—दालन, कृमिदंतक, दंतहर्ष, भञ्जनक, शर्करा, कपालिका और हनुमोक्ष।

दालन—जिससे दाँत विदीर्ण होनेके जैसा दर्द होने लगता है, उसे दालनरोग कहते हैं। इस रोगकी उत्पत्ति वायुसे है।

कृमिदन्त—दाँतोंके कृष्णवर्ण छिद्रयुक्त और चालित होनेसे, उनसे रक्तस्राव निकलनेसे और अकारण ही अर्थात् बिना दाबनेसे ही कड़ कड़ शब्द करनेसे तथा दर्द मालूम पड़नेसे कृमिदंतरोग समझा जाता है। यह रोग वायुसे उत्पन्न होता है।

दन्तहर्ष—दाँत जब शीतल वा उष्णस्पर्श बरदाश्त कर न सके तब उसे दंतहर्ष रोग कहते हैं। इस रोगकी भी उत्पत्ति वायुसे है।

भञ्जनक—मुख और दंतभङ्ग होनेसे तथा अत्यन्त यातना होनेसे भञ्जनक रोग समझा जाता है। यह रोग कफ और वातसे उत्पन्न होता है।

दंतशर्करा—मलसञ्चित हो कर शर्कराकी तरह कठिन हो जानेसे दाँतोंके गुणकी हानि होती है। इसीको दंतशर्करा कहते हैं। इस दंतशर्कराके साथ जब दंतमूलका मांस नीचे झुल जाता है, तब उसे कपालिका कहते हैं। इस रोगमें दंतनष्ट हो जाते हैं। शोणितमिश्रित पित्तसे दंतरोग हो कर श्याम वा नील वर्ण हो जानेसे श्यामदंतरोग समझा जाता है। वायुकर्त्तृक उपद्रव होने पर हनु जब सन्धिविश्लिष्ट हो जाता है, तब उसे हनुमोक्ष कहते हैं। इस रोगमें अर्दित वायुका लक्षण देखा जाता है। (सुश्रुत मुखरोगनि)

दंतरोगकी चिकित्सा—शीताद नामक रोगमें रक्तको साफ कर सरसों, त्रिफला और मोथा इनके क्वाथको रसाञ्जनमें मिला कर कुल्ली करनी चाहिये। प्रियङ्गु, त्रिफला और मोथा इनके चूर्णका लेप तथा यष्टिमधु, उत्पल, पद्म और त्रिफलाके क्वाथकी नस लेनी चाहिये। शिरोविरेचन, नस्य और स्निग्ध भोजन भी इसमें विशेष हितकर है। दन्तवेष्टरोगमें लोध्र, रक्तचन्दन, यष्टिमधु, और लाक्षा इन सबका चूर्ण, मधु, घृत और शर्कराके संयोगसे यज्ञडुम्बुरका क्वाथ बना कर उससे कुल्ला करते हैं। शौषीररोगमें रक्तमोक्षण करके लोध्र, मोथा, रसाञ्जन और मधुको एक साथ मिला कर उनका लेप लगाते हैं और यज्ञडुम्बुरके क्वाथको कुल्ली करते हैं। परिदर रोगमें शीताद रोगके जैसा प्रतिकार करना होता है। दंतोपकुश रोगमें वमन, विरेचन और शिरोविरेचन करके काकडुम्बुर या गोजियाके पत्तोंसे शोणितको शान्ति करनी चाहिए। पीछे लवण और त्रिकटुकी मधुके संयोगसे मञ्जन करना चाहिये। पीपर, सरसों, सोंठ और निचुलके फल इन सबको जलमें सिद्ध कर कुछ उष्णावस्थामें ही कुल्ली करनी चाहिये। जीवकके साथ घीको पाक कर कुल्ली और नसका प्रयोग करना भी हितकर है। दंतवैदर्भ रोगमें शास्त्र द्वारा

दंतमूल संशोधित करके क्षारप्रयोग पूर्वक शीतल क्रिया करनी चाहिये। ज्ञानदन्तके उत्पन्न होने पर उन्हें उद्धृत करके अग्निका प्रयोग करना चाहिये। दंतमूलमें यदि अधिक मांसरोग हो गया हो, तो उसे काट कर वच, पीपर, पारा, सोहागा और यवक्षार इनके चूर्णको मधुके साथ प्रयोग करना अच्छा है। पीछे मधुके साथ पीपरके क्वाथको कुल्ली करनेको लिखा है। पटोल, त्रिफला और निम्ब इन कसैले पदार्थोंसे दंतमूलका साफ करना, शिरोविरेचन तथा धूमविरेचन लेना हितकर है।

दंतनालीकी चिकित्सा-जिस दंतमूलमें नाली उत्पन्न हुई हों, उस दंतको निकाल फेंकना चाहिये। शस्त्र द्वारा मांस काट कर क्षार वा अग्नि द्वारा शोधन करना चाहिये। नालीरोगमें दांतके नहीं निकालनेसे हनुपरकी हड्डी भेद कर नाली उत्पन्न हो जाती है। अतएव नालीरोगमें दंत वा भग्नास्थिको अलग कर देना उचित है।

जिस दंतमूलका बन्धन अस्थिर रहता है, उसमें यदि दंतशूल निकले, तो उसे निकाल फेंकना उचित नहीं है। उसके उखाड़नेसे लोहू अधिक निकलेगा और उससे अन्धता वा अर्दित नामक वायुरोग आदि कठिनसे कठिन रोग उत्पन्न हो जायगी। यदि दांत हिलते हों, तो जाती पुष्पका पेड़, मदन, स्वादुकण्टक और खदिर इनके क्वाथसे दंतमूल साफ करना चाहिये। दंतमूलमें नालीके उत्पन्न होनेसे नालीका पथ काट डालना चाहिये और तब जाती, मदन, कटुक, स्वादुकण्टक, खदिर, यष्टिमधु, रोध्र और मञ्जिष्ठा, इनके कषायमें तेलको पाक करके शोधनार्थ नालीके स्थानमें इसका प्रयोग करना चाहिये।

दंतहर्षरोगमें स्नेह (घृत वा तैल) वा त्रैवृत घृत, वातघ्न द्रव्यके क्वाथको कुल्लीका प्रयोग प्रशस्त है। स्नेह द्रव्यका धूम वा नस्य अथवा स्निग्ध द्रव्यका भोजन भी हितकर है। मांसरस, यवागु, दुग्ध, संतानिका, घृत; शिरोवस्ति और वातघ्न अन्यान्य प्रतिकार भी हितकर हैं। दंतशर्करारोगमें जिससे दंतमूल आहत न हो, इस प्रकारसे शस्त्रपात करके शर्कराको निकाल फेंकना चाहिये। दंतहर्षरोगमें जो सब प्रतिकार बतलाये गये हैं, वही इस रोगमें भी करने होते हैं। कपालिका रोग अत्यंत कष्टसाध्य होने पर भी पूर्वोक्त प्रतिकार उसके लिये हितकर है। क्रिमिदन्तरोगमें जिससे दांत हलने न पावे, इस प्रकारसे स्वेदका प्रयोग करके रसरक्तादिको निकाल देना चाहिए। पीछे वातघ्न अवपीड़न और स्नेह गण्डूष तथा भद्रदार्व्यादिगणस्थ और वर्षाभू इन दो द्रव्योंका लेप देनेका विधान है। हिलनेवाले दांतोंको उखाड़ कर दंतमूलके गड्ढेको क्षार वा अग्निसे दग्ध करना चाहिये। बादमें विदारी, यष्टिमधु, शृङ्गाटक और कसेरु इस सबके सहयोगसे दशगुने दूधमें तेल पाक करके नसका प्रयोग करना चाहिये। हनुमोक्ष रोगमें अर्दित नामक वायुरोगके जैसा प्रतिकार करना होता है। अम्लफल और शीतल जलसे दंतधावन तथा अत्यंत कठिन द्रव्यभक्षण दंतरोगके लिये हितजनक नहीं है। (सुश्रुत मुखरोगचि०)

भावप्रकाशमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—

नागरमोथा, हरीतकी, त्रिकटु, विड़ङ्ग और निम्बपत्र इन्हें गोमुत्र द्वारा पीस कर गोली बनाते हैं। पीछे उन गोलियोंको धूपमें सुखा लेते हैं। प्रतिदिन एक गोली मुंहमें रख कर रातको यदि सो जाय तो उससे निश्चय ही चलितदंत दृढ़ हो जाते हैं।

तैल वा घृत ऽ४ सेर, कल्कार्थ दुरालभा, खदिर काष्ठ, विट्खदिर, जामुनका छिलका, आमका छिलका, यष्टिमधु और नीलोत्पल प्रत्येक एक एक छटांक; क्वाथार्थ नीलझिण्टी (नीली कठसरैया) साढ़े बारह सेर, जल १॥४ सेर, शेष ६ सेर। इस तैल वा घृतको पाक कर मुंहमें रखनेसे दंतरोग नष्ट होता है।

करालदन्त—संश्रित वायुकर्तृक दंतसमूह जब धीरे धीरे भयानक विकटाकृतिका हो जाता है, तब उसे करालदंत कहते हैं। प्रायः सभी प्रकारके दंतरोगोंमें लाक्षाद्यतैल उपकारी है। तैल ऽ४ सेर; कल्कके लिए लोध्र, कटफल, मञ्जिष्ठा, पद्मकेशर, पद्मकाष्ठ, रक्तचन्दन, नीलोत्पल और यष्टिमधु प्रत्येक एक एक पल; क्वाथके लिये उक्त मिश्रित द्रव्य ऽ२॥, जल १॥४ सेर, शेष ।६ सेर, लाक्षारस ऽ४ सेर और दूध ऽ४ सेर इस

तैलको पाक कर मुंहमें धारण करनेसे दालन, दंतहर्ष, दंतमोच, कपालिका, शोताद, पूतिवक्त, अरुचि और मुखवैरस्य नष्ट हो कर दांत मजबूत हो जाते हैं।

(भावप्रकाश)

दन्तरोगो (सं० त्रि०) दंतरोगयुक्त, जिसे दांतका रोग हुआ हो।

दन्तलेखक (सं० त्रि०) दंतान् लिखति जोविकार्थं लिख-ण्वुल्, नित्यसमासः। दंतलेखनरूप जोविका युक्त, जो दंतलेखनसे अपनो जोविका चलाता हो।

दन्तलेखन (सं० क्लो०) अस्त्रविशेष। इसके द्वारा दांतको जड़के पास मसूड़े चोर कर मवाद आदि निकाले जाते हैं जिससे दांतका पोड़ा दूर हो जाता है। दंतशर्करा नामक रोगमें इस अस्त्रको आवश्यकता होतो है। इसका एक सिरा धारदार और चोकोना होता है और दूसरा खूब फैला हुआ रहता है।

दन्तवक्र (सं० पु०) नृपविशेष। इन्होंने पृथुकोर्त्तिके गर्भ और वृद्धशर्माके औरससे जन्म ग्रहण किया था। ये करुष देशके राजा थे और अत्यंत प्रवल पराक्रान्त तथा दंतवक्र नामसे प्रसिद्ध थे। (हरिवंश ३४ अ०)

कृष्णने द्वारकामें रहते समय इन्हें मारा था। (भाग०) ये शिशुपालके भाई थे। शिशुपालके मारे जाने पर दतिहा नामक ग्राममें कृष्णने लड़ाईमें अपनो गदासे इनका प्राण संहार किया। त्रेतामें यह कुम्भकर्ण और सत्ययुगमें हिरण्यकशिपु दैत्य हुआ था।

(श्रीवृन्दावनलीलामृत)

दन्तवत् (सं० त्रि०) दंतः विद्यतेऽस्य दंत-मतुप्, ततो मस्य वः। दंतविशिष्ट, जिसके दाँत हों।

दन्तवल (सं० पु०) हस्ति, हाथो।

दन्तवल्क (सं० क्लो०) दंतस्य वल्कमिव। दंतावरण चर्मात्मक मांसभेद, दांतको जड़के ऊपरका मांस, मसूड़ा।

दन्तवर्त्ति (सं० स्त्रो०) दंतनिर्मिता वर्त्ति। चक्रदत्तके अनुसार एक प्रकारको बत्तो। वर्त्तिका देखो।

दन्तवस्त्र (सं० क्लो०) दंतानां वस्त्रं आच्छादकत्वात्। ओष्ठ, ओंठ।

दन्तवासस् (सं० पु०) दंतस्य वासः वस्त्रमिव आवरकत्वात्। ओष्ठ, ओंठ।

दन्तविघात (सं० पु०) दंतस्य विघात। दंताघात, दांतका आघात।

दन्तविद्रधि (सं० पु०) दंतरोगभेद, दांतका एक रोग। दन्तरोग देखो।

दन्तवोज (सं० पु०) दंताइव वोजानि यस्य। दाड़िम, अनार।

दन्तवोणा (सं० स्त्रो०) एक प्रकारको वोणा जो दांतमें लगा कर बजाया जाता है।

दन्तवेदना (सं० स्त्रो) दंतस्य वेदना ६-तत्। दंतव्यथा, दाँतका दर्द।

दन्तवेष्ट (सं० पु०) १ दंतरोगभेद, दाँतका एक रोग। स्वार्थे कन्। २ दंतवेष्टक, मसूड़ा। दन्तरोग देखो।

दन्तवैदर्भ (सं० पु०) दंतरोग भेद, दांतका एक रोग। दन्तरोग देखो।

दन्तव्यसन (सं० क्लो०) दंतस्य व्यसनं। दंतनाश, दांतका बरबाद होना।

दन्तशङ्कु (सं० पु०) सुश्रुतोक्त अस्त्रभेद, चोर फाड़का एक औजार यह जोके पत्तेके आकारका होता है।

दन्तशट (सं० पु०) दंतेषु शट इव ग्लानिजनकत्वात्। दंतशठ।

दन्तशठ (सं० पु०) दंतेषु शठ इव। १ जम्बोर, जंबोरो-नोबू। २ कपित्थ, कैथ। ३ कमरङ्गक, कमरख। ४ नागरङ्गक, नारङ्गो। ५ अम्ल, खटाई। जिनके खानेसे खटाईके कारण दाँत गुठले हो जायं वे हो दंतशठ हैं।

दन्तशठा (सं० स्त्रो०) दंतेषु शठा। १ चाङ्गेरो, अम-लोनो, खट्टानोनिया। २ चुद्राम्लिका, चुक, चूक।

दन्तशर्करा (सं० स्त्रो०) दंतस्य शर्करेव। दंतरोग विशेष, दांतोंका एक रोग जो मैल जम कर बैठ जानेके कारण होता है।

जिसके दांतोंमें मैल चोनोको तरह जम जातो है, उसोको दंतशर्करा कहते हैं। इसमें दांतके सब गुण जाते रहते है। गोरचककंटो (गोरखो) को जड़ पोस कर जलके साथ उसे तोन दिन तक पोनेसे यह रोग दूर हो जाता है।

दन्तशाण (सं० पु०) दंतानां शाण इव। निघ्रकण, स्त्रियोंके दांतमें लगानेका रंगोन मंजन, मिस्सो।

दन्तशिरा (सं॰ स्त्री॰) दंतानां शिरा यत्र। मसूड़ा।

दन्तशुद्धि (सं॰ स्त्री॰) दंतस्य शुद्धि, ६-तत्। दाँतकी विशुद्धिता, दांतकी सफाई।

दन्तशूल (सं॰ पु॰) दंतस्य शूलइव, शूलवेदनवद् वेदनादायकत्वात्। दंतवेदना. दांतकी पीड़ा।
दंतरोग देखो।

दन्तशोफ (सं॰ पु॰) दंतस्य शोफ इव। दंत रोगविशेष, दंतार्बुद; दांतके मसूड़ोंमें होनेवाला एक प्रकारका फोड़ा। इसका पर्याय—दंतशूल, दंतशोफ और द्विजवर्ण है।

दन्तसंघर्ष (सं॰ पु॰) दंतस्य संघर्षः। दांतोंका घर्षण, दांतसे दांतकी रगड़। दंत संघर्षण नहीं करना चाहिये, करनेसे अशुभ होता है।

दन्तहर्ष (सं॰ पु॰) दंतानां हर्षो यस्मात्। दंतरोग विशेष। जिसके दांत शीत और उष्ण सह्य न कर सके उसे दंतरोग हुआ है ऐसा समझना चाहिये। दंतरोग देखो। स्नान करते समय जिसका शरीर अत्यंत पीड़ित और दंतहर्ष उपस्थित हो जाय उसकी मृत्यु बहुत निकट समझी जाती है।

दन्तहर्षक (सं॰ पु॰) दंतान् हर्षति हृष-णिच्-ण्वुल। जम्बीर, जंबीरी नीबू।

दन्तहर्षण (सं॰ पु॰) दंतान् हर्षयति हृष-णिच ल्यु। जंबीर, जंबीरी नीबू।

दन्ताग्र (सं॰ क्ली॰) दंतस्य अग्रं। दांतका अगला भाग।

दन्ताघात (सं॰ पु॰) दंतान् आहंति आ-हन-अण्। १ निंबूक, नीबू। २ दशनाघात, दाँतका आघात।

दन्ताद (सं॰ पु॰) सुश्रुतोक्त दंतखादक क्रमिरोगभेद, दांतकी जड़ या सन्धिमें पड़नेवाले कीड़े। ये रक्तसे उत्पन्न होते और बाल, नाखून तथा दांत खाते हैं।

दन्तादंति (सं॰ स्त्री॰) दंतैश्च दंतैश्च प्रहृत्य प्रवृत्तं युद्धं इच् समासान्तः पूर्वाणो दीर्घः। परस्पर दंतप्रहार द्वारा प्रवृत्त युद्ध; एक दूसरेको दांतसे काटनेकी लड़ाई।

दन्ताना - मध्यभारतके पश्चिम मालवा एजेन्सीके अधीन एक सामान्य सर्दारका राज्य। यहांके ठाकुर या सर्दार सिन्धियासे १८०) रु॰ तनखाह पाते हैं।

दन्तान्तर (सं॰ क्ली॰) दंतस्य अंतरं। दांतके मध्य; दाँतके बीच।

मूंछके बाल मुंहमें जानेसे उच्छिष्ट नहीं होते और दन्तमध्यस्थित अन्नादि भी मुंहको उच्छिष्ट नहीं कर सकते।

दन्तायुध (सं॰ पु॰) दंतएव आयुधं यस्य। शूकर, शूअर।

दन्तार्बुद (सं॰ पु॰ क्ली॰) दंतस्य अर्बुदमिव। दंत रोगभेद, मसूड़ेमें होनेवाला एक प्रकारका फोड़ा। इसका पर्याय—दंतशूल, दंतशोफ और द्विजव्रण है।

दन्तालिका (सं॰ स्त्री॰) दंतान् अलति पर्याप्नोति अलण्वुल् टापि अतइत्वं। बल्गा, लगाम।

दन्ताली (सं॰ स्त्री॰) दंतान अलति अल-अण् गौरादित्वात् ङीष्। बल्गा, लगाम।

दन्तावल (सं॰ पु॰) अतिशायितो दंतौ यस्य दंत वलच्. (दंतशिखात् संज्ञायां। पा ५।२।११२) ततो दीर्घः। हस्ती, हाथी।

दन्तिका (सं॰ स्त्री॰) दम-तन् गौरा॰ ङीष् स्वार्थे कन् ततो ह्रस्वः। दंती वृक्ष, जमालगोटा।

दन्तिजा (सं॰ स्त्री॰) दंतिका पृषो॰ साधुः। दंतिका; जमालगोटा।

दन्तिदन्त (सं॰ पु॰) दंतिनां दंतः ६ तत्। हस्तिदंत, हाथीके दाँत।

दन्तिन् (सं॰ पु॰) प्रशस्तौ दन्तौ स्तः अस्य दन्त-इनि। हस्ती, हाथी।

दन्तिनी (सं॰ स्त्री॰) दन्तस्तदाकारोऽस्त्यस्याः मूले दन्त-इनि-ङीष्। दंतीवृक्ष, जमालगोटा।

दन्तिमूलिका (सं॰ स्त्री॰) दंति गजदंतयुक्तमिव मूलमस्याः कप् कापि अतइत्वं। दंतीवृक्ष, जमालगोटा।

दन्ती (सं॰ स्त्री॰) दाम्यत्यनया दम-तन् ततो गौरादित्वात् ङीष्। (हसिमृग्रिणवेति। उण् ३।८६) स्वनामख्यात वृक्ष, अंडीकी जातिका एक पेड़। (Croton polyondrum or Baliospermum montanum) इसकी जड़ सूअरके दाँतसी होती है। दंती दो प्रकारकी होती है—लघुदंती और वृहद्दंती। जिसके पत्ते गूलरके पत्तोंके जैसे होते हैं. वह लघुदंती और जिसके

एरंड या अंडोकेसे होते वह वृहद्दंती है। पर्याय—शीघ्रा, श्येनघण्टा, निकुम्भी, नागस्फोता, दंतिनी, उपचित्रा, भद्रा, रुच्या, रेचनी, अनुकूला, निःशल्या, चक्रदंती, विशल्या, मधुपुष्प, एरण्डफला, तरुणी, एरण्डपत्रिका, अनुरेवती, विशोधनी, कुम्भी, उडुम्बरदला, निकुम्भदलिका, प्रत्यक्पर्णी और उदुम्बरपर्णी। (अमर, राजनि०) इसका गुण—कटु, उष्ण, शूल, आम, त्वक्दोष, अर्श, व्रण, अश्मरी और शल्यनाशक है। (राजवल्लभ) लघु दंतीके फल मधुर रस, मधुर, विपाक, शीतवीर्य, मल और मूलनिःसारक तथा गरदोष, शोथ और कफनाशक हैं। दोनों दंती सारक, कटु रस, कटु विपाक, अग्निप्रदीपक, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा गुदांकुर, अश्मरी, शूल, अर्श, कण्डू, कुष्ठ, विदाह, पित्त, रक्तदोष, कफ, शोथ, उदर और कृमिनाशक हैं। (भावप्रकाश) वर्त्तमान यूरोपीय चिकित्सकोंके मतसे यह बहुत विरेचक मानी गई है। इसके बीज अधिक मात्रामें देनेसे विषका काम करते हैं। कहीं कहीं जयपालके बदले दंतीके बीज व्यवहृत होते हैं। इसके रससे लोहा गल जाता है।

दन्तीफल (सं० क्ली०) १ पिप्पली। २ दंतीके बीज।

दन्तीफलसमाकृति (सं० पु०) पिस्तावृक्ष, पोस्ता।

दन्तीबीज (सं० क्ली०) जैपालबीज, जमालगोटेका बीज।

दन्तीहरीतकी (सं० स्त्री०) गुल्माधिकारकी औषधभेद। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—स्नयपोट्टलीबद्ध हरीतकी २५, दंतीमूल २५ पल, जल ६४ सेर, शेष ८ सेर। इस क्वाथजलमें २५ पल पुराना गुड़ डाल कर उसे छान लेते हैं। बाद उसके साथ पूर्वोक्त २५ हरीतकी दे कर पाक करते हैं। आसन्न पाकमें निसोथका चूर्ण ४ पल, तिलतैल ४ पल, पीपल चूर्ण ४ तोला और सोंठ चूर्ण ४ तोला डाल कर अच्छी तरह हलते हैं और पीछे उतार लेते हैं। शीतल होने पर उसमें मधु ४ पल, दारचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागकेशर प्रत्येक २ तोला मिला देते हैं। सेवनकी मात्रा २ तोला और एक हरीतकी है। इससे गुल्म, प्लीहा और शोथ आदि अनेक प्रकारके रोग जाते रहते हैं।
(भैषज्यर० गुल्माधि०)

दन्तुर (सं० त्रि०) उन्नता दंताः सन्त्यस्य दंत-उरच् (दंत उन्नत उरच्। पा ५।२।१०६) १ उन्नतदंत, जिसके दाँत आगे निकले हों, दंतुला, दाँतू। सुअरको मारनेसे दूसरे जन्ममें दन्तुर हो कर जन्मग्रहण करता है। (शातातप) सामुद्रिकके मतसे दंतुला मनुष्य कदाचित् ही मूर्ख होता है। (पु०) २ हस्ती, हाथी। ३ शूकर, सूअर।

दन्तुरक (सं० पु०) देशभेद, एक देश जो पूर्व दिशामें अवस्थित माना गया है। (वृहत्स० १४।६)

दन्तुरच्छद (सं० पु०) दंतुर उन्नतानतच्छदो यस्य। बीजपुर, बिजौरा नीबू।

दन्तेवर—मध्यप्रदेशके बस्तार राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। अक्षा० १८° ५४' उ० और देशा० ८१° २३' ३०" पू०के मध्य दङ्कानि और लङ्कानि नदियोंके सङ्गम स्थान पर तथा बेला दिलाज नामक पहाड़के पश्चिममें अवस्थित है। यहाँ दंतेश्वरी नामक कालीका प्रसिद्ध मन्दिर है।

दन्तोच्छिष्ट (सं० क्ली०) दंतेन उच्छिष्टं। दंत द्वारा उच्छिष्ट, वह जो दाँतसे जूठा किया गया हो।

दन्तोज्ज्वला (सं० स्त्री०) श्वेत जातीपुष्प वृक्ष, सफेद जायफलका पेड़।

दन्तोत्पाटन (सं० क्ली०) दंतस्य उत्पाटनं। दाँतका उत्पाटन, दाँतका उखाड़ना।

दन्तोद्भेद (सं० पु०) दंतस्य उद्भेदः। दंतोद्गम दाँतका निकलना।

दन्तोलूखलिक (सं० पु०) दंत इव उलूखलः सोऽस्यास्ति इति ठन्। (अतइनिठनौ। पा ५।२।११५) वाणप्रस्थविशेष, एक प्रकारके संन्यासी। ये उखली आदिमें कूटा हुआ अन्न नहीं खाते, दाँत द्वारा धान आदिसे चावल निकाल कर खाते हैं। ये या तो फल खाते हैं या छिलके सहित अनाजके दाने ये लोग अग्निपक्व चीज नहीं खाते।

दन्तोष्ठ (सं० क्ली०) दंताश्च ओष्ठौ च तेषां समाहारः। दंत और ओष्ठका समाहार, दाँत और ओंठ।

दन्तोष्ठ्य (सं० पु०) दंतोष्ठे भवः शरीरावयवत्वात् यत्। दंत ओष्ठ द्वारा उच्चारणीय वर्ण, वह वर्ण जिसका उच्चारण दाँत और ओंठसे हो। ऐसा वर्ण 'व' है।

दन्त्य (सं० त्रि०) दंतेषु भवः दंत यत्। (शरीरावयवत्वाच्च। पा ४।३।५५) १ दंतोद्भव, जिसका उच्चारण दाँतकी सहायतासे हो तवर्ग। २ दंतसम्बन्धी। ३ दाँतोंका हितकारी।

दन्तवर्ण (सं० पु०) दंतोद्भव वर्ण, दंत द्वारा उच्चारित वर्ण, त, थ, द, ध, न, स और व है।

दन्तश (सं० पु०) दंत, दाँत।

दन्दशूक (सं० पु०) गर्हितं दशति दन्श यङ् उकः। जय जपदशां यङः। पा ३।२।१६६) १ सर्प, सांप। २ राक्षस। (त्रि०) ३ हिंस्र, हिंसा करनेवाला।

दन्दह्यमान (सं० त्रि०) दग्ध, दहकता हुआ।

दन्द्रम्यमाण (सं० त्रि०) द्रम-यङ् शानच्। कुटिल गतियुक्त, टेढ़ी चालवाला।

दन्न (हिं० पु०) तोपआदिके छूटनेका दन्न शब्द।

दपट (हिं० स्त्री०) घुड़की, डपट, डपेट।

दपटना (हिं० क्रि०) डांटना, झिड़कना, घुड़कना।

दपु (हिं० पु०) दर्प, अहंकार, शेखी।

दपेट (हिं० स्त्री०) दपट देखो।

दपेटना (हिं० क्रि०) दपटना देखो।

दफतर (हिं० पु०) दफ्तर देखो।

दफतरी (हिं० पु०) दफ्तरी देखो।

दफतरीखाना (हिं० पु०) दफ्तरीखाना देखो।

दफती (अ० स्त्री०) गत्ता, कुट, वसली।

दफन (अ० पु०) १ किसी चीजको जमीनमें गाड़नेकी क्रिया। २ मुरदेको जमीनमें गाड़नेकी क्रिया।

दफनाना (हिं० क्रि०) जमीनमें दबाना, गाड़ना।

दफरा (हिं० पु०) नावके दोनों ओर लटकता हुआ काठका टुकड़ा। दूसरी नावकी टक्करसे बचनेके लिये यह लटकाया जाता है, हौंस।

दफराना (हिं० क्रि०) १ नावको आपसमें टक्कर लड़नेसे बचाना। २ पाल खड़ा करना। ३ रक्षा करना, बचाना।

दफला—आसामके अन्तर्गत दरङ्ग और लक्ष्मीपुर जिलेकी एक असभ्य जाति। ये लोग साधारणतः लक्ष्मीपुरके निकटस्थ पर्वतोंपर वास करते हैं। १८७२ ई०में दरङ्गके अन्तर्गत आमतोला नामक स्थानके अधिवासी दफलागण जब पार्वत्य दफलाओंसे आक्रान्त हुए थे, तब वृटिश गवर्मेण्टने उन्हें दमन करनेके लिये पुलिस भेजा। पुलिसने दफलाके वासस्थान पर धावा मारा, किन्तु कोई फल न निकला। बाद १८७४।७५ ई०में हथियारबंद एक दूसरा सैन्यदल पहुंचा और उन्होंने बन्दी दफलाओंका उद्धार किया।

दफलापुर—सताराकी पोलिटिकल एजेन्सीके अधीन एक जागीर। यह अक्षा० १७°०´ उ० और देशा० ७५°७´ पू०में अवस्थित है। यह यथार्थमें जाठराज्यका एक अंश है। दफलापुर ग्रामके पटेल इस जागीरके स्थापनकर्त्ता हैं। इसी ग्रामके नामानुसार उनका एक नाम दफला पड़ा था। १८२० ई०में अङ्गरेजोंने वर्त्तमान जाठपतिके पूर्व पुरुषोंके साथ एक सन्धि की। उसी सन्धिके अनुसार जाठपतिने अपने राज्यका स्थायी अधिकार पाया। १८७२ ई०में जाठपतिका ऋणशोधके लिये सताराके राजाने इस जाठ राज्यको अपने राज्यमें मिला लिया और ऋण शोध हो जाने पर १८४१ ई०में वह फिर उन्हें लौटा दिया। इस जाठ जागीरके आर्थिक विषयकी व्यवस्था कर देनेके लिये अङ्गरेजोंने कई बार इसके शासनकार्यमें हस्तक्षेप किया और बहुत तरहके अत्याचार हो जानेसे १८७४ ई०में जाठ राज्याधिपतिकी ओरसे उन्होंने अपने हाथमें राज्यका भार ले लिया। आजसे कुछ पहले लक्ष्मीबाई दफला नामकी एक विधवा दफलापुरकी शासनकर्त्री थीं।

दफलापुर राज्यमें ६ पृथक् पृथक् ग्राम लगते हैं। इसका क्षेत्रफल ८४ वर्गमील है। राजस्व प्रायः ८०१०) रु० है। यहांके प्रधान उत्पन्न द्रव्य बाजरा, ज्वार, रुई और गेहूं हैं। यहां तीन विद्यालय हैं।

दफा (अ० स्त्री०) १ बार, वेर। २ किसी कानूनी किताबका एक अंश जिसमें किसी एक अपराधके सम्बन्धमें व्यवस्था हो, धारा। (वि०) ३ तिरस्कृत, हटाया हुआ, दूर किया हुआ।

दफादार (अ० पु०) फौजके कर्मचारी जिसके अधीन कुछ सिपाही हों।

दफादारी (हिं० स्त्री०) १ दफादारका पद। २ दफादारका काम।

दफीना (अ० पु०) गड़ा हुआ धन वा खजाना।

फ़्तर (फा० पु०) १ कार्य्यालय, आफिस। २ सविस्तर पत्र लम्बी चौड़ी चिट्ठी। ३ विस्तृत वृत्तांत, चिट्ठा।

फ़्तरी (फा० पु०) १ किसी दफ़्तरका कर्मचारी। इसका मुख्य काम कागज आदि दुरुस्त करना और रजिष्टरों आदि पर रूल खींचना है। २ वह जो किताबोंकी जिल्द बांधता हो, जिल्दसाज, जिल्दबंद।

दफ़्तरीखाना (फा० पु०) किताबोंकी जिल्द बांधनेका स्थान।

दबंग (हिं० वि०) प्रभावशाली, दबाववाला।

दबक (हिं० स्त्री०) १ छिपकनेका भाव। २ सिकुड़न। ३ धातु आदिको लंबा करनेके लिये पीटनेकी क्रिया।

दबकगर (हिं० पु०) दबका या तार बनानेवाला।

दबकना (हिं० क्रि०) १ डरके मारे किसी तंग स्थानमें छिपना। २ लुकना, छिपना। ३ किसी धातुको बढाना या चौड़ा करना, पीटना। ४ डांटना, डपटना।

दबकनी (हिं० स्त्री०) भाथीका वह भाग जिसके हो कर उसमें हवा प्रवेश होती है।

दबकवाना (हिं० क्रि०) किसी दूसरेको दबकानेमें लगाना।

दबका (हिं० पु०) कामदानीका सुनहला चिपटा तार।

दबकाना (हिं० क्रि०) १ छिपाना, ढांकना। २ डांटना, डपटना।

दबकी (हिं० स्त्री०) १ मट्टीका एक बरतन। इसका आकार सुराही सा होता है। इसमें पानी भर कर चरवाहे और किसान खेत पर ले जाया करते हैं। २ दबकने या छिपनेका भाव।

दबकेका सलमा (फा० पु०) चमकीला सलमा।

दबकैया (हिं० पु०) वह जो सोने चांदीके तारोंको पीट कर बढ़ाता और चौड़ा करता है, दबकगर।

दबगर (हिं० पु०) १ वह जो ढाल बनाता हो। २ वह जो चमड़ेके कुप्पे बनाता हो।

दबड़्घुसड़ (हिं० वि०) कायर, डरपोंक।

दबदबा (अ० पु०) प्रताप, रोबदाब।

दबना (हिं० क्रि०) १ बोझके नीचे आना। २ दाब या पंजेमें आना। ३ ऐसी अवस्थामें आ जाना जिसमें कुछ वस न चल सके। ४ अनुचित रूपसे किसीका चीज दूसरेके अधिकारमें चला जाना। ५ शान्त रहना। ६ किसी बातका एक ही जगह स्थिर रहना, किसी बातका जहांका तहां रह जाना। ७ अपनी जगह पर डटा न रहना पीछे हटना। ८ किसीके प्रभाव या दबावमें आ कर विवश होना। ९ अच्छा न जँचना। १० संकोच करना। ११ मन्द पड़ना, धीमा पड़ना।

दबमी (हिं० पु०) हिमालय पहाड़ पर मिलनेवाला एक प्रकारका बकरा।

दबलान—राजपुतानेके बुन्दी राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २५´३४´ उ० और देशा० ७५´४´ पू०के मध्य बुन्दी शहरसे ११ मील उत्तर मेज नदीके किनारे अवस्थित है। लोकसंख्या ११३६ के लगभग है। १७४५ ई०में यहां महाराव राजा उमेदसिंहके अधीन हाड़राजपूतोंके साथ जयपुरके महाराज ईश्वरीसिंहको सेनाका तुमुल संग्राम हुआ था। युद्धमें महाराजकी ही जीत हुई।

दबवाना (हिं० क्रि०) किसी दूसरेको दबानेमें लगाना।

दबवाली—पञ्जाबके हिसर जिलेके अन्तर्गत सिरसा तहसीलकी एक उपतहसील। भूपरिमाण ३४९ वर्गमील है। इसमें ५९ ग्राम लगते हैं।

दबस (हिं० पु०) वह माल जो जहाजी गोदाममें रहता है, जहाज परकी रसद तथा दूसरा सामान।

दबाई (हिं० स्त्री०) रौंदवानेका काम।

दबाऊ (हिं० वि०) १ दबानेवाला। २ जिसका अगला भाग पिछले भागसे अधिक बोझल हो, छब्बू।

दबाना (हिं० क्रि०) १ भारके नीचे रखना। २ किसी पदार्थ पर बहुत जोर लगाना। ३ किसीको असहाय अवस्थामें ले आना। ४ जल्दीसे आगे बढ़ कर किसी चीजको पकड़ लेना। ५ बेईमानीसे किसीकी चीज जब्त करना। ६ शान्त करना, दमन करना। ७ अपने स्थानसे पीछे हटाना। ८ धरतीके नीचे गाड़ना, दफन करना। ९ जोर डाल कर विवश करना। १० दूसरेके गुणों या महत्त्वका प्रकाश न होने देना। ११ किसी बातको फैलने न देना।

दबाबा (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत लम्बा चौड़ा सन्दूक जो काठका बना होता है। यह युद्धकी एक

सामग्री है। इसमें कुछ आदमियोंको बिठा कर गुप्त रूपसे सुरंग खोदने अथवा और कोई उपद्रव करनेके लिये दुश्मनके किलेमें उतार देते हैं।

दबाव (हिं० पु०) १ दबानेकी क्रिया, चाप। २ दबानेका भाव। ३ प्रताप, रोब।

दबिल (हिं० पु०) हलवाइयोंका एक औजार। यह काठका बना होता है और देखनेमें खुरपी या खुरचनी सा लगता है। इससे वे बेसन आदि भूनते, खोवा बनाते या चीनीकी चाशनी आदि मिलाते हैं।

दबीज (फा० वि०) मोटे दलका, गाढ़ा, संगीन।

दबीर (फा० पु०) १ वह जो लिखनेका काम करता हो, मुंशी। २ महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी एक उपाधि।

दबूसा (हिं० पु०) १ जहाजका पिछला भाग, पिच्छल। २ पतवार लगी रहनेका बड़ी नावका पिछला भाग। ३ जहाजका कमरा।

दबैला (हिं० वि०) १ जिस पर रोब पड़ा हो, दबा हुआ। २ जल्दी जल्दी होनेवाला।

दबैल (हिं० वि०) १ जो किसीके प्रभाव या दबावमें पड़ा हो। २ जो बहुत डरता हो, दब्बू।

दबोचना (हिं० क्रि०) १ किसीको अकस्मात् पकड़ कर दबा लेना, धर दबाना। २ छिपाना।

दबोस (हिं० स्त्री०) चमकीला पत्थर।

दबौता (हिं० पु०) लकड़ीका एक कुंडा। यह पानीमें भिगोए हुए नीलके डंठलों आदिको दबानेके लिए ऊपरसे रख दिया जाता है।

दबौनी (हिं० स्त्री०) १ बरतनों पर फूल पत्ती आदि उभारनेका औजार जो लोहेका बना होता है। २ जुलाहोंकी वह लकड़ी जो भजनीके ऊपरकी ओर लगी रहती है।

दभोई (दर्भवती) बंबई प्रदेशके अन्तर्गत गायकवाड़ राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २०° १०' उ० और देशा० ७३° ७८' पू०, बड़ोदा राज्यसे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः १४५३९ है। यहां अष्टम हाउस, पथिकोंका डाकबंगला, रेलवेष्टेशन, औषधालय, कारागार और बहुतसे विद्यालय हैं। इनके सिवा रुईसे बीज बाहर निकालनेकी एक कल भी है। यही ११वीं शताब्दीका प्रसिद्ध दर्भवती नगर माना जाता है।

दभ्य (सं० त्रि) दभि अच् ततो यत्। हन्तव्य, मारनेयोग्य, कतल करने काबिल।

दभ्र (सं० त्रि०) दभ्नोतीति दन्भ-रक्। (स्थायितं चीति उण् २।१३) १ अल्प, थोड़ा। २ अल्पयुक्त, जिसमें बहु कम समाता हो। (पु०) ३ समुद्र। (स्त्री०) ४ उत्तरदिक्, उत्तर दिशा।

दम (सं० पु०) दम भावे घञ्। १ दण्ड, दमन, सजा। मनुष्योंको दमन करनेके लिये दण्डका नाम दम पड़ा है। दंड देखो। इसका पर्याय—दन्ति, दमथ और दमन है। २ बाह्येन्द्रिय निग्रह, इन्द्रियोंको वशमें रखना। बुरे कामोंसे चित्तको लौटनेका नाम दम है अर्थात् जिससे बुरे कामोंमें चित्त प्रवृत्त न हो वा चित्तको किसी कुकर्मकी ओर झुका देख जिस शक्तिके बलसे वह उस कुकर्मकी ओरसे लौटाया जाता है उसको दम कहते हैं। ३ कर्दम, कीचड़। ४ गृह, घर। ५ एक प्राचीन महर्षिका नाम। (भारत १३।२६।५) ६ मरुत्तराजके पुत्र। (भाग० ९।२।२९) ७ मरुत्तके पौत्र। ये दुष्टोंको दमन करते थे तथा बहुत बलवान् और दया दाक्षिण्यादि सब प्रकारके सद्गुणोंसे विभूषित थे। इन्होंने बभ्रुकी कन्या इन्द्रसेनाके गर्भसे जन्मग्रहण किया था। ये नौ वर्ष तक माताके गर्भमें रहे थे। इनके पुरोहितने समझा था, कि जिसकी जननीको नौ वर्ष तक इस प्रकार इन्द्रियका दमन करना पड़ा है, वह बालक स्वयं भी बहुत दमनशील होगा। इसी कारण पुरोहितने इनका नाम दम रखा था। महाराज दमने वृषपर्वासे धनुर्वेद और दैत्यराज दुन्दुभिसे अनेक तरहके अस्त्रादि सीखे थे। वेद वेदाङ्गके भी ये अच्छे ज्ञाता थे। (मार्कण्डेयपु० १३३-१३४ अ०) ८ भीम राजाके एक पुत्र जो दमयन्तीके भाई थे। (भारत ३।५३।३।) ९ विष्णु। १० बुद्धका एक नाम।

दम (फा० पु०) १ श्वास, साँस। २ नशे आदिके लिये सांसके साथ धूआँ खींचनेका काम। ३ प्राण, जान, जी। ४ सांस खींच कर जोरसे बाहर फेंकनेका काम। ५ एक बार सांस लेनेका समय, पल, लहमा। ६

व्यक्तित्व। ७ जीवनी शक्ति। ८ पकानेकी एक क्रिया। इसमें किसी खाद्य पदार्थको बरतनमें रखते और उसका मुंह बन्द करके आग पर चढ़ा देते हैं। इस प्रकार बरतनके भीतरकी भाफ जो बाहर नहीं निकलने पाती उस पदार्थको पकनेमें बहुत सहायता पहुंचाती है। ९ संगीतमें किसी स्वरका देर तक उच्चारण। १० धोखा, छल, फरेब। ११ तलवार या छुरी आदिका बाढ़, धार।

दम (हिं० पु०) एक प्रकारकी तिकोनी कमाची जो दरी बुननेवालोंके काममें आती है। इसमें सवा सवा गजकी तीन लकड़ियाँ एक दूसरीसे बंधी रहती हैं। ये करघेमें पड़ी रहती और उनमें जोती बंधी रहती है। यह जोती पैरके अंगूठेमें बाँध दी जाती है। बुननेके समय यह पैरके बल नीचे दबाया जाता है।

दमक (सं० त्रि०) दमयतीति दम-णिच्-ण्वुल्। दमन-कर्त्ता, शासनकारी।

दमक (हिं० स्त्री०) द्युति, चमक, चमचमाहट।

दमकना (हिं० क्रि०) चमकना, चमचमाना।

दमकल—अग्निसे गृहादिकी रक्षा करनेका एक यन्त्र। दमकल दो प्रकारकी होती है, एक हाथसे चलाने की और दूसरी वाष्पीय यन्त्रसे। नगरोंमें गृहदाहके निवारणके लिए बहुत पहलेसे ही अनेक तदबीरें होती आ रही हैं। ईशाजन्मके दो सौ वर्ष पहले भी ग्रीस और रोममें इस विषयमें कई एक यन्त्रादि उद्भावित और प्रचलित थे।

इतिहास। भुजनेल और प्लिनी हामा (Hama) नामक एक प्रकारके यन्त्रकी कथा उल्लेख कर गये हैं। कितनोंने तो इसे एक प्रकारकी जलकूपी माना है, किन्तु होलष्टनका कहना है, कि यह जलकूपी नहीं है। यह एक प्रकारका बड़ा हुक वा टेढ़ा लोहा है जो किसी बड़े दण्डाग्रमें बंधा रहता था। मालूम पड़ता है, इससे अग्निविशिष्ट द्रव्यादिको खींच कर उन्हें बुझानेकी कोशिश करते थे।

प्लिनीने (Pliny the younger) नल वा साइफनकी सहायतासे आग बुझानेकी कथा उल्लेख की है।

जिसे कल कह सकते हैं, उसका ईसाजन्मके १५० वर्ष पहले आविष्कार हुआ। सिवियस (Ctsibius) नामक एक प्रसिद्ध ग्रीक यन्त्रतत्त्ववित् टलिमी फिलाडेलफसके राजत्वकालमें मिस्र देशमें रहते थे। जब वे अलेकजेण्ड्रियामें थे, तब हिरो (Hero) नामक उनके एक छात्र था जो अपने स्पिरिटेलिया (Spiritalia) नामक ग्रन्थमें एक प्रकारकी कलका वर्णन कर गये हैं। उस कलमें एक प्रकारका जलोत्तोलनयन्त्र (Forcing pump) और दो बड़े नल लगे हुए थे। इस यन्त्रकी उन्नति होनेसे ही यहाँकी हस्तचालित दमकलका आविष्कार हुआ है। मि: विलने अपने जगत्‌की उन्नति नामक ग्रन्थमें कहा है, कि हिरोके इस यन्त्रमें वर्त्तमान हस्तचालित दमकलके समस्त मूल सूत्र थे। केवल दिनों दिन ज्ञानोन्नतिके साथ साथ ही इन सूत्रोंकी उन्नति हुई है।

सम्राट् ट्रोजन (Emperor Trojon) अपनी अट्टालिकाके आपोलोडोरस (Apallodorus) नामक यन्त्रकी कथा उल्लेख कर गये हैं। इस यन्त्रमें जल भरा हुआ एक चमड़ेका कुप्पा रहता था और उस कुप्पेके साथ नल लगा हुआ था। कुप्पेको दबानेसे नल हो कर जल अग्निस्थानमें पहुंचता था।

१५१८ ई०को जर्मनीके अगसवर्ग नगरमें आग बुझानेके लिये पिचकारीकी तरहकी एक प्रकारकी कल थी जिसे (Instrument of fire वा Water-syringe) कहते थे।

कस्पर सोटने (Caspur Schott) एक और प्रकारकी कलका उल्लेख किया है। वह कल १६१५ ई०की नुरेनवर्गमें व्यवहृत होती थी और प्रायः हिरोकी उल्लिखित कलकी तरह थी। इसे घोड़े खींच कर ले जाते थे। इसमें एक बड़ा नल लगा हुआ रहता था। कलको चालू करनेमें २८ मनुष्योंकी जरूरत पड़ती थी। इससे एक इञ्च मोटी जलकी धारा निकलती जो ८० फुट ऊपर जा कर गिरती थी। १७ वीं शताब्दीके अंतमें वायुकक्ष (Air-chamber) के खिसका एक मोटा नल (Hose) व्यवहृत हुआ। ये सब द्रव्य-संयुक्त कलें १६८४ ई०में व्यवहृत होती थीं, इसका उल्लेख पेरल्ट (Perrault) कर गये हैं। उन्होंने १६७० ई०में भाण्डार हाइड (Vander-Hiae) सकसन

पाइपका Sanction Pipe) आविष्कार किया। विलायतमें १६ वीं शताब्दीके अन्त तक हस्तचालित दमकलका व्यवहार था। अग्निस्तम्भन देखो। ये सब कलें पीतलकी बनी थीं। दो बड़े पानीके बरतनोंके बीच दो भार खड़े रहते थे। दो मनुष्य उन भारोंको जब जलमें प्रविष्ट कर पकड़ते थे तब उन दोनों बरतनोंको बगलके छेदोंसे जल निकल पड़ता था और एक ऊर्ध्व मुख नल द्वारा वह जल बाहर जा गिरता था। उन दोनों लम्बित भारोंको एक बार दबा कर खींच लेते और फिर दबा देते थे। प्रत्येक दबावके समय बहुत सा जल भक भक शब्द करता हुआ नल द्वारा केवल निकल ही पड़ता, ऊपर नहीं जा सकता था। पीछे वायुकक्ष और कैम्बिसका मोटा नल व्यवहृत हो जानेसे उक्त अभाव जाता रहा। अब भी जलके ऊपर बद्ध घनीभूत वायुके दबावसे और जलोत्तलन यंत्रकी क्रियासे जलका वेग सदा एक सा रहता है। दोनों भारोंकी उन्नति और अवनतिमें जलाधारका न तो लोप होता और न वेग ही कमता है।

पीछे इसके साथ साथ बहुत उन्नति की गई। नल द्वारा जिससे कीचड़ वा ढेला न जा सके, उसका भी उपाय कर दिया गया है। जलाधारका जल खर्च हो जाने पर अभी पुष्करिणी वा नदीका जल बहुत आसानीसे काममें लाया जाता है। यहां छोटी कल एक घोड़ेसे खींची जा सकती है, दो चार मनुष्य भी ठेल कर ले जा सकते हैं। बड़ी कलमें दो वा चार घोड़ोंकी जरूरत होती है। अभी कैम्बिस या चमड़ेका नल काममें लाया जाता है। अमेरिकामें रूईको जमा करके एक प्रकारका नल बनाते हैं। सम्प्रति बड़ी बड़ी कलोंमें वाष्पीय-यन्त्रके हो जानेसे २८ मनुष्योंका परिश्रम बच गया है।

लन्दनकी दमकलके आफिसकी कलोंसे प्रति मिनटमें ८० गैलन जल निकल सकता है। एक कल परिचालक, एक अग्नि-रक्षक और अन्यान्य द्रव्योंके साथ एक एक कलका वजन ४०-५० मनसे कम नहीं होगा। इसे दो घोड़े एक घण्टेमें तीन कोस तक खींच कर ले जा सकते हैं। वृहत् अग्निकाण्डमें दो कलको एक साथ मिला कर काम कर सकते हैं। ऐसा करनेसे प्रति मिनटमें १८० गैलन जल निकल सकता है।

१८३० ई०में जब लन्दनके आर्गाइल रूम्‌स नामक घरमें आग लगी थी तभी सबसे पहले यह कल वाष्पीय यन्त्रकी सहायतासे चलाई गई। टेम्सके ऊपर बहुतसी बहनेवाली दमकलें बनाई गईं। वे भी वाष्पीय यन्त्रोंकी सहायतासे परिचालित होती थीं। ये सब कलें प्रति मिनटमें १४०० गैलन जल दे सकती थीं। जब पार्लियामेण्टके घरमें आग लगी, तब इससे भी अधिक क्षमताशाली कल प्रस्तुत की गई थी। किन्तु लन्दन सेतुके निकटस्थ कारखानेमें १८६१ ई०को जब आग लगी थी, तब उन सब कलोंमेंसे एक भी ऐसी न निकली जो उसे बुझा सके। अधिकांश भस्म हो जानेके बाद आग बुझाई गई थी।

सामान्य अग्निकाण्डमें हस्तचालित कलोंसे विशेष उपकार होता है; क्योंकि वाष्प संग्रह करनेमें बड़ी कलोंमें जितनी देरी लगती है, उतनेमें तो सामान्य अग्निकाण्डमें घरकी कुल चीजें भस्म हो जा सकती हैं। हस्तचालित बहुत सी कलें इच्छानुसार काममें तो ला सकते हैं; किन्तु वृहत् अग्निकाण्डमें जहां छोटी कलसे काम नहीं चल सकता वहीं बड़ी कलका प्रयोजन पड़ता है। लेकिन जब तक बड़ी कल काम शुरू न कर दे तब तक छोटी कलसे चारों ओरकी रक्षा करनी उचित है।

दमकलके विषयमें एक संदेह अब भी बना है। वह यह है, कि भारी अग्निकाण्डमें कलसे जल देनेमें आग बुझती है वा बढ़ती? कलसे कितना ही जल क्यों न दिया जाय, तो भी अग्निकी तुलनामें उसका परिमाण बहुत अल्प है। देखा जाता है, कि अग्निके जलते समय अङ्गार जल मध्यगत अक्सिजनके साथ मिल कर अङ्गाराम्ल वाष्प (Carbonic oxide Gas) उत्पादन करता है। इस वाष्पमें भी जलसे अधिक अक्सिजन वियुक्त हाइड्रोजन राशि और दाह्य पदार्थ है। अतः अग्निमें जब कम जल दिया जाता है, तबसे दोनों द्रव्य जल कर अग्निकी लपटको और भी बढ़ाते हैं जलको वाष्पमें लानेमें अग्निका उत्ताप जितना नष्ट होता है, उक्त दो वाष्प जल कर उससे कहीं अधिक उत्ताप जमा करती

हैं। इस विषयमें अब भी विशेष आलोचना वा मीमांसा नहीं हुई है।

दमकल चलानेके लिये एक दल शिक्षित मनुष्यकी आवश्यकता है। इनके मस्तक पर दृढ़ शिरस्त्राण और धातुनिर्मित स्कन्धत्राण रहते हैं। इनके रहनेसे जलते हुए घरका भग्नांश वा बीम बरगा उनके ऊपर गिर भी क्यों न जाय, तो भी कुछ अनिष्ट नहीं होता। इन लोगोंका साहस भी प्रशंसनीय है। ये लोग जलका नल ले कर जैसी वीरता और साहसके साथ अग्निक्षेत्रमें कूद पड़ते हैं प्रज्वलित गृहसे लोगोंके जीवन और धनकी रक्षा करते हैं, वह विस्मयजनक है। अभी यूरोपमें सब जगह लन्दनके नियम दमकलके लोगोंको सिखाये जाते हैं। लन्दनके दमकल-आफिसमें जो कोई अग्निकाण्डकी खबर पहुंचाता है उसे पारितोषिक मिलता है। इसी कारण लन्दनमें जब कभी कहीं आग लगती है, तो बहुत जल्द आफिसमें खबर पहुंचती है।

अभी प्रायः सभी प्रधान शहरोंमें कहां आग लगी है उसे देखनेके लिये गिर्जाके शिखरके जैसा एक ऊंचा काठका घर बना रहता है। इस घरमें रातदिन एक पहरू बैठा रहता है जिसका काम शहरके चारों ओर निगाह डालनेके सिवा और कुछ भी नहीं है। जब कहीं आग दीख पड़ती है, तब वह तुरंत ही नीचे आ कर दमकल आफिसमें खबर पहुंचाता है।

कनस्टान्टिनोपलमें स्वर्ण अंतरीपके दोनों बगल उक्त प्रकारके दो अग्निदर्शन-गृह बने हैं। वहां भी पहरा बैठता है। पहरू जब कहीं आग देखता है, तब उसके नगारा बजानेसे ही दूसरे दूसरे पहरू नगरके अमुक स्थानमें आग लगी है' ऐसा कह कर चिल्लाते और जमीन पर बेंत पीटते हैं। क्षण भरमें सारे नगरमें बिजलीकी नाईं यह सम्वाद फैल जाता है। यहां तक कि यदि बासफोरसके दूसरे किनारे भी आग लगी हो, तो उधरके लोगोंको इस तरहके सम्वादसे खबर देते हैं। दमकलवाले नगरवासियोंको वाध्य करके अग्नि बुझानेमें [illegible] हैं। ये लोग अग्निसंश्लिष्ट घरोंको तोड़ फोड़ कर अग्नि बुझाते हैं। जब आग एक घण्टेसे अधिक देर तक [illegible] जाती है, तब देशनायक स्वयम् उस स्थान पर पहुंच जाते और लोगोंको उत्साहित करते हैं। ऐसी प्रथासे नगरवासियोंको देशाधिपके दर्शन करनेका अच्छा मौका मिल जाता है। अतः वे मनसे आग बुझाते और देशाधिपके पहुंच जाने पर उनके सामने अपना दुखड़ा रोते हैं। वर्त्तमान कालमें देशाधिप अग्नि स्थान पर स्वयम् न आ कर अपने वजीरको भेज देते हैं। २ उक्त सिद्धान्त पर बना हुआ एक यन्त्र। इसकी सहायतासे कुएंसे जल निकाला जाता है।

दमकला (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका बड़ा पात्र जो दमकलके जैसा बना होता है। इसमें पिचकारी लगी रहती है जिससे बड़ी बड़ी महफिलोंमें लोगों पर गुलाब जल अथवा रंग आदि छिड़का जाता है। २ पाल चढ़ा करनेका एक जहाज।

दमखम (फा॰ पु॰) १ दृढ़ता, मजबूती। २ जीवनी शक्ति, प्राण। ३ तलवारकी धार और उसका झुकाव।

दमघोष (सं॰ पु॰) चन्द्रवंशीय एक राजा। ये चेदिदेशके अधिपति शिशुपालके पिता थे। इनका दूसरा नाम श्रुतश्रवा भी है।

दमघोषसुत (सं॰ पु॰) दमघोषस्य सुतः। दमघोषके पुत्र, शिशुपाल।

दमचा (हिं॰ पु॰) खेतके कोने पर बनी हुई मचान। इस पर बैठ कर खेतिहर अपने खेतकी रखवाली करता है।

दमचूल्हा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका लोहेका बना हुआ गोल चूल्हा। इसके बीचमें एक जाली होती है जिसके बीच एक और बड़ा छेद होता है। इसकी जाली पर कुछ कोयले रख कर उसकी दीवार पर पकानेका बरतन रखा जाता है और नीचेके छेदसे हवा की जाती है जिससे आग सुलगती रहती है। कोयलेके जल जाने पर उसकी राख जाली हो कर नीचे गिर पड़ती है।

दमजोड़ा (हिं॰ पु॰) असि, तलवार।

दमड़ा (हिं॰ पु॰) धन, रुपया, दाम।

दमड़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ पैसेके आठ भागोंमेंसे एक भाग। २ एक प्रकारका पक्षी।

दमथ (सं० पु०) दम उपशमे दम अथच् (बाहुलकात् दृशमिदमिभ्यश्च। उण् ३।११४) दम, दण्ड, सजा।

दमथु (सं० पु०) दम भावे अथु। दम, सजा।

दमदमा—१ बङ्गालके २४ परगने जिलेके अन्तर्गत बारकपुर उपविभागका एक महकूमा। यह अक्षा० २२° ३४' उ० और २२° ४१' उ० तथा देशा० ८८° २६' और ८८° ३१' पू०के मध्य अवस्थित है भूपरिमाण २४ वर्गमील है। इसके मध्य हो कर मध्य-बङ्गरेलपथ गया है।

२ उक्त महकूमेका एक शहर। यह अक्षा० २२° ३८' उ० और देशा० ८८° २५' पू० कलकत्तासे ७ मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १०९०४ है। यहां म्युनिसपलिटी और सैनिकावास है। यह सैनिकावास ईंटोंका बना हुआ है और बहुत प्रशस्त है। १७८३ ई०से लेकर १८५३ ई० तक यह कमान आदि रखनेका स्थान था। १८५३ ई०में यह मोरट उठ कर चला गया। उस समय यहां एक अस्त्रागार, सैनिकावास, अस्पताल, बड़ाबाजार, अनेक परिष्कार जलपूर्ण दीघो और प्रोटेष्टाण्टोंका गिरजा था। जिस सन्धिके अनुसार बङ्गालके नवाबने अङ्गरेजोंको कलकत्ता, कासिमबाजार और ढाका ये तीनों देश दे दिये थे, वह सन्धि इसी स्थान पर हस्ताक्षरित हुई थी। (१७५७ ई०की ६ ठी फरवरी) यहां पूर्व बङ्ग रेलवेकी एक स्टेशन और अङ्गरेजी स्कूल है। प्रतिवर्ष मुसलमान फकीर शाह फरीदके उद्देश्यसे यहां एक मेला लगता है।

दमदमा (फा० पु०) मोरचा, धुस।

दमदमा—पूर्व बङ्गाल और आसामके लक्ष्मीपुर जिलेके अंतर्गत डिब्रूगढ़ उपविभागका एक ग्राम। यह अक्षा० २७° ३४' उ० और देशा० ८५° ३३' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां चायका व्यवसाय खूब चलता है। यहां एक प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

दमदार (फा० वि०) १ जिसमें जीनेकी शक्ति बहुत हो। २ दृढ़, मजबूत। ३ जिसमें अधिक समय तक सांस रह सके। ४ तेज धारवाला, चोखा।

दमन (सं० पु०) दाम्यतीति दम-ल्यु। १ दण्ड, दबाने या रोकनेकी क्रिया। २ इन्द्रियादिका वाह्यवृत्ति-निरोध, इन्द्रियोंकी चंचलता रोकना। ३ पुष्पवृक्षविशेष, एक प्रकारका पेड़। ४ कुन्द पुष्पवृक्ष। ५ महर्षिविशेष, एक ऋषिका नाम। (भारत ३।५३।६) ६ [illegible] के एक पुत्रका नाम। महाराज [illegible] ब्रह्मर्षिकी आराधना करके सब पुत्र प्राप्त किये थे, इसीसे उन्होंने पुत्रका नाम दमन रखा था। (भारत ३।५३।[illegible]) ७ विष्णु (भारत १३।१४९।२४) ८ महादेव, शिव।

दमनक (सं० पु०) दमन एव स्वार्थे कन्। पुष्पविशेष, दौना। इसका पर्याय—दमन, दान्त, गन्धोत्कटा, मुनि, जटिला, दण्डी, पाण्डुराग, ब्रह्मजटा, पुण्डरीक, तापसपत्री, पवित्रक, देवशेखर, कुलपत्र, विनीत, तपस्विपत्र, मुनिपत्र, तपोधन, गन्धोत्कट, ब्रह्मजटी और कुलपत्रक। (भावप्रकाश) इसके फूल सुगन्धित और जटाकृतिके होते हैं। इसका गुण—शीतल, तिक्त, कषाय, कटु, कुष्ठदोष, विष, विस्फोट और विनाशक है। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—हृद्य, [illegible] ग्रहणी, [illegible] २ छन्दोविशेष, एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें ६ अक्षर होते हैं। इसमें तीन नगण, एक लघु और एक [illegible] छन्दोविशेष, एक छन्दका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें ११ अक्षर रहते तथा शेष वर्ण छोड़ कर और सब अक्षर लघु होते हैं। (वि०) ४ दमनशील, दमन करनेवाला।

दमनकारोपणोत्सव (सं० पु०) दमनकस्य आरोपणाय उत्सवः। श्रीकृष्णको दमनक अर्पणार्थ [illegible] उत्सवविशेष। श्रीकृष्णको दमनक दानोत्सव विधि [illegible] भक्तिविलासमें इस प्रकार लिखा है—

चैत्रमासकी शुक्लाद्वादशीमें श्रीकृष्णको [illegible] दान करना [illegible] चाहिये।

मधुरमासकी शुक्लाएकादशी तिथिमें प्रातः [illegible] समाप्त करके दमनक वनमें जाते हैं और [illegible] लिखित रूपसे उसकी प्रार्थना करते हैं—

[illegible]शोकाय नमस्तुभ्यं कामस्याङ्ग[illegible]
[illegible] हर मे नित्य आनन्दं जनय[illegible]
[illegible] कृष्णपूजार्थं त्वां कृष्णप्रीतिकर[illegible]

THE
Modern Buddhism.
and its
FOLLOWERS IN ORISSA
BY
Nagendra Nath Vasu, M.R.A.S.
with an introduction by
Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri M. A., C. I. E.

It has been conclusively proved in this book that Buddhism is neither dead nor driven out of India, but its pulse still beats with all the energy of life in Orissa. "Sankaracharyya drove away Buddhism from the soil of India" is proved to be absolutely false. The discoveries of 50000 crypto-Buddhists living in the jungle tracts of Orissa first announced in this book has taken the world of European scholars by surprise.

The book contains more than 250 pages. It is nicely printed and beautifully bound. **Price**—Rs. 3/-, for students Rs. 2/-.

Dr. L. D. Burnett of the British Museum writes :—

"A more fascinating and erudite work I have not read for many years and I shall find it most valuable both in the study and in the lecture-room.'

Dr. H. Kern, the great Buddhist scholar writes :—

"I need hardly to tell you that the subject matter is one that interests me highly, so that it will be a pleasure for me to read the book, which contains so much that is little known or not at all in Europe."

Sir. GeorgeA. Grierson, K. C. I. E. Author of Linguistic Survey of India writes :—

"I have found yur chapter on the Revival of Buddhism most interesting. I think it a mst important contribution towards the religious history of India. It shuld certainly be carefully studied by all who interest themselves in that sbject."

A. Smith I. C.S. (retired) writes from 116 Banbury Road, Oxford—

"Your book is als of high value for the history of Buddhism and Indian religion generlly. The account of later and modern Buddhism is novel and your cortant citation of little known Sanskrit works gives t special authority."

ग्राहकोंसे निवेदन।

बहुतसे महाशय हमारे साथ पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर नहीं लिखते। ऐसे महाशयोंसे प्रार्थना है कि पत्र लिखते समय अपने ग्राहक श्रेणीका नम्बर अवश्य २ लिख दिया करें अन्यथा पत्रोत्तरकी आशा न करें।

२। हम आपके साहाय्यसे ही 'हिंदी विश्वकोष'के प्रकाशनका भार उठाने समर्थ हुए हैं। अतः आपसे प्रार्थना है कि कमसे कम दो ग्राहक बनानेकी कृपा करें।

निवेदक—
प्रबन्धकर्त्ता—हिंदी-विश्वकोष कार्यालय,
९ विश्वकोषलेन, कांटापुकुर, बागबाजार, कलकत्ता

आवश्यकीय सूचना

हिन्दी-विश्वकोषको आज तक प्रतिमास ४ संख्या प्रकाशित होती थीं, परन्तु अब छ संख्या प्रतिमास प्रकाशित होगी, तदनुसार ग्राहकोंकी सेवामें भी छ संख्या ही प्रतिमास भेजी जाया करेंगी। आशा है, कि छ संख्याकी वी॰ पी॰ छुड़ा कर कृतार्थ करेंगे।

निवेदक—
प्रबन्धकर्त्ता

ARCHÆOLOGICAL REPORT OF MAYURABHANJA.

BY

Nagendranath Vasu, Editor of "Visvakosha."

This work contains along with the results of the archeological and historical reserches conducted at the cost of the Chief of Mayurabhanja, a descriptive account of the rise and development of the various Hindu, Buddhist and Jaina sects. The discoveries of numerous cripto-Buddhists in Orissa, first announced in this book, has taken the wold of European Scholars by surprise. Dr. Kern, Dr. Fleet, Dr. Oldenbug, Sir Grierson Dr. Sylvain Levi, M. Emile Senart, Mr. Vincent Smth, Dr. Thomas of India Office and other European scholars have enthusastically received the book and lavished high-flown praises upon it. Beavifully printed and gorgeously bound with more than 100 large plates of iscriptions, grants, ancient temples, ruins and figures of Hindu, Buddhis and Jaina Gods and Goddesses with their identification from the authritative scriptures of various sects. Price Rs. 15/-, for students Rs. 10/-

Dr. L. D. Burnett writes in the Journal ofthe Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland, 1912. pp. 802-4.

"The body of the book comprises a series of repo on the antiquities and history of a number of sites visited in the coursof the survey, with an appendix containing text and facsimiles * * Almost every form of Hindu religion has left its mark in Morbhanj * * * Undoubtedly the most interesting part of this interesting suny is the Chapter on Buddhism. * * * Pandit Nagendra Nath Va brings the history of Buddhism in Orissa down to the present day. e finds distinct traces of Mahayana cults among the Bathuri or Bauri tri on whose ethnology he gives some valuable data. * * * In concling this brief notice of this *veritable Ratnakar of learning*, we may a that it is illustrated by numerous plates."

Dr. J. F. Fleet, C. I. E. (the great anticaran) writes from 8. Leopold Road, Ealing W. London.—

"I have read the book with much interest, d consider it a useful addition to our researches into the ancient d medieval history of India"

C.

STOCK VERIFY
2020
G.K.V. Library

COMPILED